

दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण



सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग ४

(अप्रैल)

पृष्ठ १ से २०१८

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित
इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी

माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

- श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता
- श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

- श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता
- सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता
- श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता
- सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता
- श्री सरोज गिरी, अधिवक्ता
- सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता
- श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता
- श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता
- श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता
- श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति	
माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री प्रितिकर दिवाकर	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्रीमती सुनीता अग्रवाल	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री देवेन्द्र कुमार उपाध्याय (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया
६. माननीय न्यायमूर्ति डा० कौशल जयेन्द्र ठाकर	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुनीत कुमार	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री अतउ रहमान मसूदी	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम समशरी
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन राय	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरविन्द कुमार मिश्रा-प्रथम	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री करुणेश सिंह पवार
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४७. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेश कुमार गुप्ता
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री जहांगीर जमशेद मुनीर	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री डॉ. गौतम चौधरी
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत कुमार	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश कुमार सिंह	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह	६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा

६५. माननीय न्यायमूर्ति	श्रीमती सरोज यादव
६६. माननीय न्यायमूर्ति	श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)
६७. माननीय न्यायमूर्ति	श्री सैयद आफताब हुसैन रिजवी
६८. माननीय न्यायमूर्ति	श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
६९. माननीय न्यायमूर्ति	श्री चन्द्र कुमार राय
७०. माननीय न्यायमूर्ति	श्री कृष्ण पहल
७१. माननीय न्यायमूर्ति	श्री समीर जैन
७२. माननीय न्यायमूर्ति	श्री आशुतोष श्रीवास्तव
७३. माननीय न्यायमूर्ति	श्री सुभाष विद्यार्थी
७४. माननीय न्यायमूर्ति	श्री बृज राज सिंह
७५. माननीय न्यायमूर्ति	श्री श्री प्रकाश सिंह
७६. माननीय न्यायमूर्ति	श्री विकास बुद्धवार
७७. माननीय न्यायमूर्ति	श्री ओम प्रकाश त्रिपाठी
७८. माननीय न्यायमूर्ति	श्री विक्रम डी चौहान
७९. माननीय न्यायमूर्ति	श्री उमेश चन्द्र शर्मा
८०. माननीय न्यायमूर्ति	श्री सौरभ श्रीवास्तव
८१. माननीय न्यायमूर्ति	श्री ओम प्रकाश शुक्ला
८२. माननीय न्यायमूर्ति	श्रीमती रेनू अग्रवाल
८३. माननीय न्यायमूर्ति	श्री मौ० अजहर हुसैन इदरिशी
८४. माननीय न्यायमूर्ति	श्री राम मनोहर नारायण मिश्रा
८५. माननीय न्यायमूर्ति	श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
८६. माननीय न्यायमूर्ति	श्री मयंक कुमार जैन
८७. माननीय न्यायमूर्ति	श्री शिव शंकर प्रसाद
८८. माननीय न्यायमूर्ति	श्री गजेन्द्र कुमार
८९. माननीय न्यायमूर्ति	श्री सुरेन्द्र सिंह-प्रथम
९०. माननीय न्यायमूर्ति	श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
९१. माननीय न्यायमूर्ति	श्री सैयद कमर हसन रिजवी
९२. माननीय न्यायमूर्ति	श्री मनीष कुमार निगम
९३. माननीय न्यायमूर्ति	श्री अनीश कुमार गुप्ता
९४. माननीय न्यायमूर्ति	श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला
९५. माननीय न्यायमूर्ति	श्री क्षितिज शैलेन्द्र
९६. माननीय न्यायमूर्ति	श्री विनोद दिवाकर
९७. माननीय न्यायमूर्ति	श्री प्रशांत कुमार
९८. माननीय न्यायमूर्ति	श्री मंजीव शुक्ला
९९. माननीय न्यायमूर्ति	श्री अरुण कुमार सिंह देशवाल

अंकित कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	अली शेर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
पृष्ठ- 619	पृष्ठ-216
अंकित सक्सेना एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	अवधेश कुमार सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य
पृष्ठ-1655	पृष्ठ- 730
अंसार नवाज खान बनाम अदील अहमद व अन्य	अहजाम अहमद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
पृष्ठ-193	पृष्ठ-62
अखिलेश शुक्ला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	आशा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
पृष्ठ-1273	पृष्ठ-134
अजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	इंद्र कुमार पूर्व कांस्टेबल बनाम भारत संघ
पृष्ठ-213	पृष्ठ-1372
अजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कैलाश नाथ एवं अन्य
पृष्ठ-529	पृष्ठ-891
अजीम हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, इलाहाबाद एवं अन्य
पृष्ठ-587	पृष्ठ-1256
अनवर सैफी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	उत्तर प्रदेश राज्य भंडारण निगम रामबाग बरेली बनाम कर्मचारी भविष्य निधि, अपीलीय प्राधिकरण एवं अन्य
पृष्ठ-110	पृष्ठ-172
अनवर@शानू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	उदय प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
पृष्ठ- 637	पृष्ठ-966
अनुज सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य	उदय यादव बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य
पृष्ठ-289	पृष्ठ-1059
अनुपमा सिन्हा बनाम रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण, राज्य नियोजन संस्थान, लखनऊ उत्तर प्रदेश और अन्य	उनीश खान बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य
पृष्ठ-83	पृष्ठ-1465

उमा शंकर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ- 234	काजल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ-992
ऋषिपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-181	किशन वीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1415
एस.के. एसोसिएट्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1237	कुमारी दीप्ति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-720
एस0 सुनंदा बनाम अध्यक्ष इंदिरा गांधी राष्ट्रीय उद्यान अकादमी, नई दिल्ली और अन्य	पृष्ठ-269	कुमारी पूनम निझावन बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-1799
ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ-175	कुसुम देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1661
ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड शकरपुर, दिल्ली बनाम असगर व अन्य	पृष्ठ-1527	गोकुल राम एवं अन्य बनाम शिव जोखन सिंह और अन्य	पृष्ठ-1628
कंवरपाल @लाला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1106	गोपाल दास और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1327
कपिल कुमार दीक्षित एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-840	गोपाल श्रीवास एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-505
कमरुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-45	चंद्र प्रकाश त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-767
कलामुद्दीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1971	जगत नारायण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1764
कांस्टेबल नं. 405 अंजनी कुमार पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ-1517	जगदीश नारायण कटियार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1554
		जय प्रकाश त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ-1507

जय प्रकाश यादव बनाम डी.जी. (सी.आर.पी.एफ.) सी.जी.ओ. नई दिल्ली एवं अन्य	पृष्ठ-1524	डॉ० राकेश कुमार शर्मा बनाम कुलाधिपति. चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय एवं अन्य	पृष्ठ-1591
जय प्रकाश सेवानिवृत्त(कार्यकर्ता) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-832	ताहिर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1935
जय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1822	दिवाकर द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-789
जानकी शरण त्रिवेदी @अमन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-104	दीपक एवं अन्य बनाम जिला न्यायाधीश हरदोई एवं अन्य	पृष्ठ-405
जावेद अख्तर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-688	दीपक कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1073
जीतन लोध @ जीतेन्द्र बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-24	देव राज बनाम श्रीमती रूक्मिणी देवी	पृष्ठ-201
जुहैर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-857	देव शरण और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1302
जान चंद्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-521	देवेंद्र यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-983
डा० मो० इकबाल गाजी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1006	देश राज सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1570
डॉ. रक्त कला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1365	नदीम तारिक बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-1495
डॉ० ऋचा मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1529	नदीम सलमानी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-571

नदीम@कालिया बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-660	पप्पू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1459
नन्हे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1120	पवन गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1069
नन्हे भैया @ ननहन सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-942	पवन सिंघानिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-223
नरेन्द्र प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-978	पुष्पा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1785
नाजिम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-536	पूजा शर्मा @ पिकी गिरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1114
नासिर खान बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-460	प्रवीण कुमार सिंह @ प्रवीण कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1647
निजामुद्दीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-237	फिरोज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1311
नितेश कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-10	फूल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1288
नीरज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ-29	बच्चा प्रसाद सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-932
नृत्य सी0 जार्ज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1095	बजाज आलियांज जन्मल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मोटर दुर्घटना दावा, शाहजहाँपुर एवं अन्य	पृष्ठ-1229
नौतिक शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1457	बिन्दु एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1028
पंकज यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य	पृष्ठ-947	बी0एन0एस0डी0 शिक्षा निकेतन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बनाम क्षेत्रीय भविष्य निधि आयोग और अन्य	पृष्ठ-875

[बृजेंद्र पल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम विकास बैंक एवं अन्य](#)

पृष्ठ-795

[भारत संघ एवं अन्य बनाम अरुण कुमार मिश्रा](#)

पृष्ठ-263

[भारत संघ एवं अन्य बनाम जीतेन्द्र कुमार बाजपेयी एवं अन्य](#)

पृष्ठ-753

[भारत संघ एवं अन्य बनाम नाथन सिंह](#)

पृष्ठ-1758

[भारत संघ एवं अन्य बनाम श्रीमती कमला पांडे एवं अन्य](#)

पृष्ठ-357

[भूरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1223

[मनीषा कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1738

[मनोज गुप्ता@मनोज कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य](#)

पृष्ठ-443

[महबूब पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1729

[मान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य](#)

पृष्ठ-96

[मास्टर देवांश अग्रवाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1180

[मुकेश कुमार यादव बनाम भारत संघ](#)

पृष्ठ-1619

[मेसर्स ईस्ट इंडिया पैकेजिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1220

[मेसर्स बालमोकंद फकीर चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-674

[मेसर्स मां महामाया अलॉयज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-711

[मेसर्स परसादी लाल तुलसीराम कोल्ड आगरा रोड, बिसाना हाथरस एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-999

[मो० उस्मान बनाम श्रीमती शगुप्ता बेगम](#)

पृष्ठ-419

[मो० तुफैल बनाम भारत संघ और अन्य](#)

पृष्ठ-34

[मो० मुस्तकीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-804

[मोती लाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-1610

[मोहम्मद तल्हा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-92

[यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेश कुमार त्रिपाठी](#)

पृष्ठ-1642

[योगेन्द्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य](#)

पृष्ठ-60

रमाकांत मिहिर बनाम भारत संघ एवं अन्य	राजेश कुमार द्विवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
पृष्ठ-1601	पृष्ठ-774
रवि शंकर सैनी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	राधे श्याम जवारानी और अन्य बनाम वालिगुरु खान और अन्य
पृष्ठ-1834	पृष्ठ-691
रविशंकर मौर्य बनाम भारत संघ एवं अन्य	राम किशन उर्फ किशन लाल व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
पृष्ठ-1636	पृष्ठ-1382
रश्मि देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	राम चंद्र चौरसिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
पृष्ठ-1093	पृष्ठ-1520
राकेश कुमार गोयल बनाम आयुक्त, मुरादाबाद एवं अन्य	राम मीना दिवस बनाम महाप्रबंधक एवं अन्य
पृष्ठ-1260	पृष्ठ-1805
राकेश पाण्डेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
पृष्ठ-1895	पृष्ठ-1143
राज किशोर धौन बनाम रजिस्ट्रार सहकारी समितियां उ०प्र० और अन्य	रिंकू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य
पृष्ठ-884	पृष्ठ-487
राज कुमार यादव @ कालू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	रिपुंजय राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
पृष्ठ-1479	पृष्ठ-1216
राजवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	रियाजुद्दीन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
पृष्ठ-1438	पृष्ठ-550
राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	रेनू चौरसिया बनाम पंजाब एवं सिंध बैंक एवं अन्य
पृष्ठ-1337	पृष्ठ-1746
राजेंद्र अग्रवाल उर्फ बब्लू बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य	लक्ष्मण सिंह भदौरिया बनाम नियंत्रक प्राधिकरण ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के तहत एवं अन्य
पृष्ठ-609	पृष्ठ-872
राजेश कुमार गिरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	
पृष्ठ-493	

लक्ष्मी शंकर पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-121	शा० मो० अली जफर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-509
लल्लन कुमार बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-646	शाबिर अली बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-1360
विजय गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-544	शिखा अबेल बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-1539
विजय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-118	शिव कुमार शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-596
विनोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-649	शिवराज सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1810
विनोद बिहारी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1711	शैलजा त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-332
विवान और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-73	शैलेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1676
विवेक कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1055	श्याम बिहारी मिश्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1839
विशाल कुमार बाल्मीकि बनाम पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य	पृष्ठ-337	श्री नौनिहाल हैदर बनाम सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, बदायूं व अन्य	पृष्ठ-1795
विश्राम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1034	श्रीमती गोपा बहादुर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-260
विश्वतोष नारायण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1267	श्रीमती जैनब फातिमा @ रूबी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1160

श्रीमती ज्योति और अन्य बनाम एम0 ए0सी0टी0 फतेहपुर एवं अन्य	पृष्ठ-862	सईद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1039
श्रीमती ज्योति बनाम अंकित दुबे	पृष्ठ-624	सचिन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-1497
श्रीमती धनराजी एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी वाराणसी एवं अन्य	पृष्ठ-371	सचिन कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-758
श्रीमती नीता अग्रवाल बनाम श्रीमती शांति रानी अग्रवाल एवं अन्य	पृष्ठ-911	सतीश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-1490
श्रीमती पिकी देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-780	सत्य नारायण@ सतान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1473
श्रीमती सुमन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-227	सत्य प्रकाश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-681
श्रीमती सोनिया श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1087	सत्यभान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-429
श्रीमती हसीना खातून बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-956	सनेश ठाकुर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1014
संजय वर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-51	सरनाम सिंह लेखपाल चकबंदी बनाम प्रीतम कुमारी एवं अन्य	पृष्ठ-240
संजीव कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-591	सरोज कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-253
संजीव साहू एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1129	सहजानंद राय बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-365
संदीप कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-1482	सी/एम गांधी गृह निर्माण सहकारी लि वाराणसी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-1211

सी/एम वक्फ मस्जिद एवं अन्य बनाम वक्फ ट्रिब्यूनल, उत्तर प्रदेश एवं अन्य	पृष्ठ-186	हरीश चंद्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-555
सुदेश पाल बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-567	हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-1202
सुनील कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-343		
सुनील कुमार बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य	पृष्ठ-485		
सुनीत कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1318		
सुरेश चंद्र श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उपविभागीय अधिकारी, तहसील सदर झांसी व अन्य	पृष्ठ-1249		
सुरेश त्रिवेदी बनाम भारत संघ	पृष्ठ-1400		
सुशील कुमार एवं अन्य बनाम विधान परिषद उत्तर प्रदेश एवं अन्य	पृष्ठ-1351		
सुशील कुमार बाजपेयी बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-351		
सुशील कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-126		
सौरभ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-564		
हकीम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1500		

(2023) 4 ILRA 9

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन,
आपराधिक विविध जमानत निरस्तीकरण

आवेदन संख्या 302 / 2021

संलग्न

आपराधिक विविध जमानत निरस्तीकरण

आवेदन संख्या 188 /2022

संलग्न

आपराधिक विविध जमानत निरस्तीकरण

आवेदन संख्या 207 /2022

संलग्न

आपराधिक विविध जमानत निरस्तीकरण

आवेदन संख्या 255/ 2022

नितेश कुमार सिंह	...	आवेदक
	बनाम	
उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	...	विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री राजीव कुमार सिंह, श्री मनीष तिवारी, श्री प्रभाकर अवस्थी, श्री सुरेंद्र कुमार चौबे, विनय कुमार, श्री प्रदीप कुमार मिश्रा, श्री विनय सरन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अमरीश तिवारी, श्री विक्रम बहादुर सिंह, श्री सत्य धीर सिंह जादौन, श्री राजीव नयन सिंह, श्री कृष्ण मुरारी त्रिपाठी, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

(ए) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439 (2) - जमानत निरस्तीकरण - भारतीय दंड संहिता, 1860-

धारा 302 और 120 बी - जमानत निरस्त करना परिस्थितियों के घटित होने तक सीमित नहीं किया जा सकता है - न्यायालय के पास यहां तक कि परिस्थितियों के अभाव में भी किसी अभियुक्त की जमानत निरस्त करने की अंतर्निहित शक्तियां और विवेक है - जमानत निरस्त करने का आधार - जमानत के प्रशासन की उचित प्रक्रिया में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप करने का प्रयास - बचाव या न्याय की उचित प्रक्रिया से बचने का प्रयास - अभियुक्त को दी गई रियायत का किसी भी तरह से दुरुपयोग - अभियुक्त के फरार होने की संभावना - जमानत का वास्तविक दुरुपयोग - अभियुक्त द्वारा साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ करने या गवाहों को धमकाने की संभावना। (पैरा-30)

हत्या और आपराधिक षडयंत्र के अपराध - एफ.आई.आर. में नामित विपक्षी गण - हत्या का षडयंत्र - मृतक ने वादी के समक्ष मौखिक मृत्युपूर्व बयान दिया - घटना में विपक्षी पक्षों की संलिप्तता - विचारणीय न्यायालय द्वारा विचार में नहीं लिया गया - जमानत पर मुक्त किया गया - एक अन्य वाद दर्ज किया गया और आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया - वाद के गवाह को जान से मारने या गंभीर चोट पहुंचाने की धमकी देने के अपराध के लिए वाद - विचारणीय न्यायालय ने इस बात की अनदेखी की कि घटना के तुरंत बाद विपक्षी पक्ष फरार हो गए थे - जो कानूनी प्रक्रिया से बच गया। (पैरा - 50)

निर्णय:- विचारणीय न्यायालय ने अभिलेख की पुष्टि किए बिना गलत तथ्यों के आधार पर जमानत आदेश पारित किया। विचारणीय

न्यायालय ने भौतिक साक्ष्यों को नजरअंदाज किया। जमानत आदेश की पुष्टि नहीं की जा सकता है, इसलिए इसे निरस्त किया जाता है।
(पैरा -39,51,52)

श्री एस. के ओझा, अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री सूरज सिंह, श्री योगेश्वर राय, सुश्री रीमा गुप्ता, उत्तर प्रदेश राज्य की अधिवक्ता भी उपस्थित थीं।

जमानत निरस्तीकरण आवेदन स्वीकृत (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य एआईआर (एससी) 364
2. पूरन बनाम रामविलास और अन्य, 2001 क्रि.एल.जे. 2566
3. दीपक यादव बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2022 (8) एससीसी 559
4. दौलत राम व अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (1995) 1 एससीसी 349

(माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन, द्वारा प्रदत्त)

1. वरिष्ठ अधिवक्ता श्री विनय सरन, श्री प्रदीप कुमार मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त और श्री सुरेंद्र कुमार चौबे, आवेदक नितेश कुमार सिंह के अधिवक्ता को सुना।

वरिष्ठ अधिवक्ता वी पी श्रीवास्तव, श्री सत्य धीर सिंह जादौन, श्री राजीव नयन सिंह, श्री विक्रम

बहादुर सिंह और श्री कृष्ण मुरारी त्रिपाठी प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता-सबल सिंह @ अमृतेश सिंह, हरि सिंह और राज नारायण पांडे को सुना।

2. आवेदक नितेश कुमार सिंह ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत रद्दीकरण आवेदन संख्या-302 वर्ष 2021, 188 वर्ष 2022 और 207 वर्ष 2022 द०प्र०स० की धारा 439 (2) के तहत प्रतिपक्षियो शबल सिंह अमृतेश सिंह, हरि सिंह और राज नारायण पांडे को केस अपराध संख्या-167 वर्ष 2021 में धारा 302 धारा 120 बी भन्दाना-बैरिया, जिला बलिया के तहत दी गई जमानत रद्द करने की मांग की है।

3. आपराधिक प्रकीर्ण जमानत निरस्तीकरण आवेदन संख्या-255 वर्ष 2022 उत्तर प्रदेश राज्य दद्वारा दायर किया गया है, जिसमें जमानत आवेदन संख्या-1426/2021 में पारित उपरोक्त मामले में आदेश दिनांक 05.08.2021 के माध्यम से अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या-3 बलिया द्वारा प्रतिपक्षी आरोपी शबल सिंह अमृतेश सिंह को दी गई जमानत रद्द करने की मांग की गई है।

4. प्रतिपक्षी अभियुक्तों हरि सिंह और राज नारायण पांडे को विद्वान प्रभारी अतिरिक्त सम न्यायाधीश, बलिया द्वारा क्रमशः जमानत आवेदन संख्या-2324/2021 और 95/2022 में पारित उपरोक्त मामले में दिनांक 28.04.2022 के आदेश के माध्यम से जमानत दी गई।

5. चूंकि सभी जमानत रद्द करने के आवेदन एक ही अपराध संख्या और तथ्यी के एक ही सेंट से संबंधित हैं, इसलिए, इन आवेदनों पर इस संयुक्त आदेश द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

6. मामले के तथ्य यह है कि आवेदक शिकायतकर्ता नितेश कुमार सिंह ने दिनांक 07.07.2021 को थाना-वैरिया, जिला बलिया में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई जिसमें उल्लेख किया गया था कि दिनांक 07.07.2021 को उनके बड़े भाई जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह के साथ शबल सिंह अमृतेश सिंह, जो उनके परिचित थे, अपने दोस्त से मिलने के बाद अपने निजी वाहन से लौट रहे थे। दोपहर करीब 12:00 बजे जौहर मिस्त्री की दुकान पर कार रुकी। दो मोटरसाइकिलों पर सवार पांच लोग वहां आए और उनके बड़े भाई पर गोली चला दी। यह सूचना मिलने पर सूचनाकर्ता घटनास्थल की ओर दौड़ा और पाया कि उसका भाई उस समय भी जीवित था। जब वह कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ अपने भाई को सोनबरसा अस्पताल ले जा रहा था, तो उसके भाई ने उसे बताया कि हरीश पासवान पुत्र इंद्रदेव पासवान, निवासी बाबूबल, थाना-हल्दी, हरि सिंह पुत्र स्वर्गीय केदार सिंह निवासी बैरिया और राज नारायण पांडे पुत्र स्वर्गीय सिंगार पांडे निवासी बैरिया ने दो अज्ञात व्यक्तियों के साथ उसे गोली मार दी है। उनके भाई ने उन्हें यह भी बताया कि शबल सिंह अमृतेश सिंह ने उन्हें मारने की साजिश रची। अस्पताल पहुंचते ही डॉक्टरों ने उसके भाई को मृत घोषित कर दिया।

7. आवेदक के अधिवक्ता और उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि 14.08.2021 को यानी जमानत आदेशों के अनुसार जमानत पर रिहा होने के बाद, प्रतिपक्षियों शबल सिंह के अमृतेश सिंह, हरीश पासवान और हरि सिंह ने अमित कुमार वर्मा की जान से मारने या गंभीर चोट पहुंचाने की धमकी दी, जो मृतक की जांच कार्यवाही के गवाह हैं और सूचनाहाता के पैरोकर भी हैं। उनके खिलाफ थाना-बैरिया जिला बलिया में दिनांक 15.08.2021 की भारतीय दंड संहिता की धारा 506 507 के तहत अपराध संख्या-207 वर्ष 2021 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। हरीश पासवान को छोड़कर उनके खिलाफ आरोप पत्र दायर की गई, क्योंकि वह 03.09.2021 को पुलिस मुठभेड़ में मारा गया था। प्रतिपक्षियों के इस कृत्य से पता चानता है कि उन्होंने उन्हें दी गई जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया था। वे निष्पक्ष विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे और वे विचारण के दौरान उनके विरुद्ध प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्तावित साक्ष्यों से छेड़छाड़ करेंगे। आवेदक के साथ-साथ अभियोजन पक्ष के गवाहों की इन व्यक्तियों/प्रतिपक्षियों द्वारा हत्या किए जाने की प्रबल आशंका है।

8. विद्वान विधारण न्यायालय में आक्षेपित अमानत आदेश पारित करते हुए, विश्वसनीय सबूती की पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया कि मृतक ने अपनी अंतिम सास में पहले सूचनाको और उसकी भाभी रंजना सिंह को बताया कि प्रतिपक्षियों हरीश पासवान, हरि सिंह, राज नारायण पांडे और दो अनाम

व्यक्तियों ने उसे गोली मार दी और शबन सिंह अमृतेश सिंह ने आपराधिक साजिश रची। सूचनाकर्ता का बयान विवेचनाधिकारी द्वारा 02.08.2021 को नोट किया गया था. जो दिनांक 05.08.2021 के आदेश के तहत प्रतिपक्षी भवन सिंह अमृतेश सिंह को जमानत देने के समय विधारण न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर उपलब्ध था। इसी तरह, रंजना सिंह मृतक की भाभी, जी उसी कार में बैठी थी, जिसमें मृतक की सूचनाकर्ता द्वारा अस्पताल ले जाया जा रहा था, और जिसके सामने मृतक भी घटना में पतिपक्षियों की भागीदारी का संकेत देते हुए अपनी मौखिक मृत्यु घोषणा की, को भी विवेचनाधिकारी द्वारा 17.08.2021 को नोट किया गया था। प्रतिपक्षी हरि सिंह और राज नारायण पांडे की विज्ञान विधारण न्यायालय ने 28.04.2022 को जमानत दे दी। विद्वान विधारण न्यायालय द्वारा उन्हें जमानत देते समय सूचनाकर्ता और रंजना सिंह के बयानों की पूरी तरह से अनदेखी की गई। यह दर्शाता है कि आक्षेपित जमानत आदेश रिकॉर्ड पर विचार किए बिना पारित किए गए थे।

9. यह भी जोरदार तर्क दिया गया है कि आक्षेपित जमानत आदेश पारित करते समय विकान विधारण न्यायालय ने मीटर मैरेज के मालिक औहर अंसारी के बयान को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया, जी घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद थे। इस गवाह ने विशेष रूप से इस बात से इनकार किया कि प्रतिपक्षी शबल सिंह अमृतेश सिंह पर उसका कोई बकाया था। विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिपक्षी शकल सिंह अमृतेश सिंह के पक्ष में पारित

आक्षेपित जमानत आदेश में यह गलत तरीके से नोट किया गया है कि जौहर अंसारी का बयान विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज नहीं किया गया था क्योंकि उनका बयान 02.08.2021 की नोट किया गया था, जबकि विचारण न्यायालय द्वारा 05.08.2021 को आक्षेपित जमानत आदेश पारित किया गया था। इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रतिपक्षी/आरोपी शबल सिंह अमृतेश सिंह की जमानत देने के समय विचारण न्यायालय के समक्ष उनका बयान रिकॉर्ड पर उपलब्ध था।

10. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विधारण न्यायालय के समक्ष यह गलत तर्क दिया गया या कि घटना के दौरान मृतक के साथ प्रतिपक्षियों को भी आग्नेयास्त्र चोटे आईं। यह सच नहीं है क्योंकि किसी भी प्रतिपक्षी की चिकित्सकीय जांच नहीं की गई थी और उनकी मेडिकल रिपोर्ट भी रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं थी। इस प्रकार, विचारण न्यायालय को गुमराह किया गया और उसने रिकॉर्ड को सत्यापित किए बिना इस तर्क पर विचार किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने बाद के आदेशों में पहले पारित जमानत आदेश को कॉपी-पेस्ट किया था। इस प्रकार, आक्षेपित जमानत आदेश सही तथ्यों पर आधारित नहीं है और रिकॉर्ड की सत्यापित किए बिना पारित किए जाते हैं। विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रतिपक्षियों हरि सिंह और राज नारायण पांडे के पक्ष में पारित जमानत आदेशों में गलत तथ्यों का उल्लेख किया कि वे भी मृतक के साथ एक ही कार में बैठे थे और उन्होंने मृतक जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह को खत्म करने की साजिश रची। यह तथ्यात्मक रूप से गलत है क्योंकि इन

प्रतिपक्षियों ने जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह पर उस समय और घटनास्थल पर आमनेयास्त्र हथियारों से गोलीबारी की थी, लेकिन उन्हें जलेश्वर सिंह बानबीर सिंह को मारने की साजिश रचने की भूमिका नहीं सौंपी गई है। इस प्रकार आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से गलत है और गलत तथ्यों के आधार पर पारित किया गया है।

11. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक की ओर से पढ़ता से यह तर्क दिया गया था कि विद्वान विधारण न्यायालय ने आक्षेपित जमानत आदेश पारित करते समय, शबल सिंह अमृतेश सिंह और हरि सिंह जैसे प्रतिपक्षियों के आपराधिक इतिहास की पूरी तरह से नजरअंदाज और अनदेखा किया है।

12. प्रतिपक्षी शबल सिंह अमृतेश सिंह का दो मामलों अर्थात धारा 354-बी. 506 मन्दवि० के तहत केस अपराध संख्या-98/2015, थाना-शिवपुरी जिला वाराणसी और धारा 147, 148, 323, 307, 342, 506 शब्द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-49 वर्ष 2011, थाना-शिवपुरी जिला वाराणसी का आपराधिक इतिहास था।

13. प्रतिपक्षी हरि सिंह का अपराध संख्या-167/2021, धारा 302/120 बी भन्दवि०, थाना-वैरिया, जिल्ला बलिया, धारा 506, 507 भन्द०ति० के तहत केस अपराध संख्या-207/2021, धारा 147, 148, 149, 307, 336, 427 अब्दु०ति० थाना डोकाटी, जिला बलिया के तहत केस अपराध संख्या-179/2010 और धारा 307 के तहत केस अपराध संख्या-179/2006 के चार मामलों का

आपराधिक इतिहास था। भारतीय दंड संहिता की धारा 307, 302, 120 बी भन्द०वि० और धारा 7 दंड विधि संशोधन अधिनियम, थाना-बैरिया, जिला बलिया के तहत मामला दर्ज किया गया है।

14. दोनों प्रतिपक्षी शबल सिंह अमृतेश सिंह और हरि सिंह ने अपने आपराधिक इतिहास को छिपाया था और वे हिस्ट्रीशीटर थे, हालांकि, विद्वान विधारण न्यायालय ने गलत तरीके से अन्यथा देखा।

15. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान विधारण न्यायालय ने प्रतिपक्षियों है प्रतिपक्षियों हरि सिंह और की कि वे सूचनाकर्ता के भाई वारंट जारी किए गए राज नारायण पांडे को जमानत देते समय इस तथ्य की अनदेखी की हत्या करने के तुरंत बाद फरार हो गए थे। उनके खिलाफ गैर जमानती वॉरन्ट जारी किए गए थे।

आरोपी हरि सिंह के खिलाफ धारा 82 द०प्र०स० की प्रक्रिया भी जारी की गई थी और यह उस पर तमीला कराई गई थी। इसके बाद उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए उस पर 25,000 रुपये का इनाम भी घोषित किया गया था। ये दोनों प्रतिपक्षी कानून की प्रक्रिया से बच निकले हैं।

16. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि इस माननीय न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्त अभय भारती को दी गई जमानत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या-374/2022 [एसएलपी (सीआरएल)

संख्या-339/2022) में पारित अपने आदेश दिनांक 07.03.2022 के माध्यम से इस मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद रद्द कर दिया है।

17. आवेदक के अधिवक्ता ने मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य ए.आई.आर. (एस.सी.) 364 पर भरोसा किया।

18. प्रतिवाद के अनुसार, प्रतिपक्षियों-शबल सिंह अमृतेश सिंह, हरि सिंह और राज नारायण पांडे के अधिवक्ता ने जमानत रद्द करने के आवेदनों का जोरदार विरोध किया और तर्क दिया कि इस मामले में प्रतिपक्षियों को झूठा फंसाया गया है। घटना किसी अज्ञात व्यक्ति ने की है। तथ्य की बात के रूप में, मृतक खुद एक हिस्ट्रीशीटर था, जिसका 13 क्रिमिनल मामली का आपराधिक इतिहास था। इसलिए, यह संभव हो सकता है कि वह कुछ अन्य दुश्मनों द्वारा मारा गया था जो उसे नहीं जानते थे। अमित कुमार वर्मा द्वारा प्रतिपक्षी शबल सिंह और हरि सिंह को केस अपराध संख्या-207 वर्ष 2021 में धारा 506, 507 अन्दति के तहत झूठा फंसाया गया है। उन्होंने गवाह को जान से मारने या गंभीर चोट पहुंचाने की धमकी नहीं दी। अमित कुमार वर्मा तथ्य के मजाह नहीं हैं, बल्कि वह केवल पंचनामा की कार्यवाही के गवाह हैं।

19. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी शबल सिंह अमृतेश सिंह के आपराधिक इतिहास का खुलासा न करना जानबूझकर दमन नहीं था क्योंकि जमानत आवेदन की प्रस्तुति के समय वह जेल में था,

इसलिए, पहले के आपराधिक मामलों के बारे में जानकारी रिकॉर्ड पर नहीं लाई जा सकी और जोडीकार को अपने आपराधिक इतिहास के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

20. उन्हें धारा 354 बी, 506 मध्दवि थाना-शिवपुर, जिला वाराणसी के तहत केस अपराध संख्या-98/2015 में झूठा फंसाया गया था, जिसमें अंतिम रिपोर्ट 10.05.2015 को प्रस्तुत थी जिसे संबंधित न्यायालय ने 27.04.2015 को स्वीकार कर लिया है।

21. एक अन्य मामले में, उसे झूठा पंसाया गया था जो धारा 147, 148, 323, 307, 342, 506 अन्द०वि० थाना-शिवपुर, जिला वाराणसी के तहत अपराध संख्या 49/2011 में उद्भूत सत्र परीक्षण संख्या-133 वर्ष 2012 के रूप में दर्ज किया गया था। इस मामले में, उन्हें अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-8, वाराणसी द्वारा पारित और आदेश दिनांक 22112012 के तहत बरी कर दिया गया है।

22. जहां तक प्रतिपक्षी हरि सिंह के आपराधिक इतिहास का संबंध है, दो मामानी में, केस अपराध संख्या-167/2021 प्रस्तुतं मामला है। और कैस अपराध संख्या-207/2021 में धारा 506, 507 अन्द०वि० के तहत के तहत उन्ही प पहले ही जमानत दी जा चुकी है। तीसरे मामले अपराध संख्या-128/2010 में धारा 147, 148, 149, 307, 336, 427 शब्दवि०, थाना-डोकाटी, जिला बलिया के तहत संबंधित न्यायालय द्वारा उन्हें बरी किया जाता है। चौथे मामले में अपराध संख्या-179/2006 के तहत मन्दवि की धारा 307, 302, 120 बी

और आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना-बैरिया जिला बलिया के तहत, उसे विचारण न्यायालय द्वारा बरी किया गया है।

23. आगे यह तर्क दिया गया है कि सूचनाकर्ता घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है और कथित पश्मदीद गवाह जौहर मिल्ली में प्रतिपक्षियों हरि सिंह और राज नारायण पांडे का नाम नहीं लिया था। प्राथमिकी में मृतक की हत्या के पीछे के मकसद के बारे में कुछ नहीं बताया गया है। प्रतिपक्षी हरि सिंह और राज नारायण पांडे की भूमिका प्रतिपक्षी शबल सिंह अमृतेश सिंह और सह- आरोपी अभय भारती की भूमिका से काफी अलग है।

24. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिपक्षी राज नारायण पांडे को धारा 506, 507 अब्द०वि० के तहत अपराध संख्या-207 वर्ष 2021 में आरोपी के रूप में नामित नहीं किया गया है। इस मामले में उनके खिलाफ कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं है। उन्होंने मामले के किसी भी गवाह की कभी कोई धमकी नहीं दी। वह सेना से सेवानिवृत्त व्यक्ति है जिसकी मृतक के साथ कोई प्रतिद्वंद्विता नहीं है। मृतक का आपराधिक इतिहास 13 मामली का था और मृतक उसकी जमीन की संपत्ति हड़पने की कोशिश कर रहा था। मृतक ने उसके बेटे सूर्यकाल पांडे की हत्या का प्रयास किया था, इसलिए उसके और अन्य सह-आरोपियों मणिराम सिंह और अमित वर्मा के खिलाफ मामला अपराध संख्या-173 वर्ष 2019, धारा 307, 147, 148, 149 अ०६०वि० थाना-बैरिया, जिला बलिया के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई

थी। राजनारायण पांडेय और उनकी पत्नी ने एनसीआर संख्या-37 वर्ष 2019, 67 वर्ष 2019 और 125 वर्ष 2019 दर्ज कराया। केवल इस कारण से उन्हें प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है।

25. यह जोरदार तर्क दिया गया है कि मृतक जलेश्वर सिंह @ बलबीर सिंह की शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, उसे आग्नेयास्त्र की 13 चोटें आईं। शव परीक्षण के दौरान मृतक के नाक और मुंह दोनों में खून पाया गया। चेहरे और कपड़ों पर बंद खून के धब्बे मौजूद थे। मृतक के दोनों फेफड़े पंचर पाए गए और हृदय का दाहिना निचला निलय पंचर पाया गया। उपरोक्त आग्नेयास्त्रों की चोटों और निष्कर्षों के मद्देनजर, मृतक एक शब्द भी नहीं बोल सकता था और इसलिए, सूचनाकर्ता और रंजना सिंह के के समक्ष उसके द्वारा मृत्यु पूर्व घोषणा करने का कोई अवसर नहीं हो सकता था। मृत्यु से पहले दिया गया कथित बयान विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है और मुकदमे के दौरान इसे साबित नहीं किया जा सकता।

26. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इस माननीय न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्त अभय भारती को दी गई जमानत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस कारण से रद्द कर दिया था कि उसे पहले प्राथमिकी संख्या-467 वर्ष 1998 में धारा 302 और 506 भन्द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया था और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। प्रतिपक्षी शबल सिंह अमृतेश सिंह और हरि सिंह को पहले दोषी नहीं ठहराया गया है और उनके आपराधिक इतिहास को ठीक से समझाया गया

है। रिकॉर्ड पर उपलब्ध सभी सामग्री पर विचार करने के बाद विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित जमानत आदेश पारित किया गया था। वर्तमान जमानत रद्द करने के आवेदन खारिज किए जाने के योग्य है।

27. प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने पूरन बनाम रामविलास और अन्य 2001 कि.एल.जे. 2566 में भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि अनुचित अवैध और विकृत आदेश को रद्द करना इस आधार पर जमानत रद्द करने की अवधारणा से पूरी तरह से अलग है कि आरोपी ने दुर्यवहार किया है या कुछ नए तथ्यों के कारण इस तरह के रद्दीकरण की आवश्यकता है।

28. मैंने रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

29. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 439 (2) में उपबंध है (2) उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय निदेश दे सकेगा कि कोई व्यक्ति जिसे इस अध्याय के अधीन जमानत पर रिहा किया गया है, गिरफ्तार किया जाए और उसे अभिरक्षा में सौंप दिया जाए।

30. दीपक यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2022 (8) एस. सी. सी. 559 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जमानत रद्द करने के आधार को संदर्शित किया जैसा कि दौलतराम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (1995) 1 एस. सी. सी. 349 में दो न्यायाधीशों की पीठ दद्वारा निर्धारित किया गया है:

(i) न्याय प्रशासन की सम्यक प्रक्रिया में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप करने का प्रयत्न

(ii) न्याय के सम्यक क्रम से बचने या बचने है का प्रयास

(iii) अभियुक्त को दी गई रियायत का किसी भी प्रकार से दुरुपयोग करना

(iv) अभियुक्त के फरार होने की संभावना

(v) जमानत के वास्तविक दुरुपयोग की संभावना

(vi) अभियुक्त द्वारा साक्ष्यों के साथ करने का गवाहों को धमकाने की संभावना

31. उपरोक्त आधारी के आधार पर, दीपक यादव (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि:

33. इसमें कोई संदेह नहीं है कि जमानत रद्द करना पर्यवेक्षण परिस्थितियों की घटना तक सीमित नहीं हो सकता है। इस न्यायालय के पास निश्चित रूप से पर्यवेक्षण परिस्थितियों की अनुपस्थिति में भी किसी अभियुक्त की जमानत रद्द करने की अंतर्निहित शक्तियां और विवेक है। निम्नलिखित दृष्टांत परिस्थितियां हैं जहां अमानत रद्द की जा सकती है

33.1 अहां जमानत देने वाली अदालत रिकॉर्ड पर प्रासंगिक सामग्री की अनदेखी करते हुए पर्याप्त प्रकृति की और तुच्छ प्रकृति की नहीं, अप्रासंगिक सामग्री को ध्यान में रखती है।

33.2 जहां जमानत देने वाली अदालत दुर्यवहार के शिकार या गवाहों की तुलना में अभियुक्त की प्रभावशाली स्थिति को नजरअंदाज करती है, खासकर जब पीडित पर

स्थिति और शक्ति का प्रथम दृष्ट्या दुरुपयोग होता है।

33.3 जहां जमानत देते समय अभियुक्त के पिछले आपराधिक रिकॉर्ड और आचरण को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया जाता है।

33.4 जहां असमर्थनीय आधार पर जमानत दी गई है।

33.5 जहां जमानत देने के आदेश में गंभीर विसंगतियां पाई जाती हैं जिससे न्याय के पति पौराह पैदा होता है।

33.6 जहां जमानत का अनुदान प्रथम दृष्टि में उचित नहीं था, अभियुक्त के खिलाफ आरोपों की बहुत गंभीर प्रकृति को देखते हुए जो उसे जमानत के लिए अयोग्य बनाला है और इस प्रकार उचित नहीं हो सकता है।

33.7 जब जमानत देने का आदेश स्पष्ट रूप से सनकी, मनमौजी और दिए गए मामले के तथ्यों में विकृत है।

32. जमानत आवेदन संख्या-1426 वर्ष 2021 से संबंधित अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-3, बलिया दवारा पारित दिनांक 05.08.2021 को प्रतिपक्षी/अभियुक्त शबल सिंह @ अमृतेश सिंह को जमानत देते हुए आक्षेपित जमानत आदेश का अवलोकन करने से पता चलता है कि अभियुक्त की ओर से दिए गए तर्क पैराग्राफ में यह उल्लेख किया गया है कि "कठित घटना में मरतक जलेश्वर के साथ आवेदक को भी आग्नेयास्त्रों की छोटी

आई है" (आवेदक को भी आग्नेयास्त्रों की चोटे आई हैं। मृतक जलेश्वर के साथ हुई घटना) उसका कोई अधिकार नहीं है" (उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है)।

33. रिकॉर्ड के आधार पर यह पाया गया है कि घटना के दौरान प्रतिपक्षी/अभियुक्त शबल सिंह @ अमृतेश सिंह को कोई आग्नेयास्त्र की चोट नहीं आई। उनकी मेडिकल जांच नहीं की गई और रिकॉर्ड पर कोई मेडिकल रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड के साथ इसकी पुष्टि नहीं की, लेकिन प्रतिपक्षी को जमानत देते हुए इस तर्क पर विचार किया। जहां तक प्रतिपक्षी के आरोपी शबल सिंह अमृतेश सिंह के आपराधिक इतिहास का संबंध है, यह रिकॉर्ड में लाया गया है कि उसे जमानत देने के समय उसका दी मामलों का आपराधिक इतिहास था। एक मामला अपराध संख्या-98/2015 धारा 354 बी, 506 भन्द०वि० थाना-शिवपुर, जिला वाराणसी के तहत था और दूसरा मामला अपराध संख्या-49 वर्ष 2011, धारा 147, 148, 323, 307, 342, 506 अब्द०वि० पाना-शिवपुरी जिला वाराणसी के तहत था। इस आपराधिक इतिहास का प्रतिपक्षी संख्या-2/अभियुक्त शबल सिंह अमृतेश सिंह द्वारा खंडन नहीं किया गया है। अपने जवाबी हलफनामों के माध्यम से उन्होंने आपराधिक इतिहास को समझाया कि पहले मामले में, अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और एक अन्य मामले में उन्हें विधारण न्यायालय द्वारा परीक्षण के बाद बरी कर दिया गया था। इसे आपराधिक इतिहास के रूप में माना जा सकता है लेकिन इसके अस्तित्व से इनकार नहीं किया गया है। प्रतिपक्षी

अभियुक्त शबल सिंह अमृतेश सिंह की ओर से उठाए गए तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि उसकी ओर से आपराधिक इतिहास का खुलासा न करना जानबूझकर नहीं किया गया था क्योंकि वह जेल से बंद था और ये तथ्य उसके जान में नहीं थे। इसलिए, यह स्पष्ट है कि प्रतिपक्षी अभियुक्त शबल सिंह अमृतेश सिंह का जमानत याचिका प्रस्तुत करने के समय आपराधिक इतिहास था जिसे उसके द्वारा छुपाया गया था। विद्वान विधारण न्यायालय ने इस तर्क पर विश्वास किया और यह आरोपी शबल सिंह अमृतेश सिंह को जमानत देने के आधारों में से एक था।

34. जहां तक प्रतिपक्षियों हरि सिंह और राज नारायण पांडे डे को जमानत देने वाले आक्षेपित आदेश का संबंध है, इसी तरह का कथत विधारण न्यायालय द्वारा उद्धृत तर्क पैराग्राफ में पाया जाता है. जी इन प्रतिपक्षियों की ओर से दिया गया था कि उन्हें भी घटना के दौरान आग्नेयास्त्रों की पोटे आई. मृतक जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह और प्रतिपक्षी हरि सिंह का कोई आपराधिक इतिहास नहीं था।

35. प्रतिपक्षी हरि सिंह का आपराधिक इतिहास रिकॉर्ड पर साया गया है जो इस प्रकार है

- (I) केस अपराध संख्या-167/2021, धारा 302, 120बी भ. द. वि. थाना-बेरिया, जिला बलिया
- (II) केस अपराध संख्या-207/2021, धारा 506, 507 भ०वि० के तहत, माना-बेरिया, जिला बलिया

(III) भ. द. वि. की धारा 147, 148, 149, 307, 336, 427 के तहत मामला अपराध संख्या- 128/2010, थाना-सौकाटी, जिला बलिया

(IV) भ. द. वि. की धारा 307, 302, 120 बी, आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना-बेरिया, जिला बलिया के तहत केस अपराध संख्या-179/20061

36. प्रतिपक्षी अभियुक्त हरि सिंह ने अपने जवाबी हलफनामे के माध्यम से उपरोक्त आपराधिक इतिहास को स्पष्ट किया है।

37. यह देखा गया है कि प्रतिपक्षी अभियुक्त हरि सिंह के आपराधिक इतिहास का अस्तित्व उसके द्वारा खंडन नहीं किया गया है। केवल स्पष्टीकरण देने का मतलब यह नहीं है कि इसे कोई आपराधिक इतिहास नहीं माना जा सकता है।

38. जहां तक इस तर्क का उल्लेख है कि घटना के दौरान प्रतिपक्षियों हरि सिंह और राज नारायण पांडे को भी मृतक जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह के साथ आग्नेयास्त्र की चोट लगी थी, यह रिकॉर्ड द्वारा समर्थित नहीं है। यह भी गलत तर्क दिया गया था कि प्रतिपक्षियों हरि सिंह और राज नारायण पांडे दुद्वारा साजिश रचने का आरोप लगाया गया था, जबकि पहली सूचना रिपोर्ट में उन्हें मृतक जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह पर गोलीबारी की एक विशिष्ट भूमिका सौंपी गई थी और उन्हें प्राथमिकी में शूटर के रूप में नामित किया गया था। यह स्पष्ट है कि विधारण न्यायालय ने रिकॉर्ड से

इस तथ्य को सत्यापित नहीं किया और ऐसा प्रतीत होता है कि नियमित तरीके से इस तर्क को शबल सिंह अमृतेश सिंह के पक्ष में पारित पिछले जमानत आदेश से कॉपी पेस्ट कर दिया गया था। यहां यह उल्लेख करने के लिए पर्याप्त है कि विद्वान विधारण न्यायालय ने अपनी टिप्पणी में उल्लेख किया है कि मृतक जलेश्वर सिंह के बलबीर सिंह को मारने की साजिश का आरोप प्रतिपक्षियों हरि सिंह और राज नारायण पांडे के खिलाफ लगाया गया है। जैसा कि चर्चा की गई है, विचारण न्यायालय की टिप्पणी रिकॉर्ड पर आधारित नहीं है और मामले के तथ्यों पर भी आधारित नहीं है।

39. केस डायरी के अवलोकन से पता चलता है कि हर मिस्त्री के बयान को विवेचनाधिकारी ने 02.08.2021 को नोट किया था। विद्वान विधारण न्यायालय द्वारा प्रतिपक्षी/आरोपी शबल सिंह @ अमृतेश सिंह को 05.08.2022 को जमानत दी गई थी। विचारण न्यायालय द्वारा यह गलत तरीके से देखा गया है कि विवेचनाधिकारी द्वारा केस डायरी में जौहर मियां का बयान दर्ज नहीं किया गया था क्योंकि जमानत आवेदन की सुनवाई और शबल सिंह अमृतेश सिंह को जमानत देने वाले आशेषित आदेश पारित करने के समय, उनका बयान केस डायरी में बहुत अधिक उपलब्ध था। ऐसा प्रतीत होता है कि विधारण न्यायालय ने उचित तरीके से अभिलेखों का अध्ययन नहीं किया और अन्यथा अवलोकन किया। गवाह जौहर मिस्त्री ने विवेचनाधिकारी को दिए अपने बयान में विशेष रूप से कहा कि प्रतिपक्षी शबल सिंह अमृतेश सिंह पर उनका कोई बकाया नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि घटना

के समय शबल सिंह अमृतेश सिंह जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह के बगल वाली कार में बैठे थे। जब फायरिंग हुई तो उसने कार का दरवाजा खोला और भाग गया लेकिन वह दरवाजा बंद करने के लिए वापस आया और फिर आग गया। प्रतिपक्षी/आरोपी शबल सिंह अमृतेश सिंह के आचरण की सीसीटीवी फुटेज से पुष्टि हुई। इस अहम साक्ष्य की विद्वान विधारण न्यायालय द्वारा अनदेखी की गई थी।

40. धारा 302/120बी भन्द०वि० के तहत प्रस्तुत मामले अपराध संख्या-167 वर्ष 2021 की घटना 07.07.2021 को हुई बताई जाती है। अमित कुमार वर्मा, पंचनामा कार्यवाही और सूचनाकर्ता की कथित जोड़ी, हरीश पासवान, हरि सिंह और शचल सिंह के अमृतेश सिंह के खिलाफ धारा 506, 507 शब्द०वि० के तहत थाना-वैरिया में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, इस आरोप के साथ कि उन्होंने उसे 14.08.2021 को सूचनाकर्ता निलेश कुमार सिंह की ओर से पैरवी करने से धमकी दी और रोक दिया, जिसके गंभीर परिणाम भी भुगतने होंगे। यह धमकी हरीश पासवान ने समीर ठाकुर के मोबाइल पर की गई कॉल पर दी थी। यह धमकी मिलने पर उन्होंने तुरंत पुलिस अधीक्षक, बलिया को सूचित किया कि उन्हें उक्त व्यक्तियों द्वारा मौत या गंभीर चोट लगने की आशंका है। जांच के बाद इन लोगों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल की गई। इसलिए, यह स्पष्ट है कि जमानत के आदेशों के अनुसार जमानत पर रिहा होने के बाद, प्रतिपक्षी शबल सिंह और हरि सिंह ने अमित कुमार वर्मा को जान से मारने या गंभीर चोट पहुंचाने की धमकी दी।

41. सूचनाकर्ता ने अपनी प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेख किया है कि जब वह अपने आई को कुछ व्यक्तियों के साथ सोनबरसा अस्पताल ले जा रहा था, तो उसके भाई ने उसे बताया कि हरीश पासवान पुत्र इंद्रदेव पासवान, निवासी बाबूबेल, याना-हल्दी, हरि सिंह पुत्र स्वर्गीय केदार सिंह निवासी बैरिया और राज नारायण पांडे पुत्र स्वर्गीय सिंगार पांडे निवासी बैरिया और दो अज्ञात व्यक्तियों से उसे गोली मार दी थी। उनके भाई ने उन्हें यह भी बताया कि शबल सिंह अमृतेश सिंह ने उन्हें मारने की साजिश रची।

42. यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि सूचनाकर्ता नितेश कुमार सिंह के बयान को विवेचनाधिकारी द्वारा 16.07.2021 को मोट किया गया था, जबकि प्रतिपक्षी शथान सिंह अमृतेश सिंह को जमानत देने का आक्षेपित जमानत आदेश 05.08.2021 को पारित किया गया था। इसलिए, सूचनाकर्ता नितेश कुमार सिंह का बयान कि मृतक ने अपनी अंतिम सांस से पहले मौखिक मृत्यु की घोषणा की थी, दिनांक 05.08.2021 को आक्षेपित जमानत आदेश पारित करते समय रिकॉर्ड पर उपलब्ध था, लेकिन विचारण न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया गया था। इसी तरह, सूचनाकर्ता की भाभी रंजना सिंह का बयान विवेचनाधिकारी द्वारा 17.08.2021 की नोट किया गया था, जिसमें उसने कहा था कि जब घटना के बाद जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह को सूचनाकर्ता द्वारा अस्पताल ले जाया जा रहा था तो वह भी उसी कार में बैठी थी और वह उक्त मौखिक मृत्यु-पूर्व घोषणा की गवाह भी थी।

43. सूचनाकर्ता और रंजना सिंह के बयान विचारण न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर उपलब्ध थे, लेकिन प्रतिपक्षियों हरि सिंह और राज नारायण पांडे को जमानत देने वाले दिनांक 28.04.2022 के आक्षेपित जमानत आदेश पारित करते समय, इन बयानों पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया था। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि विचारण न्यायालय द्वारा विश्वसनीय साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया था।

44. घटना के तुरंत बाद प्रतिपक्षी हरि सिंह और राज नारायण फरार रहे। दोनों के खिलाफ गैर जमानती वारंट जारी किए गए थे। प्रतिपक्षी/अभियुक्त राज नारायण पांडे को 29.12.2021 को गिरफ्तार किया गया था। सक्षम न्यायालय द्वारा प्रतिपक्षी/अभियुक्त हरि सिंह के विरुद्ध धारा 82 द०प्र०स० की कार्यवाही जारी की गई। विवेचना के दौरान उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए उस पर 25,000 रुपये का इनाम भी घोषित किया गया था। इस प्रक्रिया के अनुसरण में उन्होंने 15.12.2021 को विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा हरि सिंह और राज नारायण पाण्डेय को जमानत देते समय इस पहलू पर भी विचार नहीं किया गया था।

45. ध्यान में रखा जाने वाला एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि सह-अभियुक्त अ य भारती, जिसे सीसीटीवी फुटेज के माध्यम से पहचाना गया था, को इस न्यायालय ने जमाना दे दी थी। उनके जमानत आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सूचनाकर्ता

आवेदक द्वारा आपराधिक अपील संख्या-374/2022 @ एसएलपी (सीआरएल) संख्या-339/2022) में चुनौती दी गई थी और उन्हें दी गई जमानत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 07.03.2022 के आदेश के तहत रद्द कर दिया था।

46. प्रतिपक्षियों की ओर से तर्क दिया गया है कि सह-अभियुक्त अभय भारती की जमानत माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दी गई थी क्योंकि वह पहले ही दोषी ठहराया गया था और एक अन्य मामले में धारा 302/506 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, हालांकि, किसी भी प्रतिपक्षी को पहले दोषी नहीं ठहराया गया है।

47. इस तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि प्रतिपक्षी शबल सिंह @ अमृतेश सिंह और हरि सिंह का आपराधिक इतिहास था जिसे उनके द्वारा छुपाया गया था और उन्होंने विचारण न्यायालय को यह विश्वास दिलाने के लिए गुमराह किया कि उनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं था। इसके अलावा, प्रतिपक्षियों का आपराधिक इतिहास उनके द्वारा विवादित नहीं है।

48. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 07.03.2022 में कहा कि यह सह-अभियुक्त अभय भारती के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० के तहत दूसरा मामला था। प्रस्तुत मामले में भी यह प्रतिपक्षी/अभियुक्त हरि सिंह के खिलाफ धारा 302 भ०द०वि० के तहत दूसरा मामला है। सह-आरोपी अभय

भारती को दी गई जमानत रद्द करने के आदेश पर भी विचारण न्यायालय ने दिनांक 28.04.2022 को आक्षेपित आदेश पारित करते समय विचार नहीं किया था।

49. विद्वान विचारण न्यायालय ने शबल सिंह @ अमृतेश सिंह को दिनांक 05.08.2021 के आदेश के तहत जमानत देते हुए मृतक जलेश्वर सिंह @ बलबीर सिंह द्वारा दो अज्ञात व्यक्तियों के साथ प्रतिपक्षियों/अभियुक्तों की भागीदारी के बारे में की गई मौखिक मृत्यु-पूर्व घोषणा की अनदेखी की। इसी तरह, दिनांक 28.04.2022 को आक्षेपित जमानत आदेश पारित करते हुए विद्वान विचारण न्यायालय ने सूचनाकर्ता और रंजना सिंह के बयानों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया, जैसा कि विवेचनाधिकारी ने नोट किया था जिसमें मृतक की मौखिक मृत्यु घोषणा सुनाई गई थी।

50. उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि:

(i) प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रतिपक्षी शबल सिंह @ अमृतेश सिंह, हरि सिंह और राज नारायण पांडे का नाम लिया गया था। प्रतिपक्षी शबल सिंह @ अमृतेश सिंह ने जलेश्वर सिंह बलबीर सिंह को मारने की साजिश रची। प्रतिपक्षियों हरि सिंह और राज नारायण पांडे को वह भूमिका सौंपी गई जिसे उन्होंने जलेश्वर सिंह @ बलबीर सिंह पर बन्दूक के हथियार से गोली चलाई, जिसके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई।

(ii) मृतक ने अपनी अंतिम सांस से पहले सूचनाकर्ता और रंजना सिंह के समक्ष घटना में

इन प्रतिपक्षियों के शामिल होने के बारे में मौखिक मृत्यु-पूर्व घोषणा की। इन बयानों को विवेचनाधिकारी द्वारा नोट किया गया था और आक्षेपित जमानत आदेश पारित करते समय विचारण न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर उपलब्ध थे। इस सबूत को विचारण न्यायालय ने पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया था।

(iii) प्रतिपक्षीकार शबल सिंह @ अमृतेश सिंह और हरि सिंह का आपराधिक इतिहास था जिसे उनके द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष छुपाया गया था।

(iv) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्त अभय भारती को दी गई जमानत रद्द कर दी गई है।

(v) विचारण न्यायालय द्वारा जौहर मिस्त्री के बयान पर विचार नहीं किया गया जबकि यह पहले से ही रिकॉर्ड में उपलब्ध था।

(vi) जमानत पर उनकी रिहाई के बाद आक्षेपित जमानत आदेश के अनुसरण में प्रतिपक्षियों शबल सिंह @ अमृतेश सिंह और हरि सिंह के खिलाफ धारा 506, 507 भ०द०वि० के तहत एक और मामला अपराध संख्या-207 वर्ष 2021 दर्ज किया गया था और उनके खिलाफ मामले के गवाह को जान से मारने या गंभीर चोट पहुंचाने की धमकी देने के अपराध के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

(vii) विद्वान विचारण न्यायालय ने गलत उल्लेख किया कि प्रतिपक्षी हरि सिंह और राज

नारायण पांडे मृतक के साथ एक ही कार में बैठे थे और उन्हें भी बन्दूक से चोट लगी थी और उन्होंने षड्यंत्र किया था जबकि मृतक पर आग्नेयास्त्रों से गोली चलाने की एक विशिष्ट भूमिका उन्हें सौंपी गई थी और न तो उनकी चिकित्सीय जांच की गई थी और न ही रिकॉर्ड पर कोई चिकित्सा रिपोर्ट उपलब्ध थी।

(vii) विचारण न्यायालय द्वारा यह गलत माना गया था कि प्रतिपक्षी शबल सिंह @ अमृतेश सिंह को भी बन्दूक से चोट लगी थी, लेकिन यह किसी भी मेडिकल रिपोर्ट द्वारा समर्थित नहीं था। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी तथ्यात्मक रूप से गलत है।

(ix) विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 28.04.2022 को आक्षेपित जमानत आदेश पारित करते हुए इस पहलू की भी अनदेखी की कि प्रतिपक्षी हरि सिंह और राज नारायण पांडे घटना के तुरंत बाद फरार हो गए थे और वे कानून की प्रक्रिया से बच रहे थे।

51. विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले के गलत तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित जमानत आदेश पारित किए, इसलिए, सभी जमानत रद्द करने वाले आवेदन अनुमति के योग्य हैं।

52. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री और ऊपर की गई टिप्पणियाँ पर विचार करने के बाद, न्यायालय की राय है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 05.08.2021 और 28.04.2022 के आक्षेपित जमानत आदेशों को

कायम नहीं रखा जा सकता है। तदनुसार, उपरोक्त सभी जमानत रद्द करने के आवेदनों की अनुमति दी जाती है और दिनांक 05.08.2021 और 28.04.2022 के आक्षेपित जमानत आदेशों को रद्द किया जाता है।

53. प्रतिपक्षी शबल सिंह @ अमृतेश सिंह, हरि सिंह @ हरे राम सिंह और राज नारायण पांडे को एतद्वारा एक सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय के सम्मक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है।

54. ऊपर किए गए किसी भी अवलोकन को योग्यता के आधार पर किसी भी निष्कर्ष के रूप में नहीं माना जाएगा और ये परीक्षण को पूर्वाग्रहित नहीं करेगा।

55. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को भी निर्देश दिया जाता है कि वे आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित जिला न्यायाधीश को इस आदेश की सूचना दें।

(2023) 4 ILRA 20

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या

4824/2023

जीतन लोध @ जीतेन्द्र

...आवेदक

बनाम

उ.प्र. राज्य एवं अन्य

...विपक्षी गण

अधिवक्ता आवेदक: प्रद्युम्न शुक्ला, कासिम अब्बास जैदी

अधिवक्ता विपक्षी गण: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376, 452 और 506 - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 3/4, धारा 33 (8) - विशेष न्यायालय बालकों को पुनर्वास हेतु किसी भी शारीरिक या मानसिक आघात के लिए क्षतिपूर्ति प्रदान कर सकता है, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण नियम, 2020 - नियम 9 - क्षतिपूर्ति, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 164 - अभियोक्ता पक्षद्रोही हो गई - आवेदक के विरुद्ध बलात्कार के आरोप से इनकार किया। (पैरा-8)

निर्णय:- यदि पीड़ित पक्षद्रोही हो जाता है और अभियोजन पक्ष के वाद का समर्थन नहीं करता है, तो पीड़ित या उसके परिवार के सदस्य को प्रदान की गई क्षतिपूर्ति की राशि संबंधित अधिकारियों द्वारा वसूल की जानी चाहिए, जिन्होंने क्षतिपूर्ति प्रदान किए हैं। राज्य सरकार को आदेश पारित करना चाहिए और अधिकारियों को क्षतिपूर्ति वसूलने के निर्देश जारी करने चाहिए। (पैरा-11,12)

जमानत आवेदन स्वीकृत। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. श्री अरविंद मिश्रा ने शिकायतकर्ता-प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से अपनी शक्ति दायर की है जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।

2. आवेदक के लिए अधिवक्ता, शिकायतकर्ता के अधिवक्ता और राज्य के लिए श्री राजेश

कुमार सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता-1 को सुना।

3. यह जमानत आवेदन आवेदक द्वारा धारा 376, 452, 506 भ०द०वि० और पाँक्सो अधिनियम की धारा 3/4, थाना-गंगाघाट जिला-उन्नाव के तहत मामला अपराध संख्या-225 वर्ष 2022 में जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

4. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-2 अभियोक्त्री ने जिरह में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। उसने अदालत के समक्ष गवाही दी है कि वह उस व्यक्ति की पहचान नहीं कर सकी जिसने उसके खिलाफ बलात्कार किया है। आगे उसने कहा है कि उसने बलात्कार करने वाले व्यक्ति का चेहरा नहीं देखा था। आगे उसने कहा है कि उसके परिवार और आवेदक के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष ने अदालत के समक्ष प्राथमिकी के संस्करण के साथ-साथ धारा 164 द०प्र०स० के संस्करण से पूरी तरह से इनकार किया है। एक बार जब उसने धारा 164 द०प्र०स० और प्राथमिकी के तहत संस्करण से इनकार कर दिया है, तो फिलहाल आवेदक को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है और उसे जमानत दी जा सकती है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-1 भाई जो शिकायतकर्ता है, ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। भाई ने कहा है कि किसी अन्य व्यक्ति ने प्राथमिकी लिखी थी और वह हिंदी भाषा नहीं पढ़ सकता है, इसलिए, वह यह नहीं जान सका कि प्राथमिकी कैसे दर्ज की गई थी। उन्होंने प्रस्तुत किया है

कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 20.5.2022 से जेल में है।

5. दूसरी ओर, शिकायतकर्ता के अधिवक्ता श्री अरविंद मिश्रा और श्री राजेश कुमार सिंह ने जमानत का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत प्राथमिकी और बयान का संस्करण बरकरार है और मुख्य रूप से विवेचना में, अभियोक्त्री ने धारा 164 द०प्र०स० के तहत प्राथमिकी के साथ-साथ बयान के संस्करण को दोहराया, इसलिए, जमानत प्रार्थना को खारिज कर दिया जाए।

6. मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से अभियोक्त्री अ०सा०-2 के जिरह संस्करण, जिसने अदालत के समक्ष गवाही दी कि वह उस व्यक्ति की पहचान नहीं कर सकी जिसने उसके खिलाफ बलात्कार किया है और भाई का संस्करण जो शिकायतकर्ता है, जिसने अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन नहीं किया है, यह जमानत के लिए एक उपयुक्त मामला है।

7. आवेदक जीतन लोध @ जितेंद्र को उपरोक्त मामले में अपराध संख्या .. में, निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए उसके द्वारा एक व्यक्तिगत बांड और दो जमानतदार प्रस्तुत किए जाने पर, जमानत पर रिहा किया जाए: -
(i) आवेदक इस आशय का वचनपत्र दायर करेगा कि जब गवाह न्यायालय में उपस्थित हों तो साक्ष्य के लिए नियत तारीखों पर कोई स्थगन नहीं मांगेगा। इस शर्त के चूक के मामले में, विचारण न्यायालय के लिए यह

खुला होगा कि वह इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मान सके और कानून के अनुसार आदेश पारित कर सके।

(ii) आवेदक व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से नियत प्रत्येक तारीख को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा। उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय पर्याप्त कारण के बिना, उसके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के तहत आगे बढ़ सकता है।

(iii) यदि आवेदक मुकदमे के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए धारा 82 द०प्र०स० के तहत उद्घोषणा जारी की जाती है और आवेदक ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तारीख पर अदालत के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो विचारण न्यायालय उसके खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के तहत कानून के अनुसार कार्यवाही शुरू करेगा।

(iv) आवेदक को निम्नलिखित के लिए निर्धारित तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होना होगा:

(i) मामला चलाना, (ii) आरोप तय करना और (iii) धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करना। यदि विचारण न्यायालय की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए यह खुला होगा कि वह इस तरह के चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग माने और कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्यवाही करे।

यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश में की गई टिप्पणियां इस जमानत आवेदन के निर्धारण के उद्देश्य तक सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जाएंगी। विचारण न्यायालय इस आदेश में किसी भी बात से अप्रभावित साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा।

8. मामले से अलग होने से पहले, राज्य के लिए श्री राजेश कुमार सिंह अगाई ने बताया है कि बलात्कार के मामलों के साथ-साथ नाबालिग के खिलाफ यौन अपराध में, पीड़िता और उसके परिवार को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि प्रस्तुत मामले में, अभियोकत्री पक्षद्रोही हो गई है और उसने आवेदक के खिलाफ बलात्कार के आरोप से इनकार किया है। इस प्रकार, पीड़िता या उसके परिवार को भुगतान की गई मुआवजे की राशि, यदि कोई हो, को वापस वसूल किया जाना चाहिए। उन्होंने यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 33 (8) की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

(8) समुचित मामलों में, विशेष न्यायालय, दंड के अतिरिक्त, ऐसे प्रतिकर का प्रत्यक्ष संदाय कर सकेगा जो बालक को उसे हुई किसी शारीरिक या मानसिक आघात के लिए विहित की जाए या ऐसे बालक के तत्काल पुनर्वास के लिए।

9. श्री राजेश कुमार सिंह अ.सा-1 ने इस न्यायालय का ध्यान यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण नियम, 2020 के नियम 9 की ओर आकर्षित किया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है: -

"9. प्रतिकर- (1) विशेष न्यायालय, समुचित मामलों में, स्वयं या बालक द्वारा या बालक की ओर से फाइल किए गए आवेदन पर, प्रथम सूचना रिपोर्ट के रजिस्ट्रीकरण के पश्चात् किसी भी अवस्था में राहत या पुनर्वास के लिए बालक की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अंतरिम प्रतिकर के लिए आदेश पारित कर सकेगा। बच्चे को भुगतान किए गए इस तरह के अंतरिम मुआवजे को अंतिम मुआवजे, यदि कोई हो, के खिलाफ समायोजित किया जाएगा।

(2) विशेष न्यायालय, स्वयं या पीड़ित की ओर से दायर आवेदन पर, प्रतिकर के पुरस्कार की सिफारिश कर सकता है जहां अभियुक्त को दोषी ठहराया जाता है, या जहां मामला बरी या निर्वहन में समाप्त होता है, या अभियुक्त का पता नहीं लगाया जाता है या पहचाना नहीं जाता है, और विशेष न्यायालय की राय में उस अपराध के परिणामस्वरूप बच्चे को नुकसान या चोट लगी है।

(3) जहां विशेष न्यायालय, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) की धारा 357क की उपधारा (2) और (3) के साथ पठित अधिनियम की धारा 33 की उपधारा (8) के अधीन पीड़ित को प्रतिकर देने के लिए निदेश देता है वहां वह पीड़ित को हुई हानि या चोट से संबंधित सभी सुसंगत कारकों को ध्यान में रखेगा, जिसमें निम्नलिखित शामिल हैं:-

(i) दुर्व्यवहार का प्रकार, अपराध की गंभीरता और बालक द्वारा झेली गई मानसिक या शारीरिक क्षति या चोट की गंभीरता;

(ii) शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य या दोनों के लिए बालक के चिकित्सीय उपचार पर उपगत या उपगत व्यय;

(iii) अपराध के परिणामस्वरूप शैक्षिक अवसर की हानि, जिसके अंतर्गत मानसिक आघात, शारीरिक चोट, चिकित्सीय उपचार, अपराध की जांच-पड़ताल और विचारण या किसी अन्य कारण से स्कूल से अनुपस्थिति भी है;

(iv) अपराध के परिणामस्वरूप रोजगार की हानि, जिसके अंतर्गत मानसिक आघात, शारीरिक चोट, चिकित्सा उपचार, अपराध की जांच और विचारण या किसी अन्य कारण से रोजगार के स्थान से अनुपस्थिति है;

(v) अपराधी के साथ बच्चे का संबंध, यदि कोई हो;

(vi) क्या दुर्व्यवहार एक एकल पृथक घटना थी या क्या दुर्व्यवहार एक समय अवधि में हुआ था;

(vii) क्या अपराध के परिणामस्वरूप बच्ची गर्भवती हो गयी;

(viii) क्या अपराध के परिणामस्वरूप बच्ची को यौन संचारित रोग (एसटीडी) हो गया है;

(ix) क्या अपराध के परिणामस्वरूप बच्ची को ह्यूमन इम्यूनोडेफिशिएंसी वायरस (एचआईवी) हो गया है;

(x) अपराध के परिणामस्वरूप बालिका को हुई कोई विकलांगता;

(xi) बालिका की वित्तीय स्थिति, जिसके विरुद्ध अपराध किया गया है, ताकि ऐसे बालिका के पुनर्वास की आवश्यकता अवधारित की जा सके;

(xii) कोई अन्य कारक जिसे विशेष न्यायालय प्रासंगिक मान सकता है।

(4) विशेष न्यायालय द्वारा दिए गए मुआवजे का संदाय राज्य सरकार द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357क या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन पीड़ितों को प्रतिकर देने और उनके पुनर्वास के प्रयोजनों के लिए स्थापित पीड़ित प्रतिकर निधि या अन्य स्कीम या निधि से किया जाना है, या जहां राज्य सरकार द्वारा ऐसी निधि या योजना मौजूद नहीं है,

(5) राज्य सरकार, विशेष न्यायालय द्वारा आदेशित प्रतिकर का संदाय ऐसे आदेश की प्राप्ति के 30 दिन के भीतर करेगी।

(6) इन नियमों की कोई बात किसी बालक या बालक के माता-पिता या अभिभावक या किसी अन्य व्यक्ति को, जिस पर बालक का भरोसा और विश्वास है, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी अन्य नियम या स्कीम के अधीन राहत प्राप्त करने के लिए आवेदन प्रस्तुत करने से निवारित नहीं करेगा।

10. महालेखागार द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पूर्वोक्त अधिनियम और नियमों के अनुपालन में, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा विभिन्न सरकारी आदेश यथा 9.4.2014, 7.6.2016 और 14.6.2016 को जारी किए गए हैं। उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा मुआवजे का भुगतान करने का अंतिम शासनादेश 14.06.2016 को जारी किया गया है। शासनादेश दिनांक 14.06.2016 को पारित किया गया है, जिसके द्वारा दिनांक 7.6.2016 के शासनादेश में उल्लिखित श्रेणियों के पीड़ितों को मुआवजा प्रदान करने के लिए दिनांक

9.4.2014 के पूर्व शासनादेश में संशोधन किया गया है। उक्त शासनादेश दिनांक 14.06.2016 का संगत भाग नीचे उद्धृत किया गया है:-

(क) क्या यह सच है कि बलात्कार की पीड़िता के लिए 3,00,000/- रुपए का प्रावधान किया गया है;

2) अपराध के शिकार को गंभीर मानसिक पीड़ा देने वाली हानि या चोट से पीड़ित पीड़ित के लिए 1,00,000/- रुपये (धारा 325, 326, 333, 394, 429, 435 और 436 भ०द०वि० के तहत;

3) संक्षारक पदार्थ के शिकार को 5,00,000/- रुपये अर्थात् ई, एसिड हमला आदि;

4) मृत्यु पर 1,50,000/- रुपये (गैर-कमाई करने वाला सदस्य)।

5) मृत्यु (कमाने वाले सदस्य) पर 2,00,000/- रुपये।

6) मानव तस्करी के शिकार लोगों को 2,00,000 /

7) यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 4, 6, 7, 9, 11 और

14 के तहत अपराधों के लिए:-

(क) प्रवेशन यौन हमले की शिकार महिला को 2,00,000/- रुपए (धारा 4)

(ख) गंभीर प्रवेशन यौन हमले की शिकार महिला को 2,00,000/- रुपए (धारा 6)

(ग) यौन हमले की पीड़िता को 1,00,000/- रुपये (धारा 7)

(घ) गंभीर यौन हमले की शिकार महिला को 1,50,000/- रुपये (धारा 9)

(ङ) यौन उत्पीड़न की शिकार महिला को 1,00,000/- रुपए (धारा 11)

(च) अश्लील प्रयोजन के लिए बालक का प्रयोग करने के शिकार व्यक्ति को

1,00,000/- रुपए (धारा 14)

8) शरीर के 25% से अधिक जलने के शिकार को 2,00,000/- रुपये

(एसिड अटैक के मामलों को छोड़कर)।

9) यौन उत्पीड़न की पीड़िता (बलात्कार को छोड़कर) को 50,000/

10) भ्रूण की हानि के शिकार को 50,000/

11) प्रजनन क्षमता की हानि के शिकार को 1,50,000/- रुपये।

12) स्थायी विकलांगता (80% या अधिक) के शिकार को 2,00,000 /

13) आंशिक विकलांगता के शिकार को 1,00,000/- रुपये (40% से 80%)।

सीमा पार से गोलीबारी में 14 महिलाएं शिकार:-

(क) मृत्यु या स्थायी विकलांगता (80% या अधिक) के शिकार 2,00,000/- रुपये।

(ख) आंशिक विकलांगता के शिकार व्यक्ति को 1,00,000/- रुपए (40% से 80%)

11. अब, मेरे सामने यह प्रश्न उठ गया है कि क्या अभियोगकर्ता जो मुकदमा चला रहा है, मुआवजे की राशि को बनाए रखने का हकदार है। मेरी राय में, यदि पीड़ित पक्षद्रोही हो गया है और अभियोजन पक्ष के मामले का बिल्कुल भी समर्थन नहीं करता है, तो पीड़ित को भुगतान की गई राशि की वसूली करना उचित है। पीड़िता वह व्यक्ति है जो न्यायालय के समक्ष आती है और विचारण के दौरान यदि वह बलात्कार के आरोप से इंकार करती है और मुकदमा चलाती है तो राज्य सरकार द्वारा प्रदान की गई मुआवजे की राशि को अपने पास रखने का कोई औचित्य नहीं है। सरकारी खजाने पर इस तरह से बोझा नहीं डाला जा सकता और कानूनों के दुरुपयोग की पूरी संभावना है। इसलिए, मेरे विचार

से, पीड़ित अथवा परिवार के सदस्य को दी गई मुआवजे की राशि संबंधित प्राधिकारियों द्वारा वसूल की जानी चाहिए जिन्होंने मुआवजा अदा कर दिया है।

12. इसलिए, मामले के उपरोक्त पहलू पर विचार करते हुए, यह निर्देश दिया जाता है कि राज्य सरकार उचित आदेश पारित करेगी और संबंधित अधिकारियों को आवश्यक निर्देश जारी करेगी कि यदि मुआवजा दिया गया है, तो उन मामलों में भुगतान की गई मुआवजे की राशि की वसूली के लिए, जहां पीड़ित मुकदमे के दौरान मुकदमा चला रही है और अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं करती है, तीन महीने की अवधि के भीतर आवश्यक की जाए।

13. इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार को निर्देश दिया जाता है कि वे आवश्यक अनुपालन के लिए उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव को इस आदेश की एक प्रति भेजें।

14. अगस्त के दूसरे सप्ताह में इस मामले को सूचीबद्ध करें और अपर शासकीय अधिवक्ता प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे।

(2023) 4 ILRA 24

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह,

आपराधिक विविध द्वितीय जमानत आवेदन
संख्या 30489/2022

नीरज

..आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अली हसन, श्री दीपक कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता - धारा 439 - भारतीय दंड संहिता, धारा 328, 376 और 506 - बाल यौन अपराध संरक्षण (POCSO) अधिनियम, धारा 3 और 4 - द्वितीय जमानत आवेदन - प्राथमिकी - बलात्कार का अपराध, धमकी और गंभीर परिणाम - न्यायालय ने पाया कि, आवेदक घटना के दूसरे दिन से कारागार में है लेकिन, वाद समाप्त नहीं हुआ है - आरोप तय किए गए थे क्योंकि वादी और पीड़िता का पता नहीं चल पाया है इसलिए वाद सुनवाई के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सका - आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है - आयोजित, वाद के साथ-साथ अपराध की प्रकृति, साक्ष्य, अभियुक्त की मिलीभगत और पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता के प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का मत है कि आवेदक ने जमानत के लिए एक वाद स्थापित किया है - इसलिए जमानत आवेदन को अनुमति दी जाती है - तदनुसार अनुपालन के लिए निर्देश जारी किए जाते हैं। (पैरा 18, 19, 22, 23, 26)

जमानत आवेदन स्वीकृत (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

अभियोजन का मामला, खुशी राम, जो पीड़िता का भाई है (इसके बाद 'शिकायतकर्ता' के रूप

में संदर्भित) द्वारा 22.6.2016 को आवेदक नीरज के खिलाफ दर्ज की गई इस आशय कि प्राथमिकी के आधार पर शुरू हुआ कि 21.6.2016 को जब उसके परिवार के सदस्य सो रहे थे, तो आवेदक घर में घुस गया और उन्हें कोई नशीला पदार्थ सुंघा दिया, जिससे वे बेहोश हो गए। इसके बाद, आवेदक ने उसकी लगभग 15 वर्ष की नाबालिग बहन (इसके बाद 'पीड़िता' के रूप में संदर्भित) के साथ बलात्कार किया और उसे गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी।

उपरोक्त रिपोर्ट के आधार पर, अभियुक्त नीरज के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 369 वर्ष 2016 अंतर्गत धारा 328, 376, 506 भा.दं.सं. व 3/4 पाँक्सो एक्ट, थाना सरधना, जनपद मेरठ, के रूप में मामला दर्ज किया गया। प्राथमिकी दर्ज होने के बाद कानून हरकत में आया और विवेचना अधिकारी ने आवेदक को गिरफ्तार कर लिया और सभी औपचारिकताएं पूरी करने के बाद उसके खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया। दिनांक 06.1.2017 के आदेश द्वारा विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 7/विशेष न्यायाधीश, पाँक्सो अधिनियम, मेरठ ने आवेदक के विरुद्ध उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप तय किये।

निचली अदालत के आदेश पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद, न तो शिकायतकर्ता और न ही पीड़िता विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो रहे हैं और आरोपी 23.6.2016 से जेल में है।

वर्ष 2017 में, आवेदक ने पहली जमानत याचिका (आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन

संख्या 38021 वर्ष 2017) दायर की, जिसे इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 24.9.2019 के आदेश के तहत खारिज कर दिया क्योंकि आवेदक की ओर से कोई भी न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ। हालांकि, करीब पांच साल बीतने के बाद साल 2022 में आवेदक की ओर से यह दूसरी जमानत याचिका दायर की गई है। धारा 439 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत इस दूसरे जमानत आवेदन के माध्यम से, आवेदक, जो मुकदमा अपराध संख्या 369 वर्ष 2016, अंतर्गत धारा 328, 376, 506 आईपीसी और ¼ POCSO अधिनियम, थाना सरधना, जिला मेरठ में संलिप्त है, ने मुकदमे के लंबित रहने के दौरान जमानत दिए जाने की मांग की। चूंकि, मामला पॉक्सो अधिनियम से संबंधित है, इसलिए शिकायतकर्ता को आदेश दिनांक 16.2.2023 के माध्यम से नोटिस जारी किया गया। स्टेशन हाउस अधिकारी, थाना सरधना, जिला मेरठ, जिनके अधिकार क्षेत्र में शिकायतकर्ता और पीड़ित रहते हैं, को भी विपक्षी संख्या 2 पर नोटिस की तामील सुनिश्चित करने और मामले में तय की गई अगली तिथि अर्थात् 03.03.2023 तक इस संबंध में एक हलफनामा दाखिल करने का निर्देश दिया गया। हालांकि, न तो विपक्षी संख्या 2 पर नोटिस तामीला हुई और न ही संबंधित स्टेशन हाउस ऑफिसर ने कोई हलफनामा दायर किया।

20.3.2023 को, जब यह मामला उठाया गया, तो श्री वीरेंद्र कुमार मौर्य, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने बार में एक बयान दिया कि इस न्यायालय के आदेश दिनांक 16.2.2023 को स्टेशन हाउस ऑफिसर, पुलिस

स्टेशन सरधना, जिला मेरठ को दिनांक 22.2.2023 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मेरठ के माध्यम से उनकी ईमेल आईडी पर भेजा गया था और यह उनके कार्यालय में प्राप्त हुआ था, लेकिन एसएसपी मेरठ और SHO, पुलिस स्टेशन सरधना, जिला मेरठ द्वारा इस न्यायालय के आदेश पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। हालांकि आदेश दिनांक 20.3.2023 द्वारा विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को आदेश दिनांक 16.2.2023 का अनुपालन कराने के लिए एक सप्ताह का समय दिया गया था। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मेरठ तथा थाना प्रभारी, सरधना, जनपद मेरठ को भी यह कारण बताने का निर्देश दिया गया कि उनके द्वारा दिनांक 16.2.2023 के आदेश का अनुपालन क्यों नहीं किया गया है। उन्हें वर्तमान मामले की पीड़िता को इस न्यायालय के समक्ष पेश करने का भी निर्देश दिया गया था, जिसमें विफल होने पर उन्हें 28.3.2023 को इस न्यायालय के सामने पेश होना होगा। चूंकि उपरोक्त अधिकारी पीड़िता को पेश करने में विफल रहे, इसलिए वे व्यक्तिगत रूप से इस अदालत के समक्ष पेश हुए।

जहां तक इस न्यायालय के दिनांक 20.3.2023 के आदेश का सवाल है, यह दो खंडों में है। प्रथमतः, इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 16.2.2023 के बावजूद, जिसे 20.3.2023 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मेरठ के माध्यम से स्टेशन हाउस ऑफिसर, पुलिस स्टेशन सरधना, जिला मेरठ को उनकी ईमेल आईडी पर सूचित किया गया था और वह उनके कार्यालय में प्राप्त हुआ था, तब भी उक्त आदेश का कोई जवाब क्यों नहीं दिया गया और दूसरी बात, इस न्यायालय के दिनांक

20.3.2023 के आदेश के अनुसार, पीड़िता को प्रस्तुत नहीं किया गया है।

इस न्यायालय के दिनांक 20.3.2023 के आदेश के अनुपालन में, श्री रमा कांत पचौरी, जो वर्तमान में इंस्पेक्टर, पुलिस स्टेशन सरधना, जिला मेरठ के पद पर तैनात हैं, ने अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर किया है जिसमें पीड़िता की तलाश के लिए उठाए गए कदमों के बारे में बताया गया है। उन्होंने अपने शपथ पत्र में कहा है कि पीड़िता मोहल्ला कैंट, थाना सरधना, जिला मेरठ में एक किराए के मकान में रहती थी। जब पुलिसकर्मी बताए गए पते पर गए तो मकान मालिक ने बताया कि वह पहले ही घर छोड़ चुकी है और उन्हें पीड़िता के बारे में कोई जानकारी नहीं है। इसके बाद, पुलिस ने नारनौल, हरियाणा में शिकायतकर्ता के स्थायी पते का दौरा किया, जहां उसके भाई ने पुलिस को बताया कि न तो शिकायतकर्ता गांव में रहता है और न ही उससे कोई संबंध है और उसके पिता ने शिकायतकर्ता को अपनी संपत्ति से बेदखल कर दिया है। इसके बाद पुलिस ने गांव के सरपंच से संपर्क किया, जिन्होंने भी पुलिस को यह बताया कि खुशीराम (शिकायतकर्ता) ने करीब 4-5 साल पहले गांव छोड़ दिया था। गांव के सरपंच ने इस आशय का प्रमाण पत्र भी दिया है। इसके बाद, स्टेशन हाउस ऑफिसर ने एक सब इंस्पेक्टर परम लाल सिंह को तरीजा नगर, धारीवाल, पुलिस स्टेशन धारीवाल, जिला गुरदासपुर भेजा, जहाँ उन्हें बताया गया कि इस मामले के शिकायतकर्ता ने अपनी चल और अचल संपत्ति बेच दी और लगभग 19-20 साल पहले गाँव छोड़ दिया। उपरोक्त

परिस्थितियों के दृष्टिगत, पीड़िता का पता नहीं लगाया जा सका।

श्री रोहित सिंह सजवान, जो वर्तमान में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मेरठ के पद पर तैनात हैं, का कहना है कि इस न्यायालय का दिनांक 16.2.2023 का आदेश उनके कार्यालय को सूचित हुआ था, लेकिन हेड कांस्टेबल निशांत चावला, जो इस मामले को देख रहे हैं, ने इसे थाना प्रभारी, सरधना, जिला मेरठ को इसका अनुपालन सुनिश्चित कराने के लिए अग्रेषित नहीं किया। अतः वे विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को कोई सूचना अग्रेषित नहीं कर सके। उन्होंने आगे कहा कि जैसे ही उन्हें इस न्यायालय के दिनांक 16.2.2023 और 20.3.2023 के आदेशों के अनुपालन में हेड कांस्टेबल निशांत चावला की ओर से चूक के बारे में पता चला, उन्होंने तुरंत कर्तव्यों में लापरवाही के लिए उन्हें निलंबित कर दिया। वह दिनांक 16.2.2023 के आदेश का अनुपालन न करने के कारण इस न्यायालय को हुई असुविधा के लिए बिना शर्त माफी मांगते हैं।

श्री रोहित सिंह सजवान, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मेरठ का यह भी कहना है कि उन्होंने विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों से, प्राथमिकी दर्ज कराते समय, शिकायतकर्ता और पीड़ित की आईडी, मोबाइल नंबर, आधार नंबर, अंडरटेकिंग कि जो किराए के मकान में रह रहे हैं, यदि वे दूसरे मकान में चले जाते हैं, तो उन्हें संबंधित पुलिस स्टेशन को सूचित करना होगा, आदि लेने संबंधी सामान्य दिशानिर्देश जारी करने के संबंध में चर्चा की है और यह कि परीक्षण के समय विचारण न्यायालय के समक्ष शिकायतकर्ता/पीड़ित की उपस्थिति

सुनिश्चित करने के लिए अन्य उचित कदम उठाए जाएं।

वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मेरठ ने न्यायालय को आश्वासन दिया कि उपरोक्त दिशानिर्देश तीन महीने के भीतर उच्च अधिकारियों द्वारा जारी किए जाएंगे। इस न्यायालय के पास संबंधित अधिकारी की ईमानदारी पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है।

श्री रोहित सिंह सजवान, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मेरठ और श्री रमा कांत पचौरी, निरीक्षक, पुलिस स्टेशन सरधना की व्यक्तिगत उपस्थिति की जरूरत को समाप्त कर दिया गया है।

चूंकि आवेदक 23.6.2016 से जेल में है, इसलिए, यह न्यायालय आवेदक की जमानत की प्रार्थना पर उसके गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ता है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

धारा 439 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत इस दूसरे जमानत आवेदन के माध्यम से, आवेदक, जो मुकदमा अपराध संख्या 369 वर्ष 2016, अंतर्गत धारा 328, 376, 506 भारतीय दण्ड संहिता और ¼ POCSO अधिनियम, थाना सरधना, जिला मेरठ में संलिप्त है, मुकदमा लंबित रहने के दौरान जमानत दिए जाने की मांग करता है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि आवेदक 23.6.2016 से जेल में है, लेकिन मुकदमा समाप्त नहीं हुआ है। इस न्यायालय ने दिनांक 10.1.2023 के आदेश के तहत जिला

न्यायाधीश, मेरठ के माध्यम से विचारण न्यायालय से रिपोर्ट मांगी थी। उक्त आदेश के अनुपालन में, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, (पाँक्सो अधिनियम), मेरठ ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 20.1.2023 प्रस्तुत की, जिसमें उल्लेख किया गया था कि इस मामले में दिनांक 14.9.2016 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और आवेदक के खिलाफ दिनांक 06.1.2017 को आरोप तय किए गए थे, लेकिन तमाम कोशिशों के बावजूद मामले के शिकायतकर्ता और पीड़िता को सुनवाई के लिए पेश नहीं किया जा सका। औपचारिक गवाहों के बयान पहले ही दर्ज किए जा चुके हैं। तमाम कोशिशों के बावजूद शिकायतकर्ता और पीड़िता का पता नहीं चल सका है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक के न्यायिक प्रक्रिया से भागने या अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने की कोई संभावना नहीं है। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 23.6.2016 से जेल में बंद है और यदि उसे जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और मुकदमे में सहयोग करेगा। इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक की जमानत की प्रार्थना का विरोध किया, लेकिन मामले के उपरोक्त तथ्यात्मक पहलू पर विवाद नहीं कर सके। पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और मामले की संपूर्णता से जांच करने के बाद, मैंने पाया कि पीड़िता और शिकायतकर्ता का पता नहीं चल सका है और आवेदक 23.6.2016 से जेल में बंद है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ अपराध की प्रकृति, साक्ष्य, अभियुक्त की संलिप्तता और पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की राय है, कि आवेदक ने, जमानत के लिए एक मामला बनाया है। अतः जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है। आवेदक नीरज को निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक निजी बांड और समान राशि की दो जमानतें प्रस्तुत करने पर उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या में जमानत पर रिहा किया जाए:

(i) कि आवेदक मुकदमे का शीघ्र निपटान करने में सहयोग करेगा और जब तक अपरिहार्य न हो नियमित रूप से अदालत में उपस्थित होगा।

(ii) यह कि आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या सबूतों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(iii) यह कि अपनी रिहाई के बाद, आवेदक किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं होगा।

(iv) यह कि आवेदक की रिहाई से पहले जमानतदारों की पहचान, स्थिति और आवासीय प्रमाण को संबंधित न्यायालय द्वारा सत्यापित किया जाएगा।

ऊपर उल्लिखित किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, संबंधित न्यायालय आवेदक की जमानत रद्द करने के लिए स्वतंत्र होगी।

इस आदेश की प्रति, संबंधित प्राधिकारियों को प्रेषित करने के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता द्वारा वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मेरठ को भेजी जाएगी।

इस न्यायालय के रजिस्ट्रार (अनुपालन) को इस आदेश की एक प्रति पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ और लीगल रिमेंबरेंसर, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को अनुपालनार्थ भेजने का निर्देश दिया जाता है।

हालाँकि, इस जमानत आवेदन का निपटारा कर दिया गया है, लेकिन संबंधित अधिकारियों द्वारा ऊपर चर्चा किए गये आवश्यक दिशानिर्देश जारी करने के संबंध में आदेश के अनुपालन के सीमित उद्देश्य के लिए इसे 14.7.2023 को इस न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध किया जाएगा।

(2023) 4 ILRA 28

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन,

आपराधिक विविध प्रथम जमानत आवेदन

संख्या 57731/2022

संलग्न

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या

60061/2022

मो. तुफैल

...आवेदक

बनाम

भारत संघ और अन्य ..

.विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अनिल कुमार श्रीवास्तव

अधिवक्ता विपक्षीगण: ए.एस.जी.आई., श्री कृष्ण अग्रवाल, श्री विनय कुमार सिंह

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, धारा 439 - सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 - धारा 2(33), 11, 104, 104(6), 104(7), 108, 111, 125, 135(1)(ए) और 135(1)(बी) - स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धारा - 67 - जमानत आवेदन - आरोपी आवेदकों द्वारा विदेशी मूल के सोने की तस्करी के बारे में खुफिया जानकारी - आवेदकों के कब्जे से कुल 2548.5 ग्राम सोना बरामद हुआ - क्या व्यक्तिगत रूप से बरामद सोने के मूल्य पर विचार किया जाना चाहिए या संयुक्त बरामद सोने के मूल्य पर विचार किया जाना चाहिए - आयोजित, अभियोजन पक्ष के अनुसार आवेदकों के कब्जे से सोना बरामद किया गया था जो सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 111 के तहत जब्ती के लिए उत्तरदायी था और इसलिए, सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 11 के प्रावधानों से ऐसा प्रतीत होता है कि सोना निषिद्ध वस्तु नहीं है, बल्कि यह प्रतिबंधित वस्तु है और धारा 125 सीमा शुल्क अधिनियम के अनुसार जब्ती के बदले जुर्माना लगाया जा सकता है - चूंकि सोना का आयात प्रतिबंधित नहीं है, बल्कि निर्धारित शुल्क भुगतान के अधीन प्रतिबंधित है, इस प्रकार कथित बरामद सोना सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 2(33) के अंतर्गत प्रतिबंधित माल नहीं है, लेकिन 'अतुल ऑटोमेशन' में सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय के अनुसार यह प्रतिबंधित माल है - आवेदकों द्वारा किया गया कथित अपराध जमानतीय है, इसलिए वे जमानत पर रिहा होने के पात्र हैं। जमानत आवेदन तदनुसार

निर्देशों के साथ स्वीकार किया जाता है। (पैरा - 39, 40)

अपील निरस्त (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. एयर कस्टम्स बनाम बेगम अकीनोवा, रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 1974/2021, निर्णय दिनांक 3.1.2022
2. तूफान सिंह बनाम तमिलनाडु राज्य, 2021 (4) एससीसी 1
3. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सेंट्रल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टिगेशन एवं अन्य, (2021) 10 एससीसी 773
4. ओम प्रकाश भाटिया बनाम सीमा शुल्क आयुक्त, दिल्ली, एआईआर 2000 एससी 581
5. शेख मोहम्मद ओमर बनाम सीमा शुल्क आयुक्त, कलकत्ता एवं अन्य, 1970 (2) एससीसी 728
6. कमिश्नर ऑफ कस्टम्स बनाम अतुल ऑटोमेशन प्राइवेट लिमिटेड, (2019) 3 एससीसी 539

(माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन, द्वारा प्रदत्त)

1. चूंकि दोनों तत्काल जमानत आवेदन, सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 135 (1) (ए) और 135 (1) (बी) के तहत खुफिया निदेशालय के माध्यम से केस नंबर 2/ 2022 से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए, दोनों जमानत आवेदनों पर सामान्य आदेश से निर्णय लिया जा रहा है।

2. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एन.आई.जाफरी, आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अली जमाल खान और श्री अनिल कुमार श्रीवास्तव, डीआरआई-विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण अग्रवाल, भारत संघ के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री विनय कुमार सिंह और राज्य के लिए विद्वत ए.जी.ए श्री तनय कुमार को सुना।

3 सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 135(1)(ए) और 135(1)(बी) के तहत मामला अपराध संख्या 02/ 2022 में उन्हें जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना के साथ आवेदकों की ओर से मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, खुफिया निदेशालय के माध्यम से त्वरित आवेदन दायर किए गए हैं।

संक्षिप्त तथ्य:

4. अभियोजन पक्ष के अनुसार, 6.11.2022 को डीआरआई को एक खुफिया सूचना मिली थी कि कुछ लोग, जो ट्रेन नंबर 22422 में कोच-बी-5 में सीट नंबर 2, 3,54 और 56 पर यात्रा कर रहे थे, विदेशी मूल का सोने की तस्करी कर रहे हैं। और वे जोधपुर, राजस्थान से ट्रेन में चढ़े और तस्करी के विदेशी मूल के सोने को उत्तर प्रदेश के रामपुर में पहुंचाने जा रहे थे। इसके बाद 6.11.2022 को डीआरआई अधिकारियों की टीम रेवाड़ी जंक्शन रेलवे स्टेशन पर पहुंची और जब ट्रेन लगभग 8.20 बजे जंक्शन पर पहुंची तो अधिकारियों ने पाया कि उपरोक्त सीटों पर आवेदक और दो अन्य लोग बैठे थे और आवेदक मोहम्मद आलम के कब्जे से 549.5 ग्राम छड़ के रूप में एवं

आवेदक मोहम्मद तुफैल के कब्जे से 526 ग्राम सोना पेस्ट के रूप में सोना बरामद किया गया। आगे आरोप है कि बाकी आरोपियों, इशरत अली के कब्जे से 947.5 ग्राम सोना और मोहम्मद नईम के कब्जे से 525.5 ग्राम सोना बरामद किया गया। इस प्रकार, डीआरआई के अनुसार आवेदकों और दो अन्य के कब्जे से कुल 2548.5 ग्राम सोना बरामद किया गया। इसके बाद आवेदक मोहम्मद तुफैल के कब्जे से बरामद कथित सोने के निकाले गए वजन का पता लगाया गया और निकाले गए सोने का वजन 448.50 ग्राम निकला। चूंकि आवेदक मोहम्मद आलम के कब्जे से बरामद सोना पहले से ही ठोस रूप में था, इसलिए इसे निष्कर्षण प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बनाया गया।

5. डीआरआई के अनुसार, आवेदकों और दो अन्य के कब्जे से बरामद कुल सोने का बाजार मूल्य रु एक करोड़ तेरह लाख चौबीस हजार छह सौ आठ रुपये था। । प्रार्थी मोहम्मद आलम एवं प्रार्थी मोहम्मद तुफैल के कब्जे से बरामद सोने का बाजार मूल्य क्रमशः रु.27,98,054/- और रु.22,83,762/- है। यह भी आरोप लगाया गया है कि आवेदकों और अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के बयान सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा धारा 108 सीमा शुल्क अधिनियम के तहत दर्ज किए गए थे और उन्होंने अपना अपराध कबूल कर लिया और कहा कि कथित बरामद सोना विदेशी मूल का तस्करी का सोना था और उन्होंने इसे दुबई से खरीदा था। .

6. आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्तियों ने यह भी कहा कि वे एक-दूसरे को जानते हैं और

वे सामूहिक रूप से विदेशी मूल के सोने की तस्करी में शामिल थे।

7. पंचनामा के बाद आवेदकों को 9.11.2022 को गिरफ्तार किया गया और जांच शुरू की गई और जांच के बाद 5.1.2023 को डीआरआई ने आवेदकों और दो अन्य के खिलाफ विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (आर्थिक अपराध) मेरठ की अदालत में आपराधिक शिकायत दर्ज की।

आवेदकों की ओर से दलीलें:

8. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आवेदकों के खिलाफ लगाए गए सभी आरोप पूरी तरह से झूठे और निराधार हैं और आवेदक कभी भी विदेशी मूल के कथित सोने की तस्करी में शामिल नहीं हुए हैं। उन्होंने आगे कहा कि आवेदकों और दो अन्य को डीआरआई के अधिकारियों ने 6.11.2022 को ट्रेन से जबरन पकड़ लिया और उसके बाद झूठी कहानी बनाकर और सोने की बरामदगी करके उन्हें वर्तमान मामले में फंसा दिया गया है। उन्होंने आगे कहा, आवेदक को 9.11.2022 को गिरफ्तार किया गया था, यानी, सोने की कथित जब्ती की तारीख से लगभग तीन दिन बाद।

9. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि व्यक्तिगत रूप से आवेदकों के कब्जे से बरामद कथित सोने का मूल्य एक करोड़ रुपये से कम है। इसलिए, सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 6495

और 135 के मद्देनजर, किए गए कथित अपराध जमानती हैं। उन्होंने आगे प्रस्तुत

किया, आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्तियों के कब्जे से बरामद संयुक्त सोने पर विचार नहीं किया जा सकता है।

10. उन्होंने इस मामले में वायु सीमा शुल्क बनाम बेगैम अकिनोवा2021 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 1974 में 3.1.2022 को लिये गये निर्णय में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया।

11. दोनों आवेदकों के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि ट्रेन से आवेदकों और दो अन्य को डीआरआई कार्यालय, नोएडा ले जाया गया और उसके बाद तलाशी ली गई और तीन दिनों के बाद उनकी औपचारिक गिरफ्तारी दिखाकर उन्हें वर्तमान मामले में आरोपी बना दिया गया। इसलिए, डीआरआई अधिकारियों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया पूरी तरह से अवैध है और इसे कानून के तहत अनुमोदित नहीं किया जा सकता है क्योंकि जिस समय आवेदकों को पकड़ा गया था, उस समय न तो मौके पर तलाशी ली गई थी और न ही उन्हें तुरंत गिरफ्तार किया गया था और इस प्रकार आवेदक डीआरआई की अवैध हिरासत में थे। लगभग तीन दिन, यानी 6.11.2022 से 9.11.2022 तक।

12. आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि धारा 108 सीमा शुल्क अधिनियम के तहत दर्ज किए गए बयान तूफान सिंह बनाम. तमिलनाडु राज्य, 2021 (4) एससीसी1 के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर स्वीकार्य नहीं हैं।

विपक्षी दलों की ओर से दलीलें:

13. डीआरआई के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ एजीए के विद्वान अधिवक्ता और भारत संघ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदकों और दो अन्य के संयुक्त कब्जे से एक करोड़ रुपये से अधिक मूल्य का विदेशी मूल का सोना बरामद किया गया था और इसलिए सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 और 135 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए कथित अपराध गैर-जमानती हैं और हालांकि अधिकतम सजा सात साल है, लेकिन चूंकि वर्तमान अपराध विशेष अधिनियम के तहत आर्थिक अपराध है, इसलिए यहां तक कि सतेंदर कुमार अंतिल बनाम सेंट्रल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टिगेशन और अन्य (2021) 10 एससीसी 773 के मामले में शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर आवेदकों की जमानत याचिकाओं पर योग्यता के आधार पर विचार किया जाना चाहिए।

14. डीआरआई के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विशिष्ट खुफिया इनपुट पर आवेदकों को ट्रेन से उस समय पकड़ा गया जब वे जोधपुर, राजस्थान से रामपुर उत्तर प्रदेश की ओर यात्रा कर रहे थे और उनके कब्जे से विदेशी मूल का तस्करी का सोना बरामद किया गया था और हालांकि व्यक्तिगत कब्जे से दोनों आवेदकों से एक करोड़ रुपये से कम मूल्य का सोना बरामद किया गया था, लेकिन आवेदकों और दो अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के कब्जे से बरामद सोने का कुल मूल्य रुपये से अधिक था। इसलिए, सीमा शुल्क अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करते

हुए एक करोड़ आवेदकों ने गैर जमानती अपराध किया।

15. डीआरआई के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 108 के तहत दर्ज किए गए आरोपियों के बयान स्वीकार्य हैं और मामले में शीर्ष अदालत तूफान सिंह (उपरोक्त) के मामलों में भी यह माना गया कि सीमा शुल्क अधिकारी पुलिस अधिकारी नहीं हैं और इसलिए, सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 108 के तहत दर्ज किए गए बयानों को धारा 67 एनडीपीएस अधिनियम के तहत दर्ज किए गए बयानों के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है क्योंकि एनडीपीएस अधिनियम के तहत कार्य करने वाले अधिकारी पुलिस अधिकारी हैं, इसलिए, कानून में निर्धारित कानून के मद्देनजर तूफान सिंह (उपरोक्त) सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 108 के तहत दर्ज आवेदकों के बयान स्वीकार्य हैं।

16. उन्होंने आगे कहा कि आवेदकों के बयानों से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने सामूहिक रूप से बरामद सोने की तस्करी की और वे एक-दूसरे को जानते थे और इसलिए, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि वे एक टीम के रूप में विदेशी मूल के सोने की तस्करी में शामिल थे। आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्तियों से की गई वसूली को धारा 135 सीमा शुल्क अधिनियम के प्रयोजन के लिए माना जाना चाहिए और पूरे बरामद सोने का मूल्य एक करोड़ रुपये से अधिक है, इसलिए, आवेदकों और अन्य ने गैर जमानती अपराध किया।

17. उन्होंने आगे कहा कि चूंकि आवेदकों सहित सभी आरोपी व्यक्तियों को अच्छी तरह से पता था कि वे सभी सोना ले जा रहे थे, इसलिए, पूरे बरामद सोने पर उन सभी का सचेत कब्जा है और यह नहीं कहा जा सकता है कि उन्होंने व्यक्तिगत रूप से काम किया और जैसा कि उन्होंने कथित तौर पर किया है। एक टीम के रूप में अपराध इसलिए, बरामद सोने के कुल मूल्य पर विचार किया जाना चाहिए।

18. डीआरआई के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि बरामद सोना निषिद्ध माल है क्योंकि इसका आयात या निर्यात कुछ निर्धारित शर्तों के अधीन है, इसलिए, धारा 104 सीमा शुल्क अधिनियम के अनुसार, आवेदकों द्वारा किया गया अपराध गैर-जमानती है और धारा के अनुसार 135 सीमा शुल्क अधिनियम के तहत ऐसे अपराध के लिए अधिकतम सजा 7 वर्ष है।

19. उन्होंने ओम प्रकाश भाटिया बनाम. सीमा शुल्क आयुक्त, दिल्ली, एआईआर 2000 एससी 581 मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा जताया।

20. उन्होंने आगे कहा कि आवेदक मोहम्मद आलम पहले भी वर्ष 2020 में अमेरिकी डॉलर और यूरो की विदेशी मुद्रा के संबंध में तस्करी के कार्य में शामिल था। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक मोहम्मद तुफैल पर भी तस्करी के तीन मामलों में मामला दर्ज किया गया था। तीन मामले, दो मामले वर्ष 2019 और 2022 के थे और दोनों मामले सोने की तस्करी से

संबंधित थे और एक अन्य मामला वर्ष 2021 का था जो लगभग 3,18,000/- रुपये मूल्य की सिगरेट से संबंधित था और इसलिए, पूर्ववृत्त पर विचार करते हुए आवेदकों, सजा की गंभीरता और तत्काल अपराध करने के तरीके के आधार पर, आवेदक जमानत पर रिहा होने के हकदार नहीं हैं।

निष्कर्ष:

21. मैंने प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर उत्सुकतापूर्वक विचार किया है और मामले के रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

22. शिकायत एवं प्रकरण के पंचनामे के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रार्थी एवं दो अन्य के कब्जे से कुल 1,13,24,608/- रुपये मूल्य का सोना बरामद किया गया एवं प्रार्थी मोहम्मद आलम के कब्जे से कुल रु. 27,98,054/- रुपये का कीमती सोना बरामद किया गया और आवेदक मोहम्मद तुफैल के कब्जे से क्रमशः 22,83,762/- रुपये मूल्य का सोना बरामद किया गया, इसलिए, दोनों आवेदकों के व्यक्तिगत कब्जे से एक करोड़ रुपये से कम का सोना बरामद किया गया।

23. आवेदकों को सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 135 के प्रावधानों के तहत चालान किया गया है जो इस प्रकार है:

“135. कर्तव्य या निषेध की चोरी.—(1) इस अधिनियम के तहत की जाने वाली किसी भी कार्रवाई पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना,अगरकिसी भी व्यक्ति—

(ए) किसी भी तरह से किसी भी सामान के संबंध में जानबूझकर मूल्य की गलत घोषणा

या किसी धोखाधड़ी चोरी या उस पर लगाए गए किसी शुल्क की चोरी के प्रयास या इस अधिनियम या किसी अन्य कानून के तहत लगाए गए किसी भी निषेध में शामिल है। ऐसे सामानों के संबंध में समय लागू होना; या

(प्रभाव वर्धित)

(बी) किसी भी ऐसे सामान पर कब्जा कर लेता है या उसे ले जाने, हटाने, जमा करने, आश्रय देने, रखने, छुपाने, बेचने या खरीदने या किसी अन्य तरीके से व्यवहार करने में किसी भी तरह से संबंधित होता है जिसके बारे में वह जानता है या उसके पास विश्वास करने का कारण है कि वह धारा 111 के तहत जब्ती के लिए उत्तरदायी है या धारा 113, जैसा भी मामला हो; या

(सी) किसी भी सामान को निर्यात करने का प्रयास करता है जिसके बारे में वह जानता है या उसके पास विश्वास करने का कारण है, धारा 113 के तहत जब्ती के लिए उत्तरदायी है; या

(डी) माल के निर्यात के संबंध में इस अधिनियम के तहत प्रदान किए गए शुल्क से वापसी या किसी भी छूट का धोखाधड़ी से लाभ उठाता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है या

(ई) किसी प्राधिकारी से धोखाधड़ी, मिलीभगत, जानबूझकर गलत बयानी या तथ्यों को छिपाकर एक उपकरण प्राप्त करता है और ऐसे उपकरण का उपयोग ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया है, वह दंडनीय होगा, -

(i) किसी अपराध के मामले में,-

(ए) कोई भी सामान जिसका बाजार मूल्य एक करोड़ रुपये से अधिक है; या

(बी) पचास लाख रुपये से अधिक शुल्क की चोरी या चोरी का प्रयास; या

(सी) निषिद्ध वस्तुओं की ऐसी श्रेणियां जिन्हें केंद्र सरकार, आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट कर सकती है; या

(डी) खंड (डी) में निर्दिष्ट शुल्क से ड्रॉबैंक या किसी छूट का धोखाधड़ी से लाभ उठाना या प्राप्त करने का प्रयास करना, यदि ड्रॉबैंक या शुल्क से छूट की राशि पचास लाख रुपये से अधिक है,

(ई) धोखाधड़ी, मिलीभगत, जानबूझकर गलत बयानी या तथ्यों को छिपाकर किसी प्राधिकरण से एक उपकरण प्राप्त करना और ऐसे उपकरण का उपयोग किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया है, जहां उपकरण के उपयोग से संबंधित शुल्क पचास लाख रुपये से अधिक है, कारावास की सजा हो सकती है। अवधि जिसे सात वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है:

बशर्ते कि अदालत के फैसले में दर्ज किए जाने वाले विपरीत विशेष और पर्याप्त कारणों के अभाव में, ऐसा कारावास एक वर्ष से कम नहीं होगा;

(ii) किसी अन्य मामले में, तीन साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकता है।

(2) यदि इस धारा के तहत या धारा 136 की उप-धारा (1) के तहत किसी अपराध के लिए दोषी ठहराए गए किसी व्यक्ति को फिर से इस धारा के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है, तो, वह दूसरे और प्रत्येक बाद के अपराध के लिए कारावास से दंडनीय होगा। एक अवधि के लिए जिसे सात वर्ष तक बढ़ाया

जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है:

बशर्ते कि अदालत के फैसले में दर्ज किए जाने वाले विपरीत विशेष और पर्याप्त कारणों के अभाव में ऐसा कारावास एक वर्ष से कम नहीं होगा।

(3) उप-धारा (1) और (2) के प्रयोजनों के लिए, निम्नलिखित को एक वर्ष से कम अवधि के कारावास की सजा देने के लिए विशेष और पर्याप्त कारणों के रूप में नहीं माना जाएगा, अर्थात्: -

(i) यह तथ्य कि अभियुक्त को इस अधिनियम के तहत किसी अपराध के लिए पहली बार दोषी ठहराया गया है;

(ii) तथ्य यह है कि इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही में, अभियोजन के अलावा, अभियुक्त को जुर्माना देने का आदेश दिया गया है या सामान जो ऐसी कार्यवाही का विषय है, उसे जब्त करने का आदेश दिया गया है या कोई अन्य कार्रवाई की गई है उसी कार्य के लिए उसके विरुद्ध कार्रवाई की गई जो अपराध बनता है;

(iii) तथ्य यह है कि अभियुक्त मुख्य अपराधी नहीं था और केवल माल के वाहक के रूप में कार्य कर रहा था या अन्यथा अपराध के कमीशन के लिए एक माध्यमिक पक्ष था;

(iv) अभियुक्त की उम्र.
स्पष्टीकरण.- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति "उपकरण" का वही अर्थ होगा जो धारा 28-एएए के स्पष्टीकरण 1 में दिया गया है।

24. सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 135 के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कोई

व्यक्ति किसी भी तरह से कब्जा प्राप्त करता है या कब्जा किसी भी सामान को ले जाने से संबंधित है जिसे जब्त किया जा सकता है और माल का बाजार मूल्य रुपये से अधिक है। एक करोड़ तो उसे जुर्माने के साथ सात साल तक की कैद की सजा हो सकती है।

25. सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 गिरफ्तारी की शक्ति से संबंधित है और यह इस प्रकार चलती है:

"104. गिरफ्तार करने की शक्ति.—(1) यदि प्रधान सीमा शुल्क आयुक्त या सीमा शुल्क आयुक्त के सामान्य या विशेष आदेश द्वारा इस संबंध में सशक्त सीमा शुल्क अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि भारत में या भारतीय सीमा शुल्क जल के भीतर किसी व्यक्ति ने दंडनीय अपराध किया है धारा 132 या धारा 133 या धारा 135 या धारा 135ए या धारा 136, वह ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है और जितनी जल्दी हो सके, उसे ऐसी गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित करेगा।

(2) उप-धारा (1) के तहत गिरफ्तार किए गए प्रत्येक व्यक्ति को, अनावश्यक देरी के बिना, मजिस्ट्रेट के पास ले जाया जाएगा।

(3) जहां सीमा शुल्क के एक अधिकारी ने किसी व्यक्ति को उपधारा (1) के तहत गिरफ्तार किया है, तो ऐसे व्यक्ति को जमानत पर या अन्यथा रिहा करने के उद्देश्य से, उसके पास वही शक्तियां होंगी और वह पुलिस-स्टेशन के प्रभारी अधिकारी के समान प्रावधानों के अधीन होगा और दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (5 /1898) के अधीन है।

(4) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2/1974) में किसी बात के होते हुए भी, निम्नलिखित से संबंधित कोई भी अपराध-

(ए) निषिद्ध सामान; या

(बी) पचास लाख रुपये से अधिक शुल्क की चोरी या चोरी का प्रयास; या

(सी) इस अधिनियम के तहत प्रदान किए गए शुल्क से ड्रॉबैंक या किसी छूट का धोखाधड़ी से लाभ उठाना या प्राप्त करने का प्रयास करना, जहां शुल्क से ड्रॉबैंक या छूट की राशि पचास लाख रुपये से अधिक है; या

(डी) अधिनियम या विदेशी व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1992 (1992 का 22) के उद्देश्य के लिए धोखाधड़ी से एक उपकरण प्राप्त करना, और ऐसे उपकरण का उपयोग इस अधिनियम के तहत किया जाता है, जहां उपकरण के ऐसे उपयोग से संबंधित शुल्क पचास लाख रुपये से अधिक होता है तो संज्ञेय होगा।

(5) उप-धारा (4) में अन्यथा प्रदान किए गए को छोड़कर, अधिनियम के तहत अन्य सभी अपराध गैर-संज्ञेय होंगे।

(6) आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973, (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, धारा 135 के तहत दंडनीय अपराध -

(ए) पचास लाख रुपये से अधिक शुल्क की चोरी या चोरी का प्रयास; या

(बी) धारा 11 के तहत अधिसूचित निषिद्ध सामान जो धारा 135 की उप-धारा (1) के खंड (i) के उप-खंड (सी) के तहत भी अधिसूचित हैं; या

(सी) किसी भी सामान का आयात या निर्यात जो इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार घोषित नहीं किया गया है और

जिसका बाजार मूल्य एक करोड़ रुपये से अधिक है; या

(डी) इस अधिनियम के तहत प्रदान किए गए शुल्क से ड्रॉबैंक या किसी छूट का धोखाधड़ी से लाभ उठाना या प्राप्त करने का प्रयास करना, यदि ड्रॉबैंक या शुल्क से छूट की राशि पचास लाख रुपये से अधिक है या,

(ई) इस अधिनियम या विदेशी व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1992 (1992 का 22) के प्रयोजनों के लिए धोखाधड़ी से एक उपकरण प्राप्त करना, और ऐसे उपकरण का उपयोग इस अधिनियम के तहत किया जाता है, जहां उपकरण के ऐसे उपयोग से संबंधित विधिवत पचास से अधिक है लाख रुपये, गैर-जमानती होंगे।

(7) उपधारा (6) में दिए गए अन्यथा प्रावधान को छोड़कर, इस अधिनियम के तहत अन्य सभी अपराध जमानती होंगे।

स्पष्टीकरण.- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, अभिव्यक्ति "उपकरण" का वही अर्थ होगा जो धारा 28-एएए के स्पष्टीकरण 1 में दिया गया है। "

26. सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 (6) के अनुसार, सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 11 के तहत अधिसूचित निषिद्ध वस्तुओं से संबंधित धारा 135 सीमा शुल्क अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध है, जो सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 135 के उप-धारा के खंड (i) के उप-खंड (सी) के तहत भी अधिसूचित है या किसी भी सामान का आयात या निर्यात जो इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार घोषित नहीं किया गया है और जिसका बाजार मूल्य रुपये एक करोड़ गैर से अधिक है, जमानती होगा और धारा 104(7) सीमा शुल्क

अधिनियम के अनुसार धारा 104 सीमा शुल्क अधिनियम की उपधारा (6) में दिए गए प्रावधान को छोड़कर अन्य सभी अपराध जमानती हैं।

27. इसलिए, सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यदि किसी सामान का आयात या निर्यात सीमा शुल्क अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार घोषित नहीं किया गया है और ऐसे बरामद माल का बाजार मूल्य एक करोड़ रुपये से अधिक है तो अपराध माना जाएगा। गैर जमानती होगा और इसी तरह प्रतिबंधित वस्तुओं के संबंध में किया गया अपराध भी गैर जमानती होगा।

28. मौजूदा मामले में, दोनों आवेदकों के व्यक्तिगत कब्जे से बरामद किए गए एक करोड़ रुपये रुपये से कम मूल्य का सोना, हालांकि, आवेदकों और दो अन्य के कब्जे से बरामद कुल सोने का मूल्य एक करोड़ रुपये से अधिक था।

29. इसलिए, प्रश्न उठता है कि क्या व्यक्तिगत रूप से बरामद सोने के मूल्य पर विचार किया जाना चाहिए या संयुक्त रूप से बरामद सोने के मूल्य पर विचार किया जाना चाहिए।

30. धारा 135 सीमा शुल्क अधिनियम में, "कोई भी व्यक्ति" शब्द का उपयोग किया गया है और, मेरे विचार से, यह एक व्यक्ति को दर्शाता है। "किसी भी व्यक्ति" शब्द की व्याख्या व्यक्तियों के समूह के रूप में नहीं की जा सकती। धारा 135 सीमा शुल्क अधिनियम

को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक व्यक्ति को संदर्भित करता है।

31. दिल्ली उच्च न्यायालय के मामले में भीवायु सीमा शुल्क बनाम। बेगैम अकिनोवा (उपरोक्त) यह देखा गया कि आरोपी को जो सजा दी जानी है, वह उसके कब्जे से बरामद किए गए सोने के अनुरूप होनी चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को उसके कब्जे से मिले सोने की बरामदगी के लिए जवाबदेह बनाया जाना चाहिए।

32. इसलिए, मेरे विचार में, धारा 135 सीमा शुल्क अधिनियम के प्रयोजन के लिए व्यक्तिगत रूप से बरामद सोने के मूल्य पर विचार किया जाना चाहिए, न कि संयुक्त रूप से बरामद सोने के मूल्य पर।

33. मामले में अगला सवाल यह है कि क्या कथित रूप से बरामद किया गया सोना प्रतिबंधित सामान था क्योंकि अगर यह प्रतिबंधित सामान था तो धारा 104 (6) और 135 सीमा शुल्क अधिनियम के आधार पर, आवेदकों द्वारा किया गया कथित अपराध गैर-जमानती होगा। और ऐसे अपराध के लिए अधिकतम सजा सात साल है।

34. प्रतिबंधित वस्तुओं को सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 2 (33) के तहत परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है:

2 (33) - "निषिद्ध माल" इसका मतलब है कोई भी सामान जिसका आयात या निर्यात इस अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून के तहत किसी भी निषेध के

अधीन है, लेकिन इसमें ऐसा कोई सामान शामिल नहीं है जिसके संबंध में वे शर्तें हैं जिनके अधीन सामान आयात करने की अनुमति है या निर्यात का अनुपालन किया गया है।

35. धारा 2(33) सीमा शुल्क अधिनियम के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक वस्तु निषिद्ध है यदि उसका आयात या निर्यात सीमा शुल्क अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून के तहत निषेध के अधीन है।

36. ओम प्रकाश भाटिया (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष अदालत की दो न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि आयात या निर्यात पर प्रतिबंध माल की निकासी से पहले या बाद में पूरी की जाने वाली कुछ निर्धारित शर्तों के अधीन हो सकता है और यदि शर्तें पूरी नहीं होती हैं, तो यह प्रतिबंधित माल की श्रेणी में आ सकता है।

37. ओम प्रकाश भाटिया (उपरोक्त)के मामले में शीर्ष न्यायालय ने अपने पहले के दो जजों की बेंच के फैसले पर भरोसा किया शेख मो. ओमर बनाम सीमा शुल्क आयुक्त, कलकत्ता और अन्य, 1970 एससीसी (2) 728जिसमें यह माना गया कि आयात या निर्यात पर कोई भी प्रतिबंध एक हद तक निषेध है और कोई भी निषेध, चाहे वह पूर्ण हो या आंशिक, निषेध है और जैसा कि शेख मोहम्मद उमर (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में माना था।"कोई भी निषेध" का अर्थ है "प्रत्येक निषेध"।

38. इसलिए शीर्ष न्यायालय के शेख मोहम्मद ओमर (उपरोक्त) और ओम प्रकाश भाटिया (उपरोक्त) के निर्णयों के अनुसार भले ही माल प्रतिबंधित नहीं है, लेकिन अगर इसके आयात या निर्यात पर कुछ प्रतिबंध है तो यह निषिद्ध माल होगा लेकिन दोनों शीर्ष न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय दो न्यायाधीशों द्वारा दिए गए थे, हाल ही में सीमा शुल्क आयुक्त बनाम अतुल ऑटोमेशन प्राइवेट लिमिटेड के मामले में शीर्ष न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने, (2019) मल्टी फंक्शन डिवाइस के संबंध में 3 सुप्रीम कोर्ट केस 539 में पाया कि एमएफडी निषिद्ध नहीं थे, लेकिन आयात के लिए प्रतिबंधित वस्तुएं थीं और आगे देखा गया कि जो निषिद्ध है और जो प्रतिबंधित है, उसके बीच मौलिक अंतर मौजूद होगा। इसलिए, अतुल ऑटोमेशन (उपरोक्त) के मामले से ऐसा प्रतीत होता है कि आयात पर प्रतिबंध के आधार पर किसी वस्तु को धारा 2 (33) सीमा शुल्क अधिनियम के संदर्भ में निषिद्ध वस्तु नहीं कहा जा सकता है।

39. अभियोजन के अनुसार, मामले में, आवेदकों के कब्जे से सोना बरामद किया गया था जो सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 111 के तहत जब्ती के लिए उत्तरदायी था और धारा 125 सीमा शुल्क अधिनियम के अनुसार संबंधित प्राधिकारी जब्ती के बदले जुर्माना लगा सकता है। और, इसलिए, सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 11 के प्रावधानों से ऐसा प्रतीत होता है कि सोना निषिद्ध वस्तु नहीं है, बल्कि यह प्रतिबंधित वस्तु है और सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 125 के अनुसार जब्ती के बदले में जुर्माना लगाया जा सकता है।

इसलिए, चूंकि सोने का आयात निषिद्ध नहीं है, लेकिन शुल्क के निर्धारित भुगतान के अधीन प्रतिबंधित है, इस प्रकार कथित बरामद सोना सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 2(33) के तहत निषिद्ध माल नहीं है, लेकिन तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के मद्देनजर यह प्रतिबंधित माल है। के मामले में शीर्ष अदालतअतुल ऑटोमेशन (उपरोक्त)।

40. इसलिए, ऊपर की गई चर्चा से, ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदकों ने सीमा शुल्क अधिनियम के प्रावधानों के तहत अपराध किया है जिसके लिए अधिकतम सजा तीन साल है और चूंकि उनका मामला धारा 104 (6) सीमा शुल्क अधिनियम के तहत नहीं आता है, इसलिए, धारा 104(7) सीमा शुल्क अधिनियम के आधार पर आवेदकों द्वारा किया गया कथित अपराध जमानत योग्य है, इसलिए, वे जमानत पर रिहा होने के हकदार हैं।

41. तदनुसार, मामले की योग्यता पर कोई राय व्यक्त किए बिना, दोनों तत्काल जमानत आवेदन अनुमत हैं।

42. यह कि आवेदकों- मो. तुफैल और मोहम्मद आलम उपरोक्त मामले में निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक निजी बांड और समान राशि की दो जमानतें प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जा सकता है: -

- आवेदक तय तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे, जब तक कि उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न हो।
- आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति

को प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेंगे ताकि उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी के सामने ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके या सबूतों के साथ छेड़छाड़ न की जा सके।

(iii) आवेदक किसी भी आपराधिक और असामाजिक गतिविधि में शामिल नहीं होंगे।

43. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले में, अभियोजन पक्ष आवेदकों की जमानत रद्द करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर करने के लिए स्वतंत्र होगा।

(2023) 4 ILRA 37

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

अपराधिक विविध प्रथम जमानत आवेदन

संख्या 59154 / 2022

कमरूद्दीन

...

आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

..

.विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री सुशील कुमार, श्री मुकुल यादव

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

(i) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 164 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 306, 354, 354(क), 366, 376, 376(घ), 504 एवं 506 - जमानत के लिए आवेदन - बलात्कार - आरोपी

ने मृतका को धमकाया - प्रताड़ित किया - घटना के अवैध वीडियो क्लिप भी बनाए - पीड़िता ने आत्महत्या की - जमानत के लिए आवेदन - आधार यह लिया गया कि इस मामले से जुड़े अन्य वाद में सह-आरोपियों को जमानत पर रिहा कर दिया गया है - न्यायालय ने पाया कि जेल में कैद का कोई महत्व नहीं है और समाज में कोई भी तत्व इस तरह से कार्य नहीं कर सकता है जिसके परिणामस्वरूप दूसरों का जीवन या स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाए - आयोजित, यह सार्वभौमिक नियम नहीं है कि सह-आरोपी को जमानत दी जानी चाहिए और समानता का आधार जमानत का एकमात्र आधार नहीं हो सकता। तदनुसार, जमानत आवेदन निरस्त किया गया। (पैरा-12, 13)

जमानत आवेदन निरस्त। (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. संजय चंद्रा बनाम सी.बी.आई., ए.आई.आर. 2012 (एस.सी.) 830,
2. ऐश मुहम्मद बनाम शिव राज सिंह, (2012) 9 5.सी.सी. 446,
3. भगत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 (66) ए.सी.सी. 859 (एल्ड.),
4. रवि खंडेलवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 (67) ए.सी.सी. 148 (एल्ड.)
5. राजेश रंजन यादव बनाम पप्पू यादव बनाम सी.बी.आई., ए.आई.आर. 2007 (एससी) 451

6. अमर नाथ यादव बनाम पंजाब एवं हरियाणा राज्य, 2009 (67) (ए.सी.सी.) 534 अखिल भारतीय
7. शाह नारायण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 (66) ए.सी.सी. 189 एल्ड।
8. अजमेर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2010 (5) एस.सी.जे. 451

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री मुकुल यादव के साथ श्री सुशील कुमार, राज्य के लिए ए.जी.ए. को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।
2. प्रार्थी कमरुद्दीन मुकदमा अपराध संख्या 594 वर्ष 2020 (एस.टी. संख्या 355 वर्ष 2021) अन्तर्गत धारा 306 आईपीसी, थाना अनूपशहर, जिला-बुलंदशहर में मुख्य अभियुक्त है।
3. प्रार्थी ने शपथ पत्र और अनुलग्नकों के साथ जमानत आवेदन दायर किया है, जिसमें कहा गया है कि 16.11.2020 को दोपहर लगभग 01:00 बजे सूचनाकर्ता की बेटी ने कमरे का दरवाजा बंद करके कमरे के कुंडे पर लटककर आत्महत्या कर ली, और घटना स्थल पर एक सुसाइड नोट भी छोड़ दिया, जिसमें आरोप लगाया गया कि वर्तमान आरोपी-प्रार्थी और सह-

अभियुक्त मोबिन और अबरार उसकी आत्महत्या की मौत का कारण हैं।

4. इससे पहले भी मृतका द्वारा उनके खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या 549/2020, धारा 366, 376 और 354 आईपीसी में एफ.आई.आर. दर्ज कराई गई थी।
5. पंचनामा के बाद, पोस्टमॉर्टम के दौरान गर्दन के चारों ओर मौजूद 29 सेमी x 2 सेमी आकार का संयुक्त निशान पाया गया। डॉक्टर का मानना था कि मृतका की मृत्यु एंटी-मॉर्टम हैंगिंग के कारण उत्पन्न श्वासावरोध के कारण हुई थी। सूचनाकर्ता ने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयान में एफ.आई.आर. के संस्करण को दोहराया है। सुसाइड नोट में बताया गया कि मृतका बी.ए. तथा एल.एल.बी. (प्रथम वर्ष) की छात्रा थी तथा प्रार्थी-अभियुक्त कमरुद्दीन अक्सर उसके पास आता रहता था। दिनांक 03.10.2020 को, जब वह बैंक गई, तो सभी आरोपी उसे एक वाहन में ले गए और उसके साथ बलात्कार करने की कोशिश की, जिसके लिए उसने एफ.आई.आर. दर्ज कराई थी, बाद में जब प्रार्थी ने माफी मांगी और प्रस्ताव रखा कि यदि वह अनुकूल बयान दे तो वह उससे विवाह कर लेगा। इसके बाद मृतका ने प्रार्थी के पक्ष में बयान दिया था। दिनांक 16.10.2020 को प्रार्थी का मैसेज

पाकर वह शाम करीब 04:00 बजे गांव से बाहर निकली जहां से उसे आरोपीगण जबरन अपने साथ ले गये और शादी का झांसा देकर प्रार्थी ने उसके साथ दुष्कर्म किया और मोबिन व अबरार ने घटना की अवैध वीडियो क्लिप बना ली और वीडियो का डर बताकर दोनों ने उसके साथ दुष्कर्म भी किया और उसे कस्बा छाता में छोड़ दिया और धमकी भी दी कि अगर उसने कोई मामला दर्ज कराया तो वे उस वीडियो को वायरल कर देंगे।

6. प्रार्थी ने यह आधार लिया है कि इस बात का ज़रा भी सबूत नहीं है कि प्रार्थी ने प्रार्थी को प्रताड़ित किया था और उकसाया था। अपराध संख्या 505/2020 में धारा 506, 366 और 354 आईपीसी के तहत, पीड़िता ने धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में आरोपों से इनकार किया था। प्रार्थी की मृतका से मुलाकात 03.10.2020 को हुई थी और उसके बाद केस नंबर 549 के 2020 में धारा 366, 376, 354 आईपीसी के तहत एक एफआईआर दर्ज की गई थी, जिसमें प्रार्थी को 11.11.2022 को आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 29731 2022 में इस न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया है। वर्तमान मामला उपरोक्त दो मामलों से जुड़ा है, इन मामलों को छोड़कर,

उसके नाम पर कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। पिछले मामले में मृतका पीड़िता पी.डब्ल्यू 1 का बयान सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उसके बयान के विपरीत है। 03.10.2020 को मृतका और आरोपी के बीच मुलाकात के बाद, मृतका ने 16.11.2020 को आत्महत्या कर ली थी, इसलिए आत्महत्या के लिए उकसाने का कोई मामला नहीं बनता है। सह-अभियुक्त अबरार और मोबीन को शीर्ष न्यायालय और इस न्यायालय ने क्रमशः दिनांक 21.11.2022 और 28.11.2022 के आदेश द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया है। उनकी जमानत अर्जी सत्र न्यायाधीश, बुलन्दशहर द्वारा दिनांक 15.03.2022 के आदेश द्वारा अवैध रूप से खारिज कर दी गई है। वह 17.11.2020 से जेल में है। वह एक शांतिप्रिय और कानून का पालन करने वाला नागरिक है, उसके फरार होने और अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ की कोई संभावना नहीं है, वह जमानत की सभी शर्तों का पालन करने के लिए तैयार है और मुकदमे में पूरा सहयोग करने के लिए तैयार है, इसलिए जमानत अर्जी मंजूर की जाए।

7. विद्वान ए.जी.ए. ने जमानत अर्जी का विरोध किया और तर्क दिया कि लंबे समय से आरोपी व्यक्ति मृतका के साथ अपराध कर रहे थे और उसके

जीवन को बदतर और नरक बना दिया था। वीडियो वायरल करने का डर दिखाकर वे उसके साथ बार-बार दुष्कर्म करते रहे। आजकल आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध के लिए शारीरिक या व्यक्तिगत रूप से उकसाना जरूरी नहीं है, बल्कि यह व्हाट्सएप, फेसबुक, ई-मेल आदि या किसी अन्य तरीके से किया जा सकता है। इस मामले में दिनांक 03.10.2022 को मृतका से मिलने के बाद आरोपी-प्रार्थी उसे धमकी देता था और आत्महत्या करने के लिए उकसाता था, इसलिए कोई विकल्प न होने पर, अपनी गरिमा, मान-सम्मान की खातिर, मृतका ने आत्महत्या कर ली। प्रार्थी मुख्य आरोपी है, इसलिए प्रार्थी को जमानत देने में कोई समानता नहीं दी जा सकती।

8. बहस सुनने और पत्रावली के अवलोकन के बाद पता चला कि सबसे पहले प्रार्थी कमरूद्दीन के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 520/2020 में आईपीसी की धारा 366, 354 और 506 के तहत मुकदमा थाना अनूपशहर, जिला बुलन्दशहर में दर्ज किया गया था, जिसमें शादी का आश्वासन मिलने के बाद मृतका ने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत प्रतिकूल बयान दिया था। बाद में, प्रार्थी और सह-अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ उसी पुलिस स्टेशन में केस अपराध संख्या

549/ 2020 में धारा 366, 354-का, 504 और 376-डी आईपीसी के तहत फिर से एक एफआईआर दर्ज की गई, जिसमें सह- आरोपी अबरार और मोबीन को इस न्यायालय की एक अन्य पीठ द्वारा जमानत दे दी गई थी और समानता के आधार पर वर्तमान प्रार्थी को भी इस न्यायालय की अदालत संख्या 54 द्वारा जमानत आवेदन संख्या 29731 दिनांक 2022 के माध्यम से 11.11.2022 को जमानत दे दी गई थी। जमानत स्वीकृत करते समय जेल में रहने की अवधि पर भी विचार किया गया, उस समय वर्तमान प्रार्थी दिनांक 17.11.2020 से जेल में था। उस आदेश के द्वारा आवेदकों पर कई शर्तें लगाई गई थीं।

9. विद्वान ए.जी.ए. ने बताया कि इस न्यायालय द्वारा लगाई गई शर्तों का प्रार्थी द्वारा पालन नहीं किया गया था और वह लगातार शादी का झूठा वादा कर रहा था और उसे बहला-फुसलाकर सभी आरोपियों ने उसके साथ बार-बार बलात्कार किया, जिसके बाद मृतका गंभीर स्थिति में आ गया। आरोपियों ने मृतका को धमकी दी थी कि अगर उसने इस घटना के बारे में किसी को बताया तो वे उसका अश्लील वीडियो वायरल कर देंगे। सूचनाकर्ता के अनुसार मृतका ने होश आने पर अपने साथ घटी घटना के बारे में उसे व अपनी मां को बताया था।

10. विद्वान ए.जी.ए. ने यह भी तर्क दिया कि प्रार्थी-अभियुक्त को झूठा फंसाने के लिए कोई दुश्मनी या आधार नहीं था। सुसाइड नोट में मृतका ने लिखा है कि वह एलएलबी प्रथम वर्ष की छात्रा थी, आरोपी कमरुद्दीन उसी के गांव का रहने वाला था, जो उसके घर आता था और उससे बातचीत करता था। कुछ देर बाद दोनों मोबाइल से भी बातें करने लगे। इसी का फायदा उठाकर दिनांक 3.10.2020 को जब वह बैंक जा रही थी तो कमरुद्दीन अपने दोस्तों के साथ मिलकर उसे अपनी कार में ले गया और उसके साथ जबरन दुष्कर्म करने का प्रयास किया बाद में उन्होंने माफी मांगी और रोने लगे और कहा कि अगर वह उनके पक्ष में बयान नहीं देंगी तो मामला बढ़ जाएगा। वह उससे शादी करेगा, उसके बाद उसने उसके पक्ष में बयान दिया, उसके बाद 16.10.2020 को आरोपी कमरुद्दीन ने सुबह 04:00 बजे एक संदेश भेजा और उसे गांव के बाहर सड़क पर बुलाया, जहां अन्य दो व्यक्ति भी मौजूद थे। वह उसे कार में बैठाकर ले गया और वहां कमरुद्दीन ने शादी का झांसा देकर उसके साथ संबंध बनाए और कहा कि अब वह अभी जा सकती है। अब उनमें से कोई कुछ नहीं करेगा, वह कहीं भी जा सकती है। उसे कोई नुकसान नहीं पहुंचाएगा, कहीं जाकर मर जाओ। कमरुद्दीन, अनवर और मोबीन की जगह इन

तीन लोगों ने भी उसके साथ बलात्कार किया और उसकी जिंदगी बर्बाद कर दी, उसे मुंह दिखाने के लिए भी जगह नहीं दी, उसका कैरियर बर्बाद कर दिया और उसका भविष्य खराब कर दिया और उसे मरने के लिए मजबूर कर दिया और यह भी धमकी दी कि यदि कोई कार्रवाई की गई तो उसका वीडियो वायरल कर दिया जाएगा अगर वे जेल गया। घरवाले और पुलिस किसी को भी उस पर भरोसा नहीं है। उसके पास माता-पिता को आश्वस्त करने का कोई अन्य तरीका नहीं था। आखिरी लाइन में मृतका ने लिखा है कि वह आत्महत्या कर रही है और इसके लिए कमरुद्दीन, अनवर और मोबीन जिम्मेदार हैं। पुलिस भी कुछ नहीं कर रही थी। उसे माफ कर दो, माँ और पिताजी सब (मृतका)।

11. विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया कि यदि कमरुद्दीन ने गलत काम नहीं किया होता तो वह आत्महत्या नहीं करती। बाकी दो आरोपियों की भूमिका वर्तमान आरोपी-प्रार्थी कमरुद्दीन की भूमिका से काफी कम और अलग है। इस मामले में सूचनाकर्ता ने अपनी युवा बेटी को खो दिया है और पहले के उदाहरणों से पता चलता है कि प्रार्थी अभियुक्त दबाव में मृतका से शत्रुतापूर्ण बयान प्राप्त करने में सफल रहा और बाद के मामले में आईपीसी की धारा 366, 376, 364-बी के तहत

जमानत की अवधि बढ़ाने के संबंध में लगाई गई शर्तों का आरोपी द्वारा गलत इस्तेमाल किया गया है। (संजय चंद्रा बनाम सी.बी.आई. ए.आई.आर. 2012 (एस.सी.) 830) इस मामले को छोड़कर आरोपी-प्रार्थी बाकी अपराध क्रमांक 594 के 2020 और 505 के 2020 में भी मुख्य आरोपी है।

12. ऐश मुहम्मद बनाम शिव राज सिंह (2012) 9 एस.सी.सी. 446 में, आपराधिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, शीर्ष अदालत ने उच्च न्यायालय द्वारा दी गई जमानत को रद्द कर दिया और देखा कि व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अवधारणा निरपेक्षता का दायरा नहीं है, बल्कि प्रतिबंधित है। जेल में कैद का कोई महत्व नहीं है और समाज में कोई भी तत्व इस तरह से कार्य नहीं कर सकता है जिसके परिणामस्वरूप दूसरों का जीवन या स्वतंत्रता खतरे में पड़े।

13. भगत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में 2009 (66) ए.सी.सी. 859 (इलाहाबाद) रवि खंडेलवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में 2009 (67), ए.सी.सी. 148 (इलाहाबाद), और राजेश रंजन यादव बनाम पप्पू यादव बनाम में सी.बी.आई. ए.आई.आर. 2007 (एस.सी.) 451, अमर नाथ यादव बनाम पंजाब और हरियाणा राज्य 2009 (67) (ए.सी.सी.) 534 इलाहाबाद में शीर्ष न्यायालय द्वारा

इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया है। शाह नारायण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2009 (66) ए.सी.सी 189 इलाहाबाद और अजमेर सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2010) (5) एस.सी.जे. 451, यह सार्वभौमिक नियम नहीं है कि सह-अभियुक्त को समानता के आधार पर जमानत दी जानी चाहिए। समानता जमानत का एकमात्र आधार नहीं हो सकती, क्योंकि न्यायाधीश समानता के आधार पर जमानत देने के लिए बाध्य नहीं है।

14. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, यह न्यायालय जमानत आवेदन को बिना किसी योग्यता के पाता है और तदनुसार खारिज कर दिया जाता है।

(2023) 4 ILRA 40

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या

10924/2019

संजय वर्मा

...

याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

..प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री मुरलीधर मिश्रा,

श्री आकाश मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, 1950 अनुच्छेद 72, 161, 162, 172, 226 - शस्त्र अधिनियम, 1878 - धारा 25 - केबल अतिचार अधिनियम - धारा 24 उत्तर प्रदेश गुंडे और समाज विरोधी गतिविधियां (निवारण) अधिनियम, 1986 - धारा 2, 3 और 3(1) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 148, 149, 307, 448, 427, 323, 504, 332, 302 और 120-बी - याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका, जो संबंधित सत्र परीक्षण में घातक रूप से घायल हो गया था जिसमें प्रतिवादी सं. 5 को दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई - राज्य राज्यपाल द्वारा पारित आदेश को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण रिट की प्रार्थना जिसमें सत्र परीक्षण के द्वारा दोषी प्रतिवादी सं. 5 की सजा माफ कर दी गई - न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी सं. 5 जिसका 26 आपराधिक वाद का आपराधिक इतिहास है, जिसे राज्यपाल के संज्ञान में नहीं लाया गया था - यह स्थापित कानून है कि उप-उत्पाद आदेश को कानून की स्वीकृत नहीं मिल सकती है और ऐसे वाद में, इसके लिए न्यायिक हाथ बढ़ाया जाना चाहिए - इसलिए प्रतिवादी सं. 5 दंड मुक्ति का पात्र नहीं था, इसलिए, आपेक्षित आदेश तदनुसार निरस्त किए जाने योग्य है - निर्देश जारी किए गए। (पैरा-22, 23, 24, 25, 26)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. सतपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2000) 5 एससीसी 170,

2. विकास चटर्जी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2004) 7 एससीसी 634,
3. ईपुरु सुधाकर और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2006) 8 एससीसी 161,
4. नारायण दत्त एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2011) 4 एससीसी 353,
5. मारू राम बनाम भारत संघ एआईआर 1980 एससी 2147,
6. स्वर्ण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1998) 4 एससीसी 75,
7. गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1961 एससी 600

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आकाश मिश्रा, श्री मुरलीधर मिश्रा और उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रतन सिंह को सुना।

2. दिनांक 25.04.2019 के आदेश के अन्तर्गत, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को मान सिंह, पुत्र जर्नादन सिंह को पक्षकार बनाने की अनुमति दी गई थी। उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, मान सिंह को प्रतिवादी संख्या 5 के रूप में सम्मिलित किया गया और उनके विरुद्ध नोटिस जारी किया गया।

3. दिनांक 16.03.2023 के आदेश के अन्तर्गत, न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 5 पर नोटिस की सेवा के बारे में निम्नानुसार कहा: -
“हमने पाया कि प्रतिवादी संख्या 5-
मान सिंह को आदेश दिनांक
25.04.2019 के अन्तर्गत नोटिस

जारी किए गए थे और कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 01.05.2019 के अनुसार उन्हें 20.05.2019 तय करते हुए पंजीकृत डाक एडी द्वारा नोटिस जारी किए गए थे। कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 18.05.2019 और 24.07.2019 के अनुसार न तो पावती और न ही अप्राप्त कवर वापस प्राप्त हुआ है। प्रतिवादी क्रमांक 5 की ओर से आज तक कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है। तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 5 की सेवा को पर्याप्त माना जाता है।”

4. यह रिट याचिका याचिकाकर्ता संजय वर्मा द्वारा दायर की गई है, जो संबंधित सत्र परीक्षण संख्या 41/2007 में घातक रूप से घायल हो गया था, जिसमें दोषी प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह की सजा माफ कर दी गई थी। याचिकाकर्ता ने प्रार्थना की है:

(i) विशेष सचिव, करागर प्रशासन एवं सुधार अनुभाग-2, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 01.02.2019 (रिट याचिका के लिए अनुलग्नक संख्या 1) के आक्षेपित सरकारी आदेश को रद्द करने के लिए प्रमाणन की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) कोई अन्य उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों के अन्तर्गत उचित और उचित समझे;

(iii) याचिकाकर्ताओं को याचिका की लागत का पुरस्कार देना।

5. यूपी राज्य के राज्यपाल ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए मान सिंह की सजा का शेष भाग माफ कर दिया है। विशेष सचिव, जेल प्रशासन एवं सुधार ने आक्षेपित आदेश संख्या 314/22-2-2019-17(150)/2019, दिनांक 01.02.2019 जारी किया है, जिसमें प्रतिवादी संख्या 5, जर्नादन सिंह के पुत्र मान सिंह को दोषी ठहराते हुए उपरोक्त छूट दी गई है। सेंट्रल जेल, आगरा में बंद था, जिसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, झाँसी द्वारा आदेश दिनांक 20.08 द्वारा एसटी संख्या 41/2007 में धारा 148, 307/149, 302/149 आईपीसी और 25 शस्त्र अधिनियम के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया था और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। 2009 और जिसकी दोषसिद्धि को इस न्यायालय ने दिनांक 12.09.2017 के निर्णय और आदेश द्वारा बरकरार रखा था।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि रिहा किए गए दोषी प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह का 27 मामलों का आपराधिक इतिहास है, जिन पर प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को छूट देने का आदेश पारित करते समय विचार नहीं किया गया था। आपराधिक इतिहास इस प्रकार है:-

- (i) मुकदमा अपराध संख्या 204/1985 धारा 147, 148, 307, 323 आईपीसी, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।
- (ii) मुकदमा अपराध संख्या 257/1987 धारा 147, 148, 149, 307, 448, 427 आईपीसी और 24 केबल अतिचार अधिनियम, पुलिस स्टेशन- सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(iii) मुकदमा अपराध संख्या 259/1990 धारा 452, 323, 504 आईपीसी, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(iv) मुकदमा अपराध संख्या 299/1990 धारा 452, 323, 504 आईपीसी, थाना-सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(v) मुकदमा अपराध संख्या 257/1990 धारा 147, 148, 149, 307, 332 आईपीसी, थाना-सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(vi) मुकदमा अपराध संख्या 70/1991 धारा 307, 302 आईपीसी, थाना- सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(vii) मुकदमा अपराध संख्या 150/1992 धारा 147, 148, 149, 302, 506 आईपीसी, थाना-सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(viii) मुकदमा अपराध संख्या 205/1992 धारा 302, 120-बी, 148 आईपीसी (आजीवन कारावास) 09.09.03, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(ix) मुकदमा अपराध संख्या 208/1992 धारा 3(1) उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986, पुलिस स्टेशन- सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(x) मुकदमा अपराध संख्या 719/1993 धारा 323, 504, 506 आईपीसी, थाना- सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(xi) मुकदमा अपराध संख्या 39/1994 धारा 147, 148, 149, 302, 307, 504, 506, 427 आईपीसी और एससी/एसटी अधिनियम, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झाँसी।

(xii) मुकदमा अपराध संख्या 190/1998 धारा 302, 34 आईपीसी (आजीवन कारावास) 11.08.04, थाना-कोतवाली, जिला-झाँसी।

(xiii) मुकदमा अपराध संख्या 304/1999

धारा 147, 148, 149, 302, 307, 504, 506, 427 आईपीसी, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xiv) मुकदमा अपराध संख्या 425/2002 यूपी गुंडा अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत, थाना-सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xv) मुकदमा अपराध संख्या 686/2002 धारा 2/3 उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986, पुलिस स्टेशन- सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xvi) मुकदमा अपराध संख्या 687/2002 धारा 2/3 उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xvii) मुकदमा अपराध संख्या 807/2003 सीआरपीसी की धारा 110 के अन्तर्गत, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xviii) मुकदमा अपराध संख्या 828/2003 धारा 147, 148, 149, 307, 504, 506 आईपीसी और 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, पुलिस स्टेशन- सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xix) मुकदमा अपराध संख्या /2004 धारा 41, 102 सीआरपीसी और 411 आईपीसी के अन्तर्गत, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xx) मुकदमा अपराध संख्या 413/2004 धारा 379 आईपीसी, थाना-सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xxi) मुकदमा अपराध संख्या 167/2004 धारा 110 सीआरपीसी के अन्तर्गत, पुलिस स्टेशन-सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xxii) मुकदमा अपराध संख्या 172/2002 धारा 107/116 सीआरपीसी के अंतर्गत, थाना-

सीपरी बाजार, जिला-झांसी।

(xxiii) मुकदमा अपराध संख्या 1463/2006 धारा 147, 148, 149, 307, 302 आईपीसी और 7 आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम (आजीवन करावास दिनांक 26.08.2009), पुलिस स्टेशन-कोतवाली, जिला-झांसी।

(xxiv) मुकदमा अपराध संख्या 85/2006 धारा 452, 323, 506बी, 294, 227 आईपीसी और 25/27 आर्म्स एक्ट, पुलिस स्टेशन-थरेट, जिला-दतिया (म.प्र.) के अन्तर्गत।

(xxv) मुकदमा अपराध संख्या 1538/2006 धारा 25 शास्त्र अधिनियम, थाना-कोतवाली, जिला-झांसी।

(xxvi) मुकदमा अपराध संख्या 1591/2006 धारा 2/3 उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986, पुलिस स्टेशन-कोतवाली, जिला-झांसी के अन्तर्गत।

(xxvii) मुकदमा अपराध संख्या 75/2007 धारा 3(2) राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, थाना-कोतवाली, जिला-झांसी।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह और अन्य दोषियों द्वारा अंधाधुंध गोलीबारी के कारण, याचिकाकर्ता, संजय वर्मा को गंभीर चोटें आईं और उनके अंगरक्षक, अजय गोस्वामी की गोली लगने से मृत्यु हो गई। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दोषी प्रतिवादी नंबर 5, मान सिंह को पहले भा०द०सं० की धारा 302 के अन्तर्गत चार सत्र परीक्षणों में आजीवन कारावास और उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत एक

मामले में 10 वर्षों की कैद के लिए दोषी ठहराया गया था। दिनांक 01.02.2019 के आक्षेपित उत्तर प्रदेश सरकार के आदेश में इन तथ्यों को छुपाया गया है। प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह द्वारा अपनी दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध दायर एसएलपी संख्या 1144 वर्ष 2018 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 05.03.2018 के आदेश के अन्तर्गत खारिज कर दिया था।

8. राज्य की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में यह स्वीकार किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को जीओ नंबर 314/22-2-2019-17(150)/2019, लखनऊ दिनांक 01.02.2019 के अन्तर्गत रिहा कर दिया गया है। विशेष सचिव द्वारा याचिकाकर्ता को छूट प्रदान करते हुए पारित किया गया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 01.02.2019 का विवादित आदेश दिनांक 01.08.2018 की नीति के अनुसार यूपी सरकार द्वारा पारित किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दोषी व्यक्तियों की समयपूर्व रिहाई के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत छूट की शक्ति राज्यपाल में निहित है और विवादित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत वैध रूप से पारित किया गया था। प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ संख्या 9 में यह स्वीकार किया गया है कि रिहाई के समय, प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह सेंट्रल जेल, जिला-आगरा में बंद था। उन्हें धारा 148, 307/149, 302/149 भा०द०सं० और 25 आर्म्स एक्ट, पीएस-कोतवाली के अन्तर्गत के मुकदमा अपराध संख्या 1463 वर्ष 2006 से संबंधित दो सजा वारंट, यानी के एसटी नंबर

41 वर्ष 2007 के साथ सेंट्रल जेल, आगरा भेज दिया गया था। जिला-झांसी जहां वह दिनांक 20.08.2009 के आदेश के अन्तर्गत आजीवन कारावास की सजा काट रहा था और दूसरा दोषसिद्धि वारंट के जीएसटी नंबर 89 वर्ष 2007 के संबंध में धारा 3 (1) के अन्तर्गत के मुकदमा अपराध संख्या 1591 वर्ष 2006 के संबंध में था। उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986, थाना-कोतवाली, जिला-झांसी जिसमें निर्णय और आदेश दिनांक 01.09.2017 के अन्तर्गत दोषी प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को विचारण न्यायालय द्वारा 10 साल की कैद की सजा सुनाई गई थी। प्रति शपथ पत्र के पैरा नंबर 10 में प्रतिवादी नंबर 5 मान सिंह का रिट याचिका में दिए गए आपराधिक इतिहास को स्वीकार किया गया है। प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ संख्या 11 में, यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को जी.ओ. संख्या 564/2018 में उल्लिखित नीति दिनांक 01.08.2018 के खंड 2-सी के अनुपालन में छूट के बाद वैध रूप से रिहा कर दिया गया है। /1106/22-02-2018-07जी/2018 क्योंकि उन्होंने बिना छूट के 12 साल 2 महीने और छूट के साथ 14 साल 6 महीने और 10 दिन की सजा काट ली थी। मेडिकल बोर्ड ने राय दी थी कि दोषी को "कंजेस्टिव हार्ट फेल्योर" है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दोषी मान सिंह, दिनांक 01.08.2018 की नीति के खंड 2-सी के अन्तर्गत रिहा होने के योग्य था और उसे दिनांक 01.02.2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा उचित रूप से रिहा किया गया था। प्रति शपथ पत्र में कारगार प्रशासन एवं सुधार

अनुभाग-2, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 01.08.2018 को परिशिष्ट संख्या 1 के रूप में संलग्न किया गया है। शासनादेश के प्रासंगिक प्रावधान जिसके अन्तर्गत दोषी प्रतिवादी संख्या 5 मान सिंह को दोषी ठहराया गया है, जारी किया गया इस प्रकार है:

2 (ग) आजीवन कारावास की सजा से दण्डित ऐसे सिद्धदोष बंदी जिनका अपराध आगे धारा-3 में वर्णित प्रतिबंधित श्रेणी में इंगित किसी भी उपनियम से आच्छादित नहीं है तथा जो निम्न में से किसी बीमारी से ग्रसित हो एवं जिनके सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल के विवरण संख्या 195 में प्रवेशित मेडिकल बोर्ड द्वारा उक्त बीमारी से गंभीर होने का प्रमाण पत्र दिया गया हो और जिनके द्वारा विचाराधीन अवधि सहित 10 वर्षों की अपरिहार सजा तथा 12 वर्षों की सपरिहार सजा व्यतीत कर ली गई हो :

- 1- उन्नत द्विपक्षीय फुफ्फुसीय तपेदिक
 - 2- असाध्य दुर्दमता
 - 3- असाध्य रक्त रोग
 - 4- कंजेस्टिव हृदय विफलता
 - 5- मानसिक विकृति के साथ जीर्ण मिर्गी
 - 6- विकृति और ट्रॉफिक अल्सर के साथ उन्नत कुष्ठ रोग
 - 7- दोनों आंखों का पूर्ण अंधापन
 - 8- असाध्य पक्षाघात और अर्धांगघात
 - 9- उन्नत पार्किंसनिज़्म
 - 10- ब्रेन ट्यूमर
 - 11- असाध्य धमनीविस्फार।
 - 12- अपरिवर्तनीय किडनी विफलता।
3. प्रतिबन्धित श्रेणी (निषिद्ध वर्ग जो

प्रतिवादी क्रमांक 5, मान सिंह पर लागू होता है) :

(x) ऐसे सिद्धदोष बंदी जिन्हें एक से अधिक आपराधिक प्रकरणों में आजीवन कारावास के दंड से दंडित किया गया है।

9. उपरोक्त सरकारी अधिसूचना के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह की सजा की शेष अवधि भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल द्वारा माफ कर दी गई थी क्योंकि मान सिंह ने जीओ में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं को पूरा किया था: -

- (i) उसने बिना छूट के 12 साल 2 महीने की सजा काटी थी;
- (ii) मेडिकल बोर्ड ने राय दी थी कि दोषी 'कंजेस्टिव हार्ट फेलियर' से पीड़ित है जो जी.ओ. में उल्लिखित बीमारियों में से एक है।

10. किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा क्षमादान आदि के संबंध में प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 में दिया गया है जो इस प्रकार है:-

161. राज्यपाल की क्षमा आदि देने और कुछ मामलों में सजा को निलंबित करने, माफ करने या कम करने की शक्ति- किसी राज्य के राज्यपाल के पास सजा को माफ करने, राहत देने, राहत देने या कम करने या निलंबित करने, माफ करने की शक्ति होगी। या किसी ऐसे मामले से संबंधित किसी भी कानून के खिलाफ अपराध के लिए दोषी ठहराए

गए किसी भी व्यक्ति की सजा को कम करना, जिस पर राज्य की कार्यकारी शक्ति का विस्तार होता है।

11. इस अनुच्छेद के अन्तर्गत, राज्यपाल के पास क्षमा आदि देने की शक्ति है, और किसी भी विधि के खिलाफ किसी भी अपराध के लिए दोषी ठहराए गए किसी भी व्यक्ति की सजा को निलंबित करने, कम करने या कम करने की शक्ति है "किसी ऐसे मामले से संबंधित जिस पर राज्य की कार्यकारी शक्ति का विस्तार होता है"।

12. भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार, राज्य की कार्यकारी शक्ति उन मामलों तक फैली हुई है जिनके संबंध में राज्य के विधानमंडल के पास विधि बनाने की शक्ति है।

13. राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा क्षमा शक्ति का प्रयोग या गैर-प्रयोग, जैसा भी मामला हो, न्यायिक समीक्षा से मुक्त नहीं है। न्यायिक समीक्षा के लिए आधार सतपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2000) 5 एससीसी 170 में निर्धारित किया गया है, जिसे विकास चटर्जी बनाम भारत संघ और अन्य (2004) 7 एससीसी 634 में संविधान पीठ द्वारा अनुमोदन के साथ संदर्भित किया गया है। निम्नानुसार आयोजित किया गया था:-

9. सतपाल बनाम हरियाणा राज्य (2000) 5 एससीसी 170 में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय में, इन आधारों को इस प्रकार दोहराया गया है: (i) राज्यपाल सरकार

की सलाह के बिना अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत स्वयं शक्ति का प्रयोग करते हैं; या (ii) राज्यपाल अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन कर रहा है; या (iii) राज्यपाल द्वारा बिना दिमाग लगाए आदेश पारित करना; या (iv) राज्यपाल का निर्णय किसी बाहरी विचार पर आधारित है; या (v) दुर्भावना। इन आधारों पर न्यायालय अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल के आदेश, या संविधान के अनुच्छेद 172 के अन्तर्गत राष्ट्रपति के आदेश, जैसा भी मामला हो, के संबंध में न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

14. ईपुरु सुधाकर और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य (2006) 8 एससीसी 161 में, इसे निम्नानुसार आयोजित किया गया था: -

34. इसलिए, स्थिति निर्विवाद है कि अनुच्छेद 72 या अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राष्ट्रपति या राज्यपाल के आदेश की न्यायिक समीक्षा, जैसा भी मामला हो, उपलब्ध है और उनके आदेशों को निम्नलिखित आधारों पर लागू किया जा सकता है:

(ए) यह आदेश बिना दिमाग लगाए पारित किया गया है;

(बी) कि आदेश दुर्भावनापूर्ण है;

(सी) यह आदेश अप्रासंगिक या पूरी तरह से अप्रासंगिक विचारों पर पारित किया गया

है;
 (डी) प्रासंगिक सामग्रियों को विचार से बाहर रखा गया है;
 (ई) यह आदेश मनमानी से ग्रस्त है।

15. नारायण दत्त और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, (2011) 4 एससीसी 353 में भी यही दृष्टिकोण दोहराया गया था।

16. मारू राम बनाम भारत संघ, एआईआर 1980 एससी 2147 में, सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि अनुच्छेद 72 (अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत भी) के अन्तर्गत क्षमा, लघुकरण और रिहाई की शक्ति दंगा नहीं चला सकती है और इसे एक स्थिर पाठ्यक्रम के लिए समझदारी से बनाए रखना चाहिए और वह सार्वजनिक शक्ति "कभी भी मनमाने ढंग से या दुर्भावनापूर्ण ढंग से प्रयोग नहीं की जाएगी और, आमतौर पर, निष्पक्ष और समान निष्पादन के लिए दिशानिर्देश सत्ता के वैध खेल के गारंटर हैं।"

17. स्वर्ण सिंह बनाम यूपी राज्य, (1998) 4 एससीसी 75 में जहां राज्यपाल ने इस तथ्य की अनदेखी करते हुए एक दोषी को सजा में छूट दे दी कि उसके विरुद्ध कई अन्य आपराधिक मामले लंबित थे। अदालत ने छूट को अमान्य कर दिया और कहा कि यदि इस अनुच्छेद के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग "मनमाने ढंग से", दुर्भावनापूर्ण या संवैधानिकता के बेहतर सिद्धांतों की पूर्ण अवहेलना में किया गया था, तो उपोत्पाद आदेश को विधि की मंजूरी नहीं मिल सकती है

और ऐसे मामलों में, न्यायिक हाथ इसे इसके लिए बढ़ाया जाना चाहिए। इस प्रकार, अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल की शक्ति का प्रयोग न्यायिक समीक्षा के अधीन है।

18. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को 2007 के एसटी संख्या 41 में केस अपराध संख्या 1463, 2006 के अन्तर्गत धारा 148, 307/149, 302/149 आईपीसी और 25 शस्त्र अधिनियम के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है। दिनांक 26.08.2009 के निर्णय और आदेश के अन्तर्गत आईपीसी की धारा 302/149 के अन्तर्गत आजीवन कारावास और 1,00,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया।

19. गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1961 एससी 600 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि "आजीवन कारावास या आजीवन कारावास की सजा को प्रथम दृष्टया शेष अवधि की संपूर्ण कारावास या कारावास के रूप में माना जाना चाहिए।" दोषी व्यक्तियों का प्राकृतिक जीवन।"

20. प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल द्वारा 12 वर्ष और 2 महीने की अवधि के बाद उनके आजीवन कारावास की शेष अवधि माफ कर दी गई थी। किसी दोषी की सजा माफ करने के लिए शासनादेश में उल्लिखित नियमों के अनुसार निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना आवश्यक है:-

(i) दोषी ने बिना छूट के 10 साल की अवधि के लिए कारावास की सजा काट ली थी;

(ii) वह जीओ में उल्लिखित बीमारियों में से एक से पीड़ित था;

(iii) उसका मामला दोषियों के निषिद्ध वर्ग में उल्लिखित किसी भी प्रावधान के अंतर्गत नहीं आता है:

उपरोक्त जीओ दिनांक 01.08.2018 में निषेध वर्ग के खंड (x) में उल्लेख है कि दोषी को 1 से अधिक आपराधिक मामले में आजीवन कारावास की सजा नहीं होनी चाहिए।

21. यद्यपि दोषी मान सिंह जीओ में उल्लिखित बीमारी "कंजेस्टिव हार्ट फेल्योर" में से एक से पीड़ित होने और अपनी सजा की अवधि से संबंधित आवश्यकता को पूरा करता है, लेकिन उसकी सजा माफ नहीं की जा सकती क्योंकि उसका मामला खंड के अंतर्गत आता है (x) दोषियों के छूट प्राप्त वर्ग के। प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को निम्नलिखित दो एसटी मामलों में दोषी ठहराया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है:

(i) 2007 की एसटी संख्या 41 और (ii), यूपी राज्य बनाम सरदार सिंह और अन्य 1995 की एसटी संख्या 26 धारा 302, 120-बी, 149 भा०द०सं० के अन्तर्गत पीएस- सीपरी बाजार, जिला-झांसी से संबंधित। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 10 के पृष्ठ 107 से 154 पर द्वितीय एसटी का निर्णय दायर किया है।

22. इस प्रकार, प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत पारित जीओ दिनांक 01.08.2018 के अन्तर्गत जारी आदेश के प्रावधानों के अन्तर्गत सजा में छूट का हकदार नहीं था। इसके

अलावा, जिस आक्षेपित आदेश के द्वारा प्रतिवादी संख्या 5 मान सिंह को उसकी सजा में छूट दी गई है, उसमें इस तथ्य की कोई सूचना नहीं है कि उसके विरुद्ध 26 अन्य आपराधिक मामलों का आपराधिक इतिहास है। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्वर्ण सिंह (सुप्रा) मामले में माना है कि जहां राज्यपाल ने इस तथ्य की अनदेखी करते हुए एक दोषी को सजा माफ कर दी कि उसके विरुद्ध कई अन्य आपराधिक मामले लंबित थे, उपोत्पाद आदेश को विधि की मंजूरी नहीं मिल सकती है और ऐसे मामलों में, न्यायिक हाथ बढ़ाया जाना चाहिए।

23. मामले के उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों से, हमारी राय है कि प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह सजा माफी का हकदार नहीं था क्योंकि यह मामला उपरोक्त जीओ दिनांक में उल्लिखित निषेध संख्या (x) के अंतर्गत आता था। 01.08.2018 और माफी देते समय उनके 26 अन्य आपराधिक मामलों को राज्यपाल के संज्ञान में नहीं लाया गया।

24. इस प्रकार, दिनांक 01.08.2018 का आक्षेपित आदेश जिसके द्वारा प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को सजा में छूट दी गई थी, विधि के अधिकार के बिना था और खारिज किए जाने योग्य है।

25. तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। उपरोक्त आक्षेपित आदेश संख्या 314/22-2-2019-17(150)/2019, लखनऊ दिनांक 01.02.2019 को प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को छूट प्रदान करते हुए खारिज कर दिया गया

है।

26. प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह को आज से 30 दिनों के भीतर सत्र न्यायाधीश, झाँसी के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा और उसे अपनी सजा की शेष अवधि भुगतने के लिए सेंट्रल जेल, आगरा भेजा जाएगा। यदि प्रतिवादी संख्या 5, मान सिंह उपरोक्त अवधि के भीतर आत्मसमर्पण नहीं करता है, तो सत्र न्यायाधीश, झाँसी न्यायालय के समक्ष उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कठोर कदम उठाएंगे और उसे अपनी शेष सजा काटने के लिए सेंट्रल जेल, आगरा भेज देंगे।

27. आदेश की प्रति आवश्यक अनुपालन हेतु सत्र न्यायाधीश, झाँसी को भेजी जायेगी।

(2023) 4 ILRA 47

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4365/ 2022

योगेन्द्र एवं अन्य . . . पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षी गण
अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री संजीव कुमार
राय

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री देवी प्रसाद
सिंह

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973
- धारा 227 - भारतीय दंड संहिता, 1860
धारा 308, 323, 324 और 506 - आपराधिक

पुनरीक्षण - उस आपेक्षित आदेश को चुनौती देना जिसके द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता का आवेदन निरस्त कर दिया गया था - प्राथमिकी अंतर्गत धारा 323, 324 आईपीसी - शारीरिक हमले के आरोप - विवेचना के पश्चात, आईपीसी की धारा 308, 324, 504 और 506 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया था - पुनरीक्षणकर्ता आईपीसी की धारा 308 के तहत आरोप तय करने के आदेश से व्यथित हैं - पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा यह तर्क दी गई कि घायल व्यक्तियों को लगी चोटें घातक प्रकृति की नहीं थीं - साक्ष्य के मूल्यांकन - न्यायालय का मत है कि एफआईआर की सामग्री और मेडिकल साक्ष्य के आधार पर प्रथम दृष्टया आईपीसी की धारा 308 के तहत अपराध बनता है - आरोप तय करने के चरण में साक्ष्य या उसकी विश्वसनीयता की गहराई से जांच की आवश्यकता नहीं है - इसलिए, पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के लिए औचित्य सिद्ध करने के लिए कोई अवैधता या अशुद्धता नहीं है - पुनरीक्षण निरस्त किया जाता है। (पैरा - 6, 7)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा,
द्वारा प्रदत्त)

01. **पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से कोई उपस्थित नहीं है।** राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. उपस्थित हैं।

02. यह आपराधिक पुनरीक्षण दिनांक 06.09.2022 के आदेश के विरुद्ध दायर किया

गया है जिसके द्वारा आईपीसी की धारा 308 के तहत अभियुक्तों को अपराध से उन्मोचन के लिए सीआरपीसी की धारा 227 के तहत प्रस्तावित प्रार्थना पत्र को निरस्त कर दिया गया और मामला आरोप विरचित करने के लिए प्रविष्ट किया गया था।

03. सारवान तथ्य इस प्रकार हैं:-

आवेदकों और दो अन्य के खिलाफ आईपीसी की धारा 323 और 324 के तहत एफ. आई. आर इन आरोपों के साथ दायर की गई है कि अभियुक्तगण ग्राम समाज की जमीन पर कब्जा करने के लिए निर्माण करा रहे थे। प्रथम सूचनाकर्ता और उसके भाई ने विरोध किया। इस तरह के हस्तक्षेप से नाराज अभियुक्तों ने प्रथम सूचनाकर्ता संजय तिवारी और उनके भाई के साथ मारपीट की, जिससे वे घायल हो गये। जांच के बाद आईपीसी की धारा 308, 323, 504 और 506 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया है।

04. पुनरीक्षण फर्द के अवलोकन से पता चलता है कि पुनरीक्षणकर्ता आईपीसी की धारा 308 के तहत अतिरिक्त आरोप विरचित करने के आदेश और उन्मोचन प्रार्थना पत्र को खारिज करने से व्यथित हैं। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दिया गया एकमात्र आधार यह है कि घायल व्यक्तियों को लगी चोटें घातक नहीं थीं। किसी भी घायल व्यक्ति के शरीर के महत्वपूर्ण अंग पर एक भी फ्रैक्चर नहीं हुआ।

05. मैंने अभिलेख पर मौजूद सामग्री का अध्ययन किया। कागजात से पता चलता है

कि तीन घायल व्यक्ति थे, रमाशंकर तिवारी जिसके शरीर पर सात चोटें थीं और उनमें से चार गर्दन के ऊपर थीं, चंदन तिवारी, जिसे पांच चोटें लगीं, एक सिर पर और एक्स-रे में हल्के से नरम ऊतकों की छाया दिखाई दी, जो खोपड़ी की वाल्ट पर थोड़ी बड़ी हुई थी। तीसरे, उमाशंकर तिवारी को तीन चोटें आईं।

06. यह स्थापित स्थिति है कि चोटों की संख्या या चोटों की प्रकृति यह तय करने के लिए एकमात्र कारक नहीं है कि क्या कोई है और यदि ऐसा है, तो मानव शरीर को प्रभावित करने वाला कौन सा अपराध बनता है। मामले के अनुसार, इरादा या जानकारी और यहां तक कि तथ्यों और परिस्थितियों पर ध्यान देना और भी अधिक महत्वपूर्ण हो सकता है।

07. मेरी राय में, चोटों की प्रकृति, चोटों का स्थान और उनकी संख्या सारवान हो सकती है, लेकिन इस तथ्य पर निर्णय लेने के लिए सब कुछ नहीं है कि कौन सा आरोप निर्मित होता है। हालाँकि, इस मामले में चिकित्सीय साक्ष्य के साथ एफ.आई.आर. की विषय वस्तु से, प्रथम दृष्टया आईपीसी की धारा 308 के तहत अपराध बनता है। आरोप विरचित करने के स्तर पर साक्ष्य या विश्वसनीयता की गहन जांच की आवश्यकता नहीं है। मुझे आदेश में कोई अवैधता या अनौचित्य या ग़लती नहीं दिखती जिससे पुनरीक्षण न्यायालय के हस्तक्षेप को उचित ठहराया जा सके।

08. आपराधिक पुनरीक्षण स्वीकारोक्ति के स्तर पर खारिज किया जाता है।

 (2023) 4 ILRA 48
 मूल क्षेत्राधिकार
 सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I,

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या

221/2023

अहज़ाम अहमद एवं अन्य ... याचिकाकर्ता
 बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ..प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अभिषेक कुमार
 मिश्रा, श्री खान सौलत हनीफ, श्री रविंद्र शर्मा,
 श्री शादाब अली, श्री विजय मिश्रा, श्री डीएस
 मिश्रा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950 -
 अनुच्छेद 21, 22(1), 22(5), 226, - भारतीय
 दंड संहिता, 1860 धारा 34, 120-बी, 147,
 148, 149, 302, 307 और 506 - आपराधिक
 कानून संशोधन अधिनियम, 2013 - धारा 7 -
 आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 50
 और 97 - किशोर न्याय (बालकों की देखभाल
 और संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 37,
 37(1)(ए), 37(1)(बी), 37(1)(सी), 37(1)(डी),
 37(1)(ई), 37(1)(एफ), 37(1)(जी) और
 37(1)(एच) - राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980
 - धारा 3(2), 4 - विस्फोटक अधिनियम,
 1884 - धारा 3 - बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका -
 याचिकाकर्ता बाल संरक्षण गृह में हैं -
 याचिकाकर्ता नाबालिग पुत्र हैं - पुलिस ने उन्हें

जबरन अवैध हिरासत में गिरफ्तार किया है -
 याचिकाकर्ताओं के प्राकृतिक संरक्षक मां बंदी
 प्रत्यक्षीकरण याचिका की प्रकृति के संबंध में
 निर्देश चाहती है, जिसमें प्रतिवादियों को प्रस्तुत
 करने और उन्हें तत्काल स्वतंत्र करने का
 निर्देश पारित किया जाए- वैकल्पिक उपाय के
 आधार पर बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की
 स्वीकार्यता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति है -
 उन्होंने सीआरपीसी की धारा 97 के प्रावधानों
 का आह्वान करके प्रभावी वैधानिक उपाय का
 लाभ उठाया है और इस प्रकार, उन्होंने न्याय
 के आपराधिक प्रशासन को गति में ला दिया है
 - आयोजित, स्थापित कानून के अनुसार
 अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण उपाय का
 एक साथ आह्वान करके उसी को जटिल बनाने
 के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका जारी नहीं
 की जा सकती - इसके अतिरिक्त, जब बंदी
 बाल संरक्षण गृह में हैं, तो याचिका स्वीकार्य
 नहीं होगी - याचिका निरस्त की जाती है। (पैरा
 38, 39, 40)

रिट याचिका निरस्त (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. रचना एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 2021 एसीआर 109 (एफबी),
2. श्रीमती इच्छु देवी चोरालिया बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1980) 4 एससीसी 531,
3. अय्या उर्फ अयूब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (1989) 1 एससीसी 374
4. भीम सेन त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा डीएम महामाया नगर, 1999 (2) जेआईसी (सभी) (एफबी),

5. अध्यक्ष रेलवे बोर्ड एवं अन्य बनाम चंद्रिमा दास (श्रीमती) एवं अन्य, (2000) 2 एससीसी 465,
6. व्हर्लपूल कॉर्प बनाम रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड मार्क्स, मुंबई और अन्य, (1998) 8 एससीसी 1,
7. मधु लिमये एवं अन्य (1969) (1) एस.सी.सी. 292),
8. सुनील बत्रा (द्वितीय) बनाम दिल्ली प्रशासन, (1980) 3 एससीसी 488),
9. दुष्यंत सोमल गोयल बनाम श्रीमती सुषमा सोमल और अन्य। (1981 खंड 2 एससीसी 277),
10. विनायक गोयल बनाम प्रेम प्रकाश गोयल एवं अन्य, 1981 एडब्ल्यूसी 457
11. राम मनोहर लोहिया बनाम अधीक्षक, केन्द्रीय कारागार, सर्वोच्च (ऑल) 149 फतेहगढ़, 1954 (0)
12. मुंशी सिंह गौतम (डी) व अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2004 (0) सुप्रीम (एससी) 1416
13. प्रभु दयाल देवराह आदि बनाम जिला मजिस्ट्रेट, कामरूप और अन्य, 1973 (0) सुप्रीम (एससी) 320
14. रमन लाल राठी बनाम पुलिस आयुक्त 1951 o सुप्रीम (कैल) 209,

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री डी.एस. मिश्रा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री रवीन्द्र शर्मा, शादाब अली और अभिषेक कुमार मिश्रा, विद्वान अधिवक्ता और श्री ए.के. द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता

श्री मनीष गोयल को सुना। ए.जी.ए. राज्य उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित होना।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई है:-

"(i) बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को इस माननीय न्यायालय के समक्ष कॉर्पस पेश करने और उन्हें तुरंत स्वतंत्र करने का आदेश दिया जाए।

(ii) बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को आदेश दिया जाए और निर्देश दिया जाए कि याचिकाकर्ताओं की अवैध हिरासत के लिए इस माननीय न्यायालय को संतुष्ट किया जाए।"

3. याचिका पूर्व विधायक अतीक अहमद के नाबालिग बेटों (कॉर्पस) ने दायर की है। उनके नैसर्गिक संरक्षक एवं वास्तविक मां शाइस्ता परवीन के संरक्षण में म.प्र. दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता नं. 1- अहज़ाम अहमद और याचिकाकर्ता नं. 2-आबान अहमद क्रमशः कक्षा-बारहवीं और कक्षा-नौवीं के छात्र हैं और वर्तमान में दोनों याचिकाकर्ता नाबालिग हैं। याचिका में इस बात का खुलासा किया गया है | याचिकाकर्ताओं के पिता अतीक अहमद 2017 से जेल में हैं और याचिकाकर्ताओं के असली चाचा खालिद अज़ीम उर्फ अशरफ भी 2020 से जिला जेल बरेली में हैं। नाबालिग बेटे (कॉर्पस) अपनी मां के साथ रह रहे हैं। आरोप है कि दिनांक 24.2.2023 को लगभग शाम 06:00 बजे थाना खुल्दाबाद, धूमनगंज और पुरामुफ्ती की पुलिस बिना महिला पुलिस

के याचियों के घर आई और दरवाजे तोड़कर याचियों के घर में जबरन और अवैध रूप से घुस गई और बिना कोई समन, वारंट या कोई अन्य दस्तावेज और पुलिसकर्मी दिखाए याचियों को गिरफ्तार कर लिया। याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ उनकी मां के साथ भी दुर्व्यवहार किया। आरोप है कि थाना धूमनगंज, पुरामुफ्ती और खुल्दाबाद के पुलिस कर्मियों ने याचिकाकर्ताओं को जबरन गिरफ्तार कर लिया और उनकी गिरफ्तारी का कोई कारण बताए बिना उन्हें अपनी अवैध हिरासत में ले लिया और याचिकाकर्ता निर्दोष हैं और किसी भी आपराधिक मामले में वांछित नहीं हैं। आरोप यह है कि पुलिस अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं को 24.2.2023 से बिना किसी अधिकार के अवैध रूप से हिरासत में लिया है। यह भी आरोप है कि याचिकाकर्ता आज यानी 3.3.2023 (वर्तमान याचिका दायर करने की तारीख तक) तक हिरासत में हैं। यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ताओं को पुलिस द्वारा किसी अज्ञात स्थान पर रखा जा रहा है और बिना किसी कानूनी अधिकार या किसी अन्य कारण के मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जा रहा है और इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं को अनुच्छेद 21 के तहत प्रदान की गई उनकी निजी जिंदगी और स्वतंत्रता से वंचित किया जा रहा है। भारत के संविधान में स्पष्ट प्रावधान है कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा इसे प्रभावित नहीं किया जा सकता है।

4. दिनांक 25.2.2023 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के संबंध में तथ्य, मुकदमा अपराध संख्या 0114/2023, धारा 147, 148,

149, 302, 307, 506, 34 और 120-बी आई.पी.सी., विस्फोटक अधिनियम की धारा 3 के तहत और घटना के संबंध में धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, थाना धूमनगंज, जनपद प्रयागराज | राजू पाल की हत्या के मामले में चश्मदीद गवाह रहे उमेश पाल की हत्या का खुलासा भी स्पष्ट बयान के साथ किया गया है कि याचिकाकर्ता आरोपी नहीं हैं उपरोक्त अपराध में प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति याचिका में परिशिष्ट-1 के रूप में संलग्न की गई है।

5. 23.3.2023 को कई दस्तावेजों को संलग्न करते हुए एक पूरक हलफनामा दायर किया गया था। यह कहा गया है कि पुलिस अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं को 1.3.2023 की रात में बिना किसी वारंट के गिरफ्तार कर लिया है, हालांकि, हमने पाया कि याचिका के पैराग्राफ 9 में यह कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं को 24.2.2023 को 06: 00 अपराहन बजे गिरफ्तार किया गया था। पूरक हलफनामे का अनुलग्नक-1 याचिकाकर्ताओं अहज़म अहमद और आबान अहमद की कथित अवैध हिरासत के संबंध में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के समक्ष याचिकाकर्ताओं की मां शाइस्ता परवीन द्वारा दिनांक 27.2.2023 को दायर आवेदन की एक प्रति है और प्रार्थना की गई है कि याचियों के संबंध में थाना धूमनगंज से रिपोर्ट तलब की जाए कि क्या याचीगण किसी अपराध में नामित हैं, ताकि आवश्यक कानूनी कार्रवाई की जा सके। अनुपूरक शपथ पत्र के अनुलग्नक-2 में पुलिस स्टेशन धूमनगंज द्वारा प्रस्तुत दिनांक 2.3.2023 की रिपोर्ट है कि उक्त पुलिस

स्टेशन में याचिकाकर्ताओं के संबंध में कोई जीडी प्रविष्टि नहीं है और कथित प्रथम सूचना रिपोर्ट केस अपराध संख्या 0114 2023 है। जांच प्रभारी निरीक्षक धूमनगंज द्वारा की जा रही है, जो थाने से बाहर हैं। अनुपूरक शपथ पत्र का अनुलग्नक-3 प्रभारी निरीक्षक थाना धूमनगंज द्वारा प्रस्तुत आदेश दिनांक 28.2.2023, 3.3.2023 एवं आख्या दिनांक 4.3.2023 की प्रति है जिसमें प्रथम दृष्टया आवेदिका शाइस्ता परवीन का नाम अंकित है। सूचना रिपोर्ट दिनांक 25.2.2023 त्रिक में हत्या का मामला और उसके बेटे याचिकाकर्ता नं. 1 और 2 यहां चकिया कसारी मसारी क्षेत्र में पाए गए और उन्हें 2.3.2023 को बाल संरक्षण गृह भेज दिया गया है। पूरक शपथ पत्र का अनुलग्नक-4 शाइस्ता परवीन द्वारा 6.3.2023 को दिए गए आवेदन की प्रति है, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि थाना धूमनगंज को बाल संरक्षण गृह की रिपोर्ट के बारे में सूचित करने के लिए निर्देशित किया जाए। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद की अदालत के 28.2.2023 से 20.3.2023 तक के आदेश-पत्र की एक प्रति अनुपूरक शपथ पत्र के अनुबंध-5 के रूप में संलग्न की गई है। आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4003/2023 (खालिद अज़ीम @ अशरफ बनाम यूपी राज्य और अन्य) में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 21.3.2023 के आदेश की एक प्रति भी संलग्न है, जो हमारे विचार से, प्रासंगिक नहीं है। वर्तमान याचिका पर विचार करने का उद्देश्य उस राहत से संबंधित है जो याचिकाकर्ता-खालिद अज़ीम @ अशरफ (याचिकाकर्ताओं के असली

चाचा) द्वारा विशेष रूप से केवल अपने लिए दावा किया जा रहा था।

6. याचिका के अनुलग्नक-1 के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं की मां शाइस्ता परवीन, जिन्होंने याचिकाकर्ताओं की प्राकृतिक अभिभावक और वास्तविक मां के रूप में वर्तमान याचिका दायर की है, वह भी पिता और चाचा के साथ आरोपियों में से एक हैं। याचिकाकर्ताओं का नाम ऊपर दिया गया है। यह आगे दर्शाया गया है कि क्रमांक पर याचिका में दिए गए बयान के विपरीत। अतीक अहमद के नंबर 6 और 7 बेटों को भी आरोपी बनाया गया है। विशेष रूप से, एसएल पर। नंबर 6 आरोपी "अतीक अहमद का पुत्र" (यानी अतीक अहमद का बेटा) है जबकि क्रमांक. निर्दिष्ट नंबर 7 आरोपी "अतीक अहमद के अन्य पुत्र" हैं। इसलिए, स्पष्ट रूप से, विशिष्ट नाम दिए बिना भी अतीक अहमद के अन्य बेटों को भी उपरोक्त एफ.आई.आर. में आरोपी के रूप में सूचीबद्ध किया गया है।

7. बहस के दौरान यह भी पता चला कि याचिकाकर्ताओं की मां शाइस्ता परवीन, जिनके माध्यम से यह याचिका दायर की गई थी, फरार हैं और उन पर रुपये का इनाम भी है। उसके सिर पर 25,000/- रु.

8. याचिका में आरोप लगाया गया है कि पुलिस अधिकारियों ने याचिकाकर्ताओं को बिना किसी वारंट के गिरफ्तार किया है और सक्षम अदालत/मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना अवैध रूप से हिरासत में लिया जा रहा है और यह सीआरपीसी की धारा 50 का स्पष्ट उल्लंघन

है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की दलील का सार यह है कि याचिकाकर्ताओं की हिरासत उनके संवैधानिक और वैधानिक अधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन है।

9. एक प्रारंभिक आपत्ति श्री मनीष गोयल, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री ए.के. द्वारा उठाई गई थी। सैंड, ए.जी.ए.-I को पता चला कि वर्तमान याचिका सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही सीआरपीसी की धारा 97 के प्रावधानों को लागू कर दिया है। और सक्षम अदालत यानी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद की अदालत से संपर्क किया है और शव बाल संरक्षण गृह में है। इसलिए, प्रस्तुतीकरण यह है कि चूंकि याचिकाकर्ताओं ने पहले से ही वैकल्पिक प्रभावी वैधानिक उपाय लागू कर दिया है, और इसके अलावा, जब पुलिस अधिकारियों ने यह रुख अपनाया है कि याचिकाकर्ता बाल संरक्षण गृह में हैं, इसलिए, पहले से ही लागू प्रभावी वैधानिक उपाय के आधार पर और रचना और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले के मद्देनजर, ए.आई.आर. 2021 एसीआर 109 (एफबी), वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका सुनवाई योग्य नहीं है।

10. इसका जवाब देते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री डी.एस. मिश्रा, विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि चूंकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है, इसलिए, वैकल्पिक उपचार के अस्तित्व में कोई बाधा नहीं होगी।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने श्रीमती इच्छू देवी चोरालिया बनाम भारत संघ और अन्य (1980) 4 एस.सी.सी. 531 (पैराग्राफ 4), अय्या @ अयूब बनाम यूपी राज्य और अन्य (1989) 1 एस.सी.सी. 374 (पैराग्राफ 11), भीम सेन त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य डी.एम. के माध्यम से महामाया नगर 1999 (2) जेआईसी (सभी) (एफबी) (पैराग्राफ 21), अध्यक्ष रेलवे बोर्ड और अन्य बनाम चंद्रिमा दास (श्रीमती) और अन्य (2000) 2 एस.सी.सी. 465 (पैराग्राफ 7 से 11), व्हेलपूल कॉर्पोरेशन बनाम रजिस्ट्रार ट्रेड मार्क्स, मुंबई और अन्य (1998) 8 एससीसी 1 (पैराग्राफ 14 से 20), मधु लिमये और अन्य के मामले में 1969 (1) एस.सी.सी. 292 (पैराग्राफ 10 से 14), सुनील बना (द्वितीय) बनाम दिल्ली प्रशासन (1980) 3 एस.सी.सी. 488 (पैराग्राफ 20, 21, 26, 27, 30, 31, 40, 42), कैप्टन दुष्यन्त सोमल बनाम श्रीमती। सुषमा सोमल और अन्य (1981) 2 एस.सी.सी. 277 (पैराग्राफ 5 और 7), विनायक गोयल बनाम प्रेम प्रकाश गोयल और अन्य 1981 एडब्ल्यूसी 457 (पैराग्राफ 8 से 11), राम मनोहर लोहिया बनाम अधीक्षक, केंद्रीय कारागार, फतेहगढ़ 1954 0 सुप्रीम (सभी) 149, मुंशी सिंह गौतम (डी) एवं अन्य बनाम म.प्र. राज्य। 2004 0 (सुप्रीम (एस.सी.) 1416, प्रभु दयाल देवरा आदि बनाम जिला मजिस्ट्रेट, कामरूप और अन्य 1973 0 सुप्रीम (एस.सी.) 320 और रमन लाल राठी बनाम पुलिस आयुक्त 1951 0 सुप्रीम (कैल) 209. के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

12. बहस के दौरान, विद्वान वरिष्ठ वकील श्री डी.एस. मिश्रा ने प्रस्तुत किया कि सीआरपीसी की धारा 97 के प्रावधान। वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा।

13. इस न्यायालय द्वारा पूछे गए सवाल पर कि यदि यह तर्क उठाया जाना है, तो उसे यह बताना होगा कि याचिकाकर्ताओं की मां शाइस्ता परवीन ने किस प्रावधान के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के समक्ष एक आवेदन दायर किया है, जिस पर कार्रवाई की जा रही है, जिसमें कई आदेश पहले ही पारित किए जा चुके हैं, यदि उक्त आवेदन सीआरपीसी की धारा 97 के तहत दायर नहीं किया गया है? हम विशेष रूप से नोट करते हैं कि विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा उक्त प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया गया था।

14. किसी भी मामले में, हम पाते हैं कि यह एक स्थापित कानून है जिसका उल्लेख है। गलत प्रावधान या प्रावधान का उल्लेख न करना ही कार्यवाही को अमान्य नहीं करता है और इसलिए, प्रारंभिक आपत्ति है कि याचिकाकर्ता पहले ही धारा 97 सीआरपीसी के तहत सक्षम अदालत से संपर्क कर चुके हैं। दाखिल करके प्रभावी वैधानिक उपाय को बरकरार रखा गया है।

15. आगे बढ़ने से पहले भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा, जिसे इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

"21. जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा.- किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा

स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।"

(जोर दिया गया)

16. अनुच्छेद 21 स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि किसी भी व्यक्ति को "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार" के अलावा उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

17. वी.जी. द्वारा लिखित कानून के तहत प्रदान किए गए 'बंदी प्रत्यक्षीकरण' के अर्थ पर ध्यान देना भी प्रासंगिक है। पृष्ठ 5 पर रामचन्द्रन सातवाँ संस्करण, जिसे इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

"बंदी प्रत्यक्षीकरण का अर्थ

"बंदी प्रत्यक्षीकरण" एक लैटिन शब्द है। इसका अर्थ है "शरीर रखो", "उसका शरीर लो" या "शरीर लाओ"। बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट द्वारा, अदालत उस व्यक्ति (या प्राधिकारी) को निर्देश देती है जिसने किसी अन्य को गिरफ्तार किया है, हिरासत में लिया है या कैद किया है, ताकि अदालत को यह पता चल सके कि उसे किस आधार पर गिरफ्तार किया गया है, हिरासत में लिया गया है। यदि गिरफ्तारी, नजरबंदी, कारावास या कारावास के लिए कोई कानूनी औचित्य नहीं है तो उसे कैद या सीमित कर दिया जाए और उसे मुक्त कर दिया जाए।

शब्दकोष के अर्थ के अनुसार, "बंदी प्रत्यक्षीकरण" का अर्थ है "शरीर रखना", "शरीर-व्यक्ति को हमारे सामने लाना"। बंदी

प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा की जांच के लिए किसी व्यक्ति को न्यायाधीश या अदालत के सामने लाने की आवश्यकता होती है, जिसका उपयोग अवैध कारावास के खिलाफ सुरक्षा के रूप में किया जाता है।

यह एक जेलर को एक रिट है कि वह किसी कैदी को व्यक्तिगत रूप से पेश करे, और हिरासत के कारणों को बताए।

बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें किसी व्यक्ति को व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा की जांच के लिए न्यायाधीश या अदालत के सामने लाने की आवश्यकता होती है, जिसका उपयोग अवैध कारावास के खिलाफ सुरक्षा के रूप में किया जाता है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें गिरफ्तार व्यक्ति को किसी न्यायाधीश के समक्ष या अदालत में लाने की आवश्यकता होती है ताकि उस व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित की जा सके जब तक कि उसकी हिरासत के लिए वैध आधार नहीं दिखाया गया हो।

18. त्वरित संदर्भ के लिए, सीआरपीसी की धारा 97, जो प्रभावी वैधानिक उपाय प्रदान करती है, को भी निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"97. गलत तरीके से कैद किए गए व्यक्तियों की तलाश करें। यदि किसी जिला मजिस्ट्रेट, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के पास यह विश्वास करने का कारण है कि किसी भी व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में कैद किया गया है कि कारावास एक अपराध है, तो वह तलाशी जारी कर सकता है- वारंट,

और जिस व्यक्ति को ऐसा वारंट निर्देशित किया गया है, वह इस प्रकार सीमित व्यक्ति की तलाश कर सकता है; और ऐसी तलाशी उसके अनुसार की जाएगी, और यदि व्यक्ति पाया जाता है, तो उसे तुरंत मजिस्ट्रेट के सामने ले जाया जाएगा, जो ऐसा आदेश देगा मामले की परिस्थितियों में यह उचित प्रतीत होता है।"

19. हमने याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत निर्णयों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है और हमने पाया है कि उद्धृत किए गए निर्णयों में से कोई भी प्रारंभिक आपत्ति के उत्तर में याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील की प्रस्तुति का समर्थन नहीं करता है।

20. श्रीमती इच्छू देवी चोरलिया (सुप्रा) में विदेशी मुद्रा वार्तालाप और तस्करी गतिविधियों की रोकथाम अधिनियम, 1974 के प्रावधानों के तहत पारित की हिरासत के आदेश को चुनौती दी गई थी और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) के उल्लंघन के आधार पर भी था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए पैराग्राफ 4 में यह निर्धारित किया गया है कि इस न्यायालय द्वारा विकसित प्रथा दलील के सख्त नियमों का पालन नहीं करना है और न ही इस सवाल पर अनुचित जोर देना है कि सबूत का बोझ किस पर है। ऐसे प्रश्न वर्तमान मामले में शामिल नहीं हैं, और उपरोक्त मामला वर्तमान मामले में उठाई

गई प्रारंभिक आपत्ति से भी नहीं निपटता है, इसलिए यह मामला प्रासंगिक नहीं है इसमें शामिल प्रारंभिक आपत्ति से निपटने का उद्देश्य।

21. **अय्या @अयूब (सुप्रा)** के पैराग्राफ 7 पर भरोसा करते हुए यह दावा किया गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत संरक्षित व्यक्तिगत स्वतंत्रता पवित्र है और संवैधानिक मूल्यों के पैमाने पर उच्च है। कानून के इस प्रस्ताव को लेकर कोई झगड़ा नहीं है। हालाँकि, यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस मामले में भी राष्ट्रीय प्रतिभूति अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के तहत याचिकाकर्ता की हिरासत के आदेश को चुनौती दी गई थी और इसलिए, यह मामला भी मुद्दे के निपटान के उद्देश्य से प्रासंगिक नहीं है। प्रारंभिक आपत्ति का.

22. इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या और उसकी प्रयोज्यता का प्रश्न इस स्तर पर इस न्यायालय के समक्ष नहीं है।

23. **मधु लिमये (सुप्रा)** भी वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता के मुद्दे पर नहीं हैं और इस प्रकार, राज्य द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को संबोधित नहीं करते हैं, जहां मधु लिमये, पूर्व सांसद और कई अन्य व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया था और के संबंध में प्रश्न भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) के अनुपालन पर सवाल उठाया गया। यह मामला प्रारंभिक आपत्ति के मुद्दे पर भी कोई उत्तर नहीं देता है।

24. **सुनील बत्रा (सुप्रा)** में जेल में बंद एक बंदी के अधिकार पर विचार किया जा रहा था, इसलिए, यह प्रारंभिक आपत्ति मुद्दे के प्रयोजन के लिए भी प्रासंगिक नहीं है।

25. इसी तरह, **रे केशव सिंह 1964 0 सुप्रीम (एससी) 238** में याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने जिस पैराग्राफ पर भरोसा किया, वह बंदी प्रत्यक्षीकरण मामले में जमानत देने के सवाल पर है, जो फिर से प्रारंभिक आपत्ति के मुद्दे का जवाब देने के लिए प्रासंगिक नहीं है।

26. **कैप्टन दुष्यन्त सोमल (सुप्रा)** और **विनायक गोयल (सुप्रा)** के निर्णय बच्चे की हिरासत पर हैं और वे प्रारंभिक आपत्ति पर भी प्रासंगिक नहीं हैं।

27. **मुंशी सिंह गौतम (सुप्रा)** भी प्रासंगिक नहीं है क्योंकि यह हिरासत में मौत पर है और इस प्रकार, प्रारंभिक आपत्ति पर वर्तमान मामले में प्रासंगिक नहीं है।

28. **प्रभु दयाल देवरा (सुप्रा)** में आंतरिक सुरक्षा रखरखाव अधिनियम, 1971 के तहत हिरासत आदेश को चुनौती दी गई थी और इसलिए, यह मामला प्रारंभिक आपत्ति मुद्दे को भी संबोधित नहीं करता है।

29. इसी प्रकार, **रमन लाल राठी (सुप्रा)** में निवारक निरोध अधिनियम, 1950 के तहत निरोध आदेश चुनौती के अधीन था और प्रासंगिक भी नहीं है। उक्त मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(5) का भी प्रश्न

शामिल था, जो वर्तमान मामले में ऐसा नहीं है।

30. **राम मनोहर लोहिया (सुप्रा)** मामले में याचिकाकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया था और बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के दायरे पर विचार किया गया था और अधिनियम की संवैधानिकता को चुनौती भी दी गई थी, हालांकि, हमने पाया कि यह भी प्रारंभिक आपत्ति के लिए कोई विशेष उत्तर नहीं देता है।

31. हमने पाया कि **व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन (सुप्रा)** में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका की रखरखाव के सवाल पर विचार किया गया था और यह माना गया था कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत वैकल्पिक रिट जारी करने की शक्ति पूर्ण है। प्रकृति और संविधान के किसी भी अन्य प्रावधान द्वारा सीमित नहीं है और इस शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा न केवल संविधान के भाग-III में निहित मौलिक अधिकारों में से किसी के प्रवर्तन के लिए रिट जारी करने के लिए किया जा सकता है, बल्कि किसी अन्य उद्देश्य के लिए भी किया जा सकता है। यह माना गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत, मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय के पास रिट याचिका पर विचार करने या न करने का विवेकाधिकार है, लेकिन उच्च न्यायालय ने खुद पर कुछ प्रतिबंध लगा दिए, जिनमें से एक क्या वह एक विकल्प है। प्रभावी उपाय उपलब्ध है, तो उच्च न्यायालय आम तौर पर अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा, लेकिन इस न्यायालय द्वारा

वैकल्पिक उपाय को बार के रूप में कार्य नहीं करने के लिए लगातार माना गया है। हालाँकि, तीन आकस्मिकताओं में, अर्थात्, किसी मौलिक अधिकार के प्रवर्तन के लिए या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में या जहां आदेश की कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है या किसी अधिनियम की शक्तियों को चुनौती दी जा रही है, यह माना गया कि वैकल्पिक उपाय काम नहीं करेगा। एक पूर्ण बार उक्त फैसले पर अब तक लगातार भरोसा किया जा रहा है।

32. **चेयरमैन, रेलवे बोर्ड (सुप्रा)** में, जबकि भारत पर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार लागू करने का सवाल यह था कि क्या इसे निजी कानून के तहत अन्यथा उपलब्ध राहत पाने के लिए लागू किया जा सकता है।

33. **भीम सैन त्यागी (सुप्रा)** में उ.प्र. के अंतर्गत जारी नोटिस को चुनौती देने का प्रश्न गुंडा अधिनियम, 1970 का नियंत्रण शामिल था और इस मामले में वैकल्पिक उपाय पर व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन (सुप्रा) के फैसले पर भरोसा किया गया था, जिसकी चर्चा पहले ही ऊपर की जा चुकी है।

34. हमने पाया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को लागू करने के संबंध में कानून में कोई झगड़ा नहीं है कि वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता एक पूर्ण बाधा नहीं है। हालाँकि, यह कानून भी समान रूप से स्थापित है कि यदि प्रभावी वैकल्पिक वैधानिक उपाय

उपलब्ध है तो न्यायालयों को अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में बेहद धीमी गति से काम करना चाहिए। वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही सीआरपीसी की धारा 97 के प्रावधानों को लागू कर दिया है, जो एक प्रभावी वैधानिक उपाय है, इसलिए, यह वह प्रश्न नहीं है जहां प्रारंभिक आपत्ति केवल इस आधार पर उठाई जा रही है कि प्रभावी वैधानिक उपाय उपलब्ध है। वास्तव में, प्रारंभिक आपत्ति यह है कि स्वीकार्य रूप से, प्रभावी वैकल्पिक वैधानिक उपाय पहले ही हो चुका है। याचिकाकर्ताओं द्वारा इसका लाभ उठाया गया, जो अभी भी लंबित है और याचिकाकर्ताओं द्वारा इसका अनुसरण किया जा रहा है। इसलिए, प्रारंभिक आपत्ति का उत्तर देना कि प्रभावी वैधानिक उपाय का लाभ पहले ही उठाया जा चुका है, केवल यह कहने से कि वैकल्पिक उपाय एक पूर्ण बाधा नहीं है, हमारी राय में, याचिकाकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं है क्योंकि माना जाता है कि इसका लाभ पहले ही लिया जा चुका है। इस स्वीकृत तथ्य पर प्रारंभिक आपत्ति कायम रहने योग्य है।

35. हम आगे पाते हैं कि राज्य द्वारा स्पष्ट रूप से यह है कि याचिकाकर्ताओं को बाल संरक्षण गृह में रखा गया है, इसलिए, प्रथम दृष्टया, एक वास्तविक अनुमान लगाया जा सकता है कि किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) के प्रावधानों के तहत मशीनरी (बच्चों के) अधिनियम, 2015 को लागू कर दिया गया है। इसलिए, रचना (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले के मद्देनजर वर्तमान याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी। पूर्ण

न्यायालय को संदर्भित प्रश्न और उनके उत्तर उक्त निर्णय के पैरा 79 में दिए गए हैं:

"79. तदनुसार, हम प्रश्न संख्या 1, 2 और 3 के संबंध में अपने निष्कर्ष पर इस प्रकार आते हैं:

प्रश्न संख्या 1: "(1) क्या मजिस्ट्रेट या अधिनियम की धारा 27 के तहत नियुक्त बाल कल्याण समिति द्वारा पीड़िता को नारी संरक्षण निकेतन/किशोर गृह में भेजने के पारित न्यायिक आदेश के खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट कायम करने योग्य है/ बाल देखभाल गृह? होम/नारी

उत्तर: यदि याचिकाकर्ता का कॉर्पस न्यायिक मजिस्ट्रेट या सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय या जे.जे. के तहत बाल कल्याण समिति द्वारा पारित न्यायिक आदेशों के अनुसार हिरासत में है। कार्यवाही करना। नतीजतन, ऐसा मजिस्ट्रेट या समिति द्वारा पारित आदेश को बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट में चुनौती/आक्षेप नहीं किया जा सकता है या रद्द नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न संख्या 2: "क्या महिला संरक्षण गृह/नारी निकेतन/किशोर गृह/बाल देखभाल गृह में एक आदेश के अनुसार एक कोष की हिरासत (अनुचित हो सकती है) को अवैध हिरासत कहा/देखा जा सकता है?

उत्तर: जे.जे. की धारा 27 के तहत नियुक्त मजिस्ट्रेट या बाल कल्याण समिति द्वारा अधिकार क्षेत्र का अवैध या अनियमित प्रयोग। अधिनियम के अनुसार पीड़िता को महिला संरक्षण गृह/नारी निकेतन/किशोर गृह/बाल देखभाल गृह में भेजना अवैध हिरासत नहीं माना जा सकता।

प्रश्न संख्या 3: किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की योजना के तहत देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चे का कल्याण और सुरक्षा बोर्ड/बाल कल्याण समिति की कानूनी जिम्मेदारी है और इस प्रकार, यह प्रस्ताव कि किसी नाबालिग को भी उसकी इच्छा के विरुद्ध महिला संरक्षण गृह/नारी निकेतन/किशोर गृह/बाल देखभाल गृह में नहीं भेजा जा सकता, कानूनी रूप से वैध है या इसके लिए अधिनियम के उद्देश्य के अनुरूप एक संशोधित दृष्टिकोण की आवश्यकता है?"

उत्तर: जे.जे. के तहत. अधिनियम के अनुसार, देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे का कल्याण और सुरक्षा बोर्ड/बाल कल्याण समिति की कानूनी जिम्मेदारी है और मजिस्ट्रेट/समिति को उसकी इच्छाओं पर विश्वास करना चाहिए। जे.जे. की धारा 37 के अनुसार. जांच से संतुष्ट होने पर समिति कार्रवाई करेगी। समिति के समक्ष बच्चा देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाला बच्चा है, बाल कल्याण अधिकारी द्वारा प्रस्तुत सामाजिक जांच रिपोर्ट पर विचार करने और बच्चे की इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए यदि बच्चा विचार करने के लिए पर्याप्त रूप से परिपक्व है, तो एक या पारित कर सकता है। धारा 37(1)(ए) से (एच) में उल्लिखित अधिक आदेश।"

36. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति का जवाब देते समय याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा बहुत जोर दिया गया था।

37. दोहराने की कीमत पर यह दोहराया जाता है कि अनुच्छेद 21 स्पष्ट रूप से जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा प्रदान करता है, हालांकि, इसमें स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर" उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

38. वर्तमान मामले में, वर्तमान याचिका पर प्रारंभिक आपत्ति उठाते समय राज्य द्वारा अपनाया गया रुख यह था कि याचिकाकर्ता बाल संरक्षण गृह में हैं, इसलिए, भले ही इस स्तर पर, यह स्पष्ट नहीं है कि याचिकाकर्ता कैसे पहुंचे बाल संरक्षण गृह, एक बात स्पष्ट है कि आपराधिक न्याय का प्रशासन काम कर रहा है, जो कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया है (हालांकि राज्य के इस रुख के साथ, रचना (सुप्रा) में पूर्ण पीठ का निर्णय प्रारंभिक आपत्ति सहित शामिल मुद्दे को कवर करेगा) रिकॉर्ड से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही सीआरपीसी की धारा 97 के प्रावधानों को लागू कर दिया है। मामलों पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले सक्षम न्यायालय यानी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष। इस प्रकार, उन्होंने प्रभावी वैधानिक उपाय का लाभ उठाया है और इस प्रकार, न्याय के आपराधिक प्रशासन को गति में गांठ डाल दिया है और स्थापित कानून के अनुसार बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी नहीं की जा सकती है।

39. संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही सीआरपीसी की धारा 97 के प्रावधानों को लागू कर दिया है, इसलिए आपराधिक न्याय का प्रशासन पहले ही लागू हो चुका है और इसे एक साथ असाधारण उपाय लागू करके उलझाया नहीं जा सकता है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 226, जो अधिकार का एक उपाय हो सकता है लेकिन स्थापित कानून के अनुसार पाठ्यक्रम के रूप में जारी नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, जब कॉर्पस बाल संरक्षण गृह में हैं, तो रचना (सुप्रा) में पूर्ण पीठ के फैसले द्वारा तय किए गए कानून के अनुसार वर्तमान रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी।

40. नतीजतन, यहां ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर राज्य द्वारा उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति है कि वर्तमान याचिका सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही सीआर.पी.सी. की धारा 97 के प्रावधानों को लागू कर दिया है। और सक्षम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है जिसे बरकरार रखा गया है।

41. तदनुसार, वर्तमान याचिका सुनवाई योग्य नहीं होने के कारण खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 57

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा
बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या
919/2022

विवान और अन्य .. याचिकाकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य .. प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री मनोज कुमार
केशरी, श्री बीरेंद्र सिंह पाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री श्री कृष्ण
यादव

सिविल कानून- भारतीय संविधान - अनुच्छेद
226, - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा
304-बी, 306, 498-ए, 323, 504 और 506 -
संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 -
धारा 4, 4(1), 4(2), 4(3), 7, 17(1), 17(2),
17(3), - हिंदू अल्पवयस्कता और संरक्षकता
अधिनियम, 1956 - धारा 2, 4, 6 और 13 -
हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा-26, -
दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3/4,
- घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 - धारा 12 -
बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका - प्राकृतिक संरक्षक
होने के कारण से पिता अपने बच्चों की
अभिरक्षा चाहता है - कार्पस नाबालिग हैं और
उनकी आयु लगभग 8 वर्ष और 3 वर्ष है और
वे अपने नाना-नानी की अभिरक्षा में हैं - उनमें
से बड़े ने अपने पिता के साथ रहने की अपनी
स्पष्ट इच्छा व्यक्त की और दूसरा पक्ष अपने
पिता की पहचान नहीं कर सका क्योंकि वह
बहुत छोटा है - पक्ष के पिता पर अपनी पत्नी,
बच्चों की मां को आत्महत्या के लिए उकसाने
का आपराधिक आरोप है और वह जमानत पर
है - इसके अतिरिक्त, पिता का पारिवारिक
वातावरण उनके स्वास्थ्य विकास के लिए

अनुकूल नहीं है और दूषित है - दूसरी ओर, नाना ने बच्चे का अत्यंत प्रेम और स्नेह से पालन-पोषण किया - यह स्थापित कानून है कि, यह 'नकारात्मक परीक्षण' प्रासंगिक नहीं है कि पिता अपने बेटे/बेटी की अभिरक्षा के लिए 'अयोग्य' या अयोग्य नहीं है, बल्कि 'सकारात्मक परीक्षण' प्रासंगिक है कि ऐसी अभिरक्षा नाबालिग के कल्याण में होगी - इसलिए, यह न्यायालय नियम को पूर्ण बनाने के लिए अच्छा आधार नहीं पाता है - तदनुसार, उन्मोचित याचिका विफल हो जाती है और निरस्त की जाती है। (पैरा 9, 21, 23)

याचिका निरस्त (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. नील रतन कुंडू और अन्य बनाम अभिजीत कुंडू, (2008) 9 एससीसी 413,
2. सरस्वतीबाई श्रीपाद वेद बनाम श्रीपाद वासनजी वेद, एआईआर 1941 बॉम 103,
3. सुरिंदर कौर संधू बनाम हरबक्स सिंह संधू, (1986) 3 एससीसी 698,
4. मौसमी मोड़ना गांगुली बनाम जयंत गांगुली, (2008) 7 एससीसी 673,
5. रोज़ी जैकब बनाम जैकब ए. चक्रमक्कल, 1973(1) एससीसी 840,
6. कीर्तिकुमार महेशंकर जोशी बनाम प्रदीप कुमार करुणाशंकर जोशी, (1992) 3 एससीसी 573

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता, व्यक्तिगत प्रतिपक्षी के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य

सरकार के0 विद्वान अपर शा0 अ0 को सुना गया ।

2. विवान जिसकी उम्र 8 वर्ष एवं दिव्यांश जिसकी उम्र 3 वर्ष है को शाश्वत (सशरीर) इस न्यायालय के सामने प्रति पक्षी सं0 4 से 7 के द्वारा प्रस्तुत किया गया।

शाश्वत विवान द्वारा उसके पिता विजय विक्रम जो इस याचिका के शपथकर्ता है को पहचाना गया । दितीय शाश्वत दिव्यांश अपने पिता की पहचान नहीं कर सका क्यो कि वह बहुत छोटा है। शाश्वत विवान ने कहा कि वह अपनी मौसी एवं नाना-नानी के साथ रहना चाहता है।अपने पिता के साथ जाने एवं उनके साथ रहने को तैयार नहीं है ।

3. याची गण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि बच्चे जो इस केश के शाश्वत है शपथकर्ता के लड़के है वे अपना भविष्य तय करने के लिए बहुत छोटे है । वे अपने नाना -नानी एवं मौसी के द्वारा बहकाये गये है। शपथकर्ता की पत्नी श्रीमती श्वेता जिसका देहान्त दिनांक 29-4-2022 को हो गया है के देहान्त के बाद उसके ससुराल वाले उसके दोनो बच्चो को लेकर अपने साथ चले गये है एवं लगभग 9 माह से ज्यादा समय से वे अपने नाना -नानी के साथ रह रहे है । उन्ही के द्वारा इनको इस न्यायालय मे प्रस्तुत किया गया है जो कि इस याचिका के प्रतिपक्षी भी है । शपथकर्ता एक जी.एस.टी. सेवा केन्द्र का संचालक है । शपथकर्ता अपने पिता जो सेवा निवृत्त बैंक प्रबन्धक है के साथ रहता है। शपथकर्ता यद्यपि अपराध सं. 89 सन् 2022 दिनांक 1-5-2022 जो अन्तर्गत धारा 306

भा.द.सं. जो पत्नी को आत्म हत्या के लिए प्रताड़ित करने के आरोप में दर्ज है, में नामजद अभियुक्त है जमानत पर रिहा है। वह बच्चों के कल्याण की जिम्मेदारी का आश्वासन देता है यदि बच्चे उसके संरक्षण में दिये जाते हैं।

4. विरोध में व्यक्तिगत प्रतिपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि शपथकर्ता के घर का पर्यावरण प्रदूषित है। उसकी अपनी ही माँ उसके पिता से अलग रह रही है। व्यक्तिगत प्रतिपक्षी पर्याप्त शिक्षित लोग हैं। प्रतिपक्षी सं.7 जो कि शाश्वत की मौसी है। वह बैंक आफ बड़ौदा में बैंक कर्मचारी है और सभी प्रतिपक्षीगण शाश्वत का पूरा उचित ध्यान दे रहे हैं। उनके संरक्षण में उन्हें उचित शिक्षा प्राप्त हो रही है।

5. प्रतिपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा मा0 सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *निल रतन कुन्डू एवं एक अन्य बनाम अभिजीत कुन्डू (2008) 9 एस.सी.सी.413* का उद्धरण दिया गया। इस निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संरक्षक एवं प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 17(1),(2),(3),7 एवं 4(1),4(2) और (3) अप्राप्तवयता एवं संरक्षकता अधिनियम की धारा 2,4,6 एवं 13 तथा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 26 की व्याख्या करते हुए यह निर्णय दिया है कि किसी अवयस्क बच्चे को किसी की संरक्षित में देने का निर्णय लेने के लिए मुख्य विचारणीय बिन्दु बच्चे का कल्याण है न कि माँ बाप का अधिकार जो प्रचलित कानून में प्राप्त है। भारत में कानून की स्थिति अंग्रजी एवं अमेरिकन कानून के सिद्धान्त से प्रतिपादित है। उपरोक्त वाद में

ए प्रतिवादी का पुत्र था और उसकी माँ एम का अधिक दहेज की माँग को लेकर प्रताड़ना की जा रही थी और उस पर माँ बाप जो कि अपीलार्थी हैं से दहेज के लिए दबाव बनाया जा रहा था। एक दिन एम को अत्यधिक शारीरिक प्रताड़ना प्रतिपक्षी एवं उसकी माँ द्वारा दी गई जिससे उसकी मृत्यु हो गई। अपीलार्थी गण ने प्रथम सूचना रिपोर्ट अन्तर्गत धारा 498 ए एवं 304 बी.भा.द.सं. प्रतिपक्षी एवं उसके माँ के विरुद्ध दर्ज कराई परिणामस्वरूप प्रतिपक्षी न्यायिक अभिरक्षा में लिया गया उस समय ए मात्र 5 वर्ष का था। वह प्रतिपक्षी के घर में बीमार पाया गया एवं उसका संरक्षण अपीलार्थी को दिया गया। अपीलार्थीगण ने बच्चे को बड़े प्यार एवं स्नेह से पाला और उसका प्रवेश एक प्रतिष्ठित विद्यालय में कराया।

6- फौजदारी वाद के विचाराधीन रहते हुए प्रतिपक्षी को जमानत पर रिहा किया गया था। तब उसने संरक्षक एवं प्रतिपाल अधिनियम, 1890 में बच्चे के लिए प्रार्थना पत्र दायर किया। अपीलार्थी ने प्रार्थना पत्र का विरोध किया। परीक्षण न्यायालय ने प्रार्थना पत्र स्वीकार किया और यह निर्धारित किया कि प्रतिपक्षी ए का नैसर्गिक संरक्षक है तथा बच्चे का वर्तमान एवं भविष्य प्रतिपक्षी के संरक्षण में अधिक सुरक्षित होगा। तदनुसार यह आदेश दिया कि बच्चे को तत्काल प्रतिपक्षी को दिया जाय यह आदेश उच्च न्यायालय तक मान्य रहा। अपीलार्थी गण ने तब यह अपील विशेष अपील के रूप में प्रस्तुत की है।

7. मा0 सर्वोच्च न्यायालय ने बच्चे के माँ की अपील स्वीकार की एवं यह अभिमत किया कि

परीक्षण न्यायालय द्वारा संरक्षक (पिता) को अवयस्क बच्चे को तत्काल दिये जाने का आदेश एवं उच्च न्यायालय का 24 घण्टे में आदेश का पालन करने का निर्देश जो कि पिता के प्रार्थना पत्र, जिसका विरोध बच्चे के नाना-नानी, जिनके साथ वह रह रहा है, ने किया था, पर पारित किया जाना उचित नहीं था।

8. किसी भी सारभूत एवं प्रगाढ़ प्रश्न जो कि अवयस्क के संरक्षण से सम्बन्धित है का निर्णय करते समय न्यायालय को महत्वपूर्ण नियमों और उनसे होने वाले अधिकारों को ध्यान में रखना होगा लेकिन ऐसे विवादों का निस्तारण केवल कानूनी प्राविधानों के विचारण पर नहीं किया जा सकता है। यह एक माननीय प्रकरण है एवं मानवीय आधार पर ही किये जाने की आवश्यकता है। न्यायालय संरक्षण के वादों का निस्तारण करते समय, न तो किसी अध्यादेश, नहीं किसी साक्ष्य के सख्त नियम अथवा प्रक्रिया या प्रचलित कानून से बाध्य है किसी भी अवयस्क के संरक्षक का निर्धारण करते समय मुख्य विचारणीय बिन्दु बच्चे का कल्याण एवं उसका हित होना चाहिए संरक्षक का निर्धारण करते समय न्यायालय को स्वनिहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना होता है और यह आशा की जाती है कि बच्चे को सामान्य सुविधा, आवश्यकता, स्वास्थ्य, शिक्षा, मानसिक विकास एवं हितकर वातावरण मिले लेकिन साथ ही साथ सुविधा, मानदण्ड, आत्मीय मूल्यों को नकारा नहीं जा सकता, ये उतने ही बल्कि ये कहे कि उससे भी अधिक महत्वपूर्ण, आवश्यक एवं अविस्मरणीय विचार बिन्दु है। यदि अवयस्क की उम्र अधिक है और वह स्वयं से बौद्धिक प्रमुखता एवं निर्णय लेने

लायक है तो न्यायालय को उसके प्रमुखता पर भी ध्यान देना होगा यद्यपि अन्तिम निर्णय न्यायालय को ही लेना होगा कि क्या चीज अवयस्क के हित के लिए अनुकरणीय है।

9. मा. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिमत व्यक्त किया है कि यह कोई नकारात्मक परीक्षण नहीं है कि पिता अपने पुत्र/पुत्री के संरक्षण हेतु अनुचित एवं अयोग्य है बल्कि सकारात्मक परीक्षण है कि ऐसा संरक्षण अवयस्क के कल्याण में है इसी महत्व को ध्यान में रखकर न्यायालय को अधिकार का प्रयोग करना चाहिए कि अवयस्क को पिता, माता अथवा किसी अन्य के संरक्षण में दिया जाय अथवा न दिया जाय।

10. जहाँ तक परीक्षण न्यायालय का आदेश कि बच्चे को तत्काल नाना-नानी के संरक्षण से हटाकर पिता को दिया जाय एवं उच्च न्यायालय का आदेश कि बच्चे को 24 घण्टे के अन्दर पिता को हर हाल में सौंप दिया जाय, हमारा अभिमत है कि बच्चा कोई "सम्पत्ति" अथवा "वस्तु" नहीं है। अवयस्क एवं कोमल आयु के बच्चों का संरक्षण का बिन्दु प्यार, स्नेह, भावना एवं मानवीय दृष्टिकोण की समस्या को ध्यान में रखकर करना होगा।

11. मा0 सर्वोच्च न्यायालय ने आगे यह अभिमत व्यक्त किया है कि बच्चे का परीक्षण (कथन), न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग सम्यक रूप में करने एवं कम उम्र के बच्चों के संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण विषय पर निर्णय लेने में सहायता करता है यद्यपि अन्तिम निर्णय न्यायालय पर निर्भर है जो

सभी विन्दुओं पर विचार करने के लिए बाध्य है एवं उचित आदेश बच्चे के कल्याण को ध्यान में रखकर करना होगा इसीलिए सामान्यतः संरक्षण में दिये जाने के सम्बन्ध में आदेश पारित करने के पूर्व बच्चे की इच्छा को न्यायालय को समझना चाहिए। वर्तमान केस में परीक्षण न्यायालय को इस बात का पता करना चाहिए था कि बच्चे किसके साथ रहना चाहता है। बच्चे को न्यायाधीश के चैम्बर में बुलाया गया था उसने काफी समझदार होना स्वीकार किया। जब से यह पूछा गया कि क्या वह अपने पिता के साथ जाना या रहना चाहता है तो उसने बिना किसी हिचक, उनके साथ जाने या रहने से मना कर दिया। उसने यह भी कहा कि वह अपने नाना-नानी के साथ बहुत खुश है और उन्हीं के साथ रहना चाहता है अतः यह निर्णय किया जाता है कि वाद एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बच्चे का संरक्षण पितो जो कि प्रतिपक्षी है को दिया जाना उचित नहीं है।

12. उपरोक्त प्रकरण ने बच्चे के माँ की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु हुई। बच्चे का पित, मृतका के माँ बाप द्वारा पंजीकृत कराये गये रिपोर्ट अन्तर्गत धारा 498ए, 304-बि भा.द.सं. में गिरफ्तार हुआ। मृतका को बार बार उसके पति एवं पति के माँ के द्वारा प्रताणित किया गया जिसके कारण उसकी मृत्यु हुई। माँ की मृत्यु के बाद शाश्वत संरक्षण बच्चे का उसके नाना-नानी को दिया गया उस समय बच्चा मात्र 5 वर्ष का था। अपीलार्थी सं. 1, जो कि नाना है ने बच्चे को अति स्नेह एवं प्यार से रखा है। उसे कोलकता के प्रतिष्ठित विद्यालय में शिक्षा मिल रही थी।

13. मा. सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त केस में कई अन्य उद्धरण जो कि अंग्रेजी एवं अमेरिकन कानून से हैं, दिया है जिसमें यह मत है कि सामान्य रूप से बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका में निर्देण दिया जाना अनाधिकृत बन्दी के लिए है लेकिन ऐसे वाद जहाँ याचिका बच्चे के लिए है कानून केवल अवैधानिकता के लिए नहीं है अपितु बच्चे के कल्याण के लिए है। इसी अवधारणा का भारतीय कानून में अनुसरण किया जाता है। इसी प्रतिपादित सिद्धान्त पर अनेक अध्यादेश हैं जो इसी सिद्धान्त को मान्यता देते हैं। संरक्षण एवं प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 4 में "अवयस्क" की परिभाषा में वह आता है जिसने वयस्क होने की उम्र प्राप्त नहीं की है। "संरक्षक का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो अवयस्क अथवा उसकी सम्पत्ति अथवा दोनों का ध्यान रखता है।" "प्रतिपाल्य" की परिभाषा उस वयस्क से है जिसका या जिसकी सम्पत्ति अथवा दोनों का संरक्षक है।

14. मा. सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के दाण्डिका सं. 31,32,35,36,37 में विधाई प्रविधानों का वर्णन किया है जो निम्नवत् हैं-

31. चैप्टर II (धारा 5 से 19) संरक्षक नियुक्त एवं घोषित किये जाने के सम्बन्ध में है। धारा 7 संरक्षक नियुक्त करने का आदेश देने को न्यायालय का अधिकार क्षेत्र है।

7- संरक्षकता के बारे में न्यायालय की आदेश करने की शक्ति- (1) जहाँ की

न्यायालय को समाधान हो जाता है कि अप्राप्तवय के कल्याण के लिए आदेश दिया जाना चाहिए-

घोषित संरक्षक की शक्तियाँ इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन समाप्त न हो गई हो ।

(क) उसके शरीर या सम्पत्ति या दोनों के लिए संरक्षक की नियुक्ति करने वाला, अथवा

32- अधिनियम की धारा 8 संरक्षता के लिए आवेदन के हकदार व्यक्तियों को परिभाषित करता है धारा 9 न्यायालय को संरक्षता के आवेदन पर विचार करने का अधिकार है । धारा 10 से 16 न्यायालय के अधिकार एवं प्रक्रिया को दर्शाता है । धारा 17 एक अन्य महत्वपूर्ण प्राविधान है जो निम्नवत् है-

(ख) किसी व्यक्ति को ऐसा संरक्षण घोषित करने वाला आदेश किया जाये ,वहाँ न्यायालय तदनुसार आदेश कर सकेगा।

17. संरक्षक नियुक्त करने में न्यायालय द्वारा विचारणीय तथ्य - (1) अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित करने में, इस धारा के उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए, न्यायालय उस विधि से संगत, जिसके अप्राप्तवय अध्यधीन है, उस बात से मार्ग दर्शित होगा, जो उन परिस्थितियों में अप्राप्तवय के कल्याण के लिए प्रतीत हो।

(2). इस धारा के अधीन दिये गये आदेश में यह निहित होगा कि कोई भी संरक्षक जो वसीयत या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित नहीं किया गया है को हटाया गया है।

(3). जहाँ कोई संरक्षक वसीयत या अन्य लिखत द्वारा या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है वहाँ उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त या घोषित करने का, इस धारा के अधीन कोई आदेश, तब तक नहीं किया जायेगा जब तक पूर्वोक्त या

(2) यह विचार करने में कि अप्राप्तवय के लिए क्या कल्याणकर होगा, न्यायालय, अप्राप्तवय की उम्र, लिंग

और धर्म प्रस्तावित संरक्षक का चरित्र एवं सामर्थ्य तथा अप्राप्तवय से रक्त सम्बन्ध ने उसकी निकटता मृत जनक की इच्छाओं को यदि कोई हो और अप्राप्तवय से या उसकी सम्पत्ति से प्रस्तावित संरक्षक के किसी वर्तमान या पूर्वतम सम्बन्धों को ध्यान में रखेगा।

(3) यदि अप्राप्तवय इस आयु का है कि वह बुद्धिमत्ता पूर्ण अभिमान कर सकता है तो न्यायालय उस अभिमान पर विचार कर सकता है।

5) न्यायालय किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विपरीत संरक्षक नियुक्त या घोषित नहीं करेगा।

(जोर दिया गया)

35. हिन्दू अप्राप्तवयता एवं संरक्षकता अधिनियम, 1956 (जो कि आगे "1956 अधिनियम" के रूप में इंगित होगा) हिन्दुओं में अप्राप्तवयता एवं संरक्षकता के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण समानान्तर

अध्यादेश है। धारा 4 "अप्राप्तवय" को परिभाषित करता है कि ऐसा व्यक्ति जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी न की हो। "संरक्षक" से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी देख रेख में किसी अप्राप्तवय का शरीर या उसकी सम्पत्ति या उसका शरीर एवं सम्पत्ति दोनों हो। साथ ही साथ इसके अन्तर्गत नैसर्गिक भी आते हैं। अधिनियम की धारा 2 यह घोषित करता है कि इस अधिनियम के प्राविधान, अधिनियम 1890 के अतिरिक्त है न कि उसे नि. प्रभावी करने के लिए।

36. धारा 6 निर्धारित करता है कि किसे नैसर्गिक संरक्षक कहा जा सकता है। यह इस प्रकार है-

6- हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक

संरक्षक-

..... हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक, अप्राप्तवय के शरीर के बारे में और (अविभक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति में उसके अविभक्त हित को छोड़कर) उसकी सम्पत्ति के बारे में भी, निम्नलिखित है -

रूप में काय करने
का हकदार न होगा।

(क) किसी लड़के या अविवाहित लड़की कि दशा में पिता और उसके पश्चात् माता; परन्तु जिस अप्राप्तवय ने पांच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसकी अभिरक्षा मामूली तौर पर माता के हाथ में होगी,

स्पष्टीकरण—इस धारा में “पिता” और “माता” पदों के अन्तर्गत सौतेला पिता और सौतेली माता नहीं आते।

(ख) अर्धमज लड़के तथा अर्धमज अविवाहित लड़की कि दशा में माता और उसके पश्चात् पिता;

37- धारा 8 नैसर्गिक संरक्षक के शक्तियों को दर्शाता है। धारा 13 अति महत्वपूर्ण प्राविधान है जो अप्राप्तवय के कल्याण से सम्बन्धित है। उसे विस्तार से वर्णित किया जाता है-

(ग) विवाहिता लड़की कि दशा में पति;

13- अप्राप्तवय का कल्याण सर्वोपरि होगा -

परन्तु जो भी व्यक्ति यदि --

(क) वह (हिन्दू नहीं रह गया है, या

(1) न्यायालय द्वारा किसी भी व्यक्ति के किसी हिन्दू अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित किए जाने में अप्राप्तवय के कल्याण पर सर्वोपरि ध्यान रखा जायेगा।

(ख) वह वानपस्थ (या यति या सन्यासी होकर संसार को पूर्णतः और अन्तम रूप से त्याग चुका है, तो इस धारा के उपबन्धों के अधीन अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक के

(2) यदि किसी भी व्यक्ति के विषय में न्यायालय की यह राय हो कि उसके संरक्षक होने में अप्राप्तवय का कल्याण न होगा तो वह व्यक्ति इस अधिनियम के उपबन्धों के आधार पर या ऐसी किसी भी विधि के आधार पर, जो हिंदुओं में

विवाहार्थ संरक्षकता के बारे में हो, संरक्षकता का हकदार न होगा।

(जोर दिया गया)

15. सरस्वती श्री पद वेद बनाम श्री पद वसन्ती वेद ए.आई.आर. 1941 बाम्बे 103 में बाम्बे उच्च न्यायालय ने कहा है कि यह पिता के कल्याण अथवा माता के कल्याण के लिए विचारणीय प्रश्न नहीं है यह केवल अप्राप्तवय के कल्याण एवं केवल अप्राप्तवय के लिए है।

16. सुरेन्द्र कुमार सन्धू बनाम हर बक्स सिंह सन्धू (1986) एस.सी.सी.698 में मा. सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि धारा 6 हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम 1956 पिता को नैसर्गिक संरक्षक मानता है लेकिन यह प्राविधान अप्राप्तवय के कल्याण के लिए विचारणीय तथ्य से ऊपर नहीं हो सकता।

17- मौसमी मोड़ना गांगुली बनाम जयंत गांगुली (2008) एस.सी.सी. 673 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ सं 20 में निम्न निर्धारण किया है।

20- अप्राप्तवय बच्चे के कल्याण का प्रश्न वर्तमान तथ्य एवं परिस्थितियों के आधार पर विचार करना है। प्रत्येक प्रकरण को उसमें व्याप्त तथ्यों के आधार पर करना है। अन्य निर्णीत वादों को बाध्यकारी प्रतिपादित नियम नहीं माना जा सकता है निस्सन्देह पिता को कानून की दृष्टि

से बच्चों के देखभाल के लिए आधिक उचित समझा जाता है क्योंकि वह परिवार का मुखिया एवं कर्ता सदस्य होता है फिर भी हर वाद में न्यायालय को प्रथमतः यह देखना होता है कि बच्चे का कल्याण माँ के संरक्षण में है या पिता के। माँ बाप में से किसी का अधिक आय का श्रोत एवं उसका बच्चे के प्रति प्यार एक महत्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु है किन्तु बच्चे की संरक्षकता निर्धारित करते समय यह एक मात्र कारण नहीं हो सकता है। न्यायालय का यह विशाल दायित्व है कि वह अपने न्यायिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग, बच्चे के कल्याण को दृष्टिगत रखते हुए, उसमें निहित तथ्य एवं परिस्थितियों के आधार पर करें।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निल रतन कुन्डू (उपरोक्त) में निर्णय देते हुए **रोजी जैकब बनाम जैकब ए चक्र मक्काल**, 1973(1) एस.सी.सी.840 में दिये गये निर्णय से सहमत होते हुए अवधारित किया कि "हम सिर्फ इतना कह सकते हैं कि बच्चा कोई "सम्पत्ति" अथवा "वस्तु" नहीं है। दोहराते हुए कहना है कि अप्राप्तवय अथवा कम उम्र के बच्चे का संरक्षक निर्धारित करते समय प्यार, स्नेह, भावना एवं माननीय दृष्टिकोण जैसी समस्या को ध्यान में रखकर करना होगा।

तथ्यों में से एक तथ्य जो न्यायालय को विचार करना है वह है प्रस्तावित संरक्षक का "चरित्र"

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कीर्ति कुमार माहे शंकर जोशी बनाम प्रदीप कुमार करुणा शंकर जोशी (1992) 3 ए एस.सी.सी.573** में सर्वोच्च न्यायालय ने लगभग इन्ही परिस्थितियों जिसमें पिता धारा 498 ए भा.द.सं. के आरोप का सामना कर रहा था दो बच्चों के पिता के संरक्षण में देने से मना कर दिया और बच्चों को उनके मामा के साथ रहने की अनुमति दी। इस प्रकार पिता के विरुद्ध माता के मृत्यु के लिए जिम्मेदार मानते हुए 498 ए भा.द.सं. की शिकायत दर्ज होना निश्चित रूप से महत्वपूर्ण तथ्य है और न्यायालय को अप्राप्तवय की संरक्षता उसके पक्ष में निर्धारित करते समय इस तथ्य को अवश्य इंगित करना चाहिए।

21. अभिलेखों के परीक्षण से ऐसा लगता है कि बच्चों के मामा योगेश ने शपथकर्ता जो कि शाश्वत के पिता हैं उनके एवं उसके पिता के विरुद्ध धारा 323, 504 भा.द.सं. की प्रथम सूचना रिपोर्ट इस आरोप के साथ दर्ज कराई है कि शपथकर्ता एवं उसके पिता ने उसकी बहन श्वेता को मारापीटा है एवं गाली दी है। शपथकर्ता की मृतक पत्नी ने भी धारा 12 घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम में एटा में शिकायत दर्ज कराई है जिसमें शपथकर्ता को पत्नी को अन्तरिम भरण पोषण को देने का आदेश सक्षम न्यायालय ने पारित किया है। उसने शपथकर्ता एवं उसके परिवार वालों के विरुद्ध धारा 498 ए, 323, 504, 506 एवं 3/4 दहेज उन्मूलन अधिनियम की रिपोर्ट थाना दिव्यपुर जनपद औरैया में दहेज की मांग करने एवं उसके लिए प्रताड़ित करने की रिपोर्ट दिनांक 5.7.2015 को दर्ज

कराई है। दुर्भाग्यवश जहरीला पदार्थ खाने के कारण दिनांक 29.4.2022 को उसका देहान्त हो गया उसका दाह संस्कार 30.4.2022 को हुआ। शाश्वत के माँ की मृत्यु के बाद मृतका के पिता सुरेश चन्द यादव ने दिनांक 1-5-2022 को अपराध सं. 89 सन् 2022 अन्तर्गत धारा 306 भा.द.सं. इस आरोप के साथ दर्ज कराई कि शपथकर्ता उसके पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य मृतका को दहेज की मांग न पूरी होने के कारण लगातार प्रताड़ित कर रहे थे और उसी लगातार शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना से मृतका क्षुब्ध थी शाश्वत के पिता जमानत पर हैं जो भी हो लेकिन आरोप यही है कि उसने शाश्वत की माँ को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया जो कि उसकी पत्नी अतः पति पत्नी का सम्बन्ध शादी के बाद से तनाव पूर्ण रहा जिससे उसने आत्म हत्या कर ली। शाश्वत विवान जो 8 वर्ष का है और दिव्यांश जो 3 वर्ष का है इस न्यायालय के सामने आज उपस्थित हुए हैं। विवान ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह अपने नाना-नानी एवं मौसी के साथ रहना चाहता है उसने अपने पिता जो कि इस याचिका के शपथकर्ता हैं के साथ जाने एवं रहने से मना कर दिया। दूसरा शाश्वत दिव्यांश अपने पिता को नहीं पहचान सका वह बहुत छोटा है इसलिए उसकी इच्छा नहीं जानी गई। व्यक्तिगत प्रतिपक्षी जो कि शाश्वत के नाना-नानी व मौसी हैं ने बताया शपथकर्ता शाश्वत के पिता का पारिवारिक परिवेश प्रदूषित है। उसकी अपनी ह माँ उसके पिता से अलग रहती है। व्यक्तिगत प्रतिपक्षीगण अच्छी तरह से देखभाल करने में सक्षम हैं और वे उन्हीं के साथ रह रहे हैं। वे बच्चों के समस्त विकास का आश्वासन देते हैं।

4.इला अनुपमा सिन्हा बनाम रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण, राज्य नियोजन संस्थान,
लखनऊ उत्तर प्रदेश और अन्य

83

प्रतिशपथ पत्र के साथ प्राचार्य तपस्थली पब्लिक स्कूल मैनपुरी का प्रमाण पत्र दिनांकित 10-10-2022 लगाया गया है जिसमें यह कहा गया है कि विवान पुत्र विजयविक्रम सिंह उसके विद्यालय का कक्षा 3 का छात्र है। वह स्कूल में दिनांक 6-7-2022 को उसके नाना द्वारा प्रवेश कराया गया था। बच्चों के नाना पढ़ाई का पूरा खर्च उठा रहे हैं और अपने मृत पुत्री के बच्चों का पालन पोषण करने को तैयार हैं।

22- इस न्यायालय ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका सं0 389 सन् 2020 (मास्टर आर्यन एवं एक अन्य) को दिनांक 1-3-2021 को निर्णित किया है। उसमें यह निर्णय दिया गया है कि बच्चा न्यायालय में उपस्थित हुआ। एवं उज्ज्वल तथा बुद्धिमान दिखा। उसने अपने माँ के प्रति घृणित भावना प्रगट किया जो कि पति के मृत्यु के सम्बन्ध में आरोपित है एवं परीक्षण का सामना कर रही है हो सकता है कि वह उसमें अपने पति की मौत की जिम्मेदार साबित हो जाय एवं दण्डित हो जाय। यदि ऐसा होता है और बच्चे उसके साथ रहते हैं तो बच्चों के लिए यह भयावह स्थिति होगी कि उसकी माँ उसके बाप के मौत की जिम्मेदार है और इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए माँ के द्वारा दायर बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका निरस्त कर दी गई क्योंकि बच्चे अपने पिता की मृत्यु के बाद अपने चाचा चाची के साथ रह रहे थे।

23. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क, इस वाद में निहित तथ्य एवं परिस्थितियों, माननीय सर्वोच्च न्यायालय एवं इस

न्यायालय द्वारा किये गये न्यायिक सिद्धान्त जिनका विवरण ऊपर दिया गया है, बच्चों के हित एवं कल्याण को ध्यान में रखते हुए, जो कि वर्तमान में अपने नाना- नानी के साथ रह रहे हैं और उनमें से बड़े बच्चे ने अपने नाना- नानी के साथ रहने की प्रबल इच्छा जाहिर की है विशेषतः तथ्य कि पिता जिसने इस बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका में बच्चों का संरक्षण चाहा है वह अपनी पत्नी एवं बच्चों की माँ की आत्म हत्या के प्रकरण में, आत्म हत्या के लिए प्रेरित करने के आरोप में परीक्षण का सामना कर रहा है, पर विचार करने पर यह न्यायालय कोई ऐसा अच्छा कारण नहीं पाती है जिसे आगे के लिए अनुकरणीय नियम प्रतिपादित किया जाय। अतएव इसे निरक्षेपित किया जाता है।

24. परिणामस्वरूप याचिका असफल है एवं निरस्त की जाती है।

(2023) 4 ILRA 64
मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

वाद अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या

1396/2023

अनुपमा सिन्हा

...याचिकाकर्ता

बनाम

रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण, राज्य
नियोजन संस्थान, लखनऊ उत्तर प्रदेश और
अन्य .. .प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: कार्तिकेय दुबे

अधिवक्ता प्रतिवादी: शोभित मोहन शुक्ला

ए. रियल एस्टेट कानून - स्थिरता - रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 - धारा 40 सपठित नियम 23, नियम 2016 - दिनांक 22.03.2023 के आदेश में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका की स्थिरता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण न तो न्यायालय है और न ही न्यायाधिकरण है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने RERA को अर्ध न्यायिक प्राधिकरण माना है तथा इसे 'ट्रिब्यूनल' के अर्थ के अंतर्गत माना है, अतः याचिका स्वीकार्य होगी।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अनुसार प्राधिकरण न्यायाधिकरण हो सकता है या नहीं, इसका प्रारंभिक मत यह है कि यह एक वैधानिक प्राधिकरण है, जिसे राज्य द्वारा विशेष अधिनियम और स्थापना के तहत न्यायिक तरीके से विवादित पक्षों के मध्य विवाद का निर्णय करने का अधिकार दिया गया है, लेकिन चूंकि इसे राज्य की न्यायिक शक्तियों के कुछ कार्य सौंपे गए हैं, इसलिए यह अर्ध-न्यायिक शक्तियों के प्रयोग के अधीन है। (पैरा 10)

प्राधिकरण (रेरा) अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है और इस प्रकार यह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत न्यायाधिकरण की अवधि के अंतर्गत आएगा,

जिसके कारण उक्त प्राधिकरण के विरुद्ध याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत स्वीकार्य होगी। (पैरा 13)

बी. याचिकाकर्ता ने परिवाद दायर किया था, जिस पर 22.03.2022 को निर्णय लिया गया, जिसके पश्चात आवेदन दाखिल करके बिक्री का निष्पादन आवश्यक हो गया। तर्क दिया गया कि इस मध्य प्राधिकरण ने स्वयं दिनांक 02.09.2020 को मानक संचालन प्रक्रिया तैयार की है, जिसका पालन नहीं किया जा रहा है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया कि इसके अनुसार निष्पादन आदेश दिया जाना आवश्यक है। (पैरा 15)

यदि कोई अन्य विधिक बाधा नहीं है तो रेरा को निर्देश दिया जाता है कि वह परिवाद संख्या LKO162/08/57523/2020 में दायर आदेश दिनांक 22.03.2022 का निष्पादन सुनिश्चित करे, जिसे रेरा द्वारा दिनांक 02.09.2020 की मानक संचालन प्रक्रिया के अनुसार पारित किया गया है। (पैरा 16)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. न्यूटेक प्रमोटर्स एंड डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सेंट यूपी एंड ऑर्स, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1044 (पैरा 8)
2. पैन रियलटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सेंट यूपी एंड अन्य, डब्ल्यूपी संख्या 27631/2021 (पैरा 5)

4. इला अनुपमा सिन्हा बनाम रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण, राज्य नियोजन संस्थान,
लखनऊ उत्तर प्रदेश और अन्य

85

3. एसोसिएटेड कंपनीज लिमिटेड बनाम
पी.एन. शर्मा एवं अन्य, एआईआर 1965
एससी 1595 (पैरा 6)

4. ऑल पार्टी हिल लीडर्स कॉन्फ्रेंस बनाम
कैप्टन डब्ल्यू.ए. संगमा, (1977) 4 एससीसी
161 (पैरा 7)

5. गुजरात राज्य बनाम गुजरात रेवेन्यू
ट्रिब्यूनल बार एसोसिएशन, (2012) 10
एससीसी 353 (पैरा 8)

वर्तमान याचिका अनुच्छेद 227 के तहत
परिवाद संख्या LKO162/08/57523/2020,
अनुपमा सिन्हा बनाम मेसर्स अंसल प्रॉपर्टीज
एंड इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड में पारित आदेश
दिनांक 22.03.2022 के निष्पादन को
सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम
उठाने के लिए RERA को निर्देश देने की मांग
करती है।

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा
प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता कार्तिकेय दुबे और
प्रतिपक्षी संख्या-1 के अधिवक्ता श्री शोभित
मोहन शुक्ला को सुना।

आदेश पारित किए जाने के प्रस्ताव को देखते
हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 को नोटिस निस्तारित
मानी जाती है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के
तहत याचिका दायर की गई है, जिसमें रियल
एस्टेट नियामक प्राधिकरण को निर्देश देने की

मांग की गई है कि वह शिकायत संख्या-
LKO162/08/57523/2020, अनुपमा सिन्हा
बनाम मेसर्स अंसल प्रॉपर्टीज एंड इंफ्रास्ट्रक्चर
लिमिटेड में पारित दिनांक 22.03.2022 के
आदेश का निष्पादन सुनिश्चित करने के लिए
आवश्यक कदम उठाए। रियल एस्टेट
(विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016
की धारा 40 के साथ नियम, 2016 के नियम
23 के तहत वसूली प्रमाण पत्र जारी करने के
लिए भी राहत मांगी गई है।

प्रारंभ में जैसा कि दिनांक 22.03.2023
के आदेश में देखा गया है, भारत के संविधान
के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका की
पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई
गई है कि रियल एस्टेट नियामक प्राधिकरण न
तो न्यायालय है और न ही ट्रिब्यूनल।

प्रारंभिक आपत्ति के जवाब में याचिकाकर्ता
के अधिवक्ता ने न्यूटेक प्रमोटर्स एंड डेवलपर्स
प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य अन्य
2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1044 में
रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च
न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा
किया है और साथ ही पैन रियल्टर्स प्राइवेट
लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के
मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ
द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है।
माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय
दिया है कि उपर्युक्त प्राधिकरण को माननीय
उच्चतम न्यायालय द्वारा एक अर्ध न्यायिक
प्राधिकरण माना गया है और इसे अर्ध
अधिकरण के अंतर्गत शामिल किया गया है
और इस प्रकार की याचिका सुनवाई योग्य
होगी।

उपर्युक्त प्रारंभिक आपत्ति के संबंध में, यह आख्यापित करना आवश्यक होगा कि क्या रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण को न्यायालय या न्यायाधिकरण माना जा सकता है। किसी प्राधिकरण को न्यायालय या अधिकरण कब कहा जा सकता है, इस पहलू पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा एसोसिएटेड सीमेंट कंपनीज लिमिटेड बनाम पी.एन. शर्मा के मामले में चर्चा की गई है और ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 1595 में एक अन्य रिपोर्ट की गई है:

"9. ऐसे अधिकरण जो अनुच्छेद 136(1) के दायरे में आते हैं, हमारे संविधान की योजना के तहत उनका अपना विशेष स्थान है। विशेष मामले और प्रश्न उन्हें उनके निर्णय के लिए सौंपे जाते हैं और इस अर्थ में, वे अदालतों के साथ एक सामान्य विशेषता साझा करते हैं; दोनों न्यायालय और न्यायाधिकरण "राज्य द्वारा गठित किए जाते हैं और विशुद्ध रूप से प्रशासनिक या कार्यकारी कार्यों से अलग न्यायिक के साथ निवेश किए जाते हैं", (दुर्गा शंकर मेहता बनाम ठाकुर रघुराज सिंह [(1955) 1 एस.सी.आर 267 पृष्ठ 272 पर]) वे दोनों न्यायनिर्णयन निकाय हैं और वे उन पक्षों के बीच विवादों से निपटते हैं और अंततः उनका निर्धारण करते हैं जिन्हें उनके अधिकार क्षेत्र में सौंपा गया है। न्यायालयों द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया नियमित रूप से निर्धारित की जाती है और अपने कार्यों का निर्वहन करने और अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में, न्यायालयों को उस प्रक्रिया के अनुरूप होना होता है।

अधिकरणों को जिस प्रक्रिया का पालन करना होता है, वह हमेशा इतनी सख्ती से निर्धारित नहीं हो सकती है, लेकिन न्यायालयों और अधिकरणों दोनों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण काफी हद तक समान है, और उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के बीच कोई आवश्यक अंतर नहीं है। जैसा कि न्यायालयों के मामले में होता है, इसलिए अधिकरणों के मामले में, यह राज्य की अंतर्निहित न्यायिक शक्ति है जिसे हस्तांतरित किया गया है और उक्त शक्ति के आधार पर, यह राज्य का अंतर्निहित न्यायिक कार्य है जिसका वे निर्वहन करते हैं। न्यायिक कार्य और न्यायिक शक्तियां एक संप्रभु राज्य की आवश्यक विशेषताओं में से एक हैं, और नीति के विचार पर, राज्य अपने न्यायिक कार्यों और शक्तियों को मुख्य रूप से संविधान द्वारा स्थापित न्यायालयों को हस्तांतरित करता है; लेकिन यह राज्य की क्षमता को, उचित उपायों द्वारा, अपनी न्यायिक शक्तियों और कार्यों का एक हिस्सा न्यायाधिकरणों को हस्तांतरित करने के लिए उन्हें विशेष मामलों और पक्षों के बीच विवादों पर निर्णय लेने का कार्य सौंपकर प्रभावित नहीं करता है। अधिकरणों और न्यायालयों में सामान्य विशेषताओं और विशिष्ट और पृथक विशेषताओं का विस्तृत वर्णन करने का प्रयास करना वास्तव में संभव या समीचीन भी नहीं है। बुनियादी और मूलभूत विशेषता जो न्यायालयों और अधिकरणों दोनों के लिए आम है, वह यह है कि वे न्यायिक कार्यों

का निर्वहन करते हैं और न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हैं जो स्वाभाविक रूप से एक संप्रभु राज्य में निहित हैं।

44. न्यायालय के अलावा किसी अन्य प्राधिकार को व्यापक रूप से भिन्न परिस्थितियों में न्यायिक शक्ति के साथ कानून द्वारा निहित किया जा सकता है, जिसे पूरी तरह से परिभाषित करने का प्रयास करना असंभव और वास्तव में अनुचित होगा। उचित बात यह है कि प्रत्येक मामले की जांच की जाए क्योंकि यह उत्पन्न होता है, और यह पता लगाने के लिए कि क्या प्राधिकरण में निहित शक्तियों को वास्तव में न्यायिक कार्यों या राज्य की न्यायिक शक्तियों के रूप में वर्णित किया जा सकता है। इस मामले के प्रयोजन के लिए, यह कहना पर्याप्त है कि उनके बीच विवाद में किसी भी मामले के संबंध में दो या दो से अधिक दावेदार पक्षों के अधिकारों को निर्णायक रूप से निर्धारित करने के लिए राज्य द्वारा सशक्त कोई भी बाहरी प्राधिकरण राज्य की न्यायिक शक्तियों के साथ निहित प्राधिकरण की कसौटी पर खरा उतरता है और अनुच्छेद 136 के अर्थ के भीतर एक न्यायाधिकरण के रूप में माना जा सकता है। अधिनिर्णय की ऐसी शक्ति का अर्थ है कि प्राधिकरण को न्यायिक रूप से कार्य करना चाहिए और विवाद का निर्धारण उसके समक्ष सामग्री पर प्रासंगिक तथ्यों का पता लगाकर और उन तथ्यों के लिए प्रासंगिक कानून के

आवेदन द्वारा करना चाहिए। ट्रिब्यूनल का यह परीक्षण संपूर्ण होने के लिए नहीं है, और यह हो सकता है कि इस परीक्षण को संतुष्ट नहीं करने वाले अन्य निकाय भी ट्रिब्यूनल हों। ट्रिब्यूनल होने के लिए, यह आवश्यक है कि अधिनिर्णय की शक्ति एक कानून या वैधानिक नियम से प्राप्त की जानी चाहिए। पक्षों के एक समझौते से अधिनिर्णय की अपनी शक्ति प्राप्त करने वाला एक प्राधिकरण या निकाय, जैसे कि एक निजी मध्यस्थ या औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 10-ए के तहत कार्य करने वाला ट्रिब्यूनल, अनुच्छेद 136 के भीतर एक न्यायाधिकरण के परीक्षण को संतुष्ट नहीं करता है। यह बहुत कम मायने रखता है कि इस तरह के निकाय या अधिकार को न्यायालय के जाल में निहित किया जाता है। मध्यस्थ अधिनियम, 1940 में एक मध्यस्थ को न्यायालय के कुछ फंदे सौंपे गए हैं, इसी प्रकार औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भी अधिनियम की धारा 10-क के अंतर्गत कार्य करने वाले प्राधिकार को ऐसे अनेक अधिकारों के साथ निहित करता है और फिर भी ऐसे निकाय और प्राधिकरण अधिकरण नहीं हैं।

45. "ट्रिब्यूनल" शब्द संविधान के अनुच्छेद 227 में भी जगह पाता है, और मुझे लगता है कि वहां भी इस शब्द का वही अर्थ है जो अनुच्छेद 136 में है।

आल पार्टी हिल लीडर्स कॉन्फ्रेंस बनाम कैप्टन डब्ल्यू संगमा के एक अन्य मामले में,

(1977) 4 एस.सी.सी. 161 में रिपोर्ट किया गया; यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

23. एक न्यायाधिकरण के आदेश के संदर्भ में अनुच्छेद 136 (1) के दायरे के रूप में इस न्यायालय का सबसे पहला निर्णय भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली बनाम भारत बैंक लिमिटेड, दिल्ली बनाम भारत बैंक लिमिटेड में विचार के लिए आया था। भारत बैंक लिमिटेड के कर्मचारी [ए.आई.आर. 1950 एस.सी. 188: (1950)1 एस.सी.आर 459: 950 लैब एलजे 21] उस मामले में यह प्रश्न उठाया गया था कि क्या औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अंतर्गत गठित औद्योगिक अधिकरण अनुच्छेद 136 के दायरे में एक अधिकरण था। बहुमत से इस न्यायालय की संविधान पीठ ने माना कि औद्योगिक न्यायाधिकरण अनुच्छेद 136 के प्रयोजन के लिए एक न्यायाधिकरण था। अनुच्छेद 136 की योजना के संबंध में, यह न्यायालय अनुच्छेद 136 के आयाम पर एक संकीर्ण व्याख्या करने के लिए तैयार नहीं था। इस न्यायालय ने रिपोर्ट के पृष्ठ 476/478 पर निम्नानुसार अवलोकन किया:

"जैसा कि लॉर्ड सैंकी, एलसी द्वारा सुरम्य भाषा में बताया गया है ऑस्ट्रेलिया की शेल कंपनी बनाम संघीय कराधान आयुक्त [1931 एसी 275], एक न्यायालय के कई अधिकारों के साथ न्यायाधिकरण हैं, जो फिर भी, न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने के सख्त अर्थों में न्यायालय नहीं हैं। मुझे ऐसा लगता है कि ऐसे अधिकरण यद्यपि पूर्ण न्यायालय नहीं हैं, फिर भी वे अर्ध-न्यायिक कार्य करते

हैं और संविधान के अनुच्छेद 136 में उल्लिखित अधिकरण शब्द के दायरे में आते हैं।

जो न्यायाधिकरण संप्रभु शक्ति से अधिकार प्राप्त नहीं करते हैं, वे अनुच्छेद 136 के दायरे में नहीं आ सकते हैं। अधिकरण को अनुच्छेद 136 के दायरे में लाने की पूर्ववर्ती शर्त यह है कि इसका गठन राज्य द्वारा किया जाना चाहिए। यदि इसे राज्य के न्यायिक कार्यों के किसी भी हिस्से के साथ निवेश नहीं किया गया है तो फिर से एक न्यायाधिकरण अनुच्छेद 136 के दायरे से बाहर होगा, लेकिन विशुद्ध रूप से प्रशासनिक या कार्यकारी कर्तव्यों का निर्वहन करता है। तथापि, अधिकरण, जो न्यायालय के कतिपय कार्यों में निवेशित पाए जाते हैं और जिनमें कुछ अधिकार वाले भी होते हैं, अनुच्छेद 136 के दायरे में आते हैं।

25. उपरोक्त निर्णयों के एक दृश्य से यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय द्वारा यह निर्धारित करने के लिए कई परीक्षण निर्धारित किए गए हैं कि क्या कोई विशेष निकाय या प्राधिकरण अनुच्छेद 136 के दायरे में एक न्यायाधिकरण है। परीक्षण सभी मामलों में संपूर्ण नहीं हैं। यह भी सुस्थापित है कि निर्धारित सभी परीक्षण किसी दिए गए मामले में उपस्थित नहीं हो सकते हैं। जबकि कुछ परीक्षण मौजूद हो सकते हैं, दूसरों की कमी हो सकती है। तथापि, यह नितांत आवश्यक है कि अधिकरण के रूप में अनुच्छेद 136(1) के दायरे में आने के लिए प्राधिकार का गठन राज्य द्वारा किया जाना चाहिए और उसे राज्य

की न्यायिक शक्ति का कुछ कार्य के साथ निवेश किया जाना चाहिए। यह विशेष परीक्षण एक अमोघ है जबकि कुछ अन्य परीक्षण एक ही समय में मौजूद हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं।

गुजरात राज्य बनाम गुजरात राजस्व न्यायाधिकरण बार एसोसिएशन के मामले में (2012) 10 एस.सी.सी. 353; यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

18. अधिकरणों का गठन मुख्य रूप से विशेष कानूनों के तहत मामलों से निपटने के लिए और इसलिए अदालतों के साथ-साथ विशेष निर्णय प्रदान करने के लिए किया गया है। इसलिए, एक विशेष अधिनियम/नियमों का संकलन यह निर्धारित करेगा कि क्या किसी विशेष न्यायाधिकरण के कार्य न्यायालयों के समान हैं, जो न्याय के बुनियादी प्रशासन के लिए प्रदान करते हैं। जहां दो प्रतिद्वंद्वी पक्षों के बीच विवाद है और उनके बीच ऐसे विवाद का निर्णय करने के लिए एक सांविधिक प्राधिकारी की आवश्यकता होती है, ऐसे प्राधिकारी को अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण कहा जा सकता है अर्थात् ऐसी स्थिति जहां, (क) किसी सांविधिक प्राधिकारी को किसी कार्य को करने के लिए किसी संविधि के अधीन सशक्त किया गया है; (ख) ऐसे प्राधिकारी के आदेश से इस विषय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा; और (सी) हालांकि कोई लिस (वाद) या दो दावेदार पक्ष नहीं हैं, और प्रतियोगिता प्राधिकरण और विषय के बीच है; और (घ) सांविधिक प्राधिकारी को कानून के तहत न्यायिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता है, उक्त प्राधिकरण का निर्णय

एक अर्ध-न्यायिक निर्णय है। एक प्राधिकरण को अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण के रूप में वर्णित किया जा सकता है जब उसके पास "न्यायालय" की कुछ विशेषताएं या अधिकार होते हैं, लेकिन सभी नहीं। यदि सी.पी.सी. या दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत कुछ शक्तियां किसी प्राधिकरण को प्रदान की गई हैं, लेकिन इसे राज्य की न्यायिक शक्तियों के साथ नहीं सौंपा गया है, तो इसे अदालत नहीं माना जा सकता है। (देखें भारत बैंक लिमिटेड बनाम कर्मचारी [ए.आई.आर. 1950 एस.सी. 188], विरिंदर कुमार सत्यवादी बनाम पंजाब राज्य [ए.आई.आर. 1956 एस.सी. 153: 1956 सी.आर.आई. एलजे 326], इंजीनियरिंग। मजदूर सभा बनाम हिंद साइकिल लिमिटेड [ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 874], एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम पीएन शर्मा [ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 1595], रामा राव बनाम नारायण [(1969) 1 एस.सी.सी. 167: ए.आई.आर. 1969 एस.सी. 724], हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम महेंद्र पाल [(1999) 4 एस.सी.सी. 43: ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 1786], केशव नारायण बनर्जी बनाम बिहार राज्य [(2000) 1 एस.सी.सी. 607: 2000 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 272], भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई) वी। समाज कल्याण संस्थान [(2002) 5 एस.सी.सी. 685: ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 2158], के शमराव बनाम सहायक। चैरिटी कॉमर। [(2003) 3 एस.सी.सी. 563], ट्रांस मेडिटेरेनियन एयरवेज वी. यूनिवर्सल एक्सपोर्ट्स [(2011) 10 एस.सी.सी. 316: (2012) 1 एस.सी.सी. (सीआईवी) 148], एस.सी.सी. पी. 338, पैरा

53 और नमित शर्मा वी. भारत संघ [(2013) 1 एस.सी.सी. 745]।

रिट याचिका संख्या-27631 (मेसर्स एस) वर्ष 2021 में पारित पैन रियल्टर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने यह भी विचार किया है कि कब किसी प्राधिकरण को निम्नलिखित तरीके से ट्रिब्यूनल कहा जा सकता है:

"16. उपर्युक्त निर्णयों सहित पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि इस मामले में यह निर्धारित करने के लिए कि क्या एक "प्राधिकरण" यानी "राज्य सरकार" एक "ट्रिब्यूनल" है या नहीं, जैसा कि इस मामले में अधिनियम वर्ष 1973 की धारा 41 (3) के तहत राज्य सरकार की शक्ति जारी है जो इस न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणियों के अनुसार पुनरीक्षण शक्ति है, मूल परीक्षण(ओं)/पैरामीटर(ओं) को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

(क) कि न्यायनिर्णयन की शक्ति किसी संविधि द्वारा संबंधित प्राधिकरण को प्रदान की जानी चाहिए।

(ख) कि ऐसी न्यायनिर्णयन शक्ति राज्य की अंतर्निहित शक्ति का भाग है जिसका प्रयोग उसके न्यायिक कार्यों के निर्वहन में किया जाता है।

(ग) कि संबंधित प्राधिकारी न्यायिक रूप से कार्य करने के लिए बाध्य है।

(द) कि 'लिस' पर 'प्राधिकरण' का निर्णय पक्षों के बीच बाध्यकारी और अंतिम है।

इस मामले में, अधिनिर्णय की शक्ति संविधि द्वारा 'राज्य सरकार' को प्रदान की जाती है, 'राज्य सरकार' न्यायिक रूप से कार्य करने के

लिए बाध्य है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन करने के लिए भी आवश्यक है, जैसा कि अधिनियम वर्ष 1973 की धारा 41 की उपधारा 3 के परंतुक से प्रकट होता है, इस उपधारा में राज्य सरकार 'राज्य सरकार' के पक्षों और निर्णय के बीच विवाद का निर्णय लेती है, जो धारा 41 की उपधारा 4 के अनुसार बाध्यकारी और अंतिम है। इस प्रकार, उपरोक्त सभी परीक्षण/पैरामीटर संतुष्ट हैं और ऐसा होने के नाते यह माना जाता है कि अधिनियम वर्ष 1973 की धारा 41 उपखंड 3 के तहत 'राज्य सरकार' एक 'ट्रिब्यूनल' है।

इस प्रकार यह देखा गया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अनुसार प्राधिकरण अधिकरण हो सकता है या नहीं, इसका प्रारंभिक पहलू यह है कि यह एक सांविधिक प्राधिकरण है जिसे न्यायिक तरीके से प्रतिवादी पक्षों के बीच विवाद का निर्णय करने के लिए राज्य द्वारा विशेष अधिनियमन और स्थापना के तहत सशक्त किया गया है लेकिन अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए क्योंकि इसे राज्य की न्यायिक शक्तियों के कुछ कार्य के साथ निहित किया गया है।

उपरोक्त पहलू पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यूटेक प्रमोटर्स एंड डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में भी विचार किया गया है, जो 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1044 में रिपोर्ट किया गया है; निम्नलिखित है:

"117. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया कि अधिनियम की धारा 81 प्राधिकरण को प्राधिकरण के किसी भी सदस्य को ऐसी शक्तियां और कार्य सौंपने की अनुमति देती है जो मुख्य

रूप से प्रशासनिक या लिपिकीय हैं, और संभवतः किसी भी मुख्य कार्य को शामिल नहीं कर सकते हैं जिन्हें प्राधिकरण द्वारा निर्वहन किया जाना है, न्यायिक कार्य गैर-प्रतिनिधि हैं, चूंकि ये प्राधिकरण के मुख्य कार्य हैं। यह दलील इस कारण से सही नहीं हो सकती है कि अधिनियम की धारा 31 के तहत शिकायतों पर निर्णय लेने में प्राधिकरण द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति अर्ध-न्यायिक प्रकृति की है जो प्रत्यायोजित है बशर्ते कि संविधि में कोई प्रावधान हो। जैसा कि पहले ही देखा गया है, अधिनियम की धारा 81 प्राधिकरण को सामान्य या विशेष आदेश द्वारा अपने किसी भी सदस्य को अपनी शक्ति और कार्यों को सौंपने का अधिकार देती है।

फैसले में बताए गए प्राधिकरण ने रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 की धारा 31 का संदर्भ प्राधिकरण या निर्णय अधिकारी के पास शिकायत दर्ज करने के संबंध में दिया है। 'प्राधिकरण' शब्द को धारा 2(i) के तहत परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ अधिनियम की धारा 20(1) के तहत स्थापित रियल एस्टेट नियामक प्राधिकरण है।

पूर्वोक्त निर्णयों के मददेनजर, विशेष रूप से न्यूटेक प्रमोटर (उपरोक्त) से यह स्पष्ट है कि प्राधिकरण इसीलिए अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है और इस प्रकार ये भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत परिकल्पित ट्रिब्यूनल की अवधि के भीतर आएगा, जिसके कारण उक्त प्राधिकरण के

खिलाफ याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत सुनवाई योग्य होगी।

उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति को अस्वीकार किया जाता है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त शिकायत मामला दायर किया था, जिस पर 22.03.2022 को निर्णय लिया गया है, जिसके बाद एक आवेदन दायर करके बिक्री के निष्पादन की आवश्यकता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि इस बीच प्राधिकरण ने स्वयं 02.09.2020 को मानक संचालन प्रक्रिया तैयार की है, जिसका पालन नहीं किया जा रहा है। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि निष्पादन आदेश इसके संदर्भ में किया जाना आवश्यक है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार करने पर, प्रतिपक्षी संख्या-1 यानी रियल एस्टेट नियामक प्राधिकरण, राज्य नियोजन संस्थान, नवीन भवन, कलाकांकर हाउस रोड, ओल्ड हैदराबाद, लखनऊ उत्तर प्रदेश को निर्देश दिया जाता है कि यदि कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है तो राज्य नियोजन संस्थान के दिनांक 02.09.2020 की मानक संचालन प्रक्रिया के संदर्भ में रियल एस्टेट नियामक प्राधिकरण द्वारा पारित शिकायत संख्या-एल.के.ओ 162/08/57523/2020, अनुपमा सिन्हा बनाम मैसर्स अंसल प्रॉपर्टीज एंड इंफ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड में दायर, दिनांक 22.03.2022 के आदेश का निष्पादन सुनिश्चित करें।

इस आदेश का लाभ केवल तभी उपलब्ध होगा जब याचिकाकर्ता आवेदन/मुकदमे के शीघ्र समापन में सहयोग करता है। पूर्वोक्त निर्देश के साथ, याचिका का निपटारा किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 70
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482

संख्या 10522/2023

मोहम्मद तल्हा एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री विजय कुमार मिश्र

अधिवक्ता विपक्षी गण: जी.ए., श्री अभिजीत मुखर्जी (राज्य विधि अधिकारी)

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 332, 336, 352, 395, 427, 435, 504, 506 और 120 बी - दंड कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 - धारा 7 - सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 - धारा 3/4 - संविधान प्रत्येक नागरिक को शांतिपूर्वक और बिना हथियारों के विरोध करने का अधिकार देता है - गैरकानूनी सभाओं को कोई अनुमति नहीं है जो अपने अधिकारों की रक्षा के लिए या अपनी बात कहने के लिए दंगा और हिंसा में लिप्त हैं - लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग

वैध तरीके से किया जाना चाहिए, ताकि समाज में व्यवस्था, जिसे संप्रभुता को हर कीमत पर बनाए रखना है, खो न जाए। (पैरा -7)

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2019, राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर3 और नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 2019 को लेकर देश में व्यापक विरोध प्रदर्शन हुए - दंगाइयों ने वर्दीधारी और नागरिक प्रशासन के अधिकारियों के अतिरिक्त आम जनता पर हमला किया - सरकारी और सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुंचाया गया - करीब चार घंटे तक यह जारी रहा - व्यवस्था और शांति पुनर्स्थापित करने के लिए अलग-अलग समय पर प्रयास किए गए - दंगाइयों को शांत होने का पर्याप्त अवसर दिया गया - दंगाइयों ने अपनी हिंसक गतिविधि जारी रखी - तब तक शांत नहीं हुए, जब तक कि सार्वजनिक संपत्ति को काफी नुकसान नहीं पहुंचा दिया गया - समाज के विभिन्न वर्गों को चोटें पहुंचीं। (पैरा-2,7)

निर्णय:- वाद संसद में पेश किए गए एक विशेष या एक से अधिक विधेयकों के विरोध के नाम पर सार्वजनिक व्यवस्था के उल्लंघन की व्यापक घटनाओं से संबंधित है। आवेदकों के विरुद्ध आरोप सत्य हो सकते हैं, लेकिन केस डायरी की सामग्री परीक्षण के अधीन है, और न्यायालय इसे संहिता की धारा 482 के तहत परीक्षण नहीं कर सकता है। न्यायालय कार्यवाही को निरस्त करने और इस अभियोजन को प्रारंभिक चरण में ही समाप्त करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत अधिकारिता का प्रयोग नहीं कर सकता है। (पैरा 7,8,9)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त किया जाता है। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

यह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत एक आवेदन है, जिसमें मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मऊ के न्यायालय में लंबित आपराधिक मामला संख्या (आर) 6205 वर्ष 2020 (कम्प्यूटरीकृत आपराधिक मामला संख्या (सी) 605/2020) राज्य बनाम आसिफ चंदन और अन्य (मुकदमा अपराध संख्या 246 वर्ष 2019 से उत्पन्न) अंतर्गत धारा 323, 332, 336, 352, 395, 427, 435, 504, 506 और 120 बी भारतीय दंड संहिता, 1860, धारा 7 आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, 1932 और धारा 3/4 सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984, थाना दक्षिण टोला, जिला मऊ, की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई है।

2. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, श्री विजय कुमार मिश्रा और उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री शशि शेखर तिवारी साथ ही विद्वान राज्य विधि अधिकारी श्री अभिजीत मुखर्जी को सुना।

3. नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019, राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर और नागरिकता (संशोधन) विधेयक, 2019 के संबंध में देशभर में व्यापक विरोध के बाद दिनांक 16.12.2019 की एक घटना के संबंध में निहार नंदन कुमार,

स्टेशन हाउस ऑफिसर, थाना दक्षिण टोला, जिला मऊ द्वारा एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। प्राथमिकी में बताया गया है कि 16.12.2019 को दोपहर ढाई बजे, बड़ी संख्या में लोग, जो 900-1000 की संख्या में थे, मिर्जाहादीपुरा में एक जगह एकत्र हुए। वे एनआरसी और सी.ए.बी. के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे थे। वे नारेबाजी कर रहे थे और मिर्जाहादीपुरा चौराहे की ओर बढ़े। उन्होंने वहां नारेबाजी की और सार्वजनिक सड़कों को बाधित कर दिया। उनमें से कुछ फिर से चौराहे की ओर बढ़े, जहां कुछ अन्य भी शामिल हो गए। इन प्रदर्शनकारियों की सभा को जिलाधिकारी, पुलिस अधीक्षक, अपर पुलिस अधीक्षक, सिटी मजिस्ट्रेट और अन्य उपस्थित प्रशासनिक अधिकारियों ने संबोधित किया, लेकिन भीड़, जिसे दंगाइयों के रूप में वर्णित किया गया है, सुनने के लिए तैयार नहीं थी। मस्जिदों के इमामों एवं अन्य पुलिस अधिकारियों सहित जनपद मऊ के अन्य सम्मानित नागरिकों द्वारा भी प्रयास किये गये, परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। प्राथमिकी के अनुसार, इस गैरकानूनी सभा के आक्रामक सदस्यों ने मुख्यमंत्री, प्रधान मंत्री, पुलिस अधीक्षक और अन्य प्रशासनिक अधिकारियों को गालियां दी। उन्होंने गैरकानूनी सभा के सदस्यों को पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों को मौत के घाट उतारने के लिए उकसाया। इस समय, गैरकानूनी सभा के सदस्य हिंसक हो गए और हत्या के इरादे से पुलिस, प्रशासनिक अधिकारियों और जनता के अन्य सदस्यों पर हमला किया। उन्होंने पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों पर जान से मारने की नियत से ईट-पत्थर फेंके और नाजायज हथियारों से

फायरिंग की। उन्होंने पेट्रोल बम भी फेंके। बताया गया है कि इस दौरान कुछ गोलीबारी भी की गई, छतों से अवैध हथियारों का इस्तेमाल किया गया और ईट-पत्थर भी फेंके गए। हिंसा की इन सभी कार्रवाइयों के कारण सार्वजनिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। आस-पड़ोस के दुकानदारों ने अपने शटर नीचे गिरा दिए और पत्रकारों समेत राहगीर भी अपनी मोटरसाइकिलें और वाहन छोड़कर भाग निकले। इस समय दंगाइयों, जिनकी संख्या लगभग 600-700 बताई जाती है, को किसी भी तरह से नियंत्रित नहीं किया जा सका। जिलाधिकारी के आदेश पर विधि विरुद्ध जमाव के सदस्यों को लाउड-स्पीकर पर 10-15 मिनट तक चेतावनी दी गयी। हालाँकि, जब व्यवस्था बहाल करने में कोई मदद नहीं मिली तो पुलिस ने हल्का लाठीचार्ज किया। इस स्तर पर, दंगाई, बम, ईट-पत्थर फेंकते हुए और अपने अवैध हथियारों से गोलियाँ चलाते हुए विभिन्न मार्गों से भाग निकले। उन्होंने सरकारी चार पहिया वाहनों के अलावा जनता और पुलिस बल के सदस्यों की दर्जनों मोटरसाइकिलों को आग लगा दी। ये बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गए। अंततः जिलाधिकारी के आदेश के तहत, अभी भी जारी दंगों को नियंत्रित करने के लिए मिर्ची बमों के अलावा लगभग 50 की संख्या में आंसू गैस के गोले छोड़े गए। इसके बाद सभी उपद्रवी रामपुर चकिया की ओर भाग निकले। यह हिंसा शाम 06:30 बजे तक जारी रही थी। प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है कि जो दंगाई पुलिस बल पर हमला कर रहे थे और भड़काऊ कृत्य कर रहे थे, उनकी पहचान वहां मौजूद पुलिस कर्मियों

ने की थी। पहचाने गए लोगों का नाम प्राथमिकी में दर्ज किया गया है।

4. पुलिस ने जांच के बाद 44 नामजद आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया, जबकि अन्य 55 फरार बताए जा रहे हैं। जिन आवेदकों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है, उनका नाम प्राथमिकी में है।

5. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि इस मामले में शिकायतकर्ता थाना दक्षिण टोला के स्टेशन हाउस ऑफिसर है, जबकि उनके कई अधीनस्थ, बाद में जांच के लिए गठित टीमों में शामिल हैं, जो परिणामी आरोपपत्र को भ्रष्ट करता है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जिन गवाहों ने दंगों के विभिन्न वीडियो-क्लिप देखे हैं, जो हिंसा के दौरान बनाए गए थे, उनमें से किसी ने भी आवेदकों की पहचान नहीं की है। आवेदक छात्र हैं, जिन्हें भीड़ की हिंसा के मामले में, जो जघन्य अपराधों को जन्म देता है जिसके परिणामस्वरूप आरोप लगाए जाएंगे, शामिल किए जाने के बजाय कुछ उदारता दिखाई जानी चाहिए। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदकों को पहले ही जमानत की छूट दी जा चुकी है, जो उनकी संदिग्ध संलिप्तता को दर्शाता है।

6. सहायक विद्वान शासकीय अधिवक्ता, श्री शशि शेखर तिवारी द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्राथमिकी में जो अभियोजन मामला बताया गया है, उसमें अपराध का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन है, जहां, शुरु में, 900-1000 लोगों को गैरकानूनी सभा का हिस्सा बताया

गया है, जिन्होंने यह सारी हिंसा की और बाद में, उन्हें 600-700 के आंकड़े तक कम कर दिया गया है। गहन जांच के बाद, घटना के अगले दिन दर्ज की गई प्राथमिकी में इस भीड़ में से 85 नामजद आरोपियों के अलावा 600 अज्ञात अपराधियों के बारे में बताया गया है। श्री तिवारी द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक 600-700 व्यक्तियों की भीड़ में से 85 नामित आरोपियों में से हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें बिना पहचान के फंसाया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि ऐसा नहीं है कि आवेदकों की पहचान पुलिस द्वारा ही की गई है, बल्कि उनकी पहचान स्वतंत्र गवाहों द्वारा भी की गई है, जिनकी संख्या 20 से अधिक है। इस प्रकार, श्री तिवारी के निवेदन में, आवेदकों की संलिप्तता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि ऐसे वीडियो-क्लिप हैं जो केस डायरी का हिस्सा हैं, जहां उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन की पूरी घटनाओं को कैद किया गया है, जो आवेदकों की पहचान के बारे में किसी भी संदेह को विवाद से परे साबित कर देगा।

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता को सुनने के बाद, इस न्यायालय की राय है कि वर्तमान मामला संसद में पेश किए गए एक विशेष या एक से अधिक विधेयकों के विरोध के नाम पर सार्वजनिक व्यवस्था के उल्लंघन की व्यापक घटनाओं से संबंधित है। संविधान प्रत्येक नागरिक को शांतिपूर्वक और बिना हथियारों के विरोध करने का अधिकार देता है। अपने अधिकारों को साबित करने या अपनी

बात व्यक्त करने के साधन के रूप में दंगे और हिंसा करने वाली गैरकानूनी सभाओं को कोई मंजूरी नहीं है। ऐसा नहीं है कि लोकतंत्र और संप्रभुता दोराहे पर हैं। बात केवल इतनी है कि लोकतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग वैध तरीके से किया जाना चाहिए, ताकि समाज में व्यवस्था, जिसे संप्रभुता को हर कीमत पर बनाए रखना है, नष्ट न हो। यहां, केस डायरी में एकत्र की गई सामग्री से पता चलता है कि बड़े पैमाने पर दंगे हुए थे, जहां जनता के सदस्यों के अलावा, वर्दीधारी और नागरिक प्रशासन दोनों के सार्वजनिक अधिकारियों पर हमला हुआ था। सरकार और जनता दोनों की संपत्ति का भी विनाश हुआ। जिस प्रकरण में यह सब हुआ वह क्षणिक नहीं था। यह लगभग चार घंटे तक जारी रहा, जिसके दौरान, अगर प्राथमिकी संस्करण को स्वीकार किया जाए, तो व्यवस्था और शांति बहाल करने के लिए अलग-अलग समय पर प्रयास किए गए। दंगाइयों को तरीका बदलने के लिए मनाने के लिए अपराध से विमुख होने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया। दंगाई अपने हिंसक आचरण पर कायम रहे और तब तक पीछे नहीं हटे, जब तक कि सार्वजनिक संपत्ति को काफी नुकसान नहीं पहुंचा दिया गया और समाज के विभिन्न वर्गों को चोट नहीं पहुंचा दी गई।

8. इस न्यायालय का कहने का मतलब यह नहीं है कि आवेदकों के खिलाफ आरोप सही हैं। केस डायरी में ऐसी सामग्रियां हैं, जो संकेत देती हैं कि ये सच हो सकते हैं। यह सब परीक्षण में विचार किया जाने वाला विषय है। केस डायरी में जिस प्रकार की सामग्री है वह ऐसी नहीं है जिसका परीक्षण संहिता की धारा

482 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय कर सके।

9. इन परिस्थितियों में, यह न्यायालय वर्तमान मामले को ऐसा नहीं मानता है जहां हमें कार्यवाही को रद्द करने और इस अभियोजन को शुरू में ही रोकने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करना चाहिए।

10. परिणाम में, यह आवेदन विफल हो जाता है और परिणामस्वरूप, अस्वीकार कर दिया जाता है।

(2023) 4 ILRA 74
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,

आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482

संख्या 11914 / 2022

मान सिंह .. आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री शिव सागर सिंह

अधिवक्ता विपक्षी गण: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1981 - धारा 138, धारा 138 का प्रावधान (सी) - एनआई अधिनियम धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज करने से पूर्व - चेक के निर्माता को नोटिस देकर धारा 138 को लागू करने की पूर्व शर्त है,

जो एक अनिवार्य आवश्यकता है - एक बार जब शिकायत में कहा जाता है कि चेक निर्माता के पते पर पंजीकृत डाक से नोटिस भेज दिया गया है, तो अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत का संज्ञान लेने के समय - साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 सपठित सामान्य खंड अधिनियम की धारा 27 के अनुसार उचित सेवा मान ली जानी चाहिए, न्यायालय को केवल प्रथम दृष्टया यह संतुष्ट होना है कि उक्त धारा के तहत मामला बनाया गया है और अनिवार्य आवश्यकता का अनुपालन किया गया है। (पैरा 10,11)

(बी) सामान्य खंड अधिनियम, 1897 धारा 27 डाक द्वारा तामील का अर्थ - नोटिस की तामील तब प्रभावी होती है जब इसे पंजीकृत डाक द्वारा सही पते पर भेज दिया जाता है। (पैरा 10)

(सी) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 114 - जब कोई नोटिस पंजीकृत डाक द्वारा भेजा जाता है और डाक पृष्ठांकन के साथ वापस आ जाता है, जिसमें अस्वीकार कर दिया जाता है या घर में डाक उपलब्ध नहीं है या घर बंद है या दुकान बंद है या पताकर्ता स्टेशन पर नहीं है, तो उचित सेवा की परिकल्पना की जाती है। (पैरा 10)

आरोपी द्वारा कानूनी ऋण चुकाने के लिए जारी किया गया - चेक बिना भुगतान के वापस आ गया - अनादरित हुआ - पंजीकृत डाक से भेजा गया कानूनी नोटिस टाला गया - वादी ने परिवाद दर्ज की - विचारणीय न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय माना गया - दिनांक 07.07.2018 और

27.07.2018 का नोटिस विवादित चेक के अनादर के 30 दिनों के भीतर जारी किया गया माना जाएगा। (पैरा -3,12)

आयोजित:- विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है। (पैरा-13)

याचिका निरस्त (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

सी.सी. अलवी हाजी बनाम पालापेट्टी मुहम्मद एवं अन्य, (2007) 6 एससीसी 555

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री शिव सागर सिंह के साथ-साथ राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. प्रतिवादी संख्या-2 के नोटिस को निस्तारित किया जाता है।

3. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने पीठासीन अधिकारी, अतिरिक्त न्यायालय, सहारनपुर द्वारा शिकायत मामला संख्या-877 वर्ष 2018 (प्रवीण सिंह बनाम मान सिंह) में एन.आई. अधिनियम की धारा 138, थाना-सदर बाजार, जिला सहारनपुर के तहत पारित दिनांक 11.10.2021 के आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को दिनांक 28.03.2018 के कथित चेक के अमान्य किए जाने के संबंध में धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत अपराध के लिए

मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया है।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि कानूनी वसूली योग्य ऋण या देयता का निर्वहन करने के लिए शिकायतकर्ता के पक्ष में आरोपी द्वारा दिनांक 28.03.2018 को 1,00,000/- रुपये का चेक नंबर 004565 जारी किया गया था। शिकायतकर्ता द्वारा अपने बैंक खाता नंबर 3463556822, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, नवीन नगर, सहारनपुर में चेक को भुनाने के लिए प्रस्तुत किया गया था। चेक को बैंक की टिप्पणी के साथ वापस लौटा दिया गया था कि आहर्ता द्वारा भुगतान रोक दिया गया था। शिकायतकर्ता द्वारा अपने खाते में भुनाने के लिए चेक को फिर से अपने बैंक में प्रस्तुत किया गया था, हालांकि, 25.06.2018 को फिर से चेक को अस्वीकार कर दिया गया था और शिकायतकर्ता को चेक के गैर अदायगी के बारे में जानकारी 28.06.2018 को प्राप्त हुई थी। बैंक के ज्ञापन के अनुसार आहर्ता द्वारा भुगतान पुन रोक दिया गया । इस प्रकार शिकायतकर्ता ने दिनांक 07.07.2018 को आरोपी को पंजीकृत डाक के माध्यम से उसके आवासीय पते पर एक कानूनी नोटिस जारी किया, जिसे आरोपी द्वारा डाक कर्मचारियों के साथ मिलीभगत से इस बात का उल्लेख करते हुए टाल दिया गया कि आरोपी इस पते पर नहीं रहता है। शिकायतकर्ता द्वारा पंजीकृत डाक के माध्यम से 27.07.2018 को दूसरा नोटिस भेजा गया था जिसे आरोपी द्वारा भी वापस कर दिया गया था और शिकायतकर्ता द्वारा 01.08.2018 को प्राप्त किया गया था और फिर 20.08.2018 को शिकायत द्वारा

निचली अदालत के समक्ष शिकायत दर्ज की गई थी।

5. इससे पहले एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत मामले में, दिनांक 17.1.2019 के आदेश के तहत, विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी को तलब किया। उस आदेश के खिलाफ, आरोपी ने एक आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-143/2019 "मान सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य" दायर किया, जिसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-6, सहारनपुर द्वारा दिनांक 19.10.2019 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई और दिनांक 17.01.2019 के आदेश को रद्द कर दिया गया। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का प्रासंगिक हिस्सा नीचे दिया गया है:

निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह था कि चेक अनादृत होने की मैमो दिनांकित 26.5.6.2018 की है तथा कथित नोटिस दिनांकित 27.07.2018 को दिया गया है। इस प्रकार उक्त नोटिस 30 दिन के अन्दर नहीं दिया गया है। आक्षेपित आदेश दिनांकित 17.01.2019 के अवलोकन से स्पष्ट है कि उसमें विद्वान अवर न्यायालय द्वारा नोटिस दिये जाने की तिथि / अवधि के आंकलन करने हेतु अपने आदेश में चैक अनादृत होने की सूचना की तिथियां 14.05.2018 व 25.06.2018 दर्शित की गयी है। यदि बाद वाली तिथि 25.06.2018 से दिनों की गणना की जाये तो जो

नोटिस दिनांक 27.07.2018 को प्रेषित किया गया वह 30 दिन के बाद का है। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा इस सम्बन्ध में अपने आदेश में कोई विवेचना नहीं की गयी है कि 30 दिन पश्चात् नोटिस भेजे जाने पर भी परिवाद किस कारण से पोषणीय है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि परिवाद में परिवादी द्वारा चैक अनादृत होने की सूचना दिनांक 28.06.2018 को प्राप्त होना कथित किया है और इसके बाद एक नोटिस दिनांक 7.7.2018 को भी प्रेषित किया जाना कथित किया है। जिसके सम्बन्ध में पत्रावली पर रजिस्ट्री रसीद भी दाखिल है। उक्त दोनों तथ्यों की भी बिबेचना विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अपने आदेश में नहीं की गयी है, जो इस सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने में महत्वपूर्ण हो सकती थी कि वास्तव में परिवादी द्वारा प्रेषित नोटिस समय सीमा के अन्दर है या नहीं। इस प्रकार उक्त परिस्थितियों में विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश पूर्णतया तथ्यों एवं साक्ष्यों पर आधारित नहीं है। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अपने में निहित क्षेत्राधिकार का पूर्णतः प्रयोग करने में लोप किया गया है। अतः उक्त आदेश यथावत् बने रहने योग्य नहीं है। निगरानी स्वीकार किये जाने योग्य है।

आदेश

प्रस्तुत फौजदारी निगरानी स्वीकार की जाती है। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 17.01.2019 निरस्त किया जाता है। विद्वान अवर न्यायालय को निरदेशित किया जाता है कि वह उपर की गयी विवेचना के आधार पर यथोचित नवीन आदेश पारित करना सुनिश्चित करें। पत्रावली अग्रिम कार्यवाही हेतु विद्वान अवर न्यायालय प्रेषित की जाये। पत्रावली दिनांक 13.11.2019 को विद्वान अवर न्यायालय के समक्ष पेश हो परिवादी दिनांक 13.11.2019 को विद्वान अवर न्यायालय में उपस्थित हो।

6. रिमांड पर तलब करने के आदेश के लिए मामले की फिर से सुनवाई हुई। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के अनुपालन में, विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी को तलब करते हुए दिनांक 11.10.2022 को आक्षेपित आदेश पारित किया है। आदेश का प्रासंगिक उद्धरण नीचे दिया गया है: -

"शिकायत के समर्थन में, शिकायतकर्ता ने एक हलफनामा दायर किया है जिसमें उसने अपनी शिकायत के कथनों को दोहराया है। उपरोक्त प्रारंभिक साक्ष्य के अलावा, शिकायतकर्ता ने निम्नलिखित दस्तावेजों को भी रिकॉर्ड पर दायर किया है---

1- शिकायतकर्ता के पक्ष में 100,000/ रुपये की राशि के लिए 28-3-2018 को

चेक संख्या-004565

2- बैंक ज्ञापन दिनांक 14-5-2018 जिसमें चेक के अमान्य किए जाने का कारण "आहरकर्ता द्वारा

भुगतान रोका गया" के रूप में दर्शाया गया है।

3. बैंक ज्ञापन दिनांक 25-6-2018 चेक के अमान्य किए जाने का कारण "आहरकर्ता द्वारा भुगतान रोका" के रूप में दर्शाया गया है।

4. 27-7-2018 के रूप में तारीख वाले कानूनी नोटिस की प्रति।

5. पंजीकृत डाक रसीद दिनांक 07-7-2018 और

6. पंजीकृत डाक रसीद दिनांक 27-7-2018

7. आरोपी के खिलाफ उसके आवासीय पते पर जारी किया गया पंजीकृत डाक लिफाफा और बिना सुपुर्द किए लौटा दिया गया लिफाफा, जिस पर डाकिया दिनांक 09-7-2018 का पृष्ठांकन था।

8. आरोपी के विरुद्ध पदस्थापना के स्थान पर जारी पंजीकृत डाक लिफाफा दिनांक 01-08-2018 को डाकिया पृष्ठांकन के बिना लौटा दिया गया।

शिकायतकर्ता ने न केवल अपनी शिकायत में बल्कि अपने हलफनामे में भी विशेष रूप से उल्लेख किया है कि अंत में उसने अपने बैंकर के समक्ष नकदीकरण के लिए विवादित चेक प्रस्तुत किया था, लेकिन इसे एक बार फिर से अस्वीकार कर दिया गया और उसे 28-6-2018 को ऐसी जानकारी मिल सकी। इस तथ्य की सत्यता का पता साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद ही लगाया जा सकता है। अतः अभियुक्त के विरुद्ध उसके आवासीय पते पर दिनांक 07-07-2018 को जारी और फिर दिनांक 27-7-

2018 को उसकी तैनाती के स्थान पर जारी किए गए नोटिस को विवादित चेक बाउंस की सूचना प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर जारी किया गया माना जाएगा।

इसलिए इस स्तर पर शिकायतकर्ता आरोपी के खिलाफ एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के सभी अवयवों को साबित करने में सफल होता है।

इसलिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और पूर्वोक्त दस्तावेजों के तहत शिकायतकर्ता के प्रारंभिक साक्ष्य के आधार पर, इस स्तर पर शिकायतकर्ता प्रथम दृष्टया एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के आवश्यक अवयवों को स्थापित करने में सफल रहा है: -

1. विवादित चेक आरोपी द्वारा अपने कानूनी रूप से लागू ऋण या देयता का निर्वहन करने के लिए जारी किया गया था।
2. शिकायतकर्ता द्वारा चेक को उसकी वैधता अवधि के भीतर भुनाने के लिए प्रस्तुत किया गया था।
3. चेक को इस कारण से अस्वीकार कर दिया गया था कि "आहर्ता द्वारा भुगतान रोक दिया गया था।
4. चेक के अमान्य किए जाने के बारे में सूचित किए जाने के बाद, शिकायतकर्ता को 30 दिनों के भीतर अपने अधिवक्ता के माध्यम से पंजीकृत डाक के माध्यम से कानूनी नोटिस जारी किया गया।
5. इस तरह के नोटिस की तमीला के बावजूद आरोपी नोटिस प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर चेक राशि का भुगतान करने में विफल रहा, 6 इसके बाद एन.आई. अधिनियम की

धारा 142 (1)(बी) के तहत निर्धारित समय के भीतर वर्तमान शिकायत दर्ज की गई है।

इसलिए इस स्तर पर शिकायतकर्ता प्रतीत होता है; अभियुक्त के खिलाफ परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के सभी कानूनी अवयवों को साबित करने में सफल। इसलिए इस स्तर पर एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है। इसलिए आरोपी मान सिंह को निगोशिएबल इंस्ट्रुमेंट्स एक्ट की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाना उचित और उचित प्रतीत होता है।

आदेश

1. आरोपी मान सिंह को परक्राम्य लिखत अधिनियम 1881 की धारा 138 के तहत दंडनीय अपराध के लिए 07-01-2022 के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाए।
2. सम्मन की तामील के लिए निम्नलिखित तरीकों से 3 दिनों के भीतर कदम उठाए जाएं:-
 - (i) सामान्य प्रक्रिया के माध्यम से।
 - (ii) एडी के साथ पंजीकृत डाक के माध्यम से।
 - (iii) कूरियर सेवा के माध्यम से।
 - (iv) यदि संभव हो तो ई-मेल के माध्यम से।
3. शिकायत की प्रतियां और गवाहों की सूची तीन दिनों के भीतर दायर की जाए।
4. डाक और कूरियर सेवा रसीदों के साथ अनुपालन रिपोर्ट निर्धारित तिथि तक या उससे पहले सकारात्मक रूप से दायर की जानी चाहिए।
7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि चेक 26.06.2018 को अनादरित किया गया था और कथित नोटिस 27.07.2018 को

लगभग 30 दिनों के बाद दिया गया था और इस प्रकार, 30 दिनों के भीतर नोटिस नहीं दिया गया है जैसा कि परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत अनिवार्य है। उन्होंने आगे कहा कि शिकायत में शिकायतकर्ता द्वारा यह उल्लेख किया गया है कि चेक के अमान्य किए जाने के बारे में जानकारी 28.06.2018 को दी गई थी और बाद में आरोपी को 07.07.2018 को नोटिस भेजा गया था। वह आगे प्रस्तुत करता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने 17.01.2019 को सम्मन आदेश आदेश पारित करते समय इस तथ्य पर चर्चा नहीं की है कि क्या शिकायतकर्ता द्वारा भेजा गया नोटिस समय के भीतर था और शिकायत 30 दिनों के बाद बनाए रखने योग्य हो सकती है और इसलिए, इन आधारों पर विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने आदेश दिनांक 19.10.2019 के माध्यम से मामले को विचारण न्यायालय को भेज दिया है।

8. रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि शिकायतकर्ता के पक्ष में जारी 1,00,000/- रुपये की राशि के चेक संख्या-004565 दिनांक 28.03.2018 को शिकायतकर्ता के पास दायर बैंक मेमो के अनुसार 14.05.2018 को अस्वीकृत कर दिया गया था क्योंकि भुगतान आहर्ता द्वारा रोक दिया गया था। पुनः जब बैंक में दूसरी बार चेक प्रस्तुत किया गया तो उसे पुनः अस्वीकृत कर दिया गया और कारण बताते हुए अस्वीकृत कर दिया गया क्योंकि आहर्ता द्वारा भुगतान रोक दिया गया था। शिकायत के पैरा-7 में किए गए कथन के अनुसार, शिकायतकर्ता को 28.06.2018 को चेक के इस तरह के अमान्य किए जाने के

बारे में जानकारी मिली थी और परिणामस्वरूप आरोपी के पते पर दिनांक 07.07.2018 को पंजीकृत कानूनी नोटिस भेजा गया था। दिनांक 07.07.2018 की सूचना की डाक रसीद रिकॉर्ड में है। इसके बाद फिर से डाक रसीद के साथ दिनांक 27.07.2018 को एक नोटिस भेजा गया जो रिकॉर्ड में भी है। आरोपी के पते पर कानूनी नोटिस के साथ जारी किए गए दोनों लिफाफे डाकिए दिनांक 09.07.2018 और 01.08.2018 के पृष्ठांकन के साथ वापस नहीं लौटाए गए। शिकायतकर्ता ने अपनी शिकायत के पैरा-6 में स्पष्ट रूप से दलील दी है कि उसे 28.06.2018 को चेक के अमान्य किए जाने के बारे में जानकारी मिली थी कि उसके सही आवासीय पते पर 07.07.2018 को एक पंजीकृत नोटिस भेजा गया था। फिर से उनके आधिकारिक पते पर 27.07.2018 को दूसरा कानूनी नोटिस भेजा गया। दोनों नोटिस पृष्ठांकन के साथ वापस कर दिए गए।

9. धारा 138 एन.आई. अधिनियम का परंतुक (सी) अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज करने से पहले चेक के आहर्ता को नोटिस देकर धारा 138 को लागू करने के लिए एक पूर्व शर्त होने के नाते, जो एक अनिवार्य आवश्यकता है, इस मामले में शिकायतकर्ता द्वारा पूरी की गई प्रतीत होती है। याचिकाकर्ता का तर्क है कि उसे 07.07.2018 को कोई नोटिस नहीं दिया गया है और चेक के अमान्य किए जाने की तारीख के 30 दिनों के बाद केवल 27.07.2018 को नोटिस दिया गया है, और दूसरी बार यानी 25.06.2018 को गलत है क्योंकि शिकायत में चेक के अमान्य किए जाने को दर्शाने वाला

बैंक मेमो दिनांक 25.06.2018 संलग्न है। शिकायत के पैरा-7 में शिकायतकर्ता की स्पष्ट दलील के साथ और यह भी दलील दी गई है कि 07.07.2018 को आरोपी के आवासीय पते पर पंजीकृत नोटिस भेजा गया था जिसे पृष्ठांकन के साथ वापस कर दिया गया था और उसके बाद फिर से आरोपी के आधिकारिक पते पर दिनांक 27.07.2018 को एक पंजीकृत नोटिस भेजा गया था जिसे फिर से पृष्ठांकन के साथ वापस कर दिया गया था और 01.08.2018 को प्राप्त किया गया था, इसलिए, 07.07.2018 के साथ-साथ 27.07.2018 को जारी किए गए नोटिस को चेक के अमान्य किए जाने की सूचना प्राप्त होने के तीस दिनों के भीतर जारी किया गया माना गया था।

10. संज्ञान लेने के चरण में केवल प्रथम दृष्टया मामले को देखा जाना चाहिए। चेक के आहर्ता को नोटिस जारी करने के तरीके के बारे में बुनियादी तथ्यों को शिकायत में बताया गया है। एक बार शिकायत में यह कहा गया है कि पंजीकृत डाक द्वारा आहर्ता के पते पर नोटिस भेजा गया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के साथ पठित सामान्य खंड अधिनियम की धारा 27 के मद्देनजर देय सेवा को माना जाना चाहिए।

(2007) 6 एस.सी.सी. 555 में रिपोर्ट किए गए "सी.सी. अलवी हाजी बनाम पलापेटी मुहम्मद और अन्य" के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार इस स्तर पर किसी और कथन की आवश्यकता नहीं है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा-14 और 15 नीचे दिए गए हैं: -

"14. धारा 27 एक धारणा को जन्म देती है कि नोटिस की तामील तब की गई है जब इसे पंजीकृत डाक द्वारा सही पते पर भेजा जाता है। उक्त अनुमान को ध्यान में रखते हुए, जब यह कहते हुए कि एक नोटिस की तामील तब की गई है जब इसे भेजा गया है या यह माना जाता है कि प्राप्तकर्ता को नोटिस का ज्ञान है। जब तक और जब तक अभिभाषक द्वारा इसके विपरीत साबित नहीं किया जाता है, तब तक नोटिस की तामील उस समय से प्रभावी मानी जाती है जिस समय पत्र को व्यवसाय के सामान्य क्रम में उद्घोषित किया गया होगा। यह न्यायालय पहले ही कह चुका है कि जब कोई नोटिस पंजीकृत डाक द्वारा भेजा जाता है और डाक पृष्ठांकन के साथ लौटाया जाता है "अस्वीकृत" या "घर में उपलब्ध नहीं" या "घर बंद है" या "दुकान बंद है" या "स्टेशन में नहीं पता", तो उचित सेवा का अनुमान लगाया जाना चाहिए। (जगदीश सिंह बनाम नत्थू सिंह [(1992) 1 एस.सी.सी. 647: ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 1604] ; म.प्र. राज्य वी. हीरालाल [(1996) 7 एस.सी.सी. 523] और वी. राजा कुमारी बनाम पी. सुब्बारामा नायडू [(2004) 8 एस.सी.सी. 774: 2005 एस.सी.सी. (सीआरआई) 393]। इसलिए, यह प्रकट होता है कि अधिनियम की धारा 27 के तहत उपलब्ध अनुमान के मद्देनजर, अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत में यह कहना आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त द्वारा नोटिस की तामील से बचा गया था या नोटिस की वापसी में अभियुक्त की भूमिका थी।

15. जहां तक अधिनियम की धारा 138 के परंतुक (ख) के संदर्भ में नोटिस जारी करने के

संबंध में आवश्यक विवरणों के प्रकटीकरण के प्रश्न का संबंध है, ताकि न्यायालय को जी.सी अधिनियम की धारा 27 या साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत अनुमान या निष्कर्ष निकालने में सक्षम बनाया जा सके। दोनों प्रावधानों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। इसलिए, हमारी राय में, जब चेक के आहर्ता को सही ढंग से संबोधित करके पंजीकृत डाक द्वारा नोटिस भेजा जाता है, तो अधिनियम की धारा 138 के परंतुक के खंड (बी) के संदर्भ में नोटिस जारी करने की अनिवार्य आवश्यकता का अनुपालन किया जाता है। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि शिकायत में चेक के आहर्ता को नोटिस जारी करने के तरीके और तरीके के बारे में बुनियादी तथ्य होने चाहिए। यह अच्छी तरह से तय है कि अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत का संज्ञान लेते समय, अदालत को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना आवश्यक है कि उक्त धारा के तहत एक मामला बनाया गया है और उपरोक्त अनिवार्य वैधानिक प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया है। इसके बाद आहर्ता के लिए नोटिस की तामील के बारे में अनुमान का खंडन करना और यह दिखाना है कि उसे कोई जानकारी नहीं थी कि नोटिस उसके पते पर लाया गया था या कवर पर उल्लिखित पता गलत था या पत्र कभी निविदा नहीं किया गया था या डाकिया की रिपोर्ट गलत थी। हमारी राय में, प्रावधान की यह व्याख्या उस उद्देश्य को प्रभावित करेगी जिसके लिए धारा 138 के परंतुक को अधिनियमित

किया गया था, अर्थात्, चेक के ईमानदार आहर्ता को अनावश्यक कठिनाई से बचने और उसे संशोधन करने का अवसर प्रदान करने के लिए।

11. नोटिस का उद्देश्य आहर्ता को नोटिस प्राप्त होने की तारीख से 15 दिनों के भीतर चेक राशि का भुगतान करने का अवसर देना है ताकि परक्राम्य लिखित अधिनियम की धारा 138 के तहत अभियोजन से मुक्त किया जा सके। इस संबंध में कानून सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किया गया है कि अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत का संज्ञान लेते समय, न्यायालय को केवल प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना है कि उक्त धारा के तहत एक मामला बनाया गया है और अनिवार्य आवश्यकता का अनुपालन किया गया है। आहर्ता को परीक्षण के उचित चरण में नोटिस की तामील के बारे में उक्त अनुमान का खंडन करने का अवसर मिलेगा।

12. इस तथ्य का अवलोकन करते हुए, विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते हुए कहा है कि दिनांक 07.07.2018 और 27.07.2018 के नोटिस को विवादित चेक के अमान्य किए जाने के 30 दिनों के भीतर जारी किया गया माना जाएगा।

13. विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई दुर्बलता नहीं है। याचिका में योग्यता नहीं है, अतः इसे तदनुसार खारिज किया जाता है। कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश को विद्वान विचारण न्यायालय प्रेषित करे।

(2023) 4 ILRA 79

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482

संख्या 13185/2019

जानकी शरण त्रिवेदी @ अमन और अन्य

.....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री वीरेन्द्र सिंह, श्री
हरिकांत शुक्ल, श्री वीरेन्द्र सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 420, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3/4 - वैवाहिक विवाद के दौरान सामान्य रूप से गलत निहितार्थ और लगाए गए आरोपों को यदि अनियंत्रित छोड़ दिया जाए तो इससे कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा - न्यायालयों को पति के रिश्तेदारों और ससुराल वालों के विरुद्ध कार्यवाही करने से आगाह किया गया है, यदि उनके खिलाफ प्रथम दृष्टया कोई वाद स्थापित नहीं होता है। (पैरा-17)

आवेदक संख्या 4 और 5 ने समारोह में भाग लिया - विवाह की व्यवस्था करने में कोई भूमिका नहीं थी - परिवार के सदस्यों को साथ जाने के लिए बाध्य किया गया था - अपने भाई और माता-पिता के साथ संबंधित समारोहों

में भाग लिया - उनके विरुद्ध सामान्य और सर्वव्यापी आरोप - कोई विशेष आरोप नहीं - आवेदकों ने दहेज की मांग के कारण विवाह करने से इनकार कर दिया - एफआईआर दर्ज की गई - एफआईआर को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई - आवेदकों की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी गई - आरोप पत्र - आवेदकों के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया गया - जिसे रद्द कर दिया गया। (पैरा 3,4)

निर्णय:- धारा 420 आई.पी.सी. या धारा 34 डी.पी. एक्ट के तहत प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है। आवेदक संख्या 4 और 5 के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग और दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है। आवेदक संख्या 4 और 5 के संबंध में पूरी आपराधिक कार्यवाही निरस्त की जाती है। (पैरा - 8, 22)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. कुमारी पूजा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, सीआरएल विविध रिट याचिका संख्या 14500/2008
2. श्रीमती मिथिलेश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, सीआरएल विविध रिट याचिका संख्या 14929/2008
3. कहकशां कौसर @ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 117

4.इला जानकी शरण त्रिवेदी @अमन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 105

4. ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2014) 2 एससीसी 1 (माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

5. एस.ए.एफ. मानव अधिकार एवं अन्य बनाम विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत संघ एवं अन्य, (2018) 10 एससीसी 443

6. राजेश शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2018) 10 एससीसी 472

7. अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2014) 8 एससीसी 273

8. प्रीति गुप्ता एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, (2010) 7 एससीसी 667

9. गीता मेहरोत्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2012) 10 एससीसी 741

10. के. सुब्बा राव बनाम तेलंगाना राज्य, (2018) 14 एससीसी 452

11. पवन कुमार भालोटिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2005 सी.आर.एल.जे. 1810 (एस.सी.)

12. प्रेमलता बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1991 एससी 69

13. कहकशां कौसर @ सोनम बनाम बिहार राज्य, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 117

14. गीता मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2012 (10) एडीजे 464

1. आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री वीरेंद्र सिंह की ओर से वकालत कर रहे अधिवक्ता श्री हरिकांत शुक्ला, और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना और पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. पत्रावली के अवलोकन से पता चलता है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 को व्यक्तिगत रूप से तामीला की गई है, लेकिन वह इस आवेदन का विरोध करने के लिए आगे नहीं आए हैं, और न ही विपक्षी पक्ष संख्या 2 और न ही राज्य ने कोई आपत्ति/प्रति शपथ पत्र दायर किया है।

3. यह आवेदन अंतर्गत धारा 482, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, महोबा के न्यायालय में लंबित मुकदमा अपराध संख्या 2460 वर्ष 2008 अंतर्गत धारा 420 भारतीय दण्ड संहिता एवम् धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम, थाना कोतवाली महोबा, जिला महोबा से उत्पन्न वाद संख्या 2119 वर्ष 2008 (सीएनआर संख्या यूपीएमबी040002302008, राज्य बनाम जानकी शरण और अन्य) के मामले में कार्यवाही को रद्द करने के लिए तथा आवेदकों के विरुद्ध जारी गैर जमानती वारंट को निरस्त कराने हेतु दायर किया गया है।

4. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि विपक्षी संख्या 2 ने आवेदकों के खिलाफ

दिनांक 16.07.2008 को एक प्राथमिकी दर्ज कराई थी कि विपक्षी संख्या 2 की भतीजी कुमारी अंजना की शादी आवेदक संख्या 1,के साथ तय की गई थी, सगाई समारोह आदि संपन्न हुआ और विवाह की तिथि 08.07.2008 तय की गई, लेकिन आवेदकों ने दहेज की मांग के कारण विवाह करने से इनकार कर दिया। आवेदकों ने कभी दहेज की मांग नहीं की। मौजूदा प्राथमिकी दुर्भावना का नतीजा है। प्राथमिकी को **आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 14500 वर्ष 2008 (कु. पूजा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** के माध्यम से हाई कोर्ट में चुनौती दी गई थी, और आवेदकों की गिरफ्तारी दिनांक 14.08.2008 के आदेश और **आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 14929 वर्ष 2008 (श्रीमती मिथिलेश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** में पारित आदेश दिनांक 20.08.2008 के माध्यम से रोक दी गई थी। जांच के दौरान विवेचना अधिकारी ने शिकायतकर्ता नरेंद्र कुमार मिश्रा का बयान और सुनी-सुनाई गवाह श्रीमती गौरी दुल्हनिया (शिकायतकर्ता की मां),और सुशीला देवी (शिकायतकर्ता की पत्नी), और एक देवकी नंदन और शिकायतकर्ता के परिवार के अन्य सदस्यों का भी बयान दर्ज किया। सभी गवाहों ने अभियोजन की कहानी का समर्थन किया है और साक्ष्य दर्ज करने के बाद, विवेचना अधिकारी ने धारा 420 भारतीय दण्ड संहिता और धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

5. संबंधित विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 21.09.2008 को विस्तृत और तर्कसंगत आदेश

पारित किए बिना संज्ञान लिया। आरोप-पत्र के अनुसरण में, प्रक्रिया जारी की गई है, आवेदकों को न तो कोई समन दिया गया है और न ही कोई नोटिस दिया गया है। बाद में, फरवरी, 2019 में जमानती वारंट जारी किया गया। यह सच है कि कुमारी अंजना पुत्री महेंद्र कुमार का विवाह आवेदक संख्या 1 जानकी शरण के साथ प्रस्तावित किया गया था, लेकिन बाद में, आवेदकों को पता चला कि उसके परिवार के सदस्य आपराधिक पृष्ठभूमि के हैं, इसलिए आवेदक संख्या 1 ने अंजना से शादी करने से इनकार कर दिया। आवेदक क्रमांक 1 द्वारा इंकार करने के बाद उन्होंने शादी के लिए काफी दबाव डाला, बल्कि आवेदक क्रमांक 1 को जान से मारने की धमकी दी और आवेदक को परेशान करने के लिए ही संबंधित प्राथमिकी दर्ज करा दी।

6. विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा झूठा मुकदमा चलाने और आरोप पत्र प्रस्तुत करने से व्यथित होकर, आवेदक संख्या 1 ने पुलिस महानिदेशक (शिकायत), उत्तर प्रदेश सरकार को एक आवेदन दिया और निष्पक्ष जांच की प्रार्थना की, जिसमें उन्होंने विपक्षी पक्ष संख्या 2 और उसके परिवार के आपराधिक इतिहास का भी उल्लेख किया। आवेदक क्रमांक 4, आवेदक क्रमांक 2 की विवाहित पुत्री हैं, जबकि आवेदक क्रमांक 5, आवेदक क्रमांक 2 की अविवाहित पुत्री हैं। आवेदक क्रमांक 6 उसी गांव की हैं, लेकिन उसका आवेदक क्रमांक 1 और 2 के परिवार से कोई संबंध नहीं है, आवेदक क्रमांक 7 और 8 दूसरे गांव के हैं, वे आवेदक क्रमांक 1 और 2 के रिश्तेदार हैं। संपूर्ण साक्ष्यों से पता चलता है कि आवेदकों ने कोई

धोखाधड़ी/धोखाधड़ी नहीं की है। इसलिए, उनके खिलाफ भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। आवेदक कमला कांत ग्रामीण हैं, आवेदक उमा कांत मामा हैं और आवेदक नीरज मौसेरा भाई है, जो आवेदक संख्या 1 की मौसी का बेटा है, इस प्रकार वे आवेदक संख्या 1 के परिवार के सदस्य नहीं हैं, इसलिए दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत उनके खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है।

7. दहेज का अर्थ है "एक विवाह के किसी भी पक्ष के माता-पिता द्वारा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, विवाह के किसी भी पक्ष से या किसी अन्य व्यक्ति से विवाह के समय या उससे पहले या बाद में, उक्त पक्षों के विवाह के प्रतिफल के रूप में की गई मांग"। इस मामले में विपक्षी संख्या 2 ने जानकी शरण के पूरे परिवार, ग्रामीणों और अन्य रिश्तेदारों को फंसाया है, इसलिए प्राथमिकी में शामिल आरोप धारा ¼ दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के दायरे में नहीं आते हैं।

8. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और मामले की परिस्थितियों में, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 420 या धारा ¼ दहेज प्रतिषेध अधिनियम के तहत प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है। आरोप-पत्र में उपलब्ध सामग्री के आधार पर मुकदमा जारी रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

9. आवेदक निर्दोष हैं, उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है और प्राथमिकी विपक्षी पक्ष संख्या 2 की दुर्भावना का परिणाम है, और

अभियोजन शुरू से ही शून्य है, इसलिए आवेदन स्वीकार किया जाए और आक्षेपित आपराधिक मामले की पूरी कार्यवाही रद्द कर दी जाए।

10. बहस के दौरान आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वर्तमान में यह आवेदन केवल आवेदक संख्या 4 और 5 के संबंध में है और बाकी आवेदक विचारण न्यायालय में उपस्थित हो चुके हैं, और वे मुकदमे का सामना करने के लिए तैयार हैं।

11. प्राथमिकी और अभियोजन संस्करण के अनुसार शिकायतकर्ता की भतीजी कुमारी अंजना का विवाह आवेदक संख्या 2 और 3 के पुत्र, आवेदक संख्या 1 जानकी शरण उर्फ अमन के साथ तय हुआ था, लेकिन गोदभराई के बाद और तिलक समारोह से पहले, आवेदक संख्या 2, राम बिहारी त्रिवेदी ने दिनांक 14.06.2008 को एक पत्र भेजकर एक सेंट्रो कार और अतिरिक्त दहेज की मांग की और बाद में उन्होंने अपने बेटे यानी आवेदक नंबर 1 की शादी अंजना, शिकायतकर्ता की भतीजी के साथ करने के लिए तैयार नहीं होने के लिए दिनांक 19.06.2008 को एक नोटिस भी भेजा।

12. अभियोजन का मामला यह है कि इनकार के पीछे कारण यह था कि आवेदक नंबर 1, जानकी शरण एमबीए में प्रवेश पाने में सफल रहे थे, इसलिए आवेदक लालची हो गए थे और अधिक से अधिक दहेज चाहते थे। अभियोजन पक्ष के अनुसार आवेदक नंबर 1 को एक सोने की अंगूठी प्रदान की गई और बाकी आवेदकों को भी सम्मान के प्रतीक के रूप में नकद और

कपड़े प्रदान किए गए। शादी की तारीख तय करने के लिए शिकायतकर्ता लगातार आवेदकों से मिल रहा था, लेकिन उन्होंने कार और कीमती सामान की अतिरिक्त मांग को लेकर उसे परेशान किया।

13. अभियोजन के अनुसार, जिस अपराध के संबंध में सभी अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, उसके लिए सभी आवेदक संयुक्त रूप से एवं गंभीर रूप से उत्तरदायी हैं।

14. शिकायतकर्ता/विपक्षी पक्ष संख्या 2 को तमीला होने के बावजूद न तो वह उपस्थित हुआ, न ही कोई प्रति शपथपत्र दायर किया और न ही आवेदन का विरोध किया। यद्यपि, राज्य की ओर से विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा आवेदन का विरोध किया गया है। बहस के दौरान आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि वह आवेदक संख्या 4 और 5 को छोड़कर आवेदकों की ओर से आवेदन पर बल नहीं देते हैं। इसलिए, आवेदक क्रमांक 4 और 5 की भूमिका की जांच की जानी है और यह देखा जाना है कि क्या आवेदक संख्या 4 और 5 के खिलाफ चल रही आपराधिक कार्यवाही न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और क्या दंड प्रक्रिया संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करना आवश्यक है और न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने हेतु, इस न्यायालय को आवेदक संख्या 4 और 5 के खिलाफ लंबित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना

चाहिए। इस संबंध में धारा 482 दं.प्र.सं. को देखना होगा जो निम्नानुसार है: -

"482. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की बचत। इस संहिता में किसी भी बात को, इस संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने हेतु, या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु या न्याय की सीमाओं को सुरक्षित करने हेतु, उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाला नहीं माना जाना चाहिए।"

15. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने कहकशां कौसर @ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 117 के निर्णय का आधार लिया है जिसमें भतीजी, सास, ननद और देवर को आरोपी बनाया गया और उनके खिलाफ सामान्य आरोप लगाए गए।

16. शीर्ष न्यायालय ने ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2014) 2 एससीसी 1 और मानव अधिकार हेतु सोशल एक्शन फोरम और अन्य बनाम भारत संघ, कानून और न्याय मंत्रालय और अन्य, (2018) 10 एससीसी 443 के उद्धरण का आधार लेते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया।

17. शीर्ष न्यायालय ने माना कि आजकल, पति और उसके रिश्तेदारों के खिलाफ व्यक्तिगत मुद्दों को निपटाने के साधन के रूप में आईपीसी की धारा 498-ए जैसे प्रावधानों को लागू करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। शीर्ष न्यायालय ने राजेश शर्मा और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2018) 10

एससीसी 472; अरनेश कुमार बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2014) 8 एससीसी 273; प्रीति गुप्ता एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य और अन्य,(2010) 7 एससीसी 667 ; गीता मेहरोत्रा एवं अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य, (2012) 10 एससीसी 741 और के. सुब्बा राव बनाम तेलंगाना राज्य, (2018) 14 एससीसी 452 के पिछले निर्णयों का उद्धरण दिया और टिप्पणी की कि वैवाहिक विवाद के दौरान लगाए गए सामान्य और सर्वग्राही आरोपों के माध्यम से गलत निहितार्थ, अगर अनियंत्रित छोड़ दिये गये तो कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। इसलिए, शीर्ष अदालत ने इस फैसले के माध्यम से न्यायालयों को पति के रिश्तेदारों और ससुराल वालों के खिलाफ, यदि उनके खिलाफ कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है, कार्यवाही न करने पर चेतावनी दी है।

18. सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि किसी भी अपीलकर्ता के खिलाफ कोई विशिष्ट और स्पष्ट आरोप नहीं लगाया गया था। उद्धृत मामले में उन्हें किसी विशिष्ट भूमिका के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया गया था; पटना उच्च न्यायालय के आदेश और प्राथमिकी को खारिज कर दिया गया।

19. पवन कुमार भालोटिया बनाम पश्चिम बंगाल, 2005 सीआरएलजे 1810 (एससी) में यह माना गया कि जहां प्राथमिकी केवल आवेदकों को परेशान करने के लिए दर्ज की गई है, वहां धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।

20. प्रेमलता बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1991 एससी 69, में यह माना गया है कि यदि उच्च न्यायालय ने पाया कि यदि कार्यवाही जारी रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, तो उच्च न्यायालय निचले न्यायालय की कार्यवाही को रद्द कर सकता है।

21. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाए गए फैसले के मद्देनजर, इस न्यायालय द्वारा आवेदक संख्या 4 और 5 की भूमिका की गहराई से जांच की गई है और उसके बाद यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि परिवार के सदस्य होने के नाते उन्होंने चल रहे समारोह में भाग लिया था, लेकिन न ही अंजना और आवेदक नंबर 1 के बीच शादी तय करने में उनकी कोई भूमिका थी, न ही उन्होंने किसी दहेज की मांग की थी और न ही उन्होंने बाकी आवेदकों को दहेज की और मांग करने के लिए उकसाया था और न ही इस संबंध में उनके द्वारा साजिश का कोई सबूत है और न ही वह दहेज की कथित मांग के लिए किसी भी तरह की लाभार्थी थी, सिर्फ इसलिए कि वे आवेदक संख्या 1 की सगी बहनें हैं, वे अपने भाई और माता-पिता के साथ संबंधित समारोह में शामिल होने और भाग लेने के लिए बाध्य थीं। उन पर सामान्य और सर्वग्राही आरोप हैं। आवेदक क्रमांक 4 और 5 के विरुद्ध कोई विशेष आरोप नहीं है। इस संबंध में आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने कहकशां कौसर @सोनम बनाम बिहार राज्य, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 117 और गीता मेहरोत्रा बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2012 (10) एडीजे 464, का

आधार लिया है, जो दोनों आवेदकों के समर्थन में इस मामले पर पूरी तरह से लागू होते हैं।

22. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का मानना है कि आवेदक संख्या 4 और 5 के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही कानूनी प्रक्रिया के अनुचित प्रयोग और दुष्प्रयोग के अलावा कुछ नहीं है और न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए, धारा 482, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करना अनिवार्य है और आवेदक संख्या 4 और 5, पूजा और मीनू के संबंध में संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना आवश्यक है। अतः यह आवेदन तदनुसार स्वीकार किए जाने योग्य है।

आदेश

23. आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत यह प्रार्थना पत्र आवेदक संख्या 1, 2, 3, 6, 7 और 8 के संबंध में आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा याचिका पर बल नहीं देने के कारण खारिज कर दिया जाता है।

24. आवेदक क्रमांक 4 और 5, पूजा और मीनू के संबंध में यह प्रार्थना पत्र आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है और आवेदक क्रमांक 4, पूजा और आवेदक क्रमांक 5, मीनू के संबंध में उपरोक्त मामले की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 84
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,
आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482
संख्या 28521 / 2022

अनवर सैफी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षी गण

अधिवक्ता आवेदक: श्री सुशील कुमार पांडे

अधिवक्ता विपक्षी गण: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138 - खार्तों में धन की अपर्याप्तता आदि के कारण चेक का अनादर - जब नोटिस चेक निर्माता को सही ढंग से संबोधित करते हुए पंजीकृत डाक द्वारा भेजा जाता है, तो अधिनियम की धारा 138 के प्रावधान के खंड (बी) के अनुसार नोटिस जारी करने की अनिवार्य आवश्यकता का अनुपालन किया गया है। (पैरा-15)

(बी) साधारण खण्ड अधिनियम, 1897 - धारा 27 डाक द्वारा तामील का अर्थ - सूचना की तामील तब प्रभावी मानी जाती है जब उसे पंजीकृत डाक द्वारा सही पते पर भेज दिया जाता है। (पैरा - 15)

(ख) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 114 - जब कोई नोटिस पंजीकृत डाक से भेजा जाता है और डाक पृष्ठांकन के साथ वापस आ जाता है, जिसमें अस्वीकृत या घर में डाक उपलब्ध नहीं होने या घर में ताला लगा होने या दुकान बंद होने या पता

प्राप्तकर्ता के स्टेशन पर न होने की स्थिति - जब नोटिस को चेक जारी करने वाले को सही पता देकर पंजीकृत डाक से भेज दिया जाता है, तो उचित तामील मान ली जाती है, नोटिस की तामील प्रभावी मानी जाती है। (पैरा-15,18)

आवेदक ने परिवादी को अपने पास रखने के लिए धन की पेशकश की - आवेदक के दो चेक अनादरित हो गए - परिवादी ने धन वापस मांगा - आवेदक - आरोपी ने दो अन्य चेक प्रस्तुत किए - अपर्याप्त धन के कारण अनादरित हो गए - परिवादी ने आवेदक का विरोध किया और उसे फिर से चेक प्रस्तुत करने के लिए कहा - बैंक ने अनादरित चेकों को वापस कर दिया - आवेदक ने परिवादी की मांग पर कोई ध्यान नहीं दिया - भुगतान नहीं किया - परिवादी ने एक कानूनी नोटिस दायर किया - पावती के साथ पंजीकृत डाक द्वारा भेजा गया - शिकायत में विशिष्ट सेवा तिथि के लिए गलत अनुरोध। (पैरा 4,5,14)

निर्णय:- सामान्य खंड अधिनियम, 1987 की धारा 27 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के अनुसार, जब चेक जारी करने वाले को सही पता लिखकर रजिस्टर्ड डाक से नोटिस भेजा जाता है, तो नोटिस की तामील प्रभावी मानी जाती है। नोटिस दिनांक 11.01.2016 को रजिस्टर्ड डाक से स्थानीय पते पर भेजा गया था, इसलिए नोटिस की तामील प्रभावी मानी जाती है। (पैरा-18)

याचिका निरस्त (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. एम.एस. शक्ति ट्रेवल एंड टूर्स बनाम बिहार राज्य, 2022 (9) एससीसी 415

2. सी.सी. अलवी हाजी बनाम पालापेट्टी मुहम्मद एवं अन्य, (2007) 6 एससीसी 555

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. पारित किए जाने वाले प्रस्तावित आदेश के मद्देनजर, प्रतिपक्षी संख्या-2 को नोटिस दिया जाता है।

3. इस याचिका के द्वारा, याचिकाकर्ता ने शिकायत केस नंबर 3792/9 वर्ष 2016 की आक्षेपित कार्यवाही के साथ-साथ विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 05.04.2016 के सम्मन आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की है।

4. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि आवेदक द्वारा शिकायतकर्ता को अपना पैसा उसके पास रखने का प्रस्ताव दिया गया था। यह मानते हुए कि शिकायतकर्ता ने गवाह की उपस्थिति में आवेदक को 1,00,000/- रुपये जमा किए और 1 वर्ष के बाद कभी भी उसे वापस भुगतान करने का वादा किया। शिकायतकर्ता ने अलग-अलग तारीखों पर अलग-अलग राशि दी और उन सभी राशियों को आवेदक द्वारा पासबुक में दर्ज किया गया। एक वर्ष के बाद शिकायतकर्ता ने अपने पैसे वापस मांगे; फिर आवेदक-अभियुक्त द्वारा

शिकायतकर्ता के घर पर 10.09.2015 को पंजाब नेशनल बैंक में आहरित रु. 3,50,000/- का चेक जिसका संख्या 958870 था, तथा दूसरा चेक 958871 दिनांक 20.09.2015 को रु. 3,50,000/- का दिए गए थे जो शिकायतकर्ता द्वारा संबंधित बैंक में प्रस्तुत किया गया था। उन चेकों को धन की अपर्याप्तता के कारण अस्वीकृत कर दिया गया। शिकायतकर्ता ने आवेदक के खिलाफ चेक के अनादरण/गैर-अदायगी के संबंध में शिकायत की और तो उसने उसे 23.12.2015 को चेक पेश करने के लिए कहा क्योंकि उसने बैंक में राशि जमा कर दी। पुनः 23.12.2015 को चेक प्रस्तुत किए गए, तथापि अपर्याप्त धनराशि के कारण 29.12.2015 को बैंक द्वारा चेक अस्वीकृत/वापस कर दिए गए।

5. इसके बाद, शिकायतकर्ता ने आवेदक को अपनी परिषद के माध्यम से दिनांक 11.01.2016 को एक नोटिस दिया। शिकायत में आरोप लगाया गया है कि नोटिस मिलने के बाद आवेदक ने शिकायतकर्ता की मांग पर कोई ध्यान नहीं दिया है और न ही उसने भुगतान किया है, इसलिए शिकायत दर्ज कराई गई।

6. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक को उक्त तारीख की तामीला नोटिस में शिकायत में कोई कथन नहीं है और इसलिए, शिकायत मामले को 'समय से पहले' के रूप में खारिज कर दिया जाना चाहिए और सम्मन आदेश पास नहीं होना चाहिए था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि भले ही 11.01.2016 के कानूनी नोटिस को स्वीकार

कर लिया जाए, फिर भी शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत समय से पहले है।

7. शिकायतकर्ता के अधिवक्ता और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुनने और सम्मन आदेश सहित रिकॉर्ड का अवलोकन करने से पता चलता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किया है कि चेक तीन महीने की निर्धारित अवधि में बैंक के समक्ष पेश किए गए हैं। चेक 29.12.2015 को लौटाए गए और शिकायतकर्ता द्वारा 11.01.2016 को नोटिस दिया गया और एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत प्रदान की गई तीन शर्तों के अनुपालन के बारे में प्रथम दृष्टया संतुष्ट होने के बाद, समन जारी किया गया प्रतीत होता है। एन.आई. अधिनियम की धारा 138 नीचे दी गई है: -

138 खाते में निधियों की अपर्याप्तता आदि के लिए चेक का अनादर। - जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी बैंक के साथ रखे गए खाते पर किसी भी खाते में किसी भी राशि के भुगतान के लिए उस खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी राशि के भुगतान के लिए किसी भी ऋण या अन्य देयता के पूरे या आंशिक रूप से निर्वहन के लिए बैंक द्वारा गैर अदायगी/अवैतनिक रूप से वापस कर दिया जाता है, या उस खाते के क्रेडिट में राशि के कारण अपर्याप्त है, या चेक का सम्मान/अदायगी करने या यह उस बैंक के साथ किए गए समझौते द्वारा उस खाते से भुगतान की जाने वाली राशि से अधिक है, ऐसे व्यक्ति को अपराध करने के लिए समझा जाएगा और इस अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना,

कारावास से [एक अवधि जिसे दो साल तक बढ़ाया जा सकता है], या जुर्माने के साथ जो चेक की राशि के दोगुने तक का हो सकता है, या दोनों के साथ दंडित किया जाएगा, बशर्ते कि इस धारा में निहित कुछ भी लागू नहीं होगा जब तक कि-

(ए) चेक उस तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर बैंक को प्रस्तुत किया गया है, जिस पर इसे तैयार किया गया है या इसकी वैधता की अवधि के भीतर, जो भी पहले हो; (ख) आदाता या धारक, चेक के नियत समय में, जैसा भी मामला हो, चेक के आहर्ता को लिखित रूप में [तीस दिनों के भीतर] नोटिस देकर, बैंक से उसके द्वारा सूचना प्राप्त होने के बारे में चेक को अदत के रूप में वापस करने के बारे में, उक्त राशि के भुगतान की मांग करता है; और (ग) इस तरह के चेक का आहर्ता उक्त नोटिस की प्राप्ति के पंद्रह दिनों के भीतर, चेक के नियत समय में आदाता को या, जैसा भी मामला हो, धारक को उक्त राशि का भुगतान करने में विफल रहता है।

स्पष्टीकरण- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, "ऋण या अन्य देयता" का अर्थ है कानूनी रूप से लागू ऋण या अन्य देयता।

एन.आई. अधिनियम की उपरोक्त धारा 138 के खंड (बी) में अपेक्षा की गई है कि आदाता या धारक को चेक के नियत समय में, चेक के अदाकर्ता को चेक की अवैतनिक राशि के रूप में वापस करने के बारे में बैंक से सूचना प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर लिखित रूप में नोटिस देकर उक्त राशि के भुगतान की मांग करनी होगी।

8. आवेदक द्वारा एक पूरक हलफनामा दायर किया गया है जिसे रिकॉर्ड में लिया गया है जिसमें शिकायतकर्ता द्वारा शिकायत के समर्थन में दायर कई दस्तावेज शामिल हैं जिनमें बैंक के 29.12.2015 के दो रिटर्न जापन भी शामिल हैं। इसके बाद 30 दिनों के भीतर यानी 11.01.2016 को शिकायतकर्ता द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से आरोपी आवेदक को नोटिस दिया गया है। शिकायत में नोटिस देने का विशिष्ट उल्लेख किया गया है कि शिकायतकर्ता ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से अभियुक्त-आवेदक को दिनांक 11.01.2016 को एक नोटिस दिया है जो अभियुक्त द्वारा प्राप्त किया गया है और कोई जवाब नहीं दिया है। एन.आई. अधिनियम के 138 खंड-बी के तहत अनिवार्य आवश्यकता केवल यह है कि शिकायतकर्ता या चेक के प्राप्तकर्ता या धारक को बैंक से उसे प्राप्त सूचना प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर लिखित में नोटिस देकर उक्त राशि के भुगतान की मांग करनी होगी।

9. इस मामले में, बैंक ने 29.12.2015 को दोनों चेकों को अस्वीकृत कर दिया है, बैंक का 'रिटर्न मेमो' रिकॉर्ड में है। नोटिस 29.12.2015 से 30 दिनों के भीतर अच्छी तरह से दिया गया है। आवेदक के अधिवक्ता का कहना है कि शिकायतकर्ता द्वारा भेजे गए कानूनी नोटिस के आरोपी-आवेदक को तामीला की तारीख के बारे में शिकायत में कोई तथ्यात्मक कथन नहीं है, इसलिए, पूरी कार्यवाही रद्द करने योग्य है।

10. दूसरा विवाद यह है कि भले ही 11.01.2016 के कानूनी नोटिस को तामील के रूप में स्वीकार कर लिया गया हो, फिर भी आक्षेपित शिकायत परिपक्वता के चरण से पहले 09.02.2016 को दायर की गई है। आवेदक के अधिवक्ता की दलील गलत लगती है। शिकायत में तामीला की तारीख का खुलासा करने के लिए धारा 138 के तहत कोई आवश्यकता नहीं है, हालांकि, एकमात्र आवश्यकता यह है कि उक्त राशि के भुगतान की मांग आदाता या धारक द्वारा चेक के नियत समय में बैंक से उसके द्वारा सूचना प्राप्त होने के तीस दिनों के भीतर चेक के अदाकर्ता को लिखित रूप में नोटिस देकर की जानी चाहिए। इस मामले में, शिकायतकर्ता द्वारा उस आवश्यकता का अनुपालन किया गया है। शिकायत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शिकायतकर्ता द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से आरोपी-आवेदक को कानूनी नोटिस दिया गया है। नोटिस बैंक द्वारा सूचना प्राप्त होने के तीस दिनों के भीतर दिया गया है।

11. पूरक शपथ पत्र के साथ, आवेदक ने शिकायतकर्ता द्वारा शिकायत के साथ दायर सभी नौ दस्तावेजों को दाखिल किया है। उन दस्तावेजों में, दो चेक के साथ-साथ पंजीकृत ए.डी. भी हैं जिनके द्वारा कानूनी नोटिस भेजा गया था। उन्होंने पंजीकृत पावती रसीद भी दायर की है जिससे पता चलता है कि आरोपी-आवेदक के पते पर भेजा गया पंजीकृत डाक उसके

निवास स्थान पर प्राप्त हुआ है। पंजीकृत ए.डी. की प्रति भी रिकॉर्ड में है।

12. आवेदक के अधिवक्ता ने "एम.एस शक्ति ट्रेवल एंड टूरस बनाम बिहार राज्य, 2022 (9) एस.सी.सी. 415 में रिपोर्ट किए गए" के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है।

13. पूर्वोक्त निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि उस मामले में, शिकायत में स्वयं यह उल्लेख नहीं किया गया था कि नोटिस दिया गया है, जबकि इस मामले में शिकायत में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि नोटिस दिया गया था और यह विधिवत तामीला किया गया है। इसलिए, एम.एस शक्ति ट्रेवल एंड टूर (उपरोक्त) के मामले के तथ्य वर्तमान मामले से पृथक हैं। एम. एस. शक्ति ट्रेवल्स एंड टूरस (उपरोक्त) का तथ्य तथ्यों से अलग है।

14. वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से एक कानूनी नोटिस देकर एक मांग की गई है जिसे पंजीकृत डाक द्वारा देय पावती के साथ भेजा गया है और जैसा कि उसे पावती देय प्राप्त हुई है। आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क, कि प्रश्नगत शिकायत में सेवा की तारीख का खुलासा करने वाला विशिष्ट कथन होना चाहिए, गलत है।

15. "(2007) 6 एस.सी.सी. 555, सी.सी. अलवी हाजी बनाम पलापेट्टी मुहम्मद और अन्य" के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विवाद का निपटारा किया गया है और यह माना गया है कि शिकायत में इस तरह के कथन को उठाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

उक्त स्थिति में नोटिस की तामील के बारे में अनुमान और सामान्य खंड अधिनियम, 1987 की धारा 27 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 को ध्यान में रखते हुए, एक बार चेक के अदाकर्ता को सही ढंग से संबोधित करके पंजीकृत डाक द्वारा नोटिस भेजा जाता है, नोटिस की तामील को प्रभावित माना जाता है।

14. धारा 27 एक धारणा को जन्म देती है कि नोटिस की तामील तब प्रभावित हुई है जब इसे पंजीकृत डाक द्वारा सही पते पर भेजा जाता है। उक्त अनुमान के मद्देनजर, जब यह कहा जाता है कि पंजीकृत डाक द्वारा आहर्ता के पते पर एक नोटिस भेजा गया है, तो शिकायत में आगे यह कहना अनावश्यक है कि नोटिस की वापसी के बावजूद, यह माना जाता है कि नोटिस की तामील की गई है या यह माना जाता है कि प्राप्तकर्ता को नोटिस का ज्ञान है। जब तक अभिभाषक द्वारा इसके विपरीत साबित नहीं किया जाता है, तब तक नोटिस की तामील को उस समय प्रभावित माना जाता है जिस पर पत्र व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम में वितरित किया गया होगा। इस न्यायालय ने पहले ही माना है कि जब कोई नोटिस पंजीकृत डाक द्वारा भेजा जाता है और उसके साथ वापस किया जाता है, तो एक डाक समर्थन "मना कर दिया" या "घर में उपलब्ध नहीं" या "घर बंद" या "दुकान बंद" या "पता-कर्ता स्टेशन में नहीं", से उचित सेवा का अनुमान लगाया जाना चाहिए। (जगदीश सिंह बनाम नत्थू सिंह [(1992) 1 एस.सी.सी. 647: एआईआर 1992 एस.सी. 1604] ; बनाम मध्य प्रदेश बनाम हीरालाल [(1996) 7 एस.सी.सी. 523] और बनाम राजा कुमारी

बनाम पी. सुब्बाराम नायडू [(2004) 8 एस.सी.सी. 774: 2005 एस.सी.सी. (सीआरएल) 393]। इसलिए, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 27 के तहत उपलब्ध अनुमान के मद्देनजर, अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत में यह कहना आवश्यक नहीं है कि आरोपी द्वारा नोटिस की तामील से बचा गया था या नोटिस की वापसी में अभियुक्त की भूमिका थी।

15. जहां तक अधिनियम की धारा 138 के परंतुक (ख) के संदर्भ में नोटिस जारी करने के संबंध में आवश्यक विवरणों के प्रकटीकरण का प्रश्न है, ताकि न्यायालय को जी.सी. अधिनियम की धारा 27 या साक्ष्य की धारा 114 के तहत अनुमान या निष्कर्ष निकालने में सक्षम बनाया जा सके; जहां तक अधिनियम का संबंध है, दोनों उपबंधों के बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। इसलिए, हमारी राय में, जब चेक के अदाकर्ता को सही ढंग से संबोधित करके पंजीकृत डाक द्वारा नोटिस भेजा जाता है, तो अधिनियम की धारा 138 के परंतुक के खंड (बी) के संदर्भ में नोटिस जारी करने की अनिवार्य आवश्यकता का अनुपालन किया जाता है। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि शिकायत में चेक के अदाकर्ता को नोटिस जारी करने के तरीके के बारे में तथ्य बुनियादी होने चाहिए। यह अच्छी तरह से तय है कि अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत का संज्ञान लेते समय, अदालत को प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना आवश्यक है कि उक्त धारा के तहत एक मामला बनता है और उपरोक्त अनिवार्य वैधानिक प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया है। इसके बाद आहर्ता के

लिए नोटिस की तामील के बारे में अनुमान का खंडन करना और यह दिखाना है कि उसे इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि नोटिस उसके पते पर लाया गया था या कवर पर उल्लिखित पता गलत था या यह कि पत्र कभी नहीं दिया गया था या यह कि डाकिए की रिपोर्ट गलत थी, गलत है। हमारी राय में, प्रावधान की यह व्याख्या उस उद्देश्य को प्रभावित करेगी जिसके लिए धारा 138 के परंतुक को अधिनियमित किया गया था, अर्थात्, चेक के ईमानदार आहर्ता को अनावश्यक कठिनाई से बचने और उसे संशोधन करने का अवसर प्रदान करने के लिए।

16. सी. सी. अलवी हाजी (उपरोक्त) के पूर्वोक्त मामले में, शिकायत में किए गए कथन कि शिकायतकर्ता ने चेक के अनादरण/गैर अदायगी की सूचना देते हुए अधिवक्ता का नोटिस जारी किया और 04.08.2001 को भुगतान की मांग की, उसे 10.08.2001 को यह कहते हुए वापस कर दिया गया कि आरोपी स्टेशन से बाहर था। इस आशय का कोई उल्लेख नहीं था कि नोटिस आहर्ता या चेक के सही पते पर "पंजीकृत पावती देय" द्वारा भेजा गया था। हालांकि, चूंकि लौटाए गए लिफाफे को शिकायत के साथ संलग्न किया गया था, जो शिकायत का एक हिस्सा था, जिससे पता चला कि नोटिस सही पते के कारण पंजीकृत डाक पावती द्वारा भेजा गया था और इस टिप्पणी के साथ वापस कर दिया गया था कि "एड्रेसी विदेश में था"। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि एन.आई. की धारा 138 की

आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है। अधिनियम का पर्याप्त रूप से अनुपालन किया गया है। इसी तरह इस मामले में, शिकायतकर्ता ने 11.01.2016 को वकीलों का नोटिस जारी किया है, जिसमें चेक के अनादरण/गैर-अदायगी की सूचना दी गई है और उस नोटिस द्वारा भुगतान की मांग की गई थी जो पंजीकृत डाक द्वारा आहर्ता के सही पते पर भेजी गई थी; पंजीकृत रसीद रिकॉर्ड पर है और शिकायतकर्ता की ओर से एक जीनत (नामक महिला) द्वारा कागज के टुकड़े पर रिसीव से पावती रिकॉर्ड पर है जो पुष्टि करता है कि नोटिस ठीक से दिया गया था। वह हस्ताक्षरित दस्तावेज/रसीद शिकायतकर्ता/प्रेषक को दे दी गई है जिसे पूरक शपथ पत्र के साथ दायर किया गया है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि आवेदक-आरोपी को भेजा गया कानूनी नोटिस तामील नहीं किया गया है। पंजीकृत रसीद के साथ-साथ पंजीकृत ए.डी. को शिकायत के साथ साक्ष्य के रूप में दायर किया गया है जो शिकायत का हिस्सा है।

17. इस मामले में, शिकायत में स्पष्ट किया गया है कि शिकायतकर्ता द्वारा आवेदक अभियुक्त को पैसे की मांग करते हुए एक कानूनी नोटिस भेजा गया है। रजिस्ट्री रसीद के साथ-साथ पंजीकृत ए.डी. को शिकायत के साथ दायर किया गया है जो शिकायत का हिस्सा है, इसलिए यह अनावश्यक है कि आवेदक अभियुक्त को कानूनी नोटिस की सेवा की विशिष्ट तारीख का उल्लेख किया जाना चाहिए था। इस संबंध में कानून सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सी.सी. अलवी हाजी (उपरोक्त) के पूर्वोक्त मामले में तय किया गया है।

18. जहां तक तर्क के दूसरे चरण का संबंध है कि शिकायत समय से पहले है, यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता द्वारा पंजीकृत डाक के माध्यम से कानूनी नोटिस आवेदक अभियुक्तों को भेजा गया था जो उसी जिले के निवासी हैं, इसलिए, सामान्य खंड अधिनियम, 1987 की धारा 27 और साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 114 को ध्यान में रखते हुए, एक बार चेक के अदाकर्ता को सही ढंग से संबोधित करके पंजीकृत डाक द्वारा नोटिस भेजा जाता है, तो नोटिस की तामील को प्रभावित माना जाता है। धारा 142 (1) एन.आई. अधिनियम के अनुसार, उक्त अधिनियम के तहत शिकायत उस तारीख के एक महीने के भीतर की जानी है जिस पर एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के प्रावधान के खंड (सी) के तहत कार्रवाई का कारण उत्पन्न होता है। पंजीकृत डाक द्वारा स्थानीय पते पर 11.01.2016 को नोटिस भेजा गया था, इसलिए नोटिस की तामील प्रभावी मानी जाती है। आरोपी-आवेदक के चेक के आहर्ता को इस तरह के नोटिस की प्राप्ति के 15 दिनों के भीतर उक्त राशि का भुगतान करना था, जिसका भुगतान करने में वह विफल रहा है। शिकायत 09.02.2018 को दर्ज की गई है।

19. इस मामले में नोटिस 11.01.2016 को भेजा गया था जिसे स्थानीय पते पर सात दिनों पर तामील किया गया माना जाएगा क्योंकि यह पंजीकृत डाक के माध्यम से भेजा गया था। चेक के आहर्ता/आवेदक-अभियुक्त को नोटिस प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर आदाता को उक्त राशि का भुगतान करना था, इसलिए, एक महीने के भीतर 15 दिनों की

समाप्ति के बाद, शिकायत दर्ज की जा सकती थी जो इस मामले में की गई है। आवेदक के अधिवक्ता के तर्क में कोई दम नहीं है।

20. अन्यथा भी आवेदक-अभियुक्त ने विद्वान विचारण न्यायालय के समन दायर किए हैं, उसने शिकायत की प्रति के साथ-साथ शिकायत के साथ संलग्न अन्य दस्तावेज भी दायर किए हैं, इसलिए यह माना जाएगा कि उसे एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत की प्रति के साथ विद्वान विचारण न्यायालय से समन प्राप्त हुआ है और इसलिए यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि नोटिस की कोई उचित तामील नहीं हुई थी; एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत आवश्यक है जैसा कि सी.सी. अलवी हाजी (उपरोक्त) के पूर्वोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया था। संबंधित पैरा नंबर-17 निम्नवत है:

17. यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जहां शिकायत दर्ज करने से पहले नोटिस देने की कोई शर्त नहीं है, नोटिस देने की आवश्यकता आपराधिक कानून के नियम से स्पष्ट विचलन है। कोई भी आहर्ता जो दावा करता है कि उसे डाक द्वारा भेजा गया नोटिस प्राप्त नहीं हुआ, अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत के संबंध में अदालत से समन प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर, चेक राशि का भुगतान कर सकता है और अदालत को (समन के साथ शिकायत की एक प्रति प्राप्त करके) प्रस्तुत कर सकता है कि उसने समन प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर भुगतान किया था और इसलिए, शिकायत को अस्वीकार

किया जा सकता है। एक व्यक्ति जो अधिनियम की धारा-138 के तहत शिकायत की प्रति के साथ अदालत से समन प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर भुगतान नहीं करता है, वह स्पष्ट रूप से यह तर्क नहीं दे सकता है कि जी.सी. अधिनियम की धारा 27 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत वैधानिक अनुमान की अनदेखी करके धारा 138 के तहत आवश्यक नोटिस की कोई उचित तामील नहीं थी। हमारे विचार में, परंतुक की कोई अन्य व्याख्या कानून के उद्देश्य को ही विफल कर देगी। जैसा कि भास्करन मामले [(1999) 7 एस.सी.सी. 510: 1999 एस.सी.सी. (Cri) 1284] में देखा गया है, यदि परंतुक के खंड (b) के संदर्भ में "नोटिस देना" "नोटिस की प्राप्ति" के समान था, तो एक चालबाज चेक आहर्ता को विभिन्न रणनीतियों को अपनाकर नोटिस प्राप्त करने से बचने और अधिनियम की धारा 138 के कानूनी परिणामों से बचने के लिए लाभ मिलेगा।

21. उपरोक्त चर्चाओं और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मददेनजर, याचिका विफल होती है और तदनुसार खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 90

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,

आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482
संख्या 28701 / 2022

विजय

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष

अधिवक्ता आवेदक: श्री सुनील कुमार यादव

अधिवक्ता विपक्षी गण: जी.ए., श्री उमेश कुमार

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - धारा 200- परिवादी का परीक्षण, धारा 202 - आदेशिका जारी करने का स्थगन, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा - 307, 323, 324, 504, 506 - धारा 137 साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत परीक्षण के प्रयोजनों के लिए प्रतिकूल पक्ष द्वारा जिरह की जाती है। (पैरा - 8)

सत्र न्यायाधीश ने पक्षों के मध्य प्रतिद्वंद्विता का उल्लेख किया - याचिकाकर्ता के पिता के खिलाफ हत्या का आपराधिक वाद - साक्ष्य के स्तर पर - आरोपी व्यक्तियों ने दावा किया कि कथित चोटें नकली थीं - सी.एम.ओ. ने याचिकाकर्ता को पुनः चिकित्सा परीक्षण के लिए उपस्थित होने का आदेश दिया - लेकिन वह उपस्थित नहीं हो सका - आरोपी व्यक्तियों ने हत्या से खुद को बचाने और दबाव बनाने के लिए नकली छर्छों का इस्तेमाल किया - अदालत को सी.एम.ओ. द्वारा याचिकाकर्ता को समन जारी करने का कोई दस्तावेज नहीं मिला - पक्षों के मध्य प्रतिद्वंद्विता विवाद पर विचार नहीं किया गया - पुनरीक्षण न्यायालय ने टिप्पणियों के बाद मामले को नए सिरे से आगे बढ़ाने के लिए रिमांड किया (पैरा - 9)

निर्णय:- पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश कि परिवादी और गवाहों से जिरह करने के बाद विद्वान मजिस्ट्रेट आदेश पारित करेंगे, मान्य नहीं लगता और कानून के अनुसार गलत है। दिनांक 28.7.2022 के आदेश को इस सीमा तक निरस्त कर दिया गया है कि इसमें परिवादी और गवाहों से जिरह करने का निर्देश दिया गया है, जबकि शेष भाग की पुष्टि की गई। मजिस्ट्रेट को परिवादी और गवाहों से जिरह करने के पुनरीक्षण न्यायालय के निर्देश की अवहेलना करते हुए कानून के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश दिया गया। (पैरा - 9)

याचिका निस्तारिता। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त)

1. आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 63 वर्ष 2022 -चंद्र कांत उर्फ विक्कू और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में अंतर्गत धारा 307, 323, 324, 504, 506 भारतीय दंड संहिता, थाना पिलुआ,जिला एटा में सत्र न्यायाधीश, एटा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 28.07.2022 को रद्द करने एवं मामले पर पुनर्विचार करने के लिए मामले को सत्र न्यायाधीश, एटा को वापस भेजने की प्रार्थना के साथ धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत यह याचिका दायर की गई है।

2. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता, निजी प्रतिवादियों के लिए विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

3. संक्षेप में, याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसने इस आरोप के साथ विचारण न्यायालय के समक्ष धारा 156 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन दायर किया है, कि दिनांक 25.12.2018 को सुबह 8.00 बजे वह एक राजू उर्फ राज कुमार के साथ नित्यक्रिया के लिए गया था और जब वे प्राइमरी स्कूल, कपरेटा के पास पहुंचे, तो उन्होंने आरोपी व्यक्तियों, यानी प्रतिवादी संख्या 2 से 4 को वहां मौजूद पाया। उन्होंने याचिकाकर्ता के साथ दुर्व्यवहार किया, उसे पीटा और जान से मारने की नियत से आरोपी शिवकांत और शशिकांत ने उस पर आग्नेयास्त्र से गोली चला दी, जिससे शिवकांत की गोली से याचिकाकर्ता घायल हो गया। याचिकाकर्ता को ग्रामीणों द्वारा बचाया गया।

4. विद्वान अपर सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 21, एटा ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और 202 के तहत शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद दिनांक 10.5.2022 को आदेश पारित किया, जिसके तहत विचारण न्यायालय ने संज्ञान लेते हुए आरोपी शिवकांत उर्फ भालू और शशिकांत उर्फ गौरव को धारा 323, 307, 504, 506 भारतीय दंड संहिता के तहत और आरोपी चंद्रकांत और अभिषेक को धारा 323, 324, 504, 506 भारतीय दंड संहिता के तहत तलब किया।

5. आदेश दिनांक 10.5.2022 (उपरोक्त) से व्यथित होकर, आरोपी व्यक्तियों ने आपराधिक

पुनरीक्षण संख्या 63 वर्ष २०२२ चंद्रकांत और तीन अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य दायर की। सत्र न्यायाधीश, एटा ने दिनांक 28.7.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को, आदेश में की गई टिप्पणी के आलोक में एक नया आदेश पारित करने के निर्देश के साथ, रद्द कर दिया।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश पर मुख्य रूप से इस आधार पर आपत्ति जताई है कि विचारण न्यायालय को शिकायतकर्ता, यानी याचिकाकर्ता और गवाहों से सही तथ्य जानने के लिए जिरह करने के बाद नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाना, कानून की नजर में खराब है और अनियमित होने के कारण खारिज किए जाने के योग्य है।

7. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ निजी प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया है।

8. चुनौती के तहत आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश में उल्लेख किया है कि पक्षों के बीच प्रतिद्वंद्विता चल रही है और याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपी शिवकांत के पिता की हत्या का एक आपराधिक मामला लंबित है और यह साक्ष्य के स्तर पर है।

इसके अलावा विद्वान पुनरीक्षण अदालत ने इस बात पर ध्यान दिया कि आरोपी व्यक्तियों

की शिकायत पर कि याचिकाकर्ता के शरीर पर कथित चोटें फर्जी हैं, मुख्य चिकित्सा अधिकारी एटा ने दिनांक 4.1.2019 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता/शिकायतकर्ता को निर्देश दिया कि मेडिकल बोर्ड द्वारा अपनी पुनः चिकित्सा जांच के लिए उनके समक्ष उपस्थित हों, तथापि, वह उनके समक्ष उपस्थित नहीं हो सका। आरोपी व्यक्तियों का मामला यह था कि डॉक्टर के साथ समझौता करके, त्वचा के ठीक नीचे छाती में नकली छर्रों को रखा गया था और हत्या के आपराधिक अपराध से खुद को बचाने और दबाव डालने की दृष्टि से, याचिकाकर्ता/शिकायतकर्ता ने आरोपी/प्रतिवादियों के विरुद्ध झूठा मामला बनाया था। विद्वान पुनरीक्षण अदालत को निचली अदालत के रिकॉर्ड पर ऐसा कोई दस्तावेज नहीं मिला जिससे यह पता चले कि याचिकाकर्ता को मेडिकल बोर्ड के समक्ष उसकी चिकित्सा जांच के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा बुलाया गया था।

विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.5.2022 के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी व्यक्तियों को तलब करते समय इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि अभियोजन साक्षी 3, डॉक्टर ने अदालत के समक्ष यह गवाही नहीं दी है कि कथित चोट घायल याचिकाकर्ता को आग्नेयास्त्र से लगी थी, न ही बंदूक से चोट को साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई दस्तावेज है। दोनों पक्षों के बीच चल रहे प्रतिद्वंद्विता विवाद को विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा विचारित नहीं किया गया है। इसे ध्यान में रखते हुए, पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश में

इस हद तक किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, कि इसमें निहित टिप्पणियों पर विचार करने के बाद कानून के अनुसार मामले को नए सिरे से आगे बढ़ाने के लिए मामले को वापस भेजा गया है।

हालाँकि, पुनरीक्षण न्यायालय का यह आदेश कि शिकायतकर्ता और गवाहों से जिरह के बाद विद्वान मजिस्ट्रेट आदेश पारित करेगा, तर्कसंगत नहीं लगता है और कानून की नजर में गलत है। इस संदर्भ में, कानून बहुत स्पष्ट है। प्रतिपरीक्षा प्रतिकूल पक्ष द्वारा की जाती है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 137 के अर्थ के तहत विचारण के उद्देश्य के लिए है।

9. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 28.7.2022 के आदेश (उपरोक्त) को इस हद तक खारिज किया जाता है, जिसमें शिकायतकर्ता और गवाहों से जिरह करने का निर्देश दिया गया है। आदेश का शेष भाग कायम रखा जाता है। विद्वान मजिस्ट्रेट को शिकायतकर्ता और गवाहों से जिरह करने के पुनरीक्षण न्यायालय के निर्देश की अनदेखी करते हुए, कानून और यहां ऊपर की गई चर्चाओं के अनुसार मामले में आगे बढ़ने का निर्देश दिया गया है।

10. याचिका तदनुसार निस्तारित की जाती है।

(2023) 4 ILRA 93

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,
आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482
संख्या 42957 / 2022

लक्ष्मी शंकर पांडे एवं अन्यआवेदक
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपरीत पक्ष
अधिवक्ता आवेदक: श्री संदीप पांडे
अधिवक्ता विपक्षी गण: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता,
1973 धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति -
भारतीय दंड संहिता, 1860 धाराएं -323, 504,
506, 356।

(बी) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता,
1973 - धारा 155(2), 200, 202, 203,
204(2) एवं 254 - यदि किसी अपराध का
संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट यह समझता है कि
कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है तो वह
आरोपी व्यक्ति के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करेगा
- धारा 204(2) सीआरपीसी के तहत आरोपी
को प्रक्रिया जारी करने से पूर्व परिवादी/विपक्षी
संख्या 2 से गवाहों की सूची प्रस्तुत करने की
आवश्यकता का उद्देश्य आरोपी व्यक्तियों को
अपनी जिरह के लिए खुद को तैयार करने में
सक्षम बनाना है - धारा 204 सीआरपीसी में
ऐसा कुछ भी नहीं कहा या इंगित किया गया
है कि यदि आरोपी को प्रक्रिया जारी करने से
पूर्व अभियोजन पक्ष के गवाहों की कोई सूची
दायर नहीं की जाती है, तो बाद में कोई भी
दायर नहीं की जा सकती है। (पैरा -8,10)

आवेदक के विरुद्ध विपक्षी पक्ष संख्या 2
द्वारा धारा 155(2) सीआरपीसी के तहत

एनसीआर दर्ज कर एसएचओ से जांच करने का अनुरोध किया गया -वाद को परिवाद के वाद के रूप में माना गया - आवेदक न्यायालय में उपस्थित हुए तथा जमानत प्राप्त की - सीआरपीसी की धारा 204(2) के अनिवार्य प्रावधान पर विचार करते हुए समन आदेश पारित नहीं किया गया - जिसके अंतर्गत समन जारी करने से पूर्व अभियोजन पक्ष के गवाहों की सूची की आवश्यकता होती है, अनुचित एवं अवैध कार्यवाही, कानून का दुरुपयोग - सम्पूर्ण कार्यवाही एवं समन आदेश को निरस्त करने के लिए आवेदन। (पैरा-3,4)

आयोजित:- धारा 204 (2) सीआरपीसी अभियुक्तों को बेईमान वादियों द्वारा उत्पीड़न से हितों से संरक्षण प्रदान करती है और धारा 254 (2) सीआरपीसी के तहत गवाहों को समन जारी करने के लिए मजिस्ट्रेट की शक्ति को सीमित नहीं करता है। धारा 204 (2) सीआरपीसी के प्रावधान प्रक्रिया या न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के विवाद को प्रभावित नहीं करते हैं, भले ही अनिवार्य हो। (पैरा-10,11)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,
द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के अधिवक्ता श्री संदीप पाण्डेय, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री के.पी पाठक को सुना, और अभिलेखों का अवलोकन किया।

यह आवेदन धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदक द्वारा सम्मन आदेश दिनांक

04.09.2015 के साथ-साथ पुराने केस नंबर- 1118 वर्ष 2018 (नया केस नंबर-4678 वर्ष 2021) (श्रीमती रजनी मिश्रा बनाम लक्ष्मी शंकर पांडे और अन्य) की पूरी कार्यवाही को धारा 323, 504, 506, 356 भ०द०वि० के तहत, थाना-कोतवाली कटरा, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मिर्जापुर के न्यायालय के समक्ष लंबित जिला मिर्जापुर, को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा 29.09.2014 को थाना-कोतवाली कटरा, जिला-मिर्जापुर में धारा 323, 504, 506 भ०द०वि० के तहत आवेदकों के खिलाफ एन.सी.आर दर्ज किया गया था। इसके बाद, 10.10.2014 को, संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा धारा 155 (2) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया गया था, जिसमें अनुरोध किया गया था कि संबंधित थानाध्यक्ष को उपरोक्त एन.सी.आर में जांच करने का निर्देश दिया जाए, जिस पर उपरोक्त मामले को शिकायत मामला माना गया और धारा 200 और 202 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करने के बाद, आवेदकों को दिनांक 04.09.2015 के आदेश के तहत तलब किया गया। जिसके अनुसरण में, आवेदक इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और जमानत प्राप्त कर ली। इसलिए, सम्मन आदेश के अनुसरण में संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए वर्तमान आवेदन दायर किया गया है।

आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि धारा 204 द०प्र०स० के अनिवार्य प्रावधान पर विचार करते हुए सम्मन आदेश पारित नहीं किया गया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया

है कि समन जारी करने से पहले, अभियोजन पक्ष के गवाहों की सूची प्रदान की जानी चाहिए। वह आगे प्रस्तुत किया कि चूंकि उक्त प्रावधान प्रकृति में अनिवार्य है और शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 ने गवाहों की सूची प्रस्तुत नहीं की है, इसलिए, आरोपी-आवेदक के खिलाफ प्रक्रिया का मुद्दा अनुचित और अवैध है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि संबंधित धारा के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, इसलिए, पूरी कार्यवाही कानून के दुरुपयोग की प्रक्रिया के अलावा और कुछ नहीं है और इसे इस न्यायालय द्वारा रद्द किया जाना चाहिए।

इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 ने शिकायत में घटना के गवाह के रूप में खुद का नाम दिया है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि गवाहों की कोई सूची प्रस्तुत नहीं की गई है। इस संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि गवाहों की एक अलग सूची प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है और शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को शिकायत में गवाह के रूप में नामित किया गया है, यह धारा 204 द०प्र०स० के तहत निर्धारित प्रावधानों का पर्याप्त अनुपालन है। यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि धारा 204 द०प्र०स० के तहत उक्त प्रावधान, अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने से पहले गवाहों की एक सूची प्रस्तुत करने के संबंध में केवल प्रक्रिया का मामला है, यह अनिवार्य नहीं है और आरोपी व्यक्तियों के प्रति किसी भी पूर्वाग्रह से बचने के लिए मुकदमे के शुरू होने से पहले इसका अनुपालन किया जा सकता है। अन्यथा भी, आवेदकों ने

पहले ही अपना दावा छोड़ दिया है क्योंकि वर्ष 2015 के सम्मन आदेश को लगभग 7 साल के अंतराल के बाद और जमानत पर रिहा होने के बाद चुनौती दी जा रही है। जहां तक अन्य तर्कों का संबंध है कि संबंधित धाराओं के तहत अपराध नहीं हुआ है, प्राथमिकी के अवलोकन से ही पता चलता है कि आवेदकों ने अपमानजनक भाषा का उपयोग करने के बाद प्रतिपक्षी संख्या-2 के घर में प्रवेश किया और प्रतिपक्षी संख्या-2 और उसके परिवार के सदस्यों पर लात, मुट्ठी, लाठी और डंडा से हमला किया, जिससे उन्हें चोटें आईं। उन्होंने उसे घर छोड़ने या गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी। इस प्रकार, आरोप प्रथम दृष्टया लगाए जाते हैं। इसलिए, इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का भी अध्ययन किया है।

इस प्रकार जो मुख्य मुद्दा उठता है वह संहिता के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार संज्ञान लेने और जारी करने की प्रक्रिया के तरीके के संबंध में है और क्या संज्ञान लेने या प्रक्रिया जारी करने के चरण में विस्तृत कारणों को दर्ज किया जाना आवश्यक है। मजिस्ट्रेट को की गई शिकायतों पर संहिता के अध्याय XV के तहत कार्रवाई की जाती है। धारा 202 द०प्र०स० में प्रक्रिया जारी करने को स्थगित करने का प्रावधान है, जहां मजिस्ट्रेट खुद मामले की जांच करने या पुलिस अधिकारी या ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा जांच करने का निर्देश देता है जो वह ठीक समझता है, यह तय करने के प्रयोजनों के लिए कि कार्यवाही के

लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। धारा 203 द०प्र०स० ऐसी स्थिति में शिकायत को खारिज करने का प्रावधान करता है जहां शिकायतकर्ता और गवाहों के शपथ (यदि कोई हो) पर बयान और धारा 202 द०प्र०स० के तहत जांच (यदि कोई हो) के परिणाम पर विचार करने के बाद, मजिस्ट्रेट की राय है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। संबंधित धारा 200, 202 और 203 द०प्र०स० को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"200. शिकायतकर्ता की जांच- शिकायत पर अपराध का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट शिकायतकर्ता और उपस्थित साक्षियों, यदि कोई हों, की शपथ पर जांच करेगा और ऐसी परीक्षा का सार लिखित रूप में कम हो जाएगा और शिकायतकर्ता और गवाहों द्वारा और मजिस्ट्रेट द्वारा भी हस्ताक्षरित किया जाएगा: बशर्ते कि, जब शिकायत लिखित रूप में की जाती है, मजिस्ट्रेट को शिकायतकर्ता और गवाहों से पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं है- (क) यदि कोई लोक सेवक अपने सरकारी कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य कर रहा है या कार्य करने का इरादा रखता है या किसी न्यायालय ने शिकायत की है; (ख) यदि मजिस्ट्रेट धारा 192 के अधीन किसी अन्य मजिस्ट्रेट को जांच या विचारण के लिए मामला सौंपता है: परंतु यह कि यदि मजिस्ट्रेट शिकायतकर्ता और गवाहों की जांच करने के बाद धारा 192 के अधीन मामले को किसी अन्य मजिस्ट्रेट को सौंपता है, तो बाद वाले मजिस्ट्रेट को उनकी पुनः परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।

202. प्रक्रिया जारी करने का स्थगन (1) कोई मजिस्ट्रेट, किसी ऐसे अपराध की शिकायत

प्राप्त होने पर, जिसका संज्ञान लेने के लिए वह प्राधिकृत है या जो धारा 192 के अधीन उसे सौंपा गया है, यदि वह ठीक समझे और ऐसे मामले में, जहां अभियुक्त उस क्षेत्र से परे किसी स्थान पर निवास कर रहा है, जिसमें वह अपनी अधिकारिता का प्रयोग करता है, अभियुक्त के विरुद्ध प्रक्रिया के मुद्दे को स्थगित कर सकेगा, और या तो स्वयं मामले की जांच करें या किसी पुलिस अधिकारी द्वारा या ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा जांच करने का निर्देश दें, जो वह ठीक समझे, यह तय करने के उद्देश्य से कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं: बशर्ते कि जांच के लिए ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया जाएगा- (ए) जहां मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि शिकायत किए गए अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है; या (बी) जहां शिकायत अदालत द्वारा नहीं की गई है, जब तक कि शिकायतकर्ता और उपस्थित गवाहों (यदि कोई हो) की धारा 200 के तहत शपथ पर जांच नहीं की गई है।

(2) उपधारा (1) के अधीन किसी जांच में, मजिस्ट्रेट, यदि वह ठीक समझे, शपथ लेकर साक्षी का साक्ष्य ले सकेगा: परन्तु यदि मजिस्ट्रेट को ऐसा प्रतीत होता है कि शिकायत किया गया अपराध अनन्य रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है तो वह शिकायतकर्ता को अपने सभी साक्षियों को प्रस्तुत करने और शपथ पर उनकी परीक्षा करने के लिए कहेगा।

(3) यदि उपधारा (1) के अधीन कोई विवेचना ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो पुलिस अधिकारी नहीं है तो उस विवेचना के लिए उसे इस संहिता द्वारा किसी थाना के भारसाधक

अधिकारी को बिना वारंट गिरफ्तार करने की शक्ति को छोड़कर सभी शक्तियाँ होंगी।

203. शिकायत का निराकरण: यदि शिकायतकर्ता और गवाहों की शपथ (यदि कोई हो) पर बयान और धारा 202 के तहत जांच या विवेचना (यदि कोई हो) के परिणाम पर विचार करने के बाद, मजिस्ट्रेट की राय है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह शिकायत को खारिज कर देगा, और ऐसे प्रत्येक मामले में वह संक्षेप में ऐसा करने के लिए अपने कारणों को दर्ज करेगा।

मजिस्ट्रेटों के समक्ष कार्यवाही शुरू करने की प्रक्रिया संहिता के अध्याय XVI के तहत प्रदान की गई है। धारा 204 द०प्र०स० में प्रावधान है कि यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट मानता है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, तो वह आरोपी व्यक्ति के खिलाफ प्रक्रिया जारी करेगा। धारा 204 द०प्र०स० इस प्रकार है: -

"204. प्रक्रिया का मुद्दा- (1) यदि मजिस्ट्रेट की राय में किसी अपराध का संज्ञान लेने के लिए कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, और मामला प्रतीत होता है- (ए) एक सम्मन-मामला, वह अभियुक्त की उपस्थिति के लिए अपना सम्मन जारी करेगा, या (बी) एक वारंट-केस, वह वारंट जारी कर सकता है, या, यदि वह उचित समझता है, अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष एक निश्चित समय पर या (यदि उसके पास स्वयं कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है) किसी अन्य मजिस्ट्रेट के पास अधिकार क्षेत्र रखने के लिए एक सम्मन।

(2) उपधारा (1) के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध तब तक कोई सम्मन या वारंट जारी नहीं किया जाएगा जब तक कि अभियोजन

पक्ष के गवाहों की सूची फाइल न कर दी गई हो।

(3) लिखित में की गई शिकायत पर संस्थित कार्यवाही में, उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए प्रत्येक सम्मन या वारंट के साथ ऐसी शिकायत की एक प्रति संलग्न की जाएगी।

(4) जब तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा कोई प्रक्रिया-फीस या अन्य फीस संदेय हो तो फीस का संदाय किए जाने तक कोई प्रक्रिया जारी नहीं की जाएगी और यदि ऐसी फीस युक्तियुक्त समय के भीतर संदत्त नहीं की जाती है तो मजिस्ट्रेट शिकायत को खारिज कर सकेगा।

(5) इस धारा की कोई बात धारा 87 के उपबंधों को प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी।

उपरोक्त धाराओं की बारीकी से जांच के बाद, इस न्यायालय ने देखा कि धारा 204(1) द०प्र०स० के तहत मजिस्ट्रेट का अधिकार क्षेत्र पहली बार में एक सम्मन या वारंट जारी करने के लिए, जैसा भी मामला हो, यदि वह संतुष्ट है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार था, तो शिकायतकर्ता की ओर से अभियोजन पक्ष के गवाहों की सूची दाखिल करने में विफलता से (?) नहीं किया जा सकता है। धारा 204 द०प्र०स०, धारा 254(1) द०प्र०स० को प्रत्यादिष्ट नहीं करती है, जो मजिस्ट्रेट पर ऐसे सभी सबूतों को लेने का कर्तव्य लगाती है जो अभियोजन पक्ष के समर्थन में पेश किए जा सकते हैं। इसके अलावा, संहिता की धारा 254 की उप-धारा (2) अभियोजन पक्ष के आवेदन पर मजिस्ट्रेट को किसी भी गवाह को समन जारी करने का अधिकार देती है। धारा 254 द०प्र०स० में यह नहीं माना गया है कि जिन

गवाहों से पूछताछ की जाएगी, वे केवल वही गवाह होंगे जिन्हें धारा 204 द०प्र०स० के संदर्भ में शिकायतकर्ता द्वारा दायर सूची में उद्धृत किया गया था। इसलिए, धारा 204 द०प्र०स० में गवाहों की सूची प्रस्तुत करने के संबंध में प्रावधान को अनिवार्य प्रकृति के रूप में नहीं माना जा सकता है ताकि आरोपी के मुकदमे को आगे बढ़ाने और उसकी याचिका दर्ज करने के लिए मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र को नियंत्रित किया जा सके। जब तक अभियोजन पक्ष के गवाहों की सूची देर से प्रस्तुत करने से अभियुक्त के प्रति स्पष्ट पूर्वाग्रह नहीं दिखाया जाता है, तब तक उसे समन जारी करने के आदेश को दूषित नहीं कहा जा सकता है।

ऊपर की गई चर्चाओं से जो कानूनी स्थिति उभरती है, वह यह है कि शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या 2 को आरोपी को प्रक्रिया जारी करने से पहले गवाहों की एक सूची प्रस्तुत करने की आवश्यकता का उद्देश्य, जैसा कि धारा 204 द०प्र०स० के तहत विचार किया गया है, आरोपी व्यक्तियों को उनकी जिरह के लिए खुद को तैयार करने में सक्षम बनाना प्रतीत होता है। धारा 204 द०प्र०स० में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो यह कहता या इंगित करता हो कि यदि अभियुक्त को प्रक्रिया जारी करने से पहले अभियोजन पक्ष के गवाहों की कोई सूची दायर नहीं की जाती है, तो बाद में भी दायर नहीं की जा सकती है। धारा 204 द०प्र०स० का मतलब केवल बेईमान वादियों के हाथों अनुचित उत्पीड़न के खिलाफ अभियुक्त के हितों की रक्षा करना है और अभियोजन पक्ष के आवेदन पर, जैसा कि धारा 254 (2) द०प्र०स० के तहत प्रदान किया गया है, किसी भी गवाह को सम्मन जारी करने की मजिस्ट्रेट

की शक्ति को सीमित नहीं करना है। इसके अलावा, भले ही यह माना जाता है कि धारा 204 द०प्र०स० के प्रावधान अनिवार्य हैं, यह अपने आप में, प्रक्रिया के मुद्दे या न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को समाप्त नहीं करेगा।

उपरोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय की राय है कि 04.09.2015 के आक्षेपित सम्मन आदेश के साथ-साथ पूर्वोक्त मामले की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार किया जाता है, क्योंकि मुझे अदालत की प्रक्रिया में कोई दुरुपयोग नहीं दिखता है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन में योग्यता के अभाव है अतः तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 97

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव,

आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482

संख्या 43713 / 2022

सुशील कुमार सिंह

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षी गण

अधिवक्ता आवेदक: श्री सुगेन्द्र कुमार यादव, श्री दिलेन्द्र प्रताप सिंह, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षी गण: जी.ए.

(ए) अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 419, 420,

467, 468, 471, 504 और 506- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3(1)(दा) और 3(1) (धा), अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 - धारा 14-किसी विशेष न्यायालय या किसी विशिष्ट विशेष न्यायालय के किसी निर्णय, सजा या आदेश से, जो कि अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, तथ्यों और कानून दोनों के आधार पर उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी - जब शिकायतों के निवारण के लिए अधिनियम द्वारा कोई वैधानिक उपाय बनाया जाता है, तो वैधानिक व्यवस्था की अनदेखी करते हुए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका के माध्यम से अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। (पैरा-14)

(बी) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 5 - जब कोई विशेष अधिनियम, किसी विशेष न्यायालय या किसी विशिष्ट विशेष न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध, जो अंतरिम आदेश नहीं है, तथ्यों और विधि दोनों के आधार पर उच्च न्यायालय में अपील का उपाय प्रदान करता है, तब अधिनियम का विशेष प्रावधान सामान्य प्रावधान पर अभिभावी होगा। (पैरा-6)

(सी) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत निहित शक्तियों का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब वादी के पास कोई अन्य उपाय उपलब्ध न हो और न ही तब जब किसी

विशेष कानून द्वारा कोई विशिष्ट उपाय प्रदान किया गया हो। (पैरा 15)

आवेदन में आरोप पत्र और संज्ञान आदेश सहित कार्यवाही को निरस्त करने की प्रार्थना की गई है - आवेदन की स्वीकार्यता से संबंधित आपत्ति - आवेदक के पास 1989 अधिनियम की धारा 14-ए के तहत संज्ञान/समन आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए एक वैधानिक वैकल्पिक उपाय है - धारा 14-ए में गैर-बाधा खंड के कारण याचिका स्वीकार्य नहीं है - अपील विशेष न्यायालय के निर्णय से उच्च न्यायालय में होनी चाहिए (पैरा - 2,3)
निर्णय:-यदि कोई प्रभावी वैधानिक विकल्प उपलब्ध हो - तो इस न्यायालय को धारा 482 सीआरपीसी के तहत अपनी असाधारण शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए, विशेष रूप से तब जब आवेदक ने उस उपाय का लाभ नहीं उठाया हो। आवेदक को उचित न्यायाधिकरण के समक्ष विधि के तहत उपलब्ध अपील के उपाय का लाभ उठाने का निर्देश पारित किया गया। (पैरा - 15,18)

आवेदन अंतर्गत धारा 482 सीआरपीसी निस्तारित। (ई- 7)

उद्धृत वाद सूची:

1. गुलाम रसूल खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2022 0 सुप्रीम (ऑल) 608
2. आपराधिक रिट- जनहित याचिका संख्या 8/2018

3. रामअवतार बनाम म.प्र. राज्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 625

4. हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, 2020 0 सुप्रीम (एससी) 653

5. अर्नित दास बनाम बिहार राज्य, 2000 (5) एससीसी 488

6. एन. भार्गवन पिल्लई बनाम केरल राज्य, एआईआर 2004 एससी 2317

7. मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1978 एससी 47

8. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप. (1) एससीसी 335

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री अनूप त्रिवेदी, श्री आरपी मिश्रा को सुना, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ताओं को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. आवेदक द्वारा वर्तमान आवेदन सी.आर.पी.सी. की धारा 482 के तहत अपराध संख्या 45/2018 अंतर्गत धारा 419, 420, 467, 468, 471 504, 506 आईपीसी एवं एससी/एसटी एक्ट की धारा 3(1)(द) एवं 3 (1) (ध) थाना- खजनी, जिला- गोरखपुर, की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की

प्रार्थना के साथ दायर किया गया है तथा आरोप पत्र एवं विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश / विशेष न्यायाधीश एस.सी./एस.टी. एक्ट, गोरखपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.02.2022 को भी सम्मिलित करते हुए।

3. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा इस आधार पर आवेदन की मेनटेनिबिलिटी के संबंध में एक प्रारंभिक आपति उठाई गई है कि आवेदक के पास अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित (अत्याचार निवारण) में संशोधन अधिनियम -2015 (1989 का अधिनियम) की धारा 14-ए के तहत संज्ञान / सम्मन आदेश को चुनौती देने के लिए अपील का वैधानिक वैकल्पिक उपाय है। यह याचना की गयी है कि वर्तमान 482 याचिका अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 की धारा 14-ए की शुरुआती पंक्ति के मद्देनजर सुनवाई योग्य नहीं है, जो कि एक वैधानिक प्रावधान है और यह धारा गैर-विषयक उपवाक्य से शुरू होती है कि "संहिता में किसी बात के होते हुए भी आपराधिक प्रक्रिया, 1973 (1974 का 2) के अनुसार, किसी विशेष न्यायालय या विशेष विशेष न्यायालय के किसी भी निर्णय, वाक्य या आदेश के विरुद्ध, जो कि अंतरिम आदेश नहीं, है अपील तथ्यों और कानून

दोनों के आधार पर उच्च न्यायालय में की जा सकती है।" अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने गुलाम रसूल खान और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2022 0 सुप्रीम (इलाहाबाद) 608 के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसलों पर भरोसा किया है। इन रि० एससी/एसटी (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 की धारा 14 ए (आपराधिक रिट-जनहित याचिका संख्या 2018 की 8) पर 10.10.2018 को निर्णय लिया गया।

4. दूसरी ओर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि लागू आदेश के खिलाफ सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका सुनवाई योग्य होगी। उन्होंने आगे कहा कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को अधिनियम की धारा 14-ए द्वारा खत्म नहीं किया जा सकता है। उन्होंने रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2021, सुप्रीम (एस.सी.) 625 और हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, 2020, उच्चतम न्यायालय (एससी) 653 में दिए गए उच्चतम न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया।
5. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे बताया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आवेदकों के विद्वान

अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए मामलों में इस मुद्दे पर कभी विचार नहीं किया है कि विशेष न्यायालय द्वारा पारित संज्ञान आदेश के विरुद्ध अपील अधिनियम, 1989 की धारा 14-ए के तहत होगी या सीआरपीसी की धारा 482 के तहत याचिका होगी, इसलिए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उन्हें बाध्यकारी नहीं कहा जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अर्जित दास बनाम बिहार राज्य, 2000 (5) एससीसी 488 के मामले पर भरोसा किया, जिसमें इस तरह के निर्णय के बाध्यकारी प्रभाव की जांच करते हुए, शीर्ष न्यायालय ने पाया कि "एक निर्णय जो कि व्यक्त न किया गया, बिना किसी कारण के और किसी मुद्दे पर सचेत विचार किये, कार्यवाही न करने को बाध्यकारी प्रभाव वाला घोषित कानून नहीं माना जा सकता है। जैसा कि अनुच्छेद 141 में माना गया है। फैसले में जो बच गया है वह रेशियो डिशेनडाई नहीं है। यह तकनीकी अर्थों में सब साइलेंटियो का नियम है, जब कानून का एक विशेष बिंदु निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया गया था। उन्होंने यह तर्क देने के लिए एन. भार्गवन पिल्लई बनाम केरल राज्य, एआईआर 2004 एससी 2317 के मामले पर भी भरोसा किया है। यदि कोई विचार वैधानिक

प्रावधान का विश्लेषण किए बिना व्यक्त किया गया है, तो इसे बाध्यकारी मिसाल के रूप में नहीं माना जा सकता है।

6. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 5 का सहारा लेते हुए यह भी तर्क दिया है कि जब एक विशेष अधिनियम, किसी विशेष न्यायालय या विशेष न्यायालय के किसी भी निर्णय, वाक्य या आदेश से अपील का उपाय प्रदान करता है, जो एक अंतरिम आदेश नहीं है। तथ्यों और कानून दोनों पर उच्च न्यायालय के लिए, अधिनियम में विशेष प्रावधान सामान्य प्रावधान पर प्रबल होगा।
7. रामावतार (सुप्रा) के मामले में मुद्दा यह था कि क्या अदालत की विशेष शक्तियों का प्रयोग करके अनुसूचित जाति वर्ग से संबंधित पीड़ित की भावनाओं को ठेस पहुंचाने के आरोपी व्यक्ति के खिलाफ गैर-शमनीय अपराध से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है ? माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया है कि जहां अदालत को यह प्रतीत होता है कि विचाराधीन अपराध, हालांकि एससी/एसटी अधिनियम के तहत आता है, (i) मुख्य रूप से निजी या नागरिक प्रकृति का है; या (ii) जहां कथित अपराध हैं पीड़िता की जाति के आधार

पर अपराध नहीं किया गया है; या (iii) जहां कानूनी कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा, अदालत कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकती है।

8. हालांकि, हितेश वर्मा (सुप्रा) के मामले में, अपीलकर्ता ने इस आधार पर आरोप-पत्र को रद्द करने की मांग की थी कि आरोप केवल इसलिए अपीलकर्ता के खिलाफ अधिनियम के तहत अपराध नहीं बनता है क्योंकि प्रतिवादी नंबर 2 एक अनुसूचित था। चूंकि संपत्ति विवाद इस तथ्य के कारण नहीं थी कि प्रतिवादी संख्या 2 अनुसूचित जाति की थी। समाज के एक कमजोर वर्ग और उच्च जाति के व्यक्ति के बीच संपत्ति विवाद, अधिनियम के तहत किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करेगा, जब तक कि आरोप पीड़ित के अनुसूचित जाति का होने के कारण न हों।
9. यह न्यायालय द्वारा गुलाम रसूल खान और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2022 नवीनतम केस लॉ 8330 एल. और एससी/एसटी (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 की धारा 14 ए के प्रावधान में दिए गए इस न्यायालय के दो पूर्ण पीठ के फैसलों को भी ध्यान में रखता है। (आपराधिक रिट-सार्वजनिक हित याचिका संख्या -

8/2018) पर 10.10.2018 को पारित निर्णय के अन्तर्गत ।

गया। 397 सीआरपीसी या धारा 482 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन, सुनवाई योग्य नहीं होगा ।

10. एससी/एसटी (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 (सुप्रा) की धारा 14-ए के प्रावधान के संदर्भ में, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया है कि "(बी) क्या धारा में निहित प्रावधानों के मद्देनजर संशोधन अधिनियम के 14-ए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के प्रावधानों के तहत एक याचिका या आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के तहत एक पुनरीक्षण या धारा 482 सीआरपीसी के तहत एक याचिका, सुनवाई योग्य है। दूसरे शब्दों में, क्या संशोधन अधिनियम की धारा 14-ए के आधार पर, संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियां या इसकी पुनरीक्षण शक्तियां या धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्तियां बेदखल हो जाती हैं?
11. पूर्ण पीठ ने उक्त प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दिया। यह माना गया कि उन निर्णयों या आदेशों के विरुद्ध, जिनके लिए 1989 अधिनियम की धारा 14-ए के तहत उपाय प्रदान किया गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत याचिका दायर करके इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते हुए, धारा के तहत एक संशोधन किया
12. गुलाम रसूल खान और अन्य (सुप्रा) के एक अन्य मामले में, जो इस न्यायालय की एक और पूर्ण पीठ है, ने निम्नलिखित प्रश्न पर भी विचार किया कि क्या एक पीड़ित व्यक्ति जिसने धारा 14- A का अधिनियम 1989 के प्रावधानों के तहत अपील के उपाय का लाभ नहीं उठाया है | एसीआरपीसी की धारा 482 के प्रावधानों के तहत आवेदन देकर उच्च न्यायालय में याचना की अनुमति दी जा सकती है ? पूर्ण पीठ ने उक्त प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा कि पीड़ित व्यक्ति के पास धारा 14-A का अधिनियम की 1989 के तहत अपील का उपाय है, उसे सीआरपीसी की धारा 482 के तहत इस न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार को लागू करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।
13. आवेदकों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन दोनों मामलों पर भरोसा किया गया है, वे वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं क्योंकि वे धारा 14-A का अधिनियम, 1989 के सम्मिलन के बाद धारा 482 सीआरपीसी के तहत याचिका की स्थिरता के तकनीकी मुद्दे पर चुप हैं और जब तक उक्त मुद्दे पर सचेत

रूप से निर्णय नहीं लिया जाता, वैधानिक प्रावधान से कोई भी विचलन एक बुरी मिसाल होगी। आवेदकों के विद्वान वकील द्वारा जिन मामलों पर भरोसा किया गया, उनका निर्णय माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार करते हुए किया है कि इसमें शामिल विवाद या तो निजी विवाद की प्रकृति का था या पार्टियों के बीच समझौता हुआ था।

14. इसमें कोई संदेह नहीं है कि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग एक असाधारण शक्ति है जिसका प्रयोग बहुत सावधानी और सावधानी से किया जाना चाहिए जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न अवसरों पर निर्णयों के दौरान याद दिलाया है। अधिनियम 1989 की धारा 14-ए के अवलोकन से ही पता चलता है कि यह एक गैर-विषयक उपवाक्य से शुरू होता है। किसी भी प्रावधान में गैर-अस्थिर खंड डालने के पीछे विधायी मंशा किसी अन्य प्रावधान या किसी अन्य प्रचलित कानून पर उस प्रावधान के अधिभावी प्रभाव को लागू करना है। जब शिकायतों के निवारण के लिए अधिनियम द्वारा एक वैधानिक उपाय बनाया जाता है, तो सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक याचिका के माध्यम से अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जाता है। वैधानिक

व्यवस्था की अनदेखी कर इसे लागू नहीं किया जा सकता।

15. संहिता की धारा 482 उन तीन परिस्थितियों की परिकल्पना करती है जिनके तहत अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, अर्थात्, (i) संहिता के तहत किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए; (ii) अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए; और (iii) अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करना। यह स्पष्ट कानून है कि संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग न्याय के गर्भपात को रोकने या अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जाना चाहिए और न्यायालय के पास व्यापक विवेकाधीन शक्तियाँ का अधिकार हैं। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि धारा 482 के तहत निहित शक्तियाँ सीआरपीसी का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब वादी के लिए कोई अन्य उपाय उपलब्ध न हो और न कि जहाँ किसी विशेष कानून द्वारा कोई विशिष्ट उपाय प्रदान किया गया हो। यदि कोई प्रभावी वैधानिक वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है, तो इस अदालत को सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपनी असाधारण शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए, खासकर जब

आवेदक ने उस उपाय का लाभ नहीं उठाया हो ।

16. मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1978 एससी 47 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि निम्नलिखित सिद्धांत उच्च न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करेंगे :

1. यदि पीड़ित पक्ष की शिकायतों के निवारण के लिए कोड में विशिष्ट प्रावधान है, तो शक्ति का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए।
2. किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय सुनिश्चित करने के लिए इसका संयमपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए।
3. इसका प्रयोग संहिता के किसी अन्य प्रावधान में शामिल कानून की स्पष्ट बाधा के विरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए।

17. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (1992) अनुपूरक (1) एससीसी 335 के ऐतिहासिक मामले में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने धारा 482 के प्रावधानों और उच्च न्यायालय द्वारा एफ.आई.आर. या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्तियों पर विस्तार से विचार किया है । सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक शिकायत को रद्द करने के लिए अपनी अंतर्निहित

शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालयों द्वारा पालन किए जाने वाले निम्नलिखित दिशानिर्देशों को निर्धारित करके कानूनी स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत किया:

1. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है।
2. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ संलग्न अन्य सामग्रियों में आरोप, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, की संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा की गयी जांच को उचित ठहराने के लिये, सिवाय संहिता की धारा 155(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के ।
3. जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।
4. जहां एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल गैर-संज्ञेय अपराध हैं, वहां मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि

संहिता की धारा 155 (2) के तहत माना गया है।

5. जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

6. जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी भी प्रावधान में संस्था और कार्यवाही जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक है और/या, जहां कोई विशिष्ट प्रावधान है संहिता या संबंधित अधिनियम, पीड़ित पक्ष की शिकायत लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

7. जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

18. उपरोक्त कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, आवेदक को उचित फोरम के समक्ष कानून के तहत उपलब्ध अपील के उपाय का लाभ उठाने के

निर्देश के साथ तत्काल आवेदन का अंतिम रूप से निपटारा किया जाता है।

19. आक्षेपित आदेश की प्रमाणित प्रति, यदि कोई हो, नियमानुसार लौटा दी जाये।

(2023) 4 ILRA 102

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता,

रिट सी संख्या 32432/2022

आशा देवी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री राजनाथ यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री नरेंद्र कुमार तिवारी

सिविल कानून-भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 21- उचित क्षतिपूर्ति का अधिकार - बिजली का झटका से शारीरिक विकलांगता- अपर्याप्त क्षतिपूर्ति के विरुद्ध याचिका -यूपी पावर कॉरपोरेशन की योजना के तहत प्रदान की गई विचारमूलक आय प्रथम दृष्टया अपर्याप्त प्रतीत होती है-याचिकाकर्ता बकरियों को चराने का काम कर रहा था जो कृषि से जुड़ा कार्य है-कृषि में कार्यरत अकुशल कर्मचारियों के लिए न्यूनतम मजदूरी 409 रुपये प्रतिदिन-क्षतिपूर्ति वृद्धि (I)- विकलांगता के कारण कमाई का नुकसान (II)- चिकित्सा

व्यय के लिए क्षतिपूर्ति (III)- भविष्य के चिकित्सा व्यय (IV)- परिचारक शुल्क (V)- परिवहन और विशेष आहार की हानि (VI)- दर्द और पीड़ा (VII)- विवाह की संभावनाएं- (VIII)- सुविधाओं और जीवन के आनंद की हानि- मुआवजा 5,81,000 रुपये से बढ़ाकर 43,84,416 रुपये किया गया। (पैरा 10- 30)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. कनीज़ फातिमा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 25065/2022

2. कीर्ति बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2021) 2 एससीसी 166

3. काजल बनाम जगदीश चंद, (2020) 4 एससीसी 413

4. लता वाधवा बनाम बिहार राज्य (2001) 8 एससीसी 197

5. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680

6. सरला वर्मा बनाम डीटीसी (2009) 6 एससीसी 121

7. रमन बनाम उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड, (2014) 15 एससीसी 1

8. महाराजा अग्रसेन अस्पताल बनाम ऋषभ शर्मा (2020) 6 SCC 501

9. म.प्र. विद्युत बोर्ड बनाम शैल कुमारी (2002) 2 एससीसी 162

10. शिव रंशु छुनेजा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. (2009 का डब्ल्यूआरआईटीसी नंबर 10191)

11. आर.डी. हट्टंगडी बनाम पेस्ट कंट्रोल (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (1995) 1 एससीसी 551

12. राज कुमार बनाम अजय कुमार (2011) 1 एससीसी 343

13. के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, (2012) 12 एससीसी 274

14. सिंदराम बनाम डिवीजनल मैनेजर, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1597

15. डिवीजनल कंट्रोलर, केएसआरटीसी बनाम महादेव शेटी एवं अन्य (2003) 7 एससीसी 197

16. निज़ाम इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज बनाम प्रशांत एस धनंका और अन्य, (2009) 6 एससीसी 1

17. सुबुलक्ष्मी बनाम प्रबंध निदेशक, तमिलनाडु राज्य ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन एवं अन्य (2012) 10 एससीसी 177

18. जगदीश बनाम मोहन एवं अन्य (2018) 4 एससीसी 571

19. इब्राहिम बनाम राजू एवं अन्य, (2011) 10 एससीसी 634

20. मास्टर आयुष बनाम शाखा प्रबंधक, रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (2022) 7 एससीसी 738

21. गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2011) 10 एससीसी 683

22. अफनीश बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2018) 13 एससीसी 119

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

एवं

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता,
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजनाथ यादव, राज्य प्रतिवादी संख्या 1 और 4 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी और प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. आज दाखिल किया गया प्रत्युत्तर शपथपत्र रिकॉर्ड में लिया गया है।

3. दिनांक 16.1.2023 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

“याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजनाथ यादव, प्रतिवादी संख्या 1 और 4 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री मनीष कुमार और प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3/पूर्वाचल, विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, कौशांबी/वाराणसी, के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी को सुना गया। प्रतिवादियों का यह स्वीकार किया गया मामला है कि याचिकाकर्ता की उम्र 7.12.2020 को लगभग 18 वर्ष थी, उसने दिनांक 22.7.2020 को 11 केवी थी फेज लाइन के कारण करंट लगने के कारण अपना दाहिना हाथ और दाहिनी कोहनी के नीचे अपना बायां अंगूठा खो दिया था, जो मानक ऊंचाई 4.6 मीटर के सापेक्ष 1.80 मीटर की ऊंचाई पर पाया गया। इस प्रकार, प्रतिवादियों की लापरवाही से याचिकाकर्ता को हुई शारीरिक विकलांगता निर्विवाद है। प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता को केवल 1,40,000/- रुपये का मुआवजा दिया है, जिससे वह मुश्किल से अपने इलाज का खर्च उठा सकी। मुख्य चिकित्सा अधिकारी, कौशांबी द्वारा जारी प्रमाण पत्र के अनुसार,

याचिकाकर्ता 70% की स्थायी शारीरिक विकलांगता से ग्रस्त है। अपना दाहिना हाथ कोहनी के नीचे और बायां अंगूठा खोने के कारण उसका पूरा जीवन बर्बाद हो गया और वह अपनी आजीविका कमाने में भी असमर्थ हो गई है और पूरी जिंदगी आश्रित रहेगी।

उपरोक्त घातक घटना के बावजूद, याचिकाकर्ता को देय मुआवजे की गणना कानून के अनुसार, विशेष रूप से इस न्यायालय द्वारा दिनांक 9.11.2022 को निर्णीत रिट-सी संख्या 25065 सन् 2022 (कनीज़ फातिमा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य), में निर्धारित कानून के अनुसार नहीं की गई है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम प्रतिवादी संख्या 1 और 2 को आज से दो सप्ताह के भीतर अलग-अलग प्रति शपथपत्र दायर करने का निर्देश देते हैं। इसके बाद याचिकाकर्ता के पास प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल करने के लिए एक सप्ताह का समय होगा।

मामले को नये सिरे से दिनांक 3.2.2023 को पेश करें।”

4. रिट याचिका में बताए गए अधिकांश प्रासंगिक तथ्यों को प्रतिवादी संख्या 2 ने अपने प्रति शपथपत्र दिनांक 1.2.2023 में स्वीकार किया है। प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 4, 5, 6, 12, 20 और 21 प्रासंगिक हैं जिन्हें नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

“4. याचिकाकर्ता की मां द्वारा जानबूझकर देरी के बाद दिनांक 21-08-2020 को आईपीसी की धारा 338 के तहत अपराध संख्या 299/2020 संबंधित पुलिस स्टेशन-पश्चिम शरीरा, जिला कौशांबी में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। सूचनाकर्ता द्वारा विलम्ब का कारण स्पष्ट नहीं किया गया है। निदेशक विद्युत सुरक्षा ने अपनी सिफारिशों के साथ 09-09-2020 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

5. याचिकाकर्ता द्वारा मुआवजे के संबंध में दावा दायर किया गया है। याचिकाकर्ता के दावे पर याचिकाकर्ता के मामले में लागू कार्यालय जापन दिनांक 25-09-2021

(यू.पी.पी.सी.एल.) के प्रावधानों के अनुसार विचार किया गया है। घायलों के गुणक और आय कारक के आवेदन सहित मुआवजे की राशि की गणना करने के

लिए दिशानिर्देश हैं। याचिकाकर्ता का मामला स्थायी विकलांगता के मुआवजे की गणना के लिए लागू परिपत्र दिनांक 25-09-2021 (यू.पी.पी.सी.एल.) की तालिका II की दूसरी पंक्ति में शामिल है।

यूपी पावर कॉरपोरेशन द्वारा जारी कार्यालय जापन दिनांक 25-09-2021

(यू.पी.पी.सी.एल.) की एक प्रति इसके साथ दाखिल की जा रही है और इस शपथपत्र में **अनुलग्नक संख्या सीए-1** के रूप में अंकित है।

6. जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में बताया गया है, घायल की उम्र निश्चित रूप से 17 वर्ष है, जिसका अर्थ है 15 वर्ष से अधिक और 20 वर्ष से कम, जैसा कि कार्यालय जापन के साथ संलग्न तालिका- II के क्रम संख्या 2 में उल्लिखित है। घायल का कोई आय प्रमाण नहीं है इसलिए अनुमानित आय का कारक लागू होगा। 16 का गुणक लागू होगा। मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार विकलांगता का प्रतिशत 70% है। उपर्युक्त दावे के लिए मुआवजे की राशि

तालिका-II में 5,81,200/- रुपये बताई गई है।

12. यह कि रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 5 की सामग्री को रिकॉर्ड का विषय होने के कारण किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

20. यह कि, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 13 और 14 की सामग्री को स्वीकार नहीं किया जाता है और सख्ती से इनकार किया जाता है। यह सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता के मामले पर कार्यालय जापन दिनांक 25-09-2021 में दिए गए दिशानिर्देशों और निर्देशों के अनुसार विचार किया गया है। याचिकाकर्ता के दावे का मूल्य 5,81,200/- रुपये दिया गया है। उक्त राशि में से 1,40,000/- रुपये का भुगतान दिनांक 30-03-2022 को किया गया है तथा शेष राशि 4,41,200/- रुपये का भुगतान दिनांक 24-01-2023 को किया गया है। अनुमोदन की प्रति दिनांक 20-01-2023 और 4,41,200/- रुपये के याचिकाकर्ता भुगतान की प्राप्ति का पत्र इसके साथ दाखिल किया जा रहा है और इस शपथपत्र में **अनुलग्नक**

संख्या सीए-3 के रूप में चिह्नित किया गया है।

21. यहां यह भी बताया जाना चाहिए कि यह पता लगाने के लिए एक जांच की जाएगी कि पीड़ित को भुगतान में देरी क्यों हुई है और इस तरह की अत्यधिक देरी के लिए कौन जिम्मेदार है। यहां यह भी बताया जा सकता है कि जांच रिपोर्ट के आधार पर, दोषी अधिकारी/कर्मचारी के खिलाफ कानून के अनुसार उचित कार्रवाई की जाएगी, जिसके कारण पीड़ित को भुगतान करने में देरी हुई होगी।"

4. इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के पैराग्राफ 3 में यह कहा गया है कि वह अनुसूचित जाति की है और अविवाहित है और बकरियां चराने का काम करती है, जिसे प्रतिवादी संख्या 2 ने प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 10 में स्वीकार कर लिया है। प्रतिवादी संख्या 2 ने भी प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 13 में याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के अनुच्छेद 6 में दिए गए कथनों को स्वीकार किया है कि प्रतिवादी विभाग की लापरवाही और दायित्व को मानते हुए प्रतिवादी संख्या 2 को दिनांक

9.9.2020 को एक जांच रिपोर्ट भेजी गई थी। रिट याचिका के पैराग्राफ 5 में दिए गए दावे से कि याचिकाकर्ता ने चिकित्सा व्यय के लिए दो लाख रुपये से अधिक खर्च किया है, प्रतिवादी संख्या 2 ने प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 12 में इनकार नहीं किया है। 100% विकलांगता के संबंध में रिट याचिका के पैराग्राफ 14 में दिए गए कथनों को भी प्रतिवादी संख्या 2 ने प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 20 में अस्वीकार कर दिया है और पैराग्राफ 22 में, विकलांगता की सीमा केवल 70% होने की बात स्वीकार की गई है।

6. प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से एक प्रति शपथपत्र ऊर्जा विभाग, उत्तर प्रदेश सचिवालय लखनऊ के विशेष सचिव श्री अनुपम शुक्ला द्वारा भी दायर किया गया है, जिन्होंने रिट याचिका के पैराग्राफ 4, 5, 6, 7, 8 और 9 की सामग्री को स्वीकार किया है। प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 8 में, प्रतिवादी संख्या 1 ने निम्नानुसार कहा है: -

"8. रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 11 की सामग्री के उत्तर में, यह प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड के आदेश दिनांक 03.02.2016 के क्रम में दिनांक 30.03.2022 को मुआवजे के रूप में

1,40,000/- रुपये का भुगतान किया गया एवं उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड के आदेश दिनांक 06.10.2018 के अनुसार, कुल राशि 5,81,200/- रुपये में से शेष राशि 4,41,200/- रुपये का भुगतान दिनांक 24.01.2023 को किया गया था, जिसे याचिकाकर्ता की मां ने स्वीकार किया है। इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड द्वारा एक आदेश संख्या 2828-Aus/2021-

19(125)A.S./01

25.09.2021 भी पारित किया गया था। इस संबंध में आदेश दिनांक 06.10.2018 एवं आदेश दिनांक 25.09.2021 की छायाप्रति एवं आशा देवी के बैंक स्टेटमेंट एवं रसीद दिनांक 25.01.2023 की छायाप्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इस प्रति शपथपत्र में अनुलग्नक संख्या सीए-3, सीए-4, सीए-5 के रूप में चिह्नित किया गया है।”

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि एक बार प्रतिवादियों का यह

मामला स्वीकार कर लिया गया है कि उनकी लापरवाही के कारण, याचिकाकर्ता, जो लगभग 18 वर्ष की एक युवा लड़की है; वह 70% विकलांगता से पीड़ित है और इस प्रकार प्रतिवादियों की लापरवाही के कारण उसका पूरा जीवन बर्बाद हो गया है, इसलिए, प्रतिवादी उचित मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी हैं। उन्होंने आगे कहा कि प्रतिवादियों ने दिनांक 9.11.2022 को निर्णीत कनीज़ फातिमा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य रिट-सी संख्या 25065 सन् 2022 मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में मुआवजे का भुगतान नहीं किया है। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ता मुआवजे के विलंबित भुगतान पर ब्याज के भुगतान का भी हकदार है।

8. प्रतिवादी संख्या 1 और 4 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रति शपथपत्र के उपरोक्त पैराग्राफ को दोहराया और प्रस्तुत किया कि प्रति शपथपत्र के अनुलग्नक-सीए-1 के रूप में दायर कार्यालय ज्ञापन दिनांक 25-09-2021 के अनुसार मुआवजे का भुगतान किया गया है।

9. हमने मामले के रिकॉर्ड को ध्यान से देखा है।

10. यह स्वीकार किया गया मामला है कि याचिकाकर्ता जो कि अनुसूचित जाति की युवा लड़की है, बिजली के झटके के कारण घायल हो गई थी और उसे दिनांक 02.08.2022 से जिला अस्पताल, मंझनपुर, कौशांबी में भर्ती कराया गया था और लगभग 49 दिनों तक

इलाज के बाद दिनांक 19.09.2022 को छुट्टी दे दी गई थी। यह भी स्वीकार किया गया कि इलाज के दौरान याचिकाकर्ता का दाहिना हाथ कोहनी से और बायां अंगूठा काट दिया गया था। जिससे वह सौ प्रतिशत तक स्थायी विकलांगता से भी पीड़ित हो गई। आगे यह स्वीकार किया गया कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की लापरवाही के कारण बिजली लाइनों के रखरखाव में चोट लगी थी।

11. उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने बिजली के झटके के कारण तीसरे पक्ष की मृत्यु या स्थायी विकलांगता के मामले में मुआवजे के भुगतान के लिए दिनांक 25.09.2021 को कुछ दिशानिर्देश तैयार किए हैं, जिस पर याचिकाकर्ता को मुआवजे की राशि की गणना करते समय प्रतिवादियों द्वारा बहुत अधिक भरोसा किया गया है। उपरोक्त योजना/नीति को यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“उ.प्र. पावर कारपोरेशन लिमिटेड

(उ.प्र. सरकार का उपक्रम)

U.P. Power Corporation Limited

(Govt. of Uttar Pradesh Undertaking)

शक्ति भवन विस्तार, 14 अशोक मार्ग,
लखनऊ-226001

संख्या:-2828- औस/2021-19 (125)

ए.एस./01 दिनांक 25 सितम्बर, 2021

विषय:-त्रुटिपूर्ण विद्युत अधिष्ठापन के कारण हुई विद्युतीय दुर्घटना में बाहरी व्यक्ति की मृत्यु अथवा अपंगता/पशुओं की मृत्यु/फसल अग्निकाण्ड तथा सम्पत्ति के प्रकरणों में क्षतिपूर्ति प्रदान किये जाने के सम्बन्ध में।

कार्यालय जाप

उ.प्र. पावर कारपोरेशन लि. के निदेशक की 169वीं बैठक में लिए गये निर्णय के अनुसार उ. प्र. पावर कारपोरेशन लिए एवं उसके सहयोगी डिस्काम के नियंत्रणाधीन क्षेत्रों में त्रुटिपूर्ण विद्युतीय अधिष्ठापन के फलस्वरूप घटित दुर्घटनाओं में किसी बाहरी व्यक्ति की मृत्यु अथवा अपंगता/पशुओं की मृत्यु/फसल अग्निकाण्ड तथा सम्पत्ति के नुकसान होने की स्थिति में प्रभावित व्यक्ति अथवा उसके वैधानिक वारिस को निर्धारित समय-सीमा में क्षतिपूर्ति प्रदान किये जाने एवं निस्तारण के सम्बन्ध में कारपोरेशन के आदेश संख्या-1890 ई.ए./रा.वि.प./औ.सं.-18/92-8/विविध/92 दिनांक 26.09.1992 आदेश संख्या- 4570- औ.सं.-17/ पाकालि/2004 दिनांक 25.09.2004, आदेश संख्या- 3288-औ.सं./2011 दिनांक 19.10.2011 आदेश संख्या-4095-औ.सं./2016 दिनांक 13.10.16 आदेश संख्या- 1816 औ.सं./2017 दिनांक 10.04.2017 आदेश संख्या-4004- औ.सं./2018 दिनांक 06.10.2018 सपठित आदेश संख्या 402 औ.सं./2019 दिनांक 21.02.2019 को अवक्रमित करते हुए क्षतिपूर्ति प्रक्रिया के सरलीकरण व त्वरित निस्तारण हेतु एकल व्यवस्था एतद्द्वारा निम्नवत प्रतिपादित की जाती है-

विद्युत दुर्घटना की स्थिति में जाँच प्रक्रिया:

1. त्रुटिपूर्ण विद्युत अधिष्ठापन के कारण हुई विद्युतीय दुर्घटना में बाहरी व्यक्ति की मृत्यु अथवा अपंगता/पशुओं की मृत्यु/फसल अग्निकाण्ड तथा सम्पत्ति के प्रकरणों के सम्बन्ध में।

- विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 53 के प्राविधानों के अनुसार सुरक्षित विद्युत आपूर्ति में विफलता के कारण किसी जनहानि / पशुहानि / फसल अथवा सम्पत्ति के नुकसान की सूचना प्राप्त होने पर, सम्बन्धित उपखण्ड अधिकारी / सहायक अभियन्ता 24 घण्टे के अन्दर विद्युत सुरक्षा निदेशालय को सूचित करेगा एवं 02 दिवस के अन्दर विद्युत दुर्घटना के सम्बन्ध में निर्धारित प्रपत्र सं.- 44 (ए) पर सहायक निदेशक / उप निदेशक / निदेशक, विद्युत सुरक्षा निदेशालय को सूचित करेंगे तथा साथ में विद्युत सुरक्षा निदेशालय, उ.प्र. द्वारा संचालित बेवसाइट Vidyutsuraksha.org पर घटना का विवरण अपलोड भी करेंगे। इसके अतिरिक्त विद्युत दुर्घटना की सूचना जिला प्रशासन / पुलिस प्रशासन एवं निकटतम चिकित्सालय को देंगे तथा कॉरपोरेशन के उच्च अधिकारियों को भी संज्ञानित करायेंगे।
 - विद्युत दुर्घटना सूचना प्राप्त होने पर निदेशक / उप निदेशक / निदेशक, सुरक्षा द्वारा स्थानीय जाँच 18 दिनों में (विद्युत अग्निकाण्ड के कारण फसलों एवं सम्पत्ति की क्षति के प्रकरण में 02 दिवस में) पूर्ण कर जांच आख्या अधीक्षण अभियन्ता को प्रेषित करेंगे तथा उसकी प्रतिलिपि अधिशासी अभियन्ता एवं सम्बन्धित विद्युत वितरण निगम के प्रबन्ध निवेशक एवं मुख्य अभियन्ता को उपलब्ध करायेंगे।
 - कतिपय कारणों से यदि मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट एवं एफ.आई.आर. रिपोर्ट आदि अभिलेखों की अनुपलब्धता होने की स्थिति में क्षतिपूर्ति (अनुग्रह राशि) के भुगतान में उत्पन्न हुई समस्याओं पर जाँच कमेटी बनाकर व जिलाधिकारी के समक्ष तथ्यों को लाकर प्रकरण का नियमानुसार विधिवत स्पष्ट रूप से निस्तारण सुनिश्चित किया जायेगा।
 - उ.प्र. पावर कारपोरेशन के अधीन विद्युत वितरण निगमों में दिनांक 01.01.1992 से 06.1.2018 के मध्य घटित विद्युत दुर्घटनाओं के लम्बित प्रकरणों में बाहरी व्यक्तियों के एवं पशुओं की मृत्यु / घायल होने की क्षतिपूर्ति पूर्ववत सम्बन्धित आदेशों के अन्तर्गत अनुमन्य की जायेगी।
 - विद्युतीय दुर्घटना के कारण उत्पन्न हुई विपरीत प्रशासनिक स्थिति (सड़क जाम / उग्र प्रदर्शन आदि) के कारण यदि तत्काल अनुग्रह धनराशि का भुगतान किया जाना आवश्यक हो तो ऐसी स्थिति में क्षेत्र के जिलाधिकारी क्षतिपूर्ति / अनुग्रह राशि की स्वीकृति हेतु सक्षम अधिकारी होंगे।
- 2. क्षतिपूर्ति के रूप में दी जाने वाली अनुरार राशि की प्रक्रिया का विवरण:- बाहरी व्यक्ति की विद्युत दुर्घटना में हुई मृत्यु / अपंगता की दशा में**

कारपोरेशन के त्रुटिपूर्ण विद्युतीय अधिष्ठान के कारण हुई बाहरी व्यक्ति की विद्युत दुर्घटना से प्रभावित बाहरी व्यक्ति/ वारिस को क्षतिपूर्ति / मुआवजा दिये जाने हेतु निम्न व्यवस्था प्रतिपादित की जाती है-

- त्रुटिपूर्ण विद्युतीय अधिष्ठापन के कारण विद्युत दुर्घटना में बाहरी व्यक्ति की मृत्यु होने पर क्षतिपूर्ति के रूप में रु. 5.00 लाख, अनुग्रह राशि देय है। उ.प्र. शासन द्वारा गठित समिति की संस्तुतियों के अनुसार मृतक की आयु के सापेक्ष यदि किसी व्यक्ति की गणना के अनुसार क्षतिपूर्ति की धनराशि रु. 5.00 लाख के कम होने पर सम्बन्धित मृतक के आश्रितों को न्यूनतम रु. 5.00 लाख की क्षतिपूर्ति अनुमन्य की जायेगी।
- विद्युत दुर्घटना में मृत्यु, स्थायी / पूर्ण अपंगता / आंशिक अपंगता होने पर, क्षतिपूर्ति दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की विवाहित / अविवाहित स्थिति, आयु एवं परिवार की संख्या के आधार पर समिति की रिपोर्ट (तालिका-1 एवं 2) में दी गई सारणियों के अनुसार अनुमन्य किया जायेगा।
- सक्षम अधिकारी द्वारा घातक /अघातक विद्युत दुर्घटनाओं में कारपोरेशन के अधिष्ठापन की त्रुटि न होने की स्थिति में छव निसज सपंडपसपजल के रूप में अनुग्रह धनराशि की क्षतिपूर्ति स्वीकृत की जायेगी।
- बाहरी व्यक्ति की मृत्यु की दशा में क्षतिपूर्ति के रूप में अनुग्रह राशि

स्वीकृति करने हेतु अधीक्षण अभियन्ता सक्षम अधिकारी होंगे।

- अनुग्रह धनराशि / क्षतिपूर्ति हेतु सम्बन्धित अधिशासी अभियन्ता द्वारा निम्न प्रक्रिया का पालन किया जायेगा-
- सम्बन्धित अधिशासी अभियन्ता निदेशक, विद्युत सुरक्षा से विद्युत दुर्घटना से सम्बन्धित जांच आख्या प्राप्त होने पर परिवार के द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र एवं उपलब्ध कराये गये साक्ष्यों / अभिलेखों को संकलित करेंगे।
- विद्युत दुर्घटना में मृत्यु होने पर बाहरी व्यक्ति के परिवारजनों से प्राप्त आवेदन के अनुसार, उत्तराधिकारी की सूचना, मण्डल कार्यालय सहित सम्बन्धित विद्युत कार्यालय में चस्पा करेंगे, जिसमें आपत्ति प्रस्तुत करने हेतु 07 दिनों का समय दिया जायेगा।
- आपत्ति प्राप्त करने की समयावधि समाप्त होने पर 07 दिन के अन्दर उत्तराधिकारी से उनका आधार कार्ड / चुनाव पहचान पत्र (वोटर आई० डी०) / पैनकार्ड / राशनकार्ड / पासपोर्ट / लेखपाल अथवा ग्राम विकास अधिकारी द्वारा प्रवत कुटुम्ब रजिस्टर के आधार पर पीडित परिवार के उत्तराधिकारी का निर्धारण विधिक मापदण्डों के आधार पर करते हुये प्रकरण में क्षतिपूर्ति स्वीकृति का कारण, आदेश में लिखित रूप से अंकित (Recording reason in writing) करते हुए आदेश निर्गत

करेंगे। उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार के विवाद की स्थिति में विधिक रूप से समक्ष अधिकारी द्वारा प्रदत्त उत्तराधिकार प्रमाणपत्र प्राप्त होने के उपरान्त ही अग्रिम कार्यवाही की जाये।

- क्षतिपूर्ति के रूप में अनुग्रह राशि प्राप्त करने वाले को अण्डरटेकिंग देना होगा कि यदि किसी भी प्रकार का विवाद उत्पन्न होने पर उनके द्वारा उक्त धनराशि विभाग को वापस की जायेगी और अगर तथ्य गलत पाये गये तो उनके विरुद्ध विधिक कार्यवाही भी की जायेगी।
- किसी बाहरी व्यक्ति की विद्युतीय दुर्घटना में मृत्यु की दशा में, क्षतिपूर्ति के रूप में दी गयी अनुग्रह राशि के अतिरिक्त, मृतक आश्रित के अधीन किसी भी प्रकार का सेवायोजन अथवा कोई अन्य अनुतोष अनुमन्य नहीं होंगे।

3. बाहरी व्यक्ति की विद्युत दुर्घटना में घायल होने की दशा में।

- बाहरी व्यक्ति की विद्युत दुर्घटना में घायल होने की दशा में क्षतिपूर्ति के रूप में अनुग्रह राशि स्वीकृति करने हेतु अधीक्षण अभियन्ता सक्षम अधिकारी होंगे।
- अघातक विद्युत दुर्घटना में किसी व्यक्ति के आंशिक / पूर्ण अपंगता होने पर तालिका 1 में दिये गये विकलांगता प्रतिशत के आधार पर क्षतिपूर्ति / अनुग्रह राशि का आकलन किया जायेगा।

- विद्युत सुरक्षा निदेशालय द्वारा प्रस्तुत जांच आख्या मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा निर्गत विकलांगता प्रमाण-पत्र एफ.आई.आर. की प्रति एवं विभागीय जांच में प्राप्त संस्तुति के आधार पर क्षतिपूर्ति की कार्यवाही सुनिश्चित की जायेगी।

- क्षतिपूर्ति के रूप में अनुग्रह राशि प्राप्त करने वाले को शपथ-पत्र देना होगा कि यदि किसी भी प्रकार का विवाद उत्पन्न होने पर उनके द्वारा उक्त धनराशि विभाग को वापस की जायेगी और अगर तथ्य गलत पाये गये तो उसके विरुद्ध विधिक कार्यवाही भी की जायेगी।

4. विद्युत दुर्घटना में पशु की मृत्यु होने की दशा में।

- पशु की मृत्यु की दशा में, क्षतिपूर्ति के रूप में अनुग्रह राशि स्वीकृति करने हेतु, अधीक्षण अभियन्ता सक्षम अधिकारी होंगे।
- विद्युत सुरक्षा निदेशालय द्वारा प्रस्तुत जांच आख्या, पशु की क्रय रसीद, समक्ष पशु चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी मृत्यु प्रमाण पत्र, पोस्टमार्टम रिपोर्ट, एफ.आई.आर. की प्रति, विभागीय जांच में प्राप्त संस्तुति के आधार पर क्षतिपूर्ति की कार्यवाही सुनिश्चित की जायेगी।
- क्षतिपूर्ति के रूप में अनुग्रह राशि प्राप्त करने वाले को शपथ-पत्र देना होगा कि यदि किसी भी प्रकार का विवाद उत्पन्न होता है तो उनके द्वारा उक्त धनराशि विभाग को

वापस की जायेगी और अगर तथ्य गलत पाये गये तो उनके विरुद्ध विधिक कार्यवाही भी की जायेगी।

5. विद्युतीय अग्निकाण्ड में फसलों / सम्पत्तियों की हुई क्षति के सम्बन्ध में।

- विद्युतीय अग्निकाण्ड में फसलों / सम्पत्तियों की हुई क्षति के रूप में अनुग्रह राशि स्वीकृति करने हेतु मुख्य अभियन्ता (वितरण) सक्षम अधिकारी होंगे।
- विद्युत सुरक्षा निदेशालय, उ.प्र. शासन की संस्तृति के आधार पर सम्बन्धित पीडित परिवार के द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र में भू स्वामी होने के अभिलेखों का मालिकाना हक एवं खतौनी / लेखपाल द्वारा उपलब्ध कराये गये साक्ष्यों / अभिलेखों को संलग्न किया जायेगा।
- सम्बन्धित जिले के तहसीलदार एवं जिलाधिकारी के द्वारा क्षति का आंकलन एवं संस्तृति तथा निवेशक, विद्युत सुरक्षा निदेशालय, उ.प्र. शासन की संस्तृति के आधार पर सम्बन्धित मुख्य अभियन्ता (वितरण) द्वारा अनुग्रह धनराशि की स्वीकृति प्रदान की जाएगी। स्वीकृत धनराशि का भुगतान खण्ड स्तर पर किया जायेगा।
- विद्युत दुर्घटना में बाहरी व्यक्तियों / पशुओं के प्रकरणों के निस्तारण में विद्युत सुरक्षा निदेशालय की जांच आख्या एवं संस्तृति प्राप्त होने के 10 दिनों के अन्दर क्षतिपूर्ति की धनराशि

का भुगतान कर दिया जाये तथा सम्पूर्ण प्रक्रिया 30 दिनों में पूर्ण कर ली जाये। इसके अतिरिक्त फसल / सम्पत्तियों की हुई क्षति के फलस्वरूप क्षतिपूर्ति के प्रकरणों को विद्युत सुरक्षा निदेशालय की संस्तृति व जिलाधिकारी की आख्या प्राप्त होने के आधार पर 07 कार्य दिवसों के भीतर स्वीकृत एवं निस्तारित किया जाये।

- मुख्य अभियन्ता (वितरण) विद्युत दुर्घटना के फलस्वरूप क्षतिपूर्ति के प्रकरणों का मासिक आधार पर अनुश्रवण करेंगे एवं भुगतान से सम्बन्धित समस्त सूचनायें क्षेत्रीय कार्यालय में संरक्षित रखेंगे एवं दुर्घटनाओं को रोकने हेतु किये गये प्रयासों की मासिक रिपोर्ट प्रबन्ध निदेशक जिस्काम को भेजेंगे। सम्बन्धित डिस्काम / क्षेत्र / मण्डल / खण्ड का दायित्व होगा कि वे अपने कार्यालय में विद्युत दुर्घटनाओं के प्रकरणों की सूची बनाकर सुरक्षित रखेंगे एवं त्रुटिपूर्ण अधिष्ठापन को ठीक किये जाने हेतु किये गये प्रयासों को भी लिपिबद्ध करेंगे।

विद्युत दुर्घटना होने पर मुआवजे के लिए दिशानिर्देश

दोष दायित्व

क-घातक दुर्घटना

1. पीडित की अनुमानित आय (एन.आई.) 51,000/- रुपये (इक्यावन हजार) प्रति वर्ष (लगभग 140 रुपये प्रति दिन) मानी जाएगी।
2. गुणक को निम्नलिखित चार्ट के अनुसार अपनाया जाएगा

पीडित की आयगणक लागू (एम.ए.)

15 वर्ष तक

15

15 वर्ष से अधिक लेकिन 20 वर्ष से अधिक नहीं 16

20 वर्ष से अधिक लेकिन 25 वर्ष से अधिक नहीं 17

25 वर्ष से अधिक लेकिन 30 वर्ष से अधिक नहीं 18

30 वर्ष से अधिक लेकिन 35 वर्ष से अधिक नहीं 17

35 वर्ष से अधिक लेकिन 40 वर्ष से अधिक नहीं 16

40 वर्ष से अधिक लेकिन 45 वर्ष से अधिक नहीं 15

45 वर्ष से अधिक लेकिन 50 वर्ष से अधिक नहीं 13

50 वर्ष से अधिक लेकिन 55 वर्ष से अधिक नहीं 11

55 वर्ष से अधिक लेकिन 60 वर्ष से अधिक नहीं 8

60 वर्ष से अधिक लेकिन 65 वर्ष से अधिक नहीं 6

65 वर्ष से अधिक

5

3. घातक दुर्घटना के दावों के मामले में इस प्रकार निकाली गई मुआवजे की राशि व्यक्तिगत और जीवनयापन व्यय (पी.ई.) के लिए काट ली जाएगी

(i) यदि मृतक अविवाहित था तो 1/2, लेकिन यदि कुंवारे व्यक्ति का परिवार बड़ा है और मृतक की आय पर निर्भर है, तो कटौती 1/3 (33.33%) होगी।

(ii) यदि मृतक विवाहित था तो 1/3, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 2 से 3 है, 1/4, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 4 से 6 है और 1/5, जहां आश्रित परिवार के सदस्यों की संख्या 6 से अधिक है।

(iii) खंड (ii) में परिवार के सदस्यों की संख्या की गणना के प्रयोजन के लिए, एक नाबालिग आश्रित को आधे के रूप में गिना जाएगा।

पति-पत्नी, माता-पिता और दादा-दादी जिनकी कोई आय नहीं है और नाबालिग बच्चे आश्रित परिवार के सदस्य माने जाएंगे। (परिवार रजिस्टर और शपथ पत्र को परिवार के सदस्यों और निर्भरता का प्रमाण माना जा सकता है)।

4. ऊपर उल्लिखित मुआवजे (सी.ओ.) के अतिरिक्त निम्नलिखित सामान्य क्षति भी देय होगी:

(i) संपत्ति के नुकसान के लिए मुआवजा (एल.ई.) 5,000/- रुपये (पांच हजार)।

(ii) कंसोर्टियम (एल.सी.) के नुकसान के लिए मुआवजा, यदि लाभार्थी पति/पत्नी है तो 5,000/- रुपये (पांच हजार)।

(iii) प्यार और स्नेह की हानि के लिए मुआवजा (एल.ए.) 5,000/- रुपये (पांच हजार)।

(iv) अंत्येष्टि व्यय शव के परिवहन की लागत (एफ.ई.) 5,000/- रुपये (पांच हजार) या वास्तविक खर्च जो भी कम हो।

(v) चिकित्सा व्यय (एम.ई.) - मृत्यु से पहले किए गए वास्तविक खर्च बिल/वाउचर द्वारा समर्थित हैं, लेकिन 20,000 रुपये (बीस हजार) से अधिक नहीं।

सूत्र:

एन.आई.*एम.ए.=सी.ओ.

सी.ओ.:पी.ई.=राशि

सी.ओ.-

राशि+एल.ई.+एल.सी.+एल.ए.+एफ.ई.+

एम.ई.=कुल मुआवजा।

माता और पिता को छोड़कर 14 वर्ष की आयु के व्यक्ति की आकस्मिक मृत्यु का उदाहरण:

रु. 51000*15 (गुणक)

=765000

765000/3

=255000

रु.765000-

255000+5000+5000+5000

=525000

ख-गैर-घातक

चोटों और विकलांगताओं के मामले में सामान्य क्षति:

(i) पीड़ा और गंभीर चोटों से ग्रस्त

(ii) गंभीर चोटें (जी.आई.)

-- रु. 10,000/-

(iii) साधारण चोटें (एस.आई.)

--रु. 5,000/-

(ii) चिकित्सा व्यय (एम.ई.): - वास्तविक खर्च, बिल/वाउचर द्वारा समर्थित, लेकिन गंभीर चोट के लिए 20,000/- रुपये से अधिक नहीं और

साधारण चोट के लिए -10,000/- रुपये (मेडिकल रिपोर्ट पर)

गैर-घातक दुर्घटनाओं में विकलांगता:

गैर-घातक दुर्घटनाओं से उत्पन्न विकलांगता के मामलों में पीड़ित को निम्नलिखित मुआवजा देय होगा:

ग- अस्थायी विकलांगता

विकलांगता की वास्तविक अवधि के लिए आय की हानि, यदि कोई हो, बावन सप्ताह से अधिक न हो।

घ- स्थायी विकलांगता

(क) स्थायी पूर्ण विकलांगता के मामले में देय राशि मुआवजे के निर्धारण की तिथि पर आय पर लागू गुणक द्वारा आय की वार्षिक हानि को गुणा करके निकाली जाएगी, या

(ख) स्थायी आंशिक विकलांगता के मामले में मुआवजे का वह प्रतिशत, जो उपरोक्त मद (क) के तहत निर्दिष्ट स्थायी पूर्ण विकलांगता के मामले में देय होता।

चोटों के परिणामस्वरूप स्थायी पूर्ण विकलांगता/स्थायी आंशिक विकलांगता मानी जाती है और कमाई क्षमता के नुकसान का प्रतिशत श्रमिक मुआवजा अधिनियम, 1923 के तहत अनुसूची -1 के अनुसार होगा, मेडिकल बोर्ड से विकलांगता के प्रतिशत का उल्लेख करने वाला विकलांगता प्रमाण पत्र अंतिम होगा और इसमें सोच-विचार करके शामिल किया जाएगा।

पीड़ित की अनुमानित आय 51,000/- रुपये (इक्यावन हजार) प्रति वर्ष मानी जाएगी।

20,000 (बीस हजार) राशि के चिकित्सा बिल के साथ 14 वर्ष की आयु के व्यक्ति की 100% स्थायी विकलांगता का उदाहरण:

$$\begin{aligned}
&51000*15 \\
&=765000 \\
&765000*100/100 \\
&=765000 \\
&765000+10000+20000 \\
&=795000
\end{aligned}$$

कोई दोष दायित्व नहीं

1. मृत्यु पर - रु. 1,000,00 (एक लाख)
2. स्थायी विकलांगता में - रु. 1,25,000 (एक लाख और पच्चीस हजार)
3. गंभीर चोट - रु. 3000 (तीन हजार)
4. साधारण चोट - रु. 2000 (दो हजार)

यदि पीड़ित बिजली की चोरी या दंगों आदि जैसी अवैध गतिविधियों में शामिल था तो कोई मुआवजा नहीं दिया जाएगा। मुआवजे को पूरा करने के लिए तीसरे पक्ष की बीमा प्रणाली भी शुरू की जा सकती है।

6- विद्युत दुर्घटना में पशुओं की मृत्यु / घायल होने पर वर्तमान में प्रभावी क्षतिपूर्ति अनुग्रह राशि:-

दुधारू पशु

- भैंस, गाय, ऊँट, याक आदि की मृत्यु होने पर रु. 30,000/- (तीस हजार) अनुमन्य किया जायेगा।
- भेड़ बकरी, सुअर, आदि की मृत्यु होने पर रु. 3,000/- (तीन हजार) अनुमन्य किया जायेगा।

दुधारू पशुओं के अतिरिक्त पशु

- ऊँट, घोड़ा, बैल आदि की मृत्यु होने पर रु. 25,000/- (पच्चीस हजार) अनुमन्य किया जायेगा।

- बछड़ा, गधा, खच्चर आदि की मृत्यु होने पर रु. 16,000/- (सोलह हजार) अनुमन्य किया जायेगा।

7. अनुशासनात्मक एवं वसूली की कार्यवाही:-

विद्युत दुर्घटना के लिए दोषी कार्मिक / कार्मिकों का उत्तरदायित्व निर्धारित करते हुए डिस्कॉम के प्रबन्ध निदेशक के स्तर से एक माह के भीतर कार्यवाही सुनिश्चित की जायेगी।

क्र. सं.	विवरण	मुख्य दायित्व	पर्यावरणीय दायित्व	प्रशासकीय दायित्व
1	एल.टी. लाइन	लाइनमैन /अवर अभियन्ता	उपखण्ड अधिकारी	अधिशायी अभियन्ता (वितरण)
2	11/04 परिवर्तक या इससे अधिक एवं 11 के.वी. लाइनें	लाइनमैन/अवर अभियन्ता	उपखण्ड अधिकारी	अधिशायी अभियन्ता (वितरण)
3	33 के.वी. उपकेन्द्र	टी.जी.-2 (एस.एस.ओ.)/अवर अभियन्ता	उपखण्ड अधिकारी	अनुरक्षण-अधिशायी अभियन्ता (वि०), परीक्षण अवर अभियन्ता/सहायक, अभियन्ता - मीटर
4	33 के०वी० लाइन	अवर अभियन्ता/उपखण्ड अधिकारी	अधिशायी अभियन्ता (वि.)	अधीक्षण अभियन्ता (वितरण)

8. प्रकरण के निस्तारण हेतु आवश्यक अभिलेख:-

क्र.सं.	विद्युत दुर्घटना प्रकार	पीडित पक्षकार द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले अभिलेख
1	बाहरी व्यक्तियों के विद्युत दुर्घटना मृत्यु	1 विद्युत सुरक्षा की जांच आख्या 2. मृत्यु प्रमाणपत्र 3. सक्षम अधिकारी द्वारा वारिसान प्रमाणपत्र

	होने की दशा में	4. पोस्टमार्टम रिपोर्ट 5. एफ.आई.आर. की प्रति 6. विभागीय जांच
2	बाहरी व्यक्तियों के विद्युत दुर्घटना में घायल होने की दशा में।	1. विद्युत सुरक्षा की जांच आख्या 2. मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा निर्गत विकलांगता प्रमाण पत्र 3. एफ.आई.आर. की प्रति 4. विभागीय जांच
3	विद्युत दुर्घटना में पशुओं की मृत्यु होने की दशा में।	1. विद्युत सुरक्षा की जांच आख्या 2. पशु की क्रय रसीद 3. पशु की मृत्यु में सक्षम पशु चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी मृत्यु प्रमाण पत्र 4. पोस्टमार्टम रिपोर्ट 5. एफ.आई.आर. की प्रति 6. विभागीय जांच
4	फसल के नुकसान होने की दशा में	1. विद्युत सुरक्षा की जांच आख्या 2. फसल के नुकसान में फसल मालिक के नाम खेत होने के सम्बन्ध में खतौनी होने के सम्बन्ध में 3. जिलाधिकारी/उपजिलाधिकारी द्वारा फसल के आकलन एवं क्षतिपूर्ति की संस्तुति 4. एफ.आई.आर. की प्रति 5. विभागीय जांच
5	सम्पत्ति के नुकसान होने की दशा में	1. विद्युत सुरक्षा की जांच आख्या 2. सम्पत्ति के नुकसान में सम्पत्ति मालिक के नाम होने के सम्बन्ध में सत्यापित विवरण पत्र 3. जिलाधिकारी/उपजिलाधिकारी द्वारा सम्पत्ति के आंकलन एवं क्षतिपूर्ति की संस्तुति 4. एफ.आई.आर. की प्रति 5. विभागीय जांच

कारपोरेशन मुख्यालय को डिस्काम के माध्यम से धनराशि अवमुक्त हेतु प्रत्येक माह मांग पत्र निम्न सूचना के साथ प्रेषित किया जाये:-

1. विद्युत दुर्घटना की प्रकरणवार आख्या/त्रुटिपूर्ण अधिष्ठान के दूर किये जाने के सम्बन्ध में की गई कार्यवाही।
2. पीड़ित व्यक्ति/परिवार को विद्युत दुर्घटना के फलस्वरूप प्रदान की गई क्षतिपूर्ति का विवरण।
3. विद्युत दुर्घटना के लिए दोषी अधिकारी/कर्मचारी के विरुद्ध की गई अनुशासनात्मक एवं वसूली की कार्यवाही का विवरण संलग्न प्रारूप में उपलब्ध कराया जाये।
4. विद्युत सुरक्षा निदेशालय से प्राप्त आख्या में दोषी कार्मिकों के विरुद्ध कारपोरेशन के नियमानुसार जाँच कार्यवाही की जायेगी तथा सम्बन्धित कार्मिकों को अपने बचाव का पूरा अवसर देते हुए आवश्यक कार्यवाही सुनिश्चित की जायेगी।

ऐसे प्रकरण जिनमें दुर्घटना की तिथि प्रश्नगत आदेश के निर्गमन की तिथि से पूर्व की है, में तत्कालीन विद्यमान नियमों/आदेशों के अनुसार ही क्षतिपूर्ति का निर्धारण किया जायेगा साथ ही किसी भी दशा में कोई पुराना प्रकरण पुनरुद्घाटित नहीं किया जायेगा। उपर्युक्त समस्त व्यवस्थायें तत्काल प्रभाव से लागू की जाती हैं।

निदेशक मण्डल की आज्ञा से

12. विद्युत दुर्घटना के मुआवजे के लिए उपरोक्त दिशानिर्देशों में यह प्रावधान किया गया है कि मुआवजे का निर्धारण पीड़ित की आय के आधार पर किया जाएगा और न्यूनतम मुआवजा 5 लाख रुपये होगा। हालाँकि, वास्तविक आय के अभाव में मुकदमेबाजी से बचने और मृतक के आश्रित को शीघ्र मुआवजा देने के लिए, उपरोक्त पॉलिसी में प्रति दिन

140/- रुपये की अनुमानित आय प्रदान की गई है।

13. मौजूदा मामले में याचिकाकर्ता की आय का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। निर्णयों की श्रृंखला में, यह बार-बार माना गया है कि दुर्घटनाओं के पीड़ितों को मुआवजा उचित और उपयुक्त होना चाहिए और पीड़ित को उसी स्थिति में लाने के लिए पर्याप्त होना चाहिए क्योंकि ऐसी दुर्घटना नहीं हुई होगी।

14. **कीर्ति बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2021) 2 एससीसी 166 (पैरा-10)** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून बनाया है कि अदालत द्वारा दिया गया कोई भी मुआवजा उचित और उपयुक्त होना चाहिए और परिणामस्वरूप निस्संदेह निष्पक्षता, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होना चाहिए।

15. **काजल बनाम जगदीश चंद, (2020) 4 एससीसी 413 (पैरा-33)**, के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया है कि यह सुस्थापित कानून है कि मोटर दुर्घटना दावा याचिकाओं में, अदालत को उचित मुआवजा देना चाहिए और यदि, उचित मुआवजा दावा की गई राशि से अधिक है, तो वह दिया जाना चाहिए, खासकर जहां दावेदार नाबालिग है। **काजल (सुप्रा)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ विदेशी निर्णयों और अपने स्वयं के निर्णय को मंजूरी के साथ उद्धृत किया और पैरा-8, 9, 10, 11, 12, 13 और 14 में निम्नानुसार अवधारित किया:

"8. *फिलिप्स बनाम लंदन एंड साउथ वेस्टर्न रेलवे कंपनी, (1879) [एलआर] 5 क्यूबीडी 78 (सीए)*, मामले में न्यायमूर्ति फील्ड ने इस बात पर जोर देते हुए अवधारित किया कि क्षति पूर्ण और पर्याप्त होनी चाहिए, इस प्रकार अवधारित किया: (क्यूबीडी पृष्ठ 79)

"... आप वादी को उसकी मूल स्थिति में वापस नहीं ला सकते हैं, लेकिन आपको अपना उचित सामान्य ज्ञान लाना होगा, और आपको हमेशा याद रखना चाहिए कि यही एकमात्र अवसर है जिस पर मुआवजा दिया जा सकता है। वादी इसके लिए दोबारा कभी मुकदमा नहीं कर सकता। इसलिए, अब आपको उसे हमेशा के लिए मुआवजा देना होगा। उसने कोई गलती नहीं की है, प्रतिवादियों के हाथों उसे गलती का सामना करना पड़ा

हैं और आपको उसका पूरा उचित मुआवज़ा देने का ध्यान रखना चाहिए।"

इसके अलावा, न्यायाधिकरणों को हमेशा याद रखना चाहिए कि इन सभी मामलों में क्षति के उपाय "ऐसे होने चाहिए कि एक अत्याचारी भी यह कह सके कि उसने अपने दुस्साहस के लिए पर्याप्त प्रायश्चित कर लिया है"।

9. मेडियाना, 1900 एसी 113 (एचएल) मामले में, लॉर्ड हैल्सबरी ने अवधारित किया: (एसी पीपी 116-17)

"...निश्चित रूप से नुकसान की जांच का पूरा क्षेत्र अत्यधिक कठिनाइयों में से एक है। आप अक्सर कोई सिद्धांत भी नहीं बना पाते जिसके आधार पर आप हर्जाना दे सकें; फिर भी, इसे जूरी या जूरी के स्थान

पर खड़े लोगों को यह विचार करने के लिए भेजा जाता है कि किसी गलत कार्य के लिए धन के रूप में कितना मुआवज़ा दिया जाएगा। सबसे मुख्य और सामान्य मामला लीजिए: कोई दर्द और पीड़ा को गिने हुए पैसों से कैसे माप सकता है? कोई भी यह सुझाव नहीं दे सकता कि आप किसी अंकगणितीय गणना द्वारा यह स्थापित कर सकते हैं कि धन की सटीक राशि क्या है जो किसी दुर्घटना के कारण किसी व्यक्ति द्वारा झेले गए दर्द और पीड़ा जैसी चीज़ का प्रतिनिधित्व करेगी। सच में, मुझे लगता है कि यह कहना बहुत तर्कसंगत होगा कि कोई व्यक्ति ऐसी चीज़ों के लिए कोई हर्जाना पाने का हकदार नहीं होगा। मुख्य रूप से मन

अतीत के दर्द और पीड़ा की परवाह करता है? लेकिन फिर भी कानून इसे एक ऐसे विषय के रूप में मान्यता देता है जिस पर हर्जाना दिया जा सकता है।"

10. एच वेस्ट एंड सन लिमिटेड बनाम शेफर्ड, 1964 एसी 326: (1963) 2 डब्लूएलआर 1359 (एचएल) में अपने भाषण में लॉर्ड मॉरिस की निम्नलिखित टिप्पणियाँ बहुत प्रासंगिक हैं: (एसी पृष्ठ 346)

"... धन प्रदान किया जा सकता है ताकि ऐसी ही प्रकृति की किसी अन्य चीज को बदलने के लिए कोई ठोस वस्तु खरीदी जा सके जो नष्ट हो गई है या खो गई है। लेकिन पैसा उस भौतिक ढाँचे को नवीनीकृत नहीं कर सकता जो टूट-फूट गया हो। न्यायाधीश और अदालतें जो कुछ भी कर सकते हैं वह राशि प्रदान करना है जिसे

उचित मुआवजा देने के रूप में माना जाना चाहिए। इस प्रक्रिया में दृष्टिकोण की सामान्य पद्धति में कुछ एकरूपता सुनिश्चित करने का प्रयास होना चाहिए। आम सहमति से पुरस्कार उचित होने चाहिए और उनका मूल्यांकन संयम के साथ किया जाना चाहिए। इसके अलावा, यह बेहद वांछनीय है कि जहां तक संभव हो तुलनीय चोटों की भरपाई तुलनीय आदेशों से की जानी चाहिए।"

उसी मामले में, लॉर्ड डिवालिन ने देखा (पृष्ठ 357 पर) कि समस्या का उचित दृष्टिकोण यह था कि एक परीक्षण अपनाया जाए कि समकालीन समाज किस उचित राशि को मानेगा, जैसे कि गलत काम करने वाले को "अपने पड़ोसियों के बीच अपना सिर उठाने और उनकी सहमति से यह कहने की अनुमति देना कि उसने उचित काम किया है?", जिसे

व्यक्तिगत चोट के मामलों में मुआवजे का निर्धारण करते समय अदालत को ध्यान में रखना चाहिए।

11. वार्ड बनाम जेम्स (1966) 1 क्यूबी 273: (1965) 2 डब्लूएलआर 455: (1965) 1 ऑल ईआर 563 (सीए) मामले में अपील की अदालत के लिए बोलते हुए लॉर्ड डेनिंग ने ऐसे मामलों में पालन किए जाने वाले निम्नलिखित तीन बुनियादी सिद्धांत निर्धारित किए: (क्यूबी पृष्ठ 299-300)

"सबसे पहले, मूल्यांकन: गंभीर चोट के मामलों में, जहां शरीर नष्ट हो गया है या मस्तिष्क नष्ट हो गया है, वहां पैसे में उचित मुआवजे का आकलन करना बहुत मुश्किल है, इतना मुश्किल है कि आदेश मूल रूप से एक पारंपरिक आंकड़ा होना चाहिए, जो अनुभव से या तुलनीय मामलों में आदेश से प्राप्त होता है। दूसरा, एकरूपता: आदेशों में

कुछ हद तक एकरूपता होनी चाहिए ताकि समान मामलों में समान निर्णय दिए जा सकें; अन्यथा समुदाय में बहुत असंतोष होगा और न्याय प्रशासन की बहुत आलोचना होगी। तीसरा, पूर्वानुमेयता : पक्षकारों को कुछ सटीकता के साथ यह अनुमान लगाने में सक्षम होना चाहिए कि किसी विशेष मामले में कितनी राशि दी जाएगी, क्योंकि इस माध्यम से मामलों को शांतिपूर्वक निस्तारित किया जा सकता है और अदालत में नहीं लाया जा सकता है, जो जनता के लिए बहुत अच्छा है।

12. व्यक्तिगत चोट के मामलों में क्षति का आकलन बड़ी कठिनाइयाँ खड़ी करता है। शारीरिक और मानसिक क्षति को आर्थिक रूप से बदलना आसान नहीं है।

परिकलित अनुमान का पैमाना होना चाहिए। परिस्थितियों के अनुसार यथासंभव सर्वोत्तम मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

13. नुकसान पर मैकथेगर का ग्रंथ, 14वां संस्करण, पैरा 1157, व्यक्तिगत कार्यों में लगी चोट से हुए नुकसान का जिक्र करते हुए कहा गया है: "शारीरिक रूप से घायल व्यक्ति अपने आर्थिक नुकसान और गैर-आर्थिक नुकसान दोनों की भरपाई कर सकता है। इनमें से आर्थिक हानियों में स्वयं दो अलग-अलग मदें शामिल हैं, अर्थात् कमाई की हानि और अन्य लाभ जो वादी को प्राप्त होते यदि वह घायल नहीं हुआ होता और चोट के परिणामस्वरूप होने वाले चिकित्सा और अन्य खर्च, और अदालतों ने गैर-आर्थिक नुकसान को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है जैसे दर्द और पीड़ा, जीवन की सुविधाओं की हानि और जीवन की उम्मीद की हानि।"

14. कॉनकाॅर्ड ऑफ इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम निर्मला देवी, (1979) 4 एससीसी 365: 1979 एससीसी (सीआरआई) 996:

1980 एसीजे 55 मामले में, इस न्यायालय ने अवधारित किया: (एससीसी पृष्ठ 366, पैरा 2)

"2. ...मात्रा का निर्धारण उदार होना चाहिए, कंजूसी से नहीं क्योंकि कानून एक स्वतंत्र देश में जीवन और अंग को बड़े पैमाने पर महत्व देता है।"

16. इसलिए, यह सुस्थापित है कि दुर्घटना के पीड़ितों को उचित मुआवजा देना अदालतों का कर्तव्य है और यह भी माना गया है कि पीड़ितों को उचित मुआवजे का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन के अधिकार से आता है।

17. अब, विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि जहां आय का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है, वहां उचित मुआवजे का निर्धारण कैसे किया जाए? अब यह सुस्थापित है कि ऐसे मामलों में, पीड़ित की अनुमानित आय निर्धारित की जानी चाहिए। जहां तक काल्पनिक आय की अवधारणा का सवाल है, यह माना गया है कि काल्पनिक आय एक निश्चित अवधि नहीं हो सकती, यह विभिन्न परिस्थितियों जैसे कि पीड़िता की उम्र, व्यवसाय, रहने की स्थिति, पीड़ितों की भविष्य की संभावनाएं, उनके द्वारा प्रदान की गई सेवा के आधार पर परिवार में उनका योगदान और पीड़िता और उसके परिवार द्वारा जीते जा रहे

जीवन की गुणवत्ता पर निर्भर होनी चाहिए। पीड़ित की अनुमानित आय भी कमाई की क्षमता के आधार पर और कभी-कभी न्यूनतम मजदूरी अधिनियम आदि के प्रावधानों के अनुसार निर्धारित की जानी है, उदाहरण के लिए, **कीर्ति (उपरोक्त)** और **लता वाधवा बनाम बिहार राज्य (2001) 8 एससीसी 197 (पैरा-10)** के मामले में निर्णय के पैरा 17, 18 और 19 का संदर्भ लिया जा सकता है।

18. जब अनुमानित या वास्तविक आय निर्धारित की जाती है, तो आय की हानि की गणना गुणक विधि का उपयोग करके की जाती है। हालाँकि, पीड़ित की भविष्य की संभावनाओं के नुकसान के लिए, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी, (2017) 16 एससीसी 680 (पैरा-57)** और **सरला वर्मा बनाम डीटीसी (2009) 6 एससीसी 121 (पैरा 17, 18, 19, 30, 31 और 32)** मामले में संविधान पीठ के फैसले में अलग से मुआवजा देने का निर्देश दिया गया है। **प्रणय सेठी (उपरोक्त)** मामले की संविधान पीठ के निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि मृतक की आयु 40 वर्ष से कम है तो भविष्य की संभावनाओं का लाभ सभी पीड़ितों को भविष्य की संभावनाओं के लिए मृतक की स्थापित आय के अतिरिक्त 40 प्रतिशत की सीमा तक दिया जाएगा और जहां पीड़ित की उम्र 40 से 50 वर्ष के बीच हो, वहां 25 प्रतिशत की अतिरिक्त छूट दी जाएगी।

19. **लता वाधवा (उपरोक्त)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अग्नि दुर्घटनाओं के पीड़ितों को मुआवजा देने के लिए

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिका पर विचार किया है। इसी सिद्धांत को **रमन बनाम उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड, (2014) 15 एससीसी 1** और इस न्यायालय द्वारा दिनांक 09.11.2022 के अपने फैसले में रिट सी संख्या 25065 सन् 2022 (**कनीज़ फातिमा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 3 अन्य**) में पारित निर्णय के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी मान्यता दी गई है।

20. लापरवाही के कारण हुई मृत्यु या चोट के मामले में, "सख्त उत्तरदायित्व" के सिद्धांत को **महाराजा अग्रसेन अस्पताल बनाम ऋषभ शर्मा (2020) 6 एससीसी 501 (पैरा-12.5.4)**, **रमन बनाम उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड, (2014) 15 एससीसी 1 (पैरा-16, 17, 18, 19, 20 और 21)** और **एमपी बिजली बोर्ड बनाम शैल कुमारी (2002) 2 एससीसी 162 (पैरा 9, 10, 11, 12 और 13)** जैसे विभिन्न मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है। **रमन (सुप्रा)**, मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने सिविल मिसलेनियस रिट याचिका संख्या 14046 सन् 2012 और एल.पी.ए. संख्या 1631 सन् 2013 में पारित पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के फैसले की पुष्टि की है, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने विद्युत दुर्घटना के कारण पांच साल के लड़के की 100% स्थायी विकलांगता के लिए 60 लाख रुपये का मुआवजा दिया।

21. **शिव रंशु छुनेजा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (रिट सी संख्या 10191 सन् 2009,**

दिनांक 10.04.2018 को निर्णीत) के मामले में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने विद्युत दुर्घटना के कारण सौ प्रतिशत विकलांगता का सामना करने वाले पीड़ित को 86,20,000/- रुपये का मुआवजा दिया है। इसके अलावा, इस न्यायालय की एक अन्य पीठ ने कनीज़ फातिमा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य (रिट सी संख्या 25065 सन् 2022) के मामले में पैरा 36 को निम्नानुसार अवधारित करते हुए साधारण ब्याज के साथ 66,85,000/- रुपये का मुआवजा दिया है:

“36. ऊपर की गई चर्चाओं, निष्कर्षों और निर्देशों को संक्षेप में निम्नानुसार संक्षेपित किया गया है: -

(ए). दिया गया मुआवजा उचित, उपयुक्त होना चाहिए और परिणामस्वरूप निस्संदेह निष्पक्षता, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होना चाहिए और, यदि उचित मुआवजा दावा की गई राशि से अधिक है, तो उसे विशेष रूप से दिया जाना चाहिए जहां दावेदार नाबालिग है।

(बी). प्रतिवादी याचिकाकर्ता को अपनी लापरवाही के कारण हुई घातक दुर्घटना के लिए उचित मुआवजा देने के लिए बाध्य हैं, जिसके कारण 10.04.2022 को याचिकाकर्ता के पति की

मृत्यु हो गई। (ई) "कंसोर्टियम" एक सारगर्भित शब्द है जिसमें "स्पूसल कंसोर्टियम", "पैरेंटल कंसोर्टियम" और "फिलिअल कंसोर्टियम" शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक के परिवार का साथ, देखभाल, मदद, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत जीवनसाथी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे।

(एफ). किसी वैध दावे को अस्वीकार करना या किसी आदेश के प्रकार को मनमाने ढंग से प्रतिबंधित करना दावेदार के साथ भारी अन्याय होगा। (ई) "कंसोर्टियम" एक सारगर्भित शब्द है जिसमें "स्पूसल कंसोर्टियम", "पैरेंटल कंसोर्टियम" और "फिलिअल कंसोर्टियम" शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक के परिवार का साथ, देखभाल, मदद, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में,

इसमें मृत जीवनसाथी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे।

(एफ). किसी वैध दावे को अस्वीकार करना या किसी आदेश के प्रकार को मनमाने ढंग से प्रतिबंधित करना दावेदार के साथ भारी अन्याय होगा। जो मुआवज़ा निर्धारित किया जाना आवश्यक है वह उचित होना चाहिए। किसी दुर्घटना से जुड़े मुआवज़े का अनुदान अपकृत्य कानून के दायरे में है। यह इंटीग्रम में पुनर्स्थापन के सिद्धांत पर आधारित है। उक्त सिद्धांत यह प्रदान करता है कि क्षतिपूर्ति के हकदार व्यक्ति को, जितना संभव हो सके, उतनी धनराशि मिलनी चाहिए जो उसे उसी स्थिति में रखेगी जैसे वह होता अगर उसके साथ कुछ गलत न हुआ होता।

(जी). विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 161 के तहत वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राधिकरण द्वारा मुआवजे का आदेश पारित किया गया है और उचित मुआवजा देने का नीतिगत निर्णय लिया गया है। यदि उचित मुआवजा नहीं

दिया जाता है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत गारंटीकृत पीड़ित के मौलिक अधिकारों को प्रभावित करेगा। इसलिए, इस प्रकार पारित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन होगा। (एच). केवल अनुमानित आय के आधार पर मुआवजे की गणना और भुगतान करने के लिए प्रतिवादियों का निर्णय दिनांक 25.09.2021, न केवल मनमाना है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है, बल्कि यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उचित मुआवजे के भुगतान के निर्देश देने वाले उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून का भी उल्लंघन है। इसलिए, हम प्रतिवादियों को घायल व्यक्ति/पीड़ित/मृतक की वास्तविक आय के आधार पर उचित मुआवजे की गणना करने और भुगतान करने के लिए एक सामान्य आदेश जारी करते हैं, जहां वास्तविक आय सुनिश्चित की जा सकती है या पूर्वोक्त विभिन्न निर्णयों

में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार भविष्य की संभावना के साथ दावेदार द्वारा साबित किया जा सकता है और दिनांक 25.09.2021 के नीतिगत निर्णय में दिए गए गुणक को लागू किया जा सकता है। यदि घायल/पीड़ित/मृतक की वास्तविक आय या तो पता लगाने योग्य नहीं है या दावेदार द्वारा साबित नहीं की गई है, तो दिनांक 25.09.2021 के पॉलिसी निर्णय में दी गई काल्पनिक आय को गणना और मुआवजे के भुगतान के लिए लागू किया जाएगा। संपत्ति के नुकसान, कंसोर्टियम के नुकसान और अंतिम संस्कार के खर्च के लिए मुआवजे की राशि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के अनुसार प्रतिवादियों द्वारा निर्धारित और भुगतान की जाएगी, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत बाध्यकारी है।

(1) ऊपर निर्धारित मुआवजे की राशि मृतक के आश्रितों

के बीच निम्नानुसार वितरित की जाएगी:-

(ए) याचिकाकर्ता को उनके द्वारा पहले भुगतान की गई राशि को समायोजित करने के बाद प्रतिवादियों को दावा आवेदन दाखिल करने की तारीख से वसूली तक 6% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ मृतक के आश्रितों को मुआवजे की उपर्युक्त राशि 66,85,000/- रुपये का भुगतान करना होगा। जो मुआवजा निर्धारित किया जाना आवश्यक है वह उचित होना चाहिए। किसी दुर्घटना से जुड़े मुआवजे का अनुदान अपकृत्य कानून के दायरे में है। यह इंडीग्रम में पुनर्स्थापन के सिद्धांत पर आधारित है। उक्त सिद्धांत यह प्रावधान करता है कि क्षतिपूर्ति के हकदार व्यक्ति को, यथासंभव, उतनी धनराशि मिलनी चाहिए जो उसे उसी स्थिति में रखे, जिस स्थिति में वह होता यदि उसके साथ कुछ गलत नहीं होता।

(जी). विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 161 के तहत वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राधिकरण द्वारा मुआवजे का आदेश

पारित किया गया है और उचित मुआवजा देने का नीतिगत निर्णय लिया गया है। यदि उचित मुआवजा नहीं दिया जाता है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत गारंटीकृत पीड़ित के मौलिक अधिकारों को प्रभावित करेगा। इसलिए, इस प्रकार पारित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन होगा। (एच). केवल अनुमानित आय के आधार पर मुआवजे की गणना और भुगतान करने के लिए प्रतिवादियों का निर्णय दिनांक 25.09.2021, न केवल मनमाना है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है, बल्कि यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उचित मुआवजे के भुगतान के निर्देश देने वाले उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून का भी उल्लंघन है। इसलिए, हम प्रतिवादियों को घायल व्यक्ति/पीड़ित/मृतक की वास्तविक आय के आधार पर उचित मुआवजे की गणना करने और भुगतान करने के लिए एक

सामान्य आदेश जारी करते हैं, जहां वास्तविक आय सुनिश्चित की जा सकती है या पूर्वोक्त विभिन्न निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार भविष्य की संभावना के साथ दावेदार द्वारा साबित किया जा सकता है और दिनांक 25.09.2021 के नीतिगत निर्णय में दिए गए गुणक को लागू किया जा सकता है। यदि घायल/पीड़ित/मृतक की वास्तविक आय या तो पता लगाने योग्य नहीं है या दावेदार द्वारा साबित नहीं की गई है, तो दिनांक 25.09.2021 के पॉलिसी निर्णय में दी गई काल्पनिक आय को गणना और मुआवजे के भुगतान के लिए लागू किया जाएगा। संपत्ति के नुकसान, कंसोर्टियम के नुकसान और अंतिम संस्कार के खर्च के लिए मुआवजे की राशि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के अनुसार प्रतिवादियों द्वारा निर्धारित और भुगतान की जाएगी, जो भारत के

संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत बाध्यकारी है।

(1) ऊपर निर्धारित मुआवजे की राशि मृतक के आश्रितों के बीच निम्नानुसार वितरित की जाएगी:-

(ए) याचिकाकर्ता को उनके द्वारा पहले भुगतान की गई राशि को समायोजित करने के बाद प्रतिवादियों को दावा आवेदन दाखिल करने की तारीख से वसूली तक 6% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ मृतक के आश्रितों को मुआवजे की उपर्युक्त राशि 66,85,000/- रुपये का भुगतान करना होगा। हालाँकि, मृतक की वास्तविक आय 3,50,000/- रुपये प्रति वर्ष होने का स्वीकृत प्रमाण होने के बावजूद, प्रतिवादियों ने मृतक की अनुमानित आय 51,000/- रुपये प्रति वर्ष के आधार पर मुआवजे की गणना की है, जो मनमाना और अवैध है।

(सी). ऐसी स्थितियों की दो अलग-अलग श्रेणियां हैं जिनमें अदालत आमतौर पर पीड़ित की अनुमानित आय निर्धारित करती है। मामलों की पहली श्रेणी उन मामलों से संबंधित है जिनमें पीड़ित

कार्यरत था, लेकिन दावेदार अदालत के समक्ष पीड़ित की वास्तविक आय साबित करने में सक्षम नहीं हैं। ऐसी स्थिति में, अदालत रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर पीड़िता की आय का "अनुमान" लगाती है, जैसे पीड़िता और उसके परिवार के जीवन की गुणवत्ता, उस क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति की सामान्य कमाई, पीड़ित की योग्यता, और अन्य विचार। मामलों की दूसरी श्रेणी उन स्थितियों से संबंधित है जिनमें न्यायालय को बिना कमाई वाले पीड़ित, जैसे कि एक बच्चा, एक छात्र या एक गृहिणी की आय निर्धारित करने के लिए कहा जाता है। उचित मुआवजा तक पहुंचने के लिए बिना कमाई वाले पीड़ित के प्रति मुआवजा निर्धारित करने के लिए अदालतों द्वारा विभिन्न सिद्धांतों को अपनाया जाता है।

(डी) वास्तविक आय के प्रमाण के अभाव में, मुआवजे की गणना के लिए काल्पनिक आय को लागू किया जाता है।

(ई) "कंसोर्टियम" एक सारगर्भित शब्द है जिसमें

"स्पूसल कंसोर्टियम", "पैरेंटल कंसोर्टियम" और "फिलिअल कंसोर्टियम" शामिल हैं। कंसोर्टियम के अधिकार में मृतक के परिवार का साथ, देखभाल, मदद, आराम, मार्गदर्शन, सांत्वना और स्नेह शामिल होगा, जो उसके परिवार के लिए एक क्षति है। जीवनसाथी के संबंध में, इसमें मृत जीवनसाथी के साथ यौन संबंध शामिल होंगे।

(एफ) किसी वैध दावे को अस्वीकार करना या किसी आदेश के प्रकार को मनमाने ढंग से प्रतिबंधित करना दावेदार के साथ भारी अन्याय होगा। जो मुआवजा निर्धारित किया जाना आवश्यक है वह उचित होना चाहिए। किसी दुर्घटना से जुड़े मुआवजे का अनुदान अपकृत्य कानून के दायरे में है। यह इंटीग्रम में पुनर्स्थापन के सिद्धांत पर आधारित है। उक्त सिद्धांत यह प्रदान करता है कि क्षतिपूर्ति के हकदार व्यक्ति को, जितना संभव हो सके, उतनी धनराशि मिलनी चाहिए जो उसे उसी स्थिति में रखेगी जैसे वह होता

अगर उसके साथ कुछ गलत न हुआ होता।

(जी) विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 161 के तहत वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए प्राधिकरण द्वारा मुआवजे का आदेश पारित किया गया है और उचित मुआवजा देने का नीतिगत निर्णय लिया गया है। यदि उचित मुआवजा नहीं दिया जाता है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत गारंटीकृत पीड़ित के मौलिक अधिकारों को प्रभावित करेगा। इसलिए, इस प्रकार पारित आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट क्षेत्राधिकार के अधीन होगा।

(एच). केवल अनुमानित आय के आधार पर मुआवजे की गणना और भुगतान करने के लिए प्रतिवादियों का निर्णय दिनांक 25.09.2021, न केवल मनमाना है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है, बल्कि यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उचित मुआवजे के भुगतान के निर्देश देने वाले उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित

कानून का भी उल्लंघन है। इसलिए, हम प्रतिवादियों को घायल व्यक्ति/पीड़ित/मृतक की वास्तविक आय के आधार पर उचित मुआवजे की गणना करने और भुगतान करने के लिए एक सामान्य आदेश जारी करते हैं, जहां वास्तविक आय सुनिश्चित की जा सकती है या पूर्वोक्त विभिन्न निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार भविष्य की संभावना के साथ दावेदार द्वारा साबित किया जा सकता है और दिनांक 25.09.2021 के नीतिगत निर्णय में दिए गए गुणक को लागू किया जा सकता है। यदि घायल/पीड़ित/मृतक की वास्तविक आय या तो पता लगाने योग्य नहीं है या दावेदार द्वारा साबित नहीं की गई है, तो दिनांक 25.09.2021 के पॉलिसी निर्णय में दी गई काल्पनिक आय को गणना और मुआवजे के भुगतान के लिए लागू किया जाएगा। संपत्ति के नुकसान, कंसोर्टियम के नुकसान और अंतिम संस्कार के खर्च के लिए मुआवजे की राशि नेशनल इंश्योरेंस कंपनी

लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून के अनुसार प्रतिवादियों द्वारा निर्धारित और भुगतान की जाएगी, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के तहत बाध्यकारी है।

(1) ऊपर निर्धारित मुआवजे की राशि मृतक के आश्रितों के बीच निम्नानुसार वितरित की जाएगी:-

(ए) याचिकाकर्ता को उनके द्वारा पहले भुगतान की गई राशि को समायोजित करने के बाद प्रतिवादियों को दावा आवेदन दाखिल करने की तारीख से वसूली तक 6% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज के साथ मृतक के आश्रितों को मुआवजे की उपर्युक्त राशि 66,85,000/- रुपये का भुगतान करना होगा।"

22. पीड़ितों के मामले में, जो स्थायी विकलांगता से पीड़ित हैं और जिन्हें शारीरिक दर्द और पीड़ा, भावनात्मक दुख, जीवन का आनंद खोने और विवाह की संभावनाओं के नुकसान आदि के लिए पीड़ितों को आर्थिक नुकसान के मुआवजे के अलावा अलग से मुआवजा देने का प्रावधान किया गया है।

23. आर.डी. हट्टंगड़ी बनाम पेस्ट कंट्रोल (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (1995) 1 एससीसी 551 मामले में चोट के मामलों में मुआवजे के विभिन्न मदों पर विचार करने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 9 में निम्नानुसार अवधारित किया:-

“9. मोटे तौर पर किसी दुर्घटना के शिकार व्यक्ति को देय मुआवजे की राशि तय करते समय, क्षति का आकलन आर्थिक क्षति और विशेष क्षति के रूप में अलग-अलग किया जाना चाहिए। आर्थिक क्षति वे हैं जो पीड़ित ने वास्तव में किए हैं और जिनकी गणना धन के रूप में की जा सकती है; जबकि गैर-आर्थिक क्षति वे हैं जिनका आकलन अंकगणितीय गणनाओं द्वारा नहीं किया जा सकता है। दो अवधारणाओं का मूल्यांकन करने के लिए आर्थिक क्षति में दावेदार द्वारा किए गए खर्च शामिल हो सकते हैं: (i) चिकित्सा उपस्थिति; (ii) परीक्षण की तिथि तक लाभ अर्जित करने की हानि; (iii) अन्य भौतिक हानि। जहां तक गैर-आर्थिक क्षति का सवाल है, इसमें निम्नलिखित शामिल हो सकते हैं: (i) मानसिक और शारीरिक आघात, दर्द और पीड़ा के

लिए नुकसान, जो पहले ही भुगता जा चुका है या भविष्य में भुगतने की संभावना है; (ii) जीवन की सुविधाओं के नुकसान की भरपाई के लिए नुकसान जिसमें कई तरह के मामले शामिल हो सकते हैं यानी चोट के कारण दावेदार चलने, दौड़ने या बैठने में सक्षम नहीं हो सकता है; (iii) लम्बे समय तक जीवन व्यतीत करने की उम्मीद की हानि के लिए क्षतिपूर्ति, यानी चोट के कारण संबंधित व्यक्ति की सामान्य आयु कम हो जाती है; (iv) जीवन में असुविधा, कठिनाई, परेशानी, निराशा, हताशा और मानसिक तनाव।”

24. राज कुमार बनाम अजय कुमार (2011) 1 एससीसी 343 मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 6 में उन मदों को निर्धारित किया जिसके तहत व्यक्तिगत चोटों के लिए मुआवजा दिया जाना है, इस प्रकार है:

“6. व्यक्तिगत चोट के मामलों में जिन शीर्षों के तहत मुआवजा दिया जाता है वे निम्नलिखित हैं:

आर्थिक क्षति (विशेष क्षति)

(i) उपचार, अस्पताल में भर्ती, दवाएँ, परिवहन,

पौष्टिक भोजन और विविध व्यय से संबंधित व्यय।

(ii) कमाई की हानि (और अन्य लाभ) जो घायल को होती अगर वह घायल नहीं होता, जिसमें शामिल हैं:

(क) उपचार की अवधि के दौरान कमाई का नुकसान;

(ख) स्थायी विकलांगता के कारण भविष्य की कमाई का नुकसान।

(iii) भविष्य के चिकित्सा व्यय।

गैर-आर्थिक क्षति (सामान्य क्षति)

(iv) चोटों के परिणामस्वरूप दर्द, पीड़ा और आघात के लिए क्षति।

(v) सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावनाओं की हानि)।

(vi) जीवन की उम्मीद में कमी (सामान्य आयु में कमी)।

नियमित व्यक्तिगत चोट के मामलों में, मुआवजा केवल उपरोक्त (i), (ii)(a) और (iv) के तहत दिया जाएगा। यह केवल चोट के गंभीर मामलों में होता है, जहां दावेदार के साक्ष्य की पुष्टि करने वाले विशिष्ट चिकित्सा साक्ष्य होते हैं कि

स्थायी विकलांगता, भविष्य के चिकित्सा व्यय, सुविधाओं की हानि (और/या विवाह की संभावनाओं की हानि) और जीवन की उम्मीद की हानि के कारण भविष्य की कमाई के नुकसान से संबंधित उपरोक्त कोई भी हानि को शीर्ष (ii)(बी), (iii), (v) और (vi) के तहत मुआवजा दिया जाएगा।”

25. के. सुरेश बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, (2012) 12 एससीसी 274 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 2 में इस प्रकार अवधारित किया:

“2. ... हृदय की पीड़ा या मानसिक कष्टों के लिए कोई वास्तविक क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती। सर्वोत्कृष्टता नुकसान की व्यावहारिक गणना में निहित है जिसे यथार्थवादी अनुमान के दायरे में होना चाहिए। इसलिए, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 168 (संक्षिप्त में "अधिनियम") यह निर्धारित करती है कि "उचित मुआवजा" दिया जाना चाहिए। इस प्रकार, कानून की अदालत के लिए "उचित मुआवजा" निर्धारित करना एक चुनौती बन जाता है जो

न तो कोई बोनस है और न ही अप्रत्याशित लाभ, और साथ ही, मामूली मुआवजा भी नहीं होना चाहिए।

26. काजल बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2021) 2 एससीसी 166 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कमाई के नुकसान की गणना के लिए अनुमानित आय के बजाय न्यूनतम मजदूरी को अपनाने का आदेश दिया। काजल (उपरोक्त) के मामले में फैसले का पैराग्राफ 20 नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

“कमाई का नुकसान

20. दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने अवधारित किया है कि चूंकि लड़की 12 साल की छोटी बच्ची थी, इसलिए केवल 15,000/- रुपये प्रति वर्ष की अनुमानित आय पर विचार किया जा सकता है। हमें नहीं लगता कि भविष्य में आय के नुकसान का आकलन करने का यह उचित तरीका है। यह युवा लड़की पढ़ाई के बाद काम कर सकती थी और प्रति वर्ष 15,000/- रुपये से अधिक कमा सकती थी। प्रत्येक मामले का निर्णय अपने साक्ष्य के आधार पर किया जाना है, लेकिन अनुमानित आय 15,000/- रुपये प्रति वर्ष

मानना बिल्कुल भी उचित नहीं है। अपीलकर्ता ने हमारे सामने यह दिखाने के लिए सामग्री रखी है कि एक कुशल कामगार को देय न्यूनतम मजदूरी 4846/- रुपये प्रति माह है। हमारी राय में, यह वह न्यूनतम राशि होगी जो उसने बालिग होने पर अर्जित की होगी। भविष्य की संभावनाओं के लिए 40% जोड़ने पर यह 6784.40/- रुपये प्रति माह यानी 81,412.80/- रुपये प्रति वर्ष होता है, 18 के गुणक को लागू करने पर यह 14,65,430.40/- रुपये होता है, जिसे पूर्णांकित करके 14,66,000/- रुपये कर दिया गया है।”

27. कानून के पूर्वोक्त निर्धारित प्रावधानों के मददेनजर स्थायी विकलांगता के मामले में मुआवजे की गणना विभिन्न मर्दों के तहत आर्थिक हानि के साथ-साथ गैर-आर्थिक हानि दोनों के लिए की जाती है, जो निम्नानुसार हैं:-
क) विकलांगता के कारण कमाई का नुकसान

विकलांगता के कारण कमाई की क्षमता के नुकसान की गणना के लिए, यह माना गया है कि विकलांगता के कारण कमाई की हानि की गणना के लिए गुणक विधि लागू की जानी चाहिए।

काजल (उपरोक्त) के मामले में, यह स्पष्ट रूप से अवधारित किया गया है कि जब आय का

कोई सबूत उपलब्ध नहीं है, तो ऐसे पीड़ितों को देय न्यूनतम मजदूरी के प्रावधानों का सहारा लिया जा सकता है। वर्तमान मामले में चूंकि याचिकाकर्ता अकुशल व्यक्ति था, इसलिए अकुशल श्रमिकों पर लागू न्यूनतम मजदूरी को याचिकाकर्ता की अनुमानित आय के रूप में सुरक्षित रूप से लिया जा सकता है। उत्तर प्रदेश पावर कॉरपोरेशन की योजना के तहत प्रदान की जाने वाली अनुमानित आय प्रथम दृष्टया अपर्याप्त प्रतीत होती है। भारत सरकार ने अधिसूचना दिनांक 28.09.2022 के माध्यम से कृषि में काम करने वाले अकुशल कर्मचारियों के लिए न्यूनतम वेतन 409/- रुपये प्रति दिन निर्धारित किया है। अधिसूचना दिनांक 28.09.2022 इस प्रकार है:

"फाइल संख्या
116(आर)/2022-एलएस-II

भारत सरकार
श्रम एवं रोजगार मंत्रालय
कार्यालय मुख्य श्रम आयुक्त (सी)
नई दिल्ली
दिनांक:28/09/2022

आदेश

श्रम और रोजगार मंत्रालय की अधिसूचना संख्या एस.ओ. 186 (ई) दिनांक 19 जनवरी, 2017 के माध्यम से केंद्र सरकार द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अधोहस्ताक्षरी एतद्वारा औद्योगिक श्रमिकों के लिए औसत उपभोक्ता मूल्य सूचकांक

कर्मचारी की श्रेणी	वी.डी.ए. सहित मजदूरी की दरें क्षेत्रवार प्रतिदिन (रुपये में)		
	ए	बी	सी
अकुशल	333+ 121=454	303+111= 414	300+ 109=409
अर्ध-कुशल/ अकुशल पर्यवेक्षी	364+ 131=495	335+121= 456	307+112=4 19
कुशल/ लिपिकी य	395+ 144=539	364+131= 495	334+121=4 55
अत्यधिक कुशल	438+ 158=596	407+147 =554	364+131=4 95

30.06.2022 (आधार
2016-100) को

357.65 से 365.76 तक पहुंचने के आधार पर दिनांक 01.10.2022 से कृषि में कार्यरत कर्मचारियों के लिए परिवर्तनीय महंगाई भत्ते की दरों को संशोधित किया जाता है और इसके परिणामस्वरूप 8.11 अंक की वृद्धि होती है। निम्नानुसार संशोधित परिवर्तनीय महंगाई भत्ता दिनांक 01.10.2022 से

देय होगा:-

कर्मचारियों की श्रेणी	प्रतिदिन वी.डी.ए. की दरें क्षेत्रवार (रुपये में)		
अकुशल	121	111	109
अर्ध-कुशल/अकुशल पर्यवेक्षकी	131	121	112
कुशल/लिपिकीय	144	131	121
अत्यधिक कुशल	158	147	131

इसलिए, कृषि क्षेत्र में काम करने वाले कर्मचारियों को दिनांक 01.10.2022 से देय मूल दरों और परिवर्तनीय महंगाई भत्ते सहित मजदूरी की न्यूनतम दरें निम्नानुसार होंगी: -

न्यूनतम वेतन सलाहकार बोर्ड के निर्णय के अनुसार वीडिए को अगले उच्च रुपये में पूर्णांकित कर दिया गया है।

विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत श्रमिकों का वर्गीकरण अधिसूचना के भाग-1 के समान होगा। जबकि शहरों

का वर्गीकरण 19 जनवरी 2017 की अधिसूचना के भाग-दो के अनुसार ही होगा। ए, बी और सी क्षेत्रों में शहरों का वर्तमान वर्गीकरण त्वरित संदर्भ के लिए अनुबंध-1 में संलग्न है।
(रेमिस तिरु)
मुख्य श्रम आयुक्त (सी)"

चूँकि, याचिकाकर्ता बकरियों को चराने का काम कर रही थी, जो कृषि से जुड़ी गतिविधि है, कृषि क्षेत्र में शामिल एक श्रमिक को देय न्यूनतम मजदूरी को याचिकाकर्ता की अनुमानित आय निर्धारित करने के लिए सुरक्षित रूप से विचार किया जा सकता है। यदि ऐसा कर्मचारी एक महीने में लगभग 26 दिन काम करता है, तो मासिक आय 10,634/- रुपये (रु. 409/-x26 दिन) होगी और परिणामस्वरूप, वार्षिक आय 1,27,608/- रुपये होगी। इसलिए, उपरोक्त न्यूनतम वेतन पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ता की वार्षिक काल्पनिक आय की गणना सुरक्षित रूप से 1,27,608/- रुपये की जा सकती है और यदि हम भविष्य की संभावनाओं के नुकसान के लिए इसका 40% जोड़ते हैं, तो कमाई क्षमता की कुल वार्षिक हानि की गणना सुरक्षित रूप से रु. 1,27,608/- + रु. 51,043/- (कुल 1,78,651/- रुपये प्रति वर्ष) के रूप में की जाएगी और चूँकि मृतक की उम्र 15 से 20 वर्ष के बीच थी, इसलिए उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन की योजना के अनुसार 16 का गुणक लगाया जा सकता है। इस प्रकार, विकलांगता के कारण कमाई का कुल नुकसान

28,58,416/- रुपये होगा, जिसका याचिकाकर्ता हमारी राय में हकदार है।

ख) चिकित्सा व्यय के लिए मुआवजा

पक्षकारों का यह स्वीकार किया गया मामला है कि याचिकाकर्ता का न केवल निर्मला देवी चैरिटेबल सोसाइटी अस्पताल, पश्चिम सराय, जिला-कौशांबी में इलाज किया गया, बल्कि बाद में, उसे जिला अस्पताल, मंझनपुर, जिला-कौशांबी में रेफर कर दिया गया, जहां उसका 02.08.2020 से इलाज किया गया और दिनांक 19.09.2022 को छुट्टी दे दी गई। याचिकाकर्ता का दाहिना हाथ और बायां अंगूठा काट दिया गया है। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैराग्राफ 5 में कहा है कि उसके इलाज के लिए रिश्तेदारों द्वारा 2,00,000/- रुपये से अधिक खर्च किए गए हैं, जिसे प्रतिवादी संख्या 2 ने अपने जवाबी हलफनामे में विवादित नहीं किया है। यह स्वीकृत स्थिति होने के कारण, हम याचिकाकर्ता को उसके इलाज के लिए किए गए चिकित्सा व्यय के लिए 2,00,000/- रुपये देने का आदेश देते हैं।

ग) भविष्य के चिकित्सा व्यय

सिद्रम बनाम डिविजनल मैनेजर, यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1597 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

"67. शुरुआत में, हम कह सकते हैं कि "भविष्य के चिकित्सा व्यय" और "परिचारक शुल्क" आर्थिक व्यय के दायरे में आएंगे। अभिमन्यु प्रताप सिंह बनाम नमिता सेखों और अन्य,

(2022) 8 एससीसी 489 में, न्यायालय ने यह अवधारित किया:

"19. उक्त कानूनी स्थिति को देखते हुए, मुआवजे का आकलन आर्थिक मदों में किया जा सकता है यानी भविष्य की कमाई का नुकसान, भविष्य के चिकित्सा खर्चों सहित चिकित्सा व्यय, परिचारक शुल्क और भविष्य के परिवहन सहित परिवहन के प्रमुख में भी। गैर-आर्थिक मदों में, मुआवजे की गणना वर्तमान और भविष्य में मानसिक और शारीरिक दर्द और पीड़ाओं, वैवाहिक आनंद की हानि, जीवन में प्रत्याशा की हानि, असुविधा, कठिनाई, परेशानी, निराशा, हताशा, मानसिक पीड़ा सहित जीवन की सुविधाओं की हानि आदि के लिए की जा सकती है।"

दुर्घटना के समय याचिकाकर्ता की उम्र को ध्यान में रखते हुए और भले ही प्रति माह 1,000/- रुपये के न्यूनतम खर्च को भी ध्यान में रखा जाए, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा जीवन भर अपने चिकित्सा उपचार पर खर्च किए जाने की संभावना हो, तो भविष्य के चिकित्सा खर्चों के मुआवजे की गणना रु. 1,000 x 12 x 16 के रूप में की जा सकती है। इसलिए, भविष्य के चिकित्सा खर्चों के लिए 1,92,000/- रुपये का मुआवजा दिया जाता है।

घ) परिचर शुल्क

चूंकि याचिकाकर्ता को सौ प्रतिशत स्थायी विकलांगता का सामना करना पड़ा है और वह उस तरह से काम नहीं कर पाएगी जैसे वह दुर्घटना से पहले करती थी, इसलिए, उसे अपने दैनिक कार्यों के लिए दिन भर एक परिचारक की आवश्यकता होगी। **सिद्रम (उपरोक्त)** के मामले में फैसले के पैराग्राफ 73 पर जवाब देते हुए, हम मेडिकल अटेंडेंट के लिए 2,000/- रुपये प्रति माह की दर से शुल्क तय करते हैं, जिसकी याचिकाकर्ता को आवश्यकता हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप हम परिचर शुल्क के लिए 3,84,000/- (रु. 2000/- x 12 x 16 = 3,84,000/- रुपये के रूप में गणना करने) का आदेश देते हैं।

ड) वाहन और विशेष आहार की हानि

चूंकि याचिकाकर्ता लगभग 49 दिनों तक अस्पताल में भर्ती थी, इसलिए रिश्तेदारों ने वाहन पर खर्च किया होगा और याचिकाकर्ता को अस्पताल में इलाज के दौरान और उसके बाद कुछ समय के लिए विशेष आहार की आवश्यकता होगी। इसलिए, **सिद्रम (उपरोक्त)** में निर्णय के पैराग्राफ 89 पर अवलम्ब लेते हुए, हम वाहन और विशेष आहार के लिए 50,000/- रुपये का आदेश देते हैं।

च) दर्द और पीड़ा

डिविजनल कंट्रोलर, केएसआरटीसी बनाम महादेवा शेटी और अन्य (2003) 7 एससीसी 197 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 18 में निम्नानुसार निर्णय लिया:

"18. एक व्यक्ति न केवल दुर्घटना के कारण घायल होता है, बल्कि जीवन भर दुर्घटना के कारण मानसिक और शारीरिक रूप से पीड़ित

होता है और उसके मन में यह भावना विकसित हो जाती है कि वह अब एक सामान्य आदमी नहीं है और वह एक अन्य सामान्य व्यक्ति की तरह जीवन की सुख-सुविधाओं का आनंद नहीं ले सकता है। दर्द और पीड़ा के साथ-साथ जीवन की सुविधाओं के नुकसान के लिए मुआवजा तय करते समय, उसकी उम्र, वैवाहिक स्थिति और अपने जीवन में उसके द्वारा किए गए असामान्य अभाव जैसी विशेषताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए।"

निज़ाम इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज बनाम प्रशांत एस धानंका और अन्य, (2009)

6 एससीसी 1 मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पीड़ित के दर्द और पीड़ा के कारण 10,00,000/- रुपये की राशि प्रदान की। हालाँकि, वह लगभग 20 साल की उम्र के एक इंजीनियरिंग छात्र से जुड़ा मामला था।

सिद्रम (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 93 में निम्नानुसार कहा:

"93. दर्द और पीड़ा को गैर-आर्थिक हानि के रूप में वर्गीकृत किया जाएगा क्योंकि इसकी गणना अंकगणितीय रूप से नहीं की जा सकती है। इसलिए, जब दर्द और पीड़ा के लिए मुआवजा दिया जाना है, तो दावेदार की

विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, जिसमें पीड़ित की उम्र, पीड़ित को जो असामान्य अभाव झेलना पड़ा है, उसका उसके भावी जीवन पर प्रभाव शामिल है....."

इस प्रकार निर्णय लेते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सिद्रम (उपरोक्त) के मामले में दर्द और पीड़ा के लिए 1,00,000/- रुपये की राशि प्रदान की है। इसी तरह सुबुलक्ष्मी बनाम प्रबंध निदेशक, तमिलनाडु राज्य टैनस्पोर्ट कॉर्पोरेशन और अन्य (2012) 10 एससीसी 177 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दर्द और पीड़ा के लिए 1,00,000/- रुपये का मुआवजा दिया।

जगदीश बनाम मोहन और अन्य (2018) 4 एससीसी 571 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्थायी विकलांगता के मामले में दर्द और पीड़ा के कारण मुआवजे के रूप में 2,00,000/- रुपये का आदेश दिया है। इस प्रकार, हमारी सुविचारित राय में, दर्द और पीड़ा, जिसे याचिकाकर्ता को जीवन भर भुगतना होगा, के लिए 2,00,000/- रुपये का मुआवजा देना उचित होगा।

छ) विवाह की संभावनाएँ

इब्राहिम बनाम राजू और अन्य, (2011) 10 एससीसी 634 के मामले में निर्णय के पैराग्राफ 19 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 19 में निम्नानुसार कहा:

"19. उसे लगी चोटों के कारण, अपीलकर्ता की शादी की संभावनाएँ काफी कम हो

गई हैं। बल्कि, न के बराबर हैं। किसी भी स्थिति में पेल्विस फ्रैक्चर के कारण वह वैवाहिक जीवन का आनंद नहीं ले पाएगा। इसलिए, इस मद में 50,000/- रुपये का आदेश पूरी तरह से अपर्याप्त माना जाना चाहिए। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हमें लगता है कि अपीलकर्ता को शादी की संभावनाओं और जीवन के आनंद के नुकसान के लिए 2 लाख की राशि प्रदान की जानी चाहिए।"

मास्टर आयुष बनाम शाखा प्रबंधक, रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (2022) 7 एससीसी 738 मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विवाह की संभावनाओं के नुकसान के लिए 3,00,000/- रुपये का आदेश दिया। सिद्रम (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विवाह की संभावनाओं के लिए 3,00,000/- की राशि प्रदान की।

वर्तमान मामले में, चूंकि याचिकाकर्ता अठारह साल की अविवाहित लड़की है और उसने अपना हाथ और अंगूठा खो दिया है, इसलिए उसकी शादी की संभावनाएं कम हो गई हैं। इसलिए, हम विवाह की संभावनाओं के नुकसान के लिए 3,00,000/- रुपये की राशि का आदेश देते हैं।

ज) सुख-सुविधाओं और जीवन के आनंद की हानि

गोविंद यादव बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, (2011) 10 एससीसी 683 के

पैराग्राफ 18 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 18 में निम्नानुसार कहा:

"18. हमारे विचार में, दुर्घटना के पीड़ितों को देय मुआवजे की मात्रा निर्धारित करने में सभी न्यायाधिकरणों और उच्च न्यायालयों द्वारा अरविंद कुमार मिश्रा बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड. (2010) 10 एससीसी 254 और राज कुमार बनाम अजय कुमार (2011) 1 एससीसी 343 मामले में निर्धारित सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए, जो स्थायी या अस्थायी रूप से अक्षम हैं। यदि दुर्घटना का शिकार व्यक्ति स्थायी विकलांगता से पीड़ित है, तो न केवल शारीरिक चोट और उपचार के लिए, बल्कि कमाई के नुकसान और सामान्य जीवन जीने और सुविधाओं, जिसका वह आनंद ले पाता लेकिन दुर्घटना के कारण हुई विकलांगता से असमर्थता के लिए भी पर्याप्त मुआवजा देने का प्रयास किया जाना चाहिए।"

अफनीश बनाम ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2018) 13 एससीसी 119 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन की सुविधाओं और आनंद की हानि के लिए

5,00,000/- रुपये की राशि प्रदान की थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता की संपूर्ण परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम सुविधाओं के नुकसान और जीवन के आनंद के लिए 2,00,000/- रुपये की राशि का आदेश देते हैं।

28. इस प्रकार, विभिन्न मर्दों के तहत दिया गया कुल मुआवजा इस प्रकार है:

क्र. सं.	मुआवजा	राशि (रुपये में)
क	विकलांगता के कारण कमाई का नुकसान	रु. 28,58,416/-
ख	चिकित्सा व्यय के लिए मुआवजा	रु. 2,00,000/-
ग	भविष्य के चिकित्सा व्यय	रु. 1,92,000/-
घ	परिचर शुल्क	रु. 3,84,000/-
ड	वाहन एवं विशेष आहार की हानि	रु. 50,000/-
च	दर्द और पीड़ा	रु. 2,00,000/-

छ	विवाह की संभावनाएँ	रु. 3,00,000/-
ज	सुख-सुविधाओं और आनंद की हानि	रु. 2,00,000/-
	कुल	रु. 43,84,416/-

29. इस प्रकार, याचिकाकर्ता दावा आवेदन दाखिल करने की तारीख से उसकी प्राप्ति तक प्रति वर्ष 6% की दर से साधारण ब्याज के साथ कुल 43,84,416/- रुपये के मुआवजे का हकदार है, जिसमें प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ता को पहले भुगतान की गई राशि को समायोजित किया गया है। उपरोक्त राशि 43,84,416/- में से 5,81,000/- की राशि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पहले ही भुगतान की जा चुकी है। मुआवजे की उपरोक्त कुल राशि में से, याचिकाकर्ता के नाम पर एक राष्ट्रीयकृत बैंक में उच्चतम ब्याज वाले सावधि जमा खाते में 25,00,000/- की राशि रखी जाएगी, जिसमें मासिक आधार पर ब्याज देय होगा ताकि याचिकाकर्ता अपने दैनिक खर्चों और रखरखाव को पूरा करने में सक्षम हो सके। कुछ आकस्मिक आवश्यकताओं के मामले में, याचिकाकर्ता को उक्त राशि का 25 प्रतिशत निकालने की अनुमति दी जा सकती है। पहले से भुगतान की गई राशि को समायोजित करने के बाद ब्याज और मुआवजे की शेष राशि,

याचिकाकर्ता को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो महीने के भीतर सीधे भुगतान की जाएगी।

30. उपरोक्त निर्देश के साथ रिट याचिका को **ऊपर बताई गई सीमा तक अनुमति दी जाती है।**

(2023) 4 ILRA 124

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

रिट सी संख्या 49599/2011

उत्तर प्रदेश राज्य भंडारण निगम, रामबाग,
बरेली

...याचिकाकर्ता

बनाम

कर्मचारी भविष्य निधि, अपीलीय प्राधिकरण
एवं अन्य

....प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अभिषेक मिश्रा, श्री अभिषेक मिश्रा, श्री के.एन. मिश्रा, श्री आशीष जयसवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री धनंजय अवरस्थी, श्री डी. के. पांडेय, सुश्री बुशरा मरियम, श्री रामनाथ, एस.सी., श्री सचिन्द्र उपाध्याय, श्री वाई.के.सिन्हा, श्री के.के. पाण्डेय

क. केन्द्रीय कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952 - धारा 2. एफ एवं 7.ए - ठेके के कर्मचारी को पी०

एफ० के भुगतान की देनदारी - कर्मचारी पर पर्यवेक्षण (सुपरविजन) एवं नियंत्रण, कितना महत्वपूर्ण - क्या ठेके के कर्मचारी, निगम के

कर्मचारी माने जाएंगे - अभिनिर्धारित किया गया, बिना साक्ष्य के यह तय कर पाना संभव नहीं होगा कि ठेका कर्मचारियों का कोई सुपरविजन व कंट्रोल याची. निगम का था या नहीं और क्या ऐसे कर्मचारियों का पी० एफ० अंशदान की देयता याची. निगम की है अथवा ठेकेदार की है - इस बिन्दु पर आयुक्त एवं ट्रिब्यूनल द्वारा कोई स्पष्ट आदेश नहीं किया गया है - हाईकोर्ट ने दिशानिर्देश देने के साथ मामले को सहायक भविष्य निधि आयुक्त को वापस कर दिया। (पैरा 10, 11, 12 एवं 13)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत (ई.1)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री अभिषेक मिश्रा एवं विपक्षी तरफ से विद्वान अधिवक्ता श्री सचिन उपाध्याय, वाई०के० सिन्हा एवं कु० बुश्रा मरियम को सुना।

संक्षेप में वाद के तथ्य यह हैं कि वर्तमान रिट याचिका उ०प्र० राज्य वेयर हाउसिंग कॉरपोरेशन द्वारा औद्योगिक न्यायाधिकरण (केन्द्रीय) की अपील ए०टी०ए० सं०-570 (14)/2004 में पारित आदेश दिनांक 03.08.2010 को चुनौती इस आधार पर दी गयी है कि धारा-7-ए, केन्द्रीय कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत सुनवाई करते हुए गलत तरीके से ठेका कर्मचारियों को उ०प्र० राज्य भण्डारण निगम का कर्मचारी मानकर पी०एफ० की देनदारी निर्धारित की गयी है। जबकि इस सम्बन्ध में औद्योगिक

न्यायाधिकरण (प्रथम), इलाहाबाद द्वारा अभि० वाद सं०-89/2006 एवं 03/2009 में यह अभिनिर्णीत किया गया है कि ठेका कर्मचारी निगम के कर्मचारी माने जायेंगे और समस्त लाभ पाने के अधिकारी होंगे। उपरोक्त अभिनिर्णय को निगम द्वारा रिट याचिका संख्या-72314/2010 से चुनौती दी गयी जिसमें इस न्यायालय द्वारा यह कहा गया कि ठेका कर्मचारी निगम के कर्मचारी नहीं हैं और कोई लाभ पाने के अधिकारी नहीं हैं। इस आधार पर सेवायोजकों ने धारा 7-ए के कार्यवाही के दौरान माननीय उच्च न्यायालय के आदेश दिनांक 15.05.2013 की प्रति प्रस्तुत करके यह कहा है कि ठेका कर्मचारी निगम के कर्मचारी नहीं हैं और उनके पी०एफ० की देनदारी नहीं बनती है।

सेवायोजकों द्वारा प्रस्तुत तथ्यों को सहायक आयुक्त कर्मचारी भविष्य निधि ने बल न पाते हुये आदेश दिनांक 06.05.2004 द्वारा सेवायोजकों को 15 दिन में पी०एफ० की धनराशि जमा करने के निर्देश दिये। इस आदेश को याची द्वारा अधिनियम की धारा 7-आई के अन्तर्गत कर्मचारी भविष्य निधि अपीलेट

ट्रिब्यूनल, नई दिल्ली के समक्ष अपील दाखिल की गयी जो ए०टी०ए० नं० 570 (14)/2004 के रूप में पंजीकृत होकर सुनी गयी। अपीलेट ट्रिब्यूनल द्वारा पक्षों को सुनने के उपरान्त आदेश दिनांक 03.08.2010 द्वारा सेवायोजकों के अपील में बल न पाते हुये अपील निस्तारित कर दी जिसे याची द्वारा वर्तमान याचिका में चुनौती दी गयी।

इस न्यायालय के अंतरिम आदेश दिनांक 30.08.2011 द्वारा इस शर्त पर कि यदि

सेवायोजक विपक्षी द्वारा संगणित धनराशि को भविष्य निधि आयुक्त के समक्ष एक माह में जमा करें तो उसके विरुद्ध कोई दण्डात्मक कार्यवाही नहीं होगी और यदि एक माह में पैसा जमा नहीं किया जाता है तो अन्तरिम आदेश का लाभ सेवायोजक को प्राप्त नहीं होगा।

विपक्षी संख्या-2 द्वारा अपना प्रति शपथपत्र प्रस्तुत कर यह कहा गया कि अधिनियम की धारा 2-एफ के अंतर्गत सभी कर्मचारी जैसे-रेगुलर, कैजुअल, कांट्रेक्टर या पीस-रेटेड कर्मचारी, कर्मचारी की भाषा में आवृत होते हैं और उनका पी-एफ० का अंशदान देय है। विपक्षी संख्या-2 द्वारा यह भी कहा गया कि रिट के प्रस्तर-11 व 12 में उल्लिखित रिट याचिका का कोई सम्बन्ध भविष्य निधि संगठन से नहीं है, यह भी कहा गया है कि वर्तमान याची मुख्य सेवायोजक ठेका कर्मचारियों के नियोजक की परिभाषा में आवृत होता है और उनके द्वारा पी०एफ० के अंशदान का भुगतान किया जाना है। प्रतिवादी द्वारा धारा 7-ए के अंतर्गत पारित आदेश को सही कहा गया है।

प्रतिवादी संख्या 3 जो कि कर्मचारियों की यूनियन है के द्वारा भी अपना प्रति शपथपत्र प्रस्तुत करके कहा गया है कि वे याची के यहाँ कार्य करते हैं और उनके द्वारा की गयी शिकायत पर प्रतिवादी संख्या 1 व 2 ने संज्ञान लेते हुये जाँच करके नियमानुसार देनदारी की संगणना की है। याची द्वारा अपने रिज्वाइन्डर एफिडेविट प्रस्तुत किया गया।

वर्तमान याचिका को माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा सुनकर दिनांक

28.07.2013 को याचिका स्वीकार करते हुये आक्षेपित आदेश दिनांक 03.08.2010 एवं 02.12.2002 को अपास्त किया गया।

उक्त आदेश के विरुद्ध सहायक भविष्य निधि आयुक्त, इ०पी०एफ०ओ० बरेली द्वारा माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष एस०एल०पी० (सी) संख्या 3458/2015 प्रस्तुत की जो बाद में सिविल अपील संख्या 6295 वर्ष 2019 हो गयी।

माननीय उच्चतम न्यायालय अपने दिनांक 14.08.2019 द्वारा वर्तमान अपील स्वीकार करते हुए आदेश दिनांक 15.05.2013 को कानूनन दूषित मानते हुये याचिका को पुनः सुनवाई हेतु इस न्यायालय को वापस की गयी और यह कहा गया कि उच्च न्यायालय (रिट कोर्ट) पक्षों को पुनः सुनकर नवीन आदेश पारित करे और ऐसा करते समय वह कर्मचारी की परिभाषा जैसा कि अधिनियम की धारा 2-एफ में दी गयी है को विचार करते हुये उस आलोक में देखे कि धारा 7-ए में पारित आदेश सही है अथवा नहीं।

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित रिमाण्ड आदेश दिनांक 14.08.2019 के बाद याचिका पुनः सुनवाई हेतु सूचीबद्ध की गयी और पक्षों को सुना गया तथा पत्रावली का गहन अवलोकन किया गया। वर्तमान याचिका में मूल विवादित प्रश्न यह है कि क्या ठेके के कर्मचारी निगम के कर्मचारी माने जायेंगे और उनके पी०एफ० के अंशदान की जिम्मेदारी किसकी होगी। इस सम्बन्ध में सेवायोजकों ने यह साबित करने का प्रयत्न किया है कि उनके द्वारा अपने पंजीकृत ठेकेदारों द्वारा लोडिंग अनलोडिंग का कार्य लिया जाता है और उनका भुगतान कांट्रेक्टर को प्रस्तुत बिल के माध्यम

से किया जाता है। सेवायोजकों का तर्क है कि उनका किसी प्रकार से कंट्रोल और सुपरविजन संबंधित कर्मचारियों के ऊपर नहीं रहता है।

वर्तमान परिस्थितियों में बिना साक्ष्य के यह तय कर पाना संभव नहीं होगा कि ठेका कर्मचारियों का कोई सुपरविजन व कंट्रोल याची का था या नहीं और क्या ऐसे कर्मचारियों का पी०एफ० अंशदान की देयता याची निगम की है अथवा ठेकेदार की है। न्यायालय द्वारा पक्षों से यह पूछे जाने पर कि क्या कोई ऐसा अभिलेख पत्रावली पर उपलब्ध है कि श्रमिको ठेकेदार/निगम की कोई मौखिक साक्ष्य धारा 7-ए में जाँच करते समय करायी गयी है अथवा नहीं। इस पर पक्षगण मौन रहे। सहायक भविष्य निधि आयुक्त ने भी यह उल्लिखित किया है कि प्रवर्तन अधिकारियों द्वारा कोई भी रिकार्ड जाँच के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया।

मेरे द्वारा गहन अध्ययन करने पर यह पाया गया कि सहायक भविष्य निधि आयुक्त द्वारा धारा 7-ए में एवं अपीलीय ट्रिब्यूनल द्वारा अपना कोई सुस्पष्ट आदेश इस बिन्दु पर पारित नहीं किया है तथा उक्त के अभाव में वर्तमान विवाद का निस्तारण किया गया है।

आदेश

अतः सेवायोजक द्वारा प्रस्तुत वर्तमान याचिका आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए आदेश दिनांक 03.08.2010 एवं 02.12.2002 को निरस्त किया जाता है और प्रकरण प्रतिवादी संख्या 2, सहायक भविष्य निधि आयुक्त को इस निर्देश के साथ वापस किया जाता है कि वह आदेश की प्राप्ति के 6 माह के अन्दर पक्षों को सुनवाई का अवसर देते हुये साक्ष्यों

(लिखित व मौखिक), के आधार पर मुखर आदेश पारित करें। याचिका में पारित अन्तरिम आदेश दिनांक 30.08.2011 द्वारा जमा की गयी धनराशि अन्तिम निर्णय तक विपक्षी संख्या 01 के पास सुरक्षित रहेगी।

(2023) 4 ILRA 126

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

वाद अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 27 / 2021

ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अंचल मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., रिंकू वर्मा

ए. बीमा कानून - क्षतिपूर्ति - क्षतिपूर्ति का वाद, जो कार्रवाई का मूल कारण है, बीमाधारक की मृत्यु पर ही उठता है। इस प्रकार बीमाधारक की मृत्यु से पहले हुई दुर्घटना का वाद दावे की स्वीकार्यता के प्रयोजनों के लिए केवल एक शर्त है तथा केवल दुर्घटना के कारण बीमित व्यक्ति की मृत्यु ही बीमित व्यक्ति के नामिती/कानूनी उत्तराधिकारी के लिए कार्रवाई का कारण बनती है।

दिनांक 14.09.2016 के समझौते के भाग-1 के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि बीमा पॉलिसी/योजना के दौरान परिवार के मुखिया/रोटी कमाने वाले की दुर्घटना से मृत्यु

होने की स्थिति में, बीमा कंपनी को मृतक के नामिती/कानूनी उत्तराधिकारियों को 5,00,000/- रुपए का क्षतिपूर्ति देना आवश्यक है। शर्त यह भी इंगित करती है कि मृत्यु बीमा योजना के दौरान हुई होनी चाहिए। (पैरा 10, 11)

वर्तमान वाद में, यह स्पष्ट है कि यद्यपि दुर्घटना 14.09.2016 को योजना के लागू होने से पहले हुई है, लेकिन बीमाधारक स्वर्गीय उस्मान खान की मृत्यु 17.09.2016 को हुई है, जो कि 14.09.2016 को बीमा योजना के लागू होने के बाद हुई थी। स्पष्ट रूप से, मृतक के नामांकित व्यक्ति/कानूनी उत्तराधिकारी योजना के अनुसार दावा बनाए रखने के पात्र थे क्योंकि मृत्यु 14.09.2016 के समझौते के अस्तित्व के दौरान हुई थी। इस आशय से, बीमा कंपनी द्वारा विपक्षी पक्ष 3 से 6 के दावे को गलत तरीके से निरस्त कर दिया गया था। (पैरा 12)

बी. दोहरा दंड - जब दावा पारस्परिक रूप से सहमत और बाध्यकारी अनुबंध के अनुसार किया जाता है, तो यह केवल अनुबंध की शर्तें होती हैं जिनका पालन बाहरी विचारों को लागू किए बिना किया जाता है। इस प्रकार, एक बार अनुबंध के तहत अनुबंध के उल्लंघन के वाद में किसी पक्ष को पूरा करने के लिए दंड का स्पष्ट रूप से संकेत दिया जाता है, यह केवल वह दंड है जिसे आरोपित किया जा सकता है और इस न्यायालय की सुविचारित राय में, कोई और जुर्माना या लागत नहीं लगाई जा सकती है जो ऐसे अनुबंध की शर्तों और नियमों से परे हो। (पैरा 18)

दिनांक 14.09.2016 के समझौते में बीमा कंपनी पर जुर्माना लगाने का प्रावधान है, यदि दावेदार को समझौते की शर्तों के अनुसार भुगतान नहीं किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले 2500/- रुपये प्रति सप्ताह जुर्माना लगाया गया था, जिसे बाद में घटाकर 1,000/- रुपये प्रति सप्ताह कर दिया गया। (पैरा 14)

इस आदेश के माध्यम से, जबकि स्थायी लोक अदालत ने उपरोक्त जुर्माना लगाया है, उसी समय बीमा कंपनी पर 9% की दर से ब्याज भी लगाया गया है। यह स्पष्ट है कि ब्याज देने के लिए न तो कोई वैधानिक प्रावधान प्रदर्शित है और न ही 14.09.2016 के समझौते में किसी भी ब्याज देने का प्रावधान है। इस प्रकार, जुर्माने से अधिक ब्याज देना स्पष्ट रूप से न केवल दोहरा संकट है, बल्कि अन्यायपूर्ण समृद्धि है और यह स्थिर रखने योग्य नहीं है। (पैरा 16, 19)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की गई। दिनांक 27.12.2019 के आदेश को केवल दावा की गई राशि पर ब्याज देने की सीमा तक ही निरस्त किया जाता है। (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

शमीना खातून एवं अन्य बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, पीएलए वाद संख्या 15/2018 (पैरा 22)

वर्तमान याचिका में स्थायी लोक अदालत, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.12.2019 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत मुख्यमंत्री किसान एवं सर्वहित बीमा

योजना के तहत क्षतिपूर्ति की मांग करने वाले निजी पक्षों के दावे को अनुमति दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादीगण 1 और 2 हेतु राज्य के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादीगण 3 से 6 हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री रिकू वर्मा को सुना।

2. यह याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत स्थायी लोक अदालत, लखनऊ द्वारा पीएलए वाद संख्या 15/2018 में दिनांक 27.12.2019 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसमें मुख्यमंत्री किसान एवं सर्वहित बीमा योजना के संदर्भ में मुआवजा राशि प्राप्त के निजी प्रतिवादीगण के दावे को अनुमति दे दी गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि राज्य सरकार की उपरोक्त योजना घोषित की गयी थी जिसमें विभिन्न बीमा कंपनियां राज्य के किसानों को दुर्घटना और उसके फलस्वरूप होने वाली मृत्यु की क्षतिपूर्ति हेतु उक्त बीमा योजना को लागू करने की सेवाएं प्रदान करने हेतु हुए करार जापन की पक्षकार थीं।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि याचिकाकर्ता कंपनी और राज्य के मध्य 14.09.2016 को एक करार किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त योजना को उसी तिथि से क्रियान्वित किया

जाना था जिस तिथि से इसे दर्ज किया गया था और उक्त योजना के प्रावधानों के अनुसार, करार के संचालन के दौरान परिवार के मुखिया कमाने वाले व्यक्ति की दुर्घटना से होने वाली मृत्यु की दशा में, बीमा कंपनी नामित/कानूनी उत्तराधिकारी को ₹.5,00,000/- की दर से क्षतिपूर्ति देने हेतु बाध्य थी।

5. यह कथन किया गया है कि वर्तमान वाद में, निस्संदेह प्रतिवादीगण 3 से 6 के हित में पूर्ववर्ती, स्वर्गीय उस्मान खान 12.09.2016 को एक दुर्घटना का शिकार हो गए थे और उसके परिणामस्वरूप, 17.09.2016 को निधन हो गया था। यह कथन किया गया है कि स्वर्गीय उस्मान खान के कानूनी उत्तराधिकारियों द्वारा दावा किए जाने पर, बीमा कंपनी द्वारा इसे 23.02.2017 को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया गया था कि स्वर्गीय उस्मान खान की मृत्यु का कारण बनी दुर्घटना 12.09.2016 को घटित हुई थी, जो कि करार दिनांक 14.09.2016 के प्रवर्तन से पहले की घटना थी। इस प्रकार, उक्त घटना बीमा अवधि के अंतर्गत आच्छादित नहीं थी।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि चूंकि वाद का कारण, अर्थात् दुर्घटना दिनांक 12.09.2016 को घटित हुई थी, जो कि दिनांक 14.09.2016 के बीमा करार के प्रवर्तन से पहले की है, इसलिए उत्तरदायी प्रतिवादीगण का दावा ठीक ही अस्वीकृत कर दिया गया है। आगे भी कथन किया गया है कि स्वर्गीय उस्मान खान की मृत्यु की तिथि पूर्णतया अप्रासंगिक होगी क्योंकि उत्तरदायी प्रतिवादी हेतु वाद के कारण

की उत्पत्ति उस दुर्घटना से हुई है जो कि 12.09.2016 को घटित हुई थी। विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य की ओर भी संकेत किया है कि न इस तथ्य के आक्षेपित आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता-बीमा कंपनी को दोहरा दण्ड अधिरोपित कर दिया गया है, क्योंकि जुर्माने की राशि प्रत्येक सप्ताह रु. 1,000/- जैसा कि करार में प्रावधानित है, को 9% वार्षिक दर की व्याज के साथ लगाया गया है जो कि इसलिए नहीं किया जा सकता था क्योंकि ब्याज का भुगतान दिनांक 14.09.2016 के करार में दर्शाई गई शर्तों से परे है।

7. प्रतिवादीगण 3 से 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत कथनों का खंडन इस कथन के साथ किया है कि दिनांक 14.09.2016 के करार के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि उपरोक्त बीमा योजना के अन्तर्गत मुआवजे का दावा बीमाधारक की मृत्यु की तिथि से उत्पन्न होता है, न कि दुर्घटना की तिथि से, और इसलिए वाद का कारण मृत्यु की तिथि से ही प्रोडूत होगा, न कि दुर्घटना की तिथि से जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथन किया जा रहा है। विद्वान अधिवक्ता ने इसी संबंध में विशिष्ट प्रावधान को इंगित करने हेतु दिनांक 14.09.2016 के करार के भाग-1 का भी उल्लेख किया है।

8. दोहरे दंड के संबंध में यह कथन किया गया है कि यदि योजना के अन्तर्गत दावा किए जाने पर मुआवजा नहीं दिया जाता है तो

दिनांक 14.09.2016 का करार स्वयं दंड अधिरोपित किये जाने का प्रावधान करता है। यह कथन किया गया है कि दंड का निर्धारण व्याज के निर्धारण से एक अलग जो कि व्याज अधिनियम, 1978 के अनुसार प्रदान किया जाता है।

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा मौजूद सामग्री के अवलोकन के पश्चात्, दो इस प्रकार हैं: Not for कथनों और अभिलेखों पर जिनका अधिनिर्णयन आवश्यक है.

(i) क्या योजना के से अन्तर्गत या फिर दुर्घटना के किसी दावेदार हेतु वाद का कारण दुर्घटना की तिथि वरूप हुई मृत्यु की तिथि से उत्पन्न होगा?

(ii) क्या करार बताए गए दंड के अतिरिक्त व्याज की देयता दोहरे दंड के समान है?

प्रश्न संख्या (i): क्या योजना के अन्तर्गत किसी दावेदार हेतु वाद का कारण दुर्घटना की तिथि से उत्पन्न होगा या फिर दुर्घटना के परिणामस्वरूप हुई मृत्यु की तिथि से ?

10. प्रश्न क्रमांक (i) के संबंध में, दिनांक 14.09.2016 के करार के भाग के अवलोकन यह स्पष्ट कर देता है कि यदि बीमा पॉलिसी/योजना के दौरान परिवार के मुखिया/कमाने वाले सदस्य की दुर्घटना से मृत्यु हो जाती है, तो बीमा कंपनी द्वारा मृतक के नामित व्यक्ति/कानूनी उत्तराधिकारियों को ₹5,00,000/- का भुगतान करना आवश्यक है। प्रासंगिक प्रावधान इस प्रकार है:-

"दुर्घटना में मृत्यु- यदि दुर्घटना के कारण परिवार के मुखिया/ रोटी अर्जक की मृत्यु बीमा अवधि के दौरान हो जाती है तो बीमा कंपनी सम्पूर्ण बीमित राशि रु० 5.00 लाख का भुगतान नामिनी/कानूनी वारिश को करेगी"।

11. निस्संदेह, यद्यपि उपरोक्त खंड के अनुसार, जिस दुर्घटना से मृत्यु हुई है। वह बीमा योजना के अनुसार मुआवजे के दावे को पूरा करने हेतु एक आवश्यक घटक है, लेकिन उक्त प्रावधान को पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि मुआवजे के दावे हेतु वाद दाखिल करने का कारण केवल पूर्ववर्ती दुर्घटना के कारण होने वाली मृत्यु से ही उत्पन्न होता है। नियम यह भी इंगित करता है कि मृत्यु बीमा योजना के दौरान ही होनी चाहिए थी। चाहिए थी। इस प्रकार, प्रावधान को पढ़ने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुआवजे का दावा, जो वाद का मूलभूत कारण है, केवल बीमाधारक की मृत्यु होने पर ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार, बीमाधारक की मृत्यु से पहले होने वाली दुर्घटना का मुद्दा केवल दावे को स्वीकार करने के उद्देश्य हेतु एक पूर्व शर्त मात्र है और यह केवल दुर्घटना से होने वाली बीमाधारक की मृत्यु ही है जो बीमाधारक के नामित व्यक्ति/कानूनी उत्तराधिकारी को वाद हेतु कारण को जन्म देती है।

12. वर्तमान वाद में, यह स्पष्ट है कि यद्यपि दुर्घटना योजना के 14.09.2016 को प्रभावी होने से पहले हुई थी, परन्तु बीमाधारक, स्वर्गीय उस्मान खान की मृत्यु 17.09.2016 को हुई है, जो कि 14.09.2016 को बीमा योजना के प्रभावी होने के बाद की थी। स्पष्ट

रूप से, मृतक के नामांकित व्यक्ति/कानूनी उत्तराधिकारी योजना के अनुसार दावा कायम रखने हेतु हकदार थे क्योंकि मृत्यु 14.09.2016 के करार के अस्तित्व के दौरान हुई थी। इस आशय से, प्रतिवादीगण 3 से 6 के दावे को बीमा कंपनी द्वारा गलत तरीके से खारिज कर दिया गया था।

13. प्रश्न संख्या (1) का उत्तर, तदनुसार दावेदार के पक्ष में दिया जाता है।

प्रश्न संख्या (ii): क्या करार में बताए गए दंड के अतिरिक्त ब्याज की देयता दोहरे दंड के समान है?

14. दूसरे प्रश्न के संबंध में, यह पता चलता है कि यदि दावेदार को करार की शर्तों और नियमों के अनुरूप भुगतान नहीं किया जाता है तो करार दिनांक 14.09.2016 बीमा कंपनी पर दंड अधिरोपित करने का प्रावधान करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले ₹2500/- प्रति सप्ताह की राशि का जुर्माना अधिरोपित किया गया था, जिसे बाद में घटाकर ₹1,000/- प्रति सप्ताह कर दिया गया था।

15. स्पष्ट रूप से, बीमा कंपनी पर दंड अधिरोपण करार की शर्तों और नियमों का पालन करने हेतु प्रोत्साहन का एक उपाय मात्र ही नहीं है, बल्कि यदि दावा गलत तरीके से खारिज कर दिया जाता है और बीमाधारक के नामांकित व्यक्ति/कानूनी उत्तराधिकारी को मुआवजा नहीं दिया जाता है तो यह बीमा कंपनी पर अधिरोपित की गई लागत की प्रकृति का भी है।

16. आक्षेपित आदेश के माध्यम से, जहां स्थायी लोक अदालत ने उक्त दंड अधिरोपित किया है, साथ ही साथ बीमा कंपनी पर 9% की दर से व्याज भी अधिरोपित किया है।

17. यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि जब दावे किये जाते हैं और उनका निर्धारण एक अनुबंध की शर्तों के आधार पर किया जाना होता है, तो यह केवल अनुबंध की शर्त ही हैं जिनका पालन किया जाना आवश्यक होता है। संबंधित न्यायालय अपने स्वयं की इच्छा से कोई ऐसी शर्त नहीं लगा सकती जो अनुबंध में शामिल न हो। वर्तमान वाद में, ऐसा प्रतीत होता है कि बीमा कंपनी पर बीमा योजना के अन्तर्गत मुआवजे का भुगतान करने से इनकार करने या प्रदान नहीं करने हेतु प्रति सप्ताह ₹1,000 का कठोर दंड लगाया गया है। स्थायी लोक अदालत द्वारा दंड प्रदान करना एक प्रकार से दिनांक 14.09.2016 के करार के अनुरूप ही प्रतीत होता है। हालांकि, जहां तक 9 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से व्याज की देयता का प्रश्न है, स्थायी लोक अदालत अपने आक्षेपित आदेश में करार के किसी भी ऐसे प्रावधान या शर्त का उल्लेख नहीं करती है जिसके अन्तर्गत करार में निर्धारित दंड के अतिरिक्त व्याज देने का प्रावधान किया गया गया हो हो हो अं और 3 न ही करार में दंड के प्रावधान के अतिरिक्त दावेदार को ब्याज के भुगतान के संबंध में कोई प्रावधान है। इस प्रकार, इस न्यायालय की राय में, स्थायी लोक अदालत, यह तथ्य नजरअंदाज करते हुए कि प्रति सप्ताह ₹1,000 का कठोर दंड पहले से ही अधिरोपित किया जा चुका और है जिसका कि बीमा कंपनी द्वारा करार के अनुसार भुगतान

किया जाना है, व्याज प्रदान कर दिनांक 14.09.2016 के करार की शर्तों से परे चली गई है।

18. जैसा कि ऊपर बताया गया है, कि जब किसी परस्पर सहमत और बाध्यकारी अनुबंध के अन्तर्गत दावा किया जाता है, तो इसमें बिना किसी अतिरिक्त विचारों का उपालंबन किए केवल अनुबंध की शर्तों का ही पालन किया जाता है। इसलिए, जब किसी अनुबंध में उल्लंघन की स्थिति में किसी पक्ष हेतु भुगतान हेतु दंड का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया हो, तो केवल वही दंड ही अधिरोपित किया जा सकता है और इस न्यायालय की सुविचारित राय में, ऐसा कोई अतिरिक्त दंड या हर्जाना नहीं लगाया जा सकता जो ऐसे अनुबंध के नियमों और शर्तों से परे हो।

19. वर्तमान वाद में, यह स्पष्ट है कि न तो व्याज भुगतान हेतु किसी वैधानिक प्रावधान का संकेत किया गया है और न ही दिनांक 14.09.2016 के करार में किसी भी व्याज की देयता का उल्लेख है। इसलिए, दंड के अतिरिक्त व्याज भुगतान 15 न केवल दोहरा दंड देने के समान है, बल्कि अनुचित लाभ भी है अतः इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

20. उपरोक्त के मद्देनजर, प्रश्न संख्या (ii) का उत्तर याचिकाकर्ता बीमा कंपनी के पक्ष में दिया जाता है।

21. उपरोक्त के आधार पर, जनहित याचिका वाद संख्या 15/2018 (शमीना खातून और अन्य बनाम द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी

लिमिटेड और अन्य) में पारित दिनांक 27.12.2019 के आदेश को मात्र दावा की गई राशि पर व्याज 27.1 भुगतान की सीमा तक ही अपास्त किया जाता है।

22. इस प्रकार उपरोक्त आधार पर याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। पक्षकार अपना-अपना व्यय स्वयं वहन करेंगे।

(2023) 4 ILRA 130

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

39133/2022

ऋषिपाल

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षी गण

अधिवक्ता आवेदक: श्री विनोद कुमार पांडे, श्री पीयूष कुमार शुक्ला

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री संजीत कुमार मिश्रा

(ए) दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 307, 323, 504, 506 एवं 452 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 156 (3) - धारा 307 आईपीसी के अंतर्गत अपराध - अभियुक्त को चोटें लगना आवश्यक नहीं है - अभियुक्त की हत्या करने की मंशा है या नहीं यह निर्धारित करने के लिए अभियुक्त की आपराधिक मनःस्थिति, उद्देश्य एवं प्रयास को देखा जाना चाहिए - किस हथियार से और

शरीर के किस भाग पर लगी चोट का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए भी किया जा सकता है कि - अभियुक्त की हत्या करने की मंशा है या नहीं। (पैरा-7)

आरोप पत्र और संज्ञान आदेश को चुनौती दी गई है - चोटें गंभीर प्रकृति की नहीं हैं - आवेदक का अपने भाई को मारने का कोई आशय नहीं था - आवेदक/आरोपी ने सिविल वाद दायर किया है - दोनों पक्षों के मध्य पहले से ही दुश्मनी थी - आवेदक ने सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत वादी के विरुद्ध एफआईआर भी दर्ज कराई है - आरोप - आरोपी उसके खिलाफ अपराध करते रहे - उसकी जमीन हड़पने के लिए - सिर्फ इसलिए कि वह बूढ़ा है और उसकी सिर्फ बेटियां हैं। (पैरा-2,7,17)

निर्णय:-एफ.आई.आर. में दर्ज तथ्य मौखिक, दस्तावेजी और मेडिकल रिकॉर्ड से पुष्ट हैं। भले ही वादी और उसके रिश्तेदार आवेदक/अभियुक्त की संपत्ति हड़पना चाहते हो, ऐसा आशय आवेदक/अभियुक्त को घटना कारित करने का अधिकार नहीं देता है। (पैरा-14)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद कुमार पाण्डेय, विपक्षी संख्या-2 के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीत कुमार मिश्रा तथा विद्वान अपर

शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को ध्यानपूर्वक सुना गया तथा पत्रावली का अवलोकन किया गया।

प्रार्थी/अभियुक्त ऋषिपाल ने धारा 482 दं०प्र०सं० के अंतर्गत सत्र वाद संख्या 1149 वर्ष 2021, अपराध संख्या 117 वर्ष 2021, अंतर्गत धारा 307 एवं 452 भा०दं०सं०, थाना नागल, जनपद सहारनपुर के वाद में प्रस्तुत चार्जशीट एवं संज्ञान आदेश दिनांकित 07.09.2021 को खण्डित करने के लिए यह प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया है। उक्त सत्र वाद अपर सत्र न्यायाधीश देवबंद जनपद सहारनपुर के न्यायालय में लंबित है।

1. संक्षेप में प्रार्थी ने यह आधार लिया है कि दिनांक 06.06.2021 को कथित घटित घटना के संबंध में एक दिन विलंब से दिनांक 07.06.2021 को प्रथम सूचना रिपोर्ट विलंब का स्पष्टीकरण दिये बगैर पंजीकृत कराया गया है।
2. चोटें मर्मस्थल पर पायी गईं, परन्तु वह गम्भीर प्रकृति की नहीं हैं।
3. प्रार्थी का अपने सगे भाई को जान से मारने का कोई आशय नहीं था।
4. विवेचक ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्रित किये बगैर तथा साक्षीगण के बयान पर विचार किये बगैर अनुचित विवेचना करते हुए अवैध आरोपपत्र प्रस्तुत किया है।

5. प्रार्थी 77 वर्षीय वृद्ध व्यक्ति है, जो वृद्धावस्था की बीमारियों से ग्रस्त है तथा उसकी चिकित्सा चल रही है।

6. प्रार्थी ने भी शिकायतकर्ता के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 156 (3) दं०प्र०सं० के अंतर्गत अपराध संख्या 92 वर्ष 2022, अंतर्गत धारा 147, 148, 504, 506, 307 एवं 323 भा०दं०सं० के अंतर्गत संबंधित थाने में दर्ज कराया है कि वृद्धावस्था एवं मात्र लड़कियाँ होने के कारण उसकी जमीन को हड़पने के लिए अभियुक्तगण उसके प्रति ऐसा अपराध करते रहते हैं।

7. प्रार्थी को प्रश्नगत अपराध करने की कोई भूमिका प्रदान नहीं की गई है।
8. प्रार्थी का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है।
9. सम्पूर्ण साक्ष्य के आधार पर धारा 307 एवं 452 भा०दं०सं० का अपराध उसके विरुद्ध नहीं बनता।

यह निवेदन किया गया कि उपरोक्त आधारों पर यह प्रार्थनापत्र स्वीकार कर प्रश्नगत आरोपपत्र दिनांकित 12.08.2021 खण्डित किया जाए।

पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि घटना दिनांक 06.06.2021 के 3.50 बजे अपराहन की कही जाती है, जिसके संबंध में दूसरे दिन अर्थात् दिनांक 07.06.2021 को 03.37 बजे अपराहन

प्रथम सूचना रिपोर्ट नामित अभियुक्त के विरुद्ध लाठी में जड़े हुए गड़ासे से अपने भाई चुटैल वादी के पिता राजपाल त्यागी के शरीर के मर्मस्थल पर हत्या करने के आशय से चोटें कारित करने के संबंध में पंजीकृत कराया गया।

प्रथम सूचना रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि शिकायतकर्ता ने सर्वप्रथम अपने पिता की जान बचाना आवश्यक समझा यद्यपि उसकी भतीजी खुशी ने घटना की सूचना घटना के तत्काल उपरान्त 112 नंबर पर पुलिस को दे दिया था तथा शिकायतकर्ता अपने दो अन्य मित्रों के साथ चुटैल को गाड़ी में डालकर थाने में ले गये तथा वहाँ से प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र नागल ले गये तथा प्राथमिक उपचार करा कर सहारनपुर सरकारी अस्पताल ले गये तथा सहारनपुर के सरकारी अस्पताल के चिकित्सकों ने चुटैल की गम्भीर हालत को देखते हुए उन्हें अन्य उच्चकृत चिकित्सा केंद्र में ले जाने की सलाह दी, तब शिकायतकर्ता चुटैल को मैक्स अस्पताल देहरादून ले गया, वहाँ भी चिकित्सकों ने चुटैल की गम्भीर स्थिति को देखते हुए डिस्चार्ज कर दिया तथा किसी अन्य बड़े अस्पताल में ले जाने के लिए कहा तब वह चुटैल को मेरठ कैलाशी अस्पताल मेरठ बाईपास पर ले गये जहाँ चुटैल की चिकित्सा चल रही है एवं तदुपरान्त वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने थाने आ सका।

उक्त से यह स्पष्ट है कि घटना के उपरान्त जिस प्रकार प्रार्थी अपने पिता चुटैल की चिकित्सा में व्यस्त रहा तथा फुर्सत पाते ही तत्काल प्रथम सूचना रिपोर्ट दूसरे दिन पंजीकृत कराया तो इसमें कोई अनुचित विलंब नहीं है, जो भी विलंब हुआ है, तत्संबंधी

परिस्थितियों का समुचित स्पष्टीकरण स्वयं प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही वर्णित है। उक्त के विरुद्ध प्रार्थी द्वारा कोई अन्य तथ्य इंगित अथवा प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

प्रार्थी की तरफ से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि चोटें शरीर के मर्मस्थल पर हैं परन्तु वह गम्भीर प्रकृति की नहीं हैं। इस न्यायालय के मतानुसार धारा 307 भा०दं०सं० का अपराध कारित करने के लिए चोटें भी होना आवश्यक नहीं हैं। मात्र अभियुक्त की आपराधिक मनःस्थिति, हेतुक एवं प्रयास देखा जाना चाहिए तथा यदि चोटें आयी हैं तो वह किस हथियार से आयी हैं तथा वह शरीर के किस भाग पर हैं, इसको देखते हुए भी यह अवधारित किया जा सकता है कि क्या अभियुक्त का हत्या करने का आशय एवं ज्ञान था अथवा नहीं।

इस संबंध में पत्रावली पर उपलब्ध चिकित्सकीय साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि चुटैल के शरीर के मर्मस्थल पर जैसे दाहिनी भौंह पर, दाहिने कान के पिन्ना पर तथा गर्दन पर धारदार हथियार से कटे हुए घाव (Incised Wound) पाये गए। चिकित्सक के अनुसार ऐसी चोटें धारदार हथियार से कारित की गई थी तथा अभियोजन के अनुसार प्रार्थी/अभियुक्त ने लाठी में लगे हुए गड़ासे जैसे धारदार हथियार से चुटैल को चोटें पहुँचाई थीं। यह भी अंकित है कि सभी चोटें ताजा तथा गम्भीर प्रकृति की थीं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि प्रार्थनापत्र के साथ संलग्न शपथपत्र में प्रार्थी द्वारा यह झूठा तथ्य वर्णित है कि चोटें गम्भीर प्रकृति की नहीं हैं। उस दशा में और भी महत्वपूर्ण हैं, जबकि अत्याधुनिक चिकित्सा प्रदान किये जाने के उपरान्त भी चुटैल 16

तारीख को 9 दिन के उपरान्त अस्पताल से डिस्चार्ज हो सका। इससे प्रथमदृष्टया यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि चुटैल को तत्काल अच्छी चिकित्सा न दी गई होती तो उसकी मृत्यु संभावित थी।

प्रार्थी की तरफ से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि चुटैल उसका सगा छोटा भाई है तथा प्रार्थी/अभियुक्त का उसकी हत्या कारित करने का कोई आशय नहीं था। इस संबंध में पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि चूंकि गड़ासे जैसे धारदार हथियार से चुटैल के मर्मस्थल पर चोटें पहुंचाई गई थीं, अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रार्थी/अभियुक्त का चुटैल की हत्या करने का आपराधिक आशय विद्यमान था।

प्रार्थी/अभियुक्त ने विवेचक पर यह आरोप लगाया है कि उसने पर्याप्त साक्ष्य एकत्रित किये बगैर तथा साक्षीगण के बयान का उचित विश्लेषण किये बगैर अवैध तरीके से विवेचना करते हुए गलत आरोपपत्र प्रस्तुत किया है। इस संबंध में विपक्षी की तरफ से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में प्रार्थी / अभियुक्त नामित व्यक्ति है, वह वादी का सगा बड़ा ताऊ तथा चुटैल का सगा बड़ा भाई है तथा घटना दिन की है अतः उसके न पहचानने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि अभियोजन केस एवं कथानक तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट के तथ्यों का समर्थन साक्षीगण ने अपने बयान में किया है तथा उनका समर्थन चिकित्सकीय साक्ष्य से भी होता है, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि विवेचक ने बिना पर्याप्त साक्ष्य एकत्रित किये तथा साक्षीगण के बयान को ध्यान में रखे बगैर गलत तरीके से विवेचना

कर गलत आरोपपत्र प्रस्तुत किया है। यह न्यायालय विपक्षी के उक्त तर्क से पूर्णतया सहमत है।

प्रार्थी/अभियुक्त की तरफ से यह तर्क लिया गया कि वह 77 वर्षीय वृद्ध व्यक्ति है तथा वृद्धावस्थाजनित रोगों से ग्रस्त है तथा उसकी चिकित्सा चल रही है। इस न्यायालय के मतानुसार किसी अभियुक्त का वृद्ध होना तथा वृद्धावस्थाजनित रोगों से ग्रस्त होना धारा 482 दं०प्र०सं० का प्रार्थनापत्र स्वीकार कर किसी आरोपपत्र एवं संज्ञान आदेश को निरस्त करने का कोई आधार नहीं है।

प्रार्थी/अभियुक्त ने यह कथन किया कि उसने भी शिकायतकर्ता एवं उसके परिजनों के विरुद्ध धारा 152 (3) दं०प्र०सं० के अंतर्गत अपराध संख्या 92 वर्ष 2022 में संबंधित थाने में धारा 147, 148, 504, 506, 307 एवं 323 भा०दं०सं० का प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराया है। पत्रावली पर उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट के चिक एफ. आई.आर. की प्रतिलिपि को प्रस्तुत किया गया है, जिसके अनुसार घटना दिनांक 19.03.2022 के प्रातः 08.30 बजे की है तथा उसके संबंध में दिनांक 02.05.2022 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गई है। प्रार्थी जहाँ 1 दिन विलंब से दर्ज प्रश्नगत वाद के प्रथम सूचना रिपोर्ट को विलंबित होना कहता है वहीं इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं देता कि क्योंकर दिनांक 19.03.2022 की घटना के संबंध में पुलिस द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं किया गया तथा क्यों उसे दिनांक 02.05.2022 को धारा 156 (3) दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना पड़ा। यह भी महत्वपूर्ण है कि उसके प्रथम सूचना रिपोर्ट के घटना की

तिथि दिनांक 19.03.2022 की कही जाती है जबकि प्रश्नगत मामले की घटना दिनांक 06.05.2021 की है, अतः इस कथित पश्चातवर्ती घटना के आधार पर वर्तमान मामले के आरोपपत्र एवं संज्ञान लिये जाने के आदेश को खण्डित करने का कोई आधार एवं औचित्य उत्पन्न नहीं होता।

प्रार्थी यह तर्क प्रस्तुत करता है कि उसका कोई पुत्र नहीं है तथा मात्र दो विवाहित पुत्रियाँ हैं, अतः परिवादी एवं उसके परिजन उसकी संपत्ति को हड़पना चाहते हैं, अतः उन्हें फर्जी मुकदमे में फंसा दिया है।

इस संबंध में पूर्व की विवेचना से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि ऐसा नहीं है। त्वरित प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज तथ्यों की पुष्टि मौखिक, अभिलेखीय एवं चिकित्सकीय प्रपत्रों से हुई है। घटना का जो भी कोई कारण हो, यदि शिकायतकर्ता एवं उसके परिजन प्रार्थी/अभियुक्त की संपत्ति हड़पना चाह रहे थे तथा उनका यदि ऐसा आशय रहा भी हो तो ऐसा आशय प्रार्थी/अभियुक्त को आरोपित घटना कारित करने का अधिकार प्रदान नहीं करता।

प्रार्थी ने यह तर्क लिया है कि उसको घटना कारित करने में भूमिका प्रदान नहीं की गई है, जो सर्वथा गलत आधार है। प्रथम सूचना रिपोर्ट से लेकर सभी मौखिक एवं अभिलेखीय साक्ष्य में इस घटना को कारित करने की एक मात्र भूमिका एवं उत्तरदायी व्यक्ति प्रार्थी को माना गया है। ऐसी दशा में इस प्रकार का निराधार तर्क लेने का कोई औचित्य नहीं है।

प्रार्थी/अभियुक्त ने यह आधार लिया है कि वह शांतिप्रिय एवं कानून का पालन करने

वाला व्यक्ति है, जिसका इस मामले के अतिरिक्त अन्य कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। इस संबंध में विपक्षी की तरफ से स्वयं प्रार्थी / अभियुक्त दर्ज कराये गये प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांकित 02.05.2022 के तथ्यों पर बल दिया गया, जिसमें प्रार्थी/अभियुक्त ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वर्ष 2012 में उसके छोटे भाई राजपाल व भतीजे मनोज शिकायतकर्ता ने उसके हाथ की हड्डी तोड़ दिया था तथा उसे झूठे मुकदमे में जेल भिजवा दिया था। इससे स्पष्ट है कि वर्ष 2012 में भी प्रार्थी/अभियुक्त के विरुद्ध कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई होगी अथवा परिवाद दर्ज कराया गया होगा, जिसमें पारित आदेश के अनुपालन में उसे जेल भेजा गया था।

प्रार्थी/अभियुक्त ने अपने स्वयं दर्ज कराये गये प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह स्वीकार किया है कि उसने दीवानी का मुकदमा दर्ज कराया है, जिसके कारण वादी पक्ष उससे तथा उसकी लड़कियों से रंजिश रखते हैं। उक्त से इतना स्पष्ट है कि उभयपक्षों में पूर्व से दुश्मनी विद्यमान है, जो घटना को कारित करने का कारण भी हो सकता है तथा झूठा फंसाये जाने का भी, परन्तु इस संबंध में विचारण न्यायालय ही निष्कर्ष दे सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रार्थनापत्र अंतर्गत धारा 482 दं०प्र०सं० में लिये गये कोई भी आधार स्थापित नहीं होता तथा अनायास एवं निराधार तरीके से यह प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया है, जिसमें धारा 482 दं०प्र०सं० के अंतर्गत इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने का कोई युक्ति-युक्त कारण, आधार एवं औचित्य प्रतीत नहीं होता। यह प्रार्थनापत्र अत्यंत

गुणहीन है तथा उपरोक्तानुसार खण्डित किये जाने योग्य है।

आदेश

यह प्रार्थनापत्र अंतर्गत धारा 482 दं०प्र०सं० उपरोक्तानुसार खण्डित किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 134

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

सिविल पुनरीक्षण संख्या 7 / 2023

सी/एम वक्फ मस्जिद एवं अन्य

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

वक्फ ट्रिब्यूनल, उत्तर प्रदेश एवं अन्य

...विपक्षी गण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: मोहम्मद शादाब खान

अधिवक्ता विपक्षी गण: सैयद आफताब अहमद

ए. सिविल कानून - वक्फ अधिनियम, 1995 - धारा 3(के), 67(6) और 83(9) - वक्फ न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही - कौन मुकदमा कर सकता है - वादी को मुतवल्ली के पद से हटा दिया गया था - प्रभाव - हितबद्ध व्यक्ति - परिभाषित - आयोजित, वक्फ में हितबद्ध व्यक्ति वह व्यक्ति है जो वक्फ से कोई आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने का हकदार है - प्रावधान में ऐसा कोई भी व्यक्ति सम्मिलित है जिसे इसके तहत परिभाषित किसी धार्मिक स्थान में प्रार्थना करने या कोई

धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार है - आगे माना गया कि इस तथ्य के बावजूद कि पुनरीक्षणकर्ता को वक्फ की प्रबंध समिति के मुतवल्ली/सचिव के पद से हटा दिया गया था, उनके द्वारा अधिनियम, 1995 की धारा 83(2) के तहत उनकी व्यक्तिगत क्षमता में दायर आवेदन स्पष्ट रूप से न केवल वक्फ में हितबद्ध व्यक्ति के रूप में बल्कि आदेश से व्यथित व्यक्ति के रूप में भी पोषणीय है। (पैरा 10 और 18)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. पी. कासिलिंगम एवं अन्य बनाम पी.एस.जी. प्रौद्योगिकी महाविद्यालय एवं अन्य; 1995 सप्लीमेंट (2) एससीसी 348
2. एन.डी.पी. नम्बूद्रीपाद बनाम भारत संघ (2007) 4 एससीसी 502
3. अयाउबखां नूरखां पठान बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य.; (2013) 4 एससीसी 465

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता श्री मोहम्मद शादाब खान और प्रतिपक्षियों 4 और 5 के अधिवक्ता श्री सैयद आफताब आफताब अहमद को सुना। प्रतिपक्षी 1, 2 और 3 केवल प्रोफार्मा प्रकृति के होने के कारण, नोटिस को हटा दिया जाता है।

2. वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 83 (9) के तहत संशोधन मामला संख्या-37 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 26 दिसंबर, 2022 के खिलाफ दायर किया गया है, जिसके तहत वाद की कार्यवाही को इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि यह निष्फल हो गया है।

3. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त मामला वक्फ ट्रिब्यूनल के समक्ष अधिनियम वर्ष 1995 की धारा 83 (2) के तहत 16 फरवरी, 2022 के आदेश के खिलाफ दायर किया गया था, जिसके तहत प्रतिपक्षी संख्या-4 को प्रबंधन समिति के सदस्य के रूप में शामिल किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त मुकदमा पुनरीक्षणकर्ता द्वारा वक्फ की प्रबंध समिति के सचिव के रूप में मुतवल्ली के साथ-साथ अपनी व्यक्तिगत क्षमता में दायर किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश के माध्यम से, यह देखा गया है कि मुकदमा दायर करने के बाद, पुनरीक्षणकर्ता को अधिनियम, 1995 की धारा 67 (6) के संदर्भ में दिनांक 20 सितंबर, 2022 के आदेश के माध्यम से मुतवल्ली/सचिव के पद से हटा दिया गया है और इसलिए कार्रवाई का कारण समाप्त हो गया है, मामले को ही निरर्थक मानकर खारिज कर दिया गया था।

4. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वक्फ ट्रिब्यूनल ने इस तथ्य की अनदेखी करते हुए आक्षेपित आदेश पारित करने में स्पष्ट रूप से गलती की है कि मुतवल्ली/प्रबंधन समिति के सचिव के रूप में उनकी स्थिति के अलावा पुनरीक्षणकर्ता की

व्यक्तिगत क्षमता में वाद की कार्यवाही बनाए रखने योग्य थी। उन्होंने वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 83 (2), धारा 32 (2) जी) और धारा 3(आई)(के) को यह प्रस्तुत करने के लिए विज्ञापन दिया है कि पुनरीक्षणकर्ता न केवल इच्छुक व्यक्ति की परिभाषा के भीतर आएगा, बल्कि प्रारंभिक आदेश से पीड़ित व्यक्ति भी होगा और ये ऐसे पहलू हैं जिन पर ट्रिब्यूनल द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करके विचार नहीं किया गया है।

5. प्रतिपक्षी संख्या-4 और 5 की ओर से पेश अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह प्रतिपक्षी संख्या-5 द्वारा किए गए आवेदन पर था कि मामले को निरर्थक होने के रूप में खारिज करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है क्योंकि मामला वक्फ की प्रबंध समिति के मुतवल्ली/सचिव के रूप में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर किया गया था और चूंकि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, उन्हें उक्त पद से हटा दिया गया था, इसलिए पुनरीक्षणकर्ता के निदेश पर कार्रवाई का कारण समाप्त हो गया क्योंकि उन्होंने वाद को बनाए रखने के लिए अपना अधिकार खो दिया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता वक्फ में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति या अधिनियम के तहत किए गए आदेश से पीड़ित किसी अन्य व्यक्ति की परिभाषा के भीतर नहीं आता है और इसलिए वाद को निष्फल के रूप में खारिज करने वाला आक्षेपित आदेश सही तरीके से पारित किया गया है।

6. पक्षकारों के लिए अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि अधिनियम वर्ष 1995 की धारा 83 (2) के संदर्भ में वक्फ ट्रिब्यूनल के समक्ष एक मुकदमा या कार्यवाही शुरू की जा सकती है, जो किसी भी मुतवाली या वक्फ में रुचि रखने वाले व्यक्ति या अधिनियम या नियमों के तहत किए गए आदेश से पीड़ित किसी अन्य व्यक्ति को अधिनियम या उसके तहत बनाए गए वक्फ से संबंधित कोई विवाद, प्रश्न या अन्य मामला के नियमों के निर्धारण के लिए निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर ट्रिब्यूनल के समक्ष आवेदन करने के लिए अधिकृत करता है।

7. प्रस्तुत मामले में, माना जाता है कि वादी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा न केवल वक्फ की प्रबंध समिति के मुतवल्ली/सचिव के रूप में बल्कि अपनी व्यक्तिगत क्षमता में भी दायर किया गया था। जिस आदेश के खिलाफ वाद की कार्यवाही शुरू की गई थी, वह 16 फरवरी, 2022 को वक्फ की प्रबंध समिति के सदस्य के रूप में प्रतिपक्षी संख्या-4 को शामिल करने से संबंधित है। यह भी स्वीकार किया जाता है कि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, पुनरीक्षणकर्ता को 20 सितंबर, 2022 के आदेश के तहत वक्फ की प्रबंध समिति के मुतवल्ली/सचिव के पद से हटा दिया गया था।

8. वक्फ अधिनियम वर्ष 1995 की धारा 83 (2) के संदर्भ में वक्फ ट्रिब्यूनल के समक्ष किसी भी कार्यवाही को बनाए रखने के प्रयोजनों के लिए, एक व्यक्ति या तो एक मुतवल्ली, वक्फ में रुचि रखने वाला व्यक्ति

या अधिनियम के तहत किए गए आदेश से पीड़ित कोई अन्य व्यक्ति होना चाहिए। पुनरीक्षणकर्ता एक मुतवल्ली थे। ऐसे में अधिनिर्णय की आवश्यकता के रूप में प्रश्न यह है कि क्या पुनरीक्षणकर्ता वक्फ में रुचि रखने वाले व्यक्ति के साथ-साथ अधिनियम के तहत किए गए आदेश से पीड़ित किसी अन्य व्यक्ति की परिभाषा के भीतर भी आएगा?

9. पूर्वोक्त प्रश्न के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए, अधिनियम, 1995 की धारा 3(ट) के तहत परिभाषित 'वक्फ में रुचि रखने वाले व्यक्ति' की परिभाषा का विज्ञापन करना आवश्यक है जो निम्नानुसार है: -

"3(ट) 'वक्फ में रुचि रखने वाला व्यक्ति' से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो वक्फ से कोई आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने का हकदार है और इसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं-

(i) कोई भी व्यक्ति जिसे मस्जिद, ईदगाह, इमामबाड़ा, दरगाह, खानकाह, पीरखाना और कर्बला, मकबरा, कब्रिस्तान या वक्फ से संबंधित किसी अन्य धार्मिक संस्था में या वक्फ के अधीन किसी धामक या धर्मार्थ संस्था में भाग लेने का अधिकार है;

(ii) [वाकिफ] और [वाकिफ] का कोई वंशज और मुतवल्ली"

10. स्पष्ट रूप से वक्फ में रुचि रखने वाला व्यक्ति वह व्यक्ति है जो वक्फ से कोई भी आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने का हकदार है। इस प्रावधान में कोई भी व्यक्ति शामिल है जिसे उसके तहत परिभाषित धार्मिक स्थान में प्रार्थना करने या कोई धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार है।

11. प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया जाता है कि पुनरीक्षणकर्ता को उस धार्मिक संस्था में प्रार्थना करने या धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार है जिसके लिए वक्फ बनाया गया है, लेकिन यह प्रस्तुत करता है कि पूर्वोक्त अधिकार केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित होगा जो केवल वक्फ के किसी भी आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करते हैं और इस तरह पुनरीक्षणकर्ता को बाहर कर देंगे जो मुतवल्ली/सचिव के पद से हटाए जाने के बाद वक्फ की प्रबंध समिति को वक्फ से कोई आर्थिक अथवा अन्य लाभ प्राप्त नहीं होता है। प्रतिपक्षी संख्या-4 और 5 के लिए अधिवक्ता का उपरोक्त प्रस्तुतिकरण, हालांकि पहली नज़र में आकर्षक है, फिर भी परिभाषा खंड के मददेनजर कोई अच्छा आधार नहीं रखता है जो एक समावेशन खंड है और बहिष्करण खंड नहीं है और इसलिए इसे प्राथमिक खंड के साथ देखा जाना आवश्यक है जिसके तहत वक्फ में रुचि रखने वाले व्यक्ति को किसी भी व्यक्ति से कोई भी आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के हकदार होने के लिए परिभाषित किया गया है वक्फ। इस तरह के अन्य लाभों को एक समावेशन खंड के रूप में समझाया गया है जिसमें एक ऐसे व्यक्ति को शामिल किया गया है जिसे प्रार्थना करने या संबंधित धार्मिक संस्थान में कोई धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार है। एक बार जब यह स्वीकार कर लिया जाता है कि याचिकाकर्ता को वक्फ की प्रबंध समिति के मुतवल्ली या सचिव के पद पर न रहते हुए भी नमाज़ अदा करने या वक्फ के धार्मिक संस्थान में कोई धार्मिक अनुष्ठान करने का अधिकार है, तो पुनरीक्षणकर्ता वक्फ में रुचि रखने वाले

व्यक्ति की परिभाषा के भीतर आ जाएगा जैसा कि अधिनियम 1995 की धारा 3 (के) के तहत परिभाषित किया गया है।

12. एक वैधानिक प्रावधान में एक समावेशी खंड के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 1995 में रिपोर्ट किए गए पी कासिलिंगम और अन्य बनाम पीएसजी कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी और अन्य के मामलों में पूरक (2) उच्चतम न्यायालय केस 348 और एनडीपी नंबूदरीपाद बनाम भारत संघ और अन्य (2007) 4 एस.सी.सी. 502 में निम्नानुसार अवधारित किया है: -

पी. कासिलिंगम और अन्य बनाम पीएसजी कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी और अन्य

"एक विशेष अभिव्यक्ति को अक्सर विधायिका द्वारा 'साधन' शब्द या 'शामिल' शब्द का उपयोग करके परिभाषित किया जाता है। कभी-कभी 'साधन और शामिल' शब्दों का उपयोग किया जाता है। 'मीन्स' शब्द का उपयोग इंगित करता है कि 'परिभाषा एक कठिन और तेज़ परिभाषा है और परिभाषा में रखी गई अभिव्यक्ति को कोई अन्य अर्थ नहीं सौंपा जा सकता है। [देखें गफ बनाम गफ, (1891) 2 क्यूबी 665; पंजाब भूमि विकास एवं सुधार निगम। बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, (1990) (3) एस.सी.सी. 682, 717]। शब्द 'शामिल' जब उपयोग किया जाता है, तो परिभाषित अभिव्यक्ति के अर्थ को बढ़ाता है ताकि न केवल ऐसी चीजों को समझा जा सके जो वे अपने प्राकृतिक आयात के अनुसार इंगित करते हैं, बल्कि उन चीजों को भी समझते हैं जिन्हें खंड घोषित करता है कि वे शामिल करेंगे। दूसरी ओर, 'साधन और शामिल' शब्द 'अर्थ की एक संपूर्ण व्याख्या को

इंगित करते हैं, जो अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, इन शब्दों या अभिव्यक्तियों से हमेशा जुड़ा होना चाहिए।

एन.डी.पी. नंबूदरीपाद बनाम भारत संघ और अन्य"

19. न्यायमूर्ति जी.पी सिंह ने अपने ग्रंथ प्रिंसिपल्स ऑफ स्टेट्यूटरी इंटरप्रिटेशन (10वां संस्करण, 2006) में देखा है कि जहां परिभाषित शब्द को "शामिल" घोषित किया जाता है, वहां परिभाषा प्रथम दृष्टया व्यापक है, लेकिन शब्द "शामिल" जब किसी शब्द या अभिव्यक्ति को परिभाषित करते समय उपयोग किया जाता है, तो उसे "मतलब और शामिल" के बराबर भी माना जा सकता है। यह उस अर्थ की एक विस्तृत व्याख्या करेगा जो अधिनियम के प्रयोजनों के लिए शब्द या अभिव्यक्ति से जुड़ा होना चाहिए [पीपी 173 और 175 के अनुसार, नगर परिषद, रायपुर बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(1969) 2 एस.सी.सी. 582: ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1923], दक्षिण गुजरात छत टाइल्स निर्माता Assn. बनाम गुजरात राज्य [(1976) 4 एस.सी.सी. 601: 1977 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 15: ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 90], हिंदुस्तान एल्युमिनियम कॉर्पोरेशन। बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1981) 3 एस.सी.सी. 578: 1981 एस.सी.सी. (कर) 280: ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1649] और भारतीय रिजर्व बैंक बनाम पीयरलेस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड [(1987)1 एस.सी.सी. 424] में इस न्यायालय के निर्णयों का जिक्र और भरोसा करते हुए। इसलिए, यह स्पष्ट है कि शब्द "शामिल है" का उपयोग

व्याख्या खंडों में या तो आम तौर पर किसी कानून के शरीर में होने वाले किसी भी शब्द या वाक्यांश के अर्थ को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है, या सामान्य मानक अर्थों में, संदर्भ के आधार पर "शामिल" या "शामिल हैं" या "साधन और शामिल हैं" का अर्थ है।

13. पूर्वोक्त निर्णय की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि समावेशन खंड सीधे किसी भी व्यक्ति द्वारा वक्फ से प्राप्त किए जा रहे अन्य लाभों से संबंधित होगा जो इस तरह के लाभ का हकदार है और इसलिए वक्फ में रुचि रखने वाले व्यक्ति की परिभाषा के भीतर आएगा।

14. इसके अलावा, अधिनियम 1995 की धारा 83 (2) के तहत, वक्फ से संबंधित किसी भी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए एक आवेदन भी 'इस अधिनियम या नियमों के तहत किए गए आदेश से पीड़ित किसी अन्य व्यक्ति' के आदेश पर बनाए रखने योग्य है।

15. यद्यपि अधिनियम वर्ष 1995 में पीड़ित व्यक्ति की परिभाषा प्रदान नहीं की गई है, लेकिन इसे न केवल इस न्यायालय के बल्कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों में भी समझाया गया है, जैसा कि अयाउबखान नूरखान पठान बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य के मामले में निम्नलिखित तरीके से (2013) 4 एस.सी.सी. 465 में रिपोर्ट किया गया है: -

10. एक "कानूनी अधिकार", कानूनी नियमों से उत्पन्न एक पात्रता का मतलब है। इस

प्रकार, इसे एक लाभ के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, या कानून के शासन द्वारा किसी व्यक्ति को प्रदान किया गया लाभ। अभिव्यक्ति, "व्यथित व्यक्ति" में एक व्यक्ति शामिल नहीं है जो मनोवैज्ञानिक या काल्पनिक चोट से पीड़ित है; इसलिए, पीड़ित व्यक्ति को आवश्यक रूप से वह होना चाहिए जिसका अधिकार या हित प्रतिकूल रूप से प्रभावित या खतरे में पड़ गया हो। (शांति कुमार आर. कैंजी बनाम होम इंश्योरेंस कंपनी ऑफ न्यूयॉर्क [(1974) 2 एस.सी.सी. 387: ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 1719] और राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ [(1977) 3 एस.सी.सी. 592: ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1361]

xxx xxxx xxxxx xxxxx

12. ए. सुभाष बाबू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(2011) 7 एस.सी.सी. 616: (2011) 3 एस.सी.सी. (सीआईवी) 851: (2011) 3 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 267: ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 3031], इस न्यायालय ने कहा: (एस.सी.सी. पीपी 628-29, पैरा 25) में: "25. ... अभिव्यक्ति 'पीड़ित व्यक्ति' एक लोचदार और एक मायावी अवधारणा को दर्शाता है। इसे एक कठोर, सटीक और व्यापक परिभाषा की सीमा के भीतर सीमित नहीं किया जा सकता है। इसका दायरा और अर्थ विविध, परिवर्तनशील कारकों पर निर्भर करता है जैसे कि कानून की सामग्री और इरादा, जिसके उल्लंघन का आरोप लगाया गया है, मामले की विशिष्ट परिस्थितियाँ, शिकायतकर्ता के हित की प्रकृति और सीमा और प्रकृति और सीमा शिकायतकर्ता को हुई पूर्वाग्रह या चोट की सीमा।

16. अधिनियम, 1995 की धारा 83(2) के उपबंध में इस अधिनियम या नियमों के अधीन किए गए आदेश से व्यथित कोई अन्य व्यक्ति स्पष्ट रूप से सम्मिलित है। यह विवादित नहीं है कि प्रबंधन समिति के सदस्य के रूप में प्रतिपक्षी संख्या-4 को शामिल करने से संबंधित दिनांक 16 फरवरी, 2022 का आदेश अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार मुतवल्ली को नियुक्त करने और हटाने के लिए बोर्ड की शक्तियों से संबंधित धारा 32(2)(जी) के संदर्भ में पारित किया गया है। उपरोक्त शक्ति स्पष्ट रूप से अधिनियम वर्ष 1995 की धारा 3(i) के लिए संदर्भित है जो मुतवल्ली को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित करती है: -

"3(i) "मुतवल्ली" से कोई व्यक्ति अभिप्रेत है, जो मौखिक रूप से या किसी विलेख या साधन के अधीन जिसके द्वारा [वक्फ] सृजित किया गया है, या किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा, [वक्फ] का मुतवल्ली नियुक्त किया गया है और इसमें कोई भी व्यक्ति शामिल है जो किसी रीति-रिवाज के आधार पर [वक्फ] का मुतवल्ली है या जो नायब-मुतवल्ली है, खदीम, मुजावर, सज्जादानशीन, अमीन या मुतवल्ली द्वारा नियुक्त अन्य व्यक्ति को मुतवल्ली के कर्तव्यों का पालन करने के लिए और इस अधिनियम में अन्यथा प्रदान किए गए को बचाने के लिए, किसी भी व्यक्ति, समिति या निगम को किसी भी [वक्फ] या [वक्फ] संपत्ति का प्रबंधन या प्रशासन करने के लिए:

परन्तु किसी समिति या निगम का कोई सदस्य तब तक मुतवल्ली नहीं समझा जाएगा जब तक कि ऐसा सदस्य ऐसी समिति या निगम का पदाधिकारी न हो:

[परंतु यह और कि मुतवल्ली भारत का नागरिक होगा और ऐसी अन्य अर्हताओं को पूरा करेगा जो विहित की जाएँ:

परन्तु यह भी कि यदि वक्फ ने कोई अर्हताएं विनिर्दिष्ट की हैं तो नियमों में ऐसी अर्हताएं उपबंधित की जा सकेंगी जो राज्य सरकार द्वारा बनाई जाएं;]

17. अधिनियम के उक्त प्रावधानों पर विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि दिनांक 16 फरवरी, 2022 का आदेश, जिसे पुनरीक्षणकर्ता के इशारे पर चुनौती दी गई थी, बोर्ड द्वारा किसी भी व्यक्ति, किसी वक्फ या वक्फ संपत्ति का तत्समय प्रबंधन या प्रशासन करने वाली समिति या निगम से संबंधित अधिनियम की धारा 3(i) सपठित अधिनियम वर्ष 1995 की धारा 32(2)(g) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था।

18. इसलिए यह स्पष्ट है कि इस तथ्य के बावजूद कि पुनरीक्षणकर्ता को वक्फ की प्रबंध समिति के मुतवल्ली/सचिव के पद से हटा दिया गया था, अधिनियम, 1995 की धारा 83 (2) के तहत उनके द्वारा व्यक्तिगत क्षमता में दायर किया गया आवेदन न केवल वक्फ में रुचि रखने वाले व्यक्ति के रूप में बल्कि 16 फरवरी के 2022 अधिनियम की धारा 32 के संदर्भ में पारित किया गया आदेश से पीड़ित व्यक्ति के रूप में भी स्पष्ट रूप से सुनवाई योग्य था।

19. आक्षेपित आदेश के अवलोकन से इस तथ्य का पता चलता है कि अधिनियम वर्ष 1995 की धारा 83(2) के तहत पुनरीक्षणकर्ता

के आवेदन को केवल इस आधार पर निरर्थक के रूप में खारिज कर दिया गया है कि उसे वक्फ की प्रबंध समिति के मुतवल्ली / सचिव के पद से हटा दिया गया है। ट्रिब्यूनल ने स्पष्ट रूप से अधिनियम वर्ष 1995 की धारा 83(2) के अन्य प्रावधानों का प्रदर्श नहीं किया है कि क्या मुकदमा पुनरीक्षणकर्ता की व्यक्तिगत क्षमता में या तो पीड़ित व्यक्ति के रूप में या वक्फ में रुचि रखने वाले व्यक्ति के रूप में बनाए रखने योग्य था।

20. दिनांक 16 फरवरी, 2022 के आदेश से व्यथित व्यक्ति के पहलू को भी वाद में की गई दलील के संदर्भ में देखा जाना आवश्यक था, विशेष रूप से उसके पैराग्राफ 16 के संबंध में जिसमें पुनरीक्षणकर्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वक्फ के प्रबंधन में शामिल व्यक्ति का प्रबंधन से कोई लेना-देना नहीं है और यह कि उनका समावेश भी धारा 32(2)(जी) के प्रावधानों के तहत वर्जित है। वक्फ अधिनियम, 1995 पुनरीक्षणकर्ता द्वारा अपने वाद में की गई उपरोक्त दलीलों को ट्रिब्यूनल द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय स्पष्ट रूप से नजरअंदाज कर दिया गया है।

21. उपरोक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए, वक्फ ट्रिब्यूनल द्वारा केस संख्या-37 वर्ष 2022 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 26 दिसंबर, 2022 को अधिनियम, 1995 के प्रावधानों के खिलाफ होने के कारण एतद्वारा रद्द किया जाता है।

22. नतीजतन, पुनरीक्षण सफल होता है और अनुमति दी जाती है। पक्षों को लागत खुद उठाना होगा।

(2023) 4 ILRA 139

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

सिविल पुनरीक्षण संख्या 14 / 2023

अंसार नवाज खान

..पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

अदील अहमद व अन्य

...विपक्षी गण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: मोहम्मद तारिक
सईदअधिवक्ता विपक्षीगण: सुनील शर्मा, फरहान
हबीब, रुवेद कमाल किदवई, सैयद आफताब
अहमद

ए. सिविल कानून - कोर्ट फीस अधिनियम, 1870 - धारा 7 (iv-ए) और (iv-ए) घोषणात्मक वाद, कब्जे के लिए नहीं - प्रावधान का आवेदन - आयोजित, घोषणात्मक डिक्री के लिए वाद केवल स्थायी निषेधाज्ञा के परिणामी अनुतोष के साथ दायर किया गया है, न कि कब्जे के लिए। ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय शुल्क अधिनियम की धारा 7 (iv) (ए) के अनुसार देय होगा, न कि अधिनियम की धारा 7 (iv-ए) के अनुसार और इसलिए पुनरीक्षणकर्ता द्वारा केवल 500/- रुपये की एक निश्चित न्यायालय फीस देय थी। न्यायाधिकरण ने स्पष्ट रूप से न्यायालय शुल्क को मूल्यानुसार देय मानने में गलती की है। (पैरा 21)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. बसंत कुमार माता नेहलिया बनाम चौधरी उजैर; (2011) 89 एएलआर 551
2. डॉ. सुशील सूरी बनाम हरीश सूरी और अन्य; 2023(2) एडीजे 552 (एल.बी.)
3. मुख्य स्टाम्प निरीक्षक बनाम लक्ष्मी नारायण; एआईआर 1958 एससी 245
4. सुहृद सिंह बनाम रणधीर सिंह और अन्य; (2010)12 एससीसी 112

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर, द्वारा प्रदत्त)

श्री मोहम्मद तारिक सईद, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता, श्री सुनील शर्मा और श्री रुवेद कमाल किदवई, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता और श्री सैयद आफताब अहमद, प्रतिपक्षी संख्या-8 के अधिवक्ता को सुना।

आदेश पारित किए जाने के प्रस्ताव को देखते हुए, प्रतिपक्षियों संख्या-1, 3, 4, 5, 6 और 7 को नोटिस निस्तारित माने जाते हैं। प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि कानून का प्रश्न शामिल है, इसलिए उत्तर देने वाले प्रतिपक्षियों द्वारा दायर की गई आपत्तियों के बिना पुनरीक्षण का निर्णय लिया जा सकता है।

वक्फ अधिनियम 1995 की धारा 83 (9) के तहत मामला संख्या-38 वर्ष 2020 में

पारित आदेश दिनांक 17.11.2022 के खिलाफ पुनरीक्षण दायर किया गया है, जिसके तहत पुनरीक्षणकर्ता-वादी को वाद में मांगी गई राहत पर यथामूल्य न्यायालय शुल्क का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उपरोक्त मामला पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर किया गया था, जिसमें प्रतिवादियों और उनके एजेंटों के खिलाफ वाद संपत्ति पर शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से स्थायी निषेधाज्ञा की राहत मांगी गई थी। वक्फ संपत्तियों के रूप में दिनांक 03.12.1924 को वक्फ विलेख में दर्ज की गई संपत्तियों के लिए घोषणा की डिक्री के लिए और राहत भी मांगी गई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि न्यायालय शुल्क के भुगतान के प्रयोजनों के लिए, वाद में यह इंगित किया गया था कि वक्फ संपत्ति का विपणन योग्य मूल्य नहीं है, केवल न्यायालय शुल्क के भुगतान के प्रयोजनों के लिए, वाद का मूल्यांकन अस्थायी रूप से 1000/- रुपये किया जा रहा था और चूंकि स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना मांगी गई थी, इसलिए 500/- रुपये की अधिकतम निर्धारित अदालत फीस का भुगतान किया जा रहा था और घोषणा के बिंदु पर 200/- रुपये का भुगतान किया जा रहा था।

यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रतिवादियों द्वारा मूल्यांकन और न्यायालय शुल्क के खिलाफ आपत्ति दायर की गई थी, जिसके बाद दिनांक 17.11.2022 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से, वक्फ ट्रिब्यूनल ने माना कि वाद में मांगी गई राहत के मद्देनजर, यथामूल्य न्यायालय शुल्क देय था जिसे दो सप्ताह की

अवधि के भीतर भुगतान किया जाना आवश्यक था।

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय, ट्रिब्यूनल ने न्यायालय फीस अधिनियम 1870 की धारा 7 के विशिष्ट प्रावधानों की अनदेखी की है, क्योंकि मांगी गई राहत के संबंध में, न्यायालय फीस केवल धारा 7 (iv)(ए) के संदर्भ में देय थी, जिसमें पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 7 (iv)(ए) के प्रावधान शामिल नहीं थे और इस तरह केवल निश्चित न्यायालय फीस का भुगतान किया जाना आवश्यक था जैसा कि वाद में दर्शाया गया था न कि एड वैलोरम न्यायालय शुल्क।

अधिवक्ता ने अपनी दलील को पुष्ट करने के लिए (2011) 89 ए.एल.आर 551 में रिपोर्ट किए गए बसंत कुमार माता नेहलिया बनाम चौधरी उजैर के मामले में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा किया है।

दूसरी ओर प्रतिपक्षियों की ओर से पेश अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि पुनरीक्षणकर्ता-वादी द्वारा मांगी जा रही परिणामी राहत के मद्देनजर, ट्रिब्यूनल ने अधिनियम की धारा 7 के प्रावधानों पर सही विचार किया है और वाद में मांगी गई राहत के मद्देनजर वादी द्वारा देय यथामूल्य न्यायालय शुल्क को सही ठहराया है।

उन्होंने डॉ. सुशील सूरी बनाम हरीश सूरी और अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए समन्वय पीठ के फैसले पर भरोसा किया है, जो 2023(2) एडीजे 552 (एल.बी.) में रिपोर्ट किया गया था।

पक्षकारों के लिए अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार करने पर, अधिनिर्णय की आवश्यकता वाले कानून का प्रश्न यह है कि क्या स्थायी निषेधाज्ञा के लिए परिणामी राहत के साथ घोषणा के लिए एक वाद में, न्यायालय शुल्क अधिनियम, 1870 की धारा 7 (iv) के संदर्भ में यथामूल्य न्यायालय शुल्क या नियत न्यायालय शुल्क देय है।

पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए, यह इंगित करना प्रासंगिक है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर वाद में, दिनांक 03.12.1924 के वक्फ विलेख के संदर्भ में वाद संपत्तियों को वक्फ संपत्तियों के रूप में घोषित करने के लिए एक डिक्री मांगी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादियों को वाद संपत्ति पर वादी के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की राहत दी गई थी। यह ध्यान देने योग्य है कि वादी द्वारा कब्जे की परिणामी राहत के लिए कोई प्रार्थना नहीं मांगी गई है।

न्यायालय फीस अधिनियम, 1870 की धारा 7, जो इस प्रयोजन के लिए प्रासंगिक है, निम्नानुसार है:

"धन के लिए कुछ वादों में संदेय फीस की गणना- इस अधिनियम के तहत इसके बाद उल्लिखित वाद में संदेय फीस की राशि की गणना निम्नानुसार की जाएगी:

पैसे के लिए- (i) पैसे के लिए वाद में (नुकसान या मुआवजे के लिए वाद सहित, या रखरखाव की बकाया, या वार्षिकी, या समय-समय पर देय अन्य रकम के साथ) - दावा की गई राशि के अनुसार;

रखरखाव और वार्षिकी के लिए- (ii-a) रखरखाव और वार्षिकी या समय-समय पर देय

अन्य रकम के लिए वाद में, वाद की विषय-वस्तु के मूल्य के अनुसार और इस तरह के मूल्य को एक वर्ष के लिए देय होने का दावा की गई राशि का दस गुना माना जाएगा:

बशर्ते कि महिलाओं और नाबालिगों द्वारा व्यक्तिगत रखरखाव के लिए वाद में, इस तरह के मूल्य को एक वर्ष के लिए देय होने का दावा की गई राशि माना जाएगा;

रखरखाव और वार्षिकी में कमी या वृद्धि के लिए- (ii-b) रखरखाव और वार्षिकी में कमी या वृद्धि के लिए वाद में या वाद के विषय-वस्तु के मूल्य के अनुसार समय-समय पर देय रकम और इस तरह के मूल्य को, एक वर्ष के लिए कम या बढ़ाया जाने वाली राशि को दस गुना माना जाएगा;

बाजार मूल्य वाली अन्य चल संपत्ति के लिए- (iii) धन के अलावा अन्य चल संपत्ति के लिए वादों में, जहां विषय-वस्तु का बाजार मूल्य है-वाद प्रस्तुत करने की तारीख पर इस तरह के मूल्य के अनुसार;

परिणामी राहत के साथ घोषणात्मक डिक्री के लिए (iv) वाद में - (ए) एक घोषणात्मक डिक्री या आदेश प्राप्त करने के लिए, जहां उप-धारा (iv-A) में निर्दिष्ट राहत के अलावा परिणामी राहत की प्रार्थना की जाती है; और

खातों के लिए- (ख) उस राशि के अनुसार खातों के लिए जिस पर मांगी गई राहत का मूल्यांकन वाद या अपील के ज्ञापन में किया जाता है:

बशर्ते कि खंड (ए) के तहत आने वाले वादों में, जहां मांगी गई राहत किसी भी अचल संपत्ति के संदर्भ में है, ऐसी राशि परिणामी राहत का मूल्य होगी और यदि ऐसी राहत मूल्यांकन में असमर्थ है, तो अचल संपत्ति का

मूल्य इस धारा की उपधारा (v), (v-A) या (v-B) के अनुसार गणना की गई है, जैसा भी मामला हो:

[बशर्ते कि खंड (क) के तहत आने वाले सभी वादों में, ऐसी राशि किसी भी मामले में 300 रुपये से कम नहीं होगी]:

[बशर्ते (भी), कि खंड (बी) के तहत आने वाले वादों में ऐसी राशि वादी को देय अनुमानित राशि होगी और उक्त राशि वाद में पारित प्रारंभिक डिक्री से अपील के मूल्यांकन की गणना (या निर्धारण) के लिए आधार बनेगी।

शून्य लिखतों और डिक्री को रद्द करने या अधिनिर्णय देने के लिए- (iv-A) शून्य के लिए एक डिक्री को रद्द करने या निर्णय लेने वाले मुकदमों में, जिसका बाजार मूल्य है, या धन या अन्य संपत्ति को सुरक्षित करने वाला एक लिखत, जिसका मूल्य है:

(1) जहां वादी या उसका पूर्ववर्ती-स्वामी विषय-वस्तु के मूल्य के अनुसार डिक्री या इंस्ट्रूमेंट का एक पक्ष था, और

(2) जहां वह या उसका पूर्ववर्ती-स्वामी, विषय-वस्तु के मूल्य के पांचवें हिस्से के अनुसार, डिक्री या लिखत का पक्षकार नहीं था और ऐसा मूल्य माना जाएगा-

यदि डिक्री या लिखत वाद में शामिल है, तो वह राशि जिसके लिए संपत्ति का मूल्य या मूल्य जिसके संबंध में डिक्री पारित की गई थी या उपकरण निष्पादित किया गया था, और यदि डिक्री या लिखत का केवल एक हिस्सा वाद में शामिल है, तो संपत्ति की राशि या मूल्य जिससे ऐसा हिस्सा संबंधित है।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'संपत्ति का मूल्य', बाजार-मूल्य होगा, जो अचल संपत्ति के मामले में उप-धारा (v), (v-A)

या (v-B) के अनुसार गणना के अनुसार परिकलित मूल्य माना जाएगा, जैसा भी मामला हो।

सुखभोग के लिए- (iv-B) वादों में- (क) भूमि से उत्पन्न होने वाले कुछ लाभ के अधिकार के लिए (यहां अन्यथा प्रदान नहीं किया गया है);

निषेधाज्ञा के लिए- (बी) निषेधाज्ञा प्राप्त करने के लिए;

दत्तक ग्रहण स्थापित करने के लिए- (ग) दत्तक ग्रहण स्थापित करने या यह घोषणा प्राप्त करने के लिए कि कथित दत्तक ग्रहण वैध है;

एक गोद लेने को अलग करने के लिए- (डी) एक गोद लेने को अलग करने के लिए या एक घोषणा प्राप्त करने के लिए कि अमान्य या कभी नहीं, वास्तव में, एक कथित गोद लेने के लिए;

धारा 8 में उल्लिखित पुरस्कारों के अलावा किसी अन्य पुरस्कार को अलग करने के लिए- (ई) धारा 8 में उल्लिखित पुरस्कार नहीं होने के कारण एक पुरस्कार को रद्द करने के लिए; उस राशि के अनुसार जिस पर मांगी गई राहत का मूल्य वाद में है;

[बशर्ते कि ऐसी राशि मांगी गई राहत में शामिल या प्रभावित संपत्ति के बाजार मूल्य के पांचवें हिस्से से कम नहीं होगी या 200 रुपये, जो भी अधिक हो:

परन्तु यह और कि खंड (क) और (ख) के अधीन आने वाले वादों की दशा में, उद्ग्रहणीय न्यायालय फीस की रकम किसी भी दशा में 500 रुपए से अधिक नहीं होगी]

स्पष्टीकरण 1 - जब मांगी गई राहत किसी अचल संपत्ति के संदर्भ में है, तो ऐसी संपत्ति

का बाजार मूल्य इस धारा की उपधारा (v) और (v-A) या (vB) के अनुसार परिकलित मूल्य माना जाएगा, जैसा भी मामला हो।

स्पष्टीकरण 2.- वाद की दशा में-

(i) खंड (ए) और (बी) के तहत आने वाली संपत्ति, जो मांगी गई राहत से प्रभावित होती है, और जहां वादी और प्रतिवादी दोनों की संपत्ति प्रभावित होती है, वादी की संपत्ति प्रभावित होती है;

(ii) खंड (सी) और (डी) के तहत आने वाली संपत्ति, जिस पर उत्तराधिकार द्वारा शीर्षक या अन्यथा कथित गोद लेने से प्रभावित किया जा सकता है; और

(iii) खंड (ई) के अंतर्गत आने वाली संपत्ति, वह संपत्ति जो पुरस्कार की विषय-वस्तु बनाती है;

इस उपधारा के परंतुक के अर्थ के भीतर मांगी गई राहत में शामिल या प्रभावित संपत्ति माना जाएगा।

पूर्वोक्त प्रावधान के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि कुछ वादों में देय न्यायालय शुल्क की गणना, विशेष रूप से परिणामी राहत के साथ घोषणात्मक डिक्री के संबंध में, धारा 7(iv)(ए) में इंगित की गई है, जिसके तहत उपधारा (iv-A) के प्रावधान एक अपवाद है। पूर्वोक्त प्रावधानों के परंतुक से संकेत मिलता है कि खंड (ए) के तहत आने वाले वादों के मामलों में जहां मांगी गई राहत किसी भी अचल संपत्ति के संदर्भ में है, ऐसी राशि परिणामी राहत का मूल्य होगी और यदि ऐसी राहत मूल्यांकन में असमर्थ है, तो अचल संपत्ति के मूल्य की गणना धारा की उप-धारा (वी-ए) या (वी-बी) के अनुसार की जानी है।

शून्य लिखतों और डिक्री को रद्द करने या स्थगित करने के संबंध में प्रावधानों को अधिनियम की धारा 7(iv-A) में इंगित किया गया है, जिसे धारा 7(iv)(a) से संबंधित न्यायालय शुल्क के प्रयोजनों के लिए विचार के लिए छूट दी गई है।

धारा 7(iv-B)(e) के परंतुक में प्रावधान है कि खंड (a) और (b) के तहत निम्नलिखित वादों के मामलों में, उद्ग्रहणीय न्यायालय शुल्क की राशि किसी भी स्थिति में 500/- रुपये से अधिक नहीं होगी। धारा 7(iv-ख) में यह भी उपबंध है कि निषेधाज्ञा के पारिणामिक राहत के संबंध में, किसी भी स्थिति में उद्ग्रहणीय न्यायालय फीस की राशि 300/- रुपए से अधिक नहीं होगी।

स्थायी निषेधाज्ञा की परिणामी राहत के साथ घोषणा के लिए एक वाद में मांगी गई राहत के प्रयोजनों के लिए देय न्यायालय शुल्क के संबंध में मामले के पहलू पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा बसंत कुमार माता नेहलिया (उपरोक्त) के मामले में निम्नलिखित तरीके से विचार किया गया है: -

"6. पुनरुत्पादित (उपरोक्त) के प्रासंगिक भाग की एक सादा रीडिंग से पता चलता है कि जहां तक निषेधाज्ञा का संबंध है, न्यायालय फीस 500/- रुपये से अधिक नहीं होगी। इसी प्रकार, यदि एक घोषणात्मक डिक्री या आदेश प्राप्त करने के लिए एक मुकदमा दायर किया जाता है, जहां उप-धारा (iv-A) में निर्दिष्ट राहत के अलावा परिणामी राहत की प्रार्थना की जाती है, तो संपत्ति के कब्जेदार के लिए, न्यायालय शुल्क का भुगतान उस राशि को किया जाएगा

जिस पर मांगी गई राहत का मूल्य वाद या अपील के जापन में किया जाता है। तथापि, यदि वाद शून्य लिखत और डिक्री को रद्द करने या अधिनिर्णय देने के लिए दायर किया जाता है तो न्यायालय शुल्क का निर्धारण धारा में दिए गए स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए संपत्ति के बाजार मूल्य के आधार पर किया जाएगा।

7. यह स्थापित कानून है कि वादी को वाद में मांगी गई राहत के संदर्भ में न्यायालय शुल्क का भुगतान करना है और आमतौर पर न्यायालय शुल्क और क्षेत्राधिकार के उद्देश्य के लिए इस तरह के मूल्यांकन को आमतौर पर एस. आर. एम. आर. एस. एस.पी सथप्पा चेट्टियार बनाम एस. आर.एम ए.आर आर.एम रामनाथन चेट्टियार [ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 245.], तारा देवी बनाम श्री ठाकुर राधा कृष्ण महाराज सेबैत चंदेश्वर प्रसाद और मेश्वर प्रसाद के माध्यम से [(1987) 4 एस.सी.सी. 69.] के मद्देनजर स्वीकृत किया जाता है।

10. प्रस्तुत मामले में, परिणामी राहत निषेधाज्ञा की है जिसके लिए धारा (iv-B) के परंतुक में प्रावधान है कि लगाए जाने वाले न्यायालय शुल्क की राशि किसी भी मामले में 300/- रुपये से अधिक नहीं होगी। दूसरे शब्दों में कहें तो, यदि वादी संपत्ति के कब्जे में है और निषेधाज्ञा के लिए प्रार्थना के साथ घोषणात्मक वाद दायर करता है, तो लगाया जाने वाला न्यायालय शुल्क 500/- रुपये से अधिक नहीं होगा।

12. पूर्वोक्त प्रस्ताव से यह भी पता चला है कि धारा 7(iv-A) या धारा 7(iv-B) के संयुक्त पठन से, विधायिका ने धारा 7(iv-a) के परंतुक के तहत परिणामी राहत के साथ घोषणात्मक डिक्री के मूल्यांकन के लिए प्रावधान करते समय अपने विवेक से जानबूझकर धारा 7(iv-A) को बाहर रखा है जो बाजार मूल्य वाले धन या अन्य संपत्ति के लिए शून्य लिखत या डिक्री को रद्द करने या स्थगित करने के लिए वाद के संबंध में न्यायालय शुल्क लगाने का प्रावधान करता है जहां न्यायालय शुल्क का मूल्यांकन ऐसी संपत्ति के बाजार मूल्य के आधार पर किया जाएगा। प्रस्तुत मामले में, जहां तक राहत का संबंध है, वादी ने किसी भी दस्तावेज, विलेख या राजस्व रिकॉर्ड को रद्द करने या अलग करने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की है या कब्जे की डिलीवरी की मांग नहीं की है। धारा 7(iv-B) के प्रावधान को पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा संदर्भित मामलों में नहीं निपटाया गया है।

पूर्वोक्त निर्णय का पैराग्राफ 6 स्पष्ट रूप से इस तथ्य को इंगित करता है कि घोषणात्मक डिक्री या आदेश प्राप्त करने के लिए दायर एक वाद में जहां उप-धारा (iv-A) में निर्दिष्ट राहत के अलावा अन्य परिणामी राहत स्थायी निषेधाज्ञा के लिए राहत के साथ प्रार्थना की जाती है, तो न्यायालय शुल्क का निर्धारण वाद में इंगित मूल्यांकन के अनुसार किया जाना है। इस प्रकार, खण्ड न्यायपीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि ऐसे मामलों में कि परिणामी राहत के रूप में संपत्ति का कब्जा नहीं मांगा जाता है, निषेधाज्ञा के लिए अनुरोध के साथ दायर घोषणात्मक वाद, उद्ग्रहणीय

न्यायालय शुल्क 500/- रुपए से अधिक नहीं होगा।

खण्ड न्यायपीठ ने ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 245 में रिपोर्ट किए गए स्टाम्प मुख्य निरीक्षक बनाम लक्ष्मी नारायण के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ पर निम्नलिखित तरीके से भरोसा किया है

11. चीफ इंस्पेक्टर ऑफ स्टाम्प्स बनाम लक्ष्मी नारायण [1970 ए.आई.आर. इला. 488] में दोनों पक्षों द्वारा पूर्ण पीठ पर भरोसा किया गया है, जिसमें समान स्थिति से निपटा गया है। निर्णय के पैरा 22 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:

"वाद संख्या-12 वर्ष 1960 में, जिन राहतों के लिए प्रार्थना की गई थी, वे एक घोषणा थी कि पहला वादी मठ का महंत और देवता का सरबराहकार था और मठ की संपत्ति और प्रतिवादियों को महंत और सरबराहकार के रूप में संपत्तियों पर पहले वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकता था। निषेधाज्ञा की राहत सीधे उस अधिकार से प्रवाहित होती है जिसे वादी घोषित करना चाहता था और यह एक परिणामी राहत है। इसलिए, यह मुकदमा भी उप-धारा (iv)(ए) द्वारा आच्छादित किया गया है।

उपर्युक्त पहलू पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सुहृद सिंह बनाम रणधीर सिंह और अन्य के मामले में (2010)12 एस.सी.सी. 112 में निम्नलिखित शब्दों में भी विचार किया गया है:

"7. जहां किसी विलेख का निष्पादक चाहता है कि उसे रद्द कर दिया जाए, उसे विलेख को रद्द करने की मांग

करनी होगी। लेकिन यदि कोई गैर-निष्पादक किसी विलेख को रद्द करना चाहता है, तो उसे यह घोषणा करनी होगी कि विलेख अमान्य है, या गैर-स्थायी, या अवैध है या यह उस पर बाध्यकारी नहीं है। रद्द करने की प्रार्थना और हस्तांतरण/हस्तांतरण के विलेख के संबंध में घोषणा के बीच का अंतर, ए और बी, दो भाइयों से संबंधित निम्नलिखित उदाहरण द्वारा सामने लाया जा सकता है। A, C के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित करता है। इसके बाद A बिक्री से बचना चाहता है। क को विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा करना होगा। दूसरी ओर, यदि ख, जो विलेख का निष्पादक नहीं है, इससे बचना चाहता है, तो उसे इस घोषणा के लिए मुकदमा करना होगा कि क द्वारा निष्पादित विलेख अमान्य/शून्य और गैर-स्थायी/अवैध है और वह इससे बाध्य नहीं है। संक्षेप में, दोनों विलेख को अलग रखने या गैर-बाध्यकारी घोषित करने के लिए मुकदमा कर सकते हैं। लेकिन फॉर्म अलग है और न्यायालय फीस भी अलग है। यदि क, विलेख का निष्पादक, विलेख को रद्द करना चाहता है, तो उसे बिक्री विलेख में उल्लिखित प्रतिफल पर यथामूल्य न्यायालय शुल्क का भुगतान करना होगा। यदि बी, जो एक गैर-निष्पादक है, कब्जे में है और घोषणा के लिए मुकदमा करता है कि विलेख शून्य या शून्य है और उसे या उसके हिस्से को बाध्य नहीं करता है, तो

उसे अधिनियम की दूसरी अनुसूची के अनुच्छेद 17 (iii) के तहत केवल 19.50 रुपये का एक निश्चित न्यायालय शुल्क देना होगा। लेकिन यदि बी, एक गैर-निष्पादक, कब्जे में नहीं है, और वह न केवल एक घोषणा चाहता है कि बिक्री विलेख अवैध है, बल्कि कब्जे की परिणामी राहत भी है, तो उसे अधिनियम की धारा 7 (iv)(सी) के तहत प्रदान किए गए अनुसार एक मूल्यानुसार न्यायालय शुल्क का भुगतान करना होगा।

8. धारा 7(iv)(सी) में प्रावधान है कि परिणामी राहत के साथ एक घोषणात्मक डिक्री के लिए वादों में, अदालत शुल्क की गणना उस राशि के अनुसार की जाएगी जिस पर मांगी गई राहत का मूल्यांकन वाद में किया गया है। इसके परंतुक से यह स्पष्ट होता है कि जहां परिणामी राहत के साथ घोषणात्मक डिक्री के लिए वाद किसी संपत्ति के संदर्भ में है, ऐसा मूल्यांकन धारा-7 के खंड (v) द्वारा प्रदान किए गए तरीके से गणना की गई संपत्ति के मूल्य से कम नहीं होगा।

मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्वोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि घोषणात्मक डिक्री के लिए मुकदमा केवल स्थायी निषेधाज्ञा के परिणामी राहत के साथ दायर किया गया है न कि कब्जे के लिए। ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय फीस अधिनियम की धारा 7 (iv-a) के अनुसार देय होगी न कि अधिनियम की धारा 7 (iv-A) के अनुसार और इसलिए संशोधनकर्ता द्वारा केवल 500/- रुपये की नियत न्यायालय फीस देय थी। ट्रिब्यूनल ने पुनरीक्षणकर्ता द्वारा देय

यथामूल्य न्यायालय शुल्क को धारण करने में स्पष्ट रूप से गलती की है। यह भी एक प्रासंगिक कारक है कि यह नहीं माना जा सकता है कि वादी द्वारा कब्जे की राहत मांगी जानी है, खासकर जब वाद में ऐसी कोई स्पष्ट राहत नहीं मांगी गई हो। उपरोक्त निर्णय स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि न्यायालय शुल्क केवल एक वाद में मांगी गई राहत के अनुसार देय है, न कि उसके लिए जिसके लिए प्रार्थना की जानी चाहिए थी।

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने डॉ. सुशील सूरी (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, लेकिन उसी के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि पूर्वोक्त निर्णय में कुछ भी विपरीत नहीं रखा गया है, जो अपने आप में सुहृद् सिंह (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर आधारित है, जिसके तहत यह भी माना गया है कि इस तरह के मामले में यथामूल्य न्यायालय शुल्क का भुगतान नहीं किया जाता है।

उपरोक्त तथ्यों और उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि वक्फ ट्रिब्यूनल द्वारा केस संख्या-38 वर्ष 2020 में पारित दिनांक 17.11.2022 का आक्षेपित आदेश; अंसार नवाज खान बनाम ताशकील अहमद और अन्य कानून के प्रस्तावों के खिलाफ है और इसलिए इसे अपास्त किया जाता है।

नतीजतन, पुनरीक्षण सफल होता है और इसकी अनुमति है। पक्षों को अपनी लागत वहन करनी होगी।

प्रतिपक्षियों के जवाब देने के लिए अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि अन्यथा भी मुकदमा इस तथ्य के मद्देनजर पोषणीय नहीं

था कि वादी ने मुकदमे को बनाए रखने के लिए मुतवल्ली के रूप में अपने स्थान का खुलासा नहीं किया है और संपत्ति के मूल्य का खुलासा भी नहीं किया गया है।

पूर्वोक्त प्रस्तुतियों के संबंध में, यह स्पष्ट है कि वाद की विचारणीयता के संबंध में मुद्दा वर्तमान कार्यवाही का विषय नहीं है और ये कि किस उद्देश्य के लिए प्रतिवादी के रूप में प्रतिपक्षी को संबंधित ट्रिब्यूनल के समक्ष आपत्तियां दर्ज करने का अधिकार है।

(2023) 4 ILRA 145

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

सिविल संशोधन संख्या 104 / 2001

देव राज प्रतिवादी-आवेदक-पुनरीक्षणकर्ता
बनाम

श्रीमती रुक्मणि देवी ...वादी-विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री राम गोयल, श्री राजेश टंडन

अधिवक्ता वादी-विपक्षी: श्री एस. के. जौहरी,
श्री क्षितिज शैलेंद्र, श्री एस. के. जोशी

ए. किरायेदारी कानून - उत्तर प्रदेश नगरीय भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 - धारा 2(2), प्रावधान - बेदखली वाद - अधिनियम की प्रयोज्यता - मकान का मानचित्र दिनांक 19.04.1984 को स्वीकृत किया गया - निर्माण की धारणा - मानचित्र स्वीकृत करने की तिथि,

कितनी प्रासंगिक - आयोजित, धारा 2 में उल्लिखित प्रासंगिक प्रावधान के अनुसार, जहां किसी भवन का निर्माण 26 अप्रैल, 1985 को या उसके बाद पूरा हुआ है, तो इस धारा में 10 वर्ष की अवधि के संदर्भ को उसके निर्माण के पूरा होने की तारीख से 40 वर्ष की अवधि के संदर्भ के रूप में माना जाएगा - वाद में मकान उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 वर्ष 1972 द्वारा शासित नहीं है। (पैरा 19 और 20)

बी. साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 114(जी) - सबूत का बोझ उपधारणा - सार्वजनिक दस्तावेज का गैर-उत्पादन - प्रभाव - सरकार द्वारा निर्धारित किराये की दर कलेक्टर में आसानी से उपलब्ध थी, जिसे वादी भूमि-स्वामी द्वारा वाद के कथनों को साबित करने के लिए प्राप्त किया जा सकता था - आयोजित, यह वादी-भूमि-स्वामी की ओर से चूक है - वादी के खिलाफ यह उपधारणा उत्पन्न होती है कि यदि कोई सार्वजनिक दस्तावेज पहले से उपलब्ध है और संबंधित पक्ष द्वारा उसे दाखिल नहीं किया गया है, तो यह माना जाएगा कि यह उस पक्ष के विरुद्ध है जिसने उसे दाखिल नहीं किया है। (पैरा 22 और 23)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. राम स्वरूप राय बनाम श्रीमती लीलवती, 1980 एआरसी 466

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा
प्रदत्त)

1. यह सिविल रिवीजन श्री आर.बी. सिंह, विशेष न्यायाधीश एन्टी-करेप्शन/ए.डी.जे. बरेली के एससीसी सूट नंबर 23/1997 में पारित 24 जनवरी, 2001 के फैसले और डिक्री को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।
2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि प्रत्युत्तरदाता रुक्मणी देवी ने प्रतिवादी/पुनरीक्षणकर्ता देव राज के खिलाफ बेदखली और बकाया किराया और क्षति के लिए मुकदमा दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि वादी मकान नंबर 29- ए सिंधु नगर, मोहल्ला कटरा, चांद खां पुराना शहर बरेली का मालिक है। घर के भूतल पर उत्तर- पूर्व की ओर एक कमरा, रसोई-सह- स्टोर रूम, बाथरूम और शौचालय कक्ष है, जिसमें प्रतिवादी 15 फरवरी, 1995 से 1,000/- रुपये प्रति माह की दर से किरायेदार है। वह बिजली बिल और स्थानीय करों का भुगतान करने के लिए भी जिम्मेदार है। किरायेदारी हर महीने की 15 तारीख से शुरू होती है। प्रतिवादी ने 15 मई 1996 के बाद किराया, घरेलू लाभ, बिजली बिल और स्थानीय करों का भुगतान नहीं किया है। वादी थोड़ी पढ़ी- लिखी महिला है और उसे कानून का थोड़ा ज्ञान है। वह कोरे कागज पर राजस्व टिकट रसीदें चिपकाकर पहुंचाने का काम करती थी।

उसने कभी इसकी कोई प्रति या काउंटर फाइल तैयार नहीं की। इसलिए, उसने रसीदों के किसी भी काउंटर फॉइल पर प्रतिवादी के हस्ताक्षर नहीं लिए थे। 15 मई, 1996 के बाद वादी ने कई बार किराया, मध्यवर्ती मुनाफा और बिजली बिल की राशि और स्थानीय करों की मांग की। लेकिन प्रतिवादी ने इसे नजरअंदाज कर दिया और भुगतान नहीं किया। और असंसदीय व्यवहार और दुर्व्यवहार शुरू कर दिया। इसलिए, उसने 06 जनवरी 1997 को उनके वकील राज कुमार अग्रवाल द्वारा लिखित रूप में टी.पी. एक्ट की धारा 106 के तहत नोटिस भेजा। इसे दस्ती नोटिस के रूप में उसी दिन प्रतिवादी को सौंप दिया गया था। लेकिन प्रतिवादी ने इसे प्राप्त करने से इनकार कर दिया। इसके बाद, वादी ने मुख्य दरवाजे पर नोटिस चिपका दिया और प्रतिवादी की किरायेदारी समाप्त कर दी।

3. प्रतिवादी ने वाद संख्या 37/1996 देव राज बनाम रुक्मणी देवी और अन्य दायर किया था और अस्थायी निषेधाज्ञा आवेदन प्रस्तुत किया था। वादी ने आपत्ति एवं प्रतिआपत्ति दाखिल की थी तथा नोटिस दिनांक 06 जनवरी 1997 की अनुसूची- ए की प्रति तथा शपथ पत्र की प्रति भी प्रतिवादी के अधिवक्ता को उपलब्ध करायी थी। इस प्रकार, प्रतिवादी को नोटिस की पूरी जानकारी थी। इसके

बावजूद न तो प्रतिवादी ने मकान का किरायेदारी वाला हिस्सा खाली किया, न कब्जा दिया और न ही उस पर देय कोई किराया, मध्यवर्ती मुनाफा, बिजली बिल राशि और स्थानीय कर का भुगतान किया। वाद के पैरा 6 में वादी ने रकम का विवरण दिया है। वादपत्र के पैरा 8 में उसने मुकदमे का मूल्यांकन किया है और अदालत की फीस के बारे में बताया है और उसके बाद राहत की मांग की है।

4. लिखित बयान (W.S) की प्रति संलग्न की गई है जैसा कि अनुलग्नक 2 में याचिकाकर्ता ने कहा है कि वाद में उ.प्र. एक्ट 13/1972 लागू होता है। उसने किरायेदार होना स्वीकार किया और मुकदमा दायर करने की बात भी स्वीकार की। इसके अलावा उसने जवाब दिया कि अपर्याप्त अदालती फीस का भुगतान किया गया है और सूट वाली संपत्ति बहुत पुरानी है। घर का पिछला हिस्सा 1973 में बनाया गया था। जब किरायेदारी शुरू हुई, तो सूट में घर यूपी अधिनियम 13/1972 के संचालन में था। वादी ने आवंटन की वह प्रक्रिया नहीं अपनायी जो आवश्यक थी। इसलिए, वादी और प्रतिवादी के बीच अनुबंध कानून के खिलाफ और शून्य है, और लागू करने योग्य नहीं है। प्रतिवादी को टी.पी. की धारा 106 के तहत कोई नोटिस नहीं मिला है। प्रतिवादी 500 ₹ प्रतिमाह की दर से किरायेदार है। जिसमें पानी और बिजली शुल्क के कर भी शामिल

हैं। प्रतिवादी वादी को किराया चुकाता रहा है लेकिन वादी ने कभी रसीद नहीं दी। वादी ने रसोई के निर्माण के लिए ₹20000 नगद रुपये इस शर्त के साथ लिए थे कि यह राशि किराए की राशि में समायोजित की जाएगी, लेकिन वादी ने रसोई का निर्माण नहीं कराया और इसे लटका दिया। वादी ने फिर से 10000/- रुपये मांगना शुरू कर दिया। प्रतिवादी एक गरीब, सज्जन और शांतिप्रिय व्यक्ति है जो किसी तरह अपना जीवन व्यतीत करता है। जब उसने यह रकम देने से इंकार कर दिया तो वादी क्रोधित हो गया और प्रतिवादी की बिजली काट दी तथा असामाजिक तत्वों की मदद से प्रतिवादी को बलपूर्वक बेदखल करना शुरू कर दिया। वह धमकी देने लगी और प्रतिवादी के घरेलू सामान को फेंकने की कोशिश की। फिर उसने एसपी को आवेदन दिया और सिविल जज (जूनियर डिवीजन) की अदालत में मुकदमा दायर किया। प्रतिवादी ने मनीऑर्डर के माध्यम से किराए का पैसा भी भेजा लेकिन वादी ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इसलिए उसने सिविल जज (जूनियर डिवीजन) बरेली की अदालत में उत्तर प्रदेश अधिनियम धारा 13/1972 की प्रकीर्ण मुकदमा संख्या 230/1996 अंतर्गत धारा 30 में जमा करना शुरू कर दिया। वादी को मुकदमा करने और कार्रवाई करने का कोई अधिकार नहीं है। यह कहना गलत है कि बार-

बार मांगने के बावजूद प्रतिवादी ने 15.05.1996 के बाद किराया नहीं दिया है। प्रतिवादी द्वारा गाली देने एवं दुर्व्यवहार का आरोप पूर्णतया गलत, निराधार एवं मनगढ़ंत है। प्रतिवादी को कोई नोटिस नहीं दिया गया या किराए के कमरे के दरवाजे पर ऐसा कोई नोटिस नहीं चिपकाया गया। यह कहना भी गलत है कि नोटिस की प्रति प्रति शपथ पत्र के साथ मूल मुकदमे में दाखिल की गई थी और इसकी प्रति प्रतिवादी के वकील को दी गई थी। इसलिए, केवल इस हिसाब से मुकदमा खारिज किए जाने योग्य है। इसलिए मामले को खारिज किया जाए।

5. मुकदमे की डिक्री हुई और निचली अदालत द्वारा बेदखली की डिक्री तथा बकाया किराया 500/- रुपये प्रतिमाह की दर से भुगतान करने का आदेश दिया गया। व्यथित होकर, प्रतिवादी ने निम्नलिखित आधारों पर इस एससीसी संशोधन को प्राथमिकता दी है:
6. आक्षेपित आदेश पूर्णतः अवैध है। यू.पी.अधिनियम 13/1972 पूरी तरह से विवादग्रस्त परिसर पर लागू होता है। प्रतिवादी- संशोधक ने वादी-प्रतिवादी द्वारा दी गई अग्रिम राशि को पूरी तरह साबित कर दिया है जिसे समायोजित नहीं किया गया है। अतः आक्षेपित आदेश पूर्णतः अवैध है। किराया बकाया नहीं था इसलिए जब तक नगर पालिका अधिनियम के साथ- साथ प्रथम मूल्यांकन नहीं मान

लिया जाता आक्षेपित आदेश और निर्णय पूरी तरह से अवैध है। धारा 2(2) उ.प्र. अधिनियम 13/1972 के तहत यह नहीं माना जा सकता कि भवन का निर्माण वर्ष 1985 में हुआ था। इसलिए, आक्षेपित निर्णय और डिक्री पूरी तरह से गलत, अवैध और कानून की दृष्टि से दोषपूर्ण है। यहां तक कि अधिनियम संख्या 13/1972 इस पर लागू नहीं है। प्रतिवादी-आवेदक टी.पी. की धारा 114 के तहत लाभ का हकदार है। किसी भी दृष्टि से चार माह का किराया देय नहीं था। इसलिए, मुकदमे की डिक्री नहीं की जा सकती।

7. **राम स्वरूप राय बनाम श्रीमती लीलावती, 1980 एआरसी 466** में कहा गया है कि निर्माण के पूरा होने पर प्रदर्शित होने वाले नगर निगम के रिकॉर्ड अकेले मूल्यांकन को साबित करने के लिए एक मानदंड हैं जैसा कि यूपी अधिनियम 13/1972 की धारा 2(2) के स्पष्टीकरण में निहित है। ट्रायल कोर्ट ने यूपी अधिनियम 13/1972 की धारा 2(2) के अनुसार पहले मूल्यांकन की जांच किए बिना मुकदमे का फैसला सुनाया है। और इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय और डिक्री पूरी तरह से अवैध और गलत है और कानून की नजर में दोषपूर्ण है।
8. इस सिविल रिवीजन पर 11.11.2022 को सुनवाई हुई।
9. दोनों तरफ से कोई भी सामने नहीं आया. चूँकि पुनरीक्षण का निर्णय

योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए, इसलिए, निर्णय सुरक्षित रखा गया था और यह निर्णय योग्यता के आधार पर पारित किया गया है।

10. फाइल के अवलोकन से पता चलता है कि श्री सर्वश्री प्रकाश और श्री अपूर्व प्रकाश, अधिवक्ताओं ने 12.02.2001 को प्रतिवादी मकान मालिक की ओर से वकालतनामा दायर किया है। बाद में श्री शैलेन्द्र कुमार जौहरी और क्षितिज शैलेन्द्र, अधिवक्ताओं ने प्रतिवादी रुक्मणी देवी की ओर से 29.07.2003 को वकालतनामा दाखिल किया। प्रतिउत्तरदाता की ओर से खाली कराई पर रोक हटाने के लिए एक आवेदन और एक जवाबी हलफनामा भी दायर किया गया है।
11. जवाबी हलफनामे में प्रतिवादी ने अपने वादपत्र की सामग्री को दोहराया है और पुनरीक्षण के कथनों से इनकार किया है और कहा है कि यूपी अधिनियम संख्या 13/1972 के प्रावधान लागू नहीं होते हैं क्योंकि विवादित घर का नक्शा स्वयं 13.04.1984 को स्वीकृत किया गया जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि निर्माण उसके बाद किया गया था। उसने इस बात से इनकार किया था कि मुकदमे में घर का निर्माण वर्ष 1980 में किया गया था। प्रतिवादी के अनुसार, मुद्दा संख्या 1 का निर्णय करते समय अधिनियम संख्या 13/1972 की गैर- प्रयोज्यता

के संबंध में निष्कर्ष सत्य और सही है। इसके अलावा उन्होंने कहा है कि कोई मूल्यांकन नहीं किया गया था और यह प्रतिवादी विद्रोही का मामला नहीं था कि इमारत नगरपालिका मूल्यांकन के अधीन थी। प्रतिवादी मकान मालिक के अनुसार, ट्रायल कोर्ट का यह निष्कर्ष कि निर्माण की तारीख के आधार पर वाद में घर अधिनियम की धारा 2 के तहत दी गई छूट के अंतर्गत आता है, एक सही निष्कर्ष है। एकतरफा स्थगन आदेश दिनांक 16.02.2001 को निरस्त किया जाए और मासिक किराए की राशि अदालत में जमा करने के बजाय प्रतिवादी द्वारा मकान मालिक के बैंक खाते में जमा की जाए क्योंकि विपक्षी को राशि वापस लेने में बहुत मुश्किल हो रही है।

12. पुनरीक्षणकर्ता द्वारा कोई प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल नहीं किया गया है। निचली अदालत का रिकार्ड तलब किया गया है और यह न्यायालय के समक्ष है।
13. मामले को साबित करने के लिए वादी मकान मालिक द्वारा निम्नलिखित मौखिक साक्ष्य पेश किए गए:
(1) पीडब्लू-1. रुक्मणी देवी, वादी मकान मालिक (2) पीडब्लू-2 घनश्याम।
14. वादी भूस्वामी के दस्तावेजी साक्ष्य बरेली विकास प्राधिकरण द्वारा स्वीकृत मानचित्र, नोटिस की प्रति,

- 1996 के मूल वाद संख्या 371 (देव राज बनाम रुक्मणी देवी) में प्रस्तुत शपथ पत्र की प्रति हैं।
15. प्रतिवादी किरायेदार की ओर से निम्नलिखित गवाहों की गवाही दी गई है:
- (1) डीडब्ल्यू-1, देव राज, किरायेदार स्वयं (2) डीडब्ल्यू-2, उर्मिला
16. ट्रायल कोर्ट ने निर्धारण के लिए निम्नलिखित बिंदु तय किए हैं:
- (1) क्या यूपी अधिनियम संख्या 13/1972 के प्रावधान मुकदमे में घर पर लागू होते हैं?
- (2) क्या वादी द्वारा दिया गया नोटिस प्रतिवादी को तामील हुआ?
- (3) क्या मकान का किराया रु. 1,000/- प्रति माह या रु. 500/- ₹ प्रतिमाह है?
- (4) क्या प्रतिवादी ने वादी को 20,000/- रुपये प्रदान किये थे ? यदि हाँ, तो इसका प्रभाव क्या है?
- (5) क्या प्रतिवादी ने मई, 1996 से किराया चुकाया है?
- (6) क्या प्रतिवादी ने मई 1996 से वादी को किराया नहीं दिया है?
17. ट्रायल कोर्ट ने क्रमवार निर्धारण के बिंदु तय किये थे।
18. बिंदु क्रमांक 1- इस संबंध में ट्रायल कोर्ट ने निष्कर्ष निकाला है कि अधिनियम 13/1972 मुकदमे में मकान पर लागू नहीं होता है। निष्कर्ष का आधार यह है कि नक्शा

19.04.1984 को बरेली विकास प्राधिकरण द्वारा स्वीकृत किया गया था, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि घर 1980 में बनाया गया था जैसा कि प्रतिवादी ने आरोप लगाया है। इसका निर्माण निश्चित रूप से 1984 के बाद हुआ होगा। इस संबंध में प्रतिवादी ने लिखित बयान में उत्तर दिया है कि वाद में संपत्ति अधिनियम 13/1972 के अंतर्गत आती है और वाद में संपत्ति बहुत पुरानी है। घर का पिछला हिस्सा 1973 में बना है। प्रतिवादी किरायेदार ने **राम स्वरूप राय बनाम श्रीमती लीलावती, 1980 एआरसी 466** के उद्धरण पर भी भरोसा किया है। जिसमें यह माना गया है कि अधिनियम 13/1972 की धारा 2(2) के स्पष्टीकरण और मुकदमे में निहित मूल्यांकन को साबित करने के लिए अकेले निर्माण के पूरा होने पर प्रदर्शित होने वाले नगरपालिका रिकॉर्ड एक मानदंड हैं। अदालत ने अधिनियम की धारा 2(2) के अनुसार पहले मूल्यांकन की जांच किए बिना मुकदमे का फैसला सुनाया था।

19. इस न्यायालय के अनुसार जब दस्तावेजी साक्ष्य से यह स्थापित हो गया है कि नक्शा 19.04.1984 को स्वीकृत किया गया था तो निश्चित रूप से उक्त तिथि से पहले घर का निर्माण नहीं किया जा सकता है। धारा 2 में उल्लिखित प्रासंगिक परंतुक के अनुसार, जहां किसी भवन का निर्माण

26 अप्रैल, 1985 को या उसके बाद पूरा हो गया है, तो इस खंड में 10 वर्ष की अवधि का संदर्भ 40 वर्ष की अवधि का संदर्भ माना जाएगा। यदि उपलब्ध हो तो यह स्थापित करने के लिए कि मुकदमे में घर तिथि 26 अप्रैल, 1985 से पहले पूरा हो गया था किरायेदार के पास मूल्यांकन की एक प्रति दाखिल करने का विकल्प भी खुला था। इस संबंध में स्पष्टीकरण -1 भी प्रासंगिक है जिसका अवलोकन किया गया है। अधिनियम की धारा 2 इस प्रकार है:-

"2. अधिनियम के संचालन से छूट.- (1) इस अधिनियम में कुछ भी लागू नहीं होगा-

(ए) भारत सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण से संबंधित या उसमें निहित कोई भी इमारत; या

(बी) पट्टे पर ली गई या ऐसी सरकार द्वारा अपेक्षित इमारत के संबंध में राज्य सरकार या भारत सरकार से अनुदान द्वारा बनाई गई कोई किरायेदारी; या

(सी) फ़ैक्टरी अधिनियम, 1948 के अर्थ के अंतर्गत किसी फ़ैक्टरी के रूप में उपयोग की जाने वाली या उपयोग की जाने वाली कोई भी इमारत; या

(डी) किसी अन्य औद्योगिक उद्देश्य के लिए उपयोग की जाने वाली या उपयोग की जाने वाली कोई भी इमारत (अर्थात्, किसी भी सामान के निर्माण, संरक्षण या प्रसंस्करण के उद्देश्य के लिए) या सिनेमा या थिएटर के रूप में, जहां संयंत्र और उपकरण स्थापित किए गए हैं भवन में ऐसा उद्देश्य भवन के साथ पट्टे पर दिया गया है:

बशर्ते कि इस खंड में कुछ भी सिनेमा या थिएटर के परिसर के भीतर स्थित किसी भी दुकान या अन्य भवन के संबंध में लागू नहीं होगा, जिसके संबंध में किरायेदारी अलग से बनाई गई है या

(ई) सार्वजनिक मनोरंजन या मनोरंजन के स्थान के रूप में उपयोग की जाने वाली या उपयोग की जाने वाली कोई भी इमारत (किसी खेल स्टेडियम सहित, लेकिन सिनेमा या थिएटर शामिल नहीं)। या उससे संबंधित कोई भवन, या

(एफ) किसी विश्वविद्यालय या किसी अन्य वैधानिक निगम या सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत सोसायटी या किसी

सहकारी सोसायटी, कंपनी या फर्म द्वारा निर्मित और स्वामित्व वाली कोई भी इमारत, और केवल अपने स्वयं के कब्जे के लिए या इसके किसी भी अधिकारी या सेवक का कब्जा, चाहे किराए पर हो या मुफ्त किराए पर हो, या गेस्ट हाउस के रूप में हो, चाहे किसी भी नाम से जाना जाता हो, व्यवसाय के सामान्य क्रम में इससे निपटने वाले व्यक्तियों का कब्जा।

(2) धारा 24 की उप- धारा (2) या धारा 29 की उप- धारा (3) में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, इस अधिनियम में कुछ भी उस तारीख से दस साल की अवधि के दौरान किसी भवन पर लागू नहीं होगा जिस दिन उसका निर्माण हुआ है पुरा होना।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए,

(ए) किसी भवन का निर्माण उस तारीख को पूरा हुआ माना जाएगा जिस दिन उसके पूरा होने की सूचना क्षेत्राधिकार वाले स्थानीय प्राधिकारी को दी जाती है या अन्यथा दर्ज की जाती है, और मूल्यांकन के अधीन भवन के मामले में,

तारीख जिस पर उसका पहला मूल्यांकन प्रभावी होता है, और जहां उक्त तिथियां अलग- अलग होती हैं, तो उक्त तिथियों में से सबसे पहले, और ऐसी किसी भी रिपोर्ट, रिकॉर्ड या मूल्यांकन की अनुपस्थिति में, वह तिथि जिस पर वास्तव में कब्जा किया जाता है (कब्जा शामिल नहीं) केवल निर्माण की देखरेख या निर्माणाधीन इमारत की सुरक्षा के प्रयोजनों के लिए) पहली बार:

बशर्ते कि किसी इमारत के अलग- अलग हिस्सों के संबंध में निर्माण पूरा होने की अलग- अलग तारीखें हो सकती हैं, जिन्हें या तो अलग- अलग इकाइयों के रूप में डिजाइन किया गया है या मकान मालिक और एक या अधिक किरायेदारों या अलग- अलग किरायेदारों द्वारा अलग- अलग कब्जा कर लिया गया है;

(बी) "निर्माण" में मौजूदा इमारत के स्थान पर कोई भी नया निर्माण शामिल है जिसे पूरी तरह या काफी हद तक ध्वस्त कर दिया गया है;

(सी) जहां किसी मौजूदा भवन में इतना बड़ा परिवर्धन किया जाता है कि मौजूदा भवन

उसका केवल एक छोटा सा हिस्सा बन जाता है, मौजूदा भवन सहित पूरी इमारत को उक्त परिवर्धन के पूरा होने की तारीख पर निर्मित माना जाएगा।

(3) राज्य सरकार, यदि यह संतुष्ट है कि सामान्य जनता के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, तो राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के सभी या किसी भी प्रावधान से किसी भी इमारत को छूट दे सकती है, जिसका स्वामित्व है एक शैक्षिक या धर्मार्थ संस्थान और उससे प्राप्त संपूर्ण आय का उपयोग उस संस्थान के प्रयोजनों के लिए किया जाता है, और इसी तरह से ऐसी अधिसूचना को रद्द या संशोधित किया जा सकता है।

20. उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह न्यायालय ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के अनुरूप है कि मुकदमे में घर यूपी अधिनियम संख्या 13/1972 द्वारा शासित नहीं है।

21. बिंदु संख्या 2- वादी मकान मालिक ने इस तथ्य को साबित कर दिया है कि उसने प्रतिवादी को दिनांक 06.01.1997 को दस्ती समन प्रदान किया था और जब उसे वह नहीं मिला तो उसे प्रतिवादी के घर पर चिपका दिया गया था। उल्लेखनीय है कि

प्रतिवादी किरायेदार द्वारा मकान मालिक के खिलाफ एक मुकदमा यानी मूल मुकदमा संख्या 371/1996 दायर किया गया था। जिसमें मकान मालिक ने शपथ पत्र और नोटिस दिनांक 06.01.1997 की प्रति भी दाखिल की थी। ट्रायल कोर्ट ने पाया कि उपरोक्त कागजात के अवलोकन से यह फिर से स्थापित हो गया है कि प्रतिवादी को नोटिस ठीक से दिया गया था। यह न्यायालय भी निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष के अनुरूप है, इन तथ्यों के विपरीत प्रतिवादी किरायेदार द्वारा कोई प्रतिकूल तथ्य स्थापित नहीं किया जा सका।

22.

बिन्दु संख्या 3- वादी मकान मालिक के अनुसार मकान का मासिक किराया 1000/- रुपये प्रतिमाह है परन्तु प्रतिवादी किरायेदार ने इसे नकारते हुए कहा है कि वाद में मकान का मासिक किराया मात्र 500/- रुपये है। - प्रति महीने। इस संबंध में दोनों पक्षों की ओर से शपथ पत्र दाखिल किया गया था। वादी के एक स्वतंत्र गवाह, घनश्याम ने इस तथ्य को साबित करने की कोशिश की है कि उनकी उपस्थिति में भी 1,000/- रुपये मासिक किराया तय किया गया था, लेकिन ट्रायल कोर्ट द्वारा उस पर साक्ष्य स्वीकार नहीं किया गया है। ट्रायल कोर्ट ने किरायेदार को दिए गए आवास को केवल एक कमरा, स्टोर, बाथरूम और बिना रसोई के शौचालय

माना। ट्रायल कोर्ट ने अपने निष्कर्ष में यह भी कहा है कि इस संबंध में वादी द्वारा कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सका। जब किराये की दर के संबंध में विवाद था तो वादी मकान मालिक का यह भी कर्तव्य था कि वह प्रशासन से किराये की दर प्राप्त करे और इसे दाखिल करने के बाद वादी मकान मालिक यह तर्क दे सकता था कि जिस क्षेत्र में वाद में मकान मौजूद है। जैसा कि प्रतिवादी ने कहा है, ऐसा नहीं है और ऐसे आवास के लिए किराये की दर 1,000/- रुपये से कम नहीं है। यह सभी जानते हैं कि सरकार ने संपत्तियों का बाजार मूल्य और शहरी क्षेत्रों के किराये की दर भी तय कर दी है, इसलिए सरकार द्वारा निर्धारित किराये की दर कलक्ट्रेट में बहुत अधिक उपलब्ध थी, जिसे वादी भूमि स्वामी द्वारा अपने कथनों को साबित करने के लिए प्राप्त किया जा सकता था। इस प्रकार, यह पाया गया कि वादी मकान मालिक की ओर से चूक हुई है, इसलिए, वादी के खिलाफ एक धारणा उत्पन्न होती है कि यदि कोई सार्वजनिक दस्तावेज पहले से ही उपलब्ध है और उसे संबंधित पक्ष द्वारा दाखिल नहीं किया गया है तो यह माना जाएगा कि यह उस पक्ष के विरुद्ध है जिसने इसे दायर नहीं किया था।

23. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114(जी) इस प्रकार है:

"114 न्यायालय कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मान सकता है-

न्यायालय किसी भी तथ्य के अस्तित्व को मान सकता है जो यह सोचता है कि विशेष मामले के तथ्यों के संबंध में प्राकृतिक घटनाओं, मानव आचरण और सार्वजनिक और निजी व्यवसाय के सामान्य पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए ऐसा होने की संभावना है। उदाहरण न्यायालय यह मान सकता है -

(g) वह साक्ष्य जो प्रस्तुत किया जा सकता है और नहीं किया जा सकता है, यदि प्रस्तुत किया जाता है, तो उस व्यक्ति के लिए प्रतिकूल होगा जो इसे रोकता है।"

24. इस प्रकार उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह न्यायालय भी इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि मुकदमे में घर का मासिक किराया 500/- रुपये था, न कि 1,000/- रुपये प्रति माह, जैसा कि वादी मकान मालिक ने आरोप लगाया था।

25. बिन्दु संख्या 4- प्रतिवादी द्वारा कहा गया है कि उसने वादी मकान मालिक को रसोई निर्माण हेतु 20,000/- रुपये इस शर्त पर प्रदान किये थे कि यह धनराशि किराये में समायोजित कर दी जायेगी। यह बिंदु भी किरायेदार के

खिलाफ तय किया गया है। इस संबंध में प्रतिवादी डीडब्लू-1 एवं उर्मिला, डीडब्लू-2 का केवल मौखिक साक्ष्य है। उर्मिला प्रतिवादी की नौकरानी है, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि वह प्रतिवादी की नौकरानी होने के नाते उसके पक्ष में गवाही दे रही है। ट्रायल कोर्ट ने इस तथ्य पर गौर किया कि यदि वास्तव में वादी को 20,000/- रुपये प्रदान किए गए थे, तो लिखित बयान में भुगतान की तारीख का उल्लेख क्यों नहीं किया गया था। विचारण न्यायालय द्वारा इस पहलू पर भी विचार किया गया है कि यदि इतनी रकम वादी को दी गई होगी तो निश्चित रूप से कोई रसीद या दस्तावेज लिखित रूप से कम हुआ होगा।

26. उपरोक्त परिस्थितियों और साक्ष्यों पर विचार करते हुए ट्रायल कोर्ट ने निष्कर्ष निकाला कि एक विवेकशील व्यक्ति प्रतिवादी और उसकी नौकरानी के साक्ष्य पर इस आधार पर विश्वास नहीं कर सकता।
27. ट्रायल कोर्ट के मुताबिक यह मनगढ़ंत कहानी थी। अतः यह बिन्दु किरायेदार के विरुद्ध तय किया गया है। इस न्यायालय के अनुसार यदि 20,000/- रुपये प्रदान किये गये होंगे तो निश्चित रूप से यह या तो बैंक खाते में या कम से कम राजस्व टिकट लगाकर प्रदान किये गये होंगे। यदि यह वादी भू-स्वामी को दिया जाता तो बैंक से निकाल लिया जाता। इस

संबंध में बैंक से पैसे निकालने संबंधी दस्तावेज पेश किया गया होगा। यदि ऐसी धनराशि किरायेदार के पास पहले से ही नकद में थी, तो उसे यह बताना होगा कि इतनी धनराशि उसके पास कैसे उपलब्ध थी।

28. उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का मानना है कि किरायेदार द्वारा वादी मकान मालिक को 20,000/- रुपये का भुगतान न करने के संबंध में दर्ज निष्कर्ष को ट्रायल कोर्ट द्वारा सही ढंग से तय किया गया है।
29. बिंदु संख्या 5- यह मुद्दा यह है कि क्या प्रतिवादी ने मई, 1996 से किराया नहीं चुकाया है। ट्रायल कोर्ट ने सही निष्कर्ष निकाला है कि किराए के भुगतान को साबित करने का भार किरायेदार पर है। उसे यह साबित करना होगा कि उसने किराए का भुगतान कर दिया है। ट्रायल कोर्ट ने पाया कि इस संबंध में प्रतिवादी किरायेदार ने कोई रसीद पेश नहीं की है, जबकि वादी मकान मालिक के अनुसार प्रतिवादी ने 15 मई, 1996 से किराया नहीं चुकाया है। ट्रायल कोर्ट ने पाया कि किराए का भुगतान न करने का तथ्य 15 मई, 1996 को वादी द्वारा अपने साक्ष्य और पीडब्लू-2 के साक्ष्य जोड़कर पर्याप्त रूप से साबित किया गया है। आश्चर्य की बात है कि प्रतिवादी वादी को रसोईघर के निर्माण के लिए 20,000/- रुपये देने तथा वादी मकान मालिक से

- किराये की रसीद कुछ भी नहीं ले रहा है।
30. इस संबंध में प्रतिवादी किरायेदार द्वारा कोई पर्याप्त एवं ठोस साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि वह किराया दे रहा था और उसने किसी भी व्यक्ति से पहले किराया चुकाया है। यह नहीं माना जा सकता कि एक नौकरानी जो कभी-कभी प्रतिवादी के किराए के घर में कपड़े धोने, सफाई करने और झाड़ने के लिए एक घंटे के लिए आती है, जिसके सामने किरायेदार द्वारा लगातार किराया प्रदान किया जाता होगा। इसलिए, ट्रायल कोर्ट द्वारा इस संबंध में दर्ज किए गए निष्कर्ष की इस न्यायालय द्वारा भी पुष्टि की जाती है।
31. अंत में ट्रायल कोर्ट ने निष्कर्ष निकाला कि मुकदमे में संपत्ति यूपी अधिनियम संख्या 13/1972 के प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आती है। किरायेदार प्रतिवादी किराए का भुगतान साबित नहीं कर सका। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत नोटिस द्वारा वादी द्वारा किरायेदारी को उचित रूप से समाप्त कर दिया गया था। प्रतिवादी किरायेदार भुगतान साबित नहीं कर सका और डिफॉल्टर पाया गया। इसलिए, याचिका स्वीकार कर ली गई और बेदखली का आदेश पारित कर दिया गया, लेकिन यह निष्कर्ष निकाला गया कि चूंकि वादी यह साबित करने में सफल नहीं हो सका कि किराए की दर 1,000/- रुपये
- है, इसलिए यह निर्देश दिया गया कि 15 मई, 1996 से बेदखली की तारीख तक वादी भू-स्वामी 500/- रुपये प्रति माह की दर से किराया और हर्जाना प्राप्त करने का हकदार होगा।
32. यदि वादी मकान मालिक 1,000/- रुपये प्रति माह के बजाय केवल 500/- रुपये प्रति माह किराया निर्धारण के संबंध में निष्कर्ष से व्यथित था तो वादी मकान मालिक के पास क्रॉस रिवीजन दायर करने का विकल्प था। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जाएगा कि उसने किराए की दर के संबंध में ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए निष्कर्ष को स्वीकार कर लिया है। इसलिए, यह न्यायालय किराए की दर से संबंधित प्रश्न में अब और हस्तक्षेप नहीं कर सकता और न ही करना चाहिए।
33. जहां तक निर्धारण के लिए बाकी बिंदुओं के संबंध में निष्कर्ष का सवाल है, यह न्यायालय समग्र रूप से ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए निष्कर्ष के अनुरूप है। संशोधनकर्ता ट्रायल कोर्ट द्वारा लागू किए गए तथ्यों या कानून की प्रयोज्यता के संबंध में कोई त्रुटि, गलती स्थापित नहीं कर सका। इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय की राय है कि ट्रायल कोर्ट का निर्णय पुष्टि योग्य है। प्रतिवादी किरायेदार द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण में कोई योग्यता नहीं है और इसे लागत सहित खारिज किया जा सकता है।

आदेश

34. पुनरीक्षण लागत सहित **खारिज** की जाती है।
35. निचली अदालत के रिकॉर्ड को इस फैसले की एक प्रति के साथ जिला न्यायाधीश, बरेली को वापस भेजा जाए।
36. प्रतिवादी मकान मालिक निचली अदालत और इस अदालत के फैसले और डिक्री को भी निष्पादित करने का हकदार है।

(2023) 4 ILRA 153

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार**आपराधिक पक्ष****दिनांक: लखनऊ 07.04.2023****समक्ष**

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल,
आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 145 / 2008

अजय कुमार**...पुनरीक्षणकर्ता****बनाम****उत्तर प्रदेश राज्य****...विपक्षी गण**

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: वीरेंद्र सिंह, अश्विनी कुमार श्रीवास्तव, शरद कुमार वैश्य

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973
- धारा 313, 360, 361, 397 और 401 -
भारतीय दंड संहिता 1860 - धारा 457, 380
और 411 - अपराधी परिवीक्षा अधिनियम,
1958 - धारा 4 और 5 - आपराधिक
पुनरीक्षण - अज्ञात एफआईआर अंतर्गत धारा
457, 380 आईपीसी - विवेचना - आरोप
लगाया गया कि चोरी किया गया जनरेटर
पुनरीक्षणकर्ता और अन्य आरोपियों के संयुक्त

कब्जे से बरामद किया गया था - भारतीय दंड संहिता की धारा 457, 380, 411 के तहत आरोप पत्र तैयार किया गया - विचारणीय न्यायालय ने आरोपियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 457 और 380 के तहत दंडनीय अपराध के लिए बरी कर दिया - लेकिन उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 411 के तहत एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी - पुनरीक्षणकर्ता का इस वाद के अतिरिक्त कोई आपराधिक इतिहास नहीं है - पुनरीक्षणकर्ता ने सीआरपीसी की धारा 397/401 के तहत पुनरीक्षण याचिका दायर करके उसने खुद को केवल विद्वान विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित सजा के आदेश के संबंध में सीमित रखा, इस आधार पर कि विचारणीय न्यायालय ने आरोपी-पुनरीक्षणकर्ता को सजा सुनाते समय न तो अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम के प्रावधानों को लागू किया, न ही सीआरपीसी की धारा 360 के प्रावधानों को - इस प्रकार विचारणीय न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 361 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है - न्यायालय ने पाया कि, विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि यह अभियुक्त के विरुद्ध पहला वाद है तथा उसे पहले दोषी नहीं ठहराया गया है तथा केवल इस आधार पर कि जनरेटर, जो बहुत महंगा था, अभियुक्त-अपीलकर्ता के कब्जे से बरामद किया गया था, अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ रोका गया है - इसलिए पुनरीक्षणकर्ता अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ दिए जाने का हकदार है, तदनुसार निर्देश जारी किया गया। (पैरा 11, 12, 13)

आपराधिक पुनरीक्षण निर्देशों के साथ निरस्त कर दिया गया। (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल,
द्वारा प्रदत्त)

1. अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा आपराधिक अपील संख्या-208 वर्ष 2000, गुड्डू @ रतन लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 8.02.2008 के खिलाफ धारा 397/401 द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत पुनरीक्षण दायर किया गया है, जिसमें अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-V, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.10.2000 के खिलाफ अपील को खारिज कर दिया गया था जिसमें प्रकरण संख्या-1793 वर्ष 1996 में धारा 457, 380 एवं 411 भ.द.वि के अन्तर्गत पुनरीक्षणकर्ता को धारा 411 के अन्तर्गत एक (वर्ष?) कठोर कारावास की सजा सुनायी जाये।

2. अभियोजन के अनुसार, अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्राथमिकी इस आधार पर दर्ज की गई थी कि किसी ने श्री राम होंडा मॉडल ईबीके 1200 इंजन संख्या-0899537 जनरेटर सेट को रात 10/11-03-1996 में दुकान का दरवाजा तोड़कर चुरा लिया है। दिनांक 21.03.1996 को थाने में अपराध संख्या-81 वर्ष 1996 में धारा 457 एवं 380 भा.द.वि के अन्तर्गत रिपोर्ट दर्ज की गई।

3. विवेचनाधिकारी वाई.पी. सिंह ने अरुण कुमार, गुड्डू और अजय कुमार के संयुक्त कब्जे से कथित जनरेटर को बरामद किया और

उसका फ़र्द बरामदगी तैयार किया, गवाहों के बयान दर्ज किए, नक्शा नज़री तैयार किया और धारा 457, 380 और 411 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विचारण न्यायालय ने उपर्युक्त धाराओं के तहत आरोप तय किए और अभियुक्त को पढ़कर सुनाया, जिस पर अभियुक्त ने आरोपों से इनकार किया और विचारण चाहा।

4. अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1-राजेंद्र कुमार अग्रवाल (शिकायतकर्ता), अ०सा०-2-कांस्टेबल घनश्याम यादव, अ०सा०-3-एस.आई., बेड़क सिंह, अ०सा०-4-एस.आई., योगेंद्र पाल सिंह, विवेचनाधिकारी और अ०सा०-5- आर.के. सिंह, थानाध्यक्ष को शामिल किया।

5. अभियुक्तों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए थे, जिसमें अभियुक्तों ने उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया और कहा कि उनके कब्जे से कुछ भी आपत्तिजनक बरामद नहीं किया गया है और गवाहों ने उन्हें गलत तरीके से फंसाया है और उनके खिलाफ गवाहों द्वारा झूठे सबूत दिए गए हैं। बचाव पक्ष का कोई गवाह पेश नहीं किया गया, लेकिन बचाव पक्ष को साक्ष्य पेश करने का अवसर प्रदान किया गया।

6. आरोपी और एडीजीसी की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने आरोपी गुड्डू और अजय कुमार को धारा 457 और 380 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के लिए बरी कर दिया और उन्हें धारा 411 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और उन्हें एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई। निर्णय के ऑपरेटिव भाग में यह भी उल्लेख

किया गया है कि अभियुक्त 22.03.1996 से 11.04.1996 तक जेल में रहे हैं और जेल में पहले से ही बिताए गए समय को सजा के अनुसार समायोजित किया जाएगा।

7. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणकर्ता विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के आदेश की पुष्टि करने वाले आक्षेपित आदेश को चुनौती नहीं दे रहा है और उसने केवल विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित सजा के आदेश के संबंध में खुद को सीमित कर लिया। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता पहले कभी दोषी नहीं हैं और उनका इस मामले के अलावा कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, इसलिए, उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, विचारण न्यायालय को अपराधी अधिनियम, 1958 की परिवीक्षा के प्रावधानों को लागू करना चाहिए था। यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने आरोपी-पुनरीक्षणकर्ता को सजा सुनाते समय न तो अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के प्रावधानों और न ही धारा 360 द०प्र०स० के प्रावधानों को लागू किया। विचारण न्यायालय ने कोई विशेष कारण नहीं बताया है कि वर्तमान अभियुक्त को उपर्युक्त प्रावधानों का लाभ क्यों नहीं दिया गया है। इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश गंभीर अवैधता से ग्रस्त है क्योंकि विचारण न्यायालय का आदेश धारा 361 द०प्र०स० के तहत प्रावधानों का उल्लंघन है, इसलिए, आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जा सकता है।

8. धारा 361 द०प्र०स० को निम्नानुसार पढ़ा जाता है: -

"361. कुछ मामलों में दर्ज किए जाने वाले विशेष कारण - जहां किसी भी मामले में न्यायालय निपट सकता था

(ए) धारा 360 के तहत या अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (20 वर्ष 1958) के प्रावधानों के तहत एक आरोपी व्यक्ति, या (ख) बालक अधिनियम, 1960 (60 वर्ष 1960) या युवा अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन कोई युवा अपराधी, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया है, वह अपने निर्णय में ऐसा न करने के विशेष कारणों को अभिलिखित करेगा।

9. निर्णय के अवलोकन से, यह पता चलता है कि विचारण न्यायालय ने सजा से निपटने के दौरान दर्ज किया कि आरोपी के कब्जे से बरामद जेनरेटर सेट बहुत महंगा था और इसलिए, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ अभियुक्त को नहीं दिया जा सकता है।

10. राज्य की ओर से पेश अपर शासकीय अधिवक्ता ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता पहली बार अपराधी है और पहले किसी अन्य मामले में दोषी नहीं ठहराया गया था और घटना की तारीख से जो समय अवधि बीत चुकी है, इस मामले में अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ दिया जा सकता है।

11. आक्षेपित निर्णय से यह स्पष्ट है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के लाभ से वंचित करने के विशेष कारण का उल्लेख किया है, लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि यह अभियुक्त के खिलाफ पहला मामला है और उसे पहले दोषी नहीं ठहराया गया है और केवल इस आधार पर कि जनरेटर, जो बहुत महंगा था, अभियुक्त-अपीलकर्ता के कब्जे से बरामद किया गया था, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ रोक दिया गया है। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, पुनरीक्षणकर्ता की उम्र, उसके सुधार की संभावना पर विचार नहीं किया और उपरोक्त परिस्थितियों पर विचार किए बिना निर्णय पारित किया।

12. तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के दायरे पर विचार करते हुए, और घटना की तारीख से जो समय अवधि बीत चुकी है, पुनरीक्षण अभियुक्त पुनरीक्षणकर्ता की सजा को बरकरार रखते हुए खारिज किया जाता है। हालांकि, उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ दिया जाता है।

13. पुनरीक्षणकर्ता को संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है और संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ अभियुक्त-पुनरीक्षक को देने और उसे 20,000/- (बीस हजार) रुपये के व्यक्तिगत बांड और जमानत के निष्पादन पर परिवीक्षा पर रिहा करने के साथ-साथ, पुनरीक्षणकर्ता को समाज में अमन

और शांति बनाए रखने और भविष्य में एक वर्ष तक कोई अपराध नहीं करने का वचन देने के लिए निर्देशित किया जाता है।

14. अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता प्रस्तुत आदेश के अनुपालन के लिए आज से एक महीने की अवधि के भीतर सी.जे.एम. के समक्ष पेश होंगे।

15. जैसा कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 5 के तहत प्रदान किया गया है, पुनरीक्षणकर्ता आज से एक महीने के भीतर डीएलएएसए में 15,000/- (पंद्रह हजार) रुपये का मुआवजा देगा।

16. उक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, अभियुक्त-पुनरीक्षणकर्ता खुद को सजा भुगतने के अधीन करेगा।

17. निर्णय की प्रति के साथ-साथ निचली अदालत के रिकॉर्ड को आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित विचारण अदालत को तुरंत प्रेषित किया जाए।

(2023) 4 ILRA 156

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 338/2009

अली शेर

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: सौरभ श्रीवास्तव,

अब्दुल समद

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313, 360, 361, 397 और 401 - भारत दंड संहिता, 1860-धारा 326 और 304 (2) - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106 - अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 धारा-4 और 5: आपराधिक पुनरीक्षण - आईपीसी की धारा 326 के तहत एक प्राथमिकी - विवेचना - आरोप पत्र - दोषसिद्धि और आईपीसी की धारा 326 के तहत 3 वर्ष के साधारण कारावास और जुर्माने की सजा - न्यायालय ने पाया कि, पीड़िता ने अपने पति को तलाक देने और पुनर्विवाह करने की इच्छा व्यक्त की थी - और विचारणीय न्यायालय ने पीड़िता की गवाही और मेडिकल साक्ष्य के आधार पर आरोपी को दोषी पाया - विवाद पीड़िता पर हमले, गवाहों की विश्वसनीयता और अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम की प्रयोज्यता के इर्द-गिर्द घूमते थे - अभियुक्त का कोई अपराधिक इतिहास नहीं है और न ही उनके विरुद्ध इस वाद के अतिरिक्त कोई अन्य वाद पंजीकृत हैं - विचारणीय न्यायालय ने सजा पर विचारण करते समय इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ अभियुक्त को क्यों नहीं दिया जा सकता - इसलिए न्यायालय ने अभियुक्त की दोषसिद्धि को बरकरार रखा, लेकिन अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ प्रदान किया, तथा अभियुक्त को अनुपालना और क्षतिपूर्ति के भुगतान के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया - तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (पैरा - 26, 28, 29, 30)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. मो. मोनिर आलम बनाम बिहार राज्य (2010) 12 एससीसी 26),

2. कर्नाटक राज्य बनाम मुदप्पा 1999 एससीसी (सीआरआई) 1028।

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल,
द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्तुत आपराधिक पुनरीक्षण पुनरीक्षणकर्ता द्वारा द०प्र०स० की धारा 397, 401 के तहत आपराधिक अपील संख्या-5 वर्ष 2007 (अली शेर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश बाराबंकी द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 11.06.2009 के खिलाफ दायर किया गया है जिसके द्वारा उन्होंने प्रथम न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय सं 17, रायबरेली द्वारा पारित प्रथम न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 17, रायबरेली द्वारा अपराध संख्या 89 वर्ष 1998, .. अपराध सं 1820 वर्ष 2006 (राज्य बनाम शेर अली एवं अन्य) में दिनांक 17-04-2007, थाना-डीह, जिला- रायबरेली में धारा 326 भ०द०वि० के तहत 3 साल की कैद और 1000/- रुपये का जुर्माना, और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में एक माह का कारावास को बरकरार रखते हुए सजा की पुष्टि की है।

2. तथ्यों को संक्षेप में कहते हुए, पीड़िता की शादी 14 महीने पहले मोहम्मद ज़मा के पुत्र

अली शेर से हुई थी। अली शेर बेरोजगार था और अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए कुछ नहीं कर रहा था, इसलिए, पीड़िता ने अपने पति और ससुर से शिकायत की कि वह ऐसी परिस्थितियों में अली शेर के साथ नहीं रह सकती और अपने पति को तलाक देने और किसी अन्य व्यक्ति से पुनर्विवाह करने की इच्छा व्यक्त की। जब उसने ऐसी इच्छा व्यक्त की, तो उसका पति और ससुर रात में आंगन में आए जहां वह सो रही थी। उसका ससुर उसके पेट पर चढ़ गया और उसके पति ने उसकी नाक काट दी। जब उसने हो-हल्ला मचाया तो उसके देवर मो. अब्बास ने घटनास्थल पर आकर घटना देखी।

3. लिखित रिपोर्ट के आधार पर, मामला 26.07.1998 को मामला अपराध संख्या-89 वर्ष 1998 के तहत धारा 326 भ०द०वि० के तहत दर्ज किया गया था और गवाहों के बयान दर्ज करने के लिए विवेचनाधिकारी द्वारा जांच की गई थी। उन्होंने मौके की जांच कर नक्शा नज़री तैयार कर पीड़िता/घायलों को चिकित्सा अधिकारी के समक्ष पेश कर उसकी मेडिकल जांच कराई। इसके बाद, उन्होंने धारा 326 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

4. विद्वान विचारण न्यायालय ने उन अभियुक्तों के खिलाफ आरोप विरचित किए और समझाया, जिन्होंने आरोपों से इनकार कर दिया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

5. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए अ०सा०-1 मुस्तफा, अ०सा०-2 अब्बास, अ०सा०-3 जाहिदा बानो और अ०सा०-

4 डॉ. आर.पी. मौर्य, अ०सा०-5 कांस्टेबल/मोहररि सुभाष चंद्र तिवारी को शामिल किया।

6. अभियोजन पक्ष के गवाहों के निष्कर्ष के बाद, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्तों के बयान दर्ज किए गए, जिसके तहत उन्होंने अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया और उन्होंने किसी भी बचाव को पेश करने से इनकार कर दिया, हालांकि, उन्हें अवसर दिया गया था।

7. विचारण न्यायालय, अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए रिकॉर्ड और सबूतों के अवलोकन के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि मेडिकल रिपोर्ट अ०सा०-4 डॉ. आर.पी. मौर्य द्वारा साबित की गई है और नाक पर गहरे कट के कारण पीड़िता का चेहरा विकृत हो गया था। पीड़िता स्वयं अ०सा०-1 के रूप में पेश हुई और उसने प्राथमिकी की सामग्री की पुष्टि की, इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों आरोपियों को धारा 326 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और उन्हें 3 साल के साधारण कारावास और 1000 रुपये के जुर्माने और जुर्माना अदा न करने पर एक-एक महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा सुनाई।

8. न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या-17 द्वारा पारित दिनांक 13.04.2017 के निर्णय एवं आदेश से व्यथित होकर प्रथम अपील दायर की गई।

9. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अ०सा०-1 मुस्तफा, अ०सा०-2 अब्बास के बयानों का

अवलोकन किया, जिन्हें मुकदमे के दौरान पक्षद्रोही की घोषणा की गई थी। अ०सा०-1 मो. मुस्तफा ने स्वीकार किया कि वह घायलों के साथ थाने गया था। वह अली शेर और मोहम्मद ज़मा के करीबी रिश्तेदार भी हैं, जो क्रमशः आरोपी के चाचा और भाई हैं, परिणामस्वरूप, उन्होंने अभियोजन पक्ष के संस्करण की पुष्टि नहीं की। अ०सा०-2 अब्बास अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ता अली शेर का असली भाई और अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ता मोहम्मद ज़मा का बेटा है, जिसने अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं किया है और उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया था। यह बहुत स्वाभाविक है कि उन्होंने घायलों की गवाही की पुष्टि नहीं की क्योंकि वह पुनरीक्षणकर्ता के रक्त संबंध में हैं।

10. अ०सा०-4 डॉ. आर.पी. मौर्य ने चोट की रिपोर्ट साबित की और निम्नलिखित चोटों को पाया:

11. (i) चोट वर्ष 2.5 सेमी X 0.5 सेमी X मांसपेशियों को पीड़ित की नाक के दाईं ओर के बीच में गहरा / घायल जिसके उलट गए थे।

12. (ii) घाव वर्ष 2 सेमी X 0.5 सेमी X नाक के बाईं ओर के बीच में गहरी मांसपेशियों को काटें, जिसके किनारे उलट गए थे और;

13. (iii) 5.5 सेमी लंबे घाव को बाएं नथुने को काटना, नाक में गहराई तक और नाक के सेप्टम को काटना।

14. अ०सा०-4 डॉ. आर. पी. मौर्य ने कहा कि नाक का कुछ हिस्सा नाक से अलग कर दिया गया था और मेडिकल जांच के समय नहीं मिला। चेहरा विकृत हो गया था और सभी चोटें तेज धार वाले हथियार से हुई थीं और 12 घंटे पुरानी हैं। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने पीड़ित/घायल के बयान का विश्लेषण किया।

15. घायल जाहिदा बानो ने इस घटना को संदेह से परे साबित कर दिया। प्रथम अपीलीय अदालत ने माना कि घटना आरोपी के घर में हुई थी, इसलिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत सबूत का बोझ अभियुक्त पर यह बताने के लिए है कि जाहिदा बानो को ऐसी चोटें कैसे लगीं। मकसद स्वयं स्पष्ट है कि पीड़िता पुनरीक्षणकर्ता अली शेर को तलाक देना चाहती थी और किसी अन्य व्यक्ति से पुनर्विवाह करना चाहती थी, इसलिए, आरोपी ने पीड़ित/घायल के चेहरे को विकृत कर दिया ताकि उसे पुनर्विवाह से रोका जा सके। जिरह के दौरान, श्रीमती जाहिदा बानो ने स्वीकार किया कि वह शादी से पहले जानती थी कि उसका पति दाहिने पैर से शारीरिक रूप से विकलांग था और दूल्हा और दुल्हन दोनों के परिवार इस बात पर सहमत थे कि अगर दुल्हन अपने पति के साथ रहने के लिए सहमत नहीं है तो दूल्हा और दुल्हन दोनों तलाक ले लेंगे। बाद में, उसने शादी के 14 महीने बाद अपने पति को तलाक देने की इच्छा व्यक्त की।

16. न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 11.06.2009 और प्रथम अपीलीय न्यायालय के आदेश दिनांक 13.04.2017 से व्यथित, प्रस्तुत पुनरीक्षण दायर किया गया है।

17. पुनरीक्षणकर्ता श्री अब्दुल समद और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

18. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि अ०सा०-1 मुस्तफा और अ०सा०-2 अब्बास मुकदमे के दौरान पक्षद्रोही गए और घायल जाहिदा बानो ने अपनी जिरह में स्वीकार किया कि वह घर के अंदर सो रही थी और मुख्य दरवाजा अंदर से बंद कर दिया और पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 घटना के समय बाहर सो रहा था, इसलिए, यह संभव नहीं है कि पुनरीक्षणकर्ता ने बाहर से दरवाजा तोड़ा और रात में 02:00 बजे कथित अपराध किया।

19. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि यह घटना 26.07.1998 को सुबह 02:00 बजे हुई थी, जो यह दर्शाता है कि जाहिदा बानो को गंभीर चोटें नहीं आईं। पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 शारीरिक रूप से विकलांग है और जाहिदा बानो ने पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 से शादी की है, जिसे पूरी जानकारी है कि पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 शादी से पहले से विकलांग है।

20. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि डॉ अरुण कुमार सिंह ने राज नर्सिंग होम में जाहिदा

बानो की नाक की प्लास्टिक सर्जरी की थी और अली शेर से तलाक लेने के बाद उसने दूसरी शादी की है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ताओं को उनके खिलाफ साक्ष्य में दिखाई देने वाली परिस्थितियों की व्याख्या करने का कोई अवसर नहीं दिया गया है, इसलिए, यह प्रार्थना की जाती है कि विद्वान प्रथम न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या-17 द्वारा 17.07.2007 को पारित निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, रायबरेली द्वारा 11.06.2009 को अपराधिक अपील संख्या-5 वर्ष 2007 में पारित निर्णय को रद्द कर दिया जाए, जिसमें पुनरीक्षणकर्ता को धारा 326 के तहत दोषी ठहराया गया था। यह भी तर्क दिया गया है कि यदि विद्वान विचारण न्यायालय आरोपी को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ नहीं देते हैं, तो उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ नहीं देने के कारण का उल्लेख करना चाहिए। अधिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय के मोनिर आलम बनाम बिहार राज्य (2010)12 उच्चतम न्यायालय के मामले 26 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय में कहा है कि:

“... इस मामले में शामिल होने के बाद उनका आचरण और उपलब्धियां परिवीक्षा पर उनकी रिहाई को सही ठहराती हैं ...

21. और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया है।

22. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने कर्नाटक राज्य बनाम मुदप्पा पर भरोसा किया, जिसमें

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस सवाल पर विचार किया कि क्या अपराधी अधिनियम, 1958 की परिवीक्षा का लाभ भ०द०वि० की धारा 304(2) के तहत अपराध तक बढ़ाया जा सकता है और निष्कर्ष निकाला कि अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम के आवेदन के लिए कोई वैधानिक रोक नहीं है, धारा 304(2) के अंतर्गत ऐसे अपराध के लिए जहां अधिकतम सजा न तो मृत्युदंड है और न ही आजीवन कारावास।

23. बहस के दौरान, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने पुनरीक्षणकर्ता की सजा पर विवाद नहीं किया। सजा के बिंदु पर बहस करते हुए, अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह एक पारिवारिक विवाद था और यह घटना आरोपी/पुनरीक्षणकर्ता अली शेर के गहरे अवसाद में हुई जब उसकी पत्नी ने उसे तलाक देना और किसी अन्य व्यक्ति से दोबारा शादी करना चाहा। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह नहीं बताया कि अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को क्यों नहीं दिया जाना चाहिए। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता पहले से दोषी नहीं हैं और उसका इस मामले के अलावा कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, इसलिए, उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, विचारण न्यायालय को अपराधी अधिनियम, 1958 की परिवीक्षा के प्रावधान को लागू करना चाहिए था।

24. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दोनों न्यायालयों का समवर्ती निष्कर्ष है कि पुनरीक्षणकर्ता ने अपने

पिता की मदद से, पीड़ित/घायल की नाक काट दी, जिससे उसका चेहरा विकृत हो गया, हालांकि, दोनों पक्षों के माता-पिता के बीच यह सहमति हुई कि यदि दुल्हन शादी के बाद अपने पति के साथ रहने के लिए सहमत नहीं है तो तलाक ले लेगी और जब उसने अपने पति को तलाक देने की इच्छा व्यक्त की, वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता ने उसके चेहरे को विकृत करने के लिए उसकी नाक काट दी।

25. यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि पुनरीक्षणकर्ताओं को मामले में झूठा फंसाया गया है, इसलिए, दोनों न्यायालयों के फैसले के अवलोकन से, यह पता चलता है कि समवर्ती निष्कर्ष दोनों न्यायालयों द्वारा दिया गया है और पुनरीक्षणकर्ताओं को धारा 326 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया था। न्यायालय ने सत्र न्यायाधीश के उपरोक्त निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की, विशेष रूप से अ०सा०-4 डॉ आरपी मौर्य की राय से।

26. निर्णय के अवलोकन से, यह पता चलता है कि विचारण न्यायालय ने दर्ज की गई सजा से निपटने के दौरान, इस बात पर चर्चा नहीं की कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ अभियुक्त को क्यों नहीं दिया जा सकता है।

27. न्यायालय के निष्कर्ष से यह पता चलता है कि विचारण न्यायालय ने आरोपी पुनरीक्षणकर्ता को सजा सुनाते समय न तो अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 और न ही धारा 360 द०प्र०स० के तहत प्रावधान का आह्वान किया, विचारण न्यायालय ने एक

विशिष्ट कारण नहीं बताया है कि प्रस्तुत अभियुक्त को उपर्युक्त प्रावधानों का लाभ क्यों नहीं दिया जाना चाहिए। इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश गंभीर अवैधता से ग्रस्त है क्योंकि विचारण न्यायालय का आदेश धारा 361 द०प्र०स० के तहत प्रावधानों का उल्लंघन है, इसलिए, आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जा सकता है। धारा 361 द०प्र०स० निम्नानुसार है:

"361. कुछ मामलों में दर्ज किए जाने वाले विशेष कारण-

जहां किसी भी मामले में अदालत को निपटना चाहिए था

(ए) धारा 307 के तहत या अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (20 वर्ष 1958) के तहत एक आरोपी व्यक्ति, या

(ख) बालक अधिनियम, 1960 (60 वर्ष 1960) के अधीन कोई युवा अपराधी या युवा अपराधियों के पुनर्वास के उपचार, प्रशिक्षण के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अपराधी ने, किन्तु ऐसा नहीं किया है, वह अपने निर्णय में ऐसा न करने के विशेष कारणों को अभिलिखित करेगा।

28. यह स्पष्ट है कि अभियुक्त को पहले दोषी नहीं ठहराया गया है, इस मामले के अलावा कोई अन्य मामला उसके खिलाफ दर्ज नहीं है। मन की हताश स्थिति में किए गए अपराध, जब उसकी पत्नी ने उसे तलाक देने और किसी अन्य व्यक्ति से पुनर्विवाह करने की इच्छा की और इस तथ्य के लिए कि प्रतिवादी जाहिदा बानो ने पहले ही किसी अन्य व्यक्ति से पुनर्विवाह कर लिया था,

अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता को भी दिया जा सकता है।

29. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के दायरे और घटना की तारीख से पहले से ही समाप्त हो चुके समय पर विचार करते हुए, अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ता की सजा को बरकरार रखते हुए पुनरीक्षण को तदनुसार खारिज किया जाता है, हालांकि उसे धारा 4, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 का लाभ दिया जाता है।

30. पुनरीक्षणकर्ता को संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है और संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया जाता है कि वह अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ता को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ प्रदान करे और उसे 20,000/- रुपये तक के व्यक्तिगत बांड और जमानत के निष्पादन पर परिवीक्षा पर रिहा कर दिया जाए, साथ ही समाज में अमन और शांति बनाए रखने और भविष्य में इस अवधि के दौरान एक वर्ष तक कोई अपराध न करने का वचन दिया जाए।

31. अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ता प्रस्तुत आदेश के अनुपालन के लिए आज से एक महीने की अवधि के भीतर सी.जे.एम के समक्ष उपस्थित होंगे। जैसा कि अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 5 के तहत प्रदान किया गया है, पुनरीक्षणकर्ता 10,000/- रुपये

का मुआवजा देगा जो आज से एक महीने के भीतर जिला कानूनी सेवा प्राधिकरण में जमा किया जाएगा।

32. किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, अभियुक्त/पुनरीक्षणकर्ता खुद को सजा भुगतने के अधीन करेगा।

33. इस निर्णय की प्रति के साथ-साथ निचली अदालत के रिकॉर्ड को आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को तुरंत प्रेषित किया जाए।

(2023) 4 ILRA 161

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1848/ 2010

पवन सिंघानिया

पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

विपक्षी

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री ए.पी. तिवारी, श्री

एस.एस. त्रिपाठी, श्री सुधांशु पांडे

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री बी.के. त्रिपाठी

आपराधिक कानून -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 145 और 146 (1) - आपराधिक

पुनरीक्षण - सिविल वाद - कब्जे का अधिकार

- पुनरीक्षणकर्ता ने विपक्षी संख्या 2 द्वारा

दायर आपराधिक पुनरीक्षण में अतिरिक्त सत्र

न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी,

जिसके द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय ने सिटी

मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 145 और 146 (1)

सीआरपीसी के तहत पारित आदेश को केवल आधार पर अपास्त कर दिया कि बाद में दायर किया गया सिविल वाद पक्षों के मध्य लंबित है - ऐसी आशंका है कि पक्षों के मध्य सिविल वाद लंबित है और वे अपने अधिकारों का निर्णय सिविल न्यायालय के माध्यम से कर सकते हैं, - सीआरपीसी की धारा 145 के तहत कार्यवाही करने का कोई उद्देश्य नहीं है - सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना कि सीआरपीसी की धारा 145 के तहत कार्यवाही केवल इस आधार पर नहीं छोड़ी जा सकती कि एक पक्ष ने स्वामित्व या कब्जे के अधिकार के संबंध में नहीं बल्कि सिविल न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। इसलिए कानून और तथ्य के मद्देनजर अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण में पारित किया गया विवादित आदेश पूरी तरह से गलत है और बिना विचार के पारित किया गया है - इसलिए आपेक्षित आदेश निरस्त किए जाने योग्य है और तदनुसार इसे निरस्त किया जाता है - वाद को वापस भेजा जाता है और सिटी मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया जाता है कि वे कार्यवाही को, अधिमानतः छह महीने की अवधि के भीतर समाप्त करें - तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (पैरा - 5,7)

आपराधिक पुनरीक्षण निस्तारित। (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. प्रकाश चंद सचदेवा बनाम राज्य और अन्य एआईआर 1994 एससी 1436

2. अमरेश तिवारी बनाम लालता प्रसाद दुबे और अन्य। (एआईआर 2000 सुप्रीम कोर्ट 1504),
3. झुम्मामल @ देवनदास बनाम एम.पी. राज्य, (एआईआर 1988 एससी 1973),
4. गंगा बक्स सिंह बनाम सुखदीन, एआईआर 1959 सभी 141

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता श्री सुधांशु पांडे और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री हरि प्रताप गुप्ता को सुना।
2. प्रस्तुत पुनरीक्षण के माध्यम से, पुनरीक्षणकर्ता ने अपर सत्र न्यायाधीश/न्यायालय संख्या-10, गोरखपुर द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-217 वर्ष 2010 (दीपांकर पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 28.04.2010 को चुनौती दी है, जिसके द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय ने सिटी मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा पारित धारा 145 और 146(1) द०प्र०स० के तहत आदेश को केवल इस आधार पर रद्द कर दिया है कि दीवानी मुकदमा, जो बाद में दायर किया गया था, पक्षों के बीच लंबित है।
3. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गोरखपुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश बिल्कुल गलत है क्योंकि निचली अदालत यह समझने में विफल रही है कि दीवानी सूट कब्जे के अधिकार में

नहीं है, बल्कि केवल कब्जे के सवाल पर है और उस मुकदमे में प्रार्थना की गई थी कि उसे उचित प्रक्रियात्मक कानून अपनाने के अलावा बेदखल नहीं किया जा सकता है। यह आगे तर्क दिया गया था कि प्रकाश चंद सचदेवा बनाम राज्य और ए.आई.आर. 1994 उच्चतम न्यायालय 1436 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि पक्षों के बीच केवल दीवानी वाद की लंबितता धारा 145 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही, यदि सूट की विषय वस्तु का कोई स्वामित्व (हक्क ए मिल्कियत) या अधिकार नहीं है, को छोड़ने का आधार नहीं हो सकती है। दीवानी वाद प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा धारा 145 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही शुरू करने के बाद दायर किया गया था, केवल इस आधार पर कि बिक्री के समझौते के आधार पर पक्षों के बीच कुछ विवाद है, धारा 145 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही को छोड़ने का आधार नहीं हो सकता है।

4. पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने अमरेश तिवारी बनाम लालता प्रसाद दुबे के मामले और ए.आई.आर. 2000 उच्चतम न्यायालय 1504 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले पर भरोसा किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय पहले ही झुम्मल उर्फ देवनदास बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में (1988) 4 एस.सी.सी. 452: (ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 1973: 1989 सीआरआई एलजे 82) में रिपोर्ट किया गया है कि "यह प्राधिकरण यह बताता है कि केवल इसलिए कि एक दीवानी मुकदमा लंबित है, इसका मतलब यह नहीं है कि इसका मतलब यह नहीं है कि धारा 145, दंड प्रक्रिया

संहिता के तहत कार्यवाही शून्य होनी चाहिए। हमारे विचार में यह प्राधिकरण ऐसा कोई व्यापक प्रस्ताव नहीं रखता है। इस मामले में डंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही के परिणामस्वरूप एक निष्कर्ष आदेश दिया गया था। इसके बाद जो पार्टी हार गई थी, उसने दीवानी कार्यवाही दायर की थी, उसे रद्द कर दिया जाए। यह उस संदर्भ में है कि इस न्यायालय ने कहा कि केवल इसलिए कि एक दीवानी मुकदमा दायर किया गया था, इसका मतलब यह नहीं है कि धारा 145 अपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत समाप्त आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए। यह पूरी तरह से एक अलग स्थिति है। इस मामले में पहले दीवानी मुकदमा दायर किया गया था। सक्षम दीवानी अदालत द्वारा पहले ही यथास्थिति का आदेश पारित किया जा चुका था। इसके बाद धारा 145 की कार्यवाही शुरू की गई। धारा 145 के तहत कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया था। वर्तमान मामले के तथ्यों पर हमारे विचार में, राम समर्स केस (ए.आई.आर 1985 एस.सी.472:1985 क्रि.एल.जे.752) (उपरोक्त) में निर्धारित अनुपात पूरी तरह से लागू होता है। हम स्पष्ट करते हैं कि हम यह नहीं कह रहे हैं कि हर मामले में जहां एक दीवानी मुकदमा दायर किया गया है। धारा 145 की कार्यवाही कभी पोषणीय नहीं है। यह केवल उन मामलों में है जहां दीवानी मुकदमा कब्जे के लिए है या उसी संपत्ति के संबंध में स्वामित्व (हक्क ए मिलिकयत) की घोषणा के लिए है और जहां संबंधित संपत्ति के संरक्षण के संबंध में राहत सिविल न्यायालय द्वारा लागू की जा सकती है और दी जा सकती है कि धारा 145

के तहत कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि दीवानी अदालत स्वामित्व (हक्क ए मिलिकयत) के सवाल को तय करने के लिए सक्षम है और साथ ही जारी रखने की अनुमति है। ऐसा इसलिए है क्योंकि दीवानी अदालत पक्षों के बीच स्वामित्व (हक्क ए मिलिकयत) के साथ-साथ कब्जे के सवाल को तय करने के लिए सक्षम है और दीवानी अदालत के आदेश मजिस्ट्रेट पर बाध्यकारी होंगे।

5. दूसरी ओर, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि ऐसी आशंका है कि पक्षों के बीच दीवानी मुकदमा लंबित है और वे दीवानी अदालत के माध्यम से अपने अधिकारों का फैसला कर सकते हैं, इसलिए, धारा 145 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही का कोई उद्देश्य नहीं है।

6. पक्षकारों के प्रतिद्वंद्वी तर्क को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि आक्षेपित आदेश मुख्य रूप से इस आधार पर पारित किया गया था कि दीवानी वाद की अनुमति की प्रकृति को देखे बिना और इस सवाल पर जाने के बिना कि दीवानी वाद कब्जे के संबंध में नहीं है, बल्कि केवल कानून की प्रक्रिया को अपनाते तक कब्जे की रक्षा करने और वाद के अवलोकन से बचाने के लिए है संख्या-709 वर्ष 2009, ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच कोई स्वामित्व (हक्क ए मिलिकयत) विवाद नहीं है और निजी उत्तरदाताओं ने किसी भी अधिकार के आधार पर स्वामित्व (हक्क ए मिलिकयत) या कब्जे का दावा नहीं किया है, इसलिए, धारा 145 द०प्र०स० के तहत, जब

मजिस्ट्रेट के समक्ष कब्जे का प्रश्न लंबित है, कार्यवाही को छोड़ने का कोई अवसर नहीं है। यहां तक कि पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णय में भी। शीर्ष अदालत ने स्पष्ट रूप से कहा कि कब्जे का सवाल शामिल है, तो मजिस्ट्रेट को धारा 145 द०प्र०स० के तहत संज्ञान लेने का अधिकार है। यहां तक कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय ए.आई.आर. 1959 ऑल 141 में गंगा बक्स सिंह बनाम सुखदीन ने इस मुद्दे को सुलझा लिया है।

"यह माना गया है कि धारा 145 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही केवल शांति बनाए रखने के हित में है और किसी भी पक्ष के अधिकारों के संरक्षण के हित में नहीं है। यह आगे कहा गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के तहत कार्यवाही एक उचित मुकदमे में कार्यवाही से महत्वपूर्ण रूप से अलग है।"

प्रावधानों की प्रकृति से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट को यह शक्ति मुख्य रूप से शांति बनाए रखने के लिए दी गई है। व्यक्तिगत अधिकार केवल संयोग से प्रभावित होते हैं। जांच की प्रकृति अर्ध सिविल है। यह दीवानी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आपराधिक न्यायालय द्वारा घुसपैठ है। इसलिए, यह आवश्यक है कि इस घुसपैठ को शांति बनाए रखने के मजिस्ट्रेट पर रखे गए कार्य का निर्वहन करने के लिए सावधानीपूर्वक परिचालित किया जाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के उपबंध इसे पर्याप्त रूप से स्पष्ट करते हैं।

मजिस्ट्रेट पक्षों के दावों के गुणों या विवाद के विषय को रखने के उनके अधिकार की भी

जांच नहीं करता है। वह केवल इस प्रश्न से चिंतित है कि प्रासंगिक तारीख को वास्तविक महत्वपूर्ण कब्जे में कौन था। यह भी इंगित करता है कि कार्यवाही का प्रारंभिक बिंदु वह तारीख होनी चाहिए जब वह संतुष्ट था कि शांति भंग होने की आशंका मौजूद थी और यहां तक कि उसे पहली सूचना भी नहीं मिली थी।

7. सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना कि धारा 145 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही को केवल इस आधार पर नहीं छोड़ा जा सकता है कि एक पक्ष ने स्वामित्व (हक्क ए मिलिक्यत) या कब्जे के अधिकार के संबंध में दीवानी अदालत का दरवाजा खटखटाया था, इसलिए कानून और तथ्य के मद्देनजर, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गोरखपुर द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-217 वर्ष 2010 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 28.04.2010 बिल्कुल गलत है और दिमाग के गलत उपयोग पर पारित किया गया है, इसलिए, आक्षेपित आदेश को रद्द किया जा सकता है, अता: इसे तदनुसार रद्द किया जाता है।

8. मामले को वापस भेजा जाता है और सिटी मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया जाता है कि वह धारा 145 के साथ-साथ 146 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही को अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर कानून के अनुसार समाप्त करे।

9. इस प्रकार संशोधन का अंतिम रूप से निपटारा किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 164

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2608 / 2022

श्रीमती सुमन

पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री पंकज कुमार

शुक्ला

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री देवेश कुमार शर्मा

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 161, 293, 311, 313 और 482 -

भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 325,

504 और 506 - आपराधिक पुनरीक्षण -

पुनरीक्षणकर्ता ने विचारणीय न्यायालय द्वारा

पारित आदेश को चुनौती दी, जिसके द्वारा

आवेदन सीआरपीसी की धारा 311 के तहत

घायल व्यक्ति की जांच करने वाले डॉक्टर को

गवाह के रूप में बुलाने के लिए वाद द्वारा

किया गया आवेदन इस आधार पर निरस्त कर

दिया गया कि घायल को कथित रूप से पहुंची

चोटें साधारण प्रकृति की हैं और यह आवश्यक

नहीं है कि यदि विवेचक ने सीआरपीसी की

धारा 161 के तहत बयान नहीं लिया है, तो

व्यक्ति को बुलाया नहीं जा सकता है और

साथ ही इस आधार पर कि अभियोजन पक्ष

स्वयं इस आधार पर आवेदन का विरोध कर

रहा है कि अभियोजन पक्ष की सहायता के

लिए वादी द्वारा एक वकील नियुक्त किया जा सकता है, लेकिन वे अभियोजन अधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर सकते हैं - आवेदन की पोषणीयता - माना गया कि संबंधित डॉक्टर के गवाह को स्वतः संज्ञान से बुलाना विचारणीय न्यायालय का कर्तव्य था और - एक आपराधिक न्यायालय का न्यायाधीश मूक दर्शक नहीं होता है - सतर्क और सचेत रहना उसका कर्तव्य है और यदि विचारणीय न्यायालय के दौरान अन्याय की आशंका है - इसके अतिरिक्त, आरोप पत्र कोई सीमा रेखा नहीं है, जिसे विचारणीय न्यायालय द्वारा पार नहीं किया जा सकता है, यह एक पवित्र बाइबल, कुरान या गीता या कोई अन्य अनिवार्य अधिनियम नहीं है जिसका हर मामले में पालन किया जाना चाहिए, यदि विद्वान विचारणीय न्यायालय पाता है कि घायल व्यक्ति की एक विशेष चिकित्सक द्वारा चिकित्सकीय जांच की गई थी और उसने चोट की रिपोर्ट तैयार की है, तो उसे बुलाने का न्यायालय का कर्तव्य था, बजाय इसके कि उसका बयान विवेचक द्वारा दर्ज नहीं किया गया था और उसका नाम आरोप-पत्र के गवाहों की सूची में नहीं था - इसलिए, किसी भी व्यक्ति और ऐसे किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाया जा सकता है, जो दर्शाता है कि किसी भी तरह से न्यायालय के विवेक का प्रयोग करने की कोई सीमा नहीं है - पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है और आपेक्षित आदेश को निरस्त किया जाता है। (अनुच्छेद 12, 13, 16, 18, 22, 32)

आपराधिक पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. रेखा मुराक्का बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, जे.टी. 2019 (11) एस.सी. 291
2. मोहन लाल शामजी सोनी बनाम भारत संघ, ए.आई.आर. 1991 एस.सी. 1346
3. आर.बी. मिथानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर 1971 एस.सी 1630
4. रामा पासवान बनाम झारखंड राज्य, 2007 सीआर.एल.जे 2750
5. राकू मंजल बनाम झारखंड राज्य, 2006 सीआर.एल.) 293
6. राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1999 एससी 3524
7. शैलेंद्र कुमार बनाम बिहार राज्य, एआईआर 2002 एससी 270
8. गोविंद राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1999 सीआर.एल.जे 1955 (इलाहाबाद)
9. रामासामी बनाम श्रीनिवासन, 1987 (3) अपराध 89 मद्रास
10. भीमा मुदाली एवं अन्य बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य, 1996 Cr.L.J. 1899 उड़ीसा
11. केमो स्टील लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2005 Cr.L.J 716
12. ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य 2003 Cr.L.J 4704

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

यह आपराधिक पुनरीक्षण पुनरीक्षणवादी द्वारा, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-VI, मथुरा द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 433 वर्ष 2012(श्रीमती सुमन बनाम कृष्ण मुरारी और अन्य) अंतर्गत धारा

323, 325, 504, 506 भारतीय दंड संहिता, थाना वृंदाबन, जिला मथुरा में पारित आदेश दिनांक 31 मई, 2022 जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शिकायतकर्ता द्वारा दिए गए आवेदन 136-बी को खारिज कर दिया है, को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि उपरोक्त सत्र परीक्षण अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-VI, मथुरा के न्यायालय में लंबित है, जिसमें शिकायतकर्ता ने एक आवेदन 136-बी प्रस्तुत किया कि घायल राजन लाल की जांच 03 जुलाई, 2009 को स्वर्ण जयंती सामुदायिक अस्पताल में की गई थी। मेडिकल रिपोर्ट 4-ए/17 पत्रावली पर है, उनकी जांच डॉ. अजय गोपाल द्वारा की गई, मेडिकल जांच के दौरान सिर पर हल्का Subarachnoid हेमरेज पाया गया और उन्हें बेहोशी की हालत में अस्पताल ले जाया गया, इसलिए संबंधित डॉक्टर का बयान जरूरी है। इसलिए डॉ. अजय गोपाल को गवाह के तौर पर बुलाया जाए। संबंधित जाँच अधिकारी ने उन्हें गवाह के रूप में पेश नहीं किया है, इसलिए, डॉ. अजय गोपाल को धारा ३११ दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत तलब किया जाए।

अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदन का पुरजोर विरोध किया था और कहा था कि यह फाइल 01.01.2014 को धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत है और जानबूझकर इसमें देरी की जा रही है। राजन लाल की चोट साधारण प्रकृति की है और डॉ. अजय गोपाल का बयान संबंधित जाँच अधिकारी द्वारा धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दर्ज नहीं किया गया है।

आक्षेपित आदेश के द्वारा, विद्वान विचरण न्यायालय ने इस आधार पर आवेदन को खारिज कर दिया है कि घायलों को कथित तौर पर लगी चोटें साधारण प्रकृति की बताई गई हैं। विद्वान ए.डी.जी.सी. ने ऐसी स्थिति में उक्त गवाह को बुलाने पर आपत्ति जताई है, जब कि पीड़ित का बयान हो चुका है और मुकदमा धारा 323, 325, 504, 506 भारतीय दंड संहिता से संबंधित है, इसलिए उपरोक्त डॉक्टर को बुलाना या न बुलाना अभियोजन पर विशेष प्रभाव नहीं डालेगा। यह भी स्पष्ट किया गया है कि यह सत्र परीक्षण एक अन्य क्रॉस केस से जुड़ा हुआ है, जो माननीय उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कार्य योजना के तहत है, जिस पर शीघ्रता से निर्णय लिया जाना है, इसलिए आवेदन पोषणीय नहीं है और रद्द किये जाने योग्य है।

विचरण न्यायालय द्वारा यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन का विद्वान एडीजीसी (क्रिमिनल) द्वारा विरोध किया गया है, अभियोजन पक्ष न्यायालय में क्या सबूत पेश करना चाहता है, यह अभियोजन की जिम्मेदारी है। यह जरूरी नहीं है कि अगर विवेचक ने धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान नहीं लिया है तो किसी व्यक्ति को समन नहीं किया जा सकता, लेकिन इस मामले में अभियोजन पक्ष खुद इसका विरोध कर रहा है। शिकायतकर्ता द्वारा नियुक्त अधिवक्ता अभियोजन की सहायता कर सकते हैं, परन्तु वे अभियोजन अधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर सकते। विद्वान विचारण न्यायालय ने **रेखा मुरक्का बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य जे.टी. 2019 (11) एस.सी. 291** के

निर्णय का सन्दर्भ दिया है, जिसमें यह माना गया है कि पीड़ित/शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता अभियोजन मामले को आगे बढ़ाने में मात्र एक सहायक भूमिका निभाता है।

व्यथित होकर, पुनरीक्षणवादी ने वर्तमान पुनरीक्षण दायर किया है।

आवेदन में, आवेदक ने यह आधार लिया है कि आक्षेपित आदेश **रेखा मुराक्का (उपरोक्त)** के निर्णय की गलत व्याख्या करके बिना सोचे समझे पारित किया गया है और इस प्रकार पुनरीक्षणवादी के कानूनी और सच्चे दावे को खारिज कर दिया गया है।

डॉ. अजय गोपाल एकमात्र गवाह हैं, जिन्होंने 03 जुलाई 2009 को स्वर्ण जयंती सामुदायिक अस्पताल में घायल राजन लाल का चिकित्सकीय परीक्षण किया और अपनी राय दी जिसमें उन्होंने तर्क दिया है कि प्लास्टर के कारण चोट देखी नहीं जा सकती और चोट संख्या 1 के संबंध में राय हेतु घायल को एक्स-रे हेतु जिला चिकित्सालय, मथुरा रेफर कर दिया। इस घटना में, राजन और सुंदर लाल, दो व्यक्तियों को गंभीर चोट लगी थी और दोनों की जांच डॉ. अजय गोपाल द्वारा की गई थी, इसलिए मामले के निष्कर्ष के लिए उनका बयान अधिक महत्वपूर्ण है।

चूंकि, विद्वान विचारण न्यायालय क्रॉस वर्जन पर भी निर्णय दे रहा है, इसलिए, यह विचारण न्यायालय का कर्तव्य है कि वह चोटों की पूरी तरह से जांच करे, किन्तु विचारण न्यायालय ने, मात्र इस आधार पर प्रक्रिया में जल्दबाजी अपनाकर कि यह क्रॉस केस है और हाई कोर्ट एक्शन प्लान का सन्दर्भ देते हुए, एक्शन प्लान की आड़ में वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए पुनरीक्षणवादी के दावे

को खारिज कर दिया। आक्षेपित आदेश पूरी तरह से अवैध और मनमाना है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है, इसलिए पुनरीक्षण की अनुमति दी जाए और आदेश दिनांकित 31 मई, 2022 को रद्द किया जाए।

पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार शुक्ला, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना और पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

इंज्यूरी रिपोर्ट परिशिष्ट संख्या 2 के माध्यम से दाखिल की गई है, जिनके बारे में कहा गया है कि इन्हें डॉ. अजय गोपाल द्वारा चिकित्सीय परीक्षण के बाद तैयार किया गया है। इंज्यूरी रिपोर्ट के अनुसार पीड़ित राजन लाल को तीन चोटें लगी हैं, वह चोट संख्या 1 ठीक से नहीं देख सके क्योंकि उस पर प्लास्टर ऑफ पेरिस था, इसलिए उन्होंने मरीज को विशेषज्ञ की राय हेतु जिला अस्पताल, मथुरा रेफर कर दिया। उन्होंने पाया कि चोट संख्या 2 कठोर और कुंद वस्तु के कारण हुई सामान्य प्रकृति की है। चोट संख्या 3 सिला हुआ घाव था। पेज संख्या 28 पर एक्स-रे रिपोर्ट फॉर्म की एक प्रति है। पेज 30 पर सुंदर लाल की इंज्यूरी रिपोर्ट की फोटोप्रति है, उन्हें दो चोटें लगी हैं, जिनमें से चोट संख्या 1 को निगरानी में रखा गया था और इसे एक्स-रे और विशेषज्ञ की राय के लिए भेजा गया था। पेज 30 पर घायल सुंदर लाल के संबंध में एक्स-रे फॉर्म है।

इस न्यायालय का मानना है कि संबंधित डॉक्टर का बयान दर्ज करना और आरोप-पत्र में गवाह के कॉलम में उनका नाम दर्ज करना विवेचना अधिकारी का कर्तव्य था। यदि ऐसा

नहीं किया गया है तो यह शिकायतकर्ता/संशोधनवादी की गलती नहीं है, यदि डॉ. अजय गोपाल की परीक्षा नहीं की गई तो उनके द्वारा तैयार की गई इंज्यूरी रिपोर्ट साबित नहीं होगी और साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं होगी। यदि उक्त इंज्यूरी रिपोर्ट पर कोई आपत्ति नहीं उठाई गई है, तो इसे प्रदर्शित किया जा सकता है, लेकिन यह धारा 293 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रदर्शित होने योग्य नहीं है। इसलिए, गवाह डॉ. अजय गोपाल को स्वतः संज्ञान से तलब करना विचारण न्यायालय का कर्तव्य था। उन पर यह निष्कर्ष दर्ज करने का भी दायित्व था कि यह विवेचना अधिकारी की ओर से गलती है कि उन्होंने डॉ. अजय गोपाल का बयान दर्ज नहीं किया और इंज्यूरी रिपोर्ट को केस डायरी में नहीं चढ़ाया है।

फौजदारी न्यायालय का न्यायाधीश मूक दर्शक नहीं होता, सतर्क और सचेत रहना उसका कर्तव्य है और यदि मुकदमे के दौरान अन्याय की आशंका हो, तो सतर्क रहना उसका कर्तव्य है। आरोप-पत्र कोई सीमा रेखा नहीं है, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा लांघा नहीं जा सकता है, यह कोई पवित्र बाइबिल, कुरान या गीता या कोई अन्य अनिवार्य अधिनियम नहीं है, जिसका हर समय पालन किया जाना चाहिए, यदि विद्वान विचारण न्यायालय पाता है कि घायलों की चिकित्सीय जांच डॉ. अजय गोपाल द्वारा की गई और उन्होंने इंज्यूरी रिपोर्ट तैयार की है, यह विचारण न्यायालय का कर्तव्य था कि उन्हें समन किया जाए, बजाय इस तथ्य के कि उनका बयान विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज नहीं किया गया था और उन्हें आरोपपत्र में गवाहों की सूची में शामिल नहीं किया गया था।

धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता ने न्यायालय को महत्वपूर्ण गवाह को बुलाने के लिए व्यापक शक्ति प्रदान की, जो इस प्रकार है:-

"महत्वपूर्ण गवाह को बुलाने, या उपस्थित व्यक्ति की परीक्षा करने की शक्ति। कोई भी न्यायालय, किसी भी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में इस संहिता के अंतर्गत, किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकती है, या उपस्थित किसी भी व्यक्ति, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो, की परीक्षा कर सकती है या किसी व्यक्ति जिसकी पहले से ही परीक्षा की जा चुकी हो, को वापस बुला सकती है और फिर से जांच कर सकती है; और न्यायालय किसी भी ऐसे व्यक्ति को बुलाएगी और परीक्षा करेगी अथवा पुनः बुलाएगी और पुनः परीक्षा करेगी, यदि उसे, उसका साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।"

धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता का दूसरा भाग अनिवार्य है और यह न्यायालय पर ऐसे किसी भी व्यक्ति को तलब करने, परीक्षा करने या बुलाने या फिर से पूछताछ करने का कर्तव्य डालता है, यदि उसका साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

इस न्यायालय का मानना है कि उपरोक्त परिस्थितियों में डॉ. अजय गोपाल की गवाही मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए अत्यंत आवश्यक है अन्यथा अभियोजन अपने बहुमूल्य

अधिकार से वंचित हो जायेगा। यहां एकशन प्लान के अंतर्गत मामले को जल्द से जल्द निर्णित करने का निर्देश हो सकता है, किंतु मात्र इस कारण पर, किसी भी पक्ष को उसके मूल्यवान कानूनी अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है और किसी मुकदमे को अवैधानिक और जल्दबाजी में पूर्ण नहीं किया जा सकता है। यदि डॉ. अजय गोपाल की परीक्षा नहीं की गई तो निश्चित रूप से इंज्यूरी रिपोर्ट का कोई फायदा नहीं होगा और साक्ष्य में अस्वीकार्य होगी।

विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा यह नहीं कहा गया है कि आरोपी व्यक्तियों ने इंज्यूरी रिपोर्ट की सत्यता को स्वीकार कर लिया है या उन्होंने इंज्यूरी रिपोर्ट के गठित सबूतों से इनकार कर दिया है, ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक इंज्यूरी रिपोर्ट उचित कानूनी प्रक्रिया में साबित नहीं हुई है, इसलिए, यह एडीजीसी (क्रिमिनल) और संबंधित न्यायालय का बाध्यकारी कर्तव्य था कि वे ऐसे आवश्यक आवेदन का विरोध न करते, यह एडीजीसी (क्रिमिनल) का कर्तव्य था कि वह डॉ. अजय गोपाल को गवाह के रूप में बुलाने के लिए आवेदन दायर करते और यदि उनके द्वारा यह कर्तव्य छोड़ा गया था, तो यह विचारण न्यायालय का कर्तव्य था कि वह मेडिकल रिपोर्ट को साबित करने के लिए संबंधित डॉक्टर को बुलाए।

मोहन लाल शामजी सोनी बनाम भारत संघ एआईआर 1991 एससी 1346 में, यह माना गया है कि धारा 311 अधिनियमित की गई है जो न्यायालय को सच्चाई का पता लगाने और न्यायपूर्ण निर्णय देने में सक्षम बनाती है, जिसके अंतर्गत कोई भी न्यायालय

जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में अपने विवेकाधीन अधिकार के प्रयोग द्वारा, किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकती है या उपस्थित किसी भी व्यक्ति, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया है, का परीक्षण कर सकती है, या पूर्व में ही परीक्षित किसी भी व्यक्ति को वापस बुला सकती है या फिर से परीक्षण कर सकती है, जो विवादित मामले पर प्रकाश डालने में सक्षम हैं।

दूसरे पक्ष को खंडन का अवसर प्रदान किया जाएगा।

इस मामले में उपरोक्त निर्णय और प्रावधान के आधार पर निम्नलिखित तत्व पाए गए हैं जो इस प्रकार हैं:-

1. किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाना, या
2. उपस्थित किसी भी व्यक्ति की परीक्षा करना, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो या पुनः किसी भी व्यक्ति जिसकी पहले भी परीक्षा की जा चुकी है, को बुलाना, उसकी पुनः परीक्षा करना।

दूसरा भाग जो अनिवार्य है, न्यायालय पर दायित्व डालता है:-

ऐसे किसी भी व्यक्ति को बुलाना और उसकी परीक्षा करना अथवा पुनः बुलाना, पुनः परीक्षा करना, यदि उसका साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। यह धारा दो भागों में है और कार्यवाही में किसी जांच या मुकदमे के किसी भी चरण में न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए व्यापक विवेक दिया गया है।

किसी भी व्यक्ति और ऐसे किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाया जा सकता

है, जो दर्शाता है कि किसी भी तरह से न्यायालय के विवेक का प्रयोग करने की कोई सीमा नहीं है।

आरबी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य ए आई आर 1971 एस सी- 1630 में, यह माना गया है कि अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक होना चाहिए, इसलिए नहीं कि यह निर्णय सुनाने के लिए पर्याप्त होगा, बल्कि इसलिए कि इसके बिना न्याय की विफलता होगी। इस शक्ति का प्रयोग संयमित ढंग से और केवल उपयुक्त स्थिति में ही किया जाना चाहिए। एक बार जब ऐसी कार्रवाई उचित हो जाती है तो साक्ष्य, जिसे प्राप्त किया जाना चाहिए, के प्रकार पर कोई प्रतिबंध नहीं होता। यह औपचारिक या पर्याप्त हो सकता है।

रामा पासवान बनाम झारखंड राज्य 2007 Cr.LJ 2750 में, शीर्ष अदालत ने माना कि निर्धारित कारक यह है कि मामले के उचित निर्णय के लिए गवाह को तलब करना या दोबारा बुलाना आवश्यक है या नहीं। धारा केवल अभियुक्त के लाभ तक ही सीमित नहीं है और धारा के तहत किसी गवाह को केवल इसलिए बुलाना न्यायालय की शक्ति के लिए अनुचित नहीं होगा क्योंकि साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करता है, न कि अभियुक्त का। यह धारा एक सामान्य धारा है जो न्यायालय के अंतर्गत सभी कार्यवाहियों, जांच और मुकदमों पर लागू होती है और मजिस्ट्रेट को ऐसी कार्यवाही, विचारण या जांच के किसी भी चरण में किसी भी गवाह को समन जारी करने का अधिकार देती है।

राकु मंजल बनाम झारखंड राज्य 2006 Cr.LJ 293 में, मामला पिछले 25 वर्षों से लंबित था और अभियोजन साक्ष्य पहले ही बंद

कर दिया गया था। विवेचना अधिकारी और डॉक्टर, जिन्होंने पोस्टमॉर्टम जांच की थी, को धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत तलब किया गया था क्योंकि उनका परीक्षण मामले के न्यायपूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक पाया गया था।

राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1999 सुप्रीम कोर्ट 3524 में, यह माना गया है कि एक बार जब यह पाया जाता है कि मामले के उचित निर्णय के लिए यह साक्ष्य आवश्यक है, तो निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी समय गवाह को पुनः बुलाया जा सकता है, समय का कारक रास्ते में नहीं आएगा। यह ऐसा मामला नहीं है जहां अगर डॉ. अजय गोपाल को बुलाया जाता है तो यह अभियोजन के मामले में कमी को पूरा करने का प्रयास होगा क्योंकि इंज्यूरी रिपोर्ट उनके द्वारा तैयार की गई है। इससे अभियुक्त पर भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि उसे गवाह से जिरह करने का अवसर मिलेगा।

शैलेन्द्र कुमार बनाम बिहार राज्य, एआईआर 2002 (सुप्रीम कोर्ट) 270, यह माना गया है कि यदि महत्वपूर्ण गवाह की परीक्षा न करने से कोई असावधानी, लापरवाही या गलती होती है, तो न्यायालय द्वारा किसी भी स्तर पर ऐसे गवाह की जांच करके उचित निर्णय देने का कार्य किसी भी तरह से गलत नहीं है।

गोविंद राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1999 सीआर.एलजे 1955 (इलाहाबाद) में, यह माना गया है कि न्यायालय का कर्तव्य है कि वह देखे कि मामले के उचित निर्णय के लिए गवाहों की जांच की जाए और न्यायालय को एक गवाह को न्यायालय के गवाह के रूप में बुलाना और परीक्षण करना होगा, भले ही

अभियोजन पक्ष उसे पेश नहीं करता, यह ठीक होगा यदि गवाहों के साक्ष्य का मामले पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

रामासामी बनाम श्रीनिवासन 1987 (3) अपराध 89 मद्रास में, यह माना गया है कि फौजदारी न्यायालय पक्षकारों द्वारा मात्र उसके समक्ष लाई गई सामग्री को देखने के लिए अपायर नहीं है। न्यायालय को आपराधिक न्यायशास्त्र के प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभानी होगी। यद्यपि, सबूत इकट्ठा करना न्यायालय का सामान्य कर्तव्य नहीं है, पर जिन मामलों में न्याय को आवश्यकता होती है, न्यायालय के पास सच्चाई का पता लगाने के लिए मामले में अतिरिक्त जांच करने की शक्ति है।

भीमा मुदाली और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य 1996 Cr.LJ 1899 उड़ीसा में, **केमो स्टील लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2005 Cr.LJ 716** में और **ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य 2003 Cr.LJ 4704** में, यह माना गया है कि धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत जिस व्यक्ति की जांच नहीं की गई है, उसे भी धारा 311 के तहत गवाह के रूप में बुलाया जा सकता है।

उपरोक्त के दृष्टिगत, इस न्यायालय का विचार है कि आक्षेपित आदेश कानून में विकृत और खराब है और रद्द किए जाने योग्य है और पुनरीक्षण स्वीकार किए जाने योग्य है।

आदेश

यह आपराधिक पुनरीक्षण स्वीकार किया जाता है और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-VI, मथुरा द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 433 वर्ष 2012(श्रीमती सुमन बनाम कृष्ण मुरारी और

अन्य) अंतर्गत धारा 323, 325, 504, 506 भारतीय दंड संहिता, थाना वृंदाबन, जिला मथुरा में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 31.05.2022 एतदद्वारा रद्द किया जाता है।

विद्वान न्यायालय को मेडिकल रिपोर्ट साबित करने के लिए डॉ. अजय गोपाल को बुलाने का निर्देश दिया गया है।

यह आदेश तत्काल और सख्त अनुपालन के लिए विचारण न्यायालय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-VI, मथुरा को तुरंत भेजा जाए।

(2023) 4 ILRA 169

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह

देशवाल

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3212 / 2009

उमा शंकर और अन्य ...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ..विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री डी.के. सिंह, श्री

ए.के. राय, श्री बिमल प्रसाद

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री ए.के.

श्रीवास्तव

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता,

1973 - धारा 145 और 146 - अपराधिक

पुनरीक्षण - दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145

के तहत एक कार्यवाही में एस.डी.एम. द्वारा

पारित आदेश को चुनौती देना, जिसके द्वारा

कार्यवाही को छोड़ने के लिए पुनरीक्षणकर्ता का

आवेदन निरस्त कर दिया गया था -

न्यायालय ने पाया कि, वाद की संपत्ति का

शीर्षक पहले से ही पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में

तय किया गया है और पक्षों के मध्य एक

सिविल वाद भी लंबित है, एक अंतरिम

निषेधाज्ञा भी पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में पारित

की जाती है - 'गंगा बक्स सिंह' के एक

मामले में पूर्ण पीठ द्वारा की कानूनी स्थिति

के अनुसार, धारा 145 सीआरपीसी के तहत

कार्यवाही वास्तविक वाद की कार्यवाही से

भौतिक रूप से भिन्न है और इस तरह जब

संपत्ति से संबंधित सिविल वाद में कार्यवाही

एक के बारे में लंबित है तो एस.डी.एम. को

सी.आर.पी.सी. की धारा 145 के तहत

कार्यवाही करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है -

इसलिए, आपेक्षित आदेश को निरस्त किया

जाता है और सी.आर.पी.सी. की धारा 145 के

तहत आपेक्षित कार्यवाही को समाप्त किया

जाता है - तथापि, पक्षकारों को सिविल

न्यायालय में अपने वाद को आगे बढ़ाने की

स्वतंत्रता है - पुनरीक्षण की अनुमति है। (पैरा

7, 10, 11)

आपराधिक पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य (एआईआर 1985 एससी 472)

2. कुंज बिहारी बनाम बलराम और अन्य, (2006) 11 एससीसी 66

3. मोहम्मद आबिद व अन्य बनाम रवि नरेश व अन्य (एसएलपी (आपराधिक) संख्या 544/2022,

4. गंगा बक्स सिंह बनाम सुखदीन, एआईआर 1959 ऑल141.

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

श्री बिमल प्रसाद, पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान वकील और श्री हरि प्रसाद गुप्ता, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान वकील को सुना। निजी उत्तरदाताओं की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

पुनरीक्षणकर्ताओं ने एस.डी.एम, चकिया, चंदौली द्वारा पारित दिनांक 15.7.2009 के आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा द.प्र.स की धारा 145 के तहत कार्यवाही को छोड़ने के लिए पुनरीक्षणकर्ताओं के आवेदन को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि विवादित भूमि के संबंध में सिविल कार्यवाही पहले से ही लंबित है और निषेधाज्ञा उसके पक्ष में दी गई है और शीर्षक के मुद्दे का निर्णय डीडीसी द्वारा किया गया है। चंदौली को खारिज कर दिया गया है।

पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि डी.डी.सी, चंदौली ने दिनांक 23.8.1983 के आदेश द्वारा पहले ही पुनरीक्षणकर्ताओं के पक्ष में शीर्षक का फैसला कर दिया था, जिसके खिलाफ निजी उत्तरदाताओं द्वारा एक समीक्षा आवेदन दायर किया गया था जिसे डी.डी.सी द्वारा

11.2.2011 को खारिज कर दिया गया था, जिसके खिलाफ 2011 की रिट याचिका संख्या 13761 को इस अदालत के समक्ष अधिमानित किया गया था, जिसे भी 8.3.2011 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि 1994 का एक सिविल सूट नंबर 182 भी पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा के लिए दायर किया गया था जिसमें अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए पुनरीक्षणकर्ताओं के आवेदन को सिविल कोर्ट द्वारा दिनांक 8.4.1996 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी और निषेधाज्ञा आदेश भी जारी है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ताओं का नाम पहले ही राजस्व रिकॉर्ड में बदल दिया गया है और उसी के खतौनी 1409-1414 फसली को संशोधन के पृष्ठ 55 पर संलग्न किया गया है। संक्षेप में वकील का तर्क यह है कि एक बार संपत्ति के संबंध में सिविल कार्यवाही लंबित है और उसी संपत्ति के संबंध में शीर्षक भी डीडीसी द्वारा तय किया गया था, तो एस.डी.एम के पास द.प्र.स की धारा 145 के तहत आगे बढ़ने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।

दूसरी ओर विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुलिस स्टेशन की एक रिपोर्ट है कि विवादित संपत्ति का कब्जा लेने के लिए शांति भंग होने की आशंका है, इसलिए, कार्यवाही सही तरीके से शुरू की गई थी।

मैंने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि उसी संपत्ति के संबंध में 1994 का एक सिविल सूट नंबर 182 सिविल जज, चकिया के समक्ष

लंबित है और पुनरीक्षणकर्ता के पक्ष में एक अंतरिम निषेधाज्ञा भी दी गई थी और डी.डी.सी चंदौली ने भी दिनांक 23.8.1983 के आदेश द्वारा पुनरीक्षणकर्ताओं के पक्ष में विवादित संपत्ति के संबंध में शीर्षक का फैसला किया है। इस आदेश की पुष्टि इस न्यायालय तक की गई है, इसलिए, एसडीएम की ओर से उपरोक्त तथ्य की जानकारी के बाद द.प्र.स की धारा 145 के तहत आगे बढ़ने का कोई अवसर नहीं है।

राम सुमेर पुरी महंत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (एआईआर 1985 सुप्रीम कोर्ट 472) के फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि जब किसी संपत्ति के संबंध में सिविल कोर्ट में कार्यवाही लंबित है तो एसडीएम के पास उक्त संपत्ति के खिलाफ द.प्र.स की धारा 145 के तहत कार्यवाही करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।

कुंज बिहारी बनाम बलराम और एक अन्य मामले में, (2006) 11 एससीसी 66 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि एक बार पार्टियों के अधिकार को एक मंच द्वारा तय कर दिया जाता है तो धारा 145 द.प्र.स के तहत कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।

मो. आबिद और अन्य बनाम रवि नरेश और अन्य, 2022 की एसएलपी (आपराधिक) संख्या 5444 में पारित किए गए, निर्णय के पैराग्राफ -4 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बताई गई कानूनी स्थिति नीचे उद्धृत की गई है: -
 "4. हालांकि, यह एक स्वीकृत तथ्य है कि याचिकाकर्ताओं ने पहले ही निषेधाज्ञा के लिए एक मुकदमा दायर कर दिया है जिसमें सिविल

कोर्ट, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश द्वारा 05.12.2020 को एकपक्षीय अंतरिम निषेधाज्ञा दी गई है। एक बार जब सिविल कोर्ट ने मामले को अभिग्रहण कर लिया, तो यह बिना कहे समझा जाता है कि धारा 145/146 द.प्र.स के तहत कार्यवाही आगे नहीं बढ़ सकती है और इसे समाप्त होना चाहिए। शीर्षक या कब्जे के संबंध में पार्टियों के पारस्परिक अधिकारों को अंततः सिविल कोर्ट द्वारा निर्धारित किया जाना है।

इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने **एआईआर 1959 ऑल 141 (गंगा बक्स सिंह बनाम सुखदिन)** में रिपोर्ट किए गए अपने फैसले में द.प्र.स की धारा 145 के तहत कार्यवाही के संबंध में स्थिति तय की है और कहा है कि यह केवल शांति बनाए रखने के हित में है न कि किसी पक्ष के अधिकार के संरक्षण के हित में। आगे यह कहा गया कि द.प्र.स की धारा 145 के तहत कार्यवाही उचित वाद में कार्यवाही से भौतिक रूप से अलग है और कानूनी स्थिति को पैराग्राफ -13 में पूर्ण पीठ द्वारा उजागर किया गया था जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"13. प्रावधानों की प्रकृति से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट को शांति बनाए रखने के लिए यह शक्ति प्राथमिक रूप से दी गई है। व्यक्तिगत अधिकार केवल संयोग से प्रभावित होते हैं।

जांच की प्रकृति अर्ध सिविल है। यह सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आपराधिक न्यायालय द्वारा अतिक्रमण है। इसलिए, यह आवश्यक है कि इस क्षिप्रक्रमण को शांति बनाए रखने के लिए मजिस्ट्रेट पर रखे गए कार्य का निर्वहन करने के लिए

बिल्कुल आवश्यक सीमा तक सावधानीपूर्वक सीमित किया जाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 145 के प्रावधान इसे बिल्कुल स्पष्ट करते हैं।

मजिस्ट्रेट पक्षकारों के दावों के गुण-दोष या विवाद के विषय को रखने के उनके अधिकार की भी जांच नहीं करता है। वह केवल इस सवाल से संबद्ध है कि प्रासंगिक तारीख को वास्तविक भौतिक कब्जे में कौन था। यह भी इंगित करता है कि कार्यवाही का प्रारंभिक बिंदु वह तारीख होनी चाहिए जब वह संतुष्ट था कि शांति भंग होने की आशंका मौजूद थी और जब उसे पहली सूचना मिली थी।

उपरोक्त तथ्य के मददेनजर, एस.डी.एम चकिया, चंदौली द्वारा पारित दिनांक 15.7.2009 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है और द.प्र.स की धारा 145 के तहत उनके समक्ष कार्यवाही को रद्द कर दिया जाता है और पक्षकारों को सिविल कोर्ट में अपने मामलों को आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता है। तदनुसार, पुनरीक्षण की अनुमति दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 172

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3318 / 2022

निजामुद्दीन एवं अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री सफीउल्लाह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 83, 446 एवं 446(3) - आपराधिक

पुनरीक्षण - इस आधार पर दायर किया गया

कि, आक्षेपित आदेश अवैध है तथा अभिलेख

पर साक्ष्य के आधार पर पुनरीक्षण की

पोषणीयता के विरुद्ध है - न्यायालय ने पाया

कि, जब जमानतदारों ने अभियुक्त को

न्यायालय में प्रस्तुत किया था, तो जमानत

बांड की राशि जब्त हो गई थी - उपरोक्त

न्यायिक उदाहरणों में निर्धारित सिद्धांतों से

यह स्पष्ट है कि, जमानत बांड की जब्ती के

बाद भी, यदि अभियुक्त को संबंधित न्यायालय

में जमानतदारों द्वारा प्रस्तुत किया गया होता

तो नरम रुख अपनाते हुए छूट का आदेश

पारित किया जा सकता था। - पुनरीक्षण ने

आक्षेपित आदेश को संशोधित कर निस्तारित -

तदनुसार निर्देश दिया। (पैरा 14, 19, 20)

आपराधिक पुनरीक्षण निस्तारित। (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. राजपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009

सीआरएल.एल.जे. 160,

2. जगन्नाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008

(6) ऑल] 696 (ऑल),

3. जमीला खादर बनाम केरल राज्य 2004

सीआरएलजे 3389 केरल,

4. मोहम्मद कुंजू बनाम कर्नाटक राज्य,

एआईआर 2000 एससी 6,

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा
प्रदत्त)

पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता श्री सफीउल्लाह और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना।

यह पुनरीक्षण, विशेष सत्र परीक्षण संख्या 34 वर्ष 2020 (राज्य बनाम फैसल) मुकदमा अपराध संख्या 207 वर्ष 2020 थाना- बेहजोई जिला- संभल से उत्पन्न आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 09 वर्ष 2022, कंप्यूटर केस संख्या 76 वर्ष 2022 (राज्य बनाम चंद्रपाल और अन्य) में विशेष न्यायाधीश पॉक्सो अधिनियम, संभल, चंदौसी द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.5.2022 के विरुद्ध दायर किया गया है।

आक्षेपित आदेश द्वारा, निचली अदालत ने पुनरीक्षणवादियों को रु. 1,00,000/- की जमानत की संपूर्ण राशि ज़ब्त करने के बाद जमानत राशि के रूप में रु. 50,000/- जमा करने का आदेश दिया है।

वर्तमान पुनरीक्षण इस आधार पर दायर किया गया है कि आदेश अवैधानिक है और पत्रावली पर मौजूद साक्ष्य के भार के विरुद्ध है और अनुमानों और परिस्थितियों पर आधारित है। पुनरीक्षणवादियों को उनके विरुद्ध धारा 446 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही की जानकारी नहीं थी, जब उन्हें पता चला, तो उन्होंने आरोपी -फैसल को तलाश किया और उसे निचली अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए कहा। पुनरीक्षणवादी बहुत गरीब व्यक्ति हैं और अपनी आजीविका कमाने के लिए मजदूरी करते हैं। वे मजदूरी के लिए दिल्ली गए थे और उनके परिवार को उनके खिलाफ शुरू की गई उपरोक्त कार्यवाही के बारे में कोई जानकारी

नहीं थी। पुनरीक्षणवादियों ने उपरोक्त आधार पर राशि माफ करने के लिए निचली अदालत के समक्ष एक आवेदन 9वीं दाखिल किया, लेकिन निचली अदालत ने राशि को माफ कर रूप 50,000/- कर दिया जिसे दो दिन के भीतर जमा करना था। निचली अदालत ने आरोपी को हिरासत में ले लिया और उसे जेल भेज दिया, इसलिए, आक्षेपित आदेश कानून के खिलाफ है और कानून की नजर में बरकरार रखने योग्य नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है। यदि यह न्यायालय 50,000/- रुपये की जमानत राशि माफ नहीं करता है, तो पुनरीक्षणवादियों को अपूरणीय क्षति और चोट होगी।

आक्षेपित आदेश मय शपथ पत्र की प्रति पुनरीक्षण के साथ संलग्न की गई है।

आदेश दिनांकित 15.10.2022 के द्वारा इस न्यायालय ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या की अनुमति दी थी एवं दोनों पुनरीक्षणवादियों ने अभियुक्त फैसल की रिहाई हेतु इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में जमानत बंधपत्र निष्पादित किया था। आदेश दिनांक 31.3.2022 के अवलोकन से पता चलता है कि धारा 83 के तहत प्रक्रिया के बावजूद, आरोपी फैसल उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए, पुनरीक्षणवादियों को नोटिस जारी किए गए जो उन्हें तामील कराए गए; परिणामस्वरूप जमानत बांड ज़ब्त कर लिए गए और एक आपराधिक प्रकीर्ण वाद अंतर्गत धारा 446 दंड प्रक्रिया संहिता पंजीकृत कर लिया गया और जिला मजिस्ट्रेट संभल के माध्यम से एक लाख रुपये की जमानत राशि वसूल करने का आदेश पारित किया गया।

दिनांक 10.5.2022 को आरोपी-फैसल उपस्थित हुआ और स्वयं को न्यायिक हिरासत में लेने का अनुरोध किया और उसके बाद सत्र परीक्षण की आगे की कार्यवाही की गई। पुनरीक्षणवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा मौखिक रूप से सूचित किया गया है कि मुकदमे की समाप्ति के बाद अभियुक्त फैसल को दोषी ठहराया गया है।

विचारण न्यायालय के समक्ष, दोनों पुनरीक्षणवादियों ने 10.5.2022 को एक आवेदन दायर किया जिसमें कहा गया कि वे नहीं जानते थे कि आरोपी फैसल फरार हैं; पता चलने पर उन्होंने संभावित स्थानों पर आरोपी की तलाश की लेकिन वह देश के पूर्वी हिस्से में चला गया था। उन्हें वसूली कार्यवाही के बारे में पता नहीं चल सका, जब उन्हें आरोपी मिला, तो वे उसे न्यायालय के सामने लाए और प्रार्थना की कि आरोपी को हिरासत में लिया जाए और उनके खिलाफ वसूली कार्यवाही समाप्त की जाए।

पुनरीक्षणवादियों को सुनने के बाद, विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि जमानतदारों ने आरोपी को 10.5.2022 को पेश कर दिया, किंतु उससे पहले ही धारा 446 (3) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत राज्य के पक्ष में जमानत बांड की जमानत राशि जब्त कर ली गई थी। कारण दर्ज करते के बाद, न्यायालय ने 50,000/- रुपये तक की राशि माफ कर दी और 1,00,000/- रु. की जगह 50,000/- रु. की राशि दो दिनों के भीतर जमा करने का निर्देश दिया।

उपरोक्त आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षणवादियों ने इस पुनरीक्षण को इस आधार पर दायर किया है कि वे बहुत गरीब

श्रमिक हैं और किसी भी तरह अपना जीवन यापन कर रहे हैं और किसी भी तरह अपना और अपने परिवार के सदस्यों का पेट पाल रहे हैं; वे इतनी बड़ी रकम देने में असमर्थ हैं; उन्हें या तो ऐसी राशि जमा करने से पूरी तरह छूट दी जानी चाहिए या उन्हें उचित समय के भीतर मामूली राशि जमा करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

धारा 446 (3) दंड प्रक्रिया संहिता इस प्रकार है;

"न्यायालय ऐसा करने का कारण दर्ज करने के बाद, उल्लिखित दंड के किसी भी हिस्से को माफ कर सकता है और केवल आंशिक भुगतान लागू कर सकता है।"

राजपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 सीआरएल.एलजे 160 में, "जहां जमानतदारों ने आरोपी को न्यायालय के समक्ष पेश किया है, वहां जमानत राशि की वसूली के मामले में उदार रुख अपनाया जा सकता है।

जगन्नाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 (6) एएलजे 696 (सभी) में, यह माना गया है कि "जहां जमानतदार न्यायालय के सामने पेश हुआ, तो सजा से मुक्ति और छूट के लिए उसका आवेदन केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा कि अदालत ने पहले ही पूरी राशि जब्त करने का आदेश पारित कर दिया है।"

इस मामले में यद्यपि विचारण न्यायालय ने धारा 446 (3) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है, लेकिन यह भी ध्यान दिया गया है कि जब जमानतदारों ने आरोपी को अदालत में पेश किया, उससे पहले ही जमानत बांड की राशि जब्त कर ली गई थी। उपरोक्त न्यायिक

उदाहरणों में निर्धारित सिद्धांतों से, यह स्पष्ट है कि जमानत बांड जब्त होने के बाद भी, यदि अभियुक्त को संबंधित न्यायालय में जमानतदारों द्वारा पेश किया गया था, तो उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए छूट का आदेश पारित किया जा सकता है।

जमीला खादर बनाम केरल राज्य, 2004 सीआरएलजे 3389 केरल में, यह माना गया है कि "अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय, जो भी हो, जहां दंड की माफी की आवश्यकता वाली परिस्थितियां होती हैं, वहां हमेशा विचार कर सकता है, यहां तक कि बाद के चरण में भी।"

मो. कुन्जू बनाम कर्नाटक राज्य, ऐ आई आर 2000 एस सी 6 में, " 25,000/- रुपये की जमानत राशि केवल 5,000/- रुपये यानी कुल राशि का 1/5 वाँ हिस्सा माफ़ कर दी गई"

" जमीला खादर (उपरोक्त) में 5,000/- रु. की पूरी राशि का भुगतान करने का आदेश देने के बजाय, छूट के बाद मात्र 5,00/- रुपये जमा करने का निर्देश दिया गया।

बहस के दौरान, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने राय दी कि यदि कुल राशि का 1/5वां हिस्सा पुनरीक्षणवादियों द्वारा जमा करने का निर्देश दिया जाता है और बाकी राशि माफ कर दी जाती है, तो यह न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगा।

समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.5.2022 को इस हद तक संशोधित किया जाता है कि 50,000/- रु. जमा करने के बजाय पुनरीक्षणवादियों को इस आदेश की तारीख से एक महीने के भीतर 20,000/- रु. का भुगतान करना होगा।

ऊपर बताए अनुसार इस आदेश के अनुपालन की स्थिति में, धारा 446 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कार्यवाही निचली अदालत द्वारा तर्कसंगत आदेश पारित करके समाप्त कर दी जाएगी। इस आदेश की एक प्रति अनुपालन एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु निचली न्यायालय को प्रेषित की जाये।

उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, पुनरीक्षण निस्तारित किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 174

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय,

द्वितीय अपील संख्या 1087/2015

सरनाम सिंह, लेखपाल चकबंदी

...वादी/अपीलकर्ता

बनाम

प्रीतम कुमारी एवं अन्य ...प्रतिवादी/विपक्षी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री मनोज कुमार शर्मा,

श्रीमती कृष्णा सिंह, श्री विजेन्द्र पाल सिंह

अधिवक्ता विपक्षी: श्री मनोज कुमार गुप्ता, श्री

महेश नारायण सिंह

सिविल कानून- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

- धारा 100 - हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 -

धारा-25 निचली अपीलीय के निर्णय एवं डिक्री

के उस भाग के विरुद्ध द्वितीय अपील जिसके

द्वारा वादी के विरुद्ध प्रतिवादी को स्थायी

गुजारा भत्ता प्रदान किया गया है- विचारणीय

न्यायालय ने विवाह को शून्य एवं अमान्य

घोषित करने के लिए दायर वाद को शून्य

घोषित किया तथा वैवाहिक अधिकारों की

पुनर्स्थापना के लिए दायर वाद को भी निरस्त कर दिया- चूंकि विचारणीय न्यायालय ने विवाह को शून्य/अप्रभावी घोषित करने का डिक्री पारित किया था, इसलिए प्रतिवादी-पत्नी द्वारा दायर सिविल अपील को निरस्त करते हुए प्रतिवादी-पत्नी के पक्ष में भरण-पोषण/स्थायी गुजारा भत्ता देने का आदेश देने का कोई अवसर नहीं था- निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रतिवादी-पत्नी द्वारा दायर सिविल अपील को निरस्त करते हुए निचली अपीलीय न्यायालय द्वारा एच.एम. अधिनियम की धारा 25 के तहत शक्ति का प्रयोग करने के रूप में एच.एम. अधिनियम की धारा 25 के तहत कोई आवेदन रिकॉर्ड पर नहीं है, जिसमें निचली अपीलीय अदालत के डिक्री की पुष्टि करते हुए विवाह को शून्य एवं अप्रभावी घोषित किया गया है, जो स्पष्ट रूप से विधि की त्रुटि के कारण दूषित है। (पैरा 15, 16, 17, 20 एवं 21) (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. अब्बयोल्ला एम. सुब्बा रेड्डी बनाम पद्माम्बना, 1998 0 सुप्रीम (एपी) 477;
2. जे. राजेश्वरकांत शाहदेव बनाम नीलम शाहदेव, 1980 0 सुप्रीम (एमपी) 364;
3. जय कृष्ण पंडित बनाम नाना कुमारी, 2007 0 सुप्रीम (जम्मू-कश्मीर) 190;
4. अमर चंद शर्मा बनाम श्रीमती सीता देवी, 2005 0 सुप्रीम (राजस्थान) 291.

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार शर्मा और श्रीमती कृष्णा सिंह तथा प्रत्यर्थी - प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता श्री महेश नारायण सिंह का पक्ष रखते हुए अधिवक्ता श्री मनोज कुमार गुप्ता को सुना गया।

2. तात्कालिक द्वितीय अपील दिनांक 17.10.2015 के निर्णय और डिक्री के उस भाग के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा सिविल अपील संख्या 44/2010 और सिविल अपील संख्या 45/2010 में वादी-अपीलकर्ता (सरनाम सिंह) के विरुद्ध प्रत्यर्थी/प्रत्यर्थी संख्या 1 (प्रीतम कुमारी) को स्थायी गुजारा भत्ता प्रदान किया गया है, जो मूल वाद संख्या 257/1997 से उत्पन्न एक सामान्य निर्णय द्वारा निर्णीत किया गया था।

3. मूल वाद संख्या 257/1997 वादी-अपीलकर्ता (सरनाम सिंह) द्वारा विवाह को शून्य और अप्रभावी घोषित करने के लिए दायर किया गया है। मूल वाद संख्या 213/2003 को प्रत्यर्थी संख्या 1 (प्रीतम कुमारी) द्वारा वैवाहिक अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के तहत दायर किया गया था।

4. मूल वाद संख्या 257 सन् 1997 के वादी मामले में संक्षेप में यह है कि वादी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह की बात हुई थी लेकिन पत्नी प्रीतम कुमारी और उनके परिवार के सदस्यों के धोखाधड़ीपूर्ण कृत्य के कारण, मध्यस्थता हुई और विवाह का प्रस्ताव समाप्त हो गया लेकिन प्रीतम कुमारी के पिता ने वादी

(सरनाम सिंह) का अवैध रूप से अपहरण कर लिया है और अवैध रूप से विवाह कर लिया है जो हिंदू विवाह अधिनियम के तहत निर्धारित कानूनी विवाह नहीं है। वादपत्र में यह भी उल्लेख किया गया है कि उनके बीच पति-पत्नी का कोई रिश्ता नहीं था, इसलिए कथित विवाह को शून्य घोषित किया जाए। लिखित बयान में प्रीतम कुमारी ने वाद में लगाए गए आरोपों से इनकार किया तथा कहा कि वैध विवाह हुआ है, इसलिए विवाह को अमान्य घोषित करने का वाद खारिज किया जाए। मूल वाद संख्या 213/2003 का वाद मामला संक्षेप में यह था कि प्रीतम कुमारी का विवाह 5/6.7.1997 को रीति-रिवाज के अनुसार सरनाम सिंह से हुआ था, लेकिन पति सरनाम सिंह ने उसे छोड़ दिया है, इस प्रकार, वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए तत्काल वाद पत्नी प्रीतम कुमारी द्वारा दायर किया गया है। लिखित बयान में पति सरनाम सिंह ने वाद में लगाए गए आरोपों से इनकार किया और कहा कि उनके बीच हिंदू विवाह अधिनियम के अनुसार कोई वैध विवाह नहीं हुआ है, ऐसे में वादी वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए दायर मुकदमे में दावा की गई राहत की हकदार नहीं है। लिखित बयान में यह भी उल्लेख किया गया है कि प्रत्यर्थी ने विवाह को अमान्य घोषित करने के लिए पहले ही वाद संख्या 257/1997 दायर कर दिया है।

5. उपरोक्त दोनों मुकदमों को समेकित किया गया और एक साथ सुनवाई की गई। पक्षकारों ने अपने मामलों के समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दाखिल किए। ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 26.8.2010 के निर्णय और डिक्री

द्वारा मुकदमा संख्या 257/1997 पर फैसला सुनाया और विवाह को अमान्य घोषित कर दिया और वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए दायर मुकदमा संख्या 213/2003 (प्रीतम कुमारी बनाम सरनाम सिंह) को खारिज कर दिया। सिविल जज (एसडी), एटा द्वारा पारित दिनांक 26.8.2010 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रीतम कुमारी ने मुकदमा संख्या 213/2003 और 257/1997 के संबंध में दो सिविल अपील अर्थात् सिविल अपील संख्या 44/2010 और सिविल अपील संख्या 45/2010 दायर की। दोनों सिविल अपीलों को समेकित किया गया और जिला न्यायाधीश, एटा द्वारा एक साथ सुनवाई की गई। जिला न्यायाधीश, एटा ने दिनांक 17.10.2015 के निर्णय और डिक्री द्वारा दोनों अपीलों को खारिज कर दिया, लेकिन निर्देश दिया कि प्रत्यर्थी (सरनाम सिंह) को भरण-पोषण के रूप में प्रति माह 6500/- रुपये और स्थायी गुजारा भत्ता के लिए अपीलकर्ता (प्रीतम कुमारी) को 2 लाख रुपये का भुगतान करना होगा। अतः सरनाम सिंह (वादी) की ओर से यह दूसरी अपील है।

6. प्रत्यर्थी प्रीतम कुमारी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष कोई द्वितीय अपील दायर नहीं की गई है।

7. इस न्यायालय ने दिनांक 15.12.2015 को कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करने के बाद द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया और इस आशय का अंतरिम आदेश दिया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए भरण-पोषण के आदेश की आधी राशि पर रोक रहेगी। इस न्यायालय द्वारा जिला न्यायालयों

के रिकॉर्ड भी तलब किये गये थे। कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न यहां उद्धृत किए गए हैं: -

1. क्या हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण का आदेश उस व्यक्ति द्वारा मांगी गई राहत के बिना पारित किया जा सकता है जिसके पक्ष में ऐसा आदेश पारित किया जा रहा है? यदि हां, तो इसका प्रभाव।

2. क्या प्रथम अपीलीय अदालत ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण के बिंदु पर पक्षों को सुनवाई का अवसर नहीं दिया था? यदि हां, तो इसका प्रभाव।

8. दिनांक 15.12.2015 के आदेश के अनुसरण में जिला न्यायालयों के अभिलेख इस न्यायालय को प्राप्त हो गये हैं जिनका अवलोकन मेरे द्वारा किया जा चुका है। प्रत्यर्थी-प्रीतम कुमारी पहले ही इस अपील में चेतावनी के माध्यम से उपस्थित हो चुकी हैं।

9. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि एक बार विवाह को शून्य/अप्रभावी घोषित करने के मुकदमे में फैसला सुनाया गया है और प्रथम अपील में डिक्री की पुष्टि की गई है, तो प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा पोषणीयता का अनुदान स्पष्ट रूप से गलत है। उन्होंने आगे कहा कि अपीलीय अदालत ने सीपीसी के आदेश 41 नियम 31 के तहत

पहली अपील पर निर्णय लेते समय निर्धारण बिंदु तैयार नहीं किया है, ऐसे में, प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा भरण-पोषण देने का आदेश स्पष्ट रूप से गलत है। उन्होंने यह भी कहा कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण का आदेश तब तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक कार्यवाही में संबंधित पक्ष द्वारा कोई आवेदन और राहत का दावा नहीं किया जाता है। उन्होंने आगे कहा कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत पोषणीयता के बिंदु पर अपीलीय अदालत द्वारा कोई अवसर नहीं दिया गया है, इसलिए निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री गलत है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने मुकदमा संख्या 213/2003 में विवादक संख्या 2 और मुकदमा संख्या 257/1997 में विवादक संख्या 1 पर निर्णय करते समय दर्ज किए गए ट्रायल कोर्ट के निष्कर्ष को इस आशय से रखा कि सरनाम सिंह और प्रीतम कुमारी के बीच शादी हिंदू के अनुसार नहीं हुई है। विवाह अधिनियम के अनुसार, विवाह को शून्य और अप्रभावी माना जाता है। अपीलकर्ता सरनाम सिंह के मुकदमे पर फैसला सुनाते समय और प्रत्यर्थी प्रीतम कुमारी के मुकदमे को खारिज करते समय ट्रायल कोर्ट द्वारा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर विचार किया गया। ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए तथ्य की पुष्टि अपील में की गई थी, लेकिन अपीलीय अदालत ने मनमाने ढंग से प्रत्यर्थी प्रीतम कुमारी को 6500/- रुपये का मासिक भरण-पोषण और 2 लाख रुपये की एकमुश्त राशि प्रदान की है, जो स्पष्ट रूप से गलत है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने अन्य उच्च न्यायालयों के

निर्णयों पर अवलम्ब लिया, जो यहां दिए गए हैं: -

1. अब्बायोला एम. सुब्बा रेड्डी बनाम पद्मामक्सना, 1998 0 सुप्रीम (एपी) 477;

2. जे. राजेश्वरकांत शाहदेव बनाम नीलम शाहदेव, 1980 0 सुप्रीम (एमपी) 364;

3. जय कृष्ण पंडिता बनाम नाना कुमारी, 2007 0 सुप्रीम (जे एंड के) 190; और

4. अमर चंद शर्मा बनाम श्रीमती सीता देवी, 2005 0 सुप्रीम (राजस्थान) 291

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलार्थी ने भरण-पोषण राशि की आधी राशि प्रतिवादी को देने के लिए इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश की शर्तों का पालन नहीं किया है, ऐसे में अपीलार्थी सुनवाई का हकदार नहीं है तथा द्वितीय अपील खारिज किये जाने योग्य है। उन्होंने आगे कहा कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा कानून के अनुसार मासिक भरण-पोषण/एकमुश्त भरण-पोषण प्रदान किया गया है, क्योंकि अपीलकर्ता, प्रत्यर्थी के बीच हुए वैध विवाह के आधार पर उसे भरण-पोषण देने में विफल रहा है। उन्होंने यह भी दलील दी कि निचली अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्ष में दूसरी अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता और दूसरी अपील खारिज किये जाने योग्य है। उन्होंने यह भी दलील दी कि इस न्यायालय द्वारा तैयार किए गए विधि के सारवान प्रश्न द्वितीय अपील में सम्मिलित नहीं हैं, इसलिए द्वितीय अपील खारिज किए

जाने योग्य है। उन्होंने आगे दलील दी कि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई 500/- रुपये की भरण-पोषण राशि प्रत्यर्थी को समय पर नहीं दी गई है, इसलिए अपीलकर्ता इस मामले में किसी भी राहत का हकदार नहीं है।

11. प्रत्युत्तर में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष कार्यवाही की अवधि के दौरान दी गई गुजारा भत्ता की मासिक राशि प्रत्यर्थी को भुगतान कर दी गई है और रसीद को स्थगन आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के साथ संलग्न किया गया है। दूसरी अपील के साथ, यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष शर्तों का पालन नहीं किया है। उन्होंने आगे कहा कि जहां तक इस न्यायालय द्वारा पारित अतिरिक्त अंतरिम आदेश के अनुपालन का सवाल है, अपीलकर्ता ने दिनांक 15.12.2015 के आदेश को संशोधित करने के लिए संशोधन आवेदन संख्या 332915/2017 दायर किया है जो अभी भी इस न्यायालय के समक्ष लंबित है। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा स्थगन आवेदन पर कोई जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया गया है, जिसमें हलफनामे में दिए गए इस आशय से इनकार किया गया है कि वादी ने मुकदमे के दौरान लगाई गई शर्तों का पालन किया है।

12. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

13. वर्तमान द्वितीय अपील निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण विधि प्रश्नों पर स्वीकार की गई है, अतः इसकी सुनवाई उन महत्वपूर्ण विधि प्रश्नों पर की जाएगी जो अपील स्वीकार किए जाने के समय तैयार किए गए थे, जो निम्नानुसार हैं:-

"1.क्या हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण का आदेश उस व्यक्ति द्वारा मांगी गई राहत के बिना पारित किया जा सकता है जिसके पक्ष में ऐसा आदेश पारित किया जा रहा है? यदि हां, तो इसका प्रभाव।

2. क्या प्रथम अपीलीय अदालत ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण के बिंदु पर पक्षों को सुनवाई का अवसर नहीं दिया था? यदि हां, तो इसका प्रभाव।

14. इस न्यायालय द्वारा बनाए गए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने के लिए, ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष के प्रासंगिक हिस्से का अवलोकन आवश्यक होगा जो निम्नानुसार हैं: -

वाद सं०-213/03 के वाद बिन्दु सं०-2 एवं वाद सं०357/97 के वाद बिन्दु सं०-1 का निस्तारण:-

वाद सं० 213/03, श्रीमती प्रीतमकुमारी बनाम सरनामसिंह में वाद बिन्दु सं०-2 इस आशय का विरचित है कि,- " क्या वादनी के पिता व सहयोगियों ने विपक्षी का अपहरण करके बिना विपक्षी की सहमति के, जबरन शादी सम्पन्न करायी?" जबकि वाद सं. 357/97 सरनामसिंह बनाम प्रीतम कुमारी में वाद बिन्दु सं०-1 इस आशय का विरचित किया गया है कि- "क्या वादी की शादी, प्रतिवादिनी के साथ अनुचित दबाव डालकर सम्पन्न करायी गयी?"

"उपरोक्त विवेचना एवं पत्रावली पर उपलब्ध मौखिक व अभिलेखीय साक्ष्य से यह तथ्य साबित पाया जाता है कि, वादिया प्रीतमकुमारी के पिता व सहयोगियों ने विपक्षी सरनामसिंह का अपहरण कर उस पर अनुचित दबाव डालकर जबरन उक्त शादी सम्पन्न करायी। तदनुसार वाद सं० 213/03 का वाद बिन्दु सं०-2 व वाद सं० 357/97 का वाद बिन्दु सं०-1 सकारात्मक

रूप में निर्णित किया जाता है।"

ट्रायल कोर्ट के निर्णय का कार्यकारी अंश इस प्रकार है:-

जहां तक वाद सं० 357/97 का प्रश्न है, ऊपर की गयी विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि, वादी सरनामसिंह की शादी प्रतिवादिनी प्रीतमकुमारी के साथ अनुचित दबाव डालकर, उसकी इच्छा के विरुद्ध सम्पन्न करायी गयी थी। ऐसी स्थिति में पक्षों के मध्य सम्पन्न हुयी उक्त शादी, शून्य व निष्प्रभावी घोषित किये जाने योग्य है। इस प्रकार यह वाद सव्यय आज्ञप्त किये जाने योग्य है।
आदेश

वाद सं० 213/03 प्रीतमकुमारी बनाम सरनामसिंह, स्वयय खारिज किया जाता है।

वाद सं० 357/97 सरनामसिंह बनाम प्रीतमकुमारी आदि सव्यय आज्ञप्त करते हुये याची व विपक्षी प्रीतमकुमारी के मध्य हुये वाईडेविल विवाह को शून्य व निष्प्रभावी घोषित किया जाता है।

इस निर्णय की एक प्रति वाद सं० 357/97 सरनामसिंह

बनाम प्रीतमकुमारी में रखी जाये।

दिनांक: 26.08.2010

(वंशबहादुर यादव) सिविल जज(सी.डि.) एटा।

आज यह निर्णय मेरे द्वारा खुले न्यायालय में दिनांकित व हस्ताक्षरित करके उद्घोषित किया गया।

दिनांक: 26.08.2010

(वंशबहादुर यादव) सिविल जज(सी.डि.) एटा।

निचली अपीलीय अदालत के फैसले का प्रासंगिक/कार्यकारी भाग जिसके द्वारा ट्रायल कोर्ट के निर्णय और डिक्री को बरकरार रखा गया लेकिन स्थायी गुजारा भत्ता का डिक्री प्रदान किया गया, निम्नानुसार है:-

पक्षकारों की बहस को सुनकर तथा पत्रावली का अवलोकन करने से यह विदित होता है कि चूंकि इस अपील में पक्षकार सन् 1997 से ही अलग रह रहे हैं और उन्हें अलग रहते हुए लगभग 18 वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है तथा वे मुकदमें के विचाराधीन रहने के दौरान भी कभी साथ-साथ नहीं रहे और इस बीच उनके सम्बन्धों में भी काफी कड़वाहट आ चुकी है और अब ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पक्षकार, पति व पत्नी की तरह साथ-साथ रह कर भी, एक-दूसरे

के प्रति वैवाहिक दायित्वों का पालन नहीं कर सकते और ऐसा करना उनके लिये असंभव है। अतः मैं विद्वान अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित तलाक की डिक्री को निरस्त किये जाने योग्य नहीं पाता हूँ, अपितु उसकी बजाय तलाक की डिक्री ज्यों-की त्यों रखते हुए, धारा-25 हिन्दू विवाह अधिनियम के तहत, श्रीमती प्रतिमा कुमारी के लिये स्थाई भरण-पोषण की धनराशि की व्यवस्था किया जाना न्योयोचित होगा।

पक्षकारों को यह स्वीकार है कि सरनाम सिंह लेखपाल के पद पर नियुक्त हैं और उसे इस पद पर नौकरी करते हुए, लगभग 18 वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है, इसलिये उसका वेतन इस समय किसी भी दशा में 20,000/- रूपये से कम नहीं होगा, अतः धारा 25 हिन्दू विवाह अधिनियम के तहत, श्रीमती प्रतिमा कुमारी के लिये, सरनाम सिंह मुव० 6500/- रूपये प्रतिमाह अदा करता रहेगा। यदि 3 माह तक यह धनराशि अदा करने में उसको ओर से डिफॉल्ट किया जाता है तो श्रीमती प्रतिमा कुमारी, इस

संबंध में इज़राय दाखिल कर सकती है।

इसके साथ ही साथ, चूंकि पक्षकारों के मध्य पहले मूलवाद और फिर अपील चलते हुए लगभग 18 वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है, इसलिये एकमुश्त धन राशि भी श्रीतमी प्रतिमा को दिलाया जाना न्यायोचित होगा और यह धनराशि मुव० 2 लाख रू० आज से अंदर 2, सरनामसिंह के द्वारा उसे प्रदत्त कर दी जायगी।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर, दोनों अपील निरस्त किये जाने योग्य हैं।

तदनुसार, दोनों सिविल अपील्स, निरस्त की जाती है, किन्तु विपक्षी-सरनाम सिंह को यह निर्देश दिया जाता है कि वह, इस निर्णय व आदेश की दिनांक से मुव० 6500/- रूपये प्रतिमाह, बतौर भरण-पोषण धनराशि, प्रत्येक माह की 10 तारीख तक श्रीमती प्रीतम कुमारी को अदा करें। यदि 3 माह तक यह धनराशि अदा करने में उसकी ओर से डिफॉल्ट किया जाता है तो श्रीमती प्रीतम कुमारी, इस संबंध में इज़राय करके यह रकम प्राप्त कर सकती है।

इसके अतिरिक्त
विपक्षी- सरनामसिंह,
एकमुश्त धनराशि के रूप में,
मु० 2 लाख रु० आज से 2
अंदर माह, श्रीमती प्रीतम
कुमारी को अदा करना
सुनिश्चित करे।

भरण-पोषण एवं
वाद व्यय की धनराशि को
प्राप्त करने के लिये, श्रीमती
प्रीतम कुमारी, नियमानुसार
कार्यवाही कर सकती है।

मूल अभिलेख,
अविलंब विद्वान अधीनस्थ
न्यायालय, वापस भेजा जाय।

इस निर्णय व आदेश
की एक प्रति, सिविल अपील
सं०-45 सन् 2010 श्रीमती
प्रीतम कुमारी प्रति
सरनामसिंह की पत्रावली पर
रखी जाय।

अक्टूबर 17, 2015

(कमल किशोर शर्मा)

जिला न्यायाधीश, एटा
निर्णय एवं आदेश, आज मेरे
द्वारा खुले न्यायालय में
हस्ताक्षरित व दिनांकित कर,
उद्घोषित किये गये।

अक्टूबर 17, 2015

(कमल किशोर शर्मा)

जिला न्यायाधीश, एटा

15. निचली अपीलीय अदालत के निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि निचली

अपीलीय अदालत ने इस आधार पर भरण-पोषण/स्थायी गुजारा भत्ता देने का आदेश दिया है कि निचली अदालत की तलाक की डिक्री थी, हालांकि निचली अदालत ने विवाह को शून्य/अप्रभावी घोषित करते हुए डिक्री पारित की थी, ऐसे में प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा दायर सिविल अपील को खारिज करते हुए प्रत्यर्थी-पत्नी के पक्ष में भरण-पोषण/स्थायी गुजारा भत्ता देने का आदेश देने का कोई अवसर नहीं था, ऐसे में भरण-पोषण/स्थायी गुजारा भत्ता के लिए निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री कानून की स्पष्ट त्रुटि से दूषित है।

16. जहां तक पत्नी द्वारा दायर सिविल अपील को खारिज करते समय हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत क्षेत्राधिकार का उपयोग करने का सवाल है, तो हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 का अवलोकन आवश्यक होगा जो निम्नानुसार है: -

25. स्थायी निर्वाहिका और
भरण-पोषण-

(1) इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई भी न्यायालय, डिक्री पारित करने के समय या उसके पश्चात् किसी भी समय, यथास्थिति, पति या पत्नी द्वारा इस प्रयोजन से किए गए आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि प्रत्यर्थी उसके भरण-पोषण और संभाल के लिए ऐसी कुल राशि या ऐसी मासिक अथवा

कालिक राशि, जो प्रत्यर्थी की अपनी आय और अन्य सम्पत्ति को, यदि कोई हो, आवेदक या आवेदिका की आय और अन्य सम्पत्ति को तथा पक्षकारों के आचरण और मामले की अन्य परिस्थितियों को देखते हुए न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, आवेदक या आवेदिका के जीवन-काल से अनधिक अवधि के लिए संदत करे और ऐसा कोई भी संदाय यदि यह करना आवश्यक हो तो, प्रत्यर्थी की स्थावर सम्पत्ति पर भार द्वारा प्रतिभूत किया जा सकेगा।

(2) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् पक्षकारों में से किसी की भी परिस्थितियों में तब्दीली हो गई है तो वह किसी भी पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसी रीति से जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ऐसे किसी आदेश में फेरफार कर सकेगा या उसे उपांतरित अथवा विखण्डित कर सकेगा।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उस पक्षकार ने जिसके पक्ष में

इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है, पुनर्विवाह कर लिया है या यदि ऐसा पक्षकार पत्नी है तो वह सतीव्रता नहीं रह गई है, या यदि ऐसा पक्षकार पति है तो उसने किसी स्त्री के साथ विवाहबाह्य मैथुन किया है तो वह दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसे किसी आदेश का ऐसी रीति में, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे, परिवर्तित, उपांतरित या विखण्डित कर सकेगा।

17. निचली अदालत के रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि रिकॉर्ड पर हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 25 के तहत कोई आवेदन नहीं था, जैसे, निचली अपीलीय अदालत द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 25 के तहत शक्ति का प्रयोग किया गया था। प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा दायर सिविल अपील को खारिज करना, ट्रायल कोर्ट के निर्णय की पुष्टि करना, विवाह को शून्य और अप्रभावी घोषित करना कानून की स्पष्ट त्रुटि से दूषित है।

18. जहां तक ट्रायल कोर्ट द्वारा मासिक भरण-पोषण दिए जाने का सवाल है, ट्रायल कोर्ट द्वारा विवाह को शून्य और अप्रभावी घोषित करने के अंतिम निर्णय और डिक्ली पारित करने के साथ ही यह समाप्त हो गया है, ऐसे में ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए मासिक भरण-पोषण पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है।

19. चूंकि सिविल अपील में प्रतिवादी-पत्नी द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 25 के तहत कोई आवेदन नहीं किया गया था, इसलिए यह सवाल ही नहीं था कि निचली अपीलीय अदालत ने पत्नी के पक्ष में भरण-पोषण का आदेश पारित करने से पहले सिविल अपील में अपीलकर्ता-पति को सुनवाई का अवसर प्रदान किया है।

20. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अब्बायोलो एम सुब्बा रेड्डी (उपरोक्त) में उद्धृत आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का मामला प्रासंगिक है। अब्बायोलो एम सुब्बा रेड्डी (उपरोक्त) में दिए गए उपर्युक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 26, 31 और 32 निम्नानुसार हैं:-

26. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत, जब उसकी शादी धारा 11 के तहत शून्यता के आदेश द्वारा या हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 से 14 के तहत परिकल्पित एक तरह के आदेश को पारित करके रद्द कर दी जाती है, तो एक पत्नी जिसका विवाह शून्य है, वह अधिकार के रूप में स्थायी भरण-पोषण की राहत की हकदार होगी, और इसलिए, यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955, इस तथ्य

के बावजूद कि विवाह अमान्य है, यह मानता है कि पत्नी को कम से कम सीमित प्रयोजन के लिए गुजारा भत्ता और भरण-पोषण के लिए आवेदन करने का अधिकार है। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस वैधानिक इरादे को इस मामले में भरण-पोषण के प्रत्यर्थी के दावे पर विचार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। इस विवाद के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने श्रीमती राजेश बाई और अन्य बनाम शांता बाई मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले पर अवलम्ब लिया। उस मामले में मृतक की पहली पत्नी ने अपने मृत पति के भाइयों और अपने पति की दूसरी पत्नी राजेश बाई के खिलाफ बंटवारे का मुकदमा दायर किया था। इस मुकदमे में प्रतिवादियों ने दलील दी थी कि वादी को उसके पति ने जाति प्रथा के अनुसार तलाक दे दिया था और तलाक के बाद उसने राजेश बाई से दूसरी शादी कर ली थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने मृतक के शांता बाई के साथ

विद्यमान प्रथम विवाह के मद्देनजर राजेश बाई का विवाह शून्य मानते हुए, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 25 के समरूप प्रावधानों पर अवलम्ब लेते हुए तथा न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सीपीसी की धारा 151 के तहत न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों पर भरोसा करते हुए, दूसरी पत्नी राजेश बाई को भरण-पोषण प्रदान किया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार टिप्पणी की: "हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 द्वारा मान्यता प्राप्त अधिकारों को तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के अधीन किसी भी सिविल कार्यवाही में स्पष्ट रूप से लागू किया जा सकता है, ताकि सीपीसी की धारा 151 द्वारा न्यायालयों को प्रदत्त अंतर्निहित शक्तियों का सहारा लेकर न्याय के उद्देश्यों को पूरा किया जा सके। वैधानिक संदर्भों से यह संकेत नहीं मिलता कि इस संबंध में कोई निषेध या कोई विशिष्ट प्रावधान है। दूसरी ओर, यह सिद्धांत वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त है कि विवाह को विधितः शून्य

घोषित करने के लिए डिक्ली पारित किए जाने पर, न्यायालय को गुजारा भत्ता और भरण-पोषण के संबंध में आदेश देने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त है। इसलिए, जो बात विशेष कार्यवाही में उपलब्ध हो सकती है, उसे तब उपलब्ध नहीं कहा जा सकता जब वही मुद्दा सक्षम सिविल कार्यवाही में सहवर्ती रूप से शामिल हो।" विद्वान न्यायाधीश ने आगे कहा: "अंततः, अंतर्निहित शक्तियों की सहायता से सीपीसी की धारा 151 के तहत राहत को आधार बनाकर और हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 में अंतर्निहित सिद्धांत का उपयोग करते हुए, यह निहित है कि भरण-पोषण प्रदान करने से पहले, इसे प्रदान करने की आवश्यकता मौजूद होनी चाहिए और साथ ही अनुदान प्राप्तकर्ता को सामान्य शर्तों को पूरा करना चाहिए जैसे कि शुद्धता, किसी अन्य व्यक्ति के साथ विवाहित न होना और इसके अलावा खुद का भरण-पोषण करने की स्थिति में न होना।" पूरे सम्मान के साथ हम विद्वान न्यायाधीश के उक्त तर्क को स्वीकार करने

की स्थिति में नहीं हैं। सबसे पहले, यह धारणा कि धारा 25 द्विविवाहित महिला को उस समय भरण-पोषण का दावा करने का अधिकार देती है, जब शून्यता का आदेश पारित हो जाता है, सही नहीं है। दूसरे, धारा 9 से 14 के अंतर्गत कार्यवाही न होने की स्थिति में, धारा 151 का सहारा लेकर ऐसी राहत नहीं दी जा सकती। ऐसी स्थिति में धारा 151 लागू नहीं हो सकती।

31. हमारे द्वारा लिए गए उपरोक्त निर्णय के मददेनजर, अपीलकर्ता के खिलाफ प्रतिवादी का भरण-पोषण का दावा, जिसका विवाह शुरू से ही शून्य है, स्वीकार्य नहीं है। इसलिए, प्रधान अधीनस्थ न्यायाधीश, चित्तूर की फाइल पर ओ.एस. संख्या 131/87 में डिक्री और निर्णय को अपास्त किया जाना चाहिए।

32. परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है। प्रधान अधीनस्थ न्यायाधीश, चित्तूर की फाइल पर मूल वाद संख्या 131/1987 के निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है और मूल वाद संख्या 131/1987 को खारिज किया

जाता है। इस मामले की परिस्थितियों में, पक्षों को पूरे मामले में अपनी लागत वहन करने का निर्देश दिया जाता है।

21. मामले के सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, प्रीतम कुमारी के पक्ष में हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण का अनुदान, जबकि विवाह को अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित किया जा चुका है, कानून की नजर में मान्य नहीं हो सकता। विवाह को अमान्य घोषित करने के लिए दायर वाद पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा निर्णय दिया जा चुका है तथा प्रथम अपील में भी इस निर्णय की पुष्टि की जा चुकी है, इस प्रकार प्रथम अपीलीय अदालत ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण का आदेश पारित करके अवैधानिकता की है। यह भी महत्वपूर्ण है कि अपील में अधीनस्थ न्यायालय के निष्कर्ष को बरकरार रखा गया है, जैसे कि, प्रत्यर्थी प्रीतम कुमारी के पक्ष में हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण देने का कोई कारण नहीं था, साथ ही यह तथ्य भी है कि प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा सिविल अपील में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 25 के तहत कोई आवेदन नहीं किया गया था।

22. अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के आधार पर विवाह को शून्य और अप्रभावी घोषित किया गया है, इसलिए प्रत्यर्थी प्रीतम कुमारी के पक्ष में हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण

का अनुदान स्पष्ट रूप से गलत और अवैध है। कानून संख्या 1 और 2 के महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर अपीलकर्ता के पक्ष में और प्रत्यर्थी के विरुद्ध दिया गया है।

23. उपरोक्त के मद्देनजर, निचली अपीलीय अदालत के निर्णय और डिक्री का वह हिस्सा जिसके द्वारा सिविल अपील संख्या 44/2010 और 45/2010 में प्रथम अपीलीय अदालत द्वारा हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 25 के तहत भरण-पोषण दिया गया था, को एतद्वारा अपास्त किया जाता है। द्वितीय अपील स्वीकार की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 4 ILRA 182

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 2211/2023

सरोज कुमारी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सत्येन्द्र चंद्र त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री संजय कुमार श्रीवास्तव

सिविल कानून - मातृत्व लाभ - मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 - धारा 5(1), (3) एवं (4) - मातृत्व लाभ के भुगतान का अधिकार - प्रत्येक महिला को मातृत्व लाभ का अधिकार है -

उसके नियोक्ता को उसे उस समय का भुगतान करना होगा जब वह मातृत्व के कारण काम से अनुपस्थित रहती है - 1961 के अधिनियम के प्रावधान बच्चे के जन्म के बाद भी मातृत्व लाभ की अनुमति देते हैं - इस आधार पर कि बच्चा पहले ही जन्म ले चुका है, याचिकाकर्ता को मातृत्व अवकाश देने से इनकार करना तथा याचिकाकर्ता को बाल देखभाल अवकाश लेने से रोकना पूरी तरह अनुचित है - मातृत्व लाभ और बाल देखभाल अवकाश अलग-अलग क्षेत्रों में कार्य करते हैं तथा परस्पर अनन्य हैं - याचिकाकर्ता को बाल देखभाल अवकाश की उपलब्धता या उसका प्रदान किया जाना याचिकाकर्ता को मातृत्व लाभ के अनुदान से वंचित नहीं कर सकता - बाल देखभाल अवकाश का लाभ न केवल बच्चे के जन्म के समय लिया जा सकता है, बल्कि किसी भी बाद की अवधि में लिया जा सकता है - आपेक्षित आदेश निरस्त -जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को बकाया वेतन जारी करने और वेतन का भुगतान करने का निर्देश दिया गया (पैरा 20, 22)

स्वीकृत (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

- 1 श्रीमती अनुपम यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; रिट (ए) संख्या 9535/2022
2. दीपिका सिंह बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण एवं अन्य, एआईआर 2022 एससी 4108

(माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र चंद्र त्रिपाठी को, राज्य-प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेन्द्र सिंह को, प्रतिवादी संख्या 3 से 6 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव को सुना गया।
2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, एटा द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.11.2022 और 25.11.2022 को रद्द करते हुए सर्टिओरीरी रिट जारी करने की प्रार्थना की है जिससे और जिसके तहत मातृत्व अवकाश की मंजूरी को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया है कि "बच्चे के जन्म के बाद एमएल की अनुमति नहीं है और अब आप नियम के अनुसार सीएलएल के लिए पात्र हैं" और "एमएल के लिए समय सीमा समाप्त हो चुकी है। अब आप सीसीएल के लिए आवेदन कर सकते हैं।"
3. शुरुआत में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र चंद्र त्रिपाठी ने कहा कि इसी तरह का विवाद, जैसा कि वर्तमान याचिका में उठाया गया है, इस न्यायालय द्वारा पहले ही रिट याचिका के एक समूह में स्वीकार किया जा चुका है, उनमें से प्रमुख है रिट (ए) संख्या 9535/2022 (श्रीमती

अनुपम यादव बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य)।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता प्रार्थना करते हैं कि वर्तमान रिट याचिका पर भी रिट (ए) संख्या 9535/2022 (श्रीमती अनुपम यादव बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य) में पारित उपरोक्त निर्णय दिनांक 21.10.2022 के संदर्भ में निर्णय लिया जाए।
5. राज्य प्रतिवादियों के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री शैलेन्द्र सिंह और प्रतिवादी संख्या 3 और 4 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव ने याचिका में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया है और कहा है कि श्रीमती अनुपम यादव (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात जिस पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने बहुत अधिक भरोसा किया है, वह मौजूदा मामले पर लागू नहीं होता है।
6. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और रिकार्ड का अवलोकन किया है।
7. इससे पहले कि न्यायालय याचिकाकर्ता के मामले की गुण-दोष के आधार पर जांच करे, वह श्रीमती अनुपम यादव (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित

अनुपात की प्रयोज्यता के संबंध में पार्टियों पर छाई धुंध को साफ करना उचित समझती है।

8. श्रीमती अनुपम यादव (सुप्रा) और संबंधित याचिकाओं के मामले में सक्षम प्राधिकारी/जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी गई थी जिसके तहत 180 दिनों के मातृत्व अवकाश की मंजूरी को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि यह स्वीकार्य नहीं है या इस आधार पर कि वित्तीय हैंडबुक वॉल्यूम- II भाग 2 से 4 में यूपी मौलिक नियमों के अध्याय XIII के नियम 153 (1) के प्रावधान के तहत याचिकाकर्ताओं को दिए गए अंतिम मातृत्व अवकाश की समाप्ति की तारीख से 02 वर्ष की अवधि समाप्त नहीं हुई है। विवादास्पद प्रश्न मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 की प्रयोज्यता के संबंध में था। वित्तीय हैंडबुक वॉल्यूम- II, भाग 2 से 4 में यूपी मौलिक नियमों के अध्याय XIII के मौलिक नियमों यानी नियम 153 (1) की प्रयोज्यता के संबंध में कोई विवाद नहीं था। केवल मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 की प्रयोज्यता को लेकर दोनों पक्षों में मतभेद था। न्यायालय ने पक्षों के विद्वान वकीलों की संबंधित दलीलों की सराहना करने और मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के प्रावधानों के साथ-साथ वित्तीय हैंडबुक के प्रासंगिक प्रावधानों पर

विचार करने के बाद, वित्तीय हैंडबुक के प्रासंगिक प्रावधानों, विशेष रूप से नियम 153 में पाया कि राज्य सरकार ने मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 की धारा 28 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पहले ही अपने कर्मचारियों के लाभ के लिए मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के प्रावधानों को अपना लिया था। एक बार मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के प्रावधानों को यूपी राज्य द्वारा अपना लिया गया तो 1961 का अधिनियम वित्तीय पुस्तिका में निहित प्रावधानों के बावजूद पूरी ताकत से लागू होगा, जिन्हें केवल कार्यकारी निर्देश और संसद द्वारा बनाए गए कानून के सहायक माना गया था। इस प्रकार न्यायालय ने माना कि मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के प्रावधान वित्तीय हैंडबुक के प्रावधानों पर प्रबल होंगे और परिणामस्वरूप, वित्तीय हैंडबुक खंड II से IV के नियम 153 (I) के प्रावधानों को दूसरी गर्भावस्था के संबंध में एक महिला को छुट्टी की स्वीकार्यता के संबंध में पढ़ा जाना था जो मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 द्वारा शासित होगा, न कि वित्तीय हैंडबुक खंड II से IV के नियम 153 (1) द्वारा। तदनुसार रिट याचिकाएँ स्वीकार कर ली गईं।

9. उपरोक्त के मद्देनजर, न्यायालय को प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपनाए गए रुख में दम नजर आता

है। श्रीमती अनुपम यादव (सुप्रा) के फैसले के अनुपात से याचिकाकर्ता को एकमात्र लाभ यह मिल सकता है कि मातृत्व अवकाश का अनुदान मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के प्रावधानों द्वारा शासित होगा।

10. अब, न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले का निर्णय करने के लिए आगे बढ़ता है।
11. निर्विवाद तथ्य यह है कि याची बेसिक शिक्षा परिषद, उ.प्र., प्रयागराज द्वारा संचालित संस्था में प्राथमिक विद्यालय, हीरापुर, ब्लॉक मारहरा, जिला एटा में प्रधानाध्यापिका के पद पर तैनात है। याचिकाकर्ता की सेवा शर्तें उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली, 1981 के प्रावधानों द्वारा शासित होती हैं।
12. रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को 15.10.2022 को अस्पताल में भर्ती कराया गया और उसने एक लड़की को जन्म दिया और अस्पताल से छुट्टी के बाद, उसने तुरंत 18.10.2022 से 15.4.2023 (180 दिनों के लिए) की अवधि के लिए ऑनलाइन मातृत्व अवकाश के लिए आवेदन किया। लेकिन इसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि मातृत्व अवकाश के समर्थन में अनुबंध अधूरे थे। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने निर्धारित प्रोफार्मा पर

30.10.2022 को फिर से मातृत्व अवकाश के लिए आवेदन किया लेकिन आश्चर्य की बात है कि इसे जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, एटा द्वारा 4.11.2022 और 25.11.2022 को इस टिप्पणी के साथ कि "बच्चे के जन्म के बाद एमएल की अनुमति नहीं है और अब आप नियम के अनुसार सीएलएल के लिए पात्र हैं" और "एमएल के लिए समय सीमा समाप्त हो चुकी है। अब आप सीसीएल के लिए आवेदन कर सकते हैं"। उपरोक्त आदेशों को तत्काल रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 संसद द्वारा बच्चे के जन्म से पहले और बाद की निश्चित अवधि के लिए कुछ प्रतिष्ठानों में महिलाओं के रोजगार को विनियमित करने और मातृत्व अवकाश लाभ और कुछ अन्य लाभ प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया है। 1961 के अधिनियम के प्रावधान बच्चे के जन्म के बाद भी मातृत्व लाभ की अनुमति देते हैं और इस प्रकार, याचिकाकर्ता को इस आधार पर मातृत्व अवकाश से इनकार करना कि बच्चा पहले ही पैदा हो चुका है, याचिकाकर्ता मातृत्व अवकाश का हकदार नहीं है, अपने आप में अवैध और गलत है। यह भी तर्क दिया गया है कि बाल देखभाल

अवकाश मातृत्व लाभ से अलग है और विभिन्न क्षेत्रों में संचालित होता है और याचिकाकर्ता को बाल देखभाल अवकाश का लाभ उठाने से रोकना पूरी तरह से अनुचित है। यह भी तर्क दिया गया कि प्रतिवादियों ने नवंबर और दिसंबर, 2022 से याचिकाकर्ता का वेतन भी रोक दिया है जो कि अनुचित है।

14. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत करके आक्षेपित आदेशों को उचित ठहराने का प्रयास किया है कि आदेश न्यायसंगत और उचित हैं और इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता वाली किसी भी कमजोरी या अवैधता से ग्रस्त नहीं हैं।
15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, न्यायालय ने मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के कुछ प्रावधानों का उल्लेख करना उचित समझा, जिन्हें नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

1961 अधिनियम की धारा 3(एच) "मातृत्व लाभ" को परिभाषित करती है जिसका अर्थ धारा 5 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट भुगतान है।

1961 अधिनियम की धारा 5 इस प्रकार है:-

"5. मातृत्व लाभ के भुगतान का अधिकार.-

(1) इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, प्रत्येक महिला अपनी वास्तविक अनुपस्थिति की अवधि के लिए औसत दैनिक मजदूरी की दर से मातृत्व लाभ के भुगतान की हकदार होगी और उसका नियोक्ता इसके लिए उत्तरदायी होगा अर्थात्, उसके प्रसव के दिन से ठीक पहले की अवधि, उसके प्रसव का वास्तविक दिन और उस दिन के तुरंत बाद की कोई भी अवधि।

(2) कोई भी महिला तब तक मातृत्व लाभ की हकदार नहीं होगी जब तक कि उसने वास्तव में नियोक्ता की स्थापना में काम नहीं किया हो, जिससे वह मातृत्व लाभ का दावा करती है, उसकी अपेक्षित डिलीवरी की तारीख से तुरंत पहले बारह महीनों में [अस्सी दिन] से कम की अवधि के लिए काम नहीं किया है:

बशर्ते कि उपरोक्त [अस्सी दिन] की अर्हता अवधि उस महिला पर लागू नहीं होगी जो असम राज्य में प्रवास कर चुकी है और अप्रवास के समय गर्भवती थी।

(3) अधिकतम अवधि जिसके लिए कोई भी महिला मातृत्व लाभ की हकदार होगी, वह होगी [छब्बीस सप्ताह जिसमें से आठ सप्ताह से अधिक नहीं] उसकी अपेक्षित डिलीवरी की तारीख से पहले होगी: -

बशर्ते कि दो या दो से अधिक जीवित बच्चों वाली महिला द्वारा मातृत्व लाभ की हकदार अधिकतम अवधि बारह सप्ताह होगी, जिसमें से छह सप्ताह से अधिक नहीं उसकी अपेक्षित डिलीवरी की तारीख से पहले होगी:

[बशर्ते कि] जहां इस अवधि के दौरान एक महिला की मृत्यु हो जाती है, मातृत्व लाभ केवल उसकी मृत्यु के दिन तक और इसमें शामिल दिनों के लिए देय होगा: [बशर्ते यह भी कि] जहां एक महिला, एक बच्चे को जन्म देने के बाद, प्रसव के दौरान या अपने प्रसव की तारीख के तुरंत बाद की अवधि के दौरान मर जाती है, जिसके लिए वह मातृत्व लाभ की हकदार है, दोनों ही मामलों में बच्चे को पीछे छोड़ने पर, नियोक्ता उस पूरी अवधि के लिए मातृत्व लाभ के लिए उत्तरदायी होगा, लेकिन यदि उक्त अवधि के दौरान बच्चे की भी मृत्यु हो जाती है, तो,

बच्चे की मृत्यु की तारीख तक के दिनों के लिए और इसमें शामिल है।

(4) एक महिला जो कानूनी तौर पर तीन महीने से कम उम्र के बच्चे को गोद लेती है या एक कमीशनिंग मां, बच्चे को गोद लेने वाली मां या कमीशनिंग मां को सौंपने की तारीख से बारह सप्ताह की अवधि के लिए मातृत्व लाभ की हकदार होगी, जैसा भी मामला हो।]

(5) ऐसे मामले में जहां किसी महिला को सौंपे गए कार्य की प्रकृति ऐसी है कि वह घर से काम कर सकती है, नियोक्ता उसे मातृत्व लाभ का लाभ उठाने के बाद ऐसी अवधि के लिए ऐसी शर्तों पर ऐसा करने की अनुमति दे सकता है, जिन पर नियोक्ता और महिला परस्पर सहमत हों।"

16. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 (1961 का अधिनियम संख्या 53) की प्रस्तावना इस प्रकार है:-

"बच्चे के जन्म से पहले और बाद में कुछ निश्चित अवधि के लिए कुछ प्रतिष्ठानों में महिलाओं के रोजगार को विनियमित करने और मातृत्व लाभ और कुछ अन्य लाभ प्रदान करने के लिए एक अधिनियम।"

17. अधिनियम की धारा 5 की उप-धारा

(1) एक महिला को उसके प्रसव के दिन से ठीक पहले की अवधि से शुरू होने वाली वास्तविक अनुपस्थिति की अवधि, उसके प्रसव के वास्तविक दिन और उस दिन के तुरंत बाद की किसी भी अवधि के लिए एक निर्धारित दर पर मातृत्व लाभ के भुगतान का अधिकार प्रदान करता है। उपधारा (3) अधिकतम अवधि निर्दिष्ट करती है जिसके लिए कोई भी महिला मातृत्व लाभ की हकदार होगी। ये प्रावधान संसद द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए किए गए हैं कि बच्चे के जन्म के कारण कार्य स्थल से दूर किसी महिला की अनुपस्थिति उस अवधि के लिए मजदूरी प्राप्त करने के उसके अधिकार में बाधा ना डाले या उस अवधि के लिए जिसके दौरान उसे अपने बच्चे के जन्म के बाद उसकी देखभाल के लिए छुट्टी दी जानी चाहिए।

18. 1961 का अधिनियम महिलाओं के गर्भावस्था और मातृत्व अवकाश के अधिकार को सुरक्षित करने और महिलाओं को एक माँ और एक कार्यकर्ता दोनों के रूप में, यदि वे चाहें तो, एक स्वायत्त जीवन जीने के लिए यथासंभव लचीलेपन का अधिकार देने के लिए अधिनियमित किया गया था।

19. अधिनियम की प्रस्तावना, धारा 5 (1), धारा 5 की उपधारा 3 का तीसरा परंतुक, धारा 5 की उपधारा 4, के अवलोकन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मातृत्व लाभ बच्चे के जन्म के बाद भी बढ़ाया जा सकता है। एकमात्र प्रतिबंध यह है कि मातृत्व अवकाश पूरे 180 दिन या 26 सप्ताह के लिए नहीं दिया जा सकता है। इसके अलावा, न्यायालय की राय में, याचिकाकर्ता को बाल देखभाल अवकाश की उपलब्धता या उसका अनुदान याचिकाकर्ता को मातृत्व लाभ के अनुदान से वंचित नहीं कर सकता है। मातृत्व लाभ और बाल देखभाल अवकाश दोनों अलग-अलग क्षेत्रों में संचालित होते हैं और परस्पर अनन्य हैं। एआईआर 2022 एससी 4108 (दीपिका सिंह बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण और अन्य) में रिपोर्ट किए गए एक हालिया मामले में शीर्ष अदालत ने कहा कि मातृत्व अवकाश के अनुदान से स्वतंत्र, एक महिला अपने दो सबसे बड़े जीवित बच्चों की देखभाल के लिए बाल देखभाल अवकाश के अनुदान की भी हकदार है, चाहे वह पालन-पोषण के लिए हो या उनकी किसी भी जरूरत की देखभाल के लिए, जैसे कि शिक्षा, बीमारी और इसी तरह की जरूरतें। चाइल्ड केयर लीव का लाभ न केवल बच्चे के जन्म के समय, बल्कि उसके बाद किसी भी अवधि में लिया जा

सकता है। दोनों अलग-अलग हकदारियां बनाते हैं। एक उद्देश्यपूर्ण व्याख्या को अपनाने की आवश्यकता है। मातृत्व अवकाश देने का उद्देश्य और मंशा विफल हो जाएगी। मातृत्व अवकाश देने का उद्देश्य कार्यस्थल पर महिलाओं की निरंतरता को सुविधाजनक बनाना है। यह एक कड़वी सच्चाई है कि ऐसे प्रावधानों के बावजूद कई महिलाओं को सामाजिक परिस्थितियों के कारण बच्चे के जन्म पर काम छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ेगा यदि उन्हें छुट्टी और अन्य सुविधाजनक उपाय नहीं दिए जाते हैं। कोई भी नियोक्ता बच्चे के जन्म को रोजगार के उद्देश्य से विमुख नहीं मान सकता। रोजगार के संदर्भ में बच्चे के जन्म को जीवन की एक प्राकृतिक घटना के रूप में समझा जाना चाहिए और मातृत्व लाभ अधिनियम के प्रावधानों को उस परिप्रेक्ष्य में समझा जाना आवश्यक है।

20. इस न्यायालय की राय है कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, एटा ने याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करते हुए मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के प्रावधानों की अनदेखी की है। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी संख्या 4, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, एटा द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.11.2022 और 25.11.2022 कानून की नजर में

टिकाऊ नहीं हैं और खारिज किए जाते हैं। रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

21. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, एटा को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से दो सप्ताह की अवधि के भीतर मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए नए आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

22. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, एटा को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह बकाया वेतन जारी करें और जब भी बकाया हो, याचिकाकर्ता को महीने-दर-महीने वेतन का भुगतान करें।

(2023) 4 ILRA 187

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ,

रिट-ए संख्या 2330/2023

श्रीमती गोपा बहादुर

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री कमलेश कुमार

यादव, श्री विजय कुमार श्रीवास्तव, श्री

अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री आशीष मिश्रा, श्री चंदन शर्मा

रिट याचिका निरस्त (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

(ए) सिविल कानून - दूसरी रिट याचिका की स्थिरता - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 2 नियम 2 - वाद में संपूर्ण दावा सम्मिलित होगा - याचिका या वाद दायर करते समय, दावे का संपूर्ण भाग, जिसे वादी या याचिकाकर्ता कार्रवाई के कारण के संबंध में बनाने का पात्र है - जोड़ा जाना आवश्यक होगा, अन्यथा वह बाद में छोड़े गए या त्यागे गए दावे के हिस्से के संबंध में वाद लाने का पात्र नहीं होगा - धारा 11 की व्याख्या IV-अनुच्छेद 226 के तहत कोई भी मामला जो हो सकता है और ऐसे पूर्ववर्ती वाद या याचिका में बचाव या हमले का आधार बनाया जाना चाहिए था, तो उसे ऐसे वाद या कार्यवाही में प्रत्यक्षतः या सारतः विवादक वाद माना जाएगा। (पैरा-6)

याचिका उसी कारण से दायर की गई थी - जिसके तहत याचिकाकर्ता ने पहले की रिट याचिका में - महिला आरक्षण को चुनौती देने के अपने दावे और अधिकार को त्याग दिया था - विकल्प के रूप में राहत का दावा नहीं किया गया था। (पैरा - 5,10)

निर्णय:-सी.पी.सी. सार्वजनिक नीति पर आधारित है और इसे रिट क्षेत्राधिकार में विस्तारित और लागू किया जाना चाहिए। पिछली रिट याचिका में दावा न किए गए किसी भी राहत को छोड़ दिया गया माना जाना चाहिए। उसी कारण से दूसरी रिट याचिका स्वीकार्य नहीं है। (पैरा - 11)

1. ग्रामोद्योग कल्याण संस्था बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 1 एससीसी 428
2. सी.आई.टी., बॉम्बे बनाम टी.पी. कुमारन, (1996) 10 एससीसी 561
3. यू.ओ.आई. बनाम पुन्नीलाल, (1996) 11 एस.सी.सी. 112

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, और माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-चतुर्थ, जे द्वारा प्रदत्त)

1. श्री कमलेश कुमार यादव और श्री चंदन शर्मा की सहायता से श्री अशोक खरे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य-प्रत्यर्थी के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।
2. याचिकाकर्ता तत्काल रिट याचिका द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित राहत की मांग करता है:-

"उत्तर प्रदेश उच्चतर न्यायिक सेवा 2018 (भाग -11) में "सीधी भर्ती" के अनुपालन में महिलाओं के लिए 20% आरक्षण के तहत एक अतिरिक्त उम्मीदवार की सिफारिश करने के लिए प्रत्यर्थी को इस माननीय न्यायालय

द्वारा निर्दिष्ट एक अवधि के अंदर आदेश देने के लिए एक उपयुक्त प्रकृति की रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।"

3. यह विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ता ने पहले रिट-ए संख्या 2650/2022 (श्रीमती गोपा बहादुर बनाम उच्च न्यायालय, इलाहाबाद और अन्य) में एक रिट याचिका दायर करके इस न्यायालय का रुख किया था। उपरोक्त रिट याचिका दिनांक 04.04 2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई।

4. उपरोक्त आदेश के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा यह निर्देश मांगा गया था कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अनुसूचित जाति श्रेणी के तहत माना जाए। न्यायालय ने इस दलील को खारिज कर दिया क्योंकि आवेदन पत्र में याचिकाकर्ता ने "सामान्य/अनारक्षित श्रेणी" के तहत आवेदन किया था। याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका में क्षैतिज कोटे के अंतर्गत 20 प्रतिशत महिला आरक्षण की यथार्थता को उठाया।

5. प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि दूसरी रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी क्योंकि याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि उसने पिछली रिट याचिका में महिला आरक्षण को चुनौती देने के अपने दावे और अधिकार को त्याग दिया है। उनका कहना है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में 'सी.पी.सी.')

के आदेश 2 नियम 2 के तहत निहित सिद्धांत इस मामले में लागू होगा।

6. सी.पी.सी. के आदेश 2, नियम 2 में प्रावधान है कि याचिका या मुकदमा दायर करते समय, संपूर्ण दावा, जो वादी या याचिकाकर्ता कार्रवाई के कारण के संबंध में करने का हकदार है, को जोड़ने की आवश्यकता होगी, ऐसा ना करने पर, बाद में वह छोड़े गए या त्यागे गए दावे के हिस्से के संबंध में मुकदमा करने का हकदार नहीं होगा। इसी प्रकार, सी.पी.सी. की धारा 11 के स्पष्टीकरण IV में यह भी प्रावधान है कि कोई भी मामला जिसे अनुच्छेद 226 के तहत ऐसे पूर्व मुकदमे या याचिका में बचाव या हमले का आधार बनाया जाना चाहिए था, उसे सीधे तौर पर एक मामला माना जाएगा या इस तरह के मुकदमे या कार्यवाही में वह काफी हद तक एक मुद्दा होगा।

7. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी एक से अधिक अवसरों पर एक ही या समान कारण पर कई रिट याचिकाएँ दायर करने की प्रथा की निंदा की है। इस संबंध में **उद्यमी एवं खादी ग्रामोद्योग कल्याण संस्थान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में दिए गए फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है। सवाल यह है कि *"क्या इस न्यायालय को विशेष रूप से ऊपर बताए गए दोषों के मद्देनजर दूसरी याचिका पर विचार करना चाहिए? इस न्यायालय के विचार में, उपरोक्त प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होना चाहिए।"*

8. आयकर आयुक्त, बॉम्बे बनाम टी.पी. कुमारन; भारत संघ बनाम. पुन्नीलाल के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार संप्रेक्षण किया :-

“.....यही कारण है कि न्यायिक अभ्यास और प्रक्रिया का नियम है कि एक ही व्यक्ति की दूसरी रिट याचिका पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाएगा जबकि उसकी पहली रिट याचिका को उसी न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, भले ही ऐसे आदेश को खारिज करना प्रारम्भिक स्तर पर था, चाहे वह बाधित होने के आधार पर हो या वैकल्पिक निदान की उपलब्धता न खत्म होने के आधार पर हो; न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हितकर नियम के रूप में स्वीकार किया गया है और उसका पालन किया जाता है।”

9. इसलिए, उपरोक्त संदर्भित अधिकारों के मद्देनजर, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि भले ही सी.पी.सी. के प्रावधान रिट क्षेत्राधिकार में लागू नहीं होते हैं, उनमें निहित सिद्धांत का सहारा लिया जा सकता है क्योंकि जिन सिद्धांतों पर सी.पी.सी. स्थापित हैं, उनको सार्वजनिक नीति पर आधारित किया गया था, और इसलिए, न्याय प्रशासन के हित में रिट क्षेत्राधिकार में भी इसे विस्तारित और लागू करने की आवश्यकता है। पिछली रिट याचिका में दावा नहीं की गई किसी भी राहत को याचिकाकर्ता द्वारा बाद की रिट याचिका में दावा किए गए कार्रवाई के कारण की सीमा तक छोड़ दिया

गया माना जाना चाहिए और व्यक्ति को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए, ऐसे आदेश/प्रक्रिया का न केवल सहारा लेने की आवश्यकता है बल्कि उसे लागू करने की भी आवश्यकता है।

10. विशिष्ट प्रश्न पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता इस बात पर विवाद नहीं करते हैं कि रिट याचिका कार्रवाई के समान कारण से उत्पन्न होती है और वर्तमान रिट याचिका में जिस मुद्दे और राहत का दावा किया जा रहा है, उसे पहले की रिट याचिका में वैकल्पिक रूप से उठाया जा सकता था।

11. तदनुसार, उसी कारण हेतु दूसरी रिट याचिका पोषणीय नहीं है, और एतद्वारा खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 189

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,

रिट-ए संख्या 2805/2023

भारत संघ एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

अरुण कुमार मिश्रा

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रणय कृष्ण

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री मोहन उपाध्याय, श्री

बाबू नंदन सिंह

निलंबन-न्यायाधिकरण ने निलंबन आदेश को सीधे निरस्त कर दिया-जमाकर्ताओं के धन की

धोखाधड़ी और गबन से संबंधित आरोप-दिशानिर्देशों में प्रावधान है कि स्थगित शुल्क की समीक्षा पर प्रथम दृष्टया उच्च अधिकारी द्वारा विचार किया जाएगा-निर्धारित समय बीत जाने के बाद निलंबन स्वतः निरस्त नहीं होगा-न्यायाधिकरण ने निलंबन आदेश को निरस्त करने में त्रुटि की-निर्णय लेने के लिए इसे उच्च अधिकारी को वापस भेज देना चाहिए था।

रिट याचिका स्वीकृत (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

अजय कुमार चौधरी बनाम सचिव, भारत संघ
2015 (7) एससीसी 291

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, द्वारा
प्रदत्त)

1. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना।
2. वर्तमान रिट याचिका भारत संघ/वरिष्ठ अधीक्षक, डाकघर, वाराणसी द्वारा 01 अगस्त, 2022 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा, प्रतिवादी-मूल आवेदक के निलंबन/ कार्यमुक्ति को रद्द कर दिया गया है। पीड़ित याचिकाकर्ताओं ने एक पुनर्विलोकन याचिका दायर की, जिसे 21 सितंबर, 2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।
3. याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता ने एक छोटा सा सवाल उठाया है

कि ट्रिब्यूनल ने निलंबन / कार्यमुक्ति के आदेश को सीधे रद्द करने के बजाय कार्यमुक्ति की समीक्षा करने के लिए मामले को प्राधिकारी के पास भेजना चाहिए था क्योंकि प्रतिवादी-मूल आवेदक के खिलाफ जमाकर्ताओं के धन की धोखाधड़ी और गबन से संबंधित गंभीर आरोप थे। दूसरे शब्दों में, ट्रिब्यूनल के पास यह विकल्प नहीं था कि वह स्वयं को सक्षम प्राधिकारी के स्थान पर रख सके।

4. पक्षकारों के मध्य यह विवाद में नहीं है कि डाक विभाग, ग्रामीण डाक सेवक (आचरण और नियुक्ति) नियम, 2011 के प्रावधान लागू होते हैं। नियम 12 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, प्रतिवादी/मूल आवेदक को नियोक्ता प्राधिकारी द्वारा 7 दिसंबर, 2020 के आदेश के तहत निलंबित/कार्यमुक्त कर दिया गया।

5. प्रतिवादी/मूल आवेदक ने, अन्य बातों के साथ-साथ, आदेश को इस आधार पर चुनौती दी कि प्रतिवादी / मूल आवेदक निलंबित / कार्यमुक्त नहीं रह सकता था, क्योंकि महानिदेशक द्वारा जारी नियम / निर्देशों के अनुसार आदेश की समीक्षा नहीं की गई थी और अपने कथनों के समर्थन में, **2015(7) एससीसी 291 में प्रकाशित अजय कुमार चौधरी बनाम भारत संघ- द्वारा सचिव** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का आश्रय लिया है।

6. प्रतिवादी के मूल आवेदन को स्वीकार करते हुए विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए तर्क इस प्रकार हैं:

"6. इस पर कोई विवाद नहीं है कि आवेदक को 03.01.2020 को निलंबित कर दिया गया था। यह स्थापित करने के लिए पत्रावली पर कुछ भी नहीं है कि उसके निलंबन की समय-समय पर नियमों के तहत समीक्षा की गई थी। यह समझ में नहीं आता है कि आवेदक को आगे भी निलंबित रखे जाने में कौन सा उद्देश्य पूरा होगा। यह भी एक तथ्य है कि आवेदक को नियमों के तहत समीक्षा किए बिना निलंबित किए हुए लगभग 18 महीने बीत चुके हैं। इसके अलावा, उक्त निलंबन आदेश अजय कुमार चौधरी के मामले (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लंघन है।

9. चल रहे कारणों से, मूल आवेदन स्वीकार किया जाता है और दिनांक 03.01.2020 और 07.12.2020 के आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जाता है। प्रतिवादीगणों को, आवेदक द्वारा इस आदेश की एक प्रति उनके समक्ष प्रस्तुत करने की तारीख से दो सप्ताह की अवधि के भीतर आवेदक को सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। आवेदक नियमानुसार टीआरसीए की बकाया राशि का हकदार होगा।"

7. मूल आवेदक को, जमाकर्ताओं द्वारा जमा की गई राशि के गबन और धोखाधड़ी के आरोप में निलंबित /कार्यमुक्त कर दिया गया। यह भी आरोप है कि प्रतिवादी ने खाताधारकों के मोबाइल नंबरों में हेरफेर किया और इसे

अपने और अपने रिश्तेदारों के मोबाइल नंबर से बदल दिया। जमाकर्ताओं से प्राप्त शिकायतों पर, प्रतिवादी/मूल आवेदक को जांच लंबित रहने के दौरान निलंबित /कार्यमुक्त कर दिया गया।

8. नियम 12 में पुट ऑफ इयूटी का प्रावधान है जो इस प्रकार है:-

"12. पुट ऑफ इयूटी

(1) भर्ती प्राधिकारी या कोई प्राधिकारी जिसके अधीन भर्ती प्राधिकारी है या सरकार द्वारा, सामान्य अथवा विशेष आदेश द्वारा, इस संबंध में अधिकृत कोई अन्य प्राधिकारी, किसी सेवक को कार्यविरत कर सकता है;

(क) जहां उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही विचाराधीन है या लंबित है; या

(ख) जहां किसी आपराधिक कृत्य के संबंध में उसके विरुद्ध कोई मामला विवेचना, जांच, या विचारण के अधीन है;

बशर्ते कि धोखाधड़ी या गबन से जुड़े मामलों में, इन नियमों की अनुसूची में निर्दिष्ट किसी भी पद को धारण करने वाले सेवक को, यथास्थिति, डाकघरों के निरीक्षक या उप-मंडल के डाकघरों के सहायक अधीक्षक द्वारा, भर्ती प्राधिकारी को तत्काल सूचना के

अधीन, कार्यमुक्त किया जा सकता है।"

9. दूसरे शब्दों में, कर्मचारी को भर्ती प्राधिकारी द्वारा कार्यमुक्त किया जा सकता है, यदि कर्मचारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही विचाराधीन है या लंबित है।

10. नियम का प्रावधान अनिवार्य करता है कि धोखाधड़ी या गबन के मामले में, नियमों की अनुसूची में निर्दिष्ट किसी भी पद को धारण करने वाले कर्मचारी को, यथास्थिति, डाकघरों के निरीक्षक या उप मंडल के डाकघरों के सहायक अधीक्षक द्वारा भर्ती प्राधिकारी को तत्काल सूचना के अधीन, इयूटी से हटाया जा सकता है।

11. नियम का उप-खंड (2) यह अनिवार्य करता है कि भर्ती प्राधिकारी के अधीनस्थ होने के कारण ऊपर उल्लिखित अधिकारियों द्वारा पारित आदेश पंद्रह दिनों की समाप्ति के बाद प्रभावी नहीं रहेगा जब तक कि भर्ती प्राधिकारी द्वारा पहले से उसकी पुष्टि या उसे निरस्त न कर दिया जाए।

12. पक्षकारों के अपने अपने अधिवक्ताओं द्वारा महानिदेशक के निर्देश, जो कार्यमुक्त को नियंत्रित करने वाले दिशानिर्देश हैं, का आश्रय लिया गया है, जिसमें आदेशित किया गया है कि एक अतिरिक्त विभागीय एजेंट को इयूटी से हटाने से उसकी प्रतिष्ठा को स्थायी नुकसान हो सकता है, यदि उसे अंततः दोषमुक्त कर दिया जाता है। इसलिए, सक्षम प्राधिकारी से अपेक्षा की जाती है कि वह एक

अतिरिक्त विभागीय एजेंट को इयूटी से हटाने का आदेश देते समय उचित देखभाल और उचित सावधानी के साथ अपने विवेक का प्रयोग करे, आम तौर पर, इयूटी से हटाने के मामले दो श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं, अर्थात् धोखाधड़ी से संबंधित मामले या अनुशासनहीनता की छोटी-मोटी घटनाओं से संबंधित मामले।

13. दिशानिर्देश यह भी अनिवार्य करते हैं कि धोखाधड़ी के आरोपों से संबंधित मामलों में लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही में कुछ समय लग सकता है, जबकि प्रशासनिक चूक से जुड़े दूसरी श्रेणी के मामले लंबे समय तक लंबित नहीं रहने चाहिए। मामले के उद्देश्य के लिए दिशानिर्देशों का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है: -

"2. एक अतिरिक्त-विभागीय एजेंट को इयूटी से हटाने से उसकी प्रतिष्ठा को स्थायी नुकसान हो सकता है यदि वह अंततः दोषमुक्त हो जाता है। इसलिए, सक्षम प्राधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह एक अतिरिक्त-विभागीय एजेंट को इयूटी से हटाने का आदेश देते समय उचित देखभाल और उचित सावधानी के साथ विवेक का प्रयोग करे। आम तौर पर, इयूटी से हटाने के मामले दो श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं, जो इस प्रकार हैं-

- i) धोखाधड़ी से संबंधित मामले; और*
- (ii) अनाधिकृत अनुपस्थिति, बिना मंजूरी के छुट्टी लेना, जनता द्वारा शिकायतें आदि से संबंधित मामले।*

यद्यपि पहले प्रकार के मामलों की जांच में कुछ समय लग सकता है, किंतु ऐसा कोई कारण नहीं है कि द्वितीय श्रेणी के अंतर्गत आने वाले प्रशासनिक चूक से जुड़े मामले लंबे समय तक लंबित रहें। इसलिए, किसी अतिरिक्त-विभागीय एजेंट को ड्यूटी से हटाने से पहले सक्षम प्राधिकारी द्वारा एहतियात के तौर पर निम्नलिखित दिशानिर्देशों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए:-

(क).....

(ख) अपराध इतना गंभीर प्रकृति का होना चाहिए कि सेवा से हटाना संभावित अंतिम सजा होगी और इसलिए यह अनुपयुक्त होगा कि अपराधी को उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक मामले की समाप्ति तक अपने कर्तव्यों का पालन करने की अनुमति दी जानी जाए।

(ग)

(घ)

(ङ)

3. यह भी आवश्यक है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही को अंतिम रूप देने और अंतिम आदेश पारित करने के लिए हर संभव प्रयास करे ताकि कोई अतिरिक्त विभागीय एजेंट 45 दिनों से अधिक की अवधि के लिए, न कि 120 दिनों के लिए जैसा कि पहले आदेश दिया गया था, कार्यमुक्त न रहे। संभागीय अधीक्षक

को इस अवधि के भीतर अनुशासनात्मक मामलों को अंतिम रूप देना सुनिश्चित करने के लिए एक समय सारणी बनानी चाहिए। यदि, अपरिहार्य कारणों से, इस अवधि के भीतर किसी मामले को अंतिम रूप देना संभव नहीं है, तो मामले को तुरंत अगले वरिष्ठ प्राधिकारी को, यह पूरा औचित्य बताते हुए सूचित किया जाना चाहिए, कि मामले को अंतिम रूप देने तक अतिरिक्त विभागीय एजेंट को वापस काम पर क्यों नहीं लिया जा सकता है। वरिष्ठ प्राधिकारी को रिपोर्ट प्राप्त होने पर तुरंत मामले की समीक्षा करनी चाहिए और विचार करना चाहिए -

(i) क्या संबंधित अतिरिक्त विभागीय एजेंट को आगे की अवधि के लिए कार्यमुक्त रखने का औचित्य है; और
(ii) मामले को अंतिम रूप देने में सभी टालने योग्य देरी को खत्म करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा क्या कदम उठाए जाने चाहिए।

तत्पश्चात वरिष्ठ प्राधिकारी तदनुसार आदेश देगा।

14. दिशानिर्देशों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट रूप से प्रदान किया गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को ऐसी स्थिति में जब जांच 120 दिनों के भीतर समाप्त नहीं की जा सकती है, तो तुरंत अगले वरिष्ठ प्राधिकारी को इसका पूरा औचित्य बताते हुए रिपोर्ट

करनी चाहिए, कि मामले को अंतिम रूप देने तक कर्मचारी को काम पर वापस क्यों नहीं लिया जा सकता है। रिपोर्ट प्राप्त होने पर वरिष्ठ प्राधिकारी को तुरंत मामले की समीक्षा करनी चाहिए और अन्य बातों के साथ-साथ विचार करना चाहिए कि क्या कर्मचारी को आगे की अवधि के लिए कार्यमुक्त रखने का औचित्य है।

15. इसे देखते हुए, यह स्पष्ट है कि निर्धारित समय बीत जाने के बाद रिपोर्ट पर प्रथम बार, किसी कर्मचारी को कार्यमुक्त किए जाने की समीक्षा पर वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए। निर्धारित समय बीत जाने के बाद किसी कर्मचारी का निलंबन/ कार्यमुक्ति की वापसी स्वतः नहीं होती।

16. विशिष्ट प्रश्न पर, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता नियमों या दिशानिर्देशों से यह दिखाने में असमर्थ हैं कि 120 दिनों की समाप्ति के बाद कार्यमुक्ति स्वतः समाप्त हो जाती है। बल्कि, दिशानिर्देश एक वरिष्ठ प्राधिकारी द्वारा योग्यता के आधार पर आदेश की समीक्षा को अनिवार्य बनाते हैं।

17. इन परिस्थितियों में, हमारी राय में, विद्वान न्यायाधिकरण ने प्रतिवादी को कार्यमुक्त करने के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए एक वरिष्ठ प्राधिकारी की शक्ति को अपने ऊपर लेने में गलती की। ट्रिब्यूनल के लिए उचित रास्ता यह था कि उसे जमाकर्ताओं की जमा राशि की धोखाधड़ी और गबन से संबंधित प्रतिवादी / मूल आवेदक के विरुद्ध आरोप के संबंध में निर्णय लेने के लिए मामले

को संबंधित वरिष्ठ प्राधिकारी को भेज देना चाहिए था।

18. विद्वान न्यायाधिकरण ने **अजय कुमार चौधरी (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय के अनुपात को यांत्रिक रूप से लागू करने में भी त्रुटि की। प्राधिकारी के अवलोकन पर, यह पता चलता है कि उसमें कर्मचारी को निलंबित कर दिया गया था और सीबीआई जांच लंबित होने के कारण निलंबन कई वर्षों की लंबी अवधि तक जारी रहा। इसमें दिखने वाले तथ्य पूरी तरह से एक अलग संदर्भ में हैं और वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं।

19. यहां बताए गए कारण से, हम विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दी गई राय को स्वीकार करने के लिए खुद को मनाने में असमर्थ हैं। तदनुसार, रिट याचिका सफल होती है और **स्वीकार की जाती है**। दिनांक 01 अगस्त, 2022 का आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है।

20. दिशा-निर्देशों के आलोक में, प्रतिवादी/मूल आवेदक की कार्यमुक्ति/निलंबन की समीक्षा करने के लिए मामला सक्षम वरिष्ठ प्राधिकारी को भेजा जाता है। यह अपेक्षा की जाती है कि इस आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल करने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर एक उचित आदेश शीघ्रता से पारित किया जाएगा, बशर्ते कोई अन्य बाधा न हो।

21. यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने मूल आवेदक के खिलाफ लंबित अनुशासनात्मक

कार्यवाही के प्रतिद्वंद्वी तर्कों और योग्यता पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।

(2023) 4 ILRA 193

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल,

रिट-ए संख्या 9347/2021

एस सुनंदा

...याचिकाकर्ता

बनाम

अध्यक्ष, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय उड़ान अकादमी,

नई दिल्ली और अन्य

..प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अनुपम वर्मा, कैप्टन प्रमोद कुमार बजाज

अधिवक्ता प्रतिवादी: योगेश चंद्र भट्ट, अनुराग श्रीवास्तव

सेवा कानून-भारतीय संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-अनुबंध के आधार पर काम कर रहे याचिकाकर्ता को सेवा से हटाए जाने और अनुबंध का विस्तार न किए जाने को चुनौती देने वाली रिट याचिका-दिनांक 25.05.2016 या 26.12.2016 के पत्र पर आधारित चुनौती याचिकाकर्ता के वादी को कहीं नहीं ले जाती है क्योंकि इन पत्रों ने न तो याचिकाकर्ता के किसी अधिकार का सृजन किया है और न ही उसके किसी अधिकार को समाप्त किया है-केवल अनुबंध के आधार पर नियुक्ति-याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त नहीं की गई थी बल्कि यह आगे कोई विस्तार न दिए जाने का

बाद था-यहां तक कि किसी अनुबंधित कर्मचारी को कई बार विस्तार दिए जाने से भी उक्त कर्मचारी की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता है-अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय नियमितीकरण, आमेलन या स्थायी निरंतरता के लिए निर्देश जारी नहीं करेंगे, जब तक कि नियमितीकरण का दावा करने वाले कर्मचारियों को स्वीकृत रिक्त पदों के विरुद्ध खुली प्रतिस्पर्धी प्रक्रिया में प्रासंगिक नियमों के अनुसार नियमित भर्ती के अनुसरण में नियुक्त नहीं किया गया हो। (पैरा 24, 27, 28, 33)

रिट याचिका निरस्त (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. कर्नाटक राज्य व अन्य बनाम उमा देवी (2006) 4 एससीसी 1
2. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम पियारा सिंह एंड ऑर्स. एआईआर 1992 एससी 2130
3. केरल राज्य बनाम एम.एल. केसरी: (2010) 9 एससीसी 247
4. नरेंद्र कुमार तिवारी बनाम झारखंड राज्य: (2018) 8 एससीसी 238
5. पश्चिम बंगाल बनाम न्यूनतम मजदूरी निरीक्षक: (2010) 2 एससीसी 425
6. कर्नाटक हैंडलूम डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम श्री महादेव लक्ष्मण रावल: (2006) 13 एससीसी 15
7. मो. अब्दुल कादिर बनाम डीजीपी: (2009) 6 एससीसी 611
8. राजस्थान राज्य व अन्य बनाम दया लाल व अन्य: एआईआर 2011 एससी 1193

9. दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय अनुबंध कर्मचारी संघ और अन्य: 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 256

पत्र द्वारा दिया गया था, जिसमें 31.12.2016 तक रोजगार की संविदात्मक अवधि प्रदान की गई थी।

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

(1) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अनुपम वर्मा और श्री प्रमोद कुमार बजाज और उत्तरदाताओं के अधिवक्ता श्री अनुराग श्रीवास्तव और श्री योगेश चंद्र भट्ट को सुना।

(2) याचिकाकर्ता मूल आवेदन संख्या-485 वर्ष 2018 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 25.02.2020 और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ बेंच, लखनऊ (इसके बाद 'ट्रिब्यूनल' के रूप में संदर्भित) द्वारा समीक्षा आवेदन संख्या-4 वर्ष 2020 में पारित आदेश दिनांक 21.07.2020 से व्यथित है, जिससे दोनों मूल आवेदन (ओए) 485/2018 के साथ-साथ याचिकाकर्ता द्वारा दायर समीक्षा आवेदन संख्या-04/2020 को खारिज कर दिया गया है।

क) ट्रिब्यूनल के समक्ष मामला

(3) याचिकाकर्ता ने दिनांक 05-08-2008 के पत्र द्वारा इंदिरा गांधी राष्ट्रीय उड़ान अकादमी (जिसे इसके बाद आई.जी.आर.यू.ए. कहा गया है) के साथ संविदा आधार पर 06-08-2008 से टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में नियुक्त होने का दावा किया है। याचिकाकर्ता के मामले के अनुसार, अनुबंध की अवधि समय-समय पर बढ़ाई गई थी और याचिकाकर्ता को इस तरह का अंतिम विस्तार दिनांक 26.05.2016 के

(4) याचिकाकर्ता ने आरोप लगाया कि उसकी सेवाएं 01.01.2017 को और उससे मनमाने तरीके से बंद कर दी गई थीं, जबकि एक अन्य कर्मचारी को इसी तरह से परेशान किया गया था, अर्थात् श्रीमती विद्या को टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में रखा गया था, हालांकि वह पहले सहायक लाइब्रेरियन के रूप में काम करने के लिए लगी हुई थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता ने दावा किया कि चूंकि वह प्रतिवादी-आई.जी.आर.यू.ए. के साथ एक टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में 10 से अधिक वर्षों से काम कर रही थी और इस तरह वह नियमित होने की हकदार थी और इस प्रकार, ट्रिब्यूनल के समक्ष दायर मूल आवेदन में निम्नलिखित राहत का दावा किया; उद्धरण के लिए :-

i) पत्र सं 10 को रद्द करने के लिए। आई.जी.आर.यू.ए.: पीएफ: 2016-17: 238 दिनांक 26 मई 16 (अनुलग्नक संख्या-1, पृष्ठ 35) जिसके माध्यम से आवेदक की सेवाओं को 10 साल से अधिक की निरंतर सेवा और उमा देवी (उपरोक्त) के मामले के पैरा-53 की सभी शर्तों को पूरा करने के बाद भी नियमित नहीं किया गया है।

ii. उमा देवी (उपरोक्त 2006), एमएल केसरी (उपरोक्त 2010) और शिव नारायण नगर (उपरोक्त 2017) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार आवेदक की सेवाओं को नियमित करने के लिए उत्तरदाताओं को निर्देशित करने के लिए

आवेदक को उमा देवी (उपरोक्त) के पैरा-53 की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने वाले आवेदक के रूप में सभी परिणामी लाभों के साथ।

आवेदक को अपनी सेवाएं जारी रखने की अनुमति देने और जनवरी 2017 (सेवा बंद करने की तारीख) से इस माननीय न्यायमूर्ति न्यायालय द्वारा पारित आदेश के परिणामस्वरूप शामिल होने की तारीख तक की अवधि के लिए लागू वेतन और अन्य सभी भत्ते आदि का भुगतान करने के लिए उत्तरदाताओं को निर्देशित करने के लिए।

iv. कोई अन्य आदेश या निर्देश जारी करने के लिए जिसे यह माननीय न्यायमूर्ति न्यायालय मामले की प्रकृति और परिस्थितियों में उचित और युक्तिसंगत मान सकता है क्योंकि आवेदक को आवेदक की गरिमा पर अक्षम प्राधिकारी के माध्यम से उत्तरदाताओं के कृत्यों के कारण अपूरणीय व्यक्तिगत/पेशेवर/सामाजिक/वित्तीय नुकसान का सामना करना पड़ा।

v. ऐसा कोई अन्य आदेश या निर्देश पारित करना जो मामले की वर्तमान परिस्थितियों में न्यायसंगत हो।

आवेदक को इस आवेदन की लागत की अनुमति दें।

(5) स्पष्ट रूप से उपरोक्त प्रार्थनाओं का प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया था, जिन्होंने यह कहते हुए अपना जवाब भी दायर किया कि सेवा को बंद करना याचिकाकर्ता को जारी किए गए अनुबंध पत्र के अनुसार था और उन्होंने प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 21 के तहत लागू सीमा से

संबंधित मुद्दा भी उठाया। ट्रिब्यूनल पक्षों के सबमिशन को रिकॉर्ड करने के बाद, पैरा-के माध्यम से 9 आक्षेपित निर्णय का, विचार के लिए निम्नलिखित प्रमुख मुद्दों की गणना की।
उद्धरण के लिए :-

i) आवेदक की सेवाओं को अनुबंध के नियमों और शर्तों के अनुसार बंद कर दिया गया है या नहीं;

ii. क्या ओ.ए. को इस ट्रिब्यूनल द्वारा ओ.ए. 33/2018 में दिए गए आदेश दिनांक 18.09.2018 के माध्यम से दी गई स्वतंत्रता के साथ विचलन के आधार पर खारिज किया जा सकता है;

iii. क्या ओ.ए. को आक्षेपित आदेश/पत्र के रूप में ओ.ए. को दाखिल करने में देरी को संबोधित करने की कमी के आधार पर खारिज किया जा सकता है;

iv. क्या आवेदक की सेवाओं को नियमित किया जाना चाहिए था जैसा कि ओ.ए. मोरेसो में प्रार्थना की गई थी, क्या इस ट्रिब्यूनल द्वारा संबंधित अधिकारियों / उत्तरदाताओं के समक्ष इस संबंध में आवेदक द्वारा कोई आवेदन प्रस्तुत किए बिना किसी भी नियमितीकरण प्रार्थना पर विचार किया जा सकता है।

(6) अभिलेखों के भौतिक तथ्यों की जांच करने वाले ट्रिब्यूनल ने एक निष्कर्ष दिया कि याचिकाकर्ता के विघटन को चुनौती, जहां तक पहले मुद्दे का संबंध था, कानूनी जांच के लिए खड़ी नहीं हो सकती है। इसी तरह, जहां तक दूसरे मुद्दे का संबंध था, ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ता की प्रार्थना को 26.05.2016 के पत्र को रद्द करने की मांग को ट्रिब्यूनल के

समक्ष दायर आवेदन के पहले दौर में उसे दी गई स्वतंत्रता के साथ भिन्न पाया और माना कि ओ.ए. को सीमा द्वारा वर्जित कर दिया गया था।

(7) ट्रिब्यूनल ने मामले के गुण-दोष के आधार पर पाया कि याचिकाकर्ता नियमितीकरण का दावा करने वाले उत्तरदाताओं को भेजे गए किसी भी पत्र/अभ्यावेदन को प्रदर्शित करने में सक्षम नहीं था, जो नियमों के अनुसार ट्रिब्यूनल से प्रार्थना करने से पहले अनिवार्य था। जहां तक (2006)4 एस.सी.सी. 1 में रिपोर्ट किए गए कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमा देवी के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैराग्राफ-53 की प्रयोज्यता का संबंध है, अधिकरण ने पाया कि उक्त निर्णय में उन लोगों की सेवाओं को नियमित करने के लिए केवल एक बार उपाय का प्रावधान किया गया है जो वर्ष 2006 में नामावली पर थे और जिन्होंने 10-04-2006 को 10 वर्ष की सेवा की थी। जो याचिकाकर्ता का मामला नहीं था। ट्रिब्यूनल ने यह भी कहा कि याचिकाकर्ता आई.जी.आर.ए.यू. की नियमित कर्मचारी नहीं थी, न ही इस बात का कोई दावा था कि उसकी जगह किसी अन्य नए संविदा कर्मचारी को नियुक्त किया गया है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा दायर ओ.ए. को बिना किसी योग्यता के पाया गया और इस तरह 25.02.2020 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया।

(8) इसके बाद याचिकाकर्ता ने आक्षेपित आदेश (उपरोक्त) की समीक्षा की मांग करते हुए एक समीक्षा आवेदन दायर किया, जिसमें ट्रिब्यूनल

ने पाया कि जब तक ओ.ए. दायर किया गया था या रिट याचिका दायर की गई थी, याचिकाकर्ता अनुबंध के आधार पर जारी नहीं था और इस तरह यह माना गया था कि हरियाणा राज्य और अन्य बनाम पियारा सिंह और अन्य का ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 2130 में रिपोर्ट किया गया निर्णय तथ्यों पर लागू नहीं होना चाहिए। ट्रिब्यूनल ने प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर उमा देवी (उपरोक्त) के फैसले को भी विभेदित किया और 21.07.2020 के एक आदेश के तहत समीक्षा आवेदन को खारिज कर दिया।

B. याचिकाकर्ता का प्रस्तुतिकरण

(9) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अनुपम वर्मा ने विभिन्न आधारों पर ट्रिब्यूनल द्वारा पारित दोनों आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने की मांग की। इसके अतिरिक्त, अधिवक्ता ने इस अदालत के समक्ष 26.12.2016 के आदेश/पत्र को इस आधार पर चुनौती देने की भी मांग की कि यह एक पद पर बैठे व्यक्ति द्वारा जारी किया गया था, जिसे कभी भी आई.जी.आर.ए.यू. द्वारा नहीं बनाया गया था या सरकार द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था। अधिवक्ता ने मुखर रूप से तर्क दिया कि पियारा सिंह (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय, हालांकि ट्रिब्यूनल के समक्ष उनके द्वारा संदर्भित किया गया था, पर विचार नहीं किया गया था और अंतिम आक्षेपित निर्णय में छोड़ दिया गया था। अधिवक्ता ने यह औचित्य साबित करने की मांग की कि ओ.ए. दाखिल करने में कोई देरी नहीं हुई क्योंकि जाहिर तौर पर इस अदालत ने ट्रिब्यूनल के समक्ष पक्षों को हटा

दिया था और हालांकि इस अदालत ने याचिकाकर्ता के पक्ष में कुछ अंतरिम राहत दी थी, पर ट्रिब्यूनल ने इस पर विचार नहीं किया। आगे यह तर्क दिया गया कि इस अदालत द्वारा गुण-दोष के आधार पर मामले का फैसला करने के निर्देश के बावजूद, ट्रिब्यूनल ने इसका फैसला नहीं किया है और उत्तरदाताओं के अप्रासंगिक प्रस्तुतिकरण पर विचार किया है, जबकि याचिकाकर्ता ने उमा देवी (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैरा-53 में निर्धारित कानून के तय प्रस्ताव के अनुसार अपनी सेवा के नियमितीकरण का दावा किया था, जिस पर ट्रिब्यूनल द्वारा विचार नहीं किया गया और उसका पालन किया गया था।

(10) तथ्यों पर, अधिवक्ता ने इस बात पर प्रकाश डाला कि याचिकाकर्ता 1998 से दैनिक मजदूरी के आधार पर "टेलीफोन ऑपरेटर" के रूप में और बाद में 2008 से अनुबंध के आधार पर प्रतिवादी को अपनी सेवा प्रदान कर रही थी। यह प्रस्तुत किया गया था कि यद्यपि याचिकाकर्ता की सेवा बेदाग थी और वह 10 से अधिक वर्षों से लगातार काम कर रही थी और याचिकाकर्ता का मामला नियमितीकरण के लिए एक उपयुक्त मामला था, पर उसकी सेवाओं को 31.12.2016 को अचानक समाप्त कर दिया गया था। काउंटर दाखिल करने में अत्यधिक देरी के लिए प्रतिवादी को दोषी ठहराते हुए और उसके बाद ट्रिब्यूनल में वापस ले जाया गया, अधिवक्ता ने रिट याचिका में शामिल एक चार्ट पर भरोसा करने की मांग की है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि वह कष्टप्रद कार्यवाही का शिकार हुई थी, हालांकि

वह दिसंबर 2016 से अपनी शिकायतों की प्रक्रिया का परिश्रमपूर्वक अनुसरण कर रही थी।

(11) अधिवक्ता ने गुण-दोष के आधार पर बलपूर्वक मांग की कि याचिकाकर्ता (संविदा कर्मचारी) के स्थान पर किसी अन्य संविदा कर्मचारी की बहाली पियारा सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय के सार में थी। इसके अलावा, चूंकि याचिकाकर्ता पिछले 10 वर्षों से स्वीकृत पद पर न्यायालय के किसी भी आदेश के बिना लगातार काम कर रही थी, इसलिए उसकी सेवा को उमा देवी (उपरोक्त) के पैरा-53 में निर्धारित कानून के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था और कर्नाटक राज्य बनाम एमएल केसरी: (2010) 9 एस.सी.सी. 247 और नरेंद्र कुमार तिवारी बनाम झारखंड राज्य में स्पष्ट किया जाना चाहिए था: (2018) 8 एस.सी.सी. 238। अधिवक्ता ने पश्चिम बंगाल राज्य बनाम न्यूनतम मजदूरी निरीक्षक: (2010) 2 एस.सी.सी. 425 के मामले पर भी भरोसा किया ताकि उनकी दलील का समर्थन किया जा सके कि याचिकाकर्ता ने उस पद के लिए योग्यता वाले स्वीकृत पद पर काम किया था और उसने 10 साल या उससे अधिक समय तक लगातार उस पद के सभी कार्यों और जिम्मेदारियों को निभाया और इसलिए, याचिकाकर्ता कानून के अनुसार टेलीफोन ऑपरेटर के उक्त पद की परिलब्धियों का हकदार था।

(12) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्क का आधार यह है कि ट्रिब्यूनल ने पियारा सिंह (उपरोक्त) और उमा देवी (उपरोक्त) के फैसले के आधार पर आक्षेपित आदेश की समीक्षा

करने में असमर्थता व्यक्त की है और इस तरह इस अदालत को न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए राजी किया जा रहा है ताकि उक्त दोनों निर्णयों पर प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर विचार किया जा सके और तदनुसार राहत प्रदान की जा सके।

C. उत्तरदाताओं का प्रस्तुतीकरण

(13) तथ्यों के आधार पर, उत्तरदाताओं ने याचिकाकर्ता की ओर से दिए गए तर्कों का यह कहते हुए खंडन किया कि याचिकाकर्ता 15.08.1998 से 30.04.2001 की अवधि के दौरान "टेलीफोन ऑपरेटर" के रूप में दैनिक मजदूर के रूप में कार्यरत था। हालांकि, काम की आंतरायिक प्रकृति को देखते हुए, याचिकाकर्ता को चार साल के अंतराल के बाद 01.6.2005 से 05.08.2008 तक की अवधि के लिए दैनिक मजदूरी के आधार पर और 06.08.2008 से अनुबंध के आधार पर फिर से लगाया गया था, जिसे समय-समय पर एक बार में छह महीने की अवधि के लिए समय-समय पर बढ़ाया गया था और अंततः यह 31.12.2016 को समाप्त हो गया। उत्तरदाताओं ने याचिकाकर्ता को नियमित पद पर नियुक्त करने से इनकार किया और अनुबंध के नियमों और शर्तों का उल्लेख करने के लिए दिनांक 05.08.2008 के पत्र पर भरोसा किया।

(14) श्री अनुराग श्रीवास्तव, अधिवक्ता ने तथ्यों पर आगे विस्तार से प्रस्तुत किया कि दिनांक 06.08.2005 के पत्र के तहत, "टेलीफोन ऑपरेटर" के पद पर अनुबंध के आधार पर तीन व्यक्तियों को नियुक्त किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता ने तीसरा स्थान

हासिल किया था और उक्त तीन मामलों में, प्रतिवादी छह महीने की समाप्ति के बाद नियुक्ति की अवधि बढ़ा रहा था। वह प्रस्तुत करता है कि ईपीएबीएक्स स्वचालन के बाद गतिविधियों के विविधीकरण की प्रक्रिया के दौरान, श्रीमती विद्या वी, तीनों में से एक, को टेलीफोन ऑपरेटर की नौकरी से पुस्तकालय में काम करने के लिए 13.10.2009 के कार्यालय आदेश द्वारा स्थानांतरित कर दिया गया था। अधिवक्ता ने प्रतिवादी के मुख्य अभियंता द्वारा जनशक्ति नियोजन से संबंधित दिनांक 25.10.2016 को जारी एक पत्र का भी उल्लेख किया, जिसमें मुख्य अभियंता ने ईपीएबीएक्स प्रणाली के आधुनिकीकरण और उन्नयन के अनुसार तीन टेलीफोन ऑपरेटरों के स्थान पर एक टेलीफोन ऑपरेटर की आवश्यकता की सिफारिश की थी। यह प्रतिवादी का मामला है कि पूर्ण स्वचालन के अनुसरण में और केवल एक टेलीफोन ऑपरेटर की आवश्यकता होने के कारण, तीन उपलब्ध संविदात्मक टेलीफोन ऑपरेटरों का उनके तुलनात्मक प्रदर्शन के लिए मूल्यांकन किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को अंतिम पाया गया था। इस प्रकार, प्रतिवादी ने श्रीमती इंदु जैन को प्रदर्शन में योग्यता के आधार पर टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में बनाए रखा और जिसे उसके बाद टेलीफोन ऑपरेटर के कम काम के साथ डाक डिस्पैच सेक्शन में लिपिकीय कार्य आवंटित किया गया था। यह इस पृष्ठभूमि में था कि प्रबंधक-एच.आर. ने तीन ऑपरेटरों के मूल्यांकन के आधार पर, याचिकाकर्ता को दिनांक 26.12.2016 के पत्र द्वारा 31.12.2016 को अनुबंध की आगामी समाप्ति के बारे में सूचित किया। उत्तरदाताओं ने तर्क दिया है कि टेलीफोन ऑपरेटर के काम

के लिए केवल एक जनशक्ति की आवश्यकता थी, जो 31.12.2016 तक दो द्वारा किया जा रहा था और बाद में वर्ष 2017 के अंत तक, टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में किसी जनशक्ति की आवश्यकता नहीं थी और यहां तक कि श्रीमती इंदु जैन को 2018 में लिपिक कार्य करने के लिए सहायक के रूप में फिर से नामित किया गया था और वर्तमान में आई.जी.आर.ए.यू. में कोई टेलीफोन ऑपरेटर काम नहीं कर रहा है।

(15) इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मामले की विस्तार से की व्याख्या करते हुए, अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मुकदमेबाजी के पहले दौर में, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या-2817 वर्ष 2017 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 26.12.2016 के पत्र को चुनौती दी थी, जिसमें इस न्यायालय ने दिनांक 08.02.2017 के एक आदेश के माध्यम से निर्देश दिया था कि टेलीफोन ऑपरेटर के पद पर कोई नई भर्ती प्रतिवादियों द्वारा नहीं की जाएगी। हालांकि, बाद में उक्त रिट याचिका को वैकल्पिक उपाय के आधार पर 10.10.2018 को निपटाया गया और पक्षों को ट्रिब्यूनल में भेज दिया गया। ट्रिब्यूनल के समक्ष, याचिकाकर्ता ने शुरू में ओ.ए. संख्या-33/2018 दायर किया, हालांकि, इसे वापस ले लिया गया और उसके बाद एक और ओ.ए. संख्या-485 वर्ष 2018 दायर किया गया, जिसे शुरू में हालांकि अंतरिम राहत के लिए आरक्षित किया गया था, लेकिन इसे अंततः 24.01.2019 के एक आदेश के माध्यम से सीमा और योग्यता के आधार पर खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा समीक्षा

दायर किए जाने पर, ट्रिब्यूनल द्वारा दिनांक 20.08.2019 के आदेश के तहत इसकी अनुमति दी गई थी। प्रतिवादी ट्रिब्यूनल द्वारा समीक्षा के उक्त आदेश से खुश नहीं थे और उन्होंने रिट याचिका संख्या-25332/2019 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे इस न्यायालय ने 06.01.2020 के एक आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया था, जिसमें ट्रिब्यूनल को निर्देश दिया गया था कि पक्षकारों को शीघ्र उचित अवसर प्रदान करने के बाद लंबित ओ.ए. का फैसला किया जाए।

(16) गुण-दोष के आधार पर, अधिवक्ता ने ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय को पूरी तरह से वैध और कानून के अनुसार समर्थन दिया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 26.12.2016 का पत्र, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती देने की मांग की गई है, एक आदेश नहीं है, जो याचिकाकर्ता की सेवा को समाप्त करने का इरादा रखता है। उनके अनुसार, उक्त पत्र केवल एक सूचना है कि अनुबंध की अवधि 31.12.2016 को समाप्त हो रही थी और उक्त पत्र को चुनौती पूरी तरह से अनुचित थी। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा तुच्छ आधार अपनाए जा रहे हैं, जिसका उद्देश्य प्रशासन को उसकी संविदात्मक नियुक्ति को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करना है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि 26.12.2016 का पत्र विभाग से जल्द से जल्द मंजूरी प्राप्त करने और वित्त विभाग को जमा करने की सलाह के साथ जारी किया गया था, जिससे प्रतिवादी याचिकाकर्ता की बकाया राशि को साफ करने में सक्षम

होगा। यह भी तर्क दिया गया है कि प्रबंधक-मानव संसाधन का पद पहले से ही संचालन समिति द्वारा अनुमोदित है और भारत सरकार द्वारा इसकी पुष्टि की गई है।

(17) अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से इस बात को समझाने की कोशिश की है कि याचिकाकर्ता को किसी अन्य संविदा कर्मचारी द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया गया था, इसलिए पियारा सिंह (उपरोक्त) का निर्णय प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है और इस तरह याचिकाकर्ता का तर्क उस हद तक भ्रामक था। किसी भी मामले में, यह ईपीएबीएक्स प्रणाली के स्वचालन के कारण कम जनशक्ति की आवश्यकता के कारण एक अनुबंधित कर्मचारी की अवधि के नवीकरण का मामला था और किसी अन्य संविदा कर्मचारी द्वारा प्रतिस्थापन का मामला नहीं था। टेलीफोन ऑपरेटर के पद को समाप्त किए जाने के बाद प्रतिवादी द्वारा टेलीफोन ऑपरेटर के पद पर कोई नई भर्ती नहीं की गई थी।

(18) प्रतिवादी के अधिवक्ता ने उमा देवी (उपरोक्त) के आधार पर नियमितीकरण के लिए याचिकाकर्ता के तर्क को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि ट्रिब्यूनल ने एक विशिष्ट निष्कर्ष दिया है कि यह प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि कार्मिक, पीजी और पेंशन मंत्रालय, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा दिनांक 07.10.2020 को एक कार्यालय जापन भी जारी किया गया था, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि उमा देवी (उपरोक्त) के अनुसार स्वीकृत पद के लिए नियुक्त योग्य

श्रमिकों का नियमितीकरण केवल एक बार का अभ्यास था और यह केवल उन कर्मचारियों पर लागू था जिन्होंने 10.04.2006 को 10 साल की निरंतर सेवा की थी जो प्रस्तुत मामला नहीं है। प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता द्वारा एक नियमित कर्मचारी के रूप में परिलब्धियों के अधिकार के तर्क का इस आधार पर खंडन करने की भी कोशिश की है कि टेलीफोन ऑपरेटर का काम प्रकृति में रुक-रुक कर था और उसकी सेवाएं केवल काम की अनिवार्यता में लगी हुई थीं। उमा देवी (उपरोक्त) के पैरा-44 का उल्लेख करते हुए अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने केवल 06.08.2008 को एक संविदा कर्मचारी के रूप में कार्यभार ग्रहण किया था, जबकि उक्त निर्णय के अनुसार कट-ऑफ तारीख लागू होने के लिए 10.04.2006 तक कम से कम 10 साल की संविदात्मक सेवा थी।

(19) अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि जबकि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी द्वारा अनुबंध पर रखा गया था, नागरिक उड्डयन मंत्रालय, प्रशासनिक मंत्रालय द्वारा आई.जी.आर.ए.यू. में अनुबंध के आधार पर लगे कर्मचारियों, जो एक विशिष्ट अवधि के लिए लगातार लगे हुए थे, की सेवाओं को नियमित करने के लिए कोई आदेश जारी नहीं किया गया था। अधिवक्ता ने दोहराया है कि ट्रिब्यूनल द्वारा पियारा सिंह (उपरोक्त) और उमा देवी (उपरोक्त) की गैर-प्रयोज्यता के निष्कर्ष और अवलोकन एक सही दृष्टिकोण था। इसके अलावा, उन्होंने सीमा पर ट्रिब्यूनल के निष्कर्षों का समर्थन किया और दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि ट्रिब्यूनल ने सर्वोच्च न्यायालय के किसी भी फैसले को खारिज नहीं

किया, बल्कि ट्रिब्यूनल ने रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर एक निष्कर्ष निकाला कि ट्रिब्यूनल के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत निर्णय संदर्भ के लिए प्रासंगिक नहीं थे और यहां तक कि योग्यता के आधार पर भी याचिकाकर्ता किसी भी राहत के लिए हकदार नहीं था। इस प्रकार, उन्होंने वर्तमान रिट याचिका को खारिज करने की प्रार्थना की है।

D. चर्चा और निष्कर्ष

(20) पक्षकारों के अधिवक्ताओं को विस्तार से सुनने और अभिलेखों पर सामग्री के अवलोकन के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि मामले के तथ्य एक संकीर्ण दायरे में हैं। निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता को दिनांक 05.08.2008 के एक पत्र के तहत आई.जी.आर.यू.ए. के साथ अनुबंध के आधार पर 06.08.2008 से टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में नियुक्त किया गया था। उक्त पत्र में उल्लेख किया गया है कि संविदात्मक नियुक्ति छह महीने की अवधि के लिए वैध होगी और छह महीने पूरे होने पर स्वचालित रूप से समाप्त हो जाएगी। याचिकाकर्ता को प्रतिवादी द्वारा अनुबंध के आधार पर नियोजित किया जाना जारी रखा गया था और अंतिम विस्तार प्रतिवादी द्वारा दिनांक 26.05.2016 के पत्र/आदेश द्वारा दिया गया था, जिसमें रोजगार की संविदात्मक अवधि को 31.12.2016 तक बढ़ा दिया गया था।

(21) इस न्यायालय ने पाया कि यह 26.05.2016 का पूर्वोक्त विस्तार पत्र है, जिसे याचिकाकर्ता द्वारा ओ.ए. में ट्रिब्यूनल के समक्ष चुनौती देने की मांग की गई थी, जिससे

तत्काल आक्षेपित आदेश हुआ। यह बेतुका है कि याचिकाकर्ता उक्त विस्तार पत्र को कैसे चुनौती दे सकता था, जो केवल याचिकाकर्ता की अनुबंध अवधि को 31.12.2016 तक बढ़ाता है। याचिकाकर्ता न तो इस अदालत के समक्ष और न ही ट्रिब्यूनल के समक्ष यह स्पष्ट कर सकता है कि उक्त पत्र का कौन सा हिस्सा अस्थिर है या याचिकाकर्ता उक्त आक्षेपित पत्र जारी करने से कैसे व्यथित है। इसके अलावा, ऐसा लगता है कि याचिकाकर्ता खुद स्पष्ट नहीं है कि प्रचलित कानून के तहत उसकी शिकायत या उसका अधिकार क्या है क्योंकि जाहिरा तौर पर मुकदमेबाजी के पहले दौर में, जिसमें उसे इस अदालत द्वारा ट्रिब्यूनल में वापस भेज दिया गया था, याचिकाकर्ता ने 31.12.2016 को अपने संविदात्मक रोजगार की समाप्ति के बारे में सूचित करते हुए प्रबंधक-एच.आर. द्वारा जारी किए गए आदेश दिनांक 26.12.2016 को चुनौती देते हुए एक ओ.ए. संख्या-33/2018 दायर किया था। हालांकि 26.12.2016 का उक्त पत्र केवल सभी विभागों/अनुभागों से मंजूरी प्राप्त करने से संबंधित था, ताकि याचिकाकर्ता को समय पर अपना बकाया चुकाने में सक्षम बनाया जा सके।

(22) रिकॉर्ड के अनुसार, बंधाव के पहले दौर में दायर ओ.ए. संख्या-33/2018 को याचिकाकर्ता द्वारा वापस ले लिया गया था, जिसमें कार्रवाई के उसी कारण पर एक नया ओ.ए. दायर करने की स्वतंत्रता थी। हालांकि, याचिकाकर्ता ने नया ओ.ए. संख्या-485/2018 दाखिल करते हुए, दिनांक 26.12.2016 के आदेश और कुछ अन्य पत्र को चुनौती नहीं दी;

याचिकाकर्ता को विस्तार देने के दिनांक 26.05.2016 के पत्र को चुनौती देने की मांग की गई थी। इस पृष्ठभूमि में ट्रिब्यूनल ने याचिकाकर्ता के 26.05.2016 के पत्र को रद्द करने की मांग करने वाली प्रार्थना को ट्रिब्यूनल के समक्ष दायर मुकदमेबाजी/ आवेदन के पहले दौर में दी गई स्वतंत्रता के साथ भिन्न पाया। इस प्रकार, दिनांक 26.05.2016 के पत्र को ट्रिब्यूनल द्वारा उचित नहीं पाया गया और इसके अलावा, ट्रिब्यूनल ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर ओ.ए. में देरी हुई थी, क्योंकि सीमा अवधि के बाद दायर किया गया था और चूंकि प्रशासनिक ट्रिब्यूनल अधिनियम की धारा 21(3) के संदर्भ में देरी आवेदन की कोई माफी नहीं थी, ट्रिब्यूनल द्वारा पारित 24.01.2019 के पहले के आदेश के बावजूद ओ.ए. को खारिज कर दिया गया था। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में ट्रिब्यूनल ने यह भी माना कि ओ.ए. सीमा के अधीन नहीं था।

(23) इस न्यायालय ने पाया कि ट्रिब्यूनल का तर्क दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में सीमा पर आवेदन को खारिज करने के लिए उपयुक्त था, हालांकि, इस अदालत को सीमा पर उक्त टिप्पणी के साथ आगे नहीं रखा जा सकता था क्योंकि ट्रिब्यूनल ने प्रस्तुत मामले की योग्यता पर भी विस्तार से विचार किया था और यहां तक कि योग्यता के आधार पर ओ.ए. को खारिज कर दिया था।

(24) ट्रिब्यूनल ने मामले के गुण-दोष के आधार पर पाया कि याचिकाकर्ता नियमितीकरण का दावा करने वाले उत्तरदाताओं

को भेजे गए किसी भी पत्र/अभ्यावेदन को प्रदर्शित करने में सक्षम नहीं था, जो नियमों के अनुसार ट्रिब्यूनल से प्रार्थना करने से पहले अनिवार्य था। इस अदालत ने यह भी पाया कि याचिकाकर्ता इस तरह के किसी भी प्रतिनिधित्व की अनुपस्थिति में, विभिन्न पत्रों को चुनौती देने की मांग कर रहा था, जो केवल या तो संविदात्मक अनुबंध के विस्तार की प्रकृति में जारी किए गए थे या यह सूचित करते हुए कि अनुबंध की अनुबंध किसी विशेष तारीख को समाप्त हो रही थी। किसी भी मामले में, दिनांक 25.05.2016 या 26.12.2016 के पत्र पर आधारित एक चुनौती, याचिकाकर्ता के मामले को कहीं भी नहीं ले जाती है क्योंकि इन पत्रों ने न तो कोई अधिकार बनाया है और न ही याचिकाकर्ता के किसी भी अधिकार को समाप्त किया है।

(25) हालांकि, यह देखा गया है कि याचिकाकर्ता ने कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमा देवी (उपरोक्त), कर्नाटक राज्य बनाम एमएल केसरी (उपरोक्त) और नरेंद्र कुमार तिवारी बनाम झारखंड राज्य (उपरोक्त) सहित विभिन्न निर्णयों का हवाला देते हुए नियमितीकरण का दावा किया है।

(26) इस न्यायालय को यह नोट करना लाभदायक लगता है कि ट्रिब्यूनल नियुक्ति पत्र की सामग्री के साथ-साथ विस्तार पत्र का विश्लेषण करने के बाद, एक निर्णय पर पहुंचा कि याचिकाकर्ता की अनुबंध पूरी तरह से संविदात्मक थी। ट्रिब्यूनल ने एक स्पष्ट निष्कर्ष प्रतिबिंबित किया है कि 26.05.2016 के एक पत्र के माध्यम से, याचिकाकर्ता को

सूचित किया गया था कि उसका विस्तार केवल 31.12.2016 तक होगा और अंत में 26.12.2016 के पत्र के माध्यम से, उसे 31.12.2016 को अनुबंध अवधि की आगामी समाप्ति के बारे में सूचित किया गया था और इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया था कि याचिकाकर्ता केवल अनुबंध के आधार पर लगी हुई थी। ट्रिब्यूनल ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता के नियमित पद पर नियुक्त होने का दावा पर्याप्त रूप से प्रमाणित नहीं था। इस न्यायालय के समक्ष भी, याचिकाकर्ता की ओर से कोई तर्क नहीं दिया गया है कि क्या याचिकाकर्ता को नियमित स्वीकृत पद पर नियुक्त किया गया था।

(27) इसके विपरीत, इस न्यायालय ने पाया कि (i) याचिकाकर्ता की नियुक्ति निश्चित अवधि के आधार पर हुई थी; (ii) प्रत्येक विस्तार एक विशिष्ट लिखित आदेश के तहत आच्छादित किया गया था, जिसने उक्त विस्तार के अंत में आने की तारीख निर्धारित की थी; (iii) नियुक्ति के क्रम में परिकल्पित अवधि के पूरा होने के बाद, जब तक कि विस्तार नहीं किया गया था, अनुबंध समाप्त हो जाएगी; और (iv) याचिकाकर्ता के रोजगार की अवधि 31.12.2016 को समाप्त हो गई। इस प्रकार, तथ्यों से ऐसा लगता है कि याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त नहीं की गई थी, बल्कि यह याचिकाकर्ता को अनुबंध की अवधि का कोई और विस्तार नहीं देने का मामला था। अब, इसलिए यह सवाल उठेगा कि क्या याचिकाकर्ता इस मामले के अजीबोगरीब तथ्यों में अपने विस्तार के लिए हकदार थी, जिसमें यह रिकॉर्ड पर आया है कि प्रौद्योगिकी की

प्रगति के कारण "टेलीफोन ऑपरेटर" का पद चरणबद्ध तरीके से समाप्त हो गया था। उत्तर नकारात्मक होगा। हालांकि, याचिकाकर्ता द्वारा यह दलील दी गई है कि वह पिछले दस वर्षों से अधिक समय से उक्त रोजगार के लिए लगी हुई थी। यह अदालत पाती है कि एक संविदा कर्मचारी को दिए गए विस्तार की एक श्रृंखला भी उक्त कर्मचारी की स्थिति को नहीं बदलती है। कर्नाटक हथकरघा विकास निगम लिमिटेड बनाम श्री महादेव लक्ष्मण रावल (2006) 13 एस.सी.सी. 15 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने हालांकि औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत छंटनी के मुद्दे पर विचार किया है, जिसमें छंटनी मुआवजे का लाभ उठाने के लिए कानून के तहत निरंतर अनुबंध वर्ष 240 दिन निर्धारित किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-18 में अपना तर्क निम्नानुसार दर्ज किया है:

"हमने प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत दिनांक 14.01.1991, 24.02.1992, 10.02.1993, 03.03.1993 और 30.11.1993 के सभी नियुक्ति पत्रों को अनुलग्नक के रूप में देखा है, जो लगातार और स्पष्ट रूप से बताते हैं कि निगम के साथ प्रतिवादी की नियुक्ति एक निश्चित अवधि के लिए विशुद्ध रूप से संविदात्मक थी। प्रतिवादी केवल विश्व कार्यक्रम योजना के तहत लगा हुआ था जो अस्तित्व में नहीं है। अब यह योजना अगस्त, 1994 के दौरान समाप्त हो गई, प्रतिवादी भी निगम के किसी भी सेवा नियम द्वारा शासित नहीं था। निगम ने 31.08.1993 से अनुबंध को समाप्त कर दिया, जिसे हमारी राय में, सेवा से बर्खास्तगी नहीं कहा जा सकता है। यहां तक कि यह मानते हुए कि प्रतिवादी ने लगातार

240 दिन काम किया था, वह हमारी राय में, यह दावा नहीं कर सकता कि उसकी सेवाओं को जारी रखा जाना चाहिए क्योंकि वर्ष 240 दिन की संख्या प्रतिवादी पर लागू नहीं होती है क्योंकि उसकी सेवाएं विशुद्ध रूप से संविदात्मक थीं। उनके अनुबंध की समाप्ति, हमारे विचार में, छंटनी नहीं है और इसलिए, यह आईडी अधिनियम की धारा 25 एफ के अनुपालन को आकर्षित नहीं करता है। (महत्त्व सन्निविष्ट)

(28) यह न्यायालय पहले ही याचिकाकर्ता की नियुक्ति के नियमों और शर्तों का अवलोकन कर चुका है। इसके अलावा, अनुबंध के सभी आदेशों में विशिष्ट अवधि और मानदेय की राशि का भी उल्लेख किया गया है। हालांकि, याचिकाकर्ता काफी समय से लगी हुई थी, लेकिन संविदात्मक अनुबंध में होने की उसकी स्थिति नहीं बदलती है। यह अदालत इस तथ्य से अनजान नहीं रह सकती है कि यह स्थापित कानून है कि भले ही कोई योजना कुछ दशकों से चल रही हो या संबंधित कर्मचारी दशकों से तदर्थ आधार पर चल रहा हो, लेकिन यह कर्मचारी को स्थायीता या नियमितीकरण की मांग करने का अधिकार नहीं देगा। माननीय उच्चतम न्यायालय ने मो. अब्दुल कादिर बनाम डीजीपी (2009)6 एससीसी 611, के निर्णय में निम्नलिखित टिप्पणी की है -

"15. परियोजना के पूरा होने या योजना के बंद होने पर, जो लोग ऐसी परियोजना या योजना के संदर्भ में या उसके संबंध में लगे थे, वे सेवा में बने रहने के किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकते हैं, न ही किसी अन्य परियोजना या सेवा में नियमितीकरण की मांग कर सकते हैं।

(29) हालांकि, याचिकाकर्ता द्वारा आंदोलित होने की मांग की जा रही है कि क्या एक अवधि में समय-समय पर की गई ऐसी संविदात्मक नियुक्ति याचिकाकर्ता को उमा देवी के मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के मद्देनजर नियमितीकरण के लिए हकदार बनाएगी। अधिवक्ता ने निर्णय के पैरा-53 पर दृढ़ता से भरोसा किया है। यह न्यायालय उमा देवी के मामले (उपरोक्त) के पैरा-53 पर विचार करने से पहले उक्त पैरा-53 के साथ फैसले के पैरा-47 और 49 का उल्लेख करना चाहता है, जिसमें संवैधानिक पीठ ने निम्नानुसार कहा: -

"47. जब कोई व्यक्ति अस्थायी रोजगार में प्रवेश करता है या संविदात्मक या आकस्मिक कार्यकर्ता के रूप में अनुबंध करता है और अनुबंध प्रासंगिक नियमों या प्रक्रिया द्वारा मान्यता प्राप्त उचित चयन पर आधारित नहीं होती है, तो वह नियुक्ति अस्थायी, आकस्मिक या प्रकृति में संविदात्मक है, के परिणामों से अवगत होता है। ऐसा व्यक्ति पद पर पुष्टि किए जाने के लिए वैध अपेक्षा के सिद्धांत का आह्वान नहीं कर सकता है जब पद पर नियुक्ति केवल चयन के लिए एक उचित प्रक्रिया का पालन करके और संबंधित मामलों में, लोक सेवा आयोग के परामर्श से की जा सकती है। इसलिए, वैध अपेक्षा के सिद्धांत को अस्थायी, संविदात्मक या आकस्मिक कर्मचारियों द्वारा सफलतापूर्वक उठाया नहीं जा सकता है। यह भी नहीं माना जा सकता है कि राज्य ने इन व्यक्तियों को नियुक्त करते समय कोई वादा किया है कि वे या तो उन्हें वहीं जारी रखेंगे या उन्हें स्थायी करेंगे। राज्य संवैधानिक रूप से ऐसा वादा नहीं कर सकता।

यह भी स्पष्ट है कि पद पर स्थायी बनाए जाने की सकारात्मक राहत पाने के लिए सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है।

49. यह तर्क दिया जाता है कि कर्मचारियों को नियमित नहीं करने में राज्य की कार्रवाई कानून के शासन के ढांचे के भीतर उचित नहीं थी। कानून का शासन राज्य को संविधान द्वारा परिकल्पित और हमारे द्वारा पहले बताए गए तरीके से नियुक्तियां करने के लिए मजबूर करता है। इनमें से अधिकांश मामलों में, निस्संदेह, कर्मचारियों ने कुछ समय तक काम किया था, लेकिन यह न्यायाधिकरणों और कर्मचारियों के कहने पर शुरू की गई अदालतों में कार्यवाहियों के लंबित रहने के कारण भी हुआ है। इसके अलावा, इस प्रकृति के तर्क को स्वीकार करने का अर्थ होगा कि राज्य को सार्वजनिक रोजगार के मामले में अवैध बनाए रखने की अनुमति दी जाएगी और यह हमारे द्वारा, भारत के लोगों द्वारा अपनाई गई संवैधानिक योजना का निषेध होगा। इसलिए इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि दैनिक मजदूरी पर नियोजित सभी व्यक्तियों को स्थायी बनाने का निर्देश होना चाहिए। जब अदालत को रिट के माध्यम से राहत के लिए संपर्क किया जाता है, तो अदालत को खुद से पूछना पड़ता है कि क्या इससे पहले व्यक्ति को स्थायी होने का कोई कानूनी अधिकार था। बहुत स्पष्ट संवैधानिक योजना के आलोक में विचार करने पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि कर्मचारी स्थायी किए जाने के कानूनी अधिकार को स्थापित करने में सक्षम हैं, भले ही उन्हें प्रासंगिक नियमों के संदर्भ में या संविधान के अनुच्छेद 14 और

16 के अनुपालन में कभी भी नियुक्त नहीं किया गया हो।

53. एक पहलू को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां एस.वी नारायणप्पा, आर.एन नंजुंदप्पा और बी.एन नागराजन में बताए गए और ऊपर पैरा-15 में उल्लिखित अनियमित नियुक्तियां (अवैध नियुक्तियां नहीं) विधिवत स्वीकृत रिक्त पदों पर विधिवत योग्य व्यक्तियों की की गई हों और कर्मचारियों ने अदालतों या न्यायाधिकरणों के आदेशों के हस्तक्षेप के बिना दस साल या उससे अधिक समय तक काम करना जारी रखा हो। ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं के नियमितीकरण के प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त मामलों में तय सिद्धांतों के आलोक में और इस निर्णय के आलोक में गुण-दोष के आधार पर विचार किया जा सकता है। इस संदर्भ में, भारत संघ, राज्य सरकारों और उनके अंगों को ऐसे अनियमित रूप से नियुक्त व्यक्तियों की सेवाओं को एकबारगी उपाय के रूप में नियमित करने के लिए कदम उठाने चाहिए, जिन्होंने विधिवत स्वीकृत पदों पर दस वर्ष या उससे अधिक समय तक कार्य किया है, लेकिन न्यायालयों या न्यायाधिकरणों के आदेशों की आड़ में नहीं हैं और यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि उन रिक्त स्वीकृत पदों को भरने के लिए नियमित भर्ती की जाती है जिन्हें भरा जाना अपेक्षित है, ऐसे मामलों में जहां अस्थायी कर्मचारियों या दैनिक वेतन भोगियों को अब नियोजित किया जा रहा है। इस तिथि से छह महीने के भीतर प्रक्रिया को गति दी जानी चाहिए। हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि नियमितीकरण, यदि कोई पहले से ही किया गया है, लेकिन विचाराधीन नहीं है, तो

इस फैसले के आधार पर फिर से खोलने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन संवैधानिक आवश्यकता को दरकिनार नहीं किया जाना चाहिए और संवैधानिक योजना के अनुसार विधिवत नियुक्त नहीं किए गए लोगों को नियमित या स्थायी नहीं किया जाना चाहिए। (महत्व दिया गया)

(30) स्पष्ट रूप से, अनियमित या अवैध नियुक्ति को नियमित करना माननीय सर्वोच्च न्यायालय का आदेश नहीं है। इस प्रकार, एक निर्णय से एक वाक्य को लेने या माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय से कुछ टिप्पणी लेने पर, उमा देवी के मामले (उपरोक्त) में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ के निर्णय के अक्षरशः, भावना और इरादे के उल्लंघन में नियमितीकरण या स्थायी अवशोषण का लाभ नहीं दिया जा सकता है। इसके अलावा, यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के अर्थ के भीतर कानून को निर्धारित करने वाले सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले को उसमें निर्धारित अनुपात का पता लगाने के उद्देश्य से पूरी तरह से पढ़ा जाना चाहिए। संविधान पीठ ने स्पष्ट शब्दों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में निहित 'समानता खंड' की कसौटी पर अपना निर्णय आधारित किया। सभी संबंधितों को अवसर प्रदान करने पर ही नियुक्तियां करने के लिए एक से अधिक स्थानों पर जोर दिया गया है और संवैधानिक योजना के अनुसार, बैक-डोर के माध्यम से नियुक्ति को संवैधानिक रूप से अनुमेय माना गया है।

(31) इस न्यायालय ने पाया कि भले ही याचिकाकर्ता दस साल से अधिक समय से अनुबंध के आधार पर लगा हुआ हो, फिर भी, अगर संवैधानिक योजना के अनुसार संविदात्मक नियुक्ति नहीं की गई थी, याचिकाकर्ता के पास नियमितीकरण के लिए कोई दावा नहीं होगा। याचिकाकर्ता का मामला भी निर्णय के पैरा-53 में उमा देवी के मामले (उपरोक्त) द्वारा निर्धारित अपवाद के भीतर नहीं आएगा, क्योंकि, याचिकाकर्ता उक्त निर्णय से पहले आवश्यक अवधि के लिए सेवा में नहीं था। प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता की सबसे पहली संविदात्मक नियुक्ति 06.08.2008 को हुई थी और उमा देवी के मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ का फैसला 10.04.2006 को सुनाया गया था, उस समय तक, याचिकाकर्ता ने उक्त निर्णय में अनिवार्य दस साल की सेवाएं पूरी नहीं की होंगी। इसके अलावा, उमा देवी का मामला (उपरोक्त) माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित एक बार का उपाय था। इसके अलावा, उमा देवी के निर्णय के आवेदन पर, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम एम.एल.केसरी और अन्य (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख करना असंगत नहीं होगा। एम.एल.केसरी के मामले (उपरोक्त) में, उमा देवी के मामले (उपरोक्त) के पैरा-53 द्वारा बनाए गए अपवाद के साथ-साथ उन परिस्थितियों के लिए जिनके तहत ऐसे व्यक्तियों पर विचार किया जाना था, कानून की स्थिति स्पष्ट की गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैरा-6, 7 और 8 में अवधारित

उमा देवी के मामले (उपरोक्त) को स्पष्ट किया जो संदर्भ के लिए प्रासंगिक हैं: -

"6. उमा देवी में इस न्यायालय ने आगे कहा कि एक अस्थायी, संविदात्मक, आकस्मिक या दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी को स्थायी होने का कानूनी अधिकार नहीं है जब तक कि उसे प्रासंगिक नियमों के संदर्भ में या संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के पालन में नियुक्त नहीं किया गया हो। हालांकि इस न्यायालय ने उपरोक्त स्थिति के लिए एक अपवाद बनाया और इसे नीचे उद्धृत किया गया है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 42, पैरा-53)

"53. एक पहलू को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां मैसूर राज्य बनाम एस.वी नारायणप्पा, ए.आई.आर.(1967)एस.सी. 1071 आर.एन नंजुंदप्पा बनाम टी थिम्मिया, (1972)1 एस.सी.सी. 409 और बी.एन नागराजन बनाम कर्नाटक राज्य, (1979)4 एस.सी.सी. 507 और ऊपर पैरा-15 में उल्लिखित अनियमित नियुक्तियां (अवैध नियुक्तियां नहीं) की गई हों, विधिवत स्वीकृत रिक्त पदों पर विधिवत योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की गई हो और कर्मचारियों ने चौदह वर्ष या उससे अधिक समय तक काम करना जारी रखा हो। अदालतों या न्यायाधिकरणों के आदेशों के हस्तक्षेप के बिना, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं के नियमितीकरण के प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त मामलों में तय सिद्धांतों के आलोक में और इस निर्णय के आलोक में गुण-दोष के आधार पर विचार किया जा सकता है। इस संदर्भ में, भारत संघ, राज्य सरकारों और उनके तंत्रों को ऐसे अनियमित रूप से नियुक्त ऐसे व्यक्तियों की सेवाओं को एकबारगी उपाय

के रूप में नियमित करने के लिए कदम उठाने चाहिए, जिन्होंने विधिवत स्वीकृत पदों पर चौदह वर्ष या उससे अधिक कार्य किया है, लेकिन न्यायालयों या न्यायाधिकरणों के आदेशों की आड़ में नहीं हैं और यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि उन रिक्त स्वीकृत पदों को भरने के लिए नियमित भर्ती की जाती है जिन्हें भरा जाना अपेक्षित है, ऐसे मामलों में जहां अस्थायी कर्मचारियों या दैनिक वेतन भोगियों को अब नियोजित किया जा रहा है। इस तारीख से छह महीने के भीतर प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए।

7. उपर्युक्त से स्पष्ट है कि उमा देवी में प्रतिपादित "नियमितीकरण" के विरुद्ध सामान्य सिद्धांतों का अपवाद है, यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाती हैं:

(i) संबंधित कर्मचारी को किसी न्यायालय अथवा अधिकरण के अंतरिम आदेश के लाभ अथवा संरक्षण के बिना विधिवत स्वीकृत पद पर 10 वर्ष या उससे अधिक समय तक कार्य किया होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, राज्य सरकार या इसके तंत्र को कर्मचारी को नियोजित करना चाहिए था और उसे स्वेच्छा से और लगातार दस साल से अधिक समय तक सेवा में जारी रखना चाहिए।

(ii) ऐसे कर्मचारी की नियुक्ति अवैध नहीं होनी चाहिए, भले ही वह अनियमित ही क्यों न हो। जहां स्वीकृत पदों पर नियुक्तियां नहीं की जाती हैं या जारी रखी जाती हैं या जहां नियुक्त व्यक्ति निर्धारित न्यूनतम योग्यता नहीं रखते हैं, वहां नियुक्तियों को अवैध माना जाएगा। लेकिन जहां नियोजित व्यक्ति निर्धारित योग्यता रखता था और स्वीकृत पदों के खिलाफ काम कर रहा था, लेकिन खुले

प्रतियोगी चयन की प्रक्रिया से गुजरे बिना चुना गया था, ऐसी नियुक्तियों को अनियमित माना जाता है।

8. उमा देवी मामला संबंधित सरकार या संबंधित तंत्र पर एक कर्तव्य डालती है, उन अनियमित रूप से नियुक्त कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित करने के लिए कदम उठाने के लिए, जिन्होंने अदालतों या न्यायाधिकरणों के किसी भी अंतरिम आदेशों के लाभ या संरक्षण के बिना दस साल से अधिक समय तक सेवा की थी, एक बार के उपाय के रूप में। उमा देवी प्रकरण ने निर्देश दिया कि इस तरह के एक बार के उपाय को उसके निर्णय की तारीख (10.4.2006 को प्रदत्त) से छह महीने के भीतर लागू किया जाना चाहिए।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

(32) किसी भी मामले में, राजस्थान राज्य और अन्य बनाम दया लाल और अन्य: ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 1193 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय सभी संभावित घटनाओं में अनियमित या अंशकालिक नियुक्तियों के नियमितीकरण के दायरे पर विचार कर रहा था और उमा देवी (उपरोक्त) सहित विभिन्न निर्णयों को निम्नलिखित तरीके से नोट करने के बाद नियमितीकरण से संबंधित अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत निर्धारित किया था: -

"6. हम शुरुआत में नियमितीकरण और वेतन में समानता से संबंधित निम्नलिखित अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों का उल्लेख कर सकते हैं, जो इन अपीलों के संदर्भ में प्रासंगिक हैं:

(i) संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय, नियमितीकरण, आमेलन या स्थायी निरंतरता के लिए निदेश तब तक जारी नहीं करेंगे जब तक नियमितीकरण का दावा करने वाले कर्मचारियों को संस्वीकृत रिक्त पदों के विरुद्ध संगत नियमों के अनुसरण में संगत नियमों के अनुसरण में नियमित भर्ती के अनुसरण में नियुक्त नहीं किया गया था। अनुच्छेद 14 और 16 में निहित समानता खंड का ईमानदारी से पालन किया जाना चाहिए और अदालतों को किसी कर्मचारी की सेवाओं के नियमितीकरण के लिए निर्देश जारी नहीं करना चाहिए जो संवैधानिक योजना का उल्लंघन होगा। जबकि चयन की प्रक्रिया में किसी एक तत्व के अनुपालन के अभाव में जो कुछ अनियमित है, जो प्रक्रिया की जड़ तक नहीं जाता है, को नियमित किया जा सकता है, पिछले दरवाजे से प्रविष्टियां, संवैधानिक योजना के विपरीत नियुक्तियां और/या अपात्र उम्मीदवारों की नियुक्ति को नियमित नहीं किया जा सकता है।

(ii) न्यायालय के कुछ अंतरिम आदेशों की आड़ में किसी अस्थायी या तदर्थ या दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी द्वारा सेवा जारी रखने से उसे सेवा में समाहित होने का कोई अधिकार नहीं मिलेगा क्योंकि ऐसी सेवा मुकदमेबाजी वाला रोजगार होगा। यहां तक कि लंबे समय तक अस्थायी, तदर्थ या दैनिक मजदूरी सेवा, एक या दो साल के लिए अकेले सेवा दें, ऐसे कर्मचारी को नियमितीकरण का दावा करने का हकदार नहीं होगा, यदि वह एक स्वीकृत पद के खिलाफ काम नहीं कर रहा है। सहानुभूति और भावना कानूनी अधिकार के अभाव में

नियमितीकरण के किसी भी आदेश को पारित करने का आधार नहीं हो सकती है।

(iii) यहां तक कि जहां अंतिम तारीख के साथ नियमितीकरण के लिए कोई योजना तैयार की गई है (अर्थात् ऐसी योजना है जिसमें यह प्रावधान है कि जिन व्यक्तियों ने निर्धारित वर्षों की सेवा की है और अंतिम तारीख को रोजगार में जारी है), यह उन अन्य लोगों के लिए संभव नहीं है जिन्हें अंतिम तारीख के बाद नियुक्त किया गया था, (ख) यदि हां, तो तत्संबंधी ब्यौरा क्या है; और

(iv) अंशकालिक कर्मचारी नियमितीकरण की मांग करने के पात्र नहीं हैं क्योंकि वे किसी स्वीकृत पद पर कार्य नहीं कर रहे हैं। अंशकालिक अस्थायी कर्मचारियों के आमेलन, नियमितीकरण या स्थायी रूप से बने रहने के लिए कोई निर्देश नहीं हो सकता है।

(v) सरकार द्वारा संचालित संस्थाओं में अंशकालिक अस्थायी कर्मचारी समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत पर सरकार के नियमित कर्मचारियों के साथ वेतन में समानता का दावा नहीं कर सकते हैं। न ही निजी रोजगार में कर्मचारी, भले ही पूर्णकालिक सेवा कर रहे हों, सरकारी कर्मचारियों के साथ वेतन में समानता की मांग कर सकते हैं। राज्य के खिलाफ एक विशेष वेतन का दावा करने का अधिकार एक अनुबंध या एक कानून के तहत उत्पन्न होना चाहिए।

(देखें सचिव, कर्णाटक राज्य बनाम उमा देवी-2006 (4) एस.सी.सी. 1, एम राजा बनाम सीईईआरआई एजुकेशनल सोसायटी, पिलानी-2006 (12) एस.सी.सी. 636, एस.सी.सी. चन्द्र बनाम झारखंड राज्य-2007 (8) एस.सी.सी. 279, कुरुक्षेत्र केन्द्रीय सहकारी बैंक लि बनाम

मेहर चन्द-2007(15) एस.सी.सी. 680 और शासकीय परिसमापक बनाम दयानंद 2008 (10 एस.सी.सी.1)

(33) इस प्रकार, सुरक्षित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नियमितीकरण से संबंधित कानून अब एकीकृत नहीं है, क्योंकि, यह स्पष्ट है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय नियमितीकरण, अवशोषण या स्थायी निरंतरता के लिए निर्देश जारी नहीं करेंगे, जब तक कि नियमितीकरण का दावा करने वाले कर्मचारियों को स्वीकृत रिक्त पदों के लिए एक खुली प्रतिस्पर्धी प्रक्रिया में प्रासंगिक नियमों के अनुसार नियमित भर्ती के अनुसरण में नियुक्त नहीं किया गया था। प्रस्तुत मामले में, याचिकाकर्ता यह दिखाने में विफल रही है कि उसे नियमित भर्ती प्रक्रिया के अनुसार या स्वीकृत पद पर नियुक्त किया गया था।

(34) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए अन्य निर्णय प्रस्तुत मामले से आसानी से अलग हैं, विशेष रूप से नरेंद्र कुमार तिवारी और अन्य बनाम झारखंड राज्य और अन्य (उपरोक्त) के फैसले के रूप में उक्त मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि झारखंड राज्य केवल 15.11.2000 को अस्तित्व में आया, यह व्यवस्था दी गई कि नियमितीकरण नियमों की व्यावहारिक व्याख्या की जानी चाहिए और यदि उम्मीदवारों ने नियमितीकरण नियमों के प्रख्यापन की तारीख को 10 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है, तो उन्हें उनके द्वारा प्रदान की गई सेवा का लाभ दिया जाना चाहिए। इस

न्यायालय की राय में, उक्त निर्णय का अनुपात प्रस्तुत मामले में लागू नहीं किया जा सकता है, सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आई.जी.आर.ए.यू. के नियमितीकरण नियम नहीं हैं और तदनुसार, ऐसे नियमों के प्रख्यापन पर वर्ष 10 साल की सेवा पूरी करने का कोई सवाल ही नहीं है। आवेदक उमा देवी (उपरोक्त) में निर्धारित मानदंडों से बच नहीं सकता है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि एक अस्थायी कर्मचारी अपनी नियुक्ति की अवधि समाप्त होने पर स्थायी होने का दावा नहीं कर सकता है। उक्त निर्णय में यह भी स्पष्ट किया गया था कि केवल इसलिए कि एक अस्थायी कर्मचारी या एक नैमित्तिक वेतन भोगी कर्मचारी को उसकी नियुक्ति की अवधि के बाद कुछ समय के लिए जारी रखा जाता है, वह नियमित सेवा में, केवल ऐसी निरंतरता के आधार पर, यदि मूल नियुक्ति संगत नियमों द्वारा परिकल्पित चयन की उचित प्रक्रिया का अनुसरण करके नहीं की गई थी, आमेलित होने या स्थायी होने का हकदार नहीं होगा। इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय ने साफ़ और स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्य करने वाले उच्च न्यायालयों को आमतौर पर आमेलन, नियमितीकरण, या स्थायी निरंतरता के लिए निर्देश जारी नहीं करना चाहिए जब तक कि भर्ती नियमित रूप से और संवैधानिक योजना के संदर्भ में नहीं की गई हो।

(35) इस प्रकार, याचिकाकर्ता का मामला उमा देवी के मामले (उपरोक्त) द्वारा निर्धारित अपवादों से कम हो जाता है या एम.एल.केसरी (उपरोक्त) के फैसले के आवेदन द्वारा विचार

के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि याचिकाकर्ता ने नियमितीकरण के दावे के लिए कोई निहित अधिकार प्राप्त नहीं किया है, और न ही इस न्यायालय से इस पर विचार करने के लिए निर्देश मांगा जा सकता है। किसी भी मामले में, नागरिक उड्डयन मंत्रालय, प्रतिवादी के प्रशासनिक मंत्रालय, द्वारा एक विशिष्ट अवधि के लिए लगातार लगे रहने के बाद आई.जी.आर.ए.यू. में अनुबंध के आधार पर लगे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित करने के लिए कोई आदेश या योजना जारी नहीं की गई थी। किसी भी मामले में, प्रतिवादी के अधिवक्ता दिनांक 07.10.2020 के कार्यालय ज्ञापन पर भरोसा करने में सही है, जिसे कार्मिक, पी.जी और पेंशन मंत्रालय, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा जारी किया गया था, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि उमा देवी (उपरोक्त) के फैसले के अनुसार स्वीकृत पद पर नियुक्त योग्य श्रमिकों का नियमितीकरण केवल एक बार का अभ्यास था जो दिनांक 10-04-2006 की स्थिति के अनुसार सेवा प्रदान की गई है जिन्होंने 10 साल तक निरंतर रखा था और यह केवल उन कर्मचारियों पर लागू था, जो प्रस्तुत मामला नहीं है।

(36) इसलिए, यदि ऐसा नियमितीकरण प्रदान किया जाता है, तो यह कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का उल्लंघन होगा।

(37) याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल न्यूनतम मजदूरी निरीक्षक संघ और अन्य

(उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें यह माना गया था कि विभिन्न पदों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का मूल्यांकन और ऐसे पदों पर लागू वेतनमानों का निर्धारण और कर्तव्यों और जिम्मेदारियों में समानता का निर्धारण जटिल कार्यकारी कार्य हैं, जो विशेषज्ञ निकायों द्वारा किया जाना है। उस मामले में, यह माना गया था कि वेतनमान में समानता प्रदान करना तुलनात्मक नौकरी मूल्यांकन और पदों के समीकरण पर निर्भर करता है और असमानता साबित करने का बोझ कर्मचारी की दावा समानता पर है। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि न्यायालय को ऐसे मामलों पर संयम से विचार करना चाहिए और केवल तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब वे इस बात से संतुष्ट हों कि सरकार का निर्णय कर्मचारियों के किसी विशेष वर्ग के लिए स्पष्ट रूप से तर्कहीन, अन्यायपूर्ण और पूर्वाग्रही है। यहां तक कि यह फैसला भी याचिकाकर्ता के बचाव में नहीं आता है।

(38) इसके अलावा, यह रिकॉर्ड पर उपलब्ध है कि याचिकाकर्ता केवल वह नहीं था जिसे डिस-एंगेज किया गया था और जाहिर तौर पर संविदात्मक अनुबंध का विस्तार न करना अन्य ठोस कारणों से था, जिसमें दूरसंचार प्रभाग में तकनीकी प्रगति के मद्देनजर तीन टेलीफोन ऑपरेटरों की गैर-आवश्यकता भी शामिल थी और इस तरह याचिकाकर्ता की अनुबंध तीन ऑपरेटरों के बीच तुलनीय गुण/प्रदर्शन के आधार पर बंद कर दी गई थी, जिसमें याचिकाकर्ता तीसरे स्थान पर रहा। यह न्यायालय ट्रिब्यूनल के निष्कर्ष से सहमत है,

जिसने प्रतिवादी के दूरसंचार प्रभाग के आधुनिकीकरण के कारण तीन के स्थान पर केवल एक टेलीफोन ऑपरेटर की आवश्यकता से संबंधित प्रतिवादी के मुख्य अभियंता द्वारा लिखे गए दिनांक 25.10.2016 के पत्र के तथ्य को नोट किया है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को किसी अन्य संविदा कर्मचारी द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया गया था और किसी भी मामले में, याचिकाकर्ता के प्रतिस्थापन की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि प्रौद्योगिकी की प्रगति के कारण टेलीफोन ऑपरेटर के काम की आवश्यकता खत्म हो गई थी। स्वचालित ईपीएबीएक्स और अधिकारियों/फ्लाइंग कैडेटों द्वारा स्वयं के मोबाइल फोन का व्यापक उपयोग भी टेलीफोन ऑपरेटरों की आवश्यकता के नुकसान के कारणों में से एक था, जैसा कि उत्तरदाताओं द्वारा तर्क दिया गया था। इसलिए, हमारे विचार में, याचिकाकर्ता समय-समय पर बढ़ाए जाने वाले अनुबंध के आधार पर काम कर रहा था जिसे समय-समय पर आवश्यकता के आधार पर बढ़ाया गया था। चूंकि उत्तरदाताओं ने महसूस किया कि प्रौद्योगिकी के विकास के माध्यम से काम का बोझ कम हो गया है और टेलीफोन ऑपरेटर के रूप में काम करने के लिए केवल एक व्यक्ति पर्याप्त है, इसलिए, उन्होंने तुलनीय आधार पर याचिकाकर्ता की सेवाओं को बंद करने का फैसला किया। इस प्रकार, प्रस्तुत मामला ऐसा मामला नहीं है, जिसमें किसी भी संविदा कर्मचारी को किसी अन्य संविदा कर्मचारी द्वारा प्रतिस्थापित करने की मांग की गई है और इस तरह हरियाणा राज्य और अन्य बनाम पियारा

सिंह और अन्य (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी याचिकाकर्ता के बचाव में नहीं आता है।

(39) याचिकाकर्ता ने पहले प्रबंधक-मानव संसाधन द्वारा जारी दिनांक 26.12.2016 के आदेश को चुनौती देते हुए ओ.ए. संख्या-33/2018 दायर किया था, जिसमें उसे 31.12.2016 को उसके संविदात्मक रोजगार की समाप्ति के बारे में सूचित किया गया था और सभी विभाग/अनुभाग से मंजूरी प्राप्त की गई थी, ताकि वह अपनी बकाया राशि का भुगतान करने में सक्षम हो सके। उक्त ओ.ए. को ट्रिब्यूनल द्वारा वापस ले लिया गया था, जिसमें कार्रवाई के उसी कारण पर एक नया ओ.ए. दायर करने की स्वतंत्रता थी। हालांकि, नया ओ.ए. संख्या-485/2018 दाखिल करते समय, जाहिरा तौर पर 26.12.2016 के पूर्वोक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी। याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष 26.12.2016 के उक्त आदेश को फिर से चुनौती देने की मांग की, जिसे अदालत में पहली बार के रूप में अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि यह न्यायालय ट्रिब्यूनल के आदेश की न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग कर रहा है।

(40) उपरोक्त चर्चा की अगली कड़ी के रूप में, इस न्यायालय का मानना है कि ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आक्षेपित आदेश किसी भी दुर्बलता से ग्रस्त नहीं हैं।

E. निष्कर्ष

(41) इस प्रकार, पूर्वोक्त सभी कारणों से, इस न्यायालय ने पाया कि तत्काल रिट याचिका योग्यता से रहित है और इस तरह, तदनुसार, खारिज की जाती है।

(42) हाल ही में, माननीय उच्चतम न्यायालय दिल्ली विश्वविद्यालय के संविदागत कर्मचारियों को नियमित करने के मुद्दे पर विचार कर रहा था और इसी कारण से केवल इन संविदागत कर्मचारियों के लिए एक विशेष परीक्षा आयोजित की जानी थी, जिसकी अनुमति दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दी गई थी। हालांकि, अपील पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय अनुबंध कर्मचारी संघ और अन्य: 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 256 में पारित निर्णय के पैरा-12 में अवधारित संविदा कर्मचारी को नियमित करने में उक्त प्रक्रिया में गलती पाई, जो निम्नानुसार है: -

12. यह सच है कि, जिस दिन इस न्यायालय द्वारा उमा देवी में निर्णय सुनाया गया था, उस दिन अनुबंध कर्मचारियों ने केवल 3 से 4 साल की सेवा की थी। लेकिन अब तक उनमें से अधिकांश ने अनुबंध के आधार पर 10 वर्ष से अधिक की सेवा पूरी कर ली है। यद्यपि नियमितीकरण का लाभ प्रदान नहीं किया जा सकता, फिर भी उन्हें सार्वजनिक विज्ञापन के माध्यम से उपलब्ध प्रतिभा के साथ प्रतिस्पर्धा करने का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। केवल अनुबंधित कर्मचारियों के लिए एक अलग और अनन्य परीक्षण एक उत्तर नहीं होगा क्योंकि यह विचार के क्षेत्र को स्वयं

अनुबंध कर्मचारियों तक सीमित रखेगा। दूसरी ओर, विश्वविद्यालय द्वारा सुझाए गए तौर-तरीके पर्याप्त मौका और लाभ देंगे।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

(43) इस प्रकार, अभिलेखों से अलग होने से पहले, यह न्यायालय यह देखता है कि यदि याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान में वहन की जाने वाली योग्यता और कौशल के अनुरूप उक्त पद या कोई पद विज्ञापित किया जाता है, तो प्रतिवादी याचिकाकर्ता को न्याय के हित में एक बार के उपाय के रूप में उसकी उम्र में छूट देकर नियमित चयन प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दे सकते हैं।

(44) प्रस्तुत मामले के तथ्यों में, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 4 ILRA 209

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट-ए संख्या 14919 / 2021

अनुज सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: रजत गंगवार,

अशिमता सिंह, गौरव मेहरोत्रा, राहुल अग्रवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी., अजय कुमार

सिंह, सतीश कुमार राय

सेवा कानून-भारतीय संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-सेवा से निलंबन का दंड लगाने वाले

तरीके उन्हें आगामी चयन में उपस्थित होने के

आदेश और सेवा से निलंबन को अनिवार्य सेवानिवृत्ति में संशोधित करने वाले अपीलीय आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका-जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के खिलाफ सिद्ध किए गए आरोपों को वस्तुतः बिना किसी सबूत के आधार पर मान लिया-अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा किए गए किसी भी प्रस्तुतीकरण पर विचार तक नहीं किया-अपील प्राधिकारी ने 'पर्यवेक्षण' और 'पर्यवेक्षण करना' शब्दों के शब्दकोश अर्थ का सहारा लेकर याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने में पूरी तरह से गलती की, जबकि कार्यालय जापनों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया, जिसमें लगाए गए आरोपों के संबंध में कर्तव्यों की प्रकृति निर्दिष्ट की गई थी-जांच अधिकारी के समक्ष या आरोप-पत्र के साथ दिए गए किसी भी दस्तावेज में किसी भी गवाह ने याचिकाकर्ता को किसी भी कर्तव्य का पालन नहीं करने के संबंध में किसी भी तरह से दोषी नहीं ठहराया-केवल आरोपित और स्थापित आरोप यह था कि याचिकाकर्ता ने अनधिकृत निर्माण की रिपोर्ट मुख्य कार्यकारी अधिकारी को भेजने में 14 दिन लगाए, जिसे सबसे खराब स्थिति में 'लापरवाही' कहा जा सकता है और ऐसा 'कदाचार' नहीं माना जा सकता जिसके लिए इतनी कठोर सजा दी जा सके। सजा आदेश को इस निर्देश के साथ निरस्त किया जाता है कि याचिकाकर्ता को उस पद पर सभी परिणामी लाभों के साथ पुनर्स्थापित किया जाए जिस पर वह हटाए जाने के समय काम कर रहा था। (पैरा 90, 91, 92, 93, 94)

याचिका स्वीकृत (ई-15)

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान याचिका के माध्यम से प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा पारित दंडात्मक आदेश संख्या-85 दिनांक 14.08.2019, प्रतिवादी संख्या-3 द्वारा पारित छावनी बोर्ड संकल्प संख्या-188 दिनांक 14.08.2019 जिसके द्वारा सेवा से बर्खास्तगी का एक दीर्घ दंड आरोपित किया गया है और प्रतिवादी संख्या-4 द्वारा पारित अपीलीय आदेश दिनांक 01.06.2021 (अनुलग्नक - 29), जिसके द्वारा सेवा से बर्खास्तगी को अनिवार्य सेवानिवृत्ति में संशोधित किया गया है, को आक्षेपित किया गया है।

2. तथ्य, संक्षेप में, यह है कि याचिकाकर्ता को छावनी बोर्ड में सहायक अभियंता के रूप में नियुक्त किया गया था और 17.08.2002 को छावनी अधिशासी अभियंता के पद पर पदोन्नत किया गया था। याचिकाकर्ता का दावा है कि उसके सेवा कार्यकाल के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा विभिन्न पुरस्कार और प्रशस्ति प्रमाण पत्र प्राप्त किए गए थे। यह रिकॉर्ड में लाया गया है कि 27.08.2007 को, कैंटोनमेंट बोर्ड, मेरठ ने संकल्प लिया कि सिनेमा हॉल और दुकानों को दर्शित करने वाली बिल्डिंग योजना, वर्ष 1957 में स्वीकृत की गई थी और इस प्रकार, इसी तरह के उद्यम के लिए कोई भी नई मंजूरी, उद्देश्य में बदलाव नहीं मानी जाएगी।

3. पूरा विवाद बंगला नंबर 167, चैपल स्ट्रीट मेरठ कैंट, मेरठ के संबंध में शुरू हुआ। रक्षा मंत्रालय ने कैंटोनमेंट बोर्ड, मेरठ द्वारा 27.08.2007 को पारित प्रस्ताव के संबंध में जवाब मांगा कि बोर्ड द्वारा बिल्डिंग को मंजूरी देने के फैसले को संशोधित या रद्द क्यों न किया जाए। रक्षा मंत्रालय द्वारा जारी नोटिस के दृष्टिगत, छावनी बोर्ड ने संकल्प संख्या-93 दिनांक 02.03.2009 के द्वारा निर्णय लिया कि दिनांक 04.01.2008 के संकल्प संख्या-330 को निरस्त करने के सरकार के फैसले से बंगला नंबर 167 के मालिक को अवगत किया जाए और आगे निर्देश जारी किए गए कि मुख्य कार्यकारी अधिकारी को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि कोई अनधिकृत निर्माण न हो। बोर्ड के उक्त संकल्प को रिट याचिका (सी) संख्या 1808/2011 (राजेश अग्रवाल बनाम भारत संघ और अन्य) में दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 26.07.2011 के आदेश के तहत छावनी बोर्ड के संकल्प संख्या 330 दिनांक 04.01.2008 को बहाल कर दिया और उक्त बंगला नंबर 167 के संबंध में भवन स्वीकृति योजना को मंजूरी देने के आदेश पारित किए। हालांकि, उसी बंगले के संबंध में, जनरल ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ द्वारा एक पत्र लिखा गया था, जिसमें याचिकाकर्ता के साथ-साथ श्री पीयूष गौतम के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए छावनी बोर्ड के अध्यक्ष को मंजूरी दी गई थी; उक्त मंजूरी अनुलग्नक-2 के रूप में रिकॉर्ड में है।

4. दी गई मंजूरी के संदर्भ में, 26.11.2013 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए बोर्ड संकल्प संख्या 91 पारित किया गया था। याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 70147/2013 (अनुज सिंह बनाम भारत संघ और अन्य) दायर करके उक्त संकल्प संख्या 91 दिनांक 226.11.2013 को चुनौती दी। उक्त रिट याचिका को इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने दिनांक 20.12.2013 के आदेश द्वारा निस्तारित किया गया था, जिसमें निर्देश दिया गया था कि याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी किया जाए और अनुशासनात्मक कार्यवाही कानून के अनुसार, अधिमानतः आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता द्वारा पूर्ण सहयोग के अधीन अंतिम किया जाए।

5. 20.12.2013 को याचिकाकर्ता को एक आरोप पत्र दिया गया, जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध सात आरोप लगाए गए; आरोप पत्र संलग्नक-4 के रूप में रिकॉर्ड में है। उक्त आरोप पत्र में बंगला नंबर 167 से संबंधित लगाए गए आरोपों के अलावा याचिकाकर्ता के विरुद्ध छह अन्य आरोप भी लगाए गए थे। 27.01.2014 को याचिकाकर्ता ने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए आरोप पत्र का जवाब दायर किया। याची के समान ही, पीयूष गौतम, ए.ई. और के.ए.गुप्ता, जे.ई. को भी आरोप-पत्र दिये गए। याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए सभी सात आरोप नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

"श्री अनुज सिंह, अधिशासी अभियंता, कैंट बोर्ड मेरठ के विरुद्ध कदाचार का आरोप/आरोप पत्र तैयार किया गया।

आरोप-1:-

श्री अनुज सिंह ने अधिशासी अभियंता के पद पर कार्य करते हुए, जी.एल.आर. में वर्णित रक्षा भूमि के कई नंबरों पर आवासीय उद्देश्य के लिए, बी. नंबर 167, चैपल स्ट्रीट, मेरठ कैंट के संबंध में सिनेमा थियेटर और कई दुकानों के लिए भवन योजना को अवैध रूप से मंजूरी देने में मदद की, साथ ही मार्ग के लिए खुले भूखंडों का निर्माण किया, कई अलग-अलग सर्वेक्षण नंबरों के तहत भूमि को समाहित किया और भारत सरकार की मंजूरी प्राप्त किए बिना उद्देश्य में बदलाव की सुविधा प्रदान की। एसवाई. नंबर 357/1742 के संबंध में उनके द्वारा प्रस्तुत दिनांक 30.07.2004 की रिपोर्ट के अनुसार क्षेत्रफल में भी अंतर था, इस प्रकार कैंटोनमेंट बोर्ड को भवन योजना के डॉकेट फॉर्म पर भ्रामक रिपोर्ट देकर, सिनेमा भवन के लिए बिल्डिंग प्लान, कैंट बोर्ड संकल्प संख्या 330 दिनांक 04.01.2008 के अनुसार पारित कराया। भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय ने बोर्ड के उपरोक्त निर्णय को यह कहते हुए रद्द कर दिया कि बोर्ड की कार्रवाई भारत सरकार के हित के विरुद्ध है क्योंकि यह पुरानी अनुदान संपत्ति है। एचओआर ने सरकार के निर्णय को माननीय दिल्ली उच्च

न्यायालय में चुनौती दी, जहाँ भारत सरकार/कैंट बोर्ड केस हार गया। इस प्रकार सरकार के मालिकाना हित और नीति निर्देश उनकी गलत/अवैध रिपोर्ट के कारण खतरे में पड़ गए हैं।

श्री अनुज सिंह की यह कार्रवाई आवेदक एचओआर को गलत तरीके से लाभ पहुंचाने तथा भारत सरकार को नुकसान पहुंचाने के इरादे और उद्देश्य से की गई थी, साथ ही भारत सरकार के छावनी अधिनियम और भूमि नीति के प्रावधानों के विरुद्ध थी और इस प्रकार यह घोर कदाचार है, जो सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3 (1) (i) और 3 (1) (ii) का उल्लंघन है।

आरोप II:-

श्री अनुज सिंह ने अधिशासी अभियंता के रूप में कार्य करते हुए, गवर्नर जनरल के आदेश संख्या 179 दिनांक 12.09.1836 और रक्षा मंत्रालय द्वारा 24.03.2012 को जारी सरकार की भूमि नीति के तहत पुराने अनुदान की शर्तों का उल्लंघन करते हुए, मेरठ कैंट के सर्वे नंबर 302 में पुराने अनुदान आवासीय बंगला नंबर 22-बी, बाउंड्री रोड में होटल और रिसॉर्ट के अवैध और अनधिकृत निर्माण की सुविधा प्रदान की। अनधिकृत निर्माण को सीए, 2006 की धारा 249 के तहत सीईओ के आदेश के तहत सील कर दिया गया। इस तथ्य के बावजूद उक्त बंगले में होटल/रिसॉर्ट का अनधिकृत निर्माण

बेरोकटोक जारी रहा और पूरा हो गया। 04.07.2012 और 19.07.2012 को पुलिस स्टेशन लाल कुर्ती में एफआईआर दर्ज कराने के बाद भी परिसर को फिर से सील करने और अनधिकृत निर्माण को रोकने के लिए उनके द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई। वास्तव में नोटिस जारी करने और सीलिंग करने की सारी कवायद सिर्फ दिखावा थी। अगस्त 2013 में सीईओ द्वारा व्यक्तिगत रूप से मामले में प्रभावी कार्रवाई की गई और परिसर में कार्यों को बंद करा दिया गया और साथ ही अपराधियों द्वारा सराय अधिनियम के तहत दिए गए आवेदन को रद्द कर दिया गया।

इस प्रकार श्री अनुज सिंह अनधिकृत निर्माण को रोकने के साथ-साथ प्रारंभिक चरण में अनधिकृत निर्माण को हटाने के लिए कोई भी उपयोगी और प्रभावी कार्रवाई/पहल नहीं करके बोर्ड के सीईई के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहे। श्री अनुज सिंह की यह कार्रवाई आवेदक को गलत तरीके से लाभ/लाभ पहुंचाने तथा भारत सरकार को नुकसान पहुंचाने के इरादे और उद्देश्य से की गई थी, साथ ही भारत सरकार के छावनी अधिनियम और भूमि नीति के प्रावधानों के विरुद्ध थी और इस प्रकार यह घोर कदाचार है, जो सीसीएस (आचरण)

नियम, 1964 के नियम 3 (1) (i) और 3 (1) (ii) का उल्लंघन है।

आरोप III:-

श्री अनुज सिंह ने अधिशासी अभियंता के रूप में कार्य करते हुए और 15.02.1995 से जनवरी 2012 की अवधि के दौरान अवैध रूप से भवन संख्या 340 ए-सी, रंगसाज मोहल्ला, सदर बाजार, मेरठ कैंट में अवैध निर्माण में मदद की, जिसमें सर्वेक्षण संख्या 357/6 शामिल है, जो माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 08.05.2001 के आदेश के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.11.2002 के आदेश का उल्लंघन है, जिसके द्वारा अनाधिकृत रूप से निर्मित भूतल से ऊपर निर्माण पर रोक लगाई गई थी, अर्थात् प्रथम तल पर कोई और अनाधिकृत निर्माण कार्य उच्च न्यायालय/सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमत नहीं किया गया था, परन्तु इसके बावजूद उनके द्वारा प्रथम तल पर मात्र 14 पिलर के निर्माण की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, जिस पर दिनांक 14.12.2001 को संपदा अधिकारी द्वारा ध्वस्तीकरण हेतु आदेश पारित किया गया था, परन्तु अगस्त 2013 में निरीक्षण करने पर पाया गया कि सम्पूर्ण प्रथम तल का निर्माण विगत वर्षों में पूर्ण रूप से हो चुका है। परन्तु उन्होंने बिल्डर को सुविधा प्रदान करने तथा स्वयं के लिए अनुचित लाभ एवं

परितोषण प्राप्त करने के इरादे से 14 पिलर की रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात अनाधिकृत निर्माण की कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की।

श्री अनुज सिंह का यह कृत्य आवेदक को अनुचित लाभ/लाभ तथा भारत सरकार को हानि पहुंचाने के इरादे एवं उद्देश्य से किया गया था, जिससे छावनी अधिनियम एवं भारत सरकार की भूमि नीति के उपबंधों का उल्लंघन हुआ, जो घोर कदाचार है, और सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3(1)(i) एवं 3(1)(ii) का उल्लंघन है।

आरोप IV:-

श्री अनुज सिंह ने अधिशासी अभियंता के पद पर कार्य करते हुए दिनांक 15.02.1995 से नवम्बर 2013 की अवधि में बिल्डरों को बंगला संख्या 198, 199, 202, 209, 210-ए, 210-बी, 210-सी, 213, 220, 222, 223, 227, 233 वेस्ट एण्ड रोड, 176, 340, रंगसाज मोहल्ला, सदर बाजार, 193 नया बाजार, 182, 184, 185, 185/ए, 187, 188 एवं 190, आबू लेन, 305 सर्कुलर रोड, 182/183 दालमण्डी सदर बाजार तथा अन्य अवैध निर्माणों में अवैध रूप से व्यावसायिक दोहन के साथ-साथ आवासीय से व्यावसायिक उद्देश्य में परिवर्तन करने में सहायता की। कैंट क्षेत्र में अवैध निर्माण के मामले में यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस तरह के निर्माण कार्य

जमीन पर हो रहे निर्माण कार्य और कार्यालय को सौंपी गई रिपोर्ट में दिखाए गए निर्माण कार्य से मेल नहीं खाते हैं। यहां तक कि अनधिकृत निर्माण की पूरी रिपोर्ट भी नहीं दी गई है, जबकि रिपोर्ट में कहा गया है कि साइट पर काम चल रहा है। इसके अलावा, कानून के तहत अनधिकृत निर्माण को रोकने के लिए कोई प्रभावी कदम नहीं उठाए गए हैं, जैसे कि निर्माण सामग्री को जब्त करना और अनधिकृत निर्माण को सील करना। इसके अलावा यह कर्तव्य में गंभीर लापरवाही है कि जीओसी-इन-सी और निदेशक, डीई द्वारा अनधिकृत निर्माणों में अपीलों को खारिज करने के बाद भी उन्होंने अपील में शामिल अनधिकृत निर्माणों को ध्वस्त करने के लिए निर्धारित समय अवधि के भीतर उचित कार्रवाई शुरू नहीं की है। यह स्पष्ट रूप से ऐसे अनधिकृत निर्माणों को ध्वस्त करने के लिए कार्रवाई न करने में उनकी संलिप्तता को दर्शाता है।

श्री अनुज सिंह की यह कार्रवाई बिल्डरों/अपराधियों को गलत तरीके से लाभ/लाभ पहुंचाने तथा भारत सरकार को नुकसान पहुंचाने के इरादे और मकसद से की गई थी, साथ ही भारत सरकार के कैंटोनमेंट अधिनियम और भूमि नीति के प्रावधानों के विरुद्ध है और इस प्रकार यह घोर कदाचार है, जो

सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3(1)(i) और 3(1)(ii) का उल्लंघन है।

आरोप-V:-

श्री अनुज सिंह ने अधिशासी अभियंता के रूप में काम करते हुए बंगला संख्या 177-177/ए चैपल स्ट्रीट, मेरठ कैंट में अवैध रूप से खड़े मोबाइल टावर को अवैध रूप से जारी रखने में मदद की, जबकि संपदा अधिकारी द्वारा दिनांक 06.03.2012 को आदेश पारित कर इसे हटाने का आदेश दिया गया था और माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 09.11.2012 को रिट याचिका संख्या 56971/2012 को खारिज कर दिया गया था, और यह तब तक रहा जब तक दोषी ने विशेष अपील में दिनांक 12.12.2012 को माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद से स्थगन आदेश प्राप्त नहीं कर लिया, जो भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय द्वारा जारी निर्देशों का उल्लंघन करने के साथ-साथ रक्षा/सेना प्रतिष्ठानों की सुरक्षा को खतरे में डालने वाला था। साथ ही 25.09.2013 से 06.10.2013 के बीच सीईओ की स्टेशन से अस्थायी अनुपस्थिति की अवधि के दौरान मेरठ कैंट के सदर बाजार, रा' बाजार और रंगसाज मोहल्ला में अवैध मोबाइल टावरों की स्थापना में अवैध रूप से मदद की, जो भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय द्वारा जारी निर्देशों का उल्लंघन है और साथ

ही रक्षा/सेना की स्थापना की सुरक्षा को खतरे में डाला: सक्षम प्राधिकारी यानी सीईओ द्वारा जारी किए गए स्पष्ट निर्देशों के बावजूद मेरठ कैंट के अंतर्गत और उन्होंने जानबूझकर अपने द्वारा अवैध टावरों को हटाने की झूठी रिपोर्ट देकर सक्षम प्राधिकारी को गुमराह किया और सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिए गए निर्देशों पर त्वरित कार्रवाई न करते हुए उन्हें पर्याप्त समय देकर न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में मदद की।

श्री अनुज सिंह की यह कार्रवाई आवेदक को गलत तरीके से लाभ/लाभ पहुंचाने और भारत सरकार को नुकसान पहुंचाने के इरादे और मकसद से थी और साथ ही कैंटोनमेंट एक्ट और भारत सरकार की नीति के प्रावधानों के विरुद्ध है और इस प्रकार घोर कदाचार है, जो सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 की धारा 3(1)(i) और 3(1)(ii) का उल्लंघन है।

आरोप VI:-

श्री अनुज सिंह ने अधिशासी अभियंता के पद पर कार्य करते हुए तथा दिनांक 15.02.1995 से नवम्बर 2013 की अवधि के दौरान कैंटोनमेंट बोर्ड, मेरठ के स्वामित्व वाली जीएलआर एसवाई. संख्या 307/1 के ट्रेचिंग ग्राउंड में स्थित 20.997 एकड़ 'सी' श्रेणी की भूमि में से लगभग 15 एकड़ भूमि पर लंबे समय से उच्च श्रेणी की उपजाऊ खेती के माध्यम से अवैध कब्जा जारी रखने में अवैध रूप

से मदद की। इससे पहले एई के पद पर कार्यरत होने तथा उसके बाद सीईई के पद पर पदोन्नत/अपग्रेड होने के बावजूद उनके द्वारा अवैध कब्जे और खेती की सूचना न तो सीईओ/सीबी को दी गई और न ही उन्होंने भूमि को अवैध खेती से खाली कराने का प्रयास किया। उन्होंने सीईओ के निर्देशों पर कोई ध्यान नहीं दिया और सीईओ के बार-बार निर्देश के बावजूद जुलाई 2013 से 3-4 महीने तक सीमा स्तंभ नहीं लगाए, संयुक्त सर्वेक्षण और 05.07.2013 से 10.07.2013 के बीच सीईओ के प्रतिनिधि और डीईओ प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सीमाओं का सीमांकन करने के बाद अंततः सीईओ द्वारा जमीन खाली करवा ली गई, विश्वसनीय स्रोतों से गुप्त रूप से सूचित किया गया कि अवैध कब्जाधारी ने कानून की अदालत से स्थगन प्राप्त करने के लिए सभी कानूनी प्रक्रिया की व्यवस्था की है। लगभग 20 वर्षों की अवैध कब्जे की अवधि के दौरान एक करोड़ से अधिक का अवैध लाभ अवैध कब्जाधारी/कब्जाधारियों को दिया गया।

इस प्रकार श्री अनुज सिंह लगभग 15 एकड़ 'सी' श्रेणी की भूमि पर अवैध कब्जे और खेती की सूचना न देकर तथा संबंधित भूमि को खाली कराने के लिए कोई प्रयास न करके अपने कर्तव्यों का निर्वहन संदेहास्पद

ईमानदारी से करने में विफल रहे। श्री अनुज सिंह की यह कार्रवाई अवैध कब्जाधारियों को गलत लाभ पहुंचाने तथा भारत सरकार/कैन्ट बोर्ड को नुकसान पहुंचाने के इरादे और उद्देश्य से की गई थी, जो कि घोर कदाचार है, और सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3 (1) (i) और 3 (1) (ii) का उल्लंघन है।

आरोप VII:-

अधिशाली अभियंता के रूप में कार्यरत श्री अनुज सिंह ने पुराने ग्रांट आवासीय बंगला संख्या 195/1, दिल्ली रोड, मेरठ कैंट में सर्वे संख्या 357/1758 में श्री राजीव कुमार के दिनांक 13.07.2012 और 30.10.2012 के आवेदन पर कुल 14 हरे और सूखे पेड़ों को काटने की अनुमति देने में मदद की। श्री अनुज सिंह की ओर से ऐसा कृत्य एक व्यक्ति के पक्ष में होने के कारण पूरी तरह से अवैध था। जो कैंट बोर्ड द्वारा बनाए गए जीएलआर में अधिभोग अधिकारों का दर्ज धारक नहीं है, और गवर्नर जनरल के आदेश संख्या 179 दिनांक 12.09.1836 और रक्षा मंत्रालय द्वारा जारी सरकार की भूमि नीति के तहत पुराने अनुदान की शर्तों का उल्लंघन है। इस तरह के अवैध कृत्य के लिए उन्होंने पेड़ों की कटाई के लिए जून 2013 में गलत रिपोर्ट और सिफारिश प्रस्तुत की।

इस प्रकार श्री अनुज सिंह अनधिकृत निर्माण को रोकने के साथ-साथ प्रारंभिक चरण में अनधिकृत निर्माण को हटाने के लिए कोई उपयोगी और प्रभावी कार्रवाई/पहल नहीं करके बोर्ड के सीईई के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहे। श्री अनुज सिंह की यह कार्रवाई आवेदक को गलत तरीके से लाभ/लाभ पहुंचाने तथा भारत सरकार को नुकसान पहुंचाने के इरादे और उद्देश्य से की गई थी, साथ ही भारत सरकार के छावनी अधिनियम और भूमि नीति के प्रावधानों के विरुद्ध थी और इस प्रकार यह घोर कदाचार है, जो सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3(1) (i) और 3(1)(ii) का उल्लंघन है।

उन दस्तावेजों की सूची, जिनके आधार पर श्री अनुज सिंह, अधिशाली अभियंता, छावनी बोर्ड, मेरठ के विरुद्ध आरोप-पत्र सिद्ध किया जाना प्रस्तावित है।

आरोप संख्या 1:-

- (i) सीबीआर संख्या 330 दिनांक 04.01.2008
- (ii) श्री आर.के. अग्रवाल का भवन निर्माण हेतु आवेदन दिनांक 07 दिसम्बर 2007
- (iii) कैंट बोर्ड मेरठ का पत्र संख्या 93/167/एल/511 दिनांक 20.03.2006
- (iv) मुख्यालय मध्य कमान का पत्र संख्या 260506/क्यू3बी दिनांक

18.01.2000 सहित रक्षा मंत्रालय
का आईडी नंबर
18/20/एल/डीई/97/1517/

डीओ(वी)/डी/(एल) दिनांक
13.12.1999

(v) महानिदेशक डीई का पत्र संख्या
718/20/एल/डीई/97 दिनांक
17.05.2000

(vi) निदेशालय डीई, सीसी, लखनऊ
का पत्र संख्या 67147/एलसी2/2
दिनांक 27.12.2006 (vii) कैंट बोर्ड
मेरठ का पत्र संख्या
93/167/एल/425 दिनांक
12.03.2007

(viii) भारत सरकार, रक्षा मंत्रालय
का पत्र संख्या 11013/1/87/डी(भूमि)
खंड-1 दिनांक 09.02.1995।

(ix) कैंट बोर्ड मेरठ स्टाफ की जांच
रिपोर्ट, जैसा कि श्री आर.के. अग्रवाल
के भवन आवेदन पर पृष्ठांकित है।

(x) म्यूटेशन आवेदन दिनांक
14.01.2003।

(xi) म्यूटेशन आवेदन दिनांक
14.01.2003 पर जांच रिपोर्ट दिनांक
30.07.2004 और 14.12.2004।

(xii) रक्षा मंत्रालय का पत्र संख्या
10(68)/2008/डी(क्यू एंड सी)
दिनांक 21.11.2008

(xiii) रक्षा मंत्रालय का पत्र संख्या
10(68)/2008/डी(क्यू एंड सी)
दिनांक 20.02.2009

(xiv) कैंट बोर्ड द्वारा सीबीआर
संख्या 330 दिनांक 04.01.2008 के
तहत बी. संख्या 167, चैपल स्ट्रीट,

मेरठ की स्वीकृत बिल्डिंग योजना
और बाद में भारत सरकार द्वारा
रक्षा मंत्रालय के आदेश संख्या
10(68)/2008/डी(क्यू एंड सी)
दिनांक 20.02.2009 के द्वारा
रद्द।

(xv) सीबीआर संख्या 227 दिनांक
27.08.2007

(xvi) एस.वाई. संख्या 357/1742,
357/1742/1, 357/1742/2,
357/1742/3, 357/1742/4, 357/17
42/5, 357/1742/6, 357/1742/7
एवं 357/1742/8 का जी.एल.आर.
सार।

(xvii) एस.वाई. संख्या 357/1742
का जी.एल.आर. प्लान

(xviii) छावनी बोर्ड, मेरठ उपविधि

(xix) छावनी अधिनियम, 2006 की
प्रासंगिक धारा 234 एवं 235

(xx) श्री आर.के. अग्रवाल का
दिनांक 22.02.2006 एवं
07.05.2007 का आवेदन

(xxi) डीजी डीई पत्र संख्या
707/1/एल/डीई/सीसी/1/2007
दिनांक 01.03.2007

आरोप संख्या II:-

(i) बंगला संख्या 22-बी, बाउंड्री रोड
का जीएलआर एक्सट्रैक्ट।

(ii) अवैध निर्माण का पता लगाने
के संबंध में दिनांक 14.10.2011
की रिपोर्ट

(iii) अवैध निर्माण का पता लगाने
के संबंध में दिनांक 29.11.2011
की रिपोर्ट

(iv) अवैध निर्माण का पता लगाने के संबंध में दिनांक 31.01.2012 की रिपोर्ट

(v) अवैध निर्माण का पता लगाने के संबंध में दिनांक 06.03.2012 की रिपोर्ट

(vi) अवैध निर्माण का पता लगाने के संबंध में दिनांक 22.05.2013 की रिपोर्ट

(vii) अवैध निर्माण को ध्वस्त करने के संबंध में धारा 248 के तहत नोटिस संख्या मिस/4007/ई7ए दिनांक 23.11.2011

(viii) अवैध निर्माण को ध्वस्त करने के संबंध में धारा 248 के तहत नोटिस संख्या मिस/4190/ई7ए दिनांक 22.12.2011

(ix) अवैध निर्माण को ध्वस्त करने के संबंध में धारा 248 के तहत नोटिस संख्या 93/22-B/524/ई7ए दिनांक 28.03.2012

(x) अवैध निर्माण को ध्वस्त करने के संबंध में धारा 248 के तहत नोटिस संख्या मिस/695/ई7ए दिनांक 01.05.2012

(xi) निर्माण के ध्वस्तीकरण के संबंध में धारा 248 के तहत नोटिस संख्या

एमसीबी/बिल्डिंग/इंजीनियरिंग/190
दिनांक 22.06.2013।

(xii) पत्र संख्या विविध/जी/943 दिनांक 25.09.2013 की प्रति।

(xiii) पत्र संख्या 93/22-बी/एल/348 दिनांक 09.07.2013।

(xiv) पत्र संख्या 93/22/एल/569 दिनांक 12.08.2013।

(xv) पत्र संख्या 93/22/एल/613 दिनांक 19.08.2013।

(xvi) सीईओ द्वारा धारा 249 के तहत पारित आदेश संख्या विविध/xxx/ई7ए दिनांक 23.03.2012।

(xvii) सामान्य सीबीआर दिनांक 18.06.2012 की प्रति।

(xviii) रिपोर्ट दिनांक 04.07.2012 और एफआईआर दिनांक 04.07.2012 की प्रति।

(xix) रिपोर्ट दिनांक 18.07.2012 और एफआईआर दिनांक 19.07.2012 की प्रति।

(xx) आपराधिक रिट याचिका संख्या 8346/2013, कैंट बोर्ड मेरठ बनाम पंकज जॉली और अन्य।

आरोप संख्या III:-

(i) परिसर संख्या 340 ए-सी, रंगसाज मोह में दिनांक 30.11.2000 को यू/ए निर्माण की पहली रिपोर्ट।

(ii) परिसर संख्या 340 ए-सी, रंगसाज मोह में दिनांक 07.12.2000 को यू/ए निर्माण की दूसरी रिपोर्ट।

(iii) सीलिंग के सम्बन्ध में सम्पदा अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.12.2000।

(iv) एडीजे मेरठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.04.2001।

(v) डब्ल्यू.पी. संख्या 17434/2001 में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.05.2001।

(vi) ध्वस्तीकरण हेतु सम्पदा अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.12.2001।

(vii) एम.ए. संख्या 314 एवं 315/2001 में जिला न्यायाधीश मेरठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.02.2003।

(viii) सिविल विविध रिट याचिका संख्या 17434/2001, राजीव आनन्द बनाम सम्पदा अधिकारी एवं अन्य में माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.04.2001।

(ix) माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एसएलपी (सी) संख्या 22499/2001 में पारित दिनांक 29.11.2012 का आदेश।

(x) 14 खंभों वाली पहली मंजिल की दिनांक 04.03.2005 की जांच रिपोर्ट।

(xi) संपदा अधिकारी द्वारा ध्वस्तीकरण के लिए दिनांक 20.09.2006 का आदेश।

आरोप संख्या IV:-

(i) बंगला संख्या 198, 199, 202, 209, 210-ए, 210-बी, 210-सी, 213, 220, 222, 223, 227, 233 वेस्ट एंड रोड, 176 रंगसाज मोहल्ला, सदर बाजार, 193 नया बाजार, 182, 184, 185, 185/ए, 187, 188, 190, आबू लेन, 22-बाउंड्री रोड और 305, सर्कुलर रोड के संबंध में अनधिकृत निर्माण की जांच रिपोर्ट (परिशिष्ट-ए के अनुसार)।

(ii) अवमानना याचिका संख्या 380/2001, अधिशासी अधिकारी बनाम पुष्पा देवी एवं अन्य में माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित एडवोकेट कमिश्नर की रिपोर्ट।

(iii) बंगला संख्या 210-बी, वेस्ट एंड रोड में निर्माण के संबंध में एडवोकेट कमिश्नर द्वारा तैयार किया गया सर्वेक्षण मानचित्र।

(iv) जीओसी-इन-सी/निदेशक डीई द्वारा 1995 से आज तक पारित ध्वस्तीकरण आदेश (परिशिष्ट-बी और सी के अनुसार)।

(v) श्री एस.डी. त्रिपाठी से मकान संख्या 182/183 सदर दालमंडी की मरम्मत के लिए दिनांक 20.07.2013 को प्राप्त आवेदन।

(vi) श्रीमती माया देवी से मकान संख्या 182/183 सदर दालमंडी की मरम्मत के लिए दिनांक 02.08.2013 को प्राप्त आवेदन।

(vii) मकान संख्या 182/183 दालमंडी सदर के संबंध में दिनांक 24.10.2013 को जारी जांच रिपोर्ट।

(viii) मकान संख्या 182/183 दालमंडी सदर के संबंध में जीएलआर एक्सट्रैक्ट की प्रति।

आरोप संख्या V:-

(i) बी. संख्या 177-177/ए, चैपल स्ट्रीट, मेरठ कैंट का जीएलआर एक्सट्रैक्ट।

(ii) यू/ए मोबाइल टावर के संबंध में जांच रिपोर्ट।

(iii) टावर हटाने के लिए संपदा अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.03.2012।

(iv) जिला न्यायाधीश, मेरठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.10.2012।

(v) माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 09.11.2012।

(vi) सीईओ का कार्यालय नोट/आदेश दिनांक 07.12.2012।

(vii) माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.12.2012।

(viii) विकास मंत्रालय द्वारा जारी मोबाइल टावरों के संबंध में नीति निर्देश दिनांक 12.09.2008

(ix) बंगला नंबर 292, आरए बाजार का जीएलआर एक्सट्रैक्ट।

(x) मकान नंबर 32, 32/ए, रंगसाज मोहल्ला, सदर, मेरठ कैंट का जीएलआर एक्सट्रैक्ट।

(xi) सिविल जज (सीनियर डिविजन) मेरठ की अदालत में वाद संख्या 1234/2013, हिमांशु जैन बनाम कैंटोनमेंट बोर्ड में वाद की प्रति।

(xii) सिविल जज (सीनियर डिविजन) मेरठ की अदालत में वाद संख्या 1233/2013, मंजीत सिंह बनाम कैंटोनमेंट बोर्ड में वाद की प्रति।

(xiii) रिट याचिका संख्या 64191/2013, हिमांशु जैन बनाम कैंटोनमेंट बोर्ड और अन्य की प्रति।

(xiv) रिट याचिका संख्या 64900/2013, मंजीत सिंह बनाम कैंटोनमेंट बोर्ड और अन्य की प्रति।

(xv) बी. नं. 292, आर.ए. बाजार में मोबाइल टावर के संबंध में दिनांक 09.10.2013 की जांच रिपोर्ट की प्रति।

(xvi) एच. नं. 32, 32/ए, रंगसाज मोहल्ला, सदर बाजार, मेरठ कैंट में मोबाइल टावर के संबंध में दिनांक 09.10.2013 की जांच रिपोर्ट की प्रति।

आरोप संख्या VI:-

(i) जी.एल.आर. द्वारा कैंट बोर्ड के ट्रेडिंग ग्राउंड की 'सी' श्रेणी की भूमि का खनन।

(ii) स्वच्छता अधीक्षक एवं स्वच्छता निरीक्षक द्वारा दिनांक 01.07.2013 की रिपोर्ट।

(iii) संयुक्त सर्वेक्षण एवं सीमांकन की दिनांक 10.07.2013 की रिपोर्ट।

(iv) पिलर लगाने के लिए सी.ई.ओ. का दिनांक 18.07.2013 का आदेश।

(v) दिनांक 05.04.2005 का अनुमान एवं ट्रेडिंग ग्राउंड का स्केच।

(vi) गणना पत्रक, ट्रेडिंग ग्राउंड का साइट प्लान तथा तुलनात्मक विवरण दिनांक 10.12.2010।

(vii) तुलनात्मक विवरण दिनांक 21.02.2011।

आरोप संख्या VII:-

(i) बंगला संख्या 195, दिल्ली रोड, मेरठ कैंट के जीएलआर की प्रति।

(ii) पेड़ काटने के लिए राजीव कुमार का आवेदन दिनांक 13.07.2012।

(iii) पेड़ काटने के लिए राजीव कुमार का एक अन्य आवेदन दिनांक 03.10.2012।

(iv) अनुमति जारी करने की संस्तुति करने वाली रिपोर्ट 21.06.2013।

(v) सीईओ का आईडी नोट संख्या 66 दिनांक 22.06.2013।

(vi) सीईओ का आईडी नोट संख्या 75 दिनांक 11.07.2013।

(vii) पत्र संख्या आर/108/वृक्ष की बिक्री/269 दिनांक 22.07.2013।

(viii) कारण बताओ पत्र संख्या वि विधा/जी/22 दिनांक 31.08.2013।

(ix) श्री अनुज सिंह से दिनांक 06.09.2013 को कारण बताओ नोटिस का उत्तर प्राप्त हुआ।"

6. कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, दिल्ली उच्च न्यायालय के दिनांक 26.07.2011 के निर्णय और आदेश को एल.पी.ए. संख्या 1051/2011 दाखिल करके चुनौती दी गई थी। खंडपीठ ने भारत संघ द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया और दिनांक 26.07.2011 के आदेश को बरकरार रखा। इस बीच, जब निर्माणों को ध्वस्त करने के लिए कदम उठाए जा रहे थे, दुर्भाग्य से विध्वंस की प्रक्रिया के दौरान कुछ मजदूरों की मृत्यु हो गई, ऐसे में, धारा 147, 302/34 आईपीसी के तहत मामला अपराध संख्या-309/2016 के रूप में

एक प्राथमिकी दर्ज की गई। उक्त प्राथमिकी में याचिकाकर्ता सहित छह अधिकारियों/कर्मचारियों को आरोपी बनाया गया था। बंगला संख्या 210-बी में किए जा रहे विध्वंस से संबंधित उक्त प्राथमिकी के अनुसरण में, याचिकाकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया और 10.07.2016 को जिला जेल भेज दिया गया। चूंकि याचिकाकर्ता को 48 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखा गया था, इसलिए याचिकाकर्ता को छावनी निधि सेवक नियम, 1937 (जिसे आगे "सीएफएस नियम" कहा जाएगा) के नियम 10 ए (2) के प्रावधानों के अनुसार निलंबित माना गया था।

7. याचिकाकर्ता ने हिरासत से रिहा होने के बाद 30.06.2017 को अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर फिर से अपना जवाब प्रस्तुत किया और दस्तावेजों के माध्यम से उक्त कथनों का समर्थन किया।

8. याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या-61673/2017 (अनुज सिंह बनाम कैंट बोर्ड एवं अन्य) के माध्यम से माने गए निलंबन आदेश को चुनौती दी। इस न्यायालय ने दिनांक 22.12.2017 के आदेश के माध्यम से दिनांक 27.07.2016 के निलंबन आदेश पर रोक लगाते हुए अंतरिम आदेश पारित किया। इस बीच, बोर्ड द्वारा दिनांक 05.06.2017 और 31.07.2017 को संकल्प संख्या 586 दिनांक 05.06.2017 और डी.ओ. भाग II आदेश दिनांक 31.07.2017 (अनुलग्नक-7) के

माध्यम से सहायक अभियंता और कनिष्ठ अभियंता को दोषमुक्त करने का आदेश पारित किया गया। उक्त दोनों व्यक्तियों को दोषमुक्त किये जाने के दृष्टिगत मुख्य कार्यकारी अधिकारी, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा प्रधान निदेशक को दिनांक 03.01.2018 और 08.01.2018 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में सलाह मांगने के लिए एक पत्र लिखा गया था; प्रधान निदेशक ने मुख्य कार्यकारी अधिकारी, मेरठ को एक पत्र लिखकर सलाह दी कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखी जा सकती है।

9. 11.01.2018 को, पूर्व निलंबन आदेश को रद्द करने के लिए एक नया आदेश पारित किया गया और साथ ही एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को बंगला नंबर 167, चैपल स्ट्रीट मेरठ कैंट, मेरठ के संबंध में भवन योजना की कथित अवैध स्वीकृति के कारण एक बार फिर से जांच पूरी होने तक निलंबित कर दिया गया। दिनांक 30.01.2018 के उक्त निलंबन आदेश को याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 5445/2018 में चुनौती दी थी और दिनांक 12.02.2018 (अनुलग्नक-14) का अंतरिम आदेश पारित हुआ जिसके द्वारा दिनांक 30.01.2018 के निलंबन आदेश पर रोक लगा दी गई। इस बीच, दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले और आदेश को भारत संघ ने एक एसएलपी दायर करके चुनौती दी, जो 14.05.2018 को खारिज हो गई। इसके बाद, याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच की कार्यवाही जारी रही और याचिकाकर्ता ने अपने विरुद्ध पेश किए गए गवाहों से जिरह की। जांच और जिरह के बाद,

18.08.2018 को बचाव सहायक द्वारा याचिकाकर्ता की ओर से एक लिखित संक्षिप्त विवरण दायर किया गया। जांच के समापन के बाद, जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध पांच आरोप साबित हुए और एक आरोप (अनुलग्नक-17) आंशिक रूप से सिद्ध हुआ। याचिकाकर्ता ने 17.06.2019 को जांच अधिकारी को अपना जवाब प्रस्तुत किया। एक तरफ याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच जारी थी और दूसरी तरफ बोर्ड द्वारा बंगला नंबर 167 चैपल स्ट्रीट मेरठ कैंट के संबंध में भवन योजना को उसके मालिक के पक्ष में मंजूरी देने का प्रस्ताव पारित किया गया (अनुलग्नक - 19)।

10. इस तथ्य की अनदेखी करते हुए कि मुख्य आरोप के संबंध में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस बिन्दु पर फैसला सुनाया था और योजना भी 18.07.2019 को मंजूर की गई थी, याचिकाकर्ता पर सेवा से बर्खास्तगी की सजा लगाते हुए 14.08.2019 को आक्षेपित दंड आदेश पारित किया गया। याचिकाकर्ता ने रिट-ए संख्या 14027/2019 दायर करके दंड आदेश को चुनौती दी, जिसका 05.10.2020 को निस्तारण कर दिया गया और याचिकाकर्ता को सीएफएस नियमों के नियम 14 के तहत अपील के वैकल्पिक उपाय का लाभ उठाने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ता ने 22.10.2020 को अपील दायर की। सुनवाई के बाद, 01.06.2021 को अपीलीय आदेश पारित किया गया, जिसमें बर्खास्तगी के दंड आदेश को अनिवार्य सेवानिवृत्ति में संशोधित किया गया। अपीलीय प्राधिकारी ने माना कि आरोप

संख्या 1, जो बंगला संख्या 167 के संबंध में भवन योजना की मंजूरी के लिए लगाए गए आरोपों के संबंध में मुख्य आरोप था, साबित नहीं हुआ। उक्त आदेश अब इस न्यायालय के समक्ष चुनौती के अधीन हैं।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा को सुना, जिन्होंने अपनी लिखित दलीलें भी पेश की हैं।

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की पहली दलील यह है कि आक्षेपित आदेश बने रहने योग्य नहीं हैं क्योंकि जांच, कानून की उचित प्रक्रिया के बाद नहीं की गई है। उन्होंने तर्क दिया कि आरोप पत्र में सात आरोप लगाए गए थे। उन्होंने तर्क दिया कि पहले आरोप के संबंध में याचिकाकर्ता की दलीलों को अपीलीय प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार, उस सीमा तक, वर्तमान रिट याचिका में उनकी प्रासंगिकता समाप्त हो जाती है।

13. उन्होंने तर्क दिया कि अनधिकृत निर्माण के आरोप से संबंधित आरोप संख्या 2 से 5 के संबंध में, लगाए गए आरोपों के अवलोकन के बाद उन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है; सबसे पहले, याचिकाकर्ता ने बोर्ड के अधिशासी अभियंता के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहा और उसने अनधिकृत निर्माण को रोकने के साथ-साथ प्रारंभिक चरण में अनधिकृत निर्माण को हटाने के लिए कोई प्रभावी कार्रवाई नहीं की और आरोप का दूसरा पहलू यह था कि याचिकाकर्ता की उक्त कार्रवाई आवेदक को गलत लाभ/फायदा पहुंचाने और भारत सरकार को

नुकसान पहुंचाने के इरादे और मकसद से थी और साथ ही कैंटोनमेंट अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध थी।

14. आरोप संख्या 2 से 5 के संबंध में, उन्होंने आगे तर्क दिया कि हालांकि जांच अधिकारी ने साबित किए जाने वाले पूरे आरोप को दर्ज किया है, पूरी रिपोर्ट में ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जिससे प्रथम दृष्टया यह विचार बनाया जा सके कि याचिकाकर्ता की लापरवाही याचिकाकर्ता को कोई गलत लाभ/अनुचित लाभ पहुंचाने के इरादे से थी या सरकार को कोई नुकसान हुआ था। उन्होंने तर्क दिया कि जांच अधिकारी ने उक्त आरोप को साबित करने के लिए चुनिंदा रूप से दस्तावेजी साक्ष्य पर भरोसा किया। उन्होंने दोहराया कि आरोप के दूसरे भाग को साबित करने के लिए कोई सामग्री या दस्तावेज या कोई मौखिक साक्ष्य नहीं था कि याचिकाकर्ता को कोई गैरकानूनी लाभ हुआ था या भारत सरकार को कोई नुकसान हुआ था।

15. आरोप संख्या 6 के संबंध में, उन्होंने तर्क दिया कि जांच अधिकारी ने दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य पर एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी की साक्ष्य कि प्रशङ्गत अवैध कब्जा याचिकाकर्ता के कर्तव्यों के दायरे में नहीं था अपितु वह स्वच्छता विभाग, कनिष्ठ अभियंता और सहायक अभियंता के पास था, पर कोई विचार नहीं किया। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपीलीय आदेश में भी यह माना गया है कि याचिकाकर्ता केवल एक पर्यवेक्षी अधिकारी था और न तो किसी अनधिकृत निर्माण के लिए रिपोर्टिंग अधिकारी था और न ही अंतिम

निर्णय लेने वाले अधिकारी का हिस्सा था। उन्होंने तर्क दिया कि अनधिकृत निर्माण की रिपोर्टिंग का कार्य मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा जारी विभिन्न आदेशों के माध्यम से सौंपा गया था, जो रिट याचिका के अनुलग्नक-20 के रूप में संलग्न है। उक्त आदेशों से यह स्पष्ट है कि फाइलें केवल याचिकाकर्ता के माध्यम से मुख्य कार्यकारी अधिकारी को भेजी जानी थीं, जो अंतिम प्राधिकारी थे। उन्होंने आगे तर्क दिया कि ऐसा कोई आरोप नहीं है कि याचिकाकर्ता, जिसे फाइलें भेजने की भूमिका सौंपी गई थी, ऐसा करने में विफल रहा।

16. उन्होंने मेरा ध्यान अपीलीय प्राधिकारी के आदेश की ओर आकर्षित किया है, जो दर्शाता है कि हालांकि याचिकाकर्ता ने अपने पर्यवेक्षी कर्तव्यों का पालन नहीं किया, परंतु अन्य लोग भी अनधिकृत निर्माण की रिपोर्ट न करने के लिए जिम्मेदार थे और यह रिकॉर्ड में है कि अनधिकृत निर्माण की रिपोर्ट करने के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों या मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जो निर्णय लेने के लिए अंतिम प्राधिकारी थे, के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की गई है।

17. इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि एक ओर तो कार्यवाही केवल याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई है और किसी और के विरुद्ध नहीं, वहीं याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के पहले या दूसरे पहलू को साबित करने के लिए कोई भी सबूत न होने के बावजूद याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनिवार्य सेवानिवृत्ति की कठोर सजा सुनाई गई है।

18. उन्होंने तर्क दिया कि यह सुस्थापित है कि अनुशासनात्मक जांच की भूमिका अर्ध-न्यायिक है और इसे लापरवाही से नहीं किया जाना चाहिए। लगाए गए सभी आरोपों को उचित रूप से साबित किया जाना चाहिए और अनुशासनात्मक प्राधिकारी को अर्ध-न्यायिक कार्यों का प्रयोग करते समय स्वतंत्र तरीके से कार्य करना चाहिए। उक्त के समर्थन में, वह *उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा; (2010) 2 एससीसी 772, रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक; (2009) 2 एससीसी 570, चमोली जिला सहकारी बैंक लि बनाम रघुनाथ सिंह राणा (2016) 12 एससीसी 204, एम.वी. बिजलानी बनाम भारत संघ; (2006) 5 एससीसी 88 और राधे कांत खरे बनाम यू.पी. सहकारी चीनी कारखाना संघ लिमिटेड; 2002 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1575।*

19. उन्होंने आगे दलील दी कि अनधिकृत निर्माण की सूचना देने के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों या मुख्य कार्यकारी अधिकारी के विरुद्ध कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई है, जो आदेश पारित करने वाले अंतिम प्राधिकारी थे और इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिवादियों की कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण और भेदभावपूर्ण भी है। उक्त बिंदु पर जोर देने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने मुझे मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा समय-समय पर जारी किए गए कार्य आवंटन आदेशों (अनुलग्नक - 20) पर ले गए हैं, जिसमें यह स्पष्ट है कि अनधिकृत निर्माण की सूचना देने की जिम्मेदारी जूनियर इंजीनियर/सहायक अभियंता और सफाई विभाग की थी और

अंतिम निर्णय लेने वाले अधिकारी, मुख्य कार्यकारी अधिकारी थे।

20. उन्होंने यह भी तर्क दिया कि अपीलीय आदेश में ही यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि कुछ अन्य कर्मचारी/अधिकारी और तकनीकी कर्मचारी छावनी क्षेत्र में किसी भी अवैधता की रिपोर्ट करने के लिए जिम्मेदार हैं। उन्होंने तर्क दिया कि यह प्रदर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि प्रतिवादियों ने रिपोर्टिंग के लिए जिम्मेदार उक्त व्यक्तियों में से किसी के विरुद्ध और मुख्य कार्यकारी अधिकारी के विरुद्ध कोई कार्रवाई क्यों नहीं की। उन्होंने तर्क दिया कि एक ओर अपीलीय प्राधिकारी ने यह राय बनाई कि याचिकाकर्ता रिपोर्टिंग प्राधिकारी नहीं था, परंतु अपीलीय प्राधिकारी इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि याचिकाकर्ता पर चुनिंदा रूप से मुकदमा चलाया जा रहा है। उन्होंने तर्क दिया कि यह सुस्थापित है कि सह-अपराधियों के बीच समानता बनाए रखी जानी चाहिए, खासकर जब आरोप समान हों और उन्हें नजरअंदाज करते हुए, कार्रवाई स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण होगी। वह निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा करते हैं:

राजेंद्र यादव बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य; (2008) 12 एससीसी 331

मान सिंह बनाम हरियाणा राज्य व अन्य; (2008) 12 एससीसी 331

यू.पी. राज्य और अन्य बनाम राज पाल सिंह; (2010) 5 एससीसी 783

21. इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्रवाई कानून में

दुर्भावना है। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादियों द्वारा अप्रत्यक्ष उद्देश्यों के लिए प्रताड़ित किया जा रहा है और इस प्रकार, इस आधार पर, कानून में दुर्भावना स्पष्ट है। उन्होंने अपने तर्कों के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:

ए.पी. बनाम गोवर्धनलाल पित्ती; एआईआर 2003 एससी 1941

आरएस गर्ग बनाम यू.पी. राज्य और अन्य; (2006) 6 एससीसी 430

पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड लिमिटेड बनाम ज़ोरा सिंह और अन्य; (2005) 6 एससी 776

22. इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप 1995 से 2013 की अवधि के लिए निर्माण के संबंध में पर्यवेक्षी भूमिका निभाने में लापरवाही से संबंधित हैं, जो पुराने हैं। उन्होंने मेरा ध्यान आरोप संख्या 3 से 6 की ओर दिलाया, जो वर्ष 1995 से संबंधित हैं और जिनके संबंध में आरोप पत्र 20.12.2013 को दिया गया था। उन्होंने तर्क दिया कि यह सुस्थापित है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में अत्यधिक देरी, उस अत्यधिक देरी के किसी स्पष्टीकरण के अभाव में कार्यवाही ही दूषित हो जाएगी। इसके समर्थन में, वह **पी.वी. महादेवन बनाम एम.डी. टी.एन. हाउसिंग बोर्ड; (2005) 6 एससीसी 636 और मध्य प्रदेश राज्य बनाम बानी सिंह एवं अन्य, 1990 (सप्प) एससीसी 738 के मामले में दिए गए फैसले का हवाला देते हैं।**

23. इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि भले ही तर्क के लिए यह मान लिया जाए कि पर्यवेक्षी

कर्तव्यों का पालन करने में याचिकाकर्ता की ओर से दक्षता की कमी थी, लेकिन इसे "कदाचार" नहीं माना जा सकता है, जिसके लिए अनिवार्य सेवानिवृत्ति की कठोर सजा दी जा सकती है, खासकर तब, जब सभी आरोपों का दूसरा पहलू न तो साबित हुआ और न ही रिकॉर्ड पर मौजूद किसी भी सबूत से इसकी पुष्टि हुई। उन्होंने **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम जे. अहमद; (1979) 2 एससीसी 286 और रिट-ए नंबर 10365/2019 (अरविंद कुमार शर्मा बनाम यूपी राज्य और अन्य) में पारित 08.08.2019** के निर्णय पर भरोसा जताया।

24. इसके बाद उन्होंने तर्क दिया कि अनुशासनात्मक कार्यवाही उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा रिट-ए संख्या 70147/2013 में पारित दिनांक 20.11.2013 के निर्णय और आदेश में जांच के समापन के लिए तय समय सीमा से परे समाप्त हुई है, जिसमें कार्यवाही को, अधिमानतः तीन महीने की अवधि के भीतर समाप्त करने के लिए निर्देश जारी किए गए थे। इसके समर्थन में, उन्होंने **अभिषेक प्रभाकर अवस्थी बनाम द न्यू इंडिया एशयोरंस कंपनी लिमिटेड और अन्य; 2013 एससीसी ऑनलाइन ऑल 14267** मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया।

25. अंत में उन्होंने सजा की मात्रा पर तर्क दिया, जो याचिकाकर्ता के अनुसार लगाए गए आरोपों की गंभीरता को देखते हुए बेहद अनुपातहीन है। उक्त दलील के समर्थन में, उन्होंने दोहराया कि याचिकाकर्ता न तो रिपोर्टिंग प्राधिकारी था, जिसे दोषमुक्त कर दिया गया है और न ही निर्णय लेने वाला प्राधिकारी था, जिसे आरोप-पत्र भी नहीं दिया

गया है। उनका तर्क है कि याचिकाकर्ता को दी गई अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा की अनुपातहीनता को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना चाहिए कि आरोप का दूसरा भाग न तो स्थापित किया गया है और न ही साबित हुआ है और इस तरह, भले ही तर्कों के लिए आरोपों को स्थापित माना जाए, वे कठोर सजा को आकर्षित नहीं करेंगे। उनका तर्क है कि सजा की अनुपातहीनता भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है। इसके लिए, वह **भगत राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य, (1983) 2 एससीसी 44, एसआर तिवारी बनाम भारत संघ और अन्य; (2013) 6 एससीसी 602, भारत संघ बनाम बोडुपल्ली गोपालस्वामी; (2011) 13 सीसी 553, चरणजीत लांबा बनाम कमांडिंग ऑफिसर, सेना दक्षिणी कमान और अन्य (2010) 11 एससीसी 314, बीसी चतुर्वेदी बनाम भारत संघ एवं अन्य; (1995) 6 एससीसी 749, रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ एवं अन्य; (1987) 4 एससीसी 611 और अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक कोल इंडिया लिमिटेड एवं अन्य बनाम मुकुल कुमार चौधरी एवं अन्य; (2009) 15 एससीसी 620** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

26. उपर्युक्त तर्कों के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

27. श्री अशोक मेहता, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता के लिए प्रतिवादियों की ओर से श्री एस.के. राय और

श्री अजय कुमार सिंह, विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हुए, ने याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों का विस्तार से खंडन किया है।

28. उक्त के समर्थन में, उनका तर्क है कि यद्यपि याचिकाकर्ता ने तर्क दिया है कि उल्लंघनों के लिए वह अकेले जिम्मेदार नहीं था, तथापि, याचिकाकर्ता ने स्वयं तर्क दिया था कि यह सामूहिक जिम्मेदारी थी, जिसके लिए वह मेरा ध्यान याचिकाकर्ता के दिनांक 27.01.2014 के उत्तर और दिनांक 22.10.2020 के अपील के ज्ञापन की ओर आकर्षित करते हैं।

29. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिवादियों की ओर से दायर प्रतिशपथपत्र का अवलोकन किया तथा मेरा ध्यान पैरा 16 से 24 की ओर आकर्षित किया, जो नीचे उद्धृत हैं:

"16. यह संदेह से परे स्थापित है कि श्री अनुज सिंह ने अपने कर्तव्य का निर्वहन केवल सिफारिश प्रस्तुत करने तक ही सीमित रखा, न कि कोई ठोस कार्रवाई की। यह अत्यंत दुर्लभ अवसर है, जब कोई ध्वस्तीकरण किया जाता है।

17. वास्तव में श्री अनुज सिंह की ओर से सभी अनधिकृत लोगों के संबंध में कोई निश्चित स्थितिगत तथा कानूनी कार्रवाई नहीं की गई।

18. अनधिकृत निर्माण का अपराध गंभीर है, जिसमें रक्षा भूमि पर कब्जा करना तथा उल्लंघनों से उचित तथा कानूनी तरीके से तथा कानूनी प्रक्रिया के अनुरूप तरीके से निपटने में

निष्क्रियता शामिल है, जो ऐसे अपराधों में संलिप्तता तथा उन्हें सुविधाजनक बनाने को बल प्रदान करती है। श्री अनुज सिंह द्वारा कैंट क्षेत्र में अनधिकृत निर्माण को सुविधाजनक बनाने से अपराधी को स्पष्ट रूप से वित्तीय लाभ हुआ।

19. श्री अनुज सिंह सहायक अभियंता के रूप में तकनीकी अनुभाग के प्रमुख थे तथा तत्पश्चात अधिशासी अभियंता के रूप में पदोन्नत हुए, वे संपूर्ण निर्माण के लिए जिम्मेदार थे। कैंट क्षेत्र में अनधिकृत निर्माण के विरुद्ध कार्रवाई की पूरी श्रृंखला थी, और इसलिए उनके कार्यालय अधिनास्थों द्वारा की जा रही कार्रवाई या उपेक्षा की समय जिम्मेदारी उनकी थी।

20. पर्यवेक्षी प्रमुख होने के नाते वह अपने कार्यालय के अधीनस्थों की गलतियों और चूकों के लिए भी जिम्मेदार थे।

21. यह स्थापित हो गया है कि श्री अनुज सिंह ने अधीनस्थ कर्मचारियों के कामकाज पर न तो निगरानी रखी और न ही पर्यवेक्षण किया, जिसके कारण अनधिकृत निर्माण बेरोकटोक चलता रहा, जिसके परिणामस्वरूप कैंट क्षेत्र, मेरठ में भारी मात्रा में अनधिकृत निर्माण हुआ।

22. अपीलीय प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों की पुष्टि की है, जिसमें विशेष रूप से कैंट क्षेत्र के अन्य हिस्सों में विभिन्न बंगलों में

अनधिकृत निर्माणों को उजागर किया गया है, जिसमें अवैध अनधिकृत निर्माणों के संबंध में अपराधों की चूक और अपराध करने के मामलों का स्पष्ट उदाहरण दिया गया है।

23. अपीलीय प्राधिकारी ने विशेष रूप से पुनः पुष्टि की है और माना है कि श्री अनुज सिंह अपीलकर्ता, कैंट अधिशासी अभियंता के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान बंगलों और कैंट क्षेत्र में इन अनधिकृत निर्माणों को रोकने/ध्वस्त करने में विफल रहे हैं और पर्यवेक्षक के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने में भी विफल रहे हैं।

24. अपीलीय प्राधिकारी पुनः पुष्टि करता है श्री अनुज सिंह, अपीलकर्ता ट्रेचिंग ग्राउंड के विशाल क्षेत्र में अवैध अनधिकृत खेती के मामले में भी लापरवाही के दोषी हैं।"

30. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता मेरा ध्यान इस न्यायालय के निर्णय दिनांक 29.01.2014 की ओर आकृष्ट करते हैं, जिसमें छावनी बोर्ड के विरुद्ध निम्नलिखित प्रभाव की कठोर टिप्पणियां की गई थीं:

"समापन से पूर्व न्यायालय यह दर्ज करना चाहेगा कि छावनी बोर्ड अपनी संपत्ति की रक्षा करने में पूरी तरह विफल रहा है, क्योंकि उसने न केवल विरोधी पक्षों बल्कि अन्य सभी विक्रेताओं और अतिचारियों को बेदखल करने और ध्वस्त करने के लिए छावनी अधिनियम, 1924 के

प्रावधानों के तहत उचित कदम और कार्रवाई नहीं की, जिन्होंने विवादित भूमि के कुछ हिस्सों पर कब्जा कर लिया था। यह अवमानना आवेदन पर उस तरीके से मुकदमा चलाने में भी विफल रहा, जैसा कि छावनी बोर्ड जैसे स्तर के संस्थान से उचित रूप से अपेक्षित था, जबकि उसके पास अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए सभी बुनियादी ढांचे और राज्य/केंद्र सरकार का समर्थन था। छावनी बोर्ड को और अधिक सतर्क रहना चाहिए और कानून के अनुसार न केवल सख्ती से बल्कि समय पर कार्रवाई भी करनी चाहिए। एक बार किसी पक्ष को कानून का उल्लंघन करने की अनुमति दे दी जाए और वह लगातार उल्लंघन करता रहे तो इसका परिणाम अतिचार, अवैध निर्माण, सार्वजनिक मार्ग में अवरोध और छावनी क्षेत्रों को नियंत्रित करने वाले उप-नियमों का उल्लंघन हो सकता है। यह रक्षा मंत्रालय का एक विस्तारित अंग होने के नाते छावनी बोर्ड की कमजोरी को दर्शाता है, जो छावनी क्षेत्र में अतिक्रमण और अवैध गतिविधियों की अनुमति देता है। केंद्र सरकार को इस पर ध्यान देना चाहिए और छावनी बोर्डों को उचित निर्देश जारी करने चाहिए और जब भी यह पाया जाए कि बोर्ड समय पर कार्रवाई करने और कानून के अनुसार छावनी क्षेत्र के पर्यवेक्षण और रखरखाव के अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में कमी कर

रहा है, तो केंद्र सरकार/रक्षा मंत्रालय को दोषी अधिकारियों के विरुद्ध उचित कार्रवाई करनी चाहिए ताकि अतिचार के आगे के उल्लंघन की जाँच और नियंत्रण किया जा सके। इस आदेश की एक प्रति आवश्यक कार्रवाई के लिए सचिव, रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली को भेजी जाए। अभिलेख दाखिल दफ्तर हो।"

31. याचिकाकर्ता को कथित गलत लाभ के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील के जवाब में, यह तर्क दिया गया है कि प्रत्येक आरोप के दूसरे भाग में, यह "याचिकाकर्ता की यह कार्रवाई आवेदक को गलत लाभ/लाभ पहुंचाने के इरादे/उद्देश्य से थी" शब्दों से शुरू होती है। उनका तर्क है कि प्रत्येक आरोप के दूसरे भाग में प्रयुक्त "आवेदक" का तात्पर्य अधिभोग अधिकार धारक से है, न कि याचिकाकर्ता से। इस प्रकार, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आरोप का दूसरा भाग याचिकाकर्ता को गलत लाभ पहुंचाने को नहीं दर्शाता है।

32. उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा निष्क्रियता के संबंध में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह बिल्डर/अपराधियों/अवैध अधिभोगियों और संपत्तियों के मालिकों को गलत लाभ पहुंचाने के इरादे और उद्देश्य से था। उनका तर्क है कि यह दृढ़ता से माना जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता की ओर से निष्क्रियता स्पष्ट रूप से नाजायज विचारों के लिए थी। संक्षेप में,

तर्क यह है कि निष्क्रियता से संभाव्यता की अधिकता होगी और यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उक्त निष्क्रियता अवैध लाभ के लिए थी।

33. जांच के समापन में देरी के संबंध में, यह कहा गया है कि देरी प्रतिवादियों के कारण नहीं थी। अन्य तर्कों के जवाब में, यह तर्क दिया गया है कि केवल इसलिए कि सामूहिक जिम्मेदारी थी, यह याचिकाकर्ता को केवल इसलिए दोषमुक्त करने का आधार नहीं हो सकता है कि अन्य के विरुद्ध कार्यवाही शुरू नहीं की गई है।

34. यह भी तर्क दिया गया है कि न्यायिक समीक्षा को दंड की मात्रा सहित प्रशासनिक निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि नकारात्मक समानता की कोई अवधारणा नहीं है और समानता के आधार पर याचिकाकर्ता का तर्क निराधार है।

35. प्रतिवादी मेरा ध्यान **छावनी कार्यकारी अधिकारी, छावनी बोर्ड, मेरठ एवं अन्य बनाम श्रीमती पुष्पा देवी एवं अन्य, अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 380/2021, दिनांक 29.01.2014 को निर्णीत, फ्रेंड्स कॉलोनी डेवलपमेंट कमेटी बनाम उड़ीसा राज्य एवं अन्य; (2004) 8 एससीसी 733 और दीपक कुमार मुखर्जी बनाम कोलकाता नगर निगम; (2013) 5 एससीसी 353 के मामलों में निर्णयों की ओर आक्रष्ट करते हैं।**

36. याचिकाकर्ता या प्रतिवादियों द्वारा कोई अन्य तर्क नहीं उठाए गए हैं।

37. ऊपर उठाए गए तर्कों का विश्लेषण करने से पहले, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि याचिकाकर्ता की सेवाएँ सीएफएस नियमों द्वारा शासित होती हैं। वर्तमान मामले के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक नियम नियम 10-ए, नियम 11, नियम 12 और नियम 12-ए से 12-एफ हैं।

38. दिये गए तर्कों का विश्लेषण करने से पहले, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामलों में न्यायिक समीक्षा के दायरे के संबंध में कानून काफी हद तक स्थापित है और निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित है और यह देखना है कि क्या यह विकृत, अवैध है और क्या यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के परीक्षण को पूरा करने में विफल रहता है।

39. कानून की स्थापित स्थिति को देखते हुए, मैं उस तरीके पर विचार करने जा रहा हूँ जिससे जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को साबित और आंशिक रूप से साबित माना है, विशेष रूप से आरोप संख्या 2 से 6 तक।

40. मैं आरोप संख्या 1 के प्रश्न पर नहीं जा रहा हूँ, जिसे अपीलीय आदेश में याचिकाकर्ता के पक्ष में तय किया गया है।

जांच अधिकारी की रिपोर्ट का विश्लेषण:

41. जांच अधिकारी की रिपोर्ट का विश्लेषण करने के लिए, यह आवश्यक है कि आरोप-पत्र के अनुसार याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप संख्या 2 ओल्ड ग्रांट बंगला संख्या 22-बी, मेरठ कैंट में अवैध निर्माण से संबंधित हैं,

जिसमें सर्वेक्षण संख्या 302 शामिल है, जो कथित रूप से ओल्ड ग्रांट की शर्तों का उल्लंघन करके बनाया गया था।

42. उक्त आरोप को साबित करने के लिए, प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप संख्या 2 को प्रमाणित करने के लिए आवश्यक 20 दस्तावेजों का उल्लेख किया था। जांच अधिकारी की रिपोर्ट में, जो रिकॉर्ड में है, आरोप संख्या 2 पर कार्रवाई करते समय अभियोजन अधिकारी ने आरोप पत्र में संदर्भित दस्तावेजों के अतिरिक्त अभियोजन पक्ष के गवाहों अर्थात् श्री पीयूष गौतम, एई; श्री बृजेश कुमार सिंघल, एसजीसी; श्रीमती सुनीता दत्ता, एसजीसी; और श्री कमल सिंह यादव, ट्रेसर को पेश करने का प्रस्ताव रखा।

43. यह रिकॉर्ड में है कि उनके बयान दर्ज किए गए थे और उन्हें आरोप पत्र दायर करने वाले अधिकारी द्वारा जिरह करने की अनुमति दी गई थी। जांच अधिकारी ने आगे दर्ज किया है कि आरोप पत्र दायर करने वाले अधिकारी ने श्री जेएस माही, श्री पुरुषोत्तम लाल, श्री राजेश जॉन और श्री अरुण कंवल नामक गवाहों को भी पेश किया। हालांकि जांच अधिकारी ने दर्ज किया है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों अर्थात् श्री पीयूष गौतम, श्रीमती सुनीता दत्ता, श्री कमल सिंह यादव और श्री केए गुप्ता (हालांकि अभियोजन पक्ष के गवाहों की सूची में उनका उल्लेख नहीं है) को जिरह करने की अनुमति दी गई थी।

44. जांच अधिकारी ने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की ओर से प्रस्तुत किए गए प्रस्तुतीकरणों के

साथ-साथ आरोपित अधिकारी द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर भी विचार किया, हालांकि, अभियोजन पक्ष के गवाहों के रूप में जांचे गए गवाहों द्वारा दिए गए बयानों का ज़रा भी उल्लेख नहीं किया गया। रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह प्रदर्शित करे कि इन अभियोजन पक्ष के गवाहों को आरोप-पत्र के समर्थन में क्यों अनुमति दी गई, जबकि उनके नाम आरोप-पत्र में गवाहों की सूची में भी नहीं थे। इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि उक्त अभियोजन पक्ष के गवाहों ने क्या कहा और उन्होंने याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप संख्या 2 में लगाए गए आरोपों को कैसे साबित किया।

45. जांच अधिकारी ने हालांकि आरोपित अधिकारी के इस कथन को दर्ज किया है कि याचिकाकर्ता न तो कथित अवैध निर्माणों की रिपोर्ट करने के लिए जिम्मेदार था और न ही उसे ध्वस्तीकरण के आदेश पारित करने का अधिकार था, वास्तव में, जांच अधिकारी ने खुद ही दर्ज किया है कि अवैध निर्माणों की रिपोर्ट से लेकर अनधिकृत निर्माणों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा की गई सिफारिश तक लगभग 14 दिनों की देरी हुई थी। इस बात का कोई भी निष्कर्ष नहीं है कि याचिकाकर्ता को निर्माणों की रिपोर्ट करने या कथित अनधिकृत निर्माणों को हटाने के लिए आदेश पारित करने का अधिकार था। जांच अधिकारी की रिपोर्ट में ऐसा कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं है जो यह प्रदर्शित करे कि लिखित दस्तावेजों की पुष्टि किसने की, जो आरोप संख्या 2 की पुष्टि के लिए उल्लिखित दस्तावेजों की सूची का हिस्सा थे। जिस तरह से जांच अधिकारी ने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी

और आरोपित अधिकारी की ओर से किए गए प्रस्तुतीकरण को दर्ज करके आगे बढ़े, उसे उचित जांच नहीं कहा जा सकता है, जैसा कि माना गया है।

46. यद्यपि जांच अधिकारी ने आरोप संख्या 2 के दूसरे भाग को साबित करने के लिए दर्ज किया है, लेकिन आरोप संख्या 2 के दूसरे भाग को साबित करने के लिए कोई कारण या सबूत नहीं दिया है और केवल सीईओ के दिनांक 09.07.2012 को एडीएम (सिटी) मेरठ को लिखे पत्र के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि अपराधी ने भारत सरकार को 3,03,08,000/- रुपये की हानि पहुंचाई है और केवल उक्त पत्र के आधार पर, उन्होंने याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप संख्या 2 के दूसरे भाग को साबित करने का निष्कर्ष निकाला है।

47. जांच अधिकारी की रिपोर्ट में यह प्रदर्शित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि सीईओ के दिनांक 09.07.2013 के पत्र को किसने साबित किया। यह नोट करना प्रासंगिक है कि सीईओ अभियोजन पक्ष के गवाहों में शामिल नहीं थे। स्पष्ट रूप से आरोप का दूसरा भाग, जैसा कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध साबित करने के लिए दर्ज किया गया था, बिना किसी सबूत के था। 48. आरोप संख्या 3 की बात करें तो आरोप यह है कि याचिकाकर्ता ने 15.02.1995 से जनवरी, 2012 की अवधि के दौरान अधिशासी अभियंता के रूप में काम करते हुए, मेरठ कैंट में बिल्डिंग नंबर 340 में अवैध रूप से अवैध निर्माण की सुविधा दी, जो कि माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.05.2001 के साथ-साथ

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.11.2002 का उल्लंघन था, जिसमें भूतल के ऊपर निर्माण पर रोक लगाई गई थी।

49. आरोप पत्र में आरोप संख्या 3 में लगाए गए आरोप को पुष्ट करने के लिए, 11 दस्तावेजों पर भरोसा करने का प्रस्ताव किया गया था। भरोसा करने के लिए प्रस्तावित दस्तावेजों के अलावा, जांच अधिकारी ने चार अभियोजन गवाहों श्री पीयूष गौतम, श्री बृजेश सिंघल, श्रीमती सुनीता दत्ता और श्री कमल सिंह यादव को अनुमति दी। उन्होंने आरोपित अधिकारी को अपने बचाव में 18 दस्तावेज प्रस्तुत करने की अनुमति दी और अभियोजन पक्ष के गवाहों से जिरह करने की भी अनुमति दी। इसके बाद उन्होंने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी और आरोपित अधिकारी द्वारा लिखित रूप में प्रस्तुत किए गए तर्कों को रिकॉर्ड करना शुरू किया।

50. अभियोजन पक्ष के गवाहों की कोई गवाही नहीं है और न ही जांच अधिकारी ने यह दर्ज किया है कि आरोप-पत्र में जिन दस्तावेजों पर भरोसा करने का प्रस्ताव है, उन्हें अभियोजन पक्ष के गवाहों या किसी और ने कैसे प्रमाणित किया। आरोप संख्या 3 के संबंध में निष्कर्ष में, जांच अधिकारी ने श्री पीयूष गौतम के बयान पर भरोसा किया है, जिन्होंने केवल यह कहा है कि खंभों के रूप में अनधिकृत निर्माण अपराधी द्वारा जनवरी, 2014 से पहले किया गया था। याचिकाकर्ता के विरुद्ध अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा दिए गए बयान का कोई अंश या आभास नहीं है कि वह उच्च

न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के विपरीत अनधिकृत निर्माण के लिए कैसे जिम्मेदार था।

51. आरोप सं. 3 के दूसरे भाग के निष्कर्ष को दर्ज करते समय, जांच अधिकारी ने रिकॉर्ड किया कि आवासीय परिसर से व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए निर्माणों के रूपांतरण के परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को वित्तीय लाभ हुआ, जो कि जांच अधिकारी के अनुसार आरोप सं. 3 पर निष्कर्ष देते समय, दर्ज तथ्यों और घटनाओं से अनुमान लगाया जा सकता है।

52. जांच अधिकारी के समक्ष किसी भी गवाह या किसी भी दस्तावेज का उल्लेख नहीं है, जिसे आरोप सं. 3 के दूसरे भाग को आरोपित या साबित करना कहा जा सके।

53. आरोप सं. 4, जो याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप लगाता है कि 15.02.1995 से नवंबर, 2013 की अवधि के लिए, याचिकाकर्ता ने वेस्ट एंड रोड के बंगला सं. 198, 199, 202, 209, 210-ए, 210-बी, 210-सी, 213 बंगला संख्या 176, 340, रंगस मोहल्ला; बंगला संख्या 193, नया बाजार; बंगला संख्या 182, 184, 185, 185/ए, 187, 188 और 190, आबू लेन; बंगला संख्या 305 सर्कुलर रोड, जिसमें बंगला संख्या 182/183 दालमंडी सदर बाजार भी शामिल है, को व्यावसायिक उपयोग के लिए निर्माण करने दिया।

54. आरोप संख्या 4 के समर्थन में आरोप-पत्र में 8 दस्तावेजों पर भरोसा करने का प्रस्ताव किया गया था। जांच अधिकारी ने पांच

अभियोजन पक्ष के गवाहों को आरोपों को कायम रखने की अनुमति दी, जिनके नाम श्री पीयूष गौतम, श्री बृजेश सिंघल, श्रीमती सुनीता दत्ता और श्री कमल सिंह यादव हैं। याचिकाकर्ता ने उक्त गवाहों से जिरह करने की अनुमति दी, जैसा कि रिकॉर्ड पर मौजूद जांच रिपोर्ट से स्पष्ट है। इसके बाद जांच अधिकारी ने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के लिखित बयानों के साथ-साथ आरोपित अधिकारी के लिखित बयानों पर भी विचार किया। उन्होंने श्री पीयूष गौतम की मुख्य परीक्षा का हवाला दिया, जिन्होंने केवल इस बात की पुष्टि की कि वेस्टएंड रोड स्थित बंगला संख्या 210-बी में प्लॉटिंग की गई थी और अनधिकृत निर्माण हुआ था। श्री बृजेश सिंघल ने अपनी मुख्य परीक्षा में केवल यह कहा था कि पिछले कई वर्षों के दौरान कई बंगलों में अनधिकृत निर्माण हुआ है। अभियोजन पक्ष के गवाह श्री कमल सिंह यादव ने केवल इतना कहा कि जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी और छावनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार आगे की कार्रवाई की गई थी। उनमें से किसी ने भी याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई बयान नहीं दिया।

55. जांच रिपोर्ट में, श्री के.ए. गुप्ता की मुख्य परीक्षा का कोई उल्लेख नहीं है और यह कि श्री के.ए. गुप्ता के उक्त बयान ने आरोप को पुष्ट करने के लिए क्या स्थापित किया। जांच अधिकारी की रिपोर्ट में संदर्भित श्री के.ए. गुप्ता की जिरह केवल यह स्थापित करती है कि अनुभाग प्रमुख होने के नाते सीओ की पूरी जिम्मेदारी थी।

56. जांच अधिकारी ने श्री बृजेश सिंघल की जिरह का उल्लेख करते हुए दर्ज किया कि उन्होंने अपनी जिरह में कहा था कि सीओ ने सीईओ के तकनीकी अधीनस्थ कर्मचारियों की रिपोर्ट की सिफारिश की थी और साइटों के निरीक्षण के लिए जिम्मेदार थे। उन्होंने यह भी दर्ज किया कि अनधिकृत निर्माण के कारण कुछ संपत्तियों को सील कर दिया गया था उन्होंने यह भी कहा कि पूर्णता रिपोर्ट देने की जिम्मेदारी सीओ की है।

57. इसी तरह, श्री कमल सिंह यादव और श्री पीयूष सिंघल की जिरह रिकॉर्ड पर है, जो जांच रिपोर्ट के अनुसार भी याचिकाकर्ता पर लगाए गए उक्त आरोप को साबित करने के लिए याचिकाकर्ता को दोषी नहीं ठहराती है।

58. आरोप संख्या 4 के दूसरे भाग पर निष्कर्ष दर्ज करने के लिए आगे बढ़ते हुए, जांच अधिकारी ने दर्ज किया कि "इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि सीओ ने अधिकारियों को लाभ पहुंचाने और खुद को लाभ पहुंचाने के इरादे से ऐसी सुविधा प्रदान की।" आरोप संख्या 4 के दूसरे भाग को साबित करने के लिए किसी भी सबूत की कोई झलक नहीं है।

59. अब चार्ज नंबर 5 पर आते हैं, चार्जशीट में 16 दस्तावेजों का हवाला दिया गया है, जिन्हें उक्त आरोप के समर्थन में भरोसेमंद दस्तावेज माना गया है। उक्त दस्तावेजों के अलावा, चार अभियोजन पक्ष के गवाह श्री पीयूष गौतम, श्री बृजेश सिंघल, श्री के.ए. गुप्ता और श्री कमल सिंह यादव को भी पेश किया

गया। जांच अधिकारी ने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी और आरोपित अधिकारी द्वारा की गई दलीलों का हवाला दिया, श्री बृजेश सिंघल की मुख्य परीक्षा का हवाला दिया, जिन्होंने केवल इस आशय की गवाही दी कि ध्वस्तीकरण आदेश को निष्पादित करने के लिए फाइल सीईओ के समक्ष रखी गई थी, लेकिन उस पर अमल नहीं किया गया। इसी तरह, अभियोजन पक्ष के गवाह श्री कमल सिंह यादव ने याचिकाकर्ता द्वारा अवैध मोबाइल टावरों को न हटाए जाने के संबंध में सीईओ द्वारा व्यक्त की गई नाराजगी का हवाला दिया। जांच अधिकारी ने अभियोजन पक्ष के गवाहों का कोई बयान या भरोसा करने के लिए प्रस्तावित दस्तावेजों को प्रमाणित करने के लिए कोई बयान कहीं भी दर्ज नहीं किया और अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा इसके विपरीत साक्ष्य होने के बावजूद, आरोप संख्या 5 को साबित कर दिया।

60. आरोप संख्या 6 पर आते हैं, जो 1995 से 2013 की अवधि के लिए छावनी बोर्ड में ट्रेडिंग ग्राउंड में स्थित भूमि के एक हिस्से पर अवैध कब्जे को जारी रखने से संबंधित है, जिसके लिए याचिकाकर्ता पर अवैध कब्जे को खाली न करने या संबंधित भूमि पर खेती न करने में अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करने का आरोप लगाया गया था।

61. उक्त आरोप संख्या 6 के समर्थन में, सात दस्तावेजों पर भरोसा करने का प्रस्ताव था। उक्त दस्तावेजों के अलावा, जांच अधिकारी ने अभियोजन पक्ष के तीन गवाहों को अनुमति दी और याचिकाकर्ता को अपने तर्क के समर्थन में दस्तावेजों के साथ-साथ बचाव पक्ष के गवाहों को भी पेश करने की अनुमति दी।

62. आरोप संख्या 6 को आंशिक रूप से साबित करने के लिए दर्ज किए गए पूरे निष्कर्षों में, उन्होंने अभियोजन पक्ष के गवाहों श्री वी.के. त्यागी के बयान का हवाला दिया, जिन्होंने याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई बयान नहीं दिया। अभियोजन पक्ष के गवाह श्री के.ए. गुप्ता का कोई संदर्भ नहीं है, हालांकि उनकी जिरह का हवाला दिया गया है। इस प्रकार, जांच अधिकारी के निष्कर्षों में, इस बात का कोई संदर्भ नहीं था कि कैसे और किसने उक्त आरोप को साबित करने के लिए जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया, उन्हें प्रमाणित किया और अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान के किस हिस्से ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप को पुष्ट किया।

63. जांच अधिकारी ने यह भी नहीं सोचा कि याचिकाकर्ता के कर्तव्यों की प्रकृति क्या थी और क्या वह अवैध अतिक्रमण को रोकने के लिए जिम्मेदार था। जांच अधिकारी द्वारा दिये गए संपूर्ण निष्कर्षों में, अवैध कब्जाधारियों को लाभ पहुंचाने और कैंटोनमेंट बोर्ड को नुकसान पहुंचाने के आरोप संख्या 6 के दूसरे भाग को प्रमाणित करने के लिए दस्तावेजी या मौखिक किसी भी साक्ष्य की कोई झलक नहीं है।

64. याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप संख्या 7 को साबित नहीं पाया गया।

65. यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि अभियोजन पक्ष के दो गवाह अर्थात् श्री पीयूष गौतम और श्री के.ए. गुप्ता वे व्यक्ति थे जिनके विरुद्ध पहले कार्यवाही की गई थी, लेकिन बाद में जांच अधिकारी द्वारा दिनांक

05.06.2017 और 31.07.2017 के आदेश के तहत उन्हें आरोपों से मुक्त कर दिया गया था।

विरुद्ध तत्काल प्रभाव से बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया।

अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही:

66. जांच रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी को सौंपे जाने के बाद, याचिकाकर्ता को अपना जवाब दाखिल करने की स्वतंत्रता दी गई थी; याचिकाकर्ता ने उक्त के संदर्भ में अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए और जिस तरीके से जांच की गई है, उस पर प्रकाश डालते हुए अपना जवाब दायर किया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने एक आदेश पारित किया जो दिनांक 14.08.2019 के संकल्प संख्या 188 में निहित है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रत्येक आरोप का उल्लेख किया और प्रत्येक आरोप के संबंध में दर्ज किया कि जांच अधिकारी ने आरोपित अधिकारी के तर्क को देखा है और निष्कर्ष दिया है। उन्होंने आगे पाया कि आरोप गंभीर प्रकृति का है और अचानक निष्कर्ष निकाला कि जांच अधिकारी के निष्कर्ष बने रहेंगे हैं और उनमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। सातों आरोपों में से प्रत्येक के संबंध में एक समान निष्कर्ष दर्ज किया गया था। आरोपित अधिकारी द्वारा उद्धृत निर्णयों के संबंध में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दर्ज किया कि आरोपित अधिकारी द्वारा उद्धृत निर्णयों पर विचार किया गया है और वे उस मामले के लिए प्रासंगिक नहीं हैं एवं आरोपित अधिकारी के किसी भी उपयोग के नहीं हैं, और तत्पश्चात याचिकाकर्ता की सेवा से बर्खास्तगी की अनुशंसा की। उक्त अनुशंसा के संदर्भ में दिनांक 14.08.2019 को एक आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के

67. अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश से यह स्पष्ट है कि निष्कर्ष केवल जांच अधिकारी के निष्कर्षों के आधार पर निकाला गया था और याचिकाकर्ता द्वारा अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष लिए गए पक्ष के संबंध में कोई विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है और इस तथ्य को दर्ज करना कि याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत निर्णय प्रासंगिक नहीं हैं, स्पष्ट रूप से विवेक के प्रयोग की कमी को दर्शाता है। किसी भी तरह से इसे तर्कपूर्ण आदेश नहीं माना जा सकता है, जिसमें कारण शामिल हों और अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा विवेक के उचित प्रयोग के बाद दिया गया हो।

अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही:

68. याचिकाकर्ता ने सभी आधारों को ध्यान लेते हुए और जिस तरह से जांच पूरी की गई है, उस पर प्रकाश डालते हुए अपील दायर की। उन्होंने प्रत्येक आरोप के संबंध में विस्तृत तर्क दिये, जिन्हें सिद्ध माना गया, और जिनके आधार पर अंतिम दंड आदेश पारित किया गया। उन्होंने यह भी आधार लिया कि अनुशासनिक प्राधिकारी का आदेश बिना किसी विवेक के यांत्रिक आदेश था।

69. अपीलीय प्राधिकारी ने प्रथम आरोप के संबंध में अपने निर्णय में माना कि यह कानून की जांच में खरा नहीं उतरता, क्योंकि बंगला संख्या 167, चैपल स्ट्रीट मेरठ कैंट, मेरठ के संबंध में आरोप दिल्ली उच्च न्यायालय के 26.07.2011 के आदेश द्वारा समाप्त हो चुका

था और सर्वोच्च न्यायालय ने 14.05.2018 के अपने आदेश द्वारा इसे बरकरार रखा था।

70. याचिकाकर्ता द्वारा अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष उठाए गए तर्कों पर विचार करते हुए, अपीलकर्ता के इस तर्क की व्याख्या करते हुए कि वह पर्यवेक्षी पद पर था, अपीलीय प्राधिकारी ने "पर्यवेक्षक" और "पर्यवेक्षण करना" शब्दों के शब्दकोष अर्थ का उल्लेख किया और उक्त शब्दकोष अर्थ के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि पर्यवेक्षी क्षमता में छावनी भूमि के संबंध में आवश्यक तकनीकी जांच और रिपोर्टिंग कार्यों की जिम्मेदारी शामिल है।

71. शब्दकोश में वर्णित "पर्यवेक्षक" और "पर्यवेक्षण करना" की परिभाषा के आधार पर दूसरे से पांचवें आरोप का निस्तारण करते समय, अपीलीय प्राधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि उक्त कर्तव्य से किसी भी प्रकार का मामूली विचलन गंभीरता से लिया जाना चाहिए और संबंधित तकनीकी कर्मचारियों की टीम द्वारा कर्तव्यों का अप्रभावी निष्पादन, जो छावनी क्षेत्र में किसी भी अवैध गतिविधि की पहली रिपोर्टिंग के लिए जिम्मेदार हैं, अपीलकर्ता को उसके कर्तव्यों के गैर-निष्पादन के लिए दोषमुक्त नहीं करता है। अपीलीय प्राधिकारी ने आगे दर्ज किया कि हालांकि अपीलकर्ता एकमात्र व्यक्ति नहीं है, जो अवैध निर्माणों के लिए उत्तरदायी है, फिर भी, जेई और एई के साथ-साथ स्वच्छता कर्मचारियों की ओर से अनधिकृत निर्माणों की समय पर रिपोर्ट करने में विफलता स्पष्ट रूप से अपीलकर्ता की पर्यवेक्षी क्षमता द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में विफलता को

दर्शाती है। इसने आगे दर्ज किया कि पर्यवेक्षी क्षमता में अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में अपीलकर्ता की विफलता ने सरकार को नुकसान पहुंचाया।

72. चौथे आरोप पर विचार करते समय, अपीलीय प्राधिकारी ने पाया कि अपीलकर्ता एई के रूप में और उसके बाद मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में नियुक्त हुआ, इसलिए अपीलकर्ता 1995 से पहले की गई किसी भी अवैधता के लिए जिम्मेदार नहीं था। अपीलीय प्राधिकारी ने आगे यह भी दर्ज किया कि आईओ के समक्ष सूची में शामिल निर्माण स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि अपीलकर्ता ने छावनी बोर्ड के प्रबंधन के तहत क्षेत्र में चल रही अनधिकृत गतिविधि की प्रवृत्ति को रोकने के लिए समय पर और प्रभावी कार्रवाई नहीं की।

73. पांचवें आरोप में शामिल मोबाइल टावरों के अवैध निर्माण के संबंध में, यह दर्ज किया गया है कि टावर हटाने के लिए एस्टेट अधिकारी द्वारा दिए गए आदेशों और उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए स्थगन के बीच अपीलकर्ता के पास लगभग नौ महीने का पर्याप्त समय था, हालांकि, अपीलकर्ता ने दोषी को अनुचित लाभ प्रदान किया और माननीय न्यायालय से स्थगन आदेश प्राप्त करने के लिए समय प्रदान किया, इसलिए, अपीलकर्ता, बी नंबर 177-177-ए, चैपल स्ट्रीट की छत पर मोबाइल टावर के अवैध निर्माण को हटाने के आदेशों को लागू करने में विफल रहा और अपीलकर्ता का उक्त आचरण, अपीलकर्ता की ओर से जानबूझकर की गई चूक के रूप में वर्गीकृत होता है। उन्होंने अपीलकर्ता की इस

दलील को खारिज कर दिया कि जिम्मेदार अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

74. छठे आरोप पर विचार करते समय, अपीलीय प्राधिकारी ने बचाव पक्ष के गवाह संख्या 4 पर भरोसा करते हुए निष्कर्ष निकाला कि जांच अधिकारी ने आरोप को आंशिक रूप से सिद्ध माना है क्योंकि कब्जाधारियों के साथ मिलीभगत का आरोप प्रमाणित नहीं हुआ। यह आगे दर्ज करता है कि मौखिक गवाही के साथ-साथ दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर, यह सही माना गया कि अपीलकर्ता ने ट्रेडिंग ग्राउंड पर अवैध खेती की गतिविधि की निगरानी और उसे रोकने में लापरवाही बरती।

75. इस तथ्य को देखते हुए कि पहला आरोप अपीलकर्ता के पक्ष में तय किया गया था, अपीलीय प्राधिकारी ने माना कि अपीलकर्ता की ओर से लापरवाही के संबंध में दूसरे से पांचवें आरोप साबित होते हैं, जिससे भारत सरकार को मौद्रिक नुकसान हुआ है और वह उक्त आरोपों के संबंध में दोषी है।

76. छठे आरोप के संबंध में, अपीलीय प्राधिकारी ने जांच अधिकारी द्वारा दर्ज आंशिक रूप से दोषी निष्कर्ष को बरकरार रखा और सीएफएस नियम, 1937 के नियम 11(2)(vi) के अनुसार बर्खास्तगी की तारीख से 'अनिवार्य सेवानिवृत्ति' के माध्यम से बड़ी सजा देने की कार्यवाही की।

77. आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि अपीलीय प्राधिकारी ने निष्कर्ष निकाला और 'पर्यवेक्षक' और 'पर्यवेक्षण करना' शब्द के शब्दकोश अर्थ के आधार पर इसकी पुष्टि की। पूरे अपीलीय आदेश में, उन्होंने यह नहीं माना कि याचिकाकर्ता किसी भी तरह से अवैध निर्माण या अवैध खेती में सक्रिय रूप से शामिल था। 'पर्यवेक्षण करना' शब्द के शब्दकोश अर्थ के आधार पर, अपीलीय प्राधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता उक्त परिभाषा के संदर्भ में पर्यवेक्षी कर्तव्यों को पूरा करने में विफल रहा। अपीलीय प्राधिकारी का यह निष्कर्ष स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि "पर्यवेक्षण" या "पर्यवेक्षण करना" शब्द का शब्दकोशीय अर्थ केवल तभी लिया जा सकता है, जब पर्यवेक्षी भूमिका और पर्यवेक्षी कर्तव्य निर्दिष्ट न हों, जबकि वर्तमान मामले में, कार्य के संबंध में कर्तव्यों की प्रकृति, रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 20 में निहित कार्यालय जापनों में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट और विस्तृत की गई थी, जिसमें अवैध निर्माण की सूचना देने की कोई भूमिका याचिकाकर्ता को नहीं सौंपी गई थी और वास्तव में, सूचना देने की भूमिका विशेष रूप से जेई, श्री के.ए. गुप्ता और पीयूष गौतम तथा एक श्री विनोद गुप्ता, जेई और एक श्री रोशन ज़मीर, ड्राफ्ट्समैन को सौंपी गई थी। उक्त व्यक्तियों में से, जिन्हें अवैध निर्माण की सूचना देने का कर्तव्य सौंपा गया था, श्री पीयूष गौतम और श्री के.ए. गुप्ता के विरुद्ध कार्यवाही समाप्त कर दी गई। "पर्यवेक्षण" शब्द के शब्दकोशीय अर्थ पर आधारित और विभिन्न व्यक्तियों को विशिष्ट भूमिकाएं सौंपने वाले विशिष्ट कार्यालय जापनों

की अनदेखी करने वाला अपीलीय प्राधिकारी का आदेश स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण और विकृत है।

78. श्री अशोक मेहता का यह तर्क कि प्रत्येक आरोप का दूसरा भाग अधिभोग अधिकार धारक के लाभ से संबंधित है न कि याचिकाकर्ता से, खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि जांच अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला है कि याचिकाकर्ता लाभार्थी था, जैसा कि इस निर्णय के पैरा 46, 47, 51 और 58 में चर्चा की गई है।

79. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों पर आते हुए, **सरोज कुमार सिन्हा (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देना सही होगा, जिसमें साक्ष्य और निर्णय लेने के तरीके के संबंध में जांच अधिकारी की भूमिका स्पष्ट की गई थी और पैरा-28 में निहित है, जो इस प्रकार है:

"28. एक अर्ध-न्यायिक अधिकार में कार्यरत एक जांच अधिकारी, एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या आरोपों को साबित करने के लिए अखंडित साक्ष्य पर्याप्त हैं। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि कोई मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज साबित

नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोप साबित हो गए हैं।"

80. यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि विभागीय जांच किस प्रकार की जानी है, इस संबंध में **रूप सिंह नेगी (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय को पैरा-14 और 15 में इस प्रकार विचार करने का अवसर मिला था:

"14. निस्संदेह, विभागीय कार्यवाही एक अर्ध-न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध पाया जाना चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री पर विचार करते हुए निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा जांच के दौरान सभी आरोपियों के विरुद्ध एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह की जांच नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उनकी विषयवस्तु को साबित नहीं किया। जांच अधिकारी ने अन्य बातों के साथ-साथ एफआईआर पर भरोसा किया, जिसे साक्ष्य नहीं माना जा सकता था।

15. हमने पहले भी देखा है कि जांच अधिकारी द्वारा जिस एकमात्र बुनियादी साक्ष्य पर भरोसा किया गया है, वह अपीलकर्ता द्वारा पुलिस के समक्ष किया गया कथित कबूलनामा है। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त कबूलनामे पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी है, इसलिए उक्त कबूलनामे को साबित किया जाना चाहिए था। यह दिखाने के लिए कुछ सबूत रिकॉर्ड पर लाए जाने चाहिए थे कि वह बैंक ड्राफ्ट बुक चुराने में शामिल था। बेशक, कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था। रिपोर्ट के सार से पता चलता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी मानने का मन बना लिया था, अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं बचा था।"

और पैरा - 23 में तर्क की आवश्यकता से निपटते हुए निम्नानुसार माना गया:

"23. इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी के आदेश किसी भी आधार से समर्थित नहीं हैं। चूंकि उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर व्यावहारिक परिणाम हैं, इसलिए उचित कारण बताए जाने चाहिए थे। यदि जांच अधिकारी ने अपीलकर्ता द्वारा किए गए

इकबालिया बयान पर भरोसा किया था, तो कोई कारण नहीं था कि उसी साक्ष्य के आधार पर आपराधिक अदालत द्वारा पारित बरी करने के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया गया। दोष को इंगित करने वाली रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को साबित करना आवश्यक है। कुछ सबूतों के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य हो। साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान विभागीय कार्यवाही में लागू नहीं हो सकते हैं, लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू होते हैं। चूंकि जांच अधिकारी की रिपोर्ट केवल स्वयं की गवाही और अनुमानों और आकलन पर आधारित थी, इसलिए इसे बनाए नहीं रखा जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं थे। जैसा कि सर्वविदित है, संदेह चाहे कितना भी अधिक क्यों न हो, किसी भी परिस्थिति में उसे कानूनी सबूत का विकल्प नहीं माना जा सकता।"

81. एम.वी. बिजलानी (उपरोक्त) के एक अन्य मामले में, विभागीय जांच को किस तरह से समाप्त किया जाना है, इस पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा-25 में निम्न प्रकार से निर्णय दिया है:

"25. यह सच है कि न्यायिक समीक्षा में न्यायालय का अधिकार क्षेत्र सीमित है। हालांकि, अनुशासनात्मक

कार्यवाही अर्ध-आपराधिक प्रकृति की होने के कारण, आरोप को साबित करने के लिए कुछ सबूत होने चाहिए। हालांकि विभागीय कार्यवाही में आरोपों को आपराधिक मुकदमे की तरह साबित करने की आवश्यकता नहीं होती है, यानी सभी उचित संदेह से परे, परंतु हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते कि जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है, जिसे दस्तावेजों का विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर आरोपों को साबित करने की संभावना अधिक थी। ऐसा करते समय, वह किसी भी अप्रासंगिक तथ्य पर विचार नहीं कर सकता। वह प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करने से इनकार नहीं कर सकता। वह सबूत का भार किसी और पर नहीं डाल सकता। वह केवल अनुमानों और आकलन के आधार पर गवाहों की प्रासंगिक गवाही को खारिज नहीं कर सकता। वह उन आरोपों की जांच नहीं कर सकता, जिनके लिए दोषी अधिकारी पर आरोप नहीं लगाया गया था।"

इसी मामले में, सुप्रीम कोर्ट को देरी के बाद जांच शुरू करने के प्रभाव पर विचार करने का अवसर मिला और सुप्रीम कोर्ट ने पैरा-16 और 17 में अपना दृष्टिकोण इस प्रकार दर्ज किया:

"16. जहां तक दूसरे आरोप का सवाल है, यह नहीं दिखाया गया है कि निर्धारित नियमों के अनुसार या

अन्यथा अपीलकर्ता के कर्तव्य क्या थे। इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा यह नहीं दिखाया गया है कि कैसे और किस तरह से शीट के माध्यम से एसीई-8 रजिस्टर का रखरखाव किया गया, जो प्राक्कलन फ़ाइल से जुड़ा हुआ पाया गया था, ताकि अपीलकर्ता के दोषी होने या न होने का पता लगाया जा सके। अपीलीय प्राधिकारी ने अपने आदेश में कहा कि अपीलकर्ता को एसीई-8 रजिस्टर दो बार तैयार करने की आवश्यकता नहीं थी। अपीलकर्ता ने संभवतः इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए रजिस्टर का एक और सेट तैयार किया होगा कि उसे रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्रियों के आधार पर इसका हिसाब देने के लिए कहा गया था। न्यायाधिकरण और साथ ही उच्च न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि अनुशासनात्मक कार्यवाही छह साल के बाद शुरू की गई थी और वे सात साल की अवधि तक जारी रहीं और इस प्रकार, अनुशासनात्मक कार्यवाही की शुरुआत और इतने लंबे समय के बाद भी जारी रहना स्पष्ट रूप से दोषी अधिकारी के लिए पक्षपातपूर्ण था।

17. मध्य प्रदेश राज्य में बनाम बानी सिंह [1990 सप एससीसी 738: 1991 एससीसी (एलएंडएस) 638: (1991) 16 एटीसी 514] इस

न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है: (एससीसी पृष्ठ 740, पैरा 4)

"जिन अनियमितताओं की जांच का विषय था, वे वर्ष 1975-77 के बीच हुईं बताई गई हैं। विभाग का यह मामला नहीं है कि उन्हें उक्त अनियमितताओं, यदि कोई थी, के बारे में जानकारी नहीं थी और उन्हें 1987 में ही इसका पता चला। उनके अनुसार अप्रैल 1977 में भी उक्त अनियमितताओं में अधिकारी की संलिप्तता के बारे में संदेह था और तब से जांच चल रही थी। यदि ऐसा है, तो यह सोचना अनुचित है कि उन्होंने न्यायाधिकरण द्वारा बताए अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में 12 वर्ष से अधिक समय लिया होगा। आरोप जापन जारी करने में अत्यधिक देरी के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है और हमारा यह भी मानना है कि आरोप जापन जारी करने की अनुमति देना अनुचित होगा। इस स्तर पर विभागीय जांच की जानी चाहिए।"

82. सह-अपराधियों की सजा के मामले में समानता की बात करें तो **राजेंद्र यादव**

(उपरोक्त) के मामले में सुप्रीम कोर्ट को सह-अपराधियों में समानता और सजा की आनुपातिकता के पहलू पर विचार करने का अवसर मिला और उसने निम्न प्रकार से फैसला सुनाया:

"9. समानता का सिद्धांत उन सभी पर लागू होता है जो समान स्थिति में हैं; यहां तक कि उन लोगों पर भी जो दोषी पाए जाते हैं। दोषी पाए गए लोग भी समान व्यवहार का दावा कर सकते हैं, अगर वे सजा देते समय भेदभाव स्थापित कर सकते हैं जब वे सभी एक ही घटना में शामिल हों। सजा देते समय सह-अपराधियों के बीच समानता भी बनाए रखनी होगी। एक ही लेन-देन या घटना में सह-अपराधियों की भागीदारी की तुलना करते समय सजा अनुपातहीन नहीं होनी चाहिए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी अनुपातहीन सजा नहीं दे सकता है, यानी गंभीर अपराधों के लिए कम सजा और कम अपराधों के लिए कठोर सजा।

10. ऊपर बताए गए सिद्धांत को इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में लागू होते देखा गया है। सबसे पुराना मामला डीजी ऑफ पुलिस बनाम जी. दसायन [(1998) 2 एससीसी 407: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 557] है जिसमें दसायन नामक एक पुलिस कांस्टेबल, दो अन्य कांस्टेबल और एक हेड कांस्टेबल पर समान कदाचार के आरोप लगाए गए थे। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दो अन्य

कांस्टेबलों को दोषमुक्त कर दिया, परन्तु दसायन को सेवा से बर्खास्तगी और हेड कांस्टेबल को अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा दी। इस न्यायालय ने न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, सह-अपराधियों के बीच दंड में समानता के सिद्धांत को लागू करते हुए, दसायन को सेवा से बर्खास्तगी के आदेश के स्थान पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश प्रतिस्थापित किया। इस न्यायालय ने माना कि अन्यथा यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हो सकता है।

11. शैलेशकुमार हर्षदभाई शाह केस [(2006) 6 एससीसी 548: कर्मचारी को सिद्ध कदाचार के लिए सेवा से बर्खास्त किया गया था। हालांकि, कुछ अन्य कर्मचारी, जिनके विरुद्ध समान आरोप थे, उन्हें स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का लाभ उठाने की अनुमति दी गई थी। ऐसी परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने निर्देश दिया कि कर्मचारी को भी उसी स्तर पर माना जाए और उसे उसी महीने से सेवा से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का लाभ दिया जाए, जिस महीने अन्य को लाभ दिया गया था।

12. हमारा मानना है कि उपर्युक्त निर्णयों में निर्धारित सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर भी लागू होंगे। हम पहले ही कह चुके हैं कि सह-अपराधी अर्जुन पाठक पर तुलनात्मक रूप से हल्की सजा लगाने और साथ

ही अपीलकर्ता पर कठोर सजा लगाने की अनुशासनात्मक प्राधिकारी की कार्रवाई कानून में अनुमति नहीं दी जा सकती, क्योंकि वे सभी एक ही घटना में शामिल थे। नतीजतन, हम अपीलकर्ता पर लगाई गई सेवा से बर्खास्तगी की सजा को रद्द करके अपील को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हैं और आदेश देते हैं कि उसे तुरंत सेवा में बहाल किया जाए। इसलिए, अपीलकर्ता को उस तारीख से बहाल किया जाना चाहिए जिस दिन अर्जुन पाठक को बहाल किया गया था और उसे सभी परिणामी लाभ दिए जाने चाहिए जो अर्जुन पाठक को दिए गए थे। तदनुसार आदेश दिया जाता है। हालांकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।"

83. वर्तमान मामले में, उक्त निर्णय पूरे बल से लागू होता है क्योंकि जिन दो व्यक्तियों को अनधिकृत निर्माण की रिपोर्ट करने की भूमिका सौंपी गई थी, उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया है, जबकि याचिकाकर्ता को अवैध निर्माण की रिपोर्ट सीईओ को अग्रेषित करने के अलावा कोई भूमिका नहीं सौंपी गई थी, उसे अनिवार्य सेवानिवृत्ति की बड़ी सजा दी गई है।

84. **मान सिंह (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया था, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित माना:

"20. हम प्रशासनिक अधिकारियों के लाभ के लिए कानून की स्थापित

स्थिति को दोहरा सकते हैं कि सत्ता के भंडार का कोई भी कार्य चाहे वह विधायी हो या प्रशासनिक या अर्ध-न्यायिक हो, चुनौती के लिए खुला है यदि यह इतना मनमाना या अनुचित है कि कोई भी निष्पक्ष अधिकारी इसे कभी नहीं कर सकता। भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समानता की अवधारणा राज्य की कार्रवाई के पूरे क्षेत्र को शामिल करती है। यह न केवल किसी व्यक्ति पर लागू होगा, जब उसके साथ अधिकार के प्रयोग के मामले में भेदभाव किया जाता है, बल्कि उस पर दायित्व थोपने के मामले में भी। कार्यकारी या प्रशासनिक कार्रवाई के मामले में भी समान लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। वास्तव में, समानता का सिद्धांत अब न्याय की अवधारणा में निष्पक्षता के पर्याय के रूप में बदल गया है और सरकारी कार्रवाई की सबसे स्वीकार्य पद्धति के रूप में खड़ा है। प्रशासनिक कार्रवाई "निष्पक्षता" और तर्कसंगतता की कसौटी पर न्यायसंगत होनी चाहिए।"

85. सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य बनाम राज पाल (उपरोक्त) के मामले में उक्त दृष्टिकोण को दोहराया और पैरा-5 एवं 6 में निम्नानुसार माना:

5. यद्यपि, सिद्धांत रूप में उपरोक्त मामलों में अनुपात सामान्यतः लागू होता है, लेकिन इस मामले में, उच्च न्यायालय ने एक ही दिन हुई घटना

के कारण आरोपित पांच कर्मचारियों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की प्रकृति पर विचार किया और फिर उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि चूंकि आरोपों की गंभीरता समान थी, इसलिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए अलग-अलग अपराधियों के लिए अलग-अलग दंड लगाना उचित नहीं था। उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क में कोई त्रुटि नहीं की जा सकती है, क्योंकि राज्य इन कर्मचारियों के अपराध में किसी अंतर के बारे में बताने में सक्षम नहीं है।

6. निस्संदेह अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए अपराध से निपटना और एक बार आरोप स्थापित हो जाने पर उचित दंड देना खुला है। लेकिन जब एक ही घटना के संबंध में आरोप एक जैसे और समान हों, तो सजा देने में अपराधियों के साथ अलग-अलग व्यवहार करना भेदभावपूर्ण होगा। मामले के इस दृष्टिकोण से, हम संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत हमारे हस्तक्षेप की आवश्यकता वाले आक्षेपित आदेश में कोई कमी नहीं देखते हैं।

86. यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भारत संघ बनाम जे. अहमद (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पास कर्तव्य के पालन में कदाचार और लापरवाही के बीच अंतर पर विचार करने का अवसर था और पैरा - 9, 11 और 13 में निम्नानुसार माना गया था:

"9. ऊपर सूचीबद्ध पाँच आरोपों से एक नज़र में यह आभास होता है कि प्रतिवादी बहुत कुशल अधिकारी नहीं था। उस पर कुछ लापरवाही का आरोप लगाया जा रहा है और डिप्टी कमिश्नर रैंक के अधिकारी से अपेक्षित गुणों की कुछ कमी को आरोपों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। अर्थात्, आरोप 2 नेतृत्व की कमी की गुणवत्ता को संदर्भित करता है और आरोप 5 अयोग्यता, दूरदर्शिता की कमी, दृढ़ता की कमी और अनिर्णय की स्थिति को दर्शाता है। ये गुण निस्संदेह एक वरिष्ठ अधिकारी से अपेक्षित हैं और यह विचार करते समय बहुत प्रासंगिक हो सकते हैं कि किसी व्यक्ति को उच्च पद पर पदोन्नत किया जाना चाहिए या नहीं या पदोन्नत होने के बाद, उसे उच्च पद पर बनाए रखा जाना चाहिए या नहीं, या वे पद धारण करने के लिए व्यक्ति की योग्यता तय करने के लिए प्रासंगिक हो सकते हैं, लेकिन उन्हें अनुशासन और अपील नियमों के नियम 4 के अनुसार चूक या करने के कृत्यों के स्तर तक नहीं बढ़ाया जा सकता है ताकि नियम 3 के तहत दंड लगाया जा सके। पद के लिए योग्यता, उसे धारण करने की क्षमता, किसी पद के लिए अपेक्षित दक्षता, पद से जुड़े कार्य को पूरा करने की क्षमता, किसी कार्य या चूक से अलग चीजें हैं। पद के धारक द्वारा किया गया कोई भी कार्य कदाचार माना जा

सकता है, ताकि नियमों के तहत दंड दिया जा सके। अनुशासन और अपील नियमों के नियम 4 द्वारा परिकल्पित "कार्य या चूक" शब्दों को अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम, 1954 (संक्षेप में "आचरण नियम") के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। सरकार ने आचरण नियमों द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों के लिए आचार संहिता निर्धारित की है। नियम 3 सामान्य प्रकृति का है, जो यह प्रावधान करता है कि सेवा का प्रत्येक सदस्य हर समय पूर्ण निष्ठा और कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखेगा। निष्ठा की कमी, यदि साबित हो जाती है, तो निस्संदेह दंड का कारण बनेगी। जिम्मेदार पद पर बैठे अधिकारी की उच्चतम अपेक्षाओं पर खरा न उतरना या नेतृत्व की योग्यता या गुणों की कमी को कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने में विफलता नहीं माना जाएगा। "कर्तव्य के प्रति समर्पण" शब्द का उपयोग कर्तव्य के प्रति उदासीनता या कर्तव्य के प्रति सहज या हल्के-फुल्के दृष्टिकोण के विपरीत कुछ के रूप में किया गया प्रतीत होता है। यदि आचरण नियमों में नियम 3 ही एकमात्र नियम होता, तो यह पता लगाना काफी कठिन होता कि किसी दिए गए परिस्थिति में कदाचार क्या है। लेकिन आचरण नियमावली के नियम 4 से 18 में सेवा सदस्यों के लिए आचार संहिता निर्धारित की गई है और यह सुरक्षित

रूप से कहा जा सकता है कि आचरण के निर्धारित नियमों के विपरीत या उल्लंघन करने वाला कोई कार्य या चूक अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए कदाचार माना जाएगा। यह आचार संहिता संपूर्ण नहीं है, इसलिए यह कहना विवेकपूर्ण नहीं होगा कि अनुशासन और अपील नियमों के उद्देश्य के लिए केवल वही कार्य या चूक कदाचार मानी जाएगी जो आचरण नियमों के विभिन्न प्रावधानों के विपरीत है। आचरण नियमों में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अपेक्षित आचार संहिता के विपरीत कोई कार्य या चूक निश्चित रूप से कदाचार मानी जाएगी। कोई अन्य कार्य या चूक भी कदाचार मानी जा सकती है। विभिन्न आरोपों में लगाए गए आरोपों में कर्तव्य के प्रति समर्पण निर्धारित करने वाले सामान्य नियम 3 को छोड़कर आचरण नियमों के विपरीत या अवमानना करने वाले किसी भी कार्य या चूक को निर्दिष्ट नहीं किया गया है। हालांकि, यह मानना मुश्किल है कि दक्षता की कमी, उच्च पद पर रहते हुए प्रशासनिक क्षमता के उच्चतम मानक को प्राप्त करने में विफलता स्वयं कदाचार मानी जाएगी। यदि ऐसा है, तो औसत दर्जे का प्रत्येक अधिकारी कदाचार का दोषी होगा। जैसा कि पहले कहा गया है, इस मामले में आरोप स्पष्ट रूप से प्रतिवादी की ओर से दक्षता की कमी, दूरदर्शिता की कमी और अनिर्णय के

रूप में गंभीर चूक का संकेत देते हैं। व्यक्तिगत चरित्र या व्यक्तिगत क्षमता में ये कमियां अनुशासनात्मक कार्यवाही के उद्देश्य के लिए कदाचार नहीं मानी जाएंगी।

11. आचरण नियमों में निर्धारित आचार संहिता स्पष्ट रूप से सेवा के सदस्य से अपेक्षित आचरण का संकेत देती है। इसका अर्थ यह होगा कि आचरण जो आचरण नियमों के संदर्भ में सरकारी सेवक के लिए दोषपूर्ण है, कदाचार होगा। यदि कोई सेवक सेवा में अपने कर्तव्य के उचित और ईमानदारी से निर्वहन के साथ असंगत तरीके से खुद का आचरण करता है, तो यह कदाचार है (पियर्स बनाम फोस्टर [17 क्यूबी 536, 542] देखें)। सेवा के अनुबंध की एक आवश्यक शर्त की अवहेलना कदाचार बन सकती है यह दृष्टिकोण शारदाप्रसाद ओंकारप्रसाद तिवारी बनाम डिवीजनल सुपरिंटेंडेंट, सेंट्रल रेलवे, नागपुर डिवीजन, नागपुर [61 बॉम एलआर 1596], और सतभा के वाघेला बनाम मूसा रजा [10 गुजरात एलआर 23] में अपनाया गया था। उच्च न्यायालय ने स्ट्राउड के न्यायिक शब्दकोश में कदाचार की परिभाषा को नोट किया है जो इस प्रकार है:

"कदाचार का अर्थ है, बुरी मंशा से उत्पन्न कदाचार; लापरवाही के कार्य, निर्णय की त्रुटियाँ, या मासूम गलती,

ऐसे कदाचार का गठन नहीं करते हैं।"

औद्योगिक न्यायशास्त्र में, दूसरों के बीच, आदतन या घोर लापरवाही कदाचार का गठन करती है, लेकिन उत्कल मशीनरी लिमिटेड बनाम वर्कमैन, मिस शांति पटनायक [एआईआर 1966 एससी 1051: (1966) 2 एससीआर 434: (1966) 1 एलएलजे 398: 28 एफजेआर 131] में कर्मचारी के उपक्रम को नियंत्रित करने वाले स्थायी आदेशों की अनुपस्थिति में, असंतोषजनक कार्य को बर्खास्तगी के संदर्भ में कदाचार माना गया था, जिसे दंडात्मक माना गया था। एस. गोविंदा मेनन बनाम भारत संघ [(1967) 2 एससीआर 566: एआईआर 1967 एससी 1274: (1967) 2 एलएलजे 249] में जिस तरह से सेवा के एक सदस्य ने सत्ता का दुरुपयोग करते हुए अपने अर्ध न्यायिक कार्य का निर्वहन किया, उसे अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए कदाचार माना गया। चूक या निर्णय की त्रुटि का एक भी कार्य आम तौर पर कदाचार नहीं माना जाएगा, हालांकि अगर ऐसी त्रुटि या चूक के परिणामस्वरूप गंभीर या भयावह परिणाम होते हैं तो इसे कदाचार माना जा सकता है जैसा कि इस न्यायालय ने पी.एच. कल्याणी बनाम एयर फ्रांस, कलकत्ता [एआईआर 1963 एससी 1756: (1964) 2 एससीआर 104: (1963) 1 एलएलजे 679: 24

एफजेआर 464] जिसमें पाया गया कि लोड-शीट और बैलेंस चार्ट की जांच करते समय कर्मचारी द्वारा की गई दो गलतियों से विमान में संभावित दुर्घटना और मानव जीवन की संभावित हानि हो सकती थी और इसलिए गंभीर परिणामों के संदर्भ में काम में लापरवाही को कदाचार माना गया। हालांकि, यह विश्वास करना कठिन है कि सार्वजनिक कार्यालय से जुड़े कर्तव्य के निर्वहन में दक्षता की कमी या उच्चतम मानकों को प्राप्त करना स्वतः ही कदाचार होगा। कर्तव्य के पालन में लापरवाही हो सकती है और कर्तव्य के पालन में चूक या विकासशील स्थिति का मूल्यांकन करने में निर्णय की त्रुटि कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही हो सकती है लेकिन इसे कदाचार नहीं माना जाएगा जब तक कि लापरवाही एक गलती लापरवाही का संकेत हो सकती है और दोषी होने की डिग्री लापरवाही की गंभीरता को दर्शा सकती है। लापरवाही अक्सर जानबूझकर की गई दुष्टता या द्वेष की तुलना में अधिक नुकसान पहुंचा सकती है। उस संतरी के क्लासिक उदाहरण को छोड़ दें जो अपनी पोस्ट पर सोता है और दुश्मन को निकल जाने देता है, ऐसे अन्य अधिक परिचित उदाहरण हैं जिनमें रेलवे केबिनमैन उसी ट्रेक पर एक ट्रेन में सिग्नल देता है जहां एक स्थिर ट्रेन है जिससे आमने-सामने की टक्कर होती है; एक नर्स अंतःशिरा

इंजेक्शन देती है जिसे मांसपेशियों में दिया जाना चाहिए जिससे तत्काल मृत्यु हो जाती है; एक पायलट इंजन में गड़बड़ी दिखाने वाले उपकरण को अनदेखा कर देता है और विमान दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है जिससे भारी जानमाल का नुकसान होता है। गलत सहानुभूति एक बड़ी बुराई हो सकती है (देखें नवीनचंद्र शकरचंद शाह बनाम प्रबंधक, अहमदाबाद सहकारी विभाग भंडार लिमिटेड [(1978) 19 गुजरात एलआर 108, 120])। लेकिन किसी भी मामले में, कर्तव्य के निष्पादन में दक्षता के उच्चतम मानक को प्राप्त करने में विफलता, जिससे लापरवाही का अनुमान लगाया जा सके, न तो कदाचार माना जाएगा और न ही आचरण नियमों के नियम 3 के प्रयोजन के लिए, यह कर्तव्य के प्रति समर्पण की कमी को इंगित करेगा।

13. अनुशासनात्मक कार्यवाही के उद्देश्य के लिए कदाचार की अवधारणा को स्पष्ट करने के बाद, प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों पर एक नज़र डालने से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि आरोप में अन्य बातों के साथ-साथ कोई प्रभावी निवारक उपाय न करने का आरोप लगाया गया है, जिसका अर्थ है कि विकसित हो रही स्थिति का मूल्यांकन करने में निर्णय में त्रुटि। इसी तरह, अशांति के दृश्यों का दौरा न करना एक निश्चित तरीके से कर्तव्य निभाने में एक और विफलता

है। आरोप 2 और 5 स्पष्ट रूप से प्रतिवादी की व्यक्तिगत क्षमता या दक्षता की डिग्री में कमियों को इंगित करते हैं। यह आरोप लगाया गया है कि जब अशांति फैली तो प्रतिवादी ने नेतृत्व की पूरी कमी दिखाई और उसने पूरी तरह से अयोग्यता, दूरदर्शिता की कमी, दृढ़ता की कमी और दृढ़ निर्णय लेने की क्षमता का खुलासा किया। ये व्यक्तिगत गुण हैं जो डिप्टी कमिश्नर के पद पर बैठे व्यक्ति से अपेक्षित होते हैं। उन्हें पद पर बनाए रखने या पदोन्नति के सवाल पर ये प्रासंगिक विचार हो सकते हैं, लेकिन व्यक्तिगत गुणों की ऐसी कमी अनुशासनात्मक कार्यवाही के उद्देश्य के लिए कदाचार नहीं मानी जा सकती। वास्तव में, आरोप 2, 3 और 6 प्रतिवादी द्वारा आगामी उपद्रवों को रोकने या उन्हें जड़ से खत्म करने के लिए प्रभावी निवारक उपाय करने में विफलता के कारण स्पष्ट अनुमान हैं। हम आरोप 4 पर कोई ध्यान नहीं देते क्योंकि जांच अधिकारी ने भी पाया है कि ऐसी कई परिस्थितियाँ हैं जो प्रतिवादी को उस आरोप के संबंध में दोषमुक्त कर सकती हैं। आरोप 6 के रूप में जो कहा गया वह निष्कर्ष है अर्थात् जांच में जो कुछ हुआ उसके कारण जांच अधिकारी का मानना था कि प्रतिवादी कोई भी जिम्मेदार पद संभालने के लिए अयोग्य है। किसी न किसी तरह, जांच अधिकारी आरोप 2, 5 और 6

में जो आरोप लगाया गया था, उस पर ध्यान देने में पूरी तरह से विफल रहा जो न तो कदाचार था और न ही लापरवाही बल्कि प्रतिवादी में व्यक्तिगत गुणों की अनुपस्थिति या कमी के बारे में निष्कर्ष था। इस प्रकार यह पता चलता है कि प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों से यह संकेत मिलता है कि वह डिप्टी कमिश्नर के पद पर बने रहने के योग्य नहीं हैं और यदि संभव हो तो उसे प्रत्यावर्तित किया जा सकता है या उसे अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया जा सकता है, न कि सजा के तौर पर। लेकिन जब प्रतिवादी को अनुशासनात्मक उपाय के रूप में और दंड के तौर पर हटाने की मांग की जाती है, तो कदाचार का स्पष्ट मामला होना चाहिए था, यानी ऐसे कार्य और चूक जो उसे अनुशासन और अपील नियम, 1955 के नियम 3 में निर्धारित किसी भी दंड के लिए उत्तरदायी बनाती। ऐसा कोई मामला नहीं बनाया गया है।"

87. जांच शुरू करने में अत्यधिक देरी के संबंध में, सुप्रीम कोर्ट को पी.वी. महादेवन (उपरोक्त) के मामले में इस पर विचार करने का अवसर मिला और पैरा - 10 और 11 में निम्नानुसार दर्ज किया गया:

"10. धारा 118 में प्रत्येक वर्ष के अंत में खातों के सारांश प्रस्तुत करने का प्रावधान है तथा धारा 119 खातों के वार्षिक लेखा-परीक्षण से संबंधित है।

इन दो वैधानिक प्रावधानों का बिल्कुल भी पालन नहीं किया गया है। वर्तमान मामले में लेन-देन वर्ष 1990 में हुआ था। व्यय को अगले वर्ष के खातों में शामिल किया जाना चाहिए था। वर्तमान मामले में लेखा-परीक्षण रिपोर्ट अंततः 1994-95 में जारी की गई थी। लेखा-परीक्षण खाते को अंतिम रूप देने में देरी के लिए दिया गया स्पष्टीकरण तमिलनाडु अधिनियम 17/1961 के उपरोक्त दो प्रावधानों के दृष्टिगत जांच के दायरे में नहीं आता है। अब यह कहा गया है कि अपीलकर्ता सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका है। विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में अत्यधिक देरी को स्पष्ट करने के लिए प्रतिवादी की ओर से कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण भी नहीं है। श्री आर. वेंकटरमणी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रतिवादी की ओर से उपस्थित हो रहे हैं। उनका कहना है कि अपीलकर्ता द्वारा अनियमितताओं के किए जाने की तिथि से लेकर उस तिथि तक की अवधि, जिस दिन यह जानकारी में आई। यह पता लगाने के लिए कि क्या अपीलकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में बोर्ड की ओर से कोई देरी हुई थी, हाउसिंग बोर्ड को आधार नहीं माना जा सकता है, इसमें कोई योग्यता और बल नहीं है। प्रतिवादी द्वारा इस न्यायालय में जवाबी हलफनामे में अब जो रुख अपनाया गया है, वह

आश्वस्त करने वाला नहीं है और देरी के लिए कुछ स्पष्टीकरण देने के लिए केवल एक विचार मात्र है।

11. इन परिस्थितियों में, हमारा विचार है कि प्रतिवादी को इस समयावधि में विभागीय कार्यवाही आगे बढ़ाने की अनुमति देना अपीलकर्ता के लिए बहुत ही प्रतिकूल होगा। एक उच्च सरकारी अधिकारी को भ्रष्टाचार और विवादित निष्ठा के आरोपों के तहत रखना संबंधित अधिकारी को असहनीय मानसिक पीड़ा और संकट का कारण बनेगा। इसलिए, एक सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध लंबी अनुशासनात्मक जांच न केवल सरकारी कर्मचारी के हित में बल्कि सार्वजनिक हित में और सरकारी कर्मचारियों के मन में विश्वास जगाने के हित में भी टाली जानी चाहिए। इस स्तर पर, पर्दा डालना और जांच को समाप्त करना आवश्यक है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण अपीलकर्ता पहले ही काफी और उससे भी अधिक पीड़ित हो चुका है। वास्तव में, लंबी अनुशासनात्मक कार्यवाही के कारण अपीलकर्ता को होने वाली मानसिक पीड़ा और कष्ट, सजा से कहीं अधिक होंगे। अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की प्रक्रिया में विभाग द्वारा की गई गलतियों के लिए अपीलकर्ता को कष्ट नहीं दिया जाना चाहिए।"

88. उच्चतम न्यायालय ने **मध्य प्रदेश राज्य बनाम बानी सिंह एवं अन्य (उपरोक्त)** के मामले में देरी के प्रभाव पर भी विचार किया और पैरा-4 में निम्नांकित रूप से दर्ज किया:

"4. 16 दिसंबर, 1987 के आदेश के विरुद्ध अपील इस आधार पर दायर की गई है कि न्यायाधिकरण को केवल देरी और लापरवाही के आधार पर कार्यवाही को रद्द नहीं करना चाहिए था और मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करने के लिए जांच जारी रखने की अनुमति देनी चाहिए थी। हम विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क से सहमत नहीं हैं। जांच का विषय जो अनियमितताएं थीं, वे वर्ष 1975-77 के बीच हुई थीं। विभाग का यह मामला नहीं है कि उन्हें उक्त अनियमितताओं के बारे में जानकारी नहीं थी, यदि कोई थी, और उन्हें यह बात 1987 में ही पता चली। उनके अनुसार अप्रैल 1977 में भी उक्त अनियमितताओं में अधिकारी की संलिप्तता के बारे में संदेह था और तब से जांच चल रही थी। यदि ऐसा है, तो यह सोचना अनुचित है कि न्यायाधिकरण द्वारा बताए गए अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में उन्हें 12 वर्ष से अधिक समय लगा होगा। चार्ज मेमो जारी करने में अत्यधिक देरी के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं है और हमारा यह भी मानना है कि इस स्तर पर विभागीय जांच को आगे बढ़ाने की

अनुमति देना अनुचित होगा। किसी भी मामले में न्यायाधिकरण के आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है और तदनुसार हम इस अपील को खारिज करते हैं।"

89. उचित समय के भीतर जांच के समापन के संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **अभिषेक प्रभाकर अवस्थी (उपरोक्त)** के मामले पर भरोसा किया है जिसमें पूर्ण पीठ ने पैरा - 5 और 6 में निम्नानुसार माना:

"5. अनुशासनात्मक कार्यवाही के संदर्भ में, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने रिट अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में उचित मामलों में निर्धारित अवधि के भीतर जांच के समापन के संबंध में एक शर्त तय कर सकता है। ऐसा आदेश कई स्थितियों में पारित किया जा सकता है, जैसे कि जब कोई कर्मचारी निलंबन के आदेश को चुनौती देने वाली याचिका दायर करता है और न्यायालय न्याय के हित में यह उचित समझता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही का शीघ्रता से निपटारा किया जाना चाहिए। अनुशासनात्मक कार्यवाही के निपटान में देरी को रोकने के लिए अन्य उपयुक्त उदाहरणों में ऐसे निर्देश जारी किए जाते हैं। जहां न्यायालय जांच पूरी करने के लिए समय अवधि निर्धारित करता है, वहां ऐसी शर्त का पालन किया जाना चाहिए। स्पष्ट रूप से,

नियोक्ता न्यायालय के आदेशों की अवहेलना करके कार्य नहीं कर सकता है और यह संभवतः नहीं कहा जा सकता है कि न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के बावजूद, नियोक्ता समय की शर्त की अवहेलना करके अपनी मर्जी और कल्पना से जांच समाप्त करने के लिए स्वतंत्र है।

6. यह कहने के बाद, यह भी उतना ही सच है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान कई तरह की परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं और सभी उचित प्रयासों के बावजूद, न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर अनुशासनात्मक कार्यवाही पूरी नहीं होती है। हमारा इरादा उन परिस्थितियों की विस्तृत गणना करने का नहीं है, बल्कि उदाहरण के तौर पर केवल कुछ को प्रस्तुत करना है। कभी-कभी, ऐसा हो सकता है कि मामले की जटिलता के परिणामस्वरूप जांच लंबी खिंच जाए। मामले की प्रकृति के अलावा, जिन गवाहों की जांच की जानी है, उनकी संख्या इतनी अधिक हो सकती है कि निर्धारित शर्तों के भीतर वास्तविक और सद्भावनापूर्ण प्रयासों के बावजूद जांच पूरी करना संभव नहीं हो सकता है। हालांकि, यह भी हो सकता है कि जांच पूरी होने में देरी दोनों पक्षों में से किसी एक के आचरण के कारण हो। जब कर्मचारी खुद देरी का दोषी है, जिसके कारण जांच में देरी हुई है, तो यह कहना न्याय के हितों के

बिल्कुल विपरीत होगा कि कर्मचारी के आचरण के बावजूद, न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि की समाप्ति पर जांच करने का अधिकार समाप्त हो गया है। इसके विपरीत, नियोक्ता को जांच को उत्पीड़न के उपाय के रूप में उपयोग करने और कर्मचारी के सिर पर अनिश्चित काल तक लटकी हुई तलवार रखने की अनुमति नहीं है। ये सभी पहलू तब महत्वपूर्ण हो जाते हैं जब यह मुद्दा उठता है कि क्या इस बात के उचित कारण थे कि न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर जांच पूरी क्यों नहीं की जा सकी। आरोप की गंभीरता तब बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है जब न्यायालय को यह निर्धारित करना होता है कि क्या ऐसे वैध और ठोस कारण थे जिनके आधार पर जांच निर्धारित समय के भीतर पूरी नहीं की जा सकती थी। लेकिन, मामले के किसी भी दृष्टिकोण से, यह आवश्यक है कि जिस न्यायालय ने समय की शर्त तय की है, उसे निर्धारित समय के विस्तार के लिए आवेदन करना चाहिए। जिस न्यायालय ने जांच के समापन के लिए समय तय किया है, उसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उचित मामलों में समय बढ़ाने की शक्ति का प्रयोग करने का अंतर्निहित अधिकार भी प्राप्त है। इस पृष्ठभूमि में, अब इस विषय पर इस न्यायालय से निकलने वाले उदाहरणों पर विचार करना आवश्यक होगा।"

90. ऊपर संक्षेप में दिए गए कानून और ऊपर दर्ज किए गए तथ्यों के आलोक में, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध साबित किए गए आरोपों को वस्तुतः किसी भी ऐसे साक्ष्य के आधार पर सिद्ध नहीं माना है, जो आरोप-पत्र में मौजूद दस्तावेजों से पुष्ट होना हो और इसके अलावा याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को पुष्ट करने के लिए मौखिक गवाहों के बयान का कोई उल्लेख नहीं है।

91. अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अपने आदेश में कोई तर्क नहीं दिया है और आदेश पारित करते समय अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा किए गए किसी भी तर्क पर विचार भी नहीं किया है। अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने में पूरी तरह से गलती की है क्योंकि उन्होंने 'पर्यवेक्षण' और 'पर्यवेक्षण करना' शब्दों के शब्दकोश अर्थ का सहारा लिया और कार्यालय जापनों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया, जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में कर्तव्यों की प्रकृति निर्दिष्ट की गई थी। जांच अधिकारी के समक्ष या आरोप-पत्र के साथ दिए गए किसी भी दस्तावेज में, कोई भी गवाह किसी भी तरह से याचिकाकर्ता को कार्यालय जापन के अनुसार याचिकाकर्ता को सौंपे गए कर्तव्यों का पालन नहीं करने के संबंध में दोषी नहीं ठहराता है; याचिकाकर्ता के विरुद्ध रिकॉर्ड पर एकमात्र सामग्री यह है कि याचिकाकर्ता ने एक आरोप के संबंध में अवैध अनधिकृत निर्माण को अग्रेषित करने में 14 दिनों की देरी की। उक्त के अलावा, याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए

आरोपों को प्रमाणित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है और इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों के सीमित दायरे को महसूस करते हुए, यह न्यायालय इस बात पर दृढ़ है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप किसी भी सबूत से प्रमाणित नहीं हुए हैं और उस सीमा तक, वे विकृत हैं।

92. अनुशासनात्मक प्राधिकारी का आदेश पूरी तरह से गैर-वाक् आदेश है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के परीक्षण को संतुष्ट नहीं करता है। अपीलीय आदेश में याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने के लिए कार्यालय जापनों की पूरी तरह से अनदेखी करते हुए शब्दकोश में दिए गए 'पर्यवेक्षक' या 'पर्यवेक्षण करना' शब्द की परिभाषा पर भरोसा किया गया है और इस प्रकार, यह पूरी तरह से विकृत और मनमाना है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रत्येक आरोप के दूसरे भाग के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं है और मैंने पहले ही प्रतिवादियों के तर्क को निर्धारित व खारिज कर दिया है कि प्रत्येक आरोप के दूसरे भाग में लगाए गए आरोप याचिकाकर्ता से संबंधित नहीं हैं और संपत्ति के मालिक से संबंधित हैं, इस प्रकार, ऊपर उल्लिखित सभी आधारों पर, याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाया गया और सिद्ध हुआ एकमात्र आरोप यह था कि याचिकाकर्ता ने अनधिकृत निर्माण की रिपोर्ट मुख्य कार्यकारी अधिकारी को भेजने में 14 दिनों की देरी की, जिसे सबसे खराब स्थिति में 'लापरवाही' कहा जा सकता है और किसी भी तरह से 'कदाचार' के योग्य नहीं है, जिसके

लिए याचिकाकर्ता के विरुद्ध ऐसी कठोर सजा दी गई है।

93. इस प्रकार, ऊपर दर्ज सभी कारणों से, रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है और तदनुसार **स्वीकार** की जाती है।

94. दिनांक 01.06.2021 के अपीलीय आदेश, दिनांक 14.08.2019 के दंड आदेश और दिनांक 14.08.2019 के बोर्ड के संकल्प को इस निर्देश के साथ निरस्त किया जाता है कि याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल किया जाए और साथ ही उस पद पर सभी परिणामी लाभ दिए जाएं, जिस पर वह हटाए जाने के समय काम कर रहा था।

(2023) 4 ILRA 241

**मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष**

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-ए संख्या 31507/2014

शैलजा त्रिपाठी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सिद्धार्थ खरे, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री मृगराज सिंह, श्री संतोष कुमार यादव

क. संस्था के एक सहायक अध्यापक की सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो गई थी-बीएसए के अनुमोदन पर विज्ञापन जारी कर याचिकाकर्ता का चयन कर लिया गया-बाद में दिनांक

20.01.2003 के शासनादेश का हवाला देते हुए बीएसए ने समस्त नियुक्ति/अनुमोदन स्थगित कर दिया-चूंकि चयन की प्रक्रिया उ.प्र. मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाईस्कूल अध्यापकों की भर्ती एवं सेवा शर्त) नियमावली, 1978 के वैधानिक नियमों के अंतर्गत प्रदान की गई है-एक बार जब राज्य द्वारा वैधानिक नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग कर लिया जाता है तो वह किसी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता, इसलिए दिनांक 20.01.2003 का शासनादेश वैधानिक नियमों के विपरीत होने के कारण अस्थाई है-इस प्रकार, एक बार जब बीएसए द्वारा अपने पत्र दिनांक 20/21.02.2004 द्वारा अनुमोदन प्रदान कर दिया जाता है तो बीएसए के पास उक्त आदेश को गुण-दोष के आधार पर बाद में पुनरीक्षण करने की कोई शक्ति निहित नहीं है, कार्यकारी अधिकारियों के पास धोखाधड़ी आदि के एक सीमित आधार को छोड़कर, पहले के अधिकारी द्वारा पारित आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति नहीं है। - इस मामले का निर्णय बीएसए द्वारा लगभग 10 वर्षों के अंतराल के बाद किया जाता है। - इस तरह के विवाद को पहले की मंजूरी मिलने पर ही निपटाया जाना आवश्यक था। - इस तरह की अनियमितता के कारण लगभग 10 वर्ष पहले स्वीकृत नियुक्ति पर खर्च नहीं किया जा सकता। - इस प्रकार, आपेक्षित आदेश अवैध है। (पैरा 1 से 14)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. भारत संघ बनाम सोमा विश्वनाथ (1988) एआईआर एससी 2255
2. अनुराग मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य डब्ल्यूपी संख्या 3425/2019

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को सुना, प्रतिवादी सं0 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री मृगराज सिंह और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।
2. याचिकाकर्ता ने बेसिक शिक्षा अधिकारी, जौनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांकित 12.03.2014 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसके अंतर्गत बी.एस.ए., जौनपुर ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति को अनुमोदन प्रदान करने से इनकार कर दिया है।
3. मामले के तथ्य यह हैं कि दिनांक 03.12.2003 को संस्था के एक सहायक अध्यापक की सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो गयी थी। बेसिक शिक्षा अधिकारी के अनुमोदन पर दिनांक 29.01.2004 को एक विज्ञापन जारी कर पात्र व्यक्तियों से आवेदन आमंत्रित किये गये। बेसिक शिक्षा अधिकारी ने दिनांक 15.02.2004 को एक आदेश पारित कर सहायक बेसिक शिक्षा अधिकारी, महराजगंज/बदलापुर को दिनांक 18.02.2004 को आयोजित चयन प्रक्रिया में चयन समिति

के सदस्य के रूप में भाग लेने के लिए अधिकृत किया। याची के चयन के पश्चात, सभी कागजात अनुमोदन हेतु बी.एस.ए. के समक्ष प्रस्तुत किए गए, जिन्होंने दिनांक 20/21.02.2004 को अनुमोदन प्रदान कर दिया, जो कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से प्रभावी था। दिनांक 22.02.2004 को याची को नियुक्ति पत्र जारी किया गया, जिसने दिनांक 25.02.2004 को कार्यभार ग्रहण कर लिया। तथापि, याची के संबंध में प्रबन्धन द्वारा प्रस्तुत वेतन बिल लम्बित रहे।

4. दिनांक 11.06.2004 को बेसिक शिक्षा अधिकारी ने शासनादेश दिनांकित 20.01.2003 का हवाला देते हुए समस्त मान्यता प्राप्त एवं सहायता प्राप्त जूनियर हाईस्कूलों के प्रबन्धकों/प्रधानाचार्यों को पत्र भेजकर समस्त नियुक्तियों/अनुमोदन पर रोक लगा दी। इसमें क्षेत्रीय सहायक शिक्षा निदेशक के परिपत्र दिनांक 21.05.2004 का भी हवाला दिया गया है, जिसमें स्वीकृत पद के बिना की गई नियुक्तियों में वेतन भुगतान पर रोक लगाई गई है तथा प्रत्येक संस्था से यह अपेक्षा की गई है कि वह शासनादेश दिनांकित 20.01.2003 के पश्चात किए गए चयन/नियुक्ति से सम्बन्धित समस्त कागजात जांच हेतु प्रस्तुत करें। शासनादेश दिनांकित 20.01.2003 के अनुसार सेवानिवृत्ति के कारण रिक्त हुई रिक्तियों पर नियुक्ति करने के लिए राज्य सरकार की पूर्व अनुमति आवश्यक थी। सुनवाई का अवसर देने के पश्चात अन्ततः दिनांक 12.03.2014 को बी.एस.ए. द्वारा बी.एस.ए. के दिनांक 20/21.01.2004 के अनुमोदन को निरस्त करते हुए आदेश पारित

किया गया। इसमें आगे कहा कि याचिकाकर्ता सरकारी अनुदान से कोई वेतन पाने का हकदार नहीं है। हालांकि, उक्त आदेश दिनांक 12.03.2014 को पारित किया गया था, परन्तु इसे दिनांक 18.08.2014 को पंजीकृत डाक से वितरित किया गया और अब वर्तमान रिट याचिका में इसे चुनौती दी गई है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तथ्यों के साथ-साथ संक्षिप्त विधिक तर्कों के आधार पर आदेश को चुनौती दी है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का विधिक तर्क यह है कि चूंकि चयन की प्रक्रिया यू.पी. मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल (जूनियर हाईस्कूल भर्ती और शिक्षकों की सेवा शर्त) नियम, 1978 के वैधानिक नियमों के तहत प्रदान की गई है। इसलिए, एक बार जब राज्य द्वारा वैधानिक नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग किया जाता है, तो वह कार्यकारी आदेश जारी करके उसी विषय के संबंध में कोई कार्यकारी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है। इसलिए, दिनांक 20.01.2003 का शासनादेश वैधानिक नियमों के विपरीत होने के कारण असंवैधानिक है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने गुण-दोष के आधार पर कथन किया है कि एक बार बी.एस.ए. द्वारा उनके संप्रेषण दिनांकित 20/21.02.2004 द्वारा विधिवत अनुमोदन प्रदान कर दिया जाता है तो पश्चातवर्ती बी.एस.ए. में गुण-दोष के आधार पर उक्त आदेश की समीक्षा करने की कोई शक्ति निहित नहीं होती है। कार्यकारी अधिकारियों के पास धोखाधड़ी आदि के सीमित आधार को छोड़कर, पूर्व के किसी प्राधिकारी

द्वारा पारित आदेश की समीक्षा करने का कोई अधिकार नहीं है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का अगला कथन यह है कि आक्षेपित आदेश गुण-दोष के आधार पर भी अवैध है क्योंकि उसमें बताई गई खामियां आनुमानिक हैं।

7. दूसरी ओर, प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्तागण ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और कहा कि आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता की नियुक्ति को अनुमोदन देने से उचित रूप से इंकार करता है।

8. जहां तक दिनांक 20.01.2003 के शासनादेश का संबंध है, यह सुस्थापित विधि है कि एक बार जब राज्य ने वैधानिक नियम बनाकर अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग कर लिया है तो वह अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है। ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 2255 में सूचित "भारत संघ बनाम एस.एस. सोमा विश्वनाथ" के मामले में पारित निर्णय का संदर्भ देना पर्याप्त है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"यह सुस्थापित है कि सिविल सेवा से संबंधित अधिकारी की भर्ती और पदोन्नति के संबंध में मानदंड या तो उपयुक्त विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून द्वारा या भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के अंतर्गत बनाए गए नियमों द्वारा या भारत सरकार में सिविल सेवाओं के मामले में भारत के संविधान के अनुच्छेद 73 में पारित कार्यकारी निर्देशों के माध्यम से तथा राज्य सरकारों में सिविल सेवाओं के मामले

में भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 के अंतर्गत निर्धारित किए जा सकते हैं, यदि कार्यकारी निर्देशों तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के अंतर्गत बनाए गए नियमों के बीच कोई विवाद होता है तो भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के अंतर्गत बनाया गया नियम अभिभावी होगा तथा यदि भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के अंतर्गत बनाए गए नियमों तथा उपयुक्त विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून के बीच कोई विवाद होता है, तो बाद वाला प्रबल होगा।" (बल दिया गया)

9. उपरोक्त निर्णय का बाद में इस न्यायालय द्वारा "अनुराग मेहरोत्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य"; रिट याचिका संख्या 3425 (एस/एस) 2019 के मामले में भी पालन किया गया। उपरोक्त के दृष्टिगत, शासनादेश दिनांकित 20.01.2003 प्रत्यक्ष रूप से वैधानिक नियमों के विरुद्ध है। राज्य वैधानिक नियमों द्वारा प्राधिकरण में पूर्व से निहित शक्ति को हड़प नहीं सकता है। इसलिए, याचिकाकर्ता को नियुक्ति प्रदान करने वाले बी.एस.ए. के अनुमोदन दिनांकित 20/21.02.2004 पर पुनः विचार करने का कोई अवसर नहीं था।

10. अब, मामले के गुण-दोष पर आते हुए, आक्षेपित आदेश में कहा गया है कि दिनांक 31.12.2003 को सेवा में रहते हुए स्वर्गीय सभाजीत पाठक, सहायक अध्यापक की मृत्यु

के कारण रिक्ति उत्पन्न हुई है। रिट याचिका सं0 41896/2005 में पारित माननीय उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांकित 07.08.2013 में, यह उल्लेख किया गया है कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के अनुमोदन से दिनांक 11.07.2002 को पद का विज्ञापन दिया गया था और यह पाया गया कि नियुक्ति अवैध थी। उक्त तथ्य इस न्यायालय के पूर्व के निर्णय में गलत प्रकार से दर्ज किया गया प्रतीत होता है क्योंकि समाचार पत्र "तरुण मित्र" दिनांकित 01.02.2004 को वर्तमान रिट याचिका के साथ दाखिल किया गया है तथा इसे बी.एस.ए. के समक्ष भी प्रस्तुत किया गया था। वास्तविक दस्तावेज की अनदेखी करते हुए, बी.एस.ए. को आदेश में तिथि का उल्लेख नहीं करना चाहिए था। इसके अतिरिक्त, आक्षेपित आदेश में यह दावा किया गया है कि प्रबंधन/प्रधानाध्यापक को समस्त दस्तावेजों के साथ नोटरीकृत शपथपत्र उपलब्ध करने के लिए कहा गया था। वर्तमान मामले में एक ऐसी अलग प्रक्रिया प्रारंभ करने का कोई कारण नहीं है, जिसका अन्य मामलों में पालन नहीं किया जाता है। सभी दस्तावेज बी.एस.ए. के कार्यालय में प्रारंभिक चरण से ही थे, जब पूर्व बी.एस.ए. ने आदेश दिनांकित 20/21.02.2004 द्वारा स्वीकृति प्रदान की थी। वैसे भी, यह विवादित नहीं है कि वर्तमान मामले पर विचार करते समय सभी दस्तावेज बी.एस.ए. के समक्ष उपलब्ध थे। इसलिए, शपथपत्र मांगने तथा मात्र उक्त आधार पर दस्तावेज पर विश्वास करने से इनकार करने का कोई अवसर नहीं था। याचिकाकर्ता के मामले को खारिज करने के लिए लगाए गए आदेश में लिया गया अगला आधार यह है कि रिट याचिका सं0 46110/2005 में पारित आदेश

दिनांकित 22.07.2013 के अनुसरण में सेवंतक पाठक को मृतक आश्रित भर्ती नियमावली, 1974 के अंतर्गत नियुक्ति दी गई थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता को समायोजित करने के लिए कोई और रिक्ति उपलब्ध नहीं है।

11. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि याचिकाकर्ता का अधिकार दिनांक 20/21.02.2004 से उसकी प्रारंभिक नियुक्ति के आधार पर है, जब पूर्व बी.एस.ए. ने याचिकाकर्ता को अनुमोदन प्रदान किया था तथा जिसके अनुसरण में याचिकाकर्ता ने दिनांक 25.02.2004 को कार्यभार ग्रहण किया था। किसी अन्य व्यक्ति के संबंध में पारित किसी नियुक्ति या आदेश से उसके अधिकारों को बाधित नहीं किया जा सकता है। वैसे भी, मृतक आश्रित भर्ती नियमावली, 1974 के अंतर्गत नियुक्ति को एक अतिरिक्त पद पर भी समायोजित किया जा सकता है। इससे याचिकाकर्ता के अधिकार प्रभावित नहीं हो सकते। अंतिम आधार यह है कि प्रकाशन केवल एक समाचार पत्र में किया गया था। अभिलेखों के साथ मात्र एक समाचार पत्र प्रस्तुत किया गया था। इस मामले का निस्तारण बी.एस.ए. ने लगभग 10 वर्षों के अंतराल के बाद किया है। इस तरह के विवाद का निस्तारण तब किया जाना आवश्यक था जब दिनांक 20/21.02.2004 को पूर्व अनुमोदन प्रदान किया गया था। ऐसी अनियमितता के कारण 10 वर्ष पूर्व स्वीकृत नियुक्ति रद्द नहीं की जा सकती।

12. इस प्रकार, आक्षेपित आदेश दिनांकित 12.03.2004 पोषणीय नहीं है तथा अपास्त किया जाता है।

13. प्रत्यर्थागण को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर, वे याचिकाकर्ता को उसकी प्रारंभिक नियुक्ति तिथि 25.02.2004 से 6 प्रतिशत ब्याज के साथ वेतन का भुगतान करें। उन्हें यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे भविष्य में याचिकाकर्ता को नियमित वेतन सुनिश्चित करें।

14. उपर्युक्त के साथ, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 4 ILRA 244

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन,

रिट-ए संख्या 31682/2018

विशाल कुमार बाल्मीकि ... याचिकाकर्ता

बनाम

पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: संगम लाल पाण्डेय

अधिवक्ता प्रतिवादी: प्रशांत कुमार, गोपाल

कुमार श्रीवास्तव

क. सिविल कानून - अनुकंपा नियुक्ति-याचिकाकर्ता के पिता की सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो गई- याचिकाकर्ता ने अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जिसे

प्रतिवादी/बैंक ने निरस्त कर दिया-याचिकाकर्ता स्नातक है और प्रतिवादी उप कर्मचारी संवर्ग में चतुर्थ श्रेणी के पद पर विचार किए जाने के लिए याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को केवल इस आधार पर बाहर कर रहे हैं कि भर्ती नियमों में स्नातक उम्मीदवार के योग्य नहीं होने की कथा है- भर्ती नियमों में उक्त शर्त केवल उसी संबंध में लागू होगी जहां प्रतिवादी सीधी भर्ती कर रहे हैं और अनुकंपा के आधार पर नहीं-याचिकाकर्ता के रूप में नए सिरे से विचार करने के निर्देश केवल स्नातक होने के आधार पर निरस्त नहीं किए जाएंगे अन्यथा अनुकंपा नियुक्ति के लिए योजना का उद्देश्य विफल हो जाएगा क्योंकि यह मृतक के परिवार को अचानक वित्तीय संकट से उबरने में मदद करता है। (पैरा 1 से 20)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. एंड्रा नारायण राजपूत और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य., डब्ल्यू.पी. 2017 का नंबर 1709
2. कार्तिकेय बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, विशेष अपील संख्या 229/2016
3. आलोक कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश स्ट्रीट डब्ल्यूपी संख्या 6655/2016
4. पंजाब राज्य और अन्य बनाम अनीता और अन्य (2015) 2 एससीसी 170

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रतिवादी बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव को सुना।

2. निम्नलिखित मुख्य अनुतोष के लिए प्रार्थना करते हुए वर्तमान रिट याचिका योजित की गई है:-

"(i) रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-1 में संलग्न प्रतिवादी संख्या-1 द्वारा पारित व प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा संप्रेषित आदेश दिनांक 02.05.2018 को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश;

(ii) विपक्षी पक्षों को आदेश देने तथा उन्हें, विशेष रूप से प्रतिवादी संख्या-1, को निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश कि वे याचिकाकर्ता के लिपिक संवर्ग के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावे पर विचार करें, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-4 में निहित दिनांक 14.08.2017 के आवेदन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है तथा इस संबंध में आवश्यक आदेश पारित करें।"

3. आरंभ में ही याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि वह अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपने दावे को चतुर्थ श्रेणी के पद तक सीमित रख रहे हैं। उपर्युक्त कथन को रिकार्ड किया जाता है।

4. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत मामला यह है कि उसके पिता, जो प्रतिवादी-बैंक में स्वीपर के रूप में कार्यरत थे, की 03.07.2017 को सेवा के दौरान मृत्यु हो गई। याचिकाकर्ता का दावा है कि उन्होंने अगस्त, 2017 में अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जिस पर कार्रवाई की गई थी, लेकिन बाद में इसे 02.05.2018 के आदेश के द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक-1 में है। 02.05.2018 के अस्वीकृति आदेश से जो आधार उभर कर आता है वह यह है कि याचिकाकर्ता को एसडब्ल्यूओ (सिंगल विंडो ऑपरेटर-ए) के रूप में लिपिक संवर्ग में नौकरी के लिए संक्षिप्त इंटरफेस के लिए बुलाया गया था, लेकिन उन्हें उक्त पद के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया। याचिकाकर्ता को उपयुक्त क्यों नहीं पाया गया, इसके विस्तृत आधार बैंक द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र में दिनांक 27.04.2018 के आदेश को संलग्न करके इंगित किए गए हैं, जिसकी एक प्रति प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक सी-3 में है, जिससे यह सामने आता है कि प्रस्तावित नौकरी के लिए याचिकाकर्ता की उपयुक्तता का आकलन करने के लिए संक्षिप्त इंटरफेस के संचालन पर यह पाया गया कि उम्मीदवार/याचिकाकर्ता को कंप्यूटर का कोई ज्ञान नहीं है और इस प्रकार यह राय बनाई गई कि याचिकाकर्ता लिपिक संवर्ग में नौकरी के लिए उपयुक्त नहीं था और इसलिए उसके दावे को दिनांक 02.05.2018 के आदेश के द्वारा खारिज कर दिया गया है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि जब उन्होंने प्रतिवादियों के

अधीन अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया था, तो उनके दावे पर प्रतिवादियों द्वारा सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाना चाहिए था और उनकी उम्मीदवारी को इस आधार पर इतने संकीर्ण रूप से खारिज नहीं किया जाना चाहिए था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का दूसरा तर्क यह है कि जब याचिकाकर्ता अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की मांग कर रहा है, तो भले ही प्रतिवादियों ने श्रेणी III के पद के लिए उसके दावे को खारिज कर दिया हो, लेकिन उसकी उम्मीदवारी पर श्रेणी IV के पद पर भी विचार किया जा सकता है, जिसके लिए उसे उपयुक्त और पात्र पाया जा सकता है।

6. दूसरी ओर, प्रतिवादी बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव ने तर्क दिया कि दिनांक 25.09.2014 का एक परिपत्र, जिसकी एक प्रति प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक सी-1 में है, मृतक कर्मचारी के आश्रित परिवार के सदस्य के लिए अनुकंपा नियुक्ति की एक योजना है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के मामले पर तृतीय श्रेणी के पद के लिए विचार किया गया था, लेकिन उसे उपयुक्त नहीं पाया गया और इसलिए उसके दावे को दिनांक 2.5.2018 के आदेश के अनुसार खारिज कर दिया गया। यह भी तर्क दिया गया है कि योजना के खंड 7 के अनुसार, जिन पदों पर नियुक्ति की जा सकती है, वे लिपिक और उप कर्मचारी संवर्ग दोनों हैं। श्री श्रीवास्तव के अनुसार, उप कर्मचारी संवर्ग चतुर्थ श्रेणी की श्रेणी के पद हैं, जिनमें चपरासी/स्वीपर आदि शामिल हैं। उक्त नीति के खंड 8 पर भरोसा

करते हुए, यह तर्क दिया गया है कि खंड 8.2 स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदक को संबंधित भर्ती नियमों के प्रावधानों के तहत सभी मामलों में पद के लिए पात्र और उपयुक्त होना चाहिए।

7. प्रासंगिक भर्ती नियमों का भी सहारा लिया गया है, जिसकी एक प्रति न्यायालय को दी गई है और रिकॉर्ड में रखी गई है, उच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है, यह तर्क देने के लिए कि अधीनस्थ संवर्ग में चपरासियों के लिए निर्धारित योग्यता दसवीं और बारहवीं कक्षा है और स्नातक उम्मीदवार चयन के योग्य नहीं हैं और याचिकाकर्ता स्नातक होने के कारण चतुर्थ श्रेणी के पद/चपरासी/उप कर्मचारी के लिए योग्य नहीं है।

8. श्री श्रीवास्तव का तर्क है कि बेशक याचिकाकर्ता स्नातक है और इस प्रकार भर्ती नियमों को ध्यान में रखते हुए, एक स्नातक चतुर्थ श्रेणी के पद के लिए योग्य नहीं है, प्रतिवादी-बैंक में याचिकाकर्ता को चतुर्थ श्रेणी के पद के खिलाफ विचार न करने और याचिकाकर्ता को तृतीय श्रेणी के पद के लिए उपयुक्त नहीं पाए जाने के कारण उसकी उम्मीदवारी को अस्वीकार कर दिया गया है।

9. इस संबंध में, श्री श्रीवास्तव ने इंद्र नारायण राजपूत व 11 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 1709 (एसएस)/2017, कार्तिकेय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, विशेष अपील संख्या 229/2016, आलोक कुमार मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट याचिका संख्या 6655

(एसएस)/2016 में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों के साथ-साथ पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम अनीता एवं अन्य, (2015) 2 एससीसी 170 में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भी निर्भरता व्यक्त की है।

10. उभय पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेखों का अवलोकन किया।

11. अभिलेखों के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पिता प्रतिवादी बैंक में स्वीपर के रूप में कार्यरत थे, जिनकी 03.07.2017 को सेवा के दौरान मृत्यु हो गई। याचिकाकर्ता ने बैंक के प्रासंगिक नियमों एवं नीति के अंतर्गत अनुकंपा नियुक्ति के लिए अपना दावा प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता के स्नातक होने के कारण बैंक द्वारा इंटरफेस के लिए बुलाया गया था, लेकिन बैंक ने याचिकाकर्ता को लिपिक संवर्ग में नियुक्त किए जाने के लिए उपयुक्त नहीं पाया और इस प्रकार 2.5.2018 के आदेश के द्वारा अनुकंपा नियुक्ति के लिए उसका दावा खारिज कर दिया गया।

12. अभिलेखों के अवलोकन एवं आदेश दिनांक 2.5.2018 में प्रतिवादियों द्वारा बताए गए कारणों व इसे आदेश दिनांक 27.04.2018 के साथ पढ़ने पर यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता की उपयुक्तता का आकलन करने के लिए संक्षिप्त इंटरफेस में, यह पाया गया कि याचिकाकर्ता को कंप्यूटर का कोई ज्ञान नहीं है और इस प्रकार उसका दावा खारिज कर दिया गया। न्यायालय को

उस आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का लिपिक संवर्ग में दावा खारिज कर दिया गया है, विशेषकर तब जब भावी नियोक्ता यानी बैंक ने स्वयं याचिकाकर्ता को नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं पाया है।

13. क्या याचिकाकर्ता को चतुर्थ श्रेणी पद से संबंधित उप कर्मचारी संवर्ग में नियुक्ति के लिए भी विचार किया जा सकता है, यह न्यायालय द्वारा तय किया जाने वाला अगला प्रश्न है।

14. प्रतिवादी-बैंक ने दिनांक 25.09.2014 को अनुकंपा नियुक्ति के लिए एक नीति जारी की है। नीति के प्रासंगिक प्रावधान नीचे दिए गए हैं:

"1. योजना का नाम:

इस योजना को "55 वर्ष की आयु तक पहुँचने से पहले अक्षमता के कारण चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्त हुए/मृतक कर्मचारी के आश्रित, परिवार के सदस्य को अनुकंपा नियुक्ति के लिए योजना" कहा जाएगा।

2. योजना का उद्देश्य:

55 वर्ष की आयु तक पहुँचने से पहले अक्षमता के कारण चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्त हुए/मृतक कर्मचारी के परिवार को अचानक वित्तीय संकट से उबारने में सक्षम बनाना।

4. कवरेज

4.1 बैंक के स्थायी कर्मचारी के आश्रित परिवार के सदस्य को, जो-

(क) सेवा के दौरान मर जाता है (आत्महत्या से मृत्यु सहित)

(ख) 55 वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले अक्षमता के कारण चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्त हो जाता है। (अक्षमता को सरकारी मेडिकल कॉलेज/सरकारी जिला मुख्यालय अस्पतालों/बैंक द्वारा इस उद्देश्य के लिए नामित डॉक्टरों के पैनल में विधिवत नियुक्त मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रमाणित किया जाना है)।

(4.2) योजना के प्रयोजन के लिए "कर्मचारी" का अर्थ केवल एक स्थायी नियमित कर्मचारी होगा, जो 55 वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्ति/मृत्यु के समय पूर्णकालिक या अंशकालिक सेवा कर रहा था और इसमें अनुबंध/अस्थायी/आकस्मिक या कमीशन के आधार पर भुगतान किए जाने वाले किसी भी व्यक्ति को शामिल नहीं किया गया है।

7. पद जिन पर नियुक्तियां की जा सकती हैं

7.1 नियुक्ति केवल लिपिकीय और उप-कर्मचारी संवर्ग में की जाएगी।

8. पात्रता

8.1 परिवार निर्धन है और वित्तीय अभाव से राहत के लिए तत्काल सहायता का हकदार है; तथा

8.2 अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदक प्रासंगिक भर्ती नियमों के प्रावधानों के तहत सभी मामलों में पद के लिए पात्र और उपयुक्त होना चाहिए।

15. उक्त नीति जिसे अनुकंपा नियुक्ति के लिए योजना कहा जाता है, के अवलोकन से पता चलता है कि इस योजना का शीर्षक "चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्त/मृतक कर्मचारी के आश्रित परिवार के सदस्य को अनुकंपा नियुक्ति के लिए योजना" है। योजना के खंड 2 का उद्देश्य 55 वर्ष की आयु तक पहुंचने से पहले अक्षमता के कारण चिकित्सा आधार पर सेवानिवृत्त/मृतक कर्मचारी के परिवार को अचानक वित्तीय संकट से उबारना है। खंड 4 के अनुसार नीति के कवरेज में सेवा के दौरान मरने वाले बैंक के स्थायी कर्मचारी के आश्रित परिवार के सदस्य शामिल हैं। नीति के खंड 7 में उन पदों को इंगित किया गया है जिनमें नियुक्ति की जा सकती है जो लिपिकीय और उप कर्मचारी संवर्ग दोनों हैं। खंड 8.2 के अनुसार पात्रता यह है कि अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदक प्रासंगिक भर्ती नियमों के प्रावधानों के तहत सभी मामलों में पद के लिए पात्र और उपयुक्त होना चाहिए।

16. चूंकि योजना का उद्देश्य ही मृतक कर्मचारी के परिवार को मृत्यु के कारण अचानक उत्पन्न वित्तीय संकट से उबारना है, इसलिए योजना के खंड 8 को अनुकंपा नियुक्ति की योजना के संदर्भ में ही समझना होगा, अर्थात् अचानक उत्पन्न वित्तीय संकट से उबारना होगा। चूंकि याचिकाकर्ता स्नातक है, इसलिए जाहिर है कि वह दसवीं और बारहवीं

कक्षा पास होगा और इसलिए वह अधीनस्थ संवर्ग या उप कर्मचारी संवर्ग में चपरासी के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र होगा।

17. श्री श्रीवास्तव ने याचिकाकर्ता के उप कर्मचारी संवर्ग के दावे पर विचार न करते हुए तर्क दिया कि धारा 8.2 के अनुसार याचिकाकर्ता को प्रासंगिक भर्ती नियमों के प्रावधानों के तहत सभी मामलों में पद के लिए पात्र और उपयुक्त होना चाहिए और प्रासंगिक भर्ती नियमों में विशेष रूप से प्रावधान है कि स्नातक उम्मीदवार पात्र नहीं हैं। जैसा कि पहले ही ऊपर बताया जा चुका है, योजना अचानक वित्तीय संकट से निपटने के लिए अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पर विचार करती है। जाहिर है, भर्ती नियमों का पालन किया जाना चाहिए, जिसके तहत सीधी भर्ती करते समय उच्च योग्यता को ध्यान में नहीं रखा जाता है। यहां मामला सीधी भर्ती का नहीं बल्कि अनुकंपा नियुक्ति का है। याचिकाकर्ता स्नातक है और प्रतिवादी, अपने तर्क के अनुसार, याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अधीनस्थ संवर्ग/उप कर्मचारी संवर्ग में चतुर्थ श्रेणी पद/चपरासी पर विचार किए जाने से केवल इस आधार पर बाहर कर रहे हैं कि भर्ती नियमों में स्नातक उम्मीदवार के पात्र न होने का प्रावधान है। न्यायालय के विचार में भर्ती नियमों में उक्त शर्त केवल उसी संबंध में लागू होगी जहां प्रतिवादी सीधी भर्ती कर रहे हैं न कि अनुकंपा के आधार पर। यह इस तथ्य से स्पष्ट होगा कि नीति के खंड 8.2 में यह प्रावधान है कि व्यक्ति को पद के लिए पात्र और उपयुक्त होना चाहिए और जब इस योजना को अनुकंपा नियुक्ति के उद्देश्य के

लिए लागू होने के संदर्भ में देखा जाए, तो यह स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता को चतुर्थ श्रेणी के पद के लिए भर्ती नियमों के अनुसार पात्र मानता है, जिसका अर्थ है कि उसके पास दसवीं या बारहवीं कक्षा या समकक्ष योग्यता होनी चाहिए और किसी भी तरह से प्रतिवादियों को उप-कर्मचारी संवर्ग पर अनुकंपा नियुक्ति के उद्देश्य से स्नातक उम्मीदवार को बाहर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि यह अचानक वित्तीय संकट से निपटने के लिए अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने की नीति के खिलाफ होगा।

18. जहां तक प्रतिवादी-बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव ने जिन निर्णयों पर भरोसा किया है, उनके लिए यह कहना पर्याप्त है कि **इंद्र नारायण राजपूत (उपरोक्त) और आलोक कुमार मिश्रा (उपरोक्त)** के निर्णय ऐसे मामलों से संबंधित हैं, जहां व्यक्ति आयोग द्वारा जारी किए गए विज्ञापन के आधार पर अपना दावा कर रहे थे, अर्थात् सीधी भर्ती के उद्देश्य से और उक्त मामले अनुकंपा नियुक्ति से संबंधित नहीं थे। जहां तक **कार्तिकेय (उपरोक्त)** के मामले में खंडपीठ के निर्णय का संबंध है, वह भी अनुकंपा नियुक्ति से संबंधित नहीं है और इस प्रकार इस न्यायालय के दृष्टिकोण से तीनों निर्णयों में से कोई भी वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा या आकर्षित नहीं होगा। जहां तक **अनीता (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संबंध है, वह भी सीधी भर्ती के मामले से संबंधित है, न कि अनुकंपा नियुक्ति से। तदनुसार, उपरोक्त किसी भी निर्णय की

वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई प्रयोज्यता नहीं है।

19. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका का निस्तारण इस निर्देश के साथ किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या-3 अर्थात् जोनल मैनेजर, पंजाब नेशनल बैंक, एचआरडी अनुभाग, जोनल कार्यालय, गोमती नगर, लखनऊ, जिन्हे सक्षम प्राधिकारी बताया गया है या फिर कोई अन्य सक्षम प्राधिकारी, याचिकाकर्ता को उप-कर्मचारी कैडर में या किसी चतुर्थ श्रेणी पद पर अनुकंपा नियुक्ति के लिए विचार करें। याचिकाकर्ता का मामला केवल स्नातक होने के आधार पर खारिज नहीं किया जाएगा।

20. इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से छः सप्ताह की अवधि के भीतर इस पर विचार किया जाए।

(2023) 4 ILRA 249

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी

रिट-ए संख्या 37062/2014

सुनील कुमार एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आशीष जायसवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - चंद्र मोहन झा विश्वविद्यालय, मेघालय, अधिनियम, 2009-धारा48-शिक्षा-डिग्री-वैधता-सीएमजे

विश्वविद्यालय से प्राप्त स्नातक की डिग्री रिट (सी) संख्या 177/2014 में पारित मेघालय उच्च न्यायालय के निर्णय और संशोधन अधिनियम 2019 की धारा 48 में संशोधन के अनुसार वैध है-दोनों छात्रों का सत्यापन विश्वविद्यालय के अभिलेख के अनुसार पूर्ण हो गया है और दोनों पूर्वोक्त छात्रों की डिग्री वैध हैं।

याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री आशीष जायसवाल और प्रतिवादी के विद्वान स्थायी वकील सुश्री शिवी मिश्रा को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका दो व्यक्तियों अर्थात् सुनील कुमार और देश दीपक दोनों श्री रामेश्वर दयाल के पुत्र द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 प्राचार्य, जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान, भोगांव, मैनपुरी को निर्देश देने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है कि याचिकाकर्ताओं को बीटीसी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम-2012 की द्वितीय और तृतीय सेमेस्टर परीक्षाओं में उपस्थित होने की अनुमति दी जाए और उक्त पाठ्यक्रम के लिए अपनी पढ़ाई जारी रखी जाए।

3. रिकॉर्ड दर्शाता है कि याचिकाकर्ताओं ने यूपी बोर्ड से प्रथम डिवीजन में अपनी हाई स्कूल और इंटरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की और बाद में

अपनी बैचलर ऑफ आर्ट्स (बीए), चंद्र मोहन झा विश्वविद्यालय, मेघालय (संक्षेप में 'सीएमजे विश्वविद्यालय मेघालय') से प्रथम प्रभाग में डिग्री प्राप्त की, जिसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 2 (एफ) के अनुसार विधिवत मान्यता प्राप्त थी।

4. उपरोक्त योग्यता के बल पर याचिकाकर्ताओं ने जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान, मैनपुरी (संक्षिप्त 'डाइट') से बी.टी.सी. प्रशिक्षण, 2012 के लिए ऑनलाइन आवेदन किया है, जिसमें दोनों का चयन कर प्रशिक्षण के लिए भेजा जाता है। याचिकाकर्ताओं ने अपनी प्रथम सेमेस्टर परीक्षा उत्तीर्ण की है और द्वितीय सेमेस्टर की परीक्षा 22.1.2014 से शुरू होने जा रही थी, इस बीच, प्रतिवादी नंबर 2 प्रिंसिपल डीआईईटी, मैनपुरी ने दिनांक 13.1.2014 को एक आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता का प्रशिक्षण इस न्यायालय के निर्णय दिनांक 19.11.2013 के अनुसार बंद कर दिया गया है, जो 2013 के रिट-ए नंबर 36180 (सत्येश कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित किया गया है। जो इस प्रकार है कि शैक्षणिक वर्ष 2009-2013 से सीएमजे विश्वविद्यालय, मेघालय से प्राप्त डिग्री अमान्य हैं। प्राचार्य, डीआईईटी, मैनपुरी का उक्त पत्र रिट याचिका के पृष्ठ संख्या 27 से 28 पर संलग्न किया गया है। इसके बाद, याचिकाकर्ताओं ने 2014 के रिट-ए संख्या 3775 के माध्यम से प्रिंसिपल डीआईईटी, मैनपुरी द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.1.2014 को चुनौती दी, जिसे दिनांक 21.1.2014 के निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था और उक्त आदेश की पुष्टि इस

न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा 2014 की विशेष अपील संख्या 154 में दिनांक 11.2.2014 के आदेश के तहत की गई थी, जिसमें याचिकाकर्ताओं को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष अनुमति याचिका [अपील की विशेष अनुमति के लिए याचिका (ओं) (सिविल) संख्या (ओं) 2013 की 19617 सीएमजे फाउंडेशन और अन्य बनाम मेघालय राज्य और अन्य] में जारी निर्देश के मद्देनजर उचित अभ्यावेदन दायर करने की स्वतंत्रता थी।

5. यह आगे रिकॉर्ड से प्रतीत है कि सीएमजे फाउंडेशन, मेघालय ने शिलांग में मेघालय उच्च न्यायालय द्वारा 2013 की रिट-ए संख्या 16 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 31.5.2013 के खिलाफ 2013 की विशेष अनुमति अपील (सिविल) संख्या (एस) 19617 दायर की, अपील के लिए उक्त विशेष अनुमति अपील को राज्य सरकार के निर्देश के साथ दिनांक 13.9.2013 के आदेश द्वारा निपटारा जाता है साथ ही संस्थान को नोटिस और सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 की धारा 48 के तहत उचित कार्रवाई करने के लिए राज्य सरकार को आदेश दिया है। 2013 विशेष अनुमति अपील (सिविल) संख्या (एस) 19617 में पारित आदेश दिनांक 13.09.2013 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"संबंधित याचिका में याचिकाकर्ताओं को विशेष अनुमति याचिका दायर करने की अनुमति दी जाती है। इन याचिकाओं को मेघालय उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के दिनांक 31.5.2013 के फैसले के खिलाफ

निर्देशित किया गया है, जिसमें सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 की धारा 13 (3) (बी) के तहत मेघालय के राज्यपाल के प्रधान सचिव द्वारा पारित दिनांक 30.4.2013 के आदेश को रद्द करने से इनकार करने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ दायर अपील (संक्षेप में, '2009 अधिनियम') को खारिज कर दिया गया था।

विशेष अनुमति याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान, विजिटर-कम-गवर्नर, मेघालय ने आपराधिक दायित्व के अलावा कुप्रबंधन, कुप्रशासन, अनुशासनहीनता और विश्वविद्यालय के उद्देश्यों को लागू करने में विफलता के आधार पर विश्वविद्यालय को भंग करने के लिए दिनांक 12.06.2013 को व्यापक सिफारिशें कीं। विजिटर के निर्णय वाले नोट में उनके द्वारा की गई सिफारिशों सहित निम्नानुसार लिखा है:

"1. मैंने सीएमजे फाउंडेशन के अधिवक्ता श्री एसपी शर्मा, के पत्र संख्या जीएसएमजी/सीएमजेयू/82/2009/311 दिनांक 24 मई, 2013 द्वारा जारी निर्देशों के संदर्भ में दिनांक 10 जून, 2013 के पत्र का अवलोकन किया है। यह देखा गया है कि सीएमजे फाउंडेशन/विश्वविद्यालय ने निर्देशों के अनुपालन के उद्देश्य से दस्तावेजों की प्रतियां मांगने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में याचिका दायर की है, बहुत विलंब के बाद, 10 जून, 2013 को निर्देशों के अनुपालन के लिए निर्धारित अंतिम तिथि थी। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि सीएमजे फाउंडेशन निर्देशों के अनुपालन के बारे में ईमानदार नहीं है। इसके अतिरिक्त, इस कार्यालय पत्र संख्या जीएसएमजी/सीएमजेयू/

82/2009/143 दिनांक 30 अप्रैल, 2013 द्वारा जारी किए गए सभी निर्देशों का सीएमजे फाउंडेशन द्वारा राज्य पुलिस द्वारा जब्त दस्तावेजों का सहारा लिए बिना अनुपालन किया जा सकता था। 30 अप्रैल, 2013 को जारी किए गए निर्देश नीचे दिए गए हैं:

i) सीएमजे विश्वविद्यालय अब तक प्रदान की गई सभी डिग्रियों को वापस लेगा/वापस लेगा और इस तथ्य को अपने खर्च पर राष्ट्रीय और स्थानीय समाचार पत्रों में प्रकाशित करेगा।

ii) सीएमजे फाउंडेशन उम्मीदवार की सिफारिश और सहायक दस्तावेजों के सही बायोडाटा के साथ कुलाधिपति की नियुक्ति के लिए एक नया प्रस्ताव प्रस्तुत करेगा।

(iii) सीएमजे विश्वविद्यालय यूजीसी (एमफिल/पीएचडी डिग्री प्रदान करने हेतु न्यूनतम मानक और प्रक्रिया) विनियम, 2009 के अनुसार एमफिल और पीएचडी डिग्री कार्यक्रमों में प्रवेश, पर्यवेक्षक का आवंटन, पाठ्यक्रम कार्य/मूल्यांकन, मूल्यांकन और आगे संबंधित पद्धतियों के लिए नियम और प्रक्रियाएं तैयार करेगा।

v) सीएमजे विश्वविद्यालय द्वारा उपर्युक्त निर्देशों के अनुपालन तक और सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 की धारा 14 (1) के अनुसार कुलाधिपति की नियुक्ति तक छात्रों का कोई नया प्रवेश नहीं किया जाएगा।

2. यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि सीएमजे फाउंडेशन के अध्यक्ष इन सभी दिनों में संपर्क में नहीं रहे हैं और केवल अपने वकील के माध्यम से संवाद करने के लिए चुना है। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, उनके वकील का

कहना है कि वह अपने बीमार माता-पिता की देखभाल के लिए बिहार में हैं। यहां तक कि अगर यह सच है, तो यह इतने लंबे समय तक मुद्दों को संबोधित नहीं करने का कारण नहीं हो सकता है।

3. यह उल्लेखनीय है कि पहले निर्देश जारी होने के तुरंत बाद विश्वविद्यालय ने आरोप लगाया कि छात्रों ने विश्वविद्यालय में कार्यालय और उपकरणों में तोड़फोड़ की थी, जिसे बाद में पुलिस द्वारा इसे झूठा पाया गया था। पुलिस के अनुसार, यह एक निदेशक के कहने पर विश्वविद्यालय के कर्मचारियों द्वारा तैयार किया गया था। यह सबूत नष्ट करने का एक जानबूझकर प्रयास था और मामले की पुलिस जांच कर रही है।

4. ये सभी कानून की आवश्यकता का पालन करने, सुधारात्मक कार्रवाई शुरू करने और उच्च शिक्षा के मानकों को बनाए रखने के लिए विश्वविद्यालय की ईमानदारी पर एक प्रश्न उठाते हैं।

5. विश्वविद्यालय के कमिश्नर्स और ओमिशन्सदो भागों में हैं; i) इसने कुलाधिपति के बिना काम करना शुरू कर दिया, जिनकी नियुक्ति को विजिटर द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया है, और ii) इसने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य नियामक निकायों, सीएमजेयू अधिनियम 2009, और मेघालय निजी विश्वविद्यालयों (मानकों की स्थापना और रखरखाव के विनियमन) अधिनियम 2012 द्वारा निर्धारित मानकों और मानदंडों के घोर उल्लंघन में कार्य किया। यह और भी गंभीर अपराध है; यह इसके अलावा विश्वास का उल्लंघन है। यहां तक कि कानूनी रूप से नियुक्त कुलाधिपति के साथ भी किसी भी

विश्वविद्यालय को इस तरह के धोखाधड़ी के इरादे से कार्य करने और शैक्षणिक वातावरण को खराब करने, उच्च शिक्षा संस्थान को अपमानित करने और उस राज्य को बदनाम करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जहां यह स्थापित है।

6. उपलब्ध तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि विश्वविद्यालय ने निम्नलिखित गंभीर अनियमितताएं की हैं:

(i) सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 की धारा 14(1) के अनुसार विजिटर के अनुमोदन के बिना विश्वविद्यालय ने 17/10/2010 से विजिटर के "मानित स्वीकृति" की धारणा के आधार पर स्वयं नियुक्त चांसलर के साथ कार्य किया। यह कानूनी रूप से वैध नहीं है और माननीय मेघालय उच्च न्यायालय के दिनांक 16 मई, 2013 के आदेश द्वारा इस स्थिति की पुष्टि की गई है जिसे माननीय मेघालय उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 31 मई, 2013 के अपने आदेश में बरकरार रखा है।

(ii) इसने नियामक निकायों के अपेक्षित अनुमोदन के बिना और संबद्धता के बिना दूरस्थ मोड के माध्यम से बीएड डिग्री प्रदान की। सीएमजे विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई बीएड डिग्रियों को माननीय गुवाहाटी उच्च न्यायालय के दिनांक 24 मई, 2013 के आदेश द्वारा कानून की नजर में अमान्य माना गया था।

(iii) शिलांग इंजीनियरिंग एंड मैनेजमेंट कॉलेज को एनईएचयू द्वारा शैक्षिक सत्र 2011-2012 से असंबद्ध कर दिया गया था। यह कॉलेज, जो सीएमजे विश्वविद्यालय की

स्थापना की मंजूरी से पहले अस्तित्व में था, सीएमजे विश्वविद्यालय से संबद्ध नहीं किया जा सकता। जबकि उक्त संबद्धता के मद्देनजर इस कॉलेज के छात्रों का भाग्य पहले से ही अनिश्चित था, कॉलेज छात्रों को गुमराह करके प्रवेश करता रहा कि डिग्री सीएमजे विश्वविद्यालय द्वारा जारी की जाएगी।

iv) विश्वविद्यालय ने सूचित किया था कि 2012-2013 के दौरान उसने 434 छात्रों को पीएचडी डिग्री प्रदान की थी और अन्य 490 छात्रों को नामांकित किया था। ये आंकड़े, हालांकि असाधारण रूप से उच्च हैं, सही स्थिति को नहीं दर्शाते हैं। हमारे पास जानकारी उपलब्ध है कि अन्य 29 छात्रों ने भी विश्वविद्यालय से पीएचडी की डिग्री प्राप्त की है और अधिक जानकारी दैनिक आधार पर आ रही है। इसलिए यह स्पष्ट है कि पीएचडी और अन्य कार्यक्रमों के लिए उपाधि और नामांकन की वास्तविक संख्या रिपोर्ट की तुलना में बहुत अधिक होगी। विश्वविद्यालय ने बोडो और पंजाबी भाषाओं जैसे विषयों में भी पीएचडी प्रदान की जहां गाइड / संकाय आसानी से उपलब्ध नहीं हैं। यह विश्वविद्यालय की शक्तियों का घोर दुरुपयोग और यूजीसी (एमफिल/पीएचडी डिग्री के पुरस्कारों के लिए न्यूनतम मानक और प्रक्रिया) विनियम, 2009 का उल्लंघन है।

v) विश्वविद्यालय ने पीएचडी के साथ 10 संकाय सदस्यों की एक सूची प्रस्तुत की जो गलत है। संकाय सदस्यों में से एक एनईएचयू में केवल एक शोध विद्वान है। इस सूची में कुलपति, रजिस्ट्रार और विश्वविद्यालय के अन्य पदाधिकारियों को संकाय के रूप में शामिल किया गया है जो

काफी भ्रामक है। वास्तव में, विश्वविद्यालय के पास पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए पर्याप्त शिक्षक नहीं हैं जो वह कर रहा था।

(vi) विश्वविद्यालय मेघालय के बाहर कई ऑफ कैम्पस केन्द्र चला रहा है जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (निजी विश्वविद्यालय की स्थापना और मानकों का अनुरक्षण) विनियम, 2003 और प्रो. यशपाल एवं अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय (2005) के निर्णय के अंतर्गत अनुमेय नहीं है।

vii) यह मेघालय की सीमाओं के बाहर और भारत के बाहर दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम प्रदान कर रहा है। ये कार्रवाई विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विनियमों और दिशा-निर्देशों का घोर उल्लंघन है।

(viii) सीएमजे विश्वविद्यालय द्वारा नामांकित कुल छात्र, 2010.11:176, 2011-12: 469, 2012-13:2734। ये सभी प्रवेश अवैध हैं क्योंकि कानूनी रूप से नियुक्त कुलाधिपति की अनुपस्थिति में इसके सभी कार्य शुरू से ही अमान्य हैं।

(x) विश्वविद्यालय ने विजिटर को वार्षिक रिपोर्ट और वार्षिक लेखा/तुलन पत्र तथा लेखापरीक्षा रिपोर्ट प्रस्तुत न करके सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 की धारा 45(3) और धारा 46(4) का उल्लंघन किया है।

xi) विजिटर द्वारा कार्रवाई शुरू करने के बाद भी विश्वविद्यालय प्रेस बयानों द्वारा छात्रों और जनता को गुमराह करता रहा। इसने दिनांक 22 अप्रैल, 2013 को शिलांग टाइम्स में समाचार पत्र में यह दावा करते हुए एक विज्ञापन जारी किया कि उसने असम राज्य से नामांकित किसी भी छात्र को अभी तक कोई

पीएचडी डिग्री प्रदान नहीं की है जो कि गलत है। इसने दीक्षांत समारोह आयोजित करने और पीएचडी डिग्री प्रदान करने के मामलों में 2 मई और 16 मई, 2013 को समाचार पत्र में विज्ञापन जारी किया, यह अच्छी तरह से जानते हुए कि कानूनी रूप से नियुक्त कुलाधिपति के बिना कोई दीक्षांत समारोह नहीं हो सकता है और पाठ्यक्रमों में प्रवेश और डिग्रियां प्रदान करना अवैध है।

(x) विश्वविद्यालय ने अक्षय निधि की स्थापना से संबंधित सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 41(1) का उल्लंघन किया है और जमा करने के कुछ दिनों के भीतर 210 लाख रुपए की जमा राशि वापस लेकर धोखाधड़ी की है।

xi) विश्वविद्यालय ने मानकों के रखरखाव और निजी विश्वविद्यालयों पर लागू अन्य संबंधित मामलों के संबंध में सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 की धारा 52 के उल्लंघन में बार-बार कार्य किया।

7. ये सभी स्थापित तथ्य स्पष्ट रूप से आपराधिक दायित्व के अलावा कुप्रबंधन, कुप्रशासन, अनुशासनहीनता और विश्वविद्यालय के उद्देश्यों की प्राप्ति में विफलता को इंगित करते हैं। उच्चतर शिक्षा के उचित मानकों को बनाए रखने के हित में यह वांछनीय होगा कि सीएमजे विश्वविद्यालय को बंद कर दिया जाए। राज्य सरकार को सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 की धारा 48 के संदर्भ में सीएमजे विश्वविद्यालय को भंग करने पर विचार करने के लिए कहा जा रहा है।

(महत्व सन्निविष्ट)

विजिटर-सह-राज्यपाल द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार, राज्य सरकार द्वारा 2009 अधिनियम की धारा 48 के तहत कार्रवाई की जानी अपेक्षित है।

मेघालय सरकार की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री रंजन मुखर्जी कहते हैं कि वह यह वक्तव्य देने की स्थिति में नहीं हैं कि क्या राज्य सरकार ने विजिटर-सह-राज्यपाल द्वारा की गई सिफारिशों को आगे बढ़ाने के लिए कार्रवाई की है।

उपरोक्त के मद्देनजर, हमें लगता है कि राज्य सरकार को याचिकाकर्ताओं को नोटिस देने और सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद अधिनियम 2009 की धारा 48 के तहत उचित कार्रवाई करने का निर्देश देकर न्याय का उद्देश्य पूरा होगा।

तदनुसार, विशेष अनुमति याचिकाओं का इस निर्देश के साथ निपटारा किया जाता है कि आज से तीन महीने के भीतर राज्य सरकार याचिकाकर्ताओं को प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने का अवसर देने के बाद, अधिनियम 2009 की धारा 48 के तहत एक स्पष्ट आदेश पारित करेगी।

जिन छात्रों के प्रवेश और डिग्री को अवैध घोषित किया गया था, वे भी राज्य सरकार को अभ्यावेदन दे सकते हैं और उससे सुनवाई का अवसर मांग सकते हैं। उनके द्वारा किए गए अनुरोध पर राज्य सरकार द्वारा सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाएगा।

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश के साथ-साथ 2014 की विशेष अपील संख्या 154 में दिए गए निर्देश के अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं ने 18.3.2014 को निदेशक

उच्च और तकनीकी शिक्षा, मेघालय के शिलांग कार्यालय में अपने अभ्यावेदन दायर किए, जिस पर, याचिकाकर्ताओं को उक्त निर्देश के अनुपालन में 23.3.2014 को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया, याचिकाकर्ताओं को संबंधित प्राधिकारी के समक्ष पेश किया गया था लेकिन शिलांग में उच्च और तकनीकी शिक्षा, मेघालय के निदेशक द्वारा याचिकाकर्ताओं को कोई निर्णय नहीं दिया गया था।

7. इस बीच, सीएमजे फाउंडेशन द्वारा सीएमजे विश्वविद्यालय के साथ मेघालय उच्च न्यायालय में **2014 की रिट (सी) संख्या 177** इस आधार पर दायर की गई थी कि मेघालय विधान सभा ने भौतिक विज्ञान, जीवन विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान और पैरामेडिकल, प्रबंधन, वित्त और लेखा, वाणिज्य, मानविकी, भाषा और संचार, एप्लाइड और प्रदर्शन कला, शिक्षा, कानून, सामाजिक विज्ञान और सीएमजे फाउंडेशन द्वारा प्रायोजित संबंधित क्षेत्रों और संबंधित मामलों के लिए प्रदान करने के लिए तत्पर या आकस्मिक के क्षेत्रों में उच्च गुणवत्ता और उद्योग-प्रासंगिक शिक्षा प्रदान करने पर जोर देने के साथ राज्य में एक विश्वविद्यालय की स्थापना और निगमन के लिए सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 (2009 का अधिनियम संख्या 4) अधिनियमित किया था। ।

8. चूंकि उक्त रिट याचिका में प्रश्न निर्णय की मांग करते हैं, सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 (संक्षेप में 'अधिनियम 2009') के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए

निर्णय लिया जाना है, जिसे मेघालय के उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 16.7.2015 के आदेश के तहत अंतिम रूप से निर्णय दिया गया था, जिसमें राज्य सरकार, मेघालय को अधिनियम 2009, मेघालय निजी विश्वविद्यालय, मानकों की स्थापना और रखरखाव का विनियमन) अधिनियम, 2012 (2012 का अधिनियम संख्या 8) के प्रावधानों के सख्त अनुपालन में कदम उठाने का निर्देश दिया गया था, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के मंच से न्याय के हित में निष्पक्ष रूप से कार्य करने के लिए प्रशासनिक अधिकारियों के दायित्व की अवधारणा के लिए ।

संबंधित पैराग्राफ संख्या 29 से 31 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"29. पूर्वगामी चर्चाओं के लिए, इस न्यायालय का विचार है कि 2009 के उक्त अधिनियम की धारा 48 के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के तहत प्रदान की गई मौलिक प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का अनुपालन या उल्लंघन नहीं किया गया था और प्रशासनिक अधिकारियों के दायित्व की अवधारणा 12.11.2013 और 24.01.2014 को कारण बताओ नोटिस जारी करने और 31.03.2014 को आक्षेपित आदेश पारित करने में निष्पक्ष रूप से कार्य करने के लिए थी जिससे कई पहलुओं पर अन्याय होगा। इस प्रकार, दिनांक 31.03.2014 के आक्षेपित आदेश और दिनांक 11.12.2013 और 24.01.2014 के कारण बताओ नोटिस को रद्द किया जाता है और अपास्त किया जाता है।

30. परिणाम में, राज्य सरकार सीएमजे विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 (2009 का अधिनियम 4), मेघालय निजी विश्वविद्यालय (मानकों की स्थापना और रखरखाव का विनियमन) अधिनियम, 2012 (2012 का अधिनियम संख्या 8), प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और प्रशासनिक अधिकारियों के दायित्व की अवधारणा के प्रावधानों के सख्त अनुपालन में कदम उठा सकती है जहां शीर्ष अदालत ने उक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.09.2013 पारित किया।

31. रिट याचिका को ऊपर बताई गई सीमा तक अनुमति दी जाती है।

9. इसके बाद, 16 अक्टूबर 2019 की अधिसूचना के माध्यम से, सीएमजे विश्वविद्यालय संशोधन अधिनियम, 2019 (2019 का अधिनियम संख्या 14) मेघालय विधान सभा द्वारा पारित किया गया था, जिसे 9 अक्टूबर, 2019 को मेघालय के असाधारण अंक के राजपत्र में प्रकाशित राज्यपाल की सहमति प्राप्त हुई थी, जिसके द्वारा, निम्नलिखित प्रावधानों को सम्मिलित करके धारा 48 का संशोधन किया गया था। धारा 48 के संशोधन को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

परंतु यदि उपधारा (1) में यथा उपबंधित प्रायोजक के कहने पर विश्वविद्यालय का विघटन कर दिया जाता है तो विश्वविद्यालय के अध्ययन के नियमित पाठ्यक्रमों के अंतिम बैच के पूरा होने तक, विश्वविद्यालय के प्रभावित छात्रों के लिए व्यवस्था करना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद और अन्य

विनियामक निकायों के परामर्श से विश्वविद्यालय का उत्तरदायित्व होगा

10. मेघालय उच्च न्यायालय की 2014 की रिट (सी) संख्या 177 में पारित दिनांक 16.7.2015 की न्यायिक प्रक्रिया के साथ-साथ संशोधन अधिनियम 2019 की धारा 48 में संशोधन के बाद, सीएमजे विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ताओं, याचिकाकर्ता नंबर 2 को आरटीआई अधिनियम, 2005 के तहत इस आशय की सूचना दी कि छात्रों देश दीपक पंजीकरण संख्या 10111010119125 और सुनील कुमार पंजीकरण क्रमांक 10111010119126, बैचलर ऑफ आर्ट्स डिग्री के लिए अपना सत्यापन पूरा कर लिया है और इसलिए, विश्वविद्यालय के रिकॉर्ड के अनुसार दोनों छात्रों का सत्यापन पूरा हो गया है और उपरोक्त दोनों छात्रों की डिग्री मान्य है।

11. इस संबंध में दिनांक 2.5.2022 के पत्र द्वारा दी गई जानकारी निम्नानुसार उद्धृत की गई है:-

"दिनांक- 02.05.2022

विषय:आरटीआई अधिनियम 2005 के तहत सूचना।

ऊपर उद्धृत पत्र के संदर्भ में, हम आपको सूचित करना चाहते हैं कि, विश्वविद्यालय को मेघालय सरकार के दिनांक 31.03.2014 के एक विवादित कार्यालय आदेश द्वारा बंद कर दिया गया था। मेघालय उच्च न्यायालय ने डब्ल्यूपीसी संख्या 177/2014 के तहत कार्यालय आदेश को रद्द कर दिया है और अपास्त कर दिया है, कार्यालय आदेश दिनांक 31.03.2014 नवंबर 2015 में विश्वविद्यालय के फिर से खुलने के बाद,

मेघालय सरकार द्वारा जब्त किए गए आधिकारिक दस्तावेजों के कारण मूल दस्तावेजों के साथ छात्र सत्यापन प्रक्रिया शुरू हुई। रिकॉर्ड के अनुसार बैचलर ऑफ आर्ट्स के देश दीपक रजिस्ट्रेशन नंबर 10111010119125 और सुनील कुमार रजिस्ट्रेशन नंबर 10111010119126 नाम के छात्र ने अपना वेरिफिकेशन पूरा कर लिया है, इसलिए उपरोक्त दोनों छात्र का सत्यापन विश्वविद्यालय के रिकॉर्ड के अनुसार हो रहा है और उपरोक्त दोनों छात्रों की डिग्री मान्य है।

12. उपरोक्त के मद्देनजर, सीएमजे विश्वविद्यालय, मेघालय से याचिकाकर्ताओं द्वारा प्राप्त बीए डिग्री 2014 की रिट (सी) संख्या 177 में पारित मेघालय उच्च न्यायालय के फैसले और 16 अक्टूबर, 2019 के संशोधन के माध्यम से धारा 48 में संशोधन के मद्देनजर वैध हैं।

13. तथ्यों और परिस्थितियों में, याचिकाकर्ताओं द्वारा सीएमजे विश्वविद्यालय, मेघालय से वर्ष -2012 में प्राप्त डिग्री को वैध माना जाता है।

14. तदनुसार, रिट याचिका को उत्तर प्रदेश राज्य सरकार को निर्देश के साथ अनुमति दी जाती है कि वह याचिकाकर्ताओं को बी.टी.सी. प्रशिक्षण पाठ्यक्रम-2012 के साथ जारी रखे, यदि वह जीवित है।

(2023) 4 ILRA 256

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी

रिट-ए संख्या 38165/2011

सुशील कुमार बाजपेयी

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य।

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सत्य प्रकाश पांडे,

श्री राजीव त्रिवेदी, श्री शशिकांत शुक्ला

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई.,

सी.एस.सी. (2011/33987), श्री प्रवीण शुक्ला,

श्री सौमित्र सिंह

ए. सिविल कानून - लोक लेखाकार चूक अधिनियम, 1850-धारा 2 एवं 4-केन्द्रीय सिविल सेवा (आचरण) नियम, 1964-नियम 3(1)(ii)-केन्द्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1965-नियम 14 एवं 16-राशि की वसूली-याचिकाकर्ता ने सहायक पोस्ट मास्टर का कोई हस्ताक्षर लिए बिना ही 8,01,000 रुपये का नकद अग्रिम दे दिया था-प्रासंगिक समय में याचिकाकर्ता डाक सहायक के पद पर कार्यरत था-वह 1850 के अधिनियम की धारा 2 में परिभाषित लोक लेखाकार नहीं है-याचिकाकर्ता के विरुद्ध वसूली की कार्यवाही तब तक आरंभ नहीं की जा सकती जब तक कि उस पर सरकारी राशि की हानि का दायित्व तय न हो जाए-1850 का अधिनियम भी केन्द्र सरकार द्वारा 02.09.2019 को निरस्त कर दिया गया है-आक्षेपित आदेश निरस्त। (पैरा 1 से 27)

याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. श्रीमती मधुबाला भारती बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, डब्लू.पी. संख्या 40574/2001

2. गिरिजा दयाल श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1987) यूपीएलबीईसी 1121

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री शशिकांत शुक्ला और भारत संघ/उत्तरदाताओं के वरिष्ठ पैनाल वकील श्री सौमित्र सिंह को सुना।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत तत्काल रिट याचिका प्रतिवादी संख्या 4, मुख्य पोस्ट मास्टर, कानपुर, जिला कानपुर नगर द्वारा पारित दिनांक 06.05.2011 के आक्षेपित आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जिसके तहत पब्लिक अकाउन्टन्ट डिफॉल्ट अधिनियम, 1850 के तहत शक्ति के प्रयोग में भूमि राजस्व के बकाया के रूप में याचिकाकर्ता से 7,57,500/- रुपये की राशि वसूल करने का निर्देश दिया गया है।

यह रिकॉर्ड से दर्शाता है कि याचिकाकर्ता ने 24.09.1983 को प्रधान डाकघर, बांदा में डाक सहायक के पद पर कार्यभार ग्रहण किया था। दिनांक 17.03.2003 को जब वे कोषाध्यक्ष के कार्यालय में डाक सहायक के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन कर रहे थे, उस समय डाक सहायक एन.एस.सी. डिस्चार्ज काउंटर, प्रधान डाकघर, कानपुर नगर, के रूप में कार्यरत शैलेन्द्र कुमार दीक्षित द्वारा की गई गैरजिम्मेदारी के कारण विभाग में 8,00,000/- रुपये की हानि हुई।

17.03.2003 को अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी, उसके

बाद, याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही शुरू की गई थी और उसे प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा 18.07.2003 को जारी किया गया आरोप पत्र दिया गया था कि याचिकाकर्ता ने शैलेन्द्र कुमार दीक्षित, डाक सहायक एनएससी डिस्चार्ज काउंटर कानपुर नगर को श्री एसएस त्रिवेदी नामक सहायक पोस्ट मास्टर का कोई प्रारंभिक पत्र लिए बिना 8,01,000 रुपये का नकद अग्रिम दिया इस प्रकार उन्होंने सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3 (I) (ii) का उल्लंघन करते हुए कार्य किया।

याचिकाकर्ता ने अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए 13.08.2003 को अपना जवाब प्रस्तुत किया और आगे कहा कि विवादित राशि शैलेन्द्र कुमार दीक्षित को सहायक पोस्ट मास्टर, श्री एसएस त्रिवेदी की सहमति से दी गई थी, जिन्होंने कैश रजिस्टर पर अपनी आदयाक्षर देते हुए प्रमाणित किया था कि राशि शैलेन्द्र कुमार दीक्षित द्वारा प्राप्त की गई है और इस तरह याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए दो आरोप तुच्छ हैं और हटाए जाने योग्य हैं।

इसके बाद, श्री एसएस त्रिवेदी, सहायक पोस्ट मास्टर का बयान जांच अधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था, प्रतिवादी नंबर 4 ने दिनांक 15.11.2003 को आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ 42 समान किस्तों में तत्काल प्रभाव से 88,032 रुपये की वसूली @ 2,096 रुपये प्रति माह उसके वेतन से की गई।

दिनांक 15.11.2003 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 3,

निदेशक डाक सेवाएं, कानपुर क्षेत्र, कानपुर के समक्ष 29.11.2003 को एक अपील दायर की, जिसका निर्णय याचिकाकर्ता द्वारा कई अनुस्मारक दिए जाने के बावजूद अपीलीय प्राधिकारी द्वारा नहीं किया गया था। अंततः, याचिकाकर्ता ने केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष दिनांक 15.11.2003 के आदेश के खिलाफ 2004 का मूल आवेदन संख्या 92 (एसके बाजपेयी बनाम भारत संघ और अन्य) दायर किया, और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने दिनांक 09.02.2004 के आदेश के तहत अपील के निपटान तक उक्त आदेश के संचालन पर रोक लगा दी।

केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष मूल आवेदन के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 18/29.06.2004 के आदेश के तहत दायर अपील को इस निर्देश के साथ 88,032/- रुपये की वसूली को रद्द करने की अनुमति दी थी कि याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा एक नया आरोप पत्र जारी किया जाए।

अपीलीय प्राधिकारी के दिनांक 18/29.06.2004 के निर्देश के अनुसरण में अनुशासनिक प्राधिकारी ने सीसीएस (सीएए) अधिनियम, 1956 (इसके बाद "1965 के नियम" के रूप में संदर्भित) के नियम 16 के अनुसार न तो कोई आरोप पत्र जारी किया और न ही अनुशासनिक कार्यवाही शुरू की। इसके बाद, प्रतिवादी नंबर 4 ने दिनांक 09.04.2005 को आदेश जारी किया जिसमें याचिकाकर्ता से भू-राजस्व के बकाया के रूप में 8,00,000/- रुपये की वसूली का निर्देश दिया

गया। प्रतिवादी संख्या 4 ने शैलेन्द्र कुमार दीक्षित और श्री एसएस त्रिवेदी के विरुद्ध 8,00,000/- रुपये की वसूली के लिए दिनांक 08.04.2005 और 8/9.04.2005 को दो अलग-अलग आदेश भी पारित किए हैं, जिसका अर्थ है कि प्रतिवादी संख्या 4 ने याचिकाकर्ता और डाकघर में काम करने वाले दो अन्य व्यक्तियों के खिलाफ 24,00,000 रुपये की वसूली जारी की थी।

याचिकाकर्ता को पुनः केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष दिनांक 09-04-2005 के आदेश को चुनौती देते हुए 2005 का मूल आवेदन सं 511 दायर करने के लिए पुनः बाध्य किया गया और केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने दिनांक 04.05.2005 के आदेश द्वारा मूल आवेदन पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता के विरुद्ध वसूली कार्यवाही पर रोक लगा दी। तत्पश्चात्, अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध 1965 की नियमावली के नियम 14 के अंतर्गत 07.05.2005 को पूर्व के आरोपों के संबंध में एक नया आरोप पत्र जारी किया गया था, जिसका उत्तर याचिकाकर्ता द्वारा उसी दिन अर्थात् 07.05.2005 को दिया गया था जिसमें सभी आरोपों का खंडन किया गया था।

जांच अधिकारी की नियुक्ति की गई जिसने दिनांक 26-05-2008 को अपनी रिपोर्ट इस निष्कर्ष के साथ प्रस्तुत की कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप सिद्ध नहीं हुए थे। अनुशासनात्मक प्राधिकारी यानी प्रतिवादी नंबर 4 जांच अधिकारी के निष्कर्ष से सहमत नहीं था, जांच रिपोर्ट से असहमति के संबंध में दिनांक 09.06.2008

को एक पत्र जारी किया और याचिकाकर्ता से अभ्यावेदन आमंत्रित किया।

इसके उत्तर में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.07.2008 को अपना अभ्यावेदन दायर किया, प्रतिवादी संख्या 4 ने अभ्यावेदन पर विचार किए बिना और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के बिना 19.07.2008 को आदेश पारित किया जिसमें याचिकाकर्ता के वेतन से 100 समान मासिक किस्तों में 2,50,000/- रुपये की वसूली की गई।

याचिकाकर्ता ने दिनांक 19.07.2008 के आदेश से व्यथित होकर प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष 1965 की नियमावली के नियम 23 के तहत अपील दायर की, जिसे दिनांक 20.11.2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया जिसमें दिनांक 19.07.2008 के दंड आदेश की पुष्टि की गई।

दिनांक 20.11.2008 के आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 4 और 3 द्वारा पारित दिनांक 19.07.2008 और 20.11.2008 के आदेश को रद्द करने के लिए केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष 2008 का मूल आवेदन संख्या 1314 (सुशील कुमार बाजपेयी बनाम भारत संघ और अन्य) दायर किया, जिसे प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 20.11.2008 के आदेश को रद्द करने के लिए अंतिम रूप से दिनांक 23.12.2008 के आदेश द्वारा निपटाया गया और याचिकाकर्ता को सभी अनुलग्नकों और अतिरिक्त अपील के साथ मूल आवेदन की पूरी प्रति दाखिल करने का निर्देश दिया गया था, प्रतिवादी नंबर 3 को इस विषय पर भूमि और प्रासंगिक नियमों के अनुसार एक तर्कसंगत और सकारण आदेश द्वारा अपील का फैसला

करने का भी निर्देश दिया गया था और अपील के निपटान तक याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली कार्यवाही पर रोक लगा दी गई थी।

तत्पश्चात्, अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 23-03-2009 के आदेश द्वारा दिनांक 19-07-2008 के आदेश द्वारा यथा अधिरोपित 2,50,000/- रुपए की वसूली की सजा को संशोधित करके 1,50,000/- रुपए कर दिया। याचिकाकर्ता ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष 2009 के मूल आवेदन सं 474 के माध्यम से अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 23-03-2009 के उक्त आदेश दिनांक 23-03-2009 को पुन चुनौती दी जिसे अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 23-03-2009 के आदेश को रद्द करते हुए दिनांक 15-05-2009 के आदेश द्वारा अंतिम रूप से निपटा दिया गया और कानून के अनुसार पूरे मामले पर पुनर्विचार करने तथा तीन माह की अवधि के भीतर तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश पारित करने के लिए मामले को वापस भेज दिया गया और आगे अपील के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली का स्थगन कर दिया गया।

तत्पश्चात्, अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 14-07-2009 के आदेश द्वारा अपील को खारिज कर दिया और दिनांक 19-07-2008 के आदेश की पुष्टि की जिसमें 1,50,000/- रुपए की वसूली का निर्देश दिया गया था क्योंकि याचिकाकर्ता को 1,50,000/- रुपए की हानि के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था और उक्त राशि याचिकाकर्ता के वेतन से वसूल की जा रही है।

याचिकाकर्ता ने केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष पुन 2009 का मूल

आवेदन सं 881 दायर किया जिसमें दिनांक 19-07-2008 के आदेश के साथ-साथ अपीलीय/अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 14-07-2009 के आदेश को चुनौती दी गई, जो अधिकरण के समक्ष लंबित है।

रिकॉर्ड से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के वेतन से 1,50,000/- रुपये की राशि वसूल करने का निर्देश दिया गया था और 2005 के मूल आवेदन संख्या 511 को दिनांक 22.12.2010 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया माना गया था और 2009 के मूल आवेदन संख्या 881 के लंबित रहने के दौरान लोक लेखाकार डिफॉल्ट अधिनियम, 1850 (1850 का अधिनियम सं 12) कि धारा 2 और 4 के प्रावधानों के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए दिनांक 06.05.2011 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया था जहां एक रिट याचिका (सिविल) जिसमें याचिकाकर्ता को 1,50,000/- रुपये की राशि की कटौती के बाद भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल करने का निर्देश दिया गया है, जिसे पहले ही कुल हानि से 8,00,000/- रुपये की सीमा तक वसूल किया जा चुका है। प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 06.05.2011 के आदेश को रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी और विभागीय जांच की गई थी जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों को साबित नहीं किया गया है, इसके बाद, केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण के आदेश के अनुसरण में विभाग द्वारा नए सिरे से जांच शुरू नहीं की गई है और आक्षेपित

आदेश द्वारा याचिकाकर्ता से 57,500/- रुपये वसूलने की मांग की गई है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील आगे प्रस्तुत करते हैं कि विचाराधीन राशि, जिसे वसूल करने का निर्देश दिया गया है, लोक लेखाकार डिफॉल्ट अधिनियम, 1850 की धारा 2 के अनुसार एक राशि या किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं है और याचिकाकर्ता न तो एक आधिकारिक समनुदेशिती या ट्रस्टी है, या सरबराकर के रूप में, पैसे के लिए किसी भी धन या प्रतिभूतियों की प्राप्ति, हिरासत या नियंत्रण के साथ सौंपा गया है। लोक लेखाकार डिफॉल्ट अधिनियम, 1850 के तहत आक्षेपित वसूली बिल्कुल अवैध है और उक्त राशि को याचिकाकर्ता से भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल नहीं किया जा सकता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने फिर से प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ता को किसी भी सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया है।

अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने श्रीमती मधुबाला भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा किया, जो 2001 की रिट याचिका संख्या 40574 और गिरिजा दयाल श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1987 यूपीएलबीईसी 1121 में पारित किया गया था। श्रीमती मधुबाला भारती (सुप्रा) के मामले में निर्णय का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"एक अन्य कारक जिस पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया जाना है कि क्या सरकार को लोक सेवक

द्वारा किए गए नुकसान की वसूली को भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जा सकता है। गिरजा दयाल श्रीवास्तव (सुप्रा) के मामले में, इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने स्पष्ट रूप से माना है कि भू-राजस्व की वसूली बकाया की प्रक्रिया मौखिक प्रक्रिया का अपवाद है। भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली के अधिकार को सरकारी कर्मचारी के संबंध में वैधानिक नियमों सहित वैधानिक प्रावधान द्वारा अनुमत दिखाया जाना चाहिए। सरकारी कर्मचारी के संबंध में, सरकार को हुई हानि की वसूली उत्तर प्रदेश सरकार में यथा लागू सिविल सेवा वर्गीकरण (अपील) नियमावली, 1930 की धारा 40 के अधीन वेतन से की जा सकती है। लेकिन लोक लेखा डिफॉल्ट अधिनियम, 1850 के तहत इसे भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल नहीं किया जा सकता है। **टीटू सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, (सुप्रा)** के मामले में धारा 173 ए और 21 के प्रावधान पर विचार किया जा रहा था और इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने माना है कि इसे भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल नहीं किया जा सकता है। यह वसूली के अन्य तरीकों को अपना सकता है।

उपरोक्त तथ्य के मद्देनजर, हम संतुष्ट हैं कि याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली तब तक नहीं की जा

सकती जब तक कि याचिकाकर्ता पर सरकारी राशि के नुकसान के उस प्रभाव का दायित्व तय नहीं किया जाता है। “

दूसरी ओर, भारत संघ के विद्वान वकील का कहना है कि आक्षेपित आदेश सही तरीके से पारित किया गया है, लेकिन वह इस तथ्य को साबित करने में विफल रहे कि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निर्देश के अनुसार नए सिरे से अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों नहीं शुरू की गई है।

दोनों पक्षों द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने के साथ-साथ मामले के रिकॉर्ड को देखने के बाद, यह स्पष्ट है कि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निर्देश के अनुसार कोई नई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की गई थी और याचिकाकर्ता सार्वजनिक लेखाकार नहीं है जैसा कि लोक लेखाकार डिफॉल्ट अधिनियम, 1850 की धारा 2 में परिभाषित किया गया है और श्रीमती मधुबाला भारती (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले के अनुसार याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली तब तक शुरू नहीं की जा सकती जब तक कि सरकारी राशि के नुकसान के उस प्रभाव के लिए जवाबदेही उस पर तय नहीं किया जाता है और यहां तक कि सार्वजनिक लेखाकार डिफॉल्ट अधिनियम, 1850 (1850 का अधिनियम संख्या 12) को केंद्र सरकार द्वारा 02.09.2019 को निरस्त करने और संशोधन विधेयक, 2019 नामक विधेयक के माध्यम से निरस्त कर दिया गया है क्योंकि उक्त अधिनियम अप्रचलित हो गया है।

उपरोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय की राय है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि याचिकाकर्ता पर सरकारी राशि के नुकसान के उस प्रभाव का दायित्व तय नहीं किया जाता है। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 4, मुख्य पोस्ट मास्टर, कानपुर, जिला कानपुर नगर द्वारा पारित दिनांक 06.05.2011 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है।

रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 4 ILRA 260

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-चतुर्थ,

रिट-ए संख्या 47099/2012

भारत संघ एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती कमला पांडे एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री एम. के. शर्मा, श्री

रजनीश कुमार राय, एस.सी., श्री राजेश त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री जे.पी. पांडे, श्री प्रमोद

कुमार (सक्सेना), श्री प्रमोद कुमार सक्सेना,

एस.सी., श्री विजय कुमार सिंह, श्री रमेश

नारायण पांडे

ए. सेवा कानून - रेलवे सेवा (पेंशन) नियम, 1993-धारा 18 उप-नियम (3)- आकस्मिक श्रमिक को पेंशन-मृतक आकस्मिक श्रमिक था- उसकी पत्नी ने रेलवे के कर्मचारियों के लिए लागू पेंशन नियमों के तहत अपने परिवार और

अपने नाबालिग बेटे के लिए पेंशन की मांग करते हुए ओए दायर करके न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत हुई - नियमों के तहत पेंशन की पात्रता के लिए कम से कम 10 वर्ष की नौकरी अनिवार्य है - हालांकि मृतक ने 10 वर्ष से कम समय तक सेवाएं दी हैं - इसके अतिरिक्त, उन्हें एक अस्थायी रेलवे कर्मचारी के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था, न ही उन्हें नियमित ग्रुप डी पद पर नियमित किया गया था, तदनुसार, पेंशन नियमों के अनुसार एक आकस्मिक श्रमिक पेंशन का अधिकारी नहीं है - न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया तर्क गलत धारणा पर आधारित है कि मृतक कर्मचारी एक 'अस्थायी रेलवे कर्मचारी' था, जबकि पेंशन नियमों के तहत 'अस्थायी स्थिति वाला आकस्मिक श्रमिक' अयोग्य है और 'अस्थायी रेलवे कर्मचारी' की परिभाषा से बाहर रखा गया है। (पैरा 1 से 34)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

इंद्रपाल यादव एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1.याचिकाकर्ता यूनियन ऑफ इंडिया-रेलवे की ओर से पेश हुए अधिवक्ता श्री राजेश त्रिपाठी और प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री रमेश नारायण पांडेय की सहायता से श्री प्रमोद कुमार (सक्सेना) को सुना।

2. यह रिट याचिका केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद बेंच, इलाहाबाद (संक्षेप में "ट्रिब्यूनल") द्वारा 2006 के मूल आवेदन संख्या 1144 (संक्षेप में "ओए") में पारित 22 मई 2012 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित की जाती है, जिसके तहत पहले प्रतिवादी / मूल आवेदक को पारिवारिक पेंशन की अनुमति दी जाती है।

3. रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, मूल आवेदक की मृत्यु हो गई, विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित किया गया है।

4. मूल आवेदक, आर. आर. पांडेय की विधवा, जो 8 अगस्त 1977 से रेलवे में आकस्मिक श्रमिक के रूप में कार्यरत था। उन्हें 25 नवंबर 1985 के आदेश द्वारा 1 जनवरी 1985 से अस्थायी स्थिति दिया गया था। 12 जुलाई 1988 को कर्मचारी की मृत्यु हो गई। मृत्यु होने पर, विधवा / मूल आवेदक को दिनांक 22 अगस्त 1988 के आदेश के तहत नए नैमित्तिक श्रमिक के रूप में नियोजित किया जाने लगा। 2012 में, उसने रेलवे के कर्मचारियों पर लागू पेंशन नियमों के तहत अपने और अपने अवयस्क बेटे के लिए पारिवारिक पेंशन की मांग करते हुए ओ ए दायर करके न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाया। याचिकाकर्ताओं / प्रतिवादियों द्वारा ओए का विरोध किया गया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह तर्क दिया गया था कि पेंशन की पात्रता के नियमों के तहत न्यूनतम 10 वर्ष का नियोजन अनिवार्य है।

प्रतिवादी के पति को 29 अगस्त 1979 से 1 सितंबर 1980 तक एक आकस्मिक श्रमिक के रूप में और उसके बाद रूकावट के साथ उसकी मृत्यु तक लगाया गया था, याचिकाकर्ता के अनुसार मृतक कर्मचारी द्वारा प्रदान की गई सेवा की कुल लंबाई 8 साल 9 महीने और 9 दिन थी। दूसरे शब्दों में, 10 साल से कम सेवा प्रदान करने की स्थिति में, पारिवारिक पेंशन उत्तरदाता के लिए स्वीकार्य नहीं थी, क्योंकि मृतक कर्मचारी एक आकस्मिक श्रमिक था।

5. विद्वान न्यायाधिकरण ने रेलवे सेवा (पेंशन) नियम, 1993 (संक्षेप में 'पेंशन नियमों' के लिए) के नियम 18 पर भरोसा करते हुए विशेष रूप से नियम 18 के उप-नियम (3) में ओए की अनुमति दी। याचिकाकर्ता / प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया था कि वे पात्रता की तारीख से प्रतिवादी / मूल आवेदक को पारिवारिक पेंशन प्रदान करें और बकाया राशि का भुगतान भी करें।

6. याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पेंशन नियम, विशेष रूप से नियम 18, आकस्मिक श्रम के मामले में लागू नहीं होगा, इसलिए, प्रतिवादी / मूल आवेदक पारिवारिक पेंशन का हकदार नहीं था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि किसी भी समय प्रतिवादी-मूल आवेदक के पति को अस्थायी रेलवे सेवक के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था, न ही, उसे नियमित ग्रुप डी पद पर नियमित किया गया था, तदनुसार, पेंशन नियमों के

अनुसार, एक आकस्मिक श्रमिक पेंशन का अधिकारी नहीं है।

7. प्रतिवादी / मूल आवेदक की ओर से प्रस्तुत हुए विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि कर्मचारी, निश्चित रूप से, एक आकस्मिक श्रमिक के रूप में काम पर रखा गया था, लेकिन बाद में, 1 वर्ष 3 महीने और 16 दिनों की आयु छूट देने के बाद 1 जनवरी 1985 से अस्थायी स्थिति दिया गया था। तदनुसार, यह आग्रह किया जाता है कि कर्मचारी को चतुर्थ श्रेणी पद के लिए अस्थायी स्थिति प्रदान किया गया था/ नियमित किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधिकरण के आक्षेपित निर्णय में यह नोट किया गया है कि प्रतिवादी / मूल आवेदक को कर्मचारी की मृत्यु पर अनुकंपा नियुक्ति दी गई थी, जिसका अर्थ है कि यदि कर्मचारी अस्थायी रेलवे सेवक या नियमित कर्मचारी नहीं होता, तो प्रतिवादी को अनुकंपा नियुक्ति नहीं दी गई होती।

8. इसके अलावा, यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी/मूल आवेदक का मामला रेलवे स्थापना मैनुअल के अध्याय XXIII के तहत धारा (ए) गैर-राजपत्रित कर्मचारी (1) अस्थायी रेलवे कर्मचारी नियम 2301 के अनुसार शासित होगा, जो कर्मचारी की मृत्यु की तारीख यानी 1988 पर लागू था। वह आगे प्रस्तुत करता है कि नियम को परिभाषित करना बाद में अस्थायी रेल सेवक को संशोधित / संशोधित किया गया, जैसा कि अध्याय XV खंड (1) (संशोधित परिवर्धन 1989) में दर्शाया गया है और अस्थायी कर्मचारियों में रेल सेवकों और

अस्थायी कर्मचारियों के विकल्प के लिए लागू निबंधन और शर्तें अराजपत्रित कर्मचारी नियम (1501) में दर्शाया गया है। यह आग्रह किया जाना चाहिए कि 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रम' शब्द को बाद में 1989 में परिभाषा में शामिल किया गया था, जिसे पहले के नियम में बाहर नहीं रखा गया था। इसलिए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि पहले 'आकस्मिक श्रम' को 'अस्थायी रेलवे कर्मचारी' की परिभाषा से बाहर रखा गया था, और चूंकि कर्मचारी को 1989 से पहले 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रम' प्रदान किया गया था, इसलिए उसकी पत्नी / विधवा पारिवारिक पेंशन की हकदार होगी। दूसरे शब्दों में, यह आग्रह किया जाता है कि 1989 में शामिल किए गए 'अस्थायी स्थिति वाले आकस्मिक श्रम' को छोड़कर नियम को पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है ताकि प्रतिवादी को गैर-उपयुक्त बनाया जा सके और उसकी पारिवारिक पेंशन से वंचित किया जा सके।

9. यह आग्रह किया जाता है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने पारिवारिक पेंशन देने में कोई अवैधता या विकृति नहीं की है, रिट याचिका योग्यता से रहित होने के कारण खारिज की जा सकती है।

10. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियां विचार के लिए आती हैं।

11. विचार के लिए उठने वाला एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या प्रतिवादी / मूल आवेदक पेंशन नियमों के तहत पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र और अधिकारी था, या

विकल्प में पेंशन का अधिकारी 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रमिक' है।

12. पेंशन नियमावली के नियम 18(1) में अन्य बातों के साथ-साथ अस्थायी रेल सेवक को पेंशन देने का प्रावधान है। नियम इस प्रकार है:

नियम -18: अस्थायी रेलवे कर्मचारी को पेंशन, सीमावर्ती या मृत्यु लाभ -

(1) एक अस्थायी रेल सेवक जो कम से कम दस वर्ष की अस्थायी सेवा प्रदान करने के बाद उपयुक्त चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा आगे की रेल सेवा के लिए स्थायी रूप से अक्षम घोषित किए जाने पर सेवानिवृत्त होता है, इन नियमों के अधीन स्थायी रेल सेवक के लिए स्वीकार्य पैमाने पर अधिवर्षिता, अमान्य पेंशन, सेवानिवृत्ति उपदान और पारिवारिक पेंशन प्रदान करने का पात्र होगा।

13. नियम को पढ़ने पर यह प्रावधान है कि एक अस्थायी रेलवे कर्मचारी, जो सेवानिवृत्ति पर सेवानिवृत्त होता है या कम से कम 10 वर्ष की अस्थायी सेवा प्रदान करने के बाद आगे की रेलवे सेवा के लिए स्थायी रूप से अक्षम घोषित किया जाता है, वह स्थायी रेलवे सेवक के लिए स्वीकार्य सेवानिवृत्ति, सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी और पारिवारिक पेंशन प्रदान करने के लिए पात्र होगा। दूसरे शब्दों में, नियम पारिवारिक पेंशन अर्जित करने के लिए दो शर्तों को अनिवार्य करता है: (i) कर्मचारी को 'अस्थायी रेलवे सेवक' होना चाहिए; (ii) कम से कम 10 वर्षों के लिए सेवा प्रदान की जानी चाहिए।

14. नियम 18 के उप-नियम (3) में अस्थायी रेलवे कर्मचारी की मृत्यु की स्थिति में पारिवारिक पेंशन का प्रावधान है। नियम 18 का उप-नियम (3) निकाला गया है:

अस्थायी रेल कर्मचारी की मृत्यु की स्थिति में उसका परिवार उसी पैमाने पर पारिवारिक पेंशन और मृत्यु ग्रेच्युटी का पात्र होगा जो इन नियमों के तहत स्थायी रेल सेवकों के परिवारों के लिए स्वीकार्य है।

15. दूसरे शब्दों में, नियम यह आदेशित करता है कि किसी 'अस्थायी रेल सेवक' की मृत्यु की स्थिति में, उसका परिवार नियमों के तहत स्थायी रेलवे सेवक के परिवारों के लिए स्वीकार्य पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र होगा। यह 10 साल की सेवा को अनिवार्य नहीं करता है, जिसे अस्थायी रेलवे सेवक के संबंध में संतुष्ट करना आवश्यक है, जो सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने या स्थायी रूप से अक्षम घोषित होने पर सेवानिवृत्त होता है। इस नियम में 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रम' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है।

16. प्रतिवादी / मूल आवेदक की पारिवारिक पेंशन की पात्रता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि कर्मचारी को 'अस्थायी रेलवे सेवक' प्रदान किया गया था या नहीं। इस बात पर विवाद नहीं किया जा रहा है कि कर्मचारी को नैमित्तिक श्रमिक के रूप में नियुक्त किया गया था और रेलवे बोर्ड के दिनांक 1 जून, 1985 के परिपत्र के अनुसार अपेक्षित दिन / वर्ष लगाने पर नैमित्तिक श्रमिक को अस्थायी स्थिति प्रदान किया जाएगा।

कर्मचारी को दिनांक 25 नवंबर 1985 के आदेश द्वारा 1 जनवरी 1985 से 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रमिक' का स्थिति प्रदान किया गया था। आदेश में लिखा है, '..... उल्लिखित परियोजना के अंतर्गत इस उप-मंडल पर कार्यरत नैमित्तिक श्रमिक, जिनकी सेवा 1.1.84 की स्थिति के अनुसार 360 दिनों के निरंतर कार्य दिवसों सहित 3 वर्ष से अधिक लेकिन 5 वर्ष से कम (1551 दिन) की सेवा है, को प्रत्येक के समक्ष दर्शाए गए ग्रेड और स्केल में 1.1.84 से अस्थायी स्थिति दिया जा रहा है:' ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मचारी को 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रमिक' का स्थिति देते हुए आयु में छूट दी गई थी। इसके बाद 1988 में कर्मचारी की मृत्यु हो गई। स्पष्ट है कि, कर्मचारी की मृत्यु पर वह 'अस्थायी रेलवे सेवक' के रूप में काम नहीं कर रहा था। इसलिए पेंशन नियमावली का नियम 18 उस पर लागू नहीं होता था।

17. रेलवे स्थापना मैनुअल नियम 2301 के तहत, एक आकस्मिक श्रमिक को अस्थायी रेलवे सेवक की परिभाषा से बाहर रखा गया है। नियम इस प्रकार है:

'अस्थायी रेलवे सेवक' का अर्थ रेलवे या रेलवे बोर्ड के तहत किसी अन्य प्रशासन या कार्यालय में स्थायी पद पर ग्रहणाधिकार के बिना रेलवे सेवक है। इस शब्द में 'आकस्मिक श्रम', 'अनुबंध' या 'अंशकालिक' कर्मचारी या 'प्रशिक्षु' शामिल नहीं हैं।

18. प्रश्न यह उठता है कि क्या अस्थायी स्थिति वाले नैमित्तिक श्रमिक पेंशन/पारिवारिक पेंशन के हकदार हैं।

19. तत्पश्चात, ऐसा प्रतीत होता है कि रेलवे स्थापना मैनुअल (संशोधित परिवर्धन 1989) में नियम 1501 के तहत नियम में संशोधन/परिमार्जन किया गया, जो इस प्रकार है:

'अस्थायी रेलवे सेवक' का अर्थ है रेलवे बोर्ड के तहत किसी रेलवे या किसी अन्य प्रशासन या कार्यालय में स्थायी पद पर ग्रहणाधिकार के बिना रेलवे सेवक। इस शब्द में 'आकस्मिक श्रम' शामिल नहीं है, जिसमें 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रम', एक 'अनुबंध' या 'अंशकालिक' कर्मचारी या 'प्रशिक्षु' शामिल हैं।

20. यह नियम पूर्व के नियम के अनुरूप है, सिवाय इसके कि अस्थायी स्थिति के साथ नैमित्तिक श्रम को 'अस्थायी रेल सेवक' की परिभाषा से नैमित्तिक श्रम की ऐसी श्रेणी/वर्ग को बाहर रखा गया था। इंदर पाल यादव और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए फैसले के बाद रेलवे द्वारा संशोधन को शामिल किया गया था। इसके बाद नैमित्तिक श्रमिकों में से अस्थायी स्थिति वाले नैमित्तिक श्रम की श्रेणी सृजित की गई। इस स्तर पर 'नैमित्तिक श्रम' की परिभाषा पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा। नियम 2501 निकाला गया है:

नैमित्तिक श्रम से तात्पर्य उन श्रमिकों से है जिनका नियोजन मौसमी, सविराम, विकीर्ण या अल्प अवधि में फैला हुआ होता है। इस तरह के श्रम को प्रायः निकटतम उपलब्ध स्रोत से भर्ती किया जाता है। यह स्थानांतरण के लिए उत्तरदायी नहीं है, और स्थायी और अस्थायी कर्मचारियों पर लागू शर्तें ऐसे श्रम पर लागू नहीं होती हैं।

21. प्रतिवादी/मूल आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि चूंकि 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रम' शब्द 'अस्थायी रेलवे सेवक' की पूर्व परिभाषा का महत्वपूर्ण भाग नहीं था, इसलिए यह प्रतिवादी के मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि संशोधन से पहले 1988 में कर्मचारी की मृत्यु हो गई थी। संशोधन से पहले कर्मचारी को अस्थायी स्थिति प्रदान किया गया था, जिसे भूतलक्षी प्रभाव से 'अस्थायी रेलवे सेवक' की पूर्व परिभाषा में से बाहर नहीं किया जा सकता है, इसलिए, यह आग्रह किया जाता है कि प्रतिवादी / मूल आवेदक कर्मचारी की मृत्यु पर नियमों के तहत स्वीकार्य पारिवारिक पेंशन का पात्र है।

22. हमारी राय में प्रतिवादी/मूल आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क मिथ्या है और नियम को उल्टा पढ़ने पर आधारित है।

23. उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुपालन में 'अस्थायी रेल सेवक' की परिभाषा में नैमित्तिक श्रमिक, रेलवे को शामिल नहीं किया गया है, जिसमें इंदर पाल यादव (सुप्रा) ने नैमित्तिक श्रमिक का स्थिति बढ़ाया है,

जिन्होंने रेलवे में अपेक्षित संख्या में दिनों/वर्षों की सेवा की थी। 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रमिक' होने के कारण इस श्रेणी को वेतनमान में उच्च वेतन प्रदान किया गया था और वे ग्रेच्युटी के हकदार भी थे। लेकिन साधारण 'नैमित्तिक श्रम' के साथ-साथ 'अस्थायी स्थिति वाले नैमित्तिक श्रम', अर्थात् नैमित्तिक श्रम के एक वर्ग के भीतर के वर्ग को 'अस्थायी रेल सेवक' की परिभाषा से बाहर रखा जाता रहा। किसी भी तरह से यह नहीं कहा जा सकता है कि 'अस्थायी रेलवे सेवक' की परिभाषा में 'अस्थायी स्थिति वाले आकस्मिक श्रमिक' को शामिल नहीं किया गया था, इसलिए अस्थायी स्थिति वाला नैमित्तिक श्रमिक पेंशन का हकदार है। 'अस्थायी रेलवे सेवक' की परिभाषा से 'अस्थायी स्थिति वाले आकस्मिक श्रमिक' को बाहर करने का अवसर तब पैदा हुआ जब इंदर पाल यादव (सुप्रा) में फैसले के बाद ऐसा वर्ग बनाया गया। तदनुसार, रेलवे ने अपने विवेक से अस्थायी रेल सेवक की परिभाषा में संशोधन करके इसे स्पष्ट किया ताकि अस्थायी स्थिति वाले नैमित्तिक श्रमिकों को बाहर रखा जा सके।

24. 'अस्थायी रेल कर्मचारी' की परिभाषाओं को पढ़ने पर, जैसा कि पहले और संशोधन से पहले था, नैमित्तिक श्रमिक, चाहे वह साधारण नैमित्तिक श्रमिक हो या अस्थायी स्थिति वाला हो, को 'अस्थायी रेलवे सेवक' की परिभाषा से बाहर रखा गया है। प्रतिवादी/मूल आवेदक के अधिवक्ता का यह तर्क कि चूंकि अधिकारियों ने आकस्मिक कर्मचारी को 'अस्थायी दर्जा' देते समय आयु में छूट दी थी, इसलिए यह माना

जाएगा कि कर्मचारी को रेलवे के प्रतिष्ठान पर नियमित किया जाना था। इसके अतिरिक्त, कर्मचारी की मृत्यु होने पर रेलवे ने प्रतिवादी/मूल आवेदक को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दी थी, जो इस मामले में नहीं दी जा सकती थी यदि मृतक कर्मचारी एक आकस्मिक श्रमिक होता। यह तर्क गलत है और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री से उत्पन्न नहीं हुआ है। आकस्मिक श्रमिक को अस्थायी स्थिति देते समय आयु में छूट नियमितीकरण के समान नहीं होगी क्योंकि आदेश में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि मृत कर्मचारी को 'अस्थायी रेलवे सेवक' का स्थिति दिया गया था।

25. दिनांक 25 नवम्बर, 1985 के आदेश में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उप-मंडल में कार्यरत नैमित्तिक श्रमिकों और 1 जनवरी, 1984 तक अपेक्षित वर्षों/सेवा दिवसों या निरंतर कार्य पूरा करने वाले नैमित्तिक श्रमिकों को अस्थायी स्थिति दिया जा रहा है। 22 अगस्त 1988 के आदेश, जिस पर प्रतिवादी ने प्रतिवादी/मूल आवेदक को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करते समय भरोसा किया था, निम्नानुसार है:

"महाप्रबंधक ने पूर्व आकस्मिक रिकॉर्ड सॉर्टर स्वर्गीय राम राज पांडेय की विधवा कमला पांडेय को एफए और सी.ए.ओ./कोर/इलाहाबाद के तहत एक नए आकस्मिक श्रमिक के रूप में नियुक्त करने के लिए अपनी अनुमति दे दी है।"

26. आदेश के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी/मूल आवेदक को एक आकस्मिक

श्रमिक के रूप में लगाया गया था। यह रेलवे की नियमित स्थापना पर किसी भी पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति नहीं है। प्रतिवादी/मूल आवेदक और उसके पति की स्थिति अस्थायी स्थिति वाले नैमित्तिक श्रमिक या नैमित्तिक श्रमिक की थी।

27. ऐसे नैमित्तिक श्रमिक, जो अस्थायी स्तर प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें तब तक रेलवे के स्थायी या नियमित प्रतिष्ठान में नहीं लाया जाएगा या नियमित नियोजन में नहीं लाया जाएगा जब तक कि उन्हें समय-समय पर निर्धारित तरीके से समूह घ पदों के लिए नियमित चयन बोर्ड के माध्यम से नहीं चुना जाता है।

28. विशिष्ट प्रश्न पर, यह सूचित किया जाता है कि प्रतिवादी/मूल आवेदक को बाद में रेलवे द्वारा 2005 में गुप-डी पद पर नियमित किया गया था। तब तक, वह 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रमिक' के रूप में काम करती थीं।

29. ऊपर उल्लिखित तथ्यों की पृष्ठभूमि में, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि किसी भी स्तर पर मृत कर्मचारी को 'अस्थायी रेलवे सेवक' के रूप में नियुक्त नहीं किया गया था, न ही उसे रेलवे द्वारा नियमित प्रतिष्ठान पर पद के लिए नियमित किया गया था। इन परिस्थितियों में, पेंशन नियमावली के नियम 18 को ध्यान में रखते हुए, मृत कर्मचारी नियमों के तहत अयोग्य होने के कारण पेंशन का पात्र नहीं

था। तदनुसार, प्रतिवादी/मूल आवेदक अपने पति के अपात्र होने पर पेंशन का पात्र नहीं था।

30. विद्वान न्यायाधिकरण ने न्यायाधिकरण के समक्ष याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए स्पष्ट रुख को स्वीकार किए बिना स्वयं को गलत तरीके से निर्देशित किया कि मृतक कर्मचारी न तो पात्र था और न ही पेंशन का पात्र था। विद्वान न्यायाधिकरण ने पेंशन नियमों की धारा 18 पर भरोसा करके पारिवारिक पेंशन प्रदान करने का निर्देश देने में गलती की, केवल इस कारण से कि कर्मचारी ने 1977 से 10 साल की अस्थायी सेवा में रखा था, इसके अलावा, न्यायाधिकरण की राय में, नियम 18 के उप-नियम (3) के अनुसार, नियमों के तहत 10 साल का जनादेश प्रदान नहीं किया गया है। इस तरह से बनाई गई राय पूरी तरह से नियम 18 की गलत व्याख्या पर है।

31. परिपत्र के अनुसार नैमित्तिक श्रमिक निरंतर नियोजन के निर्धारित दिनों के पूरा होने पर अस्थायी स्थिति प्राप्त करने के बाद और नियमित रूप से समामेलन से पहले उनके द्वारा प्रदान की गई सेवा की केवल आधी अवधि को पेंशन लाभ के उद्देश्य से अर्हक सेवा के रूप में गिनने के लिए पात्र होंगे। यह लाभ उनके नियमित नियोजन में समाहित होने के बाद ही स्वीकार्य होगा।

32. हमारी राय में, विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा सौंपा गया तर्क इस धारणा के आधार पर गलत आधार पर है कि मृतक कर्मचारी

एक 'अस्थायी रेलवे सेवक' था, जबकि पेंशन नियमों के तहत 'अस्थायी स्थिति के साथ आकस्मिक श्रम' अयोग्य है और 'अस्थायी रेलवे सेवक' की परिभाषा से बाहर रखा गया है।

33. सुप्रीम कोर्ट ने **महाप्रबंधक, उत्तर पश्चिम रेलवे और अन्य बनाम चंदा देवी²¹** में कहा कि रेलवे नियमों ने अस्थायी स्थिति रखने वाले आकस्मिक श्रम और अस्थायी रेलवे सेवक के बीच अंतर किया है। पेंशन नियम जिसके तहत रेलवे कर्मचारियों को पेंशन प्रदान की जाती है, अस्थायी स्थिति से सम्मानित नैमित्तिक कर्मचारियों पर लागू नहीं होते हैं जो केवल एक आकस्मिक कर्मचारी की सेवा की रक्षा करते हैं। दिए गए तथ्यों में, कर्मचारी, 29 दिसंबर 1988 को समाप्त हो गया, उसकी मृत्यु से पहले कर्मचारी को स्थानापन्न अस्थायी स्थिति दिया गया था, पारिवारिक पेंशन के लिए कर्मचारी की विधवा का दावा खारिज कर दिया गया था क्योंकि यह कर्मचारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए स्वीकार्य नहीं था। पैरा-32 निकाला गया है:

“एक आकस्मिक कर्मचारी को अस्थायी स्थिति देकर जो संरक्षित किया गया था, वह उसकी सेवा थी और इसके कारण पेंशन नियमों को लागू नहीं किया गया था. एक कामगार को ऐसा स्थिति नहीं दिया गया था और न ही दिया जा सकता था, जिसका वह पात्र नहीं था।”

3 4. इन परिस्थितियों में, रिट याचिका की **अनुमति** दी जाती है। केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद पीठ, इलाहाबाद द्वारा पारित 22 मई 2012 के आक्षेपित

आदेश को अपास्त और निरस्त किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 267

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

रिट-ए संख्या 53237/2014

सहजानंद राय

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री संजय कुमार राय,
श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई. श्री
सी.एस. चतुर्वेदी, एस.सी. श्री संजीव सिंह, सुश्री
वत्सला

ए. सिविल कानून - बैंक क्लर्क-कम-कैशियर
पेंशन - समझौता जापन दिनांक 10.04.2002
-समझौता, 2002 की धारा 6(बी) में यह
प्रावधान था कि घोर कदाचार का दोषी पाए
जाने वाले कर्मचारी को सेवानिवृत्ति लाभ,
अर्थात् पेंशन और/या भविष्य निधि और
ग्रेच्युटी के साथ और भविष्य में रोजगार से
अयोग्य घोषित किए बिना सेवा से हटाया जा
सकता है - दिनांक 27.04.2010 को पेंशन
योजना प्रारंभ करने के संबंध में समझौता
जापन, 2010 पर एक और समझौता हुआ -
समझौता, 2010 के तहत पेंशन योजना का
विकल्प चुनने के लिए एक विकल्प उपलब्ध
कराया गया था - बाद में बैंक द्वारा
24.08.2010 को एक परिपत्र पत्र जारी किया

गया, जिसमें यह प्रावधान था कि जो कर्मचारी
जुर्माने की कार्यवाही के कारण बैंक की सेवा में
नहीं रहे हैं, वे पेंशन योजना में शामिल होने
का विकल्प चुनने के पात्र नहीं हैं - एक बार
पक्षकारों के मध्य दिनांक 27-04-2010 को
एक समझौता हो जाने के बाद, जो उन सभी
श्रेणियों के कर्मचारियों को पेंशन संबंधी लाभ
प्रदान करता है जिनकी सेवाएं समाप्त कर दी
गई थीं, उन्हें एक परिपत्र द्वारा वंचित नहीं
किया जा सकता है जो उन कर्मचारियों के
बीच एक खंड बनाता है जिनकी सेवाएं
विभिन्न कारणों से समाप्त कर दी गई हैं -
समझौता, 2010 के विपरीत कोई भी प्रावधान
परिपत्र के माध्यम से नहीं डाला जा सकता,
जो कर्मचारियों के विरुद्ध है (पैरा 12)।

बी. याचिकाकर्ता को समझौते, 2002 की धारा
6(बी) के तहत सेवा से हटा दिया गया था,
जो सेवानिवृत्ति लाभ, अर्थात् पेंशन और/या
भविष्य निधि और ग्रेच्युटी के साथ सेवा से
हटाने का प्रावधान करता है - याचिकाकर्ता ने
समझौते, 2010 की धारा 6(बी) के तहत
पेंशन योजना के लिए अपना विकल्प प्रस्तुत
किया, जिसे अस्वीकार कर दिया गया -
आयोजित, समझौते, 2002 की धारा 6(बी) के
साथ-साथ बैंक ऑफ बड़ौदा में सर्वोच्च
न्यायालय के निर्णय के अनुसार, याचिकाकर्ता
सेवानिवृत्ति लाभों का पूरी तरह से अधिकारी है
और इसे एक परिपत्र के माध्यम से नहीं छीना
जा सकता है, जो समझौते, 2010 (पैरा 14)
का उल्लंघन है।

स्वीकृत (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

बैंक ऑफ बड़ौदा बनाम एस.के. कूल (मृत) द्वारा विधिक वारिसान और अन्य; (2014) 2 एससीसी 715

2. एस.बी.आई. बनाम गोलाम जिलानी एम.ए.टी. -1053 ऑफ 2018

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार राय की सहायता से श्री अशोक खरे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी सं० 2 से 5 (प्रत्यर्थी-बैंक) के विद्वान अधिवक्ता सुश्री वत्सला को सुना।

वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता द्वारा उप-क्षेत्रीय प्रबंधक, बैंक ऑफ इंडिया, क्षेत्रीय कार्यालय, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 13.10.2010 व 11.08.2014 को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को पेंशन तथा अवकाश नकदीकरण से वंचित कर दिया गया है तथा साथ-साथ परिपत्र दिनांकित 24.08.2010 के पैरा-3 को भी चुनौती दी गई है।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कथन किया कि याचिकाकर्ता को दिनांक 13.08.1988 को जिला भदोही में प्रत्यर्थी-बैंक ऑफ इंडिया (एतदपश्चात "बैंक" के रूप में संदर्भित) जो कि एक राष्ट्रीयकृत बैंक है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद-12 के दायरे में आता है, के अंतर्गत लिपिक-सह-कैशियर के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता को विभिन्न स्थानों पर तैनात किया गया और अंत में, उसे अक्टूबर 2001 में जिला जौनपुर

में तैनात किया गया, जहां उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई। उसे विभागीय आरोप पत्र दिनांकित 05.01.2002 जारी किया गया, जिस पर जांच अधिकारी द्वारा जांच रिपोर्ट दिनांक 11.02.2002 प्रस्तुत की गई। जांच रिपोर्ट याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिनांकित 14.06.2002 के साथ प्रदान की गई। याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया और अंततः मुख्य प्रबंधक/ अनुशासन प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांकित 19.09.2002 द्वारा याचिकाकर्ता को समझौता ज्ञापन दिनांकित 10.04.2002 के खंड 6 (बी) (एतदपश्चात "समझौता, 2002" के रूप में संदर्भित) के संदर्भ में सेवा से हटाने की शास्ति लगाते हुए दंडित किया गया। उस आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने क्षेत्रीय प्रबंधक, वाराणसी जोन, वाराणसी के समक्ष अपील दायर की। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को दिनांक 28.03.2003 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। आदेश दिनांकित 19.09.2002 व 28.03.2003 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका सं० 17841/2003 (सहजानंद राय बनाम बैंक ऑफ इंडिया व अन्य) दायर की, जिसे भी आदेश दिनांकित 24.01.2007 द्वारा खारिज कर दिया गया। उस आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने विशेष अपील सं० 251/2007 (सहजानंद राय बनाम बैंक ऑफ इंडिया व अन्य) दायर की, जिसे भी आदेश दिनांकित 09.12.2009 द्वारा खारिज कर दिया गया। अंत में, याचिकाकर्ता ने विशेष अनुमति अपील (सिविल) सं० 9596/2010 दायर की, जिसे आदेश दिनांकित 09.04.2010 द्वारा वापस

लेने के रूप में अपीलकर्ता को समीक्षा याचिका के माध्यम से उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दिया गया। इसके पश्चात, याचिकाकर्ता ने विशेष अपील सं० 251/2007 में पारित खंडपीठ के निर्णय दिनांकित 09.12.2009 की समीक्षा की मांग करते हुए समीक्षा याचिका दायर की। समीक्षा याचिका को इस न्यायालय की खंडपीठ ने आदेश दिनांकित 30.07.2010 द्वारा खारिज कर दिया। उपरोक्त निर्णय के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने पुनः विशेष अनुमति अपील (सिविल) सं० 30627/2010 दायर की, जिसे भी आदेश दिनांकित 15.11.2010 द्वारा खारिज कर दिया गया। उन्होंने आगे कहा कि उपरोक्त मुकदमों के परिणामस्वरूप, आदेश दिनांकित 19.09.2002 द्वारा याचिकाकर्ता पर लगाया गया दंड अंतिम रूप ले चुका है।

उन्होंने आगे कहा कि आक्षेपित आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ता को खंड 6 (बी) समझौता, 2002 के अंतर्गत सेवा से हटा दिया गया था, जो सेवानिवृत्ति लाभ अर्थात् पेंशन और/या भविष्य निधि और ग्रेच्युटी आदि के साथ सेवा से हटाने का प्रावधान करता है। चूंकि याचिकाकर्ता को पेंशन का भुगतान नहीं किया गया था, इसलिए, उन्होंने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अंतर्गत आवेदन दायर किया, जिसका याचिकाकर्ता को संप्रेषण दिनांकित 26.12.2010 के माध्यम से उत्तर दिया गया कि भविष्य निधि और ग्रेच्युटी मद के अंतर्गत याचिकाकर्ता को देय कुल राशि को उसे उक्त बैंक एवं बैंक ऑफ इंडिया एम्प्लॉइज कोऑपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी लिमिटेड द्वारा प्रदत्त ऋणों के लिए समायोजित कर दिया गया। उन्होंने आगे कहा कि

27.04.2010 को, बैंकिंग उद्योग में अंशदायी भविष्य निधि के बदले दूसरे सेवानिवृत्ति लाभ के रूप में पेंशन योजना शुरू करने के संबंध में भारतीय बैंक संघ और वर्कमेन एसोसिएशन के मध्य, समझौता जापन (एतदपश्चात "समझौता, 2010" के रूप में संदर्भित) हुआ। समझौता, 2010 के अंतर्गत, पेंशन योजना को चुनने का विकल्प उपलब्ध कराया गया तथा यह उन कर्मचारियों के लिए भी उपलब्ध था जो संबंधित बैंक में सेवा में नहीं रह गए थे। याचिकाकर्ता ने उपरोक्त समझौते के संदर्भ में पेंशन योजना चुनने के लिए अपना विकल्प प्रस्तुत किया, जिसे बैंक द्वारा जारी परिपत्र दिनांकित 24.08.2010 (एतदपश्चात "परिपत्र" के रूप में संदर्भित) के संदर्भ में आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था, जिसके अनुसार पेंशन योजना उन कर्मचारियों को उपलब्ध नहीं होगी जिनकी सेवाएँ अनुशासनात्मक कार्यवाही के परिणामस्वरूप समाप्त की गई हो। पेंशन की मंजूरी के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करते हुए आक्षेपित आदेश दिनांकित 11.08.2014 भी पारित किया गया है।

उन्होंने दृढ़ता से कथन किया कि समझौता, 2010 ने अंशदायी भविष्य निधि के सभी सदस्यों को बैंक के कर्मचारी होने या बैंक के कर्मचारी नहीं रहने की उनकी वर्तमान स्थिति के बावजूद एक विकल्प उपलब्ध कराया है। समझौता, 2010 में ऐसा कोई खंड मौजूद नहीं है, जो याचिकाकर्ता को पेंशन के लिए अपने विकल्प का प्रयोग करने से रोक सके। इसके अतिरिक्त, परिपत्र का खंड 3, जिस पर याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करने में प्रत्यर्थागण द्वारा विश्वास व्यक्त किया गया

है, वह समझौता, 2010 के विपरीत एक खंड है, जिसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। समझौता, 2010 की बाध्यकारी शर्तों में प्रत्यर्थी-बैंक द्वारा जारी परिपत्र के माध्यम से कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्यर्थी बैंक के अंतर्गत पेंशन/अवकाश नकदीकरण की पात्रता साख पर 10 वर्ष की अर्हक सेवा पर आधारित है और याचिकाकर्ता ऐसी आवश्यकताओं को पूर्ण कर रहा है क्योंकि वह दिनांक 13.08.1988 से सितंबर, 2002 तक लगातार सेवा में था। याचिकाकर्ता को उसके ऋणों के प्रति अंशदायी भविष्य निधि की राशि के समायोजन पर कोई आपत्ति नहीं है, जैसा कि उप क्षेत्रीय प्रबंधक के संप्रेषण दिनांकित 26.12.2010 में उल्लेख किया गया है, परन्तु इसकी कटौती के पश्चात, याचिकाकर्ता को पेंशन/अवकाश नकदीकरण की राशि का भुगतान किया जाना चाहिए था। आगे यह कथन किया गया कि इसी तरह का बिन्दु दिनांक 11.12.2013 को निस्तारित बैंक ऑफ बड़ादा बनाम एस.के. कूल (मृत) द्वारा विधिक प्रतिनिधि व अन्य (2014) 2 एस.सी.सी. 715 (सिविल अपील सं0 10956/2013) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने विस्तृत निष्कर्ष के साथ माना है कि सेवानिवृत्ति लाभ के साथ सेवा से हटाने के दंड के मामले में, कर्मचारी द्विपक्षीय समझौते से उत्पन्न लाभों का हकदार होगा। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि परिपत्र द्वारा द्विपक्षीय समझौता में कोई समावेश नहीं किया जा सकता है तथा बैंक ऑफ बड़ादा (उपरोक्त) के मामले में सेवानिवृत्ति की परिभाषा पर बहुत अच्छी तरह से विचार किया गया है, जो यह प्रावधान करता है कि जिन

कर्मचारियों को समझौता, 2002 के खंड 6 (बी) के अंतर्गत सेवानिवृत्ति लाभ के साथ सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है, वह भी पेंशन लाभ के हकदार हैं, जिसमें ऐसे कर्मचारी भी शामिल हैं जिन्हें दंड दिया गया है।

इसके विपरीत, सुश्री वत्सला ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्कों का कड़ा विरोध किया, परन्तु विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा तर्क किए गए तथ्यों का खंडन नहीं कर सकीं। उन्होंने मात्र यह कथन किया कि इसी तरह का मुद्दा कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष भारतीय स्टेट बैंक बनाम गोলাম जिलानी (एम.ए.टी. -1053/2018) के मामले में दिनांक 18.02.2019 को निस्तारित किया गया था। उक्त मामले में, समझौता, 2002 के खंड 6 (बी) के अंतर्गत सेवा समाप्ति के पश्चात, पेंशन को अस्वीकार कर दिया गया था तथा न्यायालय ने अंततः माना कि दंड के उपरांत, उसे पेंशन से वंचित करना सही है।

मैंने उभयपक्षों के अधिवक्तागण के तर्कों पर विचार किया और अभिलेखों के साथ-साथ ऊपर उद्धृत निर्णयों का भी अवलोकन किया।

यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता को समझौता, 2002 के खंड 6 (बी) के अंतर्गत सेवा समाप्ति का दंड दिया गया था, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने शीर्ष न्यायालय तक लड़ाई लड़ी परन्तु सफल नहीं हो सका।

समझौता, 2002 का खंड 6(बी) नीचे उद्धृत किया गया है:-

“6. घोर कदाचार के दोषी पाए गए किसी कर्मचारी को;

(ए)

(बी) सेवानिवृत्ति लाभ अर्थात पेंशन और/या भविष्य निधि और ग्रेच्युटी के साथ सेवा से हटा दिया जाएगा, जो प्रासंगिक समय पर प्रचलित नियमों या विनियमों के अंतर्गत देय होगा और भविष्य के रोजगार से अयोग्यता के बिना, या”

समझौता, 2002 के खंड 6 के अवलोकन से, इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता को सेवा से हटा दिया गया था परन्तु सेवानिवृत्ति लाभ अर्थात पेंशन और/या भविष्य निधि तथा ग्रेच्युटी से वंचित नहीं किया गया था, जैसा कि प्रासंगिक समय पर प्रचलित नियमों या विनियमों के अंतर्गत देय होगा। याचिकाकर्ता को भविष्य में रोजगार के लिए भी अयोग्य नहीं ठहराया गया।

बाद में, अंशदायी निधि के बदले दूसरे सेवानिवृत्ति लाभ के रूप में बैंकिंग उद्योगों में पेंशन योजना शुरू करने के संबंध में भारतीय बैंक संघ और बैंक कर्मचारी संघ के बीच एक और समझौता, 2010 हुआ। समझौता, 2010 पेंशन योजना को चुनने के लिए एक विकल्प प्रदान करता है और यह उन कर्मचारियों के लिए उपलब्ध था जो संबंधित बैंक के रोजगार में सेवा से बाहर हो गए थे। **समझौता, 2010** का प्रासंगिक पैरा नीचे उद्धृत किया गया है:-

“4. वे कर्मचारी जो राष्ट्रीयकृत बैंकों के मामले में 29 सितंबर 1995 को या उसके पश्चात या भारतीय स्टेट बैंक के सहयोगी बैंकों के मामले में 26 मार्च 1996 को न्यूनतम 15 वर्ष की सेवा प्रदान करने के उपरांत विशेष योजना के अंतर्गत स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के कारण सेवा में नहीं रहे, वो योजना में शामिल होने का विकल्प चुनने वाले सेवानिवृत्त कर्मचारियों के लिए उल्लिखित नियमों और

शर्तों के अधीन पेंशन योजना में शामिल होने के विकल्प का उपयोग करने के लिए पात्र होंगे।”

इसके अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि प्रत्येक कर्मचारी, जो किसी भी कारण से राष्ट्रीयकृत बैंकों के मामले में 29 सितंबर 1995 को या उसके पश्चात व भारतीय स्टेट बैंक के सहयोगी बैंकों के मामले में 26 मार्च 1996 को, सेवा से बाहर हो गया, वो योजना का विकल्प चुनने का पात्र है। बाद में, ऐसे कर्मचारी जो अधिकारी सेवा विनियमन 19 के अंतर्गत त्याग पत्र/स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति/अक्षमता/चिकित्सा आधार पर/दंड कार्यवाही के कारण किसी अन्य प्रकार की समाप्ति के कारण, पेंशन लाभ लेने से वंचित करने के लिए परिपत्र जारी किया गया है तथा वे पेंशन योजना में शामिल होने का विकल्प चुनने के लिए पात्र नहीं हैं। परिपत्र का प्रासंगिक पैरा नीचे उद्धृत किया गया है:-

“3. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऐसे कर्मचारी जो अधिकारी सेवा विनियमन 19 के अंतर्गत त्याग पत्र/स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति/अक्षमता/चिकित्सा आधार पर/दंड कार्यवाही के कारण किसी अन्य प्रकार की समाप्ति के कारण, पेंशन लाभ लेने से वंचित करने के लिए परिपत्र जारी किया गया है तथा वे पेंशन योजना में शामिल होने का विकल्प चुनने के लिए पात्र नहीं हैं। इसके अलावा मौजूदा पेंशन विकल्प वाले पेंशन से सी.पी.एफ. में अपना विकल्प रद्द नहीं कर सकते हैं।”

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क इस कारण से सही है कि जब एक बार दिनांक 27.04.2010 को पार्टियों के बीच एक

समझौता हो गया, जो उन सभी श्रेणी के कर्मचारियों को पेंशन लाभ प्रदान करता है जिनकी सेवाएं समाप्त हो गई थीं, उन्हें एक परिपत्र द्वारा वंचित नहीं किया जा सकता है जो ऐसे कर्मचारियों के मध्य एक खंड बनाता है जिन कर्मचारियों की सेवाएँ विभिन्न कारणों से समाप्त हो गई हैं। वास्तव में, जब एक बार पक्षों के मध्य समझौता, 2010 आ गया, तो उसके विपरीत कोई भी ऐसा प्रावधान सर्कुलर के माध्यम से नहीं डाला जा सकता है जो कर्मचारियों के विरुद्ध हो। यही मुद्दा **बैंक ऑफ बड़ौदा (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की विषयवस्तु थी, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने विशिष्ट विचार रखा कि जिन कर्मचारियों को समझौता, 2002 के खंड 6 (बी) के अंतर्गत सेवा से हटा दिया गया है, वो सेवानिवृत्ति लाभ के लिए पात्र होंगे। निर्णय के प्रासंगिक पैरा सं0 14, 15 व 16 नीचे उद्धृत किए गए हैं-

"14. विनियमन प्रत्येक कर्मचारी को पेंशन लाभ का हकदार नहीं बनाता है। इसका आवेदन और पात्रता विनियमन के अध्याय 2 के अंतर्गत दी गई है जबकि अध्याय 4 अर्हक सेवा से संबंधित है। एक कर्मचारी जिसने न्यूनतम दस वर्ष की सेवा प्रदान की हो और अन्य शर्तों को पूरा करता हो, वो ही केवल विनियमन के अनुच्छेद 14 के अनुसार पेंशन के लिए अर्हता प्राप्त कर सकता है। इसलिए, अभिव्यक्ति "जैसा अन्यथा देय होगा" का अर्थ केवल ऐसे कर्मचारी होंगे जो पात्र हैं और पेंशन के लिए अर्हता प्राप्त करने के लिए न्यूनतम वर्ष की सेवा कर चुके हैं। हालाँकि, ऐसे कर्मचारी जो पात्र नहीं हैं और उन्होंने आवश्यक

वर्षों की अर्हक सेवा नहीं दी है, वे द्विपक्षीय समझौते के खंड 6 (बी) के अनुसार सेवा से हटाए जाने के बावजूद सेवानिवृत्ति लाभ के हकदार नहीं होंगे। खंड 6(बी) को द्विपक्षीय समझौते के कारण दंडों में से एक के रूप में शामिल किया गया। यह अन्यथा देय सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान का प्रावधान करता है।

15. द्विपक्षीय समझौता एक ऐसा दंड प्रदान करता है जो अन्यथा देय सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करता है। नियोक्ता द्वारा प्रचारित निर्माण से किसी भी स्थिति में कर्मचारियों को कुछ नहीं मिलेगा। क्या यह धोखाधड़ी वाला द्विपक्षीय समझौता नहीं होगा? जाहिर है ऐसा होगा। हमने जो देखा उसके परिप्रेक्ष्य से हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे कर्मचारी जो अन्यथा सेवानिवृत्ति लाभ के लिए पात्र हैं, उन्हें द्विपक्षीय समझौते के खंड 6 (बी) के संदर्भ में सेवा से हटा दिया गया है, वे सेवानिवृत्ति लाभ के हकदार होंगे। यह एकमात्र निर्माण है जो दोनों प्रावधानों में सामंजस्य स्थापित करेगा। निर्माण का यह सुस्थापित नियम है कि दो प्रावधानों के बीच स्पष्ट विरोध की स्थिति में उनकी व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि प्रभाव दोनों पर पड़े। इसलिए, हमारी राय है कि ऐसे कर्मचारी जो अन्यथा विनियमन के अंतर्गत सेवानिवृत्ति लाभों के हकदार हैं, यदि उन्हें सेवानिवृत्ति लाभों के साथ सेवा से हटाने का दंड दिया जाता है, तो वे उन लाभों के हकदार होंगे तथा ऐसे कर्मचारी जिनको समान दंड मिला हो किन्तु वे विनियमन के अंतर्गत सेवानिवृत्ति लाभ के लिए पात्र नहीं हैं, वे इसके हकदार नहीं होंगे।

16. तदनुसार, हमारा मानना है कि कर्मचारी के उत्तराधिकारी सेवानिवृत्ति लाभ के हकदार हैं। प्रत्यर्थी जिस पूरी राशि का हकदार पाया जाता है, उसे 6 प्रतिशत वर्ष की दर से ब्याज सहित इस आदेश की प्राप्ति/संप्रेषण की तिथि से 6 सप्ताह के भीतर प्रदान किया जाए।”

प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **भारतीय स्टेट बैंक (उपरोक्त)** के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है। उक्त मामला भारतीय स्टेट बैंक कर्मचारी पेंशन निधि नियम, 1955 के नियम 14 की व्याख्या के बारे में था। उस मामले में, याचिकाकर्ता नियम, 1955 के नियम 14 के प्रावधानों के अंतर्गत पेंशन लाभ प्राप्त करने का हकदार नहीं था क्योंकि वह नियम, 14 की आवश्यकता को पूरा नहीं कर रहा था। इसके अलावा, उस मामले में, पेंशन प्राप्त करने के लिए न्यूनतम आवश्यकता 20 वर्ष की अर्हक सेवा थी, जबकि वर्तमान मामले में, पेंशन के साथ-साथ अवकाश नकदीकरण के लिए अर्हक सेवा की न्यूनतम आवश्यकता 10 वर्ष है। याचिकाकर्ता का मामला है कि उसके पास 10 वर्ष की अर्हकारी सेवा है, जिससे प्रति शपथपत्र में इनकार नहीं किया गया। प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने ऐसा कोई नियम भी प्रस्तुत नहीं किया है जो **भारतीय स्टेट बैंक (उपरोक्त)** के मामले की तरह पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान पर रोक लगाता हो।

समझौता, 2002 के खंड 6 (बी) के साथ-साथ **बैंक ऑफ बड़ौदा (उपरोक्त)** में पारित शीर्ष न्यायालय के निर्णय के आलोक में, याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति लाभों के लिए पूरी

तरह से हकदार है और इसे परिपत्र के माध्यम से छीना नहीं जा सकता है, जो कि समझौता, 2010 का उल्लंघन है।

इसलिए, मामले के ऐसे तथ्यों के साथ-साथ शीर्ष अदालत द्वारा निर्धारित विधि के अंतर्गत, परिपत्र दिनांकित 24.08.2010 के पैराग्राफ-3 के साथ-साथ आक्षेपित आदेश दिनांकित 13.10.2010 एवं 11.08.2014 को अपास्त करते हुए सर्टिओरीरी की रिट जारी की जाती है।

तदनुसार, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

हर्जे के विषय में कोई आदेश नहीं।

प्रत्यर्थी-अधिकारियों को पेंशन/अवकाश नकदीकरण सहित सभी सेवानिवृत्ति लाभों का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है, बशर्ते याचिकाकर्ता बैंक के नियमों के अंतर्गत आवश्यक अन्य सभी आवश्यकताओं को पूरा करता हो।

बैंक को याचिकाकर्ता को बैंक तथा बैंक ऑफ इंडिया एम्प्लॉइज कोऑपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी लिमिटेड से दिए गए ऋण की राशि को समायोजित करने की स्वतंत्रता दी जाती है, यदि पहले से ही समायोजित नहीं किया गया है तो।

(2023) 4 ILRA 272

**मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष**

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

रिट-बी संख्या 14278/1986

**श्रीमती धनराजी एवं अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम**

उप निदेशक, चकबंदी, वाराणसी एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शशि कुमार द्विवेदी, श्री हनुमान किंकर, श्री वीकेएस चौधरी, श्री आरएस मोर्य, श्री मनोज कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री त्रिवेणी शंकर, श्री अवधेश कुमार, श्री आर.के. पांडे, श्री एस. राय, श्री ए.आर. दुबे, श्री एल.पी. सिंह, श्री मनीष पांडे.

सिविल कानून-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953-धारा 5(सी) (ii) और 12-याचिकाकर्ताओं के नामांतरण के दावे को निरस्त करने वाले आदेशों के विरुद्ध रिट याचिका- चकबंदी योजना के प्रभावी रहने के दौरान भूमिधर द्वारा संपूर्ण जोत को हस्तांतरित करने में चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी से पूर्व लिखित अनुमति की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है- धारा 5(सी)(ii) के उल्लंघन के कारण बिक्री विलेख को शून्य करार देकर नीचे के प्राधिकारियों ने स्पष्ट कानूनी त्रुटि की है- साक्ष्यों की पुनर्परीक्षा करना इस न्यायालय का कार्य नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि नीचे के तथ्य अधिकारी यहां-वहां छिटपुट कथनों के आधार पर अपने निष्कर्षों के आधार पर प्रासंगिक साक्ष्यों को न छोड़ें। (पैरा 46, 47, 50)

साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 107 और 108-धारा 107 यह धारणा उत्पन्न करती है कि व्यक्ति जीवित है यदि यह दर्शित किया जाता है कि वह तीस वर्ष के भीतर जीवित था, और

यह सिद्ध करने का भार कि वह मर चुका है, उस व्यक्ति पर है जो यह तथ्य प्रस्तुत करता है- धारा 108, धारा 107 के परन्तुक के स्वरूप में है, यद्यपि यह एक स्वतंत्र धारा है, यह 'परन्तु यह कि जब' शब्दों से आरम्भ होती है। सामंजस्यपूर्ण ढंग से व्याख्या की गई, धारा 107 और 108, इस प्रश्न पर एक अभिन्न योजना बनाती हैं कि सामान्य घटनाक्रम में किसे जीवित माना जाए और किसे मृत माना जा सकता है- धारा 108 के अंतर्गत सिविल मृत्यु की धारणा केवल इसलिए नहीं बनाई जा सकती कि कुछ परिचित व्यक्तियों ने पिछले सात वर्षों की अवधि में गुमशुदा व्यक्ति के बारे में नहीं सुना है। विवादित आदेश निरस्त- वाद चकबंदी अधिकारी को प्रेषित किया गया। (पैरा 55, 57, 74)

याचिका स्वीकृत (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. ई. महबूब साहेब बनाम एन. सब्बारायण चौधरी एवं अन्य, (1982) 1 एससीसी 180
2. नारायणन राजेंद्रन और अन्य बनाम लक्ष्मी सरोजिनी एवं अन्य, (2009) 5-एससीसी 264
3. कौंडीबा दगडु कदम बनाम सावित्रीबाई सोपान गुजर और अन्य, (1999) 3 एससीसी 722
4. श्रीमती. राम रति एवं अन्य बनाम ग्राम समाज, जेहवा और अन्य, एआईआर 1974 सभी 106

4.इला श्रीमती धनराजी एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी वाराणसी एवं अन्य 373

5. फोरन सिंह एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 1993 (1) ए.डब्लू.सी. 192

6. पूर्वी पंजाब प्रांत बनाम बचन सिंह एवं अन्य, एआईआर 1957 पुंज 316

7. एलआईसी ऑफ इंडिया बनाम अनुराधा (2004) 10 एससीसी 131

8. फानी भूषण बनर्जी बनाम सुरजा कांत रॉय चौधरी और अन्य, 1907 एससीसी ऑनलाइन कैल 20: (1906-07) 11 सीडब्ल्यूएन 883

9. जेशंकर रेवाशंकर बनाम बाई दिवाली, एआईआर 1920 बॉम 85 (2)

10. मुहम्मद शरीफ और अन्य बनाम बंदे अली एवं अन्य, (1911) 8 एएलजे 1052

11. नारायण पिल्लई बनाम वेलायुथन पिल्लई, एआईआर 1963 मैड 385

12. सरूप सिंह बनाम बंटो और अन्य, (2005) 8 एससीसी 330

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं, जिनकी संख्या आठ है, ने सवाल उठाया है आदेश दिनांक 05.06.1986, 05.09.1985 और 02.11.1979 उप निदेशक चकबंदी, वाराणसी, कैप ज्ञानपुर, सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, वाराणसी (पश्चिम) और चकबंदी अधिकारी, ज्ञानपुर, जिला वाराणसी (अब भदोही) द्वारा पारित क्रमशः की वैधता पर। जिससे याचिकाकर्ताओं के उत्परिवर्तन के लिए अपने अधिकारों के दावे को भूमि पर खारिज कर दिया, जिसे इसके बाद और अधिक विस्तार से वर्णित किया जाएगा।

2. इस याचिका को जन्म देने वाले तथ्यों की मुख्य विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है, जो ये हैं:

एक बलराजी, चन्द्रशेखर की विधवा, निम्नलिखित प्लॉट नंबरों की दर्ज कार्यकाल धारक थीं, जिन्हें नीचे सारणीबद्ध रूप में दिखाया गया है, जिसमें पुराने नंबर और नए नंबर दर्शाए गए हैं।

पुराना नंबर	नया नंबर	चक नंबर
292, 293/1, 293/2, 345, 346, 347, 348/1, 349, 363, 364, 521, 1161/347, 1162/346	366	68
196, 197, 198, 199, 200, 201, 202, 203	331	
457, 475 476, 479, 480(mi), 481	306 अ	
482/1, 482/2, 483, 484, 485, 488/1, 569, 570, 571, 572, 573/2, 474, 475, 481 (mi.)	306 ब	

3. ऊपर उल्लिखित भूमि के अलावा, जो कृषि भूमि थी और, इसलिए, श्रीमती बलराजी के नाम एक चक के रूप में समेकित की गई, सम्बद्ध चक नं.68, श्रीमती बलराजी के पास कुछ प्लॉट नंबर भी थे जो 1953 के अधिनियम के तहत भूमि के रूप में योग्य नहीं थे और इसलिए, उन्हें चकबंदी योजना से बाहर रखा गया था। भूमि के भूखंड, जो बलराजी के

चक संख्या 68 के हिस्से में शामिल नहीं थे, नीचे तालिकाबद्ध रूप में दिखाए गए हैं:

चकबंदी कार्यों से बाहर रखी गयी भूमि	
पुराना नंबर	नया नंबर
102	799
167 ड	899
150 ड	847
156 ग	879
212 क	53(मिन)
218 ई	66(मिन)
378 ख	382

4. विवाद मूल वर्ष में श्रीमती बलराजी के नाम दर्ज भूमि को लेकर है, जिसमें चक संख्या 68 शामिल है। याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि विवादित भूमि याचिकाकर्ता संख्या 1 से 7 के पक्ष में याचिकाकर्ता संख्या 8, श्रीमती बलराजी द्वारा बेची गई थी पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 29.05.1974 द्वारा। बाद में, श्रीमती बलराजी द्वारा दिनांक 12.07.1974 को एक सुधार विलेख निष्पादित किया गया, चूंकि दिनांक 29.05.1974 के विक्रय विलेख में, याचिकाकर्ता संख्या 1 से 7 के पक्ष में हस्तांतरित भूखंडों में से एक का उल्लेख एक अनजाने लिपिकीय त्रुटि के कारण प्लॉट संख्या 161/347 के रूप में किया गया था, जिसकी माप 2 बिस्वा 17 धूर थी, जबकि बेचे गए प्लॉट की सही संख्या समान क्षेत्रफल के लिए 1161/347 थी।

5. आगे याचिकाकर्ताओं का यह मामला है कि जब विक्रय पत्र दिनांक 29.05.1974 को निष्पादित किया गया, तब तक काटे गए चक की पुष्टि हो चुकी थी और कार्यकाल धारकों ने अपने संबंधित चक पर कब्जा दे दिया था, इसलिए बिक्री विलेख दिनांक 29.05.1974 के माध्यम से, चक संख्या 68 का पूरा क्षेत्र बलराजी द्वारा याचिकाकर्ता संख्या 1 से 7 को हस्तांतरित कर दिया गया था। इसके अलावा, बिक्री विलेख ने भूमि के कुछ अन्य भूखंडों को भी हस्तांतरित कर दिया, जो चकबंदी योजना के बाहर थे। पुराने प्लॉट नंबर अब अस्तित्व में नहीं रहे और चक नंबर 68 चकबंदी कार्रवाई के दौरान दोबारा दिए गए चार नए नंबरों के रूप में पहचाने जाने योग्य हो गया था। इसलिए, यह याचिकाकर्ताओं का मामला है कि भूखंडों में से एक के उल्लेख में एक टंकड़गत अशुद्धि (टाइपोग्राफिक त्रुटि), जिसमें चक पुराने नंबर के संदर्भ में शामिल है, 29.05.1974 के बिक्री विलेख के माध्यम से हस्तांतरित संपत्ति की पहचान को प्रभावित नहीं करेगी (संक्षेप में), 'विक्रय विलेख'।

6. याचिकाकर्ताओं का यह भी मामला है कि हालांकि मूल वर्ष में श्रीमती बलराजी को भूमि के एक बड़े भूभाग पर दर्ज किया गया था।, एक श्रीमती देवराजी, बलराजी के मृत पति चंद्र शेखर की सौतेली बहन और दिवंगत चंद्र शेखर के चाचा राम जग ने बिक्री विलेख निष्पादित होने से बहुत पहले चकबंदी कार्रवाई के दौरान आपत्तियां दर्ज कीं, जिसमें उन्होंने चंद्र शेखर की जमीन में हिस्सेदारी का दावा किया था, जो की बलराजी के नाम दर्ज किया गया। उक्त आपत्तियों पर समझौता कर लिया गया और

श्रीमती देवराजी को चन्द्रशेखर द्वारा श्रीमती बलराजी को विरासत में मिली हिस्सेदारी में हिस्सा दिया गया। याचिकाकर्ताओं का मामला है कि किसी और ने 1953 के अधिनियम की धारा 9-ए के तहत आपतियां दर्ज नहीं कीं।

7. चकबंदी के अंत में चक संख्या 68 श्रीमती बलराजी के नाम पर कर दिया गया जिसमें भूमि के भूखंड शामिल थे, जो पहले से ही बलराजी के नाम पर दर्ज थे। याचिकाकर्ताओं की चक संख्या 68 में मुख्य रूप से भूमिधरी भूमि शामिल थी और इसमें से कुछ में सिरदारी भूमि भी शामिल थी। संदर्भित विक्रय विलेख में, चक संख्या 68 में शामिल सभी को स्थानांतरित करने के अलावा, बलराजी की उन भूमि को भी शामिल किया गया था, जिसे चकबंदी संचालन से बाहर रखा गया था, और बिक्री विलेख में विस्तृत रूप से अलग भूखंडों के रूप में दिखाया गया था। इस याचिका में विवाद चक संख्या 68 वाली भूमि के संबंध में है, जिसे इसके बाद 'विवादित भूमि' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

8. याचिकाकर्ताओं का यह भी मामला है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 से 6 तक एक ही परिवार के सदस्य हैं, जबकि याचिकाकर्ता संख्या 7 रुद्र प्रसाद, खिलोदर पांडे के पुत्र बलराजी के भाई हैं। इन सभी ने श्रीमती बलराजी द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख के माध्यम से विवादित भूमि में हित अर्जित किया है ने 1953 के अधिनियम की धारा 12 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें बिक्री विलेख के आधार पर उनके नाम के उत्परिवर्तन की मांग की गई। अधिनियम की

धारा 12 के तहत चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष उत्परिवर्तन के लिए अंतिम उल्लेखित आवेदन दायर किया गया था, क्योंकि प्रासंगिक समय पर, गांव में चकबंदी कार्यों को अभी भी डिनोटिफाइड नहीं किया गया था। याचिकाकर्ताओं के आवेदन को धारा 12 के तहत केस नंबर 611 के रूप में दर्ज किया गया था।

9. यह याचिकाकर्ताओं का मामला है कि उद्घोषणा जारी की गई थी, लेकिन कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई। आवेदन की सुनवाई में श्रीमती बलराजी, याचिकाकर्ता संख्या 8, ने सहायक चकबंदी अधिकारी के समक्ष गवाही दी, जिसमें उन्होंने अपने द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख के माध्यम से याचिकाकर्ता संख्या 1 से 7 के पक्ष में स्वामित्व के हस्तांतरण का समर्थन किया। सहायक चकबंदी अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 16.07.1974 द्वारा आवेदन स्वीकार कर लिया। चकबंदी अभिलेखों में नामान्तरण का क्रम दिनांक 07.08.1974 को किया गया।

10. ऐसा प्रतीत होता है कि कमला शंकर, जो ग्राम प्रधान थे, ने 12.09.1974 को सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.07.1974 के खिलाफ अपील दायर की, जिसमें याचिकाकर्ता संख्या 1 से 7 द्वारा किए गए उत्परिवर्तन आवेदन को मंजूरी दी गई थी। किसी अन्य व्यथित व्यक्ति द्वारा अपील नहीं की गई थी। चकबंदी के सहायक बंदोबस्त अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 12.09.1974 द्वारा अपील मंजूर की और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए चकबंदी अधिकारी को

भेज दिया। याचिकाकर्ता चकबंदी अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुए, लेकिन उनका कहना है कि मामले को ग्राम प्रधान कमला शंकर के कहने पर स्थगित कर दिया गया था, जो उनके प्रति शत्रुतापूर्ण था।

11. 24.11.1975 को आशाराम द्वारा 1953 के अधिनियम की धारा 12 के तहत आपतियों का एक और सेट दाखिल किया गया था, जिसमें उनके और श्रीमती बलराजी के बीच किसी प्रकार के बिक्री समझौते के आधार पर भूमिधारी अधिकारों का दावा किया गया था। बदले में, आशाराम ने कब्जे के आधार पर विवादित भूमि पर सिरदारी अधिकार का दावा किया। यहां यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि आशाराम द्वारा दायर की गई आपतियों में, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संलग्न है, उनके द्वारा अनुरोध किए गए उत्तराधिकार का कोई मामला नहीं है, जो उन्हें बलराजी के निधन के बाद बिना वसीयत से विवादित भूमि प्राप्त करने का अधिकार देता हो। हालाँकि, आशाराम ने कहा है कि बलराजी निःसंतान थी और उनकी चाची थीं, लेकिन वंश या विवाह के माध्यम से रिश्ते के किसी भी सटीक विवरण से यह संकेत नहीं मिलता है कि आशाराम बलराजी के उत्तराधिकारी कैसे थे, जो उन्हें विवादित भूमि का उत्तराधिकारी बनाने का हकदार बनाते थे। आशाराम द्वारा चकबंदी अधिकारी के समक्ष दायर धारा 12 के तहत अपनी आपतियों/आवेदन में कोई वंशावली भी प्रस्तुत नहीं की गई है, जो उन्हें बलराजी से उत्तराधिकारी के रूप में जोड़ती हो। आशाराम अपनी आपत्ति में बस इतना ही कहते हैं कि

करीब 7 या 8 साल पहले श्रीमती. बलराजी ने तीर्थयात्रा पर जाने की इच्छा व्यक्त की। इसके बाद आशाराम ने उसे तीर्थयात्रा करने के लिए 5000/- रुपये की राशि का भुगतान किया। श्रीमती बलराजी ने उक्त धनराशि के बदले में, विवादित भूमि का मालिकाना हक कब्जा आशाराम को दे दिया और कहा कि एक बार तीर्थयात्रा से वापस आने के बाद, 10,000/- रुपये का अतिरिक्त प्रतिफल प्राप्त करने के बाद वह आशाराम के पक्ष में एक विक्रय पत्र निष्पादित करेंगी। आपत्तियाँ आगे बताती हैं कि श्रीमती बलराजी अपनी तीर्थयात्रा से ग्राम डुहिया कभी नहीं लौटीं।

12. आशाराम द्वारा दायर आवेदन/आपतियों में यह भी कहा गया है कि उन्हें पता चला कि कुछ लोगों ने बलराजी के लिए एक धोखेबाज़ की स्थापना की थी और विवादित भूमि से संबंधित उनकी ओर से एक जाली बिक्री पत्र निष्पादित करवाया था (आशाराम को गलत हानि पहुंचाने के लिए)। आगे आपत्ति यह है कि विवादित भूमि पर आशाराम का कब्जा है और किसी अन्य का उस पर कोई अधिकार, स्वामित्व या हित नहीं है।

13. सार रूप में, जैसा कि पहले ही टिप्पणी की गई है, आशाराम की ओर से उत्परिवर्तन के लिए याचिकाकर्ताओं के दावे पर उत्परिवर्तन या आपत्ति के लिए आवेदन, बलराजी और आशाराम के बीच एक प्रकार के मौखिक समझौते से उत्पन्न होने वाले अधिकार पर आधारित है, और वैकल्पिक रूप से, विवादित भूमि का कब्जा दिया जाने से, वह यू.पी.

जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम के तहत सिरदारी अधिकारों का हकदार हो गया है।

14. आशाराम द्वारा दायर आपतियों/आवेदन के अलावा, गाँव सभा की ओर से प्रधान कमला शंकर द्वारा भी आपतियाँ दायर की गईं, जिसमें कहा गया कि बलराजी 10 साल पहले तीर्थ यात्रा पर गई थीं और आज तक वापस नहीं लौटीं और न ही उनके बारे में सुना गया है। गाँव सभा का यह भी मामला था कि उसके पास विरासत का हकदार कोई उत्तराधिकारी नहीं है, और इसलिए, उसकी ज़मीन गाँव सभा में निहित होगी। इसलिए, गाँव सभा ने प्रार्थना की कि श्रीमती बलराजी का नाम राजस्व अभिलेखों से मिटा देने के बाद, उक्त भूमि को गाँव सभा के खाते में दर्ज किया जाए।

15. पार्टियों के अनुरोध पर, चकबंदी अधिकारी ने निम्नलिखित मुद्दे तैयार किए (अंग्रेजी से हिंदी में अनुवादित):

"1. क्या धन राजी और अन्य, श्रीमती बलराजी द्वारा निष्पादित विक्रय पत्र के आधार पर, विवादित भूमि के कब्जे में भूमिधर हैं?

2. क्या श्रीमती. बलराजी तीर्थयात्रा को गयीं और आज तक नहीं लौटीं; और,

उसने विक्रय पत्र निष्पादित नहीं किया है? यदि हां तो इसका प्रभाव क्या होगा?

3. क्या धन राजी और अन्य के पक्ष में विक्रय पत्र वैध है?

4. क्या श्रीमती बलराजी निःसंतान मर गयीं और जमीन ग्राम सभा में निहित

हो गयी?

5. क्या ग्राम सभा द्वारा दायर आपतियाँ वैध हैं?

6. क्या आशाराम अपनी आपतियों के अनुसार विवादित भूमि पर भूमिधर हैं?"

16. चकबंदी अधिकारी ने मुद्दे संख्या 1, 2 और 3 को एक साथ निपटाया है। चकबंदी अधिकारी ने टिप्पणी की है कि श्रीमती बलराजी या जिस महिला ने उनके होने का दावा किया है द्वारा सात व्यक्तियों के पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित किया गया है। और ये सभी व्यक्ति अलग-अलग जिलों, जैसे वाराणसी, मिर्जापुर और जौनपुर के निवासी हैं। पेश हुई बलराजी ने अपनी गवाही में कहा है कि वह खरीददारों को नहीं जानती और उन्होंने उनके पक्ष में कोई विक्रय पत्र निष्पादित नहीं किया है। यह भी टिप्पणी की गई है कि किसी भी प्रतिवादी खरीददारों को गवाह के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। तब चकबंदी अधिकारी द्वारा यह देखा गया कि विक्रय विलेख में 35,808/- रुपये के बिक्री प्रतिफल का भुगतान दर्शाया गया है, जिसमें से 17,200/- रुपये का भुगतान किसी लेनदार को एक प्रोनोट पर दिखाया गया है, लेकिन कोई प्रोनोट या रसीद उत्पादित नहीं किया गया है। कहा जाता है कि 3700/- रुपये का भुगतान पहले किया गया था, लेकिन इस लेनदेन के बारे में कोई गवाह पेश नहीं किया गया है। इसके बाद यह टिप्पणी की गई कि गवाह सुरेंद्र नाथ ने बिक्री पत्र पर अपने हस्ताक्षरों की पहचान की है, लेकिन श्रीमती बलराजी के अंगूठे के निशान की पहचान नहीं की है।

17. तब चकबंदी अधिकारी द्वारा यह देखा गया कि श्रीमती बलराजी जिनको पेश किया गया को आशाराम ने असली बलराजी नहीं बल्कि धोखेबाज कहा है। श्रीमती बलराजी जिन्होंने गवाही दी है, कहा कि उनकी नजरें कमजोर हैं और उन्होंने आगे कहा है कि दो साल पहले जब उन्होंने विक्रय पत्र निष्पादित किया था, उस वक्त उनकी नजरें कमजोर थीं. ऐसा कहा जाता है कि बलराजी ने अपनी गवाही में कहा था कि बिक्री विलेख के निष्पादन के लिए उनके द्वारा कोई अनुमति नहीं ली गई थी। उन्होंने कहा है कि वह एक बार रजिस्ट्रार कार्यालय आई थीं. एक बार रजिस्ट्रार के कार्यालय में आने पर चकबंदी अधिकारी ने नाराजगी जताई है, क्योंकि वहां एक सुधार विलेख भी श्रीमती बलराजी द्वारा निष्पादित किया जाना बताया गया है।

18. चकबंदी अधिकारी ने बलराजी के पिता खिलोधर की गवाही से असंगठित साक्ष्यों को उठाया है, जिसमें कहा गया है कि खिलोधर ने कहा है कि बलराजी के भाई विक्रय पत्र निष्पादित होने की तिथि पर रजिस्ट्रार के कार्यालय में उपस्थित नहीं हुए थे, जबकि बलराजी का कहना है कि जब विलेख निष्पादित और पंजीकृत किया गया तो रजिस्ट्रार के कार्यालय में सभी सात विक्रेता उपस्थित थे। यह भी देखने में आया है कि बलराजी का कहना है कि उन्होंने रजिस्ट्रार के समक्ष 35,000-36,000/- रुपये प्राप्त किये थे और दो बार अंगूठा लगाया था।

19. यह भी देखा गया है कि बलराजी ने गवाही दी है कि उन्होंने विक्रेता से प्रस्तावित

बिक्री के बारे में बात की थी, लेकिन साथ ही यह भी कहा है कि उन्होंने विक्रय पत्र विशेषर बरहाई के बेटे या कालूराम बरहाई के पक्ष में निष्पादित नहीं किया था। उसने यह भी कहा है कि वह जय शंकर या विनोद कुमार (याचिकाकर्ता संख्या 4 और 5) को नहीं जानती है और उसने उनके पक्ष में कोई बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया है। इन तथ्यों से चकबंदी अधिकारी ने यह राय दी कि विक्रय पत्र बलराजी द्वारा निष्पादित नहीं है।

20. एक निश्चित गवाह रमा शंकर के बारे में, चकबंदी अधिकारी, ने पाया कि यद्यपि यह गवाह एक है, जिसने श्रीमती बलराजी की पहचान की है, लेकिन श्रीमती बलराजी ने गवाही दी है कि वह उन्हें नहीं जानती, न ही उक्त गवाह ने विक्रय पत्र की गवाही की है। इसके बाद यह देखा गया कि खिलोधर ने अपनी गवाही में गवाही दी है कि वह बलराजी के पिता हैं और आगे कहा कि उन्हें नहीं पता था कि बलराजी, जिन्होंने धन राजी और अन्य के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया था, वही व्यक्ति थे, जिन्होंने उनके बेटे रुद्र प्रसाद के पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित किया था। उन्होंने यह भी कहा है कि विक्रय पत्र के निष्पादन की तिथि पर वह बलराजी के साथ थे। तब चकबंदी अधिकारी द्वारा टिप्पणी की गई कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि उन्होंने बलराजी की पहचान क्यों न की हो। ऐसा देखा गया है कि इससे याचिकाकर्ताओं के मामले में संदेह पैदा होता है।

21. याचिकाकर्ताओं के गवाह दूधनाथ की गवाही का संदर्भ है, जिसने कहा है कि विक्रय

पत्र की तिथि पर याचिकाकर्ताओं का कब्जा था। गवाह ने यह भी कहा है कि कोई भी विक्रेता उपस्थित नहीं था, जबकि बलराजी ने कहा है कि विक्रय पत्र के निष्पादन की तिथि पर, सभी विक्रेता रजिस्ट्रार के कार्यालय में उपस्थित थे। चकबंदी अधिकारी द्वारा यह टिप्पणी की गई है कि दूधनाथ के पक्ष में कोई विक्रय पत्र निष्पादित नहीं किया गया है, इसलिए, उसे कब्जा दिए जाने का कोई सवाल ही नहीं है। उनकी गवाही को अविश्वसनीय मानकर खारिज कर दिया गया है। यह टिप्पणी की गई है कि श्रीमती धन राजी और अन्य (याचिकाकर्ता), की ओर से कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है जो साबित कर सकते हैं कि विवाद में भूमि पर उनका कब्जा है। यह भी देखा गया है कि विवादित भूमि वाले कुछ भूखंडों को श्रीमती बलराजी द्वारा सिरदारी के रूप में रखा गया था। जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने विक्रय पत्र निष्पादित करने की तिथि पर भू-राजस्व 20 गुना भुगतान किया था, लेकिन कोई भूमिधरी सनद रिकॉर्ड में दर्ज नहीं की गई है। उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि श्रीमती बलराजी द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख मान्य नहीं हैं।

22. इसके बाद चकबंदी अधिकारी ने यह पाया कि आशाराम, जगदंबा, सभाजीत, गिरधारी यादव और महेंद्र नाथ की ओर से और ग्राम डुहिया के पंचायत सचिव ने गवाही दी है। उन्होंने गांव से संबंधित परिवार रजिस्टर प्रस्तुत किया है और उक्त रजिस्टर में बलराजी का नाम दर्ज नहीं है। चकबंदी अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला है कि गांव के परिवार

रजिस्टर में बलराजी का नाम न होने से पता चलता है कि वह पिछले 10 वर्षों से ग्राम डुहिया में नहीं रहती थीं। तब यह देखा गया कि जगदम्बा प्रसाद, विजय नाथ और सभाजीत ने अपनी गवाही में कहा है कि श्रीमती बलराजी तीर्थयात्रा पर निकली थीं, लेकिन फिर कभी नहीं लौटीं। चकबंदी अधिकारी का मानना है कि इन गवाहों की गवाही पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। तब चकबंदी अधिकारी की अचानक टिप्पणी होती है कि इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि श्रीमती बलराजी सात साल से अधिक समय से लापता (लापता) हैं और उनकी नागरिक मृत्यु मान ली गई है। 29.07.1974 को बलराजी की उपस्थिति स्थापित नहीं होती। उक्त तथ्य को प्रधान कमला शंकर ने भी स्वीकार किया है कि श्रीमती. बलराजी तीर्थयात्रा पर निकली थीं और तब से उनका कोई अता-पता नहीं है। इन तथ्यों से चकबंदी अधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचे वह यह है कि श्रीमती. बलराजी 29.05.1974 को जीवित नहीं थीं, और इसलिए, धन राजी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित नहीं कर सकती। इसलिए श्रीमती धन राजी को बिक्री विलेख के तहत कोई शीर्षक नहीं मिलता है। इस प्रकार चकबंदी अधिकारी द्वारा मुद्दे संख्या 1, 2 एवं 3 का उत्तर दिया गया।

23. चकबंदी अधिकारी द्वारा मुद्दे संख्या 4 और 6 को एक साथ निपटाया गया है और प्रारंभिक टिप्पणी की गई कि दोनों मुद्दे परस्पर संबंधित होने के कारण एक ही बार में उत्तर दिए जा रहे हैं। चकबंदी अधिकारी द्वारा संज्ञान में आया कि कमला शंकर, ग्राम प्रधान,

ग्राम डुहिया ने कहा है कि श्रीमती बलराजी 10 साल पहले तीर्थयात्रा पर निकली थीं और तब से उनका कोई अता-पता नहीं है। ऐसे में, उसकी नागरिक मृत्यु मानी जानी चाहिए। आगे यह देखा गया है कि ग्राम प्रधान ने कहा है कि श्रीमती बलराजी ने कोई वारिस नहीं छोड़ा। इसलिए, प्रधान के अनुसार, विवादित भूमि गाँव सभा में निहित होगी। दूसरी ओर, चकबंदी अधिकारी ने देखा कि यहां प्रतिवादी नंबर 4, आशाराम ने खुद को बलराजी का वैध उत्तराधिकारी होने का दावा किया है, जो विवाद में जमीन पाने का हकदार है। अपनी आपत्तियों में, उन्होंने एक वंशावली का प्रतिपादन किया है, जिसे चकबंदी अधिकारी ने अंक संख्या 4 और 6 पर अपने निष्कर्षों में निर्धारित किया है। उक्त वंशावली निम्नलिखित प्रभाव वाली है:

बल भद्र

|

देवी दास

|

राम सुंदर

राम मनोरथ

|

राम खेलावन

माताबोध मास्टर धूरा

|

|

|

आशा राम

मूलचन्द्र

शिवमूरति

|

रामा कांत राम सिंह

|

कृष्ण कांत लुतुर

|

काशी प्रसाद राम आसरे

सीताराम

24. फिर यह देखा गया कि आशाराम ने कहा कि चन्द्रशेखर की मृत्यु अपने पिता, राम मनोरथ से पहले हो गयी थी और आगे कहा कि राम मनोरथ की मृत्यु के समय, उनके भाई, राम सुंदर जीवित थे, इस वंशावली को जगदम्बा प्रसाद द्वारा सिद्ध किया जा रहा है, ग्राम डुहिया के मूल निवासी तथा प्रधान कमला शंकर द्वारा भी, तो वंशावली पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। यह भी देखा गया है कि प्रतिवादी नंबर 4, आशाराम के गवाह सभाजीत और गिरधारी यादव ने कहा है कि विवाद में जमीन पर आशाराम का कब्जा है और इसके अलावा श्रीमती बलराजी आशाराम की चाची (चाची) हैं। इस दावे को वंशावली पर विश्वास करने की सहायता में भी पढ़ा गया है। फिर वंशावली के आधार पर यह माना जाता है कि धारा 171 यू.पी. जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम, के आधार पर आशाराम श्रीमती बलराजी के वारिस होंगे, विरासत के हकदार. गांव सभा का दावा राजासत्करण के आधार पर और याचिकाकर्ताओं का दावा विक्रय पत्र पर आधारित चकबंदी अधिकारी द्वारा खारिज कर दिया गया है। साथ ही, प्रतिवादी नंबर 4, आशाराम का दावा, वंशावली के आधार पर स्थापित उत्तराधिकार के आधार पर, विवादित भूमि को विरासत में देने का अधिकार,

बलराजी के लिए एक नागरिक मृत्यु मानते हुए, चकबंदी अधिकारी द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। इसलिए, उन्होंने आदेश दिया है कि विवाद वाली जमीन से बलराजी का नाम हटा दिया जाए और उनके स्थान पर आशाराम, प्रतिवादी नंबर 4 को उनके उत्तराधिकारी के रूप में दर्ज किया जाए। गांव सभा और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 7 तक की आपत्तियों को खारिज करने का आदेश दिया गया।

25. चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश पर याचिकाकर्ता संख्या 1 से 6 द्वारा अपील संख्या 319 के माध्यम से, 1953 के अधिनियम की धारा 11(1) के तहत सवाल उठाया गया था। उसी आदेश से गाँव सभा द्वारा एक और अपील दायर की गई थी, जिसे अपील संख्या 329 के रूप में क्रमांकित किया गया था।

26. याचिकाकर्ताओं ने अपील के चरण में अतिरिक्त साक्ष्य के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसमें निम्नलिखित दस्तावेजों को रिकॉर्ड पर लाने की मांग की गई:

(i) वर्ष 1288 फसली के ग्राम डुहिया से संबंधित मौतों और नामांतरण के संबंध में पटवारी की रिपोर्ट की एक प्रति;

(ii) ग्राम डुहिया के केस नंबर 12 में दखल देहानी की एक प्रति, जिसका निर्णय

(iii) यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, शाखा कोइरौना द्वारा जारी दिनांक 05.08.1985 का एक प्रमाण पत्र, जो प्रमाणित करता है कि श्रीमती बलराजी के नाम पर 15,000/- रुपये जमा थे, प्रमाणपत्र दिनांक 28.01.1981 का है।

27. दो दस्तावेजों में से पहला यह दिखाने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया था कि राम सुंदर के पिता का नाम देवी दास नहीं, बल्कि जय मंगल था, इस तथ्य की उत्तरदाताओं की ओर से गलत गवाही दी गई थी; इसके अलावा, एक वंशावली के माध्यम से गलत तरीके से पेश किया गया, जिसका उल्लेख आशाराम की ओर से गवाही में किया गया था। यह दिखाने के लिए बैंक से प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया गया था कि श्रीमती बलराजी के पास बैंक खाता में जमा राशि बिक्री की आय थी जो उन्हें अपने लेनदार को भुगतान करने के बाद प्राप्त हुई थी। यदि इन दस्तावेजों पर विचार किया जाए तो यह याचिकाकर्ताओं के मामले के संबंध में कई अन्य बातें साबित कर सकते हैं। चकबंदी के सहायक बंदोबस्त अधिकारी, जिन्होंने दोनों अपीलों को सुना, याचिकाकर्ताओं की अपील संख्या 319 को प्रमुख मामला मानते हुए, अपने आदेश दिनांक 05.09.1985 द्वारा दोनों को खारिज कर दिया, चकबंदी अधिकारी की पुष्टि करते हुए। कई अन्य के बीच, याचिकाकर्ताओं ने शिकायत की है कि चकबंदी के सहायक बंदोबस्त अधिकारी द्वारा अतिरिक्त साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत और स्वीकार किए गए दस्तावेजों पर अपील में फैसला सुनाते समय उनके द्वारा बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया था।

28. याचिकाकर्ताओं और गांव सभा, दोनों ने अधिनियम 1953 की धारा 48(1) के तहत चकबंदी अधिकारी और चकबंदी के सहायक बंदोबस्त अधिकारी के आदेशों में पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी। याचिकाकर्ताओं के पुनरीक्षण

को पुनरीक्षण संख्या 795/874 के रूप में क्रमांकित किया गया था, जबकि गाँव सभा का पुनरीक्षण क्रमांक 892 । यहां, फिर से याचिकाकर्ताओं के पुनरीक्षण को चकबंदी के उप निदेशक द्वारा प्रमुख मामले के रूप में सुना गया और एक सामान निर्णय और आदेश दिनांक 05.06.1986 के माध्यम से निर्णय लिया गया। चकबंदी के उप निदेशक ने नीचे दिए गए प्राधिकारियों की पुष्टि करते हुए दोनों पुनरीक्षण को खारिज कर दिया।

29. व्यथित होकर यह रिट याचिका दायर की गई है।

30. रिट याचिका लंबित होने पर, प्रथम याचिकाकर्ता, श्रीमती धन राजी का निधन हो गया है और रिकॉर्ड पर उनका प्रतिनिधित्व उनके बेटों, चंदू लाल और दूधनाथ, क्रमशः याचिकाकर्ता संख्या 1/1 और 1/2 ने किया था। इसके अलावा, रिट याचिका के लंबे समय तक लंबित रहने के दौरान, दूधनाथ की भी मृत्यु हो गई और उनके सात बेटे, अनूप, राज कुमार, प्रेम कुमार चौरसिया, विजय चौरसिया, आशीष कुमार, रविशंकर चौरसिया और नंद कुमार चौरसिया रिकॉर्ड पर उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। क्रमशः याचिकाकर्ता संख्या 1/2/1, 1/2/2, 1/2/3, 1/2/4, 1/2/5, 1/2/6 और 1/2/7। चौथे प्रतिवादी, आशाराम की भी रिट याचिका लंबित रहने तक मृत्यु हो गई और उनके उत्तराधिकारियों को भी रिकॉर्ड पर लाया गया, आशाराम के दोनों बेटे, कर्ता राम शुक्ला और राम अभिलाष शुक्ला। इस बीच राम अभिलाष शुक्ला का भी निधन हो गया और इसलिए, राम अभिलाष की रुचि और अंततः

आशाराम का प्रतिनिधित्व उनके पुत्रों जय प्रकाश शुक्ला, सदा नंद शुक्ला, शैलेश शुक्ला, राजेश कुमार शुक्ला और पवन कुमार शुक्ला ने किया। कर्ता राम शुक्ला को प्रतिवादी संख्या 4/1 के रूप में प्रतिस्थापित किया गया है, जबकि दिवंगत राम अभिलाष शुक्ला को मृत प्रतिवादी संख्या 4/2 के रूप में दर्शाया गया है, जिसका प्रतिनिधित्व उनके पांच उत्तराधिकारियों और एलआर द्वारा किया गया है, जिन्हें प्रतिवादी संख्या 4/2/1 से 4/2/5 के रूप में गिना गया है।

31. याचिकाकर्ता संख्या 1/1, 1/2/1, 1/2/2, 1/2/3, 1/2/4, 1/2/5, 1/2/6, 1/2/7, 2, 3 और 5 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शशि कुमार द्विवेदी को सुना गया।, याचिकाकर्ता संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री हनुमान किंकर और श्री त्रिवेणी शंकर अधिवक्ता के साथ श्री अवदेश कुमार और श्री आर.के. पांडे विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी पक्ष संख्या 4/1, 4/2/1, 4/2/2, 4/2/3, 4/2/4 और 4/2/5 की ओर से उपस्थित हुए।

32. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री शशि कुमार द्विवेदी और श्री हनुमान किंकर द्वारा यह तर्क दिया गया कि आशाराम ने धारा 12 के तहत अपनी आपत्तियों में बलराजी के उत्तराधिकारी के रूप में विरासत का मामला कभी नहीं उठाया। विक्रय पत्र के आधार पर अपने मामले के समर्थन में याचिकाकर्ताओं के साक्ष्य समाप्त होने के बाद आशाराम ने एक ऐसे मामले में जो की विरासत का मामला कभी नहीं था, के

समर्थन में अपने साक्ष्य में पहली बार वंशावली का प्रस्ताव रखा और उसके आधार पर दावा किया। यह आग्रह किया गया है कि चकबंदी अधिकारी ने आशाराम को बलराजी का उत्तराधिकारी मानकर स्पष्ट त्रुटि की है जबकि श्रीमती बलराजी जीवित थीं और उन्होंने चकबंदी अधिकारी के समक्ष गवाही दी थी। यह भी तर्क दिया गया है कि चकबंदी अधिकारी का यह निष्कर्ष कि बलराजी एक धोखेबाज था, विकृत है, क्योंकि रिकॉर्ड पर बलराजी के पिता की भारी गवाही है, जिनकी पहचान पर संदेह नहीं किया गया है, उन्होंने अदालत में गवाही देते हुए बलराजी को अपनी बेटी के रूप में पहचाना है।

33. याचिकाकर्ताओं की ओर से आग्रह किया गया है कि विक्रय पत्र आज तक सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया गया है और किसी ने भी संशोधन पत्र को चुनौती नहीं दी है। विशेष रूप से, यह तर्क दिया गया है कि चकबंदी अधिकारियों ने इसे श्रीमती बलराजी द्वारा हिस्सेदारी के एक हिस्से के हस्तांतरण का मामला मानने में गलती की है। 1953 के अधिनियम की धारा 5(सी)(ii) के तहत परिणामों को आकर्षित करते हैं क्योंकि बिक्री विलेख में सन्निहित हस्तांतरण चकबंदी के निपटान अधिकारी की अनुमति के बिना किया गया था। यह तर्क दिया जाता है कि सुधार विलेख उस प्लॉट के बारे में नहीं है जिसे बिक्री पत्र में छोड़ दिया गया था, बल्कि पुराने नंबरिंग के अनुसार प्लॉट नंबर के गलत उल्लेख के बारे में है। विक्रय विलेख में पूरे चक संख्या 68 को दर्शाया गया है, जिसमें प्रत्येक भाग और उसके सभी भूखंड शामिल

होंगे, जिसमें प्लॉट संख्या 161/347 से 1161/347 के रूप में उल्लिखित सुधारा गया प्लॉट भी शामिल है, जो एक ही भूखंड समान क्षेत्रफल 2 बिस्वा 17 धूर के वाला का संदर्भ देते हैं। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस प्रकार, होल्डिंग के आंशिक हस्तांतरण श्रीमती बलराजी द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख से करने के लिए का कोई मामला नहीं है। समझौता अधिकारी की अनुमति के बिना, 1953 के अधिनियम की धारा 5(सी)(ii) के तहत अमान्य है।

34. यह भी तर्क दिया गया है कि नीचे दिए गए प्राधिकारियों ने गलत निष्कर्ष निकाला है कि श्रीमती बलराजी, जो चकबंदी अधिकारी के सामने पेश हुई थी, एक धोखेबाज थी, क्योंकि उसकी पहचान अन्य गवाहों के बीच खिलोधर, उसके पिता और उसके भाई रुद्र प्रसाद ने की थी, जिन्होंने दोनों ने याचिकाकर्ताओं के मामले के समर्थन में गवाही दी थी। उनकी पहचान पर संदेह नहीं किया गया।

35. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चकबंदी के उप निदेशक ने गलत टिप्पणी की है कि बलराजी ने विक्रय पत्र के सभी पृष्ठों पर अपने अंगूठे का निशान नहीं लगाया था, जो सात की संख्या में आता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि बलराजी की गवाही को नीचे दिए गए अधिकारियों द्वारा गलत तरीके से पढ़ा गया है ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उन्होंने केवल दो पृष्ठों पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था, जबकि बलराजी ने अपने साक्ष्य में कहा था कि उन्होंने बिक्री पत्र पर दो बार अंगूठे का निशान लगाया था। बलराजी की

गवाही से एकमात्र निष्कर्ष यह है कि उन्होंने एक बार निष्पादन के समय दस्तावेज़ पर अंगूठे का निशान लगाया था, और दूसरी बार, सब-रजिस्ट्रार के सामने, जब यह पंजीकृत किया गया था। आग्रह है कि विक्रय पत्र के प्रत्येक पृष्ठ पर अंगूठा अंकित है।

36. यह भी तर्क दिया गया है कि सुरेंद्र नाथ श्रीवास्तव, जो बिक्री विलेख के साथ-साथ सुधार विलेख के लेखक हैं, से याचिकाकर्ताओं की ओर से पीडब्लू -1 के रूप में जांच की गई थी। गवाह ने कहा है कि वह दोनों पक्षों को पहले से अच्छी तरह से जानता था और उसने इस तथ्य की गवाही दी कि विलेख बलराजी द्वारा निष्पादित किया गया था। यह भी तर्क दिया जाता है कि बलराजी की मृत्यु के बारे में गलत अनुमान लगाया गया है, क्योंकि उन्हें 30 साल के भीतर जीवित माना गया था और किसी ने उन्हें मरते नहीं देखा था। उसकी प्रतिष्ठित या स्वीकृत मृत्यु का कोई सबूत नहीं है, और एक व्यक्ति की मृत्यु के बारे में धारणा, जिसके बारे में सात साल तक नहीं सुना गया, केवल तभी उत्पन्न होगी, यदि यह साबित हो जाए कि सात वर्ष की अवधि उन लोगों द्वारा जिन्होंने स्वाभाविक रूप से जीवित होने पर उसके बारे में सुना होगा, उसके बारे में नहीं सुना गया है, अगर जीवित हो। यह तर्क दिया गया है कि बलराजी के पिता और भाई, जिन्होंने गवाही दी है, ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने स्वाभाविक रूप से उनके बारे में सुना होगा और उन्होंने कहा है कि बलराजी, जो अदालत के समक्ष थीं, वही व्यक्ति थीं। गवाहों के साक्ष्य हैं कि बलराजी अपने पिता के साथ गोपालपुर में रह रही थीं। ग्राम डुहिया में

आशाराम या उसके गवाह वो पुरुष नहीं हैं, जो स्वाभाविक रूप से बलराजी के बारे में सुनेंगे, अगर वह गोपालपुर में अपने पिता के साथ रह रही होती। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की दलील यह है कि इन परिस्थितियों में बलराजी की मृत्यु के बारे में कोई धारणा नहीं बन सकती है। बल्कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 107 के मददेनजर उसके जीवित होने का अनुमान है। यह तर्क दिया गया है कि नीचे दिए गए सभी प्राधिकारियों ने बलराजी की मृत्यु के बारे में अनुमान लगाने और फिर उसे स्वीकार करने में स्पष्ट त्रुटि की है। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता के अनुसार साक्ष्य की स्थिति पर निष्कर्ष विकृत है।

37. प्रतिवादी क्रमांक 4 के विद्वान अधिवक्ता, श्री त्रिवेणी शंकर ने तर्क दिया है कि चकबंदी अधिकारी ने इस आशय का निष्कर्ष दर्ज किया है कि बिक्री विलेख बलराजी के स्वामित्व वाली संपूर्ण होल्डिंग के संबंध में नहीं था और इसलिए, धारा 5 (सी)(ii) में 1953 के अधिनियम के तहत शून्य है। यह बताया गया है कि विक्रय विलेख शून्य है, क्योंकि माना गया है कि होल्डिंग के एक हिस्से को हस्तांतरित करने के लिए चकबंदी के निपटान अधिकारी से कोई अनुमति सुरक्षित नहीं की गई थी। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि चकबंदी अधिकारी ने माना है कि जो महिला चकबंदी अधिकारी के सामने पेश हुई थी, वह बलराजी नहीं थी, बल्कि एक धोखेबाज थी। चकबंदी अधिकारी द्वारा यह देखा गया कि बलराजी की ओर से पेश हुई महिला ने कहा कि उसने याचिकाकर्ताओं के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित नहीं किया था और न ही

याचिकाकर्ता को वह जानती थीं। आगे का निष्कर्ष प्रतिवादी नंबर 4 के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, चकबंदी अधिकारी द्वारा दर्ज, यह है कि बिक्री का भुगतान साबित नहीं हुआ था। इसके अलावा, सुरेंद्र नाथ श्रीमती बलराजी के अंगूठे का निशान को साबित नहीं कर सके। उस अनुमान का समर्थन करता है जो बलराजी के विक्रय विलेख को साबित करने के लिए बनाया था, वास्तव में एक धोखेबाज था। सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष जिस पर प्रतिवादी नंबर 4 के विद्वान अधिवक्ता ने जोर दिया है, वह यह है कि चकबंदी अधिकारी, चकबंदी के सहायक निपटान अधिकारी और चकबंदी के उप निदेशक ने एक सर्वसम्मति से याचिकाकर्ताओं द्वारा भरोसा किए गए विक्रय विलेख को बलराजी द्वारा निष्पादित नहीं माना है।

38. यह भी बताया गया है कि चकबंदी अधिकारी ने पाया है कि राम चंद्र, जो बिक्री विलेख का एकमात्र प्रमाणित गवाह था और जिसने उक्त विलेख के निष्पादन के समय श्रीमती की पहचान की थी, की बलराजी ने चकबंदी अधिकारी के समक्ष पहचान नहीं की थी। चकबंदी अधिकारी के सामने पेश की गई बलराजी ने कहा कि वह राम चंद्र को नहीं जानती। चकबंदी अधिकारी के अनुसार विक्रय पत्र के निष्पादन के संबंध में याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश हुए गवाहों के बयानों में काफी विरोधाभास है। यह भी चकबंदी अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष है कि श्रीमती धनराजी और अन्य द्वारा कोई विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था, याचिकाकर्ताओं को यह साबित करने के लिए

कि विवादित भूमि पर उनका कब्जा था। सिरदारी वाले भूखंडों के लिए कोई भूमिधरी प्रमाण पत्र नहीं लिया गया था। ऐसे में विक्रय पत्र अमान्य था। इस तथ्य पर बहुत अधिक जोर दिया गया है कि बलराजी को सात वर्षों से अधिक समय तक नहीं सुना गया था, और इसलिए, उनकी नागरिक मृत्यु मानी जानी चाहिए।

39. चकबंदी अधिकारी ने यह तथ्य दर्ज किया है कि गांव सभा डुहिया के परिवार रजिस्टर में बलराजी का नाम न होने से यह अनुमान लगाया जा रहा है कि श्रीमती बलराजी दिनांक 29.05.1974 को गाँव में उपस्थित नहीं थीं। प्रतिवादी नंबर 4 के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर सबसे महत्वपूर्ण रूप से जोर दिया है कि चकबंदी अधिकारी ने एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि वह व्यक्ति, जो गवाह-बॉक्स में बलराजी के रूप में पेश हुआ, ने कहा कि वह किसी भी खरीदार को नहीं जानता था और न ही उसने उनके पक्ष में कोई विक्रय विलेख निष्पादित किया था।। विक्रय विलेख के समर्थन में किसी भी खरीदार की जांच नहीं की गई। विक्रय विलेख में प्रतिफल के भुगतान के तरीके का उल्लेख नहीं है, जहां यह नहीं कहा गया है कि बिक्री प्रतिफल का एक हिस्सा लेनदार को कथित प्रस्ताव पर बलराजी के दायित्व का निर्वहन करने के लिए भुगतान किया गया था। लेनदार को भुगतान के बारे में कोई रसीद दाखिल नहीं की गई है। इस बात पर जोर दिया गया है कि चकबंदी अधिकारी ने पाया है कि याचिकाकर्ताओं के गवाहों में से एक सुरेंद्र नाथ ने बिक्री पत्र पर अपने हस्ताक्षरों की पहचान की, लेकिन श्रीमती

बलराजी के अंगूठे का निशान की पहचान नहीं की।

40. आशाराम के दावों के बारे में, विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि चकबंदी अधिकारी ने माना है कि उसने अपनी वंशावली साबित कर दी है। आशाराम द्वारा प्रतिपादित वंशावली उनके गवाहों, जगदंबा और गांव के प्रधान कमला शंकर की गवाही से भी साबित हुई, जिन्होंने इस तथ्य की गवाही दी कि आशाराम बलराजी के परिवार से हैं। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, चकबंदी अधिकारी द्वारा यह भी माना गया कि सभाजीत और गिरधारी की गवाही से यह साबित हो गया कि विवादित जमीन पर आशाराम का कब्जा था। चकबंदी अधिकारी द्वारा यह भी माना गया है कि उ०प्र० जेड.ए. एवं एल.आर. अधिनियम की धारा 171 के अन्तर्गत आशाराम बलराजी के उत्तराधिकारी थे और गाँव सभा को उसमें कोई अधिकार नहीं था।

41. इनमें से अधिकांश निष्कर्षों की पुष्टि चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी और चकबंदी के उप निदेशक द्वारा की गई है। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता, श्री त्रिवेणी शंकर का कहना है कि नीचे दिए गए तीन प्राधिकारियों द्वारा लगातार दर्ज किए गए ये निष्कर्ष तथ्य के शुद्ध निष्कर्ष हैं, जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हमारे अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा छोड़ा नहीं किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, प्रतिवादी नंबर 4 के विद्वान अधिवक्ता ने ई. महबूब साहब बनाम एन. सब्बारायण चौधरी और अन्य, (1982) 1 एससीसी 180,

नारायणन राजेंद्रन और अन्य बनाम लक्ष्मी सरोजिनी और अन्य (2009) 5 एससीसी 264 के फैसलों पर भरोसा किया है और सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय कांडीबा दगडु कदम बनाम सावित्रीबाई सोपान गुजर और अन्य (1999) 3 एससीसी 722 में पर भी।

42. यह भी बहुत जोर देकर आग्रह किया गया है कि 29.05.1974 को बिक्री विलेख का निष्पादन और 12.07.1974 के बाद के सुधार विलेख दोनों बलराजी की हिस्सेदारी के एक हिस्से के हस्तांतरण का मामला बनाते हैं, जो कि चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी की बिना अनुमति के किया जा रहा है।, जो हस्तांतरण को अवास्तविक 1953 के अधिनियम की धारा धारा 5 (सी) (ii) के तहत लाते हैं। अपने इस तर्क के समर्थन में, श्री त्रिवेणी शंकर ने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ में श्रीमती राम रति और अन्य बनाम ग्राम समाज, जेहवा और अन्य, एआईआर 1974 सभी 106 के फैसले पर भरोसा किया है। इस न्यायालय के फैसले फोरन सिंह और अन्य बनाम चकबंदी के उप निदेशक और अन्य, 1993 (1) एडब्ल्यूसी 192 में पर भी भरोसा किया गया है।

43. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई विस्तृत दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

44. सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा जो उठाया गया वह यह था कि बलराजी ने विक्रय विलेख के माध्यम से अपनी हिस्सेदारी का एक हिस्सा हस्तांतरित कर दिया था, और बाद में, सुधार

के विलेख की आड़ में, एक ही भूखंड के बावजूद, इसका एक और हिस्सा हस्तांतरित कर दिया, सभी नीचे दिए गए प्राधिकारियों ने स्पष्ट त्रुटि के कारण बिक्री विलेख और सुधार विलेख को दो अलग-अलग लेनदेन माना है, जिनमें से प्रत्येक बलराजी की हिस्सेदारी का एक हिस्सा हस्तांतरित करता है और इसलिए, 1953 के अधिनियम की धारा 5 (सी) (ii) के तहत अमान्य है। बलराजी द्वारा बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी से प्राप्त पूर्व अनुमति के अभाव के स्वीकृत तथ्य को ध्यान में रखते हुए हस्तांतरण शून्य होने का परिणाम अनुमान लगाया गया है। इस मामले में, इस तथ्य के बारे में कोई झगड़ा नहीं है कि जिस तारीख को विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था, 1953 के अधिनियम के प्रावधान, जैसा कि वे थे, 1958 का यू.पी. अधिनियम संख्या 38, द्वारा संशोधित थे। जहां इसे धारा 5 द्वारा निम्नानुसार प्रदान किया गया था:

"4. 1954 के यू.पी. अधिनियम 5 की धारा 5 का संशोधन - मूल अधिनियम की धारा 5 के स्थान पर, निम्नलिखित को प्रतिस्थापित किया जाएगा:

"5. घोषणाओं का प्रभाव.- आधिकारिक राजपत्र में धारा 4 के तहत अधिसूचना के प्रकाशन पर, परिणाम, जैसा कि इसके बाद निर्धारित किया गया है; इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, इसके तहत निर्दिष्ट तिथि से अधिसूचना के प्रकाशन तक होंगे धारा 52 या धारा 6 की उपधारा (1) के तहत, जैसा भी मामला हो। उस क्षेत्र में

सुनिश्चित करें जिससे घोषणा संबंधित है; अर्थात्-

(ए) जिला या उसका हिस्सा, जैसा भी मामला हो, समेकन संचालन के तहत माना जाएगा और अधिकारों के रिकॉर्ड को बनाए रखने और गांव का नक्शा, फील्ड बुक और प्रत्येक गांव का वार्षिक रजिस्टर जिला चकबंदी उप निदेशक द्वारा तैयार किया जाएगा, जो निर्धारित तरीके से, जैसा भी मामला हो, उन्हें बनाए रखेगा या तैयार करेगा;

(बी) (i) अभिलेखों में सुधार के लिए सभी कार्यवाहियां, और भूमि पर अधिकारों और हितों की घोषणा के लिए, या भूमि के कब्जे के लिए, या विभाजन के लिए सभी मुकदमे, किसी भी प्राधिकरण या अदालत के समक्ष लंबित, चाहे प्रथम दृष्टया, अपील के हों, या संदर्भ या पुनरीक्षण, पर रोक लगा दी जाएगी, लेकिन विवाद में अधिकार या हितों को प्रभावित करने के प्रभावित व्यक्तियों के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उक्त कार्यवाही या मुकदमों में चकबंदी अधिकारियों के समक्ष इस अधिनियम के प्रावधानों और नियमों के अनुसार :

(ii) भूमि में ऐसे अधिकार या हित के संबंध में इस अधिनियम के तहत कार्यवाही में चकबंदी प्राधिकारियों के निष्कर्ष, उस प्राधिकारी या न्यायालय को स्वीकार्य होंगे जिसके समक्ष कार्यवाही या मुकदमा लंबित था, जो संबंधित पक्षों द्वारा इसके संचार पर कार्यवाही या मुकदमे के साथ आगे बढ़ें; जैसा भी मामला हो।

(सी) किसी बात के होते हुए भी यू.पी. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (यू.पी. अधिनियम 1, 1951) में, कोई भी कार्यकाल धारक, बन्दोबस्त अधिकारी, चकबन्दी की पूर्व में प्राप्त लिखित अनुमति के अलावा-

(i) अपनी हिस्सेदारी या उसके किसी हिस्से का उपयोग कृषि, बागवानी या पशुपालन, जिसमें मछली पालन और मुर्गीपालन भी शामिल है, से संबंधित उद्देश्यों के लिए नहीं करेगा: या

(ii) समेकन क्षेत्र में अपनी हिस्सेदारी के किसी भी हिस्से को बिक्री, उपहार या विनिमय के माध्यम से हस्तांतरित करना:

बशर्ते कि कोई कार्यकाल धारक अपनी हिस्सेदारी या उसके किसी हिस्से का उपयोग किसी भी उद्देश्य के लिए करना जारी रख सकता है, जिसके लिए वह धारा 4 के तहत जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट तिथि से पहले उपयोग में था।

(न्यायालय द्वारा जोर)

45. जब विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था उस समय कानून प्राप्त करने के बारे में कोई विवाद नहीं है। उस समय का कानून चकबंदी क्षेत्र में चकबंदी के बंदोबस्त अधिकारी की लिखित पूर्व अनुमति के बिना भूमिधर की जोत के किसी भी हिस्से के किसी भी हस्तांतरण पर रोक लगाता था, यानी वह क्षेत्र जहां 1953 के अधिनियम की धारा 4 के तहत अधिसूचना लागू थी। इस तथ्य के बारे में भी कोई समस्या नहीं है कि प्रासंगिक समय पर भूमि चकबंदी क्षेत्र में आती थी। मुद्दा यह है कि क्या श्रीमती. बलराजी ने विक्रय विलेख द्वारा अपनी हिस्सेदारी का एक हिस्सा हस्तांतरित कर दिया; और इसका दूसरा भाग

सुधार के विलेख द्वारा। विक्रय पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि बलराजी ने विक्रय पत्र द्वारा अपना पूरा चक नंबर 68 हस्तांतरित कर दिया और कुछ भूमि भी हस्तांतरित कर दी जो चकबंदी योजना से बाहर थी। विक्रय पत्र में एक स्पष्ट लिपिकीय त्रुटि को सुधारने के लिए सुधार विलेख निष्पादित किया गया था, जहां पुराने प्लॉट नंबर 1161/347 के लिए प्लॉट नंबर 161/347 का उल्लेख किया गया था। यह भी उतना ही सच है कि जिस समय विक्रय पत्र निष्पादित किया गया था, उस समय पुराने प्लॉट नंबरों को फिर से क्रमांकित कर दिया गया था और उनके पुराने नंबरों को मिटा दिया गया था। विक्रय पत्र में पुराने नंबरों का उल्लेख पूर्व अंबुदती काँटेला किया गया था। इसलिए, पुराने प्लॉट नंबर 1161/347 के विक्रय पत्र में 161/347 का उल्लेख कोई विषय वस्तु नहीं था।

46. पहले से ही नए नंबर आवंटित किए गए थे और बिक्री विलेख विक्रेता के इरादे के बारे में स्पष्ट था कि वह अपने हस्तांतरण के माध्यम से पूरे चक नंबर 68 को याचिकाकर्ताओं के पक्ष में स्थानांतरित करना चाहता था; इसका कोई भाग नहीं। सुधार विलेख विक्रय विलेख में एक लिपिकीय त्रुटि के सुधार से अधिक कुछ नहीं था, जो विक्रय विलेख से संबंधित होगा। सुधार विलेख को किसी भी तरह से अपने आप में एक स्वतंत्र हस्तांतरण या भूमि के एक अलग भूखंड का हस्तांतरण नहीं माना जा सकता है, जिसका उल्लेख बिक्री विलेख में नहीं किया गया है। सुधार विलेख में ऐसी कोई भी चीज़ हस्तांतरित नहीं की गई जो बिक्री विलेख का हिस्सा नहीं

थी। इसने केवल विक्रय विलेख द्वारा हस्तांतरित भूखंडों में से एक की क्वांडम संख्या के बारे में लिपिकीय त्रुटि को सुधार कर दूर किया। चकबंदी योजना लागू होने के दौरान भूमिधर द्वारा संपूर्ण हिस्सेदारी हस्तांतरित करने के लिए चकबंदी के निपटान अधिकारी से पूर्व लिखित अनुमति की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं है। यह 1953 के अधिनियम की धारा 5(सी)(ii) का स्पष्ट तात्पर्य है। इसे श्रीमती राम रति (सुप्रा), में पूर्ण पीठ के फैसले में स्पष्ट रूप से रखा गया है। जहां यह देखा गया है:

"11. यह स्थिति होने के कारण हमारी स्पष्ट राय है कि वर्तमान मामले में यह अंग्रेजी पाठ है जो हिंदी संस्करण पर हावी होगा और अंग्रेजी पाठ के अनुसार धारा 5(1)(सी) के खंड (ii) अधिनियम के में होने वाली अभिव्यक्ति "कोई भी होल्डिंग" है में "संपूर्ण होल्डिंग" शामिल नहीं है, इसलिए संपूर्ण होल्डिंग के हस्तांतरण के लिए निपटान अधिकारी (चकबंदी) की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं है।

47. इस न्यायालय की राय में, नीचे दिए गए प्राधिकारियों ने, 1953 के अधिनियम की धारा 5 (सी) (ii) के उल्लंघन के लिए बिक्री विलेख को शून्य मानने में कानून की स्पष्ट त्रुटि की है।

48. नीचे दिए गए प्राधिकारियों ने प्रथम दृष्टया गलत माना है कि श्रीमती बलराजी, जिन्हें विक्रय पत्र के समर्थन में चकबंदी अधिकारी के समक्ष पेश किया गया था, एक

धोखेबाज थीं, या जिस व्यक्ति ने विक्रय पत्र निष्पादित किया था, वह एक धोखेबाज था। याचिकाकर्ताओं के मामले के समर्थन में बलराजी के साथ पेश होने वाले गवाहों में खिलोधर, पीडब्लू-6, बलराजी के पिता और उनके भाई, रुद्र प्रसाद के अलावा ग्राम गोपालपुर के प्रधान, शारदा प्रसाद थे। वह याचिकाकर्ताओं के पक्ष में निष्पादित विक्रय पत्र का प्रमाणित गवाह भी है। इन गवाहों ने कहा है कि बिक्री को अंजाम देने वाली व्यक्ति श्रीमती बलराजी थीं। श्रीमती बलराजी ने अपनी गवाही में यह भी कहा कि उन्होंने अपनी संपत्ति बेच दी। इस स्तर पर, चकबंदी अधिकारी के समक्ष 14.07.1976 को दर्ज की गई बलराजी की इकसामीनेशन इन चीफ पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होगा, जहां उन्होंने पीडब्लू-2 के रूप में गवाही दी थी। यह पढ़ता है:

"वहलफ बयान किया कि मैं डुहिया में चन्द्रशेखर की वेवा हूँ मेरा नाम वलिराजी है। हमारी जमीन जो डुहिया में थी सब हमारे नाम चक कटा है। चक कटने के पहले मैं अपनी सम्पूर्ण जमीन कास्त करती थी। चक कटने के बाद भी सम्पूर्ण जमीन पर हमारा कब्जा है। चकबंदी में मैंने अपनी जमीन के बारे में मुकदमा लड़ाया। सब मुकदमा जीतने के बाद हमारे नाम चक कटा। चकबंदी में हमारी ननद को खड़ा करके आशाराम ने हमारे खिलाफ लड़ाया था। आशाराम शुक्ल डुहिया के है। ननद हार गयी थी। ननद का नाम देवराजी था। हमारी उस ननद देवरानी के लड़के के साथ आशाराम ने अपने लड़की की शादी किया है। चक कटने के बाद हमने अपने भाई और चन्द्र,

दूधनाथ के औरत व लड़के के हक में बैनामा लिखा दिया। बैनामा रजिस्ट्री में आकर मैंने लिखवाया था। बैनामा लिखाने के बाद लिखाने वाले ने हमें पढ़कर सुनवाया था। तब मैंने शारदा प्रसाद व सूरज प्रसाद के सामने निशान अंगूठा बनाया। मेरे सामने शारदा प्रसाद व सूरज प्रसाद ने दस्तावेज की गवाही किया। तब मैंने रजिस्ट्रार साहब के सामने दस्तावेज पेश किया तब दस्तावेज की रजिस्ट्री हुई गवाह ने दस्तावेज बैनामा इक्स क-2 को देखकर अपने निशान की पुष्टि की।

दस्तावेज का एक नम्बर गलत लिखा गया था। फिर उसको ठीक करने के लिए दूसरा दस्तावेज टिटिम्मा उसके दो माह के बाद लिखा गया मुझे बैनामा में नकद रूपया भी दिया जिसका रूपया लिया उसका हवाला भी दिया था। रजिस्ट्री के समय रूपया लिया था। एक वीघा अपने भाई को लिखा था उसका रूपया पहले पा गयी थी। मुझको आँख से कम दिखाई देता है। करीब दो साल से बैनामा लिखने के बाद नैहर में रहती हूँ। बैनामा इसलिए लिख दिया क्योंकि कम दिखाई देता है। अपने नैहर में रहने लगी थी। पहले मैं यही रहती थी। आशाराम से पैसा न कभी लिया और न ही जमीन जोतने को दिया। और न ही आशाराम को हमने लिखा पढ़ा है। आशाराम ने हमारी ननद को उभार कर लडाया था। उसी के कारण आशाराम से दुश्मनी भी थी।

यह कहना गलत है कि चन्द्रशेखर की वेवा बलिराजी तीर्थ करने गयी। और लौट कर नहीं आयी। मैं कभी तीर्थ करने नहीं गयी थी। बराबर अपने घर पर और नैहर में रहती हूँ। मेरे भाई रुद्र प्रसाद है। मेरे पिता का नाम

विलोधर ग्राम गोपालपुर है।

यह कहना गलत है कि बनावटी बलिराजी बनकर बैनामा लिखा है। यह कहना गलत है कि मैं चन्द्रशेखर की स्त्री बलिराजी नहीं हूँ। और वनावटी बलिराजी बनकर बयान कर रही हूँ। बैनामा की भूमि पर बैदारान चन्दू, दूधनाथ की औरत और लड़के तथा माँ का कब्जा है। हमारा नाम काट कर उनका नाम दर्ज किया जाय। जो पैसा बैनामा से पाया था वह मैंने कोईरौना बैंक में जमा कर दिया है। एक विघा जो भाई को लिखा है। वह हमारा नाम काटकर हमारे भाई को दर्ज किया जाय।
x x x x x x x
(जिरह)

बैनामा लिखने के दो वर्ष पहले से हमें कम दिखाई देता है, बैनामा मैंने अपनी मर्जी से लिखा था। बैनामा मैंने दूधनाथ व चन्दू और दूधनाथ, चन्दू के औरत व लड़के को लिखा है। बैनामा जानपुर में लिखा गया था। रजिस्ट्रार साहब के सामने वारह बजे दस्तावेज पेश हुआ था मैं कातिव को पहचानती हूँ। नाम नहीं जानती हूँ। डूहिया का मकान मेरा मौजूद है वह चार पाँच घर की वखरी है। जब मैं डूहिया में रहती थी तो खुद खेती करती थी, हमारे हरवाह गिरधारी अहिर थे जो जिन्दा हैं। ग्राम डूहिया के रहने वाले है। हमारे पास एक हल की खेती तथा एक जोड़ा वैल था। ग्राम सिंहपुर में मेरे सास का मैहर है। पं० राजजग मुख्तार के यहाँ। मेरी सगी सास का नाम सुभवन्ती है। मेरी सौतेली सास का नाम घूरा था। सुभवन्ती को एक लड़की थी। व एक लड़का था। लड़की का नाम देवराजी था। इसी देवराजी से चकबंदी में मुकदमा चला था। देवराजी व मेरा चक अलग-2 हो गया है।

चकबंदी से पहले मुझसे व देवाजी से एक मुकदमा चला था। इसे राजजग मुख्तार ने सुलह करा दिया था, देवराजी पं० रामजगमुख्तार की भौजी लगती थी। बैनामा लिखने के लिए मैंने चकबंदी विभाग से मैंने परमीशन नहीं लिया था। रजिस्ट्री में मुझे एक बार आना पड़ा था। एक बार बैनामा करने नैहर से आयी थी बैनामा का नं० गाटा नहीं बता सकती हूँ। चक नं० कागज में होगा मैं नहीं बता सकती हूँ जिसका मैंने बैनामा किया है, बैनामें वाले भूमि की चौहददी हमें नहीं मालूम। जिसके-2 नाम लिखा था वे व शारदा प्रसाद, सूरज और हमारे भाई रजिस्ट्री में आये थे। जिसके-2 नाम बैनामा हुआ है वे लोग भी रजिस्ट्री के समय मौजूद थे, रजिस्टार साहब के सामने नगद रूपया 3500/-3600/-मिला था दस्तावेज बैनामा पर मैंने दो जगह निशान दिया है। इसके अलावा मुझसे कही भी किसी ने निशान अंगूठा नहीं लिया है। जिसके नाम बैनामा हुआ है। उसी से हमारी बातचीत हुई थी। बैनामा लिखाने के एक माह पूर्व बात तय हुई थी। बातचीत के समय रुपये का लेन देन नहीं हुआ था। सब रुपये का लेन रजिस्टार साहब के सामने हुआ था।

बयान गवाही के समय चन्दू दूधनाथ जिसको मैंने बैनामा लिखा है। ले आये थे। मैं विशेषर चौरसिया को नहीं जानती हूँ। क्यों कि मैंने नहीं देखा है। विशेषर के लड़की लड़का के हक में मैंने बैनामा नहीं किया है। राम सरन चौरसिया के हक में मैंने बैनामा नहीं लिखा है।

कालूराम के लड़की के हक में मैंने बैनामा नहीं किया है मैं कालूराम बरई को नहीं जानती हूँ। अनूप कुमार को नहीं जानती हूँ।

अनूपकुमार के हक में कोई बैनामा नहीं लिखा है। जयशंकर बरई को नहीं जानती हूँ और न उनको बैनामा लिखा है। विनोद कुमार को नहीं जानती और न बैनामा लिखा है। चन्दू दूधनाथ ने कहा था कि चलकर बयान दे दों। इस मुकदमें में मैंने कोई दरखास्त नहीं दी है। यह जमीन टँयूबेल से सीची जाती है। टँयूबेल के सिंचाई की रसीद मेरे पास जरूर होगी। वह रसीद मैंने चन्दू दूधनाथ को नहीं दिया है। डुहिया के प्रधान कमला शंकर है। आशाराम को मैं जानती हूँ वे मेरे गाँव के है। मैं नहीं जानती की आशाराम और मेरे सौहर की कुर्सीनामा एक है। आशाराम पहले चाची कहते थे अब नहीं कहते।

यह कहना गलत है कि मेरी सेवा करते थे। मैं कहीं तीर्थ करने नहीं गयी थी। कभी-2 प्रयाग राज गयी हूँ। मैं बेचने के बाद जमीन के पास नहीं गयी हूँ। यह कहना गलत है कि बैनामे वाले जमीन पर आशाराम का कब्जा है। चन्दू हमको बताये थे कि आशाराम इस मुकदमें में लड़ रहे है। मुझसे गवाही के लिए चन्दू ने 10 दिन पहले से कहा था। आज चन्दू मुझको लाने नहीं गये है। मैं खुद ही आयी हूँ। आज की तारीख चन्दू ने बताया था आज 14 तारीख है। यही बताया था। चन्दू ने यह नहीं बताया था कि कमला शंकर प्रधान लड़ रहे है।

यह कहना गलत है कि बलिराजी तीर्थ यात्रा को गयी है। यह कहना गलत है कि बलिराजी वेवा चन्द्रशेखर सा० डुहिया नहीं हूँ। यह भी कहना गलत है कि जमीन निजाई पर आशाराम का कब्जा है। मैं राम चन्द्र राय सा० चक हर वंशपुर को नहीं जानती हूँ। उन्होंने मेरे

बैनामा या टिटिम्मा दस्तावेज पर गवाही नहीं किया है।

जिरह:- ग्राम सभा:- शारदा प्रसाद द्विवेदी एडवोकेट

यह कहना गलत है कि मु० बलिराजी नहीं हूँ और यह भी कहना गलत है कि मुसम्मामत बलिराजी तीर्थ को गयी और लौट कर नहीं आयी और यह भी कहना गलत है कि आराजी निजाई ग्राम सभा की हो गयी है। यह भी कहना गलत है कि आराजी निजाई को मैं जोते वोये नहीं हूँ। बयान सुनकर तस्दीक किया।"

49. अपनी जिरह में, बलराजी ने अपनी उपस्थिति में रजिस्ट्रार द्वारा विक्रय पत्र निष्पादित करने और उसके पंजीकरण के तथ्य का समर्थन किया है। उन्होंने अपनी सास और सौतेली सास के साथ-साथ अपनी सौतेली सास की बेटी के नाम के बारे में भी बताया है. उन्होंने इस मामले का भी जिक्र किया है कि उनकी सौतेली सास की बेटी देवराजी ने उनकी हिस्सेदारी को लेकर उनके खिलाफ मुकदमा दायर किया था और उसमें हिस्सेदारी का दावा किया था। उन्होंने अपनी जिरह के एक पहलू को छोड़कर काफी हद तक विक्रय विलेख के निष्पादन का समर्थन किया है, जहां उन्होंने अचानक कहा है कि वह क्रेताओं, अनूप कुमार, विनोद कुमार, जय शंकर को नहीं जानती थीं और उन्होंने उनके पक्ष में कोई विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया था। जाहिरा तौर पर, उसकी जिरह में उक्त असंगत कथन को नीचे के

अधिकारियों द्वारा बहुत अधिक विश्वसनीयता दी गई है।

50. एक गवाह के साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए, और यदि बलराजी की इकसामीनेशन इन चीफ में दी गई गवाही को उनकी जिरह के साथ पढ़ा जाता है, तो यह काफी हद तक सुसंगत है। मामले के इस पहलू पर नीचे दिए गए प्राधिकारियों द्वारा बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है, जिन्होंने संदर्भ से अलग किए गए सबूतों को पढ़ा है, और इसका संक्षिप्त मूल्यांकन किया है। साक्ष्यों की पुनः सराहना करना इस न्यायालय का काम नहीं है, बल्कि यह सुनिश्चित करना है कि नीचे दिए गए तथ्य के प्राधिकारी इधर-उधर के बयानों पर अपने निष्कर्षों को आधार बनाकर प्रासंगिक साक्ष्यों को न छोड़ें। यह भी ध्यान में रखना होगा कि बलराजी की पहचान उनके रक्त संबंधियों ने की थी, जो कोई और नहीं, बल्कि उनके पिता और भाई थे। वे चकबंदी अधिकारी के समक्ष थे। उनके साक्ष्य बलराजी की पहचान के बारे में बहुत महत्वपूर्ण हैं और उन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इस बिंदु पर मौजूद साक्ष्यों पर नीचे के प्राधिकारियों द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में पुनर्विचार किया जा सकता है।

51. नीचे दिए गए प्राधिकारी भी बलराजी द्वारा विक्रय विलेख के निष्पादन पर संदेह करने और प्रतिफल के तरीके में खामियां ढूंढकर इसे धोखेबाज को जिम्मेदार ठहराने में गलत रहे हैं। विक्रय विलेख में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उसे उप-रजिस्ट्रार के समक्ष 15,000/- रुपये की नकद राशि प्राप्त हुई थी,

जबकि सूर्य नारायण मिश्रा को 25.05.1971 के एक आदेश पर उसके दायित्व का निर्वहन करने के लिए 17,200/- रुपये का भुगतान किया गया था जो सूर्य नारायण के पास था। उसके भाई, रूद्र प्रसाद, याचिकाकर्ता संख्या 7 से प्रतिफल के रूप में 1005 रुपये की प्राप्ति की रसीद और उसके भाई, रूद्र प्रसाद से 2603/- रुपये की अतिरिक्त राशि प्राप्त होने का भी विवरण है। इसका कुल मूल्य रु. 35,808/- बनता है। नीचे दिए गए प्राधिकारियों ने सूर्य नारायण पीडब्लू 1 की गवाही पर विचार नहीं किया, बलराजी के creditor, इसके अलावा सब-रजिस्ट्रार के समर्थन और बैंक द्वारा जारी प्रमाणपत्र, यानी यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, कोइरौना शाखा, जहां बलराजी को अपने खाते में 15,000/- रुपये की राशि रखने के लिए प्रमाणित किया गया था। उक्त धनराशि 15,000/- रुपये थी जो बलराजी को उप-रजिस्ट्रार के समक्ष विक्रय विलेख के पंजीकरण के समय नकद में प्राप्त हुई थी या जैसा कि वह दावा करती हैं। ये सभी साक्ष्य, जिन्हें विधिवत स्वीकार किया गया था, विशेष रूप से बैंक प्रमाणपत्र, को निपटान अधिकारी और चकबंदी के उप निदेशक दोनों द्वारा विचार करने से नजरअंदाज कर दिया गया था। इस प्रकार, इस न्यायालय की राय में, नीचे दिए गए प्राधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए प्रतिफल के पारित होने के बारे में संदेह के निष्कर्ष, रिकॉर्ड पर भौतिक साक्ष्य की अज्ञानता पर आधारित हैं।

52. कुछ अन्य बहुत ही महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिन पर नीचे के अधिकारियों द्वारा स्पष्ट रूप

से गलत दृष्टिकोण से विचार किया गया है। इनमें से सबसे प्रमुख वह निष्कर्ष है जिसमें बलराजी को, जो चकबंदी अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुई थीं, को धोखेबाज माना गया और उनकी नागरिक मृत्यु का अनुमान लगाया गया। उनकी नागरिक मृत्यु के बारे में पूरी धारणा आशाराम, प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा दायर की गई आपतियों में दिए गए दावे पर आधारित है कि बलराजी आपतियों की तारीख, यानी 22.11.1975 से 7-8 साल पहले तीर्थयात्रा पर गई थीं और तब से ग्राम डुहिया नहीं लौटीं; और, उसका ठिकाना ज्ञात नहीं है। पूर्व चकबंदी अधिकारी द्वारा आपतियों की सुनवाई किये जाने से 6-7 वर्ष पूर्व बलराजी के तीर्थ यात्रा पर जाने तथा उस तिथि से लगभग 10 वर्ष पूर्व कुछ साक्ष्यों तथा डुहिया अथवा प्रतिवादी क्रमांक 4 द्वारा उसके बाद कभी सुनने में नहीं आया के आधार पर नागरिक मृत्यु का मामला बनाया गया है। बलराजी की नागरिक मृत्यु के मामले को नीचे दिए गए सभी प्राधिकारियों द्वारा बहुत आसानी से स्वीकार कर लिया गया है; और स्पष्ट रूप से अवैध बुनियादों पर स्वीकार किया गया। चकबंदी अधिकारी ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के तहत एक अनुमान के आधार पर बलराजी की नागरिक मृत्यु के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किया है:

"द्वितीय पक्ष की तरफ से आशाराम, जगदम्बा, सभाजीत, गिरधारी यादव तथा महेन्द्र नाथ पंचायत सचिव और उन्होंने ग्राम डुहिया के कुटुम्ब रजिस्ट्रार को सावित किया है इस रजिस्ट्रार में मु० बलिराजी का नाम दर्ज नहीं है इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीमती

बलिराजी कम से कम 10 साल से ग्राम डुहिया में नहीं रहती है जगदम्बा प्रसाद विजय नाथ तथा सभाजीत गवाहो ने अपने बयानों में कहा है कि मु० बलिराजी तीर्थ करने गयी थी किन्तु लौटकर नहीं आयी है गवाहो के बयान पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है अतः तथ्य सिद्ध हो जाता है कि बलिराजी सात साल से अधिक समय से लापता है और उनकी मृत्यु कानूनी तौर पर मानी जायेगी दिनांक 29.7.74 को मु० बलिराजी का रहना सिद्ध नहीं होता इस तथ्य को कमलाशंकर प्रधान ने भी स्वीकार किया है कि मु० बलिराजी का तीर्थयात्रा जाने के बाद से उनका पता नहीं चला।"

53. चकबंदी के सहायक बंदोबस्त अधिकारी ने श्रीमती बलराजी की नागरिक मृत्यु को स्वीकार करते हुए एक अत्यंत रहस्यमय निष्कर्ष लिखा है। निम्नलिखित कुछ शब्दों में:

" बलराजी तीर्थ यात्रा करने गयी और वहां से वापसी नहीं आयी इसलिए उसकी

54. चकबंदी के उप निदेशक ने उक्त प्रकरण पर अपना कोई निष्कर्ष नहीं लिखा है। चूँकि उन्होंने नीचे दिए गए दो प्राधिकारियों के निर्णयों की पूरी तरह से पुष्टि की है, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि यदि नीचे दिए गए दोनों प्राधिकारियों का दृष्टिकोण गलत है, तो चकबंदी के उप निदेशक अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने और इस निष्कर्ष के बारे में इसे सुधारने में विफल रहे हैं। बलराजी की नागरिक मृत्यु का अनुमान लगाने वाले रहस्यमय निष्कर्ष स्पष्ट रूप से अवैध और

दूषित हैं। साक्ष्य अधिनियम की धारा 107 और 108, जो इस मुद्दे से प्रासंगिक हैं, यहां नीचे दी गई हैं:

"107. तीस वर्ष के भीतर जीवित जात व्यक्ति की मृत्यु को साबित करने का भार - जब सवाल यह हो कि कोई व्यक्ति जीवित है या मृत, और यह दिखाया जाता है कि वह तीस वर्ष के भीतर जीवित था, तो यह साबित करने का भार कि वह मर चुका है उस व्यक्ति पर है जो इसकी पुष्टि करता है।

108. यह साबित करने का भार कि वह व्यक्ति जीवित है जिसके बारे में सात साल से कुछ नहीं सुना गया - बशर्ते कि जब यह सवाल हो कि कोई आदमी जीवित है या मर गया है, और यह साबित हो जाए कि सात साल से उसके बारे में नहीं सुना गया है जो लोग स्वाभाविक रूप से उसके बारे में सुनते यदि वह जीवित होता तो, यह साबित करने का भार की वह जीवित है उस व्यक्ति पर डाल दिया जाता है जो इसकी पुष्टि करता है।"

55. धारा 107 यह धारणा बनाती है कि कोई व्यक्ति जीवित है यदि यह दिखाया जाता है कि वह तीस साल के भीतर जीवित था, और यह साबित करने का भार कि वह मर गया है उस व्यक्ति पर है जो इस तथ्य का दावा करता है। प्रतिवादी नंबर 4, आशाराम के अनुसार, बलराजी 6-7 साल पहले भी जीवित थीं, जब वह तीर्थयात्रा पर निकली थीं। इसलिए, यदि धारा 108 के तहत अनुमान लागू नहीं होता है, तो सकारात्मक साक्ष्य के साथ यह दिखाने का बोझ प्रतिवादी नंबर 4 पर होगा कि बलराजी बिक्री विलेख के निष्पादन

की तारीख पर मर चुकी थीं। यहां, हालांकि, चौथे प्रतिवादी ने पिछले सात वर्षों के भीतर बलराजी के ठिकाने का पता नहीं चलने के मामले की पैरवी करने के लिए धारा 108 के प्रावधानों को लागू किया है। धारा 108, धारा 107 के परंतुक की प्रकृति में है। हालांकि एक स्वतंत्र धारा, यह 'बशर्ते कि कब' शब्दों के साथ खुलती है। सामंजस्यपूर्ण ढंग से व्याख्या करने पर, धारा 107 और 108 इस प्रश्न पर एक अभिन्न योजना बनाते हैं कि घटनाओं के सामान्य क्रम में कौन जीवित माना जाता है और किसे मृत माना जा सकता है, अर्थात्, उस समय जब यह प्रश्न उठता है। सामान्य नियम यह है कि जिस व्यक्ति को प्रश्न उठने की तारीख से तीस वर्ष के भीतर जीवित दिखाया जाता है। धारणा यह होगी कि व्यक्ति जीवित है। इसलिए, धारा 107, जीवन के बारे में एक धारणा उठाती है, जबकि धारा 108 एक प्रावधान के रूप में मृत्यु के बारे में धारणा का नियम बनाती है। यह ध्यान दिया जाएगा कि धारा 107 जीवन के अच्छे अनुभव पर आधारित है एक इंसान के जीवन काल को देखते हुए, जिस व्यक्ति को प्रश्न उठने की तारीख से तीस साल के भीतर जीवित दिखाया जाता है, उसे जीवित माना जा सकता है, उस व्यक्ति पर बोझ के साथ जो दावा करता है कि वह मर चुका है। इसे सकारात्मक साक्ष्य द्वारा सिद्ध करें।

56. चौथे प्रतिवादी ने तथ्यों और सबूतों के आधार पर धारा 108 के तहत अनुमान लगाया है कि चकबंदी अधिकारी के समक्ष, अपनी आपत्तियां दाखिल करने से 7-8 साल पहले श्रीमती बलराजी ने आशाराम, प्रतिवादी नंबर 4

से 5000/- रुपये की राशि उधार ली और तीर्थ यात्रा पर चली गई। उन्होंने तब कहा था कि उसके बाद से ग्राम डुहिया में उनकी कोई खबर नहीं आई है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, चकबंदी अधिकारी ने नागरिक मृत्यु के मामले को यह कहकर सहजता से स्वीकार कर लिया है कि गवाह जगदंबा प्रसाद और सभाजीत ने अपनी गवाही में कहा है कि बलराजी तीर्थयात्रा पर गईं, लेकिन कभी वापस नहीं लौटीं। इस गवाही से चकबंदी अधिकारी द्वारा सहज ही यह निष्कर्ष निकाल लिया गया है कि इन गवाहों के साक्ष्यों को देखते हुए इस पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

57. निष्कर्ष यह निकाला गया कि यह सिद्ध है कि बलराजी पिछले 7 वर्षों से लापता हैं और उन्हें कानून के तहत 29.05.1974, यानी बिक्री पत्र की तारीख पर मृत माना जाएगा। इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया है कि पंचायत सचिव महेंद्र नाथ द्वारा प्रस्तुत ग्राम डुहिया के परिवार रजिस्टर में बलराजी का नाम दर्ज नहीं है। चकबंदी अधिकारी ने निष्कर्ष निकाला कि ग्राम डुहिया के परिवार रजिस्टर में बलराजी का नाम न होने से यह पता चलेगा कि बलराजी पिछले 10 वर्षों से डुहिया में नहीं रहती हैं। इन तथ्यों या साक्ष्य की स्थिति पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के प्रावधानों को लागू करना लगभग असंभव है। चकबंदी अधिकारी द्वारा देखे गए तथ्यों और साक्ष्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग्राम डुहिया में बलराजी का कोई अता-पता नहीं है और इससे अधिक कुछ भी नहीं। धारा 108 के तहत नागरिक मृत्यु की धारणा केवल इसलिए नहीं बनाई जा सकती

क्योंकि कुछ परिचित व्यक्तियों ने पिछले सात वर्षों की अवधि में लापता व्यक्ति के बारे में नहीं सुना है। धारा 108 के तहत अनुमान को आकर्षित करने के लिए अनिवार्य शर्त यह है: "साबित किया गया है कि उसके बारे में उन लोगों ने सात साल तक नहीं सुना है, जिन्होंने स्वाभाविक रूप से उसके बारे में सुना होगा यदि वह जीवित होता", कानून की वाक्यांशविज्ञान को लेने के लिए।

58. इस मामले में बलराजी का विवाह ग्राम डुहिया के एक परिवार में हुआ था, जहाँ उनके पति चन्द्रशेखर का बहुत पहले निधन हो गया था। विवादित ज़मीन उन्हें अपने पति से विरासत में मिली थी, जिस पर उनकी सौतेली भाभी, देवराजी ने चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष दावा किया था और श्रीमती बलराजी के साथ समझौता करके अपने लिए एक हिस्सा सुरक्षित कर लिया था। यह 1966 में हुआ था। इसके बाद, यदि बलराजी अपने पिता के गांव गोपालपुर में चली गईं और बस गईं, जहां उनके पिता अभी भी जीवित थे, तो यह शायद ही कहा जा सकता है कि डुहिया में किसी ने "स्वाभाविक रूप से उनके बारे में सुना होगा"। यह दिखाने के लिए सकारात्मक सबूत हैं कि बलराजी अपने पिता के साथ गोपालपुर में रह रही थीं। डुहिया में ऐसा कोई नहीं है जो यह कहने का हकदार हो कि यदि वह जीवित होती तो 1974 से पहले के पिछले सात वर्षों के दौरान उसे स्वाभाविक रूप से बलराजी के बारे में सुनना चाहिए था। धारा 108 के तहत बलराजी के मृत होने की धारणा नहीं बनाई जा सकती, क्योंकि डुहिया में किसी ने उनके बारे में नहीं सुना था। यह तभी उत्पन्न होगा जब

उन व्यक्तियों ने उसके बारे में नहीं सुना होगा, जिन्हें स्वाभाविक रूप से उसके बारे में सुनना चाहिए था। आशाराम, जगदंबा प्रसाद, सभाजीत, सभी ग्राम डुहिया के मूल निवासी, वह व्यक्ति नहीं हैं, जो स्वाभाविक रूप से बलराजी के बारे में सुनते, यदि वह अपने पिता के साथ गोपालपुर में जाकर बस जाती। यह एक ऐसा मामला है, जहां नीचे के अधिकारियों ने बलराजी की नागरिक मृत्यु का अनुमान लगाने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के तहत धारणा को पूरी तरह से गलत तरीके से लागू किया है।

59. यह मुद्दा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 में नियम के लिए यह कितना महत्वपूर्ण है कि वे कौन से व्यक्ति हैं जिन्होंने स्वाभाविक रूप से सात साल की अवधि के दौरान उस व्यक्ति के बारे में सुना होगा यदि वह जीवित होता, इस पर विचार किया पंजाब उच्च न्यायालय ने **पूर्वी पंजाब प्रांत बनाम बचन सिंह और अन्य, एआईआर 1957 पुंज 316**। उस मामले में, मुद्दा चरम तथ्यों के संदर्भ में उठा जो नियम को उसके पूर्ण प्रभाव में लाने के लिए एक उल्लेखनीय स्थिति प्रस्तुत करता है। **बचन सिंह** (सुप्रा) में, माल सिंह नामक एक व्यक्ति पर हत्या का आरोप लगाया जाना था। वह फरार हो गया। उस समय लागू आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 87 और 88 के तहत उनकी संपत्ति कुर्क कर ली गई और कब्जा ले लिया गया। मामले की रिपोर्ट में सामने आए तथ्य बताते हैं कि यह सब माल सिंह के प्रतिशोधी के कहने पर कार्रवाई शुरू होने से कई साल पहले हुआ था। 1946 में, बचन सिंह और तारा सिंह ने, माल

सिंह के प्रतिशोधी होने का दावा करते हुए, कुर्क की गई संपत्ति पर कब्जे के लिए इस आधार पर मुकदमा दायर किया कि माल सिंह को मृत मान लिया जाना चाहिए और उनके उत्तराधिकारी होने के नाते वे उनकी संपत्ति के उत्तराधिकारी होने के हकदार थे। उपरोक्त दोनों वादी ने माल सिंह की विधवा को भी मुकदमे में एक पक्ष के रूप में शामिल किया, जिसने इस बीच पुनर्विवाह किया था। न्यायालय के समक्ष एकमात्र प्रश्न यह था कि क्या माल सिंह को मृत माना जा सकता है। और यदि हां, तो इसका प्रभाव. नीचे की दोनों अदालतों द्वारा मुकदमे का फैसला सुनाया गया था, साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के तहत लगाए गए अनुमान पर भगोड़े को मृत मानते हुए। सरकार द्वारा की गई दूसरी अपील पर डिवीजन बेंच के लिए बोलते हुए, जिसे अनुमति दी गई और पलटवार करने वालों का मुकदमा खारिज कर दिया गया, खोसला, जे. ने कहा:

"4. धारा 108, धारा 107 के प्रावधान से अधिक कुछ नहीं है और इसलिए, दोनों खंडों को उनके पूर्ण अर्थ की सराहना करने के लिए एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। धारा पढ़ते हैं:

"107. जब सवाल यह हो कि कोई आदमी जीवित है या मर गया है, और यह दिखाया जाता है कि वह तीस साल के भीतर जीवित था, तो यह साबित करने का भार कि वह मर चुका है, उस व्यक्ति पर है जो इसकी पुष्टि करता है।

108. बशर्ते कि जब यह प्रश्न हो कि कोई व्यक्ति जीवित है या मर गया है, और यह साबित हो गया है कि उसके बारे में

सात साल तक उन लोगों ने नहीं सुना है जो स्वाभाविक रूप से उसके बारे में सुनते अगर वह जीवित होता, तो यह साबित करने का भार वह जीवित है उसे उस व्यक्ति के पास स्थानांतरित कर दिया गया है जो इसकी पुष्टि करता है।"

5. धारा 108 में महत्वपूर्ण वाक्यांश है "जिन्होंने स्वाभाविक रूप से उसके लिए सुना होगा यदि वह जीवित होता तो ।" वर्तमान मामले में माल सिंह हत्या के आरोप में मुकदमे से बचने के लिए न्याय से भाग रहा था। इसलिए, वह घटनाओं के प्राकृतिक क्रम में किसी भी संबंध के साथ संवाद नहीं करेगा क्योंकि ऐसा करना इससे उसके ठिकाने का पता चल जाएगा और उसे पुलिस द्वारा पकड़ा जा सकता है और उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है। यह सबूत है कि कथित हत्याओं को अंजाम देने के बाद वह भाग गया और छिपकर रहा। इसलिए, इस प्रकृति के मामले में कोई भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि यह धारा 107 है न कि धारा 108 जो लागू होगी।

धारा 108 के तहत दायित्व का स्थानांतरण केवल तभी होता जब वादी "यदि वह जीवित होता तो स्वाभाविक रूप से उसके बारे में सुनता।" अब, वादी प्रतिवादी होने के नाते, माल सिंह उनके साथ संवाद नहीं करेंगे। वास्तव में, वह गांव में किसी से संपर्क न करेंगे। वादी द्वारा जांचे गए गवाहों में से एक उन दो व्यक्तियों का पिता है, जिनकी कथित तौर पर माल सिंह ने हत्या कर दी थी, और यह व्यक्ति आखिरी व्यक्ति होगा, जिसे माल सिंह अपने ठिकाने के बारे में बताएगा। या वह जिसके साथ संवाद करेगा।"

60. साक्ष्य अधिनियम की धारा 107 और 108 के तहत अनुमान के आह्वान के संबंध में सिद्धांतों को एलआईसी ऑफ इंडिया बनाम अनुराधा, (2004) 10 एससीसी 131 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अनुराधा (सुप्रा) में, माना गया है :

"14. उपर्युक्त अधिकारियों के आधार पर, हम निसंकोच एक निष्कर्ष पर पहुंचते हैं जिसे हम निम्नलिखित शब्दों में सारांशित करते हैं: मृत्यु की धारणा के संबंध में कानून वही रहता है चाहे वह इंग्लैंड के सामान्य कानून में हो या भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 107 और 108 के वैधानिक प्रावधानों में। साक्ष्य अधिनियम की योजना में, हालांकि धारा 107 और 108 को दो धाराओं के रूप में तैयार किया गया है, वास्तव में, धारा 108 धारा 107 में अधिनियमित नियम का अपवाद है। मानव जीवन अस्तित्व में दिखाया गया है, एक निश्चित समय पर, जो धारा 107 के अनुसार प्रश्न उठने की तारीख से 30 साल के भीतर एक बिंदु होना चाहिए, जीवित रहना माना जाता है। नियम एक प्रावधान या निहित अपवाद धारा 108 में के अधीन है। यदि वे व्यक्ति, जिन्होंने स्वाभाविक रूप से और मानवीय मामलों के सामान्य क्रम में संबंधित व्यक्ति के बारे में सुना होगा, सात साल तक उसके बारे में नहीं सुना है, तो धारा 107 के तहत उठाया गया अनुमान प्रभावी नहीं रहता है। धारा 107 का प्रभाव यह है कि यह साबित करने का भार उस व्यक्ति पर डाल दिया जाता है कि वह मर चुका है जो इस तथ्य की पुष्टि करता है। धारा 108, इसकी प्रयोज्यता के अधीन, सबूत के बोझ को उस व्यक्ति पर

वापस स्थानांतरित करने का प्रभाव डालती है जो उस व्यक्ति के जीवित होने के तथ्य का दावा करता है। धारा 108 के तहत उठाया गया अनुमान एक सीमित अनुमान है जो केवल उस व्यक्ति की मृत्यु के तथ्य को मानने तक सीमित है जिसके जीवन या मृत्यु का मामला है। हालांकि यह मान लिया जाएगा कि व्यक्ति मर गया है लेकिन मृत्यु की तारीख या समय के बारे में कोई धारणा नहीं है। उन तथ्यों और परिस्थितियों के बारे में कोई अनुमान नहीं है जिनके तहत व्यक्ति की मृत्यु हुई होगी। धारा 108 के संदर्भ में मृत्यु के बारे में अनुमान केवल सात साल की समाप्ति पर उत्पन्न होगा और किसी भी तर्क या तर्क को लागू करने से 6 साल और 364 दिनों की समाप्ति पर या उससे कम समय पर उठाने की अनुमति नहीं दी जाएगी। अनुमान लगाने का अवसर केवल तभी उत्पन्न होगा जब प्रश्न किसी अदालत, न्यायाधिकरण या किसी प्राधिकारी के समक्ष उठाया जाएगा, जिसे यह तय करने के लिए कहा जाता है कि कोई व्यक्ति जीवित है या मृत है। जब तक विवाद को किसी भी मंच पर और किसी कानूनी कार्यवाही में नहीं उठाया जाता, तब तक अनुमान लगाने का अवसर ही नहीं उठता।"

61. साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के तहत मृत्यु का अनुमान लगाने के बारे में एक और पहलू है, जिसे नीचे के अधिकारियों द्वारा गलत समझा गया है। धारा 108 के तहत धारणा उस समय उत्पन्न होती है जब कार्रवाई शुरू होती है और मुकदमे में यह मुद्दा उठाया जाता है कि क्या किसी विशेष व्यक्ति को पिछले सात वर्षों में उन लोगों द्वारा नहीं सुना

जाने के कारण मृत माना जा सकता है, जिन्होंने स्वाभाविक रूप से उसके बारे में सुना होगा। नियम अनुमानित मृत्यु के समय के बारे में सटीक या अनुमान को बढ़ावा नहीं देता है। इसलिए, यह नहीं माना जा सकता है कि जिस व्यक्ति के बारे में पिछले सात वर्षों से, या उससे भी अधिक समय से, जब कार्रवाई शुरू हुई हो, कुछ भी नहीं सुना गया हो, उसे सात वर्ष की अवधि की शुरुआत में या किसी विशेष समय पर मृत मान लिया जा सकता है। यदि कोई पक्ष यह साबित करना चाहता है कि कोई व्यक्ति अतीत में किसी विशेष तिथि पर मर गया था, जिसके बारे में सात साल या उससे अधिक समय तक नहीं सुना गया था, तो इसे दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा सकारात्मक साक्ष्य द्वारा साबित करना होगा। इस मामले में एकमात्र अनुमान जो उठाया जा सकता है, यदि किया जा सकता है, और जो अन्य बातें कही गई हैं, उसके अधीन, वह यह है कि जिस तारीख को चकबंदी अधिकारी के समक्ष कार्रवाई शुरू हुई, उस दिन बलराजी की मृत्यु हो गई थी। इस बात का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वह वर्ष 1974 से सात साल पहले या विक्रय पत्र निष्पादित करने की तारीख पर मर चुकी थी।

62. इस बात पर बहुत सारे अधिकारी हैं कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के तहत अनुमान को अतीत में किसी विशेष समय या अवधि में किसी व्यक्ति की मृत्यु को साबित करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। इस मुद्दे पर शुरुआती अधिकारियों में से एक फानी भूषण बनर्जी बनाम सुरजा कांत रॉय चौधरी और एक अन्य, 1907 एससीसी

ऑनलाइन कैल 20: (1906-07) 11 सीडब्ल्यूएन 883 है, जहां डिवीजन बेंच के न्यायाधीशों ने सहमतिपूर्ण राय लिखी थी। **फानी भूषण (सुप्रा)** में नियम की अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति गीड्ट, जे. की सहमति वाली राय में पाई जाती है, जहां उनका मानना था:

"..... जिस प्रश्न के लिए उस धारा में प्रावधान किया गया है, वह प्रश्न यह है कि कोई व्यक्ति जीवित है या मृत, अर्थात् जब प्रश्न उठाया जाता है तो वह जीवित है या मृत, यह नहीं कि वह जीवित था या नहीं या किसी पूर्ववर्ती तिथि पर मृत हो गया है, और कुछ परिस्थितियों में जो अनुमान लगाया जा सकता है, वह एक धारणा है कि जब प्रश्न उठाया जाता है तो वह व्यक्ति मर चुका है, और यह धारणा नहीं है कि वह किसी पूर्ववर्ती तिथि पर मर गया था..."

63. **जेशंकर रेवाशंकर बनाम बाई दिवाली, एआईआर 1920 बीओएम 85 (2)** में बॉम्बे हाई कोर्ट द्वारा नियम को फिर से दोहराया गया था, जहां डिवीजन बेंच का गठन करते हुए न्यायाधीशों ने भी सहमति वाले निर्णय लिखे थे। **जेशंकर रेवाशंकर (सुप्रा)** में नियम मैकलेओड, सी.जे. द्वारा इस प्रकार बताया गया था:

".....लेकिन सबसे प्रारंभिक तारीख जिससे मृत्यु मानी जा सकती है वह केवल वही तारीख हो सकती है जब मुकदमा दायर किया गया था। इसके आगे पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं हो सकता..."

(न्यायालय द्वारा जोर)

64. इस सिद्धांत पर **मुहम्मद शरीफ और अन्य बनाम बंदे अली और अन्य, (1911) 8**

एलजे 1052 में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले में स्पष्ट रूप से चर्चा की गई थी, जहां रिचर्ड्स, सी.जे. ने कहा था:

"वादी धरूप नाथ बनाम गोबिंद सरन [(1886) आई.एल.आर., 8 ऑल., 614.] के मामले पर भरोसा करते हैं। उस मामले में यह निर्णय लिया गया था कि वादी जिस धारणा के लिए दावा कर रहे हैं, वह उत्पन्न होती है। पूरे सम्मान के साथ विद्वान न्यायाधीश जिन्होंने इस मामले में फैसला सुनाया, मुझे लगता है कि उन्होंने टेलर ऑन एविडेंस के उस अंश की गलत व्याख्या की और गलत समझा, जिसे वह उद्धृत करते हैं। विद्वान लेखक जिस सात साल की अवधि की बात करते हैं, मेरी राय में, वह न्यूनतम अवधि है वादी के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि जिस व्यक्ति के जीवन या मृत्यु का प्रश्न है, उसके बारे में नहीं सुना गया है, और यदि साक्ष्य से पता चलता है कि उस व्यक्ति के बारे में सात के बजाय 14 या 15 वर्षों से नहीं सुना गया है, तो यह अनुमान लगाया जाएगा इसे थोड़ा भी आगे नहीं ले जाया जाएगा। केवल यह धारणा होगी कि वह व्यक्ति मर गया था; लेकिन ऐसी कोई धारणा नहीं होगी कि वह उस अवधि के किसी विशेष क्षण में मर गया, जिसके दौरान उसके बारे में नहीं सुना गया हो। टेलर ऑन एविडेंस के अंतिम संस्करण में अनुच्छेद इस प्रकार है:--"हालाँकि, जिस व्यक्ति के बारे में 7 वर्षों से कुछ नहीं सुना गया है, उसे मृत मान लिया जाता है, कानून उसकी मृत्यु के समय के बारे में कोई अनुमान नहीं लगाता है, और यदि कोई व्यक्ति उन सात वर्षों के दौरान सटीक अवधि स्थापित करने का प्रयास करता है जिसमें किसी व्यक्ति

की मृत्यु हो गई, उसे वास्तविक साक्ष्य द्वारा ऐसा करना होगा।" ऐसा कहा जाता है कि विसंगतिपूर्ण स्थिति बनाई गई है कि यदि दिलदार ने अपने जीवनकाल के दौरान मुकदमा किया होता, तो वह सफल होता, और वह अब उसका उत्तराधिकारी उत्तराधिकार का हकदार नहीं है। मुझे ऐसा लगता है कि यह तर्क इस धारणा पर आगे बढ़ता है कि यदि दिलदार ने अपने जीवनकाल में मुकदमा किया होता, तो मदद अली के लापता होने के सबूत बिल्कुल वही होते। यह बहुत जल्दबाजी वाली धारणा होगी. सात या आठ साल पहले ऐसे कई लोग रहे होंगे जिन्होंने मदद अली के अस्तित्व के बारे में सुना होगा जो अब मर चुके हैं और चले गए हैं।

X X X X X

में *नारायण भगवंत बनाम श्रीनिवास त्र्यंबक* [(1905) एल.आर., 8 बोम., 226.] के मामले में और *फणी भूषण बनर्जी बनाम सूर्यकांत राँय चौधरी* [(1907) आई.एल.आर., 35 कैल्क के मामले में जो दृष्टिकोण अपनाता हूँ, 25.]. इस अंतिम फैसले को श्रीनाथ दास बनाम प्रोबोध चंद्र दास [(1910) 11 सी.एल.जे. के मामले में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था। 580.] . *मुकजी, जे.*, पृष्ठ 585 पर कहते हैं:--

"भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 107 द्वारा अधिनियमित एकमात्र धारणा यह है कि मुकदमे के समय पक्ष की मृत्यु हो गई है, लेकिन उसकी मृत्यु के सटीक समय के बारे में कोई धारणा नहीं है।"

65. **मुहम्मद शरीफ़** (सुप्रा) में, बनर्जी, जे. की संक्षिप्त और सहमतिपूर्ण राय इस प्रकार है:

"मेरी भी यही राय है। मामला भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के निर्माण पर आधारित है। उस धारा के तहत इसमें कोई संदेह नहीं है कि जिस व्यक्ति के बारे में सात साल तक नहीं सुना गया उसे मृत माना जाना चाहिए, लेकिन उनकी मृत्यु के समय के बारे में कोई अनुमान नहीं है। मेरी राय में, अनुभाग का वास्तविक निर्माण, *अमीर अली और वुड्रोफ* के साक्ष्य अधिनियम के संस्करण में धारा 108 के नोट में सही ढंग से निर्धारित किया गया है। विद्वान लेखक कहते हैं:--

"नियम वही है चाहे केवल सात वर्ष बीते हों या सात वर्ष से अधिक। सात वर्ष की अवधि के भीतर मृत्यु के समय के बारे में कोई धारणा नहीं है, या कि व्यक्ति की मृत्यु अवधि के अंत में हुई है। * * * धारा द्वारा अधिनियमित एकमात्र धारणा यह है कि मुकदमे के समय पक्ष मर चुका है, लेकिन किसी भी मामले में उसकी मृत्यु के समय के बारे में कोई धारणा नहीं है।"

66. नारायण पिल्लई बनाम वेलायुथन पिल्लई, एआईआर 1963 मैड 385 में साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के तहत निर्धारित अनुमान के बारे में बहुमूल्य मार्गदर्शन पाया जाता है। नारायण पिल्लई (सुप्रा) में, यह देखा गया है:

"धारा 108 एक अनुमान तय करती है जब किसी व्यक्ति के अस्तित्व के बारे में सवाल अदालत के सामने उठाया जाता है। यदि सवाल किसी विशेष समय पर अदालत के सामने उठाया जाता है, और उस समय तक सात साल से अधिक समय बीत चुका हो जब किसी व्यक्ति के बारे में आखिरी बार सुना

गया था, तो यह मान लिया जाएगा कि उसकी मृत्यु उस तारीख से पहले हो गई थी जब सवाल उठाया गया था। यह एक जैसी बात नहीं है की कहा जाये कि जब सात साल की अवधि खत्म होने के लंबे समय बाद ऐसा सवाल उठाया जाता है एक और अनुमान है कि उस अवधि के दौरान किसी विशेष समय पर या गायब होने की तारीख से सात साल के अंत में उनकी मृत्यु हो गई थी। हैल्सबरीज लॉज ऑफ इंग्लैंड, तीसरा संस्करण, खंड 15 में, इस प्रश्न से निपटते हुए, यह कहा गया है (पेज 345 पर):

"इस बात की कोई कानूनी धारणा नहीं है कि संबंधित व्यक्ति कम से कम सात साल की अवधि के अंत तक जीवित था, या उस अवधि के दौरान किसी विशेष समय पर उसकी मृत्यु हो गई, एकमात्र धारणा यह है कि वह मर गया था जिस समय यह प्रश्न उठा यदि पिछले सात वर्षों के दौरान उसके बारे में नहीं सुना गया है। यदि यह स्थापित करना आवश्यक है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु सात वर्षों की अवधि के भीतर किसी विशेष तिथि पर हुई है, तो इसे साक्ष्य द्वारा एक तथ्य के रूप में साबित किया जाना चाहिए। (इटैलिक मेरे हैं)।

लालचंद मारवाड़ी बनाम रामरूप गिर, 50 मैड एलजे 289: (एआईआर 1926 पीसी 9) में प्रिवी काउंसिल द्वारा इस प्रश्न को संदेह से परे रखा गया है:

"अब इस प्रश्न पर, उनके न्यायाधीश संतुष्ट हैं, साक्ष्य अधिनियम में घोषित भारत के कानून और इंग्लैंड के कानून के बीच कोई अंतर नहीं है... और, इस स्पष्टीकरण की तलाश बहुत ही लगातार कर रहे हैं न्यायाधीशों का उन शब्दों

में पाया जाता है जिनमें भारत और इंग्लैंड दोनों में नियम आमतौर पर व्यक्त किए जाते हैं। ये शब्द मूल रूप से इन रे फेन ट्रस्ट्स, 1870-5 अध्याय ए-139 से लिए गए हैं: "यदि किसी व्यक्ति के बारे में सात साल तक उसके बारे में कुछ नहीं सुना गया, कानून की धारणा है कि वह मर चुका है; लेकिन उस अवधि के भीतर किस समय उसकी मृत्यु हुई, यह अनुमान का नहीं बल्कि साक्ष्य का विषय है और यह साबित करने की जिम्मेदारी है कि मृत्यु किसी विशेष समय पर हुई थी सात वर्षों के भीतर, का समय उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जो उस स्थापना के अधिकार का दावा करता है जिसके लिए वह तथ्य आवश्यक है।" इन शब्दों के बाद, यह लगातार माना जाता है - शायद अस्वाभाविक रूप से नहीं - कि जहां गायब होने की अवधि सात साल से अधिक हो, तो मृत्यु, जिसे सात साल की अवधि के दौरान किसी भी समय नहीं माना जा सकता है, माना जा सकता है खत्म होने पर। यह निश्चित रूप से ऐसा नहीं है। यदि अवधि सात वर्ष से अधिक है तो धारणा समान है। अवधि एक और निरंतर है; हालांकि इसे सात वर्षों की तीन या चार अवधियों में विभाजित किया जा सकता है। संभवतः सही नियम होगा तो छूटने की संभावना कम होती है, और यह अपने आप में अधिक सटीक रूप से कहा जाएगा, बजाय किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में बात करने के, जिसके बारे में सात साल से कुछ नहीं सुना गया था, , कि लापता होने की अवधि को "सात साल से कम नहीं" के रूप में वर्णित किया जाए।"

ऊपर बताई गई टिप्पणियों में यह निहित है कि धारणा केवल तभी उत्पन्न हो सकती है जब यह निर्धारित करने का प्रश्न उठाया जाए कि कोई पुरुष या महिला जीवित है या मृत।

शेरी अम्मल, 1958-2 मैड एलजे 53: (एआईआर 1958 मैड 463) में, सुब्रह्मण्यम जे. ने धारा 108 के तहत अनुमान का उल्लेख किया है। और कहा गया कि इसका विस्तार मृत्यु के तथ्य तक होगा न कि किसी विशेष अवधि में मृत्यु के समय तक। विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि मृत्यु का सही समय अनुमान का मामला नहीं है, बल्कि उस व्यक्ति द्वारा साक्ष्य द्वारा सबूत का मामला है जो उस अधिकार का दावा करता है जिसके लिए तथ्य आवश्यक है। एक हालिया मामले में *ज्ञानमुथु बनाम एंथोनी, एआईआर 1960 मैड 430, रामास्वामी जे.* धारा 107 और 108 के प्रावधानों के पूर्ण विश्लेषण के बाद कहा कि धारा 108 के तहत अनुमान केवल उस समय मृत्यु के तथ्य के बारे में होगा जब प्रश्न उठाया गया है, न कि किसी विशेष पूर्ववर्ती समय पर।"

67. यह प्रश्न **अनुराधा** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के विचारार्थ आया, जहां न्यायाधीशों द्वारा माना गया है:

"12. न तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 और न ही तर्क, कारण या समझ यह अनुमान लगाने या बनाए जाने की अनुमति देती है कि जिस व्यक्ति के बारे में सात साल तक नहीं सुना गया वह उसके लापता होने की तारीख पर या तारीख और

समय के तुरंत बाद मर गया था जब उसे आखिरी बार देखा गया था। अनुमान के आधार पर निकाले जाने योग्य एकमात्र अनुमान यह है कि वह व्यक्ति उस समय मर चुका था जब सवाल उठाया गया और सात साल की अनुपस्थिति के दौरान सुना नहीं गया समय के बीतने के पूर्व । इस धारणा का खंडन नहीं किया जा सकता है कि प्रतिस्पर्धी पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि ऐसा व्यक्ति या तो उस तारीख को जीवित था जिस दिन विवाद उत्पन्न हुआ था या उससे पहले किसी भी समय ताकि उस तारीख से सात साल की अवधि को पीछे की ओर गिना जा सके जिस दिन प्रश्न पूछा गया था निर्धारण के लिए । व्यक्ति किस समय मरा था, यह अनुमान का नहीं बल्कि साक्ष्य, तथ्यात्मक या परिस्थितिजन्य का मामला है, और यह साबित करने की जिम्मेदारी कि मृत्यु गायब होने के किसी भी समय या तारीख पर हुई थी या गायब होने के सात साल की अवधि के भीतर दावा करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता है, जिसकी स्थापना मृत्यु की तारीख या समय के प्रमाण पर निर्भर करेगी।"

68. इसमें उठने वाले मुद्दे की विशेष प्रासंगिकता में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियाँ **सरूप सिंह बनाम बंटो और अन्य, (2005) 8 एससीसी 330** में हैं। **सरूप सिंह** (सुप्रा) में, यह टिप्पणियाँ की गई हैं:

"22. इसमें न तो कोई संदेह है और न ही विवाद है कि इंदिरा देवी की मृत्यु की तारीख निश्चित नहीं है। उपरोक्त प्रावधान के कारण, मृत्यु का अनुमान लगाया जा सकता है। हालांकि, इस मामले में, इंदिरा देवी

की मृत्यु पर सवाल नहीं है, मृत्यु की तारीख पर है । प्रश्न, मृत्यु की तारीख क्या है। मौजूदा मामले में, दोनों पक्ष इंदिरा देवी की मृत्यु की तारीख साबित करने में विफल रहे हैं। हालांकि, साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 में निहित अनुमान को ध्यान में रखते हुए, अदालत यह मान लेगी कि वह वह मर चुकी थी चूंकि सात साल तक उन लोगों को उसके बारे में पता नहीं चला, जो स्वाभाविक रूप से उसके बारे में सुनता, अगर वह जीवित होती तो , लेकिन यह अपने आप में यह मानने का आधार नहीं होगा कि उसकी मृत्यु मुकदमे दाखिल करने की तारीख से सात साल पहले हो गई थी।"

69. इस प्रकार, इसमें थोड़ा भी संदेह नहीं है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 108 के तहत अनुमान आशाराम के पास यह साबित करने के लिए उपलब्ध नहीं है कि श्रीमती बलराजी की मृत्यु वर्ष 1974 में हो गई थी, जब उन्होंने विक्रय पत्र निष्पादित किया ।

70. इन परिस्थितियों में, यह प्राधिकारी के लिए है, जिसके समक्ष मामला अब निर्धारित करने के लिए आता है साक्ष्य के आधार पर, वह पार्टी द्वारा, जो बिक्री विलेख निष्पादित होने की तारीख पर बलराजी की मृत्यु के तथ्य का सकारात्मक दावा करता है, चाहे वास्तव में उक्त तिथि को बलराजी की मृत्यु हो गयी थी। व्यापक मुद्दे की जांच करते समय इस प्रश्न पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या बलराजी, जिन्होंने बिक्री विलेख निष्पादित किया और इसे अदालत में साबित किया, वास्तव में एक धोखेबाज थीं ।

71. याचिकाकर्ताओं की ओर से दी गई अगली दलील पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि यह सच है कि 1953 के अधिनियम की धारा 12 के तहत आशाराम द्वारा दायर आपतियों में, उसके द्वारा बलराजी की संपत्ति के उत्तराधिकार का कोई मामला नहीं दिखता है। चकबंदी अधिकारी के समक्ष धारा 12 के तहत दायर आपतियों में परिवार की किसी वंशावली की वकालत नहीं की जाती है। इसके बजाय, यह मामला तीर्थयात्रा पर जाने और विवादित भूमि का कब्जा उसे देने से पहले बलराजी द्वारा आशाराम से 5000/- रुपये की बयाना लेकर बेचने के मौखिक समझौते के बारे में प्रतीत होता है। विरासत का कोई मामला दूर-दूर तक नहीं कहा गया है।

72. वंशावली, जिसे नीचे के अधिकारियों ने आशाराम के मामले को स्वीकार करते समय ध्यान में रखा है, याचिकाकर्ताओं द्वारा अपने साक्ष्य बंद करने के बाद उनके साक्ष्य में पहली बार सामने आया है। किसी मामले पर गौर करना वास्तव में अस्वीकार्य होगा, यहां तक कि एक चकबंदी प्राधिकारी के लिए भी एक स्वामित्व मामले की कोशिश करना, जिसकी कभी वकालत नहीं की गई है, लेकिन पार्टियों के साक्ष्य में पहली बार शामिल है। यह फिर से एक ऐसा मामला है, जिसके लिए चकबंदी अधिकारी द्वारा कुछ और जांच की आवश्यकता हो सकती है, यदि अनुबंध संख्या 4 के रूप में रिट याचिका के साथ संलग्न आपतियों के अलावा, चकबंदी अधिकारी के समक्ष उत्तराधिकार के आधार पर दावा पेश करने के लिए कोई अन्य दलील नहीं है। ,

जिसके बारे में आशाराम द्वारा मुकदमे में सबूत पेश किए गए हैं।

73. इस न्यायालय को यह भी ध्यान देना चाहिए कि इन कार्यवाहियों में कुछ अतिरिक्त साक्ष्य चकबंदी के सहायक निपटान अधिकारी के समक्ष स्वीकार किए गए थे और रिकॉर्ड का हिस्सा हैं। उस साक्ष्य को भी प्राधिकरण द्वारा देखा जाना आवश्यक था, जो 1953 के अधिनियम की धारा 12 के तहत मामले को नए सिरे से निर्धारित करता है। श्री त्रिवेणी शंकर की दलीलें, जिनमें से सभी यह कहने की दिशा में है कि नीचे दिए गए तीन प्राधिकरणों के निष्कर्ष तथ्यों के निष्कर्षों पर आधारित हैं, स्वीकार नहीं किए जा सकते क्योंकि इसमें स्पष्ट अवैधताएं हैं, और पार्टियों के मामले का न्याय करने, जो नीचे दिए गए तीनों प्राधिकरणों के दृष्टिकोण को खराब कर रही हैं। चूंकि पार्टियों के बीच उत्पन्न होने वाले मुद्दों पर शुद्ध रूप से तथ्यात्मक निष्कर्षों को कानून के सही परिप्रेक्ष्य में दर्ज करना होगा, इसलिए यह न्यायालय उन निष्कर्षों को यहां एक रिट याचिका में दर्ज करना उचित नहीं मानता है, जहां नीचे दिए गए सभी तीन प्राधिकारियों ने अन्यथा कहा है, कानून की दृष्टि से गलत दृष्टिकोण हो सकता है। सही कानूनी परिप्रेक्ष्य में निष्कर्षों को अधिकारियों द्वारा नीचे दिए गए तथ्य द्वारा दर्ज किया जाना चाहिए। यह वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस मुकदमेबाजी में इतना लंबा समय बीत जाने के बावजूद, इस न्यायालय के पास इस फैसले में दिए गए मार्गदर्शन के अनुसार मामले को नए सिरे से सुनवाई और निर्धारण

के लिए चकबंदी अधिकारी के पास भेजने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

74. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। उप संचालक चकबन्दी, वाराणसी, कैम्प ज्ञानपुर द्वारा पारित किया गया आदेश दिनांक 05.06.1986, सहायक बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी, वाराणसी (पश्चिम) द्वारा पारित किया गया आदेश दिनांक 05.09.1985 को तथा चकबन्दी अधिकारी, ज्ञानपुर, जिला वाराणसी द्वारा पारित किया गया आदेश दिनांक 02.11.1979 को इसके द्वारा रद्द कर दिया जाता है और मामले को नए सिरे से निर्णय लेने के निर्देश के साथ चकबन्दी अधिकारी को भेज दिया जाता है। चकबन्दी अधिकारी अधिनियम 1953 की धारा 12 के तहत पक्षकारों के आवेदन/आपत्तियों को सुनने और निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ेंगे मौजूदा साक्ष्य और ऐसे अन्य साक्ष्यों पर, जिन्हें पक्षकार इस निर्णय में दिए गए मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ाना चाहेंगे।

75. यह भी निर्देशित किया जाता है कि चकबन्दी अधिकारी मामले की नए सिरे से सुनवाई इस प्रकार करेगा कि प्रत्येक सप्ताह प्रभावी सुनवाई की दो तारीखें तय की जाएंगी और जहां तक संभव हो, मामले का फैसला इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर चकबन्दी अधिकारी द्वारा किया जाएगा। ।

76. इस आदेश की एक प्रति चकबन्दी अधिकारी को संसूचित की जाए, जिसका

क्षेत्राधिकार अब कलेक्टर/जिला उप निदेशक चकबन्दी, भदोही के द्वारा रजिस्ट्रार (अनुपालन) के माध्यम से होगा। इस आदेश की एक प्रति कलेक्टर/जिला उपनिदेशक चकबन्दी, वाराणसी को भी सूचित की जाएगी, जिनके पास पूर्व में उपलब्ध अभिलेखों आदि, को भेजने के लिए क्षेत्राधिकार था यदि कोई हो, वाराणसी में ।

(2023) 4 ILRA 298

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

वाद अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या

1271/2023

दीपक एवं अन्य।

...याचिकाकर्ता

बनाम

जिला न्यायाधीश हरदोई एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अनुजराग नारायण

श्रीवास्तव, सुधांशु त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी:

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 -आदेश XXI नियम 29 - धारा 37 - आदेश 21 नियम 29 सीपीसी में निहित प्रावधान को लागू करना विवेकाधीन है और इसे विवेकपूर्ण तरीके से इस्तेमाल किया जाना चाहिए न कि यंत्रवत् रूप से। आदेश 21 नियम 29 सीपीसी में निर्धारित शर्तों की संतुष्टि निष्पादन कार्यवाही को रोकने के लिए पर्याप्त नहीं है और इस नियम के तहत शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण वाद में किया जाना चाहिए जहां न्यायहित में इसकी आवश्यकता हो और मौलिक विचार यह होना

चाहिए कि डिक्री धारक को बाध्यकारी कारणों को छोड़कर डिक्री के फलों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए और जब तक कोई असाधारण मामला नहीं बनता है, तब तक कोई रोक नहीं दी जानी चाहिए और डिक्री को जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। (पैरा 19)

(i) आदेश 21 नियम 29 सीपीसी केवल तभी लागू होता है जब उक्त प्रावधानों में निर्दिष्ट वाद और निष्पादन कार्यवाही एक ही न्यायालय के समक्ष लंबित हो, न कि दो अलग-अलग न्यायालयों के समक्ष जो समन्वित क्षेत्राधिकार के नहीं हैं।

(ii) यदि निष्पादन कार्यवाही पहले ही प्रारंभ कर दी गई है, तो बाद में केवल वाद दायर करना और उसका लंबित रहना आदेश 21 नियम 29 सीपीसी को लागू करने का आधार नहीं बनाया जा सकता। यदि वाद निष्पादन कार्यवाही प्रारंभ होने के बाद शुरू किया जाता है तो ये उक्त प्रावधान लागू नहीं होंगे।

(iii) निष्पादन न्यायालय द्वारा अपने समक्ष लंबित अपनी कार्यवाही को रोकने की शक्ति और अधिकारिता का प्रयोग केवल असाधारण और आपवादिक परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिए, न कि स्वाभाविक रूप से और निष्पादन न्यायालय को यह पता लगाने के लिए सावधानी/सतर्कता बरतनी होगी कि क्या अपनी कार्यवाही को रोकने से विधि प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और उस स्थिति में, निष्पादन न्यायालय इन प्रावधानों के अंतर्गत आगे की कार्यवाही पर रोक नहीं लगाएगा। (पैरा 19)

वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता द्वारा संहिता की धारा 151 के साथ आदेश XXI नियम 29 के तहत प्रस्तुत आवेदन पर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है, जिसमें एकमात्र आधार यह लिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा बाद में दायर किए गए वाद में, वाद संपत्ति पर स्वामित्व के मुद्दे पर भी निर्णय लिया जाना आवश्यक है और इसलिए उक्त वाद संपत्ति से संबंधित निष्पादन कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए प्रार्थना की गई है। (पैरा 20)

आवेदन को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि आवेदन को बहुत ही सरसरी तरीके से तैयार किया गया है। संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधानों को लागू करने के लिए कोई विशेष कारण नहीं बताया गया है, विशेष रूप से यह तथ्य कि इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1988 से लंबित प्रारंभिक वाद कार्यवाही के बारे में कैसे पता नहीं था और वह भी तब जब याचिकाकर्ता ने सह-स्वामित्व के आधार पर वाद संपत्ति पर दावा किया है। यह भी विचार करने योग्य एक प्रासंगिक कारक है कि याचिकाकर्ता का सगा भाई नियमित वाद संख्या 355/1988 में प्रारंभिक वाद कार्यवाही में पक्षकार था और यदि याचिकाकर्ता वाद परिसर के सह-स्वामित्व का दावा कर रहा था, तो यह तर्क नहीं बनता है कि वह उक्त वाद कार्यवाही के बारे में अनजान था या हो सकता था, जो द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार में इस न्यायालय तक कार्यवाही में परिणत हुई। (पैरा 21)

वाद के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधान लागू नहीं होने के कारण, आरोपित आदेशों पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता। (पैरा 28)

बी. शब्द और वाक्यांश - (i) 'ऐसी न्यायालय' - 'ऐसी न्यायालय' शब्द का अर्थ है, वह न्यायालय जिसमें वाद लंबित है। दूसरे शब्दों में, डिक्री धारक के विरुद्ध संस्थित वाद और निष्पादन कार्यवाही एक साथ एक ही न्यायालय में लंबित होनी चाहिए।

इसका तात्पर्य यह है कि एक न्यायालय दूसरे समन्वय न्यायालय की कार्यवाही पर रोक नहीं लगा सकता। यहां तक कि ऐसे वाद में भी जहां डिक्री को निष्पादन के लिए दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित किया जाता है, संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधान लागू नहीं होंगे। संहिता की धारा 37 के प्रावधानों को भी 'डिक्री पारित करने वाले न्यायालय' अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने के लिए विज्ञापित किया गया है (पैरा 12, 13)

वर्तमान वाद में, पक्षों के मध्य यह स्वीकार किया गया है कि जबकि नियमित वाद की कार्यवाही अतिरिक्त सिविल जज, वरिष्ठ खंड, हरदोई के न्यायालय में लंबित है, निष्पादन का वाद सिविल जज, वरिष्ठ खंड, हरदोई के समक्ष विचाराधीन है। स्वीकृत है कि दोनों न्यायालय अलग-अलग हैं और उन्हें संहिता के आदेश XXI नियम 29 में परिकल्पित 'ऐसे न्यायालय' की परिभाषा के अंतर्गत आने के लिए एक ही न्यायालय नहीं माना जा सकता है। (पैरा 14)

संहिता के आदेश XXI नियम 29 के अन्तर्गत आवेदन प्रस्तुत करने के समय वाद तथा निष्पादन कार्यवाही अपर सिविल जज, वरिष्ठ खण्ड, हरदोई के एक ही न्यायालय में लम्बित थी, किन्तु आक्षेपित आदेश के माध्यम से आवेदन पर अन्तिम निर्णय के समय वे पृथक न्यायालयों में लम्बित थे। (पैरा 15, 16)

(ii) 'जहां वाद लंबित है' - इसका तात्पर्य यह है कि ऐसे न्यायालय की डिक्री के धारक के विरुद्ध दायर वाद उस तारीख को लंबित होना चाहिए, जिस दिन डिक्री निष्पादित की जानी है। (पैरा 17)

(iii) 'एक साथ कार्यवाही' - यदि डिक्री धारक के विरुद्ध नियमित वाद प्रारंभ करने से पूर्व निष्पादन कार्यवाही दायर की गई थी, तो वह 'एक साथ कार्यवाही' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आएगी ताकि संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधानों को लागू किया जा सके। (पैरा 18)

(iv) 'लंबित' 'लंबित' शब्द का अर्थ है कि निर्णय के विरुद्ध वाद निष्पादन की तारीख तक डिक्री धारक का वाद लंबित होना चाहिए। (पैरा 22)

सी. उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा नियमावली, 2001 नियम 4(0) जहां तक नियमावली, 2001 पर भरोसा करने का सवाल है, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यह न्यायिक अधिकारियों के सेवा विनियमन से संबंधित है, जो कि प्रकृति में प्रशासनिक होगा और किसी भी तरह से इसमें न्यायिक कार्यवाही सम्मिलित नहीं

मानी जा सकती है, जैसा कि प्रस्तुत किया गया है। (पैरा 25)

रिट याचिका निरस्त (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. सत्यवती बनाम राजिंदर सिंह, (2013) 9 एससीसी 491 (पैरा 9)
2. शौकत हुसैन @ अली अकरम व अन्य बनाम श्रीमती भुनेश्वरी देवी (मृत) एल.आर.एस व अन्य, (1972) 2 एस.सी.सी. 731 (पैरा 9)
3. कृष्ण सिंह बनाम मथुरा अहीर और अन्य, एआईआर 1982 सुप्रीम कोर्ट 686 (पैरा 9)
4. बालम्मल एवं अन्य बनाम मुथियार बेगम एवं अन्य, 2013-5-एल.डब्ल्यू. 9 (पैरा 9)
5. सिकंदर मोहम्मद अली दलाल एवं अन्य बनाम बाबू हनुमंत मिंडोलकर मृतक, उनके भाइयों एवं अन्य द्वारा, रिट याचिका संख्या 103071/2017 (कर्नाटक उच्च न्यायालय, धारवाड़ पीठ) (पैरा 9)
6. इनायत बेग बनाम उमराव बेग, एआईआर 1930 एचडी 121 (पैरा 12)

विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:

1. बंसराज और अन्य बनाम जीत नारायण और अन्य, 2017 (35) एलसीडी 1708 (पैरा 8, 26)
2. गुरु दयाल बनाम वेदमती, 2015 (1) एआरसी 869 (पैरा 8, 26)

वर्तमान याचिका में सिविल पुनरीक्षण संख्या 6/2023 में पारित आदेश दिनांक 10.02.2023

साथ ही सीपीसी, 1908 के आदेश XXI नियम 29 के तहत विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.12.2022 और पुष्टि करने वाले दिनांक 06.03.2023 के पुनरीक्षण आदेश को भी चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अनुराग नारायण श्रीवास्तव और प्रतिपक्षी संख्या-3 के अधिवक्ता श्री शरद द्विवेदी को सुना। 24 मार्च, 2023 के पहले के आदेश के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-2, 4 और 9 को नोटिस, प्रोफार्मा प्रकृति के होने के कारण, हटा दिए गए थे।

आज पक्षकारों की ओर से दायर जवाबी और प्रत्युत्तर शपथपत्रों को रिकॉर्ड में लिया जाता है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका दायर की गई है, जिसमें सिविल संशोधन संख्या-6 वर्ष 2023 में पारित दिनांक 10 फरवरी, 2023 के आदेश के साथ-साथ सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद "संहिता" के रूप में संदर्भित) के आदेश XXI नियम 29 के तहत विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 21 दिसंबर, 2022 के साथ-साथ 06 मार्च 2023 जिसकी पुष्टि करता है, के पुनरीक्षण आदेश को चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि शुरू में नियमित मुकदमा संख्या-355 वर्ष 1988 प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा स्वर्गीय सुरेश चंद्र के खिलाफ दायर किया गया था, जिसमें शुरू में स्थायी निषेधाज्ञा की राहत की मांग की

गई थी और बाद में संशोधन द्वारा, कब्जे की राहत की मांग की गई थी। उक्त वाद यद्यपि प्रारंभ में 08 मई, 1996 को खारिज कर दिया गया था, लेकिन अपील संख्या-115 वर्ष 1996 को निर्णय और आदेश दिनांक 25 सितम्बर, 2001 के माध्यम से अनुमति दी गई थी। उक्त अपीलीय आदेश को इसके बाद द्वितीय अपील संख्या-422 वर्ष 2001 में चुनौती दी गई थी और 23 नवंबर, 2001 को गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया था, जहां निष्पादन के बाद आवेदन संख्या-1 वर्ष 2002 प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा दायर किया गया था। यह इंगित करना प्रासंगिक है कि वर्तमान याचिकाकर्ता किसी भी कार्यवाही में पक्षकार नहीं था।

निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, वर्तमान याचिकाकर्ता ने स्थायी निषेधाज्ञा के लिए प्रतिपक्षी संख्या-3 के खिलाफ नियमित मुकदमा संख्या-474 वर्ष 2005 दायर किया जो अभी भी विचाराधीन है। उक्त वाद कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता द्वारा निष्पादन कार्यवाही में 19 अक्टूबर, 2005 को संहिता के आदेश XXI नियम 29 के तहत एक आवेदन दायर किया गया था। उक्त आवेदन को दिनांक 18 अगस्त, 2009 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था लेकिन उसमें दायर सिविल पुनरीक्षण सं-79 वर्ष 2009 को दिनांक 16 नवम्बर, 2010 के निर्णय और आदेश के तहत अनुमति दे दी गई थी और इस मुद्दे को नए सिरे से विचार के लिए भेज दिया गया था। रिमांड के बाद, निष्पादन कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए उक्त आवेदन को दिनांक 21 दिसंबर, 2022 के आदेश द्वारा खारिज कर

दिया गया था, जिसे संशोधन संख्या-6 वर्ष 2023 में चुनौती दी गई थी और जिसे 10 फरवरी, 2023 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि नियमित मुकदमा संख्या-355 वर्ष 1988 याचिकाकर्ता की पीठ के पीछे (सूचित किए बगैर) दायर किया गया था, जिसका वाद संपत्ति में भी नाममात्र का हित था। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के पास वाद या बाद की कार्यवाही का कोई नोटिस नहीं था और इसलिए उसने स्थायी निषेधाज्ञा की राहत का दावा करते हुए प्रतिपक्षी संख्या-3 के खिलाफ नियमित मुकदमा संख्या-474 वर्ष 2005 दायर किया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जब याचिकाकर्ता को प्रतिपक्षी संख्या-3 के इशारे पर लंबित निष्पादन कार्यवाही के बारे में पता चला, तो संहिता के आदेश XXI नियम 29 के तहत उक्त आवेदन दायर किया गया। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने निष्पादन कार्यवाही में संहिता की धारा 47 के तहत कोई आपत्ति दर्ज नहीं की है।

यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने निष्पादन कार्यवाही में याचिकाकर्ता द्वारा दायर वाद के प्रभाव पर विचार किए बिना आवेदन को खारिज कर दिया है, विशेष रूप से इस आशय के लिए कि याचिकाकर्ता का भी वाद संपत्ति में हित था और इसलिए निष्पादन कार्यवाही के पूरा होने के मामले में, वह स्वाभाविक रूप से उक्त आदेश से व्यथित होगा और इसलिए विचारण न्यायालय पर यह आवश्यक था कि वह नियमित वाद के अधिनिर्णय तक याचिकाकर्ता

द्वारा निष्पादन कार्यवाही पर रोक लगा दे। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय ने संहिता के आदेश XXI नियम 29 के उद्देश्य को खो दिया है। उन्होंने उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा नियम, 2001 पर भी भरोसा किया है कि सिविल जज, सीनियर डिवीजन का अर्थ है और इसमें उपरोक्त नियमों के नियम 4 (ओ) के संदर्भ में किसी अन्य नामकरण के तहत तैनात सेवा के किसी भी सदस्य सहित विभिन्न अन्य न्यायिक प्राधिकरण शामिल हैं। पूर्वोक्त कथन को ध्यान में रखते हुए, आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि संहिता के नियम 29 के आदेश XXI के तहत प्रयुक्त शब्दावली में न केवल सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ डिवीजन बल्कि अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ डिवीजन भी शामिल होंगे क्योंकि नियमित वाद संख्या-474 वर्ष 2005 अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश के न्यायालय में विचाराधीन है। सिविल जज सीनियर डिवीजन, हरदोई के न्यायालय में निष्पादन की कार्यवाही लंबित है। उन्होंने अपनी दलीलों को पुष्ट करने के लिए बंसराज और अन्य बनाम जीत नारायण और अन्य के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों (35) एलसीडी 1708 और गुरु दयाल बनाम वेदमती 2015 (1) एआरसी 869 में रिपोर्ट, पर भी भरोसा किया है।

श्री शरद द्विवेदी, प्रतिपक्षी संख्या-3 की ओर से पेश अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों का खंडन करते हुए कहा कि संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधान वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होंगे, खासकर जब

याचिकाकर्ता द्वारा शुरू किया गया मुकदमा निष्पादन कार्यवाही शुरू होने के बाद दायर किया गया था और इसलिए इसे एक साथ कार्यवाही नहीं कहा जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि निष्पादन और नियमित वाद अलग-अलग न्यायालयों में लंबित हैं, इसलिए संहिता के आदेश XXI नियम 29 का प्रावधान लागू नहीं होगा। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अन्यथा भी पूर्वोक्त प्रावधानों को यांत्रिक तरीके से लागू नहीं किया जाना चाहिए, अन्यथा कोई भी डिक्री कभी भी संतोषजनक नहीं हो सकती है और इसलिए संहिता के आदेश XXI नियम 29 में 'लंबित' शब्द का विशेष महत्व होगा। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदन को सही तरीके से खारिज कर दिया गया है। अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है: -

1. सत्यवती बनाम राजेंद्र सिंह (2013) 9 एस.सी.सी. 491 में रिपोर्ट किया गया।
2. शौकत हुसैन @ अली अकरम और अन्य बनाम श्रीमती भुवनेश्वरी देवी (मृत) द्वारा विधि परामर्शदात्री और अन्य 2 एस.सी.सी. 731, 1972 में रिपोर्ट किया
3. कृष्णा सिंह बनाम मथुरा अहीर और अन्य ए.आई.आर. 1982 सुप्रीम कोर्ट 686 में रिपोर्ट किया गया।
4. बालमल और अन्य बनाम मुथियार बेगम और एक अन्य 2013-5-एलडब्ल्यू 9 में रिपोर्ट किया गया।
5. सिकंदर मोहम्मद अली दलाल और एक अन्य बनाम बाबू हनुमंत मिंडोलकर की मृत्यु

उनके द्वारा विधि परामर्शदात्री और अन्य द्वारा रिट याचिका संख्या-103071 वर्ष 2017 (कर्नाटक उच्च न्यायालय, धारवाड़ बेंच में) में की गई।

वर्तमान एल.आई.एस. के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए, संहिता के आदेश XXI नियम 29 की प्रयोज्यता का विश्लेषण लागू प्रावधान के अनुसार किया जाना आवश्यक है जो निम्नानुसार है: -

"29. डिक्री-धारक और निर्णय-देनदार के बीच लंबित वाद के निष्पादन का स्थगन--जहां ऐसे न्यायालय की डिक्री के धारक के विरुद्ध [या ऐसे न्यायालय द्वारा निष्पादित की जा रही डिक्री की] धारक के विरुद्ध कोई वाद उस व्यक्ति की ओर से, जिसके विरुद्ध डिक्री पारित की गई थी, वहां न्यायालय, प्रतिभूति या अन्यथा की ऐसी शर्तों पर, जैसा कि यह उचित समझता है, लंबित मुकदमे का फैसला होने तक डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाएं: [बशर्ते कि यदि डिक्री धन के भुगतान के लिए है, तो न्यायालय, यदि वह सुरक्षा की आवश्यकता के बिना स्थगन प्रदान करता है, तो ऐसा करने के लिए अपने कारणों को अभिलिखित करेगा]।

पूर्वोक्त उपबंध को बाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय पर लागू होने के रूप में संशोधित किया गया है और निम्नलिखित तरीके से है:

"इलाहाबाद- नियम 29 में-

(1) अल्पविराम डालें और उसके बाद शब्द "या कोई भी व्यक्ति जिसके हित डिक्री से प्रभावित होते हैं, या उसके निष्पादन में किए गए किसी आदेश से" शब्दों के बाद "न्यायालय हो सकता है" शब्दों से पहले पारित किया गया था;

(2) "सुरक्षा के रूप में ऐसी शर्तों पर या अन्यथा नियम में होने वाली" शब्दों को हटा दें।

(3) "यदि" को "यदि" के स्थान पर "जैसा कि" शब्दों से पहले "यह उचित समझता है" रखें; और

(4) उक्त नियम में निम्नलिखित को परंतुक के रूप में जोड़ें, अर्थात्:

"बशर्ते कि सभी मामलों में जहां डिक्री के निष्पादन पर रोक लगा दी गई है, न्यायालय ऐसे स्थगन की मांग करने वाले व्यक्ति से ऐसी जमानत प्रस्तुत करने की अपेक्षा करेगा जो वह ठीक समझे। (1-6-1957)."

संहिता के आदेश XXI नियम 29 के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि ऐसे न्यायालय की डिक्री धारक के विरुद्ध या ऐसे न्यायालय द्वारा निष्पादित की जा रही डिक्री के विरुद्ध कोई वाद लंबित है जिसके विरुद्ध डिक्री पारित की गई है या कोई ऐसा व्यक्ति जिसका हित डिक्री या 1995 में किए गए किसी आदेश से प्रभावित होता है, तो यह उस मामले में लागू होगा जब ऐसे न्यायालय द्वारा कोई वाद, उसका निष्पादन लंबित है। (इलाहाबाद संशोधन के अनुसार)।

शौकत हुसैन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'ऐसे न्यायालय' के उपरोक्त पहलुओं को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया गया है: -

पीठ ने कहा, 'नियम के अवलोकन मात्र से यह स्पष्ट है कि एक ही अदालत में एक साथ दो अदालतें होनी चाहिए. एक डिक्री-धारक के कहने पर निर्णय-देनदार के विरुद्ध निष्पादन की कार्यवाही है, और दूसरा डिक्री-धारक के विरुद्ध निर्णय-देनदार के उदाहरण पर वाद है।

यह एक ऐसी शर्त है जिसके तहत जिस अदालत में मुकदमा लंबित है, वह उसके समक्ष निष्पादन पर रोक लगा सकता है। यदि यही एकमात्र शर्त थी, तो श्री छागला अपने तर्क में सही होंगे, क्योंकि माना जाता है कि मुंसिफ प्रथम की अदालत में निर्णय-देनदार के खिलाफ डिक्रीधारक द्वारा निष्पादन में कार्यवाही की गई थी और उस अदालत में डिक्रीधारक के खिलाफ निर्णय देनदार के कहने पर एक मुकदमा भी था। लेकिन उस नियम में एक रोड़ा है। यह पर्याप्त नहीं है कि निर्णय-देनदार द्वारा एक मुकदमा लंबित है, यह भी आवश्यक है कि मुकदमा ऐसे न्यायालय के डिक्री धारक के खिलाफ होना चाहिए। "ऐसी अदालत" शब्द महत्वपूर्ण हैं। "ऐसी अदालत" का अर्थ है उस नियम के संदर्भ में वह न्यायालय जिसमें मुकदमा लंबित है। दूसरे शब्दों में, मुकदमा न केवल उस अदालत में लंबित होना चाहिए, बल्कि उस अदालत के डिक्री धारक के खिलाफ भी होना चाहिए जो नियम का सीधा अर्थ प्रतीत होता है।

यह सच है कि उपयुक्त मामलों में एक अदालत किसी अन्य अदालत में कार्यवाही पर मुकदमा चलाने के लिए एक पक्ष के खिलाफ निषेधाज्ञा दे सकती है। लेकिन आमतौर पर अदालतें, जब तक कि वे अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करती हैं, उनके पास ऐसी अदालतों को निर्देशित आदेश द्वारा अन्य अदालतों में कार्यवाही को रोकने की शक्ति नहीं होती है। इसके लिए कानून के विशिष्ट प्रावधान आवश्यक हैं। नियम 29 स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि न्यायालय की निष्पादन पर रोक लगाने की शक्ति सीधे इस तथ्य से प्रवाहित होती है कि निष्पादन डिक्री-

धारक के कहने पर है जिसकी डिक्री केवल उस न्यायालय द्वारा पारित की गई थी। यदि निष्पादन में डिक्री इसके द्वारा पारित नहीं की गई थी, तो उसे निष्पादन पर रोक लगाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। वास्तव में, पहले से ही संदर्भित नियम 26 में इस पर जोर दिया गया है। हमारे समक्ष जो डिक्री निष्पादित करने की मांग की गई थी, वह मुंसिफ प्रथम न्यायालय, गया की डिक्री नहीं थी, बल्कि अधीनस्थ न्यायाधीश, गया की डिक्री थी जो उनके द्वारा अपने लघु वाद न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए पारित की गई थी। इसलिए, यह स्पष्ट है कि मुंसिफ, गया द्वारा पारित निष्पादन पर रोक लगाने का आदेश अक्षम और अधिकार क्षेत्र के बिना होगा।

पूर्वोक्त निर्णय को पढ़ने से यह पता चलता है कि 'ऐसे न्यायालय' शब्दों के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य विचार का अर्थ उस नियम के संदर्भ में है, जिसमें मुकदमा लंबित है। दूसरे शब्दों में, डिक्री धारक के खिलाफ शुरू किया गया मुकदमा और निष्पादन कार्यवाही एक ही न्यायालय में एक साथ लंबित होनी चाहिए। जाहिर है, पूर्वोक्त निर्णय का आधार जो प्रस्ताव होगा, वह यह है कि एक अदालत दूसरे समन्वय न्यायालय की कार्यवाही पर रोक नहीं लगा सकती है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त निर्णय में ए.आई.आर. 1930 एएचडी 121 में रिपोर्ट किए गए इनायत बेग बनाम उमराव बेग के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी उल्लेख किया है कि ऐसे मामलों में भी जहां किसी डिक्री को निष्पादन के लिए किसी अन्य न्यायालय को अंतरित

किया जाता है, संहिता के आदेश XXI नियम 29 के उपबंध लागू नहीं होंगे। कलकत्ता उच्च न्यायालय के असहमतिपूर्ण दृष्टिकोण को खारिज कर दिया गया था।

संहिता की धारा 37 के प्रावधानों को भी निम्नलिखित तरीके से 'न्यायालय जिसने एक डिक्री पारित की' अभिव्यक्ति की व्याख्या करने के लिए विज्ञापित किया गया है: -

"धारा 37- डिक्री पारित करने वाले न्यायालय की परिभाषा- अभिव्यक्ति 'न्यायालय जिसने डिक्री पारित की है' या उस आशय के शब्द, डिक्री के निष्पादन के संबंध में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो, शामिल करने के लिए समझा जाएगा-

(ए) जहां निष्पादित की जाने वाली डिक्री अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित की गई है, प्रथम दृष्टया न्यायालय, और

(ख) जहां प्रथम दृष्टया न्यायालय का अस्तित्व समाप्त हो गया है या उसे निष्पादित करने की अधिकारिता है, वहां वह न्यायालय, यदि वह वाद, जिसमें डिक्री पारित की गई थी, डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन करते समय संस्थित किया गया था, ऐसे वाद का विचारण करने की अधिकारिता होगी।

वर्तमान मामले में, पक्षकारों के बीच यह स्वीकार किया जाता है कि जबकि अतिरिक्त सिविल जज, सीनियर डिवीजन, हरदोई की अदालत में नियमित वाद की कार्यवाही लंबित है, निष्पादन का मामला सिविल जज, सीनियर डिवीजन, हरदोई के समक्ष विचाराधीन है। स्पष्ट है कि दोनों न्यायालय अलग-अलग हैं और संहिता के आदेश XXI नियम 29 में परिकल्पित 'ऐसी अदालत' की परिभाषा के

भीतर आने के लिए एक ही न्यायालय नहीं माना जा सकता है।

इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने इस तथ्य पर ध्यान आकर्षित किया है कि संहिता के आदेश XXI नियम 29 के तहत आवेदन दाखिल करने के समय, मुकदमे के साथ-साथ निष्पादन की कार्यवाही अतिरिक्त सिविल जज, सीनियर डिवीजन, हरदोई के उसी न्यायालय में लंबित थी, लेकिन आक्षेपित आदेश के माध्यम से आवेदन के अंतिम निर्णय के समय, वे अलग-अलग न्यायालयों में लंबित थे। शौकत हुसैन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कार्यवाही के हस्तांतरण के पहलू पर निम्नलिखित तरीके से पहले ही विचार किया जा चुका है: -

"इनायत बेग बनाम उमराव बेग ए.आई.आर. 1930 ऑल 121(1) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने माना था कि जहां एक डिक्री को निष्पादन के लिए अदालत में स्थानांतरित किया गया था, बाद में, आदेश 21 नियम 29 सी.पी.सी. के तहत, निर्णय-देनदार के कहने पर एक मुकदमे में उस डिक्री के निष्पादन पर रोक नहीं लगा सकता था, इसका कारण यह था कि निष्पादित करने की मांग की गई डिक्री 'ऐसी अदालत' की डिक्री नहीं थी, यानी जिस कोर्ट में मुकदमा लंबित था। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने शारदा कृपा बनाम भारत संघ मामले में इस दृष्टिकोण का विरोध किया था। कोमिला यूनियन बैंक (2) में तर्क यह था कि प्रिवी काउंसिल ने 'बोबिली बनाम नरसराजूपेडा श्रीनहुलु (3) के महाराजा' में माना था कि एक डिक्री के हस्तांतरण पर, मूल अदालत

का धारा 37 सी.पी.सी. के आधार पर अधिकार क्षेत्र समाप्त हो गया था। 'ऐसे न्यायालय' की डिक्री के धारक में वह न्यायालय भी शामिल होगा जिसमें डिक्री अंतरित की गई है, डिक्री को निष्पादित करने में न्यायालय को वही शक्तियां होंगी जैसे कि वह धारा 42 सी.पी.सी. के अधीन उसके द्वारा पारित की गई हो।

कलकत्ता मामले में उपरोक्त तर्क गलत धारणाओं पर आधारित है। प्रिवी काउंसिल 'बोबिली बनाम नरसराजूपेड़ा श्रीनबुलु (3) के महाराजा' में आदेश 21 नियम 29 सी.पी.सी. पर धारा 37 और 42 के प्रभाव से चिंतित नहीं थी। यह केवल यह देखने के लिए चिंतित था कि क्या जिला न्यायालय परिसीमा अधिनियम, 1908 की पहली अनुसूची के अनुच्छेद 182 (5) के अर्थ के भीतर 'उचित न्यायालय' था, जिसमें 'निष्पादन के लिए या निष्पादन की सहायता में एक ही कदम उठाने' के लिए आवेदन करना था।

पूर्वोक्त निर्णय के लागू होने पर, यह स्पष्ट है कि जहां एक डिक्री को निष्पादन के लिए स्थानांतरित किया जाता है, वहां भी संहिता के आदेश XXI नियम 29 के तहत उस डिक्री पर रोक नहीं लगाई जा सकती है क्योंकि यह 'ऐसी अदालत' की परिभाषा के भीतर नहीं आएगी अर्थात् वह न्यायालय जिसमें मुकदमा लंबित है। उपरोक्त के मद्देनजर, निष्पादन कार्यवाही के हस्तांतरण के बाद भी, इस न्यायालय की सुविचारित राय में उक्त निर्णय पूरे बल के साथ लागू होगा। शौकत हुसैन (उपरोक्त) के पूर्वोक्त निर्णय के बाद कृष्ण (उपरोक्त) के बाद के फैसले में निम्नलिखित

तरीके से अनुमोदन के साथ पालन किया गया है: -

"हम शौकत हुसैन @ अली अकरम और अन्य बनाम श्रीमती भुवनेश्वरी देवी (1973)1 एस.सी.आर 1022: (ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 528) में इस न्यायालय के एक फैसले से हमारे विचार में दृढ़ हैं, जहां इस न्यायालय ने निम्नानुसार देखा:

"नियम 29 स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अदालत की फांसी पर रोक लगाने की शक्ति सीधे इस तथ्य से प्रवाहित होती है कि निष्पादन डिक्री-धारक के इशारे पर है, जिसकी डिक्री केवल उस अदालत द्वारा पारित की गई थी। यदि निष्पादन में डिक्री इसके द्वारा पारित नहीं की गई थी, तो निष्पादन को रोकने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। (महत्व सन्नविष्ट)"

'जहां मुकदमा लंबित है' शब्द का पहलू भी विशेष महत्व का है क्योंकि इसका अर्थ है कि ऐसे न्यायालय के डिक्री धारक के खिलाफ दायर एक मुकदमा उस तारीख को लंबित होना चाहिए जब डिक्री निष्पादित करने की मांग की जाती है, जिस पर मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा बालमनाल और अन्य (उपरोक्त) के मामले में निम्नलिखित तरीके से विचार किया गया है: -

"21. इसके अलावा, आदेश XXI नियम 29 सी.पी.सी. के तहत, डिक्री के निष्पादन को रोकने के लिए, निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए:

- क) एक साथ कार्यवाही होनी चाहिए;
- बी) डिक्री धारक द्वारा निष्पादन निर्णय देनदार के खिलाफ लंबित होना चाहिए;

ग) निर्णय देनदार ने डिक्री धारक के खिलाफ मुकदमा दायर किया होगा; और

घ) मुकदमा लंबित होना चाहिए।

22. जहां तक इस मामले का संबंध है, पहली शर्त अर्थात्, एक साथ कार्यवाही होनी चाहिए, यहां पुनरीक्षण याचिकाकर्ताओं द्वारा बिल्कुल भी संतुष्ट नहीं है। ओ.एस सं 270/2004 में वाद वर्ष 2004 में दायर किया गया था और वाद की डिक्री 22.06.2005 को की गई थी। अपील वर्ष 2005 में दायर की गई थी और इसे 10-10-2006 को खारिज कर दिया गया था। दूसरी अपील वर्ष 2006 में दायर की गई थी और उसे भी 27-01-2011 को खारिज कर दिया गया था। ओ.एस.सं-104/2012 में वाद दिनांक 20.04.2012 को दायर किया गया था जबकि ई0पी सं 107/2011 में निष्पादन याचिका दिनांक 02.11.2011 को दायर की गई थी। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि कार्यवाही एक साथ लंबित है ताकि सी.पी.सी. के आदेश XXI नियम 29 को लागू किया जा सके।

23. यह मानते हुए भी कि एक साथ कार्यवाही लंबित है और यहां तक कि आदेश XXI नियम 29 सी.पी.सी. की सभी शर्तें भी संतुष्ट हो जाती हैं, फिर भी डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाना स्वचालित नहीं है, क्योंकि निष्पादन न्यायालय को अपने विवेक का प्रयोग करना है कि क्या डिक्री पर रोक लगाने से, डिक्री धारक के साथ बहुत अन्याय होगा या नहीं।

उपर्युक्त मामले में भी यह स्पष्ट है कि डिक्री धारक के खिलाफ नियमित वाद शुरू करने से पहले निष्पादन कार्यवाही दायर की गई थी और ऐसी परिस्थितियों में, मद्रास उच्च न्यायालय ने माना है कि यह संहिता के आदेश

XXI नियम 29 के प्रावधानों को लागू करने के लिए 'एक साथ कार्यवाही' की परिभाषा के भीतर नहीं आएगा।

सिकंदर मोहम्मद अली दलाल (उपरोक्त) के मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए एक अन्य निर्णय में, संहिता के आदेश XXI नियम 29 की प्रयोज्यता को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है: -

"13. सी.पी.सी. के आदेश 21 नियम 29 की प्रयोज्यता के बारे में मुद्दे की जांच एक और कोण से की जा सकती है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि याचिकाकर्ताओं/डिक्रीधारकों द्वारा प्रतिपक्षी/निर्णय देनदार के खिलाफ तत्काल निष्पादन की कार्यवाही वर्ष 2012 में शुरू की गई थी, जबकि ओ.एस. संख्या-22/2016 में मुकदमा बाद में प्रतिपक्षी/निर्णय देनदार द्वारा स्थापित किया गया था, अर्थात्, वर्ष 2016 में। यह बताना प्रासंगिक है कि आदेश 21 नियम 29 सी.पी.सी. लागू होने के लिए, यह भी आवश्यक है कि मुकदमा निष्पादन कार्यवाही की संस्था की तारीख को लंबित होना चाहिए और आदेश 21 नियम 29 सी.पी.सी. उन वादों पर लागू नहीं होगा जो निष्पादन कार्यवाही की संस्था के बाद स्थापित किए गए हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो, निष्पादन न्यायालय की अपनी कार्यवाही पर रोक लगाने की शक्ति केवल उन मामलों में लागू की जा सकती है जहां निष्पादन कार्यवाही शुरू करने से पहले निर्णय देनदार द्वारा एक मुकदमा पहले ही संस्थित किया जा चुका है और यह उन मुकदमों पर लागू नहीं होगा जो निष्पादन कार्यवाही की संस्था के बाद संस्थित किए गए हैं। आदेश 21 नियम 29 सी.पी.सी. पर रखी गई कोई अन्य व्याख्या या निर्माण विनाशकारी

परिणाम का कारण बनेगा क्योंकि प्रत्येक निर्णय देनदार निष्पादन कार्यवाही की संस्था के बाद एक मुकदमा दायर करके निष्पादन कार्यवाही को कुचलने, रोकने और बाधित करने की स्थिति में होगा, जो उन डिक्री को लागू करने की मांग कर रहा है जो अंतिम रूप से प्राप्त कर चुके हैं और निर्णय देनदार पर निर्णायक और बाध्यकारी हो गए हैं। इस दृष्टिकोण से भी देखा जाए, तो प्रस्तुत मामले के निर्विवाद तथ्यों में, जो खुलासा करते हैं कि प्रतिपक्षी/निर्णय देनदार द्वारा दायर ओ.एस संख्या-22/2016 में वाद की संस्था से पहले निष्पादन कार्यवाही शुरू की गई थी, आदेश 21 नियम 29 सी.पी.सी. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा और इस स्थिति में भी, आवेदन आई.ए.सं-12 खारिज करने योग्य था।

14. यह अच्छी तरह से तय है कि सी.पी.सी. के आदेश 21 नियम 29 में निहित प्रावधान को लागू करना विवेकाधीन है और इसे विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया जाना चाहिए न कि यांत्रिक रूप से। यह समान रूप से अच्छी तरह से तय है कि आदेश 21 नियम 29 सी.पी.सी. में निर्धारित पूर्व-शर्तों की संतुष्टि निष्पादन कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए पर्याप्त नहीं है और इस नियम के तहत शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए जहां न्याय के हित की आवश्यकता होती है और मौलिक विचार यह होना चाहिए कि डिक्री धारक को बाध्यकारी कारणों को छोड़कर डिक्री के फल से वंचित नहीं किया जाना चाहिए और जब तक कोई असाधारण मामला नहीं बनता है, तब तक

कोई स्थगन नहीं दिया जाना चाहिए और डिक्री को जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए।

17. जैसा कि पूर्वोक्त निर्णयों से देखा जा सकता है, सी.पी.सी. के आदेश 21 नियम 29 में अंतर्निहित सिद्धांतों को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

क) कि आदेश 21 नियम 29 सी.पी.सी. केवल तभी लागू होता है जब उक्त प्रावधानों में निर्दिष्ट मुकदमा और निष्पादन कार्यवाही एक ही न्यायालय के समक्ष लंबित हो और दो अलग-अलग अदालतों के समक्ष नहीं जो समन्वय क्षेत्राधिकार के नहीं हैं;

ख) यदि मुकदमा निष्पादन कार्यवाही की संस्था के बाद स्थापित किया जाता है, उक्त प्रावधान लागू नहीं होंगे: दूसरे शब्दों में, उक्त प्रावधान केवल तभी लागू होगा जब मुकदमा निष्पादन कार्यवाही शुरू करने से पहले स्थापित किया गया हो और यदि निष्पादन कार्यवाही पहले ही शुरू की जा चुकी है, तो बाद में केवल वाद का संस्थान और इसकी लंबितता को सी.पी.सी. के आदेश 21 नियम 29 को लागू करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है;

ग) निष्पादन न्यायालय द्वारा स्वयं के समक्ष लंबित अपनी कार्यवाही को रोकने की शक्ति और क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल अपरिहार्य और असाधारण परिस्थितियों में किया जाना चाहिए, न कि नियमित क्रम के मामले के रूप में और निष्पादक न्यायालय द्वारा यह पता लगाने के लिए सावधानी/सतर्कता बरती जानी चाहिए कि क्या अपनी कार्यवाही पर रोक लगाने से कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और उस स्थिति में, निष्पादन अदालत इन

प्रावधानों के तहत आगे की कार्यवाही पर रोक नहीं लगाएगी।

वर्तमान मामले में, पूर्वोक्त निर्णय की प्रयोज्यता के उद्देश्य से, संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश XXI नियम 29 के तहत याचिकाकर्ता द्वारा पसंद किए गए आवेदन को भी जापित करने की आवश्यकता है, जिसमें एकमात्र आधार यह लिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा बाद में दायर किए गए वाद में, वाद संपत्ति पर स्वामित्व के मुद्दे को भी स्थगित करने की आवश्यकता है और इसलिए पूर्वोक्त वाद संपत्ति से संबंधित निष्पादन कार्यवाहियों की स्थगन के लिए प्रार्थना की गई है।

उपरोक्त आवेदन को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आवेदन को बहुत ही सरसरी तरीके से तैयार किया गया है। संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधानों को लागू करने के लिए कोई विशेष कारण नहीं बताया गया है, विशेष रूप से तथ्य यह है कि इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि याचिकाकर्ता वर्ष 1988 से लंबित प्रारंभिक वाद कार्यवाही से कैसे अनजान था और वह भी तब जब याचिकाकर्ता ने सह-स्वामित्व के आधार पर वाद संपत्ति में दावा किया है। यह भी विचार किया जाना एक प्रासंगिक कारक है कि याचिकाकर्ता का सगा भाई वाद संख्या-355 वर्ष 1988 में प्रारंभिक वाद कार्यवाही के लिए पक्ष था और यदि याचिकाकर्ता वाद परिसर के सह-स्वामित्व का दावा कर रहा था, तो यह इस कारण से नहीं पुष्ट होता है कि वह उपरोक्त वाद कार्यवाही से अनजान था या हो सकता था, जो द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार

में इस न्यायालय तक कार्यवाही में समाप्त हुआ।

यद्यपि संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधान निष्पादन न्यायालय को डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने का अधिकार देते हैं, साथ ही, यह स्पष्ट है कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग सरसरी तौर पर या यांत्रिक तरीके से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि असाधारण परिस्थितियों में केवल तभी किया जाना चाहिए जब डिक्री धारक के खिलाफ मुकदमा निष्पादन दाखिल करने के समय विचाराधीन हो। निष्पादन कार्यवाही के बाद दायर किए गए वादों पर उपरोक्त प्रावधानों को लागू करने से बेतुके परिणाम सामने आएंगे जिससे सक्षम क्षेत्राधिकार के किसी भी न्यायालय की कोई डिक्री कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकती है। यह संहिता के आदेश XXI नियम 29 का अर्थ और उद्देश्य नहीं हो सकता है, विशेष रूप से संहिता के नियम 29 के विशिष्ट प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, जो इंगित करता है कि एक डिक्री या डिक्री के धारक के खिलाफ एक मुकदमा लंबित होना चाहिए। 'लंबित' शब्द का स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि निर्णय डिक्री धारक के खिलाफ मुकदमा निष्पादन की संस्था की तारीख को लंबित होना चाहिए। यह न्यायालय मद्रास और कर्नाटक उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों से सम्मानपूर्वक सहमत है। एक अन्य पहलू पर विचार किया जाना चाहिए कि सत्यवती (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालयों द्वारा दिए गए डिक्री के निष्पादन में अनुचित देरी को निम्नलिखित तरीके से निरूपित किया: -

"14. यह न्यायालय, फिर से मार्शल संस एंड कंपनी (आई) लिमिटेड बनाम साही ओरेट्रांस (पी) लिमिटेड और अन्य [(1999) 2 एस.सी.सी. 325] के मामले में उक्त निर्णय के पैरा 4 में यह देखने के लिए विवश था कि:

"4.प्रथम दृष्टया, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता के पक्ष में डिक्री किसी न किसी कारण से निष्पादित नहीं की जा रही है। हम इस स्तर पर प्रतिपक्षी को अपीलकर्ता को कब्जा देने का निर्देश देना उचित नहीं समझते हैं क्योंकि प्रतिपक्षी द्वारा दायर मुकदमा अभी भी लंबित है। यह सच है कि कार्यवाही को किसी न किसी आधार पर लंबे समय तक खींचा जाता है और कभी-कभी यह अत्यधिक तकनीकी हो जाती है और हर स्तर पर अंतहीन निकटता के साथ अनजान लोगों को कानूनी जाल प्रदान करती है। विलंब के कारण, कार्यवाहियों के बेईमान पक्षकार अनुचित लाभ उठाते हैं और गलत कब्जे में रहने वाला व्यक्ति प्रक्रियात्मक जटिलताओं का अनुचित लाभ उठाकर मामलों के निपटान में विलंब से प्रसन्न होता है। यह भी एक ज्ञात तथ्य है कि अचल संपत्ति के कब्जे के लिए डिक्री प्राप्त करने के बाद, इसके निष्पादन में लंबा समय लगता है.....

16. जैसा कि हमारे द्वारा ऊपर कहा गया है, स्थिति में आज तक सुधार नहीं हुआ है। हम दृढ़ता से महसूस करते हैं कि डिक्री के निष्पादन में अनुचित देरी नहीं होनी चाहिए क्योंकि यदि डिक्री धारक डिक्री को निष्पादित करके अपनी सफलता के फल का आनंद लेने में असमर्थ है, तो सफल वादी का पूरा प्रयास व्यर्थ होगा।

यह इंगित करना भी प्रासंगिक है कि किसी भी व्यक्ति का वाद संपत्ति में हित है, जिसके संबंध में एक डिक्री पारित की गई है, न केवल धारा 47 के तहत बल्कि संहिता के नियम XXI नियम 97 से 104 के तहत भी एक उपाय है, जिसके कारण संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधानों का उपयोग केवल असाधारण परिस्थितियों में किया जाना आवश्यक है।

जहां तक उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा नियम, 2001 पर निर्भरता का संबंध है, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यह न्यायिक अधिकारियों के सेवा विनियमन से संबंधित है, जो प्रकृति में प्रशासनिक होगा और कल्पना के किसी भी खिंचाव से न्यायिक कार्यवाही को ऐसे शामिल नहीं माना जा सकता है जैसा कि प्रस्तुत किया गया है।

जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उन्हें पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसे केवल इस आधार पर पारित किया गया है कि विचारण न्यायालय ने संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधानों पर विचार किए बिना उसमें आक्षेपित आदेश पारित किए थे और इसलिए याचिका को उक्त प्रावधान के संदर्भ में नए सिरे से विचार के लिए मामलों को भेजने की अनुमति दी गई थी। पूर्वोक्त निर्णयों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपरोक्त निर्णयों में न कानून का कोई प्रस्ताव और न ही कोई अनुपात निर्णय स्पष्ट है और इस तरह इस न्यायालय की सुविचारित राय में, इसकी कोई बाध्यकारी प्रकृति नहीं होगी।

यह न्यायालय संहिता के आदेश XXI नियम 29 से संबंधित सिद्धांतों के सारांश के साथ

सम्मानजनक सहमति में है, जैसा कि कर्नाटक के उच्च न्यायालय द्वारा सिकंदर मोहम्मद अली दलाल (उपरोक्त) के मामले में ऊपर दर्शाया गया है।

उपरोक्त चर्चा के मददेनजर, संहिता के आदेश XXI नियम 29 के प्रावधान मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होने के कारण, आक्षेपित आदेशों के लिए कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है।

नतीजतन, याचिका योग्यता से रहित होने के कारण खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 308

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

वाद अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 2393

/2023

मो. उस्मान

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती शगुप्ता बेगम

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आशीष कुमार

सिंह, श्री अजय कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री प्रशांत राय, श्री कृष्ण

नंद राय

ए. सिविल कानून - बचाव को खत्म करना - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XV, नियम 5 - आदेश XV सी.पी.सी. के नियम 5 के उप-नियम (2) के तहत, तर्क को खत्म करना दंड की प्रकृति का है जिसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं, इसलिए, इस वाद में न्यायालय पर गंभीर दायित्व है और आदेश

XV सी.पी.सी. के नियम 5 के उप-नियम (2) के तहत आदेश पारित करते समय शक्ति का यांत्रिक रूप से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। यहां तक कि अगर आदेश XV सी.पी.सी. के नियम 5 के उप-नियम (2) के तहत प्रतिनिधित्व दायर नहीं किया गया है, तो भी न्यायालय को अभिलेख पर पहले से उपलब्ध तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना होगा। (पैरा 19)

दिनांक 14.11.2022 के आपेक्षित आदेश ने आवेदन 65-सी को अनुमति प्रदान की और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के तर्क को केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया कि पहले के आवेदन पत्र संख्या 41-जीए को दिनांक 29.08.2018 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 07.02.2019 के आदेश द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई थी।

वास्तव में, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने उच्च न्यायालय के दिनांक 07.02.2019 के आदेश की गलत व्याख्या की है। एक बार जब न्यायालय ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को बचाव को खत्म करने के आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता दे दी है, तो इसका निहित अर्थ यह होगा कि बचाव को खत्म करने के आवेदन पर विचार करते समय, निचली अदालत के लिए आवेदन पत्र संख्या 41- जीए सहित वाद को फिर से गुण-दोष के आधार पर तय करना अनिवार्य है। उच्च न्यायालय के दिनांक 07.02.2019 के आदेश ने न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.08.2018 के आदेश के प्रभाव को निरस्त

कर दिया है, साथ ही याचिकाकर्ता को इस विवाद को फिर से उठाने की स्वतंत्रता दी है, यदि बचाव को खत्म करने के लिए कोई आदेश पारित किया गया है।

उच्च न्यायालय के आदेश की भावना यह है कि बचाव को निरस्त करने के लिए नए आदेश पारित करने की स्थिति में, याचिकाकर्ता को उसे चुनौती देने की पूरी स्वतंत्रता होगी और विचारणीय न्यायालय को अपने पिछले आदेश दिनांक 29.08.2018 से प्रभावित हुए बिना, गुण-दोष के आधार पर उस पर निर्णय लेना होगा। (पैरा 23, 24)

आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. के अन्तर्गत सभी साक्ष्यों पर विचार करते हुए आदेश पारित करते समय, न्यायालय को बहुत सचेत रहना चाहिए था, क्योंकि इस प्रकार का आदेश पारित करने से याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को साक्ष्य प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती तथा अन्य सभी परिणाम सामने आते, जिसके परिणामस्वरूप निश्चित रूप से बिना किसी विरोध के वाद स्वीकार कर लिया जाता। (पैरा 25)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. बिमल चंद जैन बनाम श्री गोपाल अग्रवाल, (1981) 3 एससीसी 486, निर्णय दिनांक 27.07.1981 (पैरा 13)
2. आशा रानी गुप्ता बनाम विनीत कुमार, 2022 SCC ऑनलाइन SC 829 (पैरा 13)
3. गुलशन पाहवा और अन्य बनाम दरगाह पीर दरियानाथ जी श्रवणनाथ नगर, हरिद्वार

और अन्य, (2022) 157 आरडी 573 (पैरा 13)

वर्तमान याचिका में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.11.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के बचाव को आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी. के प्रावधान के तहत निरस्त कर दिया गया था और जिला न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 31.01.2023 के आदेश में एस.सी.सी. पुनरीक्षण को निरस्त कर दिया गया था, जिसे याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने पूर्व आदेश को चुनौती देते हुए दायर किया था।

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री आशीष कुमार सिंह और प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्री प्रशांत राय के साथ श्री कृष्ण नंद राय को सुना। प्रस्तुत याचिका एस.सी.सी. वाद संख्या-25 वर्ष 2014 में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.11.2022 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के बचाव को आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी. के प्रावधान और जिला न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.01.2023 के तहत एस.सी.सी. संशोधन संख्या-132 वर्ष 2022 को खारिज कर दिया गया था जो याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दिनांक 14.11.2022 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर किया गया था।

चूंकि, इस याचिका में केवल कानूनी प्रश्न शामिल हैं, इसलिए, शपथ पत्र आमंत्रित किए बिना पक्षकारों की सहमति से, मामले को प्रवेश के चरण में ही तय किया जा रहा है।

याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वादी-प्रतिवादी ने किराए के भुगतान में चूक के आधार पर किराए और बेदखली के बकाया के लिए न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, सहारनपुर के समक्ष एस.सी.सी. वाद संख्या-25 वर्ष 2014 दायर किया था। सम्मन की तामील पर, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी. के तहत प्रदान किए गए किराए को जमा करने के लिए आवेदन पत्र संख्या-12-जीए दिनांक 14.10.2014 को दायर किया। उपरोक्त आवेदन को दिनांक 27.10.2014 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने 01.08.2011 से 05.08.2014 तक की अवधि के लिए 14.10.2014 को ब्याज सहित किराया जमा किया था और लिखित बयान भी दायर किया था।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि मुकदमा लड़ा जा रहा है, लेकिन याचिकाकर्ता की बीमारी के कारण, वह मासिक किराया जमा नहीं कर सका, जैसा कि आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी. के तहत प्रदान किया गया है, इसलिए उसने 30.09.2015 से 30.10.2017 तक की अवधि के लिए पूरी राशि जमा करने की अनुमति के लिए आवेदन पत्र संख्या-41-जीए दिनांक 31.05.2017 दायर किया है और इसके लिए निविदा भी प्रस्तुत की है। उक्त आवेदन के खिलाफ, वादी-प्रतिवादी द्वारा दिनांक 27.02.2018 को आपत्ति पत्र संख्या-44-जीए दायर किया गया है और अंततः,

आवेदन पत्र संख्या-41-जीए को न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा दिनांक 29.08.2018 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया है।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने एस.सी.सी. संशोधन संख्या-31 वर्ष 2018 के माध्यम से जिला न्यायाधीश, सहारनपुर के समक्ष दिनांक 29.08.2018 के आदेश को चुनौती दी, जिसे दिनांक 07.01.2019 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसमें पाया गया था कि विचारण न्यायालय ने आवेदन पत्र संख्या-41-जीए को सही तरीके से खारिज कर दिया है और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के बचाव को भी सही तरीके से खारिज कर दिया है। याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-805 वर्ष 2019 दायर करके इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 29.08.2018 और 07.01.2019 के दोनों आदेशों को चुनौती दी है, जिसे दिनांक 07.02.2019 के आदेश द्वारा निपटाया गया था। इस न्यायालय ने उक्त रिट याचिका का निपटारा करते हुए स्पष्ट किया है कि यदि बचाव को रद्द कर दिया जाता है, तो दिनांक 29.08.2018 को आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता के साथ बचाव पक्ष को रद्द करने का आदेश नहीं होगा।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि दिनांक 24.11.2021 के आदेश के अनुसार, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने याचिकाकर्ता प्रतिवादी के बचाव को स्वतः ही रद्द कर दिया है, जिस पर उसने दिनांक 24.11.2021 के आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन पत्र

संख्या-62-सी-2 दायर किया है। उक्त आवेदन को दिनांक 12.07.2022 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। 10.12.2021 को, वादी-प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के बचाव को रद्द करने के लिए आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी के तहत आवेदन पत्र संख्या-65-C भी दायर किया है, जिस पर याचिकाकर्ता-प्रतिवादी ने आपत्ति पत्र संख्या-67-C दिनांक 18.05.2022 को विशिष्ट दलील के साथ दायर किया है कि आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी. के तहत प्रदान की गई सभी देय राशि उसके द्वारा जमा की गई है और निविदाएं भी संलग्न की गई हैं इसलिए, बचाव को बंद करने का आवेदन पोषणीय नहीं है।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 24.11.2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने वादी-प्रतिवादी के आवेदन और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के जवाब को देखने के बाद, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के बचाव को केवल 29.08.2018 को पारित पहले के आदेश के आधार पर बंद कर दिया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने दिनांक 24.11.2021 के आदेश को केवल इस आधार पर चुनौती दी है कि एक बार उच्च न्यायालय ने दिनांक 07.02.2019 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को बाद के चरण में बचाव को चुनौती देने की स्वतंत्रता दी है, तो न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय की ओर से इस मुद्दे को नए सिरे से तय करना आवश्यक है, न कि 29.08.2018 के पहले के आदेश के आलोक में, जो सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-805 वर्ष 2019 का विषय था।

उन्होंने दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय का निष्कर्ष विकृत है और उच्च न्यायालय के 07.02.2019 के आदेश की भी अनदेखी कर रहा है, जिसने याचिकाकर्ता को बचाव पक्ष को रद्द करने के आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता दी है। वास्तव में, एक बार जब न्यायालय ने याचिकाकर्ता प्रतिवादी को बचाव पक्ष को चुनौती देने की स्वतंत्रता दी है, और जब बचाव को बंद कर दिया जाता है तो विलय का सिद्धांत लागू होगा और आवेदन पत्र संख्या-65-सी और आपत्ति पत्र संख्या-67- सी पर विचार करते समय, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय की ओर से आवेदनों को 41-जीए और 44-जीए पर भी नए सिरे से निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। आवेदन दाखिल करने की तिथि पर प्रचलित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 29.08.2018 के पहले के आदेश की अनदेखी करते हुए, क्योंकि उच्च न्यायालय के दिनांक 07.02.2019 के आदेश के आलोक में इसका प्रभाव समाप्त हो गया है।

यह भी याचिकाकर्ता का मामला है कि आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी. प्रतिनिधित्व दाखिल करने का प्रावधान करता है और यहां तक कि प्रतिनिधित्व की अनुपस्थिति के मामले में, बचाव पक्ष को रद्द करने का आदेश पारित करते समय रिकॉर्ड पर उपलब्ध सभी सामग्रियों पर विचार करना लघु वाद न्यायालय की ओर से आवश्यक है।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यह तथ्य निर्विवाद है कि आवेदन पत्र संख्या-65-सी दाखिल करने की तारीख पर, आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी. के तहत आवश्यक सभी राशि पहले ही जमा की जा चुकी थी और

न्यायालय के पास उपलब्ध थी। इसलिए, आक्षेपित आदेश 14.11.2022 को पारित करते समय, इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने बिमल चंद जैन बनाम श्री गोपाल अग्रवाल (1981) 3 उच्चतम न्यायालय के मामले 486, 27.07.1981 को फैसला किया गया, आशा रानी गुप्ता बनाम विनीत कुमार: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 829 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला और गुलशन पाहवा और अन्य बनाम नैनीताल के मामले में नैनीताल में उत्तराखंड उच्च न्यायालय का फैसला दरगाह पीर दरियानाथ जी श्रवणनाथ नगर, हरिद्वार और अन्य (2022)157 आरडी573 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्रीकृष्ण नंद राय ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति पर प्रारंभिक आपत्ति जताई है और प्रस्तुत किया है कि उच्च न्यायालय ने दिनांक 07.02.2019 के आदेश को पारित करते हुए, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.08.2018 के आदेश की पुष्टि की है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता 41-जीए के आवेदन को आदेश XV के तहत आवश्यक किराए की बकाया राशि जमा करने के लिए खारिज कर दिया गया है। नियम 5, सी.पी.सी. इसके बाद, जिला न्यायाधीश ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दिनांक 07.01.2019 के आदेश के तहत दायर एस.सी.सी. संशोधन संख्या-31 वर्ष 2018 को सही तरीके से खारिज कर दिया है, जो पहले के आदेश दिनांक 29.08.2018 पर

भरोसा करता है। लेकिन, वह इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि रिट याचिका संख्या-805 वर्ष 2019 का निपटारा करते समय, इस न्यायालय ने दिनांक 07.02.2019 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को चुनौती देने की स्वतंत्रता दी है, यदि याचिकाकर्ता के बचाव को रद्द करने के लिए कोई विशिष्ट आदेश पारित किया जाता है।

मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है, अभिलेखों और उन निर्णयों का भी अवलोकन किया है जिन पर भरोसा किया गया है।

मामले के तथ्य निर्विवाद हैं। न्यायालय के समक्ष एकमात्र मुद्दा सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-805 वर्ष 2019 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.02.2019 की व्याख्या के बारे में है। एक बार जब इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को बचाव पक्ष को रद्द करने के आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता दे दी है, तो उच्च न्यायालय के आदेश का क्या प्रभाव होगा और न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय द्वारा पारित 29.08.2018 के पहले के आदेश का भाग्य क्या होगा।

रिट याचिका संख्या-805 वर्ष 2019 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.02.2019 बहुत लंबा नहीं है और इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

"29.8.2018 के आक्षेपित आदेश द्वारा, एस.सी.सी. वाद संख्या-25/2014 में विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन 41जीए को खारिज कर दिया था, जिसमें 30.9.2015 से 30.6.2017 तक किराया जमा

करने की अनुमति मांगी गई थी। पुनरीक्षण में आदेश की पुष्टि की गई है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा कुछ टिप्पणियां की गई हैं कि याचिकाकर्ता के बचाव को विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया है, जबकि ऐसा कोई आदेश अस्तित्व में नहीं है।

यह सच है कि पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश के अंतिम पैरा में, एक टिप्पणी की गई है कि विचारण न्यायालय ने आवेदन 41जीए को सही तरीके से खारिज कर दिया है और याचिकाकर्ता के बचाव को भी सही तरीके से खारिज कर दिया है। विचारण न्यायालय के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि उसने बचाव पक्ष को रद्द करने के लिए कोई विशिष्ट आदेश दिए बिना आवेदन 41जीए को खारिज कर दिया था।

यह उल्लेखनीय है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने केवल पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है और बिना बचाव पक्ष को रद्द करने के लिए कोई स्वतंत्र निष्कर्ष दर्ज किए बिना विचारण न्यायालय के आदेश को बरकरार रखा है।

इस मामले के मद्देनजर, इस न्यायालय की राय है कि जब भी विचारण न्यायालय द्वारा बचाव पक्ष को रद्द करने के लिए कोई विशिष्ट आदेश पारित किया जाता है, तो याचिकाकर्ता के लिए इसे चुनौती देने का विकल्प खुला होगा, लेकिन वर्तमान समय में, जैसा कि आग्रह किया जाना है, यह नहीं कहा जा सकता है कि इसका बचाव बंद हो गया है। नतीजतन, यह न्यायालय आक्षेपित आदेशों में हस्तक्षेप करने के लिए इच्छुक नहीं है।

उपरोक्त स्पष्टीकरण के अधीन याचिका का निपटारा किया जाता है।

उच्च न्यायालय के दिनांक 07.02.2019 के आदेश के अवलोकन से, यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि न्यायालय ने आक्षेपित आदेश 29.08.2018 के गुण-दोष में प्रवेश नहीं किया है, लेकिन याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को किसी भी विशिष्ट आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता के साथ याचिका का निपटारा किया है, यदि कोई हो, तो बचाव को रद्द करने के लिए पारित किया गया था, जिसका अर्थ है कि याचिकाकर्ता को बचाव पक्ष को रद्द करने के आदेश को चुनौती देते हुए सभी मुद्दों को उठाने की स्वतंत्रता दी गई थी जो दिनांक 29.08.2018 के पूर्व आदेश की विषय वस्तु है, अन्यथा, उच्च न्यायालय के दिनांक 07.02.2019 के आदेश का कोई प्रभाव नहीं होगा। 29.08.2018 के आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार करते हुए, उच्च न्यायालय ने 29.08.2018 के आदेश के पक्ष में एक शब्द भी नहीं कहा है, सिवाय याचिकाकर्ता को बचाव पक्ष को चुनौती देने की स्वतंत्रता के अलावा। इसलिए, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय की ओर से यह आवश्यक है कि वह आवेदन पत्र संख्या-65-सी को योग्यता के आधार पर तय करे और 29.08.2018 के पहले के आदेश पर भरोसा न करे।

शीर्ष न्यायालय ने बिमल चंद जैन (उपरोक्त) के मामले से निपटते हुए यह दृढ़ दृष्टिकोण अपनाया है कि आदेश XV सी.पी.सी. के नियम 5 के उप-नियम (2) के तहत, बचाव को रद्द करना दंड की प्रकृति का है जिसके गंभीर परिणाम होंगे, इसलिए, इस मामले में न्यायालय पर एक गंभीर दायित्व है और

नियम 5 के उप-नियम (2) के तहत आदेश पारित करते समय शक्ति का यांत्रिक रूप से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए आदेश XV सी.पी.सी. न्यायालय इस हद तक चला गया कि यहां तक कि यदि आदेश XV सी.पी.सी के नियम 5 के उप-नियम (2) के तहत प्रतिनिधित्व दायर नहीं किया गया है, तो न्यायालय की ओर से रिकॉर्ड पर पहले से मौजूद तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"5. इस मामले में तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता द्वारा उप-नियम (2) के तहत कोई प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था। हमारे सामने उठाया गया एकमात्र सवाल यह है कि क्या इस तरह के प्रतिनिधित्व के अभाव में, अदालत अपीलकर्ता के बचाव को रद्द करने के लिए बाध्य थी।

6. आदेश 15 के नियम 5 की व्यापक समझ पर हमें ऐसा लगता है कि नियम का सही निर्माण इस प्रकार होना चाहिए। उप-नियम (1) प्रतिवादी को वाद की पहली सुनवाई पर या उससे पहले, उसके द्वारा स्वीकार की गई पूरी राशि को नौ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ जमा करने के लिए बाध्य करता है और इसके अलावा, चाहे वह देय होने के लिए किसी भी राशि को स्वीकार करता है या नहीं, वाद की निरंतरता के दौरान नियमित रूप से जमा करने के लिए मासिक राशि इसके प्रोद्भवन की तारीख से एक सप्ताह के भीतर जमा करने के लिए। किसी भी जमा करने में किसी भी

चूक की स्थिति में, "अदालत उप-नियम (2) के प्रावधानों के अधीन हो सकती है, अपने बचाव को रद्द कर सकती है"। अब हम इस बात पर आएंगे कि इसका क्या मतलब है। उप-नियम (2) उस संबंध में प्रतिवादी द्वारा किए गए किसी भी प्रतिनिधित्व पर विचार करने के लिए बचाव पक्ष को बंद करने का आदेश देने से पहले अदालत को बाध्य करता है। दूसरे शब्दों में, प्रतिवादी को अपने बचाव को रद्द किए जाने के खिलाफ अदालत में प्रतिनिधित्व करने का वैधानिक अधिकार दिया गया है। यदि कोई अभ्यावेदन दिया जाता है तो अदालत को इसके गुण-दोष के आधार पर इस पर विचार करना चाहिए, और फिर यह तय करना चाहिए कि बचाव पक्ष को हटा दिया जाना चाहिए या नहीं। यह प्रतिवादी में स्पष्ट रूप से निहित एक अधिकार है और उसे रिकॉर्ड पर सामग्री लाकर दिखाने में सक्षम बनाता है कि वह कथित डिफॉल्ट का दोषी नहीं है या यदि डिफॉल्ट हुआ है, तो इसके लिए अच्छा कारण है। अब, यह असंभव नहीं है कि रिकॉर्ड में पहले से ही ऐसी सामग्री हो सकती है। उस स्थिति में, क्या यह कहा जा सकता है कि उप-नियम (1) अदालत को बचाव को रद्द करने के लिए बाध्य करता है? हमें याद रखना चाहिए कि उप-नियम (1) के तहत बचाव को रद्द करने का आदेश दंड की प्रकृति का है। इस मामले में एक गंभीर जिम्मेदारी अदालत पर है और शक्ति का प्रयोग यांत्रिक रूप से नहीं किया जाना है।

अदालत में निहित विवेक का एक भंडार है जो इसे बचाव को रद्द नहीं करने का अधिकार देता है यदि रिकॉर्ड पर पहले से मौजूद तथ्यों और परिस्थितियों पर ऐसा नहीं करने का अच्छा कारण मिलता है। यह हमेशा न्यायालय के निर्णय का मामला होगा कि वह यह निर्णय करे कि क्या उसके समक्ष सामग्री पर, उपनियम (2) के तहत अभ्यावेदन की अनुपस्थिति के बावजूद, बचाव पक्ष को हटा दिया जाना चाहिए या नहीं। उप-नियम (1) में "हो सकता है" शब्द केवल बचाव को रद्द करने के लिए अदालत में शक्ति निहित करता है। यह डिफॉल्ट के हर मामले में ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं करता है। उस हद तक, हम पूरन चंद (उपरोक्त) मामले में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो पा रहे हैं। हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने आदेश 15 के नियम 5 के खंड (1) के प्रावधानों पर एक अनावश्यक संकीर्ण निर्माण रखा है।

फिर आशा रानी गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा-यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"37. हालांकि मिस संतोष मेहता, श्रीमती कमला देवी और माणिक लाल मजूमदार के मामलों में उपरोक्त निर्णय संबंधित अधिकार क्षेत्र पर लागू संबंधित किराया नियंत्रण कानूनों से संबंधित हैं, जो प्रस्तुत मामले पर सीधे लागू नहीं हो सकते हैं, लेकिन फिर भी,

वर्तमान उद्देश्य के लिए प्रासंगिक प्रस्ताव यह है कि ऐसा कोई भी प्रावधान किरायेदार को रक्षा से वंचित करता है क्योंकि देय राशि के भुगतान में चूक के कारण किराया/बकाया राशि का उदारतापूर्वक अर्थ लगाया गया है; और बचाव को रद्द करने के लिए न्यायालय की शक्ति के संबंध में अभिव्यक्ति 'हो सकता है' को निर्देशिका के रूप में माना गया है और अनिवार्य नहीं है। दूसरे शब्दों में, न्यायालयों ने कठोर परिणाम के ऐसे प्रावधानों के लिए एक अनिवार्य चरित्र निर्दिष्ट नहीं करने के पक्ष में झुकाव दिया है और माना है कि किरायेदार को दंडित करने या न करने के लिए संबंधित न्यायालय के पास वास्तव में एक विवेक सुरक्षित है। हालांकि, इस तरह के विवेक को सुरक्षित रखते हुए, इस न्यायालय ने जानबूझकर विफलता या जानबूझकर डिफॉल्ट या स्वैच्छिक गैर-प्रदर्शन के मामले में प्रतिवादी-किरायेदार के खिलाफ इस तरह के विवेक के उपयोग को मान्यता दी है। इस न्यायालय ने अलग-अलग अभिव्यक्तियों में सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए यह भी कहा है कि यदि अवज्ञा या घोर उपेक्षा की मनोदशा को समझा जाता है, तो किरायेदार बचाव में सुनवाई के अपने अधिकार को जब्त कर सकता है। इस मामले का सार यह है कि बचाव को रद्द करने की शक्ति को विवेकाधीन माना जाता है, जिसका प्रयोग सावधानी से किया जाना है, लेकिन छूट मिस संतोष मेहता और श्रीमती कमला देवी (उपरोक्त) के मामलों की तरह एक वास्तविक किरायेदार के लिए आरक्षित है, न कि निरन्तरता के रूप में। बिमल चंद जैन (उपरोक्त) का मामला सीधे आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. से संबंधित है,

जहां किरायेदार ने बकाया राशि जमा कर दी थी, लेकिन मासिक किराए की नियमित जमा करने में विफल रहा और आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (2) के संदर्भ में प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने में विफल रहा। विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने सी.पी.सी. के आदेश XV नियम 5 के उक्त प्रावधानों को चरित्र में अनिवार्य मानते हुए उस मामले में बचाव को रद्द कर दिया था। इस तरह के दृष्टिकोण को इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया था, जबकि बचाव को बंद नहीं करने में विवेक के आरक्षित होने का संकेत दिया गया था, यदि रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों और परिस्थितियों पर, ऐसा नहीं करने का अच्छा कारण हो। इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों के माध्यम से चलने वाला सामान्य क्रम यह है कि बचाव को रद्द करने की शक्ति को विवेक का मामला माना जाता है, जहां डिफॉल्ट के बावजूद, कुछ अच्छे और पर्याप्त कारणों से बचाव को बंद नहीं किया जा सकता है।

38. चूक के बावजूद बचाव को बंद नहीं करने के लिए अच्छे और पर्याप्त कारण का प्रश्न सीधे ऐसे तथ्यों, कारकों और परिस्थितियों से संबंधित होगा जहां किसी भी वास्तविक कारण के लिए पूर्ण और समयनिष्ठ अनुपालन नहीं किया गया था, जैसा कि अवज्ञा या स्वैच्छिक/वैकल्पिक गैर-प्रदर्शन के दृष्टिकोण से विरोधाभासी है।

नैनीताल में उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने भी गुलशन पाहवा और अन्य (उपरोक्त) के मामले में कानून के समान अनुपात का पालन

किया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा-यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"6. इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि रक्षा को बंद करने की शक्ति का प्रयोग इसे वैधानिक जनादेश मानकर नहीं किया जाना चाहिए। चूंकि इस तरह की शक्ति का प्रयोग गंभीर दंडात्मक परिणाम देता है, इसलिए अदालत के पास विवेक है कि यदि तथ्यों के आधार पर ऐसा न करने का अच्छा कारण मिलता है, वह हड़ताल न करे, इसलिए, रिकॉर्ड पर दिखाई देने वाले तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद और प्रतिनिधित्व पर विचार करने के बाद उनके प्रतिनिधित्व होने की स्थिति में शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।"

9. इस न्यायालय की विनम्र राय में, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के साथ पुनरीक्षण न्यायालय का हस्तक्षेप मामले के तथ्यों में वारंट नहीं था, क्योंकि स्वीकार किए गए किराए को जमा करने में कुछ देरी के कारण हर मामले में अदालत के लिए बचाव को रद्द करना अनिवार्य नहीं है। चूंकि विचारण न्यायालय के पास इस मामले में विवेक है, जिसे अधिकार क्षेत्र के भीतर अच्छी तरह से प्रयोग किया गया था, इसलिए, विद्वान पुनरीक्षण अदालत ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने में त्रुटि की।

प्रस्तुत मामले में, वादी-प्रतिवादी द्वारा दायर आवेदन पत्र संख्या-65-सी और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा दायर आपति पत्र संख्या-67-सी दिनांक 18.05.2022 पर

आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। आपति में, याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि सभी बकाया राशि पहले ही जमा की जा चुकी है। आक्षेपित आदेश पारित करते समय, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने उस पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला है, लेकिन आवेदन 65-सी की अनुमति दी और याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के बचाव को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया कि पहले आवेदन पत्र संख्या-41-जीए को दिनांक 29.08.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा भी पुष्टि की गई थी।

वास्तव में, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय ने उच्च न्यायालय के दिनांक 07.02.2019 के आदेश की गलत व्याख्या की है। एक बार जब न्यायालय ने याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को बचाव पक्ष को रद्द करने के आदेश को चुनौती देने की स्वतंत्रता दे दी है, तो निहित अर्थ यह होगा कि, बचाव को रद्द करने के आवेदन पर विचार करते समय, निचली अदालत की ओर से इस मुद्दे को नए सिरे से तय करना अनिवार्य है, जिसमें आवेदन पत्र संख्या-41-जीए फिर से योग्यता के आधार पर शामिल है लेकिन गलत व्याख्या के कारण, आवेदन पत्र संख्या-65-सी को केवल 29.08.2018 के पहले के आदेश के आधार पर अनुमति दी गई थी, जिसमें उच्च न्यायालय के आदेश के जनादेश दिनांक 07.02.2019 को हटा दिया गया था।

उच्च न्यायालय के दिनांक 07.02.2019 के आदेश ने न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, सहारनपुर द्वारा पारित दिनांक 29.08.2018 के आदेश के प्रभाव को रद्द कर दिया है, जिसमें, यदि बचाव पक्ष को रद्द करने के लिए

कोई आदेश पारित किया गया है, तो याचिकाकर्ता को इस मुद्दे को फिर से उठाने की स्वतंत्रता है। उच्च न्यायालय के आदेश की भावना यह है कि, बचाव पक्ष को रद्द करने के लिए नए आदेश पारित करने के मामले में, याचिकाकर्ता को इसे चुनौती देने की पूरी स्वतंत्रता होगी और निचली अदालत को 29.08.2018 के अपने पहले के आदेश से प्रभावित हुए बिना योग्यता के आधार पर फैसला करना आवश्यक है।

अन्यथा भी, आदेश XV नियम 5 सी.पी.सी. के तहत सभी साक्ष्यों पर विचार करते हुए आदेश पारित करते समय, न्यायालय बहुत सचेत रहा होगा, क्योंकि इस तरह के आदेश के पारित होने से याचिकाकर्ता-प्रतिवादी की साक्ष्य और अन्य सभी परिणामों का नेतृत्व करने की स्वतंत्रता छीन ली जाएगी, जिसके परिणामस्वरूप निश्चित रूप से बिना किसी विरोध के मुकदमे की अनुमति होगी।

इसलिए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत, याचिका की अनुमति दी जाती है। एस.सी.सी. वाद संख्या-25 वर्ष 2014 में न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय, सहारनपुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 14.11.2022 और एस.सी.सी. संशोधन संख्या-132 वर्ष 2022 में जिला न्यायाधीश, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 31.01.2023 को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

उपरोक्त अवलोकन के आलोक में इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने से अधिकतम दो महीने के भीतर आवेदन पत्र संख्या-41-जीए, आपति पत्र संख्या-44-जीए, आवेदन पत्र संख्या-65-सी और आपति पत्र

संख्या-67-सी पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामला वापस न्यायाधीश लघु वाद न्यायालय, सहारनपुर को भेजा जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को अदालतों के निर्णयों को छोड़कर कोई भी नया पेपर दाखिल करने की स्वतंत्रता नहीं दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 315

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र,
वाद अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 10928
/2022

सत्यभान सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आशुतोष सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - ट्रक की जब्ती - दिल्ली आबकारी अधिनियम, 2009 - धारा 61 - उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 - धारा 5(ए)(2), 60, 61 और 72 - एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 - धारा 21/22 - कानून के तहत जब्त वाहन की जब्ती/रिहाई के लिए आदेश पारित करने के लिए कलेक्टर अधिनियम के तहत एकमात्र प्राधिकारी है।

कलेक्टर को किसी भी ऐसी चीज जैसे पशु गाड़ी या अन्य वाहन को जब्त करने का विशेष अधिकार है, यदि उसकी राय में यह जल्दी

खराब होने या प्राकृतिक रूप से खराब होने के अधीन है या यह अन्यथा सार्वजनिक हित में समीचीन है, चाहे अधिनियम की धारा 2 और 3 के तहत प्रदान की गई जब्ती की शक्तियों का प्रयोग करते समय अभियोजन आरोप स्थापित किया गया हो या समाप्त हो गया हो। कलेक्टर को अधिनियम के तहत आपराधिक अपराध से संबंधित मुकदमे के समापन की प्रतीक्षा नहीं करनी होती है और जब्ती आदेश देते समय, उसे वाहन का मालिक होने का दावा करने वाले व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने के बाद, उसे अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी कि अधिनियम के तहत अपराध किया गया है और वाहन को अधिनियम के प्रावधानों के तहत सक्षम अधिकारी द्वारा जब्त कर लिया गया है। (पैरा 17)

वर्तमान वाद में, यह स्वीकृत तथ्य है कि आवेदक द्वारा जब्त ट्रक को मुक्त करने के लिए संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट की न्यायालय में कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था, जब्ती की कार्यवाही कलेक्टर (एडीएम एफ एंड आर) द्वारा प्रारंभ की गई थी और एसएसपी, मथुरा की रिपोर्ट पर और आवेदक/याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद, विद्वान एडीएम (एफ एंड आर)/कलेक्टर ने वाहन को जब्त करने का विवादित आदेश पारित किया। जब्ती की कार्यवाही लंबित नहीं है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा पहले ही निर्णय लिया जा चुका है। (पैरा 16)

बी. जब कोई वाहन उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में सक्षम

पुलिस या आबकारी अधिकारी द्वारा जब्त किया जाता है, तो वाहन स्वामी पर एक बड़ा दायित्व आ जाता है, जिसे उसे संबंधित अधिकारियों के समक्ष निर्वहन करना होता है कि सबसे पहले, उसे इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि उक्त वाहन से कोई अवैध कार्य (अवैध शराब ले जाना) किया जा रहा था और दूसरी बात, उसने यह सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक सुरक्षा और सावधानियां बरतीं कि उक्त वाहन द्वारा ऐसा कोई कार्य न किया जाए। याचिकाकर्ता, वास्तव में, एडीएम के समक्ष, साथ ही जिला न्यायाधीश, जो अपीलीय प्राधिकारी है, के समक्ष अपने दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा।

विद्वान अपर जिला मजिस्ट्रेट ने जब्ती आदेश पारित करते हुए कहा कि उत्तर प्रदेश राज्य में अवैध शराब के परिवहन के कारण वाहन शराब की तस्करी में संलिप्त पाया गया है, अतः इसकी जब्ती उचित पाई गई है, अतः इसका निस्तारण धारा 72 उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम के अन्तर्गत किया जाना आवश्यक है। (पैरा 19)

सी. प्रतिनिधि दायित्व का सिद्धांत - भले ही मालिक/याचिकाकर्ता मौके पर नहीं पाया गया हो, साथ ही सह-अभियुक्तों की मौजूदगी में वाहन जब्त किया गया हो, प्रतिनिधि दायित्व का सिद्धांत इस पुलिस वाद पर लागू होगा क्योंकि घटना के समय वाहन चालक द्वारा चलाया जा रहा था जो उसका मालिक नहीं था। याचिकाकर्ता विचारणीय न्यायालय के समक्ष इस तथ्य को साबित करने में विफल रहा कि वाहन को बिना किसी जानकारी या

मिलीभगत के अवैध शराब के साथ ले जाया गया, सिवाय इसके कि उसके द्वारा यह तर्क दिया गया कि उसे वाहन की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों के बारे में जानकारी नहीं थी, क्योंकि वाहन चालक द्वारा मासिक आधार पर उसे भुगतान की जाने वाली निश्चित दर पर चलाया जा रहा था। (पैरा 20)

डी. याचिकाकर्ता को वाहन की जब्ती के बदले में एआरटीओ द्वारा निर्धारित बाजार मूल्य का भुगतान करने का विकल्प दिया गया है और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता को आपत्तिजनक आदेश द्वारा अपने वाहन से पूरी तरह से वंचित कर दिया गया है और यदि वाहन अभी तक नीलाम नहीं हुआ है, तो कलेक्टर उसे जब्ती के बदले में संबंधित एआरटीओ द्वारा निर्धारित वाहन के बाजार मूल्य को जमा करने का अवसर प्रदान करेगा और यदि वह ऐसा करता है, तो वाहन उसके पक्ष में जारी कर दिया जाएगा और जब्ती के बदले में उसके द्वारा जमा की गई राशि धारा 72(8) के प्रावधानों के अधीन सरकार की हिरासत में रहेगी। (पैरा 21)

रिट याचिका निरस्त (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. वेद प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश, 1987 एडब्ल्यूसी 167
2. वीरेंद्र गुप्ता बनाम राज्य, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2177/2018 (पैरा 6)

3. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) बनाम नरेन्द्र नरेंद्र, 2014 (13) एससीसी 100 (पैरा 6, 13)

4. मुस्तफा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 6418/2019, एससीसी ऑनलाइन वेब संस्करण पृ. 1 (पैरा 6, 16)

विधि व्यवस्था उद्धृत:

1. सुंदर भाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, 2003 (46) एससीसी 223 (पैरा 8)

2. चद्र पाल बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 1325/2021 में इस माननीय न्यायालय का निर्णय दिनांक 12.02.2021 (पैरा 9)

3. पप्पू यादव @ भू प्रकाश यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) एआईएल 50 (पैरा 10)

वर्तमान याचिका में विद्वानों जिला न्यायाधीश, मथुरा द्वारा सिविल अपील संख्या 25/2020 (सत्यभान बनाम जिला मजिस्ट्रेट और अन्य) द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.05.2022 के साथ-साथ अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर), मथुरा द्वारा वाद संख्या 01798/2018 (सत्यभान बनाम राज्य राज्य) में पारित आदेश दिनांक 17.01.2019 को चुनौती दी गई।

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आशुतोष सिंह और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना।

2. याचिकाकर्ता द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान आपराधिक प्रकीर्ण याचिका सिविल अपील संख्या 25/2020 (सत्यभान बनाम जिला मजिस्ट्रेट और अन्य) में विद्वान जिला न्यायाधीश, मथुरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.05.2022 और साथ ही उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 के तहत मुकदमा संख्या 01798/2018 (सत्यभान बनाम राज्य राज्य) में अपर जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर), मथुरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.01.2019 को अपास्त करने के लिए दायर की गई है अन्यथा याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति होगी। दिनांक 17.01.2019 के आक्षेपित आदेश द्वारा, एडीएम (एफ एंड आर) ने अपराध संख्या 382/2017 के तहत आईपीसी की धारा 420, 120बी के तहत पुलिस द्वारा जब्त ट्रक पंजीकरण संख्या एचआर 67 बी 1888 को उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 60/72 के तहत जब्त करने का आदेश पारित किया है।

3. विद्वान एडीएम (एफ एंड आर) ने उक्त वाहन की नीलामी और बिक्री आय को आपराधिक मद में सरकारी खजाने में जमा करने का निर्देश दिया है, और वाहन मालिक को आरटीओ द्वारा निर्धारित वाहन की वर्तमान कीमत जमा करने का विकल्प भी दिया है।

4. याचिकाकर्ता/वाहन के मालिक ने विद्वान एडीएम (एफ एंड आर) द्वारा पारित उक्त जब्ती के आदेश से व्यथित, उत्पाद अधिनियम की धारा 72 के तहत जिला न्यायाधीश, मथुरा के समक्ष एक सिविल अपील दायर की, जिन्होंने अपील को खारिज कर दिया और विद्वान एडीएम (एफ एंड आर) द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की। संक्षेप में मामले का तथ्यात्मक पृष्ठभूमि यह है कि दिनांक 22.09.2017 को सूचनादाता आबकारी निरीक्षक को अपनी ड्यूटी के दौरान सूचना मिली कि अशोक लीलैंड का एक ट्रक जिसका पंजीकरण संख्या एचआर 67 बी 1888 है, मथुरा के लक्ष्मीनगर चौराहे से गुजरने वाला है, जिसमें अवैध शराब के कार्टन भरे हुए हैं। सूचनादाता ने उक्त सूचना पर भरोसा करते हुए अपने सहयोगियों की सहायता से जाल बिछाया और उक्त ट्रक को रोक लिया, हालांकि, ट्रक चालक ने ट्रक से उतरकर भागने की कोशिश की, लेकिन लगभग 19:00 बजे एक एक्साइज कांस्टेबल द्वारा उसे पकड़ लिया गया। ट्रक के केबिन में ड्राइवर के बगल में बैठे एक अन्य व्यक्ति को भी भागने की स्थिति में एक्साइज अधिकारियों की टीम ने पकड़ लिया। गिरफ्तार व्यक्ति ने अपना नाम विनोद (ड्राइवर) और परमैंद्र बताया। ट्रक की तलाशी लेने पर रॉयल स्टैग ब्रांड की क्लासिक व्हिस्की की 100 कार्टन बोतलें और रॉयल स्टैग की 40 आधी बोतलें मिलीं। उक्त बोतलों के रैपर पर "केवल हरियाणा में बिक्री के लिए" प्रदर्शित था। वाहन के डैशबोर्ड से ट्रक के कागजात जप्त किए गए, जिससे पता चला कि सत्यवान पुत्र राम सिंह निवासी रिसालु, पानीपत वाहन के मालिक के रूप में पंजीकृत था। जप्त शराब

की तीव्रता की जांच मौके पर ही नमूने के तौर पर अलग से सील की गई तीन बोतलों की सील तोड़कर की गई। कार्टन में व्हिस्की की 1200 फुल और 960 हाफ बोतलें थीं।

5. जैसा कि उक्त ट्रक को अंतर्राज्यीय शराब तस्करी के आरोप में पकड़ा गया था, एसएसपी मथुरा द्वारा दिनांक 31.10.2017 को आबकारी अधिनियम की धारा 72 के तहत जब्ती की कार्यवाही शुरू करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट दी गई थी, नियमों के अनुसार, याचिकाकर्ता को दिनांक 6.11.2017 को स्वतः संज्ञान नोटिस जारी किया गया था और याचिकाकर्ता पर नोटिस की सेवा को पर्याप्त माना गया था और 22.11.2017 को एक पक्षीय जब्ती आदेश पारित किया गया था। हालांकि, याचिकाकर्ता के आवेदन पर इसे वापस ले लिया गया और उसे सुनवाई का अवसर देने के बाद एडीएम (एफ एंड आर) द्वारा दिनांक 17.01.2019 को वाहन जप्त करने का आदेश पारित किया गया और उस आदेश के खिलाफ दिनांक 30.05.2022 को सिविल अपील जिला न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दी गई।

6. विद्वान जिला न्यायाधीश ने मुस्तफा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, सीए संख्या 6418/2019 (एससी), (जीएनटीसी ऑफ दिल्ली) बनाम नरेंद्र (2014) 13 एससीसी, 100 और वेद प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश 1987 AWC 167, वीरेंद्र गुप्ता बनाम राज्य आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2177, 2018 मामले में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों पर अवलम्ब लिया और इस न्यायालय द्वारा

निर्णय दिया गया कि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत केस कानून मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है क्योंकि कथित वाहन आबकारी अधिकारियों द्वारा जब्त की गई अवैध शराब ले जा रहा था और नियमों के खिलाफ इसके अंतर्राज्य परिवहन में शामिल था। उक्त ट्रक के संबंध में जब्ती आदेश जारी करते समय एडीएम (एफ एंड आर) मथुरा द्वारा पारित आदेश में कोई दोष नहीं पाया जा सका। उन्होंने अंततः निष्कर्ष निकाला कि संबंधित अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में कोई कमी, अवैधता, अनौचित्य, भौतिक अनियमितता या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं है और इस प्रकार, आक्षेपित आदेश की पुष्टि की और याचिकाकर्ता द्वारा दायर सिविल अपील को खारिज कर दिया।

7. उक्त ट्रक को विनोद पुत्र रामफल ने 45,000/- रुपये के मौखिक समझौते पर किराए में लिया था क्योंकि वह याचिकाकर्ता को पिछले 4 से 5 वर्षों से जानता था। हालाँकि दिनांक 22.09.2017 को उक्त ट्रक को शराब की अंतरराज्यीय तस्करी के आरोप में पीएस जमुनापुर, जिला-मथुरा के अधिकार क्षेत्र में आबकारी अधिकारियों द्वारा जब्त कर लिया गया था और इस संबंध में आबकारी निरीक्षक द्वारा दर्ज किया गया था। वाहन के संबंध में याचिकाकर्ता के स्वामित्व के संबंध में कोई विवाद नहीं है, वह उक्त ट्रक का पंजीकृत मालिक है और केवल इस तथ्य के कारण गलत तरीके से उक्त आपराधिक मामले में आरोपी के रूप में जोड़ा गया है कि वह उक्त ट्रक का मालिक है। पुलिस ने उक्त अपराध में उसके खिलाफ आरोप पत्र दायर किया और

न्यायालय द्वारा उसके खिलाफ संज्ञान लिया गया है। याचिकाकर्ता ने निचली अदालत के समक्ष जमानत के लिए प्रार्थना की थी और उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया है। विद्वान अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 22.11.2017 को पारित आदेश एकपक्षीय आदेश था जिसमें वाहन को जब्त करने का निर्देश दिया गया था, याचिकाकर्ता ने विद्वान एडीएम के समक्ष उक्त एकपक्षीय आदेश की समीक्षा के लिए एक बहाली आवेदन दायर किया और उसे दिनांक 27.10.2018 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया और मामले की दोबारा सुनवाई की गई, हालाँकि, उक्त वाहन के संबंध में जब्ती आदेश दिनांक 17.01.2019 को पारित किया गया था और उन्होंने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि उक्त ट्रक का उपयोग ड्राइवर विनोद द्वारा मालिक को किराए के रूप में 45,000/- रुपये प्रति माह का भुगतान करने की शर्त पर किया गया था। याचिकाकर्ता घटना के समय मौके पर मौजूद नहीं था और उसे उस ड्राइवर की दैनिक व्यावसायिक गतिविधियों के बारे में जानकारी नहीं होनी चाहिए, जिसके पास वह ट्रक था। विद्वान जिला जज भी मामले के तथ्यों को उचित तरीके से समझने में विफल रहे और विद्वान एडीएम के आदेश के खिलाफ दायर उनकी सिविल अपील को खारिज कर दिया। उक्त शराब याचिकाकर्ता के कब्जे से प्राप्त नहीं की गई थी, इसलिए याचिकाकर्ता को इस माननीय न्यायालय के समक्ष संवैधानिक उपचार की तलाश करनी पड़ी। उन्होंने आगे कहा कि वाहन को लंबे समय से बेकार रखा गया है जिसके परिणामस्वरूप वाहन टूट-फूट रहा है और इसकी उपयोगिता दिन-ब-दिन

खराब होती जा रही है, वह इस वाहन से अपनी आजीविका कमाते हैं। यह स्वीकृत स्थिति है कि उसे मौके पर गिरफ्तार नहीं किया गया था।

8. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सुंदर भाई अम्बालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य 2003 (46) ए.सी.सी.223 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि ऐसे जब्त वाहनों को लंबे समय तक पुलिस स्टेशनों पर रखने का कोई फायदा नहीं है। यह मजिस्ट्रेट पर निर्भर करता है कि वह वह किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर उचित बंधपत्र और गारंटी के साथ ही साथ उक्त वाहनों की वापसी के लिए सुरक्षा लेकर तुरंत उचित आदेश पारित करे। ऐसा ऐसे वाहनों की वापसी के आवेदनों की सुनवाई लंबित रहने तक किया जा सकता है। यदि वाहन पर आरोपी, मालिक, या बीमा कंपनी या तीसरे व्यक्ति द्वारा दावा नहीं किया गया है, तो ऐसे वाहन को न्यायालय द्वारा नीलाम करने का आदेश दिया जा सकता है।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदन अन्तर्गत धारा 482 संख्या 1325/2021 चंद्र पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में इस न्यायालय के एएफआर निर्णय दिनांक 12.02.2021 पर भी अवलम्ब लिया, जिसमें इसे सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के मद्देनजर रखा गया है जैसा कि फैसले में उद्धृत किया गया है, मजिस्ट्रेट के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय को जब्त किए गए वाहन के संबंध में संहिता के तहत शक्तियों का

प्रयोग करते हुए जब्त किए गए वाहन को छोड़ने के लिए अपने स्वयं के अधिकार क्षेत्र से संबंधित मुद्दे का फैसला करना चाहिए था और जिसके संबंध में जब्त की कार्यवाही अधिनियम, 1910 की धारा 72 के तहत जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष विचाराधीन है। हालांकि, उक्त मुद्दा दोनों निचली अदालत द्वारा अनुत्तरित है। इस प्रकार, वर्तमान आवेदन में आक्षेपित आदेश को गलत तर्क के कारण बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसलिए, यह रद्द किये जाने योग्य है और एक महीने की अवधि के भीतर ऊपर दी गई टिप्पणियों के आलोक में आवेदक के रिहाई आवेदन पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामला संबंधित मजिस्ट्रेट को भेजा जाता है।

10. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पापू यादव उर्फ भू प्रकाश यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2014) एआईआईएलजे 50 में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लिया, मामले के तथ्य कुछ हद तक मौजूदा मामले से मिलते-जुलते हैं, क्योंकि एक गुप्त सूचना के आधार पर, एस.एच.ओ. सिकंदराराऊ, जिला-हाथरस ने एक इंडिका कार को रोका, जिसमें अवैध शराब और नशीला पदार्थ भरा हुआ था। याचिकाकर्ता वाहन में अकेला सवार था, उसके पास नशीला शक्ति वाला डायजापाम पाउडर था जिसका वजन 110 ग्राम था, उसे संयुक्त प्रांत उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 की धारा 60 के तहत एनडीपीएस अधिनियम की धारा 21/22 के तहत गिरफ्तार किया गया था। उन्हें उचित समय पर जमानत पर रिहा कर दिया गया और न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष वाहन की रिहाई के लिए आवेदन किया गया,

जिन्होंने इस आधार पर आवेदन खारिज कर दिया कि उक्त वाहन के संबंध में जब्ती की कार्यवाही जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष विचाराधीन थी। उन्होंने धारा 72 की उप-धारा 5 (ए) (2) के तहत जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष एक अभ्यावेदन दिया, लेकिन इसे खारिज कर दिया गया और जब्ती आदेश पारित किया गया और वाहन को सार्वजनिक नीलामी द्वारा बेचने का निर्देश दिया गया। जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ दायर अपील को भी विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, हाथरस द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस न्यायालय ने कहा कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित जब्ती आदेश के खिलाफ अपील को जिला न्यायाधीश द्वारा आपराधिक अपील के रूप में नहीं बल्कि सिविल अपील के रूप में सुना जाएगा। 'जिला न्यायाधीश' शब्द को साधारण खण्ड अधिनियम की धारा 3(17) में इस प्रकार परिभाषित किया गया है: -

"(17) "जिला न्यायाधीश" से आरम्भिक अधिकारिता के प्रधान सिविल न्यायालय का न्यायाधीश अभिप्रेत होगा किन्तु अपनी मामूली या गैर मामूली आरम्भिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करता हुआ उच्च न्यायालय इसके अन्तर्गत नहीं आएगा"

अधिसूचना से यह स्पष्ट है कि नियुक्त अपीलीय न्यायिक प्राधिकारी जिला न्यायाधीश हैं। जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील को आपराधिक अपील के रूप में सुना या पंजीकृत नहीं किया जाना चाहिए था। इसे सिविल अपील के रूप में पंजीकृत किया जाना चाहिए था और जिला न्यायाधीश द्वारा स्वयं इसका

निस्तारण किया जाना चाहिए था। जब भी किसी न्यायिक प्राधिकारी को व्यक्तित्व पदनाम के रूप में नियुक्त किया जाता है, तो सुनवाई उसी प्राधिकारी द्वारा की जानी चाहिए और जहां तक संभव हो अन्य अधिनियमों का लाभ नहीं लेना चाहिए।" अपील का निर्णय जिला न्यायाधीश द्वारा स्वयं करने का प्रयास किया जाना चाहिए। पप्पू यादव के मामले में इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता के वाहन को जब्त करने के जिला मजिस्ट्रेट के आदेश और निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को गलत और अवैध बताते हुए रद्द कर दिया और प्रत्यर्थियों को उक्त कार को याचिकाकर्ता के पक्ष में उसी स्थिति में तुरंत जारी करने का निर्देश दिया गया, जिस स्थिति में वह जब्ती की तारीख पर थी। हालाँकि, उपरोक्त मामले का निर्णय इस आधार पर किया गया प्रतीत होता है कि अपर जिला न्यायाधीश ने अपील को सिविल अपील के बजाय आपराधिक अपील के रूप में तय किया था और इसे अपर जिला न्यायाधीश के समवर्ती स्थानांतरित करने के बजाय जिला न्यायाधीश द्वारा स्वयं तय किया जाना चाहिए था। उक्त अधिनियम की धारा 72 के तहत जब्ती की शक्तियों का प्रयोग करते समय कलेक्टर एक आपराधिक अदालत नहीं, बल्कि कलेक्टर एक राजस्व प्राधिकारी के रूप में अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है। इस न्यायालय ने यह भी देखा कि निचली अपीलीय अदालत ने मामले के

तथ्यों और उस पर लागू कानून पर अपना ध्यान नहीं लगाया और अपील को उसी आधार पर खारिज कर दिया जिस आधार पर कलेक्टर ने वाहन को जब्त करने के लिए अपनी संतुष्टि के लिए कदम उठाया था। प्रस्तर 11 में आगे कहा गया कि याचिकाकर्ता द्वारा ऊपर की गई आपत्तियों को पूरा करने के लिए ज़बती आदेश में एक भी शब्द नहीं है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि कलेक्टर ने याचिकाकर्ता के वाहन को जब्त करने का आदेश पारित करते समय खुद को संतुष्ट करने के लिए स्व-विवेक से कार्य नहीं किया कि याचिकाकर्ता ने 1910 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या IV के किसी भी प्रावधान के तहत कोई अपराध किया है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश विधायी आदेश का सरासर उल्लंघन है जैसा कि अधिनियम की धारा 72 की उपधारा (2) में उल्लिखित है। कलेक्टर ने अपनी संतुष्टि के लिए यह कारण दर्ज किया कि याचिकाकर्ता ने अपराध किया है जिसके कारण उसकी कार केवल इसलिए जब्त की जा सकती है क्योंकि उसने अपना नाम पप्पू यादव बताया था जबकि वास्तव में उसका नाम भू प्रकाश था। इस संबंध में कलेक्टर द्वारा ही पूछताछ करने पर पता चला कि पप्पू और भू प्रकाश एक ही व्यक्ति हैं और पप्पू यादव उसका उपनाम है। इस प्रकार, यह निराधार है कि कलेक्टर द्वारा अपनी संतुष्टि के लिए दर्ज किया गया कारण कि याचिकाकर्ता ने अपराध किया है जिसके कारण उसकी कार जब्त

की गई है। 1910 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या IV की धारा 72 के तहत अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए कलेक्टर को नियमित तरीके से आदेश पारित नहीं करना चाहिए। कलेक्टर को अपने स्वयं के रिकॉर्ड या सामग्री को देखने के बाद स्व-विवेक लगाना होगा और संतुष्टि के लिए स्वतंत्र कारणों को दर्ज करना होगा कि उक्त अधिनियम के तहत अपराध किया गया है जिसके कारण उक्त वाहन अधिनियम की धारा 72 की उपधारा (1) में ज़बती योग्य है।"

11. अधिनियम की धारा 72 के प्रावधानों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

धारा - 72 कौन सी वस्तु जब्त किये जाने के योग्य होंगी-

1. जब कभी इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय कोई अपराध किया गया हो तो-

क. ऐसी प्रत्येक मादक वस्तु जिसके संबंध में ऐसा अपराध किया गया हो,

ख. ऐसा प्रत्येक भभका बर्तन, औजार या उपकरण और समस्त सामान जिनके द्वारा उक्त अपराध किया गया हो,

ग. प्रत्येक मादक वस्तु जो विधिपूर्वक आयात की गयी हो, जिसका परिवहन किया गया हो, जो निर्मित की गयी हो कब्जे में रखी गयी हो या खण्ड- क के अधीन जब्त की जाने योग्य किसी मादक वस्तु के साथ-साथ या उसके अतिरिक्त बेच दी गयी हो,

घ. प्रत्येक पात्र संवेष्टन और आवरण जिसमें यथापूर्वोक्त कोई मादक वस्तु या कोई सामान, भ्रमका, बर्तन, औजार या उपकरण हो या ऐसे पात्र या संवेष्टन की किसी अन्य अन्तर्वस्तु यदि कोई हो के साथ पाया जाये और

ड. प्रत्येक पशु, गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन जो ऐसे पात्र या संवेष्टन में लाने ले जाने के लिए प्रयोग किया जाये जब्त किये जाने योग्य होगा।

2. जहां इस अधिनियम के किसी उपबन्ध के अधीन किसी वस्तु या पशु का अधिग्रहण किया जाये और कलेक्टर का ऐसे कारणों से जो अभिलिखित किये जायेंगे यह समाधान हो जाये कि कोई अपराध किया गया है जिसके कारण ऐसी वस्तु या पशु उपधारा 1 के अधीन जब्त किये जाने योग्य हो गया है वहां वह ऐसी वस्तु या पशु को जब्त करने का आदेश दे सकता है चाहे ऐसे अपराध के लिए अभियोजन संस्थित किया गया हो या नहीं ?

प्रतिबन्ध यह है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी वस्तु (मादक वस्तु को छोड़कर) या पशु की स्थिति में इसके स्वामी को विकल्प दिया जायेगा कि वह वस्तु या पशु की जब्ती के बदले में उसके अधिग्रहण के दिनांक को उसका जो बाजारी मूल्य रहा हो उससे अधिक ऐसा अर्थदण्ड दे, जिसे कलेक्टर पर्याप्त समझे।

3. जहां अधिग्रहण की रिपोर्ट प्राप्त होने पर अभिग्रहीत वस्तु का जिसके

अन्तर्गत कोई पशु गाड़ी, जलयान या वाहन भी है, निरीक्षण करने पर कलेक्टर की यह राय हो कि कोई ऐसी वस्तु या पशु शीघ्रता से क्षीण और दुर्बल या प्राकृतिक रूप से क्षय होने वाला है या अन्यथा लोकहित में ऐसा करना समीचीन है वहां पर ऐसी वस्तु मादक वस्तु को छोड़कर या पशु को नीलामम द्वारा अन्य प्रकार से बाजार मूल्य पर बेचने का आदेश दे सकता है।

4. जहां कोई वस्तु या पशु को उपर्युक्त प्रकार से बेचा जाये, और

क. उपधारा (2) के अधीन या उपधारा (6) के अधीन पुनर्विलोकन पर कलेक्टर द्वारा अन्ततोगत्वा जब्ती का आदेश न दिया जाये या बना रहने दिया जाये, या

ख. उपधारा (7) के अधीन अपील पर दिये गये आदेश में ऐसा अपेक्षित हो, या

ग. उस अपराध के लिए जिसके सम्बन्ध में वस्तु या पशु का अधिग्रहण किया जाये, अभियोजन संस्थित किये जाने की दशा में न्यायालय के आदेश से ऐसा करना अपेक्षित हो, वहां विक्रय व्यय की कटौती करने के पश्चात् विक्रय आगम का भुगतान उसके हकदार व्यक्ति को किया जायेगा।

5. क. इस धारा के अधीन जब्ती का आदेश तब तक नहीं किया

जायेगा जब तक कि उसके स्वामी या उस व्यक्ति को जिससे उसे अभिग्रहीत किया जाये

1. ऐसे आधार सूचित करते हुए जिन पर इस प्रकार जब्ती प्रस्तावित है, कोई लिखित नोटिस,

2. ऐसे युक्तियुक्त समय के भीतर जैसा नोटिस में विनिर्दिष्ट किया जाये लिखित अभ्यावेदन देने का अवसर, और

3. उस विषय में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर न दे दिया जाये ।

ख. किसी पशु गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन को जब्त करने का कोई आदेश नहीं दिया जायेगा यदि उसका स्वामी कलेक्टर के संतोषानुसार यह साबित कर दे कि पशु गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन का प्रयोग करके उसके स्वामी, अभिकर्ता, यदि कोई हो, और प्रभारी व्यक्ति की जानकारी या मौनानुमति के बिना, विनिषिद्ध माल को ले जाने के लिए किया गया था और इनमें से प्रत्येक ने इस प्रकार प्रयोग किये जाने के विरुद्ध सभी युक्तियुक्त और आवश्यक पूर्वाप्याय किये थे और इस उपबन्ध का कोई प्रतिकूल प्रभाव खण्ड (क) के उपबन्धों पर नहीं पड़ेगा।

6. जहां उपधारा (2) के अधीन दिये गये जब्ती के किसी आदेश के एक मास के भीतर कलेक्टर को इस निमित्त आवेदन पत्र दिये जाने पर या यथास्थिति, उक्त उपधारा के अधीन जब्ती से इनकार करने के आदेश से एक मास के भीतर अभिग्रहीत वस्तु या पशु के स्वामी को या उस व्यक्ति को, जिसके कब्जे से उसे अभिग्रहीत किया गया हो, कलेक्टर द्वारा स्वप्रेरणा से यह कारण बताने का नोटिस जारी करने के पश्चात् कि क्यों न आदेश का पुनर्विलोकन किया जाये और उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात् कलेक्टर का यह समाधान हो जाये कि अभिलेख को देखने से ही यह प्रकट होता है कि आदेश में कोई भूल है जिसके अन्तर्गत विधि सम्बन्धी भूल भी है, वहां वह पुनर्विलोकन करके ऐसा आदेश दे सकता है, जिसे वह उचित समझे ।

7. उपधारा (2) या उपधारा (6) के अधीन जब्ती के किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, जो ऐसा आदेश सूचित किये जाने के दिनांक से एक मास के भीतर, ऐसे न्यायिक प्राधिकारी को अपील कर सकता है जिसे राज्य सरकार इस निमित्त नियुक्त करे और न्यायिक प्राधिकारी अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उस आदेश को

जिसके विरुद्ध अपील की जाये, पुष्टि, परिष्कार या विखण्डन करने का ऐसा आदेश दे सकता है, जिसे वह उचित समझे।

8. जहां ऐसे अपराध के लिए जिसके सम्बन्ध में ऐसी जब्ती का आदेश दिया गया हो, अभियोजन संस्थित किया जाये, वहां उपधारा (4) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उस वस्तु या पशु का निस्तारण न्यायालय के आदेश के अनुसार किया जायेगा।

9. इस धारा के अधीन कलेक्टर द्वारा दिया गया जब्ती का कोई आदेश ऐसे किसी दण्ड के आरोपण से निवारित नहीं करेगा जिसके लिए उससे प्रभावित व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन भागी हो।"

12. उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या IV, 1910 की धारा 72 का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर, यह पता चलता है कि कलेक्टर को अधिनियम की धारा 72(1) के तहत वर्णित किसी भी चीज को जब्त करने का अधिकार है, जहां उपधारा (1)(ए) से (ई) में निर्धारित शर्तें पूरी होती हैं और उसे वाहन के मालिक को लिखित रूप में एक नोटिस जारी करने के बाद उसे उन आधारों के बारे में सूचित करने का उचित अवसर देना होगा जिन पर ऐसी जब्ती प्रस्तावित है और ऐसी प्रस्तावित जब्ती के खिलाफ लिखित

रूप में प्रतिनिधित्व करने का अवसर देना होगा।

13. वहीं दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए. द्वारा कहा गया कि विद्वान जब्ती प्राधिकारी, अपर जिला मजिस्ट्रेट (एफ एंड आर) जिन्होंने उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 की धारा 72 के तहत कलेक्टर को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए तथा विद्वान जिला न्यायाधीश, मथुरा द्वारा पारित आदेश का प्रयोग करते हुए, प्रश्नगत वाहन को जब्त किया है, द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं है। आक्षेपित आदेश दोनों वैधानिक प्राधिकारियों के अधिकार क्षेत्र में हैं और अधिनियम की धारा 72 के प्रावधानों के अनुरूप हैं। जहां तक चंद्र पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय का प्रश्न है, इस मामले का निर्णय अपने स्वयं के तथ्यों के आधार पर किया गया था क्योंकि उस मामले में उत्तर प्रदेश उत्पाद अधिनियम की धारा 62, 63, 72 के प्रावधानों के तहत जब्त किए गए वाहन को छोड़ने का आवेदन विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था, जिन्होंने राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम नरेंद्र 2014 (13) एससीसी 100 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर अवलम्ब लेते हुए सीआरपीसी की धारा 457 के संदर्भ में जब्त वाहन की रिहाई की मांग करने वाले आवेदक द्वारा दायर रिहाई आवेदन पर विचार करने के अपने अधिकार क्षेत्र का निर्णय किए बिना वाहन की रिहाई के लिए आवेदन को खारिज कर दिया था और विद्वान मजिस्ट्रेट के आदेश के विरुद्ध आवेदक द्वारा दायर आपराधिक

पुनरीक्षण में विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी।

14. इस न्यायालय ने पाया कि गलत तर्कों के कारण आक्षेपित आदेशों को बरकरार नहीं रखा जा सका और इसलिए, रद्द किया जाना चाहिए।

15. इस न्यायालय ने यह भी अवलोकन किया कि दिल्ली उत्पाद शुल्क अधिनियम 2009 के साथ-साथ उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 के प्रावधानों की तुलना करने पर, न्यायालय ने पाया कि 1910 के अधिनियम में उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम की धारा 61 में निहित प्रावधानों के समान कोई प्रावधान नहीं है, तदनुसार, दिल्ली उत्पाद शुल्क अधिनियम, 2009 की धारा 61 में निर्धारित अनुपात सभी न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को रोकता है, लेकिन राज्य (एनसीटी दिल्ली) में समान प्रावधानों के अभाव में भी बनाम नरेंद्र (उपरोक्त) दिल्ली उत्पाद शुल्क अधिनियम से उत्पन्न होने वाले मामलों तक ही सीमित है, इस प्रकार उपरोक्त निर्णय अलग-अलग हैं और उसमें निर्धारित अनुपात को जब्त किए गए वाहन के संबंध में रिहाई आवेदन पर निर्णय लेने के लिए वास्तविक रूप से लागू नहीं किया जा सकता है, जिसके संबंध में अधिनियम, 1910 की धारा 72 के संदर्भ में जब्ती की कार्यवाही लंबित है।

16. वर्तमान मामले में, यह स्वीकृत तथ्य है कि आवेदक द्वारा जब्त ट्रक की रिहाई के लिए संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत के समक्ष कोई आवेदन दायर नहीं किया गया

था, जब्ती की कार्यवाही कलेक्टर (एडीएम, एफ एंड आर) द्वारा शुरू की गई थी और वर्तमान मामले में एसएसपी, मथुरा की रिपोर्ट पर और आवेदक/याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद, एडीएम (एफ एंड आर)/कलेक्टर ने वाहन को जब्त करने का आदेश पारित किया। वर्तमान मामले में, जब्ती की कार्यवाही लंबित नहीं है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा पहले ही तय की जा चुकी है। यह विवाद में नहीं है कि कलेक्टर अधिनियम के तहत जब्त किए गए वाहन को जब्त करने/छोड़ने का आदेश पारित करने का एकमात्र प्राधिकारी है। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या 6418/2019 मुस्तफा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में एससीसी ऑनलाइन वेब संस्करण पृष्ठ 1, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि दिल्ली उत्पाद शुल्क अधिनियम, 2009 की धारा 61 सभी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार पर रोक लगाती है लेकिन अधिनियम में समान प्रावधानों के अभाव में भी, राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम नरेंद्र 2014 मामले में निर्धारित सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू है क्योंकि अधिनियम संहिता के प्रावधानों के साथ असंगत है। न्यायालय ने अवधारित किया कि कलेक्टर के पास वाहनों को जब्त करने का विशेष अधिकार क्षेत्र है और यदि जब्त की गई चीजें तेजी से टूट-फूट रही हैं या वे खराब हो रही हैं तो वह अधिनियम की धारा 72 की उप-धारा (3) के तहत निर्धारित तरीके से इसे बेचने का आदेश दे सकते हैं। उप-धारा (4) बिक्री आय के वितरण से संबंधित है जब जब्त की गई वस्तु बेची जाती है जो टूट-फूट और प्राकृतिक क्षय के अधीन है या जब ऐसा करना

सार्वजनिक हित में समीचीन है। अधिनियम की धारा 72 की उप-धारा (8) ऐसी स्थिति से संबंधित है जहां किसी अपराध का मुकदमा चलाया जाता है जिसके संबंध में जब्ती का आदेश दिया गया था, वस्तु या जानवर का निस्तारण न्यायालय के आदेशानुसार अधिनियम की धारा 72 की उपधारा (4) के प्रावधानों के अधीन किया जाएगा। अधिनियम की धारा 72 की उपधारा (8) में न्यायालय का आदेश अभियोजन के निष्कर्ष के बाद है जो जब्त की गई चीजों से अलग है जो तेजी से टूट-फूट या प्राकृतिक क्षय के अधीन हैं जैसा कि अधिनियम की धारा 72 की उपधारा (3) में माना गया है।

17. अधिनियम की धारा 72 के तहत वैधानिक प्रावधानों के साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त आदेश के अवलोकन पर, यह माना जा सकता है कि यदि वह उसकी राय है कि यह तेजी से टूट-फूट या प्राकृतिक क्षय के अधीन है या यह सार्वजनिक हित में अन्यथा समीचीन है और भले ही अधिनियम की धारा 2 और 3 के तहत प्रदान की गई जब्ती की शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभियोजन आरोप स्थापित या समाप्त किए गए हों या नहीं तो कलेक्टर को पशु गाड़ी या अन्य वाहन जैसी किसी भी चीज को जब्त करने का विशेष अधिकार क्षेत्र है। कलेक्टर को अधिनियम के तहत आपराधिक अपराध से संबंधित मुकदमे के समापन की प्रतीक्षा नहीं करनी है और जब्ती आदेश देते समय, उसे अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी कि अधिनियम के तहत अपराध किया गया है और वाहन के मालिक होने का दावा करने वाले व्यक्ति को

सुनवाई का अवसर देने के बाद अधिनियम के प्रावधानों के तहत सक्षम अधिकारी द्वारा वाहन को जब्त कर लिया गया है। वाहन का मालिक होने का दावा करने वाले व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देकर कार्रवाई करें।

18. अधिनियम की धारा 72 का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 72(वी)(बी) में यह प्रावधान है कि "किसी पशु गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन को जब्त करने का कोई आदेश नहीं दिया जायेगा यदि उसका स्वामी कलेक्टर के संतोषानुसार यह साबित कर दे कि पशु गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन का प्रयोग करके उसके स्वामी, अभिकर्ता, यदि कोई हो, और प्रभारी व्यक्ति की जानकारी या मौनानुमति के बिना, विनिषिद्ध माल को ले जाने के लिए किया गया था और इनमें से प्रत्येक ने इस प्रकार प्रयोग किये जाने के विरुद्ध सभी युक्तियुक्त और आवश्यक पूर्वाप्याय किये थे और इस उपबन्ध का कोई प्रतिकूल प्रभाव खण्ड (क) के उपबन्धों पर नहीं पड़ेगा।"

19. अब यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एक बार सक्षम पुलिस या आबकारी अधिकारी द्वारा यूपी आबकारी अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में एक वाहन जब्त कर लिया जाता है तो वाहन के मालिक पर काफी दबाव होता है जिसे उसे संबंधित अधिकारियों के सामने प्रस्तुत करना पड़ता है कि प्रथमतः, उसे इस बात की कोई जानकारी नहीं थी कि उक्त वाहन के साथ ऐसा कृत्य किया जा रहा है और दूसरे, उसने यह देखने के लिए सभी आवश्यक सुरक्षा और सावधानियां बरतीं कि उक्त वाहन

द्वारा ऐसा कृत्य नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, याचिकाकर्ता अपर जिला मजिस्ट्रेट के साथ-साथ जिला न्यायाधीश, जो कि अपीलीय प्राधिकारी है, के समक्ष अपने भार का निर्वहन करने में विफल रहा। विद्वान अपर जिला मजिस्ट्रेट ने वाहन के संबंध में जब्ती आदेश पारित करते हुए याचिकाकर्ता के मामले को उसके पक्ष में वाहन जारी करने की प्रार्थना के साथ निस्तारित किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उक्त वाहन का उपयोग अवैध शराब की अवैध तस्करी में किया गया है, जिसमें उत्तर प्रदेश एक्साइज के खिलाफ हरियाणा में निर्मित रॉयल स्टेग ब्रांड के 140 कार्टन शामिल हैं, जो राज्य के राजस्व के खिलाफ एक गंभीर अपराध है और उत्तर प्रदेश एक्साइज नीति को विफल करने की साजिश है और इसी कारण से आईपीसी की धारा 420, 120बी के साथ धारा 60/72 उत्पाद अधिनियम के तहत एफआईआर दर्ज की गई। उन्होंने यह भी कहा कि उत्तर प्रदेश राज्य में अवैध शराब के परिवहन के कारण शराब की तस्करी और उसकी बरामदगी में वाहन शामिल पाया गया है अतः इसका अधिहरण उचित पाया जाता है तथा इसका निस्तारण उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम की धारा 72 के अन्तर्गत किया जाना आवश्यक है।

20. विद्वान जिला न्यायाधीश ने भी जब्ती आदेश के खिलाफ दायर अपील में कोई कमी, अवैधता या त्रुटि नहीं पाई है, जो कि विद्वान कलेक्टर/एडीएम (एफ एंड आर) द्वारा किया गया है। भले ही मालिक/याचिकाकर्ता सह-अभियुक्तों की उपस्थिति में वाहन जब्त किए जाने के समय मौके पर नहीं पाया गया था,

फिर भी प्रतिवर्ती दायित्व का सिद्धांत इस पुलिस मामले पर लागू होगा क्योंकि घटना के समय वाहन चालक द्वारा संचालित किया जा रहा था जो मालिक नहीं था। याचिकाकर्ता अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष तथ्य साबित करने में विफल रहा है कि वाहन को बिना किसी जानकारी या मिलीभगत के अवैध शराब के साथ ले जाया गया था, सिवाय उसके इस स्टैंड के कि उसे वाहन की दिन-प्रतिदिन की आवाजाही के बारे में जानकारी नहीं थी क्योंकि इसे ड्राइवर द्वारा मासिक आधार पर भुगतान की गई एक निश्चित दर पर संचालित किया गया था।

21. विद्वान कलेक्टर ने वाहन के मालिक (वर्तमान याचिकाकर्ता) को एआरटीओ द्वारा निर्धारित वाहन की वर्तमान कीमत जमा करने का एक विकल्प भी दिया है और उस स्थिति में, वाहन की नीलामी नहीं की जाएगी, अन्यथा उसे नीलाम कर दिया जाएगा और बिक्री आय सरकारी खजाने में जमा की जाएगी और यह आदेश धारा 72(2) प्रावधान के प्रावधानों के अनुरूप है जो प्रावधान करती है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी भी चीज़ (नशीले पदार्थ को छोड़कर) या जानवर के मामले में, उसके मालिक को जब्ती के बदले में ऐसा जुर्माना देने का विकल्प दिया जाएगा, जिसे कलेक्टर पर्याप्त समझे, जो जब्ती की तारीख पर उसके बाजार मूल्य से अधिक न हो। इसलिए, याचिकाकर्ता को वाहन की जब्ती के बदले एआरटीओ द्वारा निर्धारित बाजार मूल्य का भुगतान करने का विकल्प दिया गया है, और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि आक्षेपित आदेश से याचिकाकर्ता अपने वाहन से पूरी तरह वंचित हो गया है और यदि वाहन

अभी तक नीलाम नहीं हुआ है, तो कलेक्टर उसे जब्ती के बदले संबंधित एआरटीओ द्वारा निर्धारित वाहन का बाजार मूल्य जमा करने का अवसर देगा और यदि उसके ऐसा करने पर वाहन उसके पक्ष में जारी कर दिया जाएगा और जब्ती के बदले में उसके द्वारा जमा की गई राशि धारा 72 की उप-धारा 8 के प्रावधानों के अधीन सरकार की हिरासत में रहेगी।

22. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, मुझे विद्वान जिला न्यायाधीश के साथ-साथ संबंधित कलेक्टर/एडीएम (एफ एंड आर) द्वारा पारित किए गए आदेशों में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं मिली और अपील खारिज होने योग्य है।

23. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, वर्तमान रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 325
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.03.2023
समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,
आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 706/2021
मनोज गुप्ता @मनोज कुमार गुप्ता ...आवेदक
बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षी गण
अधिवक्ता आवेदक: श्री शशांक त्रिपाठी, श्री
अथर्व दीक्षित, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ
अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री मनीष टंडन,
श्री राकेश दुबे, श्री सैयद इमरान इब्राहिम

क. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482 एवं भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 147, 148, 149, 302, 34, 307, 120बी एवं दंड विधि (संशोधन) अधिनियम की धारा 7-आवेदक को उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में गिरफ्तार किया गया- उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा कोई ट्रांजिट रिमांड प्राप्त नहीं किया गया। छिंदवाड़ा के सम्बन्धित मजिस्ट्रेट की पुलिस द्वारा - आवेदक को उसकी गिरफ्तारी की तारीख और समय से 24 घंटे की अवधि की समाप्ति के काफी बाद रिमांड मजिस्ट्रेट कानपुर नगर के समक्ष पेश किया गया। - गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे की अवधि की समाप्ति के बाद पुलिस द्वारा आवेदक को हिरासत में रखना स्पष्ट रूप से अवैध है, मजिस्ट्रेट कानपुर नगर द्वारा पारित रिमांड का आदेश उपरोक्त अवैधता को समाप्त नहीं करेगा। - इस प्रकार, यह तथ्य कि आवेदक के विरुद्ध रिमांड के आदेश के बाद की तारीख से 90 दिनों के भीतर आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, पूरी तरह से गलत है और राज्य या विपक्षी पक्ष के लिए कोई मदद नहीं करता है। (पैरा 1 से 38)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. मधु लिमये एवं अन्य बनाम बिहार राज्य (1969) एआईआर एससी 1014
2. मनोज बनाम एम.पी. राज्य (1999) 3 एससीसी 715

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक - असीम @ पप्पू स्मार्ट के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र अग्रहरि द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी, आवेदक - मनोज गुप्ता उर्फ मनोज कुमार गुप्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सैयद इमरान इब्राहिम, श्री मनुराज सिंह के साथ-साथ श्री प्रशांत कुमार, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. और श्री राकेश दुबे, विद्वान अधिवक्ता, दोनों आवेदनों में प्रथम सूचक/विपक्षी पक्ष-2 को सुना।
2. रिकार्ड का अवलोकन किया।
3. आवेदक-मनोज गुप्ता उर्फ मनोज कुमार गुप्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सैयद इमरान इब्राहिम का कहना है कि उपरोक्त आवेदक द्वारा दायर किया गया आवेदन समय के प्रवाह के कारण निष्फल हो गया है। ऐसे में उन्हें मिले निर्देश पर वह आवेदन पर जोर नहीं डालना चाहते।
4. राज्य के लिए विद्वान एजीए और प्रथम सूचक/विपक्षी पक्ष-2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश दुबे को आवेदक-मनोज गुप्ता उर्फ मनोज कुमार गुप्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रार्थना पर कोई आपत्ति नहीं है।
5. नतीजतन, धारा 482 के तहत आवेदन संख्या - 706/2021 (मनोज गुप्ता @ मनोज कुमार गुप्ता बनाम यूपी राज्य और अन्य) को निष्फल होने के कारण खारिज कर दिया गया है।
6. मुकदमा अपराध संख्या 425/2020 (राज्य बनाम मोहम्मद आसिम @ पप्पू स्मार्ट) धारा 147, 148, 149, 302, 34, 307, 120-बी आईपीसी और धारा 7 आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, पुलिस स्टेशन-चकेरी, जिला-कानपुर नगर से उत्पन्न आपराधिक मामला संख्या 15681/2020 (राज्य बनाम मोहम्मद आसिफ उर्फ पप्पू स्मार्ट और अन्य) धारा 147, 148, 149, 307, 302, 34, 120 बी आईपीसी और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, पुलिस स्टेशन-चकेरी, जिला-कानपुर नगर के तहत धारा 482 सीआरपीसी के तहत आपराधिक विविध आवेदन नंबर 19101/2020 (असीम @ पप्पू स्मार्ट बनाम यूपी राज्य और अन्य) आवेदक असीम @ पप्पू स्मार्ट द्वारा मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 01.10.2020, जिससे के तहत आवेदक द्वारा दायर डिफॉल्ट जमानत के आवेदन को खारिज कर दिया गया है, को चुनौती देते हुए दायर किया गया है। नतीजतन, आवेदक, जो हिरासत में है, को डिफॉल्ट जमानत से वंचित कर दिया गया है।
7. रिकॉर्ड से पता चलता है कि एक घटना के संबंध में, जो कथित तौर पर 20.06.2020 को हुई थी, एक त्वरित एफ.आई.आर. दिनांक 20.06.2020 को प्रथम सूचक/विपक्षी-2, धर्मन्द्र सिंह सेंगर द्वारा दर्ज कराया गया था तथा मुकदमा अपराध संख्या 425/2020 (राज्य बनाम मोहम्मद आसिम उर्फ पप्पू स्मार्ट) धारा

147, 148, 149, 302, 34 आई.पी.सी. एवं धारा 7 आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, थाना चकेरी, जिला-कानपुर नगर के तहत पंजीकृत किया गया था। उपरोक्त एफआईआर में छह लोगों मोहम्मद आसिफ उर्फ पप्पू स्मार्ट, सऊद अख्तर, दीनू उपाध्याय, अरिदमन सिंह, महफूज अख्तर और मनोज गुप्ता को नामजद आरोपी बनाया गया है, जबकि कुछ अज्ञात लोगों को भी आरोपी बनाया गया है।

8. एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों का तात्पर्य यह है कि नामित अभियुक्तों ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर हथियार का उपयोग करके अपराध की साजिश रची/किये, जिसके कारण पिंटू सेंगर नाम के व्यक्ति को आग्नेयास्त्र से चोट लगी और उसकी मौके पर ही मौत हो गई।

9. उपरोक्त एफ.आई.आर. दर्ज होने के बाद, विवेचना अधिकारी ने अध्याय XII सीआरपीसी के संदर्भ में उपर्युक्त अपराध संख्या मामले की वैधानिक जांच शुरू की। उन्होंने सबसे पहले मृतक के शव को कब्जे में लिया और प्रारंभिक औपचारिकता पूरी की। इसके बाद विस्तृत पुलिस स्कॉल तैयार किया गया और मृतक के शव को 20.06.2020 को पोस्टमॉर्टम के लिए भेजा गया। तदनुसार, मृतक के शव का पोस्टमॉर्टम उसी दिन यानी 20.06.2020 को किया गया। ऑटोप्सी सर्जन की राय में, मृतक की

मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व आग्नेयास्त्र की चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था।

10. उपरोक्त के बाद, विवेचना अधिकारी अन्य औपचारिकताएं करने के लिए आगे बढ़े। नामित अभियुक्तों की गिरफ्तारी के प्रयास किये गये। विवेचना अधिकारी को जानकारी प्राप्त हुई कि आवेदक, जो संबंधित मामले के अपराध संख्या में नामित अभियुक्त है, छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में रहता है, तदनुसार, पुलिस आयुक्त, कमिश्नरेंट कानपुर नगर ने एक पुलिस टीम गठित की, जो आरोपी-आवेदक की गिरफ्तारी सुनिश्चित करने के लिए छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश गई। 01.07.2020 को आवेदक को मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा में यूपी पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था, लेकिन 03.07.2020 को यानी उसकी गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे की अवधि समाप्त होने के बाद, उसे कानपुर नगर में रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया।

11. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, आवेदक ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर के समक्ष डिफॉल्ट जमानत का दावा करते हुए सीआरपीसी की धारा 167 (2) के संदर्भ में अपनी जमानत याचिका मुख्य रूप से इस आधार पर दायर की कि चूंकि आवेदक की गिरफ्तारी की तारीख से 90 दिनों की अवधि के बाद यानी 01.07.2020 को

आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, इसलिए वह डिफॉल्ट रूप से जमानत पर रिहा होने के लिए उत्तरदायी है। उपरोक्त के समर्थन में, यह आगे कहा गया कि आवेदक को 01.07.2020 को छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में गिरफ्तार किया गया था। हालाँकि, आवेदक को उसकी गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे से अधिक की समाप्ति के बाद 03.07.2022 को कानपुर नगर में रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया था जो कि अवैध है। नतीजतन, गिरफ्तारी के 24 घंटे की समाप्ति के बाद आवेदक की हिरासत अवैध है। चूंकि आवेदक को 24 घंटे से अधिक हिरासत में रखना अवैध है, इसलिए संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड के आदेश के बाद उसकी हिरासत भी अवैध है। संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा 03.07.2022 को पारित रिमांड आदेश उपरोक्त अवैधता को खत्म नहीं करेगा, जो उपरोक्त अवधि के भीतर आवेदक को रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करके अभियोजन पक्ष द्वारा परिश्रमपूर्वक कार्य करने में विफलता के कारण अस्तित्व में आया था। अभियोजन पक्ष को रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड के आदेश पर भरोसा करके और उसके आधार पर यह तर्क देकर अपनी गलती से लाभ प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि आवेदक की हिरासत में अनियमितता, यदि कोई हो, रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड आदेश पारित होने के साथ समाप्त हो जाएगी। नतीजतन, आवेदक डिफॉल्ट रूप से जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

12. आवेदक द्वारा की गई प्रार्थना को निचली अदालत का समर्थन नहीं मिला। संबंधित मजिस्ट्रेट ने निष्कर्ष निकाला कि चूंकि आवेदक को 03.07.2022 को रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया था, इसलिए 90 दिनों की अवधि की गणना अगली तारीख यानी 04.07.2020 से की जाएगी। चूंकि आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र 01.10.2020 को प्रस्तुत किया गया है, जो रिमांड के आदेश के बाद की तारीख से 90 दिनों की अवधि की समाप्ति से पहले है, इसलिए, आवेदक डिफॉल्ट जमानत पर छूटने का हकदार नहीं है। नतीजतन, संबंधित मजिस्ट्रेट ने दिनांक 01.10.2020 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से आवेदक को डिफॉल्ट रूप से जमानत देने से इनकार कर दिया।

13. इस प्रकार उपरोक्त से व्यथित महसूस करते हुए, आवेदक ने अब सीआरपीसी की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

14. वर्तमान आवेदन का प्रथम सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता

श्री राकेश दुबे और विद्वान ए.जी.ए. द्वारा पुरजोर विरोध किया गया। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री का हवाला देते हुए, प्रथम सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि केस डायरी में यह स्पष्ट रूप से दर्ज है कि आवेदक को 03.07.2020 को कानपुर में गिरफ्तार किया गया था और उसके बाद 03.07.2020 को रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया था। चूंकि आवेदक के खिलाफ 01.10.2020 को यानी 03.04.2020 के बाद की तारीख से 90 दिनों की अवधि समाप्त होने से पहले आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, इसलिए, आवेदक डिफॉल्ट जमानत का दावा करने का हकदार नहीं है।

15. विद्वान ए.जी.ए. ने भी वर्तमान आवेदन का विरोध किया है।

16. 17.01.2023 को पक्षों के संबंधित अधिवक्ता को सुनने के बाद, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि आवेदक की गिरफ्तारी की तारीख और स्थान को लेकर पक्षों के बीच गंभीर विवाद है। तदनुसार, न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

“आज अदालत में विपरीत पक्ष संख्या 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश दुबे द्वारा दायर पूरक हलफनामा रिकॉर्ड पर लिया गया है।

श्री अनूप त्रिवेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र अग्रहरि, राज्य के लिए विद्वान एजीए और पहले मुखबिर-विपक्षी पक्ष संख्या 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश दुबे को सुना।

यह डिफॉल्ट जमानत के लिए एक आवेदन है। डिफॉल्ट जमानत के लिए सुनवाई के दौरान जो मुद्दा सामने आया है, वह आरोपी-आवेदक की गिरफ्तारी की तारीख को लेकर है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार आरोपी को दिनांक 01.07.2020 को जिला छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में गिरफ्तार किया गया था। उपरोक्त तथ्य को प्रमाणित करने वाले दस्तावेज़ हलफनामे के अनुलग्नक 4, 5, 6 और 7 के साथ-साथ आरटीआई अधिनियम के तहत प्राप्त जानकारी के रूप में रिकॉर्ड में हैं, जिसकी प्रति राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के प्रत्युत्तर हलफनामे का अनुलग्नक आरए-1 के रूप में रिकॉर्ड में है।

केस डायरी के संदर्भ में राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में, पैराग्राफ 10 में कहा गया है कि आवेदक को 03.07.2020 को कानपुर में गिरफ्तार किया गया था। हालाँकि, उपरोक्त के संबंध में राज्य द्वारा दायर जवाबी

हलफनामे के साथ कोई दस्तावेज नहीं है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के अवलोकन और मूल्यांकन से, आरोपी-आवेदक की गिरफ्तारी की तारीख को लेकर पार्टियों के बीच एक गंभीर विवाद है। चूंकि डिफॉल्ट जमानत के अधिकार का प्रचार इस न्यायालय के समक्ष किया जा रहा है, इसलिए गिरफ्तारी की तारीख इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट और विशिष्ट होनी चाहिए। पार्टियों के परस्पर विरोधी दावों और प्रतिदावों को देखते हुए, यह निर्देशित किया जाता है कि पुलिस कमिश्नरेट, कानपुर के आयुक्त आवेदक की गिरफ्तारी की वास्तविक तारीख और स्थान के संबंध में रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के संदर्भ में, जो कि हलफनामे के अनुलग्नक 4, 5, 6 और 7 के साथ-साथ राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के लिए आवेदक द्वारा दायर प्रत्युत्तर हलफनामे का अनुलग्नक आरए 1 है अपना व्यक्तिगत हलफनामा दायर करेंगे।

अपेक्षित पूरक हलफनामा 24.01.2023 को या उससे पहले दाखिल किया जाए।
मामला 30.01.2023 को दोपहर 2:00 बजे असूचीबद्ध के रूप में फिर से सूचीबद्ध किया जाए।

आदेश की प्रति दिन के दौरान अनुपालन के लिए विद्वान ए.जी.ए. को प्रदान की जाएगी।

ऑर्डर दिनांक:- 17.1.2023”

17. उपरोक्त आदेश दिनांक 17.01.2023 के क्रम में पुलिस आयुक्त, पुलिस कमिश्नरेट, कानपुर नगर ने मामले की जांच करने और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए तीन सदस्यीय विशेष जांच दल यानी एसआईटी का गठन किया। गठित एसआईटी ने दिनांक 03.02.2023 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी प्रतिलिपि पुलिस आयुक्त, पुलिस आयुक्तालय, कानपुर नगर की ओर से न्यायालय में विद्वान ए.जी.ए. द्वारा दायर एक अनुपालन हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाई गई है।

18. एसआईटी द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि आवेदक को 01.07.2020 को छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में गिरफ्तार किया गया था, लेकिन 03.07.2020 को यानी उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे से अधिक समय बाद, उसे कानपुर नगर में रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया।

19. उपरोक्त तथ्यात्मक स्थिति के मद्देनजर, जो इस न्यायालय के समक्ष उभर कर सामने आई है, आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी ने आग्रह किया है कि चूंकि आवेदक

की गिरफ्तारी 01.07.2020 को की गई थी, लेकिन आवेदक को 24 घंटे की समय सीमा समाप्त होने के बाद यानी 03.07.2020 को रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था, जो सीआरपीसी की धारा 57 के मददेनजर स्पष्ट रूप से अवैध है। इसलिए, उनका कहना है कि आवेदक की गिरफ्तारी की तारीख और समय से 24 घंटे की समाप्ति के बाद आवेदक की पुलिस हिरासत अवैध है। रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 03.07.2020 को पारित रिमांड का आदेश सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आवेदक को 24 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखने की अवैधता को समाप्त नहीं किया जाएगा, जो उसकी गिरफ्तारी का समय और तारीख से 24 घंटे के भीतर आवेदक को रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने में अभियोजन पक्ष की विफलता के कारण सामने आया है। उपरोक्त आधार पर, आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि आवेदक सीआरपीसी की धारा 167(2) के संदर्भ में स्पष्ट रूप से डिफॉल्ट जमानत का हकदार है। अपनी दलील को पुष्ट करने के लिए, उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के

निम्नलिखित निर्णयों मधु लिमये और अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर 1969 सुप्रीम कोर्ट 1014 और मनोज बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1999 (3) एससीसी 715 पर भरोसा किया है।

20. उनका यह भी कहना है कि मधु लिमये (सुप्रा) के मामले में शीर्ष अदालत ने संवैधानिक प्रावधान और संहिता (सीआरपीसी) के प्रावधानों के आलोक में, गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किए जाने वाले बंदी के अधिकार की जांच की और उसके आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि किसी भी परिस्थिति में बंदी को उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, रिपोर्ट के पैराग्राफ 11 और 12 मौजूदा मुद्दे के लिए प्रासंगिक हैं। इसलिए उन्होंने इस पर बहुत अधिक बल दिया है।

21. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, वर्तमान आवेदन में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए जो मुद्दा सामने आया है, उस पर संयोगवश, सीधे तौर पर सुप्रीम कोर्ट ने मनोज (सुप्रा) में

विचार किया था। रिपोर्ट का पैराग्राफ 9 इसमें शामिल मुद्दे के साथ-साथ न्यायालय द्वारा रेखांकित दृष्टिकोण को भी दोहराता है। तदनुसार, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा इस पर भरोसा किया गया है।

22. दोनों निर्णयों में निर्धारित अनुपात इस आशय का है कि यदि किसी आरोपी को हिरासत में लिया गया है, लेकिन उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया गया है, जैसा कि संवैधानिक जनादेश यानी भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) के तहत आवश्यक है, तो ऐसे आरोपी की गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे की अवधि से अधिक की हिरासत को अवैध माना जाएगा और इसे सीआरपीसी की धारा 167(2) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड का आदेश पारित करने के साथ कानूनी रूप से ठीक नहीं किया जा सकता है।
23. उपरोक्त आधार पर, आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा जोरदार ढंग से आग्रह किया गया है कि आवेदक को डिफॉल्ट जमानत देने से इनकार करने वाला विवादित आदेश बरकरार नहीं रखा जा सकता है। इसलिए,

यह इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य है और आवेदक जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

24. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. ने वर्तमान आवेदन का विरोध किया है। उनका कहना है कि यह निर्विवाद तथ्य है कि आवेदक एक जघन्य अपराध में शामिल है जो आईपीसी की धारा 302 के तहत दंडनीय है। आवेदक एक ऐसे अपराध में शामिल है जो निजी प्रकृति का नहीं बल्कि समाज के विरुद्ध अपराध है। आवेदक न्यायिक प्रक्रिया से बचता रहा है। उन्हें यूपी पुलिस ने गिरफ्तार किया और उसके बाद 03.07.2022 को रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया। एक बार जब संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड का आदेश पारित कर दिया जाता है, तो गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे से अधिक आवेदक की हिरासत में कोई अनियमितता, यदि कोई हो, ठीक हो जाती है। इस प्रकार, ऊपर बताए गए आधार पर डिफॉल्ट जमानत के लिए आवेदक का दावा पूरी तरह से गलत है। निचली अदालत द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई अवैधता नहीं की गई है। इस प्रकार प्रथम सूचनादाता के

विद्वान अधिवक्ता द्वारा पुरजोर आग्रह किया गया है कि इस न्यायालय द्वारा आवेदक के पक्ष में कोई रियायत न दी जाए।

25. प्रथम सूचक/विपक्षी पक्ष-2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश दुबे ने विद्वान ए.जी.ए. द्वारा उठाए गए तर्कों को अपनाया है।

26. उपरोक्त के अलावा, पहले सूचक-विरोधी पक्ष 2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि एक बार सीआरपीसी की धारा 167 (2) के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड का आदेश पारित कर दिया गया है, तो डिफॉल्ट जमानत का दावा करने का अधिकार केवल तभी उपलब्ध होगा जब रिमांड के आदेश के बाद की तारीख से 90 दिनों की अवधि के भीतर आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया हो। वर्तमान मामले में, सीआरपीसी की धारा 173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट (चार्ज-शीट) 01.10.2020 को प्रस्तुत की गई है, जो रिमांड आदेश की तारीख के बाद की तारीख से 90 दिनों की अवधि के भीतर है। इस प्रकार, डिफॉल्ट जमानत देने के लिए आवेदक का दावा गलत है और इसलिए,

वर्तमान आवेदन खारिज किया जाने योग्य है।

27. आवेदक के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री मनुराज सिंह और श्री प्रशांत कुमार और प्रथम सूचक /विपक्षी पक्ष-2 का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश दुबे को सुनने के बाद, इस न्यायालय का मानना है कि डिफॉल्ट जमानत देने के लिए आवेदक के दावे पर विचार करने से पहले निम्नलिखित मुद्दों का उत्तर दिया जाना आवश्यक है।

- I. आवेदक की गिरफ्तारी की वास्तविक तारीख और स्थान क्या है?
- II. गिरफ्तारी के बाद आवेदक को किस तारीख को रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया। यदि आवेदक को उसकी गिरफ्तारी की तारीख और समय से 24 घंटे की अवधि समाप्त होने के बाद रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया था, तो संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड का आदेश वैध माना जाएगा या उपरोक्त के बावजूद अवैध बना रहेगा।
- III. यदि आवेदक को 24 घंटे से अधिक हिरासत में रखना अवैध साबित होता है तो क्या आवेदक डिफॉल्ट

जमानत का दावा करने का हकदार है या आवेदक की गिरफ्तारी की तारीख और समय से 24 घंटे की अवधि समाप्त होने के बाद भी रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड आदेश, उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखने में अनियमितता, यदि कोई हो, को मिटा देगा या आवेदक की गिरफ्तारी की तारीख और समय से 24 घंटे की अवधि समाप्त होने के बाद रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड आदेश संविधान के अनुच्छेद 22 (1) द्वारा गारंटीकृत आवेदक के अधिकार को समाप्त नहीं करेगा और आवेदक, डिफॉल्ट जमानत का हकदार होगा।

28. सभी मुद्दे आपस में जुड़े हुए और गुंथे हुए हैं और इसलिए एक-दूसरे से अलग होकर निपटाए जाने में असमर्थ हैं। तदनुसार, उन्हें एक साथ लिया जाता है।

29. न्यायालय इस तथ्य पर ध्यान देता है कि आवेदक की गिरफ्तारी की वास्तविक तारीख, समय और स्थान के संबंध में इस न्यायालय के समक्ष प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों का आग्रह किया जा रहा है, इस

न्यायालय ने आवेदक की गिरफ्तारी के दिन, तारीख, समय और स्थान के संबंध में तथ्यात्मक स्थिति का पता लगाने के लिए दिनांक 17.01.2023 को आदेश पारित किया, जिसे पहले ही ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। उपरोक्त आदेश दिनांक 17.01.2023 के क्रम में पुलिस आयुक्त, पुलिस कमिश्नर, कानपुर नगर द्वारा तीन सदस्यीय टीम अर्थात् एसआईटी का गठन किया गया। उक्त एसआईटी टीम ने दस्तावेजों की जांच की है और आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उनके तर्क के समर्थन में जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया था, उन्हें भी सत्यापित किया है कि आवेदक को तथ्यान्वेषी जांच करके 01.07.2020 को छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में गिरफ्तार किया गया था। इसके बाद एसआईटी ने दिनांक 03.02.2023 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उपरोक्त रिपोर्ट को विद्वान ए.जी.ए. के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष पुलिस आयुक्त, पुलिस आयुक्तालय, कानपुर द्वारा दायर अनुपालन के हलफनामे के अनुलग्नक -1 के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है। उक्त रिपोर्ट स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि आरोपी-आवेदक को 01.07.2020

को छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में गिरफ्तार किया गया था और उसके बाद 03.07.2020 को यूपी पुलिस द्वारा कानपुर नगर में रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया था। अभियुक्त-आवेदक को यूपी पुलिस की सुपुर्दगी में भी सौंपा गया। इस प्रकार इस न्यायालय के समक्ष राज्य का रुख यह है कि आवेदक को 01.07.2020 को छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में गिरफ्तार किया गया था, लेकिन 03.07.2020 को यानी उसकी गिरफ्तारी की तारीख और समय से 24 घंटे की अवधि समाप्त होने के बाद कानपुर नगर में रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया था।

30. किसी आरोपी को उसकी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (1) के आधार पर आरोपी का मौलिक अधिकार है। उक्त अनुच्छेद नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए निहित किया गया है। यह राज्य की ताकत के खिलाफ सुरक्षा की तरह है। यह कानून के शासन के सिद्धांत को प्रकट करता है। त्वरित संदर्भ के लिए, भारत के संविधान का

अनुच्छेद 22 (1) यहां नीचे दिया गया है:

“अनुच्छेद 22(1)

(1) गिरफ्तार किए गए किसी भी व्यक्ति को ऐसी गिरफ्तारी के आधार के बारे में यथाशीघ्र सूचित किए बिना हिरासत में नहीं रखा जाएगा और न ही उसे अपनी पसंद के कानूनी व्यवसायी से परामर्श करने और बचाव करने के अधिकार से वंचित किया जाएगा।

31. भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) का दायरा और उक्त अनुच्छेद के कारण एक बंदी के पक्ष में बहने वाले अधिकार की प्रकृति और दायरे की जांच मधु लिमये (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान, संहिता यानी (सीआरपीसी) के प्रावधानों और उसके समक्ष प्रस्तुत प्रस्तुतियों के आलोक में उक्त प्रश्न की जांच की। न्यायालय ने अंततः रिपोर्ट के पैराग्राफ 11 और 14 में अपने विचार प्रस्तुत किए, जो इस प्रकार हैं:

“11 अनुच्छेद 22(1) एक ऐसे नियम का प्रतीक है जिसे उन सभी कानूनी प्रणालियों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए हमेशा महत्वपूर्ण और मौलिक माना गया है

जहां कानून का शासन प्रचलित है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के छठे संशोधन में समान प्रावधान हैं और 1946 के जापानी संविधान के अनुच्छेद XXXIV में भी समान प्रावधान हैं। इंग्लैंड में जब भी कोई गिरफ्तारी वारंट के बिना की जाती है, तो गिरफ्तार व्यक्ति को सूचित करने का अधिकार है न केवल यह कि उसे गिरफ्तार किया जा रहा है, बल्कि गिरफ्तारी के कारणों या आधारों के बारे में भी। क्रिस्टी और अन्य बनाम लीचिंस्की में हाउस ऑफ लॉर्ड्स ((1947) 1 सभी ईईआर 567) इस नियम की उत्पत्ति और विकास में शामिल हुए। विस्काउंट साइमन के शब्दों में, यदि कोई पुलिसकर्मी उचित संदेह करता है कि एक्स ने कोई अपराध किया है, तो उसे गिरफ्तार करने और उसे पुलिस स्टेशन ले जाने की आजादी है, बिना यह बताए कि वह ऐसा क्यों कर रहा है, प्रथम दृष्टया व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का गंभीर उल्लंघन होगा। विस्काउंट साइमन ने कई प्रस्ताव रखे जो संपूर्ण नहीं थे। अपने उद्देश्यों के लिए हम पहले और तीसरे का उल्लेख कर सकते हैं:

"1. यदि कोई पुलिसकर्मी गुंडागर्दी, या किसी अन्य प्रकार के अपराध के उचित संदेह पर बिना वारंट के गिरफ्तार करता है, जिसके लिए

वारंट की आवश्यकता नहीं होती है, तो उसे सामान्य परिस्थितियों में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के सही आधार के बारे में सूचित करना चाहिए। वह कारण को अपने पास रखने या ऐसा कारण बताने का हकदार नहीं है जो सच्चा कारण न हो। दूसरे शब्दों में, एक नागरिक को यह जानने का अधिकार है कि उसे किस आरोप में या किस अपराध के संदेह में गिरफ्तार किया गया है।

2. X X X X X X

3. यह आवश्यकता कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उस कारण के बारे में सूचित किया जाना चाहिए जिसके लिए उसे जब्त किया गया है, स्वाभाविक रूप से अस्तित्व में नहीं है यदि परिस्थितियां ऐसी हैं कि उसे कथित अपराध की सामान्य प्रकृति को जानना चाहिए जिसके लिए उसे हिरासत में लिया गया है।"

लॉर्ड सिमंड्स ने उन परिस्थितियों का उदाहरण दिया जहां आरोपी को पता होना चाहिए कि उसे क्यों गिरफ्तार किया जा रहा है।

"अगर गिरफ्तार व्यक्ति रंगे हाथों पकड़ा जाता है और अपराध उच्च स्वर्ग के लिए पेटेंट है तो गिरफ्तारी के कारणों को बताने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

अनुच्छेद 22 के खंड (1) की दो आवश्यकताओं का उद्देश्य गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तार करने वाले प्राधिकारी के मन में किसी भी गलती, गलतफहमी या गलतफहमी को दूर करने का जल्द से जल्द अवसर प्रदान करना है और, यह भी जानने के लिए कि उसके खिलाफ वास्तव में क्या आरोप है ताकि वह दूसरे अधिकार का प्रयोग कर सके, अर्थात्, अपनी पसंद के कानूनी व्यवसायी से परामर्श करने और उसके द्वारा बचाव करने का। अनुच्छेद 22 का खंड (2) अगला और सबसे महत्वपूर्ण सुरक्षा प्रदान करता है कि गिरफ्तार व्यक्ति को ऐसी गिरफ्तारी के 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाना चाहिए ताकि न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाला एक स्वतंत्र प्राधिकारी बिना देरी किए उसके मामले पर विचार कर सके। आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 60 और 340 में समान प्रावधान हैं, लेकिन संविधान निर्माता इन सुरक्षा उपायों को मौलिक अधिकारों का अभिन्न अंग बनाने के लिए उत्सुक थे। यह डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 15-ए (जैसा कि संविधान के मसौदा विधेयक में क्रमांकित है) को सम्मिलित करने के लिए आगे बढ़ते समय कहा था, जो वर्तमान अनुच्छेद 22 के अनुरूप है:

"अनुच्छेद 15-ए केवल आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों से दो सबसे बुनियादी सिद्धांतों को हटाता है जिनका हर सभ्य देश अंतरराष्ट्रीय न्याय के सिद्धांतों के रूप में पालन करता है। यह बिल्कुल सच है कि खंड (1) और खंड (2) में निहित ये दो प्रावधान पहले से ही आपराधिक प्रक्रिया संहिता में पाए जाते हैं और इस तरह शायद यह कहा जा सकता है कि हम वास्तव में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं कर रहे हैं।"

"14. एक बार जब यह दिखाया गया कि पुलिस अधिकारियों द्वारा की गई गिरफ्तारियां अवैध थीं, तो राज्य के लिए यह स्थापित करना आवश्यक था कि रिमांड के चरण में मजिस्ट्रेट ने सभी प्रासंगिक मामलों पर अपना दिमाग लगाने के बाद जेल हिरासत में रखने का निर्देश दिया। राज्य ऐसा करने में विफल रहा है. रिमांड आदेश स्पष्ट रूप से नियमित हैं और यंत्रवत् बनाए गए प्रतीत होते हैं। श्री छागला ने बस इतना कहा है कि यदि गिरफ्तार व्यक्ति अपनी वैधता को चुनौती देना चाहते थे तो आपराधिक प्रक्रिया संहिता के उचित प्रावधानों के तहत उच्च न्यायालय का रुख किया जाना चाहिए था। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि मधु लिमये और अन्य ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस अदालत में जाकर संवैधानिक

और कानूनी प्रावधानों के अनुपालन के बिना हिरासत में रखने या जेल में बंद करने की शिकायत की है। यदि संविधान के अनुच्छेद 22(1) के उल्लंघन के कारण गिरफ्तारी के बाद उनकी हिरासत जारी नहीं रह सकती तो वे तुरंत रिहा होने के हकदार थे। रिमांड के आदेश ऐसे नहीं हैं जो संवैधानिक कमज़ोरियों को ठीक कर सकें। यह मधु लिमये के तीसरे विवाद का निपटारा करता है।"

32. यही मुद्दा फिर से मनोज (सुप्रा)

में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचार के लिए आया, जिसमें कोर्ट ने रिपोर्ट के पैराग्राफ 9 में निष्कर्ष निकाला, जो इस प्रकार है: -

"यहां जमानत की प्रार्थना का इस आधार पर विरोध किया गया है कि हिरासत ऐसे प्राधिकरण के बिना है। क्या ऐसे आधार पर जमानत का लाभ देने से इनकार किया जा सकता है? संहिता की धारा 167(1) इस संदर्भ में प्रासंगिक है क्योंकि यह संबंधित पुलिस अधिकारी को गिरफ्तार आरोपी को निकटतम मजिस्ट्रेट के पास भेजने का कानूनी दायित्व देती है। वह उपधारा इस प्रकार है।

"जब भी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और हिरासत में रखा जाता है, और ऐसा प्रतीत होता है

कि धारा 57 द्वारा निर्धारित चौबीस घंटे की अवधि के भीतर जांच पूरी नहीं की जा सकती है, और यह विश्वास करने के आधार हैं कि आरोप या जानकारी सही है, पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी या जांच करने वाले पुलिस अधिकारी, यदि वह उप-निरीक्षक के पद से नीचे का नहीं है, तो वह तुरंत निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट को मामले से संबंधित निर्धारित डायरी में प्रविष्टियों की एक प्रति भेजेगा, और साथ ही आरोपी को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेज देगा।

33. उपरोक्त आधार पर, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी का कहना है कि अब यह सिद्ध तथ्य है कि आवेदक को 01.07.2020 को छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में गिरफ्तार किया गया था, लेकिन 03.07.2020 को यानी 24 घंटे की अवधि समाप्त होने के बाद कानपुर नगर में रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया, जो स्पष्ट रूप से सीआरपीसी की धारा 57 का उल्लंघन है। परिणामस्वरूप, भारत के संविधान के अनुच्छेद 22(1) के तहत गारंटीकृत आवेदक के अधिकार का स्पष्ट रूप से उल्लंघन हुआ। इसलिए, गिरफ्तारी की तारीख और समय से 24 घंटे की अवधि समाप्त

होने के बाद आवेदक की हिरासत स्पष्ट रूप से अवैध है। कानपुर नगर के रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 03.07.2020 को पारित रिमांड का आदेश, जिसके तहत आवेदक को न्यायिक रिमांड पर भेजा गया था, उसकी गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे से अधिक आवेदक की हिरासत में अवैधता को खत्म नहीं करेगा और इसलिए, आवेदक स्पष्ट रूप से डिफॉल्ट जमानत का हकदार है।

34. राज्य के विद्वान ए.जी.ए. और प्रथम सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश दुबे ने इस आवेदन का विरोध किया है। जैसा कि ऊपर पहले ही उल्लेख किया गया है, उन्होंने अपना निवेदन दोहराया है। यह फिर से आग्रह किया गया है कि आवेदक एक नामित अभियुक्त है और धारा 302 आईपीसी के तहत दंडनीय जघन्य अपराध में शामिल है। आवेदक द्वारा किया गया अपराध समाज के विरुद्ध अपराध है। आवेदक न्यायालय की प्रक्रिया से बचता रहा है। आवेदक को केवल 01.07.2020 को यानी एफआईआर की तारीख से 11 दिनों के बाद गिरफ्तार किया जा सका और 03.07.2020 को रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। हालाँकि,

03.07.2020 को रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड के आदेश पारित होने के साथ, जिसके तहत आवेदक को न्यायिक रिमांड पर भेजा गया था, उसकी गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे से अधिक आवेदक की हिरासत में अनियमितता, यदि कोई हो, समाप्त हो जाती है और प्रक्रियात्मक दोष ठीक हो जाएगा। उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य के साथ कि आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र उस तारीख से 90 दिनों की समाप्ति से पहले प्रस्तुत किया गया था जिस दिन आवेदक को न्यायिक हिरासत में भेजा गया था, आवेदक को डिफॉल्ट रूप से जमानत पर रिहा करने का कोई आधार मौजूद नहीं है। इस प्रकार, वर्तमान आवेदनों में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

35. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, राज्य के विद्वान ए.जी.ए., श्री राकेश दुबे, प्रथम सूचनादाता/विरोधी पक्ष 2 के विद्वान अधिवक्ता, को सुनने के बाद और रिकॉर्ड के अवलोकन के बाद, जो स्थिति सामने आई है वह यह है कि आवेदक मुकदमा अपराध संख्या 425/2020 (राज्य बनाम मोहम्मद आसिम @ पप्पू

स्मार्ट) में धारा 147, 148, 149, 302, 34, 307, 120-बी आईपीसी एवं धारा 7 आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, थाना चकेरी, जनपद-कानपुर नगर के तहत नामित आरोपी है। इस संबंध में एफआईआर 23.08.2018 को दर्ज की गई थी। आवेदक न्यायालय की प्रक्रिया से बचता रहा है। उन्होंने अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया, लेकिन 01.07.2020 को मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा में यूपी पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। दिनांक 01.10.2020 को आवेदक के विरुद्ध धारा 173(2) सीआरपीसी के तहत पुलिस रिपोर्ट दिनांक 30.09.2020 (अभियोग पत्र) प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार, आज की तारीख में, आवेदक एक नामित/आरोपपत्रित अभियुक्त है।

36. हालाँकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, आवेदक को 01.07.2020 को छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश में यूपी पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था। यूपी पुलिस द्वारा छिंदवाड़ा में संबंधित मजिस्ट्रेट से कोई ट्रांजिट रिमांड प्राप्त नहीं किया गया था। आवेदक को यूपी पुलिस की सुपुर्दगी में सौंप दिया गया। उन्हें 03.07.2020 को यानी उनकी

गिरफ्तारी की तारीख और समय से 24 घंटे की समाप्ति के बाद कानपुर नगर में रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया था। ऐसे में, गिरफ्तारी के 24 घंटे की अवधि समाप्त होने के बाद पुलिस द्वारा आवेदक को हिरासत में लेना स्पष्ट रूप से अवैध है। रिमांड मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रिमांड आदेश दिनांक 03.07.2020 से उपरोक्त अवैधता समाप्त नहीं होगी। इसलिए, प्रथम सूचनादाता की ओर से इस न्यायालय के समक्ष इस तथ्य पर जोर देकर आग्रह किया गया है कि रिमांड के आदेश के बाद की तारीख यानी 03.07.2020 के 90 दिनों के भीतर आवेदक के खिलाफ दिनांक 30.09.2020 का आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जो पूरी तरह से गलत है और राज्य या विरोधी पक्ष 2 को इससे कोई मदद नहीं मिलती है। उपरोक्त परिस्थिति में, **मधु लिमये और अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर 1969 सुप्रीम कोर्ट 1014 और मनोज बनाम मध्य प्रदेश राज्य 1999 (3) एससीसी 715** में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून स्पष्ट रूप से वर्तमान मामले पर लागू होता है।

37. ऊपर की गई चर्चा के मद्देनजर, वर्तमान आवेदन सफल है और स्वीकार किये जाने योग्य है। जमानतदार प्रस्तुत करने पर उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या में जमानत पर रिहा किया जाएगा: -
38. तदनुसार आवेदन **स्वीकार** की जाती है। (i). आवेदक को इस आशय का एक वचन पत्र दाखिल करना होगा कि जब गवाह अदालत में उपस्थित होंगे तो साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथि पर वह किसी भी स्थगन की मांग नहीं करेगा। इस शर्त से चूक होने की स्थिति में, ट्रायल कोर्ट इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानेगी और कानून के अनुसार आदेश पारित करेगी।
39. मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर द्वारा आपराधिक मुकदमा संख्या 15681/2020 (राज्य बनाम मोहम्मद आसिफ @ पप्पू स्मार्ट एवं अन्य) धारा 147, 148, 149, 307, 302, 34, 120बी आईपीसी एवं धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, पुलिस स्टेशन-चकेरी, जिला कानपुर नगर में पारित दिनांक 01.10.2020 का आक्षेपित आदेश, जो मुकदमा अपराध संख्या 425/2020 (राज्य बनाम मोहम्मद आसिम @ पप्पू स्मार्ट) धारा 147, 148, 149, 302, 34, 307, 120बी आईपीसी एवं धारा 7 आपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम, पुलिस स्टेशन-चकेरी, जिला कानपुर नगर से उत्पन्न हुआ था, को एतद्वारा रद्द किया जाता है। (ii). आवेदक को व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से प्रत्येक निर्धारित तिथि पर ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपस्थित रहना होगा। पर्याप्त कारण के बिना उसकी अनुपस्थिति के मामले में, ट्रायल कोर्ट आईपीसी की धारा 229-ए के तहत उसके खिलाफ कार्यवाही कर सकता है। (iii). यदि आवेदक मुकदमे के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए सीआरपीसी की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी की जा सकती है और यदि आवेदक ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि पर अदालत के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो, ट्रायल कोर्ट आईपीसी की धारा 174-ए के तहत, कानून के अनुसार,
40. आवेदक को न्याय के हित में लगाई गई निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए व्यक्तिगत बांड और समान राशि के दो

उसके खिलाफ कार्यवाही शुरू करेगा।

(iv). आवेदक को (1) मामले की शुरुआत, (2) आरोप तय करने और (3) सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दर्ज करने के लिए निर्धारित तिथियों पर ट्रायल कोर्ट के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहना होगा। यदि ट्रायल कोर्ट की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या बिना पर्याप्त कारण के है, तो ट्रायल कोर्ट के लिए यह खुला रहेगा कि वह इसे जमानत की स्वतंत्रता के दुरुपयोग के रूप में माने और उसके खिलाफ कानून के अनुसार आगे बढ़े।

(v). ट्रायल कोर्ट आवेदक की रिहाई के एक वर्ष की अवधि के भीतर मुकदमे को पूरा करने का सभी संभावित प्रयास करे।

(2023) 4 ILRA 336

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 727/2023

संलग्न

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

27887/2022

नासिर खान

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ... विपक्षीगण

**अधिवक्ता आवेदक: श्री सत्येंद्र नारायण सिंह,
श्री सौरभ मिश्रा**

**अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री राकेश कुमार
मिश्रा**

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 417, 420, 452, 467, 468, 471, 504, 506 और 447 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 156 (2), 200 और 202 - एक्स डेबिटो जस्टिटिया (न्याय के ऋण के रूप में; अधिकार के रूप में) - प्रत्येक उच्च न्यायालय में वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए एक्स डेबिटो जस्टिटिया कार्य करने की अंतर्निहित शक्ति है, जिसके प्रशासन के लिए ही यह मौजूद है, या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए - किसी भी कार्य जैसे वसीयत-विलेख, मुख्तारनामा, बिक्री-विलेख आदि की शुद्धता या अन्यथा, जो एक सार्वजनिक/सरकारी प्राधिकरण द्वारा पंजीकृत है - सिविल जज द्वारा मौखिक और साथ ही पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर अधिक उचित रूप से न्यायनिर्णित किया जा सकता है - जब तक या जब तक यह निर्णय न हो जाए कि यह झूठा और मनगढ़ंत विलेख है - तब तक ऐसे विलेख बनाने के लिए आपराधिकता सामने नहीं आ सकती। (पैरा - 24,46)

दो वाद में आवेदक को सम्मन भेजा गया - निरस्त - आरोप पत्र, संज्ञान/सम्मन आदेश के साथ-साथ पूरी कार्यवाही - विपक्षी पक्ष संख्या

2 द्वारा दायर सिविल वाद - प्रश्न - आवेदक के पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा - 14 बीघा भूमि के संबंध में निष्पादित विभिन्न विक्रय-पत्रों पर स्थायी निषेधाज्ञा की मांग की है - मुख्तारनामा एवं विक्रय-पत्रों को निरस्त करने के लिए - आवेदक पर दबाव डालने एवं उसे परेशान करने के लिए एक के बाद एक आपराधिक वाद दर्ज किए हैं। (पैरा-2,45)

निर्णय:-दोनों वाद में आवेदक को जिन अपराधों के लिए बुलाया गया है, उनमें से कोई भी अपराध एफआईआर और शिकायत तथा रिकॉर्ड में मौजूद सामग्री से नहीं बनता है। वादी/विपरीत पक्ष संख्या 2 आवेदक को आपराधिक मामलों में फंसाने के लिए कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करता है। धारा 482 को यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बनाया गया है कि आपराधिक कार्यवाही को उत्पीड़न के हथियार के रूप में विकसित होने की अनुमति न दी जाए। दोनों आवेदनों में लगाए गए समन आदेशों के साथ-साथ पूरी कार्यवाही को निरस्त किया जाता है। (पैरा- 45,47)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. मितेश कुमार बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 2021 एआईआर (एस.सी.) 5298
2. कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी एवं अन्य, (1977) 2 एससीसी 699
3. माधवराव जीवाजीराव सिंधिया और अन्य बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे और अन्य (1988) 1 एससीसी 692

4. जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी, (992) 4 एससीसी 305
5. जी सागर सूरी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2000) 2 एससीसी 636
6. रॉय वी.डी. बनाम केरल राज्य, (2000) 8 एससीसी 590
7. इंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड और अन्य बनाम मो. शराफुल हक एवं अन्य, (2005) 1 एससीसी 122
8. आई.ओ.सी. बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, (2006) 6 एससीसी 736
9. इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एससीसी 1
10. परमजीत बत्रा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2013) 11 एससीसी 673
11. परबतभाई अहीर @ परबतभाई भीमसिनभाई करमुर और अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, (2017) 9 एससीसी 641
12. सरदार अली खान बनाम सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2020) 12 एससीसी 51
13. कपिल अग्रवाल बनाम संजय शर्मा, (2021) 5 एससीसी 524
14. रणधीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 942
15. सैयद यासीर इब्राहिम बनाम यू.पी. राज्य एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी (माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

1. श्री सतेंद्र नारायण सिंह, अपीलार्थी के अधिवक्ता, श्री राकेश कुमार मिश्रा, प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता और राज्य के लिए शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. धारा 482 द०प्र०स० संख्या 727 वर्ष 2023 के तहत अपीलार्थी की ओर से 2022 की चार्जशीट संख्या 58, दिनांक 10.04.2022 के संज्ञान / सम्मन आदेश दिनांक 14.04.2022 के साथ-साथ 2021 के केस अपराध संख्या 130 से उत्पन्न केस नंबर 517 (राज्य बनाम नासिर खान) की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपीलार्थी की ओर से आवेदन दायर किया गया है। धारा 420, 467, 468, 471, 504, 506, 447 भ०द०वि०, थाना-कोतवाली, जिला रामपुर के तहत अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 1, रामपुर की अदालत में लंबित है। धारा 482 द०प्र०स० संख्या 27887 वर्ष 2022 के तहत आवेदन 16 जुलाई, 2022 के सम्मन आदेश के साथ-साथ शिकायत केस नंबर 2537 वर्ष 2022 (निहालुद्दीन बनाम नासिर खान और अन्य) की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, धारा 417, 452, 323 और 504 भ०द०वि०, थाना-कोतवाली, जिला रामपुर के तहत, अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 1, रामपुर की अदालत में लंबित है।

3. चूंकि इस विषय पर मुद्दा और कानून समान और मिलते जुलते हैं, इसलिए दोनों आवेदनों को एक साथ जोड़ दिया गया है और अंततः इस सामान्य फैसले के माध्यम से निर्णय लिया जाता है। धारा 482 द०प्र०स० संख्या 727 वर्ष 2023 के तहत आवेदन को प्रमुख मामला माना जा रहा है जिसमें पक्षों के बीच हलफनामों का आदान-प्रदान किया गया है।

प्राथमिकी में सामने आया संस्करण

4. वर्तमान आपराधिक मामला निहाल-उद्दीन खान यानी पक्ष संख्या 2 के विपरीत 4 जुलाई, 2021 को 2357 बजे आवेदकों सहित 23 आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट से पैदा हुआ। उक्त प्राथमिकी में, यह आरोप लगाया गया है कि सूचनाकर्ता रईस जहां बेगम की मां के पास मोहल्ला कुल्कता, थाना कोतवाली, जिला रामपुर में स्थित 14 बीघा जमीन थी, जिसे उनके द्वारा पंजीकृत बिक्री विलेख दिनांक 25.06.1966 के माध्यम से प्राप्त किया गया था। 01.11.2015 को उनकी मृत्यु हो गई और उनकी मृत्यु के बाद उनके बेटे अर्थात् अलाउद्दीन, हसीमुद्दीन और निहालुद्दीन (सूचनाकर्ता) उक्त भूमि के मालिक बन गए। यह आरोप लगाया गया है कि सूचनाकर्ता की लाचारी का फायदा उठाते हुए, अपीलार्थी ने दूसरों की मदद से आपराधिक साजिश रचने के बाद साबिर खान द्वारा जाली और मनगढ़ंत पावर ऑफ अटॉर्नी प्राप्त की, लेकिन आवेदकों और उनकी मां ने उक्त जमीन नहीं बेची थी। 17.09.2004 को साबिर खान की मृत्यु हो गई और उनकी मृत्यु के बाद पावर ऑफ अटॉर्नी अमान्य हो गई। लेकिन अपीलार्थी ने 25.07.2018, 28.02.2011, 13.05.2013, 26.07.2016, 17.01.2017, 28.03.2013, 17.02.2016 को बिक्री विलेख निष्पादित किए हैं और यह अवैध हैं और संबंधित व्यक्ति कब्जा प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं जिसके लिए जिला मजिस्ट्रेट को एक आवेदन दिया गया था और अपीलार्थी के खिलाफ धारा 323, 504, 506, 307 भ०द०वि० के तहत 2020 के केस अपराध संख्या 39 के रूप में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। अपीलार्थी ने

सूचनाकर्ता को धमकी दी है इसलिए वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई है।

अपीलार्थी का मामला

5. अपीलार्थी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि कथित घटना 18.05.2021 को हुई थी, जबकि घटना के दो महीने यानी 04.07.2021 के बाद प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है और प्राथमिकी दर्ज करने में देरी के बारे में कोई समझ में आने योग्य स्पष्टीकरण नहीं है।

6. उपरोक्त प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, जांच आगे बढ़ी और विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत सूचनाकर्ता का बयान दर्ज किया जिसमें उसने प्राथमिकी में सामने आए समान संस्करण को दोहराया है। विवेचनाधिकारी ने औपचारिक गवाहों अर्थात् कांस्टेबल सुशील कुमार, एस.आई रईस अहमद, एस.आई विश्वबंधु, एस.आई धर्मेन्द्र सिंह, डॉ विवेकानंद (कार्यकारी अधिकारी), प्रेमैन्द्र सिंह (लेखपाल) और कौशल दीक्षित (उप रजिस्ट्रार) के बयान भी धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए और उन्होंने प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों का समर्थन नहीं किया है। अध्याय XII द०प्र०स० के तहत वैधानिक जांच के समापन के बाद, विवेचनाधिकारी ने 10.04.2022 को धारा 420, 467, 468, 471, 504, 506, 447 भ०द०वि० के तहत अपीलार्थी के खिलाफ 2022 की चार्जशीट संख्या 58 प्रस्तुत की और इसे प्रस्तुत करने पर, 14.04.2022 को विद्वान ए.सी.जे.एम.-। ने उसी पर संज्ञान लिया है।

7. इससे पहले इसी आरोप के संबंध में, प्रतिपक्षी नंबर-2 ने द०प्र०स० की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर किया था और इसे 2019 के विविध केस नंबर 181/11 (निहालुद्दीन बनाम अकबर और अन्य) के रूप में दर्ज किया गया है।, जिसे निचली अदालत ने 14 अगस्त, 2019 के आदेश के तहत इस आधार पर खारिज कर दिया था कि चूंकि प्रतिपक्षी संख्या 2 ने ऐसा कोई दस्तावेज पेश नहीं किया है, जिससे यह पता लगाया जा सके कि विवादित भूमि पर नगर पालिका के रिकॉर्ड में किसका नाम दर्ज किया गया है। निचली अदालत द्वारा यह भी दर्ज किया गया है कि पुलिस रिकॉर्ड में यह उल्लेख किया गया है कि पक्षों के बीच एक सिविल सूट लंबित है और इस तरह के तथ्य को बहस के दौरान प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा भी स्वीकार किया गया है। उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर, निचली अदालत ने कहा है कि धारा 156 (3) के तहत आवेदन केवल अपीलार्थी पर दबाव डालने के लिए किया गया है। निचली अदालत ने प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर उक्त आवेदन में कोई योग्यता नहीं पाई है और अंततः इसे खारिज कर दिया है।

8. धारा 156 (3) के तहत प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर उपरोक्त आवेदन को खारिज करने के बाद, अपीलार्थी के खिलाफ धारा 323, 504, 506, 307 भ०द०वि० के तहत धारा 323, 504, 506, 307 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 39 दर्ज किया गया था, जिसमें विचाराधीन भूमि के कारण उसके खिलाफ लगभग समान आरोप लगाए गए हैं। उक्त मामले में जांच के बाद, अपीलार्थी के खिलाफ

अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है और आज तक कोई विरोध याचिका दायर नहीं की गई थी।

9. अपीलार्थी के खिलाफ झूठे और तुच्छ आपराधिक मामले शुरू करने में दो बार विफल रहने के बाद, प्रतिपक्षी नंबर-2 ने वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की और उसके बाद उसने झूठे और तुच्छ आरोपों पर धारा 417, 452, 323, 504 भन्द०वि० के तहत शिकायत केस नंबर 2021 (निहालुद्दीन बनाम नासिर खान) की शिकायत भी दर्ज की है। उपरोक्त शिकायत मामले की कार्यवाही को अपीलार्थी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष 482 संख्या 27887 वर्ष 2022 (नासिर खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के तहत आवेदन के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जिसमें इस न्यायालय ने दिनांक 20.10.2022 के आदेश के तहत अपीलार्थी के खिलाफ आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी है।

10. सुलभ सन्दर्भ के लिए, इस न्यायालय के 20 अक्टूबर, 2022 के आदेश को यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"अपीलार्थी के अधिवक्ता श्री सतेंद्र नारायण सिंह ने प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी नंबर-2 अपीलार्थी के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू करने में सफल रहा है, पहले दो प्रयासों को खारिज कर दिया गया था, जो कि प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा प्रस्तुत धारा 156 ८०प्र०स० के तहत एक आवेदन है, जिसे 14.8.2019 के एक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जहां जालसाजी करने के आरोप लगाए गए थे। इसके बाद, प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा 25.9.2019 को हुई एक कथित घटना के संबंध में धारा

323, 504, 506 और 307 भन्द०वि० के तहत अपराध के लिए एक प्राथमिकी दर्ज की गई और जांच के बाद अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई और निर्देश के अनुसार, आज तक कोई विरोध याचिका दायर नहीं की गई है। इसके बाद 19.3.2020 को एक आपराधिक शिकायत दर्ज करने के माध्यम से वर्तमान कार्यवाही शुरू की गई, जिसमें 13.9.2021 को हुई घटना में आरोप लगाया गया, जिसमें धारा 200 और 202 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज करने के बाद आवेदकों को बुलाया जाता है।

अपीलार्थी के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले के तथ्य हरियाणा राज्य के पैराग्राफ संख्या 102 उप पैरा संख्या 7 और अन्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य 1992 ए.आई.आर 604 एस.सी में रिपोर्ट किए गए हैं।

प्रतिपक्षी नंबर-2 को नोटिस जारी करें जो जल्द से जल्द वापस आ सके। दस दिनों के भीतर सर्विस के कदम उठाए जाएं। नोटिस में तय तारीख पर इस मामले को नए सिरे से रखें। 2021 की शिकायत केस संख्या 2537 (निहालुद्दीन बनाम नासिर खान और अन्य) के अनुसार धारा 417, 452, 323, 504 भ०८०वि०, थाना-कोतवाली, जिला रामपुर के विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 1, रामपुर की अदालत में लंबित आगे की कार्यवाही केवल चार सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित रहेगी।

11. यह प्रस्तुत किया गया है कि सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत, नगर पालिका

परिषद, रामपुर से अपीलार्थी द्वारा एक सूचना मांगी गई थी कि क्या प्रतिपक्षी नंबर-2, अर्थात् रईस जहां या प्रतिपक्षी नंबर-2 निहाल-उद्दीन की मां का नाम कभी संबंधित रिकॉर्ड में विचाराधीन भूमि पर दर्ज किया गया है या नहीं, उन्हें नगर पालिका परिषद, रामपुर द्वारा सूचित किया गया है कि प्रश्नगत भूमि पर ऐसा कोई नाम दर्ज नहीं किया गया है।

12. विचाराधीन भूमि हकीम नबी अहमद की थी, जिसने वर्ष 1957 में साबिर खान को उक्त भूमि दी थी, इसलिए, वह उक्त भूमि का मालिक बन गया। साबिर खान ने 12.03.1997 को अपीलार्थी के पक्ष में पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की है और उसे सभी अधिकार देने के लिए अधिकृत किया है, हकीम नबी अहमद द्वारा साबिर अली के पक्ष में निष्पादित उर्दू विलेख से हिंदी अनुवाद की एक प्रति वर्तमान आवेदन के साथ हलफनामे के अनुलग्नक 11 के रूप में संलग्न की गई है, जबकि उक्त पावर ऑफ अटॉर्नी के पंजीकरण की प्रति वर्तमान हलफनामे के साथ अनुबंध संख्या 9 के रूप में संलग्न की गई है।

13. 3 फरवरी, 2019 को उसी भूमि विवाद के लिए, प्रतिपक्षी नंबर-2 और उसके भाइयों, अर्थात्, अल्लाह-उद्दीन, हसीन-उद्दीन ने सिविल जज (सीनियर डिवीजन), रामपुर की अदालत में अपीलार्थी सहित 185 व्यक्तियों के खिलाफ 2019 का मूल मुकदमा संख्या 72 (निहाल-उद्दीन और अन्य बनाम मोहम्मद अहमद खान और अन्य) दायर किया है। उक्त वाद के प्रतिवादियों को उक्त वाद के वादी के शांतिपूर्ण कब्जे में प्रश्नगत भूमि पर हस्तक्षेप

करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए, उक्त वाद के वाद की एक प्रति वर्तमान आवेदन के साथ शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या 10 के रूप में संलग्न की गई है। उक्त वाद अभी भी लंबित है।

उनकी ओर से दायर जवाबी हलफनामे के अनुसार प्रतिपक्षी नंबर-2 का मामला:

14. श्रीमती सरवरी बेगम, पत्नी मो. अली खान, जो प्रतिपक्षी नंबर-2 की नानी (नानी) थीं, ने 27 जून, 1966 को प्रतिपक्षी नंबर-2 की मां श्रीमती रईस जहां बेगम के पक्ष में एक पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया, जिसकी एक प्रति प्रतिपक्षी नंबर-2 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक-सीए-3 के रूप में संलग्न की गई है। उनकी मां की मृत्यु के बाद, प्रतिपक्षी नंबर-2 और उनके दो भाइयों के नाम नगर पालिका परिषद, रामपुर के रिकॉर्ड में दर्ज किए गए थे।

15. अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण

(i) कथित घटना के लिए प्राथमिकी दर्ज करने में लगभग दो महीने का विलंब हुआ है लेकिन कोई विश्वसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

(ii) यह कोई चोट न लगने का मामला है और न ही किसी घायल की कोई चिकित्सा जांच रिपोर्ट या केस डायरी का हिस्सा रिकॉर्ड में खरीदा गया है।

(iii) अपीलार्थी के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही शुरू करने में दो बार असफल होने पर,

प्रतिपक्षी नंबर-2 ने झूठे और तुच्छ आरोपों पर उस पर दबाव डालने के लिए केवल वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की है, जबकि उसी भूमि के विवाद के लिए तथ्य के रूप में, उसने पहले ही आवेदकों और अन्य के खिलाफ वर्ष 2019 में एक सिविल मुकदमा दायर किया है।

(iv) 18 मई, 2021 की कथित घटना, जैसा कि प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है, कभी नहीं हुई है और उसमें उल्लिखित सभी आरोप पूरी तरह से झूठे और मनगढ़ंत हैं।

(v) अपीलार्थी के खिलाफ प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा शुरु किया गया वर्तमान आपराधिक मामला झूठ के एक बंडल के अलावा और कुछ नहीं है और यह केवल नकली, झूठे और तुच्छ मामले में अपीलार्थी का नाम शामिल करके उसका शोषण करने के लिए दर्ज किया गया है। अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी, जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में सामने आया है, बिल्कुल प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा पेश की गई एक स्व-निर्मित कहानी है।

(vi) मौजूदा मामला विशुद्ध रूप से सिविल प्रकृति का है और वर्तमान प्राथमिकी द्वारा आपराधिक रंग देकर समझौता ज्ञापन को लागू करने का प्रयास किया गया है। अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में उन्होंने मितेश कुमार बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय 2021 ए.आई. आर (सुप्रीम कोर्ट) 5298 में रिपोर्ट किया गया, के पैराग्राफ -47

की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है।।

(vii) अपीलार्थी ने न तो कोई जालसाजी की है और न ही उसने किसी को धोखा दिया है और न ही उसने कोई जाली दस्तावेज बनाए हैं।

(viii) विवेचनाधिकारी ने प्रतिपक्षी संख्या 2 के परिवार के किसी सदस्य का बयान दर्ज नहीं किया है और केवल प्रतिपक्षी संख्या 2 का बयान दर्ज करते हुए उसने अपीलार्थी के खिलाफ कोई ठोस सबूत एकत्र किए बिना अपीलार्थी के खिलाफ आक्षेपित आरोप पत्र प्रस्तुत किया है।

(ix) हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय का निर्णय, 1992 सप्ल (1) एस.सी.सी 335 को इस मुद्दे पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने के लिए संदर्भित किया गया है कि कई श्रेणियों के मामलों में, दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए इस न्यायालय द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। अपीलार्थी का मामला भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में उल्लिखित सातवीं श्रेणी के साथ कवर किया गया है।

(x) प्रतिपक्षी संख्या 2 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-6 में किए गए कथन कि अपीलार्थी के पास वर्तमान एक को छोड़कर चार आपराधिक पूर्ववृत्त हैं, बिल्कुल गलत है। अपीलार्थी के खिलाफ केवल तीन

मामले हैं, जो प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा शुरू किए गए हैं ताकि उसके द्वारा शुरू की गई सिविल कार्यवाही को जन्म देने वाले विवाद को हल करने के लिए उस पर दबाव डाला जा सके। अपीलार्थी के खिलाफ प्रतिपक्षी संख्या 2 दद्वारा दर्ज अपराध संख्या 39 वर्ष 2020 के मामले में, पुलिस द्वारा संबंधित अदालत के समक्ष अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है और प्रतिपक्षी संख्या 2 ने इसके खिलाफ कोई विरोध याचिका दायर नहीं की है, प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा शुरू की गई शिकायत मामला संख्या 2537 वर्ष 2022 की आगे की कार्यवाही को इस न्यायालय ने दिनांक 20 अक्टूबर 2022 के आदेश के तहत पहले ही रोक दिया है, और सम्बद्ध आवेदन में आवेदन संख्या 27887 वर्ष 2022 (?), जबकि मामला अपराध संख्या 130 ऑफ 2021 मौजूद है, जिसकी कार्यवाही धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्रमुख आवेदन में चुनौती दी गई है।

16. इसलिए, आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदकों के खिलाफ शुरू की गई वर्तमान आपराधिक कार्यवाही न केवल दुर्भावनापूर्ण है, बल्कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है।

उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि उपर्युक्त शिकायत मामले की कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा रद्द की जा सकती है।

17. प्रति विरोध, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता और प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि रिकॉर्ड पर सामग्री के

अवलोकन से और इस स्तर पर मामले के तथ्यों को देखने से यह नहीं कहा जा सकता है कि आवेदकों के खिलाफ कोई अपराध नहीं किया गया है। किए गए सभी प्रस्तुतियाँ तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं, जिन पर इस न्यायालय द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत निर्णय नहीं लिया जा सकता है। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि यह स्थापित कानून है कि अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए सबूतों को, अदालत द्वारा आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, को मूल्यांकित नहीं किया जा सकता है।

18. प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी के पास वर्तमान एक को छोड़कर चार आपराधिक पूर्ववृत्त हैं और वह विभिन्न संपत्तियों को हथियाने में आदतन अपराधी है।

19. वह यह भी प्रस्तुत करता है कि 12 मार्च, 1997 को अपीलार्थी के पक्ष में निष्पादित कथित पावर ऑफ अटॉनी, अर्थात्, साबिर खान द्वारा नासिर खान एक जाली और मनगढ़ंत दस्तावेज है। संपत्ति हड़पने के लिए अपीलार्थी ने वही तैयारी करवाई है। विवादित भूमि को लेकर नगर पालिका परिषद, रामपुर के रिकॉर्ड में न तो साबिर खान का नाम और न ही अपीलार्थी का नाम कभी दर्ज किया गया है। उपरोक्त की संचयी ताकत पर, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता और प्रतिपक्षी नंबर-2 के अधिवक्ता ने आग्रह किया कि धारा 420, 467, 468, 471, 504, 506, 447 भ०द०वि० के तहत अपराध अपीलार्थी के खिलाफ बनता

है। धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान आवेदन मेरिट से रहित है और इसे इस न्यायालय द्वारा खारिज किया जा सकता है।

20. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और दोनों आवेदनों के रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

21. पक्षकारों के बीच विवाद मोहल्ला कुलकता, थाना कोतवाली, जिला-रामपुर स्थित 14 बीघा जमीन को लेकर विवाद नहीं है। यह भी एक स्वीकृत स्थिति है कि उक्त भूमि पर स्थायी निषेधाज्ञा और उद्घोषणा के लिए, प्रतिपक्षी संख्या 2 और उसके दो भाइयों ने 3 फरवरी, 2019 को अदालत के समक्ष 2019 का मूल मुकदमा संख्या 72 (निहाल उद्दीन और अन्य बनाम मो. अहमद खान एवं अन्य) पर किया, जो विचाराधीन है। इसलिए, इस न्यायालय के लिए यह आवश्यक है कि वह वाद में अपने दो भाइयों के साथ प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा किए गए कथनों और प्रार्थना का उल्लेख करे, जिन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

उपरोक्त बाद में वर्णित निम्नलिखित निवेदन करते हैं-

1. यह कि वादीगण आपस में सगे भाई हैं तथा वाद पत्र के अन्त में वर्णित भूमि स्थित मौ० कलकता तहसील सदर जिला रामपुर, जिसे वाद पत्र के साथ सलग्न नक्शे में लाल रंग, हरे रंग तथा पीले रंग से प्रदर्शित किया गया है, के मालिक व काबिज हैं।

2 यह कि वादीगण की माता श्रीमती रईस जहाँ बेगम पत्नी श्री जमालुद्दीन निवासनी मौ० कलकता तहसील सदर जिला रामपुर में स्थित भूमि जिसे बाद पत्र के साथ सलग्न मानचित्र में प्रदर्शित किया गया है, की मालिक व काबिज थी। उक्त सम्पत्ति में से 14 बीघा पुख्ता श्रीमती रईस जहाँ बेगम ने श्रीमती सरवरी बेगम से विक्रय पत्र दिनांक 25.01.1966 के द्वारा खरीदी थी। श्रीमती सरवरी बेगम श्रीमती रईस जहाँ बेगम की माता थी। श्रीमती सरवरी बेगम ने अपनी बेटी के हक में जिस 14 पुख्ता भूमि का बयनाम दिनांक 25.06.1966 को निष्पादित किया था वह भूमि श्रीमती सरवरी बेगम ने विक्रय पत्र दिनांक 6.11.1931 के द्वारा मकबूल हुसैन खां आदि से खरीदी थी। इस 1931 के विक्रय पत्र का उपनिबंधक कार्यालय में आग लगने के बाद पुनः इन्दाज भी हुआ है। इस विक्रय पत्र द्वारा क्रय की गयी भूमि से उत्तर में भी श्रीमती सरवरी बेगम की अन्य भूमि लगभग 50 बीघा खाम थी। यह भूमि भी सरवरी बेगम की मृत्यु के उपरान्त श्रीमती रईस जहाँ बेगम को विरासत में मिली। सरवरी बेगम को उक्त 50 बीघा खाम भूमि उनके पति श्री दूल्हा खाँ से विरासत में मिली थी जो कि दूल्हा खा की दादालाही भूमि थी।

3 यह कि उपरोक्त वर्णित प्रकार से श्रीमती रईस जहाँ बेगम को 14 बीघा पुख्ता अर्थात् 70 बीघा खाम विक्रय पत्र दिनांक 27.06.1966 के आधार पर 50 बीघा खाम विरासत में प्राप्त हुयी। इस प्रकार श्रीमती रईस जहाँ बेगम की मौ० कलकता में कुल 120

बीघा खान भूमि थी। मो० कलकत्ता में अधिकतर भूमि श्रीमती रईस जहाँ की ही थी। यह भूमि श्रीमती रईस जहाँ के स्वर्गवास पर उनके पुत्रों यादीगण को विरातन प्राप्त हुयी।

4 यह कि वर्ष 1931 के विक्रय पत्र के द्वारा सरवरी बेगम द्वारा खरीदी गयी सम्पत्ति की सीमायें उक्त विक्रय पत्र में निम्न प्रकार लिखी हैं-

पूर्व - रास्ता व आराजी अर्जुन मिल्कीयत जोजा हकीम फखरुद्दीन व खेत अली खां

पश्चिम - तालाब व खेत सरवरी फखरुद्दीन अलीजान

उत्तर - आराजी व कब्जा फखरुद्दीन

दक्षिण - कब्रस्तान व खेत बुद्धन खा

2. पूर्व - खेत अम्मन खाँ

पश्चिम - रास्ता व खेत सरवरी

उत्तर - कब्रस्तान

दक्षिण - नाला सरकारी

5 यह कि वर्ष 1966 के जिस विक्रय पत्र से श्रीमती रईस जहाँ ने सम्पत्ति: खदीदी उस बयनामें के समय मौके पर हुये परिवर्तनों के कारण विक्रय पत्र में निम्नलिखित सीमाओं का उल्लेख है-

क. पूर्व - रास्ता व आराजी खेत अर्जुन।

पश्चिम - नाला सरकारी

उत्तर - आराजी अर्जुन मकानात बागवान

दक्षिण - कब्रस्तान

ख. पूर्व - आराजी खेत अर्जुन

पश्चिम - नाला

उत्तर - आराजी खेत

दक्षिण - आराजी सरवरी

6. यह कि लम्बी अवधि में परिवर्तन होता रहा कुल विवादित भूमि की वर्तमान स्थिति वाद पत्र के साथ संलग्न नक्शे में प्रदर्शित है। विवादित भूमि का रामपुर नगर पालिका परिषद रामपुर के अभिलेखों में प्लॉट सं० 1808, 1809, 1010, 1011, 1812, 1813, 286, 287, 288, 289, 290, 291, 292, 293, 294, 295, 296, 297, 298, 326, 1687, 1688, 1651, 1653, 1654 अंकित हैं।

7 यह कि वर्ष 1931 के विक्रय पत्र व 1966 के विक्रय पत्र में सम्पत्ति की दो सीमायें दी गयी हैं। एक सीमा की सम्पत्ति को मानचित्र में हरे रंग तथा दूसरी सीमा की सम्पत्ति को पीले रंग से तथा सरवरी बेगम से रईस जहाँ को विरासत में मिली सम्पत्ति को लाल रंग से प्रदर्शित किया गया है।

8. यह कि रईस जहाँ बेगम को कुछ भूमि को सम्मिलित करते हुये सरकार द्वारा आसरा कॉलोनी, पानी की टंकी का निर्माण कर लिया गया तथा कुछ भाग पर मन्दिर व स्कूल बन गया। उक्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में प्रस्तुत बाद में वादीगण कोई विवाद नहीं कर रहे हैं तथा उसे संलग्न मानचित्र में प्रदर्शित किया गया है। यह सम्पत्ति प्रस्तुत बाद में विवादित नहीं है। इस सम्पत्ति के सम्बन्ध में वादीगण सम्बन्धित व्यक्तियों/ सरकार के विरुद्ध अलग से कार्यवाही करेंगे।

9. यह कि श्रीमती रईस जहाँ ने अपने जीवनकाल में अपनी सम्पत्ति में से कुछ

सम्पत्ति विक्रय पत्रों के द्वारा बेच दी। उनकी मृत्यु पर विरासतन प्राप्त हुयी सम्पत्ति में से एक भूखण्ड वादी सं० 1 व 2 द्वारा विक्रय किया गया बेची गयी सम्पत्ति का विवरण वाद पत्र के साथ संलग्न अनुसूची क में वर्णित है तथा बेची गयी सम्पत्ति को वाद पत्र के साथ संलग्न नक्शे में नीले रंग से प्रदर्शित किया गया है-

10. यह कि श्रीमती रईस जहाँ की उक्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में उनके जीवनकाल में काफी विवाद भी चला। तुलाराम, रोशनलाल व छोलाराम ने श्रीमती रईस जहाँ बेगम से 919 वर्ग मीटर आराजी खरीदने का इकरारनामा मुआयदायय प्रदर्शित करते हुये एक वाद मूलवाद सं० 26/198 तुलाराम आदि प्रति श्रीमती रईस जहाँ योजित किया, जिसमे श्रीमती रईस जहाँ द्वारा उक्त इकरारनामे को धोखाधड़ी के आधार पर निष्पादित होना कहा गया तथा यह भी उल्लेख किया कि श्रीमती रईस जहाँ ने तीन विक्रय पत्रों दिनोंकी 13.11.1986 के द्वारा मसरूर फाल्ना बेगम को 100 गज आराजी, नन्ही बेगम को 100 वर्ग गज आराजी तथा विक्रय पत्र दिनोंकी 13.11.1986 के द्वारा श्रीमती रहमत जहाँ बेगम को 100 वर्गगज भूमि बेच दी है अन्त में उक्त दावा खारिज हो गया।

11 यह कि श्रीमती रईस जहाँ बहुत सम्पन्न महिला थी। इस कारण विभिन्न व्यक्ति समय-समय पर उनकी सम्पत्ति हड़पने का प्रयास करते रहते थे। श्रीमती रईस जहाँ ने विवादित सम्पत्ति पर समय-समय पर मकानात आदि का निर्माण भी किया था।

12 यह कि श्रीमती रईस जहाँ का दिनांक 1.11.2015 को स्वर्गवास हो गया। बादी सं० 1 निहालुददीन श्रीनगर में कारोबार करते हैं जबकि वादी सं० 2 व 3 दिल्ली में कारोबार करते, है तथा वादीगण की माता अधिकतर अपने पुत्रों के साथ दिल्ली में रहती थी इसी बात का अवैध लाभ उठाते हुये प्रतिवादीगण सं० 1 ता 4 व 10 ने आपस में साजिश करके वादीगण की सम्पत्ति को धोखाधड़ी व चार सौ बीसी के आधार पर विभिन्न व्यक्तियों के नाम विक्रय करना प्रारम्भ कर दिये जबकि प्रतिवादीगण सं० 1 ता 4 व 10 का विवादित सम्पत्ति के स्वामित्व व कब्जे से कोई सम्बन्ध नहीं था। प्रतिवादी सं० 10 ने स्वयं को साबिर खाँ का मुखयार प्रदर्शित करते हुये बयनामे किये गये। जबकि साबिर खाँ का भी विवादित सम्पत्ति के कब्जे व स्वामित्व से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह महत्वपूर्ण है कि प्रश्नगत वयनामों में भी यह उल्लेख नहीं है कि प्रतिवादीगण सं० 1 व साबिर खाँ तथा प्रतिवादी सं० 10 के पास उक्त सम्पत्ति किस आधार पर आयी है। मौके पर वादीगण का ही कब्जा व दखल है। वादीगण द्वारा कराया गया कुछ निर्माण मौके पर मौजूद है। वादीगण की माँ ने अपने जीवनकाल में विवादित भूमि की प्लाटिंग करने हेतु कुछ रास्ते बनाये थे जो कि मौके पर मौजूद हैं। श्रीमती रईस जहाँ ने कुछ सम्पत्ति अपने जीवनकाल में बेच दी थी जिसका विवरण पूर्व में दिया जा चुका है। शेष सम्पत्ति कीदगण की है तथा किसी अन्य का उक्त सम्पत्ति पर कोई कब्जा व अधिकार नहीं है।

13 यह कि यादीगण की सम्पत्ति में नये नाले का निर्माण नगरपालिका परिषद रामपुर द्वारा कुछ वर्ष पूर्व किया गया। उक्त नालों से वादीगण को भी लाभ था इस कारण वादीगण ने उक्त नालों के निर्माण में कोई आपत्ति नहीं की।

14. यह कि वादीगण ने उपनिबन्धक कार्यालय तहसील सदर जिला रामपुर में निरीक्षण कराया तो पता लगा कि वादीगण की अनुपस्थिति में तथा श्रीमती रईस जहाँ की वृद्धावस्था व अशिक्षित होने का प्रतिवादीगण ने लाभ उठाया है तथा वास्तविक स्वामियों की बिना सहमति व जानकारी के सम्पत्ति के बयनामें करा दिये, जिसका प्रतिवादीगण को कोई अधिकार नहीं था।

15 यह कि निरीक्षण से वादीगण को विवादित भूमि के जो विक्रय पत्र प्राप्त हुये उनका विवरण बाद पत्र के साथ संलग्न अनुसूची 'ख' में वर्णित है। यह सभी विक्रय पत्र वादीगण की विवादित सम्पत्ति से सम्बन्धित है तथा शून्य व निष्प्रभावी है। विक्रय पत्रों का ज्ञान वादीगण को लगभग 1 वर्ष पूर्व हुआ है। मुआयना करने व नकले प्राप्त करने में तथा विवादित भूमि का नवशा बनवाने में वादीगण को काफी समय लग गया वादीगण अपनी ओर से कोई देर किये बिना प्रस्तुत बाद वास्ते उद्घोषणा व स्थाई निषेधाज्ञा दायर कर रहे हैं।

16 यह कि वाद पत्र के साथ संलग्न अनुसूची ख में वर्णित बयनामें निःशून्य व निष्प्रभावी एवं अवैध है। उक्त विक्रय पत्रों के आधार पर प्रतिवादीगण को विवादित सम्पत्ति में कोई हक

व अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं।। प्रश्नगत विक्रय पत्रों के अस्तित्व में रहने से वादीगण के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का खतरा है।

17 यह कि प्रतिवादीगण मौके पर विवादित सम्पत्ति पर कब्जा करके निर्माण कर लेने हेतु प्रयासरत है पिछले 3 माह से प्रतिवादीगण व वादीगण का इस सम्बन्ध में विवाद चल रहा है। वादीगण ने पुलिस की सहायता से प्रतिवादीगण को मौके पर कब्जा कर निर्माण करने से रोका है किन्तु वादीगण की उपस्थिति में दिनांक 22.03.2019 को कुछ प्रतिवादीगण मौके पर आ गये तथा उन्होंने कहा कि जैसे ही तुम लोग रामपुर से अपने काम पर वापस जाओगे तो हम मौके पर जाकर कब्जा कर लेंगे ऐसी स्थिति में वादीगण के पास प्रस्तुत वाद वास्ते उद्घोषणा व निषेधाज्ञा दायर करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है।

18 यह कि प्रतिवादी सईद अहमद द्वारा विवादित सम्पत्ति के एक भाग को शौकत अली से प्राप्त होना कहकर एक निषेधाज्ञा का वाद मूलवाद सं० 96/2018 सईद अहमद प्रति अलादीन आदि वादीगण के विरुद्ध योजित किया गया वाद में प्रतिवादीगण (प्रस्तुत वाद के वादी) द्वारा प्रतिवाद पत्र प्रस्तुत किया गया तथा सिविल जज (कनिष्ठ खण्ड) रामपुर द्वारा आदेश दिनोंकी 1.10.2018 से उक्त सईद अहमद का स्वामित्व ना मानते हुये उनका निषेधाज्ञा प्रार्थना पत्र निरस्त कर दिया गया।

19 यह कि प्रतिवादीगण को मौके पर कब्जा करने से व निर्माण करने से नहीं रोका गया

तो वादीगण की अपूर्णनीय क्षति होगी तथा मौके की स्थिति परिवर्तित हो जायेगी एवं अनावश्यक मुकदमेबाजी भी प्रारम्भ हो जायेगी।

20 यह कि प्रतिवादीगण सं० 10 द्वारा स्वयं को साबिर खां का मुख्तारआम प्रदर्शित करते हुये विक्रय पत्र निष्पादित किये गये हैं जबकि साबिर अली का नासिर खां से कोई रिश्ता नहीं था कथित मुख्तारनामा भी जाली व फर्जी अभिलेख है। प्रतिवादीगण सं० 5 व 7 सबिर खाँ के वारिसान है। साबिर खाँ का विवादित सम्पत्ति में कोई स्वामित्व हक व अधिकार व कब्जा नहीं था इस कारण उन्हें विवादित सम्पत्ति के सम्बन्ध में किसी को अपना मुख्तार बनाने का कोई अधिकार नहीं था।

21. यह कि मी० शाकिर के पक्ष में एक विक्रय पत्र निष्पादित हुआ किन्तु उनका स्वर्गवास हो चुका है और प्रतिवादीगण सं० 49 ता 54 उनके वारिसान हैं।

22 यह कि याद के लिये बाद कारण उपरोक्त तथ्यों से तथा अन्त में दिनांक 22.03.2019 को प्रतिवादीगण द्वारा मौके पर आकर जबरदस्ती कब्जा कर निर्माण कर लेने की धमकी देने से वादीगण को प्रतिवादीगणा के विरुद्ध न्यायालय के क्षेत्राधिकार में हासिल व पैदा हुआ तथा श्रीमान जी को प्रस्तुत वाद सुनने व निर्णीत करने का विचाराधिकार प्राप्त है।

23 यह कि बाद का मूल्यांकन वास्ते विचाराधिकार वाबत अनुतोष क व ख विवादित सम्पत्ति की अनुमानित बाजारु कीमत

3,00,000/- रुपये, 3,00,000/- तथा बाबत अनुतोष ग विवादित सम्पत्ति की अनुमानित बाजारु कीमत 3,00,000/- कुल 9,00,000/- किया जाता है तथा न्याय शुल्क बावत अनुतोष क एवं ख उदघोषणा के लिये निर्धारित अधिकतम न्याय शुल्क 200 रुपये, 200/- रुपये तथा न्याय शुल्क यायत अनुतोष ग निषेधाज्ञा के लिये निर्धारित अधिकतम न्याय शुल्क 500/- कुल 900/- का अदा किया जाता है जो कि पर्याप्त है।

24. यह कि वादीगण निम्नलिखित अनुतोष प्राप्त करने के अधिकारी हैं-
क. यह कि उदघोषणा की आज्ञा के द्वारा यह घोषित किया जाये कि वादीगण विवादित सम्पत्ति स्थित मो० कलकता तहसील सदर जिला रामपुर, जिसको वाद पत्र के साथ संलग्न मानचित्र में लाल रंग हरे रंग तथा पीले रंग से प्रदर्शित किया गया है, के तन्हा मालिक व काबिज है तथा प्रतिवादीगण का उक्त सम्पत्ति व कब्जे से कोई सम्बन्ध नहीं है।

ख यह कि उदघोषणा की आज्ञा के द्वारा यह घोषित किया जाये कि वाद पत्र के साथ संलग्न नुसूची ख में वर्णित विक्रय पत्र निशून्य व निष्प्रभावी है तथा उनके आधार पर प्रतिवादीगण को विवादित सम्पत्ति में कोई हक व अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं।

ग यह कि स्थाई निषेधाज्ञा की आज्ञा के द्वारा प्रतिवादीगण को स्वयं अपने रिश्तेदारान, ऐजेन्टान कारकुनान व नौकरान आदि के द्वारा यादीगण की विवादित सम्पत्ति स्थित मो० कलकता तहसील सदर जिला रामपुर, जिसको

वाद पत्र के साथ संलग्न मानचित्र में पीले रंग, हरे रंग तथा लाल रंग से प्रदर्शित किया गया है, मैं वादीगण के कब्जों में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करने से तथा सम्पत्ति को विक्रय द्वारा या अन्य किसी प्रकार से अन्तरित करने से सदैव के लिये निषिद्ध कर दिया जाये।

घ यह कि वाद की वाद व्यय व हर्जा खर्चा मुकदमा भी वादीगण को प्रतिवादीगण से दिलवाया जाये।

ड यह कि अन्य अनुतोष, जो न्यायालय वादीगण के पक्ष में उचित समझे वह भी वादीगण को प्रतिवादीगण से दिलवाया जाये।

सत्यापन:- उपरोक्त वाद पत्र के पैरा सं० 1 ता 21 व 24 वादीगण हमारे निजी ज्ञान व विश्वास के आधार पर तथा प्रस्तर सं० 23 के अभिकथन विधिक परामर्श के आधार पर सही व सत्य है, जिसमें ना कुछ झूठ है और ना ही कुछ दिपाया गया है, जिसकी तस्दीक आज दिनांक 03.04.2019 को रामपुर में की गई।"

22. यह भी विवाद में नहीं है कि लगभग उसी विवाद के लिए, वर्तमान आपराधिक मामला चौथा है जो अपीलार्थी के खिलाफ प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा दर्ज किया गया है। इससे पहले प्रतिपक्षी नंबर- 2 ने द०प्र०स० की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दिया था और इसे 2019 के विविध केस नंबर 181/11 (निहालुद्दीन बनाम मोहम्मद अली अशरफ फातमी) के रूप में दर्ज किया गया है, जिसे 14 अगस्त, 2019 के आदेश द्वारा निचली अदालत द्वारा खारिज कर दिया गया था।

प्रतिपक्षी क्रमांक 2 द्वारा धारा 156 (3) के तहत दायर उपरोक्त आवेदन को खारिज करने के बाद अपीलार्थी के खिलाफ धारा 323, 504, 506, 307 भन्द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 39 वर्ष 2020 दर्ज किया गया था, जिसमें जांच के बाद अपीलार्थी के खिलाफ अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई है और आज तक कोई विरोध याचिका दायर नहीं की गई है। उसके बाद प्रतिपक्षी नंबर- 2 ने वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की और उसके बाद उन्होंने धारा 417, 452, 323, 504 भन्द०वि० के तहत शिकायत केस नंबर 2537 ऑफ 2021 (निहालुद्दीन बनाम नासिर खान) भी दर्ज की है। उपरोक्त शिकायत मामले की कार्यवाही पर इस न्यायालय द्वारा धारा 482 संख्या 27887 वर्ष 2022 (नासिर खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के तहत आवेदन में पारित आदेश दिनांक 20 अक्टूबर, 2022 के तहत रोक लगा दी गई है।

कानूनी मुद्दे, जो दोनों आवेदनों में उभरते हैं:

23. अपीलार्थी और प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा कथित तथ्यों की सत्यता का पता केवल सक्षम क्षेत्राधिकार के सिविल न्यायालय द्वारा साक्ष्य और दस्तावेजों के आधार पर लगाया जा सकता है। विचाराधीन विवाद विशुद्ध रूप से सिविल प्रकृति का है और प्रतिपक्षी संख्या 2 ने पहले ही सिविल जज की अदालत में एक सिविल सूट स्थापित कर दिया है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलार्थी के खिलाफ प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा आपराधिक कार्यवाही शुरू करना स्पष्ट रूप से अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत अदालतों की शक्तियों का वृत्त और दायरा:

24. सर्वोच्च न्यायालय ने कई मामलों में धारा 482 द०प्र०स० के तहत अदालत की शक्ति का दायरा और क्षमता निर्धारित किया है। प्रत्येक उच्च न्यायालय के पास वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए पूर्व-न्यायसंगत कार्य करने की अंतर्निहित शक्ति है, जिसके प्रशासन के लिए यह अकेले मौजूद है, या अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए। धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्ति का प्रयोग निम्न के लिए किया जा सकता है:

- (1) संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करना;
- (ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए; और
- (iii) न्याय के सिरों को अन्यथा सुरक्षित करने के लिए।

25. धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्तियों को व्यापक दायरे के बावजूद संयम से, सावधानी से और बहुत एहतियात के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए और केवल तभी जब इस तरह के अभ्यास को इस धारा में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाता है। न्याय की उन्नति के लिए न्यायालय का अधिकार मौजूद है। यदि अन्याय की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग न्यायालय के संज्ञान में लाया जाता है, तो न्यायालय को कानून में विशिष्ट प्रावधानों के अभाव में निहित शक्तियों का उपयोग करके अन्याय को रोकने में न्यायसंगत होगा।

26. इस न्यायालय के लिए यह नोटिस करना भी महत्वपूर्ण है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय के पास शक्तियां बहुत व्यापक हैं और शक्ति की प्रचुरता के लिए इसके प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। न्यायालय को यह देखने के लिए सावधान रहना चाहिए कि इस शक्ति के प्रयोग में उसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित है। एक वैध अभियोजन को दबाने के लिए निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय को आमतौर पर ऐसे मामले में प्रथम दृष्टया निर्णय देने से बचना चाहिए जहां सभी तथ्य अधूरे और धुंधले हैं। इसके अलावा, जब सबूत एकत्र नहीं किए गए हैं और अदालत के समक्ष पेश नहीं किए गए हैं और इसमें शामिल मुद्दे, चाहे तथ्यात्मक हों या कानूनी, इतने परिमाण के हैं कि उन्हें पर्याप्त सामग्री के बिना उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जा सकता है। बेशक, उन मामलों के संबंध में कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता है जिनमें उच्च न्यायालय किसी भी स्तर पर कार्यवाही को रद्द करने के अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा।

विषय पर न्याय निर्णयन विधि

27. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में, धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित दिशानिर्देश तैयार किए हैं।

- (1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता

में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और प्राथमिकी के साथ अन्य सामग्री, यदि कोई हो, संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हुए एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध ही हैं वहां किसी पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के अधीन विचार किया गया है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था पर एक स्पष्ट कानूनी प्रतिबंध लगाया गया है और कार्यवाही को जारी रखना और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करना।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

28. कर्नाटक राज्य बनाम एल मुनीस्वामी और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने (1977) 2 एस.सी.सी 699 में रिपोर्ट किया है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत पूर्ण शक्ति उच्च न्यायालय को एक कार्यवाही को रद्द करने का अधिकार देती है जब यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय के उद्देश्य के लिए आवश्यक है कि कार्यवाही रद्द होनी चाहिए। उच्च न्यायालयों को हितकर सार्वजनिक प्रयोजन की प्राप्ति के लिए सिविल और दांडिक दोनों मामलों में अंतनहित शक्तियों का निवेश किया गया है। एक अदालती कार्यवाही को उत्पीड़न या दमन के हथियार में पतित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अदालत ने इस

मामले में कहा कि न्याय के उद्देश्य केवल कानून के लक्ष्यों से अधिक हैं, हालांकि न्याय विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों के अनुसार प्रशासित किया जाना चाहिए। इस मामले का इस अदालत और अन्य अदालतों के बाद के मामलों की एक बड़ी संख्या में पालन किया गया है।

29. माधवराव जीवाजीराव सिंधिया और अन्य बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने (1988)1 एस.सी.सी 692 में रिपोर्ट किया है कि कानूनी स्थिति अच्छी तरह से तय है कि जब प्रारंभिक चरण में एक अभियोजन को रद्द करने के लिए कहा जाता है, तो अदालत द्वारा लागू किया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या प्रथम दृष्टया लगाए गए आरोप अपराध को स्थापित करते हैं। यह अदालत के लिए भी है कि वह, क्या किसी विशेष मामले में दिखाई देने वाली किसी विशेषता को ध्यान में रखे, कि क्या अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देना उचित और न्याय के हित में है। यह इस आधार पर है कि न्यायालय का उपयोग किसी परोक्ष उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है और जहां न्यायालय की राय में अंतिम दोषसिद्धि की संभावना धूमिल है और इसलिए, आपराधिक अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होने की संभावना नहीं है, न्यायालय किसी मामले के विशेष तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कार्यवाही को रद्द भी कर सकता है, भले ही यह प्रारंभिक चरण में हो।

30. इसी प्रकार जनता दल बनाम एच.एस चौधरी (992)4 एस.सी.सी 305 में रिपोर्ट किए गए मामले में पैराग्राफ-132 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार राय दी है:

"132. आपराधिक न्यायालयों को ऐसे आदेश देने के लिए अंतर्निहित शक्ति के साथ जाता है जो न्याय के उद्देश्य के लिए आवश्यक हो सकते हैं। इस तरह की शक्ति हालांकि अप्रतिबंधित और अपरिभाषित है, इसका प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन उचित मामलों में प्रयोग किया जाना चाहिए, पूर्व डेबिटो औचित्य प्रशासन के लिए वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए जिसमें अकेले अदालतें मौजूद हैं। संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पास मौजूद शक्तियां बहुत व्यापक हैं और शक्ति की प्रचुरता के लिए इसके प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। अदालतों को यह देखने के लिए सावधान रहना चाहिए कि इस शक्ति के प्रयोग में उसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित है।"

31. जी सागर सूरी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2000) 2 एस.सी.सी 636 में रिपोर्ट किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि यह आपराधिक न्यायालय का कर्तव्य और दायित्व है कि वह प्रक्रिया जारी करने में बहुत सावधानी बरतें, खासकर जब मामले अनिवार्य रूप से सिविल प्रकृति के हों।

32. रॉय वी.डी बनाम केरल राज्य (2000) 8 एस.सी.सी 590 में रिपोर्ट के मामले में

पैराग्राफ - 18 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:

"18. यह अच्छी तरह से तय है कि अन्य बातों के साथ-साथ, धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के सिरो को सुरक्षित करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है। जहां तलाशी और गिरफ्तारी पर एकत्र की गई अवैध सामग्री के आधार पर आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है, जो अपने आप में अवैध हैं और न केवल ऐसी सामग्री के आधार पर दोषसिद्धि और सजा को दूषित करती हैं, बल्कि स्वयं विचारण भी करती हैं, वहां कार्यवाही को चलने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं हो सकता है; ऐसे मामले में कार्यवाही को रद्द नहीं करने से अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को बड़ी कठिनाई और अन्याय होगा। हमारी राय में, धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस तरह के मामले में कार्यवाही को रद्द करने के लिए शक्ति का प्रयोग वास्तव में न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करेगा।"

33. झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ, मो. शराफुल हक और एक अन्य (2005)1 एस.सी.सी 122 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय में रिपोर्ट किया गया है कि यह किसी भी कार्रवाई की अनुमति देने के लिए अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा जिसके परिणामस्वरूप अन्याय होगा और

न्याय देने से रोका जाएगा। अदालत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, किसी भी कार्यवाही को रद्द करने के लिए न्यायसंगत होगी यदि उसे लगता है कि इसे शुरू करना/जारी रखना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या इन कार्यवाहियों को रद्द करना अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करेगा। जब शिकायत द्वारा किसी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो अदालत तथ्य के प्रश्न की जांच कर सकती है। जब किसी शिकायत को रद्द करने की मांग की जाती है, तो यह आकलन करने के लिए सामग्री को देखने की अनुमति है कि शिकायतकर्ता ने क्या आरोप लगाया है और क्या कोई अपराध किया गया है, भले ही आरोप पूरी तरह से स्वीकार किए गए हों।

34. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एन.ई.. पीसी इंडिया लिमिटेड और अन्य (2006) 6 एस.सी.सी 736 में रिपोर्ट किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से व्यापार हलकों में बढ़ती प्रवृत्ति के बारे में चेतावनी दी है ताकि विशुद्ध रूप से नागरिक विवादों को आपराधिक मामलों में परिवर्तित किया जा सके। अदालत ने प्रचलित धारणा पर ध्यान दिया कि नागरिक कानून उपचार समय लेने वाले हैं और उधारदाताओं/लेनदारों के हितों की पर्याप्त रूप से रक्षा नहीं करते हैं। अदालत ने आगे कहा कि आपराधिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डालकर नागरिक विवाँ और दाँ को निपटाने के किसी भी प्रयास, जिसमें कोई आपराधिक अपराध शामिल नहीं है, को खारिज और हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

35. इसके अलावा (2007) 12 एस.सी.सी 1 में रिपोर्ट किए गए इंदर मोहन गोस्वामी बनाम

उत्तरांचल राज्य के मामले में निम्नानुसार देखा गया है:

"25. निम्नलिखित मामलों के संदर्भ से पता चलता है कि अदालतों ने लगातार यह विचार किया है कि उन्हें अन्याय को रोकने और न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए इस असाधारण शक्ति का उपयोग करना चाहिए। अंग्रेजी अदालतों ने भी उसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अंतर्निहित शक्ति का उपयोग किया है। यह आम तौर पर सहमत है कि क्राउन कोर्ट के पास अपनी प्रक्रिया को दुरुपयोग से बचाने की अंतर्निहित शक्ति है। कोनेली बनाम डीपीपी [1964] एसी 1254 में, लॉर्ड डेवलिन ने कहा कि जहां विशेष आपराधिक कार्यवाही प्रक्रिया का दुरुपयोग है, अदालत को अभियोग को मुकदमे में आगे बढ़ने की अनुमति देने से इनकार करने का अधिकार है। लॉर्ड सैल्मन में डी.पी.पी बनाम हम्फ्रीज़ [1977] ए.सी 1 ने अंतर्निहित शक्ति के महत्व पर जोर दिया जब उन्होंने देखा कि यह केवल तभी होता है जब अभियोजन पक्ष अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग करता है और यह दमनकारी और कष्टप्रद है कि न्यायाधीश के पास हस्तक्षेप करने की शक्ति है। उन्होंने आगे उल्लेख किया कि इस तरह के दुरुपयोग को रोकने के लिए अदालत की शक्ति बहुत संवैधानिक महत्व की है और इसे ईर्ष्या से संरक्षित किया जाना चाहिए।

46. अदालत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपराधिक अभियोजन का उपयोग उत्पीड़न के साधन के रूप में या निजी प्रतिशोध लेने के लिए या अभियुक्त पर दबाव डालने के लिए

एक गुप्त उद्देश्य के साथ नहीं किया जाता है। उपरोक्त मामलों के विश्लेषण पर, हमारी राय है कि एक अनम्य नियम निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है जो अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के अभ्यास को नियंत्रित करेगा। धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालयों के निहित अधिकार क्षेत्र को हालांकि व्यापक रूप से संयम, सावधानी और एहतियात के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए और केवल तभी जब यह विशेष रूप से कानून में और उपरोक्त मामलों में निर्धारित परीक्षाओं द्वारा उचित हो। तय कानूनी स्थिति के मद्देनजर, आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है।

36. परमजीत बत्रा बनाम राज्य उत्तराखंड (2013) 11 एस.सी.सी 673 में रिपोर्ट में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को सतर्क रहना होगा। इस शक्ति का उपयोग संयम से और केवल किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के उद्देश्य से किया जाना है। कोई शिकायत किसी अपराध का खुलासा करती है या नहीं, यह उसमें कथित तथ्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है। आपराधिक कृत्य के आवश्यक तत्व मौजूद हैं या नहीं, इसका निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है। नागरिक लेनदेन का खुलासा करने वाली शिकायत में आपराधिक बनावट भी हो सकती है। लेकिन उच्च न्यायालय को यह देखना चाहिए कि क्या एक विवाद जो अनिवार्य रूप से एक सिविल प्रकृति

का है, उसे आपराधिक कृत्य का लबादा दिया जाता है। ऐसी स्थिति में, यदि कोई सिविल उपचार उपलब्ध है और वास्तव में अपनाया जाता है, जैसा कि इस मामले में हुआ है, तो उच्च न्यायालय को अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में संकोच नहीं करना चाहिए। इस तरह के निष्कर्ष के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि जैसा कि हमने पहले ही नोट किया है, यहां विवाद अनिवार्य रूप से होटल व्यवसाय के लाभ और उसके स्वामित्व के बारे में है। लंबित सिविल वाद उन सभी मुद्दों का ध्यान रखेगा। इस आरोप से भी निपटा जा सकता है कि अपीलकर्ता द्वारा जाली और मनगढ़ंत दस्तावेजों का इस्तेमाल किया जाता है। अपीलकर्ता के खिलाफ इसी तरह की शिकायत दर्ज करने का प्रतिवादी-2 का प्रयास विफल होने के बाद, उसने वर्तमान शिकायत दर्ज की है। अपीलकर्ता को प्रतिवादी-2 द्वारा धारा 406 भ०द०वि० के तहत अपराध का आरोप लगाते हुए उसके खिलाफ दायर एक अन्य मामले में बरी कर दिया गया है। ऐसी स्थिति में, हमारी राय में, लंबित आपराधिक कार्यवाही को जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। उच्च न्यायालय ने अन्यथा निर्णय लेने में गलती की।

37. भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद, परबतभाई अहीर @ परबतभाई भीमसिनभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और (2017)9 एस.सी.सी 641 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की

तीन न्यायाधीशों की पीठ ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन तय करने के लिए सिद्धांत तैयार किए हैं, जो इस प्रकार हैं:

"16. इस विषय पर पूर्वोदाहरणों से उभरने वाले व्यापक सिद्धांतों को निम्नलिखित प्रस्तावों में संक्षेपित किया जा सकता है:

16.1. धारा 482 किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के सिरों को सुरक्षित करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को संरक्षित करती है। यह प्रावधान नई शक्तियां प्रदान नहीं करता है। यह केवल उन शक्तियों को मान्यता देता है और संरक्षित करता है जो उच्च न्यायालय में निहित हैं।

16.2. प्रथम सूचना रिपोर्ट या आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान कि अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता हो गया है, अपराध को कम करने के उद्देश्य से क्षेत्राधिकार के आह्वान के समान नहीं है। किसी अपराध को प्रशमन करते समय, न्यायालय की शक्ति धारा 320 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के उपबंधों द्वारा शासित होती है। धारा 482 के तहत रद्द करने की शक्ति तब भी आकर्षित होती है जब अपराध अशमनीय हो;

16.3. एक राय बनाने में कि क्या धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में एक आपराधिक कार्यवाही या शिकायत को रद्द कर दिया जाना चाहिए, उच्च न्यायालय को यह

मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या न्याय के अंत अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को सही ठहराएंगे,

16.4. जबकि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का दायरा और पूर्णता व्यापक है, इसका प्रयोग किया जाना चाहिए; (1) न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए या (ii) किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए;

16.5. यह निर्णय कि क्या शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को इस आधार पर रद्द कर दिया जाना चाहिए कि अपराधी और पीड़ित ने विवाद का निपटारा कर दिया है, अंततः प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और सिद्धांतों का कोई विस्तृत विस्तार नहीं किया जा सकता है,

16.6. धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए और इस दलील से निपटने के दौरान कि विवाद का निपटारा हो गया है, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का उचित संबंध रखना चाहिए। मानसिक भ्रष्टता या हत्या, बलात्कार और डकैती जैसे अपराधों से जुड़े जघन्य और गंभीर अपराधों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है, हालांकि पीड़ित या पीड़ित के परिवार ने विवाद को सुलझा लिया हो। इस तरह के अपराध, वास्तव में, प्रकृति में निजी नहीं हैं, लेकिन समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। ऐसे मामलों में मुकदमे को जारी रखने का निर्णय गंभीर अपराधों के लिए व्यक्तियों को दंडित करने में सार्वजनिक हित के अधिभावी तत्व पर स्थापित किया गया है।

16.7. गंभीर अपराधों से अलग के रूप में, ऐसे आपराधिक मामले हो सकते हैं जिनमें सिविल विवाद का भारी या प्रमुख तत्व होता है। जहां तक 'रद्द करना' की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग का संबंध है, वे एक अलग पायदान पर खड़े हैं;

16.8. अनिवार्य रूप से दीवानी प्रकृति के साथ वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, साझेदारी या इसी तरह के लेनदेन से उत्पन्न होने वाले अपराधों से जुड़े आपराधिक मामले उपयुक्त स्थितियों में रद्द करने के लिए गिर सकते हैं जहां पक्षों ने विवाद का निपटारा किया है;

16.9. ऐसे मामले में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि विवादों के बीच समझौते को देखते हुए, दोषसिद्धि की संभावना दूरस्थ है और आपराधिक कार्यवाही जारी रहने से उत्पीड़न और पूर्वाग्रह पैदा होगा, और

16.10. ऊपर प्रस्ताव 16.8 और 16.9 में निर्धारित प्रस्तावों में निर्धारित सिद्धांत के लिए अभी तक एक अपवाद है, राज्य की वित्तीय और आर्थिक भलाई से जुड़े आर्थिक अपराधों के निहितार्थ हैं जो निजी विवादों के बीच केवल विवाद के क्षेत्र से परे हैं। उच्च न्यायालय द्वारा उस मामले को रद्द करने से इनकार करना न्यायोचित होगा जहां अपराधी वित्तीय या आर्थिक धोखाधड़ी या दुष्कर्म जैसी गतिविधि में शामिल है। वित्तीय या आर्थिक प्रणाली पर शिकायत किए गए

अधिनियम के परिणाम संतुलन में तौले जाएंगे।

38. सरदार अली खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में प्रधान सचिव, गृह विभाग और एक अन्य के माध्यम से (2020) 12 एस.सी.सी 51 में रिपोर्ट किया गया है कि, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया है:

"यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि दूसरे प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमे में प्रतिरूपण और हस्ताक्षरों की जालसाजी का कोई आरोप नहीं है। किसी भी घटना में, जब बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए दूसरे प्रतिवादी द्वारा दायर मुकदमा कानून की सक्षम अदालत के समक्ष विचार के लिए लंबित है, तो दूसरा प्रतिवादी अपने मामले में सुधार करके आपराधिक कार्यवाही में शिकायत नहीं कर सकता है। गंभीर तथ्यात्मक विवादों के संबंध में जो सिविल प्रकृति के हैं, जिनके लिए सिविल मुकदमे लंबित हैं, दूसरे प्रतिवादी को आपराधिक कार्यवाही में अपनी शिकायत को आगे बढ़ाने की अनुमति देना कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है। उपरोक्त कारणों से हमारा विचार है कि इस अपील को स्वीकार करके आपराधिक कार्यवाही रद्द करने के योग्य है।

39. कपिल अग्रवाल बनाम संजय शर्मा (2021)5 SCC 524 में रिपोर्ट किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार माना है:

"जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रेणी में देखा गया और आयोजित किया गया,

संविधान की धारा 482 द०प्र०स० और/या अनुच्छेद 226 के तहत निहित अधिकार क्षेत्र को इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए डिज़ाइन किया गया है कि आपराधिक कार्यवाही को उत्पीड़न के हथियार में बदलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि आपराधिक कार्यवाही कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या यह अभियुक्त पर दबाव लाने के बराबर है, तो अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में, ऐसी कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।

40. रणधीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 2021 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 942 में रिपोर्ट किया, कपिल अग्रवाल (उपरोक्त) के मामले का जिक्र करते हुए देखा और निम्नानुसार आयोजित किया:

"32. कपिल अग्रवाल (उपरोक्त) मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि धारा 482 को यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए डिज़ाइन किया गया है कि आपराधिक कार्यवाही को उत्पीड़न के हथियारों में उत्पन्न करने की अनुमति नहीं है।

33. इस मामले में, ऐसा प्रतीत होता है कि आपराधिक कार्यवाही एक खरीदार के खिलाफ उत्पीड़न के हथियार के रूप में सहारा लिया जा रहा है। पुनरावृत्ति की कीमत पर यह दोहराया जाता है कि जहां तक अपीलकर्ता का संबंध है, प्राथमिकी किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करती है। इस बात की कोई संकेत नहीं है कि कैसे और किस तरीके से, यह अपीलकर्ता किसी

आपराधिक अपराध में शामिल हैं और आरोपपत्र, जिसका प्रासंगिक हिस्सा ऊपर निकाला गया है, बिल्कुल अस्पष्ट है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत अधिकार क्षेत्र का उपयोग किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए। कोई शिकायत आपराधिक कृत्य का खुलासा करती है या नहीं, यह आरोप की प्रकृति पर निर्भर करता है और आपराधिक कृत्य के आवश्यक तत्व मौजूद हैं या नहीं, इसका निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नागरिक लेनदेन का खुलासा करने वाली शिकायत में आपराधिक बनावट भी हो सकती है। हालांकि, उच्च न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या सिविल प्रकृति के विवाद को आपराधिक अपराध का रंग दिया गया है। ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में संकोच नहीं करना चाहिए जैसा कि इस न्यायालय ने परमजीत बत्रा (उपरोक्त) में कहा था।

34. दिए गए तथ्यों का सेट एक दीवानी गलती के साथ-साथ एक आपराधिक कृत्य भी हो सकता है। केवल इसलिए कि एक नागरिक उपचार उपलब्ध है, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। लेकिन जैसा कि ऊपर 21 देखा गया है, इस मामले में, जहां तक इस अपीलकर्ता का संबंध है, आरोप-पत्र के साथ पठित प्राथमिकी में कोई आपराधिक कृत्य नहीं किया गया है। दूसरे आरोपी राजन कुमार की मौत हो चुकी है।

41. अपने नवीनतम फैसले में, सैयद यासीर इब्राहिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2022 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 271 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार राय दी है:

"9. जहां तक अपीलकर्ता का संबंध है, जांच पूरी होने के बाद धारा 420 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के किसी भी तत्व का अस्तित्व नहीं पाया गया है। न तो प्राथमिकी और न ही चार्जशीट में धारा 420 के तहत अंतर्निहित आवश्यकताओं का कोई संदर्भ है। इस पृष्ठभूमि में, अपीलकर्ता के खिलाफ अभियोजन को जारी रखना उस प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा जहां एक दीवानी विवाद को आपराधिक कृत्य का रंग देने की मांग की जाती है।

42. मितेश कुमार (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय, जिस पर अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा बहुत अधिक भरोसा किया गया है, ने निम्नानुसार आयोजित किया है:

"पक्षों की प्रासंगिक दलीलों और इस अदालत के फैसलों पर विचार करने के बाद, हमारा विचार है कि अपीलकर्ताओं के खिलाफ बेईमानी या धोखाधड़ी का इरादा नहीं बनाया गया है। हालांकि तत्काल विवाद में निश्चित रूप से उन मुद्दों का निर्धारण शामिल है जो दीवानी प्रकृति के हैं, जिसके अनुसार प्रतिवादी नंबर 2 ने कई दीवानी सूट भी स्थापित किए हैं, कोई भी किसी भी तरह से विवाद को एक हद तक नहीं बढ़ा सकता है, ताकि इसे आपराधिक रंग प्रदान किया जा सके। जैसा कि इस न्यायालय

द्वारा मेसर्स इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम मैसर्स एनईपीसी इंडिया लिमिटेड और अन्य 7 के मामले में दिए गए एक अवलोकन के माध्यम से निम्नानुसार जोर दिया गया है:

"14. जबकि वैध कारण या शिकायत वाले किसी भी व्यक्ति को आपराधिक कानून में उपलब्ध उपायों की मांग करने से रोका नहीं जाना चाहिए, एक शिकायतकर्ता जो अभियोजन शुरू करता है या जारी रहता है, पूरी तरह से अवगत होने के कारण कि आपराधिक कार्यवाही अनुचित है और उसका उपाय केवल नागरिक कानून में निहित है, उसे ऐसी गलत आपराधिक कार्यवाही के अंत में खुद को कानून के अनुसार जवाबदेह बनाया जाना चाहिए। (महत्त्व सन्निविष्ट)

43. इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी का मामला भजन लाल (उपरोक्त) और परबतबाही अहीर (उपरोक्त) में उल्लिखित किसी भी श्रेणी के अंतर्गत आता है? क्या यह एक ऐसा मामला है जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, अभियुक्त के खिलाफ धारा 420, 467, 468, 471, 504, 506, 447 भन्द०वि० के तहत मामला नहीं बनता है? प्रश्न के निर्धारण के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपित अपराधों की प्रकृति, अपराधों के तत्व और प्राथमिकी शिकायत में किए गए कथनों को नोट करना प्रासंगिक हो जाता है।

44. अदालत को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपराधिक अभियोजन का उपयोग उत्पीड़न के साधन के रूप में या निजी प्रतिशोध लेने के लिए या अभियुक्त पर दबाव डालने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ नहीं किया जाता है। उपरोक्त मामलों के विश्लेषण पर, इस न्यायालय की राय है कि एक अनम्य नियम निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है जो अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के अभ्यास को नियंत्रित करेगा। धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालयों के निहित अधिकार क्षेत्र को हालांकि व्यापक दायरे के साथ संयम से, सावधानी से और एहतियात के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए और केवल तभी जब यह विशेष रूप से कानून में और उपरोक्त मामलों में निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित हो।

45. प्राथमिकी की गहन जांच से, 2022 के केस नंबर 517 (राज्य बनाम नासिर खान) में प्रस्तुत आरोप-पत्र, जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सबूतों सहित, सम्मन आदेश दिनांक 16 जुलाई, 2022, शिकायत और बयान, धारा 200 और 202 द०प्र०स० के तहत निचली अदालत द्वारा रेकॉर्ड किए गए, प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर दीवानी सूट की वाद, इस न्यायालय का विचार है कि सभी मामलों में प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा लगाए गए आरोप लगभग समान हैं और विवादित भूमि की पावर ऑफ अटॉर्नी बनाने के लिए जालसाजी करने में एक ही मुद्दे के संबंध में हैं। सभी चार मामले, जिनमें प्रतिपक्षी नंबर-2 द्वारा प्राथमिकी दर्ज करके और धारा 482

द०प्र०स० के तहत दोनों आवेदनों को जन्म देने वाली शिकायत करके शुरू किए गए वर्तमान मामले शामिल हैं, न केवल दुर्भावनापूर्ण प्रतीत होते हैं, बल्कि प्रकृति में दीवानी भी हैं। सबसे पहले प्रतिपक्षी नंबर-2 ने 2019 का मूल मुकदमा संख्या 72 (निहाल-उद्दीन और अन्य बनाम मो. (ख) माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी के पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा की शक्ति और उक्त भूमि पर स्थायी निषेधाज्ञा के लिए विवाद में 14 बीघा भूमि के संबंध में निष्पादित विभिन्न बिक्री विलेखों पर प्रश्न उठाते हुए और उसके बाद उसने दबाव डालने और उसे परेशान करने के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध एक-एक करके आपराधिक मामले दायर किए।

46. इस न्यायालय का विचार है कि किसी भी विलेख जैसे वसीयत-विलेख, पावर ऑफ अटॉर्नी, बिक्री-विलेख आदि की शुद्धता या अन्यथा, जो एक सार्वजनिक सरकारी प्राधिकरण द्वारा पंजीकृत है, को एक सिविल न्यायाधीश द्वारा मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर पक्षों के नेतृत्व में अधिक उचित रूप से न्यायनिर्णयित किया जा सकता है और जब तक कि यह तय नहीं किया जाता है कि यह झूठा और मनगढ़ंत विलेख है, इस तरह का काम करने के लिए अपराध की तस्वीर नहीं आ सकती है। वर्तमान मामले में ऐसा चरण अभी आना बाकी है।

47. ऊपर उल्लिखित सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनों की गहन जांच और इसकी चर्चा और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, इस न्यायालय की राय है कि

दोनों मामलों में अपीलार्थी को जिन अपराधों के लिए बुलाया गया है, उनमें से कोई भी शिकायत प्राथमिकी और रिकॉर्ड पर सामग्री से नहीं बनता है। इस न्यायालय ने आगे पाया कि ऐसे आपराधिक मामलों में अपीलार्थी को फंसाना शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले ही तय किया गया है कि धारा 482 को यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए डिज़ाइन किया गया है कि आपराधिक कार्यवाही को उत्पीड़न के हथियार में बदलने की अनुमति नहीं है, यह न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए दोनों आवेदनों की अनुमति देता है।

48. फलतः, 2021 के केस क्राइम नंबर 130 से उत्पन्न केस नंबर 517 वर्ष 2022 (राज्य बनाम नासिर खान) की पूरी कार्यवाही के साथ-साथ धारा 420, 467, 468, 471, 504, 506, 447 भ०८०वि०, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला रामपुर के तहत अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 1, रामपुर की अदालत में लंबित दोनों आवेदनों के साथ-साथ पूरी कार्यवाही में दिए गए सम्मन आदेश, और साथ ही अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 1, रामपुर की अदालत में लंबित धारा 417, 452, 323 और 504 भन्द०वि०, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला रामपुर के तहत शिकायत केस संख्या 2537 वर्ष 2022 (निहालुद्दीन

बनाम नासिर खान और अन्य) की पूरी कार्यवाही रद्द की जाती है।

नहीं दी जानी चाहिए - इसलिए याचिका स्वीकार्य नहीं है। (पैरा 1 से 9)

48.? लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

आवेदन निरस्त किया जाता है। (ई-6)

(2023) 4 ILRA 353

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 2903/2023

सुनील कुमार

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अनिल कुमार मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

उद्धृत वाद सूची:

एच.पी. इन एचआईएम एडवांसेज एंड सेविंग्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम रविंदर कुमार गुप्ता (2002) सी.आर.एल.जे. 4741

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार मिश्रा, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. यह याचिका शिकायत वाद संख्या-6600/2016 (सुनील कुमार बनाम अमित कुमार), धारा 138 एन.आई.अधिनियम, पुलिस स्टेशन-लालकुर्ती, जिला मेरठ में अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या 6, मेरठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.11.2022 को निरस्त करने के लिए योजित की गई है।

3. धारा 138 एन.आई.अधिनियम के अंतर्गत उपरोक्त आपराधिक शिकायत मामले में जब आवेदक-शिकायतकर्ता 10.11.2022 को उपस्थित नहीं हुआ, तो ट्रायल कोर्ट ने इस तथ्य पर विचार करते हुए कि शिकायत 02.09.2016 से लंबित थी, आरोपी का बयान 08.10.2021 को दर्ज किया, लेकिन तब से

ए. दंड विधि - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881-धारा 138- पोषणीयता - परिवादी के न्यायालय में उपस्थित न होने पर परिवाद निरस्त कर दी गई, तथा अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया-यदि धारा 256 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दोषमुक्ति का आदेश पारित किया गया है, तो परिवादी के पास अपील के लिए विशेष अनुमति प्रदान करने के पश्चात उच्च न्यायालय में दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील दायर करने का उपाय है-जहां संहिता के अंतर्गत अपील का उपाय है तथा कोई अपील नहीं की जाती है, वहां अपील करने वाले पक्ष द्वारा योजित पुनरीक्षण के माध्यम से कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी-यदि अपील का उपाय उपलब्ध है, तो याचिकाकर्ता को धारा 482 सीआरपीसी के तहत अंतर्निहित अधिकारिता का उपयोग करने की अनुमति

शिकायतकर्ता ने सबूत के तौर पर कोई हलफनामा दायर नहीं किया था और पिछली कई तारीखों से अदालत में उपस्थित नहीं हो रहा था, यहां तक कि उसे अंतिम अवसर भी प्रदान किया गया था, तब भी वह न तो उपस्थित हुआ और न ही कोई आवेदन दिया, ट्रायल कोर्ट ने धारा 256 सीआरपीसी के अंतर्गत शिकायत को खारिज कर दिया और आरोपी को बरी कर दिया।

4. व्यथित होने पर, धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत यह आवेदन योजित किया गया है।

5. विद्वान एजीए ने आवेदन की पोषणीयता के संबंध में आपत्ति उठाई।

6. इस संबंध में, प्रासंगिक न्यायिक उद्धरण की खोज के दौरान यह न्यायालय **हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के एचआईएम एडवांस एंड सेविंग्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम रविन्द्र कुमार गुप्ता, 2002 सी.आर.एल.जे. 4741** पाता है, जिसमें समान तथ्य शामिल थे। संदर्भ के लिए उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"2. निर्विवाद तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी के विरुद्ध शिमला के विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत में परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अंतर्गत शिकायत दर्ज कराई थी। शिकायत को शिकायतकर्ता के साक्ष्य के लिए 18.6.2001 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया था। हालांकि, शिकायतकर्ता ने छूट के लिए आवेदन किया, लेकिन पक्षों को सुनने के बाद, अदालत ने छूट

से इनकार कर दिया और आवेदन को खारिज कर दिया। इस प्रकार, अदालत ने पाया कि शिकायतकर्ता उपस्थित नहीं है और न ही उसने गवाहों को बुलाने के लिए कदम उठाए हैं, हालांकि उसे पहले ही तीन अवसर दिए जा चुके थे, लेकिन वह गवाहों को बुलाने के लिए कदम उठाने में विफल रहा है और प्रतिवादी को संहिता की धारा 256 के अंतर्गत बरी कर दिया।

4. संहिता की धारा 256 स्पष्ट रूप से यह प्रावधानित करती है कि शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त की उपस्थिति के लिए नियत दिन या उसके बाद किसी भी दिन, जिस पर सुनवाई हो स्थगित की गई हो, उपस्थित होने में विफल रहने पर मजिस्ट्रेट, संहिता में किसी बात के होते हुए भी, अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा, जब तक कि किसी कारणवश वह यह न सोचे कि मामले की सुनवाई वर्तमान समय में किसी अन्य तारीख के लिए निर्धारित है, प्रतिवादी को दोषमुक्त करने वाला आक्षेपित आदेश विद्वान परीक्षण मजिस्ट्रेट द्वारा शिकायतकर्ता की अनुपस्थिति के कारण पारित किया गया है, जिसे सुनवाई के लिए नियत तारीख पर साक्ष्य प्रस्तुत करना था। इसलिए, संहिता की धारा 256 के प्रावधानों के आधार पर, सभी आशय और प्रयोजनों के लिए आक्षेपित आदेश दोषमुक्ति का आदेश है।

5. संहिता की धारा 378 की उपधारा (4) में यह प्रावधान है कि शिकायत पर संस्थित किसी मामले में पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध, शिकायतकर्ता दोषमुक्ति के आदेश से अपील करने की विशेष अनुमति प्राप्त होने के पश्चात उच्च न्यायालय में अपील प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार, किसी शिकायतकर्ता को

दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील करने का अधिकार है।

6. संहिता की धारा 410 की उपधारा (1) में यह प्रावधान है कि जहां संहिता के अधीन कोई अपील प्रावधानित है परंतु कोई अपील नहीं की जाती है, वहां अपील करने वाले पक्षकार के कहने पर पुनरीक्षण के माध्यम से कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।

8. चूंकि याचिकाकर्ता के पास बरी करने के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध अपील करने का अधिकार था, इसलिए, विशिष्ट शिकायत होने के कारण, याचिकाकर्ता को संहिता की धारा 482 के अंतर्गत इस न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का आह्वान करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।"

7. उद्धृत मामले में शिकायतकर्ता ने धारा 138 एन.आई.अधिनियम के अंतर्गत शिकायत दर्ज की थी और जब वह अदालत के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ, तो आरोपी को बरी कर दिया गया, जिसे शिकायतकर्ता ने आपराधिक पुनरीक्षण के माध्यम से उच्च न्यायालय में और धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत भी चुनौती दी थी। हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि यदि धारा 256 सीआरपीसी के अंतर्गत बरी करने का आदेश पारित किया गया है, तो शिकायतकर्ता के पास अपील के लिए विशेष अनुमति मिलने के बाद उच्च न्यायालय में दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील दायर करने का अधिकार है। न्यायालय ने धारा 410 (1) सीआरपीसी का भी उल्लेख किया था कि जहां संहिता के अंतर्गत अपील प्रावधानित तो होती है परंतु कोई अपील नहीं जाती है, तो अपील का अधिकार उपलब्ध

पक्ष के द्वारा पुनरीक्षण के माध्यम से कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।

8. क्या धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत याचिका दायर की जा सकती है, इस पर भी न्यायालय द्वारा चर्चा की गई है कि यदि अपील का अधिकार उपलब्ध है, तो याचिकाकर्ता को धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत उच्च न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का आह्वान करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

9. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, वर्तमान याचिका पोषणीय नहीं है और तदनुसार याचिकाकर्ता के लिए उपलब्ध किसी भी अन्य कानूनी उपाय पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना निरस्त की जाती है।

(2023) 4 ILRA 355

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,
आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 3473/2023
रिंकू सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य .. विपक्षीगण
अधिवक्ता आवेदक: श्री कृपा कांत पांडे, श्री
राजीव लोचन शुक्ला

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

क. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता,
1973-धारा 482 व 91- नारकोटिक्स ड्रग्स एंड
साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985-धारा
18/20- आवेदक को गिरफ्तार कर रिमांड की

अनुमति देते हुए न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया-विचारणीय न्यायालय ने पुलिस अधीक्षक को प्रथम सूचना रिपोर्ट की वास्तविकता व सत्यता के संबंध में जांच करने के निर्देश दिए-वर्तमान आवेदक न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और आरोप तय करने से पहले जांच रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सीआरपीसी की धारा 91 के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया - विचारणीय न्यायालय ने यह कहते हुए उसे निरस्त कर दिया कि सीआरपीसी की धारा 91 के तहत आवेदन को अनुमति देने का मतलब जांच/परीक्षण में हस्तक्षेप करना होगा, सीआरपीसी की धारा 91 अभियुक्त को अपने बचाव को सिद्ध करने के लिए दस्तावेज पेश करने का कोई अधिकार नहीं देता है-यह स्थापित कानून है कि समन या आरोप तय करने के चरण में, अभियुक्त आमतौर पर धारा 91 सीआरपीसी का आह्वान नहीं कर सकता है, हालांकि न्यायालय न्याय प्रदान करने और कानून को बनाए रखने के दायित्व के तहत है, यदि किसी वाद में न्यायहित की आवश्यकता होती है, तो उसे अपनी शक्ति का प्रयोग करने से वंचित नहीं किया जाता है, भले ही अभियुक्त को धारा 91 सीआरपीसी लागू करने का कोई अधिकार न हो और न्यायालय संतुष्ट हो कि विवेचक के पास उपलब्ध सामग्री, जो आरोप पत्र का हिस्सा नहीं है, समन या आरोप तय करने के मुद्दे पर महत्वपूर्ण असर डालती है, यह हमेशा जांचकर्ता / अभियोजक / ट्रायल कोर्ट को वाद के उचित न्यायनिर्णयन के लिए संबंधित अदालत के समक्ष इसे पेश करने का निर्देश दे सकता है-जब संज्ञान लेने वाला प्रारंभिक आदेश दूषित होता है, इसलिए आवेदक के विरुद्ध

आरोप तय करने वाले परिणामी आदेश को आपस्त किया जाना चाहिए -यह स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि यदि प्रारंभिक कार्यवाही कानून के अनुरूप नहीं है, तो सभी बाद की और परिणामी कार्यवाहियां इस कारण से विफल हो जाएंगी कि अवैधता आदेश के मूल में है। (पैरा 1 से 20)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. नित्य धर्मानंद @ के. लेनिन बनाम गोपाल शीलम रेड्डी (2018) 102 एससीसी 635
2. पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर और अन्या। (2011) 14 एससीसी 770
3. मंगल प्रसाद तमोली बनाम नरवदेश्वर मिश्रा (2005) 3 एससीसी 422

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान वकील श्री राजीव लोचन शुक्ला और राज्य के लिए विद्वान ए.शासकीय अधिवक्ता को सुना।
2. वर्तमान मामला विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, द्वितीय, जिला- हापुड़ द्वारा विशेष सत्र परीक्षण संख्या 159 वर्ष 14 (नया नंबर 78 वर्ष 2015) में पारित आदेश दिनांक 03.12.2022 को रद्द करते हुए दायर किया गया है, जिसके माध्यम से धारा 91 द.प्र.स के तहत आवेदक के आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 03.07.2014 को आवेदक और सह-आरोपी गौरव त्यागी के खिलाफ विरोधी पक्ष नंबर 2, एसआई संजय त्यागी द्वारा एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसे पुलिस स्टेशन पिलखुआ, जिला- हापुड़ में एन.डी.पी.एस अधिनियम की धारा 18/20 के तहत वर्ष 2014 के केस क्राइम नंबर 297 के रूप में दर्ज किया गया था। आवेदक को गिरफ्तार कर लिया गया था, जिसके बाद उसे दिनांक 04.07.2014 को पुलिस हिरासत में संबंधित न्यायालय के समक्ष पेश किया गया और पुलिस/जांच अधिकारी द्वारा रिमांड की मांग की गई और नीचे के विद्वान न्यायालय ने दिनांक 04.07.2014 के आदेश के तहत आवेदक को 18.07.2014 तक रिमांड पर भेजने की अनुमति दी। संबंधित न्यायालय ने रिमांड की अनुमति देते हुए शपथ पर वर्तमान आवेदक का बयान दर्ज किया है। वर्तमान आवेदक के उपरोक्त प्राकृतिक और भरोसेमंद बयान के साथ-साथ धारा 58 एनडीपीएस अधिनियम के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, निचली अदालत ने पुलिस अधीक्षक, हापुड़ को दिनांक 03.07.2014 की प्रथम सूचना रिपोर्ट की वास्तविकता और शुद्धता के बारे में जांच करने का निर्देश दिया और आगे निर्देश दिया कि उक्त जांच रिपोर्ट को नीचे के विद्वान न्यायालय के समक्ष रखा जाए। जांच अधिकारी को दिनांक 05.07.2014 के आदेश द्वारा पुलिस अधीक्षक, हापुड़, डीआईजी, मेरठ रैंज, मेरठ को उपरोक्त आदेश की एक प्रति देने और संबंधित न्यायालय के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। डीआईजी, मेरठ को पूर्वोक्त आदेश की एक प्रति इस टिप्पणी के साथ देने का

निर्देश दिया गया था कि वह पुलिस अधीक्षक, हापुड़ को संबंधित न्यायालय के समक्ष जांच रिपोर्ट रखने का निर्देश दे सकते हैं और जांच का अधीक्षण भी करेंगे।

4. विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.07.2014 के अनुसरण में पुलिस अधीक्षक, हापुड़ ने दिनांक 05.07.2014 के विद्वान न्यायालय के समक्ष पत्र प्रस्तुत किया, उनके द्वारा दिनांक 04.07.2014 के आदेश के अनुसार पूर्वोक्त जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक सप्ताह का और समय मांगा गया था। पूर्वोक्त आवेदन पर, नीचे के विद्वान न्यायालय ने दिनांक 07.07.2014 के आदेश के तहत निर्देश दिया कि उक्त जांच रिपोर्ट 17.07.2014 से पहले नीचे के विद्वान न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती है।

5. जांच पूरी करने के बाद, 30.08.2014 को वर्तमान आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और तदनुसार, सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद के विद्वान न्यायालय ने दिनांक 13.10.2014 के आदेश के तहत उपरोक्त आरोप पत्र पर संज्ञान लिया और आवेदक को वर्ष 2014 के विशेष सत्र परीक्षण संख्या 159 (राज्य बनाम रिंकू) के रूप में मामले को दर्ज करते हुए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया।

6. इस बीच, माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आलोक में जिला न्यायाधीश गाजियाबाद के आदेश दिनांक 21.11.2015 द्वारा दिनांक 23.11.2015 को जिला

न्यायाधीश, गाजियाबाद के न्यायालय से वर्तमान सत्र प्रकरण को जिला हापुड़ में स्थानांतरित कर दिया गया और जिला न्यायालय हापुड़ को प्राप्त हुआ। इसके बाद, उपरोक्त मामला सत्र न्यायाधीश, हापुड़ के समक्ष 2015 के विशेष सत्र परीक्षण संख्या 78 (राज्य बनाम रिंकू) के रूप में दर्ज किया गया था।

7. वर्तमान आवेदक पूर्वोक्त न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और 25.08.2017 को द.प्र.स की धारा 91 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसके तहत उसने ने प्रार्थना की कि दिनांक 04.07.2014 के आदेश के तहत अदालत द्वारा निर्देशित जांच रिपोर्ट पर आरोप तय करने से पहले विचार किया जा सकता है। उपरोक्त आवेदन दिनांक 03.12.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया है और 02.03.2023 को आरोप तय किए गए हैं, इसलिए, वर्तमान आवेदन दायर किया गया है।

8. आवेदक के विद्वान वकील प्रस्तुत करते हैं कि यदि न्यायालय संतुष्ट है कि वास्तविक गुणवत्ता की सामग्री को अन्वेषक/अभियोजक द्वारा रोक दिया गया है, तो वह उसी पर समन या भरोसा कर सकता है, भले ही, ऐसा दस्तावेज चार्जशीट का हिस्सा न हो, इसलिए, न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं करके अवैधता की है, हालांकि, जांच रिपोर्ट, जो मामले के उचित निर्णय के लिए महत्वपूर्ण थी, संबंधित न्यायालय के समक्ष नहीं रखी गई थी। अदालत को मामले का संज्ञान लेने के लिए आगे नहीं बढ़ना चाहिए था। अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, आवेदक के

विद्वान वकील ने नित्या धर्मानंद @ के लेनिन बनाम गोपाल शीलम रेड्डी के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया है, जिसे **निध्या भक्तानंद के नाम से भी जाना जाता है**, जिसे 2018 (102) एसीसी 635 में रिपोर्ट किया गया था।

9. वह आगे प्रस्तुत करता है कि द.प्र.स की धारा 91 के अनुसार, मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक और वांछनीय दस्तावेजों को प्रस्तुत किए गए आरोप पत्र पर संज्ञान लेने से पहले संबंधित न्यायालय के समक्ष रखा जाना था और वर्तमान मामले में जब इस तरह की जांच रिपोर्ट को दिनांक 04.07.2014 के आदेश द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष रखने का निर्देश दिया गया था, इसलिए, इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था।

10. आवेदक के लिए विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत किए गए सबमिशन का विरोध करते हुए विद्वान ए.शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि द.प्र.स की धारा 91 अभियुक्त को अपना बचाव साबित करने के लिए दस्तावेजों को पेश करने का कोई अधिकार नहीं देती है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि धारा 91 द.प्र.स के तहत आवेदन की अनुमति देने का मतलब जांच/परीक्षण में हस्तक्षेप करना होगा।

11. पक्षकारों के लिए विद्वान वकील द्वारा किए गए कानूनी सबमिशन की सराहना करने से पहले, द.प्र.स की धारा 91 को रखना उचित होगा, जो इस प्रकार है:

"द.प्र.स की धारा 91 दस्तावेज या अन्य बात पेश करने के लिए समन करती है: - (1) जब कभी कोई न्यायालय या किसी पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी यह समझता है कि इस संहिता के अधीन किसी जाँच पड़ताल, पूछ-ताछ, विचारण या अन्य कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए ऐसे न्यायालय या अधिकारी द्वारा या उसके समक्ष कोई दस्तावेज या अन्य वस्तु प्रस्तुत करना आवश्यक या वांछनीय है, ऐसा न्यायालय उस व्यक्ति को, जिसके कब्जे या शक्ति में ऐसा दस्तावेज या वस्तु माना जाता है, सम्मन या आदेश में वर्णित समय और स्थान पर उसे उपस्थित होने और प्रस्तुत करने या उसे प्रस्तुत करने की अपेक्षा करते हुए सम्मन या आदेश जारी कर सकेगा। (2) इस धारा के अधीन किसी ऐसे व्यक्ति से अपेक्षा की गई है कि वह केवल कोई दस्तावेज या अन्य वस्तु प्रस्तुत करे, यह समझा जाएगा कि उसने माँग का अनुपालन किया है यदि वह ऐसे दस्तावेज या वस्तु को प्रस्तुत करने के लिए व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के बजाय प्रस्तुत करवाता है। (3) इस धारा की कोई बात निम्नलिखित नहीं समझी जाएगी-
(क) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872) की धारा 123 और 124 या बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम, 1891 (1891 का 13) या

(ख) किसी पत्र, पोस्टकार्ड, टेलीग्राम या अन्य दस्तावेज या डाक या तार प्राधिकारी की अभिरक्षा में किसी पार्सल या वस्तु को लागू करने के लिए।

12. इस न्यायालय को लगता है कि दिनांक 04.07.2014 के आदेश के तहत विचारण

न्यायालय ने जांच करने का निर्देश दिया और उसे संबंधित न्यायालय के समक्ष रखा जाए, हालांकि, इस तथ्य को महसूस किए बिना कि न्यायालय ने पूर्वोक्त आदेश पारित किया था ताकि संतुष्ट हो सके कि वास्तविकता का पता लगाने और एक निर्दोष व्यक्ति को दंडित होने से बचाने के लिए एक जांच की आवश्यकता थी, जांच रिपोर्ट वास्तविक गुणवत्ता की सामग्री थी, जिसे संज्ञान लेने से पहले संबंधित न्यायालय के समक्ष रखा जाना था।

13. द.प्र.स की धारा 91 में यह भी अपेक्षा की गई है कि यदि कोई न्यायालय या पुलिस स्टेशन का प्रभारी कोई अधिकारी यह समझता है कि इस संहिता के तहत किसी जांच, पूछताछ, विचारण या किसी अन्य कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए ऐसे न्यायालय या अधिकारी द्वारा या उसके समक्ष कोई 4 दस्तावेज या अन्य चीज पेश करना आवश्यक और वांछनीय है, ऐसे न्यायालय से अपेक्षित है कि वह उस व्यक्ति को सम्मन या ऐसे अधिकारी को लिखित आदेश जारी करे, जिसके कब्जे या शक्ति में ऐसा दस्तावेज या वस्तु माना जाता है, जिसमें उसे अभियुक्त को बुलाने से पहले उपस्थित होने और उसे प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है।

14. वर्तमान मामले में, यह विचारण न्यायालय के आदेश से जांच करने का निर्देश दिया गया था और रिपोर्ट को विचारण न्यायालय के समक्ष रखा जाना था और धारा 91 द.प्र.स के तहत आवेदक द्वारा दायर आवेदन के माध्यम से इंगित किए जाने के बाद भी, न्यायालय ने उपरोक्त तथ्य की

अनदेखी करते हुए पूर्वोक्त आवेदन को अस्वीकार करने में अवैधता की है।

15. यह स्थापित कानून है कि सम्मन या आरोप तय करने के चरण में, अभियुक्त आमतौर पर द.प्र.स की धारा 91 का उपयोग नहीं कर सकता है। हालांकि, न्यायालय न्याय प्रदान करने और कानून को बनाए रखने के दायित्व के तहत है, अपनी शक्ति का प्रयोग करने से वंचित नहीं है, यदि किसी दिए गए मामले में न्याय के हित की आवश्यकता है, भले ही अभियुक्त को धारा 91 को लागू करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता है और न्यायालय संतुष्ट है कि अन्वेषक के पास उपलब्ध सामग्री, आरोप पत्र का हिस्सा नहीं बनाया गया है, जिसका सम्मन या आरोप तय करने के मुद्दे पर महत्वपूर्ण असर पड़ता है, यह हमेशा जांचकर्ता/अभियोजक/ट्रायल कोर्ट को मामले के उचित निर्णय के लिए संबंधित न्यायालय के समक्ष इसे रखने का निर्देश दे सकता है।

16. यह न्यायालय यह भी महसूस करता है कि जब संज्ञान लेने वाला प्रारंभिक आदेश खराब होता है, इसलिए, आवेदक के खिलाफ आरोप तय करने के परिणामी आदेश को अलग रखा जाना चाहिए।

17. यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि यदि प्रारंभिक कार्रवाई कानून के अनुरूप नहीं है, तो सभी बाद की और परिणामी कार्यवाही इस कारण से गिर जाएगी कि अवैधता आदेश की जड़ पर हमला करती है। उपरोक्त को शीर्ष न्यायालय ने पंजाब के राज्य 5 बनाम दविंदर

पाल सिंह भुल्लर और अन्य (2011) 14 एससीसी 770 में रिपोर्ट किए गए मामले में माना है।

18. इसी तरह, मंगल प्रसाद तमोली बनाम नरवदेश्वर मिश्रा के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने (2005) 3 एससीसी 422 में रिपोर्ट किया है, माना है कि यदि प्रारंभिक चरण में एक आदेश कानून में खराब है, तो आगे की सभी कार्यवाही, इसके परिणामस्वरूप, नॉन एस्ट होगी और इसे आवश्यक रूप से अलग रखा जाना चाहिए।

19. उपरोक्त चर्चा के मददेनजर, आक्षेपित आदेश दिनांक 03.12.2022 और परिणामी आदेश दिनांक 02.03.2022 आवेदक के खिलाफ आरोप तय करना, कानूनी रूप से कायम नहीं रखा जा सकता है और इसके द्वारा रद्द किया जाता है। मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक न्यायालय, द्वितीय, जिला हापुड़ को वापस भेज दिया जाता है। मामले का फैसला करते समय, वह द.प्र.स की धारा 91 के प्रासंगिक प्रावधानों और इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर, यदि कोई कानूनी बाधा नहीं है, तो एक तर्कसंगत और मौखिक आदेश पारित करेगा।

20. पूर्वोक्त अवलोकन और निर्देश के साथ, द.प्र.स की धारा 482 के तहत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

21. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश को संबंधित न्यायालय को तत्काल सूचित करे।

(2023) 4 ILRA 359

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 5260/2023

राजेश कुमार गिरी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री दीपक श्रीवास्तव

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

क. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 354-ए, 504, 506 एवं 7/8 - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012-सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करना- जवाबी वाद-वादी ने आवेदक के विरुद्ध छह वर्ष बाद एफआईआर दर्ज कराई, क्योंकि आवेदक ने वादी के विरुद्ध धन के गबन के लिए जनहित याचिका दायर की थी, जब वह गांव का प्रधान था - यह असंभव है कि पहले व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के साथ छह वर्ष से अधिक समय तक दुश्मनी रखी हो - इसके अतिरिक्त, एफआईआर दर्ज करने में विलंब उस वाद में प्रासंगिक नहीं है, जहां पीड़ित की मानहानि हुई हो, जो कथित तौर पर 13 साल का है - आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने के लिए धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी होता है, जब एफआईआर या

चार्जशीट में लगाए गए आरोप कथित अपराध के तत्व नहीं बनाते हैं - उच्च न्यायालय द्वारा कोई मिनी ट्रायल नहीं चलाया जा सकता है - जांच और एकत्र की गई सामग्री के आधार पर आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार प्रतीत होता है। (पैरा 1 से 26)

आवेदन निरस्त किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. मेसर्स आयशर ट्रेक्टर लिमिटेड एवं अन्य बनाम हरिहर सिंह एवं अन्य (2009) 1 जेआईसी 245 एससी
2. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य (1992) अनुपूरक 1 एससीसी 335
3. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य (1960) एआईआर एससी 866
4. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (1992) एससीसी (सीआर.) 426
5. बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा (1992) एससीसी (सीआर.) 192
6. झंजू फार्मास्यूटिकल्स वक्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सराफुल हक और अन्य (2005) एससीसी (सीआर) 283, पैरा 10
7. मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2019) 0 सुप्रीम एससी 454
8. नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम ए.पी. राज्य एवं अन्य (2020) 0 सुप्रीम एससी 45
9. राजीव कौरव बनाम बालासाहब एवं अन्य (2020) 0 सुप्रीम एससी 143
10. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अखिल शारदा एवं अन्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 820

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद द्वारा प्रदत्त)

1. द.प्र.स की धारा 482 के तहत यह आवेदन आवेदक द्वारा वर्ष 2022 की चार्जशीट संख्या 40 दिनांक 28 सितंबर, 2022, संज्ञान लेने के आदेश दिनांक 15 नवंबर, 2022 के साथ-साथ 2022 के विशेष परीक्षण संख्या 1191 (राज्य बनाम राजेश कुमार गिरि), 2021 के केस क्राइम नंबर 166 से उत्पन्न होकर धारा 354-ए, 504, 506 भ.द.स के तहत और साथ ही धारा 7/8 पोस्को एक्ट के तहत भी, पुलिस स्टेशन-खाखेरू, जिला-फतेहपुर, अतिरिक्त सत्र/विशेष न्यायाधीश (पोस्को एक्ट), फतेहपुर की अदालत में लंबित है, की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

2. आवेदक के विद्वान वकील श्री दीपक श्रीवास्तव और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

आवेदक का मामला

3. आवेदक के पिता, अर्थात्, भोली गिरि अपने इलाके में एक किसान और सामाजिक व्यक्ति हैं। शिकायतकर्ता 2011 से 2015 के बीच की अवधि के लिए आवेदक के गांव का प्रधान था। जब शिकायतकर्ता ग्राम प्रधान था तो उसने गांव के विकास कार्य में सार्वजनिक धन का गबन किया, जिसके खिलाफ आवेदक के पिता भोली गिरि ने जिले के प्रशासनिक प्राधिकरण के समक्ष उसके खिलाफ शिकायत की है। जब उक्त शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की गई है, तो भोली गिरि ने 2015 की पीआईएल

संख्या 29962 के साथ इस न्यायालय के समक्ष एक जनहित याचिका दायर की, जिसमें इस न्यायालय ने 21.05.2015 को भोली गिरि को जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर के समक्ष एक आवेदन करने का निर्देश दिया, जिसे बदले में कानून के अनुसार इस तरह के आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था। इस न्यायालय के उपरोक्त आदेश के अनुसरण में भोली गिरि ने जिला मजिस्ट्रेट फतेहपुर के समक्ष इसके अनुपालन के लिए एक आवेदन दायर किया, लेकिन शिकायतकर्ता/विरोधी पक्ष, अर्थात् धर्म सिंह पाल की राजनीतिक शक्ति के कारण कोई कार्रवाई नहीं की गई है। 29 जून, 2015 को भोली गिरि ने प्रधान के पद पर आसीन शिकायतकर्ता के खिलाफ गांव में विकास कार्य के तहत संबंधित अदालत के समक्ष धारा 156

(3) द.प्र.स के तहत एक आवेदन दायर किया। शिकायतकर्ता ने आवेदक के परिवार के साथ दुश्मनी रखी थी क्योंकि वह 2015 के चुनाव में हार गया था और भोली गिरि ने प्रधान के रूप में उसकी उम्मीदवारी का कड़ा विरोध किया था और उसके प्रतिद्वंद्वी का समर्थन किया था।

4. शिकायतकर्ता स्वयं अपने साथियों के साथ बदला लेने के लिए 08.07.2021 को आवेदक के घर गया, जब उसे कोई पुरुष व्यक्ति नहीं मिला तो उसने आवेदक की बहन को जबरदस्ती निर्वस्त्र कर दिया। अपनी बेटी के साथ इस तरह की घटना को जानने के बाद, आवेदक के पिता उसी दिन यानी 8 जुलाई, 2021 को शिकायतकर्ता और उसके साथियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करने के लिए थाना गए लेकिन पुलिस ने रिपोर्ट दर्ज नहीं की है। उसके

बाद भोली गिरी ने 16 जुलाई, 2021 को पंजीकृत डाक के माध्यम से उच्च पुलिस अधिकारियों के समक्ष आवेदन दिया, जिस पर फिर से कुछ नहीं किया गया। एक ओर भोली गिरि की रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई है, जबकि दूसरी ओर वर्तमान ग्राम प्रधान, अर्थात् लाल @ दुर्गा पासवान के दबाव में, शिकायतकर्ता की प्राथमिकी आवेदक यानी भोली गिरी के बेटे के खिलाफ झूठे और तुच्छ आरोपों के साथ दर्ज की गई है, क्योंकि वह प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों से संबंधित है।

5. प्राथमिकी में सामने आया संस्करण यह है कि 8 जुलाई, 2021 को शाम 06:00 बजे (शाम) जब शिकायतकर्ता की बेटा (संक्षेप में "पीड़ित") लगभग 13 साल की थी, खेत से भैंसों के साथ अपने घर लौट रही थी, तो रास्ते में, उसने उसका हाथ पकड़ लिया और बुरी तरह से बात करना शुरू कर दिया और बुरे इरादों से उसके साथ छेड़छाड़ की। जब उसने विरोध किया तो उसने यह कहकर उसे गाली दी कि उसने उससे बात क्यों नहीं की। जब पीड़िता अपने घर आई और शिकायतकर्ता और उसकी पत्नी को पूरी घटना के बारे में बताया, तो वह अपनी पत्नी के साथ आवेदक के घर गया, जहां आवेदक ने भी उन्हें गाली दी और धमकी दी।

6. प्रारंभ में पुलिस ने जानबूझकर पॉक्सो एक्ट की गलत धाराओं में प्राथमिकी दर्ज की है, लेकिन अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो एक्ट), फतेहपुर द्वारा

नोटिस जारी किए जाने पर अन्य आरोपित धाराओं के साथ धारा 7/8 पॉक्सो एक्ट के तहत भी प्राथमिकी दर्ज की गई है।

7. जांच के दौरान द.प्र.स की धारा 161 के तहत जांच अधिकारी द्वारा पहले सूचनाकर्ता का बयान दर्ज किया जाता है, जिसमें उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित अभियोजन संस्करण का समर्थन किया था। द.प्र.स की धारा 161 के तहत दर्ज बयान में पीड़िता ने प्राथमिकी में सामने आए संस्करण और द.प्र.स की धारा 161 के तहत शिकायतकर्ता के बयान में सुधार किया है, जिसमें कहा गया है कि आवेदक ने उसे दो बार थप्पड़ मारा है। डॉक्टर, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, खाखरौ, जिला फतेहपुर द्वारा भी पीड़ित की जांच की गई है और 12 जुलाई, 2021 की अपनी रिपोर्ट में डॉक्टर ने कहा है कि पीड़ित पर कोई बाहरी चोट नहीं पाई गई है। 18 अगस्त, 2021 को पीड़िता का बयान धारा 164 द.प्र.स के तहत दर्ज किया गया है जिसमें उसने अपना बयान बदल दिया है। पीड़िता की जन्म तारीख 1 जून, 2008 है जिसकी पुष्टि संबंधित स्कूल के प्रधानाचार्य ने कर दी है। चूंकि पुलिस आवेदक और उसके परिवार को लगातार परेशान कर रही थी, इसलिए आवेदक भोली गिरि के पिता ने निष्पक्ष और आंशिक जांच के लिए पुलिस अधीक्षक और संबंधित स्टेशन हाउस ऑफिसर के समक्ष 20.01.2022 को आवेदन किया। इस संबंध में भोली गिरि ने इस न्यायालय के समक्ष 2022 की आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 2368 को भी प्राथमिकता दी है जो लंबित है। पुलिस ने जानबूझकर चार्जशीट दाखिल की है। पुलिस द्वारा किए गए उत्पीड़न

से व्यथित होने के बाद, आवेदक ने आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1796 वर्ष 2022 के माध्यम से धारा 41-ए के तहत अग्रिम जमानत मांगने के लिए इस अदालत का दरवाजा खटखटाया है, जिसे इस न्यायालय ने 10 मार्च, 2022 के आदेश के तहत यह देखते हुए निपटाया है कि अग्रिम जमानत की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि आवेदक को द.प्र.स धारा 41 और 41-ए के प्रावधानों का पालन किए बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। इसने अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदक की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है। संबंधित पुलिस आवेदक व उसकी महिला सदस्यों सहित भोली गिरी के परिजनों को लगातार परेशान कर रही है। जब आवेदक ने राहत पाने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, तो जांच अधिकारी ने जानबूझकर 28.09.2022 को आरोप पत्र दायर किया है और वह रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों पर विचार करने में विफल रहा है। आरोप पत्र प्रस्तुत करने पर संबंधित मजिस्ट्रेट ने 15.11.2022 को संज्ञान लिया है।

8. आवेदक की ओर से प्रस्तुत प्रस्तुतियाँ

(i) आवेदक भारतीय सेना में चयन की तैयारी कर रहा है। आवेदक के पिता भोली गिरी और शिकायतकर्ता द्वारा वर्ष 2015 में भोली गिरी के विरोध के कारण ग्राम प्रधान के चुनाव में हार गए हैं, शिकायत के साथ-साथ जनहित याचिका के प्रतिवाद के रूप में, वर्तमान मामले को शिकायतकर्ता द्वारा प्रतिशोध लेने के लिए नियत किया गया है, मैसर्स आयशर ट्रेक्टर लिमिटेड और अन्य बनाम हरिहर सिंह और

अन्य, 2009(1) जेआईसी 245 (एससी) द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए यह अनुमेय नहीं है।

(ii) आवेदक का पीड़िता से कोई लेना-देना नहीं है क्योंकि आवेदक 8.7.2021 को गांव में मौजूद नहीं था।

(iii) संपूर्ण अभियोजन मामले के अवलोकन से आवेदक के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है, जिसका वर्णन पूर्वोक्त प्राथमिकी में किया गया है और आवेदक के विरुद्ध लगाए गए आरोप बिल्कुल गलत और मनगढ़ंत हैं, क्योंकि आवेदक के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप बिना किसी तथ्य के हैं और ऐसी कोई घटना नहीं हुई है।

(iv) आवेदक गरीब किसान का 22 वर्षीय पुत्र है और उसका कोई पिछला आपराधिक इतिहास नहीं है और न ही उसने किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया है।

(v) उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट को दर्ज करने में अत्यधिक विलंब होता है जिससे प्रथम सूचना रिपोर्ट की सत्यता पर गंभीर संदेह उत्पन्न होता है।

(vi) हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को 1992 सप्ल.(1)एससीसी 335 इस मुद्दे पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने के लिए संदर्भित किया गया है कि मामलों की अलग-अलग श्रेणियों में, दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही को

रद्द करने के लिए इस न्यायालय द्वारा द.प्र.स की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। आवेदक का मामला भजन लाल (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में उल्लिखित सातवीं श्रेणी के साथ कवर किया गया है।

इसलिए, आवेदकों के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि आवेदकों के खिलाफ शुरू की गई वर्तमान आपराधिक कार्यवाही न केवल दुर्भावनापूर्ण है, बल्कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है।

उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, आवेदकों के लिए विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उपर्युक्त शिकायत मामले की कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा रद्द की जा सकती है।

9. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि रिकॉर्ड पर सामग्री के अवलोकन से और इस स्तर पर मामले के तथ्यों को देखने से यह नहीं कहा जा सकता है कि आवेदकों के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है। किए गए सभी प्रस्तुतियाँ तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं, जिन पर इस न्यायालय द्वारा द.प्र.स की धारा 482 के तहत निर्णय नहीं लिया जा सकता है। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि यह स्थापित कानून है कि अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए सबूतों को अदालत द्वारा आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में, बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, नहीं देखा जा सकता है। यह घिसा-

पिटा कानून है कि उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए द.प्र.स की धारा 482 के तहत दायर याचिका पर विचार करते समय सबूतों की सराहना नहीं कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि यदि अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध के अवयवों का खुलासा करते हुए प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो अदालत आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकती है। उपरोक्त की संचयी ताकत पर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता आग्रह करते हैं कि धारा 354-ए, 504, 506 भ.द.स के तहत और धारा 7/8 पॉक्सो अधिनियम के तहत भी आवेदकों के खिलाफ अपराध बना दिया गया है। द.प्र.स की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन मेरिट से रहित है और इसे इस न्यायालय द्वारा खारिज किया जा सकता है।

10. मैंने पार्टियों के लिए विद्वान वकील द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

11. रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरी सामग्री के अवलोकन से, इस न्यायालय ने पाया कि आवेदक के लिए विद्वान वकील द्वारा स्थापित मामला यह है कि शिकायतकर्ता के खिलाफ वर्ष 2015 में आवेदक के पिता, अर्थात् भोली गिरि द्वारा दायर शिकायत और जनहित याचिका के प्रतिवाद के रूप में, जब वह ग्राम प्रधान के पद पर था, उसके द्वारा किए जा रहे सार्वजनिक धन के गबन के रूप में, इस कारण खड़े होने के लिए कोई आधार नहीं है

कि शिकायतकर्ता द्वारा आवेदक के खिलाफ 9 जुलाई, 2021 को 8 जुलाई, 2021 की कथित घटना के लिए यानी उपरोक्त शिकायत और जनहित याचिका के छह साल से अधिक समय के बाद वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई है। इस देश के किसी भी आम आदमी के लिए यह विश्वास करना असंभव है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ किसी अन्य व्यक्ति द्वारा शिकायत दर्ज की गई थी और इस कारण से पहले व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के साथ दुश्मनी की थी, वह अपने बेटे को झूठे और तुच्छ मामले में फसवाकर बदला लेने के लिए छह साल से अधिक समय लेगा। उदाहरण के लिए: व्यक्ति-A वर्ष 2021 में अपने बेटे को झूठे और तुच्छ मामले में फसवाकर व्यक्ति-B से बदला लेगा क्योंकि व्यक्ति-B ने वर्ष 2015 में व्यक्ति-A के खिलाफ शिकायत दर्ज की है। यह अदालत सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का सम्मान करती है यानी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मेसर्स आयशर ट्रैक्टर (सुप्रा) मामले में आवेदक के विद्वान वकील द्वारा भरोसा किया था, लेकिन उक्त मामला वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा, क्योंकि यह तीव्र प्रतिरोध का मामला नहीं है।

12. आवेदक के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत किया गया कि शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा आवेदक के खिलाफ शुरू की गई वर्तमान कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही है, केवल इस आधार पर खारिज किया गया है कि इसके लिए निर्धारित कारण यह है कि वर्ष 2015 में जब शिकायतकर्ता ग्राम प्रधान के पद पर था, आवेदक के पिता, अर्थात् भोली गिरि ने संबंधित अधिकारियों के समक्ष सार्वजनिक

धन के गबन की शिकायत की और ग्राम प्रधान के चुनाव में उनकी उम्मीदवारी का भी विरोध किया। यह न्यायालय फिर से दोहरा सकता है कि बदला लेने वाला व्यक्ति अपने दुश्मन को आपराधिक मामले में फंसाकर सात साल इंतजार नहीं कर सकता। इसलिए, भजन लाल (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जिस पर आवेदक के विद्वान वकील ने भरोसा किया था, वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता है। उनकी इस दलील को स्थापित करने के लिए कोई अन्य कारण रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है कि शिकायतकर्ता द्वारा वर्तमान मामले में आवेदक को दुर्भावनापूर्ण तरीके से फंसाया गया है।

13. यह न्यायालय आवेदक के इस मामले को भी स्वीकार नहीं करता है कि 8 जुलाई, 2021 को आवेदक ने कोई अपराध नहीं किया है जैसा कि अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया है और उसी तारीख को शिकायतकर्ता ने अपने साथियों के साथ आवेदक के घर में प्रवेश किया था जहां आवेदक के परिवार का कोई पुरुष सदस्य नहीं था, उसने उसकी बहन के साथ छेड़छाड़ की और अपने साथियों के साथ उसके साथ दुर्व्यवहार भी किया क्योंकि वर्तमान आवेदन के साथ ऐसी कोई शिकायत रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई है, जिसे आवेदक के पिता द्वारा थाना या किसी अदालत के समक्ष दायर किया गया है।

14. अब यह न्यायालय आवेदक के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत किए गए इस निवेदन पर आता है कि आवेदक को फंसाने वाली प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी हो रही है

जिसके लिए कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं है।

15. इसमें कोई संदेह नहीं है कि 8 जुलाई, 2021 को शाम लगभग 06:00 बजे (शाम) की कथित घटना के लिए, आवेदक के खिलाफ 9 जुलाई, 2021 को यानी कथित घटना के समय से 19 घंटे और 14 मिनट के बाद पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है। न्यायालय की राय में, इस तरह की देरी उस मामले में प्रासंगिक नहीं है जहां 13 साल की कथित पीड़िता की मानहानि शामिल है। हमारे देश में समाज का एक बहुत बड़ा स्थान है, जहां एक पुरुष या महिला या एक परिवार अपने सम्मान को महत्व देता है। जब भी किसी महिला या लड़की या महिला बच्चे के साथ कुछ गलत होता है, जैसे बलात्कार या छेड़छाड़, तो परिवार के अधिकांश मालिक समाज में मानहानि के कारण आरोपी के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करने में संकोच करते हैं और यही कारण है कि रिपोर्ट दर्ज करने में देरी होती है।

16. यह ऐसे जघन्य अपराध का मामला है जहां ऐसे अपराधों का सामाजिक प्रभाव पीड़ित के लिए बहुत अपमानजनक है, जो सामाजिक कलंक से पीड़ित है। इस प्रकृति के अपराध जिसमें सामाजिक मानहानि शामिल है, पीड़ित को कलंकित होने से बचाने के लिए प्रारंभिक चरण में ऐसी घटनाओं को दबाने की हमेशा एक सामान्य प्रवृत्ति होती है। आवेदक द्वारा किया गया अपराध प्रकृति में गंभीर है और यह आवेदक के चरित्र की भ्रष्टता के बारे में बताता है,

जिसे पीड़ित की विनम्रता और सम्मान का उल्लंघन करने में कोई नैतिक पछतावा नहीं थी।

17. अब यह न्यायालय राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए इस निवेदन पर आता है कि किए गए सभी प्रस्तुतियाँ तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं, जिन पर इस न्यायालय द्वारा द.प्र.स की धारा 482 के तहत निर्णय नहीं लिया जा सकता है।

18. विचारण पूर्व चरण में केवल प्रथम दृष्टया मामला आरपी कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एससी 866; हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 एससीसी (सीआर) 426; बिहार राज्य बनाम पीपी शर्मा, 1992 एससीसी (सीआर) 192 और अंत में झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद सरफुल हक और अन्य (पैरा-10) 2005 एससीसी (सीआर) के मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में देखा जाना है।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मो. अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य और अन्य 2019 0 सुप्रीम (एससी) 454 में रिपोर्ट किया गया है, में कहा है कि उच्च न्यायालय के पास द.प्र.स की धारा 482 के तहत कार्यवाही के साक्ष्य की सराहना करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है क्योंकि गवाहों के बयानों में विरोधाभास या / और विसंगतियां हैं या नहीं, यह साक्ष्य की सराहना से संबंधित एक आवश्यक मुद्दा है और मुकदमे के दौरान

न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा इस पर विचार किया जा सकता है जब पूरे साक्ष्य पेश किए जाते हैं पार्टियों द्वारा। हालांकि, वर्तमान मामले में उक्त राज्य आना बाकी है। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 15 से 17 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"15. उच्च न्यायालय को यह देखना चाहिए था कि जब अपीलकर्ता की अपनी शिकायत में एक विशिष्ट शिकायत यह थी कि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने भ.द.स की धारा 34 के साथ पठित धारा 323, 379 के तहत दंडनीय अपराध किए हैं, तो जांच किए जाने वाले प्रश्न यह है कि क्या शिकायत में इन दो अपराधों के कमीशन के आरोप हैं या नहीं। दूसरे शब्दों में, यह देखने के लिए कि अभियुक्त के खिलाफ कोई प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं, अदालत को केवल शिकायत में लगाए गए आरोपों को देखने की आवश्यकता है। इस भौतिक प्रश्न पर उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष के अभाव में, आक्षेपित आदेश कानूनी रूप से अरक्षणीय है।

16. दूसरी वृत्ति यह है कि पैरा 6 में उच्च न्यायालय ने माना कि घटना के बिंदु पर गवाहों के बयानों में विरोधाभास हैं।

17. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय के पास दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में "द.प्र.स ") की धारा 482 के तहत कार्यवाही के साक्ष्य की सराहना करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि क्या गवाहों के बयानों में विरोधाभास या / और विसंगतियां हैं, यह

अनिवार्य रूप से साक्ष्य की सराहना से संबंधित मुद्दा है और न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा मुकदमे के दौरान इस पर विचार किया जा सकता है जब पक्षों द्वारा पूरे साक्ष्य पेश किए जाते हैं। इस मामले में वह अवस्था अभी आनी बाकी है। (महत्व दिया)

20. सर्वोच्च न्यायालय ने **नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, 2020** 0 सुप्रीम (एससी) 45 में रिपोर्ट की गई, के मामले में, भ.द.स की धारा 406 और 420 के तहत एक मामले के निपटारे में कहा गया है कि न्यायालय को आरोप के संबंध में साक्ष्य के संभावित मूल्य में गहराई से जाने की आवश्यकता नहीं है। इसे केवल यह देखना है कि क्या प्रथम दृष्टया मामला बनता है। बयान/सामग्री की सत्यता विचारण का मामला है और आरोप तय करते समय इसकी जांच करने की आवश्यकता नहीं है। शीर्ष अदालत ने आगे कहा कि गवाहों द्वारा दिए गए बयानों की सत्यता मुकदमे का सवाल है और आरोप तय करते समय इसका निर्धारण करने की आवश्यकता नहीं है। आरोप विरचित किए जाने और विचारण शुरू होने के बाद ही न्यायालय द्वारा गुणावगुण के आधार पर साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना है। हालांकि, आरोप तय करने के उद्देश्य से अदालत को प्रथम दृष्टया यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि मुकदमे की शुरुआत के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद है। सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 21, 22 और 24 में इस प्रकार देखा है:

"21 अपीलकर्ता ने ओंकार नाथ मिश्रा बनाम राज्य, (2008) 2 एससीसी 561 में इस

न्यायालय के दो-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले पर भरोसा किया है ताकि इस बात को साबित किया जा सके कि भ.द.स की धारा 406 और 420 के तत्व स्थापित नहीं किए गए हैं। इस न्यायालय ने आरोप तय करने के चरण में एक अदालत द्वारा मूल्यांकन की प्रकृति से निपटने के दौरान, इस प्रकार अवधारित किया:

"11. यह स्पष्ट है कि आरोप तय करने के चरण में अदालत को रिकॉर्ड पर सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे निकलने वाले तथ्य, उनके अंकित मूल्य पर लिए गए, कथित अपराध का गठन करने वाले सभी अवयवों के अस्तित्व का खुलासा करते हैं। उस स्तर पर, अदालत से रिकॉर्ड पर सामग्री के संभावित मूल्य में गहराई से जाने की उम्मीद नहीं है। इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है और अभियुक्त को दोषी ठहराने का आधार नहीं बनाया गया है। उस स्तर पर, यहां तक कि सामग्री पर स्थापित मजबूत संदेह जो अदालत को कथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यात्मक अवयवों के अस्तित्व के बारे में एक अनुमानित राय बनाने के लिए प्रेरित करता है, उस अपराध के कमीशन के संबंध में अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय करने को सही ठहराएगा। (महत्व सन्निविष्ट)

22 वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने अतिरिक्त आरोप तय करने का निर्देश देते हुए जांच के बाद रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री और सबूतों का मूल्यांकन किया है और कहा है:

"एलडब्ल्यू 1 वास्तविक शिकायतकर्ता का पिता है, जिसने कहा कि उसके दामाद यानी पहले आरोपी ने वादा किया था कि वह यूनाइटेड किंगडम (यूके) में अपनी बेटी की देखभाल करेगा और यूके में डॉक्टर की नौकरी प्रदान करने का वादा किया और उक्त उद्देश्य के लिए 5 लाख रुपये का दावा किया और प्राप्त किया और वह अपनी बेटी को यूके ले गया। उन्होंने कहा कि उनके दामाद ने उन्हें विश्वास दिलाया और बड़ों की उपस्थिति में 5 लाख रुपये प्राप्त किए। उनका कहना है कि जब पहले उनसे पूछताछ की गई तो वह अपने दामाद द्वारा की गई धोखाधड़ी के बारे में उल्लेख नहीं कर सके। एलडब्ल्यू 13, जो एक स्वतंत्र गवाह है, एलडब्ल्यू 1 के संस्करण का भी समर्थन करता है और कहता है कि ए1 को 5 लाख रुपये इस वादे के साथ मिले थे कि वह शिकायतकर्ता की बेटी को डॉक्टर की नौकरी सुरक्षित करेगा। उसने कहा कि A1 ने LW1 को धोखा दिया, यह कहते हुए कि वह नौकरी प्रदान करेगा और उसे 5 लाख रुपये मिले। LW14, एक स्वतंत्र गवाह भी है और उसने LW13 के संस्करण का समर्थन किया। वह आगे कहता है कि A1 ने अपनी पत्नी और बच्चे को भारत में छोड़ दिया और 5 लाख रुपये प्राप्त करके चला गया।

इसलिए, उपरोक्त तथ्यों से, एलडब्ल्यू 13 और 14 द्वारा प्रथम दृष्टया, एलडब्ल्यू 1 के संस्करण कि उसने अपनी बेटी को नौकरी प्रदान करने के वादे पर ए 1 को 5 लाख रुपये दिए और ए 1 ने कोई नौकरी नहीं दी और उसे धोखा दिया, एलडब्ल्यू 13 और 14 से समर्थन प्राप्त करता है। जब राशि A1 को सौंपी जाती है, नौकरी प्रदान करने के वादे के साथ और जब वह नौकरी प्रदान करने में विफल रहता है और राशि वापस नहीं करता है, तो यह माना जा सकता है कि A1 का अपनी पत्नी को नौकरी प्रदान करने का कोई इरादा नहीं था और उसने उस उद्देश्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए राशि का उपयोग किया जिसके लिए उसने LW1 से राशि एकत्र की थी, जो भ.द.स की धारा 406 और 420 के तहत अपराधों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त होगा। क्या एलडब्ल्यू 1 के उन्नत संस्करण में सच्चाई है और अपने पहले के बयान में इसे नहीं बताने में उनकी चूक के क्या कारण रहे हैं, इसका निर्णय परीक्षण के समय किया जा सकता है।

रिकॉर्ड से यह भी प्रतीत है कि जांच अधिकारी द्वारा दायर अतिरिक्त आरोप पत्र निचली अदालत का ध्यान आकर्षित नहीं कर सका, जिसके कारण अतिरिक्त आरोप तय नहीं किए जा सके।

(महत्व सन्निविष्ट)

24 गवाहों द्वारा दिए गए बयानों की सत्यता विचारण का प्रश्न है और आरोप विरचित करते समय इसका निर्धारण करने की आवश्यकता नहीं है। आरोप विरचित किए जाने और विचारण शुरू होने के बाद ही न्यायालय

द्वारा गुणावगुण के आधार पर साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना है। हालांकि, आरोप तय करने के उद्देश्य से अदालत को प्रथम दृष्टया यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि मुकदमे की शुरुआत के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद है। उच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सामग्री पर भरोसा किया है और निष्कर्ष निकाला है कि भ.द.स की धारा 406 और 420 के तहत अपराधों की सामग्री आकर्षित होती है। उच्च न्यायालय ने उन कारणों को बताया है जिनके कारण आरोप जोड़ने की आवश्यकता हुई है और इसलिए, आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

(महत्व दिया)

21. फिर से 2020 0 सुप्रीम (एससी) 143 में रिपोर्ट किए गए राजीव कौरव बनाम बालासाहब और अन्य के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह अब इस बात से जुड़ा नहीं है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए द.प्र.स की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी होता है जब प्राथमिकी या चार्जशीट में लगाया गया आरोप कथित अपराध/अपराधों के तत्व का गठन करता है। द.प्र.स की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किसी भी कानून या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए है या अन्यथा न्याय के सिरो को सुरक्षित करने के लिए है।

22. 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 820 में रिपोर्ट किए गए उत्तर प्रदेश राज्य बनाम

अखिल शारदा और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम फैसले में माना गया है कि द.प्र.स की धारा 482 के तहत आवेदन का फैसला करते समय, उच्च न्यायालय ने मिनी विचारण किया है जो उस स्तर पर स्वीकार्य नहीं है। प्रासंगिक भाग जिसका विषय इस प्रकार है:

"28. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश को पढ़ने के बाद, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने द.प्र.स की धारा 482 के तहत शक्तियों के प्रयोग में आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने वस्तुतः एक मिनी विचारण किया है, जो इस स्तर पर द.प्र.स की धारा 482 के तहत आवेदन पर निर्णय लेते समय स्वीकार्य नहीं है जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की एक श्रेणी में देखा गया और आयोजित किया गया है, उच्च न्यायालय द्वारा द.प्र.स की धारा 482 के तहत शक्तियों के प्रयोग में कोई मिनी विचारण नहीं किया जा सकता है और धारा 482 द.प्र.स के तहत आवेदन पर फैसला करने के चरण में, उच्च न्यायालय उस विशेष मामले के साक्ष्य की सराहना नहीं कर सकता है जिस पर विचार किया जा रहा है। (देखें (प्रतिमा (सुप्रा); थॉम (सुप्रा); राजीव (सुप्रा) और निहारिका (सुप्रा))।

29. पूर्वोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए और जिस तरह से उच्च न्यायालय ने द.प्र.स की धारा 482 के तहत याचिका की अनुमति दी है, हमारा विचार है

कि उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए पारित निर्णय और आदेश अरक्षणीय है। उच्च न्यायालय ने द.प्र.स की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया है।

30. यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि यहां तक कि उच्च न्यायालय ने भी कहा है कि आरोप बहुत गंभीर हैं और इसके लिए आगे की जांच की आवश्यकता है और इसीलिए उच्च न्यायालय ने 2019 की प्राथमिकी संख्या 227 के संबंध में सीबीसीआईडी द्वारा जांच करने का निर्देश दिया है। हालांकि, सीबीसीआईडी को आगे की जांच करने का निर्देश देते हुए, उच्च न्यायालय ने जांच के दायरे को सीमित कर दिया है। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य की ना ही सराहना और विचार किया है कि दोनों प्राथमिकियों, अर्थात् 2018 की प्राथमिकी संख्या 260 और 2019 की 227 को आपस में जुड़ा हुआ कहा जा सकता है और एक बड़ी साजिश के आरोपों की जांच की आवश्यकता है। यह आरोप लगाया गया है कि कुल मिलाकर आरोप बीयर/प्रतिबंधित वस्तुओं को ले जाने वाले ट्रकों के गायब होने के हैं जो आबकारी विभाग और आबकारी कानून के नियमों और विनियमों के अधीन हैं।

31 उच्च न्यायालय ने यह देखते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया है कि आबकारी विभाग को कोई नुकसान नहीं हुआ था। हालांकि, उच्च न्यायालय ने बड़ी साजिश के आरोपों को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया है। प्राथमिकी को एक विश्वकोश होने की

आवश्यकता नहीं है (सतपाल बनाम हरियाणा, (2018) 6 एससीसी 110 पैरा 7 देखें)।

32 अन्यथा भी, यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि दो ट्रकों के लापता होने का आरोप जांच की शुरुआत थी और जब जांच के दौरान यह आरोप लगाया गया था कि पहले भी कई ट्रक प्रतिबंधित वस्तुओं का परिवहन कर रहे थे, तो प्राथमिकी को केवल दो ट्रकों के गायब होने और उसके बाद माल की वापसी तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए था। उच्च न्यायालय ने बड़ी साजिश के आरोप की बिल्कुल भी सराहना नहीं की है और/या विचार नहीं किया है और यह कि दोनों प्राथमिकी/आपराधिक मामले आपस में जुड़े हुए हैं और मुख्य साजिश का हिस्सा हैं जो सच पाए जाने पर बहुत गंभीर है। हालांकि हम कार्यवाही के इस चरण में आगे कोई टिप्पणी करने से बचते हैं क्योंकि हम केवल धारा 482 द.प्र.स के तहत आवेदन पर निर्णय लेने के चरण में हैं और दोनों मामलों की सुनवाई अभी बाकी है। इसलिए, हम आगे कोई भी टिप्पणी करने से बचते हैं जो दोनों पक्षों में से किसी के मामले को प्रभावित कर सकता है। यह कहने और उल्लेख करने के लिए पर्याप्त है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने थाना - हुसैनगंज, जिला-लखनऊ में दर्ज धारा 406 के तहत दर्ज आपराधिक केस नंबर 5694 वर्ष 2019 और केस क्राइम नंबर 260 वर्ष 2018 पीएस से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने और रद्द करने में गंभीर/गंभीर त्रुटि की है।

(महत्व सन्निविष्ट)

23. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि यदि अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध के अवयवों का खुलासा करते हुए प्रथम दृष्टया मामला बनाया जाता है, तो अदालत आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकती है।

24. ऊपर हुई चर्चाओं और विचार-विमर्श से, इस न्यायालय का विचार है कि आवेदक के विद्वान वकील द्वारा की गई प्रस्तुतियाँ तथ्य के शुद्ध प्रश्नों पर निर्णय के लिए कहती हैं, जिन पर केवल विचारण न्यायालय द्वारा पर्याप्त रूप से निर्णय लिया जा सकता है और ऐसा करते समय कानून के बिंदुओं पर की गई प्रस्तुतियाँ भी इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा अधिक उचित रूप से की जा सकती हैं। यह न्यायालय इसे उचित नहीं मानता है, और इसलिए वास्तविक परीक्षण शुरू होने से पहले पूर्व-परीक्षण के लिए सहमत नहीं किया जा सकता है। विभिन्न तथ्यों और परिस्थितियों की एक विस्तृत चर्चा, जैसा कि वे अभियुक्त के खिलाफ लगाए गए आरोपों से उभरकर सामने आते हैं, अदालत द्वारा जानबूझकर इस कारण से टाला जा रहा है, ऐसा न हो कि मुकदमे के दौरान दोनों पक्षों को कोई पूर्वाग्रह हो सकता है। लेकिन यह देखना पर्याप्त होगा कि प्राथमिकी और जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री, जिसके आधार पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, का अवलोकन इस स्तर पर अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनाता है और अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार प्रतीत होता है। आवेदकों के विरुद्ध आरोप पत्र या कार्यवाही को रद्द करने का कोई औचित्य

नहीं लगता क्योंकि यह मामला सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी श्रेणी में नहीं आता है जो उन्हें रद्द करने को सही ठहरा सके।

25. आक्षेपित आरोप-पत्र के साथ-साथ पूर्वोक्त राज्य मामले की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया जाता है क्योंकि इस पूर्व-परीक्षण चरण में अदालत की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग नहीं दिख रहा है।

26. द.प्र.स की धारा 482 के तहत यह आवेदन योग्यता से रहित है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 369

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

13132/2022

गोपाल श्रीवास एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री उमेश कुमार

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए., श्री महावीर यादव

क. दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498-ए, 323, 504 एवं 506 तथा 3/4 दहेज प्रतिषेध, 1961 अधिनियम - सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाही निरस्त - मध्यस्थता विफल - अतिरिक्त दहेज के भुगतान के लिए पीड़िता को शारीरिक एवं मानसिक रूप से

प्रताड़ित किया गया - उसकी सास एवं ननद ने उसके आभूषण छीन लिए तथा उसके पति एवं ससुर ने उक्त मांग पूरी होने तक उसे उसके मायके में छोड़ दिया - पीड़िता ने आवेदकों के विरुद्ध विशेष रूप से आरोप लगाए हैं - दो गवाहों ने पीड़िता के आरोपों एवं साक्ष्यों की पुष्टि की - ससुर का यह दावा कि वे ड्यूटी पर थे, महत्वहीन है, क्योंकि शिकायत किसी विशेष तिथि को घटित एक घटना के आधार पर दर्ज नहीं की गई है - उसे लंबे समय से लगातार शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जा रहा था - अतः यह नहीं कहा जा सकता कि आवेदकों के विरुद्ध केवल सामान्य आरोप लगाए गए हैं - कार्यवाही निरस्त करने का कोई आधार नहीं है। (पैरा 1 से 13)

आवेदन निरस्त किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

कहकशां कौसर @ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य (2022) 0 सुप्रीम एससी 117

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के अधिवक्ता श्री उमेश कुमार, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. यह आवेदन शिकायत वाद संख्या-476 वर्ष 2020 (श्रीमती ज्योति बनाम गोपाल श्रीवास

और अन्य) की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 498-ए, 323, 504, 506 भ०द०वि० और धारा 3/4 डी.पी. अधिनियम के तहत आवेदक संख्या-1 की सीमा तक और धारा 498-ए, 323 भ०द०वि० और धारा 3/4 डी.पी. अधिनियम थाना-चरखारी, जिला महोबा के तहत आवेदक संख्या-2 से 4 तक बढ़ाया गया है जो सिविल जज (जेडी)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, चरखारी, महोबा के समक्ष लंबित है और सिविल जज (जेडी)/न्यायिक मजिस्ट्रेट, चरखारी, महोबा द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.03.2022 के साथ आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-48 वर्ष 2020 (श्रीमती ज्योति बनाम रामसेवक और अन्य) में सत्र न्यायाधीश, महोबा द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.03.2021 का आदेश भी है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि आवेदक संख्या-1 का विवाह प्रतिपक्षी संख्या-2 के साथ पूरे प्यार और स्नेह के साथ हुआ था और उनसे एक बेटे नमन का जन्म हुआ था। शादी से एक साल बाद प्रतिपक्षी संख्या-2 ने अपने माता-पिता के घर पर अपने परिवार से अलग रहने की मांग की, जिसे आवेदक संख्या-1 ने अस्वीकार कर दिया, इसके बाद प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक संख्या-1 द्वारा खरीदे गए सभी सामानों के साथ 04.04.2020 को वैवाहिक घर छोड़ दिया। 29.09.2020 को प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 1,00,000/- रुपये और एक मोटरसाइकिल दहेज की मांग के आरोप लगाते हुए एक शिकायत दर्ज की और धारा 200 द०प्र०स० के तहत झूठी गवाही दी। अ०सा०-1, कल्लू और प्रतिपक्षी संख्या-2 के भाई अ०सा०-2 ने धारा 202 द०प्र०स० के तहत

एक झूठी और मनगढ़ंत कहानी पेश की और उसके आधार पर, न्यायिक मजिस्ट्रेट ने तदनुसार आवेदकों को तलब किया।

4. आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक संख्या-2 ससुर है, आवेदक संख्या-3 सास है और आवेदक संख्या-4 प्रतिपक्षी संख्या-2 की अविवाहित ननद है जो अलग रहते हैं। आवेदक संख्या-2 के ससुर होने के नाते कथित अपराध से कोई लेना-देना नहीं है। वह पीडब्लूडी विभाग में ड्राइवर है और 02.07.2020 को ड्यूटी पर था। आवेदक न तो पहले से दोषी ठहराए गए हैं और न ही किसी अन्य आपराधिक मामले में वांछित हैं और उनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। वे एक सम्मानित परिवार से संबंधित हैं। इसलिए, प्रस्तुत आवेदन को अनुमति दी जाए और आपराधिक शिकायत मामले की पूरी कार्यवाही और सत्र न्यायाधीश द्वारा पुनरीक्षण में पारित आदेश को रद्द किया जाए।

5. आदेश पत्र से यह ज्ञात नहीं है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 को पर्याप्त रूप से तामील किया गया था या नहीं। 25.07.2022 को मध्यस्थता का आदेश पारित किया गया था। न्यायालय को यह ज्ञात नहीं है कि उक्त आदेश के अनुपालन में आवेदकों द्वारा 25,000/- रुपये जमा किए गए थे या नहीं। हालांकि, दिनांक 02.11.2022 की कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार मध्यस्थता केंद्र की रिपोर्ट का इंतजार था और अब तक कोई रिपोर्ट

प्रस्तुत नहीं की गई। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो आवेदकों द्वारा शुल्क जमा नहीं किया गया था या मध्यस्थता का प्रयास विफल रहा। इसलिए, 11.01.2023 को आवेदकों के अधिवक्ता ने मामले में विस्तार से बहस की।

6. विचाराधीन मामले की कार्यवाही आवेदकों के अधिवक्ता के आश्वासन पर रोक लगा दी गई थी कि पक्षों के बीच मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया जाएगा और 25.07.2022 से आवेदक स्थगन आदेश का लाभ उठा रहे हैं।

7. पीड़िता के अनुसार, उसे 1,00,000/- रुपये के अतिरिक्त दहेज और एक मोटरसाइकिल के भुगतान के बहाने शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया था। 2019 में बेटे के जन्म के बाद उसकी सास और ननद ने उसके गहने छीन लिए। छह महीने बाद उसके ससुर और पति ने उसे उसके मायके पर छोड़ दिया और तब से दहेज की उक्त मांग पूरी होने तक वे उसे वापस नहीं ले गए। प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आगे गवाही दी है कि 02.07.2020 को उसका पति आया था लेकिन उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उसे जान से मारने की धमकी दी। बाकी दो गवाहों ने भी प्रतिपक्षी संख्या-2 के आरोपों और सबूतों की पुष्टि की है। विचारण मजिस्ट्रेट ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सभी तथ्यों और सबूतों पर चर्चा करते हुए एक विस्तृत और आख्यापक समन आदेश पारित किया है। प्रारंभ में मजिस्ट्रेट ने केवल पति को बुलाया था, लेकिन प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दायर किए गए आपराधिक पुनरीक्षण को सत्र न्यायाधीश द्वारा अनुमति दी गई थी और

पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश दिनांक 06.03.2021 के अनुपालन में, बाकी अभियुक्तों को भी तलब किया गया था। जहां तक आरोपी आवेदक संख्या-2, रामसेवक के संबंध में है, रामसेवक का कहना है कि 02.07.2020 को वह अधिकारी के साथ था। इस न्यायालय का विचार है कि आक्षेपित शिकायत केवल एक विशेष तारीख को हुई एकल घटना के आधार पर दायर नहीं की गई है। शिकायत के संस्करण और उस पर साक्ष्य के अनुसार, यह शिकायतकर्ता का मामला है कि उसे लंबे समय से आरोपी व्यक्तियों द्वारा शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया था। यह एक सतत प्रक्रिया थी इसलिए यह प्रमाण पत्र कि 02.07.2020 को आरोपी आवेदक रामसेवक ड्यूटी पर था, महत्वहीन है। हालांकि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के तहत आवेदक संख्या-1, गोपाल श्रीवास, प्रतिपक्षी संख्या-2 के पति द्वारा मामला दायर किया गया है, लेकिन इस संबंध में यह जानने के लिए कोई आदेश पत्र दायर नहीं किया गया है कि क्या प्रतिपक्षी संख्या-2 वहां पेश हुई या नहीं और क्या मामला मध्यस्थता केंद्र महोबा विवाद को निपटाने के लिए भेजा गया था या नहीं। कभी-कभी पति केवल अपनी सदाशयता दिखाने के लिए हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के तहत याचिका दायर करता है।

8. आवेदक के अधिवक्ता ने कहकशां कौसर @ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, 2022 0 उच्चतम (एस.सी.) 117 के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि "यदि वैवाहिक विवाद के

संबंध में आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ सामान्य और सर्वव्यापी आरोप लगाए जाते हैं और कोई विशिष्ट और स्पष्ट आरोप नहीं लगाए गए हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मामला धारा 498-ए भ्रूणहत्या के दुरुपयोग का उदाहरण है जो किसी महिला पर खुद और उसके ससुराल वालों द्वारा की गई क्रूरता को रोकने के उद्देश्य से, अदालत को करेगी। हाल के मामले में देश में वैवाहिक मुकदमेबाजी में भी काफी वृद्धि हुई है और विवाह की संस्था के आसपास अब, पहले से कहीं अधिक असंतोष और संघर्ष बना है जिसके परिणामस्वरूप पति और उसके रिश्तेदारों के खिलाफ व्यक्तिगत मामला निपटाने के लिए उपकरणों के रूप में 498-ए भ्रूणहत्या जैसे प्रावधानों को नियोजित करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है और यदि सामान्य सर्वव्यापी आरोपों के माध्यम से झूठे निहितार्थ हैं। यदि वैवाहिक विवाद को अनियंत्रित छोड़ दिया जाता है तो इसका परिणाम कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।”

9. सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि उस मामले में अपीलकर्ताओं में से किसी को भी उनके खिलाफ लगाए गए सामान्य आरोपों को आगे बढ़ाने में कोई विशिष्ट भूमिका नहीं दी गई थी। उद्धृत मामले में चूंकि पति द्वारा कोई अपील नहीं की गई थी, इसलिए उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों की सत्यता की जांच नहीं की गई थी।

10. इस मामले में प्रतिपक्षी संख्या-2 ने विशेष रूप से आरोप लगाया है और आवेदक संख्या-3 सास और आवेदक संख्या-4, भाभी (नानद) के खिलाफ आरोप लगाया है कि उन्होंने उसके

गहने ले लिए थे। उसने विशेष रूप से गवाही दी है कि हालांकि सभी आवेदक दहेज और एक मोटरसाइकिल के रूप में 1,00,000/- रुपये की अतिरिक्त राशि की मांग कर रहे थे, लेकिन उसका पति 02.07.2020 को फिर से उसके माता-पिता के घर आया और उसके लिए उसे गाली दी और मारने की धमकी दी। यह कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है कि 02.07.2020 को उसके ससुर रामसेवक भी उसके माता-पिता के घर आए थे। हो सकता है कि उसे उसके द्वारा किए गए अपराध के लिए आरोपी बनाया गया हो, जब शिकायतकर्ता आवेदकों के साथ अपने ससुराल में थी। जहां तक ससुर की भूमिका का सवाल है, अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि रामसेवक, प्रतिपक्षी संख्या-2 के ससुर एक सरकारी कर्मचारी हैं। वह परिवार का बड़ा और जिम्मेदार व्यक्ति है। समस्या को हल करना और यह सुनिश्चित करना उनका कर्तव्य था कि प्रतिपक्षी संख्या-2 को शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित नहीं किया जाए। पीड़िता ने बयान दिया है कि उसके ससुर ने उसके माता-पिता के घर पंचायत में भाग लिया था और उसे चुपचाप रखने का आश्वासन दिया था, लेकिन वह और उसका पति उसे उसके माता-पिता के घर छोड़ गए थे।

11. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का विचार है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि आवेदकों के खिलाफ केवल सामान्य और सर्वव्यापी आरोप लगाए गए हैं। आवेदक दूरस्थ रिश्तेदार नहीं हैं और अलग नहीं रह रहे थे। इस मामले के तथ्य उद्धृत मामले के तथ्यों और सबूतों से काफी अलग

हैं। इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि कार्यवाही को रद्द करने का कोई आधार नहीं है।

12. धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन योग्यता से रहित है और खारिज करने योग्य है।

13. तदनुसार, इस आवेदन को खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 372

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

13242/2019

संलग्न

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

30345/2021

श. मो. अली जफर

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री मेहुल खरे, श्री प्रदीप सिंह, श्री उमाकांत उनियाल (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री अशोक मेहता (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., ए.एस.जी.आई., श्री ज्ञान प्रकाश, श्री सतीश कुमार राय, श्री सुदर्शन सिंह, श्री संजय कुमार यादव

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 21,

120बी, 409, 420, 468, 471 और 477ए - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा 2(सी), 13(2)/13(1)(डी), छावनी निधि सेवक नियम, 1937 और सीसीएस नियम, छावनी अधिनियम, 2006 - धारा 38, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 - धारा 5, 6, 6ए, छावनी कर्मचारी बोर्ड सेवा नियम, 2021, छावनी निधि सेवा नियम, 1937 - जब तक राज्य सरकार अपनी सहमति नहीं देती, सीबीआई को राज्य सरकार के किसी भी क्षेत्र में अपराध की जांच करने का अधिकार नहीं होगा। (पैरा-27)

(बी) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 197 - न्यायाधीशों और लोक सेवकों के अभियोजन, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा 19 - पीसी अधिनियम की धारा 19 के तहत संज्ञान लेते हुए - दोषपूर्ण सामग्री को मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखा जाना चाहिए ताकि वह अपना मस्तिष्क प्रयोग कर सके और अनुमति देने का निर्णय ले सके -अंतर-अनुमति की अनुपस्थिति (दहलीज पर मनोरंजन) और मस्तिष्क के उपयोग न करने के कारण कथित अमान्यता (परीक्षण के दौरान विचरण)। (पैरा -34)

याचिकाकर्ता, एक पशु चिकित्सा निरीक्षक, छावनी बोर्ड में कार्यालय अधीक्षक के रूप में कार्य कर रहा था - एक अन्य याचिकाकर्ता केंद्रीय सरकारी अस्पताल में फार्मासिस्ट/कंपाउंडर-सह-स्टोर कीपर था - संयुक्त आकस्मिक जांच में घोर अनियमितताएं पाई गईं - आरोपी अधिकारियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार

और जालसाजी और अभिलेखों में हेराफेरी के आरोप लगाए गए - जिसके परिणामस्वरूप केंद्र सरकार को गलत तरीके से नुकसान हुआ - आरोपी को इसी के अनुरूप लाभ होने की संभावना थी - आरोप पत्र, समन आदेश और चुनौती के तहत विशेष मामले की पूरी कार्यवाही। (पैरा - 2,18)

निर्णय: बोर्ड ने याचिकाकर्ताओं के अभियोजन के लिए अनुमति प्रदान की। विचारणीय न्यायालय यह तय करेगा कि क्या अनुमति प्रदान करने के लिए प्राधिकारी के समक्ष सामग्री और साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे, जिसे पहले अस्वीकार कर दिया गया था। न्यायालय को इन कार्यवाहियों में शपथपत्र पर निर्णय लेना उचित नहीं लगता। (पैरा - 34)

याचिकाएं निरस्त। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री प्रदीप एस. सिसोदिया द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक मेहता, भारत संघ की ओर से पेश विद्वान वकील श्री सुदर्शन सिंह, सीबीआई के विद्वान वकील श्री संजय कुमार यादव और छावनी बोर्ड की ओर से पेश विद्वान वकील श्री सतीश कुमार राय को सुना।

2. धारा 482 सीआरपीसी के तहत वर्तमान याचिकाएं इस न्यायालय के समक्ष स्थापित की स्थापित गई हैं, जिसमें विशेष न्यायाधीश

(भ्रष्टाचार निरोधक), सीबीआई कोर्ट नंबर 3, गाजियाबाद द्वारा विशेष मामला संख्या 2/2019 (सीबीआई बनाम सुखजीवन सिंह चहल और अन्य) में धारा 120 बी, 420, 468, 471 आईपीसी के तहत पारित समन आदेश दिनांक 11.03.2019 को और आरोप पत्र संख्या 1/2001 दिनांक 07.02.2009 को चुनौती दी गई है और विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निरोधक), सीबीआई की अदालत में लंबित विशेष मामला संख्या 2/2019 की संपूर्ण कार्यवाही को चुनौती दी गई है।

3. याचिकाकर्ता मोहम्मद अली जफर पशु चिकित्सा निरीक्षक के पद पर तैनात थे और याचिकाकर्ता सुशील कुमार फार्मासिस्ट कंपाउंडर-कम-स्टोर कीपर, केंद्रीय सरकारी अस्पताल, मेरठ कैंट के पद पर तैनात थे। याचिकाकर्ता मोहम्मद अली जफर उस समय कैंटोनमेंट बोर्ड, मेरठ में कार्यालय अधीक्षक के पद पर भी कार्यरत थे।

4. एक स्रोत से मिली जानकारी के आधार पर, दिनांक 12.05.2015 और 13.05.2015 को सीबीआई, गाजियाबाद, रक्षा मंत्रालय, महानिदेशक (सतर्कता), रक्षा संपदा, नई दिल्ली और औषधि निरीक्षक, केंद्रीय औषधि मानक नियंत्रण संगठन (सीडीएससीओ) की एक टीम द्वारा छावनी सामान्य अस्पताल, कैंट बोर्ड, मेरठ में एक संयुक्त आकस्मिक जांच की गई।

5. सीबीआई ने वर्ष 2015 में कैंटोनमेंट जनरल अस्पताल, मेरठ कैंट का निरीक्षण किया था और घोर अनियमितताएं पाते हुए 16.03.2016 को सीबीआई/एसीबी, गाजियाबाद में भ्रष्टाचार

निवारण अधिनियम, 1988 (जिसे आगे पीसी अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 13(2)/13 (1) (डी) के अंतर्गत डॉ. आराधना पाठक, तत्कालीन रेजिडेंट मेडिकल ऑफिसर, जो कैंटोनमेंट जनरल अस्पताल, मेरठ कैंट में तैनात थीं और अन्य के खिलाफ एक नियमित मामला संख्या आरसी 120201600003 दर्ज किया था जिसमें आरोप है कि वर्ष 2011-14 के दौरान डॉ. आराधना पाठक ने याचिकाकर्ताओं और गौरव अरोड़ा, प्रोप. मेसर्स अरोड़ा फार्मा, मेरठ, यूपी के साथ आपराधिक साजिश में प्रवेश किया। और अन्य अज्ञात व्यक्तियों के साथ आपराधिक साजिश रची और उक्त आपराधिक साजिश को आगे बढ़ाने के निर्धारित प्रक्रिया और मानदंडों का उल्लंघन करते हुए बेईमानी और धोखाधड़ी से दरों पर दवाएं खरीदतीं और खातों (दवा स्टॉक पुस्तकों) में हेराफेरी की और संबंधित रिकॉर्ड में जालसाजी की।

6. जांच के दौरान सुखजीवन सिंह चहल, तत्कालीन मुख्य अधिशासी अधिकारी (सी.ई.ओ.) छावनी बोर्ड, मेरठ कैंट (अब सेवानिवृत्त) और याचिकाकर्ता मोहम्मद अली जफर, तत्कालीन कार्यवाहक कार्यालय अधीक्षक, सी.ई.ओ. कार्यालय, छावनी बोर्ड, मेरठ कैंट की भूमिका प्रकाश में आई।

7. सीबीआई ने अपराध की जांच करने और साक्ष्य और सामग्री एकत्र करने के बाद, धारा 120 वी, 409, 420, 468, 471, 477 ए आईपीसी, 13 (2) / 13 (1) (डी) पीसी अधिनियम, 1988 के तहत आरोप पत्र तैयार किया, जिसमें कैंटोनमेंट बोर्ड मेरठ को

23,46,436 रुपये की गलत हानि और खुद को इसी तरह का गलत लाभ पहुंचाने का आरोप लगाया गया।

8. विस्तृत जांच करने के बाद, सीबीआई ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की और तत्पश्चात दिनांक 23.08.2018 के पत्र के माध्यम से डॉ. आराधना पाठक, आरएमओ, कैंट जनरल अस्पताल, याचिकाकर्ता-मोहम्मद अली जफर, कैंट बोर्ड के कार्यवाहक कार्यालय अधीक्षक (दोनों पर्यवेक्षी पद) और याचिकाकर्ता-सुशील कुमार कंपाउंडर सह स्टोर कीपर, कैंट जनरल अस्पताल (गैर- पर्यवेक्षी कर्मचारी) के खिलाफ मुकदमा चलाने की अनुमति मांगी।

9. छावनी बोर्ड ने सी.बी. आर. संख्या 169 दिनांक 15.11.2018 के तहत बहुमत से यह निर्णय लिया कि आरोपी अधिकारियों के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी सी.बी.आई. को नहीं दी जाएगी, तथा बोर्ड ने आगे यह भी निर्णय लिया कि आरोपी अधिकारियों डॉ. आराधना पाठक तथा मोहम्मद अली जफर के खिलाफ छावनी निधि सेवक नियम, 1937 तथा सी.सी.एस. नियमों के प्रावधानों के तहत विभागीय कार्यवाही शुरू की जाए, जिसके लिए एक समिति गठित की गई, तथा इसकी सूचना छावनी बोर्ड के उच्च अधिकारियों के साथ-साथ सी.बी.आई./ए.सी.बी. गाजियाबाद को दी गई। इसके बाद सी.बी.आई. ने 17.03.2019 को आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप-पत्र दाखिल किया।

10. इसके बाद छावनी बोर्ड ने डीडीजी (सतर्कता), दिल्ली को संबोधित

सीबीआई/एसीबी, गाजियाबाद शाखा के प्रमुख के दिनांक 27.02.2019 के गोपनीय पत्र पर विचार करने के बाद अपने पहले के फैसले की समीक्षा की, जिसकी प्रतिलिपि अध्यक्ष, कैंट बोर्ड, मेरठ और सी.वी.सी. नई दिल्ली के ओ.एस.डी. को भेजी गई, रक्षा संपदा निदेशालय के कैंट बोर्ड के अध्यक्ष, मेरठ को संबोधित सीसी पत्र दिनांक 03.04.2019, बोर्ड में विस्तृत विचार-विमर्श और चर्चा के बाद आरोपित अधिकारियों के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी देने वाला प्रस्ताव संख्या 139 दिनांक 29.05.2019 पारित किया।

11. आरोपी अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप भारतीय दंड संहिता की संबंधित धाराओं और पीसी अधिनियम, 1988 के प्रावधानों के तहत लगाए गए हैं। अधिकारियों के खिलाफ आपराधिक साजिश और अधिकारियों के दुर्भावनापूर्ण इरादों के आरोप हैं, जिसके परिणामस्वरूप भारत सरकार को आर्थिक नुकसान हुआ और अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ संबंधित अधिकारियों को संभावित गलत लाभ हुआ।

12. प्रारंभ में, इस न्यायालय ने दिनांक 11.04.2019 के आदेश के माध्यम से विशेष न्यायाधीश भ्रष्टाचार निरोधक/सी.बी.आई. न्यायालय संख्या 3. गाजियाबाद के समक्ष विशेष मामला संख्या 2/2019 की कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रार्थना की याचिका को खारिज कर दिया। हालांकि, न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं को ट्रायल कोर्ट के समक्ष आत्मसमर्पण करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया और तीन सप्ताह की अवधि के

दौरान उनके खिलाफ कोई दंडात्मक उपाय नहीं करने को कहा।

दिनांक 11.04.2019 का आदेश निम्नानुसार होगा:-

"आवेदक के विद्वान वकील, श्री मेहुल खरे द्वारा सहायता प्राप्त उमाकांत उनियाल, प्रतिवादी संख्या 2/ सीबीआई के विद्वान वकील श्री श्री प्रकाश, प्रतिवादी संख्या 3 एवं 4 के लिए वकील श्री आर.पी.एस. चौहान, प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान वकील श्री सतीश कुमार राय को सुना।

धारा 482 सीआरपीसी के तहत यह आवेदन विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण), सीबीआई, कोर्ट नंबर 3. गाजियाबाद द्वारा विशेष मामला संख्या 2/2019 में धारा 120 बी, 420, 468, 471 आईपीसी के तहत पारित आरोप पत्र संख्या 1 दिनांक 07.03.2019 और दिनांक 11.03.2019 के समन आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, साथ ही उपरोक्त मामले की संपूर्ण कार्यवाही भी रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

आवेदक के विद्वान वकील ने अपने तर्क को इस हद तक सीमित कर दिया है कि संज्ञान लेने का आदेश, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को समन किया गया है, ट्रायल कोर्ट ने सीधे आवेदक के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया है और हालांकि वह संबंधित अदालत के समक्ष पेश होने के लिए तैयार है और आगे प्रस्तुत करता है कि

उक्त उद्देश्य के लिए आवेदक को कुछ अंतरिम संरक्षण दिया जा सकता है।

उत्तरदाताओं के विद्वान वकील का कहना है कि चूंकि आवेदक ट्रायल कोर्ट के समक्ष पेश होने के लिए तैयार है, जैसा कि आवेदक के विद्वान वकील द्वारा तर्क दिया गया है, इसलिए, उन्हें इस पर कोई आपत्ति नहीं है।

पक्षकारों के लिए विद्वान वकील द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार करने और रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन करने के बाद, मुझे आरोप पत्र के साथ-साथ संबंधित अदालत द्वारा पारित 11.03.2049 के सम्मन आदेश के आधार पर उपरोक्त मामले की कार्यवाही को रद्द करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिला। इस हद तक प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है।

हालांकि, आज से तीन सप्ताह की अवधि के लिए आवेदक जमानती वारंट को स्थगित रखा जाएगा। के खिलाफ जारी गैर-जमानती वॉरन्ट को स्थगित कर दिया।

यदि आवेदक उपरोक्त अवधि के भीतर नीचे के न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होता है, तो ट्रायल कोर्ट उसके खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र है।

यह स्पष्ट किया जाता समक्ष आत्मसमर्पण करने दिया गया है। आवेदक को इस न्यायालय द्वारा नीचे के न्यायालय के लिए आगे कोई समय नहीं दिया जाएगा, जैसा कि ऊपर निर्देश दिया गया है।

उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, आवेदन का निपटारा किया जाता है।"

13. इसके बाद याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या 4029/2019 दायर करके चुनौती दी, जिसे आपराधिक अपील संख्या 1166/2019 में परिवर्तित कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 31.07.2019 के आदेश के तहत पाया कि इस न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए विवादों को स्पष्ट नहीं किया है, इसलिए दिनांक 11.04.2019 के आदेश को रद्द कर दिया और मामले को अपने गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से विचार करने के लिए इस न्यायालय को वापस भेज दिया तथा सभी पक्षों के लिए उपलब्ध विवादों को खुला छोड़ दिया। जिन पर उनके गुण-दोष के आधार पर और कानून के अनुसार निर्णय लिया जाना चाहिए।

14. सर्वोच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष भी दर्ज किया कि याचिकाकर्ताओं की यह शिकायत कि उनके खिलाफ कोई मंजूरी आदेश नहीं था, विचार के लिए टिक नहीं पाई, क्योंकि सीबीआई ने कैंटोनमेंट बोर्ड द्वारा जारी दिनांक 29.05.2019 के मंजूरी आदेश को रिकॉर्ड में श को रिकॉर्ड रखा था। क्या वह मंजूरी आदेश न्यायसंगत और उचित था, यह मामला इस न्यायालय के समक्ष विचार-विमर्श योग्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इस न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला है कि वह मंजूरी आदेश को दी गई चुनौती की जांच उसके गुण-दोष के आधार पर करने से इंकार कर दे, क्योंकि यह एक विचारणीय मुद्दा है।

2019 की आपराधिक अपील संख्या 1166 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 31.07.2019 को निम्नानुसार पा जाएगा:

"अवकाश स्वीकृत।

यह अपील इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 संख्या 13242/2019 के तहत आवेदन में पारित दिनांक 11.04.2019 के निर्णय और आदेश पर अपवाद लेती है, जिसके तहत दिनांक 07.03.2019 के आरोपपत्र संख्या को रद्द करने के लिए आवेदन और विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण), सीबीआई, कोर्ट संख्या 3, गाजियाबाद द्वारा विशेष मामला संख्या 2/2019 में धारा 120 बी, 420, 468, 471 आईपीसी के तहत पारित दिनांक 11.03.2019 के समन आदेश को खारिज कर दिया गया।

उक्त आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने मूलतः अपीलकर्ता की इस आशंका पर विचार किया कि उसके विरुद्ध जारी गैर-जमानती वारंट के आधार पर उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए अन्य तर्कों पर स्पष्टीकरण नहीं दिया। अर्थात्, जब आवेदन दायर किया गया था, उस समय अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई मंजूरी आदेश नहीं था: तथा दिल्ली विशेष पुलिस अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत जांच राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बिना आगे नहीं बढ़ सकती।

जहां तक अपीलकर्ता के विरुद्ध मंजूरी आदेश न दिए जाने की शिकायत का संबंध है, जो विचारार्थ नहीं बची है। सीबीआई ने अब अपीलकर्ता के खिलाफ बोर्ड द्वारा जारी दिनांक 29.05.2019 के स्वीकृति आदेश को

रिकॉर्ड में रखा है, जिसके बारे में कहा गया है कि बोर्ड में कहा गया ऐसे आदेश जारी करने के लिए सक्षम प्राधिकारी है। क्या वह मंजूरी आदेश न्यायसंगत और उचित है, यह भी विचार-विमर्श का विषय है और ऐसा उच्च न्यायालय के समक्ष किया जा सकता है। हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि यदि यह एक विचारणीय मुद्दा है तो उच्च न्यायालय को मंजूरी आदेश को चुनौती देने वाले मामले की गुण-दोष के आधार पर जांच करने से इंकार करने का अधिकार है। उपरोक्त के मद्देनजर, हम विवादित आदेश को रद्द करते हैं और इसके स्थान पर अपीलकर्ता लकर्ता द्वारा द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत दायर निरस्तीकरण आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा अपने गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से विचार करने के लिए उसकी मूल संख्या पर बहाल किया जाता है। पक्षों के समक्ष उपलब्ध सभी विवादों को उनके गुण-दोष के आधार पर तथा कानून के अनुसार निर्णय लेने के लिए खुला छोड़ दिया गया है।

अपीलकर्ता दिनांक 06.08.2019 को उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा ताकि उच्च न्यायालय कानून के अनुसार मामले में शीघ्रता से आगे बढ़ सके।

आपराधिक अपील का निपटारा उपर्युक्त शर्तों के अनुसार किया जाता है।

यदि कोई लंबित आवेदन है तो उसका निपटारा कर दिया गया है।

15. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक मेहता ने प्रस्तुत किया है कि छावनी बोर्ड, छावनी अधिनियम, 2006 के तहत एक स्वायत्त वैधानिक निकाय है। छावनी बोर्ड के कर्मचारी न तो केन्द्र सरकार के कर्मचारी हैं

और न ही राज्य सरकार के। यद्यपि वे छावनी अधिनियम, 2006 की धारा 38 के अंतर्गत लोक सेवक हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि सीबीआई दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 की धारा 6 के तहत उत्तर प्रदेश राज्य की सहमति के विना याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कार्यवाही नहीं कर सकती थी और इसलिए, पूरी जांच शुरू से ही शून्य थी और अधिकार क्षेत्र के बिना थी और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

16. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पीसी अधिनियम, 1988 के प्रावधानों के तहत अपराधों की सीबीआई द्वारा जांच के लिए राज्य सरकार द्वारा दिनांक 15.06.1989 की अधिसूचना के तहत दी गई सामान्य सहमति कोई प्रासंगिकता नहीं रखती, क्योंकि याचिकाकर्ता न तो केंद्र सरकार के कर्मचारी हैं, न ही राज्य सरकार के कर्मचारी हैं और न ही वे निजी व्यक्ति हैं, बल्कि वे छावनी अधिनियम, 2006 के प्रावधानों के तहत वैधानिक निकाय यानी छावनी बोर्ड के कर्मचारी हैं। यहां तक कि दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 की धारा 6 के तहत राज्य की कोई कार्यांतर सहमति भी नहीं है, और इस प्रकार याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए कथित अपराध के संबंध में सीबीआई द्वारा जांच के लिए सहमति के अभाव में, पूरी जांच क्षेत्राधिकार के बाहर थी और इसलिए आरोपपत्र भी अवैध है और रद्द किए जाने योग्य है।

17. याचिकाकर्ता मोहम्मद अली जफर के संबंध में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक मेहता ने प्रस्तुत किया है कि मेरठ कैंट बोर्ड द्वारा दिनांक 15.11.2018 के संकल्प के तहत सीबीआई को अभियोजन हेतु कोई

स्वीकृति नहीं दी गई। हालाँकि, उक्त एस.एल.पी. (आपराधिक) संख्या 4029/2019 के लंबित रहने के दौरान, 29.05.2019 को अभियोजन की मंजूरी देने से इनकार करने के निर्णय की समीक्षा की गई, और मंजूरी आदेश जारी किया गया। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता मोहम्मद अली जफर के खिलाफ अभियोजन की मंजूरी देने के लिए विचार हेतु कोई नई सामग्री उपलब्ध नहीं थी। फ्रेश साक्ष्य के अभाव में, छावनी बोर्ड याचिकाकर्ता मोहम्मद अली जफर के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी देने से इनकार करने के अपने पहले के फैसले की समीक्षा नहीं कर सकता था। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि दिनांक 29.05.2019 को अभियोजन की मंजूरी देने का आदेश कानून की दृष्टि से गलत है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

18. छावनी बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री एस.के. राय ने प्रस्तुत किया कि आरोपी अधिकारियों के विरुद्ध लगाए गए आरोप भ्रष्टाचार, जालसाजी तथा अभिलेखों में हेराफेरी के हैं, जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार को अनुचित हानि हुई है तथा आरोपी को संभवतः लाभ हुआ है। केन्द्र सरकार को छावनी अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अनुसार छावनी बोर्ड और उसके कर्मचारियों के सम्पूर्ण कामकाज को नियंत्रित और विनियमित करने की शक्ति प्राप्त है। केन्द्रीय सरकार को बोर्ड या जनरल ऑफिसर-इन-कमांड द्वारा लगाए गए दंड को संशोधित संशोधित करने की शक्ति प्राप्त है और इस प्रकार, बोर्ड और उसके कर्मचारियों के कामकाज के संबंध में अंतिम शक्ति केन्द्रीय सरकार में निहित

मकाज के है। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि केंद्र सरकार के पास छावनी बोर्ड और उसके कर्मचारियों के संपूर्ण कामकाज का पर्यवेक्षण, नियंत्रण और विनियमन करने का अधिकार और शक्ति है। छावनी बोर्ड के कर्मचारियों द्वारा कथित रूप से किए गए अपराधों की सीबीआई द्वारा जांच के लिए राज्य सरकार से पूर्व सहमति लेने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि छावनी बोर्ड के कर्मचारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राज्य सरकार के नियंत्रण में नहीं होते हैं। सक्षम प्राधिकारी ने पहले ही पीसी अधिनियम की धारा 19 के तहत याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी दे दी है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा आरोपित कार्यवाही में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है और याचिकाएं योग्यता और सार से रहित होने के कारण खारिज किए जाने योग्य हैं।

19. सीबीआई की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री संजय कुमार यादव की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ज्ञान प्रकाश श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया कि छावनी बोर्ड, छावनी अधिनियम, 2006 के तहत एक स्वायत्त निकाय है, जो रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के समग्र नियंत्रण में कार्य करता है। छावनी बोर्ड के कामकाज पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण प्रधान निदेशक, रक्षा संपदा, और उच्चतम स्तर पर महानिदेशक, रक्षा संपदा, दिल्ली छावनी, रक्षा मंत्रालय के माध्यम से केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि सीबीआई द्वारा छावनी बोर्ड के कर्मचारियों के खिलाफ अपराध की जांच के लिए दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम

के तहत राज्य सरकार से किसी भी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि छावनी क्षेत्र पर विधायी अधिकार संघ सरकार का है, क्योंकि विषय-वस्तु भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची की प्रविष्टि 3 में प्रदान की गई है।

20. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सीबीआई के संबंध में डीएसपीई अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत उत्तर प्रदेश राज्य सरकार की वैध सामान्य सहमति, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी दिनांक 15 जून, 1989 की अधिसूचना के अनुसार वियमान है। सीबीआई छावनी बोर्ड के कर्मचारियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने और मामले की जांच करने के लिए सक्षम है और इसके लिए राज्य सरकार से कोई विशेष अनुमति/सहमति की आवश्यकता नहीं है। राज्य सरकार ने स्वयं दिनांक 03.05.2019 को पत्र जारी कर स्पष्ट किया है कि छावनी बोर्ड के कर्मचारी कर्मचारी रा राज्य सरकार के नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण में नहीं हैं तथा छावनी बोर्ड केन्द्र सरकार के नियंत्रण में आता है।

21. इस दलील के संबंध में कि बोर्ड द्वारा दिनांक 15.11.2018 को अभियोजन की पूर्व अनुमति अस्वीकार कर दी गई थी और उसी सामग्री के आधार पर दिनांक 29.05.2019 के प्रस्ताव के माध्यम से अनुमति प्रदान की गई थी, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि बोर्ड ने कैंटोनमेंट बोर्ड, मेरठ के मामले में सीबीआई के गैर-अधिकार क्षेत्र का मुद्दा उठाया है और इसलिए बोर्ड ने दिनांक 15.09.2018 को स्वयं एक प्रस्ताव पारित किया और बोर्ड के सदस्यों के बहुमत से किए गए विचारों के आधार पर

याचिकाकर्ता मोहम्मद एम.ए. जफर के खिलाफ अभियोजन के लिए सीबीआई को कोई मंजूरी नहीं दी गई और आगे यह संकल्प लिया गया कि आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के संबंध में आरोपी कर्मचारियों के खिलाफ कैंटोनमेंट फंड सर्विस रूल्स, 1937 और सीसीएस रूल्स के प्रावधानों के तहत विभागीय कार्यवाही शुरू की जाए लेकिन आरोपी बोर्ड (जांच सदस्य) के समक्ष पेश होने में विफल रहे। मंजूरी देने से इनकार करने तथा समानांतर जांच करने का सक्षम प्राधिकारी का निर्णय कानून के अनुरूप नहीं था, क्योंकि बोर्ड की राय में सीबीआई का बोर्ड के कर्मचारियों पर अधिकार क्षेत्र नहीं था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जब संपूर्ण सामग्री पुनः बोर्ड के समक्ष रखी गई और कानूनी स्थिति स्पष्ट हो गई, तो बोर्ड ने मुद्दे पर अपने विचार पर पुनर्विचार किया और याचिकाकर्ता के खिलाफ 29.05.2019 को अभियोजन की मंजूरी दे दी।

22. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि ट्रायल कोर्ट ने याचिकाकर्ता मोहम्मद अली जफर के खिलाफ भारतीय दंड संहिता के तहत संज्ञान लिया था, न कि पीसी अधिनियम, 1988 के प्रावधानों के तहत और इसलिए, अन्यथा भी संज्ञान से पहले पीसी अधिनियम की धारा 19 के तहत मंजूरी का मुद्दा टिका नहीं रहेगा क्योंकि पीसी अधिनियम की धारा 19 के तहत मंजूरी पीसी अधिनियम, 1988 के तहत अपराधों और किसी अन्य दंडनीय अपराध के संबंध में है। छावनी बोर्ड के कर्मचारी सरकारी कर्मचारी की श्रेणी में नहीं आते हैं जिन्हें केन्द्र/राज्य सरकार द्वारा हटाया जा सकता है,

इसलिए धारा 197 सीआरपीसी के तहत कोई पूर्व मंजूरी की आवश्यकता नहीं है।

23. तथ्यों पर ज्यादा विवाद नहीं है। छावनी बोर्ड स्थानीय प्राधिकरण है जो छावनी अधिनियम, 2006 के प्रावधानों के तहत छावनी क्षेत्र में नगरपालिका संबंधी कार्य करता है। राज्य सरकार के पास छावनी बोर्ड या उसके कर्मचारियों के कामकाज या छावनी बोर्ड के अधिकार क्षेत्र और नियंत्रण के तहत क्षेत्र के पर्यवेक्षण और विनियमन की कोई शक्ति, नियंत्रण और अधिकार नहीं है।

24. छावनी अधिनियम, 2006 की धारा 38 में प्रावधान है कि "प्रत्येक अधिकारी या कर्मचारी, स्थायी या प्रत्यक्ष, भारतीय दंड संहिता की धारा 21 और पीसी अधिनियम की धारा 2 (सी) के अर्थ में लोक सेवक माना जाएगा।" छावनी बोर्ड के छावनी बोर्ड के कर्मचारियों की सेवा शर्तें कर्मचारी सेवा नियम, 2021 के तहत शासित होती हैं, जो छावनी सेवा नियम, 1937 को निरस्त करने के बाद 13.10.2021 से लागू हुई।

25. इन याचिकाओं में मुख्य रूप से जो प्रश्न शामिल की सहमति के बिना, सीबीआई को छावनी बोर्ड और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का अधिकार होगा। कि क्या राज्य सरकार के नियंत्रण वाले क्षेत्र के संबंध में शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का अधिकार होगा।

26. दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 की धाराएं 5, 6 और 6ए, जो प्रश्नगत

मुद्दे पर निर्णय के लिए प्रासंगिक है, नीचे उद्धृत हैं:-

"5. विशेष पुलिस स्थापना की शक्तियों और अधिकारिता का अन्य क्षेत्रों तक विस्तार-

(1) केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा, धारा 3 के अधीन अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किसी अपराध या अपराधों के वर्गों के अन्वेषण के लिए दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन के सदस्यों की शक्तियों और अधिकारिता को किसी क्षेत्र (जिसके अंतर्गत रेलवे क्षेत्र भी हैं) पर विस्तारित कर सकेगी।

(2) जब उपधारा (1) के अधीन आदेश द्वारा उक्त पुलिस स्थापन के सदस्यों की शक्तियां और अधिकारिता किसी ऐसे क्षेत्र तक विस्तारित की जाती है, तब उसका कोई सदस्य, ऐसे किन्हीं आदेशों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त बनाए, उस क्षेत्र में पुलिस अधिकारी के कृत्यों का निर्वहन कर सकेगा और ऐसे कृत्यों का इस प्रकार निर्वहन करते समय वह उस क्षेत्र के पुलिस बल का सदस्य समझा जाएगा और उसमें उस पुलिस बल के पुलिस अधिकारी की शक्तियां, कृत्य और विशेषाधिकार निहित होंगे तथा वह उनके दायित्वों के अधीन होगा।³ [(3) जहां उपधारा (1) के अधीन ऐसा कोई आदेश किसी क्षेत्र के संबंध में किया जाता है, वहां उपधारा (2) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन का उपनिरीक्षक या उससे ऊपर की पंक्ति का कोई सदस्य, ऐसे किन्हीं आदेशों के अधीन रहते हुए, जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त बनाए, उस क्षेत्र में किसी पुलिस थाने के भारसाधक

अधिकारी की शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा और ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय वह किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी समझा जाएगा जो अपने थाने की सीमाओं के भीतर ऐसे अधिकारी के कृत्यों का निर्वहन करता है।]

6. शक्तियों और अधिकारिता के प्रयोग के लिए राज्य सरकार की सहमति धारा 5 में अंतर्विष्ट कोई बात दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन के किसी सदस्य को 2 [किसी राज्य में, जो संघ राज्यक्षेत्र या रेलवे क्षेत्र न हो], उस राज्य की सरकार की सहमति के बिना शक्तियों और अधिकारिता का प्रयोग करने में समर्थ बनाने वाली नहीं समझी जाएगी।

6A. जांच या अन्वेषण करने के लिए केन्द्र सरकार की मंजूरी।

(1) दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) के अंतर्गत किए गए किसी अपराध के संबंध में केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन के बिना कोई जांच या अन्वेषण नहीं करेगा, जहां ऐसा आरोप निम्नलिखित से संबंधित है-

(a) संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर के केन्द्र सरकार के कर्मचारी: और

(b) ऐसे अधिकारी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा किसी केन्द्रीय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन स्थापित निगमों, सरकारी कम्पनियों, सोसाइटियों और उस सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले स्थानीय प्राधिकरणों में नियुक्त किए जाते हैं।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 7 के स्पष्टीकरण के खंड (ग) में निर्दिष्ट वैध पारिश्रमिक से भिन्न कोई परितोषण स्वीकार करने या स्वीकार करने का प्रयास करने के आरोप में किसी व्यक्ति को मौके पर गिरफ्तार करने से संबंधित मामलों के लिए ऐसा अनुमोदन आवश्यक नहीं होगा।]"

27. उपर्युक्त प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जब तक राज्य सरकार अपनी सहमति नहीं देती, सीबीआई को राज्य सरकार के किसी भी क्षेत्र में अपराध की जांच करने का अधिकार नहीं होगा। इसी प्रकार, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 की धारा 6ए के तहत, केन्द्र सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना, सीबीआई को संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर के केन्द्र सरकार के कर्मचारियों तथा ऐसे अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत अपराध की जांच करने का अधिकार नहीं होगा, जो किसी केन्द्रीय अधिनियम द्वारा या उसके तहत स्थापित निगमों, सरकारी कंपनियों, सोसाइटियों और उस सरकार के स्वामित्व और नियंत्रण वाले स्थानीय प्राधिकरणों में केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किए गए हों।

28. इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि छावनी के अंतर्गत आने वाला क्षेत्र राज्य सरकार के अधीन क्षेत्र नहीं है और न ही याचिकाकर्ता केन्द्र सरकार के कर्मचारी हैं या केन्द्र सरकार द्वारा छावनी बोर्ड में नियुक्त हैं। इस प्रकार, वर्तमान मामले में दिल्ली विशेष

पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 की धारा 6 या 6ए लागू नहीं होती। याचिकाकर्ता न तो राज्य सरकार, न ही केन्द्र सरकार के कर्मचारी हैं और न ही छावनी परिषद, मेरठ का क्षेत्र राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र या नियंत्रण में आता है।

29. राज्य सरकार ने डी.पी.एस.ई. अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानों के अनुसरण में दिनांक 15.6.1989 को अधिसूचना जारी की है। अधिसूचना नीचे उद्धृत है:

उत्तर प्रदेश सरकार
गृह (पुलिस) अनुभाग-1
संख्या. 3442/VIII-1-84/88
लखनऊ, दिनांक: 15 जून.
अधिसूचना

दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) की धारा 6 के प्रावधानों के अनुसरण में, उत्तर प्रदेश राज्य के राज्यपाल भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) के तहत दंडनीय अपराधों की जांच के लिए पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन के सदस्यों की शक्तियों और क्षेत्राधिकार के विस्तार के लिए सहमति देते हैं. और ऊपर वर्णित सभी या किसी भी अपराध या अपराधों और लेनदेन के दौरान किए गए और उन्हीं तथ्यों से उत्पन्न किसी अल्प अपराध या अपराधों के संबंध में प्रयास, उकसावे और षड्यंत्रों की जांच के लिए, हालांकि इस शर्त के अधीन कि राज्य सरकार

के नियंत्रण में लोक सेवकों से संबंधित मामलों में राज्य सरकार की पूर्व अनुमति के बिना ऐसी कोई जांच नहीं की जाएगी।

राज्यपाल के नाम से आदेश द्वारा।

एसडी/-

(एस. के. त्रिपाठी)

उत्तर प्रदेश सरकार के गृह सचिव"

30 राज्य सरकार ने दिनांक 03.05.2019 के सरकारी आदेश के तहत स्पष्ट किया है कि छावनी बोर्ड के कर्मचारियों के संबंध में किसी सहमति की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे राज्य सरकार के कर्मचारी नहीं हैं और छावनी का क्षेत्र राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में नहीं आता है।

31. इसके मद्देनजर, छावनी बोर्ड के किसी कर्मचारी द्वारा किए गए अपराध या छावनी बोर्ड के अपराध या क्षेत्र में किए गए अपराध की जांच के संबंध में, सीबीआई द्वारा जांच करने के लिए राज्य सरकार या केंद्र सरकार की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसलिए, मुझे वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक मेहता के इस तर्क में कोई तथ्य नहीं लगता कि छावनी परिषद, मेरठ के एक कर्मचारी द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत किए गए अपराध के संबंध में राज्य सरकार की पूर्व सहमति के बिना जांच अधिकार क्षेत्र के चाहर थी और अधिकार क्षेत्र के बिना आरोप पत्र दायर करना अवैध था।

32. जहां तक याचिकाकर्ताओं के अभियोजन के लिए छावनी बोर्ड द्वारा दिनांक 29.05.2019 के आदेश द्वारा दी गई मंजूरी

का प्रश्न है, दिनांक 15.11.2018 के संकल्प को बहुमत से हल कर दिया गया था कि डॉ. आराधना पाठक और याचिकाकर्ता मोहम्मद अली जफर के अभियोजन के लिए सीबीआई को कोई मंजूरी नहीं दी जाएगी और आरोपित कर्मचारियों के बिलाफ छावनी निधि सेवा नियम, 1937 और सीएसएस नियमों के प्रावधानों के तहत विभागीय कार्यवाही शुरू की जाएगी, जिसके लिए एक समिति गठित की गई थी। हालांकि, बोर्ड के समक्ष अन्य सामग्री रखे जाने के बाद, अभियोजन की मंजूरी देने के लिए दिनांक 29.05.2019 के आदेश द्वारा इसे हल कर दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं अपने दिनांक 31.07.2019 के आदेश में माना है कि यह न्यायालय मंजूरी आदेश को दी गई चुनौती की योग्यता के आधार पर जांच करने से इनकार कर सकता है, क्योंकि यह एक विचारणीय मुद्दा है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले का प्रस्ताव सही कानूनी स्थिति की अनदेखी में दिया गया था और जब सही कानूनी स्थिति बोर्ड के ध्यान में लाई गई तो उसने अभियोजन के लिए मंजूरी दे दी। मुझे याचिकाकर्ता के अभियोजन के लिए मंजूरी आदेश में कोई अवैधता नहीं दिखती।

33. पीसी अधिनियम, 1988 के तहत किसी लोक सेवक के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लेने के लिए पीसी अधिनियम की धारा 19 के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा वैध मंजूरी अनिवार्य है। यदि मंजूरी को अवैध माना जाता है तो ट्रायल कोर्ट द्वारा की गई संपूर्ण कार्यवाही शून्य हो जाएगी। पीसी अधिनियम की धारा 19 सक्षम प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के बिना किसी लोक सेवक के विरुद्ध

न्यायालय द्वारा किसी अपराध के लिए संज्ञान लेने पर रोक लगाती है। अभियुक्त को दोषी ठहराने वाली अदालत की योग्यता वैध मंजूरी के अस्तित्व पर निर्भर करती है। यदि मंजूरी अवैध पाई जाती है, तो अदालत आरोपी को आरोपमुक्त कर सकती है, तथा पक्षों को उस चरण में भेज सकती है, जहां सक्षम प्राधिकारी कानून के अनुसार अभियोजन के लिए नई मंजूरी दे सकता है। यदि परीक्षण न्यायालय, मंजूरी आदेश की अवैधता के बावजूद आगे बढ़ता है, तो उसे कानून की दृष्टि में अमान्य माना जाएगा तथा ऐसे अभियोजन के लिए वैध मंजूरी दिए जाने पर उसी अपराध के लिए दूसरे परीक्षण पर रोक नहीं लगाई जाएगी। मंजूरी आदेश को दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है: मंजूरी ऐसे प्राधिकारी द्वारा दी गई है जो मंजूरी देने के लिए सक्षम नहीं है। ऐसा आदेश अधिकार क्षेत्र से बाहर होगा और अमान्य होगा। हालांकि, यदि मंजूरी आदेश में कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता है, तो वह तब तक घातक नहीं होगी जब तक कि उससे न्याय का उल्लंघन न हुआ हो।

34. पीसी अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत संज्ञान लेने के लिए, मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष दोषपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की जानी चाहिए ताकि वह उस पर विचार कर मंजूरी देने के लिए निर्णय ले सके। इसमें विवेक का प्रयोग किया गया है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। मंजूरी के अभाव और बुद्धि के प्रयोग न करने के कारण कथित अमान्यता के बीच अंतर है। पहले प्रश्न पर तो सुनवाई की दहलीज पर विचार किया जा सकता है, लेकिन दूसरे प्रश्न पर सुनवाई के दौरान विचार किया

जाना चाहिए। इसमें कोई विवाद नहीं है कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी है, जिसे बोर्ड द्वारा दिनांक 29.05.2019 के आदेश के तहत प्रदान किया गया है। क्या मंजूरी देने के लिए प्राधिकारी के समक्ष सामग्री और साक्ष्य प्रस्तुत किए समक्ष सामग्री के आदेश के गए थे, जिसे दिनांक 15.11.2018 के आदेश द्वारा पहले ही अस्वीकार कर दिया गया था, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका निर्णय अभियोजन और बचाव पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के बाद ट्रायल कोर्ट द्वारा किया जा सकता है। इसलिए, यह अदालत इन कार्यवाहियों में हलफनामों के आधार पर उक्त मुद्दे पर निर्णय करना उचित नहीं समझती।

35. इसके मद्देनजर, इन जांचों को गुण और सार से रहित होने के कारण खारिज किया

(2023) 4 ILRA 382

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

13699/2016

जान चंद्र एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

... विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री जय बाबू केशरवानी,

श्री मोहम्मद मुस्तफा, मोहम्मद फिरोज खान

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अजय विक्रम

यादव, श्री सत्य प्रकाश

क. अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 366, 376(2)(एच) एवं 504 - 3/4 पोक्सो अधिनियम- चुनौती - पीड़िता को बुलाने के लिए सीआरपीसी की धारा 311 के तहत अस्वीकृति आदेश - पीड़िता से वाद का सामना कर रहे आरोपियों द्वारा जिरह नहीं की जा सकी - विचारणीय न्यायालय ने बचाव पक्ष को उचित अवसर और कानून का समान संरक्षण दिए बिना जिरह बंद कर दी - चूंकि पीड़िता पीडब्लू-2 महत्वपूर्ण गवाह थी, इसलिए ट्रायल कोर्ट का यह कर्तव्य था कि ऐसे गवाह से जिरह करने का पूरा अवसर प्रदान किया जाए - इस प्रकार, जहां किसी कारणवश, आरोपी अभियोजन पक्ष के गवाहों से जिरह नहीं कर सका, संबंधित अदालत सीआरपीसी की धारा 311 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसे गवाहों को जिरह के लिए दोबारा बुला सकती है। (पैरा 1 से 28) आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2013) एआईआर एससी 3081
2. नताशा सिंह बनाम सी.बी.आई. (एसटी) (2013) सीआर.एल.जे. 3346 एस.सी.
3. दलवीर सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2013) Cr.L.J. 3064
4. लघु मोहन प्रसाद बनाम यूपी राज्य (2004) एससी 933 (एल्ड.)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद फिरोज खान, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना गया और पत्रावली का अवलोकन किया गया।

2. यह आवेदन धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत तीनों आरोपी व्यक्तियों ज्ञान चंद्र, देशराज और गोपी @अशोक कुमार द्वारा, मुकदमा अपराध संख्या 257 वर्ष 2013 से उत्पन्न, सत्र परीक्षण संख्या 07 वर्ष 2015 - राज्य बनाम ज्ञान चंद्र और अन्य, अंतर्गत धारा 363, 366, 376 (2) (एच) 504 भारतीय दंड संहिता और तथा 3/4 पोक्सो अधिनियम, पुलिस स्टेशन-सराय अकील, जिला कौशांबी, में अपर जिला और सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट, कौशांबी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 28 जनवरी, 2016, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने पीड़ित अभियोजन साक्षी 2 को जिरह के लिए बुलाने के लिए किये गए आवेदन अंतर्गत धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता को खारिज कर दिया, को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि शिकायतकर्ता श्रीमती रामपति, पत्नी लवकुश ने दिनांक 05.09.2013 की घटना के संबंध में 07.09.2013 को एक प्राथमिकी दर्ज कराई कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन पर, वह पीड़ित (उसकी बेटी) आयु लगभग 14 वर्ष, कक्षा 8 की छात्रा को घर में अकेला छोड़ कर खेत में काम पर गई थी, वह वापस आई तो उसने पाया कि उसकी बेटी मौजूद नहीं थी और घर का सामान अव्यवस्थित था। पड़ोस के आरोपी-आवेदक

रोशन लाल पुत्र ज्ञान चंद्र भी लापता थे। नकद राशि 10,000/-, एक सोने की चेन, सोने का मंगलसूत्र, दो चांदी की पायल, और उसके पति का यूनियन बैंक ऑफ इंडिया का एक बैंक एटीएम कार्ड भी गायब थे। उसने आशंका की, कि आरोपी-ज्ञान चंद्र, देशराज और गोपी उर्फ अशोक कुमार ने उसकी बेटी को लालच दिया और उसे ले गए। कुछ दिन पहले ज्ञान चंद्र के साथ विवाद हुआ था, जिसने इस पर ध्यान देने और समाज में उसका अपमान करने की धमकी दी थी। उसने अपनी बेटी की तलाश की लेकिन वह नहीं मिली, इसलिए रिपोर्ट/प्राथमिकी दर्ज की गई।

4. प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों के विपरीत, आवेदकों द्वारा यह कहा गया है कि आवेदक संख्या 1 और पीड़ित, सहमति वाले पक्ष थे और एक-दूसरे के प्रेम में पड़ गए थे और इस तरह दोनों ने एक-दूसरे के साथ लगभग दो महीने, ग्यारह दिन बिताए, उन्होंने शादी भी की और दिनांक 25.11.2012 को कौशांबी में विवाह समझौता भी तैयार किया था (संलग्नक संख्या 2)।

5. अन्वेषण अधिकारी ने गलत तरीके से आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। विचारण के दौरान सभी प्रासंगिक गवाहों का परीक्षण किया गया है, लेकिन आवेदकों को पीड़ित की प्रति-परीक्षा के लिए केवल एक ही तिथि प्रदान की गई थी, उक्त तिथि पर अधिवक्ता की बीमारी के कारण प्रति-परीक्षा करने की स्थिति में नहीं था, इसलिए एक स्थगन आवेदन दायर किया गया था, लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रति-परीक्षा के लिए कोई अवसर दिए बिना

दिनांक 03.02.2015 को आवेदन को खारिज कर दिया। दिनांक 13.01.2015 से 10.03.2016 तक प्रासंगिक आदेश पत्र की प्रमाणित प्रति हलफनामे के साथ संलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न की जा रही है।

6. धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन पीड़ित अभियोजन साक्षी 2 की प्रतिपरीक्षा का अवसर प्रदान करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष दिनांक 24.12.2015 को प्रस्तुत किया गया था, जो संलग्नक संख्या 4 के रूप में इस हलफनामे के साथ संलग्न है, लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किए बिना और आवेदन को कोई महत्व दिए बिना, इसे दिनांक 28 जनवरी, 2016 को खारिज कर दिया गया था। आवेदक मुकदमे में देरी नहीं करना चाहते हैं, लेकिन क्योंकि वे सलाखों के पीछे हैं और सह-अभियुक्त आवेदक संख्या 3 हरियाणा जेल में था, क्योंकि पीड़ित अभियोजन साक्षी 2 मुख्य गवाह है, इसलिए एक निष्पक्ष विचारण और उचित निर्णय के लिए उसकी प्रति-परीक्षा आवश्यक है। आवेदक संख्या 1 और पीड़ित बालिग हैं और उन्होंने अपनी मर्जी से अपनी शादी की है। बरामदगी होने और गिरफ्तारी के बाद पीड़ित को उसके माता-पिता के पास और आवेदक संख्या 1 को जेल भेज दिया गया। विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 28.01.2016 को पारित आदेश मनमाना और विकृत है और रद्द किये जाने योग्य है। इसलिए, आवेदन स्वीकार किया जाए और पीड़ित अभियोजन साक्षी 2 की प्रति-परीक्षा करने का अवसर प्रदान किया जाए।

7. राज्य ने जवाबी हलफनामा संख्या 02 वर्ष 2016 दायर किया है और आरोप लगाया है कि आवेदन की सामग्री सही नहीं है, पीड़ित लगभग 15 वर्ष की आयु की एक नाबालिग लड़की थी, इसलिए आवेदक संख्या 1 को सहमति देने का कोई सवाल ही नहीं उठता है, उसने विरोधी पक्ष संख्या 2 की पीड़ित नाबालिग बेटे का अपहरण कर लिया था और कथित अपराध को अंजाम दिया। अन्वेषण अधिकारी ने सही ढंग से आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। आवेदकों को प्रति-परीक्षा का अवसर प्रदान किया गया था, लेकिन वे लगातार विचारण पर विलंब कर रहे हैं और विपक्षी पक्ष और पीड़ित को भी धमकी दे रहे हैं, वे आत्मसमर्पण/पुलिस द्वारा गिरफ्तार हो चुके हैं। निष्पक्ष जाँच के संबंध में विपक्षी संख्या 2 के आवेदन पर माननीय न्यायालय के निर्देश पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

8. आवेदकों की राजनीतिक पृष्ठभूमि है, दो आरोपी व्यक्ति अभी भी फरार हैं, विचारण न्यायालय ने आवेदन को उचित ही खारिज कर दिया है क्योंकि आवेदक भारतीय दंड संहिता की धारा 376 (2) (एच) के अंतर्गत अपराध के त्वरित मुकदमे के लिए शीर्ष न्यायालय के विशिष्ट निर्देश के बावजूद मुकदमे में देरी करने के लिए विलम्ब की रणनीतियों का प्रयोग कर रहे थे, इसलिए आवेदन को खारिज कर दिया जाए।

9. आवेदकों द्वारा कोई जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया गया है, इसलिए दोनों पक्षों को सुना और पत्रावली का अवलोकन किया।

10. पत्रावली के अवलोकन से, यह पता चलता है कि दिनांक 13 जनवरी, 2015 को केवल आरोपी ज्ञान चंद्र और देशराज मौजूद थे, आरोपी-गोपी @अशोक कुमार न्यायालय में मौजूद नहीं था, तब भी अभियोजन साक्षी 1 का साक्ष्य दर्ज किया गया था।

11. दिनांक 03 फरवरी, 2015 को केवल ज्ञान चंद्र और देशराज की उपस्थिति में और आरोपी गोपी @अशोक कुमार (गुड़गांव जेल हरियाणा में बंद) की अनुपस्थिति में अभियोक्त्री का बयान और साक्ष्य दर्ज किया गया, और जब स्थगन आवेदन 29-बी पेश किया गया था, तो तत्कालीन पीठासीन अधिकारी ने इसे खारिज कर दिया था। इस न्यायालय के अनुसार एक सह-अभियुक्त-गोपी @अशोक कुमार की अनुपस्थिति में और यदि उनकी ओर से कोई छूट आवेदन दायर नहीं किया गया था, तो विचारण न्यायालय अभियोक्त्री के साक्ष्य को दर्ज करने हेतु पर्याप्त सक्षम नहीं थी। उपर्युक्त परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय का कर्तव्य था कि वह पहले केवल सभी अभियुक्त व्यक्तियों की उपस्थिति सुनिश्चित करे या यदि उन्हें अधिवक्ता के माध्यम से छूट दी गई है, तो अभियोक्त्री या किसी अन्य गवाह का साक्ष्य दर्ज किया जा सकता है, लेकिन विद्वान विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम में उल्लिखित परीक्षा के नियमों को लागू करने के अलावा, न केवल अभियोक्त्री के साक्ष्य को दर्ज किया, बल्कि उसकी प्रति-परीक्षा को भी समाप्त कर दिया।

12. आदेश-पत्र के अवलोकन से, यह भी पता चलता है कि जब गवाह उपस्थित नहीं थे, तो विद्वान विचारण न्यायालय ने स्थगन की मांग किए बिना मामले को आसानी से स्थगित कर दिया और दिनांक 21.04.2015 को, उसने केवल आरोपी ज्ञान चंद्र और देशराज की उपस्थिति में और सह-आरोपी अशोक कुमार की अनुपस्थिति में अभियोजन साक्षी 3 और 4 के बयान दर्ज किए।

13. इस न्यायालय का विचार है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने साक्ष्य दर्ज करने में स्पष्ट त्रुटि के साथ कार्य किया है। इसके अलावा दिनांक 16.06.2015 को, विचारण न्यायालय ने सह-आरोपी-गोपी @अशोक कुमार की अनुपस्थिति में अभियोजन साक्षी 6 और 7 के बयान दर्ज किए हैं। यह विचारण न्यायालय द्वारा शक्ति का अनुचित प्रयोग भी था।

14. ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 16.06.2015 को अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन 36-बी दायर किया गया था, जो कुछ तथाकथित बचे हुए अभियुक्त व्यक्तियों को बुलवाने के संबंध में था। दिनांक 09.7.2015 को, आवेदन 36-बी का निपटारा कर दिया गया है, लेकिन यह ज्ञात नहीं है कि क्या इसे स्वीकार किया गया या अस्वीकार कर दिया गया था, हालांकि दिनांक 05.11.2015 को सभी आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति में, अभियोजन साक्षी 1 का बयान फिर से दर्ज किया गया (यदि गवाहों की संख्या के संबंध में कोई लिपिकीय गलती नहीं है)। दिनांक 03.12.2015 को जब अभियुक्त व्यक्तियों ने

गवाह अभियोजन साक्षी 2, अभियोक्त्री को बुलवाने के लिए 42-बी आवेदन दायर किया, तब उसे दिनांक 28 जनवरी, 2016 को खारिज कर दिया गया था, जिसे इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है।

15. अभियोजन साक्षी 2 का बयान इस न्यायालय के समक्ष नहीं है, इसलिए यह न्यायालय नहीं जानता कि गवाह ने अभियोजन के पक्ष का समर्थन किया है या नहीं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अध्याय 10 के अनुसार, यदि गवाहों का बयान दर्ज किया गया है, तो धारा 138 के अनुसार इस प्रकार जांच किए गए गवाहों की प्रति-परीक्षा की जाएगी (यदि प्रतिकूल पक्ष ऐसा चाहता है) और गवाहों से फिर से प्रति-परीक्षा की जा सकती है(यदि उसे बुलवाने वाला पक्ष ऐसा चाहता है)।

16. उपरोक्त चर्चाओं से, यह स्पष्ट है कि पीड़ित संख्या 2 की अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा, जो मुकदमे का सामना कर रहे हैं, प्रति-परीक्षा नहीं हो सकी। गवाहों से पूछताछ के दौरान आवेदन दायर किया गया था। यह पहले ही बताया जा चुका है कि विचारण न्यायालय ने सह-आरोपी-गोपी @अशोक कुमार की अनुपस्थिति में गवाहों के साक्ष्य को अवैध रूप से दर्ज किया है। यह स्थापित नहीं किया जा सका कि उक्त तिथियों पर सह-अभियुक्त गोपी @अशोक कुमार की ओर से कोई छूट आवेदन प्रस्तुत किया गया था और विचारण न्यायालय ने इसकी अनुमति दी थी। यह भी देखा गया है कि तीनों अभियुक्त व्यक्तियों का मुकदमा एक साथ चल रहा था और अभियुक्त-

गोपी @अशोक कुमार के मामले/फाइल को अलग नहीं किया गया था।

17. आक्षेपित आदेश पीठासीन अधिकारी द्वारा, यह विचार किए बिना कि यह धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के मामले के बजाय गवाहों की परीक्षा का मामला था, अपनी पसंद के निर्णयों को शामिल करने का खुलासा करता है। यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष को उचित अवसर और कानून का समान संरक्षण प्रदान नहीं किया है, जबकि गवाहों की परीक्षा के लिए अभियोजन पक्ष को बिना किसी स्थगन के कई तारीखें दी गई हैं, विद्वान विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के स्थगन आवेदन को खारिज करते हुए, उसी दिन प्रतिपरीक्षा को बंद कर दिया, और यह भी नहीं सोचा कि पीड़ित अभियोजन साक्षी 2 का साक्ष्य सह-आरोपी गोपी @अशोक कुमार की अनुपस्थिति में दर्ज किया गया है। मुकदमे के दौरान पीड़ित और अभियुक्त के आचरण को दर्ज करना विचारण न्यायालय का कर्तव्य है। इस न्यायालय का विचार है कि अभियोक्त्री के साक्ष्य को दर्ज करने के समय अभियुक्त व्यक्तियों की उपस्थिति बहुत आवश्यक थी।

18. लोक अभियोजक का यह भी कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि गवाह से पूछताछ के दौरान अभियुक्त न्यायालय में उपस्थित है या नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि न तो विचारण न्यायाधीश और न ही लोक अभियोजक ने अपने कर्तव्यों का अच्छी तरह से पालन किया। विद्वान विचारण न्यायाधीश उस धारा के पीछे के सार को नहीं समझ सके जिसमें अभियुक्त व्यक्तियों ने गवाह को

प्रतिपरीक्षा के लिए बुलाने के लिए आवेदन दायर किया था। वह इस बात पर भी विचार नहीं कर सके कि दो आरोपी व्यक्ति जिला जेल में थे और एक आरोपी गोपी उर्फ अशोक कुमार गुड़गांव जेल में था और एक आरोपी के लिए, जो जेल में है, मुकदमा चलाना या मामले का बचाव करना बहुत समस्याग्रस्त और थकाऊ काम बन जाता है। आम तौर पर वे शुल्क का भुगतान करने और अधिवक्ता और न्यायालय का उचित ध्यान आकर्षित करने में असमर्थ होते हैं।

19. जब तीनों अभियुक्त व्यक्ति एक साथ एकत्र हुए, तो उन्होंने मुकदमे के दौरान और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के बंद होने से पहले ,रिकॉल एप्लीकेशन दायर किया। विचारण न्यायालय ने अपनी पसंद के कुछ फैसलों का हवाला देते हुए, उपरोक्त परिस्थितियों में आवेदन को खारिज कर दिया, जिसके लिए वह जिम्मेदार थे।

20. उपरोक्त चर्चा से यह स्थापित हुआ है कि निचली अदालत दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अनुसार निष्पक्ष सुनवाई नहीं कर रही थी।

धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973
निम्नानुसार है: -

"धारा 311 , दंड प्रक्रिया संहिता, वर्ष 1973

311. महत्वपूर्ण गवाह को बुलाने या उपस्थित व्यक्ति से पूछताछ करने की शक्ति। कोई भी न्यायालय, इस संहिता के

तहत किसी भी जांच, मुकदमे या अन्य कार्यवाही के किसी भी स्तर पर, किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकता है, या किसी भी उपस्थित व्यक्ति से पूछताछ कर सकता है, जिसे हालांकि गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया है, पहले से जांच किए गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुला सकता है और फिर से जांच कर सकता है; और न्यायालय ऐसे किसी व्यक्ति को बुलाएगा और जांच करेगा या वापस बुलाएगा और फिर से जांच करेगा यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।"

21. उपरोक्त से यह बहुत स्पष्ट है कि इस खंड के दो भाग हैं। धारा के पहले भाग के अनुसार, न्यायालय निम्नलिखित शक्ति का प्रयोग कर सकता है:-

- (1) किसी व्यक्ति को गवाह के रूप में तलब करना, या।
- (2) उपस्थित किसी भी व्यक्ति से पूछताछ करना, हालांकि जिसे गवाह के रूप में तलब नहीं किया गया है, या
- (3) पहले से ही जांच किए गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाना और फिर से पूछताछ करना।

दूसरा भाग, जो अनिवार्य है और न्यायालय पर एक दायित्व अधिरोपित करता है:-

- (1) बुलाना और जांच करना, या
- (2) ऐसे किसी व्यक्ति को वापस बुलाना और फिर से पूछताछ करना, यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायपूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

22. क्योंकि पीड़ित अभियोजन साक्षी 2 एक महत्वपूर्ण गवाह थी, इसलिए ऐसे गवाह से प्रति परीक्षा करने का पूरा अवसर प्रदान करना विचारण न्यायालय का कर्तव्य था।

23. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य ए. आई. आर. 2013(एससी) 3081, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि, अतः यह अनिवार्य है कि किसी विशेष मामले में धारा 311 डंड प्रक्रिया संहिता के आह्वान और उसके प्रयोग का आदेश न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है, केवल उक्त प्रावधानों के उद्देश्य और तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए, अर्थात्, मामले के न्यायसंगत निर्णय को प्राप्त करने के लिए। उक्त प्रावधानों के तहत निहित शक्ति किसी भी अदालत को किसी भी स्तर पर किसी भी जांच या मुकदमे या संहिता के तहत शुरू की गई अन्य कार्यवाही में, किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने या किसी भी उपस्थित व्यक्ति से पूछताछ करने, जिसे हालांकि गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया है, या उपस्थित किसी व्यक्ति को फिर से बुलाने और फिर से जांच करने, के उद्देश्य के लिए प्रदान की गई है। जहां तक पहले से जांच किए गए किसी व्यक्ति को वापस बुलाने और उससे पुनः पूछताछ करने की बात है, न्यायालय को आवश्यक रूप से विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी व्यक्ति को ऐसे पुनः बुलाना और पुनः परीक्षण करना, न्यायालय की दृष्टि में मामले के न्यायपूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

24. **नताशा सिंह बनाम सी.बी.आई. (राज्य) 2013 सीआर. एल. जे. 3346 (एससी)**, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निष्पक्ष विचारण अभियुक्त, पीड़ित और समाज के हित में है, और इसलिए, निष्पक्ष विचारण में संबंधित व्यक्तियों को निष्पक्ष और उचित अवसर प्रदान करना शामिल है। बचाव पक्ष के समर्थन में सबूत पेश करना एक मूल्यवान अधिकार है। इस तरह के अधिकार को नकारना निष्पक्ष सुनवाई को नकारने के बराबर होगा।

25. **दलवीर सिंह बनाम राजस्थान राज्य 2013 सीआर. एल. जे. 3064** में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां अभियुक्त के अधिवक्ता अभियोजन पक्ष के गवाह से प्रतिपरीक्षा करने में विफल रहे, अभियुक्त को कथित गवाह से प्रति-परीक्षा न करने में उसके अधिवक्ता की गलती के कारण कष्ट नहीं दिया जा सकता था, इसलिए गवाहों को फिर से बुलाने के लिए आवेदन की अनुमति दी गई थी।

26. **संकट मोहन प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2004 ए. सी. सी. 933 (इलाहाबाद)** में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहां किसी कारणवश, अभियुक्त के अधिवक्ता अभियोजन पक्ष के साक्षियों से प्रतिपरीक्षा नहीं कर सके, वहां संबंधित न्यायालय धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रतिपरीक्षा के लिए ऐसे साक्षियों को पुनः बुला सकता है।

27. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभियुक्त व्यक्तियों को तत्कालीन विचारण न्यायाधीश

द्वारा प्रति-परीक्षा के अवसर से अवैध रूप से वंचित कर दिया गया है। यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह कानून के अनुसार आवश्यक महत्वपूर्ण गवाह की जांच करे। बचाव पक्ष को प्रति-परीक्षा का उचित अवसर देने के बाद ही सही परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण गवाहों की जांच करने के बाद न्याय का निमित्त पूरा होगा।

28. उपर्युक्त चर्चा पर, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने विचारण के दौरान साक्ष्य दर्ज करने में स्पष्ट त्रुटि की थी और प्राकृतिक न्याय और निष्पक्ष विचारण के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए मामले को विलंबित तरीके से आगे बढ़ाया है। आक्षेपित आदेश कानून की नजर में पोषणीय नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

आदेश

(क) यह आवेदन अंतर्गत 482 दंड प्रक्रिया संहिता स्वीकार किया जाता है।

(ख) संबंधित विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 28 जनवरी, 2016 के आक्षेपित आदेश को एतदद्वारा निरस्त कर दिया जाता है।

(ग) विद्वान विचारण न्यायालय को पीड़ित अभियोजन साक्षी 2 को तीनों अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से उसकी प्रति परीक्षा के लिए, फिर से बुलाने का निर्देश दिया जाता है।

(घ) इस आदेश की एक प्रमाणित प्रति तत्काल अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 4 ILRA 387

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

16161/2022

अजय कुमार

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ... विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री उमेश कुमार

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

क. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - उ.प्र. आबकारी अधिनियम, 1910 - धारा 60, 63 और 72 - वाहन मुक्ति के संबंध में अस्वीकृति आदेश को चुनौती - आवेदक वाहन का स्वामी है और तीन रिश्तेदारों ने आवेदक का वाहन किराए पर लिया था - जब आवेदक को दो महीने बाद घटना के बारे में पता चला तो उसने अपने रिश्तेदार के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई - जब सीजेएम के अस्वीकृति आदेश के खिलाफ रिहाई आवेदन और पुनरीक्षण लंबित थे, तो आपत्तिजनक वाहन जब्त करने की प्रक्रिया में था - बाद में जिला मजिस्ट्रेट की ओर से जब्ती की कार्यवाही अंतिम हो गई और वाहन की नीलामी की गई - इस वाद में, चूंकि मुक्ति के लिए कोई कॉर्पस अस्तित्व में नहीं है, इसलिए यह आवेदन भी निष्फल हो गया है - इस प्रकार, विद्वान सीजेएम और पुनरीक्षण अदालत द्वारा पारित आपत्तिजनक आदेश तथ्यात्मक और कानूनी रूप से सही है -

अधिनियम की धारा 72 में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो यह प्रदर्शित करता हो कि ऐसी जब्त की गई संपत्ति को मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 457 सीआरपीसी के तहत अपनी शक्ति के प्रयोग में जारी किया जा सकता है क्योंकि धारा 72 उपधारा (1) से (4) स्पष्ट रूप से मजिस्ट्रेट को सीआरपीसी की धारा 457 के तहत अधिनियम के तहत जब्त किसी अपराध के संबंध में जब्त की गई किसी भी वस्तु को छोड़ने के लिए आदेश पारित करने के उसके अधिकार से वंचित करती है। (पैरा 1 से 18)

आवेदन निरस्त किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. मुस्तफा बनाम यूपी राज्य (2019) एआईआर एससी 3949
2. वीरेंद्र गुप्ता बनाम यूपी राज्य (2019) 108 एससी 438
3. सुंदर भाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य (2002) लॉ सूट एससी 1346
4. चंद्रपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2021) 0 सुप्रीम ऑल 92

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री उमेश कुमार और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना, और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. यह आवेदन अभियुक्त-आवेदक द्वारा आपराधिक वाद संख्या 781 वर्ष 2020 में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, एटा द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.07.2021 और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 76 वर्ष 2021 में विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.10.2021 जिसके द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 594 वर्ष 2019 अंतर्गत धारा 60, 63, 72 उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, थाना कोतवाली, जनपद एटा, में आवेदक के वाहन संख्या (यूपी 80सीटी 3283), को मुक्त करने के आवेदक के आवेदन को खारिज कर दिया गया था, को रद्द करने हेतु किया गया है।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि मुकदमा अपराध संख्या 594 वर्ष 2019, अंतर्गत धारा 60, 63, 72 आबकारी अधिनियम, थाना कोतवाली देहात जनपद एटा में एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। दिनांक 21.12.2019 की प्राथमिकी की एक प्रति शपथ पत्र के संलग्नक संख्या 1 के रूप में दायर की गई है। आवेदक उक्त अपराध में शामिल नहीं है और उसने कथित अवैध कार्य के उद्देश्य के लिए कभी सहमति नहीं दी। आवेदक के वाहन का उपयोग रिश्तेदार अपने कार्यों के लिए करते हैं।

4. आवेदक ने अपने वाहन संख्या यूपी 80 सीटी 3283, जो कि अंतर्गत धारा 60, 63, 72 आबकारी अधिनियम, थाना कोतवाली देहात, जनपद एटा की अभिरक्षा में है, की रिहाई के लिए दिनांक 4.8.2020 को सीजेएम एटा के समक्ष एक आवेदन दायर

किया। आवेदन दिनांक 4.8.2020 शपथ पत्र का संलग्नक क्रमांक 2 है।

5. विद्वान सीजेएम ने 19.7.2021 को तथ्य पर विचार किए बिना आवेदक के आवेदन को खारिज कर दिया, आदेश की प्रमाणित प्रति संलग्नक संख्या 3 के रूप में दाखिल की गई है। आवेदक ने दिनांक 16.10.2021 को आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया जिसमें उसने सभी तथ्यों का खुलासा किया था लेकिन उसे भी विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश ने उसी दिन खारिज कर दिया।

6. प्राथमिकी आवेदक अजय कुमार के खिलाफ नहीं बल्कि सुरेंद्र सिंह, सतीश चंद्र और देवेंद्र सिंह के खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या 367 वर्ष 2020, अंतर्गत धारा 406, 452, 323, 504 भा.दं.सं. थाना इगलास, जिला अलीगढ़ में दर्ज की गई थी, जो कि शपथ पत्र में संलग्नक संख्या 5 है।

7. देवेन्द्र सिंह, सुरेंद्र सिंह एवं सतीश चंद्र ने प्रार्थी की गाड़ी को अगस्त 2019 में किराये पर लिया था। उक्त गाड़ी को उक्त व्यक्तियों द्वारा घटना घटने तक चलाया जा रहा था तथा जब प्रार्थी ने दो माह बाद उक्त व्यक्तियों/रिश्तेदारों से गाड़ी के संबंध में पूछताछ की, तो मामला संज्ञान में आया कि गाड़ी थाना कोतवाली देहात, एटा में रखी हुई है। चूंकि उपरोक्त व्यक्ति आवेदक के रिश्तेदार हैं, इसलिए कोई संदेह नहीं हुआ और जब मामला आवेदक के संज्ञान में आया, तो उसने वाहन को छुड़ाने का प्रयास शुरू कर दिया। कथित अपराध में वाहन का उपयोग आवेदक

द्वारा नहीं किया गया था और उसका कथित व्यक्तियों से कोई संबंध नहीं है। आवेदक ने अपने रिश्तेदारों के खिलाफ भी प्राथमिकी दर्ज कराई है, क्योंकि वे वाहन के बारे में जानकारी नहीं दे रहे थे। उपरोक्त रिश्तेदारों ने आवेदक के साथ धोखाधड़ी की और आवेदक के वाहन का उपयोग उक्त अपराध में किया जो आवेदक की जानकारी में नहीं था। आवेदक उपरोक्त अपराध में शामिल नहीं है और वाहन आवेदक के नाम पर है और वह वाहन का मालिक है। आवेदक वाहन की रिहाई के समय न्यायालय द्वारा लगाई गई जमानत राशि का भुगतान विद्वान न्यायालय के समक्ष करने को तैयार था। आवेदक ने दस्तावेजों के माध्यम से वाहन के संबंध में सभी कानूनी औपचारिकताएं पूरी कर ली हैं, जो कि शपथ पत्र का संलग्नक संख्या 6 है।

8. विद्वान न्यायालय ने पत्रावली पर उपलब्ध तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार नहीं किया और न्यायिक दिमाग का उपयोग किए बिना नियमित तरीके से आक्षेपित आदेश पारित कर दिया। आवेदक का वाहन 21.12.2019 से हिरासत में है और अत्यधिक खराब स्थिति में खड़ा है, अगर इसे नहीं छोड़ा गया तो उसे अपूरणीय क्षति और चोट होगी। विचारण न्यायालय ने मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को नजरअंदाज करते हुए रिहाई की अर्जी खारिज कर दी, जो कानून की नजर में गलत है। विद्वान न्यायालय ने रिकार्ड का अवलोकन किये बिना यांत्रिक तरीके से आक्षेपित आदेश पारित कर दिया है। इसलिए, आवेदन

स्वीकार किया जाए और सीजेएम और पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश को रद्द किया जाए।

9. आवेदन में उल्लिखित सभी प्रासंगिक कागजात शपथ पत्र के साथ संलग्न किए गए हैं।

10. राज्य की ओर से विपक्षी पक्ष संख्या 1, अश्विनी कुमार उप निरीक्षक, थाना कोतवाली एटा ने जवाबी हलफनामा दायर किया है, और बताया है कि सीजेएम और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित अस्वीकृति के आदेश कानूनी एवम् सही हैं और कानून की नजर में हमेशा बरकरार रखने योग्य हैं। विवादित वाहन को 98500/- रुपये की राशि पर नीलाम किया गया है।

11. आवेदक ने प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया है जिसमें याचिका को अनुमति देने के लिए एक साधारण प्रार्थना की गई है और जवाबी हलफनामे के पैरा 11 के खिलाफ कोई अभिकथन नहीं किया गया है और उससे इनकार नहीं किया गया है जिससे पता चलता है कि जब्ती के आगे की प्रक्रिया में, आक्षेपित वाहन की नीलामी कर दी गई है। दोनों विवादित आदेशों के अवलोकन से यह पता चलता है कि जब रिहाई आवेदन और सीजेएम के अस्वीकृति आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण लंबित था, तो विवादित वाहन जब्ती की प्रक्रिया में था। विद्वान सीजेएम ने मुस्तफा बनाम यूपी राज्य, एआईआर 2019 एससी 3949 और वीरेंद्र गुप्ता बनाम यूपी राज्य 2019(108) एसीसी 438 के आधार पर, रिहाई

आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि जब यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 72 (2) के तहत किसी वाहन को जब्त करने की कोई कार्यवाही लंबित है, तो केवल जिलाधिकारी ऐसे वाहन से संबंधित कार्यों को करने का अधिकारी होगा, और उस स्थिति में संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट वाहन को रिहा करने या सीआरपीसी की धारा 451, 452 और 457 के तहत रिहाई आवेदन पर विचार करने के लिए सक्षम नहीं होगा।

12. यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 72 का उल्लेख करना उचित होगा, जो इस प्रकार है:

धारा 72. कौन सी वस्तुएं जब्त किए जाने योग्य होंगी

(1) जब भी इस अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध किया गया है -

(क) ऐसी प्रत्येक [नशीला पदार्थ] जिसके संबंध में ऐसा अपराध किया गया है;

(ख) ऐसा प्रत्येक भभका, बर्तन, औजार या उपकरण और सभी सामग्रियां जिनके माध्यम से ऐसा अपराध किया गया है;

(ग) प्रत्येक [नशीला] कानूनी रूप से आयातित, परिवहन द्वारा लाया गया, निर्मित, कब्जे में रखा गया या किसी भी खंड (क) के तहत जब्त की जाने योग्य [नशीले पदार्थ] के साथ साथ या उसके अतिरिक्त में बेचा गया हो;

(घ) प्रत्येक पात्र, संवेष्टन और आवरण जिसमें उपरोक्त जैसा कोई [नशीला

पदार्थ] या कोई सामान, भभक, बर्तन, औजार या उपकरण हो या ऐसे पात्र या संवेष्टन की किसी अन्य अंतर्वस्तु (यदि कोई हो) के साथ साथ पाया जाए; और

(ड) प्रत्येक पशु, गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन जो ऐसे पात्र या संवेष्टन को लाने ले जाने में उपयोग किया जाए; जब्ती के लिए उत्तरदायी होगा।

(2) जहां इस अधिनियम के किसी भी प्रावधान के अधीन किसी वस्तु या पशु का अभिग्रहण किया जाए, वहां ऐसी संपत्ति को अभिग्रहीत और निरुद्ध करने वाला अधिकारी, अभिग्रहण एवं निरुद्धता के दिनांक से तीन कार्य दिवस के भीतर, ऐसी अभिग्रहीत सम्पत्ति, अभिग्रहण ज्ञापन और अन्य सुसंगत दस्तावेजों सहित अधिहरण हेतु विस्तृत रिपोर्ट कलेक्टर के समक्ष प्रस्तुत करेगा। कलेक्टर अभिग्रहण ज्ञापन और अभिग्रहीत सम्पत्ति सहित उक्त रिपोर्ट प्राप्त करने पर तत्काल माल की सुरक्षित अभिरक्षा और भण्डारण हेतु आदेश देगा, जैसा कि वह उचित समझे। यदि अभिलिखित किये जाने वाले कारणों से कलेक्टर को यह समाधान हो जाय कि कोई अपराध किया गया है जिसके कारण ऐसी वस्तु या पशु उपधारा (1) के अधीन अधिहरण किये जाने का दायी हो गया है, तो वह ऐसी वस्तु या पशु का अधिहरण करने का आदेश दे सकता है चाहे ऐसे अपराध के लिये

अभियोजन संस्थित किया गया हो या न किया गया हो:

आदेश न दिया जाय या न बना रहने दिया जाय, या

प्रतिबन्ध यह है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी वस्तु (मादक वस्तु को छोड़कर) या पशु की स्थिति में उसके स्वामी को यह विकल्प दिया जायेगा कि वह उसके अधिहरण के बदले में उसका अभिग्रहण किये जाने के दिनांक को उसके बाजार मूल्य से अनधिक जुर्माना का भुगतान करे, जिसे कलेक्टर पर्याप्त समझे।

(ख) उपधारा (7) के अधीन अपील पर दिये गये आदेश में ऐसा अपेक्षित हो, या

(ग) उस अपराध के लिये जिसके सम्बन्ध में वस्तु या पशु का अभिग्रहण किया जाय, अभियोजन संस्थित किये जाने की दशा में न्यायालय के आदेश से ऐसा करना अपेक्षित हो,

(3) जहाँ अभिग्रहण की रिपोर्ट प्राप्त होने पर या अभिग्रहीत वस्तु का जिसके अन्तर्गत कोई पशु, गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन भी है, निरीक्षण करने पर कलेक्टर की यह राय हो कि कोई ऐसी वस्तु या पशु शीघ्रता से क्षीण और दुर्बल या प्राकृतिक रूप से क्षय होने वाला है या अन्यथा लोकहित में ऐसा करना समीचीन है, वहां वह ऐसी वस्तु (मादक वस्तु को छोड़कर) या पशु को नीलाम द्वारा या अन्य प्रकार से बाजार मूल्य पर बेचने का आदेश दे सकता है।

वहाँ विक्रय-व्यय की कटौती करने के पश्चात् विक्रय-आगम का भुगतान उसके हकदार व्यक्ति को किया जायगा।

(5) (क) इस धारा के अधीन जब्ती का आदेश तब तक नहीं दिया जायगा जब तक कि उसके स्वामी या उस व्यक्ति को जिससे अभिग्रहीत किया जाय

(1) ऐसे आधार सूचित करते हुये जिन पर इस प्रकार जब्ती प्रस्तावित है, कोई लिखित नोटिस ;

(2) ऐसे युक्तियुक्त समय के भीतर जैसा नोटिस में विनिर्दिष्ट किया जाय, लिखित अभ्यावेदन देने का अवसर, और

(3) उस विषय में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर; न दे दिया जाय।

(4) जहां कोई ऐसी वस्तु या पशु को उपर्युक्त प्रकार से बेचा जाय, और-

(क) उपधारा (2) के अधीन या उपधारा (6) के अधीन पुनर्विलोकन पर कलेक्टर द्वारा अन्ततोगत्वा जब्ती का

(ख) किसी पशु, गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन को जब्त करने का कोई आदेश नहीं दिया जायगा यदि उसका स्वामी कलेक्टर के संतोषानुसार यह साबित कर दे कि पशु, गाड़ी, जलयान या अन्य वाहन का प्रयोग उसके स्वामी, अभिकर्ता, यदि कोई हो, और प्रभारी व्यक्ति की जानकारी या मौनानुमति के बिना, विनिषिद्ध माल को ले जाने के लिये किया गया था और इनमें से प्रत्येक ने इस प्रकार प्रयोग किये जाने के विरुद्ध सभी युक्तियुक्त और आवश्यक पूर्वोपाय किये थे और इस उपबंध का कोई प्रतिकूल प्रभाव खंड (क) के उपबन्धों पर नहीं पड़ेगा।

(6) जहाँ उपधारा (2) के अधीन दिये गये जब्ती के किसी आदेश से एक मास के भीतर कलेक्टर को, इस निमित्त आवेदन-पत्र दिये जाने पर या, यथास्थिति, उक्त उपधारा के अधीन जब्ती से इन्कार करने के आदेश से एक मास के भीतर अभिगृहीत वस्तु या पशु के स्वामी को या उस व्यक्ति को जिसके कब्जे से उसे अभिगृहीत किया गया हो, कलेक्टर द्वारा स्वप्रेरणा से यह कारण बताने का नोटिस जारी करने के पश्चात् कि क्यों न आदेश का पुनर्विलोकन किया जाय और उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात्, कलेक्टर का यह समाधान हो जाय कि अभिलेख को देखने से ही यह प्रकट होता है कि

आदेश में कोई भूल है जिसके अन्तर्गत विधि सम्बन्धी भूल भी है, वहां वह पुनर्विलोकन करके ऐसा आदेश दे सकता है, जिसे वह उचित समझे।

(7) उपधारा (2) या उपधारा (6) के अधीन जब्ती के किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति उसे ऐसा आदेश संसूचित किये जाने के दिनांक से एक मास के भीतर, ऐसे न्यायाधिक प्राधिकारी को अपील कर सकता है जिसे राज्य सरकार इस निमित्त नियुक्त करे और न्यायिक प्राधिकारी अपीलार्थी को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उस आदेश की जिसके विरुद्ध अपील की जाय, पुष्टि, परिष्कार या विखंडन करने का ऐसा आदेश दे सकता है जैसा वह उचित समझे।

(8) जहाँ ऐसे अपराध के लिये जिसके संबंध में ऐसी जब्ती का आदेश दिया गया हो, अभियोजन संस्थित किया जाये, वहाँ उपधारा (4) के उपबन्धों के अधीन रहते हुये उस वस्तु या पशु का निस्तारण न्यायालय के आदेश के अनुसार किया जायगा।

(9) इस धारा के अधीन कलेक्टर द्वारा दिया गया जब्ती का कोई आदेश ऐसे किसी दण्ड के आरोपण से निवारित नहीं करेगा जिसके लिये उससे प्रभावित व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन भागी हो।

13. विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 72 को उद्धृत किया है और वीरेंद्र गुप्ता (उपरोक्त) के फैसले का भी विश्लेषण किया और निष्कर्ष निकाला कि वीरेंद्र गुप्ता (उपरोक्त) में दिल्ली एन सी टी सरकार बनाम नरेंद्र (2014)13 एससीसी 100 के मामले पर विचार किया गया जिसके अनुसार जब्ती के मामले में, जब्त की गई संपत्ति का निपटारा अधिनियम की धारा 72 द्वारा किया जाएगा, जिसमें ऐसा इंगित करने वाला कोई प्रावधान नहीं है कि ऐसी जब्त की गई संपत्ति को मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 457 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए छोड़ा जा सकता है क्योंकि धारा 72 उपधारा (1) से (4) स्पष्ट रूप से मजिस्ट्रेट को धारा 457 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत, अधिनियम के अंतर्गत आने वाले किसी अपराध के संबंध में जब्त की गई किसी भी वस्तु की रिहाई के लिए, कोई भी आदेश पारित करने की शक्ति से वंचित करती है।

14. जिलाधिकारी, एटा ने दिनांक 5.9.2020 की रिपोर्ट द्वारा सीजेएम को सूचित किया था कि विवादित वाहन के संबंध में जब्ती की कार्यवाही उनके समक्ष लंबित है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में जब्ती की कार्यवाही जिलाधिकारी, एटा की ओर से पूर्ण हो गई, इसलिए, विवादित वाहन को 98,500/- रुपये में नीलाम कर दिया गया।

15. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने सुंदर भाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, 2002 लॉसूट (एससी) 1346 का आधार लिया है जो धारा 451 दंड प्रक्रिया संहिता के संबंध

में है और ऐसे वाहन के बारे में अनुपयुक्त है जो जब्ती के अधीन है और सामान्य कानून का विषय नहीं है, इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 34 की कोई प्रयोज्यता नहीं है।

16. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे चंद्रपाल बनाम यूपी राज्य 2021 0 सुप्रीम (सभी) 92 का आधार लिया है जिसमें आवेदन अंतर्गत धारा 482 भा.दं.सं. की अनुमति दी गई थी और मामलों को संबंधित मजिस्ट्रेट को वापस भेज दिया गया था ताकि पहले यह तय किया जा सके कि सिविल न्यायालय का क्षेत्राधिकार था या नहीं। इस मामले में चूंकि रिहाई के लिए कोई कोष अस्तित्व में नहीं है इसलिए यह आवेदन भी निरर्थक हो गया है। अब आवेदक के लिए एकमात्र उपाय जिलाधिकारी, एटा द्वारा की गई जब्ती की कार्यवाही की वैधता को चुनौती देना है।

17. उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर है कि विद्वान सीजेएम और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश तथ्यात्मक और कानूनी रूप से सही है। जब विवादित वाहन जिलाधिकारी एटा के समक्ष जब्ती की कार्यवाही के अधीन था, तो आवेदक के लिए वहां उपस्थित होने और प्राप्ति हेतु दावा करने का विकल्प खुला था।

18. उपरोक्त निर्णयों और यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 72 के दृष्टिगत, जिला स्तर पर दोनों न्यायालय रिहाई आवेदन पर विचार करने और अनुमति देने में सक्षम नहीं थे। वर्तमान में कोई भी संपत्ति सिविल

न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय के लिए विषय वस्तु के रूप में नहीं बची है। अतः यह प्रार्थना पत्र खारिज किये जाने योग्य है।

आदेश

तदनुसार यह प्रार्थना पत्र खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 392

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

19835/2019

नाजिम एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री देवेन्द्र दहमा, श्री संजय मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री रवि प्रकाश सिंह

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 323, 324, 504, 506 और 326 - यदि किसी पीड़ित के कान पर चोट या गंभीर चोट पहुंचाने में छड़ी का उपयोग किया जाता है - धारा 326 आईपीसी लागू नहीं होगी - यदि ऐसी चोट चाकू से या धारा 326 आईपीसी में वर्णित अन्य तरीकों से हुई हो तो ऐसी चोट - धारा 326 आईपीसी के तहत कवर की जाएगी -

परंतु संबंधित कान की सुनने की क्षमता सौ प्रतिशत खत्म हो गई हो - संज्ञान लेने की शक्ति मजिस्ट्रेट के पास धाराओं को जोड़ने या बदलने की सीमित शक्ति है, केस डायरी और चार्जशीट पर विचार करते हुए - यदि विवेचक द्वारा छोड़ दिया गया हो - वे आरोप तय करने के दौरान धाराओं को जोड़ या बदल सकते हैं, लेकिन संज्ञान के दौरान नहीं। (पैरा 29,32,)

विपक्षी पक्ष ने एन.सी.आर. दर्ज कराई - आवेदक 2 से 5 के विरुद्ध - जिसे बाद में एफ.आई.आर. में परिवर्तित कर दिया - मेडिकल परीक्षण कराया गया - पूरक रिपोर्ट तैयार की गई - साक्ष्य दर्ज किए गए - आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया - दोनों पक्षों ने एक दूसरे के विरुद्ध एफ.आई.आर. दर्ज कराई है - जांच के दौरान धारा 326 आई.पी.सी. जोड़ने पर विवाद हुआ - विपक्षी 2 पुनः मेडिकल परीक्षण के लिए उपस्थित नहीं हुआ - मुकदमे का निष्कर्ष और पुनरीक्षण न्यायालय ने पीड़ित के दाहिने कान के पर्दे की चोट को धारा 320 आई.पी.सी. के अंतर्गत गंभीर चोट माना (पैरा-3,14,16,19)

निर्णय:-पीड़ित के दाहिने कान की छड़ी की चोट गंभीर चोट नहीं है, क्योंकि स्थायी श्रवण हानि की कोई मेडिकल रिपोर्ट नहीं है और यह धारा 326 आईपीसी के अंतर्गत नहीं आती है। विचारणीय न्यायालय तथ्यों, मेडिकल रिपोर्ट और कानून की सराहना करने में विफल रही, जिसके कारण गंभीर चोट के बारे में गलत निष्कर्ष निकले और धारा 326 आईपीसी के तहत दंडनीय है। धारा 326 आईपीसी के तहत

संज्ञान लेना और आरोपी आवेदकों को बुलाना कानून की दृष्टि से गलत है। पुनरीक्षण न्यायालय का निर्णय गलत है। (पैरा 30,31,33)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. धनाई महतो और अन्य बनाम बिहार राज्य, 2000 एससीडब्ल्यू 3966-1 पर
2. जोसेफ बनाम केरल राज्य, 1995 एससीसी (सीआरआई) 165
3. फूल चंद यादव बनाम यूपी राज्य, 2022 (4) एएलजे 56
4. राम सिंह एवं अन्य बनाम एम.पी. राज्य, ग्वालियर पीठ, एमसीआरआर संख्या 5920/2018

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय मिश्रा, राज्य के विद्वान अशा0 अधि0 श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना तथा विरोधी पक्षकार सं0 2 के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

2. द0प्र0सं0 की धारा 482 के अधीन यह आवेदन दाण्डिक वाद सं0 222 वर्ष 2017 से उद्भूत दाण्डिक वाद सं0 1021 वर्ष 2018 में ए0सी0जे0एम0 प्रथम अलीगढ़ द्वारा पारित

आदेश दिनांक 26 जुलाई 2018 तथा ए0सी0जे0एम0 प्रथम, अलीगढ़ के न्यायालय में लंबित भा0दं0सं0 की धारा 147, 323, 324, 504, 506 तथा 326, पुलिस थाना कोतवाली सिटी, जिला अलीगढ़ अन्तर्गत दाण्डिक पुनरीक्षण सं0 331 वर्ष 2018 - शाहनवाज तथा अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य में विद्वान सत्र न्यायाधीश, अलीगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 16-04-2019 का अभिखण्डन करने के लिए आवेदक - अभियुक्तगण द्वारा पेश किया गया है, जिसके द्वारा दोनों अवर न्यायालयों ने आवेदक के विरुद्ध आदेश पारित किया है तथा विद्वान ए0सी0जे0एम0 प्रथम ने पूर्वोक्त धाराओं में संज्ञान लिया था तथा विद्वान सन् न्यायाधीश ने 16-04-2019 को इस प्रकार के आदेश के विरुद्ध दाण्डिक पुनरीक्षण खारिज किया था।

3. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि विरोधी पक्षकार सं0 2 ने आवेदक सं0 2 से 5 के विरुद्ध 15-5-2017 को 11.40 बजे रात में भा0द0सं0 की धारा 323 तथा 506 के अधीन एन0सी0आर0 सं0 58 वर्ष 2017 दर्ज कराया था, वाद में, जिसे 26-5-2017 को इनके विरुद्ध अपराध सं0 222 वर्ष 2017 के रूप में भा0द0सं0 की धारा 323, 324 तथा 506 के अधीन प्र0सू0रि0 में परिवर्तित किया गया था। विरोधी पक्षकार सं0 2 का 16-5-2017 को चिकित्सीय परीक्षण किया गया था तथा 09-06-2017 को अनुपूरक चिकित्सा रिपोर्ट तैयार किया गया था। द0प्र0सं0 की धारा 161 के अधीन साक्ष्यों को लेखबद्ध किया गया था तथा भा0द0सं0 की धारा 147, 323, 324, 326, 504 एवं 506 के अधीन आरोप पत्र सं0

194 वर्ष 2018 दिनांक 29-06-2018 ए0सी0जे0एम0 प्रथम अलीगढ़ के न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था, जिसने आदेश दिनांक 26 जुलाई, 2018 द्वारा संज्ञान लिया था।

4. याची सं0 1 का विवाह विरोधी पक्षकार सं0 2 के साथ मुस्लिम अनुष्ठानों के अनुसार 22-4-2014 को हुआ था तथा इसने किसी पर्याप्त कारण के बिना अपनी ससुराल छोड़ दिया था तथा अपने माता-पिता के साथ अलग रहना आरम्भ किया था तत्पश्चात् आवेदक सं0 1 ने प्रधान जज, कुटुम्ब न्यायालय, अलीगढ़ के न्यायालय में दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु याचिका मामला सं0 873 वर्ष 2014 -नजीम बनाम श्रीमती रूकसाना दाखिल किया था लेकिन विरोधी पक्षकार सं0 2 उपस्थित नहीं हुई थी तथा याचिका को बाद में खारिज एवं प्रत्याहृत किया गया था। याची सं0 1 तथा विरोधी पक्षकार सं0 2 के बीच विवाह विच्छेद याचिका 13-6-2017 को दाखिल किया गया था तथा याची सं0 1 ने पुनः 11-5-2017 को आलिया पुत्री शमशाद के साथ मुस्लिम कृत्य तथा अनुष्ठानों के अनुसार शादी किया था।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि विरोधी पक्षकार सं0 2 याची का आलिया के साथ दूसरे विवाह का समाचार सुनने के बाद नाराज हो गई थी तथा इसलिए मिथ्या रिपोर्ट दर्ज कराई थी। याची सं0 1 विरोधी पक्षकार सं0 2 का पति है। (शपथ पत्र के पैरा 8 के अनुसार इसे 13-6-2017 को तलाक दिया गया था) याची सं0 2 तथा 3 देवर है, याची सं0 4 सास है तथा याची सं0 5 विरोधी पक्षकार सं0 2 की ननद

है। याची सं0 1 ने 15-5-2017 को पुलिस थाना कोतवाली नगर, अलीगढ़ में भा0द0सं0 की धारा 147, 148, 307, 452 तथा 504 के अधीन मामला अपराध सं0 207 वर्ष 2017 में विरोधी पक्षकार सं0 2, सईद के पुत्रगण अयूव तथा कैसर, अबरार अहमद के पुत्रगण परवेज तथा बेलाल के विरुद्ध रिपोर्ट दर्ज कराया था। पूर्वोक्त घटना में सरफराज याची सं0 2 को गंभीर क्षति पहुँची थी तथा 15 मई 2017 को चिकित्सकीय परीक्षण किया गया था तथा 16-05-2017 को एक्स-रे रिपोर्ट तैयार किया गया था।

6. न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम अलीगढ़ ने पूर्वोक्त धाराओं के विचारण का सामना करने के लिए सुल्तान तथा आदेश दिनांक 09-04-2018 द्वारा विरोधी पक्षकार सं0 2 सहित अभियुक्त व्यक्तियों को समन किया था तथा अंतिम रिपोर्ट सं0 13 वर्ष 2017 दिनांक 20 नवम्बर 2017 को नामंजूर किया था। विरोधी पक्षकार सं0 2 तथा अन्य अभियुक्त व्यक्तियों ने दाण्डिक पुनरीक्षण सं0 230 वर्ष 2018 - रूकसाना तथा अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य तथा अन्य दाखिल किया था जिसे 17-09-2018 को खारिज किया गया था।

7. विरोधी पक्षकार सं0 2 तथा तीन अन्य ने ए0सी0जे0एम0 प्रथम तथा पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त दोनों आदेशों को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में दाण्डिक प्रकीर्ण आवेदन सं0 37751 वर्ष 2018 दाखिल किया था तथा पूर्वोक्त मामले के आगे के कार्यवाहियों को आदेश दिनांक 22-10-2018 द्वारा रोका गया है।

8. याची ने विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दिनांक 26-07-2018 तथा पुनरीक्षण न्यायालय/सेशन जज, अलीगढ़ के आदेश दिनांक 16 अप्रैल 2019 द्वारा पारित खारिज जा आदेश को चुनौती देते हुए सेशन जज, अलीगढ़ के न्यायालय में दाण्डिक पुनरीक्षण सं० 331 वर्ष 2018 - शहनबाज बनाम उ०प्र० राज्य अधिमानित किया था। दोनों आदेश अवैध, मनमाना, अधिकारिता के बिना है तथा न्यायालय की कार्यवाही का दुरुपयोग है तथा न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अभिखंडित किये जाने योग्य है।

9. विरोधी पक्षकार सं० 2 के चिकित्सा का अनुपूरक रिपोर्ट से भा०द०सं० की धारा 326 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है, इसलिए, विद्वान मजिस्ट्रेट तथा पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश पूर्णतया अवैध, मनमाना है तथा अभिखंडित किये जाने योग्य है।

10. विरोधी पक्षकार सं० 2 वरि०पु०अधी० अलीगढ़ के आदेश दिनांक 23-04-2018 के बावजूद चिकित्सा बोर्ड के समक्ष पुर्न चिकित्सा परीक्षण हेतु उपस्थित नहीं हुई थी। सी०एम०ओ० अलीगढ़ ने पत्र दिनांक 04-05-2018 द्वारा इसे पहुँचे क्षति के गंभीरता तथा प्रकृति का पता लगाने के लिए पुर्न परीक्षण हेतु चिकित्सा बोर्ड के समक्ष इसके अनुपस्थिति के संबंध में वरि०पु० अधी० को सूचित किया था तथा अंत में सी०एम०ओ० ने पत्र दिनांक 21-5-2018 द्वारा एस०एस०पी० अलीगढ़ को सूचित किया था कि इसे अभिकथित क्षति पहुँचने की तिथि से एक वर्ष से अधिक अवधि के बीत जाने के बाद विरोधी पक्षकार सं० 2 के

पुनर्चिकित्सा परीक्षण द्वारा कोई उपयोगी प्रयोजन पूरा नहीं होगा। जिला मजिस्ट्रेट, ने पत्र दिनांक 30-5-2018 द्वारा सी०एम०ओ० के पूर्वोक्त रिपोर्ट को एस०एस०पी० अलीगढ़ को अग्रेषित किया गया था, इसलिए, विरोधी पक्षकार सं० 2 को पहुँची क्षति की प्रकृति भा०द०सं० की धारा 320 के अधीन, गंभीर क्षति के कार्यक्षेत्र में नहीं आता है तथा इसलिए, भा०द०सं० की धारा 326 के अधीन अपराध नहीं बनता है।

11. अन्यथा याचीगण के विरुद्ध आरम्भ सम्पूर्ण कार्यवाही दुर्भावना पूर्ण है तथा प्र०सू०रि० एवं आवेदक सं० 1 द्वारा दर्ज रिपोर्ट के आधार पर विरोधी पक्षकार सं० 2 एवं अन्य को समन किये जाने के संबंध में घोर निन्दा है। याचीगण शांति प्रिय तथा विधि पालक व्यक्ति है तथा इनके नाम में कोई अपराधिक इतिहास नहीं है। इन्हें वर्तमान मामले में अपने विरुद्ध जारी गैर जमानती वारंट के अनुसरण में अपने गिरफ्तारी की आशंका है, इसलिए, यह अनुरोध किया जाता है कि उपरोक्त विरोधी पक्षकार सं० 2 द्वारा दर्ज वर्तमान मामले के आगे के कार्यवाहियों तथा गैर जमानती वारंट को रोका जाय।

12. विरोधी पक्षकार सं० 2 ने याचिका के तर्कों तथा अभिकथनों का खण्डन करते हुए प्रति शपथपत्र (यद्यपि यह अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है) दाखिल किया है तथा कहा है कि इसके द्वारा दर्ज प्र०सू०रि० सत्य तथा सही है तथा यह आवेदक द्वारा दर्ज रिपोर्ट की घोर निन्दा नहीं है तथा कहाँ हैं कि सही प्र०सू०रि० आवेदकगण द्वारा दर्ज कराया गया

है तथा ए0सी0जे0एम0प्रथम तथा पुनरीक्षण क्षमता में विद्वान सेशन जज द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अभिखंडित किये जाने योग्य नहीं है तथा वर्तमान मामले की कार्यवाहियाँ अभिखंडित किये जाने योग्य नहीं हैं।

13. इसके विपरीत याचीगण ने प्रतिशपथ पत्र के पैरा वार अन्तर्वस्तुओं का खण्डन करते हुए प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल किया है तथा याचिका में पहले उल्लिखित तथ्यों को दोहराया है।

सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया।

14. ऐसा मालूम होता है कि दोनो पक्षकारों ने एक दूसरे के विरुद्ध प्र0सू0रि0 दर्ज कराया है।

15. भा0द0सं0 की धारा 147, 148, 307, 452 तथा 504 पुलिस थाना कोतवाली नगर, अलीगढ़ के अन्तर्गत अपराध सं0 207 वर्ष 2017 के अनुसार 15-5-2017 को किये जाने के लिए अभिकथित अपराध हेतु विरोधी पक्षकार सं0 2 तथा अन्य के विरुद्ध आवेदक सं0 1 द्वारा दर्ज प्र0सू0रि0 को इस न्यायालय द्वारा धारा 482 द0प्र0सं0 -श्रीमती रूखसाना तथा तीन अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य एवं एक अन्य के अधीन दाण्डिक आवेदन सं0 37751 तथा 377 वर्ष 2018 में पारित आदेश दिनांक 22-10-2018 द्वारा रोक़ा गया है।

16. यह भी मालूम होता है कि भा0द0सं0 की धारा 323 तथा 506 के अधीन एन0सी0आर0 सं0 58 वर्ष 2017 आवेदकगण के विरुद्ध 15-05-2017 को किये जाने के लिए अभिकथित अपराध हेतु दर्ज कराया गया है,

जिसे वाद में विरोधी पक्षकार सं0 2 के चिकित्सा रिपोर्ट पर विचार करते हुए अपराध सं0 245 वर्ष 2017 के रूप में प्र0सू0रि0 में परिवर्तित किया गया था एवं अन्वेषण के वाद भा0द0सं0 की धारा 147, 323, 324, 325, 506 के अधीन आरोप पत्र वर्तमान याचिका के आवेदकगण के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया था। यह भी मालूम होता है कि अन्वेषण के दौरान भा0द0सं0 की धारा 326 के जोड़ने/ न जोड़ने के बारे में चर्चा तथा विवाद था। चूँकि विरोधी पक्षकार सं0 2 अपने पुनर्चिकित्सा परीक्षण हेतु उपस्थित नहीं हुई थी जैसा सी0एम0ओ0, जिला मजिस्ट्रेट तथा वरि0पु0अधी0 द्वारा अपेक्षित था, अन्वेषण अधिकारी ने भा0द0सं0 की धारा 326 के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया था।

17. संज्ञान लेने के समय पर यह निष्कर्ष निकालते हुए 26-07-2018 को विद्वान ए0सी0जे0एम0 प्रथम अलीगढ़ द्वारा सम्पूर्ण आदेश पारित किया गया है कि क्षतिग्रस्त विरोधी पक्षकार सं0 2 श्रीमती रूखसाना के बायें कान के कर्णपटह में छिद्र था, अतः यह धारा 326 भा0द0सं0 का भी मामला है तथा तदनुसार बाकी धाराओं के साथ धारा 326 भा0द0सं0 को जोड़ते हुए आवेदकगण के विरुद्ध संज्ञान लिया था जिसके अन्तर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। इस आदेश को आवेदकगण द्वारा दाण्डिक पुनरीक्षण सं0 331 वर्ष 2018 -शाहनबाज तथा 4 अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य के द्वारा चुनौती दिया गया था जिसमें प्रथम इतिला देने वाले को विरोधी पक्षकार के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। इस न्यायालय के अनुसार, विरोधी

पक्षकार सं0 2 पूर्वोक्त पुनरीक्षण की आवश्यक पक्षकार थी तथा सुनवाई का अवसर इसे भी उपलब्ध कराना आवश्यक था। फिर भी, विद्वान सेशन जज ने 16-4-2019 को ए0सी0जे0एम0 प्रथम अलीगढ़ द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए दाण्डिक पुनरीक्षण खारिज किया था तथा निष्कर्ष निकाला था कि मजिस्ट्रेट का अन्वेषण अधिकारी के परिणाम के अनुरूप होना आवश्यक नहीं है। मजिस्ट्रेट के पास यह विचार करने का विवेकाधिकार है कि संज्ञान लेने के समय पर अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कौन सा अपराध बनता है तथा इन विद्वान ए0सी0जे0एम0 प्रथम इस निष्कर्ष पर आया था कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर अभियुक्त को भी धारा 326 भा0द0सं0 के अधीन समन किया जाना चाहिए, इसने धारा 326 भा0द0सं0 के अधीन अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध संज्ञान लिया था जिसे विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

18. व्यथित अभियुक्तगण -आवेदकगण द्वारा इन आधारों पर यह याचिका अधिमानित किया गया है कि पहला, यह विरोधी पक्षकार सं0 2 तथा अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आवेदकगण द्वारा दर्ज घोर निन्दा का मामला है। दूसरा विरोधी पक्षकार सं0 2 के चिकित्सा रिपोर्ट तथा अनुपूरक चिकित्सा रिपोर्ट से धारा 326 भा0द0सं0 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता था क्योंकि विरोधी पक्षकार सं0 2 क्षति के प्रकृति का पता लगाने के लिए वरि0पु0अधी0 तथा मु0चि0अधि0 के आदेश के बावजूद चिकित्सा बोर्ड के समक्ष अपने पुनर्चिकित्सा परीक्षण हेतु उपस्थित नहीं हुई

थी, इसलिए मु0चि0अधि0 अलीगढ़ ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को सूचित किया था कि घटना की तिथि से एक वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद यदि क्षतिग्रस्त का पुनर्परीक्षण चिकित्सा बोर्ड द्वारा किया जाता है, कोई लाभदायक प्रयोजन पूरा नहीं होगा। आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क किया गया है कि विद्वान ए0सी0जे0एम0 प्रथम अलीगढ़ धारा 326 भा0द0सं0 के अधीन संज्ञान लेने के लिए पर्याप्त सक्षम नहीं था जब इस धारा के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था। आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता के तर्क दिया है कि इस प्रकार का परिवर्धन या परिवर्तन केवल आरोपों को विरचित किये जाने के समय पर किया जा सकता है न कि संज्ञान लेने के प्रक्रम पर। विद्वान एस0सी0जे0एम0 प्रथम ने धारा 320 तथा 326 की विवेचना किया है तथा इसकी राय है कि विरोधी पक्षकार सं0 2 को पहुँची दायें कान की क्षति धारा 320 भा0द0सं0 के तीसरे संघटक के अधीन घोर उपहति के श्रेणी में आता है, जिसके अनुसार, यदि किसी कान के सुनने का स्थायी अभाव है, क्षति को घोर उपहति कहाँ जायेगा।

19. विचारण न्यायालय तथा पुनरीक्षण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला था कि छिद्र के रूप में दायें कान के कर्णपटह में पीड़िता की क्षति धारा 320 भा0द0सं0 के अधीन घोर उपहति होना कारित होगा तथा धारा 325 भा0द0सं0 के अनुसार यदि असन, बेधन या काटने के किसी उपकरण द्वारा या किसी ऐसे उपकरण द्वारा जो यदि आक्रामक आयुध के

तौर पर उपयोग में लाया जाय तो उससे मृत्यु कारित होना संभाव्य है या अग्नि या किसी तप्त पदार्थ द्वारा या किसी विष या किसी संक्षारक पदार्थ द्वारा या किसी विस्फोटक द्वारा या किसी ऐसे पदार्थ द्वारा, जिसका श्वास में जाना या निगलना या रक्त में पहुँचना मानव शरीर के लिए हानिकारक है या किसी जीव-जन्तु द्वारा स्वेच्छया घोर उपहति कारित करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जो आजीवन कारावास या उस अवधि के कारावास से दण्डनीय होगा जो इस वर्ष का हो सकता है तथा जुर्माना के लिए भी दायी होगा तथा धारा 326 भा0द0सं0 के अधीन दण्डनीय होगा।

20. प्र0सू0रि0 दिनांक 15.05.2017 के अनुसार लगभग 5.30 बजे अपराह्न जब विरोधी पक्षकार सं0 2 अपने ससुराल गयी, इसके नातेदारों ने इसे घर में घुसने की अनुमति नहीं दिया था तथा देवर सरफराज, सास अनीशा तथा नन्द फरहा ने अपने लात तथा मुक्का से इसे मारा पीटा था एवं देवर शहनवाज ने चाकू से हमला किया था, जिसके कारण इसे क्षतियाँ पहुँची थी।

21. अंतिम अन्वेषण अधिकारी दिनेश कुमार ने निष्कर्ष निकाला था कि चूँकि पीड़िता (विरोधी पक्षकार सं0 2) के दायें कान के कर्णपटह में किसी खतरनाक हथियार द्वारा कोई क्षति कारित नहीं की गई थी तथा इसके दायें कान के पूर्ण सुनने की क्षमता की कोई हानि नहीं है अतः धारा 326 भा0द0सं0 आकृष्ट नहीं होगा तथा तदनुसार धारा 325 भा0द0सं0 जोड़ा था।

22. विद्वान ए0सी0जे0एम0 प्रथम ने धारा 320 तथा 326 भा0द0सं0 की विवेचना किया था, डाक्टर के कथनों को बताया था तथा विचार व्यक्त किया कि पीड़िता को कारित क्षतियाँ प्रकृति में गंभीर है तथा ई0एन0टी0 सर्जन के राय में दायें कान के कर्णपटह में छेद था, अतः यह गंभीर उपहति थी। धारा 326 भा0द0सं0 के संबंध में विद्वान ए0सी0जे0एम0 प्रथम की राय थी कि डण्डा तथा लाठी के हमला द्वारा गंभीर घातक क्षति कारित की जा सकती है, लेकिन यह न्यायालय विद्वान ए0सी0जे0एम0 प्रथम द्वारा लेखबद्ध निष्कर्ष से सामंजस्य नहीं रखता है क्योंकि कई अन्य मामलों में शीर्ष न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि डण्डा तथा लाठी खतरनाक हथियार नहीं हैं तथा धारा 326 भा0द0सं0 के अधीन यह कहीं भी उल्लिखित नहीं है कि यदि डण्डा तथा लाठी द्वारा कोई क्षति कारित की गई है, यह धारा 326 भा0द0सं0 के अधीन आच्छादित होगा।

23. *धनई महर्तों तथा एक अन्य बनाम बिहार राज्य 2000 एआईआरएससी डब्ल्यू 3966-1* के मामले में पारित निर्णय के पैरा 3 तथा 4 में, शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि बांस का डण्डा तथा लाठियाँ प्राणघातक या खतरनाक हथियार नहीं हैं।

24. *जोसेफ बनाम केरल राज्य 1995 एससीसी (क्रि) 165* के मामले में पारित निर्णय के पैरा 3 में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि लाठी खतरनाक हथियार नहीं है।

25. **फूलचन्द यादव बनाम उ०प्र० राज्य 2022 (4) एएलजे 56** के मामले में पारित निर्णय के पैरा 10 तथा 11 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि डण्डा तथा लाठी खतरनाक हथियार नहीं है।

26. **राम सिंह तथा अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, ग्वालियर** पीठ एमसीआरआर सं० 5920 वर्ष 2018 के मामले में पारित निर्णय के पैरा 13 में धारा 320 तथा धारा 326 भा०द०सं० की विवेचना की गई है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि लाठी खतरनाक हथियार नहीं है तथा लाठी द्वारा यदि किन्हीं क्षतियों को कारित किया गया है, यह धारा 320 तथा 326 भा०द०सं० के अधीन आच्छादित होगा।

27. इस न्यायालय के अनुसार केवल विरोधी पक्षकार सं० 2 के दायें कान के **कर्णपटह** में छेद के प्रकृति में क्षति धारा 320 (तृतीय) भा०द०सं० के अधीन आच्छादित नहीं है क्योंकि यह साबित करने के लिए चिकित्सा साक्ष्य नहीं है कि दायें कान के सुनने का स्थायी अभाव था। यह देखा गया है कि यदि कान के कर्णपटह में छेद किया गया है, कान के सुनने की क्षमता का स्थायी अभाव नहीं होगा। इस मामले में निश्चित रूप से सुनने की क्षमता में कुछ हानि होगी लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि सुनने की क्षमता की पूर्ण हानि होगी। यदि इस प्रकार के छेद क्षति के कारण सुनने की क्षमता का सौ प्रतिशत हानि है, निश्चित रूप से धारा 320 भा०द०सं० आकृष्ट होगा तथा यदि धारा भा०द०सं० के अधीन उल्लिखित किसी खतरनाक हथियार या

साधन का प्रयोग अपराध को करने में किया गया है केवल इस मामले में धारा 326 भा०द०सं० लागू होगा।

28. विरोधी पक्षकार सं० 2 रुखसाना ने धारा 161 द०प्र०सं० के अधीन अन्वेषण अधिकारी से बताया है कि नाजिम ने इसके दायें कान पर प्रहार किया था जिसके कारण कान से रक्त निकलना आरम्भ हुआ था।

29. इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि यदि पीड़िता के कान पर उपहति या घोर उपहति कारित करने में डण्डे का प्रयोग किया है, धारा 326 भा०द०सं० आकृष्ट नहीं होगा, यदि इस प्रकार की क्षति धारा 326 भा०द०सं० में उल्लिखित चाकू द्वारा या अन्य साधनों द्वारा कारित की गई होती, इस प्रकार की क्षति धारा 326 भा०द०सं० के अधीन आच्छादित होगा परन्तु संबंधित कान के सुनने की क्षमता का सौ प्रतिशत हानि हो।

30. उपरोक्त विवेचनाओं के आधार पर, इस न्यायालय के सुविचारित राय है कि नाजिम द्वारा पीड़िता के दायें कान में डण्डे द्वारा कारित क्षतियों को गंभीर उपहति नहीं कहा जा सकता है क्योंकि ऐसी कोई चिकित्सा रिपोर्ट नहीं है कि इसके दायें कान के सुनने की क्षमता की स्थायी हानि हुई है तथा यह भी नहीं कहा जा सकता है कि इस प्रकार की क्षति धारा 326 भा०द०सं० के अधीन आच्छादित है।

31. उपरोक्त विवेचनाओं से इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि विद्वान ए०सी०जे०एम० प्रथम अलीगढ़ तथा तत्कालीन विद्वान सेशन

जज तथ्यों, चिकित्सा रिपोर्ट तथा विधि का मूल्यांकन सही परिप्रेक्ष्य में करने में असफल रहा है तथा गलती से निष्कर्ष निकाला है कि विरोधी पक्षकार सं० 2 को भा०द०सं० की धारा 320(3) के अधीन परिभाषित घोर उपहति थी तथा धारा 326 भा०द०सं० के अधीन दण्डनीय है।

32. संज्ञान लेने के संबंध में संज्ञान लेने के शक्ति पर विचार शीर्ष न्यायालय का उच्च न्यायालयों द्वारा किया गया है तथा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि संज्ञान लेने के समय पर संबंधित मजिस्ट्रेट के पास सीमित शक्ति होती है तथा इस प्रक्रम पर विद्वान मजिस्ट्रेट या संबंधित न्यायालय केस डायरी तथा आरोप पत्र पर विचार करते हुए धारा (धाराओं) को जोड़ या परिवर्तित नहीं कर सकता है। यदि संबंधित मजिस्ट्रेट या सेशन जज का विचार है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा कुछ धारा (धाराओं) को छोड़ा गया है, इसके पास आरोप विरचित करने के समय धारा (धाराओं) को जोड़ने या बदलने की शक्ति है।

33. उपरोक्त विवेचना के आधार पर इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि धारा 326 भा०द०सं० के अधीन अभियुक्त आवेदकगण को समन करना तथा संज्ञान लेना विधि की दृष्टि में दोषपूर्ण है तथा पुनरीक्षण न्यायालय का निर्णय भी विधि की सही प्रतिपादना नहीं है। अतः यह आवेदन सफल होता है तथा अनुज्ञात किये जाने योग्य है।

आदेश

धारा 482 द०प्र०सं० के अधीन इस आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है। पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट विद्वान ए०सी०जे०एम० प्रथम अलीगढ़ द्वारा धारा 326 भा०द०सं० के अधीन आवेदकगण को समन किये जाने तथा संज्ञान लेने को तदनुसार अभिखंडित किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 398

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,
आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या
23506/2022

विजय गुप्ता

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री संदीप कुमार दुबे

**अधिवक्ता विपक्षीगण: ए.एस.जी.आई., जी.ए.,
श्री राहुल आनंद गौड़**

क. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 325, 323, और 504-क्रॉस-केस-वर्तमान वाद में आवेदक भारत में अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए पासपोर्ट चाहता है-दोनों वाद में, पुलिस ने आरोप पत्र दायर किया लेकिन आज तक आरोप तय नहीं किए गए हैं-पुलिस ने गलत और विरोधाभासी रिपोर्ट प्रस्तुत की है लेकिन पासपोर्ट प्राधिकरण ने रिपोर्ट पर गौर किए बिना भी आवेदक को भारत में अपनी शैक्षिक पाठ्यक्रम जारी रखने के लिए पासपोर्ट जारी करने से इनकार कर दिया है-

इसलिए, एसीजेएम द्वारा पारित किया गया आपत्तिजनक आदेश कि उनके पास 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' देने का कोई अधिकार नहीं है, विधि विरुद्ध है-निर्देश दिए गए। (पैरा 1 से 18)

आवेदन निस्तारित (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

रविन्द्र नाथ भार्गव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2019) 0 सुप्रीम (सभी) 194

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री संदीप कुमार दुबे, प्रतिपक्षी संख्या-1 के अधिवक्ता श्री राहुल आनंद गौड़ के साथ-साथ राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत यह आवेदन इस प्रार्थना के साथ दायर किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-3 को निर्देश दिया जाए कि आवेदक को समुद्री प्रशिक्षण संस्थान (एम.टी.आई.), हावड़ा में अपने तकनीकी पाठ्यक्रम (नाविक पाठ्यक्रम) को आगे बढ़ाने के लिए पासपोर्ट जारी किया जाए। अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, भदोही द्वारा केस संख्या-7253 वर्ष 2021 (राज्य बनाम गुड्डू और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 30.5.2022 को रद्द करने और उपरोक्त पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए आवेदक को पासपोर्ट जारी करने के लिए

'अनापत्ति प्रमाणपत्र' जारी करने की प्रार्थना की गई।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि पप्पू गुप्ता ने 17.2021 को थाना-औराई में धारा 325, 323, 504 भ०द०वि० के तहत आवेदक और उसके दो भाइयों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई। आवेदक के पिता ने भी सूचना देने वाले पप्पू गुप्ता और उसके बेटों के खिलाफ आपराधिक मामला दर्ज कराया है। दोनों मामलों में पुलिस ने आरोप पत्र दायर किया लेकिन आज तक आरोप तय नहीं किए गए हैं। आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद विचारण न्यायालय ने संज्ञान लिया और आवेदक को जमानत दे दी गई क्योंकि अपराध मजिस्ट्रेट द्वारा जमानती और विचारणीय हैं। वर्तमान में, आवेदक बी.कॉम तृतीय वर्ष का छात्र है। एम.टी.आई. नाविक प्रशिक्षण आयोजित करता है जिसे नौवहन महानिदेशक, भारत सरकार, मुंबई द्वारा अनुमोदित किया जाता है जो छह महीने की अवधि के लिए होता है और वर्ष में दो बार आयोजित किया जाता है। आवेदक ने उक्त पाठ्यक्रम के लिए आवेदन किया। खंड 9.1 के तहत। (1) समुद्री प्रशिक्षण स्कूल में प्रवेश के लिए पंजीकरण हेतु कतिपय शर्तें निर्धारित की गई हैं। शर्तों में से एक है 'उम्मीदवार के पास वैध पासपोर्ट होना चाहिए'। एम.टी.आई. द्वारा जारी ब्रोशर की प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या-2 के रूप में संलग्न की गई है। चूंकि आवेदक के पास पासपोर्ट नहीं था, इसलिए उसने प्रतिपक्षीकार संख्या-3 के समक्ष इसके लिए आवेदन किया और आवेदन अनुबंध संख्या-3 के रूप में संलग्न है। आवेदक के आवेदन पर, प्रतिपक्षी

संख्या-3 ने पुलिस सत्यापन रिपोर्ट मांगी और ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस ने रिपोर्ट प्रस्तुत की कि आवेदक ज्ञानपुर में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, भदोही की अदालत में लंबित केस संख्या-7253 वर्ष 2021 (राज्य बनाम गुड्डू और अन्य) में आरोपी है। आवेदक के पास कोई विकल्प नहीं होने के कारण आवेदक के पक्ष में पासपोर्ट जारी करने के उद्देश्य से 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' जारी करने के लिए अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, भदोही के समक्ष उपरोक्त मामले में शपथ पत्र द्वारा विधिवत रूप से समर्थित एक आवेदन दायर किया; आवेदन दिनांक 27.4.2022 की प्रति अनुलग्नक संख्या-4 के रूप में संलग्न है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 30.5.2022 के आदेश के तहत माना कि यह मुद्दा उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं है और इसलिए आवेदक के पक्ष में 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' जारी नहीं किया जा सकता है और आवेदन का निपटारा कर दिया गया। यह कहा गया है कि पासपोर्ट जारी करना पासपोर्ट अधिनियम, 1967 द्वारा शासित है और यह प्रतिपक्षी संख्या-1 और 3 के अधिकार क्षेत्र में आता है। पासपोर्ट अधिनियम के अंतर्गत कतिपय शर्तें निर्धारित की गई हैं जिनके तहत पासपोर्ट प्राधिकारी पासपोर्ट जारी करने से मना कर सकता है। आवेदक ने पासपोर्ट के लिए आवेदन किया है क्योंकि एम.टी.आई. में प्रवेश के लिए यह पूर्ववर्ती शर्त है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(डी) के तहत आवेदक भारत के पूरे क्षेत्र में जाने का हकदार है। इसके अलावा, आवेदक को भारत के भीतर अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए पासपोर्ट जारी न करना एक अनुचित

प्रतिबंध है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19(1)(डी) और 21 का उल्लंघन है। रवींद्र नाथ भार्गव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में इस अदालत ने उन परिस्थितियों पर विस्तार से विचार किया था जिनके तहत पासपोर्ट जारी किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में आवेदक भारत सरकार द्वारा लगाई गई शर्त के कारण भारत के भीतर अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए पासपोर्ट चाहता है और इसलिए, प्रतिपक्षी आवेदक को पासपोर्ट जारी करने से इनकार नहीं कर सकते हैं।

4. प्रतिपक्ष संख्या-3 क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी, पासपोर्ट कार्यालय, वाराणसी की ओर से कनिष्क शर्मा, क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी, लखनऊ के हलफनामे के साथ एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें कहा गया है कि 14.12.2021 को प्राप्त प्रतिकूल पुलिस सत्यापन रिपोर्ट पर, प्राधिकरण द्वारा पासपोर्ट सुविधाओं से इनकार कर दिया गया है।

5. आवेदक ने इस कथन के साथ प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया है कि पुलिस ने गलत और विरोधाभासी टिप्पणी/रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें कॉलम संख्या-3 विशेष रूप से प्रदान करता है कि जहां आवेदक को पिछले 5 वर्षों के दौरान किसी अपराध में दोषी ठहराया गया है और 2 साल या 2 साल से अधिक के कारावास की सजा सुनाई गई है। हालांकि, प्रतिवादी संख्या-3 ने रिपोर्ट को देखे बिना भी आवेदक को भारत के भीतर अपने शैक्षिक पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए पासपोर्ट जारी करने से इनकार कर दिया है।

6. आवेदक ने याचिका के साथ संलग्नक के रूप में प्रासंगिक कागजात दाखिल किए हैं। प्रश्नपत्रों के अवलोकन से पता चलता है कि आवेदक ने वर्ष 2016 में हाईस्कूल और वर्ष 2018 में इंटरमीडिएट पास की है, उसने बी.कॉम द्वितीय वर्ष की मार्कशीट भी संलग्न की है। आवेदक ने परिशिष्ट संख्या-2 के रूप में विवरणिका दाखिल की है जिसमें खंड 9.1 के अनुसार है। पहली शर्त यह है कि उम्मीदवार के पास वैध पासपोर्ट होना चाहिए। आवेदक ने आवेदन पत्र अनुलग्नक संख्या-3 के रूप में दाखिल किया है। अनापत्ति प्रमाण-पत्र जारी करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत आवेदन और शपथ पत्र और उस पर पारित आदेश की प्रतियां भी दायर की गई हैं। विद्वान मजिस्ट्रेट ने इस आधार पर आवेदन को खारिज कर दिया है कि 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' जारी करना उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं है।

7. निश्चित रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(डी) और अनुच्छेद 21 के तहत, देश के नागरिक पासपोर्ट के हकदार हैं। मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) ए.आई.आर. एस.सी. 597 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि पासपोर्ट होना भारत के नागरिक का मौलिक अधिकार है और एक नागरिक को ऐसे मौलिक अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। विवरणिका के अवलोकन से यह स्थापित होता है कि वैध पासपोर्ट होना एम.टी.आई. में प्रवेश के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है। एक नागरिक को भारत में शिक्षा का अधिकार है

बशर्ते कि वे संबंधित पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए अर्हता प्राप्त करें।

8. पासपोर्ट जारी करने के लिए एक घोषणा प्रपत्र है जिसमें क्रम संख्या-5 पर आवेदक द्वारा निम्नलिखित घोषणा की जानी है जो निम्नानुसार है:

उन्होंने कहा, "मुझ पर आपराधिक कार्यवाही का आरोप नहीं है और न ही मेरे खिलाफ भारत की किसी अदालत में कोई गिरफ्तारी वारंट या समन लंबित है।

9. यह शर्त आपराधिक कार्यवाही के संबंध में भी है जिसके अनुसार एक घोषणा करनी होगी कि आवेदक को किसी भी आपराधिक अपराध के लिए भारत में किसी भी न्यायालय द्वारा दोषी नहीं ठहराया गया है और उसे दो साल या दो साल से अधिक के कारावास की सजा नहीं दी गई है।

10. अपर शासकीय अधिवक्ता मानता है कि आवेदक को भारत में किसी भी न्यायालय द्वारा किसी भी मामले में दोषी नहीं ठहराया गया है, लेकिन निश्चित रूप से उसके खिलाफ आक्षेपित आपराधिक मामला लंबित है।

11. प्रश्न यह उठता है कि क्या आपराधिक कार्यवाही के लंबित रहने के संबंध में क्रम संख्या-5 में घोषणा अनिवार्य है या प्रकृति में निर्देशिका मात्र।

12. इस संबंध में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा जारी कुछ प्रासंगिक अधिसूचनाएं नीचे दी गई हैं:

"विदेश मंत्रालय, नोटी। नहीं।
सा.का.नि. 570 (ई), दिनांक 25 अगस्त,
1993, भारत के राजपत्र में प्रकाशित,
अतिरिक्त, भाग II, धारा 3(i), दिनांक 25
अगस्त, 1993, पीपी 2-3, क्रम संख्या-
289 [सं. VI/401/37/79]

पासपोर्ट अधिनियम, 1967 (15 वर्ष
1967) की धारा 22 के खंड (क) द्वारा
प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए और
विदेश मंत्रालय सं 2006 में भारत सरकार
की अधिसूचना सं 2010 का दमन करते
हुए पासपोर्ट अधिनियम, 1967 (15 वर्ष
1967) की धारा 22 के खंड सा.का.नि.
298 (अ), दिनांक 14 अप्रैल, 1976 के
अनुसार, केन्द्रीय सरकार, यह मत रखते
हुए कि जनहित में ऐसा करना आवश्यक
है, एतद्वारा भारत के उन नागरिकों को
छूट प्रदान करती है जिनके विरुद्ध उनके
द्वारा किए गए किसी अपराध के संबंध में
कार्यवाही भारत में किसी दांडिक न्यायालय
के समक्ष लंबित है और जो संबंधित
न्यायालय से आदेश प्रस्तुत करते हैं
जिसमें उन्हें भारत से प्रस्थान करने की
अनुमति दी जाती है, उक्त अधिनियम की
धारा 6 की उपधारा (2) के खंड (च) के
प्रावधानों के संचालन से, निम्नलिखित
शर्तों के अधीन, अर्थात्: -

(क) ऐसे प्रत्येक नागरिक को जारी किया
जाने वाला पासपोर्ट निम्नलिखित के लिए
जारी किया जाएगा-

(i) ऊपर निर्दिष्ट न्यायालय के आदेश में
निर्दिष्ट अवधि के लिए, यदि न्यायालय ने

वह अवधि निर्दिष्ट की है जिसके लिए पासपोर्ट
जारी किया जाना है; नहीं तो

(ii) यदि विदेश यात्रा के लिए पासपोर्ट जारी
करने की कोई अवधि ऐसे आदेश में निर्दिष्ट
नहीं है, तो पासपोर्ट एक वर्ष की अवधि के
लिए जारी किया जाएगा;

(iii) यदि ऐसा आदेश एक वर्ष से कम अवधि
के लिए विदेश यात्रा करने की अनुमति देता है,
लेकिन पासपोर्ट की वैधता की अवधि निर्दिष्ट
नहीं करता है, तो पासपोर्ट एक वर्ष के लिए
जारी किया जाएगा; नहीं तो

(iv) यदि ऐसा आदेश एक वर्ष से अधिक की
अवधि के लिए विदेश यात्रा करने की अनुमति
देता है, और पासपोर्ट की वैधता निर्दिष्ट नहीं
करता है, तो पासपोर्ट आदेश में निर्दिष्ट विदेश
यात्रा की अवधि के लिए जारी किया जाएगा;

(बी) उपरोक्त (ए)(ii) और (ए)(iii) के संदर्भ में
जारी किए गए किसी भी पासपोर्ट को एक बार
में एक वर्ष में नवीनीकृत किया जा सकता है,
बशर्ते आवेदक ने अदालत द्वारा स्वीकृत
अवधि के लिए विदेश यात्रा नहीं की हो; और
आगे बशर्ते कि, इस बीच, अदालत का आदेश
रद्द या संशोधित नहीं किया गया है।

(ग) उपर्युक्त (क)(i) के अनुसार जारी किए
गए किसी पासपोर्ट का नवीकरण केवल
न्यायालय के नए आदेश के आधार पर किया
जा सकता है जिसमें पासपोर्ट की वैधता की
एक और अवधि निर्दिष्ट की गई हो या विदेश
यात्रा की अवधि निर्दिष्ट की गई हो;

(घ) उक्त नागरिक पासपोर्ट जारी करने वाले प्राधिकारी को लिखित रूप में यह वचन देगा कि वह, यदि संबंधित न्यायालय द्वारा अपेक्षित हो, इस प्रकार जारी किए गए पासपोर्ट के प्रवृत्त रहने के दौरान किसी भी समय उसके समक्ष उपस्थित होगा।

13. उपर्युक्त अधिसूचनाओं से केंद्र सरकार ने उन नागरिकों को छूट दी है जिनके खिलाफ भारत के किसी भी न्यायालय में कोई आपराधिक कार्यवाही लंबित है, इस शर्त पर कि यदि न्यायालय उन्हें भारत से निर्वासित करने की अनुमति देता है, तो पासपोर्ट जारी किया जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि इस मामले में आवेदक विदेश जाने के लिए पासपोर्ट जारी करने की मांग नहीं कर रहा है।

14. रवींद्र नाथ भार्गव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2019 0 उच्चतम (इला.) 194 में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने माना है कि:

"15. पासपोर्ट अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों और 25.08.1993 की अधिसूचना को ऊपर वर्णित विधायी पृष्ठभूमि के आलोक में सावधानीपूर्वक पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि मुकदमे का सामना कर रहे किसी व्यक्ति के पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज को संबंधित प्राधिकारी द्वारा उसके आपराधिक मामले के लंबित रहने के दौरान अस्वीकार किया जा सकता है, लेकिन संबंधित न्यायालय द्वारा अनापत्ति देने के लिए कोई वैधानिक रोक नहीं है। अनुमति जारी करने या संबंधित न्यायालय द्वारा अनापत्ति न देने के संबंध में कोई कठोर

और सीधा सटीक फार्मूला निर्धारित नहीं किया जा सकता है। यह हमेशा संबंधित न्यायालय का विवेकाधिकार होता है और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अभियुक्त के कार्य और आचरण के साथ-साथ उसके द्वारा किए गए कथित अपराध की प्रकृति और मुकदमे के चरण आदि पर निर्भर करता है। किसी समय दुश्मनी या दुर्भावना के कारण एक पक्ष अपने व्यक्तिगत मामले को निपटाने के लिए दूसरे पक्ष को एक तुच्छ आपराधिक मामले में फंसा देगा, इसलिए, न्याय के हित में, संबंधित अदालत द्वारा पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेजों के नवीकरण या पुनः जारी करने के लिए अनापत्ति प्रदान करते समय मामले के सभी पहलुओं और आसपास की परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है।

15. इस मामले में, आवेदक के खिलाफ आरोप प्रकृति में जघन्य नहीं हैं और सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय नहीं हैं। आवेदक के पिता द्वारा सूचना देने वाले के खिलाफ क्रॉस केस भी दर्ज कराया गया है। आवेदक विदेश यात्रा के लिए पासपोर्ट जारी नहीं करना चाहता है बल्कि एम.टी.आई. में प्रवेश के लिए पासपोर्ट जारी करना चाहता है जो उसके व्यक्तित्व के निर्माण में मदद करेगा। पासपोर्ट प्राप्त करने का उद्देश्य आनंद या पिकनिक के लिए नहीं है।

16. आवेदक को व्यक्तिगत जमानत बांड के निष्पादन पर जमानत पर छोड़ा गया है। यदि वह अपने प्रशिक्षण में व्यस्त रहता है तो मामले की कार्यवाही अधिवक्ता के माध्यम से चल सकती है। अभिलेखों के अवलोकन से यह

पता चलता है कि परीक्षण के दौरान पहचान के लिए आवेदक की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि दोनों पक्ष एक-दूसरे से अच्छी तरह परिचित हैं।

17. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, भदोही द्वारा पारित दिनांक 30.5.2022 का आक्षेपित आदेश, कि उनके पास 'अनापत्ति प्रमाण पत्र' देने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, कानून के खिलाफ है और इसे रद्द किया जा सकता है।

18. तदनुसार, आवेदन का निस्तारण निम्नलिखित निदेशों के साथ किया जाता है:-

(i) आवेदक संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष इस आदेश की तारीख से एक माह की अवधि के भीतर अपने शपथपत्र के साथ अपना वचन पत्र प्रस्तुत करेगा जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख होगा कि वह विचारण न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना अपने विचारण के लंबित रहने के दौरान भारत से बाहर नहीं जाएगा और वह विचारण न्यायालय के समक्ष विचारण में प्रत्येक तारीख को उपस्थित होगा।

(ii) यदि उपर्युक्त वचनबद्धता आवेदक द्वारा ऊपर दिए गए निदेशानुसार दायर की जाती है तो विचारण न्यायालय आवेदक द्वारा मांग किए जाने पर आवेदक द्वारा दिए गए वचन पत्र की प्रमाणित प्रति उसे एक सप्ताह के भीतर जारी करेगा।

(iii) आवेदक अपने पासपोर्ट के नवीकरण अथवा पुन निर्गम के लिए, जैसा भी मामला हो, संबंधित पासपोर्ट अधिकारी/प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति और अपने उपर्युक्त वचनपत्र के साथ एक नया आवेदन प्रस्तुत करेगा।

(iv) यदि आवेदक द्वारा ऐसा आवेदन प्रस्तुत किया जाता है तो संबंधित पासपोर्ट अधिकारी/प्राधिकारी इस आदेश में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के साथ-साथ आवेदक के वचनबद्धता की विषय-वस्तु के आलोक में आवेदक के मामले पर नए सिरे से विचार करते हुए आवेदक के आवेदन पर उसके समक्ष आवेदक द्वारा आवेदन प्रस्तुत किए जाने की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर कानून के अनुसार निर्णय लेगा।

(2023) 4 ILRA 403
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

29856/2022

रियाजुद्दीन और अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.. विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री शम्स तबरेज आलम
अंसारी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

क. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता,
1973- धारा 482 - भारतीय दंड संहिता,

1860- धारा 498-ए, 323, 504, 506 व 3/4 डी.पी. एक्ट-संज्ञान व समन आदेश को चुनौती-कथित घटना से 18 वर्ष पूर्व विवाह हुआ-अभियोजन पक्ष के कथन के समर्थन में कोई मेडिकल रिपोर्ट नहीं-विपरीत पक्ष व गवाहों द्वारा कथित घटना की तिथि, समय व स्थान नहीं बताया गया-कोई विशिष्ट भूमिका नहीं सौंपी गई-अतिरिक्त दहेज का कोई आरोप नहीं-विद्वान मजिस्ट्रेट ने सभी धाराओं के तहत संज्ञान न लेने का कारण नहीं बताया - संज्ञान लेते समय संबंधित स्टेनोग्राफर को केवल फाइल उपलब्ध कराई गई और उसने आदेश को लिपिबद्ध किया और उसके बाद न्यायिक मस्तिष्क का उपयोग किए बिना, इसे न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा हस्ताक्षरित किया गया - विद्वान मजिस्ट्रेट ने आदेश पारित करते समय प्रासंगिक न्यायिक मिसालों का पालन करने के बारे में भी नहीं सोचा है - कोई प्रथम दृष्टया वाद नहीं स्थापित है - आपेक्षित आदेश को निरस्त किया जाना चाहिए। (पैरा 1 से 20)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. कहकशां कौसर @ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य (2022) 0 सुप्रीम (एससी) 117
2. ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य (2014) 2 एससीसी 1
3. मानव अधिकार एवं अन्य के लिए सामाजिक कार्य मंच बनाम भारत संघ, विधि एवं न्याय मंत्रालय एवं अन्य (2018) 10 एससीसी 443

4. राजेश शर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य (2018) 10 एससीसी 472
5. अर्नेश कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2014) 8 एससीसी 273
6. प्रीति गुप्ता एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य और अन्य (2010) 7 एससीसी 667
7. गीता मेहरोत्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य (2012) 10 एससीसी 741
8. के. सुब्बा राव बनाम तेलंगाना राज्य (2018) 14 एससीसी 452
9. गुजरात राज्य बनाम गिरीश राधाकृष्णन वर्दे (2014) 1 जेआईसी 595 एससी

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री शम्स तबरेज़ आलम अंसारी और राज्य-विपक्षी पक्षों के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना।
2. यह आवेदन, अपराध संख्या 86 वर्ष 2021अंतर्गत धारा 498-ए, 323, 504, 506 भारतीय दंड संहिता और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम और धारा 3/4 मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2020, थाना दोहरी-घाट, जिला मऊ से उत्पन्न आपराधिक वाद संख्या 5150 वर्ष 2022 की कार्यवाही, और आरोप पत्र दिनांक 11.05.2019 के साथ-साथ न्यायिक मजिस्ट्रेट एफटीसी (महिलाओं के खिलाफ अपराध), जिला मऊ द्वारा पारित संज्ञान और सम्मन आदेश दिनांक 18.04.2022 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

3. संक्षेप में, प्रकरण का तथ्य यह है कि प्रार्थियों ने उक्त प्राथमिकी थाना मधुबन, जनपद-मऊ में दर्ज करायी थी, जिसमें विवेचना के उपरान्त आवेदकों के विरुद्ध उपरोक्त धाराओं में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जिस पर दिनांक 18.04.2022 को संज्ञान लिया गया है और आवेदकों को आरोपी के रूप में तलब किया गया है।

4. आवेदन एवं शपथ पत्र में आवेदक ने कहा है कि आवेदक संख्या 1 एवं विपक्षी संख्या 2 का विवाह 03.03.2019 को मुस्लिम रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ। विवेचना अधिकारी ने आवेदकों को धारा 41-ए दंड प्रक्रिया संहिता के तहत नोटिस दिया था, वे उपस्थित हुए और उनके बयान विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए लेकिन उन्होंने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया क्योंकि उन्होंने जांच में पूरा सहयोग किया था।

5. प्राथमिकी और गवाहों के बयानों के अवलोकन से, उपरोक्त धाराओं के तहत प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है। उन पर मुकदमा चलाने के लिए कोई सबूत नहीं है। आवेदक संख्या 5 और 6 (दोनों पत्नी और पति हैं) के मध्य विवाह कथित घटना से 18 साल पहले हुआ गया था; वे ग्राम बंजारी, थाना घोसी, जिला मऊ में रहते हैं। दोनों गांव के बीच 40 किमी की दूरी है। आवेदक संख्या 4 भी एक विवाहित महिला है और अपने पति के साथ अपने वैवाहिक घर में रहती है, जबकि आवेदक संख्या 2 एवं 3 अविवाहित भाई-बहन आवेदक संख्या 1 के साथ रहते हैं, इसलिए उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया था।

6. विवेचना अधिकारी ने हेड मुहर्रर का बयान दर्ज किया और धारा 3/4 मुस्लिम महिला (विवाह के अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2020 जोड़ दिया। अभियोजन संस्करण के समर्थन में कोई मेडिकल रिपोर्ट नहीं है, विपक्षी संख्या 2 और गवाहों द्वारा कथित घटना की कोई तारीख, समय और स्थान नहीं दिया गया है, सभी आवेदकों के खिलाफ सामान्य भूमिका को छोड़कर कोई विशिष्ट भूमिका नहीं दी गई है। दहेज की अतिरिक्त मांग का कोई आरोप नहीं है, विद्वान मजिस्ट्रेट ने न तो आरोप पत्र का अवलोकन किया और न ही अपने न्यायिक दिमाग का इस्तेमाल किया और धारा 498-ए, 323, 504 और 506 भारतीय दंड संहिता और धारा 4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत संज्ञान लिया है; जबकि आरोप पत्र उपरोक्त धाराओं और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम और 3/4 मुस्लिम महिला (विवाह पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 2020 के तहत प्रस्तुत किया गया था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित सभी धाराओं के तहत संज्ञान नहीं लेने के संबंध में कारण नहीं बताया है।

7. प्राथमिकी से पहले, विपक्षी पक्ष ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के तहत एक याचिका भी दायर की थी, जिसे संबंधित न्यायालय ने खारिज कर दिया था, इसके बाद उसने धारा 125 दंड प्रक्रिया संस्था के तहत एक आवेदन दायर किया था, जिसे भी खारिज कर दिया गया, इसके बाद उसने धारा 125 दंड प्रक्रिया संस्था के तहत दूसरा आवेदन दायर किया, जो अभी भी लंबित है।

8. आवेदक पूरी तरह से निर्दोष हैं और उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है।

विपक्षी संख्या 2 अलग रहना चाहती थी, इसलिए उसका अपने पति से विवाद शुरू हुआ, जिसने उसके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया, जिसके बाद वह अपने माता-पिता के घर चली गई और फिर कभी वापस नहीं आई।

9. विद्वान वकील ने सभी संदर्भित दस्तावेजों को संलग्नक के रूप में आवेदन के साथ संलग्न किया है; नोटिस विपक्षी पक्ष संख्या 2 पर व्यक्तिगत रूप तामीला हुआ था, लेकिन वह नहीं आई। यद्यपि, राज्य ने जवाबी हलफनामा संख्या 1/22 दायर किया है, जिसमें राज्य ने आवेदन में लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया है।

10. आवेदकों ने 09.12.2022 को जवाबी हलफनामे के खिलाफ प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया है और याचिका में पहले से ही बताए गए सभी तथ्यों को दोहराया और पुष्ट किया है, जवाबी हलफनामे में दिए गए तथ्यों से इनकार किया है, परंतु तीन तलाक संबंधी आरोप से इनकार नहीं कर सके।

11. सुना और पत्रावली का अवलोकन किया।

12. प्राथमिकी के अनुसार जब विपक्षी संख्या 2 ने केस वापस लेने से इंकार कर दिया, तो आवेदक संख्या 1-रियाजुद्दीन ने 04 जनवरी 2021 को अपराह्न लगभग 3:50 बजे उसे टेलीफोन पर तीन तलाक दे दिया, इसके बाद वह रियाजुद्दीन के घर गई तो उसने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और कहा कि हलाला के बिना वह घर में नहीं रह सकती। सभी आरोपियों ने दोबारा आने पर जान से मारने

की धमकी दी। कभी भी कोई अप्रिय घटना घट सकती है। इस तथ्य की पुष्टि शिकायतकर्ती ने अपने बयान में भी की है। शिकायतकर्ती के पिता बदरुद्दीन और मां जोलेखा ने भी इस आरोप (तीन तलाक के आरोप के संबंध में) के समर्थन में इसी तरह के बयान दिए हैं; हेड कांस्टेबल नसीम फारुखी ने कहा है कि गलती से धारा 3/4, मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2020 छूट गई थी, उसके बाद उनके बयान के अनुसार धारा 3/4 मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2020 को भी जोड़ा गया; इस तथ्य का उल्लेख धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दायर आवेदन में भी किया गया है।

13. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने **कहकशां कौसर उर्फ सोनम और अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य 2022 0 सुप्रीम (एससी) 117**, के निर्णय का आश्रय लिया है जिसमें भतीजी, सास, ननद और देवर को आरोपी बनाया गया और उनके विरुद्ध सामान्य आरोप लगाए गए।

14. पूर्व में, शिकायतकर्ती ने 11.12.2017 को भी प्राथमिकी दर्ज कराई थी; वर्तमान प्राथमिकी 01.04.2019 को दर्ज की गई थी; पति सहित सात आरोपियों को फंसाया गया था, यद्यपि, मात्र पांच आरोपियों ने प्राथमिकी को चुनौती दी थी; शीर्ष अदालत ने **ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2014) 2 एससीसी 1 एवं मानव अधिकार के लिए सोशल एक्शन फोरम एवं अन्य बनाम भारत संघ, कानून और न्याय**

मंत्रालय और अन्य (2018) 10 एससीसी 443 के उद्धरण का भी आश्रय लिया है।

15. शीर्ष अदालत ने माना कि आजकल, पति और उसके रिश्तेदारों के खिलाफ व्यक्तिगत विवादों को निपटाने के साधन के रूप में धारा 498-ए भारतीय दंड संहिता जैसे प्रावधानों का इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति बढ़ गई है। शीर्ष अदालत ने राजेश शर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2018) 10 एससीसी 472; अरनेश कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2014) 8 एससीसी 273, प्रीति गुप्ता एवं अन्य बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, (2010) 7 एससीसी 667, गीता मेहरोत्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2012) 10 एससीसी 741 और के. सुब्बा राव बनाम तेलंगाना राज्य, (2018) 14 एससीसी 452 के पिछले निर्णय को उद्धृत किया और देखा कि वैवाहिक विवाद के दौरान सामान्य और बहुग्राही आरोपों द्वारा झूठे फंसाए जाने को, यदि बेरोकटोक छोड़ दिया गया तो कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। इसलिए, इस निर्णय के माध्यम से इस न्यायालय ने अदालतों को, पति के रिश्तेदारों और ससुराल वालों के खिलाफ यदि कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है, तो उनके विरुद्ध कार्यवाही करने से आगाह किया है।

16. सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ताओं में से किसी के भी विरुद्ध कोई विशेष और स्पष्ट आरोप नहीं लगाए गए हैं। उद्धृत मामले में उन्हें कोई विशिष्ट भूमिका नहीं दी गई है; हाई कोर्ट पटना के आदेश और प्राथमिकी को खारिज कर दिया गया।

17. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने गुजरात राज्य बनाम गिरीश राधाकृष्णन वर्दे 2014 (1) जेआईसी 595 (सुप्रीम कोर्ट) के पूर्व निर्णय का आश्रय लिया है। निर्णय के पैराग्राफ 13 में यह कहा गया है कि यदि पुलिस द्वारा कोई प्राथमिकी दर्ज की गई है और आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है तो मजिस्ट्रेट जांच नहीं कर सकता है। आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के उपरांत मजिस्ट्रेट किसी धारा या किसी आरोप को बाहर या शामिल नहीं कर सकता है।

18. इस मामले में, उपरोक्त धाराओं में प्राथमिकी दर्ज की गई थी और उन्हीं धाराओं के तहत आरोप पत्र भी प्रस्तुत किया गया है, किंतु संज्ञान लेते समय बिना कोई कारण बताए केवल यह देखते हुए कि संज्ञान लेने के लिए पर्याप्त आधार है, आरोपी व्यक्तियों को धारा 498-ए, 323, 504, 506 भारतीय दंड संहिता और धारा 4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत तलब किया गया है, धारा 3 दहेज निषेध अधिनियम के तहत और धारा 3/4 मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 2020 के तहत संज्ञान क्यों नहीं लिया गया, इसका कोई कारण नहीं बताया गया है। आदेश के प्रथम पैरा में भी यह नहीं लिखा है कि आरोप पत्र धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम एवं धारा 3/4 मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण), अधिनियम, 2020 के तहत प्रस्तुत किया गया है। यह स्पष्ट रूप से दिखाता है और स्थापित करता है कि संज्ञान लेने के समय केवल फाइल संबंधित आशुलिपिक को प्रदान की गई थी कि आदेश को प्रतिलेखित किया जाए और उसके उपरांत, न्यायिक दिमाग का उपयोग किए बिना, न्यायिक मजिस्ट्रेट,

एफटीसी (महिलाओं के विरुद्ध अपराध), जिला मऊ द्वारा हस्ताक्षर कर दिया गया। चिंता की बात यह है कि जब अधिकारी को विशेष रूप से महिलाओं के खिलाफ अपराध के विचारण के लिए तैनात किया जाता है, तो उन्होंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि वह धारा 3 दहेज निषेध अधिनियम और धारा 3/4 मुस्लिम महिला (विवाह अधिकार संरक्षण) के तहत संज्ञान क्यों नहीं ले रहे हैं; जहां तक **कहकशां कौसर उर्फ सोनम (उपरोक्त)** में निर्धारित सिद्धांतों की प्रयोज्यता का सवाल है, विद्वान मजिस्ट्रेट ने आदेश पारित करते समय प्रासंगिक न्यायिक मिसालों का पालन करने के बारे में भी नहीं सोचा।

19. उपरोक्त परिस्थितियों में, इस न्यायालय का विचार है कि न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने के अलावा कोई वैकल्पिक उपाय नहीं है।

20. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, संज्ञान संबंधी आक्षेपित आदेश निरस्त किये जाने योग्य है।

आदेश

21. उपरोक्त के मद्देनजर, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत यह आवेदन स्वीकार किया जाता है।

22. न्यायिक मजिस्ट्रेट एफटीसी (महिलाओं के विरुद्ध अपराध), जनपद मऊ द्वारा संज्ञान लेने के संबंध में आक्षेपित आदेश दिनांक

18.04.2022 एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है।

23. विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट एफटीसी (महिलाओं के विरुद्ध अपराध), जिला मऊ को केस डायरी और आरोप-पत्र का अध्ययन करने और उसके पश्चात, ऊपर की गई टिप्पणियों के आलोक में नए सिरे से आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

24. जिला जज मऊ को संबंधित न्यायिक अधिकारी का मार्गदर्शन करने हेतु निर्देशित किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 407

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

32841/2008

हरीश चंद्र एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

... विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: बृजेन्द्र कुमार ओझा, श्री बी.डी. शर्मा, श्री पी.के. दुबे, श्री सुरेश धर द्विवेदी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अनुपम त्रिपाठी

क. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 482 और 311 - भारतीय दंड संहिता, 1860 धारा 304, 323 और 504-सीआरपीसी की धारा 311 के तहत समन

आदेश को चुनौती दी गई-अनुमति दी गई-घायल चश्मदीद गवाहों की चिकित्सकीय जांच की गई और मूल चोट रिपोर्ट पुलिस ने ले ली थी-पुलिस ने आरोपियों की मिलीभगत से उन्हें गवाह नहीं बनाया, जबकि प्रस्तावित गवाहों को घटना के समय मृतक के साथ चोटें आई थीं-उनकी मेडिकल रिपोर्ट मिलने के बावजूद, विवेचक द्वारा उनका बयान दर्ज नहीं किया गया और न ही उसे आरोप पत्र के साथ संलग्न किया गया-एफआईआर में या सीआरपीसी की धारा 161 के तहत बयानों में सभी गवाहों के नाम का उल्लेख करना कानून की आवश्यकता नहीं है-ऐसे गवाहों की अभियोजन पक्ष का न्यायालय की अनुमति द्वारा भी जांच की जा सकती है-एफआईआर में किसी भी गवाह के नाम का उल्लेख न करना चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य को अस्वीकार करने का औचित्य नहीं होगा-इस प्रकार, विचारणीय न्यायालय ने आवेदन को स्वीकार करके सही किया। (पैरा 1 से 20)

बी. धारा 311 सीआरपीसी का उद्देश्य यह है कि अभिलेख पर मूल्यवान साक्ष्य प्रस्तुत करने में किसी भी पक्ष की गलती या किसी भी पक्ष से जांचे गए गवाहों के बयानों में अस्पष्टता के कारण न्याय में विफलता न हो। निर्णायक कारक यह है कि क्या यह वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक है। हालाँकि, यह ध्यान में रखना चाहिए कि धारा 311 सीआरपीसी के तहत दी गई विवेकाधीन शक्ति का विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया जाना चाहिए। (पैरा 16)

आवेदन निरस्त। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2013) एआईआर एससी 3081
2. आर.बी. मिथानी बनाम महाराष्ट्र राज्य (1971) एआईआर एससी1630
3. हरियाणा राज्य बनाम राम प्रसाद (2006) Cr.L.J. 1001
4. शैलेन्द्र कुमार बनाम बिहार राज्य (2002) एस.सी. 270
5. रामासामी बनाम श्रीनिवासन (1987) 3 अपराध 89 मद्रास
6. रामा पासवान बनाम झारखंड राज्य (2007) सीआरएल.एल.जे.2750
7. पोपट लाल व अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2002) सी.आर.एल. 794
8. वी.एन. पाटिल बनाम निरंजन कुमार एवं अन्य (2021) 3 एससीसी 661
9. भगवान सिंह बनाम एम.पी. राज्य (2002) 44 एससी 1112 एससी
10. राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य (2003) 47 एससी 1068 एससी
11. चित्तरलाल बनाम राजस्थान राज्य (2003) 6 एससीसी 397
12. श्री भगवान बनाम राजस्थान राज्य (2001) 6 एससीसी 296
13. सतनाम सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2000) 1 एससीसी 662

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. यह प्रार्थना पत्र अभियुक्त आवेदक द्वारा अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 02, शाहजहांपुर द्वारा एस.टी. संख्या 799/2007 -

राज्य बनाम हरीश चंद्र एवं अन्य, अन्तर्गत धारा 304, 323 एवं 504 भा0दं0सं0, थाना पोबयान, जिला शाहजहांपुर के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 31/10/2008 को निरस्त करने के लिए किया गया है, जिसके द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रार्थना पत्र 13-बी अन्तर्गत धारा 311 दं0प्र0सं0 को स्वीकार किया था तथा मैना देवी एवं उषा देवी को गवाह के रूप में बुलाया था।

2. आवेदकों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री पवन कुमार दुबे तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि शिकायतकर्ता रमेश चंद्र ने हरीश चंद्र, मातादीन, संगम और राम कुमार के खिलाफ एनसीआर संख्या 62/2007 दर्ज कराई और घायल पंकज की मृत्यु के बाद, एनसीआर को धारा 304, 323 और 504 भा0दं0सं0 के तहत एफआईआर में बदल दिया गया। जांच अधिकारी ने सूचक और तथाकथित प्रत्यक्षदर्शी बाबू राम के बयान दर्ज किए और जांच के बाद आवेदक के खिलाफ उपरोक्त धाराओं के तहत 05/05/2007 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। आरोप पत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मैना देवी और श्रीमती उषा देवी का बयान न तो धारा 161 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज किया गया था और न ही केस डायरी में कथित घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति के बारे में एक भी शब्द का उल्लेख किया गया है, इसलिए उनका नाम गवाहों की सूची में नहीं

है। परीक्षण के दौरान पीडब्लू 1 रमेश चंद्र, पीडब्लू-2 बाबू राम और पीडब्लू-3 सुखलाल के बयान दर्ज किए गए हैं।

4. दिनांक 06/05/2008 को दोनों प्रस्तावित गवाहों ने अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 02 शाहजहांपुर के समक्ष धारा 311 दं0प्र0सं0 के तहत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया कि दिनांक 02/04/2007 को घटना के समय वे पंकज के साथ थे तथा मृतक को बचाने के दौरान उन्हें चोटें आईं, वे घायल चश्मदीद गवाह हैं तथा दिनांक 05/04/2007 को पीएचसी में उनका चिकित्सकीय परीक्षण भी हुआ था। पुलिस द्वारा मूल चोट रिपोर्ट ले ली गई थी। उसकी फोटोकॉपी संलग्न की जा रही है। पुलिस ने अभियुक्तगणों की मिलीभगत से उन्हें (घायलों को) गवाह नहीं बनाया। अभियुक्तगण प्रभावशाली व्यक्ति हैं, जिन्होंने सभी गवाहों को पक्षद्रोही बना दिया है। अतः मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए आवेदकों को गवाह के रूप में बुलाया जाए।

5. आपत्ति आमंत्रित की गई और उस पर विचार किया गया तथा उसके बाद आरोपित आदेश द्वारा, प्रार्थना पत्र 13-बी को विचारण न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष निकालते हुए अनुमति दी गई कि धारा 311 दं0प्र0सं0 के तहत प्रार्थना पत्र के समर्थन में चोट की रिपोर्ट है। मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए धारा 311 दं0प्र0सं0 के तहत किसी भी स्तर पर किसी भी गवाह की जांच या पुनः जांच की जा सकती है तथा किसी भी व्यक्ति को साक्ष्य के लिए बुलाया जा सकता है।

6. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने गलत तरीके से और अवैध रूप से प्रार्थना पत्र को स्वीकार किया है और उन्हें गवाह के रूप में बुलाया है जो अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और कानून के सही प्रावधान के खिलाफ है। इसलिए, प्रार्थना पत्र को स्वीकार किया जाना चाहिए और विवादित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

7. मिलीभगत के लिए धारा 311 दं0प्र0सं0 निम्नानुसार प्रस्तुत की जाती है : -

“दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 311.

311. साक्षी को बुलाने या उपस्थित व्यक्ति की परीक्षा करने की शक्ति। कोई भी न्यायालय, इस संहिता के अधीन किसी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी प्रक्रम में, किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में बुला सकता है या उपस्थित किसी व्यक्ति की, यद्यपि उसे साक्षी के रूप में नहीं बुलाया गया है, परीक्षा कर सकता है या किसी ऐसे व्यक्ति को वापस बुला सकता है और पुनः परीक्षा कर सकता है जिसकी पहले परीक्षा हो चुकी है; और न्यायालय ऐसे किसी व्यक्ति को बुलाएगा और उसकी परीक्षा करेगा या वापस बुलाएगा और पुनः परीक्षा करेगा यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए उसे आवश्यक प्रतीत होता है।”

8. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि इस धारा के दो भाग हैं। धारा के पहले भाग के अनुसार न्यायालय निम्न शक्तियों का प्रयोग कर सकता है: -

(1) किसी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाना, या

(2) उपस्थित किसी भी व्यक्ति की जांच करना, भले ही उसे गवाह के रूप में न बुलाया गया हो, या,

(3) पहले से जांचे जा चुके किसी व्यक्ति को वापस बुलाना और पुनः जांच करना।

दूसरा भाग, जो अनिवार्य है और न्यायालय पर दायित्व डालता है :-

(1) बुलाना और जांच करना, या

(2) किसी ऐसे व्यक्ति को वापस बुलाना तथा पुनः परीक्षा करना, यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

9. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य एआईआर 2013 (एससी) 3081 में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इसलिए यह आवश्यक है कि धारा 311 दं0प्र0सं0 को लागू किया जाए और किसी विशेष मामले में इसके प्रार्थना पत्र का आदेश न्यायालय द्वारा केवल उक्त प्रावधानों के उद्देश्य और अभिप्राय को ध्यान में रखते हुए दिया जा सकता है, अर्थात् मामले का न्यायोचित निर्णय प्राप्त

करने के लिए। उक्त प्रावधानों के तहत निहित शक्ति किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने या उपस्थित किसी भी व्यक्ति की जांच करने के लिए, भले ही उसे गवाह के रूप में न बुलाया गया हो या उपस्थित किसी भी व्यक्ति को फिर से बुलाने या फिर से जांच करने के उद्देश्य से संहिता के तहत शुरू की गई किसी भी जांच या परीक्षण या अन्य कार्यवाही में किसी भी स्तर पर किसी भी न्यायालय को उपलब्ध कराई जाती है। जहां तक पहले से जांचे जा चुके किसी व्यक्ति को वापस बुलाने और फिर से जांच करने का सवाल है, न्यायालय को आवश्यक रूप से इस बात पर विचार करना चाहिए और सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति को फिर से बुलाना और फिर से जांच करना, न्यायालय के दृष्टिकोण से मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

10. आ.र.बी मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1971, सुप्रीम कोर्ट 1630 में, माननीय सुप्रीम कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया है कि अतिरिक्त साक्ष्य बुलाना आवश्यक है, न केवल इसलिए कि निर्णय सुनाना असंभव होगा, बल्कि इसलिए भी कि इसके बिना न्याय विफल हो जाएगा। हालाँकि इस शक्ति का प्रयोग संयम से और केवल उपयुक्त मामले में ही किया जाना चाहिए, लेकिन एक बार जब ऐसी कार्रवाई उचित हो जाती है, तो प्राप्त किए जाने वाले साक्ष्य के प्रकारों पर कोई

प्रतिबंध नहीं है। यह औपचारिक या पर्याप्त प्रकृति का हो सकता है।

11. हरियाणा राज्य बनाम राम प्रसाद 2006 सीआर.एलजे . 1001 में, पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहां मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए गवाह की परीक्षा और पुनः परीक्षा आवश्यक है, वहां न्यायालय के लिए ऐसे गवाह को बुलाना अनिवार्य है।

12. शैलेन्द्र कुमार बनाम बिहार राज्य, एआईआर 2002 (सर्वोच्च न्यायालय) 270 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि महत्वपूर्ण गवाह की जांच न करने में कोई लापरवाही, चूक या गलती हुई है, तो किसी भी स्तर पर ऐसे गवाह की जांच करके न्यायसंगत निर्णय देने के न्यायालय के कार्य में किसी भी तरह से बाधा नहीं आती है।

13. रामासामी बनाम श्रीनिवासन 1987 (3) अपराध 89 मद्रास में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आपराधिक न्यायालय केवल पक्षों द्वारा उसके समक्ष लाई गई सामग्री से निपटने के लिए निर्णायक नहीं है। न्यायालय को आपराधिक न्यायशास्त्र के प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभानी होती है। हालाँकि, साक्ष्य एकत्र करना न्यायालय का सामान्य कर्तव्य नहीं है, लेकिन ऐसे मामलों में जहाँ न्याय की आवश्यकता होती है, न्यायालय के पास सत्य का पता लगाने के लिए मामले की आगे की जाँच करने का अधिकार है।

14. **रामा पासवान बनाम झारखंड राज्य**, 2007 सीआरएल एलजे 2750 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा के तहत गवाह को बुलाने के न्यायालय के अधिकार का प्रयोग केवल इसलिए अनुचित नहीं होगा क्योंकि साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करता है न कि अभियुक्त के। यह धारा एक सामान्य धारा है, जो न्यायालय के तहत सभी कार्यवाहियों, जांचों और परीक्षणों पर लागू होती है और मजिस्ट्रेट को ऐसी कार्यवाही, परीक्षण या जांच के किसी भी चरण में किसी भी गवाह को समन जारी करने का अधिकार देती है।

15. आवेदक-अभियुक्त का मानना है कि धारा 311 दं0प्र0सं0 के तहत प्रार्थना पत्र को स्वीकार करके और गवाहों को बुलाकर तथा दस्तावेजी साक्ष्य को रिकॉर्ड पर रखकर, आरोपी-आवेदक को पक्षपातपूर्ण बनाया गया है। इस संबंध में **पोपट लाल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2002, सीआरएल. एलजे. 794** में, बॉम्बे उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 311 दं0प्र0सं0 केवल आरोपी के लाभ के लिए नहीं दी गई है और यह न्यायालय की शक्ति का अनुचित प्रयोग नहीं होगा, यदि न्यायालय केवल इसलिए गवाह को बुलाता है क्योंकि साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करेगा न कि बचाव पक्ष के मामले का।

16. **वी.एन. पाटिल बनाम निरंजन कुमार एवं अन्य, (2021) 3 एससीसी 661** में पैरा 14 से 17 के कथन प्रासंगिक हैं, इसलिए उन्हें निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है : -

"14. धारा 311 दं0प्र0सं0 का उद्देश्य यह है कि रिकॉर्ड पर मूल्यवान साक्ष्य लाने में किसी भी पक्ष की गलती या किसी भी पक्ष से जांचे गए गवाहों के बयानों में अस्पष्टता छोड़ने के कारण न्याय में विफलता न हो। निर्णायक कारक यह है कि क्या यह मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक है। महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति जो आती है वह है "इस संहिता के तहत किसी भी जांच या परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में"। हालांकि, यह ध्यान में रखना चाहिए कि धारा 311 दं0प्र0सं0 के तहत प्रदत्त विवेकाधिकार का विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया जाना चाहिए, जैसा कि हमेशा कहा जाता है "शक्ति जितनी व्यापक होगी, विवेकपूर्ण विवेक का प्रयोग करते समय सावधानी की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी"।

15. धारा 311 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति के प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा विजय कुमार बनाम यूपी राज्य, (2011) 8 एससीसी 136: (2011) 3 एससीसी (सीआरआइ) 371: (2012) 1 एससीसी (एलएंडएस) 240: (एससीसी पृष्ठ 141, पैरा 17) में अच्छी तरह से स्थापित किया गया है।

"17. यद्यपि धारा 311 न्यायालय को व्यापक विवेक प्रदान करती है तथा इसे

यथासंभव व्यापक शब्दों में व्यक्त किया गया है, तथापि उक्त धारा के अंतर्गत विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग केवल न्याय के उद्देश्यों के लिए ही किया जा सकता है। विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग संहिता के प्रावधानों तथा आपराधिक कानून के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना चाहिए। धारा 311 के अंतर्गत प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा बताए गए कारणों के आधार पर न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए, न कि मनमाने ढंग से या स्वेच्छाचारितापूर्वक। श्रीमती रुचि सक्सेना की न्यायालय गवाह के रूप में जांच करने के लिए विद्वान विशेष न्यायाधीश को निर्देश देने से पहले, उच्च न्यायालय ने विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा बताए गए कारणों की जांच नहीं की कि उनसे न्यायालय गवाह के रूप में जांच करना क्यों आवश्यक नहीं था तथा बिना कोई कारण बताए ही आपत्तिजनक निर्देश दे दिया।"

16. इस सिद्धांत को मन्नान शेख बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2014)

13 एससीसी 59: (2014) 5 एससीसी (क्रि) 547 और उसके बाद रतनलाल बनाम प्रहलाद जाट, (2017) 9 एससीसी 340: (2017) 3 एससीसी (क्रि) 729 और स्वप्न कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (क्रि) 839 में दोहराया गया है। स्वप्न कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (क्रि) 839 के प्रासंगिक पैराग्राफ निम्नानुसार हैं: स्वप्न कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (क्रि) 839, एससीसी पृष्ठ 331, पैरा 10-11)

"10. इस धारा का पहला भाग, जो अनुमेय है, दंड न्यायालय को पूर्णतया विवेकाधीन प्राधिकार देता है तथा संहिता के अधीन जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी स्तर पर उसे तीन तरीकों में से एक में कार्य करने के लिए सक्षम बनाता है, अर्थात्, (i) किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में बुलाना; या (ii) उपस्थित किसी व्यक्ति की जांच करना, यद्यपि उसे साक्षी के रूप में नहीं बुलाया गया हो; या (iii) पहले से जांच किए जा चुके किसी

व्यक्ति को वापस बुलाना और उसकी पुनः जांच करना। दूसरा भाग, जो अनिवार्य है, न्यायालय पर (i) किसी ऐसे व्यक्ति को बुलाने और उसकी जांच करने, या (ii) वापस बुलाने और उसकी पुनः जांच करने का दायित्व डालता है, यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

11. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि धारा 311 के तहत प्रदत्त शक्ति का उपयोग न्यायालय द्वारा केवल न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए। इस शक्ति का प्रयोग केवल मजबूत और वैध कारणों के लिए किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग बहुत सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। न्यायालय को इस धारा के तहत न्याय के हित में आवश्यक पुनः परीक्षा या आगे की परीक्षा के लिए गवाहों को वापस बुलाने की भी शक्ति है , लेकिन इसका प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखने के बाद किया

जाना चाहिए। यदि न्यायालय का मानना है कि प्रार्थना पत्र कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के रूप में दायर किया गया है, तो इस प्रावधान के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा।"

17. हर न्यायालय का उद्देश्य सत्य की खोज करना है। धारा 311 दं0प्र0सं0 ऐसे कई प्रावधानों में से एक है जो कानून द्वारा स्वीकृत प्रक्रिया द्वारा सत्य को उजागर करने के प्रयास में न्यायालय के हार्थों को मजबूत करता है। साथ ही, धारा 311 दं0प्र0सं0 के तहत निहित विवेकाधीन शक्ति का न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए मजबूत और वैध कारणों और सावधानी और सावधानी के साथ विवेकपूर्ण तरीके से प्रयोग किया जाना चाहिए।

उपरोक्त मामले में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपील स्वीकार कर ली गई तथा उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया तथा गवाहों को बुलाने तथा दस्तावेज प्रस्तुत करने के संबंध में अवर न्यायालय के आदेश को बहाल कर दिया गया।

17. एफआईआर में या धारा 161 दं0प्र0सं0 के तहत बयानों में सभी गवाहों के नाम का उल्लेख करना कानून की आवश्यकता नहीं है। ऐसे गवाहों की जांच अभियोजन पक्ष द्वारा न्यायालय की अनुमति से भी की जा सकती

है। एफआईआर में किसी भी गवाह के नाम का उल्लेख न करना चश्मदीद गवाह के साक्ष्य को खारिज करने का औचित्य नहीं होगा। **भगवान सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2002 (44) एसीसी 1112 (एससी)** के पैरा 13 में यह अभिनिर्धारित किया गया कि एफआईआर में सभी गवाहों के नाम का उल्लेख करने की कोई कानूनी आवश्यकता नहीं है, जिसका उद्देश्य केवल आपराधिक कानून को लागू करना है। उद्धृत मामले में किरण (पीडब्लू 7) खुद घायल थी और हरि राम (मृतक) की भतीजी होने के नाते, उसके पास अपराध के कमीशन में निर्दोष व्यक्तियों को शामिल करने का कोई कारण नहीं था।

उपर्युक्त उद्धरण के बजाय **राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य, 2003 (47) एसीसी 1068 (एससी)**, **चित्तलाल बनाम राजस्थान राज्य, (2003) 6 एससीसी 397**, **श्री भगवान बनाम राजस्थान राज्य, (2001) 6 एससीसी 296**, **सतनाम सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2000) 1 एससीसी 662** में, सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के समान सिद्धांतों को अभिनिर्धारित किया है।

18. विचारण न्यायालय को मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने का पर्याप्त अधिकार है। इस मामले में जब प्रस्तावित गवाहों के अनुसार उन्हें घटना के समय मृतक के साथ चोटें आई थीं तथा उनकी मेडिकल जांच भी की गई थी, तब भी उनके बयान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज नहीं किए गए तथा उनकी मेडिकल रिपोर्ट प्राप्त होने के बावजूद

भी उसे आरोप पत्र के साथ संलग्न नहीं किया गया तथा जब जांच अधिकारी के विरुद्ध यह गंभीर आरोप है कि वह अभियुक्तों के साथ मिलीभगत में था, इसलिए अभियोजन पक्ष के मामले को कमजोर करने के लिए उन्हें (कथित घायल चश्मदीद गवाहों को) गवाह के रूप में उल्लेखित नहीं किया गया, तो इस न्यायालय का विचार है कि उपरोक्त परिस्थितियों में उपरोक्त गवाहों को बुलाना तथा उनसे पूछताछ करना न्यायालय का कर्तव्य है। उपरोक्त परिस्थितियों में विचारण न्यायालय ने प्रार्थना पत्र को स्वीकार करते हुए मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए आवेदकों से पूछताछ करने का आदेश दिया है।

19. इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरह का आदेश पारित करके विचारण न्यायालय अभियोजन पक्ष की कमी को पूरा करने की कोशिश कर रहा है। विवादित आदेश ठोस और मजबूत कारणों पर आधारित है। आवेदक कोई ऐसा आधार स्थापित नहीं कर सके जिसके आधार पर यह न्यायालय अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सके क्योंकि विवादित आदेश न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं है। इसलिए प्रार्थना पत्र खारिज किए जाने योग्य है।

आदेश

20. तदनुसार, प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 482 दं0प्र0सं0 खारिज किया जाता है।

इस फैसले की प्रति संबंधित न्यायालय को प्रेषित की जाए।

(2023) 4 ILRA 412

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 34664

/2022

सौरभ

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: सुश्री मंजू पांडे

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री एम.पी.एस.

चौहान

क. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 366 एवं 376 और 3/4 पोक्सो अधिनियम, 2012 - आरोप पत्र के साथ-साथ संज्ञान आदेश को निरस्त करना - पीड़िता नाबालिग लड़की होने के कारण अपने धर्म परिवर्तन के संबंध में अपनी सहमति नहीं दे सकती - यदि 18 वर्ष से कम आयु की लड़की की सहमति से या उसके बिना शारीरिक संबंध स्थापित किया जाता है, तो यह वैध सहमति नहीं होगी - इसके अतिरिक्त, आवेदक के संस्करण को विवश करने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका की कार्यवाही का कोई अभिलेख नहीं है, जो कि पीड़िता ने उच्च न्यायालय में आवेदक के पक्ष में कहा था - इसलिए, यह कहा जा सकता है कि ऐसे

व्यक्ति को उसकी वैध संरक्षकता से अपहरण कर लिया गया था - इसलिए, चल रही आपराधिक कार्यवाही को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं माना जा सकता है। (पैरा 1 से 16)

आवेदन स्वीकृत ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

अपर शासकीय अधिवक्ता ने न्यायालय में जवाबी हलफनामा दायर किया है, जिसे रिकॉर्ड में लिया गया है।

आवेदक द्वारा कोई प्रत्युत्तर शपथ पत्र दायर नहीं किया गया है।

सुश्री मंजू पांडे, आवेदक के अधिवक्ता, श्री एम.पी.एस.चौहान, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता और श्री पंकज कुमार त्रिपाठी, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता प्रतिपक्षी संख्या-2 को व्यक्तिगत रूप से तमीला कराई गई है, लेकिन वह आवेदक का विरोध करने के लिए आगे नहीं आया है और उसने कोई आपत्ति/प्रतिशपथ पत्र भी दायर नहीं किया है, लेकिन सुनवाई की तारीख पर प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री एम.पी.एस. चौहान मौजूद है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आवेदन आवेदक द्वारा आरोप-पत्र संख्या-93 वर्ष 2022 दिनांक 16.05.2022 के साथ-साथ अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम), बुलंदशहर द्वारा पारित संज्ञान आदेश दिनांक 02.06.2022 को रद्द करने के लिए संस्थित किया गया है जो

मामला संख्या-2488 वर्ष 2022 - राज्य बनाम सौरभ, धारा 363 366, 376 और 3/4 पोक्सो अधिनियम, थाना-अरनिया, जिला बुलंदशहर के मामले के तहत अपराध संख्या-82 वर्ष 2022 से उद्भूत हुआ है जो उपर्युक्त न्यायालय में लंबित हैं।

संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आवेदक के खिलाफ 12.03.2022 को प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें कहा गया था कि 11.03.2022 को आवेदक की नाबालिग बेटी नरगिस उम्र लगभग 17 साल थी, जो नील गाय (बोसेलाफस ट्रेगोकेमलस) (ब्लू बुल) से गेहूं की फसलों को संरक्षित करने के लिए घर से खेत पर गई थी। कुछ देर बाद उसकी पत्नी सबनम और भतीजा लियाकत वहां पहुंचे तो देखा कि पड़ोसी सौरव पुत्र देवीलाल अपनी नाबालिग बेटी को गांव घाटल की सड़क पर काले रंग की मोटरसाइकिल पर ले जा रहा था। वे घर लौट आए और उसे सूचित किया, उन्होंने उनकी तलाशी ली लेकिन नहीं मिला, इसलिए उसकी प्राथमिकी दर्ज की जाए और आवश्यक कार्रवाई की जाए। विवेचना के बाद आवेदक के खिलाफ उपरोक्त धाराओं में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है और आरोपी वारिस पुत्र नन्हे खान के खिलाफ धारा 363 और 366 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र भी प्रस्तुत किया गया है।

आवेदक ने आधार लिया है कि विवेचनाधिकारी ने उचित जांच के बिना आरोप पत्र प्रस्तुत किया है, वस्तुतः आवेदक और सूचनाकर्ता की बेटी एक-दूसरे से प्यार करते हैं और 15.03.2022 को नैनी आर्य समाज मंदिर में शादी की। विवाह प्रमाण पत्र की प्रति शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या-3 के रूप में संलग्न

की गई है। चूंकि प्रतिपक्षी संख्या-2 की बेटी धर्म से मुस्लिम थी, इसलिए शादी से पहले उसने खुद को हिंदू के रूप में परिवर्तित कर लिया और अपना नाम नरगिस से सोनी आर्य में बदल लिया और उसके बाद उसने बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या-604 वर्ष 2022 के माध्यम से माननीय उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जो हलफनामे का अनुलग्नक संख्या-4 है। सुनवाई के दौरान, माननीय उच्च न्यायालय ने उनकी पत्नी को प्रतिपक्षी संख्या-2 के साथ बुलाया। पीड़िता (सूचनाकर्ता की बेटी) ने अदालत में आवेदक के साथ उसकी मर्जी से और बिना किसी दबाव के जाने की इच्छा व्यक्त की। इसलिए, आवेदक के खिलाफ आरोप निराधार और मनगढ़ंत हैं।

आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और उसके फरार होने की कोई संभावना नहीं है, इसलिए आवेदन की अनुमति दी जाए और उपरोक्त आपराधिक कार्यवाही और संज्ञान आदेश को रद्द किया जाए।

आवेदक ने इस आशय का पूरक हलफनामा दायर किया है कि घटना के समय, आवेदक की बेटी की उम्र 17 वर्ष और आठ महीने थी और उसने विवेचनाधिकारी को दिए अपने बयान में कहा है कि घटना के समय वह 18 साल की थी, वह सुरेश से प्यार करती थी, वह उससे शादी करना चाहती थी। जब उसे चिकित्सा परीक्षण के लिए पेश किया गया, तो उसने आंतरिक और बाहरी जांच से इनकार कर दिया और यह भी कहा कि उसने 10 मार्च, 2022 को आवेदक के साथ अपनी इच्छा और सहमति से शादी की और उसके साथ रहना चाहती है। यहां तक कि, धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान में पीड़िता ने संबंधित मजिस्ट्रेट

को बताया है कि उसकी उम्र 18 वर्ष है, वह अपनी इच्छा और मर्जी से आवेदक के साथ गई थी। वह बिना किसी दबाव के आवेदक के साथ शादी करना और रहना चाहती थी। आवेदक ने उसके साथ कोई अवैध कार्य नहीं किया है। गलत इरादे के कारण सूचनाकर्ता ने संबंधित नगर निगम से आयु प्रमाण पत्र प्राप्त किया, जिसमें आवेदक को परेशान करने के लिए पीड़िता की उम्र 14 जुलाई, 2004 बताई गई है। उसने माननीय न्यायालय में यह भी कहा है कि आवेदक ने उसके साथ कोई अवैध कार्य नहीं किया है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 29 जनवरी, 2023 को जवाबी हलफनामा दायर किया है, कि आवेदक को प्रस्तुत आवेदन दायर करने के लिए कार्रवाई का कोई कारण नहीं हुआ है। विवेचनाधिकारी ने उचित जांच के बाद आरोप पत्रट जमा की है और संबंधित न्यायधीश ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध तथ्यों और सबूतों के आधार पर संज्ञान लिया है। अपराध के समय पीड़िता एक नाबालिग लड़की थी और उसकी जन्मतिथि 14 जुलाई, 2004 थी, इसलिए, घटना के समय वह 17 साल और 07 महीने और 27 दिन की थी। आर्य समाज कृष्णा नगर, प्रयागराज द्वारा जारी विवाह प्रमाण पत्र की कोई प्रासंगिकता नहीं है। पीड़िता ने न तो अपना धर्म परिवर्तन किया था और न ही वह अपनी मर्जी से आरोपी के साथ गई थी। पीड़िता ने आवेदक से कभी शादी नहीं की, वह कभी भी आवेदक के साथ नहीं जाना चाहती थी, वस्तुतः उसने आवेदक के साथ जाने से इनकार कर दिया और उनकी बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका माननीय न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई। आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया

धारा 363, 366, 376 भ०द०वि० और 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत मामला बनता है।

आवेदक धारा 482 द०प्र०स० के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए इस माननीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के लिए कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बना सका। पीड़िता ने आवेदक और पुलिस के दबाव में धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान दिया है। पुलिस के दबाव में उसने मेडिकल जांच कराने से मना कर दिया। उसने पुलिस की वर्तमान धारा में धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान दिया है। घटना और कथित धर्मांतरण के समय वह नाबालिग थी, इसलिए उपरोक्त धर्मांतरण प्रमाण पत्र की कोई प्रासंगिकता नहीं है। इसलिए आवेदन को भारी लागत पर खारिज कर दिया जाए।

(तर्कों को) सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

याचिकाकर्ता के अनुसार, कथित घटना के समय, पीड़िता एक बालिग लड़की थी और वह आरोपी के साथ शारीरिक संबंध/सहवास के संपर्क में आने में सक्षम थी। वह अपना धर्म परिवर्तन करने में भी सक्षम थी। वह आरोपी से प्यार करती थी और धर्म परिवर्तन के बाद उसने आवेदक के साथ आर्य समाज मंदिर, नैनी, इलाहाबाद में शादी कर ली। उन्होंने बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या-604 वर्ष 2022 में उच्च न्यायालय में उपरोक्त तथ्यों को भी स्वीकार किया। उसका न तो अपहरण किया गया और न ही उसका व्यपहरण किया गया और न ही उसके साथ बलात्कार किया गया। वह वर्ष 18 वर्ष से कम आयु की नहीं थी, इसलिए धारा 363, 366, 376 भ०द०वि० और 3/4 पॉक्सो अधिनियम की कोई

प्रयोज्यता नहीं है। इसलिए पूरी कार्यवाही रद्द की जाए।

रिकॉर्ड के अवलोकन से यह पता चलता है कि कक्षा-4 के स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र के अनुसार, पीड़िता की जन्म तिथि 14.07.2004 है, इसलिए, अपराध के कथित आयोग के समय वह 18 वर्ष से कम आयु की थी। यह कानून का सामान्य सिद्धांत है कि 18 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति अपने धर्म परिवर्तन के संबंध में सहमति नहीं दे सकता है और ऐसा व्यक्ति धारा 376 भ०द०वि० के संबंध में सहमति नहीं दे सकता है क्योंकि धारा 375 भ०द०वि० में प्रावधान है कि यदि 18 वर्ष से कम उम्र की महिला के साथ या उसकी सहमति के बिना शारीरिक संबंध स्थापित किया जा रहा है तो यह एक वैध सहमति नहीं होगी और उस मामले में ऐसी नाबालिग लड़की के साथ शारीरिक संबंध धारा 375 भ०द०वि० की परिभाषा के तहत बलात्कार माना जाएगा। आवेदक के उस कथन को मजबूत करने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या-604 वर्ष 2022 की कार्यवाही का कोई रिकॉर्ड नहीं है जिसे पीड़िता ने उच्च न्यायालय में आवेदक के पक्ष में कहा था। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि पीड़िता के पिता ने उसकी वास्तविक जन्मतिथि बदल दी थी। यदि कोई व्यक्ति 18 वर्ष से कम आयु का है और उसे उसकी वैध संरक्षकता से हटा दिया जाता है, तो यह कहा जा सकता है कि ऐसे व्यक्ति का अपहरण कर लिया गया था। उचित जांच के बाद आरोपी के खिलाफ धारा 363, 366, 376 भ०द०वि० और 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, इसलिए, रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर यह

निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि चल रही आपराधिक कार्यवाही अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और इस तरह के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए इस न्यायालय को विचाराधीन संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए।

इसलिए, धारा 482 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही मान्य नहीं है और इसे अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

आदेश

तदनुसार, धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 415

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 35720 /
2022

सुदेश पाल

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अयंक मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धाराएं 498-ए, 504, 304-बी, 306 और 3/4 डी.पी. अधिनियम-दहेज की मांग-अप्राकृतिक मृत्यु-आवेदक/पति द्वारा तलाक की याचिका प्रस्तुत करने के पश्चात पत्नी ने

आत्महत्या कर ली-आरोपी/आवेदक के विरुद्ध धारा 304बी, 306 के साथ धारा 498 के अंतर्गत आरोप पत्र दाखिल किया गया-पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व चोट के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था-यह साक्ष्य स्पष्ट नहीं है कि उसने आत्महत्या की या उसकी हत्या की गई-आरोप के स्तर पर, संदेह का लाभ आरोपी को नहीं दिया जा सकता है और ऐसे वाद में धारा 498-ए आईपीसी के साथ धारा 304बी और 302 आईपीसी के तहत वैकल्पिक आरोप तैयार किए जा सकते हैं-जब धारा 302 आईपीसी के तहत आरोप तैयार किया जाता है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि विचारणीय न्यायालय आरोपी को धारा 302 आईपीसी के तहत दोषी ठहराने के लिए दृढ़ संकल्प है-यह केवल अत्यधिक सावधानी के वाद के रूप में और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में दिए गए निर्देशों का सम्मान करने के लिए है, धारा 302 आईपीसी के तहत आरोप केवल वैकल्पिक है-धारा 304बी और 306 आईपीसी दो अलग-अलग धाराएं हैं, जो एक साथ नहीं चल सकतीं- धारा 302 आईपीसी के तहत वैकल्पिक आरोप लगाया जा सकता है, लेकिन धारा 306 आईपीसी के तहत कोई वैकल्पिक आरोप नहीं लगाया जाना चाहिए- इस प्रकार, विचारणीय न्यायालय ने धारा 306 आईपीसी के तहत वैकल्पिक रूप से गलत आरोप लगाया है। (पैरा 1 से 13)

आवेदन आंशिक रूप से स्वीकार किया गया।
(ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. के. प्रेमा एस. राव बनाम यादला श्रीनिवास राव, (2003) एआईआर एससी 11
2. बालूल बनाम राजस्थान राज्य (2003) Cr.L.J. 3286
3. राजबीर बनाम हरियाणा राज्य (2011) एआईआर एससी 568

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।
2. आवेदक ने धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत धारा 498-ए, 504, 304-बी, 306 भा0दं0सं0 और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए वर्तमान प्रार्थना पत्र दायर किया है, जो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेरठ में लम्बित अपराध संख्या 45/2021 थाना दौराला, जिला मेरठ से उत्पन्न है और इस आधार पर लंबित है कि सूचनाकर्ता की बेटी विपक्षी संख्या 2, आवेदक द्वारा तलाक की याचिका दायर किए जाने के बाद आवेदक की पत्नी ने आत्महत्या कर ली। एफआईआर के अनुसार विपक्षी संख्या 2 की पुत्री का विवाह 19.11.2018 को आवेदक के साथ संपन्न हुआ। परिवार के सदस्य दहेज से संतुष्ट नहीं थे और वे मृतक (मोहिनी पर) पर दहेज में कार उपलब्ध कराने का दबाव बना रहे थे, जो पूरा नहीं हो सका, इसलिए उसे 04.06.2020 को उसके ससुराल से निकाल दिया गया और जब उसे तलाक की याचिका के

बारे में पता चला, तो उसने आत्महत्या कर ली। आवेदक के अनुसार, एफआईआर दर्ज करने में देरी के लिए बिना किसी स्पष्टीकरण के एक सप्ताह बीत जाने के बाद एफआईआर दर्ज की गई है, इसके बाद आईओ ने जांच शुरू की और सूचनाकर्ता का बयान दर्ज किया और साइट प्लान तैयार किया। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट के अनुसार, मौत का कारण एंटी-मॉर्टम चोट के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था। एफआईआर में शिकायतकर्ता ने विशेष रूप से कहा है कि उसकी बेटी ने आत्महत्या कर ली है। आईओ ने गवाहों कुशल पाल, सत्या पाल और श्यामवीर के बयान दर्ज किए। अभियोजन पक्ष की कहानी के संस्करण से, केवल धारा 306 भा0दं0सं0 आकर्षित होती है। लेकिन जांच के बाद, आईओ ने धारा 498-ए, 323, 504, 506, 304-बी भा0दं0सं0 और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

3. आईओ ने कई निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों की अनदेखी की है, जिसमें पूरे परिवार के निहितार्थ को मना किया गया था। आईओ ने बेहद लापरवाह तरीके से मामले की जांच की है। धारा 306 और 304-बी भा0दं0सं0 दो अलग-अलग धाराएं हैं, जो एक साथ नहीं चल सकतीं।

4. वर्तमान मामला प्रक्रिया के दुरुपयोग का सबसे अच्छा उदाहरण है। सत्र न्यायालय ने भा0दं0सं0 की धारा 304-बी के साथ-साथ भा0दं0सं0 की धारा 306 के तहत एक वैकल्पिक आरोप तय किया है। एफआईआर के अवलोकन से उपरोक्त धाराओं के तहत कोई

अपराध नहीं बनता है। आवेदक पूरी तरह से निर्दोष है और उसे उपरोक्त मामले में झूठा फंसाया गया है। उसने किसी दहेज की मांग नहीं की और मृतक के खिलाफ कोई क्रूरता या हमला नहीं किया। अभियोजन दुर्भावनापूर्ण इरादों पर आधारित है और कानून की नजर में पोषणीय नहीं है। आवेदक का नैतिक चरित्र अच्छा है और उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, यदि वर्तमान कार्यवाही को रद्द नहीं किया जाता है, तो उसे अपूरणीय क्षति और चोट लगेगी, इसलिए ऊपर उल्लिखित एसटी संख्या 105/2022 की कार्यवाही को अपास्त किया जाए।

5. आवेदक ने प्रार्थना पत्र के साथ सभी संबंधित कागजात संलग्न कर दिए हैं।

6. सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

7. बहस के दौरान, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना पत्र में उल्लिखित सभी पहलुओं और तथ्यों पर बहस नहीं की, लेकिन केवल इस बिंदु पर तर्क दिया है कि यदि धारा 304-बी भा0दं0सं0 के तहत आरोप तय किया जाता है, तो धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत कोई वैकल्पिक आरोप नहीं लगाया जा सकता है।

8. इस न्यायालय का विचार है कि यदि आरोप पत्र भा0दं0सं0 की धारा 304-बी के तहत प्रस्तुत किया गया है, तो धारा 304-बी भा0दं0सं0 के तहत मुख्य प्रभार के साथ धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत एक वैकल्पिक आरोप तैयार किया जाएगा, लेकिन धारा 306

भा0दं0सं0 के तहत कोई वैकल्पिक आरोप नहीं लगाया जाना चाहिए। इसके पीछे कारण यह है कि यदि किसी आपराधिक मामले में भा0दं0सं0 की धारा 304-बी के तहत आरोप तय किया जा रहा है और अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे मामले को साबित करने में सफल हो जाता है, तो आरोपी को धारा 304-बी के तहत दोषी ठहराया जा सकता है और यदि विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यह आत्महत्या करने के लिए उकसाने का मामला है, न्यायालय धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत आरोप के अभाव में भी आरोपी को भा0दं0सं0 की धारा 306 के तहत दंडित कर सकती है क्योंकि धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत सजा धारा 304-बी भा0दं0सं0 के तहत प्रदान की गई सजा से कम है। **के. प्रेमा एस. राव बनाम यदला श्रीनिवास राव, एआईआर 2003 एससी 11** और **बलौल बनाम राजस्थान राज्य (2003) सीआरएलजे 3286** में, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि धारा 498-ए, 304-बी और 120-बी भा0दं0सं0 के तहत आरोपित आरोपी व्यक्तियों को धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत दोषी ठहराया जा सकता है, अगर सबूत साबित होते हैं, भले ही धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत कोई आरोप तय नहीं किया गया हो।

9. सर्वोच्च न्यायालय ने **राजबीर बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2011 एससी 568** में कहा है कि यदि भा0दं0सं0 की धारा 304-बी के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, तो धारा 302 के तहत एक वैकल्पिक आरोप तय किया जाना चाहिए; और यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अभियुक्त

भा0दं0सं0 की धारा 302 के तहत दोषी है, उस मामले में अभियुक्त को भा0दं0सं0 की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया जा सकता है और दंडित किया जा सकता है क्योंकि धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत प्रदान की गई सजा धारा 304-बी भा0दं0सं0 के तहत प्रदान की गई सजा से अधिक गंभीर है। **राजबीर (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय** ने भारत के सभी विचारण न्यायालय को निर्देश दिया है कि वे आमतौर पर भा0दं0सं0 की धारा 304-बी भा0दं0सं0 के आरोप में धारा 302 भा0दं0सं0 को जोड़ें। इस संबंध में सभी उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रार जनरलों को इस निर्णय को भारत के सभी विचारण न्यायालय में परिचालित करने का निर्देश दिया गया है।

10. इस प्रकार इस न्यायालय का विचार है कि भा0दं0सं0 की धारा 302 के तहत एक वैकल्पिक आरोप तय किया जा सकता है, लेकिन धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत कोई वैकल्पिक आरोप नहीं लगाया जाना चाहिए।

11. जहां तक अभियुक्त की निर्दोषता या अपराध का संबंध है, सबसे पहले धारा 304-बी भा0दं0सं0 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया है और आवेदक और मृतक के बीच वैवाहिक संबंध के निर्वाह के दौरान मृतक की अप्राकृतिक मृत्यु हुई है और पत्नी और पति के बीच वैवाहिक विवाद था और आवेदक द्वारा तलाक की याचिका भी दायर की गई थी। यह न्यायालय दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत तथ्य तय करने और साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए सक्षम नहीं है, इसलिए संबंधित सत्र परीक्षण की पूरी

कार्यवाही को रद्द करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है।

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या
35979/2022

12. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विचारण न्यायालय ने गलत तरीके से धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत एक वैकल्पिक आरोप तैयार किया है, इसलिए दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत यह प्रार्थना पत्र आंशिक रूप से स्वीकृत किये जाने योग्य है।

आदेश

13. दिनांक 01.08.2022 को धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत वैकल्पिक आरोप तय करने के संबंध में प्रार्थना पत्र को आंशिक रूप से स्वीकृत किया जाता है और धारा 306 भा0दं0सं0 के तहत तैयार किए गए वैकल्पिक आरोप को अपास्त किया जाता है। विद्वान विचारण न्यायालय को नए सिरे से आरोप तय करने का निर्देश दिया जाता है। नए आरोप तय करने के बजाय दं0प्र0सं0 की धारा 216 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए इस तरह से तय किए गए आरोपों को भी बदला जा सकता है।

इस आदेश की एक प्रति अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को प्रेषित की जाए।

(2023) 4 ILRA 418

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

नदीम सलमानी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री ए.सी. श्रीवास्तव

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 392, और 413/34- गैर-जमानती वारंट को निरस्त करना- आई फोन मोबाइल लूट लिया गया था और आरोपियों के कब्जे से 20 मोबाइल फोन बरामद किए गए थे-वर्तमान वाद में, आवेदक को पूरी जानकारी थी कि वह इस वाद में आरोपी के रूप में वांछित था, न तो उसे विवेचक के समक्ष पूछताछ के लिए उपलब्ध कराया और न ही किसी प्रकार की जमानत याचिका दायर की-विवेचना में सहायता के लिए विवेचक की हिरासत में आरोपित आदेश पारित किया गया था-जांच के दौरान किसी भी आरोपी के विरुद्ध गैर-जमानती आदेश जारी करने पर कोई रोक नहीं है, ताकि आरोपी को उसकी गिरफ्तारी के समय से चौबीस घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के सामने लाया जा सके, गिरफ्तारी के बाद उसे न्यायिक या पुलिस हिरासत में भेजा जा सकता है, जैसा भी वाद हो-इसलिए संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश कानून के अनुसार होने के कारण निरस्त करने योग्य नहीं है। (पैरा 1 से 21)

आवेदन निरस्त। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. एकता उर्फ बुलबुल बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 30391/2016
2. राज्य द्वारा सीबीआई बनाम दाऊद इब्राहिम कास्कर और अन्य। (1997) एआईआर एससी 2494
3. डी.के.बासु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1997) 1 एससीसी 416
4. हरेन्द्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, सीआरएलआर संख्या 3468/2013
5. श्रीमती. प्रगति चौधरी @ प्रगति सिंघल बनाम सेंट। यूपी के और अन्य., आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 2994/2018
6. मनोज @ एसे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सीआरएलआर संख्या 2827/2010

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान वकील श्री ए.सी. श्रीवास्तव, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक आवेदन आवेदक द्वारा विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेरठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.09.2022 केस अपराध संख्या 303/2021 में धारा 392, 413/34 आईपीसी थाना दिल्ली गेट, जिला मेरठ के खिलाफ धारा 482 सीआरपीसी के

तहत दायर किया गया है, जिसके द्वारा मामले के विवेचना अधिकारी के आवेदन पर आरोपी आवेदक के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि रमेश कटियार, निवासी लखनऊ 07.12.2021 को समाजवादी रैली में भाग लेने के लिए मेरठ आए थे और मेरठ में रुके हुए थे। 08.12.2021 को जब वह घंटाघर की ओर जा रहा था और महिला अस्पताल के पास किसी परिचित से बात कर रहा था, तो एक अज्ञात व्यक्ति शाम लगभग 5:00 बजे छत्रीपीर की ओर उसका लाल रंग का एप्पल आई फोन मोबाइल लेकर भाग गया।

4.

5. 08.12.2021 को गांधी पार्क में टाउन हॉल के पास से पांच आरोपी व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया और चार आरोपी व्यक्ति भागने में सफल रहे। उनके कब्जे से कुल 20 मोबाइल बरामद किए गए हैं। पूछने पर उन्होंने बताया कि उनके द्वारा लाल रंग का आई फोन मोबाइल भी लूटा गया है, उन्होंने बताया कि आरोपी इरफान और शरद गोस्वामी भागने में सफल हो गए हैं। उन्होंने यह भी बताया कि उनके गिरोह का सरगना इनाम है और बाँस शरद गोस्वामी है और दो अन्य इरफान और महफूज हैं, जो भागने में सफल

रहे थे, ऐसा प्रतीत होता है कि जांच के दौरान आवेदक का नाम भी सामने आया और आईओ इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मुखबिर नदीम सकुलानी भी गिरोह के सदस्य और आरोपियों में से एक है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब आरोपी को गिरफ्तार नहीं किया जा सका, तो सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रस्तुत 01.09.2022 को आईओ महेंद्र सिंह द्वारा एक आवेदन दायर किया गया था, जिस पर विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेरठ ने कार्यालय से एक रिपोर्ट मांगी, जिसने बताया कि आवेदक आरोपी नदीम सकुलानी ने संबंधित अपराध संख्या 303/2021 अन्तर्गत धारा 392, 413/34 आई.पी.सी. में कोई आवेदन नहीं दिया है। जांच के बाद आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 392/34 के तहत एक आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया था जिसमें संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है।

6.

7. दिनांक 01.09.2022 को आईओ गजेंद्र सिंह, एसआई, थाना देहली गेट, मेरठ द्वारा एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था कि वांछित आरोपी-आवेदक नदीम सलमानी फरार हैं और अपनी पहचान छुपा रहा है और अपनी अचल संपत्ति को वितरित करने की प्रक्रिया में है, इसलिए 02.09.2022 को विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेरठ द्वारा

उसके खिलाफ एक गैर जमानती वारंट जारी किया गया था। आवेदन और आक्षेपित आदेश निम्नानुसार हैं:-

8.

“रिपोर्ट थाना देहलीगेट जनपद मेरठ।

सेवा में,

माननीय न्यायालय श्रीमान

स्पेशल सीजेएम महोदय

जनपद मेरठ।

विषय:- मु०अ०सं० 303/21 धारा 392/413/34 भादवि में प्रकाश में आये वांछित अभियुक्त नदीम सलमानी पुत्र सलीम सलमानी निवासी 242 कुएं वाली गली कोटला थाना देहलीगेट मेरठ के गैर जमानती वारंट जारी करने के सम्बन्ध में।

महोदय,

सादर निवेदन है कि मु०अ०सं० 303/21 धारा 392/413/34 भादवि में प्रकाश में आये वांछित अभियुक्त नदीम सलमानी पुत्र सलीम सलमानी निवासी 242 कुएं वाली गली कोटला थाना देहलीगेट मेरठ के

विरुद्ध गिरफ्तारी के सम्बन्ध में काफी प्रयास किये गये हैं किन्तु अभियुक्त नदीम सलमानी उपरोक्त अपने मसकन से फरार हैं और अपनी पहचान छिपाये हुये हैं तथा चोरी छिपे अपनी अचल सम्पत्ति को खुर्द बुर्द कर फरार होने की फिराक में है। माननीय न्यायालय से अनुरोध है कि अभियुक्त नदीम सलमानी उपरोक्त के विरुद्ध गैर जमानती वारण्ट जारी करने की कृपा करें।

रिपोर्ट सादर सेवा मे प्रेषित है।

(गजेन्द्र सिंह)

उ०नि०

थाना देहलीगेट मेरठ।“

x x x

“न्यायालय विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट,
मेरठ।

मु०अ०सं० 303/2021

धारा 392, 413, 34 भा०द०सं०,

थाना देहली गेट, जिला मेरठ।

02.09.2022-

मु०अ०सं० 303/2021, धारा
392,413,34 भा०द०सं० थाना देहली गेट,
जिला मेरठ के अभियोग में विवेचक

गजेन्द्र सिंह के द्वारा अभियुक्त नदीम सलमानी पुत्र सलीम सलमानी, निवासी 242 कुए वाली गली, कोटला, मेरठ के विरुद्ध गैर जमानती वारण्ट निर्गत किये जाने हेतु प्रस्तुत किया गया है।

विवेचक द्वारा अपने प्रार्थना पत्र में कहा गया है कि अभियुक्त की गिरफ्तारी हेतु कई बार दबिश दी गयी, परन्तु वे फरार चल रहे हैं।

अभियोजन प्रपत्रों का अवलोकन किया। विवेचक के अनुसार अभियुक्त की गिरफ्तारी हेतु कई बार दबिश दी गयी, परन्तु वह फरार चल रहा है।

कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार अभियुक्त उपरोक्त की ओर से कोई आत्म समर्पण प्रार्थना पत्र न्यायालय में लम्बित नहीं है और न ही माननीय उच्च न्यायालय का कोई स्थगन आदेश प्राप्त है। चूंकि अभियुक्त उपरोक्त मामले में वांछित है और उसके निकट भविष्य में न्यायालय में उपस्थित होने की सम्भावना नहीं है। अतः विवेचक की तरफ से प्रस्तुत प्रार्थना पत्र स्वीकार किये जाने योग्य है।

आदेश

विवेचक की तरफ से प्रस्तुत प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है। अभियुक्त नदीम सलमानी पुत्र सलीम सलमानी, निवासी 242 कुए वाली गली, कोटला, मेरठ के

विरुद्ध गैर जमानती वारन्ट दिनांक 03.10.2022 के लिए जारी हो विशेष मुख्य न्यायिक मजि० मेरठ।"

6 . आरोपी आवेदक- नदीम सलमानी ने निम्नलिखित मामलों में न्यायिक फैसलों के आधार पर आदेश को चुनौती दी है एकता @बुलबुल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य, आवेदन संख्या 482 संख्या 30931 वर्ष 2016 दिनांक 17.11.2016 को सुनाया गया, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3468 वर्ष 2013 दिनांक 12.12.2013 में पारित आदेश, इस न्यायालय के न्यायालय संख्या 22 द्वारा पारित, आवेदन यू/एस 482 नंबर 29924 वर्ष 2018 दिनांक 29.08.2018 न्यायालय सं. 53 द्वारा पारित, आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2827 वर्ष 2010 दिनांक 27.07.2010 न्यायालय सं. 50 द्वारा पारित (मनोज @ एसे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) और राज्य द्वारा सीबीआई बनाम दाऊद इब्राहिम कासकर और अन्य 1997 (4) सुप्रीम 490 और तर्क दिया कि उपरोक्त घोषणाओं के आधार पर विवेचना के दौरान विवेचना अधिकारी को सहायता देने के लिए मजिस्ट्रेट की अदालत आरोपी आवेदक के खिलाफ एन.बी.डब्ल्यू जारी नहीं कर सकती है।

7. ए.जी.ए. ने आवेदन का विरोध किया, लेकिन वह जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए तैयार नहीं हैं क्योंकि

आवेदक द्वारा सभी सामग्री पहले ही पेश की जा चुकी है, इसलिए पक्षों के वकील को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

8. धारा 73 सीआरपीसी के अनुसार एक मजिस्ट्रेट को किसी भी फरार दोषी, घोषित अपराधी या किसी भी व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी करने का अधिकार है जो गैर-जमानती अपराध का आरोपी है और गिरफ्तारी से बच रहा है। इस तरह का वारंट किसी भी व्यक्ति को धारा 73 (3) के तहत निष्पादित करने के लिए दिया जा सकता है, यह भी उल्लेख किया गया है कि जब वांछित अभियुक्त को गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे वारंट के साथ निकटतम पुलिस अधिकारी को सौंप दिया जाएगा, जो उसे मामले में अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाएगा, जब तक कि धारा 71 के तहत प्रतिभूति नहीं ली जाती है।

9. आवेदक ने आरोपी व्यक्तियों इनाम, अनस, अरशद गद्दी, नाजिम शेख और मेहताब के खिलाफ प्रस्तुत आरोप-पत्र की एक प्रति दायर की है। महफूज, इरफान और शरद गोस्वामी को भगोड़ा दिखाया गया है।

10. आवेदक के विद्वान वकील ने राज्य द्वारा सी.बी.आई. बनाम दाऊद इब्राहिम

कासकर और अन्य ए.आई.आर. 1997 एससी 2494, के निर्णय पर भरोसा किया जिसमें सीआरपीसी की धारा 73 के दायरे पर चर्चा की गई है। उद्धृत मामले में आरोपी आईपीसी और टाडा अधिनियम, 1987, शस्त्र अधिनियम 1959, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 और अन्य अधिनियमों के तहत दंडनीय विभिन्न अपराधों के लिए वांछित था। इस मामले को बीबीसी नंबर 1/93 (बम-ब्लास्ट केस) के नाम से जाना जाता है। आवेदक के विद्वान वकील पूरी तरह से इस मामले पर भरोसा कर रहे हैं, इसलिए इस फैसले के प्रासंगिक पैरा को उद्धृत करना उचित होगा, जो निम्नानुसार हैं: -

"6. आक्षेपित आदेश से हम पाते हैं कि नामित न्यायालय के समक्ष सीबीआई की ओर से यह प्रस्तुत किया गया था कि चूंकि वह उन अपराधों की आगे की जांच कर रही थी, जिनके संबंध में पहले आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और चूंकि प्रतिवादियों, जो फरार थे, की उपस्थिति अपराध को अंजाम देने में उनकी भूमिकाओं का पता लगाने के लिए बिल्कुल आवश्यक थी। आवेदन दायर करना आवश्यक महसूस किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया था कि वारंट और/या उद्घोषणाएं जारी होने के बाद ही, यह (सीबीआई) उन्हें आगे की जांच के उद्देश्य से जांच एजेंसी के समक्ष पेश होने के लिए मजबूर करने के लिए आगे के दंडात्मक उपाय करने में सक्षम होगी। सीबीआई के अनुसार, संहिता की धारा 78 और टाडा

की धारा (3) (ए) के तहत नामित अदालत को गिरफ्तारी और उद्घोषणा के वारंट जारी करने का पूरा अधिकार था। उपरोक्त तर्क को खारिज करते हुए, नामित न्यायालय ने कहा कि अपराध के संबंध में संज्ञान लेने के बाद, आरोपी व्यक्तियों को केवल मुकदमे का सामना करने के लिए मजबूर करने के लिए प्रक्रिया जारी की जा सकती है, लेकिन संहिता की धारा 73 के तहत विवेचना की सहायता के लिए अदालत द्वारा ऐसी कोई प्रक्रिया जारी नहीं की जा सकती है। नामित न्यायालय के अनुसार, हालांकि संहिता के तहत आगे की जांच पर रोक नहीं लगाई गई थी, लेकिन इसमें कोई प्रावधान नहीं था जो जांच एजेंसी को इसके लिए अदालत से सहायता लेने और प्राप्त करने का अधिकार देता था। चूंकि उपरोक्त निष्कर्षों को नामित न्यायालय द्वारा पूरी तरह से मोहम्मद यासीन मंसूरी बनाम महाराष्ट्र राज्य (1994) सी.आर.एल.जे. 1854 में बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए दर्ज किया गया था। कुछ विवरणों में उसी को संदर्भित करना आवश्यक होगा। उस मामले में हत्या और अन्य संबंधित अपराधों की जांच शुरू में भायखला पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा और उसके बाद सीआईडी के पुलिस उपायुक्त (डीसीपी) द्वारा की गई थी। जांच के दौरान डीसीपी के अनुरोध पर नामित अदालत ने उन अपराधों में शामिल कुछ आरोपियों की गिरफ्तारी के

लिए गैर-जमानती वारंट जारी किए। इसके बाद कई आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया, जिनमें से कुछ अदालत के समक्ष थे और मंसूरी (उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता) सहित कुछ अन्य को फरार दिखाया गया था। जिस दिन आरोप-पत्र दायर किया गया था, उसी दिन नामित न्यायालय ने उसमें उल्लिखित अपराधों का संज्ञान लिया था। कुछ महीने बाद मंसूरी को सीबीआई, दिल्ली ने किसी अन्य अपराध के सिलसिले में गिरफ्तार कर लिया। यह सूचना मिलने पर डीसीपी ने मंसूरी की गिरफ्तारी और उसे पेश करने के वारंट के लिए नामित अदालत के समक्ष एक आवेदन दायर किया। प्रार्थना की अनुमति दी गई और नियत समय में मंसूरी को बॉम्बे लाया गया और डीसीपी को सौंप दिया गया। पर अगले दिन मंसूरी को नामित अदालत के समक्ष पेश किया गया; और इस तरह की पेशी पर अभियोजन पक्ष ने मंसूरी को पुलिस हिरासत में भेजने का अनुरोध किया। अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया और नामित अदालत ने उसे पुलिस हिरासत में भेज दिया, लेकिन मंसूरी को उच्च अदालत में चुनौती देने के लिए कुछ दिनों के लिए आदेश को स्थगित कर दिया। नामित न्यायालय के उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए, मंसूरी ने बॉम्बे उच्च न्यायालय का रुख किया। मंसूरी की ओर से उच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रस्तुत किया गया था कि एक बार जब किसी अपराध की जांच

पूरी हो जाती है और आरोप पत्र दायर किया जाता है, तो संहिता की धारा 309 के प्रावधान लागू हो जाते हैं और उक्त धारा की उप-धारा (2) ने अदालत के लिए कोई विवेकाधिकार नहीं छोड़ा। तब अदालत के पास एकमात्र रास्ता खुला था कि आरोपी को न्यायिक हिरासत में भेज दिया जाए। यह आगे प्रस्तुत किया गया था कि जबकि धारा 167 अदालत को न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में आरोपी की हिरासत को अधिकृत करने का अधिकार प्रदान करती है, इस तरह का विवेक संहिता की धारा 309 में पूरी तरह से अनुपस्थित था। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया गया था कि मंसूरी को पुलिस हिरासत में देने के लिए नामित न्यायालय द्वारा पारित आदेश अधिकार क्षेत्र से परे था और रद्द करने योग्य था। उपरोक्त तर्क को स्वीकार करने और आक्षेपित आदेश को रद्द करने में उच्च न्यायालय ने सबसे पहले कहा:

"इसलिए, यह माना जाएगा कि याचिकाकर्ता को पेश करने के लिए नामित अदालत द्वारा जारी किए गए वारंट विवेचना में सहायता नहीं कर सकते थे, बल्कि केवल दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 के तहत जारी प्रक्रिया के माध्यम से हो सकते थे। किसी अपराध का संज्ञान लेने के बाद वारंट जारी करना संहिता की धारा 204 (1) (बी) के तहत विचार की जाने वाली प्रक्रिया होगी, यानी यह मुकदमे का सामना करने की प्रक्रिया

होगी। सचमुच। हमें विवेचना के उद्देश्य से या सहायता के लिए आरोपी की गिरफ्तारी और हिरासत के वारंट जारी करने के लिए संहिता में कोई प्रावधान नहीं मिलता है। जिस प्रक्रिया पर विचार किया गया है, वह मुकदमे का सामना करने की एक प्रक्रिया है।

(जोर दिया गया)

8. अध्याय XII के उपबंधों और संहिता की धारा 309(2) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए हम यह कहने के लिए विवश हैं कि उपर्युक्त टिप्पणियां बहुत व्यापक रूप से की गई हैं। अध्याय 12 पुलिस को दी गई सूचना और विवेचना करने की उनकी शक्तियों से संबंधित है। इसकी धारा 154 के तहत जब भी किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को संज्ञेय अपराध होने से संबंधित सूचना प्राप्त होती है तो उसे लिखित रूप में इसे निर्धारित पुस्तक में उसके सार को दर्ज करना होता है। धारा 156 एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना संज्ञेय अपराधों की विवेचना करने की शक्ति प्रदान करती है और धारा 157 ऐसी विवेचना के लिए प्रक्रिया निर्धारित करती है। असंज्ञेय अपराध होने के संबंध में दी गई सूचना के संबंध में, प्रभारी अधिकारी को धारा 155(1) के तहत इस प्रकार निर्धारित पुस्तक में उसके सार को दर्ज करना आवश्यक है, लेकिन उसके पास सक्षम मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना

इसकी विवेचना करने की कोई शक्ति नहीं है। इस तरह के आदेश से लैस प्रभारी अधिकारी हालांकि संज्ञेय अपराध के संबंध में विवेचना की सभी शक्तियों का उपयोग कर सकता है, सिवाय इसके कि उसे विवेचना के दौरान गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है, और मजिस्ट्रेट द्वारा उसके समक्ष पेश किए जाने पर, संहिता की धारा 167 में प्रावधान किया गया है। उक्त धारा में विचार किया गया है कि जब धारा 57 द्वारा निर्धारित 24 घंटों के भीतर विवेचना पूरी नहीं की जा सकती है और यह मानने के आधार हैं कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के खिलाफ लगाए गए आरोप अच्छी तरह से स्थापित हैं, तो विवेचना अधिकारी के लिए आरोपी को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करना अनिवार्य है। इस तरह की पेशी पर मजिस्ट्रेट शुरू में आरोपी को पुलिस हिरासत में या न्यायिक हिरासत में 15 दिनों से अधिक की अवधि के लिए हिरासत में रखने के लिए अधिकृत कर सकता है। 15 दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति पर मजिस्ट्रेट पुलिस हिरासत के अलावा उसकी आगे की हिरासत को भी अधिकृत कर सकता है यदि वह संतुष्ट है कि इस तरह की हिरासत के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं। तथापि, उक्त धारा में उल्लिखित अपराधों की प्रकृति के आधार पर विवेचना के दौरान हिरासत की कुल अवधि 90 दिनों या 60 दिनों से अधिक नहीं हो सकती है। धारा 173 की उपधारा (1) के तहत प्रभारी अधिकारी

को अनावश्यक देरी के बिना विवेचना पूरी करनी होती है और जैसे ही यह पूरी हो जाती है, सक्षम मजिस्ट्रेट को इसकी उप-धारा (2) के तहत, पार्टियों के नाम, सूचना की प्रकृति और मामले की परिस्थितियों से परिचित प्रतीत होने वाले व्यक्तियों के नाम निर्धारित रूप में एक रिपोर्ट अग्रेषित करनी होती है। उप-धारा (8) प्रभारी अधिकारी को आगे की विवेचना करने का अधिकार देती है और यह निम्नानुसार है:

"इस धारा में कुछ भी ऐसा नहीं माना जाएगा जो उप-धारा (2) के तहत एक रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को भेजे जाने के बाद किसी अपराध के संबंध में आगे की विवेचना को रोकता है और, जहां ऐसी विवेचना पर, पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी आगे के सबूत, मौखिक या दस्तावेजी प्राप्त करता है, वह मजिस्ट्रेट को निर्धारित रूप में ऐसे साक्ष्य के बारे में रिपोर्ट की एक और रिपोर्ट भेजेगा, और उपधारा (2) से (6) के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसी रिपोर्ट या रिपोर्ट के संबंध में लागू होंगे जैसा कि वे उप-धारा (2) के तहत अग्रेषित रिपोर्ट के संबंध में लागू होते हैं।

10. हालांकि पुरानी संहिता के तहत कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं था - जैसे संहिता की धारा 173 की उप-धारा (8) जो पुलिस को वैधानिक रूप से उस अपराध की आगे विवेचना करने का अधिकार देती है, जिसके संबंध में पहले ही आरोप पत्र दायर किया जा चुका है और धारा

190 (1) (बी) के तहत संज्ञान लिया गया है, इस तरह की शक्ति को इस न्यायालय द्वारा राम लाल नारंग बनाम राज्य [एआईआर 1979 एससी 1791] में मान्यता दी गई थी। आगे की जांच करने के लिए पुलिस पर प्रबल होने वाली स्थिति और ऐसी जांच की पूरक रिपोर्ट प्राप्त होने पर न्यायालय को जिस प्रक्रिया का पालन करना पड़ सकता है, उसका उदाहरण देते हुए, इस न्यायालय ने कहा:

पीठ ने कहा, 'ऐसे मामले की कल्पना करना आसान है जहां नई सामग्री सामने आ सकती है जो उन लोगों को फंसा देगी जो पहले आरोपी नहीं थे या पहले से ही आरोपी व्यक्तियों को दोषमुक्त कर देंगे. जब जांच एजेंसी के ध्यान में यह बात आती है कि किसी अपराध के लिए पहले से आरोपी व्यक्ति के पास अच्छा बहाना है, तो क्या यह उस एजेंसी का कर्तव्य नहीं है कि वह आलिबी की याचिका की वास्तविकता की जांच करे और मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करे? आखिरकार, जांच एजेंसी के पास एक निजी व्यक्ति की तुलना में अधिक संसाधन हैं। इसी तरह, जहां उन व्यक्तियों की संलिप्तता जांच एजेंसी के संज्ञान में आती है जो पहले से आरोपी नहीं हैं, जांच एजेंसी चुप नहीं रह सकती है और ताजा जानकारी की विवेचना करने से इनकार नहीं कर सकती है। यह उनका कर्तव्य है कि वे विवेचना करें और अन्य व्यक्तियों की संलिप्तता पर मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करें। किसी भी मामले में, यह मजिस्ट्रेट पर

निर्भर करता है कि वह अपने भविष्य की कार्रवाई के बारे में निर्णय ले, जो इस बात पर निर्भर करता है कि मामला उसके सामने किस चरण में है। यदि उसने पहले ही अपराध का संज्ञान ले लिया है, लेकिन मुकदमे की जांच के साथ आगे नहीं बढ़ने की जांच को आगे नहीं बढ़ाया है, तो वह मुकदमे की एक ही जांच में सभी अभियुक्तों के साथ नए सिरे से शामिल होने और निपटने के लिए प्रक्रिया के मुद्दे को निर्देशित कर सकता है। यदि वह मामला जिसके बारे में वह पहले ही कुछ हद तक आगे बढ़ चुका है, तो वह नए शामिल आरोपी के खिलाफ प्रकट अपराध का नए सिरे से संज्ञान ले सकता है और मामले को एक अलग मामले के रूप में आगे बढ़ा सकता है। ऐसी स्थितियों में दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुसार मजिस्ट्रेट को क्या कार्रवाई करनी है, यह मामला मजिस्ट्रेट के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।

12. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उपरोक्त उपधारा के पहले परंतुक में संदर्भित रिमांड और हिरासत धारा 167 के तहत निरोध में हिरासत से अलग हैं। जबकि पूर्व के तहत रिमांड संज्ञान के बाद एक चरण से संबंधित है और केवल न्यायिक हिरासत से संबंधित हो सकती है, बाद में हिरासत जांच के चरण से संबंधित है और शुरू में पुलिस हिरासत या न्यायिक हिरासत में हो सकती है। चूंकि, हालांकि, किसी अपराध का संज्ञान लिए जाने के बाद भी पुलिस के पास आगे की विवेचना करने

की शक्ति है, जिसका उपयोग केवल अध्याय XII के अनुसार किया जा सकता है, इसलिए हमें कोई कारण नहीं दिखता है कि धारा 167 के प्रावधान उस व्यक्ति पर लागू नहीं होंगे जो बाद में ऐसी विवेचना के दौरान पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जाता है। यदि धारा 309 (2) की व्याख्या की जानी है - जैसा कि मंसूरी (सुप्रा) में बॉम्बे हाईकोर्ट द्वारा व्याख्या की गई है - इसका मतलब है कि अदालत द्वारा किसी अपराध का संज्ञान लेने के बाद वह संहिता की धारा 167 के तहत पुलिस निरोध में हिरासत की अपनी शक्ति का उपयोग नहीं कर सकती है, तो जांच एजेंसी आगे की विवेचना के दौरान गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से पूछताछ करने के अवसर से वंचित हो जाएगी। यहां तक कि अगर वह पर्याप्त सामग्री पेश कर भी सकती है, तो अदालत को आश्वस्त कर सकती है कि उसकी (पुलिस) हिरासत में उसकी हिरासत उस उद्देश्य के लिए आवश्यक थी। इसलिए हमारी राय है कि धारा 309 (2) में दिखाई देने वाले "आरोपी यदि हिरासत में हैं" शब्द एक अभियुक्त को संदर्भित करते हैं और उससे संबंधित हैं जो संज्ञान लिए जाने के समय अदालत के समक्ष था या जब उसके संबंध में पूछताछ या परीक्षण किया जा रहा था, न कि एक आरोपी के लिए जिसे बाद में आगे की विवेचना के दौरान गिरफ्तार किया गया है। जहां तक पहली श्रेणी के आरोपी का संबंध है, उसे केवल धारा 309 (2) के मद्देनजर न्यायिक हिरासत में भेजा जा सकता है, लेकिन वह जो दूसरी श्रेणी में आता है, वह धारा 167 द्वारा शासित होगा

जब तक कि आगे की विवेचना जारी रहती है। इसका मतलब यह है कि उत्तरार्द्ध के संबंध में जिस न्यायालय ने अपराध का संज्ञान लिया था, वह आवश्यकताओं की पूर्ति और धारा 167 की सीमा के अधीन उसे पुलिस निरोध में हिरासत में रखने की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

13. अब जिस विवादास्पद प्रश्न का उत्तर दिए जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या कोई अदालत जांच एजेंसी की सहायता से पुलिस के समक्ष पेश करने के लिए विवेचना के दौरान किसी व्यक्ति को पकड़ने के लिए वारंट जारी कर सकती है। जबकि सीबीआई की ओर से पेश हुए अटॉर्नी जनरल श्री अशोक देसाई ने प्रस्तुत किया कि संहिता की धारा 73 के साथ मिलकर अदालत को ऐसी शक्ति प्रदान की गई है, श्री कपिल सिब्बल, जो एमिकस क्यूरी के रूप में पेश हुए (प्रतिवादी समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन के बावजूद उपस्थित नहीं हुए) ने प्रस्तुत किया कि अदालत के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है। अपने संबंधित रुख के लिए विद्वान वकील के तर्क के कदमों की सराहना करने के लिए प्रक्रियाओं को जारी करने से संबंधित संहिता और टाडा के प्रासंगिक प्रावधान का उल्लेख करना आवश्यक होगा।

14. संहिता के अध्याय VI जिसे 'उपस्थिति के लिए मजबूर करने की

प्रक्रिया' के रूप में शीर्षक दिया गया है, में चार भाग शामिल हैं: भाग ए समन से संबंधित है; गिरफ्तारी वारंट के लिए भाग बी; भाग सी उद्घोषणा और अनुलग्नक के लिए और भाग डी प्रक्रियाओं के बारे में अन्य नियमों के लिए। भाग बी, जिसके साथ हम इन अपीलों में मुख्य रूप से संबंधित हैं, के दायरे में धारा 70 से 81 है। धारा 70 उस रूप के बारे में बात करती है जिसमें किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए वारंट अदालत द्वारा जारी किया जाना है और इसकी अवधि वैधता है। धारा 71 वारंट जारी करने वाले न्यायालय को वारंट निष्पादित करने वाले अधिकारी को निर्देश देने का अधिकार देती है कि वह उस व्यक्ति को उसमें दिए गए नियमों और शर्तों पर रिहा करे। धारा 72 में प्रावधान है कि वारंट आमतौर पर एक या एक से अधिक पुलिस अधिकारियों को निर्देशित किया जाएगा, लेकिन यदि इसका तत्काल निष्पादन आवश्यक है और कोई पुलिस अधिकारी तत्काल उपलब्ध नहीं है, तो इसे निष्पादन के लिए किसी अन्य व्यक्ति को निर्देशित किया जा सकता है। धारा 73 जिसे इन अपीलों में व्याख्या किया जाना आवश्यक है, निम्नानुसार पढ़ें:

"73 (1) प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट का मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अपने स्थानीय अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी व्यक्ति को किसी भी फरार दोषी, घोषित अपराधी या किसी भी ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए वारंट

जारी कर सकता है जो गैर-जमानती अपराध का आरोपी है और गिरफ्तारी से बच रहा है।

(2) ऐसा व्यक्ति वारंट की प्राप्ति को लिखित रूप में स्वीकार करेगा, और इसे निष्पादित करेगा यदि वह व्यक्ति जिसकी गिरफ्तारी के लिए यह जारी किया गया था, उसके प्रभार के अधीन किसी भूमि या अन्य संपत्ति में है, या उस पर प्रवेश कर रहा है।“

XXX

20. इस स्तर पर यह उल्लेख करना उचित है कि पुरानी संहिता के तहत संबंधित प्रावधान धारा 78 था; और इसके संशोधन की सिफारिश करते समय विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ कहा है:

“धारा 78 वर्तमान में जिला मजिस्ट्रेट या उप-विभागीय मजिस्ट्रेट को एक विशेष प्रकार का वारंट जारी करने की शक्ति प्रदान करती है, जो एक फरार दोषी, घोषित अपराधी या व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए उप-मंडल के जिले के भीतर भूमि के धारक, किसान या प्रबंधक को वारंट जारी करता है, जिसे गैर-जमानती अपराध का आरोपी बनाया गया है और जो पीछा करने से बच गया है। यद्यपि इस शक्ति का प्रयोग बार-बार किया जाता है, लेकिन प्रथम श्रेणी के सभी मजिस्ट्रेटों और सभी को यह प्रदान करने में कोई आपत्ति नहीं है।

(जोर दिया गया)

21. विधि आयोग की उपर्युक्त टिप्पणियों के अलावा, धारा (पहले उद्धृत) के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि यह उसमें उल्लिखित मजिस्ट्रेटों के वर्ग को तीन वर्गों के व्यक्तियों की गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है, अर्थात्, i) फरार दोषी, ii) एक घोषित अपराधी और iii) एक व्यक्ति जो गैर-जमानती अपराध का आरोपी है और गिरफ्तारी से बच रहा है। यदि श्री सिब्बल का यह तर्क कि संहिता की धारा 204 वारंट जारी करने की मजिस्ट्रेट की शक्ति का एकमात्र भंडार है और धारा 73 सहित अध्याय VI के भाग 'बी' की विभिन्न धाराएं केवल ऐसे वारंट के निष्पादन के तरीके और तरीके को निर्धारित करती हैं, तो धारा 73 के तहत संदर्भित मजिस्ट्रेट को फरार अपराधी की गिरफ्तारी के लिए गिरफ्तारी वारंट जारी करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है और न ही होगा। क्योंकि ऐसा व्यक्ति धारा 204 के दायरे में नहीं आ सकता है क्योंकि यह कार्यवाही शुरू करने से संबंधित है, न कि किसी व्यक्ति को उसके निष्कर्ष पर दोषी ठहराए जाने के बाद के चरण से।

23. एक अन्य कारक जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि संहिता की धारा 73 मजिस्ट्रेट को गिरफ्तारी वारंट जारी करने की शक्ति देती है और वह भी विवेचना के दौरान, संहिता के अध्याय VI के भाग 'सी' के प्रावधानों से स्पष्ट है, जिसे हमने पहले विज्ञापन दिया है। कहने की जरूरत नहीं है कि उद्घोषणा और कुर्की के प्रावधान, जैसा

कि उसमें परिकल्पित है, एक ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति को मजबूर करना है जो गिरफ्तारी से बच रहा है। अब, धारा 82 (पहले उद्धृत) के तहत उद्घोषणा जारी करने की शक्ति का उपयोग केवल एक अदालत द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में किया जा सकता है जिसके खिलाफ उसके द्वारा वारंट जारी किया गया है। दूसरे शब्दों में, जब तक कि न्यायालय वारंट जारी नहीं करता है, तब तक धारा 82 के प्रावधान, और उस भाग में अनुसरण करने वाली अन्य धाराएं, ऐसी स्थिति में लागू नहीं की जा सकती हैं जहां इसके सर्वोत्तम प्रभावों के बावजूद पुलिस धारा 41 के तहत किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं कर सकती है। नतीजतन, यदि उसे ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए कठोर उपाय करना है, तो उसे धारा 73 के तहत गिरफ्तारी वारंट जारी करने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाना होगा; और यदि आवश्यक हो तो अध्याय VI के भाग 'C' के प्रावधानों को लागू किया जाए। (धारा 8 (3) यदि व्यक्ति टाडा के तहत अपराध का आरोपी है)।

11. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से, यह बहुत स्पष्ट है कि संहिता की धारा 73 के तहत, मजिस्ट्रेट को विवेचना के दौरान भी गिरफ्तारी वारंट जारी करने का अधिकार है, यदि ऐसी शक्ति वापस ले ली जाती है, तो धारा 82 और 83 सीआरपीसी के तहत प्रक्रिया जो अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है, निरर्थक होगी और इसका कोई उपयोग नहीं होगा। उद्धृत

मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि विवेचना के दौरान भी मजिस्ट्रेट द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किया जा सकता है। न्यायालय द्वारा विवेचना के दौरान गैर-जमानती वारंट जारी करना निषिद्ध नहीं है।

12. डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1997 (1) एससीसी 416 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा शर्तें और दिशा-निर्देश निर्धारित किए गए हैं कि जब किसी अभियुक्त को गिरफ्तार किया जाता है तो उसे 24 घंटे के भीतर न्यायालय में पेश किया जाएगा और उसके बाद संबंधित मजिस्ट्रेट आईओ के आवेदन पर उसे या तो न्यायिक हिरासत में या पुलिस हिरासत में पंद्रह दिनों से अधिक की अवधि के लिए भेज सकता है।

13. इस मामले में आईओ द्वारा प्रस्तुत आवेदन को स्वीकार कर लिया गया था और संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा 03.10.2022 को आरोपी को अदालत में पेश करने के लिए एन.बी.डब्ल्यू जारी किया गया था। आम तौर पर संज्ञेय और गैर-जमानती मामलों में एहतियाती उपाय के रूप में, आईओ अभियुक्तों के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए आवेदन करता है और जब उन्हें गिरफ्तार किया जाता है, तो उन्हें आम तौर पर सीआरपीसी की धारा 57 और भारत के संविधान के अनुच्छेद 22 (2) के जनादेश के अनुसार संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष चौबीस घंटे के भीतर पेश किया जाता है। यहां तक कि अगर अदालत के घंटे

समाप्त हो जाते हैं, तो उन्हें संबंधित मजिस्ट्रेट के सामने उनके घरों पर या रिमांड मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाता है।

14. आईओ द्वारा दायर आवेदन और आक्षेपित आदेश के अवलोकन से, यह पता चलता है कि आवेदक संबंधित मामले में आरोपी के रूप में वांछित है और आईओ ने कई बार उसके आवास पर छापा मारा लेकिन वह फरार पाया गया। विद्वान विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने इस तथ्य का भी उल्लेख किया है कि चूंकि आरोपी संबंधित मामले में वांछित है और अदालत में उसकी उपस्थिति की कोई संभावना नहीं है, इसलिए उन्होंने आवेदन को स्वीकार कर लिया और 03.10.2022 को उसकी पेशी के लिए गैर-जमानती वारंट जारी किया। आक्षेपित आदेश से यह बहुत स्पष्ट है कि अदालत में आरोपी को पेश करने के लिए गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था। उच्चतम न्यायालय पहले ही उल्लेख कर चुका है कि विवेचना के दौरान गैर-जमानती वारंट जारी करने पर कोई रोक नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उद्घोषणा और कुर्की के प्रावधान गिरफ्तारी से बच रहे व्यक्ति को पेश होने के लिए मजबूर करने के लिए हैं। धारा 82 और 83 के तहत उद्घोषणा और कुर्की जारी करने की शक्ति का उपयोग केवल एक अदालत द्वारा उस व्यक्ति के संबंध में किया जा सकता है

जिसके खिलाफ उसके द्वारा वारंट जारी किया गया है। इसलिए, आईओ को धारा 73 के तहत गिरफ्तारी का वारंट जारी करने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाना पड़ता है।

15. पैरा 20 में, शीर्ष न्यायालय ने फिर से राय दी है कि संहिता की धारा 73 सामान्य दायित्व है और विवेचना के दौरान एक अदालत अन्य बातों के साथ-साथ एक ऐसे व्यक्ति को पेश करने के लिए शक्ति का प्रयोग करते हुए वारंट जारी कर सकती है, जो गैर-जमानती अपराध का आरोपी है और गिरफ्तारी से बच रहा है। उच्चतम न्यायालय ने केवल यह शर्त लगाई है कि विवेचना में सहायता के लिए आरोपी को अदालत में पेश करने के लिए ऐसा वारंट जारी नहीं किया जा सकता है।

16. शीर्ष अदालत ने यह स्पष्ट कर दिया है कि आईओ या पुलिस के आवेदन पर आरोपी के खिलाफ गैर जमानती वारंट भी जारी किया जा सकता है, लेकिन अगर उसे गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष लाया जाएगा और केस डायरी का अवलोकन करने के बाद, यदि उसे आरोपी को रिमांड पर लेने के लिए पर्याप्त सामग्री मिलती है तो वह आईओ के आवेदन पर आरोपी को न्यायिक हिरासत में या पुलिस हिरासत में भेज देगा।

17. आवेदक के विद्वान वकील श्री ए.सी.श्रीवास्तव ने इस न्यायालय के कई आदेश दायर किए हैं, जिसमें मेरठ, गाजियाबाद और गौतम बुद्ध नगर जिलों से संबंधित मामलों पर न्यायालय से रोक लगा दी गई है, जो निम्नानुसार हैं: -

(ए) आवेदन यू/एस 482 संख्या 30931 वर्ष 2016 - **एकता @ बुलबुल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।** इस न्यायालय की अदालत संख्या 24, 17.11.2016 को आईपीसी की धारा 302, 201, पुलिस स्टेशन पल्लवपुरम, जिला मेरठ के तहत एक मामले में आरोपी के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई नहीं करने का आदेश पारित किया है।

(बी) आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3468 वर्ष 2013 में **हरेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।** इस न्यायालय के न्यायालय संख्या 22 ने दिनांक 12.12.2013 को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 और 120-बी के तहत एक मामले में राहत प्रदान की कि सूचीबद्ध करने की अगली तारीख तक पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाया जाएगा।

(सी) आवेदन यू/एस 482 संख्या 2994 वर्ष 2018 में - **श्रीमती प्रगति चौधरी @ प्रगति सिंघल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य,** इस न्यायालय के न्यायालय संख्या 52 ने 29.08.2018 को

राहत दी कि अगली लिस्टिंग की तारीख तक, केस क्राइम नंबर 1439 वर्ष 2014 अन्तर्गत धारा 468 आईपीसी पुलिस स्टेशन कवि नगर जिला-गाजियाबाद में सीजेएम गाजियाबाद द्वारा पारित गैर-जमानती वारंट जारी करने वाले आदेश के संचालन पर रोक रहेगी।

(डी) आपराधिक पुनरीक्षण सं. 2827 वर्ष 2010 - **मनोज @ एसे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,** जिसमें इस न्यायालय के न्यायालय संख्या 50 ने दिनांक 27.07.2010 को सीआरपीसी की धारा 73 के तहत पारित आदेश के अनुसरण में केस अपराध संख्या 211 वर्ष 2010 में पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ दंडात्मक कदम नहीं उठाने का आदेश पारित किया है, लेकिन यह भी कहा है कि हालांकि जांच जारी रहेगी।

(ई) आवेदन यू/एस 482 संख्या 36036 वर्ष 2022- वर्तमान आरोपी **(नदीम सलमानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** कोर्ट नंबर 64 ने दिनांक 02.09.2022 के एन.बी.डब्ल्यू आदेश को रद्द कर दिया है, लेकिन निर्देश दिया है कि आवेदक वर्तमान आवेदन में बताए गए पते पर उपलब्ध रहेगा और लंबित कार्यवाही में आईओ को सहयोग प्रदान किया जाएगा और सहयोग करने में विफलता की स्थिति

में, उसके खिलाफ कानून के अनुसार कार्रवाई की जा सकती है।

18. इस न्यायालय की कुछ अलग राय है क्योंकि विवेचना के दौरान किसी भी आरोपी के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी करने पर कोई रोक नहीं है, यदि ऐसा गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है, आरोपी को उसकी गिरफ्तारी के समय से 24 घंटे के भीतर संबंधित मजिस्ट्रेट / न्यायाधीश के समक्ष लाने के लिए। गिरफ्तारी के बाद उसे न्यायिक या पुलिस हिरासत में भेजा जा सकता है, जैसा भी मामला हो या उसे जमानत पर छोड़ा जा सकता है और आईओ को अदालत से जेल का दौरा करने वाली अपने साक्ष्य की रिकॉर्डिंग के संबंध में अनुमति प्राप्त करने की स्वतंत्रता है या यदि उसने किसी भी आपत्तिजनक सामग्री की बरामदगी के बारे में कोई खुलासा बयान दिया है। आईओ के आवेदन पर आरोपी को विवेचना के उद्देश्य से सीमित अवधि के लिए पुलिस हिरासत में भेजा जा सकता है।

19. उल्लेखनीय है कि इस मामले में आवेदक को पूरी जानकारी थी कि वह इस मामले में आरोपी के रूप में वांछित है, उसने न तो उसे आईओ को पूछताछ के लिए उपलब्ध कराया और न ही किसी भी प्रकार की जमानत

याचिका दायर की। इसी तरह के एक अन्य मामले में उन्होंने फैसले की आड़ लेते हुए इस अदालत का दरवाजा खटखटाया था। **राज्य सी.बी.आई. के माध्यम से (सुप्रा)** और उन्हें कुछ राहत दी गई है।

20. इस मामले में, ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि आवेदन आईओ द्वारा दायर किया गया था या संबंधित मजिस्ट्रेट / न्यायाधीश द्वारा विवेचना में सहायता के लिए आरोपी को आईओ की हिरासत में प्रदान करने के लिए आक्षेपित आदेश पारित किया गया था। मजिस्ट्रेट ने 03.10.2022 के लिए अदालत में अभियुक्त की प्रस्तुति के लिए गैर-जमानती वारंट जारी किया है, इसलिए संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश कानून के अनुसार होने के कारण रद्द करने योग्य नहीं है। इस न्यायालय के अनुसार, लागू आदेश कानून की नजर में सही है और आवेदन **खारिज होने योग्य हैं।**

आदेश

21. आवेदन यू/एस 482 तदनुसार **खारिज कर दिया गया।**

22. इस आदेश की एक प्रति विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेरठ को सूचना और आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजी जाए।

(2023) 4 ILRA 428

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 37387

/2022

अजीम हुसैन

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री मनोज कुमार गुप्ता

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

क. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 482 - नारकोटिक्स ड्रग्स एंड सब्सटेंस एक्ट, 1985- धारा 8- सी/20-बी 8-ए/28- निरस्त करना-ट्रक को छोड़ने के लिए विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित अस्वीकृति आदेश-ट्रक से 3 क्विंटल 96 किलोग्राम गांजा बरामद किया गया था-थानाध्यक्ष द्वारा जब्ती के लिए एक रिपोर्ट डी.एम. को भेजी गई थी, लेकिन आज तक डी.एम. ने एक वर्ष बीत जाने के बाद भी जब्ती की कार्यवाही प्रारंभ नहीं की है-किसी भी जब्ती कार्यवाही या आदेश की शुरुआत के अभाव में, यह संबंधित न्यायालय के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय XXXIV के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है-इस प्रकार, आपेक्षित आदेश निरस्त किए जाने योग्य है। (पैरा 1 से 16)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

माणक लाल बनाम सेंट्रल ब्यूरो ऑफ नारकोटिक्स (2019) जेसीसी ऑनलाइन एम.पी. 2031

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार गुप्ता, राज्य के विद्वान अ0शा0 अधि0 श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

2. द0प्र0 सं0 की धारा 482 के अधीन यह आवेदन स्वा0 औ0 मनः पदा0 अधिनियम, पुलिस थाना उजहनी, जिला बदायूँ की धारा 8सी/20बी (पप) (ई) तथा 8-ए/28 के अन्तर्गत मामला अपराध सं0 163 वर्ष 2022-राज्य बनाम जुबैर तथा अन्य में विशेष जज (स्वा0औ0मनःप्रभा0 पदा0 अधिनियम) /अपर सत्र न्यायालय एफ0टी0सी0 (महिलाओं के विरुद्ध अपराध) द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.09.2022 का अभिखण्डन करने के लिए आवेदक की ओर से प्रस्तुत किया गया है जिसके द्वारा ट्रक सं0 यू0पी0-22टी-3585 के निर्मुक्ति आवेदन को नामंजूर किया गया है तथा पूर्वोक्त ट्रक को निर्मुक्त करने के लिए विचारण न्यायालय को निदेश देने का अनुरोध भी किया गया है।

3. संक्षेप में, मामले का तथ्य यह है कि आवेदक ओ0आई0सी0 द्वारा बीमित आक्षेपित वाहन का अभिलिखित स्थायी है जिसे पुलिस द्वारा 26-03-2022 को तलाश तथा प्रगृहीत किया गया था तथा तीन क्विंटल 96 किग्रा0 गांजा 198 पैकेटों में बरामद किया गया था तथा इसलिए वाहन को धारा 207 मोटरयान अधिनियम के अधीन अभिगृहीत किया गया था एवं पुलिस थाना ले जाया गया था। आवेदक ने आक्षेपित वाहन के निर्मुक्ति हेतु आवेदन पेश किया था, जिसे विद्वान विचारण जज द्वारा इस आधार पर नामंजूर किया गया था कि राज्य के पक्ष में आक्षेपित वाहन के अधिहरण हेतु संबंधित पुलिस थाना द्वारा रिपोर्ट अग्रेषित किया गया है।

4. व्यथित आवेदक द्वारा द0प्र0सं0 की धारा 482 के अधीन यह आवेदन दाखिल किया गया है।

5. राज्य की ओर से एस0आई0 हरपाल सिंह ने प्रति शपथपत्र दाखिल किया है कि पूर्वोक्त ट्रक का प्रयोग प्रतिषिद्ध स्वापक पदार्थ के अवैध व्यापार हेतु किया गया था तथा इसके अधिहरण हेतु रिपोर्ट दिनांक 20-04-2022 जिला मजिस्ट्रेट बदायूँ को भेजा गया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने ठीक ही निर्मुक्ति आवेदन को नामंजूर किया है। आवेदन पोषणीय नहीं है, अतः इसे नामंजूर किया जाय।

6. इस तर्क के साथ प्रतिशपथ पत्र के तर्कों का खण्डन करते हुए आवेदक द्वारा प्रत्युत्तर शपथपत्र दाखिल किया गया है कि आवेदक

वाहन स्वामी है तथा यदि किसी प्रतिषिद्ध को वाहन से प्राप्त/बरामद किया जाता है, ट्रक चालक उत्तरदायी होगा क्योंकि आवेदक के लिए हर समय अपने वाहन के परिवहन का मानीटर करना संभव नहीं है।

7. वाहन की स्थिति दिन ब दिन बिगड़ रही है। आवेदक यह वचनबंध देने के लिए तैयार है कि वह वाहन को पेश करेगा जब कभी यह न्यायालय द्वारा मांगा या आदेशित किया जायेगा। यद्यपि, 22-4-2022 को वाहन के अधिहरण हेतु रिपोर्ट भेजा गया है लेकिन आज तक वाहन के अधिहरण के कार्यवाही के संबंध में नोटिस प्राप्त नहीं किया गया है। सूचना के अधिकार अधिनियम के अधीन आवेदन भी आवेदक द्वारा 14-10-2022 को पेश किया गया था लेकिन इस संबंध में कोई जवाब नहीं है कि क्या रिपोर्ट दिनांक 20-4-2022 के अनुसरण में कोई कार्यवाही आरम्भ किया गया था या नहीं। आवेदक न तो उपस्थित था जब पुलिस द्वारा वाहन को कब्जे में लिया गया था न ही वह प्र0सू0रि0 के अनुसार अभियुक्त था तथा चालक ही उत्तरदायी है तथा जिसे जमानत पर निर्मुक्त किया गया है। आवेदक प्रकृति में आपराधिक नहीं है वह व्यापारी है तथा पूर्णतया ईमानदारी से व्यापार करता है। यह पहली बार है जब इसके वाहन को पुलिस द्वारा प्रतिषिद्ध पदार्थों के साथ अभिगृहीत किया गया है। अतः आवेदन को अनुज्ञात किया जाय तथा आक्षेपित ट्रक को विचारण के लंबित रहने के दौरान आवेदक के पक्ष में निर्मुक्त किया जाय।

8. दोनों पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने पक्षकार का नाम बताये बिना **मनक लाल**

बनाम केन्द्रीय स्वापक ब्यूरो, 2019 जेसीसी आनलाइन एमपी 2031 पर भरोसा किया है जिसका मामले में सुसंगतता नहीं है।

9. स्वा0औ0मनः प्रभा0 पदा0 अधिनियम की धारा 60 को दोहराना उचित होगा, जो निम्नवत् है:-

“60 अवैध औषध, पदार्थ, पौधा, सामान का दायित्व तथा अधिहरण का प्रवहण

(1) जब कभी इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय कोई अपराध किया गया है, स्वापक औषध, मनः प्रभावी पदार्थ नियंत्रित पदार्थ, अफीम पापी, कोका प्लांट, भांग का पौधा, सामग्रियों, उपकरणों तथा वर्तनों जिसके संबंध में या जिसके द्वारा इस प्रकार का अपराध किया गया है, अधिहरण के लिए दायी होगा।

(2) किसी स्वापक औषध या मनः प्रभावी पदार्थ या नियंत्रित पदार्थ के साथ या अतिरिक्त विधिपूर्ण तरीके से पैदा, आयातित अन्तः राज्य, निर्यातित अन्तराज्य, भारत में आयातित, परिवहन किया गया विनिर्मित, रखा गया, प्रयुक्त, क्रय किया गया या बेचा गया कोई स्वापक औषध या मनः प्रभावी पदार्थ या नियंत्रित पदार्थ जो उपधारा (1) के अधीन अधिहरण योग्य है तथा आधान, पैकेज तथा कवरिंग जिसमें कोई स्वापक औषधि या मनः प्रभावी पदार्थ या नियंत्रित

पदार्थ, सामग्री, उपकरण या बर्तन जो उपधारा (1) के अधीन अधिहरण योग्य है, पाया जाता है तथा इस प्रकार के आधानों या पैकेजों का अन्य अन्तवस्तु, यदि कोई है इसी प्रकार अधिहरण के योग्य होगा।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन अधिहरण के योग्य किसी स्वापक औषधि या मनः प्रभावी पदार्थ या नियंत्रित पदार्थ या कोई सामान ले जाने में प्रयुक्त कोई जानवर या प्रवहण तब तक अधिहरण के योग्य नहीं होगा जब तक पशु या प्रवहण का स्वामी यह साबित नहीं करता है कि इसका प्रयोग स्वयं स्वामी इसके अभिकर्ता, यदि कोई है तथा पशु या प्रवहण के भार साधक व्यक्ति के ज्ञान या मौनानुकूलता के बिना किया गया था तथा यह कि इनमें प्रत्येक ने इस प्रकार के प्रयोग के विरुद्ध सभी युक्तियुक्त एहतियात बरता था।”

10. उपधारा (1) के अनुसार, यदि कोई अपराध स्वा0 औ0 मनः प्रभा0 पदा0 अधिनियम के अन्तर्गत किया गया है, पौधा, सामान तथा प्रवहण अधिहरण योग्य होगा। उपधारा (3) के अनुसार किसी स्वापक तथा औषधि या मनः प्रभावी पदार्थ या नियंत्रित पदार्थ को ले जाने में प्रयुक्त कोई पशु या प्रवहण या उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन अधिहरण किये जाने कोई सामान तब तक अधिहरण योग्य नहीं होगा जब तक पशु या प्रवहण का स्वामी यह सिद्ध नहीं कर देता

है कि इसका इस प्रकार प्रयोग स्वयं स्वामी, इसके अभिकर्ता, यदि कोई है तथा पशु या प्रवहण के भारसाधक व्यक्ति के जानकारी के बिना किया गया था तथा इसमें प्रत्येक ने इस प्रकार के प्रयोग के विरुद्ध सभी युक्तियुक्त एहतियात बरता था।

11. इस मामले में आवेदक का मामला यह है कि वह व्यापारी है तथा वह हर समय अपने वाहन का निरीक्षण नहीं कर सकता है। इसके विरुद्ध प्र0सू0रि0 दर्ज नहीं कराया गया है। वह घटना स्थल पर या वाहन के साथ मौजूद नहीं था। यह इसकी जानकारी में नहीं था कि चालक प्रतिषिद्ध स्वापक पदार्थ को ले जा रहा है। इसलिए, आवेदक को यह साबित करने का अवसर प्राप्त है कि यह मामला उपधारा (3) के पश्चातवर्ती भाग के अधीन आच्छादित है।

12. जहाँ तक अधिहरण कार्यवाही का संबंध है, अभिलेख पर साक्ष्य से यह काफी कुछ स्पष्ट है कि यद्यपि अधिहरण हेतु रिपोर्ट 20-04-2022 को थानाध्यक्ष द्वारा जिला मजिस्ट्रेट बदायूँ को अग्रेषित किया गया था लेकिन आज की तिथि तक जिला मजिस्ट्रेट, बदायूँ ने आक्षेपित वाहन के संबंध में अधिहरण की कार्यवाही को आरम्भ नहीं किया है। यदि वाहन का अधिहरण नहीं किया गया है तथा एक वर्ष के बीत जाने के बाद भी अधिहरण की कार्यवाही नहीं की जा सकती है, संबंधित न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 34 के अधीन अपने अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है।

13. इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि इस प्रकार की स्थिति में संबंधित न्यायालय के पास मामले के सभी तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा क्या आवेदक स्वा0औ0मनः प्रभा0पदा0 अधिनियम की धारा 60 की उपधारा (3) के पश्चातवर्ती भाग में परिगणित आधारों तथा परिस्थितियों को साबित करने में सक्षम रहा है या नहीं पर विचार करते हुए पूर्वाेक्त निर्मुक्ति आवेदन को निपटाने का अधिकार है।

14. मोटर यान अधिनियम की धारा 207 का भी संदर्भ है कि वाहन को मोटर यान अधिनियम की धारा 207 के अधीन अभिग्रहीत किया गया है जिसके लिए रिपोर्ट प्राप्त किया जा सकता है तथा निर्मोचन आवेदन संबंधित न्यायालय के समक्ष या संबंधित आर0टी0ओ0 के समक्ष पेश किया जा सकता है तथा मोटरयान अधिनियम की धारा 207 के अधीन अधिरोपित जुर्माना धनराशि (यदि कोई है) को जमा किया जा सकता है। जहाँ तक संबंधित दाण्डिक मामले के केस प्रापर्टी के रूप में इस वाहन के निर्मोचन का संबंध है, किसी अधिहरण कार्यवाही या आदेश के आरम्भ के अभाव में, निर्मोचन आवेदन पर विचार दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 34 के अधीन किया जा सकता है।

15. उपरोक्त विवेचना के आधार पर, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि आक्षेपित आदेश अभिखंडित किये जाने योग्य है।

आदेश

16. द0प्र0सं0 की धारा 482 के अधीन इस आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है तथा आक्षेपित आदेश दिनांक 08-08-2022 को एतद्वारा अभिखंडित किया जाता है। विद्वान विशेष जज/ए.एस.जे. (एफ.टी.सी.)/विशेष जज (स्वा0औ0 मनःप्रभा0 पदा0 अधिनियम) (महिलाओं के विरुद्ध अपराध) बदायूँ को नये सिरे से पूर्ववर्ती आवेदक द्वारा पेश निर्माचन आवेदन का विनिश्चय करने का निदेश दिया जाता है।

17. इस निर्णय के दृष्टिगत, विद्वान विचारण न्यायालय हालिया रिपोर्ट प्राप्त करेगा कि क्या जिला मजिस्ट्रेट, बदायूँ द्वारा किसी अधिहरण कार्यवाही को आरम्भ किया गया है या नहीं या इस संबंध में कोई आदेश पारित किया गया है या नहीं। यदि विद्वान विचारण न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत किया जाता है कि अधिहरण कार्यवाही को आरम्भ किया गया है या जिला मजिस्ट्रेट बदायूँ द्वारा अधिहरण के संबंध में कोई आदेश पारित किया गया है, नये सिरे से निर्माचन आवेदन का विनिश्चय करने हेतु या आदेश प्रभावी नहीं होगा, दूसरी दृष्टि से विद्वान विचारण न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 34 के अधीन अपने शक्ति का प्रयोग करते हुए निर्माचन आवेदन का विनिश्चय करेगा।

(2023) 4 ILRA 431

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 39616

/2022

संजीव कुमार एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अथर्व दीक्षित, श्री प्रणव तिवारी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

क. दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 498ए, 304बी, एवं 302 - दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961-धारा 3/4- हत्याजन्य मृत्यु-आवेदक संख्या 3 अस्पताल में है तथा इस कारण से आवेदक बचाव पक्ष के साक्ष्य प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे-साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने के लिए प्रस्तुत आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया-इसका भार अभियुक्त पर है-आवेदक अपने कर्तव्य का निर्वहन करें कि उन्होंने दहेज हत्या नहीं की है, इसलिए बचाव पक्ष के साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक एवं अनिवार्य है-अतः केवल इसी आधार पर कि बचाव पक्ष ने साक्ष्य प्रस्तुत करने में कुछ तिथियां लग जाने के कारण बचाव पक्ष के साक्ष्य को बंद करना उचित नहीं होगा-विद्वान विचारणीय न्यायालय ने बचाव पक्ष को जल्दबाजी करने का निर्देश देना शुरू कर दिया, जबकि कुछ ऐसी बाध्यकारी परिस्थितियां थीं, जिनके कारण आरोपी व्यक्ति बचाव पक्ष के साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सके-इसलिए, धारा 232 और 233 सीआरपीसी के प्रावधानों को दरकिनार करने का कोई कारण नहीं है और इस प्रक्रिया के उल्लंघन में दर्ज की गई सजा, सजा को अवैध बनाती है। (पैरा 1 से 22)

आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. शिवमणि @ सिवान बनाम केरल राज्य (1993) सीआरएलजे 23 डीबी
2. परमेश्वर कुरुप जनार्दन पिल्लई बनाम केरल राज्य (1982) सीआरएलजे 899 के-डीबी
3. एन. पिशाक सिंह बनाम मणिपुर राज्य (2006) सीआरएलजे एनओसी 197
4. मनोज कुमार स्वामी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2006) सीआरएलजे 1781 (1782)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री अथर्व दीक्षित और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना। पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

इस आवेदन के माध्यम से, आवेदकों ने मुकदमा अपराध संख्या 142 वर्ष 2009 अंतर्गत धारा 498ए, 304 बी भारतीय दंड संहिता और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम साथ ही एक वैकल्पिक आरोप अंतर्गत धारा 302 भारतीय दंड संहिता, थाना-लंका, जिला-वाराणसी, से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 392 वर्ष 2009 (राज्य बनाम संजीव कुमार और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 21.11.2022 को चुनौती दी है और आवेदकों को अपना बचाव साक्ष्य देने का अवसर प्रदान करें।

संक्षेप में, मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि उक्त मुकदमा अपर जिला जज/एफटीसी कोर्ट संख्या 14, वित्त आयोग, वाराणसी के न्यायालय में इस आरोप पर चल रहा है कि शिकायतकर्ता की पुत्री ने आवेदक संख्या 1 के साथ 18.4.2006 को विवाह किया था। आवेदकों ने दहेज की मांग की और उसे जहर दिया जिसके कारण उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया और अंततः 27.3.2009 को उसकी मृत्यु हो गई। आरोप पत्र प्रस्तुत होने के बाद, आरोप तय किये गये और सुनवाई शुरू हुई। यह तर्क दिया गया है कि आवेदक संख्या 3 कुसुम देवी की बिगड़ती हालत को देखते हुए, उन्हें चिकित्सकीय निगरानी में रखा गया था और 10.11.2022 को इलाज के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया था और तब से वह अस्पताल में हैं और इस कारण से, आवेदक बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे। मामला अंतिम बार 15.11.2022 को बचाव साक्ष्य के लिए सूचीबद्ध किया गया था, किंतु आवेदक के अधिवक्ता के खराब स्वास्थ्य के कारण, निचली अदालत के समक्ष स्थगन आवेदन दायर किया गया था।

21.11.2022 को बचाव पक्ष के गवाह की परीक्षा के साक्ष्य को प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। परंतु, उक्त आवेदन आदेश दिनांक 21.11.2022 द्वारा बुद्धिरहित और मनमाने तरीके से खारिज कर दिया गया, जिसे इस न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी गई है कि आदेश बहुत ही लापरवाही और दुर्भावनापूर्ण तरीके से पारित किया गया है जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और निष्पक्ष

सुनवाई के अधिकार के विरुद्ध है। मुकदमा 2009 से लंबित है और अभियोजन पक्ष ने अपने साक्ष्य वर्ष 2022 में ही पूरे किए हैं। अभियोजन पक्ष ने 13 वर्षों से अधिक की अवधि में अपने साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। यह धारा 304 बी भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत मामला है जहां भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी के अंतर्गत वैधानिक अनुमान आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध मौजूद है जो प्रकृति में खंडन योग्य है और इसे मात्र बचाव साक्ष्य द्वारा खंडित किया जा सकता है। बचाव पक्ष के गवाहों को प्रस्तुत करने के किसी भी अवसर के अभाव में, बचाव पक्ष ऐसे अनुमान का खंडन करने के अपने अधिकार से वंचित हो जाएगा। विद्वान निचली अदालत अनुचित जल्दबाजी के तहत बचाव का अवसर नहीं दे रही है और अभियोजन और बचाव के संबंध में दो अलग-अलग मापदंड अपना रही है। शीर्ष अदालत के साथ-साथ विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा विभिन्न मामलों में पहले ही इसे निर्धारित किया जा चुका है कि किसी भी व्यक्ति को कार्यवाही के किसी भी चरण में जहां आवश्यक हो, पूछताछ के लिए गवाह के रूप में तलब किया या बुलाया जा सकता है। सभी आवेदक मुकदमा लंबित होने के दौरान जमानत पर हैं, इसलिए आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाए और आवेदकों को अपने बचाव में साक्ष्य पेश करने का अवसर दिया जाए।

आक्षेपित आदेश की प्रति और संबंधित कागजात याचिका के साथ संलग्न किये गये हैं।

अनुपूरक शपथ पत्र दिनांक 28.11.2022 के माध्यम से, आवेदकों ने चिक प्राथमिकी और आक्षेपित आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत

की है। अनुपूरक शपथ पत्र संख्या 1/2022 के माध्यम से आदेश पत्र और प्रश्नावली की प्रति दाखिल की गई है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और पत्रावली का परिशीलन किया।

आदेश पत्र के परिशीलन से यह पता चलता है कि अभियोजन पक्ष एक दशक तक अपना साक्ष्य पूरा नहीं कर सका, किंतु धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज करने के बाद, मामला बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु तय किया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने बचाव साक्ष्य दर्ज करना शुरू कर दिया। 15.10.2022 और 19.10.2022 को विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी-आवेदकों को स्थगन पर रु. 500/- की लागत लगाई और 5.11.2022 और 8.11.2022 को बचाव साक्ष्य पेश करने का अवसर दिया और अंततः 15.11.2022 को उन्होंने बचाव साक्ष्य बंद कर दिया और जब आदेश वापसी का आवेदन दायर किया गया, तो उसे 21.11.2022 को खारिज कर दिया गया।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी के तहत, इस कर्तव्य पालन का दायित्व है आरोपी-आवेदकों पर है कि उन्होंने दहेज हत्या नहीं की है, इसलिए, बचाव साक्ष्य प्रस्तुत कर न्याय के लिए जरूरी और आवश्यक है।

धारा 233 दंड प्रक्रिया संहिता निम्नानुसार है:

233. बचाव में प्रवेश (1) जहां आरोपी को धारा 232 के तहत बरी नहीं किया गया है,

उसे अपना बचाव प्रस्तुत करने और उसके समर्थन में कोई सबूत पेश करने के लिए कहा जा सकता है। (2) यदि आरोपी कोई लिखित बयान देता है, तो न्यायाधीश उसे पत्रावली के साथ दाखिल करेगा।

कई न्यायिक उदाहरणों में, यह माना गया है कि बचाव साक्ष्य पेश करने के लिए न्यायालय द्वारा उचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। धारा 233 दंड प्रक्रिया संहिता में हर जगह 'चाहिए' शब्द का इस्तेमाल किया गया है।

शिवमणि उर्फ सिवान बनाम केरल राज्य, 1993 सीआरएलजे 23 (डीबी) में, यह माना गया है कि "धारा 232 और 233 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों को दरकिनार करने का कोई कारण नहीं है। और इस प्रक्रिया के उल्लंघन में दर्ज दोषसिद्धि, दोषसिद्धि को अवैधानिक बना देती है।"

परमेश्वर कुरुप जनार्दन पिल्लई बनाम केरल राज्य, 1982 सीआरएलजे 899 (केर-डीबी) में, यह माना गया है कि "एक अभियुक्त जिसे धारा 232 के तहत बरी नहीं किया गया था और इस धारा के तहत अपना बचाव पेश करने के लिए नहीं बुलाया गया था, मुकदमे में अनिवार्य प्रावधान के उत्तरार्ध का उल्लंघन है और रद्द किए जाने योग्य है।"

एन. पिशक सिंह बनाम मणिपुर राज्य, 2006 सीआरएलजे (एनओसी) 197 में, यह माना गया है कि "जहां आरोपी को बचाव करना था और वह बचाव गवाह की परीक्षा करना चाहता था, न्यायालय की ओर से आरोपी को अपना बचाव पेश करने हेतु बुलाने में हुई विफलता के कारण उसके बचाव में

पूर्वाग्रह पैदा हुआ, हत्या के आरोप में उसकी सजा को रद्द कर दिया गया।"

उपरोक्त धारा की उप-धारा (3) के अनुसार, आरोपी, गवाहों की उपस्थिति या दस्तावेजों या चीजों के प्रस्तुतिकरण को आवश्यक करने हेतु प्रक्रिया जारी करने के लिए, आवेदन कर सकता है और न्यायाधीश, सिवाय तब जब कि वह आवेदन को, तंग करने हेतु किया गया या देरी करने या न्याय के उद्देश्य को विफल करने के उद्देश्य से किया गया समझता है, ऐसी प्रक्रिया को जारी करेगा। न्यायाधीश द्वारा, इनकार करने के अपने कारणों को दर्ज किया जाना चाहिए।

इस मामले में, विचारण न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष नहीं निकाला है कि बचाव साक्ष्य आवश्यक नहीं है या बचाव पक्ष के गवाहों को प्रस्तुत किए बिना, आरोपी व्यक्ति साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 (बी) के तहत अनुमान का खंडन करने में सक्षम होंगे। अतः, मात्र इस आधार पर कि बचाव पक्ष ने साक्ष्य प्रस्तुत के लिए कुछ तारीखें ली हैं, बचाव साक्ष्य समाप्त करना उचित नहीं होगा। आरोपी व्यक्तियों को अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कम से कम उचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

मनोज कुमार स्वामी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 सी आर एल जे 1781 (1782) में, यह माना गया है कि "बचाव के चरण में, आरोपी को किसी भी साक्ष्य को बुलाने का अधिकार है जो अभियोजन साक्ष्य की उचित सराहना और उसके बचाव को प्रमाणित करने के लिए प्रासंगिक हो सकता है।"

आक्षेपित आदेश के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय

ने जल्दबाजी में आदेश पारित किया है। तारीखों की गिनती किए बिना बचाव पक्ष को कम से कम पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाना चाहिए था। यह भी पता चला है कि विचारण न्यायाधीश ने यह भी ध्यान दिया था कि अभियोजन पक्ष मामले को गंभीरता से नहीं ले रहा था अन्यथा अभियोजन साक्ष्य के स्तर पर बारह साल नहीं लगते।

11.10.2022 को धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आरोपी व्यक्तियों का बयान दर्ज किया गया है और 15.10.2022 से 15.11.2022 तक बचाव साक्ष्य पेश करने का अवसर प्रदान किया गया था और सिर्फ एक महीने के भीतर बचाव साक्ष्य समाप्त कर दिया गया है। यदि हम अभियोजन और बचाव पक्ष को दिए गए समय की तुलना करें, तो तस्वीर बिल्कुल स्पष्ट है कि धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज करने के ठीक बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष को जल्दबाजी करने का निर्देश देना शुरू कर दिया। वापसी आवेदन और वर्तमान आवेदन में लिए गए आधारों के अवलोकन से, यह पता चलता है कि निश्चित रूप से कुछ अकाट्य परिस्थितियाँ थीं, जिसके कारण आरोपी व्यक्ति बचाव साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सके।

ऊपर उल्लिखित न्यायिक उदाहरणों में, जहां विचारण न्यायालय ने जल्दबाजी में आदेश पारित किए और बचाव में साक्ष्य पेश करने का उचित अवसर प्रदान नहीं किया और आरोपी व्यक्तियों को दोषसिद्ध किया, दोषसिद्धि के ऐसे आदेशों को रद्द कर दिया गया है।

मामले की समग्र परिस्थितियों और अभियोजन पक्ष द्वारा लिए गए समय को

ध्यान में रखते हुए यह न्यायालय निष्कर्ष निकालता है कि विचारण न्यायालय को बचाव के प्रति अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था और उन्हें बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय प्रदान किया जाना चाहिए था।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का विचार है कि प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और न्याय के लक्ष्य को सुरक्षित करने के लिए इस न्यायालय के लिए यह जरूरी है कि वह आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करे और आवेदन की अनुमति दे।

आदेश

आवेदन अंतर्गत धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता **स्वीकार** किया जाता है और मुकदमा अपराध संख्या 142 वर्ष 2009 अंतर्गत धारा 498ए, 304 बी भारतीय दंड संहिता और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम साथ ही एक वैकल्पिक आरोप अंतर्गत धारा 302 भारतीय दंड संहिता, थाना-लंका, जिला-वाराणसी, से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 392 वर्ष 2009 (राज्य बनाम संजीव कुमार और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 21.11.2022 को रद्द किया जाता है। विद्वान विचारण न्यायालय को आरोपी-आवेदकों को बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करने का निर्देश दिया गया है, जिसके लिए यह न्यायालय अभियोजन साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कम से कम 5 तारीखें प्रदान करना उचित समझता है। यह भी निर्देशित किया जाता है कि आवेदक कोई अनावश्यक स्थगन नहीं दाखिल करेंगे। इसके अलावा, यदि पत्रावली मंगाने या गवाहों को बुलाने के लिए कोई आवेदन दिया

जाता है, तो उपरोक्त टिप्पणियों के मद्देनजर उस पर विचार किया जाएगा।

इस आदेश की एक प्रति अनुपालन के लिए विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 4 ILRA 435

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,
आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 42663

/2022

शिव कुमार शर्मा

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री उमर ज़मीन, श्री रोहित
नंदन पांडे

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 202 और 482 - अंतर्निहित शक्ति- परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 118 - परक्राम्य लिखतों के संबंध में धारणाएं - धारा 138 - खातों में धन की अपर्याप्तता आदि के लिए चेक का अनादर - धारा 139- धारक के पक्ष में धारणा, साधारण खंड अधिनियम, 1897-धारा 27 - डाक द्वारा तामील का अर्थ सूचना की तामील तब हुई है जब इसे पंजीकृत डाक द्वारा सही पते पर भेजा गया है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 114 - न्यायालय यह मान सकता है कि प्राकृतिक घटनाओं के सामान्य क्रम में, जब कोई सूचना पंजीकृत डाक द्वारा

भेजी जाती है और डाक पृष्ठांकन के साथ वापस आती है तो उसे अस्वीकार कर दिया जाता है या घर में डाक उपलब्ध नहीं होती है या घर बंद है या दुकान बंद है या पताकर्ता स्टेशन पर नहीं है, तो उचित तामील मान ली जानी चाहिए। (पैरा - 15, 16)

धारा 138 एन.आई. अधिनियम के तहत परिवाद - आवेदक के विरुद्ध दर्ज की गई - जिसमें आरोप लगाया गया कि साझेदारी के लिए 1,25,000 रुपये की मांग की गई - विपक्षी ने समान राशि प्रदान की - लेकिन आवेदक ने 2014-15 में लाभ दिखाया - शेष राशि -विपक्षी ने भुगतान करने से इनकार कर दिया - पंजीकृत डाक के माध्यम से कानूनी नोटिस - कथित तौर पर आवेदक द्वारा स्वीकार नहीं किया गया - आवेदक ने राशि वापस नहीं की - मजिस्ट्रेट ने तलब किया - आवेदक द्वारा खाते से ऋण या देयता के भुगतान के लिए चेक जारी किया गया था - ब्लॉक किये गये - परिवादी को इसकी जानकारी नहीं थी। (पैरा-2, 19)

निर्णय: केवल प्रथम दृष्टया वाद ही देखा जाना चाहिए, तथा विवादित नोटिस के तथ्य के लिए साक्ष्य के आधार पर निर्णय की आवश्यकता होती है, जो केवल विचारणीय न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता है। सभी तथ्य के विवादित प्रश्न हैं। जब तथ्यों को साक्ष्य के माध्यम से स्थापित किया जाना है, तो न्यायालय सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, ऐसी कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत

कार्यवाही को निरस्त करने का कोई आधार नहीं बनता है। (पैरा -20, 21)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. राजेश मीना बनाम हरियाणा राज्य और अन्य सीआरएम - एम-14537-2018
2. मेसर्स सीजफायर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम राज्य और अन्य. सीआरएल एल.पी. 51/2017
3. सी.सी. अलवी हाजी बनाम पालापेट्टी मुहम्मद एवं अन्य, (2007) 6 एससीसी 555
4. जगदीश सिंह बनाम नत्थू सिंह, (1992) 1 एससीसी 647: एआईआर 1992 एससी 1604
5. एम.पी. राज्य बनाम हीरालाल, (1996) 7 एससीसी 523
6. वी. राजा कुमारी बनाम पी. सुब्बारामा नायडू (2004) 8 एससीसी 774: 2005 एससीसी (सीआरआई) 393
7. भास्करन वाद, (1999) 7 एससीसी 510: 1999 एससीसी (सीआरआई) 1284
8. अजीत सीड्स लिमिटेड बनाम के. गोपाला कृष्णैया (2014) 12 एससीसी 685
9. सी.सी. अलवी हाजी बनाम पालापेट्टी मुहम्मद (2007) 6 एससीसी 555, (2007) 3 एससीसी (सीआरआई) 236
10. डी. विनोद शिवप्पा बनाम नंदा बेलियप्पा (2006) 6 एससीसी 456: (2006) 3 एससीसी (सीआरआई) 114
11. भारत बैरल एंड ड्रम मैनुफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीन चंद प्यारेलाल, (1999) 3 एससीसी 35

12. बसलिंगप्पा बनाम मुदिबसप्पा, (2019) 5 एससीसी 418

13. किशन राव बनाम शंकरगौड़ा, (2018) 8 एससीसी

165: (2018) 4 एससीसी (सिविल) 685: (2018) 3 एससीसी (सिविल) 544

14. किशन राव बनाम शंकरगौड़ा, (2018) 8 एससीसी 165: (2018) 4 एससीसी (सिविल) 37: (2018) 3 एससीसी (सीआरआई) 544

15. रंजीत बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, (2020)03 - 05आईएलआर ए1752: आवेदन यू/एस 482 संख्या 47282/2019,

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान, द्वारा प्रदत्त)

1. तत्काल आवेदन के माध्यम से आवेदक ने शिकायत मामले संख्या 2233/2021¹ की कार्यवाही में परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881² की धारा 138 के तहत, पुलिस स्टेशन फेस -2, जिला गौतम बौद्ध नगर और अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-तृतीय, गौतम बौद्ध नगर द्वारा पारित दिनांक 05.04.2022 के समन आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं; एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत एक शिकायत आवेदक के विरुद्ध इस आरोप के साथ दायर किया गया था कि आवेदक का विपक्षी संख्या 2 के साथ अच्छे संबंध हैं आैर

1 सत्याल नागर बनाम शिव कुमार शर्मा

2 एन.आई एक्ट

1,25,00,000/- रुपये की मांग का अनुरोध करते हुए उनसे उनके व्यवसाय में भागीदार बनने का अनुरोध किया गया, जो उनके द्वारा 2013 से चलाया जा रहा था। विपक्षी नं. 2 ने प्रार्थी के आश्वासन पर 1,25,00,000/- रुपये की राशि दे दी। यह भी आरोप लगाया गया है कि आवेदक ने धोखाधड़ी के इरादे से फर्म में वर्ष 2014-15 के लिए लाभ दिखाया और 8,00,000/- रुपये की राशि वापस कर दी। विपक्षी सं. 2 को शेष राशि वापस मांगने पर आवेदक ने 20,00,000/- रुपये का चेक क्रमांक 097414 दिनांक 24.03.2021 को दिया। उक्त चेक शिकायतकर्ता द्वारा 05.04.2021 को बैंक में प्रस्तुत किया गया था जो "बैंक अवरूद्ध" टिप्पणी के साथ वापस कर दिया गया था। इसके बाद विपक्षी नं. 2 ने आवेदक से संपर्क कर उसे उपरोक्त टिप्पणी के साथ बैंक द्वारा चेक वापस कर दिए जाने की जानकारी दी और उससे ली गई राशि का भुगतान करने का अनुरोध किया, जिस पर आवेदक ने विपक्षी संख्या 2 के साथ दुर्व्यवहार किया और अपशब्दों का प्रयोग किया भाषा, गंभीर परिणाम भुगतान की धमकी दी और रकम लौटाने से अचानक इनकार कर दिया। इस प्रकार, विपक्षी संख्या 2 द्वारा पंजीकृत डाक के माध्यम से दिनांक 17.04.2021 को एक कानूनी नोटिस दिया गया था। हालांकि, इसे आवेदक द्वारा स्वीकार नहीं किए जाने का आरोप लगाया गया था। आवेदक ने न तो राशि लौटाई और न ही विपक्षी क्रमांक 2 द्वारा दिए गए कानूनी नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया। इसलिए, वर्तमान शिकायत 27.07.2021 को दायर की गई थी। इसके बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट ने धारा 202

सीआरपीसी के तहत बयान दर्ज करने के बाद आवेदक को एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत आदेश दिनांक 05.04.2022 द्वारा तलब किया गया।

3. पहले अवसर पर यानी 15.02.2023 को श्री उमर जमीन, विद्वान अधिवक्ता ने मामले पर विस्तार से बहस की, हालांकि, कुछ विशिष्ट प्रश्नों का उत्तर देने के लिए, मामले को आगे की सुनवाई के लिए 21.03.2023 के लिए पोस्ट कर दिया गया था, हालांकि इस न्यायालय ने आवेदक के पक्ष में कोई राहत देने के लिए आश्वस्त नहीं होने का अपना विचार व्यक्त किया था। अत्यंत आश्चर्य की बात है, अगली तारीख पर, विद्वान अधिवक्ता श्री रोहित नंदन पांडे ने आवेदक की ओर से अपनी उपस्थिति का ज्ञापन दायर करके कदम उठाया, जबकि वह अदालत में थोड़ी सी भी सहायता करने की स्थिति में नहीं थे क्योंकि वह उपस्थित हुए थे। मामले के तथ्यों के बारे में और पिछली तारीख पर श्री उमर द्वारा दिए गए व्यापक और जोरदार तर्कों के बारे में भी वह अनभिज्ञ है। सहायता प्रदान करने के लिए जोर देने पर, श्री पांडे ने अपने तर्कों को बहुत ही मूर्खतापूर्ण और निर्लज्ज तरीके से प्रस्तुत किया। इस तरह की प्रथा न केवल किसी मामले के शीघ्र निष्कर्ष में बाधा डालती है, बल्कि पेशे को भी अपमानित करती है और इसे निष्फल माना जाता है।

4. बहस के समापन चरण में बाद के अधिवक्ता की उपस्थिति, वह भी, इसके

परिणाम के प्रति न्यायालय द्वारा दृष्टिकोण के प्रकटीकरण के बाद, समाज के सभी स्तरों द्वारा माने जाने वाले अधिवक्ता के अत्यधिक सम्मानजनक पेशे के लिए एक अवांछित स्थिति पैदा करती है। एक अधिवक्ता को न्यायालय का एक अधिकारी माना जाता है, इस प्रकार, उससे व्यावसायिकता के प्रति शिष्टाचार के सिद्धांतों और मानदंडों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है। अधिवक्ता से अपेक्षा की जाती है कि वह सम्मानित और प्रतिष्ठित पेशे के अनुरूप अपने कार्य करेगा और साथ ही शिष्टाचार बनाए रखने के लिए भी वह कर्तव्यबद्ध है। न्यायालय न केवल सहकर्मियों के साथ बल्कि अपने विरोधियों के साथ भी अपने कार्यों का उचित ढंग से निर्वहन कर रहा है।

5. पिछले अधिवक्ता द्वारा तर्कों के समापन के चरण में और वह भी निर्णय की घोषणा की तारीख से पहले, बाद के अधिवक्ता द्वारा संक्षेप को स्वीकार करने का आचरण, अनचाही छाप छोड़ता है और प्रशंसा प्राप्त नहीं करता है, बल्कि यह उस व्यक्ति पर एक कलंक का धब्बा लगाता है जो ऐसा मानता है कि एक अधिवक्ता होने के नाते कानूनी पेशे के क्षेत्र में पारंपरिक मर्यादा का पालन किया जाता है। श्री पांडे, जो अपने पेशेवर शिष्टाचार के लिए सम्मानजनक स्थिति रखते हैं, को सलाह दी जाती है कि वे खुद को ऐसे मामले में ऐच्छिक कार्यवाही के रूप में पेश किए जाने से बचें, जहां किसी अन्य पिछले अधिवक्ता द्वारा तर्क पहले ही समाप्त हो चुके हैं, ताकि उनके क्रेडिट के प्रति विश्वास और

सम्मान सुरक्षित रखा जा सके। न्यायालय हमेशा निष्पक्षता की सराहना करता है और किसी अधिवक्ता के पेशेवर सिद्धांतों और नैतिकता को तोड़ने या नष्ट करने के बारे में कभी नहीं सोचता है। ग्राहक के अपरिहार्य अनुरोध के मामले में, फिर भी श्री पांडे को संक्षिप्त विवरण स्वीकार करने से पहले श्री उमर ज़मीन द्वारा दिए गए तर्कों की स्थिति से परिचित होना चाहिए था।

6. वर्तमान घटना के उद्भव ने मुझे बार काउंसिल के साथ-साथ बार एसोसिएशन के दिग्गजों से अनुरोध करने के लिए बाध्य किया है, अर्थात् (i) अध्यक्ष, बार काउंसिल ऑफ उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद; (ii) अध्यक्ष, हाई कोर्ट बार एसोसिएशन, इलाहाबाद और (iii) सचिव, हाई कोर्ट बार एसोसिएशन, इलाहाबाद को एक संयुक्त बैठक में ऐसी अनुचित स्थितियों पर विचार करने के लिए स्थान आवंटित करना चाहिए, जो बार-बार बढ़ती विकट परिस्थितियों को प्रभावित कर सकती हैं। अधिवक्ता का महान पेशा, जो परिणामस्वरूप न्याय में देरी का एक कारण बन जाता है और वादकारी के सिस्टम पर विश्वास को ठेस पहुँचाता है।

आवेदक के लिए उपस्थित हुए पूर्व विद्वान अधिवक्ता श्री उमर ज़मीन द्वारा तर्क आगे बढ़ाये गये

7. इससे पहले आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री उमर ज़मीन ने तर्क दिया था कि आवेदक ने दिनांक 04.09.2017 को पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जिसमें उसने एक

घटना के बारे में शिकायत की थी कि उसका बैग उनकी कार से चोरी हो गई जिसमें हस्ताक्षरित और अहस्ताक्षरित दस्तावेज रखे गए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त चेक विपक्षी क्रमांक 2 के हाथ में आ गया, जिसका उपयोग करने के बाद वर्तमान शिकायत दर्ज की गई है इसलिए इस आधार पर आवेदक के खिलाफ शिकायत सुनवाई योग्य नहीं है।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के अनुसार जारी किया गया चेक किसी व्यक्ति द्वारा "किसी भी ऋण या अन्य देनदारी के पूर्ण या आंशिक निर्वहन के लिए" जारी किया जाना चाहिए, अर्थात्, भुगतानकर्ता की ओर चेक प्राप्त करने वाले को चेक किसी भी ऋण या अन्य देनदारी के निर्वहन के लिए निकाला जाना चाहिए। मौजूदा मामले में किसी भी तरह से यह नहीं माना जा सकता कि चेक किसी कर्ज या देनदारी के लिए जारी किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि किसी व्यक्ति द्वारा निकाला गया चेक किसी बैंकर के पास उसके द्वारा रखे गए खाते से होना चाहिए ताकि वह अपने ऋण या देनदारी के निर्वहन के लिए उस खाते से किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी राशि का भुगतान कर सके। वर्तमान मामले में, आवेदक ने पहले ही दिनांक 04.09.2017 को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी जिसमें एक घटना के बारे में आरोप लगाया गया था जहां उसका बैग जिसमें अन्य चेक के साथ हस्ताक्षरित और अहस्ताक्षरित दस्तावेज थे, जो खो गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त चेक विपक्षी क्रमांक 2 के हाथ में आ गया।

जिसका उपयोग करने के बाद वर्तमान शिकायत दर्ज की गई है इसलिए इस आधार पर शिकायत पोषणीय नहीं है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया था कि पदाधिकारियों द्वारा वित्तीय अनियमितताएं महामेधा शहरी सहकारी बैंक लिमिटेड³ की हैं। साथ ही पैसे के दुरुपयोग के संबंध में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, जिसके कारण उपरोक्त बैंक का लाइसेंस रद्द कर दिया गया और इसलिए वर्ष 2017 में ही वहां के खातों को ब्लॉक कर दिया गया। इस प्रकार, जिन खातों से चेक जारी किया गया था, वे चालू नहीं थे और आवेदक द्वारा उनका रखरखाव नहीं किया जा रहा था, इस प्रकार, एनआई की धारा 138 के तहत शिकायत दर्ज की गई। ऐसे मामले में अधिनियम दर्ज नहीं किया जा सकता है जहां खाते से देनदारी या ऋण के भुगतान के लिए चेक जारी किया जा रहा है जिसे संबंधित समय पर बनाए नहीं रखा जा रहा है। पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मामले एवं राजेश मीना बनाम हरियाणा राज्य और अन्य⁴ के एक फैसले पर भरोसा करते हुए आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जिस तारीख को चेक बाउंस हुआ था, उस दिन खाताधारक उक्त खाता नहीं चला रहा था, इसलिए, इस भौतिक स्थिति के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अपराध एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के तहत दंडनीय है। संबंधित अधिनियम के तहत

3 बैंक

4 CRM-M-14537-2018, dated 01st July, 2019

शिकायत दर्ज करने के लिए आवश्यक आवश्यक सामग्रियों में से एक के रूप में बनाया गया है।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के **मेसर्स सीजफायर इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम राज्य एवं अन्य**⁵ फैसले पर भी भरोसा किया उन्होंने प्रस्तुत किया कि चूँकि बैंक के खिलाफ दर्ज की गई पहली सूचना रिपोर्ट के अनुसार खाते फ्रीज कर दिए गए थे और तदनुसार लाइसेंस रद्द कर दिया गया था, इसलिए, खातों को ब्लॉक कर दिया गया था और जिस बैंक ने बिना भुगतान के चेक लौटाए थे, उसने भी ऐसा ही किया था। 'बैंक ब्लॉक' की टिप्पणी, इस प्रकार, भुगतान न किए गए चेक की वापसी का कारण एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों का उल्लंघन है। अतः शिकायत पोषणीय नहीं है।

राज्य के तर्क

11. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान एजीए श्री के.पी. पाठक ने प्रस्तुत किया है कि संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित समन आदेश कानूनी और कानून की नजर में उचित है और इस स्तर पर, केवल प्रथम दृष्टया मामला देखा जा सकता है और शिकायत को खारिज नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि चेक सहित हस्ताक्षरित और अहस्ताक्षरित दस्तावेजों वाले बैग के गायब होने के संबंध में एफआईआर दर्ज करना, जारी किए गए चेक

का एफआईआर में उल्लेख नहीं है, इसलिए, आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। शिकायत की रखरखाव संबंधी अन्य प्रस्तुतियों के संबंध में, यह स्पष्ट है कि आवेदक को यह अच्छी तरह से पता था कि बैंक खाता वर्ष 2017 में ही अवरुद्ध कर दिया गया था और उसने 24.03.2021 को चेक जारी किया था, जबकि आवेदक को पता था कि वह खाते का रखरखाव नहीं किया जा रहा है। इस प्रकार वह पलट नहीं सकता और यह निर्णय लें कि चेक 'बिना भुगतान के' लौटाने का कारण शिकायत को कायम रखने योग्य बनाने के लिए एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है।

12. मैंने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, विद्वान ए.जी.ए. को सुना है। राज्य के लिए और अभिलेखों का अवलोकन किया।

13. अधिनियम की धारा 138 के प्रावधानों को उद्धृत करना उचित है, जो इस प्रकार है:

"138. खातों में धनराशि की कमी आदि के कारण चेक का डिसआनर:- जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्ण या आंशिक रूप से निर्वहन के लिए उस खाते से किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए बैंक के साथ उसके द्वारा रखे गए खाते पर कोई चेक निकाला जाता है, बैंक द्वारा बिना भुगतान किए वापस कर दिया जाता है,

5 CrI.L.P. 51/2017, decided on 01st May, 2017

क्योंकि या तो उस खाते में जमा धनराशि चेक का भुगतान करने के लिए अपर्याप्त है या यह उस बैंक के साथ किए गए समझौते द्वारा उस खाते से भुगतान की जाने वाली व्यवस्था की गई राशि से अधिक है, ऐसे व्यक्ति अपराध किया हुआ माना जाएगा और इस अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधान पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, एक वर्ष तक के कारावास से दंडित किया जाएगा, या जुर्माने से, जो चेक की राशि के दोगुने तक बढ़ाया जा सकता है, या दोनों:

बशर्ते कि इस धारा में शामिल कोई भी बात तब तक लागू नहीं होगी जब तक-

(ए) चेक को उसके निकाले जाने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर या उसकी वैधता की अवधि के भीतर, जो भी पहले हो, बैंक में प्रस्तुत किया गया है।

(बी) चेक प्राप्तकर्ता या धारक, जैसा भी मामला हो, चेक जारी करने वाले को पंद्रह के भीतर लिखित नोटिस देकर उक्त धनराशि के भुगतान की मांग करता है। चेक के अवैतनिक रूप में वापस आने के संबंध में बैंक से उसे सूचना प्राप्त होने के दिन, और

(सी) ऐसे चेक का भुगतानकर्ता, जैसा भी मामला हो, उक्त नोटिस की प्राप्ति

के पंद्रह दिनों के भीतर चेक के उचित क्रम में प्राप्तकर्ता या धारक को उक्त धनराशि का भुगतान करने में विफल रहता है।

स्पष्टीकरण: इस धारा के प्रयोजन के लिए, "ऋण या अन्य दायित्व" का अर्थ कानूनी रूप से लागू करने योग्य ऋण या अन्य दायित्व है।"

14. धारा 138 किसी व्यक्ति द्वारा "किसी भी ऋण या अन्य देनदारी के पूर्ण या आंशिक निर्वहन के लिए" जारी किए गए चेक से संबंधित है। अनुभाग यह नहीं कहता है कि चेक भुगतानकर्ता के प्रति किसी भी ऋण या अन्य देनदारी के निर्वहन के लिए तैयार किया जाना चाहिए था। इस प्रकार शिकायत में एन.आई. अधिनियम की धारा 138 के अनुसार, न्यायालय को यह मानना होगा कि चेक किसी ऋण या देनदारी के लिए जारी किया गया था। यह अनुमान खंडनयोग्य है। हालाँकि, यह साबित करने का भार अभियुक्त पर है कि चेक किसी ऋण या देनदारी के लिए जारी नहीं किया गया था। आवेदक के चेक धारक होने और चेक पर हस्ताक्षर किए जाने के कारण बैंक द्वारा उसे अस्वीकार नहीं किया गया है, यह मान लिया जाएगा कि चेक किसी ऋण या अन्य देनदारी के निर्वहन के लिए जारी किया गया था। धारा 139 के तहत अनुमान एक खंडन योग्य अनुमान है। इससे पहले कि यह न्यायालय धारा 118 और 139 पर विचार करते हुए शीर्ष न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को संदर्भित करे, किसी आरोपी पर सबूत के बोझ से संबंधित सामान्य

सिद्धांतों पर ध्यान देना प्रासंगिक है, खासकर ऐसे मामले में जहां आरोपी के अपराध के संबंध में कुछ वैधानिक धारणा बनाई जानी है।

15. माननीय शीर्ष न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने **सी.सी. अलवी हाजी बनाम पालापेट्टी मुहम्मद और अन्य⁶** के मामले में निम्नानुसार आयोजित किया गया है:-

"14. धारा 27 एक धारणा को जन्म देती है कि नोटिस की सेवा तब प्रभावी हो गई है जब इसे पंजीकृत डाक द्वारा सही पते पर भेजा गया है। उक्त धारणा के मद्देनजर, जब यह बताया गया कि एक नोटिस पंजीकृत डाक द्वारा पते पर भेजा गया है जारीकर्ता की ओर से, शिकायत में यह कहना अनावश्यक है कि बिना तामील किए नोटिस लौटाने के बावजूद, इसे तामील मान लिया गया है या यह माना जाएगा कि प्राप्तकर्ता को नोटिस के बारे में जानकारी है। जब तक कि इसके विपरीत न हो प्राप्तकर्ता द्वारा साबित किए जाने पर, नोटिस की सेवा उस समय प्रभावी मानी जाती है जब पत्र व्यवसाय के सामान्य क्रम में वितरित किया गया होता। इस न्यायालय ने पहले ही माना है कि जब कोई नोटिस पंजीकृत डाक से भेजा जाता है और साथ ही वापस कर दिया जाता है यदि डाक पृष्ठांकन अस्वीकार कर दिया गया है या

उपलब्ध नहीं है, घर में ताला लगा हुआ है या दुकान बंद है या पता प्राप्तकर्ता स्टेशन पर नहीं है, तो उचित सेवा मानी जाएगी। (जगदीश सिंह बनाम नत्थू सिंह⁷; एम.पी राज्य बनाम हीरालाल⁸, और वी. राजा कुमारी बनाम पी. सुब्बाराम नायडू⁹). इसलिए, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 27 के तहत उपलब्ध धारणा को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत में यह कहना आवश्यक नहीं है कि आरोपी द्वारा नोटिस की सेवा से बचा गया था या आरोपी ने बिना तामील किए गए नोटिस को वापस लौटाने में भूमिका निभाई।

*** ** * ** * ** * ** *

17. यह भी ध्यान में रखना होगा कि नोटिस देने की आवश्यकता आपराधिक कानून के नियम से स्पष्ट विचलन है, जहां शिकायत दर्ज करने से पहले नोटिस देने की कोई शर्त नहीं है। कोई भी भुगतानकर्ता जो दावा करता है कि उसे डाक द्वारा भेजा गया नोटिस नहीं मिला है, वह अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत के संबंध में अदालत से समन प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर चेक राशि का भुगतान कर सकता है और अदालत में जमा कर सकता है। कि उसने समन प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर (समन के साथ शिकायत की एक प्रति प्राप्त करके) भुगतान कर दिया था और

7 (1992) 1 SCC 647 : AIR 1992 SC 1604

8 (1996) 7 SCC 523

9 (2004) 8 SCC 774 : 2005 SCC (Cri) 393

इसलिए, शिकायत खारिज की जा सकती है। एक व्यक्ति जो अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत की प्रति के साथ न्यायालय से समन प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर भुगतान नहीं करता है, वह स्पष्ट रूप से यह तर्क नहीं दे सकता है कि धारा 138 के तहत अपेक्षित नोटिस की कोई उचित सेवा नहीं हुई थी। जी.सी. अधिनियम की धारा 27 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत इसके विपरीत वैधानिक अनुमान हमारे विचार में, प्रावधान की कोई भी अन्य व्याख्या कानून के मूल उद्देश्य को विफल कर देगी। जैसा कि भास्करन मामले¹⁰ में देखा गया, यदि प्रावधान के खंड (बी) के संदर्भ में "नोटिस देना" "नोटिस की प्राप्ति" के समान था, तो अधिनियम की धारा 138 के परिणाम से एक चालबाज चेक दाता को विभिन्न रणनीतियों को अपनाकर नोटिस प्राप्त करने से बचने और कानूनी कार्रवाई से बचने के लिए विभिन्न कार्य करेगा।"

16. शिकायत में यह कहना जरूरी नहीं है कि बिना तामील किए नोटिस लौटाने के बावजूद यह माना जाएगा कि नोटिस तामील हो चुका है या यह माना जाएगा कि प्राप्तकर्ता को नोटिस के बारे में जानकारी है। जब तक कि प्राप्तकर्ता द्वारा इसके विपरीत साबित नहीं किया जाता है, तब तक नोटिस की तामील उस समय की गई मानी जाएगी, जिस समय पत्र व्यवसाय के सामान्य क्रम में वितरित किया गया होगा। **अजीत सीड्स एल.टी.डी**

बनाम से . गोपला कृष्णन¹¹ के मामले में शीर्ष अदालत ने माना है कि सबूत लिये आरोपी को नोटिस की तामील के बारे में शिकायत में साक्ष्यों का अभाव है, पैराग्राफ नं. 10 और 11 के उक्ति निर्णय के को यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"10. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 न्यायालय को यह मानने में सक्षम बनाती है कि प्राकृतिक घटनाओं के सामान्य क्रम में, संचार प्राप्तकर्ता के पते पर वितरित किया गया होगा। जीसी अधिनियम की धारा 27 इसे जन्म देती है एक धारणा यह है कि नोटिस की तामील तभी प्रभावी हुई है जब इसे पंजीकृत डाक द्वारा सही पते पर भेजा गया है। शिकायत में यह कहना आवश्यक नहीं है कि बिना तामील हुए नोटिस के वापस आने के बावजूद, इसे तामील माना जाएगा या कि माना जाता है कि प्राप्तकर्ता को नोटिस का ज्ञान है। जब तक कि प्राप्तकर्ता द्वारा इसके विपरीत साबित नहीं किया जाता है, तब तक नोटिस की सेवा उस समय प्रभावी मानी जाती है जब पत्र व्यवसाय के सामान्य क्रम में वितरित किया गया होता।

11. उपरोक्त निष्कर्षों को इस मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, यह माना जाना चाहिए कि उच्च

न्यायालय ने इस आधार पर शिकायत को रद्द करने में स्पष्ट रूप से गलती की है कि शिकायत में कोई पुनरावृत्ति नहीं थी, एनआई अधिनियम की धारा 138 के तहत नोटिस दिया गया था। आरोपी पर उच्च न्यायालय ने भी इस आधार पर शिकायत को रद्द करने में गलती की कि इस बात का कोई सबूत नहीं था कि नोटिस दिया गया था या इसे बिना तामील/लावारिस लौटा दिया गया था। यह तो सबूत की बात है। हमें इसका उल्लेख अवश्य करना चाहिए कि सी.सी. अलवी हाजी¹² के मामले में, यह न्यायालय विनोद शिवप्पा¹³ के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण से विचलित नहीं हुआ, लेकिन कुछ स्पष्टीकरण के साथ उसमें व्यक्त दृष्टिकोण को दोहराया। हमने पहले ही विनोद शिवप्पा के प्रासंगिक पैराग्राफ उद्धृत किए हैं जहां इस न्यायालय ने माना है कि नोटिस की सेवा साक्ष्य और सबूत का मामला है और धारा के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय में जाने के लिए प्रक्रिया जारी करने के चरण में यह समय से पहले होगा। सीआरपीसी की धारा 482 ये टिप्पणियाँ वर्तमान मामले की ओर

पूरी तरह आकर्षित हैं। शक्ति ट्रेवल एंड टूर्स में दो-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पारित आदेश पर उच्च न्यायालय की निर्भरता गलत है। शक्ति ट्रेवल एंड टूर्स का आदेश उस मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स के बारे में कोई विचार नहीं देता है। यह प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों का विज्ञापन नहीं करता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह कोई कानून बनाता है। किसी भी स्थिति में सी.सी. अलवी हाजी, जिसका हमने संदर्भ दिया है, तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस मुद्दे पर निर्णायक रूप से फैसला किया है। हमारी राय में, शक्ति ट्रेवल एंड टूर्स मामले में दो जजों की बेंच का फैसला अब कोई मायने नहीं रखता है।"

17. इसके अलावा शीर्ष अदालत ने इस भारत बैरल एंड ड्रम मैनुफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीन चंद प्यारेलाल¹⁴, मामले में अधिनियम की धारा 118(ए) पर विचार किया था और माना था कि एक बार जब वचन पत्र का निष्पादन स्वीकार कर लिया जाता है, तो धारा 118(ए) के तहत यह धारणा उत्पन्न होगी कि यह एक विचार द्वारा समर्थित है। इस तरह की धारणा का खंडन किया जा सकता है और प्रतिवादी संभावित बचाव पेश करके किसी प्रतिफल की गैर-मौजूदगी को साबित कर सकता है। पैराग्राफ संख्या 12 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया है: -

12 C.C. Alavi Haji v. Palapetty Muhammed, (2007) 6 SCC 555 : (2007) 3 SCC (Cri) 236

13 D. Vinod Shivappa v. Nanda Belliappa, (2006) 6 SCC 456 : (2006) 3 SCC (Cri) 114

14 (1999) 3 SCC 35

"12. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विभिन्न निर्णयों पर विचार करने पर, कानून की स्थिति जो उभरती है वह यह है कि एक बार जब वचन पत्र के निष्पादन को स्वीकार कर लिया जाता है, तो धारा 118 (ए) के तहत धारणा उत्पन्न होगी कि यह एक विचार द्वारा समर्थित है। ऐसी धारणा खंडन योग्य है। प्रतिवादी एक संभावित बचाव पेश करके किसी प्रतिफल की गैर-मौजूदगी को साबित कर सकता है। यदि यह साबित हो जाता है कि प्रतिवादी ने यह साबित करने के लिए सबूत के प्रारंभिक दायित्व का निर्वहन कर लिया है कि प्रतिफल का अस्तित्व असंभव या संदिग्ध था या वह अवैध था, तो इसका उत्तरदायित्व वादी पर आ जाएगा जो इसे तथ्य के रूप में साबित करने के लिए बाध्य होगा और साबित करने में विफल रहने पर वह परक्राम्य दस्तावेज के आधार पर राहत देने का हकदार नहीं होगा। गैर-साबित करने का भार प्रतिवादी पर होगा। प्रतिफल का अस्तित्व या तो प्रत्यक्ष हो सकता है या उन

परिस्थितियों के संदर्भ में संभावनाओं की प्रबलता को रिकॉर्ड पर लाकर हो सकता है जिन पर वह भरोसा करता है। ऐसी स्थिति में, वादी कानून के तहत मामले में दिए गए सभी सबूतों पर भरोसा करने का हकदार है। वादी का भी। ऐसे मामले में, जहां प्रतिवादी प्रतिफल की गैर-मौजूदगी दिखाकर सबूत के प्रारंभिक दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहता है, तो वादी को धारा 118 (ए) के तहत उसके पक्ष में उत्पन्न होने वाले अनुमान के लाभ का हकदार माना जाएगा। अदालत प्रतिवादी पर प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करके प्रतिफल के अस्तित्व को गलत साबित करने के लिए जोर नहीं दे सकती है क्योंकि नकारात्मक साक्ष्य का अस्तित्व न तो संभव है और न ही उस पर विचार किया जा सकता है और यदि किया भी जाता है, तो उसे संदेह की नजर से देखा जाता है। विचार-विमर्श को पारित करने से इनकार करना स्पष्ट रूप से कोई बचाव प्रतीत नहीं होता है। जो कुछ संभावित है उसे वादी पर साबित करने का दायित्व

स्थानांतरित करने का लाभ प्राप्त करने के लिए रिकॉर्ड पर लाया जाना चाहिए। अनुमान का खंडन करने के लिए, प्रतिवादी को ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों को रिकॉर्ड पर लाना होगा, जिन पर विचार करने पर अदालत या तो यह मान सकती है कि विचार मौजूद नहीं था या इसका अस्तित्व इतना संभावित था कि एक विवेकशील व्यक्ति, परिस्थितियों के तहत ऐसा कर सकता था। मामले में, इस दलील पर कार्रवाई की जाएगी कि इसका अस्तित्व ही नहीं था।"

18. अपने हालिया फैसले में शीर्ष अदालत ने **बसलिंगप्पा बनाम मुदिबसप्पा**¹⁵ के मामले में विशेष रूप से पैराग्राफ संख्या 23 एवं 24 में इस प्रकार ध्यान दिया गया है:-

"23. अब हम शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णय अर्थात् इस न्यायालय के कृष्ण राव बनाम शंकरगौणा¹⁶ के मामले के निर्णय पर ध्यान

दे सकते हैं। उपरोक्त मामले में इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 139 की जांच की गई। उपरोक्त मामले में, अभियुक्त की ओर से एकमात्र बचाव यह था कि चेक अपीलकर्ता द्वारा चुरा लिया गया था। उक्त बचाव को ट्रायल कोर्ट ने खारिज कर दिया था। पैरा 21 से 23 में, निम्नलिखित निर्धारित किया गया था: (एससीसी पृष्ठ 173-74)

21.....

22.....

27. अधिनियम की धारा 139 विपरीत दायित्व क्लाइज का एक उदाहरण है जिसे आगे बढ़ाने में शामिल किया गया है परक्राम्य लिखत की विश्वसनीयता में सुधार करना विधायी उद्देश्य है। जबकि अधिनियम की धारा 138के संबंध में चेक का अनादर करना एक मजबूत आपराधिक उपाय निर्दिष्ट करता है, नीचे खंडनयोग्य अनुमान मुकदमे के दौरान धारा 139 के तहत अनुचित देरी को रोकने के लिए एक उपकरण है। हालाँकि, यह याद रखना चाहिए कि धारा 138 द्वारा दंडनीय अपराध बेहतर हो सकता है चेक के बाउंस होने के

15 (2019) 5 SCC 418

16 (2018) 8 SCC 165 : (2018) 4 SCC (Civ) 37 : (2018) 3 SCC (Cri) 544

बाद से इसे एक नियामक अपराध के रूप में वर्णित किया गया है चेक काफी हद तक वाणिज्यिक लेनदेन में एक सिविन त्रुटि की प्रकृति में है इसका प्रभाव आम तौर पर इसमें शामिल निजी पक्षों तक ही सीमित होता है। ऐसे में का परीक्षण आनुपातिकता को निर्माण का मार्गदर्शन करना चाहिए और रिवर्स ओनस क्लॉज और प्रतिवादी की व्याख्या अभियुक्त से अनुचित अपराध करने की प्रमाण का मानक की अपेक्षा नहीं की जा सकती।"

23. अभियुक्त द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। अभियोजन पक्ष, नोटिस के जवाब में यह बताया गया कि चेक चोरी हो गया है नीचे की दो अदालतों द्वारा खारिज किए जाने के बाद, हम उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष पर पहुंचने का कोई आधार नहीं देखते हैं कि आरोपी ऋण के अस्तित्व के संबंध में न्यायालय का मन या देयता के सम्बन्ध में संदेह पैदा करने में सफल रहा है। पीडब्लू 1 के साक्ष्य पर धारा 139 के तहत अनुमान का खंडन कैसे किया

जा सकता है, यह स्वयं उच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट नहीं किया गया है।

24. उपरोक्त किशन राव¹⁷ का मामला एक ऐसा मामला था जहां इस न्यायालय ने अभियुक्त द्वारा उठाए गए बचाव को संभावित नहीं पाया। एकमात्र बचाव यह था कि चेक चोरी हो गया था, विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और उच्च न्यायालय द्वारा कोई विपरीत राय व्यक्त नहीं की गई थी, इस न्यायालय ने दोषसिद्धि को बहाल करने के उच्च न्यायालय के फैसले को पलट दिया। प्रतिवादी उक्त निर्णय का कोई लाभ नहीं ले सकता, जो उसके अपने तथ्यों पर था।"

(प्रभाव वर्धित)

19. चोरी हुए चेक से संबंधित हुये **रंजीत बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और दुसरी**¹⁸ के मामले को इस न्यायालय द्वारा विस्तृत रूप से निस्तारित किया गया है जिसमें आवेदक की ओर से चेक चोरी होने के आधार पर शिकायत की सुनवाई योग्य न होने के संबंध में दी गई

17 Kishan Rao v. Shankargouda, (2018) 8 SCC 165 : (2018) 4 SCC (Civ) 37 : (2018) 3 SCC (Cri) 544

18 (2020)03-05ILR A1752 : Application U/s 482 No. 47282 of 2019, Order dated 31.01.2020.

दलील खारिज कर दी गई है। जहाँ तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए निर्णयों का संबंध है, वे वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं क्योंकि आवेदक को इस तथ्य की अच्छी तरह से जानकारी थी कि वह एक खाते से ऋण या देनदारी के भुगतान के लिए चेक जारी कर रहा है, जो अवरुद्ध है। जिसकी जानकारी शिकायतकर्ता को नहीं थी।

20. स्थापित कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि ऊपर देखा गया है, यह स्पष्ट है कि इस स्तर पर, केवल प्रथम दृष्टया मामला देखा जा सकता है और शिकायत को दहलीज पर नहीं फेंका जा सकता है और नोटिस की विवादित सेवा के तथ्य पर निर्णय की आवश्यकता है साक्ष्य के आधार पर और ऐसा केवल विचारण न्यायालय द्वारा ही किया और सराहा जा सकता है।

21. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई सभी दलीलें तथ्यात्मक विवादित प्रश्न हैं। इसलिए, जब तथ्यों को साक्ष्य के माध्यम से स्थापित किया जाना है, तो यह न्यायालय सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए ऐसी कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। इसलिए, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कार्यवाही को रद्द करने का कोई आधार नहीं बनता है।

22. ऊपर की गई चर्चाओं के आधार पर, यह न्यायालय पाता है कि नीचे संबंधित न्यायालय

द्वारा पारित दिनांक 05.04.2022 के सम्मन आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है। इसलिए, इस स्तर पर किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

23. उपरोक्त के मद्देनजर, तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है।

24. इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल इस आदेश को अध्यक्ष, बार काउंसिल ऑफ उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद; अध्यक्ष, हाई कोर्ट बार एसोसिएशन, इलाहाबाद और सचिव, हाई कोर्ट बार एसोसिएशन, इलाहाबाद, को पैराग्राफ संख्या 3 से 6 में व्यक्त सुझावों से अवगत कराते हुए सूचित करेंगे।

(2023) 4 ILRA 444

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी,
आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या
833/2023

राजेंद्र अग्रवाल उर्फ बब्लू ... आवेदक
बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य ... विपक्षीगण
अधिवक्ता आवेदक: श्री विजित सक्सेना, श्री
राकेश कुमार पांडे

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए

(ए) दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 -
धारा 354, 376(डॉ)(बी), 323, 328, 506,
366ए एवं 120बी - लैंगिक अपराधों से बालकों

का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 5/6 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 एवं 164 - किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 "देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बालक" - धारा 29, 30, 31, किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 27, धारा 110(1), उत्तर प्रदेश किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियमावली, 2019 - नियम 16, 17 एवं 35।

आवेदक (पीड़िता के पिता) के विरुद्ध गंभीर आरोप लगाए गए हैं - जिससे पिता और बेटी (पीड़िता, नाबालिग लड़की) के पवित्र रिश्ते को धोखा मिला है - अभियोजन पक्ष की कहानी को पीड़िता ने बढ़ा-चढ़ाकर बताया है - एफआईआर और बयानों में पीड़िता के तथ्य एक जैसे थे - लेकिन वे घटना की एक भी जगह और घटना की तारीख/महीने के बारे में बताने में असमर्थ थे - पीड़िता की मां द्वारा विरोध करने या एफआईआर दर्ज कराने में विफलता से यह असंभव लगता है - सह-अभियुक्त को बलात्कार के गंभीर आरोप के लिए जमानत दी गई। (पैरा 11,12,13)

निर्णय:- सभी सह-अभियुक्त को जमानत दे दी गई, जिनके खिलाफ बलात्कार का गंभीर आरोप लगाया गया था। न्यायालय ने आवेदक को भी जमानत देने का निर्णय लिया। (पैरा-13)

जमानत आवेदन स्वीकृत। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य., (2022)3 SCC 501
2. बृजमणि देवी बनाम पप्पू कुमार, (2022) 4 एससीसी 497

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक-राजेंद्र अग्रवाल उर्फ बबलू ने धारा 354, 376 (डी) (बी), 323, 328, 506, 366ए, 120बी आईपीसी एवं 5/6 पाँक्सो एक्ट के तहत, थाना कोतवाली ललितपुर, जिला ललितपुर, मुकदमा अपराध संख्या 860/2021 में अपर सत्र/विशेष न्यायाधीश (पाँक्सो एक्ट), ललितपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.01.2022 द्वारा उसकी जमानत अर्जी खारिज होने के बाद, इसमें जमानत बढ़ाने की मांग करते हुए वर्तमान जमानत याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

2. वर्तमान मामले में पीड़िता, लगभग 17 वर्ष की नाबालिग लड़की द्वारा प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी। उन्होंने बताया कि कैसे उन्हें कई वर्षों तक यौन उत्पीड़न का सामना करना पड़ा, जिसकी शुरुआत तब हुई जब वह छोटी कक्षा की छात्रा थीं। उसके साथ दुष्कर्म करने वाला पहला अपराधी उसका पिता (आवेदक) था, जिसने उसके बाद न केवल उसके साथ बार-बार बलात्कार किया, बल्कि उसे वेश्यावृत्ति रैकेट में भी डाल दिया।

3. एफआईआर में पीड़िता ने बताया है कि कैसे उसके पिता ने खुद उसे दूसरे लोगों के

सामने पेश किया, जिन्होंने उसके साथ रेप किया। पीड़िता ने यह भी बताया कि उसके रिश्तेदारों (चाचा) ने भी उसके साथ बलात्कार किया और उसके परिवार की महिलाओं ने बलात्कार की वारदात को अंजाम देने में उनकी मदद की। पीड़िता और उसकी मां को नशीला पदार्थ दिया गया। पीड़िता ने कुल मिलाकर 25 लोगों को आरोपी बनाया है, जिनमें उसके पिता, करीबी रिश्तेदार, उसके पारिवारिक मित्र और उसके परिवार के अन्य व्यक्ति और महिलाएं शामिल हैं, जिन्होंने अपराध में मदद की। वह उपरोक्त अपराधों के बारे में पहले खुलासा नहीं कर पाई थी क्योंकि उसकी मां, छोटे भाई और बहन को नुकसान पहुंचाने की बार-बार धमकियां मिल रही थीं।

4. आवेदक के विद्वान वकील श्री विजित सक्सैना ने कहा कि प्रथम दृष्टया पीड़िता की कहानी न केवल मनगढ़ंत बल्कि असंभव भी प्रतीत होती है। यह कल्पना से परे होगा कि पीड़िता के साथ उसके पिता, उसके करीबी रिश्तेदारों द्वारा बार-बार बलात्कार किया गया और आवेदक ने उसे वेश्यावृत्ति में डाल दिया और यह कई वर्षों तक चलता रहा। पीड़ित ने कभी भी कोई चिंता नहीं जताई, पुलिस को फोन नहीं किया या पुलिस अधिकारियों के समक्ष मामले की सूचना नहीं दी। विद्वान वकील ने आगे कहा कि एफआईआर की सामग्री सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत दर्ज पीड़िता के बयानों में सुसंगत है। साथ ही चिकित्सा अधिकारी और बाल कल्याण समिति के सदस्यों के समक्ष दिए गए बयान में, उसने अपने बयानों में एक भी तारीख का उल्लेख नहीं किया है, जबकि कथित तौर पर

कम से कम 6-7 वर्षों की लंबी अवधि के दौरान कई दिनों तक उसके साथ बार-बार बलात्कार किया गया था।

5. विद्वान वकील ने आगे कहा कि आवेदक को छोड़कर, इस न्यायालय ने विभिन्न समन्वय पीठों द्वारा अन्य सभी सह-अभियुक्तों को जमानत दे दी है। मेडिकल जांच में पीड़िता के मामले का समर्थन नहीं किया गया है। आवेदक को झूठा फंसाया गया था और झूठे फंसाने का कारण यह है कि पीड़िता की मां पारिवारिक संपत्ति में रुचि रखती है। विद्वान वकील ने आगे कहा कि कुछ आरोपी व्यक्तियों ने धारा 482 सीआरपीसी के तहत संबंधित आवेदन दायर करके आरोप पत्र, संज्ञान आदेश और सम्मन आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। और इस न्यायालय ने अंतरिम सुरक्षा प्रदान की है कि इसमें आवेदकों के खिलाफ कोई कठोर कदम नहीं उठाया जाएगा।

6. विद्वान वकील ने यह भी कहा कि बाद में पीड़िता की मां ने आवेदक (उसके पति) के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई थी कि कई साल पहले उसका अपहरण कर लिया गया था और उससे शादी करने के लिए मजबूर किया गया था।

7. उपर्युक्त प्रस्तुतीकरण का राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान एजीए श्री परितोष मालवीय ने विरोध किया है। उन्होंने कहा कि एक नाबालिग लड़की का कई वर्षों तक कई व्यक्तियों द्वारा यौन उत्पीड़न किया गया। पीड़िता को देह व्यापार में झोंकने की साजिश

रची गई। एक नाबालिग लड़की, जो इतनी दर्दनाक आपबीती से गुज़री है, संभव है कि वह अपराध की तारीख और समय बताने में सक्षम न हो, लेकिन इससे अपराध की गंभीरता कम नहीं होगी। अन्य कारण यह भी हैं कि उसे हमेशा नशीला पदार्थ दिया जाता था और धमकी भी दी जाती थी कि अगर किसी ने रिपोर्ट की तो उसकी मां, छोटे भाई और बहन को नुकसान पहुंचाया जाएगा। हालाँकि, विद्वान एजीए ने इस बात पर विवाद नहीं किया है कि अन्य सह-अभियुक्तों को जमानत दे दी गई है, हालाँकि उन्होंने प्रस्तुत किया है कि जमानत आदेशों में दिए गए कारण सुप्रीम कोर्ट द्वारा **मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य(2022)3 एससीसी 501 और बृजमानी देवी बनाम पप्पू कुमार (2022) 4 एससीसी 497** में पारित निर्णयों के संदर्भ में नहीं हैं।

8. इस मामले की सुनवाई के दौरान, कोर्ट ने पीड़िता के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने के लिए अध्यक्ष, बाल कल्याण समिति, ललितपुर को बुलाया है। श्री राज कुमार जैन, अध्यक्ष, बाल कल्याण समिति, ललितपुर इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और कहा कि पीड़िता को मनोवैज्ञानिक परामर्श के लिए एक विकल्प दिया गया था, हालांकि, उसने इनकार कर दिया और साथ ही उसने सहायक व्यक्तियों से भी इनकार कर दिया, हालांकि उसका बयान दर्ज किया गया था। उन्हें वित्तीय सहायता भी प्रदान की गई और वर्तमान में वह स्नातक की छात्रा हैं।

9. उपरोक्त अभ्यास इस उद्देश्य से किया गया था कि उपरोक्त संदर्भित आरोपों के आधार पर, जो बहुत गंभीर हैं, पीड़िता को कई वर्षों तक मानसिक आघात सहना पड़ा होगा और इसके लिए उसे उचित परामर्श की आवश्यकता है। वर्तमान मामले में यह प्रदान किया गया था लेकिन उसने सहायक व्यक्ति के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया है। बाल कल्याण समिति द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों में पीड़िता द्वारा बाल कल्याण समिति के समक्ष दिया गया बयान शामिल है, जिसमें एफआईआर में लगाए गए आरोप, धारा 161 और 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए बयान शामिल हैं। वह पूरी तरह से समर्थित थे, इसलिए, अदालत इस आधार पर इस जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए आगे बढ़ी कि पीड़िता का बयान अभी भी वही है, भले ही वह अब एक बालिग लड़की है।

10. इसमें कोई विवाद नहीं है कि कई सह-आरोपियों को जमानत दी गई है और कुछ आरोपी व्यक्तियों ने आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा भी खटखटाया है, जिसमें आवेदकों को अंतरिम सुरक्षा प्रदान की गई है। मैंने इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित जमानत आदेशों का भी अवलोकन किया है, जिसके तहत सह-अभियुक्तों को जमानत दी गई है। हालाँकि कुछ आदेश बहुत विस्तृत प्रतीत होते हैं, लेकिन कोई कारण नहीं दिया गया है, जैसा कि **मनोज कुमार खोखर (उपरोक्त)** और **बृजमणि देवी (उपरोक्त)** मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित निर्णयों के

अनुसार अपेक्षित है। इसलिए, समता की दलील स्वीकार नहीं की जा सकती और अदालत गुणदोष के आधार पर इस जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए आगे बढ़ेगी।

11. आवेदक का पीड़िता के साथ संबंध विवादित नहीं है कि वह पीड़िता का पिता है। पीड़िता के बयान के अनुसार, जो कि एफआईआर और सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत बयानों में सुसंगत रहा, पहला कथित अपराधी उसके पिता (आवेदक) थे, जब वह छठी कक्षा की छात्रा थी और उसने उसके बाद भी अपराध दोहराया और इसके अलावा उसने कथित तौर पर पीड़िता को अन्य व्यक्तियों के साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए मजबूर किया। सह-आरोपियों ने कथित तौर पर उसके पिता की सहमति से उसके साथ बलात्कार किया और यहां तक कि उसके करीबी रिश्तेदारों और अन्य व्यक्तियों ने भी उसके साथ बलात्कार किया। इसलिए, आवेदक के खिलाफ आरोप बहुत गंभीर हैं क्योंकि कथित तौर पर उसने पिता और बेटी के पवित्र रिश्ते को धोखा दिया है।

12. फिर भी आवेदक के विद्वान वकील के तर्क में दम है कि पीड़िता द्वारा अभियोजन की कहानी का वर्णन अतिरंजित प्रतीत होता है। पीड़िता ने कई वर्षों के दौरान कई लोगों द्वारा बलात्कार की घटनाओं के बारे में बताया है। हालाँकि, वह घटना की एक भी जगह और साथ ही घटना की एक भी तारीख या महीना बताने में सक्षम नहीं थी। अदालत इस बात से अवगत है कि पीड़िता के तथ्यों का वर्णन उसके द्वारा दर्ज की गई एफआईआर और

धारा 161 और 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए बयानों में सुसंगत रहा है, हालाँकि, असंभवता का एक कारक भी सामने आता है, जब पीड़िता की मां के आचरण पर विचार किया जाता है कि वह उन्होंने विरोध करने या कोई एफआईआर दर्ज करने का कोई प्रयास नहीं किया, जबकि उन्हें पता था कि उनकी बेटी कई वर्षों से यौन उत्पीड़न से गुजर रही थी।

13. उपरोक्त के अलावा, एक और कारक है जिस पर विचार करने की आवश्यकता है कि इस न्यायालय द्वारा उन सभी सह-अभियुक्तों को जमानत दे दी गई है जिनके खिलाफ बलात्कार का बहुत गंभीर आरोप लगाया गया था। इन परिस्थितियों में, अदालत आवेदक को भी जमानत देने की इच्छुक है।

14. हालाँकि, आवेदक को निर्देश दिया जाता है कि वह ट्रायल के दौरान जब भी ट्रायल कोर्ट द्वारा आवश्यक हो, प्रत्येक तारीख पर उपस्थित रहे और यदि अस्पष्ट आधार पर छूट के लिए कोई आवेदन दायर किया जाता है, तो यह ट्रायल कोर्ट के लिए तुरंत जमानत रद्द करने का आधार होगा।

15. आवेदक-राजेंद्र अग्रवाल उर्फ बबलू को उपरोक्त मामले में न्याय हित के लिए निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए व्यक्तिगत बांड और समान राशि की दो-दो जमानतें प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाए।:-

- (i) आवेदक अभियोजन साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा और

- पीड़ित/शिकायतकर्ता को किसी भी तरह से नुकसान या परेशान नहीं करेगा।
- (ii) आवेदक को इस आशय का एक शपथ पत्र दाखिल करना होगा कि वह मुकदमे में तय की गई तारीख पर उपस्थिति से कोई स्थगन या छूट नहीं मांगेगा। इस शर्त में चूक के मामले में, ट्रायल कोर्ट के लिए यह खुला होगा कि वह इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग माने और कानून के अनुसार आदेश पारित करे।
- (iii) आवेदक किसी भी तरह से जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा। यदि आवेदक मुकदमे के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए सीआरपीसी की धारा 82 के तहत उद्घोषणा जारी की जा सकती है और यदि आवेदक ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो, ट्रायल कोर्ट धारा 174-ए आईपीसी के तहत कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्यवाही शुरू करेगा।
- (iv) ट्रायल कोर्ट हर संभव प्रयास कर सकता है और यदि कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है, तो आवेदक की रिहाई के छह महीने की अवधि के भीतर, अधिमानतः मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त करने का प्रयास कर सकता है।
- (v) आवेदक ट्रायल कोर्ट को पूर्व सूचना देकर वर्तमान मामले के उद्देश्य को छोड़कर, आज से छह महीने की अवधि के लिए जिला ललितपुर के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करेगा और इस बीच, ट्रायल कोर्ट को पीड़ित का बयान दर्ज करने का निर्देश दिया जाता है।
16. जमानतदारों की पहचान, स्थिति और आवासीय प्रमाण को संबंधित न्यायालय द्वारा सत्यापित किया जाएगा और ऊपर उल्लिखित किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले में, संबंधित न्यायालय जमानत रद्द करने और आवेदक को जेल भेजने के लिए स्वतंत्र होगा।
17. जमानत प्रार्थना पत्र स्वीकार किया जाता है।
18. यह स्पष्ट किया जाता है कि यहां ऊपर की गई टिप्पणियां केवल वर्तमान जमानत आवेदन पर फैसला देने के उद्देश्य से हैं।
19. इस फैसले से अलग होने से पहले, मैं बाल कल्याण समिति के कर्तव्यों, जिम्मेदारियों और वैधानिक स्थिति से निपटने का प्रस्ताव करता हूं।
20. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (इसके बाद "जेजे अधिनियम, 2000" के रूप में संदर्भित) के अध्याय III के तहत "देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे" शीर्षक के तहत, बाल

कल्याण समिति की अवधारणा पेश किया गया था।

21. जेजे एक्ट, 2000 की धारा 29 में बाल कल्याण समिति के गठन का वर्णन है। धारा 30 समिति के संबंध में प्रक्रिया आदि प्रदान करती है। धारा 31 समिति की शक्तियाँ प्रदान करती है कि समिति के पास बच्चों की देखभाल, सुरक्षा, उपचार, विकास और पुनर्वास के साथ-साथ उनकी बुनियादी जरूरतों और मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए मामलों के निपटान का अंतिम अधिकार होगा। इन प्रावधानों को किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (इसके बाद "जेजे अधिनियम, 2015" के रूप में संदर्भित किया गया है) में धारा 27 से अध्याय V के तहत लगभग दोहराया गया है।

22. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 110 की उपधारा (1) के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा भारत सरकार द्वारा बनाए गए मॉडल नियमों के अनुरूप उत्तर प्रदेश किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2019 (इसके बाद "जे जे नियम, 2019" के रूप में संदर्भित) तैयार किया गया है।

23. बाल कल्याण समिति के संबंध में नियम जेजे अधिनियम, 2019 के अध्याय IV में उल्लिखित हैं। नियम 16 समिति के नियम और प्रक्रिया प्रदान करता है और नियम 17 समिति के अतिरिक्त कार्य और जिम्मेदारियाँ प्रदान करता है। उक्त नियम इसके बाद पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

"16. समिति के नियम एवं प्रक्रियाएँ.-

(1) समिति के अध्यक्ष एवं सदस्यों को बैठक भत्ता, यात्रा भत्ता एवं कोई अन्य भत्ता, जो राज्य सरकार निर्धारित करे, भुगतान किया जायेगा परन्तु 1500 रुपये प्रति बैठक (एक हजार और पांच सौ) से कम नहीं होगा।

(2) समिति द्वारा मौजूदा बाल देखभाल संस्थान का दौरा समिति की बैठक माना जाएगा।

(3) समिति अपनी बैठकें बाल गृह के परिसर में या बाल गृह के निकट किसी स्थान पर या देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों के लिए अधिनियम के तहत संचालित किसी संस्थान में उपयुक्त परिसर में आयोजित करेगी।

(4) समिति यह सुनिश्चित करेगी कि जब सत्र चल रहा हो तो मामले से असंबद्ध कोई भी व्यक्ति कमरे में मौजूद न रहे।

(5) समिति यह सुनिश्चित करेगी कि बैठक के दौरान केवल उन्हीं व्यक्तियों को उपस्थित रहने की अनुमति दी जाएगी जिनकी उपस्थिति में बच्चा सहज महसूस करता है।

(6) समिति का कम से कम एक सदस्य आपातकालीन स्थिति के किसी भी मामले का संज्ञान लेने और जिले

की विशेष किशोर पुलिस इकाई या स्थानीय पुलिस को आवश्यक निर्देश जारी करने के लिए हमेशा उपलब्ध या सुलभ रहेगा। इस प्रयोजन के लिए समिति के अध्यक्ष समिति के सदस्यों का एक मासिक ड्यूटी रोस्टर तैयार करेंगे जो रविवार और छुट्टियों सहित हर दिन उपलब्ध और पहुंच योग्य होंगे। रोस्टर को सभी पुलिस स्टेशनों, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट/मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, जिला न्यायाधीश, जिला मजिस्ट्रेट, बोर्ड, जिला बाल संरक्षण इकाई और विशेष किशोर पुलिस इकाई को अग्रिम रूप से प्रसारित किया जाएगा।

(7) समिति सभी कार्य दिवसों पर मजिस्ट्रेट न्यायालय के कार्य घंटों के अनुरूप कम से कम छह घंटे बैठेगी, जब तक कि किसी विशेष जिले में लंबित मामले कम न हों और संबंधित राज्य सरकार इस संबंध में आदेश जारी न करे:

बशर्ते कि राज्य सरकार जिले के लंबित मामलों, जनसंख्या घनत्व या कोई अन्य विचार, क्षेत्र या इलाके पर उचित विचार करने के बाद आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना द्वारा एक जिले में एक से अधिक समितियों का गठन कर सकती है।

(8) देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले किसी बच्चे या बच्चों

के बारे में जानकारी प्राप्त होने पर, जिसे समिति के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, समिति उस बच्चे या बच्चों तक पहुंचेगी और ऐसे स्थान पर अपनी बैठक आयोजित करेगी जो ऐसे बच्चे या बच्चों के लिए सुविधाजनक हो।

(9) समिति के सदस्य बच्चे के साथ संवाद करते समय अपने आचरण के माध्यम से बाल मैत्रीपूर्ण तकनीकों का उपयोग करेंगे।

(10) समिति अपनी बैठकें बच्चों के अनुकूल परिसर में आयोजित करेगी जो किसी भी तरह से अदालत कक्ष की तरह नहीं दिखेगी और बैठने की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि समिति बच्चे के साथ आमने-सामने बातचीत कर सके।

(11) समिति ऊंचे मंच पर नहीं बैठेगी और समिति और बच्चों के बीच गवाह बक्से या बार जैसी कोई बाधा नहीं होगी। (12) समिति को राज्य सरकार द्वारा बुनियादी ढाँचा और स्टाफ उपलब्ध कराया जाएगा।

"17. समिति के अतिरिक्त कार्य और जिम्मेदारियाँ। - अधिनियम की धारा 30 के तहत समिति के कार्यों और जिम्मेदारियों के अलावा, समिति अधिनियम के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित कार्य करेगी, अर्थात्:

- (I) फॉर्म 15 में समिति द्वारा निपटाए गए प्रत्येक मामले के केस सारांश के साथ विस्तृत केस रिकॉर्ड का दस्तावेजीकरण और रखरखाव करना;
- (II) बच्चों और वयस्कों के इनपुट को प्रोत्साहित करने के लिए समिति के परिसर में एक प्रमुख स्थान पर एक सुझाव बॉक्स या शिकायत निवारण बॉक्स बनाए रखें, जिसे जिला मजिस्ट्रेट या उसके नामित व्यक्ति द्वारा संचालित किया जाएगा;
- (III) उक्त बाल देखभाल संस्थानों के मामलों और प्रबंधन में बच्चों की भागीदारी को साकार करने के लिए, अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों के लिए बाल देखभाल संस्थानों में बाल समितियों के सुचारू कामकाज को सुनिश्चित करना;
- (IV) महीने में कम से कम एक बार बच्चों की सुझाव पुस्तिका की समीक्षा करें;
- (V) मामलों के निपटारे की प्रकृति, लंबित मामलों और ऐसे लंबित होने के कारणों पर सभी प्रासंगिक विवरणों के साथ जिला मजिस्ट्रेट को प्राप्त देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों के बारे में फॉर्म 16 में त्रैमासिक जानकारी भेजें;
- (VI) जहां भी आवश्यक हो, देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों की प्रगति की निगरानी के लिए उन्हें फॉर्म 14 में पुनर्वास कार्ड जारी करें;
- (VII) एक रजिस्टर में निम्नलिखित रिकॉर्ड बनाए रखें:

(ए) एक दिन और अगली तारीख में सूचीबद्ध मामलों की प्रविष्टियां और समिति उसके समक्ष मामलों की एक दैनिक वाद सूची तैयार करेगी;

(बी) समिति के समक्ष लाए गए बच्चों की प्रविष्टियां और विवरण और बाल देखभाल संस्थान का विवरण जहां बच्चों को रखा गया है या वह पता जहां बच्चों को भेजा गया है;

(सी) बांड का निष्पादन;

(डी) संस्थानों के दौरे सहित संचलन;

(ई) गोद लेने के लिए कानूनी रूप से स्वतंत्र घोषित बच्चे;

(एफ) प्रायोजन के लिए अनुशंसित या रखे गए बच्चे;

(जी) व्यक्तिगत या समूह पालन-पोषण देखभाल में रखे गए बच्चे;

(एच) किसी अन्य समिति को हस्तांतरित या प्राप्त बच्चे;

(आई) जिन बच्चों का फॉलोअप किया जाना है;

(जे) पश्चातवर्ती देखभाल में रखे गए बच्चे;

(के) समिति का निरीक्षण रिकॉर्ड;

(एल) समिति की बैठकों के कार्यवृत्त का रिकॉर्ड;

(एम) प्राप्त और भेजा गया पत्राचार;

(एन) कोई अन्य रिकॉर्ड या रजिस्टर जिसकी समिति को आवश्यकता हो।

(viii) इस नियम के खंड (vii) में सूचीबद्ध सभी जानकारी को डिजिटल किया जा सकता है और राज्य सरकार द्वारा एक सॉफ्टवेयर विकसित किया जा सकता है।

24. बाद में किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियम, 2016 के नियम 15 में दिनांक 01.09.2022 से कुछ संशोधन हुए जिसको, अभी भी जेजे नियम, 2019 में शामिल किया जाना है।

25. समिति की उपर्युक्त प्रक्रिया और समिति के अतिरिक्त कार्यो और जिम्मेदारियों ने बाल कल्याण समिति को एक बड़ी जिम्मेदारी सौंपी है कि वह अपनी बैठके बाल गृह के परिसर में या बाल गृह के निकट किसी स्थान पर आयोजित करेगी। देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों के लिए अधिनियम के तहत संचालित किसी भी संस्थान में उपयुक्त परिसर। इसमें आगे प्रावधान है कि यह सुनिश्चित किया जाएगा कि जब सत्र चल रहा हो तो मामले से असंबद्ध कोई भी व्यक्ति या व्यक्ति कमरे में मौजूद न रहे और केवल उन्हीं व्यक्तियों को उपस्थित रहने की अनुमति दी जाएगी, जिनकी उपस्थिति में बच्चा सहज महसूस करता है। समिति अपनी बैठके बच्चों के अनुकूल परिसर में आयोजित करेगी जो किसी भी तरह से कोर्ट रूम जैसा नहीं लगेगा। समिति को माह में कम से कम एक बार बाल सुझाव पुस्तिका की समीक्षा करनी होगी।

26. बाल कल्याण समिति की अवधारणा जेजे अधिनियम, 2015 और जेजे नियम, 2019 के कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण कारक है। वर्तमान मामले में आरोपों की गंभीरता को देखते हुए, पीड़ित को एक अनुभवी परामर्शदाता द्वारा एक बहुत ही विशेष और प्रभावी परामर्श की आवश्यकता होती है।

27. उपर्युक्त वैधानिक प्रावधानों की पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट है कि बाल कल्याण समिति की एक बड़ी जिम्मेदारी है जब वह नाबालिग पीड़ित लड़की के मामले से निपट रही है, जिसे कई साल तक बार-बार हमले के मानसिक और शारीरिक आघात का सामना करना पड़ा है। ऐसे मामलों में उपरोक्त वैधानिक प्रावधानों का अनुपालन करना बाल कल्याण समिति की मात्र औपचारिकता नहीं होगी, बल्कि इसके लिए अधिक सतर्क दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी। ऐसे मामलों में पीड़ित के साथ अतिरिक्त देखभाल और जिम्मेदारी से पेश आना चाहिए और इसके लिए बाल कल्याण समिति के सदस्यों को एक प्रशिक्षित सहायता प्रणाली की आवश्यकता है, जो ऐसे पीड़ितों की पीड़ा को ध्यान में रखते हुए उनकी काउंसलिंग कर सके।

28. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर) ने बाल कल्याण समिति के लिए एक प्रशिक्षण मॉड्यूल लॉन्च किया है। यदि इसमें यौन उत्पीड़न के नाबालिग पीड़ितों से निपटने के लिए अपेक्षित प्रशिक्षण शामिल है तो मॉड्यूल अधिक लाभकारी होगा।

29. बलात्कार के कृत्य/अपराध का प्रभाव क्षणिक नहीं होता बल्कि यह पीड़िता के मन, हृदय, शरीर और आत्मा पर अंकित हो जाता है और ऐसी स्मृतियों को काउंसलिंग के माध्यम से मिटाने का प्रयास करना बाल कल्याण समिति का उद्देश्य है और ऐसा अच्छी तरह से प्रशिक्षित परामर्शदाताओं द्वारा किया जाना चाहिए, जिनके पास उचित मार्गदर्शन के तहत

ऐसे नाबालिग पीड़ितों का इलाज करने का अनुभव है।

30. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को अपने सचिव के माध्यम से बाल कल्याण समिति और उसके सदस्यों को और अधिक सक्षम बनाने के लिए सभी हितधारकों के साथ बातचीत की प्रक्रिया शुरू करके उपरोक्त मुद्दे पर विचार करने का निर्देश दिया गया है। ऐसे मामलों से निपटने के लिए अधिक जिम्मेदार, अधिक उदार और अधिक दयालु होना होगा, जैसा कि वर्तमान मामला है।

31. उपरोक्त अभ्यास करते समय यह जेजे नियम, 2019 के नियम 35 के प्रावधानों को भी ध्यान में रखेगा जो बाल देखभाल संस्थान में बच्चों के लिए मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसके उप-नियम (5) में प्रावधान है कि प्रत्येक संस्थान बच्चों के लिए विशिष्ट और नियमित व्यक्तिगत चिकित्सा के लिए प्रशिक्षित परामर्शदाताओं की सेवाएँ या बाल मार्गदर्शन केंद्र, मनोविज्ञान और मनोरोग विभाग या समान सरकारी और गैर-सरकारी एजेंसियों जैसी बाहरी एजेंसियों के साथ सहयोग किया जाएगा।

32. उपरोक्त अभ्यास का उद्देश्य नाबालिग पीड़ित को ईमानदारी से और उचित परामर्श प्रदान करना है और अभ्यास उपरोक्त टिप्पणियों तक सीमित नहीं होगा। इस न्यायालय की उपर्युक्त टिप्पणियों को प्राप्त

करने के लिए एक ठोस योजना बनाना विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों पर निर्भर है।

33. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को इस आदेश की एक प्रति सचिव, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को भेजने का निर्देश दिया जाता है जो उपरोक्त कार्यवाही करेंगे और इस न्यायालय के समक्ष इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे।

34. सचिव, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के अवलोकन के लिए इस मामले को छह महीने के बाद उचित पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करें।

(2023) 4 ILRA 451

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

आपराधिक विविध द्वितीय जमानत आवेदन

संख्या 51332 / 2022

अंकित कुमार यादव

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य।

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: डॉ. डी.बी. सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री सुनील श्रीवास्तव,
ए.जी.ए.

(ए) आपराधिक कानून- द्वितीय जमानत - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 302 और 201 - प्रथम जमानत आवेदन तर्कपूर्ण आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया - सह-आरोपी को

जमानत दे दी गई - बाद की घटना - आवेदक 03.03.2022 से जेल में है - आज तक आरोप तय नहीं किए गए - निर्वहन के लिए आवेदन का खुलासा न करके एक महत्वपूर्ण तथ्य को छुपाना - आवेदक और सह-आरोपी को मौके पर गिरफ्तार किया गया - उनकी मोटरसाइकिल से हथौड़ा और फोन बरामद किए गए - 9 सेमी लंबा और 4 सेमी व्यास का सिर - समन्वय पीठ का अवलोकन "आवेदक से विवो मोबाइल फोन की बरामदगी" - झूठा और लगाया गया। (पैरा -2 से 12,16)

निर्णय:- अभिलेख पर उपलब्ध किसी भी सामग्री पर विचार किए बिना अवलोकन का कोई कानूनी परिणाम नहीं होता। तथ्य या कानून की कोई बाद की घटना नहीं है जिस पर वर्तमान दूसरी जमानत याचिका में न्यायालय को विचार करने की आवश्यकता हो। (पैरा - 16,17)

द्वितीय जमानत आवेदन निरस्त (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1396

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी,
द्वारा प्रदत्त)

1. यह आवेदक की ओर से दाखिल दूसरा जमानत आवेदन है जो धारा 302, 201 भा0द0सं0 पुलिस थाना चिल्ह, जिला मिर्जापुर के अधीन मामला अपराध सं0 36

वर्ष 2022 में विचारण का सामना कर रहा है।

2. आवेदक के पहले जमानत आवेदन को इस न्यायालय द्वारा 14-09-2022 को सकारण आदेश द्वारा नामंजूर किया गया था। आदेश में यह उल्लेख किया गया था कि सह अभियुक्त राधेश्याम यादव को आदेश दिनांक 08-07-2022 द्वारा जमानत अनुदत्त किया जाता है। संदर्भ हेतु, इसमें दिये गये कारणों का उल्लेख एतस्मिन् पश्चात् किया जाता है:-

“हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाये गये तर्कों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। बिल्कुल आरंभ में, यह स्पष्ट किया जाता है कि अभियुक्त आवेदक द्वारा अदा की गई भूमिका सह-अभियुक्त राधेश्याम से भिन्न है। अभियुक्त आवेदक के कब्जे से मृतक का मोबाइल फोन बरामद किया गया था तथा इसके अभिकथित प्रकटीकरण कथन पर इसके मोटर साइकिल के डिकी से एक हथौड़ा भी बरामद किया गया था। अभियुक्त ने बताया है कि वंचनापूर्ण उपायों को करते हुए वह अभियुक्त को इस वचन पर पुराने रेलमार्ग के निकट एकांत स्थान पर ले गया था कि वह इसे शराब उपलब्ध करायेगा तथा लड़की भी आयेगी। हथौड़े के निचले भाग पर रक्त भी पाया गया था। इसके प्रकटीकरण पर रक्तरंजित पानी का बोतल भी बरामद किया गया था।

मामले के तथ्यों तथा परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य तथा दण्ड की कठोरता तथा उन तौर तरीकों को दृष्टिगत रखते हुए जिसमें सुनील यादव निकट संबंधी की हत्या जैसा अभिकथित है अभियुक्त द्वारा की गई थी,

मैं इसे जमानत हेतु उपयुक्त नहीं पाता हूँ। तदनुसार आवेदक के जमानत आवेदन को नामंजूर किया जाता है।

3. वर्तमान जमानत आवेदन 03-11-2022 को अर्थात् पहले जमानत आवेदन के नामंजूर किये जाने के 2 माह से कम अवधि के अन्दर दाखिल किया गया था।

4. आवेदन में प्रकथन अधिकांश मामले के गुणावगुण पर है तथा मात्र पश्चातवर्ती घटना यह है कि आवेदक 03-03-2022 से जेल में है, फिर भी, आज की तिथि तक आरोपों को विरचित नहीं किया गया है।

5. इस न्यायालय के निदेश पर, विचारण न्यायालय ने प्रस्थिति रिपोर्ट प्रस्तुत किया है कि मामले को 04-06-2022 को अपर सत्र न्यायाधीश को निर्दिष्ट किया गया था। आवेदक तथा सह अभियुक्त ने उन्मोचन हेतु आवेदनों को दाखिल किया है जिसे 02-03-2023 को खारिज किया गया था एवं तत्पश्चात् उपर्युक्त दिन को धारा 302/34 तथा 201 भा0द0सं0 के अधीन आरोपों को विरचित किया गया था।

6. आवेदक ने नहीं बताया है कि इसने उन्मोचन हेतु आवेदन दाखिल किया है, इसलिए विचारण न्यायालय पर इसलिए दोषारोपण नहीं किया जा सकता है कि आरोप विरचित नहीं किया गया है। यह तात्विक तथ्य का छिपाया जाना है।

7. ऊपर निर्दिष्ट तथ्यों से ऐसा लगता है कि 14-09-2022 को पहला जमानत आवेदन नामंजूर किये जाने के बाद तथा 03-11-2022 को दूसरा जमानत आवेदन दाखिल किये जाने तक, विचारण आवेदक तथा सह-अभियुक्त द्वारा दाखिल उन्मोचन आवेदनों के कारण अग्रसर नहीं हो सका था, इसलिए, इस जमानत आवेदन पर विचार करने के लिए कोई पश्चातवर्ती घटना नहीं है।

8. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता डा0 एस0बी0 सिंह ने गुणावगुण पर तर्क दिया है कि पहले जमानत आवेदन को इसलिए नामंजूर किया गया था कि आवेदक के बताने पर अभिशंसी सामग्रियों को बरामद किया गया था जबकि सह अभियुक्त को जमानत अनुदत्त किया गया था। बरामदगी मिथ्या तथा रोपित थी। विद्वान अधिवक्ता ने **रामानन्द उर्फ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 एससीसी आनलाइन एससी 1396** में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय तथा विशेष रूप से पैरा 53 में भरोसा रखा है कि वर्तमान मामले में बरामदगी पंचनामा उक्त पैरा में वर्णित सभी सुसंगत उद्देश्यों में त्रुटिपूर्ण है। उक्त निर्णय के पैरा 53 को एतस्मिन् पश्चात् उत्कथित किया जाता है:-

“53. यदि अन्वेषण अधिकारी का यह कहना है कि अभियुक्त अपीलार्थी अभिरक्षा में रहने के दौरान अपनी स्वेच्छा तथा इच्छाशक्ति से कथन किया था कि वह उस स्थान की ओर ले जायेगा जहाँ इसने रक्त रंजित कपड़ों के साथ अपराध के हथियार को छिपाया था तब पहली चीज जिसे अन्वेषण अधिकारी को करना चाहिए था स्वयं पुलिस थाना पर दो स्वतंत्र साक्षीगण को बुलाना था। एक बार दो स्वतंत्र साक्षीगण पुलिस थाना पर पहुँच जाते हैं तत्पश्चात् इनके उपस्थिति में अभियुक्त से समुचित कथन करने के लिए कहना चाहिए जैसा वह स्थान बताने के संबंध में चाहता है जहाँ इसने कथित तौर पर अपराध का हथियार छिपाया है। जब अभियुक्त अभिरक्षा में रहते हुए दो स्वतंत्र साक्षीगण (पंच साक्षीगण) के समक्ष इस प्रकार का कथन करता है अभियुक्त द्वारा कहे गये सटीक कथन या बेशक शब्दों को पंचनामा के पहले भाग में सम्मिलित करना चाहिए जिसे अन्वेषण अधिकारी विधि के अनुसार तैयार कर सकता है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के प्रयोजन हेतु पंचनामा के पहले भाग को हमेशा पुलिस थाना में स्वतंत्र साक्षीगण के उपस्थिति में तैयार किया जाता है जिससे विश्वसनीय हो सके कि विशेष कथन अभियुक्त द्वारा उस स्थान को बताने के लिए जहाँ अपराध का हथियार या अपराध के करने में

प्रयुक्त किसी अन्य सामान को छिपाया गया था अपने स्वेच्छा तथा इच्छाशक्ति पर अपनी उत्सुकता को व्यक्त करते हुए किया गया था। एक बार पंचनामा का पहला भाग पूरा हो जाता है तत्पश्चात् पुलिस दल अभियुक्त तथा दो स्वतंत्र साक्षीगण (पंच साक्षीगण) के साथ उस विशेष स्थान के लिए अग्रसर होगा जैसा अभियुक्त द्वारा ले जाया जाता है। यदि उस विशेष स्थान से अपराध के हथियार जैसी कोई चीज या रंजित कपड़े या किसी अन्य सामान को बरामद किया जाता है तब सम्पूर्ण प्रक्रिया का यह हिस्सा पंचनामा का दूसरा भाग बनेगा। इसलिए विधि अन्वेषण अधिकारी से प्रकटीकरण पंचनामा तैयार करने की अपेक्षा करता है जैसा साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अनुध्यात है। यदि हम अन्वेषण अधिकारी के सम्पूर्ण मौखिक साक्ष्य को पढ़ते हैं तब यह स्पष्ट है कि यह मामले के सभी पूर्वोक्त सुसंगत पहलुओं में त्रुटिपूर्ण है।”

9. विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि पूर्वोक्त निर्णय पश्चातवर्ती घटना है तथा यदि बरामदगी मेमो की जांच बरामदगी के मेमो के तैयार किये जाने के पूर्वोक्त विधि से की जाती है, वर्तमान मामले के मेमो का कोई विधिक अभिप्राय नहीं होगा।

10. राज्य के विद्वान अ0शा0अधि0 श्री सुनील श्रीवास्तव ने निवेदन किया है कि चूँकि

पहला जमानत आवेदन गुणावगुण पर खारिज किया गया था, इसलिए, निर्णय के बारे में विचार आदेश के पुनर्विलोकन के समान होगा जो अनुज्ञेय नहीं है तथा इसके लिए आवेदक को उच्चतम न्यायालय के समक्ष आदेश को चुनौती देना है तथा चूँकि विचारार्थ कोई पश्चातवर्ती घटना नहीं है, इसलिए, इस द्वितीय जमानत आवेदन को नामंजूर किया जा सकता है।

11. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने विधि का प्रश्न उठाया है, इसलिए हमने अभिलेख के एक हिस्सा गिरफ्तारी तथा बरामदगी मेमो का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है।

12. गिरफ्तारी मेमो/बरामदगी के अनुसार, आवेदक तथा सह-अभियुक्त को सड़क पर रोका गया था तथा तत्काल गिरफ्तार किया गया था। दोनों अभियुक्त व्यक्तियों ने अपराध के तरीके तथा व्यक्तिगत तलाशी पर इनके मोटर साइकिल से हथौड़ा तथा फोन बरामद किया गया था, इसलिए, वर्तमान मामले में, प्रक्रिया कि पुलिस थाना में दो साक्षीगण के उपस्थिति में अभियुक्त का कथन लेखबद्ध किया जाय कि ये लोग अभिशंसी सामग्री को प्रदर्शित करना चाहते थे, आवश्यक नहीं है। इन्हें पुलिस थाना नहीं ले जाया गया है।

13. मेमो से प्रकट हुआ है कि इतिला देने वाला अरविन्द यादव तथा मृतक का चाचा, विजय कुमार भी गिरफ्तारी के स्थान पर पहुँचा था तथा गिरफ्तारी के स्थान पर अभियुक्त ने कहा है कि ये लोग अन्य अभिशंसी सामग्रियों को बता सकते हैं तथा

साक्षीगण एवं अभियुक्त व्यक्तियों के साथ पुलिस दल उस स्थान पर गया तथा इनके बताने पर अभिशंसी सामानों को बरामद किया गया था। स्वतंत्र साक्षी का न्याय जैसा मेमो में उल्लिखित है। स्कन्द वमी तथा आवेश यादव है, इसलिए, **रामानन्द (उपरोक्त)** के पैरा 53 में उल्लिखित सुसंगत पहलू भी प्रथम दृष्टया पूरा नहीं होता है।

14. उच्चतम न्यायालय ने **रामानन्द (उपरोक्त)** में इसमें अन्वेषण अधिकारी तथा पंच साक्षीगण के परिसाक्ष्य पर विचार किया है तथा केवल तत्पश्चात् अभिनिर्धारित किया कि बरामदगी मेमो साबित नहीं होता है तथा उक्त मामले के अन्य पहलुओं पर भी विचार करने के लिए अग्रसर हुआ था। फिर भी, वर्तमान मामले में, अन्वेषण अधिकारी तथा पंच साक्षीगण के परिसाक्ष्य अभी भी विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना है, इसलिए, इस प्रक्रम पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि बरामदगी का मेमो साबित नहीं होता है या विहित प्रक्रिया, यदि कोई है के प्रतिकूल इसे तैयार किया गया था तथा हमने पहले ही उल्लेख किया है कि प्रथम दृष्टया, रामानन्द (ऊपर) के निर्णय के दृष्टिगत भी गिरफ्तारी मेमो/बरामदगी मेमो में अवैधता नहीं है तथा अन्य पहलुओं पर विचार विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य के आधार पर किया जायेगा।

15. आवेदक से बरामद हथौड़ा 9 सेमी0 लंबा है जिसके व्यास का शीर्ष 4 सेमी0 है। तर्क उठाया गया है कि क्षतियों के प्रकृति को हथौड़ा द्वारा कारित नहीं किया जा सकता है तथा

विदीर्ण घाव 4 सेमी×1.5 सेमी0, 3 सेमी0×1 सेमी0, 4 सेमी0 ×1.5 सेमी0, 3 सेमी0×1 सेमी0, 5 सेमी0×4 सेमी0, 8 सेमी0 ×3 सेमी0 अनुकपाल क्षेत्र रु अस्थिभंग तथा अस्थिभंग के साथ दायें पाशर््विक क्षेत्र पर विदीर्णघाव जो प्रथम दृष्टया हथौड़े के आकार की पुष्टि करता है। 4 चीरा कुंद मानसिक घात द्वारा उत्पन्न चीरा है। बल तथा दिशा जो आकृति, गहराई तथा संबद्ध क्षतियों को निर्धारित करते हैं इस प्रकार के हैं जैसा अस्थिभंग होता है। हथौड़े के प्रहार द्वारा कारित क्षतियाँ विदारण का उदाहरण है, इसलिए, प्रथम दृष्टया उपरोक्त तर्क में भी बल नहीं है।

16. यहाँ यह उल्लेख करना भी सुसंगत है कि समन्वय पीठ ने संप्रेक्षित किया है कि आवेदक से “वीवो मोबाइल फोन की बरामदगी” मिथ्या तथा रोपित है तथा यह मृतक की नहीं है। फिर भी, ऐसा प्रतीत होता है कि यह अभिलेख पर किसी सामग्री के बारे में विचार किये बिना संप्रेक्षण है, इसलिए इसका कोई विधिक परिणाम नहीं है तथा सह अभियुक्त को अभ्यर्पित भूमिका आवेदक को हथौड़ा उपलब्ध कराने तथा शव का विलोपन कारित करने के बारे में है, जबकि वर्तमान आवेदक को अभ्यर्पित भूमिका मृतक को कई क्षतियाँ कारित करने के संबंध में है।

17. उपरोक्त के दृष्टिगत, तथ्य या विधि की कोई पश्चातवर्ती घटना नहीं है जिसे वर्तमान द्वितीय जमानत आवेदन में इस

न्यायालय द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है।

18. द्वितीय जमानत आवेदन को एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 455

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

सिविल पुनरीक्षण संख्या 80 / 2022

श्रीमती ज्योति

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

अंकित दुबे

... विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री गौरव त्रिपाठी

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री पुनीत भदौरिया

क. पारिवारिक कानून - पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 - धाराएं 10(1), 19(1) और 19(5) - सिविल प्रक्रिया संहिता - धारा 115 - पुनरीक्षण - पोषणीयता - संशोधन आवेदन पर पारित आदेश - 'निर्णय' के आवरण वाले अंतरिम आदेश धारा 19 के तहत अपील योग्य है या नहीं - आयोजित, 1984 के अधिनियम की धाराओं 10(1) और 19(5) को एक साथ पढ़ने पर, जो स्थिति उभरती है वह यह है कि पारिवारिक न्यायालय के आदेश से कोई भी पुनरीक्षण सक्षम नहीं है, सिवाय इसके कि जो दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के तहत पारित अंतिम आदेश से उत्पन्न होता है - इसलिए, एक अंतरिम आदेश से व्यथित पक्ष अपील में इसे प्रश्न कर सकता है, यदि इसमें एक निर्णय के आवरण हैं, या यह कहे कि यह पक्षों के अधिकारों की घोषणा करने वाला एक

क्षणिक आदेश है - पारिवारिक न्यायालय के आदेश से व्यथित पक्ष के लिए संहिता की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण का कोई रास्ता नहीं है (पैरा 20, 23 और 24)

संशोधन निरस्त। (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. सुधांशु गुप्ता बनाम कोमल गुप्ता; 2019 (5) Awc 4434
2. श्रीमती राज श्री अग्रवाल @ राम श्री अग्रवाल और अन्य बनाम सुधीर मोहन & अन्य; 2022 (5) आवासी 4192
3. मेजर राजा पी. सिंह बनाम श्रीमती सुरेन्द्र कुमारी; एआईआर 1991 राज 133
4. कनुप्रिया बनाम आशुतोष अग्रवाल; एआईआर 2017 यूटीटी 166
5. श्रीमती किरण बाला श्रीवास्तव बनाम जय प्रकाश श्रीवास्तव; 2005 (23) एलसीडी 1
6. योगीश अरोड़ा बनाम श्रीमती जेनेट योगीश अरोरा @मिस जेनेट डिसूजा; 2018 (9) एडीजे 379
7. सना आफरीन बनाम जोहैब खान; एआईआर 2021 सभी 40

(माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

1. यह सिविल पुनरीक्षण श्रीमती रेनू सिंह अपर प्रधान न्यायाधीश फैमिली कोर्ट इटावा के एक आदेश दिनांक 31 मई, 2022 के विरुद्ध निर्देशित है जो की प्रतिवादी के हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (संक्षेप में, 'एचएमए') की

धारा 13 के तहत तलाक के लिए अपनी याचिका में संशोधन की मांग के आवेदन को स्वीकार करते हुए की गई थी।

2. एच.एम.ए.की धारा 13 के तहत एकमात्र प्रतिवादी अंकित दुबे द्वारा पुनरीक्षणवादी श्रीमती ज्योति दुबे के खिलाफ प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, आगरा के समक्ष एक याचिका दायर की गई थी, जिसे प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय की फाइल पर 2017 की एचएम याचिका संख्या 291 के रूप में क्रमांकित किया गया था। क्रूरता के आधार पर तलाक की डिक्री मांगी गई थी।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि पत्नी, जो कि इटावा की निवासी है, ने प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, आगरा से कार्यवाही को इटावा के पारिवारिक न्यायालय में स्थानांतरित करा लिया है। उपरोक्तानुसार तलाक की याचिका अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, इटावा के समक्ष लंबित है। यह तथ्य रिकॉर्ड पर नहीं बताया गया है, लेकिन यह एकमात्र तार्किक निष्कर्ष है जिसे इस बात पर विचार करते हुए निकाला जा सकता है कि कार्यवाही फैमिली कोर्ट, आगरा के समक्ष शुरू हुई और अब इटावा में लंबित है, जहां पुनरीक्षणवादी -पत्नी रहती है।

4. तलाक की याचिका लंबित होने पर, प्रतिवादी ने कुछ पर्यवेक्षणीय घटनाओं के आधार पर इसमें संशोधन करने का प्रस्ताव रखा, जिसे उसने कार्रवाई योग्य क्रूरता के अपने मामले को स्थापित करने के लिए पेश करने की मांग की थी। उपरोक्त संशोधन

आवेदन 06.04.2022 को किया गया था, जिसे ट्रायल कोर्ट, यानी, अपर प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय इटावा की अदालत की फाइल पर पेपर नंबर 57-का सौंपा गया था। संशोधन आवेदन पर आपति पुनरीक्षणवादी की ओर से दायर की गई थी जिसे पेपर नंबर 65-ग के रूप में चिह्नित किया गया था।

5. ट्रायल कोर्ट के समक्ष पुनरीक्षणवादी की आपति का जोर यह था कि संशोधन आवेदन पांच साल पहले हुई घटनाओं के आधार पर तथ्यों की दलील देने के लिए किया गया था, प्रस्तावित संशोधन अत्यधिक विलंबित है जिसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। वे घटनाएँ, भले ही सच हों, आपराधिक मुकदमा चलाने और आगे बढ़ाने के लिए कार्रवाई का कारण बनेंगी। अन्यथा भी, जिन तथ्यों की पैरवी की गई थी वे गलत थे। ट्रायल कोर्ट ने आक्षेपित आदेश द्वारा संशोधन को प्रतिवादी द्वारा पुनरीक्षणवादी को 3000/- रुपये की लागत के भुगतान की शर्त पर मंजूरी दे दी है। ट्रायल कोर्ट ने तर्क दिया है कि क्रूरता पहले से ही कार्रवाई का एक कारण है जिसे प्रतिवादी ने दूसरों के अलावा तलाक की डिक्री के लिए अपने दावे को सही ठहराने के लिए दायर किया है। चूंकि क्रूरता पहले से ही याचिका में एक आधार है, इसलिए संशोधन के माध्यम से लाए जाने वाले तथ्य प्रतिवादी के मामले की प्रकृति को नहीं बदलते हैं। यह भी टिप्पणी की गई कि मुद्दे अभी तक तैयार नहीं किए गए हैं, और इसलिए, संशोधन की अनुमति देने से पुनरीक्षणवादी के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह भी टिप्पणी की गई कि चूंकि संशोधन की मांग लंबे विलंब

के बाद की गई है, इसलिए दूसरे पक्ष को लागत देकर मुआवजा देना उचित होगा।

6. इस पुनरीक्षण को सुनवाई के लिए स्वीकार करने के प्रस्ताव के समर्थन में पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव त्रिपाठी और अधिवक्ता श्री पुनीत भदौरिया, जिन्होंने स्थिरता के प्रश्न पर प्रस्ताव का विरोध किया है, को सुना।

7. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत भदौरिया ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में, 'संहिता') की धारा 115 के तहत इस सिविल पुनरीक्षण की स्थिरता के बारे में आपति उठाई है और फैमिली कोर्ट अधिनियम, 1984 (संक्षेप में, '1984 का अधिनियम') द्वारा शासित फैमिली कोर्ट के समक्ष कार्यवाही के मामले में आग्रह किया है, संहिता की धारा 115 के तहत इसके किसी भी आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण नहीं हो सकता है, जो अन्यथा इस आधार पर बनाए रखने योग्य हो सकता है कि आदेश संहिता में उस प्रावधान के अर्थ में एक 'मामले का निर्णय' है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू होने पर संशोधित किया गया है। उन्होंने विस्तार से बताया कि भले ही यहां दिए गए आदेश के प्रकार के खिलाफ एक सिविल पुनरीक्षण सक्षम हो, यदि एक सिविल न्यायालय द्वारा पारित किया जाता है, तो यह बनाए रखने योग्य नहीं होगा क्योंकि यह आदेश अधिनियम 1984 के प्रावधानों द्वारा शासित पारिवारिक न्यायालय द्वारा किया गया है। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलीलों की सहायता में **सुधांशु गुप्ता बनाम कोमल गुप्ता, 2019 (5)**

एडब्ल्यूसी 4434 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। यह आग्रह किया जाता है कि उक्त निर्णय यह मानता है कि एक संशोधन को खारिज करने वाला आदेश आवेदन, जहां यह पारिवारिक न्यायालय द्वारा किया गया है, पुनरीक्षण योग्य नहीं है, लेकिन अपील योग्य है।

8. श्री भदौरिया द्वारा दिए गए उपरोक्त प्रस्तुतीकरण का खंडन करते हुए, पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव त्रिपाठी ने **श्रीमती राज श्री अग्रवाल @ राम श्री अग्रवाल और अन्य बनाम सुधीर मोहन और अन्य, 2022 (5) एडब्ल्यूसी 4192** मामले में इस न्यायालय के बाद के निर्णय पर भरोसा किया है। **राज श्री अग्रवाल (सुप्रा)** में, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि न्यायालय के समक्ष दायर याचिका में संशोधन की मांग करने वाले एक आवेदन को खारिज करने वाले आदेश के खिलाफ, संहिता की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण का उपाय खुला है, और एक याचिका द्वारा उस आदेश को चुनौती देना संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत सम्मत नहीं है।

9. इस न्यायालय ने संहिता की धारा 115 के तहत इस संशोधन की स्थिरता के बारे में पक्षों की ओर से दी गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है।

10. 1984 का अधिनियम, जिसके तहत पारिवारिक न्यायालय स्थापित हैं और कार्य करते हैं, एक विशेष कानून है, जो वैवाहिक कारणों सहित, बहुत विशिष्ट और विभिन्न

प्रकार के कारणों के परीक्षण और निर्णय के लिए अदालतों की एक विशेष श्रेणी की स्थापना करता है। यह माना जाता है कि वैवाहिक कारण मुकदमेबाजी के अन्य वर्गों से हर चीज में बहुत भिन्न होते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि वैवाहिक कारण पति और पत्नी के बीच संबंधों से उत्पन्न होने वाले संघर्षों को हल करने के बारे में चिंतित हैं, और, जिसे समकालीन समाज एकल परिवार के रूप में जानता है। एकल परिवार में पति, पत्नी और उनके नाबालिग बच्चे शामिल होते हैं। समकालीन समय में यह परिवार ही समाज का मुख्य आधार है, जिसके अभाव में समाज स्वयं विघटित हो सकता है अथवा अव्यवस्थित रूप से पथभ्रष्ट हो सकता है। इसलिए, विवाह और पारिवारिक मामलों से संबंधित विवादों को सावधानीपूर्वक और शीघ्रता से हल करना पारिवारिक न्यायालय का पवित्र कर्तव्य है। 1984 के अधिनियम का अधिनियमित खंड पढ़ता है:

"विवाह और उससे संबंधित विवादों में सुलह को बढ़ावा देने और उनके शीघ्र निपटान को सुरक्षित करने की दृष्टि से पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान करने वाला एक अधिनियम।"

11. 1984 के अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का विवरण यहां बहुत प्रासंगिक है और इसलिए, नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"उद्देश्यों और कारणों का विवरण -महिलाओं के कई संघों, अन्य संगठनों और व्यक्तियों ने समय-समय पर आग्रह किया है कि पारिवारिक विवादों के निपटारे के लिए पारिवारिक न्यायालय स्थापित किए जाएं, जहां सुलह और

सामाजिक रूप से वांछनीय परिणाम प्राप्त करने पर जोर दिया जाना चाहिए और प्रक्रिया और साक्ष्य के कठोर नियमों का पालन समाप्त किया जाना चाहिए। विधि आयोग ने अपनी 59वीं रिपोर्ट (1974) में इस बात पर भी जोर दिया था कि परिवार से संबंधित विवादों से निपटने के लिए अदालत को सामान्य नागरिक कार्यवाही में अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण से बिल्कुल अलग दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और उसे मुकदमा शुरू होने से पहले समझौते के उचित प्रयास करने चाहिए। परिवार से संबंधित मामलों के मुकदमों या कार्यवाही में अपनाई जाने वाली एक विशेष प्रक्रिया प्रदान करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता में 1976 में संशोधन किया गया था। हालाँकि, इसका अधिक उपयोग नहीं हुआ अदालतों द्वारा इस सुलह प्रक्रिया को अपनाने की व्यवस्था की गई है और अदालतें अन्य सिविल मामलों की तरह ही पारिवारिक विवादों से निपटती रहती हैं और वही प्रतिकूल दृष्टिकोण कायम रहता है। इसलिए, सार्वजनिक हित में, पारिवारिक विवादों के शीघ्र निपटारे के लिए पारिवारिक न्यायालय स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की गई।

2. विधेयक अन्य बातों के साथ-साथ यह चाहता है:-

(ए) राज्य सरकारों द्वारा पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान;

(बी) राज्य सरकारों के लिए दस लाख से अधिक आबादी वाले प्रत्येक शहर या कस्बे में एक पारिवारिक न्यायालय स्थापित करना अनिवार्य बनाना;

(सी) राज्य सरकारों को उपरोक्त (बी) में निर्दिष्ट क्षेत्रों के अलावा अन्य क्षेत्रों में ऐसी अदालतें स्थापित करने में सक्षम बनाना;

(डी) विशेष रूप से पारिवारिक न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में निम्नलिखित से संबंधित मामले उपलब्ध कराए जाएंगे:-

(i) वैवाहिक राहत, जिसमें विवाह की शून्यता, न्यायिक अलगाव, तलाक, वैवाहिक अधिकारों की बहाली, या विवाह की वैधता या किसी व्यक्ति की वैवाहिक स्थिति के बारे में घोषणा शामिल है;

(ii) पति-पत्नी या उनमें से किसी एक की संपत्ति;

(iii) किसी व्यक्ति की वैधता के बारे में घोषणा;

(iv) किसी व्यक्ति की संरक्षकता या किसी नाबालिग की अभिरक्षा

(v) दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के तहत कार्यवाही सहित रखरखाव;

(ई) पारिवारिक विवाद के पक्षों के बीच सुलह या समझौता कराने के लिए सबसे पहले प्रयास करना परिवार न्यायालय की ओर से अनिवार्य बना दिया जाएगा। इस चरण के दौरान, कार्यवाही अनौपचारिक होगी और प्रक्रिया के कठोर नियम लागू नहीं होंगे;

(एफ) सुलह चरण के दौरान सामाजिक कल्याण एजेंसियों, परामर्शदाताओं, आदि के सहयोग के लिए और चिकित्सा और कल्याण विशेषज्ञों की सेवाओं को सुरक्षित करने के लिए भी प्रदान करना;

(जी) यह प्रावधान करें कि पारिवारिक न्यायालय के समक्ष विवाद के पक्ष कानूनी व्यवसायी द्वारा प्रतिनिधित्व करने के अधिकार के रूप में हकदार नहीं होंगे। हालाँकि,

न्यायालय, न्याय के हित में, न्याय मित्र के रूप में किसी कानूनी विशेषज्ञ की सहायता ले सकता है;

(एच) साक्ष्य और प्रक्रिया के नियमों को सरल बनाना ताकि पारिवारिक न्यायालय किसी विवाद से प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम हो सके;

(आई) अपील का केवल एक अधिकार प्रदान करें जो उच्च न्यायालय में होगा।

3. विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है।"

12. पारिवारिक न्यायालय, हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि कानून में न्यायालयों को पार्टियों के बीच विवादों की सुनवाई और निर्धारण के लिए स्थापित मंच के रूप में समझा जाता है, लेकिन वे न्यायालय नहीं हैं जो सामान्य नागरिक न्यायपालिका का हिस्सा हैं। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, ये विशेष अदालतें हैं जो विवादों के एक विशेष वर्ग, यानी विवाह और पारिवारिक मामलों से संबंधित विवादों का फैसला करने के लिए स्थापित की गई हैं। इन न्यायालयों को राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा उच्च न्यायालय के परामर्श के बाद 1984 के अधिनियम की धारा 3 के आधार पर स्थापित किया जाना आवश्यक है। पारिवारिक न्यायालय के क्षेत्रीय क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं को भी राज्य सरकार द्वारा बनाई जाने वाली अधिसूचना द्वारा, साथ ही उच्च न्यायालय के परामर्श द्वारा निर्दिष्ट किया जाना आवश्यक है। राज्य सरकार द्वारा स्थापित न्यायालयों में न्यायाधीशों को फिर से उच्च न्यायालय की सहमति से राज्य सरकार द्वारा

नियुक्त किया जाना आवश्यक है। धारा 4 पारिवारिक न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति, उनकी योग्यता और अन्य मामलों का प्रावधान करती है। यदि धारा 3 और 4 के प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाए तो हर संदेह दूर हो जाएगा कि 1984 के अधिनियम के तहत स्थापित पारिवारिक अदालतें सामान्य सिविल न्यायपालिका का हिस्सा नहीं हैं, बाद वाली अदालतें हर नागरिक मामले के निर्धारण के लिए मौजूद हैं, जहां एक नागरिक अधिकार प्रभावित होता है, जब तक कि उनका अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से कानून द्वारा वर्जित न हो। यह संहिता स्थापित सिविल न्यायालयों पर लागू होती है और इन न्यायालयों में पालन की जाने वाली सभी प्रक्रियाएँ इसके द्वारा व्यापक रूप से शासित होती हैं। हालाँकि, पारिवारिक न्यायालयों के मामले में, चूँकि ये क्षेत्राधिकार के एक पहलू का प्रयोग करते हैं, जो अन्यथा अपने चरित्र के कारण पहले स्थापित सिविल न्यायालयों में निहित था, कानून (1984 का अधिनियम) अपनी बुद्धिमत्ता में धारा 10 के माध्यम से इस प्रकार प्रदान करता है:

"10. आम तौर पर प्रक्रिया-(1) इस अधिनियम और नियमों के अन्य प्रावधानों के अधीन, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) और उस समय लागू किसी भी अन्य कानून के प्रावधान लागू होंगे, पारिवारिक न्यायालय के समक्ष मुकदमों और कार्यवाहियों (दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय IX के तहत कार्यवाही के अलावा) (1974 का 2) के लिए और संहिता के उक्त प्रावधानों के प्रयोजनों के लिए, पारिवारिक न्यायालय को एक सिविल न्यायालय माना जाएगा और

उसके पास ऐसे न्यायालय की सभी शक्तियाँ होंगी।

(2) इस अधिनियम और नियमों के अन्य प्रावधानों के अधीन, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधान, एक पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उस संहिता के अध्याय IX के तहत कार्यवाही पर लागू होंगे।

(3) उप-धारा (1) या उप-धारा (2) में कुछ भी पारिवारिक न्यायालय को मुकदमे या कार्यवाही के विषय-वस्तु के संबंध में समझौता करने की दृष्टि से या एक पक्ष द्वारा आरोपित और दूसरे द्वारा नकारे गए तथ्यों की सच्चाई पर अपनी प्रक्रिया निर्धारित करने से नहीं रोकेगा।"
(न्यायालय द्वारा जोर)

13. 1984 के अधिनियम का अध्याय V भी यहां उठने वाले मुद्दे को समझने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अध्याय का शीर्षक है: "अपील और संशोधन"। इसमें धारा 19 के अलावा एक एकल खंड शामिल है। 1984 के अधिनियम की धारा 19 और अध्याय V पारिवारिक न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश से पीड़ित पक्ष के लिए उपलब्ध उपचारों के बारे में एक संपूर्ण संहिता है। 1984 के अधिनियम के अध्याय V के प्रावधानों को व्यापक रूप से पुनः प्रस्तुत करना लाभदायक होगा। ये पढ़ें:

"अध्याय 5

अपील और संशोधन

19. अपील.-(1) उप-धारा (2) में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या संहिता या आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का

2), या किसी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद, फैमिली कोर्ट के आदेश के प्रत्येक निर्णय के विरुद्ध, जो अंतरिम आदेश नहीं है, तथ्यों और कानून दोनों के आधार पर उच्च न्यायालय में अपील की जाएगी।

(2) पारिवारिक न्यायालय द्वारा पार्टियों की सहमति से पारित किसी डिक्री या आदेश या आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय IX के तहत पारित आदेश के खिलाफ कोई अपील नहीं की जाएगी:

बशर्ते कि इस उप-धारा में कुछ भी उच्च न्यायालय के समक्ष विचाराधीन किसी अपील या पारिवारिक न्यायालय (संशोधन) अधिनियम, 1991 के प्रारंभ होने से पहले आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय IX के तहत पारित किसी भी आदेश पर लागू नहीं होगा।

(3) इस धारा के तहत प्रत्येक अपील पारिवारिक न्यायालय के फैसले या आदेश की तारीख से तीस दिनों की अवधि के भीतर की जाएगी।

(4) उच्च न्यायालय, अपने अधिकार क्षेत्र में स्थित पारिवारिक न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय IX के तहत पारित आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में खुद को संतुष्ट करने के उद्देश्य से, और ऐसी कार्यवाही की नियमितता के बारे में जो कि एक अंतरिम आदेश नहीं हो, अपने स्वयं के प्रस्ताव से या अन्यथा, किसी भी कार्यवाही के रिकॉर्ड की जांच करने के लिए कह सकता है।

5) उपरोक्त को छोड़कर, किसी भी परिवार के किसी भी निर्णय, आदेश या डिक्री के खिलाफ पुनरीक्षण पर कोई अपील नहीं की जाएगी।

6) उप-धारा (1) के तहत की गई अपील की सुनवाई दो या दो से अधिक न्यायाधीशों वाली पीठ द्वारा की जाएगी।

(न्यायालय द्वारा जोर)

14. सुधांशु गुप्ता (सुप्रा), जिस पर श्री पुनीत भदौरिया ने यह कहते हुए भरोसा किया है कि पारिवारिक न्यायालय के द्वारा एक संशोधन आवेदन की अनुमति देने के एक आदेश से, एक सिविल पुनरीक्षण, बनाए रखने योग्य नहीं है, मानते हैं:

"11. धारा 10 के अवलोकन से यह पता चलता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान पारिवारिक न्यायालय अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू होते हैं। हालांकि, सी.पी.सी.के प्रावधान इस अधिनियम और नियमों के अन्य प्रावधानों के अधीन हैं। इसलिए, सी.पी.सी.के प्रावधान फैमिली कोर्ट के समक्ष कार्यवाही पर लागू होते हैं, लेकिन ये प्रावधान फैमिली कोर्ट अधिनियम के प्रावधानों के साथ-साथ उसके तहत बनाए गए नियमों के अधीन हैं और उनका परिसीमन किया जाता है।

12. दूसरी ओर, धारा 19 एक गैर-अप्रत्याशित खंड से शुरू होती है, जिसका नाम है, "सिविल प्रक्रिया संहिता में किसी भी बात के बावजूद।" इसलिए यह जरूरी है कि पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित प्रत्येक आदेश के खिलाफ अपील की जा सकती है, जो सी.पी.सी.के किसी भी विपरीत प्रावधान के बावजूद, एक अंतरिम आदेश नहीं है।

13. पुनरीक्षणकर्ता के वकील द्वारा उद्धृत पूर्ण पीठ के फैसले, अर्थात् रमा शंकर तिवारी

बनाम महादेव और अन्य, 1968 (38) एडब्ल्यूआर 103, में मानते हैं कि आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी.के तहत एक आदेश, या तो संशोधन की अनुमति देता है या अनुमति देने से इनकार करता है, यह एक "मामला तय" है।

14. हालाँकि, इस निर्णय पर पुनरीक्षणकर्ता के वकील ने यह दावा करने के लिए भरोसा किया है कि संशोधन कायम रखने योग्य है, मेरी सुविचारित राय में, यह निर्णय आवश्यक रूप से पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ है। एक बार जब यह स्वीकार कर लिया जाता है कि संशोधन आवेदन को खारिज करने वाला आदेश एक निर्णय लिया गया मामला है, तो यह जरूरी है कि यह एक अंतर्वर्ती आदेश नहीं है और इसलिए, पारिवारिक अदालत अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील योग्य है।

15. यह संशोधन कायम रखने योग्य नहीं है, क्योंकि यूपी में लागू सी.पी.सी. की धारा 115 की उप-धारा 1 में यह प्रावधान है कि सुपीरियर कोर्ट, इस धारा के तहत, किसी भी आदेश में बदलाव नहीं करेगा या उसे उलट नहीं देगा, सिवाय इसके कि आदेश, यदि वह पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाले पक्ष के पक्ष में किया गया होता, तो अंततः मुकदमे या अन्य कार्यवाही का निपटारा हो जाता। भले ही विवादित आदेश को रद्द कर दिया जाए और पुनरीक्षणवादी के संशोधन आवेदन की अनुमति दे दी जाए, पारिवारिक अदालत के समक्ष

कार्यवाही अंतिम रूप से निपटाई नहीं जाएगी।

16. इन परिस्थितियों में, इस पुनरीक्षण में लागू आदेश एक अंतिम आदेश है न कि एक अंतर्वर्ती आदेश, यह पारिवारिक न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के तहत स्पष्ट रूप से अपील योग्य है और अकेले इस कारण से, पुनरीक्षण आवश्यक रूप से बनाए रखने योग्य नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अपील योग्य आदेश के विरुद्ध कोई भी पुनरीक्षण नहीं हो सकता।"

15. सुधांशु गुप्ता मामले में, इस न्यायालय ने यह विचार किया है कि संहिता के आदेश VI नियम 17 के तहत एक संशोधन आवेदन को खारिज करने वाले पारिवारिक न्यायालय के आदेश से सिविल पुनरीक्षण नहीं होता है, क्योंकि यह एक मामले का फैसला किया गया है और इसलिए, यह 1984 के अधिनियम की धारा 19 के अर्थ के अंतर्गत एक अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, जो इसे अपील योग्य बनाता है। इसलिए, इसमें संशोधन शामिल नहीं है। सुधांशु गुप्ता के निष्कर्ष से सहमत होते हुए, मेरी राय है कि एक ही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए जोड़े जा सकते हैं या बहुत भिन्न कारण हो सकते हैं।

16. दूसरी ओर, पुनरीक्षणवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव त्रिपाठी द्वारा श्रीमती राज श्री अग्रवाल (सुप्रा) के निर्णय पर भरोसा किया गया जिससे पता चलता है कि उक्त निर्णय का इस मामले में शामिल बिंदु पर कोई प्रभाव नहीं है। कारण यह है कि संविधान के

अनुच्छेद 227 के तहत याचिका, जो उपरोक्त मामले में संशोधन आवेदन को खारिज करने वाले ट्रायल कोर्ट के आदेश से दायर की गई थी, वह सिविल कोर्ट द्वारा दिया गया एक आदेश था, यानी एक मूल वाद में अपर जिला न्यायाधीश, आगरा। इसलिए, श्रीमती राजश्री अग्रवाल, में निर्धारित किये गए सिद्धांतों का यहां उठे मुद्दे से दूर-दूर तक कोई अनुप्रयोग नहीं है।

17. एक समान मुद्दा, हालांकि यहां उठने वाले मुद्दे के समान नहीं है, मेजर राजा पी. सिंह बनाम श्रीमती सुरेंद्र कुमारी, एआईआर 1991 राज 133 मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय की एक डिवीजन बेंच के समक्ष विचार के लिए आया था। मेजर राजा पी. सिंह (सुप्रा) में, फैमिली कोर्ट, जोधपुर ने उस मामले में अपीलकर्ता द्वारा किए गए दो अलग-अलग आवेदनों को खारिज करते हुए एक आदेश पारित किया था। पहला एक आवेदन था जहां अपीलकर्ता, जो पारिवारिक न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता था, ने प्रार्थना की कि उसके हस्ताक्षरों की तुलना दस्तावेज़ प्रदर्श 2, 15 और 52 पर किए गए हस्ताक्षरों से की जाए। दूसरे आवेदन में, तलाक के लिए नए आधार जोड़ने के लिए राहत मांगी गई थी। फैमिली कोर्ट ने दोनों आवेदन याचिका खारिज कर दिए। जैसा कि रिपोर्ट में तथ्य सामने आते हैं, संशोधन आवेदन को खारिज करने वाले आदेश को 1984 के अधिनियम की धारा 19 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में लगाया गया था। खंडपीठ के समक्ष अपील में मुद्दा यह था कि क्या पारिवारिक न्यायालय के आदेश को धारा 19 के तहत अपील करने के

लिए अंतिम और संशोधन योग्य माना जा सकता है। यह उस संदर्भ में था कि डिवीजन बेंच ने कहा:

"11. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम के इस विशेष कानून का उद्देश्य वैवाहिक मामलों को त्वरित तरीके से तय करना है। यदि, किसी संशोधन आवेदन को अस्वीकार करने या अनुमति देने के आदेश को इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए तय किया गया मामला माना जाएगा और अपील योग्य है, कानून के सामान्य पाठ्यक्रम में ऐसे मामलों के फैसले को मामले की अंतिम स्थिति तक पहुंचने में कई साल लगेंगे। अधिनियम के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए यानी विवाह से संबंधित विवाद का शीघ्र निपटारा करने के लिए, शीघ्र सुनवाई का उद्देश्य विफल हो गया है। इसके अलावा यदि विधायिका का इरादा है कि सभी अंतर्वर्ती आदेश अपील योग्य हों, तो उसे अधिनियम की धारा 19 में "अंतर्वर्ती आदेश नहीं होना" शब्द का उपयोग नहीं करना चाहिए था और इसीलिए कोई अपील या संशोधन प्रदान नहीं किया गया है। यह न्यायालय डी.बी. सिविल विविध अपील संख्या 107 /90 श्रीमती विजय कौर बनाम राधे श्याम में 1-8-1990 को निर्णय दिया गया कि स्थगन से संबंधित आदेश एक अंतरिम आदेश की लागत है और अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील सुनवाई योग्य नहीं है। मामले के इस दृष्टिकोण से, दिनांक 6-4-1989 के आदेश को मामले का अंतिम निर्णय नहीं कहा जा सकता यानी विवाद का निपटारा किया जा रहा है। ट्रायल कोर्ट द्वारा मामले के अंतिम निपटारे के बाद पक्षों द्वारा अपील में मुद्दे पर आंदोलन कर सकते हैं। हमारी सुविचारित राय में, किसी

संशोधन को अनुमति देना या अस्वीकार करना एक अंतर्वर्ती आदेश है जिसके विरुद्ध अधिनियम की धारा 19 के तहत कोई अपील नहीं प्रदान की गई है। निष्कर्ष में प्रारंभिक आपत्ति कायम है और यह माना जाता है कि दिनांक 6-4-1989 का आदेश एक अंतरिम आदेश है और इस न्यायालय में कोई अपील नहीं है।

(न्यायालय द्वारा जोर)

18. कनुप्रिया बनाम आशुतोष अग्रवाल, एआईआर 2017 यूटीटी 166 मामले में यह मुद्दा उत्तराखंड उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष निर्णय के लिए आया था कि क्या फैमिली कोर्ट द्वारा वादपत्र में संशोधन की अनुमति देने वाला आदेश 1984 के अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील योग्य है। **कनुप्रिया** (सुप्रा) में इस बिंदु पर अधिकार की व्यापक समीक्षा के बाद, यह माना गया:

"16. इसलिए, यह देखा जा सकता है कि "इंटरलोक्यूटरी ऑर्डर" शब्द की कोई एक समान समझ नहीं है। यह शब्द कानून के संदर्भ और कानून के उद्देश्य से अर्थ ग्रहण करता है। हमने पहले ही देखा है कि सर्वोच्च न्यायालय ने (1974) 2 एससीसी 387 में विचार लिया है कि संशोधन के आदेश को, कुछ स्थितियों में, एक निर्णय के रूप में माना जा सकता है। अदालत ने यह विचार किया कि यदि संशोधन केवल वादी को कार्रवाई का नया कारण बताने या नई राहत मांगने या राहत का एक नया आधार शामिल करने की अनुमति देता है, तो बस इतना होता है कि वादी के लिए आगे की दलीलें देना संभव हो जाता है। अदालत उस स्तर पर विवादों की सत्यता का

निर्णय नहीं करती है। यह पाया गया कि ऐसा संशोधन केवल लागू प्रक्रिया को विनियमित करता है। यह विवाद के गुण-दोष को छूने वाले किसी भी प्रश्न का निर्णय नहीं करता है। ऐसे मामले में, जहां, सीमा के मामले में प्रतिवादी को उपलब्ध प्रतिरक्षा की सुरक्षा छीन ली जाती है, यह एक निर्णय बन जाता है। वह मामला, जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, एक इंटर-कोर्ट अपील से संबंधित है। यहां हमारा संबंध पारिवारिक न्यायालय अधिनियम से है। अभिवचनों में संशोधन विभिन्न प्रकार के होते हैं। यदि आदेशित संशोधनों के विरुद्ध अपील की अनुमति दी जाती है, तो इसे देखने का एक तरीका यह है कि मामले का निर्णय उसी स्तर पर किया जाएगा और उसे अवसर की प्रतीक्षा नहीं करनी होगी, जिसमें निस्संदेह, अंतिम आदेश जो पारित किया जाएगा के खिलाफ अपील के दौरान संशोधन के आदेश को चुनौती देनी होगी। ऐसा हो सकता है, उस स्तर पर, यदि अपीलीय अदालत को पता चले कि संशोधन को पूरी तरह से अनुचित रूप से अनुमति दी गई है, तो मामला रिमांड के योग्य हो सकता है। यदि अंतर्वर्ती आदेशों को बाहर करने का विधानमंडल का इरादा वैवाहिक मामलों में कार्यवाही में तेजी लाना है, तो क्या ऐसा दृष्टिकोण विधानमंडल द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य में बाधा नहीं बनेगा? यहां तक कि जब कोई अदालत संशोधन के लिए आवेदन की अनुमति देती है, तो यह स्थापित कानून है कि अदालत दलीलों की शुद्धता या योग्यता पर निर्णय नहीं लेती है। संशोधित कार्यवाही केवल वह रूपरेखा प्रदान करेगी जिसके भीतर मुकदमा आगे बढ़ेगा, साक्ष्य पेश किए जाएंगे, दलीलें पेश की जाएंगी और

निर्णय दिया जाएगा। इसके अलावा, पार्टी को हमेशा मुख्य निर्णय से अपील में संशोधन के आदेश को चुनौती देने का अधिकार है। इसके अलावा, यह नोटिस करना अप्रासंगिक नहीं है कि पार्टी, उचित मामलों में, 227 के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का उपयोग कर सकती है। यह विचार करने का लाभ यह है कि संशोधन के आदेश को निर्णय के रूप में नहीं माना जाएगा और केवल अंतरिम आदेश के रूप में माना जाएगा, यह है कि पारिवारिक न्यायालयों का उद्देश्य, एक अर्थ में, उतना ही उन्नत होगा, साथ ही, कार्यवाही की चुनौती में भाग लेता है और अपीलीय अदालत के समक्ष होने वाली देरी को समाप्त कर दिया जाएगा। सामान्यतः, संशोधनों की अनुमति उदारतापूर्वक दी जानी चाहिए। इसलिए, संशोधन की अनुमति देने वाले आदेश में शायद ही कभी हस्तक्षेप किया जाता है।

17. तथ्यों की बात करें तो, यह ऐसा मामला नहीं है, जहां परिसीमन के माध्यम से कोई निहित अधिकार या कोई अन्य अधिकार, जो प्रतिवादी को अर्जित होता है, छीना जा रहा है। संशोधन के माध्यम से दो पैराग्राफ जोड़े गए हैं। दरअसल, मूल वाद में ही कहा गया है कि शादी 21.05.2013 को हुई थी और अपीलकर्ता 28.05.2013 को अपने पैतृक घर चली गई थी। मूल वादपत्र के पैराग्राफ 4 का अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार है:

"4. प्रतिवादी का इरादा हमेशा याचिकाकर्ता से दूर रहने का था और, किसी न किसी बहाने से, उसने कभी भी याचिकाकर्ता को वैवाहिक सुख नहीं दिया और हमेशा सहवास से भागने की कोशिश की और, एक सप्ताह के बाद,

28.05.2013 को, वह अपने गहनों और कपड़ों के साथ अपने पैतृक घर चली गई।

18. संशोधित अनुच्छेदों से प्रतीत होता है कि विवाह संपन्न नहीं हुआ था। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, जब संशोधन की अनुमति दी जाती है तो अदालत उस स्तर पर दलीलों की सत्यता पर निर्णय नहीं देती है। निश्चित रूप से, ठोस साक्ष्य के साथ मामले को स्थापित करने का भार याचिकाकर्ता पर है। हम इसे एक मामले के रूप में भी नहीं मान सकते हैं, यहां तक कि (1981) 4 एससीसी 8 या (1974) 2 एससीसी 387 में लागू परीक्षणों को लागू करते हुए भी, वही एक निर्णय के रूप में योग्य होगा, जो एक अधिनियम की धारा 19 के तहत अपीलीय क्षेत्राधिकार के लिए उत्तरदायी है।”

19. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि **मेजर राजा पी. सिंह** और **कनुप्रिया** दोनों मामलों में, न्यायालय के समक्ष यह मुद्दा था कि क्या संशोधन की मांग करने वाला एक आवेदन, जिसे एक मामले में पारिवारिक न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया और दूसरे में अनुमति दी गई, एक निर्णय का गठन करेगा। धारा 19 का अर्थ ताकि उपरोक्त प्रावधान के तहत अपील की जा सके। राजस्थान उच्च न्यायालय और उत्तराखंड उच्च न्यायालय दोनों ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कानून बनाया है कि पारिवारिक न्यायालय का उद्देश्य वैवाहिक या परिवार से संबंधित मामलों में त्वरित न्याय प्रदान करना है। उनके आधिपत्य को इस बात का एहसास है कि संशोधन देने या अस्वीकार करने वाले आदेशों को अंतरिम चुनौती की अनुमति देना, कानून द्वारा विचार

की जाने वाली तेज़-ट्रैक प्रक्रिया पर बाधा डालने का काम करेगा। यह भी देखा गया है कि जो व्यक्ति संशोधन देने वाले आदेश से व्यथित है, वह अंतिम निर्णय के विरुद्ध अपील में, यदि घटना उसके विरुद्ध जाती है, उस आदेश पर भी आपत्ति कर सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है, उत्तराखंड उच्च न्यायालय की खंडपीठ के उनके आधिपत्य ने संशोधनों की श्रेणियों के बीच एक द्वंद्व पाया है, जो धारा 19 के अर्थ के भीतर एक निर्णय का गठन भी कर सकता है और नहीं भी कर सकता है। इस न्यायालय को 1984 के अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील के लिए उत्तरदायी होने वाले संशोधनों को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के आदेशों के बारे में सिद्धांत की सूक्ष्मता पर अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वर्तमान मामले में यह मुद्दा नहीं है। यहां मुद्दा यह है कि पारिवारिक न्यायालय द्वारा संशोधन आवेदन को मंजूरी देने या अस्वीकार करने के आदेश से, संहिता की धारा 115 के तहत इस न्यायालय में संशोधन निहित है। राजस्थान के फैसले में एक टिप्पणी है कि विधायिका का इरादा फैमिली कोर्ट द्वारा पारित सभी अंतरिम आदेशों को धारा 19 के तहत अपील करने का नहीं था और इसीलिए 1984 के अधिनियम के तहत कोई अपील या संशोधन प्रदान नहीं किया गया है।

20. इसलिए, विवादास्पद प्रश्न यह है कि क्या संहिता की धारा 115 के तहत इस न्यायालय को उस प्रकार की शक्ति उपलब्ध होने का अनुमान लगाया जा सकता है। 1984 के अधिनियम की धारा 10 को पढ़ने से पता चलता है कि संहिता के प्रावधान आम तौर पर

लागू होते हैं, लेकिन 1984 के अधिनियम और नियमों के अन्य प्रावधानों के अधीन होते हैं। धारा 19 की उप-धारा (5) के साथ इस प्रावधान की तुलना करने से पता चलता है कि उप-धारा (5) स्पष्ट रूप से कहती है कि धारा 19 की उप-धारा (1) से (4) के तहत दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, पारिवारिक न्यायालय के किसी भी निर्णय या डिक्री से किसी भी न्यायालय को कोई अपील या संशोधन नहीं होगा। उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से 1984 के अधिनियम की धारा 19(1) के तहत परिकल्पित अपील या आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय IX के तहत पारित अंतिम आदेश से संशोधन को छोड़कर सभी प्रकार के संशोधनों पर रोक लगाता है। 1984 के अधिनियम द्वारा परिकल्पित किसी अन्य प्रकार का संशोधन नहीं है। इस प्रकार, 1984 के अधिनियम की धारा 10(1) और 19(5) को एक साथ पढ़ने पर, जो स्थिति उभरती है वह यह है कि पारिवारिक न्यायालय के किसी आदेश से कोई भी संशोधन संभव नहीं है सिवाय एक ,दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय IX के तहत पारित अंतिम आदेश से उत्पन्न होता है। इसलिए, किसी अंतर्वर्ती आदेश से व्यथित पक्ष अपील में इस पर सवाल उठा सकता है, यदि उसके पास निर्णय की संभावनाएं हैं, या यूँ कहें कि यह पार्टियों के अधिकारों पर पल-पल का आदेश है। यह उस सिद्धांत पर आधारित है कि **श्रीमती किरण बाला श्रीवास्तव बनाम जय प्रकाश श्रीवास्तव, 2005 (23) एलसीडी 1** की पूर्ण पीठ में इस न्यायालय ने माना कि एचएमए की धारा 24 के तहत भरण-पोषण लंबित मामला देने का

आदेश एक निर्णय है, जो 1984 के अधिनियम की धारा 19 के तहत अपील योग्य है।

21. इसी तरह, योगीश अरोड़ा बनाम श्रीमती जेनेट योगीश अरोड़ा @ मिस जॉनोटी डिसूजा, 2018 (9) एडीजे 379 में इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि संहिता के आदेश XXXIX के तहत पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित अस्थायी निषेधाज्ञा का आदेश एक मध्यवर्ती आदेश की श्रेणी में आता है, जिसमें अंतिमता जुड़ी हुई है। यह देखा गया है कि कार्यवाही के एक विशेष चरण में अस्थायी निषेधाज्ञा के आदेश को अंतिम रूप दिया गया है, जो इसे 1984 के अधिनियम की धारा 19(1) के तहत अपील योग्य बना देगा।

22. इसके विपरीत, सना अफरीन बनाम ज़ोहेब खान, एआईआर 2021 सभी 40 में, संरक्षक और वार्ड अधिनियम, 1890 की धारा 12 के तहत पारित एक आदेश, अंतिम उल्लिखित अधिनियम की धारा 25 के तहत लंबित हिरासत कार्यवाही में, पिता को अपने बच्चे से मिलने में सक्षम बनाने के लिए मुलाकात का अधिकार प्रदान करती है, इसे पूरी तरह से अंतरिम माना जाता था और 1984 के अधिनियम की धारा 19(1) के तहत अपील के लिए उत्तरदायी नहीं था।

23. संक्षेप में, इसलिए, पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश, यदि अंतर्वर्ती हैं, तो ऐसे स्थापित किए जाने चाहिए जिनमें निर्णय की संभावनाएं हों ताकि किसी पक्ष को 1984 का अधिनियम की धारा 19(1) के तहत अपील के उपाय का लाभ उठाने में सक्षम बनाया जा सके। और, 1984 के अधिनियम के तहत अपील प्रक्रियाओं के माध्यम से यह एकमात्र

उपाय उपलब्ध है। पारिवारिक न्यायालय के आदेश से पीड़ित पक्ष के लिए संहिता की धारा 115 के तहत संशोधन का कोई रास्ता नहीं है। संहिता के प्रावधान हालांकि आम तौर पर लागू होते हैं, 1984 के अधिनियम की धारा 10(1) और 19(5) के प्रावधानों के मद्देनजर संहिता की धारा 115 के तहत संशोधन के उपाय के संबंध में बाहर रखे गए हैं।

24. ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, यह न्यायालय इस पुनरीक्षण को कायम रखने योग्य नहीं पाता है। तदनुसार, इसे **अनुरक्षणीय योग्य नहीं** होने के कारण **खारिज** किया जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि यह आदेश सलाह के अनुसार उचित चरण में लागू आदेश के खिलाफ इस तरह के उपाय की तलाश करने के पुनरीक्षणवादी के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा।

25. अंतरिम आदेश दिनांक 14.09.2022 को निरस्त किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 464

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 167 / 2020

अनवर @ शानू बनाम ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: अनुराग नारायण,
शैलेंद्र कुमार मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., फरहान
आलम उस्मानी

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125 और 125 (बी) - मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 - धारा 3, 4 और 7 - आपराधिक पुनरीक्षण - पुनरीक्षणकर्ता पत्नी (विपरीत पक्ष संख्या 2) का पति और विपरीत पक्ष संख्या 3 का पिता है - पुनरीक्षणकर्ता ने उस आदेश को चुनौती दी जिसके तहत विचारणीय न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता ने सीआरपीसी की धारा 125 के तहत पत्नी के आवेदन को स्वीकार करते हुए अपनी पत्नी और बेटी को भरण-पोषण देने का आदेश दिया - पुनरीक्षणकर्ता ने इस आधार पर आवेदन का विरोध किया कि, उसने पहले ही गवाहों के सामने पर्सनल लॉ के अनुसार उसे तलाक दे दिया है और मेहर के रूप में 1,55,000/- रुपये की नकदी का भुगतान किया है और दहेज के रूप में प्राप्त किए गए गहने और अन्य सामान भी वापस कर दिए हैं और बेटी के भरण-पोषण के लिए 80 ग्राम सोने सहित इद्दत की अवधि के खर्च का भी भुगतान किया है, इस तरह वह किसी भी भरण-पोषण की पात्र नहीं है - आवेदन की पोषणीयता - न्यायालय ने पाया कि, पुनरीक्षणकर्ता तलाक के तथ्य को सिद्ध करने में विफल रहा है और तलाक के कारण उनके बीच पति और पत्नी के रूप में उनकी स्थिति की समाप्ति है - आयोजित, 'डैनियल लतीफ और शमीमा फारूकी' में घोषित कानूनी सिद्धांत के प्रकाश में, एक मुस्लिम पत्नी, अपने पति से तलाक के बाद भी आवेदन अंतर्गत धारा 125 सीआरपीसी की पात्र है जब तक वह पुनर्विवाह नहीं कर लेती है - इसलिए, विपक्षी संख्या 2 द्वारा प्रस्तुत प्रश्नगत आवेदन स्वीकार्य है तथा समीक्षाधीन आदेश

पूर्णतः अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित है, जिसमें कोई अवैधता, भौतिक त्रुटि या क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि परिलक्षित नहीं होती है - परिणामस्वरूप आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त किया जाता है। (पैरा 18, 28, 29)

आपराधिक पुनरीक्षण निरस्त (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. सचिव, तमिलनाडु वक्फ बोर्ड बनाम सैयद फातिमा नाची (एआईआर 1996 एससी 2423),
2. श्रीमती. अज़मेरिलुशान बनाम मोइन अहमद (1983 एएलजे 1332),
3. डेनियल लतीफी एवं अन्य बनाम भारत संघ (2001 खंड 7 एस.सी.सी. 740),
4. शमीम आरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (2002 खंड 7 एससीसी 518),
5. विमला बनाम वीरा स्वामी (1991 खंड एससीसी 375),
6. माणक चंद बनाम चंद्र किशोर (एआईआर 1970 एससी 446),
7. मिथलेश कुमारी बनाम विंध्यवासिनी (1990 सीआरएलजे 830),
8. चतुर्भुज बनाम सीता राम (2007 सीआरएलजे 727 एससी),
9. अशोक कुमार सिंह बनाम अपर सत्र न्यायाधीश वाराणसी (1991 सीआरएलजे 2357 (अखिल भारतीय)),
10. शमीमा फारूकी बनाम शहीद खान (2015 खंड 5 एससीसी 705),
11. राजती बनाम सी. नागेशन (एआईआर 1999 एससी 2374),

12. राजस्थान राज्य बनाम गुरु चरण दास चड्ढा (एआईआर 1979 एससी 1895),
13. विनय त्यागी बनाम इरशाद अली (2013 खंड 5 एससीसी 762),
14. अमित कपूर बनाम रमेश चंद्रा (2012 खंड 9 एससीसी 460)।

(माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम, द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत दाण्डिक पुनरीक्षण, दाण्डिक प्रकीर्ण वाद संख्या 553/2016 श्रीमती जेबा खानम आदि बनाम अनवर उर्फ शानू में पारित निर्णय दिनांकित 26.10.2019 से क्षुब्ध होकर योजित किया गया है। जिसके माध्यम से विद्वान विचारण न्यायालय ने विपक्षी सं०- 2 द्वारा धारा 125 दण्ड प्रक्रिया संहिता, जिसे अग्रेतर विवेचना में संहिता शब्द से सम्बोधित किया जायेगा के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन पत्र स्वीकृत करते हुए पुनरीक्षणकर्ता को यह आदेशित किया है कि वह विपक्षी सं०- 2 जेबा खानम को अंकन 3,000/- रुपये प्रतिमाह एवं विपक्षी सं०- 3 कुमारी आलिया को उनके वयस्क होने तक अंकन 2,000/- रुपये प्रतिमाह भरण-पोषण हेतु प्रदान करना सुनिश्चित करें।
2. सर्व श्री अनुराग नारायण एवं फरहान आलम ओस्मानी जो क्रमशः पुनरीक्षणकर्ता एवं विपक्षी संख्या 2 के सुयोग्य अधिवक्तागण हैं, उनके तर्कों को विस्तारपूर्वक सुना गया। राज्य के पक्ष से श्री आलोक शरण सुयोग्य सहायक शासकीय

अधिवक्ता के तर्कों को भी विस्तारपूर्वक सुना एवं पत्रावली का परिशीलन किया।

पोषण हेतु 7,000/- रुपये तथा संयुक्त रूप से अंकन 12,000/- रुपये मासिक भरण-पोषण स्वीकृत करने की प्रार्थना किया गया।

तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

3. प्रस्तुत दाण्डिक पुनरीक्षण हेतु सुसंगत तथ्य इस प्रकार हैं कि विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जैबा खानम का निकाह पुनरीक्षणकर्ता से मुस्लिम रीति-रिवाज के अनुसार 27.11.2014 को संपन्न हुआ था। पक्षों के वैवाहिक संसर्ग से एक पुत्री कुमारी आलिया का जन्म हुआ। निकाह के पश्चात से ही पुनरीक्षणकर्ता एवं उसके परिवार के सदस्यगण विपक्षी संख्या 2 को विवाह में कम दहेज लाने के कारण प्रताड़ित करते थे। पुनरीक्षणकर्ता भी विपक्षी संख्या 2 को शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ देते थे। विपक्षी संख्या 2 को अंततः पुनरीक्षणकर्ता द्वारा अवयस्क पुत्री आलिया सहित अपने आवास से निष्कासित कर दिया गया। विपक्षी संख्या 2 निराश्रित होने के कारण वर्तमान में अपने मायके में निवास कर रहीं हैं। पुनरीक्षणकर्ता एक स्वस्थ व्यक्ति हैं जो जनपद हरदोई में विक्रय कर कार्यालय में शासकीय सेवारत हैं, जिनकी मासिक आय 30,000/- रुपये है। विपक्षी संख्या 2 स्वयं का भरण-पोषण करने में असमर्थ है। वह किसी घरेलू कार्य यथा सिलाई, कढ़ाई अथवा बुनाई आदि हेतु भी प्रशिक्षित एवं दक्ष नहीं है इस कारण वह स्वयं एवं अपनी अवयस्क पुत्री का भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं। उपरोक्त वर्णित तथ्यों के आधार पर विपक्षी संख्या 2 द्वारा स्वयं के भरण-पोषण हेतु 5,000/- रुपये प्रतिमाह तथा अवयस्क पुत्री आलिया के भरण-

4. पुनरीक्षणकर्ता द्वारा आपत्ति प्रस्तुत कर पुनरीक्षणकर्ता का निकाह विपक्षी संख्या 2 के साथ होना स्वीकार किया गया तथा पक्षों के वैवाहिक संबंध से अवयस्क पुत्री कुमारी आलिया के जन्म के तथ्य को भी स्वीकार किया गया। शेष तथ्यों से इंकार करते हुए इस आशय का कथन किया गया है कि निकाह के पश्चात से विपक्षी संख्या 2 का विपक्षी एवं उसके परिवार के सदस्यों के प्रति व्यवहार उचित नहीं था। वह दुर्व्यवहार करती थीं। विपक्षी के अनुसार दिनांक 16.08.2016 को विपक्षी ने साक्षीगण के सम्मुख स्वीय विधि के अनुसार विपक्षी संख्या 2 को तलाक दे दिया एवं अंकन 1,55,000/- रुपये नकद मेहर अदा कर दिया। समस्त आभूषण एवं दहेज में प्राप्त सभी समान भी उन्हें वापस कर इद्दत की अवधि का व्यय भी प्रदान कर दिया गया। इस कारण विपक्षी संख्या 2 पुनरीक्षणकर्ता से स्वयं अथवा विपक्षी संख्या 2 के लिए किसी धनराशि को प्राप्त करने की अधिकारिणी नहीं है। यह भी कथन किया गया है कि विपक्षी संख्या 3 कुमारी आलिया के भरण-पोषण के लिए विपक्षी संख्या 2 ने 80 ग्राम सोना भी प्राप्त कर लिया है।

5. उपरोक्त वर्णित समस्त आधारों पर भरण-पोषण हेतु प्रस्तुत आवेदन पत्र निरस्त करने की प्रार्थना किया गया।

6. विपक्षी संख्या 2 द्वारा आवेदन कथानक के समर्थन में ए०पी०डब्लू०1 के रूप

में स्वयं को, ए०पी०डब्लू०2 के रूप में नवी खॉ एवं ए०पी०डब्लू०3 के रूप में इमरान को परीक्षित कराया गया है।

7. वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता द्वारा ओ०पी०डब्लू०1 के रूप में स्वयं को एवं ओ०पी०डब्लू०2 हसन अख्तर एवं ओ०पी०डब्लू०3 अख्तर को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष परीक्षित कराया गया है तथा प्रलेखीय साक्ष्य के रूप में विलेख दिनांकित 16.08.2016 का मूल एवं नोटरी द्वारा सत्यापित प्रति, रजिस्ट्री की रसीद दिनांकित 12.01.2019, तलाक से संबंधित नोटिस दिनांकित 11.01.2019 एवं मूल वाद संख्या 54/2017 अनवर उर्फ शानू बनाम जेबा खानम में न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 16.08.2019 की प्रति प्रस्तुत की गयी है।

8. विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अधोलिखित अवधार्य बिन्दु विरचित किये गये:-

(i) क्या प्रार्थिनी श्रीमती जेबा खानम, विपक्षी अनवर उर्फ शानू की विधिक रूप से ब्याहता पत्नी एवं कु० आलिया उसकी पुत्री हैं?

(ii) क्या प्रार्थिनी, विपक्षी से युक्तियुक्त कारण से अलग रह रही हैं?

(iii) क्या प्रार्थिनी स्वयं का भरण-पोषण करने में सक्षम नहीं है और विपक्षी के पास आय का पर्याप्त साधन है?

9. आक्षेपित निर्णय दिनांकित 26.10.2019 के माध्यम से विद्वान विचारण न्यायालय ने इस आशय का निष्कर्ष अवधारित किया कि

विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम पुनरीक्षणकर्ता की विवाहिता पत्नी हैं। न्यायालय ने इस आशय का भी निष्कर्ष अवधारित किया कि विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम का तलाक नहीं हुआ है। अन्यथा भी विद्वान अवर न्यायालय के अनुसार यदि विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम पुनरीक्षणकर्ता की तलाकशुदा पत्नी भी होतीं तो भी वह संहिता की धारा 125 के स्पष्टीकरण (ख) में किये गये उपबंध के अनुसार स्वयं के पुनर्विवाह तक पुनरीक्षणकर्ता से भरण-पोषण की धनराशि प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं। इसी प्रकार आवेदिका संख्या 2 कुमारी आलिया आयु 1 वर्ष, जो पुनरीक्षणकर्ता की स्वीकृत रूप से अवयस्क पुत्री हैं, वह भी पुनरीक्षणकर्ता से भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं। इसी प्रकार विद्वान अवर न्यायालय ने उभय पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के सम्यक विश्लेषण के उपरान्त इस आशय का निष्कर्ष अभिलिखित किया कि विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम पुनरीक्षणकर्ता से युक्तियुक्त कारणों से पृथक रह रही हैं एवं वह स्वयं का भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं। विपक्षी द्वारा आवेदकगण के भरण-पोषण के प्रति आर्थिक रूप से समर्थ होने के पश्चात भी उपेक्षा की गयी है। परिणामस्वरूप विद्वान अवर न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय दिनांकित 26.10.2019 उपरोक्त वर्णित आशय से पारित किया।

उभयपक्षों के तर्क:-

10. पुनरीक्षणकर्ता के सुयोग्य अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि

विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आलोच्य निर्णय दिनांकित 26.10.2019 अविधिक एवं पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के प्रतिकूल होने के कारण अर्थाय है। पुनरीक्षणकर्ता के सुयोग्य अधिवक्ता का यह तर्क भी है कि यद्यपि पुनरीक्षणकर्ता ने विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम से अपने विवाह तथा वैवाहिक संबंधों से एक पुत्री कुमारी आलिया के जन्म के तथ्य को स्वीकार किया है किन्तु पुनरीक्षणकर्ता ने विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम को स्वीय विधि के अनुसार तलाक दे दिया जिससे पुनरीक्षणकर्ता एवं विपक्षी के मध्य वैवाहिक संबंधों का विच्छेद हो गया। उनका तर्क है कि इसी कारण पंचायत में विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम को मेहर की धनराशि अंकन 1,55,000/- एवं दहेज में प्राप्त अन्य सामग्रियाँ, आभूषण एवं कपड़े इत्यादि भी वापस कर दिया गया तथा इद्दत की अवधि की धनराशि भी प्रदान कर दी गई। इस कारण न्यायालय द्वारा विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम एवं उनकी अवयस्क पुत्री के भरण-पोषण की धनराशि प्रदान करने का आलोच्य आदेश अविधिक है तथा मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्रावधान के प्रतिकूल होने के कारण भी अर्थाय है। पुनरीक्षणकर्ता के सुयोग्य अधिवक्ता के अनुसार विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम स्वयं पर्याप्त शिक्षित हैं एवं पारिणामिक रूप से स्वयं एवं अपनी पुत्री हेतु भरण-पोषण की धनराशि अर्जित करने में पूर्णतः समर्थ हैं। ऐसी दशा में पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम हेतु 3,000 रुपये मासिक तथा अवयस्क पुत्री

हेतु 2,000/- रुपये मासिक की धनराशि आलोच्य निर्णय के माध्यम से स्वीकृत किया जाना पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य के प्रतिकूल होने के साथ-साथ पुनरीक्षणकर्ता की सीमित आय तथा उनके अन्य वित्तीय दायित्वों के आलोक में अत्यधिक है एवं पारिणामिक रूप से अपास्त किये जाने योग्य है।

11. अपने उपरोक्त वर्णित तर्कों के समर्थन में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3 एवं 5 में उल्लिखित प्राविधानों पर बल देते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **सेक्रेटरी, तमिलनाडु वक्फ बोर्ड बनाम सैय्यद फातिमा नाची** के प्रस्तर 6 लगायत 9 में प्रतिपादित सिद्धान्त के आधार पर यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया है कि विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम प्रस्तुत मामले के तथ्य एवं परिस्थितियों के आलोक में संबंधित वक्फ बोर्ड से भरण-पोषण की धनराशि प्राप्त कर सकती हैं साथ ही उन्होंने **श्रीमती अजमेरीलुसान बनाम बनाम मो० अहमद** 2 में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि सिद्धान्त के आलोक में यह तर्क प्रस्तुत किया कि यदि पति ने स्वयं द्वारा प्रस्तुत लिखित कथन में पत्नी को तलाक दे दिये जाने का कथन किया है तब ऐसी दशा में तलाक का तथ्य अन्यथा साबित नहीं होने की दशा में भी पक्षों के मध्य तलाक लिखित कथन की तिथि से स्वतः प्रभावी हो जायेगा। इस विधिक स्थिति को विद्वान विचारण न्यायालय ने दृष्टिगत नहीं रखा है।

12. उपरोक्त वर्णित समस्त तर्कों के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता का यह तर्क है कि

आलोच्य आदेश अविधिक होने के कारण अर्थाय है एवं पारिणामिक रूप से अपास्त किये जाने योग्य है।

13. विपक्षी संख्या 1 राज्य हेतु श्री आलोक शरण एवं विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम के सुयोग्य अधिवक्ता श्री फरहान आलम ओस्मानी ने उपरोक्त वर्णित तर्कों का बलपूर्वक खण्डन करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया है कि आलोच्य आदेश उभयपक्षों के अभिकथनों एवं पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के सम्यक विश्लेषण के उपरान्त पारित किया गया सकारण निर्णय है, जो किसी भी प्रकार अविधिक नहीं है एवं पारिणामिक रूप से आलोच्य निर्णय एवं आदेश में हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है।

14. यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता का विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम से विवाह का स्वीकृत तथ्य है। विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम ने विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष ए०पी०डब्लू०1 के रूप में अपने सशपथ साक्ष्य में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा तलाक़ दिये जाने के तथ्य का खण्डन किया है। विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम द्वारा यह भी सिद्ध किया गया है कि यद्यपि वह शिक्षित हैं किन्तु वह स्वयं एवं अपने 1 वर्षीय अवयस्क पुत्री का भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं। साक्ष्य के सम्यक विश्लेषण के आधार पर विद्वान विचारण न्यायालय ने यह उचित निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा साधन सम्पन्न होने के पश्चात भी विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम एवं अपनी

अवयस्क पुत्री कुमारी आलिया के भरण-पोषण के प्रति उपेक्षा किया गया एवं विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम अपनी अवयस्क पुत्री के साथ उचित कारण से पुनरीक्षणकर्ता से पृथक रह रही हैं। ऐसी दशा में आलोच्य आदेश पूर्णतः सकारण है तथा साक्ष्य एवं विधि के सम्यक विश्लेषण पर आधारित है। अतः पारिणामिक रूप से इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

15. विपक्षीगण के सुयोग्य अधिवक्तागण ने अपने तर्कों को विराम देने के पूर्व न्यायालय का ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकृष्ट किया है कि मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 3, 4 एवं 7 तथा संहिता की धारा 125 के समेकित अवलोकन से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जायेगा कि विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम द्वारा संहिता की धारा 125 के अंतर्गत दिया गया आवेदन पत्र पोषणीय है तथा इस निष्कर्ष को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **डैनियल लतीफी एवं अन्य बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया**³ में प्रतिपादित विधि सिद्धान्त से भी बल प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

16. उभय पक्षों के तर्कों के आलोक में पत्रावली के सम्यक परिशीलन से यह विदित होता है कि पुनरीक्षणकर्ता ने यह तथ्य स्वतः स्वीकार किया है कि पुनरीक्षणकर्ता एवं विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम का निकाह मुस्लिम रीति-रिवाज से दिनांक 27.11.2014

को संपन्न हुआ था। पक्षों के वैवाहिक संबंध से एक अवयस्क पुत्री कुमारी आलिया, आयु 1 वर्ष के जन्म के तथ्य को भी पुनरीक्षणकर्ता द्वारा स्वीकार किया गया है।

17. पुनरीक्षणकर्ता के सुयोग्य अधिवक्ता द्वारा मुख्य रूप से इस तथ्य पर बल दिया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता ने विद्वान विचारण न्यायालय में स्वयं द्वारा प्रस्तुत लिखित उत्तर में इस तथ्य का उल्लेख किया था कि पुनरीक्षणकर्ता ने दिनांक 16.08.2016 को साक्षीगण के सम्मुख स्वीय विधि के अनुसार विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम को तलाक दे दिया था। इस तथ्य के लिखित उत्तर में उनके द्वारा उल्लेख कर दिये जाने के पश्चात इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा **श्रीमती अजमेरीलुसान बनाम मोईन अहमद**, उपरोक्त वर्णित के प्रस्तर⁸ एवं 9 में प्रतिपादित विधि सिद्धान्त के अनुसार ऐसा उल्लेख लिखित कथन प्रस्तुत किये जाने की तिथि से पुनरीक्षणकर्ता द्वारा विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम को तलाक दे दिये जाने की उद्घोषणा का प्रभाव रखेगा। अतः पारिणामिक रूप से विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम पुनरीक्षणकर्ता की तलाकशुदा पत्नी होने के कारण संहिता की धारा 125 के अंतर्गत भरण-पोषण हेतु आवेदन प्रस्तुत करने हेतु समर्थ नहीं थीं तथा ऐसा आवेदन पत्र दिनांक 16.08.2016 के पश्चात पोषणीय भी नहीं है। किन्तु पुनरीक्षणकर्ता के सुयोग्य अधिवक्ता का यह तर्क माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **शमीम आरा बनाम स्टेट ऑफ उत्तर प्रदेश एवं अन्य⁴** में प्रतिपादित विधि सिद्धान्त के आलोक में कदापि स्वीकार्य

नहीं है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा शमीम आरा, उपरोक्त में यह विधि सिद्धान्त स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है कि तलाक के तथ्य प्रभावी होने हेतु यह एक पूर्ववर्ती शर्त है कि तलाक दिये जाने का तथ्य साक्ष्य के आधार पर सिद्ध किये जाने चाहिए। मात्र तलाक दे दिये जाने का तथ्य लिखित कथन में अभिलिखित करने से अथवा अन्य किसी कार्यवाही में अभिकथित किये जाने से तलाक स्वतः प्रभावी हो जाने की अवधारणा नहीं किया जा सकता है।

18. यह अविवादित है कि यद्यपि पुनरीक्षणकर्ता ने विपक्षी सं०- 2 से तलाक हो जाने के तथ्य की उद्घोषणा हेतु पृथक वाद योजित किया था किन्तु स्वतः उनके द्वारा ही ऐसा वाद वापस ले लिया गया। अतः विद्वान अवर न्यायालय ने पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के सम्यक विश्लेषण के उपरान्त उचित रूप से निष्कर्ष अवधारित किया है कि पुनरीक्षणकर्ता विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम को तलाक देने एवं तलाक दे दिये जाने के कारण उनके मध्य पति-पत्नी की प्रास्थिति समाप्त होने के तथ्य को सिद्ध करने में असफल रहे हैं। अतः विपक्षी संख्या 2 श्रीमती जेबा खानम द्वारा संहिता की धारा 125 के अंतर्गत भरण-पोषण हेतु प्रस्तुत आवेदन पत्र सर्वथा उचित रूप से पोषणीय होना अवधारित किया गया है।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 125 दं०प्र०सं० के उद्देश्यों का निर्वचन करने के क्रम में **विमला बनाम वीरा स्वामी⁵** में यह विधि सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि संहिता की धारा 125 का

उद्देश्य परित्यक्त एवं उपेक्षित पत्नी एवं बच्चों को भुखमरी से बचाने हेतु एक त्वरित एवं सुलभ उपचार प्रदान करना है। यह उपचार संक्षिप्त प्रकृति का है जैसा कि **माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मानक चंद बनाम चन्द्र किशोर**⁶ में कहा गया है।

20. यह अविवादित तथ्य है कि विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत लिखित कथन में पुनरीक्षकर्ता द्वारा यह उल्लेख किया गया कि उन्होंने विपक्षी संख्या 2 को तलाक दे दिया है। यद्यपि वह साक्ष्य के आधार पर यह तथ्य सिद्ध करने में पूर्णतः असफल रहे हैं अतः ऐसी स्वीकृत परिस्थितियों में विपक्षी संख्या 2 का पुनरीक्षकर्ता से पृथक रहना स्वतः एक पर्याप्त कारण है।

21. इसी क्रम में माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा **मिथिलेश कुमारी बनाम विन्ध्यवासिनी**⁷ में प्रतिपादित विधि सिद्धान्त का उल्लेख भी सुसंगत है, जिसके अनुसार पुनरीक्षकर्ता द्वारा विपक्षी संख्या 2 के भरण-पोषण के प्रति उपेक्षा अथवा इससे इन्कार किए जाने का अनुमान वाद के तथ्य एवं परिस्थितियों से भी निकाला जा सकता है। यह अनुमान विपक्षी/पति के आचरण से भी निकाला जा सकता है। विद्वान खंडपीठ द्वारा यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया गया कि यदि पत्नी के पक्ष में यह निष्कर्ष अवधारित किया जाता है कि उनका पति से पृथक रहने का आधार उचित एवं पर्याप्त है, तब ऐसी परिस्थिति में पति द्वारा उनके भरण-पोषण करने से विरत रहने के तथ्य का अनुमान स्वतः निकाला जा सकता है।

22. प्रस्तुत मामले में भी ऐसा कोई साक्ष्य विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष विपक्षी/पुनरीक्षकर्ता द्वारा नहीं प्रस्तुत किया गया जिससे यह विदित होता हो कि उन्होंने विपक्षी संख्या 2 एवं अपनी अवयस्क पुत्री के पृथक रहने की अवधि में उनके भरण-पोषण हेतु कोई आर्थिक सहायता की हो।

23. विद्वान विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष भी पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य पर ही आधारित है कि विपक्षी एक साधन सम्पन्न व्यक्ति हैं, उनके पास विपक्षी एवं उसकी अवयस्क पुत्री के भरण-पोषण हेतु आदेशित धनराशि अदा करने हेतु पर्याप्त साधन हैं, इसके प्रतिकूल विपक्षी संख्या 2, यद्यपि वह शिक्षित हैं किन्तु वह स्वयं आय अर्जित करने में असमर्थ हैं। पत्रावली पर ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष दिया जा सके कि विपक्षी स्वयं एवं अपनी अवयस्क पुत्री के भरण-पोषण हेतु आय अर्जित करने में समर्थ हैं। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **चतुर्भुज बनाम सीताराम**⁸ में इस आशय का विधि सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि यदि पत्नी कुछ आय अर्जित भी कर रही हो, तथापि वह अपने पति से भरण-पोषण प्राप्त कर सकती है, क्योंकि "स्वयं का भरण-पोषण कर पाने में असमर्थ" का आशय यह है कि वह ऐसे स्तर का भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं जैसा कि वह अपने पति के साथ रहकर प्राप्त करती थीं।

24. इसी क्रम में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **अशोक कुमार सिंह बनाम एडिशनल सेशन जज वाराणसी**⁹ का उल्लेख भी

सुसंगत है, जिसमें यह अवधारित किया गया है कि यदि पत्नी शिक्षित है किन्तु सेवारत नहीं है, तो भी वह पति से भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं।

25. विद्वान विचारण न्यायालय ने इस आशय का उचित निष्कर्ष अभिलिखित किया है कि पुनरीक्षणकर्ता स्वयं विपक्षी संख्या 2 एवं अवयस्क पुत्री के भरण-पोषण हेतु पर्याप्त साधन सम्पन्न व्यक्ति हैं, क्योंकि सुस्थापित विधि सिद्धान्तों के अनुसार एक स्वस्थ शरीर के व्यक्ति का यह वैधानिक दायित्व है कि वह अपनी पत्नी एवं अवयस्क पुत्री का भरण-पोषण यथा योग्य करें। इस आशय के निष्कर्ष को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **शमीमा फारुकी बनाम शाहिद खान**¹⁰ में प्रतिपादित विधि सिद्धान्त से भी बल प्राप्त होता है।

26. इसी क्रम में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **रजथी बनाम सी. गनेशन**¹¹ का उल्लेख भी पूर्णतः सुसंगत है, जिसके अनुसार स्वयं के भरण-पोषण में असमर्थ होने का आशय यह है कि परित्यक्त पत्नी अथवा पृथक रह रही पत्नी, पति से पृथक रहने की अवधि के उस स्तर के भरण-पोषण की अधिकारिणी हैं जिस स्तर का जीवन-यापन वह अपने पति के साथ रहकर कर रही थीं।

27. यह सुस्थापित विधि सिद्धान्त है कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार अत्यंत सीमित होता है। तथ्य सम्बंधित निष्कर्ष में हस्तक्षेप मात्र उसी दशा में अनुमन्य होता है, जब आलोच्य आदेश अनुचित एवं क्षेत्राधिकार विहीन हो। इस सम्बंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा

स्टेट ऑफ राजस्थान बनाम गुरु चरण दास चढ़ा¹², **विनय त्यागी बनाम इरशाद अली**¹³ एवं **अमित कपूर बनाम रमेश चन्दर**¹⁴ का उल्लेख किया जाना सुसंगत है।

28. अतः उपरोक्त वर्णित विवेचना के आलोक में आलोच्य निर्णय एवं आदेश दिनांकित 26.10.2019 पूर्णतः साक्ष्य सम्मत एवं पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के सम्यक विश्लेषण पर आधारित है, जिसमें कोई अवैधानिकता, तात्त्विक त्रुटि अथवा क्षेत्राधिकारिता संबंधी त्रुटि परिलक्षित नहीं होता है।

29. निर्णय पूर्ण करने के पूर्व यह उल्लेख किया जाना भी सुसंगत प्रतीत होता है कि यद्यपि प्रश्नगत प्रकरण में विद्वान विचारण न्यायालय ने इस आशय का स्पष्ट निष्कर्ष अवधारित किया है कि विपक्षी संख्या 2 पुनरीक्षणकर्ता की विवाहित पत्नी हैं एवं पुनरीक्षणकर्ता यह सिद्ध करने में पूर्णतः असफल रहे हैं कि उनके द्वारा विपक्षी संख्या 2 को तलाक दे दिया गया है। तथापि इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि **डैनियल लतीफी (उपरोक्त वर्णित)** एवं **शमीमा फारुकी बनाम शाहिद खान (उपरोक्त वर्णित)** में प्रतिपादित विधि सिद्धान्त के आलोक में यह अब कदापि अनिर्णित विषय नहीं है कि एक मुस्लिम पत्नी अपने पूर्व पति से तलाक के उपरान्त भी पुनर्विवाह न करने तक की अवधि हेतु भरण-पोषण की धनराशि प्राप्त करने हेतु संहिता की धारा 125 के अन्तर्गत आवेदन पत्र प्रस्तुत करने हेतु सर्वथा समर्थ है।

30. उपर्युक्त वर्णित समस्त विचार-विमर्श का सार यह है कि प्रस्तुत दाण्डिक पुनरीक्षण बलहीन है एवं पारिणामिक रूप से निरस्त किए जाने योग्य है।

आदेश

31. पारिणामिक रूप से दाण्डिक पुनरीक्षण निरस्त किया जाता है।

32. निर्णय की एक प्रति विद्वान अवर न्यायालय को सूचनार्थ एवं अनुपालनार्थ अविलंब प्रेषित की जाए।

(2023) 4 ILRA 472

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 339 / 2020

लल्लन कुमार

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री प्रदीप कुमार सिंह, श्री अफशां शफात, श्री आशीष कुमार सिंह, श्री सुनील कुमार सिंह, श्री सुशील कुमार यादव, श्री अमित सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: ए.एस.जी.आई., श्री सुदर्शन सिंह, श्री आशीष पांडे

आपराधिक कानून- आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 451 और 457 (1) -स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 -धारा 8, 20, 27-ए, 29, 51, 60 और

60 (3) -आपराधिक पुनरीक्षण- आपेक्षित आदेश को चुनौती - जिसके द्वारा कथित रूप से बरामद किए गए वाहन को छोड़ने के लिए पुनरीक्षणकर्ता का आवेदन निरस्त कर दिया गया था - न्यायालय ने पाया कि, प्रश्नगत वाहन लोड पर खरीदा गया था जिसके लिए वह जल्ती के बाद ईएमआई का भुगतान कर रहा है - वाहन 2019 से संबंधित पुलिस स्टेशन में पड़ा था - तर्क दिया गया कि इसे जारी नहीं किया गया था, यह क्षतिग्रस्त हो जाएगा और पुनरीक्षणकर्ता बैंक की ईएमआई का भुगतान कर रहा है - वाहन को पुलिस स्टेशन में रखने का कोई उपयोगी उद्देश्य नहीं होगा - आयोजित, 'सुंदर भाई अंबाला देसाई' में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत होने के कारण आक्षेपित आदेश बिल्कुल गलत है - इसलिए, आक्षेपित आदेश को निरस्त कर दिया जाना चाहिए और यह निर्देश दिया जाता है कि वाद के लंबित रहने के दौरान संबंधित वाहन का पंजीकरण प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने पर वाहन की अंतरिम अभिरक्षा पुनरीक्षक को दी जाए और केवल संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए बंध प्रस्तुत किया जाएगा - संशोधन स्वीकृत। (पैरा- 4, 5, 7)

आपराधिक पुनरीक्षण स्वीकृत (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. कपिल झा बनाम एम.पी. राज्य (एमसीआरसी संख्या 4636/2022),
2. सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, 2002 (10) एससीसी 283।

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

(1) पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना

(2) इस तथ्य के बावजूद कि भारत संघ की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ, विशेष लोक अभियोजक (एन सी बी) की ओर से जवाबी हलफनामा दाखिल किया गया।

(3) वर्तमान अपराधिक पुनरीक्षण के द्वारा पुनरीक्षणकर्ता ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 16 वाराणसी मामला संख्या 10 सन् 2019 अन्तर्गत धारा 8,20,27-ए, 29,60 में पारित आदेश को चुनौती दिया है। (iii) एन०डी०पी०एस०एक्ट थाना एन सी बी महानगर लखनऊ इस आधार पर खारिज किया गया कि प्रार्थी इस तथ्य का कोई साक्ष्य रिकार्ड पर नहीं ला सका कि उसकी जानकारी में नहीं था कि उपरोक्त अपराध में उसकी गाड़ी का उपयोग किया गया है।

(4) स्वयं अभियोजन पक्ष के विरुद्ध मुकदमें के अनुसार उसकी गाड़ी से गाँजे के केवल 5 पैकेट बरामद किए जाने का आरोप है यद्यपि उपरोक्त कथित बरामदगी में कोई स्वतन्त्र गवाह नहीं था तथा गाँजा उसकी गाड़ी के पीछे खड़े ट्रक से बरामद किया गया था। आगे कहा गया है कि प्रश्नगत वाहन लोन पर खरीदा गया था जिसके लिए वह किस्त का भुगतान कर रहा है। जब्ती के बाद उसका वाहन सम्बन्धित थाने में पड़ा

हुआ था, यदि छोड़ा नहीं गया तो क्षतिग्रस्त हो जाएगा। अपने विवाद के समर्थन में पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा एम सी आर सी सं०4636 सन् 2022 (कपिल झा बनाम स्टेट ऑफ मध्य प्रदेश के निर्णय पर भरोसा रखा जिसमें माननीय न्यायालय ने सुन्दर भाई अम्बालाल देसाई बनाम स्टेट ऑफ गुजरात 2002(10) एस सी सी 283 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करने के पश्चात यह माना कि वाहन एन०डी०पी०एस० एक्ट की धारा 60 के अन्तर्गत जब्त किया गया किन्तु एन डी पी एस एक्ट की धारा 36 सी एवं इसी प्रकार एन०डी०पी०एस० एक्ट की धारा 51 के आधार पर यह स्पष्ट है कि धारा 451 अथवा सी०आर०पी०सी० की धारा 457(1) का प्राविधान भी लागू होता है, जो यह प्रावधान करता है कि परीक्षण के लम्बित रहने के दौरान सम्पत्ति को मालिक की अंतरिम हिरासत में अवमुक्त कर दिया जाना चाहिए जिससे कि इसे क्षति होने से बचाया जा सके।

(5) मेरा दृष्टिकोण है कि चूँकि प्रश्नगत वाहन सम्बन्धित थाने में 2019 से पड़ा हुआ था तथा पुनरीक्षणकर्ता बैंक की किश्ते दे रहा था और वाहन को जब्ती के अन्तर्गत थाने पर रखने का कोई उपयोगी उद्देश्य नहीं होगा, क्योंकि परीक्षण में समय लग सकता है, और इसी दौरान प्रश्नगत वाहन क्षतिग्रस्त हो सकता है। इसलिए आक्षेपित आदेश पूर्णतया त्रुटिपूर्ण है क्योंकि यह सुन्दर भाई अम्बालाल देसाई (पूर्व) के मामले में सर्वोच्च

न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के विरुद्ध है। इसीलिये रद्द किए जाने योग्य है और निर्देश दिया जाता है कि स्कारपियो कार जिसकी रजिस्ट्रेशन संख्या बी आर-10- पी ए-9743 है, पुनरीक्षणकर्ता को सम्बन्धित वाहन का रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने पर परीक्षण के लम्बित रहने के दौरान सम्बन्धित न्यायालय की संतुष्टि हेतु रु०2,00,000/- की जमानत देने पर, वाहन दे दिया जाय।

(6) उपरोक्त अवलोकन के साथ पुनरीक्षण स्वीकृत किया जाता है।

(7) उपरोक्त को दृष्टि में रखते हुए निचली अदालत के निर्णय कि चूंकि वाहन जब्त किए जाने योग्य है, अन्तरिम अभिरक्षा नहीं प्रदान की जा सकती, रद्द किये जाने योग्य है एवं तदनुसार अतिरिक्त सेशन न्यायाधीश न्यायालय सं०16 वाराणसी द्वारा 16/12/2019 को पारित आदेश रद्द किया जाता है। तदनुसार प्रार्थना पत्र को स्वीकृत करते हुए वाहन को निम्नलिखित शर्तों पर अवमुक्त किया जाता है:-

(i) यह आदेश दिया जाता है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा रु०2,00,000/- के व्यक्तिगत बॉड के साथ एक जमानतदार द्वारा इतनी ही रकम की जमानत जो कि न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार हो, उपरोक्त वाहन (स्कारपियो रजिस्ट्रेशन नं० बी०आर-10 पी ए-9743 को पुनरीक्षण कर्ता

को सुपुर्दगीनामा पर अपना मालिकाना हक साबित करने पर सौंप दिया जाएगा।

(ii) जब कभी भी सक्षम न्यायालय द्वारा आवश्यकता होगी वादी को अपने खर्च पर वाहन को वहाँ प्रस्तुत करना होगा जैसा कि इस सम्बन्ध में निर्देशित किया जाएगा।

(iii) सुपुर्दगीनामा पर वाहन को मुक्त करते समय उपरोक्त प्राधिकारी उपरोक्त कथित वाहन का चेसिस संख्या, इंजन सं० एवं रजिस्ट्रेशन संख्या लिखना सुनिश्चित करेगा और रिकार्ड पर रखेगा।

(iv) वादी उपरोक्त कथित वाहन में न तो कोई बदलाव करेगा और न ही उसकी स्थिति में वाद के लम्बित रहने के दौरान किसी प्रकार से परिवर्तन करेगा।

(v) वादी उपरोक्त कथित वाहन पर किसी तीसरे पक्षकार के अधिकार का श्रृंजन नहीं करेगा।

(vi) वादी वाहन के चेसिस और इंजन पर अंकित संख्या में बदलाव, खुरचने एवं मिटाने का कार्य नहीं करेगा।

(vii) उपरोक्त कथित शर्तों में सम्पूर्ण या किसी एक शर्त के उल्लंघन की स्थिति में प्रतिपक्षी राज्य को स्वतन्त्रता है कि वह इस न्यायालय द्वारा पारित आज के आदेश में सुधार या रूपान्तर के लिए इस न्यायालय में जाए।

(2023) 4 ILRA 474

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2213 / 2018

विनोद कुमार

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री एम.पी.एस.

चौहान

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री एस.पी.एस.

चौहान, श्रीमती मीनाक्षी चौहान

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 154,156 और 397- पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत आवेदन को विचारणीय विद्वान न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया था- मजिस्ट्रेट को सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत एफआईआर दर्ज करने का आदेश देने, मामले की जांच करने या इस तरह के आवेदन को शिकायत के रूप में मानने के लिए कानूनी रूप से अधिकृत किया गया है, जैसा भी मामला हो और वह अपने समक्ष प्रस्तुत आवेदन को निरस्त करने के लिए भी पूरी तरह से सशक्त है-न्यायालय के समक्ष होने से पूर्व वादी को एफआईआर दर्ज करने के लिए पुलिस स्टेशन जाना चाहिए और यदि वहां कोई नहीं मिलता है, तो पुलिस अधीक्षक को एक आवेदन देना चाहिए और इस तथ्य को मजिस्ट्रेट के समक्ष सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत उनके आवेदन में स्पष्ट रूप से दर्शाया जाना

चाहिए- यदि सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत आवेदन के समर्थन में कोई शपथपत्र दायर नहीं किया गया था तो संबंधित न्यायालय द्वारा विचार नहीं कारण चाहिए था। (पैरा 9-15, 25-28, 35-41)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. जगन्नाथ वर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, एआईआर 2014 इलाहाबाद 214 (लखनऊ बेंच) (एफ.बी.)
2. फादर थॉमस बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2011 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2278 (इलाहाबाद) (एफ.बी.)
3. ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 2 एससीसी 1
4. प्रियंका श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 6 सुप्रीम कोर्ट केस 287
5. सुखवासी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 क्रि एलजे 472 (इलाहाबाद) (डी.बी.)
6. सुरेश चंद्र जैन बनाम एम.पी. राज्य, ए.आई.आर. 2001 सुप्रीम कोर्ट 571,
7. गोपाल दास सिंधी बनाम असम राज्य, ए.आई.आर. 1961 सुप्रीम कोर्ट 986,
8. मधु बाला बनाम सुरेश कुमार, ए.आई.आर. 1997 सुप्रीम कोर्ट 3104,
9. रमेश कुमारी बनाम एस.टी. (एन.सी.टी. दिल्ली), ए.आई.आर. 2006 सुप्रीम कोर्ट 1322
10. बाबू वेंकटेश एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, (2022) 5 सुप्रीम कोर्ट केस 639

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,
द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. और विपक्षी संख्या-3 के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. विविध वाद संख्या-136/2018, विनोद कुमार बनाम एदल सिंह, पी.एस.- गभना, अलीगढ़ के रूप में पंजीकृत पुनरीक्षणकर्ता/आवेदक द्वारा धारा-156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत योजित एक आवेदन को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-5, अलीगढ़ के आदेश दिनांक 26.05.2018 द्वारा निरस्त कर दिया गया था, जिससे व्यथित होकर, वर्तमान पुनरीक्षण योजित किया गया है।

3. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क संक्षेप में यह हैं कि मामले के तथ्यों और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। यह कानून के प्रावधानों के विपरीत है और क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि से ग्रस्त है क्योंकि न्यायालय में निहित अधिकार क्षेत्र का ठीक से प्रयोग नहीं किया गया है। विद्वान सत्र न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां विकृत और मनमानी प्रकृति की हैं। दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ता द्वारा योजित आवेदन के अवलोकन से, एक संज्ञेय अपराध स्पष्ट रूप से बनता था और अदालत को एफआईआर दर्ज करने और मामले की जांच करने का आदेश देना चाहिए था, लेकिन इसे अवैध तरीके से निरस्त कर दिया गया

था। इसलिए, वर्तमान पुनरीक्षण की स्वीकृत करके आक्षेपित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

4. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. के साथ-साथ विपक्षी संख्या-2 के विद्वान अधिवक्ता ने वर्तमान पुनरीक्षण का बलपूर्वक विरोध किया है और यह तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश, मामले को नियंत्रित करने वाले कानूनी सिद्धांतों के अनुसार पारित किया गया है। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत योजित आवेदन, कानून में टिकाऊ नहीं था और सत्र न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में कोई कानूनी या न्यायिक त्रुटि नहीं की। इसलिए, पुनरीक्षण निरस्त करने योग्य है।

5. दं.प्र.सं. की धारा-156 (3) के अंतर्गत आवेदन के अवलोकन से पता चलता है कि 09.03.2018 को पीड़िता, आवेदक की बेटी, जिसकी उम्र लगभग 14 वर्ष थी, गांव की अन्य महिलाओं के साथ किसी बाहरी स्थान पर गई थी। रात 11:00 बजे, आरोपी, उसकी नाबालिग बेटी को बहला-फुसलाकर कार में ले लिया, उसके साथ बलात्कार किया और उसके मुंह को दबा दिया ताकि वह चीख न सके। उसे जान से मारने की धमकी भी दी गई। घटना की जानकारी पीड़िता ने अपनी मां को दी और जब सूचनादाता, जो गांव में मौजूद नहीं था, वापस आया, तो उसकी पत्नी ने उसे घटना बताई। उसने आरोपी की तलाश की, लेकिन वह नहीं मिला। इसके बाद, 27.03.2018 को, आरोपी ने फिर से पीड़िता को खींचने का प्रयास किया, जब वह अपनी मां के साथ आ

रही थी और जब सूचनादाता की पत्नी और अन्य गवाहों ने उसे पकड़ने की कोशिश की, तो वह भाग गया। सूचनादाता द्वारा एसएसपी और अन्य पुलिस अधिकारियों और मानवाधिकार आयोग को कई आवेदन दिए गए और वह पी.एस.-गभना भी गया, लेकिन कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई। इसलिए, धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष योजित किया गया था।

6. स्टेशन अधिकारी, पी.एस.-गभना, अलीगढ़ को दिनांक 27.03.2018 और एसएसपी, अलीगढ़ को दिनांक 28.03.2018 को दिया गया आवेदन, रजिस्ट्री रसीदों के साथ दिए गए आवेदन पत्र के संलग्नक के रूप में लगाए गए थे। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उसमें लगाए गए आरोपों को झूठा, तुच्छ और अप्राकृतिक माना और यह पाते हुए कि पीड़िता की कोई चिकित्सा जांच नहीं की गई थी, उक्त आवेदन को 26.05.2018 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया।

7. दोनों पक्षों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों से, विचार हेतु कुछ प्रासंगिक बिंदु सामने आते हैं।

निर्धारण के लिए बिंदु संख्या 1

8. प्रारंभ में, यह स्पष्ट करना वांछनीय है कि वर्तमान पुनरीक्षण पोषणीय है या नहीं।

9. राज्य के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी संख्या-2 के विद्वान अधिवक्ता ने इसे एक बिन्दु बना दिया है कि चूंकि दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत आवेदन को निरस्त करने का आदेश, अन्तरिम आदेश की श्रेणी में आता

है, इसलिए इसके विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है।

10. इसके अलावा, भावी अभियुक्तगण पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष आवश्यक पक्ष थे और चूंकि उन्हें सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था, इसलिए उनके मूल्यवान अधिकार, उस आदेश से प्रभावित होने वाले थे, जिसे अंततः पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित किया गया था, जो कि राज्य और विपक्षी संख्या-2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया विवाद का दूसरा बिन्दु है।

11. विद्वान राज्य के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रश्न का उत्तर पहले ही इस न्यायालय के एक पूर्ण पीठ ने जगन्नाथ वर्मा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, एआईआर 2014 इलाहाबाद 214 (लखनऊ बेंच) (एफबी) में दे दिया है। इस पूर्ण पीठ के मामले में, इस न्यायालय के एक अन्य पूर्ण पीठ निर्णय 'फादर थॉमस बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व एक अन्य, 2011 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2278 (इलाहाबाद) (एफ.बी.)' पर भी विचार किया गया था। उस मामले में, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अंबेडकर नगर ने शिकायत की सामग्री पर विचार करते हुए दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत एक आवेदन को निरस्त कर दिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पुलिस को मामला दर्ज करने और जांच करने का निर्देश देने का कोई आधार नहीं था। पीड़ित पक्ष ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष एक पुनरीक्षण योजित किया, जिसे स्वीकृत किया गया और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द कर दिया गया और बाद में उक्त आवेदन पर

नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। उसी पुनरीक्षण आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता उच्च न्यायालय चले गए थे।

12. जगन्नाथ वर्मा मामले (उपरोक्त) में माननीय पूर्ण पीठ ने इस तरह निर्धारित किया -

"धारा 202 के अंतर्गत प्रक्रिया के जारी होने को स्थगित करने और पुलिस अधिकारी द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं, जांच करने का निर्देश देने की मजिस्ट्रेट की शक्ति, धारा 156 (3) के अंतर्गत पारित आदेश से भिन्न है। इसलिए, जहां धारा 156 (3) के अंतर्गत जांच का आदेश देने से इनकार करते हुए मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश पारित किया जाता है, ऐसा आदेश शिकायतकर्ता के मूल्यवान अधिकारों को प्रभावित करता है। धारा 397 (1) के अंतर्गत पुनरीक्षण का उपचार वर्जित नहीं है क्योंकि ऐसा आदेश उप-धारा (2) के अंतर्गत एक अन्तरिम आदेश नहीं है और न ही धारा 397 (1) के अंतर्गत पुनरीक्षण के वैधानिक उपाय तक पहुंच को इस आधार पर मना किया जा सकता है कि शिकायतकर्ता संहिता के अध्याय-15 में निर्धारित प्रक्रिया का लाभ उठा सकता है।"

13. माननीय पूर्ण पीठ ने विशेष रूप से निर्धारित किया कि एफआईआर के पंजीकरण और मामले की जांच के लिए धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन को निरस्त करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश के विरुद्ध एक पुनरीक्षण याचिका में, भावी अभियुक्त को सुनवाई का अधिकार है। यह भी कहा गया था कि-"लेकिन पुनरीक्षण में सुने जाने के अधिकार

इस आधार पर अनउपलब्ध नहीं हो सकता कि एक व्यक्ति, जो इस तरह के अधिकार का दावा करता है, उसे मूल आदेश से पहले सुनवाई का अधिकार नहीं था, जिसे चुनौती दी गई, वह पहली बार में पारित किया गया था या केवल इसलिए कि सुनवाई का अधिकार रिमांड पर मूल कार्यवाही में उपलब्ध नहीं होगा....."।

आगे बताया गया कि -

"हमारे न्यायशास्त्र में प्राकृतिक न्याय केवल वैधानिक अधिकार का मामला नहीं है, बल्कि निष्पक्ष प्रक्रिया, निष्पक्ष व्यवहार और वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने के संवैधानिक अधिकार का उत्सर्जन या मान्यता है। इसलिए, एक संभावित अभियुक्त धारा 397 के अंतर्गत पुनरीक्षण में सुनवाई का हकदार है, जब धारा 156 (3) के अंतर्गत एक आवेदन को निरस्त करने का आदेश दिया जाता है।

14. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ की संकेतात्मक घोषणा कानूनी स्थिति को स्पष्ट करती है और वर्तमान पुनरीक्षण की पोषणीयता के बारे में सभी संदेहों को स्पष्ट करती है और तदनुसार इसे पोषणीय माना जाता है।

15. अभिलेख के अवलोकन से यह भी स्पष्ट है कि पुनरीक्षणकर्ता द्वारा वर्तमान पुनरीक्षण में भावी अभियुक्त को विपक्षी संख्या-2 के रूप में पक्षकार बनाया है और उसने वर्तमान पुनरीक्षण की कार्यवाही में भाग लिया है।

निर्धारण के लिए बिंदु संख्या 2

यह बिंदु दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत एक आवेदन से निपटने के दौरान मजिस्ट्रेट की शक्ति की सीमा से संबंधित है।

16. चर्चा में जाने से पहले, कानून के प्रासंगिक प्रावधानों का अवलोकन आवश्यक प्रतीत होता है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के प्रावधान इस प्रकार हैं -

"धारा 154. संज्ञेय मामलों में जानकारी. (1) किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक सूचना, यदि किसी पुलिस स्टेशन के भारसाधक अधिकारी को मौखिक रूप से दी जाती है, उसके द्वारा या उसके निदेशानुसार लिखित में दी जाएगी और सूचनादाता को पढ़कर सुनाई जाएगी; और ऐसी प्रत्येक जानकारी, चाहे लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लिखित रूप में कम की गई हो, इसे देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी, और उसका सार ऐसे अधिकारी द्वारा ऐसे प्रारूप में रखे जाने के लिए एक पुस्तक में दर्ज किया जाएगा जैसा कि राज्य सरकार इस संबंध में निर्धारित कर सकती है।

(2) उपधारा (1) के अधीन अभिलिखित सूचना की एक प्रति, सूचनादाता को तत्काल निशुल्क दी जाएगी।

(3) उपधारा (1) में निर्दिष्ट जानकारी को अभिलिखित करने के लिए किसी पुलिस स्टेशन के भारसाधक अधिकारी की ओर से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसी सूचना का सार लिखित रूप में और डाक द्वारा संबंधित पुलिस

अधीक्षक को भेज सकेगा, जो यदि संतुष्ट हो जाता है कि ऐसी जानकारी से संज्ञेय अपराध होने का खुलासा होता है, या तो स्वयं मामले की जांच करेगा या इस संहिता द्वारा प्रदान किए गए तरीके से उसके अधीनस्थ किसी भी पुलिस अधिकारी द्वारा जांच करने का निर्देश देगा, और ऐसे अधिकारी को उस अपराध के संबंध में पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी की सभी शक्तियां होंगी।"

17. दं.प्र.सं. की धारा 154 (1) के प्रावधान स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि यदि किसी पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को दी गई जानकारी के अवलोकन से एक संज्ञेय अपराध बनता है, तो पुलिस को कथित आपराधिक गतिविधि के बारे में अवगत कराया जाता है और फिर यह पुलिस का कर्तव्य है कि वह उपयुक्त कदम उठाए और आपराधिक कानून को गति में स्थापित करे और इस संबंध में पहला कदम है एफआईआर दर्ज करना और उस स्तर पर, जैसा कि ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 2 एससीसी 1 में निर्धारित किया गया था, "सूचना की 'तर्कसंगतता' या 'विश्वसनीयता' धारा 154 दं.प्र.सं. के अंतर्गत मामला दर्ज करने के लिए पूर्ववर्ती शर्त नहीं है।

18. घटना का संपूर्ण विवरण रखना या घटना के हर छोटे से छोटे विवरण को शामिल करना कभी भी एफआईआर की पूर्व-आवश्यकता नहीं माना जाता है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि यह स्पष्ट रूप से निर्धारित कि किसी भी संज्ञेय अपराध की सूचना के मामले में, एफआईआर का पंजीकरण अनिवार्य है। हालांकि, कुछ

मामलों में, प्रारंभिक जांच की आवश्यकता हो सकती है और प्रियंका श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 6 सुप्रीम कोर्ट केसेस 287 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रारंभिक जांच की आवश्यकता पर जोर दिया गया था, जिसमें ललिता कुमारी मामले (उपरोक्त) की संवैधानिक पीठ, को इस तरह संदर्भित किया गया है -

"115. यद्यपि, हम स्पष्ट शब्दों में, मानते हैं कि संहिता की धारा 154 सभी संज्ञेय अपराधों की प्राप्ति पर एफआईआर के अनिवार्य पंजीकरण को मानती है, फिर भी, ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जहां समय बीतने के साथ अपराधों की उत्पत्ति और नवीनता में बदलाव के कारण प्रारंभिक जांच की आवश्यकता हो सकती है। ऐसा ही एक उदाहरण डॉक्टरों की ओर से चिकित्सा लापरवाही से संबंधित आरोपों के मामले में है। शिकायत में लगाए गए आरोपों के आधार पर ही किसी मेडिकल प्रोफेशनल पर मुकदमा चलाना अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।

19. इसके अलावा, संवैधानिक पीठ ने कहा कि जहां प्रारंभिक जांच आवश्यक है, वह जानकारी के सत्यापन या अन्यथा के उद्देश्य से नहीं है, बल्कि केवल यह पता लगाने के लिए है कि क्या सूचना किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा करती है।

20. प्रश्न यह उठता है कि पीड़िता या व्यथित व्यक्ति का उपचार क्या है, यदि पुलिस अपने संवैधानिक और कानूनी कर्तव्य को पूरा करने से इनकार करती है और कानून के अनिवार्य

प्रावधानों की अनदेखी करते हुए एफआईआर दर्ज नहीं की जाती है। धारा 154 (3) को विधायिका द्वारा अपने विवेक और दूरदर्शिता में ऐसे पीड़ित व्यक्ति को एक उपाय प्रदान करने के लिए प्रावधान किया गया है और यही कारण है कि उपरोक्त प्रावधान के अंतर्गत संबंधित एस.पी. को इस मामले में आगे बढ़ने का अधिकार दिया गया है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

21. ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जब पुलिस अधीक्षक से संपर्क करने के बावजूद पीड़ित व्यक्ति अनसुना रह जाता है, और यह उसे विक्षोभ और संकट की स्थिति में छोड़ देता है। यह पीड़ित/सूचनाकर्ता को मजिस्ट्रेट के पास ले जाता है, जो एफआईआर के पंजीकरण और धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत मामले की जांच का आदेश दे सकता है, जो निम्नानुसार प्रदान करता है।

"धारा 156. संज्ञेय मामले की जांच करने के लिए पुलिस अधिकारी की शक्ति. (1) किसी पुलिस स्टेशन का भारसाधक कोई अधिकारी, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, किसी ऐसे संज्ञेय मामले का अन्वेषण कर सकेगा जिसकी अधिकारिता ऐसे स्टेशन की सीमाओं के भीतर स्थानीय क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले न्यायालय को अध्याय-12 के उपबंधों के अधीन जाँच करने या विचारण करने की शक्ति होगी।

(2) ऐसे किसी मामले में किसी पुलिस अधिकारी की किसी कार्यवाही को किसी भी स्तर पर इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि वह मामला ऐसा था जिसकी जांच

करने के लिए ऐसा अधिकारी इस धारा के अधीन सशक्त नहीं था।

(3) धारा 190 के अधीन सशक्त कोई मजिस्ट्रेट ऐसे अन्वेषण का आदेश दे सकेगा जैसा कि ऊपर प्रावधानित है।

22. चूंकि आपराधिक मामले में जांच एफआईआर दर्ज करने के बाद शुरू की जा सकती है, इसलिए यह कहने की जरूरत नहीं है कि जांच के लिए आदेश देने की मजिस्ट्रेट की शक्ति में किसी भी संज्ञेय मामले में एफआईआर के पंजीकरण के लिए आदेश देने की शक्ति भी निहित है।

23. इसलिए, पीड़ितों/सूचनादाताओं के अधिकारों की रक्षा के लिए दंड प्रक्रिया संहिता में पर्याप्त प्रावधान सन्निहित किए गए हैं। एक ओर, यह पुलिस पर निर्भर है कि वह एक संज्ञेय मामले के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर एफआईआर दर्ज करे और साथ ही पुलिस अधीक्षक को यह कर्तव्य सौंपा गया है कि यदि पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी की ओर से एफआईआर के रूप में संज्ञेय अपराध की जानकारी दर्ज करने से इनकार किया जाता है, ऐसे मामले की जांच या तो स्वयं या किसी अन्य अधीनस्थ पुलिस अधिकारी के माध्यम से की जाए।

24. पीड़ित/सूचनाकर्ता के लिए ऐसे अपेक्षित सुरक्षा उपायों और पुलिस के लिए अनिवार्य प्रावधानों के बावजूद, ऐसे कई उदाहरण हो सकते हैं जब धारा 154 दं.प्र.सं. के प्रावधानों को लागू करने के बावजूद एफआईआर दर्ज

नहीं की गई है और यही कारण है कि मजिस्ट्रेट को एफआईआर दर्ज करने और मामले की जांच करने का आदेश देने की शक्ति से लैस किया गया था।

25. अब इस बिंदु पर विचरण किया जाने वाला मुद्दा यह है कि क्या मजिस्ट्रेट धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत एफआईआर के पंजीकरण के लिए आवेदन प्राप्त करने के बाद इसे स्वीकार करने के लिए बाध्य है या कोई अन्य मार्ग उसे उपलब्ध है।

26. इसका उत्तर हमें सुखवासी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 क्रि.एल.जे.472 (इलाहाबाद) (डी.बी.) में मिलता है, जिसमें खंडपीठ ने सबसे पहले अपने समक्ष संदर्भित प्रश्न को उद्धृत किया-

"विचार के लिए, निम्नलिखित प्रश्न संदर्भित किया गया है;

क्या मजिस्ट्रेट दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत प्रत्येक आवेदन पर आदेश पारित करने के लिए बाध्य है, जिसमें एफआईआर दर्ज करने और पुलिस द्वारा इसकी जांच के लिए संज्ञेय अपराध करने के आरोप शामिल हैं, भले ही वे आरोप, प्रथम दृष्टया, वास्तविक प्रतीत न हों और तर्क को अपील न करें, या वह मामले में न्यायिक विवेक का प्रयोग कर सकता है और इसे 'शिकायत' के रूप में मानने के लिए आदेश पारित कर सकता है या उपयुक्त मामलों में इसे अस्वीकार कर सकता है?"

प्रश्न का उत्तर देते हुए, यह निर्धारित किया

गया कि - "ऊपर वर्णित कारणों के आधार पर मेरी राय है कि मजिस्ट्रेट हमेशा एक संज्ञेय अपराध का खुलासा करती हुई धारा-156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन प्राप्त होने के बाद मामले को दर्ज करने और जांच के लिए आदेश पारित करने के लिए बाध्य नहीं होता है। मजिस्ट्रेट अपने अधिकार का विवेकपूर्ण उपयोग कर सकता है और यदि उसकी राय है कि मामले की परिस्थितियों में, आवेदन को शिकायत के मामले के रूप में मानना उचित होगा तो वह दं.प्र.सं. के अध्याय-15 के अंतर्गत प्रदान की गई प्रक्रिया के अनुसार आगे बढ़ सकता है। मेरी यह भी राय है कि प्रत्येक मामले में मजिस्ट्रेट के लिए यह हमेशा अनिवार्य नहीं होता है कि वह दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत आवेदन प्राप्त होने पर उसे दर्ज करने और जांच करने का आदेश पारित करे। वर्तमान मामले में, मजिस्ट्रेट पूरी तरह से न्यायिक शक्ति के अधीन है कि वह धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन को शिकायत के मामले के रूप में मान सकता है। आदेश में कोई अवैधता या अनुचित नहीं है। पुनरीक्षण योग्यता से रहित है और निरस्त होने योग्य है।"

यह भी निर्धारित किया गया कि-"इस काल्पनिक स्थिति से निपटना उचित नहीं होगा कि यदि मजिस्ट्रेट की यह राय है कि आवेदन में झूठा और तुच्छ आरोप लगाया गया है तो वह आवेदन को अस्वीकार कर सकता है या फिर यह जांच अधिकारी के लिए है कि वह कहानी की सत्यता का फैसला करे और यदि गलत पाया जाए तो आवेदक के विरुद्ध अभियोग शुरू करें लेकिन यह मजिस्ट्रेट का अधिकार है कि वह उसका उपयोग विवेकपूर्ण

तरीके से आवेदन का निस्तारण करते समय करे।

27. यहां यह ध्यान देना उचित होगा कि सुखवासी (उपरोक्त) में, सुरेश चंद्र जैन बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2001 सुप्रीम कोर्ट 571, गोपाल दास सिंधी बनाम असम राज्य, एआईआर 1961 सुप्रीम कोर्ट 986, मधु बाला बनाम सुरेश कुमार, एआईआर 1997 सुप्रीम कोर्ट 3104, रमेश कुमारी बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), एआईआर 2006 सुप्रीम कोर्ट 1322 पर चर्चा की गई है और उनका सही भावना में पालन किया गया है।

28. उपरोक्त से, यह स्पष्ट है कि दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत एक आवेदन पर विचार करने वाला मजिस्ट्रेट, एफआईआर के पंजीकरण के लिए आदेश देने और मामले की जांच करने या इस तरह के आवेदन को शिकायत के रूप में मानने, जैसा भी मामला हो, के लिए कानूनी रूप से अधिकृत है, और वह धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत उसके समक्ष पेश किए गए आवेदन को अस्वीकार करने के लिए भी पूरी तरह से अधिकृत है।

निर्धारण के लिए बिंदु संख्या 3

यह बिंदु इस प्रश्न से संबंधित है कि क्या दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत आवेदन के समर्थन में हलफनामा दाखिल करने की आवश्यकता है-

29. चूंकि भारत में न्यायालयों द्वारा विभिन्न अवसरों पर दी गई कानूनी निर्णय, विकासशील समाज के निरंतर अध्ययन और तेजी से

बदलती सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का परिणाम हैं, इसलिए वे हमेशा समय की आवश्यकता और समाज की आवश्यकता के अनुरूप होते हैं।

30. एक समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह पाया गया था कि धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के प्रावधानों का दुरुपयोग कई अवसरों पर कुछ विचलित, बेईमान और सिद्धांतहीन वादियों द्वारा किया जा रहा है, क्योंकि आवेदकों/पीड़ितों की ओर से इस तरह के आवेदनों को कमजोर और झूठे आधार पर भी योजित करने जिम्मेदारी की आवश्यक भावना की कमी होती है और इसके परिणामस्वरूप भावी अभियुक्तगणों को अनावश्यक और कपटपूर्ण कठिनाइयों व पीड़ा का सामना करना पड़ता है।

31. इस पृष्ठभूमि में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रियंका श्रीवास्तव (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित कानूनी सिद्धांत और जारी किए गए निर्देश प्रासंगिक हैं, और इन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए।

32. प्रियंका श्रीवास्तव के पूर्वोक्त मामले के तथ्यात्मक परिदृश्य में, बैंक ऋण से बचने के इरादे से पंजाब नेशनल बैंक हाउसिंग फाइनेंस लिमिटेड के बैंक अधिकारियों के विरुद्ध धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत एक आवेदन योजित किया गया था और उस आवेदन पर पारित आदेश ने धारा-465, 467, 468, 471, 386, 506, 34 और 120-बी आई.पी.सी. के अंतर्गत एफआईआर को जन्म दिया। जब अपीलकर्ता इससे पीड़ित होकर उच्च न्यायालय

की शरण में गए, तो उच्च न्यायालय ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने से यह कहते हुए इनकार कर दिया कि एफआईआर के अवलोकन से, यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई संज्ञेय अपराध नहीं किया गया था।

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आक्षेपित एफआईआर को रद्द करते हुए कई प्रासंगिक टिप्पणियों की और धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन से निपटने वाले न्यायालयों को विशिष्ट निर्देश जारी किए। यह निर्धारित किया गया कि -

"30. हमारी सुविचारित राय में, इस देश में वह समय आ गया है जहां धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के आवेदन, आवेदक द्वारा विधिवत शपथपत्र द्वारा समर्थित हों, जो मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करना चाहता है। इसके अलावा, किसी उपयुक्त मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट को सच्चाई को सत्यापित करने और आरोपों की सत्यता को पता करने की सलाह दी जाती है। यह शपथपत्र आवेदक को अधिक जिम्मेदार बना सकता है। हम ऐसा कहने के लिए बाध्य हैं क्योंकि बिना कोई जिम्मेदारी लिए, इस तरह के आवेदन नियमित तरीके से योजित किए जा रहे हैं, केवल कुछ व्यक्तियों को परेशान करने के लिए। इसके अलावा, यह और भी अधिक परेशान करने वाला और खतरनाक हो जाता है जब कोई ऐसे लोगों को निशाना बनाने की कोशिश करता है, जो एक वैधानिक प्रावधान के अंतर्गत आदेश पारित कर रहे हैं, जिन्हें उक्त अधिनियम के ढांचे में या भारत के संविधान के अनुच्छेद

226 के अंतर्गत चुनौती दी जा सकती है। लेकिन आपराधिक अदालत में अनुचित लाभ लेने के लिए ऐसा नहीं किया जा सकता है, जब कोई व्यक्ति मामला निपटने के लिए दृढ़ है।

31. हमने पहले ही संकेत दिया है कि धारा 156 (3) के अंतर्गत याचिका योजित करते समय धारा 154 (1) और 154 (3) के अंतर्गत पूर्व आवेदन होने चाहिए। आवेदन में दोनों पहलुओं को स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए और इस आशय के आवश्यक दस्तावेज दाखिल किए जाएंगे। यह निर्देश देने के लिए वारंट कि धारा 156 (3) के अंतर्गत एक आवेदन को एक हलफनामे द्वारा समर्थित किया जाए, इसलिए है ताकि आवेदन करने वाला व्यक्ति सचेत हो और यह भी देखने का प्रयास करे कि कोई झूठा हलफनामा न दिया जाए। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक बार शपथपत्र छूठा पाया जाता है, तो वह कानून के अनुसार अभियोजन के लिए उत्तरदायी होगा। यह उसे धारा 156 (3) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट के अधिकार का आकस्मिक रूप से आह्वान करने से रोकेगा। इसके अलावा, हम पहले ही कह चुके हैं कि मामले के आरोपों की प्रकृति के संबंध में विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा इसकी सत्यता को भी पता लगाया जा सकता है। हम ऐसा कहने के लिए मजबूर हैं क्योंकि वित्तीय क्षेत्र, वैवाहिक विवाद/पारिवारिक विवाद, वाणिज्यिक अपराध, चिकित्सा लापरवाही के मामले, भ्रष्टाचार के मामले और ऐसे मामले जहां आपराधिक मुकदमा शुरू करने में असामान्य देरी/कमी है, जैसा कि ललिता कुमारी में देखा गया है, योजित किए जा रहे हैं। इसके अलावा, विद्वान

मजिस्ट्रेट को एफआईआर दर्ज करने में देरी के बारे में भी पता होगा।

इस प्रकार हम इस बिंदु का उत्तर सकारात्मक पाते हैं।

34. अब सवाल उठता है कि क्या धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन, जो न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है, संबंधित अदालत द्वारा विचार योग्य था या नहीं।

35. हाल ही में बाबू वेंकटेश व अन्य बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य, (2022) 5 सुप्रीम कोर्ट केसेस 639 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत मजिस्ट्रेट की शक्ति के प्रयोग के लिए आवश्यक शर्तों और जिस तरीके से इसका प्रयोग किया जाना है, को दोहराया है। उस मामले में, मजिस्ट्रेट द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत पारित आदेश के कारण अपीलकर्ताओं के विरुद्ध धारा 420, 471, 468, 465 और 120-बी आईपीसी के अंतर्गत एफआईआर दर्ज की गई और अपीलकर्ताओं द्वारा धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उच्च न्यायालय के समक्ष योजित याचिकाओं को इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि शिकायतों में धोखाधड़ी और जालसाजी के गंभीर आरोप दिखाए गए थे और इस तरह एफआईआर को रद्द करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था।

36. दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट के दायरे और शक्ति को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को स्पष्ट करते हुए और प्रियंका श्रीवास्तव मामले (उपरोक्त) में

निर्धारित सिद्धांतों को दोहराते हुए, यह निर्धारित किया गया कि -

"इस अदालत ने स्पष्ट रूप से माना है कि ऐसा समय आ गया है, जहां दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत आवेदनों को शिकायतकर्ता द्वारा विधिवत शपथ पत्र द्वारा समर्थित किया जाना है, जो मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करना चाहता है.....

"इस अदालत ने आगे कहा है कि दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत याचिका योजित करने से पहले, दं.प्र.सं. की धारा 154 (1) और 154 (3) के अंतर्गत आवेदन होना चाहिए। यह अदालत शपथपत्र योजित करने की आवश्यकता पर जोर देती है ताकि आवेदन करने वाले व्यक्ति सचेत रहें और गलत हलफनामा न दें। इस तरह की आवश्यकता के साथ, व्यक्तियों को दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट के अधिकार को लागू करने से रोका जाएगा। यदि हलफनामा झूठा पाया जाता है, तो व्यक्ति कानून के अनुसार अभियोजन के लिए उत्तरदायी होगा।

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि शिकायतकर्ता द्वारा धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन के समर्थन में कोई हलफनामा योजित नहीं किया गया था, इसलिए यह निर्धारित किया गया कि -

"वैसे भी, जब शिकायत एक हलफनामे द्वारा समर्थित नहीं थी, तो मजिस्ट्रेट को दं.प्र.सं. की धारा-156 (3) के अंतर्गत आवेदन पर विचार नहीं करना चाहिए था।

38. इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत आवेदन पर विचार करने वाले न्यायालयों के लिए सिद्धांत निर्धारित किया गया है कि यदि इस तरह के आवेदन को शिकायतकर्ता द्वारा विधिवत शपथ पत्र के साथ समर्थित नहीं किया जाता है, तो इस तरह के आवेदन पर मजिस्ट्रेट द्वारा विचार नहीं किया जाएगा।

39. रिकॉर्ड के अवलोकन से, इस न्यायालय ने पाया कि पुनरीक्षण में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत उपरोक्त आवेदन के समर्थन में शिकायतकर्ता द्वारा विधिवत शपथपत्र संबंधित अदालत के समक्ष योजित किया गया था। इस संबंध में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-5, अलीगढ़ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कुछ भी नहीं है। दं.प्र.सं. की धारा 156 (3) के अंतर्गत आवेदन की प्रति यह भी दिखाती है कि इसमें कहीं भी यह कथन नहीं किया गया है कि आवेदक द्वारा उपरोक्त आवेदन के समर्थन में कोई शपथपत्र योजित किया जा रहा है। वास्तव में, अदालत को पूरे अभिलेख के अवलोकन से इस आशय का लेश मात्र भी उल्लेख नहीं मिला कि धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन में लगाए गए आरोपों के समर्थन में कोई शपथपत्र आवेदक द्वारा कभी भी योजित किया गया है।

40. उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि न्यायालय की शरण लेने से पहले, शिकायतकर्ता को एफआईआर के पंजीकरण के लिए पुलिस स्टेशन जाना चाहिए और यदि वहां ध्यान नहीं दिया जाता है, तो पुलिस अधीक्षक

को एक आवेदन प्रस्तुत करना चाहिए और इस तथ्य को भी मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत उसके आवेदन में स्पष्ट रूप से कहना चाहिए। इस मामले में, आवेदक द्वारा पुलिस स्टेशन-गभना, जिला अलीगढ़ और एसएसपी, अलीगढ़ को दिये गए आवेदनों की प्रतियां अभिलेख पर उपलब्ध हैं, लेकिन इस तथ्य को सूचनाकर्ता द्वारा हलफनामे के माध्यम से कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया गया है, जो विषय को नियंत्रित करने वाले कानून का आवश्यक अनुपालन था। हालांकि विद्वान न्यायालय ने इस कानूनी चूक पर कोई ध्यान नहीं दिया है और तथ्यात्मक पहलू पर आक्षेपित आदेश पारित किया है, लेकिन यह न्यायालय किसी भी परिस्थिति में वर्तमान मामले को नियंत्रित करने वाले कानूनी सिद्धांतों की अनदेखी नहीं कर सकता है। यदि धारा 156 (3) दं.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन के समर्थन में कोई हलफनामा योजित नहीं किया गया था, तो संबंधित न्यायालय द्वारा इसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता था। आवेदन स्वयं एक गंभीर कानूनी दोष से ग्रस्त है और इस तरह से पोषणीय नहीं था।

41. इस न्यायालय के लिए मामले के तथ्यों की जांच करना और यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक नहीं है कि क्या विद्वान सत्र न्यायालय ने मामले के तथ्यात्मक परिदृश्य का उचित तरीके से विश्लेषण किया है या नहीं, क्योंकि यह पहले ही पाया जा चुका है कि आवेदन अपने आप में हलफनामे के अभाव में विचारणीय नहीं था, और उसकी अस्वीकृति एक सही निष्कर्ष था।

42. पूर्वोक्त चर्चा के आधार पर, मेरा विचार है कि पुनरीक्षण योग्यता से रहित है और निरस्त करने योग्य है।

43. तदनुसार पुनरीक्षण निरस्त किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 483

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी

(ठाकुर),

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2913 / 2019

नदीम@कालिया

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री भव्य सहाय, श्री ब्रिजेश सहाय (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अवनीश कुमार श्रीवास्तव, श्री अनूप त्रिवेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

दंड विधि-किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000-धारा 7ए, 49-किशोर न्याय (बालकों की देखभाल एवं संरक्षण) नियम, 2007-नियम 12)-किशोर दंड अपील में पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण-कोई व्यक्ति वाद के किसी भी स्तर पर तथा वाद का निर्णय होने के बाद भी स्वयं को किशोर बताते हुए आवेदन प्रस्तुत कर सकता है-'धारा 7ए(1) में किसी भी न्यायालय' का तात्पर्य विचारण न्यायालय/उच्च न्यायालय/सर्वोच्च न्यायालय से है, न कि उत्तर

प्रदेश के किसी न्यायालय से, जहां कोई व्यक्ति आवेदन प्रस्तुत करना चाहता है- मेडिकल रिपोर्ट पर अभियुक्त के अंगूठे का निशान/हस्ताक्षर नहीं है, जिससे मेडिकल परीक्षण के समय पुनरीक्षणकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित नहीं की जा सकती- सीआरपीसी की धारा 313 के तहत पुनरीक्षणकर्ता का अभियोग तथा पुनरीक्षणकर्ता के नाम पर घटना तिथि से पूर्व जारी डीबीबीएल बंदूक का लाइसेंस आरोपी पुनरीक्षणकर्ता की ओर से बालिग होने की स्वीकारोक्ति- दो विक्रय अनुबंध पत्र तथा एक मुख्तारनामा प्रस्तुत किया गया है, जिस पर पुनरीक्षणकर्ता के अंगूठे का निशान है, इससे पुनः यह संकेत मिलता है कि पुनरीक्षणकर्ता घटना की तिथि से पहले बालिग था। (पैरा 10, 33, 38)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. राम विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एलएल 2021 एससी 117
2. मुकर्रब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) 2 एस.सी.सी 210

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी
(ठाकुर) द्वारा प्रदत्त)

श्री बृजेश सहाय, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री भव्य सहाय द्वारा सहायता प्राप्त, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता और श्री अनूप त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अवनीश

कुमार श्रीवास्तव, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा सहायता प्रदान को सुना।

यह पुनरीक्षण धारा 147, 148, 149, 307 एवं 302 भ०द०वि०, थाना-कोतवाली, जिला मेरठ के अंतर्गत प्रकरण अपराध क्रमांक 131 वर्ष 2003 से उद्भूत किशोर आपराधिक अपील क्रमांक 08 वर्ष 2019 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 04.07.2019 के विरुद्ध किया गया है।

केस के तथ्यों के अनुसार सत्र विचारण संख्या-668, 669 और 671 वर्ष 2003, मुकदमा अपराध संख्या-131 वर्ष 2003 और 134 वर्ष 2003 क्रमशः धारा 147, 148, 149, 307, 302 भ०द०वि० और 25/27 शस्त्र अधिनियम, थाना-कोतवाली, जिला मेरठ के तहत विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 04.08.2007 के निर्णय के तहत विचारण न्यायालय द्वारा तय किए गए थे और सभी चार आरोपी व्यक्तियों को दोषी पाया गया था। मामले को मृत्युदंड में उच्चारित किया गया था। आपराधिक संदर्भ संख्या-21 वर्ष 2007, राज्य बनाम खालिद और अन्य, मृत्युदंड की पुष्टि करने के लिए इस अदालत में भेजा गया था। अभियुक्तों ने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक अपील संख्या-5169 वर्ष 2007 - खालिद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य भी दायर की। संदर्भ और आपराधिक अपील दोनों पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा एक साथ सुनवाई की गई। संदर्भ को खारिज कर दिया गया था और अपील को दिनांक 05.09.2008 के निर्णय और आदेश के तहत आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी। मौत की सजा को रद्द कर दिया गया था और इस प्रावधान के साथ आजीवन कारावास यानी पूरे जीवन के लिए

कारावास में बदल दिया गया था कि आरोपी व्यक्ति सजा की छूट के लिए विचार करने के हकदार नहीं होंगे, जब तक कि उन्होंने वास्तविक अवधि 20 साल की कारावास नहीं काट ली हो, जिसमें उनके द्वारा पहले से ही गुजारी गई अवधि भी शामिल है। अपीलकर्ताओं को धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत दिए गए जुर्माने की सजा के साथ-साथ धारा 307/149 और 148 भ०द०वि० के तहत उन्हें दी गई कारावास और जुर्माने की सजा और आरोपी अपीलकर्ताओं ताहिर और मोइनुद्दीन की सजा और धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत उन्हें दी गई सजा को बरकरार रखा गया। कारावास की सभी सजाएं साथ-साथ चलनी थीं। तत्पश्चात् दोषी/पुनरीक्षक को अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के साथ सजा काटने के लिए केन्द्रीय जेल, आगरा स्थानांतरित कर दिया गया था।

एक अधिवक्ता और मानवाधिकार कार्यकर्ता, एक सिस्टर शीबा जोस ने कैदियों की रिहाई के लिए इस न्यायालय के समक्ष एक जनहित याचिका संख्या-855 वर्ष 2012 (सिस्टर शीबा जोस बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर की, जिनकी आयु घटना के समय 18 वर्ष से कम हो सकती है और जिन्हें विभिन्न जिला या केन्द्रीय जेल में हिरासत में रखा गया था। आगरा, केन्द्रीय कारागार के लिए ऐसी राहत प्रदान करने के लिए 18 कैदियों की सूची बनाई गई थी। इस रिट याचिका पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 24.05.2012 के आदेश द्वारा निर्णय लिया गया था और जिला न्यायाधीशों, जो अपने विधिक सेवा प्राधिकरणों के अध्यक्ष भी थे, को यह सुनिश्चित करने के लिए निदेश जारी किए

गए थे कि सक्षम अधिवक्ताओं की नियुक्ति उन कैदियों को कानूनी सहायता प्रदान करने के प्रयोजन से की गई थी जो निजी अधिवक्ताओं को नियुक्त करने में असमर्थ थे और जिनका उल्लेख राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत सूची में किया गया था और जो अपराध होने की तारीख को 18 वर्ष से कम आयु के थे। प्रस्तुत आवेदक ने उन्हें कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए सचिव, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के समक्ष (जेल अधीक्षक, केन्द्रीय जेल, आगरा के माध्यम से) आवेदन किया। उनके आवेदन पर, जिला कानूनी सेवा प्राधिकरण ने उन्हें कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त किया और उसके बाद 22.03.2017 को किशोर न्याय बोर्ड, आगरा के समक्ष पुनरीक्षणकर्ता की ओर से एक आवेदन दायर किया गया जिसमें दावा किया गया कि वह घटना के समय किशोर था और क्योंकि वह साक्षर नहीं था और उसकी उम्र के बारे में कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं था। ऐसे में मेडिकल बोर्ड का गठन कर उसकी आयु निर्धारित की जा सकती है। मेडिकल बोर्ड द्वारा मेडिकल किया गया और मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट दिनांक 19.04.2017 के आधार पर प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा ने दिनांक 22.04.2017 के आदेश द्वारा घटना की तारीख को पुनरीक्षणकर्ता किशोर घोषित किया।

विभिन्न आधारों पर और किशोर न्याय बोर्ड, आगरा के दिनांक 03.05.2017 के आदेश के तहत पुनरीक्षणकर्ता, जिसके बारे में कहा गया था कि उसने 13 साल 10 महीने से अधिक समय तक जेल में बिताया था, को जेल से रिहा करने का आदेश दिया गया था। इन

आदेशों के विरुद्ध दिनांक 22.04.2017 और 03.05.2017 के तहत आवेदन धारा 482 संख्या-18718 वर्ष 2017 के तहत डॉ. मोहम्मद इकबाल गाजी द्वारा दायर किया गया था, जिसे उनके द्वारा 11.10.2017 को इस संस्करण के साथ वापस ले लिया गया था कि इन आदेशों के खिलाफ अपील का उपाय कानून में प्रदान किया गया है और आवेदन गलत अदालत में दायर किया गया था, इसलिए, आदेशों के खिलाफ उचित कानूनी उपाय का लाभ उठाने की स्वतंत्रता के साथ, इस आवेदन को वापस लेने की अनुमति मांगी गई थी, जिसे तदनुसार अनुमति दी गई थी। फिर हाजी बशीरुद्दीन द्वारा पक्षकार संख्या-2 के विपरीत दिनांक 22.04.2017 और 03.05.2017 के आदेशों के विरुद्ध अपील दायर की गई, जिसे सत्र न्यायाधीश, आगरा के दिनांक 04.07.2019 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। दिनांक 22.04.2017 एवं 03.05.2017 के आदेशों को निरस्त कर पुनरीक्षक/अभियुक्त के विरुद्ध गैर जमानती वारंट जारी कर गिरफ्तार करने का आदेश दिया गया।

बेशक, पुनरीक्षणकर्ता फरार रहा और उसकी गिरफ्तारी के लिए संबंधित अदालत द्वारा प्रक्रियाएं जारी की गईं। अंत में रिट याचिका (आपराधिक) संख्या-155 वर्ष 2022 में दिनांक 17.05.2022 के आदेश के तहत पुनरीक्षणकर्ता को विचारण न्यायालय द्वारा अगले आदेश तक लगाई जाने वाली शर्तों के अधीन जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया गया था और उसी रिट याचिका में दिनांक 06.09.2022 के आदेश के तहत सर्वोच्च न्यायालय ने सह-अभियुक्त के आपराधिक

विविध आवेदन संख्या-20368 वर्ष 2017 और आपराधिक संशोधन संख्या-2913 वर्ष 2019 (वर्तमान संशोधन) का निपटान जितनी जल्दी हो सके छह महीने के बाद नहीं, के भीतर का निपटारा करने का अनुरोध करते हुए निर्णीत किया।

इस पुनरीक्षण को पहली बार 22.03.2023 को सह-अभियुक्त के आवेदन यू/एस 482 संख्या-20368 वर्ष 2017 के साथ इस अदालत के समक्ष रखा गया था और धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन में आवेदक के अधिवक्ता ने समय मांगा ताकि वह पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता को सूचित कर सके और तदनुसार 28.03.2023 तय किया गया था और 28.03.2023 को आवेदन धारा 482 संख्या-20368 वर्ष 2017 में दलीलें सुनी गईं और समय की कमी के कारण अगली तारीख यानी 29.03.2023 को वर्तमान पुनरीक्षण पर दलीलें सुनी गईं।

वर्तमान पुनरीक्षण को केस अपराध संख्या-131 वर्ष 2003 से संबंधित क्रिमिनल अपील संख्या-08 वर्ष 2019 में सत्र न्यायाधीश, आगरा के दिनांक 04.07.2019 के आदेश के खिलाफ दायर किया गया है।

निर्णय को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि आक्षेपित निर्णय कानून के स्थापित सिद्धांतों के खिलाफ है। यह अनुमानों और कयासों पर आधारित है। जिला न्यायाधीश, आगरा ने रिकॉर्ड को गलत तरीके से पढ़ा है। इस प्रकार, आदेश मनमाना है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के खिलाफ है और पुख्ता/टिकाऊ नहीं है। किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम की धारा 94 के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया

है, जिसके द्वारा आयु निर्धारण के प्रयोजन के लिए किसी निगम अथवा नगरपालिका अथवा पंचायत द्वारा शैक्षिक प्रमाण-पत्र/जन्म प्रमाण-पत्र/अस्थि-परीक्षण संगत है। किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, मतदाता पहचान पत्र, धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान और हथियार लाइसेंस उम्र निर्धारण के उद्देश्य से अप्रासंगिक हैं। आरोपी पुनरीक्षणकर्ता की उम्र के बारे में अपीलकर्ता द्वारा कोई स्वीकार्य सबूत नहीं दिया जा सकता है। आदेश यांत्रिक रूप से और बिना सोचे-समझे पारित किया गया है, जिसे रद्द करने की आवश्यकता है।

बेशक, एक व्यक्ति मामले के किसी भी चरण में और मामले के फैसले के बाद भी खुद को किशोर होने का दावा करते हुए एक आवेदन दायर कर सकता है। जैसा कि प्रस्तुत मामले में, सत्र परीक्षण संख्या-668, 669 और 671 वर्ष 2003 में निर्णय 04.08.2017 को पारित किया गया था और उसे किशोर घोषित करने के लिए आवेदन वर्ष 2017 में पुनरीक्षणकर्ता द्वारा दायर किया गया था और मेडिकल बोर्ड द्वारा उसकी चिकित्सा परीक्षा पर रिपोर्ट 19.04.2017 को प्रस्तुत की गई थी और दिनांक 22.04.2017 के आदेश के माध्यम से पुनरीक्षणकर्ता को किशोर घोषित किया गया था। 03.05.2017 को उन्हें सेंट्रल जेल से रिहा करने का आदेश दिया गया।

इस पुनरीक्षण में शामिल एकमात्र कानूनी प्रश्न यह है कि क्या मेडिकल बोर्ड द्वारा चिकित्सा परीक्षा की रिपोर्ट की उपस्थिति में अपीलीय अदालत रिकॉर्ड पर अन्य सबूतों के आधार पर पुनरीक्षणकर्ता को घटना की तारीख पर वयस्क मान सकती है?

बेशक, इस अपील का फैसला पुनरीक्षणकर्ता द्वारा उसके द्वारा पर्याप्त तमीला का इनकार करके उसकी अनुपस्थिति में किया गया था।

यह घटना 07-06-2003 की है। बेशक, उस समय किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) प्रचलित था और बाद में 2007 में, किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 (इसके बाद 'नियम 2007' के रूप में संदर्भित) बनाए गए थे। किशोरावस्था के दावे की प्रक्रिया के संबंध में, अधिनियम की धारा 7A और धारा 49 यहाँ उल्लेख करने के लिए उपयुक्त हैं:

7क. किशोरावस्था का दावा किसी न्यायालय के समक्ष उठाए जाने पर अपनाई जाने वाली प्रक्रिया- (1) जब कभी किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का दावा किया जाता है या न्यायालय की यह राय होती है कि कोई अभियुक्त व्यक्ति अपराध किए जाने की तारीख को किशोर था तो न्यायालय जांच करेगा, ऐसे साक्ष्य लेगा जो आवश्यक हों (किंतु शपथ पत्र नहीं) जिससे ऐसे व्यक्ति की आयु अवधारित की जा सके, और एक निष्कर्ष दर्ज करेगा कि क्या व्यक्ति किशोर है या बच्चा है या नहीं, उसकी उम्र लगभग बताई जा सकती है:

परन्तु किशोरावस्था का कोई दावा किसी न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकेगा और उसे मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् भी किसी भी स्तर पर मान्यता दी जाएगी और ऐसे दावे का अवधारण इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में अंतर्विष्ट

उपबंधों के अनुसार किया जाएगा, भले ही किशोर ने इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले ऐसा करना बंद कर दिया हो।

(2) यदि न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अपराध किए जाने की तारीख को किसी व्यक्ति को किशोर पाता है तो वह किशोर को समुचित आदेश पारित करने के लिए बोर्ड को अग्ररूपित करेगा और यदि न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश कोई हो, तो वह प्रभावी नहीं समझा जाएगा।

49. आयु की उपधारणा और अवधारण--(1) जहां सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी के अधीन उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न होने के लिए) किशोर या बालक है तो सक्षम प्राधिकारी उस व्यक्ति की आयु के बारे में सम्यक जांच करेगा और उस प्रयोजन के लिए ऐसे साक्ष्य लेगा जो आवश्यक हों (किंतु शपथ पत्र नहीं) और उसकी उम्र इतनी बताते हुए जितनी लगभग बताई जा सके, ये निष्कर्ष अभिलिखित करेगा कि क्या व्यक्ति किशोर है या बच्चा है या नहीं।

(2) सक्षम प्राधिकारी का कोई आदेश केवल किसी परवर्ती प्रमाण द्वारा अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि जिस व्यक्ति के संबंध में आदेश दिया गया है वह किशोर या बालक नहीं है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस प्रकार उसके समक्ष लाई गई आयु अभिलिखित आयु है। इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए, उस व्यक्ति की सही उम्र माना जाएगा।

अधिनियम की धारा 7 ए को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 7 ए(1) के अनुसार किशोर होने का दावा अधिनियम और उसमें बनाए गए नियमों में निहित प्रावधानों के संदर्भ में निर्धारित किया जाएगा, भले ही किशोर इस अधिनियम के शुरू होने पर या उससे पहले ऐसा होना खत्म हो गया हो।

वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता द्वारा वर्ष 2017 में उसे किशोर घोषित करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया था, तब तक उपरोक्त नियम, 2007 तैयार किए गए थे, इसलिए नियम, 2007 के पुनरीक्षणकर्ता नियम 12 के निर्धारण के संबंध में लागू किया जाएगा। नियमावली, 2007 के नियम 12 निम्नानुसार हैं:-

12. आयु निर्धारण में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया।

(1) विधि का उल्लंघन करने वाले बालक या किशोर से संबंधित प्रत्येक मामले में, न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, इन नियमों के नियम 19 में निर्दिष्ट समिति ऐसे किशोर या बालक या विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर की आयु उस प्रयोजन के लिये आवेदन करने की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर अवधारित करेगी।

(2) न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, समिति किशोर या बालक या यथास्थिति, विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर होने का, प्रथम दृष्टया शारीरिक रूप या दस्तावेजों, यदि उपलब्ध हो, के आधार पर किशोरावस्था या अन्यथा का निर्णय करेगी और उसे संप्रेक्षण गृह या जेल में भेजेगी।

(3) विधि का उल्लंघन करने वाले बालक या किशोर से संबंधित प्रत्येक मामले में, यथास्थिति, न्यायालय या बोर्ड या समिति द्वारा साक्ष्य प्राप्त करते हुए आयु अवधारण जांच की जाएगी।

(ए)(i) मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और जिसकी अनुपस्थिति में;

(ii) स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र की तारीख (एक प्ले स्कूल के अलावा) पहली बार भाग लिया; और जिसकी अनुपस्थिति में;

(iii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र;

(ख) और केवल उपर्युक्त खंड (क) के (i), (ii) या (iii) में से किसी एक की अनुपस्थिति में, विधिवत गठित मेडिकल बोर्ड से चिकित्सा राय मांगी जाएगी, जो किशोर या बच्चे की आयु घोषित करेगा। यदि आयु का सही-सही निर्धारण नहीं किया जा सकता है तो न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, समिति, उनके द्वारा अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, यदि आवश्यक समझा जाए, तो बालक अथवा किशोर को एक वर्ष की अवधि के भीतर उसकी आयु को कम करके लाभ दे सकती है।

और, ऐसे मामले में आदेश पारित करते समय, ऐसे साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, जो उपलब्ध हो सकते हैं, या चिकित्सा राय, जैसा भी मामला हो, उसकी उम्र के संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करेगा और किसी भी खंड (ए)(i), (ii), (iii) में निर्दिष्ट साक्ष्य में से कोई भी या जिसकी अनुपस्थिति में, खंड (बी) ऐसे बच्चे या किशोर के संबंध में उम्र का निर्णायक प्रमाण होगा।

(4) यदि किसी किशोर या बालक या विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर की आयु अपराध की तारीख को 18 वर्ष से कम पाई जाती है, तो उपनियम (3) में विनिर्दिष्ट किसी भी निर्णायक प्रमाण के आधार पर, न्यायालय या बोर्ड या यथास्थिति, समिति लिखित रूप में आयु बताते हुए और किशोरावस्था की स्थिति घोषित करने या अन्यथा, अधिनियम और इन नियमों के प्रयोजन के लिए और आदेश की एक प्रति ऐसे किशोर या संबंधित व्यक्ति को दी जाएगी।

(5) अधिनियम की धारा 7-क, धारा 64 और इन नियमों के निबंधनों के अनुसार अन्य बातों के साथ-साथ जहां आगे जांच या अन्यथा अपेक्षित हो, को छोड़कर न्यायालय या बोर्ड द्वारा इस नियम के उपनियम (3) में निर्दिष्ट प्रमाणपत्र या किसी अन्य दस्तावेजी प्रमाण की जांच करने और अभिप्राप्त करने के पश्चात् आगे कोई जांच नहीं की जाएगी।

(6) इस नियम में अन्तर्विष्ट उपबंध उन निपटाए गए मामलों पर भी लागू होंगे जहां किशोरावस्था की स्थिति उपनियम (3) और अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार अवधारित नहीं की गई है, जिसमें विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर के हित में समुचित आदेश पारित करने के लिए अधिनियम के अधीन दंडादेश को समाप्त करने की अपेक्षा की गई है।

इस प्रकार, कानून के साथ संघर्ष में किसी व्यक्ति को किशोर घोषित करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, अदालत या बोर्ड जांच करके और साक्ष्य

मांगकर बच्चे की उम्र का निर्धारण करेगा (1) मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र प्राप्त करके और जिसकी अनुपस्थिति में (2) पहली बार गए स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र की तारीख (प्ले स्कूल के अलावा) हुई और जिसकी अनुपस्थिति में (3) जन्म प्रमाण पत्र किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिए गए और उपर्युक्त तीन की अनुपस्थिति में, विधिवत रूप से गठित मेडिकल बोर्ड से चिकित्सा राय मांगी जाएगी, जो किशोर या बच्चे की आयु घोषित करेगा। यदि आयु का सही-सही मूल्यांकन नहीं किया जा सका तो न्यायालय अथवा बोर्ड दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए बच्चे/किशोर को एक वर्ष के अंतराल के भीतर उसकी आयु को कम करके लाभ प्रदान करेगा।

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता का संस्करण है कि जैसा कि प्रस्तुत मामले में पुनरीक्षणकर्ता अनपढ़ व्यक्ति था, इसलिए उसका मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र या किसी भी स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं था और किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत का प्रमाण पत्र भी उपलब्ध नहीं था, इसलिए किशोर न्याय बोर्ड ने मेडिकल बोर्ड द्वारा की गई चिकित्सा परीक्षा की रिपोर्ट पर भरोसा किया और पुनरीक्षणकर्ता को किशोर घोषित किया।

पुनरीक्षणकर्ता अधिवक्ता के इस तर्क को विभिन्न आधारों पर खारिज कर दिया गया है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रस्तुत मेडिकल परीक्षा रिपोर्ट दिनांक 19.04.2017 में पुनरीक्षणकर्ता के अंगूठे का निशान/हस्ताक्षर नहीं है, इसलिए अंगूठे के

निशान/हस्ताक्षर के अभाव में इस प्रमाण पत्र की कोई कानूनी पवित्रता नहीं है और यह कागज का एक नंगा टुकड़ा है और जब न तो कोई शैक्षिक प्रमाण पत्र था और न ही नगरपालिका बोर्ड द्वारा जारी कोई प्रमाण पत्र या किसी विश्वसनीय चिकित्सा रिपोर्ट के संबंध में कोई विश्वसनीय चिकित्सा रिपोर्ट प्रस्तुत की है, तो न्यायालय अन्य साक्ष्य एकत्र करने के लिए स्वतंत्र है जो न्यायालय के समक्ष उपलब्ध हो सकते हैं और तदनुसार आदेश पारित कर सकते हैं।

प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने राम विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एलएल 2021 एस.सी. 117 में अदालत के फैसले को रखा, जिसमें शीर्ष अदालत ने कहा कि किसी व्यक्ति की उम्र के रूप में चिकित्सा साक्ष्य, हालांकि एक बहुत ही उपयोगी मार्गदर्शक कारक है, निर्णायक नहीं है और अन्य परिस्थितियों के साथ इस पर विचार किया जाना चाहिए। उस फैसले में मुकर्रब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017) 2 एस.सी.सी. 210 के फैसले के पैराग्राफ 26, 27 और 28 का उल्लेख किया गया था। ये पैराग्राफ निम्नानुसार हैं: -

"26. इस मामले की परिस्थितियों के संबंध में, किसी व्यक्ति की उम्र के बारे में एक अंधा और यांत्रिक दृष्टिकोण केवल रेडियोलॉजिकल परीक्षा द्वारा चिकित्सा राय के आधार पर नहीं अपनाया जा सकता है। मोदी की पाठ्यपुस्तक ऑफ मेडिकल ज्यूरिसप्रूडेंस एंड टॉक्सिकोलॉजी, 20वें संस्करण के पृष्ठ 31 पर इस प्रकार कहा गया है:

"युवा व्यक्तियों की उम्र का पता लगाने में शरीर के दोनों किनारों के ऊपरी या निचले

छोर के किसी भी मुख्य जोड़ के रेडियोग्राम को लिया जाना चाहिए, निम्नलिखित तालिका के अनुसार एक राय दी जानी चाहिए, लेकिन यह याद रखना चाहिए कि इस तालिका पर बहुत अधिक निर्भरता नहीं रखी जानी चाहिए क्योंकि यह केवल एक औसत इंगित करता है और एक ही प्रांत के व्यक्तिगत मामलों में भी विकास की विलक्षणताओं के कारण भिन्न होने की संभावना है।

न्यायालयों ने इस तथ्य पर न्यायिक ध्यान दिया है और हमेशा माना है कि रेडियोलॉजिकल जांच द्वारा वहन किए गए साक्ष्य निस्संदेह किसी व्यक्ति की आयु निर्धारित करने के लिए एक उपयोगी मार्गदर्शक कारक हैं, लेकिन साक्ष्य एक निर्णायक और अकाट्य प्रकृति का नहीं है और यह त्रुटि के मार्जिन के अधीन है। किसी व्यक्ति की उम्र के रूप में चिकित्सा साक्ष्य, हालांकि एक बहुत ही उपयोगी मार्गदर्शक कारक निर्णायक नहीं है और अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए।

27. हाल के एक फैसले में, मध्य प्रदेश राज्य बनाम अनूप सिंह, (2015) 7 एस.सी.सी. 773: (2015) 4 एस.सी.सी. (सीआरआई) 208], यह माना गया था कि अस्थिभंग परीक्षण आयु निर्धारण के लिए एकमात्र मानदंड नहीं है। बबलू पासी [बबलू पासी बनाम झारखंड राज्य, (2008) 13 एस.सी.सी. 133: (2009) 3 एस.सी.सी. (सीआरआई) 266] और अनूप सिंह मामलों [एमपी बनाम अनूप सिंह, (2015) 7 एस.सी.सी. 773: (2015) 4 एस.सी.सी. (सीआरआई) 208] के बाद, हम मानते हैं कि जब किसी व्यक्ति की उम्र का पता लगाने की

बात आती है तो अस्थिभंग परीक्षण को निर्णायक नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा, यहां अपीलकर्ताओं ने निश्चित रूप से तीस वर्ष की आयु पार कर ली है जो एक महत्वपूर्ण कारक है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए क्योंकि उम्र को सटीकता के साथ निर्धारित नहीं किया जा सकता है। वास्तव में अपीलकर्ताओं की मेडिकल रिपोर्ट में, यह कहा गया है कि दंत एक्स-रे में कोई संकेत नहीं था क्योंकि दोनों आरोपी 25 वर्ष से अधिक आयु के थे।

28. इस अवसर पर, हम उपयोगी रूप से एक लेख "मध्य राजस्थान में बाल चिकित्सा समूह में आयु अनुमान के लिए कलाई अस्थिभंग का अध्ययन" का उल्लेख कर सकते हैं, जो निम्नानुसार है:

"किसी व्यक्ति की आयु निर्धारण के लिए विभिन्न मानदंड हैं, जिनमें से दांतों का फटना और हड्डियों की अस्थिभंग गतिविधियां महत्वपूर्ण हैं। फिर भी, उम्र आमतौर पर एपिफिसियल फ्यूजन के साथ-साथ दांतों और अस्थिभंग द्वारा युवा आयु वर्ग में अधिक सटीक रूप से मूल्यांकन किया जा सकता है। [संदर्भ: ग्रे एच. ग्रे की एनाटॉमी, 37वां संस्करण, चर्चिल लिविंगस्टोन, एडिनबर्ग, लंदन, मेलबर्न और न्यूयॉर्क: 1996; 341-342];

कलाई के जोड़ पर दांतों और अस्थिभंग की सावधानीपूर्वक जांच बच्चों में उम्र के अनुमान के लिए मूल्यवान डेटा प्रदान करती है।

[संदर्भ: पारिख सीके पारिख की मेडिकल न्यायशास्त्र और विष विज्ञान की पाठ्यपुस्तक, 5 वां संस्करण, मुंबई मेडिको-लीगल सेंटर कोलाबा: 1990; 44-45];

कलाई के जोड़ पर अस्थिभंग के केंद्र की उपस्थिति में भिन्नता जाति, जलवायु, आहार और क्षेत्रीय कारकों के प्रभाव को दर्शाती है। डॉ आशुतोष श्रीवास्तव, वरिष्ठ प्रदर्शक और अन्य डॉक्टरों की एक टीम, जर्नल ऑफ इंडियन एकेडमी ऑफ फॉरेंसिक मेडिसिन (जेआईएफएम), 2004; 26(4). आइ.एस.एस.एन. 0971-0973]।

सर्वोच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष के आधार पर यह तर्क दिया गया था कि पुनरीक्षणकर्ता का कोई दंत एक्स-रे नहीं किया गया था। यह भी तर्क दिया गया था कि बच्चों में उम्र के अनुमान के लिए दांतों और अस्थिकरण, कलाई और जोड़ की जांच पर विचार किया जाएगा और मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार ही पुनरीक्षणकर्ता वर्तमान में 29 वर्ष का पाया जाता है, इसलिए, उसकी आयु का अधिक सटीक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता के इस तर्क का पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने इस आधार पर विरोध किया कि इस फैसले के निष्कर्षों के अनुसार अदालत के समक्ष कोई मेडिकल रिपोर्ट उपलब्ध नहीं था और मेडिकल रिपोर्ट के अभाव में, जब हाई स्कूल का प्रमाण पत्र या प्रथम विद्यालय या नगर निगम या पंचायत का प्रमाण पत्र पहले से ही उपलब्ध नहीं था, तो केवल आरोपी पुनरीक्षणकर्ता के प्रवेश के आधार पर आर्म लाइसेंस, आरोपी की उम्र निर्धारित की गई।

यदि हम इस संबंध में अधिनियम के प्रावधानों को देखें, तो धारा 7 ए में ही कहा गया है कि "जब भी अभियुक्त द्वारा अदालत में दावा किया जाता है और अदालत की राय है कि एक आरोपी व्यक्ति अपराध के होने की तारीख को किशोर था, तो अदालत जांच करेगी, "जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अभियुक्त की शारीरिक उपस्थिति से यदि अदालत प्रथम दृष्टया पाती है कि व्यक्ति की उम्र निर्धारित करने के लिए मामले में जांच आवश्यक है, तभी जांच की जाएगी। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय राम विजय सिंह (उपरोक्त) के पैरा -15 में कहा गया है, जो निम्नानुसार है: -

15. अधिनियम की योजना के अनुसार, जब समिति या बोर्ड के लिए, व्यक्ति की उपस्थिति के आधार पर, यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त व्यक्ति एक बच्चा है, तो बोर्ड या समिति उम्र की आगे की पुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना बच्चे की उम्र बताते हुए टिप्पणियों को रिकॉर्ड करेगी। इसलिए, आयु निर्धारित करने का पहला प्रयास बोर्ड या समिति के समक्ष लाए जाने पर व्यक्ति की शारीरिक बनावट का आकलन करना है। संदेह होने पर ही साक्ष्य मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया आवश्यक हो जाती है। उस स्तर पर, जब कोई व्यक्ति लगभग 18 वर्ष की आयु का होता है, तो कानून के उल्लंघन में किसी व्यक्ति की अनुमानित आयु निर्धारित करने के लिए अस्थिभंग परीक्षण को प्रासंगिक कहा जा सकता है। हालांकि, जब व्यक्ति की उम्र लगभग 40-55 वर्ष होती है, तो हड्डियों की संरचना उम्र निर्धारित करने में सहायक नहीं हो

सकती है। अर्जुन पंडितराव खोतकर बनाम कैलाश कुशनराव गोरंट्याल और अन्य (2020)7 SCC1 में इस न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65B के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र के संदर्भ में कहा कि लैटिन कहावत के अनुसार, कानून असंभव की मांग नहीं करता है। इस प्रकार, जब अस्थिभंग परीक्षण भरोसेमंद और विश्वसनीय परिणाम नहीं दे सकता है, तो इस तरह के परीक्षण को घटना की तारीख पर संबंधित व्यक्ति की उम्र निर्धारित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। इसलिए, अपीलकर्ता की उम्र का पता लगाने के लिए किसी भी विश्वसनीय चिकित्सा साक्ष्य के अभाव में, वर्ष 2020 में अवधारित अस्थिभंग परीक्षण, जब अपीलकर्ता 55 वर्ष का था, उसे घटना की तारीख पर किशोर घोषित करने के लिए निर्णायक नहीं हो सकता है।

इस प्रकार, आरोपी की उम्र निर्धारित करने का अदालत का पहला प्रयास मेडिकल बोर्ड या समिति के सामने लाए जाने पर व्यक्ति की शारीरिक उपस्थिति का आकलन करना है और यह केवल संदेह के मामले में है कि अन्य साक्ष्य मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया आवश्यक हो जाती है।

यदि हम मेडिकल बोर्ड के दिनांक 22.04.2017 के आदेश को देखें, जिसमें घटना की तारीख को पुनरीक्षणकर्ता की आयु 15 वर्ष, 01 माह और 18 दिन निर्धारित की गई है, जबकि धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में आरोपी ने खुद को वर्ष 26 वर्ष बताया है। इस प्रकार, घटना के दिन वह लगभग 23 वर्ष का था। यदि अभियुक्त घटना के दिन 15 वर्ष का हो गया होता, तो अदालत द्वारा, जब वह मुकदमे

की सुनवाई के समय विचारण न्यायालय में पेश होता था, उसकी शारीरिक उपस्थिति का बहुत अच्छी तरह से आकलन किया जा सकता था। माना कि पूर्ण सुनवाई के दौरान पुनरीक्षणकर्ता जेल में रहा और वह जेल से अदालत में पेश हो सकता था। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 7-ए के अनुपालन में, विचारण न्यायालय ने कभी भी जेल से पेश होने पर आरोपी को किशोर नहीं माना, इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा किसी भी सबूत की मांग करके उम्र निर्धारण की कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई थी। वर्ष 2003 से 2017 तक जब वह लगभग 13-14 वर्षों तक जेल में रहे, तो उन्होंने कभी भी खुद को किशोर होने का दावा नहीं किया और इसके कारण का खुलासा पुनरीक्षणकर्ता द्वारा कहीं भी नहीं किया गया है।

पुनरीक्षक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अपील पर अभियुक्त की अनुपस्थिति में सुनवाई की गई थी। अपील के फैसले में ही यह उल्लेख किया गया है कि प्रक्रिया पुनरीक्षणकर्ता को भेजी गई थी और इनकार करने से उस पर सेवा पर्याप्त पाई गई थी। माना जाता है कि 2017 के बाद जेल से रिहा होने के बाद से आज तक वह अदालत में पेश नहीं हुआ है। वह फरार है। पुनरीक्षण में भी प्रार्थना के समर्थन में पुनरीक्षणकर्ता के भतीजे सुभान जमाल का शपथ पत्र दायर किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पुनरीक्षण न्यायालय में पुनरीक्षणकर्ता साफ हाथों (नेकनीयती/स्पष्ट तथ्यों) से नहीं आया है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि मेडिकल बोर्ड की

मेडिकल रिपोर्ट, जिस पर किशोर न्याय बोर्ड ने भरोसा किया था, में पुनरीक्षणकर्ता के अंगूठे का निशान / हस्ताक्षर नहीं है, जो रिपोर्ट को अविश्वसनीय बनाता है और किसी भी मेडिकल रिपोर्ट के अभाव में अदालत रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सबूतों के आधार पर आरोपी की उम्र तय करने के लिए बाध्य थी। मेडिकल बोर्ड द्वारा प्रस्तुत मेडिकल रिपोर्ट के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इसमें आरोपी के अंगूठे के निशान या हस्ताक्षर नहीं हैं और इस रिपोर्ट का दोषी/पुनरीक्षणकर्ता के अंगूठे के निशान या हस्ताक्षर के अभाव में कोई महत्व नहीं है।

क्रिमिनल रिट-पब्लिक इंटरैस्ट लिटिगेशन संख्या-855 वर्ष 2012 में पारित कोर्ट के आदेश दिनांक 24.05.2012 के अनुपालन में, सेंट्रल जेल आगरा में 18 व्यक्तियों की सूची को तैयार किया गया था और इन 18 व्यक्तियों की आयु प्रधान न्यायाधीश, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा 18 वर्ष से कम निर्धारित की जानी थी। प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता के अनुसार, इस सूची में वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता का नाम शामिल नहीं था और उसने इस अदालत के आदेश के खिलाफ गलत इरादे से, किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष जेल अधीक्षक के माध्यम से उसे किशोर घोषित करने के लिए एक आवेदन दायर किया। चूंकि घटना की तारीख को उन व्यक्तियों के किशोर होने का आकलन करने के लिए आगरा के केंद्रीय कारागार में तैयार की गई सूची 18 व्यक्तियों को अदालत के समक्ष नहीं रखा गया है, इसलिए प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता के इस तर्क में कोई बल नहीं है।

हालांकि, यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि इस अदालत की खंडपीठ ने आपराधिक रिट - जनहित याचिका संख्या-855 वर्ष 2012 में दिनांक 24.05.2012 के आदेश के तहत, उन व्यक्तियों की आयु का निर्धारण करने के लिए अवधारित किया था, जो अपराध करने की तारीख को 18 वर्ष से कम आयु के हो सकते हैं और जो वयस्कों के लिए नियमित जेलों में गलत तरीके से दर्ज किए गए प्रतीत होते हैं। डिवीजन बेंच द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि अभियोजन पक्ष और शिकायतकर्ता को भी निश्चित रूप से अपने स्वयं के गवाहों की जांच करने और गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाएगा, जिनकी अभियुक्त की ओर से जांच की गई है और इस उद्देश्य के लिए जे.जे बोर्ड के समक्ष कार्यवाही का नोटिस शिकायतकर्ता/ अभियोजन को दिया जाएगा। माना जाता है कि और 22.04.2017 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से भी शिकायतकर्ता या उसके अधिवक्ता की उपस्थिति उसमें नोट नहीं की गई है। हालांकि, दिनांक 22.04.2017 के आदेश को पारित करते समय एडीजीसी को सुना जाना दिखाया गया है, लेकिन इस अदालत के आदेश दिनांक 24.05.2012 के अनुपालन में शिकायतकर्ता को न तो सुना गया और न ही सुनवाई से पहले नोटिस दिया गया। यह पुनरीक्षणकर्ता का संस्करण भी नहीं है कि शिकायत की तामील की गई थी या 22.04.2017 को आदेश पारित करते समय उनके अधिवक्ता को सुना गया था। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि आरोपी की उम्र निर्धारित करने से पहले शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 को कभी सुना गया था। इस प्रकार, दिनांक

22.04.2017 का आदेश स्पष्ट रूप से एक पक्षीय आदेश था जिसमें शिकायतकर्ता को कभी भी उपस्थित होने या सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था, जिसमें प्रस्तुत अपील में अपीलीय अदालत का यह स्पष्ट निष्कर्ष है कि पुनरीक्षणकर्ता पर, इनकार करने के कारण, तामीला पर्याप्त पाई गई थी।

प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि किशोर न्याय बोर्ड, आगरा के पास आरोपी की उम्र निर्धारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि मामला जिला मेरठ से संबंधित था और यह केवल मेरठ जिला अदालत से दोषसिद्धि के बाद हो सकता था कि आरोपी को सेंट्रल जेल, आगरा में रखा गया था। यह तथ्य किशोर न्याय बोर्ड, आगरा को अभियुक्त/दोषी की आयु निर्धारण के आवेदन पर सुनवाई करने का अधिकार नहीं देता है।

इस संबंध में, धारा 7 ए (1) का पैरा -2 यहां निम्नानुसार उल्लेख करने के लिए उपयुक्त है: -

[7क. किशोरावस्था का दावा किसी न्यायालय के समक्ष उठाए जाने पर अपनाई जाने वाली प्रक्रिया- (1)

परन्तु किशोरावस्था का कोई दावा किसी न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकेगा और उसे मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् भी किसी भी स्तर पर मान्यता दी जाएगी और ऐसे दावे का अवधारण इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार किया जाएगा, भले ही किशोर ने इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले ऐसा करना बंद कर दिया हो।

उपर्युक्त उपबंध से कोई न्यायालय शब्द से विचारण न्यायालय/उच्च न्यायालय/सर्वोच्च न्यायालय अभिप्रेत है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उत्तर प्रदेश की कोई भी अदालत, जहां भी कोई व्यक्ति आवेदन दायर करना चाहता है, वह उसे प्रस्तुत कर सकता है। चूंकि मामला जिला मेरठ से संबंधित था और इसका निर्णय जिला न्यायालय मेरठ द्वारा किया गया था, इसलिए जिला न्यायालय, मेरठ/प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, मेरठ के पास आवेदक के किशोर होने के प्रश्न पर निर्णय लेने का क्षेत्राधिकार था। इस प्रकार, प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.04.2017 को अधिकार क्षेत्र के बिना पारित आदेश था।

हालांकि प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया है कि आरोपी की धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान के अनुसार उसने 16.05.2006 को खुद को 26 साल का बताया, इस प्रकार, अपने स्वयं के प्रवेश के अनुसार घटना की तारीख को उसकी उम्र लगभग 22 साल और 11 महीने हो जाती है। वर्ष 2017 में भी मतदाता सूची में उसकी आयु 40 वर्ष दर्शाई गई है, इस प्रकार घटना की तारीख को उसकी आयु 26 वर्ष हो जाती है। विचारण न्यायालय के फैसले के अनुसार, पुनरीक्षणकर्ता को शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत इस आधार पर अपराध के लिए बरी कर दिया गया था कि उसके नाम पर वैध बंदूक लाइसेंस था। इस तथ्य का पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता द्वारा विरोध नहीं किया गया है। चूंकि बंदूक का लाइसेंस एक बड़े व्यक्ति के पक्ष में जारी किया जाता है, इसलिए इस

आधार पर भी आरोपी के घटना के दिन बालिग होने का दावा किया गया था।

फिर से अदालत का ध्यान आकर्षित किया जाता है कि गुलाम शाहजाद @ कालिया पुत्र जमीलुद्दीन नाम के वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता ने दिनांक 20.09.2000 और 15.09.2000 के बिक्री के समझौतों पर और 27.08.1998 को रद्द करने योग्य पावर ऑफ अटॉर्नी पर अपने अंगूठे का निशान लगाया है। रिकॉर्ड पर इन सभी दस्तावेजों से पता चलता है कि संबंधित तारीखों पर पुनरीक्षणकर्ता वयस्क था और उसके बाद ही उसने बिक्री के समझौतों और अटॉर्नी की शक्ति पर उसमें उल्लिखित तारीखों पर एक वयस्क व्यक्ति के रूप में अपने हस्ताक्षर किए। इस प्रकार, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में, अपने वैध बंदूक लाइसेंस में, बिक्री और पावर ऑफ अटॉर्नी के दो समझौतों पर, पुनरीक्षणकर्ता ने अपने अंगूठे का निशान/हस्ताक्षर डालकर खुद घटना की तारीख को वयस्क होना स्वीकार किया है।

हालांकि, पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता ने इन तर्कों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि चूंकि घटना की तारीख पर पुनरीक्षणकर्ता नाबालिग था, इसलिए वह अपनी उम्र के बारे में स्वीकार करने के लिए पर्याप्त विवेकपूर्ण नहीं था।

हालांकि, अदालत पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता के इस तर्क से संतुष्ट नहीं है।

नियमावली, 2007 के नियम 12 के अनुपालन में पुनरीक्षणकर्ता के पास किसी विद्यालय, निगम, नगरपालिका बोर्ड अथवा पंचायत से मैट्रिक अथवा समकक्ष प्रमाणपत्र

अथवा जन्म प्रमाणपत्र नहीं था। इन दस्तावेजों के अभाव में मेडिकल बोर्ड द्वारा उनका मेडिकल किया गया था और उस मेडिकल रिपोर्ट में आरोपी के अंगूठे के निशान/हस्ताक्षर नहीं हैं, इसलिए मेडिकल बोर्ड द्वारा मेडिकल जांच के समय पुनरीक्षणकर्ता की उपस्थिति का पता नहीं लगाया जा सकता है। अन्यथा भी, उपरोक्त चर्चा के अनुसार, चिकित्सा परीक्षण द्वारा किसी व्यक्ति की आयु केवल तभी सटीक रूप से निर्धारित की जा सकती है जब वह लगभग 18 वर्ष की आयु का हो और एक व्यक्ति, जिसे मेडिकल बोर्ड द्वारा जांच के समय 29 वर्ष दिखाया गया हो, उसकी आयु सटीकता से निर्धारित नहीं की जा सकती है। अधिनियम की धारा 7-ए के आलोक में, विचारण न्यायालय में उसकी उपस्थिति पर अदालत ने कभी भी उसकी उम्र के निर्धारण के लिए जांच करने के लिए उसे किशोर नहीं माना। जांच के समय अधिनियम की धारा 7-ए के अनुसार अदालत ऐसे साक्ष्य ले सकती है जैसा कि वह आवश्यक समझता है, ताकि ऐसे व्यक्ति की उम्र निर्धारित की जा सके और यह निष्कर्ष दर्ज किया जाएगा कि व्यक्ति किशोर है या नहीं। प्रस्तुत मामले में भी, अपीलीय न्यायालय स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि आयु निर्धारण के समय शिकायतकर्ता को नोटिस नहीं दिया गया था, जबकि अपील के समय पुनरीक्षणकर्ता जानबूझकर इनकार करके तामीला के बाद भी अदालत के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ और संबंधित न्यायालय द्वारा उसके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए जाने के बाद भी फरार रहा। अदालत ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत पुनरीक्षणकर्ता के बयान और घटना की तारीख से पहले

पुनरीक्षणकर्ता के नाम पर जारी डीबीबीएल बंदूक के लाइसेंस को घटना की तारीख से पहले आरोपी पुनरीक्षणकर्ता की ओर से एक स्वीकारोक्ति माना। इसके अलावा, इस अदालत में फिर से बिक्री के लिए दो समझौते और एक पावर ऑफ अटॉर्नी रखी गई है जो पुनरीक्षणकर्ता के अंगूठे के निशान रखती हैं। यह फिर से इंगित करता है कि पुनरीक्षणकर्ता घटना की तारीख से पहले वयस्क था क्योंकि वह उपर्युक्त दस्तावेजों पर स्वतंत्र रूप से अपने अंगूठे का निशान लगा रहा था और नाबालिग होने का दावा करने वाले किसी अन्य व्यक्ति की संरक्षकता के तहत नहीं।

इस प्रकार, राम विजय सिंह (उपरोक्त) में निर्णय के आधार पर और नियम, 2007 के नियम 12 (3-ए) में उल्लिखित किसी भी दस्तावेज की अनुपस्थिति में, विचारण न्यायालय के समक्ष एकमात्र दस्तावेज मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट थी जिसे पुनरीक्षणकर्ता के अंगूठे के निशान को प्रभावित नहीं करने और ऊपर नियम 12 में उल्लिखित सभी दस्तावेजों की अनुपस्थिति में संदिग्ध पाया गया था, अधिनियम की धारा 7-ए के आलोक में, अपीलीय अदालत के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर, अपीलीय न्यायालय, इस अदालत की राय में, इस निष्कर्ष पर सही तरीके से पहुंचा है कि घटना की तारीख पर पुनरीक्षणकर्ता किशोर नहीं था।

इस अदालत की राय में, अपीलीय अदालत ने अभियुक्त की मेडिकल जांच रिपोर्ट के अलावा रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों पर भरोसा किया है और सही निष्कर्ष पर पहुंची है।

यह प्रश्न कि क्या मेडिकल बोर्ड द्वारा चिकित्सा परीक्षा की रिपोर्ट की उपस्थिति में

अपीलीय अदालत रिकॉर्ड पर अन्य सबूतों के आधार पर घटना की तारीख पर पुनरीक्षणकर्ता उसको व्यस्क पा सकती है, सकारात्मक में तय किया गया है।

आक्षेपित निर्णय/आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या अनुचित नहीं है।

कोई बल नहीं रखने के कारण संशोधन खारिज किया जाने योग्य है।

संशोधन को एतद्वारा खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 494

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या

3238/2023

मेसर्स बालमोकंद फकीर चंद ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री राम प्रकाश

द्विवेदी, श्री प्रांशु द्विवेदी, श्री एच.एन

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

(ए) दंड विधि - भारतीय संविधान, 1950-

अनुच्छेद - 226 - उ.प्र. गैंगस्टर और

असामाजिक क्रियाकलाप निवारण अधिनियम,

1986 - धारा 14, 14(3), 15, 15(1), 15(2),

16 और 17 - रिट याचिका - उस आदेश को

निरस्त करने के लिए जिसके द्वारा जिला

मजिस्ट्रेट ने गैंगस्टर अधिनियम के तहत

प्रशासक नियुक्त करने का निर्देश दिया था -

बिक्री विलेख याचिकाकर्ता दुकान का वैधानिक

किरायेदार होने का दावा करता है - विचाराधीन दुकान में हित का दावा - पुलिस रिपोर्ट के आधार पर किया गया है और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक द्वारा अनुशंसित किया गया है - दुकान को डीएम द्वारा कुर्क किया गया है - प्रतिवादी संख्या 6 को एक अपराधी बताया गया है, जिसने असहाय व्यक्तियों को धोखा देकर बहुत अधिक संपत्ति एकत्र की है और वह असामाजिक गतिविधियों में भी लिप्त है - याचिकाकर्ता ने प्रशासक की नियुक्ति के लिए प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया, लेकिन जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया - आयोजित, न्यायालय जांच के लिए एक तारीख तय करेगी और इसके बारे में नोटिस देगी और साथ ही किसी अन्य व्यक्ति को भी, जिसका हित अधिनियम के तहत उचित जांच के बाद उक्त संपत्ति में शामिल प्रतीत होता है - न्यायालय इसे किसी अन्य व्यक्ति को भी कब्जा करने या अन्यथा देने का अधिकार देगी - अतः जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश सही पाया गया और इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप उचित नहीं है - याचिकाकर्ता ने अपने पास उपलब्ध वैधानिक उपाय का लाभ उठाया है, संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को इस पर विचार करना चाहिए था और उपरोक्त अधिनियम की धारा 14(3) में निहित प्रावधानों के आलोक में आदेश पारित करना चाहिए था - याचिका निरस्त की गई।

रिट याचिका निरस्त (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति गजेन्द्र कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और राज्य-उत्तरदाताओं के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. तत्काल रिट याचिका निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर की गई है: -

"(ए) जिला मजिस्ट्रेट, आगरा द्वारा केस नंबर 11270 वर्ष 2022 (राज्य बनाम मोहम्मद अली @ शान उर्फ सन्नो) में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 20.01.2023 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।) (रिट याचिका अनुलग्नक संख्या 11)।

(ख) इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट समय अवधि के भीतर मेसर्स बालमुकंद फकीर चंद, 3/43-ए, कचेरी घाट, पुलिस स्टेशन-छत्ता, जिला-आगरा के नाम से दुकान के संबंध में यूपी गैंगस्टर्स एंड एंटी-सोशल एक्टिविटीज (प्रिवेंशन) एक्ट, 1986 की धारा 14 (3) के तहत एक प्रशासक नियुक्त करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट, आगरा की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

(ग) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसमें प्रतिवादियों को यह आदेश दिया गया हो

कि वह नियुक्त प्रशासक को याचिकाकर्ता के किराए को महीने-दर-महीने वसूलने और उसे सरकारी खजाने में जमा करने का निर्देश दे।

(घ) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी कर सकेगा जिसे माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ठीक समझे।

(ङ) याचिकाकर्ता को अदा की जाने वाली रिट याचिका की लागत प्रदान करना।

3. आक्षेपित आदेश से सामने आने वाले मामले के तथ्य यह हैं कि थानाध्यक्ष, थाना-मंटोला, जिला-आगरा दिनांक 27.9.2022 की पुलिस रिपोर्ट के आधार पर, जिसे वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा द्वारा दिनांक 03.10.2022 के आदेश के तहत अग्रेषित और अनुशंसित किया गया था, प्रतिवादी नंबर 6 को एक अपराधी बताया गया था, जिसने असहाय व्यक्तियों को धोखा देकर बड़ी संपत्ति अर्जित की थी और असामाजिक गतिविधियों में भी लिप्त था। याचिकाकर्ता मेसर्स बालमुकंद फकीर चंद, 3/43-ए, कचेरी घाट के नाम और शैली में एक साझेदारी फर्म है, जो साझेदारी अधिनियम, 1932 के तहत विधिवत पंजीकृत है और खाद्य तेलों का कारोबार कर रही है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जिला मजिस्ट्रेट ने प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट पर आक्षेपित आदेश पारित किया है और जो 20.01.2023 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, आगरा (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा अनुमोदित किया गया है। उक्त संपत्ति को इस आधार पर कुर्क किया

गया है कि वह आपराधिक गतिविधि से अर्जित धन से अर्जित की गई थी, जबकि याचिकाकर्ता या उसका साथी गैंगस्टर अधिनियम में आरोपी नहीं है और प्रतिवादी संख्या 6 (मो. शान), जिन्होंने 11.02.2019 को गोपीनाथ अग्रवाल के उत्तराधिकारियों से दुकान खरीदी है, जबकि किरायेदारी 1948 से है। यह आगे तर्क दिया गया है कि फर्म के पक्ष में किराए की रसीदें रिकॉर्ड पर उपलब्ध हैं। आगे यह तर्क दिया गया है कि स्वर्गीय गोपीनाथ अग्रवाल के उत्तराधिकारी ने दिनांक 11.02.2019 के विक्रय विलेख द्वारा, उपरोक्त घर/दुकान संख्या 3/43, 3/43-ए, 3/43-ए/1 को प्रतिवादी संख्या 6 (मो. शान) के नाम कर दी है जिसका कुल क्षेत्रफल 161.62 वर्ग मीटर है, जिसमें से 17.82 वर्ग मीटर वाणिज्यिक दुकान है, जिसके लिए, याचिकाकर्ता, प्रतिवादी नंबर 6 को 2000/- रुपये प्रति माह लगातार किराए का भुगतान कर रहा है, प्रतिवादी नंबर 6 द्वारा जारी रसीदों की प्रतियां रिट याचिका के अनुलग्नक-6 के रूप में संलग्न की गई हैं। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट, आगरा के समक्ष खुद को वास्तविक किरायेदार होने का दावा करते हुए एक अभ्यावेदन दिया था, लेकिन जिला मजिस्ट्रेट, आगरा द्वारा इस तथ्य पर विचार करते हुए खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता एक वास्तविक किरायेदार नहीं है और वह अधिनियम की धारा 15(1) के दायरे में नहीं आता है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट, आगरा द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष कि याचिकाकर्ता एक वास्तविक किरायेदार नहीं है, गलत है क्योंकि जिला मजिस्ट्रेट ने हलफनामे के साथ-साथ विभाग द्वारा दिए गए लाइसेंस

पर विचार नहीं किया है जिसे समय-समय पर नवीनीकृत किया जाता है और याचिकाकर्ता की फर्म द्वारा नियमित रूप से भुगतान किए गए जी.एस.टी का भुगतान भी किया जाता है। जो स्पष्ट रूप से साबित करता है कि याचिकाकर्ता-फर्म विचाराधीन दुकान का किरायेदार है और व्यवसाय उसमें चलाया जा रहा था। ऐसी परिस्थितियों में, आक्षेपित आदेश रद्द किया जाने योग्य है।

4. दूसरी ओर, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने पूर्वोक्त तर्क का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता न तो मालिक है और न ही उपरोक्त संपत्ति का दावेदार है और एक किरायेदार के रूप में वह संपत्ति को अपने पक्ष में जारी करने या जिला मजिस्ट्रेट की संतुष्टि के अनुसार उक्त उद्देश्य के लिए प्रशासक नियुक्त करने का हकदार नहीं है, क्योंकि कुर्क की गई संपत्तियों को अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप अर्जित किया गया था। इसलिए, जिला मजिस्ट्रेट, आगरा द्वारा पारित आदेश कानून के अनुसार है और इसमें कोई दुर्बलता नहीं है।

5. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों का मूल्यांकन करने के लिए, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों यानी धारा 14, 15, 16 और 17 का उल्लेख करना उचित और समीचीन प्रतीत होता है।

"14. (1) यदि जिला मजिस्ट्रेट के पास यह विश्वास करने का कारण है कि किसी व्यक्ति के कब्जे में कोई संपत्ति, चाहे वह चल या अचल हो, इस अधिनियम के तहत विचारणीय

अपराध के किए जाने के परिणामस्वरूप एक गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई है, तो वह ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकता है, चाहे किसी भी न्यायालय द्वारा ऐसे अपराध का संज्ञान लिया गया हो या नहीं।

(2) संहिता के उपबंध, ऐसे प्रत्येक अनुलग्नक पर यथोचित परिवर्तन के साथ लागू होंगे।

(3) संहिता के उपबन्धों के होते हुए भी, जिला मजिस्ट्रेट उपधारा (1) के अधीन कुर्क की गई किसी संपत्ति का प्रशासक नियुक्त कर सकेगा और प्रशासक को ऐसी संपत्ति को उसके सर्वोत्तम हित में प्रशासित करने की सभी शक्तियाँ होंगी।

(4) जिला मजिस्ट्रेट ऐसी संपत्ति के उचित और प्रभावी प्रशासन के लिए प्रशासक को पुलिस सहायता प्रदान कर सकता है।

15. (1) जहां धारा 14 के अधीन कोई संपत्ति कुर्क की जाती है वहां उसका दावाकर्ता, ऐसी कुर्की की जानकारी होने की तारीख से तीन मास के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को उन परिस्थितियों और उन स्रोतों को दर्शाते हुए अभ्यावेदन कर सकेगा जिनके द्वारा ऐसी संपत्ति उसके द्वारा अर्जित की गई थी।

(2) यदि जिला मजिस्ट्रेट का उपधारा (1) के अधीन किए गए दावे की वास्तविकता के बारे में समाधान हो जाता है तो वह संपत्ति को कुर्की से तुरंत मुक्त करेगा और

तत्पश्चात् ऐसी संपत्ति दावेदार को सौंप दी जाएगी।

(1) जहां धारा 15 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई अभ्यावेदन नहीं किया जाता है या जिला मजिस्ट्रेट धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन संपत्ति को निर्मुक्त नहीं करता है वहां वह अपनी रिपोर्ट सहित उस मामले को न्यायालय को निर्देशित करेगा जिसकी अधिकारिता इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण करने की अधिकारिता है।

(2) जहाँ जिला मजिस्ट्रेट ने धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन कोई सम्पत्ति कुर्क करने से इंकार कर दिया है या धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन किसी सम्पत्ति को निर्मुक्त करने का आदेश दिया है वहाँ राज्य सरकार या ऐसे इन्कार या निर्मुक्ति से व्यथित कोई व्यक्ति इस बात की जाँच करने के लिये उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय को आवेदन कर सकेगा कि क्या सम्पत्ति किसी अपराध के द्वारा या उसके परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी, ये इस अधिनियम के तहत विचारणीय है। ऐसा न्यायालय, यदि ऐसा करने के लिए न्याय के हित में आवश्यक या समीचीन समझता है, तो ऐसी संपत्ति की कुर्की का आदेश दे सकता है।

(3)(क) उपधारा (1) के अधीन संदर्भ या उपधारा (2) के अधीन आवेदन प्राप्त होने पर, न्यायालय जांच के लिए एक तारीख नियत करेगा और उपधारा (2) के अधीन आवेदन करने वाले व्यक्ति को या, या जैसी भी स्थिति हो, धारा 15 के अधीन अभ्यावेदन करने वाले

व्यक्ति को और राज्य सरकार को उसकी सूचनाएं देगा, और किसी अन्य व्यक्ति को भी जिसका हित मामले में शामिल प्रतीत होता है।

(ख) इस प्रकार नियत तारीख को या किसी परवर्ती तारीख को, जिस तक जांच स्थगित की जा सकती है, न्यायालय पक्षकारों की सुनवाई करेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य प्राप्त करेगा, ऐसे और साक्ष्य लेगा जो वह आवश्यक समझे, यह विनिश्चय करेगा कि क्या संपत्ति इस अधिनियम के अधीन विचारणीय अपराध किए जाने के परिणामस्वरूप किसी गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई थी और धारा 17 के अधीन ऐसा आदेश पारित करेगा जो इन परिस्थितियों में न्यायोचित और आवश्यक हो।

(4) उपधारा (3) के अधीन जांच के प्रयोजन के लिये न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (अधिनियम सं. 5 वर्ष 1908) के अधीन निम्नलिखित विषयों के संबंध में वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय की शक्ति होगी, अर्थात:-

(क) किसी व्यक्ति को बुलाना और उसकी उपस्थिति के लिए बाध्य करना और शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(बी) दस्तावेजों की खोज और उत्पादन करना;

(ग) शपथ पत्र पर साक्ष्य प्राप्त करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की मांग करना;

(ङ) साक्षी या दस्तावेजों का कमीशन या परीक्षा जारी करना;

(च) किसी संदर्भ को चूक के कारण खारिज करना या उसे एकपक्षीय रूप से विनिश्चय करना;

(छ) चूक या पूर्व पक्षीय निर्णय के कारण बर्खास्तगी के आदेश को अलग रखना।

(5) इस धारा के अधीन किसी कार्यवाही में, यह साबित करने का भार कि प्रश्नगत संपत्ति या उसका कोई भाग इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध के किए जाने के परिणामस्वरूप किसी गैंगस्टर द्वारा अधिगृहीत नहीं किया गया था, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी विवाद, 1872 (अधिनियम संख्या 1 वर्ष 1872) के बावजूद, संपत्ति का दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा।

17. यदि ऐसी जांच के बाद न्यायालय यह पाता है कि संपत्ति इस अधिनियम के तहत विचारणीय किसी अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप गैंगस्टर द्वारा अर्जित नहीं की गई थी, तो वह उस व्यक्ति की संपत्ति को मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह कुर्क की गई थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय संपत्ति के निपटान के लिए ऐसा आदेश दे सकता है जो वह संपत्ति के कब्जे के हकदार किसी व्यक्ति को कुर्की, जब्ती या परिदान द्वारा या अन्यथा उसके निपटान के लिए उचित समझे।"

6. अब यह अच्छी तरह से तय है कि अधिनियम की धारा 14 के तहत कुर्की की विषय बनाई जा रही संपत्ति एक गैंगस्टर द्वारा, और वह भी अधिनियम के तहत

विचारणीय अपराध के कमीशन द्वारा अर्जित की गई होगी। जिलाधिकारी को इस बिंदु पर अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी। जिला मजिस्ट्रेट की संतुष्टि किसी भी अपील में चुनौती देने के लिए खुली नहीं है। अधिनियम की धारा 15 के तहत स्वयं जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष केवल एक अभ्यावेदन प्रदान किया जाता है और यदि वह इस तरह के अभ्यावेदन पर संपत्ति को जारी करने से इनकार करता है, तो उसे अधिनियम के तहत अपराध का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले न्यायालय को संदर्भ देना होगा। न्यायालय को, अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (2) के तहत किए गए संदर्भ से निपटने के दौरान यह देखना होगा कि क्या संपत्ति अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप गैंगस्टर द्वारा अर्जित की गई थी और उसे इस प्रश्न पर विचार करना होगा कि और अधिनियम की धारा 16 के तहत उसके द्वारा की गई जांच के आधार पर अपना निष्कर्ष दर्ज करना होगा। यदि अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के परिणामस्वरूप गैंगस्टर द्वारा संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया गया था, तो अदालत उस व्यक्ति के पक्ष में संपत्ति को जारी करने का आदेश देगी जिसके कब्जे से इसे कुर्क किया गया था। यदि न्यायालय का निष्कर्ष अन्यथा है, तो वह ऐसा आदेश पारित कर सकता है जो वह संपत्ति के कब्जे के हकदार किसी व्यक्ति को कुर्की, जब्ती या वितरण द्वारा या अन्यथा संपत्ति के निपटान के लिए उचित समझता है। यह शक्ति न्यायालय को अधिनियम की धारा 17 के तहत प्रदान की गई है। दूसरे शब्दों में,

अधिनियम की धारा 14 के तहत की गई कुर्की को अधिनियम की धारा 16 के तहत जांच के बाद अदालत द्वारा प्रभावित किया जा सकता है और उस स्थिति में अदालत के पास उस व्यक्ति के पक्ष में कुर्क की गई संपत्ति को मुक्त करने की शक्ति है जिसके कब्जे से संपत्ति कुर्क की गई थी।

7. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए संदर्भ पर धारा 16 के तहत जांच करने की न्यायालय की शक्ति एक खाली औपचारिकता नहीं है, जिसके पीछे एक उद्देश्य है। संहिता की धारा 16 के तहत न्यायिक जांच की शक्ति प्रदान करने के पीछे का उद्देश्य जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किसी व्यक्ति को उसकी संपत्तियों से वंचित करने में शक्ति के मनमाने ढंग से प्रयोग की जांच करना और कानून के शासन को बहाल करना है। इसलिए, अदालत पर एक भारी कर्तव्य है कि वह इस सवाल के संबंध में सच्चाई का पता लगाने के लिए पूरी तरह से जांच करे कि क्या संपत्ति अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन द्वारा या उसके परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। अधिनियम की धारा 17 के तहत पारित किए जाने वाले इस आदेश में अदालत के फैसले के समर्थन में कारणों और सबूतों का खुलासा होना चाहिए। न्यायालय से डाकघर या राज्य या जिला मजिस्ट्रेट के मुखपत्र के रूप में कार्य करने की अपेक्षा नहीं की जाती है। यदि किसी व्यक्ति का उस अवधि के दौरान कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, जब तक कि उसके द्वारा संपत्ति का अधिग्रहण नहीं किया गया था, तो संपत्ति को अधिनियम के तहत विचारणीय अपराध के कमीशन के

परिणामस्वरूप या उसके परिणामस्वरूप अर्जित संपत्ति के रूप में कैसे रखा जा सकता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका उत्तर न्यायालय द्वारा दिया जाना है। उपरोक्त प्रश्न के अलावा, न्यायालय द्वारा विचार किया जाने वाला दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या अधिनियम के तहत अभियुक्त के खिलाफ मामला दर्ज करने से पहले या गिरोह चार्ट के पहले मामले के पंजीकरण से पहले अर्जित की गई संपत्ति को अधिनियम की धारा 14 के तहत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा कुर्क किया जा सकता है।

8. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता खुद को 1948 से दुकान का वैधानिक किरायेदार होने का दावा करता है, इसलिए, विचाराधीन दुकान में रुचि का दावा किया गया है। उपरोक्त दुकान को जिला मजिस्ट्रेट, आगरा द्वारा कुर्क कर लिया गया है, इसके बाद, याचिकाकर्ता द्वारा प्रशासक की नियुक्ति के लिए एक अभ्यावेदन दिया गया था, लेकिन जिला मजिस्ट्रेट, आगरा द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया गया था, जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता न तो मालिक है और न ही उपरोक्त दुकान का दावेदार है। अधिनियम की धारा 14 से 17 के तहत उल्लिखित उपरोक्त प्रावधानों से, यह स्पष्ट है कि संदर्भ प्राप्त होने पर, न्यायालय जांच के लिए एक तारीख तय करेगा और नोटिस देगा और किसी अन्य व्यक्ति को भी नोटिस देगा जिसका हित अधिनियम के तहत उचित जांच के बाद उक्त संपत्ति में शामिल प्रतीत होता है। न्यायालय किसी अन्य व्यक्ति को उसके कब्जे का हकदार या अन्यथा वितरण करेगा। इस प्रकार,

जिला मजिस्ट्रेट, आगरा द्वारा पारित दिनांक 20.01.2023 का आदेश सही प्रतीत होता है और इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

9. जहां तक उपरोक्त संपत्ति के संबंध में प्रशासक की नियुक्ति के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रार्थना का संबंध है, इस पहलू पर जिला मजिस्ट्रेट, आगरा ने अपने आदेश दिनांक 20.01.2023 में विचार नहीं किया है। यदि याचिकाकर्ता उसे उपलब्ध उपरोक्त वैधानिक उपाय का लाभ उठाता है, तो संबंधित जिला मजिस्ट्रेट द्वारा उस पर विचार किया जाना चाहिए था और वह पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 14 (3) में निहित प्रावधानों के आलोक में आदेश पारित करेगा।

10. उपरोक्त शर्तों में, जैसा कि वैधानिक उपाय उसके लिए उपलब्ध है, वर्तमान याचिका अकेले इस आधार पर खारिज करने योग्य है, लेहाजा इसे तदनुसार खारिज कर दिया जाता है।

(2023) 4 ILRA 499

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 11743

/ 2022

सत्य प्रकाश तिवारी

... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री वी.के. बरनवाल, श्री अखिलेश चन्द्र शुक्ल, श्री सौरभ चतुर्वेदी, श्री आई.के. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अखिलेश चन्द्र शुक्ल

(ए) दंड विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14, 226 - कारागार अधिनियम, 1894 - धारा 55, भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 34, 223, 224, 302 और 307- रिट याचिका -याचिकाकर्ता द्वारा दायर जो मृतक का निकट संबंधी और वाद में से एक का भतीजा है और उसने उच्च न्यायालय तक आपराधिक मामलों में पैरवी की है - राज्यपाल द्वारा 8वें प्रतिवादी की सजा के शेष भाग को माफ करने के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी है कि, 8वां प्रतिवादी एक दुर्दांत अपराधी है और उसके नाम पर एक हिस्ट्रीशीट भी खोली गई थी और उसके खिलाफ 9 अन्य मामले लंबित थे - न्यायालय ने माना कि प्रतिवादी द्वारा प्रदान की गई अधूरी और विभिन्न जेल प्राधिकारियों की झूठी जानकारी के आधार पर छूट दी गई है - इसलिए छूट/आस्थगित माफी को स्थिर नहीं रखा जा सकता है, इसलिए याचिका स्वीकार की जाती है। (पैरा 31, 32, 33, 34, 37)

(बी) दंड विधि - भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 14, 226 - कारागार अधिनियम, 1894 - धारा 55 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34, 223, 224, 302 और 307 - रिट याचिका - गलत और अपूर्ण जानकारी के आधार पर राज्य सरकार द्वारा पारित

छूट/परिवर्तन के आपेक्षित आदेश को निरस्त करने के लिए - जो जेल अधिकारियों द्वारा प्रदान की गई थी, जिसके आधार पर, प्रतिवादी को छूट दी गई थी, हालांकि वह इसके लिए पात्र नहीं था - न्यायालय ने पाया कि, छिपाने और झूठ का यह कार्य स्पष्ट रूप से जानबूझकर किया गया प्रतीत होता है - इसलिए, न्यायालय प्रतिवादी संख्या 1 को निर्देश देती है कि वह जिम्मेदार व्यक्ति (व्यक्तियों) की पहचान करने और उनके विरुद्ध उचित कार्रवाई करने के लिए जांच प्रारंभ करे - तदनुसार निर्देश जारी किए गए। (पैरा - 41, 42)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

राम चंद्र बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य,
एआईआर 2022 एससी 2017

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा
और माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता द्वारा
प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के लिए श्री आई. के. चतुर्वेदी को, जिन्हें श्री वी. के. बरनवाल द्वारा सहायता प्रदान की गई थी, श्री अखिलेश चंद्र शुक्ला, प्रतिवादी संख्या-8 के अधिवक्ता, और श्री पंकज सक्सेना, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

प्रस्तुत रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा पारित दिनांक 28.05.2022

के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट की मांग की गई है, जिसने प्रतिवादी संख्या-8 को छूट दी है और उसकी रिहाई का आदेश दिया है।

8 वें प्रतिवादी, एक आजीवन सजायाफ्ता, को सत्र परीक्षण संख्या-807 वर्ष 2000 में धारा 304/34 और 307/34 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया था और उसे धारा 302/34 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास और धारा 307/34 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए तीन साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई थी।

8 वें प्रतिवादी को दी गई छूट को याचिकाकर्ता द्वारा इस आधार पर चुनौती दी गई है कि प्रतिवादी एक खूंखार अपराधी है और उसके नाम पर एक हिस्ट्री-शीट थाना-सराय इनायत, जिला-इलाहाबाद में खोली गई थी।

यह भी तर्क दिया गया है कि 8 वें प्रतिवादी को फतेहगढ़ सेंट्रल जेल, जिला-फर्रुखाबाद से 26.07.2010 को अदालत में पेश करने के लिए लाया गया था। हालांकि, वह हिरासत से भाग गया और उसी दिन थाना-कर्नलगंज, जिला-इलाहाबाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, जिससे धारा 223/224 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 319 वर्ष 2010 उद्भूत हुआ। उसे उसी दिन प्रयाग रेलवे स्टेशन से गिरफ्तार कर लिया गया था। निष्पक्ष जांच के बाद पुलिस द्वारा आरोप-पत्र दायर किया गया था।

आगे यह तर्क दिया जाता है कि इस तथ्य के अलावा कि 8 वां प्रतिवादी एक खूंखार अपराधी है, उसे उसके बुरे व्यवहार के कारण बार-बार एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित

किया गया है। रिट याचिका में कहा गया है कि शुरू में उन्हें केंद्रीय जेल नैनी में रखा गया था, जहां से उन्हें केंद्रीय जेल फतेहगढ़, जिला फर्रुखाबाद और वहां से जिला जेल बरेली में स्थानांतरित किया गया था और अंत में उन्हें जिला जेल, रामपुर में स्थानांतरित कर दिया गया था।

अगला विवाद यह है कि 8वें प्रतिवादी द्वारा अपने भाइयों के साथ मिलीभगत से भौतिक तथ्यों को छिपाकर छूट/समयपूर्व रिहाई प्राप्त की गई है। एक भाई पवन मिश्रा जिला बागपत में हेड जेल वार्डन हैं, जबकि एक अन्य भाई विमल मिश्रा जिला आगरा में जेल वार्डन हैं।

यह अंत में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि 8 वें प्रतिवादी को सरकारी आदेश 564/218/1106/22.02.2018-07G/2018 दिनांक 01.08.2018 पर निर्भरता रखते हुए छूट दी गई है। सरकारी आदेश के खंड 2 (बी) और 3 (ix) के मद्देनजर, 8 वें प्रतिवादी को छूट नहीं दी जा सकती थी। खंड 3 (ix) में प्रावधान है कि हिरासत से फरार होने वाला दोषसिद्ध छूट का हकदार नहीं है। दिनांक 28.05.2022 का आदेश, जिसके तहत राज्यपाल को भारत के संविधान की धारा 160 के तहत शक्ति के प्रयोग में छूट/कम्यूटेशन प्रदान करने के लिए कहा गया है, इसलिए, स्पष्ट रूप से दूषित है और इसे रद्द किया जा सकता है।

8वें प्रतिवादी की ओर से पेश अधिवक्ता श्री अखिलेश चंद्र शुक्ला का तर्क यह है कि रिट याचिका स्वयं सुनवाई योग्य नहीं है और याचिकाकर्ता के पास आक्षेपित आदेश को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है। वह

पहला सूचनाकर्ता नहीं है और केवल पहले सूचनाकर्ता का भतीजा है और एक अधिवक्ता है। प्रथम सूचनादाता और उस अपराध में मृत, जिसके लिए 8वें प्रतिवादी को दोषी ठहराया गया है, के निकटतम संबंधी आगे नहीं आते हैं। रिट याचिका दुर्भावना पर आधारित है। 8वें प्रतिवादी को रिहा करने के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा 5,00,000/- रुपये की अवैध रिश्वत की मांग की गई और उसी का भुगतान न करने पर, तत्काल रिट याचिका दायर की गई है।

रिट याचिका के गुण-दोष के आधार पर, यह कहा गया है कि 8वें प्रतिवादी को दी गई छूट सरकार द्वारा समय से पहले रिहाई/छूट देने के लिए बनाई गई नीति के खंड 3 (ix) से प्रभावित नहीं होती है क्योंकि भले ही याचिकाकर्ता के मामले को पूरी तरह से स्वीकार किया जाए, वह जेल से फरार नहीं हुआ था, वह न्यायिक हिरासत से फरार हुआ था। इसलिए, उच्चतम न्यायालय और राज्य सरकार द्वारा तैयार किए गए दिशा-निर्देशों का पूरी तरह से पालन किया गया है।

इसके अलावा, 8 वें प्रतिवादी पहले ही छूट के बिना 16 साल की कैद से गुजर चुका है, जो छूट के साथ अवधि लगभग 21 साल हो जाती है।

यह तर्क दिया गया है कि रिकॉर्ड पर यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि प्रतिवादी को बुरे आचरण या व्यवहार के कारण एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित किया गया था। यह दोहराया जाता है कि 8 वें प्रतिवादी का आचरण हमेशा संदेह से परे रहा है।

अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता, जब उसे अदालत के समक्ष पेश

करने के लिए इलाहाबाद के सिविल कोर्ट में लाया गया था, के फरार होने का मामला एक झूठा और मनगढ़ंत मामला है जिसे याचिकाकर्ता ने पुलिस के साथ मिलकर हेरफेर किया था। प्रतिवादी फरार नहीं हुआ था। इसके विपरीत, उसके साथ मौजूद पुलिस कर्मियों ने उसे लावारिस छोड़ दिया और उसके बाद उसके खिलाफ झूठी प्राथमिकी दर्ज कर दिया।

दायर किए गए जवाबी हलफनामे में, यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपराधिक अपील और सजा, प्रतिवादी को छूट/कम्यूटेशन दिए जाने के बाद निरर्थक हो चुकी थी।

प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता पहले सूचनाकर्ता का भतीजा है। प्रथम सूचनाकर्ता की मृत्यु के बाद याचिकाकर्ता ही प्रकरण अपराध संख्या 158 वर्ष 2000 में मृतक जय प्रकाश तिवारी की हत्या से संबंधित सभी मामलों में पैरवी का कार्य करता रहा है और दोषसिद्धि के बाद दोषियों द्वारा दायर आपराधिक अपीलों में भी पैरवी करता रहा है। यह भी कहा जाता है कि घटना के समय मृतक का बेटा नाबालिग था। किसी भी मामले में, तत्काल रिट याचिका में प्रत्युत्तर हलफनामा पहले सूचनाकर्ता के बेटे द्वारा शपथ लिया गया है और इसलिए, रिट याचिका की पोषणीयता के बारे में आपति खारिज की जा सकती है।

यह अतिरिक्त रूप से प्रस्तुत किया गया है कि कम से कम 09 अन्य मामलों के बारे में प्रतिवादी के विरुद्ध प्रासंगिक सामग्री पंजीकृत की गई है, और तथ्य यह है कि वह न्यायिक हिरासत से फरार हो गया था, ये उन रिकॉर्डों में उल्लेख नहीं किया गया है जो

संबंधित प्राधिकारी के समक्ष रखे गए थे, जबकि छूट/कम्यूटेशन के लिए आवेदन पर विचार किया जा रहा था।

उन्होंने जेल नियमावली के पैराग्राफ 138 पर भी भरोसा किया है जो एक कैदी को एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित करने का प्रावधान करता है। उक्त पैराग्राफ में प्रावधान है कि स्थानांतरण का कारण हमेशा जिला मजिस्ट्रेट और जिला जेल के अधीक्षक को सूचित किया जाना चाहिए, जिसमें कैदी को स्थानांतरित किया जाता है और संबंधित कैदी के इतिहास टिकट पर भी दर्ज किया जाना चाहिए। इस प्रावधान पर भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के मामले में कोई इतिहास टिकट तैयार नहीं किया गया था, जो दुर्भावना और 8 वें प्रतिवादी के भाइयों की मित्तीभगत को भी दर्शाता है जो खुद जेल वार्डन हैं।

अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने कार्यवाही का मूल रिकॉर्ड पेश किया है जिसमें इस न्यायालय द्वारा दिनांक 20.09.2022 के आदेश के तहत जारी निर्देश के अनुसार 8वें प्रतिवादी को छूट/कम्यूटेशन प्रदान किया गया है।

हमने पक्षकारों के अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियों पर विचार किया, अभिलेख का अवलोकन किया, तथा अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत मूल अभिलेख का भी अवलोकन किया है।

2018 के जी.ओ का अवलोकन, जिसके तहत छूट प्रदान की गई है, यह प्रदान करता है कि सभी कैदी जो निषिद्ध श्रेणियों के भीतर नहीं आते हैं, जैसा कि खंड 3 और इसके उपखंडों के तहत प्रदान किया गया है, और

जिन्होंने छूट के बिना 16 साल की कैद पूरी कर ली है, छूट सहित 20 साल की कैद छूट दी जा सकती है।

खंड 3 (ix) में प्रावधान है कि जो कैदी आजीवन कारावास की सजा काट रहे हैं या दोषी हैं और अपनी कैद की अवधि के दौरान फरार हो गए हैं, वे निषिद्ध श्रेणी के अंतर्गत आते हैं, जिसका अर्थ है कि वे छूट/कम्यूटेशन के हकदार नहीं हैं।

विचार के लिए जो मुद्दा उठता है वह यह है कि क्या 8 वां प्रतिवादी जेल से फरार हो गया है या क्या जेल की अवधि भी इसमें शामिल होगी, वह अवधि जब किसी कैदी को किसी भी कारण से ले जाया जा रहा है।

यह विवाद में नहीं है कि प्रासंगिक समय पर प्रतिवादी आजीवन आजीवन कैदी था और अपनी सजा काट रहा था। उसे फतेहगढ़ केंद्रीय जेल, फर्रुखाबाद से इलाहाबाद लाया गया था, जहां से उसे एक मामले में अदालत में पेश किया जाना था, जहां से वह कथित रूप से फरार था। इस संबंध में, कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 55 का उल्लेख करना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है: -

"55. कैदियों की बाह्य हिरासत, नियंत्रण और रोजगार: कोई कैदी, जब उसे किसी ऐसे कारागार में या उससे ले जाया जा रहा हो, जिसमें उसे विधिपूर्वक कैद किया जा सकता है, या जब भी वह बाहर कार्य कर रहा हो या अन्यथा ऐसी कारागार से संबंधित कारागार अधिकारी की विधिपूर्ण अभिरक्षा या नियंत्रण में या उसके अधीन किसी कारागार की सीमा से बाहर हो, तो उसे कारागार में होना समझा जाएगा और वह उन सभी घटनाओं के अधीन होगा जैसे कि वह वास्तव में कारागार में था।

यह प्रावधान उत्तरदाताओं के अधिवक्ता द्वारा किए गए सबमिशन का एक पूर्ण उत्तर है क्योंकि इसके अनुसार, 8 वें प्रतिवादी को अभी भी उस समय जेल में माना जाएगा जब वह फरार था। इसलिए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति, सार के बिना है और विशेष रूप से निरस्त की जाती है।

हमने अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत मूल रिकॉर्ड की बारीकी से जांच की है।

इस मूल रिकॉर्ड के अवलोकन से जो तथ्य सामने आता है वह यह है कि मेडिकल ऑफिसर, जिला जेल, रामपुर और जिला कैदी समिति के अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षरित जेल रिपोर्ट में कॉलम-10 में उल्लेख किया गया है कि कोई अन्य मामला प्रतिवादी के साथ लंबित नहीं है। इसलिए, कॉलम 10 में दी गई जानकारी स्पष्ट रूप से गलत है क्योंकि यह 8वें प्रतिवादी द्वारा स्वीकार किया गया है कि 09 अन्य मामले उसके विरुद्ध पंजीकृत हैं और विभिन्न न्यायालयों के समक्ष लंबित हैं। अपने जवाबी हलफनामे में, 8वें प्रतिवादी ने कहा है कि ये मामले मनगढ़ंत हैं और लंबे समय से लंबित हैं क्योंकि अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही देने के लिए कोई भी आगे नहीं आया है।

यह भी ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि कोई इतिहास टिकट तैयार नहीं किया गया है, जैसा कि जेल मैनुअल के पैराग्राफ 138 के तहत प्रदान किया गया है। हमारे सामने प्रस्तुत मूल अभिलेख में भी इसका कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में, रिकॉर्ड पर जेल रिपोर्ट में कहा गया है कि 01.08.2018 के

सरकारी आदेश के पैरा 2 (बी) के मददेनजर प्रतिवादी छूट का हकदार है।

सारणीबद्ध रूप में एक और रिपोर्ट है जो सरकारी आदेश 564/218/1106/22.02.2018-07जी/2018 दिनांक 01.08.2018 के अनुसरण में गणतंत्र दिवस के अवसर पर रिहा किए जाने के हकदार दोषियों की सूची होने का दावा करती है। यहां तक कि इस रिपोर्ट में कहा गया है कि संबंधित जी.ओ के खंड 2 (बी) के मददेनजर प्रतिवादी छूट का हकदार है। इस रिपोर्ट में कनिष्ठ अधिकारियों के अलावा जेल उप-महानिरीक्षक सहित 04 व्यक्तियों के हस्ताक्षर अपेक्षित हैं। हालांकि, इस दस्तावेज पर जेल के उप-महानिरीक्षक द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं।

प्रस्तुत मूल अभिलेख में अधीक्षक जिला जेल रामपुर द्वारा जारी प्रमाण पत्र भी है जो अप्रकाशित है। इस सर्टिफिकेट के कॉलम-6 से पता चल रहा है। यह कॉलम वास्तव में सरकारी आदेश के खंड 3 (ix) में निहित प्रतिबंध के बारे में जानकारी मांगता है। प्रमाण पत्र में कहा गया है कि कैदी कमल मिश्रा अपनी कैद की अवधि के दौरान फरार नहीं हुआ। इस याचिका के रिकॉर्ड में उपलब्ध तथ्य इस रिपोर्ट को स्पष्ट रूप से गलत साबित करते हैं।

इसलिए, अपूर्ण और झूठी सामग्री को विचार के लिए रखे जाने के आधार पर 8वें प्रतिवादी को आजीवन कारावास की सजा पर छूट दी गई है। तथ्य यह है कि 09 अन्य मामले प्रतिवादी के खिलाफ लंबित थे और यह भी तथ्य कि उसे धारा 223/224 भ०द०वि० के तहत एक मामले में आरोप-पत्र दिया गया है, जेल रिपोर्टों में उल्लेख नहीं मिलता है। जेल

रिपोर्ट में इन दो पहलुओं की अभिलिखित करने में विफलता को केवल जानबूझकर छिपाना कहा जा सकता है।

इस मुद्दे का एक और पहलू है। जैसा कि पहले ही देखा गया है, राज्य सरकार द्वारा गलत जानकारी के कारण छूट/कम्यूटेशन मंजूर किया गया है; जहां तक 8वें प्रतिवादी के फरार होने का संबंध है और यह भी तथ्य है कि रिपोर्ट में कहा गया है कि प्रतिवादी प्रतिवादी के विरुद्ध कोई आपराधिक मामला लंबित नहीं है, रिट याचिका में कथन के विपरीत और जवाबी हलफनामे में स्वीकार किया गया और इसलिए भी कि प्रासंगिक जानकारी जेल अधिकारियों द्वारा रोक दी गई थी। कम से कम एक दस्तावेज जिस पर प्रतिवादी को छूट देने के लिए भरोसा किया गया है, उस पर जेल के उप-महानिरीक्षक द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं, हालांकि, जिस फॉर्म में जानकारी प्रस्तुत की गई है, उसके लिए स्पष्ट रूप से उसे सह-हस्ताक्षरकर्ताओं में से एक होने की आवश्यकता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि जेल के उप-महानिरीक्षक को दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं थी। जेल प्रमाण पत्र, जिस पर प्रतिवादी को छूट देने के लिए भरोसा किया गया है, वह भी झूठी जानकारी प्रस्तुत करता है क्योंकि इसमें उल्लेख किया गया है कि प्रतिवादी, दोषी, अपनी कैद की अवधि के दौरान कभी भी फरार नहीं हुआ।

इन परिस्थितियों में, हम यह मानने के लिए विवश हैं कि विभिन्न जेल अधिकारियों द्वारा प्रदान की गई अधूरी और झूठी जानकारी के आधार पर प्रतिवादी को छूट दी गई है। राज्य सरकार ने स्पष्ट रूप से 8 वें

प्रतिवादी को उन रिपोर्टों पर भरोसा करते हुए छूट/कम्यूटेशन प्रदान किया है जिसमें कहा गया है कि 8 वां प्रतिवादी 2018 के प्रासंगिक जी.ओ के खंड 2 (बी) के तहत उक्त रिहाई का हकदार है।

हम राम चंदर बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य, ए.आई.आर 2022 एस.सी 2017 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का भी उल्लेख करना चाहेंगे। इस निर्णय का पैराग्राफ 12 इस प्रकार है: -

"12. जबकि सजा को निलंबित करने या माफ करने के लिए सरकार के साथ एक विवेक निहित है, कार्यकारी शक्ति का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है। कार्यपालिका का विशेषाधिकार कानून के शासन और संविधान के अनुच्छेद 14 में सन्निहित राज्य कार्रवाई में निष्पक्षता के अधीन है। मोहिंदर सिंह (उपरोक्त) मामले में, इस न्यायालय ने माना है कि छूट की शक्ति का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है। छूट देने का निर्णय सूचित, निष्पक्ष और उचित होना चाहिए। न्यायालय ने इस प्रकार अवधारित किया:

"9. छूट देने वाला परिपत्र कानून के तहत अधिकृत है। यह पात्र कैदियों और बहिष्कृत कैदियों दोनों के संबंध में सीमाएं निर्धारित करता है। पात्र कैदियों की सजा में छूट की शर्तें भी परिपत्र द्वारा निर्धारित की गई हैं। कैदियों को, कानून द्वारा निर्धारित और उसके तहत जारी परिपत्र को छोड़कर, अपनी सजा में छूट का कोई पूर्ण अधिकार नहीं है। यह विशेष माफी किसी विशेष अपराध के लिए दोषी कैदी

पर लागू नहीं होगी, निश्चित रूप से राज्य सरकार के लिए उस मामले में क्षमा की शक्ति का प्रयोग न करने के लिए एक प्रासंगिक विचार हो सकता है। छूट की शक्ति, हालांकि, मनमाने ढंग से प्रयोग नहीं किया जा सकता है। छूट देने का निर्णय सभी संबंधितों को अच्छी तरह से सूचित, उचित और निष्पक्ष होना चाहिए।

हमें रिट याचिका की पोषणीयता के लिए याचिकाकर्ता के अधिकार के सवाल पर प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा दिए गए सबमिशन में भी कोई तथ्य नहीं मिलता है। याचिकाकर्ता निश्चित रूप से मृतक का करीबी रिश्तेदार है और केस क्राइम नंबर-158 वर्ष 2000 में पहले सूचनाकर्ता का भतीजा है। वह मुकदमे के दौरान अ०सा०-2 के रूप में गवाह के कठघरे में भी पेश हुए हैं। यह भी कहा जाता है कि वह लंबित अपील में भी उच्च न्यायालय तक आपराधिक मामलों में पैरवी कर रहा था, और इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलील में दम है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता अकेले आक्षेपित आदेश को चुनौती दे रहा है क्योंकि मृतक का बेटा जो घटना के समय नाबालिग था, उसने भी रिट याचिका का समर्थन किया है, जिसमें रिट हलफनामा दायर किया गया है।

उपरोक्त कारणों से, हमारी सुविचारित राय में, 8वें प्रतिवादी को छूट/कम्यूटेशन देने वाले आक्षेपित आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है।

रिट याचिका की अनुमति दी जा सकती है और एतद्वारा अनुमति दी जाती है।

आक्षेपित आदेश दिनांक 28.05.2022 को एतद्वारा रद्द किया जाता है।
लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत मूल अभिलेख आदेश पत्र पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त करने के बाद तुरंत वापस कर दिया जाए, जिसमें उसकी प्राप्ति प्रमाणित हो।

फैसले के मुख्य भाग में, हमने देखा है कि जेल अधिकारियों द्वारा गलत और अधूरी जानकारी प्रदान की गई थी, जिसके आधार पर प्रतिवादी कमल मिश्रा को माफी दी गई थी, हालांकि वह इसके हकदार नहीं थे, और छिपाने और झूठ का यह कृत्य स्पष्ट रूप से उद्देश्यपूर्ण प्रतीत होता है।

इसलिए, प्रतिवादी संख्या-1, प्रमुख सचिव, जेल प्रशासन और सुधार, अनुभाग-2, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को निर्देश देना उचित प्रतीत होता है कि वे इस तरह के झूठ और छिपाने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति (व्यक्तियों) की पहचान करने और उचित कार्रवाई करने के लिए एक जांच शुरू करें। यह निर्देश दिया जा रहा है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि: "छूट देने का निर्णय सभी संबंधितों को अच्छी तरह से सूचित, उचित और निष्पक्ष होना चाहिए।"

(2023) 4 ILRA 505

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या
14644/2019

जावेद अखतर

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अशोक कुमार मिश्र, श्री अखिलेश कुमार मिश्र
अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

(i) दंड विधि - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 19(1)(ए), 19(1)(डी), 21, 226 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - 110-जी, - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 324, 325, 504 एवं 506 - उत्तर प्रदेश पुलिस विनियम, 1861 पैरा 228, 238 - रिट याचिका -याचिकाकर्ता के विरुद्ध वर्ग बी श्रेणी में जारी हिस्ट्रीशीट को निरस्त करने के लिए- तथ्यों की जांच किए बिना और प्रतिवादियों द्वारा उचित संतुष्टि प्राप्त किए बिना याचिकाकर्ता के खिलाफ वर्ग बी हिस्ट्रीशीट खोलने का कार्य त्रुटिपूर्ण था - न्यायालय ने पाया कि, दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में और याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज मामलों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, राज्य प्राधिकारियों को याचिकाकर्ता के विरुद्ध वर्ग बी हिस्ट्रीशीट खोलने के लिए राजी करना विनियम 228 के दायरे में नहीं आएगा - इसलिए, आपेक्षित आरोप-पत्र को तदनुसार निरस्त किया जाता है। (पैरा - 10, 11, 12) निर्देश

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

मुन्ना लाल गुप्ता बनाम यूपी राज्य और अन्य
(2016 खंड 4 एडीजे (एनओसी) 46)

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार एवं
माननीय न्यायमूर्ति सैयद वाइज मियां द्वारा
प्रदत्त)

उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना।
याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई यह तीसरी
रिट याचिका है जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध
खोली गई हिस्ट्रीशीट संख्या 18/बी, थाना-
कोतवाली देहात, जिला-बिजनौर को रद्द करने
की मांग की गई है।

हिस्ट्रीशीट श्रेणी-बी श्रेणी में निम्नलिखित
मामलों को दृष्टिगत रखते हुए तैयार की गई
है-

(1) मुकदमा अपराध संख्या 74ए/1995
अंतर्गत धारा-324, 325, 504, 506 और 147
भा.दं.सं.।

(2) मुकदमा अपराध संख्या 160/2015
अंतर्गत धारा-110जी दं.प्र.सं.।

यह कथन किया गया है कि याचिकाकर्ता के
विरुद्ध श्रेणी-बी श्रेणी में हिस्ट्रीशीट नहीं खोली
जा सकती थी क्योंकि हिस्ट्रीशीट उत्तर प्रदेश
पुलिस विनियमों के पैराग्राफ-228 के प्रावधानों
के अनुसार नहीं है, जो इस प्रकार है:-

"पैरा-228 हिस्ट्रीशीट और निगरानी: भाग-5 में
हिस्ट्रीशीट दी गई हैं। ये निगरानी के तहत
अपराधियों के व्यक्तिगत अभिलेख हैं।
हिस्ट्रीशीट केवल उन व्यक्तियों के लिए खोली
जानी चाहिए जो आदतन अपराधी हैं या बनने

की संभावना है या ऐसे अपराधियों को उकसाते
हैं। हिस्ट्रीशीट की दो श्रेणियां होंगी:

(1) श्रेणी ए हिस्ट्रीशीट - डकैतों, चोरों, पशु-
चोरों, रेलवे-माल वैगन चोरों और उनके
दुष्प्रेरकों के लिए।

(2) श्रेणी बी हिस्ट्रीशीट - अपराध करने वाले
पक्के और पेशेवर अपराधियों के लिए जो
डकैती, चोरी, पशु-चोरी और रेलवे माल वैगनों
से चोरी के अलावा अपराध कारित करते हैं,
उदाहरणार्थ- पेशेवर धोखेबाज और अन्य
विशेषज्ञ जिनके लिए आपराधिक जांच विभाग
द्वारा आपराधिक व्यक्तिगत फाइलें रखी जाती
हैं, जहर देने वाले, मवेशी को जहर देने वाले,
रेलवे यात्री चोर, साइकिल चोर, विशेषज्ञ
जेबकतरे, जालसाज, सिक्के बनाने वाले,
कोकीन और अफीम तस्कर, भाड़े के गुंडे और
बदमाश, टेलीग्राफ तार काटने वाले, आदतन
अवैध शराब बनाने वाले और उनके दुष्प्रेरक।

दोनों श्रेणियों की हिस्ट्रीशीट को समान
रूप से अनुरक्षित किया जाएगा, किन्तु श्रेणी-बी
के हिस्ट्रीशीट को पहले पृष्ठ के शीर्ष पर एक
लाल पट्टी द्वारा अलग से चिह्नित किया
जाएगा। श्रेणी-बी के किसी भी हिस्ट्रीशीट को
श्रेणी-ए के हिस्ट्रीशीट में परिवर्तित नहीं किया
जा सकता है, हालाँकि श्रेणी-बी के हिस्ट्रीशीट
का विषय डकैती, चोरी, पशु-चोरी या रेलवे
माल वैगन से चोरी का भी आदी पाया जाना
चाहिए। श्रेणी ए के साथ ही साथ श्रेणी बी पर
पैराग्राफ-238 के तहत निगरानी लागू होगी।
श्रेणी ए हिस्ट्रीशीट व्यक्ति के विविध अपराध
में आदी हो जाने की स्थिति में अधीक्षक की
अनुमति से उसकी हिस्ट्रीशीट को श्रेणी बी
हिस्ट्रीशीट में परिवर्तित किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त विनियम 228 में प्रावधान है कि श्रेणी-बी हिस्ट्रीशीट केवल पुष्टि किए गए और पेशेवर अपराधी के विरुद्ध ही खोली जा सकती है, जिसने डकैती, चोरी, मवेशी चोरी या रेलवे माल वैगन आदि से चोरी का अपराध किया हो या जो इस पैराग्राफ में उल्लिखित अन्य अपराधों में विशेषज्ञ या आदतन अपराधी हो।

इस पृष्ठभूमि में, यह कथन किया गया है कि याचिकाकर्ता को एकमात्र आपराधिक मामले में सक्षम न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था। इसके अलावा यह कथन किया गया है कि ग्राम प्रधान के इशारे पर गांव की पार्टी बंदी के कारण याचिकाकर्ता को झूठा फंसाया गया है। राज्य सरकार द्वारा दाखिल जवाबी शपथपत्र में कहा गया है कि याचिकाकर्ता दोषमुक्त हो गया है और वर्तमान में उसके विरुद्ध कोई मामला लंबित नहीं है।

यह कथन किया गया है कि श्रेणी-बी में हिस्ट्रीशीट नहीं खोली जा सकती थी क्योंकि याचिकाकर्ता न तो आपराधिक गतिविधियों में लिप्त था और न ही आदतन या पेशेवर अपराधी है। प्रत्यर्थी-राज्य का यह कहना नहीं है कि याचिकाकर्ता को किसी भी अपराध में दोषी पाया गया था। विगत सात वर्षों में, याचिकाकर्ता की कोई आपराधिक गतिविधि या कोई अन्य असामाजिक गतिविधि नहीं सूचित की गई। आगे कथन किया गया है कि विनियम-228 के प्रावधानों के विरुद्ध श्रेणी-बी हिस्ट्रीशीट खोलना भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) के प्रावधानों का उल्लंघन करता है जो नागरिकों के भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार की रक्षा करता है। इसके अलावा संविधान का

अनुच्छेद 19 (1) (डी) जो संपूर्ण भारतवर्ष में स्वतंत्र रूप से घूमने का अधिकार देता है और भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 "किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा सिवाय स्थापित विधिक प्रक्रिया के अनुसार।"

यह विशेष रूप से निवेदन किया गया है कि याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को चरित्र प्रमाण पत्र से मात्र इस कारण से वंचित किया जा रहा है कि याचिकाकर्ता का नाम श्रेणी-बी हिस्ट्रीशीट में दर्ज है। इस पृष्ठभूमि में, यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता को उसकी स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित किया जा रहा है। मुन्ना लाल गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य; 2016 4 ए.डी.जे. (एन.ओ.सी.) 46 मामले में दिए गए इस न्यायालय की खण्डपीठ के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और प्रत्यर्थी-राज्य की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध श्रेणी-बी हिस्ट्रीशीट खोलने का कृत्य, तथ्यों को सत्यापित किए बिना तथा राज्य-प्रत्यर्थी द्वारा उचित संतुष्टि प्राप्त किए बिना, गलत था। हिस्ट्रीशीट की कभी समीक्षा नहीं की गई क्योंकि नियमानुसार श्रेणी बी हिस्ट्रीशीट मृत्यु तक जारी रहेगी।

हमारा विचार है कि दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में और याचिकाकर्ता के विरुद्ध दर्ज मामलों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, वह राज्य अधिकारियों को याचिकाकर्ता के विरुद्ध श्रेणी-बी हिस्ट्रीशीट खोलने के लिए यकीन दिलाने के लिए विनियमन-228 के दायरे में नहीं आएगा।

अतः याची के विरुद्ध खोली गई हिस्ट्रीशीट संख्या 18/बी, थाना-कोतवाली देहात, जिला-बिजनौर को निरस्त किया जाता है। राज्य के प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता की वर्तमान हिस्ट्रीशीट को बंद करने और उक्त हिस्ट्रीशीट के अनुसरण में याचिकाकर्ता पर निगरानी न रखने का निर्देश दिया जाता है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 4 ILRA 508

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

आदेश से प्रथम अपील संख्या 189/1993

संलग्न

आदेश से प्रथम अपील संख्या 190/1993,

191/1993, 193/1993, 196/1993 एवं

198/1993

राधे श्याम जवारानी और अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम

वालिगुरु खान और अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: एसपी शुक्ला, अभिषेक

धाव, संकल्प मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: एम.एस.कोटवाल

अ. सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1989 - धारा 173 - अनुतोष में वृद्धि - न्यायाधिकरण ने बिना किसी आधार के गैर-आर्थिक लाभ के लिए 1,78,000/- रुपए की राशि अनुतोष में दी है, जो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित स्थापित सिद्धांतों के विपरीत है - दावेदार कुल 7,53,835 रुपए के क्षतिपूर्ति के पात्र होंगे, जिस पर आवेदन की तिथि से

उसके वास्तविक भुगतान की तिथि तक 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज लगेगा - दावेदार दोनों संयुक्त अपहर्ताओं में से किसी एक से कुल क्षतिपूर्ति वसूलने के पात्र होंगे और दोनों संयुक्त अपहर्ताओं में से कोई भी, जो अनुतोष को संतुष्ट करता है, वह खेन्येई में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार दूसरे संयुक्त अपहर्ता से पंचाट की 50% राशि वसूलने का पात्र होगा। (पैरा 1 से 71)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. खेन्येई बनाम न्यू इंडिया एसोसिएशन कंपनी लिमिटेड और अन्य (2015) 9 एससीसी 273
2. श्रीमती सुमन एवं अन्य बनाम श्रीमती अनीसा बेगम एवं अन्य, एफएफओ संख्या 126/2010
3. नेशनल इंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी (2017) 16 एससीसी 680

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. यह मोटर वाहन अधिनियम 1989 की धारा 173 के अंतर्गत योजित छह अपीलों का समूह है। तीन अपीलों, दावेदारों द्वारा प्रतिकर में वृद्धि की मांग करते हुए योजित की गई हैं, जबकि अन्य तीन अपीलों बीमा कंपनी द्वारा प्रतिकर का विरोध करते हुए योजित की गई हैं। चूंकि वृद्धि का बिन्दु बाद में आएगा, इसलिए पहले यह निर्धारित करना होगा कि

न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय सही है या नहीं। यदि निर्णय बरकरार रहता है, तो ही वृद्धि के बिन्दु पर विचार किया जाएगा और इसके दृष्टिगत यह न्यायालय बीमा कंपनी द्वारा योजित की गई तीन अपीलों पर पहले विचार करेगा।

2. रिकॉर्ड से पता चलता है कि बीमा कंपनी द्वारा योजित की गई अपीलों में प्रतिस्थापन के लिए एक आवेदन पेश किया गया है, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 3 श्री कुंगू मल की मृत्यु हो गई थी और उनके पुत्र राधेश्याम जावरानी जीवित हैं। उल्लेखनीय रूप से, बीमा कंपनी द्वारा योजित की गई अपीलों में आवेदन पेश किए जाने के बावजूद, दावेदारों द्वारा योजित की गई अन्य तीन अपीलों के अपीलकर्ताओं ने प्रतिस्थापन के लिए सादृश्य आवेदन पेश नहीं किया है।

3. जो भी हो, यह देखते हुए कि संशोधन के लिए आवेदन कुछ अपीलों में रिकॉर्ड पर है, उन्हें स्वीकृत किया जा रहा है क्योंकि कानूनी उत्तराधिकारी के पहले से ही रिकॉर्ड पर होने के कारण, उपशमन का बिन्दु उत्पन्न नहीं होता है, परिणामस्वरूप, उक्त आवेदन दावेदारों द्वारा योजित तीन अन्य अपीलों के लाभ के लिए भी लागू होगा। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आई.पी.एस. चड्ढा को दिन के दौरान सभी छह अपीलों में आवश्यक संशोधन करने की अनुमति है।

4. विवाद को एक परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए, तत्काल अपीलों को जन्म देने वाले कुछ संक्षिप्त तथ्यों पर ध्यान दिया जा रहा है: -

5. 02.01.1992 को, श्री राधेश्याम जावरानी एक फिएट कार नंबर यूजीसी 2184 चला रहे थे और लखनऊ से सीतापुर लौट रहे थे। उक्त कार श्री कुंगू मल की थी, जो दावा याचिका में निजी प्रतिवादी संख्या 3 है। राधेश्याम जावरानी अपनी पत्नी जानकी और अपनी दो बेटियों और एक बेटे के साथ यात्रा कर रहे थे। यह कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन यानी 02.01.1992 को जब राधेश्याम जावरानी द्वारा चलाई जा रही कार लखनऊ सीतापुर रोड पर ग्राम बरभारी, थाना कैराबाद के पास पहुंची, उसी समय सड़क के बीचों-बीच एक ट्रक संख्या यूपी 77/9256 खड़ी थी। ट्रक पर कोई इंडिकेटर या कोई रिफ्लेक्टर नहीं लगा था, जिससे पता चले कि ट्रक सड़क पर खड़ा है। हालांकि, एक छोटा लड़का अचानक सड़क के एक तरफ से दूसरी तरफ भागा और उक्त लड़के को बचाने के चक्कर में राधेश्याम जावरानी की कार खड़े ट्रक से जा टकराई। इस दुर्घटना में राधेश्याम और उनके बेटे गौरव को चोटें आईं, जबकि उनकी पत्नी जानकी को गंभीर चोटें आईं और उन्हें सीतापुर के जिला अस्पताल ले जाया गया, जहां उन्हें मृत घोषित कर दिया गया।

6. इसी दुर्घटना के संबंध में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/चतुर्थ एडीजे, सीतापुर के समक्ष तीन दावा याचिकाएं योजित की गईं, (I) दावा याचिका संख्या 66/92 राधेश्याम ने अपनी बेटियों और बेटों के साथ मिलकर श्रीमती जानकी की मृत्यु के प्रतिकर के लिए योजित की थी। (II) दावा याचिका संख्या 67/92 राधेश्याम ने उन्हें लगी चोटों के लिए योजित की थी। (III) दावा याचिका संख्या 68/92

गौरव ने उसे लगी चोटों के लिए योजित की थी।

7. उचित प्रतिवाद के बाद, दावा याचिका संख्या 66/1992 स्वीकृत हो गई और न्यायाधिकरण ने 15% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ ₹5,36,100/- की प्रतिकर राशि प्रदान की। इस निर्णय दिनांक 25.05.1983 को बीमा कंपनी द्वारा एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 193/1993 के रूप में आक्षेपित किया गया है, जबकि दावेदारों द्वारा योजित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 189/1993 में वृद्धि की मांग की गई है।

8. राधेश्याम द्वारा उसके द्वारा लगी चोटों के लिए योजित दावा याचिका संख्या 67/92 स्वीकृत की गई और न्यायाधिकरण द्वारा 15% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 40,000/- रुपये का प्रतिकर प्रतिकर दिया गया और इस निर्णय तिथि 25.05.1993 को बीमा कंपनी द्वारा एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 190/1993 में चुनौती दी गई जबकि उक्त निर्णय को दावेदार द्वारा एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 198/1993 में वृद्धि की मांग करते हुए चुनौती दी गई है।

9. श्री गौरव जावरानी द्वारा उनको लगी चोटों के लिए योजित दावा याचिका संख्या 68/92 को भी 15% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 40,000/- रुपये की राशि के लिए स्वीकृत किया गया और इस निर्णय तिथि 25.05.1993 को बीमा कंपनी द्वारा एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 191/1993 के रूप में आक्षेपित किया गया जबकि दिनांक

25.05.1993 के उक्त निर्णय को दावेदार द्वारा एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 196/1993 के तहत वृद्धि की मांग करते हुए चुनौती दी गई है।

10. इस प्रकार, यह पाया जाता है कि एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 189/1993, 198/1993 और 196/1993 तीन अपीलें हैं, जो दावेदारों द्वारा दिनांक 25.05.1993 के निर्णय के तहत दी गई राशि में वृद्धि की मांग के लिए योजित की गई हैं। दूसरी ओर बीमा कंपनी द्वारा तीन अपीलें योजित की गई हैं, जो दावा याचिका संख्या 66/1992 में पारित निर्णय को चुनौती देती हैं। एफ.ए.एफ.ओ. 191/1993 गौरव के पक्ष में पारित निर्णय से संबंधित दावा याचिका संख्या 68/1992 में पारित निर्णय से उत्पन्न हुई है और अपील संख्या 190/1993, राधेश्याम को लगी चोटों के लिए उसके पक्ष में निर्णय से संबंधित दावा याचिका संख्या 67/1992 में पारित निर्णय को चुनौती देती है।

11. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, जब सभी छह अपीलें एक ही दुर्घटना से उत्पन्न हुई हैं और समान पक्षों से संबंधित हैं और कानून और तथ्य दोनों के समान प्रश्नों को पर आधारित हैं, इसलिए इस न्यायालय ने सभी छह अपीलों को एक साथ संबद्ध कर दिया है, जिनकी एक साथ सुनवाई हुई है और इस समान निर्णय द्वारा निर्णीत किया जा रहा है।

12. सुविधा के लिए, न्यायालय बीमा कंपनी द्वारा योजित तीनों अपीलों-एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 193/1993, एफ.ए.एफ.ओ. संख्या

191/1993 और एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 190/1993 पर पहले विचार कर रही है।

13. बीमा कंपनी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आईपीएस चड्ढा ने तीनों अपीलों में दिनांक 25.05.1993 के निर्णय को मुख्यतः दो आधारों पर चुनौती दी है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण ने दावा याचिका संख्या 66/1992 में निर्णय पारित करते समय गलती की है, जो श्रीमती जानकी की मृत्यु के कारण मुआवजे से संबंधित है। यह तर्क दिया गया है कि श्रीमती जानकी, श्री कुंगू मल की कार में यात्रा कर रही थीं और चूंकि बीमा पॉलिसी में चालक के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को कवर नहीं किया गया था, इसलिए श्रीमती जानकी की मृत्यु के कारण कोई प्रतिकर नहीं दिया जा सकता था। यह भी तर्क दिया गया है कि स्पष्ट निष्कर्ष है कि दुर्घटना में बीमा कंपनी द्वारा बीमाकृत कार के चालक की लापरवाही नहीं थी, फिर भी बीमा कंपनी के विरुद्ध निर्णय पारित किया गया है, जो संधारणीय नहीं है।

14. यह तर्क दिया गया है कि दावा याचिका में दिए गए विवरण के अनुसार, फिएट कार राधेश्याम चला रहा था और अचानक सड़क पार कर रहे एक लड़के को बचाने के लिए राधेश्याम ने खड़े ट्रक को टक्कर मार दी। न्यायाधिकरण ने यह भी पाया है कि उक्त दुर्घटना में राधेश्याम की लापरवाही नहीं थी, बल्कि यह सड़क के बीचों-बीच खड़ी ट्रक थी, जिसकी वजह से दुर्घटना हुई और उक्त कारण से ट्रक मालिक पर पूरी जिम्मेदारी तय किए

बिना और उक्त ट्रक के बीमाकर्ता को पक्षकार बनाए बिना अपीलकर्ता बीमा कंपनी के खिलाफ पारित किया गया निर्णय कानून की दृष्टि में गलत है।

15. यह भी आग्रह किया गया है कि यदि निर्णय का अनुपालन किया जाना है, तो यह ट्रक के बीमाकर्ता या उसके मालिक की जिम्मेदारी है और इसे उस बीमा कंपनी पर नहीं अधिरोपित किया जा सकता है, जिसने फिएट कार संख्या यूजीसी 2184 का बीमा किया था।

16. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जहां अपीलकर्ता के साथ बीमाकृत कार के मालिक पर कोई लापरवाही नहीं अधिरोपित की गई है और यह सहभागी लापरवाही का मामला भी नहीं है, फिर भी अपीलकर्ता पर प्रतिकर राशि का आधा और दोषी ट्रक के मालिक पर आधा हिस्सा आबंटित करना गलत है और ऐसा करके न्यायाधिकरण ने स्वयं को पूरी तरह से गलत दिशा में ले लिया है जिसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है।

17. जहां तक श्रीमती जानकी के मामले में पारित निर्णय का सवाल है, श्री चड्ढा ने तर्क दिया है कि न्यायाधिकरण ने कुल 5,36,100/- रुपए का प्रतिकर दिया है, लेकिन निर्णय के अवलोकन मात्र से यह पता चलता है कि न्यायाधिकरण ने अनुमान और अटकलों का सहारा लेकर उक्त राशि का निर्धारण किया है। कोई उचित विचार नहीं किया गया है और यहां तक कि दिए गए तथ्यों और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर भी किसी वृद्धि का कोई

सवाल ही नहीं था, क्योंकि इससे यह संकेत मिलता है कि न्यायाधिकरण ने गैर-आर्थिक लाभों के लिए 1,78,100/- रुपए की राशि गलत तरीके से निर्णय दी है, लेकिन इस बात का कोई कारण नहीं बताया है कि उक्त राशि कैसे तय की गई है।

18. जिस आधार पर राधेश्याम और गौरव द्वारा योजित दावा याचिकाओं में निर्णय पारित किया गया है, उनके संबंध में यह तर्क दिया गया है कि राधेश्याम और गौरव अपनी किसी भी चोट को सिद्ध नहीं कर सके और न ही उन्होंने अपनी चोटों, उपचार के बारे में कोई साक्ष्य प्रस्तुत किया, और इन्हे सिद्ध करने के किसी भी दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में, जो प्रतिकर राशि निर्णय की गई है, वह उचित नहीं है और अत्यधिक है, और साक्ष्यों के अभाव में दावा याचिकाओं को खारिज कर दिया जाना चाहिए था।

19. यह भी तर्क दिया गया है कि साक्ष्य में केवल एक बयान दर्ज किया गया था कि श्री राधेश्याम ने अपने और अपने बेटे गौरव के इलाज पर 60,000/- रुपये की राशि खर्च की थी। यह भी तर्क दिया गया है कि यह कहा गया है कि उक्त उपचार लखनऊ के नर्सिंग होम में किया गया था, लेकिन यह सिद्ध करने के लिए कोई दस्तावेज नहीं है कि दावेदार राधेश्याम और गौरव को कभी उक्त नर्सिंग होम में भर्ती कराया गया था या उनका इलाज किया गया था, क्योंकि यह सिद्ध करने के लिए कोई मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है कि उन्हें कब भर्ती कराया गया था या उनका इलाज किया गया था। खरीदी गई

दवाओं के लिए कोई नुस्खा या रसीद नहीं है। कहा गया है कि राधेश्याम के छह दांत टूटे हुए थे, लेकिन इसे सिद्ध करने के लिए कुछ भी नहीं है, तदनुसार, प्रतिकर में वृद्धि का कोई सवाल ही नहीं है, बल्कि जो राशि दी गई है, उसे भी रद्द कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि चोटों के साथ-साथ उपचार पर खर्च की गई राशि को सिद्ध किए बिना, निर्णय पारित नहीं किया जा सकता था।

20. इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता कंपनी पर प्रतिकर की देयता डालने में गलती की है। यह तर्क दिया गया है कि प्रतिकर को बढ़ाया नहीं जा सकता है और बीमा कंपनी द्वारा योजित अपीलों के संदर्भ में किए गए तर्कों के प्रकाश में, जिनमें निर्णय को चुनौती दी गई है, निर्णय स्वयं निरस्त किए जाने योग्य है और बीमा कंपनी की अपीलों को स्वीकृत किया जाना चाहिए, और दावेदार प्रतिवादियों द्वारा योजित तीनों अपीलों को निरस्त किया जाना चाहिए।

21. दावेदार-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री संकल्प मेहरोत्रा ने तर्क दिया है कि बीमा कंपनी के अधिवक्ता के तर्क स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि यह स्पष्ट रूप से समग्र लापरवाही का मामला है और उपरोक्त परिस्थितियों में दावेदारों के लिए ट्रक मालिक या कार मालिक से प्रतिकर राशि प्राप्त करने का विकल्प खुला है। यह तर्क दिया गया है कि जहां तक श्रीमती जानकी की मृत्यु से संबंधित दावा याचिका का संबंध है, चूंकि वह कार में यात्रा कर रही थीं और एक तृतीय पक्ष थीं और

यह स्पष्ट निष्कर्ष है कि उन्होंने किसी भी तरह से दुर्घटना में योगदान नहीं दिया था क्योंकि कार राधेश्याम द्वारा चलाई जा रही थी, इसलिए यह समग्र लापरवाही का मामला है जिसके परिणामस्वरूप श्रीमती जानकी अपने कानूनी उत्तराधिकारियों को छोड़कर मर गईं जो दावेदार हैं और वे मुआवजे का दावा करने और बीमा कंपनी से इसे वसूलने के हकदार हैं क्योंकि संबंधित कार संख्या यूजीसी 2184, बीमाकृत थी और दुर्घटना में शामिल थी।

22. यह भी कहा गया है कि कार बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई थी और अपीलकर्ता कंपनी ने कार को हुए नुकसान और हानि के लिए पहले ही दावा कर दिया है और इस तरह इस स्तर पर बीमा कंपनी के लिए यह आरोप लगाना उचित नहीं है कि बीमा कंपनी निर्णय का अनुपालन नहीं करने जा रही है। यह भी कहा गया है कि जहां तक राधेश्याम और गौरव को लगी चोटों का सवाल है, उनकी दावा याचिका को सही तरीके स्वीकृत किया गया है क्योंकि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों से यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया था कि उन्हें चोटें आई थीं और उपरोक्त कारणों से बीमा कंपनी द्वारा योजित अपील खारिज किए जाने योग्य हैं।

23. दावेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री मेहरोत्रा ने वृद्धि के लिए अपनी अपील पर जोर देते हुए तर्क दिया कि न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता बीमा कंपनी से प्रतिकर राशि का 50% वसूलने का निर्देश देकर गलती की है और हालांकि यह समग्र लापरवाही का मामला था और ट्रक मालिक और कार की बीमा कंपनी के बीच देयता को विभाजित किया जा सकता

था, लेकिन दावेदार-अपीलकर्ताओं के अधिकारों को 50% तक सीमित नहीं किया जा सकता था बल्कि दावेदार बीमा कंपनी या ट्रक मालिक या दोनों से पूरी राशि प्राप्त करने के हकदार हैं और यह बीमा कंपनी या ट्रक मालिक के लिए खुला होगा कि वे दावेदारों को पूर्ण रूप से निर्णय की संतुष्टि के बाद, दूसरे से विभाजित भाग को वसूल करें और पूर्वोक्त सीमा तक, निर्णय को संशोधित करने की आवश्यकता है।

24. यह भी तर्क दिया गया है कि श्रीमती जानकी आयकर दाता थी और उसकी अपनी आय थी तथा उसकी आयु को ध्यान में रखते हुए, प्रतिकर देते समय न तो भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में रखा गया है और न ही न्यायाधिकरण ने गैर-आर्थिक लाभों के लिए उचित राशि प्रदान की है, इसलिए उनकी भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए, गैर-आर्थिक लाभों के लिए प्रतिकर में वृद्धि करनी चाहिए।

25. यह भी तर्क दिया गया है कि न्यायाधिकरण ने राधेश्याम और गौरव को लगी चोटों के लिए उचित प्रतिकर न देकर गलती की है और यद्यपि दोनों दावा याचिकाओं के संबंध में 60,000/- रुपये की राशि का दावा किया गया था, लेकिन केवल 40,000/- रुपये की राशि प्रदान की गई, जो कि कम है और तदनुसार इस संबंध में भी प्रतिकर वृद्धि योग्य है।

26. न्यायालय ने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और रिकॉर्ड पर सामग्री का भी अवलोकन किया है।

27. विवाद को हल करने के लिए, पक्षों द्वारा प्रस्तुत तथ्यों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

28. संक्षेप में, दावेदारों-अपीलकर्ताओं का मामला यह है कि उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन यानी 02.01.1992 को श्री राधेश्याम जावरानी अपनी फिएट कार संख्या यूजीसी 2184 चला रहे थे और उक्त कार में उनकी पत्नी श्रीमती जानकी, उनके बेटे श्री गौरव जावरानी और उनकी दो बेटियां और एक नौकर लखनऊ से सीतापुर लौट रहे थे। जैसे ही कार लखनऊ सीतापुर रोड पर ग्राम बरभारी, थाना खैराबाद के पास पहुंची, एक छोटा लड़का अचानक सड़क पार करने के लिए दौड़ा और उक्त लड़के को बचाने के लिए, श्री राधेश्याम जावरानी ने सड़क के बीचों-बीच खड़े एक स्थिर ट्रक को टक्कर मार दी, जिसमें कोई भी किसी संकेतक या रिफ्लेक्टर नहीं था, जिससे लोगों को पता चले कि ट्रक स्थिर है।

29. दावेदारों का यह भी मामला है कि दुर्घटना ट्रक चालक की लापरवाही का नतीजा थी क्योंकि ट्रक चालक के लिए सड़क के बीच में ट्रक पार्क करने का कोई कारण नहीं था और यह देखते हुए कि दुर्घटना 02.01.1992 को हुई थी, यानी सर्दियों के समय में, जब सूरज जल्दी ढल जाता है और प्रासंगिक समय यानी 06:30- 07:00 बजे शाम को अंधेरा था और उचित संकेतक या रिफ्लेक्टर के बिना, कार का चालक यह नहीं देख सका कि ट्रक स्थिर था और चूंकि वह अचानक सड़क पार करने वाले लड़के को बचाने का प्रयास कर रहा था, इसलिए उसने ट्रक को टक्कर मार दी। यह

सुनिश्चित करना ट्रक चालक का कर्तव्य था कि ट्रक को पर्याप्त सावधानियों के बिना सड़क के बीच में अकेला न छोड़ा जाए।

30. न्यायाधिकरण ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि कार चालक की ओर से कोई लापरवाही नहीं थी बल्कि लापरवाही ट्रक चालक/मालिक की पाई गई है। इस संबंध में, यह भी ध्यान देने योग्य होगा कि ट्रक मालिक द्वारा कोई अपील नहीं की गई है और न ही उसके द्वारा कोई क्रॉस आपत्तियां योजित की गई हैं।

31. क्रॉस अपील या क्रॉस आपत्तियां योजित न करने का प्रभाव यह है कि जहां तक ट्रक मालिक/चालक की लापरवाही का संबंध है, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया निष्कर्ष बरकरार है और किसी भी चुनौती या विपरीत सामग्री के अभाव में इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किए जाने योग्य है।

32. अब, उपर्युक्त पृष्ठभूमि में यदि बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क की जांच की जाती है, तो यह पता चलता है कि तर्कों का जोर इस तथ्य में निहित है कि जहां लापरवाही का कारण दोषी ट्रक को माना गया है और बीमा कंपनी द्वारा बीमाकृत फिएट कार को कोई लापरवाही नहीं बताई गई है, इसलिए, इन परिस्थितियों में, बीमा कंपनी पर आधी राशि के भुगतान का दायित्व नहीं डाला जा सकता है और शेष आधी राशि ट्रक मालिक से वसूल की जानी चाहिए, बल्कि यदि निर्णय बरकरार रहता है तो प्रतिकर का पूरा दायित्व ट्रक मालिक पर डालना चाहिए।

33. उपर्युक्त तर्क का सामना करने के लिए, दावेदार-प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यह समग्र लापरवाही का मामला था न कि सहभागी लापरवाही का और इस प्रकार जहां तक दावेदारों का संबंध है, वे बीमा कंपनी या ट्रक मालिक से इसे वसूलने के हकदार हैं क्योंकि उनकी देयता संयुक्त और अलग-अलग दोनों है।

34. उपर्युक्त असहमतिपूर्ण तर्कों का पता लगाने के लिए, सबसे पहले सहभागी लापरवाही और समग्र लापरवाही के बीच अंतर को नोटिस करना आवश्यक होगा। सहभागी लापरवाही के मामले में, एक व्यक्ति जिसने खुद दुर्घटना में योगदान दिया है, वह अपनी लापरवाही की सीमा तक दुर्घटना में उसके द्वारा उठाए गए नुकसान, चोट या क्षति के लिए मुआवजे का दावा नहीं कर सकता है। जबकि समग्र लापरवाही में, उस व्यक्ति को नुकसान होता है, जिसने दुर्घटना में योगदान नहीं दिया है, बल्कि दो या अधिक गलत काम करने वालों की लापरवाही के संयोजन के परिणामस्वरूप पीड़ित हुआ है।

35. मोटर दुर्घटना के संदर्भ में दो प्रकार की लापरवाही के बीच अंतर को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **खेनेई बनाम न्यू इंडिया एशोरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, (2015) 9 एससीसी 273** में बहुत अच्छी तरह से समझाया गया है; और संबंधित पैराग्राफ इस प्रकार है:-

"15. सहभागी और समग्र लापरवाही में अंतर है। सहभागी लापरवाही के

मामले में, एक व्यक्ति जिसने खुद दुर्घटना में योगदान दिया है, वह अपनी लापरवाही की सीमा तक दुर्घटना में उसे लगी चोटों के लिए मुआवजे का दावा नहीं कर सकता है; जबकि समग्र लापरवाही के मामले में, एक व्यक्ति जिसने दुर्घटना में योगदान नहीं दिया है, बल्कि दो या अधिक अन्य व्यक्तियों की लापरवाही के संयोजन के परिणामस्वरूप दुर्घटना हुई है। इस न्यायालय ने टी.ओ. एंथनी बनाम करवर्णन [(2008) 3 एससीसी 748: (2008) 1 एससीसी (सिविल) 832: (2008) 2 एससीसी (क्रि) 738] में निर्धारित किया है कि सहभागी लापरवाही के मामले में, घायल को प्रत्येक गलत करने वाले की जिम्मेदारी की सीमा को अलग से स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है. न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक गलत करने वाले की देयता की सीमा को अलग से निर्धारित करना आवश्यक है। केवल सहभागी लापरवाही के मामले में ही घायल ने खुद को दोषी ठहराया है। दुर्घटना में उसकी लापरवाही के कारण यह दुर्घटना हुई है। उसकी लापरवाही की सीमा का निर्धारण किया जाना आवश्यक है. क्योंकि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूल की जाने वाली क्षतिपूर्ति को उसकी सहभागी लापरवाही के अनुपात में कम किया जाना है। प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत

किया गया है: (एससीसी पृ. 750-51, पैरा 6-7)

"6. 'संयुक्त लापरवाही' से तात्पर्य दो या अधिक व्यक्तियों की ओर से की गई लापरवाही से है। जहां कोई व्यक्ति दो या अधिक गलत काम करने वालों की ओर से की गई लापरवाही के परिणामस्वरूप घायल होता है, वहां यह कहा जाता है कि वह व्यक्ति उन गलत काम करने वालों की संयुक्त लापरवाही के कारण घायल हुआ है। ऐसे मामले में, प्रत्येक गलत काम करने वाला, संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से संपूर्ण क्षति के भुगतान के लिए घायल व्यक्ति के प्रति उत्तरदायी होता है और घायल व्यक्ति के पास उन सभी या उनमें से किसी के विरुद्ध कार्यवाही करने का विकल्प होता है। ऐसे मामले में, घायल व्यक्ति को प्रत्येक गलत काम करने वाले की जिम्मेदारी की सीमा अलग-अलग स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती है, न ही न्यायालय के लिए प्रत्येक गलत काम करने वाले की देयता की सीमा अलग-अलग निर्धारित करना आवश्यक है। दूसरी ओर, जहां कोई व्यक्ति आंशिक रूप से किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों की ओर से की गई लापरवाही के कारण और आंशिक रूप से उसकी अपनी लापरवाही के परिणामस्वरूप चोटिल होता है, तो घायल व्यक्ति की ओर से की गई

लापरवाही जिसने दुर्घटना में योगदान दिया, उसे उसकी संयुक्त लापरवाही कहा जाता है। जहाँ घायल व्यक्ति किसी लापरवाही का दोषी है, वहाँ उसकी क्षतिपूर्ति के लिए दावा केवल उसकी ओर से की गई लापरवाही के कारण ही खारिज नहीं हो जाता, बल्कि चोटों के संबंध में उसके द्वारा वसूल की जाने वाली क्षतिपूर्ति उसकी सहभागी लापरवाही के अनुपात में कम हो जाती है।

36. 7. इसलिए, जब दो वाहन दुर्घटना में शामिल होते हैं, और उनमें से एक चालक दूसरे चालक से लापरवाही का आरोप लगाते हुए क्षतिपूर्ति का दावा करता है, और दूसरा चालक लापरवाही से इनकार करता है या दावा करता है कि घायल दावेदार स्वयं लापरवाह था, तब यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि क्या घायल दावेदार लापरवाह था और यदि ऐसा था, तो क्या वह दुर्घटना के लिए पूरी तरह या आंशिक रूप से जिम्मेदार था और उसकी जिम्मेदारी की सीमा, यानी उसकी सहभागी लापरवाही क्या है। इसलिए जहाँ घायल व्यक्ति स्वयं आंशिक रूप से उत्तरदायी है, वहाँ 'संयुक्त लापरवाही' का सिद्धांत लागू नहीं होगा और न ही यह स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है कि लापरवाही 50:50 थी जैसा कि इस मामले में माना गया है। न्यायाधिकरण को

अपीलकर्ता की सहभागी लापरवाही की सीमा की जाँच करनी चाहिए थी और इस तरह संयुक्त लापरवाही और सहभागी लापरवाही के बीच भ्रम से बचना चाहिए था। उच्च न्यायालय उक्त त्रुटि को सुधारने में विफल रहा है।"

टी.ओ. एंथनी बनाम करवर्णन [(2008) 3 एससीसी 748: (2008) 1 एससीसी (सिविल) 832: (2008) 2 एससीसी (क्रि) 738] के निर्णय पर ए.पी.एसआरटीसी बनाम के. हेमलता [(2008) 6 एससीसी 767: (2008) 3 एससीसी (क्रि) 34] में भरोसा किया गया है।

16. पवन कुमार बनाम हरकिशन दास मोहन लाल [(2014) 3 एससीसी 590: (2014) 2 एससीसी (सिविल) 303: (2014) 4 एससीसी (क्रि) 639] में, टी.ओ. एंथनी [(2008) 3 एससीसी 748: (2008) 1 एससीसी (सिविल) 832: (2008) 2 एससीसी (क्रि) 738] और हेमलता [(2008) 6 एससीसी 767: (2008) 3 एससीसी (क्रि) 34] के मामले की पुष्टि की गई है, और इस न्यायालय ने निर्धारित किया है कि जहां वादी/दावेदार खुद संयुक्त रूप से और अलग-अलग लापरवाह पाया जाता है, वहां देयता उत्पन्न नहीं हो सकती है और वादी का दावा उसकी अपनी लापरवाही की सीमा तक, जैसा कि परिमाणित किया जा सकता है,

अलग करना होगा। वह अपनी लापरवाही के कारण न होने वाले नुकसान के लिए हकदार है। इस न्यायालय द्वारा मछिन्द्रनाथ केरनाथ कासर बनाम डी.एस. माइलरप्पा [(2008) 13 एससीसी 198: (2009) 3 एससीसी (क्रि) 519] और संयुक्त अपकारकर्ताओं के मामले में सहभागी और समग्र लापरवाही के संबंध में कानून/भेद पर विचार किया गया है। इस न्यायालय ने संयुक्त अपकारकर्ताओं के संबंध में कार्रवाई के कारण के रूप में लापरवाही पर चार्ल्सवर्थ और पर्सी को इस प्रकार संदर्भित किया है: (मछिन्द्रनाथ कर्नाथ कासर मामला [(2008) 13 एससीसी 198: (2009) 3 एससीसी (क्रि) 519], एससीसी पृष्ठ 212, पैरा 42)

"42. लापरवाही पर चार्ल्सवर्थ और पर्सी के 10वें संस्करण के अनुसार संयुक्त अपकारकर्ताओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है:

"गलत काम करने वालों को नियम के अर्थ में संयुक्त अपकारकर्ता माना जाता है, जहां उनमें से प्रत्येक के खिलाफ कार्रवाई का कारण एक ही है, यानी, एक ही साक्ष्य उनके खिलाफ व्यक्तिगत रूप से कार्रवाई का समर्थन करेगा... तदनुसार, वे उस अपकार के लिए संयुक्त रूप से उत्तरदायी होंगे जो वे दोनों करते हैं या जिसके लिए वे जिम्मेदार हैं (ख) प्रतिनिधिक दायित्व;

और (ग) जब संयुक्त कार्य के दौरान अपकृत्य किया जाता है, जबकि उनके बीच सहमति से कोई सामान्य उद्देश्य पूरा किया जाता है।"

17. यह प्रश्न भी उठता है कि संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं में से किसी एक के लिए क्या उपचार उपलब्ध हैं, जिनसे प्रतिकर वसूल किया गया है। जब अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ता को अभियुक्त नहीं बनाया गया है, तो स्पष्ट रूप से गैर-अभियुक्त चालक की लापरवाही के प्रश्न पर निर्णय नहीं लिया जा सकता। संयुक्त अपकृत्यकर्ता के अभियोग के अभाव में समय लापरवाही का विभाजन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, प्रतिकर का भुगतान करने के पश्चात अभियोगित संयुक्त अपकृत्यकर्ताओं के लिए यह खुला होगा कि वे अन्य संयुक्त अपकृत्यकर्ता पर मुकदमा चलाएँ और उससे उसकी लापरवाही की सीमा तक अंशदान वसूल करें। हालांकि, ऐसे मामले में जब दोनों अपकारकर्ता न्यायालय/न्यायाधिकरण के समक्ष हों, यदि साक्ष्य पर्याप्त हों, तो वह उनकी लापरवाही की सीमा निर्धारित कर सकता है, ताकि एक संयुक्त अपकारकर्ता निष्पादन कार्यवाही में दूसरे संयुक्त अपकारकर्ता से निर्धारित राशि वसूल सके, जबकि दावेदार को दोनों से या उनमें से किसी एक से प्रतिकर वसूलने का अधिकार है।

18. इस न्यायालय ने नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम चल्ता उपेंद्र राव [(2004) 8 एससीसी 517: 2005 एससीसी (क्रि) 357] में वसूली के तरीके के संबंध में इस प्रकार निर्धारित किया है: (एससीसी पृष्ठ 523, पैरा 13)

"13. शेष प्रश्न यह है कि उचित निर्देश क्या होगा। अधिनियम के लाभकारी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, बीमाकर्ता के लिए निर्णय को संतुष्ट करना उचित होगा, हालांकि कानून में इसका कोई दायित्व नहीं है। कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाधारक से राशि वसूलने का विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है। मालिक से भुगतान की गई राशि वसूलने के उद्देश्य से, बीमाकर्ता को मुकदमा योजित करने की आवश्यकता नहीं होगी। यह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष कार्यवाही शुरू कर सकता है जैसे कि बीमाकर्ता और मालिक के बीच विवाद न्यायाधिकरण के समक्ष निर्धारण का विषय था और मुद्दा मालिक के खिलाफ और बीमाकर्ता के पक्ष में तय किया गया है। दावेदारों को राशि जारी करने से पहले, आपतिजनक वाहन का मालिक पूरी राशि के लिए सुरक्षा प्रदान करेगा। जिसका भुगतान बीमाकर्ता दावेदारों को करेगा। सुरक्षा के एक हिस्से के रूप में उल्लंघन करने वाले वाहन को जब्त कर लिया जाएगा।

यदि आवश्यकता पड़ती है तो निष्पादन न्यायालय संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेगा। निष्पादन न्यायालय कानून के अनुसार उचित आदेश पारित करेगा कि वाहन का मालिक किस तरह बीमाकर्ता को भुगतान करेगा। यदि कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय को प्रस्तुत की जाने वाली प्रतिभूतियों के निपटान या वाहन के मालिक यानी बीमाधारक की किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से वसूली का निर्देश देने की स्वतंत्रता होगी। वर्तमान मामले में, शामिल राशि पर विचार करते हुए, हम यह निर्णय लेना बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि वह बीमाधारक से राशि की वसूली के लिए कदम उठाएगा या नहीं।"

22. उपर्युक्त चर्चा से जो बात उभर कर आती है, वह इस प्रकार है:

22.1. संयुक्त लापरवाही के मामले में, वादी/दावेदार दोनों या किसी एक संयुक्त अपकारकर्ता पर मुकदमा चलाने और संपूर्ण क्षतिपूर्ति वसूलने का हकदार है, क्योंकि संयुक्त अपकारकर्ताओं की देयता संयुक्त और अलग-अलग है।

22.2. संयुक्त लापरवाही के मामले में, वादी/दावेदार के विरुद्ध दो अपकारकर्ताओं के बीच क्षतिपूर्ति का बंटवारा स्वीकार्य नहीं है। वह अपने

विकल्प से उनमें से किसी से भी संपूर्ण क्षतिपूर्ति वसूल सकता है।

22.3. यदि सभी संयुक्त अपकारकर्ताओं को अभियुक्त बनाया गया है और साक्ष्य पर्याप्त हैं, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण को ड्राइवरों की संयुक्त लापरवाही की पारस्परिक सीमा निर्धारित करने की स्वतंत्रता है। हालांकि, संयुक्त अपकारकर्ताओं के बीच लापरवाही की सीमा का निर्धारण केवल उनके आपसी दायित्व के उद्देश्य से किया जाता है ताकि एक पक्ष वादी/दावेदार को संपूर्ण भुगतान करने के बाद दूसरे पक्ष से राशि वसूल कर सके, इस सीमा तक कि उसने दूसरे पक्ष के दायित्व को पूरा किया हो। यदि दोनों को अभियुक्त बनाया गया है और उनकी लापरवाही का बंटवारा/सीमा न्यायालय/न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित की गई है, तो मुख्य मामले में एक संयुक्त अपकारकर्ता निष्पादन कार्यवाही में दूसरे पक्ष से राशि वसूल कर सकता है।

22.4. न्यायालय/न्यायाधिकरण के लिए अन्य संयुक्त अपकारकर्ताओं को अभियुक्त बनाए जाने की अनुपस्थिति में दो वाहनों के चालकों की समय लापरवाही की सीमा निर्धारित करना उचित नहीं होगा। ऐसे मामले में, अभियुक्त संयुक्त अपकारकर्ता को, यदि वह चाहे तो, डिफ्री या निर्णय पारित होने के बाद स्वतंत्र कार्यवाही

में अन्य संयुक्त अपकारकर्ता पर मुकदमा चलाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए।"

37. खेनेई (उपरोक्त) के उपरोक्त निर्णय का इस न्यायालय द्वारा **एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 126/2010 (श्रीमती सुमन एवं अन्य बनाम श्रीमती अनीसा बेगम एवं अन्य)** के साथ-साथ अन्य संबंधित मामलों में अनुसरण किया गया था, जिसका निर्णय **22.02.2019** को हुआ था।

38. सहभागी और समग्र लापरवाही के संबंध में स्थापित कानूनी स्थिति को देखते हुए और इसे वर्तमान मामले में लागू करते हुए, यह पाया जाता है कि जहां तक श्रीमती जानकी का मामला है, यह समग्र लापरवाही का मामला हो सकता है, वैसे ही गौरव जावरानी का मामला भी है, लेकिन जहां तक राधेश्याम जावरानी का मामला है, इसे समग्र लापरवाही का मामला नहीं माना जा सकता है।

39. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां कोई व्यक्ति गलत कार्य में योगदान देता है, तो यह यह सहभागी लापरवाही का मामला है और वर्तमान मामले में, फिएट कार नंबर यूजीसी 2184 को श्री राधेश्याम जावरानी चला रहे थे और इस तरह जिस तरह से दुर्घटना हुई है, जो पिछले पैराग्राफों में देखा गया है, यह एक ऐसा मामला था जहां श्री राधेश्याम जावरानी द्वारा चलाई जा रही कार ने एक खड़े ट्रक को टक्कर मार दी

और इसमें केवल दो वाहन शामिल थे, फिएट कार और खड़ा ट्रक।

40. इस परिदृश्य में, श्री राधेश्याम जावरानी द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर गौर करने के बाद, यह संकेत मिलता है कि उन्होंने यह गवाही दी थी कि 02.01.1992 को शाम लगभग 06:30-07:00 बजे एक लड़का अचानक सड़क पार कर आ गया और विपरीत दिशाओं से आ रहे एक ट्रक की रोशनी ने राधेश्याम जावरानी को अंधा कर दिया था, इसलिए, आने वाले ट्रक के साथ टक्कर से बचने के साथ-साथ लड़के को बचाने के लिए, वह खड़े ट्रक को नहीं देख सके और उससे टकरा गए। जिस तरह से दुर्घटना हुई और बयान में बताया गया है, उससे यह नहीं कहा जा सकता कि कार चालक की इसमें कोई भूमिका नहीं थी। यह सच हो सकता है कि ट्रक को बिना रिफ्लेक्टर/इंडिकेटर के सड़क पर पार्क नहीं किया जाना चाहिए था, लेकिन फिर भी अगर श्री राधेश्याम जावरानी के बयान को पूरी तरह से माना जाए, तो यह संकेत मिलता है कि उन्होंने कहा था कि उनकी गति लगभग 40 से 50 किलोमीटर प्रति घंटा थी और वह उक्त ट्रक को नहीं देख पाए। यह भी कार चालक की ओर से लापरवाही की ओर इशारा करता है क्योंकि दूर से भी, चालक अपनी कार की रोशनी से खड़े ट्रक को देख सकता था। कार चालक की लापरवाही का एक और कारण यह भी है कि राजमार्ग पर गाड़ी चलाते समय, ट्रक सहित सभी प्रकार के वाहनों का चलना स्वाभाविक है और यह नहीं कहा जा सकता कि ट्रक की सामने से आ रही रोशनी के

कारण श्री राधेश्याम जावरानी अंधे हो गए और टक्कर से बचने के लिए, वह खड़े ट्रक से टकरा गए, जिसे देखा नहीं जा सका।

41. इसके दृष्टिगत, श्री राधेश्याम जावरानी की लापरवाही से इंकार नहीं किया जा सकता है और उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, न्यायाधिकरण ने, हालांकि, श्री राधेश्याम जावरानी के मामले में सहभागी लापरवाही पर कोई निष्कर्ष दर्ज किए बिना अभी तक कार पर 50% और ट्रक पर 50% देयता का बंटवारा किया है और इस बंटवारे की इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है और यह माना गया है कि श्री राधेश्याम जावरानी भी दुर्घटना के लिए जिम्मेदार थे और उन्होंने इसमें योगदान दिया था और न्यायाधिकरण ने यह निष्कर्ष निकालने में गलती की है कि लापरवाही पूरी तरह से ट्रक मालिक की थी और यह भी इंगित करता है कि न्यायाधिकरण ने लापरवाही की अवधारणा को ध्यान में रखते हुए रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं जांचा है, जिसकी जांच न्यायाधिकरण को मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के तहत याचिका में करने की आवश्यकता है।

42. उपरोक्त के दृष्टिगत, यह न्यायालय बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में बल पाती है कि कार चालक भी लापरवाह था और उसने दुर्घटना में योगदान दिया था।

43. इसके पश्चात, यह भी देखा जाएगा कि इस सहभागी लापरवाही को केवल श्री राधेश्याम जावरानी के मामले के लिए जिम्मेदार ठहराया

जा सकता है और इसे अन्य दो अर्थात् श्रीमती जानकी और श्री गौरव पर लागू नहीं किया जा सकता है। तदनुसार, पक्षों के संबंधित तर्कों पर विचार करते समय, श्रीमती जानकी और श्री गौरव के मामले को समग्र लापरवाही के मामले के रूप में माना जाएगा, जहां दुर्घटना दो व्यक्तियों अर्थात् कार चालक और ट्रक चालक/मालिक की गलत हरकतों का परिणाम है और जहां तक श्री राधेश्याम जावरानी के मामले का संबंध है, उसे सहभागी लापरवाही का मामला माना जाएगा।

44. अब, संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों के संदर्भ में दावा याचिकाओं के संबंध में मामले की जांच को जानी चाहिए।

क- राधेश्याम जावरानी का दावा:-

45. संबंधित तर्कों पर विचार करने और रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के अवलोकन से यह देखा जा सकता है कि बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि यह एक सहायक लापरवाही का मामला था और इसे इस तरह से देखते हुए 50% प्रतिकर बीमा कंपनी पर अधिरोपित किया गया है जबकि शेष 50% ट्रक मालिक पर किया गया है, लेकिन इस बिन्दु पर विचार करते हुए, न्यायाधिकरण ने माना है कि लापरवाही केवल ट्रक मालिक की थी। न्यायाधिकरण के इस निष्कर्ष को, जैसा कि पिछले पैराग्राफ में उल्लेख किया गया है, भ्रामक माना गया है और तदनुसार यह नहीं कहा जा सकता है कि श्री राधेश्याम जावरानी ने दुर्घटना में योगदान

नहीं दिया। इस प्रकार, राधेश्याम जावरानी के मामले को सहभागी लापरवाही का मामला माना जाता है और इस प्रकाश में यह भी देखना होगा कि कितनी चोटें आई हैं और कितनी क्षति हुई है तथा न्यायाधिकरण द्वारा दी गई राशि को किस प्रकार बरकरार रखा जा सकता है या बढ़ाया जा सकता है, क्योंकि बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि लगी चोटों और खर्च की गई राशि को दर्शाने के लिए कोई सामग्री या साक्ष्य नहीं था और अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर विचार किए बिना ही 40,000/-रुपए की राशि यांत्रिक तरीके से प्रदान कर दी गई।

46. इस संदर्भ में, यदि अभिलेख पर मौजूद सामग्री को देखा जाए, तो यह पता चलता है कि श्री राधेश्याम जावरानी ने न्यायाधिकरण के समक्ष यह बयान दिया कि उन्हें चोटें आई हैं। उन्होंने यह भी बयान दिया कि वे कुछ दिनों के लिए सीतापुर के जिला अस्पताल में भर्ती थे और उसके बाद उन्हें लखनऊ के कृष्णा मेडिकल सेंटर में भी भर्ती कराया गया, जहां उनका इलाज हुआ, जिसमें कुछ दांतों का नुकसान भी शामिल था और उपरोक्त के कारण उन्हें अपने इलाज के साथ-साथ अपने बेटे गौरव के इलाज पर लगभग 60,000/-रुपए खर्च करने पड़े।

47. अपनी जिरह के दौरान, श्री राधेश्याम जावरानी ने स्वीकार किया कि उन्होंने अपने उपचार या दवा के संबंध में कोई दस्तावेज दाखिल नहीं किया था। इस प्रकार, चूंकि श्री राधेश्याम जावरानी को लगी चोटों की प्रकृति

को स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं थी, इसलिए यह समझना बहुत मुश्किल है कि न्यायाधिकरण श्री राधेश्याम जावरानी को 40,000/- रुपये की राशि देने के निष्कर्ष पर कैसे पहुंचा। जाहिर है, इस संबंध में न्यायाधिकरण द्वारा दिये गए निष्कर्ष शुद्ध अनुमान पर आधारित हैं। यदि श्री राधेश्याम जावरानी को चोटें लगी थीं, जैसा कि उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा था, तो निश्चित रूप से उनके पास जिला अस्पताल, सीतापुर और लखनऊ के कृष्णा मेडिकल सेंटर से उनके प्रवेश और छुट्टी सहित पर्याप्त दस्तावेज होंगे। यदि उनके कुछ दांत टूटे होते तो स्वाभाविक रूप से, उन्होंने दंत चिकित्सक से परामर्श किया होता और कुछ एक्स-रे प्लेटें होनी चाहिए थीं, लेकिन इनमें से कोई भी उपलब्ध नहीं थी या अदालत के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई थी।

48. इन सभी तथ्यों को फिलहाल पीछे छोड़ देने के बाद भी रिकॉर्ड से पता चलता है कि किसी भी डॉक्टर या किसी दवा व्यवसायी द्वारा एक भी पर्चा नहीं है। कोई दवा नहीं लिखी गई है और न ही किसी मेडिकल परामर्श, रेडियोलॉजिकल सहायता या खरीदी गई दवा के लिए कोई रसीद है और ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों की अनुपस्थिति में, यह तर्क कि दावेदार श्री राधेश्याम जावरानी को गंभीर चोटें आईं, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से पुष्टि या समर्थन नहीं पाता है। श्री राधेश्याम जावरानी बेशक आयकर दाता हैं और उनका अलग व्यवसाय है और व्यवसाय और सांसारिक मामलों से अच्छी तरह परिचित व्यक्ति होने के बावजूद उन्होंने अपने तर्कों को

प्रमाणित करने के लिए ऐसे दस्तावेज रिकॉर्ड पर दर्ज नहीं किए, जिससे श्री राधेश्याम जावरानी के खिलाफ निष्कर्ष निकलता है।

49. इस प्रकार यह न्यायालय पाता है कि श्री राधेश्याम जावरानी के मामले में न्यायाधिकरण द्वारा दी गई प्रतिकर राशि अत्यधिक है और किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है। ऐसा कहने के बाद यह भी ध्यान देना प्रासंगिक होगा कि रिकॉर्ड में एक बीमा सर्वेक्षक की रिपोर्ट है जिसमें क्षतिग्रस्त फिएट कार की कुछ तस्वीरें भी संलग्न हैं और जिस तरह से दुर्घटना हुई और एक सहयात्री/यात्री की मृत्यु हो गई, साथ ही कार की स्थिति को देखते हुए निश्चित रूप से कार के चालक को कुछ चोटें आई होंगी और उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और दावेदारों की ओर से सबूतों के अभाव के कारण, यह अदालत दावेदार श्री राधेश्याम जावरानी के पक्ष में 5,000/- रुपये की प्राकल्पिक राशि प्रदान करती है और यह भी देखते हुए कि दुर्घटना में उनका योगदान था, इसलिए इसका 50% उनकी लापरवाही के कारण है, इसलिए वह ट्रक मालिक यानी वलीगुरु खान से प्रतिकर राशि का केवल 50% वसूलने का हकदार होगा।

50. इस प्रकार, उपरोक्त एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-190/1993 आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है और 5,000/- रु. की प्रतिकर राशि दावेदार श्री राधेश्याम जावरानी को प्रदान की जाती है, जिसमें से केवल 50% राशि ट्रक मालिक वलीगुरु खान से आवेदन की तिथि से उसके वास्तविक भुगतान की तिथि तक 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित वसूल की

जाएगी। तदनुसार, दावा याचिका संख्या-67/1992 में पारित निर्णय दिनांक 25.05.1993 को पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित किया जाता है और अपीलकर्ता कंपनी इस संबंध में भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगी।

51. यहां दिए गए निष्कर्षों के प्रकाश में, प्रतिकर राशि की वृद्धि का कोई प्रश्न ही नहीं है और पूर्वोक्त कारणों से, श्री राधेश्याम जावरानी द्वारा योजित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-198/1993 निरस्त की जाती है।

ख:- श्री गौरव जावरानी का दावा

52. अब फिर से श्री गौरव जावरानी के मामले पर आने पर, यह देखा जा सकता है कि इस दावे में भी न्यायाधिकरण ने 40,000/- रुपये का प्रतिकर दिया है और 50% देयता ट्रक मालिक और 50% बीमा कंपनी पर निर्धारित की है, जो 15% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ देय है और इसे बीमा कंपनी द्वारा उन आधारों पर चुनौती दी गई है, जो संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की तर्कों पर विचार करते समय पहले ही विवेचित किए जा चुके हैं।

53. इस संबंध में, यह न्यायालय पाता है कि श्री गौरव जावरानी का मामला समग्र लापरवाही में से एक है। सबसे पहले, यह देखा जा सकता है कि न्यायाधिकरण द्वारा किया गया कोई भी विभाजन केवल दो संयुक्त अपकारकर्ता यानी कार मालिक के साथ-साथ ट्रक मालिक के बीच पारस्परिक देयता निर्धारित करने के

लिए है। चूंकि यह समग्र लापरवाही का मामला है, इसलिए अपीलकर्ता के लिए दोनों संयुक्त अपकारकर्ताओं में से किसी से भी उक्त पूरी राशि का दावा करना या वसूलना खुला है, क्योंकि उनकी देयता संयुक्त और अलग-अलग है, जैसा कि इस निर्णय के पूर्व भाग में देखा गया है।

54. यह भी ध्यान देने योग्य होगा कि पूर्व पैराग्राफ में यह माना गया है कि कार चालक भी लापरवाह था और दुर्घटना के लिए 50% तक जिम्मेदार था और ट्रक मालिक भी 50% के लिए जिम्मेदार था और इस न्यायालय ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया यह निष्कर्ष कि एकमात्र लापरवाही ट्रक मालिक की थी, सही नहीं है। इसलिए, श्री गौरव जावरानी का मामला समग्र लापरवाही का मामला है और न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारित 50% की देयता को दोनों संयुक्त अपकारकर्ताओं के बीच परस्पर देयता का निर्धारण माना जाएगा।

55. जहां तक दी गई राशि के बारे में विवाद का संबंध है, इस न्यायालय ने फिर से पाया कि रिकॉर्ड पर ऐसा कोई भी सामग्री नहीं थी, जो यह इंगित करती हो कि श्री गौरव जावरानी को कोई चोट लगी थी। इस न्यायालय ने आगे पाया कि न तो कोई कारण दर्ज किए गए हैं और न ही किसी सामग्री पर चर्चा की गई है, जिसके आधार पर न्यायाधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि श्री गौरव जावरानी को प्रतिकर के रूप में 40,000/- रुपये का भुगतान किया जाना है। उन्हीं कारणों से, जैसा कि पूर्व पैराग्राफों में श्री राधेश्याम जावरानी के दावे पर

विचार करते समय देखा गया है, गौरव जावरानी के मामले में इस न्यायालय ने यह भी पाया कि प्रतिकर राशि का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री नहीं है। चूंकि वह भी कार में यात्रा कर रहे थे और उन्हें कुछ चोटें भी आई हो सकती हैं, तदनुसार, उनको आई चोटों के लिए मुआवजे के दावे के समर्थन में किसी भी दस्तावेजी साक्ष्य या किसी गवाह के विश्वसनीय साक्ष्य के अभाव में, यह न्यायालय दावे के आवेदन की तिथि से इसकी वसूली की तिथि तक 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ 5,000/- रुपये की प्राकल्पिक राशि प्रदान करता है। संयुक्त लापरवाही का मामला होने के कारण, श्री गौरव जावरानी दोनों संयुक्त अपकारकर्ताओं में से किसी एक से इसे वसूलने के हकदार होंगे तथा दोनों संयुक्त अपकारकर्ताओं में से कोई भी निर्णय को संतुष्ट करने के पश्चात खेनेई (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार दूसरे से 50% वसूलने का हकदार होगा।

56. उपर्युक्त चर्चाओं के आलोक में तथा उपर्युक्त कारणों से, दावा याचिका संख्या-68/1992 से उत्पन्न बीमा कंपनी द्वारा योजित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-191/1993 आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है, जबकि दावेदार श्री गौरव जावरानी द्वारा प्रतिकर में वृद्धि की मांग के लिए दिनांक 25.05.1993 को योजित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-196/1993 निरस्त की जाती है। दावा याचिका संख्या-68/1992 में न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय को इसके अनुसार संशोधित माना जाएगा।

ग:- श्रीमती जानकी की मृत्यु का दावा:-

57. अब, श्रीमती जानकी के मामले पर विचार करते हुए, यह पाया जाता है कि यह संयुक्त लापरवाही का मामला है, जो दो संयुक्त अपकारकों के गलत कामों के कारण हुआ। यह मृत्यु का मामला है, जो विवादित नहीं है और पूर्व पैराग्राफ में उल्लेखित कारणों से यह पहले ही माना जा चुका है कि कार चालक दुर्घटना के लिए 50% तक जिम्मेदार था और न्यायाधिकरण ने उपरोक्त सीमा तक सहभागी लापरवाही का निष्कर्ष न देकर गलती की है।

58. अपीलकर्ता की बीमा कंपनी द्वारा यह विवादित नहीं किया जा सकता है कि ऐसा प्रदर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि मृतक ने दुर्घटना में योगदान दिया था और इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से सहभागी लापरवाही का मामला नहीं था बल्कि समग्र लापरवाही का मामला था।

59. इस संदर्भ में, यह देखा जाएगा कि दावेदारों ने फिएट कार के मालिक श्री कुंगू मल और ट्रक के मालिक वलीगुरु खान दोनों को प्रतिवादी और बीमा कंपनी, जिसके पास फिएट कार नंबर यूजीसी 2184 का बीमा था, दोनों को अभियुक्त बनाया था।

60. यह भी पाया गया है कि न्यायाधिकरण द्वारा बीमा कंपनी जिसके पास फिएट कार का बीमा था और ट्रक मालिक के बीच देयता को विभाजित करने का उद्देश्य, कार के बीमाकर्ता और ट्रक मालिक के बीच आपसी समझौते और

प्रतिकर राशि के विभाजन के प्रयोजनों के लिए था।

61. यह भी ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि श्री कुंगू मल ने अपना लिखित बयान दाखिल किया था और दुर्घटना को स्वीकार किया था। बीमा कंपनी ने श्री कुंगू मल को कार को हुए नुकसान की राशि का भुगतान भी किया है। बीमा कंपनी के सर्वेक्षक ने एक विस्तृत रिपोर्ट बनाई थी, जिसे रिकॉर्ड पर भी रखा गया था और इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं है कि दुर्घटना, वाहन को हुई क्षति और श्रीमती जानकी की मृत्यु के संबंध में कोई विवाद नहीं है और इसे बीमा कंपनी ने स्वीकार कर लिया है।

62. अब, एकमात्र मुद्दा जो देखा जाना बाकी है, वह श्रीमती जानकी के उत्तराधिकारियों के दावे के बारे में है, जिनके द्वारा दावा याचिका संख्या-66/1992 में निर्णीत प्रतिकर में वृद्धि के संबंध में एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-189/1993 योजित की गई है।

63. यद्यपि, बीमा कंपनी द्वारा तर्क दिया गया कि न्यायाधिकरण ने बिना किसी आधार के गैर-आर्थिक लाभों के लिए 1,78,000/- रुपये की राशि प्रदान की है, जो कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम प्रणय सेठी (2017) 16 सुप्रीम कोर्ट केसेस 680** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित स्थापित सिद्धांतों के विपरीत है। दूसरी ओर, दावेदारों का कहना है कि न्यायाधिकरण ने भविष्य की संभावनाओं पर विचार नहीं किया है।

64. यह पूर्वोक्त के साथ-साथ **नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के साथ-साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का संज्ञान लेते हुए, यह न्यायालय पाता है कि श्रीमती जानकी एक आयकर दाता थीं। रिकॉर्ड आगे दर्शाता है कि उनका अंतिम आयकर रिटर्न भी दाखिल किया गया था। श्रीमती जानकी के दावेदारों की ओर से प्रस्तुत किए गए साक्ष्य में कहा गया कि श्रीमती जानकी का अपना अलग व्यवसाय था। यह भी कहा गया कि श्रीमती जानकी की आय उनके बच्चों पर खर्च होती थी और उनमें से एक बेटी दिव्यांग है।

65. यह भी विवादित नहीं है कि श्रीमती जानकी के परिवार में उनके पति, तीन बेटियाँ और दो बेटे हैं। उनकी कृषि और व्यवसाय से लगभग 5,000/- रुपये प्रति माह की आय थी और वे आयकर भी अदा करती थीं और उनकी मृत्यु के समय उनकी आयु लगभग 40 वर्ष थी।

66. यह भी ध्यान रखना उचित होगा कि चूंकि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के तहत एक याचिका में, न्यायालय को उचित और न्यायसंगत प्रतिकर निर्धारित करने के लिए जांच करनी होती है। न्यायालय उपरोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए यह भी देख रहा है कि दुर्घटना वर्ष 1992 में हुई थी और अपीलें लंबित हैं और स्पष्ट रूप से, न्यायाधिकरण ने उचित निष्कर्ष दर्ज नहीं किए और मामले को उसके सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा, इसलिए न्यायालय ने अपीलीय न्यायालय होने के नाते श्रीमती जानकी के

दावेदारों के मामले पर विचार करने का निर्णय लिया है।

67. इस संबंध में न्यायालय रिकॉर्ड में मौजूद सामग्री और साक्ष्य पर विचार कर रहा है, जो यह इंगित करता है कि श्रीमती जानकी की अपनी अलग आय, व्यवसाय व कृषि से थी और दावा याचिका संख्या-66/1992 में दावेदारों में से एक राधेश्याम जावरानी, उनके आश्रित नहीं थे और उनकी एक पुत्री विवाहित थी और एक पुत्री दिव्यांग थी, और इस प्रकार, श्रीमति जानकी की आय, उनकी तीन बेटियों व दो बेटों में से दो बेटियों पर खर्च होती थी। इस प्रकार, श्रीमती जानकी के कानूनी उत्तराधिकारियों को देय प्रतिकर निम्नानुसार पुनः निर्धारित किया जाता है:-

आय [आयकर रिटर्न के अनुसार]

35,740/- (व्यवसाय)

जोड़ें:- 20,000/- (कृषि)

55,740/-

घटाएँ:- (1,033) देय आयकर =	₹. 54,707/- वार्षिक
जोड़ें: भविष्य की संभावनाओं के लिए @ 25% =	₹. 13,676/- वार्षिक
कुल आय (54,740+13676/-)	₹. 68,383 प्रति वर्ष।

=	
घटाएँ:- (चूँकि बच्चे अकेले आश्रित हैं, इसलिए 1/3 घटाया गया) =	₹. 45,589 वार्षिक
आयु =	40 वर्ष
गुणक =	15
इस प्रकार देय प्रतिकर =	₹. 45,589/- x 15 = 6,83,835/-
जोड़ें:- संघ के लिए :-	40,000/-
संपत्ति की हानि :-	15,000/-
अंतिम संस्कार व्यय :-	15,000/-
=	₹. 70,000/-
इस प्रकार, देय कुल प्रतिकर =	₹. 7,53,835/- होगा

68. इस प्रकार, दावा याचिका संख्या-66/1992 के दावेदार कुल 7,53,835/- रुपये के प्रतिकर के हकदार होंगे, जिस पर आवेदन की तिथि से उसके वास्तविक भुगतान की तिथि तक 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज लगेगा। दावा याचिका संख्या-66/1992 के दावेदार दोनों संयुक्त अपकारकों में से किसी एक से कुल प्रतिकर वसूलने के हकदार होंगे और दोनों संयुक्त अपकारकों में से कोई भी, जो निर्णय

को संतुष्ट करता है, वह खेनेई (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय कानून के अनुसार दूसरे संयुक्त अपकारक से निर्णय का 50% वसूलने का हकदार होगा।

69. इस प्रकार, दावा याचिका संख्या-66/1992 में पारित प्रतिकर में वृद्धि की मांग करने वाला एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-189/1993 स्वीकृत किया जाता है और बीमा कंपनी द्वारा योजित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-193/1993 को उपरोक्त संशोधन के अधीन निरस्त किया जाता है। दावा याचिका संख्या-66/1992 में पारित निर्णय दिनांक 25.05.1993 पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित और बढ़ाया हुआ माना जाएगा।

70. यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि बीमा कंपनी द्वारा श्री राधेश्याम जावरानी और श्री गौरव जावरानी को भुगतान की गई कोई राशि, जो चोटों के लिए उनके संबंधित दावों में अब निर्धारित राशि से अधिक है, वह वसूली योग्य हो जाती है, तो उसे दावा याचिका संख्या-66/1992 में श्रीमती जानकी के कानूनी वारिसों और आश्रितों के रूप में उन्हें देय मुआवजे के रूप में उनके हिस्से से समायोजित किया जा सकता है।

निष्कर्ष:-

71. विस्तृत चर्चा के आलोक में:-
क-बीमा कंपनी के ए.एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-190/1993 को ऊपर वर्णित सीमा तक आंशिक रूप से स्वीकृत किया जाता है और प्रतिकर में वृद्धि के लिए श्री राधेश्याम जावरानी द्वारा योजित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-198/1993 निरस्त किया जाता है।

ख- बीमा कंपनी की एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-191/1993 को ऊपर बताए गए विवरण के अनुसार आंशिक रूप से स्वीकृत किया जाता है और गौरव जावरानी द्वारा प्रतिकर में वृद्धि के लिए योजित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-196/1993 को निरस्त किया जाता है।

ग-बीमा कंपनी की एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-193/1993 को ऊपर की गई टिप्पणियों के दृष्टिगत निरस्त किया जाता है और दावा याचिका संख्या-66/1992 के कानूनी उत्तराधिकारियों और दावेदारों द्वारा योजित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या-189/1993 को स्वीकृत किया जाता है।

पक्षकार लागत का स्वयं वहाँ करेंगे। न्यायाधिकरण के अभिलेख शीघ्रता से लौटा दिए जाएंगे।

(2023) 4 ILRA 523

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष दिनांक: इलाहाबाद 23.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट टैक्स संख्या 31 / 2021

मेसर्स मां महामाया अलॉयज प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आलोक कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. कर कानून - जब्ती - जीएसटी अधिनियम, 2017 - धारा 67(1), 67(2), 75(13), 130(4) और 169 - कर की मांग को

अधिनियम की धारा 73 या धारा 74 में निर्धारित तरीके से ही निर्धारित और बढ़ाया जा सकता है, जैसा भी मामला हो। (पैरा 11)

चूंकि सम्पूर्ण कर का निर्धारण कर लिया गया है तथा जुर्माना केवल सर्वेक्षण के आधार पर जीएसटी अधिनियम की धारा 130 का सहारा लेकर लगाया गया है तथा धारा 74 का सहारा नहीं लिया गया है, इसलिए आपेक्षित आदेश स्पष्ट रूप से अस्थिर है। (पैरा 12, 13)

बी.(1) धारा 130 की उपधारा (1) के खंड (ii) का दायरा यह है कि कोई भी करदाता जो कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है और आपूर्ति के समय के बाद ऐसे माल का हिसाब नहीं देता है, वह खंड (ii) के तहत दंड का उत्तरदायी होगा। कर का भुगतान करने की देयता आपूर्ति के समय उत्पन्न होती है, न कि उससे पहले किसी भी बिंदु पर।

जीएसटी अधिनियम की धारा 130 में जुर्माना लगाने का प्रावधान है, यदि धारा 130(1) में उल्लिखित कोई भी शर्त पूरी होती है। (पैरा 14)

माल के अनुचित लेखांकन के संबंध में याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों को सरलता से पढ़ने पर, धारा 130 की उप-धारा (1) के खंड (ii) और (iv) में निहित एकमात्र शर्त को विभाग द्वारा सर्वोत्तम रूप से लागू किया जा सकता है, हालांकि, वर्तमान वाद में, तर्क के लिए यह मानते हुए भी कि माल अभिलेख में माल से अधिक मात्रा में पड़ा था, याचिकाकर्ता के खिलाफ मामला धारा 130 की

उप-धारा (1) के खंड (ii) के अंतर्गत नहीं आएगा।

बी.(2) धारा (iv) के तहत जुर्माना तभी लगाया जा सकता है जब विभाग यह स्थापित कर दे कि अधिनियम या नियमों के किसी प्रावधान का उल्लंघन किया गया था और साथ ही 'कर के भुगतान से बचने का आशय' था।

कारण बताओ नोटिस या किसी भी आदेश में ऐसा कोई आरोप नहीं है। धारा 130 की उपधारा (1) का खंड (iv) वर्तमान वाद में लागू नहीं होगा। (पैरा 15)

सी. कुछ परिस्थितियों में नोटिस की तामील का तरीका धारा 169(1) के खंड (ए) के अनुसार, कोई सेवा तभी पूरी होगी जब उसे कर योग्य व्यक्ति या उसके प्रबंधक या अधिकृत प्रतिनिधि को दिया जाएगा। (पैरा 17)

फर्म के लेखाकार को सेवा प्रदान करना धारा 169(1)(ए) के तहत न तो परिकल्पित है और न ही प्रदान किया गया है और इस प्रकार, लेखाकार पर प्रतिवादी द्वारा दावा की गई सेवा को वैध सेवा नहीं माना जा सकता है, इस प्रकार, पूरी कार्यवाही निरस्त करने योग्य है। (पैरा 18)

डी. माल के मूल्य का निर्धारण धारा 15 या इसके अंतर्गत बनाए गए नियमों में, प्रत्यक्ष आकलन के आधार पर माल का मूल्यांकन करने का कोई प्रावधान नहीं है, जैसा कि

विभाग द्वारा किया गया है और जिसे अपीलीय प्राधिकारी द्वारा निरस्त कर दिया गया है। (पैरा 19)

जीएसटी अधिनियम की धारा 15 में कर योग्य आपूर्ति के मूल्यांकन का प्रावधान है। अधिनियम में निहित प्रावधानों के अनुपालन में नियम बनाए गए हैं और उक्त नियमों के नियम 27 में वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति के मूल्यांकन के तरीके का प्रावधान है।

वर्तमान वाद में, माल का मूल्यांकन धारा 15(1) के अधिदेश के अनुसार धारा 15(2) और धारा 15(3) के साथ किया जाना आवश्यक है। अपीलीय प्राधिकारी ने प्रत्यक्ष आकलन के आधार पर किए गए मूल्यांकन को खारिज करने में गलती की है, हालांकि, नियमों के साथ धारा 15 में निर्धारित अधिदेश और तरीके का सहारा लिए बिना अपीलीय चरण में माल का मूल्यांकन (हालांकि अलग तरीके से) किया है। (पैरा 19)

रिट याचिका स्वीकार की गई। याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि कानून के अनुसार अधिनियम की धारा 74 के तहत निर्धारित मांग के परिणाम के अधीन वापस की जाएगी। (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

मेसर्स मेटेनेरे लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट टैक्स संख्या 360/2020 (पैरा 6)
वर्तमान याचिका में आदेश दिनांक 29.01.2019 को चुनौती दी गई है, जिसके

तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध 26,10,000/- रुपये का कर, 26,10,000/- रुपये का जुर्माना और 25,000/- रुपये का अतिरिक्त जुर्माना, कुल 52,54,000/- रुपये का आकलन किया गया है और साथ ही अपीलीय आदेश दिनांक 15.06.2020 को भी चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी।

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक कुमार और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान याचिका आदेश दिनांकित 29.01.2019 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता पर 26,10,000/- रुपये के कर भुगतान एवं 26,10,000/- रुपये जुर्माने का आकलन किया गया है तथा साथ ही 25000/- रूपए अतिरिक्त जुर्माने, कुल 52,54,000/- रूपए याचिकाकर्ता के विरुद्ध आकलन किया गया है तथा साथ ही अपीलीय आदेश दिनांकित 15.06.2020 के अंतर्गत याचिकाकर्ता द्वारा की गई अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत विधिवत पंजीकृत कंपनी है। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा क्रय की गई सामग्री जी.एस.टी.आर.-3बी सहित विभाग के पोर्टल

पर विधिवत प्रदर्शित होती है। यह अभिकथित है कि दिनांक 29.09.2018 को डिप्टी कमिश्नर, (एस.आई.बी.), वाणिज्य कर, मिर्जापुर डिवीजन, मिर्जापुर ने जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 67(1) और 67(2) के अंतर्गत शक्तियों का कथित प्रयोग करते हुए पंजीकृत व्यावसायिक परिसरों का निरीक्षण किया और दिनांक 29.09.2018 को पंचनामा तैयार किया (परिशिष्ट क्रमांक 1)। उसी दिन, एक जब्ती फर्द भी तैयार की गई, जो रिट याचिका के परिशिष्ट संख्या 2 के रूप में शामिल है।

4. यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को जब्त किए गए माल को छुड़ाने के लिए 52,20,000/- रुपये की धनराशि जमा करने के लिए मजबूर किया गया था। इसके पश्चात, याचिकाकर्ता को दिनांक 29.09.2018 को समन भेजा गया और याचिकाकर्ता को वर्ष 2017-18 और 2018-19 के लिए खरीद से संबंधित अभिलेख प्रस्तुत करने के लिए बुलाया गया। याचिकाकर्ता को दिनांक 27.12.2018 को एक बार फिर अधिनियम की धारा 70 के अंतर्गत समन जारी किया गया, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता से कुछ दस्तावेज मांगे गए। याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने तय तिथि पर दस्तावेज प्रस्तुत कर दिए थे, हालांकि, उसके पश्चात बिना कोई कारण बताओ नोटिस जारी किए एक आदेश पारित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता पर 26,10,000/- रुपये की कर देनदारी और साथ ही 26,10,000/- रूपए की जुर्माने की राशि निर्धारित की गई तथा इसके अलावा 25,000/- रुपये का जुर्माना भी लगाया गया था, इस प्रकार, जी.एस.टी.

अधिनियम की धारा 130(3) के अंतर्गत 52,45,000/- रुपये की कुल देयता निर्धारित की गई थी। चूंकि याचिकाकर्ता ने 52,20,000/- रुपये की राशि का भुगतान कर दिया था, याचिकाकर्ता द्वारा देय कुल शेष राशि 25,000/- रुपये थी। उक्त आदेश को याचिकाकर्ता ने अपील दायर कर चुनौती दी थी। उक्त अपील आदेश दिनांकित 15.06.2020 के माध्यम से आंशिक रूप से स्वीकार की गई थी तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध आकलित कर की राशि 7,92,405/- रुपये निर्धारित की गई थी, जिस पर 7,92,405/- रुपये का समान जुर्माना लगाया गया था और इस प्रकार, अपीलीय आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता को कुल 15,84,810/- रुपये का भुगतान करना था। याचिकाकर्ता द्वारा अतिरिक्त भुगतान की गई राशि को विधि अनुसार वापस करने का निर्देश दिया गया था।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि आक्षेपित आदेश और साथ ही अपीलीय आदेश एक से अधिक कारणों से विधिक दृष्टि से गुणहीन है। उनका तर्क है कि जी.एस.टी. अधिनियम के आदेश के संदर्भ में, हालांकि अधिकारियों को खोज और जब्ती की शक्ति प्रदान की गई है, परन्तु जिस प्रकार से माल को दर्ज माल से अधिक माना गया, वह पूर्ण रूप से मनमाना है। उनका तर्क है कि माल की मात्रा केवल आंखों से देखने के अनुमान के आधार पर निर्धारित की गई थी, याचिकाकर्ता के इस तर्क को अपीलीय प्राधिकारी ने भी स्वीकार किया था, जैसा कि अपीलीय आदेश के अवलोकन से स्पष्ट है। उसी के आलोक में,

उनका तर्क है कि एक बार अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के इस तर्क को स्वीकार कर लिया कि आंखों से देखने के अनुमान के आधार पर माल का मूल्यांकन संभव नहीं है, तो पूरी कार्यवाही को शून्य घोषित कर दिया जाना चाहिए था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि जिस तरह से अपीलीय प्राधिकारी ने मात्रा निर्धारित की है (हालांकि घटाई है), याचिकाकर्ता के विरुद्ध मांग का कोई आधार नहीं है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि किसी भी स्थिति में जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 130 के अंतर्गत आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ते समय, कर की देनदारी का निर्धारण करने के लिए प्राधिकारी के पास कोई शक्ति निहित नहीं है, जो मात्र अधिनियम की धारा 73 या धारा 74 का सहारा लेकर ही किया जा सकता है, जैसा भी मामला हों। उन्होंने मेरा ध्यान जी.एस.टी. अधिनियम में निहित वैधानिक प्रावधानों की ओर आकर्षित किया तथा अधिनियम की धारा 67, 73, 74, 122 और धारा 130 में निहित और विस्तार में समझाए गए प्रावधानों पर जोर दिया। उन्होंने दिनांक 17.12.2020 को निर्णीत मेसर्स मेटेनेयर लिमिटेड बनाम भारत संघ व अन्य रिट टैक्स सं० 360/2020 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया। उन्होंने आगे तर्क दिया कि आदेश पारित होने के बाद, उसी आधार पर, अधिनियम की धारा 74 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू की गई है तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध पहले ही एक आदेश पारित किया जा चुका है, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता उपाय

कर रहा है। उनका तर्क है कि यह वर्तमान रिट याचिका का विषय नहीं है और इसे इस न्यायालय में मात्र यह बताने के लिए लाया गया है कि जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 75 (13) में निहित अनिवार्य प्रावधानों के दृष्टिगत कोई जुर्माना नहीं लगाया जा सकता है।

7. सुनवाई के दौरान, इस न्यायालय ने आदेश दिनांकित 21.03.2023 के द्वारा प्रत्यर्थी के अधिवक्ता को यह बताने के लिए बुलाया कि क्या जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 130(4) के अंतर्गत कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था या नहीं? उक्त आदेश के उत्तर में, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने निर्देश प्रस्तुत किए और तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व, याचिकाकर्ता को दिनांक 27.12.2018 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जो फर्म/कंपनी के लेखाकार को दिनांक 29.12.2018 को दिया गया था। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने कारण बताओ नोटिस की एक प्रति भी प्रस्तुत की है। उक्त निर्देश और कारण बताओ नोटिस को अभिलेखों पर लिया गया है।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि विभिन्न वस्तुओं का आकलन निर्धारित विधि से किया गया था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपीलीय चरण में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्क को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया था और अपीलीय चरण में मांग की मात्रा के संबंध में, अपीलीय प्राधिकारी ने अपने मस्तिष्क का उपयोग किया तथा उपलब्ध वस्तुओं के संबंध में एक निष्कर्ष पर पहुंचे थे तथा उक्त आधार पर, मांग को परिमाणित

किया गया और वस्तुतः जारी किया गया। इस प्रकार उनका तर्क है कि रिट याचिका खारिज होने योग्य है, विशेषतः इसलिए क्योंकि कारण बताओ नोटिस का कोई जवाब नहीं दिया गया।

9. बार में दिए गए प्रतिद्वंद्वी कथनों पर विचार करते हुए, निम्नलिखित प्रश्न जो निर्धारण के लिए उठते हैं-

(I) क्या जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 130 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए कर का मूल्यांकन/निर्धारण किया जा सकता है?

(II) क्या मात्र इन आरोपों पर जुर्माना लगाया जा सकता है कि वस्तुओं के सत्यापन के समय परिसर में अधिक मात्रा में सामान पाया गया?

(III) क्या प्रत्यर्थी द्वारा दावा किया गया नोटिस की तामील जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 169 के अंतर्गत अपेक्षित आवश्यकता को पूरा करती है?

(IV) क्या किसी वस्तु का मूल्यांकन सिर्फ आंखों से देखने के आकलन के आधार पर तथा उत्पादन क्षमता और/या बिजली की खपत आदि के आधार पर किया जा सकता है?

10. वर्तमान रिट याचिका में उठाए गए मुद्दे का निर्णय इस तथ्य के दृष्टिगत किया जा रहा है कि अधिनियम के अंतर्गत अपीलीय न्यायाधिकरण का गठन अभी तक नहीं किया गया है।

11. यहां बिन्दु सं0 1 में उठाया गया मुद्दा मेसर्स मेटेनेयर लिमिटेड (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय के निर्णय में संदर्भित तथ्यों से काफी मिलता-जुलता है, जिसमें की गई एक

समान जांच के आधार पर, मांग की मात्रा निर्धारित की गई थी। इस न्यायालय ने अधिनियम के प्रावधानों और लागू नियमों का विश्लेषण करने के उपरांत माना कि जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 122 में निहित उल्लंघन के लिए तथा उक्त निर्णय मेसर्स मेटेनेयर लिमिटेड (उपरोक्त) के पैरा 35 के कॉलम "ए" में निर्दिष्ट, माना कि जुर्माना 10,000/- रुपये या कर चोरी की गई राशि, जो भी अधिक हो, होनी चाहिए, जबकि अनुच्छेद 35 के कॉलम "बी" में निर्दिष्ट उल्लंघन के लिए, जो जुर्माना लगाया जा सकता है वह केवल 10,000/- रुपये है। इस न्यायालय ने यह भी माना कि कर की मांग को केवल अधिनियम की धारा 73 या धारा 74 में निर्धारित तरीके से ही निर्धारित और बढ़ाया जा सकता है, जैसा भी मामला हो।

12. मेसर्स मेटेनेयर लिमिटेड (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय द्वारा जो निर्णय लिया गया है, उसके आलोक में, यह स्पष्ट है कि कर व जुर्माने के मूल्यांकन/निर्धारण के लिए जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 130 के अंतर्गत जिस संपूर्ण प्रक्रिया का सहारा लिया गया है, वह न तो अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित है, न ही उस तरीके से किया जा सकता है जिस तरह से किया गया है, और तो और, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विभाग ने स्वयं धारा 74 के अंतर्गत सहारा लेकर, देय कर की मात्रा निर्धारित करने का कार्य किया था।

13. चूंकि जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 74 का सहारा न लेकर, धारा 130 का सहारा लेकर

किए गए एक सर्वे के आधार पर संपूर्ण कर का निर्धारण किया गया है तथा जुर्माना लगाया गया है, इसलिए लगाया गया आदेश स्पष्ट रूप से अपोषणीय है।

14. बिन्दु संख्या 2 पर आते हुए, धारा 130(1) में उल्लिखित शर्तों में से किसी एक की स्थिति में, जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 130 जुर्माना लगाने पर विचार व प्रावधान करती है, धारा 130(1) इस प्रकार है:-

“धारा 130 - माल या परिवहन की जब्ती और जुर्माना लगाना-

(1) इस अधिनियम में किसी भी बात के बावजूद, यदि कोई व्यक्ति -

(i) इस अधिनियम के किसी प्रावधान या इसके अंतर्गत बनाए गए नियम के उल्लंघन में, कर के भुगतान से बचने के इरादे से, किसी माल की आपूर्ति करता है या प्राप्त करता है; या

(ii) किसी भी सामान का हिसाब नहीं रखता जिस पर वह इस अधिनियम के अंतर्गत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है; या

(iii) पंजीकरण के लिए आवेदन किए बिना इस अधिनियम के अंतर्गत कर के लिए उत्तरदायी किसी भी सामान की आपूर्ति करता है; या

(iv) कर के भुगतान से बचने के इरादे से इस अधिनियम या इसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है; या

(v) इस अधिनियम के प्रावधानों या इसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के उल्लंघन में माल की टुलाई के लिए परिवहन के साधन के रूप में किसी भी वाहन का उपयोग करता है, जब तक कि वाहन स्वामी यह साबित नहीं कर

देता कि इसका उपयोग स्वामी, उसके एजेंट, यदि कोई हो, एवं परिवहन के प्रभारी व्यक्ति, की जानकारी या मिलीभगत के बिना किया गया था।

तो, ऐसे सभी सामान या वाहन जब्ती के योग्य होंगे और वह व्यक्ति धारा 122 के अंतर्गत दंड के लिए उत्तरदायी होगा।”

15. माल के अनुचित लेखांकन के संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को पढ़ने पर, धारा 130 की उप-धारा (1) के खंड (ii) एवं (iv) में निहित एकमात्र शर्त को विभाग द्वारा लागू किया जा सकता है, हालाँकि, वर्तमान मामले में, तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि माल, अभिलेखों में दर्ज माल से अधिक रखा हुआ था, याचिकाकर्ता के विरुद्ध मामला धारा 130 की उप-धारा (1) के खंड (i) के अंतर्गत नहीं आएगा, इसका सरल कारण यह है कि कर का भुगतान करने का दायित्व आपूर्ति के स्तर के समय उत्पन्न हुआ है, न कि उससे पूर्व किसी भी स्तर पर। स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, धारा 130 की उप-धारा (1) के खंड (ii) का दायरा यह है कि कोई भी निर्धारिती जो कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है और आपूर्ति के समय के बाद ऐसे माल का हिसाब नहीं देता है, वह खंड (ii) के अंतर्गत जुर्माना अदा करने के लिए उत्तरदायी होगा। धारा 130 की उप-धारा (1) के खंड (iv) का विश्लेषण करते हुए, अधिनियम या नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन कर व जुर्माने के भुगतान से बचने की मंशा से किया जाना चाहिए तथा खंड (iv) को लागू करके जुर्माना केवल तभी लगाया जा सकता है, जब विभाग यह स्थापित

करता है कि "कर का भुगतान करने के इरादे" के साथ-साथ अधिनियम और नियमों का उल्लंघन हुआ है। कारण बताओ नोटिस या किसी भी आदेश में ऐसा कोई आरोप नहीं है, मुझे यह मानने में कोई दुविधा नहीं है कि वर्तमान मामले में धारा 130 की उपधारा (1) का खंड (iv) भी लागू नहीं होगा।

16. निर्धारण के बिन्दु सं0 3 पर आते हुए, अधिनियम की धारा 169 कुछ परिस्थितियों में नोटिस की तामील की विधि का प्रावधान करती है। धारा 169 को यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

“धारा 169 - कतिपय परिस्थितियों में नोटिस तामील करना-

(1) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन किसी विनिश्चय, आदेश, समन, नोटिस या अन्य संसूचना की निम्नलिखित किन्हीं पद्धतियों द्वारा तामील की जाएगी, अर्थात;

(क) प्रेषिती या कराधेय व्यक्ति को या उसके प्रबंधक या प्राधिकृत प्रतिनिधि या अधिवक्ता या कर व्यवसायी, जिसके पास कराधेय व्यक्ति की ओर से कार्यवाहियों में पेश होने का प्राधिकार है या कारोबार के संबंध में उसके द्वारा नियमित रूप से नियोजित व्यक्ति को या कराधेय व्यक्ति के साथ रह रहे किसी वयस्क व्यक्ति को सीधे देकर या सुपुर्द करके या संदेशवाहक जिसके अंतर्गत कुरियर भी है, के द्वारा;

(ख) व्यक्ति, जिसके लिए वह आशयित है या उसके प्राधिकृत प्रतिनिधि, यदि कोई है, उसके कारबार या निवास का अंतिम स्थान जो जानकारी में है, को अभिस्वीकृति सहित

रजिस्ट्रीकृत डाक या स्पीड पोस्ट या कुरियर द्वारा;

(ग) रजिस्ट्रीकरण के समय या समय-समय पर संशोधित उसके ई-मेल पते पर संसूचना भेजने के द्वारा;

(घ) सामान्य पोर्टल पर उपलब्ध करवाने के द्वारा;

(ङ) ऐसे अवस्थान जहां, कराधेय व्यक्ति या व्यक्ति जिसे यह जारी किया गया था, अंतिम ज्ञात रूप में निवास करता था, कारोबार करता था या वैयक्तिक तौर पर अभिलाभ के लिए कार्य करता था, समाचारपत्र में प्रकाशन करके प्रचालन द्वारा;

(च) यदि उपर्युक्त कोई ढंग साध्य नहीं है, तो उसके निवास या कारोबार के अंतिम ज्ञात स्थान पर किसी सहजदृश्य स्थान पर चिपकाने के द्वारा और यदि किसी कारणवश ऐसी पद्धति भी साध्य नहीं होती है तो संबद्ध कार्यालय या प्राधिकरण जिसने या जिसके द्वारा ऐसा विनिश्चय या आदेश या समन या नोटिस जारी किया गया है, के नोटिस बोर्ड पर चिपकाने के द्वारा तामील की जाएगी।

(2) प्रत्येक विनिश्चय, आदेश, समन, नोटिस या किसी संसूचना की उसी तारीख को तामील हुई समझी जाएगी जिस पर इसे सुपुर्द किया गया या प्रकाशित किया गया था या उपधारा (1) में उपबंधित रीति से उसकी एक प्रति वहां चिपकाई गई।

(3) जब ऐसे विनिश्चय, आदेश, समन, नोटिस या किसी संसूचना को रजिस्ट्रीकृत डाक या स्पीड पोस्ट द्वारा भेजा जाता है, तो सामान्यतः जितनी अवधि ऐसी डाक को पहुंचने में लगती है, उसके अनुसार उसे प्रेषिती द्वारा प्राप्त किया गया समझा जाएगा जब

तक कि प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता।”

17. धारा 169(1) के खंड (ए) के अनुसार, कोई तामील तभी पूरी होगी जब वह कर योग्य व्यक्ति या उसके प्रबंधक या अधिकृत प्रतिनिधि को सौंपी जाएगी।

18. धारा 169(1)(ए) के अंतर्गत फर्म के लेखाकार पर तामील करने पर न तो विचार किया गया है और न ही इसका प्रावधान किया गया है और इस प्रकार, लेखाकार पर प्रतिवादी के अधिवक्ता द्वारा दावा की गई तामील को वैध तामील नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार, उस आधार पर भी, पूरी कार्यवाही रद्द किये जाने योग्य है।

19. वस्तु के मूल्य निर्धारण के संबंध में बिंदु सं0 4 पर आते हैं। जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 15 कर योग्य आपूर्ति के मूल्यांकन का प्रावधान करती है। अधिनियम में निहित प्रावधानों को आगे बढ़ाते हुए, नियम बनाए गए हैं और उक्त नियमों का नियम 27 वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति के मूल्यांकन के तरीके का प्रावधान करता है, हालांकि, वर्तमान मामले में, वस्तुओं का मूल्यांकन धारा 15(1) सपठित धारा 15(2) व सपठित धारा 15(3) के अधिदेश के अनुसार किया जाना है। उक्त धारा 15 या उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों में, आंखों से देखने के अनुमान के आधार पर माल के मूल्यांकन के लिए कोई तरीका नहीं है जैसा कि विभाग द्वारा किया गया है और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा खारिज कर दिया गया है। अपीलीय प्राधिकारी ने आंखों से देखने के

अनुमान के आधार पर किए गए मूल्यांकन को निरस्त करने में त्रुटि की है, तथापि, धारा 15 में निर्धारित आदेश और विधि का सहारा लिए बिना अपीलीय चरण में माल का मूल्यांकन (हालांकि अलग प्रकार से) करने के लिए आगे बढ़े है, इस प्रकार इस आधार पर भी, आक्षेपित आदेश पोषणीय नहीं है।

20. ऊपर दर्ज सभी कारणों से, रिट याचिका स्वीकार किये जाने योग्य है। तदनुसार, आक्षेपित आदेश दिनांकित 29.01.2019 अपास्त किया जाता है और रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

21. याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि विधि अनुसार अधिनियम की धारा 74 के अंतर्गत निर्धारित मांग के परिणाम के अधीन वापस की जाएगी।

(2023) 4 ILRA 529

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी,

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

विशेष अपील संख्या 109 / 2023

कुमारी दीप्ति

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री योगेश कुमार

सक्सेना, श्री राम सजीवन

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - चयन/नियुक्ति - आरक्षण - जाति प्रमाण पत्र का प्रारूप - लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 - ओ.बी.सी. श्रेणी के उम्मीदवार को उपलब्ध आरक्षण का लाभ लेने वाले उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र में साक्ष्य और तथ्य होने चाहिए (1) कि उम्मीदवार राज्य सरकार द्वारा पहचाने गए समूह से संबंधित है और (2) कि उम्मीदवार उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार द्वारा निर्धारित क्रीमी लेयर के मानदंडों के अनुसार बहिष्कृत नहीं है। (पैरा 22, 30)

इस न्यायालय के समक्ष विवाद यह है कि क्या विज्ञापन में निर्धारित प्रारूप में जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत न करके, बल्कि भारत सरकार के अधीन पद पर नियुक्ति के लिए ओ.बी.सी. श्रेणी के उम्मीदवारों को उपलब्ध आरक्षण का लाभ प्राप्त करने के लिए जाति प्रमाण पत्र जारी करने के प्रयोजनार्थ उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा स्वयं निर्धारित प्रारूप में जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके, अपीलार्थी-याचिकाकर्ता ने स्वयं को ऐसे लाभ प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर लिया है। (पैरा 15)

अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 06.03.2021 को प्रस्तुत किया गया प्रमाण पत्र, तहसीलदार द्वारा जारी किया गया था, जो पर्याप्त रूप से प्रमाणित करता है और साक्ष्य देता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा पहचाने गए और मान्यता प्राप्त ओ.बी.सी. समूह से संबंधित है और आगे यह कि वह उत्तर प्रदेश राज्य

सरकार द्वारा क्रीमी लेयर के तहत बहिष्कार के लिए निर्धारित मानदंडों के अनुसार क्रीमी लेयर में नहीं आती है और इसलिए, वह ओ.बी.सी. श्रेणी के उम्मीदवार के लिए उपलब्ध आरक्षण का दावा करने के लिए पात्र और अधिकारी है। (पैरा 31)

बी. समाज के विभिन्न वंचित वर्गों को सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण का लाभ भारत के संविधान के तहत एक सकारात्मक कार्रवाई के रूप में स्वीकार्य है। यह विवाद का विषय नहीं है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को कांस्टेबल (सिविल पुलिस) उत्तर प्रदेश पुलिस सेवा के पद पर चयन में ओ.बी.सी. उम्मीदवारों को उपलब्ध आरक्षण का लाभ देने का दावा करने के दौरान नियुक्ति केवल इसलिए दी गई थी कि उसके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र (प्ररूप-1) में नहीं था, जबकि उसके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि वह उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा पहचानी गई ओ.बी.सी. श्रेणी से संबंधित है और यह भी कि वह उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार क्रीमी लेयर से संबंधित व्यक्ति के रूप में बाहर नहीं जाती है। उक्त उद्देश्य के लिए, राज्य प्राधिकारियों द्वारा उसे अन्यथा संवैधानिक रूप से गारंटीकृत सकारात्मक कार्रवाई के अधिकार से वंचित करने के लिए इसका सहारा नहीं लिया जाना चाहिए, (पैरा 32)

विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को इस आधार पर बरकरार नहीं रखा जा सकता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत जाति प्रमाण पत्र समय सीमा के

भीतर नहीं था क्योंकि भर्ती बोर्ड द्वारा निर्धारित एवं विस्तारित नियमों के अनुरूप नहीं था, न ही यह निर्धारित प्रारूप पर था। (पैरा 35)

विशेष अपील स्वीकृत (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, विशेष अपील संख्या 156/2017, 2017 एआईआर (इलाहाबाद) 116 (पैरा 3)
2. रिकी यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट-ए संख्या 4689/2022 (पैरा 4)
3. उत्तर प्रदेश बनाम रिकी यादव, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 274/2022, 2022 वाद (सभी) 1900 (पैरा 5)
4. सुरेन्द्र मोहन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, विशेष अपील संख्या 823/2018, निर्णय दिनांक 05.09.2018 (पैरा 14)
5. गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2017 5 एडीजे 495; 2017 [35] एलसीडी 1720 (पैरा 14)

वर्तमान विशेष अपील, सिविल विविध रिट याचिका संख्या 17259/2022 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 04.01.2023 के विरुद्ध योजित है।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

सिविल विविध विलंब क्षमा आवेदन संख्या 1/2023 पर आदेश।

सचिव और 3 अन्य के माध्यम से, 2017 एआईआर (इलाहाबाद) 116।

हलफनामे में अपील दायर करने में हुई देरी के बारे में बताया गया है।

दिखाया गया कारण पर्याप्त पाया जाता है।

देरी को माफ कर दिया जाता है।

आवेदन की **अनुमति** है।

अपील पर आदेश।

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वाई. के. सक्सेना, राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री मोहन श्रीवास्तव को सुना।

2. विशेष अपील **सिविल विविध रिट याचिका संख्या 17259/2022 (कुमारी दीप्ति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 04.01.2023 की वैधता पर सवाल उठा रही है और आगे प्रार्थना की कि प्रतिवादी को इस विशेष अपील के लंबित रहने के दौरान कानून के अनुसार ओबीसी श्रेणी में नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार करने का निर्देश दिया जाए।

3. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने प्रस्तुतीकरण के समर्थन में कहा कि आदेश पारित करते समय विद्वान एकल न्यायाधीश ने गलती की है और इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के फैसले पर विचार नहीं किया है, जो मामलों के एक समूह में प्रदान किया गया है, जिसके कारण **विशेष अपील संख्या 156/2017-गौरव शर्मा बनाम यूपी राज्य**

4. उनका कहना है कि समान तथ्यों और परिस्थितियों में, **रिट ए संख्या 4689/2022 (रिंकी यादव बनाम यूपी राज्य, अतिरिक्त मुख्य सचिव गृह (पुलिस) अनुभाग -6 लखनऊ और 3 अन्य)** में विद्वान एकल न्यायाधीश, जिसमें वह कांस्टेबल के पद पर काम कर रही थीं और फरवरी, 2021 में जारी विज्ञापन के अनुसरण में सब इंस्पेक्टर (सिविल पुलिस), प्लाटून कमांडर (पीएसी) और फायर ब्रिगेड में सेकेंड ऑफिसर के पद पर चयन के लिए उम्मीदवार थीं, उनकी उम्मीदवारी को प्रतिवादी द्वारा खारिज कर दिया गया था कि चयन मोड सामान्य श्रेणी के तहत याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी पर विचार कर रहा है, याचिकाकर्ता की उसी तरह की प्रार्थना को अनुमति दी गई जैसा कि तत्काल याचिका में प्रार्थना की गई थी।

5. रिंकी यादव (उपरोक्त) ने उपरोक्त रिट याचिका में उक्त कार्रवाई को चुनौती दी है, जहां विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 09.09.2022 के आदेश के तहत रिट याचिका की अनुमति दी थी और उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत ओबीसी प्रमाण पत्र को स्वीकार करने का निर्देश दिया था और सब इंस्पेक्टर (सिविल पुलिस) के पद पर याचिकाकर्ता के चयन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया था। वह प्रस्तुत करता है कि उक्त आदेश **विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 274/2022 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रिंकी यादव 2022 लाँ सूट (सभी) 1900** का विषय था।

6. वर्तमान इंद्रा कोर्ट अपील न्यायालय के अध्याय VIII नियम 5 के तहत विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 04.01.2023 के फैसले को रद्द करने और खारिज करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है और राज्य अधिकारियों, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती और प्रोन्नति बोर्ड (इसके बाद "भर्ती और पदोन्नति बोर्ड" के रूप में संदर्भित) को अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी से संबंधित अपनी उम्मीदवारी का इलाज करते हुए अपना परिणाम घोषित करने का निर्देश देती है। कार्रवाई का कारण अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के पक्ष में रिट याचिका दायर करने के लिए उठता है जब ओबीसी श्रेणी में सबसे कम कट-ऑफ अंक से अधिक अंक हासिल करने के बाद भी उसका परिणाम चयन सूची में घोषित नहीं किया गया है। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने ओबीसी श्रेणी के तहत अपने परिणाम की घोषणा की मांग के लिए दिनांक 21.08.2022 को प्रतिनिधित्व किया और इसका किसी भी तरह से जवाब नहीं दिया गया है। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा की गई याचिका का फैसला करते समय विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस आधार पर इसे खारिज कर दिया कि सबसे पहले वह विज्ञापन में निर्दिष्ट समय के भीतर निर्धारित प्रारूप पर ओबीसी प्रमाण पत्र पेश नहीं कर सकती थी, और उसके बाद उसने अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत ओबीसी प्रमाण पत्र को अत्यधिक देरी से प्रस्तुत किया।

7. भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड ने फरवरी 2021 में उपनिरीक्षक नागरिक पुलिस, प्लाटून कमांडर पीएसी और द्वितीय अग्निशमन अधिकारी के पद पर सीधी भर्ती के लिए विज्ञापन जारी

किया था। उक्त विज्ञापन के माध्यम से विज्ञापित रिक्तियों की संख्या 9534 थी। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता वर्तमान में कांस्टेबल (सिविल पुलिस) उत्तर प्रदेश पुलिस सेवा के रूप में अपनी सेवा प्रदान कर रही है और अन्य पिछड़ा वर्ग की आरक्षित श्रेणी के तहत उक्त पद पर भर्ती हुई थी। प्रश्नगत विज्ञापन के अनुसरण में, उसने अन्य आवश्यक दस्तावेजों के साथ अपना ऑनलाइन आवेदन जमा किया, उसने दिनांक 06.03.2021 को तहसीलदार छिबरामऊ, जिला कन्नौज द्वारा जारी एक प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत किया, जो अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में अपील के साथ संलग्न पृष्ठ 29 पर उपलब्ध है। उक्त प्रमाण पत्र प्रस्तुत करके, याचिकाकर्ता ने दावा किया कि विचाराधीन पद पर भर्ती के लिए उसकी उम्मीदवारी को अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में माना गया है।

8. अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने लिखित परीक्षा में भाग लिया और शारीरिक दक्षता परीक्षा में भी। शारीरिक दक्षता परीक्षा के आधार पर याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अंतिम अंक 291.32 हैं, जबकि चयनित ओबीसी श्रेणी से संबंधित अंतिम उम्मीदवार ने 285.03 अंक हासिल किए थे। खुली श्रेणी यानी सामान्य श्रेणी के तहत अंतिम उम्मीदवार ने 296.5 अंक हासिल किए हैं। विभिन्न श्रेणियों में ये अंक महिला उम्मीदवारों के संबंध में हैं।

9. अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता से चयनित उम्मीदवार के रूप में संबंधित परिणाम की घोषणा न होने के कारण यह अपीलकर्ता-

याचिकाकर्ता की आशंका है कि दस्तावेजों के सत्यापन के समय, यह पाया गया था कि प्रश्नगत नियुक्ति के लिए आरक्षण का लाभ मांगने के लिए अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र उस विज्ञापन के अनुसार नहीं था जिसके अनुसार चयन किए गए थे।

10. तदनुसार, उसे उप-निरीक्षक या किसी अन्य समकक्ष पद पर भर्ती / नियुक्ति से वंचित कर दिया गया है और इस कारण से भी कि चूंकि अंतिम खुली श्रेणी के उम्मीदवारों ने 296.5 अंक प्राप्त किए थे, जबकि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त अंक 291.32 थे, इसलिए वह योग्यता के आधार पर खुली श्रेणी में चयनित नहीं हो सकी। प्रतिवादी-राज्य अधिकारियों द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया जाता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में नहीं मानने का एकमात्र कारण यह है कि उसने विज्ञापन के साथ संलग्न प्रारूप (प्ररूप-1) के अनुसार जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था।

11. राज्य के प्रतिवादियों की ओर से पेश अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री पीके गिरि ने जोरदार तर्क दिया कि विज्ञापन के खंड 5.4 में संलग्न नोट्स के अनुसार, उन उम्मीदवारों को आरक्षण का लाभ जो अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित हैं, लेकिन क्रीमी लेयर में आते हैं, उपलब्ध नहीं होंगे। विज्ञापन के खंड 5.4 में संलग्न नोट 3 की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है

कि विज्ञापन में उक्त प्रावधान जो यह प्रदान करता है कि लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की अनुसूची -1 में उल्लिखित अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवार (इसके बाद आरक्षण अधिनियम के रूप में संदर्भित) यदि वे क्रीमी लेयर श्रेणी में आते हैं तो वे आरक्षण के लाभ के हकदार नहीं होंगे। उन्होंने यह भी कहा है कि नोट 3 में की गई शर्त के अनुसार, अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए उपलब्ध आरक्षण के लाभ का दावा करने वाले उम्मीदवारों द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला जाति प्रमाण पत्र प्रारूप (प्ररूप-1) में होगा और 1 अप्रैल 2020 को या उसके बाद जारी किया जाना चाहिए, लेकिन आवेदन करने की अंतिम तिथि से पहले। कहने का तात्पर्य यह है कि संबंधित उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला जाति प्रमाण पत्र 1.04.2020-30.04.2021 के बीच जारी किया जाना चाहिए था, इस कारण से कि आवेदन करने के लिए विज्ञापन के अनुसार 30.04.2021 अंतिम तिथि थी।

12. तहसीलदार द्वारा 06.03.2021 को जारी जाति प्रमाण पत्र प्रमाणित करता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता विमल किशोर की बेटी, जिसकी मां का नाम आदेश कुमारी है, लोधी समुदाय से है, जिसे 13 सितंबर 1993 के राजपत्र में प्रकाशित भारत सरकार के प्रस्ताव दिनांक 10 सितंबर 1993 के तहत पिछड़ा वर्ग के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह भी प्रमाणित करता है कि वह भारत सरकार, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा दिनांक 08.09.1993 को जारी कार्यालय ज्ञापन में उल्लिखित क्रीमी

लेयर के व्यक्तियों/वर्गों से संबंधित नहीं है, जैसा कि 09.03.2004 और 14.10.2008 के कार्यालय जापन या भारत सरकार की नवीनतम अधिसूचना द्वारा संशोधित किया गया है।

13. राज्य के अधिकारियों की ओर से पेश होने वाले विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता का एकमात्र निवेदन यह है कि चूंकि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने विज्ञापन के खंड 5.4 में संलग्न नोट 3 की आवश्यकता के अनुसार जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था और यह भी कि चूंकि उसके द्वारा प्रस्तुत जाति प्रमाण पत्र विज्ञापन में संलग्न प्रारूप (प्ररूप -1) में नहीं था, इसलिए उसने ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध आरक्षण के लाभ के लिए विचार किए जाने का लाभ दिए जाने के लिए खुद को अयोग्य घोषित कर दिया है।

14. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने सुरेंद्र मोहन यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विशेष अपील संख्या 823/2018 में 05.09.2018 को दिए गए एक निर्णय पर भी भरोसा किया, जिसमें, उनके अनुसार, यह माना गया है कि यदि कोई उम्मीदवार विज्ञापन में निर्धारित प्रारूप के अनुसार ओबीसी प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में विफल रहता है और इसके बजाय प्रमाण पत्र प्रस्तुत करता है जो भारत सरकार के अधीन पद पर नियुक्तियां और उत्तर प्रदेश राज्य के अधीन नहीं, तो ऐसे उम्मीदवार की उम्मीदवारी को ओबीसी श्रेणी में नहीं माना जा सकता है।

खंडपीठ का फैसला दिनांक 05.09.2018 गौरव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2017 5 एडीजे 495 के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा करता है, जिसका समतुल्य उद्धरण 2017 [35] एलसीडी 1720 है।

15. इस मामले में इस न्यायालय द्वारा उत्तर देने के लिए जो मुद्दा सामने आया है वह यह है कि क्या जाति प्रमाण पत्र को विज्ञापन में निर्धारित प्रारूप में जमा न करके बल्कि इसे उस प्रारूप में जमा करना है जो भारत सरकार के तहत पद पर नियुक्ति के लिए ओ.बी.सी. श्रेणी के उम्मीदवारों को उपलब्ध आरक्षण के लाभ का दावा करने के लिए जाति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए यूपी राज्य द्वारा निर्धारित किया गया है, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने इस तरह के लाभ का दावा करने के लिए खुद को अयोग्य घोषित कर दिया।

16. विज्ञापन के खंड 5.4 के अनुसार, ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवारों को उपलब्ध आरक्षण के लाभ का दावा करने वाले उम्मीदवार को तथ्यों के प्रमाणीकरण के साथ जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक था, (1) कि उम्मीदवार क्रीमी लेयर के अंतर्गत नहीं आता है और (2) प्रमाण पत्र सक्षम प्राधिकारी द्वारा 1.04.2020-30.04.2021 की अवधि के बीच जारी किया जाना चाहिए, जबकि, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत जाति प्रमाण पत्र का संबंध है, यह सक्षम प्राधिकारी यानी संबंधित तहसीलदार द्वारा 06.03.2021 को जारी किया गया था, जो तिथि विज्ञापन में की गई शर्त के अनुसार प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए

निर्धारित अवधि के भीतर आती है अर्थात् 1.04.2020- 30.04.2021 के बीच। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किया गया प्रमाण पत्र यह भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि वह भारत सरकार, कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसार 08.09.1993 के कार्यालय ज्ञापन या/और दिनांक 09.03.2004 और 14.10.2008 की अधिसूचनाओं सहित नवीनतम अधिसूचनाओं में क्रीमी लेयर के अंतर्गत नहीं आती है।

17. गौरव शर्मा (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा विचार किए गए मुद्दों में से एक यह था कि क्या क्रीमी लेयर के प्रमाणन के संबंध में केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित मानदंडों के बीच कोई अपूरणीय अंतर या प्रतिकूलता मौजूद है? यदि नहीं, तो इसका प्रभाव यह भी बताया जाता है कि गौरव शर्मा मामले में याचिकाकर्ता ने यह प्रमाणित करते हुए प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत किया था कि वह उसी प्रारूप में ओबीसी श्रेणी से संबंधित है जिसमें अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने प्रमाण पत्र प्राप्त किया था और ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध आरक्षण का लाभ प्राप्त करने के लिए इसे प्रस्तुत किया था। जिस प्रारूप में अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने उक्त प्रमाण पत्र प्राप्त किया, वह उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा निर्धारित किया गया है। यह तथ्य विवाद में नहीं है, हालांकि, जैसा कि विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा कहा गया है, उक्त प्रारूप भारत सरकार के तहत रोजगार के संबंध में ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवारों को उपलब्ध आरक्षण के लाभ का

दावा करने के लिए है न कि उत्तर प्रदेश राज्य के तहत रोजगार के संबंध में।

18. गौरव शर्मा के मामले में उम्मीदवार द्वारा जिस जाति प्रमाण पत्र पर भरोसा किया गया है, वह वही है जिसमें अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को तहसीलदार द्वारा प्रमाण पत्र जारी किया गया था। गौरव शर्मा (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ ने कहा है कि, जबकि यह सच है कि जाति प्रमाण पत्र केवल मौजूदा स्थिति की मान्यता है, और ओबीसी उम्मीदवार को आवश्यक रूप से राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त ओबीसी समूह से संबंधित दोहरी शर्तों को स्थापित करना चाहिए और यह भी कि वह क्रीमी लेयर के भीतर नहीं आता है। गौरव शर्मा के मामले में निर्णय के पैरा -26 में, पूर्ण पीठ ने आगे कहा है कि यह सच है कि ओबीसी उम्मीदवार भी एक प्रमाण पत्र पेश करती है जो सबूत देता है कि वह 14.10.2008 के कार्यालय ज्ञापन के संदर्भ में आरक्षण के लाभ से बाहर नहीं है, यह मुद्दा अभी भी बना हुआ है कि क्या वह ओबीसी है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट और पहचाना गया है।

19. पूर्ण पीठ ने आगे कहा कि यद्यपि अन्य पिछड़ा वर्ग द्वारा शुरू में प्रस्तुत प्रमाण पत्र, न्यायालय के समक्ष उम्मीदवारों को 14.10.2008 के कार्यालय ज्ञापन द्वारा निर्धारित उनके मानकों के आधार पर बाहर नहीं रखा गया था, प्रमाण पत्र ने उन्हें ओबीसी से संबंधित होने का प्रमाण नहीं दिया गया, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य सरकार में पहचाना गया है। न्यायालय आगे इस अवलोकन पर

जाता है कि आरक्षण का लाभ प्राप्त करने के प्रयोजनों के लिए एक उम्मीदवार के लिए यह स्थापित करना अनिवार्य है कि वह ओबीसी से संबंधित है, जैसा कि संबंधित राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त और पहचाना गया है और आगे वह बहिष्करण के क्षेत्र में नहीं है।

20. अंत में, इस मुद्दे का जवाब देते हुए (सी) रिपोर्ट के पैरा -27 में पूर्ण पीठ द्वारा यह कहा गया है कि हमने तदनुसार प्रश्न संख्या एक का नकारात्मक उत्तर दिया और माना कि एक ओबीसी उम्मीदवार को कट-ऑफ या विज्ञापन या भर्ती नोटिस में निर्धारित अंतिम तिथि की कठोरता से छूट नहीं है। हमने आगे घोषणा की कि अरविंद कुमार यादव ने इस मुद्दे पर और प्रवेश कुमार और शुभम गुप्ता पर कानून को सही ढंग से स्पष्ट किया है। जहां तक प्रश्न संख्या 3 का संबंध है, हम मानते हैं कि हालांकि, केंद्र और राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों में कोई प्रतिकूलता नहीं है, लेकिन इसका उम्मीदवार की क्षमता पर कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक कि वह ओबीसी श्रेणी से संबंधित होने का प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं करता है।

21. इस प्रकार, गौरव शर्मा (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ ने पाया है कि जहां तक क्रीमी लेयर के प्रमाणीकरण का संबंध है, केंद्र और राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों में कोई प्रतिकूलता नहीं है। तदनुसार, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि जहां तक क्रीमी लेयर के तहत बहिष्करण का संबंध है, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को इस कारण से बाहर नहीं किया जा सकता है कि उसके सिद्धांत

द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र में कहा गया है कि वह केंद्र सरकार द्वारा जारी अधिसूचना के संदर्भ में क्रीमी लेयर की कठोरता से बाहर नहीं है। पूर्ण पीठ ने पहले ही माना है कि जहां तक क्रीमी लेयर घटक के तहत बहिष्करण के मानदंडों का संबंध है, राज्य सरकार और केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों के बीच कोई प्रतिकूलता मौजूद नहीं है।

22. हालांकि, हम यह भी देखते हैं कि पूर्ण पीठ ने स्पष्ट रूप से माना है कि भले ही कोई उम्मीदवार यह साबित करने वाला प्रमाण पत्र प्रस्तुत करता है कि उसे क्रीमी लेयर की कठोरता से बाहर नहीं किया जाता है, फिर भी उसे यह प्रमाण पत्र रखना होगा कि वह उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा पहचाने और मान्यता प्राप्त ओबीसी समूह से संबंधित है। उपरोक्त पहलू पर विचार करने के लिए, हम पाते हैं कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा 06.03.2021 को प्रस्तुत प्रमाण पत्र जो सक्षम प्राधिकारी यानी तहसीलदार द्वारा जारी किया गया था, स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है कि वह लोधी समुदाय से संबंधित है, भारत सरकार के साथ-साथ उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा उक्त उद्देश्य के लिए किए गए विनिर्देश के बीच कोई प्रतिकूलता मौजूद नहीं है।

23. हम अपने दिमाग में बहुत स्पष्ट हैं कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र स्पष्ट रूप से यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त होगा कि अपीलकर्ता याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा पहचाने गए समुदाय से संबंधित है, एक ओबीसी समूह है और तदनुसार वह उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के तहत

रोजगार की तलाश करते समय भी ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवार को उपलब्ध आरक्षण का लाभ लेने की हकदार होगी।

24. 1994 के आरक्षण अधिनियम में संलग्न अनुसूची-1 के अवलोकन से स्पष्ट पता चलता है कि प्रविष्टि-8 में लोधी समुदाय का उल्लेख है। तदनुसार, अन्य पिछड़े वर्ग से संबंधित किसी विशेष समुदाय के लिए उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा दी गई पहचान मान्यता के अनुसार, अनुसूची-1 में प्रविष्टियां ऐसे मुद्दे के निर्धारण का एकमात्र स्रोत हैं। जाहिर है, लोधी समुदाय की पहचान की जाती है और उक्त उद्देश्य के लिए मान्यता प्राप्त है।

25. यदि हम भारत के राजपत्र में प्रकाशित 13.09.1993 की असाधारण अधिसूचना की जांच करते हैं, जो भारत सरकार के दिनांक 10.09.1993 के संकल्प को प्रकाशित करता है, तो हम पाते हैं कि उत्तर प्रदेश राज्य में लोधी समुदाय क्रम संख्या 8 पर सूचीबद्ध है। तदनुसार, भारत सरकार और उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा किसी विशेष समूह या समुदाय को अन्य पिछड़ा वर्गों या वर्गों में शामिल करने के प्रयोजनार्थ की गई पहचान की जांच करने पर, जो उन्हें उपलब्ध आरक्षण का लाभ प्राप्त करने के हकदार हैं, हम पाते हैं कि जहां तक लोधी समुदाय का संबंध है, कोई प्रतिकूलता नहीं है। हमारे लिए यह कहने का कारण है कि ऐसी कोई प्रतिकूलता नहीं है क्योंकि लोधी समुदाय का उल्लेख भारत सरकार की दिनांक 13.09.1993 की अधिसूचना में मिलता है जिसने भारत सरकार के दिनांक 10.09.1993 के संकल्प को प्रकाशित किया था और इसे

उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के विधानमंडल द्वारा पारित 1994 के आरक्षण अधिनियम से जुड़ी अनुसूची 1 की प्रविष्टि 8 में भी शामिल किया गया है।

26. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने भी आरक्षण अधिनियम, 1984 की धारा 9 में निहित प्रावधानों के आधार पर अपना निवेदन किया है जिसमें यह प्रावधान है कि उक्त अधिनियम के तहत प्रदान किए गए आरक्षण के उद्देश्य के लिए जाति प्रमाण पत्र ऐसे प्राधिकारी या अधिकारी द्वारा ऐसे तरीके या प्रपत्र में जारी किया जाएगा जो राज्य सरकार आदेश द्वारा प्रदान कर सकती है।

27. राज्य प्राधिकारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने इस बात पर विवाद नहीं किया है कि प्राधिकरण जारी किया गया था क्योंकि प्रमाण पत्र दिनांक 06.03.2021 जो अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवारों को उपलब्ध आरक्षण के लाभ का दावा करते हुए प्रस्तुत किया गया था, तहसीलदार द्वारा सक्षम प्राधिकारी के साथ जारी किया गया था जैसा कि प्रमाण पत्र जारी करने के उद्देश्य से राज्य सरकार द्वारा प्रदान किया गया था। उत्तर प्रदेश जनहित गारंटी अधिनियम 2011 में तहसीलदार को प्रमाण पत्र जारी करने के लिए सक्षम प्राधिकारी होने का भी प्रावधान है। 28. 06.03.2021 को जारी जाति प्रमाण पत्र के लिए विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा व्यक्त किया गया एकमात्र आरक्षण यह है कि यह राज्य सरकार द्वारा निर्धारित तरीके से जारी नहीं किया गया है। अपर मुख्य

स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस तरह के तर्कों का आधार यह है कि तहसीलदार द्वारा जारी प्रमाण पत्र दिनांक 06.03.2021 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि यह भारत सरकार के तहत पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने वाले अन्य पिछड़ा वर्ग द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला प्रमाण पत्र है। उनका निवेदन यह है कि विज्ञापन (प्ररूप-1) के साथ संलग्न सूचना उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के अधीन पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने वालों को जाति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए सरकार द्वारा निर्धारित प्रपत्र है।

29. यह भी विवाद में नहीं है कि दोनों प्रारूप यानी जिस प्रारूप में अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने प्रमाण पत्र प्राप्त किया था जो उसे उस स्थान के राज्य द्वारा जारी किया गया था। पहला प्रारूप भारत सरकार के अधीन पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने वाले ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले प्रमाण पत्र के लिए है, जबकि विज्ञापन के साथ संलग्न प्रारूप राज्य द्वारा अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवारों द्वारा उत्पादित किया जाना है जो उत्तर प्रदेश राज्य के तहत पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन करते हैं। गौरव शर्मा (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने पहले ही पाया है कि जहां तक क्रीमी लेयर से संबंधित व्यक्ति के कारण बहिष्करण के मानदंड का संबंध है, भारत सरकार और उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा उक्त उद्देश्य के लिए किए गए विवरणों के बीच कोई प्रतिकूलता मौजूद नहीं है। यह मुद्दा कि क्या अब तक लोधी समुदाय से संबंधित कोई व्यक्ति उत्तर प्रदेश राज्य और भारत सरकार

द्वारा निर्धारित ओबीसी के रूप में अपनी स्थिति का दावा करता है, पूर्ण पीठ के समक्ष कोई मुद्दा नहीं था और न ही इस पर चर्चा और विचार किया गया है। हालांकि, अगर हम पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए तर्क की जांच करते हैं कि कोई प्रतिकूलता मौजूद नहीं है, जहां तक क्रीमी लेयर के कारण उम्मीदवार के बहिष्कार के मानदंड का संबंध है और यह जांच करने के लिए लागू होता है कि क्या उत्तर प्रदेश राज्य और भारत सरकार द्वारा ओबीसी के रूप में किसी विशेष श्रेणी की पहचान के बीच कोई प्रतिकूलता है। हम पाते हैं कि जहां तक लोधी समुदाय का संबंध है, वहां कोई प्रतिकूलता नहीं है। दिनांक 13-09-1993 के राजपत्र में प्रकाशित दिनांक 15-09-1993 को जारी अधिसूचना में लोधी समुदाय को अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में शामिल किया गया है। इसी तरह लोधी समुदाय का उल्लेख 1994 के संकल्प अधिनियम की अनुसूची 1 की प्रविष्टि 8 में किया गया है। चूंकि लोधी समुदाय के किसी भी व्यक्ति को भारत सरकार या उत्तर प्रदेश राज्य के तहत नियुक्ति या पद के लिए ओ.बी.सी. श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध आरक्षण के मामले में अन्य पिछड़ा वर्ग के बीच लोधी समुदाय को शामिल करने में कोई विसंगति नहीं है।

30. हम गौरव शर्मा और अन्य के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले में एक सामान्य सूत्र के रूप में चलने वाले मूल सिद्धांत को फिर से बना सकते हैं, यह है कि ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवार को उपलब्ध आरक्षण के लाभ का दावा करने वाले उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र और तथ्य

(1) कि उम्मीदवार जो पहचाने गए समूह से संबंधित हैं, (2) कि उम्मीदवार को उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा निर्धारित क्रीमी लेयर के मानदंडों के अनुसार बाहर नहीं किया गया है।

31. गौरव शर्मा (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए तर्क को लागू करते हुए, हमारी राय है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 06.03.2021 को जिस प्रमाण पत्र पर भरोसा किया गया था और प्रस्तुत किया गया था, वह तहसीलदार द्वारा पर्याप्त रूप से प्रमाणित और साक्ष्य करता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा पहचाने और मान्यता प्राप्त एक ओबीसी समूह से संबंधित है और आगे वह राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार है क्रीमी लेयर के तहत बहिष्करण के लिए उत्तर प्रदेश क्रीमी लेयर में नहीं आता है और इसलिए, वह ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवार के लिए उपलब्ध आरक्षण का दावा करने के लिए पात्र और हकदार है।

32. इस मामले से अलग होने से पहले, हम यह देख सकते हैं कि समाज के विभिन्न वंचित वर्गों को सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण का लाभ भारत के संविधान के तहत एक सकारात्मक कार्रवाई के रूप में अनुमेय है। यह विवाद में नहीं है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को नियुक्ति दी गई थी, जबकि उसने कांस्टेबल (सिविल पुलिस) उत्तर प्रदेश पुलिस सेवा के पद पर अपने चयन में ओबीसी उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध आरक्षण के लाभ का दावा किया था, केवल इसलिए कि उसके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र (रूप -1) में नहीं था,

हालांकि उसके द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र, स्पष्ट रूप से सबूत देता है कि वह उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा पहचानी गई ओबीसी श्रेणी से संबंधित है और यह भी कि वह उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार क्रीमी लेयर से संबंधित व्यक्ति के रूप में उसे बाहर नहीं रखा जाता है। उक्त प्रयोजन के लिए, राज्य प्राधिकारियों द्वारा उसे अन्यथा संवैधानिक रूप से गारंटीकृत सकारात्मक कार्रवाई के अधिकार से वंचित करने के लिए उसकी सहायता नहीं ली जानी चाहिए।

33. अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 274/2022 यूपी राज्य बनाम रिंकी और अन्य 2022 मुकदमा (सभी) 1900 में प्रतिपादित कानून तत्काल मामले में पूरी तरह से लागू है और इस तरह, हम उसी के पूर्ण समझौते में हैं। हमारे संज्ञान में कुछ भी नहीं लाया गया है कि रिंकी और अन्य (उपरोक्त) के फैसले को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई अनुग्रह दिया जा रहा है और इस तरह, इस स्तर पर इसकी पुष्टि की जाती है।

34. अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता अब तक मामले के तथ्यात्मक और कानूनी पहलू, इस बात पर विवाद नहीं है कि रिंकी और अन्य (उपरोक्त) के फैसले में पारित आदेश और निर्देश उनके ज्ञान में नहीं हैं।

35. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता का मामला समान आधार पर है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश

को न तो इस आधार पर कायम रखा जा सकता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत जाति प्रमाण पत्र भर्ती बोर्ड द्वारा निर्धारित और विस्तारित समय के भीतर नहीं था, न ही यह निर्धारित प्रारूप पर नहीं था। तदनुसार, आदेश दिनांक 04.01.2023 को खारिज किया जाता है और रद्द किया जाता है।

36. प्रतिद्वंद्वी पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा यह सूचित किया गया है कि चयन प्रक्रिया चल रही है, और इस तरह, सक्षम अधिकारियों को यह निर्देश दिया जाता है कि वे अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की ओबीसी श्रेणी के उम्मीदवार होने के नाते उम्मीदवारी स्वीकार करें। उसके मेरिट अंक पर विचार करने के बाद जो कट-ऑफ के अंतर्गत आता है, जैसा कि ओबीसी श्रेणी के सबसे कम योग्यता धारक द्वारा सुरक्षित है।

37. उपर्युक्त के आलोक में, तत्काल अंतर न्यायालय अपील की अनुमति दी जाती है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत ओबीसी प्रमाण पत्र को स्वीकार करें और विज्ञापन के तहत अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के लिए उपयुक्त पद के लिए अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के चयन की प्रक्रिया के साथ आगे बढ़ें।

38. सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन सप्ताह के भीतर पूर्वोक्त कार्य पूरा किया जाए।

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल,
रिट-ए संख्या 126/2022 तथा अन्य संबंधित
वाद

अवधेश कुमार सिंह व अन्य ... याचिकाकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य ... प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: राकेश चंद्र तिवारी
अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सेवा कानून - भारतीय संविधान, 1950-
अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद
अधिनियम, 1947- कई रिट याचिकाएं दायर
की गईं, रिट याचिकाओं की पहली श्रेणी
31.03.1989 से 18.05.1994 तक वेतनमान
के पुनर्निर्धारण के कारण उत्पन्न हुईं, जिसके
परिणामस्वरूप प्रतिवादियों/अनुसूचित जनजाति
द्वारा आक्षेपित नोटिस/आदेश जारी किया गया,
इस अंशकालिक नलकूप संचालकों से इस
अवधि के दौरान भुगतान किए गए अतिरिक्त
वेतन की वसूली के लिए नोटिस और ग्रेच्युटी
भुगतान की कुर्की/रोक जैसे वसूली के लिए
बलपूर्वक कदम उठाने के खिलाफ रिट याचिका
की दूसरी श्रेणी- आक्षेपित आदेश प्राकृतिक
न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है क्योंकि
वेतनमान के पुनर्निर्धारण/घटाने से पहले
याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर
नहीं दिया गया, जिससे सिविल परिणाम
उत्पन्न हुए- आक्षेपित आदेश/नोटिस निरस्त-
विभिन्न प्रतिस्पर्धी कारकों और माननीय
न्यायालय की टिप्पणियों को ध्यान में रखते

हुए याचिकाकर्ताओं के दावों का मूल्यांकन करने के लिए वाद सक्षम प्राधिकारी को प्रेषित किया गए- सक्षम प्राधिकारी स्पष्टीकरण का और/या वाद में कोई आदेश पारित करने से पहले रिट याचिकाकर्ताओं की सुनवाई का अवसर प्रदान करेगा। (पैरा 13, 14, 58, 59, 60)

याचिका निस्तारित। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. (संजीवन लाल व अन्य बनाम प्रमुख सचिव सिंचाई लखनऊ, उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) रिट-ए-22586 वर्ष 2019
2. इंजीनियर-इन-चीफ, सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश व अन्य बनाम मकरंद सिंह व अन्य रिट याचिका संख्या 1502 (एस/एस) 1992:
3. सुरेश चंद्र तिवारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य: रिट याचिका संख्या 3558 (एस/एस) 1992
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मंगरा पंडित वर्मा एवं अन्य विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 16219/1994
5. राजेंद्र कुमार तिवारी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य रिट याचिका संख्या 1820/2002
6. उत्तर प्रदेश बनाम रोशन लाल व अन्य, समीक्षा याचिका संख्या 26/2012 और एसएलपी (सी) संख्या 5283/2011
7. (उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम मुन्ना लाल त्रिवेदी व अन्य) एसएलपी संख्या 883/2016

8. (राकेश कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य) एसएलपी(सी) संख्या 348612015
9. (कमलेश कुमार सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य) एसएलपी(सी) संख्या 1696-1697/2016
10. (उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम इरफान अली व अन्य) एसएलपी (सीसी) संख्या 1066/2016
11. (रमेश चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) रिट याचिका संख्या 31262/2017
12. बबलू सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2019) 12 एससीसी 403
13. प्रदीप कुमार मस्करा बनाम यूपी राज्य (2015) 2 एससीसी 653
14. कलिंगा माइनिंग कॉर्पोरेशन बनाम भारत संघ., (2013) 5 एससीसी 252
15. पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम रफीक मसीह 2014 में रिपोर्ट (8) एससीसी 883
16. जसवंत सिंह गिल बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड एवं अन्य, (2007) 1 एससीसी 663
17. नेतराम साहू बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य, (2018) 5 एससीसी 430।
18. कुन्हायम्मैद एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य: (2000) 6 एससीसी 359।
19. (जय करण सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) रिट याचिका संख्या 103/1996
20. (यू.पी. राज्य व अन्य बनाम विनोद कुमार व अन्य) विशेष अपील संख्या 548/2000
21. कुन्हायम्मैड एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य (2000)(6) एससीसी 359)
22. मेखा राम व अन्य बनाम राजस्थान राज्य व अन्य 29/03/2022 को निर्णय लिया गया

23. श्रीमती मेनका गांधी बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 1978 एससी 597

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

(1) श्री ए.एम त्रिपाठी, श्री आर.सी तिवारी, श्री वाई.के मिश्रा, रिट याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता और श्री रमेश कुमार सिंह, अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री संजय सरीन, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता और श्री तुषार वर्मा, प्रतिवादी/राज्य के अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त सुनी।

A. प्रस्तावना

(2) रिट याचिकाओं का वर्तमान समूह मुकदमेबाजी रोजगार का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय में अतीत में कई अवसरों पर 'ट्यूबवेल ऑपरेटरों' की कई याचिकाओं की बाढ़ आ गई थी, जिसमें उनकी सेवा शर्तों से संबंधित कई मुद्दे उठाए गए थे। इस न्यायालय के पास इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के नियमितीकरण से संबंधित एक मुद्दे से निपटने का भी अवसर था और इसने 23.01.2023 को रिट ए-22586 वर्ष 2019 (संजीवन लाल और 26 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश के राज्य, प्रमुख सचिव सिंचाई लखनऊ और अन्य के माध्यम से) और अन्य संबंधित मामलों में पारित एक विस्तृत निर्णय पारित किया है।

(3) हालांकि, रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने वाला मुद्दा पूरी तरह से एक अलग मुद्दा है,

जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अपने पहले के फैसले (उपरोक्त) में तय किए गए मुद्दे से जुड़ा हुआ है, हालांकि दोनों मामलों का एक सामान्य इतिहास है। मोटे तौर पर, रिट याचिकाओं के इस समूह में रिट याचिकाकर्ताओं को शुरू में वर्ष 1980 से 1990 के बीच अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में नियत समय में नियमित कर दिया गया था और उनमें से अधिकांश अब तक सेवानिवृत्त भी हो चुके हैं।

B. संक्षिप्त पृष्ठभूमि

(4) उपर्युक्त याचिकाओं में उठाए गए मुद्दे की शुरुआत वर्ष 1992 में हुई थी, जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य ने दिनांक 20.2.1992 को एक शासनादेश जारी किया था, जिसके द्वारा "पार्ट-टाइम ट्यूबवेल ऑपरेटर" का नाम बदलकर "ट्यूबवेल सहायक" कर दिया गया था और उनका मानदेय 299/- रुपये प्रति माह से बढ़ाकर 550/- रुपये प्रति माह कर दिया गया था। उस समय अन्य प्रारंभिक मुद्दा दो मामलों में श्रम न्यायालय का निर्णय था, जिसमें केस संख्या-256 वर्ष 1988 और केस संख्या-20 वर्ष 1989 था, जो कुछ "पार्ट-टाइम ट्यूबवेल ऑपरेटरों" द्वारा श्रम न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था, जिसमें उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के प्रावधानों के तहत नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ वेतन समानता का दावा किया गया था।

(5) जहां तक उपर्युक्त श्रम न्यायालय के मामलों का संबंध था, उपर्युक्त दोनों मामलों

का निर्णय अंशकालिक ट्यूबवेल प्रचालकों के पक्ष में क्रमश दिनांक 15-7-1989 और 1-2-1991 के पंचाट द्वारा किया गया था, जिसमें श्रम न्यायालय ने यह निष्कर्ष दिया था कि चूंकि पार्ट-टाइम ट्यूबवेल प्रचालकों ने नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर के समान ही कार्य किया है, वे नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ समानता का भुगतान करने के हकदार थे।

(6) श्रम न्यायालय के पूर्वोक्त अधिनिर्णय से असंतुष्ट उत्तर प्रदेश राज्य ने रिट याचिका संख्या-1502 (एस/एस) वर्ष 1992: मुख्य अभियंता, सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश और अन्य बनाम मकरंद सिंह और अन्य दायर करके इसे चुनौती दी। इसके साथ ही, अन्य रिट याचिकाएं, प्रमुख रिट याचिका संख्या-3558 (एस/एस) वर्ष 1992: सुरेश चंद्र तिवारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, भी इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई थीं, जिसमें 20.2.1992 की उपरोक्त अधिसूचना को चुनौती दी गई थी, जिसके द्वारा ट्यूबवेल ऑपरेटरों का नाम बदलकर ट्यूबवेल सहायकों में बदल दिया गया था और वेतन के बदले 500/- रुपये प्रति माह का मानदेय तय किया गया था। इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने दिनांक 18.5.1994 के एक सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा उपरोक्त रिट याचिकाओं पर निर्णय लिया है। दिनांक 18.5.1994 के आदेश का क्रियात्मक भाग निम्नानुसार है: -

"परिणाम में, मैं रिट याचिका संख्या-1502 (एस/एस) वर्ष 1992 को छोड़कर सभी रिट याचिकाओं को अनुमति देता हूं और 20.2.1992 की अधिसूचना (जैसा कि रिट याचिका संख्या-3558 (एस/एस) वर्ष 1992 के

अनुलग्नक-1 में निहित है) को रद्द करता हूं, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं का नाम बदलकर ट्यूबवेल सहायक कर दिया गया है और 550/- रुपये प्रति माह का मानदेय तय किया गया है। प्रतिपक्षियों को सभी याचिकाकर्ताओं को समान वेतन का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है यानी उसी वेतनमान में जिसमें अन्य नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों को भुगतान किया जा रहा है।

राज्य, सिंचाई विभाग, उत्तर प्रदेश एवं अन्य बनाम मकरंद सिंह एवं अन्य द्वारा दायर रिट याचिका संख्या-1502 (एस/एस) वर्ष 1992 खारिज की जाती है।

(7) दिनांक 18.05.1994 के पूर्वोक्त निर्णय और आदेश को उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या-16219 वर्ष 19994: उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मंगरा पीडी वर्मा और अन्य, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 22.03.1995 को खारिज कर दिया था, जिसमें कहा गया था कि "पार्ट-टाइम ट्यूबवेल ऑपरेटरों" के कर्तव्य, योग्यता और काम करने के घंटे नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान हैं और इस प्रकार 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत के आधार पर, सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य की एस.एल.पी. को खारिज कर दिया। यहां तक कि, राज्य द्वारा दायर समीक्षा याचिका संख्या-1894 से 1897 वर्ष 1992 में पूर्वोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 22.03.1995 की समीक्षा की मांग करते हुए, 18.10.1995 को खारिज कर दिया गया था।

(8) माननीय उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त आदेश के अनुपालन में, उत्तर प्रदेश राज्य ने 27-10-1995 को एक आदेश जारी किया और उसके बाद 10-11-1995 को एक अन्य आदेश जारी किया जिसमें वेतन की वही परिलब्धियां प्रदान की गई हैं जो नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों को अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को दी गई थीं, जो उक्त निर्णय और आदेश दिनांक 18-5-1994 और इसी प्रकार के अन्य याचिकाकर्ताओं द्वारा आच्छादित किए गए थे। यह ध्यान दिया जा सकता है कि शासनादेश दिनांक 27.10.1995 उन सभी व्यक्तियों के लिए जारी किया गया था जो दिनांक 18.05.1994 के निर्णय और आदेश से आच्छादित थे, जबकि शासनादेश दिनांक 10.11.1995 श्रम न्यायालय के आदेश द्वारा आच्छादित किए गए व्यक्तियों के लिए जारी किया गया था।

(9) स्पष्ट रूप से, अंशकालिक ट्यूबवेल प्रचालकों, जो सुरेश चन्द्र तिवारी के मामले में पारित निर्णय के अंतर्गत आते थे, को 18-05-1994 से नियमित अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के रूप में नियमित वेतनमान दिया गया था, तथापि, जहां तक अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों का संबंध है, जिनके पक्ष में श्रम न्यायालय का अधिनिर्णय था, उनकी संबंधित नियुक्ति की तारीख से अथवा दिनांक 31-03-1989 से नियमित अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के समान नियमित वेतनमान दिया गया था।

(10) अंशकालिक ट्यूबवेल प्रचालकों पर नियमित ट्यूबवेल आपरेटर के रूप में नियमित

वेतनमान लागू होने की तारीख से संबंधित विवाद रहा था। कुछ अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों ने दावा किया कि वे 31.03.1989 से हकदार थे और इस तरह इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की, जिसे इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा अनुमति दी गई थी। यद्यपि, राज्य ने पुनर्विचार दायर किया है, तथापि उक्त समीक्षा याचिका के लंबित रहने के दौरान, इन अंशकालिक ट्यूबवेल संचालकों ने 31-03-1989 से वेतन-निर्धारण के अनुपालन के लिए अवमानना याचिका दायर की, जिसे अवमानना न्यायालय ने समीक्षा याचिका के परिणाम अथवा राज्य सरकार की उत्तरवर्ती अपील के अध्यक्षीन अनुमति दे दी। इसके बाद, रिकॉर्ड से पता चलता है कि, समीक्षा याचिका और साथ ही इस अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को 31.03.1989 से इस वेतन-निर्धारण के खिलाफ राज्य द्वारा दायर एस.एल.पी. दोनों विफल रहे। इस प्रकार, राज्य सरकार इस न्यायालय के आदेशों के तहत 31.03.1989 से नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के वेतन-निर्धारण के लिए बाध्य थी।

(11) नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के नियमित वेतनमान या वेतन-समानता की प्रयोज्यता की तारीख से संबंधित पूरे मुद्दे को इस न्यायालय द्वारा समय बीतने के साथ असंगत निर्णय पारित करने के साथ जटिल किया गया था और अंततः 22.01.2016 के एक आदेश के माध्यम से, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि सभी अंशकालिक ट्यूबवेल

ऑपरेटर (उन लोगों को छोड़कर जो श्रम न्यायालय की कार्यवाही में पक्षकार थे, जिसकी परिणति दिनांक 15-07-1989 के अधिनिर्णय के रूप में हुई) के अनुसार सुरेश चन्द्र तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में दिनांक 18-05-1994 से ही नियमित वेतनमान प्राप्त करने के हकदार होंगे। (उपरोक्त)

(12) माननीय सर्वोच्च न्यायालय की पूर्वोक्त टिप्पणी और स्पष्टता के मददेनजर, राज्य सरकार ने 31.03.1989 की पूर्व तारीख के स्थान पर 18.05.1994 से वेतनमान को फिर से निर्धारित करने के लिए नोटिस भेजना शुरू कर दिया था, जिसके विभिन्न परिणाम सामने आए हैं, जिसमें इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं का वर्तमान समूह दायर करना शामिल है। इसके अतिरिक्त, इस मुद्दे का दूसरा चरण भी है जिसमें राज्य सरकार ने वेतनमान के पूर्वोक्त पुन निर्धारण को आगे बढ़ाते हुए 31-03-1989 से 18-05-1994 के बीच भुगतान किए गए वेतन की वसूली की मांग की है और उपदान आदि जैसे सेवानिवृत्ति लाभों को रोकने सहित उक्त राशि की वसूली के लिए कदम भी उठाए हैं।

C. विवाद

(13) जाहिर है, रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह में विवाद को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। दूसरी श्रेणी पहली श्रेणी का परिणाम है। रिट याचिकाओं की पहली श्रेणी 31.03.1989 से 18.05.1994 तक वेतनमान के पुनः निर्धारण के कारण भड़की है, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादियों/राज्य द्वारा

विवादित नोटिस/आदेश जारी किया गया है। निम्नलिखित रिट याचिकाएं "पहली श्रेणी" के भीतर आएंगी:

क्रम संख्या	रिट पिटिशन का विवरण	उस आक्षेपित आदेश का दिनांक जिसको चुनौती दी जानी है
1	रिट याचिका-ए-नं. 5188/2017 (राजेंद्र कुमार तिवारी एवं 56 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	02.02.2017
2	रिट याचिका-ए-नं. 13913/2017 (रमेश चंद्र एवं 5 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	02.02.2017
3	रिट याचिका-ए-नं. 13982/2017 (विजय शंकर एवं 69 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	19.05.2017 & 26.05.2017
4	रिट याचिका-ए-नं. 14929/2017 (मिथिलेश चंद्र पांडे एवं 6 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	08.05.2017
5	रिट याचिका-ए-नं. 16920/2017 (राधे लाल एवं 11 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	19.05.2017 & 26.05.2017
6	रिट याचिका-ए-नं. 17658/2017 (शिव कुमार यादव एवं 8 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	02.02.2017 & 19.05.2017
7	रिट याचिका-ए-नं. 28446/2017 (विजय कुमार सिंह एवं 16 अन्य बनाम	08.05.2017 & 19.05.2017

	उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	
8	रिट याचिका-ए-संख्या 28793/2017 (मुखू सिंह और 12 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)	19.05.2017 & 26.05.2017
9	रिट याचिका-ए-नं. 29077/2017 (राम अचल और 5 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)	19.05.2017 & 26.05.2017 & 08.11.2017
10	रिट याचिका-ए-नं. 29933/2017 (अनुराधा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	19.05.2017 & 26.05.2017 & 08.11.2017
11	रिट याचिका-ए-नं. 30199/2017 (भरत सिंह एवं 23 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	30.05.2017
12	रिट याचिका-ए-नं. 431/2018 (आस मोहम्मद और 7 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)	08.05.2017 & 19.05.2017 & 27.05.2017

(14) इसके अतिरिक्त, चूंकि इन अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को वेतनमान पर वेतन पहले ही संवितरित किया जा चुका था, जैसा कि 31-03-1989 से 18-05-1994 की अवधि के दौरान नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटर पर लागू था, राज्य सरकार ने पूर्वोक्त वेतनमान को पुन निर्धारित करने के बाद और अपने पूर्व आदेश (जो रिट याचिकाओं की प्रथम श्रेणी में आक्षेपित हैं) के परिणामस्वरूप इस अवधि के

दौरान भुगतान किए गए इस अतिरिक्त वेतन की वसूली के लिए एक और नोटिस भी भेजा है। इससे अंशकालिक नलकूप संचालकों और वसूली के लिए प्रतिवादी राज्य द्वारा उपदान भुगतान की कुर्की/रोक आदि जैसे कठोर कदम उठाए गए हैं। निम्नलिखित रिट याचिकाएं "दूसरी श्रेणी" के भीतर आएंगी।

क्र संख्या	रिट पिटिशन का विवरण	उस आक्षेपित आदेश का दिनांक जिसको चुनौती दी जानी है
1	रिट याचिका-ए- संख्या 744/2020 (वाजिद अली और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)	11.02.2019
2	रिट याचिका-ए-नं. 126/2022 (अवधेश कुमार सिंह एवं 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	01.10.2021
3	रिट याचिका-ए-नं. 2377/2022 (भरत सिंह एवं 6 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)	18.08.2021

D. पक्षकारों का तर्क

(15) चूंकि रिट याचिकाओं की "पहली श्रेणी" के संबंध में सामान्य मुद्दा उठाया गया है, इसलिए रिट-ए संख्या-5188 वर्ष 2017 (राजेंद्र कुमार तिवारी और 56 अन्य) वाली रिट याचिका के तथ्यों को इन याचिकाओं में तथ्यों की उचित समझ के लिए लिया जा रहा है क्योंकि यह रिट याचिका मामलों के इस समूह में दायर की गई सबसे पुरानी याचिका है। जाहिर है, यह रिकॉर्ड से उपलब्ध है कि इस रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं ने 02.02.2017 के आक्षेपित आदेश को चुनौती

दी है, जिसमें 31.12.1989 से प्रभावी वेतन-निर्धारण को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना रद्द कर दिया गया था।

(16) याचिकाकर्ताओं के अनुसार, उक्त रद्दीकरण के प्रभाव के कारण याचिकाकर्ताओं के वेतन को 18.05.1994 से इसे पुनर्निर्धारित करके कम किया गया था, जिसके सिविल परिणाम हैं और इसे एकपक्षीय पारित नहीं किया जा सकता था। याचिकाकर्ताओं ने मामले की संक्षिप्त पृष्ठभूमि देते हुए तर्क दिया कि उन्हें शुरु में "अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर" के रूप में नियुक्त किया गया था और दिनांक 20.02.1992 की अधिसूचना के माध्यम से, उन्हें 550 रुपये प्रति माह के निश्चित मानदेय के साथ "ट्यूबवेल सहायक" के रूप में फिर से नामित किया गया था और वर्तमान में वे सभी वेतनमान में काम कर रहे थे, जो तृतीय श्रेणी का गैर-राजपत्रित पद है।

(17) यह याचिकाकर्ता का मामला है कि कुछ अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों ने मजदूरी के भुगतान के संबंध में एक औद्योगिक विवाद उठाया, जिसे श्रम न्यायालय द्वारा अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर के पक्ष में दिया गया था, जिसके कारण प्रतिवादी/राज्य द्वारा रिट संख्या-1502 (एस/एस) 1992 में इस न्यायालय के समक्ष इसे चुनौती दी गई। दिनांक 20-02-1992 की उपर्युक्त अधिसूचना और नियत मानदेय को चुनौती देते हुए और नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान वेतन का दावा करते हुए अन्य ट्यूबवेल ऑपरेटरों द्वारा भी इसी प्रकार के अनेक मामले इस न्यायालय के समक्ष दायर किए

गए। रिट याचिकाओं के इन समूहों का निर्णय रिट याचिका संख्या-3558/1992: सुरेश चंद्र तेवई और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पारित दिनांक 18.05.1994 के आदेश के माध्यम से किया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने कहा था कि अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर नियमित रूप से नियुक्त ट्यूबवेल ऑपरेटरों के समान वेतन के हकदार थे और दिनांक 20.02.1992 की अधिसूचना को भी रद्द कर दिया गया था। प्रतिवादी/राज्य ने हालांकि उक्त आदेश के खिलाफ विशेष अपील और विशेष अनुमति याचिका दायर की, लेकिन इसे खारिज कर दिया गया था।

(18) इसी बीच, कुछ अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों ने इस न्यायालय से संपर्क किया और श्रम न्यायालय पंचाट की तारीख से नियमित वेतनमान का दावा किया और इस प्रकार 31-03-1989 से लाभ का दावा किया जैसा कि कुछ अंशकालिक नलकूप ऑपरेटरों को दिया गया था, जिसकी अनुमति इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दी गई थी।

(19) याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या-1820/2002 (राजेंद्र कुमार तिवारी और 88 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के माध्यम से नियमित वेतनमान ट्यूबवेल ऑपरेटरों पर लागू वेतनमान पर 31.03.1989 से वेतन के बकाया भुगतान का दावा करते हुए इस न्यायालय से भी संपर्क किया, जिसे रिट याचिका संख्या-7489 (एस/एस)/2000 (एस/एस)/2000 (अवधेश कुमार सिंह मामला) (इसके बाद "माध्यमिक आदेश" के रूप में संदर्भित किया जाएगा), जो बदले में रिट

संख्या-3558/1992 (एसएस) (इसके बाद "प्राथमिक आदेश" के रूप में संदर्भित) में पारित दिनांक 18.05.1994 के एक अन्य आदेश के आधार पर तय किया गया था।

(20) चूंकि, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अनुपालन नहीं किया गया था, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय की अवमानना अधिकारिता का आह्वान किया, जिसमें सक्षम प्राधिकारी ने दिनांक 06.08.2012 के आदेश के तहत माननीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश का अनुपालन किया, जिससे याचिकाकर्ता को 31.03.1989 से वेतनमान प्रदान किया गया, हालांकि यह समीक्षा याचिका के अंतिम निर्णय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लंबित अन्य समान मामलों के समीक्षा याचिका के अधीन था 26/2012 और एस.एल.पी.(सी) संख्या-5283/2011 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रोशन लाल और अन्य), इसी तरह के परिस्थितिजन्य मामले में दायर किया गया। यह सूचित किया गया है कि समीक्षा और एस.एल.पी. दोनों को क्रमशः दिनांक 19.11.2013 और 11.08.2014 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

(21) इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं द्वारा यह कहा गया है कि रिट याचिका संख्या-1820 (एस/एस) वर्ष 2002 (राजेंद्र कुमार तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में दिनांक 23.02.2010 के आदेश के खिलाफ राज्य द्वारा दायर की गई एस.एल.पी. (सी) संख्या-1170/2016 को भी दिनांक 22.01.2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था,

जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि श्रम न्यायालय के पंचाट द्वारा आच्छादित किए गए 73 ट्यूबवेल ऑपरेटरों को छोड़कर, अन्य सभी ट्यूबवेल ऑपरेटर 18.05.1994 से प्रभावी नियमित वेतनमान के हकदार होंगे यानी सुरेश चंद्र तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आदेश पारित करना। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त पृष्ठभूमि में 31.03.1989 से सेवा लाभ प्रदान किए गए थे।

(22) यह दावा किया गया है कि दिनांक 12.02.2017 के आक्षेपित पत्र से याचिकाकर्ताओं के वेतन में 2000/- से 3,000/- के बीच की कटौती हुई है, और यह दीवानी परिणाम हैं, और सुनवाई का अवसर दिए बिना उत्तरदाताओं द्वारा पारित नहीं किया जाना चाहिए था। इस प्रकार, वे दावा करते हैं कि आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

(23) राज्य द्वारा प्रति-शपथ पत्र दायर किया गया था, जिसमें आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए अग्रणी तथ्यों की गणना की गई थी। उनके अनुसार, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा सुरेश चंद्र तिवारी के मामले में दिनांक 18.05.1994 का आदेश पारित करने के बाद, राज्य ने एस.एल.पी. संख्या-16219/1994 दायर की, जिसे दिनांक 22.03.995 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसके खिलाफ एक समीक्षा भी दायर की गई, जिसे भी दिनांक 18.10.1995 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था।

इस प्रकार, राज्य ने इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुपालन में, दिनांक 27.10.1995 को एक आदेश जारी किया जिसमें निर्णय की उक्त तारीख से दिनांक 18.5.1994 के निर्णय और आदेश द्वारा आच्छादित किए गए सभी याचिकाकर्ताओं को ट्यूबवेल ऑपरेटरों का वेतनमान प्रदान किया गया था। इसके बाद, 10.11.1995 को एक और सरकारी आदेश जारी किया गया था, जिसमें उन व्यक्तियों को, जो श्रम न्यायालय के दिनांक 15.07.1988 के पंचाट द्वारा आच्छादित किए गए थे, उन्हें 31.03.1989 से ट्यूबवेल ऑपरेटर के नियमित वेतनमान का लाभ दिया गया था। यह प्रतिवादियों/राज्य का अपने जवाबी हलफनामे में प्रस्तुत किया गया है कि इसके बाद, विभिन्न ट्यूबवेल ऑपरेटरों द्वारा कई मुकदमे दायर किए गए, जो 31.03.1989 से नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों के वेतनमान के लाभ का दावा करते हुए या उनकी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से थे, जिसे इस न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई थी और कुछ ट्यूबवेल ऑपरेटरों द्वारा दायर अवमानना याचिका के अनुसरण में, वेतनमान का लाभ 31.03.1989 से दिया गया था, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष समीक्षा और अपील के परिणाम के अधीन था।

(24) राज्य द्वारा आगे यह कहा गया है कि कुछ मामलों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर अपील को भी खारिज कर दिया गया था, हालांकि, दिनांक 22.01.2016 के आदेश के तहत, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एस.एल.पी. संख्या-883/2016 (उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम मुन्ना

लाल त्रिवेदी और अन्य) के साथ टैग किए गए एस.एल.पी. के एक समूह का फैसला करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि श्रम न्यायालय के आदेश के अंतर्गत आने वाले ट्यूबवेल ऑपरेटरों को छोड़कर अन्य ट्यूबवेल ऑपरेटर केवल 18-05-1994 से नियमित वेतनमान के हकदार होंगे। इसी आशय का आदेश एस.एल.पी. (सी) संख्या-348612015 (राकेश कुमार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित दिनांक 04.01.2016 है; एस.एल.पी. (सी) संख्या-1696-1697/2016 (कमलेश कुमार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 29.01.2016; एस.एल.पी. (सीसी) संख्या-1066/2016 (उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम इरफान अली और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 2017.07.2016 है।

(25) यह प्रतिवादी/राज्य का मामला है कि याचिकाकर्ताओं का भुगतान न्यायालय के आदेश के अनुसार सशर्त किया गया था और इस तरह, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय और आदेश पारित करने के बाद, जब मुद्दा स्पष्ट हो गया था, वेतनमान के पुनः निर्धारण और परिणामस्वरूप वसूली से संबंधित उनका आदेश उचित है। यह कहा गया था कि यदि याचिकाकर्ताओं से वसूली नहीं की गई थी, तो 14990 के बारे में अन्य समान रूप से स्थित व्यक्ति, उस तारीख से वेतन के भुगतान की मांग करेंगे जब याचिकाकर्ताओं को वेतन का भुगतान किया गया था और जिसका बोझ राज्य पर लगभग 600 करोड़ रुपये का होगा।

(26) रिट याचिका के दूसरे संकलन में, यह आरोप लगाया गया है कि यद्यपि पूर्वोक्त अंतरिम आदेश प्रतिवादियों को दिया गया था, तथापि, उन्होंने इसकी उपेक्षा की और पेंशन/उपदान से वसूली का आक्षेपित आदेश पारित किया। यह सामान्य आधार है कि वसूली का उक्त आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना एकतरफा और पारित किया गया है। यह भी आरोप लगाया गया है कि ये याचिकाकर्ता कम वेतन पाने वाले कर्मचारी हैं और यदि उपरोक्त राशि की वसूली की अनुमति दी जाती है, तो उन्हें बड़ी वित्तीय तंगी और कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। उन्होंने रिट याचिका संख्या-31262/2017 (रमेश चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित इस न्यायालय के दिनांक 08.01.2018 के आदेश पर भी भरोसा किया, जिसके तहत इसी तरह के आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया था और इसे उत्तरदाताओं के लिए नए आदेश पारित करने के लिए खुला छोड़ दिया गया था।

(27) प्रतिवादियों द्वारा 06.03.2020 को जवाबी हलफनामा दायर किया गया था, जिसमें स्वीकार किए गए तथ्यों और पक्षों के बीच मुकदमेबाजी का वर्णन किया गया था। उत्तरदाताओं द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि ट्यूबवेल ऑपरेटरों के पद पर नियमित होने के बाद और सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर, याचिकाकर्ता सेवाओं से सेवानिवृत्त हो गए हैं और इस तरह सरकारी खजाने के पैसे की रक्षा के लिए आक्षेपित आदेश में उल्लिखित राशि को ग्रेच्युटी से रोक दिया गया है,

हालांकि शेष बकाया के साथ-साथ पेंशन का भुगतान याचिकाकर्ताओं को नियमित रूप से किया जा रहा था। यह प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका संख्या-5188 (एस/एस) वर्ष 2017 के निर्णय के अधीन राशि को रोक दिया गया है।

E. पक्षकारों के तर्क

(28) रिट याचिकाकर्ताओं के लिए पेश होने वाले अधिवक्ताओं श्री ए.एम त्रिपाठी, श्री आर.सी तिवारी, श्री वाई.के मिश्रा ने अपने सामान्य विद्वान तरीके से प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं को निर्णयों के अनुसार और इस माननीय न्यायालय के अनुपालन में उक्त वेतनमान में अपना वेतन मिल रहा था। प्रतिवादी द्वारा वेतनमान के किसी भी पुनर्निर्धारण से पहले याचिकाकर्ताओं को नहीं सुना गया था और चूंकि वेतन के पुनः निर्धारण के परिणामस्वरूप वेतन में कमी और प्रस्तावित वसूली के दीवानी परिणाम हुए, इसलिए प्रतिवादी/राज्य की ओर से सुनवाई का मौका अनिवार्य था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि वर्तमान मामलों में न केवल याचिकाकर्ताओं को अदालत के आदेश के तहत 31-03-1989 से 18-05-1994 तक वेतन मिल रहा है, बल्कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी इस तरह के भुगतानों की वसूली का निर्देश नहीं दिया है। इसके अलावा, वे सुप्रीम कोर्ट के 04.01.2016 के आदेश के पक्षकार नहीं थे, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वेतनमान लागू होने की तारीख से संबंधित स्पष्टीकरण दिया था। उनके अनुसार, उच्च न्यायालय द्वारा 31-03-1989 से वेतनमान

प्रदान करने के आदेश का विलय माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ विलय हो गया है और उनके अपने मामले में और किसी भी मामले में, वेतनमान की प्रयोज्यता से संबंधित मुद्दे का निपटारा हो गया है और इसे पुन नहीं खोला जा सकता क्योंकि इसे न्यायिक सिद्धांतों द्वारा रोक दिया जाएगा। उन्होंने विलय के सिद्धांत के लिए बबलू सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (2019) 12 एस.सी.सी. 403 के फैसले और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय (i) प्रदीप कुमार मस्कारा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 2 एस.सी.सी. 653 और (ii) कलिंग माइनिंग कॉर्पोरेशन बनाम भारत संघ, (2013) 5 एस.सी.सी. 252 में पारित निर्णय पर भी भरोसा किया।

(29) याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा तर्क की दूसरी पंक्ति भी ली गई है कि वेतनमान के संशोधन के परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ताओं का वेतन न केवल कम हो गया है, बल्कि अब सरकार ने 31.03.1989 से 18.05.1994 की अवधि के दौरान किए गए अधिक भुगतान की वसूली के लिए नोटिस जारी किए हैं और उस निर्देश में उन्हें देय ग्रेच्युटी राशि को भी अवैध रूप से रोक दिया है। उन्होंने पंजाब राज्य और अन्य बनाम रफीक मसीह के मामले पर भरोसा किया है जो 2014(8) एस.सी.सी. 883 में रिपोर्ट किया गया था कि चूंकि ट्यूबवेल ऑपरेटर श्रेणी-III के कर्मचारी हैं, इसलिए भुगतान किया गया वेतन वसूल करने योग्य नहीं है। इसके अलावा, अधिवक्ता के अनुसार, ग्रेच्युटी की राशि को रोकना ग्रेच्युटी अधिनियम के भुगतान के प्रावधानों का पूरी

तरह से उल्लंघन है और यहां तक कि अन्यथा भी याचिकाकर्ताओं की ग्रेच्युटी को सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 351-ए के प्रावधानों के अनुसार छोड़कर नहीं रोका जा सकता है क्योंकि ग्रेच्युटी को सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि का हिस्सा माना जाता है। उनके अनुसार, प्रतिवादी ने उक्त नियमों के अनुसार उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की है और इस तरह यह अवैध था। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं ने जसवंत सिंह गिल बनाम भारत कोकिंग कोल लिमिटेड और अन्य, (2007)1 एस.सी.सी. 663 और नेतराम साहू बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य, (2018)5 एस.सी.सी. 430 के फैसले पर भरोसा किया है।

(30) दूसरी ओर, श्री रमेश कुमार सिंह, अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री संजय सरिन, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता और श्री तुषार वर्मा, विशेष अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त प्रतिवादी-राज्य की ओर से तर्कों का नेतृत्व किया। प्रतिवादियों द्वारा लिखित प्रस्तुतियां भी दायर की गई हैं। संक्षेप में, यह प्रस्तुत किया गया है कि कई मुकदमेबाजी, जिनमें रिट याचिकाओं के वर्तमान समूह में याचिकाकर्ताओं की मुकदमेबाजी भी शामिल है, को 22/01/2016 के आदेश द्वारा अग्रणी एस.एल.पी. संख्या-186 वर्ष 2014 में पारित आदेशों द्वारा समाप्त किया गया है, जिसके द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एस.एल.पी. के समूह पर विचार करते हुए विवाद के संबंध में मुकदमेबाजी के पूरे इतिहास को देखने के बाद, सुरेश चन्द्र तिवारी (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के अनुसरण में नियमित वेतनमान प्रदान करने के

संबंध में अंशकालिक नलकूप संचालकों द्वारा उठाए गए मुद्दों को निपटाया है।

(31) याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिए गए विलय के सिद्धांत का खंडन अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा कुन्हैयम और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य: (2000) 6 एस.सी.सी. 359 के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला देकर किया गया है। उनके द्वारा यह तर्क दिया गया है कि विलय का सिद्धांत न तो संवैधानिक कानून का सिद्धांत है और न ही वैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त सिद्धांत है क्योंकि इसे न्याय वितरण प्रणाली के पदानुक्रम में मालिकाना के सिद्धांतों पर स्थापित किया जा सकता है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने संदर्भित किया और तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के मामले में चुनौती देने वाली राज्य द्वारा दायर एस.एल.पी. को खारिज कर दिया गया था और इस तरह यह एकल न्यायाधीश के आदेश के साथ विलय नहीं करता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से उक्त निर्णय के निष्कर्ष भाग पर भरोसा किया। इस प्रकार, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि चूंकि एस.एल.पी. पर पारित और याचिकाकर्ताओं द्वारा अपने स्वयं के मामले में भरोसा किया गया आदेश, बिना किसी निष्कर्ष के खारिज कर दिया गया था, इसलिए विलय का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

(32) आगे यह तर्क दिया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित कुछ बर्खास्तगी आदेश पर याचिकाकर्ताओं की निर्भरता समान रूप से स्थित रिट याचिकाकर्ताओं पर समान बल के साथ लागू

होगी, यह भी सही नहीं है क्योंकि यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि संविधान का अनुच्छेद 14 अवैधता या धोखाधड़ी को बनाए रखने के लिए नहीं है, यहां तक कि अन्य मामलों में किए गए गलत निर्णयों को बढ़ाकर भी। उक्त प्रावधान नकारात्मक समानता की परिकल्पना नहीं करता है बल्कि इसका केवल एक सकारात्मक पहलू है। इस प्रकार, यदि कुछ अन्य समान व्यक्तियों को अनजाने में या गलती से कुछ राहत/लाभ प्रदान किया गया है, तो ऐसा आदेश दूसरों को भी समान राहत प्राप्त करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं देता है।

(33) अतिरिक्त महाधिवक्ता ने जोरदार ढंग से इस बात को सामने लाने की कोशिश की है कि चूंकि याचिकाकर्ताओं को 31/3/1989 से वेतनमान का लाभ मिला है और अब वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं, इस प्रकार प्रतिवादी/राज्य ने ग्रेच्युटी राशि को रोक दिया है, क्योंकि यह पाया गया था कि याचिकाकर्ताओं को पुनः निर्धारण/पुनरीक्षण आदेश पारित करने के बाद अतिरिक्त भुगतान किया गया था, जिसकी विधिवत सूचना याचिकाकर्ताओं को दी गई थी। इस प्रकार, सरकारी खजाने के पैसे की रक्षा के लिए आक्षेपित आदेशों में उल्लिखित राशि को ग्रेच्युटी से रोक दिया गया है और इसके अलावा जो भी शेष बकाया था, उसका भुगतान किया गया है और याचिकाकर्ताओं को नियमित पेंशन का भी भुगतान किया जा रहा है।

(34) इसके अलावा, सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 351-ए पर याचिकाकर्ताओं की निर्भरता के संबंध में, विनियमों के तहत केवल

प्रावधानों से संबंधित है, जिसमें एक सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी को देय ग्रेच्युटी को रोका जा सकता है, वरिष्ठ अधिवक्ता ने सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 922 का उल्लेख किया, जिसमें कहा गया है कि किसी भी सरकारी बकाया राशि का पता लगाया जा सकता है जिसे मृत्यु सह सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी से भी वसूल किया जा सकता है और इस तरह यह तर्क दिया गया है कि ग्रेच्युटी को रोकना कानूनी रूप से स्वीकार्य है और कानून के अनुसार है।

(35) याचिकाकर्ताओं द्वारा संदर्भित पंजाब राज्य बनाम रफीक मसीह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की प्रयोज्यता के रूप में, वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं का मामला अलग है और उपरोक्त निर्णय वर्तमान मामलों में लागू नहीं होता है, हाल ही में सिविल अपील संख्या-2229 वर्ष 2022 (मेखा राम और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य) में दिए गए निर्णय के मद्देनजर 29/03/2022 को निर्णय लिया गया। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि ये याचिकाएं किसी भी योग्यता से रहित हैं और इन्हें खारिज कर दिया जाना चाहिए।

(36) इस अदालत ने मुख्य मामले में उत्तरदाताओं को नोटिस जारी करते हुए 08.03.2017 को एक अंतरिम आदेश पारित किया था, जिसमें याचिकाकर्ताओं के वर्तमान वेतन को आक्षेपित आदेश के संदर्भ में देय बनाया गया था, हालांकि, याचिकाकर्ता को पहले से भुगतान की गई राशि की कोई वसूली इस अदालत द्वारा निर्देशित नहीं की गई थी।

यह भी निर्देश दिया गया था कि उक्त अंतरिम आदेश रिट याचिका के आगे के परिणाम के अधीन होगा।

F. चर्चा और निष्कर्ष

(37) पक्षकारों के अधिवक्ताओं को विस्तार से सुनने के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि मुख्य विवाद याचिकाकर्ताओं के वर्तमान संकलन के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 04.01.2016 और 22.01.2016 के आदेश की प्रयोज्यता और परिणामों के तथ्य के इर्द-गिर्द घूमता है। यह मुद्दा अब एकीकृत नहीं है कि रिट याचिका संख्या-3558 (एस/एस) वर्ष 1992 (सुरेश चंद्र तिवारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) और 49 अन्य समान रिट याचिकाओं में दिनांक 18.05.1994 के निर्णय और आदेश के पारित होने के साथ, नियमित अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों के साथ अंशकालिक ट्यूब-कूप ऑपरेटरों की वेतन समानता से संबंधित मुद्दा, इस मुद्दे को अंततः इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एस.एल.पी. (सी) संख्या-16219/1994 के माध्यम से दायर अपील को खारिज करने के साथ आराम पर संकलन किया गया था, जिसका फैसला 22.03.1995 को हुआ था। इसके अतिरिक्त, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उक्त आदेश के विरुद्ध दायर पुनरीक्षण याचिका भी दिनांक 18-10-1995 के आदेश द्वारा समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत की टिप्पणी के साथ खारिज कर दी गई है।

(38) स्पष्ट रूप से, उत्तर प्रदेश सरकार ने 27.10.1995 को एक आदेश जारी किया

जिसमें वही वेतनमान प्रदान किया गया जो नियमित ट्यूबवेल ऑपरेटरों को दिया गया था, सभी याचिकाकर्ताओं (अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों) को निर्णय की तारीख यानी 18.5.1994 से इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.5.1994 द्वारा आच्छादित किया गया था। दिनांक 10-11-1995 को एक पृथक सरकारी आदेश भी जारी किया गया था जिसमें श्रम न्यायालय पंचाट के अंतर्गत आने वाले सभी व्यक्तियों को समान वेतनमान दिया गया था।

(39) इसके अलावा, उपरोक्त सरकारी आदेशों के जारी होने के बाद, रिट याचिका संख्या-103/1996 (जय करण सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) सहित कई रिट याचिकाएं इस अदालत के समक्ष इसी तरह स्थित अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों और उनके संघों द्वारा दायर की गईं, जिन्हें इस अदालत की एकल पीठ द्वारा दिनांक 25.04.1996 के आदेश द्वारा सुरेश चंद तिवारी मामले की तरह वेतन-समता का लाभ भावी-प्रभाव से प्रदान करते हुए अनुमति दी गई थी। हालांकि, ऐसा लगता है कि यह अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटर (साथ ही एसोसिएशन) एकल न्यायाधीश के उक्त फैसले से खुश नहीं थे, जहां तक यह नियमित वेतन-समानता का लाभ रखता था और इस तरह इस अदालत की एक डिवीजन बेंच के समक्ष अपील दायर करता था। इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 04-12-1998 के आदेश के तहत इन ट्यूबवेल ऑपरेटरों के अनुरोध को स्वीकार कर लिया और एकल न्यायाधीश के आदेश को इस सीमा तक संशोधित किया कि

सुरेश चंद तिवारी मामले के निर्णय के पारित होने की तारीख से वेतन-समानता का लाभ उपलब्ध होगा। इस प्रकार, एक जैसे स्थित सभी ट्यूबवेल ऑपरेटरों को नियमित वेतन का भुगतान केवल 18.05.1994 से किया जाने लगा।

प्रभावी तिथि से संबंधित पहली

(40) डिवीजन बेंच (उल्लिखित उपरोक्त) के निर्णय के मद्देनजर, प्रथम दृष्टया ऐसा लगता है कि वर्ष 1999-2000 तक सुरेश चंद तिवारी मामले से उत्पन्न होने वाले लाभ की प्रयोज्यता की तारीख के संबंध में मुद्दा सुलझ गया था। हालांकि, जाहिरा तौर पर, पूरा भ्रम कुछ छह वर्षों के बाद, इस अदालत के समक्ष एक रिट याचिका संख्या-7489 (एस/एस) वर्ष 2000 (अवधेश कुमार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) दायर करने के साथ शुरू हुआ। उक्त रिट याचिका पर पहली तारीख 21.12.2000 को फैसला किया गया था, जिसमें इस अदालत के एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट याचिका के याचिकाकर्ताओं को 31.03.1989 से नियमित वेतनमान का लाभ दिया था, न कि 18.05.1994 से, हालांकि आदेश में उल्लेख किया गया था कि राहत सुरेश चंद तिवारी मामले के संदर्भ में दी गई थी। यह भ्रम तब और बढ़ गया जब एकल न्यायाधीश के उक्त आदेश के विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर विशेष अपील को इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 22-05-2009 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया और यहां तक कि समीक्षा आदेश को भी दिनांक 20-07-2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

(41) हालांकि उत्तर प्रदेश राज्य ने डिवीजन बेंच के आदेशों के खिलाफ एस.एल.पी. (सिविल) संख्या-17690/2010 दायर की, पर इसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देरी के आधार पर दिनांक 29.11.2010 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था। यहां तक कि शीर्ष न्यायालय के समक्ष की गई समीक्षा को भी दिनांक 13-10-2011 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

(42) इस प्रकार, अवधेश कुमार सिंह मामले में दिनांक 21.12.2000 के आदेश के पारित होने के साथ शुरू हुआ भ्रम माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समीक्षा आदेश को खारिज करने के साथ अपने चरम पर पहुंच गया, हालांकि रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि अवधेश कुमार सिंह मामले में, एकल पीठ ने रिट याचिका 2679/1993 (राजेश्वर प्रसाद शुक्ला और 47 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) ("प्राथमिक आदेश") में इलाहाबाद में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 23.03.1999, संशोधित आदेश/निर्णय दिनांक 30.05.1997 के आदेश को नोट किया और संदर्भित किया। राजेश्वर प्रसाद शुक्ला मामले में, यह निर्देश दिया गया था कि भुगतान याचिकाकर्ताओं के बगल में स्थित समान रूप से कनिष्ठ के भुगतान की तारीख से किया जाएगा, हालांकि संशोधन आवेदन में यह उल्लेख किया गया था कि सुरेश चन्द तिवारी मामले में नियमित वेतनमान प्रदान करने का लाभ 31-03-1989 से दिया गया था और इस प्रकार उक्त को ध्यान में रखते हुए एकल पीठ ने दिनांक 23-03-1999 के अपने संशोधन आदेश के तहत 31-03-1989 से वेतन-समता

को प्रभावी बनाने के अपने पूर्व आदेश को संशोधित किया था।

(43) जाहिरा तौर पर, जय करण के मामले (उपरोक्त) में इस अदालत की एक डिवीजन बेंच द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.12.1998 को विद्वान एकल न्यायाधीश के ध्यान में नहीं लाया गया था, जिसके कारण दिनांक 23.03.1999 (राजेश्वर प्रसाद शुक्ला मामला) का आदेश पारित किया गया था, जिसमें राजेश्वर प्रसाद शुक्ला के मामले में पारित उक्त संशोधित आदेश के आधार पर अवधेश सिंह मामले का फैसला किया गया था। इसके अलावा, यह मुद्दा और अधिक जटिल हो गया क्योंकि अंततः अवधेश सिंह मामला सुप्रीम कोर्ट में चला गया और देरी के कारण खारिज कर दिया गया, फिर भी तथ्य यह रहा कि जिस आधार पर अवधेश सिंह मामले का फैसला किया गया था, वह बाद में पलट गया था क्योंकि उत्तर प्रदेश राज्य ने विशेष अपील के माध्यम से इस अदालत की डिवीजन बेंच के समक्ष दिनांक 30.05.1997 और 23.03.1999 (राजेश्वर प्रसाद शुक्ला के मामले में पारित) के आदेश के खिलाफ एक विशेष अपील को दायर दी थी। माननीय उच्चतम न्यायालय ने रिट याचिका सं 548 वर्ष 2000 (उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम विनोद कुमार एवं अन्य) और अन्य संबंधित मामले जो सभी को दिनांक 14.07.2000 के एक आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी, जिससे एकल न्यायाधीश के आदेश को इस हद तक संशोधित किया गया कि सुरेश चंद तिवारी मामले में पारित निर्णय की तारीख से वेतन समानता प्रदान की गई।

(44) इस प्रकार, अवधेश कुमार सिंह के मामले का आधार इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा दिनांक 14.07.2000 के आदेश द्वारा संशोधित किया गया था और उक्त तथ्य इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के ध्यान में नहीं लाया गया था, जिसने दिनांक 21.12.2000 को एक आदेश पारित किया था, जो 'पर-क्यूरियम' में था। चूंकि, अवधेश कुमार सिंह के मामले का फैसला पर-क्यूरियम में किया गया था, इसलिए अवधेश कुमार सिंह के मामले के आधार पर तय की गई रिट याचिका (एसएस) संख्या-1820 वर्ष 2002 (राजेंद्र कुमार तिवारी बनाम यूपी के राज्य) की पिछली रिट याचिका भी पर-क्यूरियम में है।

(45) इसी आशय की अन्य दो रिट याचिकाएं संख्या-2936 (एस/एस) वर्ष 2001 (रोशन लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) और रिट याचिका संख्या-4383 (एस/एस) वर्ष 2010 (आस मोहम्मद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) होंगी, जिन पर क्रमशः पहली तारीख यानी 22/06/2001 और 10/08/2010 को फैसला किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि इन दोनों रिट याचिकाओं का निपटारा अवधेश सिंह मामले में पारित आदेश दिनांक 21.12.2000 के आधार पर किया गया था। यहां तक कि इस दोनों मामलों में, पहले अवधेश सिंह मामले की तरह, प्रतिवादी/राज्य ने डिवीजन बेंच के समक्ष विशेष अपील को दायर दी, जिसे दिनांक 18.08.2010 (रोशन लाल) और 15.03.2011 (आस मोहम्मद) के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था और यहां तक कि एस.एल.पी. (सी) संख्या-5283/2011 और एस.एल.पी. (सी) संख्या-

13692-93/2012 के तहत इस आदेश के खिलाफ दायर एस.एल.पी. को भी 13.08.2014 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। राज्य द्वारा दायर समीक्षा में भी क्रमशः दिनांक 18.03.2015 और 01.12.2014 के आदेश के अनुसार बर्खास्तगी का वही हश्र हुआ और दोनों मामलों में राज्य द्वारा दायर किए गए उपचारात्मक का उल्लेख नहीं किया गया, जिसका परिणाम भी दिनांक 06.08.2015 के आदेश के अनुसार एक ही परिणाम के साथ मिला।

(46) यदि उपर्युक्त मामले उन मामलों से संबंधित थे, जिनमें अंशकालिक ट्यूबवेल ऑपरेटरों को 31.03.1989 से नियमित वेतन-निर्धारण लाभ दिया गया था, तो ऐसे कई मामले थे जिनमें याचिकाकर्ता के दावे को इस न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था; उदाहरण के लिए:

"रिट याचिका संख्या-155 (एस/एस) वर्ष 2001 (राजेंद्र प्रसाद मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) इस माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई थी, जिसके द्वारा एकल न्यायाधीश ने निर्णय/आदेश दिनांक 26/04/2001 के माध्यम से रिट याचिका खारिज करते हुए 31/03/1989 से नियमित वेतनमान देने से इनकार कर दिया था। उस मामले में याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर विशेष अपील को भी दिनांक 23.04.2014 को खंडपीठ द्वारा खारिज कर दिया गया था।

हालांकि, रिट याचिका संख्या-1818 (एस/एस) वर्ष 2002 (कमलेश कुमार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) का

निर्णय दिनांक 16/03/2010 के आदेश के साथ अन्य रिट याचिकाओं के साथ 31.03.1989 से नियमित पे-सेल देने के पक्ष में किया गया था और यहां तक कि राज्य द्वारा दायर समीक्षा को भी 23/07/2013 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। हालांकि, राज्य द्वारा डिवीजन बेंच के समक्ष अपील पर, अपील को 19 अन्य विशेष अपीलों के साथ दिनांक 12.10.2015 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी।

जाहिर है, डिवीजन बेंच के आदेश से पीड़ित कुछ रिट याचिकाकर्ताओं ने विभिन्न व्यक्तिगत एस.एल.पी.-एस को दायर कीं, जिन सभी को दिनांक 04.01.2016 के आदेश के द्वारा खारिज कर दिया गया था और यहां तक कि उक्त आदेश के खिलाफ दायर समीक्षा को भी 21.04.2016 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। इसके अलावा, एस.एल.पी. (सी) संख्या-186/2014 सहित समान एस.एल.पी. 22.01.2014 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए आई, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर एस.एल.पी. को खारिज करते हुए विशेष रूप से भ्रम को स्पष्ट किया और निष्कर्ष निकाला कि नियमित वेतनमान केवल उन 73 कामगारों को दिया जा सकता है जिन्होंने औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू की थी, जिसकी परिणति 15/07/1989 के पंचाट में हुई थी। अन्य सभी के मामलों में, नियमित वेतनमान केवल प्रभावी था। सुरेश चन्द्र तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में दिनांक 18/05/1994 को एक रिट याचिका दायर की

गई थी। इसके अलावा, राज्य को लंबित मामलों में इस आदेश को उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाने का निर्देश दिया गया था ताकि कम से कम भविष्य में उच्च न्यायालय ऐसे मामलों में कर्तव्यनिष्ठ हो।

(47) प्रासंगिक रूप से, अंतराल में तीन और रिट याचिकाएं दायर की गईं, जिसमें एकल न्यायाधीश ने 31.03.1989 से नियमित वेतनमान के लिए निदेश दिया, जिसे डिवीजन बेंच द्वारा भी बरकरार रखा गया था, हालांकि अपील पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिवादी/राज्य की अपील की अनुमति दी। ये मामले हैं:

रिट नं. & विवरण	एकल न्यायाधीश आदेश	डिवीजन बेंच का आदेश	माननीय सर्वोच्च न्यायालय
रिट पिटिश न न. 1820 (एस/एस) of 2002	23.02.2010	विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-12 वर्ष 2012 दिनांक 19.12.2013 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई	एसएलपी संख्या 1170 वर्ष 2016 दिनांक 22/01/2016 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई
रिट पिटिश न न. 9138	20.12.2011	विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या-	एसएलपी संख्या 1069 वर्ष 2016

(एस/एस) of 2011		778 वर्ष 2012 दिनांक 11.09.20 14 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई	दिनांक 22/01/20 16 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई
रिट पिटिश न न. 631 (एस/एस) of 2012	02.02.20 12	विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 704 वर्ष 2012 आदेश दिनांक 24/03/20 15 द्वारा खारिज	एसएलपी संख्या 83 वर्ष 2016 दिनांक 22/01/20 16 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई

(48) इस प्रकार, इस न्यायालय का विचार है कि प्रभावी तिथि से संबंधित पहली जिस पर एक ट्यूबवेल ऑपरेटर नियमित वेतनमान के लिए हकदार बन जाएगा यानी क्या 31.03.1989 जैसा कि याचिकाकर्ताओं द्वारा दावा किया गया है या 18.05.1994 यानी सुरेश चंद तिवारी मामले के पारित होने की तारीख, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 04.01.2016 और 22.01.2016 को निपटाया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपील को खारिज करते हुए स्पष्ट रूप से कहा कि वे ट्यूबवेल ऑपरेटर, जो श्रम न्यायालय के आदेश का हिस्सा नहीं थे, सुरेश चंद तिवारी

मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में 18/05/1994 से नियमित वेतनमान के हकदार होंगे। इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पूरी बात को साफ करते हुए और उच्च न्यायालय के समक्ष इस मुद्दे में पैदा भ्रम पर विचार करते हुए, राज्य को निर्देश दिया कि वह सभी लंबित मामलों में दिनांक 22.01.2016 के उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के ध्यान में लाए, ताकि कम से कम भविष्य में उच्च न्यायालय ऐसे मामलों में कर्तव्यनिष्ठ हो।

(49) जाहिर है, चूंकि पैदा किए गए भ्रम को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केवल 04.01.2016 और 22.01.2016 को सुलझाया गया है, इसलिए प्रथम दृष्टया रिट याचिकाकर्ताओं को, जिन्होंने पहले मुकदमेबाजी के परिणाम का आनंद लिया था, को गलत नहीं ठहराया जा सकता है, खासकर जब वेतनमान पूर्वकाल की तारीख यानी 31.03.1989 से दिया गया था, जो अदालत के आदेश के आधार पर था। हालांकि, उक्त प्रस्ताव में एक चेतावनी है, क्योंकि यह न्यायालय इस तथ्य से बेखबर नहीं हो सकता है कि अदालत का आदेश जिसके आधार पर अवधेश सिंह मामले का फैसला एकल न्यायाधीश द्वारा किया गया और सर्वोच्च न्यायालय तक बरकरार रखा गया, जिसके परिणामस्वरूप एक श्रृंखला प्रतिक्रिया हुई और उसके बाद विभिन्न रिट याचिकाओं का आधार था, एक आदेश के आधार पर पारित किया गया था जिसे स्वयं इस न्यायालय की माननीय खंडपीठ द्वारा रद्द कर दिया गया था जैसा कि उपरोक्त का उल्लेख किया गया था। इस प्रकार, इक्विटी के

संतुलन को तथ्यों के पूर्वोक्त प्रतिस्पर्धी प्रस्ताव में समझा और तौला जाना चाहिए।

(50) हालांकि, इस अदालत ने पाया कि विलय के सिद्धांत पर रिट याचिकाकर्ताओं की केवल निर्भरता, यह तर्क देना कि प्रतिवादी/राज्य 04.01.2016 या 22.01.2016 के स्पष्टीकरण आदेश के आधार पर वेतनमान को फिर से तय नहीं कर सकता है, पूरी तरह से सही नहीं है, क्योंकि सबसे पहले स्पष्टीकरण हमेशा एक प्रस्ताव का होता है जो हमेशा अस्तित्व में रहता है और बरकरार रहता है। स्पष्टीकरण केवल मामले के संदर्भ में एक दृष्टिकोण और उसके अर्थ को व्यक्त करने के लिए प्रतीत होता है। दूसरे, विलय का सिद्धांत अवधेश सिंह मामले के आधार पर तय किए गए सभी मामलों पर लागू नहीं होगा, क्योंकि इनमें से प्रत्येक मामले में एस.एल.पी. को या तो परिवाद में खारिज कर दिया गया है या सीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया है। कुनहड़ययामेद & अन्य बनाम केरल राज्य और एक अन्य (2000(6) एस.एस.सी. 359) में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि अपील करने के लिए विशेष अनुमति से इनकार करने वाला आदेश एक गैर-आख्यापित वाला आदेश या आख्यापित आदेश हो सकता है। किसी भी मामले में यह विलय के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करता है और यह केवल तभी होता है जब अपील की अनुमति दी गई है और सर्वोच्च न्यायालय की अपीलीय अधिकारिता को लागू किया गया है, अपील में पारित आदेश विलय के सिद्धांत को आकर्षित करेगा; आदेश उलटने, संशोधन या केवल पुष्टि का हो सकता है।

(51) रिट याचिकाकर्ताओं ने जोरदार तर्क दिया है कि भले ही याचिकाकर्ताओं के सेवा में रहते हुए वेतन का कुछ गलत निर्धारण किया गया था, वे श्रेणी- III/IV के कर्मचारी हैं, पंजाब राज्य बनाम रफीक मसीह के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर उनके सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया से कटौती योग्य नहीं हो सकती है: (2015)4 एस.सी.सी. 334 भी सही नहीं हो सकता है, क्योंकि कोई भी निर्णय उस बिंदु पर एक अधिकार है जो वह तय करता है। इसके अलावा, रफीक मसीह मामले में, प्रतिवादियों (कर्मचारियों) को मौद्रिक लाभ दिए गए थे, जो उनकी पात्रता से अधिक थे। संबंधित सक्षम प्राधिकारी द्वारा उन्हें देय परिलब्धियों का निर्धारण करने में की गई गलती के परिणामस्वरूप ये लाभ उन्हें मिले। वर्तमान मामले में, संबंधित सक्षम प्राधिकारी द्वारा कोई गलती नहीं की गई है, लेकिन अतिरिक्त मौद्रिक लाभ अदालत के आदेश के तहत या अवमानना कार्यवाही के खतरे के तहत दिए गए हैं। यह 29/03/2022 को तय किए गए मेखा राम और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले का उल्लेख करेगा, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना कि यदि किसी भी अदालत के आदेश के मद्देनजर कोई मौद्रिक लाभ दिया गया है, तो उसे बहाली के सिद्धांत पर अच्छा बनाया जाना चाहिए क्योंकि अदालत के किसी कृत्य से किसी को भी नुकसान नहीं होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अदालत के आदेश के कारण अर्जित

मौद्रिक लाभों की वसूली की अनुमति दी, हालांकि, फिर से एक चेतावनी है, क्योंकि उस मामले में निजी प्रतिवादी अभी भी सेवा में थे और उक्त संगठन में काम कर रहे थे और कटौती को किशतों में भुगतान करने की अनुमति दी गई थी। हालांकि, वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हो चुके हैं और वसूली और सार्वजनिक धन की सुरक्षा के नाम पर उनके सेवानिवृत्ति लाभों को रोकने की मांग की गई है। इस प्रकार, फिर से प्रत्येक मामले के तथ्यों में एक प्रतिस्पर्धी प्रस्ताव निर्धारित किया जाना चाहिए, जिसमें याचिकाकर्ता हालांकि सेवानिवृत्त हो सकते हैं और वे तृतीय/चतुर्थ श्रेणी से संबंधित हैं, फिर भी क्या सरकार उन्हें किए गए अतिरिक्त भुगतान की वसूली के साथ आगे बढ़ सकती है।

(52) इस न्यायालय ने इन रिट याचिकाओं में आक्षेपित नोटिस/आदेशों के समग्र दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए एक अलग दृष्टिकोण से इस तथ्य पर भी विचार किया है। यह ध्यान दिया जाता है कि प्रतिवादी/राज्य ने पहली बार में रिट याचिकाकर्ताओं को सूचित करते हुए नोटिस जारी किया कि उन्हें भुगतान की गई अतिरिक्त राशि दिनांक 22.01.2016 के आदेश के अनुसार वसूल की जाएगी और उक्त जानकारी के आधार पर, प्रतिवादी/राज्य ने अतिरिक्त राशि की वसूली/समायोजन की अपनी आकांक्षाओं के अनुसरण में एक दूसरा नोटिस जारी किया है जिसमें रिट याचिकाकर्ताओं को सेवानिवृत्ति लाभों को रोकने के बारे में सूचित किया गया है। इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के बावजूद। इसके अलावा, ग्रेच्युटी राशि को रोकने

के लिए प्रतिवादी/राज्य की जल्दबाजी को आम बोलचाल की भाषा में नहीं समझा जा सकता है, खासकर जब ग्रेच्युटी को रोकने का एकमात्र प्रावधान सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 351A के तहत है, जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य पर लागू होता है, जो कुछ कठोर शर्तों को निर्धारित करता है, जो वर्तमान मामले में नहीं पाई जानी हैं। यद्यपि, प्रतिवादी/राज्य ने तर्क दिया है कि सिविल सेवा विनियमों का विनियमन 922, उन्हें ग्रेच्युटी को रोकने का अधिकार देता है, हालांकि, रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत होता है कि सेवानिवृत्ति देय राशि से राशि की वसूली/समायोजन का आदेश ऐसे किसी नियम का सहारा लिए बिना, और किसी भी मामले में, ग्रेच्युटी राशि को रोकने का आक्षेपित आदेश उपरोक्त नियमों के साथ-साथ ग्रेच्युटी अधिनियम का भुगतान बिना पारित किया गया है।

(53) इस प्रकार, प्रतिवादी/राज्य द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों का परीक्षण इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त विश्लेषण की निहाई पर किया जाना है। हालांकि, इस अदालत ने पाया कि आक्षेपित आदेश/नोटिस केवल माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.01.2016 के आधार पर पारित किए गए हैं, जैसा कि उपरोक्त का उल्लेख किया गया है।

(54) आक्षेपित आदेशों से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं के वेतनमान को कम करने और फिर से निर्धारित करने के सक्षम प्राधिकारी के निर्णय के नागरिक परिणाम हैं क्योंकि इसका प्रभाव न केवल वेतनमान को

कम करने पर पड़ता है, बल्कि प्रतिवादी द्वारा भुगतान की गई किसी भी अतिरिक्त राशि की वसूली पर भी विचार करता है। जाहिर है, ये आक्षेपित आदेश बिना कोई नोटिस जारी किए या रिट याचिकाकर्ताओं से कोई स्पष्टीकरण मांगे बिना पारित किए गए हैं। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन न करने के तथ्य को राज्य के अधिवक्ता द्वारा विवादित नहीं किया जा सकता है क्योंकि रिट याचिकाओं पर सुनवाई प्रदान करने का ऐसा कोई अवसर रिट याचिका में प्रतिवादी राज्य की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में नहीं जोड़ा गया है।

(55) यह कानून की स्थापित स्थिति है कि जब कोई निर्णय लिया जाता है जिसका नागरिक परिणाम होता है और दूसरे पक्ष के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन करने की आवश्यकता का अनिवार्य रूप से पालन किया जाना चाहिए, लेकिन यहां रिट याचिकाकर्ताओं को स्पष्टीकरण या सुनवाई मांगने का ऐसा कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया है। कोई भी निर्णय लेने से पहले सुनवाई प्रदान करने का अवसर अदालत की कार्यवाही में एक बुनियादी आवश्यकता माना जाता था। बाद में इस सिद्धांत को अन्य अर्ध-न्यायिक और अन्य न्यायाधिकरणों पर लागू किया गया और अंततः अब यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि प्रशासनिक कार्रवाइयों में भी, जहां प्राधिकरण के निर्णय के परिणामस्वरूप नागरिक परिणाम हो सकते

हैं, निर्णय लेने से पहले सुनवाई आवश्यक है।

(56) माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार यह टिप्पणी की है कि नैसर्गिक न्याय के नियम केवल उन क्षेत्रों में लागू होते हैं जो वैध रूप से बनाए गए किसी कानून के अंतर्गत नहीं आते हैं। इस प्रकार ये सिद्धांत देश के कानून के पूरक हैं। श्रीमती मेनका गांधी बनाम भारत संघ और अन्य, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 597 के प्रसिद्ध मामले में, यह देखा गया है कि यहां तक कि जहां कारण बताने के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है, फिर भी एक प्रस्तावित कार्रवाई में जो किसी व्यक्ति के अधिकारों को प्रभावित करती है, यह प्राधिकरण का कर्तव्य है कि वह सुनवाई का उचित अवसर दे। इस कर्तव्य को दंडात्मक या हानिकारक कार्रवाई करने की शक्ति रखने वाले प्राधिकरण द्वारा किए जाने वाले कार्य की प्रकृति से निहित कहा जाता है। रिट याचिकाकर्ताओं को स्पष्ट रूप से नागरिक परिणामों के साथ देखा गया है, लेकिन उन्हें अपने मूल वेतन में कटौती के खिलाफ कारण बताने का कोई अवसर नहीं दिया गया था। प्राधिकरण द्वारा उनका वेतन कम करने से पहले उन्हें नोटिस भी नहीं दिया गया था और कानून को ज्ञात किसी भी प्रक्रिया का पालन किए बिना उनकी पीठ पीछे आदेश दिया गया था। इस प्रकार, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया गया है और रिट याचिकाकर्ताओं को बिना सुने वित्तीय नुकसान उठाना पड़ा है। कार्रवाई में निष्पक्ष

खेल वारंट करता है कि ऐसा कोई भी आदेश जिसका प्रभाव नागरिक परिणामों से पीड़ित कर्मचारी पर है, संबंधित को नोटिस दिए बिना और उसे मामले में सुनवाई दिए बिना पारित नहीं किया जाना चाहिए।

(57) इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि वेतनमान को फिर से निर्धारित करने के लिए प्राधिकरण द्वारा जारी/पारित आक्षेपित नोटिस/आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन न करने के आधार पर विफल रहता है। परिणामस्वरूप, वेतनमान को पुनः निर्धारित करके पुनः निर्धारित की गई अतिरिक्त राशि की वसूली के लिए कोई भी निर्णय और प्रतिवादी द्वारा सेवानिवृत्ति लाभों को रोकने के लिए की गई कोई भी कार्रवाई भी विफल हो जाती है।

G. निष्कर्ष

(58) पूर्वोक्त चर्चा के आलोक में, इस न्यायालय का यह सुविचारित विचार है कि चूंकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन प्रतिवादी/राज्य द्वारा नहीं किया गया है क्योंकि उनके द्वारा रिट याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया है, वेतनमान को पुनः निर्धारित/कम करने से पहले सिविल परिणामों को जन्म देते हुए, रिट याचिकाओं की पहली श्रेणी में प्रतिवादी द्वारा जारी किया गया आक्षेपित आदेश/नोटिस टिकाऊ/पुख्ता नहीं हो सकता है कानून और इस तरह के मामलों को एतद्वारा रद्द किया जाता है। परिणामस्वरूप, दूसरी श्रेणी के मामलों में

आक्षेपित वसूली के सभी आदेशों को भी रिट याचिकाओं की पहली श्रेणी में आक्षेपित आदेश/नोटिस की शाखा होने के कारण रद्द कर दिया जाता है। हालांकि, प्रतिवादी/राज्य रिट याचिकाकर्ताओं को नया नोटिस/आदेश जारी करने और कानून के अनुसार निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होगा।

(59) इसके अलावा, यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि चूंकि सभी मुद्दे जो ऊपर देखे गए और प्रतिपादित किए गए हैं, सक्षम प्राधिकारी के समक्ष विचार के योग्य होंगे, जिन्हें विभिन्न प्रतिस्पर्धी कारकों और टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ताओं के दावों का मूल्यांकन करना होगा। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यह निर्देश दिया जाता है कि सक्षम प्राधिकारी रिट याचिकाकर्ताओं को, मामले में आख्यापित आदेश पारित करने से पहले स्पष्टीकरण और/या सुनवाई का अवसर देगा।

(60) पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए, मामले सक्षम प्राधिकारी को विप्रेषित किए जाएंगे। पुनर्विचार की कवायद को, अधिमानतः इस आदेश की विधिवत प्रमाणित प्रति की प्रस्तुति की तारीख से 3 महीने की अवधि के भीतर, यह ध्यान में रखते हुए कि अधिकांश याचिकाकर्ता पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके हैं, यथासंभव शीघ्रता से पूरा किया जाए।

(61) रिट याचिकाओं का उपर्युक्त खंडों में निपटान किया जाता है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 4 ILRA 556

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल

रिट-ए संख्या 2754/2023

भारत संघ एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

जीतेन्द्र कुमार बाजपेयी एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: वरुण पांडे, देवऋषि
कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: प्रवीण कुमार

ए. सेवा कानून - नियुक्ति - पात्रता शैक्षिक योग्यता - उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद अधिनियम, 2000 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 32 वर्ष 2000) - उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 - उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद राज्य अधिनियम के तहत बनाया गया एक वैधानिक बोर्ड/निकाय है जो स्पष्ट रूप से बोर्ड को परीक्षा आयोजित करने और प्रमाण पत्र प्रदान करने का अधिकार देता है। राज्य अधिनियम के तहत बनाए गए वैधानिक बोर्ड को इस वाद में मान्यता प्राप्त नहीं निकाय कहना गलत है। (पैरा 19, 20)

उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 32 वर्ष 2000 की योजना के अनुसार, उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद न केवल एक निगमित निकाय है, बल्कि राज्य विधानमंडल द्वारा स्पष्ट रूप से उन व्यक्तियों को डिप्लोमा और

प्रमाण-पत्र प्रदान करने के लिए सशक्त है, जिन्होंने बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त या बोर्ड द्वारा इसके विशेषाधिकार प्राप्त संस्थान में अध्ययन का पाठ्यक्रम पूरा किया है। इस प्रकार, उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद को न केवल संस्कृत शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों को बोर्ड के विशेषाधिकारों में सम्मिलित करने के लिए बल्कि परीक्षा आयोजित करने और प्रमाण-पत्र और डिप्लोमा प्रदान करने के लिए भी वैधानिक रूप से सशक्त बनाया गया है। (पैरा 17)

प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार के पास उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद द्वारा जारी किया गया क्रेडिट प्रमाण पत्र है, जिसमें यह प्रमाणित किया गया है कि उसने उक्त बोर्ड द्वारा आयोजित उत्तर प्रदेश मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की है। इसलिए, प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार प्रश्नगत पद पर नियुक्ति के लिए शैक्षणिक योग्यता पूरी करता है। (पैरा 18)

रिट याचिका निरस्त (ई-4)

वर्तमान याचिका में दिनांक 07.11.2022 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार द्वारा दायर आवेदन को स्वीकार कर लिया गया है और याचिकाकर्ताओं को प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार का परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया गया है। इसके अतिरिक्त यह भी निर्देश दिया गया है कि यदि प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार डाक विभाग में डाक सहायक/छुटाई सहायक के पद पर नियुक्ति के लिए आयोजित

परीक्षा/चयन में सफल होता है, तो उसे संबंधित पद पर नियुक्ति प्रदान की जाएगी।

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,
और माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री वरुण पांडे के लिए सुश्री अलीना मसूदी और प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवीण कुमार को सुना।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत ये कार्यवाही शुरू करके, याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 07.11.2022 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार द्वारा दायर मूल आवेदन संख्या-451/2019 स्वीकृत किया गया है और याचिकाकर्ताओं को प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार का परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया गया है। यह भी निर्देश दिया गया है कि यदि प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार डाक विभाग में डाक सहायक/सॉर्टिंग सहायक के पद पर नियुक्ति के लिए आयोजित परीक्षा/चयन में सफल होता है, तो उसे प्रश्नगत पद पर नियुक्ति दी जाएगी।

3. इस याचिका में शामिल बिन्दु का दायरा बहुत ही संकीर्ण है।

4. मुख्य पोस्टमास्टर जनरल, यू.पी. के कार्यालय से एक विज्ञप्ति दिनांक 04.06.2019 को जारी की गई थी, जिसके तहत वर्ष 2015-16, 2016-17, 2017-18 और वर्ष 2018 की

कुछ अवधि से संबंधित रिक्तियों के लिए ग्रामीण डाक सेवकों में से डाक सहायक/छंटनी सहायक के पद पर भर्ती के लिए सीमित प्रतियोगी परीक्षा अधिसूचित की गई थी।

5. दिनांक 04.06.2019 के विज्ञापन / अधिसूचना के खंड 3.4 में पात्रता की शर्तें निर्धारित की गई थीं, जिसके अनुसार 01.04.2018 तक किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय/बोर्ड से 10 + 2 मानक शैक्षणिक योग्यता रखने वाले ग्रामीण डाक सेवक पात्र थे। वर्ष 2017-18 की रिक्तियों हेतु विचाराधीन पद पर चयन हेतु पात्र होने के लिए ग्रामीण डाक सेवकों की आयु 01.04.2018 को 30 वर्ष के भीतर होनी चाहिए यदि वह सामान्य श्रेणी का अभ्यर्थी था तथा यदि वह अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के आरक्षित वर्ग का अभ्यर्थी था तो उसकी आयु 35 वर्ष के भीतर होनी चाहिए जबकि अन्य पिछड़ा वर्ग के मामले में संबंधित अभ्यर्थी की आयु 33 वर्ष के भीतर होनी चाहिए थी। उक्त अधिसूचना के खंड 3.4 में निहित प्रावधान के अनुसार, 01.04.2016 को न्यूनतम पांच वर्ष की सेवा पूरी कर लेने वाले ग्रामीण डाक सेवक, डाक सहायक/छंटनी सहायक के पद पर नियुक्ति हेतु विचार किए जाने हेतु पात्र थे। दिनांक 04.06.2019 की अधिसूचना का खंड 3.4 नीचे उद्धृत है:-

"3.4 वर्ष 2018 (01-04-2018 से 31-12-2018) की रिक्तियों के लिए पात्रता शर्तें

(i) **शैक्षिक योग्यता:** 01.04.2018 तक किसी मान्यता प्राप्त

विश्वविद्यालय/बोर्ड से 10+2 कक्षा या 12वीं कक्षा उत्तीर्ण।

(ii) **आयु:** 01.04.2018 तक जीडीएस की आयु 30 वर्ष (एससी और एसटी समुदायों के लिए 35 वर्ष और ओबीसी समुदाय के लिए 33 वर्ष) के भीतर होनी चाहिए।

(iii) **सेवा पात्रता:** 01.04.2018 तक न्यूनतम 5 वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो"।

6. अन्य वर्षों की रिक्तियों के लिए भी समान पात्रता शर्तें निर्धारित की गई थीं।

7. प्रतिवादी सं. 1-दावेदार ने तदनुसार स्वयं को पात्र मानते हुए अपना आवेदन किया, तथापि, जब उसे लिखित परीक्षा में बैठने के लिए प्रवेश पत्र नहीं मिला, तो उसे पता चला कि उसे प्रश्नगत पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने के लिए पात्र नहीं माना गया है, जिसके कारण उसने मूल आवेदन दाखिल किया। उक्त मूल आवेदन के लंबित रहने के दौरान, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा 11.07.2019 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया, जिसके तहत प्रतिवादी सं. 1-दावेदार को अनंतिम रूप से परीक्षा में बैठने की अनुमति दी गई। न्यायाधिकरण द्वारा 11.07.2019 को पारित उक्त आदेश के अनुपालन में, प्रतिवादी सं. 1-दावेदार को परीक्षा में बैठने की अनुमति दी गई, तथापि, उसका परिणाम सीलबंद लिफाफे में रखा गया और घोषित नहीं किया गया।

8. इस याचिका में चुनौती दिए गए आदेश के माध्यम से मूल आवेदन को केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा ऊपर पहले से ही नोट किए गए निर्देशों के साथ अनुमति दी गई है।

9. विभाग-याचिकाकर्ता प्रतिवादी क्रमांक 1-दावेदार को उनके अनुसार विचाराधीन पद पर नियुक्ति के लिए योग्य नहीं मान रहे थे, इसका एकमात्र कारण यह है कि उनके पास दिनांक 04.06.2019 की अधिसूचना के खंड 3.4 के अनुसार अपेक्षित योग्यता नहीं थी। जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, जहां तक विचाराधीन पद पर नियुक्ति के लिए शैक्षणिक योग्यता का संबंध है, दिनांक 04.06.2019 की अधिसूचना के खंड 3.4 के अनुसार, ग्रामीण डाक सेवक, जिनके पास 01.04.2018 तक किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय/बोर्ड से 10+2 मानक योग्यता थी, उन्हें अपेक्षित पात्रता योग्यता रखने वाला माना जाना था। इस प्रकार, एकमात्र आवश्यकता यह थी कि संबंधित उम्मीदवार ने मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय/बोर्ड से 01.04.2018 तक 10+2 परीक्षा उत्तीर्ण की हो।

10. याचिकाकर्ता-विभाग का यह मामला नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार के पास 01.04.2018 को 10+2 उत्तीर्ण की शैक्षिक योग्यता नहीं थी; बल्कि विभाग की सम्पूर्ण आपत्ति और अपवाद का आधार यह है कि प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार के पास उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद, लखनऊ से 10+2 परीक्षा उत्तीर्ण योग्यता है, जो कि मान्यता प्राप्त योग्यता नहीं थी।

11. तथापि, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण ने आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करके माना है कि प्रतिवादी सं. 1-दावेदार अपेक्षित योग्यता पूरी करता था।

12. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद, लखनऊ एक मान्यता प्राप्त निकाय नहीं है, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतिवादी सं. 1-दावेदार प्रश्नगत पद पर नियुक्ति के लिए अपेक्षित शैक्षिक योग्यता रखता था।

13. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया उपरोक्त तर्क एक अत्यधिक गलत प्रयास है।

14. उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद, लखनऊ का गठन राज्य विधान द्वारा किया गया है, जिसे "उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद अधिनियम, 2000 (उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 32, 2000)" के नाम से जाना जाता है। उक्त अधिनियम को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल की स्वीकृति 31 अक्टूबर, 2000 को प्राप्त हुई और तदनुसार इसे उत्तर प्रदेश विधान मंडल में प्रकाशित किया गया। 01.11.2000 को राजपत्र असाधारण में प्रकाशित। यू.पी. अधिनियम संख्या 32 वर्ष 2000 की धारा 1 की उपधारा (2) में प्रावधान है कि अधिनियम 30 सितंबर, 2000 को लागू हुआ माना जाएगा। तदनुसार, यू.पी. अधिनियम संख्या 32 वर्ष 2000 की धारा 1 (2) में निहित प्रावधान

के संचालन के मददेनजर, उक्त अधिनियम 30.09.2000 से लागू हुआ।

15. धारा 2 (ए) में बोर्ड का अर्थ यू.पी. माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद है, जो धारा 3 के तहत स्थापित किया जाएगा। यू.पी. माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद का हिंदी में अनुवाद उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद है। अधिनियम की धारा 3 में प्रावधान है कि उस तारीख से, जिसे राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा निर्धारित कर सकती है, उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद के रूप में जाना जाने वाला एक बोर्ड स्थापित किया जाएगा। अधिनियम संख्या 32/2000 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि बोर्ड एक निगमित निकाय होगा और इसमें विभिन्न सदस्य होंगे तथा एक निदेशक होगा जो बोर्ड का अध्यक्ष होगा। बोर्ड के गठन की अधिसूचना 17.02.2001 को जारी की गई थी जिसे 01.03.2001 से प्रभावी किया गया है।

16. अधिनियम की धारा 9 बोर्ड के कार्यों को निर्धारित करती है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ संस्कृत शिक्षा में प्रथमा, मध्यमा और उत्तर मध्यमा कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकें और अन्य शिक्षण सामग्री निर्धारित करना शामिल है। धारा 9 (सी) बोर्ड को उन व्यक्तियों को डिप्लोमा या प्रमाण पत्र देने का अधिकार देती है, जिन्होंने बोर्ड द्वारा विशेषाधिकार या मान्यता प्राप्त संस्थान में अध्ययन का पाठ्यक्रम किया है और यहां तक कि उन लोगों को भी, जिन्होंने नियमों में निर्धारित शर्तों के तहत निजी तौर पर अध्ययन किया है और बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण

की है। यह बोर्ड को प्रथमा, पूर्व मध्यमा और उत्तर मध्यमा पाठ्यक्रमों के अंत में परीक्षा आयोजित करने का भी अधिकार देता है। बोर्ड अपनी परीक्षा के प्रयोजनों के लिए संस्थाओं को मान्यता देने के लिए कुछ शक्तियों का प्रयोग भी कर सकता है।

17. तदनुसार, उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 32 वर्ष 2000 की योजना के दृष्टिगत, उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद न केवल एक निगमित निकाय है, बल्कि राज्य विधानमंडल द्वारा स्पष्ट रूप से उन व्यक्तियों को डिप्लोमा और प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए सशक्त है, जिन्होंने बोर्ड द्वारा मान्यता प्राप्त या बोर्ड द्वारा इसके विशेषाधिकार प्राप्त संस्थान में अध्ययन का पाठ्यक्रम पूरा किया है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद को न केवल संस्कृत शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं को बोर्ड के विशेषाधिकारों में शामिल करने, बल्कि परीक्षा आयोजित करने और प्रमाण पत्र और डिप्लोमा प्रदान करने का भी वैधानिक अधिकार प्राप्त है।

18. यह विवाद में नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार के पास उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद द्वारा निर्गत प्रमाण पत्र है, जिसमें यह प्रमाणित किया गया है कि उसने उक्त बोर्ड द्वारा आयोजित उत्तर प्रदेश मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की है।

19. राज्य अधिनियम के तहत बनाए गए वैधानिक बोर्ड को इस मामले में गैर-मान्यता प्राप्त निकाय कहना गलत है।

20. जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद राज्य अधिनियम के तहत बनाया गया एक वैधानिक बोर्ड/निकाय है, जो बोर्ड को परीक्षा आयोजित करने और प्रमाण पत्र प्रदान करने का स्पष्ट अधिकार देता है।

21. उपर्युक्त कारणों से, हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार प्रश्नगत पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता शैक्षिक योग्यता पूरी करता है।

22. विद्वान न्यायाधिकरण ने आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित करते समय परिपत्र दिनांक 06/10.02.1970 का भी उल्लेख किया है, जिसके अनुसार वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा आयोजित पूर्व मध्यमा, उत्तर मध्यमा और शास्त्री की परीक्षाओं को केंद्र सरकार के अधीन रोजगार के उद्देश्य से मान्यता दी गई है।

23. हम, इस बिंदु पर, यह इंगित कर सकते हैं कि उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद (उत्तर प्रदेश माध्यमिक संस्कृत शिक्षा बोर्ड) के गठन से पूर्व, उत्तर प्रदेश राज्य में संस्कृत संस्थान पहले वाराणसी संस्कृत विश्व विद्यालय, वाराणसी द्वारा इसके विशेषाधिकारों से संबद्ध किया जाता था, जो कि यू.पी. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के तहत गठित एक राज्य विश्वविद्यालय है। हालांकि, यू.पी. माध्यमिक संस्कृत शिक्षा परिषद के निर्माण के बाद, सभी संस्कृत संस्थान अब इस बोर्ड से संबद्ध हैं

और जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है, बोर्ड न केवल प्रकृति में वैधानिक है बल्कि (i) संस्कृत संस्थानों को इसके विशेषाधिकारों में प्रवेश देने, (ii) परीक्षा आयोजित करने और (iii) बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षा में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होने वाले उम्मीदवारों को प्रमाण पत्र या डिप्लोमा प्रदान करने के लिए स्पष्ट रूप से सशक्त है।

24. उपर्युक्त कारणों से, हम विद्वान केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण द्वारा निर्णय और आदेश पारित करते समय लिए गए दृष्टिकोण के अलावा कोई अन्य दृष्टिकोण लेने के इच्छुक नहीं हैं।

25. हमारी मत में, रिट याचिका में योग्यता का अभाव है जिसे एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

26. हमें सूचित किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार का परिणाम घोषित कर दिया गया है, जिसमें उसे उत्तीर्ण घोषित किया गया है, हालांकि, उसे प्रश्नगत पद पर नियुक्ति की पेशकश नहीं की जा रही है। अतः हम निर्देश देते हैं कि यदि कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है, तो प्रतिवादी संख्या 1-दावेदार को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर प्रश्नगत पद पर नियुक्ति दी जाएगी।

(2023) 4 ILRA 560

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला,

रिट-ए संख्या 2755/2023

सचिन कुमार सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: गौरव मेहरोत्रा, अनंत खन्ना, हर्षवर्धन मेहरोत्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., अतुल कुमार द्विवेदी, लालता प्रसाद मिश्रा, राजेश तिवारी

सेवा कानून- भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 226-उत्तर प्रदेश प्राविधिक विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000- धारा 7, 8- कुलसचिव के रूप में नियुक्त याचिकाकर्ता के निलंबन के आदेश के विरुद्ध रिट याचिका और याचिकाकर्ता के कथित कदाचार की जांच के लिए कुलाधिपति द्वारा जांच समिति गठित करने का आदेश-कुलाधिपति को संबंधित विश्वविद्यालय के अधिकारी को, कुछ परिस्थितियों में, निलंबित करने का अधिकार दिया गया है और कुलाधिपति को एक जांच का आदेश देने का भी अधिकार है, जिसे यह पता लगाने के लिए उचित समझा जा सकता है कि क्या अधिकारी ने विनियमन 2.03 में दिए गए 'कदाचार' के अर्थ में कदाचार किया है - विनियमन 2.03 में परिकल्पित कार्यवाही विनियमन 2.04 सपठित धारा 7 में परिभाषित विश्वविद्यालय के एक अधिकारी को हटाने के संबंध में है और इसका अर्थ यह होगा कि कुलाधिपति केवल विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार के कार्यालय से उसे हटाने के संबंध में कार्यवाही शुरू कर सकते हैं, न कि उसे हटाने के लिए या सरकारी कर्मचारी के रूप में कोई

दंड देने के लिए, जिसके लिए यह केवल याचिकाकर्ता का सरकारी कर्मचारी के रूप में नियुक्ति प्राधिकारी है, अर्थात् राज्य सरकार जो कार्रवाई कर सकती है और उचित आदेश पारित कर सकती है-निलंबन के आदेश में कोई हस्तक्षेप नहीं जांच समिति नियुक्त करने का आदेश, जिसका रिट याचिका में विरोध किया गया है। (पैरा 2, 11, 15, 16, 17, 28)

याचिका निरस्त (ई-15)

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,
और माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला,
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा, प्रतिवादी संख्या-1 और 4 का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य के अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या-2 के लिए श्री राजेश तिवारी द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.के. कालिया, प्रतिवादी संख्या-3 का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री एल.पी. मिश्रा और प्रतिवादी संख्या-5 का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री अतुल द्विवेदी को सुना।

2. इस याचिका की कार्यवाही भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शुरू की गई है, जिसमें डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम प्राविधिक विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ (इसके बाद 'कुलाधिपति' के रूप में संदर्भित) के कुलाधिपति द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.03.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता, जिसे उक्त विश्वविद्यालय

के कुलसचिव के रूप में नियुक्त किया गया था, को निलंबित कर दिया गया है।

एक अन्य आदेश जिसे इस रिट याचिका में चुनौती दी गई है, वह कुलाधिपति द्वारा पारित दिनांक 31.03.2023 है, जिसमें विश्वविद्यालय के कुलसचिव के रूप में काम करते हुए याचिकाकर्ता के कथित कदाचार की जांच के लिए तीन सदस्यीय जांच समिति का गठन किया गया है।

3. श्री गौरव मेहरोत्रा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता प्रांतीय सिविल सेवा का सदस्य है और अनुशासनात्मक मामलों सहित उसकी सेवा की शर्तें भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए नियमों में निहित प्रावधानों द्वारा शासित हैं, अर्थात् उत्तर प्रदेश सिविल सेवा (कार्यकारी शाखा) नियम, 1982 (इसके बाद 'नियम 1982' के रूप में संदर्भित) और उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 (इसके बाद 'नियम 1999' के लिए संदर्भित)। श्री मेहरोत्रा द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि नियम 1982 के तहत, याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्राधिकारी माननीय राज्यपाल हैं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 166(3) के तहत बनाए गए उत्तर प्रदेश के कार्य नियम, 1975 के संदर्भ में, प्रांतीय सिविल सेवा के सदस्यों की अनुशासनात्मक कार्रवाई आदि से संबंधित मामलों को अनुमोदन के लिए माननीय मुख्यमंत्री के पास जाना है और, तदनुसार, कुलाधिपति, जो उसकी नियुक्ति

प्राधिकारी नहीं हैं, उसे निलंबित करने या किसी जांच समिति का गठन करने का अधिकार नहीं है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि सरकारी कर्मचारी के निलंबन का सहारा नियम 1999 के नियम 4 में निहित प्रावधानों के अनुसार लिया जा सकता है, जिसके अनुसार एक सरकारी कर्मचारी को केवल नियुक्ति प्राधिकारी के विवेक पर निलंबित किया जा सकता है, न कि किसी अन्य प्राधिकारी के कहने पर। उनका आगे कहना है कि नियम 1999 के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा शुरू की जा सकती है और किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा नहीं। इस प्रकार, उनका कहना है कि चूंकि विश्वविद्यालय के कुलाधिपति याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्राधिकारी या अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं हैं, इसलिए निलंबन का आदेश और जांच समिति का गठन करने का आदेश, जिसे इस रिट याचिका में चुनौती दी गई है, पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना है।

5. श्री मेहरोत्रा द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि विश्वविद्यालय में कुलसचिव के रूप में याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्रतिनियुक्ति पर की गई थी और एक प्रतिनियुक्ति के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई को नियंत्रित करने वाले अच्छी तरह से स्थापित सेवा न्यायशास्त्र के अनुसार, यह मूल विभाग है जिसे ऐसे मामले में भी अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का अधिकार है जहां प्रतिनियुक्ति विभाग के साथ काम करते समय प्रतिनियुक्ति करने

वाले ने खुद को गलत आचरण किया है। इस दृष्टिकोण में, प्रस्तुत करना यह है कि भले ही याचिकाकर्ता, जो विश्वविद्यालय में कुलसचिव के रूप में काम कर रहा है, जो कि उधार लेने वाला विभाग है, विश्वविद्यालय के कुलसचिव के रूप में अपने कार्यों का निर्वहन करते समय खुद गलत तरीके से पाया गया था, कुलाधिपति सहित विश्वविद्यालय के अधिकारी याचिकाकर्ता की ओर से उक्त कथित कदाचार से अवगत करा सकते थे जो राज्य सरकार को है जो याचिकाकर्ता का मूल विभाग है और यदि कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल राज्य सरकार के विवेक पर होती तो कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती थी। इस तरह के दृष्टिकोण में, प्रस्तुत किया गया है कि दोनों आदेश, यानी निलंबन का आदेश और कुलाधिपति द्वारा पारित अनुशासनात्मक जांच समिति का गठन करने का आदेश पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बाहर है और इसलिए टिकाऊ और पुख्ता नहीं है।

6. प्रतिवाद, कुलाधिपति का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.के. कालिया ने प्रस्तुत किया है कि तथ्य की बात के रूप में हालांकि याचिकाकर्ता की नियुक्ति कुलसचिव के रूप में विश्वविद्यालय में प्रतिनियुक्ति पर है, पर प्रतिनियुक्ति पर ऐसी नियुक्ति को "प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति" वाक्यांश के सामान्य अर्थों में प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि विश्वविद्यालय में कुलसचिव की नियुक्ति उत्तर प्रदेश तकनीकी विश्वविद्यालय के तहत विचार की जाती है। धारा 7, विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 में निहित प्रावधानों की ओर

हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि विश्वविद्यालय के कुलसचिव धारा 7(ई) के संदर्भ में विश्वविद्यालय के एक अधिकारी हैं और आगे कुलाधिपति, विश्वविद्यालय के संबंध में, धारा 8 के तहत उसमें निहित अपने अधिकार और शक्ति का प्रयोग करता है।

7. वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 8 की उपधारा (4) में यह प्रावधान है कि कुलाधिपति के पास ऐसी अन्य शक्तियां होंगी जो उक्त अधिनियम के अधीन बनाए गए अधिनियम या विनियमों द्वारा या उसके अधीन उसे प्रदान की जाएं। हमारा ध्यान विश्वविद्यालय के विनियम, 2010 के विनियम 203 और 204 की ओर भी दिलाया गया है जो अध्याय-2 में आते हैं और विश्वविद्यालय के अधिकारियों से संबंधित हैं। वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, विनियमन 2.03 स्पष्ट रूप से कुलाधिपति को किसी भी अधिकारी (जैसा कि विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 7 में परिभाषित और सूचीबद्ध है) को, यह राय बनाने के बाद कि संबंधित अधिकारी ने या तो जानबूझकर छोड़ दिया है या विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 के प्रावधानों को लागू करने से इनकार कर दिया है या उसने निहित शक्ति का दुरुपयोग किया है, हटाने का अधिकार देता है। वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा विनियमन 2.03 में होने वाली "ऐसी जांच करने के बाद" शब्दों पर जोर दिया गया है और तदनुसार यह कहा गया है कि कुलाधिपति द्वारा विश्वविद्यालय के एक अधिकारी को ऐसी जांच के बाद हटाया जा

सकता है जैसा कि कुलाधिपति द्वारा उचित समझा जाए। उन्होंने आगे कहा है कि ऐसी स्थिति में जहां विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 7 में यथा परिभाषित ऐसे अधिकारी की नियुक्ति प्राधिकारी स्वयं कुलाधिपति हो, वह उस आशय का आदेश पारित करके अधिकारी को हटा सकता है और ऐसी स्थिति में जहां विश्वविद्यालय के अधिकारी की नियुक्ति प्राधिकारी राज्य सरकार हो, कुलाधिपति राज्य सरकार को संबंधित अधिकारी को हटाने का निदेश दे सकता है।

8. हमें विनियमों के विनियम 2.04 में निहित प्रावधानों पर भी ले जाया गया है, जिसके अनुसार कुलाधिपति के पास विश्वविद्यालय के ऐसे अधिकारी को लंबित रहने के दौरान या विनियम 2.03 में निर्दिष्ट किसी भी जांच के चिंतन में निलंबित करने की शक्ति है। उपरोक्त प्रस्तुतियों पर, माननीय कुलाधिपति का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह कहना कि कुलाधिपति के पास याचिकाकर्ता को निलंबित करने या जांच समिति गठित करने का कोई अधिकार क्षेत्र या अधिकार या शक्ति नहीं है, इस कारण से पूरी तरह से गलत है कि कुलाधिपति को न केवल निलंबन का आदेश पारित करने के लिए बल्कि विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 7 में यथा परिभाषित विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी के संबंध में जांच समिति बिठाने की भी शक्ति है।

9. कुलाधिपति की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों को प्रतिवादी संख्या-3 का

प्रतिनिधित्व करने वाले डॉ. एल.पी. मिश्रा और प्रतिवादी संख्या-5 का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री अतुल द्विवेदी द्वारा दोहराया गया है।

10. हमने संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और इस रिट याचिका पर हमारे सामने उपलब्ध रिकॉर्ड का भी अवलोकन किया है। हमने अधिनियम 2000, नियम 1982 और नियम, 1999 के तहत बनाए गए विनियमन में निहित विभिन्न वैधानिक प्रावधानों का भी व्यापक रूप से अध्ययन किया है।

11. इस मामले में हमारे विचार के लिए जो प्रश्न आता है वह यह है कि क्या कुलाधिपति को विश्वविद्यालय के एक अधिकारी को निलंबित करने और संबंधित विश्वविद्यालय के अधिकारी की ओर से कथित कदाचार की जांच के लिए एक जांच समिति गठित करने के लिए कोई वैध अधिकार निहित किया गया है।

12. यह विवाद में नहीं है कि विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 7 (ई) में निहित प्रावधानों के संदर्भ में, कुलपति, कुलपति, प्रति-कुलपति, वित्त अधिकारी और परीक्षा नियंत्रक के साथ कुलसचिव विश्वविद्यालय के अधिकारियों में से एक है। विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 7 यहां नीचे दी गई है: -

"7. विश्वविद्यालय के निम्नलिखित अधिकारी होंगे-

(क) कुलाधिपति;

(ख) कुलपति;

(ग) प्रति-कुलपति;

(घ) वित्त अधिकारी;

(ई) कुलसचिव;

(च) परीक्षा नियंत्रक;

(छ) विश्वविद्यालय के ऐसे अन्य अधिकारी जिन्हें विनियमों द्वारा विश्वविद्यालय के अधिकारी घोषित किया जाए।

13. विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 के तहत कुलाधिपति को धारा 8 में परिभाषित किया गया है, जिसके अनुसार राज्य के माननीय राज्यपाल विश्वविद्यालय के कुलाधिपति हैं। इसमें यह भी प्रावधान है कि कुलाधिपति अपने पद के आधार पर विश्वविद्यालय का प्रमुख होगा। विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 8 द्वारा कुलाधिपति को कतिपय शक्तियां प्रदान की गई हैं। विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 8 निम्नानुसार है: -

8. (1) राज्यपाल विश्वविद्यालय का कुलाधिपति होगा। वह अपने पद के आधार पर, विश्वविद्यालय का प्रमुख होगा और उपस्थित होने पर, विश्वविद्यालय के किसी भी दीक्षांत समारोह में अध्यक्षता करेगा।

(2) मानद उपाधि प्रदान करने का प्रत्येक प्रस्ताव कुलाधिपति के स्थायीकरण के अधीन होगा।

(3) कुलपति का यह कर्तव्य होगा कि वह विश्वविद्यालय के कार्यकलाप के प्रशासन से

सम्बन्धित ऐसी जानकारी या अभिलेख प्रस्तुत करे जो कुलाधिपति माँगे।

(4) कुलाधिपति को ऐसी अन्य शक्तियाँ होंगी जो उसे इस अधिनियम या विनियमों द्वारा या उसके अधीन प्रदान की जाएँ।

14. धारा 8 की उपधारा (4) में निहित पूर्वोक्त प्रावधान के अनुसार, कुलाधिपति ऐसी शक्तियों का प्रयोग करता है जो विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 द्वारा या उसके तहत या उक्त अधिनियम के तहत बनाए गए विनियमों द्वारा उसे प्रदान की जाती हैं। जहाँ तक अधिनियम के तहत शक्तियाँ प्रदान करने का संबंध है, कुलाधिपति को मानद उपाधि प्रदान करने के लिए प्रत्येक प्रस्ताव की पुष्टि करने और विश्वविद्यालय के कुलपति के कार्यालय से अभिलेख और सूचना माँगने का अधिकार दिया गया है। विनियमन 8 के उप विनियमन (4) के संदर्भ में, कुलाधिपति, जैसा कि ऊपर देखा गया है, ऐसी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जो उसे विनियमों द्वारा या उसके तहत प्रदान की जाती हैं। गौतम बुद्ध तकनीकी विश्वविद्यालय, 2010 के तहत बनाए गए विनियमों के विनियम 2.03 और 2.04 प्रासंगिक हैं जो नीचे दिए गए हैं: -

"2.03 यदि कुलाधिपति की राय में, कुलपति या विश्वविद्यालय का कोई अन्य अधिकारी जानबूझकर अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने से इनकार करता है, या उसमें निहित शक्तियों का दुरुपयोग करता है और यदि कुलाधिपति को यह प्रतीत होता है कि कार्यालय में ऐसे अधिकारी का बने रहना

विश्वविद्यालय के हितों के लिए हानिकारक है, कुलाधिपति, ऐसी जांच करने के बाद, जैसा कि वह उचित समझे, आदेश द्वारा, उन मामलों में उक्त अधिकारी को हटा सकता है जहाँ वह स्वयं नियुक्ति प्राधिकारी है या जहाँ राज्य सरकार नियुक्ति प्राधिकारी है, ऐसे प्राधिकारी को अधिकारियों को हटाने का निर्देश दे सकता है।

2.04 कुलाधिपति के पास लंबित रहने के दौरान या विनियम 2.03 में निर्दिष्ट किसी भी जांच के लम्बितता में ऐसे अधिकारी को निलंबित करने की शक्ति होगी।

15. जब हम विनियम 2.03 में निहित पूर्वोक्त प्रावधानों का अवलोकन करते हैं तो हम पाते हैं कि ऐसी स्थिति में जहाँ कुलपति या विश्वविद्यालय के किसी अन्य अधिकारी (विश्वविद्यालय के कुलसचिव सहित) को विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 के प्रावधानों को जानबूझकर छोड़ते हुए या मना करते हुए पाया जाता है या वह उसमें निहित शक्तियों का दुरुपयोग करता पाया जाता है या यदि कुलाधिपति को प्रतीत होता है कि विश्वविद्यालय में ऐसा अधिकारी विश्वविद्यालय के हितों के लिए हानिकारक है, ऐसे अधिकारी को हटाने के लिए कुलाधिपति को पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। ऐसे मामले में जहाँ कुलाधिपति स्वयं नियुक्ति प्राधिकारी है, वह संबंधित अधिकारी को हटाने का आदेश पारित कर सकता है, हालांकि, जहाँ राज्य सरकार नियुक्ति प्राधिकारी है, कुलाधिपति संबंधित अधिकारी को हटाने के लिए ऐसे प्राधिकारी को निर्देश दे सकता है।

16. विनियम 2.04 में प्रावधान है कि कुलाधिपति के पास विनियम 2.03 के अधीन लंबित मामलों के दौरान या जांच के दौरान ऐसे अधिकारी को निलंबित करने की शक्ति होगी। हम इस समय देख सकते हैं कि जैसा कि कुलाधिपति द्वारा उचित समझा जाता है और जैसा कि संबंधित अधिकारी के विनियमन 2.03 में बताया गया है कि जब एक बार कुलाधिपति कदाचार के बारे में एक राय बनाता है, विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी को हटाने की अनुमति विनियम 2.03 के तहत केवल जांच करने के बाद ही दी जा सकती है। इस प्रकार, विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी को बिना जांच के हटाने की अनुमति नहीं है, जिसे कुलाधिपति द्वारा संचालित किया जाना उचित समझा जा सकता है। विनियम 204 को विनियम 203 के साथ पढ़ा जाना चाहिए जिसमें यह प्रावधान है कि ऐसी स्थिति में जहां विनियम 203 के अंतर्गत परिकल्पित कोई जांच या तो लंबित है या विचाराधीन है, कुलाधिपति अपने विवेक से विश्वविद्यालय के उस अधिकारी को निलंबित कर सकता है जिसके विरुद्ध जांच लंबित है या विचाराधीन है।

17. तदनुसार, हमारा मत है कि विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 7 में यथा परिभाषित विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी के संबंध में, कुलाधिपति को संबंधित विश्वविद्यालय के अधिकारी को कुछ परिस्थितियों में निलंबन के अधीन रखने का अधिकार दिया गया है और कुलाधिपति को ऐसी जांच का आदेश देने का भी अधिकार है जो यह पता लगाने के लिए उचित समझी

जाए कि क्या संबंधित विश्वविद्यालय के अधिकारी के पास विनियम 2.03 में दिए प्रावधान के अनुसार कदाचार के अर्थ के भीतर स्वयं गलत आचरण किया।

18. हम यह भी ध्यान दे सकते हैं कि विश्वविद्यालय के कुलसचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा ऐसे नियमों और शर्तों पर की जाती है जैसी कि निर्धारित की जाती हैं। विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 13 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कुलसचिव विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक अधिकारी होगा और राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा। विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 13 यहां नीचे दी गई है:

"13. (1) निबन्धक विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक अधिकारी होगा।

(2) कुलसचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा ऐसे निबन्धन और शर्तों पर की जाएगी जो विहित की जाएँ।

(3) कुलसचिव को विश्वविद्यालय की ओर से अभिलेखों को अधिप्रमाणित करने की शक्ति होगी।

(4) कुलसचिव, विश्वविद्यालय के अभिलेखों की सम्यक अभिरक्षा और सामान्य मुहर के लिये उत्तरदायी होगा। वह कार्यकारी परिषद का पदेन सचिव होगा और कार्यकारी परिषद के समक्ष ऐसी सभी जानकारी रखने के लिए बाध्य होगा जो उसके आधिकारिक/विभागीय कार्यों के लिए आवश्यक हो सकती है। वह ऐसे

अन्य कर्तव्यों का भी पालन करेगा जो समय-समय पर कार्यकारी परिषद या कुलपति द्वारा निर्धारित या अपेक्षित किए जा सकते हैं, लेकिन वह इस उपधारा के आधार पर, वोट देने का हकदार नहीं होगा।

(5) कुलसचिव को विश्वविद्यालय में किसी कार्य के लिए कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा और न ही वह स्वीकार करेगा, सिवाय इसके कि वह विनियमों द्वारा प्रदान किया जा सकता है।

19. विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 13 के अतिरिक्त हम विनियमों के विनियम 2.21 पर भी ध्यान दे सकते हैं, जिसके अनुसार कुलसचिव की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा उत्तर प्रदेश सिविल सेवा (कार्यपालक शाखा) के सदस्यों में से प्रतिनियुक्ति पर की जानी है। इसमें यह भी प्रावधान है कि यदि कुलसचिव का कार्यालय खाली है और कुलसचिव छुट्टी पर है या कुछ अन्य परिस्थितियों में, कुलसचिव के कार्यालय के कर्तव्यों का पालन ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाएगा जिसे कुलपति इस उद्देश्य के लिए नियुक्त कर सकता है। विनियमों के संशोधित विनियम 2.21 को यहां उद्धृत किया गया है:

-

उत्तर प्रदेश सिविल (एग्जीक्यूटिव ब्रांच) सेवा से प्रतिनियुक्ति पर राज्य सरकार द्वारा कुलसचिव की नियुक्ति की जाएगी। जब कुलसचिव का पद रिक्त है या जब कुलसचिव बीमारी, अनुपस्थिति या किसी अन्य कारण से छुट्टी पर है, अपने कार्यालय के कर्तव्यों का

पालन करने में असमर्थ है, कुलसचिव के कार्यालय के कर्तव्यों का पालन ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाएगा जिसे कुलपति इस उद्देश्य के लिए नियुक्त करता है।

20. हम विनियम 14.03 में निहित प्रावधानों का भी उल्लेख कर सकते हैं जो यह प्रावधान करता है कि प्रतिनियुक्ति पर विश्वविद्यालय की सेवा करने वाले सरकारी कर्मचारी सरकारी छुट्टी नियमों के अधीन रहेंगे।

21. तदनुसार, अधिनियम 2000 और उसके तहत बनाए गए विनियमों की योजना के अनुसार, हालांकि विश्वविद्यालय में कुलसचिव की नियुक्ति प्रतिनियुक्ति पर है, पर इस प्रतिनियुक्ति को उस शब्द के पारंपरिक अर्थ में "प्रतिनियुक्ति" नहीं कहा जा सकता है जिसमें इसे आम तौर पर विश्वविद्यालय की सहमति के रूप में समझा जाता है। विश्वविद्यालय में प्रांतीय सिविल सेवा के किसी सदस्य को कुलसचिव के रूप में रखने के लिए प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त व्यक्ति और राज्य सरकार के प्रतिनिधियों की नियुक्ति अपेक्षित नहीं है। यह धारा 13 के तहत राज्य सरकार को विश्वविद्यालय के कुलसचिव के रूप में प्रांतीय सिविल सेवा के सदस्य को नियुक्त करने का अधिकार है। तदनुसार, अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले में प्रतिनियुक्ति से संबंधित सामान्य नियमों या कानून इस मामले में लागू नहीं होगा। राज्य सरकार धारा 13 के तहत अपने अधिकारी को विश्वविद्यालय में प्रतिनियुक्ति पर रखती है, हालांकि, जब तक वह विश्वविद्यालय में तैनात रहता है, वह अधिनियम 2000 के तहत

कुलाधिपति के कुछ पर्यवेक्षण और नियंत्रण के अधीन होता है। विश्वविद्यालय अधिनियम, 2000 की धारा 8 सपठित विनियमों के तहत यथा परिकल्पित पर्यवेक्षण में से एक वह कार्यवाही है जिसे विश्वविद्यालय से कुलसचिव को हटाने के लिए शुरू किया जा सकता है।

22. जैसा कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है, हमारा यह सुविचारित मत है कि विनियम 2.04 सपठित विनियम 2.03 कुलाधिपति को विश्वविद्यालय से अपने कार्यालय से कुलसचिव को हटाने के लिए कार्रवाई शुरू करने का अधिकार देता है और उस प्रक्रिया में, यह न केवल कुलपति किसी भी जांच का आदेश दे सकता है, बल्कि वह कुलसचिव को निलंबन के तहत भी रख सकता है।

23. मामले के पूर्वोक्त दृष्टिकोण में, हम याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों से आश्वस्त नहीं हैं कि निलंबन का आदेश और इस मामले में याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच का गठन करने का आदेश, अधिकार क्षेत्र के बिना/बाहर है।

24. हालांकि, हम कुछ पहलुओं को स्पष्ट कर सकते हैं जो बहस के दौरान सामने आए हैं। जैसा कि पहले ही ऊपर चर्चा की जा चुकी है, विनियम 2.04 सपठित विनियम 2.03 में यथा विचारित कार्यवाही धारा 7 में यथा परिभाषित विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी को हटाने के संबंध में है; और इसका अर्थ यह होगा कि कुलाधिपति केवल विश्वविद्यालय के कुलसचिव के पद से हटाए जाने के संबंध में कार्यवाही शुरू कर सकता है न कि उसे हटाने के लिए

या सरकारी कर्मचारी के रूप में कोई दंड देने के लिए जिसके लिए यह केवल याचिकाकर्ता को सरकारी कर्मचारी के रूप में नियुक्त करना, यानी राज्य सरकार कार्रवाई कर सकती है और उचित आदेश पारित कर सकती है।

25. उपर्युक्त के रूप में अवलोकन करने के बाद, हम यह भी पाते हैं कि ऐसी स्थिति हो सकती है जहां राज्य सरकार द्वारा विश्वविद्यालय में नियुक्त कुलसचिव घोर कदाचार में लिप्त पाया जाता है और ऐसी स्थिति में ऐसा नहीं है कि वह ऐसे किसी भी कदाचार के लिए प्रतिरक्षा होगा, हालांकि, यह कुलाधिपति नहीं है बल्कि राज्य सरकार है जिसे सशक्त किया गया है और जिसके पास कार्रवाई करने का अधिकार क्षेत्र होगा यदि यह विशेष मामले के तथ्य में आवश्यक है।

26. इस मोड़ पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को विश्वविद्यालय में तैनात रहने की कोई इच्छा नहीं है और एक बार निलंबन का आदेश पारित होने और विश्वविद्यालय के कुलसचिव के पद का प्रभार, कुलपति द्वारा पारित दिनांक 25.03.2023 के आदेश के माध्यम से, उससे ले लिया गया और दूसरे अधिकारी को सौंप दिया गया, उन्होंने राज्य सरकार से इस प्रार्थना के साथ संपर्क किया कि दिनांक 25.03.2023 के आदेश को राज्य सरकार को उनके प्रत्यावर्तन के आदेश के रूप में माना जाए और तदनुसार यह प्रार्थना की गई है कि उन्हें राज्य

सरकार की सेवा में रखने का आदेश दिया जाए।

27. जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा पूर्वोक्त सबमिशन और प्रार्थना का संबंध है, हम इस समय इस तरह के किसी भी अनुरोध से निपटने की स्थिति में नहीं हैं क्योंकि रिट याचिका में ऐसी कोई प्रार्थना नहीं की गई है। यह वास्तव में याचिकाकर्ता और राज्य सरकार के बीच का मामला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमने इस समय इस प्रार्थना पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया है।

28. उपरोक्त कारणों से, हम खुद को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों और तर्कों से सहमत नहीं पाते हैं और इस प्रकार निलंबन के आदेश और जांच समिति नियुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए राजी नहीं होते हैं जो रिट याचिका में आक्षेपित हैं।

29. इस प्रकार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

30. हालांकि, हम निर्देश दे सकते हैं कि याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच पूरी करने के लिए माननीय कुलाधिपति द्वारा पारित आदेश में अपेक्षित समय अवधि, यानी तीन महीने की अवधि का सख्ती से पालन किया जाएगा। यदि उपरोक्त अवधि के भीतर जांच पूरी नहीं होती है, तो याचिकाकर्ता के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाना खुला होगा। हालांकि, याचिकाकर्ता जांच में सहयोग करेगा।

31. लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

(2023) 4 ILRA 567

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली,

रिट-ए संख्या 4856/2006

चंद्र प्रकाश त्रिपाठी

... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अनुराग श्रीवास्तव,

आर. वी. सिंह, संजय कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., एच.एस.जैन,

ओम प्रकाश मणि त्रिपाठी, राज कुमार सिंह

सूर्यवंशी

ए. शिक्षा/सेवा कानून - प्रत्यक्ष भर्ती - पदोन्नति- उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 -अधिनियम की अनुसूची और नियमों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि विधानमंडल का आशय प्रबंधन को स्वतंत्र रूप से काम करने की छूट देना नहीं है। उसे केवल निरीक्षक को सूचना भेजनी है और उसे किसी शिक्षक की पदोन्नति के लिए न तो मूल अधिनियम में और न ही नियमों में कोई अधिकार है। उसे केवल उन शिक्षकों की सभी सूचनाएं भेजने का कर्तव्य है जो पदोन्नति के लिए पात्र हैं, भले ही उन्होंने आवेदन किया हो या नहीं। (पैरा 18)

जिला विद्यालय निरीक्षक ने पत्र दिनांक 5.7.2003 के माध्यम से संस्था के प्रबंधक से प्रश्नगत महाविद्यालय में प्रवक्ता के स्वीकृत

पद की स्थिति के सम्बन्ध में पूछा। पत्र दिनांक 3.1.2005 के माध्यम से संस्था के प्रधानाचार्य ने इस आशय की सूचना भेजी कि महाविद्यालय में प्रवक्ता के पांच पद स्वीकृत हैं तथा प्रवक्ता (नागरिक शास्त्र) का पद जो रिक्त है, उसे याची को पदोन्नति देकर भरा जाना है। महाविद्यालय के प्रबंधक ने याचिकाकर्ता को पदोन्नति देने के लिए अपेक्षित सुसंगत दस्तावेजों के साथ डीआईओएस को पत्र भेजा है। आदेश दिनांक 19.1.2005 के माध्यम से डीआईओएस उन्नाव ने याची को सहायक अध्यापक के पद पर चयन ग्रेड प्रदान किया था। (पैरा 15)

जब याचिकाकर्ता का दावा संसाधित होकर उत्तर प्रदेश माध्यमिक चयन बोर्ड की संस्तुति पर प्रवक्ता (नागरिक शास्त्र) के पद पर पदोन्नति हेतु जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजा गया तो वर्ष 2006 में याचिकाकर्ता के पदोन्नति के दावे को नजरअंदाज करते हुए सीधी भर्ती द्वारा पद को भर दिया गया, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने कोई दस्तावेज नहीं दिखाया जिससे यह सिद्ध हो सके कि याचिकाकर्ता के दावे पर विचार किया गया है। (पैरा 16)

बी. यदि पदोन्नति कोटे में कोई रिक्ति होती है और संस्था में कोई शिक्षक नियम 14 के अनुसार पदोन्नति के लिए पात्र है, तो उसे पदोन्नति के लिए विचार किया जाना चाहिए। यदि प्रबंधन मांग नहीं भेजता है, तो निरीक्षक के पास दो विकल्प खुले हैं (i) वह प्रबंधन से सूचना भेजने के लिए कह सकता है और (ii) यदि वह नहीं भेजता है, तो वह नियम, 1998

के नियम 4 के उप-नियम (6) में उल्लिखित संस्था के अभिलेखों के आधार पर अधिनियम की धारा 12 के तहत पात्र उम्मीदवारों के नाम समिति को भेज सकता है। (पैरा 19)

याचिकाकर्ता के दावे पर न तो प्रबंधन समिति ने और न ही जिला विद्यालय निरीक्षक ने कोई निर्णय लिया। 50% पदोन्नति कोटे के तहत पद रिक्त होने पर उसे पदोन्नति से भरा जाना चाहिए था। 50% पदोन्नति कोटे के तहत पदोन्नति के दावे पर विचार किए बिना पारित किया गया विवादित आदेश कानून की दृष्टि से गलत है। (पैरा 20)

सीधी भर्ती के माध्यम से नियुक्ति इस तथ्य के अनुसार योग्यता से रहित है कि नागरिक शास्त्र में व्याख्याता का पद याचिकाकर्ता को 50% पदोन्नति कोटा प्रदान करके भरा जाना था। पदोन्नति 1998 के नियमों के नियम 14 के तहत कानून के वैधानिक प्रावधानों के तहत की जाती है। इसलिए, जब तक संस्थान में पदोन्नति के लिए उम्मीदवार उपलब्ध नहीं हो जाता, तब तक संबंधित पद पर सीधी भर्ती नहीं की जा सकती। (पैरा 21)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-4)

वर्तमान याचिका में चयन बोर्ड द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.04.2006, जिला विद्यालय निरीक्षक के पत्र दिनांक 11.05.2006 तथा प्रबंध समिति के दिनांक 14.05.2006 के प्रस्ताव को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री संजय कुमार, प्रतिपक्षी संख्या-1, 3 और 4 के लिए उपस्थित अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री आर.के.एस सूर्यवंशी और प्रतिपक्षी संख्या-5 और 6 के अधिवक्ता श्री ओ.पी.एम त्रिपाठी को सुना।

2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता व्याख्याता (नागरिक) के पद पर प्रतिपक्षी संख्या-6 के चयन को चुनौती दे रहा है। इसे सीधी भर्ती के माध्यम से भरा जाना माना जाता है, क्योंकि जिला स्कूलों के निरीक्षक और प्रबंधन समिति द्वारा पारित परिणामी आदेश हैं। यह भी प्रार्थना की गई है कि उत्तरदाताओं को परमादेश की प्रकृति का एक आदेश जारी किया जाए ताकि याचिकाकर्ता को पीएलकेपी इंटर कॉलेज, कालू खेड़ा, उन्नाव के रूप में जाने जाने वाले कॉलेज में लेक्चरर (नागरिक शास्त्र) के पद पर पदोन्नति के माध्यम से अनुमति दी जा सके क्योंकि यह सत्र 2001-02 से परिणामी लाभों के साथ 50% पदोन्नति कोटा के अंतर्गत आता है। यह आगे प्रार्थना की गई है कि प्रतिपक्षी संख्या-4 और 5 को परमादेश की रिट जारी की जाए ताकि प्रतिपक्षी संख्या-6 को व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के पद पर कार्य करने और अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोका जा सके।

3. मामले के तथ्य यह हैं कि जिला उन्नाव के कालू खेड़ा में, सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत एक सोसायटी है जो पी.के.एल.पी. इंटर कॉलेज के नाम से शैक्षणिक संस्थान के रूप में चलती है और उसका

प्रबंधन करती है। संस्थान को यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के प्रावधानों के तहत मान्यता प्राप्त है। उत्तर प्रदेश हाईस्कूल एवं इंटरमीडिएट (कोलाज द्वारा शिक्षकों एवं अन्य कर्मचारियों के वेतन संदाय अधिनियम) अधिनियम, 1971 के प्रावधान उक्त संस्था पर लागू होते हैं।

याचिकाकर्ता का कहना है कि संस्थान में लेक्चरर के पांच स्वीकृत पद हैं। श्री चन्द्र प्रकाश तिवारी अधिवर्षता की आयु प्राप्त करने पर लेक्चरर (नागरिक शास्त्र) के पद से सेवानिवृत्त हुए जिससे लेक्चरर के पद पर महत्वपूर्ण रिक्ति हुई। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि 50% पदोन्नति कोटा के तहत आने वाला पद अस्तित्व में आया, संस्था के प्रिंसिपल ने याचिकाकर्ता की क्षेत्रीय स्तरीय समिति के समक्ष मामले को रखने के लिए पदोन्नति के अनुदान के लिए स्कूलों के जिला निरीक्षक को कागजात भेजे। जिला विद्यालय निरीक्षक ने दिनांक 5-7-2003 के पत्र द्वारा प्रश्नगत कॉलेज में लेक्चरर के स्वीकृत पद की स्थिति के संबंध में संस्था के प्रबंधक से पूछा था। प्रबंधन समिति द्वारा जिला विद्यालय निरीक्षक के पत्र पर कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

संस्था के प्रधानाचार्य ने दिनांक 3-1-2005 के पत्र द्वारा इस आशय की सूचना भेजी कि कॉलेज में लेक्चरर के पांच स्वीकृत पद हैं और इसके अतिरिक्त लेक्चरर (नागरिक शास्त्र) का पद जो रिक्त हो गया है, याचिकाकर्ता को पदोन्नत करके पदोन्नति के माध्यम से भरा जाना है।

कॉलेज के प्रबंधक ने याचिकाकर्ता को व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के पद पर पदोन्नत करने के प्रयोजनों के लिए आवश्यक प्रासंगिक दस्तावेजों के साथ डीआईओएस को एक पत्र भेजा है क्योंकि इसे पदोन्नति कोटा पद के तहत पदोन्नति के माध्यम से भरा जाना है।

दिनांक 19.1.2005 के आदेश के तहत, डीआईओएस, उन्नाव ने याचिकाकर्ता को सहायक शिक्षक, एलटी ग्रेड के पद पर चयन ग्रेड प्रदान किया था। जब पदोन्नति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के मामले में डीआईओएस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई तो याचिकाकर्ता ने डीआईओएस को एक अभ्यावेदन दायर किया जिसमें प्रार्थना की गई कि व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के पद पर याचिकाकर्ता की पदोन्नति पर कृपया विचार किया जाए और आवश्यक आदेश पारित किया जाए, जिसमें विफल होने पर सीधी भर्ती के माध्यम से प्रतिपक्षी संख्या-6 के चयन और नियुक्ति को चुनौती देते हुए प्रस्तुत रिट याचिका दायर की गई है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि नागरिक शास्त्र में व्याख्याता का पद 50% पदोन्नति कोटा के अंतर्गत आता है और यह वैधानिक बाध्यकारी है। प्रबंधन समिति, जिला विद्यालय निरीक्षक, क्षेत्रीय स्तर चयन समिति पर प्रभाव पड़ता है कि वे एल.टी ग्रेड में सहायक शिक्षक को निचले वेतनमान में योग्य पदोन्नति देकर रिक्ति को भरें। जिला विद्यालय निरीक्षक के माध्यम से चयन बोर्ड को सीधी भर्ती के लिए भेजी गयी मांग, यदि

कोई हो, अवैध है और नियम वर्ष 1998 के नियम 14 के तहत प्रदान किए गए वैधानिक प्रावधानों के विपरीत है।

5. वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि यह स्कूलों के जिला निरीक्षक हैं जिन्होंने उत्तर प्रदेश माध्यमिक सेवा चयन बोर्ड को व्याख्याता के पद की मांग भेजकर और अंग्रेजी में व्याख्याता के पद को व्याख्याता के स्वीकृत 6 पदों के रूप में मानकर कॉलेज में अराजकता पैदा की है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि संस्थान में पांच स्वीकृत पद हैं और प्रासंगिक समय पर, तीन पद 50% पदोन्नति के माध्यम से भरे गए थे और दो रिक्तियों को सीधी भर्ती द्वारा भरा गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रबंधन समिति ने याचिकाकर्ता के दावे पर विचार करते हुए, 50% पदोन्नति कोटा के तहत पदोन्नति के अनुदान के लिए 1998 के नियमों के नियम 14 के तहत क्षेत्रीय स्तर की चयन समिति को स्कूलों के जिला निरीक्षक के माध्यम से कागजात भेजे। नियमित पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर विचार लंबित था और प्रबंधन समिति और स्कूलों के जिला निरीक्षक द्वारा भेजे गए अनुरोध पर, बोर्ड ने प्रतिपक्षी संख्या-6 को नागरिक शास्त्र में व्याख्याता के रूप में चुना और संस्था में नियुक्ति के लिए सिफारिश की।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि एक बार जब पद 50% पदोन्नति कोटा से आ रहा है और याचिकाकर्ता का दावा

विचाराधीन था, तो प्रतिपक्षी संख्या-6 की सिफारिश कानून में खराब थी और 1998 के नियमों के नियम 14 के विपरीत थी।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि संस्थान में व्याख्याता के पांच पद हैं, अर्थात् पीएलकेपी इंटर कॉलेज, कालू खेड़ा, उन्नाव जिनमें से तीन पद पदोन्नति की श्रेणी के तहत खाली हो गए हैं और दो पद सीधी भर्ती की श्रेणी के तहत खाली हो गए हैं।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अगली बार 30.6.2001 को प्रस्तुत किया कि व्याख्याता (भूगोल) का पद जो सीधी भर्ती के कोटे के तहत था, श्री सिद्धि नाथ मिश्रा की सेवानिवृत्ति के कारण खाली हो गया था, लेकिन जाहिर तौर पर सीधी भर्ती के माध्यम से उक्त पद को भरने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई थी। इसी बीच, 30-6-2002 को पदोन्नति कोटा श्रेणी के तहत लेक्चरर का एक अन्य पद श्री चन्द्र प्रकाश तिवारी की सेवानिवृत्ति के कारण रिक्त हो गया।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जब याचिकाकर्ता के दावे पर कार्रवाई की गई और उत्तर प्रदेश माध्यमिक चयन बोर्ड की सिफारिश पर व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के पद पर पदोन्नति के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजा गया, तो दोनों पदों को पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ता के दावे की अनदेखी

करते हुए वर्ष 2006 में सीधी भर्ती द्वारा भरा गया था।

11. इसके विपरीत, स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सीधी भर्ती के लिए 50% कोटा के तहत केवल 01 शिक्षक अर्थात् श्री रवीन्द्र नाथ बाजपेयी, व्याख्याता (संस्कृति) सामान्य श्रेणी के तहत काम कर रहे थे और 50% पदोन्नति कोटा के तहत 3 व्याख्याता काम कर रहे थे इसलिए पदोन्नति कोटा पूरा किया गया था और इसलिए, प्रबंधक द्वारा अनुसूचित जाति की आरक्षित श्रेणी में 01 पद और अन्य पिछड़ा वर्ग की आरक्षित श्रेणी में 01 पद भरने के लिए मांग पत्र प्रस्तुत किया गया है। 50% कोटा की सीधी भर्ती के तहत लेक्चरर के कुल 02 पद और लेक्चरर के वास्तविक सृजित 5 पदों में से 01 पद अनुसूचित जाति की और 01 पद ओ.बी.सी. आरक्षित श्रेणी के अंतर्गत आता है

12. स्थायी अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि प्रबंधक द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त मांग तत्कालीन जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा सचिव, माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद को भेज दी गई और चयन बोर्ड से प्राप्त पैनल के अनुसरण में प्रबंधक को चयनित उम्मीदवारों को शामिल होने की अनुमति देने का निर्देश दिया गया है। इसलिए, उत्तरदाताओं की कार्रवाई न तो मनमानी है और न ही तर्कहीन है।

13. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

14. दिनांक 8.2.2021 के आदेश के तहत, इस न्यायालय ने स्थायी अधिवक्ता को इस न्यायालय को यह बताने का समय दिया कि क्या व्याख्याता के छह पद हैं या पांच पद हैं। दिनांक 8.2.2021 के आदेश के अनुपालन में, स्थायी अधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 13.9.2022 को गोपनीय पत्र दायर किया, जिसमें यह कहा गया है कि व्याख्याता के पांच स्वीकृत पद हैं।

15. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि संस्थान में व्याख्याता के पांच स्वीकृत पद हैं। अधिवर्षता की आयु प्राप्त करने पर, श्री चंद्र प्रकाश तिवारी लेक्चरर (नागरिक शास्त्र) के पद से सेवानिवृत्त हो गए, जिससे लेक्चरर के पद पर रिक्ति हो गई। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि 50% पदोन्नति कोटा के तहत आने वाला पद अस्तित्व में आया, संस्था के प्रिंसिपल ने क्षेत्रीय स्तरीय समिति के समक्ष याचिकाकर्ता के मामले को रखने के लिए पदोन्नति के अनुदान के लिए स्कूलों के जिला निरीक्षक को कागजात भेजे। जिला विद्यालय निरीक्षक ने दिनांक 5-7-2003 के पत्र द्वारा प्रश्नगत कॉलेज में लेक्चरर के स्वीकृत पद की स्थिति के संबंध में संस्था के प्रबंधक से पूछा था।

दिनांक 3-1-2005 के पत्र द्वारा संस्था के प्रधानाचार्य ने इस आशय की सूचना भेजी कि कॉलेज में लेक्चरर के पांच स्वीकृत पद हैं और इसके अतिरिक्त लेक्चरर (नागरिक शास्त्र) का पद जो रिक्त हो गया है, याचिकाकर्ता को पदोन्नति देकर पदोन्नति के माध्यम से भरा जाना है। कॉलेज के प्रबंधक ने याचिकाकर्ता के मामले को अग्रसारित करने के उद्देश्य से

आवश्यक दस्तावेजों के साथ डीआईओएस को एक पत्र भेजा है। दिनांक 19.1.2005 के आदेश के तहत, डी.आई.ओ.एस. उन्नाव ने सहायक शिक्षक के पद पर याचिकाकर्ता को चयन ग्रेड प्रदान किया था।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण के संबंध में कि जब याचिकाकर्ता के दावे पर कार्रवाई की गई और उत्तर प्रदेश माध्यमिक चयन बोर्ड की सिफारिश पर व्याख्याता (नागरिक शास्त्र) के पद पर पदोन्नति के लिए जिला विद्यालय निरीक्षक को भेजा गया, तो पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ता के दावे की अनदेखी करते हुए वर्ष 2006 में सीधी भर्ती द्वारा पद भर दिया गया था। स्थायी अधिवक्ता ने यह स्थापित करने के लिए कोई दस्तावेज नहीं दिखाया कि याचिकाकर्ता के दावे पर विचार किया गया है।

17. यह ध्यान देने योग्य है कि लगभग सभी जानकारी स्कूल निरीक्षक के पास है। निरीक्षक अपने रिकॉर्ड से पदोन्नति के लिए शिक्षकों की पात्रता, रिक्ति की तारीख और भर्ती वर्ष में आने वाली रिक्तियों के बारे में आसानी से पता लगा सकता है। उपर्युक्त के अतिरिक्त, सीधी भर्ती के संबंध में बोर्ड और पदोन्नति के लिए संयुक्त शिक्षा निदेशक को अधिनियम और नियमों के उपबंधों के अंतर्गत यह शक्ति प्राप्त है कि वे निरीक्षक से अतिरिक्त सूचना प्रस्तुत करने के लिए कह सकते हैं, जिसकी उन्हें सीधी भर्ती और पदोन्नति के संबंध में आवश्यकता होती है।

18. अधिनियम की अनुसूची और नियमों को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि विधायिका का

इरादा प्रबंधन को फ्री-हैंड देना नहीं है। इसे केवल निरीक्षक को सूचना भेजनी होती है और इसके पास न तो प्रधान अधिनियम में और न ही किसी शिक्षक की पदोन्नति के लिए नियमों में कोई प्राधिकार है। यह केवल उन शिक्षकों की सभी जानकारी भेजने का कर्तव्य है जो पदोन्नति के लिए पात्र हैं, इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना कि उन्होंने आवेदन किया है या नहीं।

19. यदि पदोन्नति कोटे में कोई रिक्ति होती है और संस्था में कोई शिक्षक नियम 14 के अनुसार पदोन्नति के लिए पात्र है, तो उसे पदोन्नति के लिए विचार किया जाना चाहिए। यदि प्रबंधन मांग नहीं भेजता है, तो निरीक्षक के पास दो विकल्प खुले हैं (i) वह प्रबंधन को सूचना भेजने के लिए कह सकता है और (ii) यदि वह नहीं भेजता है तो वह नियमावली, 1998 के नियम 4 के उप-नियम (6) में यथा उल्लिखित संस्था के अभिलेखों के आधार पर अधिनियम की धारा 12 के अंतर्गत पात्र अभ्यर्थियों का नाम समिति को अग्रेषित कर सकता है।

20. याचिकाकर्ता के दावे पर न तो प्रबंधन समिति और न ही जिला विद्यालय निरीक्षक ने कोई निर्णय लिया। एक बार 50% पदोन्नति कोटा के तहत पद खाली होने के बाद, इसे पदोन्नति द्वारा भरा जाना चाहिए था। 50% पदोन्नति कोटा के तहत पदोन्नति के दावे

पर विचार किए बिना पारित आक्षेपित आदेश कानून में गलत है।

21. सीधी भर्ती के माध्यम से नियुक्त इस तथ्य के मद्देनजर योग्यता से रहित है कि नागरिक शास्त्र में व्याख्याता का पद याचिकाकर्ता को 50% पदोन्नति कोटा प्रदान करके भरा जाना था। पदोन्नति के नियमों 1998 के नियम 14 के तहत कानून के वैधानिक प्रावधानों के तहत की जाती है। इसलिए, प्रश्नगत पद पर सीधी भर्ती तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि पदोन्नति प्रदान करने के लिए कोई उम्मीदवार संस्थान में उपलब्ध न हो।

22. उपरोक्त के मद्देनजर, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। चयन बोर्ड द्वारा पारित दिनांक 22-4-2006 के आदेश, जिला विद्यालय निरीक्षक के दिनांक 11-5-2006 के पत्र और प्रबंध समिति के दिनांक 14-5-2006 के संकल्प को एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

23. हालांकि, क्षेत्रीय स्तर की चयन समिति को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से छह सप्ताह की अवधि के भीतर 50% पदोन्नति कोटा के तहत याचिकाकर्ता की पदोन्नति के दावे पर विचार करे।

24. यह आगे स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता की पदोन्नति पर भर्ती के वर्ष के पहले दिन से विचार किया जाएगा और

उसे परिणामी लाभ भी प्रदान किए जाएंगे।

(2023) 4 ILRA 572

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 4952/2007

राजेश कुमार द्विवेदी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: जी.सी. वर्मा

**अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., आशीष मिश्रा,
पी.के. खरे, आर.सी. सिंह, राज दीपक चौधरी**

ए. सेवा कानून - पदोन्नति/आरक्षण - वेतन-अनुसूचित जातियों का आरक्षण कोटा संस्थान में उपलब्ध तीन रिक्तियों के विरुद्ध लागू नहीं है और यदि इसकी अनुमति दी जाती है, तो यह आरक्षण के 21% कोटे से अधिक होगा। (पैरा 14)

वर्तमान वाद में, प्रबंधन समिति ने 19.12.2006 को याचिकाकर्ता को हिंदी में व्याख्याता के पद पर पदोन्नति प्रदान करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। प्रासंगिक नियमों की धारा 12 के तहत गठित क्षेत्रीय चयन समिति को भेजने के लिए कागजात विधिवत डीआईओएस के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे। क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने वाद में निर्णय पारित, जिसे क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक ने 25.06.2007 के आदेश के माध्यम से सूचित किया, जिसके तहत यह माना गया

कि जिस पद पर याचिकाकर्ता को पदोन्नति दी गई है, वह रोस्टर के अनुसार अनुसूचित जाति की आरक्षित श्रेणी में आता है। (पैरा 4)

डीआईओएस ने दिनांक 05.07.2007 के पत्र द्वारा क्षेत्रीय स्तरीय समिति/क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक के दिनांक 25.06.2007 के निर्णय से अवगत कराया तथा पदोन्नति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के कागजात वापस कर दिए। (पैरा 5)

वर्तमान स्थिति पर हीरा लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के पूर्ण पीठ के निर्णय में विस्तार से चर्चा की गई है - ऐसे वाद हो सकते हैं जहां एक ही संवर्ग में भर्ती के विभिन्न स्रोतों के लिए प्रावधान करने वाला नियम है, तो भर्ती के स्रोत के अनुसार भरे जाने के लिए उपलब्ध पदों पर आरक्षण लागू किया जाना चाहिए। यह विवाद उस संदर्भ में उठ सकता है जहां पदोन्नति के माध्यम से पद भरने के लिए कोई उम्मीदवार उपलब्ध नहीं है और उसे सीधी भर्ती से भरे जाने के लिए भेजा जाना है। ऐसी स्थिति उन वाद में आएगी जहां पदों की संख्या पांच या उससे अधिक हो सकती है ताकि आरक्षण का नियम लागू हो सके। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक संवर्ग में 8 पद हैं और नियम, जैसा कि वर्तमान में सम्मिलित है, अर्थात् 50% पदों को पदोन्नति के माध्यम से भरा जाना है, उस स्थिति में चार पद पदोन्नति से और चार सीधी भर्ती से भरे जाने हैं। पदोन्नति के माध्यम से नियुक्ति के लिए आरक्षण का नियम केवल अनुसूचित जातियों के लिए उपलब्ध है और अन्य पिछड़ी श्रेणियों के लिए

ऐसा कोई नियम उपलब्ध नहीं है। वे केवल सीधी भर्ती की प्रक्रिया में आरक्षण का लाभ पाने के अधिकारी हैं।

ऊपर दिए गए उदाहरण में, जहां आठ में से चार पद सीधी भर्ती से भरे जाने हैं, वहां 1994 के अधिनियम के तहत अन्य पिछड़ा वर्ग के पक्ष में 27% आरक्षण के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए एक पद अन्य पिछड़ा वर्ग को देना होगा। पदोन्नति कोटे के चार पदों के विरुद्ध अनुसूचित जाति वर्ग को आरक्षण नहीं दिया जा सकता क्योंकि पदोन्नति के लिए 21% आरक्षण लागू करने के लिए कम से कम पांच पद होने चाहिए। किसी ऐसी स्थिति में जहां चार पदों के विरुद्ध किसी भी श्रेणी का कोई अन्य उम्मीदवार पदोन्नति के लिए उपलब्ध नहीं है, तो पदोन्नति द्वारा भरी जाने वाली ऐसी रिक्ति को सीधी भर्ती के लिए आगे ले जाना पड़ सकता है। इससे भर्ती के स्रोत में ताकत में बदलाव आएगा और इस प्रकार सीधी भर्ती द्वारा उपलब्ध पदों की ताकत में उतार-चढ़ाव होगा। इसलिए, अनुसूचित जाति के उम्मीदवार को आरक्षण का लाभ मिलेगा यदि सीधी भर्ती के लिए कैडर की ताकत बढ़ाकर पांच कर दी जाती है, भले ही उसी उम्मीदवार को आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा यदि 50% का पदोन्नति कोटा लागू किया जाता है। यह इंगित करना उचित होगा कि एक ऐसा मामला लेते हुए जहां पदोन्नति द्वारा भरे जाने वाले पांच पद हैं और यदि किसी संवर्ग में पांच पद पर सीधी भर्ती द्वारा आरक्षण दिया जाता है तो ऐसी स्थिति में दोनों स्रोतों में 21% की सीमा तक आरक्षण का नियम किसी भी स्रोत में अनुपात को प्रभावित किए बिना

सुविधाजनक रूप से लागू किया जा सकता है। (पैरा 13)

वर्तमान वाद में छह पद हैं, तीन पद सीधी भर्ती कोटे के अंतर्गत आते हैं और तीन पद पदोन्नति कोटे के अंतर्गत आते हैं। **आरक्षण का कोटा सीधी भर्ती के साथ-साथ पदोन्नति कोटे पर भी अलग-अलग लागू होगा। केवल तीन पदों के लिए पदोन्नति कोटा है, इसलिए अनुसूचित जातियों के आरक्षण के लिए रोस्टर लागू नहीं होगा।** (पैरा 7, 16)

रिट याचिका स्वीकार की गई। आपेक्षित आदेश दिनांक 25.06.2007 और 05.07.2007 को निरस्त किया जाता है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को 19.12.2006 से लेकर आज तक का वेतन इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक महीने की अवधि के भीतर दें। याचिकाकर्ता को परिणामी लाभ भी प्रदान किए जाएंगे। (पैरा 17 से 19) (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

हीरा लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;
(2010) 3 यूपीएलबीईसी 1761 (पैरा 7)

वर्तमान याचिका में प्रतिवादी संख्या 2 और 3 द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 25.06.2007 और 05.07.2007 के आदेशों तथा दिनांक 23.06.2007 के निर्णय को चुनौती दी गई है, जैसा कि दिनांक 25.06.2007 के आक्षेपित आदेश में उल्लेख किया गया है, तथा आगे प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादियों को आदेश

की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करके आदेश दिया जाए कि वे 19.12.2006 से याचिकाकर्ता की पदोन्नति के लिए अनुमोदन प्रदान करें तथा 19.12.2006 से देय राशि के साथ नियमित रूप से व्याख्याता के पद के लिए वेतन का भुगतान करें।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जी.सी. वर्मा, प्रत्यर्थी - राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री राज दीपक चौधरी को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 द्वारा पारित दिनांक 25.06.2007 और 05.07.2007 के आदेशों को चुनौती दे रहा है, जो क्रमशः अनुलग्नक संख्या 1 और 2 में निहित हैं और साथ ही दिनांक 23.06.2007 के निर्णय को भी चुनौती दे रहा है, जैसा कि 25.06.2007 के विवादित आदेश में उल्लेख किया गया है, साथ ही प्रत्यर्थीगण को 19.12.2006 से याचिकाकर्ता की पदोन्नति के लिए अनुमोदन प्रदान करने और 19.12.2006 से बकाया राशि के साथ नियमित रूप से व्याख्याता के पद के लिए वेतन का भुगतान करने का आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए आगे की प्रार्थना की गई है।

3. प्रकरण का तथ्यात्मक सार यह है कि श्री के.के. मिश्रा के 50% पदोन्नति कोटे के

अंतर्गत सेवानिवृत्त होने के कारण हिंदी व्याख्याता का एक पद रिक्त हो गया था। संस्थान में व्याख्याताओं के छह स्वीकृत पद हैं, जिनमें से तीन पद सीधी भर्ती से तथा तीन पद पदोन्नति से भरे जाने हैं। छह पदों में से एक व्याख्याता का पद अनुसूचित जाति वर्ग से पहले ही भरा जा चुका था तथा उक्त पद पर श्री परमेश्वर दीन चौधरी कार्यरत थे।

4. प्रबन्ध समिति ने 19.12.2006 को याचिकाकर्ता को हिंदी में व्याख्याता के पद पर पदोन्नति प्रदान करने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। संबंधित नियमों की धारा 12 के तहत गठित क्षेत्रीय चयन समिति को भेजने के लिए कागजात जिला विद्यालय निरीक्षक (डीआईओएस) के समक्ष विधिवत प्रस्तुत किए गए। क्षेत्रीय स्तरीय समिति ने प्रकरण में निर्णय लिया, जिसे क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक ने 25.06.2007 के आदेश के माध्यम से सूचित किया, जिसके तहत यह माना गया कि जिस पद पर याचिकाकर्ता को पदोन्नति दी गई है, वह रोस्टर के अनुसार अनुसूचित जाति की आरक्षित श्रेणी में आता है।

5. डीआईओएस ने दिनांक 05.07.2007 के पत्र के माध्यम से क्षेत्रीय स्तरीय समिति/क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक के दिनांक 25.06.2007 के निर्णय की जानकारी दी तथा पदोन्नति प्रदान करने के लिए याचिकाकर्ता के कागजात वापस कर दिए। याचिकाकर्ता ने व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान रिट याचिका दायर की, जिसमें दिनांक 20.08.2007 को निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया गया:

"विपक्षीगण संख्या 1 से 3 की ओर से नोटिस विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है, जिन्होंने प्रति-शपथपत्र दाखिल करने के लिए चार सप्ताह का समय मांगा है, तथा उन्हें यह समय प्रदान किया जाता है। इसके बाद याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को प्रति-शपथपत्र दाखिल करने के लिए दो सप्ताह का समय दिया जाता है। इसे उसके बाद सूचीबद्ध किया जाए।"

इस बीच, रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 और 2 में निहित दिनांक 25.6.2007 और 5.7.2007 के विवादित आदेशों का क्रियान्वयन, जहां तक कि वे याचिकाकर्ता से संबंधित हैं और आरबीएसबी, सिंह इंटर कॉलेज कमलापुर, सीतापुर में हिंदी में प्रवक्ता के पद के संबंध में हैं, स्थगित रहेगा।

6. इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता को हिंदी व्याख्याता के पद पर बने रहने की अनुमति दी गई तथा दिनांक 25.06.2007 एवं 05.07.2007 के विवादित आदेशों के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी गई।"

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि संस्थान में व्याख्याताओं के छह पद विधिवत स्वीकृत हैं और 50% पदोन्नति कोटे के तहत केवल तीन पद हैं, जो 5 से कम हैं, इसलिए, हीरा लाल बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य (2010) 3 यूपीएलबीईसी 1761 के प्रकरण में पूर्ण पीठ के निर्णय के मद्देनजर, मौजूदा तीन रिक्तियों के विरुद्ध कोई आरक्षण नहीं होगा। उनका अगला तर्क यह है कि यदि

अनुसूचित जातियों को आरक्षण की अनुमति दी जाती है, जो 21% है, तो यह 25% से अधिक हो जाएगा। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने हीरा लाल (पूर्वोक्त) के प्रकरण में निर्णय के पैराग्राफ 32 पर भरोसा किया।

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि छह पद हैं और उनके विरुद्ध रोस्टर लागू होगा। उपरोक्त के मद्देनजर, अनुसूचित जाति वर्ग के लिए एक पद आरक्षित रहेगा। उनका अगला तर्क यह है कि क्षेत्रीय स्तरीय समिति और डीआईओएस द्वारा पारित विवादित आदेश किसी भी प्रकार की त्रुटिपूर्ण या अवैध नहीं हैं और न्यायसंगत तथा वैध हैं।

10. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है। के संबंध में उत्पन्न विवाद को हल करने के लिए, हीरा लाल (पूर्वोक्त) प्रकरण में दिए गए निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"12. रोस्टर के आवेदन का विरोध करने वालों की ओर से तर्क का मुख्य आधार डॉ. विश्वजीत सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में डिवीजन बेंच के निर्णय के अनुपात पर आधारित है, जिसमें तर्क दिया गया है कि अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के लिए किसी भी रोस्टर की मदद से आरक्षण के नियम की प्रयोज्यता का कोई अवसर नहीं है, क्योंकि अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण का प्रतिशत जो 21% है, उक्त प्रतिशत की गणना

और आवेदन करने के लिए कैडर की संख्या में कम से कम पांच पदों की कुल संख्या के अस्तित्व की परिकल्पना करता है। उनका कहना है कि 21% की गणना तभी की जा सकती है जब 21% आरक्षण देने के लिए कम से कम पांच पद हों क्योंकि तभी अनुसूचित जातियों के लिए एक पद आरक्षित किया जा सकता है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि पद पांच से कम हैं, जैसा कि वर्तमान प्रकरण में तीन है, तो निर्धारित गणितीय प्रतिशत यानी 21% गणना से परे है और उक्त प्रतिशत को लागू करने के लिए तीन पदों में से कोई अंश उपलब्ध नहीं हो सकता है।"

12. हीरा लाल (पूर्वोक्त) प्रकरण में वृहद पीठ को संदर्भित प्रश्न भी नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"9.....विश्वजीत सिंह (पूर्वोक्त) और श्रीमती फोलपति (पूर्वोक्त) के मामले में उक्त दो डिवीजन बेंच के फैसलों के एक अवलोकन से संकेत मिलता है कि रोस्टर की प्रयोज्यता को लागू किया जा सकता है जहां पांच या पांच से अधिक पदों को भरा जाना है जहां उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 के तहत आरक्षण का दावा किया जा रहा है।

उक्त निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि रोस्टर लागू करने के लिए पांच से अधिक पदों का अस्तित्व होना चाहिए अन्यथा यह इंदिरा साहनी प्रकरण में कानून का उल्लंघन होगा क्योंकि तब आरक्षण 50% से अधिक होगा। दोनों खंडपीठों के निर्णयों के

अनुपात को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि महेंद्र कुमार गोंड के प्रकरण में निर्णय में इस पर ध्यान नहीं दिया गया है। डॉ. विश्वजीत के प्रकरण में निर्णय 20 अप्रैल 09 को सुनाया गया जबकि फूलपति देवी के प्रकरण में निर्णय उससे पहले सुनाया गया था।

10. ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों निर्णयों पर न्यायालय का ध्यान नहीं गया तथा रोस्टर की प्रयोज्यता की भी उस स्थिति में अनदेखी की गई, जहां केवल तीन पद उपलब्ध हैं।

11. फूलपति के दो निर्णयों में निर्धारित अनुपात को देखते हुए देवी (पूर्वोक्त) में महेंद्र कुमार गोंड के प्रकरण में विरोधाभासी स्थिति प्रतीत होती है, और इसलिए इसे एक बड़ी पीठ के समक्ष प्रस्तुत करके हल किया जाना चाहिए।

12. तदनुसार, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय 5 नियम 6 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, ऊपर दर्शाई गई स्थिति के मद्देनजर निम्नलिखित प्रश्नों को एक बड़ी पीठ को भेजा जाना उचित है।

1. क्या आरक्षण से संबंधित रोस्टर इंटरमीडिएट कॉलेज में तृतीय श्रेणी के पदों के संबंध में पदोन्नति के संबंध में लागू किया जा सकता है, जहां पदों की संख्या पांच से कम है?

2. महेंद्र कुमार गोण्ड (पूर्वोक्त) और डॉ. विश्वजीत सिंह (पूर्वोक्त) के दो डिवीजन बेंच

के निर्णयों के अनुपात के बीच कोई संघर्ष है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, और यदि ऐसा है, तो कौन सा निर्णय कानून को सही ढंग से निर्धारित करता है?

13. हीरा लाल (पूर्वोक्त) प्रकरण में पूर्ण पीठ द्वारा विचारित प्रश्न भी नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"32. ऐसे प्रकरण हो सकते हैं, जहां एक ही संवर्ग में भर्ती के विभिन्न स्रोतों के लिए प्रावधान करने वाला नियम है, तो भर्ती के स्रोत के अनुसार भरे जाने के लिए उपलब्ध पदों पर आरक्षण लागू किया जाना चाहिए। यह मुद्दा उस संदर्भ में उठ सकता है, जहां पदोन्नति के माध्यम से पद भरने के लिए कोई उम्मीदवार उपलब्ध नहीं है और इसे सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने के लिए भेजा जाना है। ऐसी स्थिति तब आएगी, जब पदों की संख्या पांच या उससे अधिक हो, ताकि आरक्षण का नियम लागू हो सके। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि किसी संवर्ग में 8 पद हैं और वर्तमान में नियम यह है कि 50% पद पदोन्नति के माध्यम से भरे जाने हैं, उस स्थिति में चार पद पदोन्नति से और चार पद सीधी भर्ती से भरे जाने हैं। पदोन्नति के माध्यम से नियुक्ति के लिए आरक्षण का नियम उत्तर प्रदेश राज्य में केवल अनुसूचित जातियों के लिए उपलब्ध है और अन्य पिछड़ी श्रेणियों के लिए ऐसा कोई नियम उपलब्ध नहीं है। वे केवल सीधी भर्ती की प्रक्रिया में आरक्षण का लाभ पाने के हकदार हैं। ऊपर दिए गए उदाहरण में, जहां आठ में से चार पद सीधी

भर्ती से भरे जाने हैं, वहां 1994 के अधिनियम के तहत अन्य पिछड़ा वर्ग के पक्ष में 27% आरक्षण के अधिदेश को ध्यान में रखते हुए एक पद उन्हें देना होगा। पदोन्नति कोटे के चार पदों के विरुद्ध अनुसूचित जाति वर्ग को आरक्षण नहीं दिया जा सकता, क्योंकि पदोन्नति के लिए 21% आरक्षण लागू करने के लिए न्यूनतम पांच पद होने चाहिए। किसी दी गई स्थिति में, जहां चार पदों के विरुद्ध पदोन्नति के लिए किसी भी श्रेणी का कोई अन्य उम्मीदवार उपलब्ध नहीं है, तो पदोन्नति द्वारा भरी जाने वाली ऐसी रिक्ति को सीधी भर्ती के लिए आगे ले जाना पड़ सकता है। इससे भर्ती के स्रोत में संख्या में परिवर्तन आएगा, जिससे सीधी भर्ती द्वारा उपलब्ध पदों की संख्या में उतार-चढ़ाव होगा। इसलिए, यदि सीधी भर्ती के लिए संवर्ग की संख्या बढ़ाकर पांच कर दी जाती है, तो अनुसूचित जाति के उम्मीदवार को आरक्षण का लाभ मिलेगा, हालांकि यदि 50% के पदोन्नति कोटे का पालन किया जाता है, तो उसी उम्मीदवार को आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा। यहां यह बताना उचित होगा कि यदि किसी संवर्ग में पांच पद पदोन्नति से तथा पांच पद सीधी भर्ती से भरे जाने हैं तो ऐसी स्थिति में दोनों स्रोतों में 21% की सीमा तक आरक्षण का नियम, दोनों स्रोतों में अनुपात में परिवर्तन किए बिना, सुविधापूर्वक लागू किया जा सकता है।"

14. पूर्ण पीठ के निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अनुसूचित जातियों का आरक्षण कोटा संस्थान में उपलब्ध तीन रिक्तियों के विरुद्ध लागू नहीं है और यदि इसकी अनुमति

दी जाती है तो यह आरक्षण के 21% कोटे से अधिक होगा।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील में दम है और रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है, हालांकि, प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलील कि आरक्षण का कोटा छह उपलब्ध रिक्तियों के विरुद्ध लागू होगा, 1998 के नियम 10 के तहत प्रकृति में गलत है। इस प्रकरण में, 50% पद सीधी भर्ती के माध्यम से भरे जाने हैं और 50% पद पदोन्नति के माध्यम से भरे जाएंगे।

16. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कुल छह पद हैं, तीन पद सीधी भर्ती कोटे के अंतर्गत आते हैं तथा तीन पद पदोन्नति कोटे के अंतर्गत आते हैं। आरक्षण का कोटा सीधी भर्ती के साथ-साथ पदोन्नति कोटे पर भी अलग-अलग लागू होगा। केवल तीन पदों के लिए पदोन्नति कोटा है, इसलिए अनुसूचित जातियों के आरक्षण के लिए रोस्टर लागू नहीं किया जाएगा।

17. उपरोक्त कारणों के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और स्वीकृत की जाती है।

18. दिनांक 25.06.2007 और 05.07.2007 के आक्षेपित आदेश एतद्वारा रद्द किये जाते हैं।

19. प्रत्यर्थागण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को 19.12.2006 से लेकर आज

तक का वेतन इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक महीने की अवधि के भीतर भुगतान करें। याचिकाकर्ता को परिणामी लाभ भी प्रदान किए जाएंगे।

20. पक्षकारों को अपना खर्च स्वयं वहन करना होगा।

(2023) 4 ILRA 577

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 5335/2023

श्रीमती पिकी देवी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री शेख मोज़्ज़म

इनाम, श्री एस.सी. द्विवेदी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून -जांच - धन की हानि, दुर्विनियोजन एवं दुरुपयोग - उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1947: धारा 27(2); पंचायत राज नियम, 1947: नियम 256 एवं 257।

अधिकारिता- 1947 के अधिनियम की धारा 27 तथा 1947 के नियम 256 के अवलोकन से स्पष्ट है कि मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी द्वारा की गई जांच पर अधिभार लगाया जा सकता था, तथा प्रधान, उप-प्रधान और ग्राम पंचायत के सदस्यों के वाद में जांच जिला मजिस्ट्रेट को तथा गांव सभा के अधिकारियों

और सेवकों के मामले में जिला पंचायत राज अधिकारी को भेजी जानी थी। (पैरा 9)

इसलिए, सहकारी समितियों और पंचायत के मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी को ही यह जिम्मेदारी सौंपी गई जो अधिभार लगाने के प्रयोजनार्थ जाँच करने के लिए प्राधिकृत अधिकारी है। **यदि जाँच मुख्य लेखापरीक्षा अधिकारी द्वारा नहीं की गई थी तो इस वाद में उप निदेशक (कृषि) बस्ती द्वारा की गई जाँच क्षेत्राधिकार के बाहर थी। जब पंचायत राज अधिनियम की धारा 27(2) में निर्दिष्ट विहित प्राधिकारी था तो जिला मजिस्ट्रेट को अधिभार लगाने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। (पैरा 10, 12)**

यह निर्विवाद तथ्य है कि जिस जांच के आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध पूरी कार्यवाही प्रारंभ की गई, जिस पर जिला मजिस्ट्रेट (प्रतिवादी संख्या 3) ने भरोसा किया और याचिकाकर्ता के विरुद्ध पूरा निर्धारण किया गया, वह मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी या जिला लेखा परीक्षा अधिकारियों के अतिरिक्त अन्य अधिकारियों द्वारा किया गया है, और इस तरह, प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध देयता निर्धारित करने के संबंध में विशेष रूप से अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है। (पैरा 18)

वर्तमान याचिका के आपेक्षित आदेश से यह स्पष्ट है कि आयुक्त बस्ती, क्षेत्र बस्ती (प्रतिवादी संख्या 2) के समक्ष अपील प्रस्तुत करते समय विशिष्ट आधारों को अपनाने के

बावजूद, याचिकाकर्ता को दिए गए नुकसान का निर्धारण करते समय प्रतिवादी संख्या 3 की योग्यता के संबंध में शायद ही कोई चर्चा उपलब्ध है और इस प्रकार, इसे निरस्त किया जाना चाहिए। (पैरा 19)

प्रतिवादियों से प्रति शपथपत्र मांगे बिना इस मामले पर निर्णय दिया जाता है, क्योंकि प्रतिवादी प्राधिकारियों की कार्रवाई उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1947 के स्थापित प्रावधानों के विपरीत है, जिस पर रिट सी संख्या 28230/2022 (दिनेश कुमार एवं 4 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश के जिला एवं 3 अन्य) में पारित दिनांक 16.12.2022 के निर्णय में व्यापक रूप से चर्चा की गई है। (पैरा 20)

प्रतिवादी संख्या 3 और 2 द्वारा पारित दिनांक 29.08.2022 और 06.03.2023 के आदेश क्रमशः निरस्त किये जाते हैं और अपास्त किये जाते हैं।

रिट याचिका स्वीकृत (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. श्रीमती श्यामवती बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2013 (6) ए.डब्ल्यू.सी. 6339 (पैरा 12)
2. उदय प्रताप सिंह @ हरिकेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2019 (10) एडीजे 443 (पैरा 12)
3. राम विलास बनाम कमिश्नर देवी पाटन मंडल गोंडा एवं अन्य, 2022 (1) एडीजे 1 (पैरा 15)

4. दिनेश कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, रिट-सी संख्या 28230/2022 (पैरा 16)

वर्तमान याचिका में प्रतिवादी संख्या 3 (जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती) द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.08.2022 के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 2 (आयुक्त बस्ती, क्षेत्र बस्ती) द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.03.2023 को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री एस.सी. द्विवेदी को जिनकी सहायता श्री शेख मोअज्जम इनाम ने की और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री सत्येन्द्र कुमार त्रिपाठी को सुना गया।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है:-

" i) प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 29.08.2022 के आदेश के साथ-साथ प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 06.03.2023 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ii) प्रत्यर्थी संख्या 3 को विवादित आदेशों के अनुसरण में कोई कार्रवाई न करने का आदेश/निर्देश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

3. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि ग्राम विकास अधिकारी, ब्लॉक बहादुरपुर , जिला-बस्ती की देखरेख में सार्वजनिक उद्देश्य के लिए उपयोग की जाने वाली धनराशि के कुछ नुकसान, गबन और दुरुपयोग के संबंध में जांच की गई थी और याचिकाकर्ता उसी पद पर अपनी सेवाएं दे रही थी।

4. उक्त जांच जिला उद्यान अधिकारी, तहसीलदार सदर, जिला बस्ती और सहायक अभियंता, डी.आर.डी.ए की समिति द्वारा तथ्यों का पता लगाने के लिए की गई है, जो विशेष रूप से याचिकाकर्ता के साथ-साथ संबंधित गांव के ग्राम प्रधान की देखरेख में सार्वजनिक कार्य करते समय अनियमितताओं के संबंध में है।

5. जांच समिति द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के आधार पर, जिला मजिस्ट्रेट यानी प्रत्यर्थी संख्या 3 ने रु 3,52,083/- का नुकसान निर्धारित किया और इसे 29.08.2022 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता, पूर्व ग्राम प्रधान और सहायक अभियंता, बहादुरपुर , जिला-बस्ती से समान अनुपात में वसूलने का आदेश दिया गया है।

6. प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 29.08.2022 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने इसे प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष चुनौती दी, जिसे दिनांक 06.12.2022 के निर्णय और आदेश के अनुसरण में अपीलीय प्राधिकारी के रूप में नामित किया गया है और इस प्रकार, इसे प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा सिविल विविध रिट याचिका संख्या 18959/2022 (श्रीमती पिंकी देवी बनाम उ0प्र0 राज्य और

अन्य) में पारित निर्देशों के सख्त अनुपालन के तहत निर्णय दिया गया है।

7. प्रत्यर्थी सं. 2 के समक्ष अपील प्रस्तुत करते समय, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जांच के लिए गठित समिति की योग्यता के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा लिया गया विशिष्ट रुख और साथ ही प्रत्यर्थी सं. 3 का जिला मजिस्ट्रेट होना धारा 27(2) के विपरीत है जिसमें निर्धारित प्राधिकारी जो प्रक्रिया के अनुसार अधिभार की राशि तय करने के लिए सक्षम है, केवल उस मामले में परिभाषित किया गया है जहां जिम्मेदारी प्रधान या ग्राम पंचायत या संयुक्त समिति या इस अधिनियम के तहत गठित किसी अन्य समिति के अन्य सदस्य के खिलाफ तय की जाती है और इस तरह, ग्राम विकास अधिकारी/ग्राम सचिव होने के नाते, प्रत्यर्थी सं. 3 ने उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1947 के तहत परिभाषित वैधानिक प्रावधानों के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही की, 1947 के अधिनियम की धारा 27 और 30प्र0 पंचायत राज नियम, 1947 के नियम 256 और 257 के तहत परिभाषित कानूनी मुद्दों की बेहतर समझ के लिए (जिसे आगे "1947 के नियम" के रूप में संदर्भित किया गया है) उन्हें नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"27. अधिभार.- (1) प्रत्येक प्रधान या [***] [ग्राम पंचायत] का प्रत्येक सदस्य, ग्राम पंचायत या संयुक्त समिति या इस अधिनियम के अधीन गठित किसी अन्य समिति का प्रत्येक सदस्य ग्राम पंचायत के धन या संपत्ति की हानि, अपव्यय या दुर्य्योजन के लिए

अधिभार का [दायी होगा, यदि ऐसी हानि, अपव्यय या दुर्य्योजन उसके प्रधान या सदस्य रहते हुए उसकी उपेक्षा या कदाचार का प्रत्यक्ष परिणाम है]।

परन्तु ऐसा दायित्व ऐसी हानि, अपव्यय या दुरुपयोग के घटित होने से दस वर्ष की समाप्ति के पश्चात्, या उस तारीख से पांच वर्ष की समाप्ति के पश्चात्, जिसको उत्तरदायी व्यक्ति अपना पद धारण नहीं करता है, जो भी बाद में हो, समाप्त हो जाएगा।

(2) विहित प्राधिकारी, विहित प्रक्रिया के अनुसार अधिभार की राशि नियत करेगा और उस राशि को कलेक्टर को प्रमाणित करेगा, जो यह समाधान हो जाने पर कि राशि देय है, उसे इस प्रकार वसूल करेगा मानो वह भू-राजस्व का बकाया हो।

(3) अधिभार की राशि निर्धारित करने वाले विहित प्राधिकारी के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, ऐसे आदेश के तीस दिन के भीतर, राज्य सरकार या ऐसे अन्य अपीलीय प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील कर सकेगा, जैसा कि विहित किया जाए।

(4) जहां उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट अधिभार के निर्धारण और वसूली के लिए कोई कार्यवाही नहीं की जाती है, वहां राज्य सरकार ऐसी हानि, अपव्यय या दुरुपयोग के लिए प्रतिकर के लिए उत्तरदायी व्यक्ति के विरुद्ध वाद संस्थित कर सकेगी।"

अध्याय XIII

अधिभार नियम

"256. (1) किसी मामले में जहां मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी, सहकारी समितियां और पंचायतें, यह समझती हैं कि प्रधान की लापरवाही या कदाचार के प्रत्यक्ष परिणाम स्वरूप गांव सभा से संबंधित किसी धन या अन्य संपत्ति की हानि, बर्बादी या दुरुपयोग हुआ है, तो वह प्रधान, उप-प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक से यह मांग कर सकेंगे कि उनसे दुरुपयोग की गई राशि या गांव सभा या उसकी संपत्ति को हुई हानि या बर्बादी को दर्शाने वाली राशि का भुगतान करने की अपेक्षा न की जाए और ऐसा स्पष्टीकरण संबंधित व्यक्ति को ऐसी मांग की सूचना दिए जाने की तारीख से दो महीने से अधिक की अवधि के भीतर प्रस्तुत किया जाएगा।

परन्तु यह कि प्रधान, उप-प्रधान या गांव पंचायत के सदस्य से स्पष्टीकरण जिला मजिस्ट्रेट के माध्यम से तथा अधिकारी या सेवक से पंचायत राज अधिकारी के माध्यम से मांगा जाएगा:

यह भी प्रावधान है कि किसी ऐसे सदस्य से कोई स्पष्टीकरण नहीं मांगा जाएगा, जिसके बारे में गांव पंचायत या उसकी किसी समिति के कार्यवृत्त में यह दर्ज है कि वह उस बैठक में अनुपस्थित था, जिसमें आक्षेपित व्यय स्वीकृत किया गया था या जिसने ऐसे व्यय के विरुद्ध मतदान किया था।

टिप्पणी:- मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी, सहकारी समितियां एवं पंचायतें या उसके अधीनस्थ किसी अधिकारी, जो लेखा परीक्षक, पंचायतों के पद से नीचे का न हो, द्वारा

प्रारंभिक जांच के लिए अपेक्षित कोई भी सूचना उपलब्ध कराई जाएगी तथा मांगे जाने पर प्रधान द्वारा उससे संबंधित कागजात एवं अभिलेख तुरन्त दिखाए जाएंगे।

(2) उपनियम (1) में निहित प्रावधानों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी, सहकारी समितियां और पंचायतें निम्नलिखित मामलों में स्पष्टीकरण मांग सकती हैं:

(क) जहां अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के उपबंधों के उल्लंघन में व्यय किया गया हो ;

(ख) जहां पर्याप्त लिखित कारण के बिना उच्चतर निविदा स्वीकार करने से गांव सभा को हानि हुई हो ;

(ग) जहां गांव सभा को देय कोई राशि अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के उपबंधों के उल्लंघन में प्रेषित की गई हो ;

(घ) जहां गांव सभा के धन या अन्य संपत्ति को नुकसान ऐसे धन या संपत्ति की अभिरक्षा के लिए उचित देखभाल के अभाव के कारण हुआ हो।

(3) प्रधान, उप-प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक, जिससे स्पष्टीकरण मांगा गया है, के लिखित अनुरोध पर, ग्राम पंचायत अधिभार की मांग से संबंधित अभिलेखों के निरीक्षण के लिए अपनी आवश्यक सुविधाएं प्रदान करेगी।

मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी, अधिभारित व्यक्ति के आवेदन पर, उसके स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए उचित समय की अनुमति दे सकता है, यदि वह संतुष्ट है कि आरोपित व्यक्ति अपने नियंत्रण से परे कारणों से, अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अभिलेखों को देखने में असमर्थ रहा है।

स्पष्टीकरण.- अधिनियम, उसके अधीन बनाए गए नियमों या विनियमों के उल्लंघन में नियुक्ति करना कदाचार या लापरवाही माना जाएगा और ऐसी अनियमित नियुक्तियों के कारण कर्मचारियों को वेतन और अन्य देय राशि का भुगतान गांव निधि की हानि, बर्बादी या दुरुपयोग माना जाएगा।

257. (1) नियम 256 के उपनियम (1) या (3) में विहित अवधि की समाप्ति के पश्चात्, जैसा भी मामला हो, तथा समय के भीतर प्राप्त स्पष्टीकरण, यदि कोई हो, की जांच करने के पश्चात्, मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी, प्रधान, उप- प्रधान और सदस्यों के मामले में, उस जिले के जिला मजिस्ट्रेट को, जिसमें गांव सभा स्थित है, अपनी सिफारिशों के साथ कागजात प्रस्तुत करेगा तथा अधिकारियों और कर्मचारियों के मामले में, उस जिले के जिला पंचायत राज अधिकारी को, जिसमें गांव सभा स्थित है, प्रस्तुत करेगा।

(2) यथास्थिति, जिला मजिस्ट्रेट या जिला पंचायत राज अधिकारी, स्पष्टीकरण की जांच करने और उस पर विचार करने के पश्चात्, यदि कोई हो, गांव पंचायत के प्रधान, उप- प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक से उस

राशि का पूरा या आंशिक भुगतान करने की अपेक्षा करेगा, जिसके लिए ऐसा प्रधान, उप- प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक उत्तरदायी पाया जाता है:

बशर्ते, सबसे पहले, किसी गांव पंचायत के प्रधान, उप-प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक को नुकसान की भरपाई करने की आवश्यकता नहीं होगी, यदि संबंधित प्रधान, उप-प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक के स्पष्टीकरण से या अन्यथा जिला मजिस्ट्रेट या जिला पंचायत राज अधिकारी, जैसा भी मामला हो, संतुष्ट हो जाता है कि नुकसान प्रधान, उप-प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक द्वारा अपने कर्तव्यों के सद्भावपूर्वक निर्वहन में किए गए कार्य के कारण हुआ था।

परन्तु, दूसरा, यदि गांव पंचायत या उसकी किसी समिति के किसी संकल्प के परिणामस्वरूप हानि, अपव्यय या दुरुपयोग होता है तो वसूली जाने वाली हानि की राशि प्रधान और उप- प्रधान सहित सभी सदस्यों के बीच समान रूप से विभाजित की जाएगी, जिनके बारे में गांव पंचायत या उसकी किसी समिति के कार्यवृत्त में यह रिपोर्ट दी गई है कि उन्होंने ऐसे संकल्प के पक्ष में मतदान किया है या जो तटस्थ रहे हैं:

परन्तु, तीसरा, कोई भी प्रधान, उप-प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक किसी हानि, बर्बादी या दुरुपयोग के लिए, ऐसी हानि, बर्बादी या दुरुपयोग की घटना से चार वर्ष की समाप्ति के पश्चात् या गांव पंचायत के प्रधान, उप-प्रधान, सदस्य, अधिकारी या सेवक के रूप में न रहने

की तिथि से तीन वर्ष की समाप्ति के पश्चात्, जो भी बाद में हो, उत्तरदायी नहीं होगा।"

8. प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 29.08.2022 के आदेश को चुनौती देने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष प्रस्तुत अपील के ज्ञापन में याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों पर विचार करने के बाद, कानूनी मुद्दों के रूप में महत्वपूर्ण प्रस्तुतिकरण पर कभी भी अपीलीय प्राधिकारी द्वारा चर्चा या निर्धारण नहीं किया गया है, जो *सिविल विविध रिट याचिका संख्या 18959/2022 (श्रीमती पिंकी देवी बनाम उ०प्र० राज्य और अन्य)* में समन्वय पीठ द्वारा पारित आदेशों के तहत शक्ति का प्रयोग कर रहा था।

9. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 1947 के अधिनियम की धारा 27 को 1947 के नियम 256 के साथ पढ़ने से स्पष्ट है कि मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी द्वारा की गई जांच पर अधिभार लगाया जा सकता है, जिसे प्रधान, उप-प्रधान और ग्राम पंचायत के सदस्यों के मामले में जिला मजिस्ट्रेट को और गांव सभा के अधिकारियों और कर्मचारियों के मामले में जिला पंचायत राज अधिकारी को भेजा जाना था।

10. इसलिए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सहकारी समितियों और पंचायत के मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी ही वह अधिकारी थे, जिन्हें अधिभार लगाने के प्रयोजनार्थ जांच करने के लिए अधिकृत किया गया था।

11. उन्होंने आगे कहा कि जिला मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट सौंपे जाने के बाद, सक्षम प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित किया जाना चाहिए था और याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने कहा कि चूंकि अभी तक कोई सक्षम प्राधिकारी नियुक्त नहीं किया गया है, इसलिए जिला मजिस्ट्रेट का आदेश भी क्षेत्राधिकार से बाहर है।

12. अपने तर्क को पुष्ट करने के लिए याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने *श्रीमती श्याम वती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य* के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का हवाला दिया, जो *2013 (6) एडव्ल्यूसी 6339* में रिपोर्ट किया गया था। इस निर्णय का हवाला यह दिखाने के लिए दिया गया था कि यदि जांच मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी द्वारा नहीं की गई थी, तो इस मामले में उप निदेशक (कृषि) बस्ती द्वारा की गई जांच अधिकार क्षेत्र से बाहर थी। उन्होंने आगे कहा कि जब पंचायत राज अधिनियम की धारा 27(2) में निर्दिष्ट कोई निर्धारित प्राधिकारी नहीं था, तो जिला मजिस्ट्रेट के पास अधिभार लगाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। इस उद्देश्य के लिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने *2019 (10) एडीजे 443* में रिपोर्ट किये गये *उदय प्रताप सिंह @ हरिकेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य* के मामले में भरोसा जताया।

13. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिका में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया और प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 06.03.2023 के आदेश का

समर्थन करते हुए तर्क दिया कि 1947 के अधिनियम के तहत परिभाषित निर्धारित प्राधिकारी परिभाषित नहीं है, लेकिन इस माननीय न्यायालय द्वारा सुनाये गए फैसले में इसका उत्तर दिया गया है।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बहुत ही निष्पक्षता से दलीलें पेश करते हुए माना कि जहां तक उप निदेशक (कृषि), बस्ती के अधिकार क्षेत्र का सवाल है, जांच करने के लिए केवल मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी ही अधिकृत है। हालांकि, उन्होंने दलील दी और लिखित दलील भी पेश की कि अब जब पंचायत को संवैधानिक दर्जा मिल गया है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 243, 243(ए) से 243(ओ) के अनुसार संविधान में ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत जैसी त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था के लिए प्रावधान हैं, तो मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी के बजाय कोई और अधिक शक्तिशाली निकाय अस्तित्व में लाया जाना चाहिए। उन्होंने दलील दी कि चूंकि संविधान के अनुच्छेद 243(आई) के अनुसार पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए एक वित्त आयोग का गठन किया गया है, जिसका कर्तव्य पंचायत के वित्तीय सौदों की जांच करना है, तो ग्राम पंचायत के वित्त की निगरानी एक अधिक शक्तिशाली निकाय द्वारा की जानी चाहिए। अपनी दलीलें पेश करते हुए उन्होंने यह भी कहा कि अनुच्छेद 243 (जी) के तहत पंचायत को कई तरह की शक्तियां, अधिकार और जिम्मेदारियां दी गई हैं, यहां तक कि अनुच्छेद 243 (एच) के तहत पंचायतों को कर लगाने की शक्तियां भी दी गई हैं। उन्होंने कहा कि हालांकि पंचायत राज अधिनियम में कई संशोधन किए गए हैं,

लेकिन अधिभार के प्रयोजनों के लिए जांच का प्रावधान केवल मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी के पास ही रहा है। उन्होंने कहा कि पंचायत के विभिन्न कार्यों की निगरानी और उनका ऑडिट किया जाना था और कई बार ऐसा हुआ कि काम पूरा होने के बाद ऑडिट होने से पहले ही उन कार्यों के लिए जिम्मेदारियां तय करनी पड़ीं जो शुरू हो चुके थे और जो ठीक से नहीं किए जा रहे थे।

15. तथापि, प्रत्यर्थागण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जहां तक 1947 अधिनियम की धारा 27(2) के तहत जिला मजिस्ट्रेट के पास अधिभार लगाने के अधिकार क्षेत्र पर प्रश्न उठाया गया है, तो यह प्रश्न अब विचारणीय नहीं है, क्योंकि अब इस न्यायालय की खंडपीठ ने **रामविलास बनाम कमिश्नर देवी पाटन मंडल गोंडा एवं अन्य** के मामले में, जो **2022 (1) एडीजे 1** में रिपोर्ट किया गया है, निर्णय दिया है कि जिला मजिस्ट्रेट अधिभार लगा सकते हैं।

16. ऊपर उठाए गए तर्कों को पुष्ट करने के लिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **रिट सी संख्या 28230/2022 (दिनेश कुमार और 4 अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य और 3 अन्य)** में पारित दिनांक 16.12.2022 के निर्णय और आदेश पर भरोसा किया है, जिसमें उ0प्र0 पंचायती राज अधिनियम, 1947 के तहत निर्धारित अधिकारी या कर्मचारी के खिलाफ विशेष रूप से कार्यवाही करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट की योग्यता के संबंध में मुद्दे पर पहुंचते हुए इसे स्पष्ट रूप से परिभाषित और चर्चा की गई है।

17. निर्णय का प्रभावी भाग नीचे पुनः प्रस्तुत है:-

"पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात्, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि उप निदेशक (कृषि), बस्ती द्वारा की गई जांच, क्षेत्राधिकार से बाहर की जांच थी। वस्तुतः, 1947 के नियम 256 और 257 के अनुसार, जांच मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी द्वारा की जानी चाहिए थी और अब मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी द्वारा जिला लेखा परीक्षा अधिकारियों को सौंपे गए प्रत्यायोजन के आदेश के अनुसार जांच की जानी चाहिए।

ऐसी परिस्थितियों में, जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती द्वारा पारित दिनांक 29.8.2022 के आदेश को रद्द कर दिया गया है।

हालांकि, न्यायालय ने सुझाव दिया है कि विधि आयोग इस मामले को उठा सकता है और वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार, अर्थात् 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों को दी गई विभिन्न शक्तियों के अनुसार, जिसके द्वारा भारत के संविधान में अनुच्छेद 243 (ए) से 243 (ओ) को जोड़ा गया है और पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ है, प्रधानों और उसके अधिकारियों के कामकाज की निगरानी करने की शक्तियों के साथ एक निकाय का गठन किया जाना चाहिए, जो पंचायतों की निगरानी और उनके द्वारा किए जा रहे कार्यों की निगरानी कर सके।

उपरोक्त कारणों से रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

इस आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा राज्य विधि आयोग को भेजी जाए।"

18. यह निर्विवाद तथ्य है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ पूरी कार्यवाही शुरू करने वाली जांच, जिस पर प्रत्यर्थी संख्या 3 ने भरोसा किया और याचिकाकर्ता के खिलाफ पूरा निर्धारण किया गया है, मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी या जिला लेखा परीक्षा अधिकारियों के अलावा अन्य अधिकारियों द्वारा किया गया है, और इस तरह, प्रत्यर्थी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता के खिलाफ दायित्व निर्धारित करने के संबंध में विशेष रूप से अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है।

19. वर्तमान याचिका पर आक्षेप लगाने वाले आदेश से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष अपील प्रस्तुत करते समय विशिष्ट आधारों को अपनाने के बावजूद, याचिकाकर्ता को हुए नुकसान का निर्धारण करते समय प्रत्यर्थी संख्या 3 की योग्यता के संबंध में शायद ही कोई चर्चा उपलब्ध है और इस प्रकार, इसे रद्द किया जाना चाहिए।

20. इस मामले को प्रत्यर्थागण से जवाबी शपथ पत्र मांगे बिना ही निस्तारित किया जाता है, क्योंकि प्रत्यर्थी प्राधिकारियों की कार्यवाही उत्तर प्रदेश पंचायती राज अधिनियम, 1947 के स्थापित प्रावधानों के विपरीत है, जिस पर **रिट सी संख्या 28230/2022 (दिनेश कुमार और 4 अन्य बनाम 30प्र0 राज्य और 3 अन्य)** में पारित दिनांक 16.12.2022 के निर्णय में व्यापक रूप से चर्चा की गई है और जैसा कि

ऊपर उल्लेख किया गया है, निर्णय के लिटमस में प्रत्यर्थागण की कार्रवाई को शामिल करने के बाद, यह अवैध प्रतीत होता है।

21. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रत्यर्था संख्या 3 और 2 द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 29.08.2022 और 06.03.2023 के आदेशों को रद्द एवम अपास्त किया जाता है।

22. तदनुसार रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

(2023) 4 ILRA 584

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ,

रिट-ए संख्या 6585/2021

दिवाकर द्वावेदी

... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री इंद्र राज सिंह, श्री आदर्श सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - मकान किराया भत्ता - जिस न्यायिक अधिकारी को आवासीय सुविधा नहीं दी जाती, उसे किराए के आवास में रहना पड़ता है। वर्तमान किराए की दर को देखते हुए, सबसे छोटा आवास जो लिया जा सकता है, वह अक्सर मासिक वेतन का 75 प्रतिशत से 100 प्रतिशत तक खर्च कर सकता है, ऐसी स्थिति जिसे किसी भी तर्क से स्वीकार नहीं

किया जा सकता। यह अत्यंत आवश्यक है कि न्यायिक अधिकारी के लिए उचित परिस्थितियाँ प्रदान की जाएँ और उसे उचित मानसिक शांति मिले ताकि वह अपने कर्तव्यों का संतोषजनक ढंग से पालन कर सके। न्याय प्रदान करना एक कठिन काम है। यह वास्तव में एक ईश्वरीय कार्य है। जब तक न्यायिक अधिकारी की मानसिक स्थिति चिंता मुक्त नहीं होती, तब तक उसके हाथों से न्याय की उम्मीद करना मुश्किल होगा। (पैरा 16)

प्रत्येक न्यायिक अधिकारी के लिए आधिकारिक आवास का प्रावधान अनिवार्य किया जाना चाहिए। एक न्यायिक अधिकारी को उससे अपेक्षित तरीके से काम करने के लिए दूसरों के अनुचित दायित्वों से खुद को मुक्त करना होगा, विशेष रूप से उसके अधिकार क्षेत्र में आने वाले भवनों के मालिकों से, जिनके पास आमतौर पर मुकदमे हो सकते हैं। यह ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में होता है जहां बाहरी न्यायिक न्यायालय स्थित हैं। (पैरा 16)

सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया है कि जब तक पर्याप्त सरकारी आवास उपलब्ध नहीं हो जाता, तब तक उच्च न्यायालय के कहने पर राज्य का यह दायित्व होना चाहिए कि वह प्रत्येक न्यायिक अधिकारी के लिए अपेक्षित आवास उपलब्ध कराए। (पैरा 17)

बी. दिनांक 27 जुलाई 2006 के सरकारी आदेश के अनुसार, सरकारी आवास उपलब्ध न होने की स्थिति में, संबंधित न्यायिक अधिकारी कानून, पद की स्थिति/श्रेणी के अनुसार किराए पर आवास की व्यवस्था स्वयं कर सकता है।

निर्धारित एच.आर.ए. से अधिक धनराशि का अंतर राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाएगा। आगे कहा गया है कि किराया औचित्य प्रमाण पत्र गैर-आवासीय भवनों के लिए जारी करना है न कि आवासीय मकानों/आवासों के लिए। (पैरा 11)

किराया रोकने तथा न्यायिक अधिकारी को आवास के लिए बार-बार जिला प्राधिकारियों से संपर्क करने से रोकने में राज्य-प्रतिवादियों का आचरण और दृष्टिकोण न केवल उत्पीड़न के समान है, बल्कि कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों के पृथक्करण के संवैधानिक सिद्धांत पर भी गंभीर आघात पहुंचाता है। (पैरा 12)

सी. शेट्टी आयोग की 11 नवंबर 1999 की रिपोर्ट में मकान किराया भत्ता और अन्य संबंधित मुद्दों पर विचार करते हुए कहा गया कि आवास भोजन और कपड़े के बाद सबसे बुनियादी आवश्यकता है। (पैरा 16)

डी. राज्य सरकार ने 5 अक्टूबर 2020 के सरकारी आदेश के तहत सभी जिला मजिस्ट्रेटों को न्यायिक अधिकारी को कार्यकारी अधिकारियों/मजिस्ट्रेटों के मुकाबले पहली वरीयता देते हुए सरकारी आवास आवंटित करने के संबंध में निर्देश जारी किए हैं। (पैरा 18)

तदनुसार, 27 जुलाई 2006 के सरकारी आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता किराए के आवास के वास्तविक किराए का पात्र है। किसी भी वाद में, 5 अक्टूबर 2020 के बाद के सरकारी आदेश के अनुसार,

इलाहाबाद (प्रयागराज) में तैनात एक न्यायिक अधिकारी स्वीकार्य एच.आर.ए. के अतिरिक्त न्यूनतम 20,000 रुपये या उसके मूल/वेतन के स्तर का 18 प्रतिशत जो भी अधिक हो, पाने का पात्र है। याचिकाकर्ता द्वारा दावा किए गए बकाया को भी बाद के सरकारी आदेश द्वारा कवर किया जाएगा। हालाँकि, याचिकाकर्ता का वाद दिनांक 27 जुलाई 2006 के पहले के सरकारी आदेश, अर्थात् किराए के आवास के वास्तविक किराए में से एच.आर.ए. घटाकर कवर किया गया है। (पैरा 19)

रिट याचिका स्वीकार की गई। किराया औचित्य प्रमाणपत्र को निरस्त किया जाता है। (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ बनाम भारत संघ (2002) 4 एस.सी.सी. 247 (पैरा 11)

वर्तमान याचिका में पांचवें प्रतिवादी (अपर जिला मजिस्ट्रेट प्रयागराज) द्वारा रु. (नागरिक आपूर्ति), 6,820/- पर जारी दिनांक 21.06.2019 के किराया औचित्य प्रमाण पत्र (याचिकाकर्ता द्वारा किराए पर लिए गए फ्लैट का) को चुनौती दी गई है जिसमें किराये की दर मनमाने ढंग से 10 रुपये प्रति वर्ग फीट मानी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील और राज्य के विद्वान स्थायी वकील श्री आदर्श सिंह को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के पद का उच्च न्यायिक सेवा का न्यायिक अधिकारी हैं।

3. 4 जून 2018 को याची को यूपी के आबकारी आयुक्त इलाहाबाद (प्रयागराज) का कानूनी सलाहकार बनाकर भेजा गया।

4. याचिकाकर्ता ने अपने पद, रैंक और पद के अनुरूप उपयुक्त आवासीय क्वार्टर के आवंटन के लिए दूसरे प्रतिवादी-जिला मजिस्ट्रेट, प्रयागराज को आवेदन दिया। दूसरे प्रतिवादी ने 13 जुलाई, 2018 को संचार के माध्यम से याचिकाकर्ता को आवासीय सरकारी क्वार्टर प्रदान करने में असमर्थता व्यक्त की। तदनुसार, याचिकाकर्ता को तीन बेडरूम का आवास (फ्लैट) 26,000/- रुपये प्रति माह में किराए पर लेने के लिए मजबूर किया गया था।

5. पांचवें प्रतिवादी-अपर जिला मजिस्ट्रेट (नागरिक आपूर्ति, प्रयागराज) ने 14 मार्च 2019 को संचार के माध्यम से याचिकाकर्ता को किराए के फ्लैट का किराया औचित्य प्रमाण पत्र प्राप्त करने का निर्देश दिया।

6. व्यथित याचिकाकर्ता ने उपरोक्त संचार के खिलाफ एक आवेदन प्रस्तुत किया, इसके अलावा, 26 अप्रैल 2019 को एक आवेदन मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

7. ऐसा प्रतीत होता है कि एक सरकारी क्वार्टर संख्या 469/4, पार्क रोड कॉलोनी, प्रयागराज, याचिकाकर्ता को आवंटित किया गया था, लेकिन, पहले के आवंटि ने आवास खाली करने से इनकार कर दिया था, जिसकी विधिवत

सूचना याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी को दी गई थी। यही हाल सरकारी क्वार्टर नंबर 199/4, मिशन रोड, प्रयागराज का भी था, पिछले आवंटि ने भी सरकारी क्वार्टर खाली करने से इनकार कर दिया था। इसके बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि पांचवें प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता द्वारा रुपये में किराए पर लिए गए फ्लैट का विवादित किराया औचित्य प्रमाणपत्र जारी किया। किराया 10 प्रति वर्ग फुट की दर से मनमाने ढंग से 6,820/- रुपये मान लिया गया है।

8. ऐसा प्रतीत होता है कि लोकायुक्त, उत्तर प्रदेश के समक्ष एक शिकायत दर्ज की गई, उसके बाद मई 2020 में सरकारी क्वार्टर नंबर 199/4, मिशन रोड, प्रयागराज, याचिकाकर्ता को आवंटित किया गया।

9. याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि उसे फ्लैट का किराया जुलाई 2018 से 15 नवंबर 2019 तक 26,000/- रुपये प्रति माह, उसके बाद नवंबर, 2019 से मार्च 2020 तक किराया बढ़ाकर रु. 27,300/- कुल मिलाकर रु. 5,28,850/- का भुगतान नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता को हाउस रेंट अलाउंस (एचआरए) के लिए प्रति माह 9,018 रुपये, कुल रु. 1,89,378/- रुपये का भुगतान किया गया। दूसरे शब्दों में, याचिकाकर्ता को किराए के मकान का किराया बकाया होने के कारण जेब से 3,39,472/- रुपये वहन करना पड़ा। याचिकाकर्ता ने राशि वापसी का दावा किया है।

10. इस पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता एक वरिष्ठ न्यायिक अधिकारी होने के नाते, उत्पीड़न का शिकार हुआ और उसे राज्य-प्रतिवादी के हाथों वित्तीय

हानि उठानी पड़ी। राज्य-प्रतिवादी का आचरण 27 जुलाई, 2006 के सरकारी आदेश के साथ-साथ ऑल इंडिया **जजेज एसोसिएशन बनाम भारत संघ** में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए फैसले का उल्लंघन है क्योंकि उत्तरदाता याचिकाकर्ता द्वारा किराए के आवास के लिए भुगतान किए गए वास्तविक किराए का भुगतान करने में विफल रहे।

11. अपर नगर मजिस्ट्रेट (द्वितीय), जिला प्रयागराज द्वारा दूसरे से छोटे उत्तरदाताओं की ओर से दायर जवाबी हलफनामे में यह स्वीकार किया गया है कि सरकारी आदेश दिनांक 27 जुलाई 2006 के अनुसार, सरकारी आवास उपलब्ध न होने की स्थिति में, संबंधित न्यायिक अधिकारी कानून, कद/पद के वर्ग के अनुसार किराए पर आवास की व्यवस्था स्वयं कर सकता है। निर्धारित एच.आर.ए. से अधिक पैसे का अंतर राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाएगा। जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 8 में आगे कहा गया है कि किराया औचित्य प्रमाणपत्र जारी करना गैर-आवासीय भवनों के लिए है, न कि आवासीय घरों/आवासों के लिए।

12. पहले के जवाबी हलफनामे में, जिला अधिकारियों ने अपने आचरण को उचित ठहराया है, जबकि, माना जाता है कि, सरकारी आदेश के अनुसार, सरकारी आवास उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में न्यायिक अधिकारी किराए के आवास के पूरे किराए का हकदार था। किराया रोकने और न्यायिक अधिकारी को आवास के लिए बार-बार जिला अधिकारियों के पास जाने के लिए मजबूर करने में राज्य-प्रतिवादियों का आचरण और दृष्टिकोण न केवल उत्पीड़न के समान है, बल्कि न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच

शक्तियों के पृथक्करण के संवैधानिक सिद्धांत पर भी गंभीर आघात करता है।

13. राज्य सरकार ने शेट्टी आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुपालन में रजिस्ट्रार जनरल, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद को संबोधित करते हुए दिनांक 7 जुलाई 2006 को एक सरकारी आदेश जारी किया, जिसमें पहले के सरकारी आदेश दिनांक 27 जनवरी 2006 को संशोधित किया गया। अन्य बातों के साथ-साथ, बशर्ते कि यदि राज्य न्यायिक अधिकारी को उसकी स्थिति के अनुरूप सरकारी आवास प्रदान करने में असमर्थ है और अधिकारी आवास किराए पर लेता है, तो किराए का अतिरिक्त खर्च राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाएगा। विषय और संशोधन इस प्रकार हैं:

"नियुक्ति

अनुभाग-4

लखनऊ: दिनांक: 27 जुलाई, 2006

विषय:- प्रथम राष्ट्रीय न्यायिक वेतन की सिफारिश के तहत राज्य की न्यायिक सेवा/उच्च न्यायिक सेवा के सदस्यों को भते और सुविधाएं देने पर अध्यादेश दिनांक 27 जनवरी, 2006 आयोग (शेट्टी आयोग) में आवास/मकान किराया भते की उल्लिखित व्यवस्था में आंशिक संशोधन

संशोधित व्यवस्था

समस्त न्यायिक अधिकारी अपनी पात्रता के आधार पर निःशुल्क सरकारी अथवा सरकार द्वारा लीज पर लिया गया आवास आवंटित करवाने के हकदार होंगे। सरकार द्वारा आवास उपलब्ध न करवा पाने

की स्थिति में शासन के संगत आदेशों के अनुसार सम्बन्धित न्यायिक अधिकारी को मकान किराया भत्ता देय होगा, परन्तु यदि न्यायिक अधिकारी द्वारा स्वयं के प्रयास से अपनी पात्रता के अनुसार किराये पर लिये गये आवास का वाजिब प्रमाणित किराया, उसे अनुमन्य मकान किराया भत्ता से अधिक है, तो अन्तर की धनराशि का व्यय भी राज्य सरकार द्वारा सुसंगत लेखा शीर्ष के अन्तर्गत वहन किया जायेगा।

14. इसके बाद, उपरोक्त सरकारी आदेश को 31 अगस्त 2021 के सरकारी आदेश के माध्यम से संशोधित/संशोधित किया गया, जिसमें किराया औचित्य प्रमाणपत्र प्रदान करने का प्रावधान समाप्त कर दिया गया।

15. इसके अलावा, सरकारी आवास उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में आवास किराए पर लेने पर न्यायिक अधिकारी को स्वीकार्य अधिकतम किराए की ऊपरी सीमा निर्धारित की गई थी। सरकारी आदेश न्यायिक अधिकारी के मूल/स्तर के वेतन पर स्वीकार्य वास्तविक किराया निर्धारित करने का प्रावधान करता है जो क्षेत्र-दर-क्षेत्र अलग-अलग होगा। 31 अगस्त 2021 के शासनादेश का प्रासंगिक भाग निकाला गया है:

"3(1) (ग) उपर्युक्त मूल वेतन के आधार पर किसी न्यायिक अधिकारी को लखनऊ, मुरादाबाद, मेरठ, गाजियाबाद, अलीगढ़, आगरा, बरेली, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर, वाराणसी, सहारनपुर, फिरोजाबाद एवं झांसी शहर में तैनाती

की स्थिति में उसे सरकारी आवास उपलब्ध न कराये जा सकने की स्थिति में उसके स्वयं के प्रयास से लिये गये आवास के वाजिब किराये की अधिकतम सीमा उसके मूल वेतन का 18 प्रतिशत होगी।

3(1)(घ) लखनऊ, मुरादाबाद, मेरठ, गाजियाबाद, अलीगढ़, आगरा, बरेली, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर, वाराणसी, सहारनपुर, फिरोजाबाद एवं झांसी शहर के अतिरिक्त राज्य के अन्य किसी भी नगर में तैनाती की स्थिति में किसी न्यायिक अधिकारी को सरकारी आवास उपलब्ध न कराये जा सकने की स्थिति में उसके स्वयं के प्रयास से लिये गये आवास के वाजिब किराये की अधिकतम सीमा वह धनराशि होगी जो उसके मूल वेतन का 09 प्रतिशत एवं उसे राज्य सरकार के नियमों के अनुसार अनुमन्य मकान किराये भत्ते के योग के बराबर हो। नोएडा में तैनाती की स्थिति में किसी न्यायिक अधिकारी को सरकारी आवास उपलब्ध न कराये जा सकने की स्थिति में उसके स्वयं के प्रयास से लिये गये आवास के वाजिब किराये की अधिकतम सीमा वह धनराशि होगी जो उसके मूल वेतन का 18 प्रतिशत एवं उसे राज्य सरकार के नियमों के अनुसार अनुमन्य मकान किराये भत्ते के योग के बराबर हो।

3(1) (च) उक्तवत (ग) एवं (घ) की निर्धारित सीमा के अन्तर्गत किसी

न्यायिक अधिकारी के किराये के मकान का जो वाजिब किराया निर्धारित होगा एवं जिसका वास्तविक रूप में भुगतान किया जायेगा उसमें से उसे राज्य सरकार के नियमों के अनुसार अनुमन्य हो रहे मकान किराये भत्ते की धनराशि को घटाकर शेष धनराशि की प्रतिपूर्ति कर दी जायेगी।

3(1)(छ) यह भी निर्देशित किया जाता है कि किसी भी न्यायिक अधिकारी जिनको सरकारी आवास न उपलब्ध कराये जाने के स्थिति में किराये का मकान लेकर आवासित होना पड़ रहा है उनके लिये वाजिब किराया नोएडा, लखनऊ, मुरादाबाद, मेरठ, गाजियाबाद, अलीगढ़, आगरा, बरेली, कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर, वाराणसी, सहारनपुर, फिरोजाबाद एवं झांसी शहर में रु० 20,000 की सीमा के अधीन एवं अन्य शहरों में रु० 15,000 की सीमा के अधीन अथवा उपर्युक्त प्रस्तरों में निर्धारित अधिकतम सीमा के अधीन, दोनों में जो अधिक हो, निर्धारित किया जा सकेगा।"

16. शेट्टी आयोग की रिपोर्ट दिनांक 11 नवंबर 1999 ने मकान किराया भत्ता और अन्य संबंधित मुद्दों से निपटने के दौरान पाया कि भोजन और कपड़ों के बाद आवास एक बुनियादी जरूरत है। सुप्रीम कोर्ट ने 'अखिल भारतीय न्यायाधीशों' मामले में पैराग्राफ 33 और 34 में कहा कि प्रत्येक न्यायिक अधिकारी के लिए आधिकारिक

आवास का प्रावधान अनिवार्य किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 33 और 34 का प्रासंगिक भाग निकाला गया है:

"33. प्रत्येक न्यायिक अधिकारी के लिए एक आधिकारिक निवास का प्रावधान अनिवार्य किया जाना चाहिए। एक न्यायिक अधिकारी को उससे अपेक्षित तरीके से काम करने के लिए खुद को दूसरों के अनुचित दायित्वों से मुक्त करना होगा, विशेष रूप से उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर इमारतों के मालिकों को, जो आमतौर पर उसके समक्ष मुकदमेबाजी में शामिल हो सकते हैं। यह ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में मामला है जहां न्यायिक अदालतें बाहर स्थित हैं।

34...एक न्यायिक अधिकारी जिसे आवासीय आवास उपलब्ध नहीं कराया गया है, वह किराए के आवास में जाने के लिए बाध्य है। किराए की प्रचलित दर को देखते हुए, सबसे छोटा आवास जो लिया जा सकता है, उसकी लागत अक्सर मासिक वेतन का 75 प्रतिशत से 100 प्रतिशत हो सकती है, ऐसी स्थिति जिसे किसी भी तर्क से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यह नितांत आवश्यक है कि न्यायिक अधिकारी के लिए उचित परिस्थितियाँ प्रदान की जाएँ और उसे उचित मानसिक शांति मिले ताकि वह अपने कर्तव्यों का संतोषजनक ढंग से पालन कर सके। न्याय प्रदान करना एक कठिन काम है। यह वास्तव में एक दैवीय कृत्य है। जब तक न्यायिक

अधिकारी की मानसिक स्थिति उचित रूप से चिंतामुक्त न हो, उसके हाथ से निष्कलंक न्याय की उम्मीद करना कठिन होगा।"

17. इसके अलावा पैराग्राफ 36 में, सुप्रीम कोर्ट ने निर्देश दिया कि जब तक पर्याप्त सरकारी आवास उपलब्ध नहीं हो जाता, तब तक उच्च न्यायालय के कहने पर प्रत्येक न्यायिक अधिकारी के लिए अपेक्षित आवास प्रदान करना राज्य का दायित्व होना चाहिए।

18. राज्य सरकार ने 5 अक्टूबर 2020 के सरकारी आदेश के माध्यम से सभी जिला मजिस्ट्रेटों को न्यायिक अधिकारी को कार्यकारी अधिकारियों/मजिस्ट्रेटों के मुकाबले पहली वरीयता प्रदान करके सरकारी आवास आवंटित करने के संबंध में निर्देश जारी किए। सरकारी आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"3- अतः इस सम्बन्ध में पुनः मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि जिन न्यायिक अधिकारियों को उनकी कॉलोनियों में आवास उपलब्ध नहीं हो पा रहे उन न्यायिक अधिकारियों को जनपद में जिलाधिकारी के नियंत्रणाधीन उपलब्ध कॉलोनियों में से उनकी पात्रता के अनुरूप आवास प्रथम वरीयता के आधार पर आवंटित करने का कष्ट करें।"

19. तदनुसार, 27 जुलाई 2006 के सरकारी आदेश के अनुसार, याचिकाकर्ता किराए के आवास के वास्तविक किराए का हकदार है। किसी भी स्थिति में, बाद के सरकारी आदेश दिनांक 5 अक्टूबर 2020 द्वारा, इलाहाबाद (प्रयागराज) में तैनात एक न्यायिक अधिकारी स्वीकार्य एच.आर.ए. से न्यूनतम 20,000/-रुपए अधिक का

हकदार है या उसके मूल/वेतन स्तर का 18 प्रतिशत, जो भी अधिक हो। याचिकाकर्ता द्वारा दावा किया गया बकाया भी बाद के सरकारी आदेश द्वारा कवर किया जाएगा। हालाँकि, याचिकाकर्ता का मामला 27 जुलाई 2006 के पहले के सरकारी आदेश के अंतर्गत आता है, यानी किराए के आवास का वास्तविक किराया से एच.आर.ए. घटाकर।

20. इन परिस्थितियों में रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

21. 21 जून, 2019 का आक्षेपित किराया औचित्य प्रमाण पत्र रद्द किया जाता है।

22. उत्तरदाताओं को नियत तारीख से भुगतान की तारीख तक 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ याचिकाकर्ता द्वारा भुगतान किए गए किराए के बकाया के लिए 3,39,472/- रुपये का भुगतान/वापसी करने का निर्देश दिया जाता है। यह राशि राज्य के सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस आदेश की तारीख से चार सप्ताह के भीतर दूसरे प्रतिवादी- जिला मजिस्ट्रेट, जिला प्रयागराज को जारी की जाएगी।

23. रजिस्ट्री अनुपालन सुनिश्चित करेगी।

24. कोई लागत नहीं।

(2023) 4 ILRA 589

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 6907/2004

बृजेंद्र पल सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम विकास बैंक एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: आर.बी.एस. राठौर,
डी.के. सिंह चौहान, सुरेन्द्र प्रताप सिंह
अधिवक्ता प्रतिवादी: बलराम यादव, एन
एन जयसवाल, राकेश चौधरी, एस.एन.
शुक्ल

ए. सिविल कानून -अनुशासनात्मक कार्यवाही - प्राकृतिक न्याय के नियम - प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार किसी पक्ष को सभी प्रासंगिक साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए, जिस पर वह निर्भर करता है - विरोधी पक्ष के साक्ष्य को उनकी उपस्थिति में लिया जाना चाहिए और उन्हें उस पक्ष द्वारा जांचे गए गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए - गवाहों से जिरह करने का अवसर प्रदान नहीं करना, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा - तर्क और सकारण आदेश - एक आदेश पारित किया गया एक प्राधिकारी द्वारा उचित होना चाहिए और किसी व्यक्ति द्वारा की गई आपत्ति का निस्तारण किया जाना चाहिए - यदि आक्षेपित आदेश में कोई कारण नहीं दिया गया है तो यह जानना संभव नहीं होगा कि निर्णय लेने वाले प्राधिकारी के मस्तिष्क में क्या चल रहा था जिससे वह निष्कर्ष पर पहुंचे और आक्षेपित आदेश पारित कर दिया - सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही - सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक जांच करने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही कोई प्रावधान है कि यदि कदाचार स्थापित होता है, तो सेवानिवृत्ति लाभों से कटौती की जा सकती है (पैरा 23, 24)

बी. याचिकाकर्ता को प्रारंभ में यूपी सहकारी ग्राम विकास बैंक में अकाउंटेंट के रूप में नियुक्त किया गया था - झींझक शाखा में काम करते समय, उन्होंने कुछ अनियमितताएं कीं - याचिकाकर्ता को आरोप पत्र जारी किया गया - जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना और विभिन्न दस्तावेजों के माध्यम से अपनी बेगुनाही सिद्ध करने और आरोपों के समर्थन में जिन गवाहों पर भरोसा किया जाना था, उनसे जिरह करने का कोई अवसर दिए बिना जांच रिपोर्ट तैयार की - याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर प्रतिवादी द्वारा आपत्तिजनक आदेश पारित करने से पहले विचार नहीं किया गया - प्रतिवादी ने याचिकाकर्ता द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई और जिरह के लिए 28.7.2004 की तारीख तय की, जो 13.7.2004 को पत्र द्वारा भेजा गया था - उक्त पत्र याचिकाकर्ता को तय तारीख यानी 28.7.2004 से पहले नहीं बताया गया और इसे व्यक्तिगत सुनवाई और जिरह के लिए तय तारीख के काफी बाद 9.8.2004 को पंजीकृत पत्र दिनांक 4.8.20224 के माध्यम से बताया गया- आयोजित, प्रतिवादी द्वारा पारित आपेक्षित आदेश प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन है - चूंकि याचिकाकर्ता 29.7.2004 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया और सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक जांच करने के लिए कोई प्रावधान नहीं था - प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति के बाद के सभी

लाभ जारी करने का निर्देश दिया गया (पैरा 21, 23, 24)

स्वीकृत (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री डी.के. सिंह चौहान और उत्तरदाताओं के अधिवक्ता श्री बलराम यादव को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-1 में निहित दिनांक 29.9.2004 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है, जिसमें उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता को सभी सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ जारी करने का आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट जारी करने की प्रार्थना की गई है, जो कानून के अनुसार उसके लिए स्वीकार्य हो।

3. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि याचिकाकर्ता को शुरू में वर्ष 1969 में उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम विकास बैंक (इसके बाद 'बैंक' के रूप में संदर्भित) में लेखाकार के रूप में नियुक्त किया गया था, उक्त पद पर कार्यभार ग्रहण किया और पद पर काम करना जारी रखा और उसके बाद, समय-समय पर उन्हें विभिन्न स्थानों पर स्थानांतरित किया गया। वर्ष 1973 में, याचिकाकर्ता को फील्ड ऑफिसर के पद पर पदोन्नत किया गया था।

1973 से, याचिकाकर्ता लगातार फील्ड ऑफिसर के पद पर काम कर रहा है और प्रासंगिक समय पर याचिकाकर्ता के खिलाफ झिंझक शाखा में उपरोक्त बैंक में कार्यवाहक प्रबंधक के पद पर काम करते हुए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। याचिकाकर्ता ने उक्त शाखा में जून, 2003 से जनवरी, 2004 तक स्थानापन्न प्रबंधक के रूप में कार्य किया।

झिंझक शाखा में कार्य करते समय, यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कतिपय अनियमितताओं में कटौती की गई थी जिसके आधार पर याचिकाकर्ता को दिनांक 14-5-2004 के आदेश के तहत अन्य बातों के साथ-साथ तुच्छ आरोपों पर निलंबित कर दिया गया था। निलंबन आदेश पारित करने के बाद, याचिकाकर्ता को 25.6.2004 को आरोप पत्र जारी किया गया था जो याचिकाकर्ता को 9.7.2004 को प्राप्त हुआ था। आरोप पत्र में छह आरोप थे। प्रत्येक आरोप के साथ दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में कुछ साक्ष्य का भी आरोप पत्र में उल्लेख किया गया था। आरोप पत्र में अन्य बातों के साथ-साथ याचिकाकर्ता द्वारा की जा रही विभिन्न अनियमितताओं के संबंध में छह आरोप लगाए गए।

याचिकाकर्ता को उक्त आरोप पत्र का उत्तर 10-7-2004 तक देने के लिए कहा गया था, यद्यपि याचिकाकर्ता को आरोप पत्र 9-7-2004 को प्राप्त हुआ था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.7.2004 के पत्र के माध्यम से प्रतिपक्षियों से उन दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए समय की मांग की जो प्रासंगिक थे और अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए एक प्रभावी उत्तर प्रस्तुत करने के लिए वास्तव

में आवश्यक थे। विभिन्न प्रकृति के दस्तावेज भी विशाल थे और याचिकाकर्ता कथित आरोपों के औचित्य के लिए झिंझक शाखा द्वारा उठाई गई विभिन्न आपतियों को भी देखना चाहता था कि याचिकाकर्ता इस मामले में किस हद तक उत्तरदायी और उचित था।

दिनांक 14.7.2004 के पत्र के माध्यम से, याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था कि उसे क्षेत्रीय प्रबंधक की प्रारंभिक रिपोर्ट के अनुलग्नक 2, 3 और 4 की आपूर्ति की जा रही थी और इसके अलावा याचिकाकर्ता को झिंझक शाखा में दस्तावेजों का निरीक्षण करने और आवश्यक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां प्राप्त करने के लिए कहा गया था और यह सब करने के बाद याचिकाकर्ता को 25.7.2004 तक आरोप पत्र पर अपना जवाब प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था।

यद्यपि याचिकाकर्ता को दिनांक 14-7-2004 के पत्र के माध्यम से दस्तावेजों का निरीक्षण करने का समय दिया गया था और उक्त अनुमति याचिकाकर्ता के दिनांक 12-7-2004 के पत्र के अनुसरण में दी गई थी और यह जान कर दी गई थी कि दस्तावेज याचिकाकर्ता को दिए जाने हैं और याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र का उत्तर दाखिल नहीं किया है और आरोप पत्र के साथ गायब दस्तावेजों के लिए समय की मांग की थी। बैंक ने दिनांक 13.7.204 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई और जिरह की तारीख तय करने की कार्यवाही की।

उक्त पत्र में व्यक्तिगत सुनवाई और परीक्षा और प्रतिपरीक्षा की तारीख 28.7.2004 निर्धारित की गई थी, लेकिन दिनांक 13.7.2004 के इस पत्र को याचिकाकर्ता को

किसी भी समय कभी भी सूचित नहीं किया गया था और बर्खास्तगी आदेश में इस आशय का झूठा दावा किया गया है कि उक्त पत्र याचिकाकर्ता को 14.7.2004 को दिखाया गया था और उसने इसे प्राप्त करने से इनकार कर दिया था। उपरोक्त कथन बर्खास्तगी आदेश में केवल मौखिक कथन के साथ जांच कार्यवाही में कमी को भरने की दृष्टि से किया गया है, हालांकि याचिकाकर्ता को दिनांक 13.7.2004 का पत्र कभी नहीं दिखाया गया था।

दिनांक 13 जुलाई, 2004 के पत्र को दिनांक 4-8-2004 के पंजीकृत पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को संप्रेषित किया गया था और उक्त पत्र क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा भेज दिया गया था। याचिकाकर्ता को दिनांक 13 जुलाई, 2004 का पत्र 9 अगस्त, 2004 को पंजीकृत डाक के माध्यम से प्राप्त हुआ था। दिनांक 14-7-2004 को याचिकाकर्ता को कतिपय दस्तावेज उपलब्ध कराए गए और इसके अतिरिक्त उसे याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रस्तुत करने के लिए मांगे गए दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां प्राप्त करने के लिए झिंझक शाखा में दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए कहा गया।

दिनांक 28-7-2004 को प्रतिपक्षियों ने दिनांक 13-7-2004 के उपर्युक्त पत्र के माध्यम से व्यक्तिगत सुनवाई और प्रतिपरीक्षा की तारीख निर्धारित की, लेकिन उक्त पत्र को किसी भी समय याचिकाकर्ता को कभी भी संप्रेषित नहीं किया गया और बर्खास्तगी आदेश में मिथ्या अभिकथन किया गया कि उक्त पत्र याचिकाकर्ता को 14-7-2004 को दिखाया गया था लेकिन उसने उसे प्राप्त करने से मना कर दिया और याचिकाकर्ता ने आरोप-

पत्र का उत्तर दायर कर दिया जो प्राप्त हो गया था जो दिनांक 2 अगस्त, 2004 को प्रतिपक्षियों के कार्यालय द्वारा दर्ज कर लिया गया।

दिनांक 13-7-2004 का पत्र दिनांक 4-8-2004 के पंजीकृत पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को संप्रेषित किया गया था जिसे क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा भेजा गया था और याचिकाकर्ता द्वारा 9 अगस्त, 2004 को प्राप्त किया गया था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 22.7.2004 के पत्र के माध्यम से प्रतिपक्षियों से आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत करने और व्यक्तिगत सुनवाई के साथ-साथ प्रतिपक्षियों द्वारा उत्तर दिए गए गवाहों से जिरह करने के लिए 10.8.2004 तक का समय मांगा।

याचिकाकर्ता ने व्यक्तिगत सुनवाई के अवसर की प्रतीक्षा की लेकिन प्रतिपक्षियों ने जांच के लिए कोई तारीख, समय और स्थान तय किए बिना एकपक्षीय कार्यवाही शुरू कर दी और जांच में जानते बुझते हुए निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता को 30 सितंबर, 2004 को सेवानिवृत्त होना है। दिनांक 20-9-2004 को याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की प्रति और सेवा से बर्खास्तगी की प्रस्तावित सजा के साथ एक कारण बताओ नोटिस प्राप्त हुआ जो याचिकाकर्ता को 25 सितम्बर, 2004 को प्राप्त हुआ जिसमें याचिकाकर्ता को उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर 28 सितम्बर, 2004 तक प्रस्तुत करने के लिए समय दिया गया था।

याचिकाकर्ता ने किसी भी तरह से 28.9.2004 तक कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया, जिसमें उसके खिलाफ

लगाए गए सभी आरोपों से इनकार करते हुए, अन्य बातों के साथ-साथ, यह कहते हुए कि याचिकाकर्ता को उचित और न्यायसंगत अवसर नहीं दिया गया था और न ही जांच अपने सही अर्थों में की गई थी, यहां तक कि उसे उन गवाहों से जिरह करने की अनुमति नहीं दी गई थी जिन पर उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा किया गया था, इस प्रकार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के कारण पूरी कार्यवाही समाप्त हो गई।

प्रतिपक्षी ने दिनांक 29.9.2004 के आक्षेपित आदेश के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए उत्तर पर विचार किए बिना याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति से केवल एक दिन पहले बर्खास्त करने के लिए कार्यवाही की, जिसमें आरोप पत्र के लिए, उनकी सनक को संतुष्ट करने के उद्देश्य से और मनमाने ढंग से और बिना दिमाग के उपयोग के भी क्योंकि बर्खास्तगी आदेश ने ही संकेत दिया था कि याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस का कोई जवाब प्रस्तुत नहीं किया था, जबकि उक्त उत्तर याचिकाकर्ता द्वारा प्रबंध निदेशक के कैंप कार्यालय में 28.9.2004 को नियमित और यांत्रिक तरीके से दायर किया गया है, इस प्रकार याचिकाकर्ता के खिलाफ आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के प्रति दुर्भावना और गैर-अनुपालन से ग्रस्त है, इस तरह यह कानून की नजर में मान्य नहीं है और रद्द करने योग्य है।

याचिकाकर्ता को सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया गया है और 29 सितंबर, 2004 के आक्षेपित आदेश के तहत सेवा से बर्खास्तगी के कारण, याचिकाकर्ता ने कानून के तहत उसे स्वीकार्य सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि

का भुगतान नहीं किया है और याचिकाकर्ता अपनी ओर से बिना किसी गलती के पीड़ित है क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों में से कोई भी ऐसी प्रकृति का नहीं है जिससे बैंक को कोई नुकसान हो।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उत्तरदाताओं ने जांच करने के लिए कोई तारीख, समय या स्थान तय नहीं किया है और न ही व्यक्तिगत सुनवाई के लिए कोई तारीख तय की गई है, जैसा कि याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र के जवाब में ही मांग की है, इस प्रकार याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई पूरी जांच दूषित है और कानून की नजर में कोई जांच नहीं है। इस तरह इसे अनदेखा और अस्वीकार किया जाना चाहिए।

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि जांच अधिकारी ने स्वतः संज्ञान से याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना और उसे विभिन्न दस्तावेजों के माध्यम से अपनी बेगुनाही साबित करने का कोई अवसर दिए बिना, साथ ही उन गवाहों से जिरह करने का अवसर दिए बिना, जिन पर आरोपों के समर्थन में भरोसा किया गया था, जांच रिपोर्ट तैयार की। इस प्रकार जांच दूषित है और कानून की नजर में अमान्य है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत करने के बावजूद, बर्खास्तगी आदेश में इस आशय का एक विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज

किया गया है कि याचिकाकर्ता ने कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत नहीं किया है और बर्खास्तगी का आदेश 29 सितंबर, 2004 को पारित किया गया है, जबकि याचिकाकर्ता ने 28 सितंबर को कारण बताओ नोटिस पर अपना जवाब प्रस्तुत किया है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के उत्तर को बिना किसी महत्व के और बिना महत्व दिए आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को क्षेत्रीय कार्यालय से केवल 25 सितंबर, 2004 को प्रस्तावित बर्खास्तगी का कारण बताओ नोटिस प्राप्त हुआ और उसने 28 सितंबर, 2004 को प्रबंध निदेशक के कैंप कार्यालय में कारण बताओ नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया, लेकिन आक्षेपित आदेश पारित करते समय उस पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है, इस प्रकार आक्षेपित आदेश अवैध, अमान्य है और बिना सोचे-समझे पारित किया गया है।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जल्दबाजी में और बल्कि यांत्रिक तरीके से और कारण बताओ नोटिस के लिए याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार किए बिना और साथ ही आरोप-पत्र में याचिकाकर्ता को पांच आरोपों के संबंध में जांच अधिकारी के निष्कर्ष से सहमत हुए बिना? खारिज कर दिया और एक आरोप के संबंध में याचिकाकर्ता को दोषी या जिम्मेदार नहीं पाया गया। याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति के एक दिन से पहले यानी

29.9.2004 को, महज़ अपनी सनक को संतुष्ट करने के लिए दंडित किया।

से पारित किया गया है जो कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए सभी आरोप पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार की प्रकृति में हैं और यह आरोप पत्र के साथ-साथ बर्खास्तगी के आदेश में भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने नियमों के तहत आवश्यक अपने कर्तव्यों की अच्छी तरह से पर्यवेक्षण और पालन नहीं किया है।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि बर्खास्तगी का आदेश जल्दबाजी में पारित किया गया है और कारण बताओ नोटिस के याचिकाकर्ता के जवाब पर विचार नहीं किया गया है और उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त किए जाने से इनकार किया गया है, यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का सरासर उल्लंघन है और संबंधित प्राधिकरण की दुर्भावना को भी स्थापित करता है।

11. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के मामले में की गई जांच कानून की नजर में कोई जांच नहीं है और एक अमान्य और दिखावटी जांच है और न्याय के हित में इसे नजरअंदाज और खारिज कर दिया जाना चाहिए।

12. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अंत में प्रस्तुत किया कि दिमाग का पूरी तरह से गैर-उपयोग किया गया है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को देखे बिना आक्षेपित आदेश को सबसे अवैध, मनमाना और दुर्भावनापूर्ण तरीके

13. दूसरी ओर, स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को 28.7.2004 को सुबह 11.00 बजे खुद को पेश करने का निर्देश दिया। सरकार ने उत्तर प्रदेश सहकारी ग्राम विकास बैंक लि, लखनऊ के मुख्यालय में व्यक्तिगत सुनवाई के साथ-साथ साक्ष्यों की जांच/प्रतिपरीक्षा के लिए मामला दर्ज किया है। जांच अधिकारी ने उन्हें 14.7.2004 को बैंक के मुख्यालय में उक्त पत्र प्रदान किया और इसे पढ़ने के बाद, याचिकाकर्ता ने इसे प्राप्त करने से इनकार कर दिया। इसके बाद, जांच अधिकारी ने उक्त पत्र दिनांक 13.7.2004 को संबंधित स्थान पर भेजा जहां याचिकाकर्ता संलग्न था। उन्हें पत्र प्राप्त हुआ लेकिन 28.7.2004 को वह संबंधित जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुए।

14. स्थायी अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को सक्षम प्राधिकारी के समक्ष अपने तथ्यों को रखने के लिए सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया गया है, लेकिन जानबूझकर वह उचित नोटिस होने के बाद प्रासंगिक समय पर जवाब प्रस्तुत करने का विकल्प चुनने में विफल रहा, साथ ही साथ उपस्थित नहीं होने का विकल्प भी चुना, और बाद के चरण में उसे यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था।

15. स्थायी अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ सभी कार्यवाही

कानून के प्रावधानों के तहत शुरू की गई है और उसके खिलाफ किसी भी पक्षपात का कोई सवाल ही नहीं है।

16. स्थायी अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को किसी सीधा सटीक फॉर्मूला में नहीं रखा जा सकता है। इसका आवेदन प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यह भी अच्छी तरह से तय है कि यदि उचित नोटिस तमीला वाला कोई पक्ष पेश नहीं होने का विकल्प चुनता है, तो उसे बाद के चरण में यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि उसे सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था।

17. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

18. सामग्री के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता को शुरू में वर्ष 1969 में बैंक में लेखाकार के रूप में नियुक्त किया गया था और वह उक्त पद पर शामिल हुआ था। वर्ष 1973 में याचिकाकर्ता को फील्ड ऑफिसर के पद पर पदोन्नत किया गया था। याचिकाकर्ता ने उक्त शाखा में जून, 2003 से जनवरी, 2004 तक स्थानापन्न प्रबंधक के रूप में कार्य किया। उक्त अवधि के दौरान, याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ आरोप लगाए गए थे, जिस पर याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया था। तत्पश्चात्, दिनांक 25-6-2004 को छह आरोपों का उल्लेख करते हुए

एक आरोप पत्र जारी किया गया और याचिकाकर्ता द्वारा 9-7-2004 को प्राप्त किया गया जिसमें याचिकाकर्ता को उक्त आरोप पत्र का उत्तर दिनांक 10-7-2004 तक दायर करने का निदेश दिया गया।

19. यह भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने दस्तावेजों के निरीक्षण के लिए समय की मांग की। दिनांक 14.7.2004 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया गया था कि उसे क्षेत्रीय प्रबंधक की प्रारंभिक रिपोर्ट के अनुबंध 2, 3 और 4 की आपूर्ति की जा रही थी। तत्पश्चात्, याचिकाकर्ता से आरोप पत्र पर अधिकतम 25.7.2004 तक अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। बैंक ने दिनांक 13.7.2004 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई और प्रतिपरीक्षा के लिए 28.7.2004 की तारीख तय की। दिनांक 13 जुलाई, 2004 के पत्र को दिनांक 4-8-2004 के पंजीकृत पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को संप्रेषित किया गया था और उक्त पत्र क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा भेज दिया गया था। उक्त पत्र याचिकाकर्ता को 9 अगस्त, 2004 को पंजीकृत डाक के माध्यम से प्राप्त हुआ था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 22.7.2004 के पत्र के माध्यम से प्रतिपक्षियों से आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत करने और व्यक्तिगत सुनवाई के साथ-साथ गवाह से प्रतिपरीक्षा करने के लिए 10.8.2004 तक का समय मांगा। दिनांक 20-9-2004 को याचिकाकर्ता को जांच रिपोर्ट की प्रति और सेवा से बर्खास्तगी की प्रस्तावित सजा के साथ कारण बताओ नोटिस प्राप्त हुआ जो याचिकाकर्ता

को 25 सितम्बर, 2004 को प्राप्त हुआ जिसमें याचिकाकर्ता को उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर 28 सितम्बर, 2004 तक प्रस्तुत करने के लिए दिया गया था।

याचिकाकर्ता ने 28-9-2004 तक कारण बताओ नोटिस का उत्तर प्रस्तुत किया जिसमें उसके विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इंकार करते हुए अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर नहीं दिया गया था। दिनांक 29.9.2004 के आदेश के तहत प्रतिपक्षी ने याचिकाकर्ता को बर्खास्त करने की कार्यवाही की।

20. यह अच्छी तरह से तय है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में होती है। पहला चरण तब शुरू होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्य, जांच अधिकारी की रिपोर्ट और दोषी कर्मचारी के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचता है। दूसरा चरण तब शुरू होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकरण अपने निष्कर्ष के आधार पर जुर्माना लगाने का निर्णय लेता है।

यह भी अच्छी तरह से तय है कि एक प्राधिकरण द्वारा पारित एक आदेश उचित होना चाहिए और किसी व्यक्ति द्वारा ली गई आपत्ति को निपटाया जाना चाहिए क्योंकि कारण एक जीवित तार की तरह हैं जो निर्णय लेने वाले प्राधिकारी के दिमाग और उसके द्वारा दिए गए निर्णय को जोड़ता है और यदि यह तार / लिंक टूट जाता है, यानी यह कहना कि आक्षेपित आदेश में कोई

कारण नहीं दिया गया है, तो यह जानना संभव नहीं होगा कि निर्णय लेने वाले प्राधिकारी के दिमाग में क्या चल रहा था जिसके आधार पर वह निष्कर्ष पर पहुंचा है और आक्षेपित आदेश पारित किया है।

21. लेकिन प्रस्तुत मामले में, व्यक्तिगत सुनवाई के लिए और याचिकाकर्ता द्वारा जिरह के लिए 28.7.2004 की तारीख तय करने के संबंध में प्रतिपक्षी का दिनांक 13.7.2004 का पत्र, याचिकाकर्ता को निर्धारित तिथि यानी 28.7.2004 से पहले नहीं दिया गया था और इसे व्यक्तिगत सुनवाई और जिरह के लिए निर्धारित तारीख के बहुत बाद 4.8.2004 के पंजीकृत पत्र के माध्यम से 9.8.2004 को ही सूचित किया गया था।

इसके बाद, जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना और उसे विभिन्न दस्तावेजों के माध्यम से अपनी बेगुनाही साबित करने का कोई अवसर दिए बिना, साथ ही उन गवाहों से जिरह करने के लिए भी, जिन पर आरोपों के समर्थन में भरोसा किया जाना था, जांच रिपोर्ट तैयार की। यहां तक कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत जवाब पर प्रतिपक्षी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले विचार नहीं किया गया है। 30.10.2002 को इस न्यायालय के समक्ष पेश किए गए रिकॉर्ड के अवलोकन से यह स्थापित होता है कि याचिकाकर्ता को दिनांक 13.7.2004 को नोटिस देने के संबंध में कोई दस्तावेजी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। मामले के इस

दृष्टिकोण में, मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की पूरी तरह से अवहेलना की गई है और प्रतिपक्षी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश कानून में खराब है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

22. प्राकृतिक न्याय के नियमों की आवश्यकता है कि एक पक्ष को उन सभी प्रासंगिक सबूतों को जोड़ने का अवसर दिया जाना चाहिए जिन पर वह भरोसा करता है, और आगे प्रतिपक्षी के साक्ष्य को उसकी उपस्थिति में लिया जाना चाहिए और उसे उस पक्ष द्वारा जांच किए गए गवाहों की जिरह का अवसर दिया जाना चाहिए। गवाहों से जिरह करने का उक्त अवसर प्रदान नहीं करना, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा।

23. यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता 29.7.2004 को सेवा से सेवानिवृत्त हुआ और इसलिए, उसकी सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक जांच करने का कोई प्रावधान नहीं है और न ही यह कहते हुए कोई प्रावधान है कि यदि कदाचार स्थापित हो जाता है, तो सेवानिवृत्ति लाभों से कटौती की जा सकती है।

24. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता के साथ-साथ इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि किसी कर्मचारी की सेवानिवृत्ति के बाद, कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती है, आदेश दिनांकित 29.9.2004 को रद्द किया जाता है। प्रतिपक्षियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को इस आदेश की प्रमाणित प्रति के प्रस्तुत करने की तारीख से छह सप्ताह की

अवधि के भीतर कानून के अनुसार स्वीकार्य सभी सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ जारी करें।

25. परिणाम में, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 595

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2023

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे मुनीर

रिट ए संख्या 10004/2021 अन्य और

संबंधित वाद

मो. मुस्तकीम

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री संजय कुमार पुंडीर

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री एम.सी. चतुर्वेदी,

अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री रामानंद पांडे और श्री अंकित गौड़, स्थायी वकील के साथ

क. सेवा कानून- उ.प्र. उर्दू अनुवादक-सह-

कनिष्ठ लिपिक सेवा नियमावली, 1994-नियम

5- स्थानांतरण-वैधता-उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ

लिपिक/याचिकाकर्ता को एक ऐसी सेवा में

नियुक्त किया गया था, जहां जिला मजिस्ट्रेट

नियुक्त प्राधिकारी थे-चिकित्सा सेवा

नियमावली, 1994 जो नियमावली, 1994 के

आधार पर याचिकाकर्ता की सेवा को नियंत्रित

करती है, उसमें प्रावधान है कि चिकित्सा सेवा

नियमावली, 1994 के तहत सेवा का तात्पर्य

उत्तर प्रदेश चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार

कल्याण विभाग (अधीनस्थ कार्यालय) लिपिक

संवर्ग सेवा से है-नियमावली स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता को राज्य स्तरीय सेवा का भाग बनाती है न कि जिला संवर्ग सेवा का- इस प्रकार, चुनौती के तहत दिनांक 15 जुलाई 2021 के आदेशों के अनुसार याचिकाकर्ताओं को स्थानांतरित करने में कोई बाधा नहीं है। (पैरा 1 से 61)

याचिका निस्तारित (ई-6)

(माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल और माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर)

आदेश

1 यह आदेश रिट-ए संख्या में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा हमें संदर्भित प्रश्न का उत्तर देगा। 2021 का 11430, 2021 का 10004 और 2021 का 10365, दिनांक 26 अक्टूबर 2021 के आदेश के तहत। 2022 की रिट-ए संख्या 11378 में, उपरोक्त रिट याचिकाओं के समान ही प्रश्न उठता है, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश ने हमारी प्रतीक्षा में स्थगित कर दिया है। दिनांक 4 अगस्त, 2022 के आदेश के माध्यम से उत्तर दें। पहले उल्लिखित तीन रिट याचिकाओं में प्रश्न का उत्तर, 2022 की रिट-ए संख्या 11378 के उद्देश्य को भी पूरा करेगा। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा हमसे पूछे गए प्रश्न का उत्तर देने के बाद रिट याचिकाओं को हमारे उत्तर के साथ इस प्रकृति की रिट याचिकाओं पर निर्णय लेते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष रखा गया होगा। लेकिन, हमने पाया है कि हमारे सामने इसी मुद्दे पर निर्णय लेने वाले इस न्यायालय के दो विद्वान एकल

न्यायाधीशों के निर्णयों को भी चुनौती दी गई है, जिसके संदर्भ में यह प्रश्न पहले से उल्लिखित तीन रिट याचिकाओं में हमें संदर्भित किया गया है। दो रिट याचिकाओं में विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णयों को असफल रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा 2022 की विशेष अपील संख्या 52 और 2022 की विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 97 के माध्यम से चुनौती दी गई है। चूंकि हमें उन रिट याचिकाओं पर निर्णय लेने की आवश्यकता होगी। अंततः, इसका परिणाम विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिकाओं में हमें निर्दिष्ट प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करेगा, हमारी राय है कि विद्वान एकल न्यायाधीश को अपना उत्तर भेजने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। तीन रिट याचिकाओं में संदर्भ का आदेश। इसमें केवल समय और संसाधन की टालने योग्य बर्बादी होगी।

2. इसलिए, हम संदर्भित प्रश्न के हमारे उत्तर के अनुसार, इस निर्णय द्वारा रिट याचिकाओं का भी निपटान करने का प्रस्ताव करते हैं। विशेष अपील संख्या 2022 और 2022 की 523 विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेशों से उत्पन्न होती हैं, जिसमें रिट पक्ष पर एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेशों के उल्लंघन के लिए आरोप तय करने का प्रस्ताव है। उन अपीलों का निस्तारण भी हमारे कारणों को दर्ज करते हुए इसी सामान्य निर्णय एवं आदेश द्वारा किया जायेगा।

3. चूंकि सभी चार रिट याचिकाओं और चार विशेष अपीलों में तथ्य और कानून के सामान्य प्रश्न शामिल हैं, इसलिए हम रिट-ए संख्या के रिकॉर्ड से इन सभी मामलों को जन्म देने वाले

पक्षों के बीच प्रासंगिक तथ्यों और संबंधों के सार पर ध्यान देते हैं। 2021 का 10004। कार्रवाई का यह तरीका अपनाया गया है क्योंकि पार्टियों ने उक्त याचिका में शपथ पत्रों का प्रचुर मात्रा में आदान-प्रदान किया है। तदनुसार, 2021 की रिट-ए संख्या 10004, जिसे वास्तव में प्रमुख मामले के रूप में सुना गया है, को इस तरह माना जाएगा। फिर भी, रिट याचिकाओं और अपीलों के लिए व्यक्तिगत तथ्यों की सराहना करने के लिए, रिट पक्ष पर विद्वान एकल न्यायाधीशों के निर्णयों से उत्पन्न होने वाले और अवमानना क्षेत्राधिकार के अभ्यास में, प्रत्येक मामले में शामिल कार्यवाही की प्रकृति का सारांश, शिकायत और मांगी गई राहत को सारणीबद्ध रूप में दिखाया जा रहा है:

क्रम संख्या	मामले का विवरण	से उत्पन्न हुआ
1	2021 के 1 रिट-ए नंबर 10004	स्थानांतरण आदेश दिनांक 15.07.2021 निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं द्वारा पारित किया गया, यूपी लखनऊ में
2	रिट-ए संख्या 10365 2021	स्थानांतरण आदेश दिनांक 15.07.2021 निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, यूपी द्वारा लखनऊ में पारित
3	रिट-ए संख्या 11430 2021	स्थानांतरण आदेश दिनांक 15.07.2021 निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, उप्र, लखनऊ द्वारा पारित
4	रिट-ए संख्या 11378/2	स्थानांतरण आदेश दिनांक 28.06.2022 अपर शिक्षा निदेशक (बेसिक), उप्र,

	022	प्रयागराज द्वारा पारित एवं कार्यमुक्ति आदेश दिनांक 25.07.2022 जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती द्वारा पारित
5	विशेष अपील संख्या 97/2022	रिट-ए संख्या 11560/ चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं (डी) निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित स्थानांतरण आदेश दिनांक 15.07.2021 के विरुद्ध दायर लखनऊ में
6	विशेष अपील संख्या 52/2022	रिट-ए संख्या 10088/2021 चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित स्थानांतरण आदेश दिनांक 15.07.2021 के विरुद्ध दायर लखनऊ में
7	विशेष अपील संख्या 2021	रिट-ए संख्या 10004 में पारित आदेश दिनांक 07.09.2021, 14.09.2021 और 08.10.2021 का अनुपालन न करने के लिए 2022 का 522 अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 1452 दायर किया गया, जिसके खिलाफ दायर किया गया है। निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, उप्र, लखनऊ द्वारा पारित स्थानांतरण आदेश दिनांक 15.07.2021 के खिलाफ दायर किया गया है।
8	विशेष अपील संख्या 523/2022	अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 1453/2022 दिनांक 18.08 के आदेशों का अनुपालन न करने पर दायर किया गया। 2021, 14.09.2021 और 08.10.2021 को रिट-ए संख्या 10365 ऑफ 2021

		में पारित किया गया है, जो लखनऊ में निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, यूपी द्वारा पारित स्थानांतरण आदेश दिनांक 15.07.2021 के खिलाफ दायर किया गया है।
--	--	--

संदर्भित प्रश्न

4. प्रमुख मामले में और संबंधित रिट-ए संख्या 2021 की 10365, 2021 की 11430 और 2022 की 11378 में, 2021 की रिट-ए संख्या 11430 में दर्ज एक आदेश द्वारा, कानून का निम्नलिखित प्रश्न रखा गया है विद्वान एकल न्यायाधीश ने हमें बताया:

"क्या उर्दू अनुवादक-सह-सहायक क्लर्क का पद एक जिला स्तरीय कैडर पोस्ट है और इसलिए, इसके पदधारी को जिले से बाहर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है?"

याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ

5. याचिकाकर्ता एक उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क है जो मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय में तैनात है। निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, यूपी, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 15 जुलाई, 2021 के आदेश के तहत, याचिकाकर्ता को मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय से मुख्य चिकित्सा अधिकारी के कार्यालय में स्थानांतरित कर दिया गया था। शाहजहाँपुर। रिट याचिका के 15 जुलाई, 2021 के आदेश (अनुलग्नक संख्या 1) में स्टोर कीपर, स्टेटोग्राफर, उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर

क्लर्क जैसे विभिन्न कर्मचारियों को एक जिले से दूसरे जिले में स्थानांतरित करने का आदेश दिया गया है। उक्त आदेश द्वारा स्थानांतरित कर्मचारियों की कुल संख्या 984 थी। याचिकाकर्ता का नाम 15 जुलाई, 2021 के आक्षेपित आदेश के क्रम संख्या 980 पर है। 6. याचिकाकर्ता का संक्षिप्त मामला यह है कि उसके पास जिला स्तरीय कैडर पोस्ट है और इसलिए, उस जिले से बाहर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता, जहां उसका चयन और नियुक्ति की गई है। उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पद सरकारी आदेश संख्या 80सीईएम/47-का-4-94-15-10-1994 दिनांक 20 अगस्त 1994 द्वारा सृजित किए गए थे, जो राज्यपाल के नाम पर एक सचिव द्वारा जारी किया गया था। राज्य सरकार। इन उर्दू अनुवादकों के लिए राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधानों के तहत सेवा नियम बनाए गए थे, जिन्हें उत्तर प्रदेश उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क सेवा नियम, 1994 (संक्षेप में, '1994 के नियम') के रूप में जाना जाता है। याचिकाकर्ता ने कोर्ट का ध्यान 20 अगस्त 1994 के सरकारी आदेश की ओर आकर्षित किया है, जिसमें तीन स्तरों यानी राज्य मुख्यालय, कमिश्नरी और जिला मुख्यालय पर उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के कुल 5061 पद सृजित किए गए थे। सरकारी आदेश के पैरा संख्या 4 में बताया गया है कि उर्दू अनुवादकों के नवसृजित पद के लिए नियुक्ति प्राधिकारी संबंधित स्तर पर कनिष्ठ लिपिक के समान ही होगा। सरकारी आदेश के पैरा संख्या 5 से पता चलता है कि राज्य मुख्यालय पर की जाने वाली नियुक्तियों के लिए नियुक्ति प्राधिकारी कार्मिक विभाग में

सरकार के सचिव होंगे। आयुक्तालय के स्तर पर नियुक्तियाँ आयुक्त द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी के रूप में की जाएंगी, और जिला मुख्यालय के स्तर पर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा की जाएंगी।

7. सरकारी आदेश के साथ, अनुलग्नक I, II, III और IV के रूप में संलग्न सूचियाँ हैं, जिसमें विभाग के प्रमुख / कार्यालय प्रमुख के साथ-साथ उनकी स्थापना का वर्णन किया गया है, जहां उर्दू अनुवादकों के पद स्वीकृत किए गए थे। राज्य मुख्यालय में, विभाग/कार्यालय प्रमुख सहित प्रतिष्ठानों का विवरण सरकारी आदेश के अनुलग्नक I और II में दी गई सूची में दिया गया है। इसी तरह, आयुक्तालय में, जिन प्रतिष्ठानों में उर्दू अनुवादकों के पद सृजित किए गए हैं, उनका विवरण सरकारी आदेश के अनुबंध III में दिया गया है। सरकारी आदेश के अनुलग्नक IV में जिला स्तर पर उन प्रतिष्ठानों का उल्लेख किया गया है, जहां उर्दू अनुवादकों के पद सृजित थे। जिला मुख्यालय पर कलेक्टर कार्यालय, तहसील, ब्लॉक और प्रत्येक पुलिस स्टेशन के अलावा 37 ऐसे प्रतिष्ठानों और कार्यालयों की सूची है। सरकारी आदेश के साथ संलग्न तीन सूचियों में वर्णित किसी न किसी प्रतिष्ठान या कार्यालय में उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क की नियुक्ति की जा सकती है। 20 अगस्त, 1994 के सरकारी आदेश द्वारा उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पदों के सृजन के बाद, राज्यपाल ने 1994 के नियम बनाए, जो 9 सितंबर, 1994 को आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित हुए। 8. यह याचिकाकर्ता का मामला है जिला मजिस्ट्रेट, मुजफ्फर नगर द्वारा 25 सितंबर, 1994 को एक विज्ञापन संख्या 309

जारी किया गया था, जिसमें उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पदों पर नियुक्ति के लिए पात्र व्यक्तियों से आवेदन आमंत्रित किए गए थे, जिसमें पदों की संख्या 79 बताई गई थी। याचिकाकर्ता ने आवेदन किया था उक्त विज्ञापन के जवाब में और इस उद्देश्य के लिए आयोजित लिखित परीक्षा में उपस्थित हुए। उनका चयन जिला मजिस्ट्रेट, मुजफ्फर नगर की अध्यक्षता वाली चयन समिति द्वारा किया गया था, जैसा कि 1994 के नियमों के नियम 17 के तहत परिकल्पित किया गया था। याचिकाकर्ता को चयन के लिए फिट पाया गया, एक मेमो नंबर 487 / सामान्य सहायक, दिनांक 3 अप्रैल, 1995 जारी किया गया। जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय द्वारा, जिसके बारे में याचिकाकर्ता का कहना है कि उसे मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय में उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के पद पर नियुक्ति दी गई। याचिकाकर्ता के अनुसार, उक्त नियुक्ति आदेश में उन्हें मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय में सेवाओं में शामिल होने का निर्देश दिया गया था।

9. याचिकाकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि 1994 के नियमों के तहत रिक्तियों को भरने के लिए निर्धारित प्रक्रिया से पता चलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा धारण किया गया पद गुप-सी का पद है, जिसमें से जिला मजिस्ट्रेट, जहां याचिकाकर्ता का चयन किया गया था। नियुक्ति प्राधिकारी है। जिस सेवा में याचिकाकर्ता को नियुक्त किया गया है वह एक जिला स्तरीय कैंडर है और उक्त सेवा के सदस्यों को कैंडर की ताकत के अनुसार 20

अगस्त के सरकारी आदेश के अनुलग्नक 3 में उल्लिखित विभिन्न कार्यालयों और प्रतिष्ठानों में आवंटित किया जाना है। 1994. इसलिए, याचिकाकर्ता को जिले से बाहर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने 1994 के नियमों के नियम 5 के खंड (एफ) के तहत परिभाषित 'सेवा' शब्द की परिभाषा पर जोर दिया है, जो कहता है कि "सेवा" का अर्थ उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर की सेवा है। किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में क्लर्क, जैसा भी मामला हो, प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत गठित किया गया हो। विद्वान वकील की दलील यह है कि किसी विशेष सरकारी विभाग या कार्यालय में नियुक्ति से, उर्दू अनुवादक उस कार्यालय में कनिष्ठ लिपिकों के केंद्र का हिस्सा नहीं बन जाते हैं। उन्हें उस विभाग या कार्यालय पर लागू प्रासंगिक सेवा नियमों के तहत पदोन्नति का लाभ नहीं मिलता है, जहां उन्हें उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के रूप में नियुक्त किया जाता है। इस बात पर जोर दिया गया है कि उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों की सेवा की पहचान अन्य जूनियर क्लर्कों से अलग और अलग है, जो किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में उस केंद्र का हिस्सा हो सकते हैं। याचिकाकर्ता की सेवा उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क की है, लेकिन उस कार्यालय या सरकारी विभाग में जूनियर क्लर्क की नहीं है, जहां उसे नियुक्त किया गया है। उनका मानना है कि यह सेवा की परिभाषा से स्पष्ट है, जो 1994 के नियमों के नियम 5 के खंड (एफ) में पाई गई है। इस बात पर भी

जोर दिया गया है कि नियम 6 उर्दू अनुवादकों की सेवा की ताकत को दर्शाता है। प्रत्येक विभाग या कार्यालय में -सह-कनिष्ठ लिपिकों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर संबंधित सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत निर्धारित की जानी है। याचिकाकर्ता के वकील के अनुसार, यह एक स्पष्ट संकेतक है कि याचिकाकर्ता या उस मामले के लिए कोई भी उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क सरकारी विभाग या कार्यालय में नियमित केंद्र के जूनियर क्लर्क से बहुत अलग है। इसलिए, दलील यह है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति जिला मजिस्ट्रेट, मुजफ्फर नगर द्वारा जिला स्तरीय केंद्र पद पर की गई है, इसलिए उसे किसी अन्य जिले में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। उसे जिले के भीतर मुख्य चिकित्सा अधिकारी के किसी भी प्रतिष्ठान में स्थानांतरित किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने **ट्रैबुद्दीन और अन्य बनाम मुख्य सचिव, यूपी शासन सचिवालय और अन्य 2014 (11) एडीजे 318** में एक विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले पर भरोसा जताया है, जहां इस न्यायालय ने नोटिस देने के बाद 1994 के नियम और 20 अगस्त 1994 के सरकारी आदेश इस प्रकार हैं: "17. पद की हस्तांतरणीयता के संबंध में, यह विवादित नहीं है कि नियम, 1994 ऐसी किसी बात पर विचार नहीं करता है। राज्य सरकार ने आदेश दिनांक 25.8.2006 द्वारा स्पष्ट किया है कि उर्दू अनुवादक-सह-के रूप में काम करने वाले न तो पद और न ही कार्मिक कनिष्ठ लिपिक, स्थानांतरण योग्य हैं या सामान्य रूप से स्थानांतरित किए जाने चाहिए। प्रतिवादी

राज्य उत्तर प्रदेश द्वारा अपनाए गए इस विशिष्ट रुख को देखते हुए, मुझे नहीं लगता कि पुलिस मुख्यालय सेवा की शर्तों या नीतिगत निर्णय के संबंध में निर्णय लेने का कार्य अपने ऊपर कैसे ले सकता है याचिकाकर्ताओं के सेवा मामलों में, राज्य सरकार द्वारा लिए गए निर्णय के विपरीत, जो इन कर्मियों की सेवा की शर्तों को निर्धारित करने की विधायी शक्ति रखने वाली प्रमुख संस्था है। उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्क के संबंध में एक स्थानांतरण नीति, इसमें कोई संदेह नहीं है राज्य सरकार का क्षेत्र। यदि वह इसे गैर-हस्तांतरणीय बनाने का निर्णय लेती है, तो मेरे विचार में, यूपी पुलिस मुख्यालय के पास कोई शक्ति नहीं है और उत्तरदाताओं-विद्वान स्थायी वकील द्वारा कोई शक्ति नहीं दिखाई गई है, जिससे वह विपरीत नीतिगत निर्णय ले सके। पुलिस कर्मियों के संबंध में लिया गया निर्णय, विशेष रूप से अधिनियम, 1861 और उसके तहत बनाए गए नियमों और विनियमों के तहत प्रदत्त शक्ति के आधार पर है, लेकिन नागरिक कर्मचारियों के संबंध में ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है और जब तक कि ऐसी शक्ति उनके पास निहित न हो (यूपी पुलिस मुख्यालय), मुझे नहीं लगता कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के रूप में काम करने वाले व्यक्तियों के स्थानांतरण के संबंध में इसके (पुलिस मुख्यालय) द्वारा ऐसा कोई नीतिगत निर्णय लिया जा सकता है। पुलिस मुख्यालय का दिनांक 28.7.1997 का परिपत्र स्पष्ट रूप से अनाधिकृत, क्षेत्राधिकार के बिना और अवैध है, खासकर जब राज्य सरकार ने पहले ही यह स्पष्ट कर

दिया है कि उर्दू अनुवादक सह कनिष्ठ लिपिक के पद और कार्मिक हस्तांतरणीय नहीं हैं।"

11. याचिकाकर्ता ने **रमेश चंद्र जोशी और अन्य बनाम इकबाल अहमद और अन्य, 2016 एससीसी ऑनलाइन उत्तर 1943** में उत्तराखंड उच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। न्यायालय का ध्यान पैराग्राफ संख्या 26 और 27 की ओर आकर्षित किया गया है, जो इस प्रकार है अंतर्गत:

"26. अब, हम कुछ सरकारी आदेशों पर ध्यान दे सकते हैं, जो पारित हो गए। 1994 के नियम बनाए जाने से पहले, 20.08.1994 का आदेश पारित किया गया था। रिट याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ता द्वारा उक्त आदेश पर भरोसा किया गया है। हमने उक्त आदेश पहले ही निकाल लिया है। यह आदेश उस समय पारित किया गया था जब नियम अधिनियमित नहीं हुए थे। यह आदेश, जाहिर तौर पर, उर्दू को आजीविका से जोड़ने और एक नई व्यवस्था बनाने के सरकार के निर्णय के संदर्भ में पारित किया गया था। उल्लिखित विवरण के अनुसार अन्य बातों के साथ-साथ जिला स्तर पर कार्यालयों में उर्दू अनुवादक का पद भी सृजित किया गया। इसके अलावा संलग्न सूची में उल्लिखित प्रत्येक कार्यालय में एक-एक पद सृजित किया गया। संक्षेप में, इसमें नियुक्तियों पर विचार किया गया। कनिष्ठ लिपिकों के रिक्त पदों को उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के पदों में परिवर्तित करके उल्लिखित वेतनमान में किया जा रहा है। इसे रिट याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ता ने यह तर्क देने के लिए जब्त कर लिया है कि व्यक्तियों को उर्दू अनुवादक

के रूप में नियुक्त किया गया था। जूनियर क्लर्क के रिक्त पदों पर अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क और, इससे यह निष्कर्ष निकाला जा रहा है कि वे अविभाज्य रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए थे। यह सच है कि यह प्रश्न उठ सकता है कि जब कनिष्ठ लिपिक का रिक्त पद कनिष्ठ लिपिक की नियुक्ति से नहीं बल्कि उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक की नियुक्ति से भरा जाएगा तो कनिष्ठ लिपिक के कार्यों का निर्वहन कौन करेगा। क्या यह नहीं कहा जा सकता कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क से निश्चित रूप से अनुवाद कार्य के अलावा जूनियर क्लर्क का काम भी करने की अपेक्षा की जाएगी और इसलिए, उसे जूनियर क्लर्क के रूप में माना जाना चाहिए? प्रथम दृष्टया, तर्क प्रभावशाली प्रतीत होता है; लेकिन, इसे देखने का एक और तरीका भी है। उर्दू अनुवादकों को उपलब्ध कराने के अपने घोषित इरादे को ध्यान में रखते हुए सरकार का इरादा जूनियर क्लर्क के रिक्त पदों को परिवर्तित करके और उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों की नियुक्ति करके किया जाना था, जैसा कि संलग्न सूची में दिया गया है। प्रत्येक कार्यालय में इसे नियुक्तियाँ करने की एक विधि के रूप में माना जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि, सरकार ने उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों के लिए नए पद सृजित करने के बजाय, रिक्त पदों को परिवर्तित करने और उन्हें उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों के रूप में नियुक्त करने का निर्णय लिया। यदि सरकार की मंशा यह होती कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पद को कनिष्ठ क्लर्क के रूप में माना जाएगा, तो सरकार द्वारा 1980 के नियमों में संशोधन करने और उर्दू

अनुवादक-सह-जूनियर के पद प्रदान करने के रास्ते में कुछ भी नहीं था। क्लर्क भी इसके दायरे में। ऐसा नहीं किया जा रहा है, इसने कानून की स्थिति को अपरिवर्तित रहने दिया, किस कानून के तहत, केवल जूनियर क्लर्क और अन्य मंत्रालयिक कर्मचारियों को वरिष्ठ क्लर्क के पद पर पदोन्नति के लिए विचार किया जा सकता है। केवल यह तथ्य कि जूनियर क्लर्कों की रिक्तियों का उपयोग उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों की नियुक्ति के लिए किया गया था, उन्हें एक ही कैडर का हिस्सा मानने का आधार नहीं हो सकता। दिनांक 20.08.1994 के आदेश के खंड (2) पर आधारित तर्क भी समान रूप से योग्यता से रहित है, जिसमें पहली रिक्ति पर उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क की नियुक्ति पर भी विचार किया गया है, जहां जूनियर क्लर्क का पद खाली नहीं है। निस्संदेह, यह भी विचार किया गया है कि कनिष्ठ लिपिक के पद के लिए नियुक्ति प्राधिकारी उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के पद के लिए नियुक्ति प्राधिकारी होंगे; लेकिन, हमने पहले ही देखा है कि, नियमों में भी, वही प्रावधान शामिल किया गया है और यह रिट याचिकाकर्ताओं और हस्तक्षेपकर्ता के मामले को आगे नहीं बढ़ा सकता है। हम उक्त आदेश के खंड (7) से पाते हैं कि उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के पदों के लिए सेवा शर्तों/चयन प्रक्रिया के संबंध में लागू किए जाने वाले नियम अलग से जारी किए जाने थे। इसके बाद, 1994 के नियम, जिन्हें हम पहले ही देख चुके हैं, अस्तित्व में आए।

27. अगला आदेश, जो प्रस्तुत किया गया है, आदेश दिनांक 30.09.1995 है। यह एक

कार्यालय आदेश है। यह इंगित करता है कि कुछ उम्मीदवारों का चयन किया जा रहा है और उन्हें उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पदों पर नियुक्त किया जा रहा है और जाहिर तौर पर दिनांक 20.08.1994 के आदेश के अनुसार इसे भरा जा रहा है

12. सोम राज और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (1990) 2 एससीसी 653 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का ध्यान पैराग्राफ संख्या 5 की ओर आकर्षित किया गया है, जो इस प्रकार है: "6. इन नियमों का सारांश स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि प्रधान कार्यालय में कनिष्ठ लिपिकों सहित सभी पदों की नियुक्ति के लिए, नियुक्ति प्राधिकारी निदेशक है। प्रधान कार्यालय के अलावा कनिष्ठ लिपिकों के पद पर सभी नियुक्तियाँ संबंधित द्वारा की जाएंगी प्रधान कार्यालय। परिशिष्ट के अनुसार, कृषि निदेशक और अधीनस्थ कार्यालयों के कार्यालय में स्टाफिंग पैटर्न पूरी तरह से अलग है। एकमात्र सामान्य तत्व वरिष्ठ क्लर्क हैं। वरिष्ठता को वास्तविक नियुक्ति के आधार पर बनाए रखा जाना है संबंधित संवर्ग। सेवा के सदस्यों की वरिष्ठता, परिशिष्ट में दर्शाए गए नियुक्ति के प्रत्येक वर्ग में, उनकी मूल नियुक्ति या पदोन्नति की तिथि या अन्यथा ऐसे वर्ग में स्थायी रिक्तियों पर निर्धारित की जाएगी। नियुक्ति की विधि निर्धारित की गई है नियम 7(1)(I) से (L) के अंतर्गत स्वीकृत, प्रथम दृष्टया संबंधित कार्यालयों में संबंधित अधीनस्थ पदों पर कार्यरत व्यक्तियों में से पदोन्नति द्वारा, या अधीनस्थ कार्यालयों सहित सरकारी कार्यालयों में कार्यरत व्यक्तियों

में से चयन द्वारा। कुछ मामलों में सीधी भर्ती द्वारा। इससे यह स्पष्ट है कि अधीक्षक, सहायक और वरिष्ठ लिपिक के पद पर उत्पन्न होने वाली रिक्तियों को भरने के लिए अधीनस्थ कार्यालयों या सरकारी कार्यालयों में काम करने वाले व्यक्ति फीडर चैनल हैं, या कुछ मामलों में सीधी भर्ती द्वारा। नियम 7 का उप-नियम (2) इस मामले को स्पष्ट करता है कि उन्हें विचार किए जाने का अधिकार है, लेकिन यह पूरी तरह से चयन द्वारा है और नियुक्ति के अधिकार के रूप में उनका कोई दावा नहीं है। सरकार के लिए यह खुला है कि वह अपनी प्रशासनिक सुविधा और समीचीनता के अनुसार किसी विशेष सेवा में अलग-अलग कैडर का गठन कर सकती है। निदेशक का कार्यालय स्पष्ट रूप से सरकार के कृषि कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की निगरानी के तहत अधीनस्थ कार्यालयों और अन्य संबद्ध विभागों के कामकाज को नियंत्रित और देखरेख करने वाला सर्वोच्च कार्यालय है। निदेशालय और अधीनस्थ कार्यालयों के कर्मचारियों का एक सामान्य कैडर बनाए रखना आवश्यक नहीं हो सकता है। प्रत्येक संवर्ग एक अलग सेवा या प्रशासनिक सुविधा के लिए स्वीकृत सेवा का एक हिस्सा है। इसलिए, प्रत्येक एक अलग इकाई हो सकती है और कैडर को आवंटित पद स्थायी या अस्थायी हो सकते हैं। परिशिष्ट से पता चलता है कि निदेशालय के कार्यालय में एक अधीक्षक, तीन प्रधान सहायक, चार सहायक, दो आशुलिपिक, सात वरिष्ठ लिपिक और बारह कनिष्ठ लिपिक हैं। अधीनस्थ कार्यालयों में एक अधीक्षक, सात प्रधान लिपिक और दो वरिष्ठ लिपिक होते हैं। यह स्पष्टतः प्रशासनिक आवश्यकता के आधार पर

है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि निदेशालय और अधीनस्थ कार्यालयों के कार्यालय को परिशिष्ट की धारा 6 में संक्षेप में दिखाया गया है। इसका मतलब यह नहीं है कि निदेशालय और अधीनस्थ कार्यालयों को नियमों के तहत एक इकाई या बराबर माना जाता है, जैसा कि श्री पीपी राव ने तर्क दिया है। जैसा कि शुरुआत में बताया गया था, निदेशक ने वर्ष 1973 में प्रारंभिक नियुक्तियों के समय कुछ अनियमितताएं की थीं, जब उन्होंने उम्मीदवारों की चयन सूची में से पांच लोगों को चुना और आदेश से हटकर उन्हें हरियाणा सरकार के निदेशालय में नियुक्त किया। बोर्ड द्वारा तैयार की गई योग्यता। उन्हें भर्ती बोर्ड द्वारा एक सामान्य चयन में अन्य उम्मीदवारों के साथ चुना गया था जो चयन बोर्ड द्वारा तैयार योग्यता के क्रम में उच्च स्थान पर थे। लेकिन यह वर्ष 1973 में किया गया था और 1979 में रिट याचिका दायर होने की तारीख तक नियुक्तियों को चुनौती नहीं दी गई है। यहां तक कि रिट याचिका में भी कोई चुनौती नहीं दी गई थी। इसे केवल यह दिखाने के लिए लागू किया गया है कि अपीलकर्ता भी उनके साथ समान स्थिति में हैं। नियुक्तियाँ होने के बाद और उम्मीदवार पदोन्नति के लिए विचार के लिए संबंधित पदों पर शामिल हो गए, नियम क्षेत्र पर कब्जा कर लेते हैं और दावों पर नियम 7 के अनुसार विचार किया जाना है। इसलिए, हालांकि हम राज्य के विद्वान वकील से सहमत नहीं हो सकते हैं कि निदेशक के पास मनमाने ढंग से चयन करने और पदों की नियुक्ति करने का पूर्ण विवेक था, फिर भी निस्संदेह, उनके पास उन्हें नियुक्त करने की शक्ति थी। सामान्यतः नियुक्ति का क्रम सूची

में से अभ्यर्थियों की योग्यता के क्रम में होगा तथा नियमानुसार होना चाहिए। उसकी शक्ति का प्रयोग मनमाना नहीं होना चाहिए। मनमानी शक्ति का अभाव कानून के शासन की पहली अवधारणा है जिस पर हमारी पूरी संवैधानिक इमारत आधारित है। कानून के शासन द्वारा शासित प्रणाली में, जब एक कार्यकारी प्राधिकारी को विवेकाधिकार प्रदान किया जाता है तो उसे स्पष्ट रूप से परिभाषित सीमाओं के भीतर ही सीमित किया जाना चाहिए। नियम चयन सूची से नियुक्ति करने में विवेक के प्रयोग के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं जो चयन में प्राप्त प्रदर्शन और स्थिति के आधार पर तैयार की गई थी। नियुक्ति प्राधिकारी को किसी अन्य प्रासंगिक नियम, जैसे रोटेशन या आरक्षण, यदि कोई हो, या किसी अन्य वैध और बाध्यकारी नियम या कानून के बल वाले निर्देशों के अधीन, पदक्रम के क्रम में नियुक्ति करनी है। यदि विवेक का प्रयोग बिना किसी सिद्धांत के या बिना किसी नियम के किया जाता है, तो यह कानून के शासन के विपरीत स्थिति है। विवेक का अर्थ है कानून द्वारा निर्देशित या नियमों के ज्ञात सिद्धांतों द्वारा शासित ठोस विवेक, न कि प्राधिकारी की सनक या सनक से। छह वर्षों से भी अधिक समय से नियुक्ति की शुद्धता पर सवाल न उठाने की खामियों के कारण हम निदेशक द्वारा किए गए चयन की सत्यता पर जाने से बचते हैं। नियमों की वैधता पर सवाल नहीं उठाया गया है। एकमात्र सवाल यह है, जैसा कि पहले कहा गया है, क्या प्रधान कार्यालय और अधीनस्थ कार्यालयों में काम करने वाले कर्मचारी सामान्य वरिष्ठता के हकदार हैं। नियमों ने स्वयं निदेशालय और

अधीनस्थ कार्यालयों में नियुक्त व्यक्तियों के बीच अलग-अलग संवर्गों के रूप में अंतर किया है और कुछ मामलों में अधीनस्थ संवर्ग प्रधान कार्यालय में पद पर पदोन्नति के लिए फीडर संवर्ग है। इस दृष्टि से, बिना किसी कल्पना के, अपीलकर्ताओं को एक सामान्य कैडर में होने के कारण निदेशालय के कर्मचारियों के बराबर माना जा सकता है। दोनों संवर्गों को अलग करने के लिए उचित सांठगांठ है। इसलिए, वर्गीकरण को संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करते हुए मनमाना नहीं कहा जा सकता है।"

13. **सोम राज** (सुप्रा) में पूर्वोक्त निर्णय के आधार पर याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि उस मामले में कनिष्ठ लिपिक प्रधान कार्यालय, यानी कृषि निदेशालय और उन पदों के लिए हैं। निदेशालय के अधीनस्थ कार्यालयों का चयन भर्ती बोर्ड द्वारा अन्य उम्मीदवारों के साथ एक आम चयन के माध्यम से किया गया था, लेकिन निदेशालय के मुख्य कार्यालय में नियुक्त लोगों को अधीनस्थ कार्यालयों में नियुक्त क्लर्कों के साथ एक भी कैडर का गठन नहीं करने के लिए माना गया था। यह माना गया कि एक ही सेवा में, सरकार अपनी प्रशासनिक सुविधा और समीचीनता के अनुसार विभिन्न संवर्गों का गठन करने के लिए स्वतंत्र है। उक्त धारणा के आधार पर यह आग्रह किया जाता है कि यहां 1994 के नियमों में पाई जाने वाली सेवा की परिभाषा प्रत्येक सरकारी विभाग या कार्यालय के संदर्भ में है और जहां एक उर्दू अनुवादक को नियुक्त किया गया है, वह जिला स्तर का प्रतिष्ठान है।

स्थापना या कार्यालय, उर्दू अनुवादक द्वारा धारित पद एक जिला स्तरीय संवर्ग पद है, इसके बावजूद कि उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक की सेवा, 1994 के नियमों के नियम 6 के अनुसार, प्रत्येक सरकारी विभाग या कार्यालय में संबंधित सेवा के तहत होती है। उस विभाग या कार्यालय पर लागू होने वाले नियम, उस विभाग या कार्यालय में सेवा नियमों द्वारा शासित अन्य पदाधिकारियों के लिए एक जिले से दूसरे जिले में स्थानांतरण की अनुमति देने वाली राज्य सेवा हो सकती है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के अनुसार, उर्दू अनुवादक एक विशिष्ट या अलग वर्ग हैं और वे विशेष सरकारी विभागों या कार्यालयों के नियमित संवर्ग में अन्य कनिष्ठ लिपिकों की तरह पदोन्नति आदि जैसे कई अन्य लाभों के हकदार नहीं हैं। . इसी संदर्भ में **रमेश चंद्र जोशी** (सुप्रा) मामले में उत्तराखंड उच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले पर जोर दिया गया है।

उत्तरदाताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ

14. श्री एमसी चतुर्वेदी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता, श्री रामानंद पांडे और श्री अंकित गौड़, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी वकील ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता का मामला यह है कि वह जिला स्तरीय कैडर पद का सदस्य है। 1994 के नियमों के तहत, 1994 के नियमों की पूरी तरह से गलत व्याख्या और गलतफहमी पर आधारित है। विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता के अनुसार, 1994 के नियमों के तहत जिला मजिस्ट्रेट बिल्कुल भी याचिकाकर्ता का नियुक्ति प्राधिकारी नहीं है। वह केवल चयन

समिति का अध्यक्ष होता है, जिसमें नियम 17 के तहत परिकल्पित जिला मजिस्ट्रेट सहित पांच सदस्य शामिल होते हैं। यह तर्क दिया जाता है कि नियुक्ति प्राधिकारी एक सरकारी विभाग या दूसरे या एक कार्यालय या अन्य में एक प्राधिकारी होगा, जहां एक उर्दू अनुवादक नियुक्त किया गया है। 20 अगस्त, 1994 के सरकारी आदेश के तहत सरकारी विभाग और कार्यालय विविध और अलग-अलग हैं, जिसके तहत मुख्यालय, आयुक्तालय के मंडल मुख्यालय और जिला स्तर पर सरकारी विभागों और कार्यालयों के लिए निर्दिष्ट संख्या में पद सृजित किए गए हैं। विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता के अनुसार, ऐसे प्रत्येक पद के लिए चयन 1994 के नियमों के नियम 17 के तहत गठित वैधानिक चयन समिति द्वारा किया जाना है। वैधानिक चयन समिति द्वारा चयन के बाद, एक विशेष सरकारी विभाग में नियुक्ति प्राधिकारी या कार्यालय चयनित उम्मीदवार को नियुक्ति प्रदान करेगा और उसे नियुक्ति पत्र जारी करेगा। एक बार किसी विशेष सरकारी विभाग या कार्यालय में उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के रूप में नियुक्त होने पर उम्मीदवार वहां जूनियर क्लर्क के कैडर पर लागू सेवा नियमों द्वारा शासित होगा। श्री चतुर्वेदी के प्रस्तुतीकरण में, यदि सरकारी विभाग या कार्यालय नियमों द्वारा शासित होता है, जहां कनिष्ठ लिपिक के संवर्ग में समूह-सी पद धारण करने वाले कर्मचारी स्थानांतरणीय होते हैं, तो ऐसे में एक उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक को नियुक्त किया जाता है। एक सरकारी विभाग या कार्यालय, ग्रुप-सी पद के किसी भी अन्य धारक, या विशेष रूप से जूनियर क्लर्क की

तरह स्थानांतरित होने के लिए उत्तरदायी होगा। 15. वर्तमान मामले में, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को महानिदेशक के कार्यालय में निदेशक (प्रशासन) द्वारा 31 मई, 1995 को जारी आदेश के तहत उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के रूप में नियुक्त किया गया था। लखनऊ में चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश सरकार, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय में उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के पद पर वैधानिक चयन समिति की सिफारिश पर कार्य कर रही है। उक्त नियुक्ति पत्र की एक प्रति प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से दायर 28 सितंबर, 2021 के पूरक शपथ पत्र-II के साथ संलग्न है। अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि इस नियुक्ति पत्र को जानबूझकर रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था। रिट याचिका में याचिकाकर्ता के रूप में यह संकेत देगा कि याचिकाकर्ता का नियुक्ति प्राधिकारी निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाएं, यूपी, लखनऊ है, न कि जिला मजिस्ट्रेट, मुजफ्फर नगर। यह आग्रह किया गया है कि याचिकाकर्ता की उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के रूप में नियुक्ति यूपी चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग (अधीनस्थ कार्यालय) लिपिक संवर्ग सेवा नियम, 1994 (संक्षेप में, 'चिकित्सा सेवा) के नियम 3-का द्वारा शासित होती है। नियम, 1994) 1994 के नियमों के नियम 5(ए) के साथ पढ़ें।

16. प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से 4 अक्टूबर, 2021 को एक तीसरा पूरक शपथ पत्र भी दायर किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता की

सेवा की एक जेरोक्स प्रति रिकॉर्ड में लाई गई है। -पुस्तक, जो दर्शाती है कि महानिदेशक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा 18 अगस्त 2008 को पारित आदेश के तहत, याचिकाकर्ता को उसके पद के साथ उर्दू अनुवादक-सह-वरिष्ठ लिपिक के पद पर पदोन्नत किया गया है। वेतनमान 4000-100-8000. याचिकाकर्ता पर लागू सेवा नियमों के आधार पर आग्रह किया गया है कि वह महानिदेशक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, यूपी, लखनऊ की स्थापना में एक उर्दू अनुवादक-सह-वरिष्ठ लिपिक है। उनके नियुक्ति प्राधिकारी निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, उप्र, लखनऊ हैं। याचिकाकर्ता की सेवा, जो चिकित्सा सेवा नियम, 1994 द्वारा शासित एक लिपिक संवर्ग पद है, को जिला स्तरीय संवर्ग पद नहीं कहा जा सकता है।

17. अपने तर्क के समर्थन में, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने **अकील अहमद बनाम यूपी राज्य और अन्य, रिट - ए संख्या 14945/2018** में विद्वान एकल न्यायाधीश के एक असूचित निर्णय पर भरोसा किया है। **17 जुलाई, 2018** को, जहां यह कहा गया है: "6. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता पिछले 10 वर्षों से अधिक समय से संबंधित कार्यालय में काम कर रहा है। उसकी नियुक्ति उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पद पर है। और उन्हें उसी विभाग यानी राज्य के परिवहन विभाग में मौजूद उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के एक विशिष्ट पद पर स्थानांतरित कर दिया गया है।

7. स्थानांतरण का आदेश राज्य सरकार से अनुमोदन प्राप्त करने के बाद पारित किया गया है, जो अन्यथा 1994 के नियमों के अनुसार क्षेत्राधिकार है। नियमों में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के दूसरे स्थान पर स्थानांतरण पर रोक लगा सके। पद संवर्ग में ही विद्यमान है। याचिकाकर्ता इस बात पर जोर नहीं दे सकता कि उसे उसी क्षेत्र में तैनात किया जाना है जहां वह शुरू में नियुक्त किया गया था। उस संबंध में दिया गया तर्क नियमों के विशिष्ट प्रावधानों के संदर्भ में टिकाऊ नहीं है। अन्यथा यह तय है कि स्थानांतरण सेवा की अनिवार्यता है, और जब तक इसे वैधानिक नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं दिखाया जाता है या अन्यथा दुर्भावनापूर्ण नहीं पाया जाता है, तब तक इसमें हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, स्थानांतरण के आदेश को दी गई चुनौती विफल हो जाती है।"

लागू नियम

18। याचिकाकर्ता की सेवा की शर्तों को नियंत्रित करने वाले नियमों का उल्लेख करना फायदेमंद होगा। ध्यान देने योग्य सबसे महत्वपूर्ण 1994 के नियम हैं। उपरोक्त नियम, जैसा कि पहले ही कहा गया है, राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं। 1994 के नियमों के नियम 5 के खंड (ए), (ई) और (एफ) प्रासंगिक हैं और नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"5. इन नियमों में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो- (ए) "नियुक्ति प्राधिकारी" का अर्थ प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत

किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में कनिष्ठ लिपिक के पद पर नियुक्ति करने के लिए सशक्त प्राधिकारी है, के रूप में मामला हो सकता है;

(बी) - (डी) xxxx

(ई) "सेवा के सदस्य" का अर्थ है सेवा के केंद्र में किसी पद पर इन नियमों या इन नियमों के शुरू होने से पहले लागू नियमों या आदेशों के तहत मूल रूप से नियुक्त व्यक्ति; (एफ) "सेवा" का अर्थ है किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क की सेवा, जैसा भी मामला हो, प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत गठित;" (न्यायालय द्वारा जोर) 19. फिर से, के तहत 1994 के नियमों के भाग- II नियम 6 के तहत, सेवा का संवर्ग या सेवा की ताकत को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "6. प्रत्येक सरकारी विभाग या कार्यालय में सेवा की ताकत ऐसी होगी जो सरकार द्वारा समय-समय पर प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत, जैसा भी मामला हो, निर्धारित की जा सकती है।" (न्यायालय द्वारा जोर)

20. यह है 1994 के नियमों के नियम 16, 17(1) और 18 को संदर्भित करना और भी प्रासंगिक है, जो इस प्रकार हैं: "16. नियुक्ति प्राधिकारी वर्ष के दौरान भरी जाने वाली रिक्तियों की संख्या और नियम के तहत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य श्रेणियों के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या निर्धारित करेगा और जिला मजिस्ट्रेट को सूचित करेगा। 8. जिला मजिस्ट्रेट रिक्तियों को

रोजगार कार्यालय को अधिसूचित करेगा। वह उन व्यक्तियों से सीधे आवेदन भी आमंत्रित करेगा जिनका नाम रोजगार कार्यालय में पंजीकृत है। इस प्रयोजन के लिए जिला मजिस्ट्रेट हिंदी और उर्दू के दैनिक समाचार पत्रों में एक विज्ञापन जारी करेगा। नोटिस बोर्ड पर इसके लिए नोटिस चिपकाने के अलावा भाषा।

17. (1) भर्ती के प्रयोजन के लिए, एक चयन समिति का गठन किया जाएगा जिसमें शामिल होंगे-

(i) जिला मजिस्ट्रेट अध्यक्ष

(ii) अनुसूचित जाति से संबंधित एक अधिकारी या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामित अनुसूचित जनजाति का सदस्य, यदि जिला मजिस्ट्रेट अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का नहीं है। यदि जिला मजिस्ट्रेट अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित है तो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित एक अधिकारी को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामित किया जाएगा।

सदस्य

(iii) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नामित दो अधिकारी, जिनमें से एक सदस्य अल्पसंख्यक समुदाय से संबंधित होगा और दूसरा अन्य पिछड़ा वर्ग से होगा।

सदस्य

(iv) जिला सदस्य सदस्य मजिस्ट्रेट द्वारा नामित उर्दू भाषा का विशेषज्ञ।

सदस्य

(2) xxxx

(3) xxxx

18. नियुक्ति प्राधिकारी जिला मजिस्ट्रेट से उम्मीदवारों के नियुक्ति नामों की मांग करके

नियुक्ति करेगा, जो उम्मीदवारों के नाम उस क्रम में प्रदान करेगा जिसमें वे नियम 17 के तहत तैयार की गई सूची में हैं।

21. चिकित्सा सेवा नियम, 1994 का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है:

"(3) जब तक विषय या संदर्भ में कोई विरोधाभासी बात न हो इस नियमावली में:

(क) प्रमुख सचिव का निदेशालय, प्रशासन, चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, उत्तर प्रदेश से है,

(ख) - (घ) xxxxx

(छ) "सेवा का सदस्य" का कोलोराडो सेवा के संवर्ग में किसी भी पद पर इस नियमावली के गठन के पूर्व सिद्धांत या निर्देश के मूल सिद्धांत के रूप में नियुक्त व्यक्ति से है,

(ज) 'सेवा' का मुख्यालय उत्तर प्रदेश चिकित्सा एवं स्वास्थ्य परिवार कल्याण विभाग (अधीनस्थ कार्यालय) से है,"

22. यहां यह बताना जरूरी है कि 2022 की रिट-ए संख्या 11378 के याचिकाकर्ता को नियमावली 1994 के अनुसार उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के रूप में चयन के बाद जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय में नियुक्त किया गया है। बस्ती। उन पर नियमों का एक अलग सेट लागू होगा, जिसका उल्लेख इस फैसले में बाद में किया जाएगा। निष्कर्ष

23. पक्षों के विद्वान वकील को सुनने और 1994 के नियमों और चिकित्सा सेवा नियमों, 1994 को ध्यान से पढ़ने पर, हमारी राय में हमें 1994 के नियमों की सामान्य योजना के साथ-साथ चिकित्सा सेवा नियम, 1994 पर भी गौर करने की जरूरत है। जहां तक इस निर्णय द्वारा निपटाई जा रही सभी रिट याचिकाओं

और विशेष अपीलों का संबंध है, 2022 की रिट-ए संख्या 11378 को छोड़कर, इन दो नियमों पर विचार करना पर्याप्त होगा। अंतिम

उल्लेखित रिट याचिका के मामले में, नियम 1994 को उत्तर प्रदेश अधिनास्थ शिक्षा लिपिक वर्ग सेवा नियमावली, 1985 (संक्षेप में, '1985 के नियम') के साथ माना जाना होगा।

24. 1994 के नियमों के अवलोकन से पता चलता है कि इनसे कर्मचारियों का एक नया वर्ग अस्तित्व में आया है जिसे उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक कहा जाता है। ये पद 20 अगस्त, 1994 के सरकारी आदेश के तहत बनाए गए हैं। इसके तुरंत बाद, संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्यपाल द्वारा 1994 के नियम बनाए गए। नियमावली को अधिनियमित करने का उद्देश्य उत्तर प्रदेश उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक सेवा में नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती और सेवा शर्तों का विनियमन है। इस प्रकार, ये नियम सेवा का गठन नहीं करते हैं, बल्कि उर्दू अनुवादकों के पद पर भर्ती और सेवा की शर्तों को विनियमित करते हैं।

25. राज्य सरकार द्वारा अपनी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 20 अगस्त 1994 के सरकारी आदेश द्वारा उर्दू अनुवादकों के पद सृजित किये गये हैं। स्वीकृत पदों की संख्या स्पष्ट रूप से 5061 निर्धारित की गई है। वेतनमान भी संदर्भ के तहत सरकारी आदेश द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। पदों का सृजन, जिसके विरुद्ध एक उर्दू अनुवादक की नियुक्ति की जाएगी, की जानकारी भी शासनादेश द्वारा दी जाती है। 20 अगस्त, 1994 का सरकारी आदेश

अपने उद्देश्य के रूप में उर्दू भाषा को किसी की आजीविका सुरक्षित करने का माध्यम बनाने को निर्दिष्ट करता है और इस विषय पर 24 मार्च, 1994 के पहले के सरकारी आदेश का संदर्भ देता है। आदेश में कार्यालयों की आठ श्रेणियों में उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिकों के पद सृजित करने का प्रस्ताव है, जहां निर्दिष्ट श्रेणी के कार्यालयों में प्रत्येक में एक पद सृजित किया जाएगा। कार्यालयों के आठ वर्गों में से प्रत्येक को शुरुआती पैराग्राफ में उल्लिखित एक विशेष संख्या में पद (वर्ग-वार) आवंटित किए गए हैं। राज्य मुख्यालय, आयुक्तालय और जिला मुख्यालय स्तर पर कार्यालयों की तीन संलग्न सूचियाँ हैं, जिनमें से प्रत्येक में एक उर्दू अनुवादक होगा।

26. सरकारी आदेश में प्रावधान है कि उर्दू अनुवादकों के पद इस प्रकार सृजित किये जायेंगे कि जिन कार्यालयों में 950-1500 वेतनमान में कनिष्ठ लिपिक का पद रिक्त है, उन्हें उर्दू में परिवर्तित किया जायेगा। 950-1500 के वेतनमान में अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक और उसके विरुद्ध नियुक्त एक पदधारी। यदि कोई पद उपलब्ध नहीं है, तो सरकारी आदेश उस तरीके को निर्दिष्ट करता है जिसमें नियुक्ति की जानी है। सरकारी आदेश के कंडिका संख्या 4 में यह प्रावधान है कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के नवसृजित पदों पर नियुक्ति प्राधिकार वही प्राधिकारी होगा, जो जूनियर क्लर्क की नियुक्ति करने में सक्षम है। नियुक्तियां तीन स्तर के कार्यालयों यानी राज्य मुख्यालय, कमिश्नरी और जिला मुख्यालय पर की जानी हैं। शासनादेश में तीनों स्तरों पर नियुक्ति प्राधिकारी अलग-अलग

बताए गए हैं। 9 सितंबर 1994 से लागू किए गए नियम स्पष्ट रूप से पदों का सृजन नहीं करते हैं, बल्कि उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों की सेवा की परिभाषा, उनकी सेवा को नियंत्रित करने वाले नियम, उनके नियुक्ति प्राधिकारी, के संबंध में सरकारी आदेश को ओवरराइड करते हैं। चयन का तरीका और प्रत्येक सरकारी विभाग या कार्यालय में एक कैडर शक्ति निर्धारित करना जो सरकार द्वारा भिन्न और निर्धारित किया जा सकता है।

27. 1994 के नियम उर्दू अनुवादकों की भर्ती और सेवा शर्तों को विनियमित करते हैं। चूंकि नियम संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं, इसलिए 20 अगस्त 1994 के सरकारी आदेश में इसके विपरीत कुछ भी निरस्त माना जाएगा। 20 अगस्त, 1994 के सरकारी आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पदों को शुरू करने के लिए निर्दिष्ट कार्यालयों में जूनियर क्लर्क के एक उपलब्ध पद का उपयोग करके इसे परिवर्तित किया जाना था। समान ग्रेड और वेतनमान में एक उर्दू अनुवादक। उर्दू अनुवादकों का कोई नया पद इस अर्थ में सृजित नहीं किया गया था कि सरकार के विभिन्न विभागों या कार्यालयों में, जहां उर्दू अनुवादकों के पद सृजित किए गए थे, कनिष्ठ लिपिकों की मौजूदा संख्या में पद नहीं जोड़े गए हैं, लेकिन कनिष्ठ के मौजूदा पद विभिन्न विभागों और कार्यालयों में क्लर्क, जिनमें उर्दू अनुवादकों की नियुक्ति की जानी थी, जूनियर क्लर्क के मौजूदा पदों को परिवर्तित करके बनाए गए हैं।

28. उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पद की उत्पत्ति और सृजन से पता चलता है कि यद्यपि 20 अगस्त, 1994 के सरकारी आदेश द्वारा एक नया पद अस्तित्व में लाया गया है, यह सामान्य तौर पर जूनियर क्लर्क के पद से अलग नहीं है। पदनाम 'सह-जूनियर क्लर्क' में उपांग पद की उत्पत्ति का कोई संकेत नहीं है, लेकिन जूनियर क्लर्कों के बीच एक विशेष कैडर की स्थापना को दर्शाता है, जो अन्यथा अनिवार्य रूप से किसी भी जूनियर क्लर्क के समान ही हैं। बेशक, उनके पास उर्दू भाषा में विशेष योग्यता और ज्ञान होना चाहिए, जिसे अनुवाद कार्य में नियोजित किया जाना चाहिए।

29. 1994 के नियमों में नियम 2 के तहत उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के पद को एक अराजपत्रित सेवा में शामिल किया गया है जिसमें समूह-सी पद शामिल है। हालाँकि, 1994 की नियमावली की योजना यह दर्शाती है कि इन उर्दू अनुवादकों के उत्तर प्रदेश उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक सेवा के सदस्य होने के विवरण से परे, वे एक केंद्रीकृत सेवा नहीं हैं, जिसके पदधारियों को एक से स्थानांतरित किया जा सकता है। दूसरे को सरकारी विभाग या कार्यालय। नियम 5(ए) नियुक्ति प्राधिकारी को परिभाषित करता है जिसका अर्थ है "प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत सरकारी विभाग या कार्यालय में कनिष्ठ लिपिक के पद पर नियुक्ति करने का अधिकार प्राप्त प्राधिकारी।" सेवा को परिभाषित किया गया है नियम 5(एफ) के तहत इसका अर्थ है "किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क की सेवा, प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत गठित,

....."। 1994 के नियमों का नियम 6 कैडर से संबंधित है और यह निर्धारित करता है कि "प्रत्येक सरकारी विभाग या कार्यालय में सेवा की ताकत ऐसी होगी जो सरकार द्वारा समय-समय पर प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत निर्धारित की जा सकती है। .."

30. इसी तरह, नियम 16, जो 1994 के नियमों के भाग V में आता है, यह प्रावधान करता है कि "नियुक्ति प्राधिकारी वर्ष के दौरान भरी जाने वाली रिक्तियों की संख्या निर्धारित करेगा और जिला मजिस्ट्रेट को सूचित करेगा"। जिला मजिस्ट्रेट को रोजगार कार्यालय के माध्यम से और हिंदी और उर्दू भाषा के दैनिक समाचार पत्रों में विज्ञापन के माध्यम से आवेदन आमंत्रित करना होगा। नियम 17(1) के तहत जिला मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में एक चयन समिति का प्रावधान किया गया है। नियम 17(2) के तहत एक प्रतियोगी परीक्षा की परिकल्पना की गई है, जो तीन पेपरों वाली एक लिखित परीक्षा है, जिसके अंक, पेपर सहित, नियम 17 के उप-नियम (3) के तहत निर्दिष्ट हैं। चयन समिति को यह कार्य सौंपा गया है हिंदी और उर्दू भाषाओं में पारंगत व्यक्तियों के माध्यम से उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन सुनिश्चित करना। चयन समिति को लिखित परीक्षा में उनके द्वारा प्राप्त अंकों के योग के आधार पर योग्यता के क्रम में उम्मीदवारों की एक चयन सूची तैयार करने का काम सौंपा गया है। चयनित उम्मीदवारों की संख्या अपेक्षित पदों से अधिक होनी चाहिए, लेकिन 25% से अधिक नहीं। नियम 18 के तहत नियुक्ति प्राधिकारी जिला मजिस्ट्रेट से प्राप्त नामों में से

नियम 17 के तहत तैयार की गई सूची में उनके स्थान के क्रम का पालन करते हुए नियुक्ति करने के लिए बाध्य है। 31. चिकित्सा सेवा नियम, 1994 भी बनाए गए हैं संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत राज्यपाल द्वारा। चिकित्सा सेवा नियमावली, 1994 के भाग I नियम 2 में प्रावधान है कि इन नियमों द्वारा शासित उत्तर प्रदेश चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग में लिपिक संवर्ग के सभी समूह-ग पद समूह-ग पद होंगे। चिकित्सा सेवा नियमावली, 1994 के भाग I के नियम 3(ए) में नियुक्ति प्राधिकारी को निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश के रूप में परिभाषित किया गया है। भाग III कर्मचारियों के विभिन्न संवर्गों का वर्णन करता है, जो चिकित्सा सेवा नियम, 1994 के तहत बनाई गई सेवा का हिस्सा हैं। कर्मचारियों के 11 संवर्ग हैं, जिनमें से कनिष्ठ लिपिक भाग III के नियम 8 के अंतर्गत आते हैं। वहाँ कनिष्ठ लिपिकों को जो नाम दिया गया है वह है कनिष्ठ श्रेणी लिपिक। इस संवर्ग में, 85% का चयन सीधी भर्ती के माध्यम से किया जाना है, जबकि शेष 15% को चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग के साथ काम करने वाले चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों में से पदोन्नत किया जाना है, जो मैट्रिक पास हैं।

32. चिकित्सा सेवा नियम, 1994 द्वारा शासित सेवा में नियुक्ति के लिए पात्रता की अन्य शर्तें भाग IV, नियम 7 और शैक्षिक योग्यता भाग IV के नियम 8 में दी गई हैं। नियम 14, जो भाग V में पाया जाता है, एक वर्ष के दौरान होने वाली रिक्तियों के

निर्धारण के बारे में बताता है। यह नियुक्ति प्राधिकारी को भर्ती वर्ष के दौरान होने वाली रिक्तियों की कुल संख्या और एससी, एसटी और ओबीसी की आरक्षण श्रेणियों को भरने के लिए आवश्यक रिक्तियों की संख्या निर्धारित करने के लिए बाध्य करता है। आयोग के माध्यम से जो रिक्तियां भरी जानी हैं, उन्हें सूचित कर दिया जाएगा। आयोग को चिकित्सा सेवा नियमावली, 1994 के नियम 3-जीए के तहत उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग के रूप में परिभाषित किया गया है। नियमावली का नियम 15 सीधी भर्ती की बात करता है। चयन आयोग द्वारा लिखित परीक्षा के माध्यम से किया जाना है, जो उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर एक मेरिट सूची तैयार करेगा। आयोग द्वारा निकाली गई सूची में उम्मीदवारों की संख्या रिक्तियों के 25% से अधिक नहीं होगी। इस प्रकार, आयोग द्वारा तैयार की गई सूचियाँ नियुक्ति प्राधिकारी को भेज दी जाएंगी। चिकित्सा सेवा नियम, 1994 के नियम 18 में नियुक्ति, परिवीक्षा, पुष्टिकरण और वरिष्ठता का प्रावधान है।

33. अधिक जानकारी के अभाव में, यह स्पष्ट है कि चिकित्सा सेवा नियम, 1994 द्वारा शासित कनिष्ठ लिपिक के पद पर सीधी भर्ती या उस मामले में पदोन्नति निर्दिष्ट नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा की जानी है, जो निदेशक (प्रशासन) है। , चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश। इस प्रकार चिकित्सा सेवा नियमावली के अवलोकन से स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण अधीनस्थ लिपिक ग्रेड एक समूह-ग सेवा है,

जिसका नियुक्ति प्राधिकारी निदेशक होता है। यह राज्य भर में फैले चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग के अधीन अधीनस्थ कार्यालयों और प्रतिष्ठानों के साथ एक राज्य स्तरीय सेवा है।

34. इसके विपरीत, 1994 के नियम, जिसके तहत उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क नियुक्त किए जाते हैं, नियम 5 (ए) द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी को सरकारी विभाग में जूनियर क्लर्क के पद पर नियुक्ति करने के लिए सशक्त प्राधिकारी के रूप में परिभाषित करते हैं। कार्यालय 1994 के नियमों का नियम 5(एफ) उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों की सेवाओं को एक सरकारी विभाग या कार्यालय में संबंधित सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत गठित के रूप में परिभाषित करता है। 1994 के नियमों के नियम 6 के तहत, उर्दू अनुवादकों की सेवा की ताकत प्रत्येक सरकारी विभाग या कार्यालय के संदर्भ में निर्दिष्ट की गई है, जिसे सरकार द्वारा समय-समय पर संबंधित सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत निर्धारित किया जाएगा।

35. इसलिए, मामले की जड़ यह है कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क, हालांकि एक सेवा का हिस्सा हैं, जिसे 1994 के नियमों के तहत बनाई गई उत्तर प्रदेश उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क कहा जाता है, वास्तव में नियुक्त किया जाता है विशेष सरकारी विभाग या कार्यालय में उर्दू अनुवादकों-सह-कनिष्ठ लिपिकों के संवर्ग में नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा। उनकी सेवा शर्तें उस सरकारी विभाग या कार्यालय में काम करने वाले कनिष्ठ

लिपिकों पर लागू सेवा नियमों द्वारा शासित होती हैं, सिवाय इसके कि 1994 के नियम अन्यथा प्रदान करते हैं। सरकार द्वारा किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में उर्दू अनुवादकों-सह-कनिष्ठ लिपिकों के पदों की संख्या निर्धारित करने और उन नियमों के तहत परिकल्पित चयन समिति द्वारा पद पर चयन करने के लिए 1994 के नियमों का उपयोग किया जा सकता है। उस सीमा तक, भर्ती की प्रक्रिया चिकित्सा सेवा नियम, 1994 के तहत भर्ती किए गए अन्य क्लर्कों से भिन्न हो सकती है। लेकिन, यह संबंधित सरकारी विभाग या कार्यालय में नियुक्ति प्राधिकारी है, जो उर्दू अनुवादक के मामले में एक मांग भेजेगा। जिला मजिस्ट्रेट, जो 1994 के नियमों के नियम 16 के तहत परिकल्पित चयन समिति के माध्यम से चयन करेंगे और योग्यता के क्रम में उम्मीदवारों की सूची नियुक्ति प्राधिकारी को भेजेंगे।

36. चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग में उर्दू अनुवादकों-सह-कनिष्ठ लिपिकों की नियुक्ति के मामले में, भर्ती का तरीका और सेवा की शर्तें आम तौर पर चिकित्सा सेवा नियम, 1994 द्वारा शासित होंगी, इस सीमा को छोड़कर 1994 के नियमों द्वारा अलग-अलग प्रक्रिया या तरीका निर्धारित किया गया है। अन्य सभी सरकारी विभागों या कार्यालयों में भी यही स्थिति है, जहां उर्दू अनुवादकों की नियुक्ति की जानी है। यही स्थिति उर्दू अनुवादकों-सह-कनिष्ठ लिपिकों के मामले में भी होगी, जिन्हें 1994 के नियमों के तहत उत्तर प्रदेश अधिनास्थ शिक्षा लिपिक वर्ग सेवा के नाम से जानी जाने वाली सेवा में नियुक्त

किया जाएगा, जो सरकार के बेसिक शिक्षा विभाग के तहत एक सेवा है। इस पर थोड़ी देर बाद और विस्तार से चर्चा की जाएगी।

37. इस प्रकार, जहां तक चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग के अधीनस्थ कार्यालयों में कार्यरत कनिष्ठ लिपिकों का प्रश्न है, उनकी नियुक्ति राज्य के निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण द्वारा की जाती है। वे स्पष्ट रूप से राज्य स्तरीय कैडर का हिस्सा हैं और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उन्हें किस अधीनस्थ कार्यालय में तैनात किया गया है या शुरुआत में नियुक्त किया गया है। आरंभ में की गई उनकी नियुक्ति किसी विशेष अधीनस्थ कार्यालय में पोस्टिंग से अधिक कुछ नहीं होगी। इसी तरह, उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों के मामले में भी ऐसा ही है। इस बारे में कुछ मुद्दा हो सकता है कि नियुक्ति किसी कार्यालय में की गई है या राज्य मुख्यालय में किसी सरकारी विभाग की स्थापना के लिए, आयुक्तालय में संभागीय मुख्यालय में या जिला मुख्यालय में की गई है। लेकिन, इस मामले में ऐसा नहीं होता। यह मानते हुए कि याचिकाकर्ता को जिला स्तरीय कार्यालय या महानिदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, यूपी, लखनऊ की स्थापना में एक अधीनस्थ कार्यालय में नियुक्त किया गया है, इसका मतलब यह नहीं है कि उसे किसी विशेष जिले या जिले में नियुक्त किया गया है। इस शब्द के अर्थ में लेवल कैडर। उसे राज्य भर के किसी भी जिला स्तरीय कार्यालय में स्थानांतरित किया जा सकता है जो महानिदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार

कल्याण, यूपी, लखनऊ के प्रशासनिक नियंत्रण में है और उसके पास स्वीकृत पद है।

38. याचिकाकर्ता के मामले के तथ्यों का हवाला देते हुए, उनका कहना है कि चयन के लिए उपयुक्त पाए जाने पर, याचिकाकर्ता को जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय द्वारा 3 अप्रैल, 1995 को एक मेमो जारी किया गया था, जिस पर याचिकाकर्ता ने उसे नियुक्ति की पेशकश की थी। मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय में उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक का पद। याचिकाकर्ता के अनुसार, उक्त नियुक्ति आदेश में उन्हें मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय में सेवाओं में शामिल होने का निर्देश दिया गया था।

39. इस न्यायालय को यहां यह टिप्पणी करनी चाहिए कि याचिकाकर्ता का उपरोक्त रुख गलत है। जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय द्वारा जारी 3 अप्रैल 1995 के मेमो नंबर 487/ सामान्य सहायक का अवलोकन, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के साथ अनुबंध संख्या 5 के रूप में संलग्न है, से पता चलता है कि मेमो इस तथ्य का प्रमाणन है कि 1994 के नियमों के तहत गठित चयन समिति ने याचिकाकर्ता को उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पद पर चयनित करने के बाद नियुक्ति के लिए सिफारिश की थी। याचिकाकर्ता को इस उद्देश्य के लिए मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय से संपर्क करने का निर्देश दिया गया था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता को सक्षम नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा मुख्य चिकित्सा अधिकारी के कार्यालय

में उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के पद पर नियुक्त किया गया था।

40. मो. से संबंधित नियुक्ति पत्र का अवलोकन। मुस्तकीम बताते हैं कि उन्हें निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, यूपी द्वारा 31 मई, 1995 के आदेश के तहत मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर के कार्यालय में नियुक्त किया गया है, जो उनके नियंत्रण में एक अधीनस्थ कार्यालय है। महानिदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश, और अंततः, राज्य के चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग का एक हिस्सा। यह कोई मामला नहीं है कि मुख्य चिकित्सा अधिकारी के कार्यालय में कनिष्ठ लिपिक, जो शुरू में किसी विशेष सीएमओ कार्यालय में नियुक्त किए गए थे, उन्हें जीवन भर के लिए वहीं नियुक्त किया जाता है। चिकित्सा सेवा नियम, 1994 द्वारा शासित कनिष्ठ लिपिक एक स्थानांतरणीय पद रखते हैं और उन्हें राज्य में एक अधीनस्थ कार्यालय से दूसरे में स्थानांतरित किया जा सकता है, जहां भी महानिदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के नियंत्रण में कोई कार्यालय या प्रतिष्ठान है।, यूपी, लखनऊ।

41. इसलिए, 1994 के नियमों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालने का कोई कारण नहीं है कि उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिकों को जिला मजिस्ट्रेट, मुजफ्फर नगर की अध्यक्षता में एक चयन समिति के माध्यम से चुना गया और बाद में कार्यालय में नियुक्त किया गया। निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य एवं

परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश के आदेश के तहत मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फर नगर, जिला स्तरीय केंद्र पद पर हैं। नियुक्ति प्राधिकारी एक राज्य स्तरीय प्राधिकरण है, जिसके पूरे राज्य में अधीनस्थ कार्यालय या प्रतिष्ठान हैं। उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के पद 20 अगस्त 1994 के सरकारी आदेश द्वारा सृजित किए गए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि मुख्य चिकित्सा अधिकारी के कार्यालय में अन्य पदों के अलावा, लेकिन यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि यह एक जिला स्तरीय केंद्र पोस्ट है। किसी भी अन्य जूनियर क्लर्क की तरह, उर्दू अनुवादकों की नियुक्ति एक राज्य स्तरीय प्राधिकरण द्वारा की जाती है, यानी निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, यूपी, लखनऊ, जो उर्दू अनुवादकों की नियुक्ति प्राधिकारी है- सह-कनिष्ठ लिपिक, निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उ0प्र0 के किसी भी स्थापना अथवा अधीनस्थ कार्यालय में नियुक्त किये जायेंगे। तथ्य यह है कि उर्दू अनुवादक जिला स्तरीय केंद्र पद पर कार्यरत नहीं हैं, यह नियम 1994 के नियम 5(ए), 5(एफ) और 6 सहित अन्य द्वारा दर्शाया गया है।

42. 1994 के नियमों के नियम 5 (ए) में नियुक्ति प्राधिकारी को परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में जूनियर क्लर्क के पद पर नियुक्ति करने के लिए सशक्त प्राधिकारी है, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क, हालांकि कुछ

उद्देश्यों के लिए 1994 के नियमों द्वारा शासित होते हैं, उन्हें नियम 1994 के तहत नियुक्त नहीं किया जाना है, बल्कि कुछ अन्य नियमों के तहत नियुक्त किया जाना है, जिन्हें "प्रासंगिक सेवा नियम या कार्यकारी निर्देश" कहा जाता है। उन्हें नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा उन "प्रासंगिक नियमों या कार्यकारी निर्देशों" के तहत नियुक्त किया जाना है। पुनः, 1994 के नियमों का नियम 5(एफ) किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में उर्दू अनुवादकों-सह-कनिष्ठ लिपिकों की सेवाओं को संबंधित सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत गठित सेवा के रूप में परिभाषित करता है।

43. 1994 के नियमों के नियम 6 में कहा गया है कि प्रत्येक सरकारी विभाग या कार्यालय में सेवा की ताकत ऐसी होगी जो सरकार द्वारा समय-समय पर प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के तहत निर्धारित की जा सकती है। 1994 के नियमों के इन सभी प्रावधानों के बीच सामान्य कारक यह दर्शाता है कि एक बार उक्त नियमों के तहत चयनित होने के बाद, उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के कैडर की जिला स्तरीय कैडर या राज्य स्तरीय कैडर की प्रकृति सरकारी विभाग या कार्यालय पर निर्भर करेगी। जिसमें चयन के बाद उसकी नियुक्ति की जाती है। उदाहरण के लिए, 1994 के नियमों के तहत चयन के बाद, उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क को उत्तर प्रदेश जिला कार्यालय (कलेक्ट्रेट) मंत्रालयिक सेवा नियम, 1980 (संक्षेप में) द्वारा शासित, कलेक्ट्रेट की स्थापना में एक पद पर नियुक्त किया जाता है। , '1980 के नियम'), जहां नियुक्ति प्राधिकारी जिला मजिस्ट्रेट है, कार्यालय

अधीक्षक के मामले को छोड़कर, जिनके लिए नियुक्ति प्राधिकारी डिवीजन के आयुक्त हैं, उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क द्वारा शासित होंगे 1980 के नियम। उस स्थिति में, पदधारी कलेक्ट्रेट की स्थापना में किसी भी अन्य कनिष्ठ लिपिक की तरह जिला स्तरीय कैडर का हिस्सा होगा। लेकिन, यदि किसी सरकारी विभाग या कार्यालय में नियुक्त किया जाता है, जिसके पूरे राज्य में प्रतिष्ठान और अधीनस्थ कार्यालय हैं, तो ऐसे उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क की सेवा की शर्तें उस सरकारी विभाग या संदर्भित कार्यालय के सेवा नियमों द्वारा शासित होंगी। 1994 के नियमों में प्रासंगिक सेवा नियमों या कार्यकारी निर्देशों के रूप में।

44. हम जाहिद मोहम्मद बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2021 की रिट-ए संख्या 10088, 13 अगस्त, 2021 को निर्णयित एकल न्यायाधीश द्वारा इस संबंध में व्यक्त की गई राय से सम्मानजनक सहमत हैं।

45. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने विशेष रूप से ट्रेबुद्दीन के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले पर इस दलील के समर्थन में भरोसा किया है कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पद हस्तांतरणीय नहीं हैं। इस न्यायालय का ध्यान ट्रेबुद्दीन के मामले (सुप्रा) की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें प्रासंगिक पृष्ठभूमि के साथ लिखा है: "16. पार्टियों की दलीलों से, यह विवाद में नहीं है कि उत्तरदाता स्वयं याचिकाकर्ताओं को सदस्य के रूप में नहीं मानते हैं यूपी पुलिस बल अधिनियम, 1861 की धारा 2 के तहत नामांकित है। दिनांक 17.4.1995 के सरकारी आदेश में भी, यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के पद

पुलिस रैंक के पदों से बाहर हैं। इस प्रकार इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता यूपी पुलिस बल के सदस्य नहीं हैं। इसलिए, प्रावधान और विशेष प्रावधान, जैसा भी मामला हो, जो यूपी पुलिस बल के सदस्यों पर लागू होते हैं, जो अधिनियम, 1961 और उसके तहत जारी नियमों और विनियमों और आदेशों द्वारा शासित होते हैं। याचिकाकर्ताओं पर लागू नहीं होगा। वे केवल नागरिक, गैर पुलिस कर्मी कर्मचारी हैं, जो पुलिस विभाग में तैनात हैं। वे संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत बनाए गए नियमों और विनियमों और राज्य सरकार द्वारा शक्ति के कथित प्रयोग में जारी कार्यकारी आदेशों द्वारा शासित होंगे। संविधान की धारा 166 के साथ पठित धारा 162 के तहत।

17. पद की हस्तांतरणीयता के संबंध में, यह विवादित नहीं है कि नियम, 1994 ऐसी किसी बात पर विचार नहीं करता है। राज्य सरकार ने आदेश दिनांक 25.8.2006 द्वारा स्पष्ट किया है कि उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के रूप में कार्यरत न तो पद और न ही कार्मिक स्थानांतरणीय हैं या सामान्य रूप से स्थानांतरित किये जाने चाहिए। प्रतिवादी राज्य यूपी द्वारा अपनाए गए इस विशिष्ट रुख को देखते हुए, मुझे नहीं लगता कि पुलिस मुख्यालय याचिकाकर्ताओं के सेवा मामलों के संबंध में सेवा की शर्तों या नीतिगत निर्णय लेने का कार्य अपने ऊपर कैसे ले सकता है, जो कि लिए गए निर्णय के विपरीत है। राज्य सरकार द्वारा, जो इन कर्मियों की सेवा की शर्तें निर्धारित करने की विधायी शक्ति रखने

वाली प्रमुख संस्था है। उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्क के संबंध में स्थानांतरण नीति निस्संदेह राज्य सरकार के दायरे में है। यदि यह इसे गैर-हस्तांतरणीय बनाने का निर्णय लेता है, तो मेरे विचार से, यूपी पुलिस मुख्यालय के पास कोई शक्ति नहीं है और उत्तरदाताओं-विद्वान स्थायी वकील द्वारा कोई शक्ति नहीं दिखाई गई है, जिससे वह विपरीत नीतिगत निर्णय ले सके। पुलिस कर्मियों के संबंध में लिया गया निर्णय, विशेष रूप से अधिनियम, 1861 और उसके तहत बनाए गए नियमों और विनियमों के तहत प्रदत्त शक्ति के आधार पर है, लेकिन नागरिक कर्मचारियों के संबंध में ऐसी कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई है और जब तक कि ऐसी शक्ति उनके पास निहित न हो (यूपी पुलिस मुख्यालय), मुझे नहीं लगता कि उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के रूप में काम करने वाले व्यक्तियों के स्थानांतरण के संबंध में इसके (पुलिस मुख्यालय) द्वारा ऐसा कोई नीतिगत निर्णय लिया जा सकता है। पुलिस मुख्यालय का दिनांक 28.7.1997 का परिपत्र स्पष्ट रूप से अनधिकृत, अधिकार क्षेत्र के बिना और अवैध है, खासकर जब राज्य सरकार ने पहले ही यह स्पष्ट कर दिया है कि उर्दू अनुवादक सह कनिष्ठ लिपिक के पद और कार्मिक स्थानांतरण योग्य नहीं हैं।

46. हमने ट्रेबुद्दीन के मामले (सुप्रा) में विचाराधीन नियमों और वहां निर्धारित सिद्धांतों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। एक तो यह निर्णय इस संदर्भ में दिया गया कि याचिकाकर्ता का स्थानांतरण पुलिस मुख्यालय के किसी नीतिगत निर्णय के तहत किया गया

है, जबकि उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिकों की नियुक्ति पुलिस प्रतिष्ठान में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा चयन के बाद पुलिस अधीक्षक द्वारा की जाती है। यूपी पुलिस बल के सदस्य नहीं हैं। वे पुलिस अधिनियम, 1861 या नामांकित पुलिसकर्मियों पर लागू नियमों और विनियमों द्वारा शासित नहीं होते हैं। वे पुलिस विभाग में केवल नागरिक, गैर-पुलिस कर्मी हैं। यह राय दी गई कि वे संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत बनाए गए नियमों या संविधान के अनुच्छेद 162 और 166 के तहत शक्तियों के प्रयोग में राज्य सरकार द्वारा जारी एक कार्यकारी आदेश द्वारा शासित होंगे। ट्रेबुद्दीन के मामले (सुप्रा) में इस आशय की एक और टिप्पणी है कि 1994 के नियम किसी भी स्थानांतरण पर विचार नहीं करते हैं। यह भी देखा गया है कि राज्य सरकार ने 25 अगस्त 2006 के आदेश से यह स्पष्ट कर दिया है कि उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के रूप में कार्यरत न तो पद स्थानांतरणीय है और न ही स्थानांतरित किया जाना चाहिए। 25 अगस्त 2006 के उपरोक्त सरकारी आदेश के मद्देनजर ही न्यायालय ने अंततः यह निष्कर्ष निकाला कि पुलिस मुख्यालय सेवा की शर्तें निर्धारित करने या नीति बनाने का अधिकार नहीं ले सकता। यह टिप्पणी की गई थी कि उर्दू अनुवादकों-सह-कनिष्ठ लिपिकों के संबंध में स्थानांतरण नीति राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में है और यदि उसने निर्णय लिया है कि ये पद गैर-हस्तांतरणीय हैं, तो यूपी पुलिस मुख्यालय

के पास इसके विपरीत नीति अपनाने की कोई शक्ति नहीं थी। फ़ैसला।

47. उपरोक्त निर्णय में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने 1994 के नियमों के विभिन्न प्रावधानों पर ध्यान नहीं दिया है, जो यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करते हैं कि नियुक्ति प्राधिकारी सहित सेवा शर्तें, उर्दू से संबंधित प्रत्येक सरकारी विभाग या कार्यालय में सेवा की ताकत अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक उस सरकारी विभाग या कार्यालय पर निर्भर होंगे, जिसमें एक उर्दू अनुवादक को संबंधित सेवा नियमों के अनुसार नियुक्त किया जाता है, अर्थात्, सरकारी विभाग या कार्यालय पर लागू सेवा नियम, जहां भी एक उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक की नियुक्ति की जाती है। 1994 के नियम इसे नियंत्रित नहीं करेंगे जैसा कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने राय दी है। न ही सभी उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों के स्थानांतरण पर रोक लगाने वाला सरकारी आदेश जारी करना सरकार के अधिकार क्षेत्र में है, जबकि सरकारी विभाग या कार्यालय पर लागू प्रासंगिक सेवा नियमों के अनुसार, जहां एक उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क है। नियुक्त किया गया है, वह स्थानांतरणीय पद पर है।

48. कनिष्ठ लिपिकों की सेवा शर्तों को नियंत्रित करने वाले संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक के तहत नियम बनाए गए हैं, जो 1994 के नियमों के आधार पर उर्दू अनुवादकों-सह-कनिष्ठ लिपिकों पर लागू होंगे। इसलिए, हम इसमें नहीं हैं ट्रेबुद्दीन में विद्वान एकल न्यायाधीश के साथ समझौता हुआ कि 1994 के नियम स्थानांतरण पर विचार नहीं करते हैं, और इसके अलावा, एक बार सरकार ने एक सरकारी आदेश द्वारा उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर क्लर्कों के

स्थानांतरण पर रोक लगा दी थी, ऐसे उर्दू अनुवादकों-सह-जूनियर जब तक राज्य सरकार कोई नीतिगत निर्णय नहीं लेती, तब तक लिपिकों का स्थानांतरण नहीं किया जा सकता।

49. हमारी समझ से, यह विषय सरकार के विभिन्न विभागों और कार्यालयों में वैधानिक सेवा नियमों द्वारा शासित होता है, जहां निश्चित रूप से वैधानिक नियमों के पूरक के लिए कुछ कार्यकारी निर्देश जारी किए जा सकते हैं, यदि प्रासंगिक नियम अनुमति देते हैं।

संदर्भित प्रश्न का उत्तर

50। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा संदर्भित प्रश्न का हमारा उत्तर यह होगा कि उर्दू अनुवादक-सह-सहायक क्लर्क (एसआईसी जूनियर क्लर्क) का पद जिला स्तरीय केंद्र पोस्ट या राज्य हो सकता है लेवल केंद्र पोस्ट, सरकारी विभाग या कार्यालय पर निर्भर करता है, जिसमें उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क की नियुक्ति की जाती है और उस विभाग या कार्यालय पर लागू सेवा नियम।

रिट याचिकाओं और विशेष अपीलों का निपटारा

51. प्रश्न के हमारे उत्तर को ध्यान में रखते हुए, अब हम अंतिम निर्धारण के लिए इस निर्णय के शुरुआती भाग में बताए अनुसार रिट याचिकाओं और विशेष अपीलों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं।

2021 की रिट-ए संख्या 10004, 10365 और 11430

52. प्रमुख मामले में याचिकाकर्ता को निर्विवाद रूप से एक ऐसी सेवा में नियुक्त किया गया

था, जो जिला स्तरीय केंद्र पोस्ट नहीं है। यह एक पद है, जिसका नियुक्ति प्राधिकारी निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उप्र है, जो महानिदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उप्र सरकार के कार्यालय का हिस्सा है। निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश, या उस मामले के लिए महानिदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश सरकार, राज्य सरकार के चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग के नियंत्रण में कार्य करता है। महानिदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उत्तर प्रदेश सरकार के कार्यालय के पूरे राज्य में प्रतिष्ठान और कार्यालय हैं और किसी भी जिले में मुख्य चिकित्सा अधिकारी का कार्यालय एक ऐसा अधीनस्थ प्रतिष्ठान है। चिकित्सा सेवा नियमावली, 1994, जो 1994 की नियमावली के आधार पर याचिकाकर्ता की सेवा को नियंत्रित करती है, क्योंकि ये प्रासंगिक नियम हैं, चिकित्सा सेवा नियमावली, 1994 के तहत वह सेवा प्रदान करती है जिसका अर्थ है उत्तर प्रदेश चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग (अधीनस्थ कार्यालय) लिपिकीय संवर्ग सेवा। नियम स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता को राज्य स्तरीय सेवा का हिस्सा बनाते हैं न कि जिला केंद्र सेवा का। **2021 की रिट-ए संख्या 10365 और 2021 की रिट-ए संख्या 11430** में याचिकाकर्ताओं के लिए भी यही सच है। इस प्रकार, 15 जुलाई, 2021 के आदेश के संदर्भ में याचिकाकर्ताओं को स्थानांतरित करने में कोई बाधा नहीं है। संदर्भित तीन रिट याचिकाओं में से प्रत्येक में चुनौती।

रिट-ए नंबर 11378 ऑफ 2022

53. जहां तक इस रिट याचिका का सवाल है, यहां याचिकाकर्ता को 1994 के नियमों के तहत जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती की अध्यक्षता वाली चयन समिति द्वारा चुना गया था और उर्दू अनुवादक के पद पर नियुक्त किया गया था- सह-कनिष्ठ लिपिक, कार्यालय जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बस्ती। आक्षेपित आदेश दिनांक 28 जून 2022 द्वारा उन्हें कार्यालय जिला शिक्षा अधिकारी, बस्ती से कार्यालय जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, सिद्धार्थनगर में स्थानांतरित कर दिया गया है।

54. जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय में नियुक्त उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक के मामले में, 1994 के नियमों के अर्थ में प्रासंगिक सेवा नियम 1985 के नियम होंगे। वहां सेवा को उत्तर के रूप में परिभाषित किया गया है। प्रदेश अधिनास्थ शिक्षा लिपिक वर्ग सेवा, 1985 के नियमों के नियम 3 (छ) के तहत। एक "अधीनस्थ कार्यालय" को नियम 3 (जा) के तहत क्षेत्रीय उप निदेशक / गर्ल्स स्कूलों / जिले के क्षेत्रीय निरीक्षक के कार्यालय के रूप में परिभाषित किया गया है। विद्यालय निरीक्षक/जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी/राष्ट्रकृत विभाग परीक्षा, इलाहाबाद। इसी प्रकार, 1985 के नियमों के नियम 3 (का) के तहत, अनुसूची (का) में दिखाए गए पद के लिए नियुक्ति प्राधिकारी, संबंधित पद के विरुद्ध दर्शाया गया प्राधिकारी है। अनुसूची (का) के अवलोकन से पता चलता है कि जूनियर क्लर्क के एक पद के लिए नियुक्ति प्राधिकारी क्षेत्रीय शिक्षा उप निदेशक हैं, जिसे सुनवाई के दौरान

अदालत को सूचित किया गया था कि अब शिक्षा निदेशक (बेसिक), उत्तर प्रदेश हैं।

55. यह तथ्य कि जिला शिक्षा अधिकारी के कार्यालय में कनिष्ठ लिपिक का नियुक्ति प्राधिकारी या तो क्षेत्रीय उप शिक्षा निदेशक या क्षेत्रीय संयुक्त शिक्षा निदेशक या शिक्षा निदेशक (बेसिक), यूपी है, यह दर्शाता है कि पद जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय में उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक का पद जिला स्तरीय संवर्ग का पद नहीं है। यह या तो उप या संयुक्त शिक्षा निदेशक या राज्य स्तरीय केंद्र पद के क्षेत्र के भीतर एक क्षेत्रीय केंद्र है, यदि नियुक्ति प्राधिकारी वास्तव में अपग्रेड किया गया है और शिक्षा निदेशक (बेसिक), यूपी है तो यहां याचिकाकर्ता ने अपना आवेदन संलग्न नहीं किया है। नियुक्ति पत्र, सरकारी आदेश के तहत एक उर्दू अनुवादक की नियुक्ति की मांग के जवाब में जारी 28 फरवरी 1995 की सिफारिश को छोड़कर। 1985 के नियमों के तहत जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी अपने कार्यालय में कनिष्ठ लिपिक का नियुक्ति प्राधिकारी नहीं हो सकता है और एक फोर्टियोरी उर्दू अनुवादक-सह-कनिष्ठ लिपिक का नियुक्ति प्राधिकारी नहीं हो सकता है। इस याचिका में याचिकाकर्ता को इस आधार पर बस्ती से सिद्धार्थनगर स्थानांतरित करने के स्थानांतरण आदेश पर सवाल नहीं उठाया जा सकता कि यह जिला बेसिक स्तर का केंद्र का पद है।

2022 की विशेष अपील (डी) संख्या 97

56. अब, इस विशेष अपील पर विचार करते हुए, हम पाते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश

ने रिट याचिकाकर्ता को स्थानांतरित करते हुए निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, यूपी द्वारा पारित 15 जुलाई, 2021 के स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया है। मुख्य चिकित्सा अधिकारी, फिरोजाबाद के कार्यालय से मुख्य चिकित्सा अधिकारी, इटावा के कार्यालय तक। ऐसा करते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने **जाहिद मोहम्मद** मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले का पालन किया है, जिसे हम संदर्भित प्रश्न का उत्तर देते समय सैद्धांतिक रूप से इस फैसले के पहले भाग में पहले ही मंजूरी दे चुके हैं। अन्यथा भी, हमने प्रश्न का जो उत्तर दिया है और चिकित्सा सेवा नियम, 1994 द्वारा शासित एक उर्दू अनुवादक-सह-जूनियर क्लर्क के संबंध में की गई टिप्पणियाँ, जो इस मामले में लागू हैं, को ध्यान में रखते हुए, हमें इसमें कोई कमजोरी नहीं दिखती है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश।

विशेष अपील संख्या 52/2022

57. इस अपील में **जाहिद मोहम्मद** मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को चुनौती दी गई है। हमने पहले ही इस निर्णय के पहले भाग में दिए गए प्रश्न का उत्तर देते समय सैद्धांतिक रूप से विद्वान न्यायाधीश की राय से अपनी सहमति व्यक्त कर दी है। तथ्यों पर, हम पाते हैं कि यहां रिट याचिकाकर्ता को मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मेरठ के कार्यालय से मुख्य चिकित्सा अधिकारी, आगरा के कार्यालय में उसी क्षमता में स्थानांतरित किया गया था, यानी उर्दू

अनुवादक-सह-जूनियर के रूप में लिपिक। उनकी सेवा की शर्तें चिकित्सा सेवा नियमावली, 1994 द्वारा शासित होती हैं, जहां एक उर्दू अनुवादक को स्थानांतरित करने में नियुक्ति प्राधिकारी, यानी निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, यूपी, लखनऊ के अधिकार क्षेत्र में कोई कमी नहीं है। -सह-कनिष्ठ लिपिक विभिन्न जिलों में स्थित एक अधीनस्थ कार्यालय से दूसरे कार्यालय में। हमें विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिला।

2022 की विशेष अपील संख्या 522

58. जहां तक इस अपील का सवाल है, यह अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 1452/2022 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 20 जुलाई, 2022 में दिए गए निर्देश के खिलाफ दायर किया गया है। 2021 के रिट-ए नंबर 10004 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अंतरिम आदेश दिनांक 7 सितंबर, 2021 और 14 सितंबर, 2021 को पुष्टि की गई। मुस्तकीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। अवमानना की कार्यवाही एक मामले के साथ शुरू की गई थी जिसमें में विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश के बावजूद। **मोहम्मद मुस्तकीम का मामला** (सुप्रा) इस आशय का है कि मामले में अगली तारीख तय होने तक याचिकाकर्ता को राहत नहीं दी जाएगी, जब तक कि उसे पहले ही राहत नहीं मिल गई हो, याचिकाकर्ता को जानबूझकर उल्लंघन में राहत दी गई है। आदेश का स्पष्टीकरण 14 सितंबर,

2021 को किया गया था और 8 अक्टूबर, 2021 के अगले आदेश के बावजूद, याचिकाकर्ता को विवादित स्थानांतरण आदेश के अनुसार उसकी पिछली पोस्टिंग से मुक्त कर दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने 20 जुलाई, 2022 को आक्षेपित आदेश द्वारा इस आशय के निर्देश जारी किए हैं कि यदि रिट पक्ष पर पारित आदेश का अनुपालन अवमानना कार्यवाही में विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष निर्धारित अगली तारीख तक किया जाता है, तो एक शपथ पत्र दिया जाएगा। अवमानना करना पर्याप्त होगा; अन्यथा अवमानना करने वाला अधिकारी न्यायालय में उपस्थित रहेगा और आरोप तय किया जाएगा।

59. अवमानना आवेदन (सिविल) संख्या 1452/2022 में कार्यवाही का संपूर्ण विवरण में पारित विद्वान एकल न्यायाधीश के अंतरिम आदेश हैं। **मोहम्मद मुस्तकीम का मामला** (सुप्रा), जो वर्तमान सामान्य निर्णय और आदेश के अनुसार, जहां तक यह उक्त रिट याचिका से संबंधित है, हमने इसमें कोई योग्यता नहीं पाई है और इसे खारिज करने का प्रस्ताव है, जिससे इसमें पारित सभी अंतरिम आदेश समाप्त हो जाएंगे। इसलिए, 20 जुलाई, 2022 के आदेश के संदर्भ में अवमानना के मामले में आगे बढ़ने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, इसलिए इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए।

विशेष अपील संख्या 523 ऑफ 2022

60। इस अपील में, आक्षेपित आदेश 20 जुलाई 2022 का वह आदेश है जो विद्वान एकल न्यायाधीश ने 2022 की अवमानना

आवेदन (सिविल) संख्या 1453 में पारित किया था। उस आदेश द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने कुछ निर्देश जारी किए हैं, जिसमें अवमाननाकर्ता-विरोधी पक्ष को रिट-ए संख्या 10365/2021 में पारित दिनांक 18 अगस्त, 2021 और 14 सितंबर, 2021 के आदेशों का पालन करने का आदेश दिया गया है, या फिर आरोप तय करने के लिए निर्धारित तिथि तक अदालत के समक्ष उपस्थित होने का आदेश दिया है। . चूँकि इस सामान्य निर्णय और आदेश के द्वारा, हम उपरोक्त रिट याचिका को खारिज करने का प्रस्ताव करते हैं, जो उसमें पारित सभी अंतरिम आदेशों को समाप्त कर देगा, अवमानना कार्यवाही में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्देशों को जीवित रहने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। .

आदेश

61. परिणाम में, रिट-ए संख्या 10004 का 2021, 10365 का 2021, 11430 का 2021, 11378 का 2022, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 97 का 2022 और विशेष अपील संख्या 52 का 2022 विफल हो गया और खारिज कर दिया गया। रिट याचिकाओं में पारित सभी अंतरिम आदेश, चाहे वे कहीं भी लागू हों, निरस्त किये जाते हैं। विशेष अपील संख्या 2022 की 522 और 2022 की 523 को इसके द्वारा अनुमति दी जाती है। दोनों अपीलों में से प्रत्येक में लगाए गए विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को रद्द कर दिया गया है। विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष लंबित अवमानना आवेदनों को रिकॉर्ड में भेज दिया जाता है।

(2023) 4 ILRA 619

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-ए संख्या 10405 / 2022

जय प्रकाश सेवानिवृत्त (कार्यकर्ता

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रदीप कुमार
श्रीवास्तवअधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री जय
प्रकाश गुप्ता

ए. सेवा कानून - पेंशन - सेवानिवृत्ति लाभ -
उ.प्र. नगरपालिका अकेंद्रीयित सेवा सेवानिवृत्ति
लाभ विनियमन, 1984 (नियम 1984) -
उ.प्र. पेंशन हेतु अर्हक सेवा एवं
विधिमान्यकरण अधिनियम, 2021 - यह लंबे
समय से स्थापित है कि दैनिक वेतनभोगी
कर्मचारी अपनी सेवाओं की गणना अपनी
प्रारंभिक नियुक्ति की तिथि से करते हुए
पेंशन लाभ के पात्र हैं न कि अपने
नियमितीकरण की तिथि से। (पैरा 7)

वाद के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को
01.01.1989 को दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी
के रूप में नियुक्त किया गया था। वह क्लर्क
के रूप में चतुर्थ श्रेणी के पद पर काम करता
रहा। उसे नियमित कर्मचारी माना गया और
03.05.2011 को उसे नियमित कर दिया
गया और उसके बाद वह 31.01.2020 को
सेवानिवृत्त हो गया। (पैरा 2)

बी. शब्द और वाक्यांश 'पोस्ट' - 2021 के
अधिनियम की धारा 2 को पढ़ा जाता है और
यह माना जाता है कि 2021 के अधिनियम
की धारा 2 में प्रयुक्त शब्द 'पोस्ट', चाहे वह
अस्थायी हो या स्थायी, इसे 'सरकारी कर्मचारी
द्वारा प्रदान की गई सेवाएं', चाहे वह अस्थायी
या स्थायी प्रकृति की हों' के रूप में पढ़ा
जाएगा। (पैरा 7)

1984 के वर्तमान नियम राज्य सरकार के
नियमों के समानांतर हैं, जिन्हें सर्वोच्च
न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद
14 का उल्लंघन मानते हुए निरस्त कर दिया
है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों
का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं। वर्तमान
मामले में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया
गया है, जैसा कि माना जाता है, क्योंकि
दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी नियमित
कर्मचारियों के समान ही कार्य करते हैं और
उन्हें हमेशा नियमित कर्मचारी के रूप में
माना जाता है। उन्हें उनकी सेवाओं को जारी
रखने के लिए नियमित भी किया गया था।
इस प्रकार, यह प्रेम सिंह (इंफ्रा) में तय
कानून के अंतर्गत आता है। (पैरा 8)

प्रतिवादी संख्या 3-आयुक्त, गोरखपुर
मंडल, गोरखपुर को निर्देश दिया जाता है कि
वे तीन माह के भीतर सेवानिवृत्ति के बाद के
लाभों की गणना के उद्देश्य से
नियमितीकरण से पहले याचिकाकर्ता द्वारा
की गई पिछली सेवाओं की गणना करके
नियम 1984 के तहत याचिकाकर्ता को पेंशन
और अन्य लाभों का नियमित भुगतान
सुनिश्चित करें। (पैरा 10)

रिट याचिका स्वीकार की गई तथा दिनांक 09.07.2020 का विवादित आदेश अपास्त किया गया। (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 8968/2022 (पैरा 7)

वर्तमान याचिका में दिनांक 09.07.2020 के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत प्रतिवादी प्राधिकारी ने उन्हें सेवानिवृत्ति पर पेंशन और अन्य लाभ देने से इनकार कर दिया है, जिसके वे पात्र होने का दावा करते हैं।

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

याचिकाकर्ता ने 09.07.2020 के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसके तहत प्रत्यर्थी प्राधिकारी ने उसे सेवानिवृत्ति पर पेंशन और अन्य लाभ देने से इनकार कर दिया है, जिसका वह हकदार होने का दावा करता है। प्रकरण के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को 01.01.1989 को दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। वह क्लर्क के रूप में चतुर्थ श्रेणी के पद पर काम करता रहा। उसे नियमित कर्मचारी माना गया और 03.05.2011 को उसे नियमित कर दिया गया और उसके बाद, वह 31.01.2020 को सेवानिवृत्त हो गया।

नगरपालिका गैर-केन्द्रीयकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ विनियमन, 1984 (नियम 1984) के तहत पेंशन के हकदार हैं। नियम 2(एम) का संदर्भ दिया गया है, जो इस प्रकार है:

(एम) "अर्हकारी सेवा" से तात्पर्य उस सेवा से है जो समय-समय पर संशोधित सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए अर्ह हो, निम्नलिखित को छोड़कर:

(i) संबंधित नगरपालिका बोर्ड के अधीन किसी गैर-पेंशनयोग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि ;

(ii) कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; तथा

(iii) आकस्मिक व्यय से भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि।

बशर्ते कि संबंधित नगरपालिका बोर्ड के अधीन निरंतर, अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि अर्हक सेवा के रूप में गिनी जाएगी, यदि उसके बाद सेवा में किसी व्यवधान के बिना उसी पद या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण हो जाता है।

टिप्पणी:- यदि किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिक व्यय से भुगतान प्राप्त पद पर की गई सेवा, पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की अवधि और स्थायी सेवा के बीच आती है, तो यह सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा।"

राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में भी इसी तरह के नियम लागू हैं, जो कार्य प्रभार के आधार पर की गई सेवाओं की गणना न करने का प्रावधान करते हैं। प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य (2019) 10 एससीसी 516 के प्रकरण में संदर्भ पर सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की बेंच ने पेंशन के लिए उनके अधिकार पर विचार किया। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ में लिखा है:

"8. हम सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 (संक्षेप में "1961 नियमावली") में निहित प्रावधानों पर विचार करते हैं। 1961 नियमावली का नियम 3(8) जिसमें अर्हकारी सेवा के संबंध में प्रावधान हैं, नीचे उद्धृत है:

3. इन नियमों में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कोई बात प्रतिकूल न हो-

(1)-(7) * * *

(8) "अर्हकारी सेवा" से तात्पर्य ऐसी सेवा से है जो सिविल सेवा विनियमन के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए अर्ह हो:

परन्तु उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन लगातार अस्थायी या स्थानापन्न सेवा के बाद उसी पद या किसी अन्य पद पर बिना किसी व्यवधान के स्थायीकरण किया जाएगा, सिवाय-

(i) किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि ;

(ii) कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; तथा

भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि भी अर्हक सेवा के रूप में गिनी जाएगी।

नोट: यदि किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिक व्यय से भुगतान प्राप्त पद पर की गई सेवा, पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की अवधि और स्थायी सेवा के बीच आती है, तो यह सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा।

9. उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 361, 368 और 370 भी प्रासंगिक हैं। वे नीचे उद्धृत हैं:

"361. किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए योग्य नहीं होगी जब तक कि वह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरूप न हो:

प्रथम - सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

दूसरा - रोजगार ठोस और स्थायी होना चाहिए।"

इन तीन शर्तों को निम्नलिखित विनियमों में पूरी तरह से स्पष्ट किया गया है।

"368. सेवा तब तक योग्य नहीं मानी जाएगी जब तक कि अधिकारी किसी स्थायी प्रतिष्ठान में कोई महत्वपूर्ण पद धारण न करता हो।

370. उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन लगातार अस्थायी या स्थानापन्न सेवा जिसके बाद उसी

या किसी अन्य पद पर बिना किसी रुकावट के स्थायीकरण किया गया हो, अर्ह होगी, सिवाय- (i) गैर-पेंशन योग्य स्थापना में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि ;

(ii) कार्य-प्रभारित स्थापना में सेवा की अवधि; तथा

भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि ।”

10. अर्हक सेवा वह है जो विनियमन 368 के प्रावधानों के अनुसार है, अर्थात् स्थायी प्रतिष्ठान में मूल पद धारण करना। नियम 3(8) के प्रावधान स्पष्ट करते हैं कि निरंतर, अस्थायी या स्थानापन्न सेवा जिसके बाद उसी या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण द्वारा बिना किसी रुकावट के सेवा की जाती है, उसे भी अर्हक सेवा में शामिल किया जाता है, सिवाय गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी और स्थानापन्न सेवा की अवधि के। कार्यभारित प्रतिष्ठान में सेवा और आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि को भी अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिना जाएगा।

11. नियम 3(8) से जुड़े नोट में यह प्रावधान है कि यदि सेवा किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिकताओं से भुगतान किए जाने वाले पद पर की जाती है, पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की अवधि और स्थायी सेवा के बीच आती है, तो यह सेवा में व्यवधान नहीं माना जाएगा। इस

प्रकार, नोट में कार्य-प्रभारित, आकस्मिकता भुगतान और गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में की गई अर्हक सेवा को, उसमें दी गई आवश्यकताओं के अनुसार, पेंशन योग्य सेवा में शामिल करने का स्पष्ट प्रावधान है।

12. सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 370 में निहित प्रावधानों के अनुसार गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान और आकस्मिकताओं से भुगतान किए जाने वाले पद पर की गई सेवा को अर्हक सेवा के दायरे से बाहर रखा गया है। सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 361 के अनुसार, सेवाएँ सरकार के अधीन होनी चाहिए और रोजगार मूल और स्थायी आधार पर होना चाहिए।

.....30. हम उपर्युक्त प्रस्तुतियों से प्रभावित नहीं हैं। विचाराधीन कार्यभारित कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी और उन्हें दक्षता बार भी पार करना था। उनकी सेवाएँ नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से कैसे भिन्न हैं? गुणात्मक अंतर को इंगित करने वाली कोई भी सामग्री नहीं बताई गई है, सिवाय एक स्पष्ट बयान के। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी, जो कार्यभारित कर्मचारियों की मूल अवधारणा है। बल्कि, कार्यभारित रोजगार की मूल अवधारणा का दुरुपयोग किया गया है, जिसमें नियमित और बारहमासी प्रकृति के काम के लिए शोषणकारी शर्तों पर रोजगार की पेशकश की गई है। कार्यभारित कर्मचारियों को नियमित कर्मचारियों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया था, जैसा कि रिकॉर्ड पर रखे गए दस्तावेजों से स्पष्ट है।

नारायण दत्त शर्मा बनाम यूपी राज्य [सीए संख्या _____ 2019 एसएलपी (सी) संख्या 5775/2018 से उत्पन्न] में अपीलकर्ताओं को कार्यभारित सेवाओं की अवधि के दौरान भी, "8" वर्षों की निरंतर सेवा के बाद दक्षता बार पार करने की अनुमति दी गई थी। अपीलकर्ता नारायण दत्त शर्मा को गेज के रूप में कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। मापक को 15-9-1978 से नियुक्त किया गया था। भुगतान मासिक किया जाता था लेकिन नियुक्ति 200-320 रुपये के वेतनमान में की गई थी। शुरुआत में, उन्हें वर्ष 1978 में 205 रुपये प्रति माह के निश्चित मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था। उन्हें कार्यकुशलता बार पार करने की भी अनुमति दी गई थी क्योंकि उन्हें उस अवधि के दौरान वेतनमान का लाभ दिया गया था जब वे कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में सेवा करते थे, उन्होंने तीन से चार दशकों तक सेवा की और बाद में विभिन्न आदेशों द्वारा समय-समय पर सेवाओं को नियमित किया गया। हालाँकि, कुछ याचिकाओं/अपीलों में कुछ अपीलकर्ताओं की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है, भले ही उन्होंने कई दशकों तक सेवा की हो और अंततः सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुँच गए हों।

31. उपर्युक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में राज्य सरकार एवं उसके पदाधिकारियों द्वारा कार्यभारित आधार पर कर्मचारियों से कार्य लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्ति का सहारा लेना चाहिए था। लम्बे समय तक कार्यभारित आधार पर कार्य लेना शोषणकारी तरीका अपनाने के समान है। यद्यपि बाद में उनकी सेवाएं नियमित कर दी

गई हैं। तथापि कार्यभारित स्थापना में उनके द्वारा व्यतीत की गई अवधि को अर्हकारी सेवा में नहीं गिना गया है। इस प्रकार, उन्हें कार्यभारित स्थापना में कम वेतन पर सेवा की अवधि के दौरान न केवल उनके देय पारिश्रमिक से वंचित किया गया है, बल्कि पेंशन लाभों की अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है, मानो उनके द्वारा कोई सेवा प्रदान ही न की गई हो। कार्यभारित स्थापना में कम वेतन पर अपने जीवन के उत्कर्ष काल में उनके द्वारा की गई सेवाओं से राज्य को लाभ हुआ है।

32. 1961 के नियमों के नियम 3(8) में संलग्न नोट के मद्देनजर, कार्य-प्रभारित, आकस्मिक व्यय या गैर-पेंशन योग्य सेवा पर खर्च की गई सेवा को पेंशन योग्य सेवा में शामिल करने का प्रावधान है, यदि किसी व्यक्ति ने पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों के बीच की अवधि में ऐसी सेवा प्रदान की है या अस्थायी और स्थायी रोजगार की दो अवधियों के बीच ऐसी सेवा प्रदान की है। कार्य-प्रभारित सेवा को उपर्युक्त आपात स्थितियों में पेंशन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

33. सवाल यह उठता है कि क्या यह शर्त लगाना कि ऐसी सेवा को गिना जाना है, दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा अवधियों के बीच में की गई हो, कानूनी और उचित है। हम पाते हैं कि एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण हो जाने के बाद, हालाँकि कर्मचारी ने उससे पहले अस्थायी आधार पर सेवा नहीं की थी, नियुक्ति की प्रकृति को

देखते हुए, हालांकि यह नियमित नियुक्ति नहीं थी, इसे मासिक वेतन पर किया गया था और उसके बाद कार्यभारित स्थापना के वेतनमान में दक्षता की सीमा को पार करने की अनुमति दी गई थी। 1961 के नियमों के नियम 3(8) के नोट में निहित शर्त के कारण, ऐसी सेवा को न गिनना अत्यधिक भेदभावपूर्ण और तर्कहीन होगा, खासकर जब इसे गिना जा सकता है, अगर ऐसी सेवा दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवाओं के बीच में हो। अगर कार्यभारित अवधि की सेवा नियमितीकरण से पहले की गई है, तो उसे न गिनने का कोई तुक या कारण नहीं है। हमारी राय में, नियम 3(8) के तहत एक अनुचित वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को योग्यता सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और तर्कहीन होगा। कार्य-प्रभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए समान रहती है, एक बार जब इसे एक वर्ग के लिए गिना जाता है, तो भेदभाव को रोकने के लिए इसे सभी के लिए गिना जाना चाहिए। वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब उत्तरदाता स्वयं ऐसी सेवा में बिताए गए समय की गणना कर रहे हैं, तो कमजोर वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना न करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा। यह शर्त कि कार्य-प्रभारित सेवा अस्थायी क्षमता से पहले होनी चाहिए, भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अनुचित वर्गीकरण बनाता है।

34. चूंकि नियम 3(8) को वैध और गैर-भेदभावपूर्ण बनाने के लिए उपरोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा,

इसलिए हमें नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा और यह मानना होगा कि कार्यभारित कर्मचारियों, आकस्मिक भुगतान निधि कर्मचारियों या गैर-पेंशनभोगी प्रतिष्ठान की हैसियत से नियमितीकरण से पहले की गई सेवाओं को भी अर्हक सेवा में गिना जाएगा, भले ही ऐसी सेवा से पहले किसी पेंशनभोगी प्रतिष्ठान में अस्थायी या नियमित नियुक्ति न हुई हो।

35. नियम 3(8) से जुड़े नोट के मद्देनजर, जिसे हमने पढ़ा है, सिविल सेवा विनियमन के विनियमन 370 में निहित प्रावधान को रद्द किया जाना है, साथ ही वित्तीय पुस्तिका के पैरा 669 में निहित निर्देशों को भी रद्द किया जाना है।

36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएं देने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूंकि उन्होंने किसी विशेष परियोजना के विरुद्ध नहीं बल्कि कार्यभारित प्रतिष्ठान में काम किया है, इसलिए उनकी सेवाओं को सरकारी निर्देशों के तहत और यहां तक कि कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3), (2006) 4 एससीसी 1: 2006 एससीसी (एलएंडएस) 753] में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश के बिना दस वर्षों से अधिक समय तक सेवाएं दी गई हैं, तो एक बार के उपाय के रूप में, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया

जाना चाहिए। प्रकरण के तथ्यों में, जिन कर्मचारियों ने दस वर्ष या उससे अधिक समय तक काम किया है, उन्हें नियमित किया जाना चाहिए था। उन्हें नियमितीकरण पर विचार करने के लिए विनियमित करना उचित नहीं होगा क्योंकि अन्य को नियमित किया गया है, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। हालांकि, यह स्पष्ट किया गया है कि यदि वे सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने से पहले नियमित रूप से सेवा में बने रहे होते तो वे वेतन में अंतर के किसी भी बकाया का दावा करने के हकदार नहीं होते। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हों और कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश करने के दिन से ही उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के उद्देश्य के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

37. उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 के नियम 3(8) को ध्यान में रखते हुए, हम मानते हैं कि कार्यभारित स्थापना में की गई सेवाओं को पेंशन प्रदान करने के लिए उक्त नियम के तहत अर्हकारी सेवा माना जाएगा। पेंशन का बकाया आदेश की तिथि से तीन वर्ष पहले तक ही सीमित रहेगा। तदनुसार, स्वीकार्य लाभों का भुगतान तीन महीने के भीतर किया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, कर्मचारियों द्वारा दायर अपीलों को अनुमति दी जाती है और राज्य द्वारा दायर अपीलों को खारिज किया जाता है।"

उन्होंने आगे कहा कि चूंकि प्रत्यर्थी नगरपालिका में पेंशन लाभ के लिए समान

नियम मौजूद हैं, इसलिए, प्रकरण उक्त निर्णय के अंतर्गत आता है और यहां याचिकाकर्ताओं को भी प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में तय कानून का लाभ दिया जाना चाहिए।

प्रत्यर्थी नगरपालिका के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यूपी पेंशन एवं विधिमान्यकरण सेवा अर्हक अधिनियम, 2021 (संक्षेप में '2021 का अधिनियम') के आलोक में प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) निर्णय का प्रभाव निरस्त कर दिया गया है और इसलिए याचिकाकर्ता प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में तय कानून के लाभों का दावा नहीं कर सकता है।

जहाँ तक 2021 के अधिनियम का सवाल है, यह केवल राज्य सरकार के कर्मचारियों पर ही लागू होता है। नगरपालिका की गैर-केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारियों के संबंध में ऐसा कोई अधिनियम लागू नहीं है। वैसे भी 2021 के अधिनियम को इस न्यायालय द्वारा रिट-ए संख्या 8968/2022 (डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित दिनांक 17.02.2023 के निर्णय द्वारा पहले ही समाप्त कर दिया गया है। इसके प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"...14. यह बहुत पहले से तय है कि दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी अपनी सेवाओं की गणना अपनी प्रारंभिक नियुक्ति की तारीख से करते हुए पेंशन लाभ के हकदार हैं, न कि अपने नियमितीकरण की तारीख से। हरि शंकर असोपा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 1989(1) यूपीएलबीईसी 501; यशवंत हरि कटककर बनाम भारत संघ और अन्य, 1996

(7) एससीसी 113; और प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के मामलों में दिए गए फैसले का हवाला देना ही पर्याप्त होगा। वास्तव में पहले वे यूपी सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 और अन्य सिविल सेवा विनियमों के नियम 2 के अंतर्गत आते थे।

15. अब विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि 2021 के अधिनियम की धारा 2 के मद्देनजर, चूंकि याचिकाकर्ताओं को शुरू में अस्थायी या स्थायी पद पर नियुक्त नहीं किया गया था, इसलिए उन्हें उक्त सेवाओं का लाभ नहीं दिया जा सकता है।

16. प्रकरण के उक्त पहलू पर पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। 2021 के अधिनियम की धारा 2 को पहले ही पढ़ा जा चुका है और यह माना जाता है कि 2021 के अधिनियम की धारा 2 में प्रयुक्त शब्द 'पद', चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, को 'सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाएं, चाहे वह अस्थायी या स्थायी प्रकृति की हों' के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

17. इसके मद्देनजर, याचिकाकर्ता भी वर्तमान निर्णय में दिए गए अधिनियम 2021 की धारा 2 की उपरोक्त व्याख्या के अंतर्गत आते हैं। ऊपर बताए गए आधारों पर विभिन्न रिट याचिकाओं में दिए गए आदेश पहले के निर्णयों के साथ-साथ इस निर्णय में दिए गए निष्कर्षों के अंतर्गत आते हैं और इसलिए, याचिकाकर्ताओं को पेंशन लाभ के लिए दैनिक वेतनभोगी के रूप में दी गई

उनकी सेवाओं की गणना करने का हकदार माना जाता है। सभी विवादित आदेश रद्द किए जाते हैं।

22. प्रकरण के उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, रिट याचिकाओं में लगाए गए सभी आदेश या तो इस आधार पर पारित किए गए हैं कि वे 2021 के अध्यादेश/अधिनियम के अंतर्गत आते हैं या वे प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में पक्ष नहीं थे या प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के फैसले पर विचार किए बिना पारित किए गए हैं और इसलिए, वे ऊपर दिए गए निष्कर्ष द्वारा पूरी तरह से कवर किए गए हैं। इसलिए, लगाए गए आदेश टिक नहीं सकते और उन्हें रद्द किया जाता है। हालांकि, याचिकाकर्ता केवल पिछले तीन वर्षों के पेंशन लाभ के हकदार होंगे।

23. सभी रिट याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं।”

वर्तमान नियमावली 1984 के वर्तमान नियम राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं, जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन मानते हुए रद्द कर दिया है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं। वर्तमान प्रकरण में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, जैसा कि माना जाता है, क्योंकि दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान ही कार्य करते हैं और उन्हें हमेशा नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता है। उन्हें

उनकी सेवाओं को जारी रखने के लिए नियमित भी किया गया था। इस प्रकार, यह प्रकरण प्रेम सिंह (पूर्वोक्त) के प्रकरण में तय कानून के अंतर्गत आता है।

इस प्रकार, रिट याचिका को स्वीकृत की जाती है और दिनांक 09.07.2020 के आदेश को रद्द किया जाता है।

प्रत्यर्थी संख्या 3-आयुक्त, गोरखपुर मंडल, गोरखपुर को निर्देश दिया जाता है कि वे तीन महीने की अवधि के भीतर सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों की गणना के उद्देश्य से याचिकाकर्ता द्वारा नियमितीकरण से पहले की गई पिछली सेवाओं की गणना करके नियम 1984 के तहत याचिकाकर्ता को पेंशन और अन्य लाभों का नियमित भुगतान सुनिश्चित करें।

(2023) 4 ILRA 625

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ,

रिट-ए संख्या 20960/2022

तथा

रिट ए संख्या 635/2023

कपिल कुमार दीक्षित एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री प्रभाकर अवस्थी, श्री दुर्वेश कुमार, श्री शिखर त्रिवेदी, श्री विजय शंकर त्रिपाठी, श्री विनोद शंकर त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सेवा कानून- भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 14, 16 और 226 - यू.पी. पुलिस उपनिरीक्षक और निरीक्षक (नागरिक पुलिस), नियम, 2015-नियम 15 (एफ)) - रिट याचिका में नियम 15 (एफ) को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के विपरीत घोषित करने की मांग की गई है - प्रतिवादियों को यह निर्देश देने की प्रार्थना की गई है कि वे रिक्त पद के लिए याचिकाकर्ताओं को मेडिकल परीक्षण के लिए आमंत्रित करें, जिसे भरा नहीं जा सका क्योंकि कुछ उम्मीदवारों को चिकित्सकीय रूप से अयोग्य घोषित कर दिया गया था, और/या वे अनुपस्थित थे - नियोक्ता कानून बनाने और भर्ती और चयन की शर्तें प्रदान करने के लिए स्वतंत्र है - न्यायालय तब तक नियोक्ता के विवेक का स्थान नहीं लेगा जब तक यह नहीं दिखाया जाता है कि नियम स्वयं अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के लिए स्वाभाविक रूप से मनमाना है - प्रतीक्षा सूची के लिए प्रावधान की अनुपस्थिति मात्र नियम को संविधान के विपरीत बनाने के लिए स्पष्ट रूप से मनमाना नहीं बनाती है। (पैरा 2, 3, 37, 38, 44)

याचिका निरस्त (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. अजय प्रकाश मिश्रा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 416/2021, दिनांक 10.08.2021 को निर्णीत
2. तमिलनाडु राज्य बनाम पी. कृष्णमूर्ति (2006) 4 एससीसी 517

3. सेल्युलर ऑपरेटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम टेलीकॉम रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया एवं अन्य (2016) 7 एससीसी 703

4. इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ (1985) 1 एससीसी 641

5. खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य (1996) 10 एससीसी 304

6. शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य (2002) 2 एससीसी 188

7. रीता सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य रिट-सी संख्या 1715/2017, निर्णय दिनांक 02 फरवरी, 2018

8. रणविजय सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य रिट-सी संख्या 3336/2016, निर्णय दिनांक 29.03.2018

9. भारत संघ बनाम पुष्पा रानी एवं अन्य 9 एस.सी.सी. 242

10. चंडीगढ़ प्रशासन बनाम उषा खेतरपाल वाई और अन्य (2011) 9 एससीसी 645

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री दुर्वेश कुमार, श्री विनोद शंकर त्रिपाठी, श्री विजय शंकर त्रिपाठी और श्री शिखर त्रिवेदी की सहायता से श्री प्रभाकर अवस्थी और राज्य प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री विक्रम बहादुर सिंह की सहायता से

अपर महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल की बात को सुना।

2. याचिकाकर्ता (संख्या में 33) उत्तर प्रदेश पुलिस उप-निरीक्षक और निरीक्षक (सिविल पुलिस), नियम, 2015 (संक्षेप में 'नियम, 2015') के नियम 15 (एफ), जैसा कि वर्ष 2020 में संशोधित किया गया है, को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अधिकारातीत घोषित करने की मांग करता है।

3. राज्य-प्रतिवादियों को एक और निर्देश देने की मांग की गई है कि वे याचिकाकर्ताओं को रिक्ति के विरुद्ध चिकित्सा परीक्षा के लिए आमंत्रित करें, जिसे भरा नहीं जा सका क्योंकि कुछ प्रतिभागि को चिकित्सकीय रूप से अयोग्य घोषित किया गया था, और / या, अनुपस्थित थे।

4. इस प्रकरण के तथ्यों में, अन्य रूप से, पक्षों में विवाद नहीं हैं।

5. दूसरे प्रतिवादी- उत्तर प्रदेश (पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड) उत्तर प्रदेश, लखनऊ (संक्षेप में 'बोर्ड') ने 24

फरवरी 2021 को एक विज्ञापन जारी किया, जिसमें उप-निरीक्षक (पुलिस) के 9,027 पदों, प्लाटून कमांडर के 484 पदों और पीएसी और फायर स्टेशन द्वितीय अधिकारी के 23 पदों की भर्ती के लिए ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित किए गए थे।

6. भर्ती/चयन को नियंत्रित करने वाले नियम, नियम- 2015 के अंतर्गत प्रदान किये गये हैं।
7. चयन की योजना के अनुसार प्रतिभागियों को उत्तीर्ण करना आवश्यक था: (i) लिखित परीक्षा, (ii) दस्तावेजों की जांच और शारीरिक मानक परीक्षण, (iii) शारीरिक दक्षता परीक्षा।
8. याचिकाकर्ताओं ने यहां पात्र होने के कारण, पद के लिए आवेदन किया और सफलतापूर्वक लिखित परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद, उनके अभिलेखों की जांच की गई और उसके बाद, याचिकाकर्ता शारीरिक मानक परीक्षण के लिए उपस्थित हुए। यह दावा किया जाता है कि सभी याचिकाकर्ताओं ने शारीरिक मानक परीक्षण उत्तीर्ण किया और उनके अभिलेख भी वैध

और वास्तविक पाये गये। इसके बाद, याचिकाकर्ता शारीरिक दक्षता परीक्षा के लिए उपस्थित हुये।

9. याचिकाकर्ताओं का दावा है कि उन्होंने शारीरिक दक्षता परीक्षा उत्तीर्ण की। 12 जून 2022 को बोर्ड द्वारा प्रकाशित परिणाम में, याचिकाकर्ताओं का नाम को चयन सूची में स्थान नहीं मिला। बोर्ड ने नियम, 2015 के नियम 15 (ई) के संदर्भ में विभाग के प्रमुख को अपनी संस्तुति के साथ अंतिम मेरिट सूची अग्रेषित की। अंतिम चयन सूची प्रतिभागियों के चिकित्सकीय परीक्षण और चरित्र सत्यापन को उत्तीर्ण करने के अधीन थी। नियम, 2015 के तहत प्रतीक्षा सूची तैयार करने का कोई प्रावधान नहीं है। विभागाध्यक्ष अपने अनुमोदन के बाद बोर्ड द्वारा भेजी गई सूची को आगे की कार्यवाही के लिए नियुक्ति प्राधिकारी को अग्रेषित करेंगे।
10. नियम 15 (ई) निकाला गया है:

15 (ड) चयन एवं अंतिम मेरिट सूची- खंड (घ) के अधीन शारीरिक दक्षता परीक्षा में सफल पाए गए अभ्यर्थियों में से, खंड (ख) के अधीन

लिखित परीक्षा में प्रत्येक अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर, बोर्ड रिक्तियों के अनुसार प्रत्येक श्रेणी के प्रतिभागियों की एक चयन सूची तैयार करेगा, जो आरक्षण नीति को ध्यान में रखते हुए योग्यता क्रम के अनुसार होगा और विभागाध्यक्ष को संस्तुति के साथ चिकित्सा परीक्षण और चरित्र सत्यापन के आधार पर भेजेगा। बोर्ड द्वारा कोई प्रतीक्षा सूची तैयार नहीं की जाएगी। प्रत्येक प्रतिभागी द्वारा प्राप्त अंकों के साथ सभी प्रतिभागियों की सूची बोर्ड द्वारा अपनी वेबसाइट पर अपलोड की जाएगी। विभाग के प्रमुख अपनी स्वीकृति के बाद बोर्ड द्वारा भेजी गई सूची को आगे की कार्यवाही के लिए नियुक्ति प्राधिकारी को भेजेंगे।

11. नियम 15 (ई) को सामान्य ढंग से पढ़ने पर, यह आदेशित करता है कि कोई प्रतीक्षा सूची नहीं होगी, अर्थात्, बोर्ड को यह संस्तुति करने की आवश्यकता है कि अधिसूचित रिक्तियों के लिए कई प्रतिभागी हों। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार अग्रेषित सूची अनुशंसित प्रतिभागियों को नियुक्ति पत्र जारी करने से पूर्व नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा

किए जाने वाले चिकित्सा परीक्षण और चरित्र सत्यापन को उत्तीर्ण करने वाले प्रतिभागियों के अधीन है।

12. लागू नियम 15 (एफ) में चिकित्सा परीक्षण का प्रावधान है। नियम निकाला गया है:

15 (एफ) चिकित्सा परीक्षण -
जिन प्रतिभागियों के नाम 15 (ई) के अनुसार हैं, उन्हें नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा चिकित्सा परीक्षा के लिए उपस्थित होना आवश्यक होगा। चिकित्सा परीक्षा आयोजित करने के लिए, संबंधित जिले के मुख्य चिकित्सा अधिकारी एक मेडिकल बोर्ड का गठन करेंगे, जिसमें तीन डॉक्टर होंगे, जो चिकित्सा स्वास्थ्य महानिदेशक के परामर्श से विभागाध्यक्ष द्वारा निर्धारित और संहिताबद्ध "पुलिस भर्ती चिकित्सा परीक्षा फॉर्म" के अनुसार चिकित्सा परीक्षा आयोजित करेंगे। कोई भी प्रतिभागी जो मेडिकल परीक्षा से संतुष्ट नहीं है, परीक्षा के दिन ही अपील दायर कर सकता है। मेडिकल परीक्षा के संबंध में किसी भी अपील पर विचार नहीं किया जाएगा यदि प्रतिभागी चिकित्सा परीक्षा की तारीख और इसके परिणाम

की घोषणा पर अपील दायर करने में विफल रहते हैं। अपील के लिए गठित मेडिकल बोर्ड में आवेदक की चिकित्सा कमी के बारे में विशेषज्ञ होंगे। चिकित्सा जांच करने के लिए विस्तृत निर्देश पुलिस महानिदेशक जारी किए जाएंगे। चिकित्सा परीक्षा में असफल पाए गए प्रतिभागियों को नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अयोग्य घोषित किया जाएगा और ऐसी रिक्तियों को अगले चयन के लिए आगे बढ़ाया जाएगा।"

13. नियम कहता है कि नियुक्ति प्राधिकारी संबंधित जिले के मुख्य चिकित्सा अधिकारी से मेडिकल बोर्ड का गठन करने का अनुरोध करेगा जो स्वास्थ्य महानिदेशक के परामर्श से पुलिस भर्ती चिकित्सा परीक्षा फॉर्म के अनुसार चयनित प्रतिभागियों की चिकित्सा परीक्षा आयोजित करेगा। पीड़ित प्रतिभागी के पास अपील का उपाय है।
14. नियम में आगे कहा गया है कि चिकित्सा परीक्षा में असफल पाए गए प्रतिभागी, यानी, नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अयोग्य घोषित, ऐसी

सभी रिक्तियों को अगले चयन के लिए आगे बढ़ाया जाएगा।

15. नियमावली, 2015 के नियम 16 में बोर्ड द्वारा अनुशंसित प्रतिभागियों के चरित्र सत्यापन का प्रावधान है। नियम कहता है कि नियुक्ति पत्र जारी करने से पूर्व और प्रशिक्षण के लिए प्रतिभागी को भेजने से पहले नियुक्ति प्राधिकारी की देखरेख में चरित्र सत्यापन पूरा किया जाएगा। नियम इस प्रकार है:

" चिकित्सा परीक्षण में असफल पाए गए प्रतिभागियों को नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा अयोग्य घोषित किया जाएगा और ऐसी रिक्तियों को अगले चयन के लिए आगे बढ़ाया जाएगा।

16. इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि नियम 15 (एफ) स्वाभाविक रूप से मनमाना है क्योंकि यह प्रतीक्षा सूची का प्रावधान नहीं करता है।

17. तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि वे सभी प्रतिभागी जो चिकित्सा परीक्षा और/या, चरित्र सत्यापन में फिट नहीं पाये गये थे, ऐसी रिक्तियां भरी नहीं जायेगी और उन्हें अगले चयन के लिए आगे

बढ़ाया जाना आवश्यक है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि जिन याचिकाकर्ताओं ने लिखित और अन्य परीक्षाओं / परीक्षणों को सफलतापूर्वक उत्तीर्ण किया था, उन्हें प्रतीक्षा सूची में प्रतिभागियों के रूप में माना जा सकता है और उनके नाम चिकित्सा परीक्षा / चरित्र सत्यापन के लिए भेजे जा सकते हैं।

18. याचिकाकर्ताओं के अनुसार, सात लाख प्रतिभागी भर्ती प्रक्रिया के लिए उपस्थित हुए, और अंत में बोर्ड द्वारा 9,534 प्रतिभागियों का परिणाम घोषित किया गया। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि 763 प्रतिभागियों को चिकित्सकीय रूप से अयोग्य पाया गया और 101 प्रतिभागी अनुपस्थित थे।

19. इस पृष्ठभूमि में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि जो रिक्तियां नहीं भरी गई हैं, तदनुसार, याचिकाकर्ताओं को चिकित्सा परीक्षा / चरित्र सत्यापन के लिए उपस्थित होने का अवसर दिया जाना चाहिए और यदि फिट पाया जाता है, तो उन्हें नियुक्ति के लिए विचार किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, नियम 15 (एफ) के

अनुसार, रिक्तियों को आगे बढ़ाया जाता है, यह स्वाभाविक रूप से मनमाना है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन है।

20. इसके विपरीत, राज्य-प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता ने अजय प्रकाश मिश्रा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य¹⁹ के मामले में दिए गए खंडपीठ के फैसले पर भरोसा किया है, जिसे साथी रिट याचिकाओं के साथ तय किया गया था। यह आग्रह किया जाता है कि इसी तरह के नियम की वैधता को बनाये रखा गया है। रिट याचिका में दम नहीं है और इसे निरस्त किया जा सकता है।

21. प्रतिद्वंद्वी तर्क विचारार्थ आते हैं।

22. प्रश्न यह उठता है कि क्या लागू किया गया नियम स्पष्ट रूप से मनमाना/अनुचित है ताकि इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन किया जा सके।

23. अधीनस्थ विधान की संवैधानिकता या वैधता के पक्ष में एक धारणा है और भार उस पर है जो इसे चुनौती देता है कि यह अधिकारहीन / अवैध है। यह भी अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है कि अधीनस्थ विधि को निम्नलिखित आधारों में से किसी के अंतर्गत चुनौती दी जा सकती है:

"(ए) अधीनस्थ विधि बनाने के लिए विधायी क्षमता की कमी।

(b) भारत के संविधान के तहत आश्वस्त मौलिक अधिकारों का उल्लंघन।

(c) भारत के संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन।

(d) संविधि जिसके अंतर्गत यह बनाया गया है या सक्षम अधिनियम द्वारा प्रदत्त प्राधिकार की सीमाओं को पार करने में विफलता। (ड) देश के कानूनों अर्थात् किसी अधिनियमन के प्रति प्रतिकूलता।

(च) मनमानी/अनुचितता प्रकट करना (इस सीमा तक जहां न्यायालय अच्छी तरह से कह सकता है कि विधायिका ने

कभी भी ऐसे नियम बनाने का अधिकार देने का नहीं किया था)।"

(देखें: टीएन बनाम पी कृष्णमूर्ति²⁰ और सेलुलर ऑपरेटरों की स्थिति; एसोसिएशन ऑफ इंडिया और अन्य बनाम भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण और अन्य²¹)

24. अधीनस्थ विधान की संवैधानिकता को चुनौती देने के परीक्षणों में से एक यह है कि अधीनस्थ विधान स्पष्ट रूप से मनमाना नहीं होना चाहिए। इसके अलावा, यह स्थापित विधि है कि अधीनस्थ विधि को पूर्ण विधि के खिलाफ चुनौती देने के लिए उपलब्ध किसी भी आधार पर चुनौती दी जा सकती है।

(देखें: इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (पी) लिमिटेड बनाम भारत संघ)²²

25. यह हमें 'प्रकट मनमानेपन' की परीक्षा पर विचार करने के लिए ले जाता है। यह **खोडे डिस्टिलरीज लिमिटेड और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य**²³ में अच्छी तरह से

20 . (2006) 4 एससीसी 517

21 . (2016) 7 एससीसी 703

22 . (1985) 1 एससीसी 641

23 . (1996) 10 एससीसी 304

समझाया गया है, जो इस प्रकार है:

"13. . . . मनमानी कार्रवाई के परीक्षण जो कार्यकारी कार्यों पर लागू होते हैं, जरूरी नहीं कि प्रत्यायोजित विधि पर लागू हों। ताकि प्रत्यायोजित विधि को रद्द किया जा सके, ऐसा विधि स्पष्ट रूप से मनमाना होना चाहिए; एक विधि जिसे विधि बनाने की शक्ति के साथ प्रत्यायोजित प्राधिकरण से यथोचित रूप से उत्पन्न होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) (पी) लिमिटेड के मामले में। भारत संघ [(1985) 1 एससीसी 641: 1985 एससीसी (कर) 121: (1985) 2 एससीआर 287], इस न्यायालय ने कहा कि अधीनस्थ विधि के एक टुकड़े में उसी स्तर की छूट नहीं होती है जो एक सक्षम विधायिका द्वारा पारित विधि द्वारा प्राप्त होती है। एक अधीनस्थ विधायन पर अनुच्छेद 14 के तहत इस आधार पर सवाल उठाया जा सकता है कि यह अनुचित है; "अनुचित नहीं होने के अर्थ में नहीं, बल्कि इस अर्थ में कि

यह स्पष्ट रूप से मनमाना है" । भारत में, मनमानी एक अलग आधार नहीं है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रतिबंध के भीतर आएगा। लेकिन अधीनस्थ विधायन इतना मनमाना होना चाहिए कि इसे संविधि के अनुरूप नहीं कहा जा सके या यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।

(जोर दिया गया)

26. शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य²⁴ मामलों में भी सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रकार कहा:-

"25. . . . कार्यकारी कार्यवाही पर लागू मनमानी कार्यवाही के परीक्षण आवश्यक रूप से प्रत्यायोजित विधि पर लागू नहीं होते हैं। किसी प्रत्यायोजित विधान को मनमाना घोषित करते हुए निरस्त करने के लिए यह स्थापित करना होगा कि इसमें स्पष्ट रूप से मनमानी है। मनमाने ढंग से वर्णित होने के लिए, यह दिखाया जाना चाहिए कि यह अनुचित और स्पष्ट रूप से मनमाना था। "मनमाने ढंग से" शब्द का अर्थ है: एक अनुचित तरीके से, जैसा कि

तय किया गया है या मनमाने ढंग से या आनंद से किया गया है, पर्याप्त निर्धारण सिद्धांत के बिना, चीजों की प्रकृति में स्थापित नहीं है, गैर-तर्कसंगत, नहीं किया गया है या तर्क या निर्णय के अनुसार कार्य नहीं किया गया है, जो केवल इच्छा पर निर्भर करता है।" (जोर दिया गया)

27. रीता सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य²⁵ के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ ने उत्तर प्रदेश चिकित्सा स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग स्वास्थ्य कार्यकर्ता और स्वास्थ्य पर्यवेक्षक (पुरुष और महिला) सेवा नियम, 1997 के नियम 5 को घोषित किया, क्योंकि यह स्वास्थ्य कार्यकर्ता (महिला) से संबंधित है, जो भारतीय नर्सिंग परिषद अधिनियम, 1947 के दायरे से बाहर है, और संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत याचिकाकर्ताओं के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है। इस नियम को स्पष्ट रूप से मनमाना माना गया क्योंकि यह केवल उन महिला

प्रतिभागियों को अनुमति देता था जिन्होंने यूपी नर्स और मिडवाइव्स काउंसिल द्वारा आयोजित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा किया था, पद के लिए ऐसी अन्य महिला प्रतिभागियों को छोड़कर, जिन्होंने अन्य संस्थानों से अधिनियम के तहत निर्धारित मान्यता प्राप्त योग्यता प्राप्त की थी।

28. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता यह दिखाने में असमर्थ हैं कि नियमावली, 2015 का नियम 15 (एफ) कैसे अमान्य है और स्पष्ट रूप से मनमाना है।

29. प्रकाश मिश्रा (सुप्रा) मामले में अदालत के समक्ष सवालों में से एक उत्तर प्रदेश कांस्टेबल और हेड कांस्टेबल सेवा नियमावली, 2015 के नियम 15 (ई) की वैधता के संबंध में था।

30. रिपोर्ट के पैरा 10 में, यह नोट किया गया है कि नियम 15 (ई) की संवैधानिक वैधता को भी चुनौती दी गई है जो प्रतीक्षा सूची तैयार करने से इनकार करती है। यह नियम 15 (जी) भी है जो किसी को चिकित्सकीय रूप से अयोग्य घोषित किए जाने पर रिक्तियों

25 . रिट-सी सं. - 2017 का 1715, दिनांक 02 फरवरी, 2018।

को आगे बढ़ाने का प्रावधान करता है।

31. नियम 15 (ई) नियम, 2015 के लागू नियम 15 (एफ) के साथ अनिवार्य है, जिसे वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

32. डिवीजन बेंच ने नियम की वैधता के संबंध में तर्क को खारिज कर दिया। अनुच्छेद 26 और 27 निकाला गया है:

"26. उपरोक्त तर्क को केवल इस कारण से स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वेबसाइट पर चयन सूची के प्रकाशन के बाद जब प्रतिभागियों को चिकित्सा परीक्षा के लिए बुलाया गया था, तो उनमें से कई को अयोग्य घोषित कर दिया गया था और इसके परिणामस्वरूप, पद खाली रह गए और उन्हें आगे बढ़ा दिया गया। नियमावली 2015 के नियम 16 के अनुसार चरित्र सत्यापन के अभाव में भी प्रतिभागियों का निष्कासन किया गया था और इस तरह नियम 15 के खंड (ई) के तहत चयन सूची तैयार करने के बाद हटाए गए सभी लोगों को समकक्ष पदों को आगे बढ़ाया गया था। यही

कारण है कि प्रतीक्षा सूची के लिए कोई प्रावधान मौजूद नहीं है, बल्कि यह 2015 के नियमावली के नियम 15 (ई) द्वारा निषिद्ध है।

27. भर्ती करने में कथित प्रक्रियात्मक चूक का पता नहीं चलता है। रिक्त पदों को भरने का निर्देश केवल इस कारण से नहीं दिया जा सकता है कि चिकित्सा परीक्षा या चरित्र सत्यापन में, कुछ प्रतिभागियों को हटा दिया गया था। यह तब और अधिक हो जाता है जब नियम उसके परिणामस्वरूप रिक्त को आगे बढ़ाने का प्रावधान करता है। यह भी स्थापित विधि है कि चयन में भाग लेने या यहां तक कि चयन सूची में प्लेसमेंट से नियुक्ति का अपरिहार्य अधिकार नहीं मिल जाता है। उपरोक्त मुद्दे को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विस्तार से छुआ गया है। यह सच हो सकता है कि पदों की संख्या रिक्त रह गई है, लेकिन यह कुछ प्रतिभागियों को चिकित्सकीय रूप से अयोग्य घोषित करने या चरित्र सत्यापन के अभाव में है, लेकिन केवल इस कारण से कि कुछ पद भरे नहीं गए

हैं, विधायिकाओं द्वारा इच्छित नियम की व्याख्या को आमंत्रित नहीं करेगा। जब नियम 15 (ई) विशिष्ट है और प्रतीक्षा सूची पर रोक के साथ रिक्तियों की संख्या के बराबर चयन सूची तैयार करने का निर्देश देता है, तो परिणाम का पालन किया जाना था। तदनुसार, हम अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए किसी भी तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। यह भी है कि 2015 की भर्ती में भरे नहीं गए पदों को आगे बढ़ाया गया और वर्ष 2018 में भर्ती के लिए ध्यान में रखा गया। अगले चयन के साथ, वर्ष 2015 की भर्ती से संबंधित विषय बच नहीं पाता।

33. रणविजय सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य²⁶ मामले में दिए गए पहले डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा करते हुए कोर्ट ने नियमों के नियम 15 (बी), 15 (सी) और 15 (ई) को संविधान या वैधानिक प्रावधानों के विपरीत नहीं पाया। नियम 15 (ई) को चुनौती मुख्य रूप से प्रतीक्षा सूची तैयार करने पर

रोक के संदर्भ में दी गई थी। रणविजय सिंह (सुप्रा) में डिवीजन बेंच ने नियम 15 (ई) को संवैधानिक रूप से वैध माना। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

"10. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि नियमावली, 2015 सभी मौजूदा नियमों, अर्थात् नियमावली, 2008 और इस संबंध में जारी आदेशों का स्थान लेता है। दूसरे शब्दों में, जिस क्षण नियमावली, 2015 पेश किए गए और लागू किए गए, नियमावली, 2008 का संचालन बंद हो गया। हमारे समक्ष रिट याचिकाएं पूरी तरह से नियमावली, 2015 को चुनौती नहीं देती हैं और यह घोषित करने की मांग करती हैं कि नियमावली, 2015 के नियम 15 (बी), (सी) और (ई) भारत के संविधान के प्रावधानों के विपरीत हैं। नियमावली, 2015 को चुनौती न दिए जाने की स्थिति में यदि नियम 15 (बी), (सी) और (ई) को दी गई चुनौती को बरकरार रखा जाता है तो बहुत ही अजीब स्थिति उत्पन्न होगी। यदि इन खण्डों को संविधान के सीमा से बाहर घोषित कर दिया जाता है, तो शेष नियम संपूर्ण नियम, 2015

26 . 2016 की रिट-सी संख्या 3336, 29.03.2018 को तय की गई

को अव्यावहारिक बना देंगे, जो अनुचित है और जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती है। यह विधि की स्थापित स्थिति है कि न्यायालय अधीनस्थ विधान को प्रतिस्थापित या बदलकर कार्यकारी क्षेत्र की सीमा में विधि नहीं बना सकते हैं या प्रवेश नहीं कर सकते हैं। इस तरह की घोषणा और रास्ते में कानूनी बाधाओं के बावजूद, हमने नियम, 2015 के नियम 15 के खंड (बी), (सी) और (ई) को दी गई चुनौती की स्वतंत्र रूप से जांच की है ताकि यह पता लगाया जा सके कि भर्ती के लिए निर्धारित प्रक्रिया या नियम, 2015 के तहत कांस्टेबल के पद पर चयन का तरीका तर्कहीन और मनमाना है या नहीं। जैसा कि याचिकाकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री खरे ने तर्क दिया। इसलिए, सवाल उठता है कि क्या चयन और मूल्यांकन का मानदंड स्पष्ट रूप से मनमाना है। 13. इस पृष्ठभूमि में, जब हम नियम, 2015 के तहत निर्धारित भर्ती की प्रक्रिया को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि ये नियम निष्पक्ष और निष्पक्ष रूप से योग्यता के आधार पर आरक्षी की नौकरी के लिए

सबसे उपयुक्त व्यक्ति के चयन के लिए एक तंत्र प्रदान करते हैं। यह प्रक्रिया निश्चित रूप से संरक्षण और पक्षपात से बच जाएगी और अन्याय को भी दूर कर देगी। हम एक अन्य कोण से मामले की जांच करना चाहते हैं और ऐसा कहने के लिए आगे का कारण दर्ज करना चाहते हैं। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति का उपयोग ऐसे मामलों में केवल तभी किया जा सकता है जब यह दिखाया जाए कि नियोक्ता की कार्यवाही किसी भी संविधान या वैधानिक प्रावधान के विपरीत है या स्पष्ट रूप से मनमानी है या दुर्भावना के कारण दूषित है। यह स्थापित विधिक स्थिति है कि पदों के निर्माण और उन्मूलन से संबंधित मामले या संवर्गों की संरचना और पुनर्गठन, भर्ती का तरीका और योग्यता निर्धारित करना, चयन के मानदंड, प्रतिभागियों / कर्मचारियों का मूल्यांकन नियोक्ता के अनन्य अधिकार क्षेत्र में आते हैं।”

34. भारत संघ बनाम पुष्पा रानी और अन्य²⁷ मामले में सुप्रीम कोर्ट

द्वारा दिए गए निर्णय पर विश्वास किया गया था, जिसमें यह कहा गया था कि न्यायालय और न्यायाधिकरण भर्ती और चयन के मानदंड और पद्धति निर्धारित करने वाले नियोक्ता के निर्णय पर न तो योग्यता निर्धारित कर सकते हैं और न ही अपील में बैठ सकते हैं। अनुच्छेद 37 इस प्रकार है:

"37. मामले के इस पहलू से अलग होने से पहले, हम स्थापित विधिक स्थिति को दोहराना आवश्यक समझते हैं कि पदों के सृजन और उन्मूलन, कैडरों के गठन और संरचना / पुनर्गठन, भर्ती के स्रोत / प्रकार और योग्यता, चयन के मानदंड, कर्मचारियों के सेवा रिकॉर्ड के मूल्यांकन से संबंधित मामले नियोक्ता के अनन्य कार्यक्षेत्र के भीतर आते हैं। प्रशासन की दक्षता में सुधार के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए, यह भी नियोक्ता का संरक्षण है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग ऐसे मामलों में केवल तभी किया जा सकता है जब यह दिखाया जाए कि नियोक्ता की कार्रवाई किसी संवैधानिक या वैधानिक प्रावधान के

विपरीत है या स्पष्ट रूप से मनमानी है या दुर्भावना के कारण दूषित है। न्यायालय नियोक्ता के फैसले पर अपील में नहीं बैठ सकता है और यह आदेश नहीं दे सकता है कि किसी विशेष पद को सीधी भर्ती या पदोन्नति या स्थानांतरण द्वारा भरा जाए। भर्ती की पद्धति निर्धारित करने या चयन के मानदंड निर्धारित करने में न्यायालय की कोई भूमिका नहीं है। प्रतिभागियों की योग्यता का तुलनात्मक मूल्यांकन करना भी न्यायालय के लिए खुला नहीं है। न्यायालय यह सुझाव नहीं दे सकता है कि नियोक्ता को प्रशासन की दक्षता में सुधार के उद्देश्य से योग्य कर्मियों की संरचना या पुनर्गठन करना चाहिए।"

(जोर दिया गया)

35. इसी तरह, चंडीगढ़ प्रशासन बनाम उषा खेत्रपाल वाई और अन्य मामले,²⁸ में सुप्रीम कोर्ट ने पैराग्राफ 22 में कहा:

"22. अब यह अच्छी तरह से तय है कि किसी भी भर्ती के लिए चयन का तरीका और न्यूनतम योग्यता निर्धारित करना

नियम बनाने वाले प्राधिकरण या नियुक्ति प्राधिकरण पर है। न्यायालय और अधिकरण न तो योग्यताएं निर्धारित कर सकते हैं और न ही संबंधित प्राधिकारी की शक्ति को कम कर सकते हैं जब तक कि नियोक्ता द्वारा निर्धारित योग्यता यथोचित रूप से प्रासंगिक है और पद से जुड़े कार्यों और कर्तव्यों के साथ तर्कसंगत संबंध है और संविधान, संविधि और नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं कर रही है। [देखें जे रंगास्वामी बनाम आंध्र प्रदेश सरकार (1990) 1 एससीसी 288 और पीयू जोशी बनाम महालेखाकार (2003) 2 एससीसी 632]। किसी भी नियम के अभाव में, अनुच्छेद 309 या कानून के तहत, अपीलकर्ता के पास प्रशासन की अपनी सामान्य शक्ति के तहत नियुक्त करने और ऐसे पात्रता मानदंड निर्धारित करने की शक्ति थी जो आवश्यक और उचित माना जाता है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि पीएचडी का नुस्खा अनुचित है।

(जोर दिया गया)

36. अजय प्रकाश मिश्रा (सुप्रा) और रणविजय सिंह (सुप्रा) में दिए गए निर्णय के संबंध में,

न्यायालय का विचार था कि नियमावली के नियम 15 (ई) की संवैधानिक वैधता के मुद्दे को स्पष्ट रूप से मनमाना नहीं ठहराया जा सकता है, केवल इस कारण से कि नियम बनाने वाले प्राधिकरण द्वारा प्रतीक्षा सूची प्रदान नहीं की गई है। इसके अलावा, यह अनिवार्य करना कि भरी हुई रिक्तियों को आगे बढ़ाया जाएगा, नियम को भारत के संविधान या वैधानिक संविधि के प्रावधानों के विपरीत नहीं बना देगा। चयन और भर्ती के तौर-तरीकों को स्पष्ट करना नियम बनाने वाले प्राधिकरण का एकमात्र विशेषाधिकार है। इस मामले में न्यायालय की कोई भूमिका नहीं है।

37. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि नियोक्ता विधि बनाने और भर्ती और चयन की शर्तों को प्रदान करने के लिए स्वतंत्र है। न्यायालय नियोक्ता के विवेकाधिकार को प्रतिस्थापित नहीं करेगा जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि नियम स्वयं अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के लिए स्वाभाविक रूप से मनमाना है। नियम 15 (एफ) की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए ऐसा कोई आधार नहीं

उठाया गया है। किसी भी मामले में, डिवीजन बेंच ने *अजय प्रकाश मिश्रा (सुप्रा)* में इसी तरह के समविषयक नियम को बरकरार रखा है।

38. तदनुसार, नियोक्ता के पास योग्यता निर्धारित करने और भर्ती के तरीके को तय करने का एकमात्र विवेक है। न्यायिक समीक्षा की आड़ में न्यायालय यह तय करने के लिए नियम बनाने वाले प्राधिकरण को प्रतिस्थापित नहीं करेगा कि भर्ती प्रक्रिया में नियोक्ता के लिए सबसे उपयुक्त क्या है। कर्तव्य की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, चयनित प्रतिभागियों को प्रदर्शन करना है, यह नियोक्ता के लिए हमेशा खुला है कि वह प्रतीक्षा सूची प्रदान करे या न करे। प्रतीक्षा सूची के प्रावधान के अभाव में नियम स्पष्ट रूप से मनमाना नहीं हो जाएगा ताकि इसे संविधान के विपरीत बनाया जा सके।

39. **महाराष्ट्र लोक सेवा आयोग बनाम संदीप श्रीराम वराडे¹¹**, के मामले में न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

9. किसी पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताएं नियोक्ता को

तय करनी हैं। नियोक्ता अतिरिक्त या वांछनीय योग्यता निर्धारित कर सकता है, जिसमें प्राथमिकता की वरीयता भी शामिल है। यह नियोक्ता है जो नियोक्ता की जरूरतों और काम की प्रकृति के अनुसार एक प्रतिभागी की आवश्यकताओं को तय करने के लिए सबसे उपयुक्त है। किसी भी मामले में, न्यायालय, न्यायिक समीक्षा की आड़ में, नियुक्ति प्राधिकारी की कुर्सी पर बैठकर यह तय नहीं कर सकता है कि नियोक्ता के लिए सबसे अच्छा क्या है और विज्ञापन की शर्तों की व्याख्या उसी की सीधी भाषा के विपरीत की जा सकती है।

40. **पंजाब नेशनल बैंक बनाम अनित कुमार दास¹²** के मामले में, न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"किसी भी पद के लिए योग्यता की प्रासंगिकता और उपयुक्तता को निर्धारित करना और तय करना नियोक्ता का काम है और यह न्यायालयों पर विचार और मूल्यांकन करने का काम नहीं है। नियोक्ता को किसी भी पद के लिए योग्यता निर्धारित करने के लिए न्यायालयों द्वारा अधिक

अक्षांश की अनुमति दी जाती है। इसके पीछे एक तर्क है। योग्यताएं किसी संस्थान या उद्योग या प्रतिष्ठान की आवश्यकता और रुचि को ध्यान में रखते हुए निर्धारित की जाती हैं। न्यायालय योग्यताओं के ऐसे नुस्खे की योग्यता या सलाह या उपयोगिता का आकलन करने के लिए उपयुक्त साधन नहीं हैं....."

11 (2019) 6 एससीसी 362 में रिपोर्ट किया गया।

12 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 897

41. इसी तरह, जहूर अहमद राथर बनाम शेख इम्तियाज अहमद²⁹ मामले में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

27. राज्य को अपनी सार्वजनिक सेवाओं की जरूरतों का आकलन करने का अधिकार सौंपा गया है। प्रशासन की अनिवार्यता, यह कठोर विधि है, प्रशासनिक निर्णय लेने के अधिकार क्षेत्र में आता है। एक सार्वजनिक नियोक्ता के रूप में राज्य सामाजिक

दृष्टिकोण को अच्छी तरह से ध्यान में रख सकता है जिनके लिए सामाजिक संरचना में नौकरी के अवसरों के निर्माण की आवश्यकता होती है। ये सभी अनिवार्य रूप से नीतिगत मामले हैं। न्यायिक समीक्षा को सावधानी पूर्वक आगे बढ़ना चाहिए"

42. सुप्रीम कोर्ट ने संजय कुमार मंजुल बनाम अध्यक्ष यूपीएससी³⁰, मामले में इसी तरह कहा:

25. सांविधिक प्राधिकारी सेवा के निबंधन और शर्तों के साथ-साथ किसी विशेष पद को धारण करने के लिए आवश्यक योग्यताओं को निर्धारित करने वाले सांविधिक नियम बनाने का अधिकारी है। इसलिए केवल संबंधित प्राधिकारी ही अंतिम निर्णय ले सकता है।

27. यह अच्छी तरह से तय है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 32 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय आमतौर

पर किसी नियोक्ता को किसी विशेष पद को धारण करने के लिए योग्यता निर्धारित करने का निर्देश नहीं देते हैं।

43. नियमावली, 2015 के नियम 15 (ई) के अनुसार, बोर्ड को अधिसूचित कई रिक्तियों के प्रतिभागियों की चयन सूची तैयार करने के लिए कहा जाता है। उस घटना में बोर्ड अधिसूचित रिक्तियों के अलावा प्रतिभागियों की सिफारिश नहीं कर सकता है। यह इस प्रकार है कि राज्य विज्ञापन में अधिसूचित पदों से अधिक नियुक्तियां नहीं कर सकता है। **प्रेम सिंह बनाम हरियाणा राज्य विद्युत बोर्ड³¹**, मामले में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार टिप्पणी की-

"मांग और विज्ञापन के माध्यम से चयन प्रक्रिया स्पष्ट रिक्तियों के लिए और प्रत्याशित रिक्तियों के लिए भी शुरू की जा सकती है, लेकिन भविष्य की रिक्तियों के लिए नहीं। यदि मांग और विज्ञापन केवल एक निश्चित संख्या में पदों के लिए हैं, तो राज्य विज्ञापित पदों की संख्या से अधिक नियुक्तियां

नहीं कर सकता है...राज्य विज्ञापन से हट सकता है और उसके बाद खाली होने वाले पदों पर केवल असाधारण परिस्थितियों में या किसी आकस्मिक स्थिति में नियुक्तियां कर सकता है और वह भी इस संबंध में नीतिगत निर्णय लेकर।

(संदर्भ: अशोक कुमार बनाम अध्यक्ष, बैंकिंग सेवा भर्ती बोर्ड³²)

44. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह दिखाने में विफल रहे कि कैसे लागू नियम 15 (एफ) इस अर्थ में अनुचित है कि यह स्पष्ट रूप से मनमाना है ताकि संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन किया जा सके।
45. तदनुसार, हम नियमावली, 2015 के नियम 15 (एफ) को संवैधानिक रूप से वैध मानते हैं।
46. तदनुसार उपर्युक्त चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका को योग्यता से रहित होने के कारण, निरस्त किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 634

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 63364/2009

जुहैर आलम

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री राजीव मिश्रा, श्री हतुध्वज प्रताप साही, श्री पी.के.चौरसिया, श्री प्रशांत कुमार त्रिपाठी, श्री समरथ सिंह, श्री संकल्प नारायण

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री ओ.पी.सिंह सिकरवार, श्री पुरुषोत्तम मणि त्रिपाठी, श्री वशिष्ठ तिवारी

ए. सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - निलंबन/समाप्ति - इस याचिका की पोषणीयता - मदरसा से जुड़े सेवा वाद से उत्पन्न परिवाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत माननीय न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर करके स्वीकार्य है। (पैरा 13)

बी. प्रमुख दंड लगाने के लिए, उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 में उल्लिखित अनुसार प्रतिवादियों के लिए उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही करना अनिवार्य था। (पैरा 14)

प्रतिवादियों की ओर से विद्वान वकील के समक्ष पूछे गए सटीक प्रश्न पर कि किस तारीख को मामला पोस्ट किया गया था, जिसे

याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन के लिए शुरू किया गया था, उसे अवगत नहीं कराया जा सका और यहां तक कि याचिका के आधारों के खिलाफ प्रति शपथपत्र तैयार करते समय भी कोई विवरण नहीं है, अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान हुई किसी भी तारीख का कोई विवरण और उल्लेख नहीं है जिसमें याचिकाकर्ता को उपस्थित होने का वारंट दिया गया था, लेकिन वह ऐसा करने में विफल रहा। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि केवल जांच रिपोर्ट के आधार पर जो याचिकाकर्ता को कभी भी नहीं दी गई है, कानून की दृष्टि से दूषित है और यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के विपरीत है। (पैरा 11)

याचिकाकर्ता के विरुद्ध पूरा वाद तीन सदस्यीय समिति गठित करते समय प्रारंभ किया गया है और जांच करते समय याचिकाकर्ता से कभी कोई सबूत या अभिलेख नहीं मांगा गया। जांच रिपोर्ट कभी भी याचिकाकर्ता को नहीं दी गई और जांच समिति द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के संबंध में उसे अपना बचाव करने का कोई अवसर नहीं दिया गया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन के लिए उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना जांच समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को ही मान्यता देने के बाद सीधे निष्कर्ष पर पहुंच गए। (पैरा 14)

रिट याचिका स्वीकार की गई। बकाया वेतन के साथ पुनर्स्थापन का निर्देश दिया गया। (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. भारत संघ बनाम मोहम्मद रमज़म खान, 1990 0 सुप्रीम (एससी) 606 (पैरा 12)
2. यू.पी. राज्य व अन्य बनाम माम चंद त्यागी व अन्य, 2017 (6) एएलजे 460 (पैरा 12)
3. मोहम्मद शोएब बनाम यूपी राज्य व अन्य, विशेष अपील संख्या 447 / 2016, निर्णय दिनांक 30.08.2017 (पैरा 12)
4. अलाउद्दीन बनाम यूपी राज्य व अन्य, 2013 आईएलआर 2 ऑल 851 (पैरा 13)

वर्तमान याचिका में संस्थान की प्रबंधन समिति के प्रबंधक द्वारा पारित दिनांक 25.10.2009 के समाप्ति आदेश को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री समरथ सिंह, प्रत्यर्थी संख्या 4 व 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री पुरुषोत्तम मणि त्रिपाठी और राज्य-प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित अनुतोष की मांग करते हुए दायर किया गया है:-

“1. संस्थान की प्रबंधन समिति के प्रबंधक द्वारा पारित आदेश दिनांक 25.10.2009 (रिट याचिका के अनुलग्नक-29) को अपास्त करते हुए सर्टिओरारी की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें।

2. मामले के अभिलेख मंगाने के लिए सर्टिओरारी की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें तथा प्रत्यर्थी संख्या 4 संस्थान की प्रबंधन समिति द्वारा पारित संकल्प दिनांकित 25.10.09 को रद्द करें।

3. मामले के अभिलेख मंगाने के लिए सर्टिओरारी की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें तथा प्रत्यर्थी संख्या 6 जांच समिति द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट को रद्द करें।

4. परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें, जिसमें प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने का आदेश दिया जाए। मदरसा दारुल उलूम फैजे मोहम्मदी, हथियागढ़, जिला महाराजगंज में सहायक शिक्षक "तहतनिया" के रूप में याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण काम में हस्तक्षेप न किया जाए और याचिकाकर्ता के वेतन का नियमित और निरंतर रूप से भुगतान नियत तिथियों पर किया जाए।”

3. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसे दारुल उलूम फैजे मोहम्मदी, हथियागढ़ लक्ष्मीपुर, जिला महाराजगंज नामक संस्थान में, संस्थान की प्रबंधन समिति द्वारा जारी नियुक्ति पत्र दिनांकित 28.03.2004 द्वारा सहायक शिक्षक (तहतनिया) के रूप में नियुक्त किया गया था। सक्षम प्राधिकारी द्वारा सूचना पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति को विधिवत अनुमोदन दे दिया गया था। याचिकाकर्ता ने अपनी बहन की बेटी की शादी के संबंध में होने वाले कुछ पारिवारिक समारोह के लिए

छुट्टी मांगी थी, परन्तु तत्कालीन प्रधानाचार्य ने इससे इनकार कर दिया, जिसके बाद याचिकाकर्ता और संस्थान के प्रधानाचार्य के मध्य विवाद पैदा हो गया। इसके पश्चात दिनांक 12.11.2008 से याचिकाकर्ता को उपस्थिति रजिस्टर में अनुपस्थित दर्शाया गया।

4. संस्थान के प्रत्येक कर्मचारी के संबंध में वेतन जारी करने के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा की गई औपचारिकताओं के समय, याचिकाकर्ता की लंबी अनुपस्थिति के संबंध में पूछताछ की गई और मात्र इसके पश्चात संस्थान की प्रबंधन समिति के प्रबंधक ने दिनांक 25.01.2009 को एक प्रस्ताव पारित कर जांच पर विचार करते हुए याचिकाकर्ता के निलंबन का प्रस्ताव रखा और आदेश दिनांकित 04.02.2009 द्वारा निलंबन का आदेश पारित किया गया।

5. निलंबन के आदेश दिनांकित 04.02.2009 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अपने निलंबन को रद्द करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 4 के समक्ष 07.02.2009 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। अभ्यावेदन के रूप में दावे पर विचार करते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 4 ने इस अवधि को आकस्मिक अवकाश के रूप में माना, याचिकाकर्ता ने: उचित कार्रवाई करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष दिनांक 24.02.2009 को पुनः एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया और याचिकाकर्ता को किसी

अन्य संस्थान में स्थानांतरित करने का अनुरोध किया।

6. दिनांक 26.02.2009 को, तीन सदस्यों वाली एक जांच समिति ने एक आरोप पत्र जारी किया, जिस पर याचिकाकर्ता ने दिनांक 02.03.2009 को अपना जवाब प्रस्तुत किया, जवाब दाखिल करते समय, याचिकाकर्ता द्वारा संस्थान के प्रधानाचार्य के विरुद्ध कुछ आरोप लगाए गए तथा इसे प्रत्यर्थी संख्या 2 को संबोधित किया गया, जिसे विचार के लिए लिया गया तथा याचिकाकर्ता के साथ प्रधानाचार्य को दोनों के द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के लिए दिनांक 17.03.2009 को प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष उपस्थित होने का अवसर दिया गया। इस बीच याचिकाकर्ता द्वारा संस्थान के प्राचार्य पर लगाए गए आरोपों की पुष्टि के लिए दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में कुछ और जानकारी सामने रखी गई, उपस्थिति में विफलता के कारण, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दोनों पक्षों की उपस्थिति के लिए अगली तिथि अर्थात् 24.03.2009 तय की गई।

7. निलंबन के आदेश दिनांकित 04.02.2009 से व्यथित होने के कारण, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 15950/2009 (जुहैर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) दायर करके इसे चुनौती दी और इसे आदेश दिनांकित 27.03.2009 द्वारा वापस लेकर खारिज कर दिया गया। उसके पश्चात, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 24791/2009 (जुहैर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) भी दायर की और अंततः

प्रबंधन समिति के लिए प्रबंधन समिति को आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह के अंदर जांच समाप्त कर तर्कसंगत अंत तक लाने के एक विशिष्ट निर्देशक 14.05.2009 के आदेश द्वारा इसे निस्तारित कर दिया गया, बशर्ते याचिकाकर्ता द्वारा पूरा सहयोग दिया जाए। याचिकाकर्ता के पूर्ण सहयोग की मांग के लिए, संस्थान की प्रबंधन समिति ने दिनांक 04.08.2009 और 08.08.2009 को पत्र भेजे और इसका उत्तर याचिकाकर्ता द्वारा प्रबंधन समिति के प्रबंधक को पंजीकृत डाक के माध्यम से पत्र दिनांकित 17.08.2009 के माध्यम से दिया गया। इस बीच, जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, महाराजगंज ने इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 14.05.2009 के अनुपालन में दिनांक 26.08.2009 को एक अनुपालन रिपोर्ट भेजी, जिसमें यह निर्देशित किया गया था कि यदि यह पाया जाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा निलंबन आदेश के नियम और शर्तों का अनुपालन किया गया है तो उसे जीवन निर्वाह भत्ता सुनिश्चित किया जाएगा। जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, महाराजगंज द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट दिनांकित 26.08.2009 के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि याचिकाकर्ता निलंबन अवधि के दौरान जीवन निर्वाह भत्ते के भुगतान का हकदार है। याचिकाकर्ता ने अपनी शिकायत के निवारण की मांग के लिए बार-बार अभ्यावेदन दिए जिन्हें अभ्यावेदन दिनांकित 24.09.2009 और 17.10.2009 के रूप में याचिका के साथ जोड़ा गया।

8. याचिकाकर्ता के मामले से संबंधित जांच समिति की रिपोर्ट प्राप्त होने पर, संस्थान की

प्रबंधन समिति ने अपनी बैठक दिनांकित 25.10.2009 में याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने का प्रस्ताव रखा और उसी के अनुसरण में, संस्थान की प्रबंधन समिति के प्रबंधक ने दिनांक 25.10.2009 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गईं।

9. बर्खास्तगी का आदेश प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने तुरंत जिला अल्पसंख्यक कल्याण अधिकारी, महाराजगंज के समक्ष एक प्रार्थना पत्र दाखिल किया, जिसमें एक विशिष्ट रुख था कि उन्हें तीन सदस्यीय समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए कभी नहीं बुलाया गया क्योंकि यह केवल याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन के उद्देश्य से गठित की गई थी। और इस तरह, याचिकाकर्ता को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के विरुद्ध कोई बचाव करने का शायद ही कोई अवसर दिया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों के अनुसार, याचिकाकर्ता पर लगाया गया दंड, जो प्रकृति में वृहद है, मात्र एक समिति का गठन करने और उसी की रिपोर्ट प्राप्त करने के माध्यम से सीधे निर्धारित नहीं किया जा सकता है, इसके अलावा यह याचिकाकर्ता का विशिष्ट मामला है कि जांच के दौरान, याचिकाकर्ता से कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ या यहां तक कि मांगा भी नहीं गया और न ही जांच के अंत के उपरांत, जांच की रिपोर्ट कभी भी याचिकाकर्ता का प्रदान या तामील नहीं की गई और इस प्रकार, बर्खास्तगी के रूप में लिये गये निर्णय का निर्धारण तथा आगमन, विधिक दृष्टि से स्वीकार्य नहीं है।

10. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 4 से 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि आदेश में दिए गए कथन, जिसने वर्तमान याचिका को आक्षेपित किया है, इस बात पर विश्वास करते हुए कि याचिकाकर्ता के पक्ष में सुनवाई का पूरा अवसर पहले ही प्रदान किया जा चुका है परन्तु जवाब में, उन्होंने कभी भी प्रबंधन समिति द्वारा गठित तीन सदस्यीय समिति द्वारा शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही में भाग लेने या सहयोग करने का इरादा नहीं किया। याचिकाकर्ता को आक्षेपित करने वाले आदेश का समर्थन करते हुए, प्रत्यर्थी संख्या 4 से 6 के विद्वान अधिवक्ता प्रति शपथ पत्र के साथ साथ पूरक शपथ पत्र पर निर्भर करते हैं, जिसमें याचिका की सामग्री को सख्ती से नकार दिया गया है और कई आधारों पर खंडन किया गया है तथा याचिकाकर्ता पर बोझ डाला गया, जिसकी परिणति अनुशासनात्मक कार्यवाही से पूर्ण रूप से अनुपस्थित व असहयोग रहने के कारण बर्खास्तगी आदेश में हुई।

11. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के समक्ष किए गए सटीक प्रश्न पर कि मामला किन तिथियों पर नियत किया गया है, जो याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन के लिए शुरू किया गया था, उसे अवगत नहीं कराया जा सका और यहां तक कि याचिका के आधारों के विरुद्ध जवाबी शपथ पत्र तैयार करते समय इसका कोई विवरण या अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान हुई किसी भी तिथि का कोई विवरण या उल्लेख भी नहीं है, जिसमें याचिकाकर्ता

को उपस्थित होने को कहा गया था, परन्तु वह ऐसा करने में विफल रहा। इसके अलावा, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि केवल जांच रिपोर्ट के आधार पर, जो याचिकाकर्ता को कभी प्रदान नहीं की गई है, विधि में निर्लज्जता है और यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला द्वारा तय की गई प्रक्रिया के विपरीत है, जिसमें कुछ प्रमुख मामलों को संदर्भित किया गया है और उसी का आश्रय लिया गया है।

12. **भारत संघ बनाम मोहम्मद रमजाम खान 1990 0 सुप्रीम (एस.सी.) 606** का निर्णय उनमें से एक है। **उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम माम चंद त्यागी व अन्य 2017 (6) ए.एल.जे. 460** तथा **मोहम्मद शोएब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 6 अन्य** (विशेष अपील संख्या 447/2016, 30.08.2017 को निस्तारित), के मामलों में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा इसका पालन किया गया है।

13. जहां तक प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई इस याचिका की पोषणीयता का आधार का प्रश्न है, **अलाउद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व 3 अन्य (2013 आई.एल.आर. 2 ए.एल.एल. 851)** में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा कहा गया है कि मद्रसा से जुड़े सेवा मामलों से उत्पन्न शिकायत माननीय न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर करके भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत पोषणीय है।

14. उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने के साथ-साथ याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णयों के साथ-साथ जांच और अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान प्रत्यर्थीगण द्वारा शुरू की गई कार्यवाहियों पर विचार करने के उपरांत, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांकित 25.10.2009 को निम्नलिखित आधारों पर अपास्त किया जाता है:-

I. याचिकाकर्ता के विरुद्ध पूरा मामला तीन सदस्यीय समिति का गठन करते हुए शुरू किया गया है और जांच करते समय याचिकाकर्ता से कभी कोई साक्ष्य या अभिलेख नहीं मांगा गया है।

II. याचिकाकर्ता को कभी भी जांच रिपोर्ट नहीं दी गई और जांच समिति द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के संबंध में उसे अपना बचाव देने का कभी कोई अवसर नहीं दिया गया।

III. अनुशासनात्मक कार्यवाही के संचालन के लिए उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना अनुशासनात्मक प्राधिकारी सीधे जांच समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विश्वास करके निष्कर्ष पर पहुंचे।

IV. वृहद जुर्माना लगाने के लिए, प्रत्यर्थीगण की ओर से उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 में उल्लिखित उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही करना अनिवार्य था।

15. प्रत्यर्थी सं. 4 को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने के तुरंत बाद याचिकाकर्ता को बहाल करने और उसे स्वीकार्य बकाया का लाभ देने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 4 ILRA 638

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट-सी संख्या 8262/2023

श्रीमती ज्योति और अन्य ...याचिकाकर्ता
बनाम

एम.ए.सी.टी. फतेहपुर एवं अन्य ...प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री राम सिंह, श्री
अमित कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी:

सिविल कानून- मोटर वाहन अधिनियम, 1988- धारा 159, 166 (3) और 166 (4)- (केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989 का नियम 150- उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियम 1998 का नियम 204 ए- याचिकाकर्ता द्वारा मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत दायर दावा याचिका धारा 166 (3) के तहत निर्धारित सीमा से परे होने के कारण निरस्त कर दी गई- क्षतिपूर्ति का दावा करने के दो तरीके निर्धारित हैं, एक धारा 166 की उपधारा 3 के तहत और दूसरा धारा 166 की उपधारा 4 के तहत- केंद्रीय मोटर वाहन नियम 150 के साथ धारा 166 (4) के तहत दावा दायर करने का कर्तव्य पुलिस अधिकारियों पर डाला गया है, साथ ही न्यायाधिकरण पर इसे उत्तर प्रदेश

मोटर वाहन नियम 204 ए के साथ धारा 166 (4) के तहत दावा आवेदन के रूप में मानने का दायित्व डाला गया है- मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 (3) के तहत किसी भी दावे के आवेदन को सीमा के आधार पर निरस्त करने से पूर्व अधिनियम की धारा 166 (4) पर विचार किया जाना चाहिए। (पैरा 9-15, 20-24)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह; (2004) 3 एससीसी 297
2. सीआईटी बनाम हिंदुस्तान बल्क कैरियर (2003)3 एससीसी 57
3. पी. राघव कुरुप और अन्य बनाम वी. अनंतकुमारी और अन्य (2007) 9 एससीसी 179

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री राम सिंह को सुना गया।
2. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 27.01.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर दावा याचिका को 01.04.2022 से संशोधित मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा

166 (3) के तहत निर्धारित सीमा से परे होने के कारण खारिज कर दिया गया है।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि स्वर्गीय चेतन कुमार के कानूनी उत्तराधिकारियों ने मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत एक याचिका दायर की, जिसमें 01.05.2022 को एक मोटर दुर्घटना में स्वर्गीय चेतन कुमार की मृत्यु के कारण मुआवजे का दावा किया गया। उक्त दावा याचिका 27.01.2023 को दायर की गई थी। चूंकि यह अधिनियम की धारा 166 (3) के तहत निर्धारित छह महीने की सीमा से परे थी, इसलिए इसे विवादित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि इसमें लगभग सत्तावन दिनों की देरी हुई है और चूंकि यह कानून लाभकारी है, इसलिए इसकी उदारतापूर्वक व्याख्या की जानी चाहिए और देरी को माफ किया जाना चाहिए। वह **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह (2004) 3 एससीसी 297** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा करते हैं।

5. बार में प्रस्तुत किए गए निवेदन का विश्लेषण करने के लिए, मोटर वाहन अधिनियम (जिसे आगे एमवी अधिनियम कहा जाएगा) के तहत निर्धारित मुआवजे का दावा करने की योजना को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए। इस प्रकरण के लिए प्रासंगिक अध्याय अधिनियम के अध्याय XI और

अध्याय XII और धारा 159 और धारा 166 और केंद्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा बनाए गए नियम हैं।

6. अधिनियम की धारा 166 में निहित प्रावधानों पर ध्यान देना प्रासंगिक है, जो इस प्रकार हैं :

"166. प्रतिकर के लिए आवेदन। (1) धारा 165 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रकृति की दुर्घटना से उत्पन्न प्रतिकर के लिए आवेदन, निम्नलिखित रूप में किया जा सकेगा:

(क) उस व्यक्ति द्वारा जिसे चोट लगी है; या

(ख) संपत्ति के स्वामी द्वारा; या

(ग) जहां दुर्घटना के कारण मृत्यु हुई है, वहां मृतक के सभी या किसी विधिक प्रतिनिधि द्वारा; या

(घ) घायल व्यक्ति या मृतक के सभी या किसी भी विधिक प्रतिनिधि द्वारा, जैसा भी प्रकरण हो, विधिवत् प्राधिकृत किसी अभिकर्ता द्वारा :

परंतु जहां मृतक के सभी विधिक प्रतिनिधि प्रतिकर के लिए किसी ऐसे आवेदन में शामिल नहीं हुए हैं, वहां आवेदन मृतक के सभी विधिक प्रतिनिधियों की ओर से या उनके

फायदे के लिए किया जाएगा और जो विधिक प्रतिनिधि इस प्रकार शामिल नहीं हुए हैं, उन्हें आवेदन में प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया जाएगा।

[यह और भी प्रावधान है कि जहां कोई व्यक्ति धारा 149 के अधीन उपबंधित प्रक्रिया के अनुसार धारा 164 के अधीन प्रतिकर स्वीकार करता है, वहां दावा न्यायाधिकरण के समक्ष उसकी दावा याचिका व्यपगत हो जाएगी।]

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन, दावेदार के विकल्प पर, या तो उस क्षेत्र पर अधिकारिता रखने वाले दावा अधिकरण को, जिसमें दुर्घटना हुई है, या उस दावा अधिकरण को, जिसके अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर दावेदार निवास करता है या कारोबार करता है, या जिसके अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर प्रत्यर्थी निवास करता है, किया जाएगा और वह ऐसे प्ररूप में होगा तथा उसमें ऐसी विशिष्टियां अंतर्विष्ट होंगी, जो विहित की जाएं।)

(3) मुआवजे के लिए कोई आवेदन तब तक स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि वह दुर्घटना घटित होने के छह माह के भीतर न किया गया हो।

(4) दावा अधिकरण धारा 159 के अधीन उसे भेजी गई दुर्घटना की किसी रिपोर्ट को इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर के लिए आवेदन के रूप में मानेगा।

(5) इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, दुर्घटना में चोट के लिए प्रतिकर का दावा करने का किसी व्यक्ति का अधिकार, घायल व्यक्ति की मृत्यु होने पर, उसके विधिक प्रतिनिधियों को प्राप्त रहेगा, भले ही मृत्यु का कारण चोट से संबंधित हो या उससे कोई संबंध हो या न हो।"

7. अधिनियम की धारा 166 (3) के प्रावधानों के अनुसार, यह स्पष्ट है कि विधानमंडल ने अपने विवेक से निर्धारित किया है कि मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण मुआवजा देने के लिए किसी भी आवेदन पर विचार नहीं करेगा, यदि वह घटना के घटित होने के छह महीने के भीतर दायर नहीं किया जाता है, इस प्रकार, सीमा का प्रारंभिक बिंदु घटना की तिथि है। उक्त प्रावधान पर भरोसा करते हुए, न्यायाधिकरण द्वारा दावा याचिका को खारिज करते हुए आदेश पारित किया गया है।

8. इस न्यायालय की राय में न्यायाधिकरण का उक्त दृष्टिकोण न्यायोचित नहीं है, क्योंकि न्यायालय ने धारा 166 के प्रावधानों की संकीर्ण और पांडित्यपूर्ण तरीके

से व्याख्या की है, जबकि अधिनियम एक सामाजिक रूप से लाभकारी कानून है, इसलिए इसकी व्याख्या उद्देश्यपूर्ण तरीके से की जानी चाहिए और विभिन्न धाराओं की सामंजस्यपूर्ण तरीके से व्याख्या की जानी चाहिए।

9. अधिनियम की धारा 166(3) को धारा 166(4) से पृथक नहीं पढ़ा जा सकता, जो दावा न्यायाधिकरण के लिए यह अनिवार्य बनाता है कि वह धारा 159 के अंतर्गत उसे भेजी गई दुर्घटना की किसी रिपोर्ट को मुआवजे के लिए आवेदन के रूप में ले।

10. अधिनियम की धारा 159 , जिसका उल्लेख नीचे किया गया है, दुर्घटना की जांच कर रहे पुलिस अधिकारी को अनिवार्य रूप से तीन महीने की अवधि के भीतर दावे के निपटान की सुविधा के लिए एक दुर्घटना सूचना रिपोर्ट तैयार करने और दावा न्यायाधिकरण या किसी अन्य एजेंसी को ऐसे विवरण शामिल करने का आदेश देती है, जिसे निर्धारित किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 159 को इस प्रकार उद्धृत किया गया है:

"159. दुर्घटना के संबंध में दी जाने वाली सूचना - पुलिस अधिकारी अन्वेषण के दौरान दावे के निस्तारण को सुगम बनाने के लिए तीन माह के भीतर ऐसे प्ररूप और तरीके से दुर्घटना सूचना रिपोर्ट तैयार करेगा जिसमें ऐसे विवरण होंगे तथा उसे दावा न्यायाधिकरण और ऐसी अन्य

एजेंसी को प्रस्तुत करेगा, जो विहित की जाए।"

11. मोटर वाहन अधिनियम की धारा 164सी, केन्द्र सरकार को मोटर वाहन अधिनियम के अध्याय XI के प्रावधानों को लागू करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है, जिसमें धारा 159 भी शामिल है।

12. धारा 164सी के तहत शक्तियों के संदर्भ में, केंद्र सरकार ने केंद्रीय मोटर वाहन नियम, 1989 के रूप में ज्ञात नियम बनाए हैं। उक्त नियमों के नियम 150 में निम्नानुसार प्रावधान है:

"150. दावा अधिकरण को रिपोर्ट की प्रतियां प्रस्तुत करना.-- (1) धारा 159 में निर्दिष्ट पुलिस रिपोर्ट प्ररूप 54 में होगी और दुर्घटना सूचना रिपोर्ट दावा अधिकरण, बीमाकर्ता तथा ऐसे अन्य अभिकरण को प्रस्तुत की जाएगी, जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए।

(2) कोई रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी या पुलिस अधिकारी, जिससे धारा 160 के अधीन प्रतिकर का दावा करने के लिए पात्र व्यक्ति या बीमाकर्ता जिसके विरुद्ध दावा किया गया है और ऐसे अन्य व्यक्ति को, जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए, अपेक्षित सूचना देने की अपेक्षा की जाती है, वह अनुरोध प्राप्त होने की तारीख से सात दिन के भीतर और दस रुपए की फीस का भुगतान करने पर प्ररूप 54 में सूचना देगा।"

13. अधिनियम की धारा 166(4) को धारा 159 के साथ पठित केन्द्रीय मोटर वाहन नियम के नियम 150 के संयुक्त पठन से यह स्पष्ट है कि किसी दुर्घटना के घटित होने पर दुर्घटना की जांच करने वाले पुलिस अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह प्रपत्र संख्या 54 में दावा न्यायाधिकरण को विवरण सहित सूचना भेजे तथा दावा न्यायाधिकरण उक्त रिपोर्ट को दावे के निपटान के लिए आवेदन के रूप में स्वीकार करने के लिए बाध्य है।

14. मोटर वाहन अधिनियम की धारा 176 राज्य सरकार को न्यायाधिकरणों के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है और उक्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश मोटर वाहन नियमावली 1998 बनायी है। उक्त नियमावली का नियम 204 ए निम्नानुसार उद्धृत है :

204-ए. धारा 158(6) के अंतर्गत प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट- (1) नियम 202-ए के उप-नियम (4) के अंतर्गत प्रस्तुत जांचकर्ता पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट प्राप्त होने पर दावा न्यायाधिकरण उसका अध्ययन करेगा तथा धारा 166 की उप-धारा (4) के अनुसार उचित एवं प्रभावी कार्रवाई के लिए आवश्यक समझी जाने वाली अतिरिक्त सूचना या सामग्री मांग सकता है।

(2) दावा अधिकरण रिपोर्ट और आगे की सूचना सामग्री की जांच करने के बाद, यदि अपेक्षित हो, उस पर दावा

प्रकरण पंजीकृत करेगा और फिर सभी संबंधित पक्षों को उपस्थित होने के लिए नोटिस जारी करेगा, जिसमें दुर्घटना के पीड़ित, मृतक व्यक्तियों के विधिक प्रतिनिधि, जैसा भी प्रकरण हो, दुर्घटना में शामिल वाहन के चालक, मालिक और बीमाकर्ता शामिल होंगे।

(3) नोटिस प्राप्त होने पर, उप-नियम (2) में उल्लिखित पक्षकारों को उपस्थित होना होगा और शपथ-पत्र के माध्यम से घोषित करना होगा कि क्या उसी कार्रवाई के संबंध में कोई दावा प्रकरण प्रस्तुत किया गया था या प्रस्तुत किया जा रहा है, और यदि ऐसा है, तो जांच पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट को दावा प्रकरण के रूप में माना जाएगा, और पक्षकारों द्वारा स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत किए गए ऐसे दावा प्रकरण के साथ संलग्न किया जाएगा।

(4) यदि घायल व्यक्ति या मृतक व्यक्ति के विधिक प्रतिनिधि उपनियम (2) के अधीन जारी नोटिस के प्रत्युत्तर में उपनियम (3) में उपदर्शित तरीके से उपस्थित नहीं होते हैं तो दावा अधिकरण यह मान सकेगा कि उक्त पक्षकार ऐसी कार्यवाहियों में किसी प्रतिकर के लिए आगे बढ़ने के इच्छुक नहीं थे और ऐसी धारणा पर प्रकरण बंद कर दिया जाएगा।

(5) जब तक कि दावा प्रकरण के रूप में मानी गई पुलिस रिपोर्ट, पक्षकारों द्वारा स्वयं प्रस्तुत स्वतंत्र दावा प्रकरण से संबद्ध न हो जाए, दावा न्यायाधिकरण, यथास्थिति, मृतक व्यक्ति, घायल व्यक्ति या उसके विधिक प्रतिनिधियों तथा नोटिस के प्रत्युत्तर में उपस्थित हुए व्यक्तियों से, यदि उनके द्वारा दावा किया गया हो, मुआवजे के संबंध में तथ्यों का विवरण प्रस्तुत करने के लिए कहेगा।

(6) यदि पक्षकारों द्वारा दावा किए गए मुआवजे तथा उसके आधार के बारे में तथ्य प्रस्तुत किए जाते हैं, तो प्रकरण को उसी प्रकार आगे बढ़ाया जाएगा, जैसा कि दावा न्यायाधिकरण के समक्ष सीधे मुआवजे के लिए पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत आवेदनों से निपटने के लिए अपेक्षित है।

(7) यदि दावा किए गए मुआवजे के बारे में तथ्यों का विवरण पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया है और तत्पश्चात् उपस्थित होने में चूक होती है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश-IX के प्रावधान लागू होंगे।"

15. धारा 166(3) को धारा 166(4) के साथ पढ़ने पर, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि मुआवजे का दावा करने के दो तरीके निर्धारित हैं, एक धारा 166 की उपधारा 3 के तहत और दूसरा धारा 166 की उपधारा 4 के तहत। केंद्रीय एमवी

नियमों के नियम 150 के साथ धारा 166(4) के तहत दावा दायर करने का कर्तव्य पुलिस अधिकारियों पर डाला गया है, साथ ही न्यायाधिकरण पर यह दायित्व डाला गया है कि वह इसे यूपी एमवी नियमों के नियम 204 ए के साथ धारा 166(4) के तहत दावा आवेदन के रूप में माने।

16. वस्तुतः नियम 204 ए (3) के अनुसार पुलिस प्राधिकारियों की रिपोर्ट के अतिरिक्त दावेदार द्वारा दायर किए गए किसी भी दावे को प्रथम रिपोर्ट के साथ संलग्न किया जाना है तथा उस पर एक साथ सुनवाई एवं निर्णय किया जाना है।

17. यह देखते हुए कि धारा 166 की उपधारा 3 और 4 के अंतर्गत दावा करने के लिए दो तरीके निर्धारित हैं और दोनों का उद्देश्य एक ही है, अर्थात् दुर्घटना में हुई क्षति के लिए दावे को शीघ्रता से पंजीकृत करना, दोनों में सामंजस्यपूर्ण ढंग से सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए, ताकि विधि के उद्देश्य को बढ़ावा मिले, न कि उसे विफल किया जाए।

18. उच्चतम न्यायालय ने (2003)3 एससीसी 57; सीआईटी बनाम हिंदुस्तान बल्क कैरियर्स में सामंजस्यपूर्ण निर्माण के सिद्धांत को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत निर्धारित किए हैं, जिसमें यह देखा गया और पैरा 14 से 21 में निम्नानुसार निर्धारित किया गया:

"14. ऐसा निर्माण जो कानून को निरर्थक बना दे, उससे बचना चाहिए / किसी कानून या उसके किसी

अधिनियमन प्रावधान की इस तरह व्याख्या की जानी चाहिए कि वह उस सिद्धांत पर प्रभावी और क्रियाशील हो जो कि मैक्सिम यूट रेस मैगिस वैलेट क्वाम में व्यक्त किया गया है। परेत अर्थात् लिखित दस्तावेजों पर उदारतापूर्वक निर्माण किया जाना चाहिए, ताकि यदि संभव हो तो उन्हें कायम रखा जा सके और पक्षों की मंशा को प्रभावी बनाया जा सके। [ब्रूम के कानूनी सिद्धांत (10वां संस्करण), पृष्ठ 361, क्रेज़ ऑन स्टैट्यूट्स (7वां संस्करण), पृष्ठ 95 और मैक्सवेल ऑन स्टैट्यूट्स (11वां संस्करण), पृष्ठ 221 देखें।]

15. किसी कानून को व्यावहारिक बनाने के लिए डिज़ाइन किया जाता है और न्यायालय द्वारा उसकी व्याख्या उस उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए की जानी चाहिए, जब तक कि कोई महत्वपूर्ण चूक या स्पष्ट निर्देश उस उद्देश्य को अप्राप्य न बना दे। (देखें व्हिटनी बनाम आई.आर.सी. [1926 ए.सी. 37:10 टैक्स कैस 88:95 एल.जे.के.बी. 165:134 एल.टी. 98 (एच.एल.)], ए.सी. पृष्ठ 52 पर सी.आई.टी. बनाम एस. तेजा सिंह [ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 352: (1959) 35 आई.टी.आर. 408] और गुरसहाय सैगल बनाम सी.आई.टी. [ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1062: (1963) 48 आई.टी.आर. 1] में संदर्भित।)

16. न्यायालयों को उस निर्माण को अस्वीकार करना होगा जो विधानमंडल के स्पष्ट इरादे को पराजित करेगा, भले ही इस्तेमाल की गई भाषा में कुछ अशुद्धि हो। (देखें सैल्मन बनाम इनकॉम्ब [(1886) 11 एसी 627: 55 एलजेपीसी 69: 55 एलटी 446 (पीसी)] एसी पृष्ठ 634 पर, कर्टिस बनाम स्टोविन [(1889) 22 क्यूबीडी 513: 58 एलजेक्यूबी 174: 60 एलटी 772 (सीए)] एस. तेजा सिंह प्रकरण में संदर्भित [एआईआर 1959 एससी 352: (1959) 35 आईटीआर 408]।)

17. यदि दो व्याख्याओं के बीच चयन करना हो, जिनमें से संकीर्ण व्याख्या विधान के स्पष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने में विफल होगी, तो हमें ऐसी व्याख्या से बचना चाहिए जो विधान को निरर्थक बना दे, तथा इसके स्थान पर हमें अधिक साहसिक व्याख्या को स्वीकार करना चाहिए, जो इस दृष्टिकोण पर आधारित हो कि संसद केवल प्रभावी परिणाम लाने के उद्देश्य से ही विधान बनाएगी। (देखें नोक्स बनाम डोनकेस्टर अमलगमेटेड कोलियरीज [(1940) 3 ऑल ईआर 549: 1940 एसी 1014: 109 एलजेकेबी 865: 163 एलटी 343 (एचएल)] जिसका उल्लेख पाई बनाम मिनिस्टर फॉर लैंड्स फॉर एनएसडब्ल्यू [(1954) 3 ऑल ईआर 514: (1954) 1 डब्ल्यूएलआर 1410 (पीसी)] में किया गया है।) उक्त

मामलों में दर्शाए गए सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा मोहन कुमार सिंधानिया बनाम भारत संघ [1992 सप (1) एससीसी 594: 1992 एससीसी (एल एंड एस) 455: (1992) 19 एटीसी 881: एआईआर 1992 एससी 1] में दोहराया गया था।

18. कानून को समग्र रूप में पढ़ा जाना चाहिए तथा अधिनियम के एक प्रावधान को उसी अधिनियम के अन्य प्रावधानों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, ताकि संपूर्ण कानून एक सुसंगत अधिनियम बन सके।

19. न्यायालय को विधानमंडल का ध्यान केवल व्याख्या किए जाने वाले खंडों पर ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विधि पर केंद्रित करके उसकी मंशा का पता लगाना चाहिए; उसे खंड की तुलना कानून के अन्य भागों और उस परिवेश से करनी चाहिए जिसमें व्याख्या किए जाने वाले खंड का उल्लेख किया गया है। (देखें आरएस रघुनाथ बनाम कर्नाटक राज्य [(1992) 1 एससीसी 335: 1992 एससीसी (एलएंडएस) 286: (1992) 19 एटीसी 507: एआईआर 1992 एससी 81]।) इस तरह के निर्माण में किसी भी धारा के भीतर या एक ही विधि के दो अलग-अलग खंडों या प्रावधानों के बीच किसी भी असंगति या विरोध से बचने का गुण है। एक ही अधिनियम की दो धाराओं के बीच

आमने-सामने टकराव से बचना न्यायालय का कर्तव्य है। (सुल्ताना बेगम बनाम प्रेम चंद जैन [(1997) 1 एससीसी 373: एआईआर 1997 एससी 1006] देखें।)

20. जब भी ऐसा करना संभव हो, तो उन प्रावधानों की व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए जो परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं ताकि उनमें सामंजस्य स्थापित हो सके। यह आसानी से नहीं मान लेना चाहिए कि संसद ने एक हाथ से जो दिया, वह दूसरे हाथ से ले लिया।

21. संविधि के एक खंड के प्रावधानों का उपयोग दूसरे के प्रावधानों को विफल करने के लिए नहीं किया जा सकता, जब तक कि उनके बीच सामंजस्य स्थापित करना असंभव न हो। इस प्रकार ऐसा निर्माण जो प्रावधानों में से किसी एक को "बेकार की लकड़ी" या "मृत पत्र" में बदल देता है, सामंजस्यपूर्ण निर्माण नहीं है। सामंजस्यपूर्ण होना नष्ट करना नहीं है।"

19. किसी कानून के दो प्रावधानों की व्याख्या करने के नियम पर सर्वोच्च न्यायालय ने (2007) 9 एससीसी 179; पी. राघव कुरुप और अन्य बनाम वी. अनंतकुमारी और अन्य में विचार किया था और सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 7, 9 और 10 में निम्नानुसार दर्ज किया है :

7. इसलिए, इन दोनों प्रावधानों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़कर नियम बनाने वाले प्राधिकरण की मंशा को सामने लाया जा सकता है। कानून की व्याख्या का स्थापित सिद्धांत यह है कि अगर दो नियमों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जा सकता है और जिस उद्देश्य को हासिल करना है, उसे किसी नियम का उल्लंघन किए बिना हासिल किया जा सकता है, तो उसे ऐसे ही पढ़ा जाना चाहिए। दूसरे, यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक हो सकता है कि नियम 1 के लिए नोट (1) को 1982 में बाद में डाला गया था, यह अच्छी तरह से जानते हुए कि नियम 43-बी नॉन ऑब्स्टेंट क्लॉज से शुरू होता है। इसलिए, 1959 के नियमों के बाद के नोट को नियम 43-बी का उल्लंघन किए बिना सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जा सकता है।

9. श्री राव ने नलिनाख्या बायसैक बनाम श्याम सुंदर हलदर [एआईआर 1953 एससी 148: 1953 एससीआर 533] में इस न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया, उनके लॉर्डशिप ने निम्नानुसार देखा: (एससीआर पृष्ठ 534)

"कानून की व्याख्या करते समय किसी भी न्यायालय को यह मानकर आगे बढ़ने का अधिकार नहीं है कि विधायिका ने कोई गलती की

हैं और भले ही विधायिका द्वारा प्रयुक्त शब्दावली में कोई त्रुटि हो, न्यायालय किसी अधिनियम की दोषपूर्ण शब्दावली में सहायता नहीं कर सकता है या उसमें कुछ जोड़ या संशोधन नहीं कर सकता है, या उसकी रचना करके अधिनियम में रह गई कमियों को पूरा नहीं कर सकता है।"

10. इस प्रकरण में किसी भी शब्द को जोड़ने या घटाने का प्रयास नहीं किया गया है। नियमों के दोनों प्रावधानों को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ने के बाद ही अधिनियम या नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन किए बिना परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि पहले ही ऊपर बताया जा चुका है, इसका उद्देश्य गैर-शिक्षण कर्मचारियों को शिक्षक के पद के लिए पदोन्नति के अवसर प्रदान करना था, बशर्ते वे अपेक्षित योग्यताएं पूरी करते हों। इसलिए, यह प्रकरण अपीलकर्ताओं के लिए कोई मदद नहीं करता है।"

20. धारा 166(3) का दायरा, जो दावेदार को अधिनियम की धारा 166(4) के साथ संयुक्त रूप से पढ़ने पर और ऊपर संदर्भित विश्लेषण के आधार पर धारा 166(3) के तहत 6 महीने के भीतर आवेदन करने की शक्ति देता है, मोटर दुर्घटनाओं के मामलों के लिए संदर्भित होना चाहिए, जिसमें किसी भी कारण से कोई एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकी या जहां वह पुलिस अधिकारियों द्वारा दावा न्यायाधिकरण

को रिपोर्ट भेजने से पहले दावा दायर करने का विकल्प चुनता है।

21. वर्तमान प्रकरण में, न्यायाधिकरण ने इस पहलू पर विचार नहीं किया है और रिकॉर्ड पर मौजूद दुर्घटना रिपोर्ट और/या नियम 204 ए के अनुसार न्यायाधिकरण द्वारा उठाए गए कदमों के संबंध में कोई भी महत्वपूर्ण तथ्य दर्ज करने में विफल रहा है और उक्त पहलू की अनदेखी करते हुए दावा याचिका को खारिज कर दिया है, इस प्रकार, दिनांक 27.01.2023 का आरोपित आदेश संधारणीय नहीं है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

22. दावा न्यायाधिकरण को कानून के अनुसार दावे पर कार्रवाई करने और निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है, क्योंकि दुर्घटना की जांच करने वाले पुलिस अधिकारी का कर्तव्य था कि वह सूचना भेजे और दावा न्यायाधिकरण पर उक्त रिपोर्ट को दावा आवेदन के रूप में स्वीकार करना भी अनिवार्य था, जो याचिकाकर्ता की कोई गलती न होने के बावजूद स्वीकार नहीं किया गया प्रतीत होता है।

23. यदि पुलिस अधिकारी अपनी रिपोर्ट भरने/भेजने में असफल रहता है, तो न्यायाधिकरण को उसे मांगने, उसे दावा याचिका के रूप में पंजीकृत करने और फिर नियम 204ए के तहत निर्धारित कदम उठाने का पूरा अधिकार होगा।

24. इस प्रकार, दिनांक 27.01.2023 का आदेश रद्द किया जाता है। अधिनियम के तहत कार्यरत न्यायाधिकरणों के मार्गदर्शन के

लिए यह भी निर्देश दिया जाता है कि मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 (3) के तहत किसी भी दावे के आवेदन को सीमा के आधार पर खारिज करने से पहले अधिनियम की धारा 159 और धारा 166 (4) के अधिदेश पर विचार किया जाना चाहिए।

25. रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

26. महानिबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की एक प्रति उत्तर प्रदेश राज्य में कार्यरत सभी दावा न्यायाधिकरणों को प्रेषित करें।

(2023) 4 ILRA 645

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 18684/2010

लक्ष्मण सिंह भदौरिया ... याचिकाकर्ता

बनाम

नियंत्रक प्राधिकरण ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के तहत एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री एस.एन. दुबे, श्री अमित कुमार श्रीवास्तव, श्री एस.के. सिंह यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 - धारा 7(3-ए) - अधिसूचना दिनांक 01.10.1987 - ग्रेच्युटी - विलंबित भुगतान - 10% ब्याज दर का प्रावधान है - हालांकि, 4% ब्याज का पुरस्कार पारित किया गया था - वैधता को

चुनौती दी गई - आयोजित, प्रतिवादी संख्या 1 ने ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 की धारा 7 (3-ए) के संबंध में केंद्र सरकार द्वारा जारी दिनांक 01.10.1987 की मौजूदा अधिसूचना के अनुसार 10% वार्षिक ब्याज के स्थान पर केवल 4% वार्षिक ब्याज के भुगतान के लिए कोई आधार या स्रोत नहीं दिया है - 4% ब्याज का भुगतान विपरीत और विधि विरुद्ध है। (पैरा 8)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री एस. एन. दुबे और विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जितेन्द्र नारायण राय को सुना गया।

2. यह रिट याचिका प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 18.12.2009 के अधिनिर्णय को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करने के लिए दायर की गई है, जहां तक यह 4% ब्याज से संबंधित है और प्रत्यर्थी संख्या 2 को ग्रेच्युटी के विलंबित भुगतान पर 10% ब्याज का भुगतान करने का निर्देश देने के लिए परमादेश जारी करने के लिए भी दायर की गई है।

3. संक्षेप में, प्रकरण के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता जिला सहकारी बैंक, लिमिटेड फतेहपुर में क्लर्क था और 31.01.2000 को सेवा से सेवानिवृत्त हुआ। उसने 29 साल की सेवा पूरी की लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 2 ने उसे

4.इला लक्ष्मण सिंह भदौरिया बनाम नियंत्रक प्राधिकरण ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम के तहत एवं अन्य

873

4 साल और 10 महीने की कम ग्रेच्युटी का भुगतान किया। उसने 16.08.2007 को प्रत्यर्थी संख्या 01 के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें प्रार्थना की गई कि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने कम ग्रेच्युटी का भुगतान किया है, इसलिए उसे 85,983/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए। प्रकरण संख्या पीजी 13/2007 के रूप में पंजीकृत किया गया था जिसे याचिका के अनुलग्नक - 1 के रूप में चिह्नित किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 2 ने लिखित बयान दायर किया और इसकी फोटोकॉपी इस याचिका के अनुलग्नक - 2 है। याचिकाकर्ता ने याचिका के अनुलग्नक - 3 में जवाब दाखिल किया।

4. याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के समक्ष दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए तथा मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने दिनांक 18.12.2009 के निर्णय तथा आदेश द्वारा याचिका को स्वीकार करते हुए प्रत्यर्थी संख्या 2 को 34,632/- रुपए का भुगतान करने का निर्देश दिया, जो याचिका के अनुलग्नक-4 में है। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार करते हुए 4% ब्याज का आदेश दिया, जो कानून के विरुद्ध है। याचिकाकर्ता ने विलंबित भुगतान पर 10% ब्याज की मांग की थी तथा वह इसका हकदार था।

5. ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 की धारा 7 (3-ए) में प्रावधान है कि नियोक्ता को केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित दर से अधिक ब्याज का भुगतान करना होगा। केंद्र सरकार ने

दिनांक 01.10.1987 की अधिसूचना द्वारा अधिसूचित किया है कि विलंबित भुगतान पर ब्याज की दर 10% होगी जो इस प्रकार है :

*"अधिसूचना संख्या एसओ 874 (ई),
दिनांक 1 अक्टूबर, 1987*

*भारत का राजपत्र, असाधारण, दिनांक
1.10.1987, भाग II,*

धारा 3 (ii), पी - 2

*ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम,
1972 की धारा 7 की उप-धारा (3-ए)
द्वारा प्रदत्त शक्ति के तहत, केंद्र
सरकार एतद्वारा उन मामलों में
नियोक्ता द्वारा अपने कर्मचारी को
दस प्रतिशत प्रति वर्ष साधारण ब्याज
की दर से भुगतान निर्दिष्ट करती है,
जहां ग्रेच्युटी निर्दिष्ट अवधि के भीतर
भुगतान नहीं की जाती है।*

*(2) यह अधिसूचना राजपत्र में
प्रकाशन की तारीख से लागू होगी।"*

6. इस प्रकार याचिकाकर्ता ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 की धारा 7 (3-ए) के अनुसार विलंबित भुगतान पर 10% ब्याज पाने का हकदार था, लेकिन प्रत्यर्थी संख्या 1 ने केवल 4% ब्याज दिया है जो कि अवैध है। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने इस बारे में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है कि 10% ब्याज क्यों नहीं दिया गया। प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित आदेश अवैध और अन्यायपूर्ण है। याचिकाकर्ता के पास भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस माननीय न्यायालय के असाधारण रिट क्षेत्राधिकार को लागू करने के अलावा कोई

समान रूप से प्रभावी और वैकल्पिक उपाय नहीं है, इसलिए, यह याचिका स्थापित की गई है।

7. कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार कोई भी अप्राप्त पंजीकृत नोटिस और पावती वापस नहीं मिली है, इसलिए माना जाता है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 को नोटिस के माध्यम से पर्याप्त रूप से सेवा दी गई है। कोई जवाबी हलफनामा और वकालतनामा दाखिल नहीं किया गया है। इसलिए आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता एसएन दुबे, अमित कुमार श्रीवास्तव, याचिकाकर्ता के लिए श्री एसके दुबे और प्रत्यर्थी के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

8. याचिकाकर्ता ने याचिका में संदर्भित केंद्र सरकार की अधिसूचना के साथ सभी संबंधित कागजात संलग्न किए हैं। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि प्रत्यर्थीगण ने 18.12.2009 के आदेश को सक्षम प्राधिकारी या अदालत के समक्ष चुनौती दी है। इसलिए, दावे के संबंध में याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्कर्ष निरपेक्ष हो गया है। यह याचिकाकर्ता है जिसे इस आधार पर कम प्रतिशत ब्याज के भुगतान के बारे में शिकायत है कि ग्रेच्युटी के देरी से भुगतान के प्रकरण में केंद्र सरकार द्वारा देरी की अवधि के लिए 10% साधारण ब्याज का भुगतान करने का प्रावधान है। याचिकाकर्ता ने ग्रेच्युटी के भुगतान में देरी की अवधि के लिए 10% के स्थान पर केवल 4% ब्याज के भुगतान के निर्देश के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 1 के आदेश को चुनौती दी है। जब प्रत्यर्थी संख्या 2 को

उचित रूप से नोटिस भेजा गया था, तो उसका कर्तव्य था कि वह उपस्थित होकर याचिका के खिलाफ जवाबी हलफनामा दायर करता, लेकिन उसने अपने कर्तव्य से परहेज किया। 2 को याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए प्रकरण/आपत्ति के संबंध में कोई आपत्ति नहीं है। याचिकाकर्ता के दावे को केंद्र सरकार की उपरोक्त अधिसूचना से समर्थन मिलता है जिसके अनुसार यदि निर्दिष्ट अवधि के भीतर ग्रेच्युटी का भुगतान नहीं किया जाता है, तो नियोक्ता 10% प्रति वर्ष साधारण ब्याज का भुगतान करेगा। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 की धारा 7 (3-ए) के संबंध में केंद्र सरकार द्वारा जारी दिनांक 01.10.1987 की मौजूदा अधिसूचना के अनुसार 10% वार्षिक ब्याज के बजाय केवल 4% वार्षिक ब्याज के भुगतान के लिए कोई आधार या स्रोत नहीं दिया है। इस प्रकार, यह अदालत इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा 4% ब्याज के भुगतान के संबंध में पारित आदेश और निर्णय विपरीत और कानून के खिलाफ है। इसलिए, यह रिट याचिका अनुमति देने योग्य है।

आदेश

इस रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है और प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 18.12.2009 के अधिनिर्णय को, जहां तक यह 4% ब्याज के भुगतान से संबंधित है, रद्द किया जाता है और इस सीमा तक संशोधित किया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 को 4 वर्ष और 10 महीने की अवधि के लिए ग्रेच्युटी के विलंबित भुगतान पर 10% ब्याज का भुगतान करना होगा। यह निर्देश दिया जाता है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 इस निर्णय की

4.इला

बी0एन0एस0डी0 शिक्षा निकेतन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

बनाम क्षेत्रीय भविष्य निधि आयोग और अन्य

875

प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से 1 महीने की अवधि के भीतर उपरोक्त आदेश के अनुसार ब्याज राशि का भुगतान करेगा।

नहीं है- इसका उद्देश्य चूककर्ता नियोक्ता को दंडित करना और कर्मचारियों को हुए नुकसान की भरपाई करना भी है। (पैरा 9-20)

(2023) 4 ILRA 647

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 48699/1999

बी.एन.एस.डी. शिक्षा निकेतन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

...याचिकाकर्ता

बनाम

क्षेत्रीय भविष्य निधि आयोग और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता : श्री राजेश तिवारी

अधिवक्ता प्रतिवादी: एस.सी., श्री निशांत मेहरोत्रा, श्री विजय कुमार सिंह

सिविल कानून-कर्मचारी भविष्य निधि एवं विविध प्रावधान अधिनियम, 1952- धारा 14-बी-पीएफ अंशदान जमा करने में देरी पर धारा 14-बी के तहत हर्जाना लगाने के आदेश को निरस्त करने की प्रार्थना मांग करते हुए रिट याचिका दायर की गई-ईपीएफ अधिनियम की धारा 14-बी के तहत हर्जाना दंडात्मक प्रकृति का है-एक बार जब याचिकाकर्ता ने कवरेज की तारीख से अधिनियम की प्रयोज्यता स्वीकार कर ली तो वह विलंबित अनुपालन के लिए दंडात्मक हर्जाना देने के लिए उत्तरदायी है-धारा 14-बी के तहत जुर्माना लगाने का उद्देश्य केवल "कर्मचारियों को मुआवजा प्रदान करना"

रिट याचिका निरस्त (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. ऑर्गेनो केमिकल इंडस्ट्रीज एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1979) 4 एससीसी 573
2. हिंदुस्तान टाइम्स लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1998) 2 एससीसी 242
3. मेसर्स डी.ए.वी. कॉलेज एवं अन्य बनाम क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त एवं अन्य, [1988 (सप्ल) एस.सी.सी. 518]
4. बागवानी प्रयोग केंद्र गोनिकोप्पल, कूर्ग बनाम क्षेत्रीय भविष्य निधि संगठन, (2022) 4 एससीसी 516

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश तिवारी तथा प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता श्री निशांत मेहरोत्रा को सुना।
2. वर्तमान रिट याचिका प्रत्यर्था संख्या 1 द्वारा पारित आदेश दिनांकित 22.01.1999 को अपास्त करने की मांग करते हुए दायर की गई है। याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थागण को याचिकाकर्ता पर हर्जाना न थोपने का आदेश

देने वाले परमादेश की प्रकृति का निर्देश देने की भी मांग की है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि याचिकाकर्ता एक शैक्षणिक संस्थान है और सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत है और उसने निजी तौर पर अपने कर्मचारियों के लिए भविष्य निधि योजना शुरू की थी तथा संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या 10 से कम थी परन्तु परन्तु दिनांक 04.06.1991 को प्रथम बार प्रत्यर्थी के प्राधिकारी ने सूचित किया कि याचिकाकर्ता का संस्थान दिनांक 01.07.1990 से कर्मचारी भविष्य निधि एवं प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 के अंतर्गत आच्छादित था। इसके पश्चात प्रत्यर्थीगण ने अधिनियम के लागू होने की तिथि अर्थात् 01.07.1990 से भविष्य निधि बकाया की वसूली के लिए ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम 1952 की धारा 7ए के अंतर्गत कार्यवाही प्रारम्भ की, तब याचिकाकर्ता ने 1990 से 1995 तक की अवधि के योगदान की संपूर्ण धनराशि दिनांक 13.10.1995 को जमा कर दी।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कथन किया कि जब याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान द्वारा योगदान की राशि जमा की गई तो उसके पश्चात उसे प्रत्यर्थी प्राधिकारी द्वारा हर्जाना लगाने का अधिनियम की धारा 14-बी के अंतर्गत नोटिस मिला क्योंकि याचिकाकर्ता ने विलंबित भुगतान किया और 08/1990 से 06/1996 की अवधि के लिए नियत तिथि पर कर्मचारी भविष्य निधि योगदान का भुगतान करने में चूक की। याचिकाकर्ता का तर्क यह है

कि चूंकि याचिकाकर्ता ने पहले ही 1995 में योगदान की पूरी धनराशि जमा कर दी थी तथा योगदान जमा करने में हुई देरी अधिनियम की 7ए के अंतर्गत कार्यवाही के लंबित होने के कारण हुई थी तथा याचिकाकर्ता शैक्षणिक संस्थान अपने स्कूल में भविष्य निधि योजना के प्रावधानों का पालन करने को तैयार है, तथापि, प्रत्यर्थी प्राधिकारी ने आक्षेपित आदेश दिनांकित 22.01.1999 को पारित करते समय उपरोक्त सभी तथ्यों पर विचार नहीं किया था।

5. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम की धारा 14-बी के अंतर्गत पारित आदेश का समर्थन किया है और कथन किया कि याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान में दिनांक 01.07.1990 को 20 से अधिक कर्मचारियों सेवारत थे तथा प्रवर्तन अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट दिनांकित 24.08.1990 के आधार पर पत्र दिनांकित 27.03.1991 द्वारा दिनांक 01.07.1990 से ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम 1952 के अंतर्गत आच्छादित थे और इसलिए याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान को पत्र दिनांकित 04.06.1991 द्वारा ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम 1952 और इसके अंतर्गत बनाई गई योजना के प्रावधानों का पालन करने हेतु निर्देशित किया गया था। बकाया राशि के निर्धारण के लिए अधिनियम की धारा 7ए के अंतर्गत दिनांक 07.02.1992 को एक नोटिस जारी किया गया। प्रतिष्ठान ने इस आधार पर अधिनियम की प्रयोज्यता पर आक्षेप किया कि वे कभी भी 20 या अधिक व्यक्तियों को रोजगार नहीं दे रहे थे। हालाँकि प्रतिष्ठान ने

अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन शुरू कर दिया और आच्छादित होने के बाद से 08/90 से 01/96 की अवधि के लिए जमा की गई बकाया राशि की मांग के समर्थन में उसके चालान की फोटोकॉपी प्रस्तुत की।

6. प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता को आच्छादन पत्र दिनांकित 27.03.1991 द्वारा दिनांक 01.07.1990 से ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम 1952 के अंतर्गत आच्छादित किया गया था तथा बाद के चरण में उसने दायित्व को स्वीकार किया तथा अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन शुरू कर दिया तथा ऐसी परिस्थितियों में नियोक्ता प्रतिष्ठान लंबे समय से भविष्य निधि के बकाया के भुगतान में चूक कर रहा था और उक्त कारण से ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम 1952 की धारा 14बी के प्रावधानों के अंतर्गत विलंबित भुगतान पर लगाए गए नुकसान को अदा करने के लिए प्रतिष्ठान उत्तरदायी है क्योंकि भविष्य निधि अंशदान जमा करने में याचिकाकर्ता की ओर से देरी हुई थी, इसलिए याचिकाकर्ता ई.पी.एफ. अधिनियम की धारा 14-बी के अनुसार हर्जाना अदा करने के लिए उत्तरदायी है। ई.पी.एफ. अधिनियम सामाजिक सुरक्षा कानून है और कर्मचारियों के हित के लिए है। ई.पी.एफ. अधिनियम की धारा 14-बी और धारा 7-क्यू के प्रावधानों को सख्ती से समझना होगा।

7. मैंने उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्तागणों द्वारा दिए गए तर्कों पर गहनता से विचार

किया तथा अभिलेखों पर उपलब्ध सामग्री का भी अवलोकन किया।

8 निर्विवाद रूप से, ई.पी.एफ. अधिनियम एक लाभकारी कानून है। इसे औद्योगिक श्रमिक की सेवानिवृत्ति के उपरांत उसके भविष्य के लिए या उसकी अकाल मृत्यु की स्थिति में उसके आश्रितों के लिए कुछ प्रावधान करने के उद्देश्य से पारित किया गया था। संसद सदस्यों ने पुरानी व उत्तरजीविता पेंशन योजनाओं और ग्रेच्युटी योजनाओं में विभिन्न वित्तीय और प्रशासनिक कठिनाइयों पर विचार करने के उपरांत, अंशदायी भविष्य निधि योजनाएं संस्थित करने पर सहमति प्रदान की, जिसमें कर्मचारी और नियोक्ता दोनों योगदान करेंगे। भविष्य निधि योजना को औद्योगिक केंद्र में नियमित श्रम शक्ति के स्थिरीकरण को प्रोत्साहित करने का एक साधन माना गया। संसद सदस्य इस तथ्य से पूर्णतः परिचित थे कि औद्योगिक विकास के साथ, हालांकि, बड़े नियोक्ताओं ने अपने श्रमिकों के कल्याण के लिए भविष्य निधि योजना शुरू की थी, परन्तु ये सभी योजनाएं जब तक निजी और स्वैच्छिक थीं, छोटे नियोक्ताओं के कर्मचारी उन सभी लाभों से वंचित रहते थे, जो बड़े नियोक्ताओं द्वारा प्रदान किए जाते थे। अतः औद्योगिक संस्थाओं में प्रत्येक नियोक्ता द्वारा अपने कर्मचारी की उन्नति हेतु भविष्य निधि की अनिवार्य स्थापना का प्रावधान करने के उद्देश्य से, ई.पी.एफ. अधिनियम अधिनियमित किया गया।

9. ई.पी.एफ. अधिनियम अपने विभिन्न वर्गों के अंतर्गत, कर्मचारी भविष्य निधि योजनाओं की स्थापना, अंशदान और योजना में प्रदान किए जाने वाले मामलों, नियोक्ता से देय धन के निर्धारण के प्रावधानों, देय राशि जमा करना, दंड की रीति, वसूली, आदि को शामिल करता है। ई.पी.एफ. अधिनियम की धारा 14-बी उन नुकसानों की वसूली करने की शक्ति प्रदान करती है, जो कि वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण है। ई.पी.एफ. अधिनियम की धारा 14-बी इस प्रकार है:-

“14बी. क्षति वसूली की शक्ति - जहां कोई नियोक्ता निधि, पेंशन निधि या बीमा निधि में किसी भी अंशदान के भुगतान में या धारा 15 की उप-धारा (2) या धारा 17 की उप-धारा (5) के अंतर्गत उसके द्वारा स्थानान्तरित करने योग्य जमा राशियों के स्थानान्तरण में चूक करता है या इस अधिनियम या योजना या बीमा योजना के अंतर्गत या धारा 17 के अंतर्गत निर्धारित शर्तों व परिस्थितियों के अंतर्गत, किन्हीं प्रभारों के भुगतान में चूक करता है तो केंद्रीय भविष्य निधि आयुक्त या केंद्रीय सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना के द्वारा प्राधिकृत ऐसा अधिकारी जैसा योजना में निर्धारित किया जाए, नियोक्ता से जुर्माने के रूप में ऐसी क्षति की वसूली कर सकेगा, जो कि बकाया चूक की राशियों की मात्रा से अधिक नहीं होगी।

बशर्ते ऐसी क्षति के निर्धारण एवं वसूली से पूर्व नियोक्ता को सुने जाने का उचित अवसर दिया जाएगा:

बशर्ते ऐसी स्थापना जो बीमार औद्योगिक कंपनी हो तथा जिसके लिए बीमार

औद्योगिक कंपनी अधिनियम, 1985 (1986 का 1) की धारा 4 के अंतर्गत स्थापित औद्योगिक एवं वित्तीय पुर्ननिर्माण बोर्ड (बी.आई.एफ.आर.) द्वारा पुर्नवास योजना स्वीकृत की गई है, के मामलों में लगाई गई क्षति को योजना में बनाई जाने वाली शर्तों एवं परिस्थिति के अनुरूप केंद्रीय बोर्ड कम कर सकता है या उनसे पूर्णतः मुक्त कर सकता है।”

10. ई.पी.एफ. अधिनियम की धारा 14-बी को नियोक्ता पर एक निवारक उपाय के रूप में कार्य करने के उद्देश्य से जोड़ा गया था ताकि उन्हें भविष्य निधि का भुगतान करने के अपने वैधानिक दायित्वों को पूरा न करने से रोका जा सके। धारा 14-बी ई.पी.एफ. अधिनियम के अंतर्गत क्षति दंडात्मक प्रकृति की है। यह धारा केंद्रीय भविष्य निधि आयुक्त या ऐसे अन्य अधिकारी को अधिकृत करती है, जो अनुकरणीय या दंडात्मक हर्जाना लगाने के लिए अधिकृत हो और इस तरह नियोक्ता को चूक करने से रोक सके। इस तरह के प्रावधान के अभाव में, नियोक्ता अपने भविष्य निधि अंशदान के भुगतान में जानबूझकर चूक कर सकता है और इस बीच अपने व्यवसाय में अपने और कर्मचारियों दोनों के योगदान का उपयोग कर सकता है। ऐसे मामले में, एक नियोक्ता, बिना किसी वास्तविक कारण के भविष्य निधि बकाया का भुगतान करने में विलम्ब कर सकता है तथा वह अपने भुगतान करने के दायित्व से, बिना किसी अतिरिक्त वित्तीय देनदारी के बच सकता है। इसे रोकने के लिए, उक्त धारा को ई.पी.एफ. अधिनियम का भाग बनाया गया तथा साथ ही उक्त धारा

के अंतर्गत शब्द "क्षति जो बकाया राशि के 25 प्रतिशत से अधिक न हो" को "बकाया राशि से अधिक न हो" से संशोधित किया गया।

11. ऑर्गनो केमिकल इंडस्ट्रीज व अन्य बनाम यू.ओ.आई. व अन्य, (1979) 4 एस.सी.सी. 573

में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन कारणों का उल्लेख किया गया है जिसके कारण संसद सदस्यों को विधि की पुस्तक में धारा 14-बी सम्मिलित करना पड़ा और कहा गया:-

"10. अपने कामकाज में, अधिकारियों को कुछ प्रशासनिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। एक नियोक्ता बिना किसी अतिरिक्त वित्तीय दायित्व के भविष्य निधि बकाया के भुगतान में देरी कर सकता है। तदनुसार, संसद ने बकाया राशि पर क्षति पूर्ति हेतु धारा 14-बी को शामिल किया। धारा 14-बी को लागू करने का कारण यह है कि नियोक्ता को भविष्य निधि का भुगतान करने के वैधानिक दायित्व को पूरा करने में चूक करने से रोका जा सके। धारा का उद्देश्य व प्रयोज क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त को अनुकरणीय या दंडात्मक हर्जाना लगाने के लिए अधिकृत करना और इस तरह नियोक्ताओं को चूक करने से रोकना है। धारा 14 -बी जैसा कि मूल रूप से अधिनियमित किया गया था, इस तरह की क्षति के लिए प्रावधान किया गया था, जो बकाया राशि के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं था। हालांकि, यह पर्याप्त रूप से निवारक साबित नहीं हुआ। नियोक्ता अभी भी भविष्य निधि में योगदान करने में चूक कर रहे थे तथा इस बीच वे अपने व्यवसाय में अपने योगदान के साथ-साथ कर्मचारियों के योगदान

दोनों का उपयोग कर रहे थे। इसलिए, क्षति की वसूली के लिए धारा 14-बी में निहित प्रावधान भ्रामक साबित हुए। तदनुसार, 1973 के अधिनियम 40 द्वारा, धारा 14-बी से शब्द "पच्चीस प्रतिशत" हटा दिए गए थे और "बकाया की राशि से अधिक नहीं" शब्द प्रतिस्थापित किए गए थे। इसका उद्देश्य क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त को ऐसी क्षतिपूर्ति लगाने की शक्ति देने का है कि नियोक्ता को भुगतान करने में चूक करना लाभदायक नहीं लगे।"

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा ऑर्गनो केमिकलस (उपरोक्त) के मामले में न्यायमूर्ति सेन के माध्यम से ई.पी.एफ. अधिनियम की धारा 14-बी के अंतर्गत "क्षति" के दायरे पर चर्चा की गई और निम्नानुसार अवलोकित किया:-

"22. धारा 14-बी में प्रयुक्त शब्द "क्षति" वास्तव में, वैधानिक दायित्व के उल्लंघन के लिए नियोक्ता पर लगाया गया जुर्माना है। धारा 14-बी के अंतर्गत जुर्माना लगाने का उद्देश्य मात्र "कर्मचारियों को मुआवजा प्रदान करना" नहीं है। हमारी स्पष्ट राय है कि धारा 14-बी के अंतर्गत हर्जाना लगाने से दोनों उद्देश्य पूर्ण होते हैं। इसका उद्देश्य चूक करने वाले नियोक्ता को दंडित करना तथा कर्मचारियों को हुए नुकसान की राशि के लिए मुआवजा प्रदान करना है। यह सामान्य तौर पर नियोक्ताओं के लिए न केवल धारा 6 की वैधानिक आवश्यकताओं का उल्लंघन न करने की चेतावनी है, अपितु साथ ही इसका उद्देश्य लाभार्थियों को मुआवजा या निवारण प्रदान करना है अर्थात् कर्मचारियों को उनके द्वारा

उठाए गए क्षति की भरपाई करना है। इस धारा में यह प्रदर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि क्षति का उस नुकसान से संबंध होना चाहिए जो योजना के अंतर्गत लाभार्थियों को हुआ है। धारा 14-बी में "क्षति" शब्द "चूक" शब्द से संबंधित है। धारा 14-बी में प्रयुक्त शब्द "अंशदान के भुगतान में चूक" है और इसलिए, "चूक" शब्द को धारा के पैरा 38 के आलोक में समझा जाना चाहिए, जो कहता है कि अंशदान का भुगतान अगले माह की 15 तारीख तक कर दिया जाए और, इसलिए, धारा 14-बी में "चूक" शब्द का अर्थ "निष्पादन में विफलता" या "कार्य करने में विफलता" होना चाहिए। साथ ही, धारा 14-बी के अंतर्गत क्षति का अधिरोपण कर्मचारियों को हुए नुकसान की राशि के लिए मुआवजा प्रदान करने हेतु है।"

उसी निर्णय में, न्यायमूर्ति सेन से सहमति व्यक्त करते हुए, न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर, द्वारा क्षति के संबंध में निम्नानुसार देखा गया:-

"38. "क्षति" से हमारा क्या तात्पर्य है? अभिव्यक्ति "क्षति" न तो अस्पष्ट है और न ही अतिव्यापक है। इसके एक से अधिक अभिप्राय हैं परन्तु किसी दिए गए संदर्भ में सटीक अर्थ को समझना मुश्किल नहीं है। प्रकारों की बहुलता मूल अवधारणा से उपजे शब्दों जैसे वास्तविक क्षति, नागरिक क्षति, प्रतिपूरक क्षति, परिणामी क्षति, आकस्मिक क्षति, निरंतर क्षति, दोहरी क्षति, अत्यधिक क्षति, अनुकरणीय क्षति, सामान्य क्षति, अपूरणीय क्षति, आर्थिक क्षति, संभावित क्षति,

विशेष क्षति, काल्पनिक क्षति, पर्याप्त क्षति, अनिर्धारित क्षति जैसे शब्दों में देखा जाता है। परन्तु आवश्यक चीजें हैं (ए) दूसरे के गलत काम से किसी अन्य का नुकसान, (बी) विधिक उपायों के माध्यम से घायल को मुआवजा दिया जाना, और (सी) नुकसान के लिए दोहरे घटक आर्थिक मुआवजे के और अक्सर, हमेशा नहीं, कानून द्वारा निवारक-सह-निंदा के रूप में एक दंडात्मक संयोजन द्वारा इसकी मात्रा का निर्धारण किया जाना। उदाहरण के लिए, "अनुकरणीय क्षति" बड़े हुए पैमाने पर क्षति होती है, जो वादी को कभी भी और उससे भी अधिक दी जाती है जो कि बमुश्किल उसकी संपत्ति के नुकसान की भरपाई करे, जहां उसके साथ किया गया गलत काम हिंसा, उत्पीड़न, द्वेष, धोखाधड़ी, या प्रत्यर्थी की ओर से प्रचंड और दुष्ट आचरण की परिस्थितियों से बदतर हो गया था तथा इसका उद्देश्य वादी को मानसिक पीड़ा, उसकी भावनाओं पर आघात, लज्जा, अपमान, या वास्तविक गलती की अन्य तीव्रता, या फिर प्रत्यर्थी को उसके बुरे व्यवहार के लिए दंडित करना या उसका उदाहरण बनाना, के लिए सांत्वना देना है, जिसके कारण उन्हें "दंडात्मक" या "दंडस्वरूप" हर्जाना या "प्रतिशोधात्मक" हर्जाना, और (अश्लील रूप से) "चतुर धन" भी कहा जाता है। (देखें ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, चौथा संस्करण, पृ. 467-648) हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए यह बताना पर्याप्त है कि हर्जाना प्रदान करने के लिए प्रदत्त शक्ति को अवधारणा को सामग्री और रूपरेखा द्वारा ही सीमांकित किया गया है और यदि न्यायालय

आयुक्त को, सीमा से परे पाता है तो आघात से गिरा दिया जाएगा। धारा 14-बी इन कारणों से अच्छी है।”

इसी संदर्भ में **हिंदुस्तान टाइम्स लिमिटेड बनाम यू.ओ.आई व अन्य, (1998) 2 एस.सी.सी. 242** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:-

”29. उपरोक्त निर्णयों से, निम्नलिखित सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

धारा 14-बी के अंतर्गत प्राधिकारी को मामले के तथ्यों और कारण बताओ नोटिस के जवाब पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग करना होगा और सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करते हुए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के उपरांत एक तर्कसंगत आदेश पारित करना होगा; क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त आमतौर पर चूक की संख्या, देरी की अवधि, चूक की आवृत्ति और इसमें शामिल धनराशि को ध्यान में रखते हैं; बिजली कटौती के तर्क के आधार पर नियोक्ता की ओर से चूक, अन्य ऋणग्रस्तता से संबंधित वित्तीय समस्याएं या चेक या ड्राफ्ट द्वारा भुगतान की गई राशि की वसूली में देरी, नियोक्ता के लिए दायित्व से बचने का उचित आधार नहीं हो सकता है; धारा 14-बी के अंतर्गत क्षति की वसूली के लिए कार्रवाई शुरू करने के लिए विधायिका द्वारा कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं की गई है। यह तथ्य कि कार्यवाही शुरू कर दी गई है या हर्जाने की मांग कई वर्षों के बाद की गई है, अपने आप में छूट लेने का आधार नहीं हो सकते हैं या नियोक्ता को यह

विश्वास दिलाया गया था कि धारा 14-बी के अंतर्गत कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी; धारा 14-बी के अंतर्गत कार्रवाई शुरू करने में मात्र देरी को पूर्वाग्रह नहीं माना जा सकता क्योंकि विभाग की ओर से देरी से नियोक्ता को केवल अपने उद्देश्यों के लिए धन का उपयोग करने की अनुमति मिलती या अपने व्यवसाय के लिए, विशेषकर तब जब ब्याज वसूलने का कोई अतिरिक्त प्रावधान नहीं है। हालाँकि, नियोक्ता पूर्वाग्रह का दावा तब कर सकता है, यदि इस बात के साक्ष्य हैं कि धारा 14-बी के अंतर्गत व्यतिक्रम की अवधि और कार्रवाई शुरू होने की तिथि के बीच, उसने अपनी स्थिति को इस हद तक बदल दिया है कि यदि वसूली कई वर्षों के बाद की जाती है तो उसके प्रति पूर्वाग्रह "अपरिवर्तनीय" प्रकृति का है; वह दावा कर सकता है उन सभी प्रासंगिक अभिलेखों के खो जाने का और/या उन कर्मियों की अनुपलब्धता का, जो कई वर्ष पूर्व इन भुगतानों के प्रभारी थे और बशर्ते कि वह यह भी साबित करे कि उसके पास अभिलेखों को पुनः तैयार करने का या साक्ष्य प्रस्तुत करने का, कोई अन्य तरीका नहीं है; या ऐसे ही अन्य आधार हैं जो "अपरिवर्तनीय" पूर्वाग्रह को जन्म दे सकते हैं; इसके अतिरिक्त, "अपरिवर्तनीय" पूर्वाग्रह के ऐसे मामलों में, व्यतिक्रमी को कारण बताओ नोटिस के जवाब में बचाव में आवश्यक तर्क देने होंगे तथा संबंधित प्राधिकारी को स्वीकार्य सामग्री से संतुष्ट करना होगा; यदि उन तर्कों को खारिज कर दिया जाता है, तो वह उन्हें उच्च न्यायालय में नहीं उठा सकता जब तक कि रिट याचिका में इस आशय की स्पष्ट तर्क न किए गए हो।”

12. इसके अतिरिक्त, ई.पी.एफ. अधिनियम की धारा 14-बी के अंतर्गत, संबंधित प्राधिकारी को अधिकतम सीमा तक जुर्माना लगाने का अधिकार है, अर्थात्, "ऐसी क्षति, जो बकाया राशि से अधिक न हो, जैसा कि योजना में निर्दिष्ट किया गया हो", हालांकि, यह अनिवार्य नहीं है कि सक्षम प्राधिकारी नियमित या यांत्रिक अभ्यास के रूप में, उक्त धारा के अंतर्गत प्रदान की गई क्षति की अधिकतम सीमा हमेशा लागू करे। अपितु, संबंधित प्राधिकारी से एक आदेश पारित करने की अपेक्षा की जाती है जो ई.पी.एफ. अधिनियम की योजना में धारा 14-बी की शुरुआत के उद्देश्य को पूरा करेगा।

13. अतः, संबंधित प्राधिकारी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि एक बार जब वह जुर्माना लगाने का मन बना ले तो उसे उस क्षति की मात्रा भी तय करनी चाहिए, जो वह चूक करने वाले पक्ष पर लगाना चाहता है। यहां भी सक्षम प्राधिकारी मामले के उचित तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद ही क्षति की मात्रा तय करने के लिए बाध्य है।

14. साथ ही, ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम, भारत में शैक्षणिक संस्थानों पर लागू होता है जैसा कि कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 के पैरा 1 (3) (बी) (96) में दिया गया है ("जैसा कि निर्दिष्ट शैक्षणिक, वैज्ञानिक, अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थानों के संबंध में, भारत सरकार के श्रम मंत्रालय की अधिसूचना संख्या एस.ओ. 986,

दिनांकित 19 फरवरी 1981, भारत के राजपत्र के भाग 2, खंड 3, उप-खंड (2) दिनांकित 6 मार्च 1982 में प्रकाशित है")

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मेसर्स डी.ए.वी. कॉलेज व अन्य बनाम क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त व अन्य, 1988 (सप्ल) एस.सी.सी. 518** के मामले में, निम्नानुसार कहा:-

"याचिकाकर्ताओं के लिए श्री एस.के. बग्गा, विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हुए। हमें इन मामलों में याचिकाकर्ताओं के इस तर्क में कोई सार नहीं मिला कि कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 (एतदपश्चात् "अधिनियम" के रूप में संदर्भित किया गया) उन शैक्षणिक संस्थानों पर लागू नहीं होता है जो इन मामलों में याचिकाकर्ता हैं। इसलिए, हम इन सभी मामलों को खारिज करते हैं।"

16. वर्तमान मामले में, प्रथमतः मैं प्रतिष्ठान ने इस आधार पर अधिनियम की प्रयोज्यता पर विवाद किया कि वे कभी भी 20 या अधिक व्यक्तियों को नियोजित नहीं कर रहे थे और अधिनियम के अंतर्गत 7-ए कार्यवाही के लंबित होने के कारण विलम्ब हुआ था, हालांकि तत्पश्चात् प्रतिष्ठान ने अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन शुरू कर दिया था तथा 08/90 से 01/96 अर्थात् आच्छादन से, तक की अवधि के लिए मांग नोटिस के अनुपालन में बकाया राशि जमा कर दी थी।

17. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी अधिवक्ता के इस तर्क पर विवाद नहीं

किया कि याचिकाकर्ता आच्छादन पत्र दिनांकित 27.03.1991 द्वारा ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम, 1952 के अंतर्गत दिनांक 01.07.1990 से आच्छादित था तथा बाद के चरण में दायित्व स्वीकार किया तथा अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन शुरू कर दिया। एक बार जब याचिकाकर्ता ने आच्छादन की तिथि से अधिनियम की प्रयोज्यता को स्वीकार कर लिया, तो संस्थान विलंबित अनुपालन के लिए दंडात्मक क्षति का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है।

18. प्रत्यर्थी संख्या 1 व 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **होटिकल्चर एक्सपेरिमेंट स्टेशन गोनिकोप्पल, कूर्ग बनाम क्षेत्रीय भविष्य निधि संगठन (2022) 4 एस.सी.सी. 516** में पारित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया, जिसमें निम्नलिखित अवलोकन किया गया है:-

”भारत संघ व अन्य बनाम धर्मद्व टेक्सटाइल प्रोसेसर्स व अन्य (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, जो वास्तव में हमारे लिए बाध्यकारी है, हमारा विचार है कि अधिनियम के अंतर्गत नियोक्ता द्वारा ई.पी.एफ. अंशदान के भुगतान में कोई भी व्यतिक्रम या देरी, अधिनियम 1952 की धारा 14बी के अंतर्गत हर्जाना लगाने के लिए एक अनिवार्य शर्त है तथा नागरिक दायित्वों/ देनदारियों के उल्लंघन के लिए जुर्माना/ क्षतिपूर्ति लगाने के लिए दोषी

मस्तिष्क या दोषी कृत्य एक आवश्यक तत्व नहीं है।”

19. मामले की ऐसी परिस्थितियों में यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता प्रतिष्ठान ने लंबे समय से भविष्य निधि के बकाया के भुगतान में चूक की है और उक्त कारण से वह ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम 1952 की धारा 14-बी के प्रावधानों के अंतर्गत विलंबित भुगतान पर हर्जाने का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है क्योंकि भविष्य निधि अंशदान जमा करने में याचिकाकर्ता की ओर से देरी हुई थी और इसलिए याचिकाकर्ता ई.पी.एफ. अधिनियम की धारा 14-बी के अनुसार हर्जाना देने के लिए उत्तरदायी है। धारा 14-बी में होने वाली क्षति, वास्तव में, वैधानिक दायित्व के उल्लंघन के लिए नियोक्ता पर लगाया जाने वाला जुर्माना है। धारा 14-बी के अंतर्गत जुर्माना लगाने का उद्देश्य मात्र ”कर्मचारियों को मुआवजा प्रदान करना” नहीं है। धारा 14-बी के अंतर्गत हर्जाना लगाने से दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं। इसका उद्देश्य व्यतिक्रमी नियोक्ता को दंडित करना और कर्मचारियों को हुए नुकसान की राशि के लिए मुआवजा प्रदान करना है। यह सामान्य तौर पर नियोक्ताओं के लिए न केवल धारा 6 की वैधानिक आवश्यकताओं का उल्लंघन न करने की चेतावनी है, अपितु साथ ही इसका उद्देश्य लाभार्थियों को मुआवजा या निवारण प्रदान करना है अर्थात् कर्मचारियों को उनके हुए नुकसान की भरपाई करना है।

20. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, इस न्यायालय की राय है कि प्रत्यर्थी नंबर 1 ने ई.पी.एफ. एवं एम.पी. अधिनियम, 1952 की धारा 14-बी के अंतर्गत आक्षेपित आदेश दिनांकित 22.01.1999 को उचित रूप से पारित किया है। इसलिए, रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और खारिज किए जाने योग्य है।

21. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है। स्थगन आदेश, यदि कोई हो, निरस्त माना जाएगा।

(2023) 4 ILRA 654

मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,
रिट-सी संख्या 1007386/2009

राज किशोर धौन ... याचिकाकर्ता
बनाम
रजिस्ट्रार सहकारी समितियां उ.प्र. और अन्य
... प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: अनुराग कुमार सिंह
अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

क. उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 धारा 68 - अधिभार - पूर्व अनुग्रह का भुगतान - बैंक को नुकसान हुआ - अधिभार लगाया गया - वैधता को चुनौती दी गई - कोई नोटिस नहीं दिया गया - प्रभाव - स्वीकृत रूप से जांच रिपोर्ट में याचिकाकर्ता को उत्तरदायी नहीं था। केवल वसूली का आदेश पारित कर दिया गया है। जांच रिपोर्ट याचिकाकर्ता का नाम इंटरपोलेशन/

ओवरराइटिंग द्वारा डाला गया - प्रभाव - आयोजित, जांच रिपोर्ट या कारण बताओ नोटिस में भी कोई परिणाम नहीं निकला कि याचिकाकर्ता 1995-96 की अनुग्रह राशि का भुगतान के लिए उत्तरदायी है, अतः, इस कारण अधिभार नहीं लगाया जा सकता है। (पैरा 15 और 16)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

रघुनंदन प्रसाद पांडे और अन्य बनाम सहकारी अधिकरण लखनऊ एवं अन्य; 1982 एससीसी ऑनलाइन ऑल 913

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह और राज्य/प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.सी.राय को सुना और साथ ही अभिलेख का अवलोकन किया।

2. याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश सहकारी न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.10.2009 को चुनौती दी है जिसके द्वारा उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 (इसकेबाद संक्षेप में 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 68(2) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता पर अधिभार लगाया गया है और उसे ब्याज सहित 33,56,479/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को भी

दिनांक 17.4.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया है, जिसे इस याचिका में भी चुनौती दी गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि निबंधक, सहकारी समितियाँ उत्तर प्रदेश ने आदेश दिनांक 19.6.1986 के द्वारा सहकारी समितियों के कर्मचारियों को अनुग्रह राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया। निबंधक का यह निर्देश केवल वित्तीय वर्ष 1984-85 के लिए था, हालांकि उसके बाद कर्मचारियों को इसका भुगतान जारी रखा गया। दिनांक 27.4.1995 को जब याचिकाकर्ता सचिव/महाप्रबंधक, जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, लखीमपुर खीरी के रूप में तैनात था, बैंक की प्रबंधन समिति ने अपने कर्मचारियों को वित्तीय वर्ष 1994-95 के लिए अनुग्रह राशि के भुगतान के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। तत्पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि दिनांक 10.05.1995 को निबंधक, सहकारी समितियाँ उत्तर प्रदेश ने एक आदेश जारी कर सचिव महाप्रबंधक सहकारी बैंक, उत्तर प्रदेश को निर्देशित किया कि कर्मचारियों को बोनस या अनुग्रह राशि की सुविधा न दी जाये। यह आदेश दिनांक 10.5.1995, जिला सहकारी बैंक लिमिटेड लखीमपुर खीरी के कार्यालय में दिनांक 02.06.1995 को प्राप्त हुआ। याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.04.1995 के प्रस्ताव के कार्यान्वयन के लिए कोई कार्रवाई नहीं की और वित्तीय वर्ष 1994-95 के लिए याचिकाकर्ता को संबंधित सोसायटी में तैनात किए जाने तक कर्मचारियों को कोई अनुग्रह राशि का भुगतान नहीं किया गया। इसी बीच दिनांक 04.08.1995 को याची का

स्थानांतरण मुरादाबाद हो गया। याचिकाकर्ता दिनांक 09.08.1995 को अवकाश पर चला गया। उसके बाद दिनांक 19.8.1995 के आदेश के माध्यम से, आदेश दिनांक 04.08.1995 को संशोधित किया गया और याचिकाकर्ता को सचिव/महाप्रबंधक, जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, हरदोई के रूप में हरदोई स्थानांतरित कर दिया गया। दिनांक 24.08.1995 को याचिकाकर्ता को जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, लखीमपुर खीरी से मुक्त कर दिया गया और सुरेंद्र सिंह सेंगर ने दिनांक 14.10.1995 को सचिव/महाप्रबंधक का कार्यभार संभाला। बैंक की प्रबंधन समिति ने, जब सुरेंद्र सिंह सेंगर, सचिव/महाप्रबंधक को सोसायटी के सचिव के रूप में तैनात किया गया था, निबंधक के परिपत्र दिनांक 10.05.1995 पर विचार करते हुए यह कारण बताते हुए कि इसका भुगतान पिछले वर्षों में किया जा रहा था और बैंक लाभ में था, कर्मचारियों को अनुग्रह राशि देने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया, इस तथ्य को नजरअंदाज करते हुए कि निबंधक के दिनांक 10.5.1995 के प्रस्ताव में स्पष्ट निषेध है। वित्तीय वर्ष 1995-96 और 1996-97 से संबंधित बैंक के विशेष अंकेक्षण में अंकेक्षण आपत्ति उठाई गई थी और सुरेंद्र सिंह सेंगर को 1995-96 और 1996-97 में संबंधित पिछले दो वर्षों में अनुग्रह राशि के भुगतान के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था। (अनुलग्नक-10)। इसके बाद अधिनियम की धारा 68(1) के तहत एक जांच की गई और जांच अधिकारी द्वारा आख्या प्रस्तुत की गई, जिसमें सुरेंद्र सिंह सेंगर को अनुग्रह राशि का भुगतान करने और बैंक को पूरी 78,42,167/- रुपये की हानि के लिए

जिम्मेदार ठहराया गया है। हालांकि जांच आख्या में याचिकाकर्ता को बैंकको हुए नुकसान के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया गया। हालांकि टंकणीत जांच आख्या(अनुलग्नक11) में हाथ से अधिलेखन/ प्रक्षेप करके नाम डाला गया है। यह उल्लेख करना उचित होगा कि अधिनियम की धारा 68(1) के तहत जांच में बैंक की तत्कालीन प्रबंधन समिति को भी जिम्मेदार ठहराया गया था। दिनांक 23.01.2006 को याचिकाकर्ता को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, हालांकि, याचिकाकर्ता के नाम के सामने गलत आंकड़ों का उल्लेख किया गया था और याचिकाकर्ता को 1996-97 में बोनस के भुगतान और 1996-97 में अनुग्रह राशि के भुगतान के लिए कारण बताओ नोटिस दिया गया था, जब उनकी बैंक में तैनाती भी नहीं हुई थी। याचिकाकर्ता द्वारा कारण बताओ नोटिस का उत्तर दिनांक 07.11.2006 को (अनुपूरक जवाबी हलफनामा का अनुलग्नकएससीए-1) प्रस्तुत किया गया था, जिसमें उसने दावा किया है कि उसने दिनांक 10.05.1995 के आदेश के बाद कोई भुगतान नहीं किया है और निबंधक द्वारा पारित आदेश का पालन किया है। यह स्वीकृति रूप से याचिकाकर्ता के कार्यकाल के दौरान प्रबंधन समिति के किसी भी प्रस्ताव को रद्द करने के लिए निबंधक का कोई निर्देश नहीं है, निर्देश केवल भुगतान नहीं करने का है (अनुलग्नक12)।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 की धारा 68 (2) के तहत उस आदेश को अधिभार लगाते हुए

पारित किया गया है और याचिकाकर्ता को ब्याज सहित रुपये 35,56,479/- का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है।

5. उनका कहना है कि यद्यपि जांच आख्या में प्रबंधन समिति, जिसने दिनांक 27.04.1995 को प्रस्ताव पारित किया था, को जिम्मेदार ठहराया गया है, तथापि, उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 की धारा 68 (2) के तहत आदेश पारित करते हुए इसके लिए कोई निष्कर्ष दर्ज किए बिना इसे दोषमुक्त कर दिया गया है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को 35,56,479/- रुपये का भुगतान करने के लिए कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया है, बल्कि याचिकाकर्ता को जो कारण बताओ नोटिस दिया गया है, वह अलग आंकड़े के लिए है। इस प्रकार, कारण बताओ नोटिस भी विवेक का प्रयोग किये बिना जारी किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश सहकारी न्यायाधिकरण के समक्ष दायर अपील संख्या 81/2007 को प्रासंगिक तथ्यों पर विचार किए बिना और केवल इस तथ्य पर खारिज कर दिया गया है कि सुरेंद्र सिंह सेंगर द्वारा दायर अपील खारिज कर दी गई थी।

7. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता दिनांक 27.4.1995 के प्रस्ताव को रद्द करने के लिए बाध्य था और प्रस्ताव पारित करके जो

कि दिनांक 27.4.1995 के प्रस्ताव का हिस्सा था, उसने समिति को नुकसान पहुंचाया है।

8. न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार किया है।

9. उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 की धारा 68 के अन्तर्गत परिभाषित अधिभार का प्रावधान नीचे दिया गया है:-

"68. अधिभार. - (1) यदि अंकेक्षण निरीक्षण के दौरान या किसी सहकारी समिति को बंद करने के दौरान यह पाया जाता है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे ऐसी समिति का संगठन या प्रबंधन सौंपा गया है था, या जो किसी भी समय समिति का कोई अधिकारी या कर्मचारी है या रहा हो, इस अधिनियम, नियमों या उपनियमों के विपरीत कोई भुगतान किया हो या करवाया हो या विश्वास का उल्लंघन करके समिति की संपत्ति में कोई कमी की हो या जानबूझकर लापरवाही की है या ऐसी समिति से संबंधित किसी भी धन या अन्य संपत्ति का दुरुपयोग किया है या धोखाधड़ी की है, तो निबंधक अपनी स्वयं की प्रेरणा से या समिति, परिसमापक या किसी लेनदार के आवेदन पर, स्वयं पूछताछ कर सकता है या इस संबंध में लिखित आदेश देकर उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति के आचरण की जांच करने के लिए निर्देशित कर सकता है: बशर्ते कि इस उप-धारा में निर्दिष्ट किसी भी कार्य या चूक की तिथि से

बारह वर्ष की समाप्ति के बाद ऐसी कोई जांच शुरू नहीं की जाएगी।"

(2) जहां उप-धारा (1) के तहत कोई जांच की जाती है, निबंधक संबंधित व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद, अधिभार का आदेश दे सकता है, जिससे उसे संपत्ति बहाल करने या धन या उसके किसी हिस्से को चुकाने की आवश्यकता होगी, ऐसी दर पर ब्याज के साथ, या उस सीमा तक योगदान और लागत या मुआवजे का भुगतान करना, जिसे निबंधक उचित और न्याय संगत समझे। (3) जहां उप-धारा (2) के तहत किसी व्यक्ति के विरुद्ध न्यास भंग या जानबूझकर लापरवाही के कारण समिति की संपत्ति में कोई कमी करने, या किसी भी धन का दुरुपयोग या ऐसी समिति से संबंधित किसी भी धन या अन्य संपत्ति का दुरुपयोग करने या धोखाधड़ी से अपने पास रखने के लिए अधिभार का आदेश पारित किया गया है, ऐसे व्यक्ति को, ऐसे आदेश के खिलाफ अपील के परिणाम के अधीन, यदि कोई दायर की गयी हो, अधिभार के आदेश की तिथि से पांच साल की अवधि के लिए किसी भी सहकारी समिति में बने रहने या निर्वाचित होने या नियुक्त होने से अयोग्य ठहराया जाएगा।"

10. अधिनियम की धारा 68 की उपधारा 1 के अवलोकन से पता चलता है कि अंकेक्षण निरीक्षण के दौरान या एक सहकारी समिति को बंद करने के दौरान यह पाया गया है कि कोई भी व्यक्ति, जिसे ऐसी समिति का संगठन या प्रबंधन सौंपा गया है या था, या जो किसी भी समय समिति का कोई अधिकारी या कर्मचारी है या रहा हो, इस अधिनियम, नियमों या

उपनियमों के विपरीत कोई भुगतान किया हो या करवाया हो या विश्वास का उल्लंघन करके समिति की संपत्ति में कोई कमी की हो या जानबूझकर लापरवाही की है या ऐसी समिति से संबंधित किसी भी धन या अन्य संपत्ति का दुरुपयोग किया है या धोखाधड़ी की है, तो निबंधक अपनी स्वयं की प्रेरणा से या समिति, परिसमापक या किसी लेनदार के आवेदन पर, स्वयं पूछताछ कर सकता है या इस संबंध में लिखित आदेश देकर उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति को ऐसे व्यक्ति के आचरण की जांच करने के लिए निर्देशित कर सकता है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अंततः यह प्रस्तुत किया कि केवल जानबूझकर की गई लापरवाही के अस्तित्व का केवल इस आधार पर अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, कि समिति को नुकसान हुआ है। प्राधिकारी या न्यायाधिकरण को इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ आधार होना चाहिए कि याचिकाकर्ता ने समिति को या तो वित्तीय नुकसान पहुंचाया है या करवाया है। अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने रघुनंदन प्रसाद पांडे और अन्य बनाम सहकारी न्यायाधिकरण लखनऊ और अन्य 982 SCC OnLine All 913 के वाद में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। निर्णय के प्रस्तर 8 और 9 पर जोर दिया गया है।

12. रघुनंदन प्रसाद पांडे (उपरोक्त) के प्रासंगिक प्रस्तर 8 और 9 नीचे दिए गए हैं:
-8. वर्तमान वाद में प्रतिवादियों द्वारा इस

आशय का कोई दावा नहीं किया गया है कियाचिकाकर्ताओं ने अधिनियम, नियमों या उपनियमों के विपरीत कोई भुगतान किया है या करवाया है। यह भी आरोप नहीं है कि याचिकाकर्ताओं या उनमें से किसी ने समिति के किसी भी धन या अन्य संपत्ति का दुरुपयोग किया या धोखाधड़ी से उसे अपने पास रख लिया। विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा रखा गया भरोसा विशेष रूप से संबंधित व्यक्ति द्वारा जानबूझकर लापरवाही से समिति की संपत्ति में कमी पैदा करने से संबंधित प्रावधान पर प्रतीत होता है। किसी भी याचिकाकर्ता पर न्यास भंग करने का कोई तत्व नहीं है। जानबूझ कर की गई लापरवाही के संबंध में ?जानबूझ? और ?जानबूझकर? शब्द कई संविधियों में अक्सर प्रयोग किया जाता रहा है और समय-समय पर न्यायालयों में न्यायिक विचार के लिए आते रहे हैं। रामचन्द्र बनाम मैसूर राज्य (AIR 1964 SC 1701): (1964 All LJ 822) में, भारतीय डाकघर अधिनियम, 1898 की धारा 53 के संदर्भ में, प्राधिकारियों की समीक्षा के बाद, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि नहीं यदा-कदा शब्द ?जानबूझ? या ?जानबूझकर? इसका उपयोग इस अर्थ में किया गया है कि कार्य किसी बुरे उद्देश्य से या बिना किसी उचित बहाने के या हठपूर्वक, हठधर्मिता पूर्वक या विकृत तरीके से किया गया था। 9. मौजूदा वाद में 25 सितंबर, 1974 को जारी कारण बताओ नोटिस में, याचिकाकर्ताओं के खिलाफ जानबूझकर लापरवाही का कोई आरोप नहीं लगाया गया है। जिला सहायक निबंधक, सहकारी समितियां, बांदा द्वारा 30 दिसंबर 1974 को दिया गया आदेश भी जानबूझकर की गई लापरवाही के

किसी भी कृत्य के संबंध में मौन है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिला सहायक रजिस्ट्रार ने वास्तव में यू.पी. सहकारी समिति नियमावली, 1965, के नियम 115 को ध्यान में रखा है। जिसके अनुसार सहकारी समिति के मामलों के संचालन में, प्रबंधन समिति का प्रत्येक सदस्य समिति के अधिनियम, नियमों और उप-कानूनों के प्रावधानों के तहत एक सामान्य व्यवसायी व्यक्ति की तरह विवेक और परिश्रम का प्रयोग करेगा, इसके विपरीत कोई कार्य नहीं करेगा और सोसायटी के अधिनियम, नियमों या उप-कानूनों के तहत सौंपे गए कर्तव्यों के प्रदर्शन में चूक नहीं होगी। यह मानते हुए कि इस मामले में याचिकाकर्ताओं की ओर से उचित विवेक और परिश्रम की कमी थी, केवल इस आधार पर धारा 68 के तहत लगाए गए अधिभार के लिए कोई दायित्व नहीं है। जानबूझकर की गई लापरवाही का केवल इस आधार पर अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि समिति को 5166.52 रुपये का नुकसान हुआ है। जैसा कि न्यायाधिकरण ने इस मामले में सोचा है। न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया आदेश इस निष्कर्ष पर पहुंचने का आधार नहीं बताता है, सिवाय इसके कि इसमें समिति की संबंधित वर्ष की वित्तीय विवरण का संदर्भ दिया गया है। वित्तीय विवरण की प्रासंगिक सामग्री को याचिका के साथ दिए गए हलफनामे में समझाया गया है, जिसका दूसरे पक्ष द्वारा विशेष रूप से विरोध नहीं किया गया है। लाखन सिंह नर्बदा प्रसाद के साथ एक करार करने का निर्णय प्रबंधन समिति द्वारा पारित एक प्रस्ताव के तहत लिया गया था और इसआशय का कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया

गया है कि याचिकाकर्ता व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से इस करार के मामले में या उसके संचालन में जानबूझकर लापरवाही के दोषी थे। याचिकाकर्ताओं की ओर से यह भी कहा गया कि समिति की संपत्ति में किसी प्रकार की कमी का कोई मामला नहीं है। सवाल यह है कि क्या समिति को संबंधित व्यापार या व्यवसाय करने में हुई हानि के लिए प्रबंधन समिति के सदस्यों के खिलाफ धारा 68 के तहत अधिभार का आदेश पारित किया जा सकता है। यह मानते हुए कि किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, ऐसा करना संभव है, जिसके लिए हमें यहां कोई राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है, जानबूझकर लापरवाही या विश्वास का उल्लंघन या दुरुपयोग आदि का अस्तित्व, जैसा भी मामला हो, धारा 68 के उपधारा(1)अनुसार अपरिहार्य बना हुआ है।

13. मौजूदा वाद में, याचिकाकर्ता को दिनांक 27.4.1995 को समिति के सचिव/महाप्रबंधक के रूप में तैनात किया गया था, जिसमें कर्मचारियों को वित्तीय वर्ष 1994-95 के लिए अनुग्रह राशि के भुगतान का प्रस्ताव पारित किया गया था। निबंधक द्वारा दिनांक 10.5.1995 निरोधक आदेश पारित किया गया था जिसमें राज्य के सभी जिला सहकारी बैंकों को कर्मचारियों को बोनस या अनुग्रह राशि की सुविधा प्रदान नहीं करने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ता को दिनांक 24.8.1995 को जिलासहकारी बैंक लखीमपुर खीरी से स्थानांतरित और कार्यमुक्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता के स्थानांतरण के बाद निबंधक के आदेश को ध्यान में रखते हुए दिनांक

14.10.1995 का संकल्पपारित किया गया प्रतीत होता है जिसके द्वारा समिति/बैंक के कर्मचारियों को इस आधार पर अनुग्रह राशि देने का निर्णय लिया गया था कि पिछले वर्षों में भुगतान किया गया था और बैंकलाभ में था।

14. विद्वान स्थायी अधिवक्ता की यह दलील है कि दिनांक 27.4.1995 के प्रस्ताव द्वारा याचिकाकर्ता ने अधिनियम के विपरीत कोई भुगतान किया है या करवाया है, गलत प्रतीत होता है क्योंकि दिनांक 27.4.1995 के प्रस्ताव के बाद याचिकाकर्ता को समिति से स्थानांतरित कर दिया गया था और 24.8.1995 को कार्यमुक्त कर दिया गया था। इसके बाद जब सुरेंद्र सिंह सेंगर सचिव/महाप्रबंधक थे, दिनांक 14.10.1995 को प्रस्ताव पारित किया गया, उन्होंने निबंधक के दिनांक 10.5.1995 के निरोधक आदेश को ध्यान में रखते हुए यह कारण बताते हुए कहा कि इसका भुगतान पिछले वर्षों में किया जा रहा था और बैंक लाभ में था, ने कर्मचारियों को अनुग्रह राशि का भुगतान करने का निर्णय लिया। इस प्रकार, प्रथम दृष्टया प्रस्ताव दिनांक 14.10.1995 से यह स्पष्ट है कि कर्मचारियों को अनुग्रह राशि का भुगतान दिनांक 14.10.1995 के प्रस्ताव के परिणामस्वरूप किया गया था, जिसे पारित करते समय निबंधक के उक्त प्रस्ताव दिनांक 10.5.1995 के आदेश को ध्यान में रखा गया था। इसलिए, इस हद तक प्रस्तुत करना कि याचिकाकर्ता ने अधिनियम के विपरीत कोई भुगतान किया है, सही नहीं है। कारण बताओ नोटिस से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को रुपये 42,85,608/- तक नुकसान पहुंचाने

के लिए कारण बताओ नोटिस दिया गया था, हालांकि, यह स्वीकृत है कि याचिकाकर्ता पर गए जुर्माने अर्थात् 35,56,479/- रुपये के लिए कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया है।

15. अब तक विद्वान स्थायी अधिवक्ता की दूसरी दलील यह है कि याचिकाकर्ता, समिति के सचिव के रूप में तैनात रहते हुए, दिनांक 27.4.1995 के प्रस्ताव को रद्द कराने में विफल रहा है, यह भी गलत प्रतीत होता है क्योंकि उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 128 समिति के सचिव पर कोई दायित्व नहीं डालती है। उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम की धारा 128 के तहत केवल निबंधक ही समिति द्वारा पारित प्रस्ताव को रद्द करने के लिए शक्ति का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दिनांक 27.10.1995 के प्रस्ताव के अनुसार भुगतान नहीं किया गया है। याचिका के जनपद लखीमपुर खीरी में रहते हुए भी भुगतान नहीं किया गया है। इसके विपरीत भुगतान दिनांक 14.10.1995 के प्रस्ताव के अनुसरण में किया गया है, यहां तक कि दिनांक 10.5.1995 का परिपत्र पत्र भी किसी भी सचिव/महाप्रबंधक को अनुग्रह राशि के भुगतान के लिए अधिनियम की धारा 128 के तहत निबंधक को प्रस्ताव रद्द करने के लिए बैंक के बोर्ड द्वारा पारित प्रस्तावों को संदर्भित करने का निर्देश नहीं देता है। बोर्ड ने अपने प्रस्ताव में निबंधक के दिनांक 10.5.1995 के आदेश पर विचार करते हुए और रोक के बावजूद कर्मचारियों को अनुग्रह राशि का भुगतान करने का निर्णय लिया। यह भी स्पष्ट है कि वित्तीय वर्ष 1995-96 और

1996-97 के लिए अनुग्रह राशि का भुगतान सुरेंद्र सिंह सेंगर के कार्यकाल के दौरान किया गया है, इस प्रकार ऊपरकी गई चर्चा से यह स्पष्ट है निबंधक को अधिनियम की धारा 128 के तहत कि प्रबंधन समिति के दिनांक 27.4.1995 के प्रस्ताव के गैर-संदर्भ को यह नहीं माना जा सकता है कि याचिकाकर्ता ने वित्तीय नुकसान किया है या समिति को वित्तीय नुकसान पहुंचाया है। इसके अलावा, प्रबंधन समिति पर या उसके सदस्यों पर कोई अधिभार नहीं लगाया गया है। स्वीकार्य रूप से याचिकाकर्ता को जांच आख्या में जिम्मेदार नहीं ठहराया गया है केवल वसूली का आदेश पारित किया गया है। जांच आख्या में याचिकाकर्ता का नाम प्रक्षेप/अधिलेखन द्वारा डाला गया है। प्रबंधन समिति को अंतिम आदेश दिनांक 17.4.2007 द्वारा बिना कोई निष्कर्ष दर्ज किए दोषमुक्त कर दिया गया है। रुपये 1035,56,479/- के भुगतान के लिए अधिभार लगाया गया है, जिसके लिए याचिकाकर्ता को कोई कारणबताओ नोटिस नहीं दिया गया है।

16. जांच आख्या या कारण बताओ नोटिस दिनांक 23.1.2006 में भी ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकला कि याचिकाकर्ता वर्ष 1995-96 की अनुग्रह राशि के भुगतान के लिए उत्तरदायी है, इसलिए, इस कारण से अधिभार नहीं लगाया जा सकता है।

17. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, याचिका स्वीकार की जाती है। प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 14.10.2009 और प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक

17.4.2007 को इसके द्वारा रद्द किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 660

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह

रिट-सी संख्या 3001168/1980

उत्तर प्रदेश राज्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

कैलाश नाथ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सी.एस.सी.

अधिवक्ता प्रतिवादी: बी.आर. त्रिपाठी, राजेउ कुमार त्रिपाठी

सिविल कानून-यूपी भूमि जोत पर सीलिंग लगाने का अधिनियम अधिनियम, 1960 - धारा 37, 38 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908-धारा 96, आदेश-41 नियम 31-सीलिंग अपील में पारित आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका जिसके तहत खातेदार की अधिशेष भूमि घोषित करने के आदेश को अपास्त कर गया था -अपीलीय प्राधिकारी सीपीसी के आदेश 41 नियम 31 के तहत प्रदान की गई तरीके से अपील पर विचार करेगा- वसीयत, बिक्री विलेख और दत्तक ग्रहण विलेख के संबंध में प्रथम अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष स्पष्ट और ठोस साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं हैं- निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर अपीलीय न्यायालय द्वारा अपने सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया गया है और न ही कोई कारण शामिल किया गया है कि निर्धारित प्राधिकारी का निष्कर्ष गलत था

और न ही निर्धारित प्राधिकारी के निष्कर्षों को परिवर्तित कर दिया गया है। परिणाम-वाद अपीलीय प्राधिकारी को वापस भेज दिया गया।

रिट याचिका स्वीकृत (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. सुदर्शन पुहान बनाम जयन्त कु. मोहंती और अन्य (2018) 10 एससीसी पृष्ठ 552
2. यू.पी. राज्य बनाम बांके सिंह एवं अन्य 1996 (27) ए.एल.आर. पृष्ठ 445
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमर सिंह एवं अन्य (1997) 1 एससीसी पृष्ठ 734
4. नवल सिंह बनाम यूपी राज्य व अन्य (1995) अनुपूरक I एससीसी पृष्ठ 204
5. बृजेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1981 (1) एससीसी पृष्ठ 597
6. मुल्क नाथ सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-सी संख्या 3000002/1996, निर्णय दिनांक 13.10.2022
7. रथिनम @ कुप्पामुथु और अन्य बनाम एल.एस. मरिअप्पन और अन्य [(2007) 6 एससीसी 724]

(माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता द्वारा मृतक प्रतिपक्षी संख्या-2 दीनानाथ, जिनकी मृत्यु 20.10.2017 को हुई थी, के उत्तराधिकारियों को रिकॉर्ड में लाने के लिए दो प्रस्तुत आवेदन दायर किए गए हैं। रिकॉर्ड से संकेत मिलता है कि मृतक के प्रस्तावित कानूनी उत्तराधिकारियों को नोटिस जारी किए गए थे। तत्पश्चात श्री राजेवर

कुमार त्रिपाठी के अधिवक्ता ने अपना वकालतनामा दायर किया है।

उपर्युक्त तथ्यों और आवेदन में दर्शाए गए आधार, जो पर्याप्त पाए जाते हैं, को ध्यान में रखते हुए, तदनुसार, आवेदनों को अनुमति दी जाती है। अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता आवश्यक संशोधन करेंगे।

राज्य-याचिकाकर्ता के लिए अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जी.के. पाठक और श्री रिज्यू कुमार त्रिपाठी, निजी प्रतिपक्षियों के लिए पेश होने वाले अधिवक्ता को योग्यता के आधार पर सुना।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर प्रस्तुत याचिका के माध्यम से, राज्य ने सीलिंग अपील संख्या-148 वर्ष 1979 में जिला न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 27.11.1979 को चुनौती दी जिसमें निजी प्रतिपक्षियों की अपील को अनुमति दी गई थी और निर्धारित प्राधिकरण कैसरगंज जिला बहराइच द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.03.1979 को जोत धारक दीनानाथ की 71.373 एकड़ भूमि को अधिशेष घोषित किया गया था।

यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि अपीलीय अदालत के समक्ष अपील कैलाशनाथ और मूलचंद द्वारा दायर की गई थी जो दीनानाथ के बेटे हैं और उन्हें निजी प्रतिपक्षी संख्या-1 और 2 के रूप में पेश किया गया है। कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, कैलाशनाथ और मूलचंद दोनों की मृत्यु हो गई है और उनके कानूनी उत्तराधिकारियों का प्रतिनिधित्व श्री राजीव कुमार त्रिपाठी द्वारा किया गया है। संक्षेप में प्रस्तुत याचिका को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि उत्तर प्रदेश भूमि जोत

अधिनियम, 1960 पर सीलिंग के लागू होने पर, उक्त अधिनियम की धारा 10(2) के तहत प्रारंभिक नोटिस राम बिहारी के पुत्र दीनानाथ को जारी किया गया था। अधिकतम सीमा अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित प्राधिकारी ने दिनांक 20-06-1974 के एकपक्षीय आदेश के माध्यम से दीनानाथ को जारी किए गए अधिकतम सीमा नोटिस की पुष्टि की। दीनानाथ ने एकपक्षीय आदेश वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया था। उपर्युक्त लंबित मामलों के दौरान, यह भी देखा गया था कि एक अन्य पट्टेदार यशोधरा की मृत्यु 24-06-1973 को हो गई थी और उसकी भूमि को भी दीनानाथ की भूमि के साथ मिला दिया गया था। तदनुसार, दीनानाथ को संशोधित नोटिस भेजा गया था जिसमें यह संकेत दिया गया था कि यशोधा की भूमि को भी दीनानाथ की भूमि के साथ मिला दिया गया था।

दीनानाथ ने अपनी आपत्ति दर्ज की जिसमें उन्होंने चुनौती दी कि यशोधरा से संबंधित भूमि को गलत तरीके से इस आधार पर उनकी जोत के साथ जोड़ दिया गया था कि यशोधरा के पास पहले से ही एक दत्तक पुत्र रामजी उर्फ लल्लू था और वह उसका कानूनी उत्तराधिकारी होने के नाते यशोधा के हिस्से का उत्तराधिकारी होगा और इसे दीनानाथ के हार्थों के साथ नहीं जोड़ा जा सकता।

रामजी उर्फ लल्लू ने अपने वास्तविक पिता के माध्यम से भूमि पर अधिकार का दावा करते हुए आपत्ति दर्ज कराई थी और इस आशय का भी दावा किया था कि जोत को दीनानाथ के साथ शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

इससे पहले कि उक्त कार्यवाही को अंतिम रूप दिया जा पाता, एक अन्य जोत धारक प्रताप नारायण की पत्नी श्रीमती कुंटा की मृत्यु हो गई। दीनानाथ को दीनानाथ के स्वामित्व के साथ उनकी भूमि वर्ष 15.279 एकड़ शामिल करने के लिए एक और नोटिस जारी किया गया था। दीनानाथ के पुत्र कैलाशनाथ द्वारा अलग-अलग आपत्तियां दर्ज की गई थीं, जिसमें दावा किया गया था कि श्रीमती कुंटा ने कैलाशनाथ और मूलचंद के पक्ष में अपनी वसीयत निष्पादित की थी और इस तरह वे खेती के कब्जे में हैं, इसलिए उक्त भूमि को दीनानाथ के साथ शामिल या जोड़ा नहीं जा सकता है।

एक और मुद्दा यह सामने आया कि दीनानाथ ने सुंदर लाल नाम के व्यक्ति को कुछ जमीन बेची थी और यह जमीन दीनानाथ की जोत में भी शामिल थी।

विहित प्राधिकारी ने आपत्तियों पर विचार करते हुए और पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने के पश्चात् दिनांक 26-03-1979 के आदेश द्वारा जोत धारक के तर्कों को अस्वीकार कर दिया और अधिकतम सीमा अधिनियम की धारा 10(2) के अंतर्गत नोटिस की पुष्टि की और 71373 एकड़ सिंचित भूमि को अधिशेष घोषित किया।

कैलाशनाथ और मूलचंद द्वारा एक अपील दायर की गई और उक्त अपील को जिला न्यायाधीश बहराइच द्वारा सीलिंग अपील संख्या-148 वर्ष 1979 में दिनांक 27.11.1979 के निर्णय के माध्यम से अनुमति दी गई और सीलिंग अधिनियम की धारा 10(2) के तहत नोटिस रद्द कर दिया गया था और दिनांक

27.11.1979 के इस निर्णय को इस याचिका में चुनौती दी गई है।

अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने आक्षेपित अपीलीय आदेश का विरोध करते हुए निम्नलिखित चुनौतियाँ उठाई हैं: -

(I) यह आग्रह किया जाता है कि एक बार विहित प्राधिकारी ने संगत और विस्तृत साक्ष्य पर विचार करने के बाद इस आशय के निष्कर्ष दर्ज किए कि कथित वसीयत जिसके द्वारा कुंटा की भूमि दीनानाथ के हाथों में शामिल की गई थी, सीलिंग अधिनियम की धारा 5(6) द्वारा प्रभावित लेनदेन होने के कारण, और इसके अलावा, इसके संबंध में और सरसरी तौर पर किसी भी सबूत पर विचार किए बिना, इसे कानून की गलत धारणा पर उलट दिया गया है।

(II) यह भी आग्रह किया गया है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा प्रतिबिंबित किए गए निष्कर्ष जिसमें स्पष्ट रूप से यह माना गया है कि रामजी उर्फ लल्लू के यशोधरा द्वारा कथित दत्तक ग्रहण किया गया था, वह भी एक प्रामाणिक लेनदेन नहीं था और गवाहों सहित साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया था कि उक्त दत्तक ग्रहण विलेख एक वास्तविक कारण के लिए नहीं था और यहां तक कि इस मुद्दे पर साक्ष्य पर चर्चा नहीं की गई है बल्कि अनदेखा किया गया है अपीलीय न्यायालय द्वारा किए गए निर्णयों और निष्कर्षों को केवल अनुमानों और कयासों के आधार पर उलट दिया गया है।

(III) यह भी आग्रह किया जाता है कि सुंदर लाल के पक्ष में दीनानाथ द्वारा निष्पादित किए गए बिक्री विलेख के संबंध में लेनदेन को भी इस कारण से वास्तविक नहीं माना गया

था कि उक्त जोत धारक, जिसके पक्ष में उक्त बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था, में कोई आपत्ति उठाने के लिए आगे नहीं आया। कार्यवाही कई वर्षों तक चली लेकिन आज तक भी, सुंदर लाल या उनके उत्तराधिकारी आगे नहीं आए हैं, जो सभी स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि उक्त बिक्री लेनदेन कानून की नजर में खराब था और न ही इसे साबित करने के लिए कोई सामग्री थी और किसी भी ठोस सामग्री और साक्ष्य के अभाव में जोत धारक के नेतृत्व में यह इंगित करने के लिए कि उपरोक्त तीन लेनदेन वास्तविक थे। विहित प्राधिकारी के निष्कर्षों को उलटा नहीं जा सकता था और वह भी निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य पर विचार किए बिना सरसरी तौर पर और न ही कोई कारण दिया गया है कि निर्धारित प्राधिकारी के निष्कर्ष खराब क्यों थे।

(IV) राज्य के लिए अतिरिक्त स्थायी अधिवक्ता का अगला निवेदन यह है कि अधिकतम सीमा अधिनियम की धारा 5 स्पष्ट रूप से उस तरीके को निर्धारित करती है जिसमें अधिकारियों को इस बात पर विचार करना होता है कि भूमि को अधिशेष के रूप में कैसे घोषित किया जाए। किन लेन-देनों को बाहर रखा जाना है और प्रक्रियात्मक पहलू धारा 37 और 38 में निहित है जो निर्धारित प्राधिकारी को साक्ष्य लेने की शक्ति प्रदान करता है और अपीलीय प्राधिकारी को भी दीवानी प्रक्रिया संहिता में निहित प्रावधानों के अनुसार अपील का निर्णय करना होता है। यह आवश्यक रूप से निहित है कि साक्ष्य जो कानून में वैध और स्वीकार्य था, पर विचार किया जाना है और अपील से निपटने के

दौरान अपीलीय प्राधिकारी को सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 31 के व्यापक जनादेश का पालन करना आवश्यक है, अर्थात् कारण दिए जाने चाहिए और निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों को उलटते समय, अपीलीय न्यायालय के लिए यह आवश्यक था कि वह निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए कारणों से का अवलोकन करे और त्रुटि को ध्यान में रखने के बाद ही वह कारणों के साथ स्वीकार्य और ठोस साक्ष्य के आधार पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को रिकॉर्ड कर सकता था।

यह आग्रह किया जाता है कि आक्षेपित निर्णय का अवलोकन, यह इंगित करेगा कि अपीलीय न्यायालय ने केवल अपना निष्कर्ष दर्ज किया है, लेकिन यह निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष उपलब्ध साक्ष्य पर बिल्कुल चुप है और इस तरह के साक्ष्य के आधार पर निर्धारित प्राधिकारी का निष्कर्ष गलत था। अपीलीय न्यायालय ने अपील में निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दिए गए साक्ष्य या कारण पर विचार नहीं किया और अपीलीय न्यायालय ने निर्धारित प्राधिकारी के निष्कर्षों को उलटे बिना केवल अपने निष्कर्ष दर्ज किए हैं, जिसने अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को कानून की नजर में खराब कर दिया है और इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए।

निजी प्रतिपक्षी के अधिवक्ता श्री राजीव कुमार त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया कि जहां तक यशोधरा की भूमि का संबंध है, जिसे दीनानाथ की जोत के साथ शामिल किया गया है। वह इस कारण से गलत था कि यशोधरा ने रामजी उर्फ लल्लू को गोद लिया था और गोद लेने का विलेख रिकॉर्ड पर रखा गया था। गोद लेने के विलेख के प्रकाश में, भूमि उसके बेटे के पास

होगी और दीनानाथ के हाथों में नहीं दी जा सकती है और इसलिए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा उपरोक्त सीमा तक दर्ज किए गए निष्कर्षों पर संदेह नहीं किया जा सकता है या इसे गलत नहीं कहा जा सकता है।

यह भी आग्रह किया जाता है कि जहां तक कैलाशनाथ और मूलचंद के पक्ष में श्रीमती कुंटा की वसीयत का संबंध है, यह सीलिंग अधिनियम की धारा 5(6) में उल्लिखित लेनदेन से प्रभावित नहीं है, जिसे अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किया गया है, इसलिए उक्त निष्कर्ष में भी कोई त्रुटि नहीं है।

यह आग्रह किया जाता है कि यह केवल एक हस्तांतरण है जिसे सीलिंग अधिनियम की धारा 5(6) के संदर्भ में देखा जा सकता है, लेकिन जैसा कि वसीयत एक वसीयतनामा दस्तावेज है जो वसीयतकर्ता की इच्छा के अनुसार संपत्ति का निपटान करता है, इसे उक्त धारा में शामिल नहीं किया गया है, इसलिए अपीलीय प्राधिकारी के निष्कर्षों को उस आधार पर गलत नहीं ठहराया जा सकता है। इस बिंदु पर अपने तर्क के समर्थन में, वह मुल्क नाथ सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में इस न्यायालय की चर्चा पर भरोसा करते हैं, जिसे 13.10.2022 को तय किए गए रिट-सी संख्या-3000002 वर्ष 1996 में पारित किया गया था।

आगे यह आग्रह किया जाता है कि जहां तक सुंदर लाल के पक्ष में दीनानाथ द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख के संबंध में मुद्दे का संबंध है, वह 24.01.1971 से पहले था अर्थात् कट ऑफ डेट इसलिए इसे संरक्षित किया गया था और उक्त भूमि को दीनानाथ के साथ नहीं जोड़ा जा सकता था, भले ही जोत धारक

अर्थात् सुंदर लाल किसी भी आपत्ति को दर्ज करने के लिए निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुए और न ही उन्होंने कोई अपील दायर किया। पूर्वोक्त कारणों से, यह आग्रह किया जाता है कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश ठोस तर्क पर आधारित है और इसमें कोई हस्तक्षेप करने योग्य नहीं है, परिणामस्वरूप रिट याचिका खारिज कर दी जाए।

न्यायालय ने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर रखी सामग्री का अवलोकन भी किया।

प्रारंभ में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश भूमि जोत पर अधिकतम सीमा अधिनियम, 1960 की धारा 37 और 38 स्पष्ट रूप से संदर्भ द्वारा सी.पी.सी. के प्रावधानों को लागू करती है। उपर्युक्त धाराएं निम्नानुसार पढ़ी जाती हैं: -

37. आपत्तियों की सुनवाई और निपटान में अधिकारियों और प्राधिकारियों की शक्तियाँ और अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया- इस अधिनियम के अधीन कोई अधिकारी या प्राधिकारी जो जांच कर रहा है या आपत्ति सुन रहा है, जहाँ तक वह लागू हो, दीवानी न्यायालय की सभी शक्तियाँ और विशेषाधिकार प्राप्त करेगा और दीवानी प्रक्रिया संहिता में अधिकथित प्रक्रिया का पालन करेगा, (घ) भारत सरकार ने अचल संपत्ति से संबंधित मुकदमों के विचारण और निपटान के लिए 1908 का संशोधन करने का निर्णय लिया है।

38. अपीलीय न्यायालय की शक्तियाँ और उसके द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया-

(1) इस अधिनियम के अधीन अपील की

सुनवाई और विनिश्चय करते समय, अपीलीय न्यायालय के पास दीवानी न्यायालय की सभी शक्तियाँ और विशेषाधिकार होंगे और वह दीवानी प्रक्रिया संहिता 1908 में अधिकथित अपीलों की सुनवाई और निपटान के लिए प्रक्रिया का अनुसरण करेगा।

(2) जहां, इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन, अपील की सुनवाई आयुक्त द्वारा की जानी है वहां वह या तो अपील स्वयं सुन सकेगा या उसे अपने अधीनस्थ किसी [अपर आयुक्त] को सुनवाई के लिए अंतरित कर सकेगा।

पूर्वोक्त के मद्देनजर, यह ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि अपीलीय प्राधिकारी दीवानी प्रक्रिया संहिता के तहत प्रदान किए गए तरीके से अपील पर विचार करने के लिए बाध्य था। सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 31 पर ध्यान देना उचित होगा जो निम्नानुसार है: -

"31. निर्णय की विषयवस्तु, तारीख और हस्ताक्षर- अपीलीय न्यायालय का निर्णय लिखित रूप में होगा और इसमें कहा जाएगा-

(क) निर्धारण के लिए कौन-कौन से बिन्दु हैं;

(ख) इस पर क्या निर्णय लिया गया है;

(ग) इस निर्णय के क्या कारण हैं; और

(घ) जहां अपील की गई डिक्री उलट या भिन्न है, वह राहत जिसके लिए अपीलकर्ता हकदार है;

और उस समय जब यह सुनाया जायेगा, न्यायाधीश द्वारा या उसमें सहमति देने वाले न्यायाधीशों द्वारा हस्ताक्षरित और दिनांकित किया जाएगा।

इस संदर्भ में, चूंकि अपीलीय प्राधिकारी प्रथम अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग कर रहा है, इसलिए उक्त न्यायालय के लिए यह

आवश्यक था कि वह विभिन्न विवादों, रिकॉर्ड पर साक्ष्य पर विचार करे और फिर अपना निष्कर्ष दर्ज करे। इस संबंध में सुदर्शन पुहान बनाम जयंत कू के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय दिया गया है। मोहंती और अन्य (2018) 10 एस.सी.सी. पृष्ठ 552 में रिपोर्ट किए गए नोटिस के लिए लाभकारी होंगे और संबंधित भाग निम्नानुसार है:

"23. इस न्यायालय ने भी विभिन्न मामलों में पूर्वोक्त सिद्धांत को दोहराया और प्रथम अपील का निर्णय करते समय संहिता की धारा 96 के तहत अपीलीय न्यायालय की शक्तियों को निर्धारित किया।

24. हम कुछ निर्णयों का उल्लेख करना उचित समझते हैं। 25. संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी (मृतक) एल.आर (2001) 3 एस.सी.सी. 179 में, इस न्यायालय ने (पृष्ठ 188-189 पर) निम्नानुसार अवधारित किया:

"15 ... अपीलीय अदालत के पास विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने या पुष्टि करने का अधिकार क्षेत्र है। प्रथम अपील पक्षकारों का एक मूल्यवान अधिकार है और जब तक कानून द्वारा प्रतिबंधित नहीं किया जाता है, तब तक पूरा मामला तथ्य और कानून दोनों के सवाल पर फिर से सुनवाई के लिए खुला है। इसलिए, अपीलीय न्यायालय के निर्णय को मन के अपने सचेत प्रयोग को प्रतिबिंबित करना चाहिए और कारणों द्वारा समर्थित निष्कर्षों को रिकॉर्ड करना चाहिए, जो कि सामने रखे गए तर्कों के साथ उत्पन्न होने वाले सभी मुद्दों पर हैं, और अपीलीय अदालत के निर्णय के लिए पक्षों द्वारा दबाव डाला गया है तथ्य की खोज को उलटते हुए, अपीलीय अदालत को विचारण न्यायालय द्वारा

सौंपे गए तर्क के साथ करीब आना चाहिए और फिर एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपने स्वयं के कारणों को निर्दिष्ट करना चाहिए। यह एक और अपील की सुनवाई करने वाली अदालत को संतुष्ट करेगा कि प्रथम अपीलीय अदालत ने उससे अपेक्षित कर्तव्य का निर्वहन किया था।

26. उपरोक्त दृष्टिकोण मधुकर और अन्य बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय संग्राम और अन्य, (2001) 4 एस.सी.सी. 756, के बाद आया था जिसमें यह दोहराया गया था कि प्रथम अपील की अदालत के रूप में बैठकर, अपने निष्कर्षों को दर्ज करने से पहले सभी मुद्दों और पक्षों के नेतृत्व में साक्ष्य से निपटना उच्च न्यायालय का कर्तव्य है।

27. एच.के.एन स्वामी बनाम इरशाद बासित, (2005) 10 एस.सी.सी. 243 में, इस न्यायालय (पृष्ठ 244 पर) निम्नानुसार कहा गया है: (एस.सी.सी. पैरा 3)

"3. पहली अपील तथ्यों के साथ-साथ कानून पर भी तय की जानी है। प्रथम अपील में पक्षकारों को विधि और तथ्यों दोनों पर सुने जाने का अधिकार है और प्रथम अपीलीय न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह सभी मुद्दों पर स्वयं विचार करे और कारण बताकर मामले का निर्णय करे। दुर्भाग्य से, वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने तथ्यों या कानून पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है। प्रथम अपीलीय अदालत के रूप में बैठने पर उच्च न्यायालय का कर्तव्य था कि वह स्वामित्व / हक्के मिल्कियत के बारे में निष्कर्ष दर्ज करने से पहले सभी मुद्दों और पक्षों के नेतृत्व में सबूतों से निपटे।

28. पुनः जगन्नाथ वि. अरुलप्पा और अन्य, (2005) 12 एस.सी.सी. 303, संहिता की धारा 96 के दायरे पर विचार करते हुए, इस न्यायालय (पीपी 30304 पर) ने निम्नानुसार देखा: (एस.सी.सी. पैरा 2)

"2. पहली अपील की अदालत पूरे सबूतों का पुनर्मूल्यांकन कर सकती है और एक अलग निष्कर्ष पर आ सकती है।

29. फिर से बीवी नागेश और अन्य बनाम एचवी श्रीनिवास मूर्ति, (2010) 13 एस.सी.सी. 530 में, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के सभी पहले के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए इन शब्दों के साथ उपरोक्त सिद्धांत को दोहराया:

"3. अपीलीय न्यायालय/उच्च न्यायालय द्वारा नियमित प्रथम अपील का निपटारा कैसे किया जाना है, इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में विचार किया गया है। आदेश 41 सी.पी.सी. मूल फरमानों से अपील से संबंधित है। विभिन्न नियमों के बीच, नियम 31 में कहा गया है कि अपीलीय अदालत के फैसले में कहा गया है:

(क) निर्धारण के लिए कौन-कौन से बिन्दु हैं;
(ख) इस पर क्या निर्णय लिया गया है;
(ग) इस निर्णय के क्या कारण हैं; और
(घ) जहां अपील की गई डिक्री उलट या परिवर्तित है, वह राहत जिसके लिए अपीलकर्ता हकदार है।

4. अपीलीय अदालत के पास विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटने या पुष्टि करने का अधिकार क्षेत्र है। पहली अपील पक्षकारों का एक मूल्यवान अधिकार है और जब तक कानून द्वारा प्रतिबंधित नहीं किया

जाता है, तब तक पूरा मामला तथ्य और कानून दोनों के सवालों पर फिर से सुनवाई के लिए खुला है। इसलिए, अपीलीय न्यायालय के निर्णय को अपने दिमाग के सचेत अनुप्रयोग को प्रतिबिंबित करना चाहिए और कारणों द्वारा समर्थित निष्कर्षों को रिकॉर्ड करना चाहिए, जो कि सामने रखे गए तर्कों के साथ उत्पन्न होने वाले सभी मुद्दों पर हैं, और अपीलीय अदालत के निर्णय के लिए पक्षों द्वारा दबाव डाल कर कहा गया है। प्रथम अपील की अदालत के रूप में बैठे उच्च न्यायालय का कर्तव्य था कि वह अपने निष्कर्षों को दर्ज करने से पहले सभी मुद्दों और पक्षों के नेतृत्व वाले सबूतों से निपटे। प्रथम अपील एक मूल्यवान अधिकार है और पक्षकारों को कानून के प्रश्नों और तथ्यों दोनों पर सुने जाने का अधिकार है और प्रथम अपील के निर्णय में कानून और तथ्य के सभी मुद्दों को स्वयं संबोधित करना चाहिए और निष्कर्षों के समर्थन में कारण देकर इसका निर्णय लेना चाहिए। (संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी, (2001) 3 एस.सी.सी.179 पेज 188, पैरा 15 और मधुकर बनाम संग्राम, (2001)4 एस.सी.सी. 756 पेज 758, पैरा 5)

5. उपरोक्त हितकारी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित निर्णय का अध्ययन करने पर, हम महसूस करते हैं कि उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में उस पर रखे गए दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा है। हमारे विचार में, अपील के तहत निर्णय गूढ़ है और किसी भी प्रासंगिक पहलू पर ध्यान नहीं दिया गया है। अपील पर असंतोषजनक तरीके से फैसला किया गया है। नियमित प्रथम अपील में निर्णय के हमारे सावधानीपूर्वक अवलोकन से पता चलता है कि

यह उन विचारों से स्तरहीन है जो पहली अपील की अदालत से अपेक्षित हैं। तदनुसार, दोनों पक्षों के दावे के गुण-दोष में जाए बिना, हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और डिक्री को रद्द करते हैं और कानून के अनुसार नए सिरे से निपटारे के लिए नियमित पहली अपील को उच्च न्यायालय में भेजते हैं।

30. उपरोक्त मामलों पर इस न्यायालय द्वारा भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम एम्संस इंटरनेशनल लिमिटेड और अन्य, (2011) 12 एस.सी.सी. 174 और उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम ममता और अन्य (2016) 4 एस.सी.सी. 172 में इसी सिद्धांत को दोहराते हुए भरोसा किया गया था।

उपर्युक्त से, यह स्पष्ट होगा कि प्रथम अपीलीय न्यायालय को अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कैसे करना चाहिए। हालांकि, दुर्भाग्य से अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 27.11.1979 को पारित आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से इस न्यायालय ने पाया कि विचारण न्यायालय के कारणों के साथ मिलने, अपने स्वयं के कारणों को बताने और निष्कर्षों को उलटने के कई महत्वपूर्ण पहलुओं में इसकी कमी है।

यहां तक कि निजी प्रतिपक्षी के अधिवक्ता भी इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सकते थे कि न तो निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य पर ध्यान दिया गया था और न ही निर्धारित प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को छुआ गया है या देखा गया है, और बस उलट दिया गया है। इस प्रकार पूर्वोक्त सीमा तक, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता

की दलील में बल है और यह न्यायालय खुद को इसके साथ सहमति में पाता है।

अब विवाद के गुण-दोष पर संबंधित पक्षों द्वारा उठाए गए सबमिशन पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज निष्कर्ष कि श्रीमती कुंटा की वसीयत हस्तांतरण नहीं है, सीलिंग अधिनियम की धारा 5(6) के तहत आच्छादित नहीं की गई है और उक्त दृष्टिकोण का बचाव प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा मुल्क नाथ सिंह ((2007) 6 एस.सी.सी. 724) के मामले में समन्वय पीठ ने रथिनम @ कुप्पामुथु और अन्य बनाम एल.एस मरियप्पन और अन्य [(2007) 6 एस.सी.सी. 724] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जबकि अपने निष्कर्ष पर आते हुए कहा कि वसीयत हस्तांतरण नहीं है।

इस संबंध में, उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिनियम, 1960 पर अधिकतम सीमा लगाने की धारा 5(6) और उसके साथ संलग्न स्पष्टीकरण ध्यान देने योग्य होगा और जो निम्नानुसार है: -

"[5. अधिकतम सीमा का अधिरोपण- (1) [उत्तर प्रदेश भूमि जोत पर अधिकतम सीमा का अधिरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के प्रारंभ होने पर], कोई भी पदावधिकार, पूरे उत्तर प्रदेश में कोई भी पट्टेदार, उस पर लागू अधिकतम क्षेत्र से अधिक कोई भूमि समग्र रूप से धारण करने का हकदार नहीं होगा।

[स्पष्टीकरण 1.-एक पदावधि धारक के लिए लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र का निर्धारण करने में, उसके द्वारा धारित सभी भूमि, चाहे वह अपने नाम पर हो, या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर, ध्यान में रखी जाएगी।

स्पष्टीकरण II.- [यदि 24 जनवरी, 1971 को या उससे पहले, कोई भूमि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा धारित की गई थी जो अपने वास्तविक कृषक कब्जे में बना हुआ है और किसी अन्य व्यक्ति का नाम उक्त तारीख के बाद वार्षिक रजिस्टर में दर्ज किया गया है] या तो पूर्व के अतिरिक्त या अपवर्जन के लिए और चाहे हस्तांतरण या लाइसेंस के विलेख के आधार पर या डिक्री के आधार पर, यह माना जाएगा, जब तक कि विहित प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए इसके विपरीत साबित न हो जाए, कि पहले उल्लेखित व्यक्ति के पास भूमि बनी हुई है और यह उसके द्वारा दूसरे उल्लिखित व्यक्ति के नाम पर जाहिरा तौर पर धारण की गई है।

(2) उपधारा (1) की कोई बात निम्नलिखित वर्गों के व्यक्तियों द्वारा धारित भूमि को लागू नहीं होगी, अर्थात्-

(क) केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या सरकारी कंपनी या निगम;

(ख) एक विश्वविद्यालय;

(ग) [कृषि में शिक्षा प्रदान करने वाला कोई इंटरमीडिएट या डिग्री कॉलेज या स्नातकोत्तर कॉलेज;];

(घ) कोई बैंकिंग कंपनी या सहकारी बैंक या सहकारी भूमि विकास बैंक;

(ङ) उत्तर प्रदेश भूदान यज्ञ अधिनियम, 1952 के अंतर्गत गठित भूदान यज्ञ समिति।

(3) [उपधारा (4), उपधारा (5), उपधारा (6) और उपधारा (7) के उपबंधों के अधीन रहते हुए] उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए अधिकतम क्षेत्र-

(ए) एक पट्टेदार-धारक के मामले में, जिसका परिवार पांच से अधिक सदस्यों का नहीं है, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि (उसके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा धारित भूमि सहित) और दो अतिरिक्त हेक्टेयर सिंचित भूमि या ऐसी अतिरिक्त भूमि जो उसके द्वारा धारित भूमि के साथ उसके प्रत्येक वयस्क पुत्र के लिए दो हेक्टेयर तक एकत्रित होती है, जो या तो स्वयं पट्टेदारी धारक नहीं हैं या जिनके पास दो हेक्टेयर से कम सिंचित भूमि है, बशर्ते कि ऐसी अतिरिक्त भूमि अधिकतम छह हेक्टेयर हो;

(ख) पांच से अधिक सदस्यों के परिवार वाले पट्टेदार के मामले में, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि (उसके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा धारित भूमि सहित), इसके अलावा, प्रत्येक सदस्य पांच से अधिक और उसके प्रत्येक वयस्क पुत्र के लिए, जो स्वयं पट्टेदारी धारक नहीं हैं या जिनके पास दो हेक्टेयर से कम सिंचित भूमि है, दो अतिरिक्त हेक्टेयर सिंचित भूमि या ऐसी अतिरिक्त भूमि जो ऐसे वयस्क पुत्र द्वारा धारित भूमि के साथ मिलकर दो हेक्टेयर तक एकत्रित होती है, बशर्ते कि ऐसी अतिरिक्त भूमि का अधिकतम छह हेक्टेयर हो; स्पष्टीकरण- खंड (क) और खंड (ख) में 'वयस्क पुत्र' पद के अंतर्गत ऐसा वयस्क पुत्र है जो मर चुका है और अपने पीछे अवयस्क पुत्र या अवयस्क पुत्रियां (विवाहित पुत्रियों से भिन्न) जीवित रह गया है, जो स्वयं पट्टेदारी धारक नहीं हैं या जिनके पास दो हेक्टेयर से कम सिंचित भूमि है;

(ग) [ग x x x]

(घ) [ग ग ग]

(ई) किसी अन्य पट्टेदार के मामले में, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि;

स्पष्टीकरण- भूमि का कोई अंतरण या विभाजन जो उपधारा (6) और उपधारा (7) के अधीन उपेक्षित किया जाना दायी है, उसकी भी उपेक्षा की जाएगी-

(च) यह निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए कि क्या एक पदावधिधारक का एक वयस्क बेटा स्वयं [खंड (ए) या खंड (बी)] के अर्थ के भीतर एक जोत धारक है;

(छ) धारा 9 के तहत नोटिस की तामील के प्रयोजनों के लिए।

(4) जहां कोई जोत किसी फर्म या सहकारी समिति या व्यक्तियों के संघ (चाहे निगमित हो या नहीं, लेकिन सार्वजनिक कंपनी सहित नहीं) द्वारा अवधारित की जाती है, इसके सदस्यों (चाहे भागीदारों, शेयरधारियों या किसी अन्य नाम से कहा जाता है) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, उस फर्म में अपने संबंधित शेयरों के अनुपात में उस जोत को धारण करने के लिए समझा जाएगा, सहकारी समिति या अन्य समाज या व्यक्तियों का संघ:

[बशर्ते कि जहां किसी व्यक्ति के पास फर्म, सहकारी सोसाइटी, या अन्य सोसाइटी या व्यक्तियों के संघ में अपने प्रवेश से ठीक पहले कोई भूमि या भूमि का क्षेत्र उसके पूर्वोक्त हिस्से के अनुपात में क्षेत्र से कम नहीं था, तो उसे कोई हिस्सा धारण करने के लिए नहीं समझा जाएगा, या जैसा भी मामला हो, उस जोत में केवल कम क्षेत्र, और जोत के पूरे या शेष क्षेत्र, जैसा भी मामला हो, फर्म, सहकारी समिति या अन्य सोसाइटी या व्यक्तियों के

संघ में अपने संबंधित शेयरों के अनुपात में शेष सदस्यों द्वारा अवधारित किया जाना समझा जाएगा।

(5) किसी निजी न्यास द्वारा धारित किसी धारिता के संबंध में-

(ए) जहां ऐसे ट्रस्ट से आय में इसके लाभार्थियों के हिस्से ज्ञात या निर्धारित हैं, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, लाभार्थियों को उस जोत में उसी अनुपात में शेयर माना जाएगा जो उनके संबंधित शेयरों में है ऐसे ट्रस्ट से आय;

(ख) किसी अन्य मामले में, यह उपधारा (3) के [खंड (ई)] द्वारा शासित किया जाएगा।

(6) किसी पदावधिधारक को लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र का अवधारण करने में, जनवरी, 1971 के चौबीसवें दिन के पश्चात् किया गया भूमि का कोई अंतरण, जो इस अधिनियम के अधीन अधिशेष भूमि घोषित किया गया होता, अनदेखा किया जाएगा और उस पर विचार नहीं किया जाएगा;

बशर्ते कि इस उप-धारा में कुछ भी लागू नहीं होगा-

(ए) उप-धारा (2) में निर्दिष्ट किसी भी व्यक्ति (सरकार सहित) के पक्ष में हस्तांतरण;

(ख) विहित प्राधिकारी की संतुष्टि के लिए साबित हुआ कि वह सद्भावपूर्वक और पर्याप्त प्रतिफल के लिए और एक अपरिवर्तनीय लिखत के तहत बेनामी लेन-देन नहीं है या पदावधि धारक या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के प्रस्तुत या आस्थगित लाभ के लिए है।

[स्पष्टीकरण 1.- इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए, जनवरी, 1971 के चौबीसवें दिन के बाद

किए गए भूमि के अभिव्यक्ति हस्तांतरण में शामिल हैं-

[(ए) जनवरी, 1971 के चौबीसवें दिन के बाद एक वाद या कार्यवाही में किए गए सह-जोत धारक के रूप में एक व्यक्ति की घोषणा, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि क्या ऐसा मुकदमा या कार्यवाही लंबित थी या जनवरी, 1971 के चौबीसवें दिन के बाद स्थापित की गई थी];

(ख) किसी अन्य विलेख या लिखत में या किसी अन्य रीति से किए गए समान प्रभाव के लिए किसी व्यक्ति के पक्ष में कोई प्रवेश, पावती, त्याग या घोषणा।

स्पष्टीकरण II.-यह साबित करने का भार कि कोई मामला परंतुक के खंड (बी) के भीतर आता है, अपने लाभ का दावा करने वाले पक्ष के साथ रहेगा।

उपरोक्त से, यह इंगित करेगा कि यह शब्दावली का उपयोग केवल सरल हस्तांतरण को शामिल करने के लिए नहीं बल्कि अन्य विलेख या साधन या किसी अन्य तरीके से करता है। इस पहलू पर विचार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने 1996(27) एएलआर पृष्ठ 445 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बांके सिंह और अन्य में निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"..... इस मामले में एकमात्र सवाल यह है कि क्या प्रतिपक्षियों को सक्षम प्राधिकारी द्वारा घोषित अधिशेष भूमि में 1/4 वां हिस्सा मिलेगा? 8 सितंबर 1982 को कृष्णपाल सिंह ने आपत्ति दर्ज कराई, जिन्होंने श्रीमती गजराजी द्वारा निष्पादित वसीयत के आधार पर ग्राम नवादा के खाता संख्या-340, 341 और खाता संख्या-33 और ग्राम जमला जोत के खाता संख्या-77 की भूमि का दावा किया। इस

आधार पर उक्त भूमि को अधिशेष भूमि से अलग किया जाना अपेक्षित है। प्राथमिक प्राधिकारी ने 30 जुलाई, 1983 की कार्यवाही द्वारा दावे को खारिज कर दिया था और अपील पर जिला न्यायाधीश ने 9 नवंबर, 1983 के आदेश द्वारा अपील की अनुमति दी और 2 सितंबर, 1978 की वसीयत के आधार पर गजराजी द्वारा धारित भूमि का 1/4 हिस्सा बाहर कर दिया। जब इस पर सवाल उठाया गया, तो उच्च न्यायालय ने रिट याचिका संख्या-1731/84 को खारिज कर दिया। इसलिए विशेष अनुमति से यह अपील।

उत्तर प्रदेश भूमि जोत पर अधिकतम सीमा अधिरोपण अधिनियम, 1960(उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-1 वर्ष 1961) (संक्षेप में, 'अधिनियम') अध्याय II में भूमि जोत पर अधिकतम सीमा लगाता है। अनुच्छेद में उल्लिखित कुछ छूट को अधिशेष भूमि से बाहर रखा गया है। धारा 5 में कहा गया है कि उत्तर प्रदेश भूमि जोत (संशोधन) अधिनियम, 1972 पर उच्चतम सीमा लागू करने के प्रारंभ होने पर और उसके प्रारंभ से कोई भी पट्टेदार पूरे उत्तर प्रदेश में लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र से अधिक भूमि रखने का हकदार नहीं होगा।

उप-धारा (6) एक जोत धारक के लिए लागू सीलिंग क्षेत्र के निर्धारण को दर्शाती है। इसमें यह प्रावधान है कि 24 जनवरी, 1971 के बाद भूमि का कोई अंतरण, जिसे हस्तांतरण के लिए इस अधिनियम के तहत अधिशेष भूमि घोषित किया गया होता, को नजरअंदाज कर दिया जाएगा और उस पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। स्पष्टीकरण-1 प्रदान करता है कि इस उप-धारा के प्रयोजन के लिए जनवरी, 1971 के चौबीसवें दिन के बाद किए गए भूमि के

अभिव्यक्ति हस्तांतरण में अन्य बातों के अलावा, किसी व्यक्ति के पक्ष में एक प्रवेश, पावती, त्याग या घोषणा शामिल है इसी तरह के प्रभाव में, किसी अन्य विलेख या साधन या किसी अन्य तरीके से किए गए, उप-धारा (6) के प्रयोजन के लिए एक हस्तांतरण माना जाएगा।

बेशक, वसीयत को निर्दिष्ट तिथि के लंबे समय बाद 10 फरवरी, 1978 को निष्पादित किया गया था। वसीयत द्वारा भूमि के मालिक गजराजी द्वारा अपने भाई के पोते कृष्ण प्रताप सिंह के पक्ष में अपना 1/4 हिस्सा वसीयत करके तैयार किया गया था। इसलिए, इसे अधिनियम की उप-धारा (6) के स्पष्टीकरण 1(बी) के अर्थ के भीतर "किसी अन्य तरीके से" एक वसीयत माना जाना चाहिए। अधिशेष भूमि के निर्धारण के उद्देश्य से इसकी उपेक्षा की जाएगी। इसलिए, उच्च न्यायालय और अपीलीय प्राधिकारी उक्त भूमि को बाहर करने का निर्देश देकर सही नहीं थे।

तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है। कोई लागत नहीं।

सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त स्पष्ट विधि निर्णय के आलोक में, जो सीलिंग अधिनियम के प्रावधानों के संदर्भ में है, इस न्यायालय ने पाया कि प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय और मुल्क नाथ सिंह (उपरोक्त) के समन्वय पीठ के फैसले पर भरोसा करना इस कारण से प्रति इंकरियम होगा क्योंकि यह बांके सिंह (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर ध्यान नहीं देता है। इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय जिस पर मुल्क नाथ सिंह (उपरोक्त) अर्थात् एस. रथिनम @ कुप्पामुथु (उपरोक्त) के मामले में भरोसा किया

गया है, वह सीलिंग कार्यवाही के संदर्भ में नहीं है, बल्कि उक्त निर्णय सामान्य कानून के संदर्भ में था जहां वसीयत को स्थानांतरण का मामला नहीं माना गया था। हालाँकि, वर्तमान मामले में चूंकि कार्यवाही एक विशेष अधिनियम से उत्पन्न हुई है जहाँ विशेष प्रावधान शामिल किए गए हैं और बांके सिंह (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी व्याख्या की गई है, तदनुसार इस न्यायालय की विनम्र राय में, बांके सिंह (उपरोक्त) का निर्णय एक बाध्यकारी अधिकृत विधि निर्णय होगा और पूर्वोक्त कारण से, न्यायालय प्रतिपक्षी के अधिवक्ता के तर्क को स्वीकार करने और मुल्क नाथ सिंह (उपरोक्त) के फैसले का पालन करने के लिए इच्छुक नहीं है।

यह भी ध्यान रखना प्रासंगिक होगा कि सुंदर लाल के पक्ष में दीनानाथ द्वारा निष्पादित किए गए विक्रय विलेख के संबंध में अपीलीय न्यायालय द्वारा जो निष्कर्ष उलट दिया गया है, उस पर पर्याप्त रूप से विचार नहीं किया गया है और न ही ये कारणों से समर्थित है। क्या उक्त बिक्री विलेख 24.01.1971 से पहले या उसके बाद निष्पादित किया गया था, यह केवल एक बार साबित किया जा सकता है जब उक्त बिक्री विलेख रिकॉर्ड पर था। उक्त बिक्री विलेख के अभाव में, केवल राजस्व अभिलेखों में कुछ प्रविष्टियों पर भरोसा करना, जो स्वामित्व / हक्के मिलिकियत स्थापित नहीं करते हैं और केवल राजकोषीय उद्देश्यों के लिए हैं, एक स्पष्ट निष्कर्ष और परिणाम को जन्म नहीं दे सकते हैं कि चूंकि सुंदर लाल का नाम उक्त तारीख से पहले राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया

गया था, वर्ष 24.01.1971, स्पष्ट तारीखों के बिना उपलब्ध होने के बिना कि यह राजस्व रिकॉर्ड में कब दर्ज किया गया था और ऐसी प्रविष्टियों को शामिल करने का आधार और कारण क्या था। पूर्वोक्त बिंदु पर अपीलीय न्यायालय के निष्कर्ष किसी भी स्पष्ट और ठोस साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं हैं, इसलिए अस्थिर हैं।

अब दत्तक ग्रहण विलेख की अनदेखी करते हुए यशोधरा की भूमि को दीनानाथ के हाथों में मिलाने के संबंध में तीसरे मुद्दे पर आते हुए, अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए उक्त निष्कर्ष भी विश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं क्योंकि दत्तक ग्रहण को साबित नहीं करते हुए निर्धारित प्राधिकारी ने गवाहों के साक्ष्य पर श्रमसाध्य रूप से विचार किया था और साथ ही इस तथ्य पर भी ध्यान दिया था कि रामजी उर्फ लल्लू कैलाशनाथ का पुत्र था, जो कुछ महीने पहले ही यशोधरा की मृत्यु उसे गोद लेने में दी गई थी। दीनानाथ अन्यथा, रामजी के प्राकृतिक दादा होने के नाते, उक्त दत्तक ग्रहण केवल संपत्ति को डायवर्ट करने के लिए बनाया गया था ताकि यह सीलिंग अधिनियम के चंगुल से बच सके।

विहित प्राधिकारी ने यह भी देखा कि यशोधरा के पति की मृत्यु बहुत पहले हो चुकी है और यदि उसने पुत्र को गोद लेने की इच्छा व्यक्त की थी, तो यशोधरा को बच्चे को बहुत पहले गोद लेना चाहिए था, न कि अंतिम चरण में जब सीलिंग अधिनियम पहले ही सामने आ चुका था और इसलिए लेनदेन वैध नहीं था।

किसी लेन-देन का निर्णय करते समय एक अधिकतम सीमा क्षेत्र पर कैसे विचार किया जाना है और क्या यह अधिकतम सीमा

अधिनियम की धारा 5(6) से प्रभावित होगा और जिस तरीके से निर्धारित प्राधिकारी को इस संबंध में जांच करनी है, उस पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (1997)1 एस.सी.सी. पृष्ठ 734 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अमर सिंह और अन्य, उसका सुसंगत भाग निम्नानुसार है:-

"5. इस प्रकार, संशोधन अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख अर्थात् 21-1-1971 से पदावधिकार, पूरे उत्तर प्रदेश राज्य में लागू अधिकतम क्षेत्रफल से अधिक कुल मिलाकर कोई भूमि धारण नहीं करेगा।

स्पष्टीकरण: मैं स्वीकार करता हूँ कि एक पट्टेदार के लिए लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र का निर्धारण करते समय, उसके द्वारा अपने अधिकार में धारित सभी भूमि, चाहे वह अपने नाम पर हो या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर, को ध्यान में रखा जाएगा। दूसरे शब्दों में, संशोधन अधिनियम लागू होने की तारीख के अनुसार, भूमि को पट्टेदार द्वारा चाहे अपने अधिकार में रखा जाना चाहिए और चाहे किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर भूमि को रखा जाएगा। इस मामले में माना जाता है कि किशुन सिंह ने अपने बेटे-बहुओं के पक्ष में अलगाव पैदा कर दिया। आम तौर पर, कोई उम्मीद करेगा कि यदि भूमि को हस्तांतरित करने के लिए कोई बाध्यकारी कानूनी आवश्यकता है, तो कोई तीसरे पक्ष को जमीन बेच देगा और वह भी, बेटों और बहुओं के लिए मूल्यवान विचार के लिए विवेकपूर्ण विक्रेता के रूप में। उद्देश्य ये प्रतीत होता है, जैसा कि जिला न्यायाधीश द्वारा ठीक ही बताया गया है, कि उनके बेटों और बहुओं के पक्ष में पंजीकृत साधनों द्वारा केवल यह देखने के लिए अलगाव किया गया था कि अधिनियम के

प्रावधान की हानि हो रही है और भूमि अजनबियों के हाथों में नहीं जाती है। यह सच है कि उत्परिवर्तन के प्रमाण के संबंध में प्रतिपक्षियों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे। नामांतरण इस आधार पर किया गया था कि बिक्री विलेख बेटों और बहुओं के पक्ष में निष्पादित किए गए थे। इसलिए, म्यूटेशन अधिकारी उस स्तर पर यह पता लगाने के लिए चिंतित नहीं था कि क्या बिक्री बेनामी थी या अधिनियम के प्रावधानों को विफल करने के इरादे से थी। यह स्थापित कानून है कि नामांतरण प्रविष्टियां केवल राज्य को कब्जे वाले व्यक्ति से भू-राजस्व एकत्र करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से हैं, लेकिन यह भूमि को कोई स्वामित्व / हक्के मिल्कियत प्रदान नहीं करती है। स्वामित्व / हक्के मिल्कियत स्टाम्प अधिनियम के अनुसार एक विदेशी के पक्ष में मालिक द्वारा निष्पादित एक उपकरण से लिया जाएगा और पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत होगा। विदेशी बेटे-बहू होने के कारण किरायेदार जमीन का मालिक और धारक बना रहा। अधिनियम की धारा 5(1) के स्पष्टीकरण-1 के तहत बेटे और बहुएं केवल दिखावटी मालिक हैं। यह सच है कि लेखपाल ने स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया है कि क्या प्रतिपक्षी अलगाव के बाद अपने अधिकार में बने रहे। यह विवाद में नहीं है कि पिता और पुत्र संयुक्त परिवार के सदस्य बने रहे और भूमि पर खेती कर रहे थे। इन परिस्थितियों में, कोई सामान्य रूप से उम्मीद करेगा कि लेखपाल स्पष्ट रूप से यह दावा करने की स्थिति में नहीं हो सकता है कि क्या उत्तरदाता मालिकों के रूप में अपने अधिकार में कब्जे में रहे या अपने दम पर या सहदायकों

की ओर से भूमि पर खेती कर रहे थे। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय के निष्कर्ष अवैध हैं। मामला धारा 5(1) के स्पष्टीकरण 1 के अंतर्गत आता है और यह बोझ हमेशा केवल प्रतिपक्षियों पर होता है कि वे यह स्थापित करें कि वे स्पष्ट रूप से भूमि के मालिक नहीं थे, बल्कि मालिक के रूप में अपने अधिकार में बने रहे। तदनुसार, हम मानते हैं कि किशुन सिंह भूमि के धारक थे। वह उस तारीख को एक जोत धारक था और इसलिए, सीलिंग एरिया की गणना उसे जमीन का मालिक मानते हुए की जानी चाहिए। उनके अलावा उनके आठ बेटे हैं जो अधिनियम के तहत उन्हें दिए गए अतिरिक्त सीमा क्षेत्र के हकदार हैं। अतः प्राधिकारियों को निदेश दिया जाता है कि वे तदनुसार अधिकतम सीमा क्षेत्र की गणना करें और अधिशेष भूमि का कब्जा अपने हाथ में लें।

सर्वोच्च न्यायालय ने (1995) पूरक 1 एस.सी.सी. पृष्ठ 204 नवल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पूर्वोक्त पहलू पर भी विचार किया है। संबंधित भाग निम्नानुसार है:

2. 24-1-1971 के बाद किए गए हस्तांतरण के वैध होने के लिए यह साबित होना चाहिए कि यह एक अपरिवर्तनीय लिखत के तहत, बेनामी लेनदेन नहीं होने के कारण, या पट्टेदार या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के प्रस्तुत या आस्थगित लाभ के लिए, पर्याप्त विचार के लिए अच्छे विश्वास/इरादे से किया गया है। निष्कर्ष एक या दूसरे स्तर पर दर्ज किए गए हैं कि अपीलकर्ता द्वारा की गई बिक्री पर्याप्त प्रतिफल के लिए और एक अपरिवर्तनीय लिखत के तहत थी, न कि

बेनामी लेनदेन या पट्टेदार या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के प्रस्तुत या आस्थगित लाभ के लिए। इन निष्कर्षों को पृष्ठभूमि में दर्ज किया गया है कि अपीलकर्ता की दो गांवों यानी सिही और असवर में अपनी पकड़ थी और वह सिही में रह रहा था, और उसे लगभग ढाई मील की दूरी पर असवार में अपनी जमीन का प्रबंधन करना था। इसके अतिरिक्त वह प्रासंगिक समय में लगभग 65 वर्ष की आयु का एक बूढ़ा व्यक्ति था, उसकी देखभाल करने के लिए कोई बेटा नहीं था और उसकी एकमात्र बेटी जिसकी शादी हुई थी, वह कहीं और रह रही थी। इस स्थिति में, जैसा कि उसका मामला है, अपीलकर्ता ने गांव असावर में जमीन को 60,000 रुपये की राशि में बेचना उचित समझा और वह दावा करता है कि इसमें से उसने अपनी बेटी को उपहार के रूप में 35,000 रुपये की राशि हस्तांतरित की और उस पर उपहार कर का भुगतान किया। अपीलकर्ता के इन दावों का किसी भी स्तर पर विरोध नहीं किया गया है। उनके पूर्ण संस्करण पर केवल इस आधार पर संदेह किया गया है कि बिक्री महत्वपूर्ण तिथि यानी 24-1-1971 के बाद की गई थी जो अच्छे विश्वास की अनुपस्थिति को दर्शाती थी।

3. हम निचली अदालतों के दृष्टिकोण का बिल्कुल भी मूल्यांकन नहीं करते हैं। यदि यह दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया जाता है कि 24-1-1971 के बाद किया गया कोई भी स्थानांतरण बच नहीं सकता है, तो धारा 5 की उप-धारा (6) अर्थहीन हो जाएगी और ये कानून में एक मृत पत्र होगा। ऊपर बताए गए तथ्यों को अपीलकर्ता द्वारा स्पष्ट रूप से और खुले

तौर पर कहा गया है। इन तथ्यों पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि उसने जो कुछ भी किया वह बुरी नीयत से किया था। हम संतुष्ट हैं कि उन्होंने सामान्य से अधिक साबित कर दिया है कि बिक्री का लेन-देन अच्छी नीयत से किया गया था और निचली अदालतों का दृष्टिकोण कानून की भावना के अनुरूप नहीं था। इस प्रकार हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेशों के साथ-साथ निचली अदालतों के आदेशों को भी रद्द करते हैं और मानते हैं कि विचाराधीन लेनदेन अच्छे विश्वास में दर्ज किया गया था और इसके द्वारा आच्छादित की गई भूमि को सीलिंग उद्देश्यों के लिए उसकी जोत की गणना करने की दिशा में नहीं माना जाना चाहिए। तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है। कोई लागत नहीं।

सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से बृजेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1981 (1) एस.सी.सी. पृष्ठ 597 के मामले में इस मुद्दे पर विचार किया है और संबंधित भाग निम्नानुसार है: -

14..... यह देखा जाएगा कि जब धारा 5 की उपधारा (6) में यह प्रावधान है कि अधिकतम क्षेत्रफल और अधिशेष क्षेत्र का निर्धारण करने में, भूमि का कोई अंतरण, जो अधिनियम के तहत अधिशेष भूमि घोषित किया गया होता, को नजरअंदाज कर दिया जाएगा, तो यह इस धारणा पर आगे बढ़ता है कि किरायेदार धारकों को सत्तारूढ़ अखिल भारतीय कांग्रेस पार्टी द्वारा 24 जनवरी को अपनाए गए संकल्प या घोषणा पत्र के बारे में पता है, कृषि जोतों पर अधिकतम सीमा को कम करने के उपाय करने के लिए जुलाई, 1972 में अवधारित

मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में आम सहमति से अन्य व्यक्तियों के पक्ष में भूमि का फर्जी अंतरण करके अधिकतम सीमा कानून को धोखा देने, पराजित करने और बचने के प्रयास किए जा सकते हैं। धारा 5(6) में मुख्य प्रावधान को, जैसा कि विधायिका ने स्वयं संकेत दिया है, परंतुक (बी) में निर्धारित शर्तों के प्रमाण पर, रेखांकित करने वाली धारणा को विस्थापित किया जा सकता है। यद्यपि पूर्वोक्त अनुमान की ताकत और परंतुक (बी) की शर्तों को पूरा करने के लिए आवश्यक प्रकृति और मात्रा विशेष मामले की परिस्थितियों के अनुसार भिन्न हो सकती है, फिर भी इसे एक सामान्य प्रस्ताव के रूप में कहा जा सकता है कि जुलाई 1972 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन के निर्णय से पहले किए गए स्थानान्तरण के मामले में सीमा को कम करने के लिए, परंतुक के खंड (बी) के भीतर अपने मामले को लाने वाले तथ्यों को स्थापित करने के लिए जोत धारक पर स्पष्टीकरण II के तहत बोझ, जुलाई 1972 में पूर्वोक्त निर्णय के बाद किए गए हस्तांतरण के मामले में एक से हल्का होगा।

15. अपने मामले को परंतुक (ख) के दायरे में लाने के लिए, जोत धारक को यह दिखाना होगा-

(i) कि अंतरण सद्भावपूर्वक किया गया है;

(ii) कि यह पर्याप्त विचार के लिए एक हस्तांतरण है;

(iii) कि इसे एक अपरिवर्तनीय लिखत के तहत बनाया गया है; और

(iv) कि यह बेनामी लेनदेन नहीं है या पट्टेदार या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के प्रस्तुत या आस्थगित लाभ के लिए नहीं है।

16. तात्कालिक मामले में सामग्री (ii), (iii) और (iv) के अर्थ, निर्माण और अस्तित्व के संबंध में कोई विवाद नहीं है। विवाद, हालांकि, परंतुक के खंड (बी) के चिंतन के भीतर अभिव्यक्ति "सद्भावना" के सही अर्थ और दायरे के आसपास केंद्रित है। वर्तमान मामले में, अपीलीय प्राधिकारी ने यह दृष्टिकोण अपनाया है - एक दृष्टिकोण जिसे उच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया है - कि एक हस्तांतरण को "सद्भावना" में केवल इसलिए नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह ईमानदारी से या वास्तव में किया गया है और उपरोक्त शर्तों (ii), (iii) और (iv) को संतुष्ट करता है, जब तक कि यह साबित नहीं होता है कि यह एक वैध दबाव की आवश्यकता के लिए किया गया था।

.....

18. अभिव्यक्ति "सद्भावना" को सीलिंग अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है। अभिव्यक्ति के अर्थ के कई रंग हैं। लोकप्रिय अर्थ में, वाक्यांश "अच्छे विश्वास में" का अर्थ है "ईमानदारी से, धोखाधड़ी, मिलीभगत या छल के बिना; वास्तव में, बिना दिखावे के और धोखाधड़ी या अन्यथा गैरकानूनी योजना को आगे बढ़ाने में सहायता या कार्य करने के इरादे के बिना", (देखें शब्द और वाक्यांश, स्थायी संस्करण, वॉल्यूम 18-ए, पृष्ठ 91)। यद्यपि "सद्भावना" का अर्थ विभिन्न विधियों, विषयों

और स्थितियों के संदर्भ में भिन्न हो सकता है, धोखाधड़ी या धोखाधड़ी के दाग से मुक्त ईमानदार इरादा, इसके अर्थ का एक निरंतर तत्व है। फिर भी, "सद्भावना" के गठन के लिए आवश्यक ईमानदारी की गुणवत्ता और मात्रा उस कानून के संदर्भ और वस्तु से अनुकूलित है जिसमें यह शब्द कार्यरत है। यह निर्माण का एक कार्डिनल कैनन है कि एक अभिव्यक्ति जिसका कोई समान, सटीक निश्चित अर्थ नहीं है, संदर्भ से अपना रंग, प्रकाश और सामग्री लेता है।

प्र. अभिव्यक्ति "सद्भावना" का अर्थ और दायरा इसलिए, सामान्य रूप से, धारा 5 की योजना और उद्देश्य के प्रकाश में विचार किया जाना है, और विशेष रूप से उप-धारा (6) के प्रावधान (बी) के संदर्भ में। हमने पहले ही देखा है कि अधिकतम सीमा अधिनियम का प्राथमिक उद्देश्य, जैसा कि धारा 5(1) में निर्णायक प्रावधान में कहा गया है, एक जोत धारक को उत्तर प्रदेश राज्य में कुल मिलाकर, अधिकतम क्षेत्र से अधिक, अपने अधिकार में, चाहे वह अपने नाम पर हो, या जाहिरा तौर पर किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर, को निषिद्ध और अयोग्य बनाना है। सीलिंग अधिनियम के तहत एक जोत धारक की सीलिंग क्षेत्र और अधिशेष भूमि, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, 8 जून, 1973 को निर्धारित किया जाना है जब यूपी (संशोधन) अधिनियम 18 वर्ष 1973 लागू हुआ था। इसलिए, 24 जनवरी, 1971 के बाद किया गया एक हस्तांतरण, जिसे 8 जून, 1973 को या उसके बाद भी सीलिंग क्षेत्र से अधिक हस्तांतरित भूमि में हस्तांतरणकर्ता के अधिकार या हित के प्रतिधारण के लिए एक लबादा के

रूप में काम करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, स्पष्ट रूप से "अच्छे विश्वास में" नहीं होगा। लेकिन धारा 5 की उपधारा (6) के परंतुक (बी) ने "सद्भावना" अवधारणा के नकारात्मक पहलू को थोड़ा आगे बढ़ाते हुए संकेत दिया है, कि भले ही हस्तांतरण एक प्रत्यक्ष हस्तांतरण नहीं है और हस्तांतरणकर्ता हस्तांतरित भूमि में मौजूद सभी हितों और अधिकारों से खुद को अलग कर लेता है, लेकिन अपने या अपने परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भविष्य में कुछ लाभ सुरक्षित रखता है, तब भी, स्थानांतरण "सद्भाव" में नहीं होगा। किसी भी प्रकार की आवश्यकता के बिना अधिशेष भूमि को नकदी में परिवर्तित करने के उद्देश्य से पूरी तरह से हस्तांतरण (कानूनी आवश्यकता के साथ भ्रमित नहीं होना) भी अच्छे विश्वास की कमी हो सकती है।

20. मोटे तौर पर, उपधारा (ख) के परंतुक के खंड (ख) का लाभ सद्भाव में किए गए हस्तांतरण के लिए उपलब्ध है, अर्थात्, एक सदाशयी हस्तांतरण के लिए जिससे कार्यकाल धारक वास्तव में और अपरिवर्तनीय रूप से सभी अधिकार, शीर्षक और हित को स्थानांतरित करता है अपने मामलों के प्रबंधन के सामान्य क्रम में, हस्तांतरणकर्ता के पक्ष में भूमि में, और जो एक मिलीभगत व्यवस्था नहीं है, या उपकरण या छल नहीं है जो कि कार्यकाल धारक को अधिशेष भूमि या वर्तमान में या भविष्य में किसी भी आरक्षित ब्याज को जारी रखने में सक्षम बनाता है, (या केवल इसे नकदी में बदलने के लिए), और इस प्रकार सीलिंग अधिनियम की धारा 5(1) के तहत प्रतिबंध को दरकिनार करता है। परंतुक (क) के

लाभ के हकदार होने के लिए, सद्भाव में किए गए हस्तांतरण, को जो (ii) से (iv), परंतुक (b) में प्रगणित है, आगे की शर्तों को पूरा करना चाहिए। परंतुक (बी) में निर्धारित सकारात्मक शर्तें हैं: कि हस्तांतरण पर्याप्त विचार के लिए होना चाहिए; कि इसे एक अपरिवर्तनीय उपकरण के तहत बनाया जाना चाहिए था। परंतुक के खंड (बी) में निर्धारित नकारात्मक शर्तें हैं: कि यह बेनामी लेनदेन नहीं होना चाहिए; यह स्थानांतरित अवधि धारक या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के प्रस्तुत या आस्थगित लाभ के लिए नहीं होना चाहिए। परंतुक (बी) में प्रदान किए गए ये परीक्षण या शर्तें (ii), (iii) और (iv) स्वयं यह मानने के लिए निर्णायक नहीं हो सकती हैं कि स्थानांतरण "सद्भाव" में था। उदाहरण के लिए, बिक्री की वास्तविकता या अन्यथा को पहचानने के लिए एक और महत्वपूर्ण परीक्षण यह होगा कि खेती के कब्जे और भूमि को वेंडी को बिक्री के तहत पारित किया गया है या नहीं। फिर भी, एक बार जब यह स्थानांतरित जोत धारक द्वारा स्थापित किया जाता है कि उसके मामलों के सामान्य प्रबंधन के दौरान प्रभावित प्रश्न में हस्तांतरण, पर्याप्त विचार के लिए किया गया था और उसने वास्तव में, बिल्कुल और अपरिवर्तनीय रूप से खुद को सभी अधिकारों, स्वामित्व / हक्के मिल्कियत और हित (खेती के कब्जे सहित) से अलग कर लिया है। स्पष्टीकरण II के अंतर्गत किसी भी परिस्थिति की अनुपस्थिति में, मिलीभगत का संकेत देने वाली किसी भी परिस्थिति की अनुपस्थिति में, या सीलिंग अधिनियम को धोखा देने या दरकिनार करने का इरादा या डिजाइन, जोत धारक पर यह दिखाने के लिए

कि हस्तांतरण "सद्भावना" में किया गया था, निर्वहन माना जाएगा, और जोत धारक के लिए यह साबित करना आवश्यक नहीं होगा कि हस्तांतरण एक अनिवार्य आवश्यकता के लिए या एक महत्वपूर्ण कानूनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए धन जुटाने के लिए किया गया था। यद्यपि इस तथ्य का प्रमाण कि एक वैध दबाव की आवश्यकता के लिए एक हस्तांतरण किया गया था, हस्तांतरण की वास्तविकता के पक्ष में अनुमान को उजागर या मजबूत कर सकता है, यह "सद्भावना" का एक अनिवार्य घटक नहीं है; न ही कानूनी आवश्यकता का प्रमाण आवश्यक है, कानून के मामले के रूप में, एक जोत धारक को परंतुक के खंड (बी) के लाभ का लाभ उठाने में सक्षम बनाने के लिए। यह याद किया जा सकता है कि जिस समय इस तरह का हस्तांतरण किया गया था, उस समय उसकी शक्ति पर कोई कानूनी प्रतिबंध नहीं था कि वह अपनी पूरी जोत या किसी भी हिस्से को अलग कर सके। दूसरे शब्दों में, उस समय जब इस तरह का स्थानांतरण किया गया था तो यह गैरकानूनी नहीं था, भले ही यह बिना किसी आवश्यकता के किया गया हो। यह 24 जनवरी, 1971 से पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ सीलिंग एक्ट (यूपी अधिनियम 18 वर्ष 1973) की धारा 5(6) में पेश की गई कानूनी कल्पना के बाद के अधिनियमन से गैरकानूनी हो गया। फिर भी, इस वैधानिक कल्पना के तहत, 24 जनवरी, 1971 के बाद किया गया भूमि का हस्तांतरण सभी उद्देश्यों के लिए पूरी तरह से शून्य नहीं हो जाता है। इसकी उपेक्षा की जा सकती है और अधिकतम सीमा अधिनियम के प्रयोजनों के लिए अंतरण अवधि धारक के अधिकतम क्षेत्र का निर्धारण करते

समय इसे ध्यान में नहीं रखा जाएगा, और वह भी यदि निम्नलिखित दो शर्तें पूरी होती हैं-

(क) कि उत्तर प्रदेश अधिनियम 18 वर्ष 1973 के अधीन अन्तरण के लिए भूमि को अधिशेष भूमि घोषित कर दिया गया होता; और

(ख) कि अंतरण अधिनियम की धारा 5(6) के परंतुक (6) द्वारा आच्छादित नहीं किया गया है।

यह स्थिति होने के कारण, एक बार जब एक हस्तांतरण को सदाशयी दिखाया जाता है और आगे धारा 5(6) के परंतुक (बी) में निर्धारित अन्य सभी सकारात्मक और नकारात्मक शर्तों को संतुष्ट करता है, कानूनी कल्पना को आगे बढ़ाने और "सदभावना" अभिव्यक्ति से कार्यकाल धारक को पूर्वोक्त परंतुक (बी) के लाभ के हकदार होने से पहले हस्तांतरण के लिए दबाव की आवश्यकता साबित करने की एक अतिरिक्त आवश्यकता को स्पष्ट करने के लिए कानून में कोई औचित्य नहीं है।

ऊपर देखे गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से जो निष्कर्ष निकाला गया है, उसके प्रकाश में, यह न्यायालय कहता है कि अपीलीय प्राधिकारी को पूर्वोक्त तरीके से साक्ष्य पर विचार करना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि लेनदेन वास्तविक हैं या नहीं।

अब अमर सिंह (उपरोक्त), नवल सिंह (उपरोक्त) और बृजेंद्र सिंह (उपरोक्त) में उपरोक्त उक्ति को देखते हुए और उक्त सिद्धांतों को प्रस्तुत मामले में लागू करते हुए, यह न्यायालय पाता है कि अपीलीय

न्यायालय ने यह कि जिस तरह से जोत धारक की आपत्तियों और उसके साक्ष्य पर विचार किया जाना है, तय किए गए कानून के सिद्धांतों का पालन नहीं किया है। इसके अलावा, विहित प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए स्पष्ट निष्कर्षों पर अपीलीय न्यायालय द्वारा सही आधार पर विचार नहीं किया गया है और न ही कोई कारण शामिल किया गया है कि निर्धारित प्राधिकारी का निष्कर्ष गलत क्यों था और न ही निर्धारित प्राधिकारी के निष्कर्षों को उलटा गया है।

उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, इस न्यायालय को यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 27.11.1979 को पारित आक्षेपित निर्णय न्यायिक परीक्षण में बने नहीं रह सकता है और रद्द किये जाने योग्य है।

उपरोक्त कारणों से, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। उत्प्रेषण रिट जारी की जाती है और सीलिंग अपील संख्या-148 वर्ष 1979 में पारित दिनांक 27.11.1979 के आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जाता है। मामला अपीलीय प्राधिकारी को प्रेषित किया जाये, जो पक्षकारों को सुनवाई का पूरा अवसर देने के बाद, निर्णय में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, अधिमानतः छह महीने की अवधि के भीतर, अपील में एक नया आदेश पारित करेगा। इस आदेश की एक प्रति अपीलीय न्यायालय के समक्ष रखी जाती है। तथ्यों और परिस्थितियों को देखता हुए, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह)

(2023) 4 ILRA 675

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

वाद अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या 220 /2016

श्रीमती नीता अग्रवाल

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती शांति रानी अग्रवाल एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री श्यो राम सिंह,
सुश्री। प्रिया डिमरी, श्री नितिन अग्रवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री आशीष कुमार सिंह

ए. सिविल कानून - तर्कों में संशोधन- सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XV नियम 5 - आदेश 6 सी.पी.सी. नियम 17 - तर्कों में संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है ताकि कार्रवाई के कारण को भौतिक रूप से बदला जा सके या दावे की प्रकृति को प्रतिस्थापित किया जा सके जो वाद-पत्र में संशोधनों पर लागू होता है। लिखित कथन में संशोधन से संबंधित सिद्धांतों में इसका कोई समकक्ष नहीं है। इसलिए, बचाव का नया आधार जोड़ना या बचाव को प्रतिस्थापित या बदलना या लिखित कथन में असंगत दलीलें लेना आपत्तिजनक नहीं होगा, जबकि वाद-पत्र में कार्रवाई का नया कारण जोड़ना, बदलना या प्रतिस्थापित करना आपत्तिजनक हो सकता है। (पैरा 57)

बी. यदि याचिका में दिए गए तथ्यों से कोई अनुतोष नहीं प्राप्त होता है तो याचिका के

तहत दावा के रूप में कोई राहत नहीं दी जा सकती। किसी भी तरह के सबूत पर गौर नहीं किया जा सकता, जो तर्कों में कभी प्रस्तुत ही नहीं किया गया। (पैरा 58)

वर्तमान याचिका दो आधारों पर निरस्त किए जाने योग्य है, अर्थात् याचिकाकर्ता द्वारा दायर संशोधन मामले की प्रकृति को बदल देगा और दूसरा यह कि उपरोक्त आदेशों को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता द्वारा पूरी याचिका में कोई तर्क नहीं दी गई है। इसके अतिरिक्त संशोधन आवेदन में या वर्तमान याचिका में संशोधन आवेदन दाखिल करने में आने वाली बाधाओं के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है क्योंकि इस वाद में वाद वर्ष 2000 में दायर किया गया था और संशोधन की प्रार्थना उन्होंने वर्ष 2009 में की थी। (पैरा 62)

वादी-याचिकाकर्ता द्वारा दायर किया गया सिविल वाद पिछले 23 वर्षों से विचारणीय न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है। पक्षों द्वारा लिखित बयान पहले ही दाखिल किए जा चुके हैं। वाद के इस दृष्टिकोण से, न्यायालय का मत है कि विचारणीय न्यायालय को निर्देश दिया जाना चाहिए कि वह उक्त वाद का छह माह की अवधि के भीतर सबसे शीघ्रतापूर्वक और सकारात्मक रूप से सख्ती से विधिनुसार तथा इस निर्णय में न्यायालय द्वारा की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना निर्णय करे। (पैरा 64, 65)

रिट याचिका निस्तारित (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. टिल्डस्ले बनाम हार्पर, (1878) 10 अध्याय डी 393 (पैरा 33)
 2. क्रॉपर बनाम स्मिथ, (1884) 26 Ch D 700 (CA) (पैरा 34)
 3. स्टीवर्ड बनाम नॉर्थ मेट्रोपॉलिटन ट्रामवेज कंपनी, (1886) 16 क्यूबीडी 556 (पैरा 35)
 4. अरुंधति मिश्रा बनाम राम चंद्र पांडे, (1994) 2 एससीसी 29 (पैरा 36)
 5. वेल्डन बनाम नील, (1887) 19 क्यूबीडी 394 (पैरा 37)
 6. किसनदास रूपचंद बनाम रचप्पा विठोबा शिलवंत, आईएलआर (1909) 33 बम 644 (पैरा 39)
 7. मा श्वे म्या बनाम माउंग मो हनाउंग, एआईआर 1922 पीसी 249 (पैरा 43)
 8. अमूलकचंद मेवाराम बनाम. बाबूलाल कनालाल टालीवाला, (1933) 35 बॉम एलआर 569 (पैरा 44)
 9. एल.जे. लीच एंड कंपनी लिमिटेड जार्डइन स्किनर एंड कंपनी, एआईआर 1957 एससी 357 (पैरा 45)
 10. पिरगोंडा होंगोंडा पाटिल बनाम कलगोंडा शिदगोंडा पटेल, एआईआर 1957 एससी 363 (पैरा 46)
 11. पुरुषोत्तम उमेदभाऊ एंड कंपनी. बनाम मणिलाल एंड संस, एआईआर 1961 एससी 325 (पैरा 47)
 12. गणेश ट्रेडिंग कंपनी बनाम मोजी राम, (1978) 2 एससीसी 91 (पैरा 47)
 13. लक्ष्मीदास दयाभाई काबरावाला बनाम नानाभाई चुन्नीलाल काबरावाला, एआईआर 1964 एससी 11 (पैरा 48)
 14. जय जय राम मनोहर लाल बनाम राष्ट्रीय भवन सामग्री आपूर्ति, (1969) 1 एससीसी 869 (पैरा 50)
 15. गंगा बाई बनाम विजय कुमार, (1974) 2 एससीसी 393 (पैरा 51)
 16. मोदी एसपीजी एंड डब्ल्यूवीजी मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम लधा राम एंड कंपनी, (1976) 4 एससीसी 320 (पैरा 52)
 17. हरिदास ऐलदास थडानी बनाम गोदरेज रुस्तम करमानी, (1984) 1 एससीसी 668 (पैरा 53)
 18. सूरज प्रकाश भसीन बनाम राज रानी भास, (1981) 3 एससीसी 652 (पैरा 54)
 19. बी.के. नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई, (2000) 1 एससीसी 712 (पैरा 55)
 20. उषा बालासाहेब स्वामी बनाम किरण अप्पासो स्वामी, (2007) 5 एससीसी 602 (पैरा 56)
 21. बच्छज नाहर बनाम नीलिमा मंडल, (2008) 17 एससीसी 49 (पैरा 58)
 22. वी. प्रभाकर बनाम बसवराज के. (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों और अन्य द्वारा, 2022 (1) एससीसी पृष्ठ 115 (पैरा 59)
- वर्तमान याचिका में अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन), इलाहाबाद द्वारा पारित निर्णयों और आदेशों दिनांक 06.03.2010 के साथ-साथ अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.11.2015 को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया, द्वारा
प्रदत्त)

1. वादी-याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री नितिन अग्रवाल और सुश्री प्रिया डिमरी और प्रतिस्पर्धी/ प्रतिवादी नंबर 1 और 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष कुमार सिंह को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत वर्तमान याचिका में एडिशनल सिविल जज (सीनियर डिवीजन) कोर्ट नंबर 6 इलाहाबाद द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 06.03.2010 के साथ-साथ एडिशनल जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 10 इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.11.2015 को रद्द करने की प्रार्थना की है। जहां तक इसका संबंध प्रार्थना संख्या (ए) से है। प्रस्तावित संशोधन की मांग की गई है जिसे ट्रायल कोर्ट ने खारिज कर दिया है और आक्षेपित आदेशों के माध्यम से पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई है और संशोधन आवेदन को पूरी तरह से अनुमति देते हुए इसे अपने आदेश से प्रतिस्थापित कर दिया जाए या ट्रायल कोर्ट को संशोधन आवेदन पर नए सिरे से इस न्यायालय के द्वारा विचार/निर्देश के प्रकाश में निर्णय लेने के लिए आदेशित किया जाए।

3. याचिका में संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं कि संपत्ति का मकान नं. 129/एआई, दरभंगा कॉलोनी, जिला-इलाहाबाद में स्थित है, जिसका याचिकाकर्ता एकमात्र मालिक है और उसके कब्जे में है। मकान नं. 129 का निर्माण प्लॉट संख्या 33 दरभंगा कैसल परिसर जिला

इलाहाबाद पर किया गया था। जिसके मालिक चौधरी लाभ सिंह थे। लाभ सिंह ने अपनी वसीयतनामा दिनांक 29.02.1966 के माध्यम से उक्त मकानको दो बराबर भागों में विभाजित कर दिया और वसीयतनामा के माध्यम से अपने दोनों बेटों के पक्ष में वसीयत कर दी। उक्त मकानका उत्तरी 1/2 भाग श्री सुरेंद्र जीत सिंह रेखी/उत्तरदाताप्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में आवंटित किया गया था। और दक्षिणी 1/2 भाग उनके दूसरे बेटे श्री निर्मल जीत सिंह को आवंटित किया गया था।

4. चौधरी लाभ सिंह की मृत्यु के बाद उत्तरदाता/प्रतिवादी संख्या मकान संख्या 129 दरभंगा कैसल कॉलोनी, इलाहाबाद के उत्तरी आधे हिस्से के कुल क्षेत्रफल 600 वर्ग गज (501.60 वर्ग मीटर) पर एकमात्र और पूर्ण मालिक बन गया। जिसमें से कवर क्षेत्र 302 वर्ग गज (252.47 वर्ग मीटर) था और शेष क्षेत्र 298 वर्ग गज (249.13 वर्ग मीटर) एक खुला क्षेत्र था। नगर निगम ने उक्त मकान को मकान नंबर 129/1ए आवंटित कर दिया, प्रतिवादी क्रमांक 3 के नाम पर। प्रतिवादी संख्या 3 प्रश्नाधीन घर का पूर्ण रूप से दर्ज मालिक बन गया। प्रतिवादी सं. 3 नेवादी याचिकाकर्ता के पक्ष में पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 19.02.1994 के माध्यम से 430 वर्ग मीटर (514.39 वर्ग) क्षेत्र के संबंध में प्रश्नगत घर का निष्पादित विक्रय विलेख कर दिया।

5. विक्रय विलेख के निष्पादन के बाद प्रतिवादी संख्या 3 शेष क्षेत्र 85.61 वर्गगज (600- 514.39)=85.61 का स्वामी बना रहा। इसके बाद प्रतिवादी क्रमांक 3 ने 85.16 वर्ग

गज = 72 वर्ग. गज दरभंगा कॉलोनी मकान संख्या 129/1 के लिए श्रीमती इंदिरा मिश्रा के पक्ष में दिनांक 26.10.1994 को एक विक्रय पत्र निष्पादित किया। इस प्रकार, प्रतिवादी संख्या 3 ने मकान संख्या 129/1 दरभंगा कॉलोनी इलाहाबाद का पूरा क्षेत्र दो विक्रय पत्रों के माध्यम से बेच दिया। । इसलिए, उपरोक्त दो विक्रय विलेखों के निष्पादन के बाद, हालांकि प्रतिवादी संख्या 3 के पास कोई क्षेत्र नहीं बचा, फिर भी उसने अतिरिक्त क्षेत्र 80 वर्गगज मकान संख्या 129/1 दरभंगा कॉलोनी इलाहाबाद का एक और विक्रय विलेख दिनांक 19.07.1997 को उत्तरदाता/प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में निष्पादित किया।

6. यह तर्क दिया गया है कि पूर्वोक्त विक्रय विलेख प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में निष्पादित नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रतिवादी संख्या 1 का कभी भी प्रश्नगत मकान के किसी भी हिस्से पर भौतिक कब्जा नहीं था। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित विक्रय पत्र दिनांक 19.02.1994 में गलती के कारण पूर्वी सीमा को गलत तरीके से मकानसंख्या 129/1 दरभंगा कॉलोनी इलाहाबाद का हिस्सा दिखाया गया था। द्वितीय विक्रय पत्र दिनांक 26.10.1994 के निष्पादन के पश्चात प्रश्नगत मकान का कोई भी क्षेत्रफल शेष नहीं रहा। यह तर्क दिया गया है कि 26.08.2000 को और उत्तरदाता/प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने वादी याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने की कोशिश की और वादी याचिकाकर्ता

ने मूल वाद संख्या 432/2000 (श्रीमती नीता अग्रवाल बनाम श्रीमती शांति रानी अग्रवाल और दो अन्य) को दायर किया।

7. उपरोक्त वाद में उत्तरदाता/प्रतिवादी सं. 1 और 2 ने 22.11.2000 को प्रतिवादी के साथ अपना संयुक्त लिखित कथन दाखिल किया। प्रतिवादी सं. 3 ने भी अलग रूख अपनाते हुए अपना अलग लिखित कथन दाखिल किया लेकिन प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में बेचे जाने वाले कथित क्षेत्र को उचित ठहराने में विफल रहा। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त लिखित कथन को नकारते हुए उत्तरदाताओं द्वारा दायर उपरोक्त लिखित कथन की प्रतिकृति दायर की।

8. इस बीच, वादी/याचिकाकर्ता द्वारा 01.10.2009 को एक संशोधन आवेदन दायर किया गया जिसे पेपर नंबर 103 ए के रूप में चिह्नित किया गया। जिसकेद्वारा आदेश 6 नियम 17 सीपीसीके तहत निहित प्रावधानों के अनुसार वादपत्र में कुछ संशोधन की मांग की गई। उपरोक्त संशोधन का केवल प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा विरोध किया गया और उन्होंने 05.10.2009 को अपनी आपत्ति दाखिल की। ट्रायल कोर्ट ने अपने आदेश दिनांक 06.03.2010 द्वारा आंशिक रूप से संशोधन आवेदन की अनुमति दी और विवादित मकान की पूर्वी सीमा में संशोधन की मांग वाली प्रार्थना को खारिज कर दिया।

9. उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने जिला न्यायाधीश की अदालत में दिनांक 26.03.2010 को धारा 115

सी.पी.सी. के तहत सिविल पुनरीक्षण नंबर 91/2010 प्रस्तुत किया। पुनरीक्षण न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 30.11.2015 द्वारा इसे खारिज कर दिया। इसलिए वर्तमान याचिका।

10 प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान वकील श्री आशीष कुमार सिंह द्वारा एक जवाबी हलफनामा दायर किया गया। यह तर्क दिया गया है कि घर का कुल क्षेत्रफल 600 वर्ग गज था जिसका उल्लेख बिक्री विलेख मानचित्र में किया गया था और बिक्री में पूर्वी खुले क्षेत्र का उल्लेख नहीं किया गया था। डीड मैप और बिक्री डौडमैप में, यह विशेष रूप से कहा गया है कि खुला क्षेत्र जिसका मालिक प्रतिवादी संख्या 1 था, पूर्वी दिशा में है। जवाबी हलफनामे में आगे कहा गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 के पास पूर्वी हिस्से में अधिक क्षेत्र था और उसने उतना ही क्षेत्र प्रतिवादी संख्या 1 को बेच दिया था। आगे यह तर्क दिया गया है कि विवादित भूमि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा खरीदी गई थी और याचिकाकर्ता द्वारा मुकदमा दायर करने के नौ साल के बाद अवैध रूप से संशोधन आवेदन दायर किया गया। उपरोक्त संशोधन आवेदन दायर करके याचिकाकर्ता कार्यवाही को विलंबित करने का प्रयास कर रहा है। आगे यह तर्क दिया गया कि वादी-याचिकाकर्ता द्वारा संशोधन आवेदन दायर करके बिल्कुल एक तुच्छ मामला बनाया गया है। इसलिए, वह संशोधन आवेदन जिसके द्वारा मुकदमे की प्रार्थना में संशोधन की मांग की गई थी, नीचे के न्यायालयों द्वारा सही ढंग से खारिज कर दी गई।

11. याचिकाकर्ता के वकील द्वारा एक प्रत्युत्तर हलफनामा भी दायर किया गया है जिसमें याचिका में बताए गए तथ्यों को दोहराया गया है।

12. पक्ष के विद्वान वकील को सुना गया और पक्षकारों के विद्वान वकील की सहमति से, वर्तमान याचिकाको पर अंतिम निर्णय लिया जा रहा है।

13. याचिका में वर्णित तथ्यों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि वादी-याचिकाकर्ता द्वारा मूल मुकदमा संख्या 432/2000 निम्नलिखित राहतों के लिए इलाहाबाद के सिविल कोर्ट में दायर किया गया था:-

"(ए) कि प्रतिवादी, उनके एजेंट, नौकर, प्रतिनिधियों और उनके माध्यम से दावा करने वाले सभी व्यक्तियों को स्थायी निषेधाज्ञा के माध्यम से परिसर संख्या 129/1 ए, दरभंगा कैसल, इलाहाबाद में वादी के कब्जे में दखल करने से रोका जाए और चार दीवारी के किसी भी हिस्से या उसमें लगे गेट को ध्वस्त करने या वादी के घर के पूर्वी भाग में कोई निर्माण करने से रोका जाए।

(बी) यदि प्रतिवादी स. 1 और 2 प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा निष्पादित किसी भी बिक्री विलेख परिसर संख्या 129/1ए, दरभंगा कैसल, इलाहाबाद शहर के किसी भी हिस्से के संबंध में का उत्पादन और उस पर वादी के हित के विरुद्ध भरोसा करते हैं तो उसे शून्य और गैर-स्थायी घोषित किया जाए

(सी) मुकदमे की लागत वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के खिलाफ दी जाए।

(डी) वादी के पक्ष में और प्रतिवादियों के खिलाफ कोई अन्य और अतिरिक्त राहत दी जाए जिसे अदालत न्याय के हित में उचित समझे।

वादमें परिसर का विवरण...

514.39 वर्ग गज (430.03 वर्ग मीटर के बराबर) निर्माण क्षेत्र और उससे जुड़ी भूमि को मकान संख्या 129/1 ए, दरभंगा कॉलोनी, इलाहाबाद शहर के विक्रय विलेख से जुड़ी योजना में लाल रेखाओं से घिरा हुआ दिखाया गया है। जिसकी सीमाएँ इस प्रकार हैं:-

उत्तर - सरक

दक्षिण - समान्य दीवार के साथ श्री संजय अग्रवाल का घर।

पूर्व - प्रतिवादी संख्या 3 की खुली भूमि।
पश्चिम खुली भूमि।

"7. जैसा कि ऊपर बताया गया है, बेचा गया क्षेत्र 430.03 वर्ग मीटर (514.39 वर्ग गज के बराबर) है, जो बिक्री विलेख के साथ संलग्न साइट योजना में लाल रेखाओं से घिरा हुआ दिखाया गया है। निम्नलिखित सीमाओं के साथ:

उत्तर- सारक

दक्षिण- समान्य दीवार के साथ श्री संजय अग्रवाल का घर।

पूर्व - प्रतिवादी संख्या 3 की खुली भूमि।
पश्चिम-खुलीभूमि।"

15. अब संशोधन के माध्यम से, याचिकाकर्ता चाहता है कि वादपत्र के अनुच्छेद-7 में निहित सीमाओं के पूर्व की ओर वर्णित "प्रतिवादी संख्या 3 की खुली भूमि" शब्दों के स्थान पर घर का कोना शब्द लिखा जाए।

16. मुकदमे में परिसर के विवरण के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि विक्रय पत्र में, जिसे याचिकाकर्ता के अनुसार उसके पक्ष में निष्पादित किया गया था, परिसर के विवरण शीर्षक के तहत पूर्व शब्द का उल्लेख "प्रतिवादी संख्या 3 की खुली भूमि" के रूप में किया गया है। जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, वही विवरण याचिकाकर्ता द्वारा वादपत्र के पैरा-7 में दिया गया है। अब याचिकाकर्ता संशोधन आवेदन के माध्यम से चाहता है कि पूर्व शब्द के सामने उल्लिखित संपत्ति की सीमाओं के स्थानपर "प्रतिवादी संख्या 3 की खुली भूमि के स्थान पर" इसे घर के कोने के रूप में उल्लेख किया जाए।

17. संशोधन आवेदन को खारिज करते हुए यह दर्ज किया गया कि चूंकि वादी याचिकाकर्ता द्वारा बिक्री विलेख में संशोधन करने के लिए किसी भी समय कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था, इसलिए वादपत्र में संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह भी निष्कर्ष दर्ज किए गए कि यदि संशोधन की अनुमति दी जाती है, तो यह वाद की प्रकृति को बदल देगा। ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश का प्रवाही भाग नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

परन्तु प्रार्थना-पत्र 103 ए का अनुच्छेदए जिसके जरिये वादी वाद-पत्र में यह अंकित

कराना चाहता है कि पूर्व साइड में बाउण्ड्री विकय-पत्र व वाद-पत्र में गलत अंकित हो गये हैं इस जगह मकान का कोना है लिखने की अनुमति दी जाए सही प्रतीत नहीं होता है क्योंकि यह तथ्य पूर्व से ही वादी के संज्ञान में है तथा वादी द्वारा विकय पत्र में भी कोई दुरुस्तीकरण नहीं कराया गया है तथायादिवादी को वाद-पत्र में अंकित तथ्यों को लिखने की अनुमति प्रदान की जाती है तो विवादित सम्पति की प्रकृति बदल जायेगी।

18. इसी तरह के निष्कर्ष पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा भी पुनरीक्षण को खारिज करते हुए दर्ज किए गए थे।

आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"अतः स्पष्ट है कि संशोधन प्रार्थना पत्र 103ए के पैरा-"ए" में वर्णित तथ्य ओपेन लैण्ड आफ डिफेण्डेंट नं० 03" के स्थान पर 'कार्नर आफ हाउस लिखे जाने की स्थिति में वाद की प्रकृति में परिवर्तन होता है। यह स्पष्ट है कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अपने आदेश में भी इस तथ्य को स्पष्ट रूप से अंकित किया है कि "संशोधन केवल पूरब साइड को बदलने के लिये प्रार्थना पत्र खारिज किये जाने योग्य है क्योंकि यह तथ्य विकय विलेख में ही खुला स्थान प्रतिवादी संख्या 3 लिखा हुआ है। यह संशोधन केवल देरी की वजह से स्वीकार नहीं किया जा रहा है बल्कि विकय पत्र भी यह बाउण्ड्री पूरब साइड में खुला स्थान प्रतिवादी सं० 3 अंकित है जो वादपत्र में भी अंकित है। इसलिये वादपत्र में संशोधन की अनुमति नहीं दि जाता है क्योंकि उक्त संशोधन से वादग्रस्त

सम्पति की प्रकृति बदल जायेगी।" अवर न्यायालय द्वारा प्रार्थना पत्र 103ए के प्रस्तावित प्रस्तर बी व सी में प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार कर लिया गया था। स्पष्टतः प्रार्थनापत्र 103ए के पैरा ए को स्वीकार किये जाने की स्थिति में वाद की प्रकृति में परिवर्तन होता है क्योंकि वादी ओपेन लैण्ड आफ प्रतिवादी सं० 3 के स्थान पर कार्नर आफर हाउस लिखना चाहता है जो कि विकय विलेख में वाद नहीं है वादी को वादग्रस्त सम्पति के सम्बन्ध में जो अधिकार उर्दूतू है, वह विकय विलेख के पश्चात ही है और उसेस भी तथ्य पूर्व से ही मालूम थे उसे इस चैहददी का भी सम्यक ज्ञान रहा है अतः प्रस्तावित संशोधन जो वादग्रस्त सम्पति के पूरब अंकित किये जाने को लेकर है, उसे वादपत्र में अंकित किये जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अतः अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 06.03.10 में कोई अवैधानिकता अथवा तात्विक अनियमितता नहीं की गयी है।"

19. वर्तमान याचिका में निचली दोनों अदालतों द्वारा संशोधन आवेदनों को खारिज करते हुए पारित आदेशों को चुनौती दी गई है। वर्तमान याचिका में पूर्वोक्त आदेश को चुनौती देने के लिए एकमात्र आधार लिया गया है जो की याचिका के अनुच्छेद-23 और 24 में निहित इस प्रकार है:-

23. यदि वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान यह माननीय न्यायालय .एस. संख्या 432/2000 श्रीमती नीता अग्रवाल बनाम श्रीमती शांति रानी अग्रवाल जो प्रतिवादी संख्या 5 के समक्ष लंबित है, की आगे की कार्यवाही

पर रोक लगाने की कृपा नहीं करता है तो याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति होगी और मुकदमा पराजित हो सकता है।

24. सुविधा का संतुलन इस माननीय न्यायालय के समक्ष रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता के हितों की रक्षा के लिए पारित किए जाने वाले उपयुक्त अंतरिम आदेश में निहित है।"

20. उपरोक्त के अवलोकन से, न्यायालय की राय है कि उपरोक्त आदेश को चुनौती देने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा कोई उचित अभिवचन नहीं किया गया है।

21. यह विचार करने के लिए कि क्या वादी-याचिकाकर्ता ने अपने वाद में संशोधन के लिए कोई मामला बनाया है, आदेश VI नियम 17CPC का संदर्भ लेना उपयोगी है जो निम्नानुसार है:

17. **अभिवचनों का संशोधन** न्यायालय कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर किसी भी पक्षकार को ऐसी रीति से और ऐसे निबंधनों पर जो न्यायसंगत हो अपने अभिवचनों को परिवर्तित या संशोधित करने के लिए अनुज्ञात कर सकेगा और वे सभी संशोधन किए जाएंगे जो दोनों पक्षकारों के बीच विवाद के वास्तविक प्रश्नों के अवधारण के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो :

परंतु विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् संशोधन के लिए किसी आवेदन को तब तक अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि न्यायालय इस

निर्णय पर न पहुंचे कि सम्य तत्परता बरतने पर भी वह पक्षकार, विचारण प्रारंभ होने से पूर्व वह विषय नहीं उठा सकता था।

22. नियम का पहला भाग यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट करता है कि कार्यवाही के किसी भी चरण में, पक्ष विवाद में वास्तविक प्रश्नों को निर्धारित करने के उद्देश्य से आवश्यक होने पर अपनी दलीलों को बदलने या संशोधित करने के लिए स्वतंत्र हैं। हालाँकि, यह नियम उसमें संलग्न परंतुक के अधीन है। 01.07.2002 से 2002 के अधिनियम 22 द्वारा पुनः प्रतिस्थापित उक्त नियम यह स्पष्ट करता है कि विचारण के शुरु होने के बाद, संशोधन के लिए किसी भी आवेदन की अनुमति नहीं दी जाएगी। हालांकि, यदि पक्षप्रतिपक्ष अदालत को संतुष्ट करने में सक्षम हैं कि उचित परिश्रम के बावजूद वे वाद शुरु होने से पहले इस मुद्दे को नहीं उठा सके और अदालत उनके स्पष्टीकरण से संतुष्ट है, तो परीक्षण शुरु होने के बाद भी संशोधन की अनुमति दी जा सकती है।

23 इसे स्पष्ट करने के लिए, आदेश VI नियम 17 सी.पी.सी. न्यायालय को अधिकार क्षेत्र प्रदान करता है कि वह कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी पक्ष को अपनी दलीलों को ऐसी शर्तों पर बदलने या संशोधित करने की अनुमति दे जो उचित हो।

24 अभिवचनों में संशोधन के मामले में अदालतों के पास बहुत व्यापक विवेकाधिकार है लेकिन अदालत की शक्तियों का प्रयोग विवेकपूर्ण और बहुत सावधानी से किया जाना

चाहिए। संशोधनों के लिए आवेदनों पर निर्णय करते समय अदालतों को प्रामाणिक, वैध, ईमानदार और आवश्यक संशोधनों से इनकार नहीं करना चाहिए और कभी भी दुर्भावनापूर्ण, बेकार और/या बेईमान संशोधनों की अनुमति नहीं देनी चाहिए। अदालत द्वारा संशोधन को मंजूरी देने से पहले पहली शर्त जो पूरी होनी चाहिए वह यह है कि क्या विवाद में वास्तविक प्रश्न के निर्धारण के लिए ऐसा संशोधन आवश्यक है। यदि वह शर्त पूरी नहीं होती तो संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह बुनियादी परीक्षण है जिसे संशोधन को स्वीकार करने या अस्वीकार करने में अदालतों के विवेक को नियंत्रित करना चाहिए। दूसरी महत्वपूर्ण शर्त जो अदालत के विवेक को नियंत्रित करनी चाहिए वह पूर्वाग्रह या अन्याय की संभावना है जो दूसरे पक्ष के कारण होने की संभावना है। आमतौर पर, यदि दूसरे पक्ष को लागत से मुआवजा दिया जाता है, तो कोई अन्याय नहीं होता है, लेकिन व्यवहार में शायद ही कोई अदालत विपरीत पक्ष को वास्तविक लागत देती है।

25 संशोधन के लिए आवेदन को अनुमति देते या अस्वीकार करते समय कुछ बुनियादी सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए: (i) क्या मांगा गया संशोधन मामले के उचित और प्रभावी निर्णय के लिए अनिवार्य है; (ii) क्या संशोधन के लिए आवेदन सद्भावनापूर्ण या दुर्भावनापूर्ण है, (i) संशोधन से दूसरे पक्ष पर ऐसा पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए जिसकी धन के रूप में पर्याप्त क्षतिपूर्ति नहीं की जा सके; (iv) संशोधन से इनकार करने से वास्तव में अन्याय होगा या कई फिर मुकद्दमों की

संख्या बढ़ जायेगी; (v) क्या प्रस्तावित संशोधन संवैधानिक या मौलिक रूप से मामले की प्रकृति और चरित्र को बदलता है; और (vi) एक सामान्य नियम के रूप में, अदालत को संशोधनों को अस्वीकार कर देना चाहिए यदि संशोधित दावों पर अगर नए सिरे से वाद दायर किया जाता और आवेदन की तारीख पर वो कालबाधित होता। तथ्य यह है कि दावा परिसीमा के कानून द्वारा वर्जित है, लेकिन संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए या अस्वीकार कर दी जानी चाहिए, इस विवेक का प्रयोग करते समय न्यायालय द्वारा ध्यान में रखे जाने वाले कारकों में से एक है, लेकिन यह न्यायालय की शक्ति को प्रभावित नहीं करता है यदि संशोधन न्यायाय के हित में आवश्यक है तो।

26. जब मैं उपरोक्त निर्णयों द्वारा निर्धारित सिद्धांत को लागू करता हूं, तो यह निष्कर्ष अपरिवर्तनीय हो जाता है कि आक्षेपित आदेशों में नीचे की अदालतों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण को अनुचित नहीं कहा जा सकता है।

27. मैं आदेश 6 नियम 17 को शामिल करने के विधायी इतिहास, उद्देश्यों और कारणों का पता लगा रहा हूं, इसलिए नहीं कि इस मामले का निपटान करना आवश्यक है, बल्कि आदेश 6 नियम 17 के तहत बड़ी संख्या में आवेदन दायर किए जाते हैं और हमारी अदालतें ऐसे मामलों से भरी हुई हैं। संशोधन आवेदनों का अंधाधुंध दाखिल होना सिविल मामलों के निपटारे में देरी का एक मुख्य कारण है।

28. मैं आदेश 6 के नियम 17 की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देना उचित समझता हूं जो 1882 की

पुरानी संहिता की धारा 53 से मेल खाती है। यह अंग्रेजी कानून के आदेश 21 नियम 8 के समान है। आदेश 6 नियम 17 सीपीसी पहले से ही ऊपर उद्धृत किया गया है।

29. मेरे सुविचारित विचार में, आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के महत्वपूर्ण प्रावधानों में से एक है, लेकिन मुझे यह देखने में भी कोई झिझक नहीं है कि कार्यवाही को अनिश्चित काल तक खींचने के लिए यह संहिता के सबसे अधिक दुरुपयोग किए जाने वाले प्रावधानों में से एक है, खासकर भारतीय अदालतें अन्यथा लंबित मामलों के बोझ से दबी हुई हैं। सभी सिविल अदालतों में आमतौर पर मामलों की एक लंबी सूची होती है, इसलिए अदालतें लंबी तारीखें देने के लिए मजबूर होती हैं जिससे मामलों के निपटारे में देरी होती है। संशोधन के आवेदनों से मामलों के निपटारे में और देरी होती है।

30. हाल ही में प्रकाशित एक अनूठी, असामान्य और अत्यन्त जानकारीपूर्ण पुस्तक **जस्टिस, कोर्ट्स एंड डिलेज़** में, लेखक श्री अरुण मोहन, दिल्ली उच्च न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक वरिष्ठ वकील, एक सिविलवाकील के रूप में अपने विशाल अनुभव से देखा कि आदेश 6 के नियम 17 के तहत 80% आवेदन कार्यवाही में देरी करने के एकमात्र उद्देश्य से दायर किए जाते हैं, जबकि 15% आवेदन पहली बार में सहायक दृष्टिकोण की कमी के कारण दायर किए जाते हैं, और 5% आवेदन ऐसे होते हैं जहां वास्तविक आवश्यकता होती है संशोधन की। उनके अनुभव से यह भी पता चला कि इन 100 आवेदनों में से 95 आवेदनों को

अनुमति दी जाती है और केवल 5 (शायद इससे भी कम) को खारिज कर दिया जाता है। उनके अनुसार, कुछ मामलों में याचिका में संशोधन की आवश्यकता उत्पन्न होनी चाहिए, और यदि इसके संबंध में उचित नियम हैं दलीलें लागू की जाती हैं, यह केवल दुर्लभ मामलों में ही होगा। इसलिए, संशोधन की अनुमति देने के लिए, यह केवल लागत नहीं है, बल्कि इसके कारण होने वाली देरी, ऐसी देरी का लाभ और अतिरिक्त लागत है जो संशोधन के पीड़ित को वहन करनी पड़ती है। अदालत को संशोधन के कारणों, उद्देश्य और प्रभाव का वैज्ञानिक रूप से मूल्यांकन करना चाहिए और लागत तय करते समय इन सभी कारकों को ध्यान में रखना चाहिए।

31. मामलों के निपटान में देरी को कम करने के लिए, 1999 में कानून ने नियम 17 को पूरी तरह से हटा दिया, जिसका मतलब था कि दलीलों में संशोधन की अब अनुमति नहीं होगी। लेकिन हटाए जाने के तुरंत बाद व्यापक हंगामा हुआ और 2002 में नियम 17 को बहाल कर दिया गया, लेकिन एक प्रावधान जोड़ा गया। वह प्रावधान परीक्षण शुरू होने के बाद ही लागू होता है। उस चरण से पहले, स्थिति वैसी ही बनी हुई है जैसी कि थी। विद्वान लेखक श्री अरुण मोहन के विचार के अनुसार, जैसा कि उनकी पुस्तक में लिखा है, हालांकि परंतुक ने स्थिति में सुधार किया है, तथ्य यह है कि संशोधन की अनुमति होनी चाहिए, लेकिन केवल तभी इसके लिए पर्याप्त आधार तैयार किया गया है, और इसके अलावा, केवल कड़ी शर्तों पर। इसके लिए नियम को और सख्त करने की जरूरत है।

32. सामान्य सिद्धांत यह है कि अदालतें कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी पक्ष को इस तरह से और ऐसी शर्तों पर दलीलों को बदलने या संशोधित करने की अनुमति दे सकती हैं जो उचित हों और उन सभी संशोधनों की अनुमति दी जानी चाहिए जो पार्टियों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्न का निर्धारण करने के लिए अनिवार्य हों।

33. **टिल्डस्ले बनाम हार्पर (1878) 10 अध्याय डी 393** में, जिसका फैसला क्रॉपर केस (सुप्रा) से भी पहले अंग्रेजी अदालत ने किया था, एक पट्टेदार के खिलाफ एक पट्टे को रद्द करने की कार्रवाई में, दावे के बयान में यह आरोप लगाया गया था कि प्राप्तकर्ता की पावर ऑफ अटॉर्नी में रिश्वत के रूप में एक निर्दिष्ट राशि प्राप्त हुई थी। बचाव पक्ष के बयान में, प्रत्येक परिस्थिति का खंडन किया गया था लेकिन रिश्वत दिए जाने से कोई सामान्य इनकार नहीं किया गया था। बचाव पक्ष के बयान में संशोधन की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई। अपील न्यायालय ने माना कि संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए थी। बैमवेल, एल.जे. निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियों की:

"... मुझे चैंबर्स में संशोधन की अनुमति के आवेदनों के साथ बहुत कुछ करना पड़ा है, और / शायद मुझे यह कहने की अनुमति दी जा सकती है कि सीखने की यह विनम्र शाखा मेरे लिए बहुत परिचित है। मेरी प्रथा हमेशा संशोधन करने की अनुमति देने की रही है जब तक कि मैं संतुष्ट नहीं हो जाता कि आवेदन करने वाला पक्ष दुर्भावनापूर्ण कार्य कर रहा था, या उसने अपनी गलती से अपने प्रतिद्वंद्वी

को कुछ चोट पहुंचाई थी जिसकी भरपाई लागत या किसी अन्य तरीके से नहीं की जा सकती थी।"

(बल दिया गया)

34. **क्रॉपर बनाम स्मिथ (1884) 26 Ch D700 (CA)** के प्रमुख अंग्रेजी वाद में, अभिवचनों में संशोधन का अंतर्निहित उद्देश्य ब्राउन, एल.जे. द्वारा निम्नलिखित शब्दों में निर्धारित किया गया है:

"... यह एक अच्छी बात है- स्थापित सिद्धांत है कि अदालतों का उद्देश्य पक्षों के अधिकारों का निर्णय करना है, न कि उनके अधिकारों के अनुरूप निर्णय लेकर उनके मामलों के संचालन में की गई गलतियों के लिए उन्हें दंडित करना। मैं किसी भी प्रकार की त्रुटि या गलती के बारे में नहीं जानता, जो यदि धोखाधड़ी नहीं है या अतिक्रमण करने का इरादा नहीं है, तो अदालत को सुधार नहीं करना चाहिए, अगर यह दूसरे पक्ष के साथ अन्याय किए बिना किया जा सकता है। अदालतें अनुशासन के लिए नहीं, बल्कि विवादग्रस्त मामलों पर निर्णय लेने के लिए मौजूद हैं, और मैं ऐसे संशोधन को एहसान या अनुग्रह का मामला नहीं मानता। ... मुझे ऐसा लगता है कि जैसे ही यह प्रतीत होता है कि जिस तरह से एक पक्ष ने अपने मामले को फंसाया है, उससे विवाद के वास्तविक मामले का निर्णय नहीं होगा, यह उसके लिए उतना ही अधिकार की बात है। यदि इसे अन्याय के बिना ठीक किया जा सकता है, तो इसे सुधारा जाएगा, क्योंकि इस मामले में बाकी सब कुछ अधिकार का मामला है," (बल दिया गया)

35. **स्टीवर्ड बनाम नॉर्थ मेट्रोपॉलिटन ट्रामवेज़ कंपनी (1886) 16 क्यूबीडी 556** में रिपोर्ट की गई, वादी ने ट्रामवेज़ को दोषपूर्ण स्थिति में रखने की अनुमति देने में कंपनी की लापरवाही के लिए ट्रामवेज़ कंपनी के खिलाफ क्षतिपूर्ति के लिए मुकदमा दायर किया। कंपनी ने लापरवाही के आरोप से इनकार किया यह भी तर्क नहीं दिया गया कि कंपनी उचित पक्षकार नहीं है जिसके विरुद्ध मुकदमा दायर किया जा सके। लिखित बयान दायर करने के छह महीने से अधिक समय बाद, कंपनी ने यह दलील देकर बचाव में संशोधन करने की अनुमति के लिए आवेदन किया कि कंपनी और स्थानीय प्राधिकरण के बीच हुए अनुबंध के तहत ट्रामवे को उचित स्थिति में बनाए रखने की जिम्मेदारी स्थानीय प्राधिकरण की थी और इसलिए, कंपनी उत्तरदायी नहीं थी। संशोधन आवेदन की तारीख पर, स्थानीय प्राधिकारी के खिलाफ वादी का उपाय समय-वर्जित हो गया। यदि समझौते की पैरवी पहले की गई होती तो वादी स्थानीय प्राधिकारी के खिलाफ भी मुकदमा दायर कर सकता था। इन परिस्थितियों में, संशोधन से इनकार कर दिया गया। 36. हालाँकि, नियम सार्वभौमिक नहीं है और कुछ परिस्थितियों में, सीमा के कानून के बावजूद अदालत द्वारा इस तरह के संशोधन की अनुमति दी जा सकती है। तथ्य यह है कि दावे को परिसीमा के कानून द्वारा वर्जित किया गया है, लेकिन संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए या अस्वीकार कर दी जानी चाहिए, इस विवेक का प्रयोग करते समय अदालत द्वारा ध्यान में रखे जाने वाले कारकों में से एक है, लेकिन यह अदालत की शक्ति को प्रभावित नहीं करता है यदि न्याय के हित

में संशोधन आवश्यक है (देखें **गंगा बाई बनाम विजय कुमार और अरुंधति मिश्रा बनाम राम चरित्र पांडे (1994) 2 एससीसी 29** में रिपोर्ट)।

37. एक अन्य प्रमुख अंग्रेजी मामले **वेल्डन बनाम नील (1887) 19 क्यूबीडी 394** में, ए ने बदनामी के हर्जाने के लिए बी के खिलाफ मुकदमा दायर किया। इसके बाद हमले और झूठे कारावास के संबंध में नए दावे जोड़ कर वादपत्र में संशोधन करने की अनुमति के लिए आवेदन किया गया। आवेदन की तिथि पर, उन दावों को परिसीमा द्वारा रोक दिया गया था, हालाँकि वे मुकदमा दायर करने की तिथि पर परिसीमा की अवधि के भीतर थे। संशोधन को अस्वीकार कर दिया गया क्योंकि इसे देने का प्रभाव बी से कानूनी अधिकार (सीमा के कानून के तहत बचाव) छीनना होगा और इस प्रकार उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

38. उक्त मामले में, पोलक, जे. ने ब्रेमवेल, एल.जे. की टिप्पणी को अनुमोदन के साथ उद्धृत करते हुए स्टीवर्ड केस (सुप्रा) के मामले में सही कहा: -

"... संशोधन की अनुमति दी जानी चाहिए या नहीं, इसका परीक्षण यह है कि क्या प्रतिवादी वादी को ऐसी स्थिति में रखे बिना संशोधन कर सकता है या नहीं, जिसकी भरपाई किसी भी लागत भते या अन्यथा से नहीं की जा सकती है।" उनके अनुसार इस तरह के संशोधन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

39. **किसनदास रूपचंद बनाम राचप्पा विठोबा शिलवंत आईएलआर (1909) 33 बॉम 644** में

रिपोर्ट किया गया संभवतः 1908 की वर्तमान संहिता के तहत बॉम्बे के उच्च न्यायालय द्वारा तय किया गया पहला प्रमुख मामला है। वादी ए ने कहा कि एक के अनुसरण में साझेदारी समझौते के तहत, उसने प्रतिवादी बी को 4001 रुपये का कपड़ा दिया, और साझेदारी और खातों के विघटन के लिए मुकदमा दायर किया। ट्रायल कोर्ट ने पाया कि ए ने 4001 रुपये का कपड़ा वितरित किया, लेकिन यह माना कि कोई साझेदारी नहीं थी और मुकदमा चलने योग्य नहीं था। अपील में, ए ने 4001 रुपये की वसूली के लिए प्रार्थना जोड़कर अभिवाचनों में संशोधन की मांग की। उस दिन, पैसे की वसूली के दावे को सीमा के कारण रोक दिया गया था। अपीलीय अदालत द्वारा संशोधन की अनुमति दी गई और मुकदमा डिक्री कर दिया गया। बी ने डिक्री को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने आदेश को बरकरार रखा और अपील खारिज कर दी।

40. इस बिंदु पर प्रमुख अंग्रेजी निर्णयों का उल्लेख करते हुए, बैचलर, जे. ने कहा: (किसनदास केस (सुप्रा))

**... नियम के अंतिम वाक्य के अनिवार्य चरित्र से मुझे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, किसी भी स्तर पर कार्यवाही में, सभी संशोधनों की अनुमति दी जानी चाहिए जो दो शर्तों को पूरा करते हैं (ए) दूसरे पक्ष के साथ अन्याय नहीं करना, और (बी) पार्टियों के बीच विवाद में वास्तविक प्रश्नों को*

निर्धारित करने के उद्देश्य से आवश्यक होना।"

41. एक सहमति वाले फैसले में, बीमन, जे. ने कहा कि:

".. प्रथा सभी संशोधनों की अनुमति देने की है, चाहे नए दावे पेश किए जाएं या नहीं, जब तक कि वे दूसरे पक्ष को नुकसान में न डालें जिसके लिए लागत से मुआवजा नहीं दिया जा सकता।"

42. प्रभुत्व ने कहा: (किसनदास केस सुप्रा))

"मेरी राय में दो सरल परीक्षण, और केवल दो, लागू करने की आवश्यकता है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई दिया गया मामला सिद्धांत के भीतर है या नहीं। पहला, क्या संशोधन की मांग करने वाला पक्ष संशोधन के बिना समान मात्रा में राहत प्राप्त कर सकता है? यदि नहीं, तो इसका तात्पर्य यह है कि प्रस्तावित संशोधन दूसरे पक्ष को नुकसान में डालता है, यह उसके प्रतिद्वंद्वी को उससे अधिक प्राप्त करने की अनुमति देता है जितना वह संशोधन के बिना प्राप्त करने में सक्षम होता। दूसरा, उन परिस्थितियों में, क्या पार्टी को नुकसान की स्थिति में लागत से मुआवजा दिया जा सकता है? यदि नहीं, तो संशोधन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, जब तक कि मामला इतना अनोखा न हो कि उसे नियम के दायरे से बाहर कर दिया जाए।"

43. लगभग 125 साल पहले व्यक्त किए गए संशोधन को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के बुनियादी सिद्धांतों को अभी भी कानून का

सही कथन माना जाता है और हमारी अदालतें उन मामलों में निर्धारित बुनियादी सिद्धांतों का पालन कर रही हैं।

अगर मैं सभी मामलों की सावधानीपूर्वक जांच करूँ, तो एआईआर 1922 पीसी 249 में रिपोर्ट किए गए मा श्वे म्या बनाम माउंग मो हटमाउंग में प्रिवी काउंसिल द्वारा घोषित कानून के बयान को आज तक अदालतों द्वारा लगातार कानून के सही बयान के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रिवी काउंसिल ने कहा: (आईए पृष्ठ 216-17):-

"... न्यायालय के सभी नियम न्याय के उचित प्रशासन को सुरक्षित करने के प्रावधानों के अलावा और कुछ नहीं हैं, और इसलिए यह आवश्यक है कि उन्हें उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाया जाना चाहिए और उनके अधीन होना चाहिए, ताकि संशोधन की पूर्ण शक्तियों का आनंद लिया जा सके और हमेशा उदारता पूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए, लेकिन फिर भी अभी तक कोई शक्ति नहीं दी गई है कि कार्रवाई के एक विशिष्ट कारण को दूसरे के लिए प्रतिस्थापित किया जा सके, या संशोधन के माध्यम से, मुकदमे की विषय-वस्तु को बदला जा सके।"

44. **अमूलकचंद मेवाराम बनाम बाबूलाल कनालाल टालीवाला (1933) 35 बॉम एलआर 569** बॉम्बे हाई कोर्ट के पास फिर से आदेश 6 नियम 17 के तहत एक मामले का फैसला करने का अवसर था। उस मामले में, न्यायालय ने ब्यूमॉट, सीजे की निम्नलिखित टिप्पणियों को मंजूरी दे दी और कहा: (बॉम एलआर पृष्ठ 571)

"... सवाल यह है कि कोई संशोधन होना चाहिए या नहीं, वास्तव में यह इस पर निर्भर करता है कि क्या जिस नाम पर मुकदमा लाया गया है वह किसी गैर-मौजूद व्यक्ति का नाम है, या क्या यह केवल मौजूदा व्यक्तियों का गलत वर्णन है। यदि पूर्व मामला है, तो मुकदमा निरर्थक है और कोई भी संशोधन इसे ठीक नहीं कर सकता है। यदि उत्तरार्ध मामला है, तो प्रथम दृष्ट्या एक संशोधन होना चाहिए क्योंकि सामान्य नियम, कुछ अपवादों के अधीन, बिना किसी संदेह के, यह है कि न्यायालय को हमेशा एक संशोधन की अनुमति देनी चाहिए जहां विरोधी पक्ष को होने वाले किसी भी नुकसान की भरपाई लागत से की जा सके।"

45. एल.जे. लीच एंड कंपनी लिमिटेड बनाम जार्जिन स्किनर एंड कंपनी' में एआईआर 1957 एससी 357 में रिपोर्ट की गई, वादी द्वारा दायर "माल के रूपांतरण" के लिए हर्जाना का एक मुकदमा ट्रायल कोर्ट द्वारा डिक्री किया गया था लेकिन डिक्री को उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया था। इस न्यायालय के समक्ष एक अपील में, वादी ने "माल की गैर-डिलीवरी" के लिए अनुबंध के उल्लंघन के लिए हर्जाने के लिए एक वैकल्पिक दावा पेश करके वादपत्र में संशोधन के लिए आवेदन किया। संशोधन का प्रतिवादी ने यह कहते हुए विरोध किया कि इससे एक नया वाद का कारण लाने की कोशिश की जा रही है और जिस दिन संशोधन की मांग की गई वो परिसीमा वर्जित हो गया और इसलिए, यह प्रतिवादी पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। हालाँकि न्यायालय ने आपति में

"काफी बल" देखा, संशोधन में प्रार्थना को ध्यान में रखते हुए जो "मुकदमे के दायरे से बाहर" नहीं थी और सभी आवश्यक तथ्य रिकॉर्ड पर थे, उसने संशोधन की अनुमति दे दी।

46. पीरगोंडा होंगोंडा पाटिल बनाम कलगोंडा शिदगोंडा पाटिल एआईआर 1957 एससी 363 में, ए ने बी के खिलाफ कब्जे के लिए एक डिक्री प्राप्त की। हालांकि, निष्पादन में सी द्वारा उसे कब्जा प्राप्त करने में बाधा डाली गई थी। ए ने तब बी और सी के खिलाफ एक ठोस मुकदमा दायर किया। वादपत्र में, यह कहने के अलावा कि उसने बी के खिलाफ डिक्री प्राप्त की थी, ए द्वारा और कुछ नहीं कहा गया था। इसलिए, उसने संशोधन के लिए एक आवेदन दायर किया जिसे ट्रायल कोर्ट ने खारिज कर दिया लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा अनुमति दे दी गई सी न इस न्यायालय के समक्ष आया। अपील को खारिज करते हुए और उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हुए, इस न्यायालय ने कहा कि संशोधन की विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा गलत सिद्धांतों पर नहीं किया गया। अभिवाचन में केवल एक दोष था जिसे संशोधन द्वारा दूर कर दिया गया। मांगी गई राहत की गुणवत्ता और मात्रा वही रही। चूँकि संशोधन में कोई नया मामला पेश नहीं किया गया, इसलिए प्रतिवादी को आश्चर्य नहीं हुआ।

47. पुरुषोत्तम उम्मेद भाई एंड कंपनी बनाम मणिलाल एंड संस एआईआर 1961 एससी 325 में रिपोर्ट किए गए में भारत के बाहर व्यापार करने वाले भागीदारों द्वारा फर्म के

नाम पर एक मुकदमा दायर किया गया। यह माना गया कि वादी का केवल गलत विवरण था। फर्म के नाम का वाद अमान्य नहीं था और साझेदारों के नाम प्रतिस्थापित करके इसमें संशोधन किया जा सकता था।

50. इसी तरह की परिस्थितियों में, बाद के मामले गणेश ट्रेडिंग कंपनी बनाम मोजी राम (1978) 2 एससीसी 91 में, इस न्यायालय ने पुरुषोत्तम उम्मेद भाई एंड कंपनी (सुप्रा) में निर्धारित कानून को दोहराया। न्यायालय ने कहा:

"5. यह सच है कि, यदि कोई वादी स्वयं कार्रवाई के कारण को बदलना चाहता है और अप्रत्यक्ष रूप से, अपने अभिवचनों में संशोधन के माध्यम से, पूरी तरह से नया या असंगत कार्रवाई का कारण पेश करना चाहता है, जो वस्तुतः एक नए वाद या नए कारण के प्रतिस्थापन के समान है जो मूल रूप से था उसके स्थान पर कार्रवाई की, यदि यह उस पक्ष को जिसके खिलाफ मुकदमा लंबित है, किसी भी अधिकार से वंचित करने के बराबर है जो समय बीतने के कारण उसके पक्ष में अर्जित हो सकता है, तो न्यायालय इसकी अनुमति देने से इनकार कर देगा। लेकिन, केवल एक आवश्यक तथ्य को सामने रखने में विफलता, अपने आप में, कार्रवाई का एक नया कारण नहीं बनता है। कार्रवाई का कारण आवश्यक तथ्यों के पूरे समूह से बनता है जिसे वादी को अपने मुकदमे में सफल होने से पहले साबित करना होगा यह मुकदमे की संस्था का पूर्ववृत्त होना चाहिए। यदि वाद में दिए गए कथनों में से किसी भी आवश्यक तथ्य की

कमी है तो कार्रवाई का कारण दोषपूर्ण होगा। उस मामले में, कमी की आपूर्ति करने का प्रयास कभी-कभी कार्रवाई के एक नए कारण की शुरुआत के बराबर देखा जा सकता है, जो अपनी कमियों से ठीक होकर, वास्तव में कार्रवाई करने का एक अच्छा कारण बन गया है। हालाँकि, यह हर दोषपूर्ण अभिवचनों की स्थिति पर लगाई जाने वाली एकमात्र संभावित व्याख्या नहीं है। दोषपूर्ण अभिवचनों का आम तौर पर सही करना संभव है यदि जिस कारण को सामने लाने की मांग की गई है वह शुरू से ही पूरी तरह से अनुपस्थित नहीं था। यहां तक कि बहुत ही दोषपूर्ण अभिवचनों को भी ठीक करने की अनुमति दी जा सकती है, ताकि कार्रवाई का कारण बन सके जहां पर ऐसा कुछ भी नहीं था, परंतु इसकी आवश्यक शर्त का अनुपालन किया जाए जैसे कि किसी भी अतिरिक्त अदालती शुल्क का भुगतान, जो देय होया दूसरे पक्ष को क्षतिपूर्ति देना। जब समय की चूक ने कार्रवाई के नवगठित कारण को ही वर्जितकर दिया हो, केवल तभी अदालतों को, आमतौर पर, अभिवचनों में संशोधन के लिए प्रार्थनाओं को अस्वीकार कर देना चाहिए।

48. लक्ष्मीदास दयाभाई काबरावाला बनाम नानाभाई चुन्नीलाल काबरावाला एआईआर 1964 एससी 11 में, प्रतिदावे को क्रॉस-सूट मानकर संशोधन के लिए प्रतिवादी की प्रार्थना पर वादी ने अन्य बातों के साथ-साथ सीमा के आधार पर आपत्ति जताई थी। हालाँकि, संशोधन की अनुमति दी गई थी। जब मामला इस न्यायालय में पहुंचा, तो उच्च न्यायालय

के आदेश की पुष्टि करते हुए, बहुमत ने कहा:

"14. इसमें कोई संदेह नहीं है, सच है कि, असाधारण मामलों को छोड़कर, संशोधन करने की आज्ञा संहिता के आदेश 6 नियम 17 के तहत आम तौर पर तब अस्वीकार कर दिया जाएगा जब संशोधन का प्रभाव किसी पक्ष से वह कानूनी अधिकार छीनना होगा जो समय बीतने के कारण उसे प्राप्त हुआ था। लेकिन यह नियम तभी लागू हो सकता है जब या तो नए आरोप जोड़े जाएं या संशोधन के जरिए नई राहत मांगी जाए। उदाहरण के लिए, जहां एक संशोधन की मांग की जाती है जो केवल मौजूदा दलील को स्पष्ट करता है और इसमें कोई सार नहीं जोड़ता या बदलता है, यह कभी नहीं माना गया है कि सीमा की बाधा का प्रश्न मूल दलील में पहले से ही शामिल मामले के ऐसे स्पष्टीकरण की अनुमति देने में विचार किए जाने वाले प्रश्नों में से एक है।"

49. लक्ष्मीदास केस (सुप्रा) में न्यायालय ने आगे कहा कि चूंकि प्रकथन या राहत में कोई नया बदलाव नहीं था, इसलिए वादी के इस तर्क को बरकरार रखना संभव नहीं था कि लिखित बयान को एक क्रॉस-सूट में एक वाद में परिवर्तित करके, एक नया दावा किया गया था या एक नई राहत मांगी गई थी। 'वर्तमान मामले के तथ्यों के लिए, इसलिए, निर्णय यह मानते हैं कि संशोधनों को सीमा की अवधि से परे अनुमति नहीं दी जा सकती है और उस नियम के सीमित अपवादों का

कोई अनुप्रयोग नहीं है।

50. **जय जय राम मनोहर लाल बनाम राष्ट्रीय भवन निर्माण सामग्री आपूर्ति (1969) 1 एससीसी 869** में रिपोर्ट की गई, ए ने अपने व्यक्तिगत नाम से बी पर मुकदमा दायर किया, लेकिन बाद में एक हिंदू संयुक्त परिवार व्यवसाय के मालिक के रूप में मुकदमा करने के लिए वाद में संशोधन करने की अनुमति मांगी। संशोधन मंजूर कर लिया गया और मुकदमा डिक्री कर दिया गया। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए डिक्री को उलट दिया कि कार्रवाई एक "गैर-मौजूदा व्यक्ति" द्वारा की गई थी, उच्च न्यायालय के आदेश को पलटते हुए, इस न्यायालय (जस्टिसशाहजैसा कि वह तब थे) ने निम्नलिखित बारबार उद्धृत टिप्पणियाँ की: (एससीसी पृष्ठ 871, पैरा 5)

"5, ... प्रक्रिया के नियमों का उद्देश्य न्याय प्रशासन के लिए सहायक बनना है। किसी पक्ष को केवल कुछ गलती, लापरवाही, असावधानी या यहां तक कि प्रक्रिया के नियमों के उल्लंघन के कारण राहत देने से इनकार नहीं किया जा सकता है। न्यायालय हमेशा किसी भी पक्ष को अभिवचनों में संशोधन करने की अनुमति देता है, जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि आवेदन करने वाला पक्ष दुर्भावनापूर्ण कार्य कर रहा था, या अपनी गलती से उसने अपने प्रतिद्वंद्वी को चोट पहुंचाई थी, जिसकी भरपाई क्षतिपूर्तिके आदेश से नहीं की जा सकती थी। पहली चूक चाहे कितनी भी लापरवाहीपूर्ण या लापरवाह क्यों न रही हो, और, प्रस्तावित संशोधन में कितनी भी देर

क्यों न हो, संशोधन की अनुमति दी जा सकती है यदि इसे दूसरे पक्ष के साथ अन्याय किए बिना किया जा सकता है।" (जोर दिया गया)"

51. **गंगा बाई बनाम विजय कुमार (1974) 2 एससीसी 393** में, ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए एक मात्र निष्कर्ष के खिलाफ अपील दायर की गई थी। सात साल से अधिक समय बीत जाने के बाद, संशोधन की मांग की गई जिसके द्वारा एक प्रारंभिक डिक्री को चुनौती दी गई जिसे उच्च न्यायालय ने एक संक्षिप्त आदेश द्वारा मंजूर कर लिया। उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हुए, इस न्यायालय ने कहा:

"22. सितंबर 1958 से प्रारंभिक डिक्री को चुनौती नहीं दी गई थी और समय बीतने के साथ डिक्री धारक के पक्ष में एक मूल्यवान अधिकार अर्जित हो गया था। संशोधन की अनुमति देने की शक्ति निस्संदेह व्यापक है और सीमा के कानून के बावजूद, न्याय के हित में किसी भी स्तर पर इसका उचित प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन ऐसी दूरगामी विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग न्यायिक विचारों द्वारा नियंत्रित होता है और विवेक जितना व्यापक होता है, अदालत की ओर से उतनी ही अधिक देखभाल और सावधानी बरतनी चाहिए।"

52. **मोदी एसपीजीऔर डब्ल्यूजीमिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम लाधा राम एंड कंपनी (1976) 4 एससीसी 320** में रिपोर्ट की गई, ट्रायल कोर्ट ने आदेश 6 नियम 17 के तहत एक आवेदन को खारिज करते हुए कहा कि स्पष्ट प्रवेश की

अस्वीकृति वादी को उस के अर्जित मूल्यवान अधिकार से वंचित करने के लिए प्रेरित है और यह कानून के खिलाफ है। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण में ट्रायल कोर्ट के फैसले की पुष्टि की और माना कि संशोधन के माध्यम से प्रतिवादी एक पूरी तरह से अलग मामला पेश करना चाहता था और यदि ऐसे संशोधनों की अनुमति दी गई तो इससे दूसरे पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उपरोक्त निर्णय का पैराग्राफ 10 नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"10. यह सच है कि असंगत कथन अभिवचनों में की जा सकती हैं लेकिन पैरा 25 और 26 के प्रतिस्थापन का प्रभाव असंगत और वैकल्पिक दलीलें नहीं दे रहा है बल्कि यह लिखित बयान में प्रतिवादियों द्वारा की गई स्वीकारोक्ति से वादी को पूरी तरह से विस्थापित करने की कोशिश कर रहा है। यदि ऐसे संशोधनों की अनुमति दी जाती है तो वादी को प्रतिवादियों से स्वीकारोक्ति प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर दिया जाएगा। उच्च न्यायालय ने संशोधन के आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया और ट्रायल कोर्ट से सहमत हो गया।"

53. हरिदास ऐलदास थदानी बनाम गोदरेज रुस्तम करमानी (1984) 1 एससीसी 668 में इस न्यायालय ने कहा कि:

"1. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अदालत को अभिवचनों में संशोधन की प्रार्थना स्वीकार करने में बेहद उदार होना चाहिए जब तक कि दूसरे पक्ष के साथ गंभीर अन्याय या अपूरणीय क्षति न हो। यह भी स्पष्ट है कि

पुनरीक्षण न्यायालय को ठोस कारणों या बाध्यकारी परिस्थितियों के अभाव में संशोधन की अनुमति देने में प्रयोग किए गए विवेक के साथ हल्के ढंग से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

54. सूरज प्रकाश भसीन बनाम राज रानी भास (1981) 3 एससीसी 652 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि:

"...उदारवादी सिद्धांत जो संशोधन की अनुमति देने में विवेक के प्रयोग का मार्गदर्शन करते हैं, वे हैं कि कार्यवाहियों की बहुलता से बचा जाना चाहिए, जो संशोधन किसी कार्रवाई के चरित्र को पूरी तरह से नहीं बदलते हैं उन्हें तुरंत मंजूरी दी जानी चाहिए जबकि अन्याय और पूर्वाग्रह का ध्यान रखना चाहिए संशोधन के बहाने विरोधी पक्ष पर अपरिवर्तनीय चरित्र का आरोप नहीं लगाया जाना चाहिए, कार्रवाई का एक विशिष्ट कारण दूसरे के लिए प्रतिस्थापित नहीं किया जाना चाहिए और मुकदमे की विषय-वस्तु में संशोधन नहीं किया जाना चाहिए।"

55. बी.के. नारायण पिल्लई बनाम परमेश्वरन पिल्लई (2000) 1 एससीसी 712, ए द्वारा बी से कब्जा वापस पाने के लिए एक मुकदमा दायर किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि बी एक लाइसेंस धारी था। लिखित बयान में बी ने तर्क दिया कि वह पट्टेदार था। मुकदमा शुरू होने के बाद, उन्होंने एक वैकल्पिक दलील जोड़कर लिखित बयान में संशोधन के लिए आवेदन किया कि यदि बी को लाइसेंसधारी माना जाता है, तो लाइसेंस

अपरिवर्तनीय था। संशोधन को अस्वीकार कर दिया गया। संशोधन से इनकार करने वाले आदेशों को रद्द करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"3. आदेश 6 नियम 17 सीपीसी का उद्देश्यकिसी भी पक्ष को अपनी दलीलों को ऐसे तरीके से और ऐसी शर्तों पर बदलने या संशोधित करने की अनुमति देना है जो उचित हो। संशोधन की अनुमति देने की शक्ति व्यापक है और विभिन्न उच्च न्यायालयों किया और [सर्वोच्च न्यायालय] द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के आधार पर न्याय के हित में कार्यवाही के किसी भी चरण में इसका प्रयोग जा सकता है। यह सच है कि संशोधन को सभी परिस्थितियों में सही होने का दावा नहीं किया जा सकता है, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि अदालतों को ऐसी प्रार्थनाओं पर निर्णय लेते समय अति तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। उदारवादी दृष्टिकोण सामान्य नियम होना चाहिए, खासकर उन मामलों में जहां दूसरे पक्ष को लागत की भरपाई की जा सकती है। पार्टियों के बीच न्याय प्रशासन में कानून की तकनीकीताओं को अदालतों में बाधा डालने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। मुकदमेबाजी की अनावश्यक बहुलता से बचने के लिए दलीलों में संशोधन की अनुमति है।"

56. यह निर्णय उषा बालासाहेब स्वामी बनाम किरण अप्पासो स्वामी (2007) 5 एससीसी 602 में संदर्भित किया गया है और न्यायालय ने पाया कि मोदी स्पे. केस (सुप्रा) इस प्रस्ताव के लिए एक स्पष्टनज़ीर है कि एक बार

लिखित बयान में वादी के पक्ष में एक स्वीकारोक्ति शामिल हो गई, तो संशोधन द्वारा प्रतिवादी की ऐसी स्वीकारोक्ति को वापस नहीं लिया जा सकता है और यदि अनुमति दी जाती है, तो यह वादी के दावे को पूरी तरह से खतम करने के बराबर होगा।

57. उषा बालासाहेब स्वामी (सुप्रा) के उसी फैसले में, न्यायालय ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों पर विचार किया और निर्धारित किया कि वाद में संशोधन के लिए प्रार्थना और लिखित बयान में संशोधन के लिए प्रार्थना अलग-अलग आधारों पर है।

सामान्य सिद्धांत जो वाद पत्र में संशोधन पर लागू होता है की अभिवचनों में संशोधन की अनुमति नहीं दी जा सकती है ताकि कार्रवाई के कारण या दावे की प्रकृति को बदला जा सके या प्रतिस्थापित किया जा सके, लिखित कथन के संशोधन से संबंधित सिद्धांतों में इसका कोई समकक्ष नहीं है। इसलिए, बचाव के नए आधार को जोड़ना या बचाव में बदलाव करना या लिखित बयान में असंगत दलीलें देना आपत्तिजनक नहीं होगा, जबकि वाद पत्र में कार्रवाई का नया कारण जोड़ना, बदलना या प्रतिस्थापित करना आपत्तिजनक हो सकता है।

58. जहां तक याचिका में दलीलों का सवाल है, इस संबंध में कानून अच्छी तरह से तय है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बछाज नाहर बनाम नीलिमा मंडल के मामले में (2008) 17एससीसी 49** में बताया कि याचिका के तहत दावे के रूप में कोई राहत नहीं दी जा सकती है, यदि वह याचिका में निहित तथ्यों

से मेल नहीं खाती है। उपरोक्त मामले में यह भी कहा गया था कि किसी भी सबूत पर गौर नहीं किया जा सकता है, उस दलील पर जिसे कभी दलीलों में सामने नहीं रखा गया था। प्रासंगिक अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद संख्या 10 और 12 नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“10. उच्च न्यायालय ने, इस मामले में, वादी को मुकदमेबाजी के एक और दौर में धकेलने से होने वाली किसी भी कठिनाई को कम करने के अपने स्पष्ट उत्साह में, एक निर्णय दिया है जो नागरिक प्रक्रिया के कई बुनियादी नियमों का उल्लंघन करता है। जिन नियमों का उल्लंघन किया गया है वे हैं:

(1) ऐसे अभिवाचनों पर किसी भी तरह के सबूत पर गौर नहीं किया जा सकता, जिसे अभिवाचनों में कभी सामने नहीं रखा गया।

एक प्रश्न जो अभिवाचनों से उत्पन्न हुआ था और जो किसी मुद्दे का विषय नहीं था, अदालत द्वारा तय नहीं किया जा सकता है।

(ii) अदालत ऐसा मामला नहीं बना सकती है जिस पर कोई अभिवाचन नहीं दी गई है। अदालत को अपने फैसले को अभिवाचनों में उठाए गए सवाल तक ही सीमित रखना चाहिए। न ही वह ऐसी राहत दे सकती है जिसका दावा नहीं किया गया हो और जो वादी में कथित तथ्यों और कार्रवाई के कारण से उत्पन्न न हो।

(ii) तथ्यात्मक मुद्दा नहीं उठाया जा सकता है या दूसरी अपील में पहली बार विचार किया गया।

12. अभिवाचनों और मुद्दों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि वादी सभी मुद्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करके सुनवाई के लिए आएँ और सुनवाई के दौरान मामलों के विस्तार या आधार को स्थानांतरित होने से रोका जाए। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना भी है कि प्रत्येक पक्ष उन प्रश्नों के प्रति पूरी तरह जागरूक है जिन्हें उठाए जाने या विचार किए जाने की संभावना है ताकि उन्हें मुद्दों से संबंधित प्रासंगिक साक्ष्य को अदालत के समक्ष विचारार्थ रखने का अवसर मिल सके। इस न्यायालय ने बार-बार माना है कि अभिवाचन प्रत्येक पक्ष को दूसरे के मामले की जानकारी देने के लिए होती है ताकि इसे पूरा किया जा सके, अदालतों को यह निर्धारित करने में सक्षम बनाया जा सके कि पक्षों के बीच वास्तव में क्या मुद्दा है, और किसी भी विचलन को रोका जा सके जिससे विशिष्ट कारणों पर ही मुकदमेबाजी होनी चाहिए।”

59. बछाजनाहर (सुप्रा) में उपरोक्त निर्णय को ध्यान में रखते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वी. प्रभाकर बनाम बसवराज के. (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा के मामले में एक और निर्णय दिया गया और 2022 में रिपोर्ट किया गया

(1) एससीसी पृष्ठ 115, उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद-21 इस प्रकार है:-

“21. केवल दलीलों के आधार पर ही राहत मिल सकती है। साक्ष्य भी ऐसी दलीलों पर आधारित होना चाहिए। एकमात्र अपवाद तब

होगा जब पक्ष एक-दूसरे के मामले को अच्छी तरह से जानते हो और किसी मुद्दे पर इतनी सरलता से पैरवी करते हों। इसके अतिरिक्त, अदालत किसी तथ्य पर न्यायिक टिप्पणी तब ले सकती है जब वह रिकॉर्ड पर स्पष्ट हो।"

60. मामले के इस दृष्टिकोण में, मेरी राय है कि यदि याचिका में चाहीगई राहत का समर्थन करने के लिए कोई उचित दलील नहीं है, तो प्रतिवादी के पास ऐसी राहत को रोकने या विरोध करने का कोई अवसर नहीं है, और यदि न्यायालय ऐसी राहत पर विचार करके राहत प्रदान करती है तो इससे घोर अन्याय होगा।

61. उपरोक्त के मद्देनजर, न्यायालय की राय है कि वर्तमान याचिका दोनों आधारों पर खारिज की जानी चाहिए, अर्थात् याचिकाकर्ता द्वारा दायर संशोधन मामले की प्रकृति को बदल देगा और दूसरा यह है कि उपरोक्त आदेशों को चुनौती देने के लिए किसी भी तरह की कोई दलील पूरी याचिका में याचिका कर्ता द्वारा नहीं दी गई है। इसके अलावा तो संशोधन आवेदन में और न ही वर्तमान याचिका में संशोधन आवेदन दाखिल करने में होने वाली देरी के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया है क्योंकि इस मामले में मुकदमा वर्ष 2000 में दायर किया गया था और वर्ष 2009 में संशोधन की मांग की गई थी।

62. मामले के इस दृष्टिकोण में, न्यायालय की राय है कि याचिका बिना किसी योग्यता

के हैं. यह खारिज करने योग्य है और इसे इसलिए खारिज किया जाता है।

63. रिकॉर्ड के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि वादी-याचिकाकर्ता द्वारा दायर किया गया सिविल मुकदमा पिछले 23 वर्षों से ट्रायल कोर्ट में विचाराधीन है। पार्टियों द्वारा लिखित बयान पहले ही दायर किए जा चुके हैं।

64. मामले के इस दृष्टिकोण में, न्यायालय की राय है कि ट्रायल कोर्ट को उपरोक्त मुकदमे को आज से छह महीने की अवधि के भीतर सख्ती से कानून के अनुसार और इस फैसले में इस न्यायालय द्वारा किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना शीघ्रता से और सकारात्मक रूप से तय करने का निर्देश दिया जाता है।

65. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की एक प्रति तीन दिनों के भीतर जिला न्यायाधीश इलाहाबाद के माध्यम से अतिरिक्त सिविल जज (सीनियर डिवीजन) इलाहाबाद को सूचित करें।

66. निचली अदालत द्वारा की गई कार्रवाई की रिपोर्ट इस न्यायालय में 01.12.2023 को या उससे पहले दायर की जाए।

67. उपरोक्त शर्तों के अनुसार 01.12.2023 को अनुपालन की रिपोर्ट करने के अलावा याचिका का निपटारा किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 691

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या

276/2023

बच्चा प्रसाद सिंह एवं अन्य ... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य .. विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री कपिल मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षी: जी.ए.

दंड संहिता - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 311-एफआईआर पंजीकृत की गई-अभियोजन के लिए मंजूरी दी गई-आरोप पत्र दायर किया गया-अभियोजन ने अभियोजन के लिए संशोधित अनुमति के साथ अनुपूरक केस डायरी दायर की-आपत्ति दायर की गई-अनुमति दी गई-आपेक्षित -प्रथम दृष्टया अनुमति के अभाव का वाद नहीं है-आवेदक ने अभियोजन के लिए स्वीकृत दिए जाने में कुछ अवैधता और अमान्यता को उठाया है-इसे विचारणीय न्यायालय के समक्ष उठाया/आक्षेपित किया जा सकता है-आवेदन निरस्त किया गया। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. शेख जावेद इकबाल @ अशफाक अंसारी @ जावेद अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 वाद (सभी) 1115
2. मनसुखलाल विठ्ठलदास चौहान बनाम गुजरात राज्य (1997) 7 एससीसी 622

3. केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य बनाम धीरेंद्र कुमार अग्रवाल एवं अन्य, (2020) 17 एससीसी 664

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. कपिल मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त आवेदकों के अधिवक्ता श्री ज्योतिंद्र मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता-। श्री शिव नाथ तिलहारी को सुना और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया।

2. प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदकों ने दिनांक 3.8.2010 और 2.2.2022 के स्वीकृति आदेशों और धारा 120B, 121, 121A, 420, 467, 468 भ०द०वि० और 13, 18, 20, 21, 23(2), 38, 39, थाना-नौहस्ता, जिला कानपुर नगर से संबंधित रिट याचिका सं 40 (राज्य बनाम बच्चा प्रसाद सिंह एवं अन्य) के मामले में विशेष एन.आई.ए./ए.टी.एस. न्यायालय, लखनऊ के न्यायालय में मामला लंबित है और मामले की आगे की कार्यवाही भी लंबित है, के आदेश और कार्यवाही को चुनौती दी है।

3. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि 8.2.2010 को आवेदक बच्चा प्रसाद @ बी.आर, नवीन प्रसाद सिंह, राजेंद्र दास @ अंबरीश सहित दो अन्य सह-अभियुक्तों, अर्थात् बंशीधर @ चिंतन और दीपक राम को उत्तर प्रदेश राज्य टास्क फोर्स टीम द्वारा गिरफ्तार किया गया था, जिसकी

अध्यक्षता सब इंस्पेक्टर राजीव द्विवेदी ने सुबह 10.00-11.00 बजे की थी। उत्तर प्रदेश एस.टी.एफ. के ए.एस.पी. मनोज कुमार झा की शिकायत पर थाना-नौबस्ता में प्राथमिकी दर्ज की गई। तत्पश्चात्, अभियोजन की मंजूरी प्रदान करने के लिए विवेचनाधिकारी द्वारा डी.आई.जी. (ए.टी.एस.), मुख्यालय लखनऊ को दिनांक 7-7-2010 को एक पत्र भेजा गया था और डी.आई.जी. (ए.टी.एस.) ने सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार को एक पत्र भेजा था जिसमें अभियोजन की मंजूरी प्रदान करने का अनुरोध किया गया था।

4. उपर्युक्त अनुरोध पर विचार करने के बाद, राज्य सरकार द्वारा दिनांक 3.8.2010 के पत्र द्वारा अभियोजन की मंजूरी दी गई थी। 5.8.2010 को, विवेचनाधिकारी द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया था और 4.8.2011 को सत्र विचारण संख्या-1265 वर्ष 2010 में सह-आरोपी दीपक राम सहित आवेदकों नवीन प्रसाद सिंह और राजेंद्र दास @ अंबरीश के खिलाफ आरोप तय किए गए थे। आवेदक बच्चा प्रसाद सिंह किसी अन्य मामले में आंध्र प्रदेश में न्यायिक हिरासत में था और उसकी फाइल मूल संख्या-1265 वर्ष 2010 से अलग थी और इसे संख्या-1265 ए वर्ष 2010 के रूप में नया नंबर सौंपा गया था। अभियोजन पक्ष के गवाहों यानी अ०सा०-1 से अ०सा०-12 की जांच की गई। जिरह करने पर विवेचनाधिकारी (अ०सा०-11) ने स्वीकार किया कि आरोपी के हस्तलेख में कोई साहित्य नहीं है; साहित्य में कानपुर में किसी आपराधिक गतिविधि का उल्लेख नहीं है; और कानपुर नगर में पैसे उगाही का कोई सबूत नहीं है। उन्होंने आगे

कहा कि आरोपी से साहित्य की जब्ती के बारे में कोई स्वतंत्र मौखिक सबूत नहीं है, वह जालसाजी से संबंधित विशिष्ट आरोपों को याद नहीं कर सके; आरोप का एकमात्र आधार उन सामग्रियों, पर्चों की जब्ती है जो प्रिंट लाइन के बिना/तकनीकी रूप से कोई भी इन सामग्रियों को प्रिंट या प्रकाशित कर सकता है।

5. दो सह-आरोपियों, बंशीधर और दीपक राम की मुकदमे के दौरान मृत्यु हो गई। प्रस्तुत आवेदकों को इस न्यायालय द्वारा वर्ष 2013 में जमानत दी गई है।

6. दोनों फाइलों 1245/2010 और 1265/2010 को विशेष एन.आई.ए./ए.टी.एस. कोर्ट, लखनऊ में 8.1.2022 को स्थानांतरित कर दिया गया। 28.1.2022 को अपर सत्र न्यायधीश-3/विशेष एन.आई.ए./ए.टी.एस. कोर्ट लखनऊ को फाइल मिली और सत्र मामला दर्ज करने का आदेश दिया।

7. अभियोजन पक्ष ने 8.4.2022 को अभियोजन के लिए संशोधित मंजूरी के साथ पूरक केस डायरी दायर की, जिसकी अनुमति दी गई। इसके बाद, 29.9.2022 को, आरोपी द्वारा इस अनुरोध के साथ एक आपति दर्ज की गई कि विचारण न्यायालय पूरक केस डायरी और मंजूरी आदेश को रद्द कर सकता है। विचारण न्यायालय ने इस आपति को रिकॉर्ड में ले लिया। अभियोजन पक्ष द्वारा 24.11.2022 को उक्त आपति का उत्तर भी दायर किया गया था। और उसके बाद, 24.11.2022 को ही, विचारण न्यायालय ने धारा 311 द०प्र०स० के तहत आवेदन पर

अभियोजन पक्ष को अनुमति दे दी और इस प्रकार, आवेदक ने उपरोक्त सत्र परीक्षण में शुरू की गई पूरी कार्यवाही सहित दिनांक 3.8.2010 और 2.2.2022 के मंजूरी आदेशों से व्यथित होकर प्रस्तुत आवेदन दायर किया है।

8. आवेदकों की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि बहुत प्रारंभिक चरण में, अभियोजन पक्ष का इरादा संदिग्ध है, क्योंकि अपुष्ट जानकारी के आधार पर, आवेदकों को ठोस सबूत के बिना गिरफ्तार किया गया था; चूंकि आवेदकों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और आरोप पत्र भी दायर कर दिया गया है। इसके बाद, आवेदकों को पूर्व सूचना दिए बिना, मामले को कानपुर से लखनऊ स्थानांतरित कर दिया गया और जटिल कार्रवाई करते हुए पूरक केस डायरी और मंजूरी का संशोधित आदेश दिनांक 2.2.2022 विचारण न्यायालय के समक्ष दायर किया गया। हालांकि जैसे ही आवेदकों को यह तथ्य पता चला, उन्होंने 29.9.2022 को आपतियां दर्ज कीं, लेकिन विचारण न्यायालय ने अपने न्यायिक दिमाग को लागू किए बिना, पूरक केस डायरी को स्वीकार कर लिया और 2.2.2022 को अभियोजन के लिए मंजूरी का आदेश जारी किया जो पहली मंजूरी दिए जाने के लगभग 12 साल बाद था।

9. अपने तर्कों को जोड़ते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि विचारण न्यायालय के समक्ष तय की गई कई तारीखों और उसके बाद पारित आदेश से, यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने बहुत ही अविवेकपूर्ण और लापरवाह तरीके से काम किया है। उन्होंने कहा कि सबसे पहले,

जब मामले को कानपुर से लखनऊ स्थानांतरित किया गया था, तो आवेदकों को इसकी सूचना नहीं दी गई थी और उसके बाद, जब आवेदकों द्वारा 29.9.2022 को पूरक केस डायरी और मंजूरी के आदेश को गैरकानूनी मंजूरी के आधार पर रद्द करने के लिए आपत्ति दर्ज की गई थी, तो विचारण न्यायालय ने जांच एजेंसी को आपत्ति दर्ज करने का समय दिया, जो 24.11.2022 को दायर किया गया था, और उसके बाद, 2.2.2022 को, आरोपी की ओर से बीमारी के आधार पर हाजिरी माफी के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, लेकिन उसी दिन, विचारण न्यायालय ने गवाह कुमार प्रशांत का बयान दर्ज किया, जो उत्तर प्रदेश की गृह सरकार के विशेष सचिव थे और जिरह के अवसर से इनकार कर दिया। वह प्रस्तुत करते हैं कि यह 15.12.2022 की बात है, जब यह पता चला कि 24.12.2022 को, अभियोजन पक्ष को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उसके आवेदन पर विचारण न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई है और वह भी अभियुक्त को सूचित किए बिना और दिनांक 29.9.2022 की आपत्ति के निपटान के बिना।

10. अपने तर्कों को जारी रखते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967 (इसके बाद 'अधिनियम 1967' के रूप में संदर्भित) की धारा 45(2) के प्रावधान स्पष्ट रूप से प्रदान करते हैं कि 'अभियोजन की मंजूरी केवल केंद्र सरकार या राज्य सरकार, जैसा भी मामला हो, द्वारा नियुक्त ऐसे प्राधिकरण की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद दी जाएगी या, जो साक्ष्य की स्वतंत्र समीक्षा करेगा। वह प्रस्तुत करते हैं

कि पूर्वोक्त प्रावधान से, यह बहुत स्पष्ट है कि प्राधिकरण की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही अभियोजन की मंजूरी दी जा सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि संस्वीकृति प्राधिकारी ने केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार, जैसा भी मामला हो, द्वारा नियुक्त प्राधिकारी की रिपोर्ट का अध्ययन किया होगा लेकिन इस मामले में वर्ष 2010 में पहली मंजूरी दी गई थी और उस समय कोई पुनरावलोकन प्राधिकरण नहीं था और अचानक, 2.2.2022 को धारा 173(8) द०प्र०स० के प्रावधानों की आड़ में, अभियोजन के लिए मंजूरी दी गई और अभियोजन के लिए मंजूरी के आदेश के साथ विचारण न्यायालय के समक्ष पूरक केस डायरी प्रस्तुत की गई, जो पूरी तरह से गैरकानूनी है और अधिनियम 1967 की धारा 45 की उपधारा (2) के जनादेश के खिलाफ है। उन्होंने कहा कि 3.8.2010 की पहली मंजूरी अवैध है क्योंकि सरकार द्वारा अभियोग के दौरान एकत्र किए गए सबूतों की स्वतंत्र समीक्षा के लिए प्राधिकरण नियुक्त नहीं किया गया था और इसके अलावा मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष अधिनियम 1967 की धारा 45 की उपधारा (2) के जनादेश के अनुसार विचार करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी।

11. आगे तर्क दिया कि विवेचनाधिकारी ने आवेदकों के खिलाफ यांत्रिक तरीके से आरोप पत्र दायर किया और यह बिना किसी सबूत को इकट्ठा किए और धारा 120 बी, 121, 121-ए, 420, 467, 468 भ०द०वि० और 13, 18, 20, 21, 23(2), 38, 39, 40 यू.ए.पी.ए के तहत धाराओं के तहत कोई अपराध का गठन

नहीं है। इसलिए, आवेदकों के खिलाफ शुरु की गई पूरी आपराधिक कार्यवाही रद्द किए जाने योग्य है।

12. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने 2021 लॉ सूट (सभी) 1115, शेख जावेद इकबाल @ अशफाक अंसारी @ जावेद अंसारी बनाम यूपी राज्य और अन्य में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय पर भरोसा किया है और पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-35, 36 और 37 का उल्लेख किया है। पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-35, 36 और 37 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"35. केंद्र सरकार या राज्य सरकार, जैसा भी मामला हो, द्वारा नियुक्त प्राधिकरण द्वारा स्वतंत्र समीक्षा की शर्त लागू करने का मुख्य उद्देश्य, कानून लागू करने वाली एजेंसियों द्वारा यू.ए.पी.ए. के कड़े प्रावधानों के दुरुपयोग को रोकना था। इसके अलावा, जब विधायिका ने अपने विवेक से मंजूरी देने के लिए एक विशिष्ट अनिवार्य प्रक्रिया निर्धारित की है, तो मंजूरी प्राधिकारी का कर्तव्य था कि वह उस वैधानिक प्रक्रिया का पालन करे। लेकिन दुर्भाग्य से, रिकॉर्ड पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो प्रथम दृष्टया भी यह दर्शाती हो कि जांच प्राधिकरण द्वारा एकत्र किए गए सबूतों की स्वतंत्र रूप से समीक्षा करने वाले किसी भी प्राधिकारी की सिफारिश कभी भी यू.ए.पी.ए. की धारा 45 की उप-धारा (1) के तहत मंजूरी प्राप्त करते समय सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी। दूसरे शब्दों में, मंजूरी देते समय सक्षम प्राधिकारी, प्रस्तुत मामले में, प्रासंगिक सामग्री से वंचित था यानी स्वतंत्र प्राधिकारी की सिफारिश जो इस बात पर विचार करने के

लिए अनिवार्य थी कि मंजूरी दी जानी चाहिए या नहीं।

36. अब इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या अनिवार्य प्रक्रिया के इस अंतर्निहित उल्लंघन के विचारण में विचारण न्यायालय द्वारा ध्यान रखा जाना है, क्योंकि इस मामले में मुकदमा आगे बढ़ गया है और अभियोजन पक्ष द्वारा कई अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच की गई है, या इस मामले में दी गई मंजूरी में दोष ऐसी प्रकृति का है, जिसे मुकदमे के समापन तक इंतजार नहीं करना चाहिए। इस बिंदु की मूल्यांकन करने के लिए मंजूरी के संबंध में कानून पर एक नज़र डालना वांछनीय है।

37. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया केस सी.बी.आई., बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, मनु/एस.सी./1220/2013 माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार मंजूरी की वैधता पर विचार-विमर्श किया: -

"7. अभियोजन पक्ष को अदालत को संतुष्ट करना होगा कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी के लिए मामले को भेजने के समय, इस तरह के अनुदान के लिए पर्याप्त सामग्री उक्त प्राधिकारी को उपलब्ध कराई गई थी। यह मंजूरी आदेश से भी स्पष्ट हो सकता है, यदि यह अत्यंत व्यापक है, क्योंकि मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को मंजूरी आदेश में बताया जा सकता है। हालांकि, प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में, अदालत को यह पता लगाना होगा कि क्या संबंधित मंजूरी प्राधिकारी की ओर से उसके समक्ष रखी गई सामग्री पर

दिमाग लगाया गया है। यह इस कारण से आवश्यक है कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी पर यह दायित्व है कि वह मामले के महत्वपूर्ण तथ्यों की पूरी जानकारी होने के बाद ही मंजूरी देने या रोकने के अपने कर्तव्य का निर्वहन करे। मंजूरी देना केवल औपचारिकता नहीं है। इसलिए, जनहित और जिस अभियुक्त के खिलाफ मंजूरी मांगी गई है, उसे उपलब्ध संरक्षण को ध्यान में रखते हुए मंजूरी के संबंध में प्रावधानों का पूरी सख्ती के साथ पालन किया जाना चाहिए।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मंजूरी अभियोजन के लिए जिम्मेदारी उठाती है। इसलिए, यह एक कटु प्रक्रिया नहीं है, बल्कि एक गंभीर और पवित्र कार्य है जो सरकारी कर्मचारी को तुच्छ अभियोजन के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है। इसके अलावा, यह कष्टप्रद अभियोजन को हतोत्साहित करने का एक हथियार है और निर्दोष के लिए एक सुरक्षा है, हालांकि ये दोषियों के लिए ढाल भी नहीं है।

सामग्री पर विचार करने का अर्थ है दिमाग का प्रयोग। इसलिए, मंजूरी के आदेश में प्रथम दृष्टया यह खुलासा होना चाहिए कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने उसके समक्ष रखे गए साक्ष्य और अन्य सामग्री पर विचार किया था। प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में, अभियोजन पक्ष को प्रमुख साक्ष्य द्वारा अदालत को स्थापित और संतुष्ट करना होता है कि उन तथ्यों को मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था और प्राधिकरण ने उस पर अपना दिमाग लगाया था। यदि स्वीकृति आदेश से

यह संकेत मिलता है कि सभी प्रासंगिक सामग्री अर्थात् प्राथमिकी, प्रकटीकरण बयान, फ़र्द बरामदगी, आरोप पत्र और रिकॉर्ड पर अन्य सामग्री मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी और यदि मंजूरी आदेश के पाठ से यह स्पष्ट है कि मंजूरी प्राधिकारी ने सभी सामग्री का अवलोकन किया है, तो ये निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मंजूरी कानून के अनुसार दी गई थी। यह उस स्थिति में आवश्यक हो जाता है जब न्यायालय को अन्य बातों के साथ-साथ मंजूरी के आदेश की वैधता की जांच इस आधार पर करनी है कि आदेश दिमाग के गैर-उपयोग के दोष से ग्रस्त है।

8. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, कानूनी प्रस्तावों को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

(क) अभियोजन पक्ष को प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रकटीकरण विवरण, गवाहों के बयान, फ़र्द बरामदगी, प्रारूप आरोप पत्र और अन्य सभी संगत सामग्री सहित संस्वीकृत प्राधिकारी को संपूर्ण संगत रिकार्ड भेजना चाहिए। इस प्रकार भेजे गए रिकार्ड में वह सामग्री/दस्तावेज, यदि कोई हो, भी शामिल होना चाहिए जो शेष प्रकरण को अभियुक्त के पक्ष में झुका सकता है और जिसके आधार पर सक्षम प्राधिकारी मंजूरी देने से मना कर सकता है।

(ख) प्राधिकरण को मंजूरी देने या रोकने के अपने कर्तव्य का निर्वहन करते समय अभियोजन पक्ष द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किए गए संपूर्ण रिकार्ड की पूर्ण और सजगता से संवीक्षा करनी होती है और मंजूरी प्रदान करने

से पूर्व सभी संगत तथ्यों पर विचार करते हुए स्वतंत्र रूप से अपना दिमाग लगाना होता है और सभी संगत तथ्यों पर विचार करना होता है।

(ग) मंजूरी प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग कड़ाई से जनहित और उस अभियुक्त, जिसके विरुद्ध स्वीकृति मांगी गई है, को उपलब्ध संरक्षण को ध्यान में रखते हुए किया जाना होता है।

(घ) स्वीकृति के आदेश से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्राधिकरण को सभी संगत तथ्यों/सामग्रियों की जानकारी थी और उसने सभी संगत सामग्री पर अपना दिमाग लगाया था।

(ङ) प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में, अभियोजन पक्ष को प्रमुख साक्ष्य द्वारा न्यायालय को यह स्थापित और संतुष्ट करना होता है कि संस्वीकृति प्राधिकारी के समक्ष संपूर्ण संगत तथ्यों को रखा गया था और प्राधिकारी ने उस पर अपना दिमाग लगाया था और यह कि मंजूरी कानून के अनुसार दी गई थी।

13. पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक प्राधिकरण द्वारा स्वतंत्र समीक्षा के संबंध में प्रावधान का उद्देश्य, अधिनियम 1967 के कड़े प्रावधानों के दुरुपयोग को रोकना है। इस प्रकार, 1967 की धारा 45 की उपधारा (1) और (2) के स्वर अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं।

14. मनसुखलाल विट्ठलदास चौहान बनाम गुजरात राज्य (1997) 7 एस.सी.सी. 622 के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा करते हुए, उन्होंने पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-38 और 39 का उल्लेख किया है। पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-38 और 39 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"38. सचिवालय फाइल की नोटिंग से, प्रदर्श-70 में निहित, साथ ही सचिव और अवर सचिव द्वारा किए गए परस्पर विरोधी बयान से, यह वास्तव में मंजूरी दी जो के रूप में धारण करने के लिए संभव नहीं है। गुजरात उच्च न्यायालय ने माना है कि उप सचिव, श्री लाडे (अ०सा०-8) द्वारा मंजूरी दी गई थी, इस तथ्य की अनदेखी करते हुए कि फाइल सचिव के समक्ष भी रखी गई थी और उन्होंने उस पर अपने हस्ताक्षर भी किए थे। स्वीकार की गई फाइल को मुख्यमंत्री के कार्यालय में भेज दिया गया था जहां से इसे 30 जनवरी, 1985 को वापस प्राप्त किया गया था और इसलिए यह समझ में नहीं आता कि 23 जनवरी, 1985 को मंजूरी कैसे दी जा सकती है। यह भ्रम भी उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का परिणाम प्रतीत होता है कि मंजूरी एक महीने के भीतर दी जानी चाहिए। विभाग के प्रमुख होने के नाते सचिव ने शपथ पर कहा कि उन्होंने मंजूरी दे दी थी, विशेष रूप से इसलिए कि परमादेश उन्हें निर्देशित किया गया था और उन्हें उस निर्देश का पालन करना था, उप सचिव, जिन्होंने वास्तव में मंजूरी का आदेश जारी किया था, ने इस पर हस्ताक्षर किए थे और इसलिए, उन्होंने मंजूरी को कुबूल किया किया और कहा कि उन्होंने अभियोजन को

मंजूरी दे दी है। दोनों ने यह प्रदर्शित करने की कोशिश की कि उन्होंने उच्च न्यायालय द्वारा जारी परमादेश का ईमानदारी से पालन किया था और अपनी जान बचाने का प्रयास किया था। इस प्रक्रिया में, मंजूरी की वैधता और तर्क-संगतता को नष्ट कर दिया, जिसके फलस्वरूप अपीलकर्ता के अभियोजन का आधार बना, जिसके परिणामस्वरूप पूरी कार्यवाही शुरू से ही शून्य हो गई।

39. सामान्यतः जब स्वीकृति आदेश को असत्य माना जाता है, तो मामले को मामले पर पुनः विचार करने और विधि के अनुसार मंजूरी का एक नया आदेश पारित करने के लिए प्राधिकारी को वापस भेज दिया जाता है। लेकिन प्रस्तुत मामले में, घटना वर्ष 1983 की है और इसलिए, चौदह साल बीत जाने के बाद, हमारी राय में, यह निर्देश देना उचित नहीं होगा कि कार्यवाही फिर से मंजूरी के चरण से शुरू की जाए ताकि अपीलकर्ता को मुकदमेबाजी की एक और पारी में उजागर किया जा सके और उसे संविधान के अनुच्छेद 21 के जनादेश के विपरीत अनिश्चित काल के लिए लंबे समय तक मुकदमा चलाया जा सके, जो, जीवन के अधिकार के एक हिस्से के रूप में, एक त्वरित परीक्षण के माध्यम से प्रारंभिक और आपराधिक कार्यवाही के तौर पर देखता है।

15. पूर्वोक्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने कहा कि यह पुराना स्थापित कानून है कि एक बार जब यह पाया जाता है कि मंजूरी कानून के अनुसार नहीं है, तो मामले को मामले पर पुनर्विचार करने और नया आदेश पारित करने के लिए प्राधिकरण को वापस भेजा जाना

चाहिए, लेकिन प्रस्तुत मामले में, कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव के विपरीत, लगभग 11 से 12 साल बीतने के बाद भी, दिनांक 03-08-2010 के आदेश को आगे जांच-पड़ताल के माध्यम से वैधकृत किया गया है और इस प्रकार अनुपूरक आरोप पत्र और पुनरीक्षा आदेश दायर किया गया है।

16. अपने तर्क का समापन करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि अधिनियम 1967 की धारा 25 की उपधारा (2) में परिकल्पित अभियोजन के लिए मंजूरी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (इसके बाद 'अधिनियम 1947' के रूप में संदर्भित) की धारा 19 के तहत प्रदान किए गए अभियोजन के लिए मंजूरी के प्रावधान से महत्वपूर्ण रूप से अलग है। उन्होंने आगे कहा कि कड़े कानून को देखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि विधायिका का इरादा विशेष रूप से प्रावधानों को रखने के लिए बहुत स्पष्ट था कि 'इस तरह के प्राधिकरण की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही', अधिकारी अभियोजन के लिए मंजूरी के संबंध में निर्णय लेंगे और यह प्रावधान 'अधिनियम, 1947' में नहीं दिया गया है। इस प्रकार, दोनों प्रावधान समान नहीं हैं और अधिनियम 1947 के प्रावधानों पर विचार करते हुए निर्णय का कोई भी अनुपात प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होगा। इसलिए, उपरोक्त सत्र परीक्षण की पूरी कार्यवाही सहित दिनांक 3.8.2010 और 2.2.2022 के आदेश कानून की नजर में खराब हो जाते हैं और इस प्रकार, इसे रद्द किया जाना चाहिए।

17. इसके विपरीत, राज्य की ओर से पेश अधिवक्ता श्री शिव नाथ तिलाहारी ने पूर्वोक्त

का पूरी दृढ़ता के साथ विरोध किया है और कहा कि आवेदकों के अधिवक्ता ने वास्तविक तथ्य और कानून को तोड़ने-मरोड़ने की कोशिश की है और अपने तरीके से इसकी व्याख्या की है। वह प्रस्तुत करते हैं कि अधिनियम 1967 की धारा 45 का प्रावधान अपने अर्थ में बहुत स्पष्ट है और यह अनिवार्य है कि धारा 45 की उपधारा (1) के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी ऐसे समय के भीतर दी जाएगी जो केंद्र या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों की रिपोर्ट पर विचार करते हुए निर्धारित की जा सकती है, जिन्होंने जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों की स्वतंत्र रूप से समीक्षा की होगी और फिर यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार को सिफारिश की जानी है।

18. वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि जांच एजेंसी के पास आगे की जांच द्वारा सबूत इकट्ठा करने की शक्ति है और यहां तक कि विचारण न्यायालय द्वारा पूर्व अनुमति की भी आवश्यकता नहीं है। जांच एजेंसी ने दिनांक 2.2.2022 के पत्र सहित पूरक केस डायरी दायर की और उस पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया क्योंकि कानून के तहत इसकी अनुमति है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि मुकदमे के दौरान अभियोजन के लिए मंजूरी की अस्वीकृति पर विचार किया जा सकता है और यह भी प्रस्तुत किया कि 'अवैध मंजूरी' और 'मंजूरी की अनुपस्थिति' के बीच महत्वपूर्ण अंतर है। वह प्रस्तुत करते हैं कि यह स्थापित कानून है कि मंजूरी की अनुपस्थिति को प्रारंभ में ही देखा जा सकता है, लेकिन जहां तक मंजूरी की वैधता का संबंध

है, यह मुकदमे की विषय वस्तु है और जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, यह स्वीकार्य रूप से, यह मंजूरी की अनुपस्थिति का मामला नहीं है जैसा कि स्पष्ट रूप से अभियोजन की मंजूरी दी गई है और, इसलिए, यह ऐसा चरण नहीं है जहां कथित रूप से अवैध मंजूरी को चुनौती दी जा सकती है।

19. अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, उन्होंने (2020) 17 एस.सी.सी. 664, केंद्रीय जांच ब्यूरो और एक अन्य बनाम धीरेंद्र कुमार अग्रवाल और अन्य में रिपोर्ट किए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है और उपरोक्त निर्णय के पैरा-11 पर संदर्भित किया है। उपर्युक्त निर्णय के पैरा-11 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"11. इसके अलावा, अभियोजन के लिए मंजूरी की वैधता से संबंधित मुद्दे पर केवल मुकदमे के दौरान विचार किया जा सकता था क्योंकि अनिवार्य रूप से उच्च न्यायालय द्वारा निष्कर्ष दोषपूर्ण मंजूरी के संबंध में है, क्योंकि उच्च न्यायालय के अनुसार, स्पष्टीकरण के लिए अवसर प्रदान करने की प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप मंजूरी दोषपूर्ण होगी। उस संबंध में, दिनेश कुमार बनाम अध्यक्ष, भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण, (2012)1 एस.सी.सी. 532 के मामले में निर्णय जिस पर अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा भरोसा किया गया था, प्रासंगिक होगा क्योंकि इसमें यह माना गया है कि मंजूरी की अनुपस्थिति और दिमाग के गैर-आवेदन के कारण कथित अमान्यता के बीच अंतर है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि

मंजूरी की अनुपस्थिति को प्रारंभ में ही आक्षेपित किया जा सकता है, लेकिन मंजूरी की अमान्यता को मुकदमे के दौरान उठाया जाना है। तात्कालिक तथ्यों में, स्वीकार्य रूप से एक मंजूरी है, हालांकि अभियुक्त मंजूरी दिए जाने के तरीके में कमियां निकालना चाहते हैं और दावा करते हैं कि यह दोषपूर्ण है जो मुकदमे में विचार किया जाने वाला मामला है।

20. पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, उन्होंने कहा कि पूर्वोक्त निर्णय में बहुत स्पष्ट है कि अभियोजन के लिए मंजूरी की वैधता पर विचारण के दौरान विचार किया जा सकता है और 'मंजूरी की अनुपस्थिति' और 'मंजूरी की अमान्यता' के बीच अंतर भी किया गया है, जिसमें दिमाग का आवेदन न करना भी शामिल है। उन्होंने आगे कहा कि यह एक ऐसा मामला है जहां आवेदकों पर भारत सरकार के खिलाफ युद्ध छेड़ने का आरोप लगाया गया है और इस प्रकार, यह गंभीर चिंता का विषय है और इसलिए, जहां तक अधिनियम, 1967 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का संबंध है, कोई उदार व्याख्या नहीं की जा सकती है।

21. वह अंत में प्रस्तुत करते हैं कि इस बिंदु पर कानून बहुत स्पष्ट है और यह मामला 'मंजूरी की अनुपस्थिति' का नहीं है और यदि 'अभियोजन के लिए मंजूरी' में कोई अमान्यता या दोष है, तो आवेदकों के पास विचारण न्यायालय के समक्ष इसे उठाने का अवसर है विचारण के समय, इसलिए, प्रस्तुत करना यह है कि प्रस्तुत आवेदन खारिज करने योग्य है।

22. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के

बाद, प्रश्न यह है कि क्या 3.8.2010 को दी गई पहली मंजूरी और बाद में, दिनांक 2.2.2022 के समीक्षा आदेश के माध्यम से पूरक, अभियोजन की वैध मंजूरी है या नहीं। प्रारंभ में, जब अभियोजन के लिए स्वीकृति मांगी गई थी, राज्य सरकार ने दिनांक 3-8-2010 के आदेश द्वारा आवेदकों के संबंध में अभियोजन चलाने की मंजूरी प्रदान कर दी थी। मामला आगे बढ़ा और उसके बाद, विवेचनाधिकारी ने आगे की जांच शुरू की और विचारण न्यायालय के समक्ष एक पूरक केस डायरी प्रस्तुत की गई, जिसमें समीक्षा प्राधिकरण के दिनांक 2.2.2022 के आदेश की प्रति संलग्न की गई और इस प्रकार, आगे सवाल यह है कि धारा 173(8) द०प्र०स० के तहत शक्तियां प्राप्त करने के माध्यम से, क्या जांच के अंतराल/कमियों को भरने के लिए आगे की जांच की जा सकती है।

23. आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों से यह स्पष्ट होता है कि 3.8.2010 को राज्य द्वारा अभियोजन की पहली मंजूरी दी गई थी। जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, अभियोजन की मंजूरी के संबंध में प्रावधान अधिनियम 1967 की धारा 45(1) और 45(2) में निहित हैं, जिसमें प्रावधान का अधिदेश यह है कि अभियोजन की मंजूरी के समय, ऐसी मंजूरी देने वाला प्राधिकरण, केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकरण की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही कार्यवाही करेगा। आवेदकों के अधिवक्ता का तर्क यह है कि दिनांक 03-08-2010 को स्वीकृति प्राधिकारी के समक्ष केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकारी की कोई

रिपोर्ट नहीं थी क्योंकि समीक्षा प्राधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा दिनांक 3-8-2010 को दी गई पहली मंजूरी के बाद की गई थी और आगे यह निवेदन है कि अधिनियम, धारा 45(2) 1967 का उपबंध राज्य अधिनियम, धारा 19 अधिनियम 1947 के उपबंधों के समान नहीं है।

24. राज्य के तर्क का सार यह है कि अभियोजन की मंजूरी दी गई है और वह भी अधिनियम 1967 के प्रावधान के अनुरूप है। इसके अलावा, चूंकि मामले पर आरोप तय करने के बाद कार्यवाही की गई थी और यह स्वीकार्य है कि अभियोजन के लिए मंजूरी का आदेश है, इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि मंजूरी का अभाव है और यदि कोई अमान्यता है, जिसे इस स्तर पर उठाया जा रहा है, तो विचारण न्यायालय द्वारा इसकी जांच की जा सकती है।

25. जब इस न्यायालय ने तथ्यों और कानून के आधार पर इस मामले की जांच की, तो यह समझने योग्य है कि जांच एजेंसी के पास निस्संदेह आगे की जांच को आगे बढ़ाने की शक्ति है और कानून के तहत इस तरह की जांच को आगे बढ़ाने के लिए पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। बेशक, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय का भी बार-बार विचार रहा है, इसलिए, आदेश 2.2.2022 को संलग्न करने वाली पूरक केस डायरी को विवेचनाधिकारी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष सही तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

26. जहां तक समीक्षा प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश दिनांक 2.2.2022 का संबंध है, यह

मामला वर्ष 2010 से संबंधित है और लगभग 12 वर्ष बीत चुके हैं। इसके अलावा, यह तय है कि मंजूरी देना केवल एक प्रशासनिक कार्य है और मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को पहले इस बात से संतुष्ट होना आवश्यक है कि अधिनियम और तथ्य अपराध का गठन करेंगे, और अब 12 वर्ष बीत जाने के बाद, आवेदकों और दूसरे पक्ष को मुकदमों की एक और पारी के लिए रखने और मुकदमे को अनिश्चित काल तक लंबित रखने के लिए मंजूरी प्रदान करने की कार्यवाही शुरू करना न्यायसंगत और उचित नहीं होगा।

27. यह प्रतिपादित किया गया है कि 'मंजूरी की अनुपस्थिति' और 'मंजूरी की अमान्यता' के बीच अंतर है। मंजूरी के अभाव को शुरुआत में ही उठाया जा सकता है और आक्षेपित किया जा सकता है लेकिन मंजूरी की अमान्यता या अवैधता को परीक्षण के दौरान उठाया जाना है।

28. बेशक, मंजूरी 3.8.2010 को दी गई थी और इस प्रकार, प्रथम दृष्टया यह मंजूरी की अनुपस्थिति का मामला नहीं है, लेकिन आवेदकों-आरोपी व्यक्तियों ने अभियोजन के लिए मंजूरी देने में कुछ अवैधता और अमान्यता उठाई है और वे तीन हैं। सबसे पहले, मंजूरी देने के समय समीक्षा प्राधिकरण अस्तित्व में नहीं था; दूसरे, मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष कोई सामग्री नहीं थी; और तीसरा, धारा 173(8) कमियों को दूर करने के लिए लक्षित नहीं है। सभी याचिकाएं मंजूरी के आक्षेपित आदेश में आने वाली अमान्यता के संबंध में हैं। जैसा कि पिछले पैरा में चर्चा की गई है, प्रस्तुत मामला मंजूरी के अभाव का

मामला नहीं है और यदि मंजूरी के आदेश में कोई कथित अमान्यता व्याप्त है, तो उसे विचारण न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है/चुनौती दी जा सकती है।

29. पूर्वोक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के मददेनजर, इस न्यायालय को इस आवेदन में कोई योग्यता नहीं मिलती है।

30. नतीजतन, आवेदन एतद्वारा खारिज कर दिया गया है।

31. हालांकि, आवेदक-आरोपी व्यक्ति संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष मंजूरी की अमान्यता, यदि कोई हो, के संबंध में अपनी शिकायत उठाने के लिए स्वतंत्र हैं।

(2023) 4 ILRA 700

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-1,
धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

2556/2023

नन्हे भैया @ ननहन सिंह और अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री संजय सिंह चौहान, श्री आलोक कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-
धारा 216- वादी द्वारा प्रस्तुत आवेदन के

आधार पर आवेदक के विरुद्ध धारा 304 बी आईपीसी की वृद्धि- धारा 216 सीआरपीसी विशेष रूप से निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने के उद्देश्य के लिए एक सक्षम प्रावधान के रूप में न्यायालय के पास सीमित है- कोई भी पक्ष, न तो वास्तविक वादी और न ही अभियुक्त या उस वाद के लिए अभियोजन पक्ष को आरोप में कोई वृद्धि या परिवर्तन करने का कोई निहित अधिकार है- परिणाम-आलोचना आदेश अस्थिर हैं और निरस्त किए जाने योग्य हैं।

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन का निस्तारित किया गया। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. पी. कार्तिकलक्ष्मी बनाम श्री गणेश और अन्य (2017) 3 एससीसी 347
2. हसनभाई वलीभाई कुरेशी बनाम गुजरात राज्य और अन्य. (2004) 5 एससीसी 347।
(माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव- प्रथम, द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री आलोक सरन, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना और संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया।

आदेश को ध्यान में रखते हुए, जिसे आज पारित किया जाना प्रस्तावित है, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को नोटिस तामील की जाए।

सीआरपीसी की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन अभियुक्त/आवेदकों द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर किया गया है: -

"(i) अपराध संख्या -144/1998 अन्तर्गत आईपीसी की धारा- 498ए/304बी और डी.पी. अधिनियम की धारा 3/4, थाना बेहटा गोकुल जिला हरदोई से उत्पन्न मुकदमा संख्या 2032/2015 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022 को रद्द करने के लिए और दिनांक 03.02.2023 के आदेश जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं की पुनरीक्षण याचिका आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 209/2022 में खारिज कर दी गई है, जो इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या 2 और 3 के साथ यहां निहित है।"

आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022, जिसके द्वारा विद्वान ट्रायल कोर्ट ने अवधारित किया है कि आईपीसी की धारा 304 बी के तहत मामला वर्तमान आवेदकों के खिलाफ भी बनता है, विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा सीआरपीसी की धारा 216 के आधार पर उसमें निहित शक्ति के प्रयोग में पारित किया गया है, जो आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022 से ही स्पष्ट है। हालाँकि, उन्होंने कहा कि यह आदेश अभियुक्त या शिकायतकर्ता/प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर पारित किया गया है। उनका अगला तर्क यह है कि इस मामले के प्रथम आवेदक द्वारा प्रस्तुत आवेदन के आधार पर वर्तमान आवेदक के विरुद्ध आईपीसी की धारा 304बी जोड़ने के संबंध में दिनांक 29.09.2022 का आक्षेपित आदेश विचारणीय

नहीं है। इसलिए, दिनांक 29.09.2022 का आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है और पी. कार्तिकलक्ष्मी बनाम श्री गणेश और अन्य (2017) 3 एससीसी 347 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कानून के विरुद्ध है।

उनका आगे कहना है कि आवेदकों ने आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022 के खिलाफ आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 209/2022 प्रस्तुत किया है, जिसे विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश दिनांक 03.02.2023 के तहत उपरोक्त तथ्यों पर विचार किए बिना खारिज कर दिया है, जो इस न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है। इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022 और 03.02.2023 के रद्द किए जाने योग्य हैं।

इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया। हालाँकि, वह आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त तथ्यात्मक प्रस्तुतियों पर विवाद करने में असमर्थ रहे हैं।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुनने और अभिलेख के परिशीलन के बाद, यह पता चला कि आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022 प्रथम सूचनादाता सुशील कुमार सिंह द्वारा सीआरपीसी की धारा 216 के तहत प्रस्तुत आवेदन पर पारित किया गया था। इसके बाद, आवेदकों ने आक्षेपित आदेश दिनांक 29.09.2022 के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 209/2022 प्रस्तुत किया, जिसे भी विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने खारिज कर दिया है।

हसनभाई वलीभाई कुरैशी बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य (2004) 5 एससीसी 347 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 216 के दायरे पर विचार करते हुए, पैराग्राफ संख्या 10 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"10. इसलिए, यदि सुनवाई के दौरान, प्रस्तुत साक्ष्यों और दस्तावेजों के समग्र प्रभाव के आधार पर मामले की व्यापक संभावनाओं पर विचार करते हुए, निचली अदालत इस बात से संतुष्ट हो जाती है कि आरोप में कोई वृद्धि या परिवर्तन आवश्यक है, तो वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है, और मामले की अनिवार्यता के अनुसार उचित कार्रवाई करने में कोई कानूनी बाधा नहीं हो सकती है।"

हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पी. कार्तिकलक्ष्मी मामले (उपरोक्त) के पैराग्राफ संख्या 6, 7 और 8 में निम्नानुसार आदेश दिया है:-

"6. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हम प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क में बल पाते हैं। सीआरपीसी की धारा 216 न्यायालय को निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय कोई भी आरोप बदलने

या जोड़ने का अधिकार देती है। अब यह बात पूर्णतया स्थापित हो चुकी है कि न्यायालय में निहित शक्तियाँ केवल न्यायालय के लिए ही हैं तथा किसी भी पक्ष को अधिकार के रूप में कोई आवेदन दायर करके ऐसे परिवर्धन या परिवर्तन की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यदि आरोप तय करने में कोई चूक हुई हो और यदि यह बात अपराध की सुनवाई कर रहे न्यायालय के संज्ञान में आ जाए, तो सीआरपीसी की धारा 216 के तहत आरोप को बदलने या जोड़ने की शक्ति सदैव न्यायालय में निहित होती है और यह शक्ति न्यायालय के पास निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय उपलब्ध होती है। यह न्यायालय के लिए एक सक्षमकारी प्रावधान है, जिसके तहत वह कुछ आकस्मिकताओं के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है, जो उसके संज्ञान में आती हैं या उसके संज्ञान में लाई जाती हैं। ऐसी स्थिति में, यदि न्यायालय को यह पता चलता है कि

आरोप में परिवर्तन या वृद्धि की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है, तो वह स्वयं ऐसा कर सकता है और इस प्रयोजन के लिए किसी आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे परिवर्तन या परिवर्धन के बाद जब अंतिम निर्णय दे दिया जाएगा, तो पक्षों के लिए कानून के अनुसार अपने उपचारों पर काम करना वैकल्पिक होगा।

7. इस संदर्भ में हमें सीआरपीसी की धारा 221 और 222 के बारे में बताया गया। इस मामले में शामिल तथ्यों के मद्देनजर, हम केवल सीआरपीसी की धारा 216 से संबंधित हैं। इसलिए, हम इस मामले में अन्य प्रावधानों के निहितार्थों की जांच करने का प्रस्ताव नहीं रखते हैं। हम अपने आप को धारा 216 के प्रयोग तक सीमित रखना चाहते हैं और यहीं पर विराम लगाना चाहते हैं। हमारे इस निष्कर्ष के आलोक में कि सीआरपीसी की धारा 216 के आह्वान की शक्ति न्यायालय के पास निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी समय किसी भी आरोप को बदलने या जोड़ने

के उद्देश्य के लिए एक सक्षम प्रावधान के रूप में विशेष रूप से सीमित है, हम यह स्पष्ट करते हैं कि किसी भी पक्षकार, न तो वास्तविक शिकायतकर्ता और न ही अभियुक्त या उस मामले के लिए अभियोजन पक्ष के पास आरोप में किसी भी वृद्धि या परिवर्तन की मांग करने का कोई निहित अधिकार नहीं है, क्योंकि यह सीआरपीसी की धारा 216 के तहत प्रदान नहीं किया गया है। यदि पक्षकारों द्वारा ऐसा रास्ता अपनाने की अनुमति दी गई तो आपराधिक अदालत के लिए अपनी कार्यवाही पूरी करना लगभग असंभव हो जाएगा और शीघ्र सुनवाई की अवधारणा खतरे में पड़ जाएगी।

8. ऐसी परिस्थितियों में, जब अपीलकर्ता द्वारा स्वयं ट्रायल कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत आवेदन स्वीकार्य नहीं था, तो ट्रायल कोर्ट के लिए सीआरपीसी की धारा 216 के तहत आदेश पारित करना आवश्यक नहीं था। इसलिए, उक्त आदेश को सीआरपीसी की धारा 397 के तहत संशोधित करने का कोई

सवाल ही नहीं था। अपीलकर्ता के कहने पर शुरू की गई पूरी कार्यवाही सुनवाई योग्य नहीं थी। चूंकि कानूनी मुद्दे को सही करना जरूरी था, इसलिए हम सीआरपीसी की धारा 216 के तहत उपलब्ध कानून को स्पष्ट करने के लिए बाध्य हैं। इस सीमा तक, कानूनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए, हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अपीलकर्ता के कहने पर शुरू की गई पूरी कार्यवाही पूरी तरह से गलत थी और कानून की दृष्टि से दोषपूर्ण थी तथा इस पर निचली अदालत द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए था। जैसा कि प्रतिवादी संख्या 1 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने सही कहा है, अपीलकर्ता द्वारा अपनाए गए इस तरीके और निचली अदालत द्वारा स्वीकार किए जाने से अनावश्यक रूप से कार्यवाही को लम्बा खींचने की गुंजाइश पैदा हो गई है, जिसकी निचली अदालत को अनुमति नहीं देनी चाहिए थी।"
(प्रभाव वर्धित)

उपर्युक्त स्थापित कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित आदेश दिनांक

29.09.2022 और 03.02.2023 पोषणीय नहीं हैं क्योंकि वे इस न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग हैं, जो रद्द किये जाने योग्य हैं और उन्हें एतद्वारा रद्द किया जाता है।

यह स्पष्ट किया जाता है कि संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 216 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, अपने स्वयं के उदाहरण पर और सभी संबंधित पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद ऊपर की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए उचित आदेश पारित करने की स्वतंत्रता होगी।

उपर्युक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन निस्तारित किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 703

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-I,
धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या
2793/2023

पंकज यादव

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री राम किंकर उपाध्याय

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-
धारा 482 - भारतीय दंड संहिता- 1860-धारा
376 -नैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण
अधिनियम, 2012-धारा 3 और 4-बलात्कार का
अपराध निजी प्रकृति का नहीं है, बल्कि इसका

समाज पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है-
आरोपी और पीड़िता के बीच कथित समझौते
के आधार पर आवेदक के विरुद्ध कार्यवाही को
निरस्त करने का कोई औचित्य नहीं है।

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन
निस्तारित किया गया। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप (1) एससीसी 335
2. रतीश बाबू उन्नीकृष्णन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 513
3. सतीश कुमार जाटव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 लाइव लॉ (SC) 488
4. रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2022 एससी 2044
5. नरिंदर सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य व अन्य (2014) 6 एससीसी 466
6. दक्साबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 936
7. (ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 8514/2023)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-
प्रथम, जे. द्वारा प्रदत्त)

श्री जगेंद्र, अधिवक्ता ने न्यायालय में आज अपना वकालतनामा दाखिल करते हुए विपक्षी संख्या 2 की तरफ से उपस्थिति दर्ज कराई है, जिसे अभिलेख पर लिया गया है।

विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आज दाखिल जवाबी हलफनामा भी अभिलेख पर लिया गया है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री राम किंकर उपाध्याय, राज्य के विद्वान अतिरिक्तशासकीय अधिवक्ता श्री हिमांशु सूर्यवंशी द्वारा सहायता प्राप्त अधिवक्ता श्री आलोक सरन, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री जगेंद्र को सुना और सम्पूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया।

वर्तमान आवेदन अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. अभियुक्त/आवेदक द्वारा सत्र परीक्षणसंख्या 743/2019 (राज्य बनाम पंकज) की सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाहियाँ और आरोप पत्र दिनांक 12.11.2019 तथा विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश- / । विशेषन्यायाधीश पोक्सो अधिनियम, सुल्तानपुर द्वारा विद्वान विशेष न्यायाधीश पोक्सो1 अधिनियम / अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, सुल्तानपुर के न्यायालयमें लंबित आपराधिक वाद संख्या 0447/2019, अंतर्गत धारा 363, 366, 376, 506भा.दं.सं. व धारा 3/4 पोक्सो अधिनियम, पुलिस थाना जयसिंहपुर, जिला सुल्तानपुरमें पारित समन आदेश दिनांक 06.12.2019 को रद्द करने हेतु दायर किया गया है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि, वास्तव में, प्रथम सूचनाकर्ता जोकि पीड़िता का पिता है, द्वारा अभियुक्त/वादी के विरुद्ध एक गलत प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी। अभियुक्त/आवेदक निर्दोष है

जिसे इस मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है।

उन्होंने आगे तर्क दिया है कि पीड़िता ने दं.प्र.सं. की धारा 161 के अंतर्गत दर्ज कराए गए अपने बयान में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। जबकि, दं.प्र.सं. की धारा 164 के अंतर्गत दर्ज कराए गए अपने बयान में, पीड़िता ने वर्तमान अभियुक्त/अपीलकर्ता पर भी बलात्कार का आरोप लगाया है।

उनका आगे तर्क यह है कि, वास्तव में, वर्तमान में, अभियुक्त / आवेदक तथा पीड़िता विवाहित हैं और पति-पत्नी के तौर पर साथ में खुशीपूर्वक रह रहे हैं। इसलिये आक्षेपित आपराधिक कार्यवाही रद्द किए जाने योग्य है।

उन्होंने आगे तर्क दिया है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अभियुक्त / आवेदक तथा पीड़िता पति-पत्नी के तौर पर साथ में खुशीपूर्वक रह रहे हैं, अतः, अभियुक्त/आवेदक के विरुद्ध आक्षेपित आपराधिक कार्यवाही को लंबित रखने से कोई भी सार्थक उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

इसके विपरीत, यद्यपि, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त प्रार्थना का विरोध नहीं किया है, किन्तु, राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने उक्त प्रार्थना का यह तर्क देते हुए कड़ा विरोध किया है कि विधायिका द्वारा अधिनियमित लैंगिंग अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 इसलिए तैयार किया गया था ताकि बच्चों के

प्रति यौन दुर्व्यवहार और उनके यौन शोषण जैसे जघन्य अपराधों से प्रभावी तरीके से निपटा जा सके। यह अधिनियम बच्चों को यौन हमलों, यौन उत्पीड़न आदि अपराधों से सुरक्षा प्रदान करने हेतु लाया गया था। यह अधिनियम न्यायिक प्रक्रियाके प्रत्येक चरण में बच्चों के हितों की सुरक्षा करने का भी प्रावधान करता है, जिसमें बाल अनुकूल प्रणालियों को शामिल किया जाता है, जिसके अंतर्गत विशेष न्यायालयोंके माध्यम से अपराधों की रिपोर्टिंग, साक्ष्य अभिलेखिकरण, जांच और शीघ्र सुनवाई शामिल है।

उनका यह भी तर्क है कि आवेदक और पीड़िता के बीच कथित विवाह विधि की दृष्टिमें वैध नहीं है क्योंकि संलग्नक 4 विवाह का मात्र एक समझौता है, जिसकी कोईविधिक शुचिता नहीं है।

राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि अपराधकारित होने के दिन पीड़िता एक बच्ची थी। अतः, ऐसे पीड़ित और अभियुक्त के मध्यकिसी भी प्रकार के समझौते की स्वीकृति विधि में नहीं है। अतः वर्तमान आवेदनगलत है और खारिज किए जाने योग्य है।

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 (1) 335SuppSCC के मामले में माननीयउच्चतम न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 102 में निम्नवत निर्धारित किया है:-

"102. संहिता के अध्याय XIV के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की

व्याख्याके सन्दर्भ में और इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्तअसाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की श्रृंखला में घोषित विधिके सिद्धांतों के आलोक में अथवा संहिता की धारा 482 की अंतर्निहितशक्तियों के संबंध में, जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुनरुत्पादित किया है,हम मामलों की निम्नलिखित श्रेणियों को उदाहरण के तौर पर देते हैं,जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोगको रोकने हेतु या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने हेतु कियाजा सकता है, यद्यपि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूपसे प्रसारित तथा अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना औरअसंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकताहै जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जब प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनकेप्रत्यक्ष मूल्य पर लिया जाए और उन्हें उनकी संपूर्णता में स्वीकार कर लिया जाए, प्रथम दृष्टया न कोई अपराध गठित करते हैं और न हीअभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला बनता है।

(2) जब प्राथमिकी या उसके साथ संलग्न किसी अन्य सामग्री में लगाए गए आरोप, यदि कोई हों, किसी संज्ञेय अपराध को प्रकट नहीं करते

हैं, जो संहिता की धारा 155(2) के अंतर्गत किसी मजिस्ट्रेट के आदेश के अतिरिक्त संहिता की धारा 156(1) के अंतर्गत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराता है।

(3) जब प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उन्हींके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के कारित किए जानेको प्रकट नहीं करते हैं और अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जब प्राथमिकी में लगाए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, वरन मात्र एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, तो संहिता की धारा 155(2) के अंतर्गत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं है।

(5) जब प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने असंगत और स्वाभाविक रूप से असंभव हों कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी इस निष्कर्ष पर न पहुँच सके कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार है।

(6) जब संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही प्रारम्भ करने और उसे जारी रखने हेतु एक स्पष्ट कानूनी प्रतिबंध निहित हो और/अथवा जब संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान हो,

जो पीड़ित पक्ष की शिकायत हेतु प्रभावी निवारण प्रदान करता हो।

(7) जब कोई आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण हो और/अथवा जब कार्यवाही द्वेषपूर्ण तरीके से किसी परोक्ष उद्देश्य हेतु अभियुक्त से प्रतिशोध लेने और उसे निजी तथा व्यक्तिगत द्वेष के कारण परेशान करने हेतु संस्थित की गई हो।"

रथीस बाबू उन्नीकृष्णन बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र), 2022 SCC 513 OnLine SC के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 16, 17 व 18 में निम्नवत निर्धारित किया है:

"16. उपरोक्त विधिक प्रस्थापना यह स्पष्ट करता है कि जब तथ्यात्मक विवाद संभावना के दायरे में हो, विशेषतौर पर इस मामले में विधिक उपधारणा के कारण, ऐसे में न्यायालय को पूर्व-परीक्षण में किसी शिकायत के रद्दीकरण की राहत देने में शिथिलता बरतनी चाहिए। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बिना कोई साक्ष्य पेश किए तथ्यात्मक बचाव को अनधिकृत गुणवत्ता का होना चाहिए, ताकि शिकायत में लगाए गए आरोपों को पूरी तरहसे खारिज किया जा सके।

17. आपराधिक प्रक्रिया पूर्व-परीक्षण चरण को समाप्त करने के गंभीर और अपूरणीय परिणाम हो सकते हैं। प्रारंभिक चरणों में कार्यवाही को रद्द करने से पक्षकारों को साक्ष्य पेश करने का अवसर दिए बिना ही कार्यवाही का

अंत होजाएगा और परिणामस्वरूप, उचित मंच अर्थात विचारण न्यायालय कोमहत्वपूर्ण साक्ष्यों का मूल्यांकन करने का अवसर नहीं मिलेगा। यदि ऐसा करने की अनुमति दी जाती है, तो अभियुक्त को दंड प्रक्रिया में अनुचित लाभमिल सकता है। साथ ही, चूंकि इस मामले में चेक और हस्ताक्षर अभियुक्तद्वारा विवादित नहीं हैं, अतः विधिक उपधारणा के कारण इस स्तर परसुविधा का संतुलन शिकायतकर्ता/अभियोजन के पक्ष में है, क्योंकि अभियुक्तको परीक्षण के दौरान उपधारणा खंडित करने हेतु बचाव साक्ष्य प्रस्तुत करनेका उचित अवसर मिलेगा।

18. इस प्रकार, सम्मन आदेश के चरण में, जब तथ्यात्मक विवाद को अभीविचारण न्यायालय द्वारा परखा और विचार किया जाना है, तो शिकायतकर्ताका वाद खारिज करना, हमारी राय में विवेकपूर्ण नहीं होगा। प्रथम दृष्टया धारणा के आधार पर, यहां आपराधिकता के तत्व को पूर्ण रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है, जो कि विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारण के अधीन है। अतः, जब कार्यवाही प्रारंभिक अवस्था में है, तो दंड प्रक्रिया को बाधितकरना उचित नहीं है।

"निस्संदेह यह सत्य है कि दंड प्रक्रिया को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयमितऔर सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए, और वह भी अत्यंत दुर्लभ मामलों में हीकिया जाना चाहिए और प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोपों कीविश्वसनीयता या सत्यता की

जांच करना न्यायालय के लिए उचित नहीं था औरअंतर्निहित शक्तियाँ न्यायालय को उसकी इच्छा और मर्जी के अनुसार कार्य करने काकोई मनमाना अधिकार क्षेत्र नहीं प्रदान करती हैं।

सतीश कुमार जाटव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 (SC) LiveLaw488 के मामले मेंमाननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि जब कथित अपराध के लिए स्पष्ट मामलाबनाया गया हो तो यह आधार कि "मामले की कार्यवाही को लम्बा खींचने से कोईउपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा", आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु उचित आधारऔर/या एक आधार बिलकुल भी नहीं हो सकता है। इसी प्रकार **रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 2044AIRSC** के मामले में माननीय उच्चतमन्यायालय ने यह टिप्पणी दी है कि दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार काप्रयोग पूछने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत प्रदत्तशक्तियों का प्रयोग करते समय, न्यायालय शिकायत/ प्राथमिकी में लगाए गए आरोपोंकी सत्यता की जांच नहीं करता है, सिवाय उन असाधारण मामलों के जहां यह स्पष्टरूप से साफ हो कि आरोप निराधार हैं या किसी अपराध का प्रकटीकरण नहीं करते हैं।दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत एक याचिका को अंतर्वर्ती स्तर पर ही स्वीकारकरना अंततः अन्याय में परिणत हो सकता है।

विचाराधीन मामले के तथ्यों की ओर इंगित करते हुए, यह न्यायालय इस ओर ध्यानदेने में सक्षम है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नरिंदर सिंह व अन्य बनाम पंजाबराज्य व अन्य (2014) 6 466SCC** के मामले में यह

विशेष रूप से माना है कि भा.दं.सं. की धारा 376 के अंतर्गत मामला भी एक ऐसा अपराध है जो, यद्यपि यह किसी पीड़ित विशेष के संबंध में कारित किया गया हो, फिर भी इसे पक्षकारों के बीच एक निजी विवाद नहीं कहा जा सकता। इसका गंभीर प्रतिकूल सामाजिक प्रभाव पड़ता है। अतः, अभियुक्त और पीड़ित के मध्य कथित समझौते के आधार पर किसी भी कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है। विधि का यह सिद्धान्त हाल ही में 2022 SCC OnLine SC 936 में प्रतिवेदित दक्षाबेन बनाम गुजरात राज्य व अन्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गए निर्णय में भी दोहराया गया जिसके प्रस्तर संख्या 34, 38, 47 व 49 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नवत निर्धारित किया है:-

"34. इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 1, SCC में इस न्यायालय ने टिप्पणी दी:-

"46. न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपराधिक मुकदमेका उपयोग उत्पीड़न के साधन के रूप में, निजी प्रतिशोध हेतु अथवा अभियुक्त पर दबाव बनाने के किसी परोक्ष उद्देश्य के साथ न किया जाए। उपरोक्त मामलों के विश्लेषण के आधार पर, हमारी राय है कि निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाला कोई अनम्यनियम निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों का

निहित क्षेत्राधिकार यद्यपि व्यापक है, किन्तु इसका प्रयोग संयम से, सावधानीपूर्वक और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए और केवल तभी जब यह स्वयं विधि में और उपरोक्त मामलों में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाता है। निर्धारित विधिक स्थिति के दृष्टिगत, आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है।"

38. हालांकि, जैसा कि ऊपर अवलोकित किया गया है, दं.प्र.सं. की धारा 482 के अंतर्गत प्राथमिकी, आपराधिक शिकायत और/या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व, उच्च न्यायालय को सावधानीबरतनी चाहिए और अपराध की प्रकृति और गंभीरता पर ध्यान देना चाहिए। जघन्य या गंभीर अपराध, जो निजी प्रकृति के नहीं होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं, उन्हें अपराधी और शिकायतकर्ता और/या पीड़ित के मध्य हुए समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है। हत्या, बलात्कार, चोरी, डकैती और यहां तक कि आत्महत्या के लिए उकसाने जैसे अपराध न तो निजी हैं और न ही दीवानी प्रकृति के हैं। ऐसे अपराध समाज के विरुद्ध हैं। जब अपराधसंगीन और गंभीर हो और समाज के विरुद्ध अपराध के दायरे में आता हो, तो किसी भी परिस्थिति में समझौते के आधार

पर अभियोजन को रद्द नहीं किया जा सकता।

47. मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण, (2019) 5 688, SCCके मामलेमें एक तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस न्यायालय द्वारा पूर्व में दिए गए निर्णयोंपर चर्चा की और निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए:-

"15. इस बिन्दु पर विधि और इस न्यायालय के अन्य निर्णयोंको ध्यान में रखते हुए, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, निम्नानुसार अवलोकन और निर्धारण किया जाता है:

15.1. यह कि संहिता की धारा 320 के अंतर्गत गैर-शमनीय अपराधों के लिए दंडिक कार्यवाहियों को रद्दकरने हेतु संहिता की धारा 482 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तिका प्रयोग अपरिहार्य और मुख्य रूप से दीवानी प्रकृतिके मामलों, विशेष रूप से ऐसे मामले जो वाणिज्यिकलेन-देन या वैवाहिक सम्बन्धों अथवा पारिवारिकविवाद से उत्पन्न हों और जहां पक्षकारों ने पूरा विवादआपस में सुलझा लिया हो, में किया जा सकता है;

15.2. उपरोक्त शक्ति का प्रयोग उन अभियोगों में नहीं किया जाना चाहिए जिनमें जघन्य और गंभीर मानसिक विकृति के अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध शामिल हों। ऐसे अपराधनिजी प्रकृति के नहीं होते हैं

और समाज पर गंभीरप्रभाव डालते हैं;

15.3. इसी प्रकार, विशेष कानूनों यथा भ्रष्टाचारनिवारण अधिनियम के अंतर्गत किए अपराधों के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया चाहिए अथवा किसी लोक सेवक द्वारा उस क्षमता में कार्य करते हुए कारितकिए गए अपराधों के मामलों में मात्र पीड़ित और अपराधी के मध्य समझौते के आधार पर उन्हें रद्द नहीं किया जाना चाहिए।

15.4. भा.दं.सं. की धारा 307 और शस्त्र अधिनियम आदि के अंतर्गत कारित अपराध जघन्य और गंभीरअपराधों की श्रेणी में आएंगे और इसलिए इन्हें अकेले व्यक्ति के विरुद्ध नहीं वरन समाज के विरुद्ध अपराध माना जाएगा, और इसलिए, भा.दं.सं. की धारा 307 और/या शस्त्र अधिनियम के अंतर्गत अपराध, जिनका समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, को संहिता की धारा482 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए इसआधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है कि पक्षकारों ने अपने सम्पूर्ण विवाद को आपस में सुलझा लिया है।हालाँकि, उच्च न्यायालय मात्र इसलिए अपना निर्णय नहीं बाधित करेगा कि प्राथमिकी में भा.दं.सं. की धारा307 का जिक्र है या इस प्रावधान के अंतर्गत आरोपतय किया गया है। उच्च न्यायालय इस बात की जांच

करने हेतु स्वतंत्र होगा कि क्या भा.दं.सं. की धारा 307का समावेश इसके लिए है या अभियोजन पक्ष नेपर्याप्त साक्ष्य एकत्र किए हैं, जो सिद्ध होने पर भा.दं.सं.की धारा 307 के अंतर्गत आरोप तय करने का कारण बनेंगे। इस प्रयोजन हेतु, उच्च न्यायालय के लिए यहखुला होगा कि वह लगी हुई चोट की प्रकृति, क्या ऐसीचोट शरीर के महत्वपूर्ण/संवेदनशील अंगों पर लगी है, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति आदि के अनुसार आगे बढ़े। हालांकि, उच्च न्यायालय द्वारा इसतरह की कार्यवाही तभी अनुमत होगी जब जांच के बाद साक्ष्य एकत्र कर लिया जाए और/या परीक्षण केदौरान आरोप पत्र दाखिल किया जाए/आरोप तय कियाजाए। जांच के जारी रहने के दौरान इस तरह कीकार्यवाही अनुमत नहीं है। इसलिए, नरेंद्र सिंह [(2014)6 SCC 466 : (2014) 3 SCC (Cri) 54] के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिये गए निर्णय के प्रस्तर29.6 और 29.7 में अंतिम निष्कर्ष को सौहार्दपूर्ण रूप से पढ़ा जाना चाहिए और उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों में इसे समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए;

15.5. जब संहिता की धारा 482 के अंतर्गत गैर-शमनीय अपराधों, जो निजी प्रकृति के होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव नहीं डालते हैं, के

लिए इस आधार पर दांडिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग किया जाता है, कि पीड़ित और अपराधी केमध्य समझौता/सुलह हो गया है, तब उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि अभियुक्त का पूर्व इतिहास क्या था, अभियुक्त का आचरण यथा क्या अभियुक्त फरार था और क्यों फरार था, उसने शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने के लिए कैसे प्रबंध किया, इत्यादि।"(बल दिया गया)

49. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते समय, न्यायालय शिकायत में लगाए गए आरोपों की सत्यता की जांच नहीं करता है, सिवाय उन असाधारण दुर्लभ मामलों को छोड़कर जहां यह स्पष्ट रूप से साफ हैकि आरोप निराधार हैं या किसी अपराध का प्रकटीकरण नहीं करते हैं।"

हाल ही में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या8514/2023 - ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य के मामले में भी यहनिर्धारित किया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और पोक्सो अधिनियम केअंतर्गत दांडिक कार्यवाही को अभियुक्त और पीड़ित के बीच हुए समझौते के आधार पररद्द नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त स्थापित विधि के दृष्टिगत, इस न्यायालय ने परस्पर विरोधी तर्कों पर गहनविचार किया है और इस मामले के संपूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया है। आवेदकके विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क निस्संदेह विशुद्ध तथ्यों के प्रश्नों पर निर्णय केलिए कहते हैं, जिन पर केवल विचारण न्यायालय द्वारा उचित रूप से निर्णय लिया जासकता है और ऐसा करते समय, विधि के बिंदुओं पर दिये गए तर्कों पर भी इसमामले में विचारण न्यायालय द्वारा अधिक उपयुक्त रूप से विचार किया जा सकता है। यह न्यायालय इसे उचित नहीं मानता है और इसलिए वास्तविक सुनवाई आरंभ होनेसे पहले पूर्व-परीक्षण कराने हेतु प्रेरित नहीं किया जा सकता है। न्यायालय जानबूझकर अभियुक्त के विरुद्ध लगाए गए आरोपों से सामने आने वाले विभिन्न तथ्यों औरपरिस्थितियों पर गहन चर्चा से बच रहा है, ताकि ऐसा न हो कि यह वाद के दौरानकिसी भी पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह का कारण बन जाए। बलात्कार का अपराध निजीप्रकृति का अपराध नहीं है; बल्कि इसका समाज पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः यह न्यायालय आवेदक के विरुद्ध आपराधिक वाद संख्या 0447/2019, अंतर्गत

धारा 363, 366, 376, 506 भा.दं.सं., पुलिस थाना - जयसिंहपुर, जिला सुल्तानपुर, से संबन्धित कार्यवाही को अभियुक्त / आवेदक व पीड़िता के मध्य हुए कथित समझौते के आधार पर रद्द करने का कोई औचित्य नहीं पाता है क्योंकि यह मामला माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भजन लाल (उपरोक्त), रथीश बाबू उन्नीकृष्णन(उपरोक्त), सतीश कुमार जाटव (उपरोक्त), रामवीर उपाध्याय (उपरोक्त), नरिंदर सिंह(उपरोक्त) तथा दक्षाबेन (उपरोक्त) के मामलों में चिन्हित श्रेणियों के अंतर्गत नहीं आताहै जो इसके रद्दीकरण को उचित ठहरा सके।

हालांकि, यह उल्लेख करना आवश्यक नहीं है कि, यदि वर्तमान अभियुक्त/आवेदक संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत/जमानत दाखिल करता है, तो उसका निस्तारण संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा इस मामले के तथ्योंको ध्यान में रखते हुए और स्थापित विधि के अनुसार अतिशीघ्रतापूर्वक किया जाएगा। उपरोक्त टिप्पणियों/निदेशों के साथ, वर्तमान आवेदन अंतर्गत धारा 482 दं.प्र.सं. निस्तारित की जाती है।

(2023) 4 ILRA 709

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

7721/2023

श्रीमती हसीना खातून

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्यविपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अक्षय कुमार

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम-2005-धारा 12, 23, 31 और 32- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 300-आवेदक को उसके विकलांग बेटे के साथ उसके घरेलू इकाई से बाहर निकाल दिया गया -डी.वी अधिनियम की धारा 12 के तहत कार्यवाही प्रारंभ की गई- रु 8,000/- प्रति माह का अंतरिम भरण-पोषण प्रदान किया गया- विपक्षी संख्या 2 ने 2.64 लाख रुपये की वसूली के लिए निष्पादन न्यायालय के निर्देशों का पालन करने से इनकार कर दिया और परिणामस्वरूप उसे 30 दिनों के लिए सलाखों के पीछे भेज दिया गया- "नए वसूली वारंट" जारी करने के लिए धारा 31 के तहत बाद में आवेदन किया गया जिसे विचारणीय न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 300 का सहारा लेते हुए निरस्त कर दिया- विचारणीय न्यायालय द्वारा अपनाई गई तर्क स्पष्ट रूप से अदूरदर्शी और बचकानी हैं- आपेक्षित आदेश अपने आप में दूषित है और सही कानून का पूरी तरह से गैर-अनुप्रयोग है- घरेलू हिंसा अधिनियम की

धारा 31 के तहत शक्ति का प्रयोग अधिनियम की धारा 18 के तहत कथित संरक्षण आदेशों को लागू करने का एक तरीका है और यह संतुष्टि के तरीके और दायित्व से अलग है जिसे केवल वास्तविक भुगतान के माध्यम से ही किया जा सकता है- परिणाम- आपेक्षित आदेश निरस्त- (पैरा 3 से 17) आदेश

धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन का निस्तारण किया गया। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. श्रीमती कुलदीप कौर बनाम सुरेंद्र सिंह और अन्य, 1989 एससीसी (1) 405
2. शांता @ उषादेवी और अन्य बनाम बीजी शिवांजप्पा, (2005) 4 एससीसी 468
3. पूंगोडी और अन्य बनाम थंगावेल, (2013) 10 एससीसी 618

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी, द्वारा प्रदत्त)

(1). आवेदक के अधिवक्ता श्री अक्षय कुमार और उत्तर प्रदेश राज्य के अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

(2). घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 10095 वर्ष 2017 (हसीना खातून बनाम अहमद बनाम अहमद अली) के तहत घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 से उत्पन्न घरेलू हिंसा अधिनियम, 2017 (हसीना खातून बनाम अहमद बनाम अहमद अली) के तहत वर्ष

2017 (हसीना खातून बनाम अहमद अली) के तहत दीवानी न्यायधीश (जूनियर डिवीजन)/एफ.टी.सी. (महिलाओं के खिलाफ अपराध), मुरादाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.01.2023 को रद्द करने के लिए आवेदक द्वारा इस न्यायालय की असाधारण शक्तियों का उपयोग किया जा रहा है। जिसे निचली अदालत ने 2.64 लाख रुपये के रखरखाव राशि के लिए आवेदक के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने एक महीने की कैद काट ली है, और इस प्रकार, शेष राशि का दावा प्रतिपक्षी संख्या-2 से नहीं किया जा सकता है।

(3). मुद्दे के वास्तविक कानूनी पहलू पर आने से पहले, विवाद को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए मामले के सुसंगत तथ्यों को बताना अनिवार्य है।

(क). आवेदक हसीना खातून ने मुस्लिम संस्कार, रीति-रिवाजों और रीति-रिवाजों के अनुसार 23.5.1990 को प्रतिपक्षी संख्या-2 के साथ शादी की। इस दंपति को एक बेटे का आशीर्वाद मिला, दुर्भाग्य से वह विकलांग था। ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न कारणों से पति और पत्नी के बीच गहरी कलह थी, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 21.7.1995 को अपने विकलांग बेटे के साथ उसे बाहर निकाल दिया। इस प्रकार, प्रतिपक्षी संख्या-2 के खिलाफ धारा 498 ए भ०द०वि० और अन्य संबद्ध धाराओं के तहत एक सामान्य विधिक कार्यवाही शुरू की गई थी।

(ख) कुछ समय बाद, समाज के कुछ अच्छे व्यक्तियों और सम्मानित सदस्यों के हस्तक्षेप के कारण और उनके रिश्तेदारों की सहायता से, प्रतिपक्षी संख्या-2 पर बेहतर समझ हावी हुई, उसके बाद एक समझौता विलेख निष्पादित किया गया। इसके परिणामस्वरूप, आवेदक प्रतिपक्षी संख्या-2 के साथ रहने लगा। कुछ समय बाद, आवेदक को 20.5.2017 को फिर से उसके विकलांग बेटे के साथ उसकी घरेलू इकाई से बाहर निकाल दिया गया और तब से वह अपने विकलांग बेटे के साथ किराए के मकान में बहुत दयनीय स्थिति में रह रही है, जिसके पास आय का कोई निश्चित स्रोत नहीं है।

(ग). आवेदक के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 के पास आय का पर्याप्त स्रोत है और एक मोटे अनुमान से वह विभिन्न स्रोतों से प्रति माह 50,000 रुपये से अधिक कमा रहा है।

(घ) आवेदक के पास कमाई का कोई साधन नहीं था, वह पूरी तरह से अपने पति पर निर्भर थी, जो अभी भी जानबूझकर उसकी और उसके विकलांग बेटे की उपेक्षा कर रहा है। इस प्रकार, वह दर-दर भटक रही थी। अनिवार्य परिस्थितियों में, आवेदक ने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा-12 के तहत मामला संख्या-20095 वर्ष 2017 (हसीना खातून बनाम अहमद अली) के तहत अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-चतुर्थ, मुरादाबाद की अदालत में कार्यवाही दायर की।

(ड) चूंकि आवेदक को अपने और अपने विकलांग पुत्र की आजीविका को पूरा करने के लिए धन की अत्यधिक आवश्यकता थी और इसलिए उसने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा-23 के अंतर्गत एक और आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें परिस्थितियों की तात्कालिकता को ध्यान में रखते हुए एकपक्षीय अंतरिम आदेश की मांग की गई।

(च) प्रतिपक्षी संख्या-2 को नोटिस तामील किए जाने के बाद, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने दावे में लगाए गए आरोपों से इनकार करते हुए अपनी आपत्ति दर्ज की है।

(छ) रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन करने के बाद, निचली अदालत ने दिनांक 19.7.2019 के आदेश के तहत अंतरिम रखरखाव के लिए आवेदक के आवेदन की अनुमति दी और प्रतिपक्षी संख्या-2 को आवेदक को 4,000/- रुपये और उसके विकलांग बेटे को 4,000/- रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया, जो कुल 8,000/- रुपये प्रति माह है, जो हर महीने के 10 वें दिन देय है।

(ज) दिनांक 19.7.2019 के पूर्वोक्त अंतरिम आदेश से व्यथित होकर, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने आपराधिक अपील संख्या-41 वर्ष 2019 (अहमद अली @ रमजानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) वाली अपील को प्राथमिकता दी, लेकिन अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, मुरादाबाद ने अपने आदेश दिनांक 01.4.2022 के माध्यम से प्रतिपक्षी

संख्या-2 द्वारा दायर की गई अपील को खारिज कर दिया है।

(i) प्रतिपक्षी संख्या-2, दिनांक 01.04.2022 के आदेश से व्यथित, फिर से क्रि. प्रकीर्ण आवेदन धारा 482 संख्या-11881 वर्ष 2022 (अहमद अली @ रमजानी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और दो अन्य) के तहत आवेदन दायर करके इस न्यायालय में आया, लेकिन न्यायालय के प्रतिकूल अवलोकन को भांपते हुए, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आवेदक के साथ समझौता करने की इच्छा व्यक्त की और इस आधार पर, मामले की योग्यता के आधार पर कुछ भी विज्ञापित किए बिना, उपरोक्त 482 आवेदन 02.11.2022 को खारिज कर दिया गया था।

(ज) प्रतिपक्षी संख्या-2 ने उसके पास उपलब्ध सभी रास्तों का फायदा उठाया और नौटंकी और धोखेबाजी का सहारा लिया ताकि उसे आवेदक को एक पैसा भी न देना पड़े, ऐसी परिस्थितियों में आवेदक हसीना खातून ने निचली अदालत द्वारा पारित दिनांक 19.7.2019 के आदेश के अनुपालन के लिए एक निष्पादन मामला दायर किया है और कुल राशि की वसूली के लिए प्रतिपक्षी संख्या-2 के खिलाफ वसूली वारंट जारी करने की प्रार्थना की है। जुलाई, 2019 से अप्रैल, 2022 की अवधि के लिए रु.8,000/- प्रति माह की दर से गणना के बाद 2.64 लाख रुपये।

(k) 29.9.2022 को निचली अदालत ने निष्पादन केस संख्या-697 वर्ष 2022 में एक विस्तृत आदेश पारित किया, जिसके तहत प्रतिपक्षी संख्या-2 अहमद अली @ रमजानी के खिलाफ रिकवरी वारंट जारी किए गए थे।

उपरोक्त रिकवरी वारंट के अनुसार, जब प्रतिपक्षी संख्या-2 आदेश का पालन करने में विफल रहा है, तो उसे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और 30.10.2022 को पुलिस हिरासत में निचली अदालत में पेश किया और जिला: जेल मुरादाबाद भेज दिया गया।

(I) आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह दलील दी गई थी कि चूंकि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने निष्पादन अदालत के निर्देशों का पालन करने से इनकार कर दिया था और परिणामस्वरूप उसे दिनांक 21.11.2022 के आदेश के तहत 30 दिनों के लिए सलाखों के पीछे भेज दिया गया था। आदेश दिनांक 21.11.2022 को यहां उद्धृत किया जा रहा है: "21.11.2022

"21.11.2022

आज विपक्षी अहमद अली उर्फ रमजानी पुत्र स्व० जुम्मा निवासी शाहपुर, मुबारकपुर उर्फ खोकरपुर थाना छजलैट जिला मुरादाबाद, को न्यायालय द्वारा जारी किए गए रिकवरी गिरफ्तारी वारंट मूल्य २,६४,०००/- रुपये की वसूली हेतु दिनांक ३०.१०.२०२२ को रिमाण्ड मजिस्ट्रेट द्वारा जेल भेजा गया था। विपक्षी आज जेल से न्यायालय में उपस्थित आया। विपक्षी से न्यायालय द्वारा पूछा गया कि क्या वह उपरोक्त वर्णित धनराशि जमा करने के लिए तैयार है। विपक्षी द्वारा वर्णित सम्पूर्ण धनराशि जमा

करने से इंकार किया गया। रिकवरी के सम्बन्ध में विपक्षी को ३० दिन की न्यायिक हिरासत में रखा जाना था परन्तु विपक्षी का धारा-३०९ सीआरपीसी का वारंट बन गया था। विपक्षी को ३० दिन की न्यायिक हिरासत में रखने हेतु आदेशित किया जाता है। अतः विपक्षी को दिनांक ३०.११.२०२२ तक या उपरोक्त वर्णित धनराशि जमा करने तक सिविल कारागार में भेजा जाता है। वाद दीवानी प्रकृति का है।"

(एम) इस प्रकार, पूर्वोक्त आदेश से यह स्पष्ट है कि अदालत ने प्रतिपक्षी संख्या-2 को 30 दिनों के लिए यानी 30.11.2021 तक दीवानी जेल भेजने का निर्देश दिया है या जब तक वह बकाया भरण-पोषण राशि जमा नहीं कर देता। इस प्रकार, प्रतिपक्षी संख्या-2 को जेल में भेजने का विचार उस पर दबाव डालना है ताकि वह बकाया रखरखाव राशि को खांसी कर सके। वास्तव में, यह आदेश को लागू करने का एक तरीका था न कि संतुष्टि का तरीका। अदालत इस बात पर जोर दे रही थी कि प्रतिपक्षी संख्या-2 को बकाया रखरखाव राशि का भुगतान करना होगा।

(ढ) पूर्वोक्त से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने बकाया भरण-पोषण राशि का भुगतान करने के लिए एक इंच भी नहीं हिला, बल्कि उसने सलाखों के पीछे जाना पसंद किया।

(ओ) 30 दिनों की समाप्ति के बाद, 30.12.2022 को प्रतिपक्षी संख्या-2 को जेल से रिहा कर दिया गया, भले ही, उसने आवेदक को 2.64 लाख रुपये की बकाया रखरखाव राशि का भुगतान करने की जहमत नहीं उठाई। बाध्यकारी परिस्थितियों में, आवेदक ने प्रतिपक्षी संख्या-2 के खिलाफ "ताजा रिकवरी वारंट" जारी करने के लिए 17.1.2023 को निचली अदालत के समक्ष एक और आवेदन दायर किया। आवेदक के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिए गए इस आवेदन को संबंधित अदालत ने दिनांक 23.01.2023 के आदेश के तहत आश्चर्यजनक रूप से आंशिक रूप से खारिज कर दिया और अक्टूबर, 2022 से जनवरी, 2023 की अवधि के लिए केवल 32,000/- रुपये की राशि के लिए रिकवरी वारंट जारी किया। आक्षेपित आदेश दिनांक 23.01.2023 का प्रासंगिक भाग यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

“पत्रावली के अवलोकन से स्पष्ट है कि उक्त मुकदमे में न्यायालय द्वारा दिनांक २९-०९-२०२२ को विपक्षी अहमद अली के विरुद्ध रिकवरी वारंट जारी किया था। दिनांक ३०-१०-२०२२ को वर्णित धनराशि जमान करने के कारण विपक्षी को ३० दिन की न्यायिक हिरासत में भेजा गया था, जिसके सम्बन्ध में अभियुक्त एक माह कारावास में रह चुका है। धारा-३०० द०प्र०सं० १९७३ में

उल्लिखित है कि यदि किसी अपराध में विपक्षी को दोषसिद्ध किया जा चुका है तो उसी अपराध के लिए दोबारा दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता। मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए विपक्षी के विरुद्ध देय धनराशि माह अक्टूबर २०२२ से माह जनवरी २०२३ तक के लिए रिकवरी वारंट जारी किया जाना न्यायोचित प्रतीत होता है। अतः ऐसी स्थिति में इस स्तर पर अन्तरिम भरण पोषण धनराशि २,६४,०००/- की वसूली हेतु प्रार्थना पत्र निरस्त किया जाता है तथा देय धनराशि माह अक्टूबर २०२२ से माह जनवरी २०२३ इस ३२,०००/- रु० की वसूली हेतु रिकवरी वारंट जारी किया जाता है। विपक्षी के विरुद्ध रिकवरी वारंट जारी हो।”

(4) मैंने दिनांक 23.01.2023 के आक्षेपित आदेश को पढ़ा है जो इंगित करता है कि एफ.टी.सी. (महिलाओं के खिलाफ अपराध), मुरादाबाद की अदालत द्वारा अपनाया गया तर्क स्पष्ट रूप से अदूरदर्शी और बचकाना है, क्योंकि संबंधित अदालत ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय धारा 300 द०प्र०सं० का सहारा लिया है, जो "स्वतः दोषी और स्वतंत्र बरी" के सिद्धांत के बारे में बात करता है। द०प्र०सं० की उपरोक्त

धारा 300 की प्रयोज्यता की अनिवार्यता इस प्रकार है:

(i) कि वह (आरोपी व्यक्ति) पहले एक अपराध के लिए अदालत द्वारा विचारण किया गया था।

(ii) ऐसा न्यायालय उस अपराध का विचारण करने के लिए सक्षम था।

(iii) कि वह पूर्व विचारण में उस अपराध के लिए या तो दोषी ठहराया गया था या दोषमुक्त किया गया था।

(iv) कि ऐसी दोषसिद्धि या दोषमुक्ति तब भी लागू रहती है जब उसके विरुद्ध बाद की कार्यवाही की जाती है।

(v) कि बाद की कार्यवाही में उस पर फिर से मुकदमा चलाया जा रहा है - (क) उसी अपराध के लिए; या (बी) किसी अन्य अपराध के लिए समान तथ्यों पर जिसके लिए धारा 221(1)-(2) के तहत एक अलग आरोप लगाया जा सकता है।

(5). अब आक्षेपित आदेश में दिए गए तर्क के साथ उपरोक्त अनिवार्यताओं की तुलना करने से संकेत मिलता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 को जेल में भेजने के आदेश का पहला हिस्सा किसी अपराध के लिए नहीं है और न ही उसे किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था। चूंकि वह भरण-पोषण की बकाया राशि का भुगतान करने में चूक-कर्ता था, इसीलिए, उसे भरण-पोषण की राशि का भुगतान करने के लिए दीवानी कारावास का सामना करना पड़ता

है और इसलिए, आक्षेपित आदेश पारित करते समय संबंधित न्यायालय द्वारा अपनाया गया तर्क अपने आप में बेतुका है और सही कानून का पूर्ण रूप से उपयोग नहीं किया गया है।

(6). अब मुद्दे के एक और पहलू पर आते हैं अर्थात घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (अधिनियम संख्या-43 वर्ष 2005) की धारा-31 के तहत निष्पादन के लिए आवेदन। इस कानूनी बिंदु पर जाने से पहले, "घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 से महिलाओं का संरक्षण" के उद्देश्य पर एक क्षणिक नज़र डालना अनिवार्य है। उद्देश्य में कहा गया है कि पूर्वोक्त विधेयक निम्नलिखित उद्देश्यों को प्रदान करना चाहता है:

(i) इसमें उन महिलाओं को शामिल किया गया है जो दुर्व्यवहार करने वाले के साथ संबंध में हैं या रही हैं, जहां दोनों पक्ष एक साझा घर में एक साथ रहते हैं और सहमति, विवाह या गोद लेने की प्रकृति के रिश्ते के माध्यम से संबंधित हैं। इसके अलावा, संयुक्त परिवार के रूप में एक साथ रहने वाले परिवार के सदस्यों के साथ संबंध भी शामिल हैं। यहां तक कि वे महिलाएं जो बहनें, विधवा, माताएं, अकेली महिलाएं हैं, या दुर्व्यवहार करने वाले के साथ रह रही हैं, प्रस्तावित कानून के तहत कानूनी सुरक्षा की हकदार हैं। तथापि, जबकि विधेयक विवाह की प्रकृति के संबंध में रह रही पत्नी या महिला को पति या पुरुष साथी के किसी रिश्तेदार के विरुद्ध प्रस्तावित अधिनियमन के अंतर्गत शिकायत दर्ज करने का अधिकार देता है, यह पति की किसी महिला रिश्तेदार या

महिला साथी को पत्नी या महिला साथी के विरुद्ध शिकायत दर्ज करने में समर्थ नहीं बनाता है।

(ii) यह अभिव्यक्ति "घरेलू हिंसा" को परिभाषित करता है जिसमें वास्तविक दुर्व्यवहार या धमकी या दुर्व्यवहार शामिल है जो शारीरिक, यौन, मौखिक, भावनात्मक या आर्थिक है। महिला या उसके रिश्तेदारों को गैरकानूनी दहेज की मांग के माध्यम से उत्पीड़न भी इस परिभाषा के तहत कवर किया जाएगा।

(iii). यह महिलाओं को आवास सुरक्षित करने के अधिकार प्रदान करता है। यह एक महिला के अपने वैवाहिक घर या साझा घर में रहने के अधिकार का भी प्रावधान करता है, चाहे उसके पास ऐसे घर या घर में कोई शीर्षक या अधिकार हो या नहीं। यह अधिकार एक निवास आदेश द्वारा सुरक्षित है, जिसे मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया जाता है।

(iv). यह मजिस्ट्रेट को पीड़ित व्यक्ति के पक्ष में संरक्षण आदेश पारित करने का अधिकार देता है ताकि प्रतिवादी को घरेलू हिंसा या किसी अन्य निर्दिष्ट कार्य में सहायता करने या करने, कार्यस्थल या पीड़ित व्यक्ति द्वारा बार-बार किसी अन्य स्थान पर प्रवेश करने, उसके साथ संवाद करने का प्रयास करने, दोनों पक्षों द्वारा उपयोग की जाने वाली किसी भी संपत्ति को अलग करने और पीड़ित व्यक्ति को हिंसा करने से रोका जा सके, उसके रिश्तेदार या अन्य जो घरेलू हिंसा से उसकी सहायता करते हैं।

(v). इसमें पीड़ित व्यक्ति की चिकित्सा जांच, कानूनी सहायता प्राप्त करने, सुरक्षित आश्रय इत्यादि के संबंध में सहायता उपलब्ध कराने के लिए संरक्षण अधिकारियों की नियुक्ति और सेवा प्रदाताओं के रूप में गैर-सरकारी संगठनों के पंजीकरण का प्रावधान है।

(7). चूंकि उपरोक्त आवेदन घरेलू हिंसा अधिनियम से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम की धारा-31 के तहत पेश किया गया है, इसलिए इस अधिनियम की धारा 31 और 32 को उद्धृत करना अनिवार्य है, जो इस प्रकार है:

"31. प्रतिवादी द्वारा संरक्षण आदेश के उल्लंघन के लिए दंड

(1) प्रतिवादी द्वारा संरक्षण आदेश या अंतरिम संरक्षण आदेश का उल्लंघन इस अधिनियम के अधीन अपराध होगा और वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो बीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन अपराध, यथासाध्य मजिस्ट्रेट द्वारा, जिसने आदेश पारित किया था, विचारण किया जाएगा, जिसका भंग/उल्लंघन अभियुक्त द्वारा किया गया है।

(3) उपधारा (1) के अधीन आरोप विरचित करते समय, मजिस्ट्रेट यथास्थिति, यदि तथ्यों से उन उपबंधों के अधीन किए गए किसी अपराध का प्रकटीकरण होता है, तो वह

भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) की धारा 498क या उस संहिता के किसी अन्य उपबंध या दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (28 वर्ष 1961) के अधीन भी आरोप विरचित कर सकेगा।

32. संज्ञान और प्रमाण

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में किसी बात के होते हुए भी, धारा 31 की उपधारा (1) के अधीन अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती होगा।

(2) व्यथित व्यक्ति की एकमात्र गवाही पर, न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकेगा कि धारा 31 की उपधारा (1) के अधीन कोई अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया है।

(8). पूर्वोक्त धाराओं के प्रावधान उत्तरदाताओं द्वारा संरक्षण के उल्लंघन के लिए दंड के बारे में बोलते हैं। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी द्वारा संरक्षण आदेश, या अंतरिम संरक्षण आदेश का उल्लंघन, इस अधिनियम के तहत एक अपराध होगा और किसी भी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकती है, या जुर्माने से, जो बीस हजार रुपए तक का हो सकता है, या दोनों के साथ दंडनीय होगा।

(9). इस आधार पर यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 29.9.2022 के आदेश के तहत प्रतिपक्षी संख्या-2 के खिलाफ रिकवरी वारंट जारी करते हुए, पुलिस ने 30.10.2022 को प्रतिपक्षी संख्या-2 को गिरफ्तार किया है और

उसे ऊपर उल्लिखित आदेश पारित करके जिला जेल, मुरादाबाद भेज दिया है, जिसके तहत यह उल्लेख किया गया है कि आवेदक को 30.11.2022 तक या 2.64 लाख रुपये की बकाया राशि जमा होने तक जेल में रहने का निर्देश दिया गया था। ऐसा लगता है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने पहले वाले को प्राथमिकता दी है और बकाया रखरखाव राशि का भुगतान करने की देयता से कथित रूप से मुक्त करने के लिए 30.11.2022 (लगभग एक महीने का कहना है) तक जेल में अपना समय बिताया है।

(10). इस संबंध में आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि यह घरेलू हिंसा अधिनियम से महिलाओं के संरक्षण का उद्देश्य नहीं था। वास्तव में यह पत्नियों और बच्चों को आश्रय देने और अपनी पत्नियों और बच्चों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी पतियों के कंधों पर डालने का सामाजिक विधान है। महीने तक जेल में सेवा करने पर, प्रतिपक्षी संख्या-2 को अपनी पत्नी और बच्चों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया जाएगा। किसी व्यक्ति को जेल भेजना निवारण का एक तरीका है ताकि वह बकाया भरण-पोषण राशि का भुगतान कर सके और नियमित रूप से भुगतान करता रहे ताकि उसकी पत्नी और बच्चे निराश्रित अवस्था में न मर जाएं। यह सटीक रेखांकित विचार है जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने श्रीमती कुलदीप कौर बनाम सुरेंद्र सिंह और अन्य, 1989 एस.सी.सी. (1) 405 के मामले में प्रतिपादित किया है। इस मामले में निर्धारित अनुपात को उपयोगी रूप से याद किया जा सकता है और

प्रस्तुत मामले में लागू किया जा सकता है। घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा-31 के तहत शक्ति का प्रयोग अधिनियम की धारा-18 के तहत कथित संरक्षण आदेशों के प्रवर्तन का एक तरीका है और यह संतुष्टि के तरीके और दायित्व से अलग है जो केवल वास्तविक भुगतान के माध्यम से किया जा सकता है। श्रीमती कुलदीप कौर (उपरोक्त) में आदेश का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

पीठ ने कहा, "एक तरफ वसूली को लागू करने के तरीके और दूसरी तरफ बकाये में आई मासिक भत्ते की राशि की वास्तविक वसूली को प्रभावित करने के बीच अंतर करना होगा। किसी व्यक्ति को जेल की सजा देना 'प्रवर्तन का तरीका' है। यह दायित्व का 'संतुष्टि का तरीका' नहीं है। बकाया राशि का वास्तविक भुगतान करके ही दायित्व की पूर्ति की जा सकती है। जेल भेजने का पूरा उद्देश्य मासिक भत्ते का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को उपकृत करना है जो पर्याप्त कारण के बिना आदेश का पालन करने और भुगतान करने के लिए, आदेश का पालन करने से इनकार करता है। उसे जेल भेजने का उद्देश्य उस दायित्व को मिटाना नहीं है जिसे उसने निर्वहन करने से इनकार कर दिया है, यह भी महसूस किया गया है कि मासिक भत्ता देने का आदेश देने वाले व्यक्ति को केवल तभी जेल भेजा जा सकता है जब वह आदेश का पालन करने के लिए 'पर्याप्त कारण' के बिना मासिक भत्ता का भुगतान करने में विफल रहता है। यह वास्तव में अजीब होगा कि एक व्यक्ति जो 'उचित कारण के बिना' अपनी उपेक्षित पत्नी या बच्चे को बनाए रखने के लिए न्यायालय के

आदेश का पालन करने से इनकार करता है, उसे केवल इसलिए उसकी देयता से मुक्त कर दिया जाएगा क्योंकि वह जेल की सजा के लिए जेल जाना पसंद करता है, मासिक भत्ते की राशि की वसूली के लिए कोई विकल्प नहीं है जो बकाया में है। पत्नी को सक्षम करने के लिए मासिक भत्ता का भुगतान किया जाता है और बच्चे को आवश्यक आर्थिक साधन प्रदान करके जीने के लिए। न तो उपेक्षित पत्नी और न ही उपेक्षित बच्चा भोजन और आवश्यक वस्तुओं को खरीदने के लिए धन के बिना रह सकता है कि वे जीवित रह सकें। उन्हें धन उपलब्ध कराने के बजाय, पति को जेल भेजने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा जेल में सजा बकाया राशि की वसूली करके आदेश को लागू करने के अंत को प्राप्त करने का साधन है। यह दायित्व के निर्वहन का तरीका नहीं है। धारा ऐसा नहीं कहती है। संसद ने अपने विवेक से ऐसा नहीं कहा है कि वह इस तरह के बिन्दु का समर्थन नहीं करती है। न्यायालय को यह समझाने के लिए प्रेरणा कहां से मिलती है कि भरण-पोषण के आदेश के तहत उत्पन्न होने वाली देयता को वसूलने के प्रयास पर निर्वहन किया जाएगा? मासिक भत्ते के आदेश का निर्वहन मासिक भत्ता वसूल किए जाने पर ही किया जा सकता है.....

(11). शांता @ उषादेवी बनाम बीजी शिवांजप्पा, (2005) 4 एस.सी.सी. 468 के एक अन्य मामले में, जिसके तहत यह माना गया है कि धारा 125 द०प्र०स० के तहत या प्रस्तुत अधिनियमन में रखरखाव राशि का भुगतान करने का दायित्व निरंतर देयता की प्रकृति में है। भरण-पोषण प्राप्त करने के अधिकार की

प्रकृति और भुगतान करने के लिए सहवर्ती दायित्व साथ-साथ चलते हैं और इसे किसी भी नागरिक कारावास द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है।

(12). पूंगोडी और अन्य बनाम थंगावेल, (2013)10 एस.सी.सी. 618 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि धारा 125(3) द०प्र०स० का प्रावधान यह दर्शाता है कि यह प्रवर्तन का एक तरीका है यानी एक डिफॉल्टर को दीवानी जेल में भेजना और कोई रोक नहीं बनाता है या उक्त डिफॉल्टर से रखरखाव राशि प्राप्त करने के वास्तविक अधिकार को प्रभावित नहीं करता है। इसमें चूककर्ता से भरण-पोषण की वसूली की प्रक्रिया निर्धारित की गई है और उसे बकाया राशि का भुगतान करने के लिए बाध्य किया गया है। किसी चूककर्ता को जेल भेजने से अधिनियमन का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। इससे चूककर्ता को पति के रूप में उसकी हैसियत के माध्यम से उस पर उपार्जित दायित्व से मुक्त नहीं किया जा सकेगा।

(13). इस प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों की सहायता को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि दिनांक 23.01.2023 के आक्षेपित आदेश को कानून की नजर में कायम नहीं रखा जा सकता है और आक्षेपित आदेश पारित करते समय एफ.टी.सी. न्यायालय ने संशोधित अवधि के लिए यानी अक्टूबर 2022 से जनवरी, 2023 तक से रिकवरी वारंट को फिर से जारी करके घोर गलती की है। धारा 31 के उपबंधों के अनुसार चूककर्ता के विरुद्ध सख्ती से

निपटा जाना चाहिए कि प्रतिवादी द्वारा संरक्षण आदेश या अंतरिम संरक्षण आदेश का कोई भी उल्लंघन इस अधिनियम के अधीन अपराध होगा और वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा, या जुर्माने के साथ जो बीस हजार रुपये तक बढ़ सकता है, या दोनों के साथ।

(14). यह अपराध गैर-जमानती और संज्ञेय है, इसलिए, अदालत को कथित डिफॉल्टर को अपराध के अनुसार अधिकतम सजा देने के लिए दंडित करना चाहिए था, जहां प्रतिपक्षी संख्या-2 ने किसी अन्य महिला के साथ पुनर्विवाह किया है और जीवन का आनंद ले रहा है, आवेदक और उसके विकलांग बेटे को सड़क पर छोड़ दिया है। यह एक अक्षम्य अपराध और पाप है जिसके द्वारा असाधारण दंड निर्दयतापूर्वक लगाया जाना चाहिए। मजिस्ट्रेट को घरेलू हिंसा अधिनियम से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम की धारा-31 के तहत प्रतिपक्षी संख्या-2 के खिलाफ कार्यवाही करनी चाहिए थी और यहां तक कि अगर राशि की वसूली करने में विफल रहता है, तो वह पूरी बकाया भरण-पोषण राशि की वसूली के लिए अचल संपत्ति को नीलामी के लिए रख सकता है।

(15). इन परिस्थितियों में, मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि आक्षेपित आदेश ऊपर वर्णित कानून के दोष से ग्रस्त है, और इसलिए, दीवानी न्यायधीश (जेडी/एफ.टी.सी. (महिलाओं के खिलाफ अपराध), मुरादाबाद द्वारा पारित दिनांक 23.01.2023 के आक्षेपित

आदेश को निम्नलिखित निर्देश के साथ रद्द किया जाता है: -

(i) संबंधित न्यायालय प्रतिपक्षी संख्या-2 को इस आशय का एक नया नोटिस जारी करेगा कि वह दिनांक 19.7.2019 के आदेश के अनुसार 15.5.2023 तक पूरी बकाया रखरखाव राशि का भुगतान करेगा यानी जुलाई, 2019 से 30 अप्रैल, 2023 तक @ Rs.4,000+4,000=Rs.8000/- प्रति माह अंतरिम रखरखाव के माध्यम से।

(ii) यदि प्रतिपक्षी संख्या-2 इस अवधि में भरण-पोषण की पूरी बकाया राशि जमा करने में विफल रहता है, तो संबंधित न्यायालय घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम की धारा 31 के तहत प्रतिपक्षी संख्या-2 के खिलाफ उसे एक वर्ष के कारावास और 20,000/- रुपये के जुर्माने या दोनों के लिए दंडित करने के लिए कार्यवाही करेगा।

(iii) इसके साथ-साथ, निर्धारित समय के भीतर संपूर्ण बकाया राशि जमा करने में विफलता के मामले में, संबंधित न्यायालय प्रतिपक्षी संख्या-2 से संबंधित संपूर्ण चल और अचल संपत्ति को कुर्क करेगा और उक्त संपत्ति को आवेदक को भुगतान की जाने वाली बकाया रखरखाव राशि की वसूली के लिए नीलामी के लिए रखा जाएगा।

(iv) चूंकि संबंधित न्यायालय ने केवल अंतरिम भरण-पोषण निर्धारित किया है, संबंधित न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह मामले को गति प्रदान करे धारा 12 घरेलू

हिंसा अधिनियम के तहत मामला संख्या-10095 वर्ष 2017 (हसीना खतून बनाम अहमद अली) पर प्राथमिकता के आधार पर निर्णय ले और भरण-पोषण राशि के अंतिम आंकड़े की गणना करते समय, संबंधित न्यायालय प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दी गई अंतरिम भरण-पोषण राशि को समायोजित करेगा और आवेदक को भुगतान किया जाएगा।

16. उपर्युक्त निर्देशों का विनिर्दिष्ट समय के भीतर कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए और उपर्युक्त निर्देशों के अनुपालन में कोई ढिलाई बर्दाश्त नहीं की जाएगी।

17. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन का निपटारा किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 717

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

9701/2022

उदय प्रताप सिंह

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री विनय मिश्रा, श्री

अनुराग शुक्ला, श्री बीरेंद्र प्रताप सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री पंकज कुमार सिंह

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

- धारा 482-सीआरपीसी की धारा 482 के

अंतर्गत एक अन्य आवेदन में उठाई गई समान शिकायत-दावा किया गया कि सीडी और पेन ड्राइव उपलब्ध नहीं कराई गई- क्योंकि जांच के लिए प्रयोगशाला में भेजा गया-यदि छेड़छाड़ नहीं पाई गई और यदि अभियोजन पक्ष इस पर भरोसा करता है तो प्रतिलिपि उपलब्ध कराने का प्रश्न उठेगा-हालांकि अन्य आवेदन में भी यही प्रार्थना की गई थी और उसे स्वीकार कर लिया गया था-परिस्थितियों में कोई बदलाव नहीं हुआ।

आवेदन निरस्त (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. ओपीटीओ सर्किट इंडिया लिमिटेड बनाम एक्सिस बैंक और अन्य, (2021)6 एससीसी, 701
2. अनीता कुशवाह बनाम पुष्प सूदन, (2016) 8 एससीसी 509
3. भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल एवं अन्य, 1979(3) एससीसी4
4. अधीक्षक एवं विधिक मामले स्मरण, पश्चिम बंगाल बनाम मोहन सिंह एवं अन्य, (1975)3 सर्वोच्च न्यायालय वाद, 706
5. कंचन कुमार बनाम बिहार राज्य, (2022)9 एससीसी 577
6. विली (विलियम) स्लेनी बनाम एम.पी. राज्य, एआईआर 1956 एससी 116
7. पी. गोपालकृष्णन @ दिलीप बनाम केरल राज्य एवं अन्य, आपराधिक अपील (एससी) संख्या 1794/2019

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला एवं श्री बीरेंद्र प्रताप पसिंह, विरोधी पक्ष संख्या-2 के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार सिंह एवं राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह को सुना।
2. वर्तमान प्रार्थनापत्र के माध्यम से, प्रार्थी याचिकाकर्ता ने प्रार्थना की है कि मुकदमा अपराध संख्या- 0257/2021, अंतर्गत धारा 302,120-B I.P.C. पुलिस थाना-मुंशीगंज, जिला-अमेठी से उद्भूत सत्र विचारण संख्या 573/2022 (राज्य बनाम विजय प्रताप सिंह एवं अन्य) में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश फास्ट ट्रैक कोर्ट- 1. सुल्तानपुर को, निष्पक्ष एवं पारदर्शी न्याय सुनिश्चित करने हेतु, दंड प्रक्रिया संहिता में विहित प्रत्येक अनिवार्य और अत्यावश्यक चरणों का पालन करते हुए विचारण की कार्यवाही हेतु निर्देशित किया जाए।
3. वाद का तथ्य यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट वर्तमान प्रार्थी एवं उसके भाई विजय प्रताप सिंह के विरुद्ध थाना-मुंशीगंज, जिला-अमेठी में दिनांक 18-10-2021 को मामला दर्ज किया गया था एवं तत्पश्चात अन्वेषण किया गया तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 एवं 120-बी के अंतर्गत प्रार्थी याचिकाकर्ता एवं अन्य सह- अभियुक्तगण के विरुद्ध दिनांक 16-12-2021 को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र दाखिल किया गया। आरोप पत्र दाखिल होने के पश्चात,

संबंधित मजिस्ट्रेट ने दिनांक 22-04-2022 को अपराधों का संज्ञान लिया तथा मामले को विद्वान सत्र न्यायाधीश, सुल्तानपुर के समक्ष सौंप दिया।

4. इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य अर्थात कॉम्पैक्ट डिवाइस तथा पेन ड्राइव कथित तौर पर वर्तमान प्रार्थी एवं अन्य सह-अभियुक्तगण को नहीं दिए गए थे जो केस डायरी के परिशीलन के पश्चात प्रार्थी के संज्ञान में आया। कॉम्पैक्ट डिवाइस तथा पेन ड्राइव में मृतक का बयान शिकायतकर्ता के मोबाइल से कॉपी किया जाना बताया जाता है जो प्रार्थी के अनुसार एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है तथा इसे प्रार्थी को दिया जाना चाहिए था, किन्तु जब एक बार दं०प्र०सं० की धारा 207 के अंतर्गत उपरोक्त जानकारी प्रदान करने हेतु दिनांक 14-07-2022 को विचारण न्यायालय के समक्ष एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया था, परंतु आरोप निर्धारित होने से पूर्व, प्रार्थी को यह जानकारी नहीं दी गई थी। अतः यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने दं०प्र०सं० की धारा 207 के प्रावधानों का उल्लंघन किया है तथा आरोप विरचित करने से पूर्व विचारण न्यायालय ने प्रार्थी को आरोप मुक्त करने पर अपना न्यायिक विवेक नहीं प्रयोग किया, जो कि एक बहुमूल्य अधिकार है।

5. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि दं०प्र०सं० की धारा 207/228 के अंतर्गत दिनांक 14-07- 2022 को विचारण न्यायालय के समक्ष एक प्रार्थनापत्र दिए जाने के पश्चात भी, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण अर्थात कॉम्पैक्ट डिस्क के साथ ही प्रार्थी को पेन ड्राइव भी

उपलब्ध नहीं कराई गई: यद्यपि केस डायरी के परिशीलन से ज्ञात होता है कि जांच अधिकारी द्वारा केस डायरी के साथ कॉम्पैक्ट डिवाइस तथा पेन ड्राइव जमा कर दी गई है।

6. उन्होंने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि चूंकि कॉम्पैक्ट डिवाइस तथा पेन ड्राइव केस डायरी का भाग है एवं निश्चित रूप से, अभियोजन पक्ष विचारण के दौरान उस पर विश्वास करेगा, और इसलिए वे अभियोजन पक्ष हेतु महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। अतः अभियोजन पक्ष को दं०प्र०सं० की धारा 207 के अंतर्गत कार्यवाही करते समय विचारण न्यायालय द्वारा इसकी प्रति प्रदान की जानी चाहिए थी। उन्होंने पुनः तर्क प्रस्तुत किया कि आदेश दिनांक 20-07-2022 के अंतर्गत, प्रार्थी का प्रार्थनापत्र दिनांक 14-07-2022 को खारिज कर दिया गया है एवं यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि प्रार्थी को कॉम्पैक्ट डिवाइस तथा पेन ड्राइव की प्रति पूर्व में ही प्रदान की जा चुकी है, तत्पश्चात मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया। उनका मत है कि वास्तव में यह एक अनुचित निष्कर्ष है क्योंकि आज तक पेन ड्राइव तथा कॉम्पैक्ट डिस्क की प्रति वर्तमान प्रार्थी को नहीं दी गई है तथा इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि उपरोक्त दस्तावेजों की प्रति कभी प्रार्थी को दी गई थी, अतः दिनांक 20-07-2022 का आदेश अनुचित है एवं विधिक रूप से दूषित है।

7. पुनः उन्होंने तर्क दिया कि उपरोक्त के अतिरिक्त, प्रार्थी ने आदेश दिनांक 20-07-2022 के साथ सत्र बाद संख्या 573/2022 की अग्रिम आपराधिक कार्यवाही को भी इस आधार पर चुनौती दी है कि आरोप निर्धारित करने से

पूर्व विद्वान विचारण न्यायालय ने दं०प्र०सं० की धारा 227 के प्रावधानों के संबंध में अर्थात् अभियुक्त के उन्मोचन के संबंध में अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग नहीं किया। पुनः उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि उन्मोचन वह चरण है जिसके पश्चात् विचारण प्रारंभ होता है, अतः यह एक अभियुक्त का बहुमूल्य अधिकार है एवं यह प्रावधान यह भी बताता है कि किसी अभियुक्त के उन्मोचन हेतु विवेक का प्रयोग करने हेतु बाद के अभिलेख एवं प्रस्तुत दस्तावेजों की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही अभियुक्त एवं अभियोजन पक्ष के तर्क पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया जाएगा एवं यदि यह पाया गया कि अभियुक्त को उन्मोचित करने की स्थिति नहीं है, तब न्यायालय आरोप निर्धारित करने हेतु कार्यवाही करेगी। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वर्तमान याद में अभियुक्त के उन्मोचन पर न्यायिक विवेक का प्रयोग किये किए बिना ही आरोप निर्धारित किए गए थे जो अभिलेख पर ही स्पष्ट है।

8. अपने तों के समर्थन में, उन्होंने (2021)6 SCC, 701, OPTO सर्किट इंडिया लिमिटेड बनाम एक्सिस बैंक एवं अन्य में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है तथा उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या-15 का उल्लेख किया है जिसे निम्नवत् उद्धृत किया गया है:-

"15. इस न्यायालय ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि यदि कोई विधि किसी कार्य को किसी विशेष रीति से करने का प्रावधान करती है तब उसे मात्र उसी रीति से किया

जाना चाहिए और किसी अन्य रीति से नहीं। दूसरों के मध्य, संबंधित मामले में चुनाव याचिका की प्रस्तुति हेतु पटना उच्च न्यायालय की नियमावली के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार चंद्र किशोर झा बनाम महावीर प्रसाद एवं अन्य (1999) 8 SCC 266 बाद में इस न्यायालय के पास यह पता लगाने हेतु नियमावली पर विचार करने का अवसर था कि चुनाव याचिका की वैध प्रस्तुति क्या होगी और विचार के दौरान निम्नानुसार अवलोकन किया गया:

"यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि यदि कोई विधि किसी कार्य को किसी विशेष रीति से करने का प्रावधान करती है तब उसे उसी रीति से किया जाना चाहिए, किसी अन्य रीति से नहीं।

अतः यदि हितकारी सिद्धांत परिप्रेक्ष्य से के वर्तमान बाद में, यद्यपि प्राधिकृत अधिकारी के पास पर्याप्त शक्ति निहित है; तथापि ऐसी शक्ति विधि के अंतर्गत प्रतिपादित प्रक्रिया द्वारा सीमित है। यद्यपि शक्ति का प्रयोग मात्र उसी रीति से किया जाना चाहिए। ऐसा न करने पर यह विधिसम्मत उचित प्रक्रिया का अनुपालन करने की अपेक्षा का उल्लंघन होगा। हमने प्राधिकृत अधिकारी का दोष पाया है एवं खाते पर रोक करने से पूर्व तथा बाद में विधिक आवश्यकताओं का पालन नहीं करने तक ही कार्रवाई को दोषपूर्ण घोषित किया है। इसे आरोप की योग्यता अथवा बाद से संबंधित किसी अन्य पहलू एवं अपीलकर्ता और उसके निदेशकों के विरुद्ध प्रारंभ की गई कार्रवाई के आधार पर व्यक्त की गई राय के रूप में नहीं

माना जाएगा यदि पीड़ित पक्ष द्वारा कोई मुद्दा उठाया जाता है तब समुचित कार्यवाही में इस पर ध्यान दिया जाना चाहिये।"

9. उपरोक्त को संदर्भित करते हुए उन्होंने कहा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त वाद में यह धारित किया है कि यदि विधि किसी विशेष रीति से वाले किसी कार्य को किए जाने का प्रावधान करता है तब इसे उसी रीति से किया जाना चाहिए, अन्यथा नहीं। उन्होंने कहा कि दं०प्र०सं० की धारा 227 उन्मुक्ति के संबंध में संकल्पना करती है एवं उपरोक्त प्रावधान के प्रारंभिक वाक्य में कहा गया है कि 'यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ दी गई दस्तावेजों पर विचार कर लेने पर, और इस निमित्त अभियुक्त और अभियोजन के निवेदन की सुनवाई कर लेने के पश्चात् न्यायाधीश यह समझता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है तो वह अभियुक्त को उन्मुचित कर देगा और ऐसा करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करेगा। उन्होंने कहा कि विधायिका का उद्देश्य सुस्पष्ट है कि विचारण न्यायालय को अभिलेख तथा तर्कों पर विचार करते हुए उन्मुचन पर अपने विवेक का उपयोग करना होगा, अतः विचारण न्यायालय को तदनुसार आगे बढ़ना होगा, अन्यथा यह पूर्णतः शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि का उल्लंघन होगा।

10. उन्होंने (2016) 8 SCC 509, **अनीता कुशवाह बनाम पुष्प सूदन** में प्रदत्त निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है और उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 29 तथा 31 का

उल्लेख किया है। प्रस्तर संख्या 29 तथा 31 निम्नवत हैं:-

"29. संक्षेप में: भारत और विश्व के सभी सभ्य समाजों में न्याय तक पहुंच को जीवन के अधिकार का एक अभिन्न अंग माना गया है। यह अधिकार इतना मूलभूत तथा अविभाज्य है कि शासन की कोई भी प्रणाली संभवतः इसके महत्व को उपेक्षित नहीं कर सकती है, अपने नागरिकों को इससे वंचित करने की बात तो दूर की बात है। मैना कार्टी, अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध-1966, प्राचीन रोमन न्यायशास्त्रीय कहावत 'यूबी जूस इबी रेमेडियम, एवं विगत शताब्दियों में न्यायालयों की न्यायिक घोषणाओं द्वारा सामान्य विधि के मूलभूत सिद्धांतों के विकास ने विधि तक पहुंच को एक मूलभूत एवं अपरिहार्य मानव अधिकार के रूप में स्वीकार करने में योगदान दिया है, जिसे सभी सभ्य समाज तथा प्रणालियाँ मान्यता प्रदान करती हैं और लागू करती हैं।

31. इस तथ्य के दृष्टिगत कि उपरोक्त उल्लिखित घोषणाओं में संविधान के अनुच्छेद 21 में आने वाले "जीवन" शब्द की व्याख्या की गई है और इसे जीवन के अधिकार हेतु आकस्मिक और/अथवा अभिन्न माने जाने वाले अधिकारों के व्यापक दायरे को समझा गया है, ऐसा कोई वास्तविक कारण नहीं है कि विधि तक पहुंच को उक्त अधिकारों के वर्ग तथा श्रेणी से बाहर क्यों माना जाए, जो पूर्व से ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के एक भाग के रूप में मान्यता प्राप्त है। "जीवन" का

तात्पर्य मात्र भौतिक अर्थों में जीवन नहीं है, अपितु अधिकारों का एक समूह है जो जीवन को जीने लायक बनाता है। यह मानने का कोई न्यायिक या अन्य आधार नहीं है कि "न्याय तक पहुंच" से इनकार करने से मानव जीवन की गुणवत्ता प्रभावित नहीं होगी, इसलिए न्याय तक पहुंच को अनुच्छेद 21 के अंतर्गत गारंटीकृत जीवन के अधिकार के दायरे से बाहर कर दिया जाएगा। अतः हमें यह मानने में कोई संदेह नहीं है कि न्याय तक पहुंच वास्तव में संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत गारंटीकृत जीवन के अधिकार का एक पहलू है। हमें मात्र यह जोड़ने की आवश्यकता है कि विधि तक पहुंच संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत गारंटीकृत अधिकार का पहलू भी हो सकता है जो न केवल नागरिकों अपितु गैर-नागरिकों को भी विधि के समक्ष समानता तथा विधि की समान सुरक्षा की गारंटी देता है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि विधि के समक्ष समानता एवं विधि का समान संरक्षण विधि को लागू करने वाली कार्यकारी कार्रवाई के दायरे तक ही सीमित नहीं है। यह न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों तथा न्यायिक मंचों के समक्ष कार्यवाही के संबंध में उतना ही उपलब्ध है जहाँ विधि को लागू किया जाता है तथा न्याय प्रशासित किया जाता है। अधिकारों एवं दायित्वों के निर्धारण हेतु न्यायालयों अथवा किसी अन्य न्यायिक तंत्र तक पहुंच में नागरिकों की असमर्थता के परिणामस्वरूप विधि के समक्ष समानता एवं विधि की समान सुरक्षा, दोनों के ही संबंध में, अनुच्छेद 14 में निहित गारंटी अस्वीकृत हो जाएगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी न्यायिक तंत्र की अनुपस्थिति अथवा ऐसे तंत्र की

अपर्याप्तता, उन लोगों हेतु अवरोध है जो विधि के समक्ष समानता के अपने अधिकार को लागू करने की मांग कर रहे हैं तथा निवारण की भांग करने से विधि की समान सुरक्षा तथा इस प्रकार विधि के समक्ष समानता अथवा विधि की समान सुरक्षा की गारंटी को नकार दिया जाता है तथा इसे महज एक भ्रम बना दिया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 21 के अतिरिक्त, न्याय तक पहुंच को अनुच्छेद 14 में भी निहित गारंटी का भाग कहा जा सकता है।

11. उपरोक्त पर विश्वास व्यक्त करते हुए, उनका तर्क है कि उन्मोचन पर सुनवाई का अधिकार एक बहुमूल्य अधिकार है और यदि किसी तरह इसे उपेक्षित किया जाता है तब यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में गारंटीकृत अधिकार को प्रभावित करता है।

12. 1979(3) SCC 4, भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल एवं एक अन्य बाद की निर्णयविधि पर विश्वास व्यक्त करते हुए, उन्होंने उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 8 का उल्लेख किया है, जो निम्नवत है:-

"8. हाल ही में एक निर्णय में संहिता की धारा 227 की सीमा पर बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह (1) के बाद में इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, जहाँ माननीय न्यायमूर्ति उंटवालिया ने निम्नवत टिप्पणी की:-

"यदि मामला संदेह की सीमा में रहता है तो अभियुक्त के विरुद्ध प्रबल र संदेह, विचारण के निष्कर्षस्वरूप अपराध के साक्ष्य का स्थान

नहीं ले सकता है। परंतु प्रारंभिक चरण में यदि कोई प्रबल संदेह है जो न्यायालय को यह सोचने पर मजबूर करता है कि यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है तब न्यायालय हेतु यह कहना संभव नहीं है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार नहीं है। प्रारंभिक चरण में अभियुक्त के अपराध की जो धारणा बनाई जानी है, वह फ्रांस में आपराधिक मामलों की सुनवाई को नियंत्रित करने वाले विधि के अर्थ में नहीं है जहाँ अभियुक्त को तब तक दोषी माना जाता है जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए। परंतु यह मात्र प्रथम दृष्टया यह निर्धारित करने के उद्देश्य से है कि न्यायालय को मुकदमें में आगे कार्यवाही करनी चाहिए या नहीं। अभियोजक द्वारा अभियुक्त के अपराध को साबित करने हेतु प्रस्तावित साक्ष्य, यदि कोई हो, भले ही उसे प्रतिपरीक्षा में चुनौती दिए जाने से पूर्व पूर्णतः स्वीकार कर लिया गया हो अथवा बचाव साक्ष्य द्वारा खंडित किया गया हो; तो यह नहीं दिखाया जा सकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया है और तब विचारण की अग्रिम कार्यवाही हेतु कोई पर्याप्त आधार नहीं होगा।

इस न्यायालय ने धारित किया है कि हालांकि प्रबल संदेह विचारण के चरण में साक्ष्य का स्थान नहीं ले सकता है फिर भी यह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित करने हेतु सत्र न्यायाधीश की संतुष्टि के लिए पर्याप्त हो सकता है। यहाँ तक कि 1898 की संहिता के अंतर्गत इस न्यायालय ने धारित किया है कि मजिस्ट्रेट के पास यह जानने के सीमित उद्देश्य हेतु साक्ष्य को आँचने की पर्याप्त

शक्तियाँ थीं कि सत्र न्यायाधीश को सौंपने हेतु मामला बनाया गया है या नहीं।

13. उन्होंने स्पष्ट किया कि शीर्ष न्यायालय ने धारित किया है कि यदि प्रस्तावित साक्ष्य किसी अपराध के होने को नहीं प्रदर्शित करते हैं तब विचारण में अग्रिम कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार नहीं होगा।

14. इसके अतिरिक्त (1975)3 सुप्रीम कोर्ट केसेस, 706, सुपरिटेण्डेंट एंड रिमेंबरेंस ऑफ लीगल अफेयर्स, पश्चिम बंगाल बनाम मोहन सिंह एवं अन्य में दिए गए निर्णय का उद्धरण दिया गया तथा प्रस्तर संख्या-2 पर विश्वास व्यक्त किया गया।

15. उपरोक्त के संदर्भ में, उनका मत है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह विधि निर्धारित की है कि दं०प्र०सं० की धारा 482 के अंतर्गत क्रमिक प्रार्थनापत्र पोषणीय हैं, अतः उन्होंने प्रस्तुत किया कि वर्तमान प्रार्थनापत्र भी पोषणीय है।

16. इसके पश्चात उन्होंने (2022)9 SCC 577, कंचन कुमार बनाम बिहार राज्य में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है और पूर्वोक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 12 को संदर्भित किया है और कहा है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के 5 संबंध में विधिक प्रावधान तथा अग्रताक्रम शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है।

17. पुनः उन्होंने एआईआर 1956 एससी 116, विली (विलियम) स्लेनी बनाम मध्य प्रदेश

राज्य में प्रतिपादित किए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है और पूर्वोक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 6 का उल्लेख किया है, जो अधोवर्णित है:-

"6. अब यहाँ, सभी प्रक्रियात्मक विधियों की तरह, कुछ चीजों को महत्वपूर्ण माना जाता है। उस प्रकृति के प्रावधान की अवहेलना विचारण हेतु घातक है और तत्काल दोषसिद्धि को अमान्य कर देती है। अन्य महत्वपूर्ण नहीं हैं और जो भी अनियमितता हो, ठीक हो सकती है, और उस स्थिति में दोषसिद्धि कायम रहनी चाहिए जब तक कि न्यायालय संतुष्ट न हो कि पूर्वाग्रह था। इनमें से कुछ मामलों का संहिता में उल्लेख है और जहाँ भी ऐसा मामला है, उसके प्रावधानों को पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए। यहाँ प्रश्न यह है, क्या संहिता किसी आरोप के अभाव और उसमें होने वाली अनियमितताओं के संबंध में उपबंध करती है, और यदि हाँ, तो यह उन्हें दोनों में से किस श्रेणी में रखती है? परन्तु संहिता पर गौर करने से पूर्व, हम प्रिवी काउंसिल के कुछ निर्णयों का उल्लेख करना वांछनीय समझते हैं क्योंकि इस देश में अधिकांश न्यायिक विचार उनकी टिप्पणियों के दृष्टिगत प्रस्तुत किये गए हैं। हमारी राय में, उन निर्णयों के सामान्य प्रभाव को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है।"

18. अंत में, उन्होंने पी. गोपालकृष्णन @ दिलीप बनाम केरल राज्य व अन्य, आपराधिक अपील (एससी) संख्या 1794/2019 के मामले पर विश्वास व्यक्त

किया है, व उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर संख्या 32 और 34 का उल्लेख किया गया है, जो अधोवर्णित हैं:-

"32. यह सुस्पष्ट है कि संहिता 1973 धारा 207 के प्रावधान के अनुसार पुलिस रिपोर्ट सहित न्यायालय के निरीक्षण हेतु प्रस्तुत किए गए "इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख सहित सभी दस्तावेज, जो अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध उपयोग किया जाना प्रस्तावित है, आरोपी को प्रदान किये जाने चाहिए। आनुषंगिक यह है कि मेमोरी कार्ड/ पेन ड्राइव की सामग्री, अभियोगी को प्रदान किया जाना चाहिये, जिसे मेमोरी कार्ड पेन ड्राइव की झोन प्रति के रूप में प्रदान किया जा सकता है। यह आधारभूत है कि उस व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध इस प्रकार के गंभीर अपराध हेतु विचारण किया जाना है, पूर्व से ही ऐसी समस्त सामग्री और साक्ष्य प्रदान किये जाने चाहिए, जिस पर अभियोजन पक्ष मुकदमे के दौरान उसके विरुद्ध विश्वास व्यक्त करता है। कोई भी अन्य दृष्टिकोण न मात्र 1973 संहिता में निहित वैधानिक आदेश का उल्लंघन करेगा, अपितु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष सुनवाई हेतु एक अभियुक्त के अधिकार का भी उल्लंघन करेगा।

34. वर्तमान अपील की विषय वस्तु प्रस्तुत करने वाली विशेष अनुमति याचिका के ज्ञापन में पीड़ित की पहचान का खुलासा होने के कारण अपील को खारिज करने हेतु प्रतिवादी द्वारा की गई प्रारंभिक आपत्ति पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण प्रशंसनीय है क्योंकि

अभियोजन पक्ष ने स्वयं प्रथम सूचना रिपोर्ट/अपराध मामले में पीड़िता का नाम लेकर, धारा 161 के अन्तर्गत पीड़िता का बयाने, साथ ही संहिता 1973 की धारा 164 के अन्तर्गत, और मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत आरोप पत्र/पुलिस रिपोर्ट में ऐसा किया था। यहाँ तक कि अपीलकर्ता द्वारा मेमोरी कार्ड पेन ड्राइव की सामग्री को स्वयं देखने के बारे में गलत तथ्यात्मक विवरण के बारे में आपत्ति भी मामले को आगे नहीं बढ़ाती है, जब कि संहिता 1973 की धारा 207 के प्रावधान के अनुसार हम मेमोरी कार्ड/ पेनड्राइव की सामग्री की ड्रोन प्रतियाँ प्राप्त करने हेतु भारतय संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष सुनवाई के आरोपी के अधिकार के कारण आरोपी के अधिकार को मान लेते हैं।"

19. उपरोक्त निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हुए, उन्होंने यह भी कहा कि शीर्ष न्यायालय ने यह धारित किया है कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख भी दस्तावेजों की परिधि में आते हैं और किसी आरोपी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अनुसार ऐसे इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेज प्रदान किए जाने चाहिए। उन्होंने कहा कि वर्तमान मामले में अभिन्न रूप से, प्रार्थी की शिकायत यह है कि उसे पेन ड्राइव और कॉम्पैक्ट डिवाइस नहीं दी गई है, यद्यपि इसे केस डायरी के साथ जमा किया गया है।

20. अपने तर्कों का समापन करते हुए, उन्होंने कहा कि दिनांक 20-07-2022 के आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि प्रार्थी को उन्मोचित करने के संबंध में किसी भी विचार के बारे में तनिक भी चर्चा नहीं है और न्यायालय ने सीधे प्रार्थी के विरुद्ध धारा 302

सहपठित 120-बी भा०द०सं० के अन्तर्गत आरोप निर्धारित कर दिए हैं, जो स्वयमेव स्पष्ट करता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने दं०प्र०सं० की धारा 227 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए आदेश पारित किया है।

21. उन्होंने पुनः यह निवेदन किया कि विचारण न्यायालय ने प्रत्यक्ष रूप से दं०प्र०सं० की धारा 207 के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया की अवहेलना की है एवं यह स्वीकृत तथ्य है कि पेन ड्राइव और कॉम्पैक्ट डिस्क की प्रतिलिपि आवेदक को नहीं दी गई है, और इस प्रकार, आवेदक के अधिवक्ता का तर्क है कि दिनांक 20-07- 2022 के आदेश को अपास्त किया जाए और विचारण न्यायालय को दं०प्र०सं० की धारा 207/227 के प्रावधानों का सख्ती से पालन करने हेतु निदेश दिया जाए।

22. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता राज्य की ओर उपरोक्त तर्कों का विरोध किया गया है और कहा गया है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई विकृति या अवैधता नहीं है। उनका कहना है कि पूर्व में दं०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत एक आवेदन संख्या 4903/2022 प्रार्थी द्वारा निम्नलिखित अनुतोषों की प्रार्थना सहित दायर किया गया था:- Use

"(i) याचिकाकर्ता द्वारा इस याचिका के संलाएक संख्या-1 के रूप में प्रस्तुत धारा 207/228 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत दायर प्रार्थनापत्र के साथ-साथ सत्र परीक्षण संख्या 573/ 2022 (राज्य बनाम विजय प्रताप सिंह और अन्य) में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एफटीसी-1, सुल्तानपुर की

न्यायालय रह किया जाए। द्वारा पारित आदेश दिनांक 20-07-2022 को को Not for Deal

(ii) सत्र परीक्षण संख्या 573/2022 (राज्य बनाम विजय प्रताप सिंह और अन्य) में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश एफटीसी-प्रथम, सुल्तानपुर की न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 20-07-2022 को रद्द करने की कृपा करें, जिसके अन्तर्गत याचिकाकर्ता और दो अन्य सह-अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 302/34, 120-बी भा०द०सं० के अन्तर्गत आरोप तय करने हेतु आदेश पारित किया गया, जो कि इस याचिका का संलग्नक संख्या -२ है;

(iii) सत्र परीक्षण संख्या 573/2022 (राज्य बनाम विजय प्रताप सिंह और अन्य) में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश एफटीसी-प्रथम, सुल्तानपुर की न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 20-07-2022 को रद्द करने की कृपा करें, जिसके अन्तर्गत याचिकाकर्ता और दो अन्य सह-अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 302/34, 120-बी भा०१०सं० के अन्तर्गत आरोप तय किया गया है।

(iv) विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश एफ.टी.सी... सुल्तानपुर की न्यायालय को सत्र परीक्षण संख्या 573/2022 (राज्य बनाम विजय प्रताप सिंह और अन्य) में सम्यक विधिक प्रक्रिया का पालन करने के उपरान्त अर्थात् अभियुक्तगण को अपेक्षित इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य यानी कॉम्पैक्ट डिवाइस और पेन ड्राइव प्रदान करने और उन्हें

सुनवाई का पूरा अवसर प्रदान करते के उपरान्त आगे कार्यवाही करने का निदेश के (v) विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश एफ.टी. सी.. सुल्तानपुर की न्यायालय को सत्र परीक्षण संख्या 573/2022 (राज्य बनाम विजय प्रताप सिंह और अन्य) में आदेश दिनांक 20-07-2022 के आधार पर कार्यवाही न करने का निदेश दें;

(vi).....”

23. उपरोक्त का हवाला देते हुए, उनका तर्क है कि वर्तमान प्रार्थी ने सत्र परीक्षण संख्या 573/2022 में विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एफटीसी-1, सुल्तानपुर की न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 20-07-2022 के आदेश को पूर्व में ही चुनौती दे दी है। उपरोक्त प्रार्थनापत्र पर सुनवाई करते हुए दिनांक 26-07-2022 को आदेश पारित किया गया, अतः सामान अनुतोष हेतु धारा 482 दं०प्र०सं० के अंतर्गत प्रस्तुत द्वितीय प्रार्थनापत्र पोषणीय नहीं है।

24. आदेश दिनांक 26.07.2022 का प्रवर्तनीय भाग निम्नवत है:-

"5. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री है, विचारण न्यायालय ने आरोप विरचित करने हेतु कार्यवाही की। विचारण न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि अभियोजन पक्ष द्वारा विवास व्यक्त किए गए सभी प्रासंगिक दस्तावेज, अभियुक्त को दं०प्र०सं० की धारा 207 के अन्तर्गत सुपुर्दगी के समय दिए गए थे।

6. मैंने तर्कों पर विचार किया है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश का परिशीलन किया है। मुझे नहीं लगता कि विद्वान विचारण न्यायालय ने विधि या क्षेत्राधिकार के संबंध में कोई त्रुटि की है। यद्यपि, यह प्रावधान है कि यदि अभियोजन सी.डी. और पेन ड्राइव पर विश्वास व्यक्त कर रहा है, जिसे फॉरेंसिक जांच हेतु भेजा गया है, तो अभियुक्त को एफएसएल रिपोर्ट की प्रति के साथ उसकी प्रतियां भी प्रदान की जाएंगी ताकि यह प्रभावी रूप से अपना बचाव कर सकें।।

7. निस्तारण किया जाता है।"

25. उन्होंने आगे कहा कि जहाँ तक कॉम्पैक्ट डिस्क और पेन ड्राइव की प्रति की आपूर्ति न होने के संबंध में शिकायत का संबंध है, इस न्यायालय द्वारा पूर्व प्रार्थनापत्र में ही इसका निस्तारण किया जा चुका है और साथ ही, न्यायालय ने यह भी देखा कि यदि अभियोजन द्वारा विश्वास व्यक्त की गयी सी. डी. और पेन ड्राइव, जो दं०प्र०सं० की धारा 207 के अन्तर्गत कार्यवाही के चरण में वर्तमान प्रार्थी को नहीं दी गई है. तब यह उसे फॉरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला से प्राप्त करने के उपरान्त दी जाएगी, ताकि अभियुक्त प्रभावी रूप से अपना बचाव कर सके। पुनः न्यायालय ने निदेश दिया कि ऐसी स्थिति में एफ. एस. एल. रिपोर्ट की प्रति प्रार्थी को दी जाएगी। उनका तर्क है कि वास्तव में प्रार्थी के विवाद /शिकायत को दं०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र संख्या 4903/2022 में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा पूर्व में

ही निस्तारित किया जा चुका है, और वर्तमान प्रार्थी उसी बहाने से दिनांक 20-07-2022 के आदेश को पुनः चुनौती दे रहा है; इस प्रकार, वर्तमान आवेदन पूर्व में मांगी गई हैं राहतों की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अतः इस प्रार्थनापत्र का उपयोग दिनांक 26-07-2022 के आदेश में संशोधन सुधार की एक युक्ति के रूप में किया जा रहा है। उन्होंने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि यदि वर्तमान आवेदक वास्तव में दिनांक 26-07-2022 के आदेश से व्यचित अनुभव कर रहा है, तो यह उचित मंच पर इसे चुनौती दे सकता है। अतः वर्तमान प्रार्थनापत्र खारिज किये जाने योग्य है।

26. पक्षकारों के विद्वान अधियतागण को सुनने और अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के परिशीलन के पश्चात, यह प्रकट होता है कि वर्तमान प्रार्थी ने पूर्व में ही इस न्यायालय की समन्वय पीठ के समक्ष दं०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र संख्या 4903/2022, जिसमें दिनांक 20-07-2022 के आदेश को चुनौती दी गई थी, एवं एक समान व्यथा प्रस्तुत की थी।

27. जहाँ तक वर्तमान प्रार्थी की इस व्यथा का प्रश्न है कि उन्हें दस्तावेज अर्थात सी डी. एवं पेन ड्राइव उपलब्ध नहीं कराई गई, इस संबंध में तथ्य यह है कि उन दस्तावेजों को परिक्षण हेतु विधिविज्ञान प्रयोगशाला में भेजा गया है और यदि यह पाया जाता है कि उनसे छेड़छाड़ नहीं की गई है, तो यह प्रश्न उपस्थित होगा कि क्या अभियोजन पक्ष उस पर विश्वास व्यक्त कर रहा है या नहीं, और यदि अभियोजन पक्ष उस पर विश्वास व्यक्त करेगा

और उसकी प्रतिलिपि प्रदान नहीं की गई है, तो निश्चित रूप से यह विधि की अवज्ञा होगी; और इसलिए वर्तमान प्रार्थनापत्र समयपूर्व प्रस्तुत की गई है।

28. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने 26-07-2022 को धारा 482 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र संख्या 4903/2022 में आदेश पारित करते हुए यह टिप्पणी की कि "यदि अभियोजन सी.डी. और पेन ड्राइव पर विश्वास व्यक्त कर रहा है, जिसे विधिवैज्ञानिक जांच हेतु भेजा गया है, तो अभियुक्त को एफ.एस.एल. रिपोर्ट की प्रति के साथ उसकी प्रतियां भी प्रदान की जाएंगी ताकि अभियुक्त प्रभावी रूप से अपना बचाव प्रस्तुत कर सके।" इस मामले में, इस दृष्टिकोण से, प्रार्थी की शिकायत पूर्व में ही समाप्त हो चुकी है, परन्तु आदेश की तारीख का उल्लेख किए बिना, बार-बार लगभग एक ही प्रार्थना अस्पष्ट रूप से की गई है; यद्यपि, आशय एवं तर्क वही है। यद्यपि यह प्रचलित विधि है कि दं०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत उत्तरवर्ती प्रार्थनापत्र पोषणीय है; परन्तु, यह परिवर्तित परिस्थितियों के मामले में है। जहाँ तक वर्तमान मामले का प्रश्न है, प्रार्थी यह प्रदर्शित करने में विफल रहा है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित पूर्व आदेश दिनांक 26-07-2022 के उपरान्त क्या परिस्थितियाँ परिवर्तित हुई हैं।

29. जहाँ तक के पी. गोपालकृष्णन दिलीप बनाम केरल राज्य और अन्य, आपराधिक (एससी) संख्या 1794/2019 के बाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि का प्रश्न है,

इसका निष्कर्ष अत्यंत स्पष्ट है जैसा कि, प्रस्तर 44 में उल्लिखित है कि यदि अभियोजन किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख (मेमोरी कार्ड पेन ड्राइव इत्यादि) पर विवास व्यक्त कर रहा है, तो अभियुक्त को कोन प्रतिरूप प्रदान किया जाना चाहिए। उपरोक्त शब्द अत्यंत स्पष्ट है कि ऐसे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख जो साक्ष्य के रूप में महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं, यदि अभियोजन उसी पर निर्भर करता है तो यह प्रदान किया जाएगा और इस प्रकार, यह निर्णय भी अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन करता है।

30. इसके अतिरिक्त जहाँ एक ओपीटीओ सर्किट इंडिया लिमिटेड बनाम एक्सिस बैंक और अन्य, (2021) 6 एससीसी, 701 के बाद में प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि का संबंध है, शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट रूप से धारित किया है और स्थापित विधि को दोहराया है कि यदि विधि किसी कार्य को किसी विशेष रीति से करने का प्रावधान करती है, तो उसे उसी रीति से किया जाना चाहिए, अन्यथा नहीं।

31. जहाँ तक दे०५०सं० की चारा 227 के प्रावधानों के वाचन मात्र से स्पष्ट होता है, विधाविका का आशम इसकी अंतिम पंक्ति से स्पष्ट है क्योंकि इसमें कहा गया है कि यह एक अभियुक्त को जन्मोचित कर देगा और ऐसा करने हेतु अपने कारण दर्ज करेगा, और इस प्रकार यह स्पष्ट है कि एक अभियुक्त को उन्मोचित करने की नीति विक्षित की गई है और इसलिए विधारण न्यायालय किसी अभियुक्त को रिहा करते समय लिखित कारण

दर्ज करेगा। इस प्रकार, अभिलेख पर विचार करने और तर्क सुनने के उपरान्त, यदि विधारण न्यायालय को पर्याप्त आधार नहीं मिलता है, तो यह आरोप विरचित करने हेतु कार्यबाही करेगा। आरोप विरचित करने के चरण में, न्यायालय को विस्तृत जाँच करने की आवश्यकता नहीं है और बाद को मात्र प्रथमदृष्ट्या देखा जाना चाहिए।

32. यह न्यायालय सुपरिटेण्डेंट एवं रेमेमन्न्स ऑफ लीगल अफेयर्स, पश्चिम बंगाल बनाम मोहन सिंह और अन्य ने (1975) 3 एससीसी 700 के मामले में, निर्धारित विधि से भी अवगत है, जिसमें कहा गया है कि धारा 482 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत दूसरा प्रार्थनापत्र घोषणीय है परन्तु परिवर्तित हुई परिस्थितियों में, जो हर मामले में अलग-अलग होती हैं; और जहाँ तक वर्तमान मामले का प्रश्न है, प्रार्थी इस स्तर पर यह स्थापित करने में विफल रहा है कि परिस्थितियां परिवर्तित हुई हैं।

33. उपरोक्त तर्कों एवं विवेचना के आलोक में, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि वर्तमान प्रार्थना पत्र गुणविहीन है।

34. परिणामस्वरूप प्रार्थनापत्र खारिज किया जाता है।

35. कार्यालय इस आदेश को अधीनस्थ न्यायालय की सूचित करेगा।

(2023) 4 ILRA 726

**मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष**

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

**माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,
धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या
9973/2023**

नरेन्द्र प्रताप सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री सूर्य प्रताप सिंह परमार, वदन सिंह परमार

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री प्रेयांश मिश्रा

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता- धारा 307-समझौता-समझौता हेतु आवेदन अस्वीकृत- आवेदक एवं वादी चचेरे भाई हैं- धारा 307 आईपीसी- चोटें आई- प्रवेश के दौरान चार और बाहर निकलने पर दो आग्नेयास्त्र धाव- समाज की अंतरात्मा सम्मिलित- निजी विवाद के क्षेत्र में अपराध नहीं।

आवेदन अस्वीकृत (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

नरिंदर सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2014) 6 एससीसी 466

(माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

श्री प्रेयांश मिश्रा, अधिवक्ता ने एक संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के साथ विपक्षी संख्या 2 की ओर से अपना वकालतनामा दाखिल किया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री सूर्य प्रताप सिंह परमार और विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रेयाँश मिश्रा को सुना गया।

3. यह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत एक आवेदन है, जिसमें अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 21, इलाहाबाद के न्यायालय में लंबित सत्र परीक्षण संख्या 218 वर्ष 1991 राज्य बनाम नरेंद्र प्रताप सिंह (मुकदमा अपराध संख्या 14 वर्ष 1991 से उत्पन्न) अंतर्गत धारा 307 भारतीय दंड संहिता 1860, थाना सराय इनायत, जिला प्रयागराज की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की मांग की गई है।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उन्होंने मामले में समझौता कर लिया है, क्योंकि शिकायतकर्ता और आरोपी, यानी आवेदक और विपक्षी संख्या 2 चचेरे भाई हैं और अब, शिकायतकर्ता अभियोजन को और आगे नहीं बढ़ाना चाहता है। विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 15.2.2023 के आदेश द्वारा समझौता आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया है, कि इस मामले में आरोपी के विरुद्ध, घायल चंद्र नारायण, शिकायतकर्ता-विपक्षी, पर जान से मारने की नीयत से हमला करने का आरोप है। मामला जघन्य प्रकृति का है, और समझौता योग्य नहीं है। इसी आधार पर विद्वान न्यायाधीश ने समझौते को सत्यापित करने से इंकार कर दिया और आवेदन खारिज कर दिया।

5. यह बिल्कुल अलग मामला है कि विद्वान न्यायाधीश स्वयं समझौता आवेदन की अनुमति नहीं दे सकती थी, क्योंकि अपराध समझौता योग्य नहीं है। वह सिर्फ समझौते को सत्यापित कर सकती थी, जिस पर यह न्यायालय कार्यवाही कर सकता था। विचारण न्यायालय द्वारा अभियोजन को रद्द करने के संबंध में, जहां पक्षकारों ने संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए समझौता किया है, **नरेंद्र सिंह और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, (2014) 6 एस सी सी 466** मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले द्वारा प्रबुद्ध मार्गदर्शन प्रदान किया गया है, जो संयोगवश धारा 307 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दंडनीय अपराध से संबंधित मामला था। धारा 307 भारतीय दंड संहिता के तहत कार्यवाही को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्तियों के संदर्भ में **नरेंद्र सिंह** (उपरोक्त) में यह माना गया था:-

23. चूंकि समानता और न्याय में घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से देखा जाना चाहिए, कि कैसे भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के तहत 2 अभियोजन प्रकृति में भिन्न हैं और इसलिए उनके साथ अलग अलग व्यवहार किया जाता है। इस आदर्श उद्देश को ध्यान में रखते हुए, हम इस विषय पर विस्तार से चर्चा करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। यही कारण है कि हम कुछ अलग, निश्चित और स्पष्ट दिशानिर्देश

बनाना उचित समझते हैं जिन्हें उच्च न्यायालयों द्वारा ध्यान में रखा जा सकता है ताकि यह विचार किया जा सके कि किन परिस्थितियों में पक्षकारों के बीच समझौते को स्वीकार करना चाहिए और कार्यवाही को रद्द कर देना चाहिए और किन परिस्थितियों में उसे ऐसा करने से बचना चाहिए। हम यह स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि इस संबंध में भी एक सामान्य चर्चा होगी, मामले की जांच धारा 307 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों के संदर्भ में की जाती है।

24. दोनों प्रतिद्वंदी दलों ने सौहार्दपूर्ण ढंग से अपने बीच के विवादों को सुलझा लिया है, और मतभेदों को खत्म कर दिया है। इतना ही नहीं, उनका कहना है, कि चूंकि वे पड़ोसी हैं, इसलिए अच्छे पड़ोसियों की तरह रहना चाहते हैं और यही वजह है कि उन्होंने दोस्ताना संबंध बहाल किए। ऐसी परिस्थिति में क्या अदालत को इस तरह के समझौते पर अपनी मुहर लगा देनी चाहिए? उत्तर विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करता है जिन पर गंभीर चर्चा की आवश्यकता है। विधायकों ने स्पष्ट रूप से माना है कि वे अपराध जो संहिता की धारा 320 के

प्रावधानों के अंतर्गत आते हैं वे स्वीकार्यतः न केवल जघन्य अपराधों की श्रेणी में नहीं आते हैं बल्कि जो पक्षकारों के बीच में व्यक्तिगत भी होते हैं। इसलिए यह प्रावधान मानता है की जहां पक्षों के बीच समझौता होता है, अदालत को उक्त समझौते पर कार्यवाही करनी होती है और कार्यवाही को रद्द करना होता है। यद्यपि, ऐसे अपराधों के संबंध में भी जो संहिता की धारा 320 के चारों कोनों के अंतर्गत नहीं हैं, उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत पक्षकारों के बीच समझौते को स्वीकार करने और कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति दी गई है। मार्गदर्शक कारक यह है कि क्या न्याय के उद्देश्य शक्ति के ऐसे प्रयोग को उचित ठहराएंगे जहां दोनों अंतिम परिणाम दोषमुक्ति अथवा अभियोग की बर्खास्तगी हो सकते हैं। ऊपर दिए गए विभिन्न निर्णयों में इस बात को मान्यता दी गई है।

25. डिंपी गुजराल [डिंपी गुजराल बनाम केंद्र शासित प्रदेश, चंडीगढ़, (2013), 11 एस सी सी 497:(2012) 4 एस सी सी (सी आर आई)35] में इस न्यायालय की टिप्पणियां इस आशय की थीं कि उस मामले में कारित अपराध

समाज के खिलाफ अपराध नहीं थे। इसमें धारा 307 के तहत आरोप भी शामिल हैं। यद्यपि ऐसा बताने के अलावा इस पहलू पर कोई विस्तृत चर्चा नहीं हुई है। इसके अलावा यह अन्य कारक हैं जो समझौते को स्वीकार करने और अपराध का निपटारा करने के लिए न्यायालय के समक्ष प्रबल हुए, जैसा कि इस मामले पर चर्चा करते समय ऊपर बताया गया था। दूसरी ओर शंभू केवट (राजस्थान राज्य बनाम शंभू केवट , (2014) 4 एस सी सी 149: (2014) 4 एस सी सी (सी आर आई) 781 : (2013) 14 स्केल 235) कुछ अन्य पूर्व निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, इस न्यायालय की राय थी कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 307 के तहत अपराध करना बड़े पैमाने पर समाज के खिलाफ अपराध होगा, न कि केवल एक व्यक्ति के खिलाफ अपराध। हम पाते हैं कि अधिकांश मामलों में यही दृष्टिकोण अपनाया जाता है। पहले सिद्धांत पर भी, हम पाते हैं कि किसी व्यक्ति की जान लेने का प्रयास एक जघन्य अपराध और समाज के विरुद्ध माना जाना चाहिए।

26. इतना कहने के पश्चात, हम यह जोड़ना चाहेंगे कि यद्यपि यह एक गंभीर अपराध है क्योंकि

आरोपी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति /पीड़ित की जान लेने का प्रयास किया है, साथ ही न्यायालय उन कठोर वास्तविकताओं से भी अनजान नहीं रह सकती है कि कई बार जब भी पक्षकारों के बीच झगड़ा होता है जिसके कारण शारीरिक दुर्घटना होती है और किसी एक या दोनों पक्षों को चोट लगती है, तो इसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के तहत अपराध का रूप देने की भी प्रवृत्ति होती है। अतः केवल इसलिए कि प्राथमिकी /चार्ज शीट में भारतीय दंड संहिता की धारा 307 का प्रावधान शामिल है, अपने आप में, संहिता की धारा 482 के तहत याचिका को खारिज करने और पक्षकारों के बीच समझौते को स्वीकार करने से इंकार करने का आधार नहीं होगा। इसलिए, हमारी राय है कि ऐसे मामलों में समझौता किया जाना चाहिए या नहीं, इस पर निर्णय लेते समय, उच्च न्यायालय को, लगी चोट की प्रकृति, शरीर के हिस्से जहां चोटें लगी थीं (अर्थात क्या चोटें शरीर के महत्वपूर्ण /नाजुक हिस्सों पर लगी हैं) और इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति आदि के साथ जाना चाहिए। उस आधार पर यदि यह पाया जाता है कि धारा 307 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आरोप साबित होने की प्रबल संभावना है,

जहां एक बार उस आशय का साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है और चोटें साबित होती हैं, अदालत को पक्षकारों के बीच समझौते को स्वीकार नहीं करना चाहिए। दूसरी ओर उपरोक्त परिस्थितियों में प्रथम दृष्टया मूल्यांकन के आधार पर, यदि उच्च न्यायालय यह राय बनाता है कि धारा 307 भारतीय दंड संहिता के प्रावधान अनावश्यक रूप से आरोप पत्र में सम्मिलित किए गए थे, तो न्यायालय दोनों पक्षों के बीच समझौते के आधार पर अपराध के शमन की दलील स्वीकार कर सकता है।

(न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

6. यहां न्यायालय ने पाया की आवेदक को लगी चोटें, जैसा कि दिनांक 6.1.1991 की इंज्युरी रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है, शरीर पर बंदूक प्रवेश करने के चार और बाहर निकलने के दो घाव हैं। किसी भी घाव पर गोदना या झुलसना नहीं दिखता। निःसंदेह यह सच है, कि सभी बंदूक की चोटें अंगों पर लगी हैं, न कि धड़ पर या शिकायतकर्ता के शरीर के किसी महत्वपूर्ण हिस्से पर, लेकिन इससे यह नहीं पता चलता है, कि अपराध जघन्य नहीं था या हत्या करने का कोई इरादा नहीं था। यदि एक आदमी दूसरे को गोली मारता है, जिससे चार गोली के घाव हो जाते हैं, इस तथ्य के बावजूद कि चोटें उन अंगों पर लगी थीं, जहां संभवतः उनका कोई घातक परिणाम नहीं होता, यह बिल्कुल भी अपराध की

गंभीरता को कम नहीं करता है। यह तथ्य कि पीड़ित के शरीर के एक या अन्य महत्वपूर्ण हिस्सों पर चोटें नहीं आईं, इसका श्रेय केवल पीड़ित के अच्छे भाग्य या उस पर मेहरबान ईश्वरीय कृपा को दिया जा सकता है। इस प्रकार के अपराध में यह न्यायालय विद्वान न्यायाधीश से पूर्णतः सहमत है कि अपराध की संरचना में सहयोग करने वाले किसी भी कृत्य की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह न्यायालय भी इस प्रकृति के अपराध में अभियोजन को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा, जहां समाज की अंतरात्मा निश्चित रूप से सम्मिलित है। यह कोई ऐसा अपराध नहीं है, जो दो पक्षों के बीच एक प्रकार के विवाद के दायरे में हो, जिसके बारे में समाज को कोई ठोस चिंता न हो।

7. उपरोक्त के दृष्टिगत, उपरोक्त मामले की कार्यवाही को स्थगित करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया है।

8. हालांकि यह स्पष्ट किया जाता है, कि इस आदेश में की गई टिप्पणियों का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है, कि आवेदक लगाए गए अपराधों का दोषी है। इस आदेश में किसी भी टिप्पणी से अप्रभावित रहते हुए विचारण के समय इसका परीक्षण किया जाना है।

9. परिणाम में, यह आवेदन **विफल** हो जाता है, और परिणाम स्वरूप, **अस्वीकार** कर दिया जाता है।

10. इस आदेश को रजिस्ट्रार(अनुपालन) द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के माध्यम

से अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 22, इलाहाबाद को सूचित किया जाए।

(2023) 4 ILRA 729

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन 11043/2023

देवेन्द्र यादव और अन्य ... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री मोहित सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

एससी और एसटी अधिनियम, 1989-सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत आवेदन को परिवाद में परिवर्तित कर दिया गया-आरोपी को बुलाया गया-बिना विवेक का प्रयोग किए आक्षेप लगाया गया-एफआईआर के माध्यम से समानांतर कार्यवाही पहले से ही सीआरपीसी की धारा 202 (1) के तहत अनिवार्य जांच किए बिना आगे बढ़ रही है-आक्षेपित आदेश पारित किया गया-एससी/एसटी अधिनियम के तहत समन आदेश को चुनौती देते हुए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन दायर किया जा सकता है-आक्षेपित आदेश को निरस्त कर दिया गया।

आवेदन स्वीकृत। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. गुलाम रसूल खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1000/2018 निर्णय दिनांक 28.07.2022

2. रामावतार बनाम एम.पी. राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 966, सीआरएल अपील संख्या 1393/2011 निर्णय दिनांक 25.10.2021

3. बी वेंकटेश्वरन और अन्य बनाम बक्तवतचलम 2023 एससी ऑनलाइन एससी 14 पी

4. प्रियंका श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2015) 6 एससीसी 287

5. लल्लन कुमार सिंह एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य 2022 लाइव लॉ (एससी) 833

(माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी, द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहित सिंह, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा रिकार्ड में उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

चूंकि वर्तमान 482 प्रार्थना पत्र में, स्वीकृत तथ्यों के आधार पर, विशुद्ध रूप से विधि के प्रश्न पर निर्णय किया जाना है, अतः प्रति-शपथ-पत्र आमंत्रित किए बिना, वर्तमान 482 दं0प्र0सं0 प्रार्थना पत्र को प्रवेश स्तर पर ही विद्वान एजीए की सहायता और मदद से निर्णीत किया जा रहा है।

धारा 147, 148, 323, 354ख, 452, 504 भा0दं0सं0 और धारा 3(1)(X) एससी/एसटी अधिनियम, थाना बिल्हौर, जिला

कानपुर नगर के तहत समन के आक्षेपित आदेश के खिलाफ वर्तमान 482 दं0प्र0सं0 प्रार्थना पत्र की पोषणीयता का प्रश्न अतिरिक्त जनपद एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2/विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, कानपुर देहात की अदालत में लंबित है और उसी अदालत द्वारा पारित दिनांक 19.11.2022 का आक्षेपित आदेश है।

इस न्यायालय की असाधारण शक्तियों का प्रयोग आवेदकों द्वारा भा0दं0सं0 की उपरोक्त धाराओं के तहत अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 2/विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, कानपुर देहात की अदालत में लंबित एसएसटी संख्या 77/2019 (गीता देवी बनाम देवेंद्र यादव एवं अन्य) की संपूर्ण कार्यवाही को चुनौती देने के लिए किया गया है, जिसमें दिनांक 19.11.2022 का आक्षेपित समन आदेश भी शामिल है।

चूंकि मामला आपराधिक अपील संख्या 1000/2018, निर्णीत दिनांक 28.07.2022 गुलाम रसूल खान और अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले के आलोक में "वर्तमान 482 दं0प्र0सं0 प्रार्थना पत्र की पोषणीयता" से संबंधित है, जिसके तहत विद्वान एकल न्यायाधीश ने 03.08.2018 के आदेश के तहत मामले को बड़ी पीठ को संदर्भित किया है और निम्नलिखित प्रश्न तैयार किए हैं, जो नीचे उद्धृत हैं :-

(i) क्या इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने आपराधिक अपील (दोषपूर्ण) संख्या 523/2017 रोहित बनाम उ0प्र0 राज्य तथा अन्य के

संबंध में दिनांक 29.08.2017 के निर्णय द्वारा दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग करके अधिनियम, 1989 की धारा 14 ए के तहत अपील को जमानत प्रार्थना पत्र में परिवर्तित करने की सही अनुमति दी थी ?

(ii) क्या रोहित (पूर्वोक्त) के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, एक पीड़ित व्यक्ति के पास अधिनियम, 1989 की धारा 14 ए के प्रावधानों के तहत अपील करने के साथ-साथ दं0प्र0सं0 की धारा 439 के प्रावधानों के तहत जमानत प्रार्थना पत्र करने के दो उपाय उपलब्ध होंगे ?

(iii) क्या किसी व्यथित व्यक्ति, जिसने अधिनियम, 1989 की धारा 14 ए के प्रावधानों के तहत अपील के उपाय का लाभ नहीं उठाया है, को दं0प्र0सं0 की धारा 482 के प्रावधानों के तहत प्रार्थना पत्र करके उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की अनुमति दी जा सकती है ?

(iv) उस व्यथित व्यक्ति के लिए क्या उपाय उपलब्ध होगा जो अधिनियम, 1989 के प्रावधान के तहत अपील का उपाय प्राप्त करने में असफल रहा है और उक्त उपाय प्राप्त करने की समय अवधि भी समाप्त हो गई है?

विद्वान ए.जी.ए. ने न्यायालय का ध्यान धारा 14 ए (1) की ओर आकर्षित किया है, जो एससी/एसटी अधिनियम, 1989 में अपील के बारे में बताता है, जो इस प्रकार है:-

"14ए.अपील- (1) दं0प्र0सं0, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश से, जो अंतरिम आदेश नहीं है, तथ्यों और विधि दोनों के आधार पर उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी।"

उपर्युक्त विधिक प्रश्नों का उल्लेख करते हुए, प्रश्न संख्या 3 का उत्तर देते हुए, क्या किसी पीड़ित व्यक्ति को, जिसने अधिनियम, 1989 की धारा 14 ए (1) के प्रावधानों के तहत अपील के उपाय का लाभ उठाए बिना, दं0प्र0सं0 की धारा 482 के प्रावधानों के तहत प्रार्थना पत्र करके उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की अनुमति दी जा सकती है, न्यायोचित है?

पूर्ण पीठ ने अपने निर्णय के पैराग्राफ 13 और 14 में यह उल्लेख करते हुए उसके उत्तर को अस्वीकार कर दिया कि: -

13. उपरोक्त का उत्तर नकारात्मक था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसे निर्णयों या आदेशों के विरुद्ध, जिनके लिए 1989 अधिनियम की धारा 14 ए (1) के तहत उपाय प्रदान किया गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के तहत याचिका दायर करके इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करते हुए, धारा 397 दं0प्र0सं0 के तहत एक पुनरीक्षण या धारा 482 दं0प्र0सं0 के तहत एक प्रार्थना पत्र, पोषणीय नहीं होगा।

14. इसलिये, संख्या (III) का उत्तर नकारात्मक होगा, अर्थात् 1989

अधिनियम की धारा 14ए(1) के अंतर्गत अपील का उपाय रखने वाले व्यथित व्यक्ति को दं0प्र0सं0 की धारा 482 के अंतर्गत इस न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती ।

विद्वान ए.जी.ए. ने दृढ़तापूर्वक अपने तर्क प्रस्तुत किए हैं कि गुलाम रसूल खान (पूर्वोक्त) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा की गई उपर्युक्त टिप्पणियों के आलोक में वर्तमान धारा 482 दं0प्र0सं0 प्रार्थना पत्र स्वीकार्य नहीं है।

उपरोक्त प्रारंभिक आपत्ति का जवाब देते हुए, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहित सिंह ने यह उल्लेख करते हुए प्रस्तुतियों का खंडन किया कि 482 दं0प्र0सं0 के प्रार्थना पत्र की पोषणीयता के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला है, भले ही एससी / एसटी अधिनियम के प्रावधान मौजूद हों।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहित सिंह ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 966 में प्रतिवेदित रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया है, जो दिनांक 25.10.2021 को आपराधिक अपील संख्या 1393/2011 में निर्णीत किया गया था, जिसके तहत माननीय सर्वोच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस मुद्दे पर सबसे स्पष्ट शब्दों में निर्णय दिया था। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 9 और 16, जो नीचे उद्धृत किए गए हैं :-

"9. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को विस्तार से सुनने के बाद, हम इस राय पर पहुंचे हैं कि वर्तमान अपील में दो प्रश्न हमारे विचारणीय हैं। पहला, क्या संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का उपयोग किसी "गैर-शमनीय अपराध " से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए किया जा सकता है ? यदि हाँ, तो क्या कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति को एससी/एसटी अधिनियम जैसे विशेष कानूनों से उत्पन्न अपराधों तक बढ़ाया जा सकता है?

16. दूसरी ओर, जहां न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि विचाराधीन अपराध, हालांकि एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत आता है, लेकिन मुख्य रूप से निजी या सिविल प्रकृति का है, या जहां कथित अपराध पीड़ित की जाति के कारण नहीं किया गया है, या जहां विधिक कार्यवाही जारी रखना विधि की प्रॉसेस का दुरुपयोग होगा, वहां न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। इसी तरह, समझौता/समाधान के आधार पर रद्द करने की प्रार्थना पर विचार करते समय, यदि न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि अधिनियम के अंतर्निहित उद्देश्य का उल्लंघन नहीं होगा या कम नहीं होगा, भले ही विचाराधीन अपराध के लिए दंड न दिया जाए, तो केवल यह

तथ्य कि अपराध एक 'विशेष कानून' के अंतर्गत आता है, इस न्यायालय या उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 142 या दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत अपनी संबंधित शक्तियों का प्रयोग करने से नहीं रोकेगा ।"

चूंकि गुलाम रसूल खान का मामला वर्ष 2022*28.07.2022 में तय हुआ था, जबकि रामअवतार मामला 2021 में तय हुआ था, इस प्रकार, अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि 482 दं0प्र0सं0 प्रार्थना पत्र पोषणीय है, भले ही यह एससी/एसटी अधिनियम से संबंधित हो।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री सिंह ने प्रस्तुत किया कि गुलाम रसूल खान (पूर्वोक्त) के मामले का फैसला करते समय, इस न्यायालय की विद्वान खंडपीठ ने कभी भी रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य के फैसले में निर्धारित अनुपात पर भरोसा नहीं किया या यहां तक कि उस पर विचार भी नहीं किया और इस प्रकार इसे सुरक्षित रूप से प्रति इनक्यूरियम कहा जा सकता है।

आपराधिक अपील संख्या 1555/2022 में 05.01.2023 को निर्णीत, 2023 एससी ऑनलाइन एससी 14 में प्रतिवेदित बी. वेंकटेश्वरन एवं अन्य बनाम पी. बक्थावत्चलम के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय का हवाला दिया गया है। इतने शब्दों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि: -

"उपर्युक्त से, ऐसा लगता है कि पक्षों के बीच निजी सिविल विवाद आपराधिक कार्यवाही में परिवर्तित हो

गया है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(1)(v) और (va) के तहत अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही शुरू करना, इसलिए, विधि और न्यायालय की प्रॉसेस का दुरुपयोग करने के अलावा और कुछ नहीं है। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से, हम संतुष्ट हैं कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(1)(v) और (va) के तहत अपराधों के लिए कोई मामला नहीं बनता है, यहां तक कि प्रथम दृष्टया भी नहीं। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(1)(v) और (va) के किसी भी तत्व को नहीं बनाया गया है और/या संतुष्ट नहीं किया गया है। इसलिए, हम इस दृढ़ राय और दृष्टिकोण के हैं कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय को दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर देना चाहिए था। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित निर्णय और आदेश अस्थिर है और इसे रद्द किया जाना चाहिए और अलग रखा जाना चाहिए तथा अपीलकर्ताओं के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को रद्द

किया जाना चाहिए और अपास्त किया जाना चाहिए"

इस प्रकार, उपर्युक्त चर्चाओं से यह स्पष्ट है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से और बार-बार यह राय व्यक्त की है कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त प्रावधानों को विस्तृत करते हुए और उपरोक्त निर्णयों की सहायता लेते हुए, न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि समन आदेश के विरुद्ध 482 दं0प्र0सं0 के तहत प्रार्थना पत्र दायर किया जा सकता है।

अब मुख्य मुद्दे पर आते हैं जिसके तहत अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2/विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, कानपुर देहात द्वारा पारित आदेश दिनांक 08.05.2019 के माध्यम से दं0प्र0सं0 की धारा 156 (3) के तहत प्रार्थना पत्र एक शिकायत मामले में परिवर्तित हो गया।

विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम ने दिनांक 19.11.2022 के समन आदेश के तहत आवेदकों अर्थात् देवेंद्र यादव, बाबूलाल यादव, लालू यादव, लखन रैदास, नरेश, अमर सिंह, सोनू और अरविंद को धारा 147, 148, 323, 354 ख, 452 और 504 भा0दं0सं0 और धारा 3(1)(एक्स) एससी/एसटी अधिनियम के तहत अभियोजन का सामना करने के लिए बुलाया है।

मामले की शुरुआत विपक्षी संख्या 2 द्वारा दिनांक 27.09.2018 को 156(3) दं0प्र0सं0 प्रार्थना पत्र दाखिल करने से होती है, जो कि दिनांक 05.04.2018 को घटित हुई घटना के लिए है। उक्त प्रार्थना पत्र को विविध

वाद संख्या 443/12/2018 (गीता देवी बनाम देवेन्द्र यादव एवं अन्य) के रूप में पंजीकृत किया गया। 156(3) दं0प्र0सं0 प्रार्थना पत्र दाखिल करने के पश्चात संबंधित न्यायालय ने संबंधित पुलिस स्टेशन से रिपोर्ट मांगी, जिसके अनुसार संबंधित पुलिस स्टेशन ने विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसे प्रार्थना पत्र के साथ दिए गए शपथ पत्र के साथ संलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न किया गया है। उक्त रिपोर्ट से पता चलता है कि: -

"आवेदिका श्रीमती गीता द्वारा अपने प्रार्थना पत्र धारा 156(3) दं0प्र0सं0 में दिनांकित 27.09.2018 में अंकित घटना के संबंध में श्रीमती गंगाजली पत्नी राजाराम निवासी बावनझाला थाना बिल्हौर कानपुर नगर में मु.अ.स. 159/18 धारा 147, 452, 504, 380 आई.पी.सी. की एफ.आई.आर. रजिस्टर्ड कराई जा चुकी है। जो सभी सजातीय व्यक्तियों के विरुद्ध है। इसी अभियोग की घटना में आवेदिका श्रीमती गीता घायल हुई थी जिसका अभियोग पंजीकृत हो चुका है किन्तु आवेदिका श्रीमती गीता देवी ग्राम प्रधान देवेन्द्र यादव एवं उसी परिवार के बाबूलाल यादव व लालू यादव के विरुद्ध एस.सी./एस.टी. एक्ट का अभियोग लिखवाना चाहती है। और पूर्व में भी प्रयास कर चुकी है किन्तु सफल नहीं हुयी आवेदिका द्वारा अपने प्रार्थना पत्र में अंकित तथ्यों के संबंध में पूर्व में ही दिनांक 10.04 .18 को मु.अ.स. 159/18 धारा 147, 452, 504, 380

भा0दं0सं0 पंजीकृत हो चुका है। जिसमें आवेदिका श्रीमती गीता चश्मदीद साक्षी है।"

दिनांक 08.05.2019 के आदेश के तहत, विशेष न्यायाधीश ने दं0प्र0सं0 की धारा 156 (3) के तहत प्रार्थना पत्र को शिकायत का मामला माना है और दं0प्र0सं0 के अध्याय XV की प्रॉसेस का पालन करते हुए उक्त प्रार्थना पत्र को शिकायत मामले की तरह आगे बढ़ाया है। इसके अलावा 02.09.2019 को, विपक्षी संख्या 2 ने अपना बयान दर्ज किया और शिकायत के संस्करण का समर्थन किया, इसके बाद शिकायतकर्ता के गवाहों, अर्थात् बंदना और श्रीमती गंगाजली के बयान 10.10.2019 और 25.11.2019 को दर्ज किए गए।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान विचारण न्यायाधीश पर आरोप लगाया है कि उन्होंने दिनांक 19.11.2022 को पूर्व-नियोजित मन से आक्षेपित समन आदेश पारित किया है।

न्यायालय ने समन आदेश का अवलोकन किया जिसमें विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम ने बयानों का वर्णन किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया धारा 147, 148, 323, 354 ख, 452, 504 भा0दं0सं0 और धारा 3(1)(एक्स) एससी/एसटी अधिनियम के तहत मामला बनता है। अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि संबंधित न्यायालय की न्यायिक बुद्धि या न्यायिक संतुष्टि का कोई उपयोग नहीं किया गया है, जो कि आरोपी को समन करने के लिए अनिवार्य और पूर्वापेक्षा है जैसा कि 2022 लाइव लॉ (एससी) 833 में प्रतिवेदित लल्लन कुमार सिंह और

अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में पैराग्राफ 28 नीचे उद्धृत किया गया है:-

"28. प्रॉसेस जारी करने का आदेश एक खाली औपचारिकता नहीं है। मजिस्ट्रेट को इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि मामले में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है या नहीं। इस तरह की राय बनाने के बारे में आदेश में ही बताया जाना आवश्यक है। यदि इस निष्कर्ष पर पहुँचते समय कि अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है, कोई कारण नहीं दिया जाता है तो आदेश को रद्द किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदेश में विस्तृत कारण शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में सुनील भारती मित्तल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"51. दूसरी ओर, संहिता की धारा 204 प्रॉसेस के मुद्दे से संबंधित है, यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में, कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। यह धारा आपराधिक कार्यवाही शुरू करने से संबंधित है। यदि मजिस्ट्रेट 9 (2015) 4 एससीसी 609 किसी मामले का संज्ञान लेते हुए (यह शिकायत प्राप्त करने वाला मजिस्ट्रेट हो सकता है या जिसे धारा 192 के तहत इसे स्थानांतरित किया गया है), उसके सामने मौजूद सामग्रियों (यानी

शिकायत, शिकायतकर्ता और उसके गवाहों की परीक्षा, यदि मौजूद हैं, या जांच की रिपोर्ट, यदि कोई हो) पर विचार करने के बाद, सोचता है कि किसी अपराध के संबंध में कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला है, तो वह आरोपी के खिलाफ प्रॉसेस जारी करेगा।

52. प्रॉसेस जारी करने या न करने के बारे में व्यापक विवेक दिया गया है और इसका न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को केवल इसलिए अदालत में नहीं घसीटा जाना चाहिए क्योंकि शिकायत दर्ज की गई है। यदि प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो मजिस्ट्रेट को प्रॉसेस जारी करनी चाहिए और इसे केवल इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे लगता है कि इससे दोषसिद्धि होने की संभावना नहीं है।

53. हालांकि, धारा 204 में आने वाले शब्द "कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार" बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द ही हैं जो पर्याप्त रूप से सुझाव देते हैं कि उचित विचार-विमर्श के बाद ही कोई राय बनाई जानी चाहिए कि उक्त अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है और ऐसी राय बनाने के बारे में आदेश में ही बताया जाना चाहिए। यदि आदेश में कोई कारण नहीं दिया गया है, तो आदेश को रद्द किया जा सकता है, जबकि आदेश में विस्तृत कारण

शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा, यदि दिया गया कारण स्पष्ट रूप से गलत साबित होता है, तो आदेश विधि की दृष्टि से गलत होगा।"

इसके अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि अवर न्यायालय ने दिनांक 08.05.2021 को एक आदेश पारित किया है, जिसमें कहा गया है कि पुलिस ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है कि पुलिस स्टेशन में कोई एफआईआर दर्ज नहीं है। उपरोक्त अवलोकन संबंधित विशेष न्यायाधीश को सबसे अच्छी तरह से ज्ञात कारणों से पूरी तरह से झूठ का एक जाल है। उपरोक्त पुलिस रिपोर्ट जैसा कि पहले के पैराग्राफ में उल्लेख किया गया है, जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि श्रीमती गंगाजली पत्नी राजाराम द्वारा मामला अपराध संख्या 159/2018 के तहत धारा 147, 452, 504, 380 भा0दं0सं0 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई है। वर्तमान मामले में, विपक्षी संख्या 2 गीता को भी चोटें आईं, लेकिन वह एससी/एसटी अधिनियम के तहत आपराधिक मामला दर्ज करने के लिए अड़ी हुई थी, वह अदालती प्रॉसेस के साथ सभी चालें और नोटकी कर रही है और विद्वान विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम उसकी कॉल का समर्थन कर रहे हैं और इसलिए, वर्तमान कार्यवाही को सुरक्षित रूप से उन्हीं तथ्यों पर दूसरी शिकायत कहा जाएगा, हालांकि इसकी शिकायतकर्ता एक अलग महिला है।

उपरोक्त के अतिरिक्त, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अवर न्यायालय ने (2015) 6 एससीसी 287 में

प्रतिवेदित प्रियंका श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन नहीं किया है, जिसमें यह कहा गया है कि धारा 202 (1) दं0प्र0सं0 में परिकल्पित अनुसार कोई जांच नहीं की गई थी, जो इस प्रकार है: -

धारा 202(1) दं0प्र0सं0 - (1) कोई भी मजिस्ट्रेट, किसी अपराध की शिकायत प्राप्त होने पर, जिसका संज्ञान लेने के लिए वह अधिकृत है या जो धारा 192 के तहत उसे सौंपी गई है, यदि वह ठीक समझे तो अभियुक्त के खिलाफ आदेशिका जारी करना स्थगित कर सकता है और या तो स्वयं मामले की जांच कर सकता है या पुलिस अधिकारी या ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा जांच करने का निर्देश दे सकता है जिसे वह ठीक समझे, यह तय करने के लिए कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं: बशर्ते कि जांच के लिए ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया जाएगा, -

(ए) जहां मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत हो कि जिस अपराध के संबंध में शिकायत की गई है, उसका विचारण अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा किया जा सकता है; या

(बी) जहां शिकायत न्यायालय द्वारा नहीं की गई है, तब तक जब तक शिकायतकर्ता और उपस्थित साक्षियों (यदि कोई हों) की धारा 200 के अधीन शपथ पर जांच नहीं कर ली गई हो।"

वर्तमान मामले में, जहां प्रतिवादी पक्ष कानपुर नगर के निवासी हैं। न्यायालय को आश्चर्य है कि किन परिस्थितियों में, विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, कानपुर देहात ने धारा 202(1) दं0प्र0सं0 में अपेक्षित अनिवार्य जांच किए बिना ही समन आदेश पारित किया है। और इसलिए, समन आदेश उपरोक्त विधिक मुद्दों से काफी दूर है, जो विधि की नजर में पोषणीय नहीं हो सकता है।

न्यायालय को प्रियंका श्रीवास्तव (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों पर विचार करने का अवसर मिला है और वर्तमान विवाद के लिए उपयोगी प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं :-

"वर्तमान मामला धारा 156(3) दं0प्र0सं0 का सहारा लेने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर उदाहरण प्रस्तुत करता है, जैसे कि यह एक नियमित प्रक्रिया है। वर्तमान मामले में न्यायिक मजिस्ट्रेट ने धारा 156(3) दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रार्थना पत्र में लगाए गए आरोपों का वर्णन किया है और उसके बाद बिना किसी विवेक का प्रयोग किए प्रार्थना पत्र में उल्लिखित अपराधों के लिए एफआईआर दर्ज करने का आदेश पारित कर दिया है।

दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय मजिस्ट्रेट पर उचित रूप से लगाए गए दायित्व को कम नहीं किया जा सकता है। धारा 156(3) दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति न्यायिक दिमाग के प्रार्थना पत्र को

उचित ठहराती है। इसमें विधि की अदालत शामिल है। यह पुलिस नहीं है जो धारा 154 दं0प्र0सं0 के चरण में कदम उठा रही है। धारा 156(3) दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले मजिस्ट्रेट को लगाए गए आरोप और आरोप की प्रकृति के संबंध में सतर्क रहना होगा और उचित दिमाग के उपयोग के बिना निर्देश जारी नहीं करना चाहिए। उसे ध्यान में रखना होगा कि मामले को जांच के लिए भेजना न्याय के लिए अनुकूल होगा और फिर वह अपेक्षित आदेश पारित कर सकता है। धारा 156(3) दं0प्र0सं0 के तहत याचिका दायर करते समय धारा 154(1) और 154(3) दं0प्र0सं0 के तहत पहले से प्रार्थना पत्र होना चाहिए। प्रार्थना पत्र में दोनों पहलुओं को स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए और उस संबंध में आवश्यक दस्तावेज दायर किए जाने चाहिए। कोई भी वादी अपनी मर्जी से धारा 156(3) दं0प्र0सं0 के तहत मजिस्ट्रेट के अधिकार का इस्तेमाल नहीं कर सकता। एक सिद्धांतवादी और वास्तव में पीड़ित नागरिक जिसके हाथ साफ हों, उसे उक्त शक्ति का इस्तेमाल करने की पूरी आज़ादी होनी चाहिए। यह नागरिकों की रक्षा करता है, लेकिन जब विकृत वादी अपने साथी नागरिकों को परेशान करने के लिए इस रास्ते को अपनाते हैं, तो उन्हें रोकने और रोकने के प्रयास किए जाने चाहिए। वित्तीय

क्षेत्र, वैवाहिक विवाद/पारिवारिक विवाद, वाणिज्यिक अपराध, चिकित्सा लापरवाही के मामले, भ्रष्टाचार के मामले और आपराधिक मुकदमा शुरू करने में असामान्य देरी/आलस्य से संबंधित कई मामले दायर किए जा रहे हैं। नतीजतन, एक उचित मामले में, लगाए गए आरोपों की सच्चाई और सत्यता को मजिस्ट्रेट द्वारा सत्यापित किया जा सकता है, भले ही उनकी प्रकृति को ध्यान में रखा जाए।"

इस प्रकार परिस्थितियों की समग्रता और इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, मुझे अतिरिक्त जनपद एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 2/विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, कानपुर देहात द्वारा पारित दिनांक 19.11.2022 के आक्षेपित समन आदेश को रद्द करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। चूंकि एफआईआर के माध्यम से समानांतर कार्यवाही पहले से ही प्रक्रिया में है और वर्तमान विवाद और कुछ नहीं बल्कि आवेदकों को और अधिक गंभीर और कठोर आरोप लगाकर मजबूर करने का एक प्रयास है और इसलिए, इसे बरकरार नहीं रखा जा सकता है और वर्तमान प्रार्थना पत्र स्वीकृत की जाती है।

(2023) 4 ILRA 736

मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,
धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या
15253/2022

काजल

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य ...विपक्षीगण
अधिवक्ता आवेदक: श्री रोहित नंदन पांडे
अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482-आवेदक पर बलात्कार के मुख्य आरोपी की सहायता करने का आरोप है- आपराधिक साजिश-मुख्य आरोपी को बलात्कार करने का उचित अवसर प्रदान करना-महिला होने के नाते उसे आपराधिक साजिश से दोषमुक्त नहीं किया जाएगा-पीड़िता के बयान में उसकी भूमिका सीआरपीसी की धारा 161 और सीआरपीसी की धारा 164 के तहत विधिवत रूप से स्थापित है-आरोप पत्र दायर करने के लिए पर्याप्त सबूत भी हैं।

आवेदन निरस्त (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. बाबले बनाम छत्तीसगढ़ राज्य ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 2621
2. मुकेश बनाम एनसीटी ऑफ दिल्ली एवं अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161
3. मृत्युंजय विश्वास बनाम प्रणव @ कुट्टी विश्वास और अन्य एआईआर 2013 एससी 3334

4. यू.पी. राज्य बनाम मनोज कुमार पांडे एआईआर 2009, एससी 711
5. संतोष मुन्या बनाम कर्नाटक राज्य, 2010 5 एससीसी 445
6. प्रिया पटेल बनाम एम.पी. राज्य (2006) 6 एससीसी 263
7. आपराधिक अपील संख्या 64/2006 - सरला बनाम राज्य, आदेश दिनांक 06.02.2014

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

१. प्रार्थिनी की तरफ से विद्वान अधिवक्ता श्री रोहित नन्दन पाण्डेय तथा उत्तर प्रदेश राज्य की तरफ से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना एवं पत्रावली का अवलोकन किया।

२. यह प्रार्थना पत्र वाद संख्या 211 वर्ष 2017 अपराध संख्या 290/2017 अन्तर्गत धारा 376, 120-बी एवं 3/4 पाँक्सो अधिनियम थाना सिहानी गेट जनपद गाजियाबाद द्वारा विशेष न्यायाधीश (पाँक्सो अधिनियम) में प्रस्तुत आरोप पत्र दिनांकित 17.09.2017 तथा संज्ञान आदेश दिनांकित 06.10.2017 एवं विशेष न्यायाधीश पाक्सो अधिनियम, गाजियाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांकित 12.05.2022 को निरस्त करन हेतु प्रस्तुत किया गया है।

३. प्रार्थना पत्र में यह आधार लिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट विलम्बित एवं अस्पष्ट है जिसमें प्रार्थिनी नामित नहीं है। वह

पूर्णतया निर्दोष एवं झूठी फंसायी गयी है। घटना के सम्बन्ध में पीड़िता की आयु चिकित्सक ने 21 वर्ष होना पाया परन्तु विवेचक ने शैक्षिक प्रमाण पत्र के अनुसार 17 वर्ष 2 माह होना माना है। धारा 161 एवं धारा 164 दं०प्र०सं० के बयानों में भिन्नता है। विवेचना सरसरी तौर पर की गयी है। आरोप पत्र मनमाना, अवैध एवं विधितः पोषणीय नहीं है। आरोपित अपराध नहीं बनते हैं। संज्ञान लेते समय विधिक मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया गया है। संज्ञान आदेश अप्रकट एवं मौन है। प्रक्रिया का पालन किये बिना अजमानतीय अधिपत्र निर्गत किया गया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट दुर्भावनापूर्ण तथा दूरस्थ आशय से प्रपीडित करने तथा ब्लैकमेल करने के लिए दर्ज कराया गया है जिसकी जानकारी मुख्य

४ . संक्षेप में वाद के तथ्य यह हैं कि प्रार्थिनी मुकदमा अपराध संख्या 290/2017 थाना सिहानी गेट, जनपद गाजियाबाद के अपराध संख्या 376, 120-बी भा0दं0सं0 तथा ¼ एवं 16/17 पाक्सो अधिनियम का वाद जो सी0जे0एम0 गाजियाबाद के न्यायालय में लम्बित है, वाँछित है। प्रथम सूचना रिपोर्ट के तथ्य यह हैं कि वादी की पुत्री आयु लगभग 15 वर्ष अपनी बड़ी बहन के ननद के विवाह में सम्मिलित होने हेतु दिनांक 18.02.2017 ग्राम अटोर आई थी। बड़ी पुत्री की सास श्रीमती कृष्णा देवी पत्नी स्वर्गीय कृष्णपाल जो बड़ी पुत्री की सास है, बहाने से उसे ग्राम अटोर में रोक लिया तथा दिनांक 22.02.2017 को रात्रि में उसके पुत्री को जितेन्द्र ऊर्फ राघव निवासी अटोर के घर सोने के बहाने ले गई जहाँ रात्रि में उसकी पुत्री के साथ जितेन्द्र ऊर्फ राघव ने

दुष्कर्म किया है। जब वह अपनी पुत्री को लेने ग्राम अटोर आया तो उसकी पुत्री ने आपबीती बताई तो वह अपनी पुत्री को लेकर रिपोर्ट करने थाना आया है, रिपोर्ट लिखकर कानूनी कार्यवाही करें।

५. विवेचक द्वारा विवेचना की गई तथा पीड़िता वयस्का का धारा 161 एवं 164 दं0प्र0सं0 के अन्तर्गत बयान अंकित किया गया तथा उसका चिकित्सीय परीक्षण किया गया। चिकित्सीय परीक्षण आख्या के अनुसार उसकी आयु लगभग 21 वर्ष मानी गई। उसके लगभग सभी जोड़ फ्यूज पाये गए जिसके आधार पर पीड़िता को प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा वयस्क होना कहा गया। मछानन्द इंटर कॉलेज बुलन्दशहर की प्रधानाचार्य की आख्या दिनांक 04.03.2017 के अनुसार पीड़िता की जन्मतिथि 15.12.2000 अंकित है तथा घटना दिनांकित 22.02.2017 की है अतः पीड़िता को 18 वर्ष से कम आयु का होने के कारण विवेचक द्वारा विवेचनोपरान्त धारा 376/120-बी भा0दं0सं0 तथा धारा ३/४ पाक्सो अधिनियम के अन्तर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया।

६. प्रार्थिनी तथा श्रीमती कृष्णा देवी के विरुद्ध कार्यवाही दण्ड प्रकरण वाद संख्या 4438/2017 में पारित आदेश दिनांकित 28.03.2017 के अनुपालन में विवेचना पूर्ण होने तक उनके विरुद्ध दाण्डिक कार्यवाही स्थगित की गई। आरोप पत्र प्रस्तुत करने के उपरान्त उनके विरुद्ध भी समन जारी किया गया तथा अभियुक्त को कारागार से आहूत

कर धारा 309 दं0प्र0सं0 का आरोप विरचित करने के लिए आदेश पारित किया गया।

७. विपक्षीगण पर समन का तामीला पर्याप्त रहा परन्तु मात्र उत्तर प्रदेश राज्य की तरफ से प्रति शपथ पत्र दिनांक 15.07.2022 को प्रस्तुत किया गया जिसमें विपक्षी ने यह कथन किया कि दिनांक 06.10.2017 को इस मामले में संज्ञान लिया जा चुका है तथा समन आदेश पारित किया गया है, अतएव प्रार्थिनी को विचारण न्यायालय में उपस्थित होकर तर्क प्रस्तुत करना चाहिए एवं उपलब्ध उपचार प्राप्त करना चाहिए। यह प्रार्थना पत्र संधार्य नहीं है। पीड़िता ने अपने धारा 164 दं0प्र0सं0 के बयान में स्पष्ट रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित घटना का समर्थन किया है तथा यह कथन किया है कि विवेचनोपरान्त घटना के पूर्व मौसी की पुत्री काजल आई तथा उसे सिर दर्द का एक टेबलेट दी, जिसके लेने पर वह बेहोश हो गई तथा उसे चक्कर आने लगे और इसी बीच जितेन्द्र ने उसके साथ दुष्कर्म किया। पीड़िता ने अपने धारा 161 दं0प्र0सं0 के कथन में भी अभियोजन कथानक का समर्थन किया है। उक्त के अतिरिक्त विवेचक ने प्रार्थिनी के अपराध में संलिप्त होने सम्बन्धी अन्य विश्वसनीय साक्ष्य एकत्रित कर आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। विवेचक ने उचित एवं निष्पक्ष विवेचना किया है। आरोप पत्र प्रस्तुत हो चुका है। प्रार्थिनी अपना पक्ष आरोप विरचन करते समय रख सकती है। यह प्रार्थना पत्र गुणहीन है तथा गलत तथ्यों पर प्रस्तुत की गई है। अतः खारिज किया जाए।

८. प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता ने निम्न तर्क प्रस्तुत किया-

I. यह कि प्रार्थिनी प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित नहीं है।

II. यह कि प्रार्थिनी पारिवारिक सदस्य है।

III. यह कि धारा 120-ख भा०दं०सं० सम्बन्धी अवयव प्रथमतः धारा 164 दं०प्र०सं० के बयान में प्रकाश में आए हैं।

IV. यह कि चिकित्सीय परीक्षण आख्या के अनुसार पीड़िता की आयु लगभग 21 वर्ष है, अतः पाक्सो अधिनियम प्रयुक्त नहीं होता है क्योंकि घटना दिनांक 22.02.2017 की कही जाती है।

V. यह कि प्रथम सूचना रिपोर्ट 10 दिन विलम्ब से दर्ज कराई गयी है और

VI. यह कि प्रार्थिनी वर्तमान में 23 वर्ष की युवती है तथा उसका वर्ष 2021 में विवाह हो चुका है।

९. प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गए तर्कों के आधार पर क्रमवार इस याचिका का निस्तारण किया जाता है-

क- प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि प्रार्थिनी प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित नहीं है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पीड़िता के पिता द्वारा अंकित कराया गया था। अतः यदि उस समय उसने प्रार्थिनी के रोल के सम्बन्ध में संसूचित

न किया हो अथवा संसूचित किया हो परन्तु ध्यान न देने के कारण अथवा अन्यथा उसे प्रथम सूचना रिपोर्ट में अंकित न किया गया हो तो यह कोई आधार नहीं है कि प्रार्थिनी को अभियुक्त न माना जाए यदि विवेचनोपरान्त अपराध कारित करने में उसका रोल भी प्रथम दृष्टया स्थापित हो रहा हो।

प्रथम सूचना रिपोर्ट के सम्बन्ध में बबले विरुद्ध छत्तीसगढ़ राज्य ए०आई०आर० 2012 उच्चतम न्यायालय 2621 में यह अवधारित किया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट सारवान प्रकृति का साक्ष्य नहीं है तथा यह विश्वकोष नहीं है कि इसमें घटना से सम्बन्धित सभी तथ्य का समावेश किया जाए।

i. मुकेश बनाम दिल्ली राज्य एवं अन्य में ए०आई०आर० 2017 उच्चतम न्यायालय 2161 (तीन न्यायमूर्तिगण) तथा

ii. मृत्युंजय विश्वास विरुद्ध प्रणव ऊर्फ कुट्टी विश्वास एवं एक अन्य ए०आई०आर० 2013 उच्चतम न्यायालय 3334 में यह अवधारित किया जा चुका है कि यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियुक्त का नाम अंकित नहीं है तो यह अभियोजन के लिए घातक नहीं है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर प्रार्थिनी की तरफ से प्रस्तुत प्रथम तर्क अस्वीकार किया जाता है।

ख- प्रार्थिनी की तरफ से उसके विद्वान अधिवक्ता ने दूसरा तर्क यह प्रस्तुत

किया कि प्रार्थिनी भी पीड़िता के ही परिवार की सदस्य है। श्रीमती कृष्णा देवी पीड़िता के बहन की सास है तथा प्रार्थिनी काजल उसके मौसी की लड़की है तथा वह अभियुक्त जितेन्द्र ऊर्फ राघव की बहन है। काजल के पिता का नाम कृष्णपाल है तथा श्रीमती कृष्णा देवी स्वर्गीय कृष्णपाल की पत्नी है तथा अभियुक्त जितेन्द्र ऊर्फ राघव के पिता बिजेन्द्र हैं जिसके यहाँ सुलाने के लिए पीड़िता ले जाई गई थी।

ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया कि पारिवारिक सदस्य होने के कारण वादी अथवा पीड़िता प्रार्थिनी अथवा अन्य अभियुक्तों को झूठा फंसा रहे हों। अतएव यदि वादी पीड़िता एवं अभियुक्तगण एक ही परिवार के सदस्य हैं तो भी यह निष्कर्ष नहीं दिया जा सकता कि ऐसे में कथित अपराध कारित नहीं किया जा सकता, वैसे भी वादिनी एवं पीड़िता अभियुक्तगण के परिवार के सदस्य नहीं है वरन् रिश्तेदार हैं, रिश्तेदारी में गई हुई लड़कियों के साथ ऐसी घटना कारित करने की सूचना करने के समाचार मिलते रहते हैं।

ग- प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता ने दूसरा तर्क यह प्रस्तुत किया कि सर्वप्रथम पीड़िता के धारा 164 दं०प्र०सं० के बयान के उपरान्त धारा 120-बी भा०दं०सं० की वृद्धि की गई। इस सम्बन्ध में पत्रावली के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पीड़िता ने धारा 161 दं०प्र०सं० के बयान में भी यह कथन किया है कि जितेन्द्र ऊर्फ राघव(अभियुक्त) की बहन ने नौद की गोली खिला दी जिससे वह नौद में सो गई थी। यद्यपि धारा 161 दं०प्र०सं० के बयान में पीड़िता ने प्रार्थिनी काजल का नाम नहीं

लिया है परन्तु ऐसा नहीं है कि उसके सम्बन्ध में कथन नहीं किया हो तथा सोची-समझी साजिश के अन्तर्गत धारा 164 दं०प्र०सं० के कथन में सर्वप्रथम प्रार्थिनी का नाम लिया हो। अतः प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत यह तर्क भी खारिज किया जाता है।

घ- प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि पीड़िता के चिकित्सीय परीक्षण आख्या के अनुसार वह घटना के समय लगभग 21 वर्ष की थी। अतः पाक्सो अधिनियम के अन्तर्गत कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती जबकि पूर्व में उल्लिखित पत्रावली पर विद्यमान अभिलेख के अनुसार घटना के समय पीड़िता मछानन्द इंटर कॉलेज सरायघासी, बुलन्द शहर में कक्षा 10-ए की छात्रा थी तथा विद्यालय के अभिलेखों में उसकी जन्मतिथि 15.12.2000 अंकित है जिसके अनुसार घटना दिनांकित 22.02.2017 को उसकी आयु 18 वर्ष से कम थी। इस न्यायालय के मतानुसार किशोर न्याय अधिनियम, के नियम के अनुसार यदि विद्यालय के अभिलेखों में अंकित जन्मतिथि तथा चिकित्सीय परीक्षण के आधार पर निर्धारित जन्मतिथि में अन्तर है तो विद्यालय अभिलेखों में अंकित जन्मतिथि को चिकित्सीय परीक्षण के आधार पर निर्धारित आयु पर वरीयता प्राप्त होगी तथा विद्यालय में अभिलिखित जन्मतिथि ही मान्य होगी। यदि जन्मतिथि के सम्बन्ध में अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है तो अन्तिम विकल्प के रूप में चिकित्सीय परीक्षण आख्या के आधार पर किसी व्यक्ति की आयु निर्धारित की जा सकती है। अतः विद्यालय के अभिलेखों में

उल्लिखित जन्मतिथि के अनुसार पीड़िता घटना के समय अवयस्क थी। अतः विवेचक ने पाक्सो अधिनियम के अन्तर्गत भी आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। यह प्रश्न धारा 482 दं0प्र0सं0 के अन्तर्गत निश्चित एवं निर्णीत नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में यदि कोई तर्क प्रस्तुत करना हो तो विचारण न्यायालय में यह तर्क प्रस्तुत करने एवं प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने के लिए प्रार्थिनी स्वतंत्र है।

ड- प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता ने पंचम तर्क यह प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट 10 दिन के विलम्ब से अंकित कराई गई है। इस सम्बन्ध में पत्रावली के अवलोकन से ज्ञात होता है कि घटना दिनांक 22.02.2017 की है तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 01.03.2017 को अंकित किया गया है। यह व्यवहार में प्रायः देखा जाता है कि नौजवान उम्र की लड़कियों के सम्बन्ध में कारित किये गए लैंगिक अपराधों के सम्बन्ध में प्रायः सोच-विचार कर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई जाती है जबकि अन्य कोई विकल्प शेष न हो। प्रायः यह भी देखा जाता है कि धारा 376 भा०दं०सं० जैसे अपराधों में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के सम्बन्ध में सम्बन्धित पुलिस थाने द्वारा हीला-हवाली किया जाता है क्योंकि इससे उस थाने के प्रशासन व्यवस्था को कमजोर माना जाता है तथा पुलिस के उच्च अधिकारियों द्वारा थानाध्यक्ष एवं सम्बन्धित हलके क्षेत्र के उपनिरीक्षक सिपाहियों के विरुद्ध प्रशासनिक कार्यवाही भी की जाती है। अतः सम्बन्धित पुलिस भी सर्वप्रथम यह प्रयास करती है कि किसी प्रकार से ऐसी धाराओं में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज न हो।

प्रथम सूचना रिपोर्ट सर्वदा विलम्ब से दर्ज कराया जाना अभियोजन के लिए घातक नहीं होता न ही अभियोजन कार्यवाही को निरस्त करने का आधार हो सकता है। विशेषकर धारा 376 भा०दं०सं० के सम्बन्ध में विलम्ब से प्रथम सूचना रिपोर्ट का दर्ज किया जाना कदापि घातक नहीं होता जैसा कि **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मनोज कुमार पाण्डेय ए०आई०आर० 2009 उच्चतम न्यायालय 711 (तीन न्यायमूर्तिगण) तथा संतोष मूल्या विरुद्ध कर्नाटक राज्य, (2010) 5 एस०सी०सी० 445** में अवधारित किया गया है।

उपरोक्त आधारों पर प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त तर्क भी अस्वीकार किये जाते हैं।

च- प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वर्तमान में प्रार्थिनी 23 वर्षीया वर्ष 2021 में विवाहिता लड़की है इस न्यायालय के मतानुसार यह कोई आधार नहीं है कि यदि उसने कोई अपराध कारित किया है तो उसके विरुद्ध प्रस्तुत आरोप पत्र खण्डित कर दिया जाए। पीड़िता भी एक अविवाहित युवती है तथा प्रार्थिनी का तो विवाह भी हो गया है परन्तु पीड़िता के विवाह आदि में अत्यन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा तथा उसे सामाजिक तानों को भी सहना होगा। उसने अत्यन्त साहस दिखाकर अपने प्रति कारित अपराध के सम्बन्ध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने तथा अभियुक्तों को दण्डित कराने का प्रयास किया है। अतः प्रार्थिनी का युवती एवं विवाहिता होना धारा 482 दं०प्र०सं० के इस प्रार्थना पत्र को स्वीकार करने का कोई भी युक्तियुक्त आधार नहीं है।

१०. यह मान्य विधि सिद्धान्त है कि कोई महिला किसी महिला के बलात्कार की दोषी नहीं हो सकती। प्रस्तुत मामले में अभियुक्त जितेन्द्र ऊर्फ राघव धारा 376 भा०दं०सं० का मुख्य अपराधी है तथा श्रीमती कृष्णा देवी तथा प्रार्थिनी काजल को अभियुक्त जितेन्द्र ऊर्फ राघव द्वारा बलात्कार का अपराध कारित करने में सहायता देने, उसे सुकर बनाने तथा आपराधिक षड़यन्त्र कर रात्रि में सोने के बहाने अभियुक्त के घर ले जाकर सुलाने एवं अपराध की पृष्ठभूमि तैयार करने तथा अभियुक्त जितेन्द्र ऊर्फ राघव को सुअवसर प्रदान करने हेतु दोषी मानते हुए उन्हें मात्र धारा 120-ख भा०दं०सं० का अपराधी माना गया है। यद्यपि इस सम्बन्ध में प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत नहीं किया कि कोई प्रार्थिनी या कोई महिला धारा 376 का अपराध कारित करने के सम्बन्ध में धारा 120-ख भा०दं०सं० के अन्तर्गत दोषी हो सकती है अथवा नहीं परन्तु इस पर विचार किया जाना आवश्यक है। ज्ञात हो कि ऐसी परिस्थितियों में यदि श्रीमती कृष्णा देवी एवं प्रार्थिनी के स्थान पर पुरुष होते तो वह भी गैंगरेप के दोषी होते भले ही उन्होंने पीड़िता के साथ कोई यौनाचार न किये होते।

११. **प्रिया पटेल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2006) 6 एस०सी०सी० 263** के मामले में अवधारित किया गया है कि एक महिला भले ही बलात्कार की सुविधा प्रदान करती हो, वह गैंगरेप की अभियुक्ता नहीं हो सकती जैसा कि धारा 376(2)(1) भा०दं०सं० से स्पष्ट है कि कोई महिला बलात्कार की अभियुक्त नहीं हो सकती है। धारा 375/376

भा०दं०सं० से भी स्पष्ट है कि एक महिला का बलात्कार मात्र पुरुष द्वारा ही कारित किया जा सकता है। इस मामले में यह भी प्रश्न उठा कि क्या किसी महिला को बलात्कार कारित करने के लिए उत्प्रेरित करने का दोषी माना जा सकता है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस पर कोई मत व्यक्त करने के बजाय यह अवधारित किया कि यदि विधि में यह अनुमन्य है तथा तथ्यों के आधार पर ऐसी कार्यवाही की जा सकती हो तो विचारण न्यायालय को विधि अनुसार ऐसी दशा में कार्य करना चाहिए।

१२. दिल्ली उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने **दण्ड अपील संख्या 64/2006 सरला विरुद्ध राज्य में दिनांक 06.02.2014** के निर्णय में यह अवधारित किया है कि पीड़िता के बलात्कार के आरोप की सहयोगी महिला को धारा 120 भा०दं०सं० के अन्तर्गत दोषसिद्ध किया जा सकता है।

१३. प्रार्थिनी के विद्वान अधिवक्ता की तरफ से उक्त के अतिरिक्त अन्य कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किया गया है। उपरोक्त विवेचना के आधार पर इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि धारा 482 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत प्रस्तुत यह याचिका गुणहीन है तथा निरस्त किये जाने योग्य है।

आदेश

१४. यह याचिका प्रस्तुत अन्तर्गत धारा 482दं०प्र०सं० उपरोक्तानुसार खण्डित की जाती है।

4.इला मैसर्स परसादी लाल तुलसीराम कोल्ड आगरा रोड, बिसाना हाथरस
एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

999

(2023) 4 ILRA 740

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

16831/2022

मैसर्स परसादी लाल तुलसीराम कोल्ड आगरा
रोड, बिसाना, हाथरस एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री संजय कुमार दुबे

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा

311-कथित मीटर आवेदक संख्या 1 के

आधार से लिया गया-परीक्षण के लिए भेजा

गया-परीक्षक (निजी एजेंसी) से गवाह के रूप

में पूछताछ नहीं की गई-पीडब्लू-4 के बयान

के दौरान-उसने स्वीकार किया कि रिपोर्ट

प्राप्त नहीं हुई थी-लेकिन वादी की ओर से

अधिवक्ता ने तर्क दिया कि रिपोर्ट न्यायालय

में पेश की गई थी-मीटर का परीक्षक

आवश्यक गवाह है-साक्ष्य अभिलिखित करने

के लिए परीक्षक को बुलाने के लिए

सीआरपीसी की धारा 311 के तहत आवेदन

प्रस्तुत किया गया-अस्वीकृत-ऐसी रिपोर्ट को

ऐसा करना अभियोजन का कर्तव्य है -

सीआरपीसी की धारा 311 के तहत- निर्णय

की घोषणा से पहले किसी भी स्तर पर

आवेदन की अनुमति दी जाए-आक्षेपित आदेश
को अपास्त जाए।

आवेदन स्वीकृत (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

वी.एन. पाटिल बनाम निरंजन कुमार एवं
अन्य, (2021) 3 एससीसी 661

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा
प्रदत्त)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री
संजय कुमार दुबे और विपक्षी संख्या 2 के
विद्वान अधिवक्ता विद्वान अपर शासकीय
अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी, को सुना
और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. सीआर.पी.सी. की धारा 482 के
अन्तर्गत यह आवेदन अतिरिक्त सत्र
न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (विद्युत
अधिनियम), न्यायालय कक्ष संख्या 2,
हाथरस द्वारा 2006 के एसटी संख्या 109
(एचएस अग्रवाल बनाम मैसर्स परसादी लाल
और अन्य) धारा 135 विद्युत अधिनियम,
2003, में पारित आदेश दिनांक
26.04.2022 को रद्द करने के लिए दायर
किया गया है, पुलिस स्टेशन चंदपा, जिला
हाथरस के अन्तर्गत, जिसके द्वारा आरोपी
व्यक्तियों द्वारा दायर धारा 311
सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत आवेदन संख्या
218 (डी) को खारिज कर दिया गया था।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि विपक्षी संख्या 2 ने विद्युत अधिनियम की धारा 135 के अन्तर्गत शिकायत दर्ज की, जिसे 2006 के शिकायत मामले संख्या 109 (श्री एचएस अग्रवाल बनाम मेसर्स परसादी लाल और अन्य) के रूप में दर्ज किया गया। शिकायतकर्ता फर्म एवं उसके निदेशक द्वारा विद्युत मीटर से छेड़छाड़ कर विद्युत चोरी के संबंध में जिसमें औपचारिकताएं पूरी होने के बाद मुकदमा प्रारम्भ हुआ, अभियोजन साक्ष्य पूरा होने के बाद दिनांक 07.03.2013 को धारा 311 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत आरोपी व्यक्तियों का बयान दर्ज किया गया, प्रतिवादी साक्षी संख्या-1 का साक्ष्य, प्रतिवादी साक्षी संख्या-2 और प्रतिवादी साक्षी संख्या-3 को बचाव पक्ष में दर्ज किया गया और विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को उनकी जिरह के लिए अवसर प्रदान किया।

4. शिकायतकर्ता का मामला यह था कि आवेदक नंबर 1 के परिसर से लिया गया कथित मीटर मेसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद को भेजा गया था और वादी साक्षी संख्या -4, रमेश चंद्र के बयान के दौरान परीक्षक से गवाह के रूप में पूछताछ नहीं की गई थी, गवाह ने स्वीकार किया कि ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद की रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई है, लेकिन शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क में कहा कि मेसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद की रिपोर्ट न्यायालय में पेश की गई थी और मीटर के परीक्षक ने आवश्यक गवाह हैं और सच्चाई का पता लगाने के लिए न्यायालय में उससे पूछताछ की जानी चाहिए।

5. उपरोक्त आधार पर, धारा 311 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत पूर्वोक्त आवेदन रिपोर्ट के संबंध में अपने साक्ष्य दर्ज करने के लिए मेसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद को बुलाने के लिए दायर किया गया था, लेकिन विचारण न्यायालय ने विकृत निष्कर्षों को दर्ज करने वाले आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि यह है अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि वह उचित संदेह से परे अपना मामला स्थापित करे और वर्तमान मामले में, मुहर की रिपोर्ट प्राप्त हुई या नहीं, के संबंध में विवाद अभियोजन का मामला है। विद्युत मीटर से छेड़छाड़ कर विद्युत चोरी के संबंध में विवाद है और ऐसी परिस्थिति में मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए मेसर्स ड्यूक ओरनेक्स, हैदराबाद की गवाही आवश्यक हो जाती है। आदेश पूरी तरह से अवैध, मनमाना और विधि के प्रावधानों के विरुद्ध है और न्यायिक मस्तिष्क का उपयोग किए बिना पारित किया गया है, इसलिए लागू आदेश को रद्द कर दिया जाए।

6. मामले से संबंधित प्रासंगिक दस्तावेज विपक्षी संख्या 2 और 3 की ओर से दायर जवाबी शपथ पत्र के अनुलग्नक के रूप में दायर किए गए हैं, जिसमें कहा गया है कि मेसर्स परसादी लाल तुलसीराम कोल्ड स्टोरेज ने यूपी पावर से 11 केवी का विद्युत कनेक्शन लिया था। कॉरपोरेशन लिमिटेड की 18.11.2004 को पावर कॉरपोरेशन की टीम द्वारा अचानक जांच करने पर पाया गया कि कोल्ड स्टोरेज कार्य कर रहा था और संदेह होने पर क्यूबिकल मीटर की सभी सीलों को जांच के लिए मेसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद को

भेजा गया था। 20.11.2004 को. उक्त मीटर की रिपोर्ट प्राप्त करने पर ज्ञात हुआ कि विपक्षी द्वारा रिमोट के माध्यम से मीटर की रीडिंग कम करायी गयी है तथा भुगतान हेतु बिल दिनांक 27.09.2005 को 56,79,572/- रूपये का भेजा गया है। आवेदकों को बुलाया गया, विचारण प्रारम्भ हुआ, सीआर.पी.सी. की धारा 311 के अन्तर्गत आरोपी व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए और आवेदकों ने बचाव में तीन गवाहों की परीक्षण की। धारा 313 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत बयान दर्ज करने के छह साल के लंबे अंतराल के बाद, और विचारण के समापन के करीब, आवेदकों ने 27.04.2019 को धारा 311 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत एक आवेदन दायर किया। यह आवेदन केवल विचारण में देरी करने के लिए 13.03.2013 को बचाव साक्ष्य समाप्त होने के बाद दायर किया गया था। आवेदन को विचारण न्यायालय ने 26.04.2022 को खारिज कर दिया था जिसमें कोई भी अवैधता नहीं है। अतः आवेदन विचारणीय नहीं है और रद्द किये जाने योग्य है।

7. आक्षेपित शिकायत के पैरा-6 के अवलोकन से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि कार्यकारी अभियंता, हाथरस ने कथित छेड़छाड़ वाले सीलबंद मीटर को जांच के लिए मैसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद को भेजा था और उचित जांच के बाद, मैसर्स एस ड्यूक ओरनेक्स हैदराबाद ने दिनांक 20.11.2004 को पत्र क्रमांक 2320 द्वारा रिपोर्ट भेजी जिसमें पत्र के माध्यम से यह भी स्पष्ट किया गया है कि फर्म द्वारा उक्त मीटर में सब-सर्किट

स्थापित कर तथा रिमोट के माध्यम से मीटर को ऊपर-नीचे चलाकर बिजली चोरी की गई है। वादी साक्षी संख्या-4, रमेश चंद्र ने बताया कि उन्होंने मैसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद की रिपोर्ट पढ़ी है और यह शिकायत का आधार है।

8. इस न्यायालय को यह ज्ञात नहीं है कि मैसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद एक सरकारी प्रयोगशाला है या निजी, हालाँकि, यदि कोई रिपोर्ट धारा 292 के अन्तर्गत या धारा 293 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत प्राप्त की गई है, तो ऐसी रिपोर्ट, सार्वजनिक दस्तावेज़ होने के नाते, साक्ष्य में स्वीकार्य होगा और स्वचालित रूप से स्वीकार किया जाएगा और बचाव पक्ष के अनुरोध को छोड़कर शिकायतकर्ता की ओर से उस वैज्ञानिक की जांच करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी जिसने सामग्री की जांच की और रिपोर्ट तैयार की, लेकिन यदि कोई परीक्षा रिपोर्ट प्राप्त की गई है किसी भी निजी एजेंसी के लिए ऐसी रिपोर्ट को एक निजी दस्तावेज़ माना जाएगा।

9. किसी निजी प्रयोगशाला की रिपोर्ट के मामले में, यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 75 के अनुसार एक निजी दस्तावेज़ होगा और उस स्थिति में, उस वैज्ञानिक की जांच की आवश्यकता होगी जिसने विषय-वस्तु की जांच की और प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

10. उपरोक्त चर्चा के अनुसार, इस न्यायालय का मानना है कि चूंकि रिपोर्ट एक निजी एजेंसी से प्राप्त की गई थी। मैसर्स ड्यूक

ओरनेक्स, हैदराबाद, इसलिए अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य था कि वह उचित समय पर ऐसी रिपोर्ट को साबित करे।

11. आक्षेपित आदेश के अवलोकन से, यह स्पष्ट नहीं होता है कि मेसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद की रिपोर्ट अवर न्यायालय के रिकॉर्ड पर है या नहीं। चूंकि कथित रिपोर्ट संबंधित आपराधिक शिकायत का आधार है, इसलिए यह विद्वान विचारण न्यायालय का कर्तव्य था कि वह अभियोजन पक्ष को इसे प्रस्तुत करने का आदेश दे, क्योंकि इसके अभाव में, आवेदकों पर मुकदमा चलाने के लिए कोई प्रथम दृष्टया साक्ष्य नहीं था। आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले, निचली न्यायालय का यह कर्तव्य था कि वह यह सुनिश्चित करे कि एम/एस ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद की रिपोर्ट रिकॉर्ड पर है या नहीं, लेकिन उसने केवल वादी साक्षी संख्या-4, रमेश चंद्र के साक्ष्य पर अपना निष्कर्ष आधारित किया। गहराई से और ठीक से जांच किए बिना और यह निष्कर्ष निकाला कि सबूत का भार शिकायतकर्ता पर है और आवेदकों द्वारा दिए गए आवेदन को खारिज कर दिया।

12. इस मामले में, यदि बचाव साक्ष्य 13.03.2013 को समाप्त कर दिया गया था, तो संबंधित शिकायत पर पहले निर्णय क्यों नहीं लिया जा सका, यह भी चिंता का विषय है।

13. सीआर.पी.सी. की धारा 311 को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा जो इस प्रकार है:-

“311. महत्वपूर्ण गवाह को बुलाने या उपस्थित व्यक्ति की जांच करने की शक्ति। कोई भी न्यायालय, इस संहिता के अन्तर्गत किसी भी जांच, मुकदमे या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में, किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकता है, या उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति की जांच कर सकता है, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो, या पहले से ही जांच की गई किसी भी व्यक्ति को वापस बुला सकता है और दोबारा जांच कर सकता है; और न्यायालय ऐसे किसी भी व्यक्ति को बुलाएगा और उसकी जांच करेगा या वापस बुलाएगा और दोबारा जांच करेगा यदि उसका साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।”

14. सीआर.पी.सी. की धारा 311 के अन्तर्गत, न्याय के उद्देश्य और मामले के उचित निर्णय के लिए, न्यायालय निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी स्तर पर आवेदन पर विचार कर सकता है और अनुमति दे सकता है। धारा 311 सीआर.पी.सी. का दूसरा भाग न्यायालय के लिए अनिवार्य और बाध्यकारी है। इसलिए, यदि मेसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद की रिपोर्ट रिकॉर्ड पर नहीं है, तो संबंधित विचारण न्यायालय का यह भी कर्तव्य था कि वह अभियोजन पक्ष को इसे दाखिल करने का निर्देश दे, क्योंकि एक आपराधिक मामले में एक न्यायाधीश मूक दर्शक या रेफरी नहीं हो सकता है और उसे मुकदमे के दौरान सक्रिय

4.इला मैसर्स परसादी लाल तुलसीराम कोल्ड आगरा रोड, बिसाना हाथरस

एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

1003

भूमिका निभानी होगी। उसे मामले के उचित, पूर्ण और अंतिम निर्णय के लिए न्यायालय को सक्षम बनाने के लिए दोनों पक्षों में से किसी एक को दस्तावेज़ या मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करने का आदेश देना चाहिए। केवल यह कहना कि मामले को उचित संदेह से परे साबित करना अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है, विचारण न्यायालय के लिए लोप करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि विचारण न्यायाधीश का विचार ऐसा है, तो यह प्रश्न उठता है कि संबंधित मीटर की सील के साथ छेड़छाड़ के संबंध में रिपोर्ट और साक्ष्य के अभाव में इस आपराधिक शिकायत को संस्थित होने के दिनांक पर खारिज क्यों नहीं किया गया।

15. वीएन पाटिल बनाम निरंजन कुमार और अन्य, (2021) 3 एससीसी 661 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 311 सीआर.पी.सी. के संबंध में सिद्धांत रखे हैं जो इस प्रकार हैं:

"14. सीआर.पी.सी. की धारा 311 का अंतर्निहित उद्देश्य यह है कि मूल्यवान साक्ष्य को रिकॉर्ड पर लाने में किसी भी पक्ष की गलती के कारण या दोनों ओर से जांचे गए गवाहों के बयानों में अस्पष्टता छोड़ने के कारण न्याय में विफलता नहीं हो सकती है। निर्धारक कारक है क्या यह मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक है। जो महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति होती है वह है 'इस संहिता के अन्तर्गत किसी भी जांच या परीक्षण या अन्य कार्यवाही

के किसी भी चरण में"। हालांकि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि विवेकाधीन शक्ति प्रदत्त है सीआर.पी.सी. की धारा 311 के अन्तर्गत विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए, जैसा कि हमेशा कहा जाता है कि 'जितनी अधिक शक्ति होगी, विवेकपूर्ण विवेक का प्रयोग करते समय सावधानी की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी"।

15. धारा 311 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत शक्ति के प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा विजय कुमार बनाम यूपी राज्य, (2011) 8 एससीसी 136; (2011) 3 एससीसी (सीआरआई) 371; (2012) में अच्छी तरह से तय किया गया है।) 1 एससीसी (एल एंड एस) 240 : (एससीसी पृष्ठ 141, पैरा 17)

"17. हालांकि धारा 311 न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान करती है और इसे यथासंभव व्यापक शब्दों में व्यक्त किया जाता है, उक्त धारा के अन्तर्गत विवेकाधीन शक्ति का उपयोग केवल न्याय के उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग संहिता के प्रावधानों के साथ लगातार किया जाना चाहिए और आपराधिक कानून के सिद्धांत।

धारा 311 के अन्तर्गत प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा बताए गए कारणों के आधार पर न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए, न कि मनमाने ढंग से या मनमौजी ढंग से। श्रीमती रुचि सक्सेना की न्यायालय के गवाह के रूप में जांच करने के लिए विद्वान विशेष न्यायाधीश को निर्देश देने से पहले, उच्च न्यायालय विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा बताए गए कारणों की जांच नहीं की गई कि न्यायालय के गवाह के रूप में उसकी जांच करना क्यों आवश्यक नहीं था और बिना कोई कारण बताए विवादित निर्देश दे दिया।”

16. इस सिद्धांत को मन्नान शेख बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2014) 13 एससीसी 59: (2014) 5 एससीसी (सीआरआई) 547 और उसके बाद रतनलाल बनाम प्रहलाद जाट, (2017) 9 एससीसी 340: में दोहराया गया है। 2017) 3 एससीसी (सीआरआई) 729 और स्वपन कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (सीआरआई) 839। स्वपन कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (सीआरआई) 839 के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं: स्वपन कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14

एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (क्रि) 839, एससीसी पी. 331, पैरा 10-11)

“10. इस धारा का पहला भाग, जो अनुज्ञेय है, आपराधिक न्यायालय को पूरी तरह से विवेकाधीन अधिकार देता है और इसे संहिता के अन्तर्गत जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में तीन तरीकों में से एक में कार्य करने में सक्षम बनाता है, अर्थात्, (i) किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने के लिए; या (ii) उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति की जांच करने के लिए, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो; या (iii) पहले से ही जांच किए गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाने और फिर से जांच करने के लिए। दूसरा भाग, जो अनिवार्य है, लगाता है न्यायालय पर दायित्व है कि (i) उसे बुलाए और जांच करे, या (ii) ऐसे किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाए और दोबारा जांच करे यदि उसका साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

11. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि धारा 311 के अन्तर्गत प्रदत्त शक्ति का

उपयोग न्यायालय द्वारा केवल न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए। शक्ति का प्रयोग केवल मजबूत और वैध कारणों के लिए किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग बहुत सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। इस धारा के अन्तर्गत न्यायालय को न्याय के हित में आवश्यक, दोबारा जांच या आगे की जांच के लिए गवाहों को वापस बुलाने की भी शक्ति है, लेकिन इसका प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद किया जाना चाहिए। इस प्रावधान के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा यदि न्यायालय का मानना है कि आवेदन कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के रूप में दायर किया गया है।”

17. प्रत्येक न्यायालय का उद्देश्य सत्य की खोज करना है। सीआर.पी.सी. की धारा 311 ऐसे कई प्रावधानों में से एक है जो विधि द्वारा स्वीकृत प्रक्रिया द्वारा सत्यता का पता लगाने के प्रयास में न्यायालय के उपकरणों को मजबूती प्रदत्त करती है। साथ ही, सीआर.पी.सी. की धारा 311

के अन्तर्गत निहित विवेकाधीन शक्ति का उपयोग मजबूत और वैध कारणों से और न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।”

16. उपरोक्त मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपील की अनुमति दी गई थी और उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया था और गवाहों को बुलाने और दस्तावेज़ के उत्पादन के संबंध में विचारण न्यायालय के आदेश को बहाल कर दिया गया था।

17. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का मानना है कि विवादित आदेश विधि के अनुसार नहीं है और यह विचारण न्यायालय द्वारा कर्तव्य से बचने के अलावा और कुछ नहीं है, इसलिए आवेदन स्वीकार किए जाने योग्य है।

18. धारा 482 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन की अनुमति दी जाती है और विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 26.04.2022 के आदेश को रद्द कर दिया जाता है।

19. विचारण न्यायाधीश को पहले यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि विवादित मीटर की सील से छेड़छाड़ के संबंध में मैसर्स ड्यूक ऑर्नेक्स, हैदराबाद की कथित रिपोर्ट अभिलेख में है या नहीं और यदि यह अभिलेख में है तो क्या यह उचित समय में

साबित हो गई है। शिकायतकर्ता द्वारा विधि का पालन किया गया है या नहीं और यदि यह अभिलेख पर है, तो विद्वान विचारण न्यायालय संबंधित वैज्ञानिक को बुलाने का अवसर प्रदान करेगा जिसके द्वारा कथित रिपोर्ट तैयार की गई थी। ऐसी रिपोर्ट के अभाव में, विचारण न्यायालय यह भी सोचेगा और कार्य करेगा कि क्या शिकायत के आधार के अभाव में क्या वर्तमान आपराधिक शिकायत शुरू की जा सकती है, आवेदकों को सम्मन और आरोप लगाया जा सकता है और उचित आदेश/ निर्णय विधि के अनुसार पारित किया जाएगा।

(2023) 4 ILRA 745

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी

(ठाकुर),

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

20368/2017

डॉ. मो. इकबाल गाजी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अवनीश कुमार

श्रीवास्तव, श्री अनूप त्रिवेदी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री ब्रिजेश

सहाय, श्री योगेश कुमार श्रीवास्तव, श्री भव्य

सहाय

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा

482-आवेदक ने विपक्षी को किशोर घोषित

करने के आदेश को रद्द करने की मांग की-

वाद में सभी आरोपियों को मृत्युदंड दिया गया- अपील-आदेश को आजीवन कारावास में संशोधित किया गया- एक जनहित याचिका ऐसे कैदियों की रिहाई के लिए दायर की गई, जिनकी उम्र घटना की तारीख को 18 वर्ष से कम रही होगी- उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश ऐसे कैदियों को कानूनी सहायता प्रदान करते हैं-विपक्षी पक्ष ने आवेदन किया- मेडिकल बोर्ड द्वारा आयु निर्धारित की गई- विपक्षी पक्ष को किशोर घोषित किया गया- अपील के उपचार के लिए आवेदन धारा 482 के तहत गैर-धारणीय नहीं होगा-आक्षेपित आदेश से प्रतीत होता है कि वादी को न तो नोटिस दिया गया था-सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया-आदेश निरस्त कर दिया गया।

उद्धृत वाद सूची:

1. प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2016) 16 एससीसी 30
2. धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2009) 2 एसएससी 370

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी

(ठाकुर), द्वारा प्रदत्त)

आवेदक के वकील श्री अनूप त्रिवेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता जिन्हें श्री अवनीश कुमार श्रीवास्तव द्वारा सहायता की गई थी और प्रत्यर्थी संख्या 2 के वकील श्री बृजेश सहाय, वरिष्ठ अधिवक्ता जिन्हें श्री भव्य सहाय द्वारा सहायता की गई, को सुना।

द०प्र०स० की धारा 482 के तहत इस आवेदन को पेश करके अपीलकर्ता इस अदालत के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग करके किशोर न्याय बोर्ड, आगरा द्वारा 2017 के आवेदन संख्या 109 (2003 के अपराध संख्या 131 से उत्पन्न) में धारा 147, 148, 149, 307, 302 भ०द०वि०, पुलिस स्टेशन कोतवाली जिला मेरठ, के तहत पारित आदेश को रद्द करने के लिए इस अदालत के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग करना चाहता है जिसके द्वारा किशोर न्याय बोर्ड, आगरा ने दोषी/ओपी संख्या 2 को किशोर घोषित किया।

वर्ष 2003 के केस सत्र विचरण संख्या 668, 669 और 671, 2003 के केस क्राइम संख्या 131 और 2003 के 134 के तहत क्रमशः धारा 147, 148, 149, 307, 302 भ० द० वि० और 25/27 आर्म्स एक्ट के तहत विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 04.08.2007 के फैसले के तहत सभी चार आरोपियों को दोषी पाया गया था। मामले को मौत की सजा में तय किया गया था। 2007 के आपराधिक संदर्भ संख्या 21, राज्य बनाम खालिद और अन्य, इस अदालत में मौत की सजा की पुष्टि करने के लिए किए गए थे। आरोपी व्यक्तियों ने इस अदालत के समक्ष आपराधिक अपील संख्या 5169 वर्ष 2007 खालिद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य भी दायर की। इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा संदर्भ और आपराधिक अपील दोनों पर एक साथ सुनवाई की गई थी। संदर्भ को खारिज कर दिया गया था और दिनांक 05-09-2008 के निर्णय और आदेश द्वारा अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी। मौत की सजा को रद्द कर दिया गया था और इसे आजीवन कारावास

में बदल दिया गया था यानी इस प्रावधान के साथ पूरे जीवन के लिए कारावास अर्थात् आरोपी व्यक्ति सजा की छूट के लिए विचार किए जाने के हकदार नहीं होंगे, जब तक कि वे 20 साल के कारावास की वास्तविक अवधि पूरी नहीं कर लेते हैं, जिसमें उनके द्वारा पहले से ही बिताई गई अवधि भी शामिल है। भ० द० वि० की धारा 302/149 के तहत अपीलकर्ताओं को दिए गए जुर्माने के साथ-साथ भ० द० वि० की धारा 307/149 और 148 के तहत उन्हें दी गई कारावास और जुर्माने की सजा और आरोपी अपीलकर्ताओं ताहिर और मोइनुद्दीन की दोषसिद्धि और धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत उन्हें दी गई सजा को बरकरार रखा गया। कारावास की सभी सजाएं साथ-साथ चलनी थीं। इसके बाद दोषी/प्रत्यर्थी संख्या 2 को अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों के साथ सजा काटने के लिए सेंट्रल जेल, आगरा में स्थानांतरित कर दिया गया।

एक वकील और मानवाधिकार कार्यकर्ता सिस्टर शीबा जोस ने एक जनहित याचिका संख्या 855 वर्ष 2012 (सिस्टर शीबा जोस बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) इस अदालत के समक्ष उन कैदियों की रिहाई के लिए दायर की, जिनकी उम्र अपराध की तारीख को 18 वर्ष से कम हो सकती है और उन्हें विभिन्न जिला या केंद्रीय कारागार में हिरासत में रखा गया था। आगरा सेंट्रल जेल के लिए इस तरह की राहत देने के लिए 18 कैदियों की सूची बनाई गई थी। इस रिट याचिका पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दिनांक 24.05.2012 के आदेश के तहत निर्णय लिया गया था और जिला न्यायाधीशों, जो उनके विधिक सेवा प्राधिकरणों के अध्यक्ष भी थे, को

यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देश जारी किए गए थे कि उन कैदियों को कानूनी सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से कुशल वकीलों को नियुक्त किया गया था, जो निजी वकीलों को नियुक्त करने में असमर्थ थे और जिनका उल्लेख राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत सूची में किया गया था। कि उन सभी लोगों की एक सूची प्रदान करें जो निजी वकीलों को नियुक्त करने में असमर्थ थे और जिनका उल्लेख राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत सूची में किया गया था और अपराध होने की तारीख को 18 वर्ष से कम आयु का बताया गया था। वर्तमान आवेदक ने 25.02.2017 को (जेल अधीक्षक, केंद्रीय जेल, आगरा के माध्यम से) सचिव, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के समक्ष कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए आवेदन किया। उसके आवेदन पर, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण ने उसे कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए श्री पाल सिंह, वकील नियुक्त किया और उसके बाद, आवेदक की ओर से, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा के समक्ष 06.04.2017 को एक आवेदन दायर किया गया, जिसमें दावा किया गया कि वह घटना के समय किशोर था। वह साक्षर नहीं था और उसकी उम्र के बारे में कोई दस्तावेजी सबूत नहीं था, इसलिए उसकी उम्र एक मेडिकल बोर्ड का गठन करके निर्धारित की जा सकती है। उसका मेडिकल बोर्ड द्वारा किया गया था और मेडिकल बोर्ड की दिनांक 17.05.2017 की रिपोर्ट के आधार पर प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा ने दिनांक 19.05.2017 के आदेश के तहत दोषी /प्रत्यर्थी संख्या 2 को घटना की तारीख पर किशोर घोषित कर

दिया। दिनांक 19.05.2017 का यह आदेश वर्तमान कार्यवाही का विषय है।

एक सह-अभियुक्त के साथ प्रत्यर्थी पक्ष संख्या 2 ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 155 वर्ष 2022 शीर्ष अदालत के समक्ष दायर की, जिसे दिनांक 06.09.2022 के आदेश के माध्यम से निपटा दिया गया, जिसमें इस अदालत को वर्तमान अभियुक्तों के खिलाफ आपराधिक दंड संहिता के तहत आवेदन धारा 482 द०प्र०स० संख्या 20368 वर्ष 2017 का निपटारा तेजी से और छह महीने से अधिक नहीं, करने का निर्देश दिया गया।

शीर्ष अदालत के इन निर्देशों के बाद, सह-आरोपी/दोषी द्वारा पहली बार दायर आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2913 वर्ष 2019 के साथ दोषी - प्रत्यर्थी संख्या 2 के खिलाफ आवेदन यू/एस 482 संख्या 20368 वर्ष 2017 को 22.03.2023 को इस अदालत के समक्ष रखा गया था। इस तारीख को, द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन में आवेदक के वकील ने समय मांगा ताकि वह संशोधनकर्ता के वकील को सूचित कर सके और तदनुसार तारीख 28.03.2023 तय की गई और 28.03.2023 को वर्तमान आवेदन यू/एस 482 संख्या 20368 वर्ष 2017 में दलीलें सुनी गईं।

दिनांक 19.05.2017 के आक्षेपित आदेश को आवेदक के वकील द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि अपराध संख्या 131 वर्ष 2003 में निर्णय 04.08.2007 को जिला न्यायालय, मेरठ द्वारा पारित किया गया था और केवल उसमें दी गई सजा से गुजरने के लिए दोषी - विपरीत पक्ष संख्या 2

सेंट्रल जेल, आगरा में बंद था। प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा के पास किशोर की आयु निर्धारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। दिनांक 24.05.2012 के आदेश के तहत इस न्यायालय की खंडपीठ ने आपराधिक रिट-जनहित याचिका संख्या 855 वर्ष 2012 में किशोर न्याय बोर्ड को अभियोजन पक्ष और शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद संबंधित व्यक्ति की आयु निर्धारित करने का निर्देश दिया, लेकिन आवेदक को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया। उसे किशोर न्याय बोर्ड, आगरा द्वारा कोई नोटिस नहीं दिया गया था, इसलिए वह उसे किशोर घोषित करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 के आवेदन का विरोध नहीं कर सकता था। वास्तव में, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने बोर्ड के सामने गलत तथ्य रखे कि वह अनपढ़ था, जबकि 16.05.2006 को द०प्र०स० की धारा 313 के तहत अपने बयान पर उसने हस्ताक्षर किए थे, यह तथ्य अनपढ़ होने के उसके दावे को झूठा साबित करता है। इसके अलावा, यह तर्क दिया जाता है कि 16.05.2006 को द०प्र०स० की धारा 313 के तहत अपने बयान में विपरीत पक्ष संख्या 2 ने अपनी उम्र 21 वर्ष बताई है। इस प्रकार, वर्ष 2003 में घटना की तारीख पर उसे 18 वर्ष की आयु का कहा जा सकता है। वर्ष 2017 की मतदाता सूची में उनकी उम्र 41 वर्ष बताई गई है। इस प्रकार, वर्ष 2003 में उसकी आयु 27 वर्ष हो जाती है। उन्होंने क्रमशः 15-09-2000 और 20-09-2000 को बिक्री के लिए दो समझौतों और 27-08-1998 को एक पावर ऑफ अटॉर्नी को भी निष्पादित किया था। सभी दस्तावेजों को स्वतंत्र रूप से उनके स्वयं के

हस्ताक्षर के तहत निष्पादित किया गया था, न कि किसी अन्य व्यक्ति की संरक्षकता के तहत नाबालिग के रूप में। इस प्रकार, उपरोक्त प्रवेश के आधार पर वह घटना की तारीख यानी 07.06.2003 को बालिग था, क्योंकि एक व्यक्ति अपने स्वयं के प्रवेश के खिलाफ दावा नहीं कर सकता है। इसलिए, आक्षेपित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की जाती है।

द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदक के इस आवेदन का प्रत्यर्थी पक्ष संख्या 2 के वकील ने इस आधार पर विरोध किया था कि किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 52 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के अनुसार कोई भी व्यक्ति इस अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारी द्वारा किए गए आदेश से व्यथित हो सकता है। इस तरह के आदेश की तारीख से तीस दिनों के भीतर, सत्र न्यायालय में अपील की जा सकती है! यह दावा किया गया था कि चूंकि कानून में ही आवेदक के लिए एक उपाय उपलब्ध था, इसलिए वह द०प्र०स० की धारा 482 के तहत इस अदालत के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र को लागू नहीं कर सकता था। यदि अधिनियम उपाय के बारे में चुप था, तभी द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन किया जा सकता था।

विपरीत पक्ष संख्या 2 के वकील द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि उसी किशोर न्याय बोर्ड द्वारा एक अन्य सह-अभियुक्त को भी दिनांक 22.04.2017 के आदेश के तहत किशोर घोषित किया गया था और उस आदेश के खिलाफ, हालांकि, वर्तमान आवेदक ने शुरू में इस अदालत के समक्ष धारा 482 द०प्र०स० संख्या 18718 वर्ष 2017 के तहत आवेदन

दायर करने का वही सहारा लिया। लेकिन बाद में अपील का उपाय प्रदान किया गया था और आवेदक द्वारा उस आवेदन को गलत तरीके से दायर किया गया था। द०प्र०स० की धारा 482 के तहत उनके आवेदन को खारिज कर दिया गया था और अधिनियम के तहत विशिष्ट वैधानिक प्रावधान के प्रकाश में आवेदक ने 22.04.2017 के आदेश के खिलाफ अपील दायर की थी। प्रत्यर्था संख्या 2 के वकील द्वारा आगे तर्क दिया गया कि आवेदक के वकील, जो उस अन्य सह-आरोपी के वकील भी थे, दो सह-आरोपी व्यक्तियों के दो मामलों में एक ही मामले में कार्रवाई के एक ही कारण के बारे में दो अलग-अलग उपायों का लाभ नहीं उठा सके। यह भी प्रस्तुत किया गया था कि अधिनियम की धारा 7 ए और नियम, 2017 के नियम 12 के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति अशिक्षित है, जिसके पास कोई शैक्षिक प्रमाण पत्र नहीं है या उसके पास किसी निगम या नगरपालिका बोर्ड या पंचायत द्वारा जारी कोई जन्म प्रमाण पत्र नहीं है, तो उसकी आयु निर्धारित करने के लिए उसके पास एकमात्र सहारा विधिवत गठित मेडिकल बोर्ड से चिकित्सा राय लेना था और उस बोर्ड को किशोर या बच्चा की आयु घोषित करनी होगी। और जैसा कि यहां मामला है कि एक आवेदन देकर विपरीत पक्ष संख्या 2 ने मेडिकल बोर्ड द्वारा मेडिकल रिपोर्ट के आधार पर प्रिंसिपल मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा द्वारा पारित दिनांक 19.05.2017 के आक्षेपित आदेश के तहत घटना की तारीख पर खुद को किशोर घोषित कर दिया। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि दोषी / विपरीत पक्ष संख्या 2 घटना की तारीख पर नाबालिग था,

इसलिए द०प्र०स० की धारा 313 के तहत उसके बयान में या बिक्री के समझौते या पावर ऑफ अटॉर्नी जैसे अन्य दस्तावेजों के आधार पर उसके दाखिला को नाबालिग के रूप में कोई महत्व नहीं कहा जा सकता है।

आवेदक के वकील ने जवाब में प्रस्तुत किया कि यद्यपि उसने इस मामले के सह-अभियुक्त के मामले में द०प्र०स० संख्या 18718 वर्ष 2017 के तहत आवेदन दायर किया था, उस आवेदन के लंबित रहने के दौरान उसे उस सह-आरोपी की रिहाई के बारे में पता चला, इसलिए उसे द०प्र०स० की धारा 482 के तहत उस आवेदन को वापस लेना पड़ा और जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील दायर करनी पड़ी। जिसे उस अदालत ने स्वीकार कर लिया और उस सह-आरोपी के पक्ष में उसे घटना की तारीख पर किशोर घोषित करने के आदेश को रद्द कर दिया गया। लेकिन वर्तमान मामले में जब द०प्र०स० की धारा 482 के तहत यह आवेदन दायर किया गया था, तो आरोपी को न्यायिक हिरासत से रिहा नहीं किया गया था, इसलिए उसने वर्तमान आरोपी/दोषी के मामले में द०प्र०स० की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन पर कार्रवाई की।

यदि हम रिकॉर्ड को देखते हैं, तो यह पाया जाता है कि वर्तमान आरोपी और सह-आरोपी दोनों को शीर्ष अदालत द्वारा उपरोक्त रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 155 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 17.05.2022 के तहत जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया गया था। इस प्रकार, चूंकि दोनों सह-अभियुक्त व्यक्तियों को एक ही आदेश द्वारा रिहा कर दिया गया था और वह भी वर्ष 2022

में, आवेदक के वकील की दलील कि धारा 482 संख्या 18718 वर्ष 2017 के तहत आवेदन वापस लेने के समय, सह-आरोपी, उस आवेदन में विपरीत पक्ष संख्या 2 को रिहा कर दिया गया था, इसलिए उन्हें 11.10.2017 को द०प्र०स० की धारा 482 के तहत उस आवेदन को वापस लेना पड़ा। आक्षेपित आदेश, गलत हो जाता है।

अन्यथा भी आवेदक के वकील ऐसा कोई प्रावधान दिखाने में विफल रहे कि यदि किसी व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो उस व्यक्ति के खिलाफ द०प्र०स० की धारा 482 के तहत दायर आवेदन निरर्थक हो जाता है।

अब यह देखा जाना है कि क्या कानून के तहत प्रदान किए गए उपाय की उपस्थिति में / अपील के स्पष्ट प्रावधान के खिलाफ, लागू आदेश के खिलाफ वर्तमान आवेदक की धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन सुनवाई योग्य है?

द०प्र०स० की धारा 482 को पुनः पेश करना आवश्यक है जो निम्नानुसार है: -

482. उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के तहत, इस संहिता की कोई भी बात उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी कि वे ऐसे आदेश दे सकें जो इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक हों, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए।

इस धारा के अनुसार, द०प्र०स० की धारा 482 के तहत कार्यवाही करने का एकमात्र

उद्देश्य किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना और अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करना है। इस प्रकार, धारा में ही, इस बात पर कोई रोक नहीं है कि यदि किसी व्यक्ति के लिए कानून में ही एक साथ/समान रूप से प्रभावोत्पादक उपाय उपलब्ध है, तो वह द०प्र०स० की धारा 482 के तहत प्रदान किए गए उपाय का लाभ नहीं उठा सकता है।

यदि हम इस न्यायालय की समन्वय पीठ के दिनांक 11.10.2017 के आवेदन यू/एस 482 संख्या 18718 में पारित आदेश को देखें, तो वर्तमान मामले के सह-अभियुक्त के मामले में, आवेदक की धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन को इस आधार पर खारिज नहीं किया गया था कि आवेदक को कानून में ही समान रूप से प्रभावी राहत उपलब्ध है और न ही द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन को इस अदालत द्वारा अपील में परिवर्तित किया गया था। जैसा कि विपरीत पक्ष संख्या 2 के वकील द्वारा प्रस्तुत किया गया है, बल्कि आवेदक ने स्वयं अपने आवेदन पर जोर नहीं दिया और उचित कानूनी उपाय का लाभ उठाने की स्वतंत्रता के साथ उस आवेदन को वापस लेने की प्रार्थना की और केवल इस तरह के अनुरोध के आधार पर, इस अदालत की समन्वय पीठ ने 11.10.2017 को आदेश पारित किया और आवेदक को उचित कानूनी उपचार का लाभ उठाने की स्वतंत्रता के साथ धारा 482 द०प्र०स० संख्या 18718 वर्ष 2017 के तहत अपना आवेदन वापस लेने की अनुमति दी।

प्रत्यर्थी संख्या 2 के वकील अदालत के समक्ष कोई कानून/निर्णय पेश नहीं कर सके

कि यदि किसी व्यक्ति को समान रूप से प्रभावी राहत मिल रही है तो वह द०प्र०स० की धारा 482 के तहत उपाय का लाभ नहीं उठा सकता है।

सुप्रीम कोर्ट ने प्रभु चावला बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य (2016) सुप्रीम कोर्ट के 16 मामलों में कहा कि जहां अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्य असाधारण स्थिति अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग की आवश्यकता है, अंतर्निहित शक्ति के उपयोग पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। धारा 397 के तहत आपराधिक संशोधन के वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता अपने आप में धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन को खारिज करने का एक अच्छा आधार नहीं हो सकता है।

धारीवाल तंबाकू उत्पाद लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य (2009) 2 सुप्रीम कोर्ट केस 370 में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि धारा 397 के तहत संशोधन दायर करने के वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन को खारिज करने का आधार नहीं होगी।

इस प्रकार, अदालत की राय में, इस संबंध में विपरीत पक्ष संख्या 2 के वकील की दलील मज़बूत नहीं है। यदि अदालत को लगता है कि किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए यह उचित है कि अदालत द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन पर बहुत अच्छी तरह से विचार कर सकती है।

आवेदक के वकील द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि 19.05.2017 के आदेश के तहत प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा ने

घटना की तारीख पर विपरीत पक्ष संख्या 2 को किशोर घोषित किया। लेकिन उसे किशोर घोषित करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 के आवेदन पर फैसला करते समय, आवेदक को सुनवाई का मौका नहीं दिया गया था। किशोर न्याय बोर्ड के प्रधान मजिस्ट्रेट ने उसे कोई नोटिस जारी नहीं किया। अदालत का ध्यान इस न्यायालय की खंडपीठ के के आपराधिक रिट - जनहित याचिका संख्या 855 में पारित फैसले दिनांक 24.05.2012 की ओर आकर्षित किया गया है, जिसमें पीड़ित की आयु निर्धारित करने के लिए किशोर न्याय बोर्ड के प्रधान मजिस्ट्रेट के लिए एक आदेश दिया गया था, जिसमें स्पष्ट निर्देश था कि अभियोजन और शिकायतकर्ता को अपने स्वयं के गवाह से पूछताछ करने और गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाएगा। अभियुक्त की ओर से जिन लोगों से पूछताछ की गई है और इस उद्देश्य के लिए किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष कार्यवाही के नोटिस शिकायतकर्ता या अभियोजन पक्ष को दिए जाएंगे। इस प्रकार, इस न्यायालय की खंडपीठ के दिनांक 24.05.2012 के आदेश में यह अनिवार्य शर्त थी कि आरोपी की आयु निर्धारित करने से पहले शिकायतकर्ता को अनिवार्य रूप से नोटिस दिया जाएगा और शिकायतकर्ता को अपने स्वयं के गवाहों से पूछताछ करने और आरोपी के गवाहों से जिरह करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। लेकिन दिनांक 19.05.2017 के आदेश के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि शिकायतकर्ता को न तो नोटिस दिया गया था और न ही उसे सुनवाई का अवसर दिया गया था या घटना की तारीख पर उसे किशोर घोषित करने के लिए आरोपी के

आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया था। इस प्रकार, शिकायतकर्ता या उसके वकील आरोपी गवाहों से जिरह करने और अपने स्वयं के गवाहों से पूछताछ करने और मेडिकल बोर्ड द्वारा दायर मेडिकल रिपोर्ट पर कोई आपत्ति उठाने के लिए प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष पेश नहीं हो सके।

चूंकि प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा ने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित दिनांक 24.05.2012 के आदेश के अनुपालन में शिकायतकर्ता के लिए नोटिस जारी नहीं किया और परिणामस्वरूप उसे सुनवाई या अपने साक्ष्य को जोड़ने या गवाहों से जिरह करने का अवसर प्रदान नहीं किया, यह प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा की ओर से एक बड़ी गलती थी! इस प्रकार, दिनांक 19.05.2017 का आदेश इस न्यायालय की खंडपीठ के दिनांक 24.05.2012 के आदेश द्वारा दिए गए विशिष्ट निर्देशों के खिलाफ पाया जाता है।

जहां तक आवेदक के वकील की दलील है कि किशोर न्याय बोर्ड, आगरा के पास आरोपी की उम्र निर्धारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है क्योंकि मामला जिला मेरठ से संबंधित है, मेरठ जिला न्यायालय से दोषसिद्धि के बाद ही आरोपी को सेंट्रल जेल, आगरा में रखा गया था और यह तथ्य किशोर न्याय बोर्ड, आगरा को आरोपी के आयु निर्धारण के आवेदन पर सुनवाई के लिए को अधिकार नहीं देता है। ।

इस संबंध में, धारा 7 ए (1) के पैरा -2 का उल्लेख यहां करना आवश्यक है: -

[7क. किसी भी न्यायालय के समक्ष नाबालिग होने का दावा किए जाने पर अपनाई

जाने वाली प्रक्रिया- (1) परन्तु नाबालिग होने का दावा किसी न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है और मामले के अंतिम निपटान के बाद भी इसे किसी भी स्तर पर मान्यता दी जाएगी और ऐसे दावे का निर्धारण इस अधिनियम में निहित उपबंधों और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के अनुसार किया जाएगा, भले ही किशोर इस अधिनियम के लागू होने की तारीख को या उससे पहले ऐसा करना बंद कर चुका हो।

उपर्युक्त प्रावधान में, 'किसी भी अदालत' शब्द का अर्थ विचारण न्यायालय / उच्च न्यायालय / शीर्ष न्यायालय है। इसका मतलब यह नहीं है कि उत्तर प्रदेश में कोई भी अदालत जहां भी कोई व्यक्ति चाहता है कि उसका आवेदन स्थानांतरित किया जाए। चूंकि मामला जिला मेरठ का था और इसका निर्णय जिला न्यायालय मेरठ द्वारा किया गया था, इसलिए जिला न्यायालय, मेरठ/प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, मेरठ के पास केवल आवेदक के नाबालिग होने के प्रश्न पर निर्णय लेने का अधिकार था। इस प्रकार, प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा द्वारा पारित दिनांक 22.04.2017 का आदेश अधिकार क्षेत्र के बिना पारित आदेश था।

प्रधान मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, आगरा द्वारा दिनांक 19.05.2017 के अपराध संख्या 131 वर्ष 2003 से उत्पन्न 2017 (राज्य बनाम मुन्ना) के आवेदन संख्या 109 में धारा 147, 148, 149, 307, 302 भ० द० वि०, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला मेरठ के अधिकार क्षेत्र के बिना और आवेदक को नोटिस जारी किए बिना पारित आदेश को रद्द किया

जाता है। द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन को अनुमति दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 751

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

20982/2017

सनेश ठाकुर और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री हरीश कुमार यादव,
श्री सुवेद कुमार शर्मा

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री विनोद
कुमार यादव

पक्षों के बीच विवाद-आवेदक संख्या 1 द्वारा प्रकाशित समाचार पत्र को विपरीत पक्ष संख्या 2 से विज्ञापन देने से संबंधित-वर्तमान अभियोजन आकस्मिक है न कि स्वाभाविक परिणाम-पक्षों के मध्य समझौता-समझौता आवेदन अस्वीकृत-आक्षेपित-धारा 385 आईपीसी का उल्लेख सीआरपीसी की धारा 320 के तहत किसी भी तालिका में नहीं है- धारा 320 आईपीसी के तहत न्यायालय की शक्ति सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति से भिन्न है-विपक्षी संख्या 2-एक प्रमुख अभियोजन गवाह-परीक्षण में पक्षद्रोही की अपनी स्पष्ट आशय घोषित की-कार्यवाही

की अनुमति-समय की बर्बादी समझौता स्वीकार-कार्यवाही निरस्त-आवेदन स्वीकृत।
(ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. राम लाल एवं अन्य बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य, (1999) 2 एससीसी 213
2. राजस्थान राज्य बनाम शंभू केवट और अन्य, (2014) 4 एससीसी 149
3. जान सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2012) 10 एससीसी 303
4. नरिंदर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2014) 6 एससीसी 466
5. परबतभाई अहीर बनाम गुजरात राज्य (2017) 9 एससीसी 641
6. एम.पी. राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य, (2019) 5 एससीसी 688

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम,
द्वारा प्रदत्त)

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं :

1. कुल मिलाकर चार आवेदकों के खिलाफ एफ.आई.आर. अन्तर्गत धारा 385, 323, 504, 506 भा.दं.सं. थाना-सिविल लाइन्स, जिला-मुरादाबाद में दिनांक 13.8.2015 को पंजीकृत की गई थी। जांच के बाद पुलिस ने सभी आवेदकों के खिलाफ धारा 385, 323, 504, 506 भा.दं.सं. के तहत आरोप पत्र सं. 286 सन् 2015 दिनांकित 14.9.2015 दाखिल किया। दिनांक 18.2.2016 को मुख्य न्यायिक

मजिस्ट्रेट, मुरादाबाद ने धारा 385, 323, 504, 506 भा.दं.सं. के तहत संज्ञान लिया और आरोपी आवेदकों को तलब किया। आदेश की प्रतिलिपि पेपर बुक के पेज सं. 30 पर है और आपराधिक वाद सं. 1146 सन् 2016 (राज्य बनाम सनेश ठाकुर और अन्य) दर्ज किया गया था।

2. आरोपी आवेदकों द्वारा धारा 482 दं.प्र.सं. के तहत वर्तमान आवेदन दिनांक 18.2.2016 के संज्ञान आदेश के साथ-साथ अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय सं. 2, मुरादाबाद के समक्ष लंबित आपराधिक वाद सं. 1146 सन् 2016 (उ.प्र. राज्य बनाम सनेश ठाकुर और अन्य) की पूरी कार्यवाही को चुनौती देते हुए दायर किया गया है। आवेदन में लिए गए अन्य आधारों के अलावा, आवेदक के अधिवक्ता ने दलील दिया है कि प्रतिपक्षी सं. 2 अर्थात् आशीष अग्रवाल, जो सूचनादाता थे, ने निचली अदालत के समक्ष एक आवेदन दिया था कि इस मामले में दोनों पक्षों के बीच समझौता हो गया है और वह मामले को आगे नहीं बढ़ाना चाहते हैं। उपरोक्त आवेदन में, जो पेपर बुक के पेज 38 पर है, प्रार्थना की गई कि समझौते के आलोक में, वाद सं. 1146 सन् 2016 की कार्यवाही को रद्द कर दिया जाए।

3. इस न्यायालय ने दिनांक 11.7.2017 के आदेश के माध्यम से आवेदकों के विरुद्ध वाद सं. 586 सन् 2015, और **आपराधिक वाद सं. 1146 सन् 2016** अन्तर्गत धारा 385,

323, 504, 506 भा.दं.सं. थाना-सिविल लाइन्स, जिला-मुरादाबाद में सभी अग्रिम कार्यवाही पर रोक लगा दिया और प्रतिपक्षी सं. 2 को नोटिस जारी किया।

4. फिर जब दिनांक 4.11.2022 को मामले को उठाया गया, तो पक्षकारों के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि पक्षों ने समझौता कर लिया है और अपना विवाद सुलझा लिया है। उपरोक्त निवेदन पर, इस न्यायालय ने दिनांक 4.11.2022 के आदेश के माध्यम से निर्देश दिया कि समझौते को चार सप्ताह की अवधि के भीतर सत्यापित किया जाएगा। दिनांक 4.11.2022 का आदेश निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

“पक्षों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पक्षों ने समझौता कर लिया है और अपना विवाद सुलझा लिया है। समझौते की एक प्रति संबंधित अदालत के समक्ष रखी गई थी, हालांकि विनिर्दिष्ट आदेश के अभाव में इसे सत्यापित नहीं किया गया था।

इसलिए, यह निर्देशित किया जाता है कि समझौते को 4 सप्ताह की अवधि के भीतर सत्यापित किया जाएगा और उसके बाद दो सप्ताह की अवधि के भीतर इस

न्यायालय को एक रिपोर्ट
भेजी जाएगी।

इस केस को 6 हफ्ते बाद
रखें।”

5. आदेश दिनांक 4.11.2022 के बाद, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट सं. 2, मुरादाबाद ने इस अदालत के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उल्लेख किया गया कि मामले में पक्षों के बीच समझौता हो गया है और इसे दिनांक 03.01.2023 को सत्यापित किया गया है।

6. इस संबंध में, आवेदकों द्वारा एक पूरक हलफनामा भी दायर किया गया है, जिसे दिनांक 21.02.2023 को रिकॉर्ड पर लिया गया है, जिसमें इस स्थिति को दोहराया गया है कि पक्षों के बीच समझौता हो गया है और इसे सत्यापित किया जा चुका है।

7. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दिया कि चूंकि विवाद को अदालत के बाहर सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया गया है और पक्षों में हुए समझौते को अधीनस्थ अदालत के समक्ष सत्यापित किया जा चुका है, इसलिए धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन को स्वीकार किया जाना चाहिए और वाद सं. 1146 सन् 2016 (राज्य बनाम सनेश ठाकुर और अन्य) अन्तर्गत मुकदमा अपराध सं. 586

सन् 2015 अन्तर्गत धारा 385, 323, 504, 506 भा.दं.सं., थाना-सिविल लाइन्स जिला मुरादाबाद की कार्यवाही रद्द की जाए।

8. विद्वान ए.जी.ए. ने कहा कि यह सही है कि मामले में पक्षों के बीच समझौता हो गया है। विद्वान ए.जी.ए. ने आगे कहा कि भा.दं.सं. की धारा 385 के तहत अपराध दं.प्र.सं. की धारा 320 और दं.प्र.सं. की धारा 320 के साथ संलग्न सूची के मद्देनजर शमनीय नहीं है और इसलिए, वाद सं. 1146 सन् 2016 (राज्य बनाम सनेश ठाकुर और अन्य) की कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है। अपने तर्कों के समर्थन में, विद्वान ए.जी.ए. ने **राम लाल और अन्य बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य (1999) 2 एससीसी 213** और **राजस्थान राज्य बनाम शंभु केवट और अन्य (2014) 4 एससीसी 149** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का अवलंब लिया है।

9. राम लाल और अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि धारा दं.प्र.सं. की धारा 320 जो "अपराधों के शमन" से संबंधित है, उसमें दो तालिकाएँ दी गई हैं, एक में उन अपराधों का विवरण है जिन्हें उसमें उल्लिखित व्यक्ति द्वारा समझौता किया जा सकता है, और दूसरे में उन अपराधों का विवरण है जिन्हें अदालत की अनुमति से मामले में उल्लिखित व्यक्तियों द्वारा समझौता किया जा सकता है। केवल ऐसे अपराध जो उक्त दो तालिकाओं में शामिल हैं, उनका

शमन किया जा सकता है, अन्य का नहीं। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 320 की उप-धारा 9, धारा में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, शमन करने पर विधायी प्रतिबंध लगाती है।

10. राजस्थान राज्य (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फैसले के पैरा सं. 15 में निम्नानुसार धारित किया है: -

“15. हम यह कहने के लिए तैयार नहीं हैं कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा किया गया कथित अपराध एक व्यक्ति के खिलाफ अपराध था, दूसरी ओर यह बड़े पैमाने पर समाज के खिलाफ अपराध था। आपराधिक कानून को सामाजिक नियंत्रण प्राप्त करने के लिए एक तंत्र के रूप में डिज़ाइन किया गया है और इसका उद्देश्य समाज के भीतर आचरण और गतिविधियों का विनियमन है। धारा 307भा.दं.सं. को गैर-शमनयोग्य इसलिए माना जाता है, क्योंकि संहिता ने इस बात को चिन्हित किया है कि किस आचरण को गैर-शमनयोग्य अपराधों के दायरे में लाया जाना चाहिए। ऐसे प्रावधान केवल व्यक्ति की रक्षा के लिए नहीं हैं, बल्कि समग्र रूप से समाज की रक्षा के लिए हैं। उच्च न्यायालय का यह सोचना सही नहीं था कि यह केवल व्यक्ति पर चोट थी और चूंकि आरोपी व्यक्तियों (पीड़ितों) ने मौद्रिक मुआवजा प्राप्त कर लिया था और

मामला सुलझा लिया था, इसलिए उनके खिलाफ अपराध खत्म हो गया। आपराधिक न्याय प्रणाली को एक बड़ा उद्देश्य प्राप्त करना होता है, वह है बड़े पैमाने पर लोगों की सुरक्षा और संरक्षण और यह न केवल अपराधी के लिए, बल्कि बड़े पैमाने पर व्यक्तियों के लिए एक सबक होगा ताकि ऐसे अपराध किसी के द्वारा न किए जाएं और पैसा समाज के खिलाफ किए गए अपराध का विकल्प न हो। वर्तमान जैसे गंभीर अपराध पर नरम रुख अपनाने से आपराधिक न्याय प्रणाली के बारे में गलत धारणा बनेगी और आगे आपराधिक कृत्यों को बढ़ावा मिलेगा, जो बड़े पैमाने पर समाज के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और कल्याण को खतरे में डाल देगा।

11. उत्तर में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत उन मामलों में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में उच्च न्यायालय की शक्तियों के प्रयोग में कोई बाधा नहीं है जहां पक्षों ने अपने विवाद को आपस में सुलझा लिया है।

12. यह सही है कि भा.दं.सं. की धारा 385, दं.प्र.सं. की धारा 320 में उल्लिखित किसी भी तालिका में उल्लिखित अपराध नहीं है।

ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2012) 10 एससीसी 303 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि संहिता की धारा 320 अपराधों के शमन के संबंध में सार्वजनिक नीति को स्पष्ट करती है। यह भा.दं.सं. के तहत दंडनीय अपराधों को सूचीबद्ध करता है जिन्हें पक्षों द्वारा न्यायालय की अनुमति के बिना शमन किया जा सकता है और कुछ अपराधों को केवल न्यायालय की अनुमति से ही शमन किया जा सकता है। विशेष कानून के तहत दंडनीय अपराध धारा 320 के अंतर्गत नहीं आते हैं।

13. एक ऐसे अपराधी के खिलाफ जिसने अपराध के पीड़ित के साथ अपना विवाद सुलझा लिया है, लेकिन जिस अपराध में वह कथित रूप से शामिल है वह संहिता की धारा 320 के तहत शमनीय नहीं है, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के संबंध में प्रश्न पर विचार करते समय, ज्ञान सिंह (उपरोक्त) के मामले में फैसले के पैरा 57 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि अपराधी और पीड़ित के बीच समझौते के आधार पर अपराध या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना अपराध के शमन जैसा नहीं है। वे भिन्न हैं और विनिमेय नहीं हैं। साफ शब्दों में, धारा 320 के तहत न्यायालय को दी गई अपराधों के शमन की शक्ति अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने से काफी अलग है। अपराधों के शमन में, एक आपराधिक न्यायालय की शक्ति धारा

320 में निहित प्रावधानों द्वारा सीमित होती है और न्यायालय को पूरी तरह से और स्पष्ट रूप से निर्देशित किया जाता है, जबकि दूसरी ओर, एक आपराधिक कृत्य या अपराधिक कार्यवाही या आपराधिक परिवाद को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा राय का गठन रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री द्वारा निर्देशित होती है कि क्या न्यायहित शक्ति के ऐसे प्रयोग को उचित ठहराएगा, हालांकि अंतिम परिणाम दोषमुक्ति या अभियोग को खारिज करना हो सकता है।

14. ज्ञान सिंह (उपरोक्त) के मामले में फैसले के पैराग्राफ 58 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया है कि जहां उच्च न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर देता है कि अपराधी और पीड़ित के बीच विवाद है यद्यपि अपराध शमनीय नहीं है, फिर भी यह दर्शाता है कि उसकी राय में, आपराधिक कार्यवाही जारी रखना निरर्थकता की एक कवायद होगी और मामले में न्याय की मांग है कि पक्षों के बीच विवाद को समाप्त किया जाए और शांति बहाल की जाए, न्याय हित का लक्ष्य अंतिम मार्गदर्शक कारक है। इसमें कोई संदेह नहीं है, अपराध वे कार्य हैं जिनका जनता पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है और इसमें ऐसे गलत कार्य शामिल होते हैं जो समाज की भलाई को गंभीर रूप से खतरे में डालते हैं और अपराध करने वाले को केवल इसलिए छोड़ना सुरक्षित नहीं है क्योंकि उसने और पीड़ित ने आपस में विवाद सुलझा लिया है या कि पीड़ित को मुआवजा दिया गया है, फिर भी कुछ

अपराधों को न्यायालय की अनुमति के साथ या उसके बिना, शमनीय बना दिया गया है। हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे गंभीर अपराधों या भा.दं.सं. के तहत मानसिक विकृति के अन्य अपराधों या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष प्रावधानों के तहत नैतिक अधमता के अपराधों या उस क्षमता में काम करते समय लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों के संबंध में, अपराधी और पीड़ित के बीच समझौते की कोई कानूनी मंजूरी नहीं हो सकती। हालाँकि, कुछ अपराध जो नागरिक, व्यापारिक, वाणिज्यिक, वित्तीय, साझेदारी या ऐसे ही लेन-देन या विवाह से उत्पन्न होने वाले अपराधों से उत्पन्न होते हैं, वे अत्यधिक और मुख्य रूप से नागरिक प्रकृति के होते हैं, विशेष रूप से दहेज आदि या पारिवारिक विवाद से संबंधित, जहां अपकृत्य मूल रूप से पीड़ित के साथ हुआ हो और अपराधी और पीड़ित ने सभी विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है, इस तथ्य के बावजूद कि ऐसे अपराधों को शमन योग्य नहीं बनाया गया है, उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति के दायरे में, आपराधिक कार्यवाही या आपराधिक शिकायत या एफआईआर को रद्द कर देती यदि वह संतुष्ट है कि इस तरह के समझौते से, अपराधी को दोषी ठहराए जाने की शायद ही कोई संभावना है और आपराधिक कार्यवाही को रद्द न करने से, न्याय की हानि होगी और न्याय पराजित होगा।

15. **नरिन्द्र सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (2014) 6 एससीसी 466** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा

सं. 29 में मार्गदर्शक सिद्धान्त निर्धारित किए हैं जो उच्च न्यायालय को पक्षों के बीच समझौते को उचित मान्यता देते समय, धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करके समझौते को स्वीकार करके कार्यवाही को रद्द करने या स्वीकार न करके आपराधिक कार्यवाही जारी रखने के निर्देश देने में मार्गदर्शन करेंगे। पैराग्राफ सं. 29.1 से 29.7 में दिए गए दिशानिर्देश निम्नानुसार उद्धृत किए गए हैं: -

“29.1. संहिता की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्ति को उस शक्ति से अलग किया जाना चाहिए जो संहिता की धारा 320 के तहत अपराधों के शमन के लिए न्यायालय में निहित है। इसमें कोई संदेह नहीं है, संहिता की धारा 482 के तहत, उच्च न्यायालय के पास उन मामलों में भी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति है जो शमनीय नहीं हैं, जहां पक्षों ने आपस में मामला सुलझा लिया है। हालाँकि, इस शक्ति का प्रयोग संयमपूर्वक और सावधानी से किया जाना चाहिए।

29.2. जब पक्ष समझौते पर पहुंच गए हैं और उस आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए याचिका दायर की गई है, तो

ऐसे मामलों में मार्गदर्शक कारक यह सुनिश्चित करने के लिए होगा :

- (i) न्यायहित, या
- (ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना।

शक्ति का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को उपरोक्त दो उद्देश्यों में से किसी एक पर एक राय बनानी होती है।

29.3. ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाना चाहिए जिनमें मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध शामिल हैं। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसी तरह, विशेष कानून जैसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत किए गए कथित अपराधों या लोक सेवकों द्वारा उस क्षमता में काम करते समय किए गए अपराधों को और अपराधी और पीड़ित के बीच समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है।

29.4. दूसरी ओर, वे आपराधिक मामले जो व्यापक और प्रमुख रूप से

नागरिक चरित्र हैं, विशेष रूप से वाणिज्यिक लेनदेन से उत्पन्न होने वाले या वैवाहिक संबंध या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होने वाले मामलों को तब रद्द कर दिया जाना चाहिए जब पक्षों ने अपने सभी विवादों को आपस में सुलझा लिया हो।

29.5. अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय, उच्च न्यायालय को इस बात की जांच करनी चाहिए कि क्या दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम और धूमिल है और आपराधिक मामलों को जारी रखने से अभियुक्त को भारी उत्पीड़न और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ेगा और आपराधिक मामलों को रद्द न करने से उसके साथ अत्यधिक अन्याय होगा।

29.6. भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे और इसलिए इसे आम तौर पर समाज के खिलाफ अपराध माना जाएगा, न कि अकेले व्यक्ति के खिलाफ। हालाँकि, उच्च न्यायालय अपना निर्णय सिर्फ इस आधार पर नहीं देगा कि एफ.आई.आर. में भा.दं.सं. की धारा 307 का जिक्र है या इस प्रावधान के तहत आरोप तय किया गया है। उच्च न्यायालय इस बात की जांच करने के लिए स्वतंत्र होगा कि क्या धारा 307 भा.दं.सं. का समावेश केवल ऐसे

ही किया गया है या अभियोजन पक्ष ने ऐसे पर्याप्त सबूत एकत्र किए हैं, जो साबित होने पर, धारा 307 भा.दं.सं. के तहत आरोप साबित करने में मदद करेंगे। इस प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय के पास लगी चोट की प्रकृति, चाहे ऐसी चोट शरीर के महत्वपूर्ण/प्रतिनिधि भागों पर लगी हो, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति आदि पर विचार करने का विकल्प होगा। लगी चोटों के संबंध में पीड़ित की चिकित्सा रिपोर्ट आमतौर पर मार्गदर्शक कारक हो सकता है। इस प्रथम दृष्टया विश्लेषण के आधार पर, उच्च न्यायालय यह जांच कर सकता है कि क्या दोषसिद्धि की प्रबल संभावना है या दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम और धूमिल है। पहले मामले में यह समझौते को स्वीकार करने से इंकार कर सकता है और आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है जबकि दूसरे मामले में उच्च न्यायालय को पक्षों के बीच पूर्ण समझौते के आधार पर अपराध का शमन करने वाली याचिका स्वीकार करने की अनुमति होगी। इस स्तर पर, न्यायालय इस तथ्य से भी प्रभावित हो सकता है कि पक्षों के बीच समझौते से उनके बीच सामंजस्य बनेगा जिससे उनके

भविष्य के रिश्ते में सुधार हो सकता है।

29.7. यह तय करते समय कि संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना है या नहीं, समझौते का समय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे मामले जहां कथित अपराध के तुरंत बाद समझौता हो जाता है और मामला अभी भी जांच के अधीन हो, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही/जांच को रद्द करने के लिए समझौते को स्वीकार करने में उदार हो सकता है। यही कारण है कि इस स्तर पर जब जांच जारी हो और आरोप पत्र भी दाखिल न किया गया हो। इसी तरह, ऐसे मामले जहां आरोप तय हो गया है लेकिन साक्ष्य अभी शुरू नहीं हुआ है या साक्ष्य अभी भी प्रारंभिक चरण में है, उच्च न्यायालय अपनी शक्तियों का अनुकूल रूप से प्रयोग करने में उदारता दिखा सकता है, लेकिन ऊपर उल्लिखित

परिस्थितियों/सामग्री के प्रथम दृष्टया मूल्यांकन के बाद। दूसरी ओर, जहां अभियोजन पक्ष के साक्ष्य लगभग पूरे हो चुके हैं या साक्ष्य के समापन के बाद मामला बहस के चरण में है, आम तौर पर उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का

प्रयोग करने से बचना चाहिए, जैसा कि ऐसे मामलों में होता है। विचारण न्यायालय मामले को अंतिम रूप से गुण-दोष के आधार पर तय करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने की स्थिति में होगा कि भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत अपराध हुआ है या नहीं। इसी प्रकार, उन मामलों में जहां दोषसिद्धि विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही दर्ज की जा चुकी है और मामला उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलीय चरण में है, पक्षों के बीच केवल समझौता इसे स्वीकार करने का आधार नहीं होगा, जिसके परिणामस्वरूप अपराधी को बरी कर दिया जाएगा जिसे विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही दोषी ठहराया जा चुका है। यहां भा.दं.सं. की धारा 307 के तहत आरोप साबित हो चुका है और जघन्य अपराध के लिए सजा पहले ही दर्ज हो चुकी है, इसलिए ऐसे अपराध में दोषी पाए गए दोषी को बख्शने का कोई सवाल ही नहीं है।”

16. **परबतभाई अहीर बनाम गुजरात राज्य (2017) 9 एससीसी 641**, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से विचार किया कि क्या उच्च न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए एफ.आई.आर./परिवाद/आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है। इस बिंदु पर सर्वोच्च

न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 16.1 से 16.10 में निम्नलिखित उपधारणाओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया, जिन्हें निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

“16.1. धारा 482 दं.प्र.सं. किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को संरक्षित करता है। यह प्रावधान नई शक्तियाँ प्रदान नहीं करता है। यह केवल उन शक्तियों को मान्यता देता है और संरक्षित करता है जो उच्च न्यायालय में निहित हैं;

16.2. प्रथम सूचना रिपोर्ट या किसी आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान कि अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता हो गया है, अपराध के शमन के उद्देश्य से उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के आह्वान के समान नहीं है। किसी अपराध का शमन करते समय, न्यायालय की शक्ति दं.प्र.सं. की धारा 320 के प्रावधानों द्वारा शासित

होती है। धारा 482 के तहत रद्द करने की शक्ति तब भी लागू होती है जब अपराध गैर-शमनीय हो।

16.3. एक राय बनाने में कि धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए एक आपराधिक कार्यवाही या शिकायत को रद्द कर दिया जाना चाहिए या नहीं, उच्च न्यायालय को यह मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या न्याय का लक्ष्य अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को उचित ठहराएगा।

16.4. यद्यपि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का दायरा व्यापक और प्रचुर है, इसका प्रयोग किया जाना चाहिए; (i) न्याय के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए या (ii) किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए।

16.5. किसी शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को इस आधार पर रद्द कर दिया जाना चाहिए कि अपराधी और पीड़ित ने विवाद सुलझा लिया है, इसका निर्णय अंततः प्रत्येक

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और सिद्धांतों का कोई विस्तृत विवरण तैयार नहीं किया जा सकता है।

16.6. धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय और इस दलील पर विचार करते समय कि विवाद का निपटारा हो गया है, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का उचित ध्यान रखना चाहिए। जघन्य और मानसिक विकृति से जुड़े गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार और डकैती जैसे अपराधों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार ने विवाद सुलझा लिया हो। सही मायने में ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते बल्कि समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। ऐसे मामलों में मुकदमा जारी रखने का निर्णय गंभीर अपराधों के लिए व्यक्तियों को दंडित करने में सार्वजनिक हित के सर्वोपरि तत्व पर आधारित है।

16.7. गंभीर अपराधों से अलग, ऐसे आपराधिक मामले भी हो सकते हैं जिनमें नागरिक विवाद का व्यापक या प्रमुख तत्व हो। जहां तक रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति के

प्रयोग का सवाल है, वे एक अलग पायदान पर खड़े होते हैं।

16.8. वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, साझेदारी या अनिवार्य रूप से नागरिक प्रकृति वाले लेनदेन से उत्पन्न होने वाले अपराधों से जुड़े आपराधिक मामले उपयुक्त परिस्थितियों में रद्द किए जा सकते हैं, जहां पक्षों ने विवाद सुलझा लिया है।

16.9. ऐसे मामले में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि विवादकर्ताओं के बीच समझौते के मद्देनजर, दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम हो और आपराधिक कार्यवाही जारी रहने से उत्पीड़न और पूर्वाग्रह पैदा हो; और

16.10. उपरोक्त उपधारणा 16.8 और 16.9 में निर्धारित सिद्धांत का भी एक अपवाद है। राज्य की वित्तीय और आर्थिक भलाई से जुड़े आर्थिक अपराधों के ऐसे निहितार्थ होते हैं जो निजी विवादों के बीच मात्र विवाद के क्षेत्र से परे हैं। जहां अपराधी किसी वित्तीय या आर्थिक धोखाधड़ी या दुष्कर्म

जैसी गतिविधि में शामिल हो, उसे रद्द करने से इनकार करना उच्च न्यायालय के लिए उचित होगा। जिस कृत्य के बारे में शिकायत की गई है उसके परिणाम वित्तीय या आर्थिक व्यवस्था पर भारी पड़ेंगे।”

17. फिर से, **मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य (2019)5 एससीसी 688**, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त बिंदु पर कानून पर विचार किया और पैराग्राफ सं. 15.1 से 15.5 में इस प्रकार धारित किया :-

“15.1. संहिता की धारा 320 के तहत गैर-शमन योग्य अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग अत्यधिक और मुख्य रूप से नागरिक चरित्र के साथ किया जा सकता है, विशेष रूप से वाणिज्यिक लेनदेन से उत्पन्न होने वाले या वैवाहिक विवादों से या पारिवारिक विवाद से उत्पन्न होने वाले अपराधों के लिए और जब पक्षों ने पूरा विवाद आपस में सुलझा लिया हो;

15.2. ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाना चाहिए जिनमें मानसिक विकृति के

जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध शामिल हैं। ऐसे अपराध प्रकृति में निजी नहीं होते हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं;

15.3. इसी तरह, विशेष कानून जैसे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम या लोक सेवकों द्वारा उस क्षमता में काम करते समय किए गए अपराधों को केवल पीड़ित और अपराधी के बीच समझौते के आधार पर रद्द करने के लिए ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए;

15.4. भा.दं.सं. की धारा 307 और शस्त्र अधिनियम आदि के तहत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे और इसलिए इन्हें अकेले व्यक्ति के खिलाफ नहीं बल्कि समाज के खिलाफ अपराध माना जाएगा, और इसलिए, धारा 307 भा.दं.सं. और/या शस्त्र अधिनियम आदि, जिनका समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, के तहत अपराध को इस आधार पर कि पक्षों ने अपना पूरा विवाद आपस में सुलझा

लिया है, संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए रद्द नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, उच्च न्यायालय सिर्फ इस आधार पर अपना फैसला नहीं देगा कि एफ.आई.आर. में भा.दं.सं. की धारा 307 का जिक्र है या इस प्रावधान के तहत आरोप तय किया गया है। उच्च न्यायालय के पास इस बात की जांच करने का विकल्प होगा कि क्या धारा 307 भा.दं.सं. ऐसे ही लगा दी गई है या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त सबूत एकत्र किए हैं, जिनके साबित होने पर धारा 307 भा.दं.सं. के तहत आरोप तय करने में मदद मिलेगी। इस प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय को लगी चोट की प्रकृति, चाहे ऐसी चोट शरीर के महत्वपूर्ण/प्रतिनिधि भागों पर लगी हो, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति आदि पर विचार करने का विकल्प होगा। हालाँकि, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा करना जांच के बाद साक्ष्य एकत्र होने और आरोप पत्र दाखिल होने/आरोप तय होने और/या विचारण के चरण में ही

अनुमन्य होगा। जब मामले की जांच चल रही हो तो ऐसी कवायद की अनुमति नहीं है। इसलिए, नरिंदर सिंह के मामले में इस न्यायालय के फैसले के पैराग्राफ 29.6 और 29.7 में अंतिम निष्कर्ष को सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए और समग्र रूप से और यहां ऊपर बताई गई परिस्थितियों में पढ़ा जाना चाहिए;

15.5. गैर-शमनीय अपराधों के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, जो प्रकृति में निजी हैं और समाज पर गंभीर प्रभाव नहीं डालते हैं, इस आधार पर कि पीड़ित और अपराधी दोनों के बीच समझौता/सुलह हुआ है, उच्च न्यायालय को अभियुक्त के पूर्ववृत्त पर विचार करना आवश्यक है; आरोपी का आचरण, अर्थात्, क्या आरोपी फरार था और वह क्यों फरार था, वह शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने में कैसे कामयाब हुआ आदि।

18. मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण और अन्य (उपरोक्त), के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम शंभु केवट और अन्य (उपरोक्त) के मामले में फैसले पर विचार किया।

19. रिकॉर्ड के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच वास्तविक विवाद प्रतिपक्षी सं. 2 द्वारा आवेदक सं. 1 द्वारा प्रकाशित समाचार पत्र को विज्ञापन दिए जाने से संबंधित है, जो एक संस्थान चला रहा है, जो निजी प्रकृति का है। वर्तमान आपराधिक अभियोजन पक्षकारों के बीच आकस्मिक रूप से उत्पन्न हुआ है और यह वास्तविक घटना का कोई स्वाभाविक परिणाम नहीं है। यह स्पष्ट है कि पक्षों ने समझौता कर लिया है और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है। यदि मुकदमा आगे बढ़ता तो प्रतिपक्षी सं. 2, जो अभियोजन पक्ष का मुख्य गवाह होता, ने मुकदमे में मुकरने के अपने स्पष्ट इरादे की घोषणा कर दी है। इन परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि मेरिट और सच्चाई के अलावा, मुकदमे की कार्यवाही, यदि जारी रखने की अनुमति दी जाती है, तो काफी हद तक निचली अदालत के कीमती समय की बर्बादी हो सकती है।

20. अदालत इस कठोर वास्तविकता से अनभिज्ञ नहीं है कि वर्तमान मामले और अन्य समान मामलों के तथ्य, जिनमें यद्यपि एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोपों में एक

आपराधिक अपराध की सामग्री शामिल प्रतीत होती है, तथापि समझौते के मद्देनजर, दोषसिद्धि की संभावनाएँ न केवल धूमिल हैं, बल्कि, यदि इस तरह के विचारणों को राज्य की सभी आपराधिक अदालतों में चल रहे अन्य सभी विचारणों के साथ जारी रखने की अनुमति दी जाती है, तो मौजूदा मामले जैसे मामलों में विचारण को जारी रखना केवल अन्य मामलों के लिए भारी नुकसान का कारण बन सकता है जहां वादी न्याय के लिए रो रहे हैं।

21. इस प्रकार, समाज में प्रचलित प्रवृत्तियों को देखते हुए, अदालत को अधिक व्यावहारिक और कम तकनीकी दृष्टिकोण अपनाने की सलाह दी जाती है - अन्य मामलों में, जहां वादी अपने अधिकारों के प्रति गंभीर और अपने दृष्टिकोण में अधिक सुसंगत प्रतीत होते हैं, अधिक प्रभावी, कुशल और उचित सुनवाई के लिए, वर्तमान मामले जैसे कुछ आपराधिक मुकदमों को हटा दिया जाए।

22. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और पक्षों के बीच हुए समझौते के संबंध में पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करते हुए और इन सभी कारकों को संचयी रूप से ध्यान में रखते हुए, पक्षकारों के बीच समझौते को स्वीकार किया जाए और आगे भी ध्यान में रखा जाए। नरेंद्र सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य (उपरोक्त), परबतभाई अहीर बनाम गुजरात राज्य और अन्य (उपरोक्त) मध्य प्रदेश बनाम

लक्ष्मी नारायण और अन्य (उपरोक्त), के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी स्थिति के मद्देनजर उपरोक्त मामले की पूरी कार्यवाही को रद्द कर दिया गया है।

23. इस प्रकार धारा 482 के अंतर्गत वर्तमान आवेदन को **अनुमति** प्रदान की जाती है। हालाँकि, आज से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर पक्षों द्वारा उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति, इलाहाबाद के समक्ष लागत का भुगतान जमा किया जाना होगा। इस तरह की लागत इसलिए लगाई जानी चाहिए ताकि विशेष रूप से पक्षों (इस मामले में) और समाज को सामान्य रूप से पता चल सके कि अदालतें कुछ व्यक्तियों के बेईमान और गलत व्यवहार के प्रति मूकदर्शक नहीं बनी रह सकती हैं। जो समाज अपने सदस्यों को अपनी अदालतों का दुरुपयोग करने की अनुमति देगा, उसे अंततः भुगतान पड़ेगा और बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। असली और फर्जी दोनों तरह के मुकदमेबाज हमेशा एक ही कतार में खड़े रहेंगे। अदालतों के पास वास्तविक और फर्जी वादियों के बीच पूर्व-पहचान करने और अंतर करने की कोई व्यवस्था नहीं है। किसी भी मामले में सुनवाई पूरी होने के बाद ही वह अंतर सामने आता है और सुनवाई के लिए समय की आवश्यकता होती है। वास्तव में, अगर अदालतें किसी फर्जी वादी के खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई भी करती हैं, तो प्रक्रिया और निष्पक्षता के नियमों से बंधे होने के कारण, ऐसे मामलों में दो वास्तविक वादियों के मामले की तुलना में अधिक समय लगने की संभावना होती है।

24. ऐसी परिस्थितियों में, हालांकि अभियोजन को आगे जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, तथापि, इस स्तर पर, आवेदकों के खिलाफ लगाए गए आरोपों के पूरी तरह से गलत होने के बारे में कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। अतैव, धारा 482 दं.प्र.सं. के अन्तर्गत वर्तमान आवेदन को अनुमति दी जाती है, जो कि आज से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति, इलाहाबाद के समक्ष रु. 12,500/- (प्रत्येक पक्ष पर 2,500रुपये) की कॉस्ट के भुगतान किए जाने के अधीन होगा।

(2023) 4 ILRA 760

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

21174/2022

बिन्दु एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री माधव प्रसाद

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री रजनीश शुक्ला

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - एफआईआर दर्ज होने के बाद - विवेचन ने आरोप पत्र प्रस्तुत किया - गवाहों ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन किया - चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि की गई -

आपराधिक कार्यवाही को आसानी से निरस्त नहीं किया जा सकता है और धारा 482 सीआरपीसी के तहत निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

आवेदन निरस्त (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. प्रार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव प्रसाद, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री रजनीश शुक्ला को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।
2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत यह आवेदन न्यायिक मजिस्ट्रेट-III, गोरखपुर के न्यायालय में लंबित आपराधिक वाद संख्या 124217 वर्ष 2021 (राज्य बनाम बिंदु चौधरी और अन्य) धारा 323,504,308 भा0द0सं0, थाना कंपियरगंज, जिला गोरखपुर की सम्पूर्ण कार्यवाही को, साथ ही आरोप पत्र दिनांकित 08.08.2021 और प्रार्थी संख्या-1 के विरुद्ध जारी अजमानतीय अधि-पत्र दिनांकित 05.04.2022 को निरस्त करने के लिए योजित किया गया है।
3. संक्षेप में, वाद के तथ्य यह हैं कि विपक्षी संख्या- 2, संजय कुमार ने 01.04.2021 को दिनांक 09.03.2021 की घटना के बारे में एक एन.सी.आर. दर्ज किया कि पुरानी शत्रुता के कारण प्रार्थीगण ने उसे लाठी-डंडा से पीटा था और उसे कई चोटें आई थीं।

4. उसी दिन सुबह 11:40 बजे उनकी मेडिकल जांच की गई, जिसमें चिकित्सक ने पीड़ा की शिकायत की तीन चोटें और सिर के शीर्ष पर घाव की एक चोट पायी, जो बायें कान से 12 से.मी. ऊपर थी, जिसे देख-रेख में रखा गया था।
5. विपक्षी संख्या 2 का सीटी स्कैन किया गया जिसमें बाएं उच्च ललाट क्षेत्र में रक्तस्रावी संलयन देखा गया और बाएं ललाट की हड्डी की बाहरी भाग का फ्रैक्चर भी देखा गया। अंत में सिर की चोट का निष्कर्ष निकाला गया और उसके पश्चात वर्तमान प्राथमिकी धारा 323, 504, 308 आईपीसी के तहत दर्ज की गई। प्रार्थी संख्या 2 से 4 की जमानत याचिका को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या- 2, गोरखपुर द्वारा निरस्त कर दिया गया था। जांच के पश्चात उपरोक्त धाराओं में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है जिसमें प्रार्थी संख्या 2 से 4 उपस्थित हुए और प्रार्थी संख्या -1 की उपस्थिति के लिए समन जारी किया गया।
6. इस याचिका के माध्यम से प्रार्थीगण ने उपरोक्त उपचार की याचना की है और आधार लिया है कि प्रार्थी संख्या- 1 ने भी 09.03.2021 को दोपहर 12:38 बजे संबंधित थाना में धारा 323, 504 आईपीसी के तहत ग्रामीणों के विरुद्ध एन.सी.आर.संख्या 105 वर्ष 2021 दर्ज कराया है, किन्तु विपक्षी संख्या- 2 के विरुद्ध नहीं। आरोप है कि पुरानी रंजिश के कारण
- उसके साथ गाली-गलौज की गई, लाठी-डंडा से पीटा गया, जिससे उसके शरीर पर काफी चोटें आईं। प्रार्थीगण और विपक्षी संख्या - 2 को संबंधित थाना द्वारा धारा 151, 107, 116 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दि० 09.03.2021 को दोपहर 02:50 बजे गिरफ्तार किया गया था और संबंधित पुलिस ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107, 116, 151 के अंतर्गत एस.डी.एम. कैम्पियरगंज, गोरखपुर के न्यायालय में लंबित आपराधिक वाद संख्या 1736 वर्ष 2021 (राज्य बनाम बिंदु कुमार और अन्य) और वाद संख्या 17371 वर्ष 2021 (राज्य बनाम संजय कुमार और अन्य) में दि० 09.03.2021 को चालानी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जो अभी भी लंबित है। इन रिपोर्टों में यह कहा गया है कि 09.03.2021 को कोई घटना नहीं हुई और केवल घटना की आशंका पर पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार किया था।
7. विपक्षी संख्या 2 की सी.एम.ओ. द्वारा चिकित्सकीय जांच की गयी है और सिर का सीटी स्कैन दि०- 12.03.2021 को बिना किसी समय का उल्लेख किए किया गया है। इंजरी रिपोर्ट और सीटी स्कैन रिपोर्ट के आधार पर 22.03.2022 धारा 308 आईपीसी को एन.सी.आर.संख्या 104 वर्ष 2021 में जोड़ा गया है और एनसीआर को एफ.आई.आर. संख्या 77 वर्ष 2021 धारा 323, 504 और

308 भा0द0सं0 में घटनास्थल को प्रदर्शित किये बिना परिवर्तित कर दिया गया है।

8. अधीनस्थ न्यायालयों ने उपहति आख्या (इंजरी रिपोर्ट) को देखते हुए जमानत याचिकाओं को निरस्त कर दिया है। दोनों रिपोर्ट (चालानी और चोट) एक दूसरे का खंडन करती हैं और साबित करती हैं कि प्रकरण झूठा है और न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। विपक्षी संख्या 2 द्वारा ब्रेन हैमरेज जैसी चोट के कारण आवेदन लिखना असंभव है और उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107, 116 और 151 के संबंध में गिरफ्तार किया गया था। अन्वेषण अधिकारी ने 01.04.2021 को विपक्षी संख्या- 2 का बयान और 20.04.2021 को दो साक्षीगण बासमती और किशलावती के साक्ष्य अंकित किये हैं। साक्षीगण ने घटना स्थल व्यक्त नहीं किया है। अन्वेषण अधिकारी ने दि० 22.03.2021 को मानचित्र तैयार किया है जो गलत और मनगढ़ंत है। अन्वेषण अधिकारी ने 11.06.2021 को घटना के तीन महीने पश्चात प्रार्थी संख्या- 4, रंजीत से एक लाठी बरामद की है। बरामदगी झूठी है क्योंकि प्रार्थी के घर के आसपास कोई झाड़ी नहीं है और बरामद लाठी प्रार्थी संख्या 4 के लिए अज्ञात है। अन्वेषण अधिकारी ने काल्पनिक कहानी के आधार पर झूठा आरोप-पत्र प्रस्तुत किया है।

प्रार्थी संख्या- 1, बिंदु के विरुद्ध एन.बी.डब्ल्यू. जारी किया गया है और सभी प्रार्थीगण विचारण का सामना कर रहे हैं। आरोप पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात संज्ञान लिया गया है और उसके विरुद्ध अजमानतीय अधि-पत्र जारी किया गया है।

9. सर्वप्रथम, विपक्षी संख्या- 2 ने प्रार्थीगण को सिविल जज (जूनियर डिवीजन)-III, गोरखपुर के न्यायालय में लंबित सिविल वाद संख्या-297 वर्ष 2021 (जयराम और अन्य बनाम संजय कुमार और अन्य) को बल न देने के लिए बाध्य किया, किन्तु जब वह विफल हो गया, तो उसने सिविल वाद में समझौता करना चाहा, लेकिन जब वह पुनः विफल रहा तो उसने यह झूठा एन.सी.आर./ एफ.आई.आर. दर्ज कराया। एफ.आई.आर. दर्ज करने में 13 दिन का विलम्ब है। चालानी रिपोर्ट के अनुसार दि० 09.03.2021 को कोई घटना नहीं हुई है। एक ही अपराध के लिए दो कार्यवाही नहीं चल सकती। एक एस.डी.एम. के न्यायालय में और एक अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 (2) का उल्लंघन है। इसलिए सम्पूर्ण कार्यवाही निरस्त की जाय।

10.

पूरक शपथ-पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि प्रार्थी संख्या-

4 का नाम "रंजीत" है न कि "रामजीत"।

दबाव डालने के लिए प्रार्थीगण को झूठा फंसाया है।

11. दिनांक- 14.09.2022 को विपक्षी संख्या 2 द्वारा प्रति शपथ-पत्र प्रस्तुत किया गया है, जिसमें वर्तमान याचिका के कथनों और आरोपों से इनकार किया गया है और यह कहा गया है कि मेडिकल रिपोर्ट के पश्चात एन.सी.आर. को एफ.आई.आर. में परिवर्तित किया गया है। साक्षीगण ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन किया है। मेडिकल रिपोर्ट द्वारा भी इसका समर्थन किया गया है और उसके पश्चात आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया है। आवेदन योग्यता से रहित है और निरस्त करने योग्य है।

12. प्रार्थीगण ने दिनांक 19.09.2022 को एक प्रत्युत्तर शपथ-पत्र प्रस्तुत किया है जिसमें प्रति शपथ-पत्र के कथनों को नकारा गया है और इस याचिका के कथनों की पुष्टि की गयी है।

13. सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

14. अभिलेख के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि प्रार्थीगण ने निम्नलिखित आधार लिये हैं :

15. (i) विपक्षी संख्या- 2 ने सिविल वाद संख्या 297 वर्ष 2021 में समझौता करने के लिए

(ii)

(iii) न तो एफ.आई.आर. में और न ही साक्षीगण के साक्ष्य में घटना-स्थल के विषय में कोई कथन या साक्ष्य है।

(iv)

(v) यदि विपक्षी संख्या- 2 इतना घायल था, तो उसके लिए शिकायत लिखना संभव नहीं था।

(vi)

(vii) धारा 107, 116, 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही के अनुसार विपक्षी संख्या - 2 को कोई चोट नहीं आई थी। इस प्रकार, उस दृष्टि से भी विपक्षी संख्या- 2 का कथन, साक्ष्य और मेडिकल रिपोर्ट झूठी और मनगढ़ंत हैं।

(viii)

(ix) एफ.आई.आर. दर्ज करने में अनुचित विलम्ब है।

(x)

16. यह आवेदन निम्नानुसार निर्णीत किया जायेगा।

17. (i) ऐसा कोई पूर्व का तर्क या साक्ष्य नहीं है कि विपक्षी संख्या- 2 ने कभी भी अपने एनसीआर में भी सिविल मामले से समझौता करने के लिए प्रार्थीगण पर दबाव डाला है, यह

नहीं लिखा गया है कि समझौते के बहाने विपक्षी संख्या- 2 और अन्य आरोपी व्यक्तियों ने प्रार्थी संख्या- 1 पर हमला किया और गंभीर चोटें पहुंचायी । उनके एन.सी.आर. में संजू पुत्र हरिराम नामक मिलता जुलता नाम आरोपियों में से एक के रूप में उल्लेख किया गया है । यहां विपक्षी संख्या-2 संजय कुमार पुत्र श्रीराम हैं । हालांकि, प्रार्थी संख्या-1 द्वारा दर्ज एन.सी.आर. से यह स्थापित किया गया है कि दि० 09.03.2021 को सुबह लगभग 09:00 बजे यह घटना हुई थी जैसा कि विपक्षी संख्या- 2 ने आरोप लगाया था । इसलिए, इस स्तर पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि विपक्षी संख्या-2 सिविल वाद में समझौता करने के लिए प्रार्थी संख्या-1 पर दबाव डाल रहा था।

16(ii). निश्चित रूप से विपक्षी संख्या-2 द्वारा दर्ज एन.सी.आर. में घटना-स्थल का उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन इसके अवलोकन से यह सुस्पष्ट है कि संबंधित गांव में घटना हुई थी । यह भी सच है कि एन.सी.आर. को एफ.आई.आर. में परिवर्तन के पश्चात एफ.आई.आर. में घटना के स्थान का कोई संदर्भ नहीं है । हालांकि, प्रार्थीगण की ओर इशारा करते हुए, अन्वेषण अधिकारी द्वारा घटना-स्थल का मानचित्र तैयार किया गया है, जहां घटना-स्थल विपक्षी संख्या- 2,

संजय की पट्टा भूमि दिखाया गया है। एफ.आई.आर. एक विश्वकोश नहीं है । यह केवल पुलिस तंत्र को गति देने का एक तरीका है। यदि घटना-स्थल, साक्षियों या यहां तक कि कुछ आरोपी व्यक्तियों के नाम छोड़ दिये गये हैं, तो यह अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है । इसलिए इस तर्क को भी निरस्त किया जाता है ।

17(iii). प्रार्थीगण का अगला तर्क यह है कि यदि विपक्षी संख्या- 2 इतना घायल था तो उसने शिकायत कैसे लिखी । इस न्यायालय के अनुसार, इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि एफ.आई.आर. लिखते समय विपक्षी संख्या-2 बिस्तर पर था या खुद शिकायत लिखने में असमर्थ था। कुछ रोगी चिकित्सा के दौरान भी गतिशील रहते हैं। यह अभियोजन पक्ष का प्रकरण नहीं है कि विपक्षी संख्या-2 बिस्तर पर था या बेहोश था या उसका हाथ इतनी बुरी तरह से घायल था कि वह शिकायत लिखने में असमर्थ था । इसलिए, इस तर्क को भी निरस्त किया जाता है ।

18(iv). जहां तक चौथे तर्क का प्रश्न है, एफ.आई. बिस्मिल्लाह खान की रिपोर्ट से यह सुस्पष्ट है कि दोनों पक्ष एक-दूसरे के साथ लड़ने के लिए अड़े थे और शांत रहने के लिए तैयार नहीं थे और एक-दूसरे को मारने के

लिए अड़े थे और भविष्य में देखने की धमकी भी दी थी। संज्ञेय अपराध होने की आशंका थी इसलिए प्रार्थीगण की ओर से बिंदु, रंजीत और सुजीत और विपक्षी संख्या-2 की ओर से संजय और जितेंद्र कुमार पर 09.03.2021 को लगभग 02:50 बजे धारा 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रकरण दर्ज किया गया।

19. सामान्यतया यह देखा गया है कि पुलिस अपने थाने में अपराध की संख्या में वृद्धि से बचने के लिए असंज्ञेय रिपोर्ट / प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से बचती है। इसलिए वे भारतीय दंड संहिता के तहत प्रकरण दर्ज कराना पसंद नहीं करते। यदि विपक्षी संख्या-2 को थाना में ले जाया गया और 12.03.2021 को उसकी चिकित्सकीय जांच की गयी, तो निश्चित रूप से वह पुलिस अभिरक्षा में रहा होगा, यदि उसे जमानत पर अवमुक्त नहीं किया गया होगा। धारा 107, 116 और 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत चालानी इस तथ्य की विश्वसनीयता परखने का आधार नहीं है कि विपक्षी संख्या-2 को प्रार्थीगण द्वारा पीटा नहीं गया था क्योंकि व्यवसाय के सामान्य क्रम में उनकी जिला अस्पताल, गोरखपुर में जांच की गई है और सीटी स्कैन भी कराया गया है जिसमें उपरोक्त चोट पाई गई है। इस समय केवल धारा 107, 116

और 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत चालानी रिपोर्ट के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि चोट,सी.टी. स्कैन रिपोर्ट,एन.सी.आर. को एफ.आई.आर. में परिवर्तन और उचित जांच के पश्चात आरोप पत्र प्रस्तुत करना और संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेना, सभी झूठे और जाली और आधारविहीन हैं।

20. विपक्षी संख्या-2 ने रेडियोलॉजिस्ट डॉ. विजय कुमार का कथन प्रस्तुत किया है जिसमें उन्होंने कहा है कि उन्हें सीटी स्कैन में ऊपर बताए अनुसार सिर में चोट लगी है। उन्होंने रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर की पुष्टि की है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर प्रार्थीगण के अधिवक्ता के इस तर्क को भी निरस्त किया जाता है।

- 21(v). निश्चित रूप से एफ.आई.आर. दर्ज करने में देरी हुई है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि चूंकि धारा 107,116 और 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कार्यवाही संबंधित पुलिस द्वारा शुरू की गई थी और विपक्षी संख्या-2 अपने इलाज में व्यस्त रहा होगा और धारा 107, 116 और 151 दंड प्रक्रिया संहिता के संबंध में विधिक सहायता प्राप्त कर रहा होगा, इसलिए एफ.आई.आर. दर्ज करने में देरी अभियोजन के वाद को निरस्त करने

का एकमात्र आधार नहीं है। इसलिए इस तर्क को भी निरस्त किया जाता है।

22. उपरोक्त चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का विचार है कि प्रार्थीगण के तर्क में कोई तात्त्विक सार नहीं है। एफ.आई.आर. दर्ज करने के पश्चात, विवेचनाधिकारी ने आई.पी.सी. की धारा-323,504 और 308 के तहत आरोप-पत्र प्रस्तुत किया है। साक्षियों ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन किया है जिसकी पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य से भी हुई है। एक ओर जहां पुलिस किसी भी पक्ष को यहाँ तक कि प्रार्थी संख्या-1 को भी कोई चोट नहीं दिखा रही है, वहीं दूसरी ओर प्रार्थी संख्या-1, बिंदु स्वयं स्वीकार करता है कि उसे चोट लगी थी और संबंधित थाना के विवेचनाधिकारी स्वीकार कर रहे हैं कि प्रार्थीगण द्वारा हत्या का प्रयास किया गया है।

23. यदि न्यायालय यह नहीं पाता है कि आरोप-पत्र और सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाही न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या न्याय के लक्ष्यों को सुरक्षित करने की कोई आवश्यकता है या धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के निहितार्थ द्वारा संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने की कोई आवश्यकता है तो आपराधिक कार्यवाही, आरोप पत्र और संज्ञान आदेश को हल्के ढंग से निरस्त नहीं

किया जा सकता है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

24. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत वर्तमान याचिका गुण रहित है। न्याय के लिए सत्य की प्राप्ति हेतु वाद का सम्पूर्ण विचारण आवश्यक है। अतः वर्तमान याचिका निरस्त की जाती है।

(2023) 4 ILRA 764

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,
धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या
22789/2022

विश्राम एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री सौरभ यादव

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

विलंब के बाद दर्ज एफआईआर -दहेज हत्या का आरोप- धारा 482 सीआरपीसी के तहत, न्यायालय आरोपों की सत्यता की जांच नहीं कर सकता है-जिसका निर्णय विचारणीय न्यायालय द्वारा किया जाएगा-धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग असाधारण वाद में किया जाएगा-विवाह के सात वर्षों के भीतर मृत्यु-अप्राकृतिक मृत्यु-ससुराल के स्थान पर।

आवेदन अस्वीकृत (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. हरियाणा एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य, 1992 अनुपूरक (1) एससीसी 335
2. रामवीर उपाध्याय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2022 लाइव लॉ (SC) 396
3. आंध्र प्रदेश बनाम गौरीशेट्टी महेश एवं अन्य (2010) 11 एससीसी 226
4. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1960 एससी 866
5. एससी 866 और हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 एससीसी (सीआर.) 426

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी
चौहान, द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आज न्यायालय में दायर पूरक शपथपत्र पत्रावली पर लिया गया है। कार्यालय को इसे पंजीकृत करने का निर्देश दिया जाता है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री सौरभ यादव, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री केपी पाठक को सुना, एवं पत्रावली पर उपलब्ध समस्त सामग्री का अवलोकन किया।

वर्तमान 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता आवेदन विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बदायूं की न्यायालय में विचाराधीन शिकायत मुकदमा संख्या 1087/2021 (अवधेश बनाम अवनीश और अन्य) अंतर्गत धारा 304बी, 342 भारतीय दण्ड संहिता थाना-उसहैत, जिला-बदायूं में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बदायूं द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 10.12.2021 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

अभियोजन के मामले के अनुसार, मृतका के भाई द्वारा आवेदकों और तीन अन्य के खिलाफ 08.01.2021 को एक आवेदन अंतर्गत धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता दायर किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसकी बहन की शादी आवेदक संख्या 2 (अवनीश) के साथ 26.06.2018 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुई थी और विपक्षी संख्या 2 के परिवार के सदस्यों ने अपनी क्षमता के अनुसार दहेज दिया था, लेकिन अतिरिक्त दहेज की मांग पूरी न होने के कारण मृतका को परेशान किया जा रहा था। दिनांक 31.12.2020 को समय लगभग दोपहर 03:00 बजे शिकायतकर्ता/विपक्षी पक्ष संख्या 2 को ग्रामीण द्वारा सूचना प्राप्त हुई कि मृतका को उसके ससुराल वालों द्वारा मार डाला गया है। सूचना मिलने पर जब शिकायतकर्ता, उसके पिता नरेश और भाई रमेश ससुराल पहुंचे तो मृतका के ससुराल वालों के परिवार वालों ने गलत तरीके से उन्हें बंधक बना लिया और पुलिस को सूचना दिए बिना ही अंतिम संस्कार कर दिया। यह भी आरोप है कि अतिरिक्त दहेज की मांग पूरी न होने पर मृतका की हत्या कर दी गई। इसके बाद, शिकायतकर्ता प्राथमिकी दर्ज कराने के लिए संबंधित पुलिस स्टेशन गया, लेकिन कोई ध्यान नहीं दिया गया, इसलिए, वर्तमान शिकायत दर्ज की गई है। इसके बाद, धारा 200 और 202 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज करने के बाद आवेदकों को सम्मन किया गया है। इसलिए, वर्तमान आवेदन अंतर्गत धारा 482 दायर किया गया है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि आवेदक निर्दोष हैं और उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है जिसका कारण वही बता सकते हैं। उन्होंने आगे कहा कि शिकायत घटना के लगभग आठ दिनों की देरी के बाद दर्ज की गई है और इस बात का कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। आवेदकों के विरुद्ध शिकायत में लगाए गए आरोप झूठे और ओछे हैं क्योंकि मृतका की प्राकृतिक मौत हुई थी क्योंकि वह किसी बीमारी से पीड़ित थी जिसके लिए दस्तावेज़ शपथपत्र के संलग्नक संख्या 7 के रूप में संलग्न किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि दाह संस्कार के समय मृतका के पिता और परिवार के अन्य सदस्य और पुलिस भी मौजूद थी, वीडियो रिकॉर्ड किया गया है, किंतु, दाह संस्कार में सम्मिलित होने के बाद, आवेदकों को परेशान करने के लिए वर्तमान शिकायत दर्ज की गई है जबकि मृतका की स्वाभाविक मौत हुई है। उन्होंने आगे कहा कि आवेदकों के खिलाफ किसी भी अपराध का खुलासा नहीं किया गया है और वर्तमान अभियोजन उत्पीड़न पैदा करने के उद्देश्य से गलत इरादे से शुरू किया गया है। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में कुछ दस्तावेज़ों और बयानों को इंगित किया। अतः, उनका कहना है कि समन आदेश के साथ-साथ पूरी कार्यवाही को इस न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का विरोध करते हुए कहा कि आवेदक संख्या 1 और 2 क्रमशः मृतका के

ससुर और पति हैं। पीड़िता की मौत उसकी शादी के सात साल के भीतर हुई थी। उसकी मौत ससुराल में हुई है और यह अप्राकृतिक मौत है। दहेज की मांग पूरी न होने पर उसके साथ क्रूरता की गई। उन्होंने आगे कहा कि आवेदन के पृष्ठ 81 पर संलग्न दस्तावेज़ यह दर्शाता है कि आवेदकों ने मृतका के सामान के साथ-साथ उपहार भी, जो शादी के समय दिए गए थे, लौटा दिए हैं, जो दर्शाता है कि पक्षकारों के बीच कुछ विवाद थे एवं मृतका की मृत्यु के बाद, अपने आप को बचाने के लिए आवेदकों ने उपरोक्त चीजें वापस कर दी हैं। इलाज संबंधी दस्तावेज़ों से यह पता नहीं चल पा रहा है कि मृतका ऐसी गंभीर बीमारी से पीड़ित थी या नहीं, जिसके कारण उसकी मौत हुई। उन्होंने आगे कहा कि शिकायत में और साथ ही धारा 200 और 202 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत बयान में आवेदकों के खिलाफ विशिष्ट आरोप हैं। उन्होंने आगे कहा कि आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए सभी तर्क तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं। पत्रावली के अवलोकन से, प्रथम दृष्टया इस चरण में यह नहीं कहा जा सकता कि आवेदकों द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया है।

मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया है और वर्तमान आवेदन की पत्रावली का अध्ययन किया है।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए सभी तर्क तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं। न्यायालय से यह भी कहा गया है कि वह अभियोजन साक्ष्य के प्रमाणक मूल्य का निर्धारण करे और विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तथ्यात्मक विवरणों की

विभिन्न जटिलताओं के आधार पर उसका मूल्यांकन करे। अभियोजन पक्ष की ओर से प्रस्तुत सामग्री की सत्यता और विश्वसनीयता पर प्रश्न उठाया गया है और झूठे निहितार्थ की दलील दी गई है।

धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय किसी शिकायत में आरोपों की सत्यता की जांच नहीं करता है, सिवाय असाधारण दुर्लभ मामलों में, जहां यह साफ तौर पर स्पष्ट है कि आरोप झूठे हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। न्यायालय इस तथ्य पर गौर नहीं कर सकता कि शिकायत में लगाए गए आरोप सही हैं या गलत और इसका निर्णय विचारण न्यायालय को करना होगा, इसलिए ऐसे मामलों में, जैसा कि वर्तमान मामला है, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि, आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने हेतु धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति व्यापक है, किंतु ऐसी शक्ति का प्रयोग, असाधारण मामलों में, सावधानी से किया जाना चाहिए। धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग इतनी आसानी से नहीं किया जाना चाहिए।

1992 सप्लीमेंट्री(1) एससीसी 335 में प्रकाशित हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य के मामले में शीर्ष अदालत ने उपरोक्त बात कही है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है:-

"103. हम इस आशय की सतर्कता बरतने को सलाह भी देते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और

वह भी दुर्लभतम मामलों में; कि अदालत को प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा की जांच शुरू करने में उचित नहीं ठहराया जाएगा और असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी इच्छा या मनमर्जी के अनुसार कार्य करने का मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं।"

2022 लाइव्लॉ (एससी) 396 में प्रकाशित रामवीर उपाध्याय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के नवीनतम फैसले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियां भी की गई हैं। उपरोक्त निर्णय का पैराग्राफ संख्या 39 इस प्रकार है: -

"39. हमारी सुविचारित राय में धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके आपराधिक कार्यवाही को केवल इसलिए शुरुआत में ही रोका नहीं जा सकता क्योंकि शिकायत एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी द्वारा दर्ज की गई है। यह संभव है कि एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी के इशारे पर झूठी शिकायत दर्ज की गई हो। फिर भी, ऐसी संभावना आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत हस्तक्षेप को उचित नहीं ठहराएगी। जैसा कि ऊपर देखा गया है, पूर्व के आपराधिक मामले को बंद करने के बाद कथित कृत्यों के द्वारा याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रतिशोध की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। शिकायत में लगाए गए आरोप अत्याचार अधिनियम के तहत अपराध हैं। आरोप सही हैं या गलत, इसका निर्णय मुकदमे में होगा। धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय किसी

शिकायत में आरोपों की सत्यता की जांच नहीं करता है, सिवाय असाधारण दुर्लभ मामलों में जहां यह साफ तौर पर स्पष्ट है कि आरोप झूठे हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं... "

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (2010) 11 एससीसी 226 में प्रकाशित आंध्र प्रदेश राज्य बनाम गौरीशेट्टी महेश और अन्य के एक मामले में माना है कि यद्यपि धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत उच्च न्यायालय के पास मौजूद शक्तियां व्यापक हैं, परंतु, ऐसी शक्तियों के प्रयोग में सावधानी/ सतर्कता की आवश्यकता होती है। हस्तक्षेप ठोस सिद्धांतों पर होना चाहिए और वैध अभियोजन को दबाने के लिए अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट किया गया था कि यदि शिकायत में लगाए गए आरोप उस अपराध का गठन नहीं करते हैं जिसका संज्ञान मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया है, तो उच्च न्यायालय धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए इसे रद्द कर सकता है।

बल्कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय या भारत के संविधान की धारा 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, शिकायत को तभी रद्द किया जा सकता है यदि वह किसी अपराध का खुलासा नहीं करती है या यदि कोई कानूनी बाधा है जो उसके आधार पर कार्यवाही करने से रोकती है। एआईआर 1960 एससी 866 में प्रकाशित आरपी कपूर बनाम पंजाब राज्य और 1992 एससीसी (सीआर) 426 में प्रकाशित हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल में शीर्ष अदालत के

निर्णय, कुछ श्रेणियों को, जो किसी शिकायत या आरोप पत्र को रद्द करने को उचित ठहरा सकते हैं, उदाहरण के माध्यम से पहचानते हुए, इस संबंध में कानून की स्थिति को स्पष्ट करते हैं।

वर्तमान मामले में, समग्र रूप से शिकायत पर गौर करने पर, इस न्यायालय ने पाया कि पीड़िता की मृत्यु उसकी शादी के सात साल के भीतर हुई थी। उसकी मौत ससुराल में हुई है और यह अप्राकृतिक मौत थी। दहेज की मांग पूरी न होने पर उसके साथ क्रूरता की गई। न्यायालय को यह मानना भी मुश्किल हो रहा है कि धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शिकायत को रद्द करने का मामला बनाया गया है। धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके आपराधिक कार्यवाही को शुरुआत में ही मात्र इसलिए खत्म नहीं किया जा सकता है क्योंकि शिकायत दुर्भावनापूर्ण इरादे से दर्ज की गई है।

धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय किसी शिकायत में आरोपों की सत्यता की जांच नहीं करता है, सिवाय असाधारण दुर्लभ मामलों में जहां यह साफ तौर पर स्पष्ट है कि आरोप झूठे हैं या किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत ऐसा कोई मामला नहीं है जिसे बिना आगे की सुनवाई के शुरू में ही रद्द कर दिया जाना चाहिए।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि वर्तमान मामला सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी श्रेणी में नहीं आता है, जो

कार्यवाही को रद्द करने के लिए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप को उचित ठहरा सकता है। इसलिए, समन आदेश के साथ-साथ उपरोक्त शिकायत के मामले की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है क्योंकि मुझे अदालत की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग भी नहीं दिखता है।

वर्तमान आवेदन में योग्यता नहीं है और तदनुसार, इसे अस्वीकार किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 768

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

23735/2022

संलग्न

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

13494/2021

सईद अहमद

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अतुल शर्मा, श्री अजय कुमार शर्मा, श्री कार्तिकेय सरन

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री शम्सुद्दीन अहमद

तथ्य को छिपाना- आवेदक ने पहले समन आदेश और आरोप-पत्र को निरस्त करने के लिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत न्यायालय का दरवाजा खटखटाया- एक पुनरीक्षण आदेश को निरस्त करने के लिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत एक और आवेदन दायर

किया- फिर वह आवेदन की कार्यवाही में तेजी लाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष गया- आगे बेहतर याचिका दायर करने की स्वतंत्रता के साथ इसे निरस्त करने के लिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत लंबित आवेदन में एक अन्य आवेदन दायर किया- किसी भी एक याचिका के तार्किक निष्कर्ष की प्रतीक्षा नहीं की- पूर्ण प्रकटीकरण के साथ आपराधिक पुनरीक्षण दायर नहीं किया गया- छिपाने का कार्य- आवेदन निरस्त कर दिया गया। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. भास्कर लक्ष्मण जाधव बनाम करमवीर काकासाहेब वाघ एजुकेशन सोसायटी: (2013) 11 एससीसी 531
2. मोती लाल सोनगरा बनाम प्रेम प्रकाश @ पप्पू: (2013) 9 एससीसी 199
3. विजय कुमार घई बनाम पश्चिम बंगाल राज्य: (2022) 7 एससीसी 124

(माननीय न्यायमूर्ति समित गोपाल, द्वारा प्रदत्त)

1. धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान दो आवेदन एक साथ जुड़े हुए हैं क्योंकि वे एक ही मामले में एक ही आरोपी के हैं और इस तरह एक आम निर्णय द्वारा एक साथ फैसला किया जा रहा है।

2. आवेदक सईद अहमद ने शुरू में निम्नलिखित प्रार्थना के साथ धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक आपराधिक विविध आवेदन संख्या 13494 वर्ष 2021 (सईद

अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)
दायर किया: -

"इसलिए, सम्मानपूर्वक यह प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को अनुमति देने की कृपा करे और आरोप पत्र दिनांकित 23.06.2019 और साथ ही सी.जे.एम, इलाहाबाद की अदालत में लंबित धारा 406, 420 भ०द०वि०, थाना-सिविल लाइंस, जिला इलाहाबाद के तहत केस क्राइम नंबर 0734 वर्ष 2017 से उत्पन्न सम्मन आदेश दिनांक 27.11.2020 को रद्द कर दे।

यह भी प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान आवेदन के लंबित रहने के दौरान धारा 406, 420 भ०द०वि०, थाना-सिविल लाइंस, जिला इलाहाबाद के तहत केस क्राइम नंबर 0734 वर्ष 2017 की पूरी कार्यवाही पर रोक लगाने की कृपा करे।

3. आवेदक सईद अहमद ने निम्नलिखित प्रार्थना के साथ धारा 482 द०प्र०स० संख्या 23735 वर्ष 2022 (सईद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के तहत एक और आपराधिक विविध आवेदन भी दायर किया:-

"इसलिए, यह सबसे सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय विनम्रतापूर्वक आवेदन को अनुमति देने की कृपा करे और सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा पारित 15.04.2022 के आक्षेपित आदेश के साथ-साथ सी.जे.एम. इलाहाबाद की अदालत

में लंबित धारा 406, 420 भ०द०वि०, थाना सिविल लाइंस, जिला इलाहाबाद के तहत 2017 के केस क्राइम नंबर 0734 से उत्पन्न होने वाली पूरी कार्यवाही को रद्द करने की कृपा करे। आगे यह प्रार्थना की जाती है कि केस क्राइम नंबर 0734 वर्ष 2017 से उत्पन्न केस नंबर 05 (राज्य बनाम सईद अहमद) में धारा 406, 420 भ०द०वि०, थाना-सिविल लाइंस, जिला इलाहाबाद के तहत सी.जे.एम, इलाहाबाद की अदालत में लंबित इस माननीय न्यायालय के समक्ष इस आवेदन के लंबित रहने के दौरान आगे की कार्यवाही पर रोक लगाई जाए।"

4. संक्षेप में वर्तमान मामले में उत्पन्न होने वाले तथ्य यह हैं कि 25.11.2017 को नबी बख्श द्वारा सईद अहमद (वर्तमान आवेदक), कवि अहमद पुत्र सईद अहमद और शमीम अहमद के खिलाफ धारा 406, 420 भ०द०वि० के तहत 2017 के केस क्राइम नंबर 734 के रूप में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उसी में आरोप यह था कि 15.05.2008 से 08.06.2008 तक, पहले सूचनाकर्ता ने सईद अहमद से संपत्ति खरीदी, जिसके लिए उसने विभिन्न खातों के विभिन्न बैंक खातों से 80 लाख रुपये के कई चेक दिए। जब पहले सूचनाकर्ता ने आवेदक से उसी के लिए बिक्री-विलेख निष्पादित करने का अनुरोध किया, तो उसने किसी न किसी बहाने से इसमें देरी करना जारी रखा। इसके बाद जब उसने अपने पैसे वापस मांगे तो उसे धमकी दी गई। आवेदक के साथ सौदा तय करने के बाद, उक्त जमीन को होटल मिलान के सरदार जोगेंद्र सिंह को बेचने का फैसला किया गया और

आरोपी द्वारा अग्रिम धन लिया गया और धोखाधड़ी के इरादे से, वह एक इमारत का निर्माण कराने के लिए एक नक्शा स्वीकृत करने की कोशिश कर रहा है। उसने बिक्री का एग्रीमेंट भी कराया है और अन्य लोगों के साथ रजिस्ट्रेशन कराया है। मामले की जांच की गई और आवेदक सईद अहमद के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 406 के तहत दिनांक 23.06.2019 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। जहां तक कवि अहमद और शमीम अहमद का संबंध है, वे आरोपी व्यक्ति थे जिनके खिलाफ आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था और उनके नाम आरोप पत्र की कॉलम 12 में थे। विचारण न्यायालय ने बाद में 27.11.2020 को चार्जशीट पर संज्ञान लिया और आरोपी आवेदक को भ०द०वि० की धारा 406 के तहत तलब किया। इसके बाद आवेदक के खिलाफ दिनांक 07.03.2021 को एक पूरक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें भ०द०वि० की धारा 420 भी जोड़ी गई। आवेदक ने दूसरी चार्जशीट की वैधता को चुनौती देते हुए संबंधित अदालत के समक्ष पेपर नंबर 16-खा के तहत एक आवेदन दायर किया। इस प्रकार वर्तमान याचिकाएं ऊपर बताई गई प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई हैं। आवेदक को 11 अन्य आपराधिक मामलों में शामिल दिखाया गया है, जिनका खुलासा किया गया है और संबंधित आपराधिक विविध आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के पैरा 37 में समझाया गया है, जो कि धारा 482 द०प्र०स० संख्या 13494 वर्ष 2021 के समर्थन में दायर किया गया है, इसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"37. आवेदक के खिलाफ आपराधिक इतिहास को स्थिति के साथ नीचे वर्णित किया जा रहा है:

I. केस क्राइम नंबर 363 वर्ष 2014, धारा 406, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि०, थाना-सिविल लाइंस, जिला इलाहाबाद के तहत जिसमें आवेदक को जमानत दी गई है।

II. केस क्राइम नंबर 412 वर्ष 1993, धारा 365, 347, 386, 506 भ०द०वि०, थाना-सिविल लाइंस, जिला इलाहाबाद के तहत जिसमें आवेदक को जमानत दी गई है

III. केस क्राइम नंबर 707 वर्ष 2008, धारा 120-बी, 420, 467, 468 भ०द०वि०, थाना-कर्मलगंज, जिला इलाहाबाद के तहत जिसमें 16.03.2009 को अंतिम रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

IV. मुकदमा अपराध संख्या 706 वर्ष 2008, धारा 120-बी, 420, 467, 468 भ०द०वि०, थाना-कर्मलगंज, जिला इलाहाबाद के तहत जिसमें 19.04.2009 को अंतिम रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

बनाम मामला अपराध संख्या 706 वर्ष 2008, धारा 120-बी, 420, 467, 468 भ०द०वि०, थाना-कर्मलगंज, जिला इलाहाबाद के तहत जिसमें 26.03.2009 को अंतिम रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

VI. केस क्राइम नंबर 697 वर्ष 2008, धारा

120-बी, 420, 467, 468 भ०द०वि०, थाना-कर्नलगंज, जिला इलाहाबाद के तहत जिसमें 26.03.2009 को अंतिम रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

VII. केस क्राइम नंबर 696 वर्ष 2008, धारा 120-बी, 420, 467, 468 भ०द०वि०, थाना-कर्नलगंज, जिला इलाहाबाद के तहत जिसमें 19.04.2009 को अंतिम रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

VIII. धारा 420 भ०द०वि० के तहत 2008 का केस क्राइम नंबर 80, थानाझुंसी (सिविल लाइंस), जिला इलाहाबाद जिसमें 19.04.2009 को अंतिम रिपोर्ट दर्ज की गई थी। (5)

IX. धारा 384, 420, 467, 468, 471, 504, 506, 120-बी भ०द०वि०, थाना-सिविल लाइंस, जिला इलाहाबाद के तहत 2008 का केस क्राइम नंबर 80 जिसमें 02.05.2008 को अंतिम रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

X. धारा 64, 302, 201 भ०द०वि०, थाना-करछना, जिला इलाहाबाद के तहत 2001 का मुकदमा अपराध संख्या 75 जिसमें 30.10.2012 को अंतिम रिपोर्ट दायर की गई थी।

XI. केस क्राइम नंबर 1038 वर्ष 1992, धारा 147, 148, 149, 307, 506 भ०द०वि०, थाना-अजात, जिला इलाहाबाद के तहत जिसमें अंतिम रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

5. शपथ पत्र के पैरा 36 में यह कहा गया है कि आवेदक एक पूर्व विधायक और समाज में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। उन्हें एक बूढ़ा और बीमार व्यक्ति कहा जाता है जो विभिन्न बीमारियों से पीड़ित है और कई बार अस्पताल में भर्ती हो चुका है।

6. इसके बाद सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 15.04.2022 के आदेश और विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित मामले की पूरी कार्यवाही को चुनौती देते हुए धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक आपराधिक विविध आवेदन संख्या 23735 वर्ष 2022 की दायर किया गया था।

7. आवेदक द्वारा सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष दिनांक 27.11.2020 के आदेश के खिलाफ एक आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया गया था, जिसके द्वारा सी. जे. एम, इलाहाबाद ने धारा 406 भ०द०वि० के तहत अपराध का संज्ञान लिया था। उक्त आपराधिक संशोधन को 71 के आपराधिक संशोधन संख्या 2022 के रूप में गिना गया था। उक्त संशोधन जैसा कि सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष दायर किया गया था, जिसका जापन पूरक शपथ पत्र दिनांक 19.09.2022 के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न किया गया है, दिनांक 27.01.2022 निम्नलिखित प्रार्थना के साथ है:-

"इसलिए यह सबसे सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय कृपया निचली अदालत से रिकॉर्ड को तलब करने की कृपा करें और ए.सी.जे. एम. कोर्ट नंबर 4, इलाहाबाद द्वारा 2020 के आपराधिक

मामले संख्या-05, धारा 406 भ०८०वि०, थाना-सिविल लाइंस, अपराध संख्या 0734 2017 के जिला प्रयागराज / इलाहाबाद में पारित आदेश दिनांक 27.11.2020 को रद्द कर दें।"

8. आपराधिक विविध आवेदन यूएस 482 द०प्र०स० संख्या 13494 वर्ष 2021 में, वापसी के लिए एक आवेदन दिनांक 18.01.2022 को निम्नलिखित प्रार्थना के साथ दायर किया गया था: -

"इसलिए, सबसे सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय आवेदन को अनुमति देने की कृपा करे धारा 482 ८०प्र०स० के तहत और आपराधिक विविध आवेदन को खारिज करने की कृपा करे क्योंकि इसे नए सिरे से दायर करने की स्वतंत्रता के साथ वापस ले लिया गया है ताकि न्याय किया जा सके।

9. निकासी आवेदन के समर्थन में उक्त हलफनामे के पैरा 4 में इसे वापस लेने का कारण बताया गया है जिसमें लिखा गया है कि कुछ टाइपिंग त्रुटियां और साथ ही लिपिकीय त्रुटियां हैं जिन्हें पूरक हलफनामे द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है और इस तरह आवेदक उक्त आपराधिक विविध आवेदन पर जोर नहीं देता है जिसे नए सिरे से दायर करने की स्वतंत्रता के साथ वापस ले लिया गया है। उक्त हलफनामे के पैरा 4 में इस प्रकार है: -

"4. इस माननीय न्यायालय के समक्ष उपरोक्त आपराधिक विविध आवेदन के लंबित रहने के

दौरान, यह बताया गया है कि हलफनामे में कुछ टाइपिंग के साथ-साथ लिपिकीय त्रुटियां भी हैं, इसे पूरक हलफनामे द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है। इसलिए आवेदक वर्तमान आपराधिक विविध आवेदन पर जोर नहीं देना चाहता है और इसे खारिज कर दिया जा सकता है क्योंकि इसे नए सिरे से दायर करने की स्वतंत्रता के साथ वापस ले लिया गया है।

10. उक्त आवेदन को दिनांक 20.01.2022 के आदेश के तहत पिछले कागजात के साथ सूचीबद्ध करने का आदेश दिया गया था और निपटान के लिए भी लंबित था।

11. इस बीच, उक्त आपराधिक पुनरीक्षण सत्र न्यायाधीश के समक्ष दायर किया गया था जिसमें उक्त आवेदन का प्रकटीकरण द०प्र०स० की धारा 482 के तहत किया गया है। पैरा 6 में, "संक्षेप में तथ्य" के शीर्षक के तहत, जिसमें "आधार" से पहले छह पैराग्राफ शामिल हैं, जैसा कि संशोधन में लिया गया है, इस न्यायालय के समक्ष द०प्र०स० की धारा 482 के तहत एक याचिका के लंबित होने के संबंध में एक प्रकटीकरण किया गया है। उसी का पैरा 6 इस प्रकार है:-

"6. कि संशोधनवादी ने मामले की चार्जशीट को रद्द करने के लिए माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष द०प्र०स० की धारा 482 के तहत एक याचिका दायर की है, जो लंबित है।

12. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री कार्तिकेय सरन और श्री अतुल शर्मा, को धारा

482 द०प्र०स० के तहत आपराधिक विविध आवेदन संख्या 23735 वर्ष 2022 में सुना और आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अतुल शर्मा, को यू/एस 482 द०प्र०स० नंबर 13494 वर्ष 2021, श्री शमसुद्दीन अहमद, प्रथम सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और श्री जे.बी सिंह, द०प्र०स० की धारा 482 के तहत दोनों आवेदनों में राज्य के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुना।

13. इस न्यायालय ने दोनों याचिकाओं के पूरे रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

14. आपराधिक विविध आवेदन यू/एस 482 द०प्र०स० संख्या 13494 वर्ष 2021 (सईद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने 18.01.2022 को अपना आवेदन पर दबाव न डालने और वापस लेने का आग्रह किया।

15. धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 23735 वर्ष 2022 (सईद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में आवेदक के विद्वान अधिवक्ताओं ने तर्क दिया कि आवेदक के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही पूरी तरह से अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। यह तर्क दिया जाता है कि पुनरीक्षण न्यायालय ने मामले के गुण- दोष में जाए बिना और अवैध और मनमाने तरीके से दिनांक 15.04.2022 के आक्षेपित आदेश के तहत संशोधन को अवैध रूप से खारिज कर दिया है। यह तर्क दिया जाता है कि विवेचनाधिकारी को सह-आरोपी कवि अहमद और शमीम अहमद के खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला और इस तरह उन्हें बरी

कर दिया गया। इससे पता चलता है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य झूठे और मनगढ़ंत हैं क्योंकि उनका नाम भी प्राथमिकी में था और उनके खिलाफ आरोप थे। यह तर्क दिया जाता है कि विचारण न्यायालय ने न्यायिक दिमाग का इस्तेमाल किए बिना यांत्रिक तरीके से, चार्जशीट पर संज्ञान लिया और आवेदक को दिनांक 27.11.2020 के आदेश के तहत तलब किया। यह तर्क दिया जाता है कि विवेचनाधिकारी द्वारा प्रस्तुत किया गया दूसरा आरोप पत्र पूरी तरह से अवैध है और इसे विचारण न्यायालय द्वारा विचार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह तर्क दिया जाता है कि यहां तक कि विचारण न्यायालय ने भी दिनांक 15.09.2021 के आदेश के तहत भ०द०वि० की धारा 420 के तहत पूरक आरोप पत्र पर संज्ञान लिया था, ने भी इसमें कहा है कि यह अवैध और अनियमित है। यह तर्क दिया गया है कि पूरे मामले में, कोई मूल दस्तावेज, रसीद या बैंक स्टेटमेंट दाखिल नहीं किया गया है और दस्तावेजों की प्रामाणिकता साबित करने के लिए किसी भी फॉरेंसिक विशेषज्ञ की कोई रिपोर्ट नहीं है और इस तरह उक्त मामला आगे नहीं बढ़ सकता है। द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के पैरा 29, 30, 31, 33 को रखते हुए तर्क दिया गया है कि आवेदक ने सम्मन आदेश दिनांक 27.11.2020 के साथ-साथ 23.06.2019 की चार्जशीट से व्यथित होकर 03.07.2021 को इस न्यायालय के समक्ष द०प्र०स० के तहत एक आपराधिक विविध आवेदन संख्या 13494 वर्ष 2021 दायर किया था। हालांकि, कोविड-19 के कारण, उक्त आवेदन को कई तारीखों

पर नहीं लिया जा सका और 17.01.2022 को एक हलफनामे के साथ वापसी के लिए आवेदन दायर किया गया जो दिनांक 17.01.2022 है। एक हलफनामे द्वारा समर्थित वापसी के लिए उक्त आवेदन अंतिम निपटान के लिए लंबित है। आवेदक के पास सम्मन आदेश के साथ-साथ आरोप पत्र को पुनरीक्षण अदालत के समक्ष चुनौती देने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। पुनरीक्षण न्यायालय ने दिनांक 15.04.2022 के आदेश के तहत इस तथ्य पर गौर किए बिना कि सम्मन आदेश त्रुटिपूर्ण है, पुनरीक्षण को खारिज कर दिया है। यह तर्क दिया जाता है कि निचली अदालत ने दिनांक 19.05.2022 के आदेश के तहत आवेदक के खिलाफ एन. बी. डब्ल्यू जारी किया है। शपथ पत्र के पैरा 34 को इसके लिए न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक अपनी जमीन सरदार जोगेंद्र सिंह को बेचने की प्रक्रिया में था, जो पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी नंबर 2 का करीबी सहयोगी था और सरदार जोगेंद्र सिंह ने उसे पैसे का कुछ हिस्सा दिया था, लेकिन विकास प्राधिकरण द्वारा नक्शे की मंजूरी में देरी के कारण, पैसा सरदार जोगेंद्र सिंह को वापस कर दिया गया था। इसके बाद सरदार जोगेंद्र सिंह ने बुरे इरादे से कुछ जमीन पर कब्जा करने की कोशिश की और विकास प्राधिकरण में जाली कागजात प्रस्तुत किए। आवेदक को जब इसका पता चला तो उसने द०प्र०स० की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दिया जिसमें उसे धारा 420 अ०द०वि० के तहत बुलाया गया था, लेकिन इस बीच मई, 2021 में जोगेंद्र सिंह की मृत्यु हो गई। जब जोगेंद्र सिंह को आवेदक और पहले सूचनाकर्ता के बीच वित्तीय

लेनदेन के बारे में पता चला, तो उसने तुरंत पहले सूचनाकर्ता से संपर्क किया और उसे फिर से भुगतान करने पर पैसे स्वीकार न करने के लिए राजी किया। यह तर्क दिया जाता है कि पहला सूचनाकर्ता और आवेदक एक-दूसरे को जानते हैं और सौहार्दपूर्ण संबंध रखते हैं और उसी के कारण, आवेदक ने पहले सूचनाकर्ता से ऋण मांगा था। वर्तमान मामला झूठा है। यह आगे तर्क दिया गया है कि आवेदक ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत एस.एस.पी प्रयागराज के समक्ष उसके खिलाफ लंबित आपराधिक मामलों का विवरण प्रदान करने के लिए एक आवेदन दिया था, जिस पर एक जवाब प्राप्त हुआ था जिसमें कहा गया था कि आवेदक के खिलाफ सात मामले लंबित हैं। हलफनामे के पैरा 44 में इसका उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है: -

(i) थाना झूसी, जिला प्रयागराज की धारा 323, 406, 420, 504, 506 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 80 वर्ष 2008।

(ii) मुकदमा अपराध संख्या 568 वर्ष 2019, धारा 3/5 सार्वजनिक संपत्ति अधिनियम के नुकसान के तहत, पुलिस स्टेशन करेली, जिला प्रयागराज ।

(i) मामला अपराध संख्या 734 वर्ष 2017, धारा 406, 420 भ०द०वि० के तहत, पुलिस स्टेशन सिविल लाइंस, जिला प्रयागराज।

(iv) धारा 419, 420, 406 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 363, पुलिस स्टेशन सिविल लाइंस, जिला प्रयागराज।

(v) धारा 147, 148, 149, 307, 506 भ०द०वि० के तहत केस क्राइम नंबर 1038 वर्ष 1992, थाना सिविल लाइंस, जिला प्रयागराज

(VI) 1993 का केस क्राइम नंबर 412, धारा 363, 368, 384, 468, 506 भ०द०वि० के तहत, पुलिस स्टेशन सिविल लाइंस, जिला प्रयागराज।

(VII) केस क्राइम नंबर 80 वर्ष 2008, धारा 384, 420, 467, 468, 471, 504, 506, 120-बी भ०द०वि० के तहत, पुलिस स्टेशन सिविल लाइंस, जिला प्रयागराज।

16. इस प्रकार, वर्तमान याचिका को अनुमति दी जानी चाहिए और कार्यवाही रद्द करने योग्य है।

17. पहले सूचनाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने रद्द करने की प्रार्थना का विरोध किया और जोरदार तर्क दिया कि आवेदक वर्तमान मामले में शामिल है। प्राथमिकी में उनका नाम है और उनके खिलाफ आरोप हैं। यह तर्क दिया जाता है कि जहां तक आवेदक और प्रतिपक्षी नंबर 2 के बीच लेन-देन का संबंध है, उसके तथ्य को आरोपी आवेदक द्वारा धारा 482 द०प्र०स० के तहत दोनों आवेदनों में स्वीकार किया जाता है। यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक याचिका के फैसले के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा किए बिना उसी राहत के लिए अदालतों में याचिका दायर करने का सहारा ले रहा था। यह तर्क दिया जाता है कि

द०प्र०स० की धारा 482 के तहत पहली याचिका दिनांक 23.06.2019 को चार्जशीट को रद्द करने के लिए दायर की गई थी; दिनांक 27.11.2020 के समन आदेश और विचारण न्यायालय की पूरी कार्यवाही जो लंबित रही जिसमें आवेदक ने भी 2021 की रिट याचिका (ओं) (आपराधिक) संख्या 483 में शीघ्र अदालत से इस शिकायत के साथ संपर्क किया कि उसकी याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है और लंबे समय से सुनवाई नहीं हुई है; इस तरह के मामले को दिनांक 26.11.2021 के आदेश के तहत शीघ्र निपटाने का निर्देश दिया गया था। प्रथम सूचनादाता/प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष सर्वोच्च न्यायालय का दिनांक 26.11.2021 का आदेश रखा है, जिसे उनके आपत्ति हलफनामे दिनांक 08.02.2022 के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में दायर किया गया है। उक्त आदेश इस प्रकार है:-

"याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि द०प्र०स० की धारा 482 के तहत उसकी याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है और लंबे समय से इस पर सुनवाई नहीं हुई है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमें यह उचित लगता है कि याचिकाकर्ता अपनी याचिका के शीघ्र निपटान के लिए उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। उपरोक्त अवलोकन के साथ रिट याचिका खारिज की जाती है।

18. यह तर्क दिया जाता है कि तब आवेदक ने द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन को

वापस लेने के लिए इस आधार पर आवेदन किया कि इसमें टंकण और लिपिकीय त्रुटियां हैं जिन्हें हलफनामे के माध्यम से ठीक करना संभव नहीं था और फिर सम्मन आदेश दिनांक 27.11.2022 के खिलाफ संबंधित सत्र न्यायाधीश के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया और फिर उसे खारिज कर दिया, सईद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के तहत धारा 482 द०प्र०स० संख्या 23735 वर्ष 2022, सईद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के तहत आपराधिक विविध आवेदन में फिर से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक एक ही राहत के लिए कई याचिकाएं दायर कर रहा था और विभिन्न मंचों पर काम कर रहा था। यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक का आचरण पूरी तरह से तर्कहीन था और वर्तमान आवेदन खारिज करने योग्य है।

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि आवेदक ने शुरू में दिनांक 23.06.2019 के आरोप पत्र, दिनांक 27.11.2020 के सम्मन आदेश और विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए दिनांक 13.07.2021 को धारा 482 द०प्र०स० के तहत आपराधिक विविध आवेदन संख्या-13494 वर्ष 2021 दायर किया था। उक्त याचिका इस न्यायालय के समक्ष लंबित रही और लंबित रहने से व्यथित होकर, आवेदक ने अपनी सुनवाई में तेजी लाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसे दिनांक 26.11.2021 के आदेश के माध्यम से तेज कर दिया गया।

इसके बाद आवेदक द्वारा दिनांक 17.01.2022 को वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, जिसमें पैरा 4 में कहा गया था कि द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन टंकण और लिपिकीय त्रुटियों से ग्रस्त है, जिसे एक हलफनामे के माध्यम से ठीक नहीं किया जा सकता है और इस तरह उक्त आवेदन को खारिज कर दिया जाए क्योंकि एक बेहतर नई याचिका दायर करने की स्वतंत्रता के साथ वापस ले लिया गया है। उक्त आवेदन पर प्रथम सूचनादाता/विरोधी पक्ष क्रमांक 2 द्वारा आपति दर्ज कराई गई। उक्त आवेदन निस्तारण के लिए लंबित रहा। इस बीच विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 27.11.2020 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद के समक्ष 27.01.2022 को एक आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 71 वर्ष 2022 दायर किया गया था। उसी के पैरा 6 में, लंबित मामले की चार्जशीट को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया गया है। उक्त पुनरीक्षण संबंधित न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 15.04.2022 के तहत खारिज कर दिया गया। इसके बाद एक आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 द०प्र०स० संख्या 23735 वर्ष 2022, सईद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य आवेदन 03.08.2022 को इस न्यायालय के समक्ष सत्र न्यायाधीश, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.04.2022 को रद्द करने और विचारण न्यायालय की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया था। इसे न्यायालय के समक्ष संबोधित किया गया

है। उपरोक्त चर्चाओं के साथ आवेदक ने दो बार इस न्यायालय से संपर्क किया था और संबंधित सत्र न्यायाधीश ने अदालत की कार्यवाही को समाप्त करने के लिए अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में कार्य किया था, जो किसी भी तरह से आरोप पत्र, समन आदेश, विचारण न्यायालय की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थनाओं के साथ हो सकता है। धारा 482 द०प्र०स० के तहत आपराधिक विविध आवेदन संख्या 13494 वर्ष 2021 की वापस लेने के लिए आवेदक द्वारा मामले पर शीघ्रता से निर्णय नहीं लेने की शिकायत के बावजूद इसे वापस लेने के लिए जो आधार लिया गया है, वह यह है कि यह गंभीर टंकण और लिपिकीय त्रुटियों से ग्रस्त है जिसे एक हलफनामे द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है। पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष, द०प्र०स० की धारा 482 के तहत उक्त आवेदन दायर करने का एकमात्र खुलासा संशोधन ज्ञापन के पैरा-6 को पढ़कर किया गया है जो उक्त तथ्य का केवल एक संदर्भ है। इसके खिलाफ पुनरीक्षण को खारिज करने के बाद, धारा 482 द०प्र०स० के तहत आपराधिक विविध आवेदन संख्या 23735 वर्ष 2022 विचारण न्यायालय की कार्यवाही को समाप्त करने के लिए किया गया है।

20. भास्कर लक्ष्मण जाधव बनाम करमवीर काकासाहेब वाघ एजुकेशन सोसाइटी के मामले में: (2013) 11 एस.सी.सी 531 सर्वोच्च न्यायालय ने तथ्य के दमन की स्थिति से निपटने के दौरान निम्नानुसार अवधारित किया:

“42. पार्टियों के आचरण से निपटने के दौरान, हम प्रतिवादी-1 के लिए विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुति को इस आशय से भी देख सकते हैं कि याचिकाकर्ता इस न्यायालय से एक भौतिक तथ्य को दबाने के दोषी हैं, अर्थात्, न्यासियों द्वारा दायर समय के विस्तार के लिए पहले आवेदन की 2-5-2003 को अस्वीकृति और इससे जुड़ी अंतिमता, याचिकाकर्ताओं द्वारा इन तथ्यों का स्पष्ट रूप से इस न्यायालय के सामने खुलासा नहीं किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया था कि दमन के मद्देनजर, याचिकाकर्ताओं को अपील की विशेष अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

43. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय से कोई भी भौतिक तथ्य नहीं छिपाया गया है। यह प्रस्तुत किया गया था कि जबकि दिनांक 2-5-2003 का आदेश निस्संदेह दायर नहीं किया गया था, बाद के घटनाक्रमों को देखते हुए इसका भौतिक अस्तित्व नहीं था, हम सहमत नहीं हो सकते।

44. यह तय करना एक वादी के लिए नहीं है कि किसी मामले के फैसले के लिए कौन सा तथ्य सामग्री है और क्या सामग्री नहीं है। यह एक वादी का दायित्व है कि वह किसी मामले के सभी तथ्यों का खुलासा करे और निर्णय लेने का काम अदालत पर छोड़ दे। यह सच है कि जे.सी.सी द्वारा पारित दिनांक 24-7-2006 के आदेश में दिनांक 2-5-2003 के आदेश का उल्लेख है, लेकिन यह पर्याप्त प्रकटीकरण नहीं है। याचिकाकर्ताओं ने स्पष्ट रूप से उन तथ्यों

और परिस्थितियों का खुलासा नहीं किया है जिनमें दिनांक 2-5-2003 का आदेश पारित किया गया था या यह अंतिम रूप प्राप्त कर चुका है।

45. हम इस विषय पर केवल दो मामलों का उल्लेख कर सकते हैं। हरि नारायण बनाम बट्टी दास, ए. आई. आर 1963 एस.सी 1558 में गलत, असत्य या भ्रामक बयानों से बचने वाले वादियों पर जोर दिया गया था, अन्यथा अपीलकर्ता को दी गई छुट्टी रद्द की जा सकती है। यह इस प्रकार देखा गया. (ए.आई.आर पृष्ठ 1560, पैरा-9)

.....यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि भौतिक बयान देने और विशेष अनुमति के लिए आवेदनों में आधार निर्धारित करने में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई भी बयान गलत, असत्य या भ्रामक न हो। विशेष अनुमति के लिए आवेदनों से निपटने में, न्यायालय स्वाभाविक रूप से याचिकाओं में निहित तथ्यों के आधारों को उनके अंकित मूल्य पर लेता है और ऐसे बयान देकर न्यायालय के विश्वास को धोखा देना अनुचित होगा जो असत्य और भ्रामक हैं। यही कारण है कि हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता को दी गई विशेष अनुमति को रद्द कर दिया जाना चाहिए। तदनुसार, विशेष अनुमति रद्द कर दी जाती है और अपील खारिज कर दी जाती है। अपीलकर्ता प्रतिवादी की लागत का भुगतान करेगा।

46. हाल ही में, रामजस फाउंडेशन बनाम भारत संघ (2010) 14 एस.सी.सी 38 इस

विषय पर मामला कानून पर चर्चा की गई थी। यह माना गया कि यदि कोई वादी साफ तथ्यों के साथ अदालत में नहीं आता है, तो वह सुनवाई का हकदार नहीं है और वास्तव में, ऐसा व्यक्ति किसी भी न्यायिक मंच से किसी भी राहत का हकदार नहीं है। यह कहा गया था. (एस.सी.सी पृष्ठ 51, पैरा 21)

"21. यह सिद्धांत कि कोई व्यक्ति जो साफ तथ्यों के साथ से न्यायालय में नहीं आता है. वह अपनी शिकायत के गुण-दोष के आधार पर सुने जाने का हकदार नहीं है और किसी भी मामले में, ऐसा व्यक्ति किसी भी राहत का हकदार नहीं है, न केवल संविधान के अनुच्छेद 32, 226 और 136 के तहत दायर याचिकाओं पर लागू होता है, बल्कि अन्य अदालतों और न्यायिक मंचों पर स्थापित मामलों पर भी लागू होता है. इस सिद्धांत के पीछे अंतर्निहित उद्देश्य यह है कि प्रत्येक न्यायालय न केवल हकदार है, बल्कि वह खुद को बेईमान वादियों से बचाने के लिए बाध्य है, जिनके मन में सच्चाई के लिए कोई सम्मान नहीं है और जो झूठ का सहारा लेकर या गलत बयान देकर या उन तयों को दबाकर न्याय की धारा को प्रदूषित करने की कोशिश करते हैं जो मामले में उत्पन्न होने वाले मुद्दे (ओ) के निर्णय पर असर डालते हैं।

47. आदेश दिनांक 24-7-2006 में पारित आदेश दिनांक 2-5-2003 का मात्र संदर्भ प्रकटीकरण की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है। यह न्यायालय का काम नहीं है कि वह किसी तथ्य को बाहर निकालने के लिए

दलीलों, दस्तावेजों और अनुलग्नकों के प्रत्येक शब्द पर गौर करें। यह वादी पर है कि वह सामने आए और सभी भौतिक तथ्यों के साथ सफाई करे और फिर, विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों के आधार पर, यह निर्धारित करने के लिए न्यायालय पर छोड़ दें कि निर्णय पर पहुंचने के लिए कोई विशेष तथ्य प्रासंगिक है या नहीं। दुर्भाग्य से, याचिकाकर्ताओं ने ऐसा नहीं किया है और उन्हें इसका परिणाम भुगतना होगा। (महत्व सन्निविष्ट)

21. इसके अलावा मोती लाल साँगरा बनाम प्रेम प्रकाश @ पप्पू के मामले में: (2013)9 एस.सी.सी 199 सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से एक तथ्य के दमन की स्थिति से निपटने के दौरान निम्नानुसार आयोजित किया है:

"19. निवेदन का दूसरा हिस्सा ये है कि क्या तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने में, उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त प्रतिवादी को बरी करने का आदेश कानून में उचित है। हमने स्पष्ट रूप से कहा है कि हालांकि प्रतिवादी इस तथ्य के बारे में पूरी तरह से अवगत था कि विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा उसके खिलाफ आरोप तय किए गए थे, फिर भी उसने संज्ञान लेने वाले आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण की सुनवाई करने वाली पुनरीक्षण अदालत के संज्ञान में नहीं लाया। यह दमन का एक स्पष्ट मामला है। यह आरोपी की विशेष जानकारी में था। जो कोई भी कानून की अदालत में दमन के तरीके का सहारा लेता है, वह वास्तव में, अदालत के साथ धोखाधड़ी कर रहा है, और कहावत है कि सप्रेसियो वेरी, एक्सप्रेसियो फाल्सी, यानी, सत्य का दमन,

झूठ की अभिव्यक्ति के बराबर है। हम ऐसा कहने के लिए मजबूर हैं क्योंकि पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष इस तथ्य को सुनियोजित रूप से छिपाया गया है। यह निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि आरोपी प्रतिवादी ने इस तरह के तथ्यात्मक दमन से लाभ प्राप्त करने की कोशिश की। धोखाधड़ी का इरादा बड़ा है। वास्तव में, उन्होंने अज्ञानता का अपना साहस दिखाया है और मिथ्या/फर्जी खेलने की कोशिश की है।

20. जैसा कि हमने देखा है, उच्च न्यायालय ने यह सिद्धांत लागू किया "जब बुनियादी ढांचा ढह जाता है, तो अधिरचना का पतन होना तय है"। हालांकि, चूंकि आदेश धोखाधड़ी का अभ्यास करके और लाभ प्राप्त करने के लिए कानून की अदालत के समक्ष भौतिक तथ्य को दबाकर प्राप्त किया गया है, इसलिए उक्त आदेश को बाकी रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसके अलावा, हमने आदेश की कानूनी स्थिरता के संबंध में विस्तार से चर्चा की है। इन परिस्थितियों में, हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का उपयोग करने की आवश्यकता है। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा अपराधों का संज्ञान सही ढंग से लिया गया था और जैसा कि हम पाते हैं, आरोपों को विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा सही ढंग से तैयार किया गया है। किसी अपराध के पीड़ित को अदालत से न्याय पाने का उतना ही अधिकार है जितना कि एक अभियुक्त को तब तक बेगुनाही का लाभ मिलता है जब तक कि उसके खिलाफ आरोप साबित नहीं हो जाते।

वर्तमान मामले में, जब दमन द्वारा सम्मन को रद्द करने का आदेश प्राप्त किया गया है, तो इस न्यायालय का दायित्व है कि वह उक्त आदेश को रद्द करे और आरोप तय करने के आदेश को बहाल करे और मुकदमे को जारी रखने का निर्देश दे। और हम इसका निर्देश देते हैं। (महत्व सन्निविष्ट)

22. सर्वोच्च न्यायालय ने विजय कुमार घई बनाम पश्चिम बंगाल राज्य: (2022) 7 एस.सी.सी 124 के मामले में पैराग्राफ 11, 12, 13, 14 और 17 में फोरम शॉपिंग और बहिष्कृत करने के मुद्दे से निपटने के दौरान इस प्रकार कहा है:

"11. मुख्य रूप से, भारतीय न्यायपालिका ने बार-बार दोहराया है कि फोरम शॉपिंग कई रंग और शेड लेता है लेकिन "फोरम शॉपिंग" की अवधारणा को किसी भी भारतीय कानून में एक विशेष परिभाषा प्रदान नहीं की गई है। मेरियम वेबस्टर डिक्शनरी के अनुसार फोरम शॉपिंग है:

"अदालत को चुनने की प्रैक्टिस जिसमें उन अदालतों में से एक कार्रवाई लाने के लिए जो इस बात के निर्धारण के आधार पर अधिकार क्षेत्र का ठीक से प्रयोग कर सकते हैं कि किस अदालत के सबसे अनुकूल परिणाम प्रदान करने की संभावना है।

12. भारतीय न्यायपालिका के अवलोकन और ओबिटर डिक्टा आदेश ने भारतीय कानूनी प्रणाली में फोरम शॉपिंग की अवधारणा को सुव्यवस्थित करने में सहायता की है। इस

न्यायालय ने वादियों द्वारा फोरम शॉपिंग की प्रथा की निंदा की है और इसे कानून का दुरुपयोग करार दिया है और फोरम शॉपिंग की विभिन्न श्रेणियों को भी डिस्क्रिप्ट किया है।

13. भारत संघ बनाम सिप्ला लिमिटेड (भारत संघ बनाम सिप्ला लिमिटेड, (2017) 5 एस.सी.सी 262] में इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने उन कारकों को निर्धारित किया है जो वादियों द्वारा फोरम शॉपिंग या फोरम की पसंद के अभ्यास की ओर ले जाते हैं जो निम्नानुसार हैं: (एस.सी.सी पीपी 318-20, पैरा 148-51 और 155)

"148. फोरम शॉपिंग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जब वादी राहत के लिए एक अदालत में जाता है लेकिन उसे वांछित राहत नहीं मिलती है और फिर उसी राहत के लिए दूसरी अदालत में जाता है। यह राजीव भाटिया बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (राजीव भाटिया बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), (1999) 8 एस.सी.सी 525] में हुआ था। एक छोटे बच्ची की प्रतिवादी मां ने राजस्थान उच्च न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए याचिका दायर की थी और जाहिर तौर पर उस अदालत से आवश्यक राहत नहीं मिली थी। इसके बाद उन्होंने बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय में भी याचिका दायर की और आवश्यक राहत प्राप्त की। इसके बावजूद, इस न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश [प्रियंका भाटिया बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 1999 एस.सी.सी ऑनलाइन डेल 192] में इस कारण से हस्तक्षेप नहीं किया कि इस न्यायालय ने

बच्ची के विचारों का पता लगाया और पाया कि वह अपने दत्तक माता-पिता से बात भी नहीं करना चाहती थी और इसलिए दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिवादी मां को दी गई बच्ची की कस्टडी के साथ हस्तक्षेप नहीं किया गया था। इस न्यायालय का निर्णय अपने तथ्यों पर है, भले ही यह फोरम शॉपिंग का एक क्लासिक मामला है।

149. आरती बंदी बनाम बंदी जगद्राक्ष राव आरती बंदी बनाम बंदी जगद्राक्ष" 148 में। फोरम शॉपिंग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है जब वादी राहत के लिए एक अदालत में जाता है लेकिन उसे वांछित राहत नहीं मिलती है और फिर उसी राहत के लिए दूसरी अदालत में जाता है। यह राजीव भाटिया बनाम में हुआ था। राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) (राजीव भाटिया बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), (1999) 8 एस.सी.सी 525]। एक छोटे बच्चे की प्रतिवादी मां ने राजस्थान उच्च न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए याचिका दायर की थी और जाहिर तौर पर उस अदालत से आवश्यक राहत नहीं मिली थी। इसके बाद उन्होंने बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय में भी याचिका दायर की और आवश्यक राहत प्राप्त की। इसके बावजूद, इस न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश (प्रियंका भाटिया बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 1999 एस.सी.सी ऑनलाइन डेल 192] में इस कारण से हस्तक्षेप नहीं किया कि इस न्यायालय ने बच्चे के विचारों का पता लगाया अंका राव, (2013) 15 एस.सी.सी 790: (2014) 5 एस.सी.सी (Civ) 475] इस न्यायालय ने कहा

कि अदालत में क्षेत्राधिकार आकस्मिक परिस्थितियों के संचालन या निर्माण से आकर्षित नहीं होता है। उस मामले में, विवाद के एक पक्ष द्वारा किसी विशेष उच्च न्यायालय को अधिकार क्षेत्र प्रदान करने के लिए परिस्थितियां बनाई गई थीं। इस न्यायालय द्वारा यह देखते हुए कि बनाई गई परिस्थितियों में अधिकार क्षेत्र की धारणा की अनुमति देने के लिए केवल फोरम खरीदारी को प्रोत्साहित करने का परिणाम होगा।

150. फोरम शॉपिंग के प्रयोजनों के लिए परिस्थितियों को बनाने का एक और मामला वर्ल्ड टैंकर कैरियर कॉर्पोरेशन था। बनाम एस.एन. पी शिपिंग सर्विसेज (प्रा.) लिमिटेड (वर्ल्ड टैंकर कैरियर कॉर्पोरेशन बनाम एस.एन.पी शिपिंग सर्विसेज (प्रा.) लिमिटेड, (1998) 5 एस.सी.सी 310] जिसमें यह पाया गया कि प्रतिवादी/वादी ने कार्रवाई का कारण उत्पन्न करने के लिए अर्थात् बंबई उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में गहरे समुद्र में दो जहाजों के बीच टक्कर को लाने के लिए जानबूझकर प्रयास किया था। बंबई उच्च न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्रदान करने के लिए एक जहाज को बंबई में लाना, किसी और चीज के बजाय फोरम शॉपिंग का चरित्र था।

151. फोरम शॉपिंग का एक अन्य रूप किसी अन्य उच्च न्यायालय द्वारा आयोजित एक अलग दृष्टिकोण के विपरीत एक विशेष उच्च न्यायालय द्वारा आयोजित एक दृष्टिकोण का लाभ उठा रहा है। अंबिका इंडस्ट्रीज बनाम सी.सी. ई [अंबिका इंडस्ट्रीज बनाम सी.सी.ई, (2007) 6 एस.सी.सी 769] में निर्धारित

लखनऊ से था। इसने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष दिल्ली में स्थित सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और सेवा कर अपीलीय न्यायाधिकरण ("सी.ई.एस.टी.ए.टी") द्वारा पारित 13 आदेश [अंबिका इंडस्ट्रीज बनाम सी.सी.ई., 2003 एस.सी.सी ऑनलाइन सी.ई.एस.टी.ए.टी 1365] को चुनौती दी। सी.ई.एस.टी.ए.टी का अधिकार क्षेत्र उत्तर प्रदेश राज्य, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली और महाराष्ट्र पर था। दिल्ली उच्च न्यायालय ने क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के अभाव में निर्धारिती द्वारा शुरू की गई कार्यवाही पर विचार नहीं किया। निर्धारिती की अपील को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने बॉम्बे में एक मूल्यांकन आदेश से प्रभावित एक निर्धारिती का उदाहरण दिया, जिसमें दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का लाभ उठाने के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया गया था, या बॉम्बे में किए गए मूल्यांकन के आदेश से प्रभावित एक निर्धारिती ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान किया था कि वह कानून का लाभ उठाए और परिणामस्वरूप कानून से बच जाए, ऐसा बॉम्बे हाईकोर्ट द्वारा निर्धारित किया गया। यह कहा गया था कि इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है और इस तरह की परिस्थितियां किसी प्रकार की न्यायिक अराजकता को जन्म देंगी।

155. संदर्भित निर्णय स्पष्ट रूप से इस सिद्धांत को निर्धारित करते हैं कि न्यायालय को मुकदमेबाजी और वादी के संबंध में एक कार्यात्मक परीक्षण अपनाने की आवश्यकता है। यह देखना होगा कि क्या एक न्यायालय और दूसरे न्यायालय के बीच कार्यवाही में कोई

कार्यात्मक समानता है या क्या वादी की ओर से किसी प्रकार का छल है। यह कार्यात्मक परीक्षण है जो यह निर्धारित करेगा कि कोई वादी फोरम शॉपिंग में लिप्त है या नहीं।

14. फोरम शॉपिंग को अदालतों द्वारा बदनाम प्रथा करार दिया गया है और कानून में इसकी कोई मंजूरी और सर्वोपरिता नहीं है। इस न्यायालय द्वारा फोरम शॉपिंग की प्रथा की निंदा करने के बावजूद, प्रतिवादी 2 ने दो शिकायतें दर्ज कीं अर्थात् 6-6-2012 को तीस हजारी कोर्ट, नई दिल्ली के समक्ष द०प्र०स० की धारा 156 (3) के तहत एक शिकायत, और एक शिकायत जिसे अंततः 28-3-2013 को थाना-बोबाजार, कलकत्ता के समक्ष धारा 406, 420, 120-बी भ०द०वि० के तहत एफआईआर नंबर 168 के रूप में दर्ज किया गया था, यानी एक दिल्ली में और एक कोलकाता में। कोलकाता में दायर की गई शिकायत दिल्ली में दायर शिकायत की पुनरुत्पादन थी, सिवाय इसके कि क्षेत्राधिकार बनाने के लिए घटना के स्थान में परिवर्तन किया गया था।

17. के. जयराम बनाम बीडीए (के. जयराम बनाम बीडीए, (2022) 12 एस.सी.सी 815: 2021 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी 1194] में इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने कहा: (एस.सी.सी पैरा 14)

"14. हमारे लिए यहां यह बताना आवश्यक है कि एक ही विषय-वस्तु से संबंधित कार्यवाही की बहुलता की जांच करने के लिए और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न न्यायिक मंचों के माध्यम से असंगत आदेशों को रोकने

के लिए या तो चुप रहकर या गलत बयान देने के दायित्व से बचने के लिए दलीलों में भ्रामक बयान देकर असंगत आदेशों की याचना करने के खतरे को रोकने के लिए, हमारा विचार है कि पक्षों को विवाद के विषय वस्तु के किसी भी हिस्से से संबंधित सभी कानूनी कार्यवाही और मुकदमों के विवरण का खुलासा करना होगा जो उनके जान में है। यदि विवाद के पक्षकारों के अनुसार, कोई कानूनी कार्यवाही या अदालती मुकदमे लंबित नहीं थे, तो उन्हें कानून के अनुसार पक्षों के बीच विवाद को हल करने के लिए अनिवार्य रूप से अपनी दलीलों में ऐसा बताना होगा।

23. वर्तमान मामले में भी, यह तथ्य कि आवेदक ने पहले धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपने अधिकार क्षेत्र में 23.06.2019 की चार्जशीट को रद्द करने, 27.11.2020 के सम्मन आदेश को रद्द करने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और फिर 27.11.2020 के आदेश को चुनौती देने वाले आपराधिक पुनरीक्षण में संबंधित सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 15.04.2022 के आदेश को रद्द करने के लिए द०प्र०स० की धारा 482 के तहत एक और आवेदन दायर किया है और इस बीच उसने एक दायर किया एक दूसरी याचिका में आवेदन को खारिज करने की प्रार्थना के साथ इसे वापस ले लिया गया है, इसके हलफनामे के पैरा 4 में यह कहते हुए एक नई याचिका दायर करने की स्वतंत्रता के साथ कि इसमें टंकण और लिपिकीय त्रुटियां हैं जिनके लिए सुधार संभव नहीं है और इससे पहले भी इसने पहली 482 द०प्र०स० याचिका की सुनवाई में तेजी लाने के

लिए सर्वोच्च न्यायालय से संपर्क किया था जिसे अनुमति दी गई थी और इसके लिए निर्देश जारी किए गए थे। आवेदक ने स्वयं आवेदक द्वारा दायर याचिका में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बावजूद उसके द्वारा दायर एक याचिका के तार्किक निष्कर्ष की प्रतीक्षा नहीं की, लेकिन एक बेहतर याचिका दायर करने की स्वतंत्रता के साथ इसे वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया और उक्त वापसी आवेदन के निपटान की प्रतीक्षा किए बिना सत्र न्यायाधीश के समक्ष एक आपराधिक संशोधन को प्राथमिकता दी, जिसमें कहा गया है कि आवेदन के पारित संदर्भ के पैरा 6 में उल्लेख किया गया है। इस न्यायालय के समक्ष 482 द०प्र०स० याचिका लंबित है और फिर उनके पुनरीक्षण को खारिज करने के बाद सत्र न्यायाधीश के आदेश को चुनौती देते हुए विचारण न्यायालय की कार्यवाही को रद्द करने के लिए एक और प्रार्थना के साथ, एक और 482 द०प्र०स० याचिका दायर की।

24. संक्षेप में द०प्र०स० 482 की दो याचिकाओं और सत्र न्यायाधीश के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण में की गई प्रार्थनाएं, जो भी प्रार्थना दायर की गई हो, उनके खिलाफ विचारण न्यायालय की कार्यवाही को समाप्त करने के लिए थीं; (यानी 23.06.2019 की चार्जशीट को रद्द करना, 27.11.2020 के सम्मन आदेश को रद्द करना, दिनांक 27.11.2020 के आदेश को रद्द करना, दिनांक 15.04.2022 के आदेश को रद्द करना और पूरी कार्यवाही को रद्द करना)। सत्र न्यायाधीश के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण दायर करना मामले के

प्रासंगिक और भौतिक तथ्यों के समस्त और पूर्ण प्रकटीकरण के साथ नहीं था। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482, उच्चतम न्यायालय के आदेश, बेहतर याचिका दायर करने की स्वतंत्रता प्रदान करने की प्रार्थना के साथ वापस लेने के लिए आवेदन दायर करने और इस न्यायालय के समक्ष इसके लंबित रहने के ब्यौरे पुनरीक्षण में बिल्कुल भी प्रकट नहीं किए गए थे और इसे दबा दिया गया है। यह छिपाने का कार्य था जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने भास्कर लक्ष्मण जाधव (सुप्रा) के मामले में कहा था। आवेदक का आचरण न्यायालयों में अपने मामलों को आगे बढ़ाने में उचित नहीं है।

25. इस प्रकार यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदक अदालतों से संपर्क करने में निष्पक्ष नहीं था और उसने सही तथ्यों के साथ अदालतों का दरवाजा नहीं खटखटाया है। (23)

26. धारा 482 द०प्र०स० के तहत वर्तमान आवेदन खारिज किये जाते हैं।

(2023) 4 ILRA 780

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

27651/2022

विवेक कुमार

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...आवेदक

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री कृष्ण गोपाल

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री निकलंक कुमार जैन

भारतीय साक्ष्य अधिनियम- धारा 65 बी- आवेदक ने पीड़िता का बयान दर्ज करने के लिए पेन ड्राइव और सीडी जमा करने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया-अस्वीकृत-चूंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी के तहत कोई प्रमाण पत्र जारी नहीं किया गया है- यदि प्रस्तावित दस्तावेज प्राथमिक साक्ष्य है- प्रवेश के लिए कोई प्रमाण पत्र आवश्यक नहीं है- विचारणीय न्यायालय द्वारा कोई निष्कर्ष नहीं-आक्षेपित आदेश दूषित।

आवेदन स्वीकृत (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. विक्रम सिंह @ विक्की वली और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2017 (सुप्रीम कोर्ट) 3227
2. अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बुशेर, (2014) 10 एस.सी.सी.473 (तीन जजों की बेंच)
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अजय कुमार शर्मा, 2016 (92) ए.सी.सी 981 (एससी)
4. मुकेश बनाम राज्य (एन.सी.टी.) दिल्ली एवं अन्य, ए.आई.आर. 2017 (सुप्रीम कोर्ट) 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)
5. आर.एम. मलकानी बनाम महाराष्ट्र राज्य ए.आई.आर. 1973, सुप्रीम कोर्ट 157
6. राम सिंह एवं अन्य बनाम कर्नल राम सिंह 1985 (सप्लीमेंट्री) एस.सी.सी 616

7. अर्जुन पंडित राव खोलकर बनाम कैलाश कुशान राव गोरंट्याल और अन्य, एआईआर 2020 (एससी) 4908

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री कृष्ण गोपाल, राज्य के लिए श्री पंकज कुमार त्रिपाठी, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता न तो उपस्थित हुए और न ही अपर शासकीय अधिवक्ता ने कोई जवाबी हलफनामा दायर किया, इसलिए तर्क सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. आवेदक ने धारा 482 दंप्रंस० के तहत प्रस्तुत आवेदन दायर किया है, जिसमें ए.एस.जे/विशेष न्यायाधीश (बलात्कार और पॉक्सो अधिनियम), एटा द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.08.2022 को विशेष परीक्षण संख्या-552 वर्ष 2021 - राज्य बनाम विवेक कुमार द्वारा धारा 363, 366 भ०द०वि० और 3/4 पॉक्सो अधिनियम 2012 के तहत केस अपराध संख्या-35 वर्ष 2020, थाना-पिलुआ, जिला एटा से उद्भूत आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया

4. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि प्रतिपक्षी संख्या-2 ने एक प्राथमिकी दर्ज की जो थाना-पिलुआ, जिला एटा में धारा 363, 366, 368, 506 भ०द०वि० और 3/4 पॉक्सो

अधिनियम के तहत केस अपराध संख्या-35 वर्ष 2020 के रूप में दर्ज की गई थी। जांच के बाद विवेचनाधिकारी ने आवेदक और अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 363, 366, 368, 506, 376 भ०द०वि० और 3/4 पॉक्सो अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। इस बयान में पीड़िता ने विशेष रूप से कहा है कि वह अपनी मर्जी से आवेदक के साथ गई थी और उसके साथ शादी की है।

5. अदालत ने संज्ञान लिया है और उसके बाद मुकदमा आगे बढ़ा। मुकदमे के दौरान पीड़िता की अ०सा०-2 के रूप में जांच की गई है और उसका बयान हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-4 के रूप में संलग्न है। जिरह के दौरान आवेदक के अधिवक्ता ने पीड़िता के बयान का सामना करने और अदालत में इसे चलाने के लिए पेन-ड्राइव और सीडी जमा करने के लिए एक आवेदन दिया। आवेदन हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-5 के रूप में संलग्न है। विचारण न्यायालय ने दिनांक 02 अगस्त, 2022 के अपने आदेश के तहत आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य केवल तभी स्वीकार्य हैं जब साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत प्रमाण पत्र जारी किया गया हो और प्रस्तुत मामले में कोई प्रमाण पत्र दायर नहीं किया जा रहा हो, इसलिए इसे रिकॉर्ड पर नहीं लिया जा सकता है। आक्षेपित आदेश की एक प्रति हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-6 के रूप में संलग्न है। निचली अदालत ने अपने न्यायिक दिमाग का प्रयोग किए बिना आवेदन को खारिज कर दिया है, जो पूरी तरह से अवैध और मनमाना है। विचारण न्यायालय

इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड की जांच कर सकता है कि इसमें दम है या नहीं, लेकिन अदालत ने इसे न्यायिक दिमाग को नियमित तरीके से लागू किए बिना खारिज कर दिया।

6. साक्ष्य अधिनियम की धारा 138 के अनुसार, गवाहों के मुख्य परीक्षक को प्रासंगिक तथ्य से संबंधित होना चाहिए, लेकिन जिरह को उस तथ्य तक सीमित रखने की आवश्यकता नहीं है, जिसके लिए गवाह अपनी मुख्य-परीक्षण में गवाही देता है, इसलिए, विशेष परीक्षण संख्या-552 वर्ष 2021 - राज्य बनाम विवेक कुमार में ए.एस.जे/विशेष न्यायाधीश (बलात्कार और पाँकसो अधिनियम)-II, एटा द्वारा पारित आदेश दिनांक 02.08.2022 को रद्द किया जाए।

7. दिनांक 02.08.2022 के आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि विचारण न्यायालय ने पेन-ड्राइव/सीडी जैसे इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेजों को इस आधार पर स्वीकार नहीं किया कि जब तक भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत प्रमाण पत्र पेश नहीं किया जाता है, तब तक प्रस्तावित पेन-ड्राइव और सीडी को रिकॉर्ड पर नहीं लिया जा सकता है।

8. रिकॉर्ड के अवलोकन से यह बहुत स्पष्ट है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना कि प्रस्तावित सीडी और पेन-ड्राइव प्राथमिक साक्ष्य है या द्वितीयक साक्ष्य है, उक्त इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेजों को स्वीकार करने से पहले प्रमाण पत्र की आवश्यकता थी।

9. इस न्यायालय का विचार है कि सबसे पहले यह पता लगाना विद्वान विचारण न्यायालय का कर्तव्य था कि प्रस्तावित दस्तावेज प्राथमिक दस्तावेज है या द्वितीयक दस्तावेज। यदि प्रस्तावित दस्तावेज प्राथमिक साक्ष्य होंगे, तो इसे स्वीकार करने के लिए धारा 65-बी के तहत प्रमाण पत्र लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।

10. विक्रम सिंह @ विक्की वली और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2017 (उच्चतम कोर्ट) 3227 में, यह माना गया है कि टेप-रिकॉर्ड की गई बातचीत द्वितीयक साक्ष्य नहीं है और इसके लिए धारा 65-बी के तहत वांछित प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं है और जब प्राथमिक साक्ष्य के रूप में अदालत में इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य पेश किया जाता है तो धारा 65-बी का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

11. इसके अलावा, विचारण न्यायालय की यह भी राय थी कि चूंकि सीडी ऐसी बातचीत से संबंधित है, जिसे लाइसेंस प्राप्त सॉफ्ट-वेयर के माध्यम से डाउनलोड किया गया है, इसलिए सीडी में मौजूद बातचीत की वास्तविकता के बारे में रती भर भी संदेह नहीं है।

12. निश्चित रूप से अनवर पीवी बनाम पीके बुशीर, (2014) 10 एस.सी.सी. 473(तीन न्यायाधीशों की पीठ) में यह फैसला सुनाया गया है कि धारा 65-बी (4) के तहत माध्यमिक साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए प्रमाण पत्र आवश्यक है।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65-बी (4) निम्नानुसार है:

"(4) किसी भी कार्यवाही में जहां इस धारा के आधार पर साक्ष्य में एक बयान देना वांछित है, निम्नलिखित चीजों में से कोई भी करने वाला प्रमाण पत्र, जो है, -

(क) उस इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की पहचान करना, जिसमें कथन अंतर्विष्ट है और वह रीति दर्शा सकेगा जिससे वह प्रस्तुत किया गया था;

(ख) उस इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के उत्पादन में अंतर्वलित किसी युक्ति का ऐसा विवरण देना जो यह दर्शाने के प्रयोजन के लिये उपयुक्त हो सकेगा कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख किसी कम्प्यूटर द्वारा उत्पन्न किया गया था;

(ग) किसी भी मामले से निपटना, जिसके लिए उप-धारा (2) में उल्लिखित शर्तें संबंधित हैं, और प्रासंगिक उपकरण के संचालन या प्रबंधन के संबंध में एक जिम्मेदार आधिकारिक पद पर बैठने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित होने का इरादा है प्रासंगिक गतिविधियों (जो भी उपयुक्त हो) प्रमाण पत्र में बताए गए किसी भी मामले का सबूत होगा; और इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए यह किसी मामले के लिए पर्याप्त होगा कि इसे बताते हुए व्यक्ति के ज्ञान और विश्वास के सर्वोत्तम रूप से कहा जाए।

13. इस संबंध में उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अजय कुमार शर्मा, 2016(92) ए.सी.सी 981 (एस.सी.)(पैरा-14) और मुकेश बनाम राज्य

(एन.सी.टी.) दिल्ली और अन्य, ए.आई.आर. 2017 (सर्वोच्च न्यायालय) 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ) में न्यायिक मिसाल भी प्रासंगिक हैं।

14. साक्ष्य अधिनियम की धारा 3(2) के तहत, इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड या दस्तावेज साक्ष्य अधिनियम की धारा 17, 22-ए, 34, 35, 39, 45-ए, 47-ए, 59, 65-ए, 65-बी, 67- ए, 73-ए, 81-ए, 85-ए, 85-बी, 85-सी, 88, 88-ए, 90-ए, 131 के तहत प्रासंगिक और स्वीकार्य हैं।

15. आर.एम मलकानी बनाम महाराष्ट्र राज्य ए.आई.आर. 1973, उच्चतम न्यायालय 157, राम सिंह और अन्य बनाम कर्नल राम सिंह 1985 (पूरक) एस.सी.सी. 616 और दिल्ली राज्य (एनसीटी) दिल्ली (उपरोक्त) में यह माना गया है कि टैप रिकॉर्डर में दर्ज प्रासंगिक बातचीत साक्ष्य में स्वीकार्य है।

16. विक्रम सिंह (उपरोक्त) में, मूल टैप रिकॉर्ड को प्राथमिक साक्ष्य माना गया था और यह माना गया था कि इसलिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत प्रमाण पत्र इसकी स्वीकार्यता के लिए आवश्यक नहीं था।

17. अर्जुन पंडित राव खोलकर बनाम कैलाश कुशान राव गोरंट्याल और अन्य, ए.आई.आर. 2020 (एस.सी.) 4908 (तीन न्यायाधीशों की पीठ) में, यह माना गया है कि यदि इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेज द्वितीयक साक्ष्य है, तो धारा 65-बी (4) के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र

साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए शर्त पूर्वता है। यदि मूल दस्तावेज स्वयं प्रस्तुत किया जाता है, तो अपेक्षित प्रमाण पत्र अनावश्यक है। यह लैपटॉप, कंप्यूटर, कंप्यूटर टैबलेट या यहां तक कि एक मोबाइल फोन के मालिक द्वारा गवाह बॉक्स में कदम रखकर किया जा सकता है और यह साबित कर सकता है कि संबंधित साक्ष्य जिस पर मूल जानकारी पहले संग्रहीत की जाती है, स्वामित्व और / या उसके द्वारा संचालित है।

18. ऐसे मामलों में, जहां "कंप्यूटर", जैसा कि परिभाषित किया गया है, "कंप्यूटर सिस्टम का एक हिस्सा होता है" या "कंप्यूटर नेटवर्क" और ऐसे नेटवर्क या सिस्टम को भौतिक रूप से अदालत में लाना असंभव हो जाता है, तो ऐसे इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड में निहित जानकारी साबित करने का एकमात्र साधन धारा 65-बी (1) के अनुसार हो सकता है, साथ में धारा 65-बी (4) के तहत अपेक्षित प्रमाण पत्र भी हो सकता है।

19. इस मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने इस बात की पुष्टि किए बिना आवेदन को खारिज कर दिया है कि प्रस्तावित इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेज प्राथमिक साक्ष्य है या द्वितीयक साक्ष्य।

20. इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि आक्षेपित आदेश कानून में खराब है और इसे संबंधित न्यायालय द्वारा पुनर्विचार की आवश्यकता है।

आदेश

(21) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(22) दिनांक 02.08.2022 के आक्षेपित आदेश को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

(23) विद्वान विचारण न्यायालय को, इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के मद्देनजर, पर्याप्त अवसर देने के बाद, अभियुक्त-आवेदक के आवेदन पर नए सिरे से निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 4 ILRA 783

**मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष**

दिनांक: इलाहाबाद 14.03.2023

समक्ष

**माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,
धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या
28317/2022**

उदय यादव

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अभिषेक कुमार यादव

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 311- आवेदक के परीक्षण में मुख्य परीक्षा में पी.डब्लू. 2 के कथन और सह-अभियुक्त के परीक्षण में उसके कथन में विरोधाभास-आवेदक ने धारा 311 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन प्रस्तुत किया- पी.डब्लू. 2 से आगे जिरह करने की अनुमति के लिए-अस्वीकृत-धारा 311 सीआरपीसी - यदि वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए नया साक्ष्य

आवश्यक प्रतीत होता है तो धारा में उल्लिखित कोई भी कदम उठाना अनिवार्य है।

आवेदन स्वीकृत (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. वी. एन पाटिल बनाम निरंजन कुमार एवं अन्य, (2021) 3 एससीसी 661
2. वर्षा गर्ग बनाम एम.पी. राज्य एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 986

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

1. यह आवेदन सीआरपीसी की धारा 482 के तहत। आवेदक द्वारा 2015 के सत्र परीक्षण संख्या 196 (यूपी राज्य बनाम उदय यादव) में अतिरिक्त सत्र, न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 15, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 29 अगस्त, 2022 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है। केस क्राइम नं. से उत्पन्न। 609/2014 धारा 302 आई.पी.सी. के तहत, थाना धूमनगंज, जिला-प्रयागराज, जिसके तहत उसका आवेदन दिनांक 25 अगस्त, 2022 को धारा 311 द.प्रा.स. के तहत दर्ज किया गया। पी.डब्ल्यू.-2 की आगे की जिरह की प्रार्थना खारिज कर दी गई है।

2. मैंने आवेदक के विद्वान वकील श्री अभिषेक कुमार यादव और विद्वान ए.जी.ए. को सुना है। राज्य के लिए और साथ ही रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का अवलोकन किया।

3. वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड से निकले प्रासंगिक तथ्य इस प्रकार हैं:

04.10.2014 को हुई कथित घटना के लिए, पहली सूचना रिपोर्ट विपक्षी संख्या 2 द्वारा दर्ज की गई है, जिसे धारा 147, 148, 149, 302 के तहत 2014 के अपराध संख्या 609 के रूप में दर्ज किया गया था। एवं 120-बी आई.पी.सी. दिनांक 14.10.2021 को थाना-धूमनगंज, जनपद प्रयागराज। अध्याय XII द.प्रा.स. के तहत वैधानिक जांच पूरी होने के बाद। पुलिस ने आईपीसी की धारा 302 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया। आवेदक और सह-अभियुक्त हरिश्चंद्र के खिलाफ। आरोप पत्र प्रस्तुत करने पर, संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया, जहां मामला दर्ज किया गया सत्र परीक्षण संख्या 196/2015 (राज्य बनाम हरीश चंद्र और अन्य)। आवेदक और सह-अभियुक्त हरीश चंद्र के खिलाफ विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी.) अधिनियम, इलाहाबाद द्वारा 10.07.2019 को आरोप तय किए गए थे। आवेदक के विरुद्ध दिनांक 10.07.2019 को एस.टी. में शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत भी आरोप गठित किया गया था। 2015 की संख्या 196 (राज्य बनाम हरीश चंद्र और अन्य), धारा 3/25 शस्त्र अधिनियम के तहत अपराध संख्या 609/2014 से उत्पन्न हुई। अपर एवं जिला जज कोर्ट नं.2 इलाहाबाद ने सेशन ट्रायल संख्या 196/2015 (यूपी राज्य बनाम हरीश चंद्र एवं अन्य) में दिनांक 18.10.2019 को आदेश पारित कर अभियुक्त हरिश्चंद्र की पत्रावली को सेशन ट्रायल संख्या से अलग कर दिया। 196/2015 एवं मामले के मूल पत्र को आवेदक उदय यादव के विचारण में रखने का निर्देश दिया गया तथा तथ्यों एवं

परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 16.10.2019 और 19.08.2019 के द्वारा आवेदक के विचारण में तेजी लाने का निर्देश जारी किया गया। उपरोक्त मामला ट्रायल कोर्ट के समक्ष 21.10.2019 को उठाया गया था, जिसने 21.10.2019 को आदेश पारित करते हुए अभियोजन पक्ष की गवाह श्रीमती के बयान दर्ज करने के लिए 22.10.2019 तय की थी। उमा. पी.डब्ल्यू का बयान 2 प्रमोद कुमार सोनकर पर एस.टी. वाले मुकदमे में दर्ज किया गया था। क्रमांक 196/2015 (राज्य बनाम उदय यादव), दिनांक 24.10.2019 को तथा उनसे दिनांक 24.10.2019, 31.10.2019, 04.11.2019, 05.11.2019 को प्रतिपरीक्षण किया गया। मुख्य परीक्षण में, आवेदक के मुकदमे में पी.डब्ल्यू.-2 ने कहा है कि आवेदक और सह-अभियुक्त हरिशचंद्र ने मृतक पर अपनी देशी पिस्तौल से गोली चलाई, जबकि मुकदमे में सह-अभियुक्त हरिशचंद्र ने सेशन ट्रायल नंबर 696/2019 (राज्य बनाम हरीश चंद्र) 24 मई 2022 को पी.डब्ल्यू.-2 ने कहा है कि उसने उस व्यक्ति को नहीं देखा है जिसने मृतक रूप चंद्र पर गोली चलाई थी। जब यह तथ्य प्रार्थी की जानकारी में आया कि दिनांक 24.05.2022 को पी.डब्ल्यू.-2 प्रमोद कुमार द्वारा एस.टी. में पूर्णतः विरोधाभासी बयान दिया गया है। 696/2019, राज्य बनाम हरीश चंद्र, आवेदक ने धारा 311 सीआरपीसी के तहत एक आवेदन दायर किया। दिनांक 24.08.2022 को एस.टी. संख्या 196/2015 (राज्य बनाम उदय यादव), पी.डब्ल्यू. को आगे की जिरह की अनुमति देने के लिए। 2 प्रमोद कुमार सत्य को उद्घाटित करने की दृष्टि से।

उक्त आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश के तहत खारिज कर दिया गया है।

4. आवेदक के विद्वान वकील का कहना है कि निचली अदालत ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्रियों पर विचार किए बिना और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को नजरअंदाज करते हुए दिनांक 29.08.2022 को आक्षेपित आदेश पारित कर दिया, जिसके द्वारा आवेदन पत्र संख्या 23-खा द्वारा स्थानांतरित किया गया था। आवेदक धारा 311 द. प्रा. स. के तहत बिना विवेक का प्रयोग किये खारिज कर दिया गया है जिससे आवेदक-अभियुक्त के साथ गंभीर अन्याय हुआ है। आवेदक के विद्वान वकील ने आगे यह भी कहा गया है कि जब एस.टी. संख्या 196/2015 (राज्य बनाम उदय यादव) में पक्ष द्रोही गवाह के कथानक तथ्यों को जांचा गया तो पी.डब्ल्यू.2 प्रमोद कुमार सोनकर उपलब्ध नहीं था इसलिए नीचे दिए गए विद्वान न्यायालय ने टिप्पणी कि गवाह से पहले ही तीन बार जिरह की जा चुकी है, उसके बयान के आधार पर आगे की जिरह के लिए आवेदन को खारिज करने का आधार नहीं हो सकता है। दिनांक 24.05.2022 को एस.टी. 696/2019 (राज्य बनाम हरिशचंद्र) में दर्ज किया जा रहा है। आवेदक एस.टी. संख्या 196/2015 (राज्य बनाम उदय यादव) में अपने साक्ष्य के समापन के बाद दिए गए बयान से संबंधित प्रश्न नहीं पूछ सकता था, चूंकि पी.डब्ल्यू.2 प्रमोद कुमार सोनकर का साक्ष्य एस.टी. 696/2019 (राज्य बनाम हरीश चंद्र) दर्ज है, एस.टी. 196/2015 के मुकदमे के निष्पक्ष निर्णय के लिए सामग्री है और जब

तक आवेदक को उसकी जिरह द्वारा वास्तविक तथ्यों को सामने लाने का अवसर नहीं दिया जाता, तब तक न्याय की विफलता की संभावना है।

5. आवेदक के विद्वान वकील ने आगे कहा कि अदालत में निहित विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से नहीं किया गया था और आवेदक के आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि गवाह की जिरह पर्याप्त रूप से की गई थी जो नहीं की जा सकी। वर्तमान मामले के तथ्य और परिस्थितियों में आवेदन को अस्वीकार करने का आधार बनाया गया है। जब तक न्यायिक कार्यवाही में दर्ज किए गए बयानों के संबंध में गवाह का खंडन नहीं किया जाता है, तब तक उसके साक्ष्य को महत्व नहीं दिया जा सकता है जब तक कि उसका ध्यान न्यायिक कार्यवाही में दिए गए बयानों पर आकर्षित न हो और इस तरह उसकी आगे की जिरह इस मामले कि निष्पक्ष और न्यायोचित फैसले के लिए महत्वपूर्ण और आवश्यक थी।

6. आवेदक के विद्वान वकील ने आगे कहा कि ट्रायल कोर्ट ने माना कि गवाह पक्ष द्रोही घोषित करने के लिए पुनः बुलाया जा रहा है जो उचित और सम्भव नहीं हो सकता है, यह तर्क अनावश्यक है और केवल धारणा और अनुमान पर आधारित है क्योंकि कोर्ट के पास पर्याप्त शक्ति है यदि गवाह पहले दर्ज किए गए सबूतों के बिल्कुल खिलाफ गवाही देता है और एकाएक परिवर्तन लेता है तो उसके खिलाफ कार्रवाई की जाए। न्याय की प्राप्ति के लिए और सत्य का पता लगाने के लिए उसकी

आगे की जिरह आवश्यक थी। उपरोक्त की संचित शक्ति पर, आवेदक के विद्वान वकील का कहना है कि आक्षेपित आदेश के अनुसार धारा 311 द.प्रा.स. के तहत आवेदन प्रस्तुत किया गया जो 02.09.2022 को खारिज कर दिया गया और बहस के लिए की तारीख नियत की गई और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह न्याय के हित में है कि यह माननीय न्यायालय आक्षेपित आदेश को रद्द कर सकता है और निचली अदालत को निर्देश दे सकता है आवेदक को सीआरपीसी की धारा 311 के तहत पी.डब्ल्यू.-2 से दोबारा जिरह करने की अनुमति दें।

7. दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए. प्रस्तुत करता है कि नीचे दी गई अदालत द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है जिससे धारा 482 द.प्रा.स. के तहत इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

8. मैंने पक्षों के विद्वान वकील द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया है और वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड की जांच की है, विशेष रूप से आवेदक के पी.डब्ल्यू.-2 से एक बार फिर से जिरह करने के आवेदन को खारिज करने वाले आदेश की जांच की है।

9. निचली अदालत ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय अपना निष्कर्ष दर्ज किया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता/आवेदक के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क में कहा गया है कि मामले में, दो अभियुक्तों उदय यादव और हरिश्चंद्र के खिलाफ पहले एक साथ आरोप तय किए गए थे, लेकिन कुछ समय बाद सह

अभियुक्त हरिश्चंद्र की फाइल अलग कर दी गई और पी.डब्ल्यू.-2 प्रमोद कुमार सोनकर का बयान दोनों मुकदमे में अलग-अलग दर्ज किया गया है, जिसमें कई विरोधाभास हैं, इसलिए ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि उसी गवाह को दोबारा बुलाने पर कोई बल नहीं पाया गया। उक्त राय के लिए, निम्न न्यायालय द्वारा लिया गया आधार यह है कि वर्तमान मामले में गवाह प्रमोद कुमार सोनकर को दोबारा बुलाना उचित नहीं है, क्योंकि वर्तमान मामले में गवाह प्रमोद कुमार सोनकर का बयान 24.10.2019 को दर्ज किया गया है तथा उक्त साक्षी का प्रतिपरीक्षण दिनांक 31.10.2019, 04.11.2019 एवं 05.11.2019 को किया जा चुका है। विचराण न्यायालय ने आगे अपना निष्कर्ष दर्ज किया है कि अन्य सभी गवाहों के बयान के बाद, विचराण मामला वर्तमान में बहस के चरण में है। विचराण न्यायालय ने राय दी है कि केवल उसके मुकर जाने की आशंका में उसी गवाह को बुलाने का कोई आधार नहीं है। उपरोक्त बहस के आलोक में, ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि मुकरने की उम्मीद में उसी गवाह को दोबारा बुलाना उचित और समीचीन नहीं है, इसलिए ट्रायल कोर्ट ने उस आवेदन को धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत पोषणीय नहीं है और इसलिए आक्षेपित आदेश के तहत इसे रद्द किया जाना चाहिए।

10. आक्षेपित आदेश के साथ-साथ आवेदक के लिए विद्वान वकील द्वारा की गई प्रस्तुतियों की गहन जांच पर, इस न्यायालय की राय है कि एक तरफ, ट्रायल कोर्ट सही प्रतीत होता है कि आवेदक के मुकदमे के मामले में देरी हो

सकती है गवाहों को बार-बार बुलाने (मामले के तथ्यों में पी.डब्ल्यू.-2 की जिरह) के कारण इसके तार्किक अंत तक पहुंचने के लिए, लेकिन यह न्यायालय इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि तार्किक निष्कर्ष के लिए, अभियुक्त और वादी अपने संबंधित मामले की पैरवी करने का अवसर दिया जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आवेदक के सत्र परीक्षण संख्या 196/2015 के मामले में, तीन अवसरों पर पी.डब्ल्यू.-2 से जिरह की गई है और आवेदक को जिरह करने का पर्याप्त अवसर दिया गया है। साक्षी ने कहा. लेकिन जब आवेदक को पता चला कि वही गवाह प्रमोद कुमार सोनकर है मृतक की हत्या के अपराध के लिए पंजीकृत एक ही मामले में शत्रुतापूर्ण घोषित किया गया है, लेकिन सत्र परीक्षण संख्या 696/2019 के सह-अभियुक्त होने के अलग-अलग मामले में, आवेदक की प्रार्थना है कि उसे पी.डब्ल्यू.2 से धारा 311 द.प्रा.स. के तहत उसके मुकदमे में फिर से जिरह करने की अनुमति दी जाए पर्याप्त न्याय के हित में इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह बहुत अजीब होगा कि एक ही आपराधिक मामले में एक ही अपराध के लिए लेकिन दो अपराधियों के अलग-अलग मुकदमे में एक ही व्यक्ति के अलग-अलग बयानों के आधार पर दोनों आरोपियों के लिए अलग-अलग विचार आएंगे। यह सर्वमान्य है कि न्याय न केवल होना चाहिए बल्कि न्याय होता हुआ दिखना भी चाहिए।

11. यह न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि द.प्रा.स. की धारा 311 में निहित प्रावधान संबंधित न्यायालय को ऐसे व्यक्ति को बुलाने,

जांच करने, वापस बुलाने और दोबारा जांच करने की व्यापक शक्ति प्राप्त है।

12. यहाँ-नीचे त्वरित संदर्भ के लिए, धारा 311 द.प्रा.स. पुनरुत्पादित किया जाता है:-

"311. महत्वपूर्ण गवाह को बुलाने, या उपस्थित व्यक्ति की जांच करने की शक्ति। कोई भी न्यायालय, इस संहिता के तहत किसी भी जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में, किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकता है, या उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति की जांच कर सकता है, भले ही उसे बुलाया न गया हो गवाह के रूप में, या उपस्थित किसी भी व्यक्ति की जांच करना, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो, या वापस बुलाना और पहले से जांचे गए किसी भी व्यक्ति की दोबारा जांच करना; और न्यायालय

किसी को बुलाएगा और जांच करेगा या वापस बुलाएगा और दोबारा जांच करेगा ऐसे व्यक्ति को यदि मामले का न्यायोचित निर्णय के लिये उसका साक्ष्य आवश्यक प्रतीत होता है"

13. द.प्रा.स. की धारा 311 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि यह धारा दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में न्यायालय को विवेकाधिकार दिया गया है और यह उसे संहिता के तहत जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में सक्षम बनाता है, (अ) किसी को गवाह के रूप में बुलाने के लिए, या (ब) अदालत में किसी भी व्यक्ति की जांच करने के लिए। , या (स) किसी ऐसे व्यक्ति को वापस बुलाना और दोबारा जांच करना जिसका साक्ष्य पहले ही दर्ज किया जा चुका है; दूसरी ओर, दूसरा

भाग अनिवार्य प्रतीत होता है और यदि नए साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं तो न्यायालय को ऊपर उल्लिखित कोई भी कदम उठाने की आवश्यकता होती है।

14. सीआरपीसी की धारा 311 का दायरा और विस्तार हाल ही में सुप्रीम कोर्ट द्वारा वी. एन. पाटिल बनाम निरंजन कुमार और अन्य, (2021) 3 एससीसी 661 मामले पर विचार किया गया, जहां पैराग्राफ 14, 15, 16 और 17 में निम्नलिखित देखा गया है: -

"14. द.प्रा.स. की धारा 311 का अंतर्निहित उद्देश्य यह है कि मूल्यवान साक्ष्य को रिकॉर्ड पर लाने या छोड़ने में किसी भी पक्ष की गलती के कारण न्याय में विफलता नहीं हो सकती है दोनों तरफ से जांचे गए गवाहों के बयानों में अस्पष्टता। निर्धारक कारक यह है कि क्या यह मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक है। जो महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति होती है वह है "किसी भी स्तर पर..."

15. द.प्रा.स. की धारा 311 के तहत शक्ति के प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा विजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: (एससीसीपी. 141, पैरा 17)

में अच्छी तरह से तय किया गया है।

"17. हालांकि धारा 311 न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान करती है और इसे यथासंभव व्यापक शब्दों में व्यक्त किया जाता है, उक्त धारा के तहत विवेकाधीन शक्ति का उपयोग केवल न्याय के उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग

संहिता के प्रावधानों के साथ लगातार किया जाना चाहिए और आपराधिक कानून के सिद्धांत। धारा 311 के तहत प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग अदालत द्वारा बताए गए कारणों के आधार पर न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए, न कि मनमाने ढंग से या मनमौजी तरीके से। श्रीमती रुचि सक्सेना की अदालत के गवाह के रूप में जांच करने के लिए विद्वान विशेष न्यायाधीश को निर्देश देने से पहले, उच्च न्यायालय विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा बताए गए कारणों की जांच नहीं की कि अदालत के गवाह के रूप में उसकी जांच करना क्यों आवश्यक नहीं था और बिना कोई कारण बताए विवादित निर्देश दे दिया।"

16. इस सिद्धांत को मन्नान शेख एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य में भी दोहराया गया है और उसके बाद रतनलाल बनाम प्रहलाद जाट और अन्य और स्वपन कुमार चटर्जी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो (स्वपन कुमार चटर्जी मामला एससीसी पृष्ठ 331, पैरा 10-11। स्वपन कुमार चटर्जी (सुप्रा) के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं: "10। इस खंड का पहला भाग जो अनुमेय है, पूरी तरह से विवेकाधीन अधिकार देता है आपराधिक न्यायालय और इसे संहिता के तहत जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में तीन तरीकों में से एक में कार्य करने में सक्षम बनाता है, अर्थात्, (i) किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने के लिए; या (ii) किसी भी व्यक्ति की जांच करने के लिए उपस्थिति, हालांकि गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया है; या (iii) पहले से ही जांच किए

गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाने और दोबारा जांच करने के लिए। दूसरा भाग, जो अनिवार्य है, अदालत पर दायित्व डालता है (i) बुलाने और जांच करने के लिए या (ii) वापस बुलाने के लिए और ऐसे किसी भी व्यक्ति की दोबारा जांच करें यदि उसका साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

11. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि धारा 311 के तहत प्रदत्त शक्ति का उपयोग न्यायालय द्वारा केवल न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए। शक्ति का प्रयोग केवल मजबूत और वैध कारणों के लिए किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग बहुत सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। इस धारा के तहत न्यायालय को गवाहों को पुनः परीक्षण के लिए वापस बुलाने की भी शक्ति प्राप्त है यह धारा न्याय के हित में आवश्यक है कि गवाहों को दोबारा जांच या आगे की जांच के लिए वापस बुलाया जाए, लेकिन इसका प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद किया जाना चाहिए। इस प्रावधान के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा यदि अदालत का मानना है कि आवेदन कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के रूप में दायर किया गया है।"

17. प्रत्येक न्यायालय का उद्देश्य सत्य की खोज करना है। द.प्रा.स. की धारा 311 ऐसे कई प्रावधानों में से एक है जो कानून द्वारा स्वीकृत प्रक्रिया द्वारा सच्चाई का पता लगाने के प्रयास में अदालत के हथियारों को मजबूत

करती है। साथ ही, द.प्रा.स. की धारा 311 के तहत निहित विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग मजबूत और वैध कारणों से और न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सावधानी और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।"

15. वर्षा गर्ग बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 986 में पैरा 31 से 37 में रिपोर्ट दी है, माननीय सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार माना है: -

"31. यह स्पष्ट करने के बाद कि धारा 301 के तहत रोक लागू नहीं है और अपीलकर्ता इस अपील को आगे बढ़ाने के लिए अच्छी तरह से तैयार है, अब हम द.प्रा.स. की धारा 311 की जांच करते हैं। धारा 311 में प्रावधान है कि न्यायालय "हो सकता है"।

(i) किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाना या उपस्थित किसी भी व्यक्ति की जांच करना, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो; और

(ii) पहले से मौजूद किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाना और उसकी दोबारा जांच करना जांच की गई.

32. इस शक्ति का प्रयोग द.प्रा.स.के तहत किसी भी जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में किया जा सकता है। धारा 311 के उत्तरार्ध में कहा गया है कि न्यायालय ऐसे किसी भी व्यक्ति को "समन करेगा और जांच करेगा या वापस बुलाएगा और पुनः जांच करेगा" यदि उसका साक्ष्य

अदालत को मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। धारा 311 में व्यापक संदर्भ में न्यायालय को एक शक्ति दी गई है। सत्य की खोज में सहायता करने के कानून के इरादे को प्राप्त करने के लिए वैधानिक प्रावधान को उद्देश्यपूर्ण ढंग से पढ़ा जाना चाहिए।

33. वैधानिक प्रावधान का पहला भाग जो "हो सकता है" अभिव्यक्ति का उपयोग करता है, यह बताता है कि शक्ति का प्रयोग किसी जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में किया जा सकता है। प्रावधान का उत्तरार्ध भाग न्यायालय द्वारा एक गवाह को वापस बुलाने का आदेश देता है क्योंकि यह अभिव्यक्ति का उपयोग करता है "यदि ऐसे किसी भी व्यक्ति को उसके साक्ष्य आवश्यक प्रतीत होते हैं तो उसे बुलाया जाएगा और जांच की जाएगी या वापस बुलाया जाएगा और फिर से जांच की जाएगी मामले का उचित निर्णय"। जिस व्यक्ति की जांच की जानी है उसके साक्ष्य की अनिवार्यता के साथ-साथ मामले के न्यायसंगत निर्णय की आवश्यकता वह कसौटी बनती है जिसे न्यायालय के निर्णय का मार्गदर्शन करना चाहिए। वैधानिक प्रावधान का पहला भाग विवेकाधीन है जबकि उत्तरार्ध अनिवार्य है।

34. मोहनलाल शामजी सोनी (सुप्रा) में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 540 के सममूल्य प्रावधानों से निपटते हुए कहा:

"16. धारा 540 का दूसरा भाग, जैसा कि बताया गया है, अदालत पर किसी भी गवाह को बुलाने या वापस बुलाने और फिर से पूछताछ करने का दायित्व डालता है और निर्धारित एकमात्र शर्त यह है कि प्राप्त किए जाने वाले साक्ष्य न्यायपूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक होने चाहिए। मामला। जब कार्यवाही में कोई भी पक्ष कुछ सबूत लिए जाने की वांछनीयता को इंगित करता है, तो अदालत को इस प्रावधान के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है - या तो विवेकाधीन या अनिवार्य - प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, देखें कि इस प्रावधान में अंतर्निहित सबसे सर्वोपरि सिद्धांत न्याय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रासंगिक तथ्यों की खोज करना या उनका उचित प्रमाण प्राप्त करना है।"

35. न्यायमूर्ति एस रत्नावेल पांडियन ने दो न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए कहा कि शक्ति व्यापक संभव शर्तों में निहित है और किसी सीमा की आवश्यकता नहीं है, न तो उस चरण के संबंध में जिस पर इसका प्रयोग किया जा सकता है या इसके अभ्यास के तरीके के संबंध में। यह केवल इस सिद्धांत द्वारा सीमित है कि "प्राप्त किए जाने वाले साक्ष्य सभी कानूनी तरीकों से सच्चाई प्राप्त करके मामले के उचित निर्णय के लिए अदालत को आवश्यक प्रतीत होने चाहिए।" उस संदर्भ में न्यायालय ने कहा:

"18 इसलिए, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि धारा की सहायता केवल प्रासंगिक तथ्यों की खोज करने या मामले के उचित निर्णय के

लिए ऐसे तथ्यों का उचित प्रमाण प्राप्त करने के उद्देश्य से ही लागू की जानी चाहिए और इसका उपयोग न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए और मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से नहीं, क्योंकि शक्ति के किसी भी अनुचित या मनमाने ढंग से प्रयोग से अवांछनीय परिणाम हो सकते हैं। इसके अलावा यह अनिवार्य है कि इस धारा के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायालय द्वारा उचित सावधानी बरती जानी चाहिए और इसका उपयोग भरने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। अभियोजन या बचाव पक्ष द्वारा छोड़ी गई कमी या अभियुक्त के नुकसान के लिए या अभियुक्त के बचाव में गंभीर पूर्वाग्रह पैदा करने के लिए या प्रतिद्वंद्वी पक्ष को अनुचित लाभ देने के लिए और इसके अलावा अतिरिक्त साक्ष्य को छिपाने के रूप में प्राप्त नहीं किया जाना चाहिए। किसी भी पक्ष के विरुद्ध पुनः सुनवाई या मामले की प्रकृति को बदलना।"

36. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों से प्राप्त स्थिति का सारांश, अर्थात् रामेश्वर दयाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 19, पश्चिम बंगाल राज्य तुलसीदास मूंदड़ा²⁰, जमातराज केवलजी गोवानी बनाम महाराष्ट्र राज्य²¹, मसालती बनाम यूपी राज्य²², राजेश्वर प्रसाद मिश्रा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य²³ और आर.बी. मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य²⁴, न्यायालय ने कहा:

27. उपरोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से जो कानून का सिद्धांत उभरता है वह यह है कि आपराधिक न्यायालय के पास किसी भी व्यक्ति को गवाह

के रूप में बुलाने या ऐसे किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाने और फिर से जांच करने की पर्याप्त शक्ति है, भले ही दोनों पक्षों के साक्ष्य हों बंद कर दिया गया है और अदालत का क्षेत्राधिकार स्पष्ट रूप से स्थिति की तात्कालिकता से तय होना चाहिए, और निष्पक्ष खेल और अच्छी समझ ही एकमात्र सुरक्षित मार्गदर्शक प्रतीत होते हैं और केवल न्याय की आवश्यकताएं ही किसी भी व्यक्ति की जांच का आदेश देती हैं जो तथ्यों पर निर्भर करेगा और प्रत्येक मामले की परिस्थितियाँ।"

37. साक्ष्य को बंद करने से न्यायालय की शक्ति बाधित नहीं होती है। इसलिए, उपरोक्त चर्चा से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि धारा 311 के तहत व्यापक शक्तियाँ न्याय की आवश्यकता द्वारा शासित होनी हैं। जहां भी अदालत को लगे कि मामले के उचित निर्णय के लिए कोई सबूत आवश्यक है, वहां शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। वैधानिक प्रावधान इस बात पर जोर देता है कि न्याय को पटरी से उतारने में अदालत असहाय दर्शक नहीं है। इसके विपरीत, यह सुनिश्चित करने में न्यायालय की महत्वपूर्ण भूमिका है कि न्याय की प्राप्ति में सहायता के रूप में सत्य की खोज का उद्देश्य प्रकट हो।"

13. धारा 311 सीआरपीसी में निहित प्रावधान, वर्तमान विवाद के लिए प्रासंगिक होने के कारण, नीचे दिए गए हैं: -

"311. महत्वपूर्ण गवाह को बुलाने, या उपस्थित व्यक्ति की जांच करने की शक्ति। - कोई भी न्यायालय, इस संहिता के तहत किसी भी जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही

के किसी भी चरण में, किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकता है, या उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति की जांच कर सकता है, हालांकि गवाह के रूप में नहीं बुलाया जाएगा, या पहले से ही जांच किए गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाया जाएगा और दोबारा जांच की जाएगी; और न्यायालय ऐसे किसी भी व्यक्ति को बुलाएगा और जांच करेगा या वापस बुलाएगा और फिर से जांच करेगा यदि उसका साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।" (जोर दिया गया)

16. उपरोक्त चर्चाओं और विचार-विमर्श के मददेनजर, इस न्यायालय का मानना है कि न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, गवाह को जिरह करने का अवसर दिए बिना आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दरवाजा बंद नहीं किया जा सकता है, जब उसे पता चले कि अन्य सत्रों में मुकदमे में वही गवाह मुकर गया।

17. तदनुसार, 29 अगस्त, 2022 को ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 15, इलाहाबाद द्वारा सत्र ट्रायल संख्या 196/2015 (राज्य बनाम उदय यादव) में पारित किया गया, जो केस से उत्पन्न हुआ था। अपराध संख्या 609/2014 धारा 302 आईपीसी, थाना-धूमनगंज, जिला-इलाहाबाद द्वारा आवेदक द्वारा धारा 311 द.प्रा.स. के तहत दाखिल प्रार्थना पत्र को खारिज करते हुए पी.डब्ल्यू.-2 को आगे की जिरह के लिए अलग रखा गया है। ट्रायल कोर्ट को निर्देश दिया गया है कि वह बदली हुई परिस्थितियों में आवेदक द्वारा

पी.डब्ल्यू.-2 से दोबारा जिरह करने की तारीख तय करे।

18. उपरोक्त निर्देशों के साथ, वर्तमान आवेदन स्वीकार किया जाता है।

19. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने सत्र परीक्षण संख्या 196/2015 के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है।

(2023) 4 ILRA 791

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

28748/2022

पवन गर्ग

.. आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री श्याम शंकर मिश्र,
श्री विजय कुमार मिश्र

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

परक्राम्य लिखत अधिनियम- धारा 138- चेक अनादर-फर्म द्वारा अपनी प्रोपराइटर श्रीमती काजल गर्ग के माध्यम से जारी किया गया-ई-वे बिल में आवेदक का नाम जीएसटी दस्तावेजों को प्रोपराइटर, निदेशक या मालिक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है - परिवाद में आवेदक पर दबाव डालने के लिए श्रीमती काजल गर्ग का पति होने का दावा किया गया है - आवेदक न तो गारंटर है और न ही अपनी पत्नी के एजेंट का अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता है - पति और पत्नी अलग-

अलग कानूनी इकाई हैं - समन आदेश गलत है - आवेदन स्वीकार किया जाता है। (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

हरियाणा राज्य बनाम चौधरी भजन लाल एआईआर 1992 एससी 604

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम शंकर मिश्रा, राज्य के विद्वान अ० शा० अधिवक्ता श्री पंकज त्रिपाठी को सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया।

2. आवेदक द्वारा यह आवेदन सिविल जज न्यायालय (जूनियर डिवीजन) एफ टी सी/ न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद में लंबित पर० लि० अधिनियम की धारा 138 के अधीन दाण्डिक परिवाद मामला सं० 12120 वर्ष 2020 - आर एण्ड एस एयर कंडीशनिंग बनाम मेसर्स एयरकान गैलटी मे सम्पूर्ण दाण्डिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए दाखिल किया गया है।

3. संक्षेप में मामले का तथ्य यह है कि विरोधी पक्षकार सं० 2 ने आवेदक तथा इसके पत्नी श्रीमती काजल गर्ग तथा इसके स्वत्वधारी श्रीमती काजल गर्ग (आवेदक की पत्नी) के द्वारा मेसर्स एयरकेन गैलरी के विरुद्ध यह कहते हुए पर० लि० अधिनियम की धारा 138 के अधीन परिवाद संस्थित किया था कि विरोधी पक्षकार सं० 3 श्रीमती काजल गर्ग विरोधी पक्षकार सं० 1 के

साझेदारी फर्म का स्वत्वधारी है तथा विरोधी पक्षकार सं० 2 प्रबंधक/मान्यता प्राप्त व्यक्ति, प्रमुख अधिकारी है। विरोधी पक्षकार सं० 2 तथा 3 एक साथ फर्म को विनियमित कर रहे हैं, जिसमें अधिष्ठापन, नलिका की फिटिंग तथा संविरचन कार्य शामिल है। परिवाद फर्म के स्वत्वधारी सचिन शर्मा तथा विरोध पक्षकार सं० 2 श्री पवन गर्ग के बीच व्यापारिक संबंध रहा है। इन दोनों के बीच परस्पर विश्वास रहा है। विरोधी पक्षकार ने 10,03,189.00/-के धनराशि का डैक्टेविल ए०सी मशीन के साथ नलिका स्थल संविरचन तथा ए०सी प्रतिष्ठापन हेतु परिवादी को माह अगस्त 2019 में मौखिक कार्यादेश दिया था।

4. परिवादी बकाया धनराशि/धन की नियमित माँग किया करता था जिसके लिए विरोधी पक्षकार द्वारा ध्यान नहीं दिया गया था, लेकिन अंत में इन लोगों ने विरोध पक्षकार सं० 3 द्वारा इस पर हस्ताक्षर करवाकर ₹ 3,00,000/-के धनराशि हेतु चेक सं० 088797 उपलब्ध कराया था लेकिन जब इसे इसके पं० ने० बैंक शाखा गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद में 01.09.2020 को पेश किया गया था, इसे ठहराव से अधिक पृष्ठांकन के साथ अनाहृत किया गया था। विरोधी पक्षकार ने खाता का चेक उपलब्ध कराया था जिससे भुगतान संभव नहीं था, इन लोगों ने परिवादी को धोखा देने के लिए साशय चेक दिया था।

5. 16.09.2020 को नोटिस दिनांक 16.09.2020 विरोधी पक्षकार को 17.09.2020 को भेजा गया था जिसे इन लोगों द्वारा 26.09.2020 को प्राप्त किया गया था, लेकिन

इन लोगों ने धनराशि 15 दिनों के बाद भी 10.10.2020 तक अदा नहीं किया था, अतः विरोधी पक्षकार का कार्य भा० दं० सं० की धारा 420 तथा पर० लि० अधिनियम की धारा 138 को आकृष्ट करता है। अतः विरोधी पक्षकारों का पूर्वोक्त धाराओं में विचारण हेतु समन किया जाय।

6. 12.08.2021 को आवेदक पवन गर्ग तथा श्रीमती काजल गर्ग को संबंधित न्यायालय द्वारा पर० लि० अधिनियम की धारा 138 के अधीन बतौर स्वत्वधारी समन किया गया था।

7. संक्षेप में, इस आवेदन के आधार यह है कि चेक फर्म अर्थात् मेसर्स एयरकान गैलरी द्वारा अपने स्वत्वधारी श्रीमती काजल गर्ग के जरिए जारी किया गया था। विरोधी पक्षकार सं० 2 द्वारा पेश कर बीजक ई-वे-विल जीएसटी दस्तावेजों में यह प्रदर्शित होता है कि स्वत्वधारी, निदेशक, स्वामी या फर्म एयरकान-गैलरी के अन्यथा के रूप में आवेदक के नाम के बारे में कोई सुगबुगाहट नहीं है।

8. वास्तव में, आवेदक का पूर्वोक्त फर्म से कोई लेना देना नहीं है। यह एक स्वत्वधारी श्रीमती काजल गर्ग द्वारा संचालित स्वामित्व फर्म है, जो भारत सरकार द्वारा जारी पंजीकरण प्रमाण पत्र की छायाप्रति उपाबंध सं० 5 से स्पष्ट है। आवेदक का पूर्वोक्त फर्म से कोई लेना देना नहीं है तथा इसे पूर्वोक्त फर्म की स्वत्वधारी श्रीमती काजल गर्ग का पति होने के नाते धन के वसूली हेतु दबाव बढ़ाने के दुराशय से परिवाद में सूचीबद्ध किया गया है। आवेदक का पूर्वोक्त फर्म से कोई व्यापारिक

संबंध नहीं है तथा अनाज बाजार में सेल्स एजेण्ट के रूप में अलग तरीके से काम करता है।

9. विद्वान अवर न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने में पूर्णतया असफल था तथा श्रीमती काजल गर्ग के साथ आवेदक को पर० लि० अधिनियम की धारा 138 के अधीन यांत्रिक रूप से समन किया है।

10. आक्षेपित आदेश मनमाना, अन्यायपूर्ण, अवैध है तथा विधि की दृष्टि में संधार्य नहीं है। विधिक तथा व्यवहारिक पहलुओं द्वारा आवेदक का पूर्वोक्त फर्म से कोई लेना देना नहीं है। अवर न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री की जाँच नहीं कर सकता है तथा संबंध के आधार पर किसी व्यक्ति को अभियोजित नहीं किया जा सकता है, अतः वर्तमान आवेदन को अनुज्ञात किया जाय तथा आक्षेपित आदेश को अभिखंडित किया जाय।

11. विरोधी पक्षकार सं० 2 को पर्याप्त तरीके से तामील कराया गया है, लेकिन कोई उपस्थित नहीं हुआ तथा इस आवेदन के विरुद्ध किसी प्रतिशपथ पत्र को दाखिल नहीं किया गया है।

12. अभिलेख पर उपलब्ध पत्रावली से साबित होता है कि मात्र श्रीमती काजल गर्ग मेसर्स एयरकान गैलरी का एक मात्र स्वत्वधारी है तथा आवेदक पवन गर्ग पूर्वोक्त फर्म का न तो स्वत्वधारी, सह-स्वत्वधारी या प्राधिकृत अधिकारी या हस्ताक्षरकर्ता स्वामी या प्रमुख अधिकारी है।

13. आक्षेपित चेक को परिवाद के विरोधी पक्षकार सं० 1 के एक मात्र स्वत्वधारी विरोधी पक्षकार सं० 3 काजल गर्ग द्वारा जारी किया गया है। यह साबित करने के लिए कोई पत्रावली नहीं है कि आवेदक फर्म का प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता, अभिकर्ता या सह-स्वत्वधारी है। विधि की दृष्टि में पत्नी तथा पति की अलग सत्ता होती है। यह भी मामला नहीं है कि फर्म की एक मात्र स्वत्वधारी पत्नी ने आवेदक की ओर से या द्वारा हस्ताक्षरित चेक उपलब्ध कराया था।

14. *एम० सीतालक्ष्मी बनाम सुरेश बाफना 2005 एससीसी आनलाइन मद्रास 26* में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि मात्र इस कारण पति द्वारा स्वयं द्वारा प्राप्त ऋण हेतु जारी चेक हेतु की ऋण के उधार लेने में पत्नी अभियुक्त द्वारा गारंटी दी गई है जिसे दायित्व हेतु केवल सिविल फोरम में लागू किया जा सकता है तथा चूँकि पत्नी चेक के जारी करने के संबंध में पक्षकार नहीं है, इसे अधिनियम की धारा 138 के अधीन अस्वीकृत चेक के अभियोजन हेतु पक्षकार या अभियुक्त नहीं बनाया जा सकता है।

15. इस मामले में समान स्थिति है जहाँ आवेदक की पत्नी एक मात्र स्वत्वधारी काजल गर्ग ने चेक जारी किया है तथा आवेदक न तो जामिनदार है न ही अपनी पत्नी के अभिकर्ता या प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के क्षमता में कार्य किया है।

16. शीर्ष न्यायालय ने **हरियाणा राज्य बनाम चैधरी भजन लाल एआईआर 1992 एससी 604** में उन दिशा निर्देशों को अधिकथित किया है जहाँ उच्च न्यायालय विधि के कार्यवाही के दुरुपयोग को रोकने के लिए **दं० प्र० सं० की धारा 482** के अधीन अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। फिर भी, इसे कम तथा विरल से विरलतम् मामले में किया जाना चाहिए।

दिशा निर्देश निम्नवत है :-

"1) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में किया गया अभिकथन भले ही इसे इनके अंकित मूल्य पर लिया जाता है तथा इसके सम्पूर्णता में स्वीकार किया जाता है प्रथम दृष्टया कोई अपराध गठित नहीं होता है या अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनता है।

2) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभिकथन तथा प्र० सू० रि० के साथ अन्य सामग्री, यदि कोई है, सिवाय संहिता की धारा 155 (2) के कार्य क्षेत्र में मजिस्ट्रेट के आदेश के अधीन संहिता की धारा 156 (1) के अधीन पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण को न्याय संगत ठहराने वाला संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं होता है।

3) जहाँ प्र० सू० रि० या परिवाद में किया गया निर्विवादित

अभिकथन तथा इसके समर्थन में एकत्रित साक्ष्य से किसी अपराध का किया जाना प्रकट नहीं होता है तथा अभियुक्त के विरुद्ध मामला नहीं बनता है।

4) जहाँ प्र० सू० रि० में अभिकथन से संज्ञेय अपराध गठित नहीं होता है बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध गठित होता है, मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण की अनुमति नहीं दी जाती है जैसा संहिता की धारा 155 (2) के अधीन अनुध्यात है।

5) जहाँ प्र० सू० रि० या परिवाद में किया गया अभिकथन इतना वेतुका तथा अन्तर्निहित रूप से असंभाष्य है जिसके आधार पर प्रजावान व्यक्ति कभी इस न्यायपूर्ण निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है।

6) जहाँ कार्यवाहियों के संस्थित तथा जारी रहने के संबंध में संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके अन्तर्गत दाण्डिक कार्यवाही संस्थित किया गया है) के किन्हीं प्रावधानों में स्पष्ट विधिक रोक रोपित है तथा/या जहाँ व्यक्ति पक्षकार के

शिकायत हेतु प्रभावकारी निवारण का उपबंध करने वाले संहिता या संबंधित अधिनियम में विनिर्दिष्ट प्रावधान है।

17. एस0बी0 शंकर बनाम अमन स्टील कारपोरेशन 2001 एससीसी आनलाइन मद्रास 825 में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि अभियुक्त उस अवधि के दौरान अभियुक्त कंपनी के अध्यक्ष तथा निदेशक के रूप में कार्य नहीं किया था जब चेको को आहरित किया गया था, धारा 138 पर0 लि0 अधिनियम के अधीन दायित्व पैदा नहीं होगा।

18. पी0 दामोदरन बनाम पलानी अंदावर मिल्स लि0 2001 एससीसी आनलाइन मद्रास 944 में यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब अभियुक्त चेको का न तो हस्ताक्षरकर्ता था न ही फर्म के दैनिक कार्यों का भार साधक था, वह धारा 138 पर0 लि0 अधिनियम के अधीन दायी नहीं होगा।

19. गंगाधर बनाम श्रेणी कमल 2002 एससीसी आनलाइन एमपी 674 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त न तो भागीदारी फर्म चला रहा था न ही भागीदार था न ही चेक पर हस्ताक्षर किया था, अतः वह पर0 लि0 अधिनियम की धारा 138 के अधीन दायी नहीं होगा।

20. जी0 हुवर्ट फेनेलान बनाम डी0 श्रीधरन 2002 एससीसी आनलाइन मद्रास 547 में अभियुक्त अपराध करने के तिथि को कंपनी का निदेशक नहीं था, वह धारा 138 पर0 लि0

अधिनियम के अधीन दायी नहीं ठहराया जायेगा।

21. उपरोक्त सभी उद्धरण आवेदक द्वारा लिये गये प्रतिरक्षा के समर्थन में है। अतः आवेदक को पर0 लि0 अधिनियम की धारा 138 के अधीन बतौर अभियुक्त समन नहीं किया जा सकता है तथा आवेदक के संबंध में समन करने का आदेश मामले के उपरोक्त तथ्यों तथा परिस्थितियों के आलोक में विधि में दोषपूर्ण है।

आदेश

द0प्र0सं0 की धारा 482 के अधीन इस आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है तथा आक्षेपित आदेश दिनांक 12.08.2021 जहाँ तक इसका संबंध आवेदक से है, एतद्वारा अभिखंडित किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 794
मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

32791/2022

दीपक कुमार

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री मुकेश कुमार, श्री आर.के. सक्सेना

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री शैलेन्द्र कुमार शर्मा, श्री सुरेंद्र कुमार

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 197-एफआईआर दर्ज की गई-अंतिम रिपोर्ट निरस्त कर दी गई-पूर्व स्वीकृति नहीं ली गई-आवेदक इयूटी पर अधिकारी था-आवेदक द्वारा कर्तव्य के आधिकारिक निर्वहन और कथित अपराध के बीच कोई संबंध नहीं-पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता नहीं।

आवेदन निरस्त (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. महेंद्र पाल सिंह लेखपाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 0 सुप्रीम (सभी) 15
2. अनिल कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2022 (4) जेआईसी 223 (एससी)
3. अजीत शुक्ला एवं अन्य बनाम मुख्य सचिव गृह सिविल सचिवालय, उत्तर प्रदेश एवं अन्य, आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 5776/2017, निर्णय दिनांक 10.08.2022
4. डी. देवराजा बनाम ओवैस सबीर हुसैन, 2020 0 सुप्रीम (एससी) 413
5. सीबीआई बनाम बीएल वर्मा एवं अन्य, (1997) 10 एससीसी 772
6. शांताबेन भूराभाई भूरिया बनाम आनंद अथाभाई चौधरी और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन 974
7. फर्टिको मार्केटिंग बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) (2021) 2एससीसी 525
8. पुलिस निरीक्षक व अन्य बनाम बट्टेनपटला वेंकट रत्नम, एआईआर 2015 (एससी) 2403

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री मुकेश कुमार का पक्ष कथन करने वाले अधिवक्ता श्री आर0के0 सक्सेना, राज्य के विद्वान अ0शा0अधि0 श्री पंकज कुमार त्रिपाठी तथा विरोधी पक्षकार सं0 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेन्द्र कुमार को सुना।

2. यह आवेदन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फरूखाबाद के न्यायालय में लंबित धारा 147, 323, 504, 452, 342, 420, 467, 468, 471 भा0द0सं0 पुलिस थाना फतेहगढ़ कोतवाली जिला फरूखाबाद के अधीन मामला अपराध सं0 595 वर्ष 2018 से उद्भूत प्रकीर्ण मामला सं0 817 वर्ष 2020 (राज्य बनाम महेश कुमार) के सम्पूर्ण कार्यवाहियों तथा आक्षेपित समन करने वाले आदेश दिनांक 7-8-2022 का अभिखण्डन करने के लिए दाखिल किया गया है।

3. संक्षेप में मामले का तथ्य यह है कि जिला जज, फतेहगढ़, फरूखाबाद के निवास स्थान पर तैनात कान्सटेबिल 1107 सीपी महेश कुमार ने धारा 147, 323, 504, 452, 342 भा0द0सं0 के अधीन अपराध सं0 595 वर्ष 2018 में रात में 10 बजे से 2.00 बजे के बीच 22/23-07-2018 को किये गये अपराध के बारे में 23-07-2018 को 10:10 बजे पूर्वाह्न प्र0सू0रि0 दर्ज कराया था कि इसे 22-07-2018 को 10.00 बजे रात से 2.00 बजे रात में बतौर गार्ड काम सौंपा गया था। चौकीदार सुधीस कुमार तथा पंकज यादव भी इयूटी पर थे। लगभग 11.15 बजे रात में एक व्यक्ति सामान्य परिधान में पुलिस वर्दी में 6-7 व्यक्तियों के साथ जिला जज के आवास के

मेन गेट को पार करते हुए आये थे क्योंकि यह बंद था। वह गेट की ओर दौड़ा था तथा देखा कि दो कान्सटेबिल जमीन पर पहले से पड़े चंदन की लकड़ी काट रहे थे तथा कुछ कान्सटेबिल तथा एसएसआई दीपक कुमार चौकीदार को मंदोन्मत अवस्था में पुलिस जीप में रखे थे। जब इसने रोका, लकड़ी छोड़ते हुए, गार्ड के साथ, इन्हें गाली दिया तथा भाग गये थे। गार्ड तथा कमांडर ने आर0आई0 को तत्काल लगभग 1.00 बजे रात में सूचित किया था। दोनों चौकीदार वापस आये थे तथा बताया कि एसएसआई दीपक कुमार तथा अन्य कान्सटेबिल ने गाली दिया था तथा इन्हें डण्डा से मारा पीटा था जिससे इन्हें क्षतियां पहुँची हैं। अन्वेषण के अनुक्रम के दौरान इतिला देने वाले महेश कुमार ने अपने प्र0सू0रि0 के अन्तर्वस्तुओं का खण्डन करते हुए एस0पी0 फतेहगढ़ के पास शपथपत्र दाखिल किया था। चौकीदार सुधीस कुमार तथा पंकज यादव ने धारा 161 द0प्र0सं0 के अधीन अपने कथन में अभियोजन के समर्थन में बताया था।

4. अन्वेषण के बाद अन्वेषण अधिकारी ने इस आशय का अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किया था कि स्वतंत्र तथा संपोषक साक्ष्य का हिस्सा उपलब्ध नहीं है। क्षतिग्रस्त विरोधी पक्षकार सं0 2 पंकज यादव ने अभ्यापति याचिका दाखिल किया था जिसे स्वीकार किया गया था तथा 7-8-2022 को अंतिम रिपोर्ट को नामंजूर किया गया था तथा धारा 147, 323, 504, 452, 342, 420, 467, 468, 471 भा0द0सं0 के अधीन आवेदक के विरुद्ध संज्ञान लिया गया है। यह भी निर्देश दिया गया है कि मामला राज्य मामले के रूप में चलेगा।

5. विरोधी पक्षकार सं0 2 पंकज यादव की क्षति रिपोर्ट अभिलेख पर है जो चार क्षतियों को प्रकट करता है, दो अंतःक्षति के रूप में तथा दो क्षतियाँ दर्द के शिकायत के रूप में।

6. पूर्वोक्त प्र0सू0रि0 के पहले धारा 379 भा0द0सं0 के अधीन प्र0सू0रि0 श्री मोहम्मद इब्राहिम, केन्द्रीय नजीर, सिविल न्यायालय, फरूखाबाद द्वारा अज्ञात चोटों के विरुद्ध दो चंदन के पेड़ों को काटने के संबंध में दर्ज कराया गया था।

7. आवेदक ने आधार लिया है कि कान्सटेबिल महेश कुमार (इतिला देने वाले) के अनुसार आवेदक को घटनास्थल पर नहीं देखा गया था। यद्यपि क्षतिग्रस्त पंकज यादव ने अभियोजन बयान का समर्थन किया है। अन्वेषण अधिकारी ने अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किया है क्योंकि इसने आवेदक के विरुद्ध कोई अपराध नहीं पाया था तथा इसने इसे पूर्वोक्त अपराध से दोषमुक्त किया था। आवेदक एक सरकारी कर्मचारी तथा पुलिस अधिकारी है। अतः इसके विरुद्ध अभियोजन आरंभ करने के लिए पूर्व मंजूरी धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन आवश्यक था जिसे संबंधित विभाग से नहीं लिया गया है। विरोधी पक्षकार सं0 2 पंकज यादव ने स्वयं क्षति रिपोर्ट अपने पक्ष में तैयार किया है जो प्रकृति में सामान्य है। आवेदक ने कभी भी विरोधी पक्षकार सं0 2 तथा इसके साथी सुधीस कुमार का कोई कूटरचित हस्ताक्षर नहीं बनाया था लेकिन विशेषज्ञ से रिपोर्ट मंगाये बिना मजिस्ट्रेट ने सरसरी तौर पर धारा 420, 467, 468, 471 भा0द0सं0 के

अधीन आवेदक को समन किया था जो विधि में अनुज्ञेय नहीं है।

8. अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद अपने मामले के प्रतिरक्षा का अधिकार आवेदक को प्राप्त था लेकिन किसी नोटिस को जारी किये बिना तथा इसे सुनवाई का अवसर दिये बिना आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जो विधि में अनुज्ञेय नहीं है। आक्षेपित आदेश अवैध, मनमाना तथा साक्ष्य के विरुद्ध है तथा अभिखंडित किये जाने योग्य है। आवेदक ने कभी भी किसी समय विरोधी पक्षकार सं० 2 तथा इसके साथी को मारा पीटा नहीं था क्योंकि वह घटना स्थल पर मौजूद नहीं था तथा केवल चंदन के लकड़ी के अवैध चोरी को छिपाने के लिए विरोधी पक्षकार सं० 2 ने इसे झूठे मूठे आलिप्त किया था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग किये बिना संज्ञान लिया था जो विधि की दृष्टि में संधार्य नहीं है। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। यदि इसे जेल में डाला जाता है, इसे अपूरणीय क्षति भुगतनी पड़ेगी। अतः आवेदन को अनुज्ञात किया जाय तथा पूर्वोक्त मामले के सम्पूर्ण कार्यवाहियों को अभिखंडित किया जाय।

9. आवेदक ने अनुपूरक शपथपत्र दाखिल किया है जिसके द्वारा आवेदक ने जी०डी० के प्रति को उपाबंध एसए-2 के रूप में तथा क्षतिग्रस्त पंकज यादव, विरोधी पक्षकार सं० 2 के अनुपूरक चिकित्सा रिपोर्ट को संलग्न किया है।

10. चूँकि आवेदक धारा 197 द०प्र०सं० के अधीन सुरक्षा का दावा करता है। अतः इसे निम्नवत् दोहराया जाता है:-

"197 न्यायाधीशों और लोक सेवकों का अभियोजन- (1) जब किसी व्यक्ति पर जो न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट या ऐसा लोक सेवक है या था जिसे सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से ही उसके पद से हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं, किसी ऐसे अपराध का अभियोग है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था जब उसका ऐसा कार्य करना तात्पर्यित था तब कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान-

(क) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के कार्यकाल के संबंध में, यथास्थिति, नियोजित है या अभिकथित अपराध के किये जाने के समय नियोजित था, केन्द्रीय सरकार की।

(ख) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो किसी राज्य के कार्यकलाप के संबंध में यथास्थिति नियोजित है या अभिकथित अपराध के किये जाने के समय नियोजित था, उस राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी से ही करेगा, अन्यथा नहीं। परन्तु यह कि जहाँ अभिकथित अपराध खण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति द्वारा उस दौरान किया गया है जब संविधान के अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) के अधीन जारी की गई उद्घोषणा किसी राज्य में प्रवर्तित थी, वहाँ खण्ड (ख) के उपबंध

उसी प्रकार लागू होंगे मानो कि उसमें अपने वाले "राज्य सरकार" पद के स्थान पर केन्द्रीय सरकार पद रख दिया गया है।

(2) कोई भी न्यायालय संघ के सशस्त्र बल के किसी सदस्य द्वारा किये गये किसी अपराध का संज्ञान जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसे कार्य करना तात्पर्यित था, केन्द्रीय सरकार की पूर्व मंजूरी से ही करेगा अन्यथा नहीं।

(3) राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा निदेशक दे सकती है कि उसमें यथा विनिर्दिष्ट बल के ऐसे वर्ग या प्रवर्ग के सदस्यों को जिन्हें लोक व्यवस्था बनाये रखने का कार्यभार सौंपा गया है, जहाँ कहीं भी वे सेवा कर रहे हों, उपधारा (2) के उपबंध लागू होंगे और तब उस उपधारा के उपबंध इस प्रकार लागू होंगे मानो उसमें आने वाले केन्द्रीय सरकार पद के स्थान पर राज्य सरकार पद रख दिया गया है।

(3क) उपधारा (3) के किसी बात के होते हुए भी कोई न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह बलों के किसी सदस्य द्वारा उस समय किया गया था, जब किसी राज्य में संविधान के

अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) में जारी की गई उद्घोषणा के प्रवर्तन के दौरान वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था या जब उसका ऐसा कार्य करना तात्पर्यित था, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमति से ही करेगा, अन्यथा नहीं।

(3ख) इस संहिता अथवा किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी खण्ड एतद्वारा यह घोषित किया जाता है कि सन् 1991 के अगस्त के 20वें दिन से प्रारम्भ और उस तारीख को समाप्त अवधि के दौरान जिस तारीख को दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम 1991 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाती है, यदि किसी ऐसे अपराध के संबंध में, जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उस दौरान किया गया था जब राज्य में संविधान के अनुच्छेद 356 के खण्ड (1) के अधीन जारी की गई उद्घोषणा प्रवर्तन में थी, राज्य सरकार ने कोई स्वीकृति प्रदान की थी अथवा यह कि ऐसी स्वीकृति पर किसी न्यायालय ने संज्ञान ग्रहण किया था तो वह अविधिमान्य होगी और ऐसे किसी विषय पर स्वीकृति प्रदान करने के लिए केन्द्रीय सरकार और उस पर संज्ञान ग्रहण करने के लिए न्यायालय सक्षम होगा।

(4) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार उस व्यक्ति को जिसके

द्वारा और उस रीति का जिससे वह अपराध या वे अपराध जिसके या जिनके लिए ऐसे न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या लोक सेवक का अभियोजन किया जाना है, अवधारण कर सकती है और वह न्यायालय विनिर्दिष्ट कर सकती है जिसके समक्ष विचारण किया जाना है।

11. धारा 197 द0प्र0सं0 के प्रयोज्यता के बारे में पक्षकारों के बीच विचारों का अंतर है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार आवेदक के विरुद्ध कार्यवाही के पहले धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन पूर्व मंजूरी आवश्यक था जबकि विद्वान अ0शा0अधि0 तथा विरोधी पक्षकार सं0 2 के विद्वान अधिवक्ता का विचार है कि अपराध का अभिकथित किया जाना पदीय कर्तव्य के निर्वहन के कार्य से अलग कार्य है। इस संबंध में दोनों पक्षकारों ने कुछ निर्णयों पर भरोसा किया है जो निम्नवत् हैं:-

(i) **महेन्द्र पाल सिंह लेखपाल तथा एक अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य तथा एक अन्य 2022 0 सुप्रीम (इला0) 15.** इस मामले में आवेदक सं0 1 तथा 2 चकबंदी विभाग में लोक सेवक थे। चकबंदी कार्यवाही के दौरान इन्हें संयुक्त भूखण्ड आबंटित किया गया था। विरोधी पक्षकार सं0 2 ने भूखण्ड सं0 372 का मापन करने हेतु सहायक चकबंदी अधिकारी के समक्ष आवेदन दाखिल किया था। सहायक चकबंदी अधिकारी ने चकबंदी अधिकारी को मापन हेतु निदेश दिया था। प्रश्न पैदा हुआ था कि क्या तुच्छ दाण्डिक कार्यवाहियों के आरम्भ द्वारा

उत्पीड़न से पदीय कर्तव्यों तथा कार्यों का निर्वहन करने वाले लोक सेवा की रक्षा करने के लिए धारा 197 द0प्र0सं0 यहाँ उपलब्ध है। न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि यदि परिवाद को देखने से अभिकथित कार्य का पदीय कर्तव्य के साथ युक्तियुक्त संबंध होना प्रतीत होता है, न्यायालय के कार्यवाही के दुरुपयोग को रोकने के लिए कार्यवाहियों का अभिखंडन करने हेतु धारा 482 द0प्र0सं0 के अधीन शक्ति का प्रयोग किया जायेगा। न्यायालय ने आगे संप्रेक्षित किया कि मजिस्ट्रेट ने धारा 427 भा0द0सं0 के अधीन आवेदकगण को समन करते हुए अवैध तरीके से अपराध का संज्ञान लिया है जो मंजूरी के अभाव में स्पष्टतया दोषपूर्ण है।

(ii) **अनिल कुमार यादव बनाम उ0प्र0 राज्य तथा एक अन्य 2022 (4) जेआईसी 223 (एससी)** इस मामले में अपीलार्थीगण रेलवे विभाग में काम कर रहे थे। इन लोगों ने धारा 133 द0प्र0सं0 के अधीन पारित न्यायिक आदेश के अधीन प्रत्यर्थी सं0 2 के अवैध निर्माण को हटाया था। परिवादी/प्रत्यर्थी सं0 2 ने प्र0सू0रि0 के पंजीकरण हेतु अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 156(3) द0प्र0सं0 के आवेदन दाखिल किया था। पुलिस ने रिपोर्ट प्रस्तुत किया था। अभियुक्त/ अपीलार्थी ने लोक सेवक के रूपमें अपने पदीय क्षमता में कार्य करते हुए अवैध निर्माण हटाया था। पुलिस रिपोर्ट की अनदेखी करते हुए मजिस्ट्रेट ने धारा 204 द0प्र0सं0 के अधीन अपीलार्थी को समन किया था। उच्च न्यायालय ने दाण्डिक कार्यवाहियों तथा समन करने वाले आदेश को अभिखंडित करने से इंकार किया था। शीर्ष न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया कि पुलिस रिपोर्ट के अनभिज्ञता में धारा 204 द0प्र0सं0 के अधीन आदेशिका का जारी किया जाना अन्यायपूर्ण था। अपीलार्थी ने अपने कर्तव्य के निर्वहन में सद्भावपूर्ण कार्यवाही किया था। अतः कोई अपराध नहीं बनता है। तदनुसार परिवाद को अभिखंडित किया गया था तथा उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त किया गया था।

(iii) अजित शुक्ला तथा अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य द्वारा प्रमुख सचिव गृह सिविल सचिवालय तथा अन्य, 10-08-2022 को विनिश्चित धारा 482 के अधीन आवेदन सं0 5776 वर्ष 2017 । निर्णय के सुसंगत भाग को निम्नवत् दोहराया जाता है:-

“9. आवेदकगण की ओर से यह निवेदन किया गया है कि आवेदकगण पदीय/लोक कर्तव्य का निर्वहन कर रहे थे जब अभिकथित घटना घटित हुई थी जिसके लिए दो परिवाद दाखिल किया गया था तथा आवेदकगण को अभियुक्त के रूप में समन किया गया था; दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 (संक्षेप में द0प्र0सं0) की धारा 197 के अधीन सक्षम अधिकारी द्वारा मंजूरी के आज्ञापक प्रावधान की अनदेखी विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने तथा आवेदकगण को अभियुक्त के रूप में समन करने के पहले नहीं दी जा सकती थी; श्री अनवर खान, अधिवक्ता द्वारा डायल-100 पर प्राप्त सूचना को जीडी

दिनांक 21-05-2014 में लेखबद्ध किया गया था। जी0डी0 दिनांक 22-05-2014 में घटना का सार भी लेखबद्ध किया गया था। पुलिस कर्मी सूचना जिसे जीडी में लेखबद्ध किया गया था, को प्राप्त करने के बाद अपने पदीय/लोक कर्तव्य में निर्वहन में स्थिति को नियंत्रित करने के लिए जिला न्यायालय पहुँचे थे।

14. सुविधा के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में धारा 197 को एतस्मिन् नीचे उद्धृत किया जाता है:-

“197. न्यायाधीशों और लोक सेवकों का अभियोजन (1) जब किसी व्यक्ति पर, जो न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट या ऐसा लोक सेवक है या था जिसे सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी से ही हटाया जा सकता है, अन्यथा नहीं, किसी ऐसे अपराध का अभियोग है जिसके बारे में यह अभिकथित है कि वह उसके द्वारा तब किया गया था जब वह अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था। जब उसका ऐसा कार्य करना तात्परित था तब कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान-

(क) ऐसे व्यक्ति की दशा में, जो संघ के कार्यकाल के संबंध में, यथास्थिति, नियोजित है या अभिकथित अपराध के किये जाने के

समय नियोजित था, केन्द्रीय सरकार की,

(ख) ऐसे व्यक्ति की दशा में जो किसी राज्य के कार्य कलाप के संबंध में, यथास्थिति, नियोजित हैं या अभिकथित अपराध के किये जाने के समय नियोजित था, इस राज्य सरकार के पूर्व मंजूरी से ही करेगा, अन्यथा नहीं।

अधिसूचना सं० 1841 (3)/टप् -538-71
दिनांक 30 जनवरी 1975 निम्नवत् पठित है:-

"गृह विभाग (पुलिस)
अनुभाग, अधिसूचना सं० 1841(3)/एन-
1-538-71, दिनांक जनवरी 30,
1975- दण्ड प्रक्रिया संख्या 1973
(1974 का अधिनियम संख्या 2) की
धारा 197 की उपधारा (3) द्वारा
प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में, राज्यपाल
निदेश देते हैं कि पूर्वोक्त धारा की
उपधारा (2) का प्रावधान लोक
व्यवस्था के बनाये रखने के लिए
प्रभारित राज्य के निम्न बलों के सभी
सदस्यों पर लागू होगा जहाँ भी ये
सेवा कर रहे हों अर्थात:-

- (i) 30प्र० पुलिस बल
- (ii) 30प्र० प्रादेशिक सशस्त्र बल

(iv) डी देवराज बनाम ओवइस सबीर हुसैन
20200 सुप्रीम (एससी) 413 में, मामला
कर्नाटक, पुलिस अधिनियम 1963 तथा धारा

197 द०प्र०सं० के संबंध में था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 सपठित धारा 197 द०प्र०सं० की अपनी सीमाएं हैं। सुरक्षा केवल तभी उपलब्ध होती है जब लोक सेवक द्वारा किया गया अभिकथित कार्य युक्तियुक्त रूप से इसके पदीय कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित होता है तथा न कि मात्र आपत्तिजनक कार्य के रूप में बहाना। पुलिस अधिकारी के ड्युटी के पूर्णतया बाहर कार्यक्षेत्र में किये गये अपराध के लिए निश्चित रूप से मंजूरी आवश्यक नहीं होगा। यदि पदीय कर्तव्य के पालन तथा कार्य के बीच युक्तियुक्त संबंध है, तथ्य कि अभिकथित कार्य ड्युटी के अतिरिक्त है। पुलिस कर्मों के विरुद्ध दाण्डिक कार्यवाही को आरंभ करने हेतु सरकारी मंजूरी की सुरक्षा से इसे वंचित करना पर्याप्त आधार नहीं होगा। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मंजूरी न केवल पदीय कर्तव्य के निर्वहन में किये गये कार्यों हेतु आवश्यक है, यह पदीय कर्तव्य के निर्वहन में किये जाने वाले तात्पर्यित कार्य तथा/या इस प्रकार के कर्तव्य या अधिकार के अतिरिक्त या बहाना के अन्तर्गत किये गये कार्य हेतु आवश्यक है। पदीय कर्तव्य से असंबद्ध पुलिस कर्मों या किसी अन्य लोक सेवक कार्य, मंजूरी का प्रश्न नहीं हो सकता है। त्वरित संदर्भ हेतु पूर्वोक्त निर्णय के सुसंगत भागों को एतस्मिन् नीचे दोहराया जाता है:-

"59. पूर्वोक्त के संदर्भ में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कार्य इसलिए विधि के प्रावधान के अन्तर्गत नहीं होता है क्योंकि समय

जब इसे किया जाता है उस समय से मेल खाता है जब कर्तव्य के पालन में या प्रावधान द्वारा दिये गये शक्तियों के प्रयोग में कुछ कार्य इसके द्वारा अधिरोपित किया जाता है। यह कहने के लिए सक्षम बनाने हेतु कार्य विधि के प्रावधान के अन्तर्गत किया गया है, प्रावधान तथा कार्य के बीच युक्तियुक्त संबंध के होने का पता लगाया जाना चाहिए। इस प्रकार के संबंध के अभाव में कार्य को विधि के विशेष प्रावधान के अन्तर्गत किया गया नहीं कहा जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसे समय पर अपराध के संदिग्ध व्यक्ति को मारना पीटना या क्षतियुक्त अवस्था में इसे परिरुद्ध करना या दूर भेजना जब पुलिस अन्वेषण के काम में लगी थी, मद्रास जिला पुलिस अधिनियम या दण्ड प्रक्रिया संहिता या पुलिस को शक्तियाँ प्रदान करने वाले किसी अन्य विधि के प्रावधानों के अन्तर्गत किया गया कार्य था या किये जाने के लिए आशयित था। यह नहीं कहा जा सकता है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 का प्रावधान व्यक्ति की परीक्षा करने वाले पुलिस अधिकारी को विशेष कथन करने के लिए इसे उत्प्रेरित करने के प्रयोजन हेतु इसे मारने पीटने या इसे परिरुद्ध करने के लिए प्राधिकृत करता है।

64. पुखराज बनाम राजस्थान राज्य तथा एक अन्य (1973) 2 एससीसी

701 में अभियुक्त पोस्ट मास्टर जनरल राजस्थान ने उस यूनियन के नेता को अभिकथित रूप से लात मारा था तथा गाली दिया था जब वह इसके पास तब आया था जब अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए वह दौरे पर था। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197, जो लोक सेवक को उत्पीड़ित होने से रोकने के लिए आशयित है लोक सेवक द्वारा अपने निजी क्षमता में किये गये कार्यों के संबंध में लागू नहीं होता है। फिर भी, इस न्यायालय ने अभियुक्त लोक सेवक पर विचारण के दौरान अभिलेख पर सामग्रियों को प्रस्तुत करने के लिए खुला छोड़ रखा था जिससे यह प्रदर्शित हो कि कार्य जिसके बारे में शिकायत की गई थी इसके पदीय कर्तव्य से इस प्रकार अन्तसंबंधित था जिससे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 की सुरक्षा आकृष्ट हो सके।

68. पदीय कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित किसी कार्य हेतु पुलिस अधिकारी को अभियोजित करने के लिए सरकार की मंजूरी पुलिस अधिकारी को उत्पीड़नकारी, प्रतिकारात्मक, प्रतिशोधी तथा तुच्छ कार्यवाहियों का सामना करने से बचाने के लिए अनिवार्य है। अभियोजित करने के लिए सरकार से मंजूरी की शर्त ईमानदार पुलिस अधिकारी को दण्डिक कार्यवाही के

आरंभ से प्रतिशोधी प्रतिकारात्मक के भय के बिना दक्षतापूर्वक अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन को विश्वास प्रदान करेगा, जिससे इसे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 सपठित कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के अधीन संरक्षित किया जायेगा। फिर भी, यदि पुलिस कर्मी ने अपराध किया है, जो दाण्डिक अपराध गठित करता है तथा इसे अभियोजन हेतु दायी बनाता है, इसे समुचित सरकार से मंजूरी के साथ अभियोजित किया जा सकता है।

69. पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया प्रत्येक अपराध दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 सपठित कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 को आकृष्ट नहीं करता है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 सपठित कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के अधीन दी गई सुरक्षा की अपनी सीमाएं हैं। सुरक्षा केवल तभी उपलब्ध होती है जब लोक सेवक द्वारा किया गया अभिकथित कार्य युक्तियुक्त रूप से इसके पदीय कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित होता है तथा पदीय कर्तव्य आपत्तिजनक कार्य हेतु मात्र एक बहाना नहीं है।

70. पुलिस अधिकारी के कर्तव्य के कार्यक्षेत्र पूर्णतया बाहर किये गये अपराध के लिए मंजूरी निश्चित रूप से आवश्यक नहीं होगा। उदाहरण के

लिए, एक पुलिस कर्मी जो घरेलू नौकर पर हमला तथा घरेलू हिंसा में संलिप्त है निश्चित रूप से सुरक्षा का हकदार नहीं होगा। फिर भी, यदि कार्य रिकार्ड किये गये आपराधिक मामले के अन्वेषण के पदीय कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित है, कार्य निश्चित रूप से कर्तव्य के प्रकार में होता है, महत्वपूर्ण यह नहीं है कि कार्य कितना अवैध हो सकता है।

71. यदि पुलिस कर्मी ने पदीय कर्तव्य को करने में कर्तव्य के अतिरिक्त कार्य किया है, लेकिन कार्य तथा पदीय कर्तव्य के पालन के बीच युक्तियुक्त संबंध है, तथ्य की अभिकथित कार्य कर्तव्य के अतिरिक्त है पुलिस कर्मी के विरुद्ध दाण्डिक कार्यवाही आरम्भ करने हेतु इसे सरकारी मंजूरी की सुरक्षा से वंचित करने का पर्याप्त आधार नहीं होगा।

72. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 तथा कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 की भाषा तथा तात्पर्य यह पूर्णतया स्पष्ट करता है कि मंजूरी न केवल पदीय कर्तव्य के निर्वहन में किये गये कार्य हेतु आवश्यक है, यह पदीय कर्तव्य के निर्वहन में किये जाने के लिए तात्पर्यित कार्य हेतु तथा/या इस प्रकार के कर्तव्य या अधिकार के अतिरिक्त या प्रकार में किये गये कार्य हेतु भी आवश्यक है।

73. यह विनिश्चय करने के लिए कि क्या मंजूरी आवश्यक है, कसौटी यह है कि क्या कार्य पूर्णतया पदीय कर्तव्य से पूर्णतया असंबद्ध है या क्या पदीय कर्तव्य के साथ युक्तियुक्त संबंध है। पुलिस कर्मी या किसी अन्य लोक सेवक के कार्य के मामले में मंजूरी का कोई प्रश्न नहीं हो सकता है। फिर भी, यदि पुलिस कर्मी के विरुद्ध अभिकथित कार्य इसके पदीय कर्तव्य के निर्वहन से युक्तियुक्त रूप से जुड़ा है, यह महत्व नहीं रखता है यदि पुलिस कर्मी ने अपने शक्तियों के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण किया है तथा/या विधि के चारों कोनों के परे कार्य किया है।

74. यदि पुलिस कर्मी के विरुद्ध दाखिल किये जाने के लिए तात्पर्यित परिवाद में अभिकथित कार्य कुछ पदीय कर्तव्य के निर्वहन से युक्तियुक्त रूप से संबंधित है, इसका संज्ञान तब तक नहीं लिया जा सकता है जब तक समुचित सरकार की अपेक्षित मंजूरी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 तथा/या कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के अधीन प्राप्त नहीं कर ली जाती है।

76. जब इस न्यायालय ने डी.टी. वीरू पक्षप्पा बनाम सी. सुवास (2015) 12 एससीसी 231 में अभिनिर्धारित किया है कि उच्च

न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन शक्ति के प्रयोग में परिवाद का संज्ञान लेने वाले विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त न करने में त्रुटि किया था, याता जोग दूबे बनाम एच.सी. भारी, एआईआर 1956 एससी 44 में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह हमेशा आवश्यक नहीं है कि धारा 197 के अधीन मंजूरी हेतु आवश्यकता पर विचार जैसे ही परिवाद दर्ज कराया जाय तथा इसमें अन्तर्विष्ट अभिकथनों पर किया जाना चाहिए। परिवादी यह नहीं बता सकता है कि अपराध गठित करने वाला कार्य पदीय कर्तव्य के निर्वहन में तथा/या कर्तव्य के प्रकार में किया गया था या किये जाने के लिए तात्पर्यित था। फिर भी विचारण के अनुक्रम के आलोक में या पुलिस अथवा न्यायिक जांच पर तत्पश्चात आने वाला तथ्य मंजूरी हेतु आवश्यकता को साबित कर सकता है। इस प्रकार क्या मंजूरी आवश्यक है या नहीं कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम पर अवधारित किया जा सकता है।

12. उद्धृत मामलों में अपीलार्थी पुलिस अधीक्षक पंक्ति का पुलिस अधिकारी था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिवाद को देखने से यदि अभिकथित कार्य का पदीय कर्तव्य के साथ युक्तियुक्त संबंध होना प्रतीत होता है जहाँ दाण्डिक कार्यवाही को स्पष्ट रूप से दुर्भावना द्वारा प्रेरित किया गया है तथा अन्तरस्थ हेतु संस्थित किया गया है,

न्यायालय के कार्यवाही के दुरुपयोग को रोकने के लिए, कार्यवाहियों का अभिखण्डन करने हेतु धारा 482 द0प्र0सं0 के अधीन शक्ति का प्रयोग करना होगा।

13. वर्तमान मामले के अभिलेखों से स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि परिवादी ने अभिकथित किया था कि पुलिस ने अतिक्रमण किया था जबकि प्रत्यर्थी अन्वेषण के अनुक्रम में अभिरक्षा में था।

14. विरोधी पक्षकार सं0 2 के विद्वान अधिवक्ता तथा विद्वान अ0शा0 अधिकारी ने तर्क दिया है कि आवेदक घटना के समय तथा स्थान पर अपने उपस्थिति का खण्डन कर रहा है अतः वह धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन सुरक्षा का दावा नहीं कर सकता है। आवेदक के अधिवक्ता ने आवेदक के उपस्थिति को स्वीकार किये बिना आक्षेपित दाण्डिक कार्यवाही आरम्भ होने के पहले पूर्व मंजूरी के आवश्यकता के बारे में तर्क दिया है क्योंकि अधिकारी अभिकथित तिथि समय तथा घटना स्थल पर ड्युटी पर था। विरोधी पक्षकार सं0 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि ऐसी कोई जी.डी. प्रविष्टि नहीं है कि आवेदक पूर्व मामले के अन्वेषण के संबंध में साक्ष्य को लेखबद्ध करने के लिए इस समय घटना स्थल पर गया था। आवेदक ने यह भी स्वीकार नहीं किया है कि यह चंदन के पेड़ के चोरी के संबंध में पहले दर्ज धारा 379 भा0द0सं0 के अधीन प्र0सू0रि0 दिनांक 21-07-2018 के संबंध में निरीक्षण हेतु जिला जज के आवास पर गया था।

15. इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि चूंकि अभिकथित अपराध को करने से आवेदक द्वारा पूर्ण प्रत्याख्यान है, इसलिए वर्तमान मामला धारा 379 भा0द0सं0 के अधीन पहले दर्ज प्र0सू0रि0 से तथा आवेदक, के कर्तव्य के पदीय निर्वहन से अलग तथा भिन्न अपराध है जिसके लिए पूर्व मंजूरी आवश्यक नहीं था।

16. उपरोक्त न्यायिक पूर्व निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि अभियुक्त पदीय कर्तव्य का निर्वहन कर रहा था जब अभिकथित घटना घटित हुई थी या अभिकथित घटना युक्तियुक्त से पदीय कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित था, धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन लोक सेवक के अभियोजन हेतु पूर्व मंजूरी आज्ञापक होगी लेकिन यदि अपराध अभियुक्त द्वारा किया जाना चाहिए था, पुलिस अधिकारी के कर्तव्य के कार्यक्षेत्र के पूर्णतया बाहर है, पूर्व मंजूरी की कोई आवश्यकता नहीं होगी। यहाँ आवेदक अभिकथित अपराध के करने का खण्डन कर रहा है जिसमें विरोधी पक्षकार सं0 2 को क्षतियाँ पहुँची हैं तथा प्र0सू0रि0 भी यथा समय दर्ज कराया गया था तथा केवल दोनों शपथपत्रों के निवेदन के आधार पर एक महेश कुमार द्वारा दूसरा चौकीदार सुधीश कुमार द्वारा, विरोधी पक्षकार सं0 2 पंकज यादव को पहुँचे क्षतियाँ तथा कथन की अनदेखी करते हुए अंतिम रिपोर्ट पेश किया गया था। क्या अभिकथित अपराध आवेदक द्वारा किया गया था या नहीं, का विनिश्चय केवल साक्ष्य लेने के बाद तथा विचारण के दौरान किया जा सकता है। केवल आवेदक के

प्रस्थिति के आधार पर कि वह पुलिस अधिकारी है, वह धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन छूट का दावा नहीं कर सकता है। धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन सुरक्षा केवल तब प्राप्त होती है जब अभिकथित अपराध सम्यक् अनुक्रम में पदीय कर्तव्य के निर्वहन के संबंध में किया गया था। यदि इस प्रकार के अभिकथित अपराध का पदीय कर्तव्य के निर्वहन से कोई संबंध नहीं है धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन पूर्व मंजूरी की कोई आवश्यकता नहीं होगी। आवेदक का मामला यह नहीं है कि बतौर अन्वेषण अधिकारी कार्य करते हुए इसने अपने कर्तव्य का अतिक्रमण किया था तथा इसीलिए अभिकथित घटना किया गया है। इस न्यायालय का विचार है कि आवेदक द्वारा कर्तव्य के पदीय निर्वहन तथा अपराध के अभिकथित करने के बीच संबंध नहीं है, अतः धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन पूर्व मंजूरी लेने की आवश्यकता नहीं थी।

17. कुछ निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संज्ञान नहीं लिया जा सकता है यदि पूर्व मंजूरी विचाराधीन है लेकिन इसके विपरीत राज्य द्वारा के0 अ0 ब्यूरो बनाम वी एल वर्मा तथा अन्य (1997) 10 एससीसी 772: शांता बेन भूरा भाई भूरिया बनाम आनंद था भाई चौधरी तथा अन्य 2021 एससीसी आन लाइन 974 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 197 (1) द0प्र0सं0 के अधीन मंजूरी के अभाव में कार्यवाही को छोड़ने का उच्च न्यायालय का आदेश दोषपूर्ण है। यह पूर्णतया वैध होगा तथा प्रत्यर्थी के विरुद्ध अभियोजन को सक्रिय करने के लिए याची स्वतंत्र होगा।

18. शांताबेन भूराभाई भूरिया (उपरोक्त) में यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 482 द0प्र0सं0 के अधीन शक्ति के प्रयोग में मंजूरी का अभाव दण्डिक कार्यवाही का अभिखण्डन करने के लिए आधार नहीं हो सकता है उल्टे अनुज्ञेय है तथा यदि धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन मंजूरी की आवश्यकता है, न्यायालय प्राधिकारी से मंजूरी लेने तथा तत्पश्चात सम्पूर्ण कार्यवाही का अभिखण्डन करने के बजाय अग्रसर होने का निदेश दे सकता है। यही विचार फर्टिको मार्केटिंग बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो सीबीआई (2021) 2एससीसी 525 में किया गया है।

19. पुलिस निरीक्षक तथा अन्य बनाम बटेनापवला वेकंट रत्नम एआईआर 2015 (एससी) 2403 के पैरा 11 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि छल करने, अभिलेखों के गढ़ने या दुर्विनियोग में अधिकारियों के अभिकथित संलिप्तता को इनके पदीय कर्तव्य के निर्वहन में होना नहीं कहा जा सकता है। इनका पदीय कर्तव्य अभिलेखों को गढ़ना या कर भुगतान के वंचन की अनुमति देना तथा राजस्व की हानि कारित करना नहीं है। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने इन महत्वपूर्ण पहलुओं को नहीं समझा था। विद्वान मजिस्ट्रेट ने सही ही विचार लिया है कि यदि पूर्णतया मंजूरी के उक्त विचार पर विचार किया जाना चाहिए, इसे केवल विचारण के प्रक्रम पर किया जा सकता है।

20. यहाँ विद्वान विचारण न्यायालय ने विचार व्यक्त नहीं किया है कि आवेदक द्वारा अपराध का अभिकथित किया जाना कर्तव्य के

इसके पदीय निर्वहन के संबंध में है, अतः वह धारा 197 द0प्र0सं0 के अधीन पूर्व मंजूरी के अभाव में मामले में अग्रसर हुआ था।

21. यह न्यायालय विद्वान विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की पुष्टि करता है। यह न्यायालय अभिकथित घटना का आवेदक को सौंपे गये पदीय कर्तव्य के निर्वहन के साथ कोई संबंध होना नहीं पाता है। अतः संज्ञान लेने तथा आक्षेपित समन करने वाला आदेश पारित करने के पहले पूर्व मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी।

22. उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह न्यायालय की सुविचारित राय है कि धारा 482 द0प्र0सं0 के अधीन यह आवेदन पोषणीय नहीं है तथा खारिज किये जाने योग्य है।

23. तदनुसार धारा 482 द0प्र0सं0 के अधीन इस आवेदन को खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 803

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

35136/2022

श्रीमती सोनिया श्रीवास्तव एवं अन्य...आवेदक
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण
अधिवक्ता आवेदक: श्री अश्विनी कुमार
सचान, श्री सौरभ सचान

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अनिल
कुमार मिश्रा

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा
125 - सीआरपीसी की धारा 125(6) के तहत
आवेदन निरस्त-आवेदक को विपक्षी द्वारा
स्वयं को विधुर बताकर धोखा दिया गया-
आवेदक क्रमांक 2 उनके विवाहेतर संबंध से
पैदा हुआ था- विपक्षी डीएनए परीक्षण के लिए
नमूना देने के लिए तैयार था, लेकिन इसके
लिए उपस्थित नहीं हुआ-न ही शुल्क का
भुगतान किया और डीएनए परीक्षण के आदेश
को वापस ले लिया है-परीक्षण न्यायालय ने
साक्ष्य अधिनियम की धारा 14 के तहत
कानूनी उपधारणा के तहत विपक्षी को जैविक
पिता के रूप में न्यायनिर्णित किए बिना-
डीएनए परीक्षण के बिना-खराब-डीएनए नमूना
देने और शुल्क जमा करने के लिए एक और
अवसर दिया-यदि असफल रहा तो पारिवारिक
न्यायालय निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतंत्र
होगा-यदि डीएनए परीक्षण सकारात्मक पाया
जाता है - तो सीआरपीसी की धारा 125 और
125 (6) के तहत आवेदनों पर निर्णय पारित
किया जाएगा।

आवेदन स्वीकृत (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. शारदा बनाम धर्मपाल (2003) 4 एससीसी 493
2. भबानी प्रसाद जेना बनाम संयोजक सचिव, उड़ीसा राज्य महिला आयोग एआईआर 2010 एससी 2851

3. वाई.बी. पाटिल बनाम वाई.एल. पाटिल (1976) 4 एससीसी 66

4. बादशाह बनाम उर्मिला बादशाह गोडसे और अन्य, (2014) एससीसी 188

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. यह आवेदन आवेदकों द्वारा धारा 125(6) सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत 2015 के वाद संख्या 555 में प्रधान न्यायाधीश परिवार न्यायालय, कानपुर नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.07.2022 को रद्द करने और विपक्षी संख्या 2 को भुगतान करने का निर्देश देने के लिए दायर किया गया है। प्रति माह 30,000/- रुपये का अंतरिम भरण-पोषण (आवेदक नंबर 1-पत्नी को 20,000/- रुपये और आवेदक नंबर 2-बेटी को 10,000/- रुपये) और साथ ही विचारण न्यायालय को तुरंत सभी आवश्यक कदम उठाने का निर्देश दें। आवेदक संख्या 2 के जैविक पितृत्व का पता लगाने के लिए विपक्षी पक्ष संख्या 2 का डी.एन.ए. परीक्षण करने के लिए दिनांक 27.3.2018 और 24.9.2019 के आदेश लागू करें।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि विपक्षी नंबर 2 ने यह धोखा देकर कि वह विधुर है, जिसकी पत्नी 8 साल पहले समाप्त हो गई थी, ने 19.2.2006 को आर्य समाज में रीति-रिवाजों के माध्यम से आवेदक नंबर 1 के साथ दूसरी शादी कर ली थी, सहवास से आवेदक संख्या 2 का जन्म 14.1.2007 को हुआ था। बाद में, जब यह पता चला कि

विपक्षी पक्ष संख्या 2 की पत्नी श्रीमती ममता शर्मा जीवित थी, उसने कहा कि वह अपनी पत्नी और पहली पत्नी से पैदा हुए बच्चों को मना लेगा, फिर वह प्रार्थिया को अपने घर में मिलवायेगा। परिणामस्वरूप, आवेदक द्वारा अपने पति के विरुद्ध आईपीसी की धारा 494 के अन्तर्गत दिनांक 15.9.2007 को एक प्राथमिकी दर्ज की गई है जिसमें आरोप तय किए गए हैं, लेकिन बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अपनी बेटी के साथ जीवनयापन करने और आराम से रहने में कठिनाई होने के कारण और अपने भाइयों पर पूर्ण निर्भरता के कारण, आवेदक पत्नी ने सीआर.पी.सी. की धारा 125 के अन्तर्गत आवेदन 22.7.2015 को दायर किया था जिसमें भरण-पोषण की मांग की गई लेकिन उपरोक्त आवेदन पर निर्णय लेने में पति की टाल-मटोल की रणनीति के कारण और एक पैसा भी देने से इनकार कर दिया गया, पत्नी अपनी बेटी और खुद के बचाव और अस्तित्व के लिए अंतरिम भरण-पोषण पाने के लिए सीआर.पी.सी. की धारा 125(3) के अन्तर्गत एक आवेदन दायर करने के लिए बाध्य थी।

3. उपरोक्त आवेदनों के जवाब में विपक्षी संख्या 2 ने स्पष्ट रूप से दावा किया था कि वह न तो जैविक पिता है और न ही उसने आवेदक संख्या 2 को गोद लिया है और आवेदक संख्या 1 के साथ कभी कोई विवाह नहीं हुआ है। इसलिए, वह बाध्य नहीं है किसी अजनबी को बनाए रखना. हैरानी की बात यह है कि साथ ही वह इस बात पर भी जोर दे रहा है कि वह एक गरीब व्यक्ति है जिसके पास आय का कोई स्रोत नहीं है। जन्म प्रमाण

पत्र से लेकर स्कूल प्रवेश फॉर्म और परिचय-पत्र तक प्रत्येक दस्तावेज में विपक्षी संख्या 2 को आवेदक संख्या 2 के पिता के रूप में उल्लेखित किया गया है। वास्तविक तस्वीरें हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि विपक्षी संख्या 2 आवेदक संख्या 1 का पति और आवेदक संख्या 2 का पिता है। आवेदक संख्या 1 के पति और आवेदक संख्या 2 के जैविक पिता के रूप में विपक्षी संख्या 2 द्वारा स्पष्ट इनकार के कारण, आवेदक संख्या 1 ने अपनी बेटी के पितृत्व को स्थापित करने के लिए डीएनए परीक्षण प्रोफाइलिंग और पहचान परीक्षण आयोजित करने के लिए दिनांक 27.3.2018 को एक आवेदन दिया क्योंकि विपक्षी पक्ष संख्या 2 उसकी बेटी का आवेदक संख्या 2 जैविक पिता है। प्रारंभ में विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने डीएनए पहचान के लिए अपना खून का नमूना देने की सहमति दी थी। 5.8.2019 को विपक्षी संख्या 2 को डीएनए परीक्षण के लिए अपेक्षित राशि शुल्क जमा करने का निर्देश दिया गया था, लेकिन उसने रिकॉल आवेदन दायर किया जिसे विचारण न्यायालय ने 24.2.2019 को खारिज कर दिया।

4. दिनांक 24.2.2019 के आदेश के विरुद्ध, विपक्षी संख्या 2 द्वारा अत्यधिक विलंबित आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सीआर.पी.सी. संख्या 5983 वर्ष 2020 के अन्तर्गत दायर किया गया था, जिसमें आज तक कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया है। इसके बाद, पति के आचरण से, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उसे डीएनए परीक्षण में कोई रुचि नहीं है और 2.11.2019 को आदेश-पत्र में दर्ज किया गया कि पति कार्यवाही में

देरी कर रहा है और वास्तव में वह डीएनए परीक्षण के लिए तैयार नहीं है। कार्यवाही करने में विलम्ब कर रहा था, इसलिए, विचारण न्यायालय आगे बढ़ी और पाया कि वह विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विरुद्ध साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अन्तर्गत विधिक अनुमान लगाएगी। आश्चर्यजनक रूप से, विचारण न्यायालय ने इस पहलू पर निर्णय किए बिना कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 आवेदक संख्या 2 का जैविक पिता है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अन्तर्गत विधिक अनुमान और वह अपनी बेटी और पत्नी का भरण-पोषण करने के लिए बाध्य है क्योंकि उसने आवेदक संख्या 1 को धोखा देने के बाद दूसरी शादी की थी और वह डीएनए परीक्षण से गुजरने के लिए बाध्य है, एकाएक और जल्दबाजी में आवेदन को खारिज कर दिया। धारा 125 (6) सीआर.पी.सी. दिनांक 20.7.2022 के आदेश द्वारा निरस्त कर दी गई। आवेदक संख्या 1 घोषणा करती है कि उसकी बेटी कुमारी तनिष्का विपक्षी संख्या 2-रमेश चंद्र शर्मा की प्राकृतिक और जैविक बेटी है, जो उनके विवाह से पैदा हुई है और वह आवेदक संख्या 2 की ओर से घोषणा करती है कि वह किसी भी डीएनए परीक्षण से गुजरने के लिए तैयार है। इस तथ्य को स्थापित करने और साबित करने का उद्देश्य यह है कि वह किसी अज्ञात पैतृक पहचान की संतान नहीं है और विपक्षी पक्ष संख्या 2 उसका प्राकृतिक और जैविक पिता है और वह उससे भरण-पोषण पाने की हकदार है। आवेदिका क्रमांक 2 एक बेरोजगार परित्यक्ता विवाहित महिला है, वह पूर्णतः आर्थिक रूप से अपने भाइयों पर निर्भर है। दरअसल वह मास्टर्स की योग्यता रखती है लेकिन आवेदक

नंबर 2 के जन्म के बाद वह उसे पालने-पोसने में पूरी तरह से तल्लीन है।

अपनी दलील के समर्थन में, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है:

(ए) शारदा बनाम धर्मपाल (2003) 4 एससीसी 493

(बी) भबानी प्रसाद जेना बनाम संयोजक सचिव, उड़ीसा राज्य महिला आयोग एआईआर 2010 एससी 2851

(सी) वाई.बी. पाटिल बनाम वाई.एल. पाटिल (1976) 4 एससीसी 66

(डी) बादशाह बनाम उर्मिला बादशाह गोडसे एवं अन्य, (2014) एससीसी 188।

यह तर्क दिया गया है कि उपरोक्त उद्धृत मामले-विधि के आधार पर विवादित आदेशों को रद्द किया जाना चाहिए और आवेदकों द्वारा दावा की गई राहत दी जानी चाहिए।

5. विपक्षी संख्या 2 उपस्थित हुए और जवाबी शपथ पत्र दायर किया और कहा कि न तो आवेदक संख्या 1 विधिक रूप से विवाहित पत्नी है और न ही आवेदक संख्या 2 उसकी जैविक बेटी है, वह पहले से ही श्रीमती ममता शर्मा से विवाहित है और उनके बच्चे भी हैं। सीआर.पी.सी. की धारा 125 के अन्तर्गत आवेदन गलत है और बिल्कुल भी चलने योग्य नहीं है। आरोप झूठे और मनगढ़ंत हैं ताकि केवल उससे पैसे कमाने के लिए उसे परेशान किया जा सके। सीआर.पी.सी. की धारा 125 के अन्तर्गत आवेदन वर्ष 2015 में दायर किया गया था और आवेदन 125 (6) सीआर.पी.सी. को 5 साल बीतने के बाद वर्ष 2020 में

स्थानांतरित किया गया है जो स्वयं फर्जी आवेदकों की पवित्रता को दर्शाता है। विपक्षी नं. 2 डीएनए परीक्षण के लिए नमूना देने के लिए तैयार था, लेकिन आवेदक ने स्वयं दिनांक 5.8.2019 के आदेश को वापस लेने के लिए 9.9.2019 को आवेदन दिया और ऐसे आवेदन पर विचारण न्यायालय ने आदेश दिनांक 3.11.2019 के माध्यम से दिनांक 5.8.2019 के आदेश को वापस ले लिया। हालाँकि दिनांक 5.8.2019 के आदेश को अन्तर्गत धारा 482 की संख्या 5893 वर्ष 2020 के अन्तर्गत आवेदन में चुनौती दी गई है, लेकिन दिनांक 5.8.2019 के आदेश को वापस लेने के बाद यह निरर्थक हो गया है। विचारण न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अन्तर्गत गलत धारणा बनाई है। विपक्षी संख्या 2 न तो आवेदक संख्या 2 का जैविक पिता है और न ही आवेदक संख्या 1 का दत्तक पिता है और आवेदक संख्या 1 के साथ कोई विवाह नहीं हुआ है और साबित नहीं हुआ है, इसलिए, वह किसी भी मामले में किसी प्रकार से अजनबियों को भरण-पोषण देने के लिए बाध्य नहीं है और इस तरह विचारण न्यायालय ने सीआर.पी.सी. की धारा 125 (6) के अन्तर्गत आवेदक के आवेदन को सही ढंग से खारिज कर दिया है। इसलिए यह आवेदन भी खारिज किया जाए।

6. आवेदकों द्वारा कोई प्रत्युत्तर शपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया है।

7. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री सौरभ सचान को सुना, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार मिश्रा को सुना, साथ ही विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता,

श्री पंकज त्रिपाठी को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

8. दोनों पक्षों ने स्वीकार किया है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 पहले से ही श्रीमती ममता शर्मा के साथ विधिक रूप से विवाहित व्यक्ति है। आवेदक क्रमांक 1 के अनुसार विपक्षी क्रमांक 2 द्वारा स्वयं को विधुर बताकर उसके साथ धोखाधड़ी की गई, इसलिए उसने विपक्षी पक्ष क्रमांक 2 के साथ विवाह कर लिया और उनके सहवास से आवेदक क्रमांक 2 का जन्म हुआ है। निश्चित रूप से, सभी कागजात में विपक्षी पक्ष संख्या 2 को आवेदक संख्या 2 के पिता के रूप में वर्णित किया गया है। कुछ तस्वीरें हैं जो प्रथम दृष्टया दिखाती हैं कि एक समय आवेदक और विपक्षी पक्ष संख्या 2 एक साथ रहते थे और एक दूसरे के साथ आनंदमय समय बिताते थे और वे कुछ पर्यटन स्थलों पर भी गए हैं जहां उन्होंने एक साथ तस्वीरें भी खिंचवाई हैं।

9. विपक्षी पक्ष संख्या 2 ऐसी तस्वीरों से इनकार नहीं कर सका, यह भी तर्क नहीं दिया गया है कि ऐसी तस्वीरें युक्ति फोटोग्राफी का परिणाम हैं। विपक्षी संख्या 2 को नगर निगम के अभिलेख में और आवेदक संख्या 2 के स्कूल रिकॉर्ड में भी विपक्षी संख्या 2 के पिता के रूप में दर्शाया गया है, हालांकि, इस बात का कोई सबूत नहीं है कि इसे रद्द करने के लिए कोई आवेदन विपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर किया गया है। आदेश-पत्र से यह स्पष्ट है कि शुरू में विपक्षी संख्या 2 ने रक्त का नमूना देने के लिए सहमति व्यक्त की थी, लेकिन जब अदालत ने उसे डीएनए परीक्षण

करने के लिए अपेक्षित शुल्क का भुगतान करने का आदेश दिया, तो वह आगे नहीं आया और उसने ऐसा नहीं किया। न्यायालय के आदेश का पालन करने के लिए शुल्क का भुगतान न करें, इसलिए, न्यायालय इस संबंध में उनके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य था। डीएनए परीक्षण के सवाल पर विधि पर चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों में यह प्रतिपादित किया गया है कि डीएनए के लिए नमूना लेना भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 (3) का उल्लंघन नहीं है।

10. न तो आवेदकों और न ही विपक्षी पक्ष संख्या 2 ने सीआर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत आवेदन संख्या 5893 वर्ष 2020 में यह जानने के लिए आवेदन की प्रति दायर की है कि इसमें विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा क्या आधार लिया गया है। हालांकि, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यद्यपि विपक्षी पक्ष संख्या 2 डीएनए परीक्षण कराने के लिए तैयार था, लेकिन उसने न तो आवश्यक शुल्क जमा किया और न ही विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारित तिथि पर अस्पताल में उपस्थित हुआ, बल्कि उसने सीआर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत याचिका दायर की, जिसके लिए उन्होंने जल्द से जल्द निर्णय लेने में सकारात्मक प्रयास किया। विचारण न्यायालय द्वारा विपक्षी नंबर 2 के आचरण और रवैये पर विचार किया गया है और एक आदेश पारित किया गया है कि जब विपक्षी संख्या 2 डीएनए परीक्षण नहीं करा रहा है, तो ऐसी परिस्थिति में उसके विरुद्ध प्रतिकूल विधि धारणा बनाई जाएगी। हालांकि

अब तक विचारण न्यायालय द्वारा ऐसा कोई प्रतिकूल अनुमान/निष्कर्ष नहीं निकाला गया है। इस न्यायालय का मानना है कि यह चर्चा और गंभीर जांच का विषय है कि जो व्यक्ति डीएनए परीक्षण कराने से इनकार कर रहा है, उसका नमूना जबरदस्ती लिया जा सकता है या नहीं। यहां तक कि आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत उद्धरण में भी, अवर न्यायालय ने माना है कि यदि कोई व्यक्ति डीएनए परीक्षण कराने से इनकार कर रहा है, तो उसके विरुद्ध एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाएगा और उस आधार पर मामला आगे बढ़ाया जाएगा और इस तरह के प्रतिकूल निष्कर्ष को खारिज कर दिया जाएगा। मामले के अंतिम निपटान से पूर्व इस पर विचार किया जाएगा।

11. आवेदक संख्या 1 द्वारा सीआर.पी.सी. की धारा 125(6) के अन्तर्गत अंतरिम भरण-पोषण के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि अब तक यह साबित नहीं हुआ है कि आवेदक संख्या 1 विपक्षी पक्ष संख्या 2 की विधिक रूप से विवाहित पत्नी है और आवेदक क्रमांक 2 उसकी जैविक पुत्री है।

12. इस न्यायालय की राय है कि सीआर.पी.सी. की धारा 125 के अन्तर्गत एक आवेदन पर आवेदकों द्वारा प्रदान किए गए दस्तावेजों के आधार पर सकारात्मक निर्णय लिया जा सकता है। विद्यालय का दस्तावेज है जिसमें विपक्षी क्रमांक 2 को आवेदक क्रमांक 2 का पिता दर्ज किया गया है, नगर निगम कानपुर का दस्तावेज है कि 14 जनवरी 2007 को नवयुग नर्सिंग होम में एक कन्या का

जन्म हुआ, जिसकी माता आवेदक क्रमांक 1, श्रीमती सोनिया श्रीवास्तव और जिनके पिता विपक्षी पक्षकार क्रमांक 2, रमेश चन्द्र शर्मा हैं। इन दोनों दस्तावेजों को विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा विधिक रूप से चुनौती नहीं दी गई है। जिन तस्वीरों में आवेदकों और विपक्षी पक्ष संख्या 2 को एक साथ दिखाया गया है, वे भी आवेदकों और विपक्षी पक्ष संख्या 2 के बीच संबंध स्थापित करने के लिए प्रथम दृष्टया साक्ष्य हैं। इसके अनुसार कोर्ट, इन दस्तावेजों और विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विरुद्ध निकाले गए प्रतिकूल निष्कर्ष के आधार पर विचारण न्यायालय सीआर.पी.सी. की धारा 125 के अन्तर्गत आवेदन और सीआर.पी.सी. की धारा 125 (6) के अन्तर्गत आवेदन पर निर्णय लेने के लिए सक्षम था।

13. हालांकि कुछ मामलों में यह माना गया है कि विधिक रूप से विवाहित हिंदू पुरुष या पहले से शादीशुदा हिंदू और मुस्लिम महिलाएं यह दावा नहीं कर सकती हैं कि वह लिव-इन-रिलेशनशिप में हैं, लेकिन मौजूदा मामला अलग है क्योंकि आवेदक नंबर 1 का तर्क है यह कि विपक्षी पक्ष संख्या 2, जो पहले से ही शादीशुदा था, ने अपनी वैवाहिक स्थिति छिपाकर उससे संपर्क किया और उसके साथ विवाह किया और उसके साथ सहवास किया, जिससे आवेदक संख्या 2 का जन्म हुआ। ऐसी स्थिति में उपरोक्त साक्ष्य के अलावा लिव-इन का आधार भी बनता है। संबंध पर विचारण न्यायालय द्वारा भी विचार किया जा सकता है, यदि यह साबित हो रहा हो। यह भी ध्यान में रखना होगा कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 16 के अनुसार, शून्य और अमान्य

विवाह से पैदा हुए किसी भी बच्चे को वैध बच्चा माना जाएगा।

14. इस न्यायालय का मानना है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के संबंध में, एक विस्तृत और व्यापक आदेश पारित करने की आवश्यकता थी, लेकिन विचारण न्यायालय द्वारा ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है। इस न्यायालय के अनुसार, शुल्क जमा करने और डीएनए परीक्षण के लिए नमूना देने के लिए विपक्षी पक्ष संख्या 2 को एक और अवसर प्रदान किया जा सकता है और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो परिवार न्यायालय विपक्षी पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतंत्र होगा। आवेदक संख्या 2 के पितृत्व के संबंध में इस तथ्य को ध्यान में रखा जाएगा कि आम तौर पर एक महिला और एक लड़की ऐसा कोई दावा नहीं करेगी जिससे किसी भी झूठे दावे के लिए उनके चरित्र, कैरियर, सम्मान आदि को हमेशा के लिए कम किया जा सके।

15. जब आवेदक क्रमांक 1 का मामला यह है कि विपक्षी क्रमांक 2 ने अपनी पत्नी श्रीमती ममता शर्मा के साथ अपनी वैवाहिक स्थिति छिपाकर उससे विवाह किया है, तो यह देखना होगा कि कथित दूसरी पत्नी भरण-पोषण की हकदार है या नहीं। निश्चित तौर पर लिव-इन-रिलेशनशिप में रहने वाली महिला भरण-पोषण की हकदार है। यह विचारण न्यायालय है जो सबूतों के आधार पर यह पता लगाएगा कि आवेदक नंबर 1 कुछ समय के लिए विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के साथ लिव-इन-रिलेशनशिप

में रहा था या नहीं। यह विरोधाभासी प्रतीत होता है कि एक ओर विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि डीएनए परीक्षण में भाग लेने के लिए गैर-अनुपालन के आधार पर, विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जाएगा और दूसरी ओर उसने अंतरिम रखरखाव आवेदन को खारिज कर दिया है।

16. उपरोक्त चर्चा के आधार पर धारा 482 सीआरपी.सी. के अन्तर्गत आवेदन स्वीकार किये जाने योग्य है।

आदेश

निम्नलिखित शर्तों के अधीन आवेदन की अनुमति दी जाती है:

(ए) डीएनए नमूना देने और अपेक्षित शुल्क जमा करने के लिए विपक्षी संख्या 2 को एक महीने का अतिरिक्त समय प्रदान किया जाता है, यदि वह उपरोक्त निर्धारित अवधि के भीतर ऐसा करने में विफल रहता है, तो परिवार न्यायालय विपक्षी के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतंत्र होगा। पक्ष संख्या 2 और उसके बाद विपक्षी संख्या 2 को डीएनए परीक्षण के लिए नमूना देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

(बी) यदि डीएनए परीक्षण का परिणाम सकारात्मक और आवेदकों के पक्ष में पाया जाता है, तो धारा 125 और धारा 125 (6) सीआरपी के अन्तर्गत आवेदन किया जाएगा। ऐसी रिपोर्ट की मदद लेकर निर्णय लिया जाएगा। यदि विपक्षी संख्या 2 के असहयोग के कारण डीएनए परीक्षण रिपोर्ट

प्राप्त नहीं होती है, तो न्यायालय पक्षकारों द्वारा दायर किये गये मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ उसके द्वारा निकाले गए प्रतिकूल निष्कर्ष के आधार पर मामले को आगे बढ़ाएगा।

(2023) 4 ILRA 808

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

35595/2022

रश्मि देवी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री आकाश चंद्र मौर्य

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 173 (2) - आपेक्षित आदेश में अंतिम रिपोर्ट को अनुमति दी गई - बिना कोई कारण बताए स्वीकार कर लिया गया - आवेदक का दावा है कि नोटिस प्रस्तुत किए जाने पर आवेदक के स्वयं के हस्ताक्षर किए गए थे - लेकिन कोई हस्तलेखन विशेषज्ञ नहीं मांगा गया - धारा 173 (2) सीआरपीसी के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर - मजिस्ट्रेट ने इसे स्वीकार करने और संज्ञान न लेने का निर्णय लिया - वादी को नोटिस दिया गया, जिसका उसने लाभ नहीं उठाया।

आवेदन निरस्त (ई-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. के.पी. रामासामी और अन्य बनाम आर. धर्मलिंगम और अन्य, निर्णय दिनांक 24.01.2020
2. गंगाधर जनार्दन म्हात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2004 सीआरएलजे 4632

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री आकाश चंद्र मौर्य, राज्य के अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. धारा 482 द०प्र०स० के तहत यह आवेदन विविध केस संख्या-1319 वर्ष 2019 में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-1, कानपुर देहात द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.08.2021 को रद्द करने के लिए किया गया है, जिसके द्वारा अपराध संख्या-476 वर्ष 2018 में धारा 504, 506 और 427 भ०द०वि के तहत और धारा 4/10, भारतीय वन अधिनियम 1927 के तहत अंतिम रिपोर्ट, थाना-मंगलपुर, कानपुर देहात द्वारा भेजे गए, की अनुमति दी गई थी और आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-41 वर्ष 2021 (रश्मि देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) को भी अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एनडीपीएस अधिनियम), न्यायालय संख्या-7, कानपुर देहात द्वारा दिनांक 26.09.2022 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था।

3. मामले के तथ्य और संक्षेप में धारा 311 द०प्र०स० के तहत आवेदन का आधार यह है कि आवेदक ने 18.12.2018 को प्रतिपक्षी संख्या-2 से 5 के खिलाफ उपरोक्त धाराओं के तहत प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें जांच के बाद, विवेचनाधिकारी ने संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष 14.04.2019 को अंतिम रिपोर्ट संख्या-45 वर्ष 2019 प्रस्तुत की। आवेदक के अनुसार, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-1, कानपुर देहात ने बिना कोई कारण बताए 12.08.2021 को उक्त अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली। उस समय, कोविड-19 के कारण छुट्टियां थीं, इसलिए संबंधित पुलिस ने उक्त अंतिम रिपोर्ट के संबंध में आवेदक से कोई प्रतिक्रिया नहीं ली थी और नोटिस पर आवेदक के स्व-पोस्ट किए गए हस्ताक्षर 30.08.2021 को अदालत के समक्ष पेश किए गए थे। जब आवेदक ने पूछताछ की, तो उसे पता चला कि अंतिम रिपोर्ट 12.8.2021 को स्वीकार कर ली गई थी, इसलिए उसने उपरोक्त आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया जिसे भी खारिज कर दिया गया है।

4. यह स्थापित कानून है कि अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने से पहले नोटिस देना आवश्यक है, इसलिए दोनों आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जाए और संबंधित मजिस्ट्रेट को विरोध याचिका पर मामले की सुनवाई करने का निर्देश दिया जाए।

5. आदेश पत्र की प्रमाणित प्रति के साथ आवेदक के बहनोई द्वारा पूरक शपथ पत्र दायर किया गया है। प्रतिपक्षी संख्या-2 से 5 को नोटिस भेजे गए थे, जो व्यक्तिगत रूप से

और उनके परिवार के सदस्यों के माध्यम से दिए गए हैं, लेकिन न तो वे उपस्थित हुए और न ही उन्होंने कोई जवाबी हलफनामा दायर किया, इसलिए आवेदक के अधिवक्ता श्री आकाश चंद्र मौर्य और अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

6. रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह पता चलता है कि 12.08.2021 को शिकायतकर्ता को नोटिस देने के बाद अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई थी, लेकिन जब शिकायतकर्ता सुनवाई की तारीख पर उपस्थित नहीं हुआ, तो विचारण न्यायालय ने राज्य के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन करते हुए निष्कर्ष निकाला कि बयान, निरीक्षण और अन्य एकत्रित सामग्री के आधार पर अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा कोई अपराध नहीं किया गया है और इसलिए अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया गया है। अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-1 के आदेश को आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-41 वर्ष 2021 के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जिसमें आवेदक को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान किया गया था। विद्वान पुनरीक्षण न्यायाधीश ने पाया कि सूचनाकर्ता को 01.11.2019 और 11.08.2021 को नोटिस के माध्यम से उचित रूप से तामीला किया गया था और उस पर उसके हस्ताक्षर पाए गए थे। यह भी देखा गया है कि 04.10.2019 को, अंतिम रिपोर्ट अदालत में प्रस्तुत की गई थी और उसके बाद उसे नोटिस जारी किए गए थे जब कोई कोविड-19 महामारी नहीं थी, इसलिए संशोधन को खारिज कर दिया गया था।

7. व्यथित होकर सूचनाकर्ता ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत यह आवेदन दायर किया है।

8. इस न्यायालय के अनुसार, यदि आवेदक का विचार था कि उसके जाली और काल्पनिक हस्ताक्षर पुलिस द्वारा प्राप्त किए गए थे, तो उसके लिए विशेषज्ञ की राय प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध था कि नोटिस पर मौजूद हस्ताक्षर उसके द्वारा नहीं लगाए गए थे, लेकिन इस उपाय का उसके द्वारा लाभ नहीं उठाया गया है।

9. चूंकि आवेदक को उचित अवसर प्रदान किया गया था और अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार करने से पहले नोटिस भी दिए गए थे, इसलिए केपी रामासामी और अन्य बनाम आर धर्मलिंगम और अन्य का मामला, जिसका फैसला 24.01.2020 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया गया था, आवेदक के पक्ष में लागू नहीं किया जा सका।

10. गंगाधर जनार्दन म्हात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2004 सीआरएलजे 4632 में, यह माना गया है कि जब द०प्र०स० की धारा 173 (2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर, मजिस्ट्रेट इसे स्वीकार करने और संज्ञान नहीं लेने और सभी या कुछ अभियुक्तों के खिलाफ कार्यवाही को छोड़ने का फैसला करता है, तो सूचनादाता ऐसी अंतिम रिपोर्ट पर विचार करने के समय नोटिस और सुनवाई के अवसर का हकदार होता है। इस मामले में अंतिम रिपोर्ट स्वीकार करने से पहले, मजिस्ट्रेट ने आवेदक को नोटिस दिया था जिसका उसने लाभ नहीं उठाया था।

11. उपरोक्त के मददेनजर, प्रस्तुत आवेदन में योग्यता का अभाव है और खारिज किए जाने योग्य है।

12. धारा 482 द०प्र०स० के तहत यह आवेदन तदनुसार खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 810

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-I,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

35719/2022

नृत्य सी. जॉर्ज

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अरुण कुमार त्रिपाठी,
श्री वी.पी., श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अमित तिवारी, श्री शक्ति शंकर तिवारी, श्री सुभाष चंद्र तिवारी

आपराधिक कानून- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 157,173 और 482 भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 21, 227-आवेदक ने अभियोक्ता को ब्लैकमेल किया और उसके साथ बलात्कार किया जिसके कारण वह गर्भवती हो गई जिसके परिणामस्वरूप पीड़िता के दूसरे बच्चे का जन्म दिया- पीड़िता द्वारा धारा 376, 328, 323, 504 और 506 आईपीसी के तहत दर्ज कराई गई एफआईआर- आवेदक को जांच के दौरान डीएनए टेस्ट कराने का निर्देश दिया गया है - पीड़िता पर कथित

बलात्कार का वाद वास्तव में विवाद है और दूसरे बच्चे के जन्म का बिंदु बलात्कार के कारण सहायक संदर्भ है, जो (कार्य) आवेदक पर आरोपित किया गया है-जांच के इस चरण में धारा 482 सीआरपीसी के तहत निहित शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है- न्याय सुनिश्चित करने के लिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन यद्यपि इस स्तर पर इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत एक याचिका माना जाता है- एक बार जब जांच सीआरपीसी की धारा 157 के तहत प्रारंभ हो जाती है, तो इसे सीआरपीसी की धारा 173 के तहत अपने तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए- बलात्कार के अपराध का आरोपी होने के नाते आवेदक को जांच के दौरान सामग्री एकत्र करने के लिए डीएनए परीक्षण के लिए निर्देशित किया जा सकता है- डीएनए परीक्षण को गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन नहीं माना जाएगा। (पैरा 26 से 40) याचिका निरस्त (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. किंग-एम्परर बनाम खाजा नजीर अहमद, 1944 0 आईसीएलएफ (एससी) 30, 1945 0 एआईआर (पीसी)18; 1943 71 लॉ रिपोर्ट इंड. ऐप. 203
2. गौतम कुंडू बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1993 ओ आईसीएलएफ (एससी) 539
3. झंडू फार्माक्यूटिकल वर्क्स लिमिटेड और अन्य बनाम मो. शराफुल हक और अन्य (2005) 1 एससीसी 122
4. राम लाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1989 अपराध संख्या 1013

5. रोहित शेखर बनाम नारायण दत्त तिवारी, 27 अप्रैल, 2012 एफएओ (ओएस) संख्या 547, 2011, एआईआर 2012 दिल्ली 151

(माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-1, द्वारा प्रदत्त)

(1) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण कुमार त्रिपाठी की सहायता से श्री वी. पी. श्रीवास्तव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, विपक्षी संख्या-4 के विद्वान अधिवक्ता श्री सुभाष चंद्र तिवारी एवं राज्य के लिए ए.जी.ए. को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

(2) सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन, मुकदमा अपराध संख्या-0070/2022 में दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट अंतर्गत धारा 376, 328, 323, 504 और 506 आईपीसी, पुलिस थाना-मुट्ठीगंज, जिला-प्रयागराज से उत्पन्न वाद-राज्य बनाम जिजो सी. जॉर्ज में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-नवम, इलाहाबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 18.10.2022, और सीएनआर संख्या-यूपीएडी01-013127-2022 में सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), इलाहाबाद के आदेश दिनांक 21.10.2022, जिसके द्वारा उन्होंने जांच के दौरान आवेदक के रक्त परीक्षण/डीएनए परीक्षण को करने के लिए जांच अधिकारी के आवेदन को अनुमति दी है, के प्रभाव और संचालन को रद्द करने हेतु योजित किया गया है।

(3) मजिस्ट्रेट के पूर्वोक्त निर्देश/आदेश से

व्यथित महसूस करते हुए, आवेदक-जिजो सी. जॉर्ज ने इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का आवाहन करते हुए इस न्यायालय की वर्तमान प्रकरण में शरण ली है, जहां जांच चल रही है और आवेदक को डीएनए परीक्षण से गुजरने का निर्देश दिया गया है।

(4) इस मामले के तथ्यों के अनुसार, पीड़िता (विपरीत पक्ष संख्या 2) द्वारा कथित तौर पर 05.12.2019 और उसके पश्चात हुई घटना का जिक्र करते हुए एक एफआईआर दिनांक 21.05.2022 को दर्ज कराई गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में दिए गए विवरण में कथन किया गया है कि सूचनादाता/अभियोक्त्री इविंग क्रिश्चियन कॉलेज, प्रयागराज में अध्यापन के पेशे में लगी हुई थी। वह वर्तमान आवेदक-जिजो सी. जॉर्ज के संपर्क में थी (वो भी ईसीसी में शिक्षण पेशे में था), और उसने स्थिति का लाभ उठाते हुए उसे इविंग क्रिश्चियन कॉलेज में अपने परिसर निवास पर 05.12.2019 को सुबह 11:00 बजे एक चाय पार्टी में आमंत्रित किया, जहां आवेदक और प्रतिवादी नंबर 4 दोनों सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत थे। यह अभियोक्त्री का मामला है कि वह आवेदक के घर गई और चाय पी, लेकिन चाय में कुछ जहरीले पदार्थ मिलाए जाने और उसे पीने के कारण वह बेहोश हो गई। जब वह बेहोश हो गई, तो आवेदक ने उसके साथ जबरन दुष्कर्म किया। होश में आने पर, उसने खुद को बिस्तर पर आपत्तिजनक स्थिति में पाया और महसूस किया कि उसकी लज्जा भंग हो चुकी है, और जब उसने आवेदक से पूछा कि उसने उसे धोखे से क्यों आमंत्रित किया, तो उसने धमकी दी और कहा

कि उसने घटना की एक वीडियो क्लिप बनाई है और इसके बारे में उसके पति को सूचित करेगा और विरोध की स्थिति में वह इसे वायरल कर देगा। इस वजह से, अभियोक्त्री डर गई और आवेदक उसे ब्लैकमेल करता रहा और अलग-अलग जगहों पर उसके साथ दुष्कर्म करता रहा, जिसके कारण वह गर्भवती हो गई।

(5) एफआईआर में आगे, उन घटनाओं का विवरण है, जिनके कारण यह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

(6) मामले के उचित विचारण हेतु, इसकी पृष्ठभूमि की जांच करनी होगी क्योंकि आवेदक द्वारा कथित रूप से बलात्कार का अपराध कारित किया गया है। इस मामले में, सूचनाकर्ता की आयु 37 वर्ष है, वह वर्तमान में इविंग क्रिश्चियन कॉलेज, प्रयागराज (इसके बाद ईसीसी के रूप में संदर्भित) में अंग्रेजी विभाग में सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत है, जबकि आवेदक की वर्तमान आयु 32 वर्ष बताई गई थी, जो घटना के समय (05.12.2019) को 28 वर्ष थी, और वह भी ईसीसी, प्रयागराज के उसी विभाग में सहायक प्रोफेसर के रूप में भी कार्यरत था। कथन किया गया है कि इस मामले में अभियोक्त्री की कोई मेडिकल जांच नहीं कराई गई। यह अभियोक्त्री (विपक्षी संख्या-4) का मामला है कि उसकी शादी ईसाई रीति-रिवाजों के अनुसार प्रयागराज में अतुल स्टेनाली हरमिट से हुई थी। वह दो बच्चों-अन्या समारा हरमिट, जिनकी उम्र लगभग 5 साल है और जेरेमी एलन हरमिट, जिनकी उम्र लगभग 1-1/2 साल है, कि माँ है।

(7) आवेदक केरल का रहने वाला है और वह वर्ष 2012 में पहली बार प्रयागराज आया था, जब उसे ईसीसी, प्रयागराज में सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया था, जहां विपक्षी संख्या-4 को भी सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया था। विपक्षी संख्या-4, अंग्रेजी विभाग में आवेदक से वरिष्ठ थी। कुछ दिनों में, दोनों की एक-दूसरे से जान-पहचान हो गई। घटना का विवरण इस प्रकार आगे बढ़ता है कि विपक्षी संख्या-4 ने अपने पति (अतुल स्टेनाली हर्मिट) और सास के खिलाफ 11.11.2021 को धारा 498ए, 323, 504, 506, 355, 452 आईपीसी, के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट पुलिस स्टेशन-महिला थाना, जिला प्रयागराज में मुकदमा अपराध संख्या-0068/2021 दर्ज कराई थी। जांच हुई और उक्त मामले में पुलिस द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया।

(8) दोनों विपक्षी संख्या-4 और उसके पति ने आपसी तलाक की मांग की। तलाक की याचिका दायर करने से पहले, विपक्षी संख्या-4 और उनके पति अतुल स्टेनाली हर्मिट ने समझौता किया और हलफनामे के उन नियमों और शर्तों पर हस्ताक्षर किए, जिसके अनुसार वे एक-दूसरे से अलग होना चाहते थे।

(9) चार्जशीट दाखिल करने के बाद (उपरोक्त अपराध संख्या 0068/2021 में), विपक्षी संख्या-4 और उनके पति अतुल स्टेनाली हर्मिट ने भारतीय तलाक अधिनियम, 1869 की धारा 10 ए के अंतर्गत वैवाहिक याचिका संख्या 118/2022 योजित की, जिसमें आपसी सहमति से तलाक की मांग की गई। पेपर

नंबर 9 ए के रूप में एक हलफनामा दायर किया गया था जिसमें उन्होंने पहली बार कथन किया गया कि दूसरा बच्चा अर्थात 'जेरेमी एलन' आवेदक का बेटा है। आवेदक द्वारा यह तर्क दिया गया है कि तलाक की याचिका में उन्होंने उक्त बच्चे के पिता के बारे में कोई ऐसा कथन नहीं किया है कि वह आवेदक का पुत्र है, और संबंधित कुटुंब न्यायालय के समक्ष विपक्षी संख्या-4 और उसके पति द्वारा एक विरोधाभासी हलफनामा दायर किया गया है।

(10) आवेदन में यह कहा गया है कि विपक्षी संख्या-4 के पति ने धारा 482 दं.प्र.सं. के अंतर्गत अंतर्गत आवेदन संख्या-15985/2022, प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या-0068/2021 से उत्पन्न वाद संख्या-40/2022, राज्य बनाम अतुल स्टेनाली हरमिट व अन्य, को रद्द करने हेतु योजित किया था और जिसमें पक्षकारों को उच्च न्यायालय द्वारा निचली अदालत के समक्ष समझौता विलेख दायर करने का निर्देश दिया गया था। हालांकि, यह कहा गया है कि मामला अभी भी लंबित है और आरोप पत्र को उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त नहीं किया गया है। तलाक की याचिका (विपक्षी संख्या-4 और उसके पति के बीच) दिनांक 25.07.2022 को निर्णीत हो चुकी है। वर्तमान प्रकरण (मुकदमा अपराध संख्या-0070/2022) में, आवेदक को गिरफ्तार कर लिया गया है और जमानत दे दी गई है। अग्रेतर यह समझने के लिए कि वर्तमान मामले में जांच लंबित रहने की अवधि में, स्थिति कैसे भड़क गई, कुछ तथ्य उल्लेखनीय हैं। इस बीच, विपक्षी संख्या-4 ने नाबालिग बच्चे और आवेदक के डीएनए परीक्षण कराये जाने के संबंध में अतिरिक्त

मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर-9, प्रयागराज के समक्ष एक आवेदन दायर किया, जिसे 14.07.2022 को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि विपक्षी संख्या-4 के पास आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं था, यह कि और यदि जांच अधिकारी इसे उचित पाता है, तो वह उपयुक्त आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा गया कि बच्चे के पितृत्व निर्धारण के संबंध में कोई मुद्दा/विवाद नहीं है, परंतु बलात्कार के कथित अपराध के संबंध में पर्याप्त साक्ष्य एकत्र किए जा सकते हैं।

(11) इसके बाद, विपक्षी संख्या-4 द्वारा वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, प्रयागराज के समक्ष नाबालिग बच्चे और आवेदक के डीएनए परीक्षण कराये जाने हेतु शपथ पत्र के साथ एक आवेदन दायर किया गया था। इस स्तर पर, जांच अधिकारी ने नाबालिग बच्चे और आवेदक का डीएनए परीक्षण कराये जाने हेतु अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर-9, इलाहाबाद के समक्ष 11.10.2022 को एक आवेदन प्रस्तुत किया।

(12) आवेदन/याचिका में उपरोक्त पृष्ठभूमि और कथनों के आलोक में, आवेदक का यह कथन है कि उसने रक्त/डीएनए परीक्षण के लिए अपनी सहमति नहीं दी है, जबकि, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर-9, इलाहाबाद ने 18.10.2022 को कानून के अनुसार डीएनए परीक्षण करने का आदेश दिया है। याचिका में कथन किया गया है कि डीएनए परीक्षण की अनुमति देने वाला

मजिस्ट्रेट का आदेश दिनांक 18.10.2022, मूल रूप से आवेदक के निजता के अधिकार का हनन है। उपरोक्त आदेश दिनांक 18.10.2022 से व्यथित महसूस करते हुए, आवेदक ने आपराधिक पुनरीक्षण-सीएनआर संख्या-यूपीएडी01-013127/2022, प्रभारी सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), इलाहाबाद के समक्ष योजित किया, परंतु आपराधिक पुनरीक्षण को 21.10.2022 को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित दिनांक 18.10.2022 का आदेश अन्तरिम आदेश है, और इस प्रकार पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है।

(13) याचिका उसी दिशा में आगे बढ़ते हुए यह कथन करती है कि आवेदक के मौलिक अधिकार का हनन हो रहा है क्योंकि निजता का अधिकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है, जिसका हनन हो रहा है, जबकि कई मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि स्वतंत्रता के अधिकार का अभिन्न अंग होने के नाते निजता के अधिकार का हनन नहीं किया जा सकता है और यह अधिदेश सभी मामलों पर लागू होता है, जिसमें वह मामले भी शामिल है जहां जांच चल रही है और आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर-9, इलाहाबाद का आदेश दिनांक 18.10.2022, जिसके द्वारा नाबालिग बच्चे और आवेदक के डीएनए परीक्षण/रक्त परीक्षण का निर्देश दिया गया था, और जो 21.10.2022 को पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा

पुष्ट है, वह कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है। इस आवेदन के माध्यम से दोनों आदेशों को आक्षेपित किया गया है।

(14) प्रारम्भ में ही, यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि सूचनाकर्ता के अधिवक्ता (विपक्षी संख्या-4) द्वारा इस आवेदन की पोषणीयता पर सवाल उठाते हुए प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत यह आवेदन पोषणीय नहीं है क्योंकि इस मामले की जांच चल रही है, जिसमें आईपीसी की अन्य धाराओं के साथ साथ आईपीसी की धारा 376 के अंतर्गत अपराध भी शामिल है, अतः इस स्तर पर और जांच के दौरान, इस न्यायालय के पास सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत जांच में हस्तक्षेप करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है।

(15) प्रारंभिक आपत्ति के उत्तर में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जहां तक सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग का संबंध है, कानून स्पष्ट है कि अत्यावश्यकता की स्थिति में और न्याय को सुरक्षित करने के लिए, इस न्यायालय द्वारा निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है ताकि पूर्ण न्याय किया जा सके।

(16) अपने दावे के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रिवी काउंसिल किंग-सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद, 1944 0 आईसीएलएफ (एससी) 30, 1945 0 एआईआर (पीसी) 18; 1943 71 लॉ रिपोर्ट इंडस्ट्रीज़ ऐप 203 के निर्णय पर भरोसा किया है और

निर्णय के अंतिम तीन पैराग्राफ पर जोर देकर कहा कि प्रिवी काउंसिल ने निर्धारित किया है कि न्याय को सुरक्षित करने के लिए निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

(17) इस स्तर पर, विपक्षी संख्या-4 के विद्वान अधिवक्ता ने रोकते हुए तर्क दिया कि प्रिवी काउंसिल द्वारा व्यक्त किया गया विचार इस अभिप्राय और अर्थ के लिए था कि सामान्य स्थिति में, "न्यायालयों के कार्य तब शुरू होते हैं, जब आरोप लगाया जाता है"। इसका मतलब है कि चार्जशीट दायर होने के बाद ही अदालत का हस्तक्षेप उचित है।

(18) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अपना तर्क जारी रखते हुए कहा है कि न्यायपालिका और पुलिस के कार्य एक दूसरे के पूरक हैं न की अतिव्यापी। दोनों को अपने संबंधित क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता है। विद्वान अधिवक्ता ने फिर से पूर्वोक्त उद्धरण के कुछ हिस्सों का उदाहरण दिया।

(19) इसके अलावा, सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत इस आवेदन के संबंध में इस न्यायालय के निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग की पोषणीयता के संबंध में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने गौतम कुंडू बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1993 0 आईसीएलएफ (एससी) 539 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, उस मामले को पति और पत्नी के बीच लड़ा गया था जिसमें बच्चे के पितृत्व का तथ्य मुद्दा था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने

माना कि पितृत्व को अस्वीकार करने के अन्य तरीके थे और चिकित्सा परीक्षण पितृत्व का निर्णायक नहीं हो सकता है।

(20) अंत में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने झंडू फार्माक्यूटिकल वर्क्स लिमिटेड व अन्य बनाम मो. शराफुल हक व अन्य, (2005) 1 एससीसी 122 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह निर्णय दिया कि सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए कोई कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

(21) प्रिवी काउंसिल और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के आधार पर, तर्क यह दिया गया है कि जांच के दौरान सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत इस न्यायालय के निहित शक्ति के प्रयोग पर कोई रोक नहीं है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने जोर देकर कहा कि सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग पूर्ण न्याय करने और न्याय को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है और इस धारा (482 सीआरपीसी) में वर्णित अन्य तत्व और पूर्ण न्याय करने की शक्ति, धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करने वाले न्यायालय में निहित है। इसलिए, अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर-9, इलाहाबाद द्वारा निर्देशित डीएनए परीक्षण आवेदक की सहमति के अभाव में

नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह न्याय को सुरक्षित करने और आवेदक के निजता के अधिकार की रक्षा के लिए हस्तक्षेप के लिए एक उपयुक्त मामला है। इसलिए, जांच जारी रहने के दौरान भी इस न्यायालय द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।

(22) पूर्वोक्त तर्कों का जवाब देते हुए, विपक्षी संख्या-4 के विद्वान अधिवक्ता ने राजा-सम्राट के मामले में शामिल मुद्दे के सार को स्पष्ट करते हुए तर्क दिया है कि जहां तक धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के बिंदु का संबंध है, राजा-सम्राट (उपरोक्त) के मामले में, प्रिवी काउंसिल स्वयं का विचार था और इस बात के लिए मानदंड निर्धारित किए थे कि किन मामलों में जांच एवं उन मानदंड के अभाव में निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है, और विद्वान अधिवक्ता यह तर्क देते हैं धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग, इस स्तर पर आवेदक द्वारा मांगे गए तरीके से नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, जहां तक आवेदक की निजता के अधिकार का संबंध है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का अभिन्न अंग है, लेकिन यह किसी व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं देता है, और इस संबंध में कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन करके न्यायसंगत और निष्पक्ष प्रक्रिया द्वारा स्वतंत्रता को कम किया जा सकता है। इस मामले में, ऐसा कुछ

भी शामिल नहीं है, जैसा कि आवेदक द्वारा दावा किया गया है। स्वतंत्रता उचित प्रतिबंधों के अधीन है।

(23) अपने दावे के समर्थन में, विपक्षी संख्या-4 के विद्वान अधिवक्ता ने राम लाल यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1989 सीआरएलजे 1013 के मामले में इस उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ (सात न्यायमूर्तिगण) पर भरोसा किया है। पूर्ण पीठ ने निष्कर्ष दिया है कि उच्च न्यायालय के पास पुलिस द्वारा की जा रही जांच में हस्तक्षेप करने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत कोई अंतर्निहित शक्तियां नहीं हैं। उच्च न्यायालय के पास जांच के दौरान आरोपी की गिरफ्तारी पर रोक लगाने की कोई अंतर्निहित शक्ति नहीं है।

(24) इसके अलावा, विपक्षी संख्या-4 के विद्वान अधिवक्ता ने इस बिंदु पर तर्क दिया है कि यह केवल उन विशेष मामलों में है, जहां मनमानी के परिणामस्वरूप गोपनीयता का हनन होता है, और तभी उचित मामलों में किसी व्यक्ति/ नागरिक के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए हस्तक्षेप के लिए आधार उपलब्ध होगा। लेकिन ऐसे मामलों में, जहां कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया उचित और निष्पक्ष है, तब इसके पालन के बाद निजता का अधिकार प्रतिबंधित है और किसी व्यक्ति पर प्रतिबंध लागू किया जाता है, तो किसी व्यक्ति की निजता के अधिकार का कोई उल्लंघन नहीं होता है।

(25) इस संबंध में, विपक्षी संख्या-4 के

विद्वान अधिवक्ता ने रोहित शेखर बनाम नारायण दत्त तिवारी, एफ.ए.ओ.(ओएस) संख्या-547/2011, एआईआर 2012 दिल्ली 151 के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 27 अप्रैल, 2012 पर भरोसा किया है, जिसमें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने नारायण दत्त तिवारी के ब्लड/डीएनए टेस्ट के निर्देश दिए थे।

चर्चा और निष्कर्ष

(26) इसमें कोई संदेह नहीं है, कि जहां तक जांच के अवधि में सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत अधिकार के प्रयोग के लिए इस आवेदन की पोषणीयता के संबंध में उठाए गए प्रश्न का संबंध है, यह देखा जा सकता है कि राजा-सम्राट बनाम ख्वाजा नजीर अहमद, 1944 0 आईसीएलएफ (एससी) 30, 1945 0 एआईआर (पीसी) 18; 1943 71 लॉ रिपोर्ट इंडस्ट्रीज़ ऐप 203, के निर्णय के अनुसार अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग दुर्लभतम और असाधारण मामलों व परिस्थितियों में किया जा सकता है, जो अपने आप में इस तरह के प्रयोग को सही ठहरा सकते हैं; लेकिन जहां तक इस दुर्लभ और असाधारण पक्ष का संबंध है, प्रिवी काउंसिल का विचार था कि यदि रिपोर्ट के अवलोकन से किसी अपराध या संज्ञेय अपराध का पता नहीं चलता है तो उस प्रथम सूचना रिपोर्ट से संबंधित जांच में हस्तक्षेप किया जा सकता है। प्रिवी काउंसिल ने इस तरह का जनादेश नहीं दिया कि सभी मामलों में, अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है, जबकि मामला जांच स्तर पर है, प्रिवी काउंसिल ने स्पष्ट रूप से कहा

कि "न्यायालय का डोमेन तब शुरू होता है जब चार्ज को दायर किया जाता है"।

(27) निर्धारण के लिए उठने वाला मुद्दा इस तथ्य से संबंधित है कि क्या इस न्यायालय के निहित अधिकार क्षेत्र (सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत), का किसी मामले की जांच के दौरान प्रयोग किया जा सकता है। क्या यह कहा जा सकता है कि रिपोर्ट के अवलोकन से कोई अपराध नहीं बनता है? क्या यह कहा जा सकता है कि रिपोर्ट के अवलोकन से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है?

(28) अब इस न्यायालय को प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित आरोपों की भाषा और अर्थ पर विचार करना होगा और इस बिंदु पर विचार करना होगा कि क्या प्रथम सूचना रिपोर्ट में निहित विवरण अन्य बातों के साथ-साथ, बलात्कार और संज्ञेय अपराध के कथित अपराध को दर्शाता है या नहीं?

(29) इस संबंध में, जब यह न्यायालय एफआईआर में निहित विवरण के साथ आगे बढ़ता है, तो यह पता है कि आरोप एकांत दृष्टिकोण के अभिव्यंजक हैं कि "05.12.2019 को विपक्षी संख्या-4 का लाभ उठाते हुए", आवेदक ने कथित तौर पर विपक्षी संख्या-4 को ईसीसी परिसर में अपने निवास पर चाय परोसी और चाय में कुछ हानिकारक पदार्थ मिलाया, जिसके कारण वह बेहोश हो गई।" फलस्वरूप, उसके साथ बलात्कार किया गया। जब उसे होश आया, तो उसने आवेदक से पूछा कि उसने उसे धोखा क्यों दिया, जिस पर उसने उसे धमकी दी और कहा कि उसने घटना की

एक वीडियो क्लिप बनाई है और वह इसे बड़े पैमाने पर जनता के लिए वायरल करेगा और "इसके बारे में उसके पति को सूचित करेगा"। इस प्रकार, उसने कथित तौर पर उसे लगातार डरा के रखा, उसे ब्लैकमेल किया और इस स्थिति का फायदा उठाते हुए, आवेदक ने उसके साथ बलात्कार करना जारी रखा, जिसके परिणामस्वरूप उसने गर्भ धारण किया और गर्भावस्था विकसित की, और दूसरे बच्चे (जेरेमी एलन हरमिट) का जन्म हुआ। इस प्रकार कथित बलात्कार और बच्चे का जन्म, इस मामले में सीधे तौर पर मुख्य बिंदु बन जाता है। यहां बच्चे का पित्रत्व का बिन्दु न तो है और न ही उसे उस तरह से उठाया गया है। लेकिन बलात्कार के आरोप, अगर उनका खंडन नहीं किया जाता है, तो दंडनीय होगा। इस स्तर पर, बलात्कार के कथित कमीशन पर प्रकाश डालने वाले सभी सबूत बिन्दु प्रासंगिक हो जाते हैं।

(30) इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ, आरोप प्रथम दृष्टया एक संज्ञेय अपराध बनाते हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप, अन्य बातों के साथ-साथ, एक संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं। इसी प्रकार, विपक्षी संख्या-4 पर बलात्कार का आरोप, मुख्य बिन्दु है और दूसरे बच्चे के जन्म का बिन्दु, विपक्षी संख्या-4 बलात्कार के सहायक संदर्भ के रूप में है, जो (कृत्य) आवेदक पर आरोपित किया गया है। ऐसी स्थिति में, इन पहलुओं पर जांच निर्बाध रूप से चल सकती है। इसलिए, सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत निहित

शक्तियों का प्रयोग, जांच के इस स्तर पर नहीं किया जा सकता है और मामले को दुर्लभ और असाधारण परिधि के भीतर नहीं कहा जा सकता है।

(31) इसी प्रकार, जहां तक आवेदक के निजता के अधिकार और मौलिक अधिकार के हनन का सवाल है, यह देखा जा सकता है कि निजता का अधिकार एक पूर्ण अधिकार नहीं है बल्कि उचित और निष्पक्ष प्रतिबंध के अधीन है। रोहित शेखर (उपरोक्त) के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले में, जिसमें दिल्ली उच्च न्यायालय ने पूरे मामले को निपटाया और नारायण दत्त तिवारी को डीएनए परीक्षण के लिए मजबूर किया। वर्तमान मामले में, बलात्कार के तथ्य का निर्धारण किया जाना है, जिसके लिए जांच अधिकारी द्वारा सामग्री/साक्ष्य एकत्र किए जा रहे हैं। इस संबंध में जांच के दौरान सामग्री एकत्र करने की प्रक्रिया निर्बाध रूप से चल सकती है। इस समय जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की जाने वाली सामग्री के गुण या दोष के बारे में कोई राय व्यक्त करना उचित नहीं होगा। यह जांच अधिकारी का विशेषाधिकार है कि वह पूरी निष्पक्षता और पारदर्शिता के साथ जांच करे, क्योंकि सीआरपीसी की धारा 482 के आधार पर इस न्यायालय में निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में जांच में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

(32) जहां तक आवेदक के भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निहित मौलिक अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अतिक्रमण के बिंदु का संबंध है, इसे अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर-9,

इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 18.10.2022 के आदेश द्वारा अतिक्रमित किया गया नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि जांच के दौरान प्रासंगिक साक्ष्य/सामग्री का संग्रह चल रहा है, जो एक प्रक्रिया है, जिसे अपनाया जाना है, जब आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के अंतर्गत निहित प्रावधानों के आधार पर एक मामले की जांच चल रही हो। इस निर्देश को अनुचित, गलत और अन्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता है, इसके विपरीत यह न्यायसंगत और निष्पक्ष है। यह ध्यान देने योग्य है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपनी पर्यवेक्षी क्षमता में आदेश पारित किया है, जिससे जांच अधिकारी को कथित अपराध के साथ संबंध रखने वाली सामग्री और सबूत एकत्र करने में सक्षम बनाया जा सके। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय को जांच के दौरान एकत्र किए जाने वाले सबूतों की गुणवत्ता और इसके गुणों के आधार पर कुछ भी देखने से बचना चाहिए। ऐसा होने पर, आवेदक इस न्यायालय के निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए जोर नहीं दे सकता है।

(33) सामान्य परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने आवेदक को अपनी शिकायतों के निवारण के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले उपयुक्त न्यायालय की शरण में जाने का निर्देश दिया होता। लेकिन मामले के गुण-दोष के आधार पर न्याय सुनिश्चित करने के लिए, सीआरपीसी की धारा 482 के अंतर्गत यह आवेदन, जो इस स्तर पर मामले में चल रही जांच में हस्तक्षेप करने की मांग के अपने वर्तमान स्वरूप में (सीआरपीसी की धारा 482

के अंतर्गत) सुनवाई योग्य नहीं है, इसको भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत एक याचिका माना जाता है। लेकिन इस दृष्टिकोण से मामले पर विचार करते हुए, जैसा कि इस न्यायालय के समक्ष इस आवेदन/याचिका के माध्यम से लाया गया है, जिसमें दोनों पक्ष अपनी-अपनी दलीलों पर अड़े हुए हैं, जिनका उन्होंने आदान-प्रदान किया है, जाहिर है कि यह अत्यंत सावधानी के साथ देखा जाना चाहिए है कि मौजूदा मामला दुर्लभतम मामलों और असाधारण परिस्थितियों की श्रेणी में नहीं आता है, जो अकेले इस न्यायालय के इस स्तर पर चल रही जांच में हस्तक्षेप को सही ठहराएगा, क्योंकि इस संबंध में कानून अच्छी तरह से स्पष्ट है कि न्यायालयों द्वारा अपराध की जांच में कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। रिपोर्ट में लगाए गए आरोप, एक संज्ञेय अपराध बनाते हैं, विशिष्ट रूप से-बलात्कार का अपराध।

(34) यह जांच अधिकारी का अनन्य अधिकार है कि वह सभी प्रासंगिक सामग्री और साक्ष्य एकत्र करे, जो प्रतिबिंबित हों और जिनका कथित अपराध से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध हो। एक बार सीआरपीसी की धारा 157 के अंतर्गत जांच शुरू होने के बाद, इसे धारा 173 सीआरपीसी के अंतर्गत प्रदान किए गए तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए। यदि कोई महत्वपूर्ण सामग्री/साक्ष्य उपलब्ध है तो उसे एकत्र किया जाना आवश्यक है और उसे रिकॉर्ड पर लाने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए ताकि कानूनी प्रक्रिया का तार्किक अंत सुनिश्चित हो सके।

(35) जहां तक अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर-9, इलाहाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.10.2022 का संबंध है, जिसमें डीएनए परीक्षण के लिए निर्देश दिया गया है, इसे केवल इस आधार पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि आवेदक ने इसके लिए सहमति नहीं दी है। आवेदक बलात्कार के अपराध का आरोपी होने के नाते, उसे जांच के दौरान सामग्री एकत्र करने के लिए डीएनए परीक्षण के लिए निर्देशित किया जा सकता है। इस प्रकार डीएनए परीक्षण को निजता के अधिकार का उल्लंघन नहीं माना जाएगा क्योंकि इसे मनमाना या अनुचित नहीं कहा जा सकता है। रोहित शेखर (उपरोक्त) के मामले में, नारायण दत्त तिवारी को डीएनए परीक्षण के आदेश के कड़े प्रतिरोध के बावजूद डीएनए परीक्षण से गुजरने के लिए मजबूर किया गया था।

(36) वर्तमान जैसे मामलों में, जहां मुख्य बिन्दु, पूर्ण रूप से आवेदक द्वारा विपक्षी संख्या-4 पर बलात्कार के कथित कमीशन के साथ जुड़ा हुआ है, आवेदक के डीएनए परीक्षण से सच्चाई का पता लगाया जा सकता है। इस मामले के मौजूदा तथ्यों और नियमों के अंतर्गत, डीएनए परीक्षण को केवल इस आधार पर नहीं रोका जा सकता है कि जिस व्यक्ति का डीएनए परीक्षण किया जाना आवश्यक है, उसने इस तरह के परीक्षण के लिए सहमति नहीं दी है। इसी तरह निचली पुनरीक्षण अदालत उस समय उचित थी जब उसने (दिनांक 21.10.2022 के आदेश के अनुसार) अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-

9, इलाहाबाद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 18.10.2022 में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया, क्योंकि यह अन्तरिम आदेश था। इस प्रकार निचली पुनरीक्षण अदालत द्वारा पारित आदेश में कोई कमी नहीं पाई गई है। इसके अलावा, इस न्यायालय ने डीएनए परीक्षण के आदेश को चुनौती के माध्यम से मांगी गई राहत के बिंदु पर आवेदक को विस्तार से सुना है और मामले पर पूरी तरह से विचार किया है, इसलिए, तकनीकी आधार पर निचली पुनरीक्षण अदालत द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण की अस्वीकृति के संबंध में कोई कमी मौजूद नहीं है।

(37) जहां तक गौतम कुंडू (उपरोक्त) के मामले में दिशानिर्देशों का संबंध है, उस मामले में पितृत्व का प्रश्न मुख्य रूप से पत्नी और पति के बीच निर्णय लेने के लिए तथ्य था, जहां बच्चे के जन्म को पति द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था, जबकि, इस मामले में, बच्चे के पितृत्व के निर्धारण के बिंदु की कोई प्रासंगिकता नहीं है और न ही दावा किया गया है। इसलिए, हालांकि याचिका को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत माना गया है, इसमें भी योग्यता का अभाव है और इसे निरस्त कर दिया जाना चाहिए।

(38) पूर्वोक्त कारणों से, इस न्यायालय का विचार है कि इस स्तर पर, जब जांच अधिकारी का ध्यान प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों पर होगा, जो पहलू, स्वतः आवेदक द्वारा विपक्षी संख्या-4 पर बलात्कार के अपराध के कथित कमीशन, गर्भावस्था और बच्चे के जन्म के परिणामस्वरूप विकास पर आधारित है। जांच अधिकारी कानून की उचित

प्रक्रिया का पालन करते हुए प्रासंगिक सामग्री एकत्र करने के लिए स्वतंत्र है। जांच के स्तर पर, इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और जांच निर्बाध रूप से चल सकती है।

(39) फलतः यह याचिका निरस्त की जाती है।

(40) यह स्पष्ट किया जाता है कि मामले के गुण-दोष और जांच के दौरान जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की जाने वाली सामग्री की प्रामाणिकता पर कोई भी विचार व्यक्त नहीं किया गया है और जांच एजेंसी ऊपर की गई टिप्पणियों से पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं होगी और यह पूरी तरह से इस याचिका के निस्तारण तक ही सीमित है, और किसी भी स्थिति में इससे आगे नहीं जाएगी।

(41) व्यय का कोई आदेश नहीं।

(2023) 4 ILRA 819

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

38783/2022

कंवरपाल @ लाला एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री मयंक यादव, श्री विवेक कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अनिल कुमार दुबे, श्री चन्द्रभान दुबे

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति, धारा 200 - परिवादी का परीक्षण, धारा 202 - प्रक्रिया जारी करने का स्थगन, धारा 203 - परिवाद को निरस्त करना, धारा 156(3) - अग्रिम विवेचना के लिए निर्देश, धारा 173(2) - पुलिस रिपोर्ट, धारा 190(1)(बी) - पुलिस रिपोर्ट पर मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 363, 201, 120बी - एक बार जब धारा 200 और 202 सीआरपीसी के तहत बयान दर्ज करने के बाद विरोध याचिका दायर की गई है, संबंधित मजिस्ट्रेट पाता है कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है, वह जांच अधिकारी की राय से बाध्य नहीं है जो कि धारा 161 सीआरपीसी के तहत गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद पाया गया है। (पैरा-15)

(बी) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय को प्रक्रिया जारी करने के चरण में, या प्रतिबद्ध करने के चरण में, या आरोप तय करने के चरण में अभियुक्त के खिलाफ - अभियोजन की शुरुआत को निरस्त करने की शक्ति, वास्तविक परीक्षण के प्रारंभ होने से पूर्व के सभी चरणों के दूरगामी परिणाम होंगे, क्योंकि यह अभियोजन/शिकायतकर्ता को सबूत पेश करने की अनुमति दिए बिना अभियोजन/परिवादी के वाद को नकार देगा - ऐसा निर्धारण हमेशा सावधानी, देखभाल और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। पैरा-15)

वादी द्वारा दायर वर्तमान विरोध याचिका - परिवाद की आवश्यकताओं को पूरा करती है -

इसे परिवाद के रूप में माना गया है, परिवादी के बयानों के साथ-साथ गवाहों के बयानों को क्रमशः धारा 200 और 202 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया है - आवेदकों को समान किया गया- आवेदक द्वारा दायर आवेदन-निरस्त - पूरी आपराधिक कार्यवाही के साथ-साथ आक्षेपित समन आदेश (पैरा - 12)

निर्णय:- आपेक्षित आदेश या कार्यवाही में कोई अवैधता, अनौचित्य या अशुद्धता नहीं है। (पैरा-16)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन निरस्त (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. दूध नाथ मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2003 ए.एल.जे. 55
2. छोटे लाल पुत्र परमानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और श्रीमती रति बसोर पत्नी हसमुख बसोई, 2006 सीआरएलजे 2265
3. अब्दुल हमीदखान पठान व अन्य बनाम गुजरात राज्य व अन्य, 1989 Cr.L.J. 468 (गुज. डीबी)
4. किशोर सिंह और अन्य बनाम सुदामा प्रसाद और अन्य, 2002 सीआरएलजे 802 (एमपी)
5. रोजी एवं अन्य बनाम केरल राज्य एवं अन्य 2000(1) एससीआर 107
6. राजीव थापर एवं अन्य बनाम मदन लाल कपूर (आपराधिक अपील संख्या/2013, एसएलपी (सीआरएल) संख्या 4883/2008

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री विवेक कुमार सिंह, विपक्षी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता श्री चंद्रभान दुबे और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिंह चौहान को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।
2. आवेदक द्वारा यह प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता, शिकायत वाद संख्या 13682 वर्ष 2021 (श्रीमती सरला बनाम कंवरपाल उर्फ लाला और अन्य) अंतर्गत धारा 302 भा.दं.सं. थाना छपरौली, जिला बागपत की संपूर्ण आपराधिक कार्यवाही के साथ-साथ विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बागपत द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 26.08.2022 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।
3. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि दिनांक 11.03.2019 को 13:18 बजे बिशंभर के पुत्र त्रिशपाल द्वारा अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ, अपने भतीजे सम्राट, जिसका शव 11.03.2019 को सुबह 10:30 बजे एक पुलिया के पास सड़क किनारे पाया गया था, के लापता होने के आरोप में एक प्राथमिकी दर्ज कराई गई थी, जिसे अपराध संख्या 60 वर्ष 2019 अंतर्गत धारा 302 भा.दं.सं., थाना छपरौली, जिला बागपत के रूप में दर्ज किया गया था।
4. दिनांक 11.03.2019 को उपरोक्त शव का पोस्टमॉर्टम किया गया जिसमें कुछ चोटें बताई गईं और मृत्यु का कारण गला घोटना और सदमा बताया गया।
5. मामले की जांच जांच अधिकारी द्वारा की गई और शिकायतकर्ता त्रिशपाल का बयान दिनांक 11.03.2019 को दर्ज किया गया। उपरोक्त बयान में शिकायतकर्ता ने अपने भतीजे की हत्या में शामिल होने के लिए किसी का नाम नहीं लिया। दिनांक 14.03.2019 को, जांच अधिकारी ने साक्ष्य दर्ज करने का प्रयास किया लेकिन उन्हें कुछ भी प्रासंगिक नहीं मिला। दिनांक 15.03.2019 को जांच अधिकारी जांच करते हुए मृतक के घर पहुंचे जहां तेरहवीं की रस्म हो रही थी, वहां मौजूद लोगों से बातचीत के दौरान उन्हें पता चला कि कुछ समय पहले पप्पू, देशपाल पुत्र पदम सिंह, और मृतक के बीच झगड़ा हुआ था। जांच के दौरान, दिनांक 17.03.2019 को जांच अधिकारी को पता चला कि मृतक के चाचा कंवरपाल उर्फ लाल पर भी मृतक की हत्या में शामिल होने का संदेह था। दिनांक 20.03.2019 को अशोक पुत्र पदम सिंह, देशपाल उर्फ काला, पप्पू पुत्र पदम और बिंदर के बयान दर्ज किए गए, जहां से पता चला कि उपरोक्त व्यक्तियों का कथित घटना से कोई लेना-देना नहीं है। दिनांक 25.03.2019 को मामले की जांच करते समय जांच अधिकारी ने पाया कि मृतक और उसके चाचा कंवरपाल के बीच कुछ विवाद हुआ था लेकिन बाद में दोनों के बीच समझौता हो गया। इसी प्रकार क्रमशः दिनांक, 26.03.2019, 18.04.2019 और 22.04.2019 को मृतक सम्राट पुत्र शमशेर की कथित हत्या के पीछे की सच्चाई का पता लगाने के लिए जांच अधिकारी द्वारा सभी प्रयास किए गए। दिनांक 03.05.2019 को शमशेर (मृतक के पिता), सरला (मृतक की मां), भारती और साक्षी (शमशेर की बेटियां) के

बयान दर्ज किए गये। उपरोक्त व्यक्तियों ने अपने बयानों में मृतक के चाचा कंवरपाल की कथित हत्या में शामिल न होने की स्थिति स्पष्ट की। दिनांक 07.05.2019 को शुभम और विक्की के बयान भी दर्ज किए गए और चाचा यानी कंवरपाल की स्थिति वही रही। दिनांक 10.05.2019, 21.05.2019 और 06.06.2019 को अन्य व्यक्तियों के बयान भी दर्ज किए गए और जांच अधिकारी कथित तारीखों पर मृतक की हत्या के बारे में कोई जानकारी नहीं जुटा सके। दिनांक 02.08.2019 को जांच अधिकारी ने कुलदीप, दीपक, हरेंद्र सिंह और अशोक के बयान दर्ज किए, जिन्होंने कहा कि मृतक की चाची मनीषा गांव सूप की निवासी हैं, जहां से कथित घटना के संबंध में प्रासंगिक जानकारी एकत्र की जा सकती है। दिनांक 16.08.2019 को देशपाल सिंह, तेजपाल और ओमवीर सिंह के बयान भी दर्ज किए गए लेकिन जांच अधिकारी अपराधी के बारे में कोई जानकारी नहीं जुटा सके।

6. दिनांक 15.10.2019 को, जांच थाना इंचार्ज, छपरौली श्री दिनेश कुमार को सौंपी गई और वह चौथे जांच अधिकारी थे, जिन्होंने दिनांक 28.10.2019 को जांच शुरू की, लेकिन मृतक सम्राट की हत्या के बारे में कुछ भी प्रासंगिक नहीं मिला। अंततः दिनांक 28.05.2020 को जांच अधिकारी ने जांच पूरी की और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की क्योंकि मृतक की हत्या से जुड़े किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कुछ भी नहीं पाया जा सका। ऐसा प्रतीत होता है कि आगे की जांच के लिए सर्कल अधिकारी द्वारा दिनांक 21.06.2020 को एक आदेश पारित किया गया था और

दिनांक 25.06.2020 को फिर से जांच शुरू हुई। इसके बाद दिनांक 16.08.2020 को जांच नए थाना इंचार्ज, छपरौली को सौंपी गई, जिन्होंने पूरी केस डायरी का अवलोकन किया, लेकिन जांच के संबंध में उनके द्वारा कुछ नहीं किया गया। इसके बाद दिनांक 18.09.2020 को नवनियुक्त थाना इंचार्ज छपरौली को जांच सौंपी गई, जिन्होंने दिनांक 19.09.2020 को पूरी केस डायरी देखी और दिनांक 04.11.2020 को सरला (मृतक की मां) का बयान दर्ज करने की कार्यवाही की, लेकिन उसके द्वारा किसी भी नाम का खुलासा नहीं किया गया। नवनियुक्त SHO ने शमशेर सिंह और त्रिशपाल के बयान दर्ज किए, जिन्होंने भी किसी का नाम नहीं बताया। इस प्रकार दिनांक 12.11.2020 को आसपास के स्थान पर जाकर और अन्य व्यक्तियों के बयान दर्ज करने के बाद, जांच समाप्त की गई और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

7. उपरोक्त मामले की जांच लंबित रहने के दौरान विपक्षी सं. 2 ने दिनांक 21.01.2020 को मृतक सम्राट की हत्या के संबंध में आवेदकों के खिलाफ अंतर्गत धारा 302, 363, 201, 120 बी, भा.दं.सं. एक शिकायत वाद संख्या 249 वर्ष 2020 दर्ज किया। उपरोक्त शिकायत को दिनांक 03.12.2021 के आदेश के द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 203 के तहत खारिज कर दिया गया था क्योंकि शिकायतकर्ता ने दं.प्र.सं. की धारा 200 और 202 के तहत कोई सबूत पेश नहीं किया था।

8. जांच अधिकारी द्वारा संबंधित न्यायालय के समक्ष अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद,

विपक्षी संख्या 2 को आवेदकों के खिलाफ विरोध याचिका दायर करने के लिए नोटिस जारी किये गये जिसे विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा आदेश दिनांक 27.10.2021 के तहत शिकायत वाद के रूप में माना गया और विपक्षी संख्या 2 को अपने गवाह पेश करने का निर्देश दिया गया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने दं.प्र.सं. की धारा 200 और 202 के तहत गवाहों के बयान दर्ज किए और अंततः आवेदकों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया, इसलिए वर्तमान याचिका दायर की गई है।

9. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि डेढ़ वर्ष की अवधि तक चल रही जांच के दौरान किसी भी समय आवेदकों का नाम जांच अधिकारी के समक्ष नहीं रखा गया और इस अवधि के दौरान विपक्षी पक्ष संख्या 2 के बयान को कई मौकों पर दर्ज किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि गवाह अनिल कुमार मृतक का चाचा है, जो घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा करता है, उसने इस बात का खुलासा नहीं किया है कि उसने इस तथ्य का खुलासा जांच अधिकारी और अन्य अधिकारी को क्यों नहीं किया। अन्य गवाहों ने घटना की जानकारी मृतक के माता-पिता को होने की बात कही, लेकिन किसी ने भी यह स्पष्ट नहीं किया कि कथित घटना के संबंध में कथित पक्षपातपूर्ण जांच के संबंध में कोई आवेदन किसी वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को क्यों नहीं दिया गया। निचली न्यायालय ने वर्तमान मामले की केस डायरी के रिकॉर्ड को देखे बिना आवेदकों को इस तथ्य को नजरअंदाज करते हुए विचारण का सामना करने के लिए बुलाया कि घटना 10.03.2019 को हुई थी और कई

मौकों पर उचित रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद, गवाह खुद को प्रत्यक्षदर्शी होने का दावा करते हुए घटना के लगभग तीन साल बाद एक कहानी सामने लेकर आए हैं और आवेदकों के नाम बताए हैं और आवेदकों को बुलाया गया है।

10. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि दिनांक 03.12.2021 को विपक्षी सं. 2 अर्थात् मृतक की मां सरला से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के तहत पूछताछ की गई और उसके गवाहों अनिल कुमार, अशोक कुमार और शमशेर की धारा 202 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत जांच की गई, जहां से पहली बार एक नई कहानी सामने आई, जिसमें कहा गया कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 और गवाहों ने आवेदकों को मृतक का शव ले जाते देखा, जिनकी उनके बीच पिछले विवाद के कारण हत्या कर दी गई थी। आवेदक के अधिवक्ता ने आगे कहा कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा दायर विरोध याचिका को शिकायत वाद माना गया है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202(2) के प्रावधानों का पालन किए बिना शिकायत में सभी गवाहों की जांच नहीं की गई है, इसलिए, समन आदेश अवैधता से ग्रस्त है और कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, अतः रद्द किये जाने योग्य है।

11. दूसरी ओर विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ विपक्षी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि उपरोक्त आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है क्योंकि विरोध याचिका दायर करने के बाद इसे

शिकायत के रूप में माना गया है और धारा 200 और 202 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत बयान दर्ज करने के बाद आवेदकों को बुलाया गया है, इसलिए प्रार्थना के अनुसार राहत नहीं दी जा सकती। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि एक बार पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दिए जाने के बाद, मजिस्ट्रेट उस पर संज्ञान ले सकता है क्योंकि लिया गया संज्ञान अपराध का है, अपराधी का नहीं। कानून की यह स्थापित स्थिति है कि जब पुलिस द्वारा मजिस्ट्रेट को भेजी गई रिपोर्ट उसके सामने रखी जाती है तो कई स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। रिपोर्ट यह निष्कर्ष दे सकती है कि कोई अपराध किसी विशेष व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा किया गया प्रतीत होता है और ऐसे मामले में, मजिस्ट्रेट या तो रिपोर्ट को स्वीकार कर सकता है और अपराध का संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है, या रिपोर्ट से असहमत हो सकता है और मामले को समाप्त कर सकता है, या धारा 156(3) के तहत आगे की जांच का निर्देश दे सकता है और पुलिस को एक और रिपोर्ट बनाने को कह सकता है। दूसरी ओर, रिपोर्ट में कहा जा सकता है कि पुलिस के मुताबिक ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कोई अपराध किया गया है। जब ऐसी रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के सामने रखी जाती है तो उसके पास फिर से तीन में से एक रास्ता अपनाने का विकल्प होता है यानी वह रिपोर्ट स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही समाप्त कर सकता है; या वह रिपोर्ट से असहमत हो सकता है और यह विचार कर सकता है कि आगे की कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है, अपराध का संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया

जारी कर सकता है; या वह धारा 156(3) के तहत पुलिस को आगे की जांच करने का निर्देश दे सकता है। इसलिए, स्थिति अब सुस्थापित है कि धारा 173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, एक मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190(1)(बी) के तहत अपराध का संज्ञान लेने का अधिकारी है, भले ही पुलिस रिपोर्ट इस आशय की हो कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। मजिस्ट्रेट जांच के दौरान पुलिस द्वारा जांचे गए गवाहों के बयानों को ध्यान में रख सकता है और शिकायत किए गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और आरोपी के लिए समन जारी करने का निर्देश दे सकता है। धारा 190(1)(बी) में यह नहीं कहा गया है कि एक मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान केवल तभी ले सकता है जब जांच अधिकारी यह राय दे कि जांच में आरोपी के खिलाफ मामला बन गया है। मजिस्ट्रेट जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज कर सकता है और जांच से सामने आने वाले तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से अपने दिमाग का उपयोग कर सकता है और मामले का संज्ञान ले सकता है, और यदि वह उचित समझता है, धारा 190 (1) (बी) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है और अभियुक्त को समन जारी करने का निर्देश दे सकता है। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(ए) के तहत किसी मामले का संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 200 और 202 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है, हालांकि धारा 200 या धारा 202 के तहत कार्य करने का विकल्प उसके लिए खुला है। जब मजिस्ट्रेट संज्ञान लेने और मामले को आगे बढ़ाने का निर्णय लेता है तो

शिकायतकर्ता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन जहां मजिस्ट्रेट यह निर्णय लेता है कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद नहीं है और कार्यवाही बंद कर देता है या यह मानता है कि कुछ के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए सामग्री है और दूसरों के संबंध में अपर्याप्त आधार हैं, तो शिकायतकर्ता निश्चित रूप से पूर्वाग्रहित होगा, क्योंकि दर्ज की गई प्राथमिकी पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से अप्रभावी हो जाती है। इसलिए, जहां मजिस्ट्रेट संज्ञान न लेने और कार्यवाही बंद करने का निर्णय लेता है या यह मानता है कि प्राथमिकी में उल्लिखित कुछ व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो शिकायतकर्ता को नोटिस दिया जाना और सुने जाने का अवसर दिया जाना मामले के लिए अनिवार्य हो जाता है।

12. दूसरी स्थिति यह है कि जहां विरोध दर्ज किया गया है और मजिस्ट्रेट इसे शिकायत के रूप में मानता है, तो उसे संहिता की धारा 200 और 202 की प्रक्रिया का पालन करना होगा। इस प्रकार, शिकायतकर्ता और उसके गवाहों की जांच करनी होगी। शिकायतकर्ता द्वारा दायर वर्तमान विरोध याचिका शिकायत की आवश्यकताओं को पूरा करती है, इसलिए, इसे शिकायत के रूप में माना गया और शिकायतकर्ता के साथ-साथ गवाहों के बयान क्रमशः धारा 200 और 202 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत दर्ज करने के बाद, आवेदकों को बुलाया गया।

13. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जैसा कि धारा 202(2) के तहत

आवश्यक है, शिकायतकर्ता के सभी गवाह जो उसके हित से जुड़े हैं और ऐसे गवाह जो अभियोजन मामले को साबित करने के लिए महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं, की जांच नहीं की गई विशेष रूप से एक ऐसे मामले में जो केवल सत्र न्यायालय द्वारा ही विचारणीय है, यह कि धारा 202(2) में निहित प्रावधानों के अनुसार, यह बताया गया है कि यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि जिस अपराध की शिकायत की गई है, वह विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा ही विचारणीय है, तो वह शिकायतकर्ता को अपने सभी गवाहों को पेश करने के लिए बुलाएगा और शपथ पर उनकी जांच करवायेगा।

14. विपक्षी पक्ष के अधिवक्ता का कहना है कि शिकायतकर्ता के लिए शिकायत में नामित सभी गवाहों की जांच करना अनिवार्य नहीं है और उसके पास इस मामले में एक विकल्प है, और इसलिए, उपरोक्त आदेश और कार्यवाही जारी रखने में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने **दूध नाथ मिश्रा बनाम यूपी राज्य, 2003 इलाहाबाद लॉ जर्नल 55** के मामले, **छोटे लाल पुत्र परमानंद बनाम यूपी राज्य और श्रीमती रति बसोई पत्नी हसमुख बसोई, 2006 सीआर.एलजे 2265** के मामले, **अब्दुल हमीदखान पठान और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, 1989 सीआर.एलजे 468 (गुजरात डीबी)** के मामले और **किशोर सिंह और आदि बनाम सुदामा प्रसाद एवं अन्य, 2002 सीआर.एलजे 802 (एम पी)** के मामले का आधार लिया है। उन्होंने आगे कहा कि यदि मजिस्ट्रेट शपथ पर सभी गवाहों की जांच करने के लिए दंड प्रक्रिया

संहिता की धारा 202 (2) के प्रावधानों का पालन नहीं करता है, तो यह अपने आप में कार्यवाही को प्रभावित नहीं करेगा, उपरोक्त बात **रोज़ी और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य 2000(1) एससीआर 107** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में कही गई है।

15. अंत में विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि जब एक बार विरोध याचिका दायर कर दी गई है तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और 202 के तहत बयान दर्ज करने के बाद, यदि संबंधित मजिस्ट्रेट को लगता है कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो वह धारा 161 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद कायम की गई जांच अधिकारी की राय से बाध्य नहीं है। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा कि आरोपी के खिलाफ अभियोजन की शुरुआत को रद्द करने के लिए, समन जारी करने के चरण में या प्रतिबद्धता के चरण में या आरोप तय करने के चरण में या वास्तविक परीक्षण शुरू होने से पहले के सभी चरणों में, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उच्च न्यायालय में निहित शक्ति के प्रयोग के दूरगामी परिणाम होंगे, क्योंकि यह बिना अभियोजन/शिकायतकर्ता को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिए, अभियोजन/ शिकायतकर्ता के मामले को नकारात्मक कर देगा। ऐसा निर्धारण हमेशा सावधानी, परवाह और सोच-विचार से किया जाना चाहिए। **राजीव थापर और अन्य बनाम मदन लाल कपूर (23.01.2013 को निर्णीत एसएलपी (आपराधिक) संख्या 4883 वर्ष**

2008 से उत्पन्न आपराधिक अपील संख्या वर्ष 2013) में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का आधार लेते हुए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने कहा कि कार्यवाही को रद्द करने के लिए उपरोक्त शक्तियां का प्रयोग परवाह और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए जैसा कि निम्नानुसार माना गया है: -

"22. वर्तमान मामले में जिस मुद्दे की जांच की जा रही है वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र है, यदि वह अभियोजन के प्रारंभ को अभियोजन प्रक्रिया को जारी करने के चरण में, या प्रतिबद्धता के चरण में, या यहां तक कि आरोप तय करने के चरण में, रद्द करने का विकल्प चुनता है। ये सभी वास्तविक विचारण शुरू होने से पहले के चरण हैं। यही मानदंड स्वाभाविक रूप से बाद के चरणों के लिए भी उपलब्ध होंगे। यहां ऊपर उल्लिखित चरणों में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय में निहित शक्ति के दूरगामी परिणाम होंगे, क्योंकि यह बिना अभियोजन/ शिकायतकर्ता को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिए, अभियोजन/ शिकायतकर्ता के मामले को नकारात्मक कर देगा। ऐसा निश्चय हमेशा, परवाह, सावधानी और जांच के साथ किया जाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए

उच्च न्यायालय को पूरी तरह से संतुष्ट होना होगा कि अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत सामग्री ऐसी है, जिससे यह निष्कर्ष निकलेगा कि उसका बचाव ठोस, उचित और निर्विवाद तथ्यों पर आधारित है; प्रस्तुत की गयी सामग्री ऐसी है, जो अभियुक्त के खिलाफ लगाए गए आरोपों में निहित दावों को खारिज और विस्थापित कर देगी; और प्रस्तुत सामग्री ऐसी है, जो अभियोजन/शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए कथित आरोपों की सत्यता को स्पष्ट रूप से अस्वीकार और खारिज कर देगी। यह किसी भी साक्ष्य को दर्ज करने की आवश्यकता के बिना, अभियोजन/शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों को खारिज करने, अस्वीकार करने और नामंजूर करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। इसके लिए बचाव पक्ष द्वारा जिस सामग्री पर भरोसा किया गया है, उसका खंडन नहीं किया जाना चाहिए था, या वैकल्पिक रूप से, शुद्ध और त्रुटिहीन गुणवत्ता की सामग्री होने के कारण, उचित रूप से खंडन नहीं किया जा सकता है। अभियुक्त द्वारा जिस सामग्री पर भरोसा किया गया वह ऐसी होनी चाहिए, जो एक समझदार व्यक्ति को आरोपों के वास्तविक आधार को झूठा बताकर खारिज करने और निंदा करने के लिए तैयार करे। ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय की न्यायिक चेतना उसे ऐसी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपनी

शक्ति का प्रयोग करने के लिए राजी करेगी, क्योंकि इससे न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोका जा सकेगा और न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित किया जा सकेगा।

16. उपरोक्त तथ्यों के दृष्टिगत, संपूर्ण कार्यवाही के साथ-साथ विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बागपत द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.08.2022 को अपास्त करने या रद्द करने की प्रार्थना अस्वीकार कर दी जाती है क्योंकि मुझे आक्षेपित आदेश और कार्यवाही जिसे चुनौती दी गई है, में कोई अवैधता, अनुचितता और गलती नहीं दिखती है, इसलिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 825

**मूल क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष**

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

**माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी
(ठाकुर),**

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

41406/2022

पूजा शर्मा @ पिकी गिरी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री रजनीश दुबे

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -
धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति -भारतीय दंड
संहिता, 1860- धारा 376डी और 506 -

अग्रिम विवेचना के निर्देश देने की मजिस्ट्रेट की शक्ति एक महत्वपूर्ण शक्ति है जिसका अपवादात्मक मामलों में पालन किया जाना चाहिए तथा न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है - यदि मजिस्ट्रेट आरोप-पत्र से संतुष्ट नहीं है तो वह संज्ञान लेने से पहले आगे की जांच का निर्देश दे सकता है - संज्ञान लेने के बाद मजिस्ट्रेट के पास आगे की जांच का निर्देश देने की कोई शक्ति नहीं होगी, यदि जांच एजेंसी ऐसा निर्देश चाहती है तो निर्देश दिया जा सकता है। (पैरा-15)

(बी) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 173(8) - मजिस्ट्रेट विवेचक के आवेदन पर अग्रिम विवेचना की शक्ति का प्रयोग कर सकता है, भले ही न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया हो - मजिस्ट्रेट अग्रिम विवेचना का आदेश देने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। (पैरा - 16)

आवेदक द्वारा धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत आवेदन प्रस्तुत किया गया - एफआईआर दर्ज की गई - धारा 161 और 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता के बयान - आरोप पत्र -संज्ञान- आवेदक ने धारा 173 (8) सीआरपीसी के तहत पुलिस द्वारा अग्रिम विवेचना के लिए आवेदन प्रस्तुत किया - आवेदक का आवेदन आरोप पत्र संज्ञान के आधार पर निरस्त कर दिया गया - वादी/कथित पीड़िता ने आरोपित तथ्यों के आधार पर अग्रिम विवेचना के लिए आवेदन प्रस्तुत किया। (पैरा -1 से 12)

निर्णय: मजिस्ट्रेट के पास आरोप पत्र पर संज्ञान लेने के बाद स्वप्रेरणा से आगे की जांच के लिए आदेश देने का कोई अधिकार नहीं है। असाधारण परिस्थितियों में और वह भी विवेचक की प्रार्थना पर आगे की जांच के लिए आदेश दिया जा सकता है। यदि वाद के दौरान गवाहों की जांच के दौरान कोई सामग्री उजागर होती है तो मजिस्ट्रेट हमेशा धारा 319 सीआरपीसी के प्रावधान का सहारा ले सकता है। (पैरा 17,18,19)

धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत आवेदन निरस्त (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. लकोस जकारिया @ जैक अपीलकर्ता नेदुमचिरा ल्यूक एवं अन्य बनाम जोसेफ जोसेफ एवं अन्य, 2022 लाइवलॉ (एससी) 230
2. विनय त्यागी बनाम इरशाद सभी @ दीपक एवं अन्य, 2013 0 एआईआर (एससीडब्ल्यू) 220
3. बिकाश रंजन राउत बनाम सचिव, (गृह), दिल्ली सरकार, राज्य, अपील संख्या 687/2019, एसएलपी (आपराधिक) संख्या 297/2015

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी
(ठाकुर), द्वारा प्रदत्त)

आवेदक, अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

इस आवेदन को प्रस्तुत करके न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.09.2022 को रद्द करने की जो केस अपराध नंबर 1538 वर्ष 2018 से धारा 376डी, 506 भ०द०वि० थाना-हाईवे, जिला मथुरा के तहत केस नंबर 6936 वर्ष 2020 (राज्य बनाम सत्येंद्र भाटी और अन्य) से उद्भूत है, और धारा 173 द०प्र०स०के तहत दायर मामले में आगे की विवेचना के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष आवेदक द्वारा दायर आवेदन दिनांक 19.07.2022 को अनुमति देने के लिए प्रार्थना की जाती है। दिनांक 30.09.2022 के आदेश के तहत न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा ने धारा 173(8) द०प्र०स० के तहत दायर आवेदक के आवेदन को खारिज कर दिया।

मामले के तथ्यों के अनुसार, आवेदक द्वारा 16.08.2018 को धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया गया था, जिसके तहत सत्येंद्र भाटी, गौरव और एक अज्ञात व्यक्ति के खिलाफ दिनांक 30.07.2018 की घटना के संबंध में प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

आवेदक का आरोप था कि वह बेहद गरीब परिवार से थी। सत्येंद्र भाटी के टेलीफोनिक कॉल के आधार पर कि वह उसके लिए नौकरी की व्यवस्था करेगा, 30.07.2018 को दोपहर 2.00 बजे आवेदक, जो 23 वर्षीय विवाहित महिला थी, मंडी चौराहा, सौख रोड पर आई, जहां से सत्येंद्र उसे अपनी मोटरसाइकिल से मथुरा के सौख रोड में एक इलेक्ट्रॉनिक दुकान पर ले गया। दुकान में कंप्यूटर ठीक थे, वहां दो लोग पहले से मौजूद थे। सत्येंद्र ने खुद को फाइनेंसर बताया। एक

व्यक्ति दुकान से बाहर चला गया और जब वह सत्येंद्र से बात करने में व्यस्त थी तो बाहर गए व्यक्ति ने दुकान का शटर बंद कर दिया और पिस्तौल की नोक पर सत्येंद्र और दूसरे व्यक्ति गौरव ने उसके बाल पकड़े उसे जान से मारने की धमकी दी, उसे फर्श पर लिटा दिया और एक-एक करके उसके साथ दुष्कर्म किया। जान से मारने की धमकी देने के बाद उसे वहां से चले जाने का निर्देश दिया गया। आरोपी व्यक्तियों ने भी उसका पीछा किया। जब वह अपनी प्राथमिकी दर्ज कराने गई, तो न तो उसकी प्राथमिकी दर्ज की गई और न ही उसकी चिकित्सकीय विवेचना की गई। दिनांक 09.08.2018 को उन्होंने एस.एस.पी., मथुरा, मुख्यमंत्री, यू.पी और आई.जी. आगरा को पंजीकृत डाक से आवेदन भेजे लेकिन कुछ भी नहीं किया जा सका। उस अज्ञात व्यक्ति के संबंध में सत्येंद्र से पूछताछ जरूरी है और पिस्टल भी बरामद की जानी है।

इस आवेदन पर आवेदक की धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी और क्रमशः 09.10.2018 और 27.10.2018 को धारा 161 और 164 द०प्र०स० के तहत पीड़िता के बयान दर्ज करने के बाद और उचित विवेचना के बाद आरोपी सत्येंद्र और गौरव के खिलाफ धारा 376 डी और 506 भ०द०वि० के तहत 05.04.2019 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, और अदालत द्वारा 01.05.2019 को संज्ञान लिया गया था।

19.07.2022 को आवेदक ने विचारण न्यायालय के समक्ष धारा 173(8) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें कहा गया था कि 30.07.2018 से पहले वह

अलीगढ़ में एक व्यक्ति से मिली थी, जिसने उसे नौकरी देने का लालच दिया और इस प्रलोभन के कारण 30.07.2018 को दोपहर 2.00 बजे वह निश्चित स्थान मंडी चौराहा, मथुरा पहुंची और एक व्यक्ति से मुलाकात की जो लंबा और सांवला था और लगभग 50 साल का था। वह उसे एक दुकान में ले गया। उसने और उसके साथी ने वहां उसके साथ बदसलूकी की। दूसरा व्यक्ति भी लगभग 45 वर्ष का था, उसके माथे पर कट के निशान के साथ उसके चेहरे पर काले धब्बे थे। उसे आठ दिनों के बाद फिर से आने के लिए कहा गया। जब 09.08.2018 को वह फिर से वहां पहुंची, तो वह दुकान का पता नहीं लगा सकी और उस समय वह दो व्यक्तियों से मिली, जिन्हें उसने अपनी दुर्दशा के बारे में बताया। उन्होंने उसके साथ गलत काम करने वाले व्यक्तियों के रूप में सत्येंद्र भाटी और गौरव के नाम बताए और उसे हर मदद का आश्वासन दिया। उनके द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर, उन्होंने एस.एस.पी. और अन्य अधिकारियों को अपनी शिकायत भेजी और इन व्यक्तियों ने उनके आदेश पर 16.08.2018 को अदालत में कार्यवाही शुरू की। इन लोगों ने उसे सत्येंद्र भाटी की उम्र 32 साल और गौरव की उम्र 23 साल बताई। हालांकि शुरू में उसने इसका विरोध किया लेकिन उन व्यक्तियों की सहानुभूति के कारण वह ज्यादा विरोध नहीं कर सकी और बयान के समय भी, उन्होंने उसे अपने संस्करण के अनुसार बयान देने के लिए मजबूर किया। उसके बाद, वे भाग गए और आवेदक उनसे फिर से नहीं मिल सकी। अब पुलिस के माध्यम से उसे पता चला कि सत्येंद्र भाटी न तो 50 साल का है और न ही लंबा या

सांवला रंग का व्यक्ति है और गौरव 45 साल का सांवला, रंग का व्यक्ति है, न ही उनकी अपनी कोई दुकान है। सत्येंद्र भाटी और गौरव निर्दोष हैं। उन्होंने सही तथ्यों का उल्लेख करते हुए 05.01.2019 को एस.एस.पी. मथुरा को शपथ पत्र दिया लेकिन फिर भी गलत विवेचना के बाद सत्येंद्र भाटी और गौरव के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल की गई है। इसलिए संबंधित पुलिस से आगे की विवेचना के लिए प्रार्थना की गई।

आवेदक के इस आवेदन को न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा द्वारा दिनांक 30.09.2022 के आदेश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि सत्येंद्र भाटी और गौरव के खिलाफ आरोप पत्र पर 01.05.2019 को संज्ञान लिया गया है और आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति के लिए मामला तय किया गया है। विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर आरोप पत्र दायर किया गया है। इसलिए, अदालत ने आवेदक के आवेदन को अनुमति देने के लिए कोई आधार नहीं पाया और अंत में इसे खारिज कर दिया।

यदि हम संबंधित कानून का अध्ययन करते हैं, तो यह द०प्र०स० की धारा 173(8) है जिसे नीचे के रूप में निकाला जा सकता है: -
धारा 173(8) द०प्र०स०

"इस धारा में कुछ भी उपधारा (2) के तहत एक रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किए जाने के बाद अपराध के संबंध में आगे की विवेचना को रोकने के लिए नहीं समझा जाएगा और, जहां इस तरह की विवेचना पर, थाना का प्रभारी अधिकारी आगे सबूत, मौखिक या दस्तावेजी प्राप्त करता है, वह मजिस्ट्रेट को निर्धारित प्रपत्र में इस तरह के साक्ष्य के बारे

में एक और रिपोर्ट अग्रोषित करेगा; और उपधारा (2) से उपधारा (6) के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसी रिपोर्ट या रिपोर्ट के संबंध में लागू होंगे जो वे उपधारा (2) के तहत अग्रोषित रिपोर्ट के संबंध में लागू होते हैं।

इस प्रकार, इस धारा के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट को आगे की विवेचना के लिए आदेश देने का अधिकार है।

यही विचार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लक्कोस जकारिया @ जैक अपीलकर्ता नेदुमचिरा ल्यूक और अन्य बनाम जोसेफ जोसेफ और अन्य, 2022 लाइव लॉ (एस.सी.) 230 में व्यक्त किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "यह न्याय के हित में भी होगा कि इस शक्ति (आगे की विवेचना की शक्ति) का प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर प्रयोग मजिस्ट्रेट द्वारा स्वयं किया जाए। आगे की विवेचना का आदेश दिया जाना चाहिए या नहीं, यह विद्वान मजिस्ट्रेट के विवेक के भीतर है जो प्रत्येक मामले के तथ्यों पर और कानून के अनुसार इस तरह के विवेक का प्रयोग करेगा।

विनय त्यागी बनाम इरशाद अली @ दीपक और अन्य, 2013 0 ए.आई.आर. (एस.सी.डब्ल्यू) 220 के फैसले के पैरा-31 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा: -

"संहिता की धारा 173 के तहत मजिस्ट्रेट की शक्ति के दायरे पर चर्चा करने के बाद, अब हमें उन रिपोर्टों की विवेचना करनी होगी जो संहिता के प्रावधानों और/या इस न्यायालय के निर्णयों के अनुसार विचार की जाती हैं। मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र में पहुंचने वाला पहला और सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज प्रथम सूचना रिपोर्ट है। फिर,

विवेचना पूरी होने पर, पुलिस को संहिता की धारा 173(2) के संदर्भ में एक रिपोर्ट दर्ज करने की आवश्यकता होती है। इस रिपोर्ट को प्राथमिक रिपोर्ट कहना उचित होगा, क्योंकि यह न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष के मामले का आधार है। यह मामले का रिकॉर्ड और उसके साथ संलग्न दस्तावेज हैं, जिन पर न्यायालय द्वारा विचार किया जाता है और फिर मजिस्ट्रेट की अदालत से अपेक्षा की जाती है कि वह उपरोक्त तीन विकल्पों में से किसी एक का प्रयोग करे। न्यायालय के पास बताए गए विकल्पों में से, वह जिस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा, वह कानून के स्थापित सिद्धांतों के साथ सख्ती से मेल खाना चाहिए। 'आगे की विवेचना' को निर्देशित करने की मजिस्ट्रेट की शक्ति एक महत्वपूर्ण शक्ति है जिसे असाधारण मामलों में संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए और न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करना चाहिए। निष्पक्ष, उचित और निर्विवाद विवेचना प्रदान करना विवेचना एजेंसी का दायित्व है और न्यायालय को अपनी पर्यवेक्षी क्षमता में इसे सुनिश्चित करना आवश्यक है। न्यायालय के आदेशों के तहत की गई आगे की विवेचना, जिसमें मजिस्ट्रेट या पुलिस द्वारा अपने स्वयं के समझौते से और, वैध कारणों से, एक पूरक रिपोर्ट दाखिल करने की ओर ले जाएगी। ऐसी अनुपूरक रिपोर्ट को प्राथमिक रिपोर्ट के भाग के रूप में निपटाया जाएगा। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि धारा 173(3) से 173(6) के प्रावधान संहिता की धारा 173(8) के संदर्भ में ऐसी रिपोर्टों पर लागू होंगे।

इस प्रकार, आगे की विवेचना का निर्देश देने की मजिस्ट्रेट की शक्ति एक महत्वपूर्ण शक्ति है जिसे असाधारण मामलों में और

न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए। निष्पक्ष, उचित और निर्विवाद विवेचना प्रदान करना विवेचना एजेंसी का दायित्व है और अदालत को अपनी पर्यवेक्षी क्षमता में इसे सुनिश्चित करना आवश्यक है।

प्रस्तुत मामले में, आवेदक के अधिवक्ता ने अदालत के समक्ष तथ्य रखते हुए अपनी दलील दी जैसे कि आवेदक मामले में आरोपी है, लेकिन रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि यह शिकायतकर्ता/कथित पीड़ित ही था, जिसने तथ्यों का आरोप लगाते हुए आगे की विवेचना के लिए यह आवेदन दिया था।

आवेदक के अधिवक्ता ने अदालत के समक्ष बिकास रंजन राउत बनाम राज्य के फैसले को सचिव (गृह), राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के माध्यम से आपराधिक अपील संख्या-687 वर्ष 2019, एसएलपी (आपराधिक) संख्या-297 वर्ष 2015 में 16 अप्रैल, 2019 को तय किया, जिसमें शीर्ष न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि यदि मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया है तो उसके पास आगे की विवेचना को स्वतः संज्ञान लेने का निर्देश देने की कोई शक्ति नहीं होगी। वह आगे की विवेचना का निर्देश तभी दे सकता है जब विवेचना एजेंसी ऐसे निर्देश मांगती है। इस प्रकार, अदालत के समक्ष आवेदक के अधिवक्ता द्वारा रखी गई दलीलें और निर्णय दोनों उसके मामले के खिलाफ हैं, जिसमें आरोपी नहीं बल्कि शिकायतकर्ता खुद आगे की विवेचना के लिए चले गए थे। फिर से प्रस्तुत मामले में आवेदक आरोपी नहीं है जैसा कि आवेदक के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है, बल्कि वह मामले में

शिकायतकर्ता है, जिसने संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष इस तथ्य का उल्लेख करते हुए आवेदन दायर किया था कि एक व्यक्ति के टेलीफोन कॉल पर वह मथुरा में संकेतित स्थान पर आई थी जहां वह 50 वर्ष की आयु के व्यक्ति से मिली थी, जो लंबा और सांवला था। वह एक दुकान में ले गया जहां उसने और उसके साथी, जो लगभग 45 वर्ष के थे, चेहरे पर काले धब्बे और माथे पर कट के निशान और सांवले रंग के थे, ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उन्हें आठ दिनों के बाद बुलाया गया। जब वह पहुंची तो वह जगह का पता नहीं लगा सकी और उसकी मुलाकात दो अन्य व्यक्तियों से हुई, जिन्होंने उसके साथ दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्तियों के नामों सत्येंद्र भाटी और गौरव के रूप में बताए। उनके सुझाव के आधार पर, उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में सत्येंद्र भाटी और गौरव का नाम लिया, बाद में उसे पता चला कि उपस्थिति और उम्र के आधार पर, दो अज्ञात व्यक्तियों द्वारा सुझाए गए, प्राथमिकी में नामित व्यक्ति अलग-अलग व्यक्ति थे और उसने आगे की विवेचना के लिए प्रार्थना की क्योंकि वह निर्दोष व्यक्तियों को फंसाना नहीं चाहता था। मजिस्ट्रेट ने तथ्यों और परिस्थितियों को स्वीकार्य नहीं पाते हुए कहा कि संज्ञान लेने के बाद मजिस्ट्रेट के लिए आगे की विवेचना का आदेश देना उचित नहीं होगा।

क्या मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान लेने के बाद भी आगे विवेचना करने की इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है? निर्णय विनय त्यागी बनाम इरशाद अली @ दीपक और अन्य (उपरोक्त) और लक्कोस जकारिया @ जैक अपीलकर्ता नेदुमचिरा, ल्यूक और अन्य बनाम जोसेफ जोसेफ और अन्य

(उपरोक्त) इस बिंदु के बारे में चुप हैं। हालांकि, सचिव (गृह), राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार (उपरोक्त) के माध्यम से विकास रंजन राउत बनाम राज्य के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रूप से कहा कि मजिस्ट्रेट आरोप पत्र से संतुष्ट नहीं होने पर आगे की विवेचना का निर्देश दे सकता है, लेकिन संज्ञान लेने से पहले। संज्ञान लेने के बाद मजिस्ट्रेट के पास आगे की विवेचना को निर्देशित करने की कोई शक्ति नहीं होगी, यह निर्देश दिया जा सकता है यदि विवेचना एजेंसी इस तरह का निर्देश मांगती है।

धारा 173(8) द०प्र०स० में यह भी कहा गया है कि इस धारा में कुछ भी "मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट उप-धारा (2) को अग्रहित किए जाने के बाद अपराध के संबंध में आगे की विवेचना को रोकने के लिए नहीं माना जाएगा और जहां इस तरह की विवेचना पर, थाने का प्रभारी अधिकारी आगे सबूत, मौखिक या दस्तावेजी प्राप्त करता है, वह मजिस्ट्रेट को एक और रिपोर्ट भेजेगा। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट विवेचनाधिकारी के आवेदन पर आगे की विवेचना की इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है, भले ही अदालत द्वारा संज्ञान लिया गया हो। मजिस्ट्रेट आगे की विवेचना का आदेश देने के लिए अपनी शक्ति का स्वतः उपयोग नहीं कर सकता है।

अदालत की राय में, मौजूदा मामले में मजिस्ट्रेट द्वारा लिए गए दृष्टिकोण में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, क्योंकि धारा 173(8) द०प्र०स० और बिकास रंजन राउत (उपरोक्त) में निर्धारित नियम के अनुसार, मजिस्ट्रेट के पास आरोप पत्र पर संज्ञान लेने के बाद स्वतः संज्ञान लेने के बाद आगे की

विवेचना का आदेश देने की कोई शक्ति नहीं है। वह असाधारण परिस्थितियों में आगे की विवेचना का आदेश दे सकता है और वह भी विवेचनाधिकारी की प्रार्थना पर जो प्रस्तुत मामले में स्थिति नहीं है।

हालांकि, यह मजिस्ट्रेट के लिए हमेशा उपलब्ध रहेगा कि यदि मुकदमे के दौरान गवाहों की परीक्षा के दौरान किसी भी सामग्री का खुलासा किया जाता है, तो वह धारा 319 द०प्र०स० के प्रावधान का सहारा ले सकता है।

इसलिए, अदालत की राय में, संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है। कोई योग्यता नहीं होने के कारण आवेदन को खारिज किया जा सकता है।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदन खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 830

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

43085/2022

नन्हे एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीय

अधिवक्ता आवेदक: श्री राम शिरोमणि यादव

अधिवक्ता विपक्षीय: जी.ए.

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति -भारतीय दंड संहिता, 1860- धाराएं -364, 302, 201, धारा

311 सीआरपीसी के तहत प्रदत्त शक्ति - न्यायालय द्वारा केवल न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए लागू किया जाना चाहिए - शक्ति का प्रयोग केवल मजबूत और वैध कारणों के लिए किया जाना चाहिए और इसे बहुत सावधानी और विवेक के साथ प्रयोग किया जाना चाहिए - इस प्रावधान के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा यदि न्यायालय का विचार है कि आवेदन कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग मानते हुए दायर किया गया है। (पैरा-22)

(बी) दंड विधि -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 311 - महत्वपूर्ण गवाह को बुलाने या उपस्थित व्यक्ति की जांच करने की शक्ति - कोई भी न्यायालय, इस संहिता के तहत किसी भी जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में - किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुला सकता है, या उपस्थित किसी भी व्यक्ति की जांच कर सकता है, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो, या पहले से परीक्षित किसी भी व्यक्ति को वापस बुला सकता है और उसकी पुनः जांच कर सकता है - और न्यायालय ऐसे किसी भी व्यक्ति को बुलाएगा और उसकी जांच करेगा या वापस बुलाएगा और उसकी पुनः जांच करेगा यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है - धारा 311 के दो भाग - पहले भाग में "कर सकता है" का प्रयोग दूसरे भाग में "करेगा" का प्रयोग विवेकाधीन है, दूसरा भाग अनिवार्य है। (पैरा - 8, 21)

धारा 311 सीआरपीसी के तहत आवेदकों/आरोपियों द्वारा दायर आवेदनों को - निरस्त कर दिया गया। निर्णय: विचारणीय न्यायालय ने साक्ष्य रिकॉर्ड करने में त्रुटि की, जिससे प्राकृतिक न्याय और निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ। आरोपी-अपीलकर्ताओं को महत्वपूर्ण गवाहों (पी.डब्लू. 6 और 7) से जिरह करने का अधिकार है और विचारणीय न्यायालय को पूरा अवसर प्रदान करना चाहिए। विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित आपेक्षित आदेश को निरस्त किया गया। (पैरा - 10)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य एवं अन्य। ए.आई.आर. 2013 (एससी) 3081
2. आर.बी. मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1971, सुप्रीम कोर्ट 1630
3. हरियाणा राज्य बनाम राम प्रसाद 2006 सी.आर.एल.जे. 1001
4. नीरा बनाम उड़ीसा राज्य, 2008 सीआरएल. एल.आर. 1315
5. सिक्किम राज्य बनाम थुकचुक लाचुंगपा 2005, क्रि. एल.आर 201
6. रामा पासवान बनाम झारखण्ड राज्य, 2007 क्रि. एल.एल 2750
7. इस्माइल बाबा साहब बनाम ए.ए. हुलगेन, 1997 सीआरएल.एल.जे. 1804
8. राजू बनाम एम.पी. राज्य, 2002, सीआरएल.एल.जे. 2367

9. राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1999 सुप्रीम कोर्ट 3524
10. मोहन लाल शाम जी सोनी बनाम भारत संघ, 1991 सीआर.एल.जे. 1521
11. राजेंद्र प्रसाद बनाम नारकोटिक सेल दिल्ली, ए.आई.आर 1999, सुप्रीम कोर्ट 2292
12. जमात राज बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1968, सुप्रीम कोर्ट 178
13. वी.एन पाटिल बनाम निरंजन कुमार एवं अन्य, (2021) 3 एससीसी 661

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. प्रार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी, राज्य के लिए ए.जी.ए. को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।
2. प्रार्थीगण द्वारा धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत यह प्रार्थना-पत्र अपराध संख्या-48 वर्ष 2018 धारा 364,302,201 भारतीय दंड संहिता, थाना-कटघर, जिला-मुरादाबाद से उत्पन्न विशेष सत्र परीक्षण संख्या-336 वर्ष 2018 राज्य विरुद्ध नन्हे व एक अन्य में विशेष न्यायाधीश (ई.सी. एक्ट) / अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-4, मुरादाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.10.2022 को निरस्त करने के लिए यह प्रार्थना-पत्र संस्थित किया गया है जिसके द्वारा प्रार्थीगण / अभियुक्तों के धारा-311,दंड प्रक्रिया

संहिता के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना-पत्रों को अस्वीकार कर दिया गया है।

3. संक्षेप में, वाद के तथ्य यह हैं कि उपरोक्त अपराध संख्या में आरोप-पत्र प्रस्तुति के पश्चात् वाद विचाराधीन है। दि०- 18.08.2022 और 15.09.2022 को पी.डब्ल्यू.-6 और पी.डब्ल्यू.-7 की मुख्य परीक्षा लेखबद्ध की गयी थी। दि०- 18.08.2022 को जब प्रार्थीगण के अधिवक्ता शहर से बाहर थे, एक स्थगन प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया था और दि०-15.09.2022 को प्रार्थीगण के अधिवक्ता एक अन्य न्यायालय में व्यस्त थे, साक्षियों से प्रति परीक्षा का अवसर समाप्त कर दिया गया था और जब दि० 17.10.2022 को प्रार्थीगण द्वारा धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया तो उसी दिन आक्षेपित आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था, जिसमें कहा गया था कि पी.डब्ल्यू.-6 की मुख्य परीक्षा दि० - 18.08.2022 को दर्ज किया गया था और 22.08.2022 को स्थगन प्रार्थना-पत्र की अनुमति प्रति परीक्षा के लिए तय की गई थी। दि०- 22.08.2022 को पी.डब्ल्यू. 6 सुबह से उपस्थित था, किन्तु कोई भी उससे प्रति-परीक्षा करने के लिए नहीं उपस्थित नहीं हुआ। इसलिए 3:20 बजे प्रति-परीक्षा समाप्त कर दी गयी थी।
4. दि०- 15.09.2022 को पी.डब्ल्यू.-7 एस.आई. मुकेश के मुख्य परीक्षा को सुबह 11:00 बजे लेखबद्ध किया

गया था और प्रार्थीगण को अपने अधिवक्तागण को बुलाने का निर्देश दिया गया था, किन्तु अधिवक्ता उपस्थित नहीं हुए, इसलिए पी.डब्ल्यू.-7 की प्रति-परीक्षा का अवसर शाम 4:45 बजे समाप्त कर दिया गया था।

5. विद्वान न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि चूंकि पर्याप्त अवसर प्रदान किए गए थे, किन्तु साक्षियों से प्रति परीक्षा नहीं की गयी थी, इसलिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अंतर्गत प्रार्थना-पत्र 45-बी की अनुमति देने के लिए पर्याप्त आधार नहीं था और तदनुसार प्रार्थना-पत्र को निरस्त कर दिया और शेष साक्षियों की परीक्षा के लिए दि० -07.11.2022 तय किया। असंतुष्ट होकर प्रार्थीगण की ओर से यह प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया है। न तो राज्य और न ही विपक्षी संख्या-2 ने कोई आपत्ति / उत्तर शपथ-पत्र प्रस्तुत किया है।

6. साक्षियों की परीक्षा के मध्य प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया था। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष को उचित अवसर और विधि का समान संरक्षण प्रदान नहीं किया है, जबकि अभियोजन पक्ष को बिना किसी स्थगन के साक्षियों की परीक्षा के लिए कई तारीखें दी गई हैं, विद्वान विचारण न्यायालय ने

बचाव पक्ष के स्थगन प्रार्थना-पत्र को निरस्त करते हुए उसी दिन प्रति परीक्षा समाप्त कर दिया।

7. विद्वान विचारण न्यायाधीश उस धारा के पीछे के सार को समझ नहीं पाए जिसमें आरोपी व्यक्तियों ने प्रति परीक्षा के लिए साक्षियों को वापस बुलाने के लिए प्रार्थना-पत्र दिया था।
8. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 को उद्धृत करना उचित होगा, जो इस प्रकार है:

"दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 311 में -

311. सारवान साक्षी को बुलाने या उपस्थित व्यक्ति की जांच करने की शक्ति। कोई न्यायालय, इस संहिता के अधीन किसी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में, किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में बुला सकेगा या उपस्थित किसी व्यक्ति की, यद्यपि साक्षी के रूप में सम्मन नहीं किया गया हो, या उपस्थित किसी व्यक्ति की परीक्षा कर सकेगा, या पहले से जांच किए गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुला सकेगा और पुनः परीक्षा कर

सकेगा; और न्यायालय ऐसे किसी भी व्यक्ति को बुलायेगा और परीक्षा करेगा या वापस बुलाएगा और पुनः परीक्षा करेगा यदि उसका साक्ष्य वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

9. **राजा राम प्रसाद यादव विरुद्ध बिहार राज्य और अन्य विरुद्ध भारत संघ और ए.आई.आर. 2013 (एससी) 3081** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि, यह इसलिए आवश्यक है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 का आचरण व उपयोग किसी विशेष वाद में इसका आदेश न्यायालय द्वारा केवल उक्त प्रावधानों के उद्देश्य और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, अर्थात् वाद का न्यायपूर्ण निर्णय प्राप्त करने के लिए दिया जा सकता है। उक्त प्रावधानों के अंतर्गत निहित शक्ति किसी भी न्यायालय को किसी भी जांच या परीक्षण या संहिता के अंतर्गत शुरू की गई अन्य कार्यवाही में किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में बुलाने या उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति की जांच करने के उद्देश्य से उपलब्ध करायी जाती है, भले ही उसे साक्षी के रूप में बुलाया न गया हो या उपस्थिति में किसी व्यक्ति को फिर से बुलाने या फिर से जांच करने के लिए। जहां तक पहले से जांच किए गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाने और फिर से परीक्षा करने का संबंध है, न्यायालय

को आवश्यक रूप से विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति की ऐसी पुनः पुकार और पुनः परीक्षा न्यायालय की दृष्टि में वाद के न्याय संगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होती है।

10. उपरोक्त विवेचनोपरांत, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने विचारण के मध्य साक्ष्य लेखबद्ध करने में स्पष्ट त्रुटि की थी और प्राकृतिक न्याय और निष्पक्ष सुनवाई के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए वाद को नष्ट किये जाने के रूप में विचारित किया है। आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में बनाए रखने योग्य नहीं है और यह निरस्त करने योग्य है।
11. **आर.बी.मिठानी विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1971, सर्वोच्च न्यायालय 1630** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक नहीं होना चाहिए, क्योंकि निर्णय सुनाना असंभव होगा, बल्कि इसलिए भी कि इसके बिना न्याय की विफलता होगी। यद्यपि शक्ति का प्रयोग संयम से और केवल उपयुक्त वाद में किया जाना चाहिए, किन्तु एक बार ऐसी कार्यवाही उचित हो जाने के बाद, साक्ष्य के प्रकार पर

कोई प्रतिबंध नहीं है, जो प्राप्त किया जा सकता है। यह प्रकृति में औपचारिक या सारवान हो सकता है।

12. *हरियाणा राज्य विरुद्ध राम प्रसाद 2006 सीआरएल. जे. 1001* में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने स्थापित किया कि जहां वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए साक्षी की परीक्षा और पुनः परीक्षा आवश्यक है, ऐसे साक्षी को बुलाना न्यायालय के लिए अनिवार्य है।

13. उड़ीसा उच्च न्यायालय ने *नीरा विरुद्ध उड़ीसा राज्य, 2008 सीआरएल. एल.आर. 1315* में अभिनिर्धारित किया कि इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा निर्णय की तैयारी के स्तर पर भी किया जा सकता है।

14. *सिक्किम राज्य विरुद्ध थुकचुक लाचुंगपा 2005, सीआरएल. एल.आर. 201* में, सिक्किम उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, भले ही वाद के आरंभिक चरण में, न्यायालय ने इस तरह के प्रार्थना-पत्र को निरस्त कर दिया हो।

15. *राम पासवान विरुद्ध झारखंड राज्य, 2007 सीआरएल. एल.जे. 2750* में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि इस धारा

के अंतर्गत एक साक्षी को बुलाने के लिए न्यायालय की शक्ति का प्रयोग केवल इसलिए अनुचित नहीं होगा क्योंकि साक्ष्य अभियोजन पक्ष के वाद का समर्थन करता है, न कि अभियुक्त का। यह धारा एक सामान्य धारा है, जो न्यायालय के अंतर्गत सभी कार्यवाही, जांच और विचारणों पर लागू होती है और मजिस्ट्रेट को ऐसी कार्यवाही, परीक्षण या जांच के किसी भी चरण में किसी भी साक्षी को सम्मन जारी करने का अधिकार देती है।

16. *इस्माइल बाबा साहेब विरुद्ध ए.ए. हुलागेन, 1997 सीआरएल. एल.जे. 1804* में, कर्नाटक उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जहां वाद के उचित निर्णय के लिए अभिलेख की उपस्थिति और साक्षी को बुलाना आवश्यक है, इस आधार पर प्रार्थना-पत्र की अस्वीकृति कि अभिलेख उचित अभिरक्षा में पेश नहीं किया गया है, उचित नहीं है।

17. *राजू विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य, 2002, सीआरएल. जे. 2367* में, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जहां आरोप पत्र के साथ प्रस्तुत अभिलेख साबित नहीं हुए हैं, मुकदमे के उचित निर्णय के लिए प्रासंगिक महत्वपूर्ण दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किए गए हैं, न्यायालय उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311

और साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने का निर्देश देगी।

18. *राजदेव शर्मा विरुद्ध बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1999 सर्वोच्च न्यायालय 3524* में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि यह पाया जाता है कि वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए साक्ष्य आवश्यक है, तो निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी समय साक्षी को वापस बुलाया जा सकता है, समय का कारक रास्ते में नहीं आएगा।

19. *मोहन लाल शाम जी सोनी विरुद्ध भारत संघ, 1991 सीआरएल. जे. 1521, सर्वोच्च न्यायालय* में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि किसी आपराधिक कार्यवाही में जांच या विचारण समाप्त हो जाता है या अपनी अंतिम स्थिति तक पहुंच जाता है और जब आदेश या निर्णय सुनाया जाता है तब तक इस धारा का उपयोग करने की शक्ति न्यायालय के पास है।

20. *राजेन्द्र प्रसाद विरुद्ध नारकोटिक सेल दिल्ली, ए.आई.आर. 1999, उच्चतम न्यायालय 2292* में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि इसे विधिक पूर्वधारणा के रूप में निर्धारित नहीं

किया जा सकता है कि न्यायालय किसी साक्षी को पुन बुलाने की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है, यदि एक बार उस शक्ति का प्रयोग किया गया था, और न ही शक्ति को केवल इस आधार पर कम किया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने कमियों का पता केवल तभी लगाया जब बचाव पक्ष ने अंतिम बहस के समय उन्हें प्रकट किया। न्यायालय की शक्ति वाद के किसी भी चरण में किसी भी साक्षी को बुलाने या यहां तक कि पुनः बुलाने के लिए समग्र है, यदि न्यायालय इसे न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक मानता है।

21. जैसा कि पहले ही कहा गया है कि धारा 311 के दो भाग हैं, इस संदर्भ में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने *जमात राज विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1968, उच्चतम न्यायालय 178* में यह अभिनिर्धारित किया है कि पहले भाग में "कर सकता है" का उपयोग, दूसरे में "करेगा" प्रदर्शित करता है कि पहला भाग विवेकाधीन है, जबकि दूसरा भाग आज्ञात्मक है।

मोहन लाल (सुप्रा) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी साक्षी को बुलाने और जांच करने की शक्ति का

प्रयोग उस स्थिति में किया जा सकता है, यद्यपि पक्षकारों को सबूतों का खंडन करने का अवसर दिया जाना है।

22. **वीएन पाटिल विरुद्ध निरंजन कुमार और अन्य (2021) 3 एससीसी 661;** के पैरा 14 से 17, प्रासंगिक हैं इसलिए उन्हें निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है: -

23. "14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 में अंतर्निहित उद्देश्य यह है कि मूल्यवान साक्ष्य को अभिलेख पर लाने या दोनों पक्षों से परीक्षित साक्षियों के कथनों में अस्पष्टता छोड़ने में किसी भी पक्ष की गलती के कारण न्याय की विफलता नहीं हो सकती है। निर्धारक कारक यह है कि क्या यह वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक है। महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति जो होती है वह "इस संहिता के अंतर्गत किसी भी जांच या परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में" होती है। तथापि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अंतर्गत प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए, क्योंकि यह सदैव कहा जाता है कि "न्यायिक विवेक का प्रयोग करते समय व्यापक शक्ति, सावधानी की आवश्यकता अधिक होती है"।

15. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों को विजय कुमार विरुद्ध भारत संघ वाद में न्यायालय। उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) 8 एससीसी 136: (2011) 3 एससीसी (सीआरआई) 371: (2012) 1 एससीसी (एल एंड एस) 240:(एससीसी पी. 141, पैरा 17) इसके द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है

"17. यद्यपि धारा 311 न्यायालय को व्यापक विवेक प्रदान करती है और व्यापक संभव शब्दों में व्यक्त की जाती है, उक्त धारा के अंतर्गत विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग केवल न्याय के उद्देश्य के लिए किया जा सकता है। विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग संहिता के प्रावधानों और आपराधिक विधि के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना चाहिए। धारा 311 के अंतर्गत प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा बताये गये कारणों के लिए न्यायिक रूप से, न कि मनमाने ढंग से या सनक के रूप में किया जाना चाहिए। श्रीमती रुचि सक्सेना को न्यायालय के साक्षी के रूप में परीक्षित करने के लिए विद्वान विशेष न्यायाधीश को निर्देश देने से पूर्व, उच्च न्यायालय ने विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा बताए गए कारणों का परीक्षण नहीं किया कि न्यायालय के साक्षी के रूप में उनसे परीक्षण करना क्यों

आवश्यक नहीं था और बिना कोई कारण बताए आक्षेपित निर्देश दिया है।

16. इस सिद्धांत को मन्नान शेख विरुद्ध पश्चिम बंगाल राज्य, (2014) 13 एससीसी 59: (2014) 5 एससीसी (सीआरआई) 547 और तत्पश्चात रतनलाल विरुद्ध प्रहलाद जाट, (2017) 9 एससीसी 340: (2017) 3 एससीसी (सीआरआई) 729 और स्वपन कुमार चटर्जी विरुद्ध सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (सीआरआई) 839 । स्वपन कुमार चटर्जी विरुद्ध सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (क्रि) 839 के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं: स्वपन कुमार चटर्जी विरुद्ध सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (सीआरआई) 839, एससीसी पी. 331, अनु० 10-11)

"10. इस धारा का पहला भाग, जो अनुमेय है, आपराधिक न्यायालय को विशुद्ध रूप से विवेकाधीन अधिकार देता है और संहिता के अंतर्गत जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में तीन तरीकों में से एक में कार्य करने में सक्षम बनाता है, अर्थात्, (i) किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में बुलाना; या (ii) उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति की जांच करने के लिए, हालांकि साक्षी के रूप में नहीं बुलाया गया है; या (iii) पहले से जांच

किए गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाने और फिर से जांच करने के लिए। दूसरा हिस्सा, जो अनिवार्य है, न्यायालय पर एक दायित्व लगाता है (i) तलब करने और जांच करने के लिए, या (ii) ऐसे किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाने और फिर से जांच करने के लिए, यदि उसका साक्ष्य वाद के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

11. यह सुस्थापित है कि धारा 311 के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति को न्यायालय द्वारा मात्र न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए लागू किया जाना चाहिए। शक्ति का प्रयोग मात्र महत्वपूर्ण एवं वैध कारणों के लिए किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग अत्यंत सावधानी और बुद्धिमत्ता के साथ किया जाना चाहिए। न्यायालय के पास इस धारा के अंतर्गत यह शक्ति है कि वह न्याय के हित में आवश्यक पुनः परीक्षा या अग्रिम परीक्षा के लिए साक्षियों को वापस बुला सकता है, किन्तु प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इसका प्रयोग किया जाना है। यदि न्यायालय का विचार है कि प्रार्थना-पत्र विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के रूप में प्रस्तुत किया गया है तो इस प्रावधान के

अंतर्गत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा।

17. सत्य की प्राप्ति प्रत्येक न्यायालय का उद्देश्य है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 ऐसे कई प्रावधानों में से एक है जो विधि द्वारा स्वीकृत प्रक्रिया द्वारा सच्चाई का पता लगाने के अपने प्रयास में न्यायालय के हाथों को शक्तिशाली बनाती है। साथ ही, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अंतर्गत निहित विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण और वैध कारणों से और सावधानी और बुद्धिमत्ता के साथ विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए।

24. इस वाद में आरोपी-अपीलकर्ताओं को साक्षियों से प्रति परीक्षा करने का अधिकार है। चूंकि पी.डब्ल्यू. 6 और 7 तथ्य के साक्षी थे, इसलिए ऐसे साक्षियों से प्रति परीक्षा करने का पूरा अवसर प्रदान करना विचारण न्यायालय का कर्तव्य था।

आदेश

25. (क) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत इस प्रार्थना-पत्र को अनुमति दी जाती है
(ख) विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 17.10.2022 के

आक्षेपित आदेश को एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

(ग) विद्वान विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह सभी आरोपी व्यक्तियों की ओर से पी.डब्ल्यू. 6 और 7 को उनकी प्रति परीक्षा के लिए फिर से बुलाए। (घ) इस आदेश की प्रमाणित प्रति तत्काल इसके अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाय।

(2023) 4 ILRA 836

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी

(ठाकुर),

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या
46541/2018

संजीव साहू एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपरीत पक्ष

अधिवक्ता आवेदक: श्री राजीव लोचन शुक्ला

अधिवक्ता विपक्षी पक्ष: जी.ए., मीरा वर्मा, श्री रंजन उपाध्याय, श्री रमेश उपाध्याय, श्री रौनक चतुर्वेदी, श्री शैलेश पांडे, श्री शैलेश उपाध्याय, श्री अरुण पांडे

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-
धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति -भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 354, 3548, 452, 504 और 506 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा

156 (3), 200 और 202, लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 7/8, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3 - उच्च न्यायालय किसी कार्यवाही को निरस्त करने का पात्र है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा - न्यायालय का अधिकार न्याय को आगे बढ़ाने के लिए उपलब्ध है और यदि उस अधिकार का दुरुपयोग अन्याय के विरुद्ध का कोई प्रयास किया जाता है, न्यायालय को दुरुपयोग रोकने का अधिकार है। (पैरा 27,28)

निरस्त - समन आदेश एवं परिवाद की सम्पूर्ण कार्यवाही - धारा 156 (3) सीआरपीसी के तहत नाबालिग द्वारा दायर परिवाद को परिवादी के रूप में पंजीकृत किया गया था - नाबालिग का प्रतिनिधित्व उचित नहीं था - उचित व्यक्ति द्वारा शिकायत दर्ज नहीं की गई थी - पीड़िता के साथ हुई घटना के संबंध में कोई मेडिकल जांच/चोट रिपोर्ट तैयार नहीं की गई थी - विपक्षी संख्या 2 के पिता द्वारा किए गए अतिक्रमण को हटाने का बदला लेने के लिए आवेदकों के खिलाफ मिलीभगत से शिकायत दर्ज की गई थी - विपक्षी संख्या 2 के माता-पिता द्वारा किए गए अवैध अतिक्रमण को हटाने के लिए आवेदकों द्वारा जारी प्रक्रिया को जारी रखना - आरोपी व्यक्ति मीडिया से संबंधित होने के कारण मीडिया और इंडिया न्यूज पर कवरेज करना शुरू कर दिया था - शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा उत्पीड़न किया गया। (पैरा-18,24,25)

निर्णय: परिवाद कुछ और नहीं बल्कि बच्चों की सुरक्षा के लिए बनाई गई कानून की प्रक्रिया का सरासर दुरुपयोग है। कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए, समन आदेश, परिवाद की पूरी कार्यवाही निरस्त कर दी गई। रिकू (सुप्रा) में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्णय के अनुसार, एससी/एसटी अधिनियम की धारा के तहत समन आदेश के विरुद्ध मामले की सुनवाई करने का अधिकार पोक्सो न्यायालय के पास है। एससी/एसटी अधिनियम की धारा 14ए में विशेष न्यायालय के किसी भी निर्णय, सजा या आदेश के खिलाफ अपील का प्रावधान है। (पैरा -25,28,30)

धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. मेसर्स नीहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (एससी), एजीआई; एनसीडब्ल्यू; महाराष्ट्र राज्य, आपराधिक अपील संख्या 330/2021
2. सतीश बनाम सतीश एवं अन्य, महाराष्ट्र एवं अन्य, लेबनान, 2021 मुकदमा (एससी) 739
3. फूल सिंह बनाम एम.पी. राज्य और अन्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 760,
4. जगमोहन सिंह बनाम विमलेश कुमार एवं अन्य, क्रिमिनल अपील नंबर 741/2022
5. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अखिल शारदा एवं अन्य, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 598

6. जहूर खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, धारा 482 के तहत आवेदन संख्या 5690/2021

7. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य, 1992 अनुपूरक (1) एससीसी 335

8. कर्नाटक बनाम एल. मुनिस्वामी, (1977) 2 एससीसी 699

9. कर्नाटक राज्य बनाम एम. देवेन्द्रप्पा, (2002) 3 एससीसी 89

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी
(ठाकुर), द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला और विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अरुण पांडे को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

सीआर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत इस आवेदन को दायर करके आवेदक विशेष न्यायाधीश, पास्को अधिनियम / अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 6, गाजियाबाद द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 29.11.2018 और संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए इस न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का उपयोग करना चाहते हैं। 2018 की परिवाद संख्या 77 (एक्स कुमारी बनाम, संजीव साहू और अन्य) जिसके अन्तर्गत आवेदकों को धारा 354, 354 बी, 452, 504, 506 आईपीसी, धारा 7/8 पास्को अधिनियम और एससी/एसटी एक्ट धारा 3 थाना इंद्रापुरम, जिला गाजियाबाद के अन्तर्गत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया है।

मामले के तथ्यों के अनुसार, अवयस्क

एक्स कुमारी द्वारा 01.10.2018 को धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसके माता-पिता वार्तालोक अपार्टमेंट में पिछले 17 वर्षों से कपड़े इस्त्री करने का काम करते हैं, वे सोसायटी में गाड़ियां धोने का काम भी करते हैं। सभी विपक्षीगण (वर्तमान आवेदक) आवेदक एवं उसकी मां पर बुरी नजर रखते हैं। इन लोगों द्वारा प्रार्थिनी एवं उसकी मां के साथ कई बार दुर्व्यवहार एवं छेड़छाड़ की गई है, परंतु समाज के अन्य लोगों के हस्तक्षेप के कारण उनके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की गई। वे उनके साथ छेड़खानी भी करते थे और विरोध करने पर उन्हें समाज से बाहर कर देने की धमकी भी दी जाती थी. दिनांक 23.09.2018 (रविवार) को लगभग शाम 5.00 बजे जब उसकी माँ कपड़ों पर इस्त्री कर रही थी और वह अपनी माँ के पास बैठकर पढ़ाई कर रही थी, सभी पाँच व्यक्ति अर्थात् संजीव साहू, दुष्यन्त सिंह, हरीश चंद जोशी, मोहन लाल और उदय नारायण, दुष्यन्त ने जातिसूचक शब्दों का प्रयोग करते हुए अभद्र टिप्पणी की, हरीश चंद जोशी ने भी उनके विरुद्ध यही टिप्पणी की, उदय नारायण ने उन्हें पकड़ लिया, बगल के टिन शेड में ले गए और उनकी शर्ट फाड़ दी। बाकी सभी व्यक्ति (विपक्षी पक्ष/आवेदक) भी आये। संजीव साहू ने उसके हाथ और मोहन लाल ने उसके पैर पकड़ लिये तथा उसे निर्वस्त्र कर दिया गया। वह रो रही थी लेकिन वे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे. जैसे ही हरीश चंद जोशी ने अपना लिंग उसकी योनि में प्रवेश कराया, तुरंत ही प्रार्थिनी व उसकी मां के शोर मचाने पर उसी सोसायटी के

निवासी शिल्पी गुप्ता व संदीप गुप्ता व कई अन्य लोग आ गये, जिन्हें देखकर विपक्षीय भाग गये। कुछ देर बाद वे फिर आये और प्रार्थिनी व उसके माता-पिता के साथ गाली-गलौज कर वहां रखे टीन शेड व अन्य सामान को तहस-नहस कर दिया. मौके पर पुलिस भी आई, लेकिन उससे बलपूर्वक दूसरा आवेदन लिखवा लिया। एक पुलिसकर्मी सचिन मलिक ने उन्हें धमकी भी दी. 25.09.2018 को उसने एसएसपी को शिकायत भेजी, लेकिन कोई मामला दर्ज नहीं किया जा सका, इसलिए एफआईआर दर्ज करने का निर्देश जारी करने का अनुरोध किया गया।

इस आवेदन पर पुलिस रिपोर्ट तलब करने के बाद विचारण न्यायालय ने इस आवेदन को एक शिकायत के रूप में दर्ज किया और अन्तर्गत धारा 200 सीआर.पी.सी. पीड़िता और धारा 202 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत गवाह शिल्पी गुप्ता के बयान दर्ज करने के बाद दिनांक 29.11.2018 को आक्षेपित आदेश पारित करके सभी को तलब किया। उपरोक्त पांच आवेदकों को धारा 354, 354बी, 452, 504, 506 आईपीसी, धारा 7/8 पास्को अधिनियम और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत विचारण का सामना करना पड़ेगा।

इस सम्मन आदेश और उपरोक्त शिकायत की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना के साथ, वर्तमान आवेदन आवेदकों द्वारा प्रस्तुत किया गया है और समर्थन शपथ पत्र में यह आरोप लगाया गया है कि यद्यपि मामला सत्र विचारणीय है, फिर भी पूरी गवाह सूची शिकायतकर्ता विचारण न्यायालय से पूरी नहीं हुई थी। शिकायतकर्ता का बयान

न्यायालय के पाठक द्वारा नोट किया गया, जबकि इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर जारी परिपत्र पत्रों के अनुसार इसे पीठासीन अधिकारी द्वारा स्वयं नोट किया जाना चाहिए। गवाह शिल्पी गुप्ता के बयान में घटना की तारीख पर ओवरराइटिंग है. घटनास्थल सहित पूरा परिसर सीसीटीवी कैमरों से कवर किया गया है। विचारण न्यायालय के सामने कोई सीसीटीवी फुटेज नहीं रखा गया. कथित पीड़िता का न तो कोई मेडिकल कराया गया और न ही फटे हुए कपड़े न्यायालय में पेश किये गये. कथित पीड़िता की मां, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह कथित घटना की शुरुआत से ही मौके पर मौजूद थी, से पूछताछ नहीं की गई और उपरोक्त तथ्यों को अनदेखा करते हुए विचारण न्यायालय द्वारा आवेदकों को तलब किया गया है।

आगे कहा गया है कि शिकायत गलत आधार पर दर्ज कराई गई है। चूंकि, कथित पीड़िता के पिता ने वार्तालोक अपार्टमेंट के अंदर अवैध रूप से जमीन पर कब्जा कर झुग्गी बना ली थी। वार्तालोक अपार्टमेंट के रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन ने इसे हटाने की मांग की थी और रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन पर दबाव बनाने के लिए यह शिकायत दर्ज की गई है। सच तो यह है कि उसी दिन यानी 23.09.2018 को वार्तालोक सहकारी आवास समिति के पदाधिकारियों की मौजूदगी में रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन के पदाधिकारियों ने पुलिस बल के लिए 100 नंबर पर फोन किया था और पुलिस बल की मौजूदगी में अवैध कथित पीड़िता के पिता द्वारा सोसायटी के अंदर किए गए निर्माण को हटा दिया गया। इस अवैध अतिक्रमण का

कथित पीड़िता, विपक्षी संख्या 2 और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा विरोध किया गया था और उनके द्वारा रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन पर अवैध 'झुग्गी' का पुनर्निर्माण करने का दबाव बनाया गया था। उक्त कार्यवाही की वीडियो रिकार्डिंग भी करायी गयी। विपक्षी संख्या 2 के धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत आवेदन पर, पुलिस ने यह भी रिपोर्ट प्रस्तुत की कि वार्तालोक अपार्टमेंट के रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन के पदाधिकारियों ने वार्तालोक सहकारी आवास समिति के अधिकारियों की उपस्थिति में 100 नंबर पर पुलिस को बुलाया और दिनांक 23.09.2018 को पुलिस बल की मौजूदगी में वीडियो रिकार्डिंग के अन्तर्गत अतिक्रमण हटाया गया। इस संबंध में वार्तालोक अपार्टमेंट के रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन पर दबाव बनाने के उद्देश्य से आवेदक ने सरासर गलत आरोप लगाया है।

आवेदक संख्या 1 - संजीव साहू की उम्र लगभग 47 वर्ष है और वे वार्तालोक रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन के पूर्व अध्यक्ष हैं और टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली के मुख्य प्रबंधक भी हैं, आवेदक संख्या 2 - दुष्यंत सिंह 32 वर्ष के हैं जो नई दिल्ली में अधिवक्ता हैं और उसी सोसायटी के निवासी, वह सोसायटी के विधिक सलाहकार हैं, आवेदक संख्या 3- हरीश चंद जोशी, उम्र 51 वर्ष, सोसायटी के वर्तमान उपाध्यक्ष हैं और जिंदल सॉ लिमिटेड के उप महाप्रबंधक भी हैं, आवेदक क्रमांक 4- उदय नारायण सिंह, उम्र 66 वर्ष, वार्तालोक समिति के सचिव हैं, उपाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। प्रबंधक, टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, आवेदक संख्या 5- मोहन

लाल, उम्र 51 वर्ष, वार्तालोक सोसायटी के निवासी और सचिव उदय नारायण सिंह के करीबी सहयोगी हैं और केंद्र सरकार में प्रथम श्रेणी अधिकारी हैं।

विपक्षी संख्या 2 और उसके परिवार के सदस्य जमीन के एक टुकड़े के अवैध कब्जेदार थे, जिस पर उन्होंने इंडिया न्यूज के प्रबंध संपादक यशवंत राणा, उनकी पत्नी अंजना सिंह, शिल्पी गुप्ता की सक्रिय सहायता से झोपड़ी का निर्माण किया था। वर्तमान मामले के कथित गवाह, उनके पति - संदीप गुप्ता, सुरेश डोबरियाल और दामोदर दास उपाध्याय ये सभी लोग एक ही सोसायटी के निवासी हैं, जो किसी समय सोसायटी के कामकाज में हस्तक्षेप कर रहे थे और सोसायटी के निवासियों की जमीन पर भी कब्जा कर लिया था। उन्हें अतिक्रमण हटाने के लिए नोटिस जारी किए गए थे, वर्ष 2013 में वार्तालोक सहकारी आवास समिति के तत्कालीन अध्यक्ष राजीव कुमार ने पुलिस अधीक्षक से भी सोसायटी में विपक्षी नंबर 2 के पिता के अवैध रूप से रहने और सोसायटी व उसके सदस्यों पर अवैध कब्जा करने की शिकायत की थी। विपक्षी संख्या 2 के पिता सोनू उर्फ पप्पू द्वारा तंग किया जा रहा है एवं झूठे मुकदमे में फंसाने की धमकी दी गई है। विपक्षी संख्या 2 और उसके परिवार के सदस्य जमीन के एक टुकड़े के अवैध कब्जेदार थे, जिस पर उन्होंने इंडिया न्यूज के प्रबंध संपादक यशवंत राणा, उनकी पत्नी अंजना सिंह, शिल्पी गुप्ता की सक्रिय मदद से झोपड़ी का निर्माण किया था। वर्तमान मामले के कथित गवाह, उनके पति - संदीप गुप्ता, सुरेश डोबरियाल और दामोदर दास उपाध्याय। ये सभी लोग एक ही सोसायटी

के निवासी हैं, जो किसी समय सोसायटी के कामकाज में हस्तक्षेप कर रहे थे और सोसायटी के निवासियों की जमीन पर भी कब्जा कर लिया था। उन्हें अतिक्रमण हटाने के लिए नोटिस जारी किए गए थे। वर्ष 2013 में वार्तालोक सहकारी आवास समिति के तत्कालीन अध्यक्ष राजीव कुमार ने पुलिस अधीक्षक से भी सोसायटी में विपक्षी नंबर 2 के पिता के अवैध रूप से रहने और सोसायटी व उसके सदस्यों पर अवैध कब्जा करने की शिकायत की थी। विपक्षी संख्या 2 के पिता सोनू उर्फ पप्पू द्वारा परेशान किया जा रहा है झूठे मुकदमे में फंसाने की धमकी दी गई है।

विपक्षी नंबर 2 के पिता पप्पू की मदद करने वाले संदीप गुप्ता ने लगातार सोसायटी के सदस्यों और कार्यवाहक सदस्यों को धमकी देने के लिए पप्पू को उकसाया, उसने सोसायटी के नियमों के खिलाफ जाकर पप्पू को अवैध विद्युत कनेक्शन दे दिया था, उसने सोसायटी की जमीन पर भी कब्जा कर लिया था। उन्हें अतिक्रमण हटाने के लिए सोसायटी द्वारा नोटिस दिया गया था, लेकिन उन्होंने गलत जवाब देते हुए दावा किया कि निर्माण उचित था और उनके परिवार की गोपनीयता को सुरक्षित रखने के लिए निर्माण पूरी तरह से अस्थायी प्रकृति का था। सोसायटी द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया कि जब तक वह सोसायटी के निर्देशों का पालन नहीं करेगा, उसके फ्लैट की रजिस्ट्री की कार्यवाही नहीं की जाएगी और अंततः वार्तालोक अपार्टमेंट के रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन की आम सभा में एक प्रस्ताव पारित किया गया कि संदीप कुमार गुप्ता के फ्लैट का आवंटन रद्द करने के लिए कदम उठाया जाए। यह संदीप कुमार

गुप्ता पप्पू के पीछे का मुख्य व्यक्ति है, जो पप्पू की ओर से अवैध गतिविधियों को शुरू करने और दबाने का काम करता है, क्योंकि पप्पू को अंग्रेजी का कोई ज्ञान नहीं है, वह लगातार संदीप कुमार गुप्ता की पहल पर अंग्रेजी भाषा में तैयार की गई सभी कार्यवाही को रोक रहा है। हालांकि संदीप कुमार गुप्ता ने कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए वर्ष 2018 की संख्या 859 के अन्तर्गत एक दीवानी वाद दायर किया, जिसमें सोसायटी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और अपना लिखित कथन दर्ज किया। संदीप कुमार गुप्ता ने आवेदक संख्या 5 और आवेदक संख्या 2 के पिता ओमेंद्र पाल के विवाद वर्ष 2019 का मुकदमा संख्या 181/2019 भी स्थापित किया। संदीप कुमार गुप्ता के विरुद्ध एकपक्षीय निर्णय लिया गया। इस प्रकार, संदीप कुमार गुप्ता और शिल्पी गुप्ता स्पष्ट रूप से आवेदकों के विरोधी हैं और विरोधी पक्ष संख्या 2 इन दोनों की कठपुतली है। संदीप कुमार गुप्ता द्वारा पप्पू को अवैध कनेक्शन दिए जाने के कारण सोसायटी को इस अवैध गतिविधि के संबंध में विद्युत विभाग से संपर्क करना पड़ा। पप्पू द्वारा किये गये अवैध अतिक्रमण को लंबे समय से हटाने का प्रयास किया जा रहा था।

वर्ष 2013 एवं 2014 से लेकर अब तक आवेदक संख्या 4 उदय नारायण सिंह, जो समिति के सचिव थे, इस अतिक्रमण को चुनौती दे रहे थे और 2017 में वार्तालोक सहकारी आवास समिति के सदस्यों द्वारा आम सभा की बैठक में सर्वसम्मति से इसका समाधान किया गया था विपक्षी क्रमांक 2 के पिता द्वारा किये गये अवैध अतिक्रमण को

हटवाने हेतु दिनांक 23.09.2018 को प्रभावी किया गया, यही वह दिनांक है जिस दिन विपक्षी क्रमांक 2 द्वारा आवेदकों पर दबाव बनाने हेतु यह फर्जी घटना बनाई गयी है। सोसायटी के प्रस्ताव के अनुसार, 09.06.2018 को तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद ने सर्कल अधिकारी और एस.एच.ओ. को विधि के अनुसार मामले में उचित कार्रवाई करने का निर्देश दिया और परिणामस्वरूप, वार्तालोक सहकारी के अधिकारियों की उपस्थिति में वीडियो रिकॉर्डिंग के अन्तर्गत आवास समिति और रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन वार्तालोक अपार्टमेंट के पदाधिकारियों द्वारा कथित पीड़िता के पिता द्वारा किए गए अतिक्रमण को पुलिस ने उचित प्रक्रिया के बाद हटा दिया। इस घटना के कारण विरोधी पक्ष संख्या 2 ने अपनी मां की देखरेख में वर्तमान दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही शुरू की, जिन्होंने स्वयं वार्तालोक सहकारी आवास समिति के तत्कालीन अध्यक्ष राजीव कुमार और अन्य के खिलाफ 2018 की शिकायत संख्या 94 दर्ज की थी, जिसे न्यायालय ने खारिज कर दिया था। 18.12.2019 को संबंधित न्यायालय ने कहा, हालांकि आदेश को विपक्षी संख्या 2 की मां द्वारा चुनौती दी गई है।

इस प्रकार, यह तर्क दिया गया कि शिकायत में दिखाई गई ऐसी कोई घटना 23.09.2018 को नहीं हुई थी। बच्चों की सुरक्षा के लिए बनाए गए विधि का दुरुपयोग विपक्षी पार्टी संख्या 2 के संरक्षक द्वारा विपक्षी संख्या 2 को आवेदकों के हाथों अपमानित होने का शिकार बनाकर किया गया है। घटना पूरी तरह से झूठी है, जो समाज के पदाधिकारियों पर दबाव बनाने के उद्देश्य से मनगढ़ंत

कहानी रची गई है। ऐसी कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और न्यायालय अपने असाधारण क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आवेदकों को न्याय प्रदान करने की दृष्टि से समन आदेश और शिकायत की पूरी कार्यवाही को रद्द कर सकती है।

अपने पक्ष के समर्थन में आवेदकों ने न्यायालय के समक्ष विपक्षी संख्या 2 सीआर.पी.सी. की धारा 156 (3) के अन्तर्गत आवेदन पर भेजी गई पुलिस की आख्या, पीड़िता और शिल्पी गुप्ता के बयान और शिकायतकर्ता द्वारा उपलब्ध कराए गए गवाहों की सूची रखी, विवादित शिकायत, राजीव कुमार (समिति के तत्कालीन अध्यक्ष) द्वारा 15.04.2013 को एसएसपी गाजियाबाद को की गई शिकायत की कार्बन कॉपी, संदीप कुमार गुप्ता को जारी किए गए विभिन्न नोटिस और उनके द्वारा दिए गए उत्तर, संदीप कुमार द्वारा किए गए अवैध अतिक्रमण की तस्वीरें सोसायटी में गुप्ता, (संदीप कुमार गुप्ता बनाम वार्तालोक सहकारी आवास समिति लिमिटेड और इसके अध्यक्ष राजीव कुमार के माध्यम से अन्य) दीवानी वाद मूल वाद संख्या 859 वर्ष 2018 के वादपत्र की प्रति, इस मुकदमे में न्यायालय द्वारा पारित आदेश, सिविल की ऑर्डर शीट मुकदमा संख्या 181 वर्ष 2009 (संदीप कुमार गुप्ता बनाम मोहन लाल और अन्य, इस मामले में आवेदक संख्या 5), वार्तालोक सहकारी आवास समिति लिमिटेड द्वारा कार्यकारी अभियंता, ईईईयूडीडी, वसुंधरा, गाजियाबाद को भेजे गए पत्रों की प्रतियां, सामान्य निकाय का संकल्प सोसायटी दिनांक 05.09.2017, विपक्षी संख्या 2 के पिता द्वारा अतिक्रमण के संबंध में समिति के अध्यक्ष

राजीव कुमार द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद को दिनांक 09.06.2018 को भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि, माता द्वारा की गई शिकायत दिनांक 09.07.2018 की प्रतिलिपि विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक संख्या 4 उदय नारायण सिंह, हरीश चंद जोशी, आवेदक संख्या 3 के खिलाफ चार अन्य व्यक्तियों को धारा 323, 384, 354, 504, 506, 120 बी आईपीसी और एससी/एसटी अधिनियम की धाराओं के अन्तर्गत नामित करते हुए, सीसीटीवी फुटेज और दिनांक 23.09.2018 को अतिक्रमण हटाने की दोनों कार्यवाही के संबंध में मोबाइल द्वारा तैयार की गई वीडियो क्लिप, विपक्षी संख्या 2 के पिता पप्पू उर्फ सोनू द्वारा एस.एच.ओ., इंद्रापुरम को दी गई शिकायत दिनांक 04.02.2017 की प्रति, विशेष न्यायाधीश एससी/एसटी एक्ट के आदेश दिनांक 18.12.2019 को विपक्षी संख्या 2 की मां रजनी की शिकायत को खारिज करते हुए, आवेदक मोहन लाल के जाति प्रमाण पत्र की फोटोकॉपी, एसआईएफएस इंडिया फॉरेंसिक लैब की एक रिपोर्ट दिनांक 29.12.2020 आवेदक द्वारा दी गई वीडियो क्लिप से छेड़छाड़ नहीं की गई।

उत्तर में विपक्षी नंबर 2 के पिता पप्पू की ओर से जवाबी शपथ पत्र दायर किया गया है कि वह पिछले 17 साल से अधिक समय से सेक्टर-4सी स्थित वार्तालोक अपार्टमेंट के गेट नंबर 2 पर एक झोपड़ी में रह रहे हैं। आवेदकों में से कुछ ने सोसायटी के कुछ अन्य निवासियों के साथ मिलकर उसकी पत्नी के साथ दुर्व्यवहार किया और अपार्टमेंट में इस्त्री का काम करने के लिए झोपड़ी में रहने की अनुमति देने के लिए प्रति वर्ष 1,00,000/-

रूपये की मांग की और जब उनकी यह मांग पूरी नहीं हुई। पूरा करने पर उनके और उनके परिवार के सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार किया गया और धमकी दी गई। कई मौकों पर उनकी एफआईआर दर्ज नहीं की जा सकी, हालांकि, 2018 की शिकायत संख्या 94 उनकी पत्नी द्वारा 09.07.2018 को कुछ आवेदकों सहित 06 लोगों के विरुद्ध दर्ज की गई थी। आवेदक अत्यधिक प्रभावशाली व्यक्ति हैं। इस शिकायत के बारे में पता चलने पर वे क्रोधित हो गए, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 23.09.2018 की घटना घटी और शिल्पी गुप्ता और उनके पति सहित अपार्टमेंट के कुछ निवासियों के हस्तक्षेप से आवेदकों से उनकी (पप्पू) की जान बचाई गई। उनकी एफआईआर पुलिस अधिकारी सचिन मलिक ने दर्ज नहीं की थी। यदि उसका निर्माण अनाधिकृत था तो भी उसे विधिक प्रक्रिया के माध्यम से ही हटाया जा सकता था, बलपूर्वक नहीं। जैसा कि वर्तमान मामले में स्वीकार किया गया है, पुलिस की मिलीभगत से उनके घर को ध्वस्त कर दिया गया था। वह पिछले 17-18 साल से झोपड़ी में रह रहा था। उन्होंने वार्तालोक अपार्टमेंट के निर्माण के लिए एक मजदूर के रूप में काम किया, उसके बाद, वह लंबे समय से अपार्टमेंट के निवासियों के कपड़े इस्त्री कर रहे हैं। आवेदकों के विरुद्ध झूठी शिकायत दर्ज करने का कोई अवसर नहीं था। जब उनकी बेटी के साथ 23.09.2018 की घटना को अंजाम दिया गया तो उस मामले में शिकायत दर्ज की गई। चूंकि वह पिछले 17-18 वर्षों से अपार्टमेंट में रह रहा था, इसलिए उसे विद्युत का कनेक्शन संदीप कुमार गुप्ता ने दिया, जो अपार्टमेंट के भूतल पर रहता है, ताकि उसकी बेटी, विपरीत

पक्ष संख्या 2, रात के दौरान पढ़ सके। उन्होंने उनसे कभी कोई पैसा नहीं लिया और विद्युत का बिल अपनी जेब से भरते हैं। वह धोबी है और कपड़े इस्त्री करने का काम करता है। समिति और संदीप कुमार गुप्ता के विवाद से उनका कोई लेना-देना नहीं है। चूँकि आवेदक उच्च पदस्थ व्यक्ति हैं, उनके पास अपार्टमेंट में अपना फ्लैट है, यह दिनांक 23.09.2018 की घटना को उचित नहीं ठहराता है। आवेदकों ने स्थानीय पुलिस की मिलीभगत से उसके पूरे घर को ध्वस्त कर दिया और उसकी पत्नी से बदला लेने के लिए घरेलू संपत्ति को भी नुकसान पहुंचाया, जिसने आवेदकों द्वारा 1,00,000/- रुपये की अवैध मांग के खिलाफ 2018 की शिकायत संख्या 94 दर्ज की थी। जिलाधिकारी उनका मकान हटवाने के लिए सक्षम प्राधिकारी नहीं हैं। आवेदकों के लिए एकमात्र सहारा बेदखली का वाद दायर करना था। उन्हें पेनड्राइव नहीं प्रदान की गई है, इसलिए वह इस संबंध में कोई टिप्पणी करने की स्थिति में नहीं हैं।

उनके उत्तर के साथ पप्पू की पत्नी द्वारा दिनांक 09.07.2018 को की गई शिकायत की प्रति, उस न्यायालय के आदेश पत्र की प्रमाणित प्रति और मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य का पत्र, जिसमें कहा गया है कि सरकारी आदेश किसी भी प्राधिकारी को इसमें प्रवेश करने के लिए अधिकृत नहीं करते हैं। दो व्यक्तियों का निजी विवाद दर्ज किया गया है। राज्य की ओर से भी जवाबी शपथ पत्र दाखिल किया गया है। उसमें कहा गया है कि एससी/एसटी अधिनियम की धारा 14ए के अन्तर्गत केवल अपील ही सुनवाई योग्य है, इसलिए, वर्तमान कार्यवाही को सुनवाई योग्य

नहीं कहा जाता है।

आवेदकों द्वारा पिछले संस्करण को दोहराते हुए प्रत्युत्तर शपथ पत्र दायर किया गया है।

इस प्रकार, दलीलों के आधार पर, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के पिता द्वारा किए गए अतिक्रमण को हटाने का बदला लेने के लिए संदीप कुमार गुप्ता और उनकी पत्नी की मिलीभगत से आवेदकों के खिलाफ शिकायत दर्ज की गई है। इस न्यायालय के निर्णय रिकू बनाम यूपी राज्य की जमानत आवेदन संख्या 33075 वर्ष 2018 को आपराधिक विविध में रखकर, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि जब आईपीसी की धाराओं के अलावा, कार्यवाही पास्को अधिनियम और एससी/एसटी अधिनियम के अन्तर्गत भी थी, तो केवल पास्को न्यायालय के पास ही सुनवाई होगी। इस तरह की कार्यवाही पर विचार करने का क्षेत्राधिकार, जैसा कि वर्तमान मामले में किया गया है और यह तर्क दिया गया है कि चूँकि विवादित समन आदेश पास्को न्यायालय द्वारा ही पारित किया गया था, इसलिए एससी/एसटी अधिनियम की धारा 14A लागू नहीं होगी।

जबकि विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने **2021 की आपराधिक अपील संख्या 330** में निर्णयों को न्यायालय के समक्ष रखा - **मेसर्स निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (एससी), भारत के अटॉर्नी जनरल; राष्ट्रीय महिला आयोग; महाराष्ट्र राज्य; सतीश बनाम सतीश और अन्य, महाराष्ट्र राज्य और अन्य, लिबनस, 2021 लॉ सूट (एससी) 739, फूल**

सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2021 0 सुप्रीम (एससी) 760, आदेश दिनांक 05.05.2022 सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित किया गया **2022 की आपराधिक अपील संख्या 741 - जगमोहन सिंह बनाम विमलेश कुमार और अन्य, उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अखिल शारदा और अन्य, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 598, और इस न्यायालय का निर्णय दिनांक 30.06.2021** आवेदन अन्तर्गत धारा 482 जहूर खान और 4 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य संख्या 5690/2021, और प्रस्तुत किया कि सीआर.पी.सी. की धारा 482 के इस चरण में न्यायालय को शिकायत में लगाए गए आरोपों की सत्यता पर गौर नहीं करना है और न ही न्यायालय को देखना है। आवेदकों का बचाव. चूंकि शिकायत एक संज्ञेय अपराध होने का खुलासा करती है, इसलिए आवेदकों को बुलाने के आदेश में कोई अनियमितता या अवैधता नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि न्यायालय को तथ्यों के बारे में जांच नहीं करनी चाहिए कि क्या विश्वसनीय सबूत हैं या नहीं। धारा 482 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग सावधानी से, सावधानीपूर्वक और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए, जब आपराधिक कार्यवाही को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग कहा जा सकता है, तो धारा 482 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। प्रथम सूचना रिपोर्ट से स्पष्ट रूप से एक संज्ञेय अपराध होता है और आरोप पत्र भी संज्ञेय धाराओं के अन्तर्गत दायर किया गया है, न्यायालय के पास सीआर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए आपराधिक

कार्यवाही में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।

यदि हम उपरोक्त तर्कों पर गौर करें तो पता चलता है कि धारा 156 (3) सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत आवेदन पांच आवेदकों के विरुद्ध लगभग 15 वर्ष की उम्र के अवयस्क द्वारा दायर किया गया था और पुलिस स्टेशन की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद कि घटना असत्य है, एक शिकायत के रूप में यह आवेदन पंजीकृत किया गया था। शिकायतकर्ता के अवयस्क होने के कारण न्यायालय में उसका प्रतिनिधित्व उसके अभिभावक द्वारा नहीं किया गया है, बल्कि उसका प्रतिनिधित्व पैरोकार श्रीमती रजनी पत्नी पप्पू द्वारा किया गया है। श्रीमती रजनी अवयस्क की मां हो सकती हैं लेकिन नाबालिग का प्रतिनिधित्व उचित होना चाहिए। अवयस्क को अपने कानूनी अभिभावक के माध्यम से न्यायालय में पेश होना था, न कि पैरोकार के माध्यम से, इसलिए, शिकायत को उचित व्यक्ति द्वारा दायर नहीं किया जा सकता है।

पुनः, वर्तमान कार्यवाही में प्रति शपथ पत्र पीड़िता की मां द्वारा दायर नहीं किया गया है, जिसका उल्लेख प्रति शपथ पत्र में अवयस्क के विधिक अभिभावक के रूप में किया गया है, बल्कि प्रति शपथ पत्र विपक्षी संख्या 2 के पिता और पप्पू द्वारा दायर किया गया है। पप्पू द्वारा प्रति शपथ पत्र किस हैसियत से दाखिल किया गया है, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। सूची में तीसरी गवाह, नाबालिग की मां, जो शुरुआती चरण से घटना की गवाह बताई जा रही है, को विचारण न्यायालय के सामक्ष पेश नहीं किया गया है। शिल्पी गुप्ता के बयान में घटना की तारीख की ओवरराइटिंग

को भी विचारण न्यायालय ने अनदेखा कर दिया है।

पूरी शिकायत में, यह कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है कि शिकायतकर्ता, वर्तमान विरोधी पक्ष संख्या 2, एससी/एसटी से संबंधित है और विपरीत पक्ष (वर्तमान आवेदक) सामान्य श्रेणी से हैं। आवेदक के अधिवक्ता मोहन लाल द्वारा प्रस्तुत जाति प्रमाण पत्र से आवेदक क्रमांक 5 अनुसूचित जाति का प्रतीत होता है। इस संबंध में विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है।

यह सच है कि सीआर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का उपयोग दुर्लभ और असाधारण मामलों में संयमित ढंग से किया जाना चाहिए, लेकिन **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य, (1992 सप्ल (1) एससीसी 335)** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ऐसे मामले में जहां शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी उचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है, कि आरोपी के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है और क्या आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से शामिल है दुर्भावनापूर्ण और/या जहां कार्यवाही अभियुक्त पर प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से दुर्भावनापूर्ण रूप से शुरू की गई है, न्यायालय अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती है।

अभिलेख के अवलोकन से जात होता है कि विपक्षी संख्या 2 का कथन है कि विपक्षी संख्या 2 के पिता पिछले 17 वर्षों से सोसायटी

में झोपड़ी बनाकर निवास कर रहे थे, जिसका कानूनी अधिकार विपक्षी संख्या 2 के पिता का है। झोपड़ी बनाने के संबंध में विपक्षी संख्या 2 को स्पष्ट नहीं किया गया है। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि घटना दिनांक को ही यानि 23.09.2018 को सायं को उसकी झोपड़ी एवं उसके द्वारा किये गये कथित अतिक्रमण को पुलिस की सहायता से आवेदकों की देखरेख एवं अधिकारियों की उपस्थिति में हटा दिया गया था। वार्तालोक सहकारी आवास समिति की। जब कथित घटना के दिन ही झोपड़ी हटा दी गई और झोपड़ी (टिन शेड), जिसे घटना स्थल बताया गया है, की दोपहर 2 बजे से शाम 6.30 बजे तक की वीडियो और मोबाइल क्लिपिंग न्यायालय के सामने रखी गई और उस समय आवेदकों के लिए अवयस्क लड़की-विपक्षी पक्ष संख्या 2 के साथ उक्त अपराध करने का कोई अवसर नहीं हो सकता था।

माना जाता है कि विपक्षी संख्या 2 के पिता को संदीप कुमार गुप्ता द्वारा एक अवैध विद्युत कनेक्शन दिया गया था, जिसका उपयोग विपक्षी संख्या 2 के परिवार द्वारा पिछले 10 वर्षों से बिना किसी विधिक अधिकार के किया जा रहा था। विपक्षी क्रमांक 2 के पिता द्वारा लिया गया अवैध विद्युत कनेक्शन तथा सोसायटी में बिना किसी आवंटन के उनके नाम पर बनाई गई झोपड़ी को विपक्षी क्रमांक 2 के पिता द्वारा स्वीकार किया गया है। आवेदकों द्वारा पूरी घटना को दो पेनड्राइव से 2.00 बजे से शाम 6.30 बजे तक विपक्षी संख्या 2 के पिता पप्पू द्वारा किए गए अवैध अतिक्रमण को हटाने की पूरी घटना को दर्शाते हुए दायर किया गया है। जैसा कि कहा जाता है कि जिस टीन शेड में घटना

हुई थी, उसे ढक दिया गया था सीसीटीवी कैमरे का दृश्य आवेदकों ने शिकायत में दिखाई गई कथित घटना की अवधि सहित उस क्षेत्र के सीसीटीवी फुटेज की तीन क्लिपिंग और मोबाइल द्वारा बनाई गई दो क्लिपिंग दायर की हैं, जिसमें ऐसी कोई घटना नहीं दिखाई गई है। यदि ऐसा था, तो विपक्षी संख्या 2/उसके माता-पिता घटना के समय के उस क्षेत्र के सीसीटीवी फुटेज दर्ज करने के लिए स्वतंत्र थे, लेकिन उनके द्वारा ऐसा नहीं किया गया है। बल्कि घटना के समय शाम करीब 6 से 8 बजे के बीच कई बार कथित पीड़िता और उसके माता-पिता पुलिस और अन्य लोगों का विरोध और बहस करते नजर आए हैं। यदि शिकायत में बताए गए अनुसार कोई घटना उस दिन शाम 5 बजे हुई होती तो पीड़िता और उसके परिवार के सदस्य उस समय पुलिस में शिकायत कर सकते थे, लेकिन पुलिस में ऐसी कोई शिकायत नहीं की गई, बल्कि पूरी शक्ति और ऊर्जा के साथ घटना को पीड़िता इसका विरोध करती नजर आ रही है।

बताया जाता है कि पीड़िता के साथ हुई घटना के संबंध में कोई मेडिकल जांच/उपहति रिपोर्ट तैयार नहीं की गई है। उपरोक्त आवेदकों द्वारा दायर किए गए दस्तावेज अभिलेख पर हैं, जो बताते हैं कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर शिकायत के समर्थन में, केवल शिल्पी गुप्ता ही आवेदकों के खिलाफ धारा 202 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत न्यायालय में बयान देने के लिए आगे आई हैं, जबकि लंबी कार्यवाही चल रही है सोसाइटी के रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन द्वारा उनके पति के खिलाफ अवैध अतिक्रमण और उनके (संदीप कुमार गुप्ता) द्वारा विपरीत पक्ष संख्या 2 के

माता-पिता को आपूर्ति की गई अवैध बिजली के संबंध में मुकदमा चलाया जा रहा था। अभिलेख पर मौजूद दस्तावेजों से पता चलता है कि जब भी कोई कार्यवाही शुरू की जाती थी विपक्षी संख्या 2 के माता-पिता के विरुद्ध, वे आवेदकों/समाज के रेजिडेंट्स वेलफेयर एसोसिएशन के तत्कालीन अधिकारियों को झूठे मामलों में फंसाने और विशेष रूप से एससी/एसटी अधिनियम की धाराओं के अन्तर्गत मामला दर्ज करने की धमकी देते थे। 09.07.2018 को विपक्षी संख्या 2 की मां ने उदय नारायण सिंह, हरीश चंद जोशी और चार अन्य के खिलाफ धारा 323, 384, 354, 504, 506, 120 बी आईपीसी और एससी/एसटी अधिनियम की धाराओं के अन्तर्गत शिकायत दर्ज कराई थी, जिसमें बताया जाता है कि विशेष न्यायाधीश की न्यायालय के आदेश दिनांक 18.12.2019 द्वारा खारिज कर दिया गया है। हालाँकि बताया जाता है कि इस आदेश को इसी न्यायालय में चुनौती दी गयी है।

आवेदकों का यह भी कथन है कि आवेदकों द्वारा जारी प्रक्रिया के क्रम में विपक्षी संख्या 2 के माता-पिता द्वारा संदीप कुमार गुप्ता, उनकी पत्नी शिल्पी गुप्ता की मिलीभगत से किए गए अवैध अतिक्रमण को हटाने की प्रक्रिया जारी है। दिनांक 16.09.2018 को यशवन्त राणा एवं उसकी पत्नी अंजना सिंह ने प्रार्थी दुष्यन्त सिंह के घर में घुसकर दुष्यन्त की माँ को धमकी दी कि वे उसके पुत्र को नहीं छोड़ेंगे। दुष्यन्त सिंह की गर्भवती पत्नी को बच्चा गिराने के आशय से धक्का देकर गिरा दिया गया। घटना के संबंध में एफआईआर धारा 316, 387, 389, 452,

500, 506, 507, 511, 120बी आईपीसी के अन्तर्गत दर्ज की गई थी, उपरोक्त नामित अभियुक्तों ने मीडिया से संबंधित होने के कारण मीडिया और भारत समाचार पर यह कवरेज करना शुरू कर दिया कि यह शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा किया गया उत्पीड़न है। आवेदक के विरुद्ध शिकायत वापस लेने के लिए 60 लाख रुपये की मांग की गई और उसे तरह-तरह की धमकियां दी गईं। यह सब स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि शिकायत कुछ और नहीं बल्कि बच्चों की सुरक्षा के लिए बने कानून की प्रक्रिया का सरासर दुरुपयोग है।

विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा न्यायालय के समक्ष रखे गए निर्णयों में, यह माना गया है कि धारा 482 सीआर.पी.सी. के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग तब किया जा सकता है जब यह उचित हो और अभिलेख पर सामग्री के माध्यम से जाने पर न्यायालय उचित रूप से पहुंच सके। इस निष्कर्ष पर कि कार्यवाही न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। *भजन लाल (सुप्रा)* के निर्णय में यह माना गया है कि जब किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से किसी व्यक्ति को निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण तंग करने के आशय से शुरू की जाती है, तो धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति दी जाती है कि इसका प्रयोग किया जाये।

कर्नाटक राज्य बनाम एल मुनिस्वामी, (1977) 2 एससीसी 699 में, सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि उच्च न्यायालय किसी कार्यवाही को

रद्द करने का हकदार है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देना दुरुपयोग होगा। न्यायालय की प्रक्रिया का निर्णय के पैराग्राफ-'7' को निम्नानुसार उद्धृत किया जा सकता है:-

“7.इस संपूर्ण शक्ति के प्रयोग में, उच्च न्यायालय किसी कार्यवाही को रद्द करने का हकदार है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय के उद्देश्यों की आवश्यकता है कि कार्यवाही निरस्त की जाये। सिविल और आपराधिक दोनों मामलों में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की बचत, एक हितकारी सार्वजनिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए डिज़ाइन की गई है, जो यह है कि न्यायालय की कार्यवाही को उत्पीड़न या उत्पीड़न के हथियार में बदलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। एक आपराधिक मामले में, लचर अभियोजन के पीछे छिपी हुई वस्तु, उस सामग्री की प्रकृति जिस पर अभियोजन की संरचना टिकी हुई है और इसी तरह उच्च न्यायालय को न्याय के हित में कार्यवाही को रद्द करने का औचित्य साबित होगा। न्याय का लक्ष्य मात्र विधि के लक्ष्य से ऊंचा है, हालांकि न्याय को विधायिका द्वारा बनाए गए विधि के अनुसार प्रशासित किया जाना चाहिए। इन टिप्पणियों को बनाने की अनिवार्य आवश्यकता यह है कि प्रावधान के

उद्देश्य और उद्देश्य की उचित प्राप्ति के बिना, जो राज्य और उसके विषयों के बीच न्याय करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को बचाने का प्रयास करता है, इसकी सराहना करना असंभव होगा। उस प्रमुख क्षेत्राधिकार की चौड़ाई और रूपरेखा।”

कर्नाटक राज्य बनाम एम देवेन्द्रप्पा, (2002) 3 एससीसी 89 मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने सीआर.पी.सी. की धारा 482 के दायरे का विश्लेषण किया और निर्धारित किया कि न्यायालय का अधिकार न्याय की उन्नति के लिए मौजूद है और यदि उस अधिकार का दुरुपयोग करने का कोई प्रयास किया जाता है अन्याय उत्पन्न करने के लिए, न्यायालय के पास दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है। निर्णय के पैराग्राफ-'6' को निम्नानुसार उद्धृत किया जा सकता है:-

"6.....सभी अदालतें, चाहे वे दीवानी हों या फौजदारी, किसी भी स्पष्ट प्रावधान के अभाव में, जैसा कि उनके संविधान में निहित है, ऐसी सभी शक्तियाँ हैं जो सही करने और गलत को ठीक करने के लिए आवश्यक हैं न्याय के प्रशासन की...इस धारा के अंतर्गत निहित न्यायाधिकार का प्रयोग यद्यपि व्यापक रूप से किया जाना चाहिए, लेकिन इसका प्रयोग सावधानी से, सावधानीपूर्वक और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और केवल तभी जब ऐसा प्रयोग धारा में ही विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित हो। इसका प्रयोग पूर्व

डेबिटो जस्टिटिया के प्रशासन के लिए वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए किया जाना चाहिए, जिसमें अकेले अदालतें मौजूद हैं।"

इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा से, यह प्रतिबिंबित होता है कि विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए, परिवाद संख्या 77/2018 के (एक्स कुमारी बनाम संजीव साहू और अन्य) की पूरी कार्यवाही को रद्द करने की आवश्यकता है।

जहां तक इस तर्क का सवाल है कि इस न्यायालय को एससी/एसटी अधिनियम की धारा के अन्तर्गत समन आदेश के विरुद्ध मामले की सुनवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो विवादित आदेश पास्को न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, न कि एससी/एसटी न्यायालय द्वारा। रिंकू (सुप्रा) मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्णय के अनुसार न्यायालय ने पाया कि जब किसी मामले में पास्को अधिनियम और एससी/एसटी अधिनियम दोनों के अन्तर्गत अपराध एक ही अपराध से उत्पन्न होते हैं और एक ही समय में मुकदमा चलाया जा सकता है, तो पाँक्सो की विशेष न्यायालय का क्षेत्राधिकार होगा। हालांकि, यह तर्क दिया जाता है कि यह निर्णय जमानत अर्जी के बारे में है, लेकिन न्यायालय की राय में, एससी/एसटी अधिनियम की धारा 14ए विशेष न्यायालय के किसी भी फैसले, सजा या आदेश के विरुद्ध अपील का प्रावधान प्रदान करती है और एससी/एसटी के संबंध में एसटी अधिनियम, विशेष न्यायालय एससी/एसटी न्यायालय होगा न कि पाँक्सो न्यायालय। आक्षेपित आदेश

पास्को न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, इसलिए मेरी राय में इस संबंध में विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क मान्य नहीं है।

उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत रखते हुए विशेष न्यायाधीश, पाँक्सो एक्ट/अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 6, गाजियाबाद द्वारा पारित सम्मन आदेश दिनांक 29.11.2018 एवं परिवाद वाद संख्या 77/2018 (एक्स कुमारी बनाम संजीव साहू एवं) की सम्पूर्ण कार्यवाही अन्य) धारा 354, 354बी, 452, 504, 506 आईपीसी, पाँक्सो अधिनियम की धारा 7/8 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत, पुलिस स्टेशन इंद्रापुरम, जिला गाजियाबाद, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/सत्र न्यायाधीश 6वें गाजियाबाद के समक्ष लंबित है एवं रद्द कर दिया गया है।

इस प्रकार, सीआर.पी.सी. की धारा 482 के अन्तर्गत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 846

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या

52424 / 2022

राम सिंह

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री उपेन्द्र कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री रवीन्द्र कुमार सिंह

(एजीए), श्री शेखर गंगल, श्री शमशेर सिंह

(ए) दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161,164 और 439- जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय की विशेष शक्तियां, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 323, 452, 504, 506, 304 और 354 (का) - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 -धारा 7/8- जमानत देने या निरस्त करने के आदेश में उन कारणों को दर्ज करना न्यायिक अनुशासन का एक अच्छा अभ्यास है, जो न्यायालय को अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए प्रभावित करते हैं - यदि किसी अभियुक्त को जमानत देने का आदेश कारणों से समर्थित नहीं है, तो यह समानता के आधार पर सह-अभियुक्त को जमानत देने का आधार नहीं बन सकता है। (पैरा - 18,38)

आवेदक ने पीड़िता (आयु लगभग 15 वर्ष) के घर में घुसकर -उसके घर को घेर लिया - नाबालिग लड़की की सीमा भंग करने का प्रयास किया - मृतक को आवेदक और अन्य सह-अभियुक्तों द्वारा पीट-पीटकर मार डाला - गवाहों में पीड़िता (मृतक की पुत्री) और मृतक की पत्नी शामिल थीं - जिन्होंने अभियोजन पक्ष का पूर्ण समर्थन किया -अपराध में प्रयुक्त डंडा आवेदक की निशानदेही पर बरामद किया गया -सह-अभियुक्त को जमानत प्रदान की गई। (पैरा 27,46)

निर्णय: तथ्यों या कारणों पर विचार किए बिना सह-आरोपियों को जमानत दी गई। वर्तमान आवेदक का मामला अन्य सह-आरोपियों के वाद से भिन्न है। नाबालिग पीड़िता की गरिमा को ठेस पहुंचाने के संबंध में उनके विरुद्ध

कोई आरोप केवल वर्तमान आवेदक को नहीं है। आगे जो घटना घटी, वह आवेदक द्वारा रात्रि में किए गए कृत्य का परिणाम थी। (पैरा-48)

जमानत आवेदन निरस्त (ई-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. दीपक यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2022) 8 एससीसी 559
2. दाताराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2018) 3 एससीसी 22
3. प्रहलाद सिंह भाटी बनाम एनसीटी दिल्ली और अन्य, (2001) 4 एससीसी 280
4. राम गोविंद उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह और अन्य., (2002)3 एससीसी 598
5. कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन @ पप्पू यादव और अन्य, (2004) 7 एससीसी 528
6. चमन लाल बनाम यूपी राज्य, (2004)7 एससीसी 525
7. मसरूर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 12 एससीसी 286
8. प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी और अन्य, (2010)14 एससीसी 496
9. अनिल कुमार यादव बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2018)12 एससीसी 129
10. महिपाल बनाम राजेश कुमार @ पोलिया और अन्य, (2020)2 एससीसी 118
11. जगजीत सिंह एवं अन्य बनाम आशीष मिश्रा @ मोनू और अन्य, (2022) 9 एससीसी 321

12. "वाई" बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, 2022 लाइव लॉ (एससी) 384

13. इंदेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, लाइव लॉ (एससी) 610

14. अजवार बनाम नियाज अहमद एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 1722/2022 (एसएलपी (सीआरएल) संख्या 8139/2022 से उत्पन्न)

15. सुन्दर लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1983 सी.आर.एल.जे., (एफ.बी.) (अखिल भारतीय उच्च न्यायालय)

16. चंदर @ चंद्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1998 सीआर.एल.जे., 2378

17. बृजमणि देवी बनाम पप्पू कुमार, (2022) 4 एससीसी 497

18. नरेश बनाम महाराष्ट्र राज्य एआईआर 1967 एससी 1

(माननीय न्यायमूर्ति संजय कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री उपेंद्र कुमार सिंह, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री रवीन्द्र कुमार सिंह और श्री शमशेर सिंह, जो पहले सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री शेखर गंगल की ओर से उपस्थित हो रहे हैं, को सुना।

2. इस आवेदन के माध्यम से धारा 439 द०प्र०स० के तहत आवेदक-राम सिंह, जो केस अपराध संख्या-332 वर्ष 2021 में धारा 147, 148, 323, 452, 504, 506, 304, 354 (क) भ०द०वि० और धारा 7/8 पाँक्सो अधिनियम, थाना-हरदुआगंज, जिला अलीगढ़ के तहत है,

मुकदमे की पेंडेंसी के दौरान जमानत पर छूट की मांग करता है।

मामले के तथ्य

3. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, संक्षेप में, सूचनाकर्ता जो पीड़िता का बहनोई (जीजा) है, ने गुलाब सिंह, राम सिंह (वर्तमान आवेदक), लेखराज, विमलेश और शांति देवी के खिलाफ 30.08.2021 को एक प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ आरोप लगाया गया कि 27.08.2021 को उसकी साली उम्र लगभग 15 वर्ष अपने घर की छत पर अकेली सो रही थी। रात करीब 10:00 बजे वर्तमान आवेदक राम सिंह, जो उसका पड़ोसी है, उसके घर में घुस गया और उसकी लज्जा भंग करने के इरादे से उसे पकड़ लिया। पीड़िता के शोर मचाने पर उसकी मां पुष्पा देवी व पिता जय नारायण की नींद खुल गई और जब वे छत पर पहुंचे तो आवेदक राम सिंह भागने में सफल रहा। चूंकि देर रात हो चुकी थी, इसलिए पीड़िता के पिता प्राथमिकी दर्ज कराने नहीं गए। अगले दिन यानी 28.08.2021 को जब जय नारायण पीड़िता के साथ प्राथमिकी दर्ज कराने जा रहे थे, उसी समय, आरोपी व्यक्ति गुलाब सिंह, राम सिंह (वर्तमान आवेदक), लेखराज, विमलेश और शांति देवी लाठी, डंडा, फरसा और लोहे की रॉड से लैस होकर उनके घर में घुस गए और उन पर समझौते के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया। जब जय नारायण ने मना कर दिया तो उन्होंने उसे पीटना शुरू कर दिया। प्राथमिकी में आगे आरोप लगाया गया है कि जब उनकी पत्नी पुष्पा देवी और पीड़िता ने हस्तक्षेप करने की कोशिश की, तो उन्हें भी परेशान किया गया।

इसके बाद आरोपी उन्हें धमकी देकर भाग गए। वहां एकत्रित मोहल्ले के लोगों ने 112 डायल कर उक्त घटना की जानकारी पुलिस को दी, जिस पर पुलिस मौके पर पहुंची और जयनारायण को दीन दयाल अस्पताल ले गई। उसकी हालत गंभीर मानते हुए उसे मेडिकल अस्पताल रेफर कर दिया गया, लेकिन चूंकि मेडिकल अस्पताल में वेंटिलेटर की सुविधा नहीं थी, इसलिए उसे सफदरजंग अस्पताल, दिल्ली रेफर कर दिया गया, जहां उसने दम तोड़ दिया।

आवेदक की ओर से प्रस्तुतियाँ

4. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि हमले की सामान्य भूमिका प्राथमिकी में नामित सभी आरोपी व्यक्तियों को सौंपी गई है और वर्तमान आवेदक को कोई विशिष्ट भूमिका नहीं दी गई है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सह-आरोपी श्रीमती शांति देवी और श्रीमती विमलेश को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-54440 वर्ष 2021 में दिनांक 01.04.2022 के आदेश के तहत जमानत दी गई है और उसके बाद अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों अर्थात् गुलाब सिंह और लेखराज को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-25969 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 09.09.2022 द्वारा केवल श्रीमती के जमानत आदेश की समानता के आधार पर, शांति देवी और श्रीमती विमलेश के अनुसार, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जमानत दी गई है। इसलिए, समानता के सिद्धांत पर आवेदक भी जमानत पर रिहा होने का हकदार है। यह तर्क दिया गया है कि

यदि आवेदक को समानता के आधार पर जमानत नहीं दी जाती है, तो यह उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह 22.09.2021 से जेल में बंद है।

राज्य की ओर से प्रस्तुतियाँ

5. इसके विपरीत, श्री रवीन्द्र कुमार सिंह, राज्य के अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता के साथ-साथ सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने प्राथमिकी में उल्लिखित अभियोजन मामले के आलोक में आवेदक की जमानत के लिए प्रार्थना का जोरदार विरोध किया। यह भी बताया गया है कि इस मामले के तथ्यों, मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें, पीड़ित की धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान के साथ-साथ जांच के दौरान दर्ज किए गए अन्य अभियोजन पक्ष के गवाहों के धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा सह-आरोपी व्यक्तियों को जमानत देते समय ध्यान में नहीं रखा गया है, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

6. दीपक यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2022) 8 एस.सी.सी. 559 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि जमानत देने या अस्वीकार करते समय कुछ कारण दर्ज करना न्यायालय का कर्तव्य है, जबकि सह-अभियुक्त श्रीमती शांति देवी और श्रीमती विमलेश के दिनांक 01.04.2022 के जमानत आदेश में जमानत देने का कोई कारण नहीं बताया गया है। इसके अलावा सह-आरोपी गुलाब सिंह और लेखराज

को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 09.9.2022 के आदेश के तहत केवल समानता के आधार पर जमानत दे दी है। अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि जमानत देने के लिए समानता एकमात्र मानदंड नहीं हो सकती है और यदि बिना कोई कारण बताए समान रूप से रखे गए सह-अभियुक्त व्यक्तियों को जमानत दी जाती है, तो केवल समानता के आधार पर या इस तरह के जमानत आदेशों के आधार पर, जमानत आवेदन की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में प्राथमिकी में नामित सभी पांच आरोपियों द्वारा अपने पिता पर हमले और उसकी लज्जा को अपमानित करने के संबंध में अभियोजन पक्ष के संस्करण को दोहराया है। अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि दाताराम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2018)3 एस.सी.सी. 22 के मामले में निर्णय प्रस्तुत मामले के तथ्य पर लागू नहीं होता है।

जमानत के लिए प्रार्थना पर विचार करने के लिए स्थापित सिद्धांत:

7. बार-बार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में चेतावनी दी कि जमानत देते समय, न्यायालयों को विवेकपूर्ण तरीके से बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए और किसी अभियुक्त को जमानत देने के लिए दिशा-निर्देश तैयार करने चाहिए। अब, अभियुक्त को जमानत प्रदान करने के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों का उल्लेख करना उपयोगी होगा।

8. प्रहलाद सिंह भाटी बनाम एनसीटी दिल्ली और अन्य (2001) 4 एस.सी.सी. 280 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को जमानत देने के लिए निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए:

"(ए) जमानत देते समय अदालत को न केवल आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखना होगा, बल्कि सजा की गंभीरता को भी ध्यान में रखना होगा, अगर आरोप में दोषसिद्धि और आरोपों के समर्थन में सबूत की प्रकृति शामिल है।

(ख) गवाहों के साथ छेड़छाड़ किए जाने की युक्तियुक्त आशंकाओं अथवा शिकायतकर्ता के लिए खतरा होने की आशंका को भी जमानत प्रदान करने के मामले में न्यायालय के समक्ष विचार किया जाना चाहिए।

(ग) यद्यपि, अभियुक्त के दोष को युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित करने वाले संपूर्ण साक्ष्य होने की आशा नहीं की जाती है, परंतु आरोप के समर्थन में न्यायालय द्वारा प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए।

(घ) अभियोजन में तुच्छता पर हमेशा विचार किया जाना चाहिए और जमानत प्रदान करने के मामले में केवल वास्तविकता के तत्व पर विचार किया जाना चाहिए और अभियोजन की वास्तविकता के बारे में कुछ संदेह होने की स्थिति में, सामान्य घटनाओं में अभियुक्त जमानत के आदेश का हकदार है।

9. राम गोविंद उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह और अन्य, (2002) 3 एस.सी.सी. 598 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन कारकों को निर्धारित किया जो निम्नलिखित शब्दों में

जमानत देने की शक्ति के प्रयोग का मार्गदर्शन करना चाहिए:

"3. जमानत देना हालांकि एक विवेकाधीन आदेश है - लेकिन, हालांकि, इस तरह के विवेक का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से करने की मांग करता है, न कि पाठ्यक्रम के रूप में। बिना किसी ठोस कारण के जमानत के आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता। हालांकि, यह रिकॉर्ड करने की आवश्यकता नहीं है कि जमानत का अनुदान अदालत द्वारा निपटाए जा रहे मामले के प्रासंगिक तथ्यों पर निर्भर है और तथ्य, हालांकि, हमेशा मामले से मामले में भिन्न होते हैं। अपराध की प्रकृति जमानत देने के लिए बुनियादी विचारों में से एक है - अपराध अधिक जघन्य है, जमानत की अस्वीकृति की संभावना उतनी ही अधिक है, हालांकि, मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर निर्भर करता है।

4. उपर्युक्त के अलावा, कुछ अन्य जिन्हें प्रासंगिक विचारों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, इस समय भी देखे जा सकते हैं, हालांकि ये केवल दृष्टांत हैं और संपूर्ण नहीं हैं, न ही कोई हो सकता है। विचार किया जा रहा है:

(क) जमानत प्रदान करते समय न्यायालय को न केवल आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखना होता है बल्कि यदि आरोप दोषसिद्धि और आरोपों के समर्थन में साक्ष्य की प्रकृति को भी ध्यान में रखता है, तो सजा की गंभीरता को भी ध्यान में रखना होता है।

(ख) गवाहों के साथ छेड़छाड़ किए जाने की युक्तियुक्त आशंकाओं अथवा शिकायतकर्ता के लिए खतरा होने की आशंका को भी जमानत

प्रदान करने के मामले में न्यायालय के समक्ष विचार किया जाना चाहिए।

(ग) यद्यपि, अभियुक्त के दोष को युक्तियुक्त संदेह से परे स्थापित करने वाले संपूर्ण साक्ष्य होने की आशा नहीं की जाती है, परंतु आरोप के समर्थन में न्यायालय द्वारा प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना चाहिए।

(घ) अभियोजन में तुच्छता पर हमेशा विचार किया जाना चाहिए और जमानत प्रदान करने के मामले में केवल वास्तविकता के तत्व पर विचार किया जाना चाहिए और अभियोजन की वास्तविकता के बारे में कुछ संदेह होने की स्थिति में, सामान्य घटनाओं में अभियुक्त जमानत के आदेश का हकदार है।

10. कल्याण चंद्र सरकार बनाम राजेश रंजन उर्फ पप्पू यादव और अन्य (2004)7 एस.सी.सी. 528 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"जमानत देने या अस्वीकार करने के संबंध में कानून बहुत अच्छी तरह से तय है। जमानत देने वाली अदालत को अपने विवेक का प्रयोग समझदारी तरीके से करना चाहिए, न कि पाठ्यक्रम के मामले के रूप में। हालांकि जमानत देने के चरण में सबूतों की विस्तृत जांच और मामले की योग्यता के विस्तृत दस्तावेज की आवश्यकता नहीं है, ऐसे आदेशों में प्रथम दृष्टया निष्कर्ष निकालने के कारणों को इंगित करने की आवश्यकता है कि जमानत क्यों दी जा रही थी, विशेष रूप से, जहां अभियुक्त पर गंभीर अपराध करने का आरोप लगाया गया है। ऐसे कारणों से रहित कोई भी आदेश दिमाग के गैर-उपयोग से पीड़ित होगा।"

11. चमन लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2004) 7 एस.सी.सी. 525 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जमानत के लिए एक आवेदन से निपटने के दौरान कहा है कि जमानत देने के लिए कुछ कारकों पर विचार किया जाना है, वे हैं:

"..... (i) दोषसिद्धि के मामले में आरोप की प्रकृति और सजा की गंभीरता तथा सहायक साक्ष्य की प्रकृति, (ii) गवाहों के साथ छेड़छाड़ की युक्तियुक्त आशंका या शिकायतकर्ता को धमकी की आशंका, और (iii) आरोप के समर्थन में न्यायालय द्वारा प्रथम दृष्टया संतुष्टि।"

12. मसरूर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2009) 12 एस.सी.सी. 286 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जमानत देने के कारणों को बताने पर जोर देते हुए, हालांकि, यह संक्षिप्त हो सकता है, न्यायालय ने कहा:

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता कीमती है और अदालतों द्वारा उत्साहपूर्वक संरक्षित की जानी चाहिए। बहरहाल, इस तरह की सुरक्षा हर स्थिति में पूर्ण नहीं हो सकती है। किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल्यवान अधिकार और सामान्य रूप से समाज के हित को संतुलित करना होगा। किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति की स्वतंत्रता मामले की अनिवार्यता पर निर्भर करेगी।

13. प्रशांत कुमार सरकार बनाम आशीष चटर्जी और अन्य, (2010) 14 एस.सी.सी. 496 के मामले में, अभियुक्त धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए मुकदमे का सामना कर

रहा था। सत्र न्यायालय से जमानत प्राप्त करने में असफल होने के बाद, आरोपी ने उच्च न्यायालय के समक्ष जमानत याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने एक संक्षिप्त आदेश द्वारा अभियुक्त को जमानत की अनुमति दी, इस प्रकार देखते हुए:

पीठ ने कहा, "कथित अपराध की प्रकृति के संबंध में हमें नहीं लगता कि जांच के हित में इस स्तर पर वर्तमान याचिकाकर्ता (आरोपी) को हिरासत में रखने की आवश्यकता है या इसे उचित ठहराया जा सकता है।

14. आरोपी को जमानत देने के उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर प्रथम सूचनाकर्ता ने अपील दायर कर उच्चतम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया और इस प्रकार निर्णय देते हुए सूचनाकर्ता द्वारा दायर अपील को अनुमति दी।

"हमारी राय है कि लागू आदेश स्पष्ट रूप से अस्थिर है। यह सच है कि यह न्यायालय, आमतौर पर, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता है, जिसमें अभियुक्त को जमानत दी जाती है या खारिज कर दी जाती है। हालांकि, यह उच्च न्यायालय के लिए समान रूप से अनिवार्य है कि वह इस बिंदु पर इस न्यायालय के निर्णयों की अधिकता में निर्धारित बुनियादी सिद्धांतों के अनुपालन में विवेकपूर्ण, सावधानीपूर्वक और सख्ती से अपने विवेक का प्रयोग करे। यह अच्छी तरह से तय है कि, अन्य परिस्थितियों के बीच, जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारक हैं:

(i) क्या यह विश्वास करने के लिए कोई प्रथम दृष्टया या उचित आधार है कि अभियुक्त ने

अपराध किया था;

(ii) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;

(iii) दोषसिद्धि की स्थिति में दण्ड की कठोरता;

(iv) जमानत पर रिहा किए जाने पर अभियुक्त के फरार होने अथवा भागने की आशंका;

(v) अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, साधन, स्थिति और परस्थिति;

(vi) अपराध के दोहराए जाने की संभावना;

(vii) साक्षियों के प्रभावित होने की युक्तिसंगत आशंका; और

(viii) जमानत दिए जाने से न्याय के वितरण के विफल होने का खतरा।

15. प्रशांत कुमार सरकार (उपरोक्त) में न्यायालय ने नोट किया कि यह स्पष्ट है कि यदि उच्च न्यायालय इन प्रासंगिक विचारों का विज्ञापन नहीं करता है और यांत्रिक रूप से जमानत देता है, तो उक्त आदेश को अवैध रूप से प्रस्तुत करने वाले दिमाग के गैर-उपयोग के दोष से ग्रस्त होगा।

16. अनिल कुमार यादव बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2018) 12 एस.सी.सी. 129 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ महत्वपूर्ण विचारों को बताया, जिन्हें जमानत आवेदन पर निर्णय लेने में संतुलन में रखा जाना चाहिए, जो निम्नानुसार है:

"जमानत देते समय, प्रासंगिक विचार इस प्रकार हैं: - (i) अपराध की गंभीरता की प्रकृति;

(ii) साक्ष्य और परिस्थितियों का चरित्र जो अभियुक्त के लिए विशिष्ट हैं; और (iii) अभियुक्त के न्याय से भागने की संभावना; (iv) उसकी रिहाई से अभियोजन पक्ष के गवाहों पर क्या प्रभाव पड़ सकता है, समाज पर इसका प्रभाव; और (v) उसके छेड़छाड़ की संभावना। इसमें कोई संदेह नहीं है, यह सूची संपूर्ण नहीं है। जमानत देने या इनकार करने के संबंध में कोई कठोर नियम नहीं हैं, प्रत्येक मामले पर उसके गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। यह मामला हमेशा न्यायालय द्वारा विवेकपूर्ण प्रयोग की मांग करता है।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महिपाल बनाम राजेश कुमार उर्फ पोलिया और अन्य, (2020)2 एस.सी.सी. 118 में उच्च न्यायालय के जमानत देने के आदेश को रद्द करते हुए इस प्रकार टिप्पणी की।

"यह स्पष्ट है कि यदि उच्च न्यायालय इन प्रासंगिक विचारों का विज्ञापन नहीं करता है और यांत्रिक रूप से जमानत देता है, तो उक्त आदेश दिमाग के गैर-आवेदन के दोष से ग्रस्त होगा, जिससे यह अवैध हो जाएगा ..."

पीठ ने कहा, "किसी आरोपी को जमानत पर रिहा करने का प्रावधान व्यक्ति की स्वतंत्रता को छूता है। यही कारण है कि यह न्यायालय आमतौर पर जमानत देने वाले उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता है। हालांकि, जहां जमानत देने के लिए उच्च न्यायालय के विवेक का प्रयोग दिमाग के उचित आवेदन के बिना या इस न्यायालय के निर्देशों के उल्लंघन में किया गया है, जमानत देने वाला ऐसा आदेश रद्द करने योग्य है।

न्यायालय को अन्य बातों के अलावा, एक प्रथम दृष्टया विचार करने की आवश्यकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया था, अपराध की प्रकृति और गंभीरता और अभियुक्त द्वारा किसी भी तरह से मुकदमे की कार्यवाही में बाधा डालने या न्याय के पाठ्यक्रम से बचने की संभावना। जमानत पर रिहा होने का प्रावधान न्याय प्रशासन में सार्वजनिक हित और मामले के लंबित निर्णय के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा के बीच एक उचित संतुलन खींचता है। हालांकि, जमानत का अनुदान कानून की सीमा के भीतर और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित शर्तों के अनुपालन में सुरक्षित किया जाना है। यह इस कारण से है कि एक अदालत को कई कारणों को संतुलित करना चाहिए जो मामले के आधार पर मामले पर जमानत देने के लिए विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग का मार्गदर्शन करते हैं। इस निर्धारण में निहित है कि, रिकॉर्ड के विश्लेषण पर, ऐसा प्रतीत होता है कि यह विश्वास करने का एक प्रथम दृष्टया या उचित कारण है कि अभियुक्त ने अपराध किया था। इस स्तर पर अदालत के लिए निर्णायक निष्कर्ष पर आने के लिए रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की विस्तार से जांच करना प्रासंगिक नहीं है।

18. महिपाल (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय में त्रुटि होने का एक और कारण है। यह न्यायिक अनुशासन का एक अच्छा अभ्यास है कि जमानत देने या अस्वीकार करने के आदेश के लिए उन कारणों को दर्ज किया जाए जो अदालत को अपनी

विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग के लिए तौलते हैं। प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय द्वारा मूल्यांकन अनिवार्य रूप से एक पैराग्राफ में निहित है जो पढ़ता है:

"4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को ध्यान में रखते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और मामले के गुण-दोष पर राय व्यक्त किए बिना, यह अदालत याचिकाकर्ता को जमानत पर छोड़ना उचित मानती है।

19. उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा:

"केवल रिकॉर्ड करना - रिकॉर्ड का अवलोकन करने और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने से एक तर्कसंगत न्यायिक आदेश का उद्देश्य पूरा नहीं होता है। यह खुले न्याय का एक मौलिक आधार है, जिसके लिए हमारी न्यायिक प्रणाली प्रतिबद्ध है, कि जिन कारकों ने अस्वीकृति या जमानत देने में न्यायाधीश के दिमाग में वजन किया है, उन्हें पारित आदेश में दर्ज किया गया है। खुला न्याय इस धारणा पर आधारित है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि निस्संदेह और प्रकट रूप से किया जाना चाहिए। तर्कसंगत निर्णय देने का न्यायाधीशों का कर्तव्य इस प्रतिबद्धता के केंद्र में है। जमानत देने के सवाल आपराधिक अभियोजन से गुजरने वाले व्यक्तियों की स्वतंत्रता के साथ-साथ आपराधिक न्याय प्रणाली के हितों से संबंधित हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अपराध करने वालों को न्याय में बाधा डालने का अवसर नहीं दिया जाता है। न्यायाधीशों का कर्तव्य है कि वे उस आधार

की व्याख्या करें जिसके आधार पर वे निष्कर्ष पर पहुंचे हैं।

20. हाल ही में, जगजीत सिंह और अन्य बनाम आशीष मिश्रा @ मोनू और अन्य, (2022) 9 एस.सी.सी. 321 में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने उन कारकों को दोहराया है जिन पर न्यायालय को धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत देते समय विचार करना चाहिए और साथ ही उन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है जहां सर्वोच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है जब उपरोक्त धारा के तहत आवश्यकताओं के उल्लंघन में जमानत दी गई हो। उच्चतम न्यायालय ने कहा:

"हम शुरुआत में, स्पष्ट कर सकते हैं कि धारा 439 द०प्र०स० के तहत जमानत देने की शक्ति व्यापक आयामों में से एक है। जमानत के लिए आवेदन पर निर्णय लेते समय उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, जैसा भी मामला हो, को पर्याप्त विवेक प्रदान किया जाता है। लेकिन, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा कई मौकों पर माना गया है, यह विवेक निरंकुश नहीं है। इसके विपरीत, सत्र न्यायालय के उच्च न्यायालय को न्यायिक दिमाग के प्रयोग के बाद, अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों का पालन करते हुए, जमानत देनी चाहिए, न कि गुप्त या यांत्रिक तरीके से।

21. 'Y' बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, 2022 लाइव लॉ (SC) 384 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"22. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश गूढ़ हैं, और दिमाग के किसी भी प्रयोग का सुझाव नहीं देता है। जमानत देने या अस्वीकार करने के ऐसे आदेश पारित करने की एक हालिया प्रवृत्ति है, जहां न्यायालय एक सामान्य अवलोकन करते हैं कि "तथ्यों और परिस्थितियों" पर विचार किया गया है। कोई विशिष्ट कारण नहीं बताया गया है जो न्यायालय द्वारा आदेश पारित करने में देरी करता है।

23. इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के बावजूद ऐसी स्थिति जारी है, जिसमें इस न्यायालय ने इस तरह की प्रथा को अस्वीकार कर दिया है।

22. इस न्यायालय ने आरोपी मिंटू उर्फ जितेंद्र को जमानत दे दी है, जो केस अपराध संख्या-08 वर्ष 2019 में शामिल है, जो धारा 302, 201, 376 के साथ 120 बी भ०द०वि० और पॉक्सो एक्ट की धारा 5 और 6 के तहत ग्यारह साल की बच्ची के कथित बलात्कार और हत्या के लिए जमानत दे दी है। उच्च न्यायालय ने जमानत देते हुए निम्नानुसार आयोजित किया"

"समग्र कृत्यों और परिस्थितियों, आरोपों की प्रकृति, अपराध की गंभीरता, सजा की गंभीरता, आरोपी के खिलाफ पेश होने वाले सबूत, पक्षों के अधिवक्ता की प्रस्तुति, दाता राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2018 (3), एस.सी.सी.-2 के मामले में निर्धारित कानून पर विचार करते हुए और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि उपरोक्त सह-अभियुक्त को इस न्यायालय द्वारा जमानत की रियायत के लिए स्वीकार किया गया है,

लेकिन गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, यह न्यायालय इसे जमानत के लिए एक उपयुक्त मामला मानता है।

तदनुसार, जमानत याचिका को स्वीकार किया जाता है।

23. जमानत देने वाले इस न्यायालय के आदेश से असंतुष्ट होने के कारण, प्रथम सूचनादाता इंद्रेश कुमार ने इंद्रेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। और दूसरा, लाइव लॉ (एस.सी.) 610, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपील की अनुमति देते हुए और उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"प्रतिवादी-आरोपी के खिलाफ ग्यारह साल के बच्चे के बलात्कार और नृशंस हत्या का कथित अपराध जघन्य और नृशंस है। अन्य बातों के साथ-साथ बलात्कार के अपराध में फंसने से बचने के लिए बच्चे की हत्या करना और फिर बच्चे को दफनाना और उसके सना हुआ कपड़े और मिट्टी के नीचे अन्य वस्तुओं को साक्ष्य गायब करने और हत्या के अपराध के लिए आशंका से बचने के लिए आचरण कानून की प्रक्रिया से बचने की प्रवृत्ति का संकेत है। यह संभव है कि प्रतिवादी-अभियुक्त कानून की प्रक्रिया से बचने के लिए भाग सकता है।

उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164/161 के तहत गवाहों के आपत्तिजनक बयानों सहित रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री की अनदेखी की है। धारा 161 के तहत बयान साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं, लेकिन गंभीर अपराध के मामले में जमानत देने के

लिए आवेदन में अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामले पर विचार करने में प्रासंगिक हैं।

उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी को जमानत दे दी है, उसके खिलाफ आरोपों की जघन्य प्रकृति, कथित अपराध की गंभीरता और अंतिम दोषसिद्धि की स्थिति में सजा की गंभीरता पर विचार किए बिना, केवल इसलिए कि एक सह-अभियुक्त को भी उच्च न्यायालय द्वारा जमानत दी गई थी।

उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश में गलत तरीके से कहा गया है कि सभी तथ्यों और परिस्थितियों, आरोपों की प्रकृति, अपराध की गंभीरता, सजा की गंभीरता, अभियुक्त के खिलाफ पेश होने वाले सबूतों और दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2018) 2 एस.सी.सी. 22 में निर्धारित कानून पर विचार करते हुए जमानत दी गई है। ऐसा नहीं किया गया है।”

24. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि दाताराम सिंह (उपरोक्त) में टिप्पणियां और निर्देश चेक जारी करने और फिर चेक के भुगतान को रोकने के लिए परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत एक मामले में गिरफ्तारी और लंबे समय तक हिरासत में हिरासत में रखने के संदर्भ में थे। अभियुक्तों को हिरासत में पांच महीने तक हिरासत में रखने के बाद भी पहले निचली अदालत ने और फिर उच्च न्यायालय ने जमानत याचिका खारिज कर दी थी।

25. अजवार बनाम नियाज अहमद और अन्य, आपराधिक अपील संख्या-1722 वर्ष 2022 (एस.एल.पी. (सी.आर.एल.) संख्या-8139 वर्ष

2022 से उत्पन्न) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हुए निम्नानुसार कहा:

"हालांकि, जमानत देने या इनकार करने के आदेश के समर्थन में कारण रिकॉर्ड से उभरने चाहिए और न्यायाधीश द्वारा मामले के तथ्यों पर दिमाग का उचित उपयोग दिखाना चाहिए। एक अति-बोझ डॉकेट सूत्रबद्ध न्याय के लिए कोई औचित्य नहीं है। इसलिए, हम उस तरीके से अस्वीकार करते हैं जिसमें इलाहाबाद में न्यायिक उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश जमानत के लिए आवेदनों से निपट रहे हैं।

प्रस्तुत मामले का तथ्यात्मक विश्लेषण:

26. अब उदाहरण मामले के तथ्यों की ओर मुड़ते हैं। घटना के बाद घायल (मृतक) को दीन दयाल अस्पताल ले जाया गया, लेकिन हालत खराब होने के कारण उसे मेडिकल कॉलेज रेफर कर दिया गया। चूंकि मेडिकल कॉलेज में वेंटिलेटर उपलब्ध नहीं था, इसलिए उन्हें दिल्ली के सफदरजंग अस्पताल में रेफर कर दिया गया, जहां उन्होंने अंतिम सांस ली। शव का परीक्षण फोरेंसिक मेडिसिन एंड टेक्निकोलॉजी विभाग, वर्धमान महावीर मेडिकल कॉलेज और सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली द्वारा किया गया था। डॉक्टर को निम्नलिखित चोटें मिलीं:

(i) 65 सेमी x 05 सेमी x हड्डी गहरे आकार का खून रिसता घाव, दाईं ओर सिर के पार्श्विका क्षेत्र पर लंबवत मौजूद, घाव का निचला सिरा मिडलाइन से 7.0 सेमी दूर और दाएं सुपर-ऑर्बिटल रिज से 9.0 सेमी ऊपर स्थित है।

(ii) दाहिनी ओर खोपड़ी के पार्श्विका क्षेत्र पर दाहिनी ओर 101 सेमी ऊपर और दाहिनी ओर

मध्य रेखा से 20 सेमी दूर स्थित 31 सेमी x 08 सेमी x हड्डी गहरे आकार का खून रिसता घाव।

(iii) मध्य रेखा में निचले होंठ के भीतरी पहलू पर 03 सेमी x 01 सेमी x 01 सेमी आकार का खून रिसता घाव।

(iv) दाहिनी ओर निचले होंठ के भीतरी पहलू पर मौजूद 1.0 सेमी x 1.0 सेमी आकार का नीला संलयन।

(v) दाएं कंधे के शीर्ष के स्तर पर और मध्य रेखा से 171 सेमी दूर स्थित दाएं कंधे के पिछले हिस्से पर मौजूद 51 सेमी x 10 सेमी आकार का लाल भूरे रंग की पपड़ीदार घर्षण। मृतक के सिर की स्थिति के संबंध में, निम्नलिखित टिप्पणियां की गईं:

"खोपड़ी: रक्त का बहिर्वाह, खोपड़ी के दाहिने ललाट-पार्श्विका क्षेत्र पर मौजूद होता है और खोपड़ी के बाईं ओर फैलता है।

टेम्पोरालिस मांसपेशी: सही टेम्पोरालिस मांसपेशी में गुम्मड

खोपड़ी: बाएं फ्रंटो-टेम्पो-पार्श्विका क्षेत्र से क्रैनियोटॉमी घाव के नीचे खोपड़ी की हड्डी का एक टुकड़ा एक वर्ष 13.0 सेमी x 10.0 सेमी से गायब है। बाईं ओर मध्य कपाल फोसा के फर्श पर मौजूद लंबाई 2.2 सेमी का रैखिक फ्रैक्चर। दाहिनी ओर कोरोनल सिवनी के साथ मौजूद लंबाई 5.2 सेमी का सिवनी फ्रैक्चर। सही लौकिक हड्डी पर मौजूद लंबाई 5.1 सेमी का रैखिक फ्रैक्चर। खंडित स्थलों पर मौजूद रक्त का बहिर्वाह।

झिल्ली: शल्य चिकित्सा क्रैनियोटॉमी साइट के नीचे कट जाती है और रक्त के थक्कों से ढके कृत्रिम ग्राफ्ट के साथ बदल दी जाती है।

मस्तिष्क: सबड्यूरल और सबराचोनोइड रक्तसाव द्विपक्षीय मस्तिष्क गोलादर्धों की सतह पर मौजूद होते हैं।

मृत्यु का कारण: मृत्यु कुंद बल की गति से उत्पन्न सिर पर लगी मृत्यु पूर्व मृत्यु के परिणामस्वरूप क्रैनियो-सेरेब्रल क्षति के कारण होती है। सभी चोटें मृत्यु पूर्व प्रकृति की हैं और चोट संख्या-1, चोट संख्या-2 के साथ-साथ सिर पर लगी आंतरिक चोटें प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त हैं।

27. इस मामले में दो घटनाएं हैं। पहली घटना में, आवेदक पीड़िता के घर में घुस गया, जो उसके घर से जुड़ा हुआ है और उसकी शीलता को भंग करने की कोशिश की। दूसरी घटना पहली घटना का उपजा है, जिसमें मृतक को आवेदक और अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों द्वारा पीट-पीटकर मार डाला गया था।

28. पीड़िता, जिसकी मेडिकल जांच रिपोर्ट के अनुसार लगभग 15 वर्ष की आयु है, ने धारा 161 के साथ-साथ 164 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में अपराध का विशद विवरण देते हुए कहा है कि 27.8.2021 को रात लगभग 10 बजे, जब वह अपने घर की छत पर सो रही थी, आरोपी-आवेदक राम सिंह, उसकी छत पर आया, जो उसकी छत से जुड़ा हुआ है और उसकी शीलता को भंग करने के लिए, उसे पकड़ लिया। उसके चीखने पर जब उसके माता-पिता छत पर आए तो आरोपी अपनी छत पर कूद गया। रात होने के कारण वह अपनी रिपोर्ट दर्ज नहीं करा पाई। दिनांक 28.8.2021 को जब वह अपने पिता के साथ अपनी रिपोर्ट दर्ज कराने जा रही थी, तभी आरोपी गुलाब सिंह, राम सिंह (आवेदक),

लेखराज, श्रीमती विमलेश और श्रीमती शांति देवी उसके घर में घुस गए और उसके पिता पर प्राथमिकी दर्ज न करने का दबाव बनाया। जब लड़की के पिता ने आत्मसमर्पण नहीं किया तो सभी आरोपियों ने उन पर लाठी, डंडा और लोहे की रॉड से हमला किया और धमकी देकर मौके से फरार हो गए। मृतक की पत्नी श्रीमती पुष्पा देवी, जो घटना की चश्मदीद गवाह हैं, ने भी अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। जैसा कि शव परीक्षण रिपोर्ट में संकेत दिया गया है, खोपड़ी की हड्डी का एक टुकड़ा बाएं फ्रंटो-टेम्पोपेरिटल क्षेत्र से क्रैनियोटॉमी घाव के नीचे 13.00 सेमी x 10.00 सेमी क्षेत्र में गायब पाया गया था।

29. वर्तमान आवेदक राम सिंह की गिरफ्तारी के बाद, उसने अपना अपराध स्वीकार किया और पुलिस के सामने कहा कि वह पीड़िता के साथ छेड़छाड़ करता था और तत्काल घटना से एक दिन पहले, उसने उसकी शीलता को भंग करने की भी कोशिश की। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने उपरोक्त आरोपी व्यक्तियों के साथ मृतक पर डंडे से हमला किया। मृतक के साथ मारपीट के लिए इस्तेमाल किया गया डंडा भी आवेदक के इशारे पर बरामद किया गया। वर्तमान में, पीड़िता और मृतक की पत्नी के बयानों पर अविश्वास करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है।

समता के मुद्दे पर चर्चा

30. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क यह हैं कि सह-अभियुक्त श्रीमती शांति देवी और श्रीमती विमलेश को इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 01.4.2022 के आदेश के माध्यम से जमानत पर रिहा कर

दिया है और अन्य सह-अभियुक्त गुलाब सिंह और लेखराज को दिनांक 09.9.2022 के आदेश के अनुसार ऊपर उल्लेख किया गया है, आवेदक भी जमानत का हकदार है।

31. मुझे लगता है कि समता और अपराध की गंभीरता के कानून की सर्वव्यापी अभिव्यक्ति के कानूनी नोडस का मुद्दा इस न्यायालय के समक्ष उठा है। इस संबंध में, निम्नलिखित निर्णयों पर चर्चा करना और उन पर विचार करना उचित होगा।

32. सुंदर लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1983 सी.आर.एल.जे (एफबी)(इलाहाबाद उच्च न्यायालय) में, अन्य प्रश्नों के अलावा, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष एक प्रश्न उठा है कि इस तथ्य के कारण कि अन्य सह-अभियुक्तों को जमानत दी गई है, आवेदक को भी केवल समानता के आधार पर जमानत दी जानी चाहिए। विद्वान एकल न्यायाधीश ने विलंब से बचने और जमानत आवेदन के निपटान में तेजी लाने के लिए पूरे मामले को पीठ द्वारा विचार के लिए भेज दिया।

33. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ (उपरोक्त) आवेदक के अधिवक्ता के तर्क से सहमत नहीं थी। चूंकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने पूरे मामले को पूर्ण पीठ द्वारा निर्णय के लिए भेजा था, इसलिए पीठ ने आवेदक के अधिवक्ता को गुण-दोष के आधार पर जमानत याचिका पर बहस करने के लिए बुलाया।

34. अधिवक्ता ने केवल यह बताया कि इस तथ्य के कारण कि अन्य सह-अभियुक्त को

जमानत के लिए भर्ती कराया गया है, आवेदक को भी जमानत दी जानी चाहिए।

35. पूर्ण पीठ ने आवेदन की जमानत अर्जी को खारिज करते हुए इस प्रकार अवधारित किया "अकेले यह तर्क कि इस तथ्य के कारण कि अन्य सह-अभियुक्तों को जमानत के लिए भर्ती कराया गया है, आवेदक को भी जमानत दी जानी चाहिए, आवेदक, जो ट्रिपल मर्डर केस में शामिल है, को जमानत देने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। इसके अलावा, ऐसा प्रतीत होता है कि गुण-दोष के आधार पर इस आवेदन को विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष नहीं उठाया गया था, बल्कि केवल कानूनी आधार पर यह प्रार्थना की गई थी कि आवेदक को जमानत के लिए भर्ती कराया जाए।

36. चंद्र उर्फ चंद्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1998 सी.आर.एल.जे, 2378 में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने आवेदक की ओर से किए गए सबमिशन को ध्यान में रखते हुए कि एक अभियुक्त जमानत का हकदार है यदि इसी तरह के सह-अभियुक्त को जमानत दी गई है, इस न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने बड़ी बेंच द्वारा निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रश्न तैयार किया है:

"इस मामले के कागजात माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष एक बड़ी पीठ का गठन करने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित करने के लिए रखे जाएं कि इस तरह के मामले में क्या किया जाना चाहिए जहां सह-आरोपी को जमानत दी गई है, और क्या प्रस्तुत मामले में (1) आवेदक की जमानत याचिका खारिज कर दी जानी चाहिए, हालांकि जमानत एक सह-

अभियुक्त को दी गई है जिसका मामला उसी पायदान पर है। (2) क्या सह-अभियुक्त को दी गई जमानत रद्द कर दी जानी चाहिए।

37. इसके बाद, माननीय मुख्य न्यायाधीश ने इस मामले को इस न्यायालय की डिवीजन बेंच को भेज दिया है। खंडपीठ के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि यदि किसी अभियुक्त को जमानत दी जाती है, तो उसी तरह के सह-अभियुक्त को भी समानता के सिद्धांत पर जमानत दी जानी चाहिए।

38. डिवीजन बेंच ने आवेदक के अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण से प्रभावित नहीं किया और निम्नानुसार आयोजित किया:

"1. यदि किसी अभियुक्त को जमानत देने का आदेश कारणों से समर्थित नहीं है, तो वह समानता के आधार पर सह-अभियुक्त को जमानत देने का आधार नहीं बन सकता है।

"2. एक न्यायाधीश किसी अभियुक्त को समानता के आधार पर जमानत देने के लिए बाध्य नहीं है, भले ही समान रूप से रखे गए सह-अभियुक्त को जमानत देने के आदेश में कारण हों, यदि वह अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत के उल्लंघन में पारित किया गया है और जमानत देने के लिए आवश्यक प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखने की उपेक्षा करता है।

39. दीपक यादव (उपरोक्त) में हरजीत यादव, सुशील कुमार यादव और दो अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ इस आरोप के साथ पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी कि आरोपी व्यक्तियों ने मृतक को मारने के सामान्य इरादे से गोली चलाई थी। गोली उनके दाहिने गाल पर लगी

और दूसरी तरफ से बाहर निकल गई, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गए। उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया जहां उसने अपनी पत्नी को बताया कि आरोपी हरजीत यादव और सुशील यादव ने उसे गोली मार दी और उनके साथ दो अन्य लोग भी थे। मृतक द्वारा दिए गए बयान को श्री महेश कुमार चौरसिया, एस.एस.पी./ए.सी.पी, लखनऊ और श्री अशोक कुमार सिंह, एस.आई/प्रथम विवेचनाधिकारी द्वारा नोट किया गया था। आरोपी/हरजीत यादव को गिरफ्तार कर लिया गया और उसके पास से एक देसी पिस्तौल और दो जिंदा कारतूस बरामद किए गए। पीड़िता की मौत के बाद धारा 302 भ०द०वि० के तहत केस को केस में बदल दिया गया। आरोपी हरजीत यादव द्वारा दायर जमानत याचिका को सत्र न्यायाधीश, लखनऊ ने इस आधार पर खारिज कर दिया कि उसका नाम मृतक द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर लिया गया है।

40. सत्र न्यायालय से जमानत प्राप्त करने में असफल होने के कारण, अभियुक्त-हरजीत यादव ने जमानत देने के लिए उच्च न्यायालय का रुख किया, जहां एक याचिका ली गई है कि सह-अभियुक्त सुशील कुमार यादव को जमानत आवेदन संख्या-8501 वर्ष 2021 में उच्च न्यायालय द्वारा 18.10.2021 को जमानत दे दी गई है और आरोपी/हरजीत यादव का मामला समान आधार पर है, जिससे वह समानता के आधार पर जमानत का हकदार बन गया है। जमानत आवेदन को दिनांक 22.10.2021 के आदेश द्वारा अनुमति

दी गई थी। निर्णय का ऑपरेटिव भाग निम्नानुसार पढ़ता है:

"अपराध की प्रकृति, पक्षों की ओर से दी गई दलीलों, अभियुक्तों की जटिलता के संबंध में रिकॉर्ड पर सबूत, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के बड़े जनादेश और दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य (2018) 3 एस.सी.सी. 22 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को ध्यान में रखते हुए और मामले के गुणों पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदक ने जमानत के लिए मामला बनाया है। जमानत अर्जी मंजूर की जाती है।"

41. नियमित जमानत के निर्णय के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत पर निर्णयों की अधिकता पर विचार करने के बाद, दीपक यादव (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

26. "जमानत देने या इनकार करने के लिए तर्क देने के महत्व को कभी कम नहीं किया जा सकता है। प्रथम दृष्टया कारणों को इंगित करने की आवश्यकता है, विशेष रूप से जमानत देने या इनकार करने के मामलों में जहां आरोपी पर गंभीर अपराध का आरोप लगाया गया है। किसी विशेष मामले में ठोस तर्क एक आश्वासन है कि निर्णय निर्माता द्वारा सभी प्रासंगिक आधारों पर विचार करने और बाहरी विचारों की अवहेलना करने के बाद विवेक का प्रयोग किया गया है।"

xxxxxxx

"39. प्रतिवादी संख्या-2/अभियुक्त को केवल

समानता के आधार पर जमानत देना दर्शाता है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिमाग के गैर-उपयोग के दोष से ग्रस्त है जो इसे अस्थिर/ना-पुख्ता बनाता है। उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या-2/आरोपी के आपराधिक इतिहास, अपराध की प्रकृति, उपलब्ध भौतिक साक्ष्य, उक्त अपराध में प्रतिवादी संख्या-2/आरोपी की संलिप्तता और उसके कब्जे से हथियार की बरामदगी पर विचार नहीं किया है।

42. बृजमणि देवी बनाम पप्पू कुमार (2022) 4 एस.सी.सी. 497 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बिना कोई कारण बताए जमानत आवेदन की अनुमति देने की प्रथा को निम्नानुसार देखते हुए खारिज कर दिया: "इस प्रकार, जबकि विस्तृत कारणों को जमानत देने के लिए निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है, उसी समय तर्क रहित या प्रासंगिक कारणों से वंचित आदेश के परिणामस्वरूप जमानत नहीं दी जा सकती है। यह केवल एक अस्पष्टवादी आदेश होगा जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का एक उदाहरण है। ऐसे मामले में अभियोजन पक्ष या सूचनादाता को उच्च मंच के समक्ष आदेश का उल्लंघन करने का अधिकार है।

43. अब इस न्यायालय के समक्ष विचार का मुद्दा यह है कि क्या सह-अभियुक्तों को जमानत देते समय इस न्यायालय की समन्वय पीठों ने अपराध की गंभीरता, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों को ध्यान में रखा है और जमानत देने का कोई कारण बताया है।

44. इस प्रकरण में प्रथम सूचना प्रतिवेदन में गुलाब सिंह, राम सिंह (आवेदक), लेखराज, श्रीमती विमलेश एवं श्रीमती शांति देवी नामजद किया गया है। उपरोक्त पांच आरोपियों में से चार आरोपियों श्रीमती शांति देवी, श्रीमती विमलेश, गुलाब सिंह और लेखराज को इस न्यायालय की दो अलग-अलग समन्वय पीठों द्वारा जमानत दे दी गई है। दिनांक 01.4.2022 के आदेश में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने पक्षकारों की प्रस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए श्रीमती शांति देवी और श्रीमती विमलेश को जमानत देते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया:

"दोनों पक्षों के वकीलों की दलीलों को सुनने के बाद, दोषसिद्धि के मामले में आरोप की प्रकृति और सजा की गंभीरता, साक्ष्य का समर्थन करने की प्रकृति, आरोप के समर्थन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि, सजा के सुधारात्मक सिद्धांत और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के बड़े जनादेश और दाताराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर विचार करते हुए, (2018)3 एस.सी.सी. 22, मामले की योग्यता पर कोई विचार व्यक्त किए बिना, मुझे लगता है कि यह जमानत का मामला है।

45. सह-अभियुक्त गुलाब सिंह और लेखराज को इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ ने दिनांक 09.9.2022 के आदेश के तहत केवल सह-अभियुक्त श्रीमती शांति देवी और श्रीमती विमलेश के साथ समानता के आधार पर जमानत दी है। न्यायालय ने निम्नानुसार नोट किया:

"मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों और जमानत पर समान रूप से रखे गए सह-अभियुक्तों के विस्तार को ध्यान में रखते हुए, मामले की योग्यता पर कोई राय व्यक्त किए बिना, आवेदक जमानत के हकदार हैं।"

46. जमानत देने वाले दोनों आदेशों में, इस न्यायालय की समन्वय पीठों द्वारा कोई कारण नहीं बताया गया है। यह बहुत गंभीर मामला है। सबसे पहले आवेदक ने एक नाबालिग लड़की की शीलता को भंग करने की कोशिश की और जब पीड़िता के पिता पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज करने जा रहे थे, तो उन्हें पीट-पीटकर मार डाला गया। पीड़िता सहित गवाहों, जो मृतक की बेटी हैं और श्रीमती पुष्पा देवी, जो मृतक की पत्नी हैं, ने अभियोजन पक्ष के मामले का पूरा समर्थन किया है। अपराध करने में प्रयुक्त डंडा भी आवेदक की निशानदेही पर बरामद कर लिया गया।

अनुच्छेद 14 के बारे में विश्लेषण

47. अब आवेदक के अधिवक्ता का दूसरा तर्क यह है कि समानता के आधार पर समान रूप से रखे गए सह-अभियुक्त को जमानत नहीं देना भेदभाव होगा और संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत गारंटीकृत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा। नरेश बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1 में माननीय उच्चतम न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय से इस मुद्दे को पहले ही विराम दिया जा चुका है, जिसमें

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी थी:

"यह स्पष्ट है कि इस मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि यह सुझाव देना अनुचित होगा कि न्यायिक न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला बताया जा सकता है। यह सही या गलत निर्णय हो सकता है और यदि यह गलत निर्णय है तो इसे कानून द्वारा अनुमति के अनुसार अपील या पुनरीक्षण द्वारा ठीक किया जा सकता है, लेकिन इसे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के लिए नहीं कहा जा सकता है।"

48. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने और मामले की पूरी तरह से जांच करने के बाद, मैंने पाया कि फॉरेंसिक मेडिसिन एंड टॉक्सिकोलॉजी विभाग वर्धमान महावीर मेडिकल कॉलेज और सफदरजंग अस्पताल, नई दिल्ली द्वारा तैयार किए गए शव परीक्षण के अनुसार, जैसा कि ऊपर वर्णित है, हमला इतना शक्तिशाली था कि खोपड़ी की हड्डी का एक टुकड़ा बाएं फ्रंटपोरो पार्श्विका क्षेत्र से क्रैनलोटॉमी घाव के नीचे गायब पाया गया था। बाईं ओर मध्य कपाल फोसा के फर्श पर मौजूद लंबाई 2.2 सेमी का रैखिक फ्रैक्चर लंबाई 5.2 सेमी का सिवनी फ्रैक्चर दाईं ओर कोरोनल सिवनी के साथ मौजूद है। लंबाई का रैखिक फ्रैक्चर 5.1 सेमी सही लौकिक हड्डी पर मौजूद है। खंडित स्थलों पर मौजूद रक्त का बहिर्वाह। मैंने यह भी पाया कि अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि नाबालिग पीड़िता के धारा

164 द०प्र०स० के तहत बयान के साथ-साथ मृतक के शरीर पर पाई गई चोटों से भी होती है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। जहां तक आवेदक के अधिवक्ता की इस दलील का संबंध है कि अन्य सह-अभियुक्तों को जमानत दे दी गई है, मुझे विद्वान राज्य के अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण में सार मिलता है कि जमानत आदेश देते समय न तो मामले के तथ्यों पर विचार किया गया है और न ही सह-अभियुक्त को जमानत देने में कोई कारण बताया गया है। मुझे यह भी लगता है कि वर्तमान आवेदक का मामला अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों के मामले से अलग है क्योंकि नाबालिग पीड़िता की शीलता को भंग करने के संबंध में उनके खिलाफ कोई आरोप नहीं था जो केवल वर्तमान आवेदक को सौंपा गया है और आगे की घटना, जो 28.08.2021 को हुई थी, आवेदक द्वारा 27.08.2021 रात में किए गए कृत्य का परिणाम थी। इसके अलावा घटना में इस्तेमाल किया गया डंडा भी अपीलकर्ता के इशारे पर बरामद किया गया था।

49. मौखिक चर्चा के मद्देनजर, मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के साथ-साथ पक्षों की ओर से प्रस्तुत प्रस्तुतियों, अपराध की गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका, चोटों की प्रकृति और सजा की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, मुझे आवेदक को जमानत पर रिहा करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

50. तदनुसार, जमानत आवेदन खारिज किया जाता है।

51. हालांकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियां केवल जमानत आवेदन के निपटान तक ही सीमित थीं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति नहीं मानी जा सकती है।

(2023) 4 ILRA 860

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-प्रथम,

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या

223/2023

श्रीमती ज़ैनब फातिमा @ रूबी एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अभिषेक कुमार

मिश्रा, श्री खान सौलत हनीफ, श्री रविंद्र शर्मा,

श्री शादाब अली, श्री विजय मिश्रा, श्री डी.एस.

मिश्रा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

सिविल कानून-भारत का संविधान, 1950-

अनुच्छेद 21 और 226-बंदी प्रत्यक्षीकरण

याचिका दायर कर प्रतिवादियों को माननीय

न्यायालय के समक्ष बंदी प्रत्यक्षीकरण प्रस्तुत

करने और उन्हें तत्काल रिहा करने का निर्देश

देने की मांग की गई है-याचिकाकर्ताओं ने पहले

ही धारा 151 सीआरपीसी के प्रावधानों का

आह्वान किया है और उन्हें व्यक्तिगत बांड पर

रिहा किया गया है जो "कानून द्वारा स्थापित

प्रक्रिया" है- याचिकाकर्ताओं को व्यक्तिगत बांड

पर रिहा करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया में कभी भी कोई दोष नहीं बताया गया है- याचिकाकर्ता किसी भी निकाय या किसी प्राधिकरण या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नियंत्रित नहीं हैं जिसके विरुद्ध उन्हें प्रस्तुत के लिए निर्देश जारी किया जा सकता है-बंदी प्रत्यक्षीकरण का रिट उस व्यक्ति द्वारा स्वीकार्य नहीं होगा, जिसने कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया अर्थात धारा 151 सीआरपीसी के अनुसार अपने स्वयं के वादे पर खुद को रिहा कराया है, यह दावा करने के लिए कि उसे बंदी प्रत्यक्षीकरण का रिट जारी करके व्यक्तिगत बंध में किए गए अपने वादे से मुक्त किया जाएगा। (अनुच्छेद 18-26, 36-38)

रिट याचिका निरस्त (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. रचना एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य एआईआर 2021 (इलाहाबाद) 109 (एफबी)
2. मार्केडेय और अन्य बनाम राज्य एवं अन्य 1976 (74) एएलजे 88
3. बाल मुकुंद जयसवाल बनाम अधीक्षक, जिला जेल, वाराणसी एवं अन्य 1998 ए.एल.जे. 1428
4. निरंजन सिंह और अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य (1980) 2 एससीसी 559
5. चन्द्र देव राम यादव बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य 2014 (1) एएलजे 210

6. उदयभान शुकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1998 ए.एल.जे. 2362
7. संदल सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट एवं अधीक्षक, देहरादून एआईआर 1934 इलाहाबाद 148
8. जहीर अहमद बनाम गंगा प्रसाद, ए.एस.डी.एम., बलिया एवं अन्य एआईआर 1963 इलाहाबाद 4
9. राम मनोहर लोहिया एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य एआईआर 1968 इलाहाबाद 100
10. निर्मल जीत कौर बनाम एम.पी. राज्य एवं अन्य (2004) 7 एससीसी 558
11. सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2005) 81 एससीसी 608
12. उदयभान शुकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 1998 ए.एल.जे. 2362
13. मधु लिमये 1969 (1) एससीसी 292 के वाद में
14. भीम सिंह, विधायक बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य एवं अन्य एआईआर 1986 एससी 494
15. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1980) 3 एससीसी 488
16. केशव सिंह के वाद में 1965 एआईआर (सभी) 148
17. गृह सचिव (कारागार) व अन्य बनाम एच. निलोफर निशा (2020) 14 एससीसी 161
18. सपमाविया बनाम डिप्टी कमिश्नर, आइजल, 1970 (2) एससीसी 399

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डीएस मिश्रा को सुना गया, उनकी सहायता विद्वान अधिवक्ताओं श्री अभिषेक कुमार मिश्रा, श्री रवींद्र शर्मा, श्री सादाब अली, श्री रवींद्र शर्मा और श्री विजय मिश्रा ने की और राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता-। श्री एके सैंड द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान सहायक शासकीय अधिवक्ता श्री मनीष गोयल को सुना।
2. हमने प्रारंभिक आपत्ति पर पक्षों के अधिवक्ता को विस्तार से सुना है कि वर्तमान याचिका अब सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि स्वीकार्य रूप से कि याचिकाकर्ताओं को व्यक्तिगत बांड पर रिहा कर दिया गया है और वे अवैध हिरासत में नहीं हैं और ऐसी स्थिति में याचिका निरर्थक हो गई है।
3. इसके विपरीत, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस पर विवाद किया और प्रस्तुत किया कि भले ही याचिकाकर्ता शारीरिक हिरासत में नहीं हैं, फिर भी याचिका विचार योग्य है और इसे निष्फल नहीं किया गया है क्योंकि उनके द्वारा उनकी रिहाई के लिए निष्पादित व्यक्तिगत बांड के कारण उनकी गतिविधियां प्रतिबंधित हैं।
4. वर्तमान याचिका प्रतिवादियों को इस माननीय न्यायालय के समक्ष बंदी को पेश करने और उन्हें तुरंत स्वतंत्र करने का निर्देश देने की मांग करते हुए दायर की गई है।
5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 और 3 मकान नंबर 52, भवानी नगर, हापुड रोड, मेरठ के स्थायी निवासी हैं और जो याचिकाकर्ता संख्या 1 के करीबी रिश्तेदार होने के नाते जिला मेरठ से याचिकाकर्ता संख्या 1 के घर पर आये थे और दिनांक 1.3.2023 को याचिकाकर्ता सं. 2 और 3 याचिकाकर्ता संख्या 1 के घर पर मौजूद थे; याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 गृहिणियां हैं और याचिकाकर्ता नं. 3 याचिकाकर्ता संख्या 2 की नाबालिग बेटी है; फिलहाल याचिकाकर्ता नं. 1 के पति अर्थात्, खालिद अजीम उर्फ अशरफ (पूर्व विधायक) जिला जेल-द्वितीय, बरेली की जेल में है और इस लिए याचिकाकर्ता संख्या 1 ग्राम हटवा, थाना पुरामुफ्ती, जिला प्रयागराज में अपने चार नाबालिग बच्चों के साथ अपने मायके/माता-पिता के घर पर रह रही है; दिनांक 1.3.2023 को याचिकाकर्ता अपने घर पर मौजूद थे और उक्त दिन लगभग 01:00 बजे पुलिस स्टेशन पुरामुफ्ती और धूमनगंज के पुलिस कर्मियों ने स्पेशल टास्क फोर्स और क्राइम ब्रांच टीम के साथ याचिकाकर्ता संख्या 1 के पैतृक घर जहां सभी याचिकाकर्ता निवास कर रहे थे, पर घर की सामने की दीवार और मुख्य दरवाजा तोड़कर छापा मारा, जबकि घर में कोई पुरुष मौजूद नहीं था। पुलिस कर्मियों ने याचिकाकर्ता नंबर 1 के माथे पर राइफल तान दी, और आधी रात को याचिकाकर्ताओं और घर के अन्य परिवार के सदस्यों को डंडों और लाठियों से पीटा और बच्चों को भी परेशान किया। याचिकाकर्ता नं. 1 के चार नाबालिग बच्चे थे जो अपनी माँ को पुलिस द्वारा ले जाने पर रो रहे थे; थाना पुरामुफ्ती और धूमनगंज के

पुलिसकर्मी याची संख्या 1 के पैतृक घर बिना महिला पुलिस के आए, और घर की दीवार और दरवाजे तोड़कर याचिकाकर्ताओं के घर में जबरन घुस गए और रात में बिना कोई समन, वारंट या कोई अन्य दस्तावेज दिखाए याचिकाकर्ताओं को जबरन/अवैध रूप से अपनी अवैध हिरासत में ले गए; पुलिस अधिकारियों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46(4) के उल्लंघन में याचिकाकर्ताओं को महिला होने पर गिरफ्तार किया; पुरामुफ्ती और धूमनगंज थाने के पुलिस कर्मियों ने याचिकाकर्ताओं को उनकी गिरफ्तारी/कारावास का कारण बताए बिना जबरन अपनी अवैध हिरासत में ले लिया; याचिकाकर्ता निर्दोष महिला हैं और वे जिला प्रयागराज और जिला मेरठ के किसी भी पुलिस थाने में किसी भी मामले में शामिल नहीं हैं; याचिकाकर्ता किसी भी आपराधिक मामले में वांछित नहीं हैं; पुलिस थाने पुरामुफ्ती और धूमनगंज के पुलिस कर्मियों ने याचिकाकर्ताओं को बिना किसी अधिकार के अवैध रूप से हिरासत में लिया। पुलिस ने 1.3.2023 से याचिकाकर्ताओं को अवैध रूप से हिरासत में लिया और 3.3.2023 तक (यानि याचिका दायर करने की तारीख तक) पुलिस ने याचिकाकर्ताओं को किसी भी मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया; परिजन याचिकाकर्ताओं को एक थाने से दूसरे थाने तक ढूंढ रहे हैं लेकिन याचिकाकर्ताओं के बारे में कोई कुछ नहीं बता रहा है; 2.3.2023 को सभी समाचार पत्रों में पुलिस द्वारा याचिकाकर्ताओं की गिरफ्तारी के संबंध में समाचार प्रकाशित किये गये और पुलिस अधिकारियों ने स्वीकार किया कि उन्होंने 1.3.2023 को याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया है, और तब से

याचिकाकर्ता उनकी हिरासत में हैं और पुलिस अधिकारी भी बयान दे रहे हैं कि वे याचिकाकर्ताओं से 24.2.2023 को हुई घटना के संबंध में पूछताछ कर रहे हैं जिसके संबंध में 25.2.2023 को प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जो कि मुकदमा अपराध संख्या 114 वर्ष 2023 अंतर्गत धारा 147, 148, 149, 302, 307, 506, 34, 120 बी भा. दं.सं., धारा 3 विस्फोटक अधिनियम और धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम पुलिस थाना धूमनगंज, जिला प्रयागराज में दर्ज है; याचिकाकर्ताओं को उपरोक्त प्राथमिकी से कोई सरोकार नहीं है, उपरोक्त प्राथमिकी में याचिकाकर्ताओं का नाम नहीं है, हालांकि, याचिकाकर्ता संख्या 1 के पति और याचिकाकर्ता संख्या 2 के भाई को आरोपी बनाया गया है और याचिकाकर्ता के पिता पर लगाए गए आरोप आपराधिक साजिश के हैं; पुलिस की मंशा साफ नहीं है और याचिकाकर्ताओं के साथ किसी भी समय कोई भी अनहोनी हो सकती है।

6. पूरक हलफनामे के आधार पर यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 2.3.2023 को मंसूर अहमद (याचिकाकर्ता संख्या 1 के पिता) ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 97 और 98 के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के समक्ष एक आवेदन दायर किया था, जिस पर पुलिस थाना धूमनगंज से रिपोर्ट मांगी गई थी। और दिनांक 3.3.2023 को हेड मोहरीर, पुलिस थाना धूमनगंज ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उल्लेख किया गया कि श्रीमती जैनब फातिमा, श्रीमती आयशा नूरी और कुमारी उन्जिला नूरी थाने में नहीं हैं। संतुष्ट न होने

पर और श्रीमती जैनब फातिमा और अन्य के अधिवक्ता की आपत्ति पर विद्वान सीजेएम, इलाहाबाद ने फिर से थाना प्रभारी, धूमनगंज को पैराग्राफ के अनुसार उत्तर प्रस्तुत करने का निर्देश दिया और उसके बाद दिनांक 4.3.2023 को थाना प्रभारी धूमनगंज ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उल्लेख किया गया कि श्रीमती जैनब फातिमा, श्रीमती आयशा नूरी और कु. उनजिला नूरी को थाना पुरामुफती की पुलिस ने धारा 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत चालान कर दिया है और उन्हें दिनांक 3.3.2023 को निजी मुचलके पर रिहा कर दिया गया है।

7. इस प्रकार, स्वीकृत स्थिति यह है कि आज की तारीख में बंदी शारीरिक हिरासत में नहीं हैं।

8. राज्य-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री मनीष गोयल द्वारा एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि याचिकाकर्ता निश्चित रूप से कैद/हिरासत में नहीं हैं, इसलिए, वर्तमान याचिका अब सुनवाई योग्य नहीं है और/या निरर्थक हो गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि स्वीकार्यतः दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 151 का प्रावधान लागू किया गया था और याचिकाकर्ताओं को उनके स्वयं के वचन पर व्यक्तिगत बांड पर रिहा कर दिया गया है और उन पर कोई रोक नहीं लगाई गई है।

9. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने रचना और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य एआईआर 2021 (इलाहाबाद) 109 (एफबी),

मार्कंडेय और अन्य बनाम राज्य और अन्य 1976 (74) एएलजे 88 , बाल मुकुंद जयसवाल बनाम अधीक्षक, जिला जेल, वाराणसी और अन्य 1998 एएलजे 1428, निरंजन सिंह और अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य (1980) 2 एससीसी 559, चंद्र देव राम यादव बनाम यूपी राज्य और अन्य 2014 (1)) एएलजे 210 और उदयभान शुकी बनाम यूपी राज्य और अन्य 1998 एएलजे 2362 के मामलों में निर्णयों का आधार लिया है।

10. प्रारंभिक आपत्ति का जवाब देते हुए, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डीएस मिश्रा ने प्रस्तुत किया कि भले ही याचिकाकर्ता शारीरिक हिरासत में नहीं हैं, लेकिन चूंकि उन्हें व्यक्तिगत बांड पर रिहा किया गया है, इसलिए, वे स्वतंत्र रूप से घूमने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं, इसलिए व्यक्तिगत बांड में लगाई गई शर्तों के कारण उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता अभी भी नियंत्रित है। इसलिए, निवेदन यह है कि वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण अभी भी कायम रखने योग्य है और निष्फल नहीं हुआ है।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने संदल सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट और अधीक्षक, देहरादून एआईआर 1934 इलाहाबाद 148, जहीर अहमद बनाम गंगा प्रसाद, एएसडीएम, बलिया और अन्य एआईआर 1963 इलाहाबाद 4, राम मनोहर लोहिया एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य एआईआर 1968 इलाहाबाद 100, निर्मल जीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य (2004) 7 एससीसी 558, सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य

एवं अन्य (2005) 81 एससीसी 608, उदयभान शुकी बनाम यूपी राज्य और अन्य 1998 एएलजे 2362, मधु लिमये 1969 (1) एससीसी 292 के मामले में, भीम सिंह, एमएलए बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य एआईआर 1986 एससी 494, सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1980) 3 एससीसी 488 और केशव सिंह 1965 एआईआर (सभी) 148 के मामलों के निर्णयों का आधार लिया है।

12. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डीएस मिश्रा, मुख्य रूप से जहीर अहमद (सुप्रा) और उदयभान शुकी (सुप्रा) से अपने तर्कों को बल देते हैं। जहीर अहमद (सुप्रा) के प्रासंगिक पैराग्राफ 4, 7 और 19 इस प्रकार उद्धृत हैं: -

"4. राज्य की ओर से विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री त्रिपाठी द्वारा एक प्रारंभिक आपत्ति ली गई है कि याचिकाकर्ता को जमानत मिल गई है और जेल की हिरासत से बाहर होने के कारण, वह वर्तमान याचिका को बरकरार नहीं रख सकता है. राज्य की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है, कि बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए रिट जारी होने से पहले, जिस व्यक्ति को आजाद करने की मांग की गई है, वह वास्तविक शारीरिक हिरासत में होना चाहिए और चूँकि याचिकाकर्ता को जमानत दे दी गई है और उसने इसका लाभ उठाया है, वह न तो

हिरासत में है और न ही उसकी गतिविधियों पर रोक लगाई गई है. जिसके परिणामस्वरूप बंदी प्रत्यक्षीकरण की कोई रिट जारी नहीं की जा सकती है। यह सामान्य आधार है कि याचिकाकर्ता को जमानत दे दी गई है और वह जमानतदारों के संरक्षण में है, यदि जमानत पाने वाले के संबंध में संरक्षण शब्द का उपयोग किया जाता है और वह अब जेल की हिरासत में नहीं है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि विचाराधीन प्रश्न कठिन है और विवाद से मुक्त नहीं है। भले ही मामला प्रथम सिद्धांत पर तय किया गया हो, तो यह मानने की प्रवृत्ति होगी कि किसी व्यक्ति को जमानत दे दी गई है, इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे रिहा कर दिया गया है। यह सच है कि जमानत दिए जाने के बाद, वह अब जेल में होने के अर्थ में शारीरिक हिरासत में नहीं है, लेकिन यह कहना मुश्किल है कि उसे कार्य की स्वतंत्रता है या यहां तक कि आवागमन की पूर्ण स्वतंत्रता है। जमानत बांड में, जमानतदार यह जरूर कहते हैं कि वे उसे न्यायालय द्वारा निर्धारित तिथि पर पेश करेंगे। नियत तिथि पर उसे पेश करने में विफलता के कारण न केवल जमानत बांड जब्त हो जाएगा, बल्कि जमानत रद्द हो जाएगी और व्यक्ति को जेल में डाल दिया जाएगा। जमानत प्राप्त व्यक्ति का आवागमन न्यायालय के निर्देशानुसार आधारित

होता है, और न्यायालय के पास हमेशा किसी भी समय जमानत रद्द करने की शक्ति होती है। इन परिस्थितियों में, हमारे लिए यह विश्वास करना या यह मानना मुश्किल है, कि मात्र जमानत दिया जाना इस परिणाम तक पहुंचाएगा कि याचिकाकर्ता को आजाद कर दिया गया है, और मामला अब बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के अधीन नहीं है। शब्दों और वाक्यांशों में, खंड 19, पृष्ठ, 6 पर इस बिंदु पर कानून निम्नलिखित शब्दों में निर्दिष्ट किया गया है:

"बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका" वह उपाय है, जो कानून व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नागरिक अधिकार को लागू करने के लिए देता है..... बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका स्वतंत्रता की याचिका है, और इसका मूल उद्देश्य अवैध रूप से या जबरन कैद किए गए व्यक्तियों की रिहाई के लिए था, लेकिन जब यह दिखा दिया गया कि ऐसी हिरासत अदालत की प्रक्रिया के आधार पर थी, तो रिट को मंजूरी नहीं दी गई, जब तक कि कार्यवाही या निर्णय का समर्थन करने वाली प्रक्रिया पूर्णतया शून्य नहीं थी..... एक गिरफ्तार, लेकिन जमानत पर रिहा, वह "बंदी प्रत्यक्षीकरण" की रिट का उसी तरह हकदार है जैसे कि गिरफ्तारी के साथ वास्तविक कारावास भी हो, रिट का उद्देश्य व्यक्ति को बिना किसी प्रश्न के कहीं भी आने जाने के उसके अधिकार पर रोक लगाकर किसी

भी उद्देश्य के लिए उसे हिरासत में लेने की प्रक्रिया जारी करने वाले न्यायालय या अन्य निकाय के अधिकार का परीक्षण करना है।"

कानून का यह कथन मैकेंज़ी बनाम बैरेट, 141 एफ. 964, पेज 966 पर आधारित है। हालाँकि, मामले की रिपोर्ट हमारे सामने पेश नहीं की गई है।

7. फेरिस द्वारा असाधारण कानूनी उपचारों में निहित कानून के कथन से यह प्रतीत होता है कि वास्तविक शारीरिक हिरासत आवश्यक नहीं है और भले ही व्यक्ति, उस समय आत्मसमर्पण करने के लिए दूसरे के आदेशों के अधीन हो जब वह चाहता है कि वह आत्मसमर्पण करे, तब बंदी प्रत्यक्षीकरण का रिट लागू होगा।

19. हमने पहले ही दंड प्रक्रिया संहिता में जमानत और जमानत पर रिहाई से संबंधित विभिन्न प्रावधानों की जांच की है और उनसे यह स्पष्ट है कि जहां जमानत पर रिहा किया गया व्यक्ति शारीरिक कारावास में नहीं है, फिर भी वह न्यायालय के नियंत्रण में रहता है, और काल्पनिक रूप से न्यायालय की हिरासत में रहता है, और वह व्यक्ति, जो उसके जमानतदार हैं, केवल न्यायालय के एजेंट हैं। इन कारणों से हमें ऐसा प्रतीत होता है कि एक व्यक्ति जिसे

अस्थायी रूप से जमानत पर छोड़ दिया गया है लेकिन अभी भी मुकदमा चल रहा है, वह बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। इसलिए, हम विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा की गई प्रारंभिक आपत्ति को खारिज कर देते हैं।"

(जोर दिया गया)

13. त्वरित संदर्भ के लिए, **उदयभान शुकी (सुप्रा)** के पैराग्राफ 8 से 12 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

8. हम सब प्रार्थनाओं को एक-एक करके लेंगे, और उस प्रकाश में ऐसी प्रार्थनाओं के संबंध में प्रासंगिक तथ्यों का उल्लेख करेंगे। हमारे सामने की गई पहली प्रार्थना याचिकाकर्ता को अदालत के समक्ष पेश करने और उसकी तत्काल रिहाई के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट से संबंधित है। निर्विवाद रूप से, आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया गया और यह प्रश्न नहीं उठता है कि उसे शारीरिक रूप से हिरासत से रिहा किया जा रहा है। हालांकि, याचिकाकर्ता के वकील का कहना है कि उसकी हिरासत अभी भी जारी है क्योंकि उसे जमानत पर रिहा किया गया था और वह स्वतंत्र विचरण के लिए मुक्त नहीं है। इस संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जहीर अहमद बनाम गंगा प्रसाद, एएसडीएम बलिया

एआईआर 1963 सभी 4 के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले का आधार लिया, यह इस उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा देखा गया था कि यह तथ्य कि किसी व्यक्ति को जमानत दे दी गई थी, इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे रिहा कर दिया गया है। यह सच है कि जमानत मंजूर होने के बाद, वह अब जेल में होने के अर्थ में शारीरिक हिरासत में नहीं था, लेकिन यह कहना मुश्किल था कि उसे कार्रवाई की स्वतंत्रता थी या यहां तक कि आवागमन की पूर्ण स्वतंत्रता थी क्योंकि वह न्यायालय के नियंत्रण में ही रहा और काल्पनिक रूप से न्यायालय की हिरासत में ही रहा। न्यायालय ने इस तर्क पर यह माना कि यहां तक कि एक व्यक्ति जिसे अस्थायी रूप से जमानत पर रिहा कर दिया गया था, लेकिन अभी भी मुकदमा चल रहा था, वह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए आवेदन प्रस्तुत करेगा।

9. जहीर अहमद ने उस मामले में कुछ पृष्ठभूमियों के तहत उसे आज्ञाद करने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए आवेदन किया था। पुलिस के एक एसआई द्वारा जहीर अहमद के खिलाफ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 के तहत कार्रवाई के लिए एसडीएम को रिपोर्ट दी गई थी।

मामला अतिरिक्त एसडीएम को स्थानांतरित कर दिया गया था। अतिरिक्त एसडीएम द्वारा लिखित में कोई आदेश नहीं दिया गया था जिसमें प्राप्त जानकारी का सार, निष्पादित किए जाने वाले बांड की राशि, वह अवधि जिसके लिए इसे लागू किया जाना था और कानून के द्वारा प्रतिपादित आवश्यक जमानतदारों की संख्या, चरित्र और वर्ग, आगे के लिए निश्चित किया गया हो। उन्होंने केवल गिरफ्तारी के वारंट के साथ नोटिस जारी किया था और इस प्रकार, यह तर्क दिया गया था कि यह आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 112 के तहत नहीं था और प्रारंभिक आपत्ति पर डिवीजन बेंच ने राय दी थी कि हालांकि वह जमानत पर थे, जहीर अहमद के विषय में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पोषणीय होगी।

10. हालांकि, मामले के तथ्यों पर, डिवीजन बेंच संतुष्ट थी कि वास्तव में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 112 के प्रावधानों का अनुपालन किया गया था और परिणामस्वरूप उसका विचार था कि मामले की मौजूदा परिस्थितियों में यह मानना संभव नहीं था कि याचिकाकर्ता को अवैध रूप से हिरासत में लिया गया था। इस प्रकार यह एक ऐसा मामला था जहां प्रारंभिक आदेश में कुछ अवैधता के कारण हिरासत को ही चुनौती दी गई थी, हालांकि याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा कर दिया गया था। हमारे पास मौजूद

मामले में संविधान के कुछ प्रावधानों और दंड प्रक्रिया संहिता के कुछ निर्देशों का पालन न करने के कारण हिरासत को अवैध बताया गया है। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता को उसकी गिरफ्तारी के कारण नहीं बताए गए, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 50 के तहत आवश्यक है, और उसे न्यायालय के सामने पेश किया गया था और न्यायालय के पास उसे रिमांड पर लेने या यहां तक कि उसे जमानत पर रिहा करने का कोई अधिकार नहीं था, बल्कि न्यायालय को उसकी गैरकानूनी गिरफ्तारी के कारण उसे तुरंत रिहा कर देना चाहिए था।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का उपरोक्त तर्क हमें स्वीकार्य नहीं है। यह स्वीकार करते हुए भी कि आवेदक को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 50(1) के तहत आवश्यक उसकी गिरफ्तारी के कारण नहीं बताए गए थे, न्यायालय के समक्ष उसकी पेशी एक महत्वपूर्ण मामले में उसकी संलिप्तता के आरोप के साथ की गई थी। एक बार आवेदक को न्यायालय में पेश किया गया तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के प्रावधान लागू होंगे। इस धारा में कहा गया है कि जब भी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है और हिरासत में रखा जाता है और जांच 24 घंटे की अवधि के भीतर पूरी नहीं की जा

सकती है, तो उसे डायरी में संबंधित प्रविष्टियों के साथ निकटतम न्यायिक मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाना चाहिए। गिरफ्तारी के बाद आवेदक को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के अनुसार जब ऐसे व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाता है तो वह आरोपी को ऐसी हिरासत में रखने का अधिकार दे सकता है जैसा मजिस्ट्रेट उचित समझे। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के तहत मजिस्ट्रेट को उसे हिरासत में भेजने के बजाय जमानत देने का भी अधिकार दिया गया था। मजिस्ट्रेट का आदेश या तो आरोपी को हिरासत में भेजने का निर्देश देने वाला या उसे जमानत पर रिहा करने का निर्देश देने वाला, गिरफ्तारी में किसी भी प्रारंभिक दोष से प्रभावित नहीं हो सकता है। इस प्रकार, न्यायालय के आदेशों के तहत जमानत पर होने के कारण याचिकाकर्ता की वर्तमान हिरासत को गलत हिरासत नहीं माना जा सकता है और हालांकि धारा 50 (1) दंड प्रक्रिया संहिता का अनुपालन न करने के लिए संबंधित पुलिस अधिकारी के खिलाफ उचित कार्रवाई की जा सकती है, परंतु यहां याचिकाकर्ता को स्वतंत्र करने का निर्देश देने वाला कोई आदेश नहीं हो सकता है, जिसका प्रभाव उसे अपने जमानत बांड से मुक्त करना होगा। इस संबंध में 1998 ALL एलजे 1428 में प्रकाशित बंदी

प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 9061 वर्ष 1994, के अनुसार, बाल मुकुंद जयसवाल बनाम अधीक्षक, जिला जेल, वाराणसी के मामले में इस उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ का निर्णय प्रासंगिक है। यह आदेश पूर्ण पीठ द्वारा तब पारित किया गया जब मामला एक विशेष प्रश्न का उत्तर देने के लिए उसके पास भेजा गया था। पूर्ण पीठ ने प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया (ALL एलजे के पृष्ठ 1430 पर): -

"जहां एक आरोपी व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 या 309 के तहत मजिस्ट्रेट या किसी भी अन्य सक्षम न्यायालय द्वारा पारित वैध रिमांड आदेश के आधार पर न्यायिक हिरासत में है, ऐसे आरोपी व्यक्ति को केवल इस आधार पर बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करके मुक्त नहीं किया जा सकता है कि उसकी प्रारंभिक हिरासत भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 22 में निहित संवैधानिक गारंटी का उल्लंघन थी।"

12. हमारे द्वारा दिए गए उपरोक्त तर्कों के मद्देनजर और पूर्ण पीठ के फैसले के मद्देनजर, हम यह मानने में असमर्थ हैं कि याचिकाकर्ता की पहली प्रार्थना केवल कथित गलत गिरफ्तारी के आधार पर मान्य है।"

(जोर दिया गया)

14. आगे बढ़ने से पहले, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के प्रावधान पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"21. जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा.- किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।"

(जोर दिया गया)

15. अनुच्छेद 21 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि किसी भी व्यक्ति को "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा" उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

16. "बंदी प्रत्यक्षीकरण" के अर्थ पर ध्यान देना भी प्रासंगिक है, जैसा कि वीजी रामचंद्रन द्वारा लॉ ऑफ रिट्स के सातवें संस्करण के पृष्ठ 5 पर प्रस्तुत किया गया है, जिसे इस प्रकार उद्धृत किया गया है: -

"बंदी प्रत्यक्षीकरण का अर्थ

" बंदी प्रत्यक्षीकरण "एक लैटिन शब्द है। इसका अर्थ है "शरीर है", "उसका शरीर है" या "शरीर लाओ"। बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट द्वारा, न्यायालय उस व्यक्ति (या प्राधिकारी) को जिसने दूसरे को गिरफ्तार किया है, हिरासत में लिया है या कैद किया है, न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश देती है जिससे कि न्यायालय को यह पता चल सके कि उसे किस आधार पर गिरफ्तार किया गया है, हिरासत में

लिया गया है, कैद किया गया है या बंदी किया गया है और यदि गिरफ्तारी, हिरासत, कैद या कारावास का कोई कानूनी औचित्य नहीं है तो उसे मुक्त कर दिया जाए।

शब्दकोश के अनुसार "बंदी प्रत्यक्षीकरण" का अर्थ है "शरीर है", "शरीर-व्यक्ति को हमारे सामने लाओ"। बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें किसी व्यक्ति को व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा की जांच के लिए न्यायाधीश या अदालत के सामने लाने की आवश्यकता होती है, जिसका अवैध कारावास के विरुद्ध सुरक्षा के रूप में उपयोग किया जाता है।

यह एक जेलर को एक कैदी को व्यक्तिगत रूप से पेश करने और हिरासत के कारणों को बताने के लिए एक रिट है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें किसी व्यक्ति को व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा की जांच के लिए न्यायाधीश या अदालत के सामने लाने की आवश्यकता होती है, जिसका उपयोग अवैध कारावास के खिलाफ सुरक्षा के रूप में किया जाता है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण एक रिट है जिसमें गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायाधीश के समक्ष या अदालत में लाने की आवश्यकता होती है ताकि उस व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित की जा सके जब तक कि उसकी हिरासत के लिए वैध आधार नहीं दिखाए जाते।"

17. उसी पुस्तक में पृष्ठ 21 क्रम संख्या 15 में यह प्रावधान किया गया है कि "जब बंदी प्रत्यक्षीकरण लागू नहीं होता" और क्रम संख्या 3 में यह स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया था कि जहां कैदी या बंदी को रिहा कर दिया गया है और बंदी प्रत्यक्षीकरण निष्फल हो गया है।

"संदर्भ: तालिब हुसैन बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य, (1971) 3 एससीसी 118; भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, 1984 (supp) एससीसी 504; राम जेठमलानी बनाम भारत संघ, (1984) 3 एससीसी 571; मणिलाल चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1972) 3 एससीसी 836 (1); सक्षम प्राधिकारी बनाम अमृतलाल चांदमल जैन, (1998) 5 एससीसी 615; करीमाबेन के. बागड़ बनाम गुजरात राज्य, (1998) 6 एससीसी 264।"

18. बंदी प्रत्यक्षीकरण का दायरा हाल ही में गृह सचिव (जेल) और अन्य बनाम एच. निलोफर निशा (2020) 14 एससीसी 161के मामले में तय किया गया है। जिसके पैराग्राफ 12, 16, 20, 21, 22 और 23 निम्नानुसार उद्धृत किए गए हैं: -

12. भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 मौलिक अधिकार के विषय पर संविधान के भाग III के तहत प्रदत्त किसी अधिकार के प्रवर्तन के लिए उच्च न्यायालयों को बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार वारंट और उत्प्रेषण की प्रकृति की रिट सहित कुछ रिट जारी करने का अधिकार देता है। इस मामले में, हम बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट से निपटने के दौरान उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के दायरे और सीमा के चिंताशील हैं।

16. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट केवल तभी जारी की जा सकती है जब किसी व्यक्ति की हिरासत या कारावास विधिक प्राधिकार के बिना हो। यद्यपि लैटिन

वाक्यांश बंदी प्रत्यक्षीकरण का शाब्दिक अर्थ 'शरीर को प्रस्तुत करना' है, समय के साथ शरीर को प्रस्तुत करने पर अक्सर जोर नहीं दिया जाता है, लेकिन कानूनी तौर पर यह तय किया जाना चाहिए कि शरीर अवैध हिरासत में है या नहीं। बंदी प्रत्यक्षीकरण का उपयोग अक्सर निवारक हिरासत के मामलों में एक उपाय के रूप में किया जाता है क्योंकि ऐसे मामलों में बंदी को हिरासत में लेने के आदेश की वैधता को किसी अन्य न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है और यह केवल रिट क्षेत्राधिकार है जो पीड़ित पक्ष के लिए उपलब्ध है। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का दायरा समय के साथ विस्तारित हुआ है और इस रिट का उपयोग आमतौर पर तब किया जाता है जब कोई पति या पत्नी दावा करता है कि उसके पति या पत्नी को माता-पिता द्वारा अवैध रूप से हिरासत में लिया गया है। इस रिट का प्रयोग कई बार बच्चों की अभिरक्षा के मामलों में भी किया जाता है। भले ही, दायरा बढ़ गया हो, इस रिट की कुछ सीमाएँ हैं और ऐसी सीमा का सबसे बुनियादी आधार यह है कि न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण की कोई भी रिट जारी करने से पहले इस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि बंदी बिना किसी कानूनी अधिकार के हिरासत में है।

20. यह मानते हुए कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट उस व्यक्ति द्वारा पोषणीय है जो हिरासत में है यदि उसके अधिकारों का उल्लंघन

किया गया है, तो जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना बाकी है वह यह है कि क्या वर्तमान मामले में बंदी के किसी अधिकार का उल्लंघन किया गया था जिसके कारण जेल से उनकी रिहाई का निर्देश देने वाला आदेश जारी करने को आवश्यकता होती। हम बी.रामचंद्र राव बनाम उड़ीसा राज्य (1972(3 एससीसी 256) में इस न्यायालय के फैसले का संदर्भ ले सकते हैं, जिसमें इस न्यायालय के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि याचिकाकर्ता की हिरासत का निर्देश देने वाले न्यायालय के आदेश अवैध थे। इस मामले में, न्यायालय ने इस प्रकार कहा है:

"5.... यह न्यायालय, एक सामान्य नियम के रूप में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट की कार्यवाही में ऐसे विवादों में नहीं जाता है। ऐसी रिट वहां नहीं प्रदान की जाती जहां एक सक्षम न्यायालय के एक आदेश, जो प्रथम दृष्टया क्षेत्राधिकार के बिना या पूरी तरह से अवैध प्रतीत नहीं होता है, द्वारा कोई व्यक्ति जेल की हिरासत में बद्ध किया जाता है और हम संतुष्ट नहीं हैं कि वर्तमान में ऐसा कोई मामला नहीं है।"

21. कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग (1973) 2

एससीसी 674 में इस न्यायालय ने बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट की कार्यवाही करते समय निम्नानुसार निर्णय लिया है:

"4. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के इस संक्षिप्त इतिहास से यह देखा जाएगा कि यह मूलतः एक प्रक्रियात्मक रिट है। यह न्याय की मशीनरी से संबंधित है, न कि मूल कानून से। रिट का उद्देश्य किसी ऐसे व्यक्ति की रिहाई सुनिश्चित करना है जिसकी स्वतंत्रता पर अवैध रूप से रोक लगा दी गई है..."

22. मनुभाई रतिलाल पटेल बनाम गुजरात राज्य (2013) 1 एससीसी 314 में, रिमांड के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। बड़ी संख्या में निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, जिनका हम विस्तार से उल्लेख नहीं कर रहे हैं क्योंकि उन सभी पर इस निर्णय में विचार किया गया है, इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"31....यह सर्वमान्य सिद्धांत है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पर तब विचार नहीं किया जाएगा जब किसी व्यक्ति को सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसे आदेश द्वारा न्यायिक हिरासत या पुलिस हिरासत में भेज दिया जाए जो प्रथम दृष्टया क्षेत्राधिकार के बिना प्रतीत

नहीं होता हो न ही बिल्कुल यांत्रिक तरीके से या पूरी तरह से अवैध तरीके से पारित प्रतीत होता हो..."

23. सौरभ कुमार बनाम जेलर, कोनिला जेल (2014) 13 एससीसी 436, में यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि याचिकाकर्ता न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के आधार पर न्यायिक हिरासत में था और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि वह अवैध हिरासत में है। न्यायमूर्ति टीएस ठाकुर, जैसा कि वह उस समय थे, ने अपने सहमति वाले फैसले में इस प्रकार कहा:

"22. उपरोक्त पृष्ठभूमि में हमारा एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता को गैरकानूनी हिरासत में कहा जा सकता है। इस प्रश्न पर हमारा उत्तर, नकारात्मक में है। वह रिकॉर्ड जिसका हमने ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है, उससे पता चलता है कि याचिकाकर्ता उन अपराधों के लिए अभियोजन का सामना कर रहा है, जिसका संज्ञान सक्षम अदालत द्वारा पहले ही लिया जा चुका है। वह वर्तमान में कथित न्यायालय के रिमांड के आदेश के अनुसार हिरासत में है। इन परिस्थितियों में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट पूरी तरह से गलत है...।"

(जोर दिया गया)

19. त्वरित संदर्भ के लिए, **मार्केडेय (सुप्रा)** के पैराग्राफ 5, 9, 10, 11 और 12 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है। :-

5. संक्षेप में कहें तो, दुर्भावना से संबंधित आरोप यह है कि याचिकाकर्ताओं को कुछ राजनीतिक दलों के निर्देशों के तहत कार्यकारी अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार किया गया था, जो याचिकाकर्ताओं और उनके समूह के अन्य छात्रों के पक्ष में नहीं थे। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह आधार अब नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि वर्तमान स्थिति यह है कि इन सभी छह याचिकाकर्ताओं को जमानत दे दी गई है और इसलिए, वे जमानत देने वाले मजिस्ट्रेट की हिरासत में हैं। हमने अपराध संख्या 63 के न्यायिक रिकॉर्ड को देखा है और पाया है कि सभी छह याचिकाकर्ताओं को जमानत दे दी गई है। जमानत देने वाले मजिस्ट्रेट के खिलाफ दुर्भावना का कोई आरोप नहीं है, इसलिए पुलिस या कार्यकारी अधिकारियों के खिलाफ दुर्भावना का आरोप अब अप्रासंगिक हो गया है।

9.....

यह प्रश्न कि क्या जमानत पर रिहा किया गया व्यक्ति बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए याचिका प्रस्तुत कर सकता है, विशेष रूप से जहीर अहमद बनाम गंगा प्रसाद में उठाया गया था, और यह माना गया था कि ऐसा व्यक्ति अदालत के नियंत्रण में और काल्पनिक रूप से अदालत की हिरासत में रहता है और इसलिए, वह बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए याचिका प्रस्तुत

कर सकता है। बाबू लाल बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में, यह निर्धारित किया गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट उस व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है जिसे जमानत पर रिहा किया गया है।

10. हमने उस सिद्धांत की जांच की है, जो उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित किया गया है। यह सच है कि एक व्यक्ति, जो जमानत पर है, बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका भी प्रस्तुत कर सकता है, लेकिन सवाल अभी भी बना हुआ है कि ऐसे याचिकाकर्ता को क्या राहत दी जा सकती है। राम मनोहर लोहिया के मामले में और बाबू लाल के मामले में भी ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने कानून के उस प्रावधान की वैधता को चुनौती दी है जिसके तहत उसके खिलाफ मामला लंबित था। ऊपर उल्लेख किया गया है कि तत्काल याचिका में कानून के प्रावधान की वैधता को चुनौती नहीं दी गई है और यह भी नहीं कहा गया है कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ दंड संहिता, 1860 की धारा 188 के तहत कोई मामला लंबित नहीं है। अब इस मामले में याचिकाकर्ताओं द्वारा जिन राहतों का दावा किया गया है वे हैं: (i) कि याचिकाकर्ताओं को जेल से रिहा किया जाए और (ii) कि याचिकाकर्ताओं द्वारा विपक्षी पक्षों को मौलिक अधिकारों का उपभोग करने से रोका जाए। इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं ने प्रार्थना की है कि हिरासत को अवैध और अमान्य

घोषित किया जाना चाहिए। जहां तक पहली राहत की बात है तो वह जेल से बाहर आ चुके हैं। उनकी हिरासत की वैधता के सवाल का उत्तर पहले ही ऊपर इस अर्थ में दिया जा चुका है, कि वर्तमान में याचिकाकर्ता केवल उस मजिस्ट्रेट की अनुमानित हिरासत में हैं जिसने उन्हें जमानत दी है। इस काल्पनिक हिरासत को याचिकाकर्ताओं द्वारा केवल दो आधारों पर चुनौती दी जा सकती है, जिनका उल्लेख पहले ही ऊपर किया जा चुका है। यह सवाल कि जमानत देने से पहले याचिकाकर्ताओं की हिरासत वैध थी या नहीं, अब प्रासंगिक नहीं है। यह प्रार्थना कि विपक्षी पक्षों को याचिकाकर्ताओं द्वारा मौलिक अधिकारों का सुखोपभोग करने से रोका जाना चाहिए, काफी अस्पष्ट है और न्यायालय ऐसा कोई आदेश पारित नहीं कर सकता है। इस प्रकार, संक्षेप में, यह स्पष्ट है कि न्यायालय तत्काल याचिका में याचिकाकर्ताओं को किसी भी तरह की राहत देने में असमर्थ है।

11. यदि एक व्यक्ति पर जमानती अपराध करने का आरोप है, उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है, तो जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 436(1) द्वारा प्रस्तुत किया गया है, उस गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा, यदि न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के किसी भी चरण में वह जमानत देने के लिए तैयार हो। कानून का यह प्रावधान

अदालत को किसी व्यक्ति को जमानत के बिना भी बांड भरने पर रिहा करने का अधिकार देता है। इसी प्रकार धारा 437 उन व्यक्तियों के लिए प्रावधान करती है जिन्हें गैर-जमानती अपराध में गिरफ्तार किया गया है और मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया है। इस प्रकार कानून की नीति यह है कि जहां भी किसी व्यक्ति को जमानती अपराध या गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाता है, वह संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों अर्थात दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167, 209 या 309 के तहत या तो वास्तविक शारीरिक हिरासत में रहेगा, या उसे जमानतदारों के साथ या उसके बिना व्यक्तिगत बांड पर जमानत पर रिहा किया जा सकता है, जिसका अर्थ होगा कि वह व्यक्ति न्यायालय की अनुमानित हिरासत में रहेगा। मजिस्ट्रेट के लिए कोई तीसरा रास्ता खुला नहीं है। इस प्रकार स्थिति यह है कि एक बार जब किसी व्यक्ति को किसी अपराध के सिलसिले में वैध रूप से गिरफ्तार कर लिया जाता है, तो उसे या तो शारीरिक हिरासत में रहना होगा, और यदि वह शारीरिक हिरासत समाप्त हो जाती है, तो उसे कार्यवाही के लंबित रहने तक काल्पनिक हिरासत में रहना होगा। तदनुसार, यदि किसी भी स्तर पर यह पाया जाता है कि गिरफ्तार व्यक्ति को शारीरिक हिरासत में भेजने के आदेश या आदेशों में कुछ दोष था, तो उसे न्यायालय की अनुमानित हिरासत में रखने का आदेश

आवश्यक रूप से रद्द नहीं किया जाएगा। शारीरिक संयम जो एक बार वैध रूप से उत्पन्न हो गया था, उसे न्यायालय की काल्पनिक हिरासत में रखकर ही समाप्त किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति कि शारीरिक हिरासत किसी एक या दूसरे कारण से बिगड़ जाती है, तो न्यायालय बंदी प्रत्यक्षीकरण जारी करके उसे रिहा करने का आदेश दे सकता है। किंतु न्यायालय शारीरिक हिरासत से बिना शर्त रिहा करने का आदेश नहीं दे सकता, और वह उस व्यक्ति को जमानत देते हुए न्यायालय की काल्पनिक हिरासत में रखे जाने का ही आदेश दे सकता है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता काल्पनिक हिरासत में हैं, और जब तक वे यह दिखाने में सफल नहीं हो जाते कि यह काल्पनिक हिरासत किसी न किसी कारण से अवैध है, इन कार्यवाही में उनके पक्ष में एक आदेश पारित किया जा सकता है, भले ही याचिकाकर्ताओं को जमानत देने से पहले ही उन्हें शारीरिक हिरासत में भेजने के आदेश या आदेशों में कुछ दोष हों।

12. याचिका यूपी राज्य और सेंट्रल जेल, नैनी के अधीक्षक के खिलाफ दायर की गई है। चूंकि याचिकाकर्ता जेल में बिल्कुल भी बंद नहीं हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि अधीक्षक, सेंट्रल जेल, नैनी के खिलाफ कोई राहत नहीं दी जा सकती है। यह भी

नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश राज्य की हिरासत में हैं। वास्तव में याचिकाकर्ता उस मजिस्ट्रेट की काल्पनिक हिरासत में हैं जिसने उन्हें जमानत दी है, और मजिस्ट्रेट के खिलाफ किसी राहत का दावा नहीं किया गया है। यदि याचिकाकर्ता किसी भी विरोधी पक्ष की हिरासत में नहीं हैं, तो न्यायालय कोई राहत देने में असमर्थ है। बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट का उद्देश्य पिछली अवैधता को दंडित करना नहीं है, बल्कि किसी व्यक्ति को वर्तमान अवैध हिरासत से रिहा करना है, और रिट उस व्यक्ति को चुनौती देने वाली होनी चाहिए जिसके पास बंदी की वास्तविक हिरासत है।

(जोर दिया गया)

20. स्वीकार्य रूप से, याचिकाकर्ताओं ने पहले ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के प्रावधानों को लागू कर दिया है और उन्हें व्यक्तिगत बांड पर रिहा कर दिया गया है। इसलिए, याचिकाकर्ता हिरासत में नहीं हैं और अवैध हिरासत में भी नहीं हैं।

21. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं को व्यक्तिगत बांड पर रिहा करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया में किसी दोष का आरोप नहीं लगाया गया है।

22. पूरी याचिका से यह स्पष्ट नहीं है कि निजी मुचलके पर रिहा होने के बाद किसके खिलाफ बंदी की सुरक्षा के लिए निर्देश मांगा जा रहा है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य मुद्दा यह है कि रिहाई के बाद भी अदालत या प्राधिकरण के आदेश पर बंदी को प्रस्तुत करने के लिए कुछ शर्तें लगाए जाने की स्थिति में उनकी स्वतंत्रता कम हो जाती है।

23. इस संबंध में **जहीर अहमद (सुप्रा)** के फैसले का आधार लिया जा रहा है कि मामले के ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के तहत जमानत पर रिहा होने के बाद यह दावा किया गया था कि याचिकाकर्ता की व्यक्तिगत स्वतंत्रता अभी भी रिहाई के दौरान लगाई गई शर्तों के कारण कम हो गई है, जिसे इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा बरकरार रखा गया।

24. हम गौर कर सकते हैं कि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं को अदालत द्वारा नियमित जमानत पर रिहा नहीं किया गया है और उन्हें जमानतदारों की हिरासत में नहीं रखा गया है और उन्हें धारा 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत व्यक्तिगत बांड के रूप में उनके स्वयं के उपक्रम पर रिहा किया गया है, कि उन्हें जब भी बुलाया जाएगा वे उपस्थित रहेंगे।

25. इस प्रकार, यह कहना कि बंदी केवल उनके द्वारा दी गई व्यक्तिगत समझ के कारण उनकी अपनी हिरासत में है, इस विचार को बनाए रखना एक दूर की कौड़ी होगी। स्पष्ट शब्दों में कहें तो उक्त तर्क टिकाऊ नहीं है। यहां, वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता किसी निकाय या किसी प्राधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नियंत्रित नहीं हैं जिसके खिलाफ उसे पेश करने के लिए निर्देश जारी किया जा

सकता है। इसके अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अपने स्वयं के जीवन और स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए वे यह प्रस्तुत करने के लिए आगे आए हैं कि कार्य (व्यक्तिगत बांड पर रिहाई का) "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" के साथ किया जा सकता है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं की हिरासत स्वयं की अवैध हिरासत में है क्योंकि स्वीकार्यतः यह उनके स्वयं के वचन/व्यक्तिगत बांड पर है कि उन्हें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के तहत रिहा किया गया है, जो एक "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" है।

26. **जहीर अहमद (सुप्रा)** को, **मार्केडेय (सुप्रा)** में, इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से पैराग्राफ 9 और 10 में विशिष्ट किया गया है, जहां यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना कि विपक्षी पक्ष को मौलिक अधिकारों का आनंद लेने से रोका जाना चाहिए, अस्पष्ट है और न्यायालय ऐसा कोई आदेश पारित नहीं कर सकता। पैराग्राफ 11 में मजिस्ट्रेट, जिन्होंने उन्हें जमानत दी है, की काल्पनिक हिरासत के प्रश्न पर भी विचार किया गया और खारिज कर दिया गया। पैराग्राफ 12 में यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि यदि याचिकाकर्ता किसी भी विरोधी पक्ष की हिरासत में हैं, तो न्यायालय कोई राहत देने में असमर्थ है क्योंकि बंदी प्रत्यक्षीकरण का उद्देश्य पिछली अवैधता को दंडित करना नहीं है, बल्कि किसी व्यक्ति को वर्तमान अवैध हिरासत से रिहा करना है, और रिट उस व्यक्ति को चुनौती देने वाली होनी

चाहिए, हिरासत में लिया गया व्यक्ति जिसकी वास्तविक हिरासत में है।

27. इसके बाद, वर्ष 1998 में भी इस न्यायालय द्वारा, **जहीर अहमद (सुप्रा)** के मामले पर, **उदयभान शुकी (सुप्रा)** के मामले में विचार किया गया और स्पष्ट रूप से प्रतिष्ठित किया गया।

28. उपरोक्त मामलों में जैसा कि **जहीर अहमद (सुप्रा)** में कहा गया है कि याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा करने के बाद भी वह स्वतंत्र रूप से घूमने के लिए स्वतंत्र नहीं है और इसलिए, वह काल्पनिक हिरासत में है और इसलिए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका सुनवाई योग्य होगी, यह स्पष्ट रूप से देखा गया था। हालाँकि, **उदयभान शुकी (सुप्रा)** में पैराग्राफ 11 में इस माननीय न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना कि याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क हमें स्वीकार्य नहीं है और यह माना गया कि याचिकाकर्ता जो न्यायालय के आदेशों के तहत जमानत पर है, की हिरासत को अवैध हिरासत नहीं माना जा सकता है और याचिकाकर्ता को स्वतंत्र करने का निर्देश देने वाला आदेश नहीं दिया जा सकता है, जिसका प्रभाव उसे अपने जमानत बांड से मुक्त करना होगा।

29. **बाल मुकुंद जयसवाल (सुप्रा)** में निर्धारित कानून पर भी गौर किया गया और याचिकाकर्ता की प्रार्थना कि जमानत पर रिहा होने के बाद न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता को पेश करने के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की

रिट, विशेष रूप से खारिज कर दी गई थी। इसलिए, यह स्पष्ट है कि **जहीर अहमद (सुप्रा)** में निर्धारित कानून को लगातार अलग किया जा रहा है और वास्तव में, इस न्यायालय के बाद के निर्णयों में इसका समर्थन नहीं किया जा रहा है।

30. हमारा भी यही विचार है और राय है कि यदि जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति को बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में इस आधार पर उन शर्तों या स्थितियों को लागू करने को चुनौती देने की अनुमति दी जाती है, जिन पर जमानत दी गई है, कि याचिकाकर्ता, हालांकि, शारीरिक रूप से रिहा किया गया है, प्राधिकारी या न्यायालय की काल्पनिक हिरासत में है और इसलिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी की जा सकती है, तो इस प्रकार लगाई गई जमानत की स्थितियों या शर्तों को रद्द करने के बराबर होगी और इस प्रकार, व्यक्ति को बिना शर्त रिहा करने के समान होगा, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" के विपरीत है, जिसमें किसी व्यक्ति का जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अधीन हो सकती है। जमानत देने का कानून, कानून द्वारा स्थापित एक प्रक्रिया है जहां किसी विशेष व्यक्ति को शारीरिक हिरासत से मुक्त कर दिया जाता है।

31. हम यह भी गौर कर सकते हैं कि वर्तमान मामला और भी बदतर है जहां याचिकाकर्ताओं को उनके निजी बांड पर रिहा कर दिया गया था और वे किसी तीसरे

व्यक्ति या प्राधिकारी की अनुमानित हिरासत में भी नहीं हैं, जिनके खिलाफ बंदी प्रत्यक्षीकरण (बंदी को प्रस्तुत करने के लिए या उसे स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए) की रिट जारी की जा सकती है।

32. हमारी राय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार को वैधानिक प्रावधानों और/या कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के प्रभाव को रद्द करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में **सपमाविया बनाम डिप्टी कमिश्नर, आइजल, 1970 (2) एससीसी 399** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 11 का प्रासंगिक उद्धरण नीचे इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

"11. ...किसी ऐसे व्यक्ति के मामले में रिहाई का आदेश जिस पर अपराध करने का संदेह है या आरोप लगाया गया है, उसे बरी करने या आरोपमुक्त करने जैसा नहीं है और प्राधिकारी, केवल बंदी प्रत्यक्षीकरण पर रिहाई के आधार पर, कानून के अनुसार उसे गिरफ्तार करने और हिरासत में रखने की शक्ति से वंचित नहीं किए जायेंगे, क्योंकि यह रिट आपराधिक कानून के सामान्य प्रशासन को बाधित करने के लिए नहीं बनाई गई है..."

(जोर दिया गया)

33. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत अन्य निर्णयों को भी ध्यान से देखा है और हमने पाया है कि वे वास्तव में मौजूदा मुद्दे पर नहीं हैं। इसलिए, संक्षिप्तता के लिए हम उनसे अलग से निपटने के इच्छुक नहीं हैं।

34. दोहराव की कीमत पर यह फिर से ध्यान दिया जा सकता है कि **मार्कंडेय (सुप्रा)** में इस तर्क के समर्थन में कि बंदी प्रत्यक्षीकरण का रिट कायम रखने योग्य है, विशेष रूप से **जहीर अहमद (सुप्रा)** के फैसले के आलोक में उठाया गया था और इस पर विशेष रूप से विचार किया गया था और अस्वीकार कर दिया गया था। यह माना गया कि न्यायालय किसी व्यक्ति को बिना शर्त शारीरिक हिरासत से रिहा करने का आदेश नहीं दे सकती है और वह केवल यह निर्देश दे सकती है कि व्यक्ति को जमानत देकर अदालत की काल्पनिक हिरासत में रखा जाए। प्रश्न से निपटते समय यह विशेष रूप से माना गया था कि याचिकाकर्ताओं द्वारा यह प्रार्थना कि विपरीत पक्ष को मौलिक अधिकारों का आनंद लेने से रोका जाना चाहिए, काफी अस्पष्ट है और न्यायालय ऐसे आदेश पारित नहीं कर सकती है। दंड प्रक्रिया संहिता के नियम, विशेष रूप से धारा 151, 209 और 309 पर विचार करने के बाद यह देखा गया कि न्यायालय किसी व्यक्ति को जमानत देकर बिना शर्त शारीरिक हिरासत से रिहा करने का आदेश नहीं दे सकती है और वह केवल उसकी जमानत को स्वीकार करते हुए यह निर्देश दे सकती है कि व्यक्ति को काल्पनिक हिरासत में रखा जाए। आगे यह माना गया कि यदि याचिकाकर्ता

किसी भी विरोधी पक्ष की हिरासत में नहीं हैं, तो न्यायालय कोई राहत देने में असमर्थ है। बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट का उद्देश्य पिछली अवैधता को दंडित करना नहीं है बल्कि किसी व्यक्ति को अवैध हिरासत से रिहा करना है। **मार्कंडेय (सुप्रा)** और **उदयभान शुकी (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय की दो खंड पीठों द्वारा उपरोक्त टिप्पणी पर विचार किया गया था, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जमानत पर या व्यक्तिगत बंधपत्र पर रिहा किए गए व्यक्ति के पक्ष में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी नहीं की जा सकती है।

35. ब्लैक लॉ डिक्शनरी 8वें संस्करण के अनुसार, "पर्सनल बॉन्ड" एक लिखित दस्तावेज है जिसके तहत बाध्यकर्ता औपचारिक रूप से विशिष्ट कार्य करने के दायित्व को मानता है; व्यक्तिगत बांड एक ऐसा बांड है जिसमें बिना सुरक्षा के वादा किया जाता है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि व्यक्तिगत बंधपत्र के मामले में, वह व्यक्ति जो आगे आ रहा है, के अलावा कोई अन्य व्यक्ति शामिल नहीं है। इस प्रकार, एक व्यक्ति, जो आवश्यकता पड़ने पर न्यायिक कार्यवाही में सहयोग करने के लिए, स्वयं कुछ कार्य करने का वादा कर रहा है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, वो किसी/किसी अन्य व्यक्ति की काल्पनिक हिरासत में भी नहीं है।

36. ऐसी परिस्थितियों में, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट उस व्यक्ति के कहने पर पोषणीय नहीं होगी, जिसने खुद को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया यानी धारा 151 दंड प्रक्रिया संहिता के

अनुसार अपने वादे पर रिहा करवाया है, यह दावा करने के लिए कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करके उसे व्यक्तिगत बांड में किए गए अपने वादे से मुक्त कर दिया जाए। यदि इस तरह के किसी भी बंदी प्रत्यक्षीकरण को बरकरार रखने योग्य माना जाता है, तो इससे व्यक्तियों, विशेष रूप से कानून का उल्लंघन करने वालों को अपने वादे से हटने और यहां तक कि जमानत या रिमांड के मामले में भी खुद को किसी भी शर्त, जो कि उन्हें शारीरिक हिरासत से रिहा करते समय उन पर लगाई जा सकती हैं, से मुक्त होने का मौका मिलेगा और इस प्रकार, आपराधिक न्याय का पूरे प्रशासन अप्रभावी और निरर्थक हो जाएगा।

37. यहां ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ताओं की व्यक्तिगत बांड पर रिहाई के बाद वर्तमान याचिका निरर्थक हो गई है। याचिकाकर्ताओं का यह दावा कि वे अभी भी काल्पनिक हिरासत में हैं और उनकी स्वतंत्रता कम हो गई है और रिट याचिका अभी भी सुनवाई योग्य है, खारिज कर दिया गया है। ऐसी कोई राहत, यानी हिरासत से रिहाई, जैसा कि बहस के दौरान दावा किया गया था कि याचिका अभी भी विचारणीय है, याचिकाकर्ताओं को नहीं दी जा सकती है।

38. तदनुसार, वर्तमान याचिका खारिज की जाती है। आदेश दिनांक:-12.4.2023

(2023) 4 ILRA 874

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,
बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या

9307/2020

संलग्न

सिविल विविध आवेदन संख्या 1ए/14/2022

और

सिविल विविध आवेदन संख्या 25/2022

और

सिविल विविध आवेदन संख्या 15/2022

मास्टर देवांश अग्रवाल और अन्य

... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अरुण सिन्हा, श्री सिद्धार्थ सिन्हा, श्री सुशील कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अशोक कुमार सिंह, श्री दीपक अग्रवाल, श्री गंताव्य, श्री गवराव मिश्रा, श्री ललित मोहन सिंह, श्री निर्मित श्रीवास्तव, श्री प्रभजीत जौहरी, श्री निर्मित श्रीवास्तव, श्री आर. पी. शुक्ला, श्री विवेक सोनकर

सिविल कानून-भारतीय संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-नाबालिग बच्चे से संबंधित अंतर-माता-पिता की हिरासत संबंधी विवाद-बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका, जिसमें विपक्षी संख्या 2 (मां) को बंदी को पेश करने तथा उसकी हिरासत याचिकाकर्ता को सौंपने का निर्देश देने की मांग की गई है -जब भी न्यायालय के समक्ष नाबालिग बच्चे की हिरासत से संबंधित कोई प्रश्न उठता है, तो वाद का निर्णय पक्षों के कानूनी अधिकारों के आधार पर नहीं, बल्कि एकमात्र और प्रमुख मानदंड के आधार पर

किया जाना चाहिए कि बच्चे के हित और कल्याण के लिए क्या सर्वोत्तम होगा-बच्चे के कल्याण का निर्णय बच्चे के सामान्य मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक कल्याण सहित विचार करके किया जाना चाहिए-न्यायालय को वह रास्ता चुनना चाहिए जो बच्चे के स्वस्थ विकास, विकास और शिक्षा के लिए सर्वोत्तम व्यवस्था करेगा, ताकि वह एक परिपक्व वयस्क के रूप में जीवन की समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार हो सके-नाबालिग बेटे की हिरासत मां के पास रहेगी-पिता के मुलाकात के अधिकार में संशोधन किया गया। (पैरा 23, 24)

याचिका निस्तारित (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. निथ्या आनंद राघवन बनाम राज्य (दिल्ली का एनसीटी) और अन्य 2017 8 एससीसी 454
2. श्रद्धा कन्नौजिया (नाबालिग) और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या 716 /2020

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद, द्वारा प्रदत्त)

1. यह मामला इस उच्च न्यायालय के कान्स्टिट्यूशन/रोस्टर के अनुसार नियमित पीठ होने के नाते इस न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध है।

2. सी.एम. आवेदन संख्या-1ए/14/2022 और

सी.एम. आवेदन संख्या-25/2022 को प्रतिपक्षी संख्या-3 (निरुद्ध के पिता) द्वारा क्रमशः 07.03.2022 और 02.12.2022 को दिनांक 14.12.2021 और 06.01.2022 के आदेश में संशोधन के लिए स्थानांतरित किया गया है और सी.एम. आवेदन संख्या-15/2022 को याचिकाकर्ता के अगले मित्र ('निरुद्ध' की मां) द्वारा 07./08.03.2022 को वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 06.01.2022 के संशोधन के लिए दायर किया गया है रिट याचिका।

3. श्री ज्योतिंद्र मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुशील कुमार सिंह द्वारा सहायता प्राप्त, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता, श्री प्रशांत चंद्र, वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री मेहा रश्मि, प्रतिपक्षी सं-3 से 6 के अधिवक्ता, श्री दिवाकर सिंह और श्री हरि शंकर बाजपेयी, अपर शासकीय अधिवक्ता-1, प्रतिपक्षी सं-1 और 2 के लिए अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

4. याचिकाकर्ताओं ने यह बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका संख्या-9307 वर्ष 2020 निम्नलिखित राहतों के साथ दायर की थी:

"(i) बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतिपक्षियों को याचिकाकर्ता संख्या-1/'निरुद्ध' को पेश करने और याचिकाकर्ता संख्या-2 को उसकी कस्टडी सौंपने का निर्देश दिया गया है।

(ii) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उचित और न्यायसंगत समझे।

5. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रतिपक्षी संख्या-3 डॉ. दिनेश अग्रवाल और याचिकाकर्ता संख्या-2 में गंभीर मतभेद हैं, जो उनके वैवाहिक जीवन में दरार का कारण बनते हैं, जिसके परिणामस्वरूप कटरस बाजार राजबाड़ी रोड, कटरस, धनबाद, झारखंड में स्थित वैवाहिक घर से उनका गैर-न्यायिक अलगाव होता है। याचिका में खुलासा किया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या-2 और प्रतिपक्षी संख्या-3 ने 30.6.2017 को शादी की थी। शादी के तुरंत बाद पक्ष संख्या-3 के सामने डॉ. दिनेश अग्रवाल और उनके परिवार के सदस्यों ने याचिकाकर्ता संख्या-2 से दहेज में 40 लाख रुपये की मांग शुरू कर दी क्योंकि प्रतिपक्षी संख्या-3 को पता चला कि उसके पास 40 लाख रुपये से अधिक का पीपीएफ खाता है। दहेज की उक्त मांग के अलावा, प्रतिपक्षी संख्या-3 और उसके परिवार के सदस्य अर्थात् याचिकाकर्ता के ससुर, श्री जीवन लाल अग्रवाल और अन्य ने उक्त मांग के संबंध में उसे मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित करना शुरू कर दिया। उत्पीड़न के कारण, याचिकाकर्ता संख्या-1 को ज्यादातर समय लखनऊ में रहने के लिए मजबूर किया गया था, जहां याचिकाकर्ता संख्या-1, 'निरुद्ध' का जन्म 3.7.2018 को हुआ था। याचिकाकर्ता संख्या-1 और 2 को प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा 'निरुद्ध' के जन्म के बाद धनबाद लाया गया था, लेकिन लगातार उत्पीड़न के कारण याचिकाकर्ता संख्या-2 फरवरी, 2020 के अंत

तक याचिकाकर्ता संख्या-1 के साथ लखनऊ वापस आने के लिए मजबूर हो गया और तब से लखनऊ में रह रहा था।

6. प्रतिपक्षी संख्या-3, 6.6.2020 को अचानक याचिकाकर्ता संख्या-2 के घर आया और उसने नाटक किया कि वह याचिकाकर्ता संख्या-2 के साथ सुलह करना चाहता है। वह वहीं रुका रहा, लेकिन अगली सुबह करीब 9 बजे सामने वाले पक्ष संख्या-3 ने बच्चे को घर से बाहर निकालने का नाटक किया। उन्होंने याचिकाकर्ता संख्या-1 को निरुद्ध में लिए गए याचिकाकर्ता संख्या-1 को उनके साथ एक छोटी ड्राइव करने के बाद वापस आने का आश्वासन दिया है। प्रतिपक्षी संख्या-3 ने याचिकाकर्ता संख्या-2 के घर पर अपना सामान भी छोड़ दिया और उसे यह आभास दिलाया कि वह याचिकाकर्ता संख्या-1 के साथ वापस आ जाएगा, लेकिन वास्तव में वह भाग गया और अपने ड्राइवर की मदद से याचिकाकर्ता संख्या-1 'निरुद्ध' का अपहरण कर लिया। उसके बाद याचिकाकर्ता संख्या-2 को अपने कॉमन फ्रेंड के माध्यम से पता चला कि प्रतिपक्षी संख्या-3 कतरास, जिला-धनबाद, झारखंड राज्य में पहुंच गया है, जो याचिकाकर्ता संख्या-2 की कस्टडी से अवैध रूप से अपने साथ 'निरुद्ध' को ले गया है। याचिकाकर्ता संख्या-2 ने जब प्रतिपक्षी संख्या-3 से संपर्क किया, तो उसने कहा कि याचिकाकर्ता संख्या-2 को अपने पीपीएफ खाते की एक्सेस देनी चाहिए, अगर वह याचिकाकर्ता संख्या-1 'निरुद्ध' को वापस चाहती है।

7. याचिकाकर्ता संख्या-1 के अपहरण की दिनांक 7.6.2020 की घटना के बाद से,

'बच्चा/निरुद्ध' उसके पिता (प्रतिपक्षी संख्या-3) द्वारा है, वह झारखंड राज्य के कटरास, जिला धनबाद में पिता की कस्टडी में है। इसने उनके नाबालिग बच्चे से संबंधित अंतर अभिभावक कस्टडी विवाद को जन्म दिया। इसके बाद पूर्वगामी पैरा में संक्षिप्तता और सुविधा के उद्देश्य से, जहां भी प्रासंगिक रूप से प्रतिपक्षी संख्या-3 की आवश्यकता हो, याचिकाकर्ता संख्या-2 और याचिकाकर्ता संख्या-1 को क्रमशः 'पिता', 'माता' और 'बच्चे/निरुद्ध' के रूप में भी संबोधित किया जाएगा।

8. घटना के समय कस्टडी में लिया गया 'बच्चा/निरुद्ध' (याचिकाकर्ता संख्या-1) लगभग 1 वर्ष और 9 महीने की उम्र का शिशु था। मां ने कहा है कि कस्टडी में लिया गया 'बच्चा/निरुद्ध' मां के दूध पर निर्भर है और उसे ऐसी देखभाल और सुरक्षा की जरूरत है जो पिता प्रदान नहीं कर सकता। वह उच्च शिक्षित महिला है, एम.बी.ए वित्त और मानव संसाधन में योग्य है, लखनऊ में बीबीडी विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के रूप में काम किया था, लेकिन अपने बच्चे की देखभाल के लिए अपनी नौकरी छोड़ दी। वह अपने बच्चे के जन्म और याचिकाकर्ता संख्या-1 के जन्म के बाद से आर्थिक रूप से एवं अन्यथा उसकी देखभाल कर रही है, कस्टडी में लिए गए निरुद्ध को याचिकाकर्ता संख्या-2 से कभी अलग नहीं किया गया है। उनकी बचत से आय का एक निरंतर स्रोत उत्पन्न हो रहा है और लखनऊ में अपने माता-पिता के साथ अपने घर में रह रही है।

वित्तीय क्षमता के रूप में अपने दावे के समर्थन में, याचिकाकर्ता संख्या-2 ने आयकर विभाग द्वारा अनुलग्नक -2 के रूप में जारी वर्ष 2019-20 का आयकर रिटर्न दाखिल किया है, जिसमें सकल आय 5,16,328/ रुपये दिखाई गई है। 6.6.2020 की रात में, प्रतिपक्षी संख्या-3 याचिकाकर्ता संख्या-2 के घर पर उतरा और वस्तुतः बच्चे के साथ एक छोटी ड्राइव के बाद वापस आने का नाटक करते हुए 7.6.2020 की सुबह बच्चे को छीन लिया और अपहरण कर लिया।

9. प्रस्तुत याचिका 15.6.2020 को दायर की गई थी और पहली बार 18.6.2020 को ली गई थी। 13.7.2020 को, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं, जिन्हें यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि लगभग दो साल की उम्र के 'निरुद्ध' को याचिकाकर्ता संख्या-2 की कस्टडी से अवैध रूप से छीन लिया गया है और संबंधित पुलिस द्वारा 'निरुद्ध' का पता लगाने का कठिन प्रयास किया गया था, लेकिन चूंकि प्रतिपक्षी संख्या-3 और 4 झारखंड राज्य के निवासी हैं, इसलिए संबंधित स्थानीय पुलिस इस न्यायालय के किसी विशिष्ट निर्देश के अभाव में यूपी पुलिस के साथ सहयोग नहीं कर रही है। अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा कि 'निरुद्ध' की तलाश करने

का प्रयास किया गया था लेकिन 'निरुद्ध' का पता नहीं लगाया जा सका।

उपरोक्त के मद्देनजर, प्रतिपक्षी संख्या-2 यानी थानाध्यक्ष, थाना-अलीगंज, लखनऊ के माध्यम से प्रतिपक्षी संख्या-3 से 6 को नोटिस जारी करें कि 05.08.2020 को नजरबंद मास्टर देवांश को पेश किया जाए।

10. फिर से 5.8.2020 को, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं, संबंधित भाग को यहां निकाला और पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"प्रतिपक्षी संख्या-3 से 6 के अधिवक्ता श्री आर.पी शुक्ला ने प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय के 13.07.2020 के आदेश के अनुसरण में, बाल मास्टर देवांश अग्रवाल को आज पेश नहीं किया जा सका क्योंकि वह ठीक नहीं है। मेडिकल प्रिस्क्रिप्शन दिनांक 03.08.2020 की एक प्रति आज अदालत में पेश की गई है। श्री शुक्ला प्रार्थना करते हैं और उन्हें उक्त चिकित्सा नुस्खे को रिकॉर्ड पर लाने के लिए एक सप्ताह का समय दिया जाता है और वह बच्चे की चिकित्सा स्थिति का भी संकेत देंगे। प्रतिपक्षी संख्या-3 से 6 की ओर से इंगित की जाने वाली चिकित्सा स्थिति में डॉक्टर से चिकित्सा प्रमाण पत्र भी दर्शाया जाएगा कि क्या 'बच्चा/निरुद्ध'

झारखंड से लखनऊ की यात्रा करने के लिए फिट है और यदि प्रमाण पत्र में ऐसा नहीं लिखा है तो बच्चे को 14.08.2020 को इस न्यायालय के समक्ष पेश किया जाएगा।

11. 20.1.2021 को, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया था:-

"1. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ सिन्हा के साथ-साथ राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना, जबकि श्री विवेक सोनकर, एडवोकेट ने प्रतिपक्षी संख्या-3 से 6 की ओर से पेश हुए हैं।

2. श्री विवेक सोनकर द्वारा दिनांक 11.1.2021 को वकालतनामा के साथ आदेश दिनांक 11.1.2021 को वापस लेने के लिए एक आवेदन रजिस्ट्री में दायर किया गया है। कार्यालय ने सूचित किया है कि वह दिनांक 11.1.2021 के आदेश को वापस लेने के लिए ऐसे किसी भी आवेदन का पता लगाने में सक्षम नहीं है। आवेदन रीकाल के अभाव में, मैं मामले को आगे बढ़ाता हूँ।

3. श्री सिद्धार्थ सिन्हा द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय ने दिनांक 17.3.2020 के आदेश के माध्यम से प्रतिपक्षी संख्या-3 और 6 को 5.8.2020 को निरुद्ध

मास्टर देवांश अग्रवाल को पेश करने का निर्देश दिया था। दिनांक 5.8.2020 के आदेश पत्र के अवलोकन से संकेत मिलता है कि 5.8.2020 को कस्टडी में लिए गए निरुद्ध को पेश नहीं किया जा सका और इसलिए, दिनांक 5.8.2020 के आदेश के माध्यम से इस न्यायालय ने 14.8.2020 को कस्टडी में लिए गए व्यक्ति को पेश करने का निर्देश दिया। यह प्रस्तुत किया गया है कि कोविड-19 लॉकडाउन के कारण उक्त तिथि पर इस न्यायालय की कोई बैठक नहीं हुई थी, इसलिए, इस न्यायालय ने दिनांक 27.8.2020 के आदेश के माध्यम से निरुद्ध को 8.9.2020 को पेश करने का निर्देश दिया, जिस तारीख को भी महामारी के कारण कोई अदालत नहीं बैठी थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि इस बीच, प्रतिपक्षी संख्या-2 ने कस्टडी में लिए गए निरुद्ध बच्चे को पेश करने से बचने के लिए 27.8.2020 के आदेश को वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे 14.10.2020 को खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, 11.1.2021 को इस न्यायालय ने आज यानी 20.1.2021 को 'निरुद्ध' को पेश करने का निर्देश दिया।

4. जब मामला उठाया गया है, तो प्रतिपक्षी संख्या-3 से 6 के लिए पेश होने वाले नए अधिवक्ता श्री विवेक सोनकर इस न्यायालय द्वारा आज

अपने आदेश दिनांक 20.1.2021 के माध्यम से दिए गए निर्देश के अनुसार कस्टडी में लिए गए निरुद्ध बच्चे के उपस्थित न होने का कोई ठोस कारण नहीं दिखा सके। हालांकि, उन्होंने कहा कि प्रतिपक्षी संख्या-3 झारखंड में है और वे इस अदालत द्वारा निर्धारित किसी भी तारीख पर पेश होंगे। यह भी सूचित किया गया है कि इस न्यायालय के निर्देशानुसार इस न्यायालय में 30,000/- रुपये की राशि पहले ही जमा की जा चुकी है ताकि सदाशयता दिखाई जा सके और साथ ही प्रतिपक्षी संख्या-3 के साथ-साथ 'निरुद्ध' को इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में सक्षम बनाया जा सके।

5. उपरोक्त के मद्देनजर, मुझे इस बात का कोई कारण नहीं दिखता कि प्रतिपक्षी संख्या-3 इस न्यायालय के समक्ष कस्टडी में लिए गए बच्चे के साथ क्यों नहीं पेश हो रहा है। इसलिए, इस मामले को 28.1.2021 को सूचीबद्ध करें, जिस तारीख को प्रतिपक्षी संख्या-3 इस अदालत के समक्ष कब्जे में लिए गए मास्टर देवांश अग्रवाल के साथ पेश होगा।

6. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि इस आदेश का अनुपालन नहीं किया जाता है, तो न्यायालय के

पास उनकी उपस्थिति के लिए बलपूर्वक तरीके अपनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा।

12. कि प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण के लंबित रहने के दौरान प्रतिपक्षी संख्या-3 ने दिनांक 20.1.2021 के आदेश के खिलाफ अपील (सीआरएल) संख्या-586 वर्ष 2021 के लिए एक विशेष अनुमति अनुमति याचिका दायर की। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामले को सर्वोच्च न्यायालय के मध्यस्थता केंद्र को संदर्भित किया और दिनांक 25.1.2021 के आदेश के तहत अपील की उपरोक्त विशेष अनुमति को खारिज कर दिया। दिनांक 25.01.2021 के आदेश को नीचे उद्धृत किया गया है:

"उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता संख्या-1 को प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा दायर बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में बच्चे के साथ 20.1.2021 को अदालत में उपस्थित होने का निर्देश दिया। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने हमें सूचित किया कि मामला अब 28.01.2021 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध है।

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस अदालत द्वारा 11.01.2021 को प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा दायर स्थानांतरण याचिका (सी) संख्या-1371-1372 वर्ष 2020 में पारित एक आदेश हमारे ध्यान में लाया, जिसके द्वारा वैवाहिक विवाद को सुप्रीम कोर्ट मध्यस्थता केंद्र को भेजा गया है।

हम विशेष अनुमति याचिका में दिए गए आदेश में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं। हालांकि, याचिकाकर्ता उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाने के लिए स्वतंत्र है कि पूरे

विवाद को सुप्रीम कोर्ट मध्यस्थता केंद्र को भेजा गया है और स्थानांतरण याचिका को आठ सप्ताह के बाद सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया था।

विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है। लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का निपटान किया जाएगा।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय मध्यस्थता केंद्र में मध्यस्थता कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, मामले को 28.01.2021 को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के समक्ष फिर से सूचीबद्ध किया गया था और इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया था:

"1. आज जब मामला उठाया गया है तो श्री दीपक अग्रवाल, अधिवक्ता ने प्रतिपक्षी संख्या-3 की ओर से उपस्थिति दर्ज कराई है। उन्होंने एस.एल.पी. (दीवानी) संख्या-586 वर्ष 2021 में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 25.01.2021 के आदेश को रखा है। जिसके मुताबिक ऐसा लगता है कि एक ट्रांसफर अर्जी को सुप्रीम कोर्ट के सामने दायर किया गया है जहां मौजूदा मैट्रिमोनियल विवाद को सुप्रीम कोर्ट के मध्यस्थता केंद्र को संदर्भित कर दिया गया है। उपरोक्त एस.एल.पी. इस न्यायालय के पहले के आदेश दिनांक 20.01.2021 के खिलाफ दायर की गई थी, जहां इस न्यायालय ने प्रतिपक्षी संख्या-3 को कस्टडी में लिए गए

मास्टर देवांश अग्रवाल के साथ इस अदालत के समक्ष पेश होने का निर्देश दिया था।

2. सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 25.01.2021 के आदेश का अवलोकन किया।

3. आज, इस न्यायालय का ध्यान स्थानान्तरण याचिका (दीवानी) संख्या-1371 वर्ष 2020 में पारित सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 11.01.2021 के आदेश की ओर आकर्षित किया गया है।

4. प्रतिपक्षी संख्या-3 के लिए उपस्थित अधिवक्ता का आचरण अत्यधिक खेदजनक है, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित पहले के आदेशों को इस न्यायालय के संज्ञान में कभी नहीं लाया गया, जिसके कारण इस न्यायालय ने दिनांक 20.01.2021 का आदेश पारित किया।

5. प्रतिपक्षी संख्या-3 के लिए उपस्थित अधिवक्ता द्वारा की गई माफी के आलोक में, यह न्यायालय इस संबंध में कोई और आदेश पारित नहीं कर रहा है।

6. सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 11.01.2021 के साथ-साथ 25.01.2021 के आदेश को देखते हुए,

इस मामले को दो महीने बाद सूचीबद्ध करें।

7. पक्षों के अधिवक्ता सुप्रीम कोर्ट में मध्यस्थता कार्यवाही के परिणाम के बारे में लिस्टिंग की अगली तारीख पर इस न्यायालय को सूचित करेंगे।

14. इसके बाद अपील की विशेष अनुमति (सीआरएल) संख्या-586 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 25.1.2021 के अनुसरण में, पक्ष माननीय सर्वोच्च न्यायालय के मध्यस्थता केंद्र के समक्ष उपस्थित हुए और मध्यस्थता के एकल और संयुक्त सत्र के कई दौर के बाद और उनके साथ उपलब्ध विकल्पों पर विचार करने के बाद पक्षकार अपने विवाद को हल करने के लिए किसी भी सौहार्दपूर्ण समाधान पर नहीं पहुंच सके, ऐसे में मध्यस्थता विफल रही। मध्यस्थता रिपोर्ट की सच्ची प्रति पूरक हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-2 में बनाई गई है, जिसे यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"पक्षों के साथ 01.02.21, 02.01.21 और 04.02.21 को वर्चुअल मोड के माध्यम से और 08.02.21 को सुप्रीम कोर्ट मध्यस्थता केंद्र में भौतिक मध्यस्थता के साथ व्यापक मध्यस्थता सत्र आयोजित किए गए।

हालांकि, एकल और संयुक्त सत्र के

कई दौर के बाद और उनके पास उपलब्ध विकल्पों पर विचार करने के बाद पक्ष अपने विवाद को हल करने के लिए किसी भी सौहार्दपूर्ण समाधान पर नहीं पहुंच सके।

15. इसके बाद, प्रस्तुत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को 14.12.2021 को सूचीबद्ध किया गया था और इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने प्रस्तुत याचिका का निपटारा किया था और टिप्पणियों/निर्देशों के ऑपरेटिव हिस्से को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"यहां, प्रस्तुत मामले में पिता द्वारा नाबालिग बच्चे की कस्टडी को अवैध और कानून के अधिकार के बिना रखा गया है। इसके अलावा, याचिका के लंबित रहने के दौरान इस अदालत द्वारा यह देखा गया है कि बच्चे के प्रस्तुत करने के संबंध में अदालत के कई आदेशों और यहां तक कि बच्चे के साथ मां की बैठक की सुविधा के लिए पिता द्वारा उल्लंघन किया गया था। यह दिखाने के लिए काफी है कि पिता ने न केवल बच्चे को अवैध रूप से मां की कस्टडी से छीन लिया है, बल्कि उसने बच्चे को अपनी मां या मां को अपने बच्चे को देखने का कोई मौका नहीं छोड़ा था। पिता के इस आचरण को यदि पति और पत्नी के बीच मतभेदों के तथ्यों के साथ लिया जाता है, अर्थात्, बच्चे की मां जिसके कारण वे अलग-अलग रह रहे हैं और तथ्य यह है कि भ०द०वि० की धारा 498-ए, 336, 506

और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत प्राथमिकी दहेज की मांग और बच्चे के अपहरण के संबंध में क्रूरता के संबंध में पिता के खिलाफ दर्ज की गई है, यह मानने का कारण है कि पिता माँ के प्रति अपनी दुर्भावना को आगे बढ़ाते हुए बच्चे का ब्रेन वॉश भी अपनी माँ के प्रति करेगा जो बच्चे के हित और कल्याण में नहीं होगा। माँ प्यार और स्नेह के साथ बच्चे की देखभाल, रखरखाव और परवरिश करने के लिए पर्याप्त सक्षम है। वह पिता से इसे हटाकर बच्चे की कस्टडी पाने की हकदार है।

उपरोक्त परिस्थितियों को देखते हुए, याचिकाकर्ता संख्या-2 (मां) को सौंपने के लिए 20.12.2021 को इस न्यायालय के समक्ष बच्चे को पेश करने के लिए प्रतिपक्षी संख्या-3 को बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका जारी करना आवश्यक है, हालांकि, वह परिवार न्यायालय या संरक्षक और वार्ड अधिनियम की अदालत द्वारा अभिभावक के रूप में अनन्य कस्टडी के अपने अधिकारों का अंतिम निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होगा जो इसे घोषित करने के लिए सक्षम हैं; उक्त न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों के आधार पर बालक के कल्याण के संबंध में विचार किया जाता है।

प्रतिपक्षी संख्या-3 को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता संख्या-2 (मां) को बच्चे की कस्टडी सौंपने के लिए 20.12.2021 को दोपहर 2:00 बजे अदालत में बच्चे को पेश करे। प्रतिपक्षी संख्या-3 के मुलाकात अधिकारों के संबंध में आदेश

बच्चे को अदालत में पेश करने के बाद पारित किया जाएगा।

प्रतिपक्षीकार संख्या-2, थानाध्यक्ष थाना-अलीगंज, लखनऊ को निर्देश दिया जाता है कि आदेश के क्रियान्वयन के लिए निर्धारित तिथि पर न्यायालय में प्रतिपक्षीकार संख्या-3 के साथ बालक का उत्पादन सुनिश्चित किया जाए। साथी के साथ यात्रा के लिए खर्च, यदि कोई हो, दिनांक 20.1.2021 के आदेश के अनुसार अदालत में जमा किया गया है, तो अभी भी निरन्तरता में है, जिसका भुगतान प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा बच्चे को याचिकाकर्ता संख्या-2 (मां) को सौंपने के बाद अदालत के वरिष्ठ रजिस्ट्रार द्वारा किया जाएगा।

बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रस्तुत रिट याचिका का निपटारा उपर्युक्त शर्तों में किया जाता है।

कार्यालय को 20.12.2021 को आदेश के कार्यान्वयन के लिए सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया जाता है।

न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार को निर्देश दिया जाता है कि वह सामान्य प्रक्रिया में सेवा के अलावा ई-मेल के माध्यम से भी प्रतिपक्षी संख्या-3 को व्यक्तिगत रूप से निर्णय की प्रति तुरंत दें और पुलिस अधीक्षक, धनबाद को अपने आधिकारिक फैंक्स और ई-मेल के माध्यम से आदेश के कार्यान्वयन की सुविधा प्रदान करें।

प्रतिपक्षी संख्या-2, थानाध्यक्ष, थाना-अलीगंज, लखनऊ तुरंत आदेश की प्रति प्राप्त करेगा और प्रतिपक्षी संख्या-3 के

साथ बच्चे को बरामद करने के लिए एक पुलिस टीम का गठन करेगा, ताकि कार्यान्वयन की तारीख पर अदालत के समक्ष बच्चे का उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके।

16. इसके बाद मामले को फिर से 20.12.2021, 21.12.2022 और फिर 05.01.2022 को सूचीबद्ध किया गया और इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"यह मामला आज दोपहर 02:00 बजे के बाद नोटिस से अदालत के समक्ष रखा गया है।

केस पुकारा गया।

याचिकाकर्ता के लिए श्री राम चंद्र सिंह, अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री अनुराग सिंह चौहान, अधिवक्ता अदालत में उपस्थित हैं।

दिनांक 21.12.2021 के आदेश के अनुसार, निजी प्रतिपक्षी संख्या-3 यानी डॉ. दिनेश अग्रवाल को उनके अधिवक्ता सुश्री रोज मैरी राजू, एडवोकेट के आश्वासन पर बच्चे के साथ दोपहर 02:00 बजे अदालत के समक्ष पेश होने का निर्देश दिया गया था और उनकी चूक के मामले में, प्रतिपक्षी संख्या-2 यानी थानाध्यक्ष, थाना-अलीगंज, जिला लखनऊ को भी निर्देश दिया गया कि वह दिनांक 14.12.2021 के आदेश के अनुसार बच्चे "मास्टर देवांश अग्रवाल" के साथ उसका उत्पादन सुनिश्चित करके आदेश का पालन करें। अपर शासकीय अधिवक्ता को भी आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया था।

आज, याचिकाकर्ता मां "मास्टर देवांश अग्रवाल", श्रीमती दीप्ति गोयल व्यक्तिगत रूप से अदालत के समक्ष उपस्थित हैं, हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-3, अर्थात् डॉ दिनेश अग्रवाल की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं है।

थानाध्यक्ष, थाना-अलीगंज, जिला लखनऊ को अदालत में डॉ दिनेश अग्रवाल के साथ बच्चे का उत्पादन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया गया था, हालांकि अदालत में मौजूद थे, लेकिन गैर-अनुपालन को उनके द्वारा समझाया गया है कि आदेश के अनुपालन के लिए गठित एक टीम अभी भी कटरस बाजार में प्रतिपक्षी संख्या-3 यानी डॉ दिनेश अग्रवाल के निवास स्थान पर रुकी हुई है, जिसने थानाध्यक्ष को सूचित किया गया था कि डा दिनेश अग्रवाल बच्चे के साथ दिल्ली के लिए रवाना हो गए थे। वह अभी भी दिल्ली में हैं और अपने गृह जिले में उनका इंतजार किया जा रहा है।

अपर शासकीय अधिवक्ता थानाध्यक्ष, थाना-अलीगंज, जिला लखनऊ के साथ की गई बातचीत के आधार पर सूचित करता है कि मामला आज नोटिस के माध्यम से अदालत के समक्ष रखा गया है, लेकिन थानाध्यक्ष, थाना-अलीगंज, जिला लखनऊ स्थिति को समझाने के लिए अदालत में मौजूद हैं। उन्होंने झारखंड राज्य के धनबाद जिले में अपनी टीम द्वारा भेजी गई जानकारी के अनुसार सूचित किया कि निजी प्रतिपक्षी संख्या-3 यानी डॉ.

दिनेश अग्रवाल को कल दिल्ली से लखनऊ हवाई मार्ग से आना है क्योंकि आदेश के खिलाफ उनकी विशेष अनुमति याचिका आज अदालत के आदेश से खारिज कर दी गई है। जैसा भी ये हो।

रजिस्ट्रार (लिस्टिंग) के कार्यालय को कल यानी 06.01.2022 को अदालत के समक्ष मामले को सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया जाता है।

आगे यह ध्यान में रखा जाता है कि रजिस्ट्रार (लिस्टिंग) का कार्यालय, 21.12.2021 के आदेश के अनुसार नियत तारीख यानी 05.01.2022 को दोपहर 02:00 बजे व्यक्तिगत उपस्थिति के लिए मामले को वाद सूची में सूचीबद्ध नहीं करने के लिए, स्पष्ट त्रुटि में था, जो किसी भी कारण हो सकता है। इस तरह की त्रुटि को आगे दोहराया नहीं जाना चाहिए और इस तरह की गैर-लिस्टिंग में चूक करने वाले अधिकारी/कर्मचारी को उनके स्पष्टीकरण के लिए बुलाया जाना चाहिए, निष्कर्ष रजिस्ट्रार (लिस्टिंग) द्वारा इस न्यायालय को सूचित किया जाना चाहिए।

17. इसके बाद, दिनांक 05.01.2022 के आदेश के अनुपालन में, मामले को फिर से 06.01.2022 को सूचीबद्ध किया गया और इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"केस पुकारा गया।"

आज 06.01.2022 को सब इंस्पेक्टर श्री दुर्गा प्रसाद यादव, पीएनओ 930440020 और महिला कांस्टेबल सुश्री अंतिमा सिंह पीएनओ 112304472, थाना, जिला लखनऊ निर्णय और आदेश दिनांक 14.12.2021 और बाद के आदेश दिनांक 21.12.2021 के अनुपालन में बाल मास्टर देवांश अग्रवाल को उनके पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल के साथ अदालत में पेश करने के लिए अदालत के समक्ष पेश हुए।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोपहर 2:00 बजे बच्चे को मां को सौंपने के निर्देश के साथ विशेष अपील (सीआरएल) संख्या-10080 वर्ष 2021 (डॉ. दिनेश अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित आदेश दिनांक 05.01.2022 के अनुसार, बच्चे को आज मां श्रीमती दीप्ति गोयल को सौंप दिया गया है।

पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल, निजी प्रतिपक्षी संख्या-3 और मां, बच्चे के 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' मास्टर देवांश अग्रवाल, श्रीमती दीप्ति गोयल दोनों ने मां को बच्चे की डिलीवरी और याचिकाकर्ता मां की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' द्वारा प्राप्त करने के संबंध में आदेश पत्र पर हस्ताक्षर किए हैं।

दिनांक 14.12.2021 के आदेश में, पिता से मिलने के अधिकार के रूप में आदेश को प्रतिपक्षी संख्या-3, डॉ. दिनेश अग्रवाल द्वारा याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' श्रीमती दीप्ति गोयल को बच्चे को सौंपने के आधार पर आकस्मिक रखा गया था, इसलिए यह पिता को बच्चे से मिलने के अधिकार के संबंध में आदेश पारित करने का अवसर है।

(i) प्रतिपक्षी संख्या-3 के साथ बातचीत पर, डॉ. दिनेश अग्रवाल, बच्चे के पिता मास्टर देवांश अग्रवाल, उनके अनुरोध के अनुसार, प्रत्येक सप्ताहांत (रविवार) को याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' श्रीमती दीप्ति गोयल यानी बी-47, सेक्टर-एच, अलीगंज, जिला लखनऊ के निवास पर बच्चे से मिलने जाएंगे, जहां याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' मां श्रीमती दीप्ति गोयल बच्चे के साथ रहती थीं।

(ii) यदि किसी भी कारण से, यदि प्रतिपक्षी संख्या-3 डॉ. दिनेश अग्रवाल रविवार को बच्चे से मिलने में विफल रहते हैं, तो याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' श्रीमती दीप्ति गोयल को एक या दो दिनों के भीतर रविवार के बाद अगले तत्काल दिन सूचित करने के बाद, उस बदले हुए दिन बच्चे से मिल सकते हैं।

(iii) पारस्परिक रूप से, याचिकाकर्ता के

'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष', बच्चे की मां मास्टर देवांश पिता को दिए गए मुलाकात अधिकार के निर्देश का पालन करने के उद्देश्य से या ऊपर निर्धारित किसी अन्य तिथि पर हाउस संख्या-बी-47, सेक्टर एच, अलीगंज, जिला लखनऊ में उपस्थित रहना सुनिश्चित करेगी। माँ न्यायालय की पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना और पक्षकार संख्या-3 के विपरीत बच्चे के पिता को सूचित किए बिना बच्चे के साथ अपने निवास के घर को नहीं छोड़ेगी या नहीं बदलेगी। वह बच्चे मास्टर देवांश के साथ पूर्व अनुमति के बिना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को नहीं छोड़ेगी, जैसा कि ऊपर निर्देशित किया गया है।

(iv) पिता, प्रतिपक्षी संख्या-3 को याचिकाकर्ता की मां या उसके माता-पिता के घर के किसी अन्य परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में दिन के समय में सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे के भीतर उनकी देखरेख और नियंत्रण में बच्चे मास्टर देवांश से मिलने का अधिकार होगा, हालांकि उन्हें पिता द्वारा बच्चे के इस तरह के दौरे में कोई बाधा डालने की अनुमति नहीं है।

(v) पक्ष संख्या-3 के सामने मास्टर देवांश के पिता को बच्चे मास्टर देवांश के साथ अपने बेटे से टेलीफोन पर या तो ऑडियो या वीडियो मोड में संपर्क करने का अधिकार होगा। इस उद्देश्य के लिए मां बच्चे के पिता के साथ इस तरह के

टेलीफोनिक कनेक्शन की सुविधा प्रदान करेगी। उन दोनों के लिए (बच्चे मास्टर देवांश के पिता और माता) बच्चे के साथ टेलीफोन पर बातचीत के उद्देश्य से एक विशेष समय तय करना उचित हो सकता है।

(vi) पिता यदि बच्चे के साथ प्रेम और स्नेह में कोई उपहार देना चाहता है, उसके उपयोग के लिए कुछ भी लाता है या बच्चे की भलाई के लिए कुछ आवश्यक करता है, तो मां, याचिकाकर्ता का 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' या उसके माता-पिता के घर का कोई भी परिवार का सदस्य ऐसे कार्यों में कोई निषेध या बाधा नहीं डालेगा। हालांकि, पिता को यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी चीजें बच्चे के उपयोग और व्यवसाय में सुरक्षित होंगी।

(vii) चूंकि 'बच्चा/निरुद्ध' इतनी कम उम्र का है कि अभी भी स्वास्थ्य विभाग द्वारा निर्धारित निर्धारित टीकाकरण के तहत है, इसलिए टीकाकरण का रिकॉर्ड और आगे के टीकाकरण का रिकॉर्ड पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल द्वारा आदेश की तारीख से 15 दिनों के भीतर जल्द से जल्द मां श्रीमती दीप्ति गोयल को सौंप दिया जाएगा ताकि आगे टीकाकरण, यदि कोई हो, तो उसकी ओर से विफलता के बिना समय पर दिया जा सके।

(viii) यह पिता का कर्तव्य होगा, जब भी वह बच्चे से मिलने जाए तो सुरक्षित

दूरी बनाए रखें, मास्क लगाएं और हाथ को साफ रखें और कोविड-19 दिशानिर्देशों के प्रोटोकॉल का पालन करें।

(ix) यह आशा की जाती है कि पिता को अब तक दो बार टीका लगाया जा चुका है। यदि ऐसा नहीं है, तो वह जल्द से जल्द दो बार टीका लगवाना सुनिश्चित करेगा। मां भी खुद को दो बार टीका लगवाती रहेगी।

(x) यदि पिता को दो बार कोविड-19 वैक्सीन लगाई गई है, तो सुरक्षित दूरी के राइडर और मास्क लगाने का पालन मुलाकात के दौरान करने की आवश्यकता नहीं है।

सक्षम न्यायालय में वैवाहिक याचिका के लंबित रहने को देखते हुए, याचिकाकर्ता के 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष', बच्चे की मां के घर में बच्चे की यात्रा के दौरान रात भर रहने के संबंध में प्रतिपक्षी संख्या-3 के अनुरोध की अनुमति नहीं है। हालांकि, यह इस तरह की कानूनी कार्यवाही में उनके बीच आयोजित संभावित मध्यस्थता के परिणाम के अधीन होगा।

18. प्रतिपक्षी संख्या-3, कस्टडी में लिए गए के पिता ने सी.एम. आवेदन संख्या-1ए/14/2022 और सी.एम. आवेदन संख्या-25/2022 को दिनांक 14.12.2021 और 06.01.2022 के आदेश को वापस लेने की प्रार्थना के साथ स्थानांतरित किया और आगे प्रार्थना की कि

नाबालिग याचिकाकर्ता देवांश की कस्टडी को उसके अपने पिता को सौंपने का आदेश दिया जाए और दिनांक 14.12.2021 और 06.01.2022 के आदेशों को वापस लेने/समीक्षा या संशोधित किया जाए।

उपरोक्त आवेदन में प्रतिपक्षी संख्या-3 ने प्रस्तुत किया है कि दिनांक 06.01.2022 के आदेश के तहत नाबालिग बच्चे को मां को सौंप दिया गया है और पिता को मुलाकात का अधिकार दिया गया है, जिसने पिता को नाबालिग बच्चे से हर रविवार को सुबह 10.00 बजे से शाम 5 बजे तक माँ के निवास पर मिलने की अनुमति दी है।

उपरोक्त आवेदन में प्रतिपक्षी संख्या-3 ने दिनांक 06.01.2022 के आदेश के संदर्भ में प्रस्तुत किया है, प्रतिपक्षी संख्या-3 इस माननीय न्यायालय द्वारा नियुक्त समय यानी सुबह 10:00 बजे याचिकाकर्ता के घर पहुंचा। हालांकि नाबालिग 'बच्चा/निरुद्ध' मौजूद था, वह अपनी मां, मां की बहन और बच्चे की दादी से घिरा हुआ था, जिससे बच्चे को प्रतिपक्षी संख्या-3 के साथ बातचीत करने का कोई मौका नहीं मिला। माहौल सामान्य से बहुत दूर था और नाबालिग 'बच्चा/निरुद्ध' पिता के साथ बातचीत करने के लिए स्वतंत्र महसूस करने की स्थिति में नहीं था। प्रतिपक्षी संख्या-3 ने नाबालिग याचिकाकर्ता की मां, उसकी बहन और उसकी मां से अनुरोध किया कि कृपया प्रतिपक्षी संख्या-3 को बच्चे को बिना धमकाए बच्चे के साथ बातचीत करने की अनुमति दें, जैसा कि किया जा रहा था, लेकिन उसके अनुरोधों को स्वीकार नहीं किया

गया। अपने नाबालिग बेटे के साथ बातचीत करने और बातचीत करने में सक्षम होने के लिए, जैसा कि इस माननीय न्यायालय द्वारा विशेष रूप से अनुमति दी गई है, प्रतिपक्षी संख्या-3 ने अपने साथ एक टैबलेट (इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस) लिया था, जिसके माध्यम से वह अपने बेटे के साथ जुड़ सकता था और दोनों उसके साथ बातचीत कर सकते थे और साथ ही उसे वीडियो पर देख सकते थे, जो न केवल नाबालिग बच्चे और पिता के बीच मौजूद मजबूत बंधन को खत्म नहीं होने देगा और नाबालिग बच्चे को साझा पेरेंटिंग का लाभ मिलता है जिसे तब से दुनिया में पालन-पोषण के सर्वोत्तम तरीके के रूप में स्वीकार किया गया है।

प्रतिपक्षी संख्या-3 ने आगे प्रस्तुत किया है कि मां द्वारा प्रतिपक्षी संख्या-3 के खिलाफ बच्चे के दिमाग को धोने के लिए हर संभव प्रयास किया जा रहा है और नाबालिग बच्चे को प्रतिपक्षी संख्या-3 से मिलने की अनुमति नहीं देकर, याचिकाकर्ता संख्या-2 इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के जानबूझकर उल्लंघन की कीमत पर और कल्याणकारी सिद्धांत के खिलाफ भी बच्चे को प्रतिपक्षी संख्या-3 से अलग करने का प्रयास कर रहा है।

याचिकाकर्ता संख्या-2 ने इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का पालन करने के लिए जानबूझकर उपेक्षा की है, जिसके परिणामस्वरूप नाबालिग बच्चे देवांश के पालन-पोषण में गंभीर नुकसान हुआ है और उसका कल्याण खतरे में है।

प्रतिपक्षी संख्या-3 के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि प्रतिपक्षी संख्या-3 धनबाद में एक प्रैक्टिसिंग स्पाइन सर्जन है, जिसका अपना क्लिनिक और स्थापित प्रैक्टिस है। वह अपने प्रैक्टिस से छुट्टी लेकर सप्ताहांत में लखनऊ जाते हैं, हर रविवार को अपने बेटे से मिलने के लिए रात भर की ट्रेन और सड़क यात्रा सहित कई साधनों के माध्यम से 800 किलोमीटर से अधिक की दूरी तय करते हैं। प्रत्येक रविवार को सुबह 10.00 बजे से शाम 5.00 बजे तक उनका मुलाकात, जो वर्तमान में याचिकाकर्ता संख्या-2 के निवास पर होता है, हमेशा याचिकाकर्ता संख्या-2 और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा फलीभूत होता है और इस माननीय न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 06.01.2022 के आदेश का उनके द्वारा अनुपालन नहीं किया जा रहा है। नाबालिग बच्चे को अपने ही पिता के प्यार से वंचित किया जा रहा है, और पिता अपने बेटे के साथ सार्थक बातचीत करने में सक्षम नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अपने बेटे के करीब रहने और एक सार्थक बातचीत की सुविधा के लिए, पिता ने अपनी पत्नी (याचिकाकर्ता) के घर से मुश्किल से 500 मीटर की दूरी पर किराए के परिसर में सी-137, सेक्टर जे, अलीगंज, लखनऊ में स्थित परिसर किराए पर लिया है। परिसर एक दो बेडरूम का पार्क है, जो बच्चे के पिता के साथ रहने और उसके साथ गुणवत्ता का समय बिताने के लिए पर्याप्त जगह के साथ सुसज्जित, सुरक्षित और आरामदायक है। इस अवधि के दौरान यदि बच्चे की मां बच्चे और पिता (प्रतिपक्षी संख्या-3) के साथ आना और

रहना चाहती है, तो पिता को कोई आपत्ति नहीं होगी। बच्चे को अपने चचेरे भाई और दादा-दादी के साथ बातचीत करने की अनुमति दी जाए। पिता बच्चे को सैर के लिए ले जा सकता है और उसे पड़ोस के पार्क, विज्ञान केंद्र, रेस्तरां, मॉल खेल गतिविधियों आदि में ले जाकर उसे अपने खोल से बाहर ला सकता है।

प्रतिपक्षी संख्या-3 के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि एक अच्छा होटल प्रत्येक रविवार को सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे तक यात्रा के लिए तटस्थ स्थल के रूप में भी काम कर सकता है। होटल क्लार्क्स अवध माता के घर से लगभग 3 किमी दूर स्थित है। सोमवार से शुक्रवार तक पिता को इस माननीय न्यायालय द्वारा तय किए जाने वाले समय में दो दिन वीडियो कॉल पर अपने बेटे से संपर्क करने की अनुमति दी जा सकती है। कॉल सार्थक होनी चाहिए और कम से कम 10 से 15 मिनट तक चलनी चाहिए और 30 सेकंड या उसके बाद डिस्कनेक्ट नहीं होनी चाहिए। टेलीफोन नंबर इंगित किया जा सकता है और इसे हर समय चालू रखा जाना चाहिए।

19. याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष', कस्टडी में लिए गए की मां ने निम्नलिखित राहत(ओं) के साथ दिनांक 06.01.2022 के आदेश में संशोधन के लिए सी.एम. आवेदन संख्या-15/2022 स्थानांतरित किया:

(ए) इस माननीय न्यायालय के दिनांक 06.01.2022 के आदेश के खंड-1 में प्रत्येक सप्ताहांत (रविवार)

को पिता (प्रतिपक्षी संख्या-3) के मिलने के अधिकार को हर महीने एक रविवार तक कम कर दिया जाए और यदि किसी अप्रत्याशित कारणों से रविवार संभव नहीं है तो वैकल्पिक दिन यानी अगले दिन लेकिन नाबालिग याचिकाकर्ता के साथ प्रतिपक्षी संख्या-3 का दौरा महीने में एक बार किया जाए।

(ख) इस माननीय न्यायालय के दिनांक 06.01.2022 के आदेश के खंड-IV में यह नहीं माना जाए कि यह लगातार सुबह 10.00 बजे से शाम 5.00 बजे तक है यानी प्रतिपक्षी संख्या-3 के लिए 7 घंटे की बैठक, यह 1 घंटे या 1.5 घंटे या 2 घंटे यानी एक आदर्श बैठक होनी चाहिए।

(ग) इस न्यायालय के दिनांक 06.01.2022 के आदेश में दिए गए निर्देश के अनुसार, प्रतिपक्षी संख्या-3 पर नाबालिग याचिकाकर्ता को वीडियो क्लिप न देने/दिखाने के लिए एक और राइडर बनाया जाए और फ्रूटी, कोल्ड ड्रिंक, आइसक्रीम जैसे जंक फूड/पेय को प्रतिबंधित नहीं किया जाए।

(द) इस न्यायालय के दिनांक 06.01.2022 के आदेश में दिए गए निर्देश के अनुसार, नाबालिग याचिकाकर्ता से मिलने के दौरान

प्रतिपक्षी संख्या-3 पर एक और राइडर लगाया जाए, उसे घर के गार्ड की सुरक्षित कस्टडी में घर के बाहर रखने के लिए लैपटॉप, मोबाइल रखना चाहिए।

(e) इस न्यायालय के दिनांक 06.01.2022 के आदेश में दिए गए निर्देश के अनुसार, नाबालिग याचिकाकर्ता से मिलने के दौरान प्रतिपक्षी संख्या-3 पर एक और राइडर/प्रतिबंध लगाया जाए, उसे घर के गार्ड की सुरक्षित कस्टडी में घर के बाहर रखने के लिए लैपटॉप, मोबाइल रखना चाहिए।

20. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रतिपक्षी संख्या-3 ने बैठकों के दिनों में लगातार वीडियो गेम दिखाए और बैठक के दौरान हर समय केक, चिप्स, फ्रूटी, टॉफी, लॉलीपॉप और जेम्स जैसे जंक फूड खिलाए, जिसके परिणामस्वरूप दो बार नाबालिग याचिकाकर्ता/'निरुद्ध' लॉलीपॉप खाने के बाद दस्त से पीड़ित हुआ। वह आगे प्रस्तुत करता है कि प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा प्रत्येक रविवार को मुलाकात ने नाबालिग याचिकाकर्ता/'निरुद्ध' का ध्यान भटकाया है और नाबालिग याचिकाकर्ता/'निरुद्ध' के मानसिक और शारीरिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। बैठक के दौरान प्रतिपक्षी संख्या-3 का व्यवहार वीडियो गेम दिखाकर लगातार 3-4 घंटे तक नाबालिग याचिकाकर्ता को गले लगाना और पकड़ना है और नाबालिग याचिकाकर्ता/'निरुद्ध' को सोने और उसे जगाए रखने की अनुमति

नहीं देता है और नाबालिग याचिकाकर्ता/'निरुद्ध' से मिलने के बाद प्रतिकूल महसूस करता है और आने वाले दिनों में खोया खोया दिखता है।

21. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि नाबालिग याचिकाकर्ता/'निरुद्ध' के साथ प्रतिपक्षी संख्या-3 की मुलाकात फलदायी नहीं है क्योंकि नाबालिग याचिकाकर्ता/'निरुद्ध' के कल्याण के बारे में प्रतिपक्षी संख्या-3 के दोषपूर्ण रवैये को प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा केंद्रित किया जाना चाहिए था और नाबालिग याचिकाकर्ता के उपचार के विकास के लिए परेशानी नहीं बनना चाहिए था।

22. याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष'/कस्टडी में लिए गए व्यक्ति की मां अच्छी तरह से शिक्षित है; वित्त और मानव संसाधन में एमबीए होने के कारण वह शारीरिक, आर्थिक और भावनात्मक रूप से हर तरह से बच्चे की देखभाल करने के लिए बहुत योग्य है। आगे यह तर्क दिया गया है कि बच्चे की डिलीवरी की लागत और खर्च उसके द्वारा किए गए थे, उसके पास बैंक में उसकी बचत पर ब्याज से अर्जित कमाई का एक निरंतर स्रोत है। आगे यह तर्क दिया गया है कि मां लखनऊ में बीबीडी विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के रूप में पढ़ाने की एक प्रतिष्ठित नौकरी में थी, लेकिन बच्चे के जन्म के बाद से, केवल उसकी देखभाल और पालन के उद्देश्य से उसने वह नौकरी छोड़ दी। इस

प्रकार, वह अपने बेटे मास्टर देवांश अग्रवाल को कस्टडी में रखने के लिए मानसिक और आर्थिक रूप से सक्षम है।

23. पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने पाया कि नाबालिग बच्चे को माता-पिता दोनों के प्यार और स्नेह से वंचित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि अभाव के परिणामस्वरूप उसके प्रारंभिक वर्षों में बच्चे के प्रभावशाली और निर्दोष स्वभाव पर गंभीर शारीरिक प्रभाव पड़ता है और इस मामले में नाबालिग बच्चे को अपने ही पिता के प्यार से वंचित किया जा रहा है, और पिता अपने बेटे के साथ सार्थक बातचीत करने में सक्षम नहीं है। जब भी नाबालिग बच्चे की कस्टडी से संबंधित अदालत के समक्ष कोई सवाल उठता है, तो मामले का फैसला पक्षों के कानूनी अधिकारों पर विचार करने के लिए नहीं बल्कि बच्चे के हित और कल्याण के लिए सबसे अच्छा काम करने वाले एकमात्र और प्रमुख मानदंड पर किया जाना है। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का प्राथमिक उद्देश्य, जैसा कि नाबालिग बच्चों पर लागू होता है, यह निर्धारित करना है कि बच्चे के सर्वोत्तम हितों को किसके संरक्षण उन्नत किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, अभिरक्षा के प्रश्न का निर्धारण प्रतिपक्षी पक्षों की आर्थिक परिस्थितियों को तौलकर नहीं किया जा सकता है। मामला केवल भौतिक आराम और भौतिक लाभों के आधार पर निर्धारित नहीं किया जाएगा जो एक दावेदार या दूसरे के घर में उपलब्ध हो सकते हैं। यह आगे माना जाता है कि बच्चे के कल्याण को बच्चे के सामान्य मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक

कल्याण सहित हर विचार पर तय किया जाना चाहिए। एक बच्चे की कस्टडी के लिए प्रतिद्वंद्वी दावेदारों के बीच विवादों को हल करते समय, न्यायालय का उद्देश्य उस क्रम का चयन करना होना चाहिए जो बच्चे के स्वस्थ विकास, उन्नति और शिक्षा के लिए सबसे अच्छा अवसर प्रदान करेगा ताकि वह एक परिपक्व वयस्क के रूप में जीवन की समस्याओं का सामना करने के लिए सुसज्जित हो।

निथ्या आनंद राघवन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य 2017 8 एस.सी.सी. 454 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि ऐसे मामलों में अदालत का मुख्य कर्तव्य यह पता लगाना है कि क्या बच्चे की कस्टडी गैरकानूनी और अवैध है और क्या बच्चे के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि उसकी वर्तमान कस्टडी को बदल दिया जाए और बच्चे को उसकी (अन्य) देखभाल और कस्टडी में सौंप दिया जाए। निर्णय में पैरा-44 से 47 में की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

"44. वर्तमान अपील एक नाबालिग बच्चे के उत्पादन और कस्टडी के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की मांग करने वाली याचिका से निकलती है। कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट, दार्जिलिंग, (1973) 2 एस.सी.सी. 674 में इस न्यायालय ने माना है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण अनिवार्य रूप से न्याय की मशीनरी से संबंधित एक प्रक्रियात्मक रिट थी। रिट में अंतर्निहित उद्देश्य एक ऐसे

व्यक्ति की रिहाई को सुरक्षित करना था जो अवैध रूप से अपनी स्वतंत्रता से वंचित है। बंदी प्रत्यक्षीकरण का प्रादेश उस व्यक्ति को संबोधित एक आदेश है जिस पर आरोप है कि वह किसी अन्य को गैरकानूनी कस्टडी में रखता है, जिसके लिए उसे अदालत के समक्ष ऐसे व्यक्ति को पेश करने की आवश्यकता होती है। न्यायालय के समक्ष व्यक्ति को पेश करने पर, जिन परिस्थितियों में संबंधित व्यक्ति को कस्टडी में लिया गया है, उनकी अदालत द्वारा जांच की जा सकती है और कथित गैरकानूनी संयम की उचित जांच के बाद उचित निर्देश पारित किया जा सकता है जैसा कि उचित और न्यायसंगत समझा जाय। ऐसी कार्यवाहियों में उच्च न्यायालय व्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के तत्काल निर्धारण और नज़रबंदी के गैरकानूनी पाए जाने पर उसकी रिहाई के लिए जांच करता है।

45. एक नाबालिग बच्चे की कस्टडी के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने के लिए एक याचिका में, सैयद सलीमुद्दीन बनाम रुखसाना, (2001) 5 एस.सी.सी. 247 में इस न्यायालय ने माना है कि अदालत का मुख्य कर्तव्य यह पता लगाना है कि क्या बच्चे की कस्टडी गैरकानूनी या अवैध है और क्या बच्चे के कल्याण के लिए आवश्यक है कि उसकी वर्तमान कस्टडी को बदल दिया जाए और बच्चे को सौंप दिया जाए किसी अन्य व्यक्ति की देखभाल और कस्टडी। ऐसा करते समय, सर्वोपरि विचार बच्चे के कल्याण के बारे में होना चाहिए। एलिजाबेथ दिनशाँ बनाम अरवंद एम. दिनशाँ, (1987)1 एस.सी.सी. 42 में, यह माना जाता है कि ऐसे मामलों में, मामले को

पक्षों के कानूनी अधिकारों के संदर्भ में नहीं बल्कि नाबालिग के हितों और कल्याण की सर्वोत्तम सेवा करने वाले एकमात्र और प्रमुख मानदंड पर तय किया जाना चाहिए। एक नाबालिग की कस्टडी के मामलों की जांच करने में उच्च न्यायालय की भूमिका पैरेन्स पैट्रिया क्षेत्राधिकार के सिद्धांत की कसौटी पर है, क्योंकि नाबालिग अपीलकर्ता द्वारा भरोसा किए गए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के भीतर है। इस प्रस्ताव पर विधि निर्णयों को गुणा करना आवश्यक नहीं है।

46. उच्च न्यायालय, किसी दिए गए मामले में, एक नाबालिग बच्चे के संबंध में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका जारी करने की याचिका से निपटते हुए, बच्चे की वापसी का निर्देश दे सकता है या ऊपर उल्लिखित कानूनी स्थिति सहित सभी उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बच्चे की कस्टडी को बदलने से इनकार कर सकता है। एक बार फिर, हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि प्रत्येक मामले में अदालत का निर्णय, बच्चे के कल्याण पर विचार करते हुए उसके सामने लाए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर निर्भर होना चाहिए, जो सर्वोपरि विचार का है। अजनबी अदालत के आदेश को बच्चे के कल्याण के लिए उपज देना चाहिए। इसके अलावा, बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के उपाय का उपयोग केवल अपरिचित अदालत द्वारा अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी व्यक्ति के खिलाफ दिए गए निर्देशों को लागू करने और उस क्षेत्राधिकार को निष्पादन न्यायालय में परिवर्तित करने के लिए नहीं किया जा सकता है। निस्संदेह, रिट

याचिकाकर्ता अपरिचित अदालत द्वारा पारित आदेश को लागू करने के लिए, यदि ऐसा करने की सलाह दी जाती है, कानून में अनुमेय ऐसे अन्य उपाय का सहारा ले सकता है या बच्चे की कस्टडी के लिए भारतीय न्यायालय के समक्ष कानून में अनुमेय किसी अन्य कार्यवाही का सहारा ले सकता है।

47. पूर्वोक्त बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में, उच्च न्यायालय को इस सीमा पर जांच करनी चाहिए कि क्या नाबालिग किसी अन्य व्यक्ति (रिट याचिका में नामित निजी प्रतिपक्षी) की वैध या गैरकानूनी कस्टडी में है। उस मुद्दे पर विचार करने के लिए, प्रस्तुत मामले जैसे मामले में, यह ध्यान देने के लिए पर्याप्त है कि निजी प्रतिपक्षी कोई और नहीं बल्कि नाबालिग की जैविक मां होने के प्राकृतिक अभिभावक के अलावा कोई नहीं था। एक बार इस तथ्य का पता चल जाने के बाद, यह माना जा सकता है कि नाबालिग की अपनी मां के साथ कस्टडी वैध है। ऐसे मामले में, केवल असाधारण स्थिति में, रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में, नाबालिग (बालिका बच्ची) की कस्टडी को उसकी मां से पति (बच्चे के पिता) सहित किसी अन्य व्यक्ति को दिए जाने के लिए छीनने का आदेश दिया जा सकता है। इसके बजाय, दूसरे माता-पिता को बच्चे की कस्टडी पाने के लिए एक ठोस निर्धारित उपाय का सहारा लेने के लिए कहा जा सकता है।

इसी तरह, श्रद्धा कन्नौजिया (माइजर) और अन्य, बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 5 अन्य के मामले में बंदी प्रत्यक्षीकरण संख्या-716 वर्ष 2020 में इस माननीय न्यायालय की

एकल पीठ ने निम्नानुसार अवलोकन करने की कृपा की:

7. "यह अच्छी तरह से तय है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण का प्रादेश एक विशेषाधिकार रिट और एक असाधारण उपाय है। एक नाबालिग बच्चे की कस्टडी से संबंधित दावे के संदर्भ में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का उद्देश्य और दायरा सैयद सलीमुद्दीन बनाम डॉ रुखसाना और अन्य (2001) 5 एस.सी.सी. 247 के मामले में विचार के लिए आया और यह माना गया कि एक बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में एक बच्चे की कस्टडी को एक माता-पिता से दूसरे में स्थानांतरित करने की मांग की गई थी; अदालत के लिए मुख्य विचार यह पता लगाना होगा कि क्या बच्चे की कस्टडी को गैरकानूनी या अवैध कहा जा सकता है और क्या बच्चे के कल्याण के लिए आवश्यक है कि वर्तमान कस्टडी को बदला जाना चाहिए। उक्त मामले में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"11. ... यह स्पष्ट है कि नाबालिग बच्चों की कस्टडी के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की मांग करने वाले एक आवेदन में, अदालत के लिए मुख्य विचार यह पता लगाना है कि क्या बच्चों की कस्टडी को गैरकानूनी या अवैध कहा जा सकता है और क्या बच्चों के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान कस्टडी को बदला जाना चाहिए और बच्चों को किसी और की देखभाल और कस्टडी में दिया जाना चाहिए। सिद्धांत अच्छी तरह से तय है कि बच्चे की

कस्टडी के मामले में बच्चे का कल्याण न्यायालय के सर्वोपरि विचार का विषय है।

24. प्रस्तुत मामले में 'निरुद्ध' अपनी मां के साथ रह रहा है जैसा कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने दिनांक 06.01.2022 के आदेश के माध्यम से निर्देशित किया था। नाबालिग बेटे मास्टर देवांश अग्रवाल की कस्टडी मां के पास रहेगी, लेकिन पक्षकार अभिभावक और वार्ड अधिनियम के तहत या कानून के अनुसार किसी अन्य मंच के समक्ष उचित आवेदन दायर करके नाबालिग बेटे मास्टर देवांश अग्रवाल की अभिभावक के रूप में कस्टडी के लिए अपने विशेष अधिकार प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र होंगे।

इसके अलावा, न्याय के हित में और पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार करते हुए, दिनांक 14.12.2021 और 06.01.2022 के आदेशों को निम्नलिखित सीमा तक संशोधित किया जाता है:

1. गर्मी के मौसम (अप्रैल से सितंबर) के दौरान: कस्टडी में लिए गए मास्टर देवांश अग्रवाल के पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल को सहमति के अनुसार 'निरुद्ध' की मां श्रीमती दीप्ति गोयल के आवास पर मकान संख्या-बी-47, सेक्टर-एच, अलीगंज, जिला लखनऊ में बच्चे के मास्टर देवांश से मिलने का अधिकार होगा, जहां वह बच्चे के साथ प्रत्येक महीने के प्रत्येक रविवार को सुबह 10.00 बजे से दोपहर 01.00 बजे तक रहती थी। श्रीमती दीप्ति गोयल या उनके माता-पिता के घर के किसी अन्य परिवार के सदस्य को उनके पर्यवेक्षण

और नियंत्रण में रखा जाता है, तथापि उन्हें पिता द्वारा बच्चे से मिलने में कोई बाधा डालने की अनुमति नहीं है।

उस दिन निरुद्ध मास्टर देवांश अग्रवाल के पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल को निकटवर्ती पार्क यानी साइंस सेंटर, अलीगंज, लखनऊ में शाम 5.00 बजे से 7.30 बजे के बीच कस्टडी में ली गई उसकी मां/उसकी 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' श्रीमती दीप्ति गोयल या उसके माता-पिता के घर के किसी अन्य परिवार के सदस्य की उपस्थिति में मास्टर देवांश अग्रवाल से मिलने का अधिकार होगा। तथापि, उनके पर्यवेक्षण और नियंत्रण में उन्हें पिता द्वारा बच्चे से मिलने में कोई बाधा डालने की अनुमति नहीं है और रात्रि 8.00 बजे से पहले नाबालिग बच्चे को कस्टडी में ली गई उसकी मां/उसकी अगली मित्र श्रीमती दीप्ति गोयल की अभिरक्षा में सुरक्षित रूप से उसके निवास के पते पर दे दिया जाना चाहिए, जैसा कि पिता प्रतिपक्षी संख्या-3 डॉ. दिनेश अग्रवाल द्वारा ऊपर उल्लेख किया गया है।

2. सर्दियों के मौसम (अक्टूबर से मार्च) के दौरान: कस्टडी में लिए गए मास्टर देवांश अग्रवाल के पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल को प्रत्येक माह के प्रत्येक रविवार को सुबह 10.00 बजे से दोपहर 1.00 बजे के बीच नेबरहुड पार्क यानी साइंस सेंटर, अलीगंज, लखनऊ में, श्रीमती दीप्ति गोयल या उनके माता-पिता के घर के किसी अन्य परिवार के सदस्य, उनकी देखरेख और नियंत्रण में मास्टर देवांश अग्रवाल से मिलने का अधिकार होगा। हालांकि उन्हें पिता द्वारा बच्चे के ऐसे दौरे में

कोई बाधा डालने की अनुमति नहीं है और दोपहर 1.30 बजे से पहले नाबालिग बच्चे को सुरक्षित रूप से कस्टडी में ली गई मां/उसकी 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' श्रीमती दीप्ति गोयल की कस्टडी में उसके निवास के पते पर दिया जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

इसके अतिरिक्त उस दिन 'निरुद्ध' मास्टर देवांश अग्रवाल के पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल को श्रीमती दीप्ति गोयल के मकान संख्या-बी-47, सेक्टर-एच, अलीगंज, जिला लखनऊ में स्थित शिशु मास्टर देवांश से मिलने का अधिकार होगा, जहां वह प्रत्येक माह के प्रत्येक रविवार को शाम 05.00 बजे से 07.30 बजे के बीच बच्ची के साथ निरुद्ध की मां/उसके 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष' या उसके परिवार के किसी अन्य सदस्य की उपस्थिति में रहती थी तथापि, उन्हें पिता द्वारा बच्चे के ऐसे दौरों में कोई बाधा डालने की अनुमति नहीं है।

3. कस्टडी में लिए गए मास्टर देवांश अग्रवाल के दादा और दादी को भी प्रत्येक माह के चौथे रविवार (जनवरी से दिसंबर) को कॉर्पस के पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल के साथ याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष'/मां-श्रीमती दीप्ति गोयल के घर के 5 किलोमीटर के दायरे में किसी भी मानक होटल/शॉपिंग मॉल/रेस्तरां में जलपान और सैर के लिए और इस बीच पहली बैठक के लिए सुबह 10.00 बजे से दोपहर 1.00 बजे तक और दूसरी बैठक के लिए शाम को 5.00 बजे से 7.30 बजे के बीच, बच्चे की सामाजिक और मानसिक क्षमता का निर्माण करने की अनुमति है।

नाबालिग बच्चे को याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष'/मां-श्रीमती दीप्ति गोयल की कस्टडी में उनके निवास के पते यानी हाउस संख्या-बी-47, सेक्टर-एच, अलीगंज, जिला लखनऊ में पहली बैठक के बाद दोपहर 1.30 बजे से पहले और दूसरी बैठक के बाद रात 8.00 बजे से पहले सुरक्षित रूप से दिया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता-श्रीमती दीप्ति गोयल और उनके एक रिश्तेदार भी उस अवधि के दौरान वांछित होने पर 'निरुद्ध' के साथ जा सकते हैं।

4. किसी भी कारण से यदि प्रतिपक्षी संख्या-3 डॉ. दिनेश अग्रवाल रविवार को बच्चे से मिलने में विफल रहते हैं, तो याचिकाकर्ता की 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष'/मां श्रीमती दीप्ति गोयल को एक या दो दिनों के भीतर रविवार के बाद अगले तत्काल दिन सूचित करने के बाद, उस बदले हुए दिन बच्चे से मिल सकते हैं।

5. कस्टडी में लिए गए मास्टर देवांश अग्रवाल के पिता डॉ. दिनेश अग्रवाल को अपने बेटे से टेलीफोन पर ऑडियो या वीडियो मोड में संपर्क करने का अधिकार है। श्रीमती दीप्ति गोयल ने कहा कि टेलीफोन पर बातचीत के उद्देश्य से मां बच्चे को टेलीफोन/मोबाइल फोन की सुविधा प्रदान करेगी। यह उन दोनों के लिए उचित हो सकता है यानी कस्टडी में लिए गए मास्टर देवांश के पिता और माता बच्चों और उनके पिता के बीच टेलीफोन पर बातचीत के लिए दस मिनट से कम का समय तय न करें।

6. यदि बच्चे का पिता अपने बच्चे के प्यार और स्नेह के लिए कोई उपहार देना चाहता है

या घर/शॉपिंग मॉल/पार्क में बच्चे की भलाई के लिए कुछ भी करना चाहता है तो बच्चे की माँ या श्रीमती दीप्ति गोयल के परिवार का कोई भी सदस्य कोई आपत्ति नहीं करेगा। हालांकि, पिता को यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी चीजें दी जाएंगी, जो बच्चों के उपयोग और सुरक्षा के लिए हैं।

7. पारस्परिक रूप से, याचिकाकर्ता के 'अगला दोस्त/प्राथमिक पक्ष', बच्चे की माँ मास्टर देवांश को पिता को दिए गए मुलाकात अधिकार के निर्देश का पालन करने के उद्देश्य से हाउस संख्या-बी-47, सेक्टर-एच, अलीगंज, जिला लखनऊ में उपस्थित रहना सुनिश्चित करेगा। माँ न्यायालय की पूर्व अनुमति प्राप्त किए बिना और बच्चे के पिता, प्रतिपक्षी संख्या-3 को सूचित किए बिना बच्चे के साथ अपने निवास के घर को नहीं छोड़ेगी या नहीं बदलेगी। वह बच्चे मास्टर देवांश के साथ पूर्व अनुमति के बिना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को नहीं छोड़ेगी जैसा कि ऊपर निर्देश दिया गया है।

25. इन अवलोकनों/निर्देशों के साथ सी.एम. आवेदन संख्या-1ए/14/2022, सी.एम. आवेदन संख्या-25/2022 और सी.एम. आवेदन संख्या-15/2022 का अंतिम रूप से निपटान किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 890

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय,
माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार,
रिट-सी संख्या 2119/2023

हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अपराजिता

बंसल, श्री करण अग्रवाल

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., श्री आलोक सक्सेना, श्री अश्वनी कुमार सिंह, सी.एस.सी.

ए. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट - पोषणीयता - वैकल्पिक उपाय - वित्तीय परिसंपत्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (SARFAESI अधिनियम) - धारा 14 और 17 - धारा 17 में खंड (4-ए) डालने वाला संशोधन - आयोजित, उच्च न्यायालय द्वारा SARFAESI अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर सीधे अनुच्छेद 226 के तहत विचार करना न्यायोचित नहीं होगा, क्योंकि उपाय SARFAESI अधिनियम, 2002 की धारा 17 के तहत है - याचिकाकर्ता धारा 17 के तहत ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष सभी प्रासंगिक वाद उठा सकता है। (पैरा 8 और 9)
रिट याचिका निरस्त (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. हर्षद गोवर्धन सोंडागर बनाम इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य; (2014) 6 एससीसी 1
2. बजरंग श्यामसुंदर अग्रवाल बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य; (2019) 9 एससीसी 94
3. यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन और अन्य; (2010) 8 एससीसी 110
4. कन्हैयालाल लालचंद सचदेव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य; (2011) 2 एससीसी 782
5. 2019 की विशेष अनुमति याचिका संख्या 13241-13242; कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड बनाम दिलीप भोसले
6. फीनिक्स आर्क प्रा. लिमिटेड बनाम विश्व भारती विद्या मंदिर एवं अन्य; (2022) 5 एससीसी 345
7. विशेष अनुमति याचिका संख्या 16013/2022; बालकृष्ण रामा तारले मृत थू एलआरएस एवं अन्य बनाम फीनिक्स एआरसी प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य निर्णय दिनांक 26.09.2022

(माननीय न्यायमूर्ति राजन राँय, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता, सुश्री अपराजिता बंसल, राज्य के लिए अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता और प्रतिपक्षी संख्या-4 के अधिवक्ता आलोक सक्सेना को सुना।

इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता- हिंदुस्तान पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर द्वारा केस संख्या-00745 वर्ष 2021, वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण

और प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (जिसे इसके बाद 'सरफेसी अधिनियम, 2002' कहा गया है) की धारा 14 के तहत भारतीय स्टेट बैंक बनाम मैसर्स शिव गीत सेल्स प्राइवेट लिमिटेड, में पारित दिनांक 09.08.2021 के आदेश को चुनौती दी है।

संक्षेप में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह था कि याचिकाकर्ता सुरक्षित संपत्ति का पट्टेदार था और उधारकर्ता द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में एक पट्टा निष्पादित किया गया था, जो उसके द्वारा उक्त संपत्ति को प्रतिपक्षी संख्या-4 बैंक के पास गिरवी रखने से बहुत पहले किया गया था। पट्टे के पंजीकृत होने और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 111 के उपबंधों के अनुसार निर्धारित न किए जाने के कारण बैंक ने उक्त आस्ति के संबंध में सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 13 के अंतर्गत कार्यवाही करने में गलती की और जिला मजिस्ट्रेट ने भी सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत आदेश पारित करने में गलती की। याचिकाकर्ता को सुने बिना 2002 में रिट याचिका दायर की गई। प्रस्तुत करना यह है कि यह कार्रवाई हर्षद गोवर्धन सोंडागर बनाम इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून का घोर उल्लंघन है (2014) 6 एस.सी.सी. 1 और बजरंग, श्यामसुंदर अग्रवाल बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया और अन्य के मामले में बाद के फैसले (2019) 9 एस.सी.सी. 94 में रिपोर्ट किया गया।

दूसरी ओर बैंक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के पास सरफेसी

अधिनियम, 2002 की धारा 17 की उप-धारा (1) और (4ए) के तहत एक उपाय है, इसलिए, यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन और अन्य के मामले से इस विषय पर निर्णयों की श्रेणी को देखते हुए (2010) 8 एस.सी.सी. 110; कन्हैयालाल लालचंद सचदेव और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2011) 2 एस.सी.सी. 782 में रिपोर्ट किया गया, एसएलपी संख्या-13241-13242 वर्ष 2019 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया एक हालिया निर्णय; कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड बनाम दिलीप भोसले और फीनिक्स आर्क प्राइवेट लिमिटेड बनाम विश्व भारती विद्या मंदिर और अन्य के मामले में (2022) 5 एस.सी.सी. 345 में रिपोर्ट किया गया, यह रिट याचिका पोषणीय नहीं है।

इसके अलावा, उन्होंने प्रस्तुत किया कि विचाराधीन पट्टे को दिनांक 03.06.2021 के नोटिस के माध्यम से समाप्त कर दिया गया है, जिसे याचिकाकर्ता ने स्वयं रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-3 के रूप में संलग्न किया है, जिसके अनुसार, याचिकाकर्ता को 07.06.2021 से तीन महीने का नोटिस दिया गया था और जिसकी समाप्ति के बाद दिनांक 13.10.2003 का पट्टा निर्धारित/समाप्त हो जाएगा और याचिकाकर्ता को आगे सहमति के अनुसार तीन महीने का पट्टा दिनांक 13.10.2003 का किराया जमा करने के लिए कहा गया था। इसके आधार पर, उन्होंने प्रस्तुत किया कि नोटिस की अवधि 06.09.2021 को जिस तारीख को पट्टा निर्धारित किया गया था, समाप्त हो गई थी। जवाब में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पट्टे का यह निर्धारण, जैसा कि

आरोप लगाया गया है, यदि 09.08.2021 को आक्षेपित आदेश पारित करने के बाद हुआ था, इसलिए, यह सरफेसी अधिनियम 2002 की धारा 14 के तहत जिला मजिस्ट्रेट की आक्षेपित कार्रवाई की वैधता को स्थगित करने के उद्देश्यों के लिए एक महत्वपूर्ण तथ्य नहीं है। उसने यह भी तर्क दिया कि याचिकाकर्ता विचाराधीन भूमि के कब्जे में है, इसलिए, यह आक्षेपित आदेश द्वारा गंभीर रूप से पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण के पास सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17(2) के तहत कार्यवाही में कब्जा बहाल करने की शक्ति है, लेकिन, पहले विचाराधीन भूमि के पट्टेदार को बेदखल करना और उसके बाद उसके कब्जे का आदेश देना बेहद अनुचित होगा। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17(1) के तहत मामले के स्पष्ट तथ्यों को देखते हुए याचिकाकर्ता के पास उपाय उपलब्ध नहीं है। इस संबंध में वह अपने द्वारा पहले बताए गए निर्णयों पर भरोसा करती है।

इस स्तर पर बैंक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सुरक्षित संपत्ति में 8450 वर्ग मीटर की संपत्ति शामिल है, जबकि, याचिकाकर्ता के पास केवल 1600 वर्ग मीटर भूमि है और किसी भी मामले में पट्टा निर्धारित किया गया है, कि याचिकाकर्ता के पास कोई औचित्य नहीं है और हर्षद गोवर्धन साँडागर के मामले (उपरोक्त) पर भरोसा किया गया निर्णय इसके उद्देश्य को मदद नहीं करता है। उन्होंने दोहराया कि इन सभी मुद्दों को सरफेसी अधिनियम, 2002 के तहत ऋण

वसूली न्यायाधिकरण द्वारा देखा जा सकता है।

हर्षद गोवर्धन सोंडागर (उपरोक्त) के मामले में निर्णय सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 में संशोधन से पहले दिया गया था, इसलिए, उसमें निर्धारित प्रस्ताव कि जहां तक पट्टेदार द्वारा लीज-होल्ड अधिकारों का दावा करने का संबंध है, सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17(1) के तहत कोई उपाय नहीं है और उपचार केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष है। यह मामला उन मामलों पर लागू नहीं होता है जहां सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 में उपधारा (4क) के अंतर्स्थापन न के बाद कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ है। धारा (4 ए) के सम्मिलन से, कोई भी व्यक्ति जो सुरक्षित संपत्ति पर किसी भी किरायेदारी या पट्टे के अधिकारों का दावा करता है, सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 की उप-धारा (1) के तहत एक आवेदन बनाए रख सकता है और ऋण वसूली न्यायाधिकरण को यह जांचने की शक्ति और अधिकार क्षेत्र के साथ निहित किया गया है कि क्या पट्टा या किरायेदारी - (ए) समाप्त हो गई है या निर्धारित हो गई है; या (बी) संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 65 ए के विपरीत है; (ग) बंधक की शर्तों के विपरीत है; या (डी) अधिनियम की धारा 13 की उप-धारा (2) के तहत बैंक द्वारा डिफॉल्ट और मांग की सूचना जारी करने के बाद बनाया गया है और ऋण वसूली ट्रिब्यूनल संतुष्ट होने पर कि किरायेदारी अधिकार या लीजहोल्ड अधिकार सुरक्षित संपत्ति में दावा उप-खंड (ए) या उप-खंड (बी) या उप-खंड (सी)

या उप-खंड (डी) के तहत आता है, फिर, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अन्तर्विष्ट किसी विपरीत बात के होते हुए भी, वह ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जो वह सरफेसी अधिनियम, 2002 के उपबंधों के अनुसार उचित समझे। यह संशोधन अधिनियम 44 वर्ष 2016 दिनांक 01.09.2016 की अधिसूचना द्वारा किया गया था और यह उक्त तिथि से प्रभावी है।

इसी तरह, बजरंग श्यामसुंदर अग्रवाल का मामला (उपरोक्त) भी एक ऐसा मामला है जहां सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 में उप-धारा (4 ए) को शामिल करने से पहले कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ था। इसलिए, उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता के पास सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 के तहत कोई उपाय नहीं है। माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की एक श्रृंखला द्वारा कानूनी स्थिति बहुत अच्छी तरह से तय की गई है कि ऐसे मामलों में, सरफेसी अधिनियम, 2002 के पीछे के उद्देश्य पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत एक आदेश को चुनौती देने वाली भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सीधे रिट याचिका पर विचार करना न्यायसंगत नहीं होगा। सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 के अंतर्गत उपाय के रूप में 2002 से संबंधित है। हमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस स्तर पर इस रिट याचिका पर विचार करने का कोई कारण नहीं दिखता है।

जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की इस दलील का सवाल है कि याचिकाकर्ता

को नहीं सुना गया, हम इस मुद्दे पर भी कोई राय व्यक्त नहीं करना चाहते हैं, क्योंकि हम इसमें शामिल मुद्दों के गुण-दोष में प्रवेश नहीं कर रहे हैं। लेकिन, यह कहना पर्याप्त है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के तहत कार्यवाही गैर-न्यायिक है जिसे सरफेसी अधिनियम की धारा 17 के तहत चुनौती दी जा सकती है। सरकार ने सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 के अंतर्गत ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष उपर्युक्त सहित सभी संगत मुद्दों को उठाया है और याचिकाकर्ता सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 के अंतर्गत ऋण वसूली अधिकरण के समक्ष उपर्युक्त सहित सभी संगत मुद्दों को उठा सकता है। हम इस संदर्भ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 26.09.2022 को विशेष अनुमति याचिका संख्या-16013 वर्ष 2022 में दिए गए हालिया निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं। माननीय उच्चतम न्यायालय ने मैसर्स बालकृष्ण राम तरले डीड द्वारा विधि परामर्शी और अन्य बनाम फीनिक्स एआरसी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में यह निर्णय दिया है कि सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 14 के उपबंधों पर विचार करने के बाद यह निम्नानुसार माना गया है -

"सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के निष्पक्ष पढ़ने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1) के संदर्भ में सुरक्षित संपत्ति का कब्जा लेने के लिए, सुरक्षित लेनदार एक लिखित आवेदन के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट/मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट से संपर्क करने के लिए बाध्य

है, जिसमें सुरक्षित परिसंपत्तियों और दस्तावेजों को कब्जे में लेने और आगे की कार्रवाई के लिए इसे (सुरक्षित लेनदार) को अग्रोषित करने का अनुरोध किया गया है।

सीएमएम/डीएम को यह सांविधिक दायित्व सौंपा गया है कि वह उस उद्देश्य के लिए सुरक्षित लेनदार से सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1) के तहत लिखित आवेदन प्राप्त होने के बाद तुरंत कार्रवाई शुरू करे। जैसे ही ऐसा आवेदन प्राप्त होता है, सीएमएम/डीएम से अपेक्षा की जाती है कि वे सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1) में परंतुक में उल्लिखित सुरक्षित लेनदार द्वारा सभी औपचारिकताओं के अनुपालन के सत्यापन के बाद और उस संबंध में संतुष्ट होने के बाद, प्रतिभूत परिसंपत्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों को अपने कब्जे में ले लें और उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर पर प्रतिभूत ऋणदाता को अग्रोषित करें। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा NKGSB सहकारी बैंक लिमिटेड बनाम सुबीर चक्रवर्ती और अन्य (सिविल अपील संख्या-1637/2022) के मामले में 25.02.2022 को तय किया गया और माना गया, पूर्वोक्त अधिनियम एक मंत्रिस्तरीय कार्य है। इसमें विलंब बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। समय सार का है और यह विशेष अधिनियमन की भावना है। 27.07.2022 को तय किए गए मेसर्स

आरडी जैन एंड कंपनी बनाम कैपिटल फर्स्ट लिमिटेड और अन्य (सिविल अपील संख्या-175/2022) के मामले में हाल के फैसले में, इस न्यायालय के पास सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत जिला मजिस्ट्रेट/मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों पर विचार करने का अवसर था। सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के उद्देश्य और धारा 14 के तहत अधिनियम की योजना पर विचार करने के बाद, यह देखा गया है और पैराग्राफ 7 से 9 में निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"7. अब जहां तक सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत डीएम और सीएमएम द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों का संबंध है, उद्देश्यों और कारणों का विवरण जिसके लिए सरफेसी अधिनियम अधिनियमित किया गया है, निम्नानुसार है: -

"उद्देश्यों और कारणों का कथन
वित्तीय क्षेत्र अपनी अर्थव्यवस्था को तेजी से विकसित करने में सफलता हासिल करने के भारत के प्रयासों में प्रमुख चालकों में से एक रहा है। जबकि भारत में बैंकिंग उद्योग उत्तरोत्तर रूप से अंतर्राष्ट्रीय विवेकपूर्ण मानदंडों और लेखा पद्धतियों का अनुपालन कर रहा है, तथापि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र के पास विश्व के वित्तीय बाजारों के अन्य भागीदारों की तुलना में समान

अवसर उपलब्ध नहीं हैं। बैंकों और वित्तीय संस्थाओं की वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण को सुकर बनाने के लिए कोई कानूनी प्रावधान नहीं है। इसके अलावा, अंतरराष्ट्रीय बैंकों के विपरीत, भारत में बैंकों और वित्तीय संस्थानों के पास प्रतिभूतियों को रखने और उन्हें बेचने की शक्ति नहीं है। वाणिज्यिक लेन-देन से संबंधित हमारा मौजूदा कानूनी ढांचा बदलते वाणिज्यिक तौर-तरीकों और वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के साथ तालमेल नहीं रख पाया है। इसके परिणामस्वरूप चूके ऋणों की वसूली की गति धीमी हो गई है और बैंकों और वित्तीय संस्थानों की गैर-निष्पादनकारी आस्तियों का स्तर बढ़ रहा है। बैंकिंग क्षेत्र सुधारों की जांच करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा गठित नरसिम्हन समिति। और II तथा अध्यारूजीना समिति ने इन क्षेत्रों के संबंध में विधिक प्रणाली में परिवर्तनों की आवश्यकता पर विचार किया है। इन समितियों ने अन्य बातों के साथ-साथ, प्रतिभूतिकरण और बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं को न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना प्रतिभूतियों का कब्जा लेने और उन्हें बेचने की शक्ति प्रदान करने के लिए एक नए विधान के अधिनियमन का सुझाव दिया है। इन सुझावों पर कार्रवाई करते हुए वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अध्यादेश, 2002 21 जून, 2002 को प्रख्यापित किया गया था ताकि वित्तीय

आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित के प्रवर्तन तथा उनसे संबंधित अथवा उसके आनुषंगिक मामलों को विनियमित किया जा सके। अध्यादेश के प्रावधान बैंकों और वित्तीय संस्थानों को दीर्घकालिक परिसंपत्तियों की वसूली करने, तरलता की समस्या का प्रबंधन करने, परिसंपत्ति देयता विसंगति का प्रबंधन करने और प्रतिभूतियों का कब्जा लेने, उन्हें बेचने और वसूली या पुनर्निर्माण के उपायों को अपनाकर गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों को कम करने की शक्तियों का प्रयोग करके वसूली में सुधार करने में सक्षम बनाएंगे।

इस प्रकार, सरफेसी अधिनियम का अंतर्निहित उद्देश्य भारत में वित्तीय संस्थाओं को उनके प्रतिपक्षों जैसे अन्य देशों में अंतर्राष्ट्रीय बैंकों के समान शक्तियां प्राप्त करने के लिए सशक्त बनाना है। ऐसी ही एक विशेषता वित्तीय संस्थानों को प्रतिभूतियों पर कब्जा करने और उन्हें बेचने के लिए सशक्त बनाना है। इसे सरफेसी अधिनियम के अध्याय III के तहत आने वाले प्रावधानों में अनुवादित किया गया है। धारा 13 सुरक्षा हित के प्रवर्तन से संबंधित है। उसकी उपधारा (4) में यह परिकल्पना की गई है कि यदि उधारकर्ता द्वारा उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपनी देयता का पूर्ण निर्वहन करने में चूक की जाती है तो प्रतिभूत ऋणदाता उपधारा (4) में उपबंधित एक या अधिक उपायों का सहारा ले सकता है। इनमें से एक उपाय उधारकर्ता की प्रतिभूत परिसंपत्तियों को अपने कब्जे में लेना है जिसमें प्रतिभूत परिसंपत्ति

की वसूली के लिए पट्टा, समनुदेशन अथवा बिक्री के माध्यम से अंतरण का अधिकार शामिल है। ऐसा वे अपने "अधिकृत अधिकारी" के माध्यम से कर सकते हैं जैसा कि सुरक्षा हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 के नियम 2 (ए) में परिभाषित किया गया है।

7.1 प्रतिभूत परिसंपत्तियों का कब्जा अपने हाथ में लेने के बाद सुरक्षित ऋणदाता द्वारा उसे पट्टे पर देने, सौंपने अथवा बेचने के लिए आगे कदम भी उठाए जा सकते हैं। हालांकि, सरफेसी अधिनियम की धारा 14 में कहा गया है कि यदि सुरक्षित लेनदार सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने का इरादा रखता है, तो लिखित में आवेदन के माध्यम से सीएमएम/डीएम से संपर्क करना चाहिए, और इस तरह के अनुरोध की प्राप्ति पर, सीएमएम/डीएम को सही बयाना में कार्रवाई करनी चाहिए। उस पर एक आदेश पारित करने के बाद, उसे (सीएमएम/डीएम) को सरफेसी अधिनियम की धारा 14(2) सपठित धारा 14(1) के संदर्भ में सुरक्षित लेनदार को भेजे जाने के लिए सुरक्षित संपत्ति और उससे संबंधित दस्तावेजों को कब्जे में लेने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, धारा 14(2) एक सक्षम प्रावधान है और सीएमएम/डीएम को ऐसे कदम उठाने और बल का उपयोग करने की अनुमति देता है, जो उनकी राय में, आवश्यक हो सकता है।

7.2 इस स्तर पर, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि उप-धारा (1 ए) के सम्मिलन के साथ, सरफेसी अधिनियम की धारा 14 की उप-धारा (1) में एक परंतुक भी डाला गया है, जिसके तहत सुरक्षित लेनदार को अब कुछ शर्तों का पालन करना आवश्यक है और उस

संबंध में अपने अधिकृत अधिकारी द्वारा विधिवत पुष्टि किए गए हलफनामे के साथ एक आवेदन के माध्यम से खुलासा करना आवश्यक है। उप-धारा (1 ए) एक व्याख्यात्मक प्रावधान की प्रकृति में है और यह केवल अपने अधीनस्थ किसी भी अधिकारी की सेवाएं लेने में सीएमएम/डीएम की निहित शक्ति को पुनः स्थापित करता है। जैसा कि एनकेजीएसबी सहकारी बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा देखा और अवधारित किया गया है, उप-धारा (1 ए) का सम्मिलन सीएमएम/डीएम में पहली बार एक नई शक्ति का निवेश नहीं करना है।

8. इस प्रकार, सरफेसी अधिनियम की योजना पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि सुरक्षित परिसंपत्तियों की बिक्री की पुष्टि के साथ-साथ बिक्री की पुष्टि के बाद सुरक्षित लेनदार द्वारा सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लिया जा सकता है। प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के लिए, यह बैंक के "प्राधिकृत अधिकारी" द्वारा किया जा सकता है जैसा कि प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियम, 2002 के नियम 8 में उल्लेख किया गया है।

8.1 हालांकि, सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1) के संदर्भ में सुरक्षित परिसंपत्तियों का भौतिक कब्जा लेने के लिए, सुरक्षित लेनदार एक लिखित आवेदन के माध्यम से सीएमएम/डीएम से संपर्क करने के लिए बाध्य है, जिसमें सुरक्षित परिसंपत्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों को कब्जे में लेने और आगे की कार्रवाई के लिए इसे (सुरक्षित लेनदार) को अग्रेषित करने का अनुरोध किया गया है। सीएमएम/डीएम को यह सांविधिक दायित्व

सौंपा गया है कि वह उस उद्देश्य के लिए सुरक्षित लेनदार से सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1) के तहत लिखित आवेदन प्राप्त होने के बाद तुरंत कार्रवाई शुरू करे। जैसे ही ऐसा आवेदन प्राप्त होता है, सीएमएम/डीएम से अपेक्षा की जाती है कि वे सरफेसी अधिनियम की धारा 14(1) में परंतुक में उल्लिखित सुरक्षित लेनदार द्वारा सभी औपचारिकताओं के अनुपालन के सत्यापन के बाद और उस संबंध में संतुष्ट होने के बाद, प्रतिभूत परिसंपत्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों को अपने कब्जे में ले लें और उसे शीघ्रताशीघ्र अवसर पर प्रतिभूत ऋणदाता को अग्रेषित करें। जैसा कि सरफेसी अधिनियम की धारा 14 द्वारा अनिवार्य है, सीएमएम/डीएम को निर्धारित समय सीमा के भीतर कार्य करना होगा और आवेदन की तारीख से 30 दिनों की अवधि के भीतर सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने के उद्देश्य से एक उपयुक्त आदेश पारित करना होगा जिसे ऐसी अवधि के लिए बढ़ाया जा सकता है लेकिन कुल मिलाकर साठ दिन से ज्यादा नहीं। इस प्रकार, सीएमएम/डीएम द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियां एक मंत्रिस्तरीय कार्य है। वह विलंब सहन नहीं कर सकते। समय सार का है। यह विशेष अधिनियमन की भावना है। जैसा कि एनकेजीएसबी सहकारी बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा देखा और माना गया है, सीएमएम/डीएम द्वारा सुरक्षित परिसंपत्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों को अपने कब्जे में लेते समय उठाया गया कदम एक मंत्रिस्तरीय कदम है। यह सीएमएम/डीएम द्वारा स्वयं या उसके अधीनस्थ किसी भी अधिकारी के माध्यम से लिया जा सकता है,

जिसमें एडवोकेट कमिश्नर भी शामिल है, जिसे उसके न्यायालय का अधिकारी माना जाता है। धारा 14 सीएमएम/डीएम को व्यक्तिगत रूप से जाने और सुरक्षित परिसंपत्तियों और उससे संबंधित दस्तावेजों को अपने कब्जे में लेने के लिए बाध्य नहीं करती है। इस प्रकार, हम दोहराते हैं कि सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत सीएमएम/डीएम द्वारा उठाया जाने वाला कदम एक मंत्रिस्तरीय कदम है। सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत आवेदन का निपटान करते समय, अर्ध-न्यायिक कार्य या दिमाग के प्रयोग के किसी भी तत्व की आवश्यकता नहीं होगी। मजिस्ट्रेट को आवेदन में दी गई जानकारी की सत्यता पर निर्णय लेना है और इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिए, धारा 14 में सुरक्षित परिसंपत्तियों का कब्जा लेने वाले सुरक्षित लेनदार के खिलाफ उधारकर्ता द्वारा उठाए गए बिंदुओं के लिए एक न्यायिक प्रक्रिया शामिल नहीं है।

9. इस प्रकार, सरफेसी अधिनियम की योजना, विशेष रूप से, सरफेसी अधिनियम की धारा 14 और मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट/विद्वान जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश में सही अवलोकन किया है और माना है कि मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट/विद्वान जिला मजिस्ट्रेट में निहित शक्ति व्यक्ति पदनाम के रूप में नहीं है।

इसके बाद यह निम्नानुसार देखा गया: -

"इस प्रकार, सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत सीएमएम/डीएम द्वारा

प्रयोग की जाने वाली शक्तियां मंत्रिस्तरीय कदम हैं और धारा 14 में सुरक्षित लेनदारों के खिलाफ उधारकर्ताओं द्वारा उठाए गए बिंदुओं के लिए कोई न्यायिक प्रक्रिया शामिल नहीं है। इस मामले को ध्यान में रखते हुए एक बार जब सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत सभी आवश्यकताओं का अनुपालन किया जाता है/सुरक्षित लेनदार द्वारा संतुष्ट किया जाता है, तो यह सीएमएम/डीएम पर डाला गया कर्तव्य है कि वह सुरक्षित लेनदार को कब्जा प्राप्त करने में सुरक्षित संपत्ति से संबंधित दस्तावेज भी उसके अधीनस्थ किसी अधिकारी की मदद से और/या एडवोकेट कमिश्नर के रूप में नियुक्त अधिवक्ता की मदद से, सहायता करे। उस स्तर पर, सीएमएम/डीएम को उधारकर्ता और सुरक्षित लेनदार के बीच विवाद और/या किसी अन्य तीसरे पक्ष और सुरक्षित लेनदार के बीच सुरक्षित परिसंपत्तियों के संबंध में विवाद का निर्णय करने की आवश्यकता नहीं है और पीड़ित पक्ष को सरफेसी अधिनियम की धारा 17 के तहत ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष कार्यवाही में आपत्तियां उठाने के लिए तैयार किया जाना है,

उपरोक्त चर्चा के मददेनजर, याचिकाकर्ता के लिए उक्त उपाय का लाभ उठाने के लिए इसका विकल्प खुला छोड़ते हुए, हम इस रिट याचिका को पोषणीय नहीं मानते हुए खारिज करते हैं।

(2023) 4 ILRA 897

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन राँय,
माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार,

रिट-सी संख्या 2282/2023

सी/एम गांधी गृह निर्माण सहकारी लि
वाराणसी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ... प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अनुराग कुमार
सिंह
अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री गौरव
मेहरोत्रा, श्री राकेश कुमार चौधरी

क. उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965- धारा 29 (4-बी) और 35 -यूपी राज्य सहकारी समिति चुनाव नियम, 2014 - नियम 8- प्रावधान और नियम 12 - प्रबंध समिति का पांच वर्ष का कार्यकाल समाप्त हो गया - धारा 29(4-बी) के तहत एक अंतरिम प्रबंध समिति गठित की गई - आवास विभाग के एक कर्मचारी को सदस्य बनाया गया - वैधता को चुनौती दी गई -क्या आदेश को समिति के निलंबन प्रदान करने वाले धारा 35 के तहत पारित आदेश के रूप में माना जा सकता है - आयोजित, धारा 29(4-बी) के तहत अंतरिम प्रबंध समिति के हिस्से के रूप में किसी कर्मचारी की नियुक्ति पर कोई रोक नहीं है - आगे माना गया, आदेश को धारा 35 के तहत पारित आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता क्योंकि बाद वाला प्रावधान प्रबंध समिति के

अधिक्रमण या निलंबन की बात करता है, जबकि कार्यकाल समाप्त होने के बाद प्रबंध समिति के अधिक्रमण या निलंबन का कोई सवाल ही नहीं है -यह धारा 29(4-बी) के तहत पारित आदेश है - हाईकोर्ट ने चुनाव कराने के निर्देश जारी किए। (पैरा 5, 6, 11, 14 और 17)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति राजन राँय और माननीय न्यायमूर्ति न्यायमूर्ति मनीष कुमार, द्वारा प्रदत्त)

यह याचिका गांधी गृह निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड द्वारा निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है: -

i) रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-1 के रूप में निहित प्रतिपक्षी संख्या-4 द्वारा पारित दिनांक 01.02.2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना;

(ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निदेश जारी करना जिसमें प्रतिपक्षीकार संख्या-2 को गांधी गृह निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड, वाराणसी की प्रबंधन समिति का चुनाव तत्काल कराने का आदेश दिया गया हो।

iii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रतिपक्षी संख्या-3 को आदेश दिया जाए कि याचिकाकर्ता प्रबंधन समिति को चुनाव होने तक सोसायटी

के मामलों का प्रबंधन करने की अनुमति दी जाए।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्रबंधन समिति का कार्यकाल समाप्त हो गया है और उक्त कार्यकाल की समाप्ति से पहले इसके चुनाव नहीं कराए जा सके। इन परिस्थितियों में, सहकारी आवास समिति से संबंधित अतिरिक्त रजिस्ट्रार सहकारी समिति ने 01.02.2023 को उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 की धारा 29 (4-बी) के तहत एक अंतरिम प्रबंधन समिति का गठन करते हुए आक्षेपित आदेश जारी किया है, जिसमें सहकारी अधिकारी (आवास), वाराणसी सहित पांच सदस्य शामिल हैं, जो सरकार के आवास विभाग के कर्मचारी हैं।

अंतरिम प्रबंधन समिति के इस गठन की वैधता के संबंध में याचिकाकर्ता का तर्क है कि आवास विभाग का कर्मचारी होने के नाते प्रतिपक्षी संख्या-5 उत्तर प्रदेश राज्य सहकारी समिति चुनाव नियम, 2014 के नियम 8 के परंतुक के मद्देनजर चुनाव अधिकारी के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, लेकिन, चुनाव आयोग द्वारा चुनाव की अधिसूचना के बाद, जो वास्तव में व्यपगत हो गया है, वह जिला मजिस्ट्रेट को मतदाता सूची और वैध सदस्यों से संबंधित जानकारी भेज रहा है, जो एक कार्य है। केवल निर्वाचन अधिकारी ही उसकी नियुक्ति के बाद और इस संबंध में कार्य कर सकता है। उन्होंने नियमों के प्रासंगिक प्रावधानों को न्यायालय के समक्ष रखा है।

दूसरी ओर, यह सूचित किया जाता है कि उपर्युक्त नियम, 2014 के नियम 12 के अनुसार, सोसाइटी के सचिव या प्रबंध निदेशक को उन सभी मतदाताओं की सूची तैयार करने

का अधिकार है, जिनके नाम, अयोग्यता, यदि कोई हो, जैसा कि अधिनियम, नियम, 2014 या उप-नियमों में वर्णित है, का उल्लेख किया जाना है और सदस्य, आयोग द्वारा समय-समय पर दिए गए निदेश या तत्समय लागू प्रावधानों के अनुसार चुनाव की तारीख से 120 दिन पहले विधिवत नामांकित साधारण सदस्यों या सहानुभूति रखने वालों को इसलिए यह कार्य अंतरिम प्रबंध समिति द्वारा किया जाना होता है जिसमें पांच सदस्य होते हैं, जिनमें सहकारी अधिकारी आवास उनमें से केवल एक है।

हम पाते हैं कि उन्हें अधिनियम, 1965 की धारा 29 (4) बी के तहत अंतरिम प्रबंध समिति के हिस्से के रूप में नियुक्त करने में कोई निषेध नहीं है। यह भी सूचित किया जाता है कि अंततः अनंतिम मतदाता सूची नियम 13 के तहत चुनाव अधिकारी द्वारा प्रकाशित की जानी है और उसके बाद, इसे उसी अधिकारी द्वारा अंतिम रूप दिया जाना है, इसलिए, केवल इसलिए कि अंतरिम प्रबंधन समिति द्वारा कुछ जानकारी भेजी जा रही है, जिसका उक्त अधिकारी एक हिस्सा है, इससे याचिकाकर्ता को अपने संविधान को चुनौती देने का कोई कारण नहीं मिलेगा।

सहकारी समिति के प्रबंधन की प्रत्येक समिति का कार्यकाल धारा 29(2)(ए) के तहत 5 वर्ष के रूप में परिभाषित किया गया है और प्रबंधन समिति के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल ऐसी समिति की अवधि के साथ सह-टर्मिनस होगा।

अधिनियम, 1965 की धारा 29 की उपधारा 4-क के अनुसार, किसी भी कारण से, यदि प्रबंधन समिति के सदस्य अपने पांच वर्ष

के कार्यकाल की समाप्ति से पहले निर्वाचित नहीं हुए हैं और निर्वाचित नहीं हो सके हैं तो प्रबंधन समिति अधिनियम के किसी अन्य उपबंध में इसके विपरीत कुछ भी होते हुए भी अपनी अवधि की समाप्ति के बाद अस्तित्व में नहीं रहेगी। भारतीय दंड संहिता की धारा 1965 या उसके अधीन बनाए गए नियम अथवा सोसायटी के उपनियमों के संबंध में कोई निर्णय लिया गया है और इस स्थिति में धारा 4-ख लागू होती है और रजिस्ट्रार एक अंतरिम प्रबंधन समिति की नियुक्ति करता है।

हम प्रतिपक्षी के तर्क में योग्यता पाते हैं, सबसे पहले इस कारण से कि अनुलग्नक संख्या-1 में निहित आदेश अधिनियम, 1965 की धारा 29 (4-बी) के तहत पारित एक आदेश है। दूसरे, इस आदेश को धारा 35 के तहत पारित आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि बाद वाला प्रावधान प्रबंधन समिति के अधिक्रमण या निलंबन की बात करता है, जबकि कार्यकाल समाप्त होने के बाद प्रबंधन समिति के अधिक्रमण या निलंबन का कोई सवाल ही नहीं है। दिनांक 01.02.2023 को आक्षेपित आदेश धारा 29(4-बी) के तहत पारित किया गया है, जिसमें निर्वाचित प्रबंधन समिति का अस्तित्व समाप्त होने के बाद एक अंतरिम प्रबंधन समिति का प्रावधान है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उन आधारों में से एक पर भरोसा करते हुए बहुत जोर दिया गया था, जिस पर प्रबंधन समिति के सुपरसेशन या निलंबन का आदेश धारा 35 के तहत दिया जा सकता है, अर्थात्, जब प्रबंधन समिति की अवधि समाप्त होने से पहले अधिनियम, 1965 के प्रावधानों के

अनुसार चुनाव कराने में विफल रही है। हालांकि, हम इस तर्क से प्रभावित नहीं हैं क्योंकि प्रबंधन की समिति सबसे पहले चुनाव अवधारित नहीं करती है और अब चुनाव आयोग के निर्देश के अनुसार अवधारित किए जाने हैं। दूसरा, जैसा कि पहले ही कहा गया है कि "प्रबंधन समिति की अवधि समाप्त होने से पहले इस अधिनियम के प्रावधान के अनुसार चुनाव कराने में विफल रहा है" को समझना होगा और यह तथ्य कि चुनाव निर्वाचन आयोग के निर्देशों पर किए जाने हैं न कि प्रबंधन समिति द्वारा, यथोचित विचार करते हुए लागू किया जाना चाहिए। इसलिए, इन शब्दों को प्रबंधन समिति से संबंधित अधिनियम, 1965 की धारा 29 के साथ पढ़ा जाना चाहिए। हम इस संबंध में अधिनियम, 1965 की धारा 29 की उपधारा 3 का उल्लेख कर सकते हैं, जिसके अनुसार, प्रत्येक सहकारी समिति की प्रबंधन समिति के पुनर्गठन के लिए चुनाव प्रबंधन समिति की अवधि की समाप्ति से कम से कम 15 दिन पहले चुनाव आयोग के अधीक्षण, नियंत्रण और निर्देश के तहत निर्धारित तरीके से पूरा किया जाएगा और इस प्रकार उप-धारा (2) के तहत, निर्वाचित सदस्य प्रबंधन समिति का स्थान लेंगे जिसका कार्यकाल समाप्त हो गया है। उपधारा 4 में कहा गया है कि यथास्थिति, सहकारी सोसाइटी के सचिव या प्रबंधन निदेशक का यह कर्तव्य होगा कि वह प्रबंधन समिति के कार्यकाल की समाप्ति से चार मास पूर्व निर्वाचन आयोग को निर्वाचन कराने के लिए मांग करे और ऐसी सभी जानकारी ऐसी अवधि के भीतर जो इसके द्वारा तय की जा सकती है, प्रस्तुत करे जो निर्वाचन आयोग को

अपेक्षित हो। इसलिए, ऊपर उद्धृत धारा 35 में निर्दिष्ट शब्दों को धारा 29 की उपधारा (4) के साथ जोड़ा जाना चाहिए और यह तब होता है जब सहकारी समिति के सचिव या प्रबंध निदेशक चुनाव कराने के लिए अपनी अवधि की समाप्ति से चार महीने पहले चुनाव आयोग को भेजने में विफल रहते हैं और ऐसी सभी जानकारी प्रस्तुत करने में भी विफल रहते हैं जो चुनाव आयोग द्वारा ऐसी अवधि के भीतर अपेक्षित होती है। इसके द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि अधिनियम, 1965 की धारा 35 का उपबंध लागू होगा। इसके अलावा, ये पहले ही कहा गया है कि प्रावधान ऐसे मामले में लागू होंगे जहां प्रबंधन समिति का कार्यकाल समाप्त नहीं हुआ है या प्रबंध समिति का अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ है। यह उस मामले पर लागू नहीं होगा जहां प्रबंध समिति का कार्यकाल पहले ही समाप्त हो चुका है या इसका अस्तित्व समाप्त हो गया है।

यह स्पष्ट है, क्योंकि, प्रबंधन समिति का कोई भी अधिक्रमण या निलंबन केवल तभी हो सकता है जब प्रबंध समिति अभी भी मौजूद हो और/या उसका कार्यकाल समाप्त न हुआ हो। प्रबंधन की किसी समिति के अधिक्रमण या निलंबन का कोई सवाल ही नहीं उठता है जब उसका अस्तित्व पहले ही समाप्त हो चुका है या उसका कार्यकाल समाप्त हो चुका है। अधिनियम, 1965 की धारा 35 के अंतर्गत परिकल्पित कार्रवाई कुछ हद तक दांडिक प्रकृति की है, जबकि अधिनियम, 1965 की धारा 29(4-ख) का उपबंध ऐसा नहीं है। बाद के प्रावधान में केवल सहकारी समिति के प्रबंधन को सुविधाजनक बनाने के लिए जब निर्वाचित प्रबंधन समिति का अस्तित्व समाप्त

हो गया है या इसकी अवधि समाप्त हो गई है, एक 'स्टॉप गैप' व्यवस्था का प्रावधान है। दोनों प्रावधानों का दायरा बहुत अलग है।

इसके अतिरिक्त, हम पाते हैं कि अधिनियम, 1965 की धारा 35 के चौथे परंतुक के अनुसार, रजिस्ट्रार को, जहां सरकार की हिस्सेदारी या ऋण या वित्तीय सहायता या सरकार द्वारा कोई गारंटी नहीं है, किसी सहकारी समिति की प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने या निलंबित करने की किसी भी शक्ति से वंचित कर दिया गया है। यह याचिकाकर्ता का अपना मामला है कि मौजूदा समाज उक्त परंतुक द्वारा कवर किया गया है, इसलिए, धारा 35 के आवेदन का कोई सवाल ही नहीं है और यह एक अतिरिक्त कारण है कि यहां आक्षेपित आदेश को धारा 35 के तहत पारित किए गए आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है।

उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि दिनांक 01.02.2023 को आक्षेपित आदेश 30 जनवरी, 2023 को सहकारी समिति की प्रबंधन समिति का कार्यकाल समाप्त होने के बाद पारित किया गया है। इस प्रकार यह अधिनियम, 1965 की धारा 29 (4-बी) के तहत एक आदेश है।

जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के इस तर्क का संबंध है कि आवास विभाग के एक अधिकारी को अंतरिम प्रबंधन का हिस्सा बनाने की अनुमति नहीं है, हमें अधिनियम, 1965 या उसके तहत बनाए गए किसी भी नियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं मिलता है, जो अंतरिम प्रबंधन समिति में ऐसे किसी भी अधिकारी को शामिल करने पर रोक लगाता हो। इस संबंध में नियम 8 के परंतुक पर याचिकाकर्ता के

अधिवक्ता द्वारा रखा गया भरोसा गलत है, क्योंकि उक्त परंतुक केवल यह कहता है कि सोसायटी के प्रबंधन और प्रशासन से संबंधित विभाग के किसी भी अधिकारी/कर्मचारी को चुनाव अधिकारी के रूप में नियुक्त नहीं किया जाएगा। ऐसा नहीं है कि उक्त अधिकारी, जिसे अंतरिम प्रबंधन का हिस्सा बनाया गया है, को चुनाव अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया है। नियम 8 के परंतुक का अर्थ यह नहीं निकाला जा सकता है कि अंतरिम प्रबंध समिति में ऐसे किसी अधिकारी को शामिल नहीं किया जा सकता है।

जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के इस तर्क का संबंध है कि अंतरिम प्रबंध समिति के हिस्से के रूप में, उक्त अधिकारी मतदाताओं की सूची तैयार कर रहा है, यह भी स्वीकार्य नहीं है क्योंकि नियम 2014 के नियम 12 के अनुसार, यह सोसाइटी के सचिव या प्रबंध निदेशक हैं जिन्हें उसमें संदर्भित सभी मतदाताओं की सूची तैयार करने की आवश्यकता है। एक पल के लिए यह मानते हुए कि यह कार्य अंतरिम प्रबंधन समिति द्वारा किया जाना है, हम इस संदर्भ में, धारा 29 की उप-धारा 4-सी का उल्लेख कर सकते हैं, जिसके अनुसार, उप-धारा 4 (बी) के तहत नियुक्त अंतरिम प्रबंध समिति शक्तियों का प्रयोग करेगी और रजिस्ट्रार द्वारा समय-समय पर दिए गए निर्देशों के अध्यक्षीन इस अधिनियम के तहत प्रबंध समिति के कार्यों का पालन करेगी।

इसे देखते हुए, अंतरिम प्रबंधन समिति, जब तक अंतरिम प्रबंधन समिति का कोई सदस्य सहकारी समिति के सचिव या प्रबंध निदेशक के रूप में कार्य नहीं कर रहा है

या समिति के सचिव का पद अलग है, यह अंतरिम प्रबंधन समिति है जिसे नियम 2014 के नियम 12 में उल्लिखित दायित्वों का पालन करना होगा। नियम 12 में उल्लिखित मतदाताओं की सूची तैयार करना अंतिम प्रक्रिया नहीं है बल्कि निर्वाचन अधिकारी को मतदाताओं की अपेक्षित सूची उपलब्ध कराने की केवल एक प्रारंभिक प्रक्रिया है और अंततः यह निर्वाचन अधिकारी है जिसे नियम 12 के अनुसार तैयार की गई अनंतिम मतदाता सूची प्रकाशित करनी है और तत्पश्चात् मतदाताओं की उक्त सूची को निर्वाचन अधिकारी द्वारा नियम 2014 नियम 38 सपठित नियम 37 के अनुसार अंतिम रूप दिया जाएगा। इसलिए, नियम 12 के तहत तैयार की गई अनंतिम सूची स्वयं अंतिम सूची नहीं बनती है और अंततः यह चुनाव अधिकारी है, जिसे आपत्ति, यदि कोई हो, पर विचार करने के बाद इसे अंतिम रूप देना होता है। इसके अलावा, जैसा कि पहले ही कहा गया है, आवास विभाग का अधिकारी अंतरिम प्रबंधन समिति के सदस्यों में से केवल एक है।

इसलिए हम इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि अंतरिम प्रबंध समिति में उनका समावेश कानून में स्वीकार्य नहीं है और हम इस तर्क को खारिज करते हैं।

अब एकमात्र मुद्दा जिस पर विचार किया जाना बाकी है वह सहकारी समिति की प्रबंधन समिति के चुनाव कराने के संबंध में है। गौरव मेहरोत्रा ने बताया कि पूर्व में चुनाव के लिए अधिसूचना जारी की गई थी, लेकिन सहकारी समिति के सचिव या प्रबंध निदेशक द्वारा मतदाताओं की सूची उपलब्ध नहीं कराने के कारण प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकी और अब इसे

फिर से अधिसूचित करना होगा और इस प्रक्रिया में अंतरिम प्रबंध समिति को मतदाताओं की सूची सहित नियम 2014 के नियम 12 में परिकल्पित प्रासंगिक जानकारी प्रदान करनी होगी।

उपर्युक्त के मद्देनजर, हम प्रावधान करते हैं कि अंतरिम प्रबंधन समिति या यदि कोई सचिव या प्रबंध निदेशक है तो वह इस संबंध में नियम 12 के अनुसार उचित स्तर पर कार्रवाई करेगी और कानून के अनुसार निर्वाचन आयोग को अपेक्षित जानकारी प्रदान करेगी और निर्वाचन आयोग अपनी ओर से निर्वाचन को अधिसूचित करने के लिए कार्रवाई करेगा और यह जल्द से जल्द यह कानून के अनुसार सुनिश्चित करेगा।

हम अंतरिम प्रबंधन समिति को आयोग द्वारा चुनाव की अधिसूचना की प्रतीक्षा किए बिना नियम 12 में परिकल्पित पूर्वोक्त प्रक्रिया को सीधे शुरू करने का निर्देश देते हैं, ताकि जैसे ही चुनावों को अधिसूचित किया जाय, सूचना संबंधित अधिकारी या चुनाव आयोग, जैसा भी मामला हो, को भेजने के लिए उनके स्तर पर तैयार हो, और चुनावों में केवल अपनी ओर से किसी चूक के कारण विलंब, स्थगित या रद्द नहीं किया जाय। हमारी राय में पूर्वोक्त, न्याय के उद्देश्यों को पूरा करेगा और याचिकाकर्ता की शिकायत, यदि कोई हो, का निवारण करेगा। जहां तक आक्षेपित आदेश अनुबंध संख्या-1 का संबंध है, हमें इसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं मिलता है। रिट याचिका का उपरोक्त वाक्यांशों में निपटारा किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 901
मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-सी संख्या 2298/2023

रिपुंजय राय

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री संजीव कुमार राय
अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री अशोक कुमार मौर्य, श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ला, श्री विजय भान सिंह

क. सिविल कानून - उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901- धारा 33/39 एवं 219 - राजस्व अभिलेखों से नाम हटाए जाने से उत्पन्न कार्यवाही - राजस्व निरीक्षक की रिपोर्ट, आकार पत्र 45 द्वारा समर्थित, से पता चलता है कि विचाराधीन भूखंड कुछ अन्य हिस्सेदारों के साथ हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिदार की हैसियत से तालाब के रूप में दर्ज है - रिपोर्ट पर विचार न किया जाना - प्रभाव - उच्च न्यायालय ने प्राधिकरण के समक्ष रखी गई सामग्री पर विचार न किए जाने के आधार पर आपेक्षित आदेशों को निरस्त कर दिया। (पैरा 9, 10 एवं 11)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. रिट सी संख्या 14880/2015; चंद्रा पब्लिक स्कूल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, निर्णय दिनांक 02.08.2019

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव कुमार राय, राज्य-प्रतिवादी क्रमांक 1 से 3 के विद्वान स्थाई अधिवक्ता, प्रतिवादी क्रमांक 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री आरपी शुक्ला की ओर से वकालत कर रहे विद्वान अधिवक्ता श्री विजय भान सिंह और प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार मौर्य को सुना।

2. वर्तमान याचिका उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के अंतर्गत शुरू की गई कार्यवाही और धारा 219 उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 के अंतर्गत पुनरीक्षण के दौरान क्रमशः प्रतिवादी संख्या 3 और 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.07.2017 और 10.02.2021 को चुनौती देने के लिए दायर की गई है।

3. यह प्रस्ताव, अधिकारों के रिकॉर्ड, जिसमें ग्राम बनहरा, परगना सिकंदरपुर, जिला बलिया में स्थित पुराने भूखंड संख्या 293 पर तालाब का उल्लेख किया गया है, के आधार पर राजस्व रिकॉर्ड से याचिकाकर्ता का नाम हटाने की मांग के लिए प्रतिवादी संख्या 5 द्वारा दायर की गई शिकायत पर शुरू किया गया है, और जिला शासकीय अधिवक्ता (राजस्व) की विधिक राय के साथ संबंधित राजस्व निरीक्षक से दिनांक 20.05.2014 की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद याचिकाकर्ता को प्लॉट नंबर 293 जिसे बाद में उसी गांव में स्थित प्लॉट नंबर 117 के रूप में क्रमांकित किया गया है, पर अपने

अधिकारों को साबित करने के लिए उसकी आपत्ति/उत्तर मांगने के लिए नोटिस जारी की गई है। प्रतिवादी संख्या 3 के बुलावे के जवाब में, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 10.09.2014 को एक विस्तृत आपत्ति प्रस्तुत की गई, जिसमें विशिष्ट रुख अपनाया गया कि प्लॉट संख्या 116-117 को 1356, 1359, 1360 एफ में याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्तियों के नाम पर दर्ज किया गया है और अब वह उस पर अच्छी तरह से काबिज हैं और अधिकार के रिकॉर्ड का उद्धरण याचिका के साथ संलग्नक-1 के रूप में संलग्न किया गया है।

4. याचिकाकर्ता द्वारा यह विशिष्ट रुख अपनाया गया है कि मात्र पुराना भूखंड संख्या 293 जिसे परिवर्तित कर नया नंबर यानी भूखंड संख्या 117 दिया गया है, तालाब के सामने राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज नहीं किया गया है, जबकि कई अन्य सह-हिस्सेदार हैं जो लंबे समय से राजस्व अभिलेखों में उपलब्ध प्रविष्टियों के फलस्वरूप उस पर अपना कानूनी कब्जा बनाए हुए हैं।

5. प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा शुरू की गई कार्यवाही से पहले याचिकाकर्ता द्वारा अपनाया गया रुख कहीं न कहीं संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा दिनांक 20.05.2014 को प्रस्तुत रिपोर्ट से संबंध रखता है। रिपोर्ट का उद्धरण यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

“...मौजा बड़हरा पर० सि० पूर्वी० तह० सिकंदरपुर के गाटा सं० 117 व 116 का अभिलेखीय व स्थलीय जाँच किया। गाटा सं० 117 मिनजुमिला नंबर है तथा

उसके अंकित खातेदारान संक्रमणीय भूमि है। गाटा सं० 117 का दौरान चकबंदी रकबा के अनुसार विभाजन किया गया है - खाता सं०- 130 में 117 क/0-07डि० व खाता सं० 49 में 117 ख/ 0-11डि० खता सं० 14 में 117 ग/0-14डि० खाता सं० 117 में 117 घ/0-32डि० व खाता सं० 203में 117 ड/0.39 डि० अनुसार खेत चकबंदी आकार पत्र 41, 45 में विभाजित किया गया है।..."

6. उपर्युक्त निष्कर्ष जो संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा भूखंड संख्या 117 के संबंध में दिए गए हैं, इसका उल्लेख इसी गांव में हुई चकबंदी के दौरान आकार पत्र 41 और 45 में भी किया गया है। भूखंड संख्या 117 पर अपने अधिकारों को साबित करने के संबंध में अपनी विस्तृत आपत्ति दर्ज करते हुए इसे प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष रखा गया है। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि भू-राजस्व अधिनियम 1901 की धारा 33/39 के अंतर्गत वाद संख्या 227 वर्ष 2015 का निर्णय करते समय, यद्यपि दिनांक 29.07.2017 के आदेश का आधार संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा दी गई आख्या दिनांक 20.05.2014 को दिया गया है लेकिन आदेश में खाता संख्या 203 के विखंडन के संबंध में शायद ही कोई चर्चा उपलब्ध है, जिसमें भूखंड संख्या 117 को कई भागों में विभाजित किया गया है और संपूर्ण भूखंड संख्या 117 में तालाब के सामने विशिष्ट 117ड माप 0.39 दशमलव का उल्लेख किया गया है जो कि याचिका के साथ संलग्नक-11

के रूप में संलग्न आकार पत्र 45 से बिल्कुल स्पष्ट है और इस प्रकार, भूखंड संख्या 117 के विखंडन की चर्चा की अनुपलब्धता, जो कि संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा भी रिपोर्ट की गई है, आदेश दिनांकित 29.07.2017 में योग्यता नहीं है और यह रद्द किये जाने योग्य है।

7. दिनांक 29.07.2017 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने यूपी भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के तहत कम्प्यूटरीकृत केस नंबर C20171500666 (रिपुंजय राय बनाम चंदेश्वर राय) के रूप में अंकित एक पुनरीक्षण दायर किया। उस पर निर्णय लेते समय, प्रतिवादी क्रमांक 2 ने आदेश दिनांक 10.02.2021 द्वारा निर्धारित किया कि भूखंड संख्या 117 पूरी तरह से तालाब के सामने दर्ज है, जो राजस्व अभिलेख के साथ-साथ भू राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के तहत प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा शुरू की गई कार्यवाही के दौरान संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के विपरीत है।

8. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता ने क्रमशः प्रतिवादी संख्या 3 और 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.07.2017 और 10.02.2021 का समर्थन किया। याचिकाकर्ता के कथन के संबंध में जो कि राजस्व रिकॉर्ड के साथ-साथ संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट द्वारा प्रमाणित की गई है, उसे संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की हद तक स्वीकार किया गया है लेकिन

याचिकाकर्ता के इस रुख को नकारा गया है कि भूखंड संख्या 117 में सह-हिस्सेदार हैं तथा वह चकबन्दी की कार्यवाही के दौरान विखण्डित किया गया है।

9. प्रतिवादी नंबर 5 के विद्वान अधिवक्ता का रुख बरकरार रखने योग्य नहीं है क्योंकि भू राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 33/39 के तहत वाद संख्या 227 वर्ष 2015 के लंबित रहने के दौरान संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट से स्वयं पता चलता है कि भूखंड संख्या 117 हस्तांतरणीय अधिकारों के साथ भूमिदार के रूप में कुछ अन्य हिस्सेदारों के साथ तालाब के रूप में दर्ज है। रिपोर्ट याचिका के साथ संलग्न आकार पत्र 45 से पूरी तरह मेल खाती है और इसे याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई आपत्ति दाखिल करते समय प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

10. यह उचित कार्रवाई थी जिसे धारा 33/39 के तहत विवाद का निपटारा करते समय प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा, संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विस्तृत चर्चा और टिप्पणियों का निपटारा करके और साथ-साथ पिछली कार्यवाही जो भूखंड संख्या 117 पर शुरू की गई और जिसका वर्तमान आदेश अर्थात आदेश दिनांक 29.07.2017 में अभाव है, जिसने वर्तमान याचिका को आक्षेपित किया पर विचार-विमर्श करके, शुरू किया जाना चाहिए था। **चंद्रा पब्लिक स्कूल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य (रिट सी संख्या 14880 वर्ष 2015, 02.08.2019 को निर्णित)** के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय

पीठ जिसमें प्राधिकारी के समक्ष रखी गई सामग्री पर विचार न करने के आधार पर आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया था। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"जैसा कि मैंने पहले ही यहां चर्चा की है, मेरी सुविचारित राय में, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि व्यवस्था अधिनियम, 1950 की धारा 122-बी के तहत तहसीलदार द्वारा पारित मुख्य आदेश संविधान के अनुच्छेद 14 की परीक्षा पास नहीं कर सकता जिसमें जो कुछ भी मनमाना है वह बुरा है और जिन मामलों में न्यायनिर्णयन का तत्व शामिल है, उसमें स्पष्ट रूप से न केवल पीड़ित व्यक्ति द्वारा दायर की गई आपत्तियों पर दिमाग लगाने की आवश्यकता है, बल्कि मुद्दों का उचित न्यायनिर्णयन, उठाई गई दलीलों का मूल्यांकन एवं प्राधिकरण के समक्ष रखी गई सामग्री की सराहना भी आवश्यक है। जब कोई आदेश किसी नागरिक के अधिकार को प्रभावित करता है तो निष्पक्ष व्यवहार के लिए सटीक और ठोस कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता होती है [पंजाब राज्य बिजली बोर्ड और अन्य बनाम जीत सिंह (2009) 13 एससीसी 118]। यह सब आक्षेपित आदेश में काफी वांछित

है और इसलिए, 13 जून,
2012 का आदेश निरस्त किये
जाने योग्य है।"

11. उपरोक्त चर्चाओं और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों के दृष्टिगत, क्रमशः प्रतिवादी संख्या 3 और 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.07.2017 और 10.02.2021 को एतद् द्वारा रद्द किया जाता है। भूखंड संख्या 117, जिसे संबंधित राजस्व निरीक्षक द्वारा 117क, 117ख, 117ग, 117घ, 117ड के रूप में विभिन्न संख्याओं से रिपोर्ट किया गया है, के संबंध में निर्णय करते समय उचित निष्कर्ष देने के माध्यम से नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामले को प्रतिवादी संख्या 3 के पास वापस भेजा जाता है। चकबंदी की कार्यवाही के दौरान शुरू की गई पिछली कार्यवाही पर भी वाद संख्या 227 वर्ष 2015 में शुरू की गई कार्यवाही के अंतिम निर्णय के समय अच्छे से विचार किया जा सकता है।

12. इसे ध्यान में रखते हुए, याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 4 ILRA 904

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय,

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह

देशवाल

रिट-सी संख्या 2760/2006

मेसर्स ईस्ट इंडिया पैकेजिंग प्राइवेट लिमिटेड
...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम
लिमिटेड एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री जे.एच. खान, श्री
श्री डब्ल्यू.एच. खान (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री स्वप्निल कुमार, श्री
चंदन शर्मा, श्री दीपक क्र. जयसवाल, श्री
दिलीप श्रीवास्तव, श्री महेश चन्द्र चतुर्वेदी,
एस.सी., श्री एस.पी. सिंह, श्री स्वप्निल
कुमार, श्री राहुल अग्रवाल

ए. सिविल कानून - औद्योगिक क्षेत्र का
आवंटन - आरक्षण राशि जमा करने में
विफलता के आधार पर रद्द करना - वैधता
को चुनौती दी गई - कोई नोटिस और
सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था -
प्रभाव -स्वचालित रद्दीकरण का प्रभाव खंड,
कितना प्रासंगिक है - आयोजित, भले ही
आरक्षण राशि जमा न करने की स्थिति में
आवंटन को स्वचालित रूप से निरस्त करने
के लिए आवंटन पत्र में प्रावधान है, फिर भी,
याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान
करने के लिए आवंटन निरस्त करने से पहले
नोटिस की आवश्यकता थी, क्योंकि सुनवाई
का अवसर प्रदान न करना उनके अधिकार
को गंभीर रूप से प्रभावित किया है - जिसमें
एचएसआईडीसी के एमडी के उच्चतम
न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया
है। (पैरा 8 और 11)

रिट याचिका निस्तारित (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. एम डी, एचएसआईडीसी बनाम हरिओम एंटरप्राइजेज; 2009 (16) एससीसी 208
2. आईटीसी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य; 2012 एआईआर एससीडब्लू 2421

एंटरप्राइजेज तथा 2012 ए.आई.आर. एस.सी.डब्लू. 2421 में सूचित आई.टी.सी. लिमिटेड बनाम स्टेट ऑफ यू.पी. व अन्य के मामलों में निम्नलिखित निर्णयों पर अवलम्ब लिया है।

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह
देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री रामानुज पांडे की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डब्ल्यू.एच. खान, प्रत्यर्थी सं0 1 व 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री स्वप्निल कुमार तथा प्रत्यर्थी सं0 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल को सुना।

2. वर्तमान याचिका प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांकित 01.12.2005 को चुनौती देते हुए दायर की गई है जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में औद्योगिक भूखंड का आवंटन इस आधार पर रद्द कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता आवंटन पत्र दिनांकित 08.02.2005 के अनुसार निर्धारित समय के भीतर 74,160/- रुपये की आरक्षण राशि जमा करने में विफल रहा है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व उसे कोई नोटिस जारी करके सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया। अपने तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 2009 (16) एस.सी.सी. 208 में सूचित एम.डी., एच.एस.आई.डी.सी. बनाम हरिओम

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी सं0 1 व 2 के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि आवंटन आदेश दिनांकित 08.02.2005 में, यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि यदि आवंटनी निर्धारित समय के भीतर आरक्षण राशि जमा करने में विफल रहता है, तो उसका आवंटन स्वचालित रूप से निरस्त हो जाएगा तथा उसके द्वारा जमा की गई संपूर्ण राशि जब्त हो जाएगी। इसलिए, याचिकाकर्ता को आगे अवसर प्रदान करने के लिए नोटिस जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

5. प्रत्यर्थी सं0 4 के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि याचिकाकर्ता के आवंटन को निरस्त करने के पश्चात, बाद के आवंटनी ने प्रत्यर्थी सं0 2 की अनुमति से अपने पक्ष में विक्रय समझौता निष्पादित किया तथा उसने संपूर्ण धनराशि भी जमा कर दी, परन्तु वर्तमान याचिका के लंबित रहने के दौरान बाद के आवंटनी का आवंटन रद्द कर दिया गया। इसलिए, याचिका खारिज होने योग्य है।

6. उपरोक्त कथनों तथा तर्कों पर विचार करने तथा अभिलेखों के अवलोकन से हम पाते हैं कि आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को कोई नोटिस नहीं दिया

गया था। इस तथ्य पर प्रत्यर्थी सं0 1 द्वारा कोई विवाद नहीं किया गया।

7. विचारणीय एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या प्रत्यर्थी सं0 2 को आवंटन निरस्त करने से पूर्व याचिकाकर्ता को नोटिस जारी करना चाहिए था, जबकि आवंटन पत्र दिनांकित 08.02.2005 में यह शर्त थी कि आरक्षण राशि जमा न कराने की स्थिति में उसका आवंटन स्वतः निरस्त हो जाएगा।

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **एम.डी., एच.एस.आई.डी.सी. बनाम हरि ओम एंटरप्राइजेज (उपरोक्त)** के पैराग्राफ सं0 33, 34 और 36 को यहां उद्धृत किया गया है:

“33. यह प्रश्न कि क्या आवंटी नियमों और शर्तों का पालन करने में विफल रहा है, निर्धारित किया जाना आवश्यक था। अनुबंध की शर्तों को पक्षकारों के अनुबंध के अपने हिस्से को पूरा करने के लिए संबंधित अधिकारों और दायित्वों को ध्यान में रखते हुए समझा जाना चाहिए। यह कारण बताओ नोटिस जारी करने का प्रावधान करता है। यह मूल राशि की वापसी का प्रावधान करता है, बेशक, बिना किसी ब्याज के।

34. भूखंड की वापसी, यह सामान्य बात है, स्वतः नहीं होगी।

36. किसी राज्य के अधिकार क्षेत्र में वापसी और जब्ती की कठोर शक्ति का सहारा लेना आम तौर पर अंतिम उपाय के रूप में लिया जाना चाहिए। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि

निगम प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करने के लिए बाध्य था तथा विशेष रूप से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि एक उद्यमी की क्षमता और साथ ही साथ भूखंड पर औद्योगिक उपक्रम शुरू करने का सदाशय का निर्धारण करना आवश्यक था। निगम को कुछ कारण बताने की आवश्यकता थी कि क्यों संबंधित भूखंड को फिर से प्राप्त किया जाना था। ऐसा करते समय, प्रत्यक्ष तौर पर उसे अपने स्वयं के आचरण को ध्यान में रखना आवश्यक था। कोई भी पक्ष अपने स्वयं के गलत कार्य का लाभ नहीं उठा सकता। जब कोई राज्य आवंटी के विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई करता है, तो जमा की गई राशि को पुनः प्राप्त करने और जब्त करने का आदेश पारित करने से पूर्व उसका सदाशय प्रासंगिक कारकों में से एक होगा।”

9. **आई.टी.सी. लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (उपरोक्त)** में पैराग्राफ संख्या 16 का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है:

“16. वैसे भी, जब आवंटन और पट्टे दिए जाने के कारण अपीलकर्ताओं को मूल्यवान अधिकार प्राप्त हो गए थे, तो प्रभावित पक्षों की सुनवाई के बिना ऐसे अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता था या उन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला जा सकता था.....”

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त मामलों में स्पष्ट रूप से देखा कि आवंटन पत्र में आवंटन के स्वतः रद्द होने का खंड प्राधिकरण को निरस्त करने का आदेश पारित करने से पहले कोई नोटिस जारी न करके आवंटी को सुनवाई के अवसर से वंचित करने का अधिकार नहीं देता है तथा आवंटन को निरस्त करना अंतिम उपाय होना चाहिए।

11. इसलिए, भले ही आवंटन पत्र में आरक्षण राशि जमा न करने की स्थिति में आवंटन को स्वतः निरस्त करने का प्रावधान हो, फिर भी, याचिकाकर्ता का आवंटन निरस्त करने से पूर्व उसे सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए नोटिस देना आवश्यक था, क्योंकि सुनवाई का अवसर न दिए जाने से उसके अधिकार पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

12. उपरोक्त के दृष्टिगत, याचिका स्वीकार की जाती है। प्रत्यर्थी सं0 2 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 01.12.2005 को निरस्त किया जाता है तथा प्रत्यर्थी सं0 2 को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए नोटिस जारी करें तथा उसके पश्चात आदेश पारित करें।

13. यदि याचिकाकर्ता की सुनवाई के पश्चात प्रत्यर्थी सं0 2 याचिकाकर्ता के पक्ष में आवंटन बहाल करने का निर्णय लेता है, तो याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी सं0 2 द्वारा पारित आदेश की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर आवंटन पत्र दिनांकित 08.02.2005 में निर्धारित ब्याज सहित भूखंड का सम्पूर्ण मूल्य

जमा करने की अनुमति होगी। याचिकाकर्ता द्वारा पूर्व में जमा की गई कोई भी राशि प्रश्नगत भूखंड की कीमत में समायोजित की जाएगी।

14. यह निर्देश देना भी उचित होगा कि बाद के आवंटियों द्वारा जमा की गई राशि भी प्रत्यर्थी सं0 2 द्वारा 6.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज के साथ वापस की जाएगी।

15. उपरोक्त निर्देश के साथ, वर्तमान रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

(2023) 4 ILRA 907

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-सी संख्या 7024/2023

भूरा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अमित कुमार

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री अरुण कुमार पांडे

क. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006-धारा 67 एवं 67 ए - अवैध अतिक्रमण - निर्धारण- धारा 67-ए का बचाव, कहां तक प्रासंगिक - माना गया कि, जब संहिता की धारा 67-ए का बचाव संहिता की धारा 67 की कार्यवाही में लिया जाता है, तो वही मुद्दे सीधे और मूल रूप से दोनों कार्यवाहियों में मुद्दा होंगे - संहिता की धारा 67-ए के तहत याचिकाकर्ता के बचाव की

वैधता की जांच करने में निचले विद्वान न्यायालयों की विफलता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है। (पैरा 14 और 17)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

चेयरमैन एलआईसी ऑफ इंडिया व अन्य बनाम ए. मसीलामणि; 2013 (32) एलसीडी 30: (2013) 6 एससीसी 530

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य उत्तरदाताओं के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अमित कुमार को सुना।

2. प्रतिवादी क्रमांक 3-तहसीलदार (न्यायिक), तहसील-अमरोहा, जिला-अमरोहा द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 25.8.2022 को कम्प्यूटरीकृत प्रकरण सं. T202113380101336 उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 (इसके बाद 'कोड' के रूप में संदर्भित) की धारा 67 के तहत, पाता है कि याचिकाकर्ता ने भूमि के विवादित भूखंड पर अवैध रूप से अतिक्रमण किया था, और तदनुसार यह निर्देश दिया गया था कि याचिकाकर्ता को विवादित भूखंड से बेदखल कर दिया जाए। याचिकाकर्ता पर हर्जाना और अन्य आरोप भी लगाए गए थे।

3. विद्वान अपीलीय न्यायालय/कलेक्टर, अमरोहा ने आक्षेपित आदेश दिनांक

19.11.2022 द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय तहसीलदार (न्यायिक), तहसील-अमरोहा, जिला-अमरोहा के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की और 25.08.2022 के अपने आदेश की पुष्टि की।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अमित कुमार का तर्क है कि याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67ए के बचाव को नीचे की दोनों अदालतों द्वारा विज्ञापित नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त, भूमि के उचित सीमांकन के बिना अवैध अतिक्रमण का पता लगाना निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

5. असावधानी के कारण, संहिता की धारा 67-ए को न्यायालय को संदर्भित नहीं किया जा सका जब 29.07.2021 को निर्णय दिया गया था, तो इसके कारण पुनर्विलोकन आवेदन की आवश्यकता थी।

6. राज्य-प्रतिवादी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67-ए के संरक्षण की अनुमति केवल उन व्यक्तियों को दी जा सकती है जो इसके लिए अनिवार्य पूर्व शर्तों को पूरा करते हैं।

7. विवाद के न्यायनिर्णयन के लिए इन सभी प्रासंगिक तथ्यों को आक्षेपित आदेशों से बाहर निकाला जा सकता है। हलफनामों के आदान-प्रदान से विवाद के निपटारे में अनावश्यक रूप से देरी होगी। पक्षकारों की सहमति से मामले पर अंतिम निर्णय लिया जा रहा है।

8. उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 के तहत की गई कार्यवाही में भूमि के किसी भी विवादित भूखंड पर अवैध अतिक्रमण का पता लगाने के लिए, भूमि के विवादित भूखंड की सीमाओं का सीमांकन एक आवश्यक शर्त है। बेशक, इस मामले में ऐसा नहीं किया गया है। अकेले इस आधार पर नीचे के विद्वान न्यायालय द्वारा किए गए अवैध अतिक्रमण का निष्कर्ष प्रभावहीन है।

9. याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67 ए के संरक्षण के अधिकार का दावा किया। नीचे के विद्वान न्यायालयों ने पूर्वोक्त मुद्दे पर विचार करने की स्पष्ट रूप से उपेक्षा की है। यह दिमाग के गैर-प्रयोग को दर्शाता है।

10. संहिता की धारा 67 के साथ-साथ धारा 67-ए विधायिका के समग्र इरादे को दर्शाती है। उपर्युक्त प्रावधान को अधिनियमित करके विधायिका ने अवैध अतिक्रमण के लिए राज्य भूमि की संवेदनशीलता और तत्काल सुधारात्मक उपायों की आवश्यकता को मान्यता दी है। इसके साथ ही विधायिका ने बड़ी संख्या में ऐसे व्यक्तियों की वास्तविकता को भी स्वीकार किया है जिन्होंने भूमि पर आवास इकाइयाँ खड़ी की हैं जो किसी भी सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए आरक्षित नहीं हैं। विधायिका ने प्रावधान में निर्धारित तरीके से उनके अधिकारों की रक्षा की है। संदर्भ में आसानी के लिए प्रावधान यहां दिए गए हैं:

"67 ग्राम पंचायत की संपत्ति की क्षति, गबन और सदोष कब्जे को रोकने की

शक्ति--(1) जहां इस संहिता के उपबंधों के अधीन ग्राम पंचायत या अन्य स्थानीय प्राधिकारी को सौंपी गई या सौंपी गई समझी जाने वाली कोई संपत्ति क्षतिग्रस्त या गबन की जाती है या जहां कोई ग्राम पंचायत या अन्य प्राधिकारी इस संहिता के उपबंधों के अधीन किसी भूमि का कब्जा लेने का हकदार है और ऐसी भूमि उक्त उपबंधों के अनुसार अन्यथा अधिगृहीत है, भूमि प्रबंधक समिति या अन्य प्राधिकारी या संबंधित लेखपाल, यथास्थिति, विहित रीति से संबंधित सहायक समाहर्ता को सूचित करेगा।

(2) जहाँ उपधारा (1) के अधीन या अन्यथा प्राप्त जानकारी से सहायक समाहर्ता का यह समाधान हो जाता है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई सम्पत्ति क्षतिग्रस्त या गबन हो गई है या कोई व्यक्ति इस संहिता के उपबंधों के उल्लंघन में उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी भूमि पर कब्जा कर रहा है, वहाँ वह सम्बन्धित व्यक्ति को कारण बताओ नोटिस जारी करेगा कि क्षति के लिए प्रतिकर क्यों नोटिस में विनिदष्ट राशि से अधिक का गबन या गलत कब्जा उससे वसूल नहीं किया जाना चाहिए और उसे ऐसी भूमि से बेदखल क्यों नहीं किया जाना चाहिए।

(3) यदि वह व्यक्ति, जिसे उपधारा (2) के अधीन सूचना जारी की गई है, सूचना में विनिर्दिष्ट समय के भीतर या ऐसे विस्तारित समय के भीतर, जो सहायक समाहर्ता इस निमित्त अनुज्ञात करे, कारण बताने में असफल रहता है या यदि दर्शाया गया कारण अपर्याप्त पाया जाता है तो

सहायक समाहर्ता निदेश दे सकेगा कि ऐसे व्यक्ति को भूमि से बेदखल कर दिया जाएगा, और उस प्रयोजन के लिए, ऐसे बल का उपयोग या उपयोग करने का कारण हो सकता है जो आवश्यक हो, और यह निदेश दे सकेगा कि संपत्ति की क्षति या गबन के लिए या गलत तरीके से कब्जे के लिए मुआवजे की राशि, जैसा भी मामला हो, ऐसे व्यक्ति से भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जाए।

(4) यदि सहायक समाहर्ता की यह राय है कि कारण बताने वाला व्यक्ति उपधारा (2) के अधीन सूचना में निर्दिष्ट क्षति या गबन या सदोष कब्जे कारित करने का दोषी नहीं है तो वह सूचना का निर्वहन करेगा।

(5) उपधारा (3) या उपधारा (4) के अधीन सहायक कलेक्टर के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, ऐसे आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर कलेक्टर को अपील कर सकेगा।

(6) इस संहिता के किसी अन्य उपबंध में किसी बात के होते हुए भी, और इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस धारा के अधीन सहायक समाहर्ता का प्रत्येक आदेश, उपधारा (5) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा।

(7) इस धारा के अधीन की गई किसी कार्रवाई में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया ऐसी होगी जो विहित की जाये।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'भूमि' शब्द में उस पर खड़े पेड़ और भवन शामिल होंगे

11. 67- ए कुछ गृह स्थलों का मौजूदा स्वामियों के साथ निपटान किया जाना:-

(1) यदि धारा 64 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति ने इस संहिता की धारा 63 में निर्दिष्ट किसी भूमि पर, किसी सार्वजनिक प्रयोजन के लिये आरक्षित भूमि न होने के कारण कोई मकान बनाया है और ऐसा मकान 29 नवंबर, 2012 को बाहर निकलता (?) है तो ऐसे मकान का स्थल उस मकान के स्वामी द्वारा ऐसे निबन्धनों और शर्तों पर धारित किया जाएगा जो विहित की जाएँ।

(2) जहाँ धारा 64 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति ने किसी पट्टेदार (सरकारी पट्टेदार न होने) द्वारा धारित किसी भूमि पर कोई मकान बनाया है और ऐसा मकान 29 नवंबर, 2000 को बाहर निकलता है(?), वहाँ ऐसे मकान का स्थल, इस संहिता में किसी बात के होते हुए भी, ऐसे मकान के स्वामी के साथ आवधिक धारक द्वारा ऐसे निबन्धनों और शर्तों पर जो विहित की जाएँ, निपटाया जाना समझा जाएगा।

स्पष्टीकरण - उप-धारा (2) के प्रयोजन के लिए, 29 नवंबर, 2000 को मौजूद एक घर, एक कार्यकाल धारक द्वारा आयोजित किसी भी भूमि पर, जब तक कि 35 विपरीत साबित नहीं होता है, तब तक उसके रहने वाले द्वारा बनाया गया माना जाएगा और जहाँ रहने वाले उस परिवार के मुखिया द्वारा एक परिवार के सदस्य हैं। "

12. उपरोक्त अवयवों को उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 67-ए के तहत संरक्षण

प्रदान करने के लिए एक अनिवार्य शर्त के रूप में स्थापित किया जाना है। संहिता की धारा 67-ए कुछ लोगों को अधिकार प्रदान करती है जिन्होंने सार्वजनिक भूमि पर अतिक्रमण किया है। संहिता की धारा 67-ए के संरक्षण को लागू करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तें ये हैं। जिस व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही की जाती है, उसने संहिता की धारा 63 में निर्दिष्ट किसी भी भूमि पर अपना घर बनाया है, जो व्यक्ति संहिता की धारा 67-ए की सुरक्षा चाहता है, वह संहिता की धारा 63 में निर्दिष्ट व्यक्तियों की श्रेणी में होना चाहिए। भूमि किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए आरक्षित नहीं होनी चाहिए। घर के निर्माण की तारीख 29 नवंबर, 2012 से पहले होनी चाहिए। ऐसे व्यक्तियों का घर 29 नवंबर 2012 को या उससे पहले भूमि के विवादित भूखंड पर मौजूद होना चाहिए।

13. कई उदाहरणों में, जैसा कि वर्तमान मामले में है, संहिता की धारा 67 के तहत एक नोटिस संहिता की धारा 67 के तहत कार्यवाही का विरोध करने के लिए संहिता की धारा 67-ए के संरक्षण का आह्वान कर सकता है।

14. संहिता की धारा 67 या संहिता की धारा 67-ए के तहत की गई कार्यवाही का फैसला करने का अधिकार रखने वाला प्राधिकरण/न्यायालय समान है। जब संहिता की धारा 67-ए की रक्षा संहिता की धारा 67 की कार्यवाही में की जाती है, तो वही मुद्दे सीधे और पर्याप्त रूप से दोनों कार्यवाही में मुद्दे होंगे। आमतौर पर ऐसे मामलों में दोनों कार्यवाही में पार्टियों की दलीलें, बचाव और सबूत समान होते हैं। यदि संहिता की धारा 67

और 67-ए के तहत कार्यवाही अलग-अलग और एक-दूसरे से अलग-थलग की जाती है, तो इससे मुकदमेबाजी और असंगत निर्णयों की बहुलता होगी। विवाद के निर्णय में एक परिहार्य देरी भी होगी और इसके परिणामस्वरूप घोर अन्याय भी हो सकती है।

15. संहिता की धारा 67 के तहत कार्यवाही में न्यायालय संहिता की धारा 67-ए के तहत संरक्षण के लिए नोटिस प्राप्तकर्ता की पात्रता तय करने के लिए कानून के दायित्व के अधीन हैं। यदि नोटिस प्राप्तकर्ता द्वारा संहिता की धारा 67-ए के तहत बचाव किया जाता है, तो उक्त कार्यवाही अलग से दर्ज की जाएगी। लेकिन दोनों मामलों को समेकित किया जाएगा और एक साथ सुनवाई और निर्णय लिया जाएगा।

16. यह प्रक्रिया विधायी मंशा को ईमानदारी से लागू करेगी और न्याय के हित में भी काम करेगी।

17. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, संहिता की धारा 67-ए के तहत याचिकाकर्ता के बचाव की वैधता की जांच करने में नीचे के विद्वान न्यायालयों की विफलता के परिणामस्वरूप न्याय की हत्या हुई है।

18. पूर्ववर्ती चर्चा के मद्देनजर, अपीलीय न्यायालय/कलेक्टर, अमरोहा द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 19.11.2022 और विचारण न्यायालय-तहसीलदार (न्यायिक), तहसील अमरोहा, जिला-अमरोहा द्वारा पारित

आदेश दिनांक 25.8.2022 को निष्फल और कानून के विपरीत हैं। दिनांक 19.11.2022 और 25.08.2022 के आदेश रद्द किए जाने के लायक हैं और उन्हें अलग रखा जाता है, और रिमांड की आवश्यकता है।

19. यह 2013 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया है **(32) एलसीडी 30: (2013) 6 एससीसी 530 (अध्यक्ष एलआईसी ऑफ इंडिया और अन्य बनाम ए मसिलामणि)** यदि कोई प्राधिकरण/न्यायालय तकनीकी आधार पर आदेश को रद्द कर देता है तो मामले को वापस प्राधिकरण को भेजा जा सकता है, वर्तमान मामले में धारा 67 (ए) पर विचार न करना जवाब देने वाले अधिकारियों की ओर से तकनीकी त्रुटि है और इस तरह मामला तहसीलदार (न्यायिक), तहसील-अमरोहा, जिला-अमरोहा को इस निर्णय में की गई टिप्पणी के अनुरूप नए सिरे से निर्धारण के लिए भेज दिया गया।

20. इस मामले में न्याय के हित की सेवा के लिए निम्नलिखित निर्देश पारित किए जा रहे हैं:

(i) याचिकाकर्ता इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर तहसीलदार (न्यायिक), तहसील-अमरोहा, जिला-अमरोहा के समक्ष संहिता की धारा 67-ए के तहत एक नया आवेदन दायर करेगा।

(ii) तहसीलदार (न्यायिक), तहसील-अमरोहा, जिला-अमरोहा, ऐसा आवेदन प्रस्तुत करने पर

संहिता की धारा 67-ए के तहत कार्यवाही दर्ज करेगा।

(iii) इस प्रकार संस्थापित संहिता की धारा 67-ए के अंतर्गत कार्यवाहियों को समेकित किया जाएगा और कम्प्यूटरीकृत मामला सं T202113380101336 के रूप में पंजीकृत संहिता की धारा 67 के अंतर्गत कार्यवाहियों के साथ सुनवाई की जाएगी। और इस निर्णय में की गई टिप्पणियों के अनुरूप एक सामान्य आदेश द्वारा निर्णय लिया जायेगा।

(iv) अंतिम निर्णय देने से पहले नीचे का न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि भूमि के विवादित खंडों का सीमांकन कानून के अनुसार पूरा हो गया है।

21. रिट याचिका को **ऊपर बताई गई सीमा तक अनुमति दी जाती है।**

(2023) 4 ILRA 911

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट-सी संख्या 14503 / 2022

बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

मोटर दुर्घटना दावा, शाहजहाँपुर एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री पवन कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा 167- रोक - दायरा - दावे की बहुलता - पहले, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत पारित पुरस्कार का दावा याचिका में खुलासा नहीं किया गया था - प्रभाव - माना गया, धारा 167 स्पष्ट रूप से मोटर वाहन अधिनियम या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम नामक किसी भी निर्धारित मंच से अपकृत्य के कारण क्षतिपूर्ति का दावा करने के अधिकार को प्रतिबंधित करती है - क्योंकि प्रतिवादियों ने सही तथ्यों को छिपाकर मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से आदेश प्राप्त किया है और अधिनियम की धारा 167 के उल्लंघन में न्यायाधिकरण पर वैधानिक धोखाधड़ी का स्पष्ट वाद था। (पैरा 18 और 22)

बी. समीक्षा - प्रक्रियात्मक समीक्षा - दायरा - यह माना गया कि, यद्यपि समीक्षा तब तक नहीं होती जब तक कि वह कानून द्वारा निर्धारित न हो, प्रक्रियात्मक समीक्षा उन सभी न्यायालयों में निहित है - ग्रिंडलेज़ बैंक लिमिटेड में भरोसा किया गया। (पैरा 23)

रिट याचिका निस्तारित (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम मस्तान एवं अन्य; (2006) 2 एससीसी 641
2. ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम द्यामाव्वा एंड ऑर्स; (2013) 9 एससीसी 406
3. प्रथम अपील क्रमांक 1998 से 2017; मदीनाबीबी दासोतभाई शेख और अन्य बनाम

जगदीशचंद्र रमनलाल कचिया पटेल और अन्य, निर्णय दिनांक 23.06.2017

4. पुनः डब्लू.सी.सी. संदर्भ संख्या 1, 2010, कर्मकार मुआवजा आयुक्त; 2010 एस.सी.सी. ऑनलाइन केर 4805

5. न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अन्नपूर्णा गुप्ता व अन्य; 2018 (9) एडीजे 784

6. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम मस्तान एवं अन्य; (2006) 2 एससीसी 641

7. ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम द्यामाव्वा एंड ऑर्स; (2013) 9 एससीसी 406

8. एफएफओ संख्या 1946/2018; न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती अन्नपूर्णा गुप्ता एवं अन्य, निर्णय दिनांक 17 अप्रैल, 2018

9. ग्रिंडलेज़ बैंक लिमिटेड बनाम केंद्रीय सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण और अन्य; 1981 एससीआर (2) 341

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा प्रदत्त)

1.दोनों पक्षों के अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 2 से 7 के लिए श्री भानु प्रताप को सुना।

2. वर्तमान याचिका दिनांक 02.02.2022 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 18.12.2018 को आदेशित निर्णय वापस लेने के लिए दायर आवेदन खारिज कर दिया गया था।

3. संक्षेप में तथ्य यह है कि प्रतिवादी संख्या 2 के पति की दिनांक 28.12.2012 को वाहन संख्या यूपी 27 ई 4671 के साथ हुई दुर्घटना में, दिनांक 14.04.2013 को मृत्यु हो गई। मृतक ट्रक संख्या यूपी 27 टी 2264 में सफाईकर्मी था और दुर्भाग्यपूर्ण दिन, जब वह टायर ठीक करने के लिए गया था, टेम्पो संख्या यूपी 27 टी 4671 ने मृतक को टक्कर मार दी, जिससे उसे गंभीर चोटें आईं और अंततः उसकी मृत्यु हो गई।

4. प्रतिवादी संख्या 2 के पति की मृत्यु के कारण मुआवजे का दावा करते हुए प्रतिवादी संख्या 2 ने कर्मचारी दावा आयुक्त के समक्ष वाद संख्या 50/ईसीए/2013 दायर किया। 2. उक्त मामले में 06.11.2013 को 588913 रुपये का मुआवजा देने का अंतिम आदेश पारित किया गया था। ट्रक नंबर यूपी 27 टी 2264 के बीमाकर्ता द्वारा राशि का भुगतान किए जाने का आदेश मुख्य रूप से इस आधार पर किया गया था कि मृतक की मृत्यु इयूटी के दौरान हुई थी और वह कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम के तहत नियोक्ता से मुआवजे का हकदार था। चूंकि बीमा कंपनी द्वारा नियोक्ता को क्षतिपूर्ति दी गई थी, इसलिए दी गई राशि ट्रक नंबर यूपी 27 टी 2264 के बीमाकर्ता, अर्थात् श्री राम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

5. 06.11.2013 को आदेश पारित होने के बाद, प्रतिवादी संख्या 2 ने प्रतिवादी संख्या 3 से 7 के साथ मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत एक दावा याचिका दायर

की, जिसमें टेम्पो नंबर यूपी 27 टी 4671 के मालिक से मुआवजे का दावा किया गया, जिसका बीमा याचिकाकर्ता कंपनी से होना बताया गया था। उक्त दावा याचिका को दिनांक 06.04.2017 के फैसले द्वारा स्वीकार किया गया, जिसमें मोटर वाहन अधिनियम के तहत 4,57,000/- रु. राशि का मुआवजा निर्धारित किया गया। उक्त आदेश पारित करते समय, राशि का भुगतान दावेदारों (प्रत्येक को 1/6 हिस्सा), मृतक की पत्नी (प्रतिवादी संख्या 2), प्रतिवादी संख्या 2 के नाबालिग बच्चों को, और साथ ही मृतक के माता और पिता को बताए गए अनुपात में, करने का निर्देश दिया गया था।

6. याचिकाकर्ता कंपनी ने बाद में मुख्य रूप से इस आधार पर दिनांक 06.04.2017 के आदेश को वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया कि दावा याचिका दायर करने से पहले, दावेदार, प्रतिवादी नं. 2 ने कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम के तहत दावा याचिका संख्या 148 वर्ष 2014 दायर की थी, और आदेश उसके पक्ष में पारित किया गया था, जिस तथ्य का प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा खुलासा नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता का तर्क यह था कि एमएसीटी संख्या 148 वर्ष 2014 में तय किए गए दावे को मोटर वाहन अधिनियम की धारा 167 के आधार पर वर्जित किया गया था। आदेश वापसी के लिए उक्त आवेदन दिनांक 02.02.2022 के आदेश के माध्यम से मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि वापसी/समीक्षा के लिए आवेदन अधिकरण के समक्ष विचारणीय नहीं था।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क यह है कि मोटर वाहन अधिनियम की धारा 167 के तहत बनाए गए निषेध के मद्देनजर, उपचार के चुनाव का अधिकार दावेदार के पक्ष में निहित है और एक बार उपचार/अधिकार चुने जाने के बाद, भिन्न अधिनियम के तहत मुआवजे का दावा करने पर विशेष रूप से रोक लगा दी थी। उनका तर्क है कि धारा 167 के तहत बनाए गए निषेध के साथ-साथ इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दावा याचिका में कोई खुलासा भी नहीं किया गया था, इसलिए आदेश गलत तथ्यों द्वारा प्राप्त किया गया, और वैधानिक प्रावधानों के विपरीत था और इस प्रकार, वापसी के योग्य था। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम मस्तान और अन्य (2006) 2 एससीसी 641** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का आश्रय लिया है।

8. उन्होंने **ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम दयमव्वा और अन्य (2013) 9 एससीसी 406** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी आश्रय लिया है। इसके बाद वह **23.06.2017 को निर्णित प्रथम अपील संख्या 1998 वर्ष 2017 मदीनाबीबी दासोतभाई शेख और अन्य बनाम जगदीशचंद्र रमनलाल कछिया पटेल और अन्य** के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय के निर्णय का आश्रय लेते हैं। और अंततः **2010 एससीसी ऑनलाइन केर 4805 में प्रकाशित डब्लूसीसी संदर्भ संख्या**

1 वर्ष 2010 कर्मचारी प्रतिकर आयुक्त में केरल उच्च न्यायालय के निर्णय का आश्रय लिया।

9. दूसरी ओर, प्रतिवादी के अधिवक्ता का तर्क है कि वर्तमान मामले में, दो अलग-अलग बीमा कंपनियों से मुआवजे का दावा किया गया था। कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम के संबंध में, मुआवजे का दावा ट्रक के बीमाकर्ता के खिलाफ किया गया था, जबकि मोटर वाहन अधिनियम में दावा टेम्पो के बीमाकर्ता के खिलाफ किया गया था जो दो अलग-अलग कंपनियां हैं और इस प्रकार, दावा करने में कोई निषेध नहीं है। वह मोटर वाहन अधिनियम की धारा 145, 146, 147 सपठित धारा 150 के प्रावधानों का आश्रय लेते हुए कहते हैं कि बीमाकर्ता अलग है और इस प्रकार, भुगतान का दायित्व बीमा के दो अलग-अलग अनुबंधों से उत्पन्न होता है। उनका अगला तर्क है कि कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम की धारा 2बी के तहत आश्रितों की सूची कानूनी उत्तराधिकारियों की अवधारणा से अलग है, जो मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत मुआवजा दाखिल करने के हकदार हैं।

10. उन्होंने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम मस्तान (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी यह तर्क देने हेतु भरोसा जताया कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क खारिज किए जाने योग्य हैं। उन्होंने **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम अन्नपूर्णा गुप्ता एवं अन्य 2018(9) एडीजे 784** के मामले में इस

न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा जताया। उन्होंने अंततः तर्क दिया कि किसी भी स्थिति में, समीक्षा का कोई मामला नहीं बनता और याचिकाकर्ता को अपील दायर करने का सहारा लेना चाहिए था और उक्त अपील में, वह आदेश 41 नियम 27 के अनिवार्य प्रावधानों के अंतर्गत साक्ष्य रख सकता था, जो सैद्धांतिक रूप से लागू होंगे।

11. उठाए गए मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए, इस न्यायालय को उस उत्पत्ति को देखना होगा जिसके कारण मोटर वाहन अधिनियम और कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम लागू हुआ।

12. क्षतिपूर्ति का दावा करने की पूरी कार्रवाई की उत्पत्ति मृतक पर की गई उत्पीड़नपूर्ण कार्रवाई या नागरिक गलती से होती है। यह कार्रवाई के नागरिक कारण से आता है और जिसके लिए मुआवजा वसूली योग्य है। अपकृत्य कानून में अंतर्निहित मूल सिद्धांत यह है कि गलत कार्य के लिए किसी को भी किसी दूसरों के कार्यों से नुकसान नहीं होना चाहिए।

13. भारत में, निर्धारित सामान्य प्रक्रिया अपकृत्य या नागरिक गलती के कारण हुए गलत कार्यों के लिए मुआवजे का दावा करने के लिए मुकदमा दायर करना था। समय बीतने के साथ, नुकसान का दावा करने की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित किया गया और घातक दुर्घटना अधिनियम और उसके बाद मोटर वाहन अधिनियम, कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम और सार्वजनिक देयता बीमा अधिनियम जैसे विभिन्न कानूनों में निर्धारित किया गया।

14. उक्त अधिनियम केवल दावेदार या उसके आश्रितों द्वारा सहे गए उत्पीड़न के कारण हुए नुकसान का दावा करने की प्रक्रिया के लिए अधिकार प्रदान करते हैं। उक्त कानून एक ऐसे उपचार का प्रावधान करता है जो सिविल मुकदमे के उपचार की तुलना में तेज़ और आसान था। इस प्रकार, मोटर वाहन अधिनियम या कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम उनके अंतर्गत दावा किए गए नुकसान की उत्पत्ति का भार वहन करते हैं, जो नागरिक गलती के कारण हुए नुकसान से हुई है। विधायिका ने अपने विवेक से विभिन्न अधिनियमों के तहत नागरिक गलती के कारण हुए नुकसान का दावा करने के लिए विभिन्न मंच प्रदान किए।

15. अधिनियम की धारा 167 को व्यक्ति द्वारा या उक्त एक व्यक्ति की ओर से उसके कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा सही गए उत्पीड़न के कारण दावों की बहुलता से बचने के लिए शामिल किया गया था।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क कि विभिन्न मामलों में, जीवन बीमा पॉलिसी के तहत पैसे का दावा और मोटर वाहन अधिनियम के तहत पैसे का दावा एक साथ किया जा सकता है, वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों पूर्णतः भिन्न हैं, एक गैर-जिम्मेदाराना कार्रवाई के कारण हुई नागरिक गलती और दूसरा बीमा के अनुबंध से उत्पन्न होने वाला दायित्व।

17. यह सुस्थापित है कि एक अनुबंध सहमति पर पाया जाता है जबकि एक अपकृत्य

सहमति के विरुद्ध या बिना सहमति के किया जाता है। अनुबंध के उल्लंघन की कार्रवाई के लिए, पक्षों के बीच गोपनीयता आवश्यक है जबकि अपकृत्य के लिए ऐसी किसी गोपनीयता की आवश्यकता नहीं है। एक अपकृत्य स्पष्ट रूप से अनुबंध के शुद्ध उल्लंघन से अलग है क्योंकि एक अपकृत्य स्पष्ट रूप से "रेम" में एक अधिकार का उल्लंघन है जबकि अनुबंध का उल्लंघन "पर्सोनिम" में एक अधिकार का उल्लंघन है।

18. वर्तमान मामले में, मोटर वाहन अधिनियम की धारा 167 स्पष्ट रूप से मोटर वाहन अधिनियम या कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम नामक निर्धारित मंचों में से किसी एक से अपकृत्य के कारण मुआवजे का दावा करने के अधिकार को प्रतिबंधित करती है।

19. अधिनियम की धारा 167 का विषय और दायरा नेशनल इंश्योरेंस कंपनी बनाम मस्तान और अन्य (2006) 2 एससीसी 641 के मामले में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचार के लिए आया, जिसमें प्रावधानों का विश्लेषण करने के बाद, अदालत ने यह स्थापित किया:

"22. 1988 के अधिनियम की धारा 167 वैधानिक रूप से दावेदार को यह कहते हुए एक विकल्प प्रदान करती है कि जहां किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट 1988 अधिनियम के साथ-साथ 1923 अधिनियम के तहत मुआवजे

के दावे को जन्म देती है, उस पीड़ित पक्ष जो मुआवजे का हकदार है, अध्याय X के प्रावधानों के प्रति पूर्वाग्रह के बिना, उनमें से किसी एक को चुन सकता है, किन्तु दोनों को नहीं। 1923 अधिनियम में निहित किसी भी बात के बावजूद, धारा 167 में इस तरह के विकल्प प्रदान करते हुए एक गैर अप्रत्याशित खंड का प्रावधान शामिल है।

23. "चुनाव का सिद्धांत", "निषेध के नियम" की एक शाखा है, जिसके संदर्भ में किसी व्यक्ति को उसके कार्यों या आचरण या चुप्पी से, उस अधिकार का दावा करने से जो कि अन्यथा उसके पास होता, रोका जा सकता है जबकि बोलना उसका कर्तव्य है। चुनाव का सिद्धांत यह मानता है, कि जब एक ही राहत के लिए दो उपाय उपलब्ध होते हैं, तो पीड़ित पक्ष के पास उनमें से किसी एक को चुनने का विकल्प होता है, दोनों को नहीं। हालांकि एक ही नियम के कुछ अपवाद हैं, लेकिन वर्तमान मामले में इसका कोई उपयोग नहीं है।

24. नागुबाई अम्मल बनाम बी. शमा राव [1956 एससीआर 451: एआईआर

1956 एससी 593] में यह कहा गया था: (एससीआर पृष्ठ 470)

"उपरोक्त अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अधिकतम जिसे कोई व्यक्ति अनुमोदित या पुनःप्रयोज्य नहीं कर सकता है, वह चुनाव के सिद्धांत का केवल एक अनुप्रयोग है, और इसका संचालन उसी लेनदेन के संबंध में दावा की गई राहत और उन व्यक्तियों तक सीमित होना चाहिए जो उसमें पक्षकार हैं।"

25. सी. बीपाथुम्मा बनाम वेलासरी शंकरनारायण कदमबोलिथया [(1964) 5 एससीआर 836: एआईआर 1965 एससी 241] में यह कहा गया था: (एससीआर पृष्ठ 850) "चुनाव का सिद्धांत जो इस मामले में लागू किया गया है वह सुस्थापित है और मैटलैंड के कालजयी शब्दों में कहा जा सकता है -

"वह जो किसी विलेख या वसीयत या अन्य साधन के तहत लाभ स्वीकार करता है, उसे उस साधन की संपूर्ण सामग्री को अपनाना चाहिए, इसके सभी प्रावधानों का पालन करना चाहिए और उन सभी अधिकारों का त्याग करना चाहिए जो इसके साथ असंगत हैं।"

यही सिद्धांत व्हाइट एंड ट्यूडर के लीडिंग केसेस इन इक्विटी, वॉल्यूम (एसआईसी) 18वां संस्करण पृष्ठ 444 में कहा गया है, जो इस प्रकार है:

"चुनाव एक पक्ष पर दो असंगत या वैकल्पिक अधिकारों या दावों के बीच चयन करने के लिए इक्विटी की अदालतों द्वारा लगाया गया दायित्व है, जहां उस व्यक्ति जिससे वह एक चीज प्राप्त करता है का स्पष्ट इरादा है कि वह दोनों का उपभोग नहीं करेगा.....कि वह जो किसी विलेख या वसीयत के तहत लाभ स्वीकार करता है, उसे साधन की संपूर्ण सामग्री को अपनाना होगा।"

26. पीआर देशपांडे बनाम मारुति बलराम हैबती [(1998) 6 एससीसी 507] में, थॉमस, जे. ने कानून को इस प्रकार स्थापित किया: (एससीसी पृष्ठ 511, पैरा 8)

"8. चुनाव का सिद्धांत विबंध के नियम पर आधारित है - यह सिद्धांत इसमें निहित है कि कोई इसका अनुमोदन या खंडन नहीं कर सकता है। चुनाव द्वारा रोक का सिद्धांत पैस (या न्यायसंगत एस्टोपेल) में निषेध की प्रजातियों में से एक है जो इक्विटी में एक नियम है। उस नियम के अनुसार, किसी व्यक्ति को उसके कार्यों या आचरण या चुप्पी, जब बोलना

उसका कर्तव्य है, उस अधिकार का दावा करने से रोका जा सकता है जो अन्यथा उसके पास होता।

27. प्रथम प्रतिवादी जिसने अपने नियोक्ता के खिलाफ मुआवज़ा प्राप्त करने के उद्देश्य से 1923 अधिनियम के तहत मंच को चुना है, अब 1988 के अधिनियम के प्रावधानों की ओर नहीं हो सकता है, क्योंकि दोनों अधिनियमों के तहत निर्धारित प्रक्रिया, धारा 143 के अंतर्गत आने वाले प्रावधानों को छोड़कर, अलग-अलग है।

28. इसलिए, हम सम्मान के साथ कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के विचारों से सहमत नहीं होते हैं।

29. श्री पीआर रामाशेष का यह तर्क सही नहीं है कि दोनों अधिनियमों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। चोट से पीड़ित पक्ष या मृतक, जिसकी मोटर वाहन के उपयोग से उत्पन्न दुर्घटना के दौरान मृत्यु हो गई हो, के आश्रित, अलग-अलग कानूनों के तहत दावा कर सकते हैं। लेकिन जब विभिन्न

कानूनों के तहत कार्यवाई का कारण उत्पन्न होता है और दावेदार एक के बजाय दूसरे अधिनियम के तहत मंच का चुनाव करता है, तो उसके बाद उसे ऐसा विवाद उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जो उसे केवल पहले वाले में ही उपलब्ध है।"

20. ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी बनाम डायमव्वा और अन्य ; (2013) 9 एससीसी 406 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय को धारा 167 के दायरे पर विचार करने का अवसर मिला और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी (उपरोक्त) के मामले में निर्णय का पालन करते हुए, निम्नानुसार दर्ज किया गया था:

12. हमारे द्वारा निर्धारित किया जाने वाला मुद्दा यह है कि क्या उपरोक्त मुआवजे की स्वीकृति, दावेदारों द्वारा कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 के तहत मुआवजे की मांग करने के अपने विकल्प का उपयोग करने के समान होगी। उपरोक्त धारा 8 के तहत कार्यवाई (जैसा कि ऊपर देखा गया है) नियोक्ता के आदेश पर "स्वतः संज्ञान" से शुरू की गई, और इस तरह, हमारे विचार में इसे कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 के प्रावधानों के तहत मुआवजे की मांग करने के लिए आश्रितों/दावेदारों द्वारा विकल्प के प्रयोग के रूप में

नहीं माना जा सकता है। परस्थितियां अलग होती, यदि आश्रितों ने कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के तहत मुआवजे के लिए दावा किया होता। उक्त स्थिति में, निश्चित रूप से दावेदारों के कहने और विकल्प पर, आश्रितों को मुआवजा दिया जाएगा। दूसरे शब्दों में, यदि दावेदारों ने कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के तहत एक आवेदन दायर किया होता, तो माना जाता कि उन्होंने भी कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम के प्रावधानों के तहत मुआवजे की मांग करने के अपने विकल्प का प्रयोग किया है। यह कहना पर्याप्त है कि पूर्वोक्त धारा 10 के तहत प्रतिवादी, दावेदारों द्वारा कभी भी ऐसा कोई आवेदन दायर नहीं किया गया था। मामले के उपरोक्त दृष्टिकोण में, यह कहा जा सकता है कि क्योंकि प्रतिवादी दावेदारों ने कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10 के तहत मुआवजे की मांग करने के अपने विकल्प का कभी भी उपयोग नहीं किया है, अतः उन्हें मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत मुआवजे की मांग करने से रोका नहीं जा सकता है।

21. प्रतिवादीगण के अधिवक्ता द्वारा आश्रय लिए गए 17 अप्रैल 2018 को निर्णित एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 1946 वर्ष 2018 न्यू

इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती अन्नपूर्णा गुप्ता और अन्य के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर आते हुए, अदालत इस धारणा पर आगे बढ़ी कि मामले में दो बीमा कंपनियां शामिल थीं, एक कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम के तहत और दूसरी जो धारा 166 के तहत एक पक्ष मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण थी। उक्त निर्णय इस तथ्य पर विचार नहीं करता है कि दो अलग-अलग मंचों पर दावे की उत्पत्ति एक ही है, जो मृतक पर कारित किया गया एक अत्याचार है जिसके लिए दावा कानूनी उत्तराधिकारियों द्वारा उठाया गया है, न्यायालय ने मामले में यद्यपि सुप्रीम कोर्ट के नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) के निर्णय पर ध्यान दिया परन्तु स्पष्टतः इस विषय का वैसा निपटारा नहीं किया है जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने निर्णीत किया है। इस प्रकार, उक्त निर्णय स्पष्ट रूप से लागू नहीं है और उदाहरण के रूप में स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि यह सब-साइलेंटियों के दोष से ग्रस्त है।

22. चूंकि प्रतिवादियों ने सही तथ्यों को छिपाकर और अधिनियम की धारा 167 के उल्लंघन में, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण से आदेश प्राप्त किया है, इसलिए अधिकरण पर वैधानिक धोखाधड़ी का स्पष्ट मामला था।

23. यह सुस्थापित है कि यद्यपि एक समीक्षा, तब तक झूठ नहीं बोलती जब तक कि यह कानून द्वारा निर्धारित न हो, एक प्रक्रियात्मक समीक्षा सभी अदालतों में अंतर्निहित है जैसा कि *थिंडलेज़ बैंक लिमिटेड बनाम केंद्र सरकार औद्योगिक अधिकरण और अन्य; 1981*

एससीआर (2) 341 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है।

24. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, इस अदालत का विचार है कि ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 167 के तहत बनाये गए निषेध के विपरीत था, ट्रिब्यूनल को वापसी आवेदन को स्वीकार करना चाहिए था और मामले को गुण-दोष के आधार पर सुनना चाहिए था।

25. अतः आक्षेपित आदेश दिनांक 02.02.2022 निरस्त किया जाता है। दिनांक 18.12.2018 के आदेश को वापस लेने और कानून के अनुसार नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामले को दावा अधिकरण को वापस भेजा जाता है।

26. बार को सूचित किया जाता है कि ट्रिब्यूनल द्वारा दिनांक 18.12.2018 के आदेश के तहत दी गई राशि की प्रतिवादियों द्वारा निकासी नहीं की गई है, इस प्रकार, यह निर्देशित किया जाता है कि ट्रिब्यूनल द्वारा पारित किये जा सकने वाले नए आदेश के अधीन, जैसा कि ऊपर निर्देश दिया गया है, याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि, यदि कोई हो, जमा ही रहेगी।

27. उक्त टिप्पणियों के साथ रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 917

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी,

रिट-सी संख्या 19391/2022

एस.के. एसोसिएट्स

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री राहुल अग्रवाल, श्री शशिनंदन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री धर्मद्र सिंह चौहान, श्री अशोक मेहता (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226

- रिट - दायरा - विवेकाधीन शक्ति, इसका प्रयोग कैसे किया जा सकता है - याचिकाकर्ता

साफ हाथ से नहीं आ रहा है, क्या वह सामान्य का दावा कर सकता है - माना गया

कि अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन शक्ति है। रिट केवल न्याय के

गंभीर गर्भपात के वाद में या जहां कानून का घोर उल्लंघन हुआ है, जारी की जा सकती है।

विवेकाधीन शक्ति होने के कारण, न्यायालय को न्याय और सार्वजनिक हित को सामान्य

रूप से एक साथ ध्यान में रखते हुए प्रतिस्पर्धी हितों को संतुलित करना होता है - न्याय की

अदालत को अपने न्यायसंगत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय इस तरह से कार्य करना

चाहिए कि कानूनी धोखाधड़ी को रोका जा सके और सदभावना और न्याय को बढ़ावा मिले -

एक याचिकाकर्ता जिसका दावा वैध आधार पर आधारित नहीं है, वह न्याय का दावा करने का

पात्र नहीं है। न्याय का दावा करने वाले व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष स्वच्छ हाथों से आना

चाहिए क्योंकि न्याय को पक्षों के बीच उचित रूप से काम करना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसी को भी दूसरों के साथ अन्यायपूर्ण तरीके से अपना हक लेने की अनुमति न हो। (पैरा 15)

बी. सीलिंग कानून - शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) अधिनियम, 1976 -धारा 8, 10(1), 10(3), 10(4) और 10(5) -अधिशेष भूमि बिक्री-विलेख द्वारा अधिशेष भूमि की खरीद, कितना अधिकार अर्जित होता है - माना गया, विवादित भूमि राज्य में निहित है और कथित बिक्री विलेख अधिनियम, 1976 की धारा 10(4) के अनुसार पूरी तरह से शून्य और अमान्य है याचिकाकर्ता एक कथित खरीदार होने के नाते, कोई सुने जाने का अधिकार भी नहीं रखता है। (पैरा 7 और 16)

बी. सीलिंग कानून- शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 -धारा 3 - कार्यवाही का उपशमन -कब्जे - प्रासंगिकता - माना गया कि, 'कब्जा लेना' निरसन अधिनियम की धारा 3 की जीवन रेखा है और भूमि की बहाली के लिए निरसन अधिनियम का लाभ चाहने वाले व्यक्ति को दलील देनी चाहिए और सिद्ध करना चाहिए कि कब्जा नहीं लिया गया था। [पैरा 17 (ई)]

रिट याचिका निरस्त (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. सेंट टी.एन. और अन्य बनाम एम.एस. विश्वनाथन और अन्य; (2021) 10 एससीसी 614

2. सुलोचना चंद्रकांत गलांडे बनाम पुणे नगर परिवहन एवं अन्य; (2010) 8 एससीसी 467
3. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम आदर्श सेवा सहकारी समिति लिमिटेड; (2016) 12 एससीसी 493
4. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सुरेन्द्र प्रताप एंड ऑर्स; (2016) 12 एससीसी 497
5. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा व अन्य; (2015) 5 एससीसी 321
6. शिव राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2015 (7) एडीजे 630

(माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,
द्वारा प्रदत्त)

1. श्री शशिनंदन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के लिए श्री राहुल अग्रवाल, विद्वान अधिवक्ता, श्री आशीष कुमार नागवंशी, राज्य-प्रतिवादियों के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता, और अशोक मेहता, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, और श्री धर्मेंद्र सिंह चौहान, विद्वान अधिवक्ता, की सहायता से सुना गया। प्रतिवादी संख्या 4 के लिए।

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना करते हुए दायर की गई है।

"(ए) केस नंबर 1820/122/82 स्टेट ऑफ यूपी बनाम तारा में तारा चंद के खिलाफ बनाए गए शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) अधिनियम के तहत पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए सर्टिओरी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। ग्राम बिहार मान नगला, जिला बरेली में स्थित गाटा संख्या 825 क्षेत्रफल 2363.47 वर्ग मीटर की भूमि के

संबंध में शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 के प्रावधानों के अनुसार निरस्त किया गया है।

(ए) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को गाटा संख्या 825 क्षेत्र 2363.47 वर्ग मीटर की भूमि से याचिकाकर्ता को बेदखल न करने का आदेश दिया जाए। ग्राम बिहार मान नगला, जिला बरेली में स्थित है।

(सी) गाटा संख्या 825 क्षेत्रफल 2363.47 वर्ग मीटर की भूमि पर याचिकाकर्ता का नाम दर्ज करके राजस्व रिकॉर्ड को सही करने के लिए उत्तरदाताओं को निर्देश और आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। ग्राम बिहार मान नगला, जिला बरेली में स्थित है।"

3. वर्तमान मामले के संक्षेप में बताया गए तथ्य यह हैं कि ठाकुर दास, तारा चंद और तुला राम सीलिंग केस नंबर के मूल रिकॉर्ड में उपलब्ध खतौनी की प्रतिलिपि के अनुसार खसरा प्लॉट नंबर 825 सहित कुछ खसरा भूखंडों के दर्ज किरायेदार धारक थे। 1339/61/82 प्रतिवादियों द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया। ए शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 (इसके बाद 'अधिनियम, 1976' के रूप में संदर्भित) की धारा 8 के तहत दिनांक 01.01.1983 को नोटिस उपरोक्त **ठाकुर दास** को जारी किया गया था, जिन्होंने 02.02.1983 को केस होने पर अपनी आपत्ति दर्ज की थी। क्रमांक 1339/61/82 (राज्य बनाम ठाकुर दास)। आपत्ति पर विचार करने के बाद अधिनियम, 1976 की धारा 8(4) के

तहत 27.03.1984 को कुछ भूमि को अधिशेष घोषित करने का आदेश पारित किया गया, जिसमें खसरा प्लॉट नंबर 825 की 2363.47 वर्ग मीटर अधिशेष भूमि शामिल थी। इसके बाद, अधिनियम, 1976 की धारा 9 के तहत उपरोक्त ठाकुर दास को पंजीकृत डाक के माध्यम से एक नोटिस भेजा गया जो उन्हें भेज दिया गया। अधिनियम, 1976 की धारा 10(1) के तहत अधिसूचना 28.08.1985 को जारी की गई थी, जिसे 28.02.1986 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। अधिनियम, 1976 की धारा 10(1) के तहत नोटिस के प्रकाशन के बाद, अधिनियम, 1976 की धारा 10(3) के तहत दिनांक 11.06.1986 को एक अधिसूचना भेजी गई थी जो 13.09.1986 को प्रकाशित हुई थी। अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) के तहत 28.11.1989 को दर्ज किरायेदार को नोटिस भेजा गया था। उत्तरदाताओं के अनुसार कब्जा 16.11.1990 को लिया गया था। चूंकि किसी ने भी कब्जे के खिलाफ कोई आपत्ति दर्ज नहीं की थी, इसलिए सभी बाधाओं से मुक्त अधिशेष भूमि को खतौनियों में राज्य सरकार का नाम दर्ज किया गया था। 16.11.1990 को कब्जा प्रतिवादी संख्या 4, यानी बरेली विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया गया। यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि केस नंबर 1820/122/82 (राज्य बनाम मृतक तारा चंद) (पेज-16/1) के मूल अभिलेखों के अवलोकन पर दिनांक 25.04.1995 की नोटिंग/रिपोर्ट से ऐसा प्रतीत होता है कि ठाकुर दास ने कुछ अपील भी दायर की थी जो लंबित थी। हालाँकि, राज्य-प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत किए गए रिकॉर्ड में अपील या निर्णय

का अधिक विवरण उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार उपरोक्त ठाकुर दास और सह-कार्यधारक तारा चंद के खिलाफ सीलिंग मामले के बीच कुछ संबंध थे।

4. इसी प्रकार **सहखातेदार तारा चंद** के विरुद्ध सीलिंग केस संख्या 1820/122/82 (राज्य बनाम तारा चंद) दर्ज किया गया था। उपरोक्त तारा चंद को अधिनियम, 1976 की धारा 8 के तहत 06.02.1984 को एक नोटिस जारी किया गया था, जिन्होंने ने अपनी आपत्ति दाखिल नहीं की थी और इस प्रकार आदेश दिनांक 04.04.1985 के तहत 3 अधिनियम, 1976 की धारा 8(4) में 6932.23 वर्ग मीटर को अधिशेष भूमि घोषित करते हुए पारित किया गया, जिसमें प्रश्नगत खसरा प्लॉट नंबर 825 का हिस्सा भी शामिल था। अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत अधिसूचना 25.10.1989 को जारी की गई, जो 17.03.1990 को प्रकाशित हुई। अधिनियम की धारा 10(3) के अंतर्गत अधिसूचना 27.06.1990 को जारी की गई, जो 17.11.1990 को प्रकाशित हुई। अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) के तहत 25.10.1991 को उपरोक्त तारा चंद को और उसके बाद 19.06.1993 को तारा चंद के उत्तराधिकारियों को नोटिस जारी किया गया था, जो स्वर्गीय तारा चंद की पत्नी, श्रीमती को जारी किया गया था। बिलासो, जो तथ्य केस नंबर 1820/122/82 (राज्य बनाम तारा चंद) के पृष्ठ 14/6 के मूल रिकॉर्ड में उपलब्ध नोटिस के पीछे बिलासो देवी की स्वीकारोक्ति से स्पष्ट है। तारा चंद के उत्तराधिकारियों में से एक, राम दास ने दिनांक 08.10.1993 को

एक आपत्ति दर्ज की, जिसमें कहा गया कि उनके भाई को नोटिस मिला था, जिनके साथ उनके संबंध अच्छे नहीं थे और इसलिए, उन्हें दिनांक 04.04.1985 और 28.01 के आदेशों की जानकारी नहीं थी। .1989. आदेश दिनांक 26.03.1996 द्वारा स्वर्गीय तारा चंद एवं श्रीमती के पुत्र उपरोक्त राम दास एवं अमर सिंह की आपत्ति। तारा चंद की पत्नी बिलासो को सक्षम प्राधिकारी, शहरी भूमि सीमा, बरेली द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। 2363.47 वर्ग मीटर माप वाले प्लॉट नंबर 825M सहित कुछ भूखंडों के संबंध में फसली 1400-1405 के लिए खतौनी में 02.02.1994 को राजस्व रिकॉर्ड में राज्य का नाम बदल दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम, 1976 की धारा 10(8) के तहत आदेश के खिलाफ तारा चंद के उत्तराधिकारियों द्वारा दायर कुछ अपील को जिला न्यायाधीश, बरेली की अदालत ने 13.07.1998 को खारिज कर दिया था।

5. रिट याचिका के पैराग्राफ-28 में, याचिकाकर्ता ने कहा है कि तारा चंद के कानूनी उत्तराधिकारी जगदीश प्रसाद, राम दास और तारा चंद के बेटे अमर सिंह और साथ ही तुला राम के बेटे भगवान दास और सुखलाल ने कुल जमीन बेच दी। अपनी शक्ति के माध्यम से खसरा प्लॉट नंबर 825 की माप 3 बीघे और 1 बिस्वा को एक पंजीकृत बिक्री विलेख दिनांक 20.03.2003 द्वारा याचिकाकर्ता को दी गई। अधिवक्ता धारक. दिनांक 20.03.2003 के कथित विक्रय पत्र से ऐसा प्रतीत होता है जगदीश द्वारा जसवीर सिंह नामक व्यक्ति को दी गई पावर ऑफ अटॉर्नी को पंजीकृत किया गया था 17.07.2002. पावर ऑफ अटॉर्नी

भगवान दास और सुखलाल पुत्रों द्वारा दी गई तुला राम एवं सुंदर देवी पत्नी तुला राम की रजिस्ट्री दिनांक 23.07.2002 को उपरोक्त जसवीर सिंह के पक्ष में हुई थी। तारा चंद के पुत्र राम दास और अमर सिंह द्वारा सतवीर सिंह को एक और पावर ऑफ अटॉर्नी दी गई थी, जिसे 02.09.2002 को पंजीकृत किया गया था।

6. प्रतिशपथ पत्र दिनांक 16.01.2023 के कंडिका-26 में प्रतिवादी क्रमांक 1, 2 एवं 3 ने बताया है कि "जगदीश प्रसाद ने दिनांक 05.09.2002 को जसवीर सिंह के पक्ष में निष्पादित पावर ऑफ अटॉर्नी दिनांक 17.07.2002 को निरस्त कर दिया है।" जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ-26 में याचिकाकर्ताओं ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। इस प्रकार, पावर ऑफ अटॉर्नी धारक जसवीर सिंह द्वारा निष्पादित दिनांक 20.03.2003 का विक्रय विलेख बिना अधिकार के था क्योंकि इसे पावर ऑफ अटॉर्नी रद्द करने के बाद निष्पादित किया गया था। हालाँकि, उपरोक्त विक्रय विलेख के आधार पर, याचिकाकर्ता ने 22.05.2003 को अपना नाम बदल लिया, जिसके खिलाफ 11.07.2007 को केस नंबर 729/732/7 (एस.के. एसोसिएट्स बनाम जसवीर) के तहत जगदीश प्रसाद द्वारा एक रि कॉल आवेदन दायर किया गया था। (सिंह), जिसे अनुमति दी गई और नामांतरण आदेश दिनांक 22.05.2003 रद्द कर दिया गया। यह निर्विवाद है कि खसरा प्लॉट संख्या 825 की अधिशेष भूमि पर लगभग तीन दशक से खतौनियों में राज्य का नाम चला आ रहा है। संक्षिप्त जवाबी हलफनामे के परिशिष्ट

सीए-3 के अनुसार, खसरा प्लॉट संख्या 825, 7714.06 वर्ग मीटर की अतिरिक्त भूमि पर कब्जा अधिनियम, 1976 की धारा 10(6) के तहत लिया गया था।

7. इस प्रकार, **रि कॉर्ड से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता अधिनियम, 1976** के तहत अधिशेष घोषित भूमि के बाद के खरीदार होने का दावा दिनांक 20.03.2003 के एक विक्रय पत्र के माध्यम से करता है, जिसे कथित पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा निष्पादित किया गया था। 05.09.2002 को पावर ऑफ अटॉर्नी रद्द होने के बाद याचिकाकर्ता के पक्ष में।

8. उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि विचाराधीन भूमि राज्य में निहित थी और उस पर कब्जा करने के बाद, इसे बरेली विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया गया था। प्रतिवादी संख्या 4 (बरेली विकास) की ओर से संक्षिप्त प्रति शपथ पत्र के साथ दाखिल की गई तस्वीरों के अनुसार प्राधिकरण, बरेली) और पैरा-15 में दिए गए कथनों के अनुसार भी में कहा गया **संक्षिप्त प्रति शपथ पत्र, प्रश्नाधीन भूमि वास्तविक भौतिक कब्जे में बरेली विकास प्राधिकरण के पास है।** मूल खातेदारों या उनके उत्तराधिकारियों ने पिछले लगभग तीन दशकों के दौरान किसी भी समय न तो आपत्ति की है और न ही उन्होंने वर्तमान रिट याचिका दायर की है। वर्तमान रिट याचिका विवादित भूमि के एक तथाकथित खरीदार द्वारा दायर की गई है, जिसने कथित तौर पर इसे 20.03.2003 के एक बिक्री विलेख द्वारा एक कथित पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से

खरीदा था, जिसकी पावर ऑफ अटॉर्नी 05.09.2002 को रद्द कर दी गई थी। उक्त कथित विक्रय विलेख लगभग दो दशक पहले विवादित भूमि को राज्य में निहित करने के बाद निष्पादित किया गया है और राज्य का नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि याचिकाकर्ताओं के पास विवादित भूमि पर कब्जा करने का कोई कानूनी अधिकार है। याचिकाकर्ताओं द्वारा यह साबित करने के लिए कोई सबूत दाखिल नहीं किया गया है कि विवादित भूमि पर उनका कब्जा है। इसके विपरीत, प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा दायर संक्षिप्त जवाबी हलफनामा और उसके साथ संलग्न फोटो प्रश्नाधीन भूमि पर प्रतिवादी नंबर 4 के भौतिक कब्जे को इंगित करता है और विवादित भूमि प्रतिवादी नंबर 4 द्वारा निर्मित एक सीमा-दीवार से घिरी हुई है।

9. तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम एम.एस. के मामले में हाल के फैसले में निरसन अधिनियम, 1999 की धारा 3 के प्रयोजनों के लिए कब्जा साबित करने के प्रश्न पर विचार करना। **विश्वनाथन और अन्य, (2021) 10 एससीसी 614 (पैरा-16 और 24); माननीय उच्चतम न्यायालय** ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"16. संक्षेप में, "कब्जा लेना" निरसन अधिनियम की धारा 3 की जीवन रेखा है और भूमि की बहाली के लिए निरसन अधिनियम का लाभ चाहने वाले व्यक्ति को दलील देनी चाहिए और साबित करना चाहिए कि कब्जा नहीं लिया गया था।

24. दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने दिनांक 11-11-1980 के पत्र पर भी गौर नहीं किया और न ही उच्च न्यायालय ने विभाग के अभिलेखों की जांच की। एकल न्यायाधीश और डिवीजन बेंच दोनों इस आधार पर आगे बढ़े कि जमीन एक परिसर की दीवार के साथ खाली पड़ी थी और इसलिए, जमीन के मालिक का उस पर कब्जा होने का दावा सही होना चाहिए। ऐसी कोई धारणा शायद ही हो सकती है। भूमि मालिक द्वारा ट्रस्ट को पहले ही बेची जा चुकी जमीन को भी घेरने वाली परिसर की दीवार के अस्तित्व को भूमि मालिक ने अपने दिनांक 11-11-1980 के पत्र में स्वयं स्वीकार किया है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यहां प्रतिवादियों को निरसन अधिनियम की धारा 3(2) का लाभ देने में गंभीर त्रुटि की है।"

10. सुलोचना चंद्रकांत गलांडे बनाम पुणे नगरपालिका के मामले में परिवहन और अन्य, (2010) 8 एससीसी 467 (पैरा-36), माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि ऐसे मामले में जहां कब्जा ले लिया गया है, अधिनियम, 1976 को निरस्त करने से भूमि के मालिक को कोई लाभ नहीं मिलेगा। तथ्यों के वर्तमान सेट में, यह निर्विवाद है कि विचाराधीन भूमि कथित तौर पर याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 20.03.2003, i.c. के कथित बिक्री विलेख के माध्यम से खरीदी गई थी। अधिनियम, 1976 के तहत धारा 10(5) के तहत कार्यवाही सहित कार्यवाही के समापन के काफी बाद। इस प्रकार, याचिकाकर्ता एक तीसरा पक्ष खरीदार है जिसके पास यह आरोप लगाकर किसी भी

लाभ का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है कि कब्जा नहीं लिया गया था।

11. चूँकि याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित अपने मामले के अनुसार, उसने कथित तौर पर अधिनियम, 1976 की धारा 10 के तहत राज्य सरकार में भूमि को वैधानिक रूप से निहित करने के बाद प्रश्नगत भूमि खरीदी है, इसलिए, हस्तांतरण पर एक वैधानिक बाधा उत्पन्न हो गई है। धारा 10 की उप-धारा (4)। इसलिए, किसी भी मामले में, वैधानिक आदेश के उल्लंघन में किया गया संपत्ति का कथित हस्तांतरण शून्य और शून्य है। सक्षम प्राधिकारी या उसके अधिकृत अधिकारी द्वारा अधिशेष घोषित रिक्त भूमि पर कब्जा लेने की शुद्धता की जांच रिट क्षेत्राधिकार में नहीं की जा सकती है और याचिकाकर्ता के कहने पर उच्च न्यायालय द्वारा कोई राहत नहीं दी जा सकती है, जिसने कथित तौर पर जमीन खरीदी है। राज्य सरकार के साथ भूमि निहित होने के बाद भूमि। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के पास कब्जे को चुनौती देने या वर्तमान रिट याचिका दायर करने का कोई अधिकार नहीं है। हमारे द्वारा लिया जा रहा दृष्टिकोण यूपी राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून द्वारा समर्थित है। और **अन्य बनाम आदर्श सेवा सहकारी समिति लिमिटेड, (2016) 12 एससीसी 493 (पैरा-4 से 8)**, निम्नानुसार:

"4. हमने इस पहलू की जांच की है। इस निर्विवाद तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रतिवादी ने घोषणाकर्ता से संपत्ति खरीदी है जो धारा 10(3) के संदर्भ में अधिनियम की धारा

10(5) के तहत राज्य सरकार के पास निहित है। अधिसूचना, इसलिए, प्रतिवादी के पक्ष में संपत्ति का हस्तांतरण, जो उक्त संपत्ति में अपनी रुचि का दावा कर रहा है, कानून में शुरू से ही शून्य है। अकेले इस आधार पर, उच्च द्वारा पारित आदेश को कायम रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है

5. विद्वान वरिष्ठ वकील श्री मिश्रा द्वारा यह भी हमारे संज्ञान में लाया गया है धारा 10(3) और 10(5) के तहत कार्यवाही के बाद, नोटिस और कथित भूमि पर कब्जा करने के बाद, बाद की घटना हुई, अर्थात्, उक्त संपत्ति को लखनऊ विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया गया है। राज्य सरकार और विकास प्राधिकरण ने सार्वजनिक उपयोग के लिए एक पार्क बनाया है। इस पर, प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील का कहना है कि उक्त घटना उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान हुई है। हालाँकि यह तथ्य हो सकता है, बाद में, विकास प्राधिकरण के पक्ष में संपत्ति के हस्तांतरण के बाद, प्राधिकरण ने एक पार्क विकसित किया है, यह एक निर्विवाद तथ्य है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय/आदेश को रद्द करने के लिए इस न्यायालय के लिए यह भी मामले का एक बहुत ही प्रासंगिक पहलू है।

6. हमारी राय में, प्रतिवादी के पास अपीलकर्ताओं की ओर से निष्क्रियता को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है। अधिनियम की धारा 10(5) के तहत वैधानिक प्रावधानों का सख्ती से अनुपालन करते हुए कानूनी रूप से कब्जा नहीं लेना और

अधिनियम की धारा 10(6) के तहत प्रावधान के अनुसार कब्जा लेना । इस समय, प्रतिवादी के कहने पर इस पहलू की इस न्यायालय द्वारा जांच करने की आवश्यकता नहीं है।

7. ऊपर बताए गए कारणों के लिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश, जिस हद तक उसने प्रतिवादी को राहत प्रदान की है, रद्द किया जा सकता है और तदनुसार रद्द किया जा सकता है । तदनुसार अपीलें स्वीकार की जाती हैं। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

8. अपील की अनुमति देने के बाद, प्रतिवादी की इस दलील पर विचार करते हुए कि भूमि का कब्जा अधिनियम की धारा 10(6) के तहत लिया गया था, प्रतिवादी के लिए यह खुला है कि वह अधिनियम की धारा 11 के तहत मुआवजे के लिए दावा दायर कर सकता है। उपयुक्त प्राधिकारी के समक्ष अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक उचित आवेदन, जिसके दावे की सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र रूप से जांच की जाएगी और कानून के अनुसार शीघ्रता से उचित आदेश पारित किया जाएगा, लेकिन ऐसे आवेदन की प्राप्ति की तारीख से छह महीने के भीतर नहीं।" (हमारे द्वारा दिया गया जोर)

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की उपरोक्त दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले की उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सुरेंद्र प्रताप और अन्य, (2016) 12 एससीसी 497 (पैरा-8 और 9), के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय

की तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले द्वारा पुष्टि की गई थी । निम्नानुसार:

"8. इसके अलावा, यूपी राज्य और अन्य बनाम आदर्श सेवा सहकारी समिति में लिमिटेड, (2016) 12 एससीसी 493, इस न्यायालय ने देखा है कि निहित होने के बाद अधिनियम की धारा 10(5) के तहत राज्य सरकार के पास अधिशेष भूमि, यदि कोई हस्तांतरण हो प्रश्नगत संपत्ति का प्रभाव होता है, तो ऐसा हस्तांतरण प्रारंभ से ही शून्य होगा स्थानांतरित व्यक्ति कथित निष्क्रियता को चुनौती देने का हकदार नहीं होगा राज्य सरकार या सक्षम प्राधिकारी द्वारा कब्जा न लेने पर अधिनियम की धारा 10(5) के तहत प्रावधानों का अनुपालन।

9. उपरोक्त परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण तत्काल मामला पूरी तरह से टिकाऊ नहीं है । इसलिए, इस अपील को स्वीकार किया जाता है और प्रतिवादी नंबर 1 और 2 द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका को जुर्माने के साथ खारिज कर दिया जाता है।" (हमारे द्वारा दिया गया जोर)

13. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य के मामले में, (2015) 5 एससीसी 321 (पैरा-16, 17 और 19) । माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:

"16. इस मुद्दे को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। यह मानते हुए कि कब्जे वाला व्यक्ति शिकायत कर सकता है, भले ही

अंतिम विश्लेषण में बहुत अधिक लाभ न हो, सवाल यह है कि क्या ऐसी शिकायत धारा के कथित उल्लंघन के लंबे समय बाद की जा सकती है 10(5) यदि वास्तविक भौतिक कब्ज़ा 7 दिसंबर 1991 को तत्कालीन भूमि मालिक से ले लिया गया था, जैसा कि वर्तमान मामले में आरोप लगाया गया है, धारा 10(5) के आधार पर कोई भी शिकायत ऐसे बेदखली के उचित समय के भीतर की जानी चाहिए थी। यदि मालिक ने ऐसा नहीं किया, तो जबरन कब्ज़ा लेना समय की चूक से वैधता प्राप्त कर लेगा। ऐसी किसी भी स्थिति में मालिक या कब्जे वाले व्यक्ति को अधिनियम की धारा 10 (5) के तहत अपना अधिकार माफ कर दिया गया माना जाना चाहिए। हमारी राय में, कोई भी अन्य दृष्टिकोण, एक वादी को शिकायत करने का लाइसेंस देगा, इसलिए नहीं कि उसे किसी वास्तविक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है जिसका निवारण किया जाना चाहिए, बल्कि केवल इसलिए कि निरसन अधिनियम की आकस्मिक परिस्थिति ने उसे इस मुद्दे को उठाने के लिए प्रेरित किया। उनकी बेदखली निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन है।

17. प्रतिवादियों द्वारा हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया गया था। हमारे विचार में, वह निर्णय उत्तरदाताओं को अधिक सहायता नहीं देता है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि यह न्यायालय हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या धारा 10(5) में आने वाला शब्द 'हो सकता है' सक्षम प्राधिकारी को भौतिक कब्ज़ा लेने से पहले नोटिस जारी करने या न जारी करने का विवेक

देता है। धारा 10(6) के अंतर्गत विचाराधीन भूमि। यह सवाल कि क्या धारा 10(5) का उल्लंघन और बिना किसी नोटिस के संभावित बेदखली बेदखली के कार्य को खराब कर देगी या इसे कानून की नज़र में गैर-स्थायी बना देगी, उस मामले में विचार के लिए नहीं आया। हमारी राय में, धारा 10(5) जो निर्धारित करती है वह कार्रवाई का एक सामान्य और तार्किक तरीका है जिसका पालन अधिकारियों द्वारा धारा 10(6) के तहत कब्जेदार को बेदखल करने के लिए बल का उपयोग करने का निर्णय लेने से पहले किया जाना चाहिए। मौजूदा मामले में यदि दिसंबर 1991 में पूर्ववर्ती मालिक को बेदखल करने के संबंध में अपीलकर्ता का बयान सही है, तो यह तथ्य कि धारा 10(5) के तहत बिना किसी नोटिस के ऐसी बेदखली की गई थी, कोई परिणाम नहीं होगा और धारा के प्रयोजनों के लिए कब्ज़ा लेने के कार्य को खराब या नष्ट नहीं करेगा निरसन अधिनियम के 3 ऐसा इसलिए है क्योंकि भाबादेब सरमा-तत्कालीन मालिक ने नहीं बनाया था उनके जीवनकाल के दौरान किसी भी स्तर पर धारा 10(5) के उल्लंघन पर आधारित कोई भी शिकायत इसका अर्थ यह है कि उसने ऐसा करने का अपना अधिकार छोड़ दिया है।

19. इस तर्क के समर्थन में कि उत्तरदाता आज भी वास्तविक रूप से भौतिक हैं प्रश्नाधीन भूमि का कब्ज़ा कुछ बिजली बिलों पर निर्भर करता है टेलीफोन कनेक्शन के लिए भुगतान किए गए बिल जो किसी श्री सनातन के नाम पर थे बैश्य. यह तर्क दिया गया कि श्री सनातन वैश्य कोई और नहीं थे।

उत्तरदाताओं की संपत्ति का देखभालकर्ता । हालाँकि, रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है । उस दावे को पुष्ट करें. टेलीफोन बिल और बिजली बिल भी इससे संबंधित हैं केवल 2001 से आगे की अवधि। हमारे सामने रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है और न ही कुछ था । यह सुझाव देने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष रखा गया कि 7 दिसंबर, 1991 से आज तक प्रश्नगत भूमि दिसंबर, 2003 में जीएमडीए को मालिक या उसके कानूनी को आवंटित की गई थी । उनके निधन के बाद भी उत्तराधिकारियों का कब्जा बरकरार रहा। हमारे पास जो कुछ भी है वह प्रतिद्वंद्वी दावे हैं पार्टियों के समर्थन में हलफनामों के आधार पर। हमने बार-बार विद्वान से पूछा निर्णय की सादृश्यता पर रिमांड पर पक्षों के लिए वकील करें कि क्या वे कर सकते हैं ज्ञानबा दिलावरसिंह जडेगा (सुप्रा) के मामले में, इसका कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करें उच्च न्यायालय को वास्तविक कब्जे के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने में सक्षम बनाएगा। वे ऐसे किसी भी सबूत को इंगित या संदर्भित करने में असमर्थ थे। ऐसा होने पर यह प्रश्न कि क्या वास्तविक भौतिक कब्जा लिया गया था, तथ्य का एक गंभीर रूप से विवादित प्रश्न बना हुआ है, जो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा संतोषजनक निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं है, भले ही उच्च न्यायालय कुछ मामलों में अपने विवेक से काम ले। ऐसे दृढ़ संकल्प पर स्थितियाँ। इसलिए, बेदखली के सवाल पर निष्कर्ष निकालने के लिए उच्च न्यायालय को भेजा गया रिमांड हमें कोई व्यवहार्य समाधान प्रतीत नहीं होता है।"

(हमारे द्वारा दिया गया जोर)

14. भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य (सुप्रा) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय का शिव राम सिंह बनाम यूपी राज्य के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा पालन किया गया है । और अन्य, 2015 (7) एडीजे 630 और रिट याचिका को निम्न आधार पर खारिज कर दिया गया:

"हमें मामले के दूसरे पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए, खासकर भास्कर ज्योति सरमा (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले को ध्यान में रखते हुए। याचिकाकर्ता ने निरसन अधिनियम लागू होने के लगभग तीन साल बाद 2002 में पहली रिट याचिका दायर की थी । याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर जिला मजिस्ट्रेट को आदेश पारित करने का निर्देश देकर पिछली रिट याचिका का निपटारा करने के बाद, 10 मई 2007 को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा एक आदेश पारित किया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने दो साल से अधिक की अवधि तक इंतजार किया। वर्तमान रिट याचिका जुलाई 2009 में दायर की गई थी। यदि याचिकाकर्ता को धारा 10(5) के तहत उचित नोटिस के बिना भूमि से बेदखल कर दिया गया था, तो ऐसी शिकायत प्रासंगिक समय पर की जा सकती थी। वास्तव में, यह किया गया है राज्य का मामला यह है कि धारा 10(5) के तहत एक नोटिस, वास्तव में, वर्तमान मामले में जारी किया गया था जो कि मूल फ़ाइल से लिया जाएगा जिसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। मुद्दा यह है कि क्या ऐसी कोई शिकायत है बहुत बाद में, न्यायालय के समक्ष बनाया जा सका।

याचिकाकर्ता ने निरसन अधिनियम लागू होने के बाद पहली रिट याचिका दायर करने के लिए लगभग तीन साल तक इंतजार किया था और उसके बाद जिला मजिस्ट्रेट के निष्कर्ष के बावजूद कि 25 तारीख को कब्जा ले लिया गया था, प्रतिनिधित्व के निपटान के बाद दो साल से अधिक की अवधि तक इंतजार किया था। जून 1993। हमारे विचार में, किसी भी स्थिति में, इतनी देर से दी गई चुनौती पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।"

(हमारे द्वारा दिया गया जोर)

15. उपरोक्त के अलावा, अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति विवेकाधीन है शक्ति। रिट केवल न्याय के गंभीर उल्लंघन की स्थिति में ही जारी की जा सकती है | जहां कानून का घोर उल्लंघन हुआ है. शक्ति होना विवेकाधीन, न्यायालय को प्रतिस्पर्धी हितों को ध्यान में रखते हुए संतुलन बनाना होगा | कि न्याय के हित और सार्वजनिक हित आम तौर पर एक साथ आते हैं। की एक अदालत इक्विटी, अपने न्यायसंगत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय रोकथाम के लिए कार्य करना चाहिए | कानूनी धोखाधड़ी को अंजाम देना और सद्भावना और समानता को बढ़ावा देना। एक याचिकाकर्ता जिसका दावा वैध आधार पर आधारित नहीं है, वह इक्विटी का दावा करने का हकदार नहीं है | ए जो व्यक्ति इक्विटी का दावा करता है उसे साफ हाथों से अदालत के सामने आना चाहिए | यह सुनिश्चित करने के लिए पार्टियों के बीच समानता का उचित ढंग से काम किया जाना चाहिए कि किसी को भी

दूसरों की तुलना में अन्यायपूर्ण ढंग से अपना वजन कम करने की अनुमति न दी जाए।

16. तथ्यों के वर्तमान सेट में, हमने पहले ही नोट कर लिया है कि राज्य में निहित विवादित भूमि और कथित बिक्री विलेख अधिनियम, 1976 की धारा 10(4) के मद्देनजर पूरी तरह से अमान्य है, इस तथ्य के अलावा कि कथित विक्रय विलेख के निष्पादन से बहुत पहले पावर ऑफ अटॉर्नी वापस ले ली गई थी। एक कथित क्रेता होने के नाते याचिकाकर्ता का कोई अधिकार क्षेत्र भी नहीं है। इस प्रकार, तथ्यों के वर्तमान सेट पर, हम यह भी पाते हैं कि यह न्यायसंगत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए उपयुक्त मामला नहीं है।

17. इस प्रकार, हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं:

(ए) याचिकाकर्ता दिनांक 20.03.2003 को एक विक्रय विलेख के माध्यम से अधिनियम, 1976 के तहत अधिशेष घोषित भूमि का खरीदार होने का दावा करता है, जिसे याचिकाकर्ता के पक्ष में कथित पावर ऑफ अटॉर्नी धारक द्वारा पावर के बाद निष्पादित किया गया था | 05.09.2002 को वकील रद्द कर दिया गया।

(बी) प्रश्नगत भूमि राज्य में निहित है | राज्य ने इस पर कब्जा कर लिया और इसे बरेली विकास प्राधिकरण को हस्तांतरित कर दिया | प्रतिवादी नंबर 4 (बरेली विकास प्राधिकरण, बरेली) की ओर से संक्षिप्त प्रतिशपथ पत्र के साथ दायर की गई तस्वीरों

के अनुसार और उक्त संक्षिप्त प्रतिशपथ पत्र के पैराग्राफ -15 में दिए गए कथनों के अनुसार, विचाराधीन भूमि वास्तविक भौतिक कब्जे में है बरेली विकास प्राधिकरण के.

(सी) मूल किरायेदारों या उनके उत्तराधिकारियों ने पिछले लगभग तीन दशकों के दौरान किसी भी समय न तो प्रश्न में भूमि के निहितार्थ पर आपत्ति जताई है और न ही मूल किरायेदारों के नाम हटाने और राज्य / प्रतिवादी के नाम के उत्परिवर्तन पर आपत्ति जताई है। राजस्व अभिलेखों अर्थात् खतौनी आदि में संख्या 4, न ही उन्होंने वर्तमान रिट याचिका दायर की है। वर्तमान रिट याचिका विवादित भूमि के एक तथाकथित खरीदार, यानी याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई है, जिसने कथित तौर पर इसे कथित पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से दिनांक 20.03.2003 के बिक्री विलेख द्वारा खरीदा था, जिसकी पावर ऑफ अटॉर्नी 05.09 को रद्द कर दी गई थी। 2002, यानी उपरोक्त विक्रय पत्र के निष्पादन से बहुत पहले।

(डी) उपरोक्त कथित विक्रय पत्र लगभग दो दशक पहले विवादित भूमि को राज्य में निहित करने के बाद निष्पादित किया गया है और राज्य का नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि याचिकाकर्ताओं के पास कानून का कोई अधिकार है। विवादित भूमि. याचिकाकर्ताओं द्वारा कोई साक्ष्य दाखिल नहीं किया गया है। यह स्थापित करें कि विवादित भूमि पर उनका कब्जा है।

(ई) संक्षेप में, "कब्जा लेना" धारा 3 की जीवन रेखा है निरसन अधिनियम और एक व्यक्ति

जो निरसन अधिनियम का लाभ चाह रहा है भूमि की बहाली के लिए दलील देनी चाहिए और साबित करना चाहिए कि कब्जा नहीं लिया गया था।

(च) जहां कब्जा ले लिया गया है, अधिनियम, 1976 को निरस्त करने से भूमि के मालिक को कोई लाभ नहीं मिलेगा। तथ्यों के वर्तमान सेट में, यह निर्विवाद है कि विचाराधीन भूमि कथित तौर पर याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 20.03.2003 के कथित विक्रय विलेख के माध्यम से खरीदी गई थी, यानी अधिनियम, 1976 के तहत धारा 10(5) के तहत कार्यवाही सहित कार्यवाही के समापन के बहुत बाद में। इस प्रकार, याचिकाकर्ता एक तीसरा पक्ष खरीदार है जिसके पास यह आरोप लगाकर किसी भी लाभ का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है कि कब्जा नहीं लिया गया था।

(छ) अधिनियम, 1976 की धारा 10 के तहत राज्य सरकार में भूमि को वैधानिक रूप से निहित करने के बाद, धारा 10 की उप-धारा (4) द्वारा हस्तांतरण पर एक वैधानिक बाधा उत्पन्न हो गई। इसलिए, किसी भी मामले में, कथित हस्तांतरण वैधानिक आदेश के उल्लंघन में बनाई गई संपत्ति शून्य और अमान्य है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा विवादित भूमि पर हित का दावा कानून की दृष्टि से प्रारंभ से ही अमान्य है।

(ज) यह मानते हुए भी कि कब्जे वाला व्यक्ति शिकायत कर सकता है, भले ही अंतिम विश्लेषण में बहुत अधिक लाभ न हो, सवाल यह है कि क्या ऐसी शिकायत धारा 10(5) के कथित उल्लंघन के लंबे समय बाद की जा सकती है। ऐसी किसी भी स्थिति में

4.इला सुरेश चंद्र श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उपविभागीय अधिकारी, तहसील सदर झांसी व अन्य 1249

मालिक या कब्जे वाले व्यक्ति को अधिनियम की धारा 10(5) के तहत अपना अधिकार माफ कर दिया गया माना जाना चाहिए। कोई भी अन्य दृष्टिकोण एक वादी को शिकायत करने का लाइसेंस देगा, इसलिए नहीं कि उसे किसी वास्तविक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है जिसका निवारण किया जाना चाहिए, बल्कि केवल इसलिए कि निरसन अधिनियम की आकस्मिक परिस्थिति ने उसे अपने बेदखली के उल्लंघन के संबंध में मुद्दा उठाने के लिए प्रेरित किया। निर्धारित प्रक्रिया।

(i) यह प्रश्न कि क्या वास्तविक भौतिक कब्जा ले लिया गया था, तथ्य का एक गंभीर रूप से विवादित प्रश्न बना हुआ है जो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा संतोषजनक निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं है। हालाँकि, यह अदालत अपने विवेक से कब्जे के सवाल पर निर्णय ले सकती है यदि यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि राज्य सरकार द्वारा कब्जा नहीं लिया गया था और भूमि मालिक ने कब्जा जारी रखा है।

(जे) उपरोक्त पैरा 3 से 6 में संक्षेप में दिए गए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका भी कमियों के आधार पर विचार करने योग्य नहीं है।

(के) तथ्यों के वर्तमान सेट में, हमने पहले ही नोट कर लिया है कि राज्य में निहित विवादित भूमि और कथित बिक्री विलेख अधिनियम, 1976 की धारा 10(4) के मददेनजर पूरी तरह से अमान्य है। कि निष्पादन से बहुत पहले पावर ऑफ अटॉर्नी वापस ले ली गई थी। कथित विक्रय विलेख एक कथित क्रेता होने के नाते याचिकाकर्ता के

पास भी है। कोई अधिकार नहीं। इस प्रकार, तथ्यों के वर्तमान सेट पर, हम यह भी पाते हैं कि यह है। न्यायसंगत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए यह उपयुक्त मामला नहीं है।

18.वनरोपित सभी कारणों से तथा निर्धारित कानून के दृष्टिगत भी माननीय उच्चतम न्यायालय एम.एस. विश्वनाथन और अन्य (सुप्रा), सुलोचना चंद्रकांत गलांडे (सुप्रा), आदर्श सेवा सहकारी समिति लिमिटेड (सुप्रा), सुरेंद्र प्रताप और अन्य (सुप्रा), भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य (सुप्रा) और शिव राम सिंह (सुप्रा) के मामले में इस अदालत की एक समन्वय पीठ द्वारा निर्धारित कानून भी सिंह (सुप्रा), हमें इस रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती, सिवाय इस तथ्य के कि याचिकाकर्ता के पास कोई अधिकार नहीं है और रिट याचिका पर भी आंच आ रही है। परिणामस्वरूप, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 926

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

रिट-सी संख्या 26259/2014

सुरेश चंद्र श्रीवास्तव एवं अन्य. ...याचिकाकर्ता

बनाम

उपविभागीय अधिकारी, तहसील सदर झांसी व अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री आर.सी. सिंह, श्री के.पी. तिवारी, श्री तरुण वर्मा, श्री विनोद

कुमार, श्री बजिंदर सिंह, श्री नारायण दत्त शुक्ला, श्री आनंद वर्मा
अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री के.पी. तिवारी, श्री के.के. तिवारी, श्री राजीव कुमार, श्री एस.आर. श्रीवास्तव, श्री शशि नंदन (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. सिविल कानून- सिविल प्रक्रिया संहिता - धारा 9 और 47-यूपी काश्तकारी अधिनियम, 1939- धारा 242- सिविल वाद की पोषणीयता - इससे पहले, राजस्व न्यायालय के आदेश को शून्य और अमान्य घोषित करने वाला एक आदेश सिविल न्यायालय द्वारा पारित किया गया था, जिसे अपीलीय न्यायालय ने भी पुष्टि की है और जिसे चुनौती नहीं दी गई है - सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार को चुनौती दी गई - माना गया, सी.पी.सी. की धारा 9 में वाद दायर करने का प्रावधान है जब तक कि स्पष्ट रूप से या निहित रूप से वर्जित न हो - सी.पी.सी. की धारा 47, 1939 के अधिनियम की धारा 242 के प्रावधान के अंतर्गत आने वाले वादों में लागू नहीं होगी - आगे माना गया, एक बार यह निर्विवाद है कि राजस्व न्यायालय के 20.07.1996 के आदेश को सिविल न्यायालय द्वारा शून्य और अमान्य घोषित किया गया है, जिसे अपीलीय न्यायालय ने भी पुष्टि की है, याचिकाकर्ता को कोई अनुतोष नहीं प्रदान किया जा सकता है।

रिट याचिका निरस्त (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. सिविल अपील संख्या 658/2008: मुख्य अभियंता, हाइडल परियोजना एवं अन्य बनाम रविन्द्र नाथ एवं अन्य, निर्णय दिनांक 24.01.2008
2. सिविल अपील संख्या 1346/2010: मिल्खी राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड, निर्णय दिनांक 08.10.2021
3. सिविल अपील संख्या 5617/1999: बलवंत एन. विश्वामित्र एवं अन्य बनाम यादव सदाशिव मूले एवं अन्य, निर्णय दिनांक 13.08.2004
4. शिव पूजन दुबे एवं अन्य बनाम बब्बन लाल और अन्य: एआईआर 1959 पैरा 13
 (माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील श्री विनोद कुमार, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी वकील और निजी उत्तरदाताओं के विद्वान वकील श्री के.पी. तिवारी की सहायता से विद्वान वरिष्ठ वकील श्री शशि नंदन को सुना गया।

वर्तमान याचिका निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई है:

"i. सर्टिओरारी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें रिकॉर्ड मांगा जाए और दिनांक 22.02.2014 के आदेश को रद्द कर दिया जाए, जहां तक यह याचिकाकर्ताओं के खिलाफ है।

ii. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उप मंडल अधिकारी को नया वारंट और परवाना

4.इला सुरेश चंद्र श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उपविभागीय अधिकारी, तहसील सदर झांसी व अन्य 1251

अमलदरामद जारी करने का आदेश दिया जाए और याचिकाकर्ताओं को प्लॉट नंबर 1380 के पूरे क्षेत्र सहित खेवट नंबर 22 में शामिल भूखंडों के पूरे क्षेत्र पर कब्जा कर लिया जाए।"

मामले की सुनवाई 3.07.2019 को हुई और न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया है:

"याचिकाकर्ताओं के वकील का कहना है कि एक पूरक हलफनामा मार्च 2018 में दायर किया गया है और प्रतिस्थापन आवेदन मार्च 2019 में दायर किया गया है, हालांकि, यह रिकॉर्ड पर नहीं है।

कार्यालय को पता लगाने और उसे रिकॉर्ड पर रखने का निर्देश दिया गया है। वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उप-डिविजनल मजिस्ट्रेट, झाँसी द्वारा प्रश्नाधीन भूमि का कब्जा सौंपने के लिए राहत की मांग की है, जिसने राजस्व न्यायालय के क्रमशः 20.07.1996 और 24.07.1996 के आदेश और डिक्री के अनुसार, जो राज्य के राजस्व कानून के तहत अपील की उच्चतम अदालत तक पुष्टि की गई है। उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, झाँसी का दिनांक 12.12.2011 का एक आदेश भी रिट याचिका के परिशिष्ट संख्या 9 के रूप में संलग्न किया गया है, जिसके तहत तत्कालीन उप-विभागीय मजिस्ट्रेट, झाँसी ने मामले के सभी पहलुओं पर विचार किया और आदेश के निष्पादन के लिए निर्देशित किया, क्रमशः दिनांक 20.07.1996 एवं 24.07.1996 की डिक्री एवं भूमि की

राजस्व प्रविष्टियों के संबंध में भी परिणामी कार्यवाही करने हेतु निर्देशित किया गया। हालाँकि, ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में प्रतिस्पर्धी उतरदाताओं द्वारा दायर की गई कुछ आपतियों पर, उप-विभागीय मजिस्ट्रेट ने दिनांक 22.02.2014 को एक आदेश पारित किया, जिसके द्वारा उन्होंने दिनांक 12.12.2011 के आदेश को लागू करने के लिए याचिकाकर्ता के अनुरोध को वस्तुतः खारिज कर दिया और इसलिए यह उक्त आदेश को भी चुनौती देते हुए याचिका दायर की गई थी। हालाँकि, पार्टियों को यह स्वीकार है कि बाद में, वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, अतिरिक्त आयुक्त (प्रशासन), झाँसी डिवीजन, झाँसी ने स्वयं निर्णय देनदारों द्वारा दायर पुनरीक्षण की अनुमति दी और दिनांक 22.02.2014 के आदेश को रद्द कर दिया।

उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए उभयपक्षों द्वारा प्रार्थना सं. 1 जो वर्तमान रिट याचिका से संबंधित है, यह निरर्थक हो गई है। जहां तक राजस्व अदालतों का संबंध है, याचिकाकर्ता के पक्ष में अभी भी फैसले और डिक्री के निष्पादन के संबंध में इस न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न विचाराधीन है और राज्य के राजस्व कानूनों के तहत माना जाता है कि भूमि कृषि भूमि है, यह तर्क दिया गया है कि राजस्व अदालत परम प्राधिकारी हैं।

प्रतिवादी पक्ष 1 एवं 2 अर्थात् उप-विभागीय अधिकारी, तहसील सदर, झाँसी और तहसीलदार, तहसील सदर, झाँसी की ओर से जवाबी हलफनामा दायर

किया गया है जिसमें स्वयं तहसीलदार राजेंद्र बहादुर द्वारा शपथ दिलाई गई, जिसमें पैरा 19 के अनुसार यह बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि उत्तरदाताओं को राज्य के अधिकारियों द्वारा बेदखल कर दिया गया है और प्रश्न में भूमि का कब्जा उप प्रभागीय अधिकारी के पास निहित हो गया है और इस आशय का कब्जा ज्ञापन दिनांक 08.04.2013 को दायर किया गया है।

तथ्यों के सामने कि सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट, झाँसी के आदेश दिनांक 22.02.2014 को अतिरिक्त आयुक्त द्वारा 2013-14 के संशोधन संख्या 3/35 में आदेश दिनांक 10.11.2017 द्वारा पहले ही रद्द कर दिया गया है और कब्जा ज्ञापन भी दर्शाया गया है चूँकि भूमि संबंधित उपविभागीय अधिकारी के कब्जे में है, यह न्यायालय यह समझने में विफल है कि क्यों और किन परिस्थितियों में, आगे कोई कार्रवाई नहीं की गई, विशेषकर तब जब उपविभागीय अधिकारी, झाँसी का पूर्व आदेश दिनांक 12.12. 2011 अभी भी बचा हुआ है।

अनुविभागीय अधिकारी, झाँसी को अगली तारीख तक इस न्यायालय के समक्ष अपना व्यक्तिगत हलफनामा दाखिल करना चाहिए जिसमें यह बताया जाए कि उनके द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.02.2014 को अतिरिक्त आयुक्त द्वारा पुनरीक्षण में रद्द किए जाने के बाद उन्होंने आगे क्या कार्रवाई की है।

इस मामले को 29.07.2019 को स्थायी रूप से सूचीबद्ध करें।

इस आदेश की एक प्रमाणित प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल मालवीय को 48 घंटे के भीतर निःशुल्क उपलब्ध कराई जाए।"

इस न्यायालय के आदेश दिनांक 03.07.2019 के अनुसरण में, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अनुपालन शपथ पत्र दिनांक 25.07.2019 दायर किया गया है और उक्त शपथ पत्र के पैरा 12 में कहा गया है कि उप-विभागीय द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.07.1996 के विरुद्ध अधिकारी, झाँसी, 2010 का एक मूल मुकदमा संख्या 319 अतिरिक्त सिविल जज (जे.डी.), कोर्ट संख्या 11, झाँसी के समक्ष दायर किया गया है और दिनांक 10.04.2015 के आदेश के तहत, उक्त मुकदमे को दिनांक 20.07.1996 के आदेश को अशक्त और शून्य घोषित करते हुए अनुमति दी गई थी। दिनांक 10.04.2015 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा सिविल अपील संख्या 31/2015 दायर की गई है जिसे भी अपीलीय अदालत, यानी अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, झाँसी ने आदेश दिनांक 8.4.2021 द्वारा खारिज कर दिया गया है।

यहां ऊपर और साथ ही न्यायालय के दिनांक 03.07.2019 के आदेश में उल्लिखित तथ्यों पर पार्टियों के वकील द्वारा विवाद नहीं किया गया है।

याचिकाकर्ता-प्रतिवादी के विद्वान वकील ने दृढ़तापूर्वक कहा कि वर्तमान विवाद यूपी किरायेदारी अधिनियम, 1939 (इसके बाद इसे '1939 का अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 242 के अंतर्गत आता है और इसलिए,

4.इला सुरेश चंद्र श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उपविभागीय अधिकारी, तहसील सदर झांसी व अन्य 1253

सिविल सूट संख्या 319/2010 पोषणीय नहीं है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 47 (इसके बाद, 'सी.पी.सी.' के रूप में संदर्भित) कार्रवाई के समान कारण के लिए एक नया मुकदमा दायर करने पर रोक लगाती है। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील का एकमात्र तर्क यह है कि एक बार जब सिविल कोर्ट के पास कोई क्षेत्राधिकार नहीं होता है, तो सिविल कोर्ट द्वारा पारित किसी भी आदेश को प्रभावी नहीं किया जा सकता है और एक बार जब राजस्व न्यायालय का आदेश राजस्व बोर्ड तक अंतिम रूप ले लेता है, तो राजस्व अधिकारियों की ओर से इसका अनुपालन करने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। उन्होंने आगे कहा कि निष्पादन की कार्यवाही के दौरान, एक बार प्रतिवादी नंबर 1, एस.डी.एम. द्वारा कब्जा ले लिया गया है तो प्रतिवादी नंबर 2, तहसीलदार की ओर से सिविल कोर्ट के आदेश दिनांक 10.04.2015 और अपीलीय न्यायालय के दिनांक 08.04.2021 के आदेश की अनदेखी करते हुए याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को कब्जा सौंपना आवश्यक है।

उन्होंने यह भी कहा कि अधिकार क्षेत्र का सवाल कार्यवाही के किसी भी चरण में उठाया जा सकता है क्योंकि यह विवाद के मूल कारण तक जाता है।

अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने **सिविल अपील संख्या 658/2008 मुख्य अभियंता, हाइडल प्रोजेक्ट और अन्य बनाम रविंदर नाथ और अन्य**, 24.01.2008 को निर्णय लिया गया, 2010 की **सिविल अपील संख्या 1346:**

मिल्खी राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड, 08.10.2021 को निर्णय, 1999 की **सिविल अपील 5617: बलवंत एन. विश्वामित्र और अन्य बनाम यादव सदाशिव मुले (डी) और अन्य एलआर** के माध्यम से, 13.08.2004 को निर्णय दिया गया, में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया और शिव पूजन दुबे एवं अन्य बनाम बबन लाल एवं अन्य: एआईआर 1959 पैट 13 मामले में पटना उच्च न्यायालय का निर्णय पर भरोसा जताया।

निजी उत्तरदाताओं के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री शशि नंदन ने दृढ़तापूर्वक कहा कि इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि सिविल कोर्ट ने 2010 के सूट संख्या 319 में पारित आदेश दिनांक 10.04.2015 के माध्यम से दिनांक 20.7.1996 के आदेश को अमान्य घोषित कर दिया है, जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा सिविल अपील संख्या 31/2015 दायर की गई थी, जिसे अपीलीय अदालत ने भी आदेश दिनांक 8.4.2021 द्वारा खारिज कर दिया है। 2010 के सूट नंबर 319 में, एक मुद्दा तय किया गया था कि क्या डिप्टी कलेक्टर, झांसी द्वारा केस नंबर 1/93-94: **सुरेश चंद्र बनाम बनाम राम दयाल** में आदेश दिनांक 20.07.1996 पारित किया गया था। राम दयाल पर धारा 80 उ.प्र. क्षेत्राधिकार की कमी के कारण किरायेदारी अधिनियम अवैध या अमान्य था। प्रश्न का निर्णय वादी-प्रतिवादी के पक्ष में किया गया। दिनांक 10.04.2015 के आदेश की अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 8.4.2021 के आदेश के माध्यम से पुष्टि की थी, इसलिए, याचिकाकर्ता के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय सी.पी.सी. की धारा

100 के तहत दूसरी अपील दायर करना है। उन्होंने यह भी बताया कि सिविल मुकदमे सी.पी.सी. की धारा 9 के तहत दायर किए जाते हैं, जो स्पष्ट रूप से प्रदान करता है कि जब तक कोई विशिष्ट रोक न हो, सिविल न्यायालय के पास नागरिक प्रकृति के सभी मुकदमों की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है।

उन्होंने आगे कहा कि सी.पी.सी. की धारा 47. यह केवल सी.पी.सी. के प्रावधान के तहत दायर सिविल मुकदमों के लिए लागू है और 1939 के अधिनियम के तहत दायर मुकदमों में लागू नहीं है। उन्होंने दोहराया कि जब तक सिविल न्यायालय दिनांक 15.04.2015 और 8.4.2021 के आदेशों पर रोक नहीं लगाते, तब तक निष्पादन की कार्यवाही आगे नहीं बढ़ाई जा सकती है और विचाराधीन भूमि का कब्जा याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को नहीं दिया जा सकता है।

मैंने पक्षों के विद्वान वकील द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है, रिकॉर्ड के साथ-साथ जिस फैसले पर भरोसा किया है, उसका अध्ययन किया है। इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि दिनांक 20.7.1996 का आदेश राज्य के राजस्व कानून के तहत अपील के उच्चतम न्यायालय तक अंतिम रूप ले चुका है और यह भी विवादित नहीं है कि उसी आदेश यानी दिनांक 20.7.1996 को अमान्य घोषित कर दिया गया है और सिविल कोर्ट ने अपने आदेश दिनांक 10.04.2015, में इसे रद्द कर दिया जिसे अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 8.4.2021 के आदेश द्वारा पुष्टि की गई है।

पहले मामले के तथ्य, यानी मुख्य अभियंता, हाइडल प्रोजेक्ट और अन्य (उपरोक्त) ने याचिकाकर्ता के विद्वान वकील पर भरोसा करते हुए कहा कि मुकदमे का फैसला उन मुद्दों पर किया जाना है जो औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के क्षेत्र में हैं और इसलिए, सिविल कोर्ट के पास मुकदमे की सुनवाई का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से वर्जित था और मुकदमे का फैसला केवल श्रम न्यायालय द्वारा किया जा सकता था। इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अंततः सिविल कोर्ट के आदेश को क्षेत्राधिकार विहीन घोषित कर दिया।

वर्तमान विवाद में इस मामले का कोई मतलब नहीं है क्योंकि अपील के निपटारे के बाद सिविल कोर्ट का आदेश अंतिम हो गया है जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता-प्रतिवादी द्वारा कोई दूसरी अपील दायर नहीं की गई है। इसके अलावा, एस.डी.एम. के अधिकार क्षेत्र का मुद्दा सिविल कोर्ट के समक्ष था, जिसमें यह माना गया कि एस.डी.एम. को दिनांक 20.7.1996 को आदेश पारित करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील **मिल्खी राम (उपरोक्त)** ने जिस दूसरे निर्णय पर भरोसा किया। इस मामले में भी एक अलग तथ्य है, यानी सिविल कोर्ट के पास औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के आधार पर दावे पर विचार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है और इसके अलावा यदि न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र के बिना कोई डिक्री पारित की जाती है, तो उसके पास कानून का कोई बल नहीं होगा। उस मामले में, सिविल कोर्ट के फैसले को चुनौती दी गई थी

4.इला सुरेश चंद्र श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उपविभागीय अधिकारी, तहसील सदर झांसी व अन्य 1255

और वर्तमान मामले में, वही कमी है क्योंकि अपीलीय अदालत के दिनांक 8.4.2021 के आदेश को कभी चुनौती नहीं दी गई है और उसने अंतिमता प्राप्त कर लिया गया है। इसलिए यह वाद भी किसी काम का नहीं है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने जिस तीसरे फैसले पर भरोसा किया, वह बलवंत एन. विश्वामित्र और अन्य (उपरोक्त) शून्य एब इनिटियो या शून्यकरणीय के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क के बारे में है। यह निर्णय भी याचिकाकर्ता के बचाव में नहीं आ रहा है क्योंकि सिविल कोर्ट ने दिनांक 10.04.2015 के आदेश के तहत एस.डी.एम. झांसी के आदेश दिनांक 20.07.1996 को गलत ठहराया है जिसमें उसके क्षेत्राधिकार के मुद्दे को तय करने के बाद शून्य घोषित कर दिया गया है जिसे दिनांक 8.4.2021 के आदेश द्वारा अपीलीय न्यायालय द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई। इसलिए सिविल कोर्ट का आदेश दिनांक 10.4.2015 और अपीलीय न्यायालय का आदेश दिनांक 8.4.2021 को उच्च न्यायालय से पलटे बिना शुरू से ही शून्य नहीं कहा जा सकता है और राजस्व अधिकारियों द्वारा इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

जहां तक शिव पूजन दुबे (उपरोक्त) के मामले में पटना उच्च न्यायालय के चौथे फैसले का सवाल है, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने भरोसा किया है, उसमें यह भी कहा गया है कि निष्पादन की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, सी.पी.सी. की धारा 47 कोई भी सिविल मुकदमा दायर करने पर रोक है, इसलिए 2010 का मुकदमा संख्या 319 सुनवाई योग्य नहीं है। यह निर्णय याचिकाकर्ता

के मामले पर भी इसी कारण से लागू नहीं है कि निष्पादन कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, कार्रवाई के समान कारण के लिए कोई नया मुकदमा दायर नहीं किया गया है, लेकिन सब डिविजनल मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांक 20.07.1996 ने सिविल कोर्ट के समक्ष चुनौती दी गई और सिविल कोर्ट ने दिनांक 10.04.2015 के आदेश के माध्यम से दिनांक 20.07.1996 के आदेश को अमान्य घोषित कर दिया। इसलिए इस फैसले का भी कोई मतलब नहीं है।

इसके अलावा, सी.पी.सी. की धारा 9 के तहत जब तक स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से रोक न लगाई जाए, मुकदमा दायर करने का प्रावधान है और सी.पी.सी. की धारा 47 अधिनियम 1939 की धारा 242 के प्रावधान के तहत आने वाले मुकदमों में लागू नहीं होगा।

एक बार जब यह निर्विवाद हो जाता है कि राजस्व न्यायालय के आदेश दिनांक 20.07.1996 को सिविल न्यायालय द्वारा दिनांक 10.04.2015 के आदेश के माध्यम से अमान्य घोषित कर दिया गया है, जिसे अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 8.4.2021 के आदेश के माध्यम से पुष्टि की है, तो याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी जा सकती है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, याचिकाकर्ता को कब्जा देने के लिए कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता, जैसा कि प्रार्थना की गई है।

याचिका में गुणदोष नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है।

लागत के हिसाब से कोई आदेश नहीं।

(2023) 4 ILRA 931

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

रिट-सी संख्या 34252/2000

उत्तर प्रदेश राज्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, इलाहाबाद
एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: एस.सी.

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

क. श्रम कानून -औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धारा 2(जेड), 6 और 33 (सी) (2) - कर्मकार -परिभाषा- जूनियर इंजीनियर, क्या कर्मकार की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं - आयोजित, सिंचाई विभाग एक उद्योग है, इसलिए, सिंचाई विभाग के कर्मचारी "कर्मकार" की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि एक जूनियर इंजीनियर धारा 6 और 2 (जेड) के तहत कर्मकार है। (पैरा 13)

बी. श्रम कानून - औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 धारा 33 (सी) (2) - सेवा से अनुपस्थित जिसके लिए 'बिना वेतन छुट्टी' दी गई थी- श्रम न्यायालय ने यह निर्णय पारित किया कि नियोक्ता वेतन के बकाया भुगतान के लिए भी जिम्मेदार था - वैधता को राज्य द्वारा चुनौती दी गई - आयोजित, आपेक्षित आदेश अस्पष्ट, अधूरा और एकपक्षीय

प्रतीत होता है - श्रम न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया है कि 'कर्मचारी' को उस अवधि के लिए 'बिना वेतन अवकाश' प्रदान किया जिसके लिए उन्हें तब तक वेतन नहीं मिल सकता जब तक कि उसे 'सवेतन अवकाश' में परिवर्तित नहीं कर दिया जाता। (पैरा 8 और 15)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. डब्ल्यू.पी. (एम/एस) संख्या 1129/2012; उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम पवन कुमार एवं अन्य, दिनांक 01.12.2016 को उत्तराखंड उच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत।
2. देस राज एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य; 1988 (2) एससीसी 537
3. बेंगलोर वेस्टर सप्लाई सीवरेज बोर्ड बनाम ए. राजप्पा; ए.आई.आर 1978 एस.सी 548.

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता-राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार मिश्रा को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

दिनांक 26.09.2022 को विपक्षी संख्या 2 पर समन की तामील पर्याप्त मानी गई क्योंकि वह वापस नहीं आई थी।

विपक्षी संख्या 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। इसलिए याचिका का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाता है।

4.इला उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, इलाहाबाद एवं अन्य 1257

इस रिट याचिका के द्वारा राज्य ने विपक्षी संख्या 1 (पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, इलाहाबाद) द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 2 (दिनेश चंद्र राय) के पक्ष में पारित आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा श्रम न्यायालय ने प्रत्यर्थी संख्या 2 के आवेदन को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33 (सी) (2) के तहत मार्च और अप्रैल, 1990 और 1 और 2 मई, 1990 के महीनों के लिए उसके वेतन के भुगतान के लिए अनुमति दी थी।

संक्षेप में, प्रकरण के तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 2 - दिनेश चंद्र राय, अवर अभियंता, सिंचाई विभाग- II, 1, रामप्रिया रोड, इलाहाबाद ने एक आवेदन दिया कि उन्हें 28.03.1998 को अवर अभियंता के रूप में नियुक्त किया गया था। 03.05.1990 को, उन्हें सिंचाई विभाग, (निर्माण विभाग- I) जिला ललितपुर में स्थानांतरित कर दिया गया और उसके बाद उन्हें 06.06.1992 को अधिशासी अभियंता, सिंचाई विभाग- II, इलाहाबाद - प्रत्यर्थी संख्या 2, इलाहाबाद के नियंत्रण में स्थानांतरित कर दिया गया। उन्हें मार्च और अप्रैल, 1990 के महीनों के लिए वेतन नहीं दिया गया है और तारीख 01 और 02 मई, 1990 के लिए, उन्हें फरवरी 1990 के महीने के लिए 2800/- रुपये की राशि का वेतन प्रदान किया गया था।

उनके अनुसार उक्त विभाग को ब्याज सहित 5,788 रुपये का भुगतान करना है। नियोक्ता को 20.05.1998 को नोटिस जारी किया गया था, जो 27.05.1998 को उस पर तामील हुआ और उसके बाद इस संबंध में कई

आवेदन पेश किए गए और अंत में अधीक्षण अभियंता, सिंचाई विभाग- II, इलाहाबाद ने आपत्ति जताई कि वह उचित पक्ष नहीं है। चूंकि उन्होंने इलाहाबाद में कार्यभार संभाला है, इसलिए कोई वेतन बकाया नहीं है और आवेदक 'कर्मचारी' की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है। चूंकि, नियोक्ता ने कोई लिखित बयान दाखिल नहीं किया है, इसलिए उन्हें इसे दाखिल करने से वंचित कर दिया गया। बाद में उन्होंने 16.10.1998 को लिखित बयान दाखिल किया, जिसे स्वीकार नहीं किया गया और कार्यवाही एकतरफा समाप्त कर दी गई। विद्वान ट्रायल न्यायालय का मानना था कि यह एक निर्विवाद तथ्य है कि एक जूनियर इंजीनियर 'कर्मचारी' की परिभाषा के अंतर्गत आता है। ट्रायल न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि नियोक्ता का यह तर्क कि बकाया राशि सिंचाई विभाग 01 ललितपुर से संबंधित है, इसलिए वह उस अवधि के वेतन के भुगतान के लिए जिम्मेदार नहीं है जब आवेदक ललितपुर में सेवारत था, सही कानून नहीं है।

विद्वान श्रम न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि चूंकि कर्मचारी स्थानांतरण पर उसके अधीन आया है, इसलिए नियोक्ता-विपक्षी संख्या 2 भी कर्मचारियों के बकाया वेतन के भुगतान के लिए जिम्मेदार है। विद्वान श्रम न्यायालय ने आवेदन स्वीकार कर लिया और एक महीने के भीतर 5,788 रुपये और 1,000 रुपये की क्षतिपूर्ति राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया। आदेश का पालन न करने की स्थिति में, एक महीने की समाप्ति के बाद कर्मचारी को बारह प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ उक्त राशि का भुगतान करने का भी निर्देश दिया।

इससे व्यथित होकर राज्य ने इस रिट याचिका द्वारा निर्णय और आदेश को चुनौती दी है।

संक्षेप में, रिट याचिका में राज्य ने दलील दी है कि विभाग 'उद्योग' के दायरे में नहीं आता है, इसलिए श्रम न्यायालय को प्रत्यर्थी संख्या 2 के दावे पर फैसला करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है और यह भी कि वह अपने कर्तव्य से अनुपस्थित था। संबंधित अवधि के लिए उसे बिना वेतन के अवकाश दिया गया था। जूनियर इंजीनियर का पद उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे में आता है और यह 'कर्मकार' के दायरे में नहीं आता है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33 (सी) (2) के साथ अधिनियम की धारा 6 और एक्स (2) के तहत कार्यवाही प्रकृति में निष्पादन की कार्यवाही है और किसी भी अदालत के किसी आदेश या पंचाट के बिना, श्रम न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। प्रत्यर्थी संख्या 2 के दावे पर पहले ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया और फैसला किया गया और उसे उसकी पूरी मजदूरी का भुगतान भी किया गया है जिसके वह हकदार था और उसने अपने हस्ताक्षर से वाउचर फॉर्म संख्या 28 के माध्यम से उक्त धनराशि भी प्राप्त कर ली है। प्रत्यर्थी संख्या 2 दिनांक 01 मार्च 1990 एवं 02 मार्च 1990 को अधिशासी अभियंता एवं नियोजन जल संस्थान विभाग, सिविल लाइंस, झांसी के कार्यालय में कार्यरत था तथा उक्त तिथियों को वह अनुपस्थित था तथा सक्षम प्राधिकारी द्वारा 'अवैतनिक अवकाश' का आदेश पारित किया जा चुका है तथा उसका सम्पूर्ण दावा निस्तारित भी हो चुका है, फिर भी इन तथ्यों को छिपाकर प्रत्यर्थी संख्या 2 ने

धारा 33 (सी) एवं (2) के अन्तर्गत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया है। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने प्रार्थना पत्र के कथनों एवं आरोपित आदेश पर भरोसा किया है। याची द्वारा स्थापित प्रकरण पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया तथा प्रत्यर्थी संख्या 1 ने दस्तावेज एवं तथ्यों को गलत ढंग से समझकर एवं गलत ढंग से पढ़कर आरोपित आदेश पारित कर दिया है, अतः रिट याचिका स्वीकार की जाए तथा आरोपित आदेश को निरस्त किया जाए।

बहस के दौरान विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता नोटिस की तामील के बावजूद उपस्थित नहीं हुए, इसलिए याचिकाकर्ता के लिए श्री जितेन्द्र नारायण राय, अतिरिक्त सीएससी को सुना गया और आदेश योग्यता के आधार पर पारित किया गया।

जहां तक औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1957 की परिभाषा के अंतर्गत जूनियर इंजीनियर के पद को 'कर्मकार' के रूप में शामिल करने का प्रश्न है, निम्नलिखित न्यायिक उदाहरणों में: -

- (1) उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम पवन कुमार एवं अन्य डब्ल्यूपी (एम/एस) संख्या 1129/2012 दिनांक 01.12.2016, उत्तराखंड उच्च न्यायालय।
- (2) देस राज एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य 1988 (2) एससीसी 537,
- (3) बेंगलोर वेस्टर सप्लाई सीवरेज बोर्ड बनाम ए. राजप्पा एआईआर 1978 एससी 548।

यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सिंचाई विभाग एक उद्योग है, इसलिए, सिंचाई विभाग के कर्मचारी "कर्मचारी" की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं, इसलिए उपरोक्त उद्धरण के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि

4.इला उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, इलाहाबाद एवं अन्य 1259

एक जूनियर इंजीनियर औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6 और 2 (जेड) के तहत कामगार है।

जहां तक मार्च एवं अप्रैल, 1990 के माह तथा 01 एवं 02 मई, 1990 के वेतन के बकाये का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में याची ने मात्र इतना ही निवेदन किया था कि उसका लिखित कथन श्रम न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया। स्थानान्तरण के पश्चात् कोई वेतन बकाया नहीं है, इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया है। इस तथ्य का भी उल्लेख नहीं किया गया है कि वादी-प्रतिपक्षी संख्या 2 को उक्त अवधि के लिए 'अवैतनिक अवकाश' प्रदान किया गया था, यद्यपि इस रिट याचिका में याची ने अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में 08 मार्च, 1991 के आदेश की प्रति संलग्न की है कि 05 मार्च से 30 अप्रैल, 1990 तक प्रतिपक्षी संख्या 2 अपनी सेवा से अनुपस्थित था तथा उसे अनुपस्थित माना गया था तथा उक्त अवधि के लिए अधिशासी अभियंता द्वारा 'अवैतनिक अवकाश' प्रदान किया गया था। यह तथ्य श्रम न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया तथा इस तथ्य पर श्रम न्यायालय द्वारा भी विचार नहीं किया गया है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने इस रिट याचिका के लिए कागजात (अनुलग्नक संख्या 5) दाखिल किया है, जिसमें खुलासा किया गया है कि मार्च, 1990 से अप्रैल, 1990 की अवधि के लिए विपक्षी संख्या 2 को 1,615.10/- रुपये का भुगतान किया गया था। यह तथ्य भी श्रम न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया गया। इस तथ्य और साक्ष्य पर भी श्रम न्यायालय ने विचार नहीं किया।

उपरोक्त के आधार पर, इस न्यायालय का मानना है कि जब तक "बिना वेतन छुट्टी" की मंजूरी के बारे में आदेश को अर्जित छुट्टी या किसी अन्य छुट्टी में परिवर्तित नहीं किया जाता है, तब तक कर्मचारी को उस अवधि के लिए वेतन नहीं मिल सकता है जिसके लिए उसे "बिना वेतन छुट्टी" दी गई थी। विवादित आदेश अस्पष्ट, अधूरा और एकपक्षीय प्रतीत होता है। श्रम न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया है कि "कर्मचारी" को उस अवधि के लिए "बिना वेतन छुट्टी" दी गई थी जिसके लिए उसे तब तक वेतन नहीं मिल सकता जब तक कि इसे "भुगतान छुट्टी" में परिवर्तित नहीं किया जाता।

करने के लिए जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया है, इसलिए याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

आदेश

यह रिट याचिका स्वीकार की जाती है और श्रम न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा विविध वाद संख्या 24/1997 - दीपक चंद्र राय बनाम अधिशासी अभियंता व अन्य में पारित दिनांक 03.05.2000 के विवादित आदेश को निरस्त किया जाता है।

श्रम न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को उपरोक्त दस्तावेजों के साथ लिखित बयान दर्ज करने की अनुमति दे। याचिकाकर्ता को सुनवाई और दस्तावेजों और सबूतों के प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद, विद्वान श्रम न्यायालय छह महीने की अवधि के भीतर मामले का फैसला करेगा।

(2023) 4 ILRA 934

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.05.2014

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

रिट-सी संख्या 39791/2014

राकेश कुमार गोयल

...याचिकाकर्ता

बनाम

आयुक्त, मुरादाबाद एवं अन्य ... प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री रमेश कुमार शुक्ला
अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री आलोक
तिवारी

क. भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226
-उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 -
धारा 34 - नामांतरण कार्यवाही - प्रकृति - रिट
की पोषणीयता - आयोजित, राजस्व अभिलेखों
में प्रविष्टि केवल राजकोषीय उद्देश्य के लिए
होती है और किसी ऐसे व्यक्ति को स्वामित्व
प्रदान नहीं करती है जिसका नाम अधिकारों के
अभिलेख में दिखाई देता है और संपत्ति का
स्वामित्व केवल एक सक्षम सिविल न्यायालय
द्वारा ही तय किया जा सकता है - इसलिए
एक प्रभावी वैधानिक वैकल्पिक उपाय का
अस्तित्व भी अनुच्छेद 226 के तहत
विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग में रिट
याचिका पर विचार न करने का एक कारण
होगा। (पैरा 9 और 21)

रिट याचिका निरस्त (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. मथुरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;
2012 (4) एडब्ल्यूसी 3825
2. श्री लाल बच्चन बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर
प्रदेश, लखनऊ व अन्य; 2002 (93) आरडी 6
3. नारायण प्रसाद अग्रवाल बनाम एम.पी.
राज्य; (2007) 11 एससीसी 736
4. सूरज भान और अन्य बनाम वित्तीय
आयुक्त एवं अन्य; (2007) 6 एससीसी 186
5. फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन; (2008) 8
एससीसी 12
6. भीमाबाई महादेव काम्बेकर बनाम आर्थर
इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट कंपनी (2019) 3
एससीसी 191
7. बलवंत सिंह बनाम दौलत सिंह; (1997) 7
एससीसी 137
8. समझ बनाम कर्नाटक राज्य; (2009) 5
एससीसी 591
8. महेश कुमार जुनेजा व अन्य बनाम अपर
आयुक्त न्यायिक, मुरादाबाद मंडल व अन्य;
2020 (3) एडीजे 104
9. हरीश चंद्र बनाम भारत संघ और अन्य;
2019 (5) एडीजे 212
10. भारत संघ एवं अन्य बनाम वासवी कॉर्प
हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड और अन्य.;
मनु/एससी/0001/2014

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा
प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री रमेश कुमार
शुक्ला, प्रतिवादी संख्या-1 से 3 के स्थायी
अधिवक्ता श्री के.आर सिंह और प्रतिवादी
संख्या-4 के अधिवक्ता श्री आलोक तिवारी को
सुना।

2. याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या-1, 2 और 3 अर्थात् आयुक्त मुरादाबाद डिवीजन मुरादाबाद, परगनाधिकारी नजीबाबाद जिला बिजनौर और तहसीलदार, नजीबाबाद जिला बिजनौर द्वारा पारित दिनांक 29.03.2014, 22.07.2013 और 25.06.2010 के आदेशों को चुनौती देने की मांग करते हुए प्रस्तुत रिट याचिका को दायर की है। उपरोक्त आदेश से, याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल खारिज/नामांतरण के लिए दायर आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित मामला पंजीकृत बंधक विलेख दिनांक 16.09.1973 और एक गैर-पंजीकृत पारिवारिक निपटान दिनांक 21.09.1986 पर आधारित था। उपरोक्त दस्तावेजों के आधार पर, याचिकाकर्ता ने कहा कि वह राजस्व रिकॉर्ड में अपना नाम बदलने का हकदार है। दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या-4 द्वारा स्थापित मामला प्रतिवादी संख्या-4 के पति श्री वेद प्रकाश गोयल द्वारा निष्पादित पंजीकृत वसीयत दिनांक 18.01.2005 के आधार पर है। याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित दावे को निचली सभी अदालतों ने इस आधार पर खारिज कर दिया था कि 21.09.1986 का पारिवारिक समझौता एक अपंजीकृत दस्तावेज है और यह 18.01.2005 के पंजीकृत वसीयत विलेख पर प्रबल नहीं होगा।

4. प्रतिवादी संख्या-1 से 3 के स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या-4 के अधिवक्ता श्री आलोक तिवारी द्वारा यह तर्क दिया गया है कि सारांश कार्यवाही के खिलाफ

कोई रिट याचिका नहीं है और प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता द्वारा पुनरीक्षण के चरण तक दाखिल खारिज/नामांतरण कार्यवाही का विरोध किया गया था और कोई रिट याचिका पुनरीक्षण प्राधिकरण के आदेश के खिलाफ नहीं है और स्वामित्व/हक्के मिलिकयत की घोषणा के लिए एक नियमित मुकदमा दायर करके एकमात्र राहत का दावा किया जा सकता है। आगे यह तर्क दिया गया है कि चूंकि दाखिल खारिज/नामांतरण कार्यवाही प्रकृति में छोटा है, याचिकाकर्ता के पास यूपी राजस्व संहिता, 2016 की धारा 144 के तहत अपने अधिकार की घोषणा करने के लिए एक घोषणात्मक मुकदमा दायर करने का उपाय है।

5. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 34 के तहत दायर नामांतरण कार्यवाही को पुनरीक्षण के चरण तक लड़ा था। इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय का यह निरंतर दृष्टिकोण रहा है कि नामांतरण कार्यवाही प्रकृति में सारांश है जिसमें भूमि पर स्वामित्व/हक्के मिलिकयत का निर्णय नहीं किया जाता है और कार्यवाही केवल राजकोषीय उद्देश्य के लिए होती है ताकि राज्य को उस व्यक्ति से राजस्व एकत्र करने में सक्षम बनाया जा सके जिसका नाम रिकॉर्ड में है। नामांतरण कार्यवाही उस व्यक्ति को कोई अधिकार या स्वामित्व/हक्के मिलिकयत प्रदान नहीं करती है जिसका नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है।

6. मथुरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2012 (4) ए.डब्ल्यू.सी 3825 में इस

न्यायालय ने इस पहलू से निपटने के दौरान उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 35 के तहत कार्यवाही के संबंध में निम्नानुसार अवधारित किया;

"5. अधिनियम की धारा 33 के तहत निर्धारित नामांतरण, राजस्व प्रविष्टियों का सुधार और वार्षिक रजिस्ट्रों में प्रविष्टियों के रूप में विवादों का निपटारा अधिनियम की धारा 40 और 54 के तहत शुरू या तय किए गए सभी सारांश की कार्यवाही सभी समर्थकालीन कार्यवाही हैं जो अधिकार क्षेत्र के सक्षम न्यायालय द्वारा धारण किए गए पक्षों के अधिकारों के निर्धारण के अधीन हैं।"

6. कानून अच्छी तरह से तय है कि:

(i) नामांतरण कार्यवाहियां संक्षिप्त प्रकृति की होती हैं जिनमें शामिल भूमि पर पक्षकारों के स्वामित्व/हक्के मिल्कियत का निर्णय नहीं किया जाता है;

(ii) नामांतरण आदेश या राजस्व प्रविष्टियां केवल राजकोषीय प्रयोजनों के लिए हैं ताकि राज्य अभिलेखित व्यक्ति से राजस्व एकत्र कर सके;

(iii) वे न तो मिटाते हैं और न ही स्वामित्व/हक्के मिल्कियत बनाते हैं;

(iv) नामांतरण का आदेश किसी भी तरह से विवादित भूमि पर पक्षों के स्वामित्व/हक्के मिल्कियत को प्रभावित नहीं करता है; और (v) ऐसे आदेश या प्रविष्टियां स्वामित्व/हक्के

मिल्कियत के दस्तावेज नहीं हैं और सक्षम न्यायालय के निर्णय के अधीन हैं।

3. यह समान रूप से तय है कि नामांतरण के आदेश पक्षकारों के कब्जे के आधार पर पारित किए जाते हैं और चूंकि नामांतरण कार्यवाहियों में पक्षकारों के किसी भी मूल अधिकार का निर्णय नहीं किया जाता है, इसलिए आमतौर पर एक रिट याचिका नामांतरण कार्यवाही में पारित आदेशों के संबंध में तब तक बनाए रखने योग्य नहीं होती है जब तक कि यह पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना या सक्षम न्यायालय द्वारा पहले से तय किए गए स्वामित्व/हक्के मिल्कियत के विपरीत न पाया जाए। पक्षकार हमेशा सक्षम अदालत द्वारा निर्णय किए गए विवादित भूमि के संबंध में अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र हैं।

7. नामांतरण कार्यवाही से उत्पन्न एक रिट याचिका की विचारणीयता के संबंध में प्रश्न श्री लाल बचन बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, लखनऊ और अन्य 2002 (93) आरडी 6 के मामले में विचार के लिए गिर गया और यह माना गया कि उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका पर इस कारण से विचार नहीं करता है कि नामांतरण कार्यवाही केवल सरसरी तौर पर आधार पर तैयार की जाती है कब्जे और पक्षों को नियमित वाद द्वारा स्वामित्व/हक्के मिल्कियत का निर्णय लेने का अधिकार है। निर्णय में की गई टिप्पणियां नीचे दी गई हैं: -

"11. इस न्यायालय ने लगातार यह दृष्टिकोण अपनाया है जैसा कि ऊपर संदर्भित इस

न्यायालय के निर्णयों से स्पष्ट है कि दाखिल खारिज/नामांतरण कार्यवाही में पारित आदेशों को चुनौती देने वाली रिट याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। मेरे विचार से, नियमित वाद में स्वामित्व/हक्के मिल्कियत का निर्णय लेने के उपाय के अलावा, इस तरह की रिट याचिका पर विचार न करने का एक और कारण है। अधिनियम की धारा 34 के तहत पारित आदेश केवल कब्जे पर आधारित हैं जो पक्षों के स्वामित्व/हक्के मिल्कियत का निर्धारण नहीं करते हैं। यहां तक कि अगर यह न्यायालय रिट याचिका पर विचार करता है और योग्यता के आधार पर रिट याचिका का फैसला करता है, तो दाखिल खारिज/नामांतरण कार्यवाही में पारित आदेश सारांश कार्यवाही में आदेश बने रहेंगे और कार्यवाही में पारित आदेश अंततः पक्षों के स्वामित्व/हक्के मिल्कियत का निर्धारण नहीं करेंगे।

8. इसी तरह का अवलोकन नारायण प्रसाद अग्रवाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2007)11 एस.सी.सी. 736 में किया गया था, जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"19. रिकॉर्ड-ऑफ-राइट स्वामित्व/हक्के मिल्कियत का दस्तावेज नहीं है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के संदर्भ में उसमें की गई प्रविष्टियां हालांकि साक्ष्य के एक प्रासंगिक टुकड़े के रूप में स्वीकार्य हैं और हालांकि इसमें शुद्धता की धारणा भी हो सकती है, लेकिन यह किसी भी संदेह या विवाद से परे है कि इस तरह की धारणा खंडन योग्य है ...

9. यह सिद्धांत कि राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टि केवल राजकोषीय प्रयोजन के लिए है और किसी ऐसे व्यक्ति को स्वत्वाधिकार प्रदान नहीं करती है जिसका नाम संपत्ति के अभिलेख और स्वामित्व/हक्के मिल्कियत में प्रकट होता है, केवल सक्षम दीवानी न्यायालय द्वारा ही निर्णय लिया जा सकता है, सूरजभान और अन्य बनाम वित्तीय आयुक्त एवं अन्य (2007) 6 एस.सी.सी. 186 के निर्णय में दोहराया गया था और यह निम्नानुसार कहा गया था:-

"9...यह अच्छी तरह से तय है कि राजस्व रिकॉर्ड में एक प्रविष्टि किसी ऐसे व्यक्ति को स्वामित्व/हक्के मिल्कियत प्रदान नहीं करती है जिसका नाम रिकॉर्ड-ऑफ-राइट्स में दिखाई देता है। यह स्थापित कानून है कि राजस्व रिकॉर्ड या जमाबंदी में प्रविष्टियों का केवल "राजकोषीय उद्देश्य" होता है यानी भूमि राजस्व का भुगतान, और ऐसी प्रविष्टियों के आधार पर कोई स्वामित्व प्रदान नहीं किया जाता है। जहां तक संपत्ति के मालिकाना हक का सवाल है, इसका फैसला सक्षम दीवानी न्यायालय ही कर सकता है."

10. फकरुद्दीन बनाम ताजुद्दीन (2008) 8 एस.सी.सी. 12 के फैसले का भी संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें यह माना गया था कि राजस्व अधिकारी स्वामित्व/हक्के मिल्कियत के प्रश्नों का फैसला नहीं कर सकते हैं और यह कि दाखिल खारिज/नामांतरण केवल कुछ उद्देश्यों के लिए होता है। इस संबंध में की गई टिप्पणियां निम्नानुसार हैं -

"45. राज्य के राजस्व प्राधिकारियों का राजस्व से सम्बन्ध है। उत्परिवर्तन केवल कुछ उद्देश्यों के लिए होता है। वैधानिक नियमों को सीमित अर्थों में संचालित होने के लिए अवधारित किया जाना चाहिए ... यह सुस्थापित है कि राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टि स्वत्वाधिकार का दस्तावेज नहीं है। राजस्व अधिकारी मालिकाना हक के सवाल पर फैसला नहीं कर सकते।

11. यह प्रस्ताव कि राजस्व रिकॉर्ड में उत्परिवर्तन प्रविष्टियां भूमि पर स्वामित्व/हक्के मिलिकियत नहीं बनाती या समाप्त नहीं करती हैं और न ही ऐसी प्रविष्टियों का स्वामित्व/हक्के मिलिकियत पर कोई अनुमानित मूल्य है, भीमाबाई महादेव कांबेकर बनाम आर्थर इम्पोर्ट एंड एक्सपोर्ट कंपनी और अन्य (2019) 3 एस.सी.सी. 191 के मामले में हाल के फैसले में बलवंत सिंह बनाम दौलत सिंह (1997) 7 एस.सी.सी. 137 और नरसम्मा बनाम कर्नाटक राज्य (2009) 5 के मामले में पहले के फैसलों पर भरोसा करते हुए दोहराया गया है एस.सी.सी. 591. निर्णय में की गई टिप्पणियां इस प्रकार हैं:-

"6. इस न्यायालय ने लगातार माना है कि राजस्व रिकॉर्ड में भूमि का उत्परिवर्तन ऐसी भूमि पर स्वामित्व/हक्के मिलिकियत का निर्माण या उन्मूलन नहीं करता है और न ही स्वामित्व/हक्के मिलिकियत पर इसका कोई अनुमानित मूल्य है। यह केवल उस व्यक्ति को सक्षम बनाता है जिसके पक्ष में उत्परिवर्तन का आदेश दिया जाता है, वह

प्रश्न में भू-राजस्व का भुगतान करता है। (देखें सवर्णी बनाम इंदर कौर, बलवंत सिंह बनाम दौलत सिंह और नरसम्मा बनाम कर्नाटक राज्य)।

12. महेश कुमार जुनेजा और अन्य बनाम अपर आयुक्त न्यायिक, मुरादाबाद डिवीजन और अन्य 2020 (3) एडीजे 104 के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने उसी विचार को दोहराया और निम्नानुसार अवधारित किया;

"16. स्थापित कानूनी स्थिति कि राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां कोई स्वामित्व/हक्के मिलिकियत प्रदान नहीं करती हैं, हरीश चंद्र बनाम भारत संघ और अन्य 13 में इस न्यायालय के हालिया फैसले में विचार और चर्चा की गई है।

17. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह पुनः स्थापित किया जा सकता है कि नामांतरण न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों को रिट अधिकारिता में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वे सारांश कार्यवाही में हैं, और इस तरह एक नियमित वाद के अधीन हैं।

18. नामांतरण कार्यवाहियां कब्जे के आधार पर तैयार की गई सारांश प्रकृति की होने के कारण स्वामित्व/हक्के मिलिकियत के किसी भी प्रश्न का निर्णय नहीं करती हैं और ऐसी कार्यवाहियों में पारित आदेश किसी व्यक्ति के अधिकारों को नियमित वाद में अधिनिर्णय दिलाने में आड़े नहीं आते हैं। इसके

मददेनजर, इस न्यायालय ने लगातार माना है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों के प्रयोग में ऐसी याचिकाओं पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।

13. हरीश चंद्र बनाम भारत संघ और अन्य 2019 (5) में इस न्यायालय की एडीजे 212 डिवीजन बेंच ने भूमि अधिग्रहण कार्यवाही के संबंध में एक मुद्दे से निपटने के दौरान राजस्व रिकॉर्ड से संबंधित मामले पर चर्चा करने का अवसर दिया था और निम्नानुसार अवधारित किया था;

"37. यह न्यायालय यह भी ध्यान में रख सकता है कि यह स्थापित कानून है कि राजस्व रिकॉर्ड स्वामित्व/हक्के मिलिकियत प्रदान नहीं करते हैं और भले ही अधिकारों के राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां मूल्य रखती हैं, जो स्वयं उसी के आधार पर दावा करने वाले व्यक्ति को कोई स्वामित्व/हक्के मिलिकियत प्रदान नहीं करेगी।

38. गुरु अमरजीत सिंह बनाम रतन चंद और अन्य में उच्चतम न्यायालय ने माना कि जमाबंदी (राजस्व रिकॉर्ड) में प्रविष्टि स्वामित्व/हक्के मिलिकियत का प्रमाण नहीं है, और यह निम्नानुसार कहा गया था: -

"2. ... यह स्थापित कानून है कि जमाबंदी में प्रविष्टियां स्वामित्व/हक्के मिलिकियत का प्रमाण नहीं हैं। वे केवल राजस्व के उद्देश्य से दिए गए विवरण हैं। यह पक्षों के लिए है कि वे संपत्ति से संबंध या स्वामित्व/हक्के

मिलिकियत स्थापित करें जब तक कि स्पष्ट प्रवेश न हो ...

14. भारत संघ और अन्य बनाम वासवी सहकारी हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड और अन्य एमएएनयू/एस.सी./0001/2014 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के पहले के निर्णयों पर भरोसा करते हुए राजस्व रिकॉर्ड की प्रविष्टियों से निपटते हुए कहा कि राजस्व रिकॉर्ड स्वामित्व/हक्के मिलिकियत का दस्तावेज नहीं हैं और इसे स्वामित्व/हक्के मिलिकियत की घोषणा के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता है। प्रासंगिक पैरा-संख्या-17 यहां निम्नानुसार दिया गया है:

"17. इस न्यायालय ने कई निर्णयों में माना है कि राजस्व रिकॉर्ड स्वामित्व/हक्के मिलिकियत प्रदान नहीं करता है। बेंगलूर शहर के निगम बनाम एम. पापैया और अन्य (1989) 3 एस.सी.सी. 612 में कहा गया था कि "यह दृढ़ता से स्थापित है कि राजस्व रिकॉर्ड स्वामित्व/हक्के मिलिकियत के दस्तावेज नहीं हैं, और दस्तावेज की व्याख्या का सवाल स्वामित्व/हक्के मिलिकियत का दस्तावेज नहीं है, कानून का सवाल नहीं है। गुरु अमरजीत सिंह बनाम रतन चंद और अन्य (1993) 4 एस.सी.सी. 349 में इस न्यायालय ने माना है कि "जमाबंदी में प्रविष्टियां स्वामित्व/हक्के मिलिकियत का प्रमाण नहीं हैं"। हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम केशव राम और अन्य (1996) 11 एस.सी.सी. 257 में इस न्यायालय ने कहा कि "राजस्व पत्रों में प्रविष्टियां, कल्पना के किसी भी खिंचाव से वादी के पक्ष में स्वामित्व/हक्के

मिल्कियत की घोषणा का आधार नहीं बन सकती हैं।

15. नामांतरण कार्यवाहियों से उत्पन्न आदेशों में हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालयों की अनिच्छा मुख्य रूप से इस कारण से है कि मुद्दा अधिकारों के रिकॉर्ड के सुधार के संबंध में है जो मुख्य रूप से राजस्व उद्देश्यों के लिए बनाए रखा जाता है और उसमें एक प्रविष्टि में केवल कब्जे का संदर्भ होता है और आमतौर पर उस व्यक्ति को प्रदान नहीं करता है जिसके पक्ष में इसे प्रश्नगत संपत्ति का कोई स्वामित्व/हक्के मिल्कियत बनाया गया है।

16. पूर्वोक्त अनुमान है कि नामांतरण के आदेशों के आधार पर की गई राजस्व प्रविष्टियां आमतौर पर उस व्यक्ति को प्रदान नहीं करती हैं जिसके पक्ष में वे किए गए हैं, प्रश्नगत संपत्ति का कोई स्वामित्व/हक्के मिल्कियत, संहिता की धारा 39 के तहत निहित एक्सप्रेस प्रावधान से मजबूत होता है जिसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि राजस्व रिकॉर्ड के नामांतरण से संबंधित प्रावधानों के तहत पारित आदेश एक घोषणात्मक वाद के माध्यम से भूमि पर अपने अधिकारों को स्थापित करने से किसी भी व्यक्ति के खिलाफ रोक के रूप में कार्य नहीं करेंगे।

17. संहिता की धारा 39, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"39. राजस्व अधिकारियों के किसी वाद को प्रतिषिद्ध न करने के कुछ आदेश:- धारा 33

के अधीन राजस्व निरीक्षक द्वारा या धारा 35 की उपधारा (1) के अधीन तहसीलदार द्वारा या धारा 38 की उपधारा (3) के अधीन किसी उपखण्ड अधिकारी द्वारा या धारा 35 की उपधारा (2) या धारा 38 की उपधारा (4) के अधीन किसी आयुक्त द्वारा पारित कोई आदेश किसी व्यक्ति को धारा 144 के अंतर्गत वाद के माध्यम से भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने से प्रतिषिद्ध नहीं करेगा।

18. उपर्युक्त धारा स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि किसी भी व्यक्ति को धारा 144 के तहत घोषणात्मक वाद के माध्यम से, भूमि पर अपने अधिकारों को स्थापित करने से वंचित नहीं किया जाएगा, , इस तथ्य के बावजूद कि एक आदेश (i) धारा 33 के तहत एक राजस्व निरीक्षक (उत्तराधिकार के मामले में उत्परिवर्तन), या (ii) धारा 35 की उप-धारा (1) के तहत एक तहसीलदार (स्थानांतरण या उत्तराधिकार के मामले में उत्परिवर्तन), या (iii) धारा 38 की उप-धारा (3) के तहत एक उप-विभागीय अधिकारी (त्रुटि या चूक का सुधार), या (iv) धारा 38 की उप-धारा (4) के तहत एक आयुक्त (त्रुटि या चूक का सुधार) द्वारा पारित किया गया है।

19. धारा 39 जो स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि राजस्व अधिकारियों द्वारा राजस्व प्रविष्टियों के नामांतरण और सुधार के मामलों में पारित आदेश एक घोषणात्मक वाद दायर करने से नहीं रोकेंगे, जो एक मौलिक प्रावधान है, और उत्तर प्रदेश भू-राजस्व, 1901 (अब निरस्त) की धारा 40-ए के तहत निहित एक समान प्रावधान से मेल खाती है।

20. धारा की भाषा इस बात पर जोर देती है कि यह राजस्व अधिकारियों द्वारा राजस्व प्रविष्टियों के उत्परिवर्तन और त्रुटियों के सुधार या चूक से संबंधित मामलों में पारित सभी आदेशों पर लागू होता है और यह स्पष्ट शब्दों में प्रदान करता है कि ऐसा आदेश किसी भी व्यक्ति को धारा 144 के तहत घोषणात्मक वाद के माध्यम से भूमि पर अपने अधिकार स्थापित करने से नहीं रोकेगा।

21. धारा का उद्देश्य राजस्व प्रविष्टियों के सुधार के संबंध में नामांतरण कार्यवाही में पारित आदेशों के बावजूद स्वामित्व/हक्के मिल्कियत के प्रश्नों पर अपने अधिकारों की घोषणा करने के लिए किसी व्यक्ति को सक्षम करना है, एक घोषणा वाद दायर करके स्वामित्व/हक्के मिल्कियत के प्रश्नों पर घोषणा की मांग करने का उपाय खुला रहता है। इसलिए एक प्रभावोत्पादक वैधानिक वैकल्पिक उपाय का अस्तित्व भी अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधीन क्षेत्राधिकार के प्रयोग में एक रिट याचिका पर विचार नहीं करने का एक कारण होगा।

22. इस प्रकार, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय का निरंतर दृष्टिकोण था कि नामांतरण कार्यवाही प्रकृति में सारांश है और कोई अधिकार या स्वामित्व/हक्के मिल्कियत नहीं बनाया गया है। राजस्व प्रविष्टियां केवल उस व्यक्ति से राजस्व के संग्रह के लिए हैं जिसका नाम रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है। स्वामित्व/हक्के मिल्कियत को केवल घोषणा के लिए दायर एक नियमित मुकदमे में देखा जा सकता है न

कि एक रिट याचिका में जो सारांश कार्यवाही से उत्पन्न होती है।

23. उपरोक्त के मद्देनजर, राजस्व अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है। हालांकि, याचिकाकर्ता विवादित भूमि पर अपने अधिकार का दावा करते हुए घोषणात्मक मुकदमा दायर कर सकता है।

(2023) 4 ILRA 940

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.09.2021

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

रिट-सी संख्या 54850/2009

विश्वतोष नारायण सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अनुभव चंद्रा, श्री बी.के. श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 47-ए - अनुसूची 1-बी, अनुच्छेद 35 (ए) (वी) और 35 (ए) (vi) - पट्टे की अवधि की समाप्ति - नवीकरण - अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 35 (ए) (वी) के प्रभाव के अनुसार स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया गया है - प्रभाव - पट्टा विलेख यह प्रावधान करता है कि पट्टे के नवीकरण के समय, पक्षकार नए सिरे से पट्टा निष्पादित करेंगे, जिसका अर्थ आवश्यक रूप से नया पंजीकरण है - प्रभाव -

गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी पर निर्भरता व्यक्त किया गया - आयोजित, ऐसा पट्टा विलेख भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुच्छेद 35 (ए) (vi) के अंतर्गत सम्मिलित नहीं है। (पैरा 6, 12 और 13)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-1)

उद्धृत वाद सूची:

1. गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य; 2007 (102) आरडी 574
2. रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; 2018(10) एडीजे 137
3. आशीष कुमार बनाम डिप्टी कमिश्नर (स्टाम्प) व अन्य; (2010) 110 आरडी 822
4. मनीष जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2011) 5 ऑल एल 388
5. श्रीमती सुदामा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (मनु/यूपी/2818/2018)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अनुभव चंद्र, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ सिंह को सुना।
2. प्रतिवादी संख्या-3/उपखण्ड अधिकारी, तहसील केराकत, जिला जौनपुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 27.12.2006, 29.9.2007 और प्रतिवादी संख्या-2/उपायुक्त (स्टाम्प), वाराणसी मंडल, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.9.2009 को रद्द करने के लिए वर्तमान याचिका दायर की गई है।

3. प्रतिवादी संख्या-3/उपखण्ड अधिकारी, तहसील केराकत, जिला जौनपुर द्वारा पारित दिनांक 27.12.2006 के आक्षेपित आदेश द्वारा, भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 47-ए के तहत शुरू की गई कार्यवाही में पट्टा विलेख को सदा के लिए मानते हुए, भारतीय स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची 1-बी अनुच्छेद 35 (ए)(vi) के आलोक में स्टाम्प शुल्क की कमी पाई गई। इसके खिलाफ दायर पुनरीक्षण को भी खारिज कर दिया गया था।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया था कि शुरू में प्रतिवादी संख्या-3 द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ 27.12.2006 का आदेश उसे सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना और कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना पारित किया गया था। आगे यह बताया गया कि वास्तव में, पट्टा विलेख 2.6.2006 को समर्पण कर दिया गया था।

5. उसी के खिलाफ दायर बहाली आवेदन को खारिज कर दिया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता द्वारा पुनरीक्षण अधिकारियों के समक्ष दायर किए गए दो संशोधन और दोनों को प्रतिवादी संख्या-2/उपायुक्त (स्टाम्प), वाराणसी डिवीजन, वाराणसी द्वारा खारिज कर दिया गया।

6. यह बिन्दु रखने के लिए कई तर्क दिए गए हैं कि संबंधित अधिकारियों द्वारा इस मुद्दे पर तथ्यों के साथ-साथ कानून का मूल्यांकन नहीं किया गया है। दिनांक 20.4.2005 के पट्टा विलेख के विभिन्न खंडों पर ध्यान

आकर्षित करके, यह प्रस्तुत किया गया था कि एक पट्टा विलेख केवल 30 साल की अवधि के लिए उसी के नवीकरण के खंड के साथ निष्पादित किया गया था, इसलिए, स्टाम्प शुल्क भारतीय स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची 1-बी अनुच्छेद 35 (ए)(वी) के तहत लगाया जा सकता था और उप-खंड (vi) के तहत नहीं और इसलिए आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जा सकता है। उन्होंने विशेष रूप से पट्टा विलेख के क्लॉज (सी)(iv), (v) और क्लॉज 3(बी) की ओर ध्यान आकर्षित किया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि पट्टा विलेख केवल 30 साल की अवधि के लिए थी और यह विशेष रूप से स्पष्ट किया गया था कि इस तरह के नवीनीकरण के समय, पक्ष नए पट्टा विलेख को निष्पादित करेंगे।

7. इसलिए, प्रस्तुत करना यह है कि स्टाम्प शुल्क अनुच्छेद 35 (ए)(वी) के तहत लगाया जा सकता था, न कि अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 35 (ए)(vi) के तहत। उन्होंने गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2007 (102) आरडी 574 में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित इस न्यायालय के फैसले और रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2018(10) एडीजे 137 में पारित इस न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया है।

8. इसके विपरीत, श्री सिद्धार्थ सिंह, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने पट्टा विलेख पर ध्यान आकर्षित करते हुए प्रस्तुत किया कि पट्टा विलेख में प्रावधान है कि पट्टाकर्ता 30 वर्ष की अवधि की समाप्ति से

पहले पट्टे को समाप्त नहीं करेगा। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया था कि पट्टा विलेख में आगे प्रावधान किया गया है कि पट्टेदार इस बात से सहमत है कि 30 वर्षों की उक्त अवधि की समाप्ति पर यह पट्टा स्वचालित रूप से और पक्षों के किसी भी अन्य कार्य के बिना आगे इसी अवधि के लिए नवीनीकृत हो जाएगा। इसलिए, सबमिशन यह है कि पट्टे को सदा के लिए पट्टे पर माना जाना चाहिए और इसलिए, भारतीय स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 35 (ए)(vi) द्वारा कवर किया जाएगा। इसलिए, प्रस्तुत करना यह है कि आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं करते हैं और याचिका योग्यता से रहित है और खारिज किए जाने योग्य है।

9. मैंने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है। याचिका के निपटारे के लिए, पट्टा विलेख के खंड (सी) और 3(बी) पर ध्यान देना उचित होगा, जो यहां उद्धृत हैं:

ग) पट्टाकर्ता ने पट्टेदार को निम्नलिखित अभ्यावेदन दिए हैं

(i) पट्टाकर्ता के पास पट्टेदार को यह पट्टा प्रदान करने की पूर्ण शक्ति और पूर्ण प्राधिकार है।

(ii) हस्तांतरित परिसर सभी ऋणधारों और प्रभारों से मुक्त हैं और पट्टाकर्ता के पास इसके लिए वैध और विपणन योग्य झुकाव नहीं है

(iii) हस्तांतरित परिसर का उपयोग गैर-कृषि प्रयोजन के लिए किया जा सकता है तथा पट्टाकर्ता ने आवश्यक गैर कृषि अनुमति प्राप्त कर ली है तथा हस्तांतरित परिसर को वाणिज्यिक रूप से उपयोग योग्य बना दिया गया है।

iv) पट्टेदार एस्सार ऑयल लिमिटेड (ईओएल) के पक्ष में उक्त परिसर को उपपट्टे पर देने के लिए उत्तरदायी होगा, जो कंपनी अधिनियम 1956 के प्रावधानों के तहत निगमित कंपनी है और जिसका पंजीकृत कार्यालय खंभालिया पीओ, बॉक्स संख्या-24, जिला खंभालिया पीओ में है। जामनगर गुजरात 361305 और उर्वशी परिसर में ब्रनाहक कार्यालय प्रथम तल सिगरा, वाराणसी उक्त व्यवसाय के लिए 30 वर्ष की अवधि।

(v) पट्टाकर्ता 30 वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति से पहले पट्टे को समाप्त नहीं करेगा।

"3. पट्टाकर्ता एतद्वारा पट्टेदार के साथ निम्नानुसार वाचा करता है:क)

(ख) पट्टाकर्ता इस बात से सहमत है कि 30 वर्षों की उक्त अवधि की समाप्ति पर यह पट्टा स्वतः और पक्षकारों के किसी अन्य कार्य के बिना आगे इसी अवधि के लिए नवीकृत हो जाएगा, **जब तक** कि कोई भी पक्षकार अंतिम उल्लिखित अवधि की समाप्ति से पहले दूसरे पक्ष को पट्टे का नवीकरण न करने के अपने इरादे के लिखित रूप में तीन कैलेंडर माह की पूर्व सूचना न दे दे। नवीनीकृत पट्टा मासिक किराए पर होगा जैसा कि नवीकरण के लिए

प्रस्तुत अनुबंध सहित यहां निहित समान प्रसंविदाओं, शर्तों और समझौते के अधीन पक्षों के बीच पारस्परिक रूप से सहमत हो सकता है। यह स्पष्ट किया जा रहा है कि इस तरह के नवीनीकरण के समय पार्टियां नए पट्टा विलेख निष्पादित करेंगी। (महत्त्व सन्निविष्ट)

10. पूर्वोक्त खंड के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यद्यपि पट्टा विलेख के नवीकरण के लिए एक प्रावधान है, हालांकि, यह भी प्रदान किया गया है कि पट्टे को नवीनीकृत नहीं करने के इरादे के लिए लिखित रूप में तीन कैलेंडर महीने की पिछली सूचना दी जा सकती है और यह आगे स्पष्ट किया गया है कि इस तरह के नवीकरण के समय, पार्टी नए पट्टे का निष्पादन करेगी।

11. *गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर चर्चा करने के बाद, यह माना गया है कि पट्टे के नवीनीकरण का अर्थ है नए पट्टे का अनुदान, जिसके लिए नए पंजीकरण की आवश्यकता है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैरा-यहां उद्धृत किया गया है:*

"11. पट्टे का नवीनीकरण और कुछ नहीं बल्कि एक नए पट्टे का अनुदान है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम दुर्गा चंद कौशिश, ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 2609 के मामले में निर्णय दिया है कि ऐसे मुद्दे पर विचार करते समय पट्टे में शामिल निबंधन एवं शर्तों की समय रूप से जांच की जानी चाहिए और

उसमें शामिल प्रत्येक अवधि को प्रभाव दिया जाना चाहिए। न्यायालय ने कहा कि इसे केवल इसलिए नवीनीकरण कहा जाता है क्योंकि यह एक अवधि के पट्टे के अस्तित्व को दर्शाता है जो आम तौर पर अधिकार के रूप में नवीकरण के लिए प्रदान करता है। अन्य सभी मामलों में यह वास्तव में एक नया पट्टा है। नवीकरण का उपयोग केवल सरकार को पिछले परमिट धारकों को वरीयता देने में सक्षम बनाने के लिए किया जाता है जिन्हें नए आवेदकों से अलग स्तर पर माना जाना है।

12. गजराज सिंह और अन्य बनाम राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण और अन्य, ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 412 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने समझाया कि नवीकरण एक नया अनुदान है, हालांकि यह कानून के मौजूदा उपयुक्त प्रावधानों के अनुसार दिए गए पिछले पट्टे या लाइसेंस को जीवन देता है और हालांकि यह निहित या अर्जित अधिकार नहीं है, नवीकरण के लिए एक आवेदन को पूर्व शर्तों के अनुपालन के बाद संचालन में कानून के अनुसार निपटाया जाना है। अर्जित या अर्जित अधिकार और अधिकार प्राप्त करने के लिए विशेषाधिकार, आशा और अपेक्षाओं के बीच एक अंतर है। हालांकि, नवीकरण के लिए आवेदन करने और एक अनुकूल आदेश प्राप्त करने के अधिकार को अर्जित अधिकार नहीं माना जाएगा, जब तक कि कुछ सकारात्मक कार्य नहीं किए जाते हैं।

13. प्रवेश चंद्र दलुल और एक अन्य बनाम विश्वनाथ बनर्जी और अन्य, ए.आई.आर. 1989 एस.सी. 1834 में, कलकत्ता थिका

टेनेंसी एक्ट, 1949 के प्रावधानों के तहत एक मामले से निपटने वाले माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पट्टे के विस्तार और नवीकरण के बीच अंतर को समझाया, यह देखते हुए कि विस्तार का अर्थ केवल पट्टे को लम्बा खींचना है जहां नवीकरण का अर्थ है एक नया पट्टा।

14. इसी तरह की टिप्पणियां कि नवीकरण और कुछ नहीं बल्कि पक्षों के बीच एक नया पट्टा है, जो न्यायालयों द्वारा किया गया है जैसा कि दशराथी कुमार बनाम शरत चंद्र घोष और अन्य, ए.आई.आर. 1934 कैल 135; महादेब राम कहार बनाम टिकोरी रॉय, ए.आई.आर. 1954 कैल 539, और छोटे लाल बनाम शिव शंकर, ए.आई.आर. 1951 इला. 478 में निर्णयों से स्पष्ट है।

15. संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 116 के प्रावधानों में विधायिका द्वारा 'नवीनीकृत' शब्द का प्रयोग किया गया है और न्यायालयों द्वारा इसकी व्याख्या बार-बार नए पट्टे के अनुदान के रूप में की गई थी।

16. काई खुशरो बेजोंजी कपाडिया बनाम बाल जर्बल हिरजीभोई वार्डन, ए.आई.आर. 1949 एफसी 129 में, संघीय न्यायालय ने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 16 के प्रावधानों पर विचार किया और 'नवीनीकृत' का अर्थ समझाया, यह देखते हुए कि यह पट्टेदार और पट्टेदार के द्विपक्षीय अधिनियम द्वारा अस्तित्व में खींचे गए एक नए पट्टे के अलावा कुछ भी नहीं है।

17. नवीकरण को विभिन्न शब्दकोशों में अर्थ दिया गया है कि फिर से शुरू करना, दोहराना,

फिर से बनाना, नए के लिए स्थानापन्न करना, फिर से प्राप्त करना, पुनर्स्थापित करना, फिर से स्थापित करना, फिर से स्थापित करना, उपयोग में वापस लाना या अस्तित्व में, फिर से लेना या फिर से शुरू करना, उसी तरह की कुछ नई या ताजा चीज या एक नई आपूर्ति द्वारा प्रतिस्थापित करना। इस प्रकार, पट्टे का नवीनीकरण एक नई अवधि के लिए पट्टे के अनुदान के अलावा और कुछ नहीं है।

18. आर.एम मेहता बनाम एच.पी.एफ.एम कंपनी लिमिटेड, ए.आई.आर. 1976 एमएडी 194 में, मद्रास उच्च न्यायालय ने इसी तरह के मुद्दे पर विचार किया और बैलेंटाइन लॉ डिक्शनरी एड में दिए गए "पट्टे के नवीनीकरण" के शब्दकोश अर्थ पर निर्भरता रखी। जिसमें इसे निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:

"एक पट्टे में एक अतिरिक्त अवधि के लिए इसे नवीनीकृत करने और इसे विस्तारित करने के लिए एक शर्त के बीच एक अंतर है। उस शर्त में, नवीनीकरण के लिए एक नया पट्टा बनाने की आवश्यकता होती है, जबकि विस्तार करने की शर्त नहीं होती है।

19. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, अपरिहार्य निष्कर्ष जो इस प्रकार है कि पट्टे के नवीकरण का अर्थ है एक नया पट्टा प्रदान करना। (महत्व सन्निविष्ट)

12. वर्तमान याचिका में, विचाराधीन पट्टा विलेख में, यह विशेष रूप से प्रदान किया गया

है कि पट्टे के नवीकरण के समय, पक्षकार नए पट्टे को निष्पादित करेंगे, जिसका अनिवार्य रूप से नया पंजीकरण है।

13. गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी (उपरोक्त) में, यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि इस तरह का पट्टा विलेख भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुच्छेद 35 (ए)(vi) के तहत आच्छादित नहीं किया गया है। रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड (उपरोक्त) के मामले में गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी (उपरोक्त) में निर्णय पर निर्भरता रखना प्रस्तुत मामले में शामिल समान प्रश्न पर विचार किया गया और आक्षेपित आदेशों को रद्द कर दिया गया। रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड (उपरोक्त) के प्रासंगिक पैरा को यहां उद्धृत किया गया है:

"6. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, मेरा विचार है कि जब पट्टा विलेख में यह प्रावधान किया गया है कि यह केवल 20 वर्ष की अवधि के लिए था और उसके बाद इसे बढ़ाया जा सकता है, तो इसका केवल यह अर्थ होगा कि पट्टा 20 वर्ष की अवधि के लिए था और इसे 20 वर्ष की अवधि के बाद नवीनीकृत किया जा सकता है। बीस वर्षों के बाद दोनों पक्षों में से किसी के पास समझौते से बाहर निकलने का विकल्प था। उस स्थिति में कोई विस्तार नहीं होगा। हालांकि, अगर कोई विस्तार हुआ तो इसका मतलब होगा कि एक नए पंजीकरण के बाद एक नया समझौता। गोपाल स्वरूप चतुर्वेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2007 (102) आरडी 574 में भी यही कहा गया है।

(महत्व सन्निविष्ट)

14. (I)(2010) 110 आरडी 822, आशीष कुमार बनाम उपायुक्त (स्टाम्प) और अन्य, (ii)(2011) 5 ऑल एलजे 388, मनीष जैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, और (iii)(मनु/यूपी/2818/2018), श्रीमती सुदामा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में भी यही विचार लिया गया है।

15. पूर्वोक्त के मददेनजर, आक्षेपित आदेश कानून की नजर में टिकाऊ/पुख्ता नहीं हैं। यह किसी का मामला नहीं है कि भारतीय स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 35 (ए)(वी) के अनुसार स्टाम्प शुल्क का भुगतान नहीं किया गया है।

16. इस मामले के मददेनजर, प्रतिवादी संख्या-3/उपखंड अधिकारी, तहसील केराकत, जिला जौनपुर द्वारा पारित दिनांक 27.12.2006, 29.9.2007 के आक्षेपित आदेश और प्रतिवादी संख्या-2/उपायुक्त (स्टाम्प), वाराणसी मंडल, वाराणसी द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.9.2009 को रद्द किया जाता है।

17. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

18. इस न्यायालय के दिनांक 23.10.2009 के आदेश के अनुसरण में जमा की गई कोई भी राशि याचिकाकर्ता को जमा की तारीख से 9% प्रति वर्ष की ब्याज के साथ इस आदेश की स्व-सत्यापित प्रति के उत्पादन की तारीख से 2 महीने की अवधि के भीतर वापस कर दी जाएगी, जिसे इलाहाबाद उच्च न्यायालय की वेबसाइट से सत्यापित किया जा सकता है।

(2023) 4 ILRA 945

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I,

आपराधिक अपील संख्या 638/1996

अखिलेश शुक्ला एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री ए.के. सिंह, श्री शशि

प्रकाश राय, श्री हिमांशु मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 147, 148, 323, 324 और 307 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 360 - अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 4 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - दिनांक 25.05.1985 को, वादी अपने दरवाजे पर स्नान कर रहा था - आरोपी ने वादी को गालियां दीं, सह-अभियुक्तों को उसे मारने के लिए उकसाया - यह सुनकर, वाद अपने बरामदे की ओर भागा हत्या करने के उद्देश्य से लाठी, फरसा और बंदूक से लैस आरोपी उसके बरामदे में घुस आया - उसे आरोपियों ने घसीटा और बुरी तरह से पीटा - वादी को लाठी और फरसा के कारण चोटें आईं - आरोप तय किए गए- अभियोजन पक्ष ने पी. डब्लू. 1, पी. डब्लू. 2 को तथ्य के गवाह के रूप में परीक्षित किया - पी. डब्लू. 3, पी. डब्लू. 4 को औपचारिक गवाह के रूप में परीक्षित किया गया- आयोजित, पी. डब्लू. 1, पी. डब्लू. 2 के साक्ष्य के अवलोकन से यह प्राप्त होता है कि

उनके साक्ष्य पुष्ट और विश्वसनीय हैं - दोनों के बीच लंबे समय से दुश्मनी चल रही है और मुकदमा भी चल रहा है - सामान्यतः स्वतंत्र गवाह किसी भी पक्ष का समर्थन करने नहीं आ सकता, यदि वह एक पक्ष का समर्थन करता है, तो दूसरा पक्ष उसका विरोधी हो जाएगा - पी.डब्लू.1, पी.डब्लू.2 के साक्ष्य की पुष्टि दस्तावेजी साक्ष्य से होती है - पी.डब्लू.1, पी.डब्लू.2 के साक्ष्य पर विचार करने पर, उनके साक्ष्य में कथित विरोधाभास मामूली और स्वाभाविक है - इससे अभियोजन पक्ष का पूरा मामला प्रभावित नहीं होता है - अभियोजन पक्ष ने सभी उचित संदेहों से परे उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप साबित कर दिया है - दोषी ठहराए जाने के बाद, विचारणीय न्यायालय ने उन्हें जेल भेजने की बजाय, उन्हें परिवीक्षा पर रिहा कर दिया है - आपेक्षित आदेश में कोई अवैधता नहीं है, दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है। (पैरा 2, 7, 9, 10, 30, 31, 37, 38, 39, 46)

अपील निरस्त की जाती है। (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. सुरेश सीताराम सुर्वे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2003 एससी 344
2. बालेश्वर महतो बनाम बिहार राज्य, AIR 2017 SC 827
3. कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य, 1996 सी.एल.जे. 889
4. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम पुनाती रामुलु, एआईआर 1993 एससी 2644
5. लीला राम (मृत) द्वारा (दुली चंद्र) बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 2000 एससी (सीआर) 222

6. कृष्णा मोची एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, 2002 एससीसी (सीआरआई) 1220
7. सुभाष चंद्र एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 मुकदमा (एल्ड) 1343
8. महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह, कुलदीप सिंह आनंद और अन्य (2004) 7 एससीसी 659
9. जगत पाल सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2000 एससी 3622

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-प्रथम, द्वारा प्रदत्त)

अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री शशि प्रकाश राय और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

2. यह आपराधिक अपील मुकदमा अपराध संख्या 38/1985 अन्तर्गत धारा 147, 148, 323, 324, 307 भा0दं0सं0, थाना- उसका बाजार, जिला- सिद्धार्थनगर से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 135/1991, राज्य बनाम राम आशीष व अन्य में सत्र न्यायाधीश, सिद्धार्थनगर द्वारा पारित दिनांक 30.03.1996 के निर्णय व आदेश के विरुद्ध संस्थित की गई है।

3. विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय एवं आदेश द्वारा अभियुक्तगण राम आशीष, राम किशोर, अखिलेश, अरविंद, रविन्द्र, सत्यदेव और गिरजेश को धारा 147, 148, 323, 324 सपठित धारा 149 भा0दं0सं0 के तहत को दोषी ठहराया और समाज में अच्छा आचरण और शांति बनाए रखने की शर्त पर 5,000 रुपये के निजी बंधपत्र और इतनी ही राशि की दो

जमानतें प्रस्तुत करने पर दो साल के लिए परिवीक्षा पर रिहा कर दिया गया।

4. ट्रायल कोर्ट ने सभी आरोपियों को धारा 307 भा0दं0सं0 के तहत आरोप से बरी कर दिया। धारा 307 भा0दं0सं0 के तहत बरी किए जाने के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की गई है क्योंकि बरी किए जाने का आदेश अंतिम हो गया है।

5. अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता संख्या 6, सत्यदेव और अपीलकर्ता संख्या 7, राम किशोर की मृत्यु हो गई और इन अपीलकर्तागण के विरुद्ध आपराधिक अपील दिनांक 18.08.2018 के आदेश द्वारा समाप्त कर दी गई।

6. अपील के आधार पर यह प्रस्तुत किया गया है कि दोषसिद्धि रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य के विरुद्ध है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दोषसिद्धि गलत है और सजा बहुत कठोर है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता, रविन्द्र कुमार शुक्ला एक सरकारी कर्मचारी है और गोंडा में पुलिस कांस्टेबल के रूप में तैनात है। अपीलकर्ता, अरविंद दिल्ली में सेवा में है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता, राम आशीष राम मनोहर लोहिया विश्वविद्यालय, फैजाबाद, अब अयोध्या से एलएलबी द्वितीय वर्ष की पढ़ाई कर रहा है।

7. अभियोजन का पक्ष संक्षेप में यह है कि सूचनाकर्ता गोविन्द ग्राम मेहनियना बुजुर्ग, थाना उसका बाजार, जिला सिद्धार्थनगर का निवासी है। अभियुक्तगण भी उसी गांव के

निवासी हैं। सूचनाकर्ता एवं सहअभियुक्त सत्यदेव के मध्य मुकदमेबाजी के कारण रंजित थी। सूचनाकर्ता गोविंद कमीशन एजेंट है तथा अक्सर अपने गांव से बाहर रहता है। सूचनाकर्ता के भतीजे अरुण कुमार का तिलक समारोह दिनांक 29.05.1985 को होना था। अतः सूचनाकर्ता उसमें सम्मिलित होने दिनांक 25.05.1985 को अपने गांव गया हुआ था। दिनांक 25.05.1985 को सायं 7.30 बजे सूचनाकर्ता अपने दरवाजे पर स्नान कर रहा था। अभियुक्त राम आशीष ने सूचनाकर्ता को गाली देते हुए सहअभियुक्तों को सूचनाकर्ता को जान से मारने के लिए उकसाया। धमकी सुनकर सूचनाकर्ता अपने बरामदे में भाग गया। इस पर अभियुक्तगण राम आशीष, अखिलेश, गिरजेश, अरविंद, रविन्द्र सभी पुत्रगण सत्यदेव ने सूचनाकर्ता को घेर लिया। राम किशोर लाठी, फरसा और बंदूक से लैस होकर वादी की हत्या करने के उद्देश्य से उसके बरामदे में घुस आया। उसे घसीटकर बाहर लाया गया और आरोपियों ने बुरी तरह पीटा। आरोपी राम आशीष ने फरसा से और बाकी आरोपियों ने लाठी से हमला किया। वादी ने शोर मचाया जिस पर प्रत्यक्षदर्शी हरिहर, शिव राज, परसादी और अन्य ग्रामीण वहां पहुंचे और घटना को देखा और वादी को बचाया। लाठी और फरसा से वादी घायल हो गया।

8. सूचनाकर्ता की लिखित रिपोर्ट के आधार पर कांस्टेबल मोहरिंर राम कमल मणि त्रिपाठी ने दिनांक 25.05.1985 को 20.05 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की। उनके द्वारा चिक एफ.आई.आर. (प्रदर्श क2) के रूप में तैयार की

गई। उन्होंने जी.डी. में 25.05.1985 को 20.05 बजे आपराधिक मामला दर्ज होने की प्रविष्टि जी.डी. संख्या 36 के रूप में की। जी.डी. की प्रमाणित कार्बन प्रति (प्रदर्श क4) है। जांच अधिकारी, एसआई श्याम किशोर मिश्रा द्वारा की गई जिन्होंने घटनास्थल का दौरा किया और घटनास्थल से एकत्र सादे मिट्टी और खून से सने मिट्टी का फर्द तैयार किया जिसे दो अलग-अलग कंटेनरों में रखा गया था जिन्हें कपड़े से लपेटा गया था और सील कर दिया गया था। उपरोक्त मिट्टी का रिकवरी मेमो (प्रदर्श क5) है। सादा मिट्टी (सामग्री प्रदर्श1) है और खून से सना मिट्टी (सामग्री प्रदर्श2) है। जांच अधिकारी ने गवाहों के बयान दर्ज किए और जांच के बाद आरोपियों अखिलेश, अरविंद, रविंद्र, राम आशीष, गिरजेश सभी पुत्र सत्यदेव और सत्यदेव तथा राम किशोर पुत्र राम चंद्र शुक्ला के खिलाफ धारा 147, 148, 149, 323, 324, 307 भा0दं0सं0 के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क6) प्रस्तुत किया।

9. दिनांक 04.12.1992 को न्यायालय ने अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 147, 148, 323, 149, 324, 307 भा0दं0सं0 के तहत आरोप तय किया। अभियुक्तों ने आरोप से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

10. अभियोजन पक्ष ने आरोप सिद्ध करने के लिए सूचनाकर्ता पीडब्लू 1 गोविंद प्रसाद और पीडब्लू 2 हरिहर से तथ्य के गवाह के रूप में पूछताछ की। साथ ही पीडब्लू 3 डॉ. अशोक कुमार और जांच अधिकारी पीडब्लू 4 एसआई

श्याम किशोर मिश्रा से औपचारिक गवाह के रूप में पूछताछ की।

11. दिनांक 21.01.1995 को न्यायालय ने धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अभियुक्तगण के बयान दर्ज किये। सभी अभियुक्तगण ने कहा कि रंजिश के कारण सूचनाकर्ता द्वारा झूठा मामला दर्ज कराया गया है। उन्होंने कहा कि गवाह झूठी गवाही दे रहे हैं। अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किये गये दस्तावेजी एवं भौतिक साक्ष्यों के बारे में अभियुक्तगण ने अनभिज्ञता व्यक्त की। अभियुक्त राम किशोर ने कहा कि घटना दिनांक को वह अपने गांव से बाहर था तथा अपनी बीमार बहन के घर गया था। अभियुक्त राम आशीष ने कहा कि वह सह-अभियुक्त रविन्द्र के साथ अपने साले की शादी में शामिल होने गया था तथा गांव में मौजूद नहीं था। अभियुक्त अरविन्द्र ने कहा कि घटना दिनांक को वह दिल्ली में था। अभियुक्त अखिलेश ने कहा कि वह अपने गांव ठकुरापुर गया था। अभियुक्त सत्यदेव ने कहा कि सूचनाकर्ता गोविंद की गाय उसके बरामदे में रखे अनाज खा रही थी। उसने उसकी गाय को भगा दिया। इसके बाद गोविंद अन्य लोगों के साथ उसके घर आया तथा उसके साथ तथा उसके पुत्र गिरजेश के साथ मारपीट की। वह थाने गया लेकिन दारोगा ने उसे वहीं बैठाए रखा और 26.05.1985 को उसकी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर ली। थाने से भेजे गए कांस्टेबल के माध्यम से उसकी मेडिकल जांच कराई गई।

12. अभियुक्तों ने अपने बचाव में डीडब्लू 1 प्रभुनाथ पाण्डेय और डीडब्लू 2 हेमंत कुमार का

परीक्षण किया। डीडब्लू 1 प्रभुनाथ पाण्डेय ने कहा है कि अभियुक्त राम आशीष और उसका छोटा भाई रविन्द्र निमंत्रण पर गांव- शीतलपुर , थाना- मांझी, जिला- छपरा गए थे । वे 23.05.1985 से 26.05.1985 तक विवाह समारोह में शामिल हुए। उन्होंने विवाह कार्ड को (प्रदर्शख1) के रूप में प्रमाणित किया। डीडब्लू 2 हेमंत कुमार ने कहा कि अभियुक्त अखिलेश 24.05.1985 से 26.05.1985 तक गांव- महुआ, थाना- नौचंदवा , जिला- महाराजगंज में मौजूद था और उसने अपना प्रमाण पत्र (प्रदर्शख2) प्रमाणित किया। वहां विक्रम शुक्ला नामक व्यक्ति की बरही थी । वह समारोह में शामिल होने गया था।

13. बचाव में, अभियुक्तों ने आरोप-पत्र, साइट प्लान, प्रथम सूचना रिपोर्ट, चोट रिपोर्ट और एसओ श्याम किशोर और डॉ. अशोक कुमार के बयानों की प्रति भी दाखिल की है, जो उनके द्वारा अभियुक्तों के खिलाफ दर्ज आपराधिक मामले से संबंधित हैं। ये दस्तावेज हैं (प्रदर्श ख1 से ख5), जांच अधिकारी (प्रदर्श ख6) और डॉ. अशोक कुमार (प्रदर्श ख7) के बयान और एफआईआर की कार्बन कॉपी (प्रदर्श ख8)।

14. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अवर न्यायालय के सम्पूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया गया।

15. सूचनाकर्ता और घायल पीडब्लू 1 गोविंद प्रसाद ने बयान दिया है कि घटना दिनांक 25.05.1985 को शाम 7.30 बजे वह अपने बरामदे में नहा रहा था । राम आशीष ने सभी आरोपियों को उसे जान से मारने के लिए

उकसाया। यह सुनते ही आरोपी अखिलेश, अरविंद, रविंद्र, सत्यदेव , गिरजेश और राम किशोर उसके बरामदे में पहुंच गए। उन्होंने उसे बाहर खींच लिया और जान से मारने की नीयत से फरसा , लात-घूंसाँ और लाठी- डंडे से पीटना शुरू कर दिया। उसे लाठी और फरसा से चोटें आईं। उसने प्राथमिकी दर्ज कराई और उसका पीएचसी- उसका बाजार में डॉ. अशोक कुमार द्वारा चिकित्सकीय परीक्षण किया गया।

16. पी.डब्ल्यू.2 हरिहर ने अपने साक्ष्य में कहा कि वह सूचनाकर्ता गोविंद का भाई है। उसके शोर मचाने पर वह मौके पर पहुंचा तो देखा कि सभी अभियुक्तगण अखिलेश, अरविंद, रविंद्र, सत्यदेव, गिरजेश, राम आशीष और राम किशोर उसके भाई को लात-घूंसाँ, फरसा, लाठी, डंडे से पीट रहे थे, जिससे वह घायल हो गया।

17. पीडब्लू 1 गोविंद और पीडब्लू 2 हरिहर ने आरोपियों के खिलाफ लगाए गए आरोप का समर्थन किया है। उन्होंने घटना की तारीख, समय और स्थान, हमले का तरीका, घटना की शुरुआत का तरीका, हमले और मारपीट में आरोपियों की भागीदारी , उनके द्वारा इस्तेमाल किए गए हथियार, सूचनाकर्ता गोविंद को लगी चोट और घटना के बाद, थाना उस्का बाजार में एफआईआर दर्ज करने और डॉ. अशोक कुमार द्वारा पीएचसी, उस्का बाजार में सूचनाकर्ता गोविंद की मेडिकल जांच के बारे में गवाही दी है।

18. पी.डब्ल्यू.3 डॉ. अशोक कुमार ने सूचनाकर्ता पी.डब्ल्यू.1 गोविंद प्रसाद की चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क1) को प्रमाणित किया है।

उन्होंने कहा है कि उन्होंने सूचनाकर्ता गोविंद की 25.05.1985 को रात्रि 8.30 बजे जांच की, जिसमें उन्होंने घायल गोविंद प्रसाद के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई : -

- (i) दाहिने कान की जड़ से 10 सेमी दूर सिर के दाहिने तरफ 5.5 सेमी x 0.5 सेमी x खोपड़ी गहरा घाव, घाव से खून बह रहा है।
- (ii) सिर के बायीं ओर बाएं कान की जड़ से 9 सेमी दूर 6 सेमी x 0.5 सेमी x खोपड़ी की गहराई का घाव।
- (iii) सिर के बायीं ओर 5.5 सेमी x 0.5 सेमी x बॉन्ड-गहराई का घाव, जो ऊपरी आँख की पलकों से 4 सेमी दूर और ऊपर हो।
- (iv) पीठ के बायीं ओर ऊपरी भाग से निचले भाग की ओर ऊर्ध्वधर भाग में 21 सेमी x 1.5 सेमी माप का लालिमायुक्त घाव तथा पीठ के दाहिनी ओर लालिमायुक्त घाव।
- (v) पीठ के ऊपरी दाहिनी ओर 16 सेमी x 1.5 सेमी माप का घिसा हुआ घाव, लाल रंग का।
- (vi) चोट संख्या 5 से 3 सेमी दूर पीठ के दाहिने हिस्से पर 12 सेमी x 2 सेमी माप का चोट का लाल रंग का निशान।
- (vii) पीठ के निचले हिस्से पर 17 सेमी x 2 सेमी माप का घिसा हुआ लाल रंग का घाव।
- (viii) पीठ के निचले हिस्से पर 10 सेमी x 1 सेमी माप का चोट।
- (ix) पीठ के निचले हिस्से पर 12 सेमी x 2 सेमी माप का चोट का निशान।

(x) पीठ के निचले हिस्से पर 10 सेमी x 1 सेमी माप का चोट

(xi) बांह के बाएं तरफ के ऊपरी हिस्से पर 5 सेमी x 2 सेमी माप का चोट का निशान। लाल रंग।

(xii) दोनों नितंबों पर सी/ओ की उपस्थिति लेकिन कोई बाहरी चोट नहीं देखी गई।

19. डॉ. अशोक कुमार की राय में, सभी चोटें साधारण थीं और किसी कठोर और कुंद वस्तु से लगी थीं, सिवाय चोट संख्या 1 और 3 के जो किसी धारदार हथियार से लगी थीं। चोटें ताजा थीं।

20. जांच अधिकारी, पीडब्लू 4 श्याम किशोर मिश्रा ने एफआईआर (प्रदर्श क2), जीडी संख्या 36 के रूप में जीडी में आपराधिक मामले की संस्थिती की प्रविष्टि दिनांक 25.05.1985 को 20.05 बजे (प्रदर्श क3), साइट प्लान (प्रदर्श क4), घटनास्थल से बरामद सादे मिट्टी और खून से सने मिट्टी का रिकवरी मेमो (प्रदर्श क5), सादे मिट्टी (सामग्री प्रदर्श 1) और खून से सने मिट्टी (सामग्री प्रदर्श 2) और आरोप पत्र (प्रदर्श क6) को साबित किया।

21. यद्यपि बचाव पक्ष ने आरोप पत्र, चिक एफ.आई.आर., साइट प्लान, चोट रिपोर्ट तथा एस.ओ. श्याम किशोर और डॉ. अशोक कुमार के बयान (प्रदर्श ख1 से ख5), जांच अधिकारी (प्रदर्श ख6) और डॉ. अशोक कुमार (प्रदर्श ख7) के बयान तथा केस क्राइम नंबर 38ए/1985, थाना- उसका बाजार से संबंधित एफ.आई.आर. (प्रदर्श ख8) की कार्बन कॉपी दाखिल की है, लेकिन इस मामले में बचाव पक्ष के गवाहों की जांच के माध्यम से इन दस्तावेजों को साबित

नहीं किया जा सका है। इसलिए इन्हें बचाव पक्ष के पक्ष में साक्ष्य के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। इन दस्तावेजों पर प्रदर्शों का उल्लेख किया गया था, लेकिन अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इन दस्तावेजों को मामले में जांच अधिकारी श्याम किशोर मिश्रा और डॉ. अशोक कुमार द्वारा साबित नहीं किया गया।

22. अभियोजन पक्ष के मामले और अभियोजन पक्ष के गवाहों पी.डब्ल्यू. गोविंद प्रसाद और पी.डब्ल्यू. हरिहर के साक्ष्य के अनुसार, घटना 25.05.1985 को शाम 7.30 बजे हुई थी। घटनास्थल से पुलिस थाने की दूरी लगभग 1 मील है। रिपोर्ट तुरंत दर्ज की गई और घायल गोविंद प्रसाद की 25.05.1985 को रात 8.30 बजे जांच की गई। गोविंद प्रसाद को लगी चोटों का उल्लेख जी.डी. (प्रदर्श क3) में किया गया है। यह दर्शाता है कि घायल को मारपीट की घटना में चोटें आईं। उसे ये चोटें कुंद और तेज धार वाले हथियार से लगी थीं। चिकित्सा अधिकारी पी.डब्ल्यू.3 डॉ. अशोक कुमार ने अपने साक्ष्य से पी.डब्ल्यू.1 गोविंद प्रसाद और पी.डब्ल्यू.2 हरिहर द्वारा सूचनाकर्ता गोविंद प्रसाद को लगी चोटों के संबंध में दिए गए साक्ष्य की पुष्टि की है। उपरोक्त अभियोजन पक्ष के गवाहों के गवाही में ऐसा कुछ नहीं मिला है, जिससे उनके साक्ष्य की विश्वसनीयता और सत्यता पर संदेह हो।

23. बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त सत्यदेव और राम किशोर को लगी चोटों के बारे में स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

इसलिए अभियोजन पक्ष ने मामले की उत्पत्ति को उचित रूप से साबित नहीं किया है और अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए।

24. बचाव पक्ष की ओर से पेश की गई दलीलों में कोई दम नहीं है क्योंकि सत्यदेव और राम किशोर की कथित चोट रिपोर्ट पीडब्लू 3 डॉ. अशोक कुमार से जिरह करके या उसे बचाव में पेश करके साबित नहीं की गई है। रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे साबित हो कि घटना में आरोपी सत्यदेव और राम किशोर को चोटें आई हैं। बचाव पक्ष ने अभियोजन पक्ष के कागजात, यानी चिक एफआईआर, जीडी की कॉपी, साइट प्लान, कथित क्रॉस केस केस क्राइम नंबर 29ए/1985 से संबंधित चार्जशीट और सत्यदेव और राम किशोर की चोट रिपोर्ट साबित नहीं की है। इन दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां दाखिल करने मात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि यह कानून के अनुसार साबित हुआ है और इसका इस्तेमाल बचाव पक्ष के पक्ष में नहीं किया जा सकता।

25. बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि अभियोजन पक्ष ने तथ्यों के केवल दो गवाहों की जांच की है, एक सूचनाकर्ता घायल पीडब्लू 1 गोविंद और दूसरा सूचनाकर्ता का भाई पीडब्लू 2 हरिहर। वे हितबद्ध गवाह हैं और स्वतंत्र गवाहों की अनुपस्थिति में अभियोजन पक्ष का मामला साबित नहीं कहा जा सकता।

26. सुरेश सीताराम सुर्व बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2003 एससी 344 में सर्वोच्च

न्यायालय ने घायल गवाह से संबंधित कानून की व्याख्या की है: -

" घायल चश्मदीद गवाह के साक्ष्य को अभियुक्त के प्रति शत्रुतापूर्ण प्रवृत्ति के आधार पर पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से तब जब उसके साक्ष्य का व्यापक संभावनाओं के प्रकाश में परीक्षण किया जाए, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह एक स्वाभाविक चश्मदीद गवाह था, और उसके पास अभियुक्त के खिलाफ मामला गढ़ने का कोई कारण नहीं था।"

27. बालेश्वर महतो बनाम बिहार राज्य, एआईआर 2017 एससी 827 में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है: -

" जहां चश्मदीद गवाह भी एक घायल व्यक्ति है, वहां उसके बयान को उचित विश्वसनीयता दी जानी चाहिए। इस प्रकार घायल गवाह की उपस्थिति सभी संदेहों से परे स्थापित हो जाती है। उनकी गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता क्योंकि वे अभियुक्त के विरोधी थे।"

28. कार्तिक मल्हार बनाम बिहार राज्य, 1996 दाण्डिक एल.जे. 889 में सर्वोच्च न्यायालय ने हितबद्ध या रिश्तेदार गवाह से संबंधित कानून बताया है : -

"कोई करीबी रिश्तेदार जो एक इच्छुक गवाह है, उसे एक इच्छुक गवाह के रूप में खारिज

नहीं किया जा सकता है, जिसका अभियुक्त को किसी न किसी तरह से दोषी ठहराने में प्रत्यक्ष हित हो। रिश्तेदारी कभी भी गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला कारक नहीं हो सकती है, क्योंकि एक स्वतंत्र गवाह मिलना हमेशा संभव नहीं होता है।"

29. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम पुनाती रामुलु, एआईआर 1993 एससी 2644 में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है: -

"गवाह के साक्ष्य को केवल इस तथ्य के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वह एक हितबद्ध गवाह था। साक्ष्य का संबंध या पक्षपातपूर्ण प्रकृति ही न्यायालय को साक्ष्य की अधिक सावधानी से जांच करने के लिए बाध्य करती है।"

30. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घायल, रिश्तेदार या पक्षपाती गवाह के साक्ष्य की सराहना के संबंध में प्रतिपादित कानून के आलोक में पीडब्लू 1 गोविंद और पीडब्लू 2 हरिहर के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर यह पाया गया कि उनके साक्ष्य पुष्ट, सत्य और विश्वसनीय हैं। उनकी जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आया जिससे उनके साक्ष्य की सत्यता और विश्वसनीयता पर संदेह हो।

31. वर्तमान प्रकरण में अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि सूचनाकर्ता एवं अभियुक्त के मध्य लम्बे समय से दुश्मनी है तथा उनके मध्य मुकदमा भी हुआ है। वे एक दूसरे के विरोधी हैं। इन परिस्थितियों में सामान्यतः स्वतंत्र साक्षी किसी भी पक्ष का

समर्थन करने नहीं आ सकता, क्योंकि यदि वह एक पक्ष का समर्थन करता है तो दूसरा पक्ष उसका विरोधी हो जाएगा। इन परिस्थितियों में स्वतंत्र साक्षी न्यायालय में साक्ष्य देने से विरत रहेगा। ऐसे में केवल पक्षपातपूर्ण एवं हितबद्ध साक्षी ही पक्ष का समर्थन करने आएगा। पी.डब्ल्यू.1 गोविंद एवं पी.डब्ल्यू.2 हरिहर के साक्ष्य दस्तावेजी साक्ष्य यथा चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क1), चिक एफ.आई.आर. (प्रदर्श क2), प्रकरण के पंजीकरण से संबंधित जी.डी. (प्रदर्श क3), स्थल योजना (प्रदर्श क4), सादे मिट्टी एवं रक्तरंजित मिट्टी से संबंधित रिकवरी मेमो (प्रदर्श क5), (सामग्री प्रदर्श 1 एवं प्रदर्श 2) तथा अभियुक्त के विरुद्ध दाखिल आरोप-पत्र (प्रदर्श क6) से पुष्ट होते हैं।

32. अभियुक्तगण सत्यदेव एवं गिरजेश ने स्वीकार किया है कि वे घटना के समय घटनास्थल पर उपस्थित थे। अभियुक्तगण राम किशोर, राम आशीष, अरविन्द एवं अखिलेश ने अपने विरुद्ध कोई अन्य कारण बताते हुए कहा है कि वे घटना के समय गांव में उपस्थित नहीं थे। अभियुक्तगण राम किशोर एवं अरविन्द ने अपने विरुद्ध कोई अन्य कारण बताने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है। अभियुक्त राम आशीष ने अपने साद्व डी.डब्ल्यू.1 प्रभुनाथ पाण्डेय को प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया है कि वे अपने साद्व की पुत्री के विवाह में उपस्थित थे तथा अभियुक्त रविन्द्र दिनांक 23.05.1985 से 27.05.1985 तक अपने गांव में उपस्थित था। डी.डब्ल्यू.1 प्रभुनाथ पाण्डेय, राम आशीष का रिश्तेदार है। वह यह नहीं बता सका कि अभियुक्त रविन्द्र उक्त अवधि में कहां से अपने गांव आया था।

विवाह कार्ड के संबंध में उसने स्वीकार किया है कि विवाह कार्ड पर हस्ताक्षर नहीं हैं। उसने यह भी स्वीकार किया है कि ऐसा कार्ड किसी भी प्रिंटिंग प्रेस से बाद में छपवा लिया जा सकता है। उसने यह तो स्वीकार किया है कि उसने विवाह का कार्ड डाक से भेजा है, लेकिन वह लिफाफा नहीं दिखा पाया जिस पर डाक विभाग की मुहर लगी हुई है। विवाह कार्ड पर डाक विभाग की कोई मुहर नहीं है। इसलिए अभियुक्तगण राम आशीष और रविन्द्र के उस तिथि पर उपस्थित होने के सम्बन्ध में डीडब्लू 1 प्रभुनाथ पाण्डेय का कथन स्वीकार नहीं किया जा सकता।

33. डीडब्लू 2 हेमंत कुमार ने 08.02.1995 को यह बयान दिया था कि अभियुक्त अखिलेश 24.05.1985 से 26.05.1985 तक उसके गांव में था और उसने उसे विक्रम शुक्ला के बरही समारोह में देखा था। उसने अभियुक्त अखिलेश के उसके गांव- महुआ, थाना- नौतनवा, जिला- महाराजगंज में होने के सबूत के तौर पर एक प्रमाण पत्र (प्रदर्शख 2) पेश किया है। डीडब्लू 2 हेमंत कुमार ने बरही समारोह की तारीख से 10 साल बाद सबूत पेश किया है। उसने अभिनिर्धारित किया कि बरही समारोह में बड़ी संख्या में लोग शामिल हुए थे। उसने यह स्पष्ट नहीं किया कि उसे अखिलेश की उपस्थिति 10 साल बाद कैसे याद है, जबकि अखिलेश उसका रिश्तेदार नहीं है और बरही समारोह में शामिल होने की अवधि के दौरान वह उसके घर में नहीं रहा। उसने स्वीकार किया कि प्रमाण पत्र (प्रदर्श ख 2) किसी मोहम्मद हनीफ द्वारा अभियुक्त अखिलेश की उसके गांव में बाद की तारीख में

मौजूदगी के दौरान तैयार किया गया था। इस प्रकार, घटना के समय बरही समारोह में अभियुक्तों की उपस्थिति के संबंध में डीडब्लू 2 हेमंत कुमार का साक्ष्य कथन स्वीकार्य नहीं है और तदनुसार, अस्वीकार किया जाता है।

34. बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने पी.डब्लू.1 गोविंद और पी.डब्लू.2 हरिहर के बयानों में कुछ विरोधाभासों का उल्लेख किया है। चूंकि पी.डब्लू.1 गोविंद और पी.डब्लू.2 हरिहर की गवाही घटना की तारीख से 8 साल से अधिक समय बाद न्यायालय में दर्ज की गई थी, इसलिए उनकी गवाही में थोड़ा बहुत विरोधाभास होना स्वाभाविक है। इसके अलावा, अलग-अलग गवाहों ने घटना को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखा था। तथ्यों को याद रखने की उनकी क्षमता भी अलग-अलग है। इसलिए, घटना के बारे में उनके बयानों में कुछ विरोधाभास होना स्वाभाविक है।

35. **लीला राम (मृत) जरिए (दुली चंद्र) बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 2000 एससी (सीआर) 222** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है: -

"विभिन्न गवाहों के कथन में अंतर होना स्वाभाविक है। जब वे विवरण पर बात करते हैं, और जब तक विरोधाभास भौतिक आयाम के न हों, तब तक इसका उपयोग साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। संयोग से, आपराधिक मामलों में गणितीय बारीकियों के साथ साक्ष्य की पुष्टि की उम्मीद नहीं की जा सकती है। मामूली विसंगतियों को

अन्यथा स्वीकार्य साक्ष्य को नष्ट नहीं करना चाहिए। शायद ही कोई ऐसा गवाह मिले जिसके साक्ष्य में कुछ अतिशयोक्ति या अलंकरण न हो। साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करना अनावश्यक है। साक्ष्य को विश्वसनीयता के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए।"

36. इसी प्रकार का कानून सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **कृष्णा मोची एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, 2002 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1220** में प्रतिपादित किया गया है।

37. पी.डब्लू.1 गोविंद और पी.डब्लू.2 हरिहर के साक्ष्य पर विचार करते हुए, उनके साक्ष्य में कथित विरोधाभास मामूली और स्वाभाविक है। यह अभियोजन पक्ष के मामले को पूरी तरह से प्रभावित नहीं करता है। इसलिए, इस संबंध में बचाव पक्ष की ओर से पेश की गई दलील स्वीकार्य नहीं है।

38. अभिलेख पर उपलब्ध उपरोक्त दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों के आधार पर अभियोजन पक्ष ने यह साबित कर दिया है कि कथित तिथि, समय और घटना स्थल पर, अभियुक्तों अर्थात् राम आशीष, अखिलेश, गिरजेश, अरविंद, रविन्द्र सभी सत्यदेव और राम किशोर के पुत्रों ने लाठी और फरसा जैसे घातक हथियारों से लैस होकर एक गैरकानूनी सभा बनाई। गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में, उन्होंने दंगा किया और सूचनाकर्ता गोविंद को साधारण और गंभीर चोट पहुंचाई। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने सभी उचित संदेहों से परे धारा 147, 148,

323/149 और 324/149 भा0दं0सं0 के तहत आरोप साबित कर दिया है।

39. उपरोक्त धाराओं के तहत आरोपियों को दोषी ठहराए जाने के बाद, अवर न्यायालय ने उन्हें सजा भुगतने के लिए जेल भेजने के बजाय, उन्हें दो साल की अवधि के लिए निजी बांड और दो जमानतें प्रस्तुत करने पर इस शर्त पर परिवीक्षा पर रिहा कर दिया है कि वे शांति बनाए रखेंगे और उनका आचरण अच्छा रहेगा और वे कोई भी अपराध नहीं करेंगे।

40. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 में परिवीक्षा से संबंधित कानून इस प्रकार है:

"4. न्यायालय की कुछ अपराधियों को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने की शक्ति।-(1) जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उसकी राय है कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है, उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ना समीचीन है, तब न्यायालय, उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उसे किसी दंड की तत्काल सजा देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे जमानतदारों सहित या रहित, ऐसी अवधि के दौरान, जो न्यायालय निर्देशित करे, बुलाए जाने पर उपस्थित होने और दंड

प्राप्त करने के लिए, और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे आचरण का पालन करने के लिए बांड पर रिहा कर दिया जाए:

परन्तु न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसके प्रतिभू, यदि कोई हो, का उस स्थान पर निश्चित निवास स्थान या नियमित व्यवसाय है जिस पर न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करता है या जहां अपराधी उस अवधि के दौरान रहने की संभावना रखता है जिसके लिए वह बंधपत्र देता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश देने से पूर्व न्यायालय मामले के संबंध में संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

(3) जब उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश दिया जाता है, तब न्यायालय, यदि उसकी यह राय है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है, तो इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकेगा जिसमें यह निर्देश दिया जाएगा कि अपराधी, आदेश में निर्दिष्ट अवधि के दौरान, जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में रहेगा और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकेगा जो वह अपराधी के सम्यक् पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझे।

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी से, उसके छोड़े

जाने के पूर्व, प्रतिभुओं सहित या रहित, बंधपत्र में प्रवेश करने की अपेक्षा करेगा, कि वह ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों का पालन करेगा और निवास, मादक द्रव्यों से परहेज या किसी अन्य मामले के संबंध में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन करेगा, जिन्हें न्यायालय, विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के कारित होने से रोकने के लिए अधिरोपित करना ठीक समझे।

(5) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश की शर्तों और निबंधनों को स्पष्ट करेगा तथा पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति प्रत्येक अपराधी, प्रतिभू, यदि कोई हो, तथा संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तत्काल उपलब्ध कराएगा।

41. दंड प्रक्रिया संहिता में भी ऐसा ही प्रावधान है। धारा 360 दं०प्र०सं० में प्रावधान है:

360. अच्छे आचरण की 181परिवीक्षा पर या चेतावनी के बाद छोड़ने का आदेश।

(1) जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का नहीं है, किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है जो केवल जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम की अवधि के कारावास से दंडनीय है, या जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का है या

कोई महिला किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध की जाती है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, यदि उस न्यायालय को, जिसके समक्ष उसे दोषसिद्ध किया जाता है, अपराधी की आयु, चरित्र या पूर्ववृत्त को, और उन परिस्थितियों को, जिनमें अपराध किया गया था, ध्यान में रखते हुए प्रतीत होता है कि अपराधी को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ा जाना समीचीन है, तो न्यायालय उसे तुरन्त कोई दंड देने के बजाय निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभुओं सहित या रहित बंधपत्र पर रिहा कर दिया जाए, कि वह ऐसी अवधि के दौरान (तीन वर्ष से अधिक नहीं) जैसा कि न्यायालय निर्देश दे, बुलाए जाने पर उपस्थित हो और दंडादेश प्राप्त करे और इस बीच शांति बनाए रखे तथा अच्छा आचरण करे:

परन्तु जहां किसी प्रथम अपराधी को द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा दोषसिद्ध किया जाता है, जो उच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से सशक्त नहीं है, और मजिस्ट्रेट की यह राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, वहां वह उस आशय की अपनी राय अभिलिखित करेगा, और कार्यवाही को प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करेगा, तथा अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा, या उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए जमानत

लेगा, जो उपधारा (2) द्वारा उपबंधित रीति से मामले का निस्तारण करेगा।

(2) जहां कार्यवाही उपधारा (1) के उपबंध के अनुसार प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, वहां ऐसा मजिस्ट्रेट उस पर ऐसा दंडादेश पारित कर सकता है या ऐसा आदेश दे सकता है जैसा वह पारित कर सकता था या दे सकता था, यदि मामले की मूलतः उसके द्वारा सुनवाई की गई होती और यदि वह किसी बिंदु पर आगे जांच या अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक समझता है तो वह स्वयं ऐसी जांच कर सकता है या ऐसा साक्ष्य ले सकता है या ऐसी जांच या साक्ष्य किए जाने या लिए जाने का निर्देश दे सकता है।

(3) किसी ऐसे मामले में जिसमें किसी व्यक्ति को चोरी, भवन में चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोजन या धोखाधड़ी या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन किसी अपराध के लिए, जो दो वर्ष से अधिक कारावास से दंडनीय नहीं है या केवल जुर्माने से दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, तो वह न्यायालय जिसके समक्ष उसे इस प्रकार दोषसिद्ध किया गया है, यदि वह अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति को और अपराध की तुच्छ प्रकृति को या

अपराध को अंजाम देने वाली किन्हीं उपशमनकारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ठीक समझे, उसे कोई दंड देने के बजाय, उसे सम्यक चेतावनी के बाद रिहा कर सकता है।

(4) इस धारा के अधीन कोई आदेश किसी अपील न्यायालय या उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय किया जा सकेगा।

(5) जब किसी अपराधी के संबंध में इस धारा के अधीन कोई आदेश दिया गया है, तब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, अपील पर, जब ऐसे न्यायालय में अपील का अधिकार है, या अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय, ऐसे आदेश को अपास्त कर सकेगा और उसके बदले में ऐसे अपराधी पर विधि के अनुसार दंडादेश पारित कर सकेगा: परंतु उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय इस उपधारा के अधीन उससे अधिक दंड नहीं देगा, जो उस न्यायालय द्वारा दिया जा सकता था, जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया था।

(6) धारा 121, 124 और 373 के उपबंध, जहां तक हो सके, इस धारा के उपबंधों के अनुसरण में प्रस्तुत किए गए जमानतों के मामले में लागू होंगे।

(7) न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन अपराधी को छोड़ने का निर्देश देने से पूर्व, यह समाधान कर लेगा कि अपराधी या उसके प्रतिभू (यदि कोई हो) का उस स्थान पर, जिसके लिए न्यायालय कार्य करता है या जिसमें अपराधी के शर्तों के पालन के लिए नामित अवधि के दौरान रहने की संभावना है, निश्चित निवास स्थान या नियमित व्यवसाय है।

(8) यदि वह न्यायालय, जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया है, या वह न्यायालय, जो अपराधी के साथ उसके मूल अपराध के संबंध में व्यवहार कर सकता था, यह समाधान हो जाता है कि अपराधी अपनी पहचान की किसी शर्त का पालन करने में असफल रहा है, तो वह उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर सकता है।

(9) जब कोई अपराधी ऐसे किसी वारंट पर पकड़ा जाता है तो उसे तुरन्त वारंट जारी करने वाले न्यायालय के समक्ष लाया जाएगा और ऐसा न्यायालय या तो मामले की सुनवाई होने तक उसे हिरासत में भेज सकता है या उसे दंड के लिए उपस्थित होने की शर्त पर पर्याप्त प्रतिभू के साथ जमानत दे सकता है और ऐसा न्यायालय मामले की सुनवाई के पश्चात दंडादेश पारित कर सकता है।

(10) इस धारा की कोई बात अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20) या बालक अधिनियम, 1960 (1960 का 60) या युवा अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून के उपबंधों पर प्रभाव नहीं डालेगी।

42. ये वैधानिक प्रावधान बहुत ही जोरदार तरीके से सजा के सुधारात्मक और सुधारात्मक उद्देश्य को निर्धारित करते हैं और ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ अपीलीय अदालतों को कानून के तहत उचित मामलों में परिवीक्षा का लाभ देने के लिए बाध्य करते हैं। दुर्भाग्य से, कानून की इस शाखा का अदालतों द्वारा बहुत अधिक उपयोग नहीं किया गया है। यह हमारे न्याय प्रशासन की प्रणाली में अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाता है, जहां अक्सर लंबे समय के बाद सुनवाई पूरी होती है और जब तक निर्णय अंतिम रूप लेता है, तब तक सजा देने का उद्देश्य ही अपनी प्रभावशीलता खो देता है क्योंकि समय बीतने के साथ दंडात्मक और सामाजिक प्राथमिकताएं बदल जाती हैं और कारावास की सजा देने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है, खासकर तब जब शामिल अपराध गंभीर न हो और आरोपी व्यक्तियों का कोई आपराधिक इतिहास न हो। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और इसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का मकसद, आरोपी का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के

क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसलिए, प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से वह किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे।

43. सुभाष चन्द एवं अन्य बनाम 30प्र0 राज्य 2015 लॉ सूट (इलाहाबाद) 1343 के मामले में , इस न्यायालय ने परिवीक्षा कानून को लागू करने और उचित मामलों में अभियुक्त व्यक्तियों को लाभकारी कानून का लाभ देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस न्यायालय ने सभी ट्रायल कोर्ट और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लाभकारी कानून की अनदेखी की गई है और यहां तक कि न्यायाधीश भी कानून के इस प्रावधान को लगभग भूल चुके हैं। इसलिए, मामले से अलग होने से पहले, इस न्यायालय को लगता है कि यदि ट्रायल कोर्ट और अपीलीय न्यायालयों के लिए चेतावनी का एक शब्द नहीं लिखा गया तो मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल हो जाऊंगा। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को प्रसारित करें, जो बदले में अपने अधीन काम करने वाले सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच इस आदेश की प्रति का प्रसार सुनिश्चित करेंगे और इस निर्णय का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। राज्य के जिला न्यायाधीशों को भी निर्देश दिया जाता है कि वे ऐसे मामलों से निपटने वाले सभी न्यायालयों, यानी ट्रायल कोर्ट और अपीलीय न्यायालयों से हर महीने

रिपोर्ट मांगें और बताएं कि कितने मामलों में अभियुक्तों को उपरोक्त प्रावधानों का लाभ दिया गया है। जिला न्यायाधीशों को प्रत्येक मासिक बैठक में व्यक्तिगत रूप से ऐसे मामलों की निगरानी करने का भी निर्देश दिया जाता है। संबंधित जिला न्यायाधीश रजिस्ट्रार जनरल को मासिक विवरण भेजेंगे कि कितने मामलों में ट्रायल कोर्ट/अपीलीय न्यायालय ने उपरोक्त का लाभ दिया है। अभियुक्तों के लिए लाभकारी कानून बनाने के लिए इस आदेश की एक प्रति तत्काल अनुपालन के लिए रजिस्ट्रार जनरल के समक्ष रखी जाए।"

44. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अतिरिक्त, यह न्यायालय यह पाता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद एवं अन्य (2004) 7 एससीसी 659 के मामले में अभियुक्तों को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ देते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"आरोपी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि घटना वर्ष 1990 की है। पक्षकार शिक्षित और पड़ोसी हैं। इसलिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। दुर्घटना दस वर्ष से अधिक पुरानी है। पड़ोसियों के बीच जल निकासी के दावे के एक तुच्छ मुद्दे पर विवाद था। दुर्घटना गुस्से में हुई। सभी पक्ष शिक्षित और दूर के रिश्तेदार भी हैं।

घटना ऐसी नहीं है कि अभियुक्त को कारावास की सजा भुगतनी पड़े। हमारी राय में, यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें अभियुक्त को अच्छे आचरण के लिए एक वर्ष का बांड निष्पादित करने का निर्देश देकर परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।"

45. इसी प्रकार, **जगत पाल सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2000 एससी 3622** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 323, 452, 506 भा0दं0सं0 के तहत आरोपी व्यक्तियों की सजा को बरकरार रखते हुए परिवीक्षा का लाभ दिया है और छह महीने की अवधि के लिए अच्छे आचरण और शांति बनाए रखने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष बांड निष्पादित करने पर आरोपी व्यक्तियों को रिहा कर दिया है।

46. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मुझे अवर न्यायालय के विवादित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या अनुचितता या कोई अधिकार क्षेत्र संबंधी त्रुटि नहीं दिखती। अवर न्यायालय द्वारा धारा 147, 148, 323/149 और 324/149 भा0दं0सं0 के तहत दर्ज की गई सजा बरकरार रखी जाती है और इसमें बदलाव की आवश्यकता नहीं है।

47. चूंकि सूचनाकर्ता/पीड़ित और अभियुक्त एक ही गांव के हैं और पड़ोसी हैं तथा अभियुक्तों का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, घटना वर्ष 1985 में घटित हुई है और तब से 36 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है, इसलिए अभियुक्तों को ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई परिवीक्षा में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है।

48. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए आपराधिक अपील स्वीकार करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है। तदनुसार आपराधिक अपील खारिज की जाती है।

49. ट्रायल कोर्ट के आदेश के निष्पादन के लिए ट्रायल कोर्ट के रिकॉर्ड के साथ फैसले की एक प्रति ट्रायल कोर्ट को भेजी जाए, जो सम्पादित हो गया है। अपीलकर्ता-अभियुक्त फैसले की तारीख से दो महीने के भीतर ट्रायल कोर्ट में पेश होंगे और तदनुसार अपेक्षित परिवीक्षा बंध पत्र और व्यक्तिगत बंध पत्र दाखिल करेंगे।

(2023) 4 ILRA 956

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-1,

आपराधिक अपील संख्या 1817/1995

फूल सिंह

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अजय सिंह, निशा सिंह परिहार, श्री आर. पी. परिहार

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 395, 410, 411 और 412- चोरी की संपत्ति को बेईमानी से प्राप्त करना -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313, 360 - शस्त्र अधिनियम, 1959 - धारा 25- अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958-धारा 4, 5-सजा के खिलाफ अपील- एफआईआर के अनुसार- 15/16.12.1998 की रात में, आरोपी व्यक्ति

दो या तीन अन्य व्यक्तियों के साथ वादी के घर में घुस गए - आरोपियों ने कपड़े चोरी कर लिए, जो वादी द्वारा बेचे जा रहे थे - वादी ने एफ.आई.आर. दर्ज कराई - अभियोजन पक्ष ने पी. डब्लू. 1 से पी. डब्लू. 7 का परीक्षण किया - आयोजित, अपीलार्थी की गिरफ्तारी और चोरी हुए रजाई-कवर, साड़ियों और कपड़े की बरामदगी पी. डब्लू. 7 के साक्ष्य से सिद्ध हुई है, जिसने अपीलार्थी को गिरफ्तार किया था और उसके कब्जे से सामान बरामद किया था - पी. डब्लू. 7 ने अपीलार्थी की गिरफ्तारी से संबंधित वसूली ज़ापन और चोरी की संपत्ति की बरामदगी ज़ापन सिद्ध किया - पी. डब्लू. 7 ने उन सामानों को भी सिद्ध किया जो अपीलार्थी के कब्जे से बरामद किए गए हैं - पी. डब्लू. 7 ने अपने साक्ष्य से अपीलकर्ता की गिरफ्तारी को भी सिद्ध कर दिया है, जो सामान से भरा बैग ले जा रहा था - पी. डब्लू. 3, वादी ने सामान की पहचान उसके घर से चोरी हुई के रूप में की है - पी. डब्लू. 3, पी. डब्लू. 5 और पी. डब्लू. 7 की जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आया, जिससे उनके साक्ष्य पर संदेह उत्पन्न हो - पी. डब्लू. 5 के साक्ष्य को अपीलार्थी की ओर से उसकी जिरह में चुनौती नहीं दी गई है - पी. डब्लू. 5 के साक्ष्य की पुष्टि पी. डब्लू. 7 के साक्ष्य से हुई है - वादी एक फेरीवाला था जो कपड़े ले जाता था और उन्हें सड़कों पर बेचता था। अपीलकर्ता के कब्जे से बरामद वस्तुएं नए कपड़े थे - अपीलकर्ता ने उन वस्तुओं के स्वामित्व का दावा नहीं किया है - इन वस्तुओं को पहचान परीक्षण कार्यवाही में वादी द्वारा पहचाना गया था - इसलिए, विचारणीय न्यायालय ने अपीलकर्ता को धारा 411 आईपीसी के तहत

सही रूप से दोषी ठहराया है - इसलिए, आपेक्षित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है (2, 3, 4, 6, 23, 24, 25, 35)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. मीर नकवी असकरी बनाम सीबीआई 2 (2009) 15 एससीसी 643
2. त्रिम्बक बनाम एम.पी. राज्य, एआईआर 1954 एससी 39
3. सुभाष चंद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 मुकदमा (एल्ड) 1343
4. महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह, कुलदीप सिंह आनंद और अन्य (2004) 7 एससीसी 659
5. जगत पाल सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2000 एससी 3622

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-1, द्वारा प्रदत्त)

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.पी. सिंह परिहार और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

2. यह आपराधिक अपील चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 508/1990, राज्य बनाम देशराज सिंह व अन्य, जो मुकदमा अपराध संख्या 91/1988 अन्तर्गत धारा 395/397/412 से उत्पन्न हुआ

था और संबंधित सत्र परीक्षण संख्या 286/1995, राज्य बनाम फूल चंद्र, जो मुकदमा अपराध संख्या 94/1988 धारा 25 आर्म्स एक्ट थाना- जफरगंज, जिला- फतेहपुर से उत्पन्न हुआ था, में पारित दिनांक 20.10.1995 के निर्णय व आदेश के विरुद्ध संस्थित की गई है। विचारण न्यायालय ने सह-अभियुक्त देशराज सिंह ठाकुर, शिव कुमार यादव और लखन लाल को धारा 380 भा0दं0सं0 के तहत दोषी करार देते हुए सजा सुनाई थी। उन्हें धारा 395 भा0दं0सं0 के तहत आरोप से बरी कर दिया गया था। विचारण न्यायालय ने फूल चंद्र को धारा 395 और 412 भा0दं0सं0 के तहत आरोप से बरी कर दिया। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता आरोपी को आर्म्स एक्ट की धारा 25 के तहत भी बरी कर दिया। अपीलकर्ता-आरोपी को धारा 395 भा0दं0सं0 और 25 आर्म्स एक्ट के तहत बरी किए जाने के खिलाफ राज्य या सूचनाकर्ता द्वारा कोई आपराधिक अपील दायर नहीं की गई है। इस प्रकार, आरोपी को धारा 395 भा0दं0सं0 और 25 आर्म्स एक्ट के तहत बरी करने का विचारण न्यायालय का आदेश अंतिम हो गया है।

3. अभियोजन पक्ष के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि दिनांक 15/16.12.1998 की रात्रि में अभियुक्तगण देशराज सिंह, ठाकुर, शिव कुमार यादव एवं लखनलाल लोहार दो-तीन अन्य व्यक्तियों के साथ लकड़ी की सीढ़ी के माध्यम से सूचक मुरलीधर के घर में घुसे। खट-पट की आवाज होने पर सूचक मुरलीधर की नींद खुल गई तथा उसने देखा कि उपरोक्त अभियुक्तगण सहित लगभग 5-6 व्यक्ति चोरी

करने के पश्चात घरेलू सामान ले जा रहे हैं। सूचक ने शोर मचाया तो उसके पड़ोसी रजवा, बंशी एवं फौजीलाल मौके पर आ गए, जिन्होंने अभियुक्तगण को घरेलू सामान ले जाते हुए देखा। प्रत्यक्षदर्शियों ने उनका पीछा किया, परंतु अभियुक्तगण पकड़े नहीं जा सके। अभियुक्तगण ने सूचक द्वारा बेचे जा रहे कपड़ों की चोरी की। बाद में, सूचक ने एक लिखित रिपोर्ट तैयार की और 16.12.1988 को पुलिस स्टेशन गया, जहां उसने सुबह 9.30 बजे एफआईआर दर्ज कराई। मामला 1988 के अपराध संख्या 91 के रूप में धारा 457/380 भा0दं0सं0 के तहत पंजीकृत किया गया और जांच शुरू की गई।

4. दिनांक 26.12.1988 को थाना प्रभारी उपनिरीक्षक सुखविंदर सिंह कुछ कांस्टेबलों के साथ क्षेत्र का चक्कर लगाकर थाने लौट रहे थे। पुलिस पार्टी जब लालपुर के मोड़ पर पहुंची तो एक व्यक्ति दिखाई दिया। पुलिस पार्टी ने उससे पूछताछ की तो वह पीछे की ओर मुड़ गया। बदमाश पर शक होने पर पुलिस ने उसे घेरकर पकड़ लिया। पूछताछ करने पर उसने अपना नाम फूलचंद्र बताया और तलाशी ली गई। तब उसके कब्जे से एक देशी पिस्तौल और दो जिंदा कारतूस बरामद हुए। उसके पास एक बैग था जिसमें दो सूती साड़ियां, दो रजाई का कवर और एक कपड़े का टुकड़ा बरामद हुआ। पूछताछ में आरोपी ने कबूल किया कि दिनांक 15.12.1988 की रात मुरलीधर के घर डकैती डालने वाले डकैतों में वह भी शामिल था। बरामद सामान को अलग सीलबंद लिफाफे में रखा गया था। बरामदगी मेमो तैयार कर आरोपी को भी बापरदाह में रखा गया था।

बरामद माल व आरोपी को थाने लाया गया जहां बरामद माल को मालखाने में जमा करा दिया गया तथा आरोपी को हवालात में बंद कर दिया गया। एफआईआर दर्ज कर आरोपी फूलचंद्र के खिलाफ अपराध संख्या 94/88 में धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत मामला दर्ज किया गया। इस मामले की जांच भी अपराध संख्या 91/1988 से शुरू की गई। जांच के दौरान बरामद लूटी गई संपत्ति की पहचान कराई गई। जांच के दौरान मामला धारा 395/397 व 412 भा0दं0सं0 में परिवर्तित कर दिया गया। जांच पूरी करने के बाद सभी आरोपियों के खिलाफ 01.03.1989 को धारा 395/397/412 भा0दं0सं0 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया गया। आरोपी फूलचंद्र के खिलाफ आर्म्स एक्ट की धारा 25 के तहत एक अलग आरोप पत्र भी 19.2.1989 को दाखिल किया गया।

5. 21.11.1990 को विचारण न्यायालय ने सह-आरोपी देशराज सिंह, शिव कुमार यादव और लखनलाल के खिलाफ धारा 395 भा0दं0सं0 के तहत आरोप तय किए। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता आरोपी फूल चंद्र के खिलाफ भी धारा 395, 412 भा0दं0सं0 और आर्म्स एक्ट की धारा 25 के तहत आरोप तय किए। अपीलकर्ता आरोपी ने आरोपों से इनकार किया और खुद को निर्दोष बताया।

6. अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने पी.डब्ल्यू.1 राज वजदवा , पी.डब्ल्यू.2 भैयादीन , पी.डब्ल्यू.3 मुरलीधर, पी.डब्ल्यू.4 कांस्टेबल रमेश चंद्र, पी.डब्ल्यू.5 कांस्टेबल चक्की लाल,

पी.डब्ल्यू.6 सूरज भान श्रीवास्तव, कार्यकारी मजिस्ट्रेट और पी.डब्ल्यू.7 एसआई सुखविंदर सिंह से पूछताछ की। अभियोजन पक्ष ने लिखित रिपोर्ट, चिक रिपोर्ट, जीडी की प्रति, साइट प्लान, देशी पिस्तौल, कारतूस और लूटी गई संपत्ति का रिकवरी मेमो, जो अभियुक्त फूल चंद्र के कब्जे से बरामद किया गया था, अपराध संख्या 94/1988 की चिक रिपोर्ट, शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत, जीडी की प्रति, साइट प्लान और आरोप पत्र दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया। अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त फूल चंद्र के खिलाफ शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत अभियोजन के लिए जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर की मंजूरी भी प्रस्तुत की।

7. आरोपी फूल चंद्र का बयान धारा 313 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज किया गया। जिसमें उसने आरोपों से इनकार किया और कहा कि उसे पुलिस ने दुश्मनी के कारण इस मामले में झूठा फंसाया है। आरोपी फूल चंद्र ने अपने कब्जे से देशी पिस्तौल और कारतूस और लूटी गई संपत्ति की बरामदगी से इनकार किया और कहा कि उसे उसके घर से गिरफ्तार किया गया था और पुलिस ने उसे झूठा फंसाया था। आरोपी अपीलकर्ता फूल चंद्र द्वारा कोई बचाव साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

8. इस मामले की चिक एफ.आई.आर. पी.डब्ल्यू.4 कांस्टेबल रमेश चंद्र सिंह द्वारा तैयार की गई थी। उन्होंने चिक रिपोर्ट (प्रदर्शक2) को प्रमाणित करते हुए बताया कि 16.12.1988 को वे थाना- जाफरगंज में तैनात थे। उन्होंने सूचक द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट

के आधार पर चिक रिपोर्ट तैयार की। उन्होंने जी.डी. में भी प्रविष्टियां कीं, जिसकी प्रति (प्रदर्श क3) है।

9. जिरह में कांस्टेबल पी.डब्ल्यू.4 रमेश चंद्र सिंह ने कहा कि उनकी राय में प्रथम दृष्टया मामला धारा 457/380 भा0दं0सं0 के तहत बनता है, इसलिए मामला धारा 380/457 भा0दं0सं0 के तहत पंजीकृत किया गया तथा सूचना वरिष्ठ अधिकारियों को प्रेषित कर दी गई।

10. इस मामले की जांच एसआई बाजीलाल यादव ने शुरू की। पीडब्लू 7 स्टेशन ऑफिसर सुखविंदर सिंह भी उनके साथ थे जब एसआई बाजीलाल यादव ने घटनास्थल का दौरा किया और साइट प्लान तैयार किया। उन्होंने मुरलीधर की लालटेन का भी निरीक्षण किया और उसका सुपर्दगीनामा (प्रदर्श क6) तैयार किया। इस गवाह ने राजवा और फौजीलाल की मशालों का भी निरीक्षण किया और उनका सुपर्दगीनामा तैयार किया जो (प्रदर्श क7) है। जांच के दौरान, यह पाया गया कि मामला धारा 395/397 भा0दं0सं0 के तहत आता है, इसलिए, सर्कल ऑफिसर के मौखिक निर्देश पर, मामले को धारा 395/397 भा0दं0सं0 के तहत परिवर्तित कर दिया गया और जांच पीडब्लू 7 एसआई सुखविंदर सिंह को सौंप दी गई। जांच का शेष हिस्सा उनके द्वारा किया गया।

11. पीडब्लू 7 एसआई सुखविंदर सिंह ने अपने साक्ष्य में कहा कि 26.12.1988 को जांच के दौरान वह अन्य कांस्टेबलों के साथ

थाने लौट रहा था। जब वह लालपुर के पास मोड़ पर पहुंचा तो उसने अपने साथी कांस्टेबलों को हिरासत में ले लिया। कठेरिया के पास जब आरोपीगण सड़क पर आ रहे थे तो उन्होंने एक व्यक्ति को आते देखा। जब उस व्यक्ति से पूछा गया तो वह मुड़कर भागने लगा। उसका पीछा किया गया तथा 20 कदम की दूरी पर उसे घेर लिया गया तथा लगभग 5.10 बजे उसे गिरफ्तार कर लिया गया। पूछताछ करने पर उसने अपना नाम फूल चन्द्र बताया तथा तलाशी लेने पर इस आरोपी के कब्जे से एक देशी पिस्तौल, 12 बोर, दो जिन्दा कारतूस बरामद हुए। आरोपी के पास एक थैला भी था जिसमें से दो सूती साड़ियाँ, दो रजाई के कवर तथा एक कपड़े का टुकड़ा बरामद हुआ। इन सभी सामग्रियों को अलग-अलग सीलबंद लिफाफे में रखा गया तथा रिकवरी मेमो (प्रदर्श क8) तैयार किया गया जिस पर साक्षियों के हस्ताक्षर थे। इस साक्षी ने साइट प्लान (प्रदर्श क9) को भी साबित किया। पी.डब्ल्यू. 7 सुखविन्दर सिंह ने अपने साक्ष्य में बताया कि आरोपीगण तथा बरामद सामग्री को थाने लाया गया, जहाँ पर पी.डब्ल्यू. 5 कांस्टेबल चक्की लाल द्वारा रिकवरी मेमो के आधार पर चिक रिपोर्ट तैयार की गई। साक्षी ने पी.डब्ल्यू. 5 कांस्टेबल चक्की लाल के हस्तलेख तथा हस्ताक्षर से तैयार चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क10) को भी साबित किया। पीडब्लू 7 एसआई सुखविंदर सिंह ने कांस्टेबल छकी लाल द्वारा आपराधिक मामले (प्रदर्श क11) की जीडी में की गई प्रविष्टियों को साबित किया। उन्होंने गवाही दी कि उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए। उन्होंने कहा कि जांच के दौरान, लूटी गई संपत्ति की पहचान का परीक्षण किया गया

था। पहचान का परिणाम प्राप्त करने के बाद, उन्होंने आरोप-पत्र (प्रदर्श क12) प्रस्तुत किया।

12. पीडब्लू 7 सुखविंदर सिंह ने साइट-प्लान (प्रदर्श क13) भी साबित किया, जिसे एसआई बाजीलाल यादव ने तैयार किया था। आर्म्स एक्ट की धारा 25 के तहत मामले की जांच एसआई चुन्नालाल गौतम ने पूरी की, जिन्होंने साइट-प्लान भी तैयार किया और चार्जशीट पेश की। एसआई चुन्ना लाल गौतम से अभियोजन पक्ष ने पूछताछ नहीं की। उनके हस्ताक्षर और हस्तलेख को पीडब्लू 7 सुखविंदर सिंह ने साबित किया। साइट-प्लान (प्रदर्श क14) है और चार्जशीट (प्रदर्श क15) है। पीडब्लू 7 सुखविंदर सिंह ने गवाही दी है कि 16.12.1988 को उनकी मौजूदगी में भा0दं0सं0 की धारा 457/380 के तहत मामला दर्ज किया गया था और जांच एसआई बाजीलाल को सौंपी गई थी। यादव। दिनांक 18.12.1988 को क्षेत्राधिकारी जाफरगंज ने थाने का औचक निरीक्षण किया तथा निर्देश दिए कि उपरोक्त मुकदमे को धारा 395/397 भा0दं0सं0 में परिवर्तित किया जाए। उनके निर्देश पर मुकदमा धारा 395/397 भा0दं0सं0 में परिवर्तित कर दिया गया तथा इस मुकदमे की विवेचना स्वयं थाना प्रभारी पीडब्लू 7 एसआई सुखविंदर सिंह ने अपने हाथ में ले ली। उस समय अभियुक्त फूलचंद्र अपराध संख्या 91/1988 में संलिप्त नहीं था, लेकिन विवेचना के दौरान पता चला कि लूटी गई संपत्ति उसके पास है, इसलिए उसके विरुद्ध धारा 412 भा0दं0सं0 के तहत मुकदमा पंजीकृत किया गया।

13. पी.डब्ल्यू. 7 एस.आई. सुखविन्दर सिंह साबित किया कि अपीलकर्ता आरोपी फूल चंद्र के कब्जे से कथित रूप से दो सूती साड़ियों, दो रजाई-कवर और एक कपड़े का टुकड़ा (सामग्री प्रदर्श 1 से 5) वाला बैग बरामद किया गया था।

14. पी.डब्ल्यू.6 सूरजभान श्रीवास्तव ने लूटी गई सम्पत्ति की पहचान के सम्बन्ध में उनके द्वारा तैयार किया गया पहचान ज्ञापन (प्रदर्श क5) प्रमाणित किया। उन्होंने बताया कि लूटी गई सम्पत्ति को कुछ समान वस्तुओं के साथ पहचान के लिए रखा गया था।

15. मैंने अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता की दलीलें सुनी हैं तथा अभिलेख पर उपलब्ध समस्त साक्ष्य का अवलोकन किया है।

16. अपीलकर्ता फूल चंद्र के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि चोरी की गई वस्तुएं उसके कब्जे से बरामद की गई थीं। अभियोजन पक्ष यह साबित करने में भी विफल रहा है कि अपीलकर्ता अभियुक्त फूल चंद्र ने यह जानते हुए भी कि वे चोरी की संपत्ति हैं, सामान अपने कब्जे में रखा था।

17. इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि सह-आरोपी देशराज सिंह, शिव कुमार यादव और लखन लाल को धारा 380 और 457 भा0दं0सं0 के तहत प्रभारी विचारण न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया है। उन्होंने यह भी

तर्क दिया कि अपीलकर्ता आरोपी फूल चंद्र के कब्जे से चोरी की गई वस्तुओं की बरामदगी विधिवत साबित हो गई है कि उसे धारा 411 भा0दं0सं0 के तहत सही तरीके से दोषी ठहराया गया है।

एक अवधि के लिए कारावास से, जिसे तीन वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माना, या दोनों से दंडित किया जाएगा।"

18. "चोरी की संपत्ति" शब्द को धारा 410 भा0दं0सं0 में परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है: -

"410. चोरी की संपत्ति- वह संपत्ति, जिसका कब्जा चोरी, या जबरन वसूली, या डकैती द्वारा स्थानांतरित किया गया है, और वह संपत्ति जिसका आपराधिक रूप से दुरुपयोग किया गया है या जिसके संबंध में आपराधिक विश्वासघात किया गया है, "चोरी की संपत्ति " के रूप में अभिप्रेत है, चाहे हस्तांतरण किया गया हो, या विश्वासघात या विश्वासघात किया गया हो, चाहे वह अंदर हो या बाहर। लेकिन, यदि ऐसी संपत्ति बाद में उस व्यक्ति के कब्जे में आ जाती है जो कानूनी रूप से उस पर कब्जे का हकदार है, तो वह चोरी की संपत्ति नहीं रह जाती।"

19. धारा 411 के अंतर्गत अपराध को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:-

"411. चोरी की संपत्ति को बेईमानी से प्राप्त करना- जो कोई किसी चोरी की संपत्ति को बेईमानी से प्राप्त करता है या रखता है, यह जानते हुए या विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह चोरी की संपत्ति है, उसे किसी

20. मीर नकवी असकरी बनाम सीबीआई 2 (2009) 15 एससीसी 643 में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 411 के तहत अपराध के बारे में निम्नानुसार निर्णय दिया है: -

"व्यक्ति को यह ज्ञान होना चाहिए कि यह चोरी की गई संपत्ति है। यह धारा और साथ ही बाद की धाराएँ मुख्य अपराधी, जैसे कि चोर, लुटेरा या गबन करने वाले के विरुद्ध नहीं हैं, बल्कि उन व्यक्तियों के वर्ग के विरुद्ध हैं जो चोरी की वस्तुओं का व्यापार करते हैं और चोरी की संपत्ति के प्राप्तकर्ता हैं। इसलिए मुख्य अपराधी इस धारा के दायरे से बाहर हैं। तदनुसार मुख्य अपराधी की दोषसिद्धि भी इस धारा के अंतर्गत चोरी की गई संपत्ति के प्राप्तकर्ता की दोषसिद्धि के लिए पूर्वापेक्षित नहीं है।"

21. त्रियम्बक बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1954 एससी 39 में, सर्वोच्च न्यायालय (न्यायमूर्ति मेहर चंद्र महाजन के अनुसार) ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 411 भा0दं0सं0 के तहत दोष साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा:

"5. (1) कि चोरी की गई संपत्ति अभियुक्त के कब्जे में थी, (2) कि अभियुक्त के

कब्जे में आने से पहले अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के पास संपत्ति का कब्जा था, और (3) कि अभियुक्त को पता था कि संपत्ति चोरी की गई संपत्ति थी..."

22. पीडब्लू 5 कांस्टेबल चक्की लाल ने शपथ पर बयान दिया कि दिनांक 26.12.1988 को प्रातः 5.10 बजे वह थाना प्रभारी श्री सुखविंदर सिंह व अन्य कांस्टेबलों के साथ क्षेत्र का चक्कर लगा रहा था। जब पुलिस पार्टी थाने लौट रही थी और लालपुर मोड़ पर पहुंची तो वह लालपुर मोड़ पर पहुंच गया। कठेरिया के नेतृत्व में पुलिस पार्टी ने एक व्यक्ति को रिंद नदी की तरफ से आते देखा। उस व्यक्ति को देखकर थाना प्रभारी ने उससे पूछताछ की तो वह पीछे की ओर भागने लगा। पुलिस पार्टी ने उसका पीछा करके करीब 5.10 बजे उसे पकड़ लिया। पूछताछ करने पर उसने अपना नाम फूलचंद्र बताया। तलाशी लेने पर उसके पास से एक देशी तमंचा व दो कारतूस बरामद हुए। उसके पास एक थैला था जिसमें से दो सूती साड़ियां, दो रजाई के कवर व एक कपड़ा बरामद हुआ। बरामद सामान को अलग-अलग सीलबंद लिफाफों में रखा गया था तथा एसआई सुखविंदर सिंह के निर्देश पर मौके पर ही रिकवरी मेमो तैयार किया गया तथा गवाहों के हस्ताक्षर लिए गए। एक सीलबंद बंडल को खोला गया जिसमें दो सूती साड़ियां, दो रजाई के कवर व एक कपड़ा मिला जो अभियुक्त फूलचंद्र के कब्जे से बरामद हुआ। ये सामान (सामग्री प्रदर्श 1 से 5) हैं। अभियुक्त को बरामद सामान सहित थाने लाया गया जहां उसके विरुद्ध मामला दर्ज किया गया। बचाव

पक्ष द्वारा पी.डब्लू.5 कांस्टेबल चक्की लाल से जिरह नहीं की गई।

23. अपीलकर्ता अभियुक्त चन्द्र की गिरफ्तारी और चोरी हुए रजाई-कवर, साड़ियों और कपड़े की बरामदगी भी पीडब्लू 7 एसआई सुखविंदर सिंह की गवाही से साबित हुई है, जिन्होंने अपीलार्थी अभियुक्त फूल चन्द्र को गिरफ्तार किया था और उसके कब्जे से उपरोक्त सामान बरामद किया था। उन्होंने अपीलार्थी की गिरफ्तारी से संबंधित रिकवरी मेमो और चोरी की संपत्ति की रिकवरी मेमो (प्रदर्श क-4) साबित कर दिया है। उन्होंने उन सामानों को भी साबित कर दिया है, यानी दो रजाई-कवर, दो सूती साड़ियाँ और एक अन्य कपड़ा, जो अपीलार्थी अभियुक्त के कब्जे से बरामद किया गया था (सामग्री प्रदर्श 1 से 5)। पीडब्लू 7 सुखविंदर सिंह ने अपनी गवाही से अपीलार्थी अभियुक्त फूल चन्द्र की गिरफ्तारी को भी साबित कर दिया है, जो उपरोक्त सामानों से भरा एक बैग ले जा रहा था। पीडब्लू 3 मुरलीधर, सूचक ने उपरोक्त सामानों (सामग्री प्रदर्श 1 से 5) की पहचान उसके घर से चोरी हुए के रूप में की है। पी.डब्ल्यू.3 मुरलीधर, पी.डब्ल्यू.5 चक्की लाल और पी.डब्ल्यू.7 सुखविन्दर सिंह की जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आया, जिससे अपीलार्थी अभियुक्त फूल चन्द्र के कब्जे से चोरी हुए माल की बरामदगी के संबंध में उनके साक्ष्य पर संदेह उत्पन्न हो।

24. पी.डब्ल्यू 5 चक्की लाल के साक्ष्य को अपीलकर्ता अभियुक्त की ओर से उसकी जिरह में चुनौती नहीं दी गई है। उसके साक्ष्य की

पुष्टि पीडब्लू 7 एसआई सुखविंदर सिंह के साक्ष्य से हुई है। सूचनाकर्ता मुरलीधर एक फेरीवाला था जो कपड़े लेकर सड़कों पर बेचता था। अपीलकर्ता अभियुक्त के कब्जे से बरामद की गई वस्तुएं नए कपड़े थे। अपीलकर्ता अभियुक्त ने उन वस्तुओं के स्वामित्व का दावा नहीं किया है।

25. इन वस्तुओं को सूचक मुरलीधर, सुख नंदन और कल्लू जो सूचक मुरलीधर का भाई है, ने पहचान मजिस्ट्रेट, पीडब्लू 6 सूरज भान श्रीवास्तव द्वारा आयोजित पहचान परीक्षण कार्यवाही में पहचाना था, इसलिए विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता अभियुक्त फूल चंद्र को धारा 411 भा0दं0सं0 के तहत आरोप के लिए सही ठहराया है।

26. कानून और साक्ष्य की उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे साबित कर दिया है कि अपीलकर्ता अभियुक्त फूल चंद्र के कब्जे से दो रजाई के कवर, दो साड़ियाँ और एक कपड़ा (सामग्री प्रदर्श 1 से 5) वाला एक बैग बरामद किया गया था। उसने इन सामग्रियों को अपने कब्जे में रखा था, यह जानते हुए कि वे चोरी की संपत्ति हैं। धारा 411 भा0दं0सं0 के तहत अपीलकर्ता अभियुक्त की सजा के खिलाफ अपील में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है।

27. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अपीलकर्ता अभियुक्त एक गरीब व्यक्ति है। अपीलकर्ता से चोरी की गई संपत्ति की कथित बरामदगी लगभग पैंतीस वर्ष पहले

हुई थी। अपीलकर्ता अभियुक्त के नाम पर कोई आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है। वर्तमान आपराधिक मामले के बाद, अपीलकर्ता अभियुक्त के खिलाफ कोई अन्य आपराधिक मामला दर्ज नहीं है। अपीलकर्ता को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जा सकता है और उसे परिवीक्षा पर रिहा किया जा सकता है।

28. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने अपीलार्थी अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिए जाने का विरोध किया है, लेकिन वह इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि अपीलार्थी अभियुक्त का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वर्तमान आपराधिक मामले के बाद उसके खिलाफ कोई अन्य आपराधिक मामला दर्ज नहीं किया गया था।

29. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 इस प्रकार है:

"4. न्यायालय की कुछ अपराधियों को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने की शक्ति।-(1) जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उसकी राय है कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है, उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ना समीचीन है, तब न्यायालय, उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के

होते हुए भी, उसे किसी दंड की तत्काल सजा देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे जमानतदारों सहित या रहित, ऐसी अवधि के दौरान, जो न्यायालय निर्देशित करे, बुलाए जाने पर उपस्थित होने और दंड प्राप्त करने के लिए, और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे आचरण का पालन करने के लिए बांड पर रिहा कर दिया जाए:

परन्तु न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसके प्रतिभू, यदि कोई हो, का उस स्थान पर निश्चित निवास स्थान या नियमित व्यवसाय है जिस पर न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करता है या जहां अपराधी उस अवधि के दौरान रहने की संभावना रखता है जिसके लिए वह बंधपत्र देता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश देने से पूर्व न्यायालय मामले के संबंध में संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

(3) जब उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश दिया जाता है, तब न्यायालय, यदि उसकी यह राय है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है, तो इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकेगा

जिसमें यह निर्देश दिया जाएगा कि अपराधी, आदेश में निर्दिष्ट अवधि के दौरान, जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में रहेगा और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकेगा जो वह अपराधी के सम्यक् पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझे।

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी से, उसके छोड़े जाने के पूर्व, प्रतिभूओं सहित या रहित, बंधपत्र में प्रवेश करने की अपेक्षा करेगा, कि वह ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों का पालन करेगा और निवास, मादक द्रव्यों से परहेज या किसी अन्य मामले के संबंध में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन करेगा, जिन्हें न्यायालय, विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के कारित होने से रोकने के लिए अधिरोपित करना ठीक समझे।

(5) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश की शर्तों और निबंधनों को स्पष्ट करेगा तथा पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति प्रत्येक अपराधी, जमानतदारों, यदि कोई हो, तथा संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तत्काल उपलब्ध कराएगा।"

30. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360
दंडप्र0सं0 में भी ऐसा ही प्रावधान है:

"360. अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर या चेतावनी के बाद रिहा करने का आदेश।

(1) जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का नहीं है, किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है जो केवल जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम की अवधि के कारावास से दंडनीय है, या जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का है या कोई महिला किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध की जाती है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, यदि उस न्यायालय को, जिसके समक्ष उसे दोषसिद्ध किया जाता है, अपराधी की आयु, चरित्र या पूर्ववृत्त को, और उन परिस्थितियों को, जिनमें अपराध किया गया था, ध्यान में रखते हुए प्रतीत होता है कि अपराधी को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ा जाना समीचीन है, तो न्यायालय उसे तुरन्त कोई दंड देने के बजाय निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभुओं सहित या रहित बंधपत्र पर रिहा कर दिया जाए, कि वह ऐसी अवधि के दौरान (तीन वर्ष से अधिक नहीं) जैसा कि न्यायालय निर्देश दे, बुलाए जाने पर उपस्थित हो और दंडादेश प्राप्त करे और इस बीच शांति बनाए रखे तथा अच्छा आचरण करे:

परन्तु जहां किसी प्रथम अपराधी को द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा दोषसिद्ध किया जाता है, जो उच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से सशक्त नहीं है, और मजिस्ट्रेट की यह राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, वहां वह उस आशय की अपनी राय अभिलिखित करेगा, और कार्यवाही को प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करेगा, तथा अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा, या उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए जमानत लेगा, जो उपधारा (2) द्वारा उपबंधित रीति से मामले का निस्तारण करेगा।

(2) जहां कार्यवाही उपधारा (1) के उपबंध के अनुसार प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, वहां ऐसा मजिस्ट्रेट उस पर ऐसा दंडादेश पारित कर सकता है या ऐसा आदेश दे सकता है जैसा वह पारित कर सकता था या दे सकता था, यदि मामले की मूलतः उसके द्वारा सुनवाई की गई होती और यदि वह किसी बिंदु पर आगे जांच या अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक समझता है तो वह स्वयं ऐसी जांच कर सकता है या ऐसा साक्ष्य ले सकता है या ऐसी जांच या साक्ष्य किए जाने या लिए जाने का निर्देश दे सकता है।

(3) किसी ऐसे मामले में जिसमें किसी व्यक्ति को चोरी, भवन में

चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोजन या धोखाधड़ी या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन किसी अपराध के लिए, जो दो वर्ष से अधिक कारावास से दंडनीय नहीं है या केवल जुर्माने से दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, तो वह न्यायालय जिसके समक्ष उसे इस प्रकार दोषसिद्ध किया गया है, यदि वह अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति को और अपराध की तुच्छ प्रकृति को या अपराध को अंजाम देने वाली किन्हीं उपशमनकारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ठीक समझे, उसे कोई दंड देने के बजाय, उसे सम्यक चेतावनी के बाद रिहा कर सकता है।

(4) इस धारा के अधीन कोई आदेश किसी अपील न्यायालय या उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय किया जा सकेगा।

(5) जब किसी अपराधी के संबंध में इस धारा के अधीन कोई आदेश दिया गया है, तब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, अपील पर, जब ऐसे न्यायालय में अपील का अधिकार है, या अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय, ऐसे आदेश को अपास्त कर सकेगा और उसके बदले में ऐसे

अपराधी पर विधि के अनुसार दंडादेश पारित कर सकेगा: परंतु उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय इस उपधारा के अधीन उससे अधिक दंड नहीं देगा, जो उस न्यायालय द्वारा दिया जा सकता था, जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया था।

(6) धारा 121, 124 और 373 के उपबंध, जहां तक हो सके, इस धारा के उपबंधों के अनुसरण में प्रस्तुत किए गए जमानतों के मामले में लागू होंगे।

(7) न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन अपराधी को छोड़ने का निर्देश देने से पूर्व, यह समाधान कर लेगा कि अपराधी या उसके प्रतिभू (यदि कोई हो) का उस स्थान पर, जिसके लिए न्यायालय कार्य करता है या जिसमें अपराधी के शर्तों के पालन के लिए नामित अवधि के दौरान रहने की संभावना है, निश्चित निवास स्थान या नियमित व्यवसाय है।

(8) यदि वह न्यायालय, जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया है, या वह न्यायालय, जो अपराधी के साथ उसके मूल अपराध के संबंध में व्यवहार कर सकता था, यह समाधान हो जाता है कि अपराधी अपनी पहचान की किसी शर्त का पालन करने में असफल रहा है, तो

वह उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर सकता है।

(9) जब कोई अपराधी ऐसे किसी वारंट पर पकड़ा जाता है तो उसे तुरन्त वारंट जारी करने वाले न्यायालय के समक्ष लाया जाएगा और ऐसा न्यायालय या तो मामले की सुनवाई होने तक उसे हिरासत में भेज सकता है या उसे दंड के लिए उपस्थित होने की शर्त पर पर्याप्त प्रतिभू के साथ जमानत दे सकता है और ऐसा न्यायालय मामले की सुनवाई के पश्चात दंडादेश पारित कर सकता है।

(10) इस धारा की कोई बात अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20) या बालक अधिनियम, 1960 (1960 का 60) या युवा अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून के उपबंधों पर प्रभाव नहीं डालेगी।"

31. ये वैधानिक प्रावधान बहुत ही जोरदार तरीके से सजा के सुधारात्मक और सुधारात्मक उद्देश्य को निर्धारित करते हैं और विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय अदालतों को कानून के तहत उचित मामलों में परिवीक्षा का लाभ देने के लिए बाध्य करते हैं। दुर्भाग्य से, कानून की इस शाखा का न्यायालयों द्वारा बहुत अधिक उपयोग नहीं किया गया है। यह हमारे न्याय प्रशासन की प्रणाली में अधिक

प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाता है, जहां अक्सर लंबे समय के बाद सुनवाई पूरी होती है और जब तक निर्णय अंतिम रूप लेता है, तब तक सजा देने का उद्देश्य ही अपनी प्रभावशीलता खो देता है क्योंकि समय बीतने के साथ दंडात्मक और सामाजिक प्राथमिकताएं बदल जाती हैं और कारावास की सजा देने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है, खासकर तब जब शामिल अपराध गंभीर न हो और अभियुक्त व्यक्तियों का कोई आपराधिक इतिहास न हो। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और इसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसलिए, प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से वह किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे।

32. सुभाष चन्द एंव अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य, 2015 लॉसूट (इलाहाबाद) 1343 के मामले में , इस न्यायालय ने परिवीक्षा कानून को लागू करने और उचित मामलों में आरोपी व्यक्तियों को लाभकारी कानून का लाभ देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लाभकारी कानून की अनदेखी की गई है और यहां तक कि न्यायाधीश भी कानून के इस

प्रावधान को लगभग भूल चुके हैं। इसलिए, मामले से अलग होने से पहले, इस न्यायालय को लगता है कि यदि विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालयों के लिए चेतावनी का एक शब्द नहीं लिखा गया तो मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल हो जाऊंगा। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को प्रसारित करें, जो बदले में अपने अधीन काम करने वाले सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच इस आदेश की प्रति का प्रसार सुनिश्चित करेंगे और इस निर्णय का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। राज्य के जिला न्यायाधीशों को भी निर्देश दिया जाता है कि वे ऐसे मामलों से निपटने वाले सभी न्यायालयों, यानी विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालयों से हर महीने रिपोर्ट मांगें और बताएं कि कितने मामलों में अभियुक्तों को उपरोक्त प्रावधानों का लाभ दिया गया है। जिला न्यायाधीशों को प्रत्येक मासिक बैठक में व्यक्तिगत रूप से ऐसे मामलों की निगरानी करने का भी निर्देश दिया जाता है। संबंधित जिला न्यायाधीश रजिस्ट्रार जनरल को मासिक विवरण भेजेंगे कि कितने मामलों में विचारण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय ने उपरोक्त का लाभ दिया है। अभियुक्तों के लिए लाभकारी कानून बनाने के लिए इस आदेश की एक प्रति तत्काल अनुपालन के लिए रजिस्ट्रार जनरल के समक्ष रखी जाए।"

33. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अतिरिक्त, यह न्यायालय यह पाता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद एवं**

अन्य (2004) 7 एससीसी 659 के मामले में अभियुक्तों को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ देते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"आरोपी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि घटना वर्ष 1990 की है। पक्षकार शिक्षित और पढ़ोसी हैं। इसलिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। दुर्घटना दस वर्ष से अधिक पुरानी है। पढ़ोसियों के बीच जल निकासी के दावे के एक तुच्छ मुद्दे पर विवाद था। दुर्घटना गुस्से में हुई। सभी पक्ष शिक्षित और दूर के रिश्तेदार भी हैं। घटना ऐसी नहीं है कि अभियुक्त को कारावास की सजा भुगतनी पड़े। हमारी राय में, यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें अभियुक्त को अच्छे आचरण के लिए एक वर्ष का बांड निष्पादित करने का निर्देश देकर परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।"

34. इसी प्रकार, **जगत पाल सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2000 एससी 3622** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 323, 452, 506 भा0दं0सं0 के तहत आरोपी व्यक्तियों की सजा को बरकरार रखते हुए परिवीक्षा का लाभ दिया है और छह महीने की अवधि के लिए अच्छे आचरण और शांति बनाए रखने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष बांड निष्पादित करने पर आरोपी व्यक्तियों को रिहा कर दिया है।

5. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मुझे अवर न्यायालय के विवादित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या अनुचितता या कोई अधिकार क्षेत्र संबंधी त्रुटि नहीं दिखती। धारा 411 भा0दं0सं0 के तहत विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज की गई सजा बरकरार रखी जाती है और इसमें बदलाव की आवश्यकता नहीं है।

36. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तथा ऊपर वर्णित कानून की स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा यह देखते हुए कि घटना लगभग 35 वर्ष पहले घटित हुई थी तथा अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 और 5 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता अभियुक्त फूल चंद्र को अधिनियम की धारा 4 (1) के अंतर्गत 20,000/- (बीस हजार रुपये) के व्यक्तिगत बंधपत्र तथा समान राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर एक वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर रिहा किया जाए। इस अवधि के दौरान, वह अच्छा आचरण बनाए रखेगा तथा शांति बनाए रखेगा तथा इस शर्त का उल्लंघन करने पर, वह दंड प्राप्त करने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा।

37. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, आपराधिक अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

38. इस आदेश की प्रमाणित प्रति अभिलेख सहित अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को प्रेषित की जाए।

(2023) 4 ILRA 966

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,
माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी

आपराधिक अपील संख्या 4548 / 2015

देव शरण और अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राजेश कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 149 और 302 - दंड संहिता प्रक्रिया, 1973- धारा 313- विचारणीय न्यायालय ने दोषी ठहराया - आजीवन कारावास सजा के खिलाफ अपील - एफआईआर के अनुसार - मृतका की शादी अपीलकर्ता के बेटे से हुई थी, पारिवारिक विवाद था - घटना की तारीख को, मृतका शिकायत दर्ज करने के लिए पुलिस स्टेशन गई थी - वापस लौटने पर, ससुर, सास, ननद और देवर ने उसे पकड़ लिया, उसे देवर ने आग लगा दी - मृतका की शादी लगभग 10 साल पहले हुई थी - घटना के समय मृतका का पति उपस्थित नहीं था- परिवार के मध्य बंटवारे को लेकर झगड़ा था, उसे शारीरिक रूप से पीटा गया था - घटना के दस दिनों के बाद, 20.5.2012 को एक मृत्युपूर्व बयान दर्ज किया गया - दिनांक 20.6.2012 को एफआईआर दर्ज की गई - आरोप तय किए गए - आयोजित, आरोपी द्वारा की गई मौत पूर्व

नियोजित नहीं थी, अभियुक्त को मृतक की मृत्यु कारित करने का कोई आशय नहीं था - मृतक की चोटें सामान्य प्रकृति के अनुसार मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं - इसलिए, मृत्यु सेप्टीसीमिया के कारण हुई थी - यह अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के अंतर्गत नहीं है, बल्कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304(I) के अंतर्गत गैर इरादतन हत्या है - सजा और जुर्माना तदनुसार किया गया - तथानुसार निर्देश पारित किए गए (पैरा 2, 3, 4, 20, 24)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. कोंकण @ खोखन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2021 लॉसूट (SC) 80
2. बनारसी दास & अन्य बनाम हरियाणा राज्य
3. भद्रगिरी वेंकट रवि बनाम सरकारी वकील उच्च न्यायालय, ए.पी., हैदराबाद, (2013) 0 सर्वोच्च (एससी) 511
4. सुरिंदर कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2011 मुकदमा (एससी) 1149
5. अरविंद सिंह बनाम बिहार राज्य, 2001 (3) सुप्रीम 570
6. कश्मीरा देवी बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, (2020) 11 एससीसी 343
7. श्रीमती रमा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2018) 102 एससीआरसी 105
8. मिसरी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2017) 7 एडीजे 14
9. संजय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2016) 3 एससीसी 62

10. मनोज कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2019) 1 एडीजे 221
 11. तुकाराम एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 4 एससीसी 250 में रिपोर्ट किया गया
 12. बी.एन. कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304
 13. वीरन व अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 5 एससीआर 300
 14. गौतम मनुभाई मकवाना बनाम गुजरात (आपराधिक अपील संख्या 83/2008)
 15. अनवरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एससीसी 12
 16. पर्वत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एससीसी 529
 17. परदेशीराम बनाम एम.पी. राज्य, (2021) 3 एससीसी 238
- (माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश अदालत सं0 24 शाहजहाँपुर, के द्वारा सत्र परीक्षण सं0 13/2013 में 03.09.2015 को दिये गये निर्णय एवं आदेश को चुनौती देने के लिए की गयी है, जिसमें आरोपी याचिका कर्ता को 302/149 भारतीय दण्ड संहिता 1860 के तहत दोषी पाया गया है और उनको आजीवन कारावास में रहने और 5000 (पांच) हजार रू0 अर्थदण्ड की सजा सुनायी गयी है और यदि अर्थदण्ड देने में कोई चूक होती है तो छः महीने की अतिरिक्त सजा भुगतनी होगी।

2. अभिलेख और निचली अदालत के दिये गये फैसले से यह तथ्यात्मक परिदृश्य सामने आया है कि मृतका नीलू की शादी देव सरन के बेटे से हुई थी और पारिवारिक विवाद चल रहा था और घटना के दिन मृतका थाने पर शिकायत दर्ज कराने गयी थी, जैसे ही मृतका थाने से लौटी, ससुर, सास, ननद, और देवर ने मिलकर उसे पकड़ लिया और गौतम (देवर) ने उसे आग लगा दिया। मृतका की शादी घटना से लगभग दस वर्ष पूर्व हुई थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट के मुताबिक मृतका का पति घटना के वक्त घर पर मौजूद नहीं था। परिवार के बीच में बटवारों को लेकर भी झगडा होता था और गौतम एवं सुभाष उसे मारते पीटते थे। ससुर देव सरन उसे अस्पताल ले गया जहां 19.05.2012 से उसका इलाज शुरू हुआ। और 28.05.2012 को उसकी मृत्यु हो गयी, घटना के दस दिन बाद दिनांक 20.05.2012 को मृत्युपूर्व बयान दर्ज किया गया और एक महीने बाद दिनांक 20.06.2012 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी ।

3. जांच तेजी से चली। विभिन्न लोगों के बयान दर्ज करने के बाद जांच अधिकारी ने आरोपी-याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया। विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया जिसे उन्होंने, विद्वान सत्र न्यायालय के सामने प्रस्तुत कर दिया। विद्वान सरकारी अधिवक्ता और अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोप तय किये।

4. तलब किये जाने पर अभियुक्त ने खुद को निर्दोष बताते हुए मुकदमा जारी रखने की मांग की इसलिए मुकदमा शुरू किया गया और अभियोजन पक्ष ने 6 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार है।

1.	हरी ओम मिश्रा	पी0डब्लू0 1
2.	श्रीमती सुमन	पी0डब्लू0 2
3.	रोहित	पी0डब्लू0 3
4.	डा0 नैपाल सिंह	पी0डब्लू0 4
5.	सुधीर कुमार सोनी	पी0डब्लू0 5
6.	धीरेन्द्र कुमार सिंह	पी0डब्लू0 6

5. चश्मदीद गवाहों के बयानों के समर्थन में निम्न दस्तावेज प्रस्तुत किए गए:-

1.	प्रथम सूचना रिपोर्ट	एक्स का 10
2.	लिखित रिपोर्ट	एक्स का 1
3.	मृत्यु कालिक कथन	एक्स का 7
4.	पोस्टमार्टम रिपोर्ट	एक्स का 2
5.	पंचायतनामा	एक्स का 3
6.	आरोप पत्र	एक्स का 9
7.	नक्शा नजरी सूची के साथ	एक्स का 8

6. सी0आर0पी0सी0 की धारा 313 के तहत अभियुक्तों का बयान दर्ज करने और अभियोजन एवं बचाव पक्ष को दलीले सुनने के बाद मुकदमें के अन्त में विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया।

7. अभियुक्त याचिकाकर्ताओं के विद्वान के वकील एवं विद्वान सरकारी अधिवक्ता (ए0जी0ए0) को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

8. अभियुक्त अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कथन किया गया कि अभियुक्त बहुत लम्बे समय से जेल में है घटना 19.05.2012 को लगभग 08:30 बजे रात्रि में घटी और मृतका की मृत्यु 28.05.2012 को यानी घटना के 12 दिनों बाद हुई। मृत्यु कालिक कथन 20.05.2012 को दर्ज किया गया जिसमें यह कहा गया कि ससुर देव सरन ने मृतका को अस्पताल में भर्ती कराया था। मृत्युकालिक बयान तहसीलदार द्वारा दर्ज किया गया था और डाक्टर के सामने कोई मृत्युकालिक बयान नहीं दर्ज किया गया। मृत्युकालिक बयान को देखने से यह स्पष्ट होता है कि घटना के वक्त मृतका का पति घर पर नहीं मौजूद था और देवर जो अभी जेल में है उसने दुराचार की कोशिश की थी। गवाहों के साक्ष्यों को देखते समय पी0डब्लू0 1 जो कि मृतका का पिता है, शपथ लेते हुए कहा कि जब वह रात 08:30 बजे पहुंचे तो उनकी बेटी ने संक्षेप में सारी घटना बतायी और वह पी0डब्लू0 2 की जिरह में सफल रहा।

9. यह बिल्कुल स्पष्ट है कि ससुर ने पी0डब्लू0 1 के दामाद यानि मृतका के पति को कुछ नहीं दिया। और घर में उस कमरे के सम्बन्ध में हमेशा विवाद होता था जिसे मृतका और उसके पति को दिया जा रहा था।

10. यह कथन किया गया की प्रथम सूचना रिपोर्ट देरी से दर्ज करायी गयी और इसका उचित कारण यह बताया गया कि वह अपनी बेटी (जिसको जला दिया गया था) की देखभाल कर रहा था। इसलिए वह ए0आई0आर0 समय से नहीं दर्ज करा सका। मृतका की मा ने भी

यह कथन किया कि मृतका की शादी घटना से लगभग 10 वर्ष पूर्व हुई थी और इस विवाह से 3 व 4 साल के दो बच्चे हैं। चिकित्सीय साक्ष्य एवं गवाहों के साक्ष्य से पता चलता है कि यह एक मानव वध है।

11. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से कहा कि (कथन) किया कि मृत्युकालिक बयान विश्वास करने लायक नहीं है। और यह तथ्यों से स्पष्ट है कि मृतका की मृत्यु सेप्टीसीमिया से हुई थी।

12. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह कथन किया कि ज्यादातर गवाह अपने बयान से मुकर गये हैं, इसके बावजूद विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उन्हें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302/149 के तहत दोषी ठहराया है। जहां तक धारा 147 आई0पी0सी0 के तहत दोषसिद्ध का सवाल है तो, उन्होंने कारावास की अवधि पूरी करी ली है।

13. अपने कथन के समर्थन में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने खोकन उर्फ खोखन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़, राज्य 2021 लासूट (एस0सी0) 80, बनारसी दास व अन्य बनाम हरियाणा राज्य, भद्रगिरि वेंकट रवि बनाम लोक अभियोजक आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद (2013) सुप्रीम (एस0सी0)511 सुरिन्दर कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2011 लासूट (एस0सी0) 1149, अरविन्द सिंह बनाम बिहार राज्य, 2001 (3) सुप्रीम 570 कश्मीर देवी बनाम उत्तराखण्ड राज्य, और अन्य (2020) 11 एस0सी0सी0 343, श्रीमती रमा देवी बनाम उ0प्र0 राज्य, (2018) 102 ए0सी0आर0सी0 105, मिश्रि लाल बनाम

30प्र0 राज्य, (2017) 7 एडीजे 14, संजय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 3 एस0सी0सी0 62, मनोज कुमार बनाम यू0पी0 राज्य, (2019) एडीजे 221 पर भरोसा किया आगे यह कथन किया गया कि अधिकतम सजा आई0पी0सी0 के धारा 304 । या 304II के अन्तर्गत हो सकती है। जैसा कि अभियुक्तगण काफी लम्बे समय से जेल में बन्द है तो यदि न्यायालय को उचित प्रतीत हो तो उन्हें निश्चित अवधि की कारावास की सजा दी जा सकती है।

14. विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने दृढतापूर्वक कथन किया कि इस मामले के तथ्य न्यायालय को सजा को बदलकर धारा 304 भाग- I के तहत, सजा देने की अनुमति नहीं देगा क्योंकि अभियुक्त अपीलकर्ता द्वारा भरोसा किया गया कोई भी निर्णय इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता।

15. विद्वान न्यायाधीश ने डा0 नैपाल सिंह की गवाही पर स्पष्ट रूप से भरोसा किया है और उनकी राय है कि वह (मृतका) की मृत्यु सेप्टीसिमिया से हुई थी। मृतका ने अपने मृत्युकालिक बयान में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया था कि आरोपी ने उसे जलाने की कोशिश की थी। धारा 147 आई0पी0सी0 की सजा की अवधि खत्म (पूरी) हो चुकी है। इसलिए हम उस पर ध्यान नहीं दे रहे हैं जहां तक आई0पी0सी0 की धारा 302/149 का सवाल है विद्वान सत्र न्यायाधीश के निष्कर्ष के अनुसार, घटना झगड़े के कारण हुई और मृत्यु सेप्टीसिमिया के कारण, इस निष्कर्ष पर

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भारी भरोसा जताया।

16. गवाहों के साक्ष्यों, पोस्टमार्टम रिपोर्ट और चिकित्सीय साक्ष्यों को ध्यान रखते हुए, हमारे मन में वर्तमान अपीलकर्ता के अपराध के बारे में कोई संदेह नहीं रह गया है।

17. हालांकि प्रश्न जो हमारे विचार करने योग्य है वह यह कि क्या मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के पुर्नमुल्याकन पर अपीलकर्ता को धारा 302/149 भा0द0स0 1860 के तहत दोषी ठहराया जाना बरकरार रखना चाहिए या दोषसिद्ध को (सजा को) भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304 भाग- I या 304 भाग- II में बदल दिया जाना चाहिए। यहा भा0द0स0 की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है।

299 गैर इरादतन मानव वध:- जो कारित करने के आशय से या ऐसी शर्त करने के आशय से जिससे मृत्यु कारित सम्भावना हो या यह जानते हुए कि ऐ मृत्यु कारित होने की सम्भावना है, करके मृत्यु कारित करता है। गैर इरादत का अपराध करता है।“

18. 'हत्या' और गैर इरादतन हत्या के बीच अकादमिक अन्तर ने हमेशा से न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा प्रयुक्त शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को भूलकर स्वयं को सूक्ष्म कपोल कल्पनाओं में खींच जाने देते हैं। इन प्रावधानों की सटीक

व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए हमें धारा 299 व 300 भा0द0स0 के विभिन्न खण्डों में उपयोग किये गये सूचक शब्दों को ध्यान में रखना होगा। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनो अपराधों के बीच के अन्तर के बिन्दुओं को समझने में सहायक होगा-

धारा 299	धारा 300
एक व्यक्ति गैर इरादतन हत्या का अपराध कारित करता है यदि उसके द्वारा किये गये कार्य से मृत्यु कारित होती है।	कुछ अपवादों के अधीन गैर इरादतन हत्या हत्या है वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित होती है।

शारीरिक चोट लगने की पूरी संभावना है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम जिसेस मौत होना लग रहा हो और बिना किसी बहाने के मृत्यु कारित कर देता है या ऐसी चोट जैसा कि उपर उल्लेखित है।
--

इरादा

(ए) मौत कारित करने के इरादे से या	1. मृत्यु कारित करने के इरादे से या
बी. ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो, या	2. ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिसके बारे में अपराधी को पता हो कि इससे व्यक्ति की मृत्यु होने की सम्भावना है जिसको चोट पहुंचायी गयी है।
ज्ञान	ज्ञान
(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने कि संभावना है।	4. इस ज्ञान के साथ कि यह कृत्य तुरंत इतना खतरनाक है कि इससे मृत्यु या ऐसी

19. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को चिकित्सा अधिकारी की राय को साथ मिलाकर समग्र जांच पर और **तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य 2011 4 एस0सी0सी0 250** के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धान्त पर विचार करने और **बी0एन0 कावात्कर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य 1994 एस0यू0पी0पी0 (1) एस0सी0सी0 304** के मामले को साथ देखने के बाद हमारी एकमत राय है कि अपराध भा0द0स0 की धारा 304 भाग-1 के तहत दण्डनीय होगा।

20. उपरोक्त चर्चाओं के निष्कर्षों से ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा कि गयी मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त का मृतका की मृत्यु कारित करने का कोई इरादा नहीं था यद्यपि चोटे सामान्य अनुक्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी, अभियुक्त का मृतका को खत्म करने का कोठ

इरादा नहीं था। इसलिए यह मामला भा0द0स0 की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अन्तर्गत आता है। जैसा कि उपर दिया गया है, धारा 299 पर विचार करने व सर्वोच्च न्यायालय की वीरन और अन्य बनाम म0प्र0 राज्य निर्णीत (2011) 5 ए0सी0आर0 300 में कि गयी टिपपणियों के अनुसार, किया गया अपराध धारा 300 भाग- 1 के अन्तर्गत आयेगा।

21. हम गुजरात उच्च न्यायालय के 11.09.2013 को अपराधिक अपील संख्या 83 (गौतम मनुभाई मकवाना बनाम गुजरात राज्य) में दिये गये फैसलें पर सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकते हैं। जिसमें न्यायालय में निम्न निर्णय दिया:-

12. वास्तव में (2013) 3 एससीसी 280 में रिपोर्ट किये गये कृष्णन बनाम हरियाणा राज्य के मामले में शीर्ष अदालत ने माना है कि यह कानून का पूर्ण सिद्धान्त नहीं है कि मरने से पूर्व दिया गया बयान दोषसिद्ध का एकमात्र आधार नहीं बन सकता। जहां मृत्युकालिक बयान सत्य और सही है, सम्बन्धित परिस्थितियां इसे विश्वसनीय दिखाती हैं, इसे कानून के अनुसार दर्ज किया गया हो, मृतक ने अपनी मर्जी से एवं डाक्टर द्वारा, मन और शरीर से सम्बन्धित उचित प्रमाणीकरण के बाद मृत्युकालिक बयान कराया हो तो यह जरूरी नहीं है कि अदालत उस बयान की संपुष्टि करे। ऐसे मामलों में मृत्युकालिक बयान ही आरोपी की सजा का आधार बन सकता है। लेकिन जब मृत्युकालिक बयान को संदिग्ध

परिस्थितियों में लिया गया हो और कानून रूप से और निर्धारित प्रक्रियाओं और प्रथाओं के अनुसार नहीं दर्ज किया गया है वहां अदालत को बयान की संपुष्टि करना आवश्यक हो जाता है।

13. हालांकि मृतक द्वारा दी गयी शिकायत और कार्यवाही मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किया गया मृत्यु पूर्व बयान तथा डाक्टर के समक्ष का इतिहास सुसंगत और भरोसेमंद प्रतीत होता है। इसे गवाहों के साक्ष्य और मेडिकल रिपोर्ट के साथ-साथ पंचानामों से भी विधिवत पुष्ट किया गया है और यह स्पष्ट है कि मृतक की मृत्यु अपीलकर्ताओं के कृत्य (मिट्टी का तेल छिड़कर उसे आग लगा देना) हुई। हमने पाया कि मृत्युकालिक बयान पर भरोसा किया जा सकता है।

14. हालांकि हमने इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया है कि मृतक की मृत्यु इलाज के एक महीने बाद हुई है। मेडिकल रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि मृतक सेप्टीसीमिया से पीड़ित था, जो उसे अत्यधिक जलने के कारण हुआ था।

15. शीर्ष अदालत ने इसी तरह के एक समान मामले बी0एन0 कावातकर और एक अन्य (सुप्रा) में जहां मृतक की घटना के घटित होने के पांच दिन बाद अस्पताल में ही सेप्टीसिमिया से मौत हो जाती है। अपराध की सजा धारा 302 की जगह बदलकर 326 कर दी और सजा भी संशोधित कर दिया।

15.1- इसी प्रकार मनिबेन (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्न टिप्पणी की:-

18. मृतक को 60 प्रति जले हुए घाव के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया और उपचार के दौरान उसे सेप्टीसिमिया हो गया, जो मृतक की मृत्यु का मुख्य कारण बना। अतः यह स्पष्ट हो गया कि इलाज की 8 दिनों की अवधि के दौरान ही उसकी चोटे इतनी बढ़ गयी और पक गयी कि चोट के जहरीले प्रभाव से उसकी मृत्यु हो गयी।

19. मृतका के मृत्युकालिक कथन से यह स्पष्ट होता है कि वह विगत कई वर्षों से अपनी सास, (वर्तमान अपीलकर्ता) से अलग रहती थी और घटना के दिन उसकी लडाई अपीलकर्ता से उसी के घर पर हुई थी, उपलब्ध दस्तावेजों से यह भी स्पष्ट है कि लडाई के तुरन्त बाद वह अपनी बेटी के साथ पानी लेने आयी थी और वापस लौट रही थी, तभी अपीलकर्ता ने आकर मृतका के कपडे पर जलता हुआ टान्सिल फेंक दिया। चूंकि उस समय मृतका ने टेरीलीन का कपडा पहना हुआ था इससे आग बढ़ गयी और वह झुलस गयी।

20. यह साबित करने और स्थापित करने को रिकार्ड पर सबूत भी है कि अपीलकर्ता द्वारा जलता हुआ टान्सिल फेकने से पहले मृतका और अपीलकर्ता के बीच में झगडा हुआ था। रिकार्ड

पर उपलब्ध साक्ष्यों से यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता का मृत्यु कारित करने का कोई इरादा था या ऐसी कोई चोट पहुचाने का इरादा था कि जिससे सामान्य अनुक्रम में मृतका की मृत्यु करने के लिए पर्याप्त हो। इसलिए हमारी सुविचारित राय में यह मामला भा0द0स0 की धारा 300 के खण्ड (4) के अन्तर्गत नहीं आता है हालांकि हमारी राय में यह मामला आई0पी0सी0 304 भाग-2 में बनता है।

16. वर्तमान मामले में हम इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि अपीलकर्ताओं कि भूमिका मृत्यु पूर्व बयान और अन्य दस्तावेजों से स्पष्ट है। हालांकि इस अदालत में जो मुद्दा उठाया गया है वह यह है कि मृतक अस्पताल में लगभग 30 दिनों तक जिंदा रहा वहा आने के 5 दिनों बाद उसकी हालत खराब होनी शुरू हुई और अन्त में सेप्टीसिमिया से उसकी मौत हो गयी। दरअसल वह 35 प्रति0 तक जल चुका था। मामले को देखते हुए हमारी राय है कि अपीलकर्ताओं की सजा भा0द0स0 की धारा 302 से परिवर्तित करके धारा 304 (1) में कर दिया जाये। इसी को ध्यान में रखते हुए अपील को आंशिक रूप अनुमति दी जाती है।

17. फास्ट ट्रैक कोर्ट नं0 6 अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश अहमदाबाद द्वारा 2007 का सत्र मामला संख्या 149 में पारित आदेश दिनांक 19.12.2007 जिसमें

अपीलकर्ताओं को धारा 302 भा0द0स0 के तहत सजा दी गयी थी, को बदलकर सजा धारा 304(1) भा0द0स0 के तहत दी जा रही है। हालांकि अपीलकर्ताओं को धारा 452 आई0पी0सी0 के तहत दी गई सजा को बरकरार रखा गया है। सत्र न्यायालय के धारा 302 आई0पी0सी0 के तहत दिये गये आजीवन कारावास और जुर्माना न देने पर अतिरिक्त सजा की जगह अपीलकर्ताओं - मूल अभियुक्तों को दस साल की अवधि के लिए कठोर कारावास और रुपये 5000/- का अर्थदण्ड (प्रत्येक को) तथा अर्थदण्ड जमा न करने की स्थिति छः माह कि अतिरिक्त सजा धारा 304 (भाग-1) तहत भुगतनी होगी और धारा 452 भा0द0स0 के तहत जुर्माना ना चुकाने पर दी गई सजा को भी घटाकर दो महीने कर दिया गया है। अतः अपीलकर्ताओं को भा0द0स0 की धारा 304 (1) के तहत दस साल की अवधि के लिए कठोर कारावास व 5000/- रुपये जुर्माना और जुर्माना न भरने की दशा में छः माह के अतिरिक्त कारावास की सजा भुगतनी होगी और धारा 452 भा0द0स0 के तहत पांच साल की कठोर कारावास और 2000/- अर्थदण्ड, अर्थदण्ड न देने की स्थिति में दो माह की अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा दी जा रही है। दोनों सजाएँ एक साथ चलेगी। तदनुसार 19.12.2007 के निर्णय एवं आदेश को संशोधित किया जाता है। अपीलकर्ताओं अभियुक्तों द्वारा पहले से काट ली गयी सजा के अनुसार ही सजा में छुट का विचार किया जायेगा, आर0एड0पी0 को

तुरन्त ट्रायल कोर्ट में वापस भेज दिया जाये।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय का **अनवर सिंह बनाम गुजरात राज्य (2021) 3 एस0सी0सी0 12** के मामले में दिये गये निर्णय जो कि कानूनी अभिवावक से अपहरण से सम्बन्धित था, जिसमें अदालत ने समाज और पीड़ित दोनों कि चिंताओं का सम्मान करते हुए यह स्थापित किया कि अभियुक्तों द्वारा पहले से ही जेल में विताई गई सजा की अवधि को कम करके ही निवारण और सुधार के दोहरे सिद्धान्त को प्रतिस्थापित किया जा सकता है वर्तमान मामलें में उतना वीभत्स मामला नहीं है इन सभी निर्णयों के प्रकाश में अभियुक्तों से निपटा नहीं जा सकता। **पर्वत चन्द्र माहन्ती बनाम उडीसा राज्य (2021) 3 एस0सी0सी0 और परदेशी राम बनाम म0प्र0 राज्य (2021) 3 एस0सी0सी0 238** में दिये गये निर्णय भी अभियुक्तों को लाभ देगे।

23. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत अन्य निर्णयों पर हम चर्चा नहीं करेगे क्योंकि हमने जो निर्णय लिया है वह उसी की पुनरावृत्ति होगी।

24. हम इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच गये हैं कि मृत्यु सेप्टीसिमिया के कारण हुई थी। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय हमें अपने निष्कर्ष को बरकरार रखने में मदद कर रहे हैं, जिसमें हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध भा0द0स0 की धारा 302/149 के तहत नहीं बल्कि भा0द0स0 की धारा 304(I) के तहत

और इरादतन हत्या है सभी आरोपी अपीलकर्ताओं की सजा उस अवधि तक कम कर दी जाती है जो वह पहले ही भुगत चुके हैं। जुर्माने को घटाकर 2000/- रूपयें प्रत्येक अभियुक्त कर दिया गया है, जो कि मूल शिकायतकर्ता को आज से आठ सप्ताह के भीतर मुआवजे के रूप दिया जायेगा, जुर्माना न जमा करने की स्थिति में अभियुक्तों को तीन माह के अतिरिक्त सजा का आदेश किया गया है। आरोपी अपीलकर्ताओं जिनका नाम सुभाष और गौतम यदि किसी अन्य अपराध में वांछित नहीं है तो जेल प्राधिकरण उन्हें रिहा कर देगी। पहले से ही जमानत पर चल रहे आरोपी अपीलकर्ताओं को आत्म समर्पण करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन उन्हें आज से आठ सप्ताह के भीतर जुर्माना जमा करना होगा।

25. अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है और रिकार्ड (दस्तावेज) और कार्यवाही तुरन्त निचली अदालत को वापस भेजी जाये।

26. यह न्यायालय कार्यवाही के सहायता करने के लिए विद्वान अधिवक्ताओं का आभारी है। (मा0 सैयद हसन रिजवी, जे) (मा0 न्यायमूर्ति डा0 कौशल जयेन्द्र ठाकर)

(2023) 4 ILRA 973

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.09.2021

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी

जेल अपील संख्या 147 2021

फिरोज

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: जेल से, श्री दीपेश कुमार ओझा (ए.सी.), श्रीमती सीमा पांडे

अधिवक्ता विपक्षीगण: ए.जी.ए.

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 302 -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 161 - विचारणीय न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध - कठोर कारावास - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - एफआईआर के अनुसार 03.10.2017 को लगभग 3:00 अपराहन पर शिकायतकर्ता की पत्नी (मृत) और उसका बेटा (अपीलकर्ता) घर में थे -अपीलकर्ता अपनी मां से पैसे मांग रहा था, उसने कहा कि उसके पास उसकी 'आवारागर्दी' के लिए पैसे नहीं हैं - मना करने पर, अपीलकर्ता ने उसके साथ 'मारपीट' शुरू कर दी, जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई - विचारणीय न्यायालय ने आरोप तय किया - आयोजित, पीडब्लू-1 घटना का एकमात्र चश्मदीद गवाह था, अपने मुख्य परीक्षण में उसने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन किया - पीडब्लू-1 की जिरह 17 दिनों के बाद दर्ज की गई, वह पक्षद्रोही हो गया - पीडब्लू2, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 जांच रिपोर्ट के गवाह हैं, बाकी औपचारिक गवाह हैं - प्रतिपक्षी गवाह की गवाही को केवल प्रतिपक्षिता के आधार पर पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, लेकिन इसे स्वीकार किया जा सकता है जहां तक यह अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करता है - हालांकि पीडब्लू-1 ने जिरह में घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति से इनकार किया है और कहा है कि उसने घटना नहीं देखी, अपीलकर्ता पीडब्लू-1 का पुत्र है और उससे प्रेम और स्नेह रखता है जो पक्षद्रोही

होने का कारण हो सकता है - मृतका के सिर पर केवल एक वार किया गया था और अपराध में प्रयुक्त हथियार 'डंडा' था - अपीलकर्ता ने उसे 'डंडा' से केवल एक वार किया था - इसलिए अपीलकर्ता का हत्या करने का कोई आशय नहीं था, लेकिन उसे पता था कि ऐसी चोट पहुंचाने से मृत्यु हो सकती है, विचारणीय न्यायालय ने सही रूप से दोषी ठहराया। (पैरा 1, 2, 3, 10, 11, 12, 16, 23)

अपील निरस्त (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. कृष्ण चंद बनाम दिल्ली राज्य ए.आई.आर. 2016 सुप्रीम कोर्ट 298
2. कृष्णा मोची बनाम बिहार राज्य (2002) 6 एससीसी 81 में रिपोर्ट किया गया
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रमेश मिश्रा एवं अन्य ए.आई.आर.1996 एस.सी. 2766

(माननीय न्यायमूर्ति अजय त्यागी द्वारा प्रदत्त)

यह आपराधिक अपील अपीलकर्ता द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 257/2018 (30प्र0 राज्य बनाम फिरोज) में दिनांक 17.10.20219 को पारित अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 8, बुलंदशहर के फैसले और आदेश के खिलाफ दायर की गई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 519/2017 से उत्पन्न धारा 302 भा0दं0सं0, थाना- औरंगाबाद, जिला- बुलंदशहर के अंतर्गत है, जिसके द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को धारा 304 भाग (2) भा0दं0सं0 के अंतर्गत

दोषी करार देते हुए सात साल के कठोर कारावास और 3000/- रुपये के जुर्माने (जुर्माने की राशि न चुकाने पर तीन महीने के कठोर कारावास) की सजा सुनाई है।

2. प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि वादी मुन्ना ने दिनांक 03.10.2017 को थाना औरंगाबाद, जिला बुलंदशहर में लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की कि उस दिन लगभग 3:00 बजे उसकी पत्नी अकबरी व उसका बेटा फिरोज घर में थे। फिरोज अपनी मां अकबरी से पैसे मांग रहा था तो अकबरी ने कहा कि उसके पास उसकी "आवारागर्दी" के लिए पैसे नहीं हैं। मना करने पर फिरोज ने अपनी मां अकबरी के साथ "मारपीट" शुरू कर दी, जिससे अकबरी की मृत्यु हो गई। उसकी लाश घर में पड़ी है।

3. उपरोक्त रिपोर्ट के आधार पर मुकदमा अपराध संख्या 519/2017 धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत पुलिस स्टेशन- औरंगाबाद, जिला- बुलंदशहर में पंजीकृत किया गया था। जांच के बाद, जांच अधिकारी ने धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता फिरोज के खिलाफ धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत आरोप तय किया और उसे विचारण पर रखा। विचारण के बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 304 भाग (2) भा0दं0सं0 के तहत अपराध साबित पाया और अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया और धारा 304 भाग (2) भा0दं0सं0 के तहत सात साल की सजा सुनाई गई। इसलिए यह अपील दायर की गई।

4. अपीलकर्ता की ओर से विद्वान न्यायमित्र श्री दीपेश कुमार ओझा तथा राज्य की ओर से

विद्वान ए.जी.ए. श्री अरुण कुमार सिंह को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि अपीलकर्ता को इस प्रकरण में झूठा फंसाया गया है। इस प्रकरण में सभी गवाह पक्षद्रोही हैं। आगे यह तर्क दिया गया कि पीडब्लू-1 मुन्ना से विचारण न्यायालय ने पूछताछ की, वह पक्षद्रोही हो गया और अभियोजन पक्ष के प्रकरण का समर्थन नहीं किया। जिरह के दौरान उसने जांच अधिकारी द्वारा धारा 161 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज किए गए इस बयान से इनकार किया। आगे यह भी तर्क दिया गया कि पीडब्लू-1 मुन्ना इस प्रकरण का सूचनाकर्ता भी है, लेकिन उसने अपने बयान में कहा है कि उसने सादे कागज पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था और खालिद नामक एक व्यक्ति ने उस कागज पर रिपोर्ट लिखी थी क्योंकि वह अनपढ़ है। अभियोजन पक्ष द्वारा कोई अन्य तथ्यात्मक गवाह पेश नहीं किया गया। इस तरह अपीलकर्ता के खिलाफ कोई सबूत नहीं है और विचारण न्यायालय ने उसे गलत तरीके से दोषी ठहराया है।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा कि पी.डब्लू.-1 मुन्ना की गवाही में यह बात सामने आई है कि उसकी पत्नी हैंडपंप के हैंडल के नीचे बैठकर सब्जी काट रही थी। जब वह उठी तो हैंडल उसके सिर पर लगा और उसे घातक चोट आई। यह भी तर्क दिया गया कि डॉ. के.के. सिंह ने मृतक अकबरी का पोस्टमार्टम किया और पोस्टमार्टम रिपोर्ट तैयार

की। उन्होंने पी.डब्लू.-7 के रूप में जांच की। उन्होंने अपनी जिरह में यह भी राय दी कि मृतक को लगी चोट हैंडपंप के हैंडल जैसी किसी कठोर और कुंद वस्तु से सिर पर लगने का परिणाम हो सकती है। इस तर्क के साथ विद्वान अधिवक्ता ने अपील स्वीकार करने और अपीलकर्ता को दोषमुक्त करने की प्रार्थना की।

7. अपीलकर्ता द्वारा कोई अन्य तर्क प्रस्तुत नहीं किया गया।

8. विद्वान ए.जी.ए. ने दलील दी कि पी.डब्लू.-1 मुन्ना इस प्रकरण का सूचनाकर्ता है, अपने मुख्य परीक्षण में उसने एफ.आई.आर. को साबित किया है और जिरह में वह अपने बेटे के प्यार और स्नेह के कारण अपने बयान से पलट गया है। यह भी दलील दी गई कि यह मानने लायक नहीं है कि कोई महिला हैंडपंप के हैंडल के नीचे बैठकर सब्जी काटेगी। वह हैंडपंप के पास बैठ सकती थी लेकिन हैंडपंप के हैंडल के नीचे बैठना उसके लिए स्वाभाविक नहीं था। यह पी.डब्लू.-1 द्वारा अपने बेटे को बचाने के लिए गढ़ी गई कहानी है। विद्वान ए.जी.ए. ने आगे दलील दी कि घटना के बाद अपीलकर्ता कई महीनों तक फरार रहा। उसके आचरण से भी पता चलता है कि वह अपराध का दोषी है और विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को सही दोषी ठहराया है। इसलिए अपील खारिज की जाती है।

9. अभियोजन पक्ष का प्रकरण यह है कि सूचनाकर्ता मुन्ना ने पुलिस थाने में प्रथम

सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई कि उसका बेटा फिरोज अपनी मां (सूचनाकर्ता की पत्नी) से पैसे मांग रहा था। उसके मना करने पर फिरोज ने उसके साथ मारपीट शुरू कर दी, जिससे उसे घातक चोटें आईं और उसकी मौत हो गई। यह लिखित रिपोर्ट मुन्ना ने पेश की थी, जो प्रदर्श केए-1 है। जांच के दौरान पाया गया कि मृतक अकबरी को डंडे से मारा गया था, जिसे जांच अधिकारी ने फिरोज की निशानदेही पर उसके घर से बरामद किया और रिकवरी मेमो प्रदर्श केए-11 तैयार किया गया।

10. अभियोजन पक्ष ने सूचनाकर्ता मुन्ना को पी.डब्लू.-1 के रूप में पेश किया, जो घटना का एकमात्र चश्मदीद गवाह बताया जाता है। पी.डब्लू.-1 मुन्ना ने अपने मुख्य परीक्षण में अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन किया तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट की विषय-वस्तु को हूबहू दोहराया। उसने अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट की विषय-वस्तु को साबित किया तथा उस पर अपने अंगूठे का निशान होने की बात स्वीकार की। उसी दिन उसकी जिरह दर्ज नहीं की जा सकी तथा उसे स्थगित कर दिया गया। पी.डब्लू.-1 की जिरह लगभग 17 दिनों के बाद दर्ज की गई, जिसमें पी.डब्लू.-1 अपने बयान से पलट गया। अपनी जिरह में उसने कहा कि उक्त घटना के समय वह घर से बाहर था तथा अभियुक्त ने उसकी उपस्थिति में उसकी मां से पैसे नहीं मांगे तथा न ही उसने उसकी मां के साथ कोई 'मारपीट' की। पी.डब्लू.-1 ने आगे कहा कि घटना के समय उसकी पत्नी अकबरी हैंडपंप के हत्थे के नीचे बैठकर सब्जी काट रही थी, जब वह उठी तो हैंडपंप का हत्था उसके सिर पर लगा।

अतिरिक्त जिला सरकारी अधिवक्ता द्वारा जिरह करने पर पीडब्लू-1 ने कहा कि जांच अधिकारी ने धारा 161 दं०प्र०सं० के तहत उसका बयान दर्ज नहीं किया। पीडब्लू-1 ने यह भी कहा कि अपीलकर्ता को एफआईआर के मुंशी मोहम्मद खालिद और अन्य ग्रामीणों द्वारा किसी दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया था।

11. प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं हैं। अन्य गवाह पी.डब्लू.-2, पी.डब्लू.-3 और पी.डब्लू.-4 जांच रिपोर्ट के गवाह हैं, बाकी गवाह औपचारिक गवाह हैं।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्य रूप से सूचनाकर्ता पीडब्लू-1 मुन्ना की शत्रुता के आधार पर अपनी दलीलें रखी हैं। विद्वान विचारण न्यायालय ने पीडब्लू-1 के साक्ष्य की बहुत सावधानी और सतर्कता से जांच की है क्योंकि अगर गवाह शत्रुतापूर्ण हो गया है, तो उसकी गवाही को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह स्थापित कानून है कि शत्रुतापूर्ण गवाह की गवाही को केवल शत्रुता के आधार पर पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, बल्कि इसे तब तक स्वीकार किया जा सकता है जब तक कि यह अभियोजन या बचाव पक्ष के प्रकरण का समर्थन करता है।
एआईआर 2016 सर्वोच्च न्यायालय 298 में प्रतिवेदित **कृष्ण चंद बनाम दिल्ली राज्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि केवल इस तथ्य से कि गवाह को बुलाने वाले पक्ष द्वारा शत्रुतापूर्ण हो गया है और उसे जिरह करने की अनुमति दी गई है, उसे अविश्वसनीय गवाह नहीं बनाता है ताकि उसके

साक्ष्य को पूरी तरह से विचार से बाहर रखा जा सके।

13. (2002) 6 एससीसी 81 में प्रतिवेदित **कृष्णा मोची बनाम बिहार राज्य** में यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह आम अनुभव की बात है कि हाल के दिनों में सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों में भारी गिरावट आई है, यहाँ तक कि विकसित देशों में भी, खासकर हमारे जैसे विकासशील देशों में, जहाँ गिरावट का अनुपात अधिक है। यहाँ तक कि सामान्य मामलों में भी गवाह गवाही देने के लिए इच्छुक नहीं होते हैं या उनके साक्ष्य को कई कारणों से अदालतों द्वारा विश्वसनीय नहीं माना जाता है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एआईआर 1996 एससी 2766 में प्रतिवेदित **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रमेश मिश्रा एवं अन्य** प्रकरण में अभिनिर्धारित किया है कि यह समान रूप से स्थापित कानून है कि यदि कोई पक्षद्रोही गवाह अभियोजन पक्ष या अभियुक्त के पक्ष में बोला गया हो तो उसके साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, लेकिन उसकी गहन जांच की जा सकती है और साक्ष्य का वह हिस्सा जो अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष के प्रकरण के अनुरूप हो, उसे स्वीकार किया जा सकता है।

15. अतः, साक्ष्य मूल्य के बारे में यह स्थापित कानून है कि पक्षद्रोही गवाह के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है, अगर अदालत को लगता है कि वह पूरी तरह से हिल नहीं गया है। यह सावधानी का नियम है कि

पक्षद्रोही गवाह के साक्ष्य की बारीकी से जांच की जानी चाहिए और अगर कुछ पुष्टि भी मिलती है तो उस पर कार्रवाई की जा सकती है क्योंकि अदालतें वास्तविकता से अपनी आँखें नहीं मूंद सकती हैं। अगर कोई गवाह पक्षद्रोही हो जाता है तो अदालत मूकदर्शक बनकर नहीं खड़ी रहेगी और सच्चाई सामने लाने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए।

16. विद्वान विचारण न्यायालय, पी.डब्ल्यू.-1 के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि उसकी गवाही को समग्र रूप से खारिज नहीं किया जा सकता। पी.डब्ल्यू.-1 मुन्ना ने अपनी मुख्य परीक्षा में अभियोजन पक्ष के प्रकरण का पूर्ण समर्थन किया है। यद्यपि पी.डब्ल्यू.-1 मुन्ना ने जिरह में घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति से इनकार किया है तथा यह भी कहा है कि उसने घटना नहीं देखी, किन्तु यह ध्यान में रखना होगा कि अपीलार्थी पी.डब्ल्यू.-1 का पुत्र है तथा उससे प्रेम और स्नेह किसी अन्य कारण के साथ-साथ पक्षद्रोही होने का कारण हो सकता है, किन्तु सरकारी अधिवक्ता द्वारा जिरह में भी पक्षद्रोही घोषित किये जाने के पश्चात् पी.डब्ल्यू.-1 मुन्ना ने स्वीकार किया है कि अपीलार्थी फिरोज अपनी मां से पैसे मांग रहा था तथा पैसे मांगने के लिए वह आतुर था।

17. जहाँ तक प्रथम सूचना रिपोर्ट का सवाल है, हालाँकि पीडब्लू-1 ने अपनी जिरह में कहा है कि एफआईआर लिखने वाले खालिद ने एक खाली कागज़ पर उसका अंगूठा लगवाया था और उसे नहीं पता कि उसने बाद में उस पर क्या लिखा था। लेकिन पीडब्लू-1 के इस बयान

पर यकीन नहीं किया जा सकता क्योंकि उसने अपनी मुख्य परीक्षा में साफ-साफ कहा है कि उसने घटना के बारे में पुलिस स्टेशन-औरंगाबाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करवाई थी। इसके अलावा मुख्य परीक्षा के अनुसार, सूचनाकर्ता पीडब्लू-1 को लिखित रिपोर्ट पेपर संख्या 4ए/3 दिखाया गया और उसे पढ़कर सुनाया गया। फिर उसने कहा कि यह वही लिखित रिपोर्ट है जो उसने पुलिस स्टेशन में जमा करवाई थी। उसने उस पर अपने अंगूठे का निशान भी स्वीकार किया है। इसके अलावा पीडब्लू-1 ने आगे कहा है कि यह रिपोर्ट अब्दुल रशीद ने उसके कहने पर लिखी थी। इस तरह पीडब्लू-1 ने पुलिस स्टेशन में लिखित रिपोर्ट जमा करवाने और उसकी विषय-वस्तु को कानूनी तौर पर साबित कर दिया है। इसलिए पीडब्लू-1 के मुकर जाने के बावजूद, उसकी गवाही अभी भी अभियोजन पक्ष के प्रकरण का समर्थन करती है।

18. पी.डब्ल्यू.-1 मुन्ना ने जिरह में घटना के तरीके को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया है तथा यह कहा है कि उसकी पत्नी मृतक अकबरी हैंडपंप के हैंडल के नीचे बैठकर सब्जी काट रही थी तथा जब वह उठी तो उसका सिर हैंडपंप के हैंडल से टकराया तथा उसे घातक चोटें आईं, परन्तु इस मनगढ़ंत कहानी पर कतई विश्वास नहीं किया जा सकता। पी.डब्ल्यू.-1 के बताने पर जांच अधिकारी द्वारा स्थल योजना तैयार की गई जो प्रदर्श क-10 है। स्थल योजना प्रदर्श क-10 के अनुसार घटना सूचनाकर्ता के घर के आंगन में घटित हुई जबकि हैंडपंप बाथरूम के अंदर दर्शाया गया है, अतः यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि कोई महिला

हैंडपंप के हैंडल के नीचे बैठकर सब्जी काटेगी, वह भी बाथरूम के अंदर।

19. विद्वान विचारण न्यायालय ने भी उपरोक्त संस्करण के बारे में अपनी राय दी है कि यह संभव नहीं था और यह विश्वास करने लायक भी नहीं था। मैं इस संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय की राय से पूरी तरह सहमत हूँ।

20. यह भी ध्यान देने योग्य है कि घटना 03.10.2017 को अपराह्न 3:00 बजे हुई और उसी दिन अपराह्न 4:00 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। इसका मतलब है कि घटना के ठीक एक घंटे बाद प्राथमिकी दर्ज की गई। इसलिए अपीलकर्ता को झूठा फंसाने के लिए सूचनाकर्ता के पास कोई अवसर या समय नहीं था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि डॉ. केके सिंह पीडब्लू-7 ने अपने बयान में कहा है कि मृतक को लगी चोटें हैंडपंप के हैंडल जैसी कठोर और कुंद वस्तु से लग सकती हैं। लेकिन पीडब्लू-7 डॉ. केके सिंह के बयान के अवलोकन से पता चलता है कि उन्होंने कहा है कि चोट हैंडपंप के हैंडल जैसी कठोर और कुंद वस्तु से लग सकती है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अगर कोई महिला उठती है और उसका सिर हैंडपंप के हैंडल से टकराता है, तो उसे घातक चोट लग सकती है डॉ. के.के. सिंह द्वारा उपरोक्त कथन देने का उद्देश्य यह था कि यदि हैंडपंप के हैंडल को बलपूर्वक किसी कठोर और कुंद वस्तु की तरह इस्तेमाल किया जाए तो चोट लग सकती है। इसलिए, मुझे अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त

तर्क में कोई बल नहीं लगता है और विद्वान विचारण न्यायालय ने इस संबंध में साक्ष्य की सही तरह से सराहना की है कि मृतक को घातक चोट हैंडपंप के हैंडल को उसके सिर पर उस तरह से मारने का परिणाम नहीं हो सकती है जैसा कि पी.डब्ल्यू.-1 ने अपनी जिरह में बताया है।

21. पी.डब्ल्यू.-1 मुन्ना की गवाही अभियोजन पक्ष के कथन का समर्थन करती है और उसे साबित करती है, भले ही वह अपने बयान से पलट गया हो, लेकिन पुष्टि के लिए इस प्रकरण में घटित कुछ परिस्थितियों पर विचार करना महत्वपूर्ण है। एक महत्वपूर्ण परिस्थिति यह है कि अपीलकर्ता की घटना की तारीख, समय और स्थान पर उपस्थिति से सूचनाकर्ता ने अपने बयान में भी इनकार नहीं किया है। उसने अपने बयान में अपीलकर्ता द्वारा अपनी मां से पैसे मांगने की बात भी कही है। अपीलकर्ता के खिलाफ यह एक और बहुत महत्वपूर्ण परिस्थिति है कि वह अपनी मृत मां के अंतिम संस्कार/दाह संस्कार में शामिल नहीं हुआ था। अपीलकर्ता को घटना के चार महीने से अधिक समय बाद गिरफ्तार किया गया था क्योंकि वह घटना के बाद फरार हो गया था। इसलिए अपनी मां के दाह संस्कार में शामिल न होना और घटना के चार महीने से अधिक समय तक फरार रहना यह दर्शाता है कि वह अपनी गिरफ्तारी से बचने के लिए फरार था। यह परिस्थिति भी अपीलकर्ता के खिलाफ जाती है।

22. सूचनाकर्ता पीडब्ल्यू-1 ने कहा है कि एफआईआर लिखने वाले मोहम्मद खालिद ने

एक खाली कागज पर उसके अंगूठे का निशान लिया और बाद में उस पर रिपोर्ट लिखी। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, सूचनाकर्ता ने लिखित रिपोर्ट को पूरी तरह से साबित कर दिया है और इसके अलावा सूचनाकर्ता अपीलकर्ता और मोहम्मद खालिद के बीच कोई दुश्मनी स्थापित नहीं कर सका जिसके कारण खालिद अपीलकर्ता को झूठा फंसा सके। इस प्रकरण की एफआईआर बहुत जल्दी दर्ज की गई थी। अपराध में इस्तेमाल किया गया 'डंडा' अपीलकर्ता के घर से उसकी निशानदेही पर बरामद किया गया था। मृतक अकबरी को लगी चोट उसके सिर के दाहिने हिस्से पर एक चोट थी जिसका आकार 4 सेमी x 3 सेमी था और यह चोट थी। इस तरह की चोट अपीलकर्ता के घर से बरामद 'डंडे' से लगना संभव था।

23. विचारण न्यायालय के फैसले के अवलोकन से पता चलता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने पीडब्ल्यू-1 की गवाही की बहुत बारीकी से और सावधानी से जांच की है और में अपीलकर्ता को दोषी ठहराने वाले विद्वान विचारण न्यायालय के निष्कर्ष से पूरी तरह सहमत हूं। विद्वान विचारण न्यायालय ने पीडब्ल्यू-1 के साक्ष्य की जांच में परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा भी बहुत प्रासंगिक पुष्टि की मांग की। यह सही है कि मृतक के सिर पर केवल एक ही वार हुआ था और अपराध में इस्तेमाल किया गया हथियार "डंडा" है। इसका मतलब है कि अपीलकर्ता ने अपनी मां को "डंडा" का एक ही वार किया। इसलिए यह माना जा सकता है कि अपीलकर्ता का अपनी मां को मारने का कोई इरादा नहीं था, लेकिन उसे पता था कि इस तरह की चोट पहुंचाने से उसकी मौत हो

सकती है। इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय ने भा0दं0सं0 की धारा 304 भाग (2) के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ता को सही ढंग से दोषी ठहराया है और उसे तदनुसार सजा सुनाई है।

24. अतः, मैं इस अपील में कोई गुण-दोष नहीं पाता, क्योंकि विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य का सही मूल्यांकन किया है और अपीलकर्ता को सही रूप से दोषी ठहराया और सजा सुनाई है और अपील खारिज किए जाने योग्य है।

25. तदनुसार, यह आपराधिक अपील गुण-दोष रहित है और खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 978

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.04.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा

प्रदत्त

आपराधिक अपील संख्या 1141/2003

सुनीत कुमार

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: मुकुल राकेश, शिव प्रकाश सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 376 - बलात्कार के लिए सजा - आपेक्षित आदेश द्वारा, कठोर कारावास की सजा -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 164, 313 -सजा के खिलाफ अपील -एफआईआर के अनुसार - दिनांक

14.02.2002 को, वादी की बेटी उम्र लगभग 13 साल, बरसीम काटने के बाद घर लौट रही थी, आरोपी ने उसे धान का गट्ठा लेने के बहाने खलिहान में बुलाया - जब उसकी बेटी वहां पहुंची, तो आरोपी ने जबरन उसके साथ बलात्कार किया - वादी जो पास में ही गाजर की जड़ें खोद रहा था, उसने आरोपी को खलिहान से भागते हुए देखा -उसने उसे बताया कि आरोपी ने उसके साथ बलात्कार किया- विवेचना के बाद आरोप पत्र दायर किया -अभियोजन पक्ष ने सात गवाह पेश किए -माना गया कि बलात्कार के अपराध में, अभियोक्ता का बयान अत्यंत महत्वपूर्ण है- अभियोक्ता का बयान उत्कृष्ट गुणवत्ता का होना चाहिए - अभियोक्ता की इस प्रकार की अस्थिर गवाही पर, जो असंभावित है और पीडब्लू-1, पीडब्लू-3 और पीडब्लू-4 के बयानों के विपरीत है, बिना किसी पुष्टिकारक सामग्री के, अभियोक्ता की इस प्रकार की एकमात्र गवाही पर दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती - एफ.आई.आर. पंजीकृत करने में देरी, एफ.आई.आर. के लेखक से पूछताछ न करना, अभियोक्ता की असंगत गवाही, संबंधित परिस्थितियां और अपुष्ट चिकित्सा साक्ष्य ने पीड़िता की गवाही पर संदेह पैदा किया - चूंकि अभियोक्ता पीडब्लू-2, पीडब्लू-1 के साक्ष्य विरोधाभासी हैं, अभियोक्ता की गवाही का भी विवेचक द्वारा खंडन किया गया है - इसलिए, विचारणीय न्यायालय ने केवल अनुमानों, अनुमानों और मान्यताओं के आधार पर आरोपी को दोषी ठहराया है, अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपने वाद को सिद्ध करने में विफल रहा है। (पैरा 2, 3, 5, 6, 36, 39, 40)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. मो. अली @गुड्डू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 7 एससीसी 272
2. हेम राज बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 2 एससीसी 395

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।
2. ये अपील अपर सत्र न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक कोर्ट नं.-2), रायबरेली द्वारा सत्र विचारण नं. 241/2002, केस अपराध संख्या-68/2002, धारा 376 भ०द०वि०, थाना-बछरावां, जिला रायबरेली "राज्य बनाम सुनील कुमार" के तहत पारित निर्णय और आदेश दिनांक 11.07.2003 के खिलाफ दायर की गई है, जिसके तहत अपीलकर्ता को धारा 376 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया है, और अपीलकर्ता को जुर्माने के साथ सात साल के कठोर कारावास की और डिफॉल्ट प्रावधानों के साथ 1000 रुपये की पेनाल्टी की सजा सुनाई गई है।
3. दिनांक 14.02.2002 की लिखित रिपोर्ट के अनुसार राम प्रसाद के पुत्र कृष्ण पुत्र ने थाना-बछरावां, रायबरेली को सूचना दी कि सूचनाकर्ता की लगभग 13 वर्ष की पुत्री बरसीम काटकर घर लौटते समय सुनील ने अपनी बेटी को धान के पुआल का एक गट्ठर उठाने के बहाने खलिहान में बुलाया, जहां धान का ढेर लगा हुआ था। बेटी जब वहां पहुंची तो

सुनील ने उसे पकड़ लिया और धान के ढेर के बीच घसीटते हुए उसके साथ जबरन दुष्कर्म किया। खुद को बचाने के लिए उसकी बेटी ने शोर मचाया, जिसे सुनकर पास में गाजर की जड़ें खोद रहा सूचनाकर्ता दौड़ा, तभी उसने सुनील को खलिहान से भागते देखा। मौके पर पहुंचने पर उसकी बेटी ने उसे बताया कि सुनील ने उसके साथ रेप किया है।

4. लिखित रिपोर्ट में आगे आरोप लगाया गया है कि आरोपी के डर से वह आज 13.02.2002 को रिपोर्ट दे रहा है। नतीजतन, चिक प्राथमिकी दर्ज की गई जिसे प्रदर्श क-10 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 है। विवेचनाधिकारी ने नक्शा नज़री तैयार किया है जिसे प्रदर्श क-4 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। पीड़िता की मेडिकल जांच की गई, जिसे प्रदर्श क-5 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। एक पूरक चिकित्सा रिपोर्ट भी तैयार की गई जिसे प्रदर्श क-9 के रूप में प्रदर्शित किया गया।

5. जांच पूरी होने के बाद आरोप पत्र दाखिल कर दी गई है। संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रायबरेली द्वारा 06.06.2002 को प्रतिबद्ध आदेश पारित किया गया था और उसके बाद सत्र न्यायालय द्वारा 19.07.2022 को धारा 376 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए।

6. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में निम्नलिखित सात गवाह पेश किए हैं:-

- (1) अ०सा०-1 कृष्णा (पीड़िता के पिता)
- (2) अ०सा०-2 अनीता (पीड़िता)
- (3) अ०सा०-3 डॉक्टर एस.एल शर्मा

- (4) अ०सा०-4 अजीत कुमार सिंह (सब इंस्पेक्टर)
 (5) अ०सा०-5 परम हंस (सेवानिवृत्त प्रिंसिपल)
 (6) अ०सा०-6 डॉक्टर कल्पना चंद्रा
 (7) अ०सा०-7 राम बाबू गौतम

7. धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त का बयान 05.03.2003 को किया गया है जिसमें उसने अपने खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से इनकार किया है।

8. अ०सा०-1 ने अपने बयान में प्रस्तुत किया है कि यह घटना शाम 5:30 बजे हुई जब वह गाजर की जड़ें खोद रहा था और शोर गुल सुनने के बाद, वह खलिहान की ओर भागा, जहां उसने आरोपी सुनील को भागते देखा। उसकी बेटी ने उसे बताया कि सुनील ने उसके साथ बलात्कार किया है। दूसरे दिन, उन्होंने एक परिचित व्यक्ति से रिपोर्ट लिखी, जिसे उन्हें पढ़कर सुनाया गया और फिर उन्होंने उस पर हस्ताक्षर कर दिए। उन्होंने लिखित रिपोर्ट को साबित कर दिया है।

9. उन्होंने यह भी कहा कि पीड़िता गांव के प्राथमिक विद्यालय में पढ़ती है और स्कूल का स्थानांतरण प्रमाण पत्र दिनांक 20.05.2002 को उसके द्वारा उसकी मुख्य परीक्षा के दौरान दायर किया गया है। अपनी जिरह में उसने कहा है कि उसके बेटे रामचंद्र की मौत या तो ट्रेन दुर्घटना के कारण हुई थी या किसी ने उसकी हत्या कर दी थी जो आरोपी सुरेश के चाचा के साथ पंजाब गया था। उन्होंने आगे कहा कि वह अपने बेटे की मौत के चार दिन बाद सुरेश से मिले थे और जब उन्होंने उनसे

उसके बेटे की मौत के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा कि वह ट्रेन से गिर गए थे और ट्रेन से कट गए थे। उन्होंने यह भी कहा कि घटना के बाद सुरेश और अन्य लोग गांव में आए और उसके घर गए, हालांकि, उन्होंने अपने बेटे की मौत के बारे में किसी को नहीं बताया। उन्होंने उसे सच नहीं बताया।

10. उन्होंने आगे कहा कि अपनी बेटी के साथ हो रही घटना के समय वह 100-125 मीटर दूर थे और अपनी बेटी का शोर गुल सुनने के बाद वह घटनास्थल की ओर दौड़े और उन्हें घटनास्थल पर पहुंचने में 20 मिनट लग गए। पूरे 20 मिनट के दौरान उन्हें अपनी बेटी का शोर गुल सुनाई देता रहा।

11. उन्होंने आगे कहा कि हालांकि आरोपी का घर उसके घर के सामने है, पर वे बात नहीं करते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि पीड़िता का मेडिकल करते समय उसने वही कपड़े पहने थे जो उसने घटना के समय पहने थे।

12. अ०सा०-2 पीड़िता ने बताया है कि घटना वर्ष 13.02.2002 को शाम लगभग 6 बजे की है। घटना के समय वह अपने खलिहान में थी और बरसिन काटने के बाद आरोपी सुनील ने उसे बुलाया और धान के ढेर को उठाने में मदद करने का अनुरोध किया। फिर उसने उसका हाथ पकड़ा और उसे धान के ढेर पर फेंक दिया और उसके साथ बलात्कार किया। दुष्कर्म करते समय वह पीड़िता को धमकी दे रहा था कि अगर उसने शोर मचाया तो उसे जान से मार दिया जाएगा। जब सुनील के मुंह पर पकड़ नरम पड़ी तो उसने शोर मचाया। शोर

गुल लगने पर उसके पिता आए और उस समय सुनील अपने कपड़े पहनकर गांव के पश्चिम की ओर भाग रहा था।

13. प्रति परीक्षण में, उसने कहा कि घटना से पहले, किसी ने भी उसके साथ बलात्कार नहीं किया है, न ही वह घटना से पहले किसी के साथ शारीरिक संबंध बनाती रही है; उसके पिता घटनास्थल से 4-5 मीटर दूर थे; उसका परिवार आरोपी के परिवार के साथ बात नहीं करता था क्योंकि वे सही लोग नहीं थे। वह वही कपड़े पहनकर थाने गई जो उसने बलात्कार के समय पहने थे। उसके कपड़े पुलिस ने ले लिए और एक महीने बाद वापस कर दिए गए।

14. उसने आगे कहा कि वह नहीं जानती थी कि धान के पुआल के ढेर, जिस पर उसके साथ बलात्कार किया गया था, की ऊंचाई क्या थी। उसे यह भी नहीं पता था कि उसके पिता उसके शोर गुल के बाद कितनी देर बाद आए।

15. उसने यह भी कहा कि घटना के बाद वह अपने पिता के साथ घर गई और उस रात न तो आरोपी और न ही उसके पिता उसके घर आए। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि दुश्मनी के कारण आरोपी को झूठा फंसाया गया है।

16. अ०सा०-3 डॉ. एस.एल शर्मा ने बताया है कि पीड़िता का एक्स-रे तकनीशियन द्वारा उनके अवलोकन और पर्यवेक्षण में किया गया था। एक्स-रे रिपोर्ट के आधार पर उन्होंने प्रदर्श क-3 रिपोर्ट तैयार की है जिसमें कोहनी के जोड़ के सभी एपिफेसिस फ्यूज हो गए थे, हालांकि, त्रिज्या और उल्ना के निचले छोर के एपिफेसिस

को फ्यूज नहीं किया गया था। अ०सा०-3 डॉ. एस.एल शर्मा ने प्रदर्श क-3 साबित किया है।

17. अ०सा०-4 एस.आई अजीत कुमार सिंह ने नक्शा नज़री को प्रदर्श क-4 के तौर पर साबित किया। उन्होंने कहा है कि उनकी उपस्थिति में प्राथमिकी दर्ज की गई थी, उन्होंने अ०सा०-1 और अ०सा०-2 का बयान लिया और उन दोनों के कहने पर, उन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण किया और उसके बाद उन्होंने आरोपी को गिरफ्तार कर लिया है। धारा 164 द०प्र०स० के तहत शिकायतकर्ता का बयान 14.03.2002 को दिया गया था और उसी के अवलोकन के बाद और केस डायरी में उसके बयान का सारांश दर्ज करने और सबूतों को समाप्त करने के बाद, आरोप पत्र दायर किया गया है जो प्रदर्श क-5 है।

18. अ०सा०-4 ने कहा है कि अ०सा०-1 ने उसे धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में नहीं बताया है कि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी का कारण आरोपी या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा किसी भी प्रकार की धमकी है, बल्कि अ०सा०-1 ने उसे बताया है कि चूंकि देर शाम हो चुकी थी, इसलिए इस कारण से वह रिपोर्ट दर्ज करने नहीं गया। उसने वह बरसीन नहीं ली है जो पीड़िता द्वारा वापस लौटते समय की जा रही थी। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्होंने उस जगह का निरीक्षण किया है जहां पीड़िता के साथ बलात्कार किया गया था और जहां से पीड़िता को नक्शा नज़री में ए पाइंट की ओर खींचा गया था। उनके बीच की दूरी 20 कदम है। जबकि उसे बलात्कार की जगह पर घसीटा

गया था, उसने शोर गुल नहीं किया। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्होंने अभियोक्त्री द्वारा पहने गए कपड़ों को अपने कब्जे में नहीं लिया है, जबकि उसके साथ बलात्कार किया गया था। उसने आगे कहा कि जब वह अपने पिता के साथ रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए आई थी, तो उसने उन्हें कपड़े नहीं दिखाए थे। धान के जिस ढेर पर पीड़िता के साथ बलात्कार किया गया था, उसकी ऊंचाई 8 फीट थी और पीड़िता की उम्र से संबंधित कोई दस्तावेज उसके या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा नहीं दिया गया था।

19. अ०सा०-5 परमहंस सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य हैं। उन्होंने पीड़िता के प्राथमिक विद्यालय मन्नावां का दिनांक 20.03.2002 का स्थानांतरण प्रमाण पत्र तैयार किया है जो उसके द्वारा उसकी मुख्य परीक्षा के समय लाया गया है।

20. अ०सा०-6 डॉ. कल्पना चंद्रा ने दिनांक 14.02.2002 को पीड़िता की मेडिकल जांच की। पीड़िता की बाहरी जांच में उसे कोई चोट नहीं मिली है। आंतरिक जांच में हाइमन अनुपस्थित पाया गया। उसने कहा है कि बलात्कार के बारे में कोई राय नहीं दी जा सकती है और पीड़िता को संभोग करने की आदत थी।

21. अ०सा०-7 कांस्टेबल राम बाबू गौतम हैं जिसने प्राथमिकी पंजीकृत की है और प्रदर्श क-2 के समान साबित किया है।

22. आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्राथमिकी दर्ज करने में अस्पष्ट देरी हुई है। आवेदक के परिवार और पीड़िता के बीच कथित

तौर पर दुश्मनी है। अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-4 के कथन विरोधाभासी हैं। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि पीड़िता की गवाही अ०सा०-1 और अ०सा०-4 की गवाही के विरोधाभासी और बिना किसी पुष्टिकारक सामग्री के है, उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

23. प्रति प्रतिरोध, अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध करते हुए कहा है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपराध साबित करने में सफल रहा है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अकेले अ०सा०-2 की गवाही आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त है।

24. रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

25. अ०सा०-1 के बयान के अवलोकन से पता चलता है कि उसने शिकायतकर्ता के बेटे की मौत के कारण आरोपी सुरेश के चाचा के साथ दुश्मनी स्वीकार की है, जो सुरेश के साथ पंजाब में आजीविका कमाने के लिए गया था। उनके बयान के अनुसार, घटना के समय वह घटनास्थल से 100-125 मीटर की दूरी पर थे और उन्हें घटनास्थल तक पहुंचने में 20 मिनट लगे। उन्होंने आगे कहा कि अपने जिरह में उन्होंने अपीलकर्ता को खलिहान से भागते हुए देखा जब वह घटनास्थल पर पहुंचे। उन्होंने इस बात से अनभिज्ञता जताई है कि जो कपड़े पीड़िता ने पहने थे, वे डॉक्टर ने लिए हैं या नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि विवेचनाधिकारी को स्थानांतरण प्रमाण पत्र नहीं दिया गया है, उनकी बेटी ने प्राथमिक विद्यालय में पढ़ाई की

है और उनकी परीक्षा की तारीख को 20.03.2002 को स्थानांतरण प्रमाण पत्र दायर किया है। उन्होंने आगे कहा है कि पूरे 20 मिनट के दौरान उन्होंने अपनी बेटी को रोते हुए सुना है।

26. अ०सा०-2 ने अपने प्रमुख में कहा है कि जब उसके साथ बलात्कार किया जा रहा था तो उसे आरोपी द्वारा धमकी दी गई थी कि अगर वह शोर गुल करती है, तो उसे मार दिया जाएगा। आरोपी की पकड़ नरम होने पर ही वह रोई। उसके पिता घटनास्थल पर आए थे, लेकिन आरोपी पहले ही अपने कपड़े पहनकर भाग चुका है। उसने आगे कहा है कि घटना से पहले किसी ने भी उसके साथ बलात्कार नहीं किया, न ही वह किसी के साथ शारीरिक संबंध में है। उसने यह भी कहा है कि घटना के समय, उसके पिता 4-5 मीटर की दूरी पर थे। आरोपी के परिवार के साथ उसकी कोई बात नहीं चल रही थी। आगे कहा गया है कि खून से सनी सलवार को पुलिस मेडिकल जांच के बाद ले गई और एक महीने बाद उन्हें पीड़िता को लौटा दिया गया। उसे धान के पुआल के ढेर की ऊंचाई के बारे में पता नहीं था, जिस पर उसके साथ बलात्कार किया गया था। उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि उसके पिता ने कितनी देर बाद उसके द्वारा उठाए जाने पर शोर गुल किया। उसने यह भी कहा है कि घटना के बाद वह अपने पिता के घर गई और रात में घर पर रही। उस रात सुनील और उसके पिता वहां नहीं आए। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि दुश्मनी के कारण आरोपियों को झूठे फंसाया गया है।

27. प्रति परीक्षण में अ०सा०-4 ने कहा है कि अ०सा०-1 ने उसे धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में नहीं बताया है कि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी का कारण आरोपी या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा दी गई धमकी थी, बल्कि उसे बताया गया था कि देर शाम के कारण, उसने उसी दिन रिपोर्ट दर्ज नहीं की। उन्होंने यह भी कहा है कि शिकायतकर्ता के कपड़े उनके कब्जे में नहीं लिए गए हैं। घटनास्थल आठ फीट ऊंचाई का था जहां अभियोक्त्री के साथ बलात्कार किया गया था। पीड़िता के परिवार के सदस्यों द्वारा अभियोक्त्री की उम्र के बारे में कोई प्रमाण पत्र नहीं दिखाया गया था। अ०सा०-1 के बयान के अवलोकन से पता चलता है कि वह घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है। कोई अन्य स्वतंत्र गवाह नहीं है। मेडिकल रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के बयान की पुष्टि नहीं करती है।

28. अ०सा०-6 डॉ. कल्पना चंद्रा जिन्होंने पीड़िता की जांच की है, ने कहा है कि बलात्कार के संबंध में कोई राय नहीं दी जा सकती क्योंकि पीड़िता संभोग की अभ्यस्त थी। यद्यपि पीड़िता की एकमात्र गवाही के आधार पर, दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है, तथापि, यह विश्वास के योग्य होना चाहिए, इस प्रकार, अ०सा०-2 के बयान की जांच इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए कि घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है।

29. अ०सा०-1 ने कहा है कि अपनी बेटी का शोर गुल सुनने के बाद वह घटनास्थल की तरफ दौड़ा, वह 100-125 मीटर दूर था और पूरे 20 मिनट के दौरान वह शोर गुल सुनता रहा, जबकि पीड़िता ने कहा कि उसने तभी

शोर गुल किया जब उसके मुंह पर सुनील की पकड़ नरम हो गई।

30. अ०सा०-2 के अनुसार उसके पिता 4-5 मीटर दूर थे जब उसके साथ बलात्कार किया गया था, जबकि अ०सा०-1 के अनुसार वह 100-125 कदम दूर था। अ०सा०-2 के इस बयान का भी विवेचनाधिकारी ने खंडन किया है कि पुलिस ने उसके खून से सनी सलवार को अपने कब्जे में ले लिया था।

31. अ०सा०-2 के बयान के अवलोकन से, हालांकि, उसने कहा है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं है कि उस जगह की ऊंचाई क्या थी जहां उसके साथ बलात्कार किया गया था, विवेचनाधिकारी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यह 8 फीट ऊंचाई के धान के पुआल का ढेर था। अ०सा०-1 ने अपने बयान में आरोपी के चाचा सुरेश के साथ पंजाब गए बेटे की मौत के कारण आरोपी के परिवार से दुश्मनी की बात स्वीकार की। अ०सा०-1 ने प्राथमिकी दर्ज करने में देरी का कोई कारण नहीं बताया है, जबकि अ०सा०-2 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना के बाद अ०सा०-2 के साथ अ०सा०-1 घर आया और उस तारीख को आरोपी, उसके पिता या उसके परिवार के सदस्यों में से कोई भी उसके घर नहीं आया।

32. विवेचनाधिकारी अ०सा०-4 ने कहा है कि प्रति परीक्षण में अ०सा०-1 ने उसे प्राथमिकी में देरी के बारे में नहीं बताया है क्योंकि आरोपी व्यक्तियों द्वारा दी गई धमकी के कारण है। उन्होंने अ०सा०-2 के बयान का खंडन किया है और स्पष्ट रूप से कहा है कि अभियोकत्री के

कपड़े जब्त नहीं किए गए थे। अभियोजन पक्ष का बयान भी (सुनील कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) 9 असंभव प्रतीत होता है क्योंकि अ०सा०-4 के बयान में, जगह की ऊंचाई 8 फीट बताई गई है, जबकि अ०सा०-2 ने ऊंचाई के बारे में अनभिज्ञता दिखाई है। हालांकि अ०सा०-1 चश्मदीद गवाह नहीं है, लेकिन, वही था जिसने आखिरी बार आरोपी को बलात्कार के तुरंत बाद घटनास्थल से भागते हुए देखा था।

33. अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के अपने बयान के अनुसार, अभियोकत्री की गवाही का कई स्थानों पर खंडन किया गया है, विशेष रूप से अ०सा०-1 और अ०सा०-4 का। अभियोकत्री का बयान कि वह केवल तभी रोई जब अपीलकर्ता की पकड़ उसके मुंह पर कमजोर पड़ी। दुष्कर्म करते समय उसने पीड़िता को धमकी दी कि अगर वह रोएगी तो उसे मार दिया जाएगा। इसके विपरीत, अ०सा०-1 का कहना है कि उसने लगातार 20 मिनट तक शोर गुल सुनता रहा। अ०सा०-2 ने अ०सा०-1 की उपस्थिति को दर्शाया है, जो बलात्कार के समय घटनास्थल से 4-5 मीटर दूर है, जबकि अ०सा०-1 ने कहा है कि जब बलात्कार किया जा रहा था तो वह 100-125 मीटर दूर था और उसने उस दूरी को तय करने के लिए दौड़ते हुए 20 मिनट का समय लिया।

34. अभियोकत्री की गवाही को कि उसके खून से सने सलवार को पुलिस ने जब्त कर लिया था, विवेचनाधिकारी ने अपने बयान में भी खंडन किया है, जिसने इस तरह की किसी भी जब्ती से इनकार किया है। फिर से अभियोकत्री

द्वारा दिखाई गई अज्ञानता कि उसे इस बात की जानकारी नहीं है कि उस स्थान की ऊंचाई क्या थी जहां उसके साथ बलात्कार किया गया था, अ०सा०-4 द्वारा दिए गए बयान के सामने विश्वास को प्रेरित नहीं करता है कि घटना का स्थान 8 फीट ऊंचा था। पीड़िता को 8 फीट ऊंची जगह पर घसीटकर बलात्कार का अपराध करना काफी असंभव सा प्रतीत होता है और फिर पीड़िता को किसी चोट या खरोंच का सामना भी नहीं करना पड़ा।

35. जहां तक अ०सा०-5 के चिकित्सा बयान के अनुसार अभियोकत्री की उम्र है, घटना के समय पीड़िता की आयु 18 वर्ष हो सकती थी। इस न्यायालय ने अ०सा०-1 का बयान देते समय नोटिस लिया है कि मुख्य परीक्षा में दिनांक 20.03.2002 को स्थानांतरण प्रमाण पत्र लाया है और इसे विचारण न्यायालय में दायर किया है। विचारण न्यायालय ने आरोपी को दोषी ठहराते हुए इस दस्तावेज पर भी भरोसा किया है जो नहीं किया जा सकता था क्योंकि यह विवेचनाधिकारी को नहीं दिया गया था जो जांच कर रहा था। धारा 90 द०प्र०स० सपठित धारा 230 द०प्र०स० का कोई अनुपालन नहीं है और इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा किसी भी निष्कर्ष पर आने के लिए दस्तावेज पर भरोसा नहीं किया जा सकता था।

36. कुल मिलाकर, अभियोकत्री का बयान विश्वास को प्रेरित नहीं करता है। बलात्कार के अपराध में, अभियोकत्री का बयान अत्यंत महत्वपूर्ण है। अभियोकत्री का बयान स्टर्लिंग गुणवत्ता का होना चाहिए जो प्रस्तुत मामले में

अनुपस्थित है। अभियोकत्री की इस तरह की अस्थिर गवाही पर, जो अ०सा०-1, अ०सा०-3 और अ०सा०-4 के बयानों के मददेनज़र असंभव और विरोधाभासी है, बिना किसी पुष्टिकारक सामग्री या पुष्टि से कुछ कम के, मेरी राय है कि इस तरह की एकमात्र गवाही पर दोषसिद्धि को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

37. 31. माननीय न्यायमूर्ति उच्चतम न्यायालय ने मोहम्मद अली खान के मामले में यह निर्णय दिया था। अली @ गुड्डू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 7 एस.सी.सी. 272 ने निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"यह ध्यान दिया जाना चाहिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अभियोकत्री की एकमात्र गवाही के आधार पर, यदि यह असंदिग्ध और आलोचना से परे है, तो दोषसिद्धि आधारित हो सकती है। इस मामले में, विद्वान विचारण न्यायधीश के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने गवाह की गवाही की स्वीकार्यता और विश्वसनीयता की मूल्यांकन किए बिना इस सिद्धांत के साथ खुद को राजी कर लिया है। वास्तव में, यह कहना उचित नहीं होगा कि आक्षेपित निर्णय में जो भी विश्लेषण किया गया है, वह केवल दृष्टिकोण की अनौचित्य का संकेत देगा। शिकायतकर्ता ने गवाही दी है कि उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया गया और लगभग दो महीने तक विभिन्न घरों में रखा गया। उसके द्वारा दिया गया एकमात्र स्पष्टीकरण यह है कि उसे आरोपी व्यक्तियों द्वारा धमकी दी गई थी। यह उसकी गवाही में नहीं है कि वह एक जगह तक ही सीमित थी। वास्तव में, रिकार्ड में उपलब्ध सामग्री से यह पता चला है कि उसने

एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा की थी और उससे कई बार दुराचार किया गया था। इन परिस्थितियों में, चिकित्सा साक्ष्य महत्व रखते हैं, क्योंकि जांच करने वाले डॉक्टर ने स्पष्ट रूप से गवाही दी है कि निजी अंगों पर कोई चोट नहीं है। प्राथमिकी में देरी, गवाहों से पूछताछ न होना, अभियोकत्री की गवाही, संबंधित परिस्थितियां और चिकित्सा साक्ष्य, अभियोकत्री की गवाही को विश्वास पैदा करने के लिए इतना स्वाभाविक और सच्चा मानने के लिए संदेह का निशान छोड़ते हैं। यह निश्चितता के साथ कहा जा सकता है कि अभियोकत्री का साक्ष्य ऐसी गुणवत्ता का नहीं है जिस पर भरोसा किया जा सके।

38. हेमराज बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 2 एस.सी.सी. 395 में यह माना गया है कि: -

"10. ऐसी स्थिति का सामना करते हुए, हम यह पता लगाने के लिए उत्सुक थे कि क्या बलात्कार का सुझाव देने वाला कोई ठोस चिकित्सा साक्ष्य हो सकता है, लेकिन, दुर्भाग्य से, अभियोजन पक्ष डॉ अंजलि शाह से पूछताछ करने में विफल रहा है, जिन्होंने अभियोकत्री की जांच की थी। एमएलआर को मेडिकल रिकॉर्ड तकनीशियन अ०सा०-6 जेबी भारद्वाज ने कोर्ट में पेश किया। यह अभियोजन पक्ष की ओर से एक गंभीर चूक है। हम जानते हैं कि अभियोजन पक्ष की ओर से चूक से अयोग्य बरी नहीं होना चाहिए। हालांकि, यह राइडर के अधीन है कि ऐसी स्थिति में रिकॉर्ड पर साक्ष्य को पक्का किया जाना चाहिए ताकि अभियोजन पक्ष की चूक को माफ किया जा सके। यहां ऐसा नहीं है। एमएलआर से पता चलता है कि अभियोकत्री का हाइमन फट गया था। यह भी

सच है कि अभियोकत्री ने विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट को रिकॉर्ड में लाया है जो दर्शाता है कि मानव वीर्य का पता शिकायतकर्ता की सलवार और आरोपी के अंडरवियर पर लगाया गया था। हालांकि, इससे यह अनुमान लगाना मुश्किल है कि अपीलकर्ता द्वारा अभियोकत्री के साथ बलात्कार किया गया था। अभियोकत्री ने खुद इस पहलू पर संदेह लगाया है। यह बताया गया कि अभियोकत्री पर कोई चोट नहीं पाई गई थी। हम इस पहलू को ज्यादा महत्व नहीं देते क्योंकि बलात्कार के अपराध को साबित करने के लिए चोटों की उपस्थिति जरूरी नहीं है। लेकिन अभियोकत्री के साक्ष्य इतने कमजोर हैं कि इसे अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। उसका भाई एक मामला लेकर सामने आया है कि अपीलकर्ता ने अभियोकत्री के साथ बलात्कार करने की कोशिश की। उन्होंने यह नहीं कहा कि अपीलकर्ता ने अभियोकत्री के साथ बलात्कार किया। मामले के समग्र दृष्टिकोण को देखते हुए, हमें अभियोजन पक्ष के मामले को बनाए रखना मुश्किल लगता है कि अपीलकर्ता द्वारा अभियोकत्री के साथ बलात्कार किया गया था। यह एक ऐसा मामला है जहां अपीलकर्ता को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए।"

39. प्राथमिकी दर्ज करने में देरी, प्राथमिकी के मुंशी की गैर-परीक्षा, अभियोकत्री की असंगत गवाही, संबंधित परिस्थितियों और अपुष्ट चिकित्सा साक्ष्य ने पीड़िता की गवाही पर संदेह पैदा किया जो विश्वास को प्रेरित करने में विफल रहा। अभियोकत्री का साक्ष्य उस गुणवत्ता का नहीं है जिसके आधार पर

अपीलकर्ता को दोषी ठहराया जा सके। इस संबंध में कानून तय कर दिया गया है।

40. स्थापित कानून के मद्देनजर, चूंकि अभियोजनी अ०सा०-2, अ०सा०-1 के साक्ष्य विरोधाभासी हैं। अभियोजन पक्ष की गवाही का भी विवेचनाधिकारी द्वारा खंडन किया गया है। वह एक विश्वसनीय गवाह नहीं है, मुझे लगता है कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को केवल अनुमानों, क़यासों और मान्यताओं के आधार पर दोषी ठहराया है। अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपने मामले को साबित करने में विफल रहा है। किसी भी विश्वसनीय साक्ष्य में मान्यताओं की पुष्टि नहीं की गई है, चिकित्सा बलात्कार से संबंधित अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं करती है। कोई अन्य पुष्टिकारक साक्ष्य नहीं है। मैं विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत होने में असमर्थ हूं। तदनुसार, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (फैट ट्रेक कोर्ट संख्या-2), रायबरेली द्वारा पारित निर्णय दिनांक 11.07.2003 को रद्द किया जाता है। अपीलकर्ता को उसके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी किया जाता है। ये निर्देश दिया जाता है कि यदि किसी अन्य मामले में अपीलकर्ता वांछित नहीं है तो उसे तुरंत रिहा कर दिया जाए।

41. तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 985

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-1,

आपराधिक अपील संख्या 1406/1995

गोपाल दास और अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राजीव गोस्वामी

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 -धारा 308- गैर इरादतन हत्या करने का प्रयास - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 357 - आपेक्षित आदेश द्वारा, विचारणीय न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया - तीन वर्ष सश्रम कारावास - दिनांक 31.03.1990 को आरोपी ने अपने बेटों के साथ छैलबिहारी शर्मा को घेर लिया और उन्हें डंडों और पानी के पाइप से पीटा, जिससे वे घायल हो गए - इस घटना को पड़ोस के कई लोगों ने देखा -घायल के भाई ने भी लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की -अभियोजन पक्ष ने तथ्य के गवाहों के रूप में पीडब्लू 1, पीडब्लू 2 की जांच की पीडब्लू 3, पीडब्लू 4, पीडब्लू 5, पीडब्लू 6 की औपचारिक गवाहों के रूप में जांच की गई - आयोजित, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि घटना की तिथि पर अपीलकर्ताओं ने गैर इरादतन हत्या कारित करने के इरादे से, यह जानते हुए कि वे घायल को ऐसी चोट पहुंचाएंगे कि यदि उसकी मृत्यु हो जाती, तो अपीलकर्ता दोषी होंगे, गंभीर चोट पहुंचाई जो जीवन के लिए खतरनाक थी - विचारणीय न्यायालय ने अपीलकर्ता को दंडित करते हुए सही निर्णय लिया - आयोजित, घटना 33 वर्ष पूर्व घटित हुई - अपीलकर्ता पिछले 33 वर्षों से

जमानत पर हैं -उन्हें दी गई सजा को पहले से भुगती गई अवधि तक घटा दिया गया है, पीड़ित को उचित मुआवजा दिया गया है, न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा। (पैरा 3, 4, 12, 28, 36)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।
(ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. तुकाराम गुंडू नाइक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1994) 1 एससीसी 465
2. सुरेश सीताराम सुर्वे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2003 एससी 344
3. मध्य प्रदेश राज्य बनाम विक्रम दास, (2019) 4 एससीसी 125
4. मनोहर सिंह बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, (2015) 3 एससीसी 449
5. रूप चंद बनाम राज्य (एनसीटी) दिल्ली, 2020 (3) एएलटी (सीआरएल) 331 (ए.पी.पी.)
6. ओमानक्कुट्टन एवं अन्य बनाम केरल राज्य, 2021 (115) एससीसी 747

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील श्री राजीव गोस्वामी और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री सुनील कुमार त्रिपाठी को सुना गया।

2. यह आपराधिक अपील सत्र परीक्षण संख्या 12/1992, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गोपाल

दास और अन्य जो मुकदमा अपराध संख्या 120/1990, पुलिस स्टेशन-वृन्दावन, जिला-मथुरा से उत्पन्न हुआ है, में आठवें अपर सत्र न्यायाधीश, मथुरा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 29.08.1995 के खिलाफ दायर की गई है।

3. आक्षेपित आदेश के अनुसार, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं, गोपाल दास, लाला, मुन्ना और रवि को आईपीसी की धारा 308 के तहत दोषी ठहराया है और उन्हें तीन वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई। आपराधिक अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलकर्ता, गोपाल दास की मृत्यु हो गई और अपीलकर्ता, गोपाल दास की आपराधिक अपील को न्यायालय के दिनांक 12.10.2022 के आदेश द्वारा समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार, यह अपील केवल अपीलकर्ता संख्या 2, 3 और 4 अर्थात् लाला, मुन्ना और रवि के लिए बनी हुई है।

4. अभियोजन पक्ष का मामला संक्षेप में इस प्रकार है कि दिनांक 31.03.1990 को प्रातः 8.30 बजे, गोपाल भवन बारी कुंज के पास, पुरुषोत्तम के घर के सामने, अभियुक्त गोपाल दास पुत्र मिही लाल, मुन्ना, लाला और रवि, सभी गोपाल दास के पुत्र छैलबिहारी शर्मा निवासी सेवा कुंज, थाना-वृन्दावन, जिला-मथुरा ने घेरकर लाठी-डंडों और पानी के पाइप से पिटाई कर दी, जिससे वह घायल हो गये। उस समय सूचक छैलबिहारी शर्मा की पत्नी सरोज शर्मा अपने घर पर थी। यह सूचना मिलते ही सूचक सरोज शर्मा दौड़कर घटनास्थल पर पहुंची। उनके पति छैलबिहारी शर्मा सड़क पर

बेहोश पड़े थे। वह अपने पति को रिक्शे पर संबंधित पुलिस स्टेशन ले गई। इस घटना को पड़ोस के कई लोगों ने देखा। मुखबिर सरोज शर्मा द्वारा दी गई लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श.का.1) के आधार पर एन.सी.आर. (प्रदर्श.का.7) धारा 323 आई.पी.सी. के अंतर्गत दिनांक 31.03.1990 को प्रातः 9.10 बजे थाना-वृन्दावन में दर्ज करायी गयी थी। दिनांक 11.04.1990 को घायल छैलबिहारी के भाई गिरधारी लाल शर्मा ने थाना-वृन्दावन में एक लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श का.2) प्रस्तुत की थी, जिसमें इसका उल्लेख किया गया था कि 31.03.1990 को सुबह 8.30 बजे, मान गली, सेवा कुंज, वृन्दावन में, अभियुक्त-अपीलकर्ता, गोपाल दास, मुन्ना, लाला और रवि और गैर-अभियुक्त, छोटे ने उसके भाई, छैलबिहारी शर्मा को लाठी और लोहे की रॉड से पीटा। इसकी रिपोर्ट उसकी देवरानी सरोज शर्मा ने उसी दिन संबंधित थाने में दर्ज करा दी थी। आरोपी की चोट के कारण उसके भाई की हालत घटना दिनांक से गंभीर बनी हुई है। इलाज के लिए उन्हें मेथोडिस्ट अस्पताल में भर्ती कराया गया जहां पता चला कि उनके शरीर की हड्डी में फ्रैक्चर हो गया है। एन.सी.आर. के पंजीकरण के संबंध में प्रविष्टि जी.डी. में 31.03.1990 को सुबह 10.10 बजे की गई थी। इसकी प्रमाणित प्रति रिकॉर्ड पर (प्रदर्श का.8) है।

5. दिनांक 11.04.1990 को गिरधारी लाल शर्मा द्वारा दी गयी लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श का.2) के आधार पर एन.सी.आर. 1990 की धारा 147, 308 आईपीसी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 120 के रूप में परिवर्तित किया गया था। उपरोक्त धाराओं के तहत आपराधिक

मामला दर्ज करने के संबंध में जी.डी. की कार्बन कॉपी (प्रदर्श.का.9) है।

6. घायल छैलबिहारी शर्मा को राजकीय संक्रामक रोग अस्पताल, मथुरा ले जाया गया, जहां चिकित्सा अधिकारी डॉ. एस.के. जैन ने घायल छैलबिहारी शर्मा उम्र 38 वर्ष की चोटों का मेडिकल परीक्षण कर आघात आख्या (प्रदर्श का.3) तैयार की थी। घटना के समय छैलबिहारी शर्मा के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:-

(i) सिर के दाहिनी ओर दाहिने कान से 10 सेमी ऊपर त्वचा पर 5 सेमी x 0.05 सेमी गहरा घाव। मार्जिन अनियमित थे। खून बह रहा था।

(ii) सिर के बाईं ओर त्वचा पर 7 सेमी x 1 सेमी गहरा घाव, 10 सेमी बाएँ कान के ऊपर। मार्जिन अनियमित थे। खून बह रहा था।

(iii) चोट संख्या में 3 सेमी x 0.5 सेमी त्वचा से 3 सेमी गहरा फटा हुआ घाव। मार्जिन अनियमित थे। खून बह रहा था।

(iv) 9 सेमी x 3 सेमी आकार के तीन उभार जो कंधे के दाहिनी ओर एक दूसरे के ऊपर ओवरलैप हो रहे थे। एक्स-रे की सलाह दी गई।

(v) दाहिनी बांह के पीछे घर्षण लाल रंग का 7 सेमी x 3 सेमी।

(vi) दाहिनी बांह के पीछे 3 सेमी x 2 सेमी घर्षण, चोट क्रमांक से 5 सेमी नीचे।

7. चिकित्सा अधिकारी पी.डब्ल्यू.3 डॉ. एस.के. जैन की राय में, चोट नं. (i) से (iv) कुंद वस्तु के कारण हुए। चोट संख्या (v) और (vi) घर्षण के कारण होता प्रतीत होता है। जांच के समय सभी चोटें ताजा थीं। चोट लोहे की रॉड या पाइप से लग सकती है। वे चोटे 31.03.1990 को प्रातः 8.30 बजे किए गए हो सकते थे।
8. जांच अधिकारी पीडब्लू-4 एस.आई. होती लाल शर्मा ने साइट प्लान (प्रदर्श का-4) तैयार किया है। उन्होंने घायल छैलबिहारी शर्मा के पहने हुए खून से सने कपड़े ले लिये। उन्होंने उन कपड़ों को अपने कब्जे में लिया जो घटना के बाद खून से सने हो गए थे और उसका मेमो तैयार किया जो (प्रदर्श का-5) है।
9. घायल छैलबिहारी शर्मा को दिनांक 31.03.1990 को मेथोडिस्ट अस्पताल, मथुरा में भर्ती कराया गया था जहाँ उनका चिकित्सा उपचार हुआ था। अस्पताल की मेडिकल रिपोर्ट और डिस्चार्ज सारांश (प्रदर्श का 10) है। मथुरा के मेथोडिस्ट अस्पताल में उनके दाहिने कंधे, दाहिने छाती, सिर, हाथ की हथेली का एक्स-रे कराया गया। एक्स-रे रिपोर्ट (वस्तु प्रदर्श का 1 से 4) विचारण न्यायालय की फाइल में है लेकिन यह विचारण न्यायालय में साबित नहीं हुई। आघात सारांश और डिस्चार्ज रिपोर्ट (प्रदर्श का.10) डॉ. अनिता सुंदरम द्वारा तैयार की गई थी जिसे P.W.6 डॉ. डी.डब्ल्यू. थॉमस द्वारा सिद्ध किया गया था।
10. जांच के बाद, जांच अधिकारी ने आरोपी-अपीलकर्ताओं, गोपाल दास, मुन्ना, लाला और रवि और गैर-दोषी आरोपी, छोटे के खिलाफ आरोप पत्र (प्रदर्श.का. 6) प्रस्तुत किया।
11. मामला प्रथम अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया था। 26.09.1992 को विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं, गोपाल दास, मुन्ना, लाला और रवि और गैर-दोषी/अभियुक्त, छोटे के खिलाफ आईपीसी की धारा 147, 148 और 308 के तहत आरोप तय किया।
12. आरोपों के समर्थन में अभियोजन पक्ष ने पीडब्लू1 श्रीमती सरोज शर्मा और पीडब्लू 2 छैलबिहारी शर्मा से तथ्य साक्षी के रूप में से पूछताछ की जबकि पीडब्लू 3 डॉ. एस.के. जैन, पीडब्लू4 एस.आई. होती लाल शर्मा, पीडब्लू5 बन्नी खान और पीडब्लू6 डॉ. डी.डब्ल्यू. थॉमस से औपचारिक गवाह के रूप में पूछताछ की गई।
13. पी.डब्लू.1 श्रीमती सरोज शर्मा एवं पी.डब्लू.2 छैलबिहारी शर्मा ने घटना के संबंध में साक्ष्य दिये। P.W.1 सरोज शर्मा लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श का.1) साबित करती है। पी.डब्ल्यू.2 छैलबिहारी शर्मा दिनांक 11.04.1990 की लिखित रिपोर्ट को प्रमाणित करते हैं। उनके भाई गिरधारी लाल शर्मा द्वारा संबंधित थाने में (प्रदर्श का-2) के रूप में प्रस्तुत किया गया।

14. पी.डब्ल्यू.3 डॉ. एस.के. जैन, जो घटना के समय मेडिकल ऑफिसर, सरकारी संक्रामक रोग अस्पताल, मथुरा के रूप में तैनात थे, घायल छैलबिहारी शर्मा की मेडिकल रिपोर्ट दिनांक 31.03.1990 को (प्रदर्श का.3) साबित करते हैं।

15. जांच अधिकारी पी.डब्ल्यू.4 एस.आई. होती लाल शर्मा साइट प्लान (प्रदर्श.का.4) साबित करते हैं। वह घायल के खून से सने कपड़ों को कब्जे में लेने से संबंधित रिकवरी मेमो भी साबित करता है (प्रदर्श.का.5)। वह जांच के बाद मामले में अपने द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र (प्रदर्श का 6) को भी अदालत में साबित करता है। उन्होंने आगे एन.सी.आर. क्रमांक 41 को भी साबित किया जो धारा 323 आई.पी.सी. के अंतर्गत दिनांक 31.03.1990 ओ/सी प्रेमी सिंह द्वारा तैयार किया गया। पीडब्लू 4 ने एनसीआर क्रमांक 41 धारा 323 के अंतर्गत दिनांक 31.03.1990 समय प्रातः 9.10 बजे पी.एस.-वृंदावन में (प्रदर्श का.10) की संस्थापन से संबंधित जीडी को भी साबित किया। उन्होंने एन.सी.आर. क्रमांक 41 जिसे आईपीसी की धारा 123, 147 और 308 के तहत 1990 के केस क्राइम नंबर 120 के रूप में परिवर्तित, से संबंधित जी.डी. दिनांक 12.04.2019 का रूपांतरण भी सिद्ध किया, जो कि (प्रदर्श का 9) है। पी.डब्ल्यू.4 ने अपने द्वारा की गई जांच के संबंध में साक्ष्य भी दिए।

16. मेथोडिस्ट हॉस्पिटल, मथुरा के रिकॉर्ड कीपर पी.डब्ल्यू.5 बन्ने खां ने घायल छैलबिहारी शर्मा (प्रदर्श का.10) की मेडिकल

रिपोर्ट और डिस्चार्ज सारांश को प्रमाणित किया।

17. पी.डब्ल्यू.6 डॉ. डी.डब्ल्यू. थॉमस ने घायल छैलबिहारी शर्मा (प्रदर्श का 10) की मेडिकल रिपोर्ट और डिस्चार्ज सारांश को साबित किया, जिसे डॉ. अनीता सुंदरम ने तैयार किया था, जिन्होंने पी.डब्ल्यू.6 डॉ. डी.डब्ल्यू. थॉमस के साथ काम किया था जिन्होंने निम्नलिखित चोटों का उल्लेख किया है:

(i) सिर पर हड़डी तक गहरी चोट;

(ii) छाती के दाहिनी ओर पसली संख्या 1, 2, 3, 4, 7 और 8 की हड़डी में फ्रैक्चर।

(iii) घायल के दाहिने कंधे में फ्रैक्चर

(iv) दाहिने हाथ की तर्जनी की समीपस्थ फेलिनक्स हड़डी में फ्रैक्चर।

पीडब्लू 6 डॉ. डी.डब्ल्यू. थॉमस की राय में, चोटें घातक प्रकृति की थीं। यह 31.03.1990 को प्रातः 8.30 बजे घटित हो सकता है। घायल छैलबिहारी शर्मा को एक्स-रे प्लेटें दी गईं जो पी.डब्ल्यू.6 डॉ. डी.डब्ल्यू.थॉमस की जांच के समय प्रस्तुत की गईं। वह तर्जनी और दाहिनी पसलियों से संबंधित घायलों की एक्स-रे प्लेट और एक्स-रे प्लेट के रैपर को (वस्तु प्रदर्श 1 से 4) के रूप में साबित करता है। डिस्चार्ज स्लिप में उल्लिखित चोटों को चोट रिपोर्ट और एक्स-रे रिपोर्ट के आधार पर तैयार किया गया था।

18. 20.06.1995 को विचारण न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 313 के तहत आरोपियों गोपाल, मुन्ना, लाला, छोटे और रवि के बयान दर्ज किए। उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले से इनकार किया है। उन्होंने कहा है कि झूठे अभियोजन पत्र दायर किए गए थे। उन्होंने यह भी कहा है कि घायल छैलबिहारी शर्मा ने आरोपियों की जमीन पर कब्जा कर लिया है। उसने अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाया। छैलबिहारी शर्मा को एक दुर्घटना में चोटें आई थीं। अभियुक्त ने अपने बचाव में डी.डब्ल्यू.1 बृज गोपाल से पूछताछ की।

19. अपीलकर्ता के विद्वान वकील को सुना, विद्वान ए.जी.ए. और संपूर्ण अपीलीय और साथ ही निचली अदालत के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

20. गैर इरादतन हत्या के प्रयास की परिभाषा आईपीसी की धारा 308 में दी गई है। जो इस प्रकार है:

308. गैर इरादतन हत्या करने का

प्रयास :-जो कोई ऐसे इरादे या जानकारी के साथ और ऐसी परिस्थितियों में कोई कार्य करता है कि, यदि उस कृत्य से उसकी मौत हो जाती, तो वह गैर इरादतन हत्या का दोषी होगा, उसे, एक ऐसी अवधि के लिए कारावास की सजा दी जाएगी जिसे तीन साल तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माना, या दोनों के साथ; और, यदि ऐसे कृत्य से किसी व्यक्ति को चोट पहुंचती है, तो उसे

सात साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा।

21. इससे पहले कि आरोपी को आईपीसी की धारा 308 के तहत दोषी ठहराया जा सके, इस निष्कर्ष पर पहुंचना जरूरी था कि उसमें आवश्यक इरादा या ज्ञान विद्यमान था।

22. **तुकाराम गुंडू नाइक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1994) 1 एससीसी 465**, में शीर्ष अदालत ने माना है कि जब आरोपी को केवल तब जिम्मेदार ठहराया जा सकता है जब वह यह जानते हुए कि ऐसी चोटें पहुंचाने से उसकी मौत होने की संभावना है, ऐसा करे और ऐसा अपराध करने का प्रयास आईपीसी की धारा 308 के तहत दंडनीय होगा।

23. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि पी.डब्ल्यू.1 सरोज शर्मा चश्मदीद गवाह नहीं है। घटना के बाद ही वह घटनास्थल पर आयी थी। केवल एक गवाह पी.डब्ल्यू.2 छैलबिहारी शर्मा है, जो घायल है। जब केवल घायल पी.डब्ल्यू.2 छैलबिहारी शर्मा ने घटना के संबंध में साक्ष्य दिया है, तो एकल पक्षपातपूर्ण गवाह के साक्ष्य के आधार पर सजा नहीं दी जा सकती है।

24. राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. ने कहा है कि अभियोजन पक्ष ने मौखिक और दस्तावेजी सबूतों के आधार पर मामले को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है। शीर्ष अदालत ने **सुरेश सीताराम सुर्वे बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2003 एससी 344** में फैसला सुनाया है कि एक घायल चश्मदीद गवाह के

साक्ष्य को आरोपी के प्रति शत्रुतापूर्ण स्वभाव के आधार पर पूरी तरह से खारिज नहीं किया जा सकता है, खासकर जहां उसके साक्ष्य का व्यापक संभावनाओं के प्रकाश में परीक्षण किया जाता है, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह स्वाभाविक चश्मदीद गवाह था और उसके पास आरोपी के खिलाफ मामला गढ़ने का कोई कारण नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि यदि सजा पहले ही पूरी की जा चुकी अवधि तक कम कर दिया जाता है, तो पीड़ित को सीआरपीसी की धारा 357 के तहत दिए गए मुआवजे का भुगतान किया जाना चाहिए।

25. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त कानून के आलोक में घायल पी.डब्ल्यू.2 छैलबिहारी शर्मा के साक्ष्य का मूल्यांकन किया जाना है।

26. पी.डब्ल्यू.2 छैलबिहारी शर्मा ने अपने साक्ष्य से घटना की तिथि, समय एवं स्थान को सिद्ध किया है। उसने कहा है कि दिनांक 31.03.1990 को रात्रि 8.30 बजे वह थाना वृन्दावन जा रहा था तभी सेवा कुंज में पुरुषोत्तम के घर के सामने आरोपी गोपाल तथा उसके पुत्र मुन्ना, छोटे, लाला तथा रवि ने उसे जान से मारने की नियत से पाइप और डंडा से पीटा। गोपाल और छोटे के हाथ में पानी की पाइप और अन्य के हाथ में डंडा था। उन्होंने पहले वृन्दावन और फिर मथुरा के मेथोडिस्ट अस्पताल में अपनी चोटों की चिकित्सकीय जांच करायी। उन्हें लगी चोटों के कारण उन्हें 18-19 दिनों तक मेथोडिस्ट अस्पताल, मथुरा में भर्ती कराया गया था। मारपिट में लगी चोटों के कारण वह बेहोश हो गया। उनकी

पसलियां टूट गई थीं। इस गवाह से बचाव पक्ष द्वारा विस्तार से जिरह की गई है लेकिन उसकी गवाही में घटना की तारीख, समय और स्थान, अपराध में अभियुक्तों की भागीदारी और उनके द्वारा पहुंचाई गई चोटें और हमले का हथियार जिसका उपयोग उन्होंने चोट पहुंचाने और घायलों को पहले वृन्दावन के अस्पताल में और फिर मेथोडिस्ट अस्पताल, मथुरा में चिकित्सा उपचार के लिए किया है, के संबंध में साक्ष्य को हिलाया नहीं गया है।

27. पी.डब्ल्यू.1 घायल छैलबिहारी शर्मा की पत्नी सरोज शर्मा, जो घटना के बाद घटनास्थल पर पहुंची थी, ने दिनांक 08.03.1994 को अपने साक्ष्य में बताया है कि लगभग 4 वर्ष पूर्व सुबह 8.30 बजे गोपाल, मुन्ना, लाला को अभियुक्त बनाया था। बड़ी कुंज में पुरुषोत्तम के घर के सामने रवि और छोटे ने उसके पति को डंडा और वाटर सप्लाई पाइप से पीटा। उनके पति के शरीर पर गंभीर चोटें आईं। गवाह ने बताया कि जब वह वहां पहुंची तो मौके पर मौजूद उसके घायल पति ने उसे इसकी जानकारी दी। पी.डब्ल्यू.1 श्रीमती सरोज शर्मा ने कहा है कि उनके पति ने उन्हें उन आरोपियों के नाम बताए थे जिन्होंने उन पर हमला किया था। पी.डब्ल्यू.1 श्रीमती सरोज शर्मा और पी.डब्ल्यू.2 छैलबिहारी शर्मा के साक्ष्य की पुष्टि डॉक्टरों के मौखिक साक्ष्य, चोट रिपोर्ट, अभियोजन कागजात यानी लिखित रिपोर्ट, चिक एफ.आई.आर., सरकारी अस्पताल, वृन्दावन और मेथोडिस्ट अस्पताल, मथुरा में पीड़ित छैलबिहारी शर्मा की मेडिकल जांच रिपोर्ट से की गई है। पी.डब्ल्यू.1 श्रीमती सरोज शर्मा और पी.डब्ल्यू.2

छैलबिहारी शर्मा के साक्ष्य ठोस, आश्वस्त और विश्वसनीय हैं। उनकी जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आया है जिससे उनके सबूतों की सत्यता पर संदेह हो।

28. मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के मूल्यांकन से, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि घटना की तारीख, समय और स्थान पर, अपीलकर्ता, मुन्ना, लाला और रवि ने छैलबिहारी शर्मा को घायल करने के लिए ऐसी चोट पहुंचाने के ज्ञान के साथ गैर इरादतन हत्या करने के इरादे से हत्या की थी कि यदि उनकी मृत्यु हो गई, तो अपीलकर्ता गैर इरादतन हत्या के दोषी होंगे, उन्होंने गंभीर चोट पहुंचाई जो घायल छैलबिहारी शर्मा के जीवन के लिए खतरनाक थी। अदालत ने अपीलकर्ता को आईपीसी की धारा 308 के तहत सही दोषी ठहराया है। आपराधिक अपील में कोई ताकत नहीं है जिसके खारिज होने की संभावना हो।

29. डी.डब्ल्यू.1 बृज गोपाल ने अपने साक्ष्य में कहा है कि पार्टियों के बीच घर के संबंध में विवाद था। उन्होंने कहा है कि छैलबिहारी शर्मा को हादसे में चोटें आई थीं लेकिन विवादित घर की बात को लेकर दुश्मनी थी, उसने मामले में अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाया था। डी डबल्यू 1-बृजगोपाल विवादित मकान की सीमा नहीं बता सके। डी डबल्यू 1-बृज गोपाल उस कथित दुर्घटना का चश्मदीद गवाह नहीं हैं जिसमें छैलबिहारी शर्मा को चोटें आयीं थीं। ऐसे में उनका यह साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता कि छैलबिहारी शर्मा को किसी दुर्घटना में चोटें आई थीं और उन्होंने आरोपी को झूठा फंसाया था।

30. विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ताओं, रवि, लाला और मुन्ना को 01.05.1990 को हिरासत में लिया गया था। विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 04.05.1990 के आदेश के तहत उन्हें जमानत दे दी गई थी। उनके जमानत बांड 05.05.1990 को स्वीकार किये गये। इसलिए, मामले की जांच के दौरान अपीलकर्ता 5 दिनों तक जेल में रहे थे।

31. भारतीय विधायिका ने कोई सजा नीति नहीं दी है, हालांकि मलिमथ समिति (2003) और माधव मेनन समिति (2008) ने भारत में सजा नीति की आवश्यकता पर जोर दिया है।

32. सजा का सिद्धांत कई मामलों में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चिंता का मुद्दा रहा है और इस मुद्दे पर स्पष्टता प्रदान करने की कोशिश की गई है। उच्च न्यायालयों और विचारण न्यायालयों द्वारा सजा सुनाने के तरीके को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार लापरवाह तरीके के प्रति आगाह किया है।

"...यह स्थापित है कि सजा देना एक सामाजिक-कानूनी प्रक्रिया है, जिसमें एक न्यायाधीश तथ्यात्मक परिस्थितियों और समानताओं पर विचार करते हुए आरोपी के लिए उचित सजा का पता लगाता है। इस तथ्य के प्रकाश में कि विधायिका ने न्यायाधीशों को सजा देने के लिए विवेकाधिकार प्रदान किया है, इसे सैद्धांतिक तरीके से लागू करना महत्वपूर्ण हो जाता है।" (अभियुक्त 'एक्स')

बनाम महाराष्ट्र राज्य (2019) 7
एससीसी 1 का पैरा 49)

"12. अपराधों के लिए सजा का विश्लेषण तीन परीक्षणों अर्थात् अपराध परीक्षण, अपराधी का परीक्षण और तुलनात्मक आनुपातिकता परीक्षण की कसौटी पर किया जाना चाहिए। अपराध परीक्षण में योजना की सीमा, हथियार की पसंद, अपराध के तरीके, निपटान के तरीके (यदि कोई हो), आरोपी की भूमिका, अपराध का असामाजिक या घृणित चरित्र, पीड़ित की स्थिति जैसे कारक शामिल होते हैं। आपराधिक परीक्षण में अपराधी की उम्र, अपराधी का लिंग, आर्थिक स्थिति या अपराधी की सामाजिक पृष्ठभूमि, प्रेरणा जैसे कारकों का आकलन शामिल है। अपराध, बचाव की उपलब्धता, मन की स्थिति, मृतक या मृतक समूह में से किसी एक द्वारा उकसाना, मुकदमे में पर्याप्त प्रतिनिधित्व, अपील प्रक्रिया में न्यायाधीश द्वारा असहमति, पश्चाताप, सुधार की संभावना, पूर्व लंबित आपराधिक रिकॉर्ड (नहीं लेना चाहिए) और कोई अन्य प्रासंगिक कारक (विस्तृत सूची नहीं)।

13. इसके अतिरिक्त हम यह भी नोट कर सकते हैं कि अपराध परीक्षण के अंतर्गत गंभीरता सुनिश्चित करने की जरूरत है। अपराध की गंभीरता हो सकती है

(i) पीड़ित की शारीरिक अखंडता द्वारा सुनिश्चित किया गया;

(ii) सामग्री सुविधा की हानि ;

(iii) अपमान की सीमा; और

(iv) गोपनीयता का उल्लंघन।"

**(मध्य प्रदेश राज्य बनाम उधम और
अन्य (2019) 10 एससीसी 300)**

33. यह भी उल्लेखनीय है कि "...जहां न्यूनतम सजा का प्रावधान हो तो न्यायालय न्यूनतम सजा से कम सजा नहीं दे सकता।"
**(मध्य प्रदेश राज्य बनाम विक्रम दास (2019)
4 एससीसी 125 का पैरा 8)**

34. धारा 357 सी.आर.पी.सी. न्यायालय को पीड़ित को मुआवजा देने की शक्ति प्रदान करता है, जो अन्य सजाओं के अतिरिक्त है, न कि सहायक है। न्यायसंगत और उचित मुआवजा देते समय न्यायालय को ऐसे भुगतान के लिए अभियुक्त की क्षमता के साथ-साथ चिकित्सा व्यय, कमाई की हानि, दर्द और पीड़ा आदि जैसे प्रासंगिक कारकों पर भी विचार करना चाहिए।

35. सुप्रीम कोर्ट ने सीआरपीसी की धारा 357 के तहत मुआवजा देने की शक्ति के उचित प्रयोग की आवश्यकता दोहराई है। मनोहर सिंह बनाम में राजस्थान राज्य और अन्य: (2015) 3 एससीसी 449 और पैरा 11, 31 और 54 में यह कहा गया है कि:

"11...पीड़ित के लिए उचित मुआवजा चिकित्सा और अन्य खर्चों, दर्द और पीड़ा, कमाई की हानि और अन्य प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना चाहिए। जबकि आरोपी को सजा देना एक पहलू है, पीड़ित के लिए उचित मुआवजे का निर्धारण पीड़ित दूसरा है। कभी-कभी, इस संबंध में साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में कुछ अनुमान लगाना अपरिहार्य है। धारा 357 और 357-ए के तहत मुआवजा देय है। जबकि धारा 357 के तहत आरोपी की वित्तीय क्षमता पर निर्भर करता है। ध्यान रखें, धारा 357-ए जिसके तहत मुआवजा राज्य निधि से आता है, उचित मुआवजे की आवश्यकता को पूरा करने के लिए लागू किया जाना चाहिए।"

31. इस न्यायालय ने कहा कि मुआवजे की राशि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति, दावे की न्यायसंगतता और आरोपी की भुगतान करने की क्षमता के आधार पर अदालतों द्वारा निर्धारित की जानी थी।"

54. उपरोक्त मामलों से जो परीक्षण सामने आए हैं उन्हें धारा 357 पर लागू करने पर, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रावधान अदालतों को हर आपराधिक मामले में मुआवजा देने के सवाल पर अपना दिमाग लगाने के

कर्तव्य के साथ शक्ति प्रदान करता है। हम कहते हैं ऐसा इसलिए क्योंकि जिस पृष्ठभूमि और संदर्भ में इसे पेश किया गया था, मुआवजा देने की शक्ति का उद्देश्य पीड़ित को आश्वस्त करना था कि उसे आपराधिक न्याय प्रणाली में भुलाया नहीं गया है। आपराधिक न्याय प्रणाली में पीड़ित को भुला दिया जाएगा यदि इसके बावजूद विधायिका पीड़ित मुआवजे से संबंधित विशिष्ट प्रावधानों को अधिनियमित करने के लिए इतनी आगे बढ़ गई है, अदालतें प्रावधानों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर देती हैं और मुआवजे के सवाल पर अपना दिमाग भी नहीं लगाती हैं। इसका मतलब यह है कि जब तक धारा 357 को अदालतों पर मुआवजे के प्रश्न पर अपना विवेक प्रयोग करने हेतु एक दायित्व प्रदान करने के लिए नहीं पढ़ा जाता है, यह प्रावधान के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगा।"

36. वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर भी विचार करते हुए ऊपर उल्लिखित कानून की स्थिति को ध्यान में रखते हुए और उस पर विचार करते हुए घटना लगभग 33 वर्ष पूर्व 31.03.1990 को घटित हुई है और **रूप चंद बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी), 2020 (3) एएलटी (सीआरएल) 331 (ए.पी.)** और **ओमानक्कुट्टन और अन्य बनाम केरल राज्य, 2021 (115) एसीसी 747** में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित फैसले पर विचार करते हुए, कि अपीलकर्ता पिछले 33 वर्षों से जमानत पर हैं

और उन्होंने उक्त अवधि के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है, इस न्यायालय का मानना है कि यदि दी गई सजा को पहले से ही भुगती गई अवधि तक कम कर दिया जाए और पीड़िता को उचित मुआवजा दिया जाए तो न्याय हित हो जाएगा।

37. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। सत्र परीक्षण संख्या 12/1992 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गोपाल दास और अन्य में, आठवें अपर सत्र न्यायाधीश, मथुरा द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 29.08.1995 में, सजा को अपीलकर्ताओं द्वारा पहले से ही भुगती गई अवधि तक संशोधित किया गया है और लगाया गया जुर्माना 2,000/- रुपये से बढ़ाकर 15,000/- रुपये कर दिया गया है, जिसका भुगतान प्रत्येक आरोपी को करना होगा, जिसका 50% भुगतान घायल छैलबिहारी शर्मा को किया जाएगा।

38. अपीलकर्ता, लाला, मुन्ना और रवि, प्रत्येक को इस फैसले की तारीख से दो महीने के भीतर जुर्माने की उपरोक्त राशि जमा करनी होगी। विचारण न्यायालय जुर्माने की राशि का 50% घायल छैलबिहारी शर्मा को और उनकी मृत्यु की स्थिति में उनके उत्तराधिकारियों को उचित पहचान के बाद भुगतान करेगा। यदि अपीलकर्ता उपरोक्त अवधि के भीतर जुर्माना जमा नहीं करते हैं, तो उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा सुनाई गई सजा भुगतनी होगी।

39. इस आपराधिक अपील में पारित आदेश द्वारा संशोधित सजा के निष्पादन के लिए

मामले के रिकॉर्ड के साथ फैसले की एक प्रति संबंधित अदालत को भेजी जाए।

(2023) 4 ILRA 993

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-I,

माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव,

आपराधिक अपील संख्या 4611 / 2013

राजू

...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राजेंद्र कृष्ण. त्रिपाठी,

श्री अनिल कुमार दुबे, श्री नरेन्द्र कुमार, श्री

रवीन्द्र बहादुर सिंह, श्री एन.के. सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860-

धारा 302 और 201 -हत्या -आपेक्षित आदेश

द्वारा, आजीवन कठोर कारावास की सजा - दंड

प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 313 - सजा के

खिलाफ अपील- दिनांक 11.10.2012 को, वादी

(पीडब्लू 1) अपने भाई और एक अन्य व्यक्ति के

साथ अपने घर में था, आरोपी वहां आया, और

अपने बेटे को 'दारंती' की धार तेज करने के लिए

साथ चलने को कहा - वादी का पुत्र आरोपी के

साथ चला गया लेकिन वह पूरी रात वापस नहीं

आया - अगले दिन आरोपी से मृतक के ठिकाने

के बारे में पूछताछ की गई, उसने बताया कि

मृतक और उसने खुद शराब का सेवन किया था

और मोटरसाइकिल चोरी करने के लिए, उसे

बहला-फुसलाकर उसकी गर्दन काट दी और उसे

नहर में फेंक दिया और मोटरसाइकिल को

गन्ने के खेत में छिपा दिया - आरोपी के खिलाफ आरोप सभी उचित संदेह से परे हैं- वैधता - आयोजित, रिपोर्ट दर्ज करने के विशिष्ट समय के बारे में एफआईआर संदिग्ध हो जाती है, और यह कि एफआईआर किसने लिखी और किसने लिखा - अभियोजन पक्ष के वाद का आधार महत्व खो देता है, इस प्रकार एफ.आई.आर. पूर्वकालिक हो जाती है। इस मामले में गवाही और परिस्थितियों के आधार पर, साबित करें कि एफ.आई.आर. पूर्वकालिक है - पी.डब्ल्यू.-1 की गवाही के अनुसार तथ्यात्मक पहलू स्पष्ट है कि एफ.आई.आर. जांच रिपोर्ट तैयार होने के बाद दर्ज की गई थी - रिपोर्ट दर्ज करने से पहले, पुलिस कर्मियों, जांच अधिकारी का हस्तक्षेप और लापरवाही अभिलेख पर स्पष्ट है - प्राथमिकी लिखने के सभी प्रासंगिक पहलुओं और तथ्य, जांच रिपोर्ट तैयार करने का समय और अभियुक्त को गलत तरीके से फंसाने के बिंदु के तथ्य का वाद के तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर विचारणीय न्यायालय द्वारा रिकार्ड पर उपलब्ध साक्ष्य द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है - आपेक्षित आदेश को निरस्त किया जाता है। (पैरा 2, 3, 24, 36, 44, 45, 47)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति अरविंद कुमार मिश्रा-।
और माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव द्वारा
प्रदत्त)

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता
श्री आर० बी० सिंह और श्री एन० के० सिंह,
राज्य की तरफ से विद्वान अपर शासकीय

अधिवक्ता श्री ए.एन.मुल्ला को सुना एवं पत्रावली पर उपलब्ध दस्तावेजों का परिशीलन किया।

प्रस्तुत अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय कक्ष सं. 10, बरेली द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 1143 सन् 2012 (उ.प्र. राज्य बनाम राजू) मुकदमा अपराध परीक्षण संख्या 1192 सन् 2012 अंतर्गत धारा - 302,201 भा.द.सं., थाना- बहेड़ी, जिला- बरेली, मे पारित निर्णय दिनांक 20.08.2013 के विरुद्ध योजित किया गया है। जिस में अपीलार्थी को धारा 302 के अपराध के लिए कठिन आजीवन कारावास एवं रुपये 20,000 जुर्माने से दण्डित किया गया है। जुर्माना न अदा करने की दशा में एक माह का अतिरिक्त साधारण कारावास से, एवं धारा 201 मा.दं. संहिता के अपराध के लिए तीन वर्ष के कठिन कारावास से एवं रुपये 5000 रु/- के जुर्माने से दण्डित किया गया है। जुर्माना न अदा करने पर दो माह के अतिरिक्त साधारण कारावास से दण्डित किया गया है। सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

इस अपील के तथ्य-

इस मुकदमें के तथ्यात्मक स्थित जो पत्रावली से प्रदर्शित है वह यह है कि इस मुकदमें के सूचना दाता नत्थूलाल (अ.साक्षी-1) मृतक यशपाल के पिता थाना बहेड़ी में अपीलार्थी के विरुद्ध लिखित सूचना दिनांक 12.10.2012 को समय 1.10 मिनट पर इस विवरण के साथ दी की सूचनादाता ग्राम भुरहा बहादुरपुर अंतर्गत थाना बहेरी, बरेली का निवासी है। जब वह दिनांक 11.10.2012 को अपने भाई प्रेम शंकर और राकेश पुत्र विन्द्रावन के साथ अपने घर में बैठा था तो करीब शाम 3 बजे राजू पुत्र

डोरी लाल गंगवार वहां आया और मेरे पुत्र यशपाल को बुलाया और अपने साथ 'दरांती'(सिकिल) में धार दिलाने के लिए अपने साथ भूरिया चलने को कहा। सूचनादाता का पुत्र चार 'दरांती'(sickle) लेकर अभियुक्त के साथ मोटर साइकिल नं.- यू.पी. 25 ए.एफ 1284 से चला किन्तु वह सारी रात वापस नहीं आया। यशपाल की खोजबीन की गयी कि वह कहां है किन्तु कुछ पता नहीं चला। अगले दिन सुबह 10 बजे राजू गांव की तरफ आते दिखाई दिया। जब उससे पूछा गया कि यशपाल कहां है तो वह हीला हवाली करने लगा और पूछताछ से मुंह फेरने लगा किन्तु गांव वालों द्वारा दबाव डालने पर राजू ने कहा कि यशपाल और उसने स्वयं उगानपुर में रात में शराब पी और मोटर साइकिल की चोरी करने के क्रम में उसे मकरोई तथा डडियाबोझ के बीच कही झूठबोलकर 'दरांती' से उसका गला काटकर उसे नहर में दूर फेंक दिया और मोटर साइकिल को मोती राम के गन्ने के खेत में छुपा दिया।

इस खुलासे पर सूचना दाता अन्य लोगों के साथ अभियुक्त अपीलार्थी को उस स्थान पर ले गया जहां पर यशपाल का मृत शरीर पड़ा था। तद् उपरांत एक प्रार्थना पत्र लिखकर थाना बहेडी में सूचना दर्ज कराई गई जो प्रदर्श क-1 है। जिसकी सुसंगत प्रविष्टियां संबंधित चिक एफ.आई.आर.(प्रदर्श क-6) पर मुकदमा अपराध संख्या 1092 सन् 2012 अंतर्गत धारा-302,201 भा.द.सं.- थाना- बहेडी पर दर्ज की गई। जिसके आधार पर अभियुक्त राजू के विरुद्ध मुकदमा संबंधित सामान्य दैनिकी में क्रम संख्या 29 पर दिनांक 12.10.2012 को समय 01.10 पर उपर्युक्त थाने पर दर्ज की

गई। सम्बन्धित सामान्य दैनिकी प्रदर्श क-7 है। दोनों कागजात कांस्टेबल झाझन लाल (अभि० साक्षी-5) द्वारा साबित किया गया है। तदुपरांत विवेचना प्रारंभ हुई जो थाना प्रभारी सुनील कुमार पचौरी(अभि० साक्षी-6) को सौंपी गई।

निरीक्षक देवेन्द्र कुमार त्यागी (अभि० साक्षी-4) ने विवेचनाधिरारी के पर्यवेक्षण में दिनांक 12.10.2012 को पंचायतनामा तैयार किया और लाश को अंत्य परीक्षण घर, बरेली भेजने में सहयोग किया और पंचायत नामा (प्रदर्श क-2) को साबित किया है। पंचायतनामा के मात्र अवलोकन से यह तथ्य स्पष्ट है कि पंचायत नामा 12.10.2012 को 02.50 बजे से शुरू होकर 12.10.2012 को 04.00 बजे पूर्ण हुआ। लाश को अंत्य परीक्षण के लिए भेजने के लिए सुसंगत कागजात भी तैयार किये गये और सुसंगत कागजात प्रदर्श क-14, प्रदर्श क-15, प्रदर्श क-16, प्रदर्श क-17 और प्रदर्श क-18 के रूप में अभियोजन साक्षी-6 द्वारा साबित किया गया है जो कि क्रमशः चलान लाश, फोटो/लाश, मुख्य चिकित्साधिकारी को पत्र, आर.आई. को पत्र और नमूना मुहर है। जैसे कि विवेचना आगे बढ़ी, अभियोजन साक्षी डाक्टर टी.एस. आर्या द्वारा मृतक की लाश को अंत्य परीक्षण दिनांक 13.10.2012 को समय 1.00 बजे दोपहर किया गया। जिन्होंने मृतक यशपाल पुत्र नत्थूलाल के शरीर पर निम्नलिखित मृत्युपूर्व चोटें पाया जाना इंगित किया :-

1. कटा हुआ घाव 9X2 से.मी. X स्वासनली गहरी, 6 से.मी. ठोड़ी के नीचे, 9 से.मी. दाहिने कान के नीचे,

7 से.मी. बायें कान के नीचे, किनारा तेज और स्पष्ट।

2. एकाधिक खरोंच 6X1 से.मी. बायीं तरफ चेहरे पर बायें कान के सामने।

मृत्यु का कारण गर्दन पर आये कटे घाव के फल स्वरूप उत्पन्न सदमा और रक्त स्राव बताया गया।

समयान्तराल 1-1/2 से 2 वर्णित किया गया। अन्त्य परिक्षण रिपोर्ट डाक्टर साक्षी द्वारा प्रदर्श क 13 रूप में साबित किया गया है।

चूंकि विवेचना चल रही थी और अभियुक्त पुलिस की गिरफ्त में था, उसे नहर के किनारे की जगह पर ले जाया गया और एक बजाज प्लैटिना मोटर साइकिल काले रंग की जिसका क्रमांक उ.प्र. 25 ए.एफ. 1284 था अभियुक्त की निशानदेही पर मोती राम के गन्ने के खेत से बरामद किया गया, उसी स्थान पर ही फर्द बरामदगी तैयार किया गया, जो कि प्रदर्श क-3 के रूप में साबित किया गया है। चूंकि पुनः विवेचना जारी थी, विवेचनाधिकारी ने अभियुक्त की निशानदेही पर खून आलूदा 'दरांती' नहर के बायें तरफ के जगह में गुरुमीत सिंह के खेत में ब्लूबेरी की झाड़ियों में से बरामद किया, जिसे विवेचनाधिकारी द्वारा कब्जे में लिया गया और 'दरांती' की फर्द बरामदगी भी तैयार की गई जो कि प्रदर्श क-4 है। इसके अलावा विवेचनाधिकारी घटना स्थल पर पहुंचकर सादा मिट्टी और खूनालूद मिट्टी घटना स्थल से एकत्रित कर दो अलग-अलग डिब्बों में रखकर सील किया और उसका फर्द तैयार किया, जो कि प्रदर्श क-5 है। विवेचनाधिकारी ने घटना स्थल का नजरी नक्शा (प्रदर्श क-8) तैयार किया है। इसके

अतिरिक्त "दरांती" के बरामदगी स्थल का भी नजरी नक्शा तैयार तिया गया जो कि प्रदर्श क-9 है। इसी प्रकार मोटर साइकिल के बरामदगी स्थल का नजरी नक्शा भी प्रदर्श क-10 के रूप में विवेचनाधिकारी द्वारा साबित किया गया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि मोटर साइकिल की फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-10) तैयार करने के बाद एक बार पुनः विवेचनाधिकारी द्वारा बरामदगी स्थल पर जाया गया और बरामदगी स्थल का नजरी नक्शा प्रदर्श क-11 के रूप में तैयार किया गया। इसलिए, पत्रावली पर एक स्थल का दो नजरी नक्शा प्रदर्शित है। विवेचनाधिकारी द्वारा कई गवाहों के बयान भी दर्ज किये गये। अभियुक्त के कथित निशानदेही पर बरामद "दरांती" पत्र के साथ 'रासायनिक परीक्षण' हेतु भेजी गई। हमें न तो कहीं भी विधिविज्ञान प्रयोगशाला के रासायनिक परीक्षण द्वारा प्रेषित की गई कोई ऐसी रिपोर्ट और नहीं कोई कागज जिसका रिपोर्ट होना प्रदर्शित है, अभियोजन द्वारा पत्रावली पर नहीं लाया गया। विवेचना पूर्ण करने के बाद विवेचनाधिकारी द्वारा उपयुक्त अपराध संख्या में अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र (प्रदर्श क-12) दाखिल किया गया।

इसके अनुसरण में, मामले की कार्यवाही सत्र न्यायालय को सुपुर्द किये गये जहां से इसे विचारण और निपटारे के लिए अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय कक्ष संख्या-10, बरेली स्थानांतरित किया गया था जिन्होंने आरोप के बिंदु पर दोनो पक्षों को सुना और प्रथम दृष्टया अभियुक्त/अपीलार्थी के खिलाफ मामले से संतुष्ट थे, परिणामस्वरूप, उन्होंने धारा

302,201 भा.द.स. के अंतर्गत आरोप विरचित किये।

आरोप को अभियुक्त-अपीलार्थी को पढ़कर सुनाया और हिन्दी में समझाया गया, जिसने आरोपों से इंकार किया और विचारण चाहा।

परिणामस्वरूप, अभियोजन पक्ष को अपनी गवाही पेश करने की आवश्यकता पड़ी। अभियोजन पक्ष ने कुल 8 गवाह प्रस्तुत किये। अभियोजन साक्षी-1 प्रथम सूचना दाता नत्थू लाल है। अभियोजन साक्षी-2 प्रेम शंकर, और अभियोजन साक्षी-3 नन्द राम तथ्य के गवाह है। अभियोजन साक्षी-4 निरीक्षक देवेन्द्र कुमार त्यागी है जिन्होंने विवेचनाधिकारी के पर्यवेक्षण में पंचायत नामा तैयार किया था और जिसे उन्होंने प्रदर्श क-2 के रूप में साबित किया है। इन्होंने फर्द सादा मिट्टी और खूनालूदा मिट्टी को भी तथा "दरांती" की फर्द बरामदगी को भी साबित किया है। सिपाही क्लर्क झांझन लाल (अभि० साक्षी-5) ने अपने द्वारा संबंधित चिक एफ.आई.आर. में सूचना की सुसंगत प्रविष्टियों (प्रदर्श क-1) और संबंधित सामान्य दैनिकी में दिनांक 12.10.2012 को दर्ज सूसंगत प्रविष्टियों को भी साबित किया है। थानाध्यक्ष, सुनील कुमार पचौरी (अभि० साक्षी-6) ने मामले की विवेचना की है और अपनी सम्पूर्ण विवेचना का वर्णन किया है और अपने द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध प्रेषित आरोप पत्र के अतिरिक्त अन्य तमाम कागजातों को साबित किया है। अभियोजन साक्षी-7 डा० टी.एस. आर्या ने मृतक की लाश का अन्त्यपरीक्षण सम्पादित किया है और उसे प्रदर्श क-13 के रूप में साबित किया है। अभियोजन साक्षी-8 पतिराम लिखित सूचना का लेखक है।

तत्पश्चात, अभियोजन पक्ष का साक्ष्य समाप्त है और अभियुक्त का बयान अंतर्गत धारा-313 द.प्र.सं. दर्ज किया गया, जिसमें उसने कथन किया कि ग्राम प्रधान ने उसे इस मामले में रंजिशन गलत तरीके से फंसाया है और वह निर्दोष है। बचाव पक्ष की ओर से किसी प्रकार का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया।

विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, कक्ष सं. 10, बरेली, ने मामले के तथ्यों, गुणदोष और पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों के मूल्यांकन के पश्चात, दोषसिद्धि के अपने निर्णय और आदेश दिनांक 28.08.2013 द्वारा धारा 302,201 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि प्रदान करते हुए अभियुक्त को धारा 302 भा.द.सं. के अंतर्गत सश्रम आजीवन कारावास जुर्माने के साथ तथा 3 वर्ष सश्रम कारावास जुर्माने के साथ अंतर्गत धारा-201 भा.द.सं., से दण्डित किया। जुर्माने का भुगतान न करने की दशा में उसे उपर्युक्त प्रकार से अतिरिक्त कारावास भोगने के लिए निर्देशित किया गया।

परिणाम स्वरूप यह अपील।

बचाव पक्ष की बहस :-

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता एक निर्दोष युवक है और उसे झूठा फंसाया गया है। गांव की पार्टी बंदी और प्रधान द्वारा अपने फायदे के लिए संबन्धित थाना-बहेडी जिला-बरेली के पुलिस कर्मियों के साथ मिली भगत करके, झूठी रिपोर्ट लिखवाया है। उनके ग्राम प्रधान होने के कारण, वास्तव में रिपोर्ट पुलिस द्वारा बोलकर लिखी गई थी जिसे अभियोजन पक्ष के तथ्य के साक्षी द्वारा स्वीकार किया गया है। इस पर अभियोजन

साक्षी-1 सूचनादाता के प्रतिपरीक्षा से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट साक्ष्य पर अभियोजन पक्ष ने न तो गवाह को दोबारा परीक्षित कराया न ही उसे पक्ष द्रोही साक्षी घोषित किया गया।

उपर्युक्त अभियोजन साक्षी-1 नत्थू लाल, मुख्य साक्षी के विशिष्ट साक्ष्य को स्थापित और साक्ष्य की स्वीकृत भाग है, उसे विचारण न्यायालय द्वारा न ही माना गया, न ही चर्चा की गई और न ही इसको विचार में लिया गया। मामला परिस्थिति जन्म साक्ष्य पर आधारित होने के कारण, परिस्थितियों के श्रृंखला की कड़ियां बिखर गई हैं और श्रृंखला पूर्ण नहीं कही जा सकती और न ही अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए निर्णायक रूप से स्थापित ही किया गया। इसके विपरीत, तथ्य और परिस्थितियाँ अभियोजना पक्ष से साक्ष्य के अनुरूप अभियोजन साक्षी अभियुक्त के निर्दोषिता की ओर इशारा कर रहे हैं।

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अभियोजन साक्षी-1,2,3 और 8 के साक्ष्यों के कई भागों को पढ़ा और यह दावा किया कि ग्राम प्रधान के अति सक्रिय और शत्रुतापूर्ण होने के कारण अभियुक्त को इस मामले में पुलिस की मिली भगत से संलिप्तता दिखाया है। उसके पास अभियुक्त विरुद्ध हिसाब बराबर करने का विशिष्ट कारण था क्योंकि अभियुक्त ने किसी अन्य व्यक्ति की उम्मीदवारी का समर्थन किया था जो कि ग्राम प्रधान का चुनाव लड़ रहा था।

यह स्थापित विधि है कि परिस्थिति जन्म साक्ष्यों पर आधारित मामलों में, परिस्थितियों की श्रृंखला की विभिन्न कड़ियां पूर्ण, सुसंगत और संदेह के सृजन के लिए कोई जगह नहीं छोड़नी चाहिए, कोई भी स्थिति जो अभियुक्त

कि निर्दोषिता की परिकल्पना के पक्ष में कार्य करेगी। इस मामले में, परिस्थितियों की श्रृंखला की विभिन्न कड़ियां पूर्णतः असंगत हैं और परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है।

विद्वान अधिवक्ता ने यह दावा करते हुए अपनी बहस पूर्ण किया कि गवाही सजावट और बढ़ाने-चढ़ाने से भरी है। प्रथम सूचना रिपोर्ट समय विरोधी हैं और तमाम तथ्य और कोई नहीं बल्कि सूचना दाता अभियोजन साक्षी-1 द्वारा स्वयं उद्घाटित किया है और कई बार कहा है कि रिपोर्ट पुलिस द्वारा पंचायत नामा तैयार करने के बाद दर्ज किया गया था। यह ध्यान देने योग्य है कि पंचायतनामा स्वयं तथ्य को परिवर्तित करने वाला है कि पंचायतनामा तैयार करने का प्रारंभ 12.10.2012 को दोपहर 2.05 बजे प्रारम्भ होकर शाम 4.00 बजे पूर्ण हुआ। यह कि मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट 4.00 बजे के बाद पंचायत नामा होने के बाद दर्ज किया गया। एक बार जब प्रथम सूचना रिपोर्ट समय विरोधी हो जाती है, तो सम्पूर्ण अभियोजन मामला अत्यन्त संदेहपूर्ण हो जाता है और सम्पूर्ण अभियोजन कथानक सीधे धड़ाम हो जाता है और तब यह आत्मविश्वास नहीं उत्पन्न करेगा।

राज्य द्वारा प्रतिउत्तर :-

उपर्युक्त तर्क का जवाब देते हुए, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री ए.एन. मुल्ला ने तर्क दिया कि जहां तक अनतिम दर्शन के सिद्धान्त के तथ्य का सम्बन्ध है, वह सही तरीके से सम्यक रूप से साबित और स्थापित किया गया है और इस बिन्दु पर, अभियोजन साक्षी की गवाही अबाध है। जहां तक अभियोजन साक्षी-1 के प्रथम सूचना प्रदर्श क-1

के लिखाने के बिन्दु पर दिये गये बयान का संबंध है, उसको परिस्थितियों के अंतर्गत भटके हुए बयान के रूप में लेना चाहिए, जिसे जो समग्र रूप से पढ़ने पर गवाही की कतार के प्रवाह में नहीं आता है। हमले के हथियार की बरामदगी का तथ्य अभियोजन साक्षी द्वारा सम्यक रूप से और सही ढंग से साबित किया गया है और हमले के हथियार की बरामदगी के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं है।

‘दरांती’(सिकल) की बरामदगी अभियुक्त की निशानदेही पर की गई और मोटर साइकिल क्रमांक यू.पी. 25 ए.एफ. 1214 भी अभियुक्त की ही निशानदेही पर बरामद किया गया। इसके अतिरिक्त शव भी अभियुक्त के ही निशानदेही पर बरामद किया गया। इस अपराध को कारित करने का सबसे बड़ा महत्व यह था कि अभियुक्त मृतक की मोटर साइकिल हड़पने के लालच के विशेष कारण वश उसने इस घटना को मृतक यशपाल के गर्दन पर ‘दरांती’ से वार करके काटने द्वारा अंजाम दिया था। चिकित्सक जिसने यशपाल के शव का अन्त्य परीक्षण संपादित किया था, उसने 9 से.मी. X 2 से.मी. स्वासनली की गहरान तक कटे चोट के घाव को जो 6 से.मी. ठोड़ी के नीचे 9 से.मी. दाहिने कान के नीचे, 7 से.मी. बाये कान के नीचे मृतक की गर्दन पर तीक्ष्ण किनारे और स्पष्ट इंगित किया है। इसके अतिरिक्त, अन्वेषण निष्पक्ष रूप से किया गया है। इसका कोई कारण नहीं है कि क्यों पुलिस झूठे तरीके से अपीलार्थी को संलिप्त करने में इच्छुक थी और विवेचनाधिकारी द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध पक्षपात नहीं किया था। सूचना सही तरीके से 12.10.2012 को 1.10 बजे दोपहर में दर्ज की गई थी और उसे अभि0

साक्षी-5 सिपाही झाझन लाल द्वारा साबित किया गया है। यह दावा कि परिस्थितियों की श्रृंखला की कई कड़ियाँ पूर्ण नहीं हैं, उपयुक्त नहीं है। जबकि, अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य अन्यथा प्रदर्शित करता है। अभियोजन ने अपने मामले को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया है।

अपील के निर्धारण के विवादध बिन्दु-

विरोधी तर्कों और उठाये गये दावों के प्रकाश में, हमारे विचारार्थ निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं, क्या अभियोजन संतोष जनक रूप से अभियुक्त अपीलार्थी के विरुद्ध विरचित आरोपों को सभी युक्ति युक्त संदेहों से परे साबित करने योग्य रहा है..

मामले के गुणदोष पर परिचर्चा-

हमने समग्ररूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट की सामग्री, मृतक यशपाल का अपने घर से अभियुक्त के साथ निकलने और तत्पश्चात अगले दिन (12.10.2012) को उसके शव की बरामदगी का अवलोकन किया। इसका प्रारम्भ इस आरोप के साथ हुआ कि दिनांक 11.10.2012 को सूचनादाता (अभि० साक्षी-1) नत्थूलाल प्रेम शंकर और राकेश पुत्र वृन्दावन के साथ अपने घर पर बैठा था। समय करीब 3.00 बजे शाम, जब उसके गाँव का राजू पुत्र डोरी लाल गंगवार वहां आया, उसके बेटे यशपाल को बुलाया और अपने साथ भूरिया (बाजार का स्थान) “दरांती” की धार तेज कराने के लिए कहा। सूचनादाता का पुत्र (मृतक यशपाल) अपने साथ चार ‘दरांती’ लेकर उसके साथ अपनी मोटर साइकिल यू0पी0 25 ए0एफ0 1284 पर निकल गया। जब उसका

लड़का शाम ढलने तक वापस नहीं लौटा, सूचना दाता ने अपने लड़के की खोज बीन की किन्तु नहीं मिला।

दिनांक 12.01.2012 को, राजू (अभियुक्त) गांव की ओर आते दिखाई दिया, जब उसे पकड़ा गया और उससे अपने बेटे के बारे में पूछा गया कि वह कहाँ है, गांव के तमाम लोग उस स्थान पर इकट्ठे हो गये। वे राजू के ऊपर दबाव बनाने लगे, तब राजू ने उन्हें बताया कि वह और यशपाल ने रात में उगानपुर में शराब पिया था और वह यशपाल की मोटर साइकिल के लालच में आ गया था और इसे हड़पना चाहता था। इसलिए, यशपाल को धोखा देकर उसे 'मकरोनी' और 'डडियाबोझ' के बीच के किसी स्थान पर उसकी (यशपाल) की गर्दन "दरांती" से काटा और उसे नहर में फेक दिया और मोटर साइकिल को मोती राम के गन्ने के खेत में छुपा दिया।

ऐसे रहस्योघाटन पर, सूचना दाता अभियुक्त के साथ और अन्य लोगों के साथ घटनास्थल पर गया जैसा कि राजू द्वारा बताया गया था, जहाँ पर सूचनादाता ने अपने बेटे के शव को नहर के किनारे पड़ा देखा। प्रथम सूचना रिपोर्ट यही कह कर आगे बढ़ती है कि सूचना दाता घटना स्थल पर तमाम लोगों को छोड़कर थाने पर गया और सूचना दर्ज करने और कार्यवाही करने की प्रार्थना की। जहाँ तक प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-6) में इस विवरण का संबन्ध है, वह प्रथमतः दो विशिष्ट तथ्यों का उल्लेख करता है, पहला यह कि दिनांक 11.10.2012 की शाम करीब 3.00 बजे, अभियुक्त राजू मृतक यशपाल के साथ उसकी मोटरसाइकिल यू0पी0 25 ए.एफ. 1284 पर गया लेकिन रात में घर वापस नहीं

लौटा। अगले ही दिन (दिनांक 12.10.2012) घटना के सम्बन्ध में खुलासा हुआ कि शव को नहर में फेक दिया गया था, शव को नहर के बगल से बरामद किया गया। इसकी सूचना थाने में 12.10.2012 को दोपहर 01.10 बजे दर्ज की गयी, जिसे मुकदमा अपराध संख्या 1092 सन् 2012 अन्तर्गत धारा 302,201 भा0द0सं0 में थाना बहेड़ी जिला बरेली में पंजीकृत किया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित विवरण पत्रावली पर उपलब्ध गवाही के लिए मामले के तथ्य और परिस्थितियों की हमारे मूल्यांकन एवं जांच की आवश्यकता है।

बचाव पक्ष द्वारा दिये गये तर्क का महत्व यह है कि सम्पूर्ण मामला झूठा है गांव के प्रधान जो कि संयोग वश पतीराम (अभि0 साक्षी-8) है सूचना का लेखक है और उसने अपीलांत को झूठे तरीके से इस मामले में संलिप्त करने की व्यवस्था की है इस प्रकार उसे परीक्षित करने की आवश्यकता है। इस दावे के समर्थन में तमाम तर्क दिये गये हैं और तमाम साक्ष्यों को पढ़ा गया है।

अब हम अभियोजन पक्ष के तथ्य के साक्षियों की गवाही जैसा कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किया गया है और बचाव पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षित किया गया है, विचार करते हुए आगे बढ़ सकते हैं। नत्थू लाल (अभि0 साक्षी - 1) की गवाही प्रथम सूचना रिपोर्ट में घटना के विवरण को मिलाकर जिसमें उसने अपने मुख्य परीक्षा के दायरे में यह कि अभियुक्त दिनांक 11.10.2012 को उसके घर आया और उसके बेटे यशपाल को अपने साथ मोटरसाइकिल पर ले गया किन्तु उसका लड़का रात में घर वापस नहीं लौटा। राजू से किये गये पूछताछ में कि सूचनादाता के बेटा कहाँ है, के सम्बन्ध में वह

टाल गया, इस सम्बन्ध में नत्थूलाल की गवाही तथ्य के लिए सुझवात्मक है कि अगले दिन सुबह करीब 10.00 बजे अन्य लोगों के साथ जब सूचना दाता ने उससे दबाव डाला तो अभियुक्त राजू ने यह तथ्य व्यक्त किया कि गांव उगानपुर में शराब पीने के बाद अभियुक्त यशपाल की मोटर साइकिल के लालच में आ गया, इसलिए, अभियुक्त ने उसकी गर्दन 'दरांती' से काट कर उसके शव को डड़यामोढ़ और मैकरोई के बीच कही नहर के किनारे फेंक दिया और मोटर साइकिल को मोती राम के गन्ने के खेत में छिपा दिया। इसके पश्चात् सूचनादाता और गांव वाले घटनास्थल पर आये जहां अभियुक्त द्वारा शव को फेंका जाना बताया गया था।

अभियोजन साक्षी-1 (नत्थूलाल) की मुख्य परीक्षा का आरम्भ यह कह कर होता है कि सूचनादाता राजू के साथ थाने पर गया और गांव के प्रधान पतीराम पुत्र नोनीराम से रिपोर्ट लिखवाकर थाने पर दिया। गवाही इस विवरण से आगे बढ़ता है कि रिपोर्ट उसके बोलने पर लिखा गया और उसके सामग्री को सुनकर उसने उस पर अपना हस्ताक्षर बनाया और इस प्रकार रिपोर्ट पर अपना साबित किया जिस पर प्रदर्शक-1 पड़ा है। उसने अपने मुख्य परीक्षा के बयान के एकदम आखरी लाइन में कथन किया है कि वह थाने से अन्त्यपरीक्षण गृह गया। अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने कुछ निश्चित खुलासे किये हैं जो अभियोजन मामले को थाना बहेड़ी में दिनांक 12/10/2012 समय 1.10 दोपहर सूचना दर्ज करने के बिन्दु पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। अपनी प्रतिपरीक्षा में पत्रावली के पृष्ठ संख्या 21 और 22 पर इस हद तक गवाही दिया है कि घटना स्थल (जहां

यशपाल का शव पड़ा था) पहुंचने के बाद, वह पंचायतनामा पूर्ण होने/ तैयार होने तक मौजूद रहा था। जबकि उसने कथन किया है कि पंचायतनामा पूर्ण हो जाने के बाद वह सूचना दर्ज कराने थाने गया था। पुनः, उसकी प्रतिपरीक्षा तथ्य के इस खुलासे से आगे बढ़ती है कि उसने पुलिस को उसी समय सूचना दे दी थी। जब अभियुक्त सूचनादाता द्वारा किये गये पूछताछ का कि मृतक कहां है, का उत्तर दे रहा था कि गांव में पुलिस उसके घटना स्थल (जहां मृतक का शव पड़ा था) पर जाने के पूर्व ही आ गयी थी। प्रतिपरीक्षा विशिष्ट समय के कथन के बारे में आगे बढ़ती है कि पुलिस गांव में लगभग 10.30 बजे सुबह आ गई थी।

हम अभि. साक्षी -1 के प्रतिपरीक्षा में गवाही का संज्ञान लेते हैं कि यह दिनांक 12.10.2012 का दिन था जब वह पंचायतनामा पूर्ण होने के बाद थाने गया था। वह पुनः कहता है कि 'पंचायतनामा' दोपहर 12.00 बजे के बाद तैयार हुआ था। पंचायतनामा तैयार होने के बाद, वह थाने पर सूचना लिखाने गया था और थाने से अन्त्य परीक्षण गृह चला गया। जब सूचनादाता द्वारा सूचना दर्ज करा दी गई, सबसे पहले शव को थाने पर ले जाया गया। इसके पश्चात्, शव को अंत्यपरीक्षण गृह ले जायी गई। उसने पुनः कथन किया है कि सूचना दर्ज कर दिये जाने के बाद, विवेचक ने उससे घटना के बारे में कोई जांच पड़ताल नहीं की। जबकि, सूचना दर्ज करने के पूर्व उससे घटना के बारे में पूछताछ की गई थी। उसने विशिष्ट रूप से पत्रावली के पृष्ठ संख्या -22 पर अपने प्रतिपरीक्षा के कथन में कहा है कि दरोगा

जी ने लिखित तहरीर (प्रदर्शक -1) तैयार करवाया था "तहरीर गांव के प्रधान जी ने लिखा था" और "इसे दरोगा जी ने प्रधान जी को बोला था"

पंचायतनामा (प्रदर्शक-2) के मात्र अवलोकन से यह तथ्य इंगित होता है कि पंचायतनामा तैयार करने की प्रक्रिया 12/10/2012 को दोपहर 2:05 बजे शुरू हुई और उसीदिन शाम 4:00 बजे पूर्ण हो गयी। पंचायतनामा मे उल्लिखित विवरण के अनुसार, इसमे यह वर्णित है कि दिनांक 12.10.2012 को मुकदमा अपराध संख्या- 1092 सन् 2012 मे सूचना प्राप्त होने के पश्चात, पुलिस पार्टी घटना स्थल के लिए रवाना हुई, शव नहर के पानी मे पड़ मिला। शव का सिर पश्चिम की ओर था, जबकि पैर पूरब की ओर था। शव को नहर के पानी से बाहर निकालकर नहर के किनारे रखा गया और पंचायतनामा तैयार किया गया। यह विवरण अपने आप मे ही इस तथ्य को इंगित करता है कि पंचायतनामा शव को नहर से निकालने के बाद नहर के किनारे शाम 4:00 तैयार किया गया। अभियोजन का मामला यह नहीं है कि पंचायतनामा या तो थाने मे तैयार किया गया या अस्पताल मे लेकिन यह साबित हुआ है कि पंचायतनामा नहर के किनारे तैयार और पूर्ण किया गया। यदि सूचना, जैसा कि दावा किया गया कि 12.10.2012 को दोपहर 1:10 बजे दर्ज किया गया तो नत्थूराम की प्रति परीक्षा की गवाही पर विश्वास करना कैसे सम्भव है कि सूचना पंचायतनामा पूर्ण होने के बाद दर्ज करायी गई। यदि सूचना 12.10.2012 को दोपहर 1:10 बजे थाना बहेड़ी मे दर्ज कराराया गया था तो ऐसा कोई बिन्दु नहीं है कि सूचनादाता थाने से

अंत्यपरीक्षण गृह की ओर रवाना हुआ था, जबकि, सामान्य परिस्थितियों, मे उसे घटनास्थल पर अकेले या पुलिस पार्टी के साथ जाना चाहिए था जहां पंचायतनामा तैयार करने की प्रक्रिया चल रही थी (जो स्थान नहर की पटरी की तरफ है) जैसी स्थिति हो, किन्तु ऐसा नहीं था, जबकि यह स्वीकृत स्थिति है कि पंचायतनामा 12.10.2012 को दोपहर 2:05 बजे से शाम 4:00 बजे तक तैयार हुआ।

अभियोजन साक्षी-1 कि गवाही का एक दूसरा प्रमुख लक्षण जो तथ्य से प्रतिबंधित होता है कि दिनांक 12.10.2012 के सुबह 10:30 बजे पुलिस गांव मे बिना सूचना और घटनास्थल पर किसी अन्य कार्यवाही के पहुंच गयी थी, जबकि सम्पूर्ण प्रथम सूचना रिपोर्ट इस सम्बन्ध मे पूरी तरह से शांत है और इसका कोई जिक्र नहीं होता है। ऐसा लगता है, अभियोजन द्वारा घटना के बारे मे महत्वपूर्ण तथ्य छिपाया गया। कथित रूप से तथ्य सूचना दर्ज कराने के सम्बन्ध मे, पुलिस के गांव मे आने मे वास्तविक घटना से मेल नहीं खाते है और अधिक आश्चर्यजनक यह है कि रिपोर्ट दरोगा जी द्वारा बोलकर लिखाई गई और इसे ग्राम प्रधान पतीराम (अभि0 साक्षी-8) द्वारा लिखा गया (अभि0 साक्षी-1 नत्थूलाल) की गवाही इस बिन्दु पर प्रहार करता है कि "दरोगा जी ने बोला और प्रधान जी ने रिपोर्ट लिखा"।

उपर्युक्त के प्रकाश मे, हम अभि0 साक्षी-8 पतीराम की गवाही को भी विचार मे लेते है, जिसने इस तथ्य कि रिपोर्ट उसने नत्थूलाल के बोलने पर नहर की पटरी पर स्वयं लिखा है, को पुष्ट किया है। अतः अभि0 साक्षी-8 की उसके मुख्य परीक्षा की गवाही ढेर सारे सन्देह

उत्पन्न करता है और सनीयता पर गम्भीर प्रश्न उठाता है। उनमें से किसी भी पर एक विश्वनीय साक्षी होने का विश्वास रिपोर्ट लिखाने और इस प्रकार बोले जाने और लिखने के बिन्दु पर, नहीं किया जा सकता है।

हम पुनः इंगित करते हैं कि ग्राम प्रधान ने कुछ फर्दों प्रदर्शक -5, साफी मिट्टी और कीचड़, फर्द बरामदगी मोटर साइकिल और फर्द बरामदगी 'दरांती' (प्रदर्शक- 4) का साक्ष्य भी दिया है।

पत्रावली के पृष्ठ संख्या-47 पर अपने प्रति परीक्षा में अभियोजन साक्षी-8 ने यह कथन क्या है कि उसने रिपोर्ट नत्थू लाल के बोलने पर लिखा जबकि, पुलिस 9 से 9.30 बजे के बीच आ गई थी। पंचायतनामा उसके सामने करीब 9.10 बजे तैयार हुआ। यह विशिष्ट गवाही अपने आप में इस तथ्य को प्रतिबिंबित करती है कि यह साक्षी न तो विश्वासनीय है और न ही भरोसेमंद, यहां तक कि इस तथ्य के बारे में कि पंचायतनामा कब बनाया गया। जबकि, अभियोजन साक्षी-1 की रिपोर्ट के दरोगा दी के बोलने और पतीराम (अभि० साक्षी-8) द्वारा लिखने के सम्बन्ध में, गवाही प्रथम सूचना रिपोर्ट को समय विरोधी और पुलिस की इसके परिणाम में, सलिप्तता और जबरजस्ती करना, बताता है, विशेषरूप से विवेचनाधिकारी की।

आपराधिक विधिशास्त्र का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट, सूचना के दर्ज किये जाने की विशिष्ट समय को लेकर संदेहपूर्ण हो जाती है और यह तथ्य कि प्रथम सूचना रिपोर्ट किसने बोला है और इसे किस व्यक्ति ने लिखा है, तब अभियोजन मामला अपने नींव की दशा में ही महत्व खो

देता है ऐसा प्रथम सूचना रिपोर्ट के समय विरुद्ध होने से होता है। यहां गवाही पर आधारित यह एक सही मामला है और परिस्थितियां जो इस तथ्य को साबित करती हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समय विरुद्ध है, जिसका तथ्यात्मक पहलू सूचनादाता-अभियोजन साक्षी-1 की गवाही से स्वयं ही सिद्ध है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पंचायतनामा तैयार होने के बाद दर्ज हुई थी जो 12.10.2012 को शाम 4.00 बजे पूर्ण हुई।

हम सिपाही क्लर्क झाझन लाल (अभि० साक्षी-5) की गवाही पर चर्चा करना चाहेंगे जिसने लिखित तहरीर (प्रदर्शक-1) के विवरण को चिक एफ.आई.आर. नं. 344 सन् 2012 पर मुकदमा अपराध संख्या -1092 सन् 2012 अंतर्गत धारा 302,201 भा.द.सं. पर लिखने का दावा किया है और मुकदमा 01.10 बजे दोपहर में सामान्य दैनिकी के क्रम सं. 29, थाना-बहेड़ी, जिला-बरेली पर पंजीकृत किया था और उसने चिक एफ.आई.आर. और संबन्धित सामान्य दैनिकी जो क्रमशः प्रदर्शक क-6 और प्रदर्शक क-7 हैं, को साबित भी किया है। जबकि, उसने अपने प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि सूचना दाता (अभि० साक्षी-1) द्वारा लिखित तहरीर दिया गया था जबकि सूचना दाता (अभि० साक्षी-1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि तहरीर अभियोजन साक्षी-8 पतीराम द्वारा दरोगा जी के बोलने पर लिखा गया और यह पंचायतनामा (प्रदर्शक क-2) तैयार होने के बाद लिखा गया। इस प्रकार, अभियोजन साक्षी-5 सच्चाई को छिपा रहा है और सही तथ्य के साथ नहीं आ रहा है।

उपर्युक्त के दृष्टिगत, यह स्पष्ट है कि दोनों अभियोजना साक्षी अभियोजन साक्षी-8 और अभियोजन साक्षी-1 विश्वसनीय नहीं हैं। वे भरोसेमंद नहीं हैं और उनके प्रतिपरिक्षा में उनके बताने को बदलने का खुलासा हो चुका है। परिस्थितियां भी दर्शाती हैं, अभियोजन साक्षी-1 की गवाही जो पत्रावली के पृष्ठ संख्या 2, पर है कि थाने में तहरीर तब लिखाई गई जब पंचायतनामा तैयार किया जा चुका था, तब वह (अभि० साक्षी-1) अंत्य परीक्षण गृह गया। गवाही का यह विशिष्ट भाग सच में परदा उठाता है कि चीजों को व्यवस्थित करने की, जानबूझकर, तय करने की कोशिश की गई है जिसका कारण अभियोजन पक्ष बेहतर जाना होगा।

अभियोजन साक्षी-1 की गवाही इस तथ्य को सामने लाता है कि मृतक कहाँ है। इस बारे में राजू से दिनांक 12.10.2012 को पूछताछ करने के बाद, राजू अपने घर चला गया। उसने कथन किया कि दरोगा जी ने उसका बयान ऐसे दर्ज नहीं किया। उसने फिर कहता है कि यशपाल का शव नहर के पानी में पड़ा था। नहर में पानी घुटने बराबर था। जबकि, इस साक्षी ने विशिष्ट तौर पर कहा है कि राजू की मृतक से कोई रंजिश नहीं थी।

जहां तक नन्द राम (अभि० साक्षी-3) की गवाही का प्रश्न है यह अभियोजन साक्षी-2 प्रेम शंकर की गवाही के समान ही 'अंतिम दृष्टि' के और पंचायत नामा के तैयार होने के सम्बन्ध में है। जबकि, अभियोजन साक्षी-1 की गवाही के सम्बन्ध में है। जबकि, अभियोजन साक्षी-1 की गवाही के दृष्टिगत अभियोजन कहानी में ढेर सारे संदेह कार्य करते हैं और कई संभावनाओं को जन्म देते हैं। अब, जहां

तक विवेचनाधिकारी अभियोजन साक्षी-6 सुनील कुमार पचौरी का संबंध है, बेशक वह दावा करता है कि वह रिपोर्ट दर्ज होने के बाद घटना स्थल पर रवाना हुआ, जबकि, उसकी गवाही प्रथम सूचना रिपोर्ट के दिनांक 12.10.2012 को समय 1.10 बजे दर्ज होने के स्पष्ट विरोधाभास में है जैसा कि अभियोजन द्वारा दावा किया गया है। वह दावा करता है कि घटना स्थल का नक्शा नजरी उसके द्वारा तैयार किया गया है जो प्रदर्श क-8 है। नजरी नक्शे में विवेचक द्वारा दिखाया गया स्थान 'ए' नहर प्रकट होता है। इसके पश्चात स्थान 'बी' नहर की पटरी/फुटपाथ के रूप में दर्शित है। जहां कि शव को कथित रूप से पड़ा दर्शाया गया है और जो नहर से निकाला गया था। बेशक, नहर में पानी था और शव निश्चय ही 11/12.10.2012 की रात कुछ घंटों के लिए नहर में पड़ी थी जबकि, उसने "दरांती" की बरामदगी और फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-7) को तैयार करना और उक्त बरामदगी के स्थान का नजरी नक्शा (प्रदर्श क-9) तैयार करना साबित किया है। और उसने मोतीराम के गन्ने के खेत से मोटर साइकिल की बरामदगी को भी साबित किया है और उसने मोटर साइकिल की फर्द बरामदगी और नजरी नक्शा भी साबित किया है जिसे प्रदर्श क-10 से दर्शाया गया है।

जबकि, यह इंगित करने योग्य है कि "दरांती" जो कि अभियुक्त दिखाने पर विवेचनाधिकारी द्वारा बरामद किया गया था, जिसका दावा किया गया है कि उसे फोरेंसिक पांच के लिए विधि विज्ञान प्रयोगशाला, लखनऊ से दिनांक 31.10.2012 को भेजा गया है किन्तु इसकी कोई भी रिपोर्ट प्राप्त नहीं कराई गई और पत्रावली पर नहीं रखी गई है

जिससे कि यह तथ्य सिद्ध है कि बरामद "दरांती" मानव रक्त से रक्तरंजित थी। चूंकि इस बिन्दु पर अभियोजन द्वारा स्वयं ही बता दिया गया है कि बरामद 'दरांती' विधिक जांच के लिए भेजी गई थी, तब यह अभियोजन के भाग पर 'दरांती' पर पाये गये रक्त की जांच आख्या मंगवाता और उसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया होगा किन्तु ऐसा नहीं किया गया है।

आख्या का प्रस्तुत व किया जाना अभियोजन के इस दावे पर कि रक्त रंजित 'दरांती' बरामद की गई और इसे फोरेंसिक जांच के लिए भेजी गई, गंभीर संदेह उत्पन्न करता है।

विवेचनाधिकारी यह दावा करता है कि रिपोर्ट दोपहर 1.10 बजे दर्ज की गई, जिसका एक पहलू अभियोजन साक्षी-1 की उसकी प्रतिपरीक्षा की गवाही में संदेहपूर्ण दिखाया जा चुका है। विवेचनाधिकारी ने यह भी कथन किया है कि लिखित तहरीर तैयार की गई थी और उसे थाने पर प्रस्तुत की गई थी। उसके पंचायतनामे के सम्बन्ध में भी कथन किया है जो कि उसके पर्यवेक्षण के सम्बन्ध में भी कथन किया है जो कि उसके पर्यवेक्षण में देवेन्द्र कुमार त्यागी अभियोजन साक्षी-4 द्वारा तैयार की गई थी। जब उससे यह पूछा गया कि वह थाने पर अपनी सेवा दे रहा था और उसने निष्पक्ष विवेचना नहीं किया है, इस सुझाव से उसने इंकार किया है।

यह आश्चर्यचकनक है कि चिकित्सक साक्षी डॉ.टी.एस. आर्या अभियोजन साक्षी-7 ने बिना हानि पहुंचाए अपने प्रतिपरीक्षा में कथन किया है कि विवेचक ने उनसे कोई पूछताछ नहीं किया, अपने मुख्य परीक्षा के अन्तिम पंक्ति

में डॉ.टी.एस. आर्या अभियोजन साक्षी-7 ने इस हद तक गवाही दिया है कि चोट (चोट संख्या-1) 'दरांती' हथियार से नहीं आ सकती है लेकिन यह किसी तेज धार हथियार से आ सकती है। जबकि, इस बिन्दु पर अभियोजन के लिए यह दायित्व था कि वह इस साक्षी को पुनः परीक्षित कराता और 'दरांती' के प्रयोग से आयी चोट के बारे में उसके तथ्यात्मक पहलू को स्पष्ट करता था किन्तु इस पहलू को अभियोजन द्वारा जाने दिया गया जिसका बेहतर कारण अभियोजन ही जान सकता है।

यह जाहिर है कि रिपोर्ट दर्ज होने के पूर्व, पुलिस वालों का हस्तक्षेप और आसंकित विशेषतः इस मामले के विवेचनाधिकारी था, पत्रावली पर प्रकट है, एफ.आई.आर. दर्ज होने के पूर्व ग्राम प्रधान से विवेचक की मंत्रणा अभियोजन के लिए हानिकारक सिद्ध हुई है और यह प्रथम सूचना रिपोर्ट के तोड़ मरोड़ कर और पुलिस द्वारा जानबूझकर इस आशय से किया गया है कि तथ्य को यह विश्वास दिया जा सके कि यह समय पर दर्ज नहीं किया गया है। जब सूचनादाता द्वारा यह दावा किया जाये कि यह समय पर दर्ज हुआ है। इसके बजाय अभियोजन साक्षी-1 की गवाही जो कि उसके प्रतिपरीक्षा से आयी है यह दिखाता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समय विरोधि है। बचाव पक्ष भी रंजिश क तथ्य पर आया है कि अभियुक्त को हमसे फंसाया गया है मामले में ग्राम प्रधान के के बचाव पक्ष भी रंजिश के तथ्य के साथ आया है कि अभियुक्त को इस मामले में ग्राम प्रधान पती राम के प्रेरणा पर फंसाया गया है। चूंकि अभियुक्त ने उसने ग्राम प्रधान के चुनाव में उस व्यक्ति का समर्थन किया था जो पती राम के विरुद्ध चुनाव लड़ा

था। हम आसानी से यह प्रेक्षित कर सकते हैं कि अभियोजना पक्ष के तथ्य के गवाहों की गवाही साथ ही साथ सिपाही झाड़न लाल एवं विवेचनाधिकारी अभियोजन साक्षी-6 की गवाही प्रकट रूप में और स्वाभाविक रूप से विपरीत है और यह विश्वास उत्पन्न नहीं करती है। अभियोजन के तथ्य के साक्षियों की गवाही जो सामने है वह विश्वास नहीं पैदा करती है और इस कारण से पुलिस के सक्रिय भागीदारी से सम्पूर्ण चीजों को तोड़ने-मरोड़ने के कारण और विशेष रूप से विवेचनाधिकारी का ग्राम प्रधान पती राम (अभि० साक्षी 8) के साथ मिली भगत से संदेह उत्पन्न होता है इससे इंकार का कोई तथ्य नहीं है कि धर्मद्व गंगवार को जो कि मौजूदा ग्राम प्रधान पती राम के विरुद्ध ग्राम प्रधान के चुनाव में उम्मीदवार था, अभियुक्त द्वारा उसके समर्थन का कोई आधार नहीं है, इसलिए, पती राम के पास अभियुक्त के एक कारण था और अभियोजन साक्षी-1 की गवाही स्वयं यह तथ्य निर्देशित करती है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट थाने में दरोगा जी ने पती राम को बोलकर लिखाया था और स्वयं यह काफी भौतिक खामियां उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है और अभियोजन कथानक को चोट पहुंचाती है, जो उपर्युक्त जाहिर कारणों से अभियुक्त के पक्ष में मजबूत संदेह के लाभ का मामला बनाता है।

सभी सुसंगत पक्षों पर हमारे द्वारा परिचर्चा करने और विशिष्टतया प्रथम सूचना रिपोर्ट के लखे जाने में, पंचायतनामा तैयार करने के समय में और अभियुक्त के

झूठा फंसाने के बिन्दु के तथ्यों को निचली अदालत द्वारा उचित तरीके से सरहना और मूल्यांकन नहीं किया गया इसके विपरीत इस मामले में पत्रावली पर दर्ज गवाही और उसके साथ जुड़े तथ्यों और परिस्थियों का अवलोकन भी नहीं किया गया पत्रावली पर उपलब्ध सामाग्री अभियुक्त के पक्ष में झुकती है और इसका लाभ उसे मिलना चाहिए।

उपर्युक्त कथित कारणों में, अपीलार्थी संदेह के लाभ का अधिकारी है, तदनुसार वह बरी होने का अधिकारी है।

फलस्वरूप, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय कक्ष संख्या 10 बरेली द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 1143 सन् 2012 (राज्य बनाम राजू), व्युत्पन्न मुकदमा अपराध संख्या 1092 सन् 2012 अंतर्गत धारा 302,201 भा. दा. सं., थाना बहेड़ी, जनपद-बरेली, में पारित दोषसिद्धि का निर्णय और आदेश दिनांक 20.08.2013 निरस्त किया जाता है।

अपील स्वीकार की जाती है।

इस मामले में अपीलार्थी 10 वर्ष से अधिक से जेल में बन्द है, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, उसे रिहा किया जा सकता है।

इस निर्णय/आदेश की एक प्रमाणित प्रति संबन्धित न्यायालय को आवश्यक सूचना

एवं अनुवर्ती कार्यवाही हेतु भेजी जाय।

(2023) 4 ILRA 1004

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

रिट ए संख्या 36 / 2021

सुशील कुमार एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

विधान परिषद उत्तर प्रदेश एवं अन्य

... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: शोभित मोहन शुक्ला

अधिवक्ता प्रतिवादी: सीएससी, आकांक्षा दुबे, अशोक शुक्ला, गौरव मेहरोत्रा, ललित शुक्ला, मनोज कुमार चौरसिया

ए. सेवा विधि- चयन- प्रक्रिया भर्ती- उ.प्र. विधान परिषद सचिवालय (भर्ती एवं सेवा शर्त) नियमावली, 1976 नियम - नियम-6 (i-D) के 21, 22 एवं 23; उत्तर प्रदेश जूनियर स्तर के पदों पर सीधी भर्ती (साक्षात्कार की समाप्ति) नियमावली, 2017; विधान परिषद प्रख्यापित (चतुर्थ संशोधन) नियमावली, 2019।

कानून में यह बात अच्छी तरह स्थापित है कि न्यायालय को वाद में ऐसी जांच से बचना चाहिए जिसके आधार पर कोई व्यक्ति अपना मामला प्रस्तुत कर सके। आरोप अस्पष्ट और सामान्य नहीं होने चाहिए तथा भ्रष्ट आचरण के विवरण को स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए। किसी उचित मामले में, यदि सामग्री आवश्यक है, तो न्यायालय प्रासंगिक दस्तावेजों को प्रस्तुत करने का आदेश दे सकता है, लेकिन उससे पहले, दस्तावेजों को प्रस्तुत करने

की मांग करने वाले पक्ष का यह कर्तव्य होगा कि वह यह मामला बनाए कि कुछ दस्तावेजों को प्रस्तुत करना आवश्यक होगा। (पैरा 23)

बी. न्यायिक समीक्षा का दायरा- किसी सार्वजनिक निकाय में किसी पद के लिए नियुक्तियाँ निष्पक्ष और उचित अवधि में होनी चाहिए। चयन की पूरी प्रक्रिया में निष्पक्षता और तर्कसंगतता सुनिश्चित की जानी चाहिए। भर्ती निकाय का निर्णय न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी है, परंतु यह स्थापित सिद्धांत हो कि उसे कानून के अनुसार निर्णय लेना चाहिए, और चयन प्रक्रिया की पवित्रता और अखंडता के लिए सबसे उपयुक्त होना चाहिए। चयन प्रक्रिया/अभ्यास स्वयं ही दूषित हो सकता है, जहाँ प्रक्रिया में अनियमितताएँ व्यवस्थित स्तर पर हुई हैं। (पैरा 24)

यदि व्यवस्थित अनियमितताएं या धोखाधड़ी के दायरे में प्रवेश करने के परिणामस्वरूप प्रक्रिया की विश्वसनीयता और वैधता प्रभावित होती है, तो संपूर्ण चयन को रद्द कर दिया जाना चाहिए। हालांकि, यदि चयन प्रक्रिया में भाग लेने वाले कुछ प्रतिभागी, जो परीक्षा या चयन में उपस्थित हुए थे, स्वयं अनियमितताओं के दोषी हैं, और ऐसे व्यक्तियों को, जो गलत काम करने के दोषी हैं, अन्य लोगों से अलग करने की संभावना है, तो संपूर्ण चयन को रद्द नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे व्यक्ति, जो गलत कामों में लिप्त थे, उनके मामलों को चयन प्रक्रिया से बाहर रखा जाना चाहिए। (पैरा 24)

सी. सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती के लिए जनता का विश्वास जीतना ज़रूरी है। अगर परीक्षा की

निष्पक्षता, निष्पक्षता और पवित्रता सुनिश्चित करने में कोई व्यवस्थित विफलता होती है, तो परीक्षा रद्द कर दी जानी चाहिए। जिन लोगों की भर्ती की जाती है, उनका उद्देश्य सरकार के कामकाज से जुड़े सार्वजनिक कार्य करना होता है। अगर पूरी प्रक्रिया में खामियां पाई जाती हैं, तो निःसंदेह, चयन प्रक्रिया रद्द करने से कुछ लोगों को परेशानी हो सकती है, जो विशेष रूप से गलत कामों में शामिल नहीं पाए जा सकते हैं, लेकिन चयन प्रक्रिया में जनता का विश्वास बनाए रखने, भर्ती/चयन प्रक्रिया में इसकी अखंडता, पवित्रता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए, ऐसी स्थिति में पूरी चयन प्रक्रिया को रद्द करना होगा। याचिकाकर्ता चयन प्रक्रिया में ऐसी किसी व्यवस्थित विफलता या अनियमितता को इंगित नहीं कर पाए हैं। (पैरा 25)

डी. सार्वजनिक पद के लिए भर्ती स्वतंत्र और उचित शर्तों पर होनी चाहिए। पदों के लिए चयन की एक निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया, अवसर की समानता के मानदंड के अधीन, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अधीन है। विधानसभा और विधान परिषद में वर्ग-III पदों के संबंध में भर्ती प्रक्रिया में जनता का विश्वास बनाए रखने के लिए, भर्ती विशेषीकृत वैधानिक भर्ती निकाय के हाथों में होनी चाहिए, न कि किसी चयन समिति या निजी एजेंसी के हाथों में। इसलिए, यह निर्देश दिया जाता है कि भविष्य में विधानसभा और विधान परिषद में सभी वर्ग-III पदों को यूपी अधीनस्थ सेवा चयन आयोग द्वारा किए गए चयन द्वारा भरा जाना चाहिए। इस संबंध में, भर्ती नियमों में आवश्यक संशोधन आज से

तीन माह की अवधि के भीतर किया जाना है। (पैरा 26, 27)

जहां तक आपेक्षित विज्ञापन के आधार पर चयन को रद्द करने के लिए की गई प्रार्थना का संबंध है, रिट याचिका निरस्त की जाती है। ((ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

सचिन कुमार एवं अन्य बनाम दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड (डीएसएसबी) एवं अन्य, (2021) 4 एससीसी 631 (पैरा 25)

वर्तमान याचिका में विज्ञापन संख्या 01/2020 दिनांक 17.07.2020 और पूरक विज्ञापन दिनांक 27.09.2020 के अनुसार चयन की पूरी प्रक्रिया को निरस्त करने की प्रार्थना की गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रस्तुत याचिका याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर की गई है, जिन्हें वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी सरकारी आदेश संख्या-ए-2/234/10- 98-24 (6) 97 दिनांक 22.05.1998 में निहित योजना के अनुसार अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया गया था, जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि विधान परिषद सचिवालय में तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के पदों में उत्पन्न रिक्तियों को भरने के लिए नियुक्ति अधिकतम अस्थायी दैनिक वेतन के

आधार पर एक बार में छह माह की अवधि के लिए की जाएगी, और उक्त सरकारी आदेश में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि अस्थायी और दैनिक मजदूरी के आधार पर नियुक्त कर्मचारियों के नियमितीकरण के लिए कोई दावा नहीं होगा।

2. याचिकाकर्ता संख्या-1, 2 और 3 को क्रमशः दिनांक 20.11.2012, 11.01.2011 और 24.12.2014 के आदेशों द्वारा सहायक समीक्षा अधिकारी के पद पर संविदात्मक नियुक्ति दी गई थी।

3. विधान परिषद सचिवालय के अधिकारियों/कर्मचारियों की सेवा शर्तें भारत के संविधान के अनुच्छेद 187 (ख) के अधीन बनाए गए उत्तर प्रदेश विधान परिषद सचिवालय (भर्ती एवं सेवा शर्तें) नियम, 1976 (इसके पश्चात् "नियम, 1976 में संदर्भित) द्वारा शासित होती हैं। नियम, 1976 को 14.01.2020 को अधिसूचित चौथे संशोधन नियम, 2019 (इसके बाद "नियम, 2019" के रूप में संदर्भित) द्वारा संशोधित किया गया है। संशोधित नियमों में एक महत्वपूर्ण और प्रमुख परिवर्तन यह है कि जो पद पहले उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे में थे, उन्हें उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर कर दिया गया है, और उक्त पदों को संशोधित नियम-6 (आई-डी) के तहत गठित की जाने वाली चयन समिति के दायरे में लाया गया है।

4. विज्ञापन दिनांक 17.09.2020 एवं पूरक विज्ञापन दिनांक 27.09.2020 द्वारा सहायक समीक्षा अधिकारी, समीक्षा अधिकारी एवं अपर

निजी सचिव के पदों सहित वर्ष 11 संवर्गों के 99 रिक्त पदों के लिए भर्ती आयोजित करने के लिए ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित किए गए थे।

5. याचिकाकर्ताओं ने 3 पदों अर्थात् सहायक समीक्षा अधिकारी, समीक्षा अधिकारी और अतिरिक्त निजी सचिव के पद के लिए आवेदन किया। वे भर्ती प्रक्रिया की प्रारंभिक परीक्षा में असफल रहे।

6. प्रस्तुत याचिका में, याचिकाकर्ताओं ने विज्ञापन संख्या-01 वर्ष 2020 दिनांक 17.07.2020 और पूरक विज्ञापन दिनांक 27.09.2020 के अनुसार चयन की पूरी प्रक्रिया को निरस्त करने की प्रार्थना की है।

इसके अतिरिक्त, प्रतिवादियों को यह निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना की गई है कि वे याचिकाकर्ताओं को दिनांक 22.05.1998 के सरकारी आदेश की योजना के अनुसार अपने संबंधित पदों पर कार्य करना जारी रखने की अनुमति दें।

7. अपनी प्रार्थनाओं के समर्थन में, याचिकाकर्ताओं ने चयन प्रक्रिया में भाई-भतीजावाद, पक्षपात, दुर्भावना और नियमों के उल्लंघन के आरोप लगाए हैं। यह आगे आरोप लगाया गया है कि पहले यह यू.पी. लोक सेवा आयोग था, जो विज्ञापित पदों के लिए चयन कर रहा था, हालांकि, नियम 1976 में संशोधन किए गए थे, और एक मिलाभगत से, चयन एक निजी एजेंसी को सौंपा गया था। आरोप है कि गोरखपुर सेंटर पर परीक्षा के दिन ही पेपर

लीक हो गया था। यद्यपि गोरखपुर केन्द्र पर परीक्षा निरस्त कर दी गई थी, लेकिन यह आरोप लगाया गया है कि प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग में, जहां अर्धचालक और इलेक्ट्रॉनिक क्रांति हुई है, बड़े पैमाने पर एक केन्द्र पर प्रश्न पत्र का लीक होना सभी केन्द्रों पर प्रश्न पत्र का लीक होने के समान है।

8. याचिकाकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि नियम-6 (आई-डी) के नियम, 21, 22 और 23 के संयुक्त पठन से यह स्थापित होगा कि नियम-22 (2) नियम 6 (आई-डी) के नियम-21 की योजना के उल्लंघन में है। अब, चयन समिति को लिखित परीक्षा और/या साक्षात्कार कराने का अधिकार प्राप्त है।

9. यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि नियम-22 (2) में यह प्रावधान है कि अध्यक्ष किसी बाहरी एजेंसी की पूरी चयन प्रक्रिया या उसके भाग का संचालन करने के लिए अधिकृत कर सकता है, इसलिए, याचिकाकर्ताओं की ओर से की गई प्रस्तुतियाँ कि विज्ञापन जारी करने से लेकर लिखित परीक्षा आयोजित करने और साक्षात्कार आदि आयोजित करने तक का पूरा चयन नियम 6 (i-D) में संदर्भित चयन समिति का काम है, नियमा की स्कीम को देखते हुए सही प्रतीत नहीं होता है। यह तर्क दिया गया है कि प्रस्तुत वाद में केवल लिखित परीक्षा आयोजित की गई है, और अंतिम चयन के परिणाम घोषित करने से पहले चयन समिति द्वारा कोई साक्षात्कार आयोजित नहीं किया गया था।

10. नियम-21 के अधीन लिखित परीक्षा और/या साक्षात्कार निर्धारित है और इसलिए,

लिखित परीक्षा अनिवार्य रूप से साक्षात्कार के बाद की जानी है, और यदि चयन केवल साक्षात्कार के आधार पर होना है, तो लिखित परीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं होगी। हालांकि, चूंकि लिखित परीक्षा आयोजित की गई थी, इसलिए साक्षात्कार आयोजित किया जाना चाहिए था।

11. यह कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं ने उत्तर प्रदेश सीधी भर्ती कनिष्ठ स्तर के पर्दा पर (साक्षात्कार को बंद करना) नियम, 2017 पर विचार नहीं किया है, जिसके तहत तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी के पदों पर नियुक्ति के लिए साक्षात्कार बंद कर दिया गया है, और नियुक्तियां केवल लिखित परीक्षा के आधार पर की जानी हैं।

12. याचिकाकर्ताओं की ओर से तर्क दिया गया है कि प्राप्त अंकों का खुलासा किए बिना और सफल उम्मीदवारों के नामों के प्रकाशन के बिना, मुख्य परीक्षा के लिए ऑनलाइन फॉर्म मंगाए गए थे। चयन समिति ने हालांकि शर्तों में ढील देते हुए ऑफलाइन फॉर्म अपलोड कर दिए, जिन्हें मुख्य परीक्षा के समय डाउनलोड करके भरा जा सकता था। यह आरोप लगाया गया है कि सचिवालय के वर्तमान भार सेवानिवृत्त अधिकारियों के करीबी कई उम्मीदवारों का चयन किया गया था, और विधान परिषद के प्रधान सचिव, विशेष सचिव, विधान परिषद और विधान परिषद के अध्यक्ष, और इसके सदस्य, सचिव और विधान परिषद के अन्य अधिकारियों की व्यक्तिगत पसंद के उम्मीदवारों को प्रतिवादी के रूप में शामिल किया गया है। यह आरोप लगाया गया है कि

पूरी चयन प्रक्रिया एक दिखावा थी, और कानून की उचित प्रक्रिया का उल्लंघन था।

13. याचिकाकर्ताओं का आगे आरोप यह है कि दो व्यक्तियों, अर्थात् मनोज कुमार साहनी और सुनील कुमार यादव, जो अनुबंध के आधार पर काम कर रहे थे, उनको वैधानिक नियमों के विरुद्ध चयन करने से पहले नियमित/पर्याप्त नियुक्तियां दी गई हैं।

14. मुख्य परीक्षा आयोजित की गई और परिणाम दिनांक 08.01.2021 को घोषित किया गया, तब याचिकाकर्ताओं ने आरोप लगाया कि पंकज मिश्रा, जो विधान सभा के अध्यक्ष के साथ विशेष कार्याधिकारी के रूप में काम कर रहे थे, जिनके पास अपेक्षित पात्रता नहीं है, नियमों के विरुद्ध विशेष कार्याधिकारी (प्रकाशन) के रूप में चुने गए।

15. याचिकाकर्ताओं ने 19.01.2023 को एक शपथपत्र के साथ अंतरिम निर्देश के लिए एक आवेदन दायर किया है जिसमें आरोप लगाया गया है कि टीएसआर डाटा प्रोसेसिंग प्राइवेट लिमिटेड एजेंसी को उत्तर प्रदेश विधान परिषद में तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के पदों पर चयन के लिए परीक्षा आयोजित करने का काम दिया गया था। उक्त एजेंसी विधान परिषद के तत्कालीन सभापति के निकट और प्रिय थी। उक्त एजेंसी के निदेशकों में से एक, श्रीमती भावना यादव को विधान परिषद में समीक्षा अधिकारी के रूप में आक्षेपित चयन के माध्यम से चुना और नियुक्त किया गया है, और यह तथ्य स्वयं यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त होगा कि विचाराधीन चयन पूरी

तरह से दिखावटी व्यवस्था के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था। अंतरिम निर्देश के लिए आवेदन के समर्थन में दायर शपथ-पत्र के पैरा-4 में अभ्यर्थियों की सूची तैयार की गई है। उल्लेख किया गया है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि अनेक अभ्यर्थी, जो विधान परिषद कार्यरत अधिकारियों के रिश्तेदार हैं, उनका चयन किया गया है। यह आरोप लगाया गया था कि एक उम्मीदवार, अर्थात् अनिरुद्ध यादव (रोल संख्या-145198), जिसने केवल 8 प्रश्नों के उत्तर दिए, को लिखित परीक्षा में सफल घोषित किया गया, हालांकि, उसका नाम अंतिम चयन सूची में जगह नहीं प्राप्त हुई।

16. याचिकाकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता श्री शोभित मोहन शुक्ला ने तर्क के अनुसार, प्रार्थना की है कि संपूर्ण चयन निरस्त किया जाए।

17. दूसरी ओर, प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा ने तर्क दिया कि प्रारंभिक परीक्षा में असफल घोषित होने के बाद ही, जिसका परिणाम 11.12.2020 को घोषित किया गया था, याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका दायर की गई थी। विज्ञापित विभिन्न पदों के लिए चयन पहले ही समाप्त हो चुका था, और अधिकांश चयनित उम्मीदवारों ने अपने-अपने पदों पर कार्यभार ग्रहण कर लिया था, और उनकी पुष्टि हो चुकी है। याचिकाकर्ताओं ने 11 कैडर के 99 रिक्तियों में से केवल 3 पदों के विरुद्ध आवेदन किया था, और उन्हें पूरे विज्ञापन को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। याचिकाकर्ताओं ने नियम, 2019 की शक्ति को

चुनौती नहीं दी है, लेकिन उन्होंने असंशोधित नियम, 1976 के अनुसार अनुतोष की प्रार्थना किया और इस तरह का अनुरोध कानून की नजर में पोषणीय नहीं है। आरक्षण के माध्यम से आरक्षित वर्ग के उम्मीदवारों को उपलब्ध आयु-छूट के अतिरिक्त विज्ञापन के तहत अधिकतम आयु-सीमा तक आयु में छूट वर्ष निर्धारित की गई थी, और इसके अतिरिक्त, संविदात्मक / दैनिक मजदूरी के आधार पर नियुक्त कर्मचारियों को प्रारंभिक परीक्षा में वर्ष 2 अंक और मुख्य परीक्षा में 5 अंक दिए गए थे। याचिकाकर्ता, आयु-छूट और अंकों के भार का लाभ उठाने के बावजूद, प्रारंभिक परीक्षा में सफल नहीं हो सके और इसलिए, वे उन उम्मीदवारों की सूची में सम्मिलित नहीं थे, जिन्हें मुख्य परीक्षा के लिए बुलाया गया था। याचिकाकर्ताओं, जिन्होंने केवल तीन पदों के लिए आवेदन किया था, उनको पूरी चयन प्रक्रिया को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जो स्वतंत्र और निष्पक्ष है।

18. प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता, श्री गौरव मेहरोत्रा ने आगे तर्क दिया कि विधान परिषद द्वारा उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग को रिक्तियों के लिए भर्ती अभ्यास करने के लिए कई अनुरोध भेजे गए थे, हालांकि, लोक सेवा आयोग पदों को भरने के लिए भर्ती अभ्यास नहीं कर सका आर इसलिए, वर्ष 2011 में परिषद और विधानसभा द्वारा स्वयं भर्ती करने का एक सचेत निर्णय लिया गया था। 2019 में, विधान परिषद के अध्यक्ष ने (चौथा संशोधन) नियम, 2019 जारी किया, जिसके द्वारा

विधान सभा और परिषद के विभिन्न सचिवालय कर्मचारियों के लिए भर्ती प्रक्रिया को यू.पी. लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर कर दिया गया था, और यह शक्ति संविधान के तहत ही प्रदान की गई है।

19. प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा ने बलपूर्वक तर्क दिया कि उम्मीदवार सूची, जिन्हें विधान परिषद के अधिकारियों और कर्मचारियों से संबंधित बताया गया था, पूरी तरह से गलत है, और याचिकाकर्ता गलत आशय से अनावश्यक पूछताछ में सम्मिलित होने का प्रयास कर रहे हैं। विधान परिषद के सचिव के संबंध में किसी का भी चयन नहीं किया गया है। आरोप पूरी तरह से अस्पष्ट हैं। दुर्भावना शीश करने का बोझ आरोप लगाने वाले व्यक्ति पर है, और बोझ बहुत भारी है। प्रशासन के पक्ष में यह पूरी धारणा है कि शक्ति का प्रयोग सदाशयी और सद्भावपूर्वक किया गया है। दुर्भावना के आरोप उच्च स्तर की विश्वसनीयता का सबूत मांगते हैं।

20. प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता श्री गौरव मेहरोत्रा ने आगे तर्क दिया कि इसी तरह की चुनौती उत्तर प्रदेश विधान सभा के सचिवालय द्वारा साक्षात्कार के लिए जारी विज्ञापन संख्या 1 वर्ष 2020 दिनांक 07.12.2020 को दी गई थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ सहायक समीक्षा अधिकारी आदि के पद पर भी चुनौती दी गई थी, और इस न्यायालय ने रिट याचिका को निरस्त कर दिया है, जिसमें कहा गया है कि न्यायालय बेईमानीपूर्वक अनावश्यक पूछताछ

में जांच का निर्देश नहीं दे सकता है जिसके आधार पर कोई व्यक्ति अपना वाद निर्धारित कर सकता है।

21. याचिकाकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता श्री शोभित मोहन शुक्ला ने प्रत्युत्तर में कथन किया है कि यदि यह न्यायालय पूरे चयन को निरस्त करने के लिए याचिकाकर्ताओं की ओर से उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क से सहमत नहीं है, तो याचिकाकर्ताओं को अनुबंध के आधार पर काम करने की अनुमति दी जा सकती है क्योंकि ऐसे पद हैं, जो रिक्त पड़े हैं, जब तक कि नियमित रूप से चयनित उम्मीदवार आते हैं और पदों में सम्मिलित नहीं होते हैं।

22. मैंने पक्षों की ओर से अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

23. इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश विधान सभा सचिवालय द्वारा भर्ती के लिए जारी विज्ञापन संख्या-1 वर्ष 2020 दिनांक 07.12.2020 के अनुसार चयन और नियुक्ति के संबंध में इसी तरह के विवाद पर विचार करते हुए, अन्य बातों के साथ-साथ, सहायक समीक्षा अधिकारी के पद पर, रिट याचिका सेवा एकल संख्या-11896 वर्ष 2021 में पारित आदेश दिनांक 08.10.2021 के पैराग्राफ-24, 25 और 26 में निम्नानुसार अवधारित किया है:-

"24. यह पूर्ण रूप से स्थापित कानूनी स्थिति है कि न्यायालय को बदनीयती वाली अनावश्यक पूछताछ वाली जांच नहीं करनी चाहिए जिसके आधार पर कोई व्यक्ति अपना

वाद निर्धारित कर सकता है। एक उपयुक्त वाद में, यदि सामग्री आवश्यक है, तो न्यायालय प्रासंगिक दस्तावेज के उत्पादन के लिए आदेश दे सकता है, लेकिन इससे पहले दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए कहना, यह पक्ष का कर्तव्य होगा। एक वाद बनाना और यह आवश्यक होगा कि कुछ दस्तावेज उत्पादन किया जाए। उच्चतम न्यायालय ने धार्तीपाकर मदन लाल अग्रवाल बनाम राजीव गांधी, 1987 पूरक एस.सी.सी. 93 में, जो एक चुनावी वाद था, कहा कि भ्रष्ट आचरण के आरोपों के संबंध में, जो आपराधिक आरोप की प्रकृति के हैं, आरोपों में कोई अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए। आरोप अस्पष्ट और सामान्य नहीं होने चाहिए और भ्रष्ट आचरण के विवरण विशेष रूप से बताए जाने चाहिए। कानून अच्छी तरह से तय है कि न्यायालय को इस वाद में बदनीयती वाली अनावश्यक पूछताछ वाली जांच से बचना चाहिए।

25. उच्चतम न्यायालय ने चरणसिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2021)5 469 में वर्तमान निर्णय में माना है कि कानून के तहत बदनीयती वाली अनावश्यक पूछताछ की जांच की अनुमति नहीं है। चरणसिंह बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (उपरोक्त) पैराग्राफ-19, जो प्रासंगिक है, यहां उद्धृत किया गया है:-

"19. हालांकि, इस न्यायालय के विचार के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या इस तरह की जांच किस स्तर तक स्वीकार्य है और इस तरह की जांच का दायरा और क्षेत्र क्या होगा। उच्च न्यायालय के समक्ष आक्षेपित नोटिस द्वारा, और "खुली जांच" के दौरान, अपीलकर्ता को

अपना बयान देने के लिए बुलाया गया है और उसे उन बिंदुओं पर जानकारी के साथ ले जाने के लिए कहा गया है, जिन्हें उसके बयान दर्ज करने के उद्देश्य से ऊपर संदर्भित किया गया है। उपरोक्त बिंदुओं पर मांगी गई जानकारी का अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों से सीधा संबंध है, अर्थात् उसकी आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक संपत्ति जमा करना। हालांकि, "स्वतंत्र जांच" करते समय, इस तरह के नोटिस, अपीलकर्ता को अपनी संपत्ति और आय के ज्ञात स्रोतों के बारे में स्पष्ट करने की सुविधा के लिए प्रतिबंधित होंगे। इसे बदनीयती वाली अनावश्यक पूछताछ वाली जांच नहीं कहा जा सकता है। ऐसे बयान को धारा 160 के तहत दिया गया बयान और/या दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार जांच के दौरान दर्ज किया जाने वाला बयान नहीं कहा जा सकता है। इस तरह के बयान का इस्तेमाल मुकदमे के दौरान अपीलकर्ता के खिलाफ भी नहीं किया जा सकता है। अपीलकर्ता का बयान और जांच के दौरान प्राप्त जानकारी केवल संतुष्ट करने और यह पता लगाने के उद्देश्य से होगी कि पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 13(1) (ई) के तहत अपराध का खुलासा किया गया है या नहीं। इस तरह के बयान को चरित्र में स्वीकारोक्ति नहीं कहा जा सकता है, और जब/या यदि इस तरह के बयान का स्वीकारोक्ति माना जाता है, केवल उसी वाद में इसे एक बयान कहा जा सकता है जो आत्म-दोषारोपण है, जिसे कानून में अस्वीकार्य कहा जा सकता है।

26. उपरोक्त चर्चाओं के अनुसार, मुझे प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता विज्ञापन के अनुसार

ए.आर.ओ के पद के लिए चयन प्रक्रिया का संचालन करते समय भ्रष्ट आचरण, हेरफेर और शक्तियों के अवैध और मनमाने प्रयोग के आरोपों को सिद्ध करने में सक्षम नहीं हैं और इसलिए, यह न्यायालय याचिकाकर्ताओं को विज्ञापन के अनुसार आयोजित चयन की बदनीयती वाली अनावश्यक पूछताछ की जांच खोलने की अनुमति नहीं दे सकता है जब याचिकाकर्ता अंक उनकी लिखित परीक्षा में कट-ऑफ अंक से ऊपर सुरक्षित नहीं कर सके"।

24. प्रस्तुत वाद विधान सभा में भर्ती के संबंध में पूर्वोक्त वाद के समान है और इसलिए, इसे पूरी तरह से कवर किया गया है। हालांकि, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सार्वजनिक निकाय में एक पद के लिए नियुक्तियां निष्पक्ष और उचित अवधि में होनी चाहिए। चयन की पूरी प्रक्रिया में निष्पक्षता और तर्कसंगतता सुनिश्चित की जानी चाहिए। भर्ती निकाय का निर्णय न्यायिक समीक्षा के लिए उत्तरदायी है, स्थापित सिद्धांत के अधीन कि इसे कानून के अनुसार निर्णय लेना चाहिए, और चयन प्रक्रिया की पवित्रता और अखंडता के लिए सबसे उपयुक्त है। चयन प्रक्रिया/अभ्यास स्वयं ही दूषित हो सकता है जहां प्रक्रिया में अनियमितताएं व्यवस्थित स्तर पर हुई हैं। यदि व्यवस्थित अनियमितताएं या धोखाधड़ी के क्षेत्र में बदलाव हों जिसके परिणामस्वरूप प्रक्रिया की विश्वसनीयता और वैधता पूरी तरह से प्रभावित हो जाती है, तो पूरे चयन को निरस्त करने की आवश्यकता होती है। तथापि, यदि चयन प्रक्रिया में भाग लेने वाले कुछ प्रतिभागी जो परीक्षा अथवा चयन में उपस्थित

हुए थे, स्वयं अनियमितताओं के दोषी हैं और ऐसे व्यक्तियों को, जो दूसरों से गलत कार्य करने के दोषी हैं, पृथक किए जाने की संभावना है, तो संपूर्ण चयन निरस्त नहीं किया जाना चाहिए। ऐसे व्यक्ति, जो गलत कामों में लिप्त थे, उनके मामलों को चयन प्रक्रिया से बाहर रखा जाना चाहिए।

25. लोक सेवाओं में भर्ती को जनता का विश्वास प्राप्त होना चाहिए। भर्ती किए गए व्यक्तियों का उद्देश्य सरकार के कामकाज से जुड़े सार्वजनिक कार्यों को करना है। जहां पूरा प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण पाई जाती है, वहां इसके रद्द होने से निस्संदेह कुछ लोगों को कठिनाई हो सकती है, जो विशेष रूप से गलत कार्यों में सम्मिलित नहीं पाए जाते हैं, हालांकि, चयन प्रक्रिया में जनता का विश्वास बनाए रखने के लिए, भर्ती/चयन प्रक्रिया में इसकी सत्यनिष्ठा, पवित्रता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करने के लिए, ऐसी स्थिति में पूरी चयन प्रक्रिया को निरस्त करना होगा। यदि परीक्षा की निष्पक्षता, शुचिता और पवित्रता सुनिश्चित करने में व्यवस्थित विफलता होती है तो परीक्षा निरस्त की जाती है। याचिकाकर्ता चयन प्रक्रिया में इस तरह की व्यवस्थित विफलता या अनियमितताओं को इंगित नहीं कर पाए हैं।

26. उच्चतम न्यायालय ने (2021) 4 एस.सी.सी. 631 (सचिन कुमार और अन्य बनाम दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड (डी.एस.एस.बी) और अन्य) में माना कि अवसरों की समानता के मानदंड के अधीन पर्दा पर चयन की एक निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का जनादेश है।

सार्वजनिक पद के लिए भर्ती स्वतंत्र और उचित शर्तों में होनी चाहिए। चयन प्रक्रिया के दौरान प्रक्रिया की निष्पक्षता और तर्कसंगतता सुनिश्चित करना सार्वजनिक निकाय का कर्तव्य है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 65 और 66, जिनका उल्लेख करना उपयुक्त होगा, यहां नीचे दिए गए हैं:

65. अपनी प्रस्तुतियों के दौरान, श्री पी.एस. पटवालिया ने पहली समिति द्वारा इंगित प्रणालीगत अनियमितताओं में से प्रत्येक के लिए स्पष्टीकरण प्रदान करने की मांग की है, जिसमें टियर 1 परीक्षा के लिए उपस्थित होने वाले उम्मीदवारों की संख्या में भारी कमी, एडमिट कार्ड की हार्ड कॉपी जारी न करना, एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र से संबंधित उम्मीदवारों की शॉर्टलिस्टिंग, परीक्षा केंद्रों में यादृच्छिकीकरण की कमी और अन्य सम्मिलित हैं। इसके उत्तर में, ए.एस.जी ने तर्क दिया कि यह आकलन करते समय कि क्या भर्ती प्रक्रिया से समझौता किया गया है, कारकों (या अनियमितताओं) को संचयी रूप से देखा जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या वे भर्ती निरस्त करने के लिए पर्याप्त रूप से गंभीर हैं। हम स्वयं को ए.एस.जी के साथ सहमत पाते हैं। जब तक यह तर्क देने के लिए पर्याप्त आधार है कि बड़े पैमाने पर अनियमितताएं हुई हैं, तब तक इस न्यायालय को सभी संभावित स्पष्टीकरणों और वैकल्पिक परिदृश्यों को निरस्त करने के लिए एक घुमावदार जांच में शामिल होने की आवश्यकता नहीं है जहां इस तरह की अनियमितताएं उचित होंगी।

66. सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती को जनता के विश्वास की आजा देनी चाहिए। जिन व्यक्तियों की

भर्ती की जाती है, उनका उद्देश्य सरकार के कामकाज से जुड़े सार्वजनिक कार्यों को पूरा करना है। जहां पूरी प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण पाई जाती है, इसके निरस्त होने से निस्संदेह कुछ लोगों को कठिनाई हो सकती है जो विशेष रूप से गलत काम में सम्मिलित नहीं पाए जा सकते हैं। लेकिन यह परीक्षा को निरस्त करने के अंतिम निर्णय को निरस्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है जहां गलत काम की प्रकृति पूरी प्रक्रिया को बाधित करती है ताकि भर्ती के लिए आयोजित परीक्षाओं की वैधता पर गंभीर रूप से अतिक्रमण किया जा सके। हमारे विचार से उच्च न्यायालय और अधिकरण दोनों ने दूसरी समिति की रिपोर्ट पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करने में गलती की है जो प्रतिरूपण के मुद्दे तक ही सीमित थी। दूसरी समिति का प्रतिवेदन वाद का केवल एक पहलू है। उप मुख्यमंत्री का इससे आगे बढ़कर और अंततः यह सिफारिश करना न्यायोचित था कि पहली समिति की रिपोर्ट से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर पूरी प्रक्रिया को निरस्त कर दिया जाना चाहिए। उन निष्कर्षों को समाप्त नहीं किया गया है और न ही न्यायाधिकरण ने उन निष्कर्षों में कोई गलती पाई है। वाद के इस दृष्टिकोण में, न्यायाधिकरण और उच्च न्यायालय के निर्णय दोनों अस्थिर हैं।

27. इसे ध्यान में रखते हुए, तृतीय श्रेणी के पदों के संबंध में विधान सभा और विधान परिषद में भर्ती प्रक्रिया में जनता का विश्वास बनाए रखने के लिए, भर्ती विशेष वैधानिक भर्ती निकाय के हाथों में होनी चाहिए, न कि चयन समिति या निजी एजेंसी के हाथों में। अतः यह निर्देश दिया जाता है कि भविष्य में विधान सभा एवं परिषद में तृतीय श्रेणी के सभी पदों को उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग द्वारा किए गए चयन द्वारा भरा

जाए। इस संबंध में, भर्ती नियमों में आवश्यक संशोधन आज से तीन माह की अवधि के भीतर किया जाना है।

28. याचिकाकर्ताओं, जिन्हें संविदा आधार पर नियुक्ति दी गई है, को संविदा के आधार पर कार्य करने की अनुमति दी जाए और तदनुसार पारिश्रमिक का भुगतान किया जाए, परन्तु पदों के उनके कर्तव्यों का पालन किया जाए, यदि वे पद रिक्त हैं जिन पर वे काम कर रहे हैं, जब तक कि नियमित रूप से चयनित उम्मीदवार उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग से नहीं आते हैं और पदों पर सम्मिलित होते हैं।

29. पूर्वोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, जहां तक आक्षेपित विज्ञापन के अनुसार चयन को अपास्त करने के लिए की गई प्रार्थना का संबंध है, यह याचिका निरस्त की जाती है।

(2023) 4 ILRA 1012

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए संख्या 371/2012

शाबिर अली

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: नृपेंद्र मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून -निलंबन - वेतन -उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 4(3)(क) - याचिकाकर्ता का

कथित निलंबन नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा स्पष्ट आदेश पारित करके, उसकी मुक्ति के बाद भी जारी रखा जा सकता है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा इसे निरस्त किया जा सकता है या नहीं भी किया जा सकता है। इस वाद में नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा दिनांक 05.01.2012 के आदेश के तहत निर्णय लिया गया है। (पैरा 6)

नियम 1999 के नियम 4(4) में यह प्रावधान है कि सरकारी कर्मचारी को, जैसा भी मामला हो, नियुक्त किया गया माना जाएगा या जारी रखा जाएगा यदि किसी अपराध के लिए दोषसिद्धि की स्थिति में उसे 48 घंटे से अधिक कारावास की सजा दी जाती है और ऐसी दोषसिद्धि के परिणामस्वरूप उसे तत्काल बर्खास्त या हटाया नहीं जाता है, तो उसे इन नियमों के अधीन निलंबित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के आदेश द्वारा उसकी दोषसिद्धि की तिथि से निलंबित किया जा सकता है। (पैरा 7)

चूंकि आपराधिक वाद लंबित है, इसलिए निलंबन का आपेक्षित आदेश और दिनांक 05.01.2012 का आपेक्षित आदेश जिसके तहत उसका प्रतिनिधित्व खारिज कर दिया गया है, गलत नहीं हो सकता है और कानूनी कल्पना के तहत माना गया निलंबन याचिकाकर्ता की रिहाई के बाद भी जारी रह सकता है। याचिकाकर्ता के निलंबन से संबंधित अंतिम निर्णय केवल 1999 के नियम 4(2) के तहत मुकदमे के समापन के

बाद ही लिया जा सकता है, उससे पहले नहीं। (पैरा 8)

23.01.2012 के अंतरिम आदेश के आधार पर, विवादित आदेशों के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी गई थी। इसलिए, याचिका का निस्तारण इस निर्देश के साथ किया जाता है कि प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को काम करने की अनुमति दी जाए और उसे वर्तमान में दिए जा रहे अन्य भत्तों के साथ मूल वेतन का भुगतान किया जाए। हालांकि, यह वाद के अंतिम परिमाण के अधीन होगा। (पैरा 9)

रिट याचिका निस्तारित (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

चन्द्र शेखर सक्सेना बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक), उ.प्र. लखनऊ, 1997 (15) एलसीडी 323 (पैरा 5)

वर्तमान याचिका विशेष सचिव राज्य संपत्ति अधिकारी, राज्य संपत्ति अनुभाग-1, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.01.2012 और आदेश दिनांक 10.03.2010 के विरुद्ध योजित है।

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने विशेष सचिव राज्य सम्पत्ति अधिकारी, राज्य सम्पत्ति अनुभाग-1, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 5.1.2012 तथा आदेश दिनांक 10.3.2010 को निरस्त करने के लिए उत्प्रेषण रिट के लिए प्रार्थना की है।

परमादेश प्रकृति में एक अन्य रिट पारित करते हुए प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता का निलंबन निरस्त करने तथा उसे हर माह लागू होने वाला पूरा वेतन, बकाया राशि सहित, यदि कोई हो, प्रदान करने के लिए निर्देशित करने की प्रार्थना की गई है।

3. अनुलग्नक-4 के अनुसार, याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन एवं अपील) नियम, 1999 (संक्षेप में, 1999 के नियम) के नियम 4(3)(क) के अंतर्गत प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 10.3.2010 के अनुसार इस आधार पर निलंबित कर दिया गया कि याचिकाकर्ता को 18.2.2010 से हिरासत में लिया गया था। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 4869/2011 (एस/एस) शब्बीर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य दायर की, जिसका निस्तारण विपक्षी पक्षों को याचिकाकर्ता के वाद पर विचार करने और निर्धारित समय के भीतर उसके अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के निर्देश के साथ किया गया। उक्त आदेश के अनुपालन में, आदेश दिनांक 5.1.2012 द्वारा, याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया अभ्यावेदन अस्वीकार कर दिया गया है।

4. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि कारावास से मुक्त होने के बाद, वह दिनांक 18.5.2011 को कार्यभार ग्रहण कर

लिया है, तथापि, निलंबन आदेश को वापस नहीं लिया गया है, यद्यपि उसने कई अभ्यावेदन दिए हैं। उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता दिनांक 18.2.2010 से 18.5.2011 तक निलंबित रहा। उसे इस अवधि के दौरान का बकाया वेतन और अन्य परिणामी लाभ नहीं दिए गए हैं। यद्यपि याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा कर दिया गया है, प्रतिवादियों ने निलंबन आदेश को वापस नहीं लिया है।

5. विद्वान स्थायी अधिवक्ता का तर्क है कि सक्षम प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को निलंबन की तिथि से पुनर्स्थापित करना उचित नहीं पाया है, क्योंकि उसका वाद मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ के समक्ष निस्तारण हेतु लंबित है। यद्यपि, याचिकाकर्ता को 31,500 रुपये का मूल वेतन और 11,970 रुपये का स्वीकार्य महंगाई भत्ता दिया जा रहा है।

याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 420, 467, 468, 471, 120-बी, 34 आईपीसी के तहत वाद अपराध संख्या 660/2009 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। दिनांक 9.4.2010 को आरोपपत्र दाखिल की गई है। विचरण लंबित है। यह तर्क दिया गया कि निलंबन आदेश को निरस्त करने का कोई भी निर्णय वाद के समापन के बाद ही लिया जा सकता है। इस संबंध में कानून इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय [1997(15) एलसीडी-323 चंद्र शेखर सक्सेना बनाम शिक्षा निदेशक (बेसिक), यूपी लखनऊ और अन्य] द्वारा तय किया गया है। पूर्ण पीठ के निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 22 और 27 नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"22. उप-नियम (2) में निहित प्रावधानों को भी इस आधार पर असंवैधानिक होने की चुनौती दिया गया है कि वे मनमानी के दायरे में आते हैं। हमारी राय में, इस आलोचना में भी कोई बल नहीं है। कानूनी कल्पना द्वारा सरकारी कर्मचारी का माना हुआ निलंबन एक आवश्यकता है जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, लेकिन यह कहना सही नहीं है कि माना हुआ निलंबन अस्तित्व में आने के बाद सरकारी कर्मचारी को उपचारहीन छोड़ दिया गया है। नियम 49-ए के उप-नियम (6) (2) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि इस नियम के तहत आदेशित या आदेशित माना गया कोई भी निलंबन तब तक लागू रहेगा जब तक कि इसे उप-नियम (1) में निर्दिष्ट प्राधिकारी द्वारा संशोधित या निरस्त नहीं किया जाता है। इस प्रकार सरकारी कर्मचारी जिसे नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश द्वारा हिरासत में रहने की अवधि के लिए निलंबित माना जाता है, वह नियुक्ति प्राधिकारी से संपर्क कर सकता है और आदेश को संशोधित या निरस्त करने के लिए उसे मना सकता है और ऐसा संपर्क किए जाने पर, नियुक्ति प्राधिकारी उन सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रख सकता है जिसके कारण उसे हिरासत में हिरासत में रखा गया और माना हुआ निलंबन लागू हुआ और पुनः नियुक्ति प्राधिकारी निलंबन के आदेश को संशोधित या निरस्त करने के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है। इस प्रकार, सरकारी कर्मचारी उपायहीन नहीं है। उप-नियम (5) (ए) में प्रयुक्त भाषा के आधार पर, यह तर्क दिया गया है कि एक बार अस्तित्व में आने वाला समझा गया निलंबन तब तक लागू रहेगा जब तक कि नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा

इसे संशोधित या निरस्त नहीं किया जाता है और सरकारी कर्मचारी हिरासत से मुक्त होने के बाद भी निलंबित रहेगा। हमारी राय में, उप-नियम (5) (ए) के तहत माना गया निलंबन लागू रहेगा, इसका अर्थ यह नहीं है कि हिरासत से रिहाई के बाद वास्तविक निलंबन भी जारी रहेगा। यद्यपि, समझा गया निलंबन अन्य उद्देश्यों के लिए लागू रहेगा, जिसमें सरकारी कर्मचारी के निलंबन के आदेश से निकलने वाले सभी परिणाम शामिल हो सकते हैं। उप-नियम (2) और खंड (ए) और (बी) और नियम 40-ए के उप-नियम (6) (ए) के संयुक्त पाठन से, स्वीकार्य और उचित निष्कर्ष यह है कि समझा गया निलंबन केवल हिरासत की अवधि के लिए ही प्रभावी होगा और उससे आगे नहीं। हालांकि, यह निलंबन के आदेश से उत्पन्न होने वाले अन्य उद्देश्यों के लिए लागू रहेगा। हमारी राय में, उप-नियम (5) (ए) में निहित प्रावधानों के लिए इस तरह की सामंजस्यपूर्ण व्याख्या उपरोक्त प्रावधानों के पीछे विधायी आशय उद्देश्य और का उल्लंघन किए बिना सुरक्षित रूप से दी जा सकती है।

27. हमने पक्षों की ओर से विद्वान वकील द्वारा उद्धृत सभी न्यायनिर्णय पर विचार किया है। यद्यपि, हमें ऐसा कुछ भी नहीं प्राप्त होता है जिसके आधार पर हमारे द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण पर संदेह किया जा सके या उसे बदला जा सके। हमारे निष्कर्ष और हमें संदर्भित प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं:

(ए) उत्तर प्रदेश में लागू सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1930 के नियम 49-ए के उप-नियम (2) का

उप-खंड (ए), भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन नहीं करता है जैसा कि जगजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1996) 1 यूपीएलबीईसी 405 में अनुमोदित किया गया और इस निर्णय को निरस्त कर दिया गया।

(बी) नियम 49-ए के उप-नियम (2) (ए) और (बी) के तहत परिकल्पित कानूनी कल्पना लागू होगी और नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश द्वारा एक निलंबित माना जाएगा यदि सरकारी कर्मचारी को नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा पारित किसी भी लिखित आदेश के अभाव में भी अड़तालीस घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखा जाता है।

(सी) नियम 49-ए के उप-नियम (2) के तहत प्रदान किया गया निलंबित माना हिरासत में हिरासत की अवधि तक ही सीमित होगा और उससे आगे नहीं।

(डी) उपनियम (2) में प्रदत्त विधिक कल्पना के अन्तर्गत नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश द्वारा समझा गया निलंबन, वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों के अनुसार नियम 49-ए के अन्य उपनियम में प्रदत्त दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखते हुए नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा स्पष्ट आदेश पारित कर रिहाई के पश्चात जारी रखा जा सकेगा।

(ई) नियम 49-ए के उपनियम (2) के अंतर्गत माना गया निलंबन नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा सरकारी सेवक द्वारा किए गए अभ्यावेदन पर संशोधित या निरस्त किया जा सकता है, जिस पर नियम 49-ए के उपनियम (1) और (1-ए) में दिए गए दिशानिर्देशों को ध्यान में रखते हुए विचार किया जाएगा और निर्णय लिया जाएगा।"

6. पूर्ण पीठ के निर्णय के आलोक में, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता का माना गया निलंबन नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा एक स्पष्ट आदेश पारित करके उसकी रिहाई के बाद भी जारी रखा जा सकता है। इसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा निरस्त किया जा सकता है या नहीं भी किया जा सकता है। इस वाद में, नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा दिनांक 5.1.2012 के आदेश के तहत निर्णय लिया गया है।

7. नियम 1999 के नियम 4(4) में प्रावधान है कि किसी सरकारी सेवक को इन नियमों के अंतर्गत निलंबित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के आदेश द्वारा निलंबित माना जाएगा या, जैसा भी वाद हो, उसे निलंबित रखा जाना जारी रखा जाना माना जाएगा, यदि किसी अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने की स्थिति में उसे 48 घंटे से अधिक कारावास की सजा हो सकती है और ऐसी सजा के परिणामस्वरूप उसे तुरंत निलंबित या हटाया नहीं जा सकता।

9. अधिकारियों के स्वीकृत वाद के अनुसार, चूंकि उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 660/2009 (सुप्रा) से संबंधित आपराधिक वाद लंबित है, इसलिए आपेक्षित निलंबन आदेश और आपेक्षित आदेश दिनांक 5.1.2012 जिसके द्वारा उसका अभ्यावेदन निरस्त कर दिया गया है, गलत नहीं हो सकता। चूंकि आपराधिक वाद लंबित है, इसलिए कानूनी कल्पना के तहत माना गया निलंबन याचिकाकर्ता की रिहाई के बाद भी जारी रह सकता है। याचिकाकर्ता के निलंबन से संबंधित अंतिम निर्णय नियम 1999 के नियम 4 के

उपनियम (2) के तहत दिए गए मुकदमे के समापन के बाद ही लिया जा सकता है, उससे पूर्व नहीं। विवादित आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है।

10. न्यायालय द्वारा यह देखा गया कि दिनांक 23.1.2012 के अंतरिम आदेश के आधार पर अनुलग्नक 1 और 4 में निहित आपेक्षित आदेशों के संचालन पर रोक लगा दी गई थी। इसलिए, याचिका का निस्तारण प्रतिवादियों को यह निर्देश देते हुए किया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को काम करने दें और उसे वर्तमान में दिए जा रहे अन्य भत्तों के साथ मूल वेतन का भुगतान किया जाए। हालाँकि, यह विचरण के अंतिम परिणाम के अधीन होगा।

(2023) 4 ILRA 1016

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 26.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

रिट ए संख्या 3197/2022

डॉ. रक्त कला एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: प्रफुल्ल तिवारी,
लालता प्रसाद मिश्र

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., राजकुमार
उपाध्याय (आर.के. उपाध्याय), रविशंकर तिवारी

सेवा कानून- भारत का संविधान, 1950 -
अनुच्छेद 226-उत्तर प्रदेश चिकित्सा शिक्षा
सेवा नियमावली, 1990-नियम 4,5,6,20-
यू.पी.पी.एस.सी प्रयागराज द्वारा नौ सरकारी

होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों में बारह विभिन्न
विषयों/विषयों में प्रवक्ता के 130 पदों को
भरने के लिए जारी विज्ञापन को चुनौती देने
वाली रिट याचिका में आरोप लगाया गया है
कि यह आरक्षण की नीति के विरुद्ध है- सेवा
की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए कैडर को
परिभाषित करना नियोक्ता का काम है-
वैधानिक नियम, 1990 के तहत सभी नौ
सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों में
प्रवक्ता के सभी पद एक कैडर का गठन करते
हैं- विषयवार/विषयवार रिक्तियों पर अध्यायन
में प्रावधानित के लिए आरक्षण प्रदान किया
गया - नियम, 1990 में संवर्ग की परिभाषा
किसी संवैधानिक आदेश का उल्लंघन नहीं
करती है, जब सभी महाविद्यालय अनुसूचित
जनजाति सरकार के एकीकृत पर्यवेक्षण एवं
नियंत्रण के अधीन हैं तथा पद एक
महाविद्यालय से दूसरे महाविद्यालय में
स्थानान्तरित हो सकते हैं। (पैरा 2, 3, 15,
22)

याचिका निरस्त (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. विवेकानंद तिवारी बनाम भारत संघ 2017
एससीसी ऑनलाइन सभी 2729
2. भारत संघ बनाम पुष्पा रानी एवं अन्य
(2008) 9 एस.सी.सी. 242
3. विजय प्रकाश भारती बनाम भारत संघ और
अन्य. (2019) 12 एससीसी 410

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा
प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री लालता प्रसाद मिश्रा, सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल तिवारी, राज्य-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संदीप शर्मा और उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रवि शंकर तिवारी को सुना गया।

2. भारतीय संविधान की अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान याचिका दायर की गई है, जिसमें उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग (इसके बाद "यूपीपीएससी" के रूप में संदर्भित) प्रयागराज द्वारा नौ सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों में बारह विभिन्न विषयों/विषयों में प्रवक्ता के 130 पदों को भरने के लिए जारी विज्ञापन संख्या 02/2020-21 दिनांक 24.09.2020 को निरस्त करने की प्रार्थना की गई है।

3. इस याचिका में शामिल विवाद संकीर्ण दायरे से संबंधित है, अर्थात् कि क्या आरक्षण को विभागवार या विषयवार एक इकाई के रूप में लागू किया जाना है, और क्या उत्तर प्रदेश के नौ सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों में स्वीकृत बारह विषयों/विषयों में से प्रत्येक विषय/विषय के प्रवक्ताओं के पदों को मिलाना वैधानिक नुस्खे और संवैधानिक जनादेश के खिलाफ है या क्या आरक्षण के लिए एक कॉलेज को एक इकाई के रूप में लिया जाना है या सभी कॉलेज संचयी रूप से आरक्षण की नीति के आवेदन के लिए एक इकाई का गठन करते हैं।

4. उत्तर प्रदेश चिकित्सा शिक्षक सेवा नियमावली, 1990 (जिसे आगे "नियमावली, 1990" कहा जाएगा) जो राजकीय होम्योपैथिक

चिकित्सा महाविद्यालयों में नियुक्त शिक्षकों की भर्ती और सेवा शर्तों को विनियमित करती है। शिक्षकों की सेवा एक राज्य सेवा है जिसमें समूह-ए और समूह-बी के पद सम्मिलित हैं। नियमावली, 1990 के नियम 4 में सेवा का संवर्ग प्रदान किया गया है, जो इस प्रकार होगा:-

"4. सेवा का संवर्ग-(1) सेवा की संख्या और उसमें प्रत्येक श्रेणी के पदों की संख्या ऐसी होगी, जो सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित की जाए।

(2) सेवा की संख्या और उसमें प्रत्येक श्रेणी के पदों की संख्या, जब तक कि उप-नियम (1) के अधीन परिवर्तन करने वाले आदेश पारित नहीं किए जाते, परिशिष्ट- "ए" के अनुसार होगी:

(क) परन्तु नियुक्ति प्राधिकारी किसी रिक्त पद को खाली छोड़ सकता है या राज्यपाल किसी व्यक्ति को प्रतिकर का अधिकारी बनाए बिना उसे स्थगित रख सकता है;

(ख) राज्यपाल ऐसे अतिरिक्त स्थायी या अस्थायी पद सृजित कर सकता है, जिन्हें वह उचित समझे।"

5. नियम, 1990 के परिशिष्ट-ए से प्रतीत होता है कि यह राज्य स्तर पर एक एकल कैडर पद है और विभिन्न पदों की संख्या का उल्लेख किया गया है। प्रिंसिपल का एक स्थायी पद और नौ अस्थायी पद हैं और प्रोफेसर के कैडर में दो स्थायी पद हैं, रीडर का कैडर दो अस्थायी पदों का है जबकि लेक्चरर का कैडर सात स्थायी पदों और एक सौ सोलह अस्थायी पदों का है अर्थात् कुल 123 पद हैं। सेवा में विभिन्न श्रेणी के पदों पर भर्ती का स्रोत नियम, 1990 के नियम 5 में प्रदान किया गया है, जो इस प्रकार होगा: -

"5. भर्ती का स्रोत- सेवा में विभिन्न श्रेणियों के पदों पर भर्ती निम्नलिखित स्रोतों से की जाएगी:

(क) आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती द्वारा प्राचार्य।

(ख) प्रोफेसर-(i) आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती द्वारा पचास प्रतिशत।

(ii) आयोग के माध्यम से पदोन्नति द्वारा पचास प्रतिशत, मौलिक रूप से नियुक्त रीडरों में से, जिनके पास संबंधित विषय में रीडर के रूप में तीन वर्ष सहित कम से कम दस वर्ष का शिक्षण अनुभव है।

(ग) रीडर-(i) आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती द्वारा पचास प्रतिशत:

(ii) आयोग के माध्यम से पदोन्नति द्वारा पचास प्रतिशत, मौलिक रूप से नियुक्त व्याख्याताओं में से, जिनके पास संबंधित विषय में व्याख्याता के रूप में चार वर्ष सहित सात वर्ष का शिक्षण अनुभव है।

(घ) व्याख्याता-आयोग के माध्यम से सीधी भर्ती द्वारा।"

6. नियम 6, 1990 के अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवारों के लिए आरक्षण का प्रावधान करता है, जबकि नियम 20, 1990 के किसी भी श्रेणी के पद पर व्यक्तियों की वरिष्ठता मौलिक नियुक्ति के आदेश की तिथि से निर्धारित किए जाने का प्रावधान करता है। उक्त नियमों में कॉलेजवार वरिष्ठता का कोई प्रावधान नहीं है। व्याख्याता का पद एक कॉलेज से दूसरे कॉलेज में स्थानांतरित किया जा सकता है।

7. भारतीय राष्ट्रीय होम्योपैथिक परिषद ने नियमन तैयार किया है जो विभिन्न पदों के

लिए योग्यता और पात्रता की शर्तें प्रदान करता है, जिसे नियम 1990 के परिशिष्ट-2 के रूप में संलग्न किया गया है।

8. राज्य सरकार ने प्रवक्ता के रिक्त पदों को महाविद्यालयवार नहीं बल्कि नियम, 1990 में प्रदत्त संवर्ग संख्या के अनुसार प्रत्येक विषय/विषय में विषय/विषय की स्वीकृत संख्या के अनुसार भरने के लिए अधियाचन भेजा है। अधियाचन में यह सुझाव दिया गया है कि प्रत्येक विषय/विषय के लिए, सभी नौ राजकीय होम्योपैथिक चिकित्सा महाविद्यालयों में रिक्त कुल पदों को एक साथ जोड़ दिया गया है तथा बारह विभिन्न विषयों/विषयों में से प्रत्येक के संबंध में आरक्षण प्रदान किया गया है, तथा भरे जाने वाले कुल पदों पर आरक्षण प्रदान नहीं किया गया है, बल्कि प्रत्येक विषय/विषय में रिक्त पदों के विरुद्ध आरक्षण प्रदान किया गया है, जिसमें सभी नौ राजकीय होम्योपैथिक चिकित्सा महाविद्यालयों के रिक्त पदों को एक साथ जोड़ दिया गया है। इस प्रकार, रिक्त पदों को भरने के लिए राज्य सरकार द्वारा भेजे गए अधियाचन में प्रत्येक विषय/विषय में पदों का विवरण तथा प्रत्येक विषय में आरक्षण राज्य सरकार द्वारा प्रदान किया गया है। अधियाचन को राज्य-प्रतिवादियों की ओर से अनुलग्नक संख्या सीए-2 में दायर प्रति शपथपत्र के साथ संलग्न किया गया है।

9. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री लालता प्रसाद मिश्रा ने तर्क दिया कि प्रत्येक मेडिकल कॉलेज और सरकारी मेडिकल कॉलेज में प्रत्येक विभाग अपने आप में एक इकाई है और विषयवार व्याख्याता का कोई सामान्य कैंडर नहीं है, और इसलिए, सभी नौ सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों में

प्रत्येक विषय/अनुशासन में रिक्त पदों को मिलाकर वैधानिक निर्धारण का उल्लंघन है और *विवेकानंद तिवारी बनाम भारत संघ 2017 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2729* में इस न्यायालय के निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय ने एसएलपी (सिविल) डायरी संख्या 14318/2018 में दिनांक 22.01.2019 के आदेश द्वारा पुष्टि की।

10. यह भी तर्क दिया गया कि पदों का सामान्य कैडर और एक कैडर/उप कैडर में पांच या अधिक पद सेवा में जाति आरक्षण के लिए अनिवार्य शर्त है। यद्यपि, वर्तमान वाद में नौ सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों में से प्रत्येक में कुल बारह विषय/विषय पढ़ाए जाते हैं, और एक कॉलेज में प्रत्येक विषय/विषय में अधिकतम तीन स्वीकृत पद हैं, इस प्रकार, जाति आरक्षण लागू नहीं होगा क्योंकि विशेष कॉलेज के विषय/विषय को एक इकाई के रूप में मानते हुए आरक्षण लागू करने के लिए उक्त कॉलेज के विषय/विषय को एक इकाई के रूप में माना जाना चाहिए।

11. दूसरी ओर, राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संदीप शर्मा और यूपीपीएससी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रविशंकर तिवारी ने नियम, 1990 पर जोर दिया और तर्क दिया कि उक्त नियम के तहत भी प्रवक्ता का कैडर परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ यह होगा कि प्रवक्ता पद का कैडर नौ सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों के सभी पदों से मिलकर बना है और नियम, 1990 के परिशिष्ट-ए के अनुसार कैडर की संख्या 123 पद है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि जब कैडर एक है और राज्य ने विषयवार आरक्षण लागू किया है, तो यह पूरी तरह से

वैधानिक नुस्खे और विवेकानंद तिवारी (सुप्रा) में इस न्यायालय के निर्णय के अनुरूप है। आरक्षण के प्रावधानों को लागू करने के लिए एक कॉलेज को एक इकाई के रूप में नहीं लिया जा सकता है। प्रवक्ता का पद एक कॉलेज से दूसरे कॉलेज में स्थानांतरित किया जा सकता है और इसलिए, प्रत्येक विषय/विषय में आरक्षण लागू किया गया है जो पूरी तरह से नियम, 1990 और सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुरूप है।

12. मैंने याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री लालता प्रसाद मिश्रा सहायक विद्वान वकील श्री प्रफुल तिवारी, राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री संदीप शर्मा और यूपीपीएससी की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रवि शंकर तिवारी के तर्कों पर विचरण किया।

13. कैडर का अर्थ सेवा की संख्या या सेवा का एक हिस्सा है। *भारत संघ बनाम पुष्पा रानी और अन्य (2008) 9 एससीसी 242* में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि पदों के सृजन और उन्मूलन, कैडर के गठन और संरचना/पुनर्गठन, भर्ती और योग्यता के स्रोत/मोड को निर्धारित करना, चयन के मानदंड, कर्मचारियों के सेवा अभिलेख के मूल्यांकन से संबंधित वाद नियोक्ता के विशेष अधिकार क्षेत्र में आते हैं। न्यायिक समीक्षा तभी लागू होती है जब राज्य की कार्रवाई संवैधानिक या वैधानिक प्रावधानों के विपरीत हो या स्पष्ट रूप से मनमाना है या दुर्भावना से प्रेरित है। आगे यह माना गया है कि रोस्टर के प्रयोजनों के लिए, व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए ताकि विभिन्न ग्रेडों में स्वीकृत पदों को

इसके दायरे में लिया जा सके। रेलवे के सेवा नियमों की व्याख्या करते समय, यह माना गया है कि विभिन्न ग्रेडों में बनाए गए अस्थायी, कार्य प्रभारित, सुपर नम्बरी और छाया पद भी कैडर का हिस्सा बन सकते हैं और "कैडर" शब्द को कोई निश्चित अर्थ नहीं दिया जा सकता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए विभिन्न सेवा नियमों या प्रत्यायोजित विधान की शक्तियों के प्रयोग में बनाए गए नियमों में, "कैडर" शब्द को अलग-अलग अर्थ दिया गया है। रेलवे में विभिन्न ग्रेडों में स्वीकृत पद स्वतंत्र कैडर का गठन करते हैं। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 22, 23 और 27 जो प्रासंगिक हैं, नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

"22. संहिता के पैरा 103(7), रेलवे स्थापना मैनुअल के पैरा 103(iii) और परिपत्र आरबीई संख्या 113/97 को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि रेलवे में, "कैडर" शब्द आम तौर पर एक सेवा की संख्या या एक अलग इकाई के रूप में स्वीकृत सेवा के एक हिस्से को प्रदर्शित करता है। यद्यपि, रोस्टर के उद्देश्य के लिए, उक्त शब्द को एक व्यापक अर्थ दिया गया है ताकि विभिन्न ग्रेडों में स्वीकृत पदों को इसके दायरे में लाया जा सके। "कैडर" शब्द को यह विस्तृत अर्थ देने का कारण यह है कि रेलवे प्रतिष्ठान में पद ग्रेडों के संदर्भ में स्वीकृत किए जाते हैं। यहां तक कि विभिन्न ग्रेडों में बनाए गए अस्थायी, कार्य-प्रभारित, अधिसंख्य और छाया पद भी कैडर का हिस्सा बन सकते हैं।

23. हमारे देश में विकसित सेवा न्यायशास्त्र में "कैडर" शब्द को कोई निश्चित अर्थ नहीं दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 309 के

प्रावधान के तहत बनाए गए विभिन्न सेवा नियमों तथा प्रत्यायोजित विधान की शक्तियों के प्रयोग में बनाए गए नियमों में "कैडर" शब्द को अलग-अलग अर्थ दिया गया है।

27. श्री सुशील जैन का तर्क कि परिपत्र आर.बी.ई. संख्या 113/97 दिनांक 21-8-1997 का पैरा 4(बी) संहिता के पैरा 103(7) में निहित "कैडर" शब्द की परिभाषा के विपरीत है, इस कठोर वास्तविकता को पूरी तरह से नजरअंदाज करता है कि रेलवे प्रतिष्ठान में पदों को ग्रेड के संदर्भ में स्वीकृत किया जाता है, जिसका अर्थ है एक वर्ग का उप-विभाजन, जिनमें से प्रत्येक का वेतनमान अलग-अलग होता है। इसलिए, विभिन्न ग्रेड में स्वीकृत पद स्वतंत्र कैडर का गठन करेंगे और हमें कोई कारण नहीं दिखता कि रोस्टर को लागू करने के उद्देश्य से "कैडर" शब्द को सीमित अर्थ क्यों दिया जाना चाहिए।"

14. यह भी माना गया है कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय को सुरक्षित करने के लिए, राज्य को दलितों के पक्ष में गैर-भेदभावपूर्ण और सकारात्मक कार्रवाई करने का अधिकार है। भारतीय संविधान के निर्माता देश के सामाजिक ताने-बाने में असमानताओं और विषमताओं के प्रति सचेत और जागरूक थे और इसलिए, उन्होंने भारत के संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय का लक्ष्य निर्धारित किया और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने भारत के संविधान में अनुच्छेद 14, 15 और 16 को अधिनियमित किया। शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में सीटों और पदों का आरक्षण प्रदान करना न्याय और समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए की गई सकारात्मक

कार्रवाई का प्रतिबिंब है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 39 और 40 इस प्रकार होंगे: -

"39. संविधान निर्माता देश के सामाजिक ताने-बाने में व्याप्त असमानताओं और विषमताओं के साथ-साथ अमीर और गरीब के बीच की खाई के प्रति बहुत सचेत और जागरूक थे और यही कारण है कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय के लक्ष्य को प्रस्तावना में प्रमुख स्थान दिया गया था। संविधान के भाग III और भाग IV में निहित समानता की अवधारणा के दो अलग-अलग आयाम हैं। यह गैर-भेदभाव के सिद्धांत को मूर्त रूप देता है [अनुच्छेद 14, 15(1), (2) और 16(2)]। साथ ही यह राज्य को यह सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई करने के लिए बाध्य करता है कि समाज में असमान (दलित, उत्पीड़ित और वंचित) को एक ऐसे स्तर पर लाया जाए जहां वे दूसरों (समाज के संपन्न लोगों) के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकें [अनुच्छेद 15(3), (4), (5), 16(4), (4-ए), (4-बी), 39, 39-ए और 41]।

40. शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में सीटों और पदों के आरक्षण के लिए राज्य द्वारा उठाए गए विधायी और प्रशासनिक कदम वास्तविक समानता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उठाए गए सकारात्मक कदमों को प्रदर्शित करते हैं। यद्यपि, ऐसे कदमों के क्रियान्वयन और निष्पादन में कई चरणों में लगातार रुकावट आई हैं। जो लोग उपलब्ध व्यवस्था से लाभान्वित हुए हैं, उन्होंने इस पर आपत्ति जताई और अपने कानूनी और संवैधानिक अधिकारों के उल्लंघन का हौवा खड़ा किया। आरक्षण प्रदान करके समाज के वंचितों की स्थिति को सुधारने के लिए राज्य और उसकी

एजेंसियों द्वारा उठाए गए लगभग सभी कदमों की समय-समय पर न्यायिक जांच की गई। कुल मिलाकर न्यायालयों ने राज्य की सकारात्मक कार्रवाइयों को अनुमति प्रदान की, लेकिन कुछ अवसरों पर आरक्षण की नीति या उसके क्रियान्वयन को दोषपूर्ण पाया गया और सरकार द्वारा की गई कार्रवाइयों को न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा निरस्त या कम कर दिया गया।"

15. इस प्रकार, सेवा की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए संवर्ग को परिभाषित करना नियोक्ता का कार्य है। वैधानिक नियम, 1990 के तहत, सभी नौ सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों में व्याख्याताओं के सभी पद एक संवर्ग का गठन करते हैं। विषयवार/विषयवार रिक्तियों पर अध्याचन में आरक्षण प्रदान किया गया है। नियम, 1990 में संवर्ग की यह परिभाषा किसी भी संवैधानिक जनादेश का उल्लंघन नहीं करती है, विशेष रूप से, जब सभी कॉलेज राज्य सरकार के एकीकृत पर्यवेक्षण और नियंत्रण में हैं और पद एक कॉलेज से दूसरे कॉलेज में स्थानांतरित किए जा सकते हैं।

16. न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या सभी बारह विभिन्न विषयों/विषयों में रिक्त पदों को भरने और सभी नौ सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों के प्रत्येक विषय में सभी रिक्त पदों को जोड़ने की अध्याचना किसी भी तरह से वैधानिक नुस्खे या संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करती है।

17. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री लालता प्रसाद मिश्र यह इंगित करने में सक्षम नहीं हैं कि सभी नौ सरकारी होम्योपैथिक मेडिकल कॉलेजों के उस विषय के सभी पदों को विषयवार रूप से सम्मिलित

करते हुए आरक्षण कैसे वैधानिक नुस्खे या संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन है।

18. इस न्यायालय की खंडपीठ ने विवेकानंद तिवारी (सुप्रा) में अपने निर्णय में माना है कि शिक्षकों के विभिन्न स्तर के लिए विश्वविद्यालय को एक "इकाई" के रूप में मानते हुए शिक्षण पद पर आरक्षण लागू करना और विभागा/विषय को "इकाई" के रूप में नहीं, पूरी तरह से गलत था और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा जारी इस तरह के विज्ञापन को निरस्त कर दिया गया था।

19. इस न्यायालय की खंडपीठ ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के 2006 के निर्देशों/दिशानिर्देशों पर भी विचार किया, जिसमें विश्वविद्यालय को "इकाई" मानकर आरक्षण लागू करने के लिए कानून के विरुद्ध प्रावधान किया गया है। प्रत्येक विभाग और विषय के लिए अलग-अलग योग्यताएं निर्धारित की गई हैं, इसलिए विषय ए में सहायक प्रोफेसर विषय बी, सी या डी में एसोसिएट प्रोफेसर या प्रोफेसर के रूप में सीधी नियुक्ति के लिए आवेदन नहीं कर सकता है, लेकिन वह केवल विषय ए में पद के लिए आवेदन कर सकता है।

20. इस न्यायालय ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के 2006 के दिशानिर्देशों के खंड 6 (सी) और 8 (ए) (वी) को निरस्त कर दिया, जिसमें विश्वविद्यालय को "इकाई" के रूप में मानने का आरक्षण लागू किया गया था। उक्त निर्णय का पैराग्राफ संख्या 69 इस प्रकार होगा:-

"69. एक और कारण है कि विश्वविद्यालय की ओर से विद्वान अधिवक्ता का अनुरोध स्वीकार नहीं किया जा सकता। चूंकि हमारा मत है कि नीति के प्रासंगिक खंड अर्थात् यूजीसी के दिनांक 25.08.2006 के 6(सी) और 8(ए)(वी) तथा

यूजीसी के दिनांक 19.02.2008 के पत्र को बनाए रखना संभव नहीं है, इसलिए शिक्षण पदों से संबंधित संपूर्ण विज्ञापन को निरस्त किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हमने माना है कि बीएचयू द्वारा प्रकाशित विज्ञापन स्थापित कानून का उल्लंघन है और यह मनमाना, अनुचित, अव्यवहारिक है, क्योंकि इसमें विश्वविद्यालय को विभिन्न स्तर के शिक्षकों के लिए एक "इकाई" के रूप में मानते हुए शिक्षण पदों पर आरक्षण लागू किया गया है, न कि विभागा/विषय को एक "इकाई" के रूप में, हमारा मानना है कि संपूर्ण विज्ञापन को निरस्त किया जाना चाहिए। विभिन्न विभागों में आरक्षण लागू करने के लिए कोई दो मानदंड नहीं हो सकते। हमारा मत है कि केवल संबंधित विषयों/विभागों तक ही राहत सीमित रखना, जिसके लिए याचिकाकर्ता आवेदक हैं और विश्वविद्यालय के शेष विषयों/विभागों में पदों को विश्वविद्यालय को एक "इकाई" मानते हुए भरने की अनुमति देना और भी जटिलता पैदा करेगा और न केवल अव्यवहारिक, अव्यवहारिक होगा बल्कि अनुचित और अनुचित भी होगा। हम विश्वविद्यालय को स्थापित कानून के आलोक में आरक्षण नीति को नए सिरे से लागू करने का निर्देश भी दे रहे हैं। विश्वविद्यालय को प्रत्येक विभागा/विषय के लिए आरक्षण की गणना करने का नया अभ्यास करना होगा। हमारी राय में राहत केवल उस विभागा/विषय तक सीमित नहीं हो सकती जिसमें याचिकाकर्ता आवेदक हैं।"

21. इस न्यायालय की खंडपीठ के उपरोक्त निर्णय में लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि **विजय प्रकाश भारती बनाम भारत संघ और अन्य (2019) 12 एससीसी 410** में की गई थी।

22. इसके अनुसार, मुझे वर्तमान याचिका में कोई सार और योग्यता नहीं प्राप्त होती है, जिसे एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1022

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए संख्या 6787/2012

इंद्र कुमार पूर्व कांस्टेबल ... याचिकाकर्ता
बनाम

भारत संघ ...प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: पीयूष अस्थाना,
अब्दुल समद, एम.पी. राजू, मनीष कुमार सिंह,
नविता शर्मा, राजेंद्र सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी., अजय कुमार
सिंह, राजकुमार सिंह, संदीप शर्मा, सावित्र
वर्धन सिंह

ए. सेवा विधि - अनुशासनात्मक कार्यवाही-
सी.आर.पी.एफ. नियम, 1995 - नियम 27(ए)
- धारा 27 (सीसीसी) -केंद्रीय सिविल सेवा
(वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम,
1964- नियम 10(2)- जब कभी कोई
अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी की
सिफारिश से असहमत होता है और दंड/बड़ी
सजा देने का प्रस्ताव करता है, तो वह ऐसी
असहमति के कारण बताने के लिए बाध्य है
और उसे याचिकाकर्ता को ऐसे कारणों को
इंगित करते हुए कारण बताओ नोटिस भी देना
आवश्यक है ताकि दोषी कर्मचारी को अपना
बचाव करने का उचित अवसर मिल सके। (पैरा
16)

याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करते समय
अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट पर
विचार किया, तथापि, ऐसी जांच रिपोर्ट से
असहमत था और याचिकाकर्ता के खिलाफ
निष्कासन का बड़ा दंड पारित करने के लिए
आगे बढ़ा, तथापि, जांच अधिकारी से असहमत
होते हुए, प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को कारण
बताओ नोटिस नहीं दिया, जिसका वह कानून
के तहत अधिकारी था। (पैरा 16)

बी. सी.आर.पी.एफ. नियम, 1995- धारा 27
(सी.सी.सी.) - जब बल के किसी सदस्य पर
आपराधिक न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया
गया हो और उसे दोषमुक्त कर दिया गया हो,
तो उसे इस नियम के अंतर्गत उसी आरोप पर
या आपराधिक वाद में उद्धृत साक्ष्य के आधार
पर समान आरोप पर, चाहे वह वास्तव में
प्रस्तुत किया गया हो या नहीं, महानिरीक्षक
की पूर्व स्वीकृति के बिना विभागीय रूप से
दंडित नहीं किया जाएगा।

जांच अधिकारी ने दिनांक 23.06.2011 की
जांच रिपोर्ट में याचिकाकर्ता द्वारा की गई
स्वीकारोक्ति के अनुसार आरोप संख्या 1 को
सिद्ध पाया, तथापि आरोप संख्या 2 को
सिद्ध नहीं पाया।

इस वाद में, यह सच है कि याचिकाकर्ता
पर आपराधिक न्यायालय के समक्ष विचरण
उन्हीं आरोपों (अर्थात् आरोप संख्या 2) के
तहत मुकदमा चलाया जा रहा था, इसलिए
अधिनियम के स्पष्ट प्रावधान के अनुसार,
अनुशासनात्मक प्राधिकारी महानिरीक्षक की पूर्व
मंजूरी के बिना याचिकाकर्ता के खिलाफ
कार्यवाही नहीं कर सकता था। (पैरा 16)

सी. जब दोषमुक्ति को चुनौती देने वाली कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कर्मचारी को सम्मानपूर्वक बरी कर दिया गया हो तो इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है। (पैरा 17)

वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता को दिनांक 21.02.2012 के निर्णय और आदेश द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था। उक्त निर्णय के अवलोकन से प्रतीत होता है कि दोषमुक्ति आदेश इस आधार पर पारित किया गया था कि अभियोजन पक्ष अपने आरोप को सिद्ध करने में विफल रहा है और इस प्रकार, यह सम्मानजनक बरी है, याचिकाकर्ता को संदेह का कोई लाभ नहीं दिया गया था और इसलिए, नियम, 1955 की धारा 27 (सीसीसी) के तहत आदेश का पालन प्राधिकारी द्वारा निष्कासन आदेश पारित करते समय किया जाना चाहिए था। (पैरा 17)

रिट याचिका स्वीकार की गई। आपेक्षित आदेश निरस्त किए जाते हैं। वाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है। (ई-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. राम किशन बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1995) 6 एससीसी 157 (पैरा 9)
2. जी.एम. टैंक बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, (2006) 5 एससीसी 446 (पैरा 10)
3. भारत संघ एवं अन्य बनाम गुलाम मोहम्मद भट, अपील (सिविल) संख्या 4950/1999 (पैरा 13)

वर्तमान याचिका में विपक्षी पक्ष क्रमशः क्रमांक 2, 3 एवं 4 द्वारा पारित दिनांक

19.07.2012, 23.11.2011 तथा दिनांक 19.07.2011 के आदेशों को चुनौती दी गई है।

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,
द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता सुश्री नविता शर्मा और भारत संघ की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राज कुमार सिंह को सुना गया।

2. यह याचिका याचिकाकर्ता द्वारा निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना करते हुए योजित की गई है: -

"1. उत्प्रेषण प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश पारित करते हुए प्रतिवादी संख्या 2, 3 और 4 द्वारा पारित आपेक्षित आदेश दिनांक 19.07.2012 (अनुलग्नक संख्या 1), द्वारा पारित आपेक्षित आदेश दिनांक 23.11.2011 (अनुलग्नक संख्या 2) और द्वारा पारित आपेक्षित आदेश दिनांक 19.07.2011 (अनुलग्नक संख्या 3) को निरस्त किया जाए।

2. परमादेश प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश पारित करते हुए प्रतिवादियों को सभी परिणामी लाभों के साथ दिनांक 19.07.2011 से याचिकाकर्ता को सेवा में पुनर्स्थापित करने के लिए निर्देशित करें।

3. कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश पारित किया जाए जिसे यह माननीय न्यायालय न्यायहित में उचित समझे।

4. वाद की लागत का भुगतान किया जाए।"

3. वाद के निस्तारण के लिए वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 20.09.2007 को सीआरपीएफ पदग्रहण किया और केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल (संक्षेप में, 'सीआरपीएफ') में एफ/117 बटालियन में रिपोर्ट किया। उसने अपनी मां की गंभीर बीमारी के कारण अपने कमांडिंग ऑफिसर को दिनांक 12.01.2011 से 01.02.2011 तक 15 दिनों की आकस्मिक छुट्टी के लिए आवेदन किया और तदनुसार, छुट्टी स्वीकृत की गई और उसे जम्मू भेज दिया गया।

4. एसएचओ, पुलिस स्टेशन, राजबाग, जिला-श्रीनगर से दिनांक 19.01.2011 के पत्र द्वारा सूचना प्राप्त हुई कि याचिकाकर्ता को 19.01.2011 से पुलिस स्टेशन-कोठीबाग, जिला-श्रीनगर, जो कि श्रीनगर का एक उग्रवाद प्रभावित क्षेत्र है, में उसकी छुट्टी अवधि के दौरान एक नाबालिग लड़की के अपहरण और यौन उत्पीड़न के संबंध में गिरफ्तार/हिरासत में लिया गया था और परिणामस्वरूप, आरपीसी की धाराओं 363 और 376 के तहत एफआईआर संख्या 06/2011 के रूप में एफआईआर दर्ज की गई थी। याचिकाकर्ता को हिरासत में 48 घंटे से अधिक समय तक हिरासत में रखा गया था, इसलिए, उसे सीआरपीएफ नियम, 1995 के नियम 27 (ए) के साथ केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1964 के नियम 10 के उप-नियम (2) के तहत दिनांक 27.01.2011 के आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया था। धारा 363 और 376 आईपीसी के तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध उस वाद में

आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, उपरोक्त अपराधों के आधार पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने ज्ञापन दिनांक 14.03.2011 द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की।

5. जांच अधिकारी नियुक्त किया गया जिसने जांच कार्यवाही की और याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 1 को सिद्ध पाया, हालांकि, उन्होंने याचिकाकर्ता को आरोप संख्या 2 से मुक्त कर दिया और उसके बाद जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमति जताई और सीआरपीएफ नियम, 1955 के नियम 27 (ए) के तहत शक्तियों का प्रयोग करके याचिकाकर्ता को 19.07.2011 से सेवा से निलंबित कर दिया।

6. अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित निष्कासन आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् डीआईजी, सीआरपीएफ, इलाहाबाद रेंज (यूपी) के समक्ष दिनांक 16.09.2011 को अपील दायर की, जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने दिनांक 23.11.2011 के आदेश के द्वारा निरस्त कर दिया।

7. अपीलीय प्राधिकारी के दिनांक 23.11.2011 के आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.09.2012 को पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की, हालांकि पुनरीक्षण याचिका दायर करने से पूर्व याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 19.03.2012 को विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को सेवा में पुनः पुनर्स्थापित करने हेतु एक

अनुरोध पत्र लिखा गया था, जिसे पुनरीक्षण माना गया तथा दिनांक 19.07.2012 के आपेक्षित आदेश के तहत निर्णय दिया गया।

8. याचिकाकर्ता ने इस रिट याचिका के माध्यम से पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 19.07.2012 के आपेक्षित आदेश (अनुलग्नक संख्या 1), अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 23.11.2011 के आपेक्षित आदेश (अनुलग्नक संख्या 2) तथा अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 19.07.2011 के अपेक्षित आदेश (अनुलग्नक संख्या 3) को चुनौती दी है।

9. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध दो आरोपों के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की गई थी। आरोप संख्या 1 यह था कि उसने झूठे आधार पर छुट्टी ली थी कि उसकी मां बीमार है और छुट्टी लेने के बाद याचिकाकर्ता श्रीनगर लौट आया और वहीं रहने लगा। याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 2 यह है कि श्रीनगर में उसे नाबालिग लड़की के साथ पुलिस ने गिरफ्तार किया और उसके साथ बलात्कार किया जिसके कारण उसके खिलाफ धारा 363 और 376 आरपीसी के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी। उन्होंने आगे तर्क दी कि जांच के बाद जांच अधिकारी ने आरोप संख्या 1 को सिद्ध होना पाया और आरोप संख्या 2 सिद्धि नहीं पाया और वाद लंबित है। उन्होंने तर्क दी कि जांच पूरी होने के बाद जांच रिपोर्ट की प्रति याचिकाकर्ता को उस जांच रिपोर्ट का उत्तर देने के लिए भेजी गई जिसमें याचिकाकर्ता ने आरोप संख्या 1

को स्वीकार किया कि उसने झूठे आधार पर छुट्टी ली थी और माफी मांगी और इसके अतिरिक्त याचिकाकर्ता ने यह वचन दिया कि भविष्य में वह ऐसी गलती नहीं करेगा। हालांकि, जब जांच रिपोर्ट कार्रवाई के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को भेजी गई, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने निष्कासन का आपेक्षित आदेश पारित करते समय आरोप संख्या 2 को भी सिद्ध मान लिया और निष्कासन का आदेश पारित कर दिया। यह तर्क दिया गया कि यह स्वीकार्य नहीं है और यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी और उसकी रिपोर्ट से सहमत नहीं था, तो यह तथ्य याचिकाकर्ता को सूचित किया जाना चाहिए था, जिसके विरुद्ध निष्कासन का आदेश पारित करने का प्रस्ताव था और असहमति के कारणों को भी याचिकाकर्ता को सूचित किया जाना आवश्यक था और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा असहमति और ऐसी असहमति के कारणों को इंगित करते हुए एक नया कारण बताओ नोटिस जारी किया जाना चाहिए था और याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद आदेश पारित किया जा सकता था। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने राम किशन बनाम भारत संघ और अन्य [(1995) 6 एससीसी 157] के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त किया।

10. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि सीआरपीएफ नियम, 1955 (जिसे आगे नियम, 1955 कहा जाएगा) की धारा 27 (सीसीसी) में यह प्रावधान है कि यदि किसी व्यक्ति को

किसी अपराध के लिए दोषमुक्त कर दिया गया है तो उसी आरोप पर तब तक सजा नहीं दी जा सकती जब तक कि आई.जी. से अनुमति नहीं ले ली जाती। इसका अर्थ यह है कि वाद के निष्कर्ष तक सजा का आदेश पारित नहीं किया जा सकता और इसलिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी का यह आदेश कानून की दृष्टि से गलत है कि आरोप संख्या 2 को सिद्ध मान लिया जाए जबकि जांच अधिकारी की राय थी कि केवल आरोप संख्या 1 सिद्ध हुआ था। सही प्रक्रिया यह होती कि या तो पूरी जांच विचरण में निर्णय तक स्थगित कर दी जाती या आरोप संख्या 2 के लिए जांच विचरण के समापन के बाद ही प्रारंभ की जाती, लेकिन अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दोनों में से किसी भी तरीके का पालन नहीं किया। इसके बाद यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को धारा 363 और 376 आरपीसी के तहत फाइल संख्या 57/बी/153/एस/17/रसीद (अनुलग्नक संख्या 6) में दिनांक 21.02.2012 के दोषमुक्त करने के आदेश के तहत विद्वान विचारणीय न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने जीएम टैंक बनाम गुजरात राज्य और अन्य [(2006) 5 एससीसी 446] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें पैरा 7, 13, 14, 16, 22, 31 और 32 पर जोर दिया गया है। याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि एक बार विद्वान विचारणीय न्यायालय द्वारा दोषमुक्त करने का आदेश पारित होने के बाद, विभागीय जांच के तहत उसी आरोप पर पारित आदेश हमेशा समीक्षा के लिए स्वतंत्र था और याचिकाकर्ता

को पुनर्स्थापित किया जा सकता था। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता दोषमुक्त होने की तिथि से पूरा देय वेतन पाने का पात्र है। यह भी तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को सम्मानपूर्वक दोषमुक्त किया गया है, विचारणीय न्यायालय ने पाया कि अभियोजन पक्ष अपना वाद सिद्ध करने में विफल रहा है। यह तर्क दिया गया कि केवल उन दोषमुक्त वाद को सम्मानपूर्वक दोषमुक्त नहीं माना जाता है जिसमें संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाता है, यहाँ ऐसा कोई वाद नहीं है। जहाँ तक आरोप संख्या 1 का संबंध है, यह दोनों पक्षों के मध्य विवादित नहीं है कि आरोप संख्या 1 को याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकार किया गया था। याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यह एक मामूली आरोप है और केवल एक या दो वेतन वृद्धि आदि को रोकने जैसी मामूली सजा दी जा सकती है और उस आरोप के लिए हटाने की सजा नहीं दी जा सकती है।

11. इसके विपरीत, प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राज कुमार सिंह ने इस तर्क का विरोध किया है। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने जम्मू से श्रीनगर वापस आने और नाबालिग लड़की का अपहरण करने तथा उसके साथ रहने के पूर्व नियोजित आशय से झूठे आधार पर आकस्मिक अवकाश लिया। सीआरपीएफ में एक अधिकारी के लिए इस तरह का आचरण अनुचित है, इसलिए यह ऐसा उचित वाद नहीं है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता हो। उन्होंने तर्क दिया कि विभागीय जांच की गई थी तथा याचिकाकर्ता को अपना बचाव करने

के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था, क्योंकि इसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं हुआ है। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के दिनांक 19.03.2012 के आवेदन को सीआरपीएफ नियम, 1955 के नियम 29 (बी) के तहत संशोधन के रूप में माना गया था तथा इसे दिनांक 19.07.2012 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया है। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 12.09.2012 का वैधानिक संशोधन नियमों के तहत निर्धारित सीमा अवधि से परे प्रस्तुत किया गया था, इसलिए इसे इस आधार पर निरस्त कर दिया गया। केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम, 1949 केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के शस्त्रों के गठन और विनियमन का प्रावधान करता है। नियम, 1955 की धारा 27 दंड देने की प्रक्रिया प्रदान करती है। नियम, 1955 की धारा 27 की उपधारा (सी) विभागीय जांच करने की प्रक्रिया प्रदान करती है, जिसका सारांश नीचे दिया गया है:-

(सी) विभागीय जांच करने की प्रक्रिया इस प्रकार होगी:-

(1) आरोप का सार लिखित आरोप के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा जो यथासंभव सटीक होना चाहिए। आरोप को अभियुक्त को पढ़कर सुनाया जाएगा और जांच प्रारंभ होने से कम से कम 48 घंटे पहले उसे इसकी एक प्रति दी जाएगी।

(2) जांच के आरंभ में अभियुक्त को दोषी या निर्दोष होने की तर्क दर्ज करने के लिए कहा जाएगा जिसके बाद आरोप को स्थापित करने के लिए आवश्यक साक्ष्य पेश किए जाएंगे। साक्ष्य आरोप के लिए महत्वपूर्ण होंगे और

मौखिक या दस्तावेजी हो सकते हैं, यदि मौखिक हैं:

(i) यह प्रत्यक्ष होगा:

(ii) इसे अभियुक्त की उपस्थिति में जांच करने वाले अधिकारी द्वारा स्वयं अभिलिखित किया जाएगा:

(iii) अभियुक्त को गवाहों से जिरह करने की अनुमति दी जाएगी।

(3) जब आरोप के समर्थन में दस्तावेजों पर भरोसा किया जाता है, तो उन्हें सबूत के तौर पर प्रस्तुत किया जाएगा और अभियुक्त को अपनी सफाई देने के लिए बुलाए जाने से पहले ऐसे सबूतों का निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी।

(4) इसके बाद अभियुक्त की जांच की जाएगी और जांच करने वाले अधिकारी द्वारा उसका बयान दर्ज किया जाएगा। यदि अभियुक्त ने दोषी होने की तर्क दी है और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को चुनौती नहीं देता है, तो कार्यवाही आदेश के लिए बंद कर दी जाएगी। यदि वह "दोषी नहीं" होने की तर्क देता है, तो उसे लिखित बयान और ऐसे गवाहों की सूची प्रस्तुत करने की आवश्यकता होगी, जिन्हें वह अपने बचाव में उद्धृत करना चाहे, ऐसी अवधि के भीतर, जो किसी भी वाद में दो सप्ताह से कम नहीं होगी, जिसे जांच करने वाला अधिकारी वाद की परिस्थितियों में उचित समझे। यदि वह लिखित बयान दाखिल करने से इनकार करता है, तो उसे दी गई अवधि की समाप्ति पर जांच करने वाले अधिकारी द्वारा फिर से जांच की जाएगी।

(5) यदि अभियुक्त अपने बचाव में कोई गवाह उद्धृत करने या कोई सबूत प्रस्तुत करने से इनकार करता है, तो कार्यवाही आदेश के लिए

बंद कर दी जाएगी। यदि वह कोई सबूत प्रस्तुत करता है, तो जांच करने वाला अधिकारी सबूत दर्ज करने के लिए आगे बढ़ेगा। यदि जांच करने वाला अधिकारी यह समझता है कि किसी गवाह का साक्ष्य या कोई दस्तावेज, जिसे अभियुक्त अपने बचाव में प्रस्तुत करना चाहता है, वाद में सम्मिलित विवाद के लिए महत्वपूर्ण नहीं है, तो वह ऐसे गवाह को बुलाने या ऐसे दस्तावेज को साक्ष्य में पेश करने की इजाजत देने से इनकार कर सकता है, लेकिन ऐसे सभी वाद में उसे साक्ष्य को अग्रोषित करने के अपने कारणों को संक्षेप में दर्ज करना होगा। जब सभी प्रासंगिक साक्ष्य अभिलेख पर लाए गए हैं, तो कार्यवाही आदेशों के लिए बंद कर दी जाएगी।

(6) यदि कमांडेंट ने स्वयं जांच की है, तो वह अपने निष्कर्ष दर्ज करेगा और जहां उसे ऐसा करने की शक्ति है, वहां आदेश पारित करेगा। यदि जांच कमांडेंट के अतिरिक्त किसी अन्य अधिकारी द्वारा की गई है, तो जांच करने वाला अधिकारी अपनी रिपोर्ट कार्यवाही के साथ कमांडेंट को भेजेगा, जो अपने निष्कर्ष दर्ज करेगा और जहां उसे ऐसा करने की शक्ति है, वहां आदेश पारित करेगा।

(7) जीएसआर 75 दिनांक 26.1.80 द्वारा हटा दिया गया।

12. नियम, 1955 की धारा 27 (सीसीसी) में यह प्रावधान है कि जब किसी बल के सदस्य पर आपराधिक न्यायालय द्वारा वाद चलाया गया हो और उसे दोषमुक्त कर दिया गया हो तो उसे उसी आरोप या समान आरोप पर इस नियम के अंतर्गत विभागीय रूप से दंडित नहीं किया जाएगा। नियम, 1955 की उपरोक्त धारा

27 (सीसीसी) का उद्धरण नीचे भी दिया गया है:-

“(सीसीसी) जब किसी बल के सदस्य पर आपराधिक न्यायालय द्वारा वाद चलाया गया हो और उसे दोषमुक्त कर दिया गया हो, तो उसे इस नियम के अंतर्गत उसी आरोप पर या आपराधिक वाद में उद्धृत साक्ष्य के आधार पर समान आरोप पर विभागीय रूप से बिना महानिरीक्षक की पूर्व स्वीकृति के दंडित नहीं किया जाएगा, चाहे वह वास्तव में प्रस्तुत किया गया हो या नहीं।”

13. भारत संघ की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि सीआरपीएफ जैसे अनुशासित पद पर झूठी से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने पर बड़ी सजा होती है, इसलिए न्यायालय द्वारा कोई नरम रुख अपनाने की आवश्यकता नहीं है। **बनाम गुलाम मोहम्मद भट [अपील (सिविल) संख्या 4950/1999]**

14. दोनों पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

15. याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए दो आरोप निम्नानुसार हैं:-

"(1) यह कि बल संख्या 075184846 सि०/जीडी इन्द्र कुमार एफ/117 बटालियन ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल में सिपाही/ जीडी के पद पर कार्यरत रहते हुए के.रि.पु.बल, अधिनियम 1949 की धारा 11 (1) के अधीन बल का सदस्य होने की हैसियत से आदेशों की अवज्ञा/उपेक्षा/अनुशासनहीनता तथा अन्य कदाचार का व्यवहार किया है, जिसमें वह अपनी माता के सख्त बीमार होने के संबंध में

झूठा प्रार्थना पत्र कमांडिंग आफीसर को प्रस्तुत कर 15 दिन स्वीकृत आकस्मिक अवकाश दिनांक 12/1/2011 से 01/2/2011 (अनुमति दिनांक 14/01/11, 15/01/11, 16/01/11, 23/01/11, 26/01/11 एवं 30/01/11) तक स्वीकृत कराया तथा दिनांक 12/01/11 को डाउन कानवाय के माध्यम से श्रीनगर से जम्मू भेजे जाने के उपरांत वह बिना किसी सूचना के वापस श्रीनगर आकर लालचौक तथा उसके आस-पास के अति संवेदनशील जगह पर रहा। तथा उसे सिवल पुलिस द्वारा एक स्थानीय नाबालिग लड़की के साथ संदेहास्पद स्थिति में पकड़ कर पुलिस स्टेशन राजबाग श्रीनगर के सुपुर्द किया गया जहाँ उसे सिवल पुलिस द्वारा दिनांक 19/01/11 को 48 घंटे से अधिक समय तक पुलिस हिरासत में रखा गया। बल संख्या: 075184846 सिपाही/जीडी इन्द्र कुमार, का यह कदाचार बल के नियमों के विपरीत है तथा के०रि०पु०बल नियमवाली-1955 के नियम 27 के तहत दण्डनीय अपराध है।

(2) यह कि बल संख्या 075184846 सिपाही/जीडी इन्द्र कुमार एफ/117 बटालियन ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल में सिपाही/ जीडी के पद पर कार्यरत रहते हुए के०रि०पु०बल अधिनियम-1949 की धारा 11(1) के अधीन बल का सदस्य होने की हैसियत से आदेशों की अवज्ञा उपेक्षा/अनुशासनहीनता तथा अन्य कदाचार का व्यवहार किया है, जिसमें वह 15 दिन आकस्मिक अवकाश दिनांक 12/1/2011 से 01/2/2011 (अनुमति दिनांक 14/01/11, 15/01/11, 16/01/11, 23/01/11, 26/01/11 एवं 30/01/11) के दौरान बिना किसी पूर्व सूचना तथा सक्षम प्राधिकारी की अनुमति लाल

चौक जैसे अतिसंवेदनशील इलाके में रहा था एक स्थानीय नाबालिग लड़की के साथ अवैध संबंध स्थापित किये जिसके संबंध में सिवल पुलिस द्वारा उक्त सिपाही के खिलाफ पुलिस स्टेशन राजबाग श्रीनगर में रणबीर पैनाल कोड की धारा 363/376 प्राथमिक सूचना संख्या 6/2011 के अंतर्गत आपराधिक मामला दर्ज कर उसे दिनांक 19/1/11 को 48 घंटे से अधिक समय तक पुलिस हिरासत में रखा। बल संख्या 075184846 सिपाही/जीडी इन्द्र कुमार ने उक्त अवचार कदाचार का कृत्य कर बल की छवि को धूमिल किया है जो बल के नियमों के विपरीत है तथा के०रि०पु०बल नियमावली 1955 के नियम 27 के तहत दण्डनीय अपराध है।"

16. प्रथम आरोप के अवलोकन से प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता पर अपनी मां की गंभीर बीमारी के कारण 15 दिनों की आकस्मिक छुट्टी स्वीकृत करने के लिए अपने कमांडिंग ऑफिसर को गलत और झूठी सूचना देने का आरोप लगाया गया था। दूसरा आरोप छुट्टी के दौरान अपने कमांडिंग ऑफिसर या कमांडेंट की सहमति के बिना श्रीनगर के एक संवेदनशील क्षेत्र में रहना और अनुशासनहीन गतिविधि में स्वयं को सम्मिलित करके बल की छवि को बदनाम करना और एक नाबालिग लड़की के साथ यौन संबंध स्थापित करना था और इस तरह एक कदाचार किया गया था। जांच अधिकारी ने दिनांक 23.06.2011 की जांच रिपोर्ट के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा की गई स्वीकारोक्ति के अनुसार आरोप संख्या 1 को सिद्ध पाया है, यद्यपि, आरोप संख्या 2 को उन्होंने सिद्ध नहीं पाया। पक्षों के मध्य

यह स्वीकार किया जाता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने फाइल संख्या 57/बी/153/एस/17/प्राप्ति में याचिकाकर्ता के परीक्षण के दौरान उपरोक्त आरोपों पर अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त कर दी है। नियम, 1955 की धारा 27 (सीसीसी) के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जब किसी बल के सदस्य पर आपराधिक न्यायालय द्वारा विचरण चलाया गया हो और उसे दोषमुक्त कर दिया गया हो, तो उसे इस नियम के तहत उसी आरोप या आपराधिक वाद में उद्धृत साक्ष्य के आधार पर समान आरोप पर महानिरीक्षक की पूर्व स्वीकृति के बिना विभागीय रूप से दंडित नहीं किया जाएगा, चाहे वह वास्तव में प्रस्तुत किया गया हो या नहीं। इस वाद में, याचिकाकर्ता पर उन्हीं आरोपों के लिए विचरण चल रहा था, जो आपराधिक न्यायालय के समक्ष आरोप संख्या 2 हैं, इसलिए, अधिनियम के स्पष्ट प्रावधान के अनुसार, अनुशासनात्मक प्राधिकारी महानिरीक्षक की पूर्व मंजूरी के बिना याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकता था। अभिलेख में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि विभाग द्वारा महानिरीक्षक से कोई पूर्व अनुमति ली गई थी, इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने नियम, 1955 की धारा 27 (सीसीसी) का घोर उल्लंघन करते हुए याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही की है। याचिकाकर्ता का तर्क है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करते समय जांच रिपोर्ट पर विचार किया है, हालांकि, ऐसी जांच रिपोर्ट से असहमत है और याचिकाकर्ता के विरुद्ध निष्कासन की बड़ी सजा पारित करने के लिए आगे बढ़ा है, हालांकि, जांच अधिकारी से

असहमत होते हुए, प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस नहीं दिया है, जिसका वह कानून के तहत पात्र था और इस बिंदु पर कानून स्थापित है कि जब भी, एक अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी की सिफारिश से असहमत होता है और दंड/बड़ी सजा पारित करने का प्रस्ताव करता है, तो वह ऐसी असहमति के कारण बताने के लिए बाध्य है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राम किशन (सुप्रा) वाद में पैरा 10 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"10. अगला प्रश्न यह है कि क्या कारण बताओ नोटिस कानून में वैध है। यह सत्य है, जैसा कि अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने सही ढंग से तर्क दिया है, कि कारण बताओ नोटिस में उन कारणों का संकेत नहीं दिया गया है जिनके आधार पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से असहमत होने का प्रस्ताव रखा है। जांच अधिकारी के निष्कर्षों से असहमति के बाद में कारण बताओ नोटिस का उद्देश्य अपराधी को यह प्रदर्शित करने में सक्षम बनाना है कि जांच रिपोर्ट में दिए गए कारणों से अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच अधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से असहमत न होने के लिए प्रेरित है या वह जांच अधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्षों के समर्थन में अतिरिक्त कारण प्रस्तुत कर सकता है। उस स्थिति में, जब तक अनुशासनात्मक प्राधिकारी कारण बताओ में विशिष्ट कारण नहीं देता है जिसके आधार पर जांच अधिकारी के निष्कर्ष उस संबंध में आधारित हैं, अपराधी के लिए जांच अधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से सहमत होने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रेरित

करने के लिए संतोषजनक रूप से कारण बताना कठिन होगा। कारण बताओ नोटिस में किसी भी आधार या कारण के अभाव में यह एक खाली औपचारिकता है जो दोषी अधिकारी के प्रति गंभीर पूर्वाग्रह पैदा करेगी और उसके साथ अन्याय होगा। केवल यह तथ्य कि अंतिम आदेश में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से असहमत होने के लिए कुछ कारण दिए गए हैं, दोष को ठीक नहीं कर सकता। लेकिन, इस वाद में तथ्यों के आधार पर, एकमात्र आरोप जो स्वीकार किया गया वह यह है कि अपीलकर्ता ने वरिष्ठ अधिकारी पर अपमानजनक भाषा का प्रयोग किया था। चूंकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने कहा है कि वह उस आरोप से आंशिक रूप से सहमत है, इसलिए कारण बताओ नोटिस में भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा उस संबंध में निकाला गया अनंतिम निष्कर्ष अस्पष्ट नहीं कहा जा सकता। इसलिए, इस वाद के तथ्यों के आधार पर, हमें यह विचार करने का कोई औचित्य नहीं प्राप्त होता है कि कारण बताओ नोटिस कानून की त्रुटि के कारण दोषपूर्ण है।"

17. इस वाद में याचिकाकर्ता को दिनांक 21.02.2012 के निर्णय और आदेश द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था। उक्त निर्णय के अवलोकन से प्रतीत होता है कि दोषमुक्ति आदेश इस आधार पर पारित किया गया था कि अभियोजन पक्ष अपने आरोप को सिद्ध करने में विफल रहा है और इस प्रकार, यह सम्मानजनक दोषमुक्ति है, याचिकाकर्ता को संदेह का कोई लाभ नहीं दिया गया था और इसलिए, नियम, 1955 की धारा 27 (सीसीसी) के तहत अधिदेश का पालन निष्कासन आदेश

पारित करते समय प्राधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए था। इस संबंध में कानून जीएम टैंक (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है। प्रासंगिक पैराग्राफ 7, 22 और 31 नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

7. विशेष न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को अधिनियम की धारा 5(1)(ई) सपठित धारा 5(2) के तहत दंडनीय अपराध से यह कहते हुए दोषमुक्त कर दिया कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने में विफल रहा है और इस प्रकार अपीलकर्ता को उक्त अपराध का दोषी नहीं माना जा सकता। यह दोषमुक्ति पूरी तरह से दोषमुक्ति के आधार पर है न कि संदेह का लाभ देकर, जो विशेष न्यायाधीश के निर्णय से स्पष्ट है। हालांकि, खंडपीठ ने इस तथ्य और अतिरिक्त तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि श्री वीबी रावल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर विशेष न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को दोषमुक्त कर दिया था।

22. कैप्टन एम. पॉल एंथनी बनाम भारत गोल्ड माइंस लिमिटेड और अन्य (सुप्रा) में, इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या विभागीय कार्यवाही और एक ही तथ्यों के आधार पर प्रारंभ की गई आपराधिक वाद की कार्यवाही एक साथ जारी रखी जा सकती है। पैराग्राफ 34 में, इस न्यायालय ने निम्न प्रकार से निर्णय दिया:

"34. प्रतिवादियों के पूरे वाद को निरस्त करने का एक अन्य कारण है। जैसा कि पहले बताया गया है, आपराधिक मामला और विभागीय कार्यवाही भी समान तथ्यों अर्थात् "अपीलकर्ता के निवास पर छापामारा गया और वहां से

आपत्तिजनक वस्तुओं की बरामदगी" पर आधारित थी। जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष, जिनकी एक प्रति हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई है, यह प्रदर्शित है कि अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को पुलिस अधिकारियों और पंच गवाहों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया गया था, जिन्होंने अपीलकर्ता के घर पर छापा मारा था और बरामदगी की थी। वे ही एकमात्र गवाह थे, जिनकी जांच अधिकारी ने जांच की और जांच अधिकारी ने उनके बयानों पर भरोसा करते हुए निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए थे। आपराधिक वाद में उन्हीं गवाहों की जांच की गई थी, लेकिन न्यायालय ने पूरे साक्ष्य पर विचार करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ता के निवास से न तो कोई तलाशी ली गई थी और न ही कोई बरामदगी की गई थी। अभियोजन पक्ष का पूरा वाद निरस्त कर दिया गया और अपीलकर्ता को दोषमुक्त कर दिया गया। इस स्थिति में, इसलिए, जहां अपीलकर्ता को न्यायिक निर्णय द्वारा इस निष्कर्ष के साथ दोषमुक्त कर दिया गया है कि अपीलकर्ता के निवास पर "छापेमारी और बरामदगी" सिद्ध नहीं हुई थी, एकपक्षीय विभागीय कार्यवाही में दर्ज निष्कर्षों की पुष्टि करना अन्यायपूर्ण, अनुचित और दमनकारी होगा।"

31. हमारी राय में, विभाग और आपराधिक कार्यवाही में ऐसे तथ्य और साक्ष्य एक जैसे थे, उनमें कोई सूक्ष्म अंतर नहीं था, अपीलकर्ता को सफल होना चाहिए। दृष्टिकोण और सबूत के बोझ के आधार पर विभागीय और आपराधिक कार्यवाही के बीच जो अंतर आमतौर पर सिद्ध होता है, वह इस वाद में

लागू नहीं होगा। यद्यपि घरेलू जांच में दर्ज किए गए निष्कर्ष को निचली न्यायालय ने वैध पाया था, जब बर्खास्तगी को चुनौती देने वाली कार्यवाही के दौरान कर्मचारी को सम्मानजनक तरीके से दोषमुक्त किया गया था, तो उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है और पॉल एंथनी के मामले (सुप्रा) में निर्णय लागू होगा। इसलिए, हम मानते हैं कि अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील को स्वीकार किया जाना चाहिए।"

18. उपरोक्त के अनुसार, याचिका सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है। आपेक्षित आदेश आपस्त किए जाते हैं। वाद को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को एक नवीन आदेश पारित करने के लिए वापस भेज दिया गया है, उन्होंने इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर जांच रिपोर्ट की प्रति के साथ याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस देकर सुनवाई का पर्याप्त अवसर देने के बाद जांच रिपोर्ट की एक प्रति प्राप्त की है।

(2023) 4 ILRA 1031

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-1,

आपराधिक अपील संख्या 1599/1995

राम किशन उर्फ किशन लाल व अन्य

...अपीलकर्ता (अंतरिम जमानत पर)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री वी.एस. सिंह, श्री

अजय सेंगर

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 323/34 और 427/34 अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 - धारा 4 और 5 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 313, 357, 360 - कठोर कारावास-सजा के खिलाफ अपील - एफआईआर के अनुसार - दिनांक 26.06.1990 को, अपीलकर्ताओं ने बस को रोका, ड्राइवर, कंडक्टर और यात्रियों को बस से उतरने के लिए मजबूर किया - इस तरह के ज्ञान के साथ सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने में अपीलकर्ताओं ने यात्री को चोट पहुंचाई, यदि मृत्यु हुई, तो वे हत्या के लिए दोषी होंगे - अपीलकर्ताओं ने स्वेच्छा से ड्राइवर को चोट पहुंचाई - उन्होंने बस पर पथराव किया, जिससे खिड़की के शीशे टूट गए, जिससे ₹ 15000/- का नुकसान हुआ, बस चालक (पीडब्लू-1) ने एफआईआर दर्ज कराई - चोटें साधारण प्रकृति की थीं, जो किसी कठोर कुंद वस्तु के कारण आई - अभियोजन पक्ष ने पीडब्लू-1 से पीडब्लू-4 की तथ्यात्मक गवाहों के रूप में, पीडब्लू-5, पीडब्लू-6 की औपचारिक गवाहों के रूप में जांच की - पीडब्लू-4 के साक्ष्य से यह पता चलता है कि घटना के 4-5 दिन पहले, पीडब्लू-1 और आरोपी व्यक्तियों के बीच झगड़ा हुआ था, वे बिना टिकट खरीदे बस से यात्रा करना चाहते थे - पीडब्लू-4 की जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आया जो हो सकता है जिससे बयान की सत्यता पर संदेह हो - पीडब्लू-1, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-4 के साक्ष्य ने अभियोजन पक्ष के मामले को सिद्ध कर दिया - पीडब्लू-5 के साक्ष्य पर विचार करते हुए, बचाव पक्ष यह सिद्ध करने में विफल रहा

कि पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 को ग्रामीणों के हमले के कारण चोटें आईं - इसलिए, आपेक्षित आदेश में कोई अवैधता नहीं है, दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है। तदनुसार निर्देश। (पैरा 3, 4, 5, 10, 23, 25, 45)

अपील निस्तारित (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. लीला राम (मृत) दुल चंद्र बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2000) एससीसी (सीआरएल) 222
2. कृष्णा मोची एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002) एससीसी (सीआरएल) 1220
3. एम.पी. राज्य बनाम विक्रम दास (2019) 4 एससीसी 125
4. मनोहर सिंह बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2015) 3 एससीसी 449
5. सुभाष चंद्र एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य, 2015 वाद (एल्ड) 1343
6. महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह, कुलदीप सिंह आनंद और अन्य (2004) 7 एससीसी 659
7. जगत पाल सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2000 एससी 3622

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-1, द्वारा प्रदत्त)

अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय सेंगर और राज्य के विद्वान ए.जी.ए. श्री सुनील कुमार त्रिपाठी को सुना गया।

2. यह आपराधिक अपील सत्र परीक्षण संख्या 64/1993, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम किशन व अन्य में अपर सत्र न्यायाधीश, ललितपुर द्वारा पारित दिनांक 15.09.1995 के निर्णय व आदेश के विरुद्ध संस्थित की गई है, जो मुकदमा अपराध संख्या 105/1909 धारा 308, 323 व 427 भा0दं0सं0, थाना महरौनी, जिला ललितपुर से उत्पन्न हुआ है।

3. विचारणीय आदेश के तहत, ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता राम किशन और गोरे लाल को धारा 323 आर/डब्ल्यू 34 और 427 आर/डब्ल्यू 34 भा0दं0सं0 के तहत दोषी ठहराया है और उन्हें दोनों धाराओं में एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई है। ट्रायल कोर्ट ने यह भी निर्देश दिया है कि दोनों सजाएँ एक साथ चलेंगी। राज्य ने धारा 308 भा0दं0सं0 के तहत आरोपियों को आरोप से बरी करने के खिलाफ कोई अपील दायर नहीं की है। इस प्रकार, धारा 308 भा0दं0सं0 के तहत आरोपियों को बरी करने से संबंधित निर्णय और आदेश अंतिम हो गया है।

4. अनावश्यक विवरण से हटकर, अभियोजन पक्ष का मामला संक्षेप में यह है कि 26.06.1990 को सायं 4 बजे छाजन के निकट कुम्हैरी तिराहा रोड, पुलिस स्टेशन महरौनी, अपीलकर्ता-अभियुक्त राम किशन और गोरे लाल ने बस संख्या यू.टी.पी. 4113 को रोका और ड्राइवर, कंडक्टर और यात्रियों को बस से उतरने के लिए मजबूर किया, फिर अपीलकर्ता-अभियुक्तों ने इस तरह के जान के साथ सामान्य इरादे को आगे बढ़ाते हुए बस संख्या यू.टी.पी. 4113 के यात्री जमुना प्रसाद को चोट

पहुंचाई कि अगर उसकी मौत हो जाती है, तो वे गैर इरादतन हत्या के दोषी होंगे। अपीलकर्ता-अभियुक्तों ने स्वेच्छा से उक्त बस के ड्राइवर प्रेम नारायण को भी साधारण चोट पहुंचाई। उन्होंने बस पर पत्थर भी फेंके, जिसके परिणामस्वरूप इसकी 10 से 12 खिड़कियों के शीशे टूट गए, जिससे लगभग 15000/- रुपये का नुकसान हुआ।

5. बस चालक प्रेम नारायण की लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क1) के आधार पर दिनांक 26.06.1990 को 18.05 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, क्योंकि मुकदमा अपराध संख्या 105/1990 धारा 308, 323, 427 भा0दं0सं0 के तहत थाना- महरौनी, जिला- ललितपुर में पंजीकृत किया गया था। चिक एफआईआर (प्रदर्श क5) और जीडी (प्रदर्श क6) की कार्बन कॉपी रिकॉर्ड पर है।

6. दिनांक 26.06.1990 को सायं 6.30 बजे डॉ. प्रताप सिंह, चिकित्साधिकारी, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, महरौनी द्वारा जमुना प्रसाद का परीक्षण कर चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क7) तैयार की गई। घायल जमुना प्रसाद के शरीर पर निम्न चोटें पायी गयीं : -

(i) सिर के बाईं ओर 5 सेमी x 1 सेमी हड्डी में गहरा घाव, बाएं कान से 11 सेमी ऊपर तिरछा। ताजा खून मौजूद है।

(ii) कलाई के जोड़ से 9 सेमी ऊपर बाएं अग्रबाहु के सामने और बाहर 7 सेमी x 4 सेमी की चोट वाली सूजन

(iii) कंधे की नोक से 23 सेमी नीचे पीठ के बाईं ओर 15 सेमी x 2.5 सेमी का चोट।

चोट संख्या (ii) और (iii) सामान्य प्रकृति की थी। वे ताजा थीं और किसी कुंद वस्तु से लगी थीं। चोट संख्या (i) को निगरानी में रखा गया और एक्स-रे कराने की सलाह दी गई।

7. दिनांक 26.06.1990 को सायं 6.50 बजे डॉ. प्रताप सिंह, चिकित्साधिकारी, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, महरौनी द्वारा प्रेम नारायण का परीक्षण कर चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क8) तैयार की गई। घायल प्रेम नारायण के शरीर पर निम्न चोटें पायी गयीं : -

- (i) बाएं कंधे के बाईं ओर 15 सेमी x 4 सेमी सूजन के साथ चोट।
- (ii) से 4 सेमी नीचे पीठ के बाईं ओर 8 सेमी x 2.5 सेमी का चोट का निशान।
- (iii) पीठ के दाहिनी ओर 8 सेमी x 2.5 सेमी का चोट का निशान।

सभी चोटें साधारण प्रकृति की थीं और किसी कठोर वस्तु के कारण लगी थीं।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा क्षति रिपोर्ट का औपचारिक प्रमाण स्वीकार किया गया, जिस पर (प्रदर्श क7 और प्रदर्श क8) अंकित था।

8. मामले की जांच जांच अधिकारी पीडब्लू5 एसआई शिव शंकर तिवारी ने की। उन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण किया और सूचनाकर्ता प्रेम नारायण की निशानदेही पर साइट प्लान (प्रदर्श क3) तैयार किया। उन्होंने 03.07.1990 को आरोपियों को गिरफ्तार किया और उनसे पूछताछ की। उन्होंने गवाहों के बयान भी दर्ज किए और जांच पूरी होने के बाद अदालत में आरोप पत्र (प्रदर्श क4) पेश किया।

9. दिनांक 13.08.1993 को आरोपी अपीलकर्ता राम किशन और गोरे लाल के खिलाफ धारा 308 सपठित धारा 34, 323 सपठित धारा 34 और 427 सपठित धारा 34 भा0दं0सं0 के तहत आरोप तय किए गए। उन्होंने आरोपों से इनकार किया और सुनवाई की मांग की।

10. अभियोजन पक्ष ने सूचक घायल पी.डब्ल्यू.1 प्रेम नारायण, घायल पी.डब्ल्यू.2 जमुना प्रसाद, लिखित रिपोर्ट के लेखक और बस के मालिक पी.डब्ल्यू.3 सतीश कुमार जैन, प्रत्यक्षदर्शी और बस के कंडक्टर पी.डब्ल्यू.4 कैलाश नारायण को तथ्य के गवाह के रूप में परीक्षित किया, जबकि जांच अधिकारी पी.डब्ल्यू.5 एसआई शिवशंकर तिवारी, तत्कालीन कांस्टेबल क्लर्क पुलिस स्टेशन-महरौनी पी.डब्ल्यू.6 हेड कांस्टेबल करन सिंह को औपचारिक गवाह के रूप में परीक्षित किया गया।

11. 01.09.1995 को न्यायालय ने धारा 313 दं0प्र0सं0 के तहत अभियुक्तों राम किशन और गोरे लाल के बयान दर्ज किए। उन्होंने अभियोजन पक्ष के इस दावे से इनकार किया कि कथित तिथि, समय और घटना के स्थान पर, उन्होंने बस संख्या यू.टी.पी. 4113 को रोका, ड्राइवर प्रेम नारायण, कंडक्टर कैलाश और उसमें बैठे यात्री जमुना प्रसाद पर लाठी से हमला किया, जिससे उन्हें घातक चोटें आईं और बस पर पत्थर और लाठी फेंककर बस की 10-12 खिड़कियों के शीशे तोड़कर 15,000/- रुपए का नुकसान पहुंचाया। उन्होंने कहा कि

गवाह झूठी गवाही दे रहे हैं।

12. अभियुक्त-अपीलकर्तागण ने बचाव में कोई गवाह पेश नहीं किया।

13. अभियुक्त-अपीलकर्तागण की ओर से यह तर्क दिया गया है कि साक्ष्यों की उचित जांच किए बिना, ट्रायल कोर्ट ने अवैध रूप से उन्हें कथित अपराध के लिए दोषी ठहराया और उन्हें विवादित निर्णय और आदेश के तहत सजा सुनाई। यह भी तर्क दिया गया है कि दोषसिद्धि और सजा में कोई दम नहीं है। यह प्रार्थना की गई है कि उन्हें दी गई सजा को रद्द किया जाए।

14. इसके विपरीत, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया है कि मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर, आरोपी-अपीलकर्तागण, राम किशन उर्फ किशन लाल और गोरे लाल के खिलाफ आरोप सभी उचित संदेह से परे साबित हो गया है और ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्तागण को सही रूप से दोषी ठहराया और सजा सुनाई है।

15. अभियोजन पक्ष के अनुसार घटना दिनांक 26.06.1990 को सायं 4 बजे कुम्हैरी में घटित हुई। तिराहा रोड। घायल जमुना प्रसाद और प्रेम नारायण की चिकित्सा जांच 26.06.1990 को शाम 6.30 बजे और 6.50 बजे की गई थी। उनकी चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-7 और प्रदर्श क-8 से यह स्पष्ट है कि चिकित्सा अधिकारी की राय में, दोनों घायलों को लगी चोटें ताजा प्रकृति की थीं। अभियुक्तों ने घायल जमुना प्रसाद और प्रेम नारायण की चोट रिपोर्ट को स्वीकार किया है। इसलिए, यह अनुमान

लगाया जा सकता है कि घायल जमुना प्रसाद और प्रेम नारायण को कथित घटना के समय 26.06.1990 को शाम 4 बजे चोटें लगी होंगी।

16. पी.डब्लू-1 प्रेम नारायण, जो बस संख्या यू.टी.पी. 4113 का ड्राइवर था, ने दिनांक 18.07.1995 को अपने साक्ष्य में कहा है कि मार- पीट की घटना करीब पांच साल पहले शाम 4 बजे हुई थी। उस समय वह बस संख्या यू.टी.पी. 4113 का ड्राइवर था। वह बस को कुम्हैड़ी गांव से कारीटोरन तक चला रहा था। कैलाश बस का कंडक्टर था। वह दोपहर 3.20 बजे कुम्हैड़ी गांव से चला था। 4-5 किलोमीटर चलने के बाद जब वह छाजन पहुंचा। कुम्हैरी तिराहा पर उसकी मुलाकात न्यायालय में मौजूद अभियुक्त राम किशन व गोरे लाल से हुई। उन्होंने बस रुकवाई और अभियुक्तों से बस से बाहर आने को कहा। वे बस के आगे खड़े हो गए। अभियुक्त राम किशन व गोरे लाल के हाथ में लाठी थी। पीडब्लू-1 प्रेम नारायण ने बताया कि बस से उतरने के बाद वह पास की पुलिया पर बैठ गया। अभियुक्तों ने उसकी पीठ पर लाठी मार दी। उसे बचाने के लिए यात्री जमुना प्रसाद वहां आया। लाठी लगने से वह बेहोश हो गया। उस समय पास में ही परिचालक कैलाश व क्लीनर कोमल खड़े थे। जब उसे होश आया तो वह दूसरी बस से महरौनी वापस आया। उसने बस के मालिक सेठ सतीश जैन को घटना की जानकारी दी। उसने सेठ सतीश जैन को बताया था कि यात्रियों ने उसे बताया है कि राम किशन व गोरे लाल ने उसके साथ मारपीट की है। पीडब्लू-1 ने स्वीकार किया कि वह पढ़ा-लिखा है और उसने रिपोर्ट पढ़कर हस्ताक्षर कर दिए

पीडब्लू-1 लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 को प्रमाणित करता है।

17. अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह में पी.डब्ल्यू.-1 प्रेम नारायण ने बताया कि चोट लगने के बाद वह बेहोश हो गया तथा अभियुक्त राम किशन और गोरे लाल ने बस के शीशे तोड़ दिए। विंड शील्ड टूटने के कारण लगभग 8000/- से 9000/- रुपये की क्षति हुई। पी.डब्ल्यू.-1 ने जिरह में आगे बताया कि उसने जांच अधिकारी को बताया कि घटना से लगभग 4-5 दिन पूर्व अभियुक्त गोरे लाल और राम किशन ने उससे झगड़ा किया था जब उसने उनसे बस में यात्रा के लिए टिकट खरीदने के लिए कहा था। इसी रंजिश के कारण अभियुक्तों ने उसके साथ मारपीट की थी। पी.डब्ल्यू.-1 प्रेम नारायण ने जिरह में बताया कि वह नियमित रूप से बस को छाजन बस स्टॉप पर रोकता है। छाजन गांव के ग्रामीणों और बस चलाने वाले व्यक्तियों के बीच झगड़ा चल रहा था। उसने स्वीकार किया कि जब वह बस से उतरा तो बस के पास कोई भगदड़ नहीं थी और यात्री इधर-उधर नहीं भाग रहे थे। जब वह पुलिया पर बैठा था तो उसकी पीठ पर चोटें आईं। पी.डब्ल्यू.-1 ने स्वीकार किया कि सतीश कुमार जैन ने उसे लिखित रिपोर्ट दिखाई थी और उसे पढ़ने के बाद उसने पाया कि वह सही थी और इसलिए उसने उस पर हस्ताक्षर कर दिए।

18. यद्यपि पी.डब्ल्यू.-1 प्रेम नारायण ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख नहीं किया है कि अभियुक्तगण राम किशन व गोरे लाल ने उसे पीटा, परन्तु उसने यह कहा है

कि अभियुक्तगण ने उसे बस रोकने व बस से उतरने को कहा। उनके हाथ में लाठी थी। उसने यह भी कहा है कि जब वह पुलिया पर बैठा था, तो अभियुक्तगणों ने उसकी पीठ पर लाठी से हमला किया। पी.डब्ल्यू.-1 के बयान से यह स्पष्ट है कि वह जानबूझकर अभियुक्तगण का नाम बताने से बच रहा है, यद्यपि उसने अभियुक्तगण द्वारा उसकी पीठ पर लाठी से पीटने की बात स्वीकार की है। उसने यह स्वीकार किया है कि उसने लिखित रिपोर्ट पढ़ी है तथा उसे सही पाकर उस पर हस्ताक्षर किए हैं। इस प्रकार वह अभियोजन पक्ष के इस मामले का समर्थन करता है कि दिनांक 26.06.1990 को सायं 4 बजे कुम्हैड़ी में तिराहा पर आरोपियों ने बस को रोका। उनके हाथों में लाठी थी और उन्होंने पीडब्लू-1 की पीठ पर लाठी से प्रहार किया। पीडब्लू-1 ने यह भी स्वीकार किया है कि उसने लिखित रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए थे, जिसमें घटना की तारीख, समय, स्थान और आरोपी राम किशन और गोरे लाल की उसके साथ मारपीट करने और बस के शीशे को नुकसान पहुंचाने की घटना में भागीदारी का सही उल्लेख है।

19. लिखित रिपोर्ट के लेखक पी.डब्ल्यू.-3 सतीश कुमार जैन ने अपने साक्ष्य में कहा है कि महरौनी पहुंचने पर ड्राइवर प्रेम नारायण ने उसे बताया कि छाजन में झगड़ा हुआ है। तिराहा। उन्होंने लिखित रिपोर्ट में सभी तथ्यों का उल्लेख किया था जैसा कि ड्राइवर प्रेम नारायण ने बताया था। लिखित रिपोर्ट को प्रेम नारायण के सामने पढ़ा गया और सुनने के बाद उन्होंने उस पर हस्ताक्षर किए। लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) उनकी लिखावट में है और

उनके हस्ताक्षर उसमें लगे हुए हैं। पीडब्लू-3 सतीश कुमार जैन ने अपनी जिरह में कहा कि प्रेम नारायण ने उसे पीटने वाले आरोपियों के नाम बताए थे। पीडब्लू-3 ने जोर देकर कहा है कि लिखित रिपोर्ट प्रेम नारायण द्वारा बताए अनुसार लिखी गई थी। पीडब्लू -3 की जिरह में ऐसा कुछ नहीं मिला जिससे उसके बयान की सत्यता पर संदेह हो।

20. बस संख्या यू.टी.पी. 4113 के यात्री पीडब्लू-2 जमुना प्रसाद ने अपने साक्ष्य में बताया कि जब बस छाजन पहुंची तिराहा पर दो अभियुक्त गोरे लाल व राम किशन हाथों में लाठी लिए हुए वहां आए। पी.डब्ल्यू.-2 जमुना प्रसाद ने न्यायालय में उपस्थित अभियुक्त गोरे लाल व राम किशन को पहचाना। उसने बताया कि इन अभियुक्तों ने बस रुकवाई तथा प्रेम नारायण को बस से उतरने को कहा। जब प्रेम नारायण उतरकर पुलिया पर बैठा तो उन्होंने उसे लाठियों से पीटना शुरू कर दिया। पी.डब्ल्यू.-2 ने बताया कि जब उसने अभियुक्तों को प्रेम नारायण को पीटने से मना किया तो अभियुक्तों ने उस पर लाठियों से हमला कर दिया। एक लाठी उसके सिर पर व एक पीठ पर लगी। उस समय कैलाश व अन्य यात्री उन्हें बचाने के लिए वहां आ गए। अभियुक्तों ने बस के शीशे तोड़ दिए। पी.डब्ल्यू.-2 जमुना प्रसाद ने माना कि अभियुक्तों को पहले वह नहीं जानता था लेकिन घटना के समय उसे उनके नाम पता चले। यात्री अभियुक्तों के नाम बता रहे थे। उस समय वहां झांसी मदनपुर की कोई बस खड़ी नहीं थी। पी.डब्ल्यू.-2 जमुना प्रसाद की गवाही से यह स्पष्ट है कि जब वह प्रेम

नारायण को बचाने के लिए वहां पहुंचा तो आरोपियों ने उसे लाठी से पीटा। जमुना प्रसाद के सिर का एक्स-रे 27.06.1990 को जिला अस्पताल ललितपुर में कराया गया, लेकिन उसमें कोई फ्रैक्चर नहीं पाया गया तथा जमुना प्रसाद को लगी चोट सामान्य प्रकृति की थी। पी.डब्ल्यू. -2 ने अभियोजन पक्ष के इस कथन की पुष्टि की कि आरोपी राम किशन और गोरे लाल ने उसे पीटा तथा बस के शीशे तोड़ दिए।

21. बचाव पक्ष द्वारा पी.डब्ल्यू.-2 से की गई जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आया जिससे उसके बयान की सत्यता पर संदेह हो। उसकी जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं मिला कि वह दुश्मनी के कारण आरोपियों को झूठा फंसा रहा है।

22. बस के कंडक्टर पी.डब्ल्यू.-4 कैलाश ने पी.डब्ल्यू.-1 प्रेम नारायण और पी.डब्ल्यू.-2 जमुना के साक्ष्य की पुष्टि की है कि जब बस छाजन पहुंची थी। शाम 4 बजे पुलिया के पास तिराहा पर अभियुक्तगण राम किशन व गोरे लाल ने बस को रुकवाया तथा उनके हाथ में लाठी थी। उन्होंने चालक प्रेम नारायण को बस से उतारकर लाठी से पीटना शुरू कर दिया। जब जमुना प्रसाद चालक को बचाने के लिए वहां पहुंचे तो अभियुक्तगणों ने उन्हें भी लाठी से पीटा। साक्षी ने अपनी गवाही में कहा है कि घटना में जमुना प्रसाद व प्रेम नारायण को चोटें आई थी। प्रेम नारायण व जमुना प्रसाद की पिटाई करने के बाद अभियुक्तगणों ने बस के शीशे तोड़ दिए तथा घटना स्थल से भाग गए। पी.डब्ल्यू.-4 ने अपनी गवाही में कहा है कि लगभग 4-5 दिन पूर्व प्रेम नारायण व

अभियुक्तगणों के बीच झगड़ा हुआ था, क्योंकि अभियुक्तगण बिना टिकट लिए बस में यात्रा करना चाहते थे। पी.डब्ल्यू.-4 कैलाश ने स्वीकार किया कि उस समय धौरा सागर बदवारा मार्ग पर एक बस खड़ी थी, लेकिन छाजन के ग्रामीणों व बस के यात्रियों के बीच कोई झगड़ा नहीं चल रहा था। ये ग्रामीण बस में बैठे व्यक्तियों की पिटाई नहीं कर रहे थे। पी.डब्ल्यू.-4 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि किसी अन्य बस के कारण कोई दुर्घटना नहीं हुई तथा दुर्घटना में किसी बच्चे की मृत्यु नहीं हुई। पी.डब्ल्यू.-4 ने अपनी जिरह में कहा है कि प्रेम नारायण की पीठ पर लाठियों से वार किया गया था, लेकिन वह चोटों के कारण बेहोश नहीं हुआ। जमुना प्रसाद के हाथ पर चोट लगी थी। जमुना प्रसाद भी बेहोश नहीं हुआ।

23. पी.डब्ल्यू.-4 कैलाश की गवाही से पता चलता है कि घटना से 4-5 दिन पहले प्रेम नारायण और आरोपियों के बीच झगड़ा हुआ था क्योंकि वे बिना टिकट खरीदे बस से यात्रा करना चाहते थे। घटना के दिन आरोपियों ने बस रोकी और ड्राइवर प्रेम नारायण को बस से उतरने को कहा और उसे लाठी से पीटा और जब जमुना प्रसाद उसे बचाने के लिए पहुंचा तो उन्होंने उस पर भी लाठी से हमला कर दिया जिससे उसके सिर में चोट लग गई। पी.डब्ल्यू.-4 कैलाश की जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आया जिससे बयान की सत्यता पर संदेह हो। इस प्रकार, घायल पी.डब्ल्यू.-1 प्रेम नारायण और पी.डब्ल्यू.-2 जमुना प्रसाद और चश्मदीद पी.डब्ल्यू.-4 कैलाश की गवाही से अभियोजन पक्ष का मामला साबित होता है। पी.डब्ल्यू.-1 प्रेम नारायण, पी.डब्ल्यू.-2 जमुना

और पी.डब्ल्यू.-4 कैलाश के मौखिक साक्ष्य की पुष्टि दस्तावेजी साक्ष्य, लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-1), चिकित् स एफ.आई.आर. (प्रदर्श क-5), प्रेम नारायण और जमुना की चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-8 और प्रदर्श क-7), साइट प्लान (प्रदर्श क-3) और आरोप पत्र (प्रदर्श क-4) से होती है।

24. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि घटना के दिन व समय सागर मड़ावरा रोड पर बस दुर्घटना हुई थी, जिसमें छाजन गांव का एक बच्चा घायल हो गया था, अतः छाजन गांव के ग्रामीण उस बस के कंडक्टर व ड्राइवर को पीट रहे थे तथा उसी दौरान जब बस में प्रेम नारायण व जमुना प्रसाद आए तो ग्रामीणों ने उन्हें भी पीटना शुरू कर दिया। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों से समर्थित नहीं है। यह सही है कि पी.डब्ल्यू. प्रेम नारायण व कैलाश ने अपने साक्ष्य में उल्लेख किया है कि वहां से कुछ दूरी पर एक अन्य बस खड़ी थी, किन्तु उन्होंने इस बात से स्पष्ट रूप से इन्कार किया है कि ग्रामीण दूसरी बस के ड्राइवर व कंडक्टर को पीट रहे थे। बचाव पक्ष द्वारा पी.डब्ल्यू.-1 प्रेम नारायण व पी.डब्ल्यू.-4 कैलाश को यह सुझाव नहीं दिया गया कि प्रेम नारायण व जमुना प्रसाद को ग्रामीणों ने पीटा था। गवाहों के साक्ष्यों से स्पष्ट है कि बस के पास कोई भगदड़ नहीं हुई थी तथा यात्री इधर-उधर नहीं भाग रहे थे, यद्यपि मदनपुर की बस के व्यक्तियों व ग्रामीणों के मध्य झगड़ा चल रहा था। बचाव पक्ष ने जांच अधिकारी पीडब्ल्यू-5 शिव शंकर तिवारी को बताया कि घटना के दिन एक बच्चे को बस दुर्घटना के कारण चोट लगी थी। 26.06.1990 की जीडी

को देखने के बाद उन्होंने जवाब दिया कि उस दिन जीडी में किसी बस दुर्घटना में बच्चे को चोट लगने का कोई उल्लेख नहीं है। जांच अधिकारी ने इस बात से इनकार किया कि किसी बच्चे की बस दुर्घटना के संबंध में कोई रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

25. गवाहों, विशेष रूप से जांच अधिकारी, पी.डब्लू.-5, एसआई शिव शंकर तिवारी के साक्ष्य पर विचार करते हुए, बचाव पक्ष की ओर से प्रस्तुत इस तर्क में कोई बल नहीं है कि प्रेम नारायण और जमुना प्रसाद को ग्रामीणों के हमले के कारण चोटें आईं।

26. 313 दं0प्र0सं0 के अन्तर्गत अपने कथन में कहा है कि उसका पी.डब्लू.-4 कैलाश के साथ मुकदमा चल रहा था, अतः उसने उसके विरुद्ध मिथ्या साक्ष्य प्रस्तुत किया है, किन्तु पी.डब्लू.-4 की जिरह में अभियुक्त राम किशन के साथ मुकदमेबाजी के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं मिला है। इसके अतिरिक्त अभियुक्त राम किशन ने अपने उपरोक्त कथनों के समर्थन में कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है। इन तथ्यों एवं परिस्थितियों के अन्तर्गत उसकी दलील में कोई बल नहीं है, तथा यह स्वीकार्य नहीं है।

27. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने विभिन्न गवाहों के बयानों की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है तथा कहा है कि उनके बयानों में विरोधाभास है। उपर्युक्त कथनों के अवलोकन से यह पाया गया है कि गवाहों ने घटना की तिथि के पांच वर्ष से अधिक समय बाद बयान दिए हैं।

इसलिए गवाहों के बयानों में थोड़ा बहुत विरोधाभास स्वाभाविक है। इससे उनके साक्ष्य नष्ट नहीं होते।

28. लीला राम (मृत) द्वारा दुल चंद्र बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2000) एससीसी (सीआरएल) 222 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"...विभिन्न गवाहों के विवरणों के बीच कुछ विसंगतियां होना स्वाभाविक है, और जब तक विरोधाभास भौतिक आयाम के न हों, तब तक इसका उपयोग साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। संयोग से, आपराधिक मामलों में गणितीय बारीकियों के साथ साक्ष्य की पुष्टि की उम्मीद नहीं की जा सकती है। मामूली अलंकरण हो सकता है, लेकिन इसके कारण भिन्नताएं प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं बनाना चाहिए। मामूली विसंगतियों को अन्यथा स्वीकार्य साक्ष्य को नष्ट नहीं करना चाहिए ...

ऐसा कोई गवाह नहीं मिलता जिसके साक्ष्य में कुछ अतिशयोक्ति या अलंकरण न हो -- कभी-कभी जानबूझकर अलंकरण देने का प्रयास भी किया जा सकता है और कभी-कभी अपनी अतिशयता में वे थोड़ा अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण दे सकते हैं। न्यायालय अनाज से भूसा अलग कर सकता है और गवाहों की गवाही से

सच्चाई का पता लगा सकता है। साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करना अनावश्यक है। साक्ष्य को विश्वसनीयता के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए...."

इसी प्रकार का कानून सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कृष्णा मोची एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, (2002) एस.सी.सी. (सीआरएल) 1220 में प्रतिपादित किया गया है।

29. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आलोक में कानून के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलील मान्य नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

30. मामले के उपरोक्त साक्ष्य की चर्चा से न्यायालय का मत है कि दिनांक 26.06.1990 को सायं 4 बजे छाया में कुम्हेड़ी थाना महरौनी के तिराहा पर अपीलकर्ता अभियुक्त राम किशन और गोरे लाल ने बस संख्या यू.टी.पी. 4113 को रोका, चालक प्रेम नारायण को बस से उतरने को कहा और उसे लाठियों से पीटा और जब यात्री जमुना प्रसाद उसे बचाने के लिए वहां आया तो उन्होंने उसे भी लाठियों से पीटा। अभियुक्तों ने बस की विंडशील्ड तोड़ दी जिससे बस के मालिक को 50/- रुपये से अधिक का नुकसान हुआ। इस प्रकार अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता-अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 323/34 और 427/34 भा0दं0सं0 के तहत आरोप को उचित संदेह

से परे साबित कर दिया है। अभियुक्त राम किशन और गोरे लाल को ट्रायल कोर्ट द्वारा धारा 323/34 और 427/34 भा0दं0सं0 के तहत सही रूप से दोषी ठहराया गया है।

31. अपीलकर्ता-अभियुक्तों के विद्वान अधिवक्ता ने बारी-बारी से इस बात पर जोर दिया कि अपीलकर्ता-अभियुक्तों को परिवीक्षा का लाभ दिया जाए। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि घटना 32 वर्ष से अधिक पहले 26.06.1990 को हुई थी, इसलिए अपीलकर्ता लगभग 5 वर्ष से अधिक समय तक मुकदमे के खर्च और कठिनाइयों को झेल चुके हैं और वे 25 वर्ष से अधिक समय से लंबित आपराधिक अपील की पीड़ा और अनिश्चितता को झेल चुके हैं और इस मामले के अलावा अपीलकर्ता-अभियुक्तों के खिलाफ कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है, इसलिए उनके साथ नरमी बरती जानी चाहिए और उन्हें जेल भेजने के बजाय परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।

32. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पीडब्लू-5 एसआई शिव शंकर तिवारी के बयान से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता अभियुक्तों को 03.07.1990 को गिरफ्तार किया गया था और ट्रायल कोर्ट के रिकॉर्ड पर उपलब्ध जमानत बंध पत्र से यह स्पष्ट है कि उनके जमानत बंध पत्र 11.07.1990 को स्वीकार किए गए थे, इसलिए, जांच और परीक्षण के दौरान वे आठ दिनों तक हिरासत में रहे। बत्तीस साल से अधिक के अंतराल के बाद उन्हें फिर से जेल भेजना उचित नहीं होगा।

33. राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता ने तर्क दिया है कि घटना के दिन अपीलार्थी-अभियुक्तों को बिना टिकट बस में यात्रा न करने देने की रंजिश के कारण अपीलार्थी-अभियुक्तों ने बस रोककर ड्राइवर को बस से उतारकर लाठी से पीटा तथा जब प्रेम नारायण और यात्री जमुना प्रसाद ड्राइवर को बचाने वहां पहुंचे तो उन्होंने उसे भी पीटा तथा बस के विंड शील्ड को नुकसान पहुंचाया। उन्हें कड़ी सजा मिलनी चाहिए ताकि गैरकानूनी गतिविधियों में लिप्त लोगों को सबक मिल सके।

34. भारतीय विधायिका ने कोई सजा नीति नहीं दी है, हालांकि मलिमथ समिति (2003) और माधव मेनन समिति (2008) ने भारत में सजा नीति की आवश्यकता पर बल दिया है।

35. सजा देने का सिद्धांत कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चिंता का विषय रहा है और इस मुद्दे पर स्पष्टता प्रदान करने का प्रयास किया है। सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार उच्च न्यायालयों और ट्रायल कोर्ट द्वारा सजा सुनाने के तरीके को देखते हुए लापरवाही बरतने के खिलाफ चेतावनी दी है।

"... यह स्थापित है कि सजा देना एक सामाजिक-कानूनी प्रक्रिया है, जिसमें न्यायाधीश तथ्यात्मक परिस्थितियों और समानताओं पर विचार करते हुए अभियुक्त के लिए उचित सजा तय करता है। इस तथ्य के मद्देनजर कि विधायिका ने न्यायाधीशों को सजा देने के लिए विवेकाधिकार प्रदान किया है, इसे

सैद्धांतिक तरीके से लागू करना महत्वपूर्ण हो जाता है।" (अभियुक्त 'एक्स' बनाम महाराष्ट्र राज्य (2019) 7 एससीसी 1 का पैरा 49)

"12. अपराधों के लिए सजा का विश्लेषण तीन परीक्षणों अर्थात् अपराध परीक्षण, अपराधी परीक्षण और तुलनात्मक आनुपातिकता परीक्षण की कसौटी पर किया जाना चाहिए। अपराध परीक्षण में नियोजन की सीमा, हथियार का चयन, अपराध का तरीका, निपटान का तरीका (यदि कोई हो), अभियुक्त की भूमिका, अपराध का असामाजिक या घृणित चरित्र, पीड़ित की स्थिति जैसे कारक शामिल हैं। आपराधिक परीक्षण में अपराधी की आयु, अपराधी का लिंग, अपराधी की आर्थिक स्थिति या सामाजिक पृष्ठभूमि, अपराध के लिए प्रेरणा, बचाव की उपलब्धता, मन की स्थिति, मृतक या मृतक समूह में से किसी एक द्वारा उकसाना, मुकदमे में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व, अपील प्रक्रिया में न्यायाधीश द्वारा असहमति, पश्चाताप, सुधार की संभावना, पिछला आपराधिक रिकॉर्ड (लंबित मामलों को न लेना) और कोई अन्य प्रासंगिक कारक (संपूर्ण सूची नहीं) जैसे कारकों का मूल्यांकन शामिल है।

13. इसके अतिरिक्त, हम यह भी ध्यान दे सकते हैं कि अपराध परीक्षण के तहत गंभीरता का पता लगाना आवश्यक है। अपराध की गंभीरता (i) पीड़ित की शारीरिक अखंडता; (ii) भौतिक सहायता

या सुविधा का नुकसान; (iii) अपमान की सीमा; और (iv) गोपनीयता भंग होने से पता लगाई जा सकती है।" (मध्य प्रदेश राज्य बनाम उधम और अन्य (2019) 10 एससीसी 300)"

36. यह भी उल्लेखनीय है कि "...जहां न्यूनतम सजा का प्रावधान है, वहां न्यायालय न्यूनतम सजा से कम सजा नहीं दे सकता।" (मध्य प्रदेश राज्य बनाम विक्रम दास (2019) 4 एससीसी 125 का पैरा 8)

37. धारा 357 दं0प्र0सं0 न्यायालय को पीड़ित को मुआवजा देने की शक्ति प्रदान करती है, जो अन्य सजाओं के अतिरिक्त है न कि सहायक। उचित और न्यायसंगत मुआवजा देते समय न्यायालय को आरोपी की ऐसी भुगतान क्षमता के साथ-साथ चिकित्सा व्यय, आय की हानि, दर्द और पीड़ा आदि जैसे प्रासंगिक कारकों पर भी विचार करना चाहिए।

38. मनोहर सिंह बनाम राजस्थान राज्य और अन्य: (2015) 3 एससीसी 449 में दं0प्र0सं0 की धारा 357 के तहत मुआवजा देने की शक्ति के उचित प्रयोग की आवश्यकता को दोहराया है और पैरा 11, 31 और 54 में कहा गया है कि:

"11....पीड़ित के लिए उचित मुआवजा चिकित्सा और अन्य व्यय, दर्द और पीड़ा, आय की हानि और अन्य प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए तय किया जाना चाहिए। जहां अभियुक्त को सजा देना एक पहलू है, वहीं पीड़ित को उचित

मुआवजा देना दूसरा पहलू है। कई बार इस संबंध में साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में कुछ अनुमान लगाना अपरिहार्य है। धारा 357 और 357-ए के तहत मुआवजा देय है। जबकि धारा 357 के तहत अभियुक्त की वित्तीय क्षमता को ध्यान में रखना होगा, वहीं धारा 357-ए जिसके तहत मुआवजा राज्य के कोष से आता है, को उचित मुआवजे की आवश्यकता को पूरा करने के लिए लागू किया जाना चाहिए।"

"31. इस न्यायालय ने कहा कि मुआवजे की राशि प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति, दावे की न्यायसंगतता और अभियुक्त की भुगतान करने की क्षमता के आधार पर न्यायालयों द्वारा निर्धारित की जानी थी।"

"54. उपरोक्त मामलों से उभरने वाले परीक्षणों को धारा 357 पर लागू करने पर, हमें ऐसा लगता है कि यह प्रावधान न्यायालयों को प्रत्येक आपराधिक मामले में मुआवजा देने के प्रश्न पर विचार करने की शक्ति के साथ-साथ कर्तव्य भी प्रदान करता है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि जिस पृष्ठभूमि और संदर्भ में इसे पेश किया गया था, उसमें मुआवजा देने की शक्ति का उद्देश्य पीड़ित को यह आश्वस्त करना था कि उसे आपराधिक न्याय प्रणाली में भुलाया नहीं गया है। पीड़ित को आपराधिक न्याय प्रणाली में भुला दिया जाएगा

यदि विधायिका ने पीड़ित मुआवज़े से संबंधित विशिष्ट प्रावधानों को अधिनियमित करने के बावजूद, न्यायालय प्रावधानों को पूरी तरह से अनदेखा करना चुनते हैं और मुआवज़े के प्रश्न पर भी अपना विचार नहीं लगाते हैं। इसका अर्थ यह है कि जब तक धारा 357 को मुआवज़े के प्रश्न पर न्यायालयों को अपना विचार लगाने का दायित्व प्रदान करने के लिए नहीं पढ़ा जाता है, तब तक यह प्रावधान की शुरुआत के पीछे के उद्देश्य को ही विफल कर देगा।"

39. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 इस प्रकार है:

"4. न्यायालय की कुछ अपराधियों को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ने की शक्ति।-(1) जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उसकी राय है कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है, उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ना समीचीन है, तब न्यायालय, उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, उसे किसी दंड की तत्काल सजा देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे

जमानतदारों सहित या रहित, ऐसी अवधि के दौरान, जो न्यायालय निर्देशित करे, बुलाए जाने पर उपस्थित होने और दंड प्राप्त करने के लिए, और इस बीच शांति बनाए रखने और अच्छे आचरण का पालन करने के लिए बांड पर रिहा कर दिया जाए:

परन्तु न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसके प्रतिभू, यदि कोई हो, का उस स्थान पर निश्चित निवास स्थान या नियमित व्यवसाय है जिस पर न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करता है या जहां अपराधी उस अवधि के दौरान रहने की संभावना रखता है जिसके लिए वह बंधपत्र देता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश देने से पूर्व न्यायालय मामले के संबंध में संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

(3) जब उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश दिया जाता है, तब न्यायालय, यदि उसकी यह राय है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है, तो इसके अतिरिक्त पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकेगा जिसमें यह निर्देश दिया जाएगा कि अपराधी, आदेश में निर्दिष्ट अवधि के

दौरान, जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में रहेगा और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकेगा जो वह अपराधी के सम्यक् पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझे।

(4) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी से, उसके छोड़े जाने के पूर्व, प्रतिभुओं सहित या रहित, बंधपत्र में प्रवेश करने की अपेक्षा करेगा, कि वह ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों का पालन करेगा और निवास, मादक द्रव्यों से परहेज या किसी अन्य मामले के संबंध में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन करेगा, जिन्हें न्यायालय, विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के कारित होने से रोकने के लिए अधिरोपित करना ठीक समझे।

(5) उपधारा (3) के अधीन पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश की शर्तों और निबंधनों को स्पष्ट करेगा तथा पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति प्रत्येक अपराधी, प्रतिभू, यदि कोई हो, तथा संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तत्काल उपलब्ध कराएगा।

40. दंड प्रक्रिया संहिता में भी ऐसा ही प्रावधान है। धारा 360 दं०प्र०सं० में प्रावधान है:

360. अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर या चेतावनी के बाद छोड़ने का आदेश।

(1) जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का नहीं है, किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है जो केवल जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम की अवधि के कारावास से दंडनीय है, या जब कोई व्यक्ति जो इक्कीस वर्ष से कम आयु का है या कोई महिला किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध की जाती है जो मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, यदि उस न्यायालय को, जिसके समक्ष उसे दोषसिद्ध किया जाता है, अपराधी की आयु, चरित्र या पूर्ववृत्त को, और उन परिस्थितियों को, जिनमें अपराध किया गया था, ध्यान में रखते हुए प्रतीत होता है कि अपराधी को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर छोड़ा जाना समीचीन है, तो न्यायालय उसे तुरन्त कोई दंड देने के बजाय निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभुओं सहित या रहित बंधपत्र पर रिहा कर दिया जाए, कि वह ऐसी अवधि के दौरान (तीन वर्ष से अधिक नहीं) जैसा कि न्यायालय निर्देश दे, बुलाए जाने पर उपस्थित हो और दंडादेश प्राप्त करे और इस बीच शांति बनाए रखे तथा अच्छा आचरण करे:

परन्तु जहां किसी प्रथम अपराधी को द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा दोषसिद्ध किया जाता है, जो उच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से सशक्त नहीं है, और मजिस्ट्रेट की यह राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त

शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, वहां वह उस आशय की अपनी राय अभिलिखित करेगा, और कार्यवाही को प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करेगा, तथा अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा, या उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए जमानत लेगा, जो उपधारा (2) द्वारा उपबंधित रीति से मामले का निस्तारण करेगा।

(2) जहां कार्यवाही उपधारा (1) के उपबंध के अनुसार प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, वहां ऐसा मजिस्ट्रेट उस पर ऐसा दंडादेश पारित कर सकता है या ऐसा आदेश दे सकता है जैसा वह पारित कर सकता था या दे सकता था, यदि मामले की मूलतः उसके द्वारा सुनवाई की गई होती और यदि वह किसी बिंदु पर आगे जांच या अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक समझता है तो वह स्वयं ऐसी जांच कर सकता है या ऐसा साक्ष्य ले सकता है या ऐसी जांच या साक्ष्य किए जाने या लिए जाने का निर्देश दे सकता है।

(3) किसी ऐसे मामले में जिसमें किसी व्यक्ति को चोरी, भवन में चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोजन या धोखाधड़ी या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन किसी अपराध के लिए, जो दो वर्ष से अधिक कारावास से दंडनीय नहीं है

या केवल जुर्माने से दंडनीय किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, तो वह न्यायालय जिसके समक्ष उसे इस प्रकार दोषसिद्ध किया गया है, यदि वह अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति को और अपराध की तुच्छ प्रकृति को या अपराध को अंजाम देने वाली किन्हीं उपशमनकारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ठीक समझे, उसे कोई दंड देने के बजाय, उसे सम्यक चेतावनी के बाद रिहा कर सकता है।

(4) इस धारा के अधीन कोई आदेश किसी अपील न्यायालय या उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय किया जा सकेगा।

(5) जब किसी अपराधी के संबंध में इस धारा के अधीन कोई आदेश दिया गया है, तब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, अपील पर, जब ऐसे न्यायालय में अपील का अधिकार है, या अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय, ऐसे आदेश को अपास्त कर सकेगा और उसके बदले में ऐसे अपराधी पर विधि के अनुसार दंडादेश पारित कर सकेगा: परंतु उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय इस उपधारा के अधीन उससे अधिक दंड नहीं देगा,

जो उस न्यायालय द्वारा दिया जा सकता था, जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया था।

(6) धारा 121, 124 और 373 के उपबंध, जहां तक हो सके, इस धारा के उपबंधों के अनुसरण में प्रस्तुत किए गए जमानतों के मामले में लागू होंगे।

(7) न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन अपराधी को छोड़ने का निर्देश देने से पूर्व, यह समाधान कर लेगा कि अपराधी या उसके प्रतिभू (यदि कोई हो) का उस स्थान पर, जिसके लिए न्यायालय कार्य करता है या जिसमें अपराधी के शर्तों के पालन के लिए नामित अवधि के दौरान रहने की संभावना है, निश्चित निवास स्थान या नियमित व्यवसाय है।

(8) यदि वह न्यायालय, जिसने अपराधी को दोषसिद्ध किया है, या वह न्यायालय, जो अपराधी के साथ उसके मूल अपराध के संबंध में व्यवहार कर सकता था, यह समाधान हो जाता है कि अपराधी अपनी पहचान की किसी शर्त का पालन करने में असफल रहा है, तो वह उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर सकता है।

(9) जब कोई अपराधी ऐसे किसी वारंट पर पकड़ा जाता है तो उसे

तुरन्त वारंट जारी करने वाले न्यायालय के समक्ष लाया जाएगा और ऐसा न्यायालय या तो मामले की सुनवाई होने तक उसे हिरासत में भेज सकता है या उसे दंड के लिए उपस्थित होने की शर्त पर पर्याप्त प्रतिभू के साथ जमानत दे सकता है और ऐसा न्यायालय मामले की सुनवाई के पश्चात दंडादेश पारित कर सकता है।

(10) इस धारा की कोई बात अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20) या बालक अधिनियम, 1960 (1960 का 60) या युवा अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून के उपबंधों पर प्रभाव नहीं डालेगी।

41. ये वैधानिक प्रावधान बहुत ही जोरदार तरीके से सजा के सुधारात्मक और सुधारात्मक उद्देश्य को निर्धारित करते हैं और ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ अपीलिय अदालतों को कानून के तहत उचित मामलों में परिवीक्षा का लाभ देने के लिए बाध्य करते हैं। दुर्भाग्य से, कानून की इस शाखा का न्यायालयों द्वारा बहुत अधिक उपयोग नहीं किया गया है। यह हमारे न्याय प्रशासन की प्रणाली में अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाता है, जहां अक्सर लंबे समय के बाद सुनवाई पूरी होती है और जब तक निर्णय अंतिम रूप लेता है, तब तक सजा देने का उद्देश्य ही अपनी प्रभावशीलता खो देता है क्योंकि समय बीतने के साथ दंडात्मक और

सामाजिक प्राथमिकताएं बदल जाती हैं और कारावास की सजा देने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है, खासकर तब जब शामिल अपराध गंभीर न हो और अभियुक्त व्यक्तियों का कोई आपराधिक इतिहास न हो। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और इसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसलिए, प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से वह किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे।

42. सुभाष चन्द एवं अन्य बनाम उ०प्र० राज्य 2015 लॉसूट (इलाहाबाद) 1343 के मामले में इस न्यायालय ने परिवीक्षा कानून को लागू करने और उचित मामलों में अभियुक्त व्यक्तियों को लाभकारी कानून का लाभ देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस न्यायालय ने सभी ट्रायल कोर्ट और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लाभकारी कानून की अनदेखी की गई है और यहां तक कि न्यायाधीश भी कानून के इस प्रावधान को लगभग भूल चुके हैं। इसलिए, मामले से अलग होने से पहले, इस न्यायालय को लगता है कि यदि ट्रायल कोर्ट और अपीलीय न्यायालयों के

लिए चेतावनी का एक शब्द नहीं लिखा गया तो मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल हो जाऊंगा। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को प्रसारित करें, जो बदले में अपने अधीन काम करने वाले सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच इस आदेश की प्रति का प्रसार सुनिश्चित करेंगे और इस निर्णय का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। राज्य के जिला न्यायाधीशों को भी निर्देश दिया जाता है कि वे ऐसे मामलों से निपटने वाले सभी न्यायालयों, यानी ट्रायल कोर्ट और अपीलीय न्यायालयों से हर महीने रिपोर्ट मांगें और बताएं कि कितने मामलों में अभियुक्तों को उपरोक्त प्रावधानों का लाभ दिया गया है। जिला न्यायाधीशों को प्रत्येक मासिक बैठक में व्यक्तिगत रूप से ऐसे मामलों की निगरानी करने का भी निर्देश दिया जाता है। संबंधित जिला न्यायाधीश रजिस्ट्रार जनरल को मासिक विवरण भेजेंगे कि कितने मामलों में ट्रायल कोर्ट/अपीलीय न्यायालय ने उपरोक्त का लाभ दिया है। अभियुक्तों के लिए लाभकारी कानून बनाने के लिए इस आदेश की एक प्रति तत्काल अनुपालन के लिए रजिस्ट्रार जनरल के समक्ष रखी जाए।"

43. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अतिरिक्त, यह न्यायालय यह पाता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद एवं**

अन्य (2004) 7 एससीसी 659 के मामले में अभियुक्तों को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ देते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"आरोपी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि घटना वर्ष 1990 की है। पक्षकार शिक्षित और पड़ोसी हैं। इसलिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। दुर्घटना दस वर्ष से अधिक पुरानी है। पड़ोसियों के बीच जल निकासी के दावे के एक तुच्छ मुद्दे पर विवाद था। दुर्घटना गुस्से में हुई। सभी पक्ष शिक्षित और दूर के रिश्तेदार भी हैं। घटना ऐसी नहीं है कि अभियुक्त को कारावास की सजा भुगतनी पड़े। हमारी राय में, यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें अभियुक्त को अच्छे आचरण के लिए एक वर्ष का बांड निष्पादित करने का निर्देश देकर परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।"

44. इसी प्रकार, **जगत पाल सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2000 एससी 3622** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 323, 452, 506 भा0दं0सं0 के तहत आरोपी व्यक्तियों की सजा को बरकरार रखते हुए परिवीक्षा का लाभ दिया है और छह महीने की अवधि के लिए अच्छे आचरण और शांति

बनाए रखने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष बांड निष्पादित करने पर आरोपी व्यक्तियों को रिहा कर दिया है।

45. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मुझे ट्रायल कोर्ट के विवादित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या अनुचितता या कोई अधिकार क्षेत्र संबंधी त्रुटि नहीं दिखती। धारा 323/34 और 427/34 भा0दं0सं0 के तहत निचली अदालत द्वारा दर्ज की गई सजा को बरकरार रखा जाता है और इसमें बदलाव की आवश्यकता नहीं है।

46. वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए तथा ऊपर वर्णित विधि की स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा यह देखते हुए कि घटना लगभग 32 वर्ष पूर्व घटित हुई थी; घटना क्षणिक आवेश में घटित हुई थी; तथा अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 एवं 5 के उपबंधों पर विचार करते हुए यह न्यायोचित प्रतीत होता है कि अपीलार्थी अभियुक्त राम किशन एवं गोरे लाल को अधिनियम की धारा 4(1) के अंतर्गत 20,000/- रुपए (बीस हजार रुपए) के निजी बंधपत्र एवं समान राशि के दो-दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर एक वर्ष की अवधि के लिए परिवीक्षा पर छोड़ा जाए। इस अवधि के दौरान वे अच्छा आचरण बनाए रखेंगे एवं शांति बनाए रखेंगे तथा इस शर्त का उल्लंघन करने पर वे दण्ड प्राप्त करने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे। यह भी न्यायोचित प्रतीत होता है कि अधिनियम की धारा 5(1)(ए) के अंतर्गत प्रत्येक अपीलकर्ता को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने

की तिथि से एक माह की अवधि के भीतर लागत एवं प्रतिकर के रूप में 4000/- रुपए जमा करने का निर्देश दिया जाता है, जिसमें से 20,000/- रुपए प्रत्येक को प्रतिकर के रूप में दिए जाएंगे। प्रत्येक घायल, अर्थात् प्रेम नारायण और जमुना प्रसाद को 2000/- रुपये का भुगतान किया जाएगा और बस के मालिक पीडब्लू-3 सतीश कुमार जैन को 2000/- रुपये का भुगतान किया जाएगा। इन घायलों की मृत्यु होने की स्थिति में, उनके कानूनी प्रतिनिधि मुआवजे के अपने हिस्से को प्राप्त करने के हकदार होंगे।

47. उपर्युक्त संशोधन के साथ, आपराधिक अपील तदनुसार निस्तारित की जाती है।

48. इस आदेश की प्रमाणित प्रति अभिलेख सहित अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को प्रेषित की जाए। यदि अपीलार्थी अभियुक्तगण द्वारा परिवीक्षा बंधपत्र दाखिल नहीं किया जाता है तथा क्षतिपूर्ति राशि जमा नहीं की जाती है तो उन्हें विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा भुगतनी होगी।

(2023) 4 ILRA 1044

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

आपराधिक अपील संख्या 1918/2019

सुरेश त्रिवेदी

...अपीलकर्ता

बनाम

भारत संघ

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री पाल सिंह यादव, श्री चन्द्र शेखर पांडे, श्री प्रथम सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री दिग्विजय नाथ दुबे

आपराधिक कानून- स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 -धारा 8 (सी), 20 (बी) (ii) (सी) और 25 -भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 21 -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 313 -कठोर कारावास-दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील -विचारणीय मुद्दा- अपीलकर्ता को वाद के दौरान कानूनी सहायता उपलब्ध नहीं कराई गई, कार्यवाही अपीलकर्ता के वकील की अनुपस्थिति में की गई, उसका पैरोकार पैरवी छोड़ गया- पीडब्लू 3 की जांच सह-अभियुक्त के न्यायमित्र द्वारा दिनांक 23.1.2019 को की गई - दिनांक 23.1.2019 को सह-अभियुक्त का प्रतिनिधित्व एमिकस क्यूरी के माध्यम से किया गया- आदेश पत्र से पता चलता है कि अपीलकर्ता के वाद का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई वकील नहीं था, पीडब्लू 3 की कार्यवाही एडीजीसी के मौखिक बयान पर बंद कर दी गई - अपीलकर्ता 18.08.2014 से जेल में है -अपीलकर्ता ने निष्पक्ष सुनवाई के बिना जेल में न्यूनतम सजा काट ली है - उसे न्यायमित्र प्रदान नहीं किया गया पीडब्लू 3 की गवाही के दौरान खुद का बचाव करने के लिए क्यूरी, सीआरपीसी की धारा 313 के तहत कार्यवाही, इस प्रकार मुकदमा घातक है, अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है - दिनांक 04.07.2019 को धारा 25 के तहत दूसरी बार आरोप तय किए गए जो सिद्ध नहीं हुए, कोई सबूत नहीं पेश किया गया और एक दिन बाद अर्थात् 05.07.2019 को फैसला सुनाया गया, वाद दोषपूर्ण प्रतीत होता है - पीडब्लू 1, पीडब्लू 2 और पीडब्लू 3 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया - एनडीपीएस अधिनियम की धारा 42, 50 का अनुपालन

किया गया है - दोषसिद्धि की पुष्टि की गई।
(पैरा 11, 21, 25, 26, 28, 29,30)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 लाइव लॉ (एससी) 843
2. अज़ीमुल हसन बनाम भारत संघ एयरऑनलाइन 2022 ऑल 3821
3. श्रीधाम अधिकारी बनाम भारत संघ एयरऑनलाइन 2021 ऑल 6814
4. मनोज कुमार सोनी बनाम भारत संघ AIROnline 2020 ऑल 2434
5. चन्द्र शेखर प्रसाद साह बनाम भारत संघ एयरऑनलाइन 2022 ऑल 1484
6. राजेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य लखनऊ व अन्य 2017 (6) एएलजे 482; (2017) 6 ऑल डब्ल्यूसी 6151
7. फुमन सिंह बनाम भारत संघ एआईआरऑनलाइन 2022 ऑल 3819
8. मुकेश कुमार बनाम भारत संघ एआईआरऑनलाइन 2022 ऑल 3820
9. राज कुमार सविता बनाम भारत संघ 2021 (3) एएलजे 748; एआईआरऑनलाइन 2021 ऑल 522

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. यह आपराधिक अपील धारा 374(2) द०प्र०स० के तहत छोटे अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश/भ्रष्टाचार निवारण

अधिनियम (यू.पी.एस.ई.बी.) द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 05.07.2019 के विरुद्ध दायर की गई है। आपराधिक मामला संख्या-38 वर्ष 2015, मामला अपराध संख्या-29 वर्ष 2014, नारकोटिक ड्रग्स एंड साइकोट्रोपिक सब्सटेंस एक्ट, 1985 (संक्षेप में 'एन.डी.पी.एस. अधिनियम') की धारा 8 (सी)/20 (बी)(ii)(सी) के तहत लखनऊ जिसमें अपीलकर्ता को 15 साल के कठोर कारावास और 1,50,000 रुपये का जुर्माना और जुर्माना और जुर्माना अदा न करने पर छह माह का अतिरिक्त साधारण कारावास का दोषी ठहराया और सजा सुनाई; और धारा 25 एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत, थाना-डी.आर.आई., लखनऊ में 10 वर्ष का साधारण कारावास और 1,00,000/- रुपये का जुर्माना और जुर्माना अदा न करने पर चार माह का अतिरिक्त साधारण कारावास के सजा सुनाई गई। दोनों सजाएं साथ-साथ चलने का और जेल में बिताई गई कारावास की अवधि को समायोजित करने का निर्देश दिया गया था।

2. अभियोजन मामले के अनुसार, शिकायतकर्ता ने कहा है कि उसे 17.08.2014 को सूचना मिली कि एक सफेद स्विफ्ट डिजायर कार जिसका संख्या-यूपी 78 बीडब्ल्यू 8210 है, का इस्तेमाल कार की पिछली सीट की गुहा में छिपाकर वाणिज्यिक मात्रा के प्रतिबंधित चरस की तस्करी के लिए किया जा रहा है। सूचना मिलने के बाद राजस्व आसूचना निदेशालय (संक्षेप में डी.आर.आई.) के अधिकारियों की एक टीम जिसमें श्री संजीव कटियार, धर्मेन्द्र कुमार, फहीम राजा और अजीत

कुमार शामिल थे, को आरोपियों को पकड़ने का काम सौंपा गया। एन.डी.पी.एस. एक्ट की धारा 42 का पालन किया गया और उसके बाद उक्त टीम सुबह 11:30 बजे फैजाबाद रोड पर शहीद पथ के लिए रवाना हुई। टीम गवाह पवन सिंह, राधे लाल को भी ले गई थी। वे उक्त स्विफ्ट कार के आने का इंतजार कर रहे थे और उन्होंने देखा कि उक्त कार उस स्थान पर आ रही थी जहां वे खड़े थे। उन्होंने कार को घेर लिया और एक व्यक्ति ने अपना परिचय कार के ड्राइवर के रूप में दिया। ड्राइविंग सीट पर बैठे शख्स ने बताया कि उसका नाम सुरेश त्रिवेदी और दूसरे शख्स ने बताया कि उसका नाम लक्ष्मण शर्मा बताया गया। इसके बाद डी.आर.आई. के उच्चाधिकारियों को सूचना दी गई। कार चालक ने कार में किसी भी तरह की प्रतिबंधित चरस से इनकार किया और जब कुछ दबाव डाला गया तो उसने बताया कि कार की पिछली सीट में एक कैविटी है जिसमें चरस छुपाई गई है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 के अनुपालन में, सूचनाकर्ता संजीव कटियार ने सुरेश त्रिवेदी और लक्ष्मण शर्मा को नोटिस दिया था और उनसे पूछा गया था कि क्या वे राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी लेना चाहते हैं। दोनों अभियुक्तों ने अपने समक्ष कहा कि वे राजपत्रित अधिकारी से पूछताछ या तलाशी नहीं करवाना चाहते थे। दोनों आरोपियों को गोमती नगर स्थित डी.आर.आई. 2/31 विशाल खंड के कार्यालय लाया गया। कार की जांच की गई तो कार की पिछली सीट पर कैविटी पाई गई जिसमें पॉलीथिन कवर में चरस के 111 पैक मिले। चरस का कुल वजन 107 किलो था और बरामद चरस के लगभग

25-25 नमूने तैयार किए गए और उन्हें मौके पर सील कर दिया गया और यह पाया गया कि बरामद चरस का बाजार मूल्य 1,07,00,000 यानी (एक करोड़ सात लाख रुपये) था। सैंपल को सील कर दिया गया और सीलबंद लिफाफे पर हस्ताक्षर किए गए। वसूली जापन सूचना अधिकारी संजीव कटियार द्वारा 17.08.2014 को तैयार किया गया था और कार्यवाही वर्ष 17.08.2014 की रात 11 बजे समाप्त हुई। स्वतंत्र गवाह ने बरामद जापन पर अपने हस्ताक्षर भी किए। दोनों अभियुक्तों सुरेश चन्द्र त्रिवेदी और लक्ष्मण शर्मा का बयान दिनांक 18.08.2014 को दर्ज किया गया था और एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 43 का पालन करते हुए उन्हें गिरफ्तार किया गया था और दिनांक 18.08.2014 को न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था। इसके बाद, उन्हें न्यायिक आदेश द्वारा जेल भेज दिया गया। सैंपल विधि विज्ञान प्रयोगशाला जांच के लिए दिल्ली भेजा गया था। दिनांक 08.10.2014 और 24.09.2014 की विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट दर्शाती है कि नमूने चरस के थे। पर्याप्त सबूत मिलने के बाद, दोनों आरोपी लक्ष्मण शर्मा और प्रस्तुत अपीलकर्ता पर धारा 8 (सी)/20 (बी)(ii)(सी) / 25 एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 के तहत मामला दर्ज किया गया और थाना- डी.आर.आई., लखनऊ में मामला दर्ज किया गया।

3. विवेचनाधिकारी ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 8 (सी)/20(बी) (ii)(सी)/25 के तहत शिकायत दर्ज की और शिकायत के आधार पर प्रतिबंधित चरस, नमूने, नक्शा नज़री, आरोपी का बयान और

मेडिकल रिपोर्ट और विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट बरामद की, अदालत ने 27.05.2016 को दोनों आरोपियों के खिलाफ उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप विरचित किए। आरोपी अपीलकर्ता ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमे के लिए अनुरोध किया।

4. अभियोजन पक्ष ने अंसा०-1 संजीव कटियार, डी.आर.आई. के सूचना अधिकारी; अंसा०-2 धर्मेन्द्र कुमार; अंसा०-3 अभिषेक चटर्जी। प्रदर्श क-1 से प्रदर्श क-32 तक के कुछ सबूतों का भी परीक्षण किया गया।

5. अपीलकर्ता और सह-आरोपी लक्ष्मण शर्मा का धारा 313 दंप्र०सं० के तहत सामना किया गया और उन्होंने अदालत के समक्ष गवाही दी कि उन्हें झूठा फंसाया गया है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुलिस ने अपीलकर्ता और अन्य सह-आरोपियों को उनके घर से गिरफ्तार किया था और उन्हें झूठी वसूली दिखाकर गलत फंसाया गया था।

6. दिनांक 27.05.2016 को दलीलें सुनने के बाद, यह पाया गया कि आरोप तय किए गए थे और कुछ दोष था यानी एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1985 की धारा 8(सी)/20 (बी)(ii)(सी)/25 के तहत 04.07.2019 को फिर से आरोप क्यों तय किए गए और आरोप अलग से तय किए गए। आरोपी ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और आरोपों से भी इनकार किया। विशेष अभियोजन अधिकारी ने प्रस्तुत किया कि किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं थी और प्रस्तुत किया कि पहले पेश किए गए साक्ष्य पर विचार किया जा सकता है।

रिकॉर्ड पर साक्ष्य पेश करने के बाद, विचारण न्यायालय ने उपरोक्त धाराओं के तहत अपीलकर्ता को दोषी ठहराते हुए और सजा सुनाते हुए निर्णय पारित किया, इसलिए, आरोपी अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील दायर की गई है।

7. अंसा०-1, सूचना अधिकारी संजीव कटियार की अदालत के समक्ष जांच की गई और उन्होंने अदालत के समक्ष गवाही दी कि 17.08.2014 को डी.आर.आई. द्वारा उन्हें सुबह 10:30 बजे कार्यालय पहुंचने के लिए कहा गया था। वह सुबह 10:30 बजे कार्यालय पहुंचे जहां धर्मेन्द्र, फहीम राजा, अजीत कुमार मौजूद थे। उन्हें बताया गया कि सूचना मिली थी कि सफेद कार का इस्तेमाल प्रतिबंधित चरस की तस्करी के लिए किया गया था जो बाराबंकी से लखनऊ आ रही है और कानपुर जाएगी। लिखित सूचना पर टीम निजी वाहन से 11:30 बजे फैजाबाद रोड के लिए रवाना हुई। उन्होंने गोमती नगर के हुसरिया चौराहा से दो गवाह भी लिए और उस स्थान पर पहुंचने के बाद शाम 4 बजे इंतजार कर रहे थे, उन्होंने देखा कि फैजाबाद रोड से एक कार आ रही थी जो उनसे घिरी हुई थी। टीम के सदस्यों ने अपना परिचय दिया। ड्राइविंग सीट पर बैठे व्यक्ति ने अपना नाम सुरेश त्रिवेदी बताया और ड्राइवर के बगल में सह-आरोपी लक्ष्मण शर्मा बैठा था। सर्च टीम द्वारा उनसे पूछा गया कि वे कार में प्रतिबंधित चरस रखे हैं और उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया कि कार में उनके पास चरस है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 50 का अनुपालन किया गया। उन्होंने उनके समक्ष प्रस्तुत किया कि वे

किसी राजपत्रित अधिकारी के समक्ष तलाशी नहीं लेना चाहते थे और उन्हें सर्च टीम द्वारा खोजा जा सकता है। इसके बाद दोनों आरोपियों को डी.आर.आई., हाउस संख्या-2/31 विशाल खंड, गोमती नगर, लखनऊ के कार्यालय लाया गया। कार की पिछली सीट पर कैविटी मिली जिसमें पॉलिथीन में 111 पैक मिले। नमूने लिए गए और प्रथम दृष्टया पता चला कि यह चरस है। 25-25 ग्राम चरस के नमूने लिए गए और उन्हें पैक करके सील कर दिया गया। पूरे प्रतिबंधित चरस को चार बैग में सील कर दिया गया था और बैगों को सील कर दिया गया था, जिस पर सर्च टीम के हस्ताक्षर किए गए थे। दोनों आरोपियों ने बताया कि वे बाराबंकी होते हुए नेपाल बॉर्डर गए थे जहां रमेश ने चरस लोड की जिसे कानपुर पहुंचाना था। जैसे ही वे शहीद पथ की सड़क पर पहुंचने वाले थे, उन्हें सर्च टीम ने गिरफ्तार कर लिया। शिकायतकर्ता अ०सा०-1 ने अदालत के समक्ष आगे प्रस्तुत किया कि कार्यवाही वर्ष 17.08.2014 की रात 11:30 बजे तक चली। आरोपियों के बयान दर्ज कर मेमो तैयार किया गया। नमूने लिए गए और प्रतिबंधित चरस को भी सील कर दिया गया। चिकित्सकों द्वारा अभियुक्तों की जांच की गई और उसके बाद उन्हें रिमांड पर लिया गया। अ०सा०-2 धर्मेन्द्र कुमार, सूचना अधिकारी और अ०सा०-3 अभिषेक चटर्जी अ०सा०-1 के साथ खोज टीम के सदस्य थे। उन्होंने वही तथ्य बताए हैं जो अ०सा०-1 द्वारा अदालत के समक्ष बताए गए हैं और उन्होंने शिकायत में स्थापित अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है।

8. अ०सा०-3 ने मुख्य परीक्षण में स्वीकार किया है कि उन्हें दिनांक 25.08.2014 के आदेश द्वारा राज्य द्वारा विवेचनाधिकारी बनाया गया था और उन्हें शिकायत दर्ज करने के लिए भी अधिकृत किया गया था और तथ्य के सभी तीन गवाहों ने गवाही दी और अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने की कोशिश की।

9. जिरह में, अ०सा०-1 संजीव कटियार ने गवाही दी कि घटना अगस्त 2014 में हुई थी और वह तारीख याद रखने में असमर्थ था। उन्होंने गवाही दी कि उनका बयान घटना की तारीख से 3-4 महीने बाद दर्ज किया गया था। उन्होंने गवाही दी कि वह दो स्वतंत्र गवाहों के साथ इनोवा कार से उस स्थान पर पहुंचे, जिन्हें हुसरिया चौराहा में उठाया गया था। उन्होंने आगे कहा कि गवाहों के पास वाहन नहीं थे। उन्होंने आगे कहा कि गवाहों के पते सत्यापित नहीं किए गए थे। उन्होंने कहा कि शाम 4:40 बजे कार आ रही थी और चालक ने बिना किसी विरोध के उसे रोक दिया।

10. जिरह में, अ०सा०-3 अभिषेक चटर्जी ने गवाही दी कि वह विवेचनाधिकारी थे और आरोपी की गिरफ्तारी के समय उपस्थित नहीं थे। उन्होंने न तो फ़र्द बरामदगी पर हस्ताक्षर किए और न ही फ़र्द बरामदगी उनके सामने तैयार किया गया और बरामद चरस को भी उनके सामने सील नहीं किया गया। वह चरस का वजन करने में भी शामिल नहीं था। वह घटना की तारीख नहीं बता सके। उन्होंने आगे गवाही दी कि उन्होंने आरोपी का बयान

दर्ज नहीं किया है, बल्कि उन्होंने विभाग के अधिकारियों का बयान लिया था। उन्होंने आगे गवाही दी कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 67 के तहत, नोटिस भेजा गया था और लेकिन अधूरा पता होने के कारण वह वापस आ गया।

11. रिकॉर्ड के माध्यम से जाने के दौरान, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा एक बहुत व्यापक मुद्दा उठाया गया है कि अपीलकर्ता को मुकदमे के दौरान कानूनी सहायता प्रदान नहीं की गई थी और कई चरणों में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता की अनुपस्थिति में मुकदमे की कार्यवाही की गई थी। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता के पैरोकर ने पैरवी छोड़ दिया था और अभियोजन पक्ष ने 18.12.2018 को गवाह अ०सा०-3 का नेतृत्व किया और शेष मुख्य परीक्षण 23.1.2019 को पूरी हुई और उसी दिन, लक्ष्मण शर्मा की ओर से एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा जिरह की गई और अगली तारीख 29.01.2019 को तय की गई और अपीलकर्ता की जिरह की तारीख 11.02.2019 तय की गई। 11.02.2019 को अ०सा०-3 अदालत में मौजूद नहीं था और अभियोजन पक्ष के अधिवक्ता के बयान पर, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य 11.02.2019 को बंद कर दिए गए थे और आदेश पारित किया गया था कि "अभियोजन गवाह बंद; अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता को कोई अवसर दिए बिना, विचारण न्यायालय ने न तो कोई अधिवक्ता और न ही एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान किया और अ०सा०-3 के साथ प्रति परीक्षण के लिए आदेश पारित किया गया, इस प्रकार का विचारण घातक है।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 18.2.2019 को, अपीलकर्ता को कोई एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान किए बिना, धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किया गया था और उसके बाद आरोप में बदलाव के लिए 03.07.2019 को मामला तय किया गया था। दिनांक 03.07.2019 को, आरोपी व्यक्तियों को जिला जेल, लखनऊ से तलब नहीं किया गया था और आरोप में बदलाव के लिए अगली तारीख 04.07.2019 तय की गई थी और 04.07.2019 को आरोपों में बदलाव किया गया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता लंबे समय से जेल में बंद है, यही कारण है कि उसका जोड़ीकार खर्च की व्यवस्था नहीं कर सका और अ०सा०-2 के साक्ष्य के बाद अधिवक्ता को नियुक्त नहीं किया जा सका क्योंकि अपीलकर्ता का कोई अधिवक्ता उसकी ओर से पेश नहीं हुआ। ऐसी परिस्थितियों में, भारत के संविधान की धारा 39-ए के प्रावधान के साथ-साथ धारा 304 द०प्र०स० और कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 9 के तहत अपीलकर्ता को एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान करना वांछनीय था।

12. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया था कि इस मामले की सुनवाई इस न्यायालय के समक्ष की गई थी। इस न्यायालय ने दिनांक 27.01.2013 के आदेश के तहत अपीलकर्ता के अधिवक्ता को हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया जिसमें बताया गया कि किस स्तर पर, अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता के लिए उसके मामले का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई

अधिवक्ता नहीं था और हलफनामा दायर करने के लिए दस दिन का समय दिया गया था और प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता को भी हलफनामे का जवाब दाखिल करने का निर्देश दिया गया था।

13. इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुसरण में, दिनांक 28.01.2023 का पूरक हलफनामा दायर किया गया है और अपीलकर्ता ने पैरा-2, 3, 4, 5 और 6 में विशिष्ट कथन किया है जिसमें कुछ तारीखों का उल्लेख किया गया है और यह बताया गया है कि अपीलकर्ता को कोई अधिवक्ता/एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान नहीं किया गया था और कानूनी सहायता प्रदान किए बिना मुकदमे की कार्यवाही की गई थी। इसलिए, संपूर्ण विचारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निष्फल है।

14. डी.आर.आई. के अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के पूरक हलफनामे पर 16.02.2023 को अपना जवाब दाखिल किया है। डी.आर.आई. द्वारा दायर उक्त उत्तर को देखा जाना प्रासंगिक है और अपीलकर्ता के पूरक हलफनामे के पैरा-3, 4 और 5 का जवाब दिया गया है और डी.आर.आई. ने विशेष रूप से पूरक हलफनामे के कथन से इनकार नहीं किया है और कहीं भी डी.आर.आई. द्वारा यह जवाब नहीं दिया गया है कि अपीलकर्ता को अधिवक्ता या कानूनी सहायता प्रदान की गई थी। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने विभिन्न तारीखों की आदेश पुस्तिका भी संलग्न की है, जो इंगित करती है कि अभियुक्तों ने अपने हस्ताक्षर किए हैं और डी.आर.आई. के अधिवक्ता ने अपने हस्ताक्षर किए हैं, लेकिन अपीलकर्ता के लिए कोई अधिवक्ता नहीं है जो पेश हुआ हो। दिनांक 29.01.2019, 11.02.2019, 29.11.2018, 11.01.2019,

23.01.2019, 24.06.2019, 03.07.2019 की आदेश पुस्तिका इंगित करती है कि आरोपी अपीलकर्ता के किसी भी अधिवक्ता ने उसके मामले का प्रतिनिधित्व नहीं किया है।

15. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने रामानंद @ नंदलाल भारती बनाम भारत संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। उत्तर प्रदेश राज्य ने 2022 लाइव लॉ (एस.सी.) 843 में आपराधिक अपील संख्या-64-65 वर्ष 2022 दिनांक 13.10.2022 में रिपोर्ट किया।

"39क. समान न्याय और मुफ्त कानूनी सहायता। राज्य-यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र के प्रचालन से समान अवसर के आधार पर न्याय को बढ़ावा मिलता है और वह विशिष्टतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या अन्य निर्योग्यताओं के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

121. धारा 304 द०प्र०स० कुछ मामलों में राज्य के खर्च पर अभियुक्त को कानूनी सहायता को संदर्भित करती है जो इस प्रकार हैं:

"304. कुछ मामलों में राज्य के खर्च पर अभियुक्त को कानूनी सहायता

(1) जहां, सत्र न्यायालय के समक्ष विचारण में, अभियुक्त का प्रतिनिधित्व किसी

अभिकर्ता द्वारा नहीं किया जाता है, और जहां न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त के पास प्लीडर को नियुक्त करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं हैं, न्यायालय राज्य के खर्च पर अपने बचाव के लिए एक प्लीडर नियुक्त करेगा।

(2) उच्च न्यायालय, राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, निम्नलिखित का उपबंध करने वाला नियम बना सकेगा-

(क) उपधारा (1) के अधीन रक्षा के लिए अभिवेदनों के चयन की रीति;

(ख) न्यायालयों द्वारा ऐसे अभिवेदकों को किन्-किन् सुविधाओं की अनुमति दी जाएगी;

(ग) उपधारा (1) के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिये सरकार द्वारा और सामान्यतः ऐसे प्लीडरों को संदेय फीस।

(3) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि ऐसी तारीख से, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, उपधारा (1) और उपधारा (2) के उपबंध राज्य में अन्य न्यायालयों के समक्ष विचारणों के किसी वर्ग के संबंध में उसी प्रकार लागू होंगे जैसे वे सत्र न्यायालयों के समक्ष विचारणों के संबंध में लागू होते हैं।

122. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 9 के अधीन, जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों का गठन राज्य के प्रत्येक

जिले के लिए उक्त अधिनियम के अधीन जिला प्राधिकारी को प्रदत्त या समनुदेशित शक्तियों का प्रयोग करने और कृत्यों का पालन करने के लिए किया जाता है।

123. इस न्यायालय ने किशोर चंद बनाम भारत संघ के मामले में दिए गए निर्णय के पैरा-13 में कहा है। हिमाचल प्रदेश राज्य, (1991) 1 एस.सी.सी. 286, इस प्रकार अवधारित किया गया:

"13. हालांकि संविधान का अनुच्छेद 39A समान न्याय और मुफ्त कानूनी सहायता के मौलिक अधिकार प्रदान करता है और हालांकि राज्य गरीब अभियुक्त की रक्षा के लिए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान करता है, उसे असमान बचाव के साथ किया जाएगा, जैसा कि सामान्य ज्ञान है, बार के युवा को उसका बचाव करने के लिए सौंपा गया है, जिसे या तो थोड़ा अनुभव है या कोई अनुभव नहीं है। अब समय आ गया है कि संबंधित अदालत में प्रैक्टिस करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता स्वेच्छा से ऐसे गरीब अभियुक्तों का बचाव करें जो उनके पेशेवर कर्तव्य के एक भाग के रूप में हैं। यदि ये उपचारात्मक कदम उठाए जाते हैं और एक ईमानदार और वस्तुनिष्ठ जांच की जाती है, तो यह जांच एजेंसी में जनता के विश्वास की भावना को बढ़ाएगा।

124. यह न्यायालय, जाहिरा हबीबुल्लाह शेख (5) और अन्य बनाम भारत संघ के मामले में। (2006) 3 एस.सी.सी. 374 में रिपोर्ट किए गए गुजरात राज्य और

अन्य के मामले में पैराग्राफ 30, 35, 38 और 39 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है

"30. न्यायिक प्रणाली की स्थापना के समय से ही यह स्वीकार किया गया है कि सत्य की खोज, पुष्टि और स्थापना न्याय की अदालतों के अस्तित्व में अंतर्निहित मुख्य उद्देश्य हैं। निष्पक्ष सुनवाई के लिए ऑपरेटिव सिद्धांत नागरिक और आपराधिक दोनों संदर्भों में आम कानून में व्याप्त हैं। इन सिद्धांतों के आवेदन में एक आपराधिक मुकदमे में प्रतिस्पर्धी हितों का एक नाजुक न्यायिक संतुलन शामिल है: अभियुक्त और जनता के हितों और काफी हद तक पीड़ित को अपराध करने वाले व्यक्तियों के अभियोजन में शामिल सार्वजनिक हित की दृष्टि नहीं खोना चाहिए।

XXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXX

35. इस न्यायालय ने अक्सर इस बात पर जोर दिया है कि एक आपराधिक मामले में कार्यवाही का भाग्य हमेशा पूरी तरह से पक्षों के हाथों में नहीं छोड़ा जा सकता है, अपराध सार्वजनिक अधिकारों और कर्तव्यों के उल्लंघन में सार्वजनिक गलत है, जो पूरे समुदाय को एक समुदाय के रूप में प्रभावित करता है और सामान्य रूप से समाज के लिए हानिकारक है। निष्पक्ष विचारण की अवधारणा अभियुक्त, पीड़ित और समाज के हितों के परिचित त्रिभुज पर जोर देती

है और यह समुदाय है जो राज्य और अभियोजन एजेंसियों के माध्यम से कार्य करता है। समाज के हित को पूरी तरह से तिरस्कार के साथ और अवांछित व्यक्ति के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। अदालतों को हमेशा न्याय प्रशासन में जनता के विश्वास को बनाए रखने के लिए एक अधिभावी कर्तव्य माना जाता है, जिसे अक्सर "कानून की महिमा" को बनाए रखने और बढ़ाने के कर्तव्य के रूप में जाना जाता है। न्याय के उचित प्रशासन को हमेशा एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा गया है, जो विशेष मामले के निर्धारण तक ही सीमित नहीं है, भविष्य में कानून की अदालत के रूप में कार्य करने की इसकी क्षमता की रक्षा करता है जैसा कि इससे पहले के मामले में है। यदि एक आपराधिक न्यायालय को न्याय प्रदान करने में एक प्रभावी साधन होना है, तो पीठासीन न्यायाधीश को मुकदमे में भाग लेकर एक दर्शक और केवल रिकॉर्डिंग मशीन बनना बंद कर देना चाहिए, जो बुद्धिमत्ता, सक्रिय रुचि का प्रदर्शन करता है और सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आवश्यक सभी प्रासंगिक सामग्रियों को प्राप्त करता है, सच्चाई का पता लगाता है, और पक्षकारों और समुदाय दोनों के लिए न्यायप्रियता और निष्पक्षता के साथ न्याय करता है। आपराधिक न्याय का प्रशासन करने वाली अदालतें कार्यवाही के संबंध में होने वाले कष्टप्रद या दमनकारी आचरण के लिए आंखें नहीं मूंद सकती हैं, भले ही निष्पक्ष सुनवाई, निष्पक्ष और स्वतंत्र निर्णायकों

के रूप में न्यायाधीशों के निष्पक्ष नाम और स्थिति को कम करने के जोखिम को छोड़कर, अभी भी संभव हो।

XXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXXX

38. अभियुक्त या अभियोजन पक्ष को निष्पक्ष सुनवाई देने में विफलता कानून की उचित प्रक्रिया के न्यूनतम मानकों का भी उल्लंघन करती है। यह कानून की उचित प्रक्रिया की अवधारणा में निहित है, कि निंदा केवल उस मुकदमे के बाद की जानी चाहिए जिसमें सुनवाई वास्तविक है, न कि दिखावा या केवल दिखावा। चूंकि निष्पक्ष सुनवाई के लिए प्रक्रिया को संरक्षित करने के अवसर की आवश्यकता होती है, इसलिए इसे जल्दबाजी में प्रबंधित, अनुरूप और पक्षपातपूर्ण परीक्षण द्वारा दूषित और उल्लंघन किया जा सकता है।

39. एक आपराधिक कृत्य के लिए निष्पक्ष परीक्षण न केवल फ्रेम के तकनीकी पालन, और कानून के रूपों में शामिल है, बल्कि सच्चाई का पता लगाने और न्याय की हानि को रोकने के लिए अपने सिद्धांतों की मान्यता और सिर्फ आवेदन में भी शामिल है।

16. हालांकि, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा महत्वपूर्ण मुद्दा उठाया गया है कि अभियोजन पक्ष ने 18.12.2018 को गवाह अ०सा०-3 का नेतृत्व किया और उसके बाद शेष मुख्य परीक्षण 23.01.2019 को पूरी हुई और उसी

तारीख को, लक्ष्मण की जिरह एमिक्स क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा अवधारित की गई थी और अगली तारीख 29.01.2019 तय की गई थी और उसके बाद अपीलकर्ता द्वारा जिरह की अगली तारीख 11.02.2019 को तय की गई थी, लेकिन अ०सा०-3 19 में उपस्थित नहीं था। अदालत और अभियोजन पक्ष के अधिवक्ता की प्रस्तुति पर, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को 11.2.2019 को बंद कर दिया गया था और आदेश पारित किया गया था कि अपीलकर्ता के अधिवक्ता की अनुपस्थिति में अपीलकर्ता को जिरह का कोई अवसर दिए बिना "अभियोजन पक्ष की गवाही को बंद" कर दिया गया था।

17. अपीलार्थी के अधिवक्ता श्री पाल सिंह यादव और डी.आर.आई. के अधिवक्ता श्री दिग्विजय नाथ दुबे को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

18. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा उल्लिखित दो स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों को अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि सभी तीन गवाह विभागीय गवाह थे, जबकि दो स्वतंत्र चश्मदीद गवाहों को स्वतंत्र गवाह के रूप में दिखाया गया है, लेकिन उनमें से किसी से भी अदालत के समक्ष पूछताछ नहीं की गई है, इसलिए अभियोजन का मामला अत्यधिक संदिग्ध है और इसमें आरोप झूठा है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि अदालत ने दूसरी बार आरोप तय किए थे और अपीलकर्ता को 04.07.2019 को एन.डी.पी.एस. अधिनियम की

धारा 25 के तहत आरोप विरचित किए गए थे। अपीलकर्ता ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 25 के तहत दूसरी बार तय किए गए आरोप के खिलाफ दोषी नहीं होने का अनुरोध किया था और परीक्षण के लिए अनुरोध किया था जिसका उल्लेख दिनांक 04.07.2019 के आदेश में किया गया है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि रिकॉर्ड पर किसी भी सबूत को शामिल किए बिना, एक दिन के ठीक बाद 05.07.2019 को अंतिम निर्णय पारित किया गया था, जो यह दर्शाता है कि मुकदमा अनुचित है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का पूर्ण उल्लंघन है।

19. अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष ने 18.12.2018 को गवाह अ०सा०-3 का परीक्षण किया और लक्ष्मण शर्मा की 23.1.2019 को जिरह एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा की गई और अगली तारीख 29.01.2019 तय की गई और फिर से 11.02.2019 को जिरह के लिए अगली तारीख तय की गई लेकिन अ०सा०-3 उपस्थित नहीं था और अभियोजन पक्ष के अधिवक्ता के अनुरोध पर, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य अपीलकर्ता को जिरह का कोई अवसर दिए बिना 11.2.2019 को बंद कर दिए गए थे। अपीलकर्ता की जिरह अनिवार्य थी, लेकिन न तो एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) को लगाया गया था और न ही अपीलकर्ता को अ०सा०-3 से जिरह करने का कोई अवसर प्रदान किया गया था और केवल अभियोजन पक्ष के अधिवक्ता के बयान पर सबूत बंद कर दिए गए थे। इसके बाद, मामला 313 द०प्र०स० के

लिए तय किया गया था, बयान दर्ज किया गया था लेकिन अपीलकर्ता को कोई एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान नहीं किया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता के पैरोकर ने पहले ही पैरवी छोड़ दी थी, इसलिए, विचारण न्यायालय पर एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान करना अनिवार्य था, लेकिन इसके अभाव में, आरोप में बदलाव के लिए 03.07.2019 को मामला तय किया गया था और अपीलकर्ता के अधिवक्ता की अनुपस्थिति में आरोप तय किए गए थे। अपीलकर्ता को कोई अधिवक्ता प्रदान किए बिना 05.07.2019 को अंतिम निर्णय पारित किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि मुकदमा अनुचित है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का पूर्ण उल्लंघन है क्योंकि अपीलकर्ता को अ०सा०-3 से जिरह करने के लिए अधिवक्ता के माध्यम से अवसर प्रदान नहीं किया गया था और एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 25 के तहत आरोपों को बदल दिया गया था और उसके बाद, अभियोजन पक्ष द्वारा कोई सबूत नहीं दिया गया था या अपीलकर्ता को साक्ष्य को प्रस्तुत करने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता द्वारा दिए गए तथ्य के बयान कि उसे एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नहीं दिया गया था, डी.आर.आई. द्वारा अपीलकर्ता द्वारा दायर हलफनामे का जवाब दाखिल करते समय इनकार नहीं किया गया है।

20. दूसरी ओर, डी.आर.आई. के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ता के कब्जे से एक करोड़ सात लाख रुपये की वाणिज्यिक

मात्रा के 107 किलोग्राम चरस पाए गए हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि तीन चश्मदीद गवाहों ने अपीलकर्ता के खिलाफ मामले का हिसाब लगाया है और अदालत के समक्ष उनकी जांच की गई है और उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले को पेश किया है, जिससे पता चलता है कि अपीलकर्ता वाणिज्यिक मात्रा में चरस की तस्करी में शामिल था। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि सभी आवश्यक प्रक्रिया का पालन किया गया था और उसके बाद अपीलकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया था और विचारण न्यायालय ने विचारण किया था और रिकॉर्ड पर सबूतों को पेश करने के बाद, अदालत ने धारा 8 (सी)/20 (बी)(ii)(सी) और धारा 25 एन.डी.पी.एस. अधिनियम, 1965 के तहत अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है। निर्णय उचित है और रिकॉर्ड के साक्ष्य को जोड़ने के बाद पारित किया जाता है और किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। डी.आर.आई. के अधिवक्ता ने निर्णयों के कैटेना (संपूर्णता) पर भरोसा किया है जो इस प्रकार हैं: -

(i) अजीमुल हसन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया AIRO ऑनलाइन 2022 इला. 3821 ;

(ii) श्रीधाम अधिकारी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया इरो-ऑनलाइन 2021 इला. 6814;

(iii) मनोज कुमार सोनी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया AIRO ऑनलाइन 2020 इला 2434 ;

(iv) चन्द्रशेखर प्रसाद साह बनाम चन्द्रशेखर प्रसाद यूनियन ऑफ इंडिया AIRO ऑनलाइन 2022 इला 1484 ;

(v) राजेन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य लखनऊ और अन्य 2017 (6) एएलजे 482; (2017)

6 इला डब्ल्यूसी 6151

(vi) फुमान सिंह बनाम यूनियन ऑफ इंडिया AIRO ऑनलाइन 2022 इला 3819 ;

(vii) मुकेश कुमार बनाम यूनियन ऑफ इंडिया AIRO ऑनलाइन 2022 इला 3820 ;

(viii) राज कुमार सविता बनाम भारत संघ 2021 (3) एएलजे 748; AIRO ऑनलाइन 2021 इला 522.

21. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, यह स्पष्ट है कि अंसा०-3 की जांच 23.1.2019 को लक्ष्मण शर्मा के एमिक्स क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा की गई थी। 23.01.2019 की कार्यवाही से ही संकेत मिलता है कि लक्ष्मण शर्मा सह-अभियुक्त का प्रतिनिधित्व एमिक्स क्यूरी (न्याय मित्र) के माध्यम से किया गया था। आदेश पत्र इंगित करता है कि 11.02.2019 को, मामले को रिमान्ड किया गया था और अभियोजन पक्ष के अधिवक्ता के मौखिक बयान पर, धारा 313 दंप्र०सं के तहत बयान के लिए मामला तय किया गया था। दिनांक 18.12.2018, 11.1.2019, 23.1.2019, 29.01.2019, 11.02.2019 की पूरी आदेश पत्रक स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि अपीलकर्ता के मामले का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई अधिवक्ता नहीं था और अंसा०-3 की कार्यवाही को अंसा०-3 से जिरह करने के लिए अपीलकर्ता को कोई अधिवक्ता प्रदान किए बिना ए.डी.जी.सी के मौखिक बयान पर बंद कर दिया गया था।

22. डी.आर.आई. के अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के दिनांक 28.1.2023 के पूरक हलफनामे के जवाब में दिनांक 16.2.2023 को जवाबी हलफनामा दायर किया है और पैरा-3, 4 और 5 में स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि उन्हें अपने मामले का प्रतिनिधित्व करने के

लिए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान नहीं किया गया था क्योंकि उनके पैरोकर ने पैरवी छोड़ दिया है। हलफनामे के उक्त पैरा-3, 4 और 5 का जवाब डी.आर.आई. द्वारा दिनांक 16.2.2023 के हलफनामे के माध्यम से दिया गया है और हलफनामे के पैरा-2, 3 और 4 में, इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि अपीलकर्ता को उसके मामले का प्रतिनिधित्व करने के लिए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) प्रदान किया गया था।

23. उच्चतम न्यायालय ने रामानंद @ नंद लाल भारती (उपरोक्त) का मामला के माध्यम से मामले के प्रतिनिधित्व के संबंध में विचाराधीन मुकदमे के एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के मुद्दे को निपटाया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मुकदमा नुकसानदेह हो गया है और अधिवक्ता की अनुपस्थिति में, कार्यवाही पूरी हो गई थी और अपीलकर्ता को एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नहीं दिया गया था, इसलिए, अंसां-3 के साक्ष्य पेश करने के समय परीक्षण और दूसरा आरोप जो 04.07.2019 को किया गया था और यहां तक कि धारा 313 दंप्रंसं की कार्यवाही अपीलकर्ता के अधिवक्ता की अनुपस्थिति में दर्ज की गई थी। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का पूरी तरह से उल्लंघन किया गया है और अधिवक्ता के माध्यम से साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना मुकदमा चलाया गया था।

24. रिकॉर्ड से पता चलता है कि 04.07.2019 को एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 25 के तहत दूसरी बार आरोप तय किए गए थे।

आरोपों को पढ़ा गया और आरोपी ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमे के लिए अनुरोध किया। हालांकि, दिनांक 04.07.2019 के आदेश में आगे कहा गया है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के लिए अधिवक्ता के बयान को बंद कर दिया गया था और आरोप तय करने के बाद साक्ष्य का नेतृत्व किए बिना एक दिन के ठीक बाद 05.07.2019 को निर्णय पारित किया गया था। रिकॉर्ड पर उपलब्ध दिनांक 04.07.2019 के आदेश को नीचे उद्धृत किया गया है: -

न्यायालय षष्ठम अपर/ विशेष न्यायाधी पी०सी०एक्ट (यूपीएसईबी) लखनऊ।
कि० केस नं० 38 / 2015
डीआरआई प्रति सुरेश त्रिवेदी आदि।

04.07.2019

वाद पेश हुआ पत्रावली निर्णय हेतु नियत है। अभियुक्तगण सुरेश त्रिवेदी एवं लक्ष्मन शर्मा मय विद्वान अधिवक्ता उपस्थित हैं। विशेष लोक अभियोजक भी उपस्थित हैं।

मामले में निर्णय तैयार करते समय पत्रावली के अवलोकन से स्पष्ट हुआ कि दिनांक 27.05.2016 को मेरे विद्वान पूर्वाधिकारी द्वारा अभियुक्तगण सुरेश त्रिवेदी एवं लक्ष्मन शर्मा के विरुद्ध एक ही शीर्ष में अपराध अन्तर्गत धारा - 8 (सी) / 20 (बी) (ii) (सी) / 25 एनडीपीएसएक्ट के अधीन आरोप विरचित कर दिया गया है जब कि उक्त अपराध में धारा-20 व 25 दण्डात्मक उपबन्ध से संबंधित धारार्य हैं जिसमें विधि अनुसार पृथक शीर्ष में आरोप विरचित किया

जाना चाहिये था, इसलिये निर्णय से पूर्व उपरोक्त विरचित आरोप में संशोधन करते हुये उपरोक्त दोनों धाराओं में पृथक-पृथक शीर्ष में आरोप विरचित किया जाना न्यायोचित प्रतीत होता है।

तदनुसार अभियुक्तगण सुरेश त्रिवेदी एवं लक्ष्मन शर्मा के विरुद्ध उपरोक्त आरोप अन्तर्गत धारा 8(सी) / 20 (बी) (ii) (सी) एवं धारा - 25 एनडीपीएसएक्ट के अधीन पृथक-पृथक शीर्ष में आरोप विरचित किया गया। अभियुक्तगण को उक्त आरोप पढ़कर सुनाया व समझाया गया। अभियुक्तगण ने उपरोक्त आरोप से इंकार किया तथा विचारण की मांग की।

विशेष लोक अभियोजक द्वारा पूर्व में ही अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को पढ़े जाने व अन्य कोई साक्ष्य न दिये जाने का तर्क देते हुये, तदनुसार आदेश पत्र पर पृष्ठांकन किया गया है। अभियुक्तगण की ओर से भी किसी साक्षी से प्रतिपरीक्षा करने हेतु पुनः आहूत किये जाने का अनुरोध नहीं किया गया है।

तदोपरान्त उभयपक्षों की बहस सुनी गयी। पत्रावली दिनांक 05.07.19 को निर्णय हेतु पेश हो।

ह० अपठनीय

04.07.19

(डी0एन0 सिंह)

षष्टम अपर जिला जज /

विशेष न्यायाधीश / पी०सी०एक्ट,

(यूपीएसईबी) लखनऊ।

25. यहां उल्लेख करने के लिए अन्य तथ्य भी बहुत प्रासंगिक है कि अपीलकर्ता को

17.08.2014 को गिरफ्तार किया गया था और उसे 18.08.2014 को जेल भेज दिया गया था। अपीलकर्ता 18.08.2014 से आज तक जेल में है और अपीलकर्ता ने आठ साल, आठ महीने जेल में बिताए हैं। धारा 8 (सी)/20 (बी)(ii)(सी) और धारा 25 एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत प्रदान की गई न्यूनतम सजा दस साल है और अधिकतम सजा 20 साल है। यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि अपीलकर्ता ने जेल में लगभग न्यूनतम सजा काटी है, वह भी बिना निष्पक्ष सुनवाई के।

26. उपरोक्त तथ्यात्मक पहलू पर चर्चा करने के बाद, न्यायालय के निष्कर्ष हैं: -

(i) अपीलकर्ता को अ०सा०-3 के साक्ष्य और धारा 313 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही के दौरान खुद का बचाव करने के लिए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) का खर्च नहीं दिया गया था, इस प्रकार परीक्षण दोषपूर्ण है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

(ii) एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 25 के तहत दूसरी बार 04.07.2019 को लगाए गए आरोप साबित नहीं हुए क्योंकि रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं दिया गया था और निर्णय केवल एक दिन बाद यानी 05.07.2019 को पारित किया गया था, इस प्रकार मुकदमा समाप्त हो गया प्रतीत होता है।

27. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण दोषपूर्ण तरीके से आयोजित किया गया था और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है और

अपीलकर्ता 18.08.2014 से आज तक लगातार जेल में काट रहा है और आठ साल, आठ महीने जेल में पूरा कर चुका है। इस प्रकार, एन.डी.पी.एस. अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों में प्रदान की गई दस साल की लगभग न्यूनतम सजा पूरी होने वाली है और यह मामले को विचारण न्यायालय में भेजने के लिए उपयुक्त मामला नहीं होगा।

28. जहां तक अभियोजन मामले का संबंध है, तथ्य के गवाह अ०सा०-1 संजीव कटियार, अ०सा०-2 धर्मेन्द्र और अ०सा०-3 अभिषेक चटर्जी ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया था। न्यायालय के समक्ष उनका बयान दर्ज कर लिया गया है और जिरह के बाद यह पाया गया है कि उन्होंने अभियोजन मामले का समर्थन किया है। एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 42, 50 का अनुपालन किया गया है। अदालत के समक्ष अभियोजन पक्ष के गवाहों से पूछताछ से संकेत मिलता है कि अदालत के समक्ष उनका बयान वही है जो उन्होंने परीक्षण के दौरान कहा था।

29. पूर्वोक्त चर्चा के मद्देनजर, मामले को नए सिरे से विचारण के लिए भेजना उचित नहीं होगा क्योंकि 8 1/2 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है और अपीलकर्ता जेल में है। मेरा मानना है कि निचली अदालत द्वारा दी गई अधिकतम सजा वर्ष 15 साल कम हो सकती है, जिसे घटाकर न्यूनतम सजा यानी 10 साल तक कर दिया जाता है।

30. अपील की आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता

है। तथापि, सजा को घटाकर दस वर्ष किया जाता है और 10,0000/- रुपए का जुर्माना लगाया जाता है। धारा 8(सी)/20 (बी)(ii)(सी) के तहत और जुर्माना न होने की स्थिति में, अपीलकर्ता द्वारा छह महीने का साधारण कारावास और एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 25 के तहत एक लाख रुपये का जुर्माना और चूक की स्थिति में, अपीलकर्ता द्वारा चार महीने का साधारण कारावास भुगतना होगा।

31. अपीलकर्ता को, यदि उसे किसी अन्य आपराधिक मामले में वारंट नहीं किया गया है, दस साल की सजा पूरी करने के बाद मुक्त कर दिया जाए।

32. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस निर्णय की एक प्रति निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को भेजे।

आदेश दिनांक: 10th अप्रैल, 2023 /

(2023) 4 ILRA 1055

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रिटिकर दिवाकर,
माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,
आपराधिक अपील संख्या 3773 वर्ष 2019
संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 2914 वर्ष 2019

किशन वीर सिंह

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री एप्पल मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री एच.एम.बी. सिन्हा,
ए.जी.ए.

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 96, 97, 99, 101, 102, 302/34 और 323/34 - हत्या के लिए सजा - शस्त्र अधिनियम, 1959 - धारा 25- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 161 और 313-साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 106, 113 बी, 134- सजा के खिलाफ अपील - घटनास्थल वादी के घर के दरवाजे पर था, बचाव पक्ष द्वारा कोई विपरीत सबूत नहीं दिया गया है -अभियोजन पक्ष के अनुसार, जब नत्थू के गन्ने के खेत से घास काटी जा रही थी, तो आरोपी व्यक्ति वादी के घर पहुंचे, जब वादी के बेटे ने विरोध किया, अपराध किया गया था - जिरह में, पी.डब्लू.1 ने स्वीकार किया कि उसके और आरोपी व्यक्तियों के बीच कोई दुश्मनी नहीं थी - आरोपियों ने उसके बेटे को गन्ना तोड़ते देखा था, उस समय कोई झगड़ा नहीं हुआ था- पी.डब्लू.6 द्वारा पुष्टि की गई - अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए साक्ष्य में कोई विरोधाभास नहीं है, मृतक को बन्दूक से चोट लगी थी, जिससे उसकी मृत्यु हो गई और चिकित्सा साक्ष्य द्वारा इसकी पुष्टि की गई - पी.डब्लू.2 को लगी चोटें, अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की गारंटी- पी.डब्लू.2 की गवाही में कोई विरोधाभास नहीं - दो गवाहों के साक्ष्य, एक दूसरे से पुष्टि करते हैं, विश्वसनीय साक्ष्य के आलोक में, अभियोजन पक्ष स्वतंत्र गवाह के रूप में किसी भी गवाह को पेश करने के लिए बाध्य नहीं था - डॉक्टर ने घटना की तारीख और

समय बताया, चिकित्सा साक्ष्य आरोपी व्यक्तियों को लगी चोटों की पुष्टि करते हैं - वादी पक्ष ने निजी बचाव का इस्तेमाल किया, जब एक गोली मृतक पर चलाई गई, आरोपी व्यक्तियों को साधारण चोटें पहुंचाई गईं - पी.डब्लू.2 को साधारण चोटें लगीं, वादी पक्ष द्वारा निजी बचाव का अभ्यास कभी भी अधिक नहीं किया गया - वाद पक्ष, आईपीसी की धारा 96 के तहत सुरक्षा का हकदार - एफ.आई.आर. , अत्यधिक दर्ज किया गयातत्परता, दर्ज करने में कोई देरी नहीं, झूठे निहितार्थ की संभावना को समाप्त करता है तदनुसार दिशा-निर्देश पारित किए गए। (पैरा 25, 26, 27, 34, 42, 44, 46, 51-57, 62, 63, 66)

अपीलें निरस्त (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. बिकों पांडे बनाम बिहार राज्य (2003) 12 एससीसी 616
2. अनिल राय बनाम बिहार राज्य (2001) 7 एससीसी 318
3. दीपक वर्मा बनाम एच.पी. राज्य (2011) 10 एससीसी 129
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छोटे लाल, ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 697
5. यू.पी. राज्य बनाम कृष्णा मास्टर, 2010 (5) एएलजे 423 (एससी)
6. गंगाधर बेहरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य, (2002) 8 एससीसी 381
7. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस. रायप्पा एवं अन्य (2006) 4 एससीसी 512

8. शिवलिंगप्पा कल्लायनप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 सप्लिमेंट (3) एससीसी 235
9. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशन चंद्र एवं अन्य, (2004) 7 एससीसी 629
10. चाको बनाम केरल राज्य, (2004) 12 एससीसी 269
11. जयबालन बनाम केंद्र शासित प्रदेश पांडिचेरी, (2010) 1 एससीसी 199
12. राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2010 एससी 917
13. मेघराज सिंह बनाम यूपी राज्य, (1994) 5 एससीसी 188
14. थुलिया काली बनाम टी.एन. राज्य (1972) 3 एससीसी 393 में रिपोर्ट किया गया
15. किशन सिंह द्वारा वारिसान बनाम गुरपाल सिंह एवं अन्य, (2010) 8 एससीसी 775 में रिपोर्ट किया गया
16. सेवा राम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2008 एससी 682

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव,
द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री अपुल मिश्रा और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए.
2. इन आपराधिक अपीलों को अपीलकर्तागण - किशन वीर सिंह, नत्थू सिंह और बच्चन सिंह द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 200/2002, पुलिस स्टेशन फैजगंज बेहटा, जिला बदायूं से उत्पन्न मुकदमा अपराध संख्या 190/2002 और सत्र विचारण संख्या 809/2003 (राज्य

बनाम किशन वीर) से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या 103/2003 (राज्य बनाम किशन वीर सिंह और अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (ईसी एक्ट), बदायूं द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.3.2019 के खिलाफ दायर किया गया है, जिसके तहत अपीलकर्ता किशन वीर को दोषी ठहराया गया था और धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, जुर्माने के चूक में, छह महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा सुनाई गई और अपीलकर्ता बच्चन सिंह और नत्थू सिंह को धारा 302/34 भा0दं0सं0 के तहत प्रत्येक को 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, जुर्माने के चूक में छः माह के अतिरिक्त कारावास की सजा सुनाई गई। इसके अलावा, अपीलकर्ता किशन वीर सिंह, बच्चन सिंह और नत्थू सिंह को दोषी ठहराया गया और भा0दं0सं0 की धारा 323/34 के तहत चार महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई, जिसमें प्रत्येक पर 1000 रुपये का जुर्माना लगाया गया, जिसके चूक पर एक महीने का अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा सुनाई गई।

3. अभियोजन का मामला, जैसा कि एफआईआर से पता चलता है, यह है कि 25.7.2002 को, दिनेश पुत्र सूचनाकर्ता भूप सिंह पुत्र कल्लू सिंह यादव ने भूप सिंह पुत्र गुमानी के गन्ने के खेत से कुछ घास काट दी थी, जिसे नत्थू सिंह पुत्र बृजपाल सिंह द्वारा कृषि कार्य के लिए लिया गया था, जिससे आरोपी व्यक्तियों को झुंझलाहट हुई और उसी

दिन शाम लगभग 6:00 बजे, आरोपी व्यक्ति किशन वीर, बच्चन और नत्थू सिंह ने अभद्र भाषा का इस्तेमाल करते हुए सूचनाकर्ता के घर पर धावा बोल दिया। जब सूचनाकर्ता के बेटे गिरीश ने उन्हें गाली न देने के लिए कहा, तो उन्होंने उस पर लाठी और डंडा से हमला किया। जब भूरे पुत्र पुन्नी बचाव के लिए आया तो उसे भी आरोपियों ने पीटा। लगभग 7:15 बजे, आरोपी किशन वीर ने अपनी देसी पिस्तौल से गोली चला दी, जो गिरीश की पीठ पर लगी, जिससे उसकी तत्काल मौत हो गई। इस घटना को महिंद्रा और हरपाल ने देखा था। सूचनाकर्ता भूप सिंह की लिखित तहरीर पर दिनांक 25.7.2002 को रात्रि 22:25 बजे पंजीयन जी.डी.आर तैयार किया गया। मृतक की जांच दिनांक 26-7-2002 को रात्रि 12:30 बजे सूचनाकर्ता के घर पर की गई और दिनांक 26-7-2002 को अपराहन 4.00 बजे डॉ. वी.पी. भारद्वाज द्वारा शव परीक्षण किया गया और पोस्टमार्टम तैयार किया गया।

4. मृतक की शव परीक्षा में, निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

1. दाहिने कंधे पर 4 सेमी x 4 सेमी प्रवेश का एक बन्दूक का घाव। कालापन मौजूद था। विच्छेदन पर, कंधे का ब्लेड और दूसरी, तीसरी, चौथी पसलियां टूटी हुई पाई गईं।

नसों, पोतों, मांसपेशियों, छाती की दीवार में घाव पाया गया, पीछे की तरफ से दायां फेफड़ा बुरी तरह से जख्मी पाया गया। दाहिनी ओर छाती गुहा के पूर्वकाल में एक लीटर रक्त और घाव से 288 छर्रे बरामद किए गए।

डॉक्टर द्वारा यह कहा गया था कि मृत्यु पूर्व-मृत्यु बन्दूक की चोट के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी, जो उसकी मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी। यह भी राय दी गई कि मृतक की मृत्यु 25-7-2002 को सायं 715 बजे हुई होगी।

5. घायल भूरे की 25.7.2002 को 10:53 बजे डॉक्टर शिवराम सिंह द्वारा मेडिकल जांच की गई और उसके शरीर पर निम्नलिखित चोट पाई गई:

1. कलाई के जोड़ से 8 सेमी ऊपर 2 सेमी X 0.5 सेमी x मांसपेशी गहरा घाव और चोट बाएं हाथ के ऊपरी हिस्से के 1/3 हिस्से में पाई गई थी।

चोट सरल और ताजा थी। यह किसी कठोर और कुंद वस्तु के कारण हो सकता है। चिकित्सा परीक्षा 25-7-2002 को रात्रि 1953 बजे अभिनिर्धारित की गई थी।

6. जांच की कार्यवाही जांच अधिकारी एसओ मान सिंह यादव और एसओ राजबीर शर्मा द्वारा की गई। जांच के दौरान, गवाहों के बयान दर्ज किए गए थे और साइट प्लान तैयार किया गया था। आरोपी किशन वीर की निशानदेही पर हत्या का हथियार देसी पिस्टल भी बरामद किया गया और बरामदगी के स्थान का फर्द बरामदगी और साइट प्लान भी तैयार किया गया।

7. जांच पूरी होने के बाद, आरोपी किशन वीर सिंह, बच्चन और नत्थू सिंह के खिलाफ

भा0दं0सं0 की धारा 302, 323, 504 के तहत न्यायालय में आरोप पत्र दायर किया गया था।

8. धारा 25 आयुध अधिनियम के तहत मामले की जांच थाना फैजगंज के एसआई गंगाराम सोम को सौंपी गई, जिन्होंने मामले की जांच करने के बाद साइट प्लान तैयार कर आरोपी किशन वीर सिंह के खिलाफ धारा 25 आयुध अधिनियम के तहत चार्जशीट पेश की।

9. यह मामला, सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय होने के कारण, परीक्षण के लिए सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था।

10. आरोपी किशन वीर सिंह के खिलाफ भा0दं0सं0 की धारा 302, 323/34 और आरोपी बच्चन और नत्थू सिंह के खिलाफ भा0दं0सं0 की धारा 302/34, 323/34 के तहत आरोप तय किए गए। आरोपी किशन वीर सिंह के खिलाफ धारा 25 आयुध अधिनियम के तहत आरोप भी तय किए गए थे। आरोपी व्यक्तियों ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

11. अभियुक्तों के विरुद्ध आरोपों को घर लाने के लिए अभियोजन पक्ष ने मौखिक साक्ष्य में सभी दस गवाहों को प्रस्तुत किया और वे हैं (पी.डब्ल्यू.1) भूप सिंह, सूचनाकर्ता/प्रत्यक्षदर्शी, (पी.डब्ल्यू.2) भूरे, चश्मदीद/घायल, (पी.डब्ल्यू.3) डॉ. वी.बी.भारदवाज, (पी.डब्ल्यू.4) एफआईआर कांस्टेबल क्लर्क रामपाल सिंह के मुंशी, (पी.डब्ल्यू.5) एस.ओ.राजबीर शर्मा, द्वितीय जांच अधिकारी, (पी.डब्ल्यू.6) एसओ मान सिंह यादव, प्रथम जांच अधिकारी, (पी.डब्ल्यू.7) एसआई

गंगाराम, आयुध अधिनियम के तहत मामले के जांच अधिकारी, (पी.डब्ल्यू.8) डॉ. शिवराम सिंह, (पी.डब्ल्यू.9) चंद्रसेन गंगावार, हत्या के हथियार की बरामदगी के गवाह और (पी.डब्ल्यू.10) सुमेर सिंह, हत्या के हथियार की बरामदगी के गवाह।

12. दस्तावेजी साक्ष्य में, लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1, पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-2, 2002 प्रदर्श क-3 के अपराध संख्या 190 की चिक एफ.आई.आर., पंजीकरण जी.डी. प्रदर्श क-4, चिक एफ.आई.आर.. 2002 प्रदर्श क-5, हथियार प्रदर्श क-6 की रिकवरी मेमो, 2002 प्रदर्श क-7 के अपराध संख्या 200 की साइट योजना, 2002 प्रदर्श क-8, 2002 प्रदर्श क-9 के अपराध संख्या 200 के चिक एफ.आई.आर., के अपराध संख्या 190 का आरोप पत्र, पंजीकरण जी.डी. प्रदर्श क-10, पूछताछ प्रदर्श क-11, फोटो Nash प्रदर्श क-12, चालान Nash प्रदर्श क-13, R.I. प्रदर्श क-14 को रिपोर्ट, C.M.O. प्रदर्श क-15 को रिपोर्ट, नमूना सील प्रदर्श क-16, 2002 प्रदर्श क-17 के अपराध संख्या 190 की साइट योजना, रक्त से सना हुआ मिट्टी और सादी मिट्टी प्रदर्श क-18 का फर्द, 2002 प्रदर्श क-19 के अपराध संख्या 200 की साइट योजना, 2002 प्रदर्श क-20 के अपराध संख्या 200 से संबंधित आरोप-पत्र, घायल भूरे प्रदर्श क-21 की मेडिकल रिपोर्ट, आरोपी बच्चन प्रदर्श.के.-22 की मेडिकल रिपोर्ट और आरोपी नत्थू प्रदर्श.का.-23 की मेडिकल रिपोर्ट पेश की गई है।

13. सामग्री प्रदर्श-1 तमंच और सामग्री प्रदर्श-2 कारतूस का भी उत्पादन किया गया है।

14. अभियुक्तों के सामने आपत्तिजनक साक्ष्य और परिस्थितियां रखी गईं और दं0प्र0सं0 की

धारा 313 के तहत उनके बयान दर्ज किए गए। दुश्मनी के कारण झूठे आरोप की दलील का दावा किया गया था और यह भी विशेष रूप से कहा गया था कि घटना के समय, मृतक गिरीश और दिनेश आरोपी व्यक्तियों के गन्ना काट रहे थे और जब आरोपी व्यक्तियों द्वारा विरोध किया गया, तो दिनेश ने गुस्से में गोली चला दी, जो मृतक गिरीश के शरीर पर लगाया गया था। घटना के समय कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था।

15. बचाव पक्ष के गवाह के रूप में डी.डब्ल्यू.1 अवनीश सिंह, उप जेलर और डी.डब्ल्यू.2 फार्मासिस्ट कृष्ण मुरारी से पूछताछ की गई।

16. अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक साक्ष्य के माध्यम से जाने के दौरान, हम संक्षेप में, गवाहों की गवाही में निम्नलिखित कथन पाते हैं:

पी.डब्ल्यू.1 भूप सिंह मामले का सूचनाकर्ता और चश्मदीद गवाह है और वह मृतक का पिता भी है। अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन करते हुए, अपनी मुख्य पूछताछ में, उन्होंने कहा है कि यह घटना लगभग 13 महीने पहले हुई थी जब उनके बेटे दिनेश ने भूप सिंह के खेत से कुछ घास काट दी थी, जिसे आरोपी नत्थू ने किराए पर लिया था। इस पर आरोपी किशन वीर, नत्थू और बच्चन नाराज हो गए और उसी दिन शाम 7:00 बजे वे उसके घर आए और उसके बेटे गिरीश को गाली देने लगे और उसके विरोध पर उसे लाठी-डंडा से पीटने लगे। आरोपी किशन वीर ने अपनी देसी पिस्टल से गोली चला दी, जिससे उसका बेटा घायल हो गया

और वह घर के अंदर बरामदे (आंगन) में गिर गया। घटना भूरे, महिंद्रा, हरपाल, दिनेश आदि ने देखी और जब भूरे ने हस्तक्षेप करने की कोशिश की, तो आरोपी बच्चन द्वारा लाठी और डंडा से उस पर भी हमला किया गया। सूचनाकर्ता पक्ष ने बचाव में लाठी चलाकर बल प्रयोग किया, जिससे आरोपी व्यक्तियों नत्थू और बच्चन सिंह को चोटें आईं और फिर वे भाग गए। सूचनाकर्ता के फरमान पर रिपोर्ट हरीश चंद्र गुप्ता ने लिखी थी, जो थाने को दी गई थी। पीडब्लू 1 ने लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श.के.-1 साबित किया है।

पी.डब्ल्यू.2 भूरे घायल गवाह हैं, जिन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए गवाही दी है कि उक्त घटना में, गिरीश को आरोपी किशन वीर द्वारा गोली मार दी गई थी। बीच-बचाव के दौरान उन्हें खुद लाठी से चोटें आई हैं। उन्होंने स्पष्ट बयान दिया है कि आरोपी किशन वीर के पास देसी पिस्तौल थी, जबकि आरोपी व्यक्ति बच्चन और नत्थू ने लाठी और डंडा लिया था। उन्होंने एक विशिष्ट वक्तव्य भी दिया है कि स्वयं के बचाव के लिए उन्होंने अभियुक्तों पर लाठी और डंडा का भी प्रयोग किया था।

पी.डब्ल्यू.3 डॉ. वी.पी. भारद्वाज ने मृतक का पोस्टमार्टम किया है और उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को विस्तार-2 के रूप में सिद्ध किया है।

पी.डब्ल्यू.4 कांस्टेबल क्लर्क आर.पी.सिंह एफआईआर के मुंशी हैं, जिन्होंने चिक एफआईआर और पंजीयन जी.डी. को क्रमशः प्रदर्श.के.-3 और प्रदर्श.के.-4 के रूप में दर्ज किया है और इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि एफआईआर पुलिस स्टेशन में सूचनाकर्ता

भूप सिंह द्वारा दी गई लिखित रिपोर्ट के आधार पर दर्ज की गई थी। उन्होंने घायल भूरे की मेडिकल जांच के पत्र को भी प्रदर्श.का.-5 साबित किया है।

पी.डब्ल्यू.5 राजवीर शर्मा मामले के दूसरे जांच अधिकारी हैं, जिन्हें 31.7.2002 को जांच सौंपी गई थी। अपने बयान में, उन्होंने आरोपी किशन वीर की ओर इशारा करते हुए जांच की कार्यवाही और हत्या के हथियार की बरामदगी के भौतिक तथ्य को साबित किया है। उन्होंने फर्द बरामदगी, साइट प्लान और चार्ज-शीट को क्रमशः प्रदर्श क6, Ka.-7 और Ka.-8 के रूप में भी साबित किया है।

पी.डब्ल्यू.6 एसओ मानसिंह यादव मामले के पहले जांच अधिकारी हैं, जिन्होंने मृतक की जांच भी की और पोस्टमार्टम के लिए जांच रिपोर्ट और संबंधित कागजात तैयार किए और साबित किए और नमूना सील प्रदर्श-16 के तहत शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया। साइट प्लान प्रदर्श क-17 में घटना स्थल की स्थलाकृति का उल्लेख किया गया था और रक्त से सना हुआ और सादी मिट्टी लेने का जापन भी प्रदर्श क-18 के रूप में साबित हुआ था।

पी.डब्ल्यू.7 एसआई गंगा राम आयुध अधिनियम से संबंधित मामले के जांच अधिकारी हैं। उन्होंने जांच की कार्यवाही की है, हत्या के हथियार देसी पिस्तौल की बरामदगी के स्थान का नक्शा प्रदर्श.का.-19 के रूप में तैयार किया है और यह भी कहा है कि मामला चार्जशीट में समाप्त हो गया और आरोप पत्र को प्रदर्श.के.-20 के रूप में साबित किया।

पी.डब्ल्यू.8 डॉ. शिवराम सिंह ने दिनांक 26.7.2002 को आरोपी बच्चन सिंह

एवं नत्थू की मेडिकल जांच की, जिन्हें पुलिस उनके पास ले गई और चोट रिपोर्ट को विस्तार-का-22 एवं विस्तारका-23 साबित किया।

हत्या के हथियार की बरामदगी के गवाह पी.डब्ल्यू.9 कांस्टेबल चंद्रसेन गंगवार हैं। अभियोजन पक्ष के बयान की पुष्टि करते हुए, उन्होंने गवाही दी है कि भूप सिंह के गन्ने के खेत से आरोपी किशन वीर की निशानदेही पर एक देसी पिस्तौल 12 बोर बरामद की गई थी, जिसे 12 बोर के एक खोखा के साथ वहां मौजूद नीम के पेड़ की जड़ में छुपाया गया था। उन्होंने रिकवरी प्रदर्श क-6 के जापन की पुष्टि की है और देसी पिस्तौल और कारतूस को सामग्री प्रदर्श-1 और 2 के रूप में भी साबित किया है।

पी.डब्ल्यू.10 सुमेर सिंह हत्या के हथियार देसी पिस्तौल की बरामदगी का सरकारी गवाह है, जिसने आरोपी किशनवीर की ओर इशारा करते हुए हत्या के हथियार की बरामदगी के तथ्य का भी समर्थन किया है और वसूली के जापन पर उसके हस्ताक्षर की पहचान प्रदर्श.के.-6 के रूप में की है।

सी.डब्ल्यू.1 स्टेनो रवि प्रकाश शर्मा ने न्यायालय के समक्ष इस तथ्य की पुष्टि की है कि संबंधित पीठासीन अधिकारी के आदेश पर, उन्होंने भा0दं0सं0 की धारा 323/34 के तहत आरोप को नोट किया था और सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ भी टाइप किया था।

बचाव पक्ष द्वारा डीडब्ल्यू 1 उप जेलर अवनीश सिंह को पेश किया गया है, जिसने जिला जेल, बदायूं से संबंधित विचाराधीन परीक्षण रजिस्टर के आधार पर गवाही दी है और कहा कि 26.7.2002 को,

आरोपी व्यक्ति नटू पुत्र बृजपाल और बच्चन पुत्र नत्थू को सीएचसी बिसौली में चिकित्सकीय जांच के बाद जिला जेल में भर्ती कराया गया था।

जिला जेल, बदायूं में तैनात डीडब्ल्यू 2 कृष्ण मुरारी सिंह, फार्मासिस्ट विचारणाधीन और दोषसिद्ध अभियुक्त व्यक्तियों से संबंधित चोट रजिस्टर के साथ न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और उसके आधार पर उन्होंने कहा कि घायल अभियुक्त व्यक्तियों बच्चन और नत्थू की जांच तत्कालीन चिकित्सा अधिकारी द्वारा 27-7-2002 को की गई थी और उनकी चिकित्सीय जांच सीएचसी में की गई है। बिसौली। इस रजिस्टर की अटेस्टेड फोटो स्टेट कॉपी इस गवाह ने कोर्ट के सामने दाखिल की है।

17. यह स्थापित कानून है कि एक आपराधिक मुकदमे में, सबूत का बोझ हमेशा अभियोजन पक्ष पर होता है और अभियोजन पक्ष सभी उचित संदेहों से परे अपने मामले को साबित करने के लिए बाध्य होता है जब तक कि कुछ परिस्थितियों में, बचाव पक्ष पर जिम्मेदारी नहीं होती है उदाहरण के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी की सहायता से, जिसमें दहेज मृत्यु या भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के बारे में अनुमान के बारे में प्रावधान शामिल हैं, जहां तथ्य के प्रमाण का बोझ, जो विशेष रूप से किसी भी व्यक्ति के ज्ञान में है, उस पर या किसी भी तरह की परिस्थितियों में निहित है। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है,

तथ्यात्मक परिदृश्य से पता चलता है कि सबूत का बोझ अभियोजन पक्ष पर है।

18. आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विभिन्न आधारों पर हमला किया गया है:

शुरुआत में, यह तर्क दिया गया है कि इस मामले में घटना की जगह अनिश्चित है और मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स में, सूचनाकर्ता के घर पर कोई घटना नहीं हुई, बल्कि यह आरोपी नत्थू के गन्ने के खेत में हुई। यह जोरदार तर्क दिया गया है कि आरोपी व्यक्तियों का मृतक को दूर करने का कोई मकसद नहीं था और वास्तव में, मृतक की मृत्यु सूचनाकर्ता के बेटे दिनेश द्वारा की गई बन्दूक की चोट के कारण हुई थी। उक्त दिनेश ने आरोपी किशन वीर को मारने के इरादे से गोली चला दी, लेकिन वह किसी भी तरह खुद को बचाने में कामयाब रहा और गिरीश को लगी बन्दूक की चोट, जो उसके लिए घातक साबित हुई और परिणामस्वरूप गन्ने के खेत में उसकी तत्काल मौत हो गई। यह भी प्रभावित हुआ कि यह घटना अंधेरी रात में लगभग 9:00 बजे हुई और शाम को 7:00 बजे नहीं। अभियोजन पक्ष आरोपी नत्थू सिंह और बच्चन सिंह को लगी चोटों की व्याख्या करने में बुरी तरह विफल रहा है, जिन पर सूचनाकर्ता पक्ष द्वारा हमला किया गया था। हमले का तरीका असंभव है। अभियोजन की पूरी कहानी मनगढ़ंत और झूठी है और आरोपी किशन वीर की ओर इशारा करते हुए कथित हत्या के हथियार को पुनः प्राप्त करने का तथ्य एक झूठी

कहानी है। कथित हथियार, देसी पिस्तौल को आरोपित अपराध से जोड़ने के लिए अभिलेख पर कोई एफएसएल रिपोर्ट नहीं है। घटना का कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया, जबकि अभियोजन पक्ष का दावा है कि इस घटना को कुछ ग्रामीणों ने भी देखा था। नेत्र संबंधी साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद नहीं है। अभियोजन की कहानी में कई खामियां हैं और अभियोजन पक्ष कभी भी बचाव पक्ष की कमजोरियों का लाभ उठाने का हकदार नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों द्वारा पेश किए गए बचाव साक्ष्य के मूल्य को खारिज कर दिया है। कुछ अन्य आधारों पर, उपरोक्त विशिष्ट आधारों के अलावा अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आक्षेपित निर्णय पर हमला किया गया है।

19. इसके विपरीत, विद्वान एजीए ने तर्क दिया है कि आक्षेपित निर्णय और आदेश एक वास्तविक है, जो अभिलेख पर साक्ष्य की उचित और उचित जांच के आधार पर पारित किया गया है। अपीलकर्तागण द्वारा उठाए गए बिंदु निराधार हैं। अपीलकर्तागण द्वारा किया गया अपराध प्रकृति में बहुत गंभीर है, जो चिकित्सा साक्ष्य द्वारा भी उचित और ठोस नेत्र साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है। अपील में कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है।

20. घटना का स्थान हमेशा अभियोजन पक्ष के मामले की नींव तैयार करने में एक महत्वपूर्ण कारक है और यह किसी भी हिचकिचाहट के बिना अभिनिर्धारित किया जा

सकता है कि अगर घटना की जगह में उतार-चढ़ाव पाया जाता है, यह हमेशा प्रतिकूल अभियोजन पक्ष की कहानी की सत्यता को प्रभावित करता है। इस मामले में, अभियोजन पक्ष एक विशिष्ट मामले के साथ आया है कि घटना सूचनाकर्ता के घर के दरवाजे पर हुई थी, जबकि इसके विपरीत, आरोपी व्यक्तियों ने धारा 313 (5) दंडप्र0सं0 के तहत अपने लिखित बयान में उल्लेख किया है कि घटना आरोपी नाथू के गन्ने के खेत में हुई थी।

21. घटना के सूचनाकर्ता और प्रत्यक्षदर्शी पी.डब्ल्यू.1 भूप सिंह ने स्पष्ट बयान दिया है कि घटना के समय, किशन वीर, नत्थू और बच्चन सिंह उनके घर पर आए जहां उनका बेटा गिरीश खड़ा था और घटना उसी स्थान पर हुई। आरोपी किशन वीर ने गिरीश पर गोली चला दी, जिससे उसके शरीर पर चोट लगी और वह अपने घर के प्रवेश द्वार से घर के बरामदे में गिर गया। जिरह में उन्होंने विशेष रूप से कहा है कि जब उनके बेटे द्वारा गन्ना तोड़ा गया था, तो कोई मारपीट नहीं हुआ था और यहां तक कि उनके बेटे दिनेश ने भी गन्ना तोड़ते समय उन्हें किसी झगड़े के बारे में नहीं बताया था। इसके अलावा, उन्होंने कहा है कि उन्होंने घटना स्थल पर न तो दरवाजे के सामने और न ही घर के अंदर कोई खून नहीं देखा। उनके बेटे को उनके घर के दरवाजे पर गोली मार दी गई थी। उन्होंने आगे कहा है कि आरोपी व्यक्तियों को भी चोटें आईं और खून बह गया, लेकिन जमीन पर कोई खून नहीं गिरा। घायल भूरे का दाहिना हाथ भी खून से भरा हुआ था, लेकिन वह उसके कपड़ों और हाथ में भीगा हुआ था।

22. पी.डब्ल्यू.2 भूरे, घायल ने यह भी कहा है कि तीनों आरोपी गिरीश के दरवाजे पर आए थे और घटना उसी स्थान पर हुई थी। गिरीश के शरीर पर गोली लगने से वह बखरी के अंदर गिर गया। अपनी जिरह में, उन्होंने कहा कि दोनों पक्षों को लाठियों से लगी चोटों के कारण खून बह रहा था। गिरीश, दिनेश, हरपाल, भूप सिंह और वह खुद लाठी से घायल हो गए और खून बह निकला और यह सब भूप सिंह के घर के दरवाजे पर हुआ।

23. पी.डब्ल्यू.6, जो मामले के पहले जांच अधिकारी हैं और सूचनाकर्ता की ओर इशारा करने पर साइट प्लान प्रदर्श.का.-17 तैयार कर चुके हैं, ने घटना स्थल से खून से सनी और सादी मिट्टी ले ली है। बचाव पक्ष द्वारा सुझाव दिए जाने पर, उन्होंने स्पष्ट रूप से पुष्टि की है कि घटना का स्थान सूचनाकर्ता के घर पर था, जैसा कि साइट प्लान में दिखाया गया है, न कि गन्ने के खेत में।

24. घटना स्थल की स्थलाकृति साइट प्लान प्रदर्श.क-17 में पाई गई है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से दिखाया गया है कि घटना सूचनाकर्ता भूप सिंह के घर के दरवाजे पर हुई थी और बन्दूक की चोट लगने के बाद, मृतक अपने घर में 'ए' स्थान पर गिर गया था। वह स्थान, जहां से गवाहों ने घटना को देखा और बचाव की कोशिश की और साथ ही आरोपी व्यक्तियों के प्रवेश और निकास का स्थान भी प्रदर्श क-17 में दिखाया गया है। पी.डब्ल्यू.1, जिसे घटना के स्थान की स्थलाकृति के बिंदु पर जिरह की गई है, साइट प्लान प्रदर्श.के.-17 में दिखाए गए बयान के समान बयान देता है

और दोनों के बीच कोई विरोधाभास नहीं है। यदि हम बचाव पक्ष के इस कथन की जांच करते हैं कि घटना आरोपी नत्थू के गन्ने के खेत में हुई थी, तो हम पाते हैं कि बचाव पक्ष द्वारा उपरोक्त तर्क के समर्थन में कोई सबूत पेश नहीं किया गया है, जो बचाव पक्ष के दावे को गलत ठहराता है। यह बहुत संभव है कि घातक घटना के प्रभाव में, सूचनाकर्ता (पी.डब्ल्यू.1) घटना स्थल पर कोई खून देखने में असमर्थ था, लेकिन जांच अधिकारी (पी.डब्ल्यू.6) ने एक स्पष्ट बयान दिया है कि रक्त से सनी मिट्टी उसके द्वारा घटना के स्थान से ली गई थी और वह उसके ज्ञापन को प्रदर्श क-18 के रूप में भी साबित करता है। अभियोजन पक्ष के किसी भी गवाह का कहना नहीं है कि घटना गन्ने के खेत में हुई थी और अभिलेख में मौजूद सबूतों के विश्लेषण से जो तथ्य सामने आता है, वह यह है कि वर्तमान घटना से पहले, आरोपी नत्थू के खेत से गन्ना तोड़ा गया था, लेकिन वहां ऐसी कोई घटना नहीं हुई।

25. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, हम पाते हैं कि अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य स्पष्ट करते हैं कि घटना का स्थान सूचनाकर्ता भूप सिंह के घर के दरवाजे पर था और इसके विपरीत कोई सबूत बचाव पक्ष द्वारा पेश नहीं किया गया है।

26. मकसद, जैसा कि हम कई मामलों से इकट्ठा करते हैं, प्रत्यक्ष नेत्र संबंधी साक्ष्य के मामले में पीछे की सीट लेता है और इसके पीछे कारण यह है कि यह हमेशा अभियुक्त के दिमाग में होता है कि वह कोई अपराध क्यों

कर रहा है और इतने सारे मामलों में अभियोजन पक्ष अपराध के पीछे की मानसिक स्थिति की व्याख्या करने में असमर्थ है। इस प्रकार, मकसद कभी भी अपराध करने के लिए एक अनिवार्य शर्त नहीं है। हालांकि, इस मामले के तथ्यात्मक परिदृश्य में, मकसद एफआईआर में ही बताया गया है। अभियोजन पक्ष विशिष्ट कहानी के साथ आगे आता है कि जब नत्थू के गन्ने के खेत से घास काटी गई थी, तो आरोपी व्यक्ति अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल करते हुए सूचनाकर्ता के घर पर आए और जब उसके बेटे गिरीश ने इसका विरोध किया, तो अपराध किया गया। पी.डब्ल्यू.1, जो मृतक के पिता हैं, ने अपने बयान में इसी तरह का बयान दिया है। अपनी जिरह में, पीडब्ल्यू 1 ने स्वीकार किया कि उसके और आरोपी व्यक्तियों के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। किशन वीर, बच्चन और नत्थू ने अपने बेटे को गन्ना तोड़ते हुए देखा था, लेकिन उस समय कोई विवाद नहीं हुआ।

27. पी.डब्ल्यू.6, जांच अधिकारी ने अपनी जांच में इस तथ्य की पुष्टि की है कि मृतक के भाई दिनेश द्वारा घास काटने के मुद्दे पर पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ था, जो अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करता है। इस तरह अभियोजन पक्ष ने मामले के मकसद को भी साबित कर दिया है, जैसा कि एफआईआर में उल्लेख किया गया है। इस तथ्य को बचाव पक्ष से भी समर्थन मिलता है जब आरोपी व्यक्तियों ने दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि विवाद तब उत्पन्न हुआ था जब

गिरीश और दिनेश आरोपी व्यक्तियों के खेत से गन्ना काट रहे थे।

28. विचारण न्यायालय ने वर्तमान मामले में पक्षकारों के बीच मौजूद मकसद और दुश्मनी के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की है। विद्वान राज्य के अधिवक्ता द्वारा **बिकाऊ पांडे बनाम बिहार राज्य (2003) 12 एससीसी 616** पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब प्रत्यक्ष साक्ष्य अपराध को स्थापित करता है, तो मकसद का कोई महत्व नहीं है और महत्वहीन है।

29. **अनिल राय बनाम बिहार राज्य (2001) 7 एससीसी 318** में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दुश्मनी एक दोधारी हथियार है, जो अपराध का एक मकसद हो सकता है और आरोपी व्यक्तियों के झूठे फंसाने का आधार भी हो सकता है।

30. इस बिंदु पर निर्णय की कैटेना है कि चश्मदीद गवाह के खाते पर आधारित मामले में, मकसद अपना महत्व खो देता है। **दीपक वर्मा बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2011) 10 एससीसी 129** में यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है।

"..... किसी व्यक्ति को अपराध करने का दोषी ठहराए जाने से पहले मकसद का सबूत अनिवार्य नहीं है। मकसद मन का मामला है, सबूत के माध्यम से स्थापित करना अक्सर मुश्किल नहीं होता है।

31. अभियोजन पक्ष के लिए यह पता लगाना

वांछनीय है कि चिकित्सा साक्ष्य नेत्र संबंधी साक्ष्य के अनुरूप है या नहीं। पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2 दोनों स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि आरोपी किशन वीर ने मृतक पर गोली चलाई, जो उसकी पीठ पर लगी और उसके लिए घातक साबित हुई और गोली लगने पर उसकी मृत्यु हो गई, वह भागकर घर में घुसा और वहां बरामदे (आंगन) में गिर गया।

32. पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2 अभियुक्त किशन वीर द्वारा की गई आग और मृतक को लगी चोट के संबंध में समान बयान देते हैं। पी.डब्ल्यू.2 में यह भी कहा गया है कि उसे भी लाठी से चोटें आईं, जो आरोपी बच्चन और नत्थू थे। वहीं पीडब्लू 1 में कहा गया है कि जब आरोपी व्यक्ति वहां आए तो उन्होंने उसके बेटे गिरीश को लाठी-डंडा से पीटना शुरू कर दिया और फिर आरोपी किशन वीर ने उस पर गोली चला दी। इसके अलावा, वह कहते हैं कि जब उनके बेटे पर लाठी ने हमला किया, तो उन्होंने दीवार की छाया में खुद को बचाने की कोशिश की और दीवार पर लाठी के वार किए गए। हालांकि, जांच अधिकारी पीडब्ल्यू 7 ने इस बात से इनकार किया है कि गवाह भूप सिंह ने उनसे ऐसा कोई बयान दिया था। पी.डब्ल्यू.1 में यह भी कहा गया है कि आग एक कदम की दूरी पर लगाई गई थी। जांच अधिकारी पी.डब्ल्यू.6 ने कहा है कि मृतक के फोटो नैश में, यह दिखाया गया है कि मृतक के दाहिने कंधे के पीछे आग्नेयास्त्र की चोट लगी थी। हालांकि, उन्होंने कहा कि उन्होंने उस दूरी का उल्लेख नहीं किया है जहां मृतक को निकाल दिया गया था।

33. इस बयान को अभियोजन पक्ष के मामले के प्रतिकूल नहीं माना जा सकता है क्योंकि पीडब्ल्यू 1 ने स्पष्ट बयान दिया है कि आग एक कदम की दूरी से बनाई गई थी। उल्लेखनीय है कि मृतक को लाठी से कोई चोट नहीं आई है, बल्कि केवल एक गोली लगी है, जो आरोपी किशन वीर के कारण हुई थी। यद्यपि अन्य दो सह-अभियुक्तों पर लाठियां थीं और वही स्थिति हम पीडब्ल्यू 1 के बयान के संबंध में पाते हैं, जहां उन्हें दंड0प्र0सं0 की धारा 161 के तहत उनके बयान के साथ विरोधाभास दिया गया है और हम यह भी ध्यान देते हैं कि उपरोक्त विरोधाभास भी अभियोजन के मामले को गलत नहीं ठहराता है।

34. पूर्वोक्त संदर्भ में, चिकित्सा साक्ष्य, यदि जांच की जाती है, तो कहता है कि मृतक को केवल एक चोट लगी थी और वह उसके दाहिने कंधे पर बन्दूक प्रवेश घाव था जिसमें कालापन मौजूद था और पसलियां टूट गई थीं और घाव से कुल 288 छर्रे बरामद किए गए थे। शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 के रूप में साबित करते हुए, डॉक्टर (पी.डब्ल्यू.3) ने कहा कि मृत्यु एंटीमॉर्टम बन्दूक की चोट के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई है। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि घाव पर कालापन मिलना इस तथ्य का प्रमाण है कि आग को करीब से गोली मार दी गई थी। पी.डब्ल्यू.3 का कहना है कि अगर आग एक या दो फीट की दूरी से लगाई जाती तो कालापन हो सकता था। इस राय की पुष्टि पीडब्ल्यू 1 की गवाही से होती है, जो कहता है कि आग एक कदम

की दूरी से बनाई गई थी। यह सच है कि पी.डब्ल्यू.3 में कहा गया है कि मृतक के शरीर पर लाठी या डंडा की कोई चोट नहीं पाई गई थी और अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने इस बिंदु पर प्रकाश डालते हुए तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के अनुसार, मृतक को लाठी और डंडा की चोटें भी लगी थीं, लेकिन चिकित्सा साक्ष्य इसके विपरीत बोलते हैं, लेकिन हमें इस संबंध में कोई भौतिक विरोधाभास नहीं मिलता है। पीडब्ल्यू-1 ने बताया है कि मृतक पर लाठी से भी हमला किया गया था और किसी भी तरह वह अपनी ऊंचाई से ऊंची दीवार की छाया में छिपकर उसे लाठी के वार से बचाने में सफल रहा। यह सच है कि पीडब्ल्यू 2 में कहा गया है कि मृतक गिरीश को भी लाठी से चोटें आई थीं, लेकिन उसके बयान में विशिष्ट बयान मिलता है कि मृतक को आरोपी किशन वीर ने गोली मार दी थी और उसकी मृत्यु हो गई थी। मृतक पर लाठी वार के संबंध में पी.डब्ल्यू.2 के बयान को केवल एक अतिरंजित बयान के रूप में लिया जा सकता है, जो नगण्य है क्योंकि देहाती गवाहों में स्थिति को अतिरंजित करने की सामान्य प्रवृत्ति होती है, लेकिन यह उनकी पूरी गवाही को अविश्वसनीय नहीं बनाता है। अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए नेत्र संबंधी साक्ष्य में कोई विरोधाभास नहीं है कि मृतक को बन्दूक की चोट लगी थी, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई और चिकित्सा साक्ष्य इसकी पुष्टि करते हैं।

35. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम छोटे लाल, एआईआर 2011 सुप्रीम कोर्ट 697 और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कृष्ण मास्टर, 2010 (5)

एलजे 423 (सुप्रीम कोर्ट) में देहाती चश्मदीद गवाह और अनपढ़ ग्रामीण गवाह के साक्ष्य की सराहना के संबंध में प्रख्यापित सिद्धांत इस मामले के तथ्यों में बहुत अच्छी तरह से लागू होता है, जिसका अर्थ है कि देहाती प्रत्यक्षदर्शी के मामले में, न्यायालय को हमेशा उसकी ग्रामीण पृष्ठभूमि और उस परिदृश्य को ध्यान में रखना चाहिए जिसमें घटना हुई थी और उसे तर्कसंगत कोण से साक्ष्य की सराहना नहीं करनी चाहिए और तकनीकी आधार पर उसके अन्यथा सत्य संस्करण को बदनाम नहीं करना चाहिए। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जहां हत्या के देहाती चश्मदीद गवाह को कई दिनों तक भीषण जिरह के अधीन किया गया था, उसके साक्ष्य में विसंगतियां होना तय है और उन्हें अनुपात से अधिक नहीं उड़ाया जाना चाहिए। न्यायालय को इस पहलू पर भी विचार करना चाहिए कि इस तरह के देहाती चश्मदीद गवाह से इस तरह की सटीकता की उम्मीद नहीं की जा सकती है कि वह घटना को कितनी दूरी/दिशा से देखता है और घटना का विवरण कुछ ही मिनटों में हुआ था और उसके साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता है।

36. पी.डब्ल्यू.2, इस मामले में, एक दिन में जिरह नहीं की गई है और बाद की तारीखों पर भी बुलाया गया है जैसा कि मामले के अभिलेख से प्रकट होता है। यह हमारे लिए उचित है कि इस मामले में चश्मदीद गवाहों के नेत्र संबंधी संस्करण को उपरोक्त कानूनी सिद्धांत के प्रकाश में लिया जाना चाहिए।

37. इसके अलावा, हम गंगाधर बेहरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य, (2002) 8 एससीसी

381 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकते हैं। जिसमें यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है।

"विशेष भौतिक गवाह या विशेष भौतिक की असत्यता इसे शुरू से अंत तक बर्बाद नहीं करेगी। कहावत "ऊनो में झूठ, सर्वव्यापी में झूठ" का भारत में कोई अनुप्रयोग नहीं है और गवाहों को झूठा नहीं कहा जा सकता है। कहावत "ऊनो में फाल्सस, ओम्निबस में फाल्सस" को सामान्य स्वीकृति नहीं मिली है और न ही यह कहावत कानून के शासन की स्थिति पर कब्जा करने के लिए आई है। यह केवल सावधानी का नियम है। इसका मतलब यह है कि ऐसे मामलों में गवाही की अवहेलना की जा सकती है, न कि इसकी अवहेलना की जानी चाहिए। सिद्धांत में केवल साक्ष्य के वजन का सवाल शामिल है जिसे एक न्यायालय परिस्थितियों के किसी दिए गए सेट में लागू कर सकता है, लेकिन यह वह नहीं है जिसे "साक्ष्य का एक अनिवार्य नियम" कहा जा सकता है। (देखें निसार अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [एआईआर 1957 एससी 366: 1957 सीआरआई एलजे 550]।

38. पी.डब्ल्यू.2 भूरे, घायल गवाह है। 26.7.2002 को पी.डब्ल्यू.8 द्वारा उसकी चिकित्सा जांच भी की गई है। उन्होंने अपने

बयान में कहा कि जब वह अपना बचाव करने की कोशिश कर रहे थे, तो उन्हें लाठी चोटें भी आईं और खून बह रहा था और आरोपी बच्चन और नत्थू लाठी और डंडा खा रहे थे। पी.डब्ल्यू.1 इस तथ्य की पुष्टि करता है कि घटना में, भूरे को लाठी चोटें आईं और उनके दाहिने हाथ से खून बह रहा था। पी.डब्ल्यू.8 घायल भूरे की चोट रिपोर्ट को प्रदर्श.क-21 साबित करता है। उन्हें कलाई के जोड़ के ऊपर 2 सेमी x 5 सेमी x मांसपेशियों में गहरा 8 सेमी का घाव मिला है और चोट बाएं हाथ के ऊपरी हिस्से के 1/3 हिस्से में पाई गई थी। चोट सरल और ताजा थी। यह किसी कठोर और कुंद वस्तु के कारण हो सकता है। चिकित्सा परीक्षा 25-7-2002 को रात्रि 1953 बजे अभिनिर्धारित की गई थी।

यहां यह उल्लेख करना उचित है कि घायल भूरे की एफआईआर दर्ज करने के समय पीडब्ल्यू-4 द्वारा तैयार किए गए चोट पत्र (चिट्ठी मजरूबी) दिनांक 25-7-2002, प्रदर्श-केए-5 के आधार पर सी.एच.सी., बिसौली में चिकित्सा जांच की गई है।

39. पूर्वोक्त साक्ष्य की जांच हमें तार्किक निष्कर्ष पर ले जाती है कि अभियोजन पक्ष का मामला पूरी तरह से चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित है।

40. अभियोजन पक्ष को अक्सर किसी भी आपराधिक गतिविधि के बारे में स्वतंत्र गवाहों के गैर उत्पादन के रूप में एक चुनौती का सामना करना पड़ता है। इस संबंध में अपीलकर्तागण की याचिका का जवाब देते हुए, विद्वान एजीए ने जोरदार ढंग से कहा है कि

हालांकि घटना के समय गांव के कई व्यक्ति मौजूद थे, अभियोजन पक्ष उन सभी को पेश करने के लिए बाध्य नहीं था। एफआईआर में ही बताया गया है कि घटना के समय ग्रामीण भूरे, महिंद्रा और हरपाल वहां पहुंचे और आरोपियों को उकसाया। पीडब्ल्यू-1 और पीडब्ल्यू-2 द्वारा बताया गया कि घटना के दौरान पीडब्ल्यू-2 को भी लाठी के प्रयोग से चोट लगी थी। पीडब्ल्यू-1 ने अपनी जिरह में स्वीकार किया कि सभी गवाह उसके परिवार और जाति के हैं। गवाह हरपाल महिंद्रा का सगा भाई है और भूरे उसके परिवार का सदस्य है। आरोप प्रदर्श क-20 पर एक नज़र डालने के लिए, हम पाते हैं कि कई गवाहों को घटना के नेत्र गवाह के रूप में नामित किया गया है जैसे सुरनाम, दिनेश, महेश, हरपाल, भूरे, श्रीमती श्रीदेवी, ब्रह्मदेवी, सुखदेई आदि। उपरोक्त गवाहों में से एक घायल भूरे से सूचनाकर्ता पीडब्ल्यू-1 भूप सिंह के अलावा पीडब्ल्यू-2 के रूप में पूछताछ की गई है।

41. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उत्पन्न विवाद का उत्तर **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एस रायप्पा और अन्य (2006) 4 एससीसी 512** में पाया गया, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक विचारण के कई पहलुओं की जांच की थी और इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया था कि स्वतंत्र गवाह अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही देने की उपेक्षा क्यों करते हैं और किन परिस्थितियों में झूठे आरोप की संभावना से इंकार किया जा सकता है। यह भी स्पष्ट किया गया था कि इतने सारे मामलों में अभियोजन पक्ष गवाहों पर भरोसा करने के लिए क्यों बाध्य है, जो

मृतक (पीड़ित) के रिश्तेदार हैं। यह पैरा 6 और 7 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था।

"6.....अब तक यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि एक गवाह की गवाही अन्यथा प्रेरणादायक विश्वास को इस आधार पर नहीं छोड़ा जा सकता है कि वह मृतक का रिश्तेदार होने के नाते एक इच्छुक गवाह है। एक करीबी रिश्तेदार जो एक बहुत ही स्वाभाविक गवाह है, उसे एक इच्छुक गवाह नहीं कहा जा सकता है। इच्छुक शब्द यह बताता है कि संबंधित व्यक्ति को आरोपी व्यक्ति को किसी न किसी तरह से या किसी अन्य कारण से दोषी ठहराए जाने में कुछ प्रत्यक्ष रुचि होनी चाहिए, या तो दुश्मनी या कुछ अन्य कारणों से।

7. इसके विपरीत, अब यह लगभग एक फैशन बन गया है कि जनता विभिन्न कारणों से विशेष रूप से आपराधिक मामलों में न्यायालय के सामने पेश होने और गवाही देने के लिए अनिच्छुक है। आपराधिक मामले आने वाले वर्षों तक घसीटे जाते हैं और गवाहों को बहुत परेशान किया जाता है। उन्हें धमकाया जा रहा है, डराया जा रहा है और सबसे बड़ी बात यह है कि उनसे लंबी जिरह की जाती है। ऐसी स्थिति में, अभियोजन पक्ष के लिए उपलब्ध एकमात्र

स्वाभाविक गवाह रिश्तेदार गवाह होगा। रिश्तेदार गवाह जरूरी नहीं कि एक इच्छुक गवाह हो। दूसरी ओर, मृतक के करीबी रिश्तेदार होने के नाते वे सच बताकर असली अपराधी पर मुकदमा चलाने की कोशिश करेंगे। इस बात का कोई कारण नहीं है कि कोई करीबी रिश्तेदार किसी के खिलाफ झूठा बयान क्यों देगा और असली अपराधी को बिना सजा के बचने के लिए स्क्रीन करेगा। एकमात्र आवश्यकता यह है कि रिश्तेदार गवाहों की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। उच्च न्यायालय ने पीडब्ल्यू 1 और पीडब्ल्यू 2 की गवाही को एकमात्र आधार पर खारिज कर दिया है कि वे मृतक के रिश्तेदार होने के नाते इच्छुक गवाह हैं।

42. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, पीडब्ल्यू 2 भूरे घायल गवाह है। निस्संदेह, एक घायल गवाह की गवाही को हमेशा एक विशेष साक्ष्य का दर्जा दिया जाता है।

43. **शिवलिंगप्पा कल्लायनप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 सप्लीमेंट (3) एससीसी 235** में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि घायल गवाह के बयान पर भरोसा किया जाना चाहिए जब तक कि प्रमुख विरोधाभासों और विसंगतियों के आधार पर उसके साक्ष्य की अस्वीकृति के लिए मजबूत आधार न हों, इस कारण से कि घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति स्थापित होती है, यदि यह

साबित हो जाता है कि उसे उक्त घटना के दौरान चोट लगी थी।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशन चंद्र और अन्य, (2004) 7 एससीसी 629 में कानून की इसी तरह की उक्ति को दोहराया गया था, यह देखते हुए कि मुहर लगे गवाह की गवाही की अपनी प्रासंगिकता और प्रभावकारिता है। तथ्य यह है कि गवाह को घटना के समय और स्थान पर चोटें आईं, उसकी गवाही का समर्थन करता है कि वह घटना के दौरान मौजूद था। यदि घायल गवाह लंबी जिरह के अधीन है और उसकी गवाही को खारिज करने के लिए कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है, तो इस पर भरोसा किया जाना चाहिए [कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य (2006) 12 एससीसी 459 के अनुसार]।

44. हम दोहरा सकते हैं कि घायल गवाह पी.डब्ल्यू.2 भूरे पर विचारण न्यायालय द्वारा सही भरोसा किया गया है और उसे हुई चोटें अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की एक अंतर्निहित गारंटी है और इसलिए भी कि एक घायल व्यक्ति होने के नाते, वह अपने वास्तविक हमलावरों को केवल अपराध के कमीशन के लिए किसी तीसरे पक्ष को झूठा फंसाने के लिए दंडित नहीं होने देना चाहेगा। हमें पीडब्ल्यू 2 की गवाही में कोई बड़ा विरोधाभास या विसंगतियां भी नहीं मिलती हैं।

45. यह भी साक्ष्य के कानून विशेष रूप से, गवाहों की संख्या किसी दिए गए तथ्य के सबूत में जांच की जरूरत नहीं है कि उल्लेख करने के लिए भी प्रासंगिक है, के रूप में

साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 की भाषा से स्पष्ट है। **चाको बनाम केरल राज्य, (2004) 12 एससीसी 269** में यह इतना स्पष्ट किया गया था कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 134 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मामले को स्थापित करने के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या आवश्यक नहीं है। दोषसिद्धि एक गवाह की गवाही पर आधारित हो सकती है यदि वह पूरी तरह से विश्वसनीय है। पुष्टि आवश्यक हो सकती है जब वह केवल आंशिक रूप से विश्वसनीय हो। यदि सबूत बेदाग हैं और सभी संभावित आलोचनाओं से परे हैं और न्यायालय संतुष्ट है कि गवाह सच बोल रहा था, तो केवल उसके साक्ष्य पर ही दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है।

46. वर्तमान मामले में, हम दो गवाह हैं, जो एक दूसरे के साथ पुष्टि और विश्वसनीय और विश्वसनीय सबूत के प्रकाश में, अभियोजन पक्ष एक स्वतंत्र गवाह के रूप में किसी भी अन्य गवाह को पेश करने के लिए दायित्व के तहत नहीं था।

47. इस संदर्भ में, हम **जयबालन बनाम केन्द्रशासित राज्य पांडिचेरी, (2010) 1 एससीसी 199** को उद्धृत कर सकते हैं जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पास यह विचार करने का अवसर था कि क्या इच्छुक गवाह के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है और न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है।

"23. हमारा विचार है कि ऐसे मामलों में जहां न्यायालय को

इच्छुक गवाहों के साक्ष्य से निपटने के लिए कहा जाता है, ऐसे गवाहों के साक्ष्य की सराहना करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए। न्यायालय को इच्छुक गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य की सराहना करने और स्वीकार करने में सतर्क रहना चाहिए, लेकिन न्यायालय को ऐसे सबूतों पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास निरंतरता की तलाश करना होना चाहिए। एक गवाह के साक्ष्य को केवल इसलिए नजरअंदाज या बाहर नहीं फेंका जा सकता है क्योंकि यह उस व्यक्ति के मुंह से आता है जो पीड़ित से निकटता से संबंधित है।

राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2010 एससी 917 में इसी तरह का दृष्टिकोण लेते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए कहा कि मृतक का करीबी रिश्तेदार अपने आप में एक इच्छुक गवाह नहीं बनता है। एक इच्छुक गवाह के साक्ष्य की सराहना से संबंधित कानून अच्छी तरह से तय है, जिसके अनुसार एक इच्छुक गवाह के संस्करण को बोर्ड पर नहीं फेंका जा सकता है, लेकिन इसे स्वीकार करने से पहले सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए।

48. धारा 313 (5) दं0प्र0सं0 के तहत आरोपी व्यक्तियों द्वारा दायर लिखित बयान में यह कहा गया है कि घटना के समय, जो गन्ने के

खेत में हुआ था जब गिरीश और दिनेश गन्ने की फसल काट रहे थे और आरोपी बच्चन द्वारा इसका विरोध किया गया था, गिरीश और दिनेश के अन्य साथी वहां आए और उन्होंने आरोपी नाथू और बच्चन सिंह पर लाठी और डंडा से हमला किया। किशन वीर उस समय मौजूद नहीं था और जैसे ही वह आया, दिनेश ने उस पर गोली चला दी, जो दुर्भाग्य से गिरीश को लगी, जिसकी गन्ने के खेत में मौत हो गई। यह आगे कहा गया है कि आरोपी व्यक्तियों के पास कोई लाठी नहीं थी और भूरे को कोई लाठी चोट नहीं हुई थी। हालांकि आरोपी पक्ष की ओर से रिपोर्ट पुलिस ने दर्ज नहीं कराई और उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया। यह आगे कहा गया है कि हालांकि आरोपी व्यक्तियों नत्थू और बच्चन सिंह की मेडिकल जांच की गई थी, लेकिन पुलिस ने एक गुप्त उद्देश्य के साथ, उचित तरीके से मेडिकल रिपोर्ट तैयार नहीं की।

49. पी.डब्ल्यू-8 ने अपने बयान में कहा है कि 26.7.2002 को, जब घायल बच्चन सिंह और नत्थू को होमगार्ड अतर सिंह द्वारा सी.एच.सी., बिसौली लाया गया था, तो उन्होंने उनकी चिकित्सा जांच की थी और उन्होंने उनकी चोट रिपोर्ट प्रदर्श.के.-22 और प्रदर्श.के.-23 साबित की है। उन्होंने कहा कि बच्चन लाल पुत्र नाथू के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

1. यू-साइड सिर पर 04 सेमी x 0.5 सेमी x खोपड़ी गहरा घाव जो बाईं आंख की भौंह से 05 सेमी ऊपर है। मार्जिन लैकरेटेड, इरेगलर इनवर्टेड। स्पर्श पर खून बह रहा है।

2. दाहिने कंधे पर 09 सेमी x 2 सेमी का संलयन जो दाहिने कंधे के जोड़ पर 02 सेमी औसत दर्ज का है। आकार बेलनाकार है। तिरछी कोमलता मौजूद है। चोट को निगरानी में रखा जाता है।

डॉक्टर की राय के अनुसार, सभी चोटें किसी कुंद और कठोर वस्तु के कारण होती हैं और चोट संख्या 2 को छोड़कर प्रकृति में सरल होती हैं, जिसे निगरानी में रखा जाता है और किसी भी हड्डी की चोट के लिए दाहिने कंधे के जोड़ के प्रदर्श-रे की सलाह दी जाती है।

50. इसी प्रकार नत्थू पुत्र बृजपाल सिंह के शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

1. दाहिनी ओर के सिर पर 02 सेमी x 0.5 सेमी x खोपड़ी गहरा घाव जो दाईं आंख की भौंह से 07 सेमी ऊपर है। मार्जिन लैकरेटेड, इरेगलर इनवर्टेड। स्पर्श पर खून बह रहा है।

डॉक्टर की राय के अनुसार, चोट किसी कुंद और कठोर वस्तु के कारण होती है और प्रकृति में सरल होती है। अवधि ताजा है।

पीडब्ल्यू-8 ने आगे यह राय दी है कि चोटें दिनांक 25-7-2002 को सायं 7:15 बजे लाठी अथवा किसी कठोर वस्तु के कारण लगी होंगी।

51. हमने इस तथ्य पर विचार किया है कि वर्तमान घटना की तारीख और समय 25.07.2002 को शाम 7:15 बजे कहा जाता है और उसी को डॉक्टर द्वारा भी माना गया है

और इसलिए चिकित्सा साक्ष्य भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि उपरोक्त दो आरोपी व्यक्तियों को चोटें इस मामले की घटना में दी गई हो सकती हैं।

52. इस संदर्भ में, पीडब्ल्यू 2, घायल गवाह, जो गवाही देता है कि जब वह खुद का बचाव करने की कोशिश कर रहा था, तो उसे लाठी चोटें भी आईं। उन्होंने नत्थू और बच्चन पर अपने बचाव में लाठी और डंडा का भी इस्तेमाल किया था। दोनों पक्ष लाठी का प्रयोग कर रहे थे। गिरीश के पास डंडा था और आरोपी किशन वीर तमंचा पकड़े हुए था और दोनों एक दूसरे पर हमला कर रहे थे।

53. पीडब्ल्यू 1 में यह भी कहा गया है कि जब गवाह आरोपी व्यक्तियों को शांत करने की कोशिश कर रहे थे, तो आरोपी बच्चन द्वारा भूरे पर लाठी और डंडा से हमला किया गया था। उसने स्वीकार किया है कि जब उन्होंने अपने बचाव में लाठी का इस्तेमाल किया तो आरोपी नाथू और बच्चन को चोटें आईं। इस गवाह का कहना है कि मृतक गिरीश ने अपना बचाव करने का कोई प्रयास नहीं किया, बल्कि दिनेश, हरपाल, महिंद्रा और भूरे द्वारा लाठी का इस्तेमाल किया गया और उसके द्वारा भी। उनके द्वारा लाठी के कुल 10 या 12 वार किए गए जिसके कारण आरोपी व्यक्ति भी घायल हो गए। हालांकि, हरपाल, महेंद्र और खुद को कोई चोट नहीं आई, लेकिन दिनेश की चोटें दिखाई नहीं दे रही थीं और भूरे भी घायल हो गए थे और चोट से खून बह रहा था। वह यह भी स्वीकार करते हैं कि जिस लाठी के इस्तेमाल से उन्होंने अपना बचाव किया है, वह

अभी भी उनके पास है। उसने लाठी फेंककर उसका इस्तेमाल किया था।

54. जांच अधिकारी पीडब्ल्यू 6 ने कहा है कि आरोपी नत्थू और बच्चन को एक ही रात 11:00 बजे गिरफ्तार किया गया था और अस्पताल में उनकी चिकित्सकीय जांच की गई थी।

55. पी.डब्ल्यू.8 के अलावा, जिसने आरोपी व्यक्तियों नाथू और बच्चन की चिकित्सकीय जांच की, डी.डब्ल्यू.1 और डी.डब्ल्यू.2 के बयान भी अभिलेख में हैं। अवनीश सिंह, डिप्टी जेलर ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि 26.7.2002 को आरोपी नत्थू और बच्चन को वर्तमान मामले के संबंध में जिला जेल में भर्ती कराया गया था। विचाराधीन रजिस्टर में इसका उल्लेख किया गया था, जिसे उन्होंने न्यायालय के समक्ष पेश किया था कि उनकी सीएचसी बिसौली में चिकित्सकीय जांच की गई थी। इसी प्रकार, डी.डब्ल्यू.2 कृष्ण मुरारी सिंह, फार्मासिस्ट, जिला जेल, बदायूं ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि विचाराधीन और दोषी आरोपी व्यक्तियों से संबंधित चोट रजिस्टर में, सीएचसी, बिसौली में बच्चन लाल और नत्थू की चिकित्सा जांच का उल्लेख है।

56. पूर्वोक्त साक्ष्य के प्रकाश में, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष एक विशिष्ट मामले के साथ आता है कि जब आरोपी व्यक्तियों ने सूचनाकर्ता के बेटे पर हमला किया, तो सूचनाकर्ता और उसके गवाहों ने खुद का बचाव करने की कोशिश करते हुए आरोपी व्यक्तियों पर लाठी और डंडा के साथ बल का इस्तेमाल

किया और उस लड़ाई में, आरोपी व्यक्तियों नत्थू और बच्चन को चोटें आईं। पुलिस के कहने पर सरकारी डाक्टर द्वारा उनकी चिकित्सीय जांच की गई और पीडब्लू 8 में कहा गया है कि दोनों अभियुक्तों को साधारण और ताजा चोटें आईं और हो सकता है कि यह 25-7-2002 को सायं 7.15 बजे लगी हो। बच्चन लाल और नत्थू की चिकित्सा जांच क्रमशः 26.7.2002 को दोपहर 12:30 बजे और 12:50 बजे अभिनिर्धारित की गई थी।

57. इसलिए, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष आरोपी व्यक्तियों बच्चन लाल और नत्थू द्वारा बनाए गए चोटों के मुद्दे पर चुप नहीं है और न ही इस तथ्य को अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा छिपाया गया है, बल्कि यह स्पष्ट रूप से सबूतों से पुष्ट है कि दोनों आरोपी व्यक्तियों को चोटें कैसे लगीं।

58. इस मामले में घटना का क्रम जो सामने आया, वह यह है कि जब आरोपी किशन वीर देसी पिस्तौल लेकर सह-आरोपी नत्थू और बच्चन के साथ लाठी-डंडा लेकर सूचनाकर्ता के घर के ऊपर आया तो आरोपी किशन वीर द्वारा मृतक पर फायर कर दिया गया और वह नीचे गिर गया। सूचनाकर्ता के साथ भूरे, महेंद्र, हर पाल, दिनेश आदि ने बचाव का प्रयास किया और इस बीच आरोपी बच्चन ने घायल भूरे पर भी लाठी लगाई और फिर सूचनाकर्ता पक्ष ने अपना बचाव करने के लिए आरोपियों पर लाठी का इस्तेमाल किया और सह-आरोपी नत्थू और बच्चन घायल हो गए। इस क्रम को पी.डब्ल्यू.1 ने अपने बयान में रिवायत किया है और चश्मदीद गवाह/घायल पी.डब्ल्यू.2 भूरे

द्वारा इसकी अच्छी तरह से पुष्टि की गई है। इस पृष्ठभूमि में, सूचनाकर्ता और उसके साथियों को निश्चित रूप से एक उचित आशंका थी कि यदि वे अपना बचाव नहीं करते हैं, तो उन्हें उन अभियुक्तों द्वारा भी चोट पहुंचाई जा सकती है, जिनके पास देसी पिस्तौल, लाठी और डंडा थे।

59. भारतीय दंड संहिता की धारा 96 के रूप में विशिष्ट प्रावधान प्रदान करता है "कुछ भी अपराध नहीं है जो निजी रक्षा के अधिकार के प्रयोग में किया जाता है।

इसी तरह, भारतीय दंड संहिता की धारा 97 में यह भी प्रावधान है कि "प्रत्येक व्यक्ति को, धारा 99 में निहित प्रतिबंधों के अधीन, - (पहला) - अपने शरीर और किसी अन्य व्यक्ति के शरीर को, मानव शरीर को प्रभावित करने वाले किसी भी अपराध के खिलाफ बचाव करने का अधिकार है.....

तथापि, भारतीय दंड संहिता की धारा 99 को यहां संदर्भित किया जाना अपेक्षित है, जिसमें निम्नानुसार प्रावधान है।

"99. - ऐसे कार्य जिनके विरुद्ध निजी रक्षा का कोई अधिकार नहीं है- किसी ऐसे कार्य के विरुद्ध निजी रक्षा का कोई अधिकार नहीं है, जो युक्तियुक्त रूप से मृत्यु की आशंका या गंभीर चोट का कारण नहीं बनता है, यदि ऐसा किया जाता है, या करने का प्रयास किया जाता है, तो किसी लोक सेवक द्वारा अपने पद के रंग के तहत

सद्भाव से कार्य करता है, हालांकि वह कार्य, कानून द्वारा सख्ती से उचित नहीं हो सकता है।

किसी ऐसे कार्य के विरुद्ध निजी रक्षा का कोई अधिकार नहीं है, जो युक्तियुक्त रूप से मृत्यु की आशंका या गंभीर चोट का कारण नहीं बनता है, यदि ऐसा किया जाता है, या करने का प्रयास किया जाता है, तो किसी लोक सेवक के निर्देश से, जो उसके पद के रंग के तहत सद्भाव से कार्य करता है, हालांकि वह निर्देश कानून द्वारा सख्ती से उचित नहीं हो सकता है।

उन मामलों में निजी रक्षा का कोई अधिकार नहीं है जिनमें सार्वजनिक अधिकारियों के संरक्षण का सहारा लेने का समय है।

वह सीमा जिस तक अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है - निजी रक्षा का अधिकार किसी भी स्थिति में रक्षा के उद्देश्य के लिए आवश्यक नुकसान से अधिक नुकसान पहुंचाने तक विस्तारित नहीं है।

स्पष्टीकरण 1- कोई व्यक्ति लोक सेवक द्वारा किए गए या किए जाने के प्रयास के विरुद्ध निजी रक्षा के अधिकार से वंचित नहीं है, जब तक कि वह यह नहीं जानता या विश्वास करने का कारण न हो कि कार्य करने वाला व्यक्ति ऐसा लोक सेवक है।

स्पष्टीकरण 2. - कोई व्यक्ति लोक सेवक के निर्देश से किए गए या किए जाने के प्रयास किए गए कार्य के विरुद्ध निजी रक्षा के अधिकार से वंचित नहीं है, जब तक कि वह यह नहीं जानता या विश्वास करने का कारण न हो

कि कार्य करने वाला व्यक्ति ऐसे निदेश द्वारा कार्य कर रहा है, या जब तक कि ऐसा व्यक्ति उस प्राधिकारी को नहीं बताता जिसके अधीन वह कार्य करता है, या यदि उसके पास लिखित रूप में अधिकार है, जब तक कि वह इस तरह के अधिकार का उत्पादन नहीं करता है, यदि मांग की जाती है।

60. मामले के तथ्यों की बेहतर समझ के लिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 101 और 102 का अवलोकन भी वांछनीय है। जोड़ी अनुभाग निम्नानुसार प्रदान करते हैं।

101. जब ऐसा अधिकार मृत्यु के अलावा किसी अन्य नुकसान का कारण बनता है - यदि अपराध पिछले पूर्ववर्ती खंड में उल्लिखित किसी भी विवरण का नहीं है, तो शरीर की निजी रक्षा का अधिकार हमलावर को मृत्यु के स्वैच्छिक कारण तक विस्तारित नहीं होता है, लेकिन धारा 99 में उल्लिखित प्रतिबंधों के तहत विस्तारित होता है, मौत के अलावा किसी भी नुकसान के हमलावर को स्वैच्छिक कारण के लिए।

102. शरीर की निजी रक्षा के अधिकार का प्रारंभ और निरन्तरता—शरीर की निजी रक्षा का अधिकार जैसे ही अपराध करने के प्रयास या धमकी से शरीर के लिए खतरे की युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न होती है, यद्यपि अपराध नहीं किया गया हो, प्रारंभ हो जाता है; और यह तब तक जारी रहता है जब तक शरीर को खतरे की ऐसी आशंका बनी रहती है।

61. इसलिए, हम अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क से सहमत

नहीं हैं कि आरोपी व्यक्तियों नत्थू और बच्चन द्वारा की गई चोटें अस्पष्ट रहीं और अभियोजन पक्ष दोनों अभियुक्तों द्वारा बनाए गए चोटों के लिए कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण देने में विफल रहा है।

62. अब, यदि हम मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लौटते हैं, तो हम अभिलेख पर पेश किए गए सबूतों से इकट्ठा करते हैं कि सूचनाकर्ता पक्ष ने निजी बचाव के अपने अधिकार का उपयोग करना शुरू कर दिया जब मृतक पर एक गोली चलाई गई और दो आरोपी व्यक्ति अपने हाथों में लाठी और डंडा लेकर आक्रामक थे। यह उल्लेख करना बहुत ही प्रासंगिक है कि जब सूचनाकर्ता का बेटा बंदूक की गोली लगने के बाद नीचे गिर गया, तो सूचनाकर्ता पक्ष के लिए यह बहुत स्वाभाविक और संभावित था कि आरोपी ने फिर से गोली चलाई होगी, जो किसी के लिए घातक हो सकता है और उन्हें उचित आशंका भी थी कि लाठी और डंडा के उपयोग से, वे सूचनाकर्ता पक्ष के किसी भी व्यक्ति को चोट पहुंचा सकते थे और इस उचित आशंका ने सूचनाकर्ता और उसके साथियों को अपना बचाव करने के लिए मजबूर किया और निजी बचाव के अभ्यास में, उन्होंने आरोपी व्यक्तियों बच्चन और नत्थू को मामूली चोटें पहुंचाईं। यह भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि घायल भूरे को भी इस घटना में मामूली चोटें आई हैं और इस प्रकार हम पाते हैं कि निजी रक्षा के अधिकार का प्रयोग सूचनाकर्ता पक्ष द्वारा कभी भी पार नहीं किया गया था और उन्होंने वास्तव में निजी रक्षा के अपने अधिकार का इस्तेमाल किया ताकि जैसे ही

उनके मन में शरीर को खतरे की उचित आशंका पैदा हो, वे खुद का बचाव कर सकें।

63. पी.डब्ल्यू.1 स्पष्ट शब्दों में कहता है कि जब आरोपी व्यक्ति नत्थू और बच्चन को चोटें आईं, तो सभी आरोपी व्यक्ति भाग गए। मामले के ओकुलर संस्करण में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि आरोपी व्यक्तियों का सूचनाकर्ता पक्ष द्वारा पीछा किया गया था या जब वे भाग रहे थे, तो सूचनाकर्ता पक्ष द्वारा उन पर हमला करने का कोई और प्रयास किया गया था। इस प्रकार, सूचनाकर्ता पक्ष ने, निस्संदेह, आरोपी व्यक्तियों नत्थू और बच्चन के शरीर पर चोटें पहुंचाईं, लेकिन निजी रक्षा के उनके अधिकार के प्रयोग में ऐसा किया गया, जिसे कभी पार नहीं किया गया और नियंत्रित और आवश्यक तरीके से इस्तेमाल किया गया और इस समय, हम दो आरोपी व्यक्तियों को दी गई चोटों का एक उचित और प्रशंसनीय स्पष्टीकरण पाते हैं और हम इस विचार के भी हैं कि प्रहार के लिए दो अभियुक्तों को घायल किए गए व्यक्तियों में से सूचना देने वाला पक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 96 के अंतर्गत प्रदान किए गए संरक्षण का हकदार है।

64. मामले की एफआईआर शीघ्र है। यह घटना 25.7.2002 को शाम 7:15 बजे हुई और घटना के लगभग 3 घंटे बाद उसी दिन 22:25 बजे एफआईआर दर्ज की गई।

65. एफ.आई.आर. और पंजीकरण जी.डी. को साक्ष्य में प्रदर्श.का.-3 और का-4 के रूप में

साबित किया गया है और मामले की लिखित रिपोर्ट, जिसे सूचनाकर्ता भूप सिंह ने हरीश चंद्र गुप्ता को डिकटेड किया था और बाद में उसे पढ़ा गया था, सूचनाकर्ता पी.डब्ल्यू.1 भूप सिंह द्वारा प्रदर्श.के.-1 के रूप में साबित किया गया है। इसलिए एफआईआर दर्ज करने के संबंध में परिस्थितियां स्वाभाविक और वास्तविक हैं।

66. इसलिए इस मामले में, एफआईआर अत्यंत तत्परता के साथ दर्ज की गई थी और वस्तुतः इसे दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई थी, जिससे झूठे आरोप की संभावना समाप्त हो जाती है।

67. **मेहराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1994) 5 एससीसी 188** में, एक त्वरित एफआईआर दर्ज करने के महत्व पर जोर देते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा-

"एक आपराधिक मामले में और विशेष रूप से एक हत्या के मामले में प्राथमिकी मुकदमे में नेतृत्व किए गए सबूतों की सराहना करने के उद्देश्य से एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान सबूत है। एफआईआर को शीघ्र दर्ज करने पर जोर देने का उद्देश्य उस परिस्थिति के बारे में जल्द से जल्द जानकारी प्राप्त करना है जिसमें अपराध किया गया था, जिसमें वास्तविक अपराधियों के नाम और उनके द्वारा निभाए गए हिस्से, हथियार, यदि कोई हो, इस्तेमाल किए गए हैं, और प्रत्यक्षदर्शियों के नाम, यदि कोई हो, भी शामिल हैं। एफआईआर दर्ज करने में देरी के परिणामस्वरूप अक्सर अलंकरण होता है, जो

एक बाद का प्राणी है। देरी के कारण, एफआईआर न केवल सहजता के लाभ से वंचित हो जाती है, बल्कि एक रंगीन संस्करण या अतिरंजित कहानी की शुरुआत में भी खतरा पैदा हो जाता है।

(1972) 3 एससीसी 393 में रिपोर्ट किए गए **थुलिया काली बनाम तमिलनाडु राज्य** में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की।

"..... एक आपराधिक मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमे में पेश किए गए मौखिक साक्ष्य की पुष्टि करने के उद्देश्य से साक्ष्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और मूल्यवान टुकड़ा है। रिपोर्ट के महत्व को शायद ही आरोपी के दृष्टिकोण से कम करके आंका जा सकता है।

इसी तरह, (2010) 8 एससीसी 775 में रिपोर्ट किए गए **किशन सिंह बनाम गुरपाल सिंह और अन्य** मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि "सूचनाकर्ता द्वारा ज्वलंत विवरण के साथ घटना की त्वरित और प्रारंभिक रिपोर्टिंग इसके संस्करण की सच्चाई के बारे में आश्वासन देती है। यदि एफआईआर दर्ज करने में कुछ देरी होती है, तो शिकायतकर्ता को इसके लिए स्पष्टीकरण देना होगा। निस्संदेह, एफआईआर दर्ज करने में देरी शिकायतकर्ता के मामले को असंभव नहीं बनाती है जब इस तरह की देरी को ठीक से समझाया जाता है।

68. अपीलकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रभावित किया गया है कि

अपीलकर्ता किशन वीर की ओर इशारा करने से हत्या के हथियार की कथित बरामदगी पूरी तरह से झूठी है और कथित हत्या के हथियार - देसी पिस्तौल को कभी भी फॉरेंसिक प्रयोगशाला में किसी भी जांच के लिए नहीं भेजा गया था और विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया है कि इसका इस्तेमाल अपराध के कमीशन में नहीं किया गया था और इसमें लाभ मांगा गया है। इस आधार पर भी अपीलकर्तागण का पक्ष।

69. अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि पी.डब्ल्यू.5, पी.डब्ल्यू.9 और पी.डब्ल्यू.10 अभियुक्त-अपीलकर्ता किशन वीर की ओर इशारा करते हुए हत्या के हथियार की बरामदगी के गवाह हैं और उनमें से, पी.डब्ल्यू.10 को बरामदगी का एक स्वतंत्र सार्वजनिक गवाह कहा जाता है और पी.डब्ल्यू.9 ने देसी पिस्तौल को सामग्री प्रदर्श.-1 और खोखा कारतूस को सामग्री प्रदर्श.-2 के रूप में साबित किया है।

70. आयुध अधिनियम मामले के संबंध में, एफआईआर, पंजीकरण जीडी, हत्या के हथियार की बरामदगी का स्थान और आरोप पत्र साक्ष्य में साबित हुए हैं। हालांकि, विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 25 आयुध अधिनियम के तहत आरोप से निपटने के दौरान, आक्षेपित निर्णय और आदेश में उल्लेख किया है कि पहले अभियोजन पक्ष द्वारा मुकदमा प्रॉपर्टी के विध्वंस के संबंध में एक रिपोर्ट पेश की गई थी, लेकिन बाद में मुकदमा प्रॉपर्टी को न्यायालय के समक्ष पेश किया गया था और इसे सामग्री प्रदर्श.-1 और 2 के रूप में साबित किया गया था।

71. हम यह भी पाते हैं कि मामले के जांच अधिकारी पी.डब्ल्यू.5 ने अपनी मुख्य परीक्षण में कहा है कि मुकदमा प्रॉपर्टी को 18.01.2007 को ध्वस्त कर दिया गया था और इसकी रिपोर्ट सदर मालखाना के एचसीपी 165 तेजपाल सिंह द्वारा भेजी गई है। उक्त रिपोर्ट पी.डब्ल्यू.5 द्वारा अभिलेख पर दायर की गई है, जिसका बयान 21.04.2015 को न्यायालय के समक्ष दर्ज किया गया था। हालांकि, पीडब्ल्यू 9, जिसे बाद में न्यायालय में पेश किया गया था, ने देसी पिस्तौल और खोखा कारतूस को क्रमशः सामग्री प्रदर्श.-1 और 2 के रूप में साबित किया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने इस स्थिति पर जोर दिया है और सही राय दी है कि जहां तक हत्या के हथियार की बरामदगी का संबंध है, यह अभियोजन पक्ष की कहानी को अत्यधिक संदिग्ध बनाता है।

72. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अभियोजन की मंजूरी धारा 25 आयुध अधिनियम के तहत अभियोजन शुरू करने के लिए एक अनिवार्य शर्त है, लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा भी इसे साबित नहीं किया गया था, जो आयुध अधिनियम के तहत अभियोजन मामले में एक प्रमुख संध है।

73. हम विद्वान विचारण न्यायालय से सहमत हैं कि उपरोक्त परिस्थितियों में धारा 25 आयुध अधिनियम के तहत आरोप उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ है और तदनुसार विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता किशन वीर को धारा 25 आयुध अधिनियम के तहत बरी कर दिया है।

74. उपरोक्त चर्चा, विश्लेषण और अभिलेख पर साक्ष्य की जांच के आधार पर और इस मामले को नियंत्रित करने वाले प्रासंगिक कानूनों को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता किशन वीर को धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत और अभियुक्त-अपीलकर्ता नत्थू और बच्चन को धारा 302/34 भा0दं0सं0 के तहत दोषी ठहराने में कोई कानूनी या तथ्यात्मक त्रुटि नहीं की है। अभिलेख पर साक्ष्य इस बिंदु पर स्पष्ट है कि अपराध इन दो अपीलकर्तागण द्वारा सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए किया गया था और इसलिए वे धारा 34 भा0दं0सं0 की सहायता से अपराध के लिए भी उत्तरदायी हैं क्योंकि "धारा की सही अवधारणा यह है कि यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति जानबूझकर संयुक्त रूप से कार्य करते हैं, कानून में स्थिति ठीक वैसी ही है जैसे उनमें से प्रत्येक ने इसे व्यक्तिगत रूप से स्वयं किया हो", जैसा कि **सेवा राम और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2008 एससी 682** में अभिनिर्धारित किया गया था। धारा 323/34 के तहत उपरोक्त सभी तीन आरोपियों-अपीलकर्तागण की दोषसिद्धि में भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, आरोपी-अपीलकर्ता किशन वीर को धारा 25 आयुध अधिनियम के तहत बरी कर दिया गया है। आक्षेपित निर्णय और आदेश में किसी भी कानूनी या तथ्यात्मक बिंदु पर कोई विकृति नहीं पाई जाती है और हमारे पास विद्वान विचारण न्यायालय से सहमत होने के अलावा कोई विकल्प नहीं है और इसलिए भा0दं0सं0 की धारा 302/34 के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता किशन वीर और आरोपी की दोषसिद्धि और सजा और धारा 302/34 भा0दं0सं0 के तहत दोषी ठहराया गया है और उपरोक्त सभी की सजा और

सजा धारा 323/34 के तहत तीन आरोपी-अपीलकर्ता और 25 आयुध अधिनियम के तहत किशन वीर को बरी करने की पुष्टि की जाती है।

75. पूर्वगामी चर्चाओं के आलोक में, आरोपी-अपीलकर्ता किशन वीर सिंह, नत्थू सिंह और बच्चन सिंह द्वारा दायर अपीलों में गुण-दोष का अभाव है और वे तदनुसार, **खारिज** किए जाते हैं और आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 28.03.2019 की पुष्टि की जाती है। आरोपी-अपीलकर्ता किशन वीर सिंह जेल में है, जबकि आरोपी-अपीलकर्ता नत्थू सिंह और बच्चन सिंह जमानत पर हैं। उनके जमानत बंध पत्र रद्द किए जाते हैं। शेष सजा भुगतने के लिए उन्हें तुरंत हिरासत में लिया जाए।

76. विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ इस फैसले की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को प्रेषित की जाए। इस फैसले की एक प्रति संबंधित अपील में भी रखी जाए।

(2023) 4 ILRA 1074

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,
माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,

आपराधिक अपील संख्या 6495/2017

और

आपराधिक अपील संख्या 6497/2017

राजवीर सिंह

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री कमलेश त्रिपाठी, श्री मान बहादुर सिंह, श्री कौलेश त्रिपाठी, श्री नूर मोहम्मद, श्री कल्याण सिंह, श्री एम.सी. तिवारी, श्री प्रदीप कुमार सिंह, श्री आशीष कुमार सिंह, श्री एस.के. वर्मा (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री विपिन लाल श्रीवास्तव

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.,

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 302/34 और 201 -हत्या के लिए सजा - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 313- साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 106- आजीवन कारावास - सजा के खिलाफ अपील - गजराज सिंह से उनकी बेटी की हत्या के संबंध में मिली सूचना पर वादी द्वारा एफआईआर दर्ज की गई थी - परीक्षण के दौरान पीडब्लू-1 ने कथन दिया कि उस घटना के साक्षी पीडब्लू 2, रवि, पीडब्लू 3 और संजय थे - मुकदमे के दौरान पीडब्लू 2 और पीडब्लू 3 ने पक्षद्रोही घोषित कर दिया - एफआईआर में उल्लेखित एकमात्र गवाह को विचारणीय न्यायालय में पेश नहीं किया गया - अन्य गवाह रवि को अभियोजन पक्ष ने अदालत में पेश नहीं किया - पीडब्लू 4 ने पक्षद्रोही घोषित कर दिया - मृतक की राख और जली हुई हड्डियों की बरामदगी के लिए रिकवरी मेमो पर अपीलकर्ताओं ने हस्ताक्षर नहीं किए, जिन गवाहों ने हस्ताक्षर किए थे, उन्हें अदालत में पेश नहीं किया गया - एफएसएल रिपोर्ट ने बरामद राख और जली हुई हड्डियों के स्रोत के बारे में राय नहीं दी - पीडब्लू 1, अपीलकर्ता के खिलाफ राजवीर और उसकी मृत बेटी ने आपराधिक मामले दर्ज कराए और पीडब्लू 1 ने भी उक्त अपीलकर्ता के खिलाफ मामले दर्ज कराए -डीडब्लू 1 के अनुसार, मृतक की बीमारी के कारण मृत्यु

हो गई - डीडब्लू 2 ने सिद्ध किया कि मृतक का मेडिकल पर्चा उसके क्लिनिक द्वारा जारी किया गया था, उसकी मृत्यु निर्जलीकरण के कारण हुई थी -अपीलकर्ताओं के कथन के अनुसार, अपीलकर्ता और उसकी बेटी द्वारा दर्ज कराए गए वाद में समझौता करने के लिए उन्हें झूठा फंसाया गया है - अपीलकर्ताओं की सजा का आधार परिस्थितिजन्य साक्ष्य, अनुमान था - परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी नहीं है - कोई प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं, अभियोजन पक्ष का मामला पीडब्लू-1 के बयान पर आधारित है, जो घटना का गवाह नहीं था - पीडब्लू-1 का साक्ष्य सुनी-सुनाई बात है, साक्ष्य अधिनियम के तहत इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है - पीडब्लू-1 हत्या के लिए अपीलकर्ताओं के आशय को सिद्ध नहीं कर सका - अपीलकर्ताओं ने पीडब्लू-1 के उन्हें झूठा फंसाने के आशय को सिद्ध नहीं किया - ऐसा कोई सबूत नहीं है जो अपीलकर्ताओं को मृतक की मृत्यु से जोड़ता हो - वसूली का ज्ञापन विश्वसनीय नहीं है, एसडीएम द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है, जैसा कि उनके निर्देश पर तैयार किया गया था- इसलिए अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अपने वाद को संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा। (पैरा 2, 20, 21, 22, 25, 26)

अपील स्वीकार की जाती है। (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. रविन्द्र सिंह उर्फ काकू बनाम पंजाब राज्य आपराधिक अपील संख्या 1307/2019
2. इंद्रजीत दास बनाम त्रिपुरा राज्य (आपराधिक अपील संख्या 609/2015)

3. नागेन्द्र साह बनाम बिहार राज्य (2021)
10 एससीसी में रिपोर्ट की गई

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा
प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री मान बहादुर सिंह और राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान में परीक्षण संख्या 271 वर्ष 2012 (राज्य बनाम राजवीर सिंह और अन्य) में विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश (एफ.टी.सी), कोर्ट नंबर 3, बुलंदशहर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.10.2017 के खिलाफ दो अपीले दायर की गई, जिसके द्वारा दोनों अपीलकर्ताओं को भन्द०वि० की धारा 302 के तहत 20,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी और जुर्माना का भुगतान न करने की स्थिति में उन्हें दो साल

की कैद की सजा सुनाई गई थी। अपीलकर्ताओं को अन्द०वि० की धारा-201 के तहत 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ छह महीने की कैद भी दी गई थी और जुर्माना अदा न करने पर एक साल की कैद और काटनी थी।

अभियोजन का मामला

3. अभियोजन प्रकरण के अनुसार प्रथम सूचनाकर्ता हरबीर सिंह आर्य एडवोकेट (अ०सा०-1) ने दिनांक 20.10.2011 को थाना प्रभारी, थाना-नरोरा, जनपद बुलंदशहर को

तहरीर दी थी, जिसमें कहा गया था कि उसके पुत्र लवकेश की शादी वर्ष 2009 में ग्राम-कमालपुर निवासी राजवीर की पुत्री पूजा के साथ हुई थी। चूंकि शादी की तारीख से श्रीमती पूजा ने बेटे लवकेश के साथ रहने से इनकार कर दिया, और उन्होंने दहेज निषेध अधिनियम के साथ-साथ उसके परिवार के खिलाफ रखरखाव के लिए मामला भी दर्ज कराया। दिनांक 18.10.2011 को रात्रि 9:30 बजे उन्हें गजराज सिंह पुत्र बंशी सिंह निवासी गनौरा नगली का फोन आया कि उनकी पुत्रवधू श्रीमती पूजा को उसके माता-पिता, भाई और रहीसुद्दीन ने जबरदस्ती जहर देकर मार डाला है और उसे झूठा फंसाने के लिए उन्होंने शुरु में पूजा के शव को उसके घर लाने की योजना बनाई। जब उन्हें मौका नहीं मिला तो उन्होंने पूजा के शव को जलाकर ठिकाने लगा दिया। उक्त सूचना पाकर प्रथम सूचनाकर्ता हरबीर सिंह ने इस घटना की सूचना अपने मोबाइल फोन पर एस.पी श्री आर.एस राठौर को दी थी। आगे उल्लेख किया गया कि वह आरोपी व्यक्तियों के डर से मामला दर्ज नहीं कर सका।

4. उपरोक्त सूचना प्राप्त होने के बाद राजवीर के साथ-साथ पूजा की मां और भाई के खिलाफ भी 20.10.2011 को सुबह 10:50 बजे धारा-302, 201 भ०द०वि० के तहत मामला अपराध संख्या 252 वर्ष 2011 में प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

5. जांच के दौरान, पुलिस ने घटना के स्थान का नक्शा नज़री तैयार किया जहां मृतक को जहर दिया गया था और साथ ही उस स्थान

पर जहां पूजा की राख और मृत शरीर की हड्डी बरामद की गई थी और राख और हड्डी को बरामद कर फ़र्द बरामदगी भी तैयार किया गया था और उसके बाद, घटना स्थल की मिट्टी के साथ राख और अन्य अवशेषों को भी रासायनिक जांच के लिए भेजा गया था और उसके बाद, उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, वर्तमान अपीलकर्ताओं के खिलाफ भन्द०वि० की धारा-302 और 201 के तहत दिनांक 20.01.2022 को आरोप पत्र दायर किया गया था और अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों पवन और रूपवती के खिलाफ भी 21.03.2012 को भन्द०वि० की धारा-302 और 201 के तहत संबंधित अदालत के समक्ष आरोप पत्र दायर किया गया था। अपीलकर्ताओं को 13.03.2012 को सत्र न्यायालय में और 22.07.2012 को अन्य सह- अभियुक्तों के मामले में भी सुपुर्द किया गया था। तत्पश्चात्, सत्र न्यायालय ने अभियुक्त व्यक्तियों को तलब किया और ये अभियुक्त व्यक्ति भी सत्र न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए। इसके बाद, सहायक जिला सरकारी अधिवक्ता के साथ-साथ बचाव पक्ष के अधिवक्ता को सुनने के बाद, परीक्षण संख्या 271 वर्ष 2012 में भन्द०वि० की धारा-302 सपठित धारा 34 और 201 के तहत वर्तमान अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप तय किए गए। अन्य सह-अभियुक्तों पवन और श्रीमती रूपवती के खिलाफ भी 27.01.2014 को भन्द०वि० की धारा-302 सपठित धारा 34 और 201 के तहत आरोप तय किए गए थे; आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर

सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा!

अभियोजन साक्ष्य

6. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने पहले सूचनाकर्ता हरबीर सिंह को अ०सा०-1, बुद्ध पाल सिंह को अ०सा०-2, नानक को अ०सा०-3, बिशन सिंह को अ०सा०-4, एस.आई तेजवीर सिंह को अ०सा०-5, एस.आई नरेश कुमार (विवेचनाधिकारी) को अ०सा०-6 के रूप में पेश किया और दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में तहरीरी रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) चिक प्राथमिकी (प्रदर्श क-2), जीडी (प्रदर्श क-3), नक्शा नज़री जहां पूजा को जहर दिया गया था (प्रदर्श क-4)। नक्शा नज़री जहां पूजा के मृत शरीर की राख बरामद हुई (प्रदर्श क-5), राख की बरामदगी का ज़ापन और पूजा के शरीर की हड्डी (प्रदर्श क-6), पेश किया। परीक्षण संख्या 271 वर्ष 2012 में आरोपी अपीलकर्ताओं राजवीर और रहीसुद्दीन के खिलाफ आरोप पत्र नंबर 01 वर्ष 2012 (प्रदर्श क-7), सह-आरोपी पवन और श्रीमती रूपवती (सत्र परीक्षण संख्या 555 वर्ष 2012 के आरोपी) के खिलाफ 2012 की आरोप पत्र नंबर 01 ए (प्रदर्श क-8) और विधि विज्ञान प्रयोगशाला (पेपर नंबर 19 ए) की रिपोर्ट जिसमें हड्डी और राख के बारे में कोई राय नहीं दिखाई गई है, पेश किया। अभियोजन पक्ष ने इस बचाव (?) को 07.09.2017 को पूरा किया, इसके बाद, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्तों का बयान दर्ज किया गया, जिसमें उन्होंने

विचाराधीन घटना से इनकार किया।

बचाव के साक्ष्य

धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त का बयान

7. अपीलकर्ता-राजवीर ने कहा कि उसे पहले सूचनाकर्ता हरबीर के साथ समझौता करने के लिए दबाव डालने के लिए झूठा फंसाया गया है क्योंकि उसकी बेटी पूजा के साथ-साथ उसने पहले सूचनाकर्ता के साथ-साथ उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ धारा 498 ए, 323, 504, 506 भन्द०वि० और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत आपराधिक मामले दर्ज किए हैं और धारा 125 द०प्र०स० के तहत रखरखाव का मामला भी दर्ज किया है और उसकी बेटी पूजा की प्राकृतिक मौत के कारण मौत हो गई है उसे डॉक्टर के क्लिनिक में लाते समय क्योंकि वह तेज बुखार और दस्त से पीड़ित थी।

8. इसी तरह अपीलकर्ता-रहीसुददीन ने भी धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में कहा कि उसे वर्तमान मामले में पहले सूचनाकर्ता द्वारा केवल इसलिए झूठा फंसाया गया है क्योंकि वह पूजा द्वारा पहले सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ दर्ज मामले का गवाह है और उसके झूठे आरोप के कारण, पहला सूचनाकर्ता उस पर समझौता करने के लिए दबाव डालना चाहता है और श्रीमती पूजा की ओर से मामले को आगे नहीं बढ़ाना चाहता है। सत्र परीक्षण संख्या 555 वर्ष 2012 में धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अन्य सह-अभियुक्तों श्रीमती रूपवती और पवन के बयान प्रासंगिक नहीं हैं क्योंकि दोनों को उस मामले में बरी कर दिया गया था।

9. बचाव के समर्थन में, संजय सिंह से ब०सा०-1 के रूप में जांच की गई, डॉ रामेश्वर सिंह को ब०सा०-2 के रूप में जांचा गया और दस्तावेजी साक्ष्य में, दो चिकित्सा प्रमाण पत्र दिनांक 14.10.2011 (पेपर नंबर 93 ए) और 18.10.2011 (पेपर नंबर 93 बी) की मूल प्रति और हरबीर के लवकेश पुत्र लवकेश के खिलाफ एन.सी.आर नंबर 25/10 में प्रस्तुत आरोप पत्र (पेपर नंबर 99 बी) के खिलाफ भन्द०वि०, थाना-नरसेना, जिला, बुलंदशहर, अपर सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/ न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर-2, बुलंदशहर द्वारा धारा-125 द०प्र०स० (पेपर नंबर 100 बी) के तहत विविध केस नंबर 06 वर्ष 2010 (श्रीमती पूजा बनाम लवकेश) में पारित आदेश दिनांक 23.07.2011 की प्रति, केस नंबर 2040 वर्ष 2012 (राज्य बनाम लवकेश और अन्य) (पेपर नंबर 101बी) में अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट नंबर 3, बुलंदशहर द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.05.2017 की प्रमाणित प्रति, केस नंबर 2040 वर्ष 2012 (पेपर नंबर 102 बी) की चिक प्राथमिकी की प्रमाणित प्रति के साथ-साथ केस नंबर 2040 वर्ष 2012 (पेपर नंबर 103-बी) में पारित आदेश दिनांक 20.05.2017 की प्रमाणित प्रति (पेपर नंबर 103-बी) पेश किया।

अभियोजन साक्ष्य पर चर्चा

10. अन्सा०-1 हरबीर सिंह ने अपने बयान में कहा कि वह आरोपी राजवीर, श्रीमती रूपवती, पवन और रहीसुददी को जानता और पहचानता है। राजवीर मेरा समधी है और श्रीमती रूपवती

मेरी समधन है और आरोपी पवन राजवीर का बेटा है और आरोपी रहीसुद्दीन आरोपी राजवीर का दोस्त है। लवकेश मेरा बेटा है, जिसने 01.12.2019 को राजवीर की बेटा पूजा के साथ शादी की। रूपवती की जांच पर पूजा ने शादी के बाद ही मेरे बेटे लवकेश के साथ रहने से इनकार कर दिया। पूजा ने भरण-पोषण के लिए बुलंदशहर अदालत में मामला भी दायर किया और अदालत ने उसे रखरखाव की अनुमति भी दी। दहेज मामले में समझौता होने के बाद पूजा ने मॅटेनेंस लेने से मना कर दिया। मध्यस्थता केंद्र में जहां पूजा के चचेरे भाई बुध पाल सिंह मौजूद थे, उन्होंने पूजा से हमारे गांव हबौदा जाने की इच्छा व्यक्त की। पूजा ने आरोपी राजवीर के दबाव में मेरी पत्नी रजनी, मेरे बेटे लवकेश और मेरी बहन कृष्णा के खिलाफ धारा 406 भन्द०वि० के तहत मामला भी दर्ज कराया। हालांकि, बाद में, सी.जे.एम द्वारा पारित समन आदेश को उस मामले में पुनरीक्षण में अलग रखा गया था। उन्होंने राजवीर और अन्य के खिलाफ प्राथमिकी भी दर्ज कराई लेकिन माननीय उच्च न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश दे दिया गया। मैंने आरोपी राजवीर के खिलाफ धारा 452, 323, 504, 306 भ०द०वि० थाना-संभवाली के तहत गढ़मुक्तेश्वर की अदालत में शिकायत का मामला भी दायर किया है, लेकिन माननीय उच्च न्यायालय द्वारा राजवीर के पक्ष में स्थगन आदेश दिया गया था। दिनांक 11.05.2010 को आरोपी राजवीर पूजा को गढ़मुक्तेश्वर में सब रजिस्ट्रार के कार्यालय में ले आया, जहाँ पूजा ने विवाह विच्छेद के लिए विलेख निष्पादित किया जो पंजीकृत था और राजवीर को भी इसके एवज में 1,10,000/-

रूपये प्राप्त हुए। राजवीर का यह कृत्य पूजा की इच्छा के विरुद्ध था। दिनांक 18.10.2011 की रात 10:30 बजे गजराज सिंह ने मेरे फोन पर सूचना दी कि उनकी बहू पूजा को उसके पिता राजवीर, रूपवती और भाई नरेश व पवन ने रहीसुद्दीन के साथ जबरदस्ती जहर देकर मार डाला है और वे पूजा के शव को अपने गांव हबौदा में लाने की योजना बना रहे हैं लेकिन ड्राइवर लक्ष्मण ने यहां आने से मना कर दिया, इसके बाद आरोपी व्यक्ति ने शव को अपनी कृषि भूमि पर जलाकर ठिकाने लगा दिया। उन्होंने मोबाइल पर बुध पाल सिंह से भी उपरोक्त घटना की पुष्टि की थी। इस घटना को गजराज सिंह, बंशी सिंह, संजय, बुद्धपाल सिंह और नानक ने देखा और उन्होंने एस.एस.पी बुलंदशहर को फोन के माध्यम से इसकी सूचना भी दी। वह आरोपी व्यक्तियों के डर से उस तारीख को थाना- नरसेना नहीं गया था। उन्होंने दिनांक 20-10-2011 को थाना- नरसेना में लिखित प्रतिवेदन दिया है जो मेरे समक्ष प्रदर्श संख्या-1 के रूप में है। का-1 मेरे लेखन और हस्ताक्षर में है। बाद में उसे पता चला कि आरोपी राजवीर पैसे लेकर ग्राम भदौरा के उदयवीर के साथ पूजा का दूसरा विवाह तय करना चाहता है, जिसके लिए दिनांक 06.10.2011 को गोद भराई का समारोह भी आयोजित किया गया था जिसमें ग्राम-हबौड़ा के ग्राम प्रधान श्री बिशन सिंह भी उपस्थित थे तथा विवाह की तिथि भी 05.11.2011 निर्धारित की गई थी। पूजा ने इस शादी के लिए मना कर दिया था। वह हमारे गांव वापस आना चाहती थी और इसी वजह से आरोपियों ने उसकी बेरहमी से हत्या कर दी।

11. अपनी जिरह में, अ०सा०-1 ने कहा कि उसे फोन के माध्यम से रात 9:30 बजे पूजा की मौत के बारे में सूचना मिली और उस समय, वह अपने गांव-हबाँदा, पुलिस स्टेशन-संभवाली, जिला-हापुड में था। उस समय वह गढ़मुक्तेश्वर कोर्ट में एडवोकेट के रूप में प्रैक्टिस कर रहे थे। 19.10.2011 को वह प्रैक्टिस के लिए गढ़मुक्तेश्वर दरबार नहीं गए। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं थी कि 19-10-2011 को छुट्टी थी या नहीं। दिनांक 19-10-2011 को वह अपनी पत्नी के लिए दवा लेने हापुड गया। दिनांक 19.10.2011 को प्रातः 6:00 बजे वह अपनी पत्नी के साथ मोटर साइकिल से चिकित्सक से मिलने हापुड गया। हापुड में उन्होंने ताराचंद सरकारी अस्पताल में डॉक्टर से सलाह ली और सुबह 11:00 बजे वापस अपने घर लौट आए। उनके पास कोई मेडिकल प्रिस्क्रिप्शन या दवा खरीदने की कोई रसीद नहीं थी। वह यह भी जानते हैं कि उस समय, वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के साथ-साथ प्रशासनिक अधिकारी भी हापुड में बैठते थे और शायद डी.एस.पी का कार्यालय वहां स्थित था। उसने 19.10.2011 को किसी भी वरिष्ठ पुलिस अधिकारी या प्रशासनिक अधिकारी को पूजा की हत्या के संबंध में कोई जानकारी (या आवेदन) नहीं दी, क्योंकि मैंने पहले ही 18.10.2011 को एस.एस.पी बुलंदशहर को टेलीफोन के माध्यम से सूचित किया था। उन्होंने एस.एस.पी बुलंदशहर को 18.10.2011 को रात 9:40 बजे सूचित किया लेकिन उन्हें वह नंबर याद नहीं था जिस पर मैंने एस.एस.पी बुलंदशहर से बात की थी। एस.एस.पी बुलंदशहर को फोन करने के समय मेरे साथ मेरी पत्नी और मेरे बच्चे भी मौजूद

थे। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में एस.एस.पी बुलंदशहर के मोबाइल नंबर का जिक्र नहीं किया। उन्होंने एस.एस.पी का फोन नंबर भी विवेचनाधिकारी को नहीं बताया क्योंकि मैंने इसके लिए नहीं कहा था। मुझे इस बात की जानकारी नहीं है कि मैंने एस.एस.पी के पर्सनल या सरकारी मोबाइल नंबर पर कॉल किया था या नहीं। मैं पी एंड टी पर्सनल नंबर या तत्कालीन एस.एस.पी का सरकारी नंबर नहीं बता सकता। मेरा गांव संभवाली पुलिस स्टेशन से 7 किलोमीटर दूर है। जब कोई भी व्यक्ति मेरे गांव से हापुड जाता है तो हम थाना-संभवाली से होकर जाते हैं क्योंकि थाना-संभवाली मुख्य सड़क पर स्थित है। मैंने 19-10-2011 को थाना-संभवाली को कोई सूचना नहीं दी है। 20.10.2011 को मैं जितेन्द्र प्रधान के साथ थाना-स्याना, जिला-बुलंदशहर गया। थाना-स्याना मेरे गांव से 16 से 17 किमी दूर है। मैंने थाना-स्याना में दिनांक 19-10-2011 अथवा 20-10-2011 को कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की। जितेन्द्र सिंह प्रधान थाना-स्थाना से वापस अपने गांव लौट आए। स्थाना में बुध पाल सिंह मुझसे मिले। मैं उनके साथ थाना-नरसेना गया। नरसेना मेरे गांव से 28-30 किलोमीटर दूर है। जब उनसे प्रश्न पूछा गया कि वह 19.10.2011 को थाना-नरसेना क्यों नहीं गए और वह 20.10.2011 को वहां क्यों गए तो अपने जवाब में उन्होंने कहा कि 19.10.2011 को मेरी पत्नी बीमार थी और मैं उनके लिए दवा लेने गया था। मैं उसके साथ रहा। इसलिए, मैंने 19-10-2011 को कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की। मैंने अपनी रिपोर्ट में इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है कि मेरी पत्नी बीमार थी और मैं उसकी दवा लेने गया

था और इस कारण से रिपोर्ट जमा करने में देरी हुई थी। यह तथ्य सही है कि मैंने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है कि आरोपी व्यक्तियों के डर से, न कि मेरी पत्नी की बीमारी के कारण रिपोर्ट प्रस्तुत करने में देरी हुई। मैंने इसे तैयार करने के बाद 20.10.2011 को रिपोर्ट दर्ज कराई थी। मैंने अपनी प्राथमिकी में इस बात का जिक्र नहीं किया है कि झाड़वर लक्ष्मण अपने गांव में कार लाने के लिए तैयार नहीं था और यह जानकारी गांव में फैल गई थी। लेकिन धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज उनके बयान को पढ़ने पर, उन्होंने कहा कि विवेचनाधिकारी ने उपरोक्त बयान दर्ज नहीं किया है। मैं इसका कारण नहीं बता सकता। मैंने अपनी प्राथमिकी में न तो यह उल्लेख किया है कि शव को कृषि भूमि में जलाया गया था और न ही विवेचनाधिकारी को सूचित किया गया था, लेकिन उन्होंने प्राथमिकी में उल्लेख किया है और साथ ही अपने बयान में कहा है कि शव को जलाकर निपटाया गया। मैंने आरोपी व्यक्तियों को शव को जलाकर उसका निपटान करते नहीं देखा। मैंने प्राथमिकी में उल्लेख नहीं किया है कि पूजा की दूसरी शादी आरोपी राजवीर ने उसकी मर्जी के खिलाफ उदयवीर के साथ पैसे लेने के बाद तय की थी और शादी की तारीख भी तय की गई थी, जिसके लिए पूजा ने इनकार कर दिया था, इसलिए आरोपी ने पूजा की हत्या कर दी थी। मुझे उपरोक्त जानकारी उपरोक्त घटना के 2 से 2 1/2 महीने बाद मिली और उसके बाद, उन्होंने पुलिस को लिखित रूप में सूचित किया, लेकिन उन्हें याद नहीं है कि उन्होंने किस तारीख को पुलिस को सूचित किया है और साथ ही उनके

पास पुलिस को कोई जानकारी प्रस्तुत करने के लिए कोई रसीद नहीं है। उसे यह भी याद नहीं था कि उसने किस महीने में पुलिस को घटना की जानकारी दी थी। मैंने प्राथमिकी में यह उल्लेख नहीं किया है कि मैंने बुध पाल सिंह से मोबाइल के माध्यम से पूजा की हत्या की घटना का सत्यापन किया है और इस घटना को गजराज सिंह, रवि, संजय, बुद्ध पाल सिंह, नानक ने देखा था, हालांकि मैंने विवेचनाधिकारी को बयान में कहा है। विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अपने बयान के अवलोकन पर, उन्होंने कहा कि विवेचनाधिकारी ने स्थानीय राजनीतिक दबाव के कारण अपने बयान में उपरोक्त बात दर्ज नहीं की है। इसलिए मैंने एस.एस.पी बुलंदशहर से व्यक्तिगत रूप से भी शिकायत की, लेकिन मुझे इसकी रसीद नहीं मिली। मैंने आज तक अदालत में उस शिकायत की कोई प्रति दायर नहीं की है। यह भी सही है कि उन्होंने अपनी प्रथम सूचना रिपोर्ट में गवाह के रूप में गजराज सिंह और गवाह झाड़वर लक्ष्मण के नाम का उल्लेख किया है, लेकिन प्राथमिकी में बुद्धपाल सिंह, रवि, संजय, नानक के नाम का उल्लेख नहीं किया गया था क्योंकि उन्हें प्राथमिकी दर्ज होने तक इन गवाहों के बारे में पता नहीं था। उन्होंने अपने बयान में विवेचनाधिकारी को उपरोक्त गवाहों के नाम बताए लेकिन उन्होंने गजराज के नाम के अलावा उन गवाहों का नाम नहीं लिखा। मैं बुध पाल का नाम जानता हूँ लेकिन उसने प्राथमिकी में उसके नाम का उल्लेख नहीं किया क्योंकि वह राजवीर का रिश्तेदार है। वर्तमान में राजवीर के साथ बुध पाल का संबंध मधुर नहीं है।

यह सही है कि राजवीर ने मेरे और मेरे परिवार के खिलाफ अपनी बेटी पूजा के उत्पीड़न के लिए धारा 498ए भ०द०वि० के तहत मामला दर्ज किया है जो अभी भी अदालत में लंबित है। उस मामले में आरोपी रहीसुद्दीन गवाह नहीं है। राजवीर ने मेरे और मेरे परिवार के खिलाफ धमकी देने का मामला भी दर्ज कराया है जो अभी भी अदालत में लंबित है जो धारा 302 भ०द०वि० के तहत वर्तमान मामले से पहले दर्ज किया गया था। यह सही है कि आरोपी रहीसुद्दीन उस मामले में गवाह है। लवकेश की दूसरी शादी पूजा पुत्री रघुराज निवासी ग्राम-गंगेश्वरी, जिला- अमरोहा से हुई और लवकेश मेरे साथ ही रह रहा है।

यह पूछे जाने पर कि क्या दूसरी बहू उसके साथ रह रही है, उन्होंने इस आधार पर इसका जवाब नहीं दिया कि यह मामला पेश करने से संबंधित नहीं है। यह पूछे जाने पर कि उनकी दूसरी बहू ने उनके खिलाफ धारा-354 भ०द०वि० के तहत मामला दर्ज कराया है, उन्होंने जवाब दिया कि हां वह मामला दर्ज किया गया था लेकिन जांच के बाद, अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी जिसे अदालत में भी स्वीकार किया गया था। मैंने राजवीर और अन्य के खिलाफ जो मामले दर्ज किए हैं, वे राजवीर और अन्य के खिलाफ भ०द०वि० की धारा-498 ए, 406 के तहत दर्ज किए गए थे।

12. बुद्ध पाल सिंह की अन्सा०-2 के रूप में जांच की गई। अपने बयान में, अन्सा०-2 ने कहा कि आरोपी राजवीर सिंह उसका मामा है और श्रीमती रूपवती मामी है जो आरोपी राजवीर की पत्नी है। आरोपी पवन आरोपी

राजवीर का बेटा है। आरोपी राजवीर के दूसरे बेटे का नाम नरेश है। आरोपी-रहीसुद्दीन आरोपी राजवीर सिंह का दोस्त है। वह पहले सूचनाकर्ता हरबीर सिंह और उनके बेटे लवकेश को भी जानता है।

राजवीर की पुत्री पूजा का विवाह हरबीर सिंह के पुत्र लवकेश के साथ 01.12.2009 को हुआ था, लेकिन दो परिवारों के बीच समायोजन न होने के कारण उनकी शादी आगे नहीं बढ़ सकी और दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के खिलाफ मामले दर्ज करना शुरू कर दिया। मैं अपने मामा राजवीर के साथ हरबीर, गांव-हबौदा के घर पंचायत के लिए गया था क्योंकि मैं शादी का मध्यस्थ था। पंचायत में दहेज में दिए गए सामान को वापस कर गया था, जिसे वह और राजवीर शादी के पांच माह बाद जुगाड़ में लादकर लाए थे। दहेज का सामान लाने के पांच-छः दिन बाद मैं और राजवीर पूजा के साथ रजिस्ट्री ऑफिस गढ़मुक्तेश्वर गए। वहां पूजा और लवकेश की शादी टूट गई। हरबीर सिंह ने नोटरी शपथ पत्र प्राप्त करने के बाद मेरे मामा राजवीर को 1,10,000/- रुपये दिए थे। इसके बाद, राजवीर सिंह, हरबीर सिंह और मैं अपने घरों को वापस लौट आए। बाद में, मुझे पता चला कि राजवीर अपनी बेटी की शादी गांव-भदौरा में करना चाहता था लेकिन पूजा ने इसके लिए मना कर दिया था और पूजा हरौदा जाना चाहती थी। सुलह की कार्यवाही के दौरान पूजा ने मुझसे यह भी कहा कि 'भाईसाहब प्लीज मुझे हारौदा भेजने का इंतजाम कर दो।'

08.10.2011 को, मैं और नानक जो मेरे गाँव के हैं, दोपहर 3:00 बजे अपने मामा राजवीर

के घर कमालपुर पहुँचे थे। वहाँ मैंने देखा था कि राजवीर, रूपवती, राजवीर के बेटे पवन और नरेश के साथ-साथ राजवीर के दोस्त रहीसुद्दीन ने भी पूजा को घेर लिया था। रहीसुद्दीन के पास जहर से भरा गिलास था, राजवीर ने पूजा का मुँह खोला और रहीसुद्दीन ने जबरन उस गिलास से जहर उंडेल दिया; इसके बाद पूजा बेहोश हो गई। हम डर की वजह से अपने घरों में गए और शाम 5:00 बजे पहुँचे और रात को लगभग 9 या 9:30 बजे, उन्हें हरबीर सिंह का फोन आया, जिन्होंने उनसे पूछा कि क्या कोई घटना हुई है। इसके बाद, मैंने अपने मामा सुभाष के बेटे से उपरोक्त घटना की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त की, जिन्होंने मुझे बताया कि पूजा की मृत्यु हो गई है। फिर, हमने हरबीर सिंह को बताया कि 'अधिवक्ता साहब पूजा की मृत्यु हो गई है। राजवीर सिंह, रहीसुद्दीन, अर्जुन और दीपक, वे 10 से 15 दिन पहले मेरे गांव आए थे और मुझे धमकी दी कि मैं कोई गवाही न दूँ क्योंकि वह उनका रिश्तेदार है। अन्यथा, हम आपको बताएंगे।

13. जिरह में, अन्सा०-2 ने मुख्य परीक्षण में दिए गए अपने बयान से मुकर गया और अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया और स्पष्ट रूप से कहा कि उसने इस घटना को नहीं देखा है क्योंकि वह राजवीर के घर से 400 मीटर की दूरी पर रहता था। जब वह सुभाष के घर पहुँचा तो उसे पूजा के साथ हुई घटना की जानकारी मिली। उसे याद नहीं था कि सुभाष के घर पर हुई घटना के बारे में उसे किसने बताया था। सूचना मिलने के बाद सुभाष और गांव के कई अन्य लोग राजवीर के

घर गए, जहाँ लगभग 250-300 लोग पहले से ही इकट्ठे थे, लेकिन मैं नाम और जगह बताने की स्थिति में नहीं हूँ। मैंने राजवीर, पवन, नरेश, रूपवती और रहीसुद्दीन द्वारा पूजा को घेरने की कोई घटना नहीं देखी है और मैंने रहीसुद्दीन के हाथ में जहर वाला कोई गिलास भी नहीं देखा है। मैंने रामवीर को पूजा का मुँह खोलते और रहीसुद्दीन को पूजा के मुँह में शीशे के गिलास से जहर डालते हुए नहीं देखा। मैंने वही बताया है जो ग्रामीणों ने मुझे बताया है। मुझे याद नहीं कि किस ग्रामीण ने मुझे उक्त घटना के बारे में बताया। मैंने कमालपुर गांव की किसी भी घटना के बारे में किसी व्यक्ति को नहीं बताया है। जब मुझे हरबीर सिंह का फोन आया तो मुझे याद नहीं कि मैं उस समय कहाँ था। कमालपुर की दिनांक 18-10-2011 की घटना मेरे सामने नहीं घटी। मैंने 18.10.2011 को कमालपुर में मृतक पूजा को नहीं देखा है। उस दिन मैं गांव-कमालपुर में राजवीर के घर नहीं गया। चूंकि अन्सा०-2 ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया इसलिए, अभियोजन पक्ष ने उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया और अन्सा०-2 से भी जिरह की। अपनी जिरह में, अन्सा०-2 ने कहा कि 08.11.2016 को उनके द्वारा दिया गया बयान ग्रामीणों से प्राप्त जानकारी के आधार पर उनके द्वारा दिया गया था। वह उन ग्रामीणों का नाम नहीं बता सकता जिन्होंने उसे सूचना दी थी। आरोपी रहीसुद्दीन राजवीर का दोस्त है। यह सही है कि वर्तमान मामला दर्ज करने के बाद, हरबीर और आरोपी व्यक्तियों ने समझौता किया था। यह गलत है कि मैंने पूजा के आसपास राजवीर, रूपवती, पवन, नरेश और रहीसुद्दीन को देखा है।

14. नानक को अ०सा०-3 के रूप में जांचा गया था, लेकिन उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया इसलिए, उन्हें अभियोजन पक्ष के अनुरोध पर पक्षद्रोही घोषित किया गया और जिरह के लिए रखा गया। अपनी जिरह में, अ०सा०-3 ने कहा कि यह गलत है, कि वह 18.10.2011 को बुद्ध पाल सिंह के साथ राजवीर के घर गया था और यह भी गलत है कि उस दिन, उसने राजवीर, पवन, नरेश, रूपवती और रहीसुद्दीन को पूजा को घेरते और पकड़ते देखा था। उसे नहीं पता कि पूजा की मौत कैसे हुई है। उसने पूजा की मौत के बारे में हरबीर सिंह को कुछ नहीं बताया।

15. बिशन सिंह से अ०सा०-4 के रूप में पूछताछ की गई थी, लेकिन उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया, इसलिए, उन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा मुकर जाने की भी घोषणा की गई थी और अभियोजन पक्ष को भी उनसे जिरह करने की अनुमति दी गई थी। अपनी जिरह में, अ०सा०-4 ने कहा कि यह गलत है कि उसने राजवीर की बेटी पूजा की दूसरी शादी के गोद भराई रसम में भाग लिया। अ०सा०-5 उप-निरीक्षक तेजवीर सिंह औपचारिक गवाह था, जिसने जी.डी की चिक प्राथमिकी और कार्बन कॉपी साबित की थी। अ०सा०-6 नरेश कुमार उप-निरीक्षक था जो धारा-302 और 201 भ०द०वि० के तहत अपराध संख्या 252 वर्ष 2011 का विवेचनाधिकारी था। अपने बयान में, उन्होंने कहा कि राजवीर और रहीसुद्दीन को गिरफ्तार करने के बाद, वह उन्हें जंगल (कृषि क्षेत्र) में ले गए थे। उन्होंने बताया कि राजवीर

व रहीसुद्दीन ने एस.डी.एम कुंवर बहादुर सिंह की उपस्थिति में उस स्थान की जानकारी दी जहां पूजा के शव की अस्थियां और जली राख मिली थी तथा गवाहों की उपस्थिति में एस.डी.एम के निर्देशानुसार मौके पर फर्द बरामदगी तैयार किया गया। उन्होंने फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-6) साबित किया, जिस पर एस.डी.एम के साथ-साथ गवाहों के हस्ताक्षर भी थे। उन्होंने दो छोटे कंटेनरों वाले सीलबंद बंडल को भी साबित किया। एक में सामान्य मिट्टी है और दूसरे में मृतक की अस्थियां और जली राख हैं। सीलबंद बंडल खोलने पर उन्होंने कहा कि यह वही मिट्टी और राख के साथ-साथ हड्डियां भी हैं जिन्हें मैंने सील करने के बाद विधि विज्ञान प्रयोगशाला भेजा। सामान्य मिट्टी को प्रदर्श संख्या-1 के रूप में चिह्नित किया गया था, छोटे कंटेनर पर राख को प्रदर्श संख्या-3 के रूप में प्रदर्शित किया गया था और हड्डी को प्रदर्श संख्या-4 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। राख और हड्डी वाले कंटेनर को प्रदर्श क संख्या-5 के रूप में चिह्नित किया गया था। जिरह में अ०सा०-6 ने कहा कि यह सही है कि वह गजराज द्वारा फोन के माध्यम से पहले सूचनाकर्ता को जानकारी के बारे में पहली बार अदालत में बता रहा है, हालांकि केस डायरी में उसके द्वारा इसका उल्लेख नहीं किया गया था। वह दोपहर 3 बजे से 7:30 बजे के बीच राजवीर के घर नहीं गया। वह शाम 5:55 बजे राजवीर और रहीसुद्दीन के साथ घटना स्थल (कृषि भूमि) पर गया। जब वह राजवीर के घर पहुंचा तो उसने राजवीर को पाया, रहीसुद्दीन वहां थे और उनके घर पहुंचने के तुरंत बाद, उसने राजवीर और रहीसुद्दीन का बयान दर्ज किया।

फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-6) में आरोपी रहीसुद्दीन और राजवीर के हस्ताक्षर नहीं हैं।

पहले सूचनाकर्ता ने मुझे अपना मोबाइल नंबर नहीं बताया। पहले सूचनाकर्ता ने मुझे अपने बयान में नहीं बताया कि उसकी पत्नी बीमार है और वह अपनी पत्नी के लिए दवा लेने गया था और इस कारण से प्राथमिकी दर्ज करने में देरी हुई। पहले सूचनाकर्ता ने उसे यह भी नहीं बताया कि चालक लक्ष्मण मृतक के शव को उसके गांव लाने के लिए तैयार क्यों नहीं था। प्रथम सूचनाकर्ता ने उसे अपने बयान में यह भी नहीं बताया कि राजवीर ने पूजा की दूसरी शादी ग्राम- भदौरा निवासी उदयवीर के पुत्र के साथ धन लेकर तय की है जिसके लिए गोद भराई रसम 08.10.2011 के लिए तय किया गया था और उस समय भदौरा के ग्राम प्रधान श्री विशुन सिंह उपस्थित थे। पहले सूचनाकर्ता ने उन्हें यह नहीं बताया कि उन्होंने बुद्धपाल सिंह, अ०सा०-2 और बुध पाल सिंह से मोबाइल के माध्यम से घटना की पुष्टि की है और नानक ने इस घटना को देखा है। जांच के दौरान भी पहले सूचनाकर्ता ने उन्हें यह नहीं बताया कि बुध पाल और नानक ने यह घटना देखी थी। बुध पाल और नानक आरोप पत्र में भी गवाह नहीं हैं। पहले सूचनाकर्ता ने अपने बयान में गजराज के अलावा किसी अन्य गवाह का नाम नहीं बताया। मैंने चारों आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल कर दी। यह सही है कि राजवीर की कृषि भूमि से सटा एक रजवाहा (नहर) है। मेरे द्वारा भेजी गई राख और हड्डी के संबंध में विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट उपलब्ध है और इस रिपोर्ट में जली हुई हड्डी और राख

के टुकड़े की उत्पत्ति के बारे में कोई राय व्यक्त नहीं की गई है।

बचाव के साक्ष्य पर चर्चा

16. बचाव पक्ष ने संजय सिंह को ब०सा०-1 के रूप में पेश किया, जो आरोपी राजवीर के गांव का रहने वाला है। ब०सा०-1 ने बताया कि पूजा की मौत हो चुकी है। जिस दिन पूजा की मृत्यु हो गई थी, उस दिन बुध पाल और नानक गांव नहीं आए और न ही वह उनसे मिले। पूजा की मौत बीमारी की वजह से हुई थी। पूजा की हत्या किसी ने नहीं की थी। मैंने किसी व्यक्ति को पूजा की हत्या करते या उसे जहर देते नहीं देखा। गंगा के तट पर पूजा के अंतिम संस्कार के समय, 200- 250 व्यक्तियों ने उसकी अंतिम संस्कार में भाग लिया था। अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह में, ब०सा०-1 ने कहा कि वह आरोपी राजवीर की जाति का है और वह राजवीर के घर जाता था। घटना के समय मैं वहां मौजूद नहीं था। मैंने कोई घटना नहीं देखी है, इसलिए मैं यह नहीं बता सकता कि पूजा की मौत बीमारी की वजह से हुई है। पूजा बुखार से पीड़ित थी। उसे इस बात की जानकारी नहीं है कि पूजा का इलाज किस डॉक्टर ने किया।

17. डॉ. रामेश्वर सिंह को बचाव पक्ष ने ब०सा०-2 के रूप में जांच की। उन्होंने अपने बयान में कहा कि उन्होंने कानपुर से वर्ष 1980-81 में बीएमएस की डिग्री पूरी की। पेपर नंबर 94 बी 2 के अवलोकन पर, उन्होंने कहा कि यह पर्चा मेरे क्लिनिक द्वारा जारी किया गया था और इस पर्चे के अनुसार, पूजा

14.10.2011 को मेरे क्लिनिक में आई थी और उस समय पूजा दस्त, एसिडिटी और 101-102 डिग्री बुखार से पीड़ित थी। मैंने उसका इलाज किया और दवा दी। पेपर नंबर 94 बी 2 मेरे लेखन और हस्ताक्षर में जारी किया गया था और मेरी मुहर उस पर्चे पर है। इस पेपर को प्रदर्श ख-1 के रूप में चिह्नित किया गया था। पेपर संख्या 94 बी/1, के अवलोकन पर यह कहा गया है कि यह पेपर मेरे लेखन और हस्ताक्षर में लिखा गया था। ये दोनों पेपर पूजा की जाँच के समय तैयार किए गए थे। पेपर नंबर 94 बी/1 को प्रदर्श ख-2 के रूप में चिह्नित किया गया था। पेपर नंबर 94बी/1 के अनुसार, पूजा 18.10.2011 को मेरे क्लिनिक में आई थी और उस समय वह पायरेनिया गैस्ट्राइटिस से पीड़ित थी। मरीज की हालत बहुत खराब थी, इसलिए दोपहर 2:30 बजे उसकी हालत के आधार पर उसे कैलाश अस्पताल के लिए रेफर कर दिया। रोगी की बीमारी के कारण निर्जलीकरण संभव है। गंभीर निर्जलीकरण मृत्यु का कारण बन सकता है। अभियोजन पक्ष द्वारा जिरह करने पर उन्होंने प्रदर्श नं ख-1 और ख-2 पर मेरे किए हस्ताक्षर अलग नहीं थे। रोगी पूजा सामान्य हालत में मेरे पास आई। वह पूजा को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता।

अपीलकर्ता का तर्क

18. अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि प्राथमिकी अत्यधिक विलंबित, एंटी-डेटेड, पूर्व-समयबद्ध और उचित परामर्श के बाद तैयार की गई थी। विवेचनाधिकारी द्वारा एस.डी.एम को भेजे गए दिनांक 20.10.2011 के जांच ज्ञापन में

अपराध संख्या लिखने के लिए एक खाली जगह है और इससे पता चलता है कि पूजा के शरीर के अवशेषों की कथित बरामदगी के समय तक प्राथमिकी अस्तित्व में नहीं थी। अभियोजन मामले के अनुसार, प्रथम सूचनाकर्ता को कथित चश्मदीद गवाह गजराज सिंह से 18.10.2011 को रात 9:30 बजे घटना के बारे में सूचना मिली थी, लेकिन पहले सूचनाकर्ता ने 20.10.2011 को सुबह 10:50 बजे पहली सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी और प्राथमिकी दर्ज करने में देरी का कारण, जैसा कि प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है, यह है कि आरोपी के डर के कारण, प्रथम सूचनाकर्ता थाने नहीं आ सका, जबकि उसकी गवाही में अन्सा०-1 ने कहा है कि उसकी पत्नी की बीमारी के कारण प्राथमिकी में देरी हुई। आगे यह प्रस्तुत किया गया था कि अपीलकर्ता-राजवीर का झूठा निहितार्थ है क्योंकि अपीलकर्ता-राजवीर और मृतक ने पहले सूचनाकर्ता और उसके परिवार के खिलाफ धारा 498ए, 406, 323, 504, 506 भन्द०वि० के साथ-साथ धारा 125 द०प्र०स० के तहत आपराधिक मामले दर्ज किए थे और पहले सूचनाकर्ता ने मृतक के साथ-साथ अपीलकर्ता-राजवीर और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ भी आपराधिक मामले दर्ज किए थे। मृतका और उसके पति (प्रथम सूचनाकर्ता का बेटा) के बीच संबंध आपसी समझौते से भंग हो गए थे और दो परिवारों के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे। इसलिए, पहले सूचनाकर्ता ने अपने व्यक्तिगत दुश्मनी को निपटाने के अवसर को पकड़ लिया और विवेचनाधिकारी/एस.एच.ओ की सक्रिय मिलीभगत में वर्तमान दुर्भावनापूर्ण अभियोजन शुरू किया, जिसके

खिलाफ अपीलकर्ता- राजवीर ने एस.एस.पी, बुलंदशहर के समक्ष दिनांक 19.10.2011 को एक शिकायत दर्ज की थी। अपीलकर्ता रहीसुद्दीन मृतक द्वारा प्रथम सूचनाकर्ता के खिलाफ दायर आपराधिक मामले में गवाह था, इसलिए उसे भी उस आधार पर झूठा फंसाया गया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे यह तर्क दिया गया कि पूजा की मृत्यु बीमारी के कारण हुई थी जो बिल्कुल प्राकृतिक मौत थी और इस बात का कोई सबूत नहीं है कि पूजा की मृत्यु जहर से अप्राकृतिक मौत के कारण हुई है। मृतक पूजा दस्त और डायरिया से पीड़ित थी और उसका इलाज ब०सा०-2 द्वारा किया गया था, जिसने 14.10.2011 के साथ-साथ 18.10.2011 को अपने मेडिकल प्रिस्क्रिप्शन को भी साबित किया और पूजा की कैलाश अस्पताल ले जाते समय मृत्यु हो गई, जहां उसे ब०सा०-2 द्वारा उसकी गंभीर स्थिति को देखते हुए रेफर किया गया था। दिनांक 18.10.2011 को गंगा नदी के तट पर 100 ग्रामीणों की उपस्थिति में पूजा की अंतिम रस्म आयोजित की गई। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि प्राथमिकी के कथित चश्मदीद गवाह ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दिया था, लेकिन उसे विचारण न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था। इसी तरह, खड़क, रवि और संजय के नाम का उल्लेख आरोप पत्र में चश्मदीद गवाह के रूप में किया गया था, लेकिन विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में उनसे पूछताछ नहीं की गई और यहां तक कि आरोप पत्र के गवाह संजय अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के बजाय बचाव पक्ष के गवाह के रूप में ब०सा०-

1 के रूप में पेश हुए और स्पष्ट रूप से कहा कि पूजा का अंतिम संस्कार 100 ग्रामीणों की उपस्थिति में गंगा नदी पर किया गया था। आगे यह तर्क दिया गया कि मकसद के गवाह, उदयवीर को अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया था और यहां तक कि अभियोजन पक्ष के गवाह, ग्राम प्रधान, विशन सिंह, अन्सा०-4 को पूजा की दूसरी शादी के गोद भराई में मौजूद होने के लिए कहा गया था और उदयवीर ने अ०सा०-4 के रूप में जांच करते समय अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया था। बरामदगी के गवाह उप-विभागीय मजिस्ट्रेट द्वारा फर्द बरामदगी साबित नहीं किया गया था। यहां तक कि बरामदगी के कथित दो स्वतंत्र गवाहों, राम लाल सिंह और खड़क सिंह को अपीलकर्ता राजवीर की कृषि भूमि से मृतक पूजा के अवशेषों की बरामदगी को साबित करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था। यह मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है लेकिन परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी नहीं हुई है और अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि पूरी तरह से मृतक के शरीर के अवशेषों की बरामदगी के आधार पर है जिसे साबित नहीं किया गया था और न ही फॉरेंसिक साक्ष्य द्वारा समर्थित किया गया था और साथ ही साक्ष्य अधिनियम, 1872 (इसके बाद 'साक्ष्य अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा- 106 के तहत अनुमान के आधार पर, इस तथ्य के बावजूद कि अपीलकर्ताओं ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान के साथ-साथ बचाव पक्ष के गवाहों, ब०सा०-1 और ब०सा०-2 की जांच करके पूजा की मौत के बारे में अपनी जिम्मेदारी का पूरी तरह से निर्वहन किया है।

इसलिए, अपीलकर्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि विचारण न्यायालय का आदेश बिल्कुल गलत है, बिना किसी सबूत के है, और इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए, और अपीलकर्ता बरी होने के हकदार हैं।

राज्य के तर्क

19. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अ०सा० 1 के साक्ष्य से, यह स्थापित होता है कि आरोपी ने पहले सूचनाकर्ता को झूठा फंसाने के साथ-साथ पूजा से नाराज होने के कारण, जिसने अपीलकर्ता राजवीर के दबाव में दूसरी शादी करने से इनकार कर दिया था, ने पूजा की हत्या कर दी थी। यह आगे तर्क दिया गया था कि मृतक पूजा के अवशेषों के फर्द बरामदगी से पता चलता है कि अपीलकर्ता द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर अपीलकर्ता राजवीर की कृषि भूमि से मृतक पूजा की राख और हड्डियों के जले हुए हिस्से बरामद किए गए थे। विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे तर्क दिया गया था कि हिंदुओं के बीच यह आम प्रथा है कि दाह संस्कार के बाद, शवों की राख नदी में जाती है, लेकिन वर्तमान मामले में, मृतक पूजा के शव की राख अपीलकर्ता राजवीर की कृषि भूमि से बरामद की गई थी, जो स्थापित करती है कि पूजा की हत्या करने के बाद, उसने अपने मृत शरीर की राख को अपनी कृषि भूमि में गड़ढा खोदकर छिपा दिया था। इसलिए, विचारण न्यायालय के फैसले में कोई अवैधता नहीं है और इसकी पुष्टि की जानी चाहिए।

विश्लेषण और निष्कर्ष

20. प्रथम सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) की ओर से प्राथमिकी दर्ज करने का एकमात्र आधार मृतक पूजा की हत्या के संबंध में गजराज सिंह से उसे प्राप्त सूचना है। इसके बाद, मुकदमे के दौरान अन्सा०- 1 ने कहा था कि गजराज सिंह के अलावा बुद्ध पाल सिंह, रवि, नानक और संजय द्वारा भी मौत की घटना देखी गई थी। मुकदमे के दौरान, बुद्ध पाल सिंह (अ०सा०-2) और नानक (अ०सा०- 3) ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया और उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। प्राथमिकी में उल्लिखित एकमात्र गवाह (गजराज), जो पूजा की हत्या के बारे में जानकारी का मुख्य स्रोत था, अभियोजन की कहानी का समर्थन करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया था। इसके अलावा, एक अन्य गवाह रवि, जिसने अ०सा०-1 के बयान के अनुसार घटना देखी थी, अभियोजन पक्ष द्वारा अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया था। यहां तक कि पूजा की हत्या के मकसद के गवाह, बिशन सिंह (अ०सा०-4) ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया, इसलिए, उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया।

21. अपीलकर्ताओं द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर मृतक पूजा की राख और जली हुई हड्डियों की बरामदगी के लिए फर्द बरामदगी, जिसे प्रदर्श क-6 पर किसी भी अपीलकर्ता द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए थे और इस फर्द बरामदगी पर हस्ताक्षर करने वाले गवाहों अर्थात् राम लाल सिंह और कधक सिंह को उपरोक्त फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-6) को साबित करने के लिए अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया था। उपरोक्त सबूतों से पता

चलता है कि अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी अ०सा०-1 के सुनी-सुनाई बातों के साथ-साथ परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। यहां तक कि विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट, जिसे पेपर नंबर 19 ए के रूप में चिह्नित किया गया था, ने बरामद राख और जली हुई हड्डियों की उत्पत्ति के बारे में कोई राय नहीं दी। अन्सा०-1 ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि अपीलकर्ता राजवीर के साथ-साथ उसकी बेटी मृतक पूजा ने अन्सा०-1 के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज किए थे और, अन्सा०-1 ने भी बाद में अपीलकर्ता नंबर 1 राजवीर के खिलाफ मामले दर्ज किए थे, वर्तमान मामला दर्ज करने से पहले और यह तथ्य अ०सा०-1 स्वीकार किया गया था कि अपीलकर्ता रहीसुद्दीन अपीलकर्ता राजवीर द्वारा दर्ज किए गए मामलों में से एक का गवाह भी था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय पारित करते हुए यह भी कहा कि यदि मृतक पूजा की मृत्यु बीमारी के कारण हुई थी, तो अपीलकर्ताओं की ओर से गड्ढा खोदकर राख और जली हुई हड्डियों को अपनी कृषि भूमि में डंप करने का कोई तुक नहीं था और उसने पुलिस को कोई सूचना नहीं दी है। हालांकि, हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार, गंगा या किसी भी नदी में राख और हड्डियों को प्रवाहित करना चाहिए। इसलिए, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत अनुमान के आधार पर अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया।

22. मृतक पूजा की मृत्यु के कारण के समर्थन में अपीलकर्ताओं ने ब०सा०-1 और ब०सा०-2 को पेश किया। ब०सा०-1 संजय सिंह, हालांकि

अन्सा०-1 के बयान के अनुसार, मृतक पूजा की हत्या का गवाह था, लेकिन वह बचाव पक्ष के गवाह के रूप में अदालत में पेश हुआ और अभियोजन पक्ष की कहानी से इनकार किया और दूसरी ओर कहा कि पूजा की बीमारी के कारण मृत्यु हो गई है। ब०सा०-2 जो डॉक्टर थे, ने पूजा की बीमारी के बारे में उनके क्लिनिक द्वारा जारी किए गए मेडिकल प्रिस्क्रिप्शन को साबित किया और विधिवत साबित किया कि पूजा गंभीर रूप से बीमार थी और उन्होंने उसकी गंभीर स्थिति को देखते हुए उसे कैलाश अस्पताल में रेफर कर दिया और यह भी साबित कर दिया कि पूजा की मौत डिहाइड्रेशन के कारण हो सकती थी। धारा 313 ८०प्र०स० के तहत अपने बयान में, दोनों अपीलकर्ताओं, राजवीर और रहीसुद्दीन ने स्पष्ट रूप से कहा कि अपीलकर्ता- राजवीर और उसकी बेटी पूजा द्वारा दर्ज किए गए मामलों में समझौता करने के लिए दबाव डालने के लिए उन्हें झूठा फंसाया गया है। अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि का आधार परिस्थितिजन्य साक्ष्य के साथ-साथ साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत अनुमान था, हालांकि परिस्थितियों की श्रृंखला स्वयं पूरी नहीं है क्योंकि घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं था और अभियोजन का पूरा मामला अ०सा०-1 के बयान पर आधारित है जो स्वयं घटना का गवाह नहीं था लेकिन उसकी जानकारी नानक (अ०सा०-3) और बुद्ध पाल सिंह (अ०सा०-2) और गजराज से प्राप्त जानकारी पर आधारित थी; हालांकि न तो अ०सा०-2 और न ही अ०सा०-3 ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन किया और गजराज को अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में

अदालत के समक्ष पेश नहीं किया गया। इसलिए, अ०सा०-1 का साक्ष्य केवल एक सुनवाई साक्ष्य है जिसकी साक्ष्य अधिनियम के अनुसार कोई प्रासंगिकता नहीं है। अ०सा०-1 भी पूजा की हत्या के लिए अपीलकर्ताओं की ओर से मकसद साबित नहीं कर सका। दूसरी ओर, अपीलकर्ताओं ने अन्सा०-1 की ओर से उन्हें झूठा फंसाने का मकसद साबित कर दिया था।

23. माननीय उच्चतम न्यायालय ने रवीन्द्र सिंह उर्फ काकू बनाम पंजाब राज्य के निर्णय में 04.05.2022 को तय की गई आपराधिक अपील संख्या 1307 वर्ष 2019 में स्पष्ट रूप से माना कि ऐसे मामले में जहां दोषसिद्धि केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, तो दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण गवाहों की गवाही में विसंगतियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार, माननीय उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या 609 वर्ष 2015 में इन्द्रजीत दास बनाम त्रिपुरा राज्य और अन्य के निर्णय में दिनांक 28 फरवरी, 2023 को यह निर्णय दिया था; उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 10 का प्रासंगिक हिस्सा यहां उद्धृत किया गया है:

"10. वर्तमान मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य का है क्योंकि किसी ने भी अपराध के आयोग को नहीं देखा है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में कानून अच्छी तरह से तय है। प्रमुख मामला शरद विरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य 1984 (4) एस.सी.सी 116 है। इसके अनुसार, परिस्थितियां एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिए जो अभियुक्त के अपराध की ओर

इशारा करती है, संचयी रूप से ली गई परिस्थितियों को एक श्रृंखला इतनी पूर्ण रूप से तैयार करनी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बच न सके कि सभी मानवीय संभावना के भीतर अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था और उन्हें अभियुक्त के अपराध के अलावा किसी भी परिकल्पना पर स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए और उसकी बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए। शरद विरधीचंद सारदा (सुपा) के मामले में निर्धारित उक्त सिद्धांत का इस न्यायालय द्वारा लगातार पालन किया गया है। हाल के एक मामले शैलेंद्र राजदेव पासवान और अन्य बनाम गुजरात राज्य आदि ए.आई.आर 2020 एस.सी 180, में इस न्यायालय ने देखा कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में, कानून दो गुना आवश्यकताओं को मानता है। सबसे पहले, अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने के लिए आवश्यक परिस्थितियों की श्रृंखला में हर लिंक को अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे स्थापित किया जाना चाहिए और दूसरी बात, सभी परिस्थितियों को केवल अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए सुसंगत होना चाहिए। हमें अन्य निर्णयों का हवाला देकर इस फैसले को बोझ नहीं बनाना चाहिए क्योंकि उपरोक्त सिद्धांतों का इस न्यायालय द्वारा बार-बार लगातार पालन और अनुमोदन किया गया है।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नागेंद्र साह बनाम बिहार राज्य के फैसले में (2021) 10 एस.सी.सी 725 में रिपोर्ट किया। उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 17, 22 और 23 का प्रासंगिक हिस्सा यहां उद्धृत किया गया है:

"17. चूंकि पूरा मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, इसलिए हम इस विषय पर इस न्यायालय के एक प्रमुख निर्णय का एक उपयोगी संदर्भ दे सकते हैं। शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य 1984 4 एस.सी.सी 116, पैराग्राफ 153 में, इस न्यायालय ने पांच स्वर्ण सिद्धांत (पंचशील) निधर्धारित किए हैं जो केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले को नियंत्रित करते हैं। अनुच्छेद 153 इस प्रकार पढ़ता है:-

153. इस निर्णय का एक करीबी विश्लेषण एक अभियुक्त के खिलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित किया जा सकता है, और कहा जा सकता है कि सबसे पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए कि पता चलता है:

i). जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए।

ii) यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियों को 'स्थापित किया जाना चाहिए और नहीं होना चाहिए। न केवल व्याकरणिक बल्कि साबित किया जा सकता है और होना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए' के बीच एक कानूनी अंतर है, जैसा कि शिवाजी साहबराव बोबडे बनाम भारत संघ मामले में इस न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया था। (ग) माननीय उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 एस.सी.सी 793 के मामले में निम्नलिखित टिप्पणियां की थीं

"19.... निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को अदालत द्वारा

दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी होना चाहिए और हो सकता है और होना चाहिए के बीच की लंबी मानसिक दूरी होनी चाहिए और जो कुछ निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात् उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर स्पष्टीकरण योग्य नहीं होना चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है,

(3) परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(4) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(5) साक्ष्य की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभावना में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा। (महत्व दिया)

22. इस प्रकार, साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 उन मामलों पर लागू होगी जहां अभियोजन पक्ष उन तथ्यों को स्थापित करने में सफल रहा है जिनसे कुछ अन्य तथ्यों के अस्तित्व के बारे में एक उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है जो अभियुक्त के विशेष जान के भीतर है। जब उक्त अभियुक्त अन्य

तथ्यों के अस्तित्व के बारे में उचित स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है, तो न्यायालय हमेशा एक उचित निष्कर्ष निकाल सकता है।

23. जब कोई मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर टिका हुआ हो, यदि अभियुक्त साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के आधार पर उस पर रखे गए बोझ के निर्वहन में उचित स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है, तो ऐसी विफलता परिस्थितियों की श्रृंखला के लिए एक अतिरिक्त लिंक प्रदान कर सकती है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा शासित मामले में, यदि परिस्थितियों की श्रृंखला जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित किया जाना आवश्यक है, स्थापित नहीं किया जाता है, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत बोझ का निर्वहन करने में अभियुक्त की विफलता बिल्कुल भी प्रासंगिक नहीं है। जब श्रृंखला पूरी नहीं होती है, तो बचाव पक्ष की मिध्यता आरोपी को दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं है।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय स्पष्ट रूप से कहते हैं कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि तब तक उचित नहीं है जब तक कि परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी न हो जाए, लेकिन वर्तमान मामले में, ऐसा कोई सबूत नहीं है जो अपीलकर्ताओं को मृतक पूजा की मृत्यु से जोड़ता हो। चूंकि अ०सा०-१ चश्मदीद गवाह नहीं था और जो अन्य कथित चश्मदीद गवाह जो अ०सा०-1 की जानकारी के स्रोत थे, ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं

किया और यहां तक कि कोई दस्तावेजी सबूत भी नहीं है जो कथित बरामद राख और जली हुई हड्डियों को स्थापित कर सके यहां तक कि, राख और जली हुई हड्डियों के हिस्से की फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-6) विश्वसनीय नहीं है क्योंकि अपीलकर्ताओं द्वारा उस पर हस्ताक्षर नहीं किए गए थे, यहां तक कि एस.डी.एम द्वारा भी साबित नहीं किया गया था जिसके निर्देशन और पर्यवेक्षण के तहत उपरोक्त फर्द बरामदगी तैयार की गई थी। अभियोजन पक्ष भी परिस्थितियों की पूरी श्रृंखला स्थापित करने में विफल रहा है।

26. उपरोक्त तथ्य के मद्देनजर, सत्र न्यायाधीश का दिनांक 28.10.2017 का निर्णय किसी निर्णायक साक्ष्य पर आधारित नहीं है, बल्कि केवल अनुमान और परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर है जो स्वयं पर्याप्त नहीं था। इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं के खिलाफ अपने मामले को संदेह से परे साबित नहीं कर सका। इसलिए, विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश (एफ.टी.सी), कोर्ट नंबर 3. बुलंदशहर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.10.2017 को रद्द किया जाता है और अपीलकर्ताओं को केस अपराध संख्या 252 वर्ष 2011, थाना-नरसेना, बुलंदशहर में धारा-302/34, 201 भन्द०वि० के तहत आरोपों से बरी किया जाता है। इसलिए, अपीलकर्ता राजवीर और रहीसुददीन को, जाए यदि वे किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं, तुरंत रिहा कर दिया।

27. तदनुसार, दोनों अपीलों की अनुमति दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 1088

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

संख्या 104/2023

नैतिक शुक्ला

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री गौरव सिंह, श्री कुमार

श्रेष्ठ, श्री कृशाप शंकर सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री राकेश कुमार
शुक्ला

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860-
धारा 306 - आत्महत्या का उकसाना - आरोपों
के अनुसार एफ.आई.आर. मृतक के पिता द्वारा
दर्ज कराया गया, उनका बेटा जो क्रियर कंपनी
में काम करता था, 10.09.2022 को उनके
कार्यालय में नहीं आया - उसके पिता ने उससे
संपर्क करने की कोशिश की लेकिन वह उपलब्ध
नहीं था - दिनांक 17.09.2022 को गुमशुदगी
की रिपोर्ट दर्ज कराई गई - उसके बेटे ने एक
लॉज में फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है-
अंग्रेजी भाषा में लिखा 11 पन्नों का सुसाइड
नोट मिला, इसमें उल्लेख किया गया था कि
आवेदक और दो अन्य उसकी आत्महत्या के
लिए जिम्मेदार थे - आत्महत्या के लिए उकसाने
के अपराध के गठन के लिए, "उकसाने" को
इतने शब्दों में व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं
है - "उकसाने" का आशय केवल तथ्यों और
परिस्थितियों से ही प्राप्त किया जा सकता है,

जो "आत्महत्या के कृत्य" से पहले थे - जमानत
(पूर्वानुमानित या नियमित) देने के चरण में,
एक सुसाइड नोट का गहन विश्लेषण, जो कानूनी
तौर पर एक मृत्युपूर्व कथन है, अनावश्यक है-
आवेदक के प्रत्यक्ष कृत्यों से पीड़ित को हुई
मानसिक स्थिति, पीड़ा, वेदना उसे अपनी जान
लेने के लिए मजबूर करने के लिए जिम्मेदार -
जोरदार ढंग से तर्क दिया गया कि आशय कोई
रहस्यमय चीज नहीं है और इसे प्रत्यक्ष कृत्यों से
पता लगाया जा सकता है - इसलिए, अग्रिम
जमानत का लाभ देने के लिए यह उपयुक्त वाद
नहीं है। (पैरा 3, 6, 7)

आवेदन अस्वीकृत (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. शब्बीर हुसैन बनाम एम.पी. राज्य व अन्य,
2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 743
2. पश्चिम बंगाल राज्य और इंद्रजीत कुंडू एवं
अन्य, (2019) 10 एससीसी 188

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा,
द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से विद्वान वरिष्ठ
अधिवक्ता श्री कृपा शंकर सिंह को विद्वान
अधिवक्ता श्री कुमार श्रेष्ठ और श्री गौरव सिंह
की सहायता से, प्रथम सूचनाकर्ता की ओर से
विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश कुमार शुक्ला,
राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना और
अभिलेख का अवलोकन किया।
2. यह प्रार्थना पत्र आवेदक नैतिक शुक्ला की
ओर से प्रस्तावित है, जिसमें मुकदमा अपराध
संख्या 0687/2022, आईपीसी की धारा 306

के तहत, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला-ललितपुर में अग्रिम जमानत की मांग की गई है।

3. मृतक के पिता द्वारा दर्ज कराई गई एफ.आई.आर. में लगे आरोपों के अनुसार उनका पुत्र उदय बाजपेयी, जो एक्सप्रेसवे कूरियर कंपनी आगरा में कार्यरत था, दिनांक 10.09.2022 को अपने कार्यालय में नहीं आया; उसके पिता ने उससे संपर्क करने की कोशिश की लेकिन उससे संपर्क नहीं हो पाया था, इसलिए पहले सूचनाकर्ता, उसकी पत्नी और उसका छोटा बेटा उसके ठिकाने के बारे में पूछताछ करने के लिए आगरा गए लेकिन वह वहां नहीं मिला; पहले सूचनाकर्ता ने 17.09.2022 को गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराई; बाद में उन्हें सूचना मिली कि उनके बेटे ने ललितपुर के एक लॉज में फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली है। एफ.आई.आर. में उल्लेखित है कि अंग्रेजी भाषा में लिखा 11 पन्नों का एक सुसाइड नोट भी मिला, जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि वर्तमान आवेदक नैतिक शुक्ला और दो अन्य लोग उसकी आत्महत्या के लिए सीधे तौर पर जिम्मेदार हैं।

4. आवेदक की ओर से यह तर्क दिया गया है कि वह निर्दोष है और उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है, मृतक कंपनी में एक कार्यकारी के रूप में कार्यरत था; आवेदक और मृतक अलग-अलग इकाइयों में काम कर रहे थे; उसने कभी भी आत्महत्या के लिए उकसाया नहीं और न ही उसे इससे जोड़ा जा सकता है: इस घटना से पहले, आवेदक, मृतक और

कंपनी के कुछ अन्य कर्मचारियों के बीच विवाद हुआ था, जिसके लिए उसने एफ.आई.आर. दर्ज कराई थी। यह तर्क दिया जाता है कि उस घटना और आत्महत्या के बीच का अंतर इतना लंबा है कि यह नहीं माना जा सकता है कि पिछली घटना ने आत्महत्या में योगदान दिया था और आवेदक इसके लिए जिम्मेदार था। **शब्बीर हुसैन बनाम म.प्र. राज्य एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 743 और पश्चिम बंगाल राज्य और इंद्रजीत कुंडू एवं अन्य, (2019) 10 एससीसी 188** में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दो निर्णयों को इस तर्क पर जोर देने के लिए उद्धृत किया गया है कि पिछली घटना को वर्तमान अपराध के लिए अग्रगामी के रूप में नहीं माना जा सकता है और न ही आवेदक को इसके लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

5. विद्वान ए.जी.ए. और पहले सूचनाकर्ता के निजी अधिवक्ता द्वारा अग्रिम जमानत के प्रार्थना पत्र का विरोध इस तथ्य पर जोर देते हुए किया गया है कि 11 पन्नों का सुसाइड नोट आवेदक की ओर से दोनों के बीच पिछली घटना के सन्दर्भ में दर्ज एफ.आई.आर. की तारीख से लेकर आत्महत्या करने तक सभी तथ्यों और परिस्थितियों का क्रम से वर्णन करता है; सुसाइड नोट को सरसरी तौर पर देखने से भी प्रतीत होता है कि मृतक को आवेदक द्वारा परेशान किया जा रहा था और वह इस हद तक अपमानित और हताश महसूस कर रहा था कि उसे अपनी जान लेने जैसा बड़ा कदम उठाने के लिए मजबूर होना पड़ा, मेरा ध्यान आत्महत्या करने से कुछ दिन पहले

मृतक द्वारा अपलोड किए गए व्हाट्सएप संदेश/स्टेटस पर दिलाया गया है जिसमें उसने कहा था कि वर्तमान आवेदक और दो अन्य सुनील और गिरीश तोमर उसे नौकरी से निकालने की धमकी दे रहे हैं और वर्तमान आवेदक शराब आदि की मांग कर रहा है और उसकी छोटी-छोटी गलतियों पर उसे डरा और धमका रहा है; उसने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और आपत्तिजनक बातें कहीं, इसलिए वह नौकरी छोड़ रहा है और आत्महत्या करने जा रहा है।

6. जहां तक आवेदक द्वारा दिए गए विधिक तर्क का सम्बन्ध है, यह तर्क दिया गया है कि आत्महत्या के लिए दुष्प्रेक्षण का अपराध गठित करने के लिए, "उकसाने" को इतने सारे शब्दों में व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है। "उकसाने" का आशय केवल तथ्यों और परिस्थितियों से ही पता लगाया जा सकता है, जो "आत्महत्या के कृत्य" से पूर्व में हुए थे। इसके आगे, जमानत (अग्रिम या नियमित) देने के स्तर पर, सुसाइड नोट का गहन या प्रगाढ़ विश्लेषण, जो विधिक तौर पर एक मृत्युपूर्व घोषणा है, अनावश्यक है। साक्ष्य के गुण-दोष जमानत के लिए भी महत्वपूर्ण है, किन्तु उस रूप में नहीं जैसा पूर्ण विचारण में होता है। आवेदक के प्रत्यक्ष कृत्यों से पीड़ित को हुई पीड़ा, मानसिक स्थिति, व्यथा, मृतक को अपनी जान लेने के लिए मजबूर करने के लिए जिम्मेदार थी। यह तर्क मजबूती से दिया गया है कि आशय कोई रहस्यमय चीज नहीं है और इसे प्रकट कृत्यों से समझा जा सकता है। जहां तक सह-अभियुक्त गिरीश तोमर और सुनील कुमार को अग्रिम जमानत देने का सम्बन्ध है,

वर्तमान आवेदक का मामला अलग स्तर पर है क्योंकि प्रथम दृष्टया वह मुख्य अपराधी प्रतीत होता है।

7. मैंने अभिलेख पर मौजूद सामग्री, आरोपों की प्रकृति, आवेदक की भूमिका और मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में दोनों पक्षों के तर्कों पर विचार किया। मुझे यह अग्रिम जमानत का लाभ देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं लगता।

8. अतः अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र खारिज किया जाता है।

9. हालाँकि, इसमें की गई किसी भी अवलोकन को मामले के गुणदोष पर टिप्पणी के रूप में नहीं लिया जाएगा और विद्वान विचारण न्यायालय मामले के किसी भी स्तर में, उसके समक्ष मौजूद सामग्री के आधार पर, अपनी राय बनाने के लिए स्वतंत्र होगा।

(2023) 4 ILRA 1090

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या

7975/2023

पप्पू

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री विष्णु मूर्ति त्रिपाठी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री जुनेद

आलम, श्री प्रदीप कुमार

आपराधिक कानून -भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 363, 366 और 376 (3) -लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 -धारा 3/4- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 161, 164 - वादी (पीड़िता की मां) ने बताया कि उसकी बेटी (नाबालिग) 21.08.2022 को प्रकृति की पुकार में शामिल होने के लिए गई थी - जब वह वापस नहीं लौटी, तो खोजबीन की गई लेकिन वह नहीं मिली - दिनांक 24.08.2022 को उसने अज्ञात व्यक्ति के विरुद्ध धारा 363 आईपीसी के तहत एफआईआर दर्ज कराई - आयोजित, शैक्षिक दस्तावेज के अनुसार, घटना के दिन पीड़िता की उम्र लगभग 15 वर्ष और 8 महीने थी और उसकी मेडिकल जांच के अनुसार, उम्र 17 से 18 वर्ष के बीच है, इसलिए, वह एक नाबालिग लड़की है - नाबालिग लड़की की सहमति महत्वहीन है - बयान में कहा गया है कि न केवल उसका जबरन अपहरण किया गया बल्कि उससे जबरन विवाह भी किया गया तथा आवेदक ने उसकी इच्छा के विरुद्ध शारीरिक संबंध भी बनाए - पीड़िता का बयान आज तक दर्ज नहीं किया गया है, संभावना है कि आवेदक उसे प्रभावित करने का प्रयास कर सकता है - तदनुसार, जमानत आवेदन को निर्देशों के साथ निरस्त किया जाता है। (पैरा 2, 3, 9, 10)

जमानत आवेदन निरस्त (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. आर्य समाज, ग्वालियर बनाम एम.पी. राज्य एवं अन्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन एमपी 904

2. आशीष मोर्या बनाम अनामिका धीमान, 2022(12) एडीजे 584 (डीबी)
3. भोला सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य (बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका संख्या 637/2022)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान वकील श्री विष्णु मूर्ति त्रिपाठी, मुखबिर के विद्वान वकील श्री प्रदीप कुमार और राज्य के विद्वान ए.जी.ए.-I श्री चंदन अग्रवाल को सुना।
2. आवेदक ने धारा 439 सीआरपीसी के तहत वर्तमान आपराधिक विविध जमानत आवेदन दायर करके इस न्यायालय से संपर्क किया है, जो मुकदमा अपराध क्रमांक 525/2022 में धारा 363, 366, 376(3) आई.पी.सी. और पाँक्सो अधिनियम की धारा 3/4, पुलिस थाना-कोखराज, जिला कौशांबी के तहत दर्ज है और विशेष न्यायाधीश (पाँक्सो अधिनियम), कौशांबी द्वारा पारित आदेश दिनांक 05.12.2022 द्वारा उसकी जमानत अर्जी खारिज होने के बाद दायर किया गया है।
3. सूचक (पीड़िता की मां) ने एफ.आई.आर. दर्ज कराई है कि उनकी बेटी (जन्मतिथि 01.01.2009) 21.08.2022 को शौच हेतु गई थी, हालांकि, जब वह वापस नहीं लौटी, तो काफी तलाश की गई लेकिन वह नहीं मिली और इसलिए, 24.08.2022 को उसने अज्ञात व्यक्ति के विरुद्ध धारा 363 आई.पी.सी. के तहत एफ.आई.आर. दर्ज कराया।

4. आवेदक के विद्वान वकील का कहना है कि एफ.आई.आर. दर्ज करने में तीन दिन की देरी हुई जो कि अस्पष्टीकृत रही। ऐसा प्रतीत होता है कि पीड़िता को 15.11.2022 को अकेले बरामद किया गया था, उसके बाद उसने सीआरपीसी की धारा 161 और 164 के तहत अपना बयान दिया कि वह आवेदक के साथ भाग गई और शादी कर ली, हालांकि, बाद में उन्हें पकड़ लिया गया।

5. विद्वान वकील ने आगे कहा कि पीड़िता ने मजिस्ट्रेट के समक्ष अपने बयान में विपरीत रुख अपनाया है कि आवेदक ने उसे बहकाया है और जबरदस्ती अपहरण कर लिया है और शादी के लिए उसे प्रयागराज ले गया है। उसे जबरन आवेदक के साथ रखा गया, जिसने उसकी इच्छा के विरुद्ध शारीरिक संबंध बनाए।

6. विद्वान वकील का आगे कहना है कि रेडियोलॉजिकल जांच के अनुसार पीड़िता की उम्र 17 से 18 वर्ष के बीच मानी जाती है। यह सहमति से संबंध का मामला था और पीड़िता का आवेदक के साथ प्रेम संबंध है। उन्होंने शादी कर ली और पति-पत्नी की तरह साथ रहने लगे।

7. उपर्युक्त दलीलों का विद्वान ए.जी.ए.-I ने यह कहते हुए विरोध किया है कि शैक्षिक दस्तावेज़ के अनुसार, घटना की तारीख पर पीड़िता की उम्र लगभग 15 वर्ष और 8 महीने थी, इसलिए, वह एक नाबालिग लड़की थी और इस तरह उसकी सहमति थी, यदि कोई भी, सारहीन है। उसने सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज अपने बयान में विशेष रूप से कहा

है। उस आवेदक ने न केवल उसे फुसलाया बल्कि शादी के लिए मजबूर किया और उसकी इच्छा के विरुद्ध शारीरिक संबंध बनाए।

8. विद्वान ए.जी.ए.-I ने आर्य समाज, कृष्णा नगर, प्रयागराज द्वारा जारी विवाह प्रमाण पत्र का हवाला दिया और प्रस्तुत किया है कि उन्होंने एक नाबालिग लड़की की शादी की है, जो एक गैरकानूनी कार्य है और इसके लिए यह न्यायालय उचित निर्देश जारी कर सकता है।

9. वर्तमान मामले में, शैक्षिक दस्तावेज़ के अनुसार, घटना की तारीख पर पीड़िता की उम्र लगभग 15 वर्ष और 8 महीने थी और उसकी चिकित्सा परीक्षा के अनुसार भी, माना जाता है कि उम्र 17 से 18 साल के बीच है, इसलिए, पीड़िता एक नाबालिग लड़की है और तदनुसार, विद्वान ए.जी.ए.-I के तर्क में दम है कि नाबालिग लड़की की सहमति महत्वहीन है। पीड़िता ने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज अपने बयान में विशेष रूप से कहा है कि उसका न केवल जबरन अपहरण किया गया बल्कि जबरन शादी भी की गई और आवेदक ने उसकी इच्छा के विरुद्ध शारीरिक संबंध भी बनाए हैं और चूंकि, सुनवाई के दौरान आज तक पीड़िता का बयान दर्ज नहीं किया गया है, इसलिए संभावना है कि जमानत के मामले में आवेदक उसे प्रभावित करने के लिए प्रयास करेगा।

10. तदनुसार जमानत आवेदन खारिज कर दिया जाता है, हालांकि, ट्रायल कोर्ट को पीड़िता का बयान शीघ्रता से, अधिमानतः तीन महीने की अवधि के भीतर दर्ज करने का निर्देश दिया

जाता है। इसके बाद आवेदक को नई जमानत याचिका दाखिल करने की आजादी होगी।

11. फैसले से अलग होने से पहले, न्यायालय ने इस बात को गंभीरता से लिया कि आर्य समाज, कृष्णा नगर, प्रयागराज ने पीड़िता के साथ आवेदक का विवाह प्रमाण पत्र जारी किया है, जिसकी एक प्रति रिकॉर्ड में है। विवाह प्रमाणपत्र यह नहीं दर्शाता है कि पीड़िता की उम्र कैसे सत्यापित की जाती है यानी 18 वर्ष से अधिक। आर्य समाज कृष्णा नगर, प्रयागराज का यह कर्तव्य था कि विवाह संपन्न कराने से पहले यह सावधानीपूर्वक सत्यापित कर लिया जाए कि वे दो वयस्क व्यक्तियों के बीच विवाह संपन्न करा रहे हैं या नहीं। यह बाल विवाह के समान है जिसका स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने विरोध किया था।

12. यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि आर्य समाज, 1875 में स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा शुरू किया गया एक सुधारवादी आंदोलन था और निम्नलिखित दस आधार सिद्धांतों पर आधारित है: -

(i) ईश्वर सभी सच्चे ज्ञान और ज्ञान के माध्यम से ज्ञात सभी चीजों का कुशल कारण है।

(ii) ईश्वर अस्तित्वमान, बुद्धिमान और आनंदमय है। वह निराकार, सर्वज्ञ, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, अपरिवर्तनशील, अनादि, द्वितीय, सबका आश्रय, सबका स्वामी, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी,

अजर, अमर, निर्भय, शाश्वत और पवित्र है। वही सबका निर्माता है और वही पूजा के योग्य है।

(iii) वेद समस्त सत्य विद्याओं के ग्रन्थ हैं। इन्हें पढ़ना, पढ़ाना, सुनाना और पढ़ते हुए सुनना सभी आर्यों का परम कर्तव्य है।

(iv) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सदैव तत्पर रहना चाहिए।

(v) सभी कार्य धर्म के अनुसार ही करने चाहिए अर्थात् क्या उचित है और क्या अनुचित है, इसका विचार-विमर्श करके।

(vi) आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य दुनिया की भलाई करना है, यानी हर किसी की शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक भलाई को बढ़ावा देना है।

(vii) सभी के प्रति हमारा आचरण प्रेम, धार्मिकता और न्याय द्वारा निर्देशित होना चाहिए।

(viii) हमें अविद्या (अज्ञान) को दूर करना चाहिए और विद्या (ज्ञान) को बढ़ावा देना चाहिए।

(ix) किसी को भी केवल अपनी भलाई को बढ़ावा देने से संतुष्ट नहीं होना चाहिए; इसके विपरीत, सभी

की भलाई को बढ़ावा देने में ही अपनी भलाई देखनी चाहिए।

(x) किसी को सभी के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए बनाए गए समाज के नियमों का पालन करने के लिए खुद को प्रतिबंधित मानना चाहिए और व्यक्तिगत कल्याण के नियमों का पालन करते हुए भी स्वतंत्र होना चाहिए।

13. गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पहले विवाह संस्कार हमेशा दूल्हा और दुल्हन के लिए एक पवित्र और पवित्र प्रक्रिया रही है। आर्य समाज के अनुष्ठान के अनुसार, इसमें वरमाला और स्वागत, विधि मधुपर्क, यज्ञ और कन्यादान, हवन और गोदान, पाणि ग्रहण संस्कार, शिलारोहण, लाजाहोम, फेरे या परिक्रमा, केश मोचन, सप्तपदी और हृदय स्पर्श मंत्र, सिन्दूर और मंगलसूत्र और सूर्य दर्शन शामिल हैं। विवाह संस्कार के समय उन्हें आर्य समाजी होने की सुगंध आती है और वे पूरी ईमानदारी और भक्ति के साथ अनुष्ठान करते हैं, इसलिए आर्य समाज के जिम्मेदार पदाधिकारियों का यह कर्तव्य बनता है कि वे स्वामी दयानंद जी की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के उनके पवित्र प्रयासों को रोकें विशेषतया कुछ व्यक्तियों द्वारा दुरुपयोग किए जाने वाले बाल विवाह पर अंकुश लगाना, जो उन्हें ऐसे विवाह को संपन्न कराने में शामिल करता है जिसे वैध नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए नाबालिग का विवाह, जैसा कि मामला है, स्वामी दयानंद के 'बाल विवाह' को रोकने के आदर्श वाक्य के सीधे विपरीत होगा।

14. हाल ही में, न्यायालय को आर्य समाज के अनुष्ठान द्वारा संपन्न विवाहों के लिए फर्जी या गलत घोषणा के आधार पर प्रमाण पत्र जारी करने का सामना करना पड़ा है कि दूल्हा और दुल्हन दोनों बालिग हैं, हालांकि यह हमेशा रिकॉर्ड के विपरीत पाया गया और इस प्रकार शामिल हुआ। आर्य समाज के सदस्यों को न केवल गैरकानूनी काम करने के लिए बल्कि अपने गुरु की शिक्षाओं के खिलाफ कार्य करने के लिए भी कहा। यह समाज के सदस्यों पर लगाए गए स्वामी दयानंद के विश्वास को धोखा देने से कम नहीं होगा। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले के तथ्य ज्वलंत उदाहरण हैं जहां आरोपी और पीड़ित ने आर्य समाज की आस्था के साथ धोखाधड़ी की है। पीड़िता एक नाबालिग लड़की है जो 16 वर्ष से कम उम्र की है जब उसकी शादी आवेदक के साथ संपन्न हुई थी।

15. अब समय आ गया है जब आर्य समाज को आत्मनिरीक्षण करना होगा ताकि उनके साथ धोखाधड़ी न हो। उन्हें भावी दूल्हे और दुल्हन की प्रमाणिकता को सत्यापित करने के लिए कड़े नियम और प्रक्रिया बनानी होगी, खासकर जब वे अपने संबंधित परिवारों से भाग रहे हों या दलालों के माध्यम से उनसे संपर्क किया जाता है, जो इलाहाबाद में प्रचलित हैं क्योंकि वे भागने वाले होनहार जोड़े हैं, कि उन्हें इस न्यायालय से सुरक्षा मिलेगी। यदि जिम्मेदार सदस्य इस खतरे का संज्ञान नहीं लेते हैं, तो जल्द ही एक दिन ऐसा आएगा कि आर्य समाज मंदिर अवैध विवाह आयोजित करने का स्थान बन जाएगा और उनकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाएगी।

16. मेरे पास प्रत्यक्ष जानकारी है कि कैसे उच्च न्यायालय के निकट आर्य समाज मंदिर के एक पुजारी ने एक व्यक्ति को आश्वस्त किया कि न्यूनतम कागजात के साथ विवाह संपन्न कराया जा सकता है और उसे विवाह के लिए निर्धारित शुल्क में रियायत मिलेगी। पुजारी ने प्रयास किया कि उक्त व्यक्ति को आश्वस्त किया जाए ताकि भावी वर-वधू का विवाह मंदिर में संपन्न हो सके। इससे पता चलता है कि कैसे एक पवित्र स्थान पैसे के लिए गतिविधि संचालित करने का स्थान बनता जा रहा है जो शायद कानूनी गतिविधि के अंतर्गत नहीं आता है।

17. न्यायालय ने **आर्य समाज, ग्वालियर बनाम मप्र राज्य और अन्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन एमपी 904** में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, ग्वालियर की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय और **आशीष मोर्या बनाम अनामिका धीमान, 2022(12) एडीजे 584 (डीबी)** में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित फैसले और इस न्यायालय द्वारा बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 637/2022 (भोला सिंह और अन्य बनाम यूपी राज्य और 5 अन्य) में 31.08.2022 को फैसला सुनाया गया, का अवलोकन किया है।

18. इसलिए, यह न्यायालय अन्य बातों के साथ-साथ कुछ सुझाव दे रहा है और कुछ निर्देश भी जारी कर रहा है:

1. आवश्यक दस्तावेजों की एक जांच सूची तैयार की जाए और प्रस्तावित जोड़े की उम्र को सत्यापित करने के लिए दस्तावेजों की सत्यता और वास्तविकता की जांच करने के लिए एक तंत्र

विकसित किया जाए और किसी भी संदेह की स्थिति में विवाह नहीं किया जा सके।

2. यह सुनिश्चित करने के लिए एक तंत्र विकसित किया जाना चाहिए कि दूल्हे या दुल्हन के खिलाफ कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है या नहीं और इसमें लड़के या लड़की की उम्र का खुलासा किया गया है या नहीं।

3. जोड़ों के लिए एक परामर्श का प्रस्ताव रखा जाए ताकि वे किसी भी आपराधिक कृत्य में शामिल न हो सकें, जैसे कि विवाह योग्य उम्र तक पहुंचने से पहले विवाह करना।

4. विवाह प्रमाण पत्र के प्रारूप को संशोधित किया जाए ताकि इसमें माता-पिता का विवरण, उम्र के प्रमाण का विवरण और गवाहों के विवरण उनके आईडी प्रमाण के साथ शामिल किए जा सकें। उन्हें एक हलफनामा भी दाखिल करना पड़ सकता है।

5. या कोई अन्य उपाय, जो बाल विवाह रोकने के लिए उचित हो।

19. यह एक पुरानी कहावत है कि "रोकथाम इलाज से बेहतर है", इसलिए, यह निर्देशित किया जाता है कि आर्य समाज कृष्णा नगर, प्रयागराज कोई भी विवाह नहीं करेगा जहां प्रस्तावित दूल्हे और दुल्हन के पास आज से दो महीने की अवधि के लिए उनके परिवारों की सहमति नहीं है।

20. आर्य समाज की सर्वोच्च संस्था 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' है, जिसका कार्यालय 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली में है। न्यायालय अपने अध्यक्ष को उपरोक्त कानूनी मुद्दों और प्रस्तावित सुझावों पर गौर करने का निर्देश देता है ताकि आर्य समाज मंदिरों को बाल विवाह का हिस्सा बनने से रोकने के उद्देश्य से शीर्ष निकाय द्वारा दिशानिर्देश जारी किए जाएंगे और इसके लिए हितधारकों, वरिष्ठ आर्य समाजियों आदि के साथ चर्चा/परामर्श किया जाएगा। अध्यक्ष, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा एक दिशानिर्देश /रिपोर्ट तैयार करेगी जो आज से आठ सप्ताह की अवधि के भीतर रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी।

21. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को कदम उठाने का निर्देश दिया गया है।

22. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत दिशानिर्देश/रिपोर्ट पर विचार हेतु उचित पीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाएगा।

(2023) 4 ILRA 1094

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ज्योत्सना शर्मा

आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन

संख्या 12494 / 2022

उनीश खान

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अनिल प्रताप सिंह राघव

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

दण्ड विधि - आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955- धारा 3 व 7 - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 -अनुसूची I भाग 2- अभियोजन वाद के अनुसार - उचित मूल्य दुकान के अनुज्ञापी द्वारा अनाज की कालाबाजारी की गोपनीय सूचना के आधार पर उपनिरीक्षक क्षेत्रीय खाद्य अधिकारी के साथ आवेदक की दुकान पर पहुंचे लेकिन दुकान बंद थी - दुकान मालिक से सम्पर्क करने के कई असफल प्रयासों के बाद दुकान को सील कर दिया गया - दिनांक 30.09.2022 को ए.डी.एम. द्वारा गठित टीम द्वारा दुकान की जांच की गई, दुकान मालिक और गवाहों की मौजूदगी में दुकान का निरीक्षण किया गया, जिसमें स्टॉक से 12 बोरी गेहूं और 6 बोरी चावल कम पाया गया - इस आधार पर एफआईआर दर्ज की गई - दिनांक 08.07.1998 के बाद किए गए अपराध के मामले में उपरोक्त धारा के तहत अपराध जमानती या अजमानतीय है - वैधता - माना गया कि अधिनियम की धारा 7(1)(ए)(ii) के तहत अपराध संहिता की अनुसूची I भाग 2 के अनुसार 7 वर्ष तक के कारावास से दंडनीय है और जमानती नहीं है और कानून की सही स्थिति यह है कि संहिता के उक्त प्रावधान को यह निर्धारित करने के लिए ध्यान में रखा जाएगा कि आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध जमानती है या अजमानतीय है - राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में निर्णय अनुचित है और स्पष्ट और अस्पष्ट वैधानिक प्रावधानों की अनदेखी करता है -

इसलिए अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त किया जाता है। (पैरा 2, 3, 16, 18, 23)

आवेदन अस्वीकृत (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. दिनेश कुमार दुबे बनाम म.प्र. राज्य ; 2001 (1) एम.आर.एच.टी. 213
2. राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (सीआरएल विविध अग्रिम जमानत आवेदन अंतर्गत धारा 438 संख्या 10698/ 2021)
3. श्रीमती शकीला बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य (अंतर्गत आवेदन धारा 482 संख्या 44486 / 2012)
4. नेमचंद अग्रवाल बनाम एम.पी. राज्य; एम.सीआर.सी. 6111/1999
5. राजेश खटीक बनाम एम.पी. राज्य (विविध आपराधिक प्रकरण संख्या 3248/2022)
6. अरुण भारती बनाम एमपी राज्य (विविध आपराधिक प्रकरण संख्या 20337/2020)
7. हरिओम बनाम एम.पी. राज्य, 2011 (1) एमपीएलजे (क्रि.) 267
8. संतोष सहारे बनाम एम.पी. राज्य (एमसीआरसी संख्या 2914/2015)
9. बलवंत बनाम एम.पी. राज्य, 2001 (3) एमपीएलजे 414

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा,
द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल प्रताप सिंह राघव, एवं राज्य के लिए विद्वान अपर राजकीय अधिवक्ता श्री ओ.पी. मिश्रा को सुना।

2. वर्तमान आवेदन आवेदक यूनिस खान की ओर से केस क्राइम नंबर 2022 का 0979, आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3/7 के तहत, पुलिस थाना खुर्जा नगर, जिला बुलन्दशहर में अग्रिम जमानत प्राप्त करने हेतु प्रस्तुत किया गया है।

3. अभियोजन पक्ष के अनुसार उचित मूल्य दुकान के अनुज्ञप्तिधारी द्वारा अनाज की कालाबाजारी के संबंध में प्राप्त एक गोपनीय सूचना के आधार पर स्थानीय थाने के उपनिरीक्षक क्षेत्रीय खाद्य अधिकारी सहित वर्तमान आवेदक की दुकान पर पहुंचे लेकिन दुकान बंद मिली; दुकान मालिक से संपर्क करने के कई असफल प्रयास के बाद दुकान सील कर दी गई। दिनांक 30.09.2022 को ए.डी.एम. द्वारा गठित टीम ने लाइसेंसधारी/ दुकान मालिक और गवाहों की उपस्थिति में दुकान का निरीक्षण किया; गेहूं के 12 बोरे एवं चावल के 6 बोरे स्टॉक से कम पाए गए। इसके आधार पर प्र.सू०रि० अपराध संख्या 2022 का 0979 तहत धारा 3/7 आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 दर्ज कर विवेचना की गई।

4. आवेदक की ओर से यह तर्क दिया गया है कि आवेदक निर्दोष है और किसी भी प्रकार की कालाबाजारी में शामिल नहीं है; एक राजनीतिक दल की पहल पर बिना किसी आधार के उनके विरुद्ध मुकदमा दर्ज किया गया है; आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वह उन शर्तों का पालन करने हेतु सहमत हैं जो न्यायालय द्वारा लगाई जा सकती हैं।

5. गुणागुण आधार पर अग्रिम जमानत आवेदन का विरोध करने के अलावा इसका विरोध इस आधार पर भी किया जा रहा है कि आवेदक पर जिस अपराध का आरोप लगा है वह जमानती है, सो धारा 438 सीआरपीसी के प्रावधान लागू नहीं होंगे एवं इसलिए अग्रिम जमानत आवेदन संधार्य नहीं है। इस तर्क के समर्थन में **आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन तहत धारा 438 सीआरपीसी सं० 2021 का 10698 (राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)** मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 10.11.2021 के आदेश द्वारा पारित एक निर्णय का हवाला मेरे समक्ष प्रस्तुत किया गया है। मैंने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय का अध्ययन किया। **दिनेश कुमार दुबे बनाम म.प्र. राज्य 2001 (1) एम.पी.एच.टी. 213** मामले में पारित म.प्र० उच्च न्यायालय के एक निर्णय के कुछ हिस्सों का हवाला देते हुए न्यायालय ने राय व्यक्त की कि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3/7 के तहत आने वाले अपराध जमानतीय हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा:-

"अधिकांश विवेचना अधिकारियों एवं नीचली अदालतों को उपरोक्त विधिक स्थिति स्पष्ट नहीं है, सो ऐसे मामलों में अपराधों को गैर-जमानती मानते हुए मजिस्ट्रेट एवं विशेष अदालतों अभियुक्त व्यक्तियों का जमानत आवेदन खारिज कर देती हैं।"

6. इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय में उद्धृत म.प्र.उच्च न्यायालय के निर्णय के

प्रासंगिक पैरा को यहाँ पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"प्रतीत होता है कि आवश्यक वस्तु (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1981 द्वारा 1955 के मूल अधिनियम की धारा 10ए में संशोधन कर 'संज्ञेय' शब्द के बाद 'और गैर-जमानती' शब्दों को शामिल किया गया था। 1981 का उक्त अधिनियम उसके प्रारंभ होने की तिथि से केवल पांच वर्ष की अवधि के लिए लागू रहना था। तत्पश्चात आवश्यक वस्तु (विशेष प्रावधान) निरंतरता अधिनियम, 1987 द्वारा आवश्यक वस्तु (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1981 की प्रस्तावना के पैरा 2 में संशोधन कर पांच वर्ष के स्थान पर 10 साल की अवधि प्रतिस्थापित की गयी। तत्पश्चात तीसरे संशोधन द्वारा लागू रहने की उक्त अवधि को पंद्रह वर्ष कर दिया गया। पंद्रह साल की समाप्ति के बाद कोई संशोधन अधिनियम लागू नहीं किया गया, लेकिन कुछ अध्यादेश जारी किए गए। अंतिम अध्यादेश वर्ष 1988 में जारी किया गया था जिसने समय बीतने पर अपना जीवन और प्रभावकारिता खो दी, तत्पश्चात 1981 अधिनियम के प्रावधानों को जारी रखने हेतु कोई अधिनियम या अध्यादेश जारी नहीं किया गया। राज्य के विद्वान अधिवक्ता को अवसर दिया गया कि वैधानिक प्रावधानों का अध्ययन कर

न्यायालय को रिपोर्ट करें कि क्या 1981 अधिनियम के प्रभाव को जारी रखने हेतु 1988 के बाद कोई अन्य अधिनियम अस्तित्व में लाया गया या कोई अन्य अध्यादेश जारी किया गया। राज्य के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद उन्हें ऐसा कोई अन्य अधिनियम या अध्यादेश नहीं मिला जो 1981 अधिनियम के प्रभाव और संचालन को जारी रखता हो।

3. यदि 1981 अधिनियम ने अपना अस्तित्व खो दिया है तो उक्त अधिनियम द्वारा शामिल कोई भी संशोधन जो पांच, दस या पंद्रह वर्षों की अवधि के लिए लागू रहना था, समाप्त हो जाएगा और अतिरिक्त शब्द "और गैर-जमानती" अपना अस्तित्व खो कर निष्क्रिय हो जाएंगे। उक्त संशोधन के बगैर धारा 10ए को अब "दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के किसी भी प्रावधान के बावजूद, अधिनियम के तहत दंडनीय प्रत्येक अपराध 'संज्ञेय' होगा" के रूप में पढ़ा जाएगा।

4. उपरोक्त विधिक प्रावधानों को दृष्टिगत रखते हुए अपराध **गैर-जमानती नहीं है**। ऐसे अपराध का संज्ञान लिया जा सकता है, लेकिन अपराध को गैर-जमानती दिखाने वाले किसी अन्य प्रावधान के अभाव

में आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की अनुसूची- II के मददेनजर अपराध जमानती बना रहेगा।"

7. इस बिंदु पर कोई विवाद नहीं है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 को आवश्यक वस्तु (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1981 द्वारा संशोधित किया गया था। 1955 के अधिनियम की धारा 10-ए को 1981 में संशोधित किया गया था एवं 'संज्ञेय' शब्द के बाद 'गैर-जमानती' शब्द जोड़े गये थे। इस पर कोई विवाद नहीं है कि 1981 का संशोधन केवल 5 वर्ष की अवधि तक लागू रहना था, तत्पश्चात '5 वर्ष' के स्थान पर '10 वर्ष' शब्द प्रतिस्थापित किए गए। परिणामस्वरूप, संशोधित भाग कुल 15 वर्षों की अवधि तक लागू रहा। वर्ष 1988 में जारी किया गया अंतिम अध्यादेश समाप्त हो गया क्योंकि तत्पश्चात 1981 अधिनियम के प्रावधानों को लागू रखने के लिए कोई अध्यादेश नहीं आया। उपरोक्त निर्विवाद स्थिति के आधार पर म.प्र. उच्च न्यायालय का विचार था कि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3/7 के तहत आने वाले अपराध अब गैर-जमानती नहीं रह गये हैं। ऊपर उद्धृत निर्णय के पैरा-4 में, म.प्र. उच्च न्यायालय ने स्पष्ट विचार व्यक्त किया कि अपराध को गैर-जमानती बताने वाले किसी अन्य प्रावधान के अभाव में अपराध सीआरपीसी की अनुसूची- I पैरा 2 के तहत जमानती बना रहेगा।

8. महत्वपूर्ण रूप से गौरतलब है कि **आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम, 1974** (1974 का अधिनियम संख्या 30) द्वारा

मूल अधिनियम की धारा 10-ए में संशोधन कर 'जमानती' शब्द हटा दिया गया था। यह संशोधन 2 जून, 1974 को लागू हुआ। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि 1974 का संशोधन लागू होने से पहले मूल अधिनियम की धारा 10-ए के प्रावधानों के आधार पर अपराधों को जमानती माना जा रहा था।

9. और स्पष्ट करने के लिए गौर किया जाना चाहिए कि आवश्यक वस्तु (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1981 द्वारा 'जमानती' शब्द को 'गैर-जमानती' शब्द से प्रतिस्थापित किया गया था, अर्थात् 1981 अधिनियम लागू होने से अपराध गैर-जमानती हो गए। हालाँकि 1981 का संशोधन लागू होने से पूर्व धारा 10-ए का कोई उपयोग नहीं था क्योंकि इसमें यह नहीं बताया गया था कि अपराध को जमानती माना जाएगा या गैर-जमानती। संक्षेप में कहें तो 1974 अधिनियम के प्रभाव में आने से पहले अपराध जमानती थे, और 1974 अधिनियम के प्रभाव में आने के बाद से लेकर 1981 का अधिनियम लागू होने तक धारा 10ए अपराध के जमानती/गैर-जमानती होने के प्रश्न पर मौन रही। तत्पश्चात अध्यादेश की समाप्ति के कारण आवश्यक वस्तु (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1981 के प्रभाव में आने से ठीक पहले की स्थिति पुनर्जीवित हो गई, यानी 1981 अधिनियम के प्रभावी होने तक धारा 10-ए में यह नहीं बताया गया था कि 1974 अधिनियम के आधार पर अपराध जमानती होंगे या गैर जमानती।

10. अब एक अत्यंत प्रासंगिक प्रश्न उठता है कि 08.07.1998 के बाद किए गए अपराध के

मामले में आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3/7 के तहत अपराध को जमानती माना जाए या गैर-जमानती। **राजीव कुमार बनाम उ०प्र० राज्य (ऊपर)** मामले में दिये गये इलाहाबाद हाई कोर्ट के निर्णय ने **श्रीमती शकीला बनाम उ० प्र० राज्य एवं अन्य, आवेदन तहत धारा 482 संख्या 2012 का 44486** के निर्णय में शामिल दिनांक 03.10.1998 के साशनादेश का उल्लेख किया है, जिसमें राज्य के सभी जिलाधिकारियों को संबोधित करते हुए स्पष्ट किया गया था कि आवश्यक वस्तु (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1981 और आवश्यक वस्तु (अध्यादेश) अधिनियम, 1988 दिनांक 31.03.1997 एवं 08.07.1998 से क्रमशः अप्रभावी हो चुके हैं।

11. यह गौर करना उचित रहेगा कि धारा 10-ए को 30.12.1967 से प्रभावी 1967 के दूसरे संशोधन (1967 का अधिनियम संख्या 36) द्वारा मूल अधिनियम की धारा 10 के नीचे जोड़ा गया था। नई सम्मिलित धारा 10-ए नीचे उद्धृत है:-

"अपराध संज्ञेय और जमानती होंगे - दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) के किसी भी प्रविधान के बावजूद, इस अधिनियम के तहत दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय और जमानती होगा।"

12. नई जोड़ी गई धारा 10-ए को 22.06.1974 से प्रभावी 1974 के अधिनियम संख्या 30 द्वारा संशोधित कर 'जमानती' शब्द हटा दिया गया था। इस प्रकार कानूनी स्थिति

बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि 1981 के संशोधन की समाप्ति के कारण आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत अपराधों संज्ञेय माने जाएंगे, और अपराधों के जमानती या गैर-जमानती होने का प्रश्न **सीआर.पी.सी., 1973 के प्रावधान अनुसार निपटा जाएगा।**

13. सीआरपीसी की अनुसूची-1 भाग 2 अन्य कानूनों के तहत दंडनीय अपराधों पर लागू होती है। इसमें कहा गया है कि मृत्यु, आजीवन कारावास, या 7 वर्ष तक का कारावास लेकिन 3 साल से अधिक की सजा वाले अपराध गैर-जमानती होंगे।

14. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 7 निम्नवत है:-

"(1) यदि कोई व्यक्ति धारा 3 के तहत जारी किसी आदेश का उल्लंघन करता है, -

(अ) वह दंडनीय होगा, -

(i) उस धारा की उपधारा (2) के खंड (ज) या खंड (झ) के संदर्भ में किए गए आदेश के मामले में एक वर्ष की अवधि तक के लिए कारावास समेत जुर्माने से भी, और

(ii) किसी अन्य आदेश के मामले में, कारावास की सजा, जिसकी अवधि तीन महीने से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे सात साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।

[बशर्ते कि अदालत, निर्णय में उल्लिखित किसी पर्याप्त और विशेष कारणवश तीन महीने से कम अवधि के कारावास की सजा भी दे सकता है;]

(ब).....

(स)

(2)

(2अ)

(2ब)

(3)"

ध्यान दिया जाना चाहिए कि कुछ अपराध केवल 1 वर्ष तक के कारावास से दंडनीय होंगे, और कुछ अन्य अपराध 7 वर्ष तक की कारावास से दंडनीय होंगे। चूंकि धारा 10-ए जो 1967 के अधिनियम 36 द्वारा सम्मिलित की गई थी, जो कि 1974 के संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित है, आवश्यक वस्तु (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1981 की समाप्ति के बाद पुनर्जीवित हो गई है, इसलिए, 08.07.1998 के बाद किया गया अपराध **सीआरपीसी की अनुसूची 1 भाग 2** के अनुसार शासित होगा, और इसलिए अधिकतम सजा की अवधि के आधार पर अपराध को जमानती या गैर-जमानती माना जाएगा।

15. यह ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है कि इस न्यायालय की समकक्ष पीठ का निर्णय म० प्र० हाईकोर्ट द्वारा **दिनेश कुमार दुबे (ऊपर)** के मामले में सुनाए गए निर्णय के आधार पर पारित किया गया था। हालाँकि वही उच्च न्यायालय **विविध आपराधिक वाद संख्या**

2022 का 3248 में दिनांक 04.02.2022 को राजेश खटीक बनाम म.प्र.राज्य में पारित निर्णय द्वारा म.प्र. के उस निर्णय में व्यक्त राय से पीछे हट गया था। नेमचंद अग्रवाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य; एम.सी.आर.सी. 1999 का 6111 में पारित निर्णय जिसमें अधिनियम की धारा 10-ए के प्रावधानों को छुआ गया था को भी म० प्र० उच्च न्यायालय के समक्ष इस बात पर जोर देने के लिए प्रस्तुत किया गया था कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत आने वाले अपराध जमानती हैं। म.प्र. उच्च न्यायालय का विचार था कि कानून के कुछ बिंदुओं को न्यायालय के समक्ष नहीं लाया गया और बहस नहीं की गई, जिसे नज़ीर नहीं माना जा सकता है। न्यायालय नेमचंद (ऊपर) और दिनेश कुमार दुबे (ऊपर) के मामलों में व्यक्त किए गए विचार से सहमत नहीं था, जिसके निम्नलिखित कारण बताए गए:-

"8. जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है, आज की मौजूदा वैधानिक कानूनी स्थिति यह है कि अधिनियम की धारा 7(1)(अ)(ii) के तहत अपराध, जो सात साल के कारावास से दंडनीय है, गैर-जमानती माना जाएगा। प्रश्न यह है कि क्या ऊपर बताए गए चार मामलों में व्यक्त राय का इस पीठ द्वारा भी पालन किया जाना चाहिए, या मामले को बड़ी पीठ के समक्ष प्रस्तुत किए बिना भी स्पष्टीकरण की गुंजाइश है। यह स्वयंसिद्ध है कि एक निर्णय कानून के उस प्रश्न के लिए प्रामाणिक होता है जिसका वो

निर्णय करता है, ना कि उस प्रश्न के लिए जिसे उठाया या जिसपर विचार ही नहीं किया गया था। एक साफ़ और एकदम स्पष्ट वैधानिक प्रावधान की उपेक्षा में दिया गया कोई मौन आदेश या धारणा नज़ीर नहीं होती। यदि विधि के किसी प्रावधान की किसी भी प्रकार व्याख्या की जाती है तो वो भविष्य के लिए नज़ीर बनेगी और समकक्ष पीठों पर बाध्यकारी होगी। लेकिन अगर कुछ यूँ ही मान लिया गया है और निर्णीत नहीं किया गया है तो उसे प्राधिकार प्राप्त बाध्यकारी नज़ीर नहीं माना जा सकता।

10. किसी वैधानिक प्रावधान पर विचार ना करना ऐसे स्पष्ट मामलों में से एक है जिसमें न्यायालय अपने ही निर्णयों का पालन करने के लिए बाध्य नहीं होती। बोनालुमी बनाम राज्य सचिव, (1985) 1 All ER 797। यंग बनाम ब्रिस्टल एयरप्लेन कंपनी लिमिटेड, (1944) 2 All ER 293 में, लॉर्ड ग्रीन, एम.आर.सी.पी. ने कहा: "जहां न्यायालय किसी कानून या कानून की शक्ति रखने वाले किसी नियम की व्याख्या करता है, वहाँ उसका निर्णय कानून के प्रश्न पर किसी भी अन्य निर्णय के समान बल रखता है। लेकिन जहां न्यायालय संतुष्ट है कि पूर्व निर्णय किसी कानूनी प्रविधान या कानून की शक्ति रखने वाले किसी नियम को अनदेखा

करते हुए दिया गया था तो स्थिति एकदम अलग होगी। हमारी राय में, यह कहना सही नहीं होगा कि ऐसे मामले में न्यायालय को वैधानिक प्रावधान की अवहेलना कर स्वयं के पूर्व निर्णय का पालन करने का अधिकार होता है - जब उस प्रावधान पर विचार ही ना किया गया हो। इस प्रकार के मामले लापरवाही में दिए गए निर्णय के उदाहरण हैं।" यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी बनाम महिला रामश्री, 1996 J.L.J. 691 में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने कहा था कि यदि संबंधित कानून पर विचार नहीं किया गया है तो निर्णय लापरवाही भरा होगा और इसका कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं होगा।"

16. अंततः यह माना गया कि चूंकि अपराध अधिनियम की धारा 7(1)(ए)(ii) के अंतर्गत आता है जिसमें 7 साल तक की कैद की सजा हो सकती है संहिता की अनुसूची I भाग 2 के साथ पढ़े जाने पर गैर जमानती है, और माना गया था कि कानून की सही स्थिति यह है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के तहत दंडनीय अपराध जमानती हैं या गैर-जमानती का प्रश्न निर्धारित करने हेतु संहिता, 1973 की अनुसूची I भाग 2 को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

17. इस निर्णय के पारित होने से पहले भी म.प्र. उच्च न्यायालय ने 01.07.2020 को

निर्णीत अरुण भारती बनाम मध्य प्रदेश राज्य; विविध आपराधिक वाद संख्या 2020 का 20337 के मामले में दिनेश कुमार दुबे (ऊपर), नेमचंद अग्रवाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (ऊपर) हरिओम बनाम म०प्र० राज्य, 2011 (1) एमपीएलजे (आपराधिक) 267, संतोष सहारे बनाम म० प्र० राज्य (7.5.2015 को निर्णीत एमसीआरसी संख्या 2914/2015) एवं बलवंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य; 2001 (3) एमपीएलजे 414 मामलों सहित पहले सुनाए गए कई निर्णयों के आलोक में विधिक स्थिति पर विचार किया था और माना था कि बलवंत वाले मामले के निर्णय में पालन करने योग्य एक नज़ीर है जिसमें सीआरपीसी की प्रथम अनुसूची के अनुसार 3 साल तक की सजा वाले अपराध जमानती और 7 साल तक की सजा वाले अपराध गैर-जमानती हैं।

18. धारा 438 सीआरपीसी तहत आपराधिक विविध अग्रिम ज़मानत आवेदन संख्या 2021 का 10698 मामले में दिनांक 10.11.2021 के आदेश (राजीव कुमार बनाम उ० प्र० राज्य) द्वारा पारित निर्णय लापरवाही भरा है एवं साफ़ और स्पष्ट वैधानिक प्रावधानों को नज़रअंदाज़ करते हुए पारित किया गया है।

19. मेरे समक्ष वर्तमान मामला एक उचित मूल्य दुकान का है, जिसकी अधिकारियों द्वारा जाँच करने पर कुछ स्टॉक कम पाया गया। आवेदक यह दिखाने में असफल रहा कि प्र०सू०रि० किसी गलत इरादे से दर्ज की गई थी। अपराध धारा 7(1)(ए)(ii) के तहत

वाली श्रेणी में आएगा जिसमें 7 साल तक की सजा होती है।

20. झूठे रूप से आलिप्त करने हेतु कोई संभावित बचाव या कारण पेश नहीं किया गया है।

21. मैंने अपने समक्ष पेश सभी प्रस्तुतियों, तथ्यों, परिस्थितियों और सामग्री पर विचार किया, यह ध्यान में रखा जाना चाहिये कि अग्रिम जमानत एक असाधारण उपाय है जिसका उपयोग केवल उपयुक्त मामलों में ही किया जाना चाहिए। सीआरपीसी की धारा 438 के तहत प्राप्त शक्ति का उपयोग नियमित रूप से नहीं किया जा सकता, और नियमित जमानत के विकल्प के रूप में तो कदापि नहीं। यह विवेकाधीन शक्ति ऐसे तथ्यों के अस्तित्व की मांग करती है जहां न्यायालय संतुष्ट हो कि न्याय का उद्देश्य आगे बढ़ाने और विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने हेतु उसका हस्तक्षेप आवश्यक है।

22. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए मुझे ये मामला अग्रिम जमानत का लाभ देने हेतु उपयुक्त नहीं लगता।

23. अतः अग्रिम जमानत आवेदन खारिज किया जाता है।

24. रजिस्ट्री को ये निर्णय सभी संबंधितों तक प्रसारित करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1100

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी

आपराधिक विविध प्रथम जमानत आवेदन

संख्या 20211 / 2022

सत्य नारायण @ सतान

... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री गिरीश कुमार सिंह, श्री

कमलेश सिंह, श्री अखिलेश सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री परितोष मालवीय

(ए.जी.ए.)

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860

- धारा 147, 302/34 -दंड प्रक्रिया संहिता,

1973 -धारा 154, 161, 173 -हत्या- प्रथम

सूचना रिपोर्ट के अनुसार - दिनांक

18.12.2021 को करीब सायं 6 बजे

सूचनाकर्ता (मृतिका का ससुर) की बहू, शौच के

लिए गाँव के बाहर खेत के तरफ गई थी,

उसके साथ उसकी पुत्री के साथ अन्य महिलाए

भी थी -शौच से वापस लौटते समय रास्ते में

ही आवेदक (मृतिका का पिता) के साथ अन्य

लोगों ने चाकू मार कर उसकी बहू की हत्या

कर दी - दो वर्ष पूर्व मृतिका ने अपने परिवार

की सहमती के बिना सूचनाकर्ता के पुत्र से

भागकर विवाह कर लिया था, जिसके कारण

आवेदक के साथ परिवार के अन्य लोग रंजिश

रखते थे -आरोप पत्र - आवेदक और दो अन्य

के विरुद्ध दाखिल किया गया - न्यायालय ने

माना कि घटना के समय तीन चक्षुदर्शी

उपस्थित थे -उन्होंने सभी हमलावरों को

पहचान लिया था, जो उसी गाँव के थे व

मृतिका के रिरश्तेदार भी थे -उन्होंने यह बताया

कि कैसे घटना घटी व किसने मृतिका पर प्राण

घातक वार किया आवेदक घटना स्थल पर मौजूद था, घूँघट उठा कर अपनी पुत्री को पहचाना व उसके पुत्र ने चाकू से उसकी हत्या कर दी, जिसकी मृत्यु पश्चात शव विच्छेदन में वर्णित मृत्यु पूर्व चोटों से पुष्टि भी होती है - आवेदक ने पूर्ण योजना के तहत, सामान्य आशय को अग्रसर करने के लिए कार्य किया - अतः वह इस अपराध में प्रथम दृष्टया शामिल है- अन्वेषण के दौरान एकत्र किये गए साक्ष्य घटना को 'सम्मान रक्षा हेतु हत्या' का मामला बनाते हैं। (पैरा 1,2,3,4,17,18)

जमानत आवेदन निरस्त (E-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. प्रमोद बनाम उत्तर प्रदेश सरकार (आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 20211 सन् 2022)
2. भगवान दास बनाम राज्य (एन.सी.टी. ऑफ दिल्ली) (2011) 6 एस.सी.सी. 396

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी द्वारा प्रदत्त)

पूर्व कार्यवाही

१. वर्तमान, आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र, आवेदक सत्य नारायण उर्फ सतन, जो अपराध संख्या २५६/2021, धारा- १४७,३०२,३४ भारतीय दण्ड संहिता, थाना - बरहज, जनपद- देवरिया, में एक आरोपी है, के द्वारा दाखिल जमानत प्रार्थना पत्र संख्या- ३९/२०२२, न्यायालय सत्र न्यायाधीश, देवरिया

आदेश दिनांक - ०९.०२.२०२२ द्वारा निरस्त होने के उपरान्त, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा- ४३९ के अंतर्गत, इस न्यायालय में दायर किया गया है।

प्रथम सूचना तथ्य

२. सूचनाकर्ता (शम्भू राजभर) ने एक प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या- २५६ सन् २०२१ (अन्तर्गत धारा - १५४ दंड प्रक्रिया संहिता), थाना- बरहज, जिला- देवरिया में इस सूचना के साथ दर्ज करवाई कि, दिनांक १८.१२.२०२१ को समय करीब सायं ६ बजे उसकी बहू ज्योती राजभर पत्नी जानचन्द्र राजभर, शौच के लिए गाँव के बाहर खेत के तरफ गयी थी, उसके साथ उसकी पुत्री रानी राजभर, सोनम राजभर पत्नी भुवर राजभर, करिश्मा राजभर पुत्री श्री किशुन राजभर भी थे। शौच से वापस लौटते समय रास्ते में ही उसके गाँव के सत्य नारायण उर्फ सतन पुत्र राम समुझ, राजनाथ पुत्र राम समुझ, भोले उर्फ आशुतोष पुत्र सत्य नारायण व गोलू पुत्र राजनाथ ने चाकू मार कर उसकी बहू ज्योति की हत्या कर दी। ज्योति पुत्री सत्य नारायण दो वर्ष पहले उसके लड़के के साथ घर से भाग गयी थी, जिसके कारण सत्य नारायण, राजनाथ व इसके परिवार के लोग उससे रंजिश रखते थे, इसलिये उपरोक्त चारों ने मिलकर ज्योति की हत्या कर दी।

आरोप पत्र

३. उपरोक्त सूचना पर अन्वेषण किया गया एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा - १७३ के अंतर्गत आरोप पत्र धारा - १४७,३०२,३४

भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत आरोपी १- सत्य नारायण उर्फ सतन (आवेदक) व २- राजनाथ के विरुद्ध दाखिल किया गया तथा बाल अपचारी भोलू उर्फ आशुतोष व बाल अपचारी गोलू उर्फ आशीष के विरुद्ध धारा - १४७,३०२,३४ भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत न्यायालय, किशोर न्याय बोर्ड में दाखिल किया गया।

आवेदक का पक्ष

४. श्री गिरीश कुमार सिंह, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि आवेदक मृतका का पिता है, जबकि सूचनाकर्ता मृतका का ससुर है। वो(आवेदक) निर्दोष है तथा वर्तमान दण्डिक कार्यवाही में गलत रूप से फंसाया गया है।

५. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि अभियोजन कथानक घटना को 'सम्मान रक्षा हेतु हत्या (ऑनर किलिंग)' का रूप देना चाहता है, कि मृतका ने सूचनाकर्ता के पुत्र से दो वर्ष पूर्व उसकी व उसके परिवार की सहमति के बिना विवाह कर लिया था जिसका बदला लेने के लिए आवेदक व उसके नाबालिग पुत्रों व अन्य ने आवेदक की पुत्री की हत्या कर दी, जबकि सत्यता यह है कि, सूचनाकर्ता की पत्नी मृतका को अपने घर में रहने देना नहीं चाहती थी। अतः सुनियोजित ढंग से न केवल उसकी हत्या करवाई बल्कि समस्त आरोप आवेदक व उसके परिवार पर डाल दिये।

६. घटना के ३ चक्षुदर्शी गवाह बताये जाते हैं परन्तु वो तीनों महिलायें, सूचनाकर्ता के परिवार से हैं और अन्वेषण अधिकारी ने घटना स्थल के आस-पास रहने वाले ग्राम वासियों का कोई भी ब्यान नहीं लिया और न ही वो व्यक्ति जो मृतका को सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र पर लाया उसका ही ब्यान दर्ज किया।

७. अभियोजन कथानक के अनुसार मृतका की हत्या करने के पूर्व उसको कुछ दूर तक धकेला भी गया था, परन्तु उसके शरीर पर कोई भी मृत्यु पूर्व चोटें नहीं पायी गयी।

८- घटना ४ व्यक्तियों द्वारा कारित की गई, आवेदक के नाबालिग पुत्रों पर चाकू से वार करने का आरोप लगाया गया है, परन्तु आवेदक पर कोई विशिष्ट कृत्य करने का आरोप नहीं है और न ही कोई ऐसा साक्ष्य एकत्र किया गया है, कि आवेदक ने सामान्य आशय को अग्रसर करने के लिए या विधि विरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए कोई कृत्य किया है।

राज्य (अभियोजन) का पक्ष

९. श्री पारितोष मालवीय, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्कों का पुरजोर विरोध किया और कथन किया कि आवेदक पर एक संगीन अपराध करने का आरोप है, कि वो अपनी पुत्री के कत्ल में शामिल रहा और सामान्य आशय के अग्रसर में अपराध में सक्रीय रूप से शामिल रहा।

१०. अन्वेषण के दौरान यह साक्ष्य भी उजागर हुआ कि मृतका (आवेदक की पुत्री) ने वर्ष २०१९ में सूचनाकर्ता के पुत्र से भागकर व परिवार की इच्छा के विरुद्ध विवाह कर लिया था। जिसके कारण समाज में उनकी बदनामी हुई और इस नाते ग्राम वासी उनको ताने मारते रहते थे, इसलिए योजनाबद्ध तरीके से अपराध कारित कर पुत्री की हत्या कर दी।

११. घटना के तीन चक्षुदर्शी गवाह हैं, उन्होंने धारा १६१ दं.प्र.सं. के अन्तर्गत ब्यान दर्ज करायें हैं तथा घटना का विवरण भी बताया है, जो प्रथम सूचना के तथ्यों का समर्थन करता है कि, जब वह (घर की महिलायें) शौच करने जा रही थी तो आरोपियों ने पहले तो उनको घेर लिया और फिर घूँघट उठाकर मृतका की पहचान करके उसको दूसरे खेत में ले जा कर उसकी हत्या कर दी। आवेदक के नाबालिग पुत्र ने चाकू से मृतका पर कई वार किये जिसका समर्थन मृत्यु पश्चात शव विच्छेदन आख्या में लिखित मृत्यु पूर्व चोटों से पूर्णतः सिद्ध होता है जो संख्या में पाँच हैं। अतः यह एक 'सम्मान रक्षा हेतु हत्या' है

१२. आवेदक के विद्धान अधिवक्ता के शेष तर्क उनके बचाव के तर्क हैं जिस पर इस स्तर पर विचार नहीं किया जा सकता है। जमानत प्रार्थना पत्र निरस्त करने योग्य है।

१३. मेरे द्वारा उभय पक्षों की बहस को सुना गया एवं पत्रावली का परिशीलन किया गया।

१४. न्यायालय द्वारा जमानत की विधि को विस्तृत रूप से अपने निर्णय दिनांक ०४.०४.२०२३, अपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या- २०२११ सन् २०२२ (प्रमोद प्रति उत्तर प्रदेश सरकार) में उल्लेखित किया गया, जिसके कुछ अंश निम्नलिखित हैं:-

"(क) सारगर्भित धारणा से संभवतः मूल नियम, जमानत है न की कारागार (देखें : राजस्थान राज्य, जयपुर बनाम बलचंद @ बलिया: (१९७७ एआईआर २४४७, १९७८ एससीआर (१) ५३५)। भा.दं.सं की धारा ४३९ के तहत जमानत देने की शक्ति के व्यापक आयाम है तथा न्यायालय को असीमित तो नहीं परन्तु पर्याप्त विवेकाधिकार प्रदान किये गये हैं, जिसका उपयोग न तो सामान्य रूप से और न ही मनमाने रूप से, परन्तु न्यायसंगत रूप से करने के लिए प्रस्तावित किया गया है। (देखें: राम गोविंद उपाध्याय बनाम सुदर्शन सिंह: (२००२) ३ एससीसी ५९८ और नीरू यादव बनाम उत्तर प्रदेश शासन (२०१६)१५ एससीसी ४२२)।

(ख) जमानत देने के लिये विचारात्मक कारक हैं, अपराध होने की परिस्थितियों की प्रकृति और गंभीरता; पीड़ित और गवाहों के संदर्भ में आरोपी की स्थिति और हैसियत; आरोपी के न्याय प्रक्रिया से भागने की संभावना; अपराध दोहराने की संभावना; मामले में संभावित सजा की कठोर संभावना के साथ अपने स्वयं के जीवन को खतरे में डालना; गवाहों के साथ छेड़छाड़; मामले का इतिहास और साथ ही इसकी जांच और अन्य प्रासंगिक आधार, जो अन्य महत्वपूर्ण कारकों

पर ध्यान करते हुए, व्यापक रूप से निर्धारित नहीं किये जा सकते हैं।(देखें : गुरचरण सिंह बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), (१९७८) १ एससीसी ११८)

(ग) प्रासंगिक कारक कौन से हो सकते हैं, इसका कोई निर्धारित नियम (स्ट्रेट जैकेट फॉर्मूला) कभी भी नियत नहीं किया जा सकता है, हालांकि, कुछ महत्वपूर्ण कारक जिन्हें अन्य कारकों के साथ हमेशा विचारणीय माना जाता है, वो हैं , प्रथम दृष्टया अभियुक्त की संलिप्तता, आरोप की प्रकृति और गंभीरता, सजा की कठोरता, आरोपी का चरित्र, स्थिति और उसकी अवस्थिति से संबंधित है।(देखें: उत्तर प्रदेश शासन प्रति अमरमणि त्रिपाठी, (२००५) ८ एससीसी २१)

(घ) मन्नो लाल जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश शासन और अन्य: २०२२ एससीसी ऑनलाइन एससी ८९ में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि, जब अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा १४९ के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोपित किया गया है और जब उनकी उपस्थिति स्थापित हो जाती है और यह कहा गया हो कि वो विधि विरुद्ध जमाव के सदस्य थे, तो उनकी व्यक्तिगत भूमिका और/या व्यक्तिगत आरोपी द्वारा किया गया अत्युक्ति महत्वपूर्ण और/या प्रासंगिक नहीं होती है।

(ड) आशिम बनाम राष्ट्रीय जांच एजेंसी : (२०२२) १ एससीसी ६९५ में, उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि एक बार जब यह स्पष्ट हो जाये कि समयोचित विचारण संभव नहीं हो पायेगा और आरोपी कारागार में एक दीर्घ अवधि व्यतीत कर चुका है, तो न्यायालय

आम तौर पर उसे जमानत पर छोड़ने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

(च) आरोपी को जमानत पर रिहा करने का आधार मात्र इसलिए कि अभियोजन का मामला, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, नहीं हो सकता है, अगर जांच के दौरान साक्ष्य/तथ्य एकत्र किये गये हो और प्रथम दृष्टया घटनाओं की पूरी श्रृंखला स्थापित हो गई है। (देखें : ईश्वरजी नागाजी माली बनाम गुजरात राज्य और अन्य २०२२ एससीसी ऑनलाइन एससी ५५)

(छ) यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जमानत देने के लिए विधायिका ने "साक्ष्य" के स्थान पर "विश्वास करने के लिए उचित आधार" शब्दों का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है कि जमानत देने से संबंधित न्यायालय केवल इतनी संतुष्टि कर सकता है कि क्या आरोपी के खिलाफ कोई वास्तविक मामला है और अभियोजन पक्ष आरोप के समर्थन में प्रथम दृष्टया साक्ष्य पेश करने में सक्षम होगा। (देखें : प्रहलाद सिंह भाटी बनाम एनसीटी आफ दिल्ली और अन्य:(२००१) ४ एससीसी २८०)।

(ज) मुक्त न्याय का एक मौलिक आधार है, जिसके लिए हमारी न्यायिक प्रणाली प्रतिबद्ध है, कि वो कारक जो न्यायाधीश के मानस में जमानत को अस्वीकृत या स्वीकृत करने के लिए मूल्यांकित किये गये, वो पारित आदेश में उल्लेखित किये जायें। मुक्त न्याय इस धारणा पर आधारित है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि स्पष्ट और निस्संदेह रूप से होता हुआ दिखना भी चाहिए। न्यायसंगत निर्णय देने का न्यायाधीशों का कर्तव्य इस प्रतिबद्धता का हृदय है। (देखें: महिपाल बनाम राजेश कुमार, (२०२०) २

एससीसी ११८ और सुश्री वाई बनाम राजस्थान राज्य और अन्य :२०२२ एससीसी ऑन लाइन एस सी ४५८)

(झ) जमानत के आवेदन पर आदेश पारित करते समय विस्तृत विवरण का उल्लेख, इस धारणा के नाते नहीं किया जा सकता है, कि मामला ऐसा है जिसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि हो सकती है या इसके विपरीत, दोषमुक्ति हो सकती है। हालांकि, जमानत के आवेदन पर निर्णय लेने वाला न्यायालय मामले के भौतिक पहलुओं से अपने निर्णय को पूरी तरह से अलग नहीं कर सकता, जैसे आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप ; अगर आरोप यथोचित संदेह से परे साबित होते हैं और इसके परिणामस्वरूप दोषसिद्धि होती है तो सजा की कठोरता; अभियुक्त द्वारा गवाहों को प्रभावित करने की उचित आशंका; साक्ष्यों से छेड़छाड़; अभियोजन के मामले में निराधारता; आरोपी का आपराधिक पूर्ववृत्त; और आरोपी के विरुद्ध आरोप के समर्थन में न्यायालय की प्रथम दृष्टया संतुष्टि। (देखें: मनोज कुमार खोखर बनाम राजस्थान राज्य और अन्य (२०२२)३ एनसीसी ५०१, दीपक यादव प्रति उत्तर प्रदेश राज्य व एक अन्य (२०२२)८ एससीसी ५५९)।"

सम्मान रक्षा हेतु हत्या (ऑनर किलिंग)

१५. 'सम्मान रक्षा हेतु हत्या' हमारे समाज के लिए एक कलंक के समान है, जहां भारत का संविधान जीवन का अधिकार देता है, वही किसी को भी साधारणतया जीवन छीनने का अधिकार नहीं देता है। समाज में अपनी झूठी शान बरकरार रखने को एक कारण बताते

हुए, यदि परिवार के ही सदस्य या अन्य कोई, अपनी पुत्री या बहन का कत्ल कर देता है तो यह कृत्य सभ्य समाज का घोटक कदापि नहीं हो सकता, बल्कि एक ऐसे समाज के होने का प्रमाण देता है, जो बर्बर है, जो क्रूर है, जो असभ्य है। ऐसे समाज व ऐसी व्यवस्था को यदि इस सदी में भी सहन करना पड़े तो इस देश के भविष्य के लिए उचित नहीं होगा। विरोध और इच्छा के विरुद्ध कार्य करने वाले परिवार के सदस्य को मौत के घाट उतारने से न तो किसी का सम्मान बड़ेगा और न ही उसके साहस की तारीफ होगी, बल्कि यह कायरता ही कहलायेगी।

१६. उपरोक्त विषय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा भगवान दास प्रति राज्य (एन.सी.टी. ऑफ दिल्ली)(२०११) छ एस.सी.सी. ३९६ के निर्णय में की गई टिप्पणी का उल्लेख करना सार्थक रहेगा कि:-

" --- इस निर्णय को समाप्त करने से पूर्व हम यह कहना चाहेंगे कि 'सम्मान रक्षा हेतु हत्या' (ऑनर किलिंग), इस देश के कई भागों में, विशेष रूप से हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश व राजस्थान में सामान्य हो गई है।

बहुधा युवा युगल जो प्यार करने लगते हैं, उनको पुलिस लाईन्स या आश्रय गृह में पनाह लेनी पड़ती है। हमने लता सिंह के प्रकरण (पूर्व में उल्लेखित) में यह निर्धारित किया कि 'सम्मान रक्षा हेतु हत्या' में, 'सम्मान' जैसा कुछ भी नहीं होता तथा इस तरह के कृत्य, कट्टर व्यक्तियों व सामंती मानस वाले व्यक्तियों द्वारा किये गये बर्बर और क्रूर हत्याओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं

है। हमारी राय में, 'सम्मान रक्षा हेतु हत्या' ,चाहे कारण कोई भी हो, दुर्लभ से दुर्लभ मामलों की श्रेणी में आते हैं जो मृत्यु दंड वांछित करते हैं। अब समय है, कि इन बर्बर व्यक्तियों व सामंती प्रथाओं को चिन्हित किया जायें, जो हमारे देश पर कलंक है, जो अपमानजनक एवं असभ्य व्यवहार के लिए आवश्यक रूप से एक निवारक है। वह सभी लोग, जो 'सम्मान रक्षा हेतु हत्या' हेतु योजना बना रहे हैं, उनको जात होना चाहिये कि फांसी का तख्ता उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।"

विश्लेषण-

१७. उपरोक्त वर्णित तथ्यों, तर्कों व विधिक परिस्थितियों से यह उजागर होता है कि:-

(क) आवेदक की पुत्री (मृतका) ने अपने परिवार से विरुद्ध व घर से भागकर सूचनाकर्ता के पुत्र से करीब दो वर्ष पूर्व विवाह कर लिया था।

(ख) घटना के समय तीन चक्षुदर्शी उपस्थित थे। उन्होंने सभी हमलावरो को पहचान लिया था, जो उसी गांव के थे व मृतका के रिश्तेदार भी थे। उन्होंने यह बताया कि कैसे घटना घटी व किसने मृतका पर प्राण घातक वार किया।

(ग) आवेदक घटना स्थल पर मौजूद था, घूंघट उठा कर अपनी पुत्री को पहचाना व उसके पुत्र ने चाकू के कई वारों से अपनी बहन की बर्बरता पूर्वक हत्या कर दी, जिसकी मृत्यु पश्चात शव विच्छेदन में वर्णित मृत्यु पूर्व चोटों से पुष्टि भी होती है।

(घ) आवेदक ने पूर्ण योजना के तहत, सामान्य आशय को अग्रसर करने के लिए कार्य किया। अतः वो इस संगीन अपराध में प्रथम दृष्टवा शामिल है। अन्वेषण के दौरान जो साक्ष्य एकत्र किये गये हैं, वो भी प्रथम दृष्टवा इस घटना को ' सम्मान रक्षा हेतु हत्या' की घटना है, ऐसा दृष्टिगोचर करते हैं, क्योंकि आवेदक व उसके परिवारजन अपनी पुत्री(मृतका) से, सूचनाकर्ता के पुत्र से भाग कर विवाह करने से समाज में हुए अपने अपमान से नाराज़ थे।

(ङ) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये अन्य तर्क मात्र उनके बचाव के तर्क है, जिस पर इस स्तर पर विचार नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष

१८. उपरोक्त तथ्यात्मक व विधिक विश्लेषण का एक मात्र निष्कर्ष है, कि वर्तमान जमानत प्रार्थना पत्रनिरस्त करने योग्य है, अतः निरस्त किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1106

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1357 / 2022

राज कुमार यादव @ कालू एवं अन्य

.....पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: प्रेम कुमार सिंह

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., राजेश शुक्ला,
सूर्य नारायण मिश्रा

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 323, 325, 307, 504 और 506- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 311, 397, 401 - पुनरीक्षणकर्ता ने पीडब्लू-1 की जिरह के लिए धारा 311 सीआरपीसी के तहत परीक्षण न्यायालय में आवेदन प्रस्तुत किया - आवेदन को परीक्षण न्यायालय द्वारा विस्तृत सकारण आदेश के साथ खारिज कर दिया गया - व्यथित होने के कारण, पुनरीक्षण दायर किया गया - आयोजित, धारा 311 सीआरपीसी का उद्देश्य न्यायालय को जांच के किसी भी चरण में किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने में सक्षम बनाता है - उद्देश्य न्याय करना है - ऐसा अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में किसी भी कमी को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता है, न ही अभियुक्तों को कोई अनुचित लाभ पहुंचाने के लिए किया जाता है - यह स्वीकृत तथ्य है कि अभियुक्त व्यक्ति पीडब्लू-1 को अच्छी तरह से जानते हैं और वे ग्रामीण हैं - इसलिए, अभियुक्त व्यक्तियों की पहचान पर संदेह नहीं किया जा सकता - अतः, आपेक्षित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। (पैरा 2, 3, 4, 8, 9)
पुनरीक्षण निरस्त (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता द्वारा
प्रदत्त)

पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रेम कुमार सिंह, विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री सूर्य नारायण मिश्रा, राज्य के

लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

यह आपराधिक पुनरीक्षण पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा द०प्र०सं० की धारा 311 के अन्तर्गत दायर प्रार्थनापत्र दिनांक 26.11.2022 पर पारित आदेश दिनांक 26.11.2022 के विरुद्ध द०प्र०सं० की धारा 397/401के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है, जिसे अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 7, गोंडा द्वारा सत्र परीक्षणसंख्या 85/2018 में, अपराध संख्या C-14/2014 अन्तर्गत धारा 323/325/307/504/506 भा०द०सं०, पुलिसस्टेशन वज़ीरगंज, गोंडा, पारित किया गया था।

पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि द०प्र०सं० की धारा 311 के अन्तर्गतप्रार्थना-पत्र विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष इस प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है कि न्यायहित में वह निम्नलिखित बिंदुओं पर अभियोजन साक्षी-1 श्री उमेश दत्त सिंह से प्रति-परीक्षा करना चाहते हैं:

- (i) क्या घटना के समय अंधेरा था?
- (ii) क्या घटना के समय लोगों के चेहरे दृश्यमान थे?
- (iii) क्या वह घटना के समय अभियुक्त राज करण, कृष्ण कुमार और शिव कुमार को पहचान पाए थे? (

iv) क्या लिखित रिपोर्ट में अभियुक्तों का नाम गांव वालों की सलाह पर दिया गया था?

विचारण न्यायालय ने दिनांक 29.11.2022 के विस्तृत सकारण आदेश द्वारा उपरोक्त बिंदुओं की प्रति-परीक्षा के लिए पुनरीक्षणकर्ताओं के प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया, विद्वान विचारण न्यायालय केआदेश से पता चलता है

कि पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा पर्याप्त प्रति-परीक्षा की गई है। विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्येक पक्ष पर विचार किया गया। विचारण 313 द०प्र०सं० के लिए नियत है और पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से अपनाई गई विलम्ब की रणनीति और पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा आगे की प्रति-परीक्षा के लिए साक्षी अभियोजन साक्षी-1 को वापस बुलाने के प्रार्थना पत्र में कोई सार नहीं है एवं धारा 311 द०प्र०सं० के अन्तर्गत प्रार्थना पत्र गुण-दोष से रहित है इसलिए खारिज कर दिया गया है। इससे व्यथित होकर पुनरीक्षण दाखिल किया गया है।

पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मामले के उचित निर्णय के लिए, अभियोजन साक्षी-1 की प्रति-परीक्षा अपरिहार्य है और पूर्व के अधिवक्ता की अज्ञानता के कारण अभियोजन पक्ष के साक्षी की प्रति-परीक्षा के समय यह प्रश्न नहीं पूछा गया था तथा विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन साक्षी-1 की प्रति-परीक्षा के एक अवसर के लिए प्रार्थना तथा द०प्र०सं० की धारा 311 के अन्तर्गत आवेदन को, इस तथ्य पर विवेक प्रयोग किए बिना ही खारिज कर दिया कि यदि पुनरीक्षण की अनुमति नहीं दी गई तो पुनरीक्षणकर्ता का मूल्यवान अधिकार समाप्त हो जाएगा।

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने पुरजोर विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अभियुक्त गण एवं साक्षी गण एक ही गांव के निवासी हैं तथा एक-दूसरे को उनकी बोलचाल और भाषा से अच्छी तरह से जानते हैं और ऐसे व्यक्ति रात के अंधेरे में भी एक-दूसरे को पहचान सकते हैं। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता

ने आगे कहा कि घटना की कथित तिथि एफआईआर में 18.2.2004 शाम 6.30 बजे दर्ज की गई थी और उस समय अंधेरा नहीं था क्योंकि सूर्यास्त का समय लगभग 6 बजे था। अभियोजन साक्षी-1 की विस्तृत जांच विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही की जा चुकी है तथा विद्वान विचारण न्यायालय ने द०प्र०सं० की धारा 311 के अन्तर्गत प्रार्थना पत्र को उचित विधि से खारिज कर दिया है।

मैंने पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना एवं अभिलेख का परिशीलन किया है।

द०प्र०सं० की धारा 311 इस प्रकार है:

आवश्यक साक्षी को समन करने या उपस्थित व्यक्ति की परीक्षा करने की शक्ति- "कोई न्यायालय इस संहिता के अधीन किसी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी प्रक्रम में किसी व्यक्ति को साक्षी के तौर पर समन कर सकता है या किसी ऐसे व्यक्ति की, जो हाजिर हो, यद्यपि वह साक्षी के रूप में समन न किया गया हो, परीक्षा कर सकता है, किसी व्यक्ति को, जिसकी पहले परीक्षा की जा चुकी है पुनः बुला सकता है और उसकी पुनः परीक्षा कर सकता है ; और यदि न्यायालय को मामलेके न्यायसंगत विनिश्चय के लिए किसी ऐसे व्यक्ति का साक्ष्य आवश्यक प्रतीत होता है तो वह ऐसे व्यक्ति को समन करेगा और उसकी परीक्षा करेगा या उसे पुनः बुलाएगा और उसकी पुनः परीक्षा करेगा।

"धारा 311 द०प्र०सं० का उद्देश्य न्यायालय को किसी भी जांच के किसी भी चरण में किसी भी व्यक्तिको साक्षी के रूप में समन करने में सक्षम बनाता है, ताकि न्यायालय को

सच्चाई का पता लगानेमें सक्षम बनाया जा सके और धारा 311 के हितकारी प्रावधानों को लागू किया जा सके। इस प्रकार, इस प्रावधान का उद्देश्य न्याय करना है। ऐसा न तो अभियोजन साक्ष्य में किसी कमी को पूरा करने के लिए किया जाता है और न ही अभियुक्त के विरुद्ध कोई अनुचित लाभ पहुंचाने के लिए किया जाता है। देखने वाली मूल बात यह है कि क्या न्यायालय अपने समक्ष विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इसे आवश्यक समझता है और द०प्र०सं० की धारा 311 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोगकेवल प्रबल और वैध कारण के लिए किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग सावधानी और सतर्कतापूर्वक किया जाना चाहिए।

विद्वान विचारण न्यायालय के आदेश का परिशीलन करने पर, यह परिलक्षित होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने द०प्र०सं० की धारा 311 के अन्तर्गत पुनरीक्षणकर्ताओं के प्रार्थना पत्र को खारिज करते हुए विस्तृत आदेश पारित किया। यह स्वीकृत तथ्य है कि अभियुक्तगण अभियोजन साक्षी-1 को अच्छी तरह से जानते हैं और वे ग्रामीण हैं, इसलिए, अभियुक्तगण की पहचान पर संदेह नहीं किया जा सकता है। उनके द्वारा कहे गए शब्दों से भी उनकी पहचान की जा सकी और घटना का समय लगभग शाम 6:30 बजे है। उस समय अंधेरे का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार, उपरोक्तचर्चा के दृष्टिगत इस न्यायालय का मत है कि विद्वान विचारण न्यायालय के आदेश में कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है।

पुनरीक्षणकर्ताओं का पुनरीक्षण गुणविहीन है। परिणामस्वरूप, पुनरीक्षण एतद्वारा खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1108

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन
रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4382 / 2022

संदीप कुमार

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री धीरज श्रीवास्तव,

श्री वी.पी. श्रीवास्तव सीनियर वकील

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री अमर चंद्र, श्री

सुनील कुमार

दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 304, 323 और 504- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 161, 319- आपेक्षित आदेश के विरुद्ध आपराधिक पुनरीक्षण - विचारणीय न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के आवेदन पर आरोपी को तलब किया - वैधता - एफआईआर - आरोपी विभा देवी और पुनरीक्षणकर्ता ने वादी के पिता को पकड़ लिया और सह-आरोपी ने चाकू से चोटें पहुंचाई जिससे गंभीर रक्तस्राव हुआ - विवेचना के दौरान, वादी और उसकी बहन, दोनों ने एफआईआर के आरोपों की पुष्टि की है - विवेचक ने पुनरीक्षणकर्ता को दोषमुक्त कर दिया - हलफनामों और कुछ गवाहों के बयानों के आधार पर - पुनरीक्षणकर्ता घटना के समय मौजूद नहीं था और सीडीआर से उसकी उपस्थिति स्थापित नहीं हुई है - घटना वादी के घर पर हुई है और शिकायतकर्ता और उसकी बहन के अलावा किसी अन्य व्यक्ति का

चश्मदीद गवाह के रूप में नाम नहीं है - यह स्थापित कानून है कि घायल गवाह की गवाही का साक्ष्य मूल्य अधिक होता है और उसे खारिज नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन ठोस कारणों से - उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण का पालन करते हुए- पुनरीक्षणकर्ता को लिप्त करने के लिए संभवतः के अतिरिक्त ठोस साक्ष्य उपलब्ध है - यह आरोप तय करते समय किए गए परीक्षण से कहीं अधिक प्रथम दृष्टया मामला सिद्ध होता है, लेकिन इस सीमा तक संतुष्टि नहीं है कि यदि साक्ष्य का खंडन नहीं किया गया तो दोषसिद्धि हो जाएगी - इसलिए, आपेक्षित आदेश में कोई दुर्बलता या अवैधता नहीं है। (पैरा 2, 3, 10, 11)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 सुप्रीम कोर्ट केस 706
2. नवीन बनाम हरियाणा राज्य, आपराधिक अपील संख्या (एस) 2022 (एसएलपी (सीआरएल) संख्या 3746 / 2022 से उत्पन्न)
3. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पेज 1400
4. बृजेन्द्र सिंह व अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी पृष्ठ 706
5. राजेश व अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 6 एससीसी 368

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री धीरज श्रीवास्तव द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी.पी. श्रीवास्तव, विपक्षी पक्ष संख्या-1 उत्तर प्रदेश राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए और, विपरीत पक्ष संख्या-2 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अमर चंद्र को सुना है।

यह आपराधिक पुनरीक्षण अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-1, शाहजहाँपुर, में 2016 के सत्र परीक्षण संख्या 177 (राज्य बनाम अशोक कुमार) जनपद शाहजहाँपुर के थाना रोजा मुकदमा में दर्ज अपराध संख्या 377 सन 2016 में धारा 304, 323 व 504 आई.पी.सी., के खिलाफ में पारित आदेश दिनांक 27.09.2022 के विरुद्ध निर्देशित है।

आक्षेपित आदेश के द्वारा, विद्वान निचली अदालत ने सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभियोजन पक्ष के आवेदन पर पुनरीक्षणवादी-अभियुक्त संदीप और एक अन्य आरोपी विभा देवी को सह-अभियुक्तों के साथ मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया है।

कुमारी अनुष्का कृष्णा, विपरीत पक्ष संख्या 2 ने दिनांक 31.03.2016 को दिनांक 29.03.2016 को लगभग 6.30 बजे अपराहन घटित घटना के संबंध में एफ.आई.आर. दर्ज कराई। इसमें आरोप लगाया है कि शिकायतकर्ता अपनी बहन सुरभि के साथ अपने घर पर थी, तभी उसके सगे चाचा अशोक कुमार, उनकी पत्नी (विभा देवी) और संदीप वहां आए

और गाली-गलौज करने लगे। इसी बीच उसके पिता राम कृष्ण वहां आए और गाली-गलौज न करने का अनुरोध किया, जिससे अशोक कुमार क्रोधित हो गया और वह अपने घर से चाकू लेकर आया और विभा और संदीप ने शिकायतकर्ता के पिता को पकड़ लिया और अशोक कुमार ने उसके पिता के पेट में चाकू मार दिया। जिससे उसे गंभीर चोटें आईं और अत्यधिक रक्तस्राव हुआ। अपने पिता को बचाने के दौरान सुरभि के दाहिने हाथ की उंगली में भी चोट लग गई। उसके पिता बेहोश हो गये और सभी आरोपी भाग गये। उसके पिता को इलाज के लिए जिला अस्पताल लाया गया। डॉक्टरों ने उन्हें लखनऊ रेफर कर दिया और उन्हें के.जी.एम.सी., लखनऊ में भर्ती कराया गया और अंततः 30.03.2016 को उनकी मृत्यु हो गई। अशोक कुमार, विभा देवी और संदीप के खिलाफ धारा 304, 504 और 323 आईपीसी के तहत एफ.आई.आर. दर्ज किया गया था। अशोक कुमार के विरुद्ध आरोप पत्र समर्पित किया गया। मुकदमे के दौरान दो गवाह शिकायतकर्ता कुमारी अनुष्का कृष्णा पीडब्लू-1 और सुरभि पीडब्लू-2 की जांच की गई और जिस पर एक आवेदन अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 319 सीआरपीसी में दिया गया।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जांच के बाद 25.08.2016 को केवल अशोक कुमार के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। जांच अधिकारी पुनरीक्षणकर्ता - आरोपी के खिलाफ कोई सबूत इकट्ठा करने में विफल रहे, हालांकि जांच जारी रही। दूसरे जांच अधिकारी ने आगे की जांच की और पहले जांच अधिकारी द्वारा

दर्ज किए गए शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के बयान का सत्यापन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पुनरीक्षणवादी - अभियुक्त कथित घटना में दूर-दूर तक शामिल नहीं है और उन्होंने 09.03.2017 को इस संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत की। जिसमें विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि संशोधनकर्ता घटना स्थल पर बिल्कुल भी मौजूद नहीं था, जैसा कि उसके कॉल डिटेल्स रिकॉर्ड से स्पष्ट है। परीक्षण के दौरान अनुष्का कृष्णा पीडब्लू-1 और सुरभि पीडब्लू-2 से पूछताछ की गई और उन दोनों ने बिना किसी अन्य तथ्य, सामग्री या परिस्थितियों को रिकॉर्ड में लाए केवल एफ.आई.आर. के संस्करण को दोहराया। ये मृतक की सगी बहनें और बेटियां हैं। किसी अन्य अभियोजन गवाह या स्वतंत्र गवाह से पूछताछ नहीं की गई है। ट्रायल कोर्ट के समक्ष कोई अतिरिक्त परिस्थिति या कोई पर्याप्त सामग्री या कोई दस्तावेजी साक्ष्य या यहां तक कि किसी स्वतंत्र गवाह का बयान भी नहीं था। रिकॉर्ड में केवल एफ.आई.आर. का संस्करण मौजूद था। शिकायतकर्ता ने 09.11.2016 को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत एक आवेदन दायर किया। जब कि पुनरीक्षणवादी के खिलाफ जांच अभी भी जारी थी। इसके खिलाफ आपत्ति दाखिल की गई थी। ट्रायल कोर्ट ने लंबित जांच के बारे में स्टेशन हाउस ऑफिसर, पुलिस स्टेशन रोजा, जिला शाहजहाँपुर से रिपोर्ट मांगी। जांच अधिकारी ने दिनांक 18.02.2017 को पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध यह बताते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत की, कि जांच जारी है जिसमें अन्य सामग्री के अलावा दिनांक 09.03.2017 की अंतिम रिपोर्ट और

दिनांक 29.03.2016 की सीडीआर शामिल है। हालाँकि, ट्रायल कोर्ट ने धारा 319 सीआरपीसी के तहत आवेदन की अनुमति दे दी और आदेश दिनांक 23.06.2018 के द्वारा पुनरीक्षणकर्ता संदीप कुमार को तलब किया। इस आदेश से व्यथित होकर, पुनरीक्षणकर्ता ने 2018 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2189 को प्राथमिकता दी, जिसे इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 18.07.2018 के माध्यम से दिनांक 23.6.2018 के आदेश को रद्द करते हुए अनुमति दी और मामले को अवलोकनों का प्रकाश में नए सिरे से निर्णय लेने के लिए ट्रायल कोर्ट में भेज दिया गया था। इस आदेश की प्रमाणित प्रति 24.07.2018 को निचली अदालत के समक्ष प्रस्तुत की गई थी, लेकिन निचली अदालत ने उस सामग्री की सराहना की जो पहले से ही उपलब्ध थी और इस अदालत के आदेश की अनदेखी करते हुए मनमाने और सरसरी तरीके से दिनांक 27.09.2022 को आक्षेपित आदेश पारित कर दिया। निचली अदालत इस अदालत के आदेश की अनदेखी करते हुए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में बुरी तरह विफल रही है, जिसमें इस अदालत ने हरदीप सिंह के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया है, जिस पर विवादित आदेश पारित करते समय विचार किया जाना चाहिए था, लेकिन निचली अदालत द्वारा इस प्रकार की कोई कार्यवाही नहीं की गई। दिनांक 27.09.2022 का आक्षेपित आदेश शब्दशः पिछले आदेश दिनांक 23.06.2018 के समान है जो दर्शाता है कि निचली अदालत ने अपने न्यायिक विवेक का

उपयोग नहीं किया है और आक्षेपित आदेश को यांत्रिक तरीके से पारित कर दिया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि जो विधि शीर्ष न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा स्थापित कर तय की गई है, कि धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्ति का कम से कम और दुर्लभ से दुर्लभ मामलों में ही प्रयोग किया जाना चाहिए और वह भी, न्यायिक विवेक लगाने के बाद और सबूतों पर विचार करने के बाद और केवल मजबूत संभावना के बारे में वस्तुनिष्ठ संतुष्टि के बाद ही उस व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है, जिसे मुकदमे में शामिल करने की मांग की जा रही है। विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि सीआरपीसी की धारा 319 के तहत प्रावधानों में "प्रकट होता है" और "साक्ष्य" शब्द का प्रयोग किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा इस आशय की व्याख्या की गई है कि जिस व्यक्ति को बुलाया गया है उसके खिलाफ कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामले का निर्धारण करने के लिए यह सबूत के उच्च स्तर से थोड़ा कम होना चाहिए। इसमें कोई भी मजबूत संदेह या यहां तक कि संभावना की ऐसी डिग्री मौजूद नहीं हो और प्रथम दृष्टया मामले का कोई तत्व या केवल सामग्री का पता नहीं लगाया गया हो। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि एक बार ट्रायल कोर्ट ने रिपोर्ट तलब की थी और जांच अधिकारी ने पूरी सामग्री प्रस्तुत की थी जिससे पता चलता है कि पुनरीक्षणकर्ता घटना स्थल पर बिल्कुल भी मौजूद नहीं था और वह मामले में शामिल नहीं है, निचली अदालत को उन भौतिक साक्ष्यों के प्रभाव के बारे में सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए

था और न्यायिक रूप से विचार करना चाहिए था, लेकिन वह ऐसा करने में विफल रही। रिकॉर्ड पर ऐसी कोई सामग्री मौजूद नहीं है जो निचली अदालत की संतुष्टि के लिए पर्याप्त हो जिससे पुनरीक्षणकर्ता को बुलाया जा सके। निचली अदालत ने व्यापक संभावनाओं, विस्तृत तथ्य, संपूर्ण साक्ष्य, प्रस्तुत दस्तावेज़ और संशोधनकर्ता की दोषसिद्धि की न्यूनतम संभावनाओं पर विचार किए बिना सरसरी और आकस्मिक तरीके से आक्षेपित आदेश पारित किया है, इस प्रकार आक्षेपित आदेश टिकाऊ नहीं है। विद्वान वकील ने निम्नलिखित केस कानूनों पर भरोसा जताया:

1. **बृजेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 सुप्रीम कोर्ट मामले 706**
2. **आपराधिक अपील संख्या में नवीन बनाम हरियाणा राज्य। 2022 की (विशेष अनुमति याचिका (सीआरएल) संख्या 3746 2022 से उत्पन्न)**

विद्वान ए.जी.ए. राज्य की ओर से उपस्थित हुए और विपरीत पक्ष संख्या 2 के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि पुनरीक्षणकर्ता का नाम एफ.आई.आर. में है और उनके खिलाफ विशिष्ट आरोप हैं। उसे पर पीड़ित को पकड़ने की भूमिका लगाई गई है। शिकायतकर्ता और उसकी बहन सुरभि, चश्मदीद गवाह, धारा 161 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में एफ.आई.आर. के आरोपों की पूरी तरह से पुष्टि की है, लेकिन जांच अधिकारी ने अनुचित तरीके से तथाकथित चश्मदीद गवाहों के बयान दर्ज किए और पुनरीक्षणकर्ता को दोषमुक्त कर दिया। जांच अधिकारी

द्वारा कोई ठोस साक्ष्य एकत्र नहीं किया गया है जिससे यह संकेत मिले कि वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था। सुनवाई के दौरान शिकायतकर्ता और उसकी बहन सुरभि से पूछताछ की गई और उन्होंने एफ.आई.आर. के आरोपों का समर्थन किया और घटना में पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त की मिलीभगत के बारे में स्पष्ट रूप से उसे पकड़ने की भूमिका बताते हुए कहा है कि घटना में सुरभि को भी चोटें आई हैं। इसलिए, पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 की गवाही तथाकथित स्वतंत्र गवाहों के बयान की तुलना में अधिक मूल्यवान है, जिसके आधार पर जांच अधिकारी ने पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त को बरी कर दिया है। रिकॉर्ड पर पर्याप्त और ठोस सबूत उपलब्ध हैं क्योंकि शिकायतकर्ता और उसकी बहन दोनों प्रत्यक्षदर्शियों ने घटना में संशोधनवादी-अभियुक्तों की सक्रिय भागीदारी के बारे में बताया है। आदेश न्यायसंगत एवं उचित है। आक्षेपित सम्मन आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पेज 1400 के मामले में शीर्ष अदालत ने सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक साक्ष्य के मानक निर्धारित किए हैं। प्रासंगिक पैरा 98 और 99 इस प्रकार हैं:

"98. सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयमित रूप से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां उचित

हों। मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है वहां इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि जब अदालत के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों में से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मिले केवल तभी, ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, न कि आकस्मिक रूप से और घुड़सवार ढंग।"

99. इस प्रकार, हम मानते हैं कि हालांकि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह के आधार पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना की तुलना में कहीं अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है, परीक्षण में इसे लागू करना वह है, जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि आरोप तय करते समय प्रयोग किया गया था, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि सबूत, अगर अप्रमाणित हो जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, अदालत को धारा 319, सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319, सीआरपीसी में यह प्रदान करने का उद्देश्य यदि 'साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी व्यक्ति ने, जो आरोपी नहीं है, कोई अपराध किया है' शब्दों से स्पष्ट है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर आरोपी के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है। " इस्तेमाल किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं 'जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया

जा सके।' इसलिए, अभियुक्त के अपराध के बारे में राय, सीआरपीसी की धारा 319 के तहत कार्रवाई करने वाले न्यायालय के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।"

बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी पृष्ठ 706 के मामले में शीर्ष न्यायालय ने हरदीप सिंह के मामले में निर्धारित सिद्धांतों को दोहराया है। प्रासंगिक पैरा नं. 13 नीचे उद्धृत किया गया है:

"13. प्रश्न का उत्तर देने के लिए, हरदीप सिंह के मामले में प्रतिपादित करके कुछ सिद्धांतों को दोहराया जा सकता है: धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग ट्रायल कोर्ट द्वारा ट्रायल के दौरान किसी भी चरण में, यानी निष्कर्ष से पहले किया जा सकता है। ट्रायल, किसी भी व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाने और चल रहे मामले में मुकदमे का सामना करने के लिए बुला सकता है जब ट्रायल कोर्ट पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कुछ 'सबूत' हैं, जिनके आधार पर यह निष्कर्ष किया जा सकता है कि वह ऐसा प्रतीत होता है अपराध का दोषी। यहां 'सबूत' का मतलब उस सामग्री से है जो मुकदमे के दौरान अदालत के सामने लाई जाती है। जहां तक जांच के चरण में आईओ द्वारा एकत्र की गई सामग्री/साक्ष्य का सवाल है, इसका उपयोग पुष्टि के लिए और समर्थन के लिए किया जा सकता है। सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य में कोई संदेह नहीं, ऐसे साक्ष्य जो गवाहों की जिरह के बिना, मुख्य परीक्षा में सामने

आए हैं, उन पर भी विचार किया जा सकता है। हालाँकि, चूंकि धारा 319 सी.आर.पी.सी के तहत न्यायालय को विवेकाधीन शक्ति दी गई और यह असाधारण भी है, इसे संयमित ढंग से और केवल उन्हीं मामलों में प्रयोग किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इसकी मांग करती हैं। संतुष्टि की डिग्री उस डिग्री से अधिक है जो दूसरों के खिलाफ आरोप तय करने के समय आवश्यक होती है जिनके संबंध में आरोप पत्र दायर किया गया था। जहां न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों में से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं केवल तभी, वहां ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसका अभ्यास आकस्मिक या अभद्र तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। प्रथम दृष्टया जो राय बनाई जानी है, उसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना से अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता है।"

सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्तियों को लागू करने के लिए शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण अन्य बातों के साथ-साथ यह सिद्धांत भी शामिल करते हैं कि जब किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत हों तो सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति दी जा सकती है। इसे केवल तभी लागू किया जाना चाहिए जब प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है, जिसे आरोप तय करने के समय लागू किया जाना चाहिए।

यह एफ.आई.आर अशोक कुमार, श्रीमती विभा देवी एवं संदीप (पुनरीक्षणकर्ता)

के खिलाफ मृतक की पुत्री अनुष्का कृष्णा द्वारा दर्ज किया गया है। एफ.आई.आर. में विशिष्ट आरोप हैं कि आरोपी विभा देवी और संदीप ने राम कृष्ण को पकड़ लिया और सह आरोपी अशोक ने पेट में चाकू से वार किया जिससे गंभीर रक्तस्राव हुआ। आगे आरोप है कि शिकायतकर्ता और उसकी बहन सुरभि ने अपने पिता को बचाने की कोशिश की और सुरभि के दाहिने हाथ की उंगली में भी चाकू से चोट लग गई। जांच के दौरान, शिकायतकर्ता और उसकी बहन सुरभि, दोनों ने एफ.आई.आर. के आरोपों की पुष्टि की है। जांच अधिकारी ने धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए कुछ गवाहों के शपथ पत्रों और बयानों के आधार पर पुनरीक्षण-अभियुक्त संदीप को दोषमुक्त कर दिया है। जिसमें उन्होंने कहा है कि घटना के समय संदीप मौके पर मौजूद नहीं था और सीडीआर से घटना स्थल पर उसकी उपस्थिति स्थापित नहीं हुई है। शिकायतकर्ता अनुष्का कृष्णा और उसकी बहन सुरभि, जो एक घायल भी है, से पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के रूप में परीक्षण के दौरान पूछताछ की गई है। उन्होंने घटना के अपने संस्करण को दोहराया है जैसा कि एफ.आई.आर. में बताया गया है। साथ ही सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए उनके पिछले बयानों में भी एफ.आई.आर. के आरोपों से यह स्पष्ट है कि घटना शिकायतकर्ता के घर पर हुई है और शिकायतकर्ता और उसकी बहन के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को घटना के चश्मदीद गवाह के रूप में नामित नहीं किया गया है। यहां तक कि सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए उनके बयानों में भी

किसी अन्य व्यक्ति को चश्मदीद गवाह के रूप में नामित नहीं किया गया है। केस डायरी दिनांक 09.03.2017 के परचा में जांच अधिकारी ने प्रस्तुत किया है कि स्वतंत्र गवाहों ने घटना में आरोपी संदीप की संलिप्तता के बारे में नहीं बताया है। पिछले जांच अधिकारी ने संदीप के मोबाइल की सीडीआर निकाली है और दर्ज किया है कि संदीप घटनास्थल पर मौजूद नहीं था। इसलिए, जिन साक्ष्यों के आधार पर जांच अधिकारी ने पुनरीक्षणकर्ता को दोषमुक्त किया है, वे बहुत कमजोर प्रकार के हैं। घटना स्थल पर आरोपी की मौजूदगी साबित करने के लिए मोबाइल की सीडीआर प्रासंगिक हो सकती है, लेकिन इसके विपरीत नहीं। औपचारिक गवाहों के मौखिक बयान को छोड़कर, जांच अधिकारी द्वारा अन्यत्र सबूत के संबंध में कोई अन्य ठोस सबूत एकत्र नहीं किया गया है, जबकि शिकायतकर्ता (चश्मदीद गवाह) और उसकी घायल बहन सुरभि की गवाही घटना का गवाह के रूप में रिकॉर्ड पर ठोस सबूत मौजूद हैं। यह स्थापित कानून है कि एक घायल गवाह की गवाही का साक्ष्यीय मूल्य अधिक होता है और इसे खारिज नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन केवल ठोस और ठोस कारणों में ही।

राजेश और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 6 एससीसी 368 में, जिसमें शिकायतकर्ता ने अपने बेटे की हत्या के प्रयास के लिए 10 लोगों को नामित किया था और एक अन्य ने सभी आरोपियों के खिलाफ विशिष्ट आरोप लगाए थे। जांच अधिकारी ने सीआरपीसी की धारा 173 (2) के तहत केवल चार आरोपियों के खिलाफ

अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, छह आरोपियों (अपीलकर्ताओं) के खिलाफ कोई चालान दायर नहीं किया गया। चार आरोपियों के खिलाफ ही मुकदमा चला। मुकदमे के दौरान, पी.डब्ल्यू.-1 (शिकायतकर्ता) और पी.डब्ल्यू.-2 (घायल गवाह) ने विशेष रूप से आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए कृत्यों और उनके द्वारा निभाई गई भूमिका के बारे में बताया। उनके विरुद्ध सीआरपीसी की धारा 319 के तहत कार्यवाही हेतु प्रार्थना पत्र पर ट्रायल कोर्ट द्वारा अनुमति दी गई थी। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। शीर्ष अदालत ने कहा कि, "यहां अपीलकर्ताओं का नाम एफ.आई.आर. में भी है, अदालत के समक्ष गवाही में, पी.डब्ल्यू. 1 और 2 ने विशेष रूप से अपीलकर्ताओं के खिलाफ और उनके लिए जिम्मेदार विशिष्ट भूमिकाओं के बारे में बताया है, उसी के आधार पर, जिन व्यक्तियों के खिलाफ, कोई आरोप-पत्र दायर नहीं किया गया है तो भी उसे मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है। निचली अदालत द्वारा सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए मुकदमे का सामना करने के लिए अपीलकर्ताओं को बुलाने में कोई त्रुटि नहीं की गई है।

इसलिए, यह स्पष्ट है कि चश्मदीदों और घायल गवाहों की गवाही के रूप में ठोस सबूत हैं। वर्तमान तथ्यों के उपलब्धता पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण को लागू करने पर, यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त की मिलीभगत की संभावना के अलावा मजबूत सबूत हैं और यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित परीक्षण

से भी अधिक है। प्रथम दृष्टया मामला जैसा कि आरोप तय करते समय प्रयोग किया गया था, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी थी कि सबूत, अगर खंडन नहीं किया गया, तो सजा हो जाएगी।

यह सही है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा दिनांक 23.06.2018 को पारित पहले के आदेश को इस न्यायालय द्वारा 2018 के आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 2189 में दिनांक 18.07.2018 के आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था और ट्रायल कोर्ट को मामले पर फिर से विचार करने और एक नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था। इस न्यायालय ने दिनांक 18.07.2018 के आदेश में विशेष रूप से देखा है कि उसने इस बारे में कोई राय नहीं दी है कि क्या वर्तमान मामले में तथ्यों, परिस्थितियों और साक्ष्यों में मजबूत संतुष्टि उत्पन्न हुई है। आक्षेपित आदेश में, ट्रायल कोर्ट ने आक्षेपित आदेश के पैरा 1 और 2 में आवेदन और आपतियों के आरोपों का वर्णन किया है। इसके बाद, प्रभावशील भाग से पहले अंतिम पैराग्राफ में, विद्वान ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर तथ्यों और सबूतों का विश्लेषण किया है और इसके आधार पर आवेदन की अनुमति दी है। इस न्यायालय को विवादित आदेश की सत्यता, वैधता और औचित्य का निर्णय करना होगा। ट्रायल कोर्ट ने भले ही उचित भाषा का इस्तेमाल नहीं किया हो, लेकिन उसने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सभी तथ्यों, सबूतों और अन्य सामग्री का विश्लेषण किया है और उसके द्वारा निकाला गया निष्कर्ष उचित और सही है। आदेश को समग्र रूप से पढ़ने से आशय ज्ञात हो जाता है। आक्षेपित आदेश में कोई

दुर्बलता या अवैधता या त्रुटि नहीं है। आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं है। यह आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किये जाने योग्य है। तदनुसार, यह आपराधिक पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1114

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4576 / 2022
सतीश एवं अन्य ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ... विपक्षीयण
अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री शशि कुमार मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षीयण: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता 1860- धारा 307, 323 और 504 -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 319- एफआईआर के अनुसार- शराफत और सतीश ने उसकी मां पर अचानक गोलियां चला दीं - इसके बाद अन्य आरोपियों ने उस पर लाठी, डंडे से हमला कर दिया - विवेचना के बाद, विवेचक ने केवल शराफत और साबिर के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया - परीक्षण के दौरान पी.डब्ल्यू. 1, पी.डब्ल्यू. 2 और पी.डब्ल्यू. 3 की जांच की गई - एफआईआर में नामित शेष आरोपियों को बुलाने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 319 सीआरपीसी के तहत आवेदन दिया गया -

ट्रायल कोर्ट ने पुनरीक्षणकर्ताओं को तलब किया है - आयोजित, यह निर्विवाद है कि पुनरीक्षणकर्ताओं का नाम एफआईआर में है - आरोपियों के खिलाफ स्पष्ट और विशिष्ट आरोप हैं - वाद की माता को चोटें आई - उनका मेडिको लीगल रिपोर्ट अभिलेख का भाग है - वादी और घायल ने एफआईआर संस्करण की पुष्टि की है - विचारणीय न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष की कहानी की पूरी तरह से पुष्टि की गई है - यह स्थापित कानून है कि घायल गवाह की गवाही को तब तक खारिज नहीं किया जा सकता जब तक कि ठोस कारण न हों - विवेचक ने केवल सी.डी.आर. के आधार पर निष्कर्ष दर्ज किया है कि पुनरीक्षणकर्ता घटना के समय मौजूद नहीं थे - घायल गवाह और वादी ने घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति की पूरी तरह से पुष्टि की है - आपेक्षित समन आदेश विस्तृत और तर्कपूर्ण है। (पैरा 2, 3, 8, 11)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 1400
2. बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एससीसी पृष्ठ 706
3. शिव प्रकाश मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2019 (109) एससीसी 632 (एससी)

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

यह आपराधिक पुनरीक्षण अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-4, बुलंदशहर द्वारा सत्र विचारण संख्या-737 वर्ष 2021 (राज्य बनाम शराफत अली और अन्य) केस अपराध संख्या-295 वर्ष 2020, धारा 307, 323 भ०द०वि०, थाना-जहांगीराबाद, जिला बुलंदशहर के तहत पारित आदेश दिनांक 23.9.2022 के खिलाफ निर्देशित है। आक्षेपित आदेश द्वारा, विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के आवेदन पर धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पुनरीक्षणकर्ताओं को अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया है।

प्रतिपक्षी संख्या-2 ने प्राथमिकी दर्ज कराई कि 27.6.2020 को दोपहर लगभग 2:30 बजे। शराफत और सतीश ने अचानक उसकी मां नगीना पर फायरिंग कर दी। इसके बाद साबिर, सतीश, बशीर, सतेंद्र और धर्मवीर ने उस पर लाठी, डंडा, मुट्ठी-लातों से हमला किया। नगीना के पति और सह ग्रामीणों ने नगीना को मौके से उठाकर बुलंदशहर अस्पताल में भर्ती कराया। उसकी हालत गंभीर होने के कारण उसे मेरठ मेडिकल कॉलेज रेफर कर दिया गया। विवेचना के बाद विवेचनाधिकारी ने केवल शराफत और साबिर के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया। विचारण के दौरान तीन गवाहों शिकायतकर्ता शहाना, अ०सा०-1, घायल नगीना, अ०सा०-2 और राजू पति नगीना अ०सा०-3 से पूछताछ की गई। इस

स्तर पर अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 319 द०प्र०स० के तहत प्राथमिकी में नामित शेष आरोपियों को तलब करने के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। विद्वान विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा दोनों पक्षों को सुनने के बाद पुनरीक्षणकर्ताओं-अभियुक्तों को तलब किया है।

पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विवेचनाधिकारी ने शिकायतकर्ता, घायल, घायल के पति और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए हैं। उन्होंने आरोपी धर्मवीर, सतीश और शराफत के स्थान का पता लगाने के लिए सीडीआर भी प्राप्त की और मौके पर उनकी लोकेशन नहीं मिली। उन्होंने लेखपाल देव कुमार का बयान भी दर्ज किया, जिन्होंने कहा कि पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 की पत्नी ने विवादित भूमि के कब्जे के संबंध में जिला मजिस्ट्रेट को एक आवेदन दिया और मौके पर राजस्व निरीक्षक और पुलिस वहां पहुंचे और माप के बाद कब्जा पुनरीक्षणकर्ता संख्या-1 को सौंप दिया गया। यह भी तर्क दिया गया है कि घायल नगीना की चिकित्सा जांच सी.एच.सी जहांगीराबाद में आयोजित की गई थी। चार चोटों का उल्लेख किया गया और एक्स-रे की सलाह दी गई। यह एस.बी.बी.पी. अस्पताल द्वारा आयोजित किया गया था और कोई रेडियोलॉजिकल बोनी असामान्यता नहीं पाई गई थी। चूंकि कोई वाह्य पार्टिकल नहीं मिला था, इसलिए सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि घायल को कोई आग्नेयास्त्र चोट नहीं लगी है। मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा तीन गवाहों की जांच की गई। इसके आधार पर निचली अदालत ने धारा 319 द०प्र०स० के तहत दायर एक आवेदन पर पुनरीक्षणकर्ताओं

को तलब किया। सम्मन आदेश पारित करते समय, विचारण न्यायालय ने विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज सबूतों के अलावा, विवेचना के दौरान एकत्र किए गए सबूतों पर भी विचार किया, जो निर्णयों की श्रेणी में स्वीकार्य नहीं है। केवल जांच या विचारण के दौरान विचारण न्यायालय द्वारा एकत्र की गई सामग्री का उपयोग अतिरिक्त अभियुक्त को आरोपित करने के लिए किया जा सकता है। यह आगे तर्क दिया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार दोहराया कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है जिसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए। लागू किया जाने वाला महत्वपूर्ण परीक्षण वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि आरोप तय करने के समय प्रयोग किया गया था, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि सबूत, यदि बिना खंडन किए जाते हैं, तो संभावना है कि नए जोड़े गए अभियुक्त का संचालन किया जाएगा जैसा कि हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य के मामले में अवधारित किया गया है। धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग आकस्मिक और लापरवाह तरीके से नहीं किया जा सकता है, इसका प्रयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत हों और धारा 319 द०प्र०स० के तहत अतिरिक्त आरोपी के रूप में किसी व्यक्ति को जोड़ने के लिए, उस व्यक्ति की संलिप्तता की संभावना के करीब, मजबूत सबूत की आवश्यकता हो। यह वह परीक्षण है जिसे विभिन्न मामलों के कानूनों में निर्धारित किया जाना है। जबकि प्रस्तुत मामले में यदि

सम्मन आदेश का परीक्षण कसौटी पर किया जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है जो आवश्यक है। यह भी तय कानून है कि अदालत के समक्ष रखे गए भौतिक साक्ष्य पर विचार किया गया है और धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान का उपयोग धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय नहीं किया जा सकता है, जैसा कि प्रस्तुत मामले में किया गया है। इस तरह इसे अपास्त किया जा सकता है। विद्वान विचारण न्यायालय ने यांत्रिक तरीके से पुनरीक्षणकर्ताओं को बुलाया और कानून के अनुपात पर, इसके सही परिप्रेक्ष्य में विचार करने में विफल रहा, जैसा कि आक्षेपित आदेश में उद्धृत कानूनों में निर्धारित किया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि शिव प्रकाश मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2019 (109) ए.सी.सी. 632 (एस.सी.) में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में नवीनतम निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निरीक्षण किया था और संबंधित पैरा-9 यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

9. धारा 319 द०प्र०स० के तहत किसी व्यक्ति को आरोपी व्यक्ति के रूप में बुलाने के लिए नियोजित सबूत का मानक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ आरोप तय करने के लिए नियोजित सबूत के मानक से अधिक है। धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए। जैसा कि कैलाश बनाम राजस्थान राज्य में अवधारित किया गया था: (एस.सी.सी. पृष्ठ 55, पैरा-9)।

"9..... धारा 319 द०प्र०स० के तहत एक अतिरिक्त अभियुक्त को बुलाने की शक्ति का संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए। खंड में

प्रमुख शब्द हैं "यह सबूत से प्रकट होता है"। कोई भी व्यक्ति" ... "कोई अपराध किया है"। इसलिए, ऐसा नहीं है कि केवल इसलिए कि कुछ गवाहों ने ऐसे व्यक्ति के नाम का उल्लेख किया है या उस व्यक्ति के खिलाफ कुछ सामग्री है, अदालत द्वारा धारा 319 द०प्र०स० के तहत विवेक का उपयोग किया जाएगा।

अंत में, यह तर्क दिया गया है कि अभियोजन की कहानी की पुष्टि नहीं की गई है क्योंकि मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए बयान में भी अहम विरोधाभास हैं और आगे चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि नहीं करते हैं। आक्षेपित सम्मन आदेश अवैध होने के कारण टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पुनरीक्षणकर्ताओं को प्राथमिकी में नामित किया गया है और उनके खिलाफ विशिष्ट आरोप हैं कि उन्होंने अपराध में भाग लिया और पीड़ित पर हमला किया। एक व्यक्ति को चोट आई है। उनकी मेडिको लीगल रिपोर्ट रिकॉर्ड का हिस्सा है। शिकायतकर्ता, घायल और अन्य गवाहों ने अभियोजन पक्ष की कहानी की पुष्टि की है। विचारण के दौरान तीन गवाहों की जांच की गई है। उन्होंने मुकदमे के सबूतों की भी पुष्टि की। विवेचनाधिकारी ने पुनरीक्षणकर्ताओं को गलत तरीके से बरी कर दिया है। पुनरीक्षणकर्ताओं-अभियुक्तों के खिलाफ रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री है। विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद पूरी सामग्री की मूल्यांकन करने के बाद पाया है कि पर्याप्त सामग्री है और उसने समन आदेश पारित किया है। आक्षेपित सम्मन आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

यह निर्विवाद है कि पुनरीक्षणकर्ताओं-आरोपियों के नाम प्राथमिकी में हैं। स्पष्ट और विशिष्ट आरोप हैं कि उन्होंने हमले में भाग लिया। घटना में शिकायतकर्ता की मां को चोटें आई हैं। उनकी मेडिको लीगल रिपोर्ट रिकॉर्ड का हिस्सा है। धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में, शिकायतकर्ता और घायल दोनों ने प्राथमिकी के संस्करण की पूरी तरह से पुष्टि की है। विचारण न्यायालय के समक्ष उनकी जांच की गई है और उस बयान में उन्होंने पुनः प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों को दोहराया है और अभियोजन की कहानी की पूरी तरह से पुष्टि की है। अ०सा०-2 नगीना एक घायल गवाह है और यह तय कानून है कि घायल गवाह की गवाही को तब तक खारिज नहीं किया जा सकता जब तक कि ठोस कारण न हों। विवेचनाधिकारी ने केवल सीडीआर के आधार पर यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि घटना के समय घटनास्थल पर पुनरीक्षणकर्ता मौजूद नहीं थे। जबकि घायल गवाह के साथ-साथ शिकायतकर्ता ने भी घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति की पूरी तरह से पुष्टि की है कि उन्होंने घटना में भाग लिया है और घायल के साथ मारपीट की है।

हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 2014 उच्चतम न्यायालय के पृष्ठ 1400 के मामले में शीर्ष न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अपेक्षित साक्ष्य के मानक निर्धारित किए हैं। प्रासंगिक पैरा-98 और 99 इस प्रकार हैं:

"98. धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है।

इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इतनी आवश्यक हैं। इसका प्रयोग सिर्फ इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल जहां अदालत के समक्ष नेतृत्व किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत होता है कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और वो भी आकस्मिक और लापरवाह तरीके से नहीं।

99. इस प्रकार, हम मानते हैं कि हालांकि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया का मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह की निहाई पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी जटिलता की संभावना की तुलना में बहुत मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। जो परीक्षण लागू किया जाना है वह वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि आरोप तय करने के समय प्रयोग किया जाता है लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि अगर सबूतों का खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 द०प्र०स० में यह प्रावधान करने का उद्देश्य कि 'साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने अभियुक्त नहीं होने के कारण कोई अपराध किया है, इन शब्दों से स्पष्ट है कि "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है।"

प्रयोग किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं "जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके।" इसलिए, धारा 319 द०प्र०स० के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

इस मामले के तथ्य बृजेंद्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017)7 एस.सी.सी. पृष्ठ 706 के विधि निर्णय से अलग हैं क्योंकि उस मामले में विवेचनाधिकारी ने अभियुक्तों के बहाने के बारे में ढेर सारे सबूत एकत्र किए हैं, जबकि इस मामले में ऐसा कोई सबूत नहीं है जिसका इस्तेमाल घायल गवाह के बयान को आक्षेपित करने के लिए किया जा सके।

विचारण न्यायालय ने आवेदन में लगाए गए पूरे तथ्यों और आरोपों का वर्णन किया है। रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य और संतुष्ट होने के बाद कि रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री है, आक्षेपित सम्मन आदेश पारित किया है। आक्षेपित सम्मन आदेश विस्तृत और तर्कपूर्ण है। आक्षेपित सम्मन आदेश में कोई विकृति या अवैधता नहीं है।

पुनरीक्षण योग्यता से रहित है अताः एतद्द्वारा खारिज किया जाता है।

आदेश दिनांक :- 13.1.2023

(2023) 4 ILRA 1117

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन

रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 4309 / 2022

नदीम तारिक

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री गिरीश कुमार मिश्रा

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री मोहम्मद अफजल

आपराधिक कानून -दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 216 - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 498 ए, 323, 504, 506 और 3 (1) (वी) - डी.पी. अधिनियम, 1961- धारा 3/4 - आपराधिक पुनरीक्षण - आपेक्षित आदेश के विरुद्ध - विचारण न्यायालय ने आरोपी द्वारा धारा 216 सीआरपीसी के तहत दायर आवेदन को खारिज कर दिया है - उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था - आरोप तय किए गए - परीक्षण प्रारंभ हुआ -क्या पुनरीक्षण पोषणीय है - आयोजित, आरोप में परिवर्तन के लिए आवेदन अंतर्गत धारा 216 सीआरपीसी के तहत स्थानांतरित किया गया है लेकिन इसका निहितार्थ यह है कि अभियुक्त को धारा 315 आईपीसी के आरोप से मुक्त कर दिया गया है - यह अंतिम निर्णय का मामला है, जिसका विश्लेषण अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्य के आधार पर किया जाना है, न कि किसी शांति-भोज साक्ष्य के आधार पर - डॉक्टर के बयान के आधार पर धारा 315 आईपीसी के आरोप को छोड़ने का कोई पर्याप्त आधार नहीं है - पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन गलत है और इसे सही रूप से निरस्त कर दिया गया है। (पैरा 2, 3, 6)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन
रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

यह आपराधिक पुनरीक्षण सत्र परीक्षण संख्या 106/2019 (राज्य बनाम नदीम तारिक) अपराध संख्या 49/2014 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश/एफटीसी न्यायालय संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 24.08.2022 के आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है। उक्त आदेश द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी द्वारा धारा 216 दं0प्र0सं0 के तहत दायर प्रार्थना पत्र 47 का को खारिज कर दिया है।

सत्र परीक्षण में पुनरीक्षणकर्ता को आरोपी बनाया गया है। धारा 498ए, 323, 504, 506 तथा 3(1) वी भा0दं0सं0 और 3/4 डीपी एकट के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी के खिलाफ भी आरोप तय किए गए। परीक्षण शुरू हुआ। पीडब्लू-4 डॉ. मुर्सरत मुजीब के खिलाफ धारा 216 दं0प्र0सं0 के तहत एक प्रार्थना पत्र दाखिल किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि यह रिकॉर्ड पर आया है कि बच्चे को जीवित पैदा होने से रोकने या जन्म के बाद उसे मरने का कारण बनने के इरादे से कोई कार्य नहीं किया गया है। पीडब्लू-4, डॉ. मुर्सरत मुजीब ने स्पष्ट रूप से खुलासा किया है कि उसके द्वारा कोई गर्भपात नहीं कराया गया था। उसने स्वीकार किया है कि उसने कोई गर्भपात नहीं कराया है और न ही

शिकायतकर्ता/पीड़िता ने स्वीकार किया है। यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता द्वारा झूठे आरोप लगाए गए थे। पीडब्लू-4 की जिरह से यह स्पष्ट है कि एफआईआर में बताई गई किसी भी गर्भपात, बच्चे की हत्या या किसी भी क्रूरता की घटना अस्पष्ट, झूठी और काल्पनिक है और ऐसी कोई घटना कभी नहीं हुई। वर्तमान मामले में, विशेष रूप से धारा 315 दं0प्र0सं0 के विवाद में डॉक्टर पीडब्लू-4 के तथाकथित अवलोकन पर आरोप लगाया गया था और डॉक्टर ने स्पष्ट रूप से गर्भपात न होने, मरीज को चोट न पहुंचाने और आपराधिक गतिविधि न करने के बारे में कहा है और परिणामस्वरूप धारा 315 भा0दं0सं0 के साथ संबंध रखने वाली किसी भी गतिविधि की आशंका का सवाल ही खत्म हो जाता है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने मुख्य रूप से यह तर्क दिया कि प्रार्थना पत्र में क्या आधार उल्लिखित हैं।

विद्वान ए.जी.ए. तथा विपक्षीकार संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने इस पुनरीक्षण की स्वीकार्यता के बारे में प्रारंभिक आपत्ति उठाई तथा प्रस्तुत किया कि यह आदेश अन्तरवर्ती है, इसलिए यह पुनरीक्षण स्वीकार्य नहीं है।

रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त के खिलाफ रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर आरोप तय किए गए थे। यद्यपि धारा 216 दं0प्र0सं0 के तहत आरोप में परिवर्तन के लिए प्रार्थना पत्र दिया गया है, लेकिन वास्तव में इसका निहितार्थ आरोपी को धारा 315 भा0दं0सं0 के आरोप से मुक्त करना है। यह निष्कर्ष देने का कोई चरण नहीं है कि धारा

315 भा0दं0सं0 किसी विशेष गवाह के बयान के आधार पर नहीं बनती है। कोई अपराध बनता है या नहीं, यह अंतिम निर्णय का मामला है जिसका विश्लेषण और विचार रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्य के मद्देनजर किया जाना चाहिए, न कि किसी शांति-भोज साक्ष्य के आधार पर। इसलिए इस स्तर पर केवल डॉक्टर के बयान के आधार पर धारा 315 भा0दं0सं0 के आरोप को हटाने का कोई पर्याप्त आधार नहीं है। पुनरीक्षणकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र गलत है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा इसे सही तरीके से खारिज कर दिया गया है। इस पुनरीक्षण में कोई गुण-दोष नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

तदनुसार, पुनरीक्षण *खारिज* किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1119

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन
रिजवी,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 5082 / 2022

सचिन एवं अन्य

... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता पुनरीक्षणकर्ता: श्री कृपा शंकर
तवारी, शिवानी चौधरी

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री राम राज
पांडे

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860
-धारा 323, 504, 506 और 354- दंड प्रक्रिया

संहिता, 1973 धारा 161, 319 - एफआईआर के अनुसार- लाठी, डंडा, देशी पिस्तौल से लैस सात आरोपी व्यक्ति प्रथम सूचक के घर में घुस गए और मारपीट और उसके बेटे को घायल कर दिया - आरोपियों ने वादी के कपड़े भी फाड़ दिए और उसे जान से मारने की धमकी दी -जांच के बाद केवल चार लोगों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था - अभियोजन पक्ष ने एफआईआर में नामित अन्य आरोपी व्यक्तियों को बुलाने के लिए आवेदन किया था, इस आधार पर कि वादी भी एक घायल गवाह है - अपने बयान में वादी ने एफआईआर के आरोपों का समर्थन किया है - विचारणीय न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ताओं को विचरण का सामना करने के लिए बुलाया है - आयोजित, आरोपियों के विरुद्ध विशेष आरोप हैं, जो घटना में उनकी सहभागिता को दर्शाते हैं - एक चश्मदीद गवाह के साक्ष्य का अधिक साक्ष्य मूल्य होता है और जब तक बाध्यकारी कारण उपलब्ध न हों, इसे निरस्त नहीं किया जाना चाहिए - आपेक्षित आदेश ठोस सबूतों पर आधारित है और इसमें कोई विकृति या अवैधता नहीं है। (पैरा 2, 3, 7, 8)

पुनरीक्षण निरस्त (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 1400
2. एम.पी. बनाम मान सिंह (2003) 10 एससीसी 414
3. अब्दुल सईद बनाम एम.पी. राज्य (2010) 10 एससीसी 259

4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश (2011) 4
एससीसी 324

(माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन
रिज़वी, द्वारा प्रदत्त)

पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता के साथ-साथ राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

यह आपराधिक पुनरीक्षण न्यायिक मजिस्ट्रेट, बागपत द्वारा केस संख्या-1604 वर्ष 2021 (राज्य बनाम राहुल और अन्य) केस अपराध संख्या-298 वर्ष 2020, थाना-सिंघावली, जिला बागपत में पारित आदेश दिनांक 30.10.2022 के खिलाफ दायर किया गया है। आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान मजिस्ट्रेट ने धारा 319 द०प्र०स० के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं को धारा 323, 504, 506 और 354 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया है।

इस मामले की प्राथमिकी 21.9.2020 को दोपहर लगभग 6:30 बजे की घटना के संबंध में 14:40 बजे दर्ज की गई थी। प्राथमिकी में अन्य आरोपों के अलावा यह आरोप लगाया गया है कि सात आरोपी व्यक्तियों रमेश, चाचिन, श्रीमती राम भटेरी, मनीष, श्रीमती शीला, विलेंद्र और श्रीमती सुनीता ने सामान्य आशय के अग्रसारण में लाठी, डंडा, देशी पिस्तौल और तेज धार वाले हथियारों से लैस होकर पहले सूचनाकर्ता के घर में प्रवेश किया और पहले सूचनाकर्ता और उसके बेटे चर्चिल पर हमला करना शुरू कर दिया, जिससे उन्हें चोटें आईं। उन्होंने पहले सूचनाकर्ता के कपड़े

भी फाड़ दिए और उसे जान से मारने की धमकी दी। इस घटना में पहले सूचनाकर्ता और उसके बेटे को चोटें आईं और उनकी मेडिकल जांच की गई। जांच के बाद केवल श्रीमती शीला, श्रीमती राम भटेरी, विलेंद्र और राहुल के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। इसके बाद विचारण के दौरान शिकायतकर्ता श्रीमती इल्मो, अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 319 द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया गया था कि प्राथमिकी में नामित अन्य आरोपी व्यक्तियों को इस आधार पर तलब किया जाए कि श्रीमती इल्मो-शिकायतकर्ता भी एक घायल गवाह हैं। अदालत के समक्ष अपने बयान में उन्होंने प्राथमिकी के आरोपों का समर्थन किया है। आक्षेपित आदेश द्वारा पक्षकारों को सुनने के बाद विद्वान विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ताओं को धारा 323, 504, 506 और 354 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया है।

पुनरीक्षणकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्राथमिकी के आरोपों के अनुसार शिकायतकर्ता के बेटे चर्चिल के साथ भी मारपीट की गई थी, लेकिन धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में चर्चिल ने पुनरीक्षणकर्ताओं का नाम नहीं लिया है। विवेचना के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा घटना में पुनरीक्षणकर्ताओं की मिलीभगत नहीं पाई गई और उन्हें बरी कर दिया गया। यह भी तर्क दिया गया है कि बिना किसी तर्कसंगत स्पष्टीकरण के छह दिनों की देरी के साथ प्राथमिकी दर्ज की गई है। विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन के खिलाफ

दायर आपत्तियों पर विचार नहीं किया है। विद्वान विचारण न्यायालय ने बिना सोचे समझे सरसरी तौर पर आदेश पारित किया है। विवेचना के दौरान यह पाया गया कि सचिन पुलिस विभाग में कार्यरत है और घटना की कथित तारीख पर वह अपनी ड्यूटी पर मौजूद था। इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश पारित करने के समय तक केवल एक गवाह अ०सा०-1 की जांच की गई है और केवल उसी आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जो विकृत और अवैध है।

अपर शासकीय अधिवक्ता और प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्राथमिकी में पुनरीक्षणकर्ताओं का नाम घातक हथियारों, लाठी, डंडा और हमले से लैस होने के विशिष्ट आरोपों के साथ है। इस घटना में शिकायतकर्ता और उसके बेटे को चोटें आई हैं। शिकायतकर्ता भी घायल गवाह है। उसने प्राथमिकी के आरोपों और धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने पिछले बयान की पूरी तरह से पुष्टि की है। विवेचनाधिकारी ने घायल गवाह अर्थात् चर्चिल का बयान दर्ज नहीं किया है और सिर्फ आरोपी को लाभ पहुंचाने के लिए अपना बयान दर्ज किया है और इसके आधार पर पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी को बरी कर दिया है। यह आगे तर्क दिया गया है कि शिकायतकर्ता/घायल गवाह ने अदालत के समक्ष अपने बयान में प्राथमिकी में स्थापित अभियोजन की कहानी की पूरी तरह से पुष्टि की है और इससे पुनरीक्षणकर्ता की मिलीभगत स्थापित होती है। रिकॉर्ड पर मौजूद पूरी सामग्री पर विचार करने के बाद विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पुनरीक्षणकर्ताओं-अभियुक्तों की मिलीभगत पूरी

तरह से स्थापित है और उसने सम्मन आदेश पारित किया है, इसलिए आक्षेपित सम्मन आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 2014 उच्चतम न्यायालय के पृष्ठ 1400 के मामले में शीर्ष न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अपेक्षित साक्ष्य के मानक निर्धारित किए हैं। प्रासंगिक पैरा-98 और 99 इस प्रकार हैं:

"98. धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां इतनी आवश्यक हैं। इसका प्रयोग सिर्फ इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल जहां अदालत के समक्ष नेतृत्व किए गए साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत होता है कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और वो भी आकस्मिक और लापरवाह तरीके से नहीं।

99. इस प्रकार, हम मानते हैं कि हालांकि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह की निहाई पर परीक्षण किया जाए। इसके लिए उसकी जटिलता की संभावना की तुलना में बहुत मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है, जो परीक्षण लागू किया जाना है वह वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि

आरोप तय करने के समय प्रयोग किया जाता है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि अगर सबूतों का खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 द०प्र०स० में यह प्रावधान करने का उद्देश्य कि 'साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने अभियुक्त नहीं होने के कारण कोई अपराध किया है, इन शब्दों से स्पष्ट है कि "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है।" प्रयोग किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं "जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सके।" इसलिए, धारा 319 द०प्र०स० के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

यह निर्विवाद है कि पुनरीक्षणकर्ताओं-आरोपियों के नाम प्राथमिकी में हैं और उनके खिलाफ विशिष्ट आरोप हैं जो घटना में उनकी संलिप्तता दिखाते हैं। उन्हें लाठी, डंडा और अन्य हथियारों से लैस होने के कारण हमला करने की भूमिका सौंपी गई है। इस घटना में शिकायतकर्ता को चोटें आई हैं, इसलिए वह घायल गवाह है। शिकायतकर्ता ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में प्राथमिकी के आरोपों की पुष्टि की है और विशेष रूप से कहा है कि पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी अन्य आरोपियों के साथ लाठी, डंडा और अन्य हथियारों से लैस होकर उसके घर पर आए और उसके और उसके बेटे चर्चिल पर हमला किया। एक चश्मदीद गवाह के साक्ष्य का अधिक साक्ष्य मूल्य है और जब तक बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उसके बयान को हल्के ढंग से खारिज नहीं किया जाना चाहिए।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम मान सिंह (2003) 10 एस.सी.सी. 414, अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2010) 10 एस.सी.सी. 259 और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश (2011) 4 एस.सी.सी. 324 के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव को निर्धारित किया है।

विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरे तथ्यों और सबूतों का वर्णन किया है और रिकॉर्ड पर सामग्री का विश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि धारा 323, 504, 506 और 354 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए पुनरीक्षणकर्ताओं को तलब करने के लिए पर्याप्त आधार है। आक्षेपित आदेश ठोस साक्ष्य पर आधारित है जो धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए निर्धारित मानक को पूरा करता है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई विकृति या अवैधता नहीं है। आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है। पुनरीक्षण में योग्यता का अभाव है अतः इसको एतद्द्वारा खारिज किया जाता है।

आदेश दिनांक :- 9.1.2023

(2023) 4 ILRA 1122

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,
माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,
आपराधिक अपील संख्या 235/1991

हकीम एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीय

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री मो. अरशद खान, श्री अमरजीत उपाध्याय, श्री अम्बरीन मसरूर, श्री मोहम्मद अरशद खान, श्री सुखबीर सिंह (ए.सी.:)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302/34 - हत्या के लिए सजा - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973- धारा 313- दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील- एफआईआर के अनुसार - दिनांक 30.09.1987 को लगभग 8 बजे रात्रि में, शिकायतकर्ता और अपीलार्थी के बच्चों में झगड़ा हुआ - इसके बाद अपीलार्थी अपने दो बेटों के साथ वादी के घर पहुंचा, जहां उन्हें शिकायतकर्ता और उसके पिता ने अपने बच्चों को नियंत्रण में रखने के लिए कहा - अपीलार्थी और उसके बेटों ने धमकी दी - आरोपियों ने शिकायतकर्ता और उसके पिता को लाठी और बल्लम से पीटना शुरू कर दिया - अपीलार्थी भाले से लैस था, अन्य आरोपी भी लाठी से लैस थे - वादी के पिता को भाले का वार लगा सभी आरोपियों के विरुद्ध वाद दर्ज किया गया - आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया - आयोजित, घटना क्षण भर में घटित हुई - केवल एक ही चोट थी जो आरोपियों में से एक के कारण आई- यह नहीं कहा जा सकता कि आरोपियों का मृतक की हत्या करने का कोई पूर्व नियोजित आशय था, वे केवल झगड़े की शिकायत करने के लिए मृतक के घर गए थे - इस प्रकार, धारा 34 आईपीसी को सिद्ध नहीं कहा जा सकता - पोस्टमार्टम रिपोर्ट में, मृतक के पेट पर चोटें थीं, और ऑपरेशन के बाद उसकी मृत्यु हो गई, इसलिए, यह पूर्वनियोजित कार्य नहीं था - वे शारीरिक रूप से लड़ रहे थे-

इस्तेमाल किए गए हथियार घातक हथियार नहीं थे - आरोपियों का कृत्य धारा-304 (II) आईपीसी के दायरे में आएगा - इसलिए, अपीलकर्ता द्वारा काटी गई सजा पर्याप्त होगी क्योंकि घटना वर्ष 1988 की है और अपील वर्ष 1991 की है। (पैरा 2, 3, 11, 14, 20)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम एपी राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926
2. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2004) 7 एससीसी 257
3. रावदा शशिकला बनाम ए.पी. राज्य एआईआर 2017 एससी 1166
4. जमील बनाम यूपी राज्य (2010) 12 एससीसी 532
5. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 एससीसी 734
6. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 एससीसी 323
7. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, (2015) 3 एससीसी 441
8. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 एससीसी 463

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, एवं माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल, द्वारा प्रदत्त)

मौखिक निर्णय

1. एकमात्र जीवित अभियुक्त-अजीज के लिए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र), श्री सुखबीर सिंह को सुना।

2. यह अपील प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश मेरठ द्वारा सत्र विचारण संख्या-488 वर्ष 1988 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 14.02.1991 को चुनौती देती है, जिसके तहत अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित) की धारा 302 सपठित धारा 34 भ०द०वि० के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है और उसे आजीवन कारावास की सजा सुनाई है और धारा 323 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई है। दोनों सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

3. अभियोजन की कहानी के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 30.09.1987 को लगभग 8 बजे, शिकायतकर्ता मेहरबान और आरोपी मुन्ना के बच्चों में झगड़ा हुआ था। कुछ समय बाद मुन्ना और उसके दो बेटे हकीम और अजीज शिकायतकर्ता के घर पहुंचे और उन्हें शिकायतकर्ता और उसके पिता अल्ला मेहर ने अपने बच्चों को नियंत्रण में रखने के लिए कहा। इस पर मुन्ना और उसके बेटों ने बच्चों के झगड़े का परिणाम भुगतने की धमकी दी। सभी आरोपियों ने हत्या करने के इरादे से शिकायतकर्ता और उसके पिता अल्ला मेहर को लाठी और बल्लम से पीटना शुरू कर दिया। हकीम भाले से लैस था जबकि अन्य आरोपी लाठी से लैस थे। अल्ला मेहर को भाले का प्रहार लगा। उसे थाने ले जाया गया। यह भी

आरोप लगाया गया कि घटना को इकबाल और मो. हनीफ द्वारा देखा गया। थाना-सरधना में लिखित रिपोर्ट दर्ज कराई गई। सभी आरोपियों के खिलाफ मामला दर्ज कर लिया गया है। जांच की परिणति 3 अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के रूप में हुई। मामला सत्र न्यायालय को उपारपित किया गया।

4. बुलाए जाने पर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने दोषी नहीं होने का दावा किया और विचारण चाहा। मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 9 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	इकबाल	अ०सा०-1
2	मेहरबान	अ०सा०-2
3	सिरजुद्दीन	अ०सा०-3
4	डॉ शरद चंद्र निगम	अ०सा०-4
5	डॉ फरीदुद्दीन	अ०सा०-5
6	डॉ एम एल अग्रवाल	अ०सा०-6
7	यादराम	अ०सा०-7
8	विजय सिंह	अ०सा०-8
9	सुरेन्द्र पल सिंह	अ०सा०-9

5. चक्षुक संस्करण के समर्थन में, निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित हुए:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-6
2	तहरीर	प्रदर्श क-1
3	आवेदन	प्रदर्श क-2
4	घाव रिपोर्ट	प्रदर्श क-3 & प्रदर्श क-5
5	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-

6	पंचायतनामा	प्रदर्श क-
7	मूल आरोप पत्र	प्रदर्श क-
8	नक्शा नज़री सारणी के साथ	प्रदर्श क-

6. मुकदमे के अंत में, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त के बयान दर्ज करने और अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोपी-अपीलकर्ता, अजीज और अन्य को दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

7. यह वर्ष 1991 की अपील है। तीन आरोपियों में से दो हकीम और मुन्ना की मौत हो चुकी है। भाले से लैस मुख्य हमलावर की भी मौत हो गई है। आरोपी अजीज को जमानत मिलने के बाद अपील पर सुनवाई की जा रही है। इस अदालत ने आरोपी अजीज को उक्त तारीख पर रिहा करने का निर्देश दिया। यह बताया गया है कि इस न्यायालय के आदेशों के बावजूद उन्हें अभी भी रिहा नहीं किया गया है।

8. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधीश ने माना है कि धारा 34 भ०द०वि० बनाई गई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि प्राथमिकी से भी, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त, संख्या में तीन, मृतक को मारने का कोई इरादा या बल्कि सामान्य इरादा था। आरोपी के पास कोई घातक हथियार नहीं था। यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 34 भ०द०वि० बनती है।

9. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि एक सामान्य इरादे के साथ अभियुक्त की भागीदारी साबित नहीं होती है। यह नहीं कहा जा सकता है कि एक पूर्वनिर्धारित योजना थी और उक्त योजना के अनुसरण में कार्य कर रहे थे। घटना के दौरान जो कुछ हुआ वह सब परिवार के दो सदस्यों के बच्चों के बीच झगड़े के कारण हुआ। कोई मौजूदा पूर्व इरादा नहीं था।

10. इसके विपरीत, श्री पतंजलि मिश्रा, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता, प्रस्तुत करते हैं कि यह मृतक के घर जाकर एक पूर्व नियोजित हमला था, और इसलिए इस न्यायालय द्वारा तथ्य की खोज में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

11. साक्ष्य के माध्यम से जाने पर, यह स्पष्ट है कि यह कार्य क्षणिक आवेग में हुआ था। प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 30-09-1987 की है जिसमें यह भी दर्शाया गया है कि यह घटना अचानक घटित हुई। अभिलेख को देखने के दौरान, यह बहुत स्पष्ट है कि केवल एक ही चोट थी जो अभियुक्त में से एक द्वारा की गई थी। यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपियों का मृतक की हत्या करने का कोई पूर्व नियोजित इरादा या उद्देश्य था क्योंकि वे बच्चों के बीच हुए झगड़े की शिकायत करने के लिए मृतक के निवास पर गए थे। घटना अचानक हुई, इसलिए धारा 34 भ०द०वि० को साबित नहीं कहा जा सकता। धारा 34 भ०द०वि० की सहायता से दोषसिद्धि को इस न्यायालय द्वारा सहमति नहीं दी जा सकती है।

12. भ०द०वि० की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:

299. सदोष मानव वध : जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जो मृत्यु कारित करने की सम्भावना से हो या इस ज्ञान के साथ कि वह ऐसे कार्य द्वारा मृत्यु कारित करने की सम्भावना रखता है, मृत्यु कारित करेगा, वह सदोष मानव वध का अपराध करेगा।

13. 'हत्या' और 'गैर इरादतन मानव वध जो हत्या की श्रेणी में नहीं आता' के बीच शैक्षणिक अंतर ने न्यायालयों को हमेशा परेशान किया है। भ्रम पैदा होता है, अगर अदालतें इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग की जाने वाली शर्तों के वास्तविक दायरे और अर्थ की दृष्टि खो देती हैं, और खुद को मिन्ट अमूर्तता में खींचने की अनुमति देती हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भ०द०वि० की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में प्रयुक्त खोजशब्दों पर ध्यान केंद्रित करना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दो अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं की सराहना करने में सहायक होगी।

15. 'हत्या' और 'गैर इरादतन मानव वध' के बीच शैक्षणिक अंतर ने न्यायालयों को हमेशा परेशान किया है। भ्रम पैदा होता है, अगर अदालतें इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग की जाने वाली शर्तों के सही दायरे और अर्थ की दृष्टि खो देती हैं, तो खुद को बारीक

अमूर्तताओं में खिंचने की अनुमति देती हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और लागू के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भारतीय दंड संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए की-वर्ड को ध्यान में रखना प्रतीत होता है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दो अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति गैर इरादतन मानव वध करता है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित की जाती है-	कुछ अपवादों के अधीन, गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है, किया जाता है।

आशय

(a) मौत के इरादे से; नहीं तो	(1) मौत के इरादे से; नहीं तो
(b) ऐसा करने के इरादे से शारीरिक चोट के रूप में मृत्यु का कारण बनने की संभावना है; नहीं तो	2) ऐसा करने के इरादे से शारीरिक चोट के रूप में कि अपराधी जानता है उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनने की संभावना हो जिसे नुकसान हुआ है
ज्ञान	ज्ञान
(c) इस ज्ञान के साथ कि कार्य से मृत्यु होने की संभावना है	4) इस ज्ञान के साथ कि कार्य इतना तुरंत खतरनाक है कि यह सभी संभावनाओं में

	<p>मृत्यु या इस तरह का कारण होना चाहिए शारीरिक चोट के रूप में मृत्यु का कारण बनने की संभावना है, और मृत्यु के कारण या होने के जोखिम के लिए किसी भी बहाने के बिना या ऐसी चोट जैसा कि ऊपर बताया गया है.</p>
--	---

14. साक्ष्य यह भी दिखाते हैं कि सबसे पहले अभियुक्तों पर धारा-307 और 323 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया था। अभियुक्त-अजीज द्वारा किया गया अपराध, यदि कोई हो, तो धारा-304 (II) और 326 भ०द०वि० के अंतर्गत आएगा। मृतक की मृत्यु, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एक पूर्व नियोजित मौत नहीं थी और अभियुक्त का कार्य निम्नलिखित कारणों से धारा-304 (II) भ०द०वि० के अंतर्गत आएगा:

शव परीक्षण रिपोर्ट में देखी गई चोटों से पता चलता है कि मृतक के पेट पर चोट के निशान थे। चोट लगने के कुछ दिनों बाद उसकी मौत हो गई। फैक्टम डेटा, साक्ष्य और तथ्य यह है कि मृतक की मृत्यु ऑपरेशन के बाद हुई थी, इसलिए, यह माना जाता है कि यह एक पूर्व नियोजित कार्य नहीं था। आपस में झगड़ा हो रहा था और वे एक-दूसरे को बचाने की कोशिश कर रहे थे। वे शारीरिक रूप से लड़ रहे थे। इस्तेमाल किए गए सभी हथियार भी घातक हथियार नहीं थे। इन परिस्थितियों में,

अभियुक्त का कार्य धारा-304 (II) भ०द०वि० के दायरे में आएगा, धारा-323 भ०द०वि० के तहत दोषसिद्धि और डिफॉल्ट सजा पहले ही बीत चुकी है, हम इस पर विचार नहीं करते हैं। अदालत ने खुद कोई डिफॉल्ट सजा नहीं दी है।

15. यह इस न्यायालय को सजा की मात्रा तक ले जाता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

16. मो. गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा यह देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर सुधारा जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' के दृष्टिकोण

के बजाय चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, मानव का चोटों से सुधार नहीं होगा।

17. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि दंड अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से नहीं किया जा सकता है।

18. रवदा शशिकला बनाम एपी ए.आई.आर. राज्य 2017 एस.सी. 1166 में, सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एस.सी.सी. 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एस.सी.सी. 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एस.सी.सी. 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एस.सी.सी. 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एस.सी.सी. 463] और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक

मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक अपनाया चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और कारित की गई, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में आएंगे। इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय वितरण को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा सुनाए। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दंड के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज लंबे समय तक अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए

सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और उपचारात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

19. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए जो सुधारात्मक और सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार के लिए असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

20. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई सजा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए बहुत कठोर है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जैसा कि ऊपर चर्चा की है, ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में

रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

21. उपरोक्त के मद्देनजर, अभियुक्त-अपीलकर्ता, अजीज द्वारा काटी गई सजा पर्याप्त होगी क्योंकि घटना वर्ष 1988 की है और अपील वर्ष 1991 की है। आरोपी-अपीलकर्ता अजीज, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, तो वास्तव में तुरंत रिहा कर दिया जाए।

22. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 14.02.1991 को पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। अभिलेख को तत्काल निचली अदालत को वापस भेजा जाए।

23. उच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति द्वारा अजीज के लिए इस मामले में पेश होने वाले श्री सुखबीर सिंह, एमिक्स क्यूरी (न्याय मित्र) को 15,000 रुपये का भुगतान किया जाए।

(2023) 4 ILRA 1127

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-ए संख्या 890/2022

जय प्रकाश त्रिपाठी

... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री भगवान दत्त पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री अशोक

कुमार, श्री के.आर. सिंह

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

उद्धृत वाद सूची:

सेवा कानून -उ.प्र. विकास प्राधिकरण गैर-केन्द्रित सेवाएं सेवानिवृत्ति नियम, 2011 - नियम 2(एच), (आई) - भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 14 - पेंशन- याचिकाकर्ता को दिनांक 07.12.1987 को वर्कचार्ज कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था - वह श्रेणी III पर क्लर्क के रूप में सेवा करता रहा - पद, नियमित कर्मचारी के रूप में माना गया, दिनांक 24.12.2010 के आदेश द्वारा नियमित किया गया, वह 30.09.2016 को सेवानिवृत्त हुआ - प्रतिवादी प्राधिकारी ने उसे सेवानिवृत्ति पर पेंशन, अन्य लाभ देने से इनकार कर दिया है - आयोजित, 2011 के नियम राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं, सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं - वर्तमान वाद में, एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, जैसा कि स्वीकार किया गया है, क्योंकि कार्यभार वाले कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान ही कर्तव्य निभाते हैं - उन्हें उनकी कार्यभार सेवाओं को जारी रखते हुए नियमित किया गया था - इसलिए, प्रतिवादी प्राधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को पेंशन, अन्य लाभों का नियमित भुगतान सुनिश्चित करें, उनकी संपूर्ण सेवाओं को नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाए। विकास प्राधिकरण के नियमित कर्मचारी के रूप में तीन माह की अवधि में की गई सेवा पूरी करने के पश्चात, केवल अंतिम तीन वर्षों की ही देय पेंशन का भुगतान किया जाएगा। (पैरा 2, 3, 8, 10)

1. प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2019) 10 एससीसी 516
2. डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (रिट-ए संख्या 8968/2022)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री भगवान दत्त पांडेय, प्रतिवादी नंबर 3 और 4 की ओर से पेश हुए अधिवक्ता श्री के.आर. सिंह और राज्य के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

याचिकाकर्ता ने 16.10.2021 के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जिसके तहत प्रतिवादी प्राधिकरण ने उसे सेवानिवृत्ति पर पेंशन और अन्य लाभ देने से इंकार कर दिया है, जिसका वह पात्र होने का दावा करता है। प्रकरण के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को 07.12.1987 को वर्क चार्ज कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्होंने लिपिक के रूप में तृतीय श्रेणी के पद पर सेवा जारी रखी। उन्हें नियमित कर्मचारी के रूप में माना गया था और दिनांक 24.12.2010 के आदेश द्वारा नियमित किया गया था और उसके बाद, वह 30.09.2016 को सेवानिवृत्त हुए।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि वह यूपी के विकास प्राधिकरण अकेंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति नियम, 2011 (2011 के नियम) के अनुसार

पेंशन का पात्र है।
संदर्भ नियम 2(एच) से (आई) तक दिया गया है जो निम्नानुसार है:

(ज) "पेंशन योग्य पद" से वह पद अभिप्रेत है जो निम्नलिखित तीन शर्तों को पूरा करता है, अर्थात्- (i) पद उत्तर प्रदेश विकास प्राधिकरण अ-केंद्रीकृत सेवाओं के किसी भी संवर्ग में है

(ii) रोजगार वास्तविक और स्थायी है, और
(iii) सेवा का भुगतान किसी प्राधिकरण द्वारा किया जाता है।

(i) "अर्हक सेवा" से सेवा के किसी सदस्य की सेवा अभिप्रेत है जो निम्नलिखित शर्तों के अनुरूप है:-

- (i) सेवा एक प्राधिकरण के अधीन होनी चाहिए।
- (ii) रोजगार मूल / नियमित / स्थायी होना चाहिए।
- (iii) सेवा का भुगतान प्राधिकरण द्वारा निम्नलिखित अवधियों को छोड़कर किया जाना चाहिए:

(i) किसी प्राधिकरण के अधीन गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या कार्यवाहक सेवा। (ii) कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा, और (iii) कर्मचारियों से भुगतान किए गए पद में सेवा:

शर्त यह है कि सेवा के किसी सदस्य की सेवा पेंशन और ग्रेच्युटी के लिए अर्हता प्राप्त नहीं करती है, मुआवजे की ग्रेच्युटी को

छोड़कर, जब तक कि वह बीस वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेता।

शर्त यह है कि किसी भी योजना के तहत निरंतर, अस्थायी या कार्यवाहक सेवा की अवधि

सुधार ट्रस्ट, प्राधिकरण, पालिका बोर्ड, निगम, केंद्र या राज्य सरकार को अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा यदि इसके बाद सेवा में किसी भी रुकावट के बिना एक ही पद या किसी अन्य पद पर पुष्टि की जाती है।

नोट: यदि किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद में प्रदान की गई सेवा पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा और स्थायी सेवा की अवधि के बीच आती है, तो यह सेवा में रुकावट नहीं होगी, लेकिन अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिना जाएगा।

आगे यह निवेदन किया गया है कि राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में भी इसी तरह के नियम लागू हैं जो वर्क चार्ज के आधार पर की गई सेवाओं की गैर-गिनती भी प्रदान करते हैं। **प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य, (2019) 10 एससीसी 516** के मामले में संदर्भ पर सुप्रीम कोर्ट की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने पेंशन के लिए उनकी पात्रता पर विचार किया। उक्त फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ में लिखा है:

"8. हम पहले उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 (संक्षेप में "1961 नियम")

में निहित प्रावधानों पर विचार करते हैं। 1961 के नियमों का नियम 3 (8) जिसमें अर्हक सेवा के संबंध में प्रावधान शामिल हैं, नीचे निकाला गया है:

"3. इन नियमों में, जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी प्रतिकूल न हो-

(1)-(7) * * *

(8) "अर्हक सेवा" से ऐसी सेवा अभिप्रेत है जो सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए अर्हता प्राप्त करती है:

बशर्ते कि उत्तर प्रदेश सरकार के तहत निरंतर अस्थायी या कार्यवाहक सेवा का पालन उसी या किसी अन्य पद पर पुष्टि द्वारा बिना किसी रुकावट के किया जाता है, सिवाय इसके कि-

(i) गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या कार्यवाहक सेवा की अवधि;

(ii) कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; और

(iii) आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद में सेवा की अवधि को भी अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

नोट- यदि किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में या आकस्मिक व्यय से भुगतान किए गए पद में प्रदान की गई सेवा पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा और स्थायी सेवा की अवधि के बीच आती है, तो यह सेवा में रुकावट नहीं होगी।

9. उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियमों के विनियम 361, 368 और 370 भी प्रासंगिक हैं। वे यहां निकाले गये हैं:

"361. एक अधिकारी की सेवा पेंशन के लिए योग्य नहीं है जब तक कि यह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरूप न हो:

प्रथम - सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

द्वितीय - रोजगार ठोस और स्थायी होना चाहिए।

इन तीन शर्तों को निम्नलिखित विनियमों में पूरी तरह से समझाया गया है।

"368. सेवा तब तक योग्य नहीं है जब तक कि अधिकारी एक स्थायी प्रतिष्ठान पर एक महत्वपूर्ण पद धारण नहीं करता है।

370. उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन निरंतर अस्थायी या कार्यवाहक सेवा जिसके बाद उसी या किसी अन्य पद पर

पुष्टि द्वारा बिना किसी रुकावट के अर्हता प्राप्त होगी, सिवाय इसके कि -

- (i) गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या कार्यवाहक सेवा की अवधि;
- (ii) कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि; और
- (iii) आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद में सेवा की अवधि।

10. अर्हक सेवा वह है जो विनियमन 368 के प्रावधानों के अनुसार है अर्थात् स्थायी प्रतिष्ठान पर एक महत्वपूर्ण पद धारण करना। नियम 3(8) के परंतुक में स्पष्ट किया गया है कि उसी या किसी अन्य पद पर पुष्टि द्वारा बिना किसी रुकावट के पालन की जाने वाली निरंतर, अस्थायी या कार्यवाहक सेवा को भी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी और कार्यवाहक सेवा की अवधि को छोड़कर अर्हक सेवा में शामिल किया गया है। कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा और आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद में सेवा की अवधि को भी योग्यता सेवा के रूप में नहीं गिना जाएगा।

11. नियम 3(8) में संलग्न नोट में यह प्रावधान है कि यदि सेवा किसी गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद में प्रदान की जाती है, तो यह पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या पेंशन योग्य

प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा और स्थायी सेवा की अवधि के बीच आती है, तो यह सेवा में रुकावट नहीं होगी। इस प्रकार, नोट में कार्य-प्रभारित, आकस्मिक भुगतान और गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में प्रदान की गई अर्हक सेवा को पेंशन योग्य सेवा के रूप में गिना जाने के लिए एक स्पष्ट प्रावधान शामिल है।

12. सिविल सेवा विनियमों के विनियम 370 में निहित प्रावधानों में गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान और आकस्मिक व्यय से भुगतान किए गए पद में सेवा को अर्हक सेवा के दायरे से बाहर रखा गया है। सिविल सेवा विनियमों के विनियम 361 के तहत, सेवाएं सरकार के अधीन होनी चाहिए और रोजगार मूल और स्थायी आधार होना चाहिए।

30. हम उपरोक्त प्रस्तुतियों से प्रभावित नहीं हैं। विचाराधीन कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी और उन्हें दक्षता सीमा को भी पार करना आवश्यक था। उनकी सेवाएं नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से कैसे भिन्न हैं? कोरा बयान देने के अलावा गुणात्मक अंतर को दर्शाने वाली कोई सामग्री इंगित नहीं की गई है। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी जो कार्य-प्रभारित कर्मचारियों की मूल अवधारणा है। इसके बजाय, नियमित और बारहमासी प्रकृति के काम के लिए शोषक शर्तों पर रोजगार की पेशकश करके कार्य-प्रभार रोजगार की

अवधारणा का दुरुपयोग किया गया है। काम के प्रभार वाले कर्मचारियों को नियमित कर्मचारियों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया था, जैसा कि रिकॉर्ड पर रखे गए दस्तावेजों से स्पष्ट है। एसएलपी (सी) संख्या 5775 वर्ष 2018] से उत्पन्न नारायण दत्त शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [सीए संख्या _____ 2019 के अपीलकर्ताओं को "8" साल की निरंतर सेवा के बाद, कार्य-प्रभार सेवाओं की अवधि के दौरान भी दक्षता सीमा को पार करने की अनुमति दी गई थी। अपीलकर्ता नारायण दत्त शर्मा को 15-9-1978 से गेज मापक के रूप में कार्य-प्रभारित कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था। भुगतान मासिक किया जाता था लेकिन नियुक्ति 200-320 रुपये के वेतनमान में की गई थी। प्रारंभ में, उन्हें वर्ष 1978 में 205 रुपये प्रति माह के निश्चित मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था। उन्हें दक्षता सीमा पार करने की भी अनुमति दी गई थी क्योंकि वेतनमान का लाभ उन्हें उस अवधि के दौरान दिया गया था जब उन्होंने कार्य-प्रभारित कर्मचारियों के रूप में कार्य किया था, उन्होंने तीन से चार दशकों तक सेवा की थी और बाद में सेवाओं को समय-समय पर विभिन्न आदेशों द्वारा नियमित किया गया है। हालांकि, कुछ याचिकाओं / अपीलों में कुछ अपीलकर्ताओं की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है, भले ही उन्होंने कई दशकों तक सेवा की थी और

अंततः सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गए थे।

31. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, राज्य सरकार और उसके अधिकारियों की ओर से कर्मचारियों से कार्य-प्रभार के आधार पर काम लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्ति का सहारा लेना चाहिए था। लंबे समय तक कार्य-प्रभार के आधार पर काम करना शोषक यंत्र को अपनाने के समान है। बाद में, हालांकि उनकी सेवाओं को नियमित कर दिया गया है। हालांकि, कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में उनके द्वारा व्यतीत की गयी अवधि को योग्यता सेवा में नहीं गिना गया है। इस प्रकार, उन्हें न केवल कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर सेवा देने की अवधि के दौरान उनके देय परिलब्धियों से वंचित किया गया है, बल्कि पेंशन लाभों के लिए अवधि की गिनती से भी वंचित किया गया है जैसे कि उनके द्वारा कोई सेवा प्रदान नहीं की गई थी। राज्य को उनके द्वारा अपने जीवन के सुनहरे दिनों में कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठानों में कम वेतन पर प्रदान की गई सेवाओं से लाभ हुआ है।

32. 1961 के नियमों के नियम 3(8) में संलग्न नोट के दृष्टिकोण में , यदि किसी व्यक्ति ने पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों की अवधि के बीच दी गई अवधि में ऐसी सेवा प्रदान की है या अस्थायी और स्थायी रोजगार की दो अवधियों के बीच ऐसी सेवा प्रदान

की है, तो कार्य-प्रभारित, आकस्मिकताओं या गैर-पेंशन योग्य सेवा पर खर्च की गई सेवा की गणना करने का प्रावधान है। कार्य-प्रभारित सेवा को उपर्युक्त आकस्मिकताओं में पेंशन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

33. प्रश्न यह उठता है कि क्या अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा के दो चरणों के बीच इस शर्त को लागू करना कि ऐसी सेवा को गिना जाना चाहिए, विधिपूर्ण और उचित है। हम पाते हैं कि एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण किया गया था, हालांकि कर्मचारी ने नियुक्ति की प्रकृति को देखते हुए अस्थायी आधार पर उससे पहले सेवा नहीं की थी, हालांकि यह एक नियमित नियुक्ति नहीं थी, इसे मासिक वेतन पर किया गया था और तत्पश्चात कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान के वेतनमान में दक्षता सीमा को पार करने की अनुमति दी गई थी। 1961 के नियमों के नियम 3(8) के नोट में निहित शर्त के कारण यह अत्यधिक अन्यायपूर्ण और अनुचित होगा कि ऐसी सेवा को विशेष रूप से तब नहीं गिना जाए, जब इसे गिना जा सकता है, यदि ऐसी सेवा दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवाओं के बीच में है। कार्य-प्रभारित अवधि की सेवा को न गिनने का कोई तुक या कारण नहीं है, यदि इसे नियमितीकरण से पहले प्रदान किया

गया है। हमारी राय में, नियम 3 (8) के तहत एक अनुचित वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को अर्हक सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और तर्कहीन होगा। कार्य-प्रभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए समान रहती है, एक बार जब इसे एक वर्ग के लिए गिना जाना है, तो भेदभाव को रोकने के लिए इसे सभी के लिए गिना जाना चाहिए। वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब उत्तरदाता स्वयं ऐसी सेवा में खर्च की गई अवधि की गणना कर रहे हैं, तो कमजोर वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना नहीं करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा। उस कार्य-प्रभारित सेवा से पहले अस्थायी क्षमता के साथ लगायी गयी अनुवृद्धि भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अनुचित वर्गीकरण बनाता है।

34. चूंकि नियम 3 (8) को वैध और भेद-भाव रहित बनाने के लिए पूर्वोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा, इसलिए हमें नियम 3 (8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा और यह मानना होगा कि कार्य-प्रभारित कर्मचारियों, आकस्मिक भुगतान निधि कर्मचारियों या गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान की क्षमता में नियमितीकरण से पहले भी प्रदान की गई सेवाओं को भी योग्यता सेवा में

गिना जाएगा, भले ही ऐसी सेवा से पहले किसी पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या नियमित नियुक्ति न हुई हो।

35. नियम 3(8) में संलग्न नोट, जिसे हमने पढ़ा है, को ध्यान में रखते हुए, सिविल सेवा विनियमों के विनियम 370 में निहित प्रावधान और वितीय पुस्तिका के पैरा 669 में अंतवष्ट अनुदेशों को भी निरस्त किया जाना है।

36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएं प्रदान करने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है, जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूंकि उन्होंने कार्य प्रभारित प्रतिष्ठान में कार्य किया है, न कि किसी विशेष परियोजना के खिलाफ, इसलिए उनकी सेवाओं को सरकारी अनुदेशों के तहत और यहां तक कि कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था। उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3), (2006) 4 एससीसी 1: 2006 एससीसी (एल एंड एस) 753] । इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश की आड़ के बिना दस वर्षों से अधिक समय से सेवाएं प्रदान की गई हैं, तो एक बार के उपाय के रूप में, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाए। मामले के तथ्यों में, उन कर्मचारियों को नियमित किया जाना

चाहिए था जिन्होंने दस साल या उससे अधिक समय तक काम किया है। नियमितीकरण पर विचार करने के लिए उन्हें विनियमित करना उचित नहीं होगा क्योंकि अन्य को नियमित कर दिया गया है, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि उन्हें अधिवषता की आयु प्राप्त करने से पहले नियमित रूप से सेवा में जारी रखा जाता है तो वे मजदूरी में अंतर के किसी भी देय राशि का दावा करने के हकदार नहीं होंगे। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हैं और जिस दिन से वे कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश करते हैं, उसी दिन से उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के उद्देश्य के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

37. उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3 (8) को पढ़ने के मद्देनजर, हम मानते हैं कि कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रदान की जाने वाली सेवाओं को पेंशन प्रदान करने के लिए उपरोक्त नियम के तहत अर्हक सेवा के रूप में माना जाएगा। पेंशन की बकाया राशि आदेश की तारीख से पहले केवल तीन साल तक सीमित होगी। स्वीकार्य लाभों का भुगतान तदनुसार तीन महीने के भीतर किया जाए। नतीजतन, कर्मचारियों द्वारा दायर अपीलों को अनुमति दी जाती है और राज्य द्वारा दायर किया जाता है।

उन्होंने आगे कहा कि चूंकि प्रतिवादी प्राधिकरण में पेंशन लाभ के लिए समान नियम मौजूद हैं, इसलिए, यह मामला उक्त निर्णय द्वारा पूरी तरह से कवर किया गया है और यहां याचिकाकर्ताओं को प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में तय किए गए विधि का लाभ भी दिया जाना चाहिए।

विकास प्राधिकरण के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता की दलीलों का कड़ा विरोध किया। इस न्यायालय के रिट याचिका एसएस संख्या-259155 वर्ष 2017 (राम दास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) के निर्णय दिनांक 08.11.2021; विशेष अपील संख्या 21 वर्ष 2022 (यूपी राज्य और अन्य बनाम राज बहादुर भास्कर) में पारित निर्णय दिनांक 27.01.2022; विशेष अपील डिफेक्टिव संख्या 31 वर्ष 2023 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मोहम्मद सरीफ खान और अन्य) निर्णय और आदेश दिनांक 28.01.2003; और विशेष अपील संख्या 89 वर्ष 2022 (यूपी राज्य और 3 अन्य बनाम ललन) में दिनांक 14.02.2013 को पारित निर्णय और आदेश पर विश्वास किया गया है।

प्रतिवादियों के अधिवक्ता द्वारा जिन चार निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे 2020 के अध्यादेश और उसके बाद 2021 के अधिनियम से संबंधित हैं। जहां तक 2021 के अधिनियम का संबंध है, यह केवल राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू है। ऐसा कोई अधिनियम नहीं है जो विकास प्राधिकरण की गैर-केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारियों के संबंध में लागू हो। अन्यथा भी 2021 के अधिनियम को

इस न्यायालय द्वारा रिट-ए नंबर 8968 वर्ष 2022 (डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में पारित निर्णय दिनांक 17.02.2023 के द्वारा पहले ही पढ़ा जा चुका है। उसी के प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं:

"इसलिए, इस न्यायालय के समक्ष अब प्रश्न यह है कि क्या 2021 का अधिनियम लाकर, राज्य सरकार ने प्रेम सिंह (सुप्रा) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा उठाई गयी आवाज को खत्म कर दिया है। उक्त निर्णय में, सुप्रीम कोर्ट ने पाया कि राज्य सरकार ने नियमित कर्मचारियों को उपलब्ध लाभों से इनकार करते हुए बिना किसी तर्कपूर्ण वर्गीकरण के दीर्घकालिक आधार पर वर्क चार्ज कर्मचारियों से नियमित कर्मचारियों का काम लेकर शोषणकारी श्रम प्रथा अपनाई है। उच्चतम न्यायालय ने विशेष रूप से कहा कि राज्य सरकार भ्रष्ट श्रम प्रथाओं में शामिल नहीं हो सकती है। उपरोक्त आधारों पर, सुप्रीम कोर्ट ने 1961 के नियमों के नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ा और सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 370 और वित्तीय हैंडबुक के पैरा 669 को निरस्त कर दिया।

10. यह राज्य का कर्तव्य है कि वह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार नये अस्थायी या स्थायी पदों का सृजन करे और उन पर नियुक्तियां करे। विधि राज्य को दैनिक वेतन भोगी या वर्क चार्ज कर्मचारियों को नियुक्त करने की भी अनुमति देता है, लेकिन केवल तभी जब काम छोटी अवधि के लिए हो या

निश्चित अवधि के लिए वर्क चार्ज प्रतिष्ठान में हो। विधि राज्य को किसी व्यक्ति से लंबी अवधि के लिए यहाँ तक कि विस्तारित होकर उसके सम्पूर्ण कामकाजी जीवन के लिए अस्थायी या कार्य प्रभार के आधार पर काम करने की अनुमति नहीं देता है। ऐसे मामलों में, यह राज्य का कर्तव्य है कि वह नियमित कर्मचारियों के सभी लाभ देते हुए नए पदों का सृजन करे और नियुक्तियां करे। अन्यथा, राज्य शोषक श्रम प्रथा को अपनाते हुए पाया जाएगा। प्रेम सिंह के मामले (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट ने यही कहा है, और इसे हटाने के बजाय, राज्य ने 2021 के अधिनियम की धारा 2 के द्वारा इसकी अवैधता के क्षेत्र को बढ़ा दिया है। 2021 के अधिनियम की धारा 2 के अनुसार, यह पेंशन लाभों के लिए ऐसी सेवा की उक्त अवधि की गणना न करके, समय पर पदों का सृजन करने और उस पर नियुक्तियां करने की अपनी विफलता का लाभ उठाना चाहता है। राज्य अभी भी यह बताने में विफल रहा है कि उसने किस तर्क के आधार पर यह नया वर्गीकरण बनाया है और किस तरह से, संशोधित प्रावधान द्वारा, उसने तर्कहीनता को हटा दिया है।

यदि 2021 के अधिनियम की धारा 2 को शाब्दिक अर्थ दिया जाता है, तो इसका अर्थ होगा कि किसी व्यक्ति द्वारा केवल अस्थायी या स्थायी पद पर प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के लिए गिना

जा सकता है। यह पुनः एक शोषक उपकरण और श्रम कदाचार होगा, क्योंकि इसके द्वारा, राज्य सरकार नियमित कर्मचारियों की तरह, उन्हें लाभ दिए बिना, नियमित कर्मचारियों की तरह दीर्घकालिक आधार पर काम करने के लिए व्यक्तियों का उपयोग करने का प्रयास कर रही है, जिन्हें वे नियमित कर्मचारियों के रूप में हकदार हैं। वर्क चार्ज कर्मचारियों के संबंध में प्रेम सिंह (सुप्रा) के फैसले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा अच्छे से इंगित किया गया है कि वास्तव में अब बड़ी संख्या में कर्मचारियों पर लागू किया गया है और दैनिक वेतन भोगी और अन्य व्यक्तियों पर लागू किया गया है जो अस्थायी या स्थायी पद पर काम नहीं कर रहे हैं, जिसमें वर्क चार्ज कर्मचारी भी शामिल हैं। वी.सुकुमारन बनाम केरल राज्य (2020) 8 एससीसी 106 के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा:

22. हम एक बार फिर इस बात पर जोर देते हुए शुरू करते हैं कि पेंशन प्रावधानों को सामाजिक कल्याण उपाय के रूप में उदार अर्थान्वयन दिया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि नियमों के विपरीत कुछ दिया जा सकता है, परन्तु इस तरह की पेंशन देने के बड़े आधार को ध्यान में रखा जाना चाहिए यानी एक सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी को अपने जीवन की सर्दियों में सम्मान के साथ जीने की सुविधा प्रदान करना और इस

4.इला कांस्टेबल नं. 405 अंजनी कुमार पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 1517

प्रकार, इस तरह के लाभ को अनुचित रूप से एक कर्मचारी को अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

इस प्रकार, फिर से 2021 के अधिनियम की धारा 2 को बुराई/मनमानी से बचाने के लिए, प्रेम सिंह (सुप्रा) के निर्णय की भावना में, 'पद' शब्द को मनमानेपन से बचाने के लिए हल्का करने की आवश्यकता है और इसलिए, 2021 के अधिनियम की धारा 2 में इस्तेमाल किया गया 'पद' शब्द, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी, इसे 'सरकारी कर्मचारी द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, चाहे वह अस्थायी हो या स्थायी प्रकृति की।

इसलिए, उपरोक्त निर्णयों में से कोई भी वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है। 2011 के वर्तमान नियम राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं, जिन्हें सुप्रीम कोर्ट द्वारा पढ़ा गया है, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जा रहा है, क्योंकि वे समान रूप से स्थित कर्मचारियों का कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं। वर्तमान मामले में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, क्योंकि वर्क चार्ज कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान कर्तव्यों का पालन करते हैं और उन्हें नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता है। उन्हें उनकी कार्य प्रभार सेवाओं को जारी रखते हुए नियमित भी किया गया था। इस

प्रकार, यह प्रकरण प्रेम सिंह (सुप्रा) में सुस्थापित विधि द्वारा पूर्ण रूप से आच्छादित है।

इस प्रकार, रिट याचिका को अनुमति दी जाती है और 16.10.2021 के आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाता है।

प्रतिवादी संख्या 3-उपाध्यक्ष, गोरखपुर विकास प्राधिकरण, गोरखपुर को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को 2011 के नियमों के तहत पेंशन और अन्य लाभों का नियमित भुगतान सुनिश्चित करें, उनकी पूरी सेवा को तीन महीने की अवधि के भीतर विकास प्राधिकरण के नियमित कर्मचारी के रूप में करें। हालांकि, पिछली पेंशन केवल पिछले तीन वर्षों के लिए अदा की जाएगी।

(2023) 4 ILRA 1134

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.04.2013

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 9143/2013

कांस्टेबल नं. 405 अंजनी कुमार पांडे

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री राज नाथ पांडे, श्री आई.के. सिंह, श्री विनोद कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री इंद्रेश कुमार सिंह

सिविल कानून - सेवा वाद - अनुशासनात्मक कार्यवाही - जब जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, तो दंड की कोई भी सिफारिश स्वीकार्य नहीं है - ऐसी सिफारिश सीधे अनुशासनात्मक प्राधिकारी की शक्ति में हस्तक्षेप करती है (पैरा 4, 5)

स्वीकृत (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. शिव राज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य सीएमडब्ल्यूपी संख्या 2230/2014 निर्णय दिनांक 28.3.2018
2. यशपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य रिट-ए संख्या 23402/2014 दिनांक 23.4.2014
3. हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड लिमिटेड बनाम महेश दहिया, (2017) 1 एससीसी 768
4. इलाहाबाद बैंक बनाम प्रेम नारायण पांडे और अन्य (1995) 6 एससीसी 634

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विनोद कुमार सिंह और प्रत्यर्थियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री गिरिजेश त्रिपाठी को सुना गया।

याचिकाकर्ता का मामला यह है कि जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय, जो

याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही में शुरू की गई थी और अंततः अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण को अस्वीकार कर दिया गया था, जिसमें एक ही आधार लिया गया था कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत जांच रिपोर्ट में प्रमुख दंड से संबंधित नियमों के तहत निर्धारित दंड लगाने के निष्कर्ष के साथ जांच की गई थी और यह जांच रिपोर्ट पेश करते समय अनुचित है, जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित पाए गए हैं। दिनांक 10.12.2011 के दण्ड आदेश को चुनौती देते समय, जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय दण्ड की सिफारिश के संबंध में उस पर चुनौती देने के आधार पर याचिकाकर्ता द्वारा दृढ़ता से भरोसा किया गया है, लेकिन अपीलीय प्राधिकारी या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा कोई भौतिक विचार नहीं किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी, अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित तीनों आदेशों को चुनौती दी और अपने रुख की पुष्टि की जो इस न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों से पूरी तरह मेल खाता है जिसमें यह अवधारित किया गया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रस्तावित दण्ड पर विचार किए बिना कारण बताओ नोटिस के साथ जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध करानी होगी। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि कानून ने विशेष रूप से सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ जांच और अनुशासनात्मक कार्यवाही के

संचालन के संबंध में नियम बनाए हैं, एक अलग स्तर स्थापित किया गया है ताकि दंड आदेश में उठाए गए आधारों की दलीलों को स्वीकार करने या उन्हें चुनौती देने के लिए आगे रखे गए आधारों के रूप में उनके सामने रखे गए विषय पर निर्णय लेते समय प्रक्रिया के अप्रभावित और स्वतंत्र विचार को प्रबल किया जा सके।

प्रारंभिक स्तर पर, जब अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के समय नामित जांच अधिकारी द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष जांच रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी जाती है, तो दंड की सिफारिश बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि यह प्रारंभिक चरण है, जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी को दोषी कर्मचारी के खिलाफ सभी पूर्वाग्रहों/विचारों से मुक्त होना चाहिए, अन्यथा निष्पक्ष निष्कर्ष के उल्लंघन की बहुत अधिक संभावना हो सकती है, जो कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के अनुसरण में जांच रिपोर्ट पर निर्णय देते समय तथा विभाग के आरोपित अधिकारी/कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत उत्तर के रूप में खंडन करते समय निकाला जाना आवश्यक है।

दंड की सिफारिश अनुशासनात्मक प्राधिकारी की शक्ति में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप है, जिसकी किसी भी सरकारी कर्मचारी के खिलाफ शुरू की गई जांच और अनुशासनात्मक कार्यवाही के समापन के लिए अनुशासनात्मक और अपीलीय नियमों में निहित वैधानिक प्रावधानों द्वारा कभी भी अनुमति नहीं दी गई है या प्रदान नहीं की गई है और इस प्रकार इसे इस न्यायालय द्वारा सिविल मिसलेनियस रिट याचिका संख्या 2230/2014, दिनांक

28.3.2018 को निर्णीत (शिव राज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य), रिट-ए संख्या 23402/2014, दिनांक 23.4.2014 को निर्णीत (यशपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 2 अन्य) में अस्वीकार कर दिया गया है।

इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय मोटे तौर पर हिमाचल प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड लिमिटेड बनाम महेश दहिया (2017) 1 एससीसी 768 तथा इलाहाबाद बैंक बनाम प्रेम नारायण पांडे एवं अन्य (1995) 6 एससीसी 634 मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित हैं।

इसके विपरीत विद्वान अधिवक्ता ने याचिका में की गई प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया, लेकिन माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों, जिनका इस न्यायालय ने ऊपर वर्णित समान परिस्थितियों और मामलों में उठाए गए विवाद का निपटारा करते समय पालन किया है, से इनकार नहीं किया गया है, विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क को आधार बनाया कि याचिकाकर्ता को दी गई सजा उचित है, क्योंकि अनुशासित पद से केवल कुछ घंटों की अनुपस्थिति याचिकाकर्ता को दी गई सजा के लिए जिम्मेदार हो सकती है, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता दो साल से अधिक समय तक कर्तव्य से अनुपस्थित रहा, जिसके कारण उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही के बाद निलंबन और उसके बाद सेवा से बर्खास्तगी का आदेश दिया गया।

जहां तक याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों का सवाल है, उन्हें विभिन्न आधारों पर समझाया गया है, जिनमें से एक यह है कि उनकी पत्नी की लंबी बीमारी के कारण उन्हें छुट्टी की औपचारिक मंजूरी लिए

बिना ही यहां रहने के लिए मजबूर होना पड़ा, लेकिन इसकी सूचना समय रहते दे दी गई। जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय दण्ड की सिफारिश के आधार तथा अपील ज्ञापन में उल्लिखित अन्य आधारों के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 5, 4 और 3 द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 10.12.2011, 29.4.2012 और 29.8.2012 के पुनरीक्षण आदेशों को रद्द किया जाता है तथा अपास्त किया जाता है।

प्रत्यर्थी संख्या 5 को निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता को विभाग का नियमित पदाधिकारी माना जाए तथा जनवरी, 2015 में सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के पश्चात पुलिस विभाग के सेवानिवृत्त कर्मचारी होने के नाते सभी लाभ प्रदान किए जाएं, तथा बकाया वेतन, सेवानिवृत्ति बकाया और अन्य स्वीकार्य वेतन वृद्धि के लाभ के विस्तार के संबंध में संपूर्ण प्रक्रिया यथासंभव शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से चार महीने की अवधि के भीतर पूरी की जाए।

तदनुसार रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 1136

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 31818/2009

राम चंद्र चौरसिया

... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ... प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री राम जतन यादव,
श्री एम.एन.खान, श्री राहुल जैन
अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री पी.के.
यादव

सिविल कानून - सेवा वाद - माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921- सेवानिवृत्ति की आयु - सरकारी आदेश दिनांक 27.02.2004 द्वारा, सहायक अध्यापकों के लिए सेवानिवृत्ति की आयु 62 वर्ष निर्धारित की गई थी - याचिकाकर्ता को इस आधार पर 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होने के लिए मजबूर किया गया था कि संस्था, एक अल्पसंख्यक संस्था होने के कारण, इसकी प्रशासन योजना के अनुसार अलग सेवानिवृत्ति नियम हैं - संस्था का वाद है कि संस्था की अल्पसंख्यक स्थिति के कारण, उत्तर प्रदेश राज्य के कानून और नियम, जो प्रशासन की योजना के विपरीत हैं, लागू नहीं होते - आयोजित: एक बार जब किसी अल्पसंख्यक संस्थान को राज्य सरकार द्वारा मान्यता दे दी जाती है, तो सभी लागू नियम, प्रावधान और सरकारी आदेश लागू होते हैं - प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया कि वे याचिकाकर्ता को 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त मानें।

स्वीकृत (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. टी.एम.ए. पाई फाउंडेशन एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 2002 (8) एससीसी 481

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल जैन, प्रत्यर्थी संख्या 3 और 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. यादव और प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री गिरजेश त्रिपाठी को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि वह प्रत्यर्थी संख्या 3 के समक्ष सहायक अध्यापक के रूप में अपनी सेवाएं दे रहा था और इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के अनुसार, जिसे समय-समय पर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पेश किए गए विभिन्न संशोधनों के साथ विनियमित किया गया है, याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति की आयु 62 वर्ष है, जबकि उसे केवल 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होने के लिए मजबूर किया गया है। दिनांक 10.12.2008 के सेवानिवृत्ति नोटिस/आदेश से व्यथित होकर, उसे वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है।

3. याचिकाकर्ता के दावे को पुष्ट करने के लिए, विनियमन के प्रावधानों के साथ-साथ याचिकाकर्ता पर लागू नियमों की सीमा का सहारा लिया गया है, जो सक्षम प्राधिकारी अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा मान्यता प्राप्त विभिन्न संस्थानों के समक्ष समान सेवाएं प्रदान करने वाले प्रत्येक शिक्षक के लिए कानून द्वारा सुनिश्चित किया गया है।

4. याचिकाकर्ता पर लागू प्रावधानों और उसके विशिष्ट पत्र दिनांक 09.04.2009 को प्रत्यर्थी

संख्या 2 द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में जारी किए जाने पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि सहायक अध्यापक की सेवानिवृत्ति की आयु पहले ही शासनादेश दिनांक 27.02.2004 के माध्यम से 62 वर्ष घोषित की जा चुकी है और इस प्रकार सेंट जोसेफ हाई स्कूल, महोबा की प्रबंधन समिति से अनुरोध किया जाता है कि वह याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति सुनिश्चित करे और 62 वर्ष की आयु पूरी होने के बाद उसे सेवानिवृत्त किया जाए और इसे याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 8 के रूप में संलग्न किया गया है।

5. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 3 और 5 के विद्वान अधिवक्ताओं ने याचिका में की गई प्रार्थना का इस आधार पर पुरजोर विरोध किया कि प्रबंध समिति के पास सहायक अध्यापक की सेवानिवृत्ति के संबंध में अलग नियम हैं, जो संस्था में उन शर्तों पर कार्यरत थे जो उन दोनों के लिए स्वीकार्य और लागू हैं, शर्तें और नियम सीधे प्रशासन की योजना के साथ शासित होते हैं जैसा कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा अपनाया गया है और इसे उप शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), झांसी मंडल, जिला - झांसी द्वारा अनुमोदित किया गया है।

6. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए विरोधी तर्क के साथ-साथ प्रत्यर्थी संख्या 3 और 5 द्वारा प्रस्तुत प्रति शपथपत्र के उत्तर में प्रतिउत्तर शपथपत्र दाखिल करते समय याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रशासन पत्र का अवलोकन करने के बाद, और प्रतिउत्तर शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में

संलग्न दस्तावेज के बाद से किसी भी समय उस पर विवाद नहीं किया गया है, जिसमें संस्था अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 3 और 5 की प्रशासन योजना के पैरा 22 (iii) में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है, जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"3- विद्यालय के कर्मचारियों का सेवा की एक्ट तथा रेग्युलेशन्स से निर्धारित होंगे। यदि सेवा के लिए कोई समझौता होगा, तो यह उन्हीं अंश में मान्य होगा जिस अंश में एक्ट तथा रेग्युलेशन्स के प्रावधानों के अनुकूल होगा।"

7. अधिनियम और विनियमन की परिभाषा प्रशासन की योजना के खंड 3 के तहत अच्छी तरह से परिभाषित की गई है, परिभाषाओं के तहत उपलब्ध है, अधिनियम का अर्थ है इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 और विनियमन, का अर्थ है शिक्षा विभाग, राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर अधिनियम के रूप में जारी किए गए सभी नियम, निर्देश और शासनादेश।

8. प्रत्यर्थी संख्या 3 और 5 द्वारा अपनाई गई प्रशासन योजना प्रत्येक मामले के संबंध में ऐसी व्याख्यात्मक है जो संस्था के प्रत्येक कर्मचारी पर लागू होती है और जहां तक शासनादेशों और विभिन्न अन्य वैधानिक प्रावधानों का संबंध है, यह इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 के सख्त प्रावधानों के साथ

शासित होगी, चाहे संस्था अल्पसंख्यक स्थिति के तहत शासित हो। प्रतिवादी संख्या 3 और 5 के विद्वान वकील द्वारा एकमात्र आधार यह बताया गया है कि संस्था अल्पसंख्यक है और इस प्रकार उत्तर प्रदेश राज्य से संबंधित संबंधित कानून और नियम लागू नहीं होंगे, जो कि प्रशासन की योजना के विपरीत है। एक बार जब किसी संस्था को, चाहे उसकी स्थिति कुछ भी हो, विशेष रूप से याचिका में अल्पसंख्यक के रूप में उल्लिखित, राज्य सरकार द्वारा मान्यता दे दी जाती है, तो सम्पूर्ण नियम, प्रावधान तथा सरकारी आदेश, संस्था द्वारा दो अक्षरों में तथा पृथक रूप में सख्ती से लागू किए जाएंगे, जो कि अनिवार्य प्रकृति के होंगे।

9. टी.एम.ए. पई फाउंडेशन एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 2002 (8) एससीसी 481 मामले में ग्यारह न्यायाधीशों की पीठ को संविधान के अनुच्छेद 30 की सीमा और विस्तार पर विचार करने का एक बार फिर अवसर मिला। उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न प्रश्न तैयार किये हैं। वर्तमान मामले में प्रासंगिक प्रश्नों में से एक प्रश्न 5(ग) भी तैयार किया गया था। पैराग्राफ 136, 137 और पैराग्राफ 161 को उद्धृत करना उपयोगी है जिसमें प्रश्न 5(ग) का उत्तर दिया गया है, जो इस प्रकार है:

"136. इस न्यायालय के निर्णयों में यह अवधारित किया गया है कि प्रशासन के अधिकार में कुप्रशासन का अधिकार सम्मिलित नहीं है। यह भी अवधारित किया गया है कि प्रशासन

का अधिकार निरपेक्ष नहीं है, लेकिन शिक्षा के साधन के रूप में संस्थाओं के लाभ के लिए राष्ट्रीय हित के अनुरूप उचित विनियमन के अधीन होना चाहिए। सभी व्यक्तियों पर लागू होने वाले देश के सामान्य कानून अल्पसंख्यक संस्थाओं पर भी लागू माने गए हैं - उदाहरण के लिए, कराधान, स्वच्छता, सामाजिक कल्याण, आर्थिक विनियमन, सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता से संबंधित कानून।

137. उपर्युक्त निर्णयों से यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि अनुच्छेद 30(1) के शब्द अयोग्य हैं, फिर भी इस न्यायालय ने अवधारित किया है कि स्वास्थ्य, नैतिकता और शिक्षा के मानकों से संबंधित देश के कम से कम कुछ अन्य कानून लागू होते हैं। इसलिए, अनुच्छेद 30(1) के तहत अधिकार को पूर्ण या कानून के अन्य प्रावधानों से ऊपर नहीं माना गया है, और हम इसे दोहराते हैं। इसी प्रकार, कोई कारण नहीं है कि सामान्यतः छात्रों और शिक्षकों के कल्याण से संबंधित विनियम या शर्तें उचित शैक्षणिक वातावरण प्रदान करने के लिए लागू न की जाएं, क्योंकि ऐसे प्रावधान किसी भी तरह से अनुच्छेद 30(1) के तहत प्रशासन या प्रबंधन के अधिकार में हस्तक्षेप नहीं करते हैं।

161. भारत में धर्मनिरपेक्षता का सार विभिन्न प्रकार के लोगों, विभिन्न भाषाओं और विभिन्न मान्यताओं को मान्यता देना और उनका संरक्षण करना है, तथा उन्हें एक साथ रखना है ताकि एक संपूर्ण और एकीकृत भारत का निर्माण हो सके। अनुच्छेद 29 और 30 का उद्देश्य विद्यमान मतभेदों को बनाए रखना है, तथा साथ ही लोगों को एकजुट करके एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण करना है।"

10. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ प्रशासन की योजना के गहन अध्ययन के आधार पर, प्रत्यर्थी संख्या 3 और 5 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया आधार कानून की नजर में मान्य नहीं है और इस प्रकार प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा जारी दिनांक 10.12.2008 का सेवानिवृत्ति का नोटिस/आदेश अपास्त किया जाता है।

11. रिट याचिका को प्रत्यर्थी संख्या 3 और 5 को यह निर्देश देते हुए अनुमति दी जाती है कि वे याचिकाकर्ता को 62 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद सेवानिवृत्त मानें और उनके समक्ष प्रस्तुत इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से 15 दिनों के भीतर बकाया वेतन, उस पर देय प्रभारों सहित भुगतान सुनिश्चित करें। याचिकाकर्ता को राष्ट्रीयकृत बैंक की वर्तमान ऋण दर के

अनुसार विलंबित ब्याज के भुगतान के साथ-साथ सेवानिवृत्ति लाभ भी देय होगा।

(2023) 4 ILRA 1139

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 50320/2009

जय प्रकाश यादव

...याचिकाकर्ता

बनाम

डी.जी. (सी.आर.पी.एफ.) सी.जी.ओ. नई दिल्ली

एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री गोपाल मिश्रा, श्री मलिक जुनेद अहमद

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., श्री सी.पी. गुप्ता, श्री संजय कुमार ओम

सिविल कानून - सेवा वाद- सजा की मात्रा - द्विविवाह- केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम 1949- धारा 11(1) - सीआरपीएफ नियम 1955- नियम 27 - याचिकाकर्ता, जो पहले से ही विवाहित है, ने बिना अनुमति लिए दूसरा विवाह किया- धारा 11(1) के तहत बर्खास्तगी आदेश पारित - न्यायालय ने माना कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी को धारा 11(1) के तहत केवल मामूली सजा देने की आवश्यकता थी, लेकिन इसके अतिरिक्त अवैध रूप से एक बड़ी सजा (बर्खास्तगी) लगा दी, जो अवैध था। (पैरा 10)

स्वीकृत (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री मलिक जुनेद अहमद और सभी प्रतिपक्षियों का प्रतिनिधित्व करने वाले भारत संघ के अधिवक्ता श्री संजय कुमार ओम को सुना।

यह याचिका इस प्रार्थना के साथ दायर की गई है कि "प्रतिपक्षी संख्या-4 द्वारा पारित दिनांक 26.04.2008 के आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-1, 2 और 3 द्वारा क्रमशः पारित दिनांक 14.7.2009, 23.12.2008 और 9.8.2008 के आदेशों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।"

यह याचिकाकर्ता का मामला है कि जांच करने के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ द्वि-विवाह के आरोपों के साथ एक अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई है, सी.आर.पी.एफ. नियम 1955 के नियम 27 के तहत निर्धारित जांच की उचित प्रक्रिया को अपनाने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित सजा आदेश दिनांक 26.04.2008 जो प्रतिपक्षी संख्या-4 है, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता के खिलाफ बर्खास्तगी का आदेश पारित किया गया है। बर्खास्तगी के आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने एक वैधानिक अपील को दायर किया और इसे प्रतिपक्षी संख्या-3 द्वारा दिनांक 09.08.2008 के आदेश द्वारा भी खारिज कर दिया गया और अंत में अनुशासनात्मक अधिकारियों द्वारा पारित आदेश के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 के समक्ष अभ्यावेदन को दायर करते हुए जिसे दिनांक 23.12.2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 23-12-2008 के आदेश को प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने महानिदेशालय, केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के समक्ष एक अभ्यावेदन

प्रस्तुत किया और उसे भी दिनांक 14-07-2009 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया। अन्य प्रतिक्रिया अधिकारियों द्वारा किए गए अवैध कार्य पर सहानुभूति मांगने के लिए।

उपर्युक्त आदेशों को वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई थी लेकिन अन्य आधारों पर अन्य बातों के साथ-साथ, दिनांक 26-04-2008 का आदेश पारित करते समय अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा सजा की मात्रा का निर्धारण गलती से निर्धारित किया गया है, जिस पर केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल अधिनियम 1949 की धारा 11(1) के तहत कार्रवाई की गई है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अधिनियम वर्ष 1949 की धारा 11(1) को इंगित किया जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

11. "मामूली दंड।

(1) कमांडेंट या कोई अन्य प्राधिकारी या अधिकारी, जो विहित किया जाए, इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, बल के किसी सदस्य को, जिसे वह अवज्ञा, कर्तव्य की उपेक्षा का दोषी समझता है, निम्नलिखित दंडों में से किसी एक या अधिक को निलम्बित या बर्खास्त करने के बदले या उसके अतिरिक्त अधिनिर्णय दे सकेगा, या बल के सदस्य के रूप में अपनी क्षमता में किसी भी कर्तव्य या अन्य कदाचार के निर्वहन में, अर्थात्, ?

(ए) रैंक में कमी;

(ख) किसी राशि का जुर्माना जो एक मास के वेतन और भत्तों से अनधिक हो;

(ग) क्वार्टरों, लाइनों या शिविर तक एक महीने से अधिक की अवधि के लिए कारावास;

(घ) क्वार्टर-गार्ड में अट्ठाईस दिनों से अधिक नहीं, सजा ड्रिल या अतिरिक्त गार्ड, थकान या अन्य कर्तव्य के साथ या बिना; और

(ड) बल में किसी विशिष्ट पद या विशेष परिलब्धियों से हटाना।

(2) उपधारा (1) के खंड (ग) या खंड (घ) में विनिर्दिष्ट कोई दंड किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा तब दिया जा सकेगा जब वह मुख्यालय से दूर बल की किसी टुकड़ी की कमान में हो, बशर्ते कि वह कमांडेंट द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से अधिकृत हो।

(3) सहायक कमांडेंट, कंपनी अधिकारी या अधीनस्थ अधिकारी, जो सूबेदार या निरीक्षक के पद से नीचे का न हो, एक पृथक टुकड़ी या चौकी की कमान संभालता हो या बल के मुख्यालय में अस्थायी कमान में हो, औपचारिक विचारण के बिना बल के किसी सदस्य को, जो तत्समय उसके प्राधिकार के अधीन है, किसी छोटे अपराध के कमीशन के लिए निम्नलिखित में से कोई एक या अधिक दंड दे सकेगा। अनुशासन जो इस अधिनियम में अन्यथा प्रदान नहीं किया गया है, या जो एक आपराधिक अदालत के समक्ष अभियोजन की आवश्यकता के लिए पर्याप्त रूप से गंभीर प्रकृति का नहीं है, अर्थात्, ?

(ए) क्वार्टर-गार्ड या ऐसे अन्य स्थान पर सात दिनों से अधिक का कारावास जो उपयुक्त समझा जा सकता है, इसके जारी रहने के दौरान सभी वेतन और भत्तों को जब्त करने के साथ;

(बी) सजा ड्रिल, या अतिरिक्त गार्ड, थकान या अन्य कर्तव्य, क्वार्टर, लाइनों या शिविर के साथ या बिना कारावास के तीस दिनों से अधिक नहीं;

(ग) निंदा या कठोर निंदा: बशर्ते कि यह सजा किसी अधीनस्थ अधिकारी को केवल कमांडेंट द्वारा दी जा सकती है।

(4) कोई जमादार या उपनिरीक्षक, जो अस्थायी रूप से किसी टुकड़ी या चौकी की कमान में है, उसी रीति से और किसी ऐसे अपराध के कमीशन के लिए, बल के किसी सदस्य को तत्समय उसके प्राधिकार के अधीन रहते हुए उपधारा (3) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट दंडों में से कोई भी दंड पंद्रह दिन से अनधिक के लिए दे सकेगा।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उजागर किए गए तथ्य पर विवाद नहीं किया गया है क्योंकि यह दिनांक 16.04.2008 के आदेश में बहुत अधिक उपलब्ध है, जिसे अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश तैयार करते समय नियम वर्ष 1955 के नियम 27 के अनुरूप उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया है। अपीलीय प्राधिकारी के साथ-साथ अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को मूल रूप से वर्तमान याचिका में सजा की मात्रा के आधार पर चुनौती दी गई है जो अधिनियम वर्ष 1949 की धारा 11(1) के विपरीत है।

धारा 11 के अवलोकन से यह प्रकट रूप से स्पष्ट है कि धारा 11 के तहत अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निर्धारित कोई भी सजा प्रकृति में मामूली होनी चाहिए, जबकि प्रस्तुत मामले में बर्खास्तगी का आदेश

याचिकाकर्ता पर निर्धारित बड़ी सजा के तहत आता है।

प्रतिवादियों की ओर से पेश होने वाले स्थायी अधिवक्ता ने इस आधार पर प्रार्थना का जोरदार विरोध किया कि याचिकाकर्ता की कार्रवाई जो जांच करते समय आत्म-चिंतनशील है और यह साबित हो गया है कि याचिकाकर्ता जो पहले से ही विवाहित था और बिना अनुमति के दूसरी शादी कर चुका था, जो कानून की नजर में स्वीकार्य नहीं था और इस तरह बर्खास्तगी के रूप में दी गई सजा, याचिकाकर्ता द्वारा की गई अवैध कार्रवाई के मद्देनजर उचित और आनुपातिक है

सी.आर.पी.एफ. अधिनियम वर्ष 1949 की धारा 11 (1) के आकर्षण के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा हाइलाइट की गई सामग्री पर सटीक प्रश्न का उत्तर देते हुए, प्रतिपक्षी के अधिवक्ता द्वारा इसका उत्तर नहीं दिया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि एक बार सी.आर.पी.एफ. अधिनियम 1949 की धारा 11(1) के तहत सजा का निर्धारण करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा भरोसा करने के बाद, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष मामूली जुर्माना लगाने का एकमात्र विकल्प उपलब्ध था, लेकिन याचिकाकर्ता के खिलाफ बर्खास्तगी के रूप में इसे विपरीत निर्धारित किया गया है जो स्पष्ट रूप से अवैध है और इस तरह के आदेश दिनांक 14-7-2009, 23-12-2008, 09-08-2008 के आदेशों और दिनांक 14-07-2009 के आदेश के साथ-साथ दिनांक 26-04-2008 के आदेश रद्द किए जाते हैं और उन्हें अपास्त किया जाता है।

हालांकि, जवाब देने वाले अधिकारियों के लिए सजा का निर्धारण करने के लिए सी.आर.पी.एफ. नियम वर्ष 1949 अधिनियम की धारा 11(1) के अनुसार मामले पर, यदि केवल मामूली दंड के रूप में आवश्यक हो, तो पुनर्विचार करने की स्वतंत्रता खुली है।

तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

(2023) 4 ILRA 1142

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 67/2000

ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड शकरपुर,
दिल्ली

...अपीलकर्ता

बनाम

असगर व अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: अमरेश सिन्हा

अधिवक्ता प्रतिवादी:

सिविल कानून -कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 - धारा 30 - अपील - रोजगार के दौरान ट्रक चालक की हत्या - ट्रक मालिक ने पुलिस रिपोर्ट में मृतक के चालक के रूप में रोजगार को स्वीकार किया - आयुक्त ने मृतक ट्रक चालक के उत्तराधिकारियों को मुआवजा दिया - बीमा कंपनी ने रोजगार से मृत्यु को जोड़ने वाले साक्ष्य की कमी, वैध ड्राइविंग लाइसेंस की अनुपस्थिति और वाहन मालिक के कानूनी उत्तराधिकारियों को शामिल न करने के आधार पर पुरस्कार को चुनौती दी - आयोजित, रोजगार के दौरान हत्या, रीता देवी बनाम न्यू

इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत प्रतिकर योग्य है - धारा 30 के तहत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार कानून के पर्याप्त प्रश्नों तक सीमित है - आयुक्त के तथ्यात्मक निष्कर्षों को तब तक नहीं छोड़ा जाएगा जब तक कि वे विकृत न हों - अपील निरस्त।

स्वीकृत (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. रीता देवी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, LAWS(SC)2000 4 99
2. उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता सिविल अपील संख्या 7470/2009 निर्णय दिनांक 2.11.2018
3. राजन जाँब आदि। वगैरह। बनाम मंडल प्रबंधक एवं अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी)
4. मयान बनाम मुस्तफा एवं अन्य, 2022 एसीजे 524
5. सलीम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, 2022 एसीजे 526

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,
द्वारा प्रदत्त)

1. यह अपील अपीलकर्ता द्वारा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम की धारा 30 के तहत पेश की गई है, जिसमें कर्मकार प्रतिकर आयुक्त/सहायक श्रम आयुक्त, बुलंदशहर द्वारा डब्ल्यूसी मुकदमा संख्या 6/1999 में पारित

दिनांक 30.11.1999 के निर्णय और पंचाट को चुनौती दी गई है, जिसके तहत विद्वान आयुक्त ने 12% की दर से ब्याज के साथ 2,16,910/- रुपये का मुआवजा देने का आदेश दिया है।

2. अपीलकर्ता ने कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विद्वान आयुक्त के निर्णय को चुनौती दी है:

"क) क्या यह साबित करने के लिए किसी साक्ष्य के अभाव में कि मौत कथित वाहन के अपहरण और अपहरणकर्ताओं द्वारा हत्या का परिणाम थी, जबकि मृतक ट्रक के मालिक के पास नौकरी कर रहा था, अवर न्यायालय द्वारा दावा याचिका को स्वीकार करना न्यायोचित था?

(ख) क्या कथित घटना के समय मृतक के पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस के संबंध में किसी साक्ष्य के अभाव में, अवर न्यायालय द्वारा दावा याचिका को स्वीकार करना न्यायोचित था?

(ग) क्या दावा याचिका के लंबित रहने के दौरान वाहन के मालिक की मृत्यु और उसके उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों के अभियोग न लगाए जाने के कारण अपीलकर्ता कंपनी अपने दायित्व से मुक्त हो सकती है?

3. मृतक अनवर अहमद प्रतिवादी-स्वामी का ड्राइवर था और उसे 2000/- रुपये प्रतिमाह तथा 50/- रुपये प्रतिदिन के भोजन के लिए मिलते थे। वह ट्रक संख्या एचआर26ए2045

पर कार्यरत था। 1.2.1997 को प्रतिवादी-स्वामी के निर्देश पर मृतक ट्रक को लोड करके दिल्ली से ग्वालियर गया था। 3.2.1997 को नौकरी के दौरान उसकी हत्या कर दी गई और उसका शव आगरा में एत्मादपुर पुलिस स्टेशन के अंतर्गत झरना नाला के पास मिला। मृतक के कानूनी उत्तराधिकारियों को मूल प्रतिवादियों द्वारा मुआवजा देने से मना कर दिया गया था और इसलिए उन्होंने दावा याचिका दायर की जिसे विद्वान आयुक्त ने उपरोक्त रूप में स्वीकार कर लिया।

4. जहां तक प्रश्न संख्या क का संबंध है, उक्त मुद्दा अब एकीकृत नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर कि क्या हत्या को कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत प्रकरण बनाने वाला कहा जा सकता है, रीता देवी बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, विधि(एससी)2000 4 99 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा कवर किया गया है। जहां तक कानून के अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों का संबंध है, आयुक्त इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मालिक ने पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट दर्ज कराते समय मृतक को ट्रक का चालक दिखाया था और इस तरह उसने मृतक के रोजगार को स्वीकार कर लिया। जहां तक मालिक के कानूनी उत्तराधिकारियों के गैर-संयोजन का संबंध है, विद्वान आयुक्त ने अपीलकर्ता को सुनने और दावेदारों द्वारा उठाई गई आपत्ति पर विचार करने के बाद अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के आवेदन को खारिज कर दिया था। जैसा भी हो, ये सभी प्रश्न तथ्यों के प्रश्न के दायरे में हैं और इन मुद्दों पर आयुक्त के निष्कर्ष विपरीत नहीं हैं।

5. यह न्यायालय सिविल अपील संख्या 7470/2009 उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता दिनांक 2.11.2018 को निर्णीत, गोव्वा राजन्ना आदि आदि बनाम मंडल प्रबंधक एवं अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी) और मयान बनाम मुस्तफा एवं अन्य, 2022 एसीजे 524 में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से अपने दृष्टिकोण में पुष्ट है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित है कि कर्मकार प्रतिकर अधिनियम की धारा 30 के तहत, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में तब तक प्रवेश नहीं कर सकता जब तक कि वे विकृत साबित न हो जाएं और जब तक कि इसमें कानून का कोई सवाल शामिल न हो। सलीम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, 2022 एसीजे 526 में दिया गया निर्णय भी इस न्यायालय को विद्वान आयुक्त के सुविचारित निर्णय में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देगा।

6. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील असफल हो जाती है और खारिज की जाती है।

7. अंतरिम राहत, यदि कोई हो, तत्काल निरस्त मानी जाएगी। रजिस्ट्री इस आदेश को कर्मकार प्रतिपूर्ति आयुक्त को भेजेगी, जो तत्काल दावेदार के कानूनी उत्तराधिकारियों को बुलाएगा और इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से 30 दिनों के भीतर उक्त राशि पर अर्जित ब्याज सहित सावधि जमा में रखी गई राशि का भुगतान करेगा।

(2023) 4 ILRA 1144

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

रिट-ए संख्या 2542/2023

डॉ. ऋचा मिश्रा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: उत्सव मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., शुभम् त्रिपाठी, विनायक सक्सेना

सिविल कानून - भारत का संविधान, अनुच्छेद 226 - बाद के निर्णय में पहले के निर्णय की समीक्षा - याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 6785/2018 में दिनांक 29.01.2019 के निर्णय को अमान्य घोषित करने की प्रार्थना की - आयोजित: न्यायालय ने माना कि उक्त निर्णय की समीक्षा नहीं की जा सकती या वर्तमान रिट याचिका में इसकी वैधता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता। किसी भी न्यायालय की पीठ न्यायिक औचित्य बनाए रखने के लिए समान शक्ति वाली किसी अन्य समन्वय पीठ के निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य है। एकल न्यायाधीश के निर्णय को केवल विशेष अपील में खंडपीठ या उक्त आदेश के विरुद्ध अपील में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ही निरस्त किया जा सकता है। तदनुसार, इस संबंध में याचिकाकर्ता की तर्क निरस्त की जाती हैं। (पैरा 26, 27)

सिविल कानून - सेवा विधि - 19 वर्ष बीत जाने के बाद नियुक्ति से संबंधित विवाद - याचिकाकर्ता को प्रतिवादी संख्या 6 की

नियुक्ति की तारीख से 19 वर्ष बीत जाने के बाद या 2013 में उसकी खुद की नियुक्ति के बाद काफी लंबे समय के बाद पहली बार नियुक्ति को चुनौती देने और विवाद करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या 6 की सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति को चुनौती देने के बारे में गंभीर होती, तो वह वर्ष 2013 में अपनी नियुक्ति के बाद उचित अवधि के भीतर ऐसा कर सकती थी। मूकदर्शक बने रहने के कारण, उसे चुप रहने के लिए बाध्य किया गया। याचिकाकर्ता को अपनी सुविधानुसार प्रारंभिक नियुक्ति विवाद को चुनौती देने की अनुमति नहीं प्रदान की जा सकती। (पैरा 23)

रिट याचिका निरस्त (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम अरविंद कुमार श्रीवास्तव व अन्य (2015) 1 एससीसी 347

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए श्री उत्सव मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित, श्री शुभम त्रिपाठी द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस.के. कालिया और प्रतिपक्षियों के स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी संख्या-6 को संजय गांधी पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल

साइंसेज, लखनऊ (इसके बाद एसजीपीजीआईएमएस के रूप में संदर्भित) में माइक्रोबायोलॉजी विभाग के प्रमुख के रूप में प्रभार/नियुक्ति देने के प्रतिपक्षियों के निर्णय को चुनौती दी है और आगे प्रतिपक्षियों को उक्त पद पर याचिकाकर्ता को नियुक्त करने का निर्देश देने की मांग की है।

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को शुरू में 24.5.2013 को एसजीपीजीआई एमएस में माइक्रोबायोलॉजी विभाग में सहायक प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में उसे उक्त पद पर पुष्टि की गई थी। उन्हें 28.12.2016 को कैरियर एडवांसमेंट स्कीम (सीएस) के तहत माइक्रोबायोलॉजी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर पदोन्नत किया गया और आगे 16.3.2020 को अतिरिक्त प्रोफेसर के अगले उच्च पद पर पदोन्नत किया गया, जिस पर वह वर्तमान में काम कर रही हैं।

4. यह प्रस्तुत किया जाता है कि एसजीपीजीआईएमएस की स्थापना संजय गांधी पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज प्रतिष्ठान अधिनियम, 1983 के रूप में ज्ञात कानून द्वारा की गई थी और सभी आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए आरक्षण और आयु में छूट के संबंध में उत्तर प्रदेश सरकार के नियम लागू होते हैं। प्रथम विनियमन वर्ष 2011 के नियम 40 के उप-विनियमन (3) के अनुसार और प्रथम विनियमन 2011 के विनियमन 53 के अनुसार प्रतिपक्षी संस्थान का अध्यक्ष उत्तर प्रदेश सरकार का मुख्य

सचिव हैं और एसजीपीजीआईएमएस के वर्ग 1 अधिकारियों की नियुक्ति प्राधिकारी हैं।

5. विज्ञापन संख्या-22/2003-04 के अनुसरण में जो आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों की भर्ती के लिए जारी किया गया था, प्रतिपक्षी संख्या-6 का चयन किया गया था और माइक्रोबायोलॉजी विभाग में सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया गया था और रिट याचिका दायर करने के समय अतिरिक्त प्रोफेसर के पद पर था।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्रतिपक्षी संख्या-6 जो अनुसूचित जनजाति श्रेणी से संबंधित है, मणिपुर राज्य का मूल निवासी है और उसने अनुसूचित जनजाति श्रेणी के तहत आवेदन किया था। यह कहा गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-6 माइक्रोबायोलॉजी विभाग में सहायक प्रोफेसर के पद पर आरक्षित श्रेणी के तहत नियुक्त होने के लिए पात्र नहीं था। प्रतिपक्षी संख्या-6 और विज्ञापन संख्या-22/2003-04 के अनुसरण में नियुक्त अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति पर विधान परिषद के कुछ सदस्यों द्वारा सवाल उठाया गया था और उसके तहत की गई नियुक्तियों पर भी उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा विधिवत विचार किया गया था और यह माना गया था कि राज्य के बाहर के उम्मीदवारों को आरक्षण का लाभ नहीं दिया जा सकता है। तथापि, ऐसे उम्मीदवार केवल अनारक्षित रिक्तियों पर ही आवेदन करने के पात्र हैं और इसलिए संपूर्ण मामला ऐसी नियुक्ति पर विचार करने के लिए एसजीपीजीआईएमएस के शासी निकाय के समक्ष रखा गया था।

7. इस माननीय न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-1472 (एस/बी) वर्ष 2007 (डॉ. ऋषि सेट्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में भी मामला उठाया गया था और उक्त मामला अभी भी विचाराधीन है। इस मुद्दे को उत्तर प्रदेश राज्य पिछड़ा वर्ग आयोग सहित विभिन्न अन्य मंचों पर भी उठाया गया था और सचिव, उत्तर प्रदेश राज्य की अध्यक्षता में 3.3.2009 को एक बैठक आयोजित की गई थी जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि आरक्षण नीति के उल्लंघन में भरे गए ऐसे पदों को एक्स-कैडर पदों के रूप में घोषित किया जाए, और उपरोक्त पूरी प्रक्रिया प्रधान सचिव द्वारा जारी दिनांक 15.10.2010 के सरकारी आदेश को पारित करने में समाप्त हुई। चिकित्सा शिक्षा, उत्तर प्रदेश राज्य जिसके द्वारा राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश राज्य के बाहर के ऐसे व्यक्तियों (प्रतिपक्षी संख्या-6 सहित) द्वारा भरे गए 8 पदों को घोषित करने का निर्णय लिया, जिन्हें आरक्षण नीति का लाभ दिया गया था और जिन्हें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवारों के लिए आरक्षित श्रेणी के पदों पर नियुक्त किया गया था, जिनके अधिवास उत्तर प्रदेश के अधिवास हैं, एक्स-कैडर पदों के रूप में घोषित किया जाए। पूर्वोक्त निर्णय के अनुपालन में, प्रतिपक्षी संस्थान को इसके अनुपालन में आवश्यक कार्रवाई करने का निर्देश दिया गया था।

8. उपर्युक्त शासनादेश दिनांक 15.10.2010 के अनुपालन में निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस द्वारा दिनांक 15.09.2016 को एक कार्यालय आदेश जारी

किया गया था, जिसमें यह प्रावधान किया गया था कि राज्य के बाहर के आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों द्वारा भरे गए पदों को एक्स-कैडर पदों पर नियुक्त किया गया घोषित किया जाए। यह भी प्रावधान किया गया था कि वे विभागाध्यक्ष या किसी प्रशासनिक पद या किसी जिम्मेदार पद को धारण करने के लिए पात्र नहीं होंगे।

9. प्रमुख सचिव, चिकित्सा शिक्षा, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 15.10.2010 तथा निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस प्रतिपक्षी क्रमांक 6 द्वारा जारी दिनांक 15.9.2016 के कार्यालय आदेश से व्यथित होकर उक्त आदेशों का विरोध करते हुए माननीय विजिटर से संपर्क किया। इस तथ्य के अलावा कि उन्हें उक्त आदेशों को पारित करने से पहले सुनवाई का अवसर कभी नहीं दिया गया था, यह भी कि उत्तर प्रदेश राज्य के अधिवास की आवश्यकता के बारे में विज्ञापन संख्या-22/2003-04 में ऐसी कोई शर्त नहीं रखी गई थी या अन्य राज्य का अधिवास पात्र नहीं होगा और इसके संबंध में, दोनों आदेश अक्षम अधिकारियों द्वारा जारी किए गए थे क्योंकि निदेशक और प्रधान सचिव अधिनियम की धारा 11 के अनुसार नियुक्ति नहीं कर रहे थे। उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव एसजीपीजीआईएमएस के अध्यक्ष और शासी निकाय के अध्यक्ष हैं और विनियम 2 के अनुसार राष्ट्रपति सहायक प्रोफेसरों के लिए नियुक्ति प्राधिकारी हैं।

10. प्रतिपक्षी संख्या-6 के अभ्यावेदन पर कुलाध्यक्ष द्वारा दिनांक 29.1.2019 के आदेश

के तहत विधिवत विचार किया गया और निर्णय लिया गया, जिसमें निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस के दिनांक 15.9.2016 के आदेश को रद्द कर दिया गया था, लेकिन 19.10.2010 के सरकारी आदेश में कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया था क्योंकि इसे रद्द करना विजिटर की क्षमता से परे था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 15.10.2010 के आदेश को भी डॉ. नारायण प्रसाद द्वारा चुनौती दी गई थी, जो प्रतिपक्षी संख्या-6 के साथ समान रूप से स्थित और चयनित थे और जिन्होंने विजिटर से भी संपर्क किया था और 6 अप्रैल, 2018 को उनके पक्ष में एक आदेश पारित किया गया था। डॉ. नारायण प्रसाद द्वारा रिट याचिका संख्या-6785 वर्ष 2018 (एस/एस) में इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 15/10/2010 के सरकारी आदेश को चुनौती दी गई थी, क्योंकि उनके मामले में भी माननीय विजिटर ने केवल निदेशक एसजीपीजीआईएमएस और 15.09.2016 के आदेश को रद्द किया था न कि 15/10/2010 के सरकारी आदेश को। इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने दिनांक 09.05.2019 के निर्णय और आदेश के तहत रिट याचिका की अनुमति दी और 15.10.2010 और 9.8.2018 के सरकारी आदेश को रद्द कर दिया और प्रतिपक्षियों को याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभ प्रदान करने का निर्देश दिया और कहा कि उसे एक्स-कैडर सेवा में नहीं माना जाएगा और सेवा में वरिष्ठता के लाभ और अन्य लाभ प्रदान करने में याचिकाकर्ता की उपेक्षा नहीं करेगा और वो प्रशासनिक पद धारण करेगा।

11. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित ने आग्रह किया है कि एकल न्यायाधीश

के आदेश का वर्तमान मामले में पालन नहीं किया जा सकता है क्योंकि एसजीपीजीआईएमएस पर लागू आरक्षण के पूर्व-दृष्टया नियमों का पालन नहीं किया गया था और प्रतिपक्षी संख्या-6 को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की आरक्षित रिक्तियों के खिलाफ नियुक्त नहीं किया जा सकता था और, इसलिए प्रार्थना की गई कि याचिकाकर्ता के मामले को पूर्वोक्त निर्णय और आदेश की अनदेखी करने पर विचार किया जा सकता है या वैकल्पिक रूप से 'इंक्विरियम' के अनुसार घोषित किया जा सकता है क्योंकि इसे अच्छी तरह से स्थापित कानूनी सिद्धांतों की अज्ञानता में पारित किया गया है। वह प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता अगला वरिष्ठतम संकाय सदस्य होने के नाते विभाग के प्रमुख के रूप में नियुक्त होने का हकदार है और उसे उक्त पद का प्रभार दिया जा सकता है।

12. श्री एस. के. कालिया, वरिष्ठ अधिवक्ता ने रिट याचिका का जोरदार विरोध किया है। वह प्रस्तुत करते हैं कि राज्य सरकार ने प्रतिपक्षी संख्या-6 और अन्य समान रूप से स्थित व्यक्तियों की नियुक्ति के संबंध में विभिन्न आरोपों पर विचार करते हुए 15.10.2010 को सरकारी आदेश पारित किया, जिसमें प्रतिपक्षी संख्या-6 और 7 अन्य को एक्स-कैंडर पद धारण करने की घोषणा की गई। इसके बाद एसजीपीजीआई एमएस ने शासनादेश दिनांक 15.10.2010 के अनुपालन में दिनांक 15.10.2016 को आदेश जारी किया। प्रतिपक्षी संख्या-6 को याचिकाकर्ताओं द्वारा अवधारित पद को एक्स-कैंडर पद घोषित करने के दिनांक 15.09.2016 के आदेश के बारे में पता चला

और उक्त आदेश को माननीय विजिटर के समक्ष चुनौती दी, जिन्होंने दिनांक 29.1.2010 के विस्तृत आदेश के बाद प्रतिपक्षी संख्या-6 के दावे की अनुमति दी और निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस द्वारा पारित दिनांक 15.09.2016 के आदेश को रद्द कर दिया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि 15.10.2010 के सरकारी आदेश को भी इसी तरह के व्यक्तियों द्वारा इस माननीय न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और इसे इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या-6785 वर्ष 2018 (नारायण प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में 9.5.2019 के निर्णय और आदेश के माध्यम से रद्द कर दिया गया। यह कहा गया है कि विशेष अपील संख्या-254 वर्ष 2019 होने के कारण भी इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विचार लंबित है।

13. ऐसा कहा गया है कि वर्तमान में पूरे विवाद को समाप्त कर दिया गया है, और दिनांक 15-10-2010 के सरकारी आदेश के साथ-साथ निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस के आदेश को प्रतिपक्षी संख्या-6 को एक्स-कैंडर पद धारण करने की घोषणा करते हुए रद्द कर दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिपक्षी संख्या-6 को संवर्ग के भीतर पद धारण करने वाला माना जाता है और वरिष्ठतम संकाय सदस्य होने के नाते, इस संबंध में प्रतिवादियों द्वारा लिए गए निर्णय के अनुपालन में, विभागाध्यक्ष के रूप में नियुक्त होने का विधिवत हकदार है। इस अदालत को यह भी सूचित किया गया कि प्रतिपक्षी संख्या-6 ने पहले ही 29.03.2023 को माइक्रोबायोलॉजी विभाग के प्रमुख का पदभार संभाल लिया है

और तदनुसार रिट याचिका को खारिज करने की प्रार्थना की है।

14. मैंने पक्षकारों की सलाह सुनी है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है। याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से विभागाध्यक्ष माइक्रोबायोलॉजी, एसजीपीजीआईएमएस के पद का दावा करने की मांग की। माइक्रोबायोलॉजी विभाग के प्रमुख के रूप में कार्यभार संभालने के लिए, उन्होंने यह भी प्रार्थना की है कि प्रतिपक्षी संख्या-6 को एक्स-कैंडर पद वाला घोषित किया जाए और इसलिए वह विभागाध्यक्ष के रूप में नियुक्त होने के योग्य नहीं है।

15. प्रतिपक्षी संख्या-6 और अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति जो विज्ञापन संख्या-22/2003-2004 के अनुसरण में भर्ती किए गए थे, राज्य सरकार के स्तर पर जांच के अधीन थे, जहां उचित विचार के बाद 15.10.2010 को सरकारी आदेश जारी किया गया था। राज्य सरकार ने इस तथ्य पर विचार किया कि उपर्युक्त भर्ती में नियुक्त किए गए व्यक्तियों में से 8 व्यक्ति उत्तर प्रदेश के मूल निवासी नहीं थे और उन्हें आरक्षण अधिनियम, 1994 का लाभ दिया गया है। कार्मिक विभाग के साथ परामर्श करने के पश्चात् उक्त 8 व्यक्तियों की नियुक्ति की गई थी और उन्हें संवर्ग बाह्य पद धारण करने वाला घोषित किया गया था। एसजीपीजीआईएमएस के निदेशक द्वारा 15/09/2016 को परिणामी आदेश पारित किया गया।

16. निदेशक एसजीपीजीआईएमएस के आदेश को प्रतिपक्षी संख्या-6 द्वारा दिनांक

05/12/2016 को एक अभ्यावेदन दायर करके और इसी तरह स्थित एक अन्य व्यक्ति डॉ नारायण प्रसाद द्वारा माननीय विजिटर के समक्ष चुनौती दी गई थी। प्रतिपक्षी संख्या-6 के प्रतिनिधित्व को 29/01/2019 को अनुमति दी गई थी और निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस के दिनांक 15/09/2016 के आदेश को रद्द कर दिया गया था।

17. माननीय विजिटर को इस तथ्य पर राजी किया गया था कि माइक्रोबायोलॉजी विभाग के संबंध में पात्र व्यक्तियों के लिए आवेदन आमंत्रित करने वाले विज्ञापन संख्या-22/2003-2004 में चार पदों का विज्ञापन दिया गया था जिसमें सामान्य श्रेणी के लिए 1 पद, अनुसूचित जाति के लिए 2 पद और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए एक पद आरक्षित था। प्रतिपक्षी संख्या-6 अनुसूचित जनजाति से संबंधित व्यक्ति है और मणिपुर राज्य से संबंधित है जहां गारो जनजाति को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता प्राप्त है। राज्य सरकार ने यह मानते हुए कि प्रतिपक्षी संख्या-6 को इस आधार पर अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में आरक्षण का लाभ नहीं दिया जा सकता था कि उत्तर प्रदेश में गारो जनजाति को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता नहीं दी गई है।

18- उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में, माननीय विजिटर का विचार था कि माइक्रोबायोलॉजी विभाग में सहायक प्रोफेसरों के 4 पदों में से, जो विज्ञापित किए गए थे, कोई भी पद अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित नहीं था, और इसलिए प्रतिपक्षी संख्या-6 को केवल

सामान्य श्रेणी के पद के लिए नियुक्त किया जा सकता था और इस संबंध में पारित आदेश टिकाऊ/पुख्ता नहीं था, इसलिए निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस द्वारा पारित उक्त आदेश में स्पष्ट दुर्बलता थी, और अता: दिनांक 15/09/2016 के आदेश को रद्द कर दिया गया।

19. सरकारी आदेश दिनांक 15/10/2010 को इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या-6785/2018 (एसएस) में चुनौती दी गई थी, जिसे निम्नलिखित मुद्दों पर विचार करने के बाद निर्णय और आदेश दिनांक 09/05/2019 के माध्यम से अनुमति दी गई थी: -

क. याचिकाकर्ता की नियुक्ति वर्ष 2004 में की गई थी और नियुक्ति के 12 साल बीत जाने के बाद, जो विधिवत गठित चयन समिति द्वारा किए गए कानून के अनुसार था, और एमएस मुधोल और अन्य बनाम एचडी हलेगकर और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा करते हुए, एसएलपी संख्या-16256 वर्ष 1992 और श्रीमती राखी चतुर्वेदी बनाम राजस्थान विश्वविद्यालय और अन्य (1993)2 में पारित किया गया था। बीएलजेआर 854 एसजीपीजीआईएमएस में अवधारित किया गया था कि ये एस्टोपेल्स के सिद्धांत से बंधा हुआ है और इसे अपना रुख बदलने और यू-टर्न लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह भी माना गया कि प्रतिपक्षियों ने

याचिकाकर्ता की नियुक्ति को स्वीकार करने का विकल्प चुना है और प्रतिपक्षियों के कृत्यों के लिए उन्हें पीड़ित करना अन्यायपूर्ण होगा।

ख- दिनांक 15/10/2010 और 09/08/2018 के आदेशों को ध्यान में रखते हुए, यह माना गया कि यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को अपना बचाव दायर करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था और परिणामस्वरूप प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में आदेश पारित किया गया है, जो कानून में टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

20. यह इन पूर्वोक्त तथ्यों पर है कि इस न्यायालय को यह तय करने के लिए कहा जाता है कि क्या याचिकाकर्ता के पक्ष में एक रिट जारी की जा सकती है जो उसे माइक्रोबायोलॉजी विभाग के प्रमुख का प्रभार लेने का अधिकार देती है। याचिकाकर्ता प्रस्तुत रिट याचिका में तभी सफल हो सकता है जब प्रतिपक्षी 6 को एक एक्स-कैंडर पद धारण करने वाला घोषित किया जाता है, और निदेशक, एसजीपीजीआईएमएस द्वारा पारित सरकारी आदेश दिनांक 15/10/2010 के साथ-साथ दिनांक 15/09/2016 के आदेश की वैधता को बरकरार रखा जाता है, अन्यथा स्वीकार्य रूप से प्रतिपक्षी संख्या-6 याचिकाकर्ता जिसे 2004 में नियुक्त किया गया था, से वरिष्ठ है, अर्थात् याचिकाकर्ता जिसे 24/05/2013 को नियुक्त किया गया था।

21. रिट याचिका संख्या-6785/2018 और 32033 (एसएस) वर्ष 2018 में इस न्यायालय

द्वारा दिनांक 15/10/2010 के शासनादेश दिनांक 15/10/2010 को पहले ही रद्द कर दिया गया है। हालांकि प्रतिपक्षी संख्या-6 ने इस न्यायालय के समक्ष उक्त सरकारी आदेश को चुनौती नहीं दी है, लेकिन उक्त सरकारी आदेश को रद्द करने के परिणामस्वरूप होने वाले लाभ को वर्तमान कार्यवाही में उसे वंचित नहीं किया जा सकता है, और यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि सिर्फ इसलिए कि याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी है, उसका लाभ उसे नहीं दिया जा सकता है। मामले के इस पहलू पर सुप्रीम कोर्ट ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अरविंद कुमार श्रीवास्तव और अन्य (2015) 1 एस.सी.सी. 347 के मामले में विचार किया था।

22. अपीलकर्ताओं और प्रतिवादियों दोनों द्वारा उद्धृत पूर्वोक्त निर्णयों के पढ़ने से उभरने वाले कानूनी सिद्धांतों को निम्नानुसार अभिव्यक्त किया जा सकता है: -

"22.2. हालांकि, यह सिद्धांत लापरवाही और देरी के साथ-साथ स्वीकृति के रूप में अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त अपवादों के अधीन है। जिन व्यक्तियों ने अपने मामलों में गलत कार्रवाई को चुनौती नहीं दी और उसी में सहमति व्यक्त की और लंबे समय के बाद केवल इस कारण से जाग गए कि उनके समक्ष जिन्होंने पहले समय में अदालत का दरवाजा खटखटाया था, उनके प्रयासों में सफल रहे, तो ऐसे कर्मचारी यह दावा नहीं कर सकते कि समान रूप से स्थित

व्यक्तियों के मामले में दिए गए निर्णय का लाभ उन्हें दिया जाए। उन्हें बाड़ लगाने वालों और लापरवाही और देरी के रूप में माना जाएगा, और/या स्वीकृति, उनके दावे को खारिज करने के लिए एक वैध आधार होगा।

22.3. हालांकि, यह अपवाद उन मामलों में लागू नहीं हो सकता है जहां अदालत द्वारा सुनाया गया निर्णय सभी समान रूप से स्थित व्यक्तियों को लाभ देने के इरादे से दिया गया निर्णय था, चाहे वे अदालत से संपर्क करें या नहीं। इस तरह की घोषणा के साथ अधिकारियों पर दायित्व डाला जाता है कि वे स्वयं सभी समान रूप से स्थित व्यक्तियों को इसका लाभ दें। ऐसी स्थिति तब हो सकती है जब निर्णय की विषय-वस्तु नीतिगत मामलों को छूती है, जैसे नियमितीकरण की योजना और इसी तरह के मामले (देखें केसी शर्मा बनाम भारत संघ [केसी शर्मा बनाम भारत संघ, (1997) 6 एस.सी.सी. 721: 1998 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 226])। दूसरी ओर, यदि न्यायालय का निर्णय व्यक्तिगत रूप से यह मानते हुए था कि उक्त निर्णय का लाभ न्यायालय के समक्ष पक्षकारों को प्राप्त होगा और ऐसा इरादा निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है या यह निहित रूप से निर्णय के कार्यकाल और भाषा से पता लगाया जा सकता है, जो लोग उन्हें दिए गए उक्त निर्णय का लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें संतुष्ट करना होगा कि उनकी

याचिका करती है या तो लापरवाही और देरी या स्वीकृति से पीड़ित नहीं हैं।

23. 15/10/2010 के सरकारी आदेश को भी डॉ. एबल लॉरेंस द्वारा रिट याचिका संख्या-32033 (एसएस) वर्ष 2018 के रूप में रिट याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे रिट याचिका संख्या-6785 (एसएस) वर्ष 2018 में पारित निर्णय दिनांक 09/05/2019 के संदर्भ में भी अनुमति दी गई थी। यह देखते हुए कि दिनांक 09/05/2019 का निर्णय दिनांक 15/10/2010 के सरकारी आदेश से प्रभावित सभी व्यक्तियों पर लागू होता है, और इसलिए जब इसे रद्द कर दिया गया है, तो यह प्रतिपक्षी संख्या-6 के मामले को भी आच्छादित करता है, और प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह इसी तरह की घोषणा के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाए। यह न्यायालय इस तथ्य से भी अवगत है कि एसजीपीजीआईएमएस ने स्वयं इस न्यायालय के 09/05/2019 के फैसले को स्वीकार कर लिया है और 15/10/2010 के सरकारी आदेश से प्रभावित व्यक्तियों के नाम सहित सभी प्रोफेसरों के लिए एक संयुक्त वरिष्ठता सूची तैयार की है।

24- वर्तमान मामले में जैसे ही प्रतिवादी संख्या 6 को दिनांक 15/09/2016 के आदेश के बारे में पता चला, उन्होंने माननीय विज़िटर के समक्ष इसे चुनौती दी, जिन्होंने दिनांक 29/01/2019 के आदेश द्वारा इसे रद्द कर दिया था। दूसरी ओर, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 15/10/2010 के

शासनादेश को भी रद्द कर दिया गया था। इस तथ्य के संबंध में कि इस न्यायालय का निर्णय प्रतिपक्षी संख्या-6 पर लागू होगा या नहीं, इस न्यायालय का विचार था कि रिट याचिका संख्या-6785/2018 और 32033 (एसएस) वर्ष 2018 में पारित एकल न्यायाधीश का निर्णय भी उन पर लागू होगा क्योंकि सबसे पहले, दिनांक 15/10/2010 का आदेश उन सभी 8 व्यक्तियों के संबंध में एक सामान्य आदेश था जिन्हें विज्ञापन संख्या-22/2003-2004 के अनुसरण में संयुक्त आधार पर चुना गया था। इस न्यायालय के माननीय एकल न्यायमूर्ति द्वारा विचार किए गए आधार प्रतिपक्षी संख्या-6 के मामले को भी आच्छादित करते हैं क्योंकि उक्त आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था, और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उक्त आदेश अंतिम हो गया और सरकार के साथ-साथ एसजीपीजीआईएमएस द्वारा भी विधिवत स्वीकार किया गया। हालांकि निजी व्यक्ति डॉ. देवेंद्र गुप्ता के कहने पर एक विशेष अपील दायर की गई है, जो विशेष अपील संख्या-254 वर्ष 2019 है, और उक्त विशेष अपील के परिणाम के अधीन, यह मुद्दा एक तरफ सरकार और एसजीपीजीआईएमएस और दूसरी तरफ 15/10/2010 के आदेश से प्रभावित सभी 8 व्यक्तियों के बीच अंतिम हो गया है। एसजीपीजीआईएमएस ने इस न्यायालय के दिनांक 29/01/2019 के निर्णय के अनुपालन में एसजीपीजीआईएमएस के सभी प्रोफेसरों की एक संयुक्त/सामान्य वरिष्ठता सूची जारी की है जिसमें प्रतिपक्षी संख्या-6 और अन्य

शामिल हैं जो 15/10/2010 के सरकारी आदेश से प्रभावित थे।

25. इसलिए, पूर्वोक्त तथ्यों से प्रतिपक्षी संख्या-6 और अन्य समान रूप से स्थित व्यक्तियों की नियुक्ति से संबंधित विवाद का फैसला किया गया है क्योंकि दोनों आदेश अर्थात् 15/10/2010 और 15/09/2009 अब अस्तित्व में नहीं हैं। माननीय विज़िटर के साथ-साथ इस न्यायालय ने प्रतिपक्षी संख्या-6 और अन्य समान रूप से स्थित व्यक्तियों को एक्स-कैंडर पदों पर नियुक्त करने के आदेशों को रद्द कर दिया। प्रतिपक्षियों ने इस न्यायालय के फैसले के साथ-साथ विज़िटर द्वारा पारित आदेश को भी स्वीकार कर लिया है, और विशेष अपील में निर्णय के अधीन जो इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है, यह मुद्दा अब जीवित मुद्दा नहीं है, और याचिकाकर्ता को प्रतिपक्षी संख्या-6 की नियुक्ति की तारीख से 19 साल बीत जाने के बाद या वर्ष 2013 में की गई अपनी नियुक्ति के बाद पर्याप्त समय के बाद पहली बार उक्त मुद्दे को आंदोलित करने और उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

26. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के इस कथन पर विचार करते हुए कि रिट याचिका संख्या-6785/2018 में पारित निर्णय दिनांक 29/01/2019 को 'पर-इंकुरियम' घोषित किया जाए, इस न्यायालय का विचार है कि उक्त निर्णय की समीक्षा नहीं की जा सकती है या प्रस्तुत रिट याचिका में इसकी वैधता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। याचिकाकर्ता पर विवाद को स्वीकार नहीं करने का एक अन्य कारण यह तथ्य है कि 15/10/2010 के

सरकारी आदेश को वर्तमान कार्यवाही में चुनौती नहीं दी गई है, और इसलिए इस न्यायालय के लिए उक्त सरकारी आदेश की वैधता या उक्त सरकारी आदेश को रद्द करने वाले पिछले निर्णय के पूर्ववर्ती मूल्य का परीक्षण करने का कोई अवसर नहीं है।

27. यदि 15/10/2010 के सरकारी आदेश की वैधता को प्रस्तुत रिट याचिका में चुनौती दी गई होती, तो केवल इस न्यायालय के पास इसकी वैधता पर विचार करने के लिए उठाए गए विभिन्न आधारों और कानूनी प्रावधानों पर विचार करने का अवसर होता, लेकिन उक्त प्रश्न वर्तमान मामले में इसे चुनौती के अभाव में नहीं उठता। किसी न्यायालय की न्यायपीठ न्यायिक औचित्य बनाए रखने के लिए समान शक्ति वाली दूसरी समन्वय पीठ के निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य होती है। एकल न्यायाधीश के निर्णय को केवल विशेष अपील में खंडपीठ द्वारा या उक्त आदेश के खिलाफ अपील में उच्चतम न्यायालय द्वारा रद्द किया जा सकता है और तदनुसार इस संबंध में याचिकाकर्ता की दलीलों को खारिज कर दिया जाता है।

28. इस न्यायालय का यह भी विचार है कि याचिकाकर्ता ने माननीय विज़िटर के आदेश या इस न्यायालय के 19/05/2019 के फैसले पर कभी हमला नहीं किया है और इसलिए, इसे चुनौती दिए जाने के अभाव में, याचिकाकर्ता को प्रार्थना के अनुसार राहत नहीं दी जा सकती है। मामले के किसी भी दृष्टिकोण में जब माननीय विज़िटर का आदेश अभी भी लागू है और किसी भी मंच के समक्ष किसी भी चुनौती के अधीन नहीं है, तो प्रतिपक्षी संख्या-6 को

उक्त आदेश के लाभ से वंचित करने का कोई कारण नहीं है। यह इसी कारण से है कि यह न्यायालय उत्तर प्रदेश लोक सेवक (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की प्रयोज्यता के संबंध में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई विस्तृत प्रस्तुतियों पर विचार नहीं कर रहा है, जबकि प्रतिपक्षी संख्या-6 की नियुक्ति पर सवाल उठाते हुए, इस तथ्य के अलावा कि माननीय एकल न्यायमूर्ति के आदेश को चुनौती देने वाली एक विशेष अपील विचाराधीन है जहां इन सभी तर्कों पर विचार किया जा सकता है।

29. प्रतिपक्षी संख्या-6 को विभागाध्यक्ष (माइक्रोबायोलॉजी) के रूप में नियुक्त करने में एसजीपीजीआईएमएस के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करने का एक अन्य कारण यह है कि उनकी नियुक्ति और चयन के संबंध में विवाद पिछले 19 वर्षों से विभिन्न स्तरों पर विचाराधीन था, और इस तरह के विवाद को अंतहीन रूप से जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, और किसी स्तर पर विवाद को शांत करना होगा। याचिकाकर्ता को विवाद को जारी रखने की अनुमति देना न तो सार्वजनिक हित में है और न ही एसजीपीजीआईएमएस के हित में है और न ही शिक्षण संकाय के हित में है। याचिकाकर्ता माइक्रोबायोलॉजी विभाग में शामिल होने की तारीख से इस स्थिति से अवगत था, लेकिन उसने चुप रहना चुना और जब विभागाध्यक्ष (माइक्रोबायोलॉजी) के पद पर नियुक्ति से संबंधित मुद्दे ने जोर पकड़ा, तो उसने अपना दावा पेश करने का फैसला किया। यदि वह

सहायक प्रोफेसर के रूप में प्रतिपक्षी संख्या-6 की नियुक्ति की चुनौती के संबंध में गंभीर थे, तो वह 2013 में अपनी नियुक्ति के बाद उचित समय के भीतर ऐसा कर सकते थे। वह मूक दर्शक बने रहने के बाद, माननीय विज़िटर के आदेश के साथ-साथ इस न्यायालय के दिनांक 09/05/2019 के निर्णय से सहमत हो गए माने जाएंगे और इसलिए, जब विभागाध्यक्ष का पद खाली होने वाला है, तो उन्हें अपनी सुविधानुसार इस विवाद को उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

30. इस न्यायालय को यह भी सूचित किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या-6 ने पहले ही माइक्रोबायोलॉजी विभाग के प्रमुख के रूप में पदभार संभाल लिया है।

31. उपरोक्त कारणों से, यह न्यायालय याचिकाकर्ता के पक्ष में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए इच्छुक नहीं है, और विशेष अपील संख्या 254 वर्ष 2019 में डिवीजन बेंच के निर्णय के अधीन, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 1151

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट-ए संख्या 3372/2002

शिखा अबेल

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश एवं अन्य राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: डॉ. एल.पी. मिश्रा
अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., प्रदीप तिवारी

सिविल कानून - सेवा विधि - प्रोबेशन - याचिकाकर्ता को स्टेनोग्राफर के पद पर नियुक्त किया गया था और उसे प्रोबेशन पर रखा गया था। उसने अपनी प्रोबेशन अवधि सफलतापूर्वक पूरी की, जिसे कभी बढ़ाया नहीं गया। 5 साल से अधिक की सेवा के बाद, एक समाप्ति आदेश पारित किया गया था। निर्णय: यदि, कानून के तहत, प्रोबेशन अवधि नहीं बढ़ाई जा सकती है, तो प्रोबेशन अवधि की समाप्ति पर नियुक्ति की पुष्टि की जाती है। चूंकि याचिकाकर्ता की प्रोबेशन अवधि नहीं बढ़ाई गई थी, इसलिए माना जाता है कि उसने इसे सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है। सेवा नियमों के अनुसार, जब कोई कर्मचारी स्पष्ट पुष्टि आदेश के बिना अधिकतम परिवीक्षा अवधि से आगे पद पर बना रहता है, तो उन्हें निहितार्थ से प्रोबेशन पर बने रहने के लिए नहीं माना जा सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सेवा नियम निर्धारित सीमा से आगे प्रोबेशन अवधि बढ़ाने पर रोक लगाते हैं। ऐसे वाद में, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कर्मचारी को निहितार्थ से उनके पद पर पुष्टि की गई है। कार्यकारी निर्देश वैधानिक नियमों को ओवरराइड नहीं कर सकते। (पैरा 20, 21)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. जसवंत सिंह प्रताप सिंह जडेजा बनाम राजकोट नगर निगम और अन्य; (2007) 10 एससीसी।

2. राजिंदर सिंह चौहान व अन्य बनाम हरियाणा राज्य व अन्य; (2005) 13 एससीसी 179।

3. हीरा लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, (2011) 29 एलसीडी 1.

4. नेत्रपाल सिंह बनाम चंद्र पाल सिंह और अन्य, (2013) 2 ईएससी 535

5. विनोद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (2011) 29 एलसीडी 103

6. श्रीमती वंदना गंगवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (2011) 2 यूपीएलबीईसी 1299।

7. डॉ. विश्वजीत सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2009 (2) ईएससी 1387 (सभी) (डीबी)।

8. नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम सोमवीर सिंह; (2006) 5 एससीसी 493।

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री नवीन शुक्ला द्वारा सहाय्यित डॉ. एल.पी. मिश्रा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 1 के लिए विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता एवं प्रतिवादी संख्या-2 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री प्रदीप तिवारी को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.06.2002 को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जो रिट याचिका के अनुलग्नक 1 के रूप में सम्मिलित है, जिसमें प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को प्रश्नगत आदेश दिनांक 22.06.2002 के

बावजूद सभी सेवा लाभों के साथ आशुलिपिक के रूप में प्रतिवादियों की सेवा में बने रहने की स्वीकृति हेतु आदेश देने वाले परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश निर्गत करने की प्रार्थना की गई है।

3. मामले का तथ्य यह है कि सैनिक कल्याण एवं पुनर्वास निदेशालय, यूपी, लखनऊ के अधिष्ठान में आशुलिपिक के पद पर पात्र उम्मीदवारों के नाम निर्गत करने हेतु जिला रोजगार कार्यालय, लखनऊ को एक पत्र प्रेषित किया गया था एवं जिला स्तरीय कार्यालयों अर्थात् जिला सैनिक कल्याण एवं पुणे कार्यालयों से अभ्यर्थिता मांगी गयी।

4. चयन प्रक्रिया आयोजित की गयी एवं याचिकाकर्ता सहित 12 उम्मीदवार उपस्थित हुए तथा लिखित परीक्षा, शॉर्ट-हैंड, टाइपिंग टेस्ट एवं साक्षात्कार के आधार पर, याचिकाकर्ता को 23.12.1996 को चयन समिति द्वारा आशुलिपिक के पद पर नियुक्ति हेतु अनुशंसित किया गया। चयन समिति द्वारा की गई अनुशंसा पर, उप निदेशक ने प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष 27.12.1996 को एक नोट प्रस्तुत किया जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि पद सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार के माध्यम से भरा जाना था।

5. याचिकाकर्ता को एक नियुक्ति पत्र निर्गत किया गया था एवं उसके अनुसरण में, उसने 01.01.1997 को आशुलिपिक के रूप में पदग्रहण किया एवं उसे परिवीक्षा के अन्तर्गत रखा गया। उन्होंने सफलतापूर्वक परिवीक्षा अवधि पूरी की, जिसे कभी बढ़ाया नहीं गया था। 5 साल से अधिक समय तक काम करने

के बाद, उन्हें तीन आधारों पर नोटिस निर्गत किया गया:

क) रिक्ति विनिश्चय की गई थी एवं जिला रोजगार कार्यालय को अधियाचना भेजी गई थी एवं रिक्ति की सूचना निदेशालय के नोटिस बोर्ड पर भी चस्पा की गई थी।

ख) आरक्षण नियमावली के अनुसार, यह रिक्ति अनुसूचित जाति आरक्षित वर्ग के माध्यम से भरी जानी थी तथा आरक्षण नियमावली का पालन नहीं किया गया था।

ग) लिपिक पद पर नियुक्ति हेतु विहित पात्रता अर्थात् सैन्य सेवा में 5 साल काम करने का अनुभव याचिकाकर्ता के पास नहीं था।

6. उक्त कारण बताओ नोटिस दिनांक 18.05.2002 का उत्तर याचिकाकर्ता द्वारा 17.06.2002 को दिया गया था जिसमें कहा गया था कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति करने से पूर्व आधिकारिक स्तर पर इसका पता लगाया जाना था। हालाँकि, याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किए बिना, 22.06.2002 को बर्खास्तगी का आदेश पारित कर दिया गया।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि बर्खास्तगी का आदेश 3 आधारों पर निरस्त होता है:

क) नियमावली के अन्तर्गत खुले बाजार से आवेदन आमंत्रित करने हेतु विज्ञापन निर्गत करने का कोई उपबंध नहीं है। संदर्भ के लिए, प्रयोज्य नियमावली का नियम 5 नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

परिशिष्ट "ख"

[नियम ५ (घ) (२) देखिए]

नैत्यक श्रेणी के लिपिकों के पदों पर नियुक्ति के निमित्त चयन हेतु छटनी किए गए कर्मचारियों एवं भूतपूर्व सैनिक कर्मचारियों की श्रेणियां:

- १) सेवायोजक विभाग के भूतपूर्व कर्मचारी,
- २) प्रारक्षिक (रिजर्विस्ट्स) तथा सेना-निवृत्त-वैतनिक
- ३) खाद्य तथा रसद विभाग के भूतपूर्व कर्मचारी,
- ४) सहायता तथा पुनर्वासन विभाग के भूतपूर्व कर्मचारी,
- ५) अन्य सरकारी विभागों के भूतपूर्व कर्मचारी,
- ६) विस्थापित स्वर्णकार।

ख) नियम 5 के संदर्भ में सीधी भर्ती की प्रक्रिया के लिए नियम 15 विहित किया गया था, जिसे निम्नवत उद्धृत किया जा रहा है:

परिशिष्ट "घ"

[नियम १५ (१) के नीचे की टिप्पड़ी देखिए।

प्रतियोगिता परीक्षा में बैठने के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत करने की प्रक्रिया:

- १) सचिव निकटतम सेवायोजन कार्यालय को रिक्तियों की सूचना देगा।
- २) सेवायोजन कार्यालय के प्राधिकारी यह जानकारी देने के लिए कि कितनी रिक्तियां भरी जानी है, स्वयं सामान्य कार्यवाही करेंगे।
- ३) अभ्यर्थी अपने आवेदन-पत्र सम्बंधित सेवायोजन कार्यालय के माध्यम से सचिव को प्रस्तुत करेंगे, जो आवेदन-पत्र सेवायोजन कार्यालय के माध्यम से प्रस्तुत नहीं किए जायेंगे उन पर विचार नहीं किया जायेगा।

४) सेवायोजन कार्यालय आवेदन-पत्र कि परिनिरीक्षा करेगा एवं उपयुक्त अभ्यर्थियों के आवेदन-पत्र सचिव के पास भेजेगा।

५) सेवायोजन कार्यालय द्वारा भेजे जाने वाले आवेदन-पत्रों की संख्या उपलब्ध रिक्तियों की संख्या के चार गुने से कम न होगी; किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि अभ्यर्थियों कि संख्या रिक्तियों की संख्या के चार गुने से कम हों तो भी आवेदन पत्र भेजे जायेंगे।

६) सेवायोजन कार्यालय सचिव को उन अभ्यर्थियों के नाम एवं विवरण भी भेजेगा, जिनके आवेदन-पत्र अप्रसारित न किए जायें एवं जिसके साथ आवेदन-पत्र अप्रसारित न करने के कारण भी दिए जायेंगे।

७) यदि सचिव यह समझे कि किसी ऐसे अभ्यर्थी की, जिसका आवेदन-पत्र सेवायोजन कार्यालय द्वारा रोक लिया गया हो, उन कारणों से, जो अभिलिखित किए जायेंगे, परीक्षा में बैठने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए तो ऐसे अभ्यर्थी को परीक्षा में बैठने की अनुज्ञा दी जाएगी, किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि इस प्रकार अनुज्ञात अभ्यर्थियों की संख्या रिक्तियों की कुल संख्या के १० प्रतिशत से अधिक न होगी।

(ग) आशुलिपिक के पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में उक्त उद्देश्य हेतु परिशिष्ट "घ" का प्रासंगिक महत्व है, जो पहले ही ऊपर उद्धृत है।

8. उपरोक्त नियमावली के आलोक में, याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि 4 पद हैं, इसलिए आरक्षण नियमावली लागू नहीं किया जायेगा एवं सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार के चयन की प्रक्रिया सही है तथा इसमें कोई दुर्बलता या

अवैधता नहीं है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की 4 रिक्तियों के सापेक्ष आरक्षण की अनुमति दिए जाने की स्थिति में यह 21% से अधिक होगा एवं 25% होगा, इसलिए, आरक्षण का अनुपालन किए बिना 4 रिक्तियों की संवर्ग संख्या के सापेक्ष नियुक्ति की प्रक्रिया सही है।

9. उनका अगला तर्क यह है कि विज्ञापन, जैसा कि प्रश्नगत आदेश में दिया गया है, को खुले बाजार से आवेदन आमंत्रित करते हुए समाचार पत्र में प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में, प्रासंगिक नियमों को ऊपर उद्धृत किया गया है, जो रिक्ति का विज्ञापन करने की प्रक्रिया निर्धारित नहीं करते हैं।

10. उनका अंतिम तर्क यह है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति को शासनादेश दिनांक 14.09.1989 (अनुलग्नक- 5) का उल्लंघन धारित किया गया है। इस संबंध में, उनका तर्क है कि नियमावली भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं एवं कोई शासनादेश इसके अन्तर्गत निहित प्रावधानों का अध्यारोहण नहीं कर सकता है। अपनी तों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:

क) "परिवीक्षा के सफल समापन के बाद, कर्मचारी को स्थायी माना जाना चाहिए" के बिंदु पर, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:

i) **जसवंत सिंह प्रताप सिंह जाडेजा बनाम राजकोट नगर निगम एवं अन्य; (2007) 10 SCCI**

ii) **राजिंदर सिंह चौहान एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य; (2005) 13 SCC 1791**

ख) इस बिंदु पर कि "यदि संवर्ग में पदों की संख्या पांच से कम है तो जाति के लिए आरक्षण (रोस्टर) लागू नहीं होगा एवं पदों की संख्या सीधी भर्ती तथा प्रोन्नति संवर्ग हेतु अलग-अलग निर्धारित की जाएगी", उन्होंने

निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:

1) **हीरा लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; (2011) 29 LCD 11**

ii) **नेत्रपाल सिंह बनाम चंद्र पाल सिंह एवं अन्य; (2013) 2 ESC 5351**

iii) **विनोद कुमार बनाम यूपी राज्य एवं अन्य; (2011) 29 LCD 1031**

iv) **श्रीमती वंदना गंगवार बनाम यूपी राज्य एवं अन्य; (2011) 2 UPLBEC 12991**

ग) इस बिंदु पर कि "कार्यकारी आदेश वैधानिक प्रावधानों पर अध्यारोही नहीं हो सकता" उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:

i) **विजय सिंह एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य; (2004) 3 UPLBEC 27781**

ii) **आर.बी. दीक्षित बनाम भारत संघ एवं अन्य; (2005) 1 UPLBEC 831**

11. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि प्रश्नगत बर्खास्तगी आदेश किसी भी दुर्बलता या अवैधता से ग्रस्त नहीं है एवं यह उचित तथा

वैध है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि 4 रिक्ति की संवर्ग संख्या के सापेक्ष आरक्षण के प्रावधान भी लागू हैं। अपनी तों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया:

i) डॉ. विश्वजीत सिंह एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य; 2009 (2) ESC 1387 (All) (DB)1

ii) नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम सोमवीर सिंह; (2006) 5 SCC 4931

12. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि 2 वर्ष के अनुभव वाले सेना से संबंधित व्यक्ति को उक्त रिक्ति के सापेक्ष नियुक्त किया जाना आवश्यक है, इसलिए, बर्खास्तगी का प्रश्नगत आदेश उचित एवं वैध है।

13. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने भी उन्हीं तर्कों को ग्रहण किया है, जैसा प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है।

14. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तों पर विचार किया है एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के साथ-साथ पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विधि रिपोर्टों का अवलोकन किया है।

15. रिट याचिका पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने 27.06.2002 को एक अंतरिम आदेश पारित किया, जिसे दिनांक 04.07.2002 के आदेश द्वारा संशोधित किया गया, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

" सभी प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा किया जाता है।

प्रार्थना के अनुसार अगली तिथि तक प्रति-शपथपत्र दायर किया जा सकता है।

इस मामले को अगस्त, 2002 के प्रथम सप्ताह में सूचीबद्ध करें।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 1996 में नियुक्त किया गया था एवं उसने परिवीक्षा अवधि पूरी कर ली है एवं किसी भी प्रकार की कोई शिकायत के बिना, यह निरंतर सेवा में है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि कारण बताओ नोटिस देने के बाद, बिना किसी विस्तृत पूछताछ के जिसमें याचिकाकर्ता को भाग लेने का अवसर दिया गया हो, प्रश्नगत आदेश पारित कर दिया गया है।

उपरोक्त के दृष्टिगत, एतद्वारा यह एक अंतरिम उपाय के रूप में प्रदान किया गया है कि इस न्यायालय के अगले आदेश तक आदेश दिनांक 22-06-2002 (रिट याचिका के लिए अनुलग्नक -1) के क्रियान्वयन पर रोक रहेगी एवं उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

16. उपरोक्त प्रश्नगत आदेश द्वारा रिट याचिका के अनुलग्नक 1 के रूप में निहित दिनांक 22.06.2002 के आदेश के क्रियान्वयन पर एक अतिरिक्त शर्त के साथ रोक लगा दी गई थी कि इसे प्रभावी नहीं किया जाएगा। इसका अर्थ यह है कि याचिकाकर्ता 1997 से सभी कर्तव्यों एवं कार्यों का निर्वहन कर रहा है

एवं उसे वेतन का भुगतान किया जा रहा है एवं वह सेवानिवृत्ति की कगार पर है।

अपीलकर्ता के नियुक्ति आदेश में शर्त अन्तर्निहित हैं जो इस प्रकार हैं।

17. मामले में अंतर्निहित विवाद के निराकरण हेतु पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किये गये निर्णयों को निम्नवत् उद्धृत किया जा रहा है:

"1. सेल्समैन के रूप में आपकी नियुक्ति पूर्णतः अस्थायी है।

2. परिवीक्षा अवधि के दौरान, आपकी सेवाएँ कोई सूचना दिए या कोई कारण बताए बिना समाप्त की जा सकती हैं।

क) याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किये गए निर्णय :

1) जसवंत सिंह प्रताप सिंह जाडेजा (उपरोक्त):

3. आप समय-समय पर संशोधित फेडरेशन के कर्मचारी सेवा नियमावली में निहित नियमों एवं शर्तों द्वारा शासित होंगे।"

"11. हालांकि, इससे पूर्व कि हम विधिक प्रश्नों पर विचार करें, हमें अवश्य ध्यान देना चाहिए कि अपीलकर्ता को 1999 से 2003 तक उसकी सेवा में स्थायी नहीं किया गया था। किसी व्यक्ति को अस्थायी आधार पर नियुक्त करने की नगर पालिका आयुक्त की शक्ति वैधानिक नियमों द्वारा शासित होती है। यह उच्च न्यायालय या हमारे समक्ष नहीं दर्शाया गया है कि विधि के किन प्रावधानों के अन्तर्गत परिवीक्षा की अवधि समय-समय पर बढ़ाई गई थी। अधिनियम के प्रावधानों की प्रयोज्यता विवाद में नहीं है। यह सत्य हो सकता है कि उब न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई विवाद नहीं उठाया गया था, लेकिन यदि विधि के अन्तर्गत, परिवीक्षा की अवधि नहीं बढ़ाई जा सकती थी, तो उसे परिवीक्षा की अवधि समाप्त होने पर स्थायी माना जायेगा।"

यह एक ऐसा मामला है जहां ऊपर उद्धृत नियम 10 सपठित नियम 4 (बी) के अनुसार परिवीक्षा की अवधि निर्धारित की जाती है। नियम 10 (6) निःसंदेह प्रावधान करता है कि किसी भी कर्मचारी को सेवा में तब तक स्थायी नहीं माना जाएगा जब तक कि इस संबंध में विशिष्ट आदेश निर्गत नहीं किया जाता है। इस प्रावधान पर विश्वास करते हुए, चौथे प्रतिवादी के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि स्थायीकरण के कोई विशिष्ट आदेश नहीं थे तथा इसलिए, अपीलकर्ताओं को उनकी सेवाओं की समाप्ति की तिथि तक परिवीक्षाधीन के रूप में माना जाना चाहिए। ओम प्रकाश मौर्य बनाम यू.पी. को० सुगर फैक्टरीज फेडरेशन मामले में भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया गया था। पंजाब राज्य बनाम धर्म सिंह मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने इस प्रकार टिप्पणी की:

ii) राजिंदर सिंह चौहान एवं अन्य (उपरोक्त):

"11. उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण यह था कि अपीलकर्ता स्थायी कर्मचारी नहीं थे। प्रत्येक

" जबकि वर्तमान मामले में, सेवा नियम समय की एक निश्चित अवधि निर्धारित करते हैं

जिसके बाद परीक्षा अवधि को बढ़ाया नहीं जा सकता है एवं परीक्षा पर किसी पद पर नियुक्त या प्रोन्नत किए गए कर्मचारी को परीक्षा की अधिकतम अवधि पूरी होने के बाद स्थायीकरण के स्पष्ट आदेश के बिना पद पर बने रहने की अनुमति दी जाती है, निहितार्थ उसे परीक्षाधीन पद पर बने रहना नहीं माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि इस तरह के निहितार्थ को सेवा नियम द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है, जो परीक्षा अवधि को उसके द्वारा निर्धारित अधिकतम अवधि से आगे बढ़ाने से रोकता है। ऐसे मामले में, यह निष्कर्ष निकालना स्वीकार्य है कि जिस कर्मचारी को परीक्षा की अधिकतम अवधि पूर्ण होने पर पद पर बने रहने की अनुमति दी गई थी, निहितार्थ द्वारा उसे पद पर स्थायी किया गया है।"

12. म.प्र. उच्च न्यायालय में रजिस्ट्रार एवं अन्य बनाम सत्य नारायण झावर (2001 (7) SCC 161), के माध्यम से इस न्यायालय ने परीक्षा के प्रावधानों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया:

"11. सेवा विधिशास्त्र में मानित स्थायीकरण का प्रश्न, जो प्रासंगिक सेवा नियमों की भाषा पर निर्भर है, इस न्यायालय के समक्ष विचार का विषय रहा है, इस बिन्दु पर कई बार विभिन्न निर्णयों में संख्या के बिना एवं इस पर मामलों की तीन पंक्तियाँ हैं। मामलों की एक पंक्ति है जहाँ सेवा नियमों या नियुक्ति पत्र में परीक्षा की अवधि निर्दिष्ट की जाती है एवं परीक्षा की अधिकतम अवधि निर्धारित किए बिना उसे बढ़ाने की शक्ति भी प्राधिकारी

को प्रदान की जाती है एवं यदि अधिकारी को निर्धारित या विस्तारित अवधि से अधिक अवधि तक रखा जाता है, उसे स्थायी नहीं माना जा सकता है। ऐसे मामलों में परीक्षा अवधि की समाप्ति के बाद किसी भी समय बर्खास्तगी पर कोई रोक नहीं है। मामलों की दूसरी पंक्ति यह है कि जहाँ प्रारंभिक परीक्षा एवं उसके विस्तार के नियमों में प्रावधान है कि ऐसे विस्तार के लिए अधिकतम अवधि भी प्रदान की जाती है, जिससे अधिक परीक्षा को बढ़ाने की अनुमति नहीं है। ऐसे मामलों में निष्कर्ष यह है कि यदि परीक्षा की अवधि समाप्त होने से पहले बर्खास्तगी का आदेश पारित नहीं किया गया है तो संबंधित अधिकारी को अधिकतम अवधि की समाप्ति पर स्थायी माना जाता है। मामलों की अंतिम पंक्ति यह है, यद्यपि नियमों के अन्तर्गत परीक्षा की अधिकतम अवधि निर्धारित है, परन्तु इसके लिए नियोक्ता की ओर से स्थायीकरण का आदेश निर्गत कर एवं स्थायीकरण के प्रयोजनों हेतु एक परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए एक विशिष्ट अधिनियम की आवश्यकता होती है। ऐसे मामलों में, भले ही परीक्षा की अधिकतम अवधि समाप्त हो गई हो एवं न तो स्थायीकरण का कोई आदेश पारित किया गया हो एवं न ही संबंधित व्यक्ति ने अपेक्षित परीक्षा उत्तीर्ण किया हो, उसे मात्र इसलिए स्थायी नहीं माना जा सकता क्योंकि उक्त अवधि समाप्त हो गई है।"

मामले के उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में, अपीलकर्ताओं का दृष्टिकोण यह है कि उन्हें 24 मास के अंत में स्थायी माना गया था एवं सुदृढ़ तौर पर स्थायी कर्मचारी थे। 'सेल्समैन स्थायी कर्मचारियों की श्रेणी के तृतीय श्रेणी से

सम्बन्धित हैं। नियम 4 (बी) में दी गई "प्रोबेशनर" की परिभाषा अपीलकर्ताओं के इस दृष्टिकोण का पूर्णतः समर्थन करती है कि परिवीक्षा अवधि कुल मिलाकर 24 मास से अधिक नहीं होगी। इसलिए जैसा कि ओम प्रकाश के मामले, सत्य नारायण झावर के मामले एवं धरम सिंह के मामले (उपरोक्त) में धारित किया गया था, अपीलकर्ताओं को निष्कर्ष के तौर पर स्थायी कर्मचारी माना जाना चाहिए, एवं परिणामस्वरूप उन्हें नियम 35 (बी) के अन्तर्गत लाभ उपलब्ध थे। लेकिन यह धारा 25-एफ के अन्तर्गत देय राशि के अतिरिक्त नहीं होगा। दोनों अर्थात् धारा 25-एफ या नियम 35 (बी) में से जो राशि अधिक होगी, वह अपीलकर्ताओं को भुगतान की जाएगी। यदि धारा 25-एफ के अनुसार कोई राशि पहले ही भुगतान की जा चुकी है, तो उसे नियम 35 (एल) के अन्तर्गत भुगतान करते समय समायोजित किया जाएगा, जो तीन मास के भीतर किया जाएगा। उपरोक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है। कोई लागत नहीं।"

iii) हीरा लाल (उपरोक्त):

"27. हालांकि, यह मानते हुए भी कि अनिवार्यता के नियम एवं पूर्णांकन के सिद्धांत को लागू करके ऐसा एक पद उपलब्ध हो सकता है, पाँच से कम पदों पर 21% आरक्षण का नियम कार्यान्वित नहीं किया जा सकता है। विधि को एक तकनीकी व्यवस्था के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। इसलिए विधिक उपचार को निर्वचन उपकरण के माध्यम से उल्टा दिखाने हेतु नहीं बनाया जा सकता है। न

तो 8 मार्च, 1973 का शासनादेश या उसके बाद के आदेश एवं न ही 1994 के उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 के प्रावधान ऐसे किसी भी प्रस्ताव का समर्थन एवं कल्पना करते हैं जैसा कि राज्य की ओर से प्रस्तुत किया गया है। गणितीय गणना आगे कुछ भी करने पर रोक लगाती है, एवं ऊपर लिखित विधिक सिद्धांत भी ऐसा ही करते हैं। अंकों एवं संख्याओं के खेल को महान गणितज्ञ रामानुजम के सहज विवेक का प्रयोग करके भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है एवं न ही विधि की सर्वोत्तम फॉरेंसिक विरासत के माध्यम से इसे संभव बनाया जा सकता है।

28. रोस्टर का नियम एवं रोस्टर के चालू खाते की अवधारणा तभी प्रारम्भ होगी जब अनुसूचित जाति वर्ग के पक्ष में 21% आरक्षण का लाभ देने के लिए पांच या अधिक पद होंगे। आवश्यक संख्या से नीचे, संख्यात्मक रूप से कम संख्या का आंकड़ा, रोस्टर को प्रभावी करने की अनुमति नहीं देगा, क्योंकि रोस्टर आरक्षण के नियम को लागू करने के लिए है, न कि आरक्षण सृजित करने हेतु एक उपकरण है। जैसा कि शीर्ष न्यायालय के निर्णयों में देखा गया है कि आरक्षण के प्रतिशत एवं रोस्टर की प्रयोज्यता के बीच किसी भी विवाद की स्थिति में, पूर्ववर्ती ही मान्य होगा। इस प्रकार, किसी भी स्थिति में रोस्टर के नियम के भ्रामक या कल्पनाशील अनुप्रयोग द्वारा आरक्षण का प्रतिशत बढ़ाया नहीं जा सकता है। यदि राज्य द्वारा सुझाया गया ऐसा निर्वचन माना जाता है तो यह प्रसिद्ध जर्मन गणितज्ञ लियोपोल्ड क्रोनकर (1823-91) के शब्दों में गलत गणना किए गए प्रमाण के गैर-रचनात्मक अस्तित्व के

समान होगा। विधिक दृष्टि से यह संविधान के आदेश का उल्लंघन होगा एवं प्रोन्नति के मामलों में यह उसके संगत नहीं होगा।"

iv) नेत्रपाल सिंह (सुप्रा):

"8. विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 30.6.2009 के निर्णय द्वारा उपरोक्त सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 33002/2008 को स्वीकार कर लिया एवं जिला विद्यालय निरीक्षक, सहारनपुर द्वारा पारित उक्त आदेश दिनांक 16.6.2008 को खारिज कर दिया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने आगे जिला विद्यालय निरीक्षक, सहारनपुर को निर्देश दिया कि वह संबंधित संस्थान में याचिकाकर्ता-प्रतिवादी संख्या 1 को चतुर्थ श्रेणी पद से तृतीय श्रेणी पद पर प्रोन्नति के संबंध में अनुमोदन स्वीकृत करें। प्रतिवादी संख्या 5-अपीलकर्ता (नेत्र पाल सिंह) ने इसके बाद वर्तमान विशेष अपील दायर की।

14. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय में निर्धारित किया गया है कि प्रोन्नति या सीधी भर्ती के मामलों में, 1994 के उ.प्र. अधिनियम संख्या 4 के अन्तर्गत अनुसूचित जाति को 21 प्रतिशत आरक्षण प्रदान करने वाले आरक्षण के नियम, जैसा कि सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों पर लागू है, को वहाँ सेवा में नहीं लागू किया जा सकता जहाँ संवर्ग में पदों की संख्या पांच से कम है।

15. वर्तमान मामले में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, सहायक लिपिक के संवर्ग में मात्र तीन पद हैं। इसलिए, उपरोक्त पूर्ण पीठ के निर्णय के दृष्टिगत, संबंधित संस्थान में प्रोन्नति कोटा

में आने वाले रिक्त पद के संबंध में अनुसूचित जाति के लिए कोई आरक्षण नहीं हो सकता है। अतः जिला विद्यालय निरीक्षक, सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.6.2008 विधिसंगत नहीं था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 16.6.2008 के उक्त आदेश को उचित विधि से खारिज कर दिया है।"

v) विनोद कुमार (उपरोक्त):

2. यहां अपीलकर्ता आनंद प्रकाश नामक व्यक्ति द्वारा दायर रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 6 था। याचिका में, मामला अपीलकर्ता की प्रोन्नति की वैधता एवं उसकी नियुक्ति को स्वीकृति देने वाले जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा पारित आदेश के संबंध में था। विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय ने, इस निष्कर्ष को दर्ज करने के बाद कि तृतीय श्रेणी के मात्र तीन पद थे, एवं हीरा लाल बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य 2010 (6) ADJ 1 (F.B.):2011 (29) LCD1 में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचार करते हुए धारित किया कि जब तक पदों की संख्या पांच से अधिक न हो तब तक कोई आरक्षण नहीं हो सकता तथा अपीलकर्ता की नियुक्ति को स्वीकृति देने वाले दिनांक 21.06.2010 के आदेश को खारिज कर दिया। विद्वान न्यायाधीश ने संस्थान की प्रबंध समिति को 1921 के उ.प्र. अधिनियम संख्या 11 के अध्याय III के विनियम 2(2) के अन्तर्गत प्राविधानित मापदंडों के अनुसार अधिमानतः आदेश की प्रमाणित प्रति की प्रस्तुति की तिथि से अगले तीन महीनों के भीतर सख्ती से कार्रवाई करने का निर्देश भी निर्गत किया है।

5. इस मामले के दृष्टिगत, जहां तक आरक्षण के प्रतिशत का प्रश्न है, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा हीरा लाल (उपरोक्त) मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को विधि घोषित किया जा सकता है। इसलिए, श्री खरे द्वारा विश्वास व्यक्त किए गए डॉ. नीरज शुक्रा (उपरोक्त) के मामले में खण्डपीठ द्वारा टिप्पणी से अपीलकर्ता को कोई फायदा नहीं होगा।

6. उपरोक्त के आलोक में, हमारे मत में, अपील गुणविहीन है, तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।"

vi) श्रीमती वंदना गंगवार (उपरोक्त):

"4. जिला विद्यालय निरीक्षक द्वारा दिनांक 18.11.2006 को एक अनुपूरक प्रतिशपथपत्र दाखिल किया गया है। अनुलाक-1 से अनुपूरक प्रति शपथपत्र तक एवं इसके साथ-साथ अभिलेख पर उपलब्ध तथ्यों से स्वीकार्य स्थिति यह है कि प्रवक्ता के आठ स्वीकृत पद हैं, जिसका 50% प्रोन्नति के माध्यम से भरना अपेक्षित है, जो कि संख्या में चार होगा। अभिलेख में आगे यह भी स्वीकार किया गया है कि श्यामा देवी शर्मा के देहांत की तिथि अर्थात् 15.6.1995 को, वास्तव में संस्थान में श्यामा देवी शर्मा सहित सात प्रवक्ता काम कर रहे थे। सात व्यक्तियों में से तीन को सीधी भर्ती द्वारा नियुक्त किया गया था एवं एक पद रिक्त था, जिसका अर्थ है कि श्यामा देवी शर्मा के देहांत के कारण जो रिक्ति हुई थी, उसे प्रोन्नति के माध्यम से भरना अपेक्षित था। इस रिक्ति के सापेक्ष

याचिकाकर्ता ने प्रवक्ता के रूप में प्रोन्नति का दावा किया था।

5. हीरा लाल एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य (2010) 2 UPLBEC 1761 के मामले में इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने धारित किया है कि अनुसूचित जाति वर्ग के पक्ष में आरक्षण प्रदान किये जाने हेतु. संबंधित संवर्ग में कम से कम पांच पद होने चाहिए। पूर्ण पीठ ने आगे व्याख्या किया कि जहां रिक्तियों को प्रोन्नति के साथ-साथ सीधी भर्ती से भरने की आवश्यकता होती है, यहां भर्ती के प्रत्येक स्रोत के लिए पदों की संख्या अलग-अलग निर्धारित की जानी चाहिए।

6. उक्त पूर्ण पीठ के निर्णय के दृष्टिगत, यह माना जाना चाहिए कि चूंकि संस्थान में व्याख्याता के संवर्ग में प्रोन्नति कोटा के अन्तर्गत मात्र चार पद हैं, इसलिए अनुसूचित जाति वर्ग के उम्मीदवार हेतु आरक्षण प्रदान नहीं किया जा सकता है। परिणास्वरूप, प्रश्नगत आदेश में निर्दिष्ट कारण विफल हो जाते हैं। अतः प्रश्नगत आदेश खारिज किया जाता है। प्रतिवादी संख्या 3 (संयुक्त शिक्षा निदेशक, बरेली क्षेत्र, बरेली) को अधिनियम, 1982 के अनुसार नियमित प्रोन्नति के दावे पर याचिकाकर्ता का उनके समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल होने की तिथि से अधिमानतः आठ सप्ताह के भीतर पुनर्विचार करने दें। सभी परिणामी कार्रवाई तदनुसार की जाएगी।

vii) विजय सिंह एवं अन्य (सुप्रा):

"9. इसी तरह का दृष्टिकोण भारत संघ बनाम राकेश कुमार, AIR 2001 SC 1877; स्वपन कुमार पाल एवं अन्य बनाम समिताभर चक्रवर्ती एवं अन्य, AIR 2001 SC 2353; खेत सिंह बनाम भारत संघ, (2002) 4 SCC 380; लक्ष्मीनारायण आर. भट्टर एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2003) 5 SCC 413; एवं दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम जोगिंदर एस. मोंगा, (2004) 2 SCC 297 में यह टिप्पणी करते हुए दोहराया गया है कि वैधानिक नियम प्रवर्तनीय अधिकार बनाते हैं जिन्हें कार्यकारी निर्देश जारी करके हटाया नहीं जा सकता।

22. पुनीत राय बनाम दिनेश चौधरी, (2003) 8 SCC 204; भारत संघ बनाम नवीन जिंदल, (2004) 2 SCC 510; एवं केरल राज्य बनाम चंद्र मोहन, (2004) 3 SCC 429, में शीर्ष न्यायालय ने धारित किया कि कार्यकारी निर्देशों को संविधान के अनुच्छेद 13(3) (ए) के अर्थ में विधि नहीं कहा जा सकता है।

23. मैसर्स बिसंबर दयाल चंद्र मोहन बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, AIR 1982 SC 33, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 162 के अन्तर्गत निर्गत कार्यकारी निर्देश का विधि की श्रेणी में न आना धारित करते हुए वैधानिक आदेश तथा कार्यकारी आदेश में अन्तर की व्याख्या की है। हालांकि, यदि किसी आदेश को किसी वैधानिक प्रावधान के रूप में संदर्भित किया जा सकता है एवं उक्त वैधानिक प्रावधान के अन्तर्गत पारित माना जा सकता है, तो यह मात्र एक कार्यकारी आदेश नहीं होगा, बल्कि विधि के अन्तर्गत

वैधानिक महत्व वाला एक आदेश होगा क्योंकि यह एक सकारात्मक राज्य निर्मित विधि होगा। इसलिए, इस परीक्षण हेतु कि क्या किसी आदेश में वैधानिक महत्व है, न्यायालय को यह पता लगाना होगा एवं निर्धारित करना होगा कि क्या इसे विधि के प्रावधान हेतु संदर्भित किया जा सकता है।

30. जॉन वत्वामट्टम एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, AIR 2003 SC 2902, में सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि अनुच्छेद 372 पूर्व-संवैधानिक वैधानिक प्रावधान को संवैधानिक नहीं बनाता है। यह मात्र संविधान के प्रावधानों के अधीन पूर्व-संवैधानिक कानूनों की प्रयोज्यता एवं प्रवर्तनीयता के लिए प्रावधान करता है।

64. उपरोक्त के दृष्टिगत, हम अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कार्यकारी निर्देश जारी कर वैधानिक नियमों को शून्य नहीं किया जा सकता है। लेकिन वर्तमान मामले के तथ्य विधि की उक्त प्रस्थापना को कदापि प्रयोज्य नहीं बनाते हैं। चूंकि यहाँ यह क्षेत्र पहले से ही अधिनियम, 1861 के प्रावधानों द्वारा व्याप्त है, जो संविधान के अनुच्छेद 313 के प्रावधानों के आधार पर लागू है। नियमावली, 1972 को कदापि प्रयोज्य नहीं किया जा सका। अधीनस्थ पुलिस पदों पर भर्ती हेतु अधिकतम आयु निर्धारित करने हेतु निर्गत शासनादेश पूर्णतः अलग क्षेत्र में काम करते हैं एवं नियमावली, 1972 के विरोध में नहीं हैं। यह मामला चंद्र प्रकाश तिवारी (उपरोक्त) एवं सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में स्पष्ट रूप से आवरित किया गया है एवं इस प्रकार, हमारे

लिए कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाना संभव नहीं है। श्री चौधरी द्वारा दिया गया मुख्य तर्क कि नियमावली, 1972 के प्रारंभ से पूर्व-संवैधानिक विधि पूर्णतः निरस्त हो गई है, किसी भी गुण से रहित है। इसलिए प्रश्न संख्या 1 पर हमारा उत्तर यह है कि अधिनियम, 1961 की धारा 2 के प्रावधानों के कारण क्षेत्र अधिकृत था। विधानमंडल ने अधिनियम, 1961 की धारा 2 के प्रावधानों को अधिनियमित करते समय स्वयं वैधानिक प्राधिकारियों को आयु आदि सहित पात्रता निर्धारित करने की शक्ति प्रत्यायोजित की थी, वैधानिक प्राधिकारियों ने बिना किसी विचलन के समय-समय पर प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन किया है।

viii) आर.बी. दीक्षित (उपरोक्त):

"7. उपरोक्त पदानुक्रम में यदि उच्चतर विधि एवं निम्नतर विधि के बीच संघर्ष होता है तो उच्चतर विधि मान्यहोगी। कार्यकारी निर्देश पदानुक्रम में चौथे स्तर का भाग है, जो सबसे निचले स्तर पर है, जबकि एक अधिनियम दूसरे स्तर का भाग है एवं अधिनियम के अन्तर्गत बनाए गए विधि प्रत्यायोजित विधान हैं एवं इसलिए तीसरे स्तर का भाग हैं। दिनांक 31.8.1998 एवं 30.3.1999 के पत्र मात्र कार्यकारी निर्देश हैं एवं इसलिए वे चौथे स्तर से संबंधित हैं। इसलिए वे न तो अधिनियम हैं एवं न ही विधि। इसलिए हमारे मत में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के एक कर्मचारी की सेवानिवृत्ति की आयु धारा 13(2) के अन्तर्गत 60 वर्ष है, न कि 62 वर्ष। इसलिए,

हम राजा राम वर्मा के मामले में निर्णय से ससम्मान असहमत हैं।

8. राजा राम वर्मा के मामले (उपरोक्त) में निर्णय को एतदद्वारा खारिज कर दिया गया है। परिणामस्वरूप रिट याचिका खारिज की जाती है।"

बी) प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किए गए निर्णय:

1) डॉ. विश्वजीत सिंह एवं अन्य (उपरोक्त):

"74. संवर्ग के 4 पदों में, यदि एक पद अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है तो अनुसूचित जाति के लिए आरक्षण 25% होगा जो कि अनुमन्य नहीं है। हालाँकि, यदि एक पद अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षित माना जाता है तो अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण मात्र 25% होगा अर्थात् धारा 3 की उपधारा (1) के अन्तर्गत निर्धारित 27% के भीतर। इस प्रकार, चार पदों में से, एक पद अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए वैध रूप से आरक्षित किया जा सकता है। अब पांच पदों के संवर्ग का एक उदाहरण लिया गया है। चार पांच पद संवर्ग, यदि एक पद अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है, तो वह 20% होगा एवं धारा 3 की उप-धारा (1) के अन्तर्गत निर्धारित 21% के भीतर होगा। अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए एक पद भी पांच संवर्ग में से बहुत अच्छी तरह से आरक्षित किया जा सकता है क्योंकि यह निर्धारित 27% के भीतर होगा। इस प्रकार, अनुसूचित जाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग को आरक्षण देने हेतु, यह स्पष्ट है कि एक संवर्ग में पांच पद होने चाहिए। रोस्टर बिंदु में, पहला

बिंदु जो अनुसूचित जनजाति हेतु आता है, क्रम संख्या 47 पर है। इस प्रकार रोस्टर के अनुसार 47 वें पद पर भी अनुसूचित जनजाति को आरक्षण मिल सकता है। हमारा उपरोक्त दृष्टिकोण आर. एस. गर्ग बनाम उ. प्र. राज्य एवं अन्य, (2006) 6 SCC 430 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पूर्णतः समर्थित है। आर. एस. गर्ग मामले के तथ्य पर थोड़ा विस्तार से ध्यान देने की आवश्यकता है। उपरोक्त निर्णय में अपीलकर्ता एवं प्रतिवादी दोनों सहायक निदेशक के रूप में कार्यरत थे। अपीलकर्ता को वर्ष 1972 में नियुक्त किया गया था जबकि तीसरे प्रतिवादी को 13.1.1987 को तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था। उ.प्र. राज्य में उपनिदेशक कारखाना के छह पद थे, जिनमें से चार पद उप-निदेशक कारखाना (प्रशासन), एक पद उप-निदेशक कारखाना (रसायन) एवं एक पद उप-निदेशक कारखाना (इंजीनियरिंग) नामित किया गया था। कारखानों के सहायक निदेशक का पद फीडर पद था। सरकार ने उपनिदेशक कारखाना (रसायन) के पद को उप निदेशक कारखाना (प्रशासन) में परिवर्तित कर दिया। तीसरे प्रतिवादी को आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में कारखाना (प्रशासन) के उप निदेशक के रूप में प्रोन्नत किया गया था, जिसकी प्रोन्नति को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी गई थी। चुनौती का एक आधार यह था कि अनुसूचित जाति के पदों पर आरक्षण अवैध एवं अनुचित था, क्योंकि प्रोन्नति हेतु आरक्षण का प्रतिशत 21 से 33% तक नहीं बढ़ाया जा सकता था। शीर्ष न्यायालय के समक्ष उठाए गए विवाद को निर्णय के प्रस्तर 6 में निम्नलिखित महत्व हेतु विचार किया गया है:

6. उक्त रिट याचिका को प्रश्नगत निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया था। अपीलकर्ता की ओर से उच्च न्यायालय एवं हमारे समक्ष उठाए गए तर्क इस प्रकार हैं:

(i) तीसरे प्रतिवादी को अवैध रूप से कारखानों के सहायक निदेशक के रूप में नियुक्त किया गया था क्योंकि मामले को लोक सेवा आयोग को संदर्भित किए बिना उसकी सेवाओं को नियमित कर दिया गया था जैसा कि नियमावली 1992 के नियम 5 (iii) के अनुसार आवश्यक था;

(ii) तीसरे प्रतिवादी के पक्ष में पारित प्रोन्नति आदेश दुर्भावनापूर्ण था;

(iii) कारखाना के उप निदेशक (रसायन) के पद को कारखाना के उप निदेशक (प्रशासन) में कथित रूप से परिवर्तित करना 1992 के नियमावली के विरुद्ध था एवं तीसरे प्रतिवादी को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से किया गया था, जो अवैध था;

(iv) तीसरा प्रतिवादी प्रोन्नति के लिए पात्र नहीं था, क्योंकि उसने चयन की तिथि पर, यानी वर्ष 1997 में, नियम 5(iii) के अनुसार 5 वर्ष की मूल सेवा पूर्ण नहीं की थी;

(v) अनुसूचित जाति के पक्ष में पद पर आरक्षण अवैध एवं अनुचित था, जिसके कारण प्रोन्नति में आरक्षण का प्रतिशत 21% से बढ़ाकर 33% कर दिया जाएगा।

(vi) कारखाना उपनिदेशक (प्रशासन) के पद पर पहले से ही आरक्षित वर्ग के एक उम्मीदवार,

जिसका नाम श्री घनश्याम सिंह है, का अधिकार हो चुका है।

ii) नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड एवं अन्य (उपरोक्त):

"इस न्यायालय के हाल ही के कुछ निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, यह धारित किया गया कि राज्य को भारत के संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार नियुक्तियाँ करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसने संघ लोक सेवा आयोग बनाम गिरीश जयंती लाल वाघेला एवं अन्य (2006 (2) SCALE 115] में इस न्यायालय के एक निर्णय को अनुमोदन के साथ निम्नलिखित शर्तों में उद्धृत किया:

"राज्य के अंतर्गत किसी भी पद पर नियुक्ति उचित विज्ञापन के बाद ही की जा सकती है। जिसमें पात्र उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित किए जाएं एवं विशेषज्ञों के एक निकाय या एक विशेष रूप से गठित समिति द्वारा चयन किया जाए, जिसके सदस्य लिखित परीक्षा या साक्षात्कार या कुछ अन्य तर्कसंगत मानदंड के माध्यम से विज्ञापन के परिप्रेक्ष्य में आवेदन करने वाले उम्मीदवारों की परस्पर योग्यता के मूल्यांकन हेतु निष्पक्ष हों। राज्य या संघ के अन्तर्गत किसी पद पर नियमित नियुक्ति निर्धारित प्रकार से विज्ञापन जारी किए बिना नहीं की जा सकती है, जो कुछ मामलों में हो सकता है इसमें रोजगार कार्यालय से आवेदन आमंत्रित करना सम्मिलित हो, जहां पात्र उम्मीदवार अपना नाम पंजीकृत कराते हैं। राज्य या संघ के अन्तर्गत किसी पद पर योग्य उम्मीदवारों से आवेदन आमंत्रित हेतु विज्ञापन

जारी किए बिना एवं उचित चयन, जहां सभी पात्र उम्मीदवारों को प्रतिस्पर्धा करने का उचित अवसर मिलता है, के बिना की गई कोई भी नियमित नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 16 के अन्तर्गत निहित गारंटी का उबंधन होगा।"

यह स्पष्ट रूप से धारित किया गया था: (उमादेवी (3) मामला, SCC p. 35, पैरा 41]

"ये बाध्यकारी निर्णय स्पष्ट अनिवार्यताएं हैं कि सार्वजनिक रोजगार की प्रक्रिया में संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 16 का अनुपालन जरूरी है।"

18. उपरोक्त निर्णयों के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि यदि विधि के अन्तर्गत, परिवीक्षा की अवधि नहीं बढ़ाई जा सकती थी, तो परिवीक्षा की अवधि समाप्त होने पर नियुक्ति स्थायी की गई मानी जाएगी।

19. वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को उचित प्रक्रिया अर्थात लिखित परीक्षा, शॉर्ट-हैंड, टाइपिंग टेस्ट एवं साक्षात्कार के बाद नियुक्ति दी गई है एवं उसके बाद चयन समिति द्वारा याचिकाकर्ता को आशुलिपिक के पद पर नियुक्ति हेतु अनुशंसा की गई थी। इसके बाद, चयन समिति द्वारा की गई अनुशंसा पर, उप निदेशक ने प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष एक नोट प्रस्तुत किया जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि पद सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार के माध्यम से भरा जाना था एवं उसके बाद, याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र निर्गत किया गया था एवं उसे परिवीक्षा अवधि के अन्तर्गत रखा गया, जो उसने सफलतापूर्वक पूर्ण किया। रिट याचिका पर विचार करते हुए, इस

न्यायालय ने 27.06.2002 को एक अंतरिम आदेश दिया, जिसे बाद में 04.07.2002 के आदेश द्वारा संशोधित किया गया एवं उसके अनुपालन में, याचिकाकर्ता सभी कर्तव्यों एवं कार्यों का निर्वहन कर रहा है एवं उसे वेतन का भुगतान किया गया है एवं यह सेवानिवृत्ति के कगार पर है एवं यदि याचिकाकर्ता की नियुक्ति में कोई विसंगति थी, जैसा कि दिनांक 22.06.2002 के बर्खास्तगी आदेश द्वारा उठाया गया था, तो याचिकाकर्ता को नियुक्ति पत्र निर्गत करने से पूर्व आधिकारिक स्तर पर इसका पता लगाया जाना था।

20. याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्रयोज्य नियमों के परिशिष्ट "ख" एवं परिशिष्ट "घ" के अनुसार की गई है एवं उसकी परिवीक्षा अवधि को नहीं बढ़ाया गया है। इसका अर्थ यह है कि उसने परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूर्ण कर ली है। सेवा नियमावली समय की एक निश्चित अवधि निर्धारित करते हैं जिसके बाद परिवीक्षा अवधि को बढ़ाया नहीं जा सकता है एवं परिवीक्षा पर किसी पद पर नियुक्त या प्रोन्नत किए गए कर्मचारी को परिवीक्षा की अधिकतम अवधि पूरी होने के बाद स्थायीकरण के स्पष्ट आदेश के बिना पद पर बने रहने की अनुमति दी जाती है तो निहित रूप से उसे परिवीक्षाधीन पद पर बने रहना नहीं माना जा सकता। इसका कारण यह है कि इस तरह के निहितार्थ को सेवा नियम द्वारा निर्धारित अधिकतम अवधि से परे परिवीक्षा अवधि के विस्तार पर रोक लगाने से नकार दिया जाता है। ऐसे मामले में, यह निष्कर्ष निकालना स्वीकार्य है कि जिस कर्मचारी को परिवीक्षा की अधिकतम अवधि पूर्ण होने पर पद पर बने

रहने की अनुमति दी गई थी, उसे निहितार्थ द्वारा पद पर स्थायी किया गया है।

21. उपरोक्त के दृष्टिगत, यह न्यायालय अपरिहार्य निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कार्यकारी निर्देश निर्गत करके वैधानिक नियमों को शून्य नहीं किया जा सकता है एवं इसलिए, डॉ. विवजीत सिंह एवं अन्य (उपरोक्त) एवं नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में की गई टिप्पणियां, जिस पर प्रतिवादी संख्या 2 ने विश्वास व्यक्त किया है, प्रतिवादियों हेतु लाभकारी नहीं होंगे। इसलिए, दिनांक 22.06.2002 का प्रश्नगत आदेश खारिज किये जाने योग्य है एवं एतद्वारा इसे खारिज किया जाता है।

22. रिट याचिका सफल होती है एवं स्वीकार की जाती है।

23. आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

(2023) 4 ILRA 1163

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 12.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट-ए संख्या 5240/2017

जगदीश नारायण कटियार ...याचिकाकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: संजय कुमार

श्रीवास्तव, प्रहंत चंद्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999, नियम 7(i) नियम

9(4) - निलंबन के दंड आदेश को चुनौती - वर्तमान वाद में जांच अधिकारी द्वारा कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया था। आरोपों के समर्थन में जांच समिति द्वारा जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया, वे सिद्ध नहीं हुए, क्योंकि उन्हें सिद्ध करने के लिए कोई सबूत नहीं पेश किया गया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा नियुक्त जांच समिति नियमावली, 1999 के नियमों के विपरीत थी। नियमावली 1999 के तहत जांच समिति नियुक्त करने के लिए कोई प्रावधान नहीं है। पूरी जांच और अनुशासनात्मक कार्यवाही में गड़बड़ी की गई थी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता की वर्तमान आयु 64 वर्ष है और दो बार आदेश पारित किए गए और दूसरी बार, सजा आदेश पारित करते समय, फिर से 1999 के नियमों के तहत अनिवार्य प्रावधानों का पालन जांच अधिकारी/जांच समिति और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा नहीं किया गया, इसलिए आरोप पत्र का जवाब देने के चरण से ही नए सिरे से जांच करने के राज्य के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया। (पैरा 17, 22)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, एआईआर 2010 एससी 3131
2. जलालुद्दीन अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य सेवा एकल संख्या 5189/1995 दिनांक 9.5.2013

3. अंबिका प्रसाद श्रीवास्तव बनाम राज्य लोक सेवा अधिकरण, लखनऊ एवं अन्य [2004(22) एलसीडी 770

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,
द्वारा प्रदत्त)

1. श्री संजय कुमार, अधिवक्ता, द्वारा सहायता प्राप्त श्री अक्षत कुमार, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता और सुश्री वसुधा सिंह, ब्रीफ होल्डर और श्री राजीव श्रीवास्तव, राज्य के लिए अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के अनुलग्नक 1 और 2 में निहित प्रतिवादी 2 और 3 द्वारा पारित दिनांक 7.11.2016 और 15.11.2016 के आदेशों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट की प्रार्थना की है।

सेवा के बकाया सहित सेवा के सभी परिणामी लाभों के साथ-साथ सेवा के अन्य लाभों के लिए प्रतिवादियों को आदेश देने वाली परमादेश की एक और रिट भी प्रार्थना की गई है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वर्ष 2009-2010 में, जब याचिकाकर्ता सिविल अस्पताल, लिंगीगंज, फर्रुखाबाद के कार्यालय में वरिष्ठ क्लर्क के रूप में तैनात था, तो उसे निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाएं, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा वित्तीय अनियमितताओं के आरोप में दिनांक 22.1.2010 के आदेश के तहत

निलंबित कर दिया गया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 (संक्षेप में, नियमावली 1999) के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। जांच अधिकारी द्वारा दिनांक 6-7-2010 को एक आरोप पत्र जारी किया गया था जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध तीन आरोप लगाए गए थे। आरोप पत्र प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने सभी तीन आरोपों से इनकार करते हुए 30-7-2010 को अपना जवाब प्रस्तुत किया। जांच अधिकारी द्वारा जांच पूरी की गई और प्रतिवादी संख्या-2, यानी निदेशक (प्रशासन) ने जांच रिपोर्ट की प्रति के साथ दिनांक 12.1.2012 को कारण बताओ नोटिस जारी किया। याचिकाकर्ता से उत्तर मांगा गया था जो उसने अपने विरुद्ध लगाए गए सभी आरोपों से इंकार करते हुए दिनांक 28.01.2012 को दिया था। प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा दिनांक 13.4.2012 को बर्खास्तगी का दंड आदेश पारित किया गया था।

बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ, अपीलीय प्राधिकारी, यानी प्रमुख सचिव, चिकित्सा और स्वास्थ्य, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के समक्ष 11.5.2012 को एक अपील दायर की गई थी। अपील का निर्णय प्रतिवादी संख्या-1 द्वारा दिनांक 24.7.2013 के आदेश के तहत खारिज करके किया गया था।

दंड आदेश दिनांक 13.4.2012 और अपीलीय आदेश दिनांक 24.7.2013 को राज्य लोक सेवा अधिकरण के समक्ष दावा याचिका संख्या-854 वर्ष 2014 जगदीश नारायण कटियार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य दायर करके दो आधारों पर चुनौती दी गई थी।

पहला, याचिकाकर्ता को पूर्वोक्त मामले में झूठा फंसाया गया है और दूसरा, विभागीय जांच, जांच अधिकारी द्वारा नियमावली 1999 के अनुसार और सिद्धांत न्याय का उल्लंघन करते हुए नहीं की गई है। ट्रिब्यूनल ने अपने निर्णय और आदेश दिनांक 1.7.2015 के तहत दावा याचिका की अनुमति दी है और दिनांक 13.4.2012 के दंड आदेश और अपीलीय आदेश दिनांक 24.7.2013 को रद्द कर दिया है। निर्णय का ऑपरेटिव हिस्सा नीचे दिया गया है:

"उपरोक्त समीक्षा के प्रकाश में याची ही याचिका स्वीकार की जाती है। दण्डादेश दिनांक 27.04.2012/02.05.2012 (संलग्नक संख्या-ए-1) एवं दिनांक 25.07.2013 (संलग्नक संख्या-ए-2) को निरस्त किया जाता जाता है तथा विपक्षीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय/ आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त होने के 15 दिनों के अन्दर याची के विरुद्ध नियमानुसार विभागीय कार्यवाही हेतु उसे निलम्बन की अवस्था में सेवा में तत्काल प्रभाव से पुनर्स्थापित करें साथ ही सेवा से पदच्युति की तिथि 27.04.2012/02.05.2012 से पुनर्स्थापित किये जाने की तिथि तक की अवधि को याची की निलम्बन कालवधि मानते हुए सेवा में निरंतरता प्रदान करें। उक्त विभागीय जांच कार्यवाही, चूंकि याची द्वारा आरोप पत्र का, उत्तर दिया जा चुका है इसलिए पुनः उससे उत्तर प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है, के स्तर से प्रारंभ करके बचाव का समुचित अवसर प्रदान करते हुए और संबंधित समस्त अभिलेख उपलब्ध कराते हुए इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह में संपूर्ण जांच/

अनुशासनिक कार्यवाही विधिवत पूर्ण करें तथा पुनः की गयी जांच के निष्कर्ष के आधार पर याची के पारिणामिक सेवा लाभों / पैकवेजेज के संबंध में सकारण व मुखरित आदेश द्वारा पारित करना सुनिश्चित करें।

4. दिनांक 1.7.2015 के पूर्वोक्त आदेश द्वारा, प्रतिवादियों को अधिकरण के आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने के भीतर विभागीय कार्यवाही समाप्त करने का निर्देश दिया गया था। इस आदेश दिनांक 1.7.2015 को इस न्यायालय के समक्ष सेवा पीठ संख्या-17226 वर्ष 2016 उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम जगदीश नारायण कटियार एवं अन्य में चुनौती दी गई थी। रिट याचिका दिनांक 2.8.2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई थी। हालांकि, याचिकाकर्ता राज्य यू.पी. को जांच पूरी करने के लिए तीन महीने का समय दिया गया था।

5. अधिकरण के दिनांक 1.7.2015 के निर्णय और आदेश तथा इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 02.08.2016 के आदेश के कथित अनुपालन में एक चार सदस्यीय जांच समिति का गठन किया गया जिसने जांच करने के बाद दिनांक 24.10.2016 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। नतीजतन, अनुबंध संख्या-1 और नोटिस, अनुलग्नक संख्या-2 में निहित आक्षेपित दंड आदेश पारित किया गया है।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि जांच समिति का गठन करने के लिए नियमावली 1999 में कोई प्रावधान नहीं है। नियमावली 1999 की भाषा

सरल है और जांच अधिकारी की नियुक्ति की जानी है, न कि समिति की। पूछताछ की कोई तारीख, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया है। कोई जांच अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता को नियमावली 1999 के नियम 9(4) के तहत यथा अधिदेशित प्रस्तावित दंड आदेश के लिए जांच रिपोर्ट के साथ कोई कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन में पारित किया गया है। अपने तर्क के समर्थन में, अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 3131 में उच्चतम न्यायालय के फैसले और इस न्यायालय द्वारा सेवा एकल संख्या-5189 वर्ष 1995 जलालुद्दीन अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 9.5.2013 पर भरोसा किया है।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि यह दूसरी बार, जानबूझकर, नियमावली 1999 के अनुसार जांच नहीं की गई है, जबकि ट्रिब्यूनल द्वारा अपने निर्णय और आदेश दिनांक 1.7.2015 के माध्यम से केवल उच्च अधिकारियों को बचाने के उद्देश्य से पारित आदेश के बावजूद जो एसबीआई के मुख्य प्रबंधक द्वारा लिखे गए पत्र से स्पष्ट है। (ख) सरकार ने फरूखाबाद के दिनांक 25-03-2010 के पत्र सं 10 (रिट याचिका के संलग्नक सं 10) में यह पुष्टि की है कि तीन चेकों पर आहरण और सवितरण प्राधिकारी के हस्ताक्षर सही पाए गए थे और मुख्य चिकित्सा अधिकारी कार्यालय से कैप्शन-युक्त खाते से चेकों के जाली भुगतान के संबंध

में कोई शिकायत प्राप्त नहीं हुई है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यह उपकरण अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा केवल संबंधित मुख्य चिकित्सा अधिकारी और डिप्टी सीएमओ को बचाने के लिए अपनाया गया है और जानबूझकर दूसरी बार, नियमों के बाहर/उल्लंघन में जांच की गई है।

7. राज्य के स्थायी अधिवक्ता ने याचिका का विरोध किया।

8. याचिकाकर्ता राज्य सरकार का तृतीय श्रेणी का कर्मचारी है और उसकी सेवा शर्तें नियमावली 1999 द्वारा शासित हैं। नियमावली वर्ष 1999 के नियम 3 में छोटी और बड़ी शास्ति का प्रावधान है। प्रमुख दंड में सेवा से हटाना शामिल है। नियमावली वर्ष 1999 के नियम 7 में बड़ी शास्ति लगाने की प्रक्रिया का प्रावधान है जिसमें जांच की जाएगी। नियमावली 1999 का नियम 7 नीचे दिया गया है:

"7-बड़ी शास्ति अधिरोपित करने की प्रक्रिया-किसी सरकारी सेवक पर कोई बड़ी शास्ति अधिरोपित करने से पहले, निम्नलिखित रीति से जांच की जाएगी:

(i) अनुशासनिक प्राधिकारी स्वयं आरोपों की जांच कर सकता है अथवा आरोपों की जांच करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में अपने अधीनस्थ प्राधिकारी को नियुक्त कर सकता है।

(ii) कदाचार का गठन करने वाले तथ्य, जिन पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है, निश्चित आरोप या आरोपों से कम हो जाएंगे जिन्हें आरोप-पत्र कहा जाएगा। परंतु जहां नियुक्ति प्राधिकारी राज्यपाल है वहां आरोप पत्र का अनुमोदन संबंधित विभाग के प्रधान सचिव या सचिव, यथास्थिति, द्वारा किया जा सकेगा।

(iii) लगाया गया आरोप इतना सटीक और स्पष्ट होगा कि आरोपित सरकारी कर्मचारी को उसके विरुद्ध तथ्यों और परिस्थितियों के बारे में पर्याप्त संकेत दिया जा सके। प्रस्तावित दस्तावेजी साक्ष्य और मौखिक साक्ष्य के साथ इसे साबित करने के लिए प्रस्तावित गवाहों के नाम, यदि कोई हों, का उल्लेख आरोप-पत्र में किया जाएगा

(iv) आरोपित सरकारी कर्मचारी से अपेक्षा की जाएगी कि वह एक वनिर्दिष्ट तारीख को व्यक्तिगत रूप से अपने बचाव का लिखित बयान प्रस्तुत करे जो आरोप पत्र जारी होने की तारीख से 15 दिनों से कम न हो और यह बताए कि क्या वह आरोप पत्र में उल्लिखित किसी गवाह से प्रतिपरीक्षा करना चाहता है और क्या वह अपने बचाव में साक्ष्य देना या प्रस्तुत करना चाहता है। उसे यह भी सूचित किया जाएगा कि यदि वह निर्दिष्ट तिथि पर उपस्थित नहीं होता है या लिखित बयान दर्ज नहीं करता है, तो यह माना जाएगा कि उसके पास कोई गड़बड़ी नहीं है और जांच अधिकारी जांच को एक-पक्षीय पूरा करने के लिए आगे बढ़ेगा।

(v) आरोप-पत्र, उसमें उल्लिखित दस्तावेजी साक्ष्य की प्रति और गवाहों की सूची और उनके बयानों, यदि कोई हों, के साथ आरोपित सरकारी सेवक को व्यक्तिगत रूप से या पंजीकृत डाक द्वारा सरकारी अभिलेखों में उल्लिखित पते पर तामील किया जाएगा, यदि आरोप पत्र पूर्वोक्त रीति से तामील नहीं किया जा सका, तो आरोप-पत्र व्यापक प्रसार वाले दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशन द्वारा तामील किया जाएगा:

परन्तु जहां दस्तावेजी साक्ष्य भरमार है वहां आरोप-पत्र के साथ उसकी प्रति प्रस्तुत करने के स्थान पर प्रभारी सरकारी सेवक को जांच अधिकारी के समक्ष उसका निरीक्षण करने की अनुज्ञा दी जाएगी।

(vi) जहां आरोपित सरकारी कर्मचारी उपस्थित होता है और आरोपों को स्वीकार करता है, जांच अधिकारी ऐसी स्वीकारोक्ति के आधार पर अनुशासनिक प्राधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(vii) जहां आरोपित सरकारी सेवक आरोप से इंकार करता है वहां जांच अधिकारी आरोप-परीक्षण में प्रस्तावित गवाहों को बुलाने और प्रभारी सरकारी कर्मचारी की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य रिकार्ड करने की कार्यवाही करेगा जिसे ऐसे साक्षियों से प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाएगा। पूर्वोक्त साक्ष्य को अभिलिखित करने के पश्चात्, जांच अधिकारी उस मौखिक साक्ष्य को बुलाएगा और अभिलिखित करेगा जिसे आरोपित सरकारी

सेवक अपने लिखित वक्तव्य में अपने बचाव में प्रस्तुत करने के लिए चाहता है

(viii) जांच अधिकारी उत्तर प्रदेश विभागीय जांच (साक्षियों की उपस्थिति का प्रवर्तन और दस्तावेजों को प्रस्तुत करना) अधिनियम, 1976 के उपबंधों के अनुसार साक्ष्य देने के लिए किसी गवाह को बुला सकेगा या किसी व्यक्ति से अपने समक्ष दस्तावेज प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा

(ix) जांच अधिकारी सच्चाई का पता लगाने या आरोपों से सुसंगत तथ्यों का समुचित प्रमाण प्राप्त करने की दृष्टि से आरोपित किसी गवाह या आरोपित व्यक्ति से किसी भी समय अपनी इच्छानुसार कोई प्रश्न पूछ सकेगा।

(x) जहां आरोपित सरकारी कर्मचारी जांच में नियत तारीख को या कार्यवाही के किसी चरण पर नोटिस तामील किए जाने या तारीख की जानकारी होने के बावजूद उपस्थित नहीं होता है, वहां जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच करेगा। ऐसे मामले में जांच अधिकारी आरोपित सरकारी कर्मचारी में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करेगा।

(xi) अनुशासनिक प्राधिकारी, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे, आदेश द्वारा, आरोप के समर्थन में अपनी ओर से मामला प्रस्तुत करने के लिए एक सरकारी सेवक या एक कानूनी व्यवसायी को "प्रस्तुतकर्ता अधिकारी" के रूप में जाना जाता है, नियुक्त कर सकेगा।

(xii) सरकारी सेवक अपनी ओर से मामला प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य सरकारी

सेवक की सहायता ले सकता है लेकिन इस प्रयोजन के लिए कानूनी व्यवसायी को नियुक्त नहीं कर सकता है जब तक कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा नियुक्त प्रस्तुतकर्ता अधिकारी मामले की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए अनुशासनात्मक प्राधिकारी का कानूनी व्यवसायी न हो:

बशर्ते कि नियम निम्नलिखित मामलों में लागू नहीं होगा:

(i) जहां किसी व्यक्ति पर आचरण के आधार पर कोई बड़ी शास्ति अधिरोपित की जाती है जिसके कारण उसे आपराधिक आरोप में दोषसिद्धि हुई है; नहीं तो

(ii) जहां अनुशासनिक प्राधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि उसके द्वारा लिखित रूप में अभिलिखित किए जाने के कारण यह युक्तियुक्त रूप से व्यवहार्य नहीं है कि इन नियमों में उपबंधित रीति से जांच की जाए, या

(iii) जहां राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि राज्य की सुरक्षा के हित में, इन नियमों में उपबंधित रीति से जांच कराना समीचीन नहीं है।

9. नियमावली 1999 के नियम 7(i) के अवलोकन से पता चलता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी या तो स्वयं आरोपों की जांच कर सकता है या आरोपों की जांच करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में अपने अधीनस्थ प्राधिकारी को नियुक्त कर सकता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस मामले में

नियम 7(i) के तहत अनिवार्य रूप से कोई जांच अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया है; इसके बजाय एक चार सदस्यीय समिति नियुक्त की गई है जिसके लिए कोई प्रावधान नहीं है। नियम 7(iv) और (v) गवाहों की सूची और उनके बयानों को आरोपित सरकारी कर्मचारी को व्यक्तिगत रूप से या पंजीकृत डाक के माध्यम से देना अनिवार्य करता है।

नियम 7(vii) में प्रावधान है कि जहां आरोपित सरकारी कर्मचारी आरोपों से इनकार करता है, जांच अधिकारी आरोप पत्र में प्रस्तावित गवाहों को बुलाने और आरोपित सरकारी कर्मचारी की उपस्थिति में उनके मौखिक साक्ष्य को रिकॉर्ड करने के लिए आगे बढ़ेगा, जिसे ऐसे गवाहों से जिरह करने का अवसर दिया जाएगा। उपरोक्त साक्ष्य को रिकॉर्ड करने के बाद, जांच अधिकारी मौखिक साक्ष्य को रिकॉर्ड करेगा जो आरोपित सरकारी कर्मचारी अपने लिखित बयान में अपने बचाव में पेश करना चाहता था।

10. बेशक, आरोप पत्र के साथ, प्रस्तावित दस्तावेजी साक्ष्य और मौखिक साक्ष्य के साथ आरोपों को साबित करने के लिए प्रस्तावित गवाहों के नाम इस मामले में नहीं दिए गए हैं जो आरोप पत्र के अवलोकन से स्पष्ट है। जाहिर है, कोई मौखिक जांच नहीं की गई है। चूंकि आरोप पत्र में कोई गवाह प्रस्तावित नहीं किया गया था, परिणामस्वरूप, आरोपों को साबित करने के लिए जांच अधिकारी द्वारा किसी गवाह को नहीं बुलाया गया। याचिकाकर्ता को अपने मौखिक साक्ष्य दर्ज करने के लिए भी नहीं बुलाया गया है। कुल मिलाकर कोई मौखिक सुनवाई नहीं की गई है।

उप नियम (x) में यह भी प्रावधान है कि यदि आरोपित सरकारी सेवक नोटिस तामील होने के बावजूद जांच में निर्धारित तारीख या कार्यवाही के किसी चरण में उपस्थित नहीं होता है, तो भी जांच अधिकारी एकपक्षीय जांच के साथ आगे बढ़ेगा। ऐसे मामले में जांच अधिकारी आरोपित सरकारी कर्मचारी की अनुपस्थिति में आरोप-पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करेगा।

11. इस मामले में, माना जाता है कि जांच के लिए कोई तारीख, समय और स्थान तय नहीं किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि जांच नियमावली 1999 के नियम 7 का घोर उल्लंघन करते हुए की गई है।

12. जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी, नियमावली 1999 के नियम 9(4) में यह प्रावधान है कि यदि अनुशासनिक प्राधिकारी सभी या किसी भी आरोप पर अपने निष्कर्षों के संबंध में यह राय रखता है कि नियम 3 में निर्दिष्ट कोई भी जुर्माना आरोपित सरकारी कर्मचारी पर लगाया जाना चाहिए, तो वह जांच रिपोर्ट और उप नियम (2) के तहत दर्ज उसके निष्कर्षों की एक प्रति आरोपित सरकारी कर्मचारी को देगा और यदि वह उचित निर्दिष्ट समय के भीतर ऐसा चाहता है तो उसे अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। नियम 9(4) के तहत इस अनिवार्य आवश्यकता का भी पालन नहीं किया गया है।

13. सरोज कुमार सिन्हा (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना है कि जांच अधिकारी एक अर्ध न्यायिक प्राधिकरण में

कार्य करता है एक स्वतंत्र अधिनिर्णायक की स्थिति में है। उसे विभाग/अनुशासनिक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। उनका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत सबूतों की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त हैं कि आरोप साबित हुए हैं। निर्णय से प्रासंगिक भाग निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"पूर्वोक्त उप-नियम के अवलोकन से पता चलता है कि जब प्रतिवादी आरोप पत्र का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा था, तो जांच अधिकारी पर जांच में उसकी उपस्थिति के लिए तारीख तय करना अनिवार्य था। यह केवल उस मामले में होता है जब सरकारी कर्मचारी निर्धारित तारीख की सूचना के बावजूद उपस्थित होने में विफल रहता है कि जांच अधिकारी जांच के साथ एकपक्षीय आगे बढ़ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में भी आरोप पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करना जांच अधिकारी के लिए अनिवार्य है। चूंकि सरकारी कर्मचारी अनुपस्थित है, इसलिए वह स्पष्ट रूप से गवाहों की प्रतिपरीक्षा का लाभ खो देगा। लेकिन फिर भी आरोपों को स्थापित करने के लिए विभाग को जांच अधिकारी के समक्ष आवश्यक सबूत पेश करने की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए है ताकि इस आरोप से बचा जा सके कि जांच अधिकारी ने अभियोजक के साथ-साथ न्यायाधीश के रूप में भी काम किया है। अर्ध न्यायिक प्राधिकरण में कार्य करने वाला जांच अधिकारी एक स्वतंत्र न्यायनिर्णायक के पद पर होता है। उसे

विभाग/अनुशासनिक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। उनका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत सबूतों की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त हैं कि आरोप साबित हुए हैं। प्रस्तुत मामले में पूर्वोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेजों को साबित नहीं किया गया है, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता है कि प्रतिवादियों के खिलाफ आरोप साबित हो चुके हैं।

14. इस मामले में, माना जाता है कि किसी भी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है। दस्तावेजों की प्रति न तो याचिकाकर्ता को प्रदान की गई है और न ही इसे प्रमुख मौखिक साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है, इसलिए यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता था कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप साबित हो चुके हैं।

15. जलालुद्दीन अंसारी के मामले (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने यह भी माना है कि मौखिक जांच जरूरी है और प्रमुख मौखिक साक्ष्य के बिना, दस्तावेजी साक्ष्य पर भरोसा करते हुए अपराध साबित नहीं किया जा सकता था। फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:

"उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (उपरोक्त) में माननीय

न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने देखा है कि नियम 7(एक्स) के तहत, यह निम्नानुसार प्रदान किया गया है: "(x) जहां आरोपित सरकारी सेवक जांच में नियत तारीख को या कार्यवाही के किसी भी चरण में उस पर नोटिस की तामील के बावजूद या तारीख की जानकारी होने के बावजूद उपस्थित नहीं होता है, जांच अधिकारी जांच के साथ एकपक्षीय आगे बढ़ेगा। ऐसे मामले में जांच अधिकारी आरोपित सरकारी सेवक की अनुपस्थिति में आरोप-पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करेगा।

27. पूर्वोक्त उप-नियम के एक सरसरी अवलोकन से पता चलता है कि जब प्रतिवादी आरोप पत्र का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा था, तो जांच अधिकारी पर जांच में उसकी उपस्थिति के लिए तारीख तय करना अनिवार्य था। यह केवल उस मामले में होता है जब सरकारी कर्मचारी निर्धारित तारीख की सूचना के बावजूद उपस्थित होने में विफल रहता है कि जांच अधिकारी जांच के साथ एकपक्षीय आगे बढ़ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में भी आरोप पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करना जांच अधिकारी के लिए अनिवार्य है। चूंकि सरकारी कर्मचारी अनुपस्थित है, इसलिए वह स्पष्ट रूप से गवाहों की प्रतिपरीक्षा का लाभ खो देगा। लेकिन फिर भी आरोपों को स्थापित करने के लिए विभाग को जांच अधिकारी के समक्ष आवश्यक सबूत पेश करने की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए है ताकि इस आरोप से बचा जा सके कि जांच अधिकारी ने अभियोजक के

साथ-साथ न्यायाधीश के रूप में भी काम किया है।

28. अर्ध न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करने वाला एक जांच अधिकारी एक स्वतंत्र अधिनिर्णायक की स्थिति में है। उसे विभाग/अनुशासनिक प्राधिकारी/सरकार का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। उनका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत सबूतों की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त हैं कि आरोप साबित हुए हैं। प्रस्तुत मामले में पूर्वोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि किसी मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेजों को साबित नहीं किया गया है, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता है कि प्रतिवादियों के खिलाफ आरोप साबित हो चुके हैं।

अब्दुल सलाम के मामले (उपरोक्त) में इस अदालत की डिवीजन बेंच ने भी निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"15. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की मांग है कि दोषी अधिकारी द्वारा गवाह को बुलाने के लिए एक आवेदन पर जांच अधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए। जांच अधिकारी की ओर से उक्त आवेदन में आदेश पारित करना अनिवार्य था। वह इस पर विचार करने से इनकार नहीं कर सकता था। यह तर्क देना रेल प्रशासन का काम नहीं है कि यह उन्हें विचार करना है कि उसके द्वारा किसी गवाह की जांच की जानी चाहिए या नहीं। इस पर जांच अधिकारी को निर्णय लेना था। एक अनुशासनात्मक कार्यवाही

निष्पक्ष रूप से आयोजित की जानी चाहिए। एक जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण है। इसलिए, उसे अपने कार्यों को निष्पक्ष और यथोचित रूप से करना चाहिए जो अन्यथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता है।

रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक के मामले में, विभागीय जांच के मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के महत्व पर बल देते हुए माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है

"14. निर्विवाद रूप से, एक विभागीय कार्यवाही एक अर्ध न्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित किया जाना चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी अभियुक्तों के विरुद्ध जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनिक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह से पूछताछ नहीं की गई। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उसकी सामग्री को साबित नहीं किया। जांच अधिकारी द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट पर भरोसा किया गया था जिसे साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता था।

15. हमने यहां पहले भी देखा है कि एकमात्र बुनियादी सबूत जिस पर जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किया गया है, वह पुलिस के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा की गई कथित स्वीकारोक्ति

थी। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे थाना में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त स्वीकारोक्ति को साबित किया जाना चाहिए था। यह दिखाने के लिए कुछ सबूत रिकॉर्ड पर लाए जाने चाहिए थे कि वह बैंक ड्राफ्ट बुक चोरी करने में लिप्त था। बेशक, कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था। रिपोर्ट के भाव से पता चलता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं बचा था।

श्रीमती राजवती शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति प्रदीप कांत) सदस्य थे, ने उस मामले में भी एक पूर्ण विभागीय जांच आयोजित करने की आवश्यकता पर जोर दिया, जहां आरोपित कर्मचारी ने अपने बयान में स्वीकार किया था कि उसके कब्जे में कुछ फाइलों का नुकसान हुआ है, निम्नानुसार देखा गया:

"12. प्रस्तुत मामले में कर्मचारी ने केवल अपने जवाब में, 14 फाइलों के नुकसान के बारे में तथ्य का बयान दिया। चूंकि फाइलें गुम हो गई थीं, इसलिए आरोपित कर्मचारी सहित किसी भी व्यक्ति द्वारा उक्त तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता था। प्रश्न यह था कि क्या श्रीकृष्ण फाइल खोने के लिए जिम्मेदार थे या वे किसी दुराचार के दोषी थे। यह भी संभव

है कि यदि जांच की गई होती, तो परिस्थितियाँ सामने आ सकती थीं, जिससे यह स्थापित हो सकता था कि भले ही फाइलें गुम हो गई थीं जिन्हें मृत कर्मचारी की हिरासत में होना चाहिए था, लेकिन फिर भी बड़ी सजा नहीं देने के लिए कुछ वैध बचाव या शमन परिस्थितियाँ थीं या यह पता लगाने पर कि उसके लिए कोई गलती नहीं की जा सकती है। हो सकता है कि उसे दोषमुक्त कर दिया गया हो।

गोविंद लाल श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने, जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति प्रदीप कांत) सदस्य थे, निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"12. यह कानून का प्रमुख सिद्धांत है कि घरेलू जांच में दोषी अधिकारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को विभाग द्वारा स्वयं साबित किया जाना चाहिए, वह भी रिकॉर्ड पर सामग्री से और यदि आवश्यक हो, तो साक्ष्य प्रस्तुत करके। ऐसा करने में, जांच अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह दोषी अधिकारी को ऐसे सबूतों का खंडन करने या ऐसे साक्ष्य को रखने का अवसर दे, जो विभाग के मामले को गलत साबित कर सकता है या झूठ बोल सकता है। संक्षेप में, दोषी अधिकारी को विभाग के मामले को ध्वस्त करने या अपनी बेगुनाही साबित करने का अधिकार है, लेकिन किसी भी मामले में दोषी अधिकारी को विभाग की एजेंसी के माध्यम से जांच अधिकारी द्वारा सबूत के लिए रखे जाने से पहले आरोपों को खारिज करने की आवश्यकता

नहीं है। पूर्ववर्ती जांच अधिकारी द्वारा जारी पत्र में केवल यह कहा गया है कि यदि याचिकाकर्ता व्यक्तिगत सुनवाई करना चाहता है तो वह 20.10.1992 को उसके समक्ष उपस्थित हो सकता है। यह समझना कठिन है कि जांच अधिकारी का व्यक्तिगत सुनवाई कहने से क्या अभिप्राय था, क्या इसमें साक्ष्य प्रस्तुत करने का अधिकार, प्रतिपरीक्षा का अधिकार शामिल था और क्या इसमें यह भी संकेत दिया गया था कि किसी गवाह की उस तारीख को जांच की जाएगी या दस्तावेजी साक्ष्य, जो अभिलेख में है या अभिलेख की जांच की जाएगी और किस संबंध में व्यक्तिगत सुनवाई की जाएगी। किसी भी कार्यवाही में जहां बचाव का अधिकार या आरोप स्थापित करने का दायित्व शामिल है, तारीख, समय या स्थान और जिस उद्देश्य के लिए तारीख तय की गई है, उसके बारे में स्पष्ट आदेश और सूचना उस अधिकारी द्वारा दी जानी चाहिए, जो जांच कर रहा है। अपराधी को शायद ही पता होगा कि उसे जांच अधिकारी के समक्ष क्या उत्तर और कौन से अतिरिक्त तथ्य बताने चाहिए, जब आरोपों को साबित करने के लिए नहीं कहा जा रहा है और आरोपों को साबित करने के लिए उठाए जा रहे कदमों से पहले भी। यह केवल तभी होता है जब आरोपों को साबित करने की मांग की जाती है कि अपराधी को इसका खंडन करने और रद्द करने का अधिकार है।

13. घरेलू जांच की प्रक्रिया को हमारे द्वारा विस्तृत किए जाने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि एक जांच तब शुरू होती है जब आरोप पत्र

जारी किया जाता है, दोषी अधिकारी द्वारा उत्तर प्रस्तुत किया जाना आवश्यक होता है। यदि दस्तावेजों का उल्लेख आरोप पत्र में किया गया है लेकिन इसकी प्रतियां आरोप पत्र के साथ संलग्न नहीं की गई हैं, या दस्तावेज, जिन पर आरोप साबित होने की संभावना है और यदि कुछ दस्तावेजों की प्रति प्रदान नहीं की जा सकती है तो अपराधी दस्तावेजों के लिए पूछने के लिए स्वतंत्र है। ऐसे दस्तावेजों के निरीक्षण का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। दस्तावेजों के निरीक्षण का अवसर इस तरह से प्रदान किया जाना चाहिए कि आरोपित अधिकारी को रिकॉर्ड तक स्वतंत्र पहुंच हो और जिसके लिए तारीख, समय और स्थान तय करना पड़े। उपर्युक्त चरणों के समाप्त होने के बाद ही, दोषी अधिकारी द्वारा उत्तर प्रस्तुत किया जाता है और उत्तर प्राप्त होने पर, यदि जांच अधिकारी यह पाता है कि आरोपों से इनकार किया गया है या दूसरे शब्दों में, उन्हें स्वीकार नहीं किया गया है, तो जांच अधिकारी पर जांच के साथ आगे बढ़ने का दायित्व है। यहां तक कि आरोप पत्र का उत्तर प्रस्तुत न करना या गवाह या साक्ष्य पेश करने का अवसर नहीं मांगना भी अपने आप में यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि अपराधी द्वारा अवसर का लाभ नहीं उठाया गया था, हालांकि दिया गया था। जांच अधिकारी, तारीख, समय और स्थान पर, जिसे उसके द्वारा निर्धारित किया जाना है और दोषी अधिकारी को सूचित किया जाना है, को पहले विभाग को ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करके आरोपों को साबित करने के लिए कहकर जांच के साथ आगे बढ़ना होगा, जो इस उद्देश्य के लिए आवश्यक हो सकते हैं और दस्तावेजों पर उत्तर

दे सकते हैं, जो प्रासंगिक हो सकते हैं और उसके बाद अपराधी को इस प्रकार पेश किए गए गवाहों से जिरह करने का अवसर देना होगा या किसी भी गवाह को पेश करें या खंडन में कोई सबूत पेश करें। दोषी अधिकारी को जांच अधिकारी को यह दिखाने का भी अधिकार है कि जिस साक्ष्य पर भरोसा करने की मांग की गई है, वह या तो स्वीकार्य है या सुनी-सुनाई है या किसी अन्य वैध कारण से उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। निस्संदेह, यदि जांच अधिकारी उत्तर प्राप्त होने के बाद तारीख, समय और स्थान निर्धारित करता है और जांच में उपस्थित होने और भाग लेने के लिए अपराधी को सूचित करता है लेकिन तब भी अपराधी उपस्थित नहीं होता है, तो उसकी अनुपस्थिति में जांच को आगे बढ़ाया जा सकता है, जो हालांकि एक पक्षीय जांच हो सकती है लेकिन इस आधार पर दूषित नहीं होगी कि अवसर नहीं दिया गया था या यदि अवसर नहीं दिया गया था तो अपराधी द्वारा इसका लाभ नहीं उठाया गया था। इस तरह के मामले में जहां एकपक्षीय जांच की जानी है, जांच अधिकारी अभी भी रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य/सामग्री से आरोपों को साबित कराने से मुक्त नहीं है।

अंबिका प्रसाद श्रीवास्तव बनाम राज्य लोक सेवा अधिकरण, लखनऊ और अन्य के मामले में, इस न्यायालय की खंडपीठ में, जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति प्रदीप कांत) सदस्य थे, विभागीय जांच में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के महत्व पर जोर देते हुए निम्नानुसार अवधारित किया गया:

"इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता को जांच में भाग लेने का कोई अवसर नहीं दिया गया था और उसे जांच करने की तारीख, समय और स्थान के बारे में सूचित नहीं किया गया था और न ही उसके द्वारा मांगे गए दस्तावेजों की आपूर्ति की गई थी, और जांच रिपोर्ट केवल याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर आधारित थी। हम पाते हैं कि अधिकरण द्वारा अन्यथा लिया गया दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत है। पूरी कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन और याचिकाकर्ता को अवसर नहीं देने के लिए दूषित है।"

यह ऐसा मामला नहीं है जहां किसी मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि केवल दस्तावेजों पर भरोसा करके अपराध साबित नहीं किया जा सकता था। यदि आरोपों के समर्थन में गवाहों की जांच करने की आवश्यकता नहीं थी, तब भी यह जांच अधिकारी के लिए अनिवार्य था कि वह मौखिक जांच करने के लिए अपराधी द्वारा आरोप-पत्र का जवाब प्रस्तुत करने के बाद तारीख, समय और स्थान तय करता ताकि दोषी कर्मचारी की उपस्थिति में आरोपों के समर्थन में दायर सबूतों का मूल्यांकन किया जा सके और विभाग को कथित आरोपों को साबित करने के लिए कहा जा सके। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस तरह की कवायद प्रस्तुत मामले में जांच अधिकारी द्वारा नहीं की गई थी। उपरोक्त के मद्देनजर, मेरी राय है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई विभागीय जांच, जिसके आधार पर सेवा से बर्खास्तगी की सजा दी

गई थी, माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के अनुसार नहीं थी, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। इसमें नैसर्गिक न्याय के नियमों का स्पष्ट उल्लंघन है।

उपर्युक्त चर्चाओं को देखते हुए रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी को रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता की आयु 49 वर्ष थी जैसा कि रिट याचिका में उल्लेख किया गया था जब यह रिट याचिका वर्ष 1995 में दायर की गई थी। उन्होंने लगभग 9 वर्ष पहले अधिवषता की आयु प्राप्त की होगी। मुझे यह उचित मामला नहीं लगता जहां नए सिरे से जांच शुरू करने की स्वतंत्रता दी जा सके। मैं तदनुसार निर्देश देता हूं कि याचिकाकर्ता को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से 90 दिनों के भीतर सेवानिवृत्ति की तारीख तक सेवा से बर्खास्त रहने की अवधि के लिए सभी सेवानिवृत्ति बकाया और 50 प्रतिशत वेतन का भुगतान किया जाएगा। ऐसा मानते हुए मैं भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य बनाम राम पाल सिंह बिसेन, (2010) 4 एस.सी.सी. 491 और अंबिका प्रसाद श्रीवास्तव बनाम राज्य लोक सेवा अधिकरण, लखनऊ और अन्य [2004 (22) एलसीडी 770] के मामले में माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून पर भरोसा करता हूं। "

16. अंबिका प्रसाद श्रीवास्तव बनाम राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण, लखनऊ और अन्य [2004 (22) एलसीडी 770] में एक अन्य फैसले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने

माना है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन और याचिकाकर्ता को अवसर नहीं देने के कारण पूरी कार्यवाही समाप्त हो गई है। उस मामले में, याचिकाकर्ता को जांच करने की तारीख, समय और स्थान के बारे में सूचित नहीं किया गया था और न ही उसके द्वारा मांगे गए दस्तावेजों की आपूर्ति की गई थी, और जांच रिपोर्ट केवल याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर पर आधारित थी।

17. बेशक, प्रस्तुत मामले में, जांच अधिकारी द्वारा कोई तारीख, समय और स्थान तय नहीं किया गया था। आरोपों के समर्थन में जांच समिति ने जिन दस्तावेजों को आधार बनाया है, वे भी साबित नहीं हुए हैं क्योंकि इन्हें साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं मिला है। अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा नियुक्त जांच समिति को भी नियमावली वर्ष 1999 का उल्लंघन किया गया था। नियमावली, 1999 के अंतर्गत जांच समिति नियुक्त करने का कोई प्रावधान नहीं है। पूरी जांच और अनुशासनात्मक कार्यवाही विफल रही है।

18. निर्णय के साथ भाग लेने से पहले, इस अदालत ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने हालांकि माना है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं, हालांकि, निष्कासन आदेश पारित करने के बजाय 22.1.2011 की पूर्व जांच रिपोर्ट और 13.4.2012 के दंड आदेश पर भरोसा किया है जिसे पहले ही ट्रिब्यूनल द्वारा रद्द कर दिया गया था। प्रतिवादी संख्या-2 ने फिर से आक्षेपित आदेश को बहुत ही आकस्मिक तरीके

से और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ-साथ ट्रिब्यूनल के 1.7.2015 के फैसले का उल्लंघन करते हुए पारित किया है।

19. इस स्तर पर, श्री राजीव श्रीवास्तव, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, सुश्री वसुधा, ब्रीफ होल्डर द्वारा सहायता प्रदान की गई है कि यह वित्तीय गबन का मामला है और इसलिए राज्य को इस मामले में नए सिरे से जांच करने का एक और अवसर दिया जा सकता है, जिस चरण से याचिकाकर्ता ने आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत किया था।

20. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने राज्य के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रार्थना का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता सेवा से सेवानिवृत्त हो गया है। वर्तमान में उनकी उम्र 64 साल है। निलंबन आदेश वर्ष 2010 में पारित किया गया था। ट्रिब्यूनल ने पहले ही राज्य को अपने निर्णय और आदेश दिनांक 1.7.2015 के माध्यम से नए सिरे से जांच करने का पर्याप्त अवसर दिया है और मामले को रिमांड पर भेज दिया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि न्यायाधिकरण द्वारा अवसर दिए जाने के बाद भी प्रतिवादी ने लापरवाही से जांच की है और याचिकाकर्ता के नुकसान के लिए सजा का आदेश पारित किया है। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या-2 के कठोर रवैये के कारण, जिसने दो बार नियमावली 1999 के अनुसार उचित जांच नहीं की है, दूसरी बार नियमावली 1999 की अवहेलना करते हुए सजा का आदेश पारित किया है। इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता की उम्र और दो मौकों पर

प्रतिवादी संख्या-2 के आचरण को ध्यान में रखते हुए, डि-नोवो जांच के लिए प्रार्थना को अस्वीकार किया जा सकता है।

अपने तर्क के समर्थन में, अधिवक्ता ने अंबिका प्रसाद श्रीवास्तव और जलालुद्दीन अंसारी (उपरोक्त) में फैसले पर भरोसा किया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि उन मामलों में नए सिरे से जांच से इनकार कर दिया गया था और जलालुद्दीन अंसारी (उपरोक्त) के फैसले के खिलाफ, राज्य ने विशेष अपील संख्या-160 वर्ष 2014 दायर की है, जिसका फैसला 28.3.2014 को उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जलालुद्दीन अंसारी में, केवल सीमित आधार पर कि उन्हें नए सिरे से जांच के लिए अनुमति दी जा सकती है, किया गया था। तथापि, खण्ड न्यायपीठ ने दिनांक 28.03.2014 के अपने निर्णय और आदेश के तहत जांच अधिकारी के आचरण के संबंध में माननीय न्यायमूर्ति एकल न्यायाधीश द्वारा पर्याप्त कारण दिए जाने और इस तथ्य के कारण कि उस मामले का याचिकाकर्ता सेवा से सेवानिवृत्त हो गया था, राज्य को ऐसा करने से मना कर दिया है। आदेश दिनांक 28.3.2014 (उपरोक्त) नीचे दिया गया है:

"यह विशेष अपील सेवा से बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ प्रतिवादी जलालुद्दीन अंसारी द्वारा दायर रिट याचिका संख्या-5189 (एस/एस) वर्ष 1995 में माननीय न्यायमूर्ति एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 09.05.2013 के आदेश को चुनौती देती है।

अपीलकर्ताओं की ओर से पेश होने वाले स्थायी अधिवक्ता ने इस विशेष अपील में आक्षेपित आदेश को एकमात्र आधार पर चुनौती

दी है कि माननीय न्यायमूर्ति एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका की अनुमति देते हुए और प्रतिवादी-जलालुद्दीन अंसारी की सेवा से बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करते हुए अपीलकर्ताओं को उस चरण से नए सिरे से जांच को आगे बढ़ाने की कोई स्वतंत्रता नहीं दी है, जहां इसे दूषित पाया गया था। इसलिए, आक्षेपित आदेश को जांच के साथ आगे बढ़ने के लिए अपीलकर्ताओं को अनुमति देने या खुला रखने की सीमा तक संशोधन की आवश्यकता है।

माननीय न्यायमूर्ति एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के अवलोकन पर, यह निष्कर्ष निकलेगा कि स्वतंत्रता प्रदान न करने के लिए माननीय न्यायमूर्ति एकल न्यायाधीश ने पर्याप्त कारण दिए हैं जिनके लिए हम अपनी सहमति व्यक्त करते हैं।

तदनुसार, इस विशेष अपील में कोई हस्तक्षेप वांछित नहीं है। इसे खारिज किया जाता है। यह विशेष अपील सेवा से बर्खास्तगी के आदेश के खिलाफ प्रतिवादी-जलालुद्दीन अंसारी द्वारा दायर रिट याचिका संख्या-5189 (एस/एस) वर्ष 1995 में माननीय न्यायमूर्ति एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 09.05.2013 के आदेश को चुनौती देती है।

21. यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ता को 22.1.2010 को निलंबित कर दिया गया था। वह 1.7.2015 को ट्रिब्यूनल द्वारा निर्णय पारित करने तक निलंबित रहे। उन्होंने कहा कि याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने के ट्रिब्यूनल के निर्देश के बावजूद, याचिकाकर्ता को कभी भी बहाल नहीं किया गया था और उसे सेवा से बाहर रखा

गया था और फिर से दूसरी बार निलंबन आदेश पारित किया गया है। याचिकाकर्ता 2010 से सेवा से बाहर है। इन आधारों पर, यह प्रार्थना की जाती है कि नए सिरे से जांच के लिए राज्य के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया जाए।

अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि याचिकाकर्ता भारतीय जीवन बीमा निगम में उच्चतम न्यायलय के फैसले और एक अन्य बनाम राम पाल सिंह बिसेन (2010) 4 एस.सी.सी. 491 और अंबिका प्रसाद श्रीवास्तव बनाम राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण, लखनऊ और अन्य [2004 (22) एलसीडी 770] के मामले में भी जलालुद्दीन अंसारी (उपरोक्त) में इस अदालत द्वारा पारित निर्णय और आदेश के आलोक में कम से कम 50% वापस वेतन का हकदार है।

22. पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतिकरण पर उचित विचार करने पर, ऊपर संदर्भित निर्णय (निर्णयों) और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याचिकाकर्ता वर्तमान में 64 वर्ष का है और दो बार आदेश पारित किए गए हैं और दूसरी बार, सजा आदेश पारित करते समय, फिर से नियमावली 1999 के तहत अनिवार्य प्रावधान का पालन जांच अधिकारी/जांच समिति के साथ-साथ अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा नहीं किया गया है, इसलिए, आरोप पत्र का जवाब देने के चरण से नए सिरे से जांच करने के राज्य के अनुरोध को अस्वीकार किया जाता है।

23. याचिका को अनुमति दी जाती है। निदेशक (प्रशासन), चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा, उत्तर

प्रदेश लखनऊ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 7.11.2016 और मुख्य चिकित्सा अधिकारी, फर्रुखाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.11.2016 को निरस्त किया जाता है। रिट याचिकाकर्ता पहले ही सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर चुका है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, यह उचित नहीं है कि प्रतिवादी के लिए नए सिरे से जांच करने के लिए इसे खोला जाए। यह निर्देश दिया जाता है कि याचिकाकर्ता को इस आदेश की एक प्रति के उत्पादन के तीन महीने के भीतर अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख तक सेवा से बर्खास्त रहने की अवधि के लिए सभी सेवानिवृत्ति देय और 50% वेतन का भुगतान किया जाएगा।

12.4.2023

(2023) 4 ILRA 1175

मूल क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह,

रिट-ए संख्या 8335/2022

और

रिट-ए संख्या 7022/2022

देश राज सिंह एवं अन्य ..याचिकाकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: मीनाक्षी सिंह
परिहार, दीपक सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी.

सिविल कानून - सेवा कानून -भर्ती -
सार्वजनिक परीक्षा - भारतीय संविधान,

अनुच्छेद 14, 16 - सार्वजनिक रोजगार के लिए भर्ती नियमों और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के आदेशों के अनुसार चयन निष्पक्ष, निष्पक्ष और पारदर्शी होना चाहिए। व्यवस्थित अनियमितताएं, भ्रष्टाचार और कदाचार चयन प्रक्रिया को दूषित करते हैं, जो अनुच्छेद 14 और 16 में निहित समानता खंड का उल्लंघन करते हैं। सार्वजनिक पदों के लिए कोई भी भर्ती प्रक्रिया संदेह और कदाचार से परे होनी चाहिए। यदि प्रक्रिया पवित्रता और निष्पक्षता को कमजोर करती है, तो यह दूषित हो जाती है और इसे निरस्त कर दिया जाना चाहिए। (पैरा 46)

सिविल विधि - सेवा कानून - नियुक्ति - सिंचाई विभाग जिलेदारों की सेवा नियम, 1963 - जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018 - याचिकाकर्ताओं ने परीक्षा परिणाम निरस्त करने और जिलेदार के पद पर पदोन्नति के लिए नए सिरे से परीक्षा आयोजित करने के आदेश को चुनौती दी, यह तर्क देते हुए कि यह उन उम्मीदवारों के साथ गंभीर अन्याय होगा, जिन्होंने कदाचार में लिप्त नहीं थे और योग्यता के आधार पर योग्य थे। आयोजित, परीक्षा के लिए जिम्मेदार तीन सदस्यीय समिति को बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और व्यवस्थित अनियमितताओं की अनुमति देने का दोषी पाया गया। अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ की गई, और उनके खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई। रिपोर्टों ने संकेत दिया कि कदाचार में सम्मिलित उम्मीदवारों को दूसरों से अलग करने का कोई तरीका नहीं है, जिसमें गंभीर कमियां परीक्षा की

वैधता को कमजोर करती हैं। इसलिए, पूरी परीक्षा रद्द करने का सरकार का निर्णय न तो तर्कहीन था और न ही मनमाना था। (पैरा 50)

रिट याचिका निरस्त (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. सचिन कुमार एवं अन्य बनाम दिल्ली अधीनस्थ सेवाएं: (2021) 4 एससीसी 631

(माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी सिंह परिहार की सहायता से श्री एच.जी.एस. परिहार, वरिष्ठ अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री पी.के. खरे की सहायता से श्री रमेश कुमार सिंह, अतिरिक्त महाधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिकाएं, सिंचाई विभाग जिलेदार सेवा नियम, 1963 (जिसे आगे नियम, 1963 कहा जाएगा) के अनुसार आयोजित "जिलेदारी योग्यता परीक्षा 2018" के 26.11.2018 को घोषित परिणाम के संबंध में योजित की गई हैं, जो सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग में कार्यरत स्थायी सींच पर्यवेक्षक से पदोन्नति के लिए नियम, 1963 के नियम 6 के तहत निर्धारित पात्रता शर्त को पूरा करता है, अर्थात् उसको स्थायी सींच पर्यवेक्षक होना चाहिए और लगातार सींच पर्यवेक्षक के रूप में काम किया होना चाहिए,

7 साल की मौलिक सेवाएं होनी चाहिए और नियम, 1963 के नियम 15 के तहत निर्धारित परीक्षा उत्तीर्ण होनी चाहिए।

3. इंजीनियर-इन-चीफ, विभागाध्यक्ष, सिंचाई एवं जल संसाधन द्वारा जारी कार्यालय आदेश दिनांक 06.08.2018 और 24.10.2018 द्वारा तीन सदस्यीय परीक्षा समिति का गठन नियम, 1963 के अनुसार "जिलेदारी अर्हता परीक्षा, 2018" आयोजित करने के लिए किया गया। उक्त परीक्षा का परिणाम 26.11.2018 को घोषित किया गया।

4. उक्त अर्हता परीक्षा के संबंध में घोर और संगठित अनियमितताओं और बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार के बारे में कई शिकायतें प्राप्त हुईं। इस संबंध में कई रिपोर्ट समाचार पत्रों और सोशल मीडिया पर प्रकाशित हुईं। जो शिकायतें प्राप्त हुईं, वे मुख्य रूप से परीक्षा में कदाचार और भ्रष्टाचार के संबंध में थीं, जैसे कि अर्हता परीक्षा में उत्तीर्ण कराने के लिए विभिन्न उम्मीदवारों से अवैध रिश्तों की मांग करना और ग्रहण करना।

5. इंजीनियर-इन-चीफ, विभागाध्यक्ष, सिंचाई और जल संसाधन ने इन शिकायतों और रिपोर्टों पर विचार करते हुए, जिसमें परीक्षा प्रक्रिया की पवित्रता, निष्पक्षता और पारदर्शिता संदिग्ध हो गई, 29.11.2018 को एक जांच समिति गठित की।

6. परीक्षा समिति के सदस्यों में से एक, राज कुमार गंगवार, उप राजस्व अधिकारी, कानपुर मंडल के खिलाफ कई शिकायतें थीं।

7. जांच समिति ने 24.01.2019 को अपनी रिपोर्ट इंजीनियर-इन-चीफ को सौंप दी और "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" में घोर अनियमितता, कदाचार और भ्रष्टाचार के संबंध में आरोप सही पाए गए। परीक्षा समिति के सदस्य श्री राज कुमार गंगवार को निलंबित कर दिया गया।

8. ऐसा प्रतीत होता है कि श्री हर प्रसाद, मुख्य अभियंता की अध्यक्षता में एक अन्य दो सदस्यीय समिति ने "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" के आयोजन में घोर अनियमितता, कदाचार और भ्रष्टाचार के संबंध में 15.02.2019 को इंजीनियर-इन-चीफ को अपनी रिपोर्ट सौंप दी।

9. इन दोनों जांच रिपोर्टों पर विचार करते हुए, जो परीक्षा की पवित्रता और निष्पक्षता को बहुत संदिग्ध बनाती हैं, "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" के दिनांक 26.11.2018 के परिणाम को इंजीनियर-इन-चीफ, विभागाध्यक्ष, सिंचाई और जल संसाधन, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा कार्यालय आदेश दिनांक 26.07.2019 द्वारा रद्द कर दिया गया था।

10. इंजीनियर-इन-चीफ ने दिनांक 02.09.2019 के पत्र के माध्यम से राज्य सरकार को दिनांक 15.02.2019 की जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" के संचालन के लिए जिम्मेदार परीक्षा समिति के अध्यक्ष और सदस्यों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही की सिफारिश की गई थी।

11. भ्रष्टाचार व घोर अनियमितताओं से परीक्षा की पवित्रता, वैधता और निष्पक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के कारण, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियम, 1999 के नियम 7 के अंतर्गत आदेश दिनांक 19.02.2020 द्वारा श्री रामेश्वर कुमार मिश्रा, अध्यक्ष, रामराज और राज कुमार गंगवार, परीक्षा समिति के सदस्यों को निलंबित करते हुए अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारम्भ करने का निर्णय लिया।

12. कई सींच पर्यवेक्षकों ने रिट ए संख्या-1965/2021, धर्मेन्द्र कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य इस न्यायालय के समक्ष इलाहाबाद में निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ योजित की:

"(क) परमादेश के प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश, जो प्रतिवादियों को आदेश और निर्देश दे कि वे सेवा नियम, 1963 के परिशिष्ट बी के नियम 2 के अनुसार यथाशीघ्र जिलेदार के पद पर पदोन्नति के लिए अर्हता परीक्षा आयोजित करें।

(ख) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश, जो किसी अन्य राहत के लिए हो, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित व सही समझे;

(ग) रिट याचिका का व्यय याचिकाकर्ता को प्रदान करना।"

13. उक्त रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 26.07.2019 के आदेश का संदर्भ दिया था, जिसके तहत "जिलेदारी अर्हता परीक्षा, 2018" का परिणाम रद्द कर दिया गया था और इसलिए, उन्होंने एक नई परीक्षा आयोजित करने के निर्देश के लिए प्रार्थना की।

14. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 25.03.2021 के आदेश द्वारा उक्त रिट याचिका का निस्तारण कर प्रतिवादियों को तीन महीने की अवधि के भीतर जिलेदार के पद पर पदोन्नति के लिए योग्यता परीक्षा आयोजित करने का निर्देश दिया, बशर्ते कि कोई अन्य बाधा न हो, और यदि याचिकाकर्ता पदोन्नति के लिए उपयुक्त पाए जाते हैं, तो उन्हें आवश्यक लाभ प्रदान किए जा सकते हैं।

15. उक्त रिट याचिका, योग्यता परीक्षा 2018 दिनांक 26.11.2018 का परिणाम दिनांक 26.07.2019 के आदेश द्वारा निरस्त किए जाने के बाद योजित की गई थी।

16. इस तथ्य पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि रिट ए संख्या-1965/2021 में याचिकाकर्ताओं ने "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" के परिणाम को रद्द करने वाले आदेश दिनांक 26.07.2019 को चुनौती नहीं दी और उन्होंने पदोन्नति के लिए परीक्षा आयोजित करने तक प्रार्थना को सीमित किया था।

17. एक अन्य रिट याचिका संख्या-20603 (एसएस)/2020 के रूप में 31 उम्मीदवारों द्वारा इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के समक्ष योजित की गई थी, जिसमें "जिलेदारी

योग्यता परीक्षा, 2018" के परिणाम को रद्द करने के आदेश दिनांक 26.07.2019 को चुनौती दी गई थी। 25.03.2021 के आदेश के बावजूद, जिसे याचिका की सुनवाई के दौरान इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 25.03.2021 के आदेश पर ध्यान देते हुए उक्त रिट याचिका को दिनांक 05.08.2021 के निर्णय और आदेश के माध्यम से इस आधार पर स्वीकृत किया कि योग्यता परीक्षा को रद्द करने वाले आदेश दिनांक 26.07.2019 में यह निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया था कि दागी और बेदाग मामलों में अंतर करना संभव नहीं था और संभावना थी कि उन सभी को गलत का लाभ मिला होगा। यह माना गया कि दिनांक 26.07.2019 का आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की अनदेखी करते हुए पारित किया गया था और इस बात पर विचार किए बिना कि अधिकांश उम्मीदवारों को चयन समिति के सदस्य द्वारा किए गए कदाचार का लाभ नहीं मिला। इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने रिट याचिका को स्वीकृत किया और प्रतिवादियों को निर्देश जारी किया कि वे नए सिरे से पूरी जांच करने के बाद जिलेदार के पद पर पदोन्नति देने के लिए याचिकाकर्ताओं और अन्य चयनित उम्मीदवारों के दावे पर पुनर्विचार करें। आदेश का क्रियाशील भाग इस प्रकार है:-

"16. रिट याचिका सफल होती है तथा प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता तथा अन्य चयनित अभ्यर्थियों के जिलेदार के पद पर पदोन्नति के दावे पर पुनर्विचार करें, चयन के लिए आवेदन करने वाले प्रत्येक

अभ्यर्थी तथा अन्य अभ्यर्थियों की योग्यता की पुनः पूर्ण जांच करें तथा चयन समिति के किसी एक सदस्य द्वारा अपनाए गए प्रभाव/दुर्व्यवहार के संबंध में विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज करें तथा यदि अभ्यर्थी ऐसे व्यवहार में संलिप्त पाए जाएं तो चयन प्रक्रिया के संबंध में याचिकाकर्ता तथा अन्य अभ्यर्थियों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात उचित तथा स्पष्ट आदेश पारित किया जाए। उक्त प्रक्रिया इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से चार माह के भीतर पूरी की जाएगी।

17. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि इस न्यायालय द्वारा आदेश पारित किए जाने के पश्चात याचिकाकर्ता वास्तविक अभ्यर्थी पाए जाते हैं तो उन्हें तत्काल जिलेदार के पद पर पदोन्नति प्रदान की जाएगी। इस न्यायालय द्वारा निर्देशित चयन प्रक्रिया इस आदेश द्वारा निर्देशित प्रक्रिया के पश्चात जारी रहेगी।"

18. इस न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश 05.08.2021 के अनुपालन में अर्हकारी परीक्षा, 2018 में भाग लेने वाले दागी और बेदाग अभ्यर्थियों को अलग करने के लिए इंजीनियर-इन-चीफ ने आदेश दिनांक 12.01.2022 द्वारा एक जांच समिति गठित की। श्री प्रभात कुमार दुबे अधीक्षण अभियंता को उक्त समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था।

19. इंजीनियर-इन-चीफ एवं विभागाध्यक्ष, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा रिट ए संख्या-1965/2021 में, जिसमें 3 माह की अवधि के भीतर जांच कराने का निर्देश निर्गत किया गया था, रिट याचिका संख्या 20263(एसएस)/2020 में पारित दिनांक 05.08.2021 के निर्णय एवं आदेश को न्यायालय के संज्ञान में लाते हुए एक संशोधन आवेदन तर्क दिया गया था।

20. उपरोक्त संशोधन आवेदन का परिणाम ज्ञात नहीं है, तथापि, प्रति शपथ पत्र में कहा गया है कि उक्त आवेदन अभी भी लंबित है।

21. रिट याचिका संख्या 20263(एसएस)/2020 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 05.08.2021 के अनुपालन में गठित जांच समिति ने दिनांक 29.06.2022 एवं 08.07.2022 को अपनी रिपोर्ट इंजीनियर-इन-चीफ, विभागाध्यक्ष, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार को दी।

दिनांक 29.06.2022 की जांच रिपोर्ट के प्रासंगिक निष्कर्ष निम्नानुसार हैं:-

- 02 अभ्यर्थियों की लिखित परीक्षा की अंकतालिका एवं उत्तर पुस्तिका के प्रथम पृष्ठ में दर्ज अंकों में भिन्नता है,

- 77 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं के प्रथम पृष्ठ पर अंकित कुल प्राप्तांक एवं हल किये गये प्रश्नों के प्राप्तांको के योग में भिन्नता थी,

- 20 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं में पाया गया कि प्रश्नों हेतु निर्धारित पूर्णांक से अधिक नम्बर दिये गये थे,

- 12 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं में एक प्रश्न को 02 बार हल किया गया और उन्हें मूल्यांकित किया गया,

- 181 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं में कई उत्तरित प्रश्नों का मूल्यांकन नहीं किया गया है।

- 220 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं के प्रश्नों में प्राप्तांकों में धनात्मक अथवा ऋणात्मक परिवर्तन पाया गया, जो एक बहुतायत संख्या है।"

22. समिति का मानना था कि परीक्षा प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर और संगठित अनियमितताओं को देखते हुए दागी और बेदाग उम्मीदवारों का पृथक्करण संभव नहीं था। परीक्षा की पूरी पवित्रता और वैधता का उल्लंघन किया गया था, इसलिए, परिणाम दूषित था। 29.06.2022 की अपनी रिपोर्ट में जांच समिति द्वारा निकाला गया निष्कर्ष इस प्रकार है:-

" निष्कर्ष : प्रमुख अभियन्ता कार्यालय द्वारा उत्तीर्ण घोषित अभ्यर्थियों की सूची एवं जिलेदारी अर्ह परीक्षा आयोजन समिति-2018 द्वारा तैयार किये गये। परीक्षाफल (लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार की अंकतालिका) का मिलान, साक्षात्कार

की सदस्यवार अंकतालिका एवं परीक्षाफल मिलान, लिखित परीक्षा की अंकतालिका एवं उत्तर पुस्तिकाओं के प्रथम पृष्ठ पर अंकित किये गये अंको का मिलान, उत्तर पुस्तिकाओं के प्रथम पृष्ठ पर अंकित कुल अंक एवं हल प्रश्नों के प्राप्तांकों के जोड़ (टेबुलेशन) का मिलान, पूर्णांक से अधिक प्राप्तांक वाले हल प्रश्न, दो बार मूल्यांकित प्रश्न में पायी गयी त्रुटियों के आधार पर त्रुटियुक्त एवं त्रुटिरहित उत्तर पुस्तिकाओं वाले अभ्यर्थियों को क्रमशः टेबल-ए एवं टेबल-बी में दर्शाया गया है। अनेक उत्तर पुस्तिकाओं में मूल्यांकन हेतु अवशेष हत प्रश्न (टबल संख्या-5) पाये गये हैं। इस स्थिति में समिति किसी भी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचने में असमर्थ है।"

23. इसी बीच, अवमानना याचिका आवेदन संख्या-804/2022 योजित की गई, जिसमें रिट याचिका संख्या-20263(एसएस)/2020 में पारित आदेश दिनांक 05.08.2021 का अनुपालन न करने का आरोप लगाया गया। उक्त अवमानना याचिका में नोटिस जारी किया गया तथा अवमानना के कष्ट में श्री अशोक कुमार सिंह, इंजीनियर-इन-चीफ, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग ने आदेश संख्या 1500 एवं 1506 दिनांक 21.07.2022 के द्वारा आदेश

दिनांक 26.07.2019 को निरस्त कर दिया, जिसे इस न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 05.08.2021 के द्वारा पहले ही अपास्त कर दिया गया था, तथा दिनांक 21.07.2022 के आदेश द्वारा "जिलेदारी अर्हता परीक्षा, 2018" का परिणाम घोषित कर दिया।

24. तत्कालीन इंजीनियर-इन-चीफ द्वारा 25.07.2022 को अनुपालन हलफनामा योजित किया गया, जिसके कारण 25.07.2022 के आदेश द्वारा अवमानना आवेदन खारिज कर दिया गया।

25. इस तथ्य पर ध्यान देना प्रासंगिक है कि राज्य सरकार ने 16.02.2022 के आदेश द्वारा इंजीनियर-इन-चीफ को रिट ए संख्या-20263 (एसएस)/2020 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.08.2021 के संदर्भ में आगे की कार्यवाही के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

26. इंजीनियर-इन-चीफ ने राज्य सरकार से कोई पूर्व अनुमोदन प्राप्त किए बिना अनाधिकृत रूप से और अवमानना के कष्ट के कारण राज्य सरकार द्वारा दिनांक 16.02.2022 के आदेश द्वारा जारी निर्देश की अनदेखी करते हुए, बेदाग उम्मीदवारों के परिणाम घोषित करने के लिए दिनांक 21.07.2022 का आदेश जारी किया। इंजीनियर-इन-चीफ ने उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन सहित परीक्षा की पूरी प्रक्रिया में घोर और संगठित अनियमितताओं और

कदाचार के संबंध में दिनांक 29.06.2022 और 08.07.2022 की जांच रिपोर्ट में दर्ज सभी तथ्यों और निष्कर्षों पर भी विचार नहीं किया, जिससे परीक्षा की पवित्रता, वैधता और निष्पक्षता गंभीर रूप से प्रभावित हुई।

27. श्री अशोक कुमार सिंह आदेश दिनांक 21.07.2022 के निर्गत होने की तिथि से 9 दिनों के भीतर सेवा से सेवानिवृत्त हो गए। श्री मुश्ताक अहमद ने दिनांक 01.08.2022 को इंजीनियर-इन-चीफ के पद का कार्यभार संभाला था।

28. याचिकाकर्ता ने दूसरा अवमानना आवेदन अवमानना संख्या-2017/2022 (सौरभ त्रिपाठी एवं अन्य बनाम मुश्ताक अहमद) योजित किया, जिसमें श्री मुश्ताक अहमद को विपरीत पक्षकार बनाते हुए निर्णय और आदेश दिनांक 05.08.2021 का अनुपालन न करने का आरोप लगाया गया। दिनांक 05.11.2022 को अवमानना न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक सिंह तथा विपक्षी पक्ष के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सुनील बाजपेयी की सहायता से श्री एच.जे.एस. परिहार, अधिवक्ता को सुना गया।

विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सुनील बाजपेयी ने दिनांक 14.11.2022 का लिखित निर्देश तर्क दिया है तथा अनुपालन

हलफनामा दाखिल करने के लिए चार सप्ताह का समय मांगा है।

उपर्युक्त प्रार्थना को अस्वीकार किया जाता है।

इस मामले को दिनांक 28.11.2022 को सूचीबद्ध करें।

इस बीच, विपक्षी अनुपालन का हलफनामा दाखिल करेंगे, अन्यथा विपक्षी आरोप निर्धारण हेतु नियत तिथि को व्यक्तिगत रूप से इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे।"

29. अवमानना याचिका में उक्त आदेश पारित करने से पूर्व सरकार ने दिनांक 24.08.2022 एवं 09.09.2022 के आदेशों के माध्यम से स्पष्टीकरण मांगा कि किन परिस्थितियों में अर्हकारी परीक्षा का परिणाम अवैध रूप से घोषित किया गया तथा दागी एवं अयोग्य अभ्यर्थियों का परिणाम घोषित करने वाले दिनांक 21.07.2022 के आदेश जारी करने से पूर्व सरकार से परामर्श नहीं किया गया।

30. दिनांक 29.06.2022 एवं 08.07.2022 की जांच रिपोर्टें, रिट याचिका संख्या-20263(एसएस)/2020 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 05.08.2021 तथा रिट ए संख्या-1965/2021 में पारित आदेश दिनांक 25.03.2021 पर विचार करते हुए आक्षेपित निर्णय लिया गया है। दिनांक 25.11.2022 के आदेश के तहत "जिलेदारी योग्यता परीक्षा,

2018" के परिणाम को रद्द कर दिया गया है और जिलेदारों के पद पर पदोन्नति के उद्देश्य से नई योग्यता परीक्षा आयोजित की गई है। उक्त परीक्षा 20-25.12.2022 को आयोजित की जानी थी, और रिट ए संख्या-1965/2021 में पारित आदेश दिनांक 25.03.2022 के अनुपालन में 21.10.2022 को परीक्षा पहले ही आयोजित की जा चुकी है और दोनों परीक्षाओं के परिणाम 16.01.2023 को घोषित किए जाएँ। हालांकि, अंतरिम आदेश के कारण उक्त निर्देश का पालन नहीं किया गया है।

31. "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" का रिकॉर्ड, परिणाम और जांच रिपोर्ट इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया गया है।

32. अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" में घोर और व्यवस्थित अवैधता और अनियमितताएं की गई हैं, जिससे परीक्षा की पवित्रता और निष्पक्षता प्रभावित हुई है और परिणामस्वरूप "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" का परिणाम खराब हुआ है। विवादित आदेश में उल्लिखित अवैधताओं और नियमितताओं का संक्षिप्त सारांश निम्नानुसार है: -

"उपरोक्त तथ्यों के विवेधन, परीक्षण एवं परिशीलन से विदित है कि जिलेदारी अर्हकारी परीक्षा--2018 के सम्पादन से लेकर अब तक जो भी कार्यवाहियां की गयी हैं, उससे स्पष्ट है कि मामले में व्यापक स्तर पर

अनेक गम्भीर प्रकृति की अनियमिततायें की गयी हैं, जिनका विवरण निम्नवत है : -

(1) परीक्षा समिति द्वारा सम्मिलित सभी 490 अभ्यर्थियों का साक्षात्कार लिया गया, जबकि इनमें से तत्समय मात्र 318 अभ्यर्थी ही लिखित परीक्षा में अर्हकारी न्यूनतम निर्धारित 50 प्रतिशत अंक ही प्राप्त कर सके थे अर्थात् परीक्षा समिति द्वारा 172 अनुत्तीर्ण अभ्यर्थियों का नियमों के विपरीत साक्षात्कार लिया गया।

(2) प्रारम्भिक जाँच (मुख्य अभियन्ता (कार्मिक-7/8) की अध्यक्षता में गठित 02 सदस्यीय समिति) में मात्र 76 शिकायतकर्ताओं की उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच में ही अभ्यर्थियों के प्राप्त योग में अन्तर, उत्तर के मूल्यांकन न किया जाना तथा एक ही प्रश्न के अलग-अलग उत्तर अंकित होने पर भी समान अंक दिया जाना जैसी गम्भीर अनियमिततायें कारित किया जाना तथा परीक्षा परिणाम प्रभावित होना जाँच आख्या में पाया गया था, जिसके फलस्वरूप प्रमुख अभियन्ता एवं विभागाध्यक्ष की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा सर्वसम्मति से घाषित परीक्षा परिणाम को आदेश दिनांक 26.07.2019 द्वारा निरस्त किया गया।

(3) परीक्षा में भ्रष्टाचार एवं विश्व लिये जाने विषयका सोशल मीडिया में वीडियो का वायरल होना, समाचार पत्र में खबर प्रकाशित होने से परीक्षा की शुचिता एवं पारदर्शिता प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई।

(4) जिलेदारी अर्हकारी परीक्षा-2018 की परीक्षा एवं मूल्यांकन में पायी गयी गम्भीर अनियमितताओं के लिए विनिर्दिष्ट परीक्षा समिति के अध्यक्ष सहित दोनों सदस्यों के विरुद्ध शासन के उच्चतम स्तर से एफ०आई०आर० दर्ज कराये जाने, उन्हें निलंबित कर अनुशासनिक कार्यवाही के आदेश/निर्देश जारी किये गये हैं। समिति के अध्यक्ष श्री रामेश्वर कुमार मिश्रा एवं सदस्य श्री रामराज के विरुद्ध, संस्थित अनुशासनिक कार्यवाहियों में शासन द्वारा भिन्न मत के आधार पर आरोप प्रमाणित पाते हुए उनके अभ्यावेदन मांगे गये हैं, जबकि एक अन्य सदस्य श्री राजकुमार गंगवार के विरुद्ध मुख्यालय स्तर पर अनुशासनिक कार्यवाही प्रचलित है।

(5) मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा रिट याचिका संख्या-1965 / 2021धर्मन्द्र कुमार व अन्य बनाम उ०प्र० राज्य व अन्य में पारित आदेश दिनांक 25.03.2021 में जिलेदारी अर्हकारी परीक्षा को पुनः कराये जाने के आदेश दिये गये।

(6) मा० उच्च न्यायालय खण्डपीठ, लखनऊ द्वारा रिट याचिका संख्या-20263(एस.एस.)/2020 हेतराम व अन्य में पारित आदेश दिनांक 05.08.2021 के अनुपालन / अनुक्रम में गाठित SEGREGATE कमेटी की जाँच रिपोर्ट में पाया गया कि:

- 02 अभ्यर्थियों की लिखित परीक्षा की अंकतालिका एवं उत्तर पुस्तिका के प्रथम पृष्ठ में दर्ज अंको में भिन्नता है,

- 77 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं के प्रथम पृष्ठ पर अंकित कुल प्राप्तांक एवं हल किये गये प्रश्नों के प्राप्तांको केटो में भिन्नता थी,

- 20 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं में पाया गया कि प्रश्नों हेतु निर्धारित पूर्णांक से अधिक नम्बर दिये गये थे,

- 12 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं में एक प्रश्न को 02 बार हल किया गया और उन्हें मूल्यांकित किया गया,

- 181 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं में कई उत्तरित प्रश्नों का मूल्यांकन नहीं किया गया है।

- 220 अभ्यर्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं के प्रश्नों में प्राप्तांको में धनात्मक अथवा ऋणात्मक परिवर्तन पाया गया, जो एक बहुतायत संख्या है।

(7) परीक्षण में यह तथ्य भी उद्घाटित हुआ कि परीक्षा समिति द्वारा उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन से पूर्व कोई मॉडल अन्सर (उत्तर कुंजी) नहीं बनाया गया था, जिसके फलस्वरूप उत्तरित फल के मूल्यांकन हेतु कोई एकरूपता नहीं रही एवं गलत उत्तरों पर भी नम्बर दिये गये, एक ही प्रश्न के भिन्न-भिन्न उत्तर होने के उपरान्त भी उन्हें पूरे अंक दिये गये।"

33. अवमानना याचिका में आक्षेपित आदेश दिनांक 25.11.2022 को प्रति शपथ पत्र के साथ दाखिल किया गया। अवमानना न्यायालय ने दिनांक 28.11.2022 के आदेश के द्वारा राज्य के मुख्य सचिव को अपना हलफनामा दाखिल करने का निर्देश दिया तथा मामले की अगली सुनवाई 16.12.2022 के लिए नियत की।

34. उक्त आदेश के अनुपालन में अवमानना कार्यवाही में मुख्य सचिव का व्यक्तिगत हलफनामा दाखिल किया गया। अवमानना न्यायालय मुख्य सचिव के व्यक्तिगत

हलफनामे से संतुष्ट नहीं हुआ तथा आरोप निर्धारण के लिए मामले की अगली सुनवाई 23.12.2022 के लिए नियत की। दिनांक 23.12.2022 को अवमानना न्यायालय ने निम्नलिखित आरोप तय किये:-

"8. उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों के दृष्टिगत प्रतिवादी/अवमाननाकर्ता के विरुद्ध न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1971 की धारा 12 के अंतर्गत निम्नलिखित आरोप विरचित किये जाते हैं।

"प्रतिवादी/अवमाननाकर्ता, श्री मुश्ताक अहमद, इंजीनियर-इन-चीफ/विभागाध्यक्ष, सिंचाई एवं जल संसाधन, उ.प्र., लखनऊ को पूर्व में अवमानना आवेदन संख्या-804/2022 में अनुपालन शपथ पत्र दिनांक 25.07.2022 दाखिल करने के पश्चात भी रिट याचिका (एस/एस) संख्या 20263/2020 में पारित रिट न्यायालय के आदेश दिनांक 05.08.2021 का जानबूझकर उल्लंघन करने के लिए दंडित क्यों न किया जाये; साथ ही दिनांक 25.11.2022 का आदेश पारित किया गया, जिसके द्वारा विभाग के तत्कालीन इंजीनियर-इन-चीफ द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.07.2022 (रिट कोर्ट के आदेश दिनांक 05.08.2021 के अनुसरण में 335 चयनित अभ्यर्थियों का परिणाम घोषित करना), को विद्वान अपर मुख्य

स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रतिवादी/अवमाननाकर्ता के दिनांक 14.11.2022 के लिखित निर्देशों के आधार पर रिट कोर्ट के आदेश का अनुपालन करने की प्रार्थना किए जाने के बावजूद वापस ले लिया गया है।"

9. सजा पर आदेश के लिए इस मामले को 23.01.2023 को सूचीबद्ध करें।

10. अगली तिथि को प्रतिवादी/अवमाननाकर्ता इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे। इस बीच, प्रतिवादी/अवमाननाकर्ता सजा के बिंदु पर अपना पक्ष रख सकते हैं।"

35. दिनांक 21.12.2023 और 23.12.2023 के आदेशों के विरुद्ध अवमानना अपील संख्या 1/2023 योजित की गई है।

36. दिनांक 23.01.2023 के आदेश के अनुसार अवमानना अपील संख्या 1/2023 में इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दिनांक 25.11.2022 के आदेश से उत्पन्न रिट याचिका लंबित है और सक्षम प्राधिकारी के पास 21.07.2022 को पारित पिछले आदेश को रद्द करने का अधिकार है या नहीं, रिट याचिका में विचार का विषय है और मामले का निर्णय इसके गुण-दोष के आधार पर किया जाना है, खंडपीठ ने अवमानना कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी। हालांकि, पारित अंतिम आदेश पर न्यायालय की अनुमति लिए बिना कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए।

37. दिनांक 23.01.2023 के आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"श्री पंकज खरे और श्री प्रशांत सिंह अटल की सहायता से श्री रमेश कुमार सिंह, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता नें तर्क दिया है कि वर्तमान मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश अवमानना कार्यवाही के साथ आगे बढ़ रहे हैं, इस तथ्य के बावजूद कि जिस कृत्य की शिकायत की गई है, वह रिट याचिका संख्या 8335/2022 में इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है। इस प्रकार यह तर्क दिया गया कि ऐसी स्थिति में जहां रिट याचिका लंबित हो और यदि उसे निरस्त किया जाता है, तो उसी आदेश से उत्पन्न अवमानना कार्यवाही की शुरुआत अमान्य होगी और अवमानना न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के दायरे से बाहर होगी और उन्होंने (2006) 5 एससीसी 399 में रिपोर्ट किए गए निर्णय पर भी भरोसा किया है।

यह निर्विवाद है कि दिनांक 25.11.2022 के आदेश से उत्पन्न रिट याचिका लंबित है। यह बिन्दु कि क्या सक्षम प्राधिकारी के पास पिछले आदेश दिनांक 21.07.2022 को निरस्त करने का अधिकार है या नहीं, यह रिट कार्यवाही में विचारणीय विषय है तथा मामले का निर्णय उसके गुण-दोष के आधार पर किया जाना है।

मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, हम अवमानना कार्यवाही जारी

रखने की अनुमति देते हैं, तथापि, पारित अंतिम आदेश पर न्यायालय की अनुमति के बिना कार्रवाई नहीं की जा सकती।

हम यह भी अपेक्षा करते हैं कि इस बीच लंबित रिट याचिका को उसके तार्किक निष्कर्ष पर लाया जाएगा।

राज्य सरकार से अपेक्षा की जाती है कि वह रिट कार्यवाही के निर्णय में तथा अवमानना कार्यवाही में कथित अवमाननाकर्ता के साथ बिना किसी आलस्य के सहयोग करेगी।

अवमानना कार्यवाही की अद्यतन स्थिति के साथ इस अपील को छह सप्ताह बाद सूचीबद्ध किया जाए।"

38. परीक्षा में घोर और संगठित अनियमितताओं, भ्रष्टाचार और कदाचार के संबंध में जांच रिपोर्टों पर विचार करते हुए, जिसने पूरी परीक्षा प्रक्रिया की पवित्रता, वैधता और निष्पक्षता को प्रभावित किया था, जिसके कारण परिणाम खराब हुआ था, इस न्यायालय ने दिनांक 06.04.2023 के आदेश द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया:-

"1. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.जी.एस. परिहार को सुना गया, जिनकी सहायता अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी सिंह ने की तथा प्रतिवादी - राज्य अधिकारीगण की ओर से

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/अपर महाधिवक्ता श्री रमेश कुमार सिंह को सुना गया, जिनकी सहायता विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री पी.के. खरे ने की।

2. सिंचाई विभाग के प्रमुख सचिव श्री अनिल गर्ग न्यायालय की सहायता के लिए उपस्थित हैं। उन्होंने कहा कि यदि न्यायालय आज तक विद्यमान सभी रिक्तियों के लिए एकीकृत परीक्षा आयोजित करने की अनुमति देता है, तो विभाग अगले 45 दिनों के भीतर परीक्षा आयोजित करेगा और उसका परिणाम प्रकाशित करेगा। उन्होंने आगे कहा कि परीक्षा की निष्पक्षता और अखंडता सुनिश्चित करने के लिए पांच सदस्यों की समिति गठित की जाएगी, जिसमें इंजीनियर-इन-चीफ (प्रोजेक्ट), इंजीनियर-इन-चीफ (डिजाइन और प्लानिंग), मुख्य अभियंता (स्तर-I) और दो अधीक्षण अभियंता शामिल होंगे, जो परीक्षा की पूरी प्रक्रिया की निगरानी करेंगे। उन्होंने आगे कहा कि सिंचाई विभाग में दो विशेष सचिवों को विशेष पर्यवेक्षक के रूप में नियुक्त किया जाएगा ताकि परीक्षा स्वतंत्र, एवं निष्पक्ष तरीके से आयोजित की जा सके और परीक्षा में किसी भी अनियमितता के संबंध में आगे कोई मुकदमा न हो। उन्होंने आगे कहा कि राज्य किसी का पक्ष नहीं ले रहा है, बल्कि उसे केवल

परीक्षा की निष्पक्षता और अखंडता सुनिश्चित करने की चिंता है।

3. यह कहा गया है कि इसी विषय पर एक और याचिका (रिट-ए संख्या 7022/2022) लंबित है।

4. संयुक्त अनुरोध पर, इस मामले को कल यानि 07.04.2023 को दोपहर 2.15 बजे सूचीबद्ध किया जाए। रिट-ए संख्या 7022/2022 के साथ आगे की सुनवाई के लिए।"

39. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.जी.एस. परिहार ने याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी सिंह परिहार की सहायता से तर्क दिया है कि दिनांक 25.11.2022 का आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा दिनांक 21.07.2022 की पूर्व चयन सूची रद्द कर दी गई है, अवैध, मनमाना है और रिट याचिका संख्या 20263(एसएस)/2020 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 05.08.2021 के निर्णय और आदेश का उल्लंघन है।

40. आगे यह भी तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय ने रिट याचिका संख्या 20263(एसएस)/2020 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.08.2021 में पाया है कि दागी और बेदाग उम्मीदवार को अलग करने की प्रक्रिया पूरी हो गई थी और उसके पश्चात बेदाग उम्मीदवारों के परिणाम घोषित कर दिया गया था, और तत्कालीन इंजीनियर-इन-चीफ द्वारा योजित हलफनामे के आधार पर

अवमानना की कार्यवाही बंद कर दी गई थी। आक्षेपित आदेश न केवल निर्णय और आदेश दिनांक 05.08.2021 के विरुद्ध है, बल्कि यह आदेश दिनांक 25.07.2022 विरुद्ध भी है, जिसके तहत अवमानना की कार्यवाही बंद कर दी गई थी।

41. यह भी तर्क दिया गया है कि नई परीक्षा से उन उम्मीदवारों के साथ घोर अन्याय होगा, जो किसी भी कदाचार में लिप्त नहीं थे और योग्यता के आधार पर परीक्षा उत्तीर्ण कर सकते थे। कई उम्मीदवार आयु सीमा पार कर चुके होंगे और कई उम्मीदवार वर्ष 2019 में परीक्षा का परिणाम घोषित होने के बाद से सेवानिवृत्त हो गए हैं। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया है कि आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए और याचिकाओं को स्वीकृत किया जाना चाहिए।

42. दूसरी ओर, राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता एवं अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री रमेश कुमार सिंह ने तर्क दिया है कि श्री अशोक कुमार सिंह, तत्कालीन मुख्य अभियंता के पास अवमानना कार्यवाही से बचने के लिए अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि से 10 दिन पहले दिनांक 21.07.2022 का आदेश पारित करने का कोई अधिकार और शक्ति नहीं थी। चूंकि, दिनांक 21.07.2022 का आदेश अवैध और अधिकार क्षेत्र से बाहर था और जांच रिपोर्टों के विरुद्ध था, जिसमें स्पष्ट रूप से घोर और संगठित अनियमितताओं, बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और कदाचार का उल्लेख किया गया था, ऐसे आदेश पर कार्रवाई नहीं की जा सकती और इसलिए,

सरकार ने सभी पात्र उम्मीदवारों को परीक्षा में भाग लेने का अवसर देते हुए नई परीक्षा आयोजित करने का सोचा-समझा निर्णय लिया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि परीक्षा आयोजित करने में किसी भी तरह की खामी के बिना चयन पूरी तरह से योग्यता के आधार पर किया जाए।

43. इसलिए, यह तर्क दिया गया है कि "जिलेदारी योग्यता परीक्षा, 2018" के अनुसरण में कोई पदोन्नति नहीं की गई है, इसलिए, किसी से भी कोई पक्षपात नहीं हुआ है। यह भी तर्क दिया गया है कि यदि यह पाया जाता है कि पूरी परीक्षा दूषित है, तो नियुक्ति प्राधिकारी के पास परीक्षा को रद्द करने का विकल्प हमेशा खुला रहता है, भले ही परिणाम घोषित हो या नहीं। वर्तमान मामले में, दो क्रमिक जांच रिपोर्टों ने परीक्षा आयोजित करने में घोर अनियमितताओं, कदाचार और भ्रष्टाचार को इंगित किया है, जिससे परीक्षा की पवित्रता, वैधता और निष्पक्षता प्रभावित हुई है, जिससे परिणाम दूषित हुआ है, ऐसे परिणाम पर कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए। चयन प्रक्रिया की निष्पक्षता और पारदर्शिता शासन की पहचान है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत इसकी आवश्यकता है। यदि ऐसी सामग्री है, जो यह प्रदर्शित करती है कि परीक्षा की निष्पक्षता का उल्लंघन किया गया था और परिणाम दूषित था, तो उक्त परिणाम को प्रभाव में लाना किसी के हित में नहीं है।

44. यह भी कहा गया है कि इस न्यायालय के दो अलग-अलग निर्णय हैं। इलाहाबाद स्थित

इस न्यायालय ने दिनांक 25.03.2021 के निर्णय और आदेश के माध्यम से नए सिरे से परीक्षा आयोजित करने का निर्देश दिया, जबकि लखनऊ स्थित इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 20263 (एसएस)/2020 में दिनांक 05.08.2021 को पारित आदेश में दागी और बेदाग उम्मीदवारों को अलग करने का निर्देश दिया गया। लगातार जांच रिपोर्टों से पता चलता है कि परीक्षा में घोर और संगठित अनियमितताओं और भ्रष्टाचार को देखते हुए दागी और बेदाग उम्मीदवारों को अलग करना संभव नहीं होगा। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया है कि तत्कालीन इंजीनियर-इन-चीफ, जो आदेश दिनांक 21.07.2022 पारित करने के 9 दिन बाद सेवानिवृत्त हो गए, उन्होंने अवमानना कार्यवाही से बचने के लिए वो सब किया था, और अधिकार क्षेत्र के बाहर होने के कारण इस पर कार्रवाई करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है। इस न्यायालय को मामले को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से तय करने की आवश्यकता है। यह तर्क दिया गया है कि सरकार ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत संवैधानिक अधिदेश के अनुसार सही निर्णय लिया है और इसलिए, उस पर कार्रवाई करने की अनुमति दी जानी चाहिए।

45. मैंने याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तथा राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान ए.ए.जी. के तर्कों पर विचार किया है।

46. सार्वजनिक रोजगार के लिए चयन निष्पक्ष, स्वच्छ तथा भर्ती नियमों के प्रावधानों

तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अधिदेश के अनुसार होना चाहिए। यदि संगठित अनियमितताएं, भ्रष्टाचार और कदाचार उपस्थित हैं, तो चयन प्रक्रिया दूषित हो जाएगी, क्योंकि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 में निहित समानता खंड का उल्लंघन होगा।

47. यदि भर्ती प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्रक्रिया की पवित्रता और निष्पक्षता का उल्लंघन हुआ है, तो ऐसी भर्ती प्रक्रिया दूषित हो जाती है तथा इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए। ऊपर इंगित अनियमितताएं लगातार जांच रिपोर्टों में पाई गई हैं। तीन सदस्यीय समिति, जो परीक्षा आयोजित करने के लिए जिम्मेदार थी, बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार में लिप्त पाई गई है तथा उसने परीक्षा में व्यवस्थित अनियमितताएं और कदाचार होने दिए। परीक्षा समिति के सदस्यों के खिलाफ न केवल अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने का निर्देश दिया गया है, बल्कि उनके खिलाफ एफआईआर भी दर्ज करने का निर्देश दिया गया है।

48. मेरे विचार से, ऐसी परीक्षा के परिणाम को प्रभावी नहीं माना जा सकता क्योंकि यह परीक्षा आयोजित करने में की गई घोर और संगठित अनियमितताओं, कदाचार और भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने के समान होगा। इस न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि भर्ती प्रक्रिया निष्पक्ष, स्वच्छ और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के तहत निहित वैधानिक अधिदेश और समानता खंड के अनुसार हो। सार्वजनिक पद के लिए कोई भी

भर्ती प्रक्रिया किसी भी संदेह और किसी भी कदाचार से परे होनी चाहिए। सार्वजनिक रोजगार में भ्रष्टाचार संविधान की प्रस्तावना में निहित स्थिति और अवसर की समानता के संवैधानिक लक्ष्य के खिलाफ होगा। भर्ती निष्पक्ष, पारदर्शी और जवाबदेह होनी चाहिए, अगर भर्ती प्रक्रिया में अनियमितताएं और कदाचार और अवैधता हैं, तो यह भर्ती प्रक्रिया की वैधता को कमजोर करेगा।

49. अनुच्छेद 16(1) के तहत अवसर की समानता के मानदंड के अधीन सार्वजनिक पदों पर चयन की एक निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया एक संवैधानिक आवश्यकता है। एक निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया अनुच्छेद 14 की एक मौलिक आवश्यकता भी है। जहां सार्वजनिक रोजगार के लिए भर्ती प्रणालीगत धोखाधड़ी या अनियमितताओं के परिणामस्वरूप दूषित हो जाती है, वहां पूरी प्रक्रिया अवैध हो जाती है। बड़े पैमाने पर अनियमितताएं, जिनमें समान परिस्थितियों वाले उम्मीदवारों को समान पहुंच से वंचित करना शामिल है, चयन प्रक्रिया की विश्वसनीयता को खत्म कर देंगी।

50. वर्तमान मामले में, जैसा कि समितियों की रिपोर्ट से पता चलता है कि उन उम्मीदवारों को अलग करने की कोई संभावना नहीं थी, जो जांच में पाए गए गंभीर प्रकृति के कदाचार और कमियों में लिप्त थे, जिसने पूरी परीक्षा प्रक्रिया की वैधता को प्रभावित किया था, इसलिए, पूरी परीक्षा को रद्द करने का सरकार का निर्णय तर्कहीन या मनमाना नहीं माना जा सकता है।

51. सचिन कुमार और अन्य बनाम दिल्ली अधीनस्थ सेवा, (2021) 4 एससीसी 631 में

सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 35 और 55 में कहा गया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(1) के तहत अवसर की समानता के मानदंड के अधीन पदों पर चयन की निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया, एक संवैधानिक आवश्यकता है।

उपरोक्त निर्णय के पैरा 35 और 55 इस प्रकार हैं:-

"35. एसएलपी के इस बैच पर निर्णय लेने में, हमें चक्र को फिर से बनाने की आवश्यकता नहीं है। पिछले पांच दशकों में, इस न्यायालय के कई निर्णयों ने इस मूलभूत मुद्दे से निपटा है कि कब किसी परीक्षा की प्रक्रिया दूषित हो सकती है। अनिवार्य रूप से, इस मुद्दे का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि क्या प्रक्रिया में अनियमितताएं प्रणालीगत स्तर पर हुई हैं ताकि प्रक्रिया की पवित्रता को दूषित किया जा सके। ऐसे मामले हैं जो धोखाधड़ी के दायरे में आते हैं या उससे आगे निकल जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप प्रक्रिया की विश्वसनीयता और वैधता समाप्त हो जाती है। यह स्पेक्ट्रम का एक छोर बनाता है जहां परीक्षा आयोजित करने वाला या चयन प्रक्रिया आयोजित करने वाला प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि घटना या परिस्थितियों के परिणामस्वरूप, प्रक्रिया ने अपनी वैधता खो दी है, जिससे इसे पूरी तरह से रद्द करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। जहां इस तरह का निर्णय

लिया जाता है, वह तथ्य-खोज अभ्यास को कदाचार या अनुचित साधनों के उपयोग से जुड़े व्यक्तिगत कृत्यों में नहीं बदल देता है। जहां प्रणालीगत पैमाने पर अनुचित साधनों का सहारा लिया गया है, वहां प्रक्रिया में शामिल दागी और बेदाग प्रतिभागियों को अलग करना मुश्किल हो सकता है। बड़े पैमाने पर अनियमितताएं, जिनमें समान परिस्थितियों वाले उम्मीदवारों को समान पहुंच से वंचित करना शामिल है, एक ऐसी अस्वस्थता का संकेत है जिसने प्रक्रिया की विश्वसनीयता को खत्म कर दिया है। स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर ऐसे मामले हैं जहां प्रक्रिया में शामिल कुछ प्रतिभागी जो परीक्षा या चयन परीक्षण में शामिल होते हैं, वे अनियमितताओं के दोषी हैं। ऐसे मामले में, नियमों का पालन करने वाले अन्य लोगों से गलत काम करने वाले व्यक्तियों को अलग करना और प्रक्रिया से पूर्व को बाहर करना संभव हो सकता है। ऐसे मामले में, जो लोग निर्दोष हैं, उन्हें उन लोगों के लिए कीमत नहीं चुकानी चाहिए जो वास्तव में अनियमितताओं में शामिल पाए जाते हैं। गलत काम करने वालों को अलग करके, चयन प्रक्रिया को उसके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाकर बेदाग उम्मीदवारों के चयन की अनुमति दी जा सकती है। यह केवल प्रशासनिक प्रक्रिया का मामला नहीं है, बल्कि सेवा न्यायशास्त्र के सिद्धांत के रूप

में यह संवैधानिक कर्तव्य में सन्निहित है, जिसके अनुसार सार्वजनिक निकायों को निष्पक्ष और उचित तरीके से कार्य करना चाहिए। अनुच्छेद 16(1) के तहत अवसर की समानता के मानदंड के अधीन पदों पर चयन की निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया एक संवैधानिक आवश्यकता है। निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया अनुच्छेद 14 की भी एक मूलभूत आवश्यकता है। जहां सार्वजनिक रोजगार में भर्ती प्रणालीगत धोखाधड़ी या अनियमितताओं के परिणामस्वरूप दूषित हो जाती है, वहां पूरी प्रक्रिया अवैध हो जाती है। दूसरी ओर, जहां कदाचार में लिप्त व्यक्तियों को अलग करना और उनके गलत कामों के लिए उन्हें दंडित करना संभव है, वहां उनके गलत कामों का बोझ उन लोगों पर डालना अनुचित होगा जो दाग से मुक्त हैं। पूरी प्रक्रिया को रद्द करने के परिणाम के अधीन निर्दोष और गलत काम करने वालों के साथ समान व्यवहार करना अनुच्छेद 14 के विपरीत होगा क्योंकि तब असमान लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाएगा। यह आवश्यकता कि सार्वजनिक निकाय को निष्पक्ष और उचित शर्तों में कार्य करना चाहिए, चयन की पूरी प्रक्रिया को जीवंत बनाती है। इसलिए भर्ती निकाय के निर्णय न्यायिक नियंत्रण के अधीन हैं, जो इस स्थापित सिद्धांत के अधीन है कि भर्ती प्राधिकरण के पास कानून

के अनुसार निर्णय लेने के लिए विवेकाधिकार होना चाहिए जो प्रक्रिया की पवित्रता को बनाए रखने के लिए सबसे उपयुक्त है। अब इन सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय के उदाहरणों पर ध्यान देना उचित हो जाता है जो इस क्षेत्र को धारण करते हैं।

xxxxxxx

55. न्यायमूर्ति एल. नागेश्वर राव ने पाया कि उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच का दृष्टिकोण बनाए रखने योग्य नहीं था और उन्होंने कहा: (ए कलाईमनी मामला [टी.एन. राज्य बनाम ए कलाईमनी, (2021) 16 एससीसी 217: 2019 एससीसी ऑनलाइन एससी 1002], एससीसी पैरा 14)

"14. वर्तमान मामले में, बोर्ड ने शुरू में ओएमआर उत्तर पुस्तिकाओं में हेरफेर से संबंधित आरोपों के संबंध में अपने स्तर से जांच की। बोर्ड ने पाया कि ओएमआर उत्तर पुस्तिकाओं में छेड़छाड़ के कारण कुछ लोगों को फायदा हुआ। गहन जांच में 196 व्यक्तियों के खिलाफ पर्याप्त सामग्री मिली, जो अंकों में फेरबदल में धोखाधड़ी के लाभार्थी थे। बोर्ड को विश्वास था कि अंकों में हेरफेर में और लोगों के

शामिल होने की संभावना थी, जिसके कारण पूरी परीक्षा को रद्द करने का निर्णय लिया गया। चयन प्रक्रिया की अखंडता के बारे में जनता में विश्वास जगाने के लिए बोर्ड द्वारा लिया गया एक सद्भावनापूर्ण निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया गया है। जिस सामग्री के आधार पर कोई प्राधिकारी निर्णय लेता है, उसकी पर्याप्तता न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। जांच में और अधिक सामग्री का पता लगाया जा रहा है और कई लोगों को गिरफ्तार किया गया है। जांच जारी है।"

न्यायालय ने कहा कि जिन उम्मीदवारों को लिखित परीक्षा के परिणामों के आधार पर सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेजों में व्याख्याता के रूप में चयनित और नियुक्त होने का मौका मिला था, उन्हें असुविधा हो सकती है "लेकिन परीक्षा में हेरफेर की भयावहता के बारे में बोर्ड द्वारा व्यक्त गंभीर संदेह को उचित महत्व दिया जाना चाहिए"। तदनुसार उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द कर दिया गया।"

52. उच्चतम न्यायालय ने परीक्षा रद्द करने के संबंध में कानून का सारांश दिया है, जहां

अनियमितताओं और कमियों की व्यवस्थित प्रकृति रही है, जो पूरी भर्ती प्रक्रिया की वैधता पर गंभीर संदेह पैदा करेगी।

उक्त निर्णय के पैरा 64 से 66 इस प्रकार होंगे:-

"64. हम अभिलेखों के आधार पर पाते हैं कि ए.एस.जी. द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क में सार है। भर्ती प्रक्रिया के संबंध में शिकायतें टियर-I और टियर-II दोनों परीक्षाओं से संबंधित थीं। शिकायतों का प्रथम समिति द्वारा सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया गया और जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, गंभीर अनियमितताएं पाई गईं। अनियमितताएं किसी विशिष्ट समूह के व्यक्तियों की ओर से कदाचार या अनुचित साधनों के कृत्यों तक सीमित नहीं थीं। इसके विपरीत, समिति की रिपोर्ट में एक प्रणालीगत प्रकृति की कमियां पाई गईं, जिसने टियर-I और टियर-II दोनों परीक्षाओं को शामिल करते हुए भर्ती की पूरी प्रक्रिया की वैधता पर गंभीर संदेह पैदा किया। उपमुख्यमंत्री का दिनांक 23-12-2015 का आदेश प्रथम समिति के निष्कर्षों से भिन्न नहीं था। वास्तव में, उक्त आदेश में प्रथम समिति के निष्कर्षों पर टिप्पणी करने से परहेज किया गया। उपमुख्यमंत्री के आदेश में केवल एक अनियमितता, यानी प्रतिरूपण तक आगे की जांच के दायरे को सीमित

करने का निर्देश दिया गया था। यह निर्देश दिया गया कि इसका सत्यापन किया जाए कि चयन के क्षेत्र में आने वाला क्या कोई उम्मीदवार, प्रतिरूपण का दोषी है या नहीं; उपमुख्यमंत्री के आदेश ने पूरी परीक्षा प्रक्रिया में अनियमितताओं को समाप्त नहीं किया। यह दलील स्वीकार करना संभव नहीं है कि प्रतिरूपण पर सत्यापन का आदेश देने के बाद, आगे कुछ भी करने को नहीं बचा है और पहली समिति की रिपोर्ट के आधार पर प्रक्रिया की पवित्रता को और अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। यह बहुत संभव है कि उपमुख्यमंत्री ने प्रतिरूपण के आरोपों की आगे की जांच का निर्देश केवल अपने द्वारा लिए जाने वाले अंतिम निर्णय को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए दिया हो। श्री पटवालिया ने डीएसएसएसबी द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण को पढ़ने का एक गंभीर प्रयास किया है, जिसमें आग्रह किया गया है कि तीन आईएस अधिकारियों और अन्य अधिकारियों ने स्पष्टीकरण नोट पर अपने हस्ताक्षर किए थे, जो इस बचाव के लिए एक औचित्य प्रदान करते हैं कि टियर-I और टियर-II परीक्षाओं में कोई खामियां नहीं थीं। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि डीएसएसएसबी और उसके अधिकारियों का स्वयं का आचरण संदेह के घेरे में था। उनका स्पष्टीकरण किसी भी तरह से

निर्णायक या जीएनसीटीडी के अधिकारियों के लिए बाध्यकारी नहीं माना जा सकता। उपमुख्यमंत्री ने पूरी प्रक्रिया को रद्द करने की सिफारिश करते हुए उल्लंघनों की प्रणालीगत प्रकृति पर जोर दिया। इन उल्लंघनों में चयन के अंतिम क्षेत्र के सभी उम्मीदवार शामिल हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं, लेकिन हमारे विचार में यह बात इस कारण से अलग है कि वर्तमान मामले में आरोप का मुख्य बिंदु किसी विशिष्ट समूह के लोगों से जुड़े दाग से संबंधित नहीं है, बल्कि पूरी भर्ती प्रक्रिया की पवित्रता से संबंधित है। इस न्यायालय के उदाहरण पर्याप्त रूप से प्रदर्शित करते हैं कि जब पूरी परीक्षा की विश्वसनीयता प्रणालीगत अनियमितताओं के कारण खराब हो जाती है, तो मुद्दा दागी उम्मीदवारों की पहचान करने का नहीं होता है। वर्तमान मामले में, जैसा कि हमने देखा है, टियर-1 परीक्षा में समान पहुंच से बुनियादी रूप से इनकार किया गया था। पहली समिति द्वारा सावधानीपूर्वक जांच करने पर जिन आरोपों की पुष्टि हुई, उनकी प्रकृति से पता चला कि प्रक्रिया की विश्वसनीयता ही खत्म हो गई थी। ऐसी स्थिति में, जहां सरकार द्वारा संपूर्ण प्रक्रिया को रद्द करने का निर्णय लिया जाता है, निर्णय लेने की प्रक्रिया में निष्पक्ष प्रक्रिया और आनुपातिकता के मानदंड को लागू करते हुए इसे तर्कहीन या मनमाना नहीं माना जा सकता है।

65. अपने तर्कों के दौरान, श्री पी.एस. पटवालिया ने प्रथम समिति द्वारा इंगित प्रत्येक प्रणालीगत अनियमितताओं के लिए स्पष्टीकरण देने की मांग की है, जिसमें टियर 1 परीक्षा में शामिल होने वाले उम्मीदवारों की संख्या में भारी कमी, एडमिट कार्ड की हार्ड कॉपी जारी न करना, एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र से संबंधित उम्मीदवारों की शॉर्टलिस्टिंग, परीक्षा केंद्रों में यादृच्छिकता का अभाव आदि शामिल हैं। इसके जवाब में, विद्वान ए.एस.जी. ने बताया है कि यह आकलन करते समय कि क्या भर्ती प्रक्रिया से समझौता किया गया है, कारकों (या अनियमितताओं) को संचयी रूप से देखा जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या वे भर्ती को रद्द करने के लिए पर्याप्त गंभीर हैं। हम खुद को विद्वान ए.एस.जी. से सहमत पाते हैं। जब तक यह तर्क देने के लिए पर्याप्त आधार है कि बड़े पैमाने पर अनियमितताएँ हुई हैं, इस न्यायालय को सभी संभावित स्पष्टीकरणों और वैकल्पिक परिदृश्यों को खारिज करने के लिए एक घूमती हुई जाँच में शामिल होने की आवश्यकता नहीं है, जहाँ ऐसी अनियमितताओं को उचित ठहराया जा सकता है।

66. सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती को जनता का विश्वास जीतना चाहिए। जिन व्यक्तियों की भर्ती की जाती है, उनका उद्देश्य सरकार के कामकाज

से जुड़े सार्वजनिक कार्यों को पूरा करना होता है। जहां पूरी प्रक्रिया में खामियां पाई जाती हैं, वहां इसे रद्द करने से निस्संदेह कुछ लोगों को परेशानी हो सकती है, जो विशेष रूप से गलत कामों में शामिल नहीं पाए जा सकते हैं। लेकिन यह परीक्षा रद्द करने के अंतिम निर्णय को निष्प्रभावी करने के लिए पर्याप्त नहीं है, जहां गलत कामों की प्रकृति पूरी प्रक्रिया को प्रभावित करती है, जिससे भर्ती के लिए आयोजित परीक्षाओं की वैधता पर गंभीर रूप से असर पड़ता है। हमारे विचार से, उच्च न्यायालय और न्यायाधिकरण दोनों ने दूसरी समिति की रिपोर्ट पर विशेष ध्यान केंद्रित करके गलती की है, जो प्रतिरूपण के मुद्दे तक ही सीमित थी। दूसरी समिति की रिपोर्ट मामले का केवल एक पहलू है। उपमुख्यमंत्री द्वारा इससे आगे जाकर यह सिफारिश करना उचित था कि पहली समिति की रिपोर्ट में जो निष्कर्ष निकाले गए थे, उनके आधार पर पूरी प्रक्रिया को रद्द कर दिया जाना चाहिए। वे निष्कर्ष न तो समाप्त हो गए हैं और न ही न्यायाधिकरण ने उन निष्कर्षों में कोई गलती पाई है। इस मामले के दृष्टिगत, न्यायाधिकरण और उच्च न्यायालय के दोनों निर्णय बने रहने योग्य नहीं हैं।"

53. इसके दृष्टिगत, मैं पाता हूँ कि सरकार का निर्णय संविधान के आदेश और संविधान की प्रस्तावना में निर्धारित लक्ष्य के अनुरूप है, इसलिए इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

54. उपर्युक्त चर्चा के साथ, वर्तमान रिट याचिका **निरस्त** की जाती है। व्यय का कोई आदेश नहीं।

55. प्रतिवादियों को आज से अगले 60 दिनों की अवधि के भीतर परीक्षा आयोजित करने और उसका परिणाम प्रकाशित करने का निर्देश दिया जाता है। परीक्षा की निष्पक्षता, पवित्रता और अखंडता सुनिश्चित करने के लिए, इंजीनियर-इन-चीफ, (प्रोजेक्ट), इंजीनियर-इन-चीफ (डिजाइन और योजना), मुख्य अभियंता (स्तर- I) और दो अधीक्षण अभियंताओं से मिलकर पांच सदस्यीय समिति गठित की जाएगी, जो परीक्षा की पूरी प्रक्रिया की निगरानी करेगी। सिंचाई और जल संसाधन विभाग में दो विशेष सचिवों को विशेष पर्यवेक्षकों के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए ताकि परीक्षा स्वतंत्र, निष्पक्ष और स्वच्छ तरीके से आयोजित की जा सके, और परीक्षा में किसी भी अनियमितता के संबंध में आगे कोई मुकदमा न हो, जैसा कि ऊपर उद्धृत दिनांक 06.04.2023 के आदेश में उल्लेख किया गया है। राज्य किसी का पक्ष नहीं ले रहा है, बल्कि उसे केवल परीक्षा की निष्पक्षता, पवित्रता और अखंडता सुनिश्चित

4.इला डॉ0 राकेश कुमार शर्मा बनाम कुलाधिपति, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय एवं अन्य 1591

करने की चिंता है जिसके लिए परीक्षा का दागी परिणाम रद्द कर दिया गया है।

(2023) 4 ILRA 1190

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल,

रिट-ए संख्या 13842 / 2021

डॉ. राकेश कुमार शर्मा ... याचिकाकर्ता

बनाम

कुलाधिपति, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय
एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: चंद्र भूषण पांडेय,
असीम कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., अवनीश
त्रिपाठी, सुभाष बिसारिया

सिविल कानून - सेवा विधि - चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ - शिक्षा में एसोसिएट प्रोफेसर के पद के लिए योग्यता - यू.पी. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की धारा 50(6) के अनुसार, राज्य सरकार की अधिसूचना दिनांक 03.12.2013 के माध्यम से विश्वविद्यालय के कानून में कानून 11.03.01 डाला गया था - दिनांक 28.11.2014 को प्रख्यापित राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (मान्यता मानदंड और प्रक्रिया) विनियम, 2014, खंड 6.2 बी के तहत एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए न्यूनतम पात्रता योग्यता निर्धारित करता है। एनसीटीई विनियम, 2014 के खंड 6.2 बी (iv) में 'यूजीसी' और 'राज्य सरकार' शब्दों के बीच 'या' शब्द का उपयोग

किया गया है अर्थात 'यूजीसी' द्वारा निर्धारित कोई अन्य योग्यता जैसे नेट योग्यता या प्रोफेसर और एसोसिएट प्रोफेसर के पदों के लिए यूजीसी या राज्य सरकार के मानदंडों के अनुसार पेशेवर शिक्षण अनुभव की अवधि - जबकि यूजीसी विनियम, 2010 के अनुसार उम्मीदवारों के पास न्यूनतम आठ वर्ष का शिक्षण अनुभव होना आवश्यक है, जिसमें एम.एड. स्तर पर कम से कम तीन वर्ष का अनुभव सम्मिलित है, राज्य सरकार के पहले कानून (कानून 11.03.01) में एम.एड. स्तर के शिक्षण अनुभव की किसी विशिष्ट आवश्यकता के बिना, न्यूनतम आठ वर्ष का शिक्षण या अनुसंधान अनुभव आवश्यक है। वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता ने विश्वविद्यालय के पहले कानून के कानून 11.03.01 के अनुसार अपेक्षित योग्यताएं पूरी की हैं। हालांकि, कुलाधिपति ने माना कि याचिकाकर्ता नियुक्ति के लिए योग्यताएं पूरी नहीं करता है क्योंकि उसके पास यूजीसी विनियमों के तहत आवश्यक एम.एड. स्तर के शिक्षण अनुभव के तीन साल के विशिष्ट अनुभव का अभाव है। निर्णय: याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार योग्यताएं पूरी कीं और विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए पात्र था। (पैरा 26)

स्वीकृत (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय और माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

(1) याचिकाकर्ता के लिए श्री चंद्र भूषण पांडे और सुश्री आकांक्षा राजपूत, कुलाधिपति के

लिए श्री हिमांशु सूर्यवंशी, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ [इसके बाद 'विश्वविद्यालय' के रूप में संदर्भित], राज्य अधिकारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य अधिवक्ता और सुभाष बिसारिया, विश्वविद्यालय के अधिकारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता को सुना।

(2) हालांकि प्रतिपक्षी संख्या-6 पर इस याचिका की तामीला पर्याप्त है, जैसा कि दिनांक 01.10.2021 के कार्यालय नोट द्वारा रिपोर्ट किया गया है, परंतु न तो प्रतिपक्षी संख्या-6 और न ही उसका प्रतिनिधित्व करने वाला कोई भी मौजूद है।

(3) भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इन कार्यवाहियों को शुरू करके, याचिकाकर्ता विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति द्वारा पारित दिनांक 03.03.2021 के एक आदेश की वैधता को चुनौती देता है, जिसके तहत प्रतिपक्षी संख्या-6 द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (इसके बाद 'अधिनियम, 1973' के रूप में संदर्भित) की धारा 68 के तहत विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति को चुनौती दी गई है। उन्हें इस पद पर नियुक्ति के लिए अयोग्य माना गया है और उन्हें अनुमत किया गया है। इसके अतिरिक्त, माननीय कुलपति ने विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद, जो विश्वविद्यालय में शिक्षकों की नियुक्ति प्राधिकारी है, को आगे की कार्रवाई करने का निदेश दिया है। माननीय कुलपति के दिनांक 03.03.2021 के उक्त आदेश के अनुसरण में,

कार्यकारी परिषद ने 15.03.2021 को पारित अपने प्रस्ताव में विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त कर दिया है। याचिकाकर्ता ने दिनांक 16.0.2021 के राहत के आदेश को भी चुनौती दी है जिसे विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद के दिनांक 15.03.2021 के संकल्प के अनुसार पारित किया गया है।

(4) इस मामले में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति को विनियमित करने वाले नियमों के संदर्भ में, याचिकाकर्ता के पास न्यूनतम पात्रता थी या नहीं।

(5) विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षा में एसोसिएट प्रोफेसर के पद सहित विश्वविद्यालय में विभिन्न शिक्षण पदों पर भर्ती के लिए आवेदन आमंत्रित करने के लिए एक विज्ञापन जारी किया गया था, जो अनारक्षित था। विज्ञापन के खण्ड-5 में यह निर्धारित किया गया है कि विज्ञापित पदों पर भर्ती के लिए अर्हता दिनांक 12.12.2013 की सरकारी अधिसूचना द्वारा यथासंशोधित विश्वविद्यालय की प्रथम संविधियों के अनुसार होगी। वास्तव में, सरकारी अधिसूचना की तारीख 03.12.2013 है। खण्ड-5 में यह भी प्रावधान है कि भर्ती के लिए अर्हता और अन्य संगत प्रावधानों का ब्यौरा विज्ञापन के पृष्ठ 2-4 में दिया गया है और इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय के पास लागू नवीनतम कानूनों के अनुसार अर्हता में संशोधन करने का अधिकार सुरक्षित है।

विज्ञापन के खंड-5 को यहां नीचे दिया गया है:

-

"5. योग्यता चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ की प्रथम विधियों के अनुसार और उत्तर प्रदेश सरकार की अधिसूचना संख्या-377/सत्तर-2013-16 (114)/2010 दिनांक 12.12.2013 द्वारा संशोधित है। भर्ती के लिए योग्यता और अन्य प्रासंगिक प्रावधानों का विवरण पृष्ठ 2 से 4 पर दिया गया है। विश्वविद्यालय लागू किए गए नवीनतम कानूनों के अनुसार योग्यता में संशोधन करने का अधिकार सुरक्षित रखता है।"

(6) विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की नियुक्ति की शक्ति अधिनियम, 1973 की धारा 21(vii) में निहित प्रावधानों के अनुसार विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद में निहित है। अधिनियम, 1973 की धारा 49 के अनुसार, विश्वविद्यालय और संबद्ध तथा सम्बद्ध कॉलेजों के शिक्षकों की नियुक्ति के लिए न्यूनतम अर्हता और अनुभव प्रदान करने के लिए संविधि तैयार की जा सकती है। अधिनियम, 1973 की धारा 50 में विश्वविद्यालय की प्रथम संविधि तैयार करने की प्रक्रिया का प्रावधान है। अधिनियम, 1973 की स्कीम के अनुसार, प्रथम संविधियों को बनाने, संशोधित करने, परिवर्तित करने अथवा रद्द करने की शक्ति मुख्यतः विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद में निहित है, तथापि, उपधारा (6) राज्य सरकार को माननीय कुलपति की सहमति से कतिपय विषयों पर कतिपय संनियम बनाने की अनुमति देती है। अधिनियम, 1973 की धारा 50 की उपधारा (6) में प्रावधान है कि राज्य

सरकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अथवा राज्य अथवा राष्ट्रीय शिक्षा नीति के किसी सुझाव अथवा सिफारिश के आधार पर अध्ययन, शिक्षण और अनुसंधान के हित में अथवा शिक्षकों, विद्यार्थियों अथवा अन्य स्टाफ के लाभ के लिए लिए गए निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए नई अथवा अतिरिक्त संविधियां बना सकती है अथवा परिनियमों में संशोधन या निरसित कर सकती है शिक्षकों आदि की योग्यता के संबंध में। ऐसी स्थिति में, राज्य सरकार कार्यकारी परिषद से नई या अतिरिक्त संविधि बनाने की अपेक्षा कर सकती है या विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर उसमें संशोधन या निरसन कर सकती है और यदि विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद राज्य सरकार की ऐसी अपेक्षा का अनुपालन करने में असफल रहती है तो सरकार स्वयं माननीय कुलपति की सहमति से, नया या अतिरिक्त संविधि बनाना या उसका निरसन करना कर सकती है।

(7) अधिनियम, 1973 की धारा 50(6) के तहत राज्य सरकार को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार ने दिनांक 03.12.2013 को माननीय कुलपति की सहमति से एक अधिसूचना जारी की, जिसके द्वारा कतिपय संविधियों का निर्माण किया गया और उन्हें विश्वविद्यालयों की प्रथम संविधियों का भाग बनाने का आदेश दिया गया। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य संवर्गों की नियुक्ति के लिए योग्यता राज्य सरकार द्वारा दिनांक 03.12.2013 की अधिसूचना के माध्यम से बनाई गई उक्त संविधियों में दी गई है और

प्रथम संविधि 11.01(ग) में प्रावधान है कि जहां तक विश्वविद्यालयों में शिक्षा संकाय में नियुक्ति का संबंध है, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (इसके बाद 'एन.सी.टी.ई.' के रूप में संदर्भित) के परामर्श से तैयार किए गए मानदंड/विनियम लागू होंगे। दिनांक 03.12.2013 की सरकारी अधिसूचना द्वारा सम्मिलित प्रथम संविधियों के नवनिर्मित 11.01 (ग) को यहां नीचे दिया गया है: -

"11.01 कवरेज (नया) में शिक्षकों के लिए -

(क)

(ख)

(ग) शिक्षा संकाय कौन-कौन से हैं और राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के परामर्श से क्या मानदंड/विनियम बनाए गए हैं;

(8) संविधि 11-02-07 के अनुसार एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए पी.एच.डी. डिग्री अनिवार्य है। संविधि 11.02.07 भी यहां नीचे दी गई है: -

"11.02.07 पी.एच.डी. डिग्री के लिए एक अनिवार्य योग्यता होगी -

(क) प्रोफेसर/लाइब्रेरियन की नियुक्ति और प्रोफेसर/लाइब्रेरियन के रूप में पदोन्नति के लिए।

(ख) सीधी भर्ती के माध्यम से एसोसिएट प्रोफेसर/उप पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति किए जाने वाले अभ्यर्थियों के लिए।

(9) संविधि 11-03-01 में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए सामान्य पात्रता मानदंड

निर्धारित किए गए हैं, जिसके अनुसार एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने वाले उम्मीदवार के पास शिक्षण और/अथवा अनुसंधान के न्यूनतम आठ वर्ष के अनुभव सहित कम से कम 55 प्रतिशत अंकों के साथ स्नातकोत्तर डिग्री होनी चाहिए। इसमें यह भी निर्धारित किया गया है कि अनुसंधान कार्य प्रकाशित कार्य द्वारा प्रमाणित होना चाहिए और पुस्तकों और/अथवा शोध/नीति पत्रों के रूप में कम से कम पांच प्रकाशन एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति किए जाने के इच्छुक उम्मीदवार को दिए जाने चाहिए। इसमें यह भी प्रावधान है कि उम्मीदवार के पास न्यूनतम शैक्षणिक निष्पादन संकेतक (ए.पी.आई.) भी होना चाहिए और ऐसे उम्मीदवार को शैक्षिक नवाचार में योगदान देना चाहिए और नए पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रम आदि डिजाइन किए जाने चाहिए। दिनांक 03.12.2013 की सरकारी अधिसूचना द्वारा सम्मिलित प्रथम संविधि की संविधि 11.03.01 भी यहां नीचे दी गई है:

"11.03.01 एसोसिएट प्रोफेसर / डिप्टी लाइब्रेरियन के लिए सामान्य पात्रता मानदंड

(क) संबंधित/संबद्ध/संगत विषयों में पी.एच.डी. डिग्री के साथ अच्छा अकादमिक रिकॉर्ड।

(बी) कम से कम 55% अंकों के साथ एक मास्टर डिग्री (या एक बिंदु पैमाने में समकक्ष ग्रेड जहां ग्रेडिंग प्रणाली का पालन किया जाता है)।

(ग) किसी विश्वविद्यालय, कॉलेज या प्रत्यायित अनुसंधान संस्थान/उद्योग में सहायक प्रोफेसर/व्याख्याता/सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष के समकक्ष

4.इला डॉ0 राकेश कुमार शर्मा बनाम कुलाधिपति, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय एवं अन्य 1595

शैक्षणिक/अनुसंधान स्थिति में शिक्षण और/या अनुसंधान का न्यूनतम आठ वर्ष का अनुभव, जिसमें पी.एच.डी. अनुसंधान की अवधि प्रकाशित कार्य के साक्ष्य के साथ और पुस्तकों और/या शोध/नीति पत्रों के रूप में न्यूनतम 5 प्रकाशन शामिल हों।

(घ) शैक्षिक नवाचार, नए पाठ्यक्रम और पाठ्यक्रमों के डिजाइन, और प्रौद्योगिकी-निर्देशित डॉक्टरेट उम्मीदवारों और शोध छात्रों के साक्ष्य के साथ मध्यस्थता शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में योगदान।

(ङ) परिशिष्ट-एच की तालिका-1 से VI में निर्धारित अकादमिक निष्पादन संकेतक (ए.पी.आई.) आधारित निष्पादन आधारित मूल्यांकन प्रणाली (पी.बी.ए.एस.) में यथा निर्धारित न्यूनतम अंक।

(10) तदनुसार, दिनांक 03.12.2013 की सरकारी अधिसूचना के माध्यम से विश्वविद्यालय की प्रथम संविधियों में यथा पुरस्थापित संगत संविधियों के साथ पठित विज्ञापन के खंड-5 में अंतर्विष्ट प्रावधानों के अनुसार, शिक्षा संकाय में विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में नियुक्त होने के इच्छुक उम्मीदवार के पास राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.) के परामर्श से तैयार किए गए विनियमों के अनुसार मानदंडों का होना चाहिए।

(11) अब हम इस बात की जांच करेंगे कि विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति के लिए पात्रता के संबंध में

एन.सी.टी.ई. द्वारा बनाए गए विनियम क्या हैं। एन.सी.टी.ई. ने दिनांक 31-08-2009 की अधिसूचना के माध्यम से अध्यापक शिक्षा [मान्यता मानदंड एवं प्रक्रिया] विनियम, 2009 [जिसे इसके बाद एन.सी.टी.ई. विनियम, 2009 कहा गया है] प्रख्यापित किया है। एन.सी.टी.ई. विनियम, 2009 के साथ संलग्न परिशिष्ट-5 के खंड 4(2) में एसोसिएट प्रोफेसर के पद सहित शिक्षण पदों के लिए अर्हता निर्धारित की गई है, जिसके अनुसार विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में नियुक्त किए जाने के इच्छुक उम्मीदवार के पास संबंधित क्षेत्र में स्नातकोत्तर डिग्री होनी चाहिए उसे शिक्षा संकाय में स्नातकोत्तर डिग्री और न्यूनतम 55 प्रतिशत अंकों के साथ बी.एड. होना चाहिए। उसके पास शिक्षा में पी.एच.डी. की डिग्री भी होनी चाहिए और उक्त शैक्षणिक योग्यता के अलावा, उम्मीदवार को विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग या शिक्षा कॉलेज में कम से कम आठ साल का शिक्षण अनुभव होना चाहिए और एम.एड. स्तर पर न्यूनतम तीन साल का अनुभव होना चाहिए और उसे विशेषज्ञता के अपने क्षेत्र में काम प्रकाशित भी करना चाहिए। एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए एन.सी.टी.ई. विनियमन, 2009 द्वारा निर्धारित योग्यता यहां निकाली गई है: -

"रीडर / एसोसिएट प्रोफेसर

(i) कला/मानविकी/विज्ञान/वाणिज्य में मास्टर डिग्री और न्यूनतम पचपन प्रतिशत अंकों के साथ एम.एड. प्रत्येक या इसके समकक्ष ग्रेड, नहीं तो

एम.ए. (शिक्षा) और बी.एड.-प्रत्येक न्यूनतम पचपन प्रतिशत अंकों के साथ

(ii) शिक्षा में पी.एच.डी. और

(iii) विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग या शिक्षा महाविद्यालय में कम से कम आठ वर्ष का शिक्षण अनुभव, जिसमें से न्यूनतम तीन वर्ष एम.एड. स्तर पर और विशेषज्ञता के अपने क्षेत्र में प्रकाशित कार्य।

(12) इस प्रकार एन.सी.टी.ई. विनियम, 2009 के अनुसार, शैक्षिक योग्यता के अलावा, शिक्षा में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के इच्छुक उम्मीदवार के पास कुल आठ साल का शिक्षण अनुभव होना चाहिए, जिसमें से उसे एम.एड. स्तर पर तीन साल का शिक्षण अनुभव होना चाहिए। इसका मतलब यह होगा कि स्नातक स्तर पर शिक्षण का पांच साल का अनुभव रखने वाले उम्मीदवार और स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षण का तीन साल का अनुभव रखने वाले उम्मीदवार नियुक्ति के लिए विचार करने के योग्य होंगे। इसी प्रकार, यदि किसी उम्मीदवार के पास एम.एड. स्तर पर शिक्षण का कुल आठ साल का अनुभव है, तो वह एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए भी योग्य होगा। हालांकि, ऐसी स्थिति में, जहां एक उम्मीदवार के पास आठ साल का शिक्षण अनुभव है, लेकिन उसके पास एम.एड. स्तर पर न्यूनतम तीन साल का शिक्षण अनुभव नहीं है, वह एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा।

(13) तथापि, एन.सी.टी.ई. विनियम, 2009 का स्थान राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (मान्यता मानदंड और प्रक्रिया) विनियम, 2014 (इसके पश्चात् एन.सी.टी.ई. विनियम 2014 के रूप में संदर्भित) द्वारा ले लिया गया था जिन्हें दिनांक 28/11/2014 की अधिसूचना के माध्यम से प्रख्यापित किया गया था। एसोसिएट प्रोफेसर के पद के लिए 28.11.2014 को प्रख्यापित एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 में निर्धारित योग्यता के अनुसार, एक उम्मीदवार के पास 55% अंकों के साथ स्नातकोत्तर डिग्री होनी चाहिए; उसके पास 55% अंकों के साथ शिक्षा/एम.ए. शिक्षा में स्नातकोत्तर डिग्री होनी चाहिए। यदि शिक्षा विभाग में नियुक्ति की मांग की जाती है, तो उसके पास शिक्षा में पी.एच.डी. की डिग्री भी होनी चाहिए। ऐसी शैक्षिक अर्हताओं के साथ-साथ, एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति चाहने वाले उम्मीदवार के पास यू.जी.सी. द्वारा निर्धारित कोई अन्य योग्यता भी होनी चाहिए, जैसे नेट योग्यता या एसोसिएट प्रोफेसर के पद के लिए यू.जी.सी. या राज्य सरकार के मानदंडों के अनुसार शिक्षण अनुभव की लंबाई।

(14) एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के खंड 6.2 बी, जो एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए न्यूनतम पात्रता योग्यता निर्धारित करता है, यहां नीचे दिया गया है:

"6.2 योग्यता

B. प्रोफेसर और एसोसिएट प्रोफेसर

(i) विशेषज्ञता के क्षेत्र से संबंधित विषय में न्यूनतम 55% अंकों के साथ स्नातकोत्तर डिग्री।

(ii) न्यूनतम 55% अंकों के साथ शिक्षा में स्नातकोत्तर डिग्री (एम.एड./एम.ए शिक्षा)।

(iii) शिक्षा में अथवा विशेषज्ञता के क्षेत्र से सुसंगत विषय में पी.एच.डी.।

(iv) प्रोफेसर और एसोसिएट प्रोफेसर के पदों के लिए यू.जी.सी. या राज्य सरकार के मानदंडों के अनुसार नेट योग्यता या पेशेवर शिक्षण अनुभव की लंबाई जैसी कोई अन्य योग्यता।

(15) इस प्रकार, जहां तक एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता मानदंड का संबंध है, एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 में स्पष्ट रूप से विचलन है, जैसा कि एन.सी.टी.ई. विनियम, 2009 में पाया जा सकता है। एन.सी.टी.ई. विनियम, 2009 केवल यह निर्धारित करता है कि उम्मीदवारों के पास आठ साल का शिक्षण अनुभव होना चाहिए, जिसमें एम.एड. स्तर पर न्यूनतम तीन साल का शिक्षण अनुभव आवश्यक है, जबकि एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि यू.जी.सी. या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित योग्यता एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता मानदंड निर्धारित करने के लिए अपेक्षित योग्यता होनी चाहिए। जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है, विज्ञापन के खंड-5 के अनुसार और दिनांक 03.12.2013 की अधिसूचना के माध्यम से मेरठ विश्वविद्यालय की प्रथम संविधियों में अंतास्थापित संविधियों के संदर्भ में भी, शिक्षा संकाय में विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता योग्यता एन.सी.टी.ई. द्वारा बनाए गए

मानदंडों अथवा विनियमों के अनुसार है। विज्ञापन वर्ष 2017 में जारी किया गया था और तदनुसार, यह एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 है जो उस समय प्रचलन में था और इसलिए, जहां तक विश्वविद्यालय में शिक्षा संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता के निर्धारण का संबंध है, उम्मीदवार की पात्रता एन.सी.टी.ई. विनियमों 2014 में उपलब्ध नुस्खे के आधार पर निर्धारित की जानी है। एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के खंड 6.2 बी (iv) में निहित प्रावधान इस प्रकार महत्व रखते हैं, जहां तक शिक्षा संकाय में विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता की पात्रता शर्त के निर्धारण से संबंधित प्रश्न का संबंध है। उक्त प्रावधान पहले ही ऊपर निकाला जा चुका है और ध्यान देने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के खंड 6.2 बी (iv) में उल्लिखित उक्त प्रावधान 'यू.जी.सी.' और 'राज्य सरकार' शब्दों के बीच 'या' शब्द का उपयोग करता है।

(16) इस प्रकार, एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के खंड 6.2 बी (iv) में उपलब्ध नुस्खे के एक सरसरी अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यू.जी.सी. या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित योग्यता को पूरा करने वाला व्यक्ति एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्त होने के लिए विचार किए जाने के लिए पात्र होगा। इस मामले में, इस प्रकार, अब जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या याचिकाकर्ता यू.जी.सी. द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करता है या क्या वह राज्य सरकार द्वारा निर्धारित

मानदंडों को पूरा करता है, जहां तक प्रश्न में नियुक्ति के लिए उसकी पात्रता का निर्धारण है।

(17) हमने पहले ही देखा है कि विज्ञापन के खंड-5 में अंतर्विष्ट प्रावधानों और दिनांक 03.12.2013 की अधिसूचना के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित प्रथम संविधियों के संदर्भ में, विश्वविद्यालय में शिक्षा संकाय में शिक्षण पद पर नियुक्ति की मांग करने वाले उम्मीदवार को एन.सी.टी.ई. के परामर्श से निर्धारित किए जाने वाले मानदंडों को पूरा करना चाहिए। हमने ऊपर यह भी देखा है कि विज्ञापन वर्ष 2017 में जारी किया गया था, जहां तक एन.सी.टी.ई. विनियम, 2009 में उपलब्ध शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए योग्यता के संबंध में पर्चे का संबंध है, वे लागू नहीं होते हैं; बल्कि, यह एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 में उपलब्ध नुस्खे हैं जो लागू होते हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित मानदंड विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षकों और अन्य अकादमिक स्टाफ की नियुक्ति के लिए न्यूनतम अर्हता और उच्चतर शिक्षा में मानकों के रखरखाव हेतु उपाय संबंधी विनियम, 2010 में उपलब्ध हैं, जिसे दिनांक 30-06-2010 को भारत के सरकारी राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। खंड 4.4.7 बी (ii) के अनुसार, एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति की मांग करने वाले उम्मीदवार के पास 55% अंकों के साथ शिक्षा में मास्टर डिग्री या मास्टर डिग्री और बी.एड. प्रत्येक होना चाहिए और इसके अलावा, उसके पास पी.एच.डी. होनी चाहिए।

(18) उपर्युक्त शैक्षिक अर्हताओं के अतिरिक्त, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम, 2010 में यह भी अपेक्षित है कि अभ्यर्थियों को विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग अथवा शिक्षा महाविद्यालय में कम से कम आठ वर्ष का शिक्षण अनुभव तथा एम.एड. स्तर पर तीन वर्ष का न्यूनतम अनुभव होना चाहिए और इसके अतिरिक्त अभ्यर्थी को विशेषज्ञता के सुसंगत क्षेत्र में अपने क्रेडिट के लिए कार्य प्रकाशित किया हुआ होना चाहिए। यू.जी.सी. विनियम, 2010 के विनियमन 4.4.7 बी (ii) के प्रावधानों को यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"4.4.7. एन.सी.टी.ई. के विनियमों में संकाय पदों के लिए निर्धारित योग्यताएं

B. एम.एड. कोर्स के लिए योग्यता

(ii) एसोसिएट प्रोफेसर:

(i) कला/मानविकी/विज्ञान/वाणिज्य में मास्टर डिग्री और न्यूनतम 55% अंकों के साथ एम.एड. प्रत्येक (या जहां भी ग्रेडिंग प्रणाली का पालन किया जाता है, एक बिंदु पैमाने में समकक्ष ग्रेड),

नहीं तो

एम.ए. (शिक्षा) और बी.एड. प्रत्येक न्यूनतम 55% अंकों के साथ (या एक बिंदु पैमाने में समकक्ष ग्रेड जहां ग्रेडिंग प्रणाली का पालन किया जाता है);

(ii) शिक्षा में पी.एच.डी. और

की गई पहली संविधि के संविधि 11.03.01 में ऐसा कोई अनुबंध उपलब्ध नहीं है।

(iii) विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग या शिक्षा कॉलेज में कम से कम आठ साल का शिक्षण अनुभव, एम.एड. स्तर पर न्यूनतम तीन साल के साथ और विशेषज्ञता के प्रासंगिक क्षेत्र में काम प्रकाशित किया हो।

(19) यू.जी.सी. विनियम 2010 में निहित प्रावधानों और राज्य सरकार की दिनांक 03.12.2013 की अधिसूचना द्वारा अंतास्थापित प्रथम संविधियों की तुलनात्मक जांच से, हमने जो देखा है वह यह है कि जहां तक एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति का संबंध है, यू.जी.सी. विनियम, 2010 में यह अपेक्षित है कि उम्मीदवारों के पास आठ वर्ष का शिक्षण अनुभव होना चाहिए। जिसमें से न्यूनतम तीन वर्ष का शिक्षण अनुभव एम.एड. स्तर पर होना चाहिए, जबकि 03.12.2013 की सरकारी अधिसूचना द्वारा सम्मिलित प्रथम विधियों में यह प्रावधान है कि उम्मीदवारों के पास न्यूनतम आठ वर्ष का शिक्षण अनुभव या अनुसंधान (विश्वविद्यालय की प्रथम संविधि का संविधि 11.03.01) होना चाहिए। इस प्रकार, इन प्रावधानों के बीच अंतर, पहला यू.जी.सी. विनियम, 2010 द्वारा निर्धारित और दूसरा राज्य सरकार की अधिसूचना दिनांक 03.12.2013 द्वारा अधिसूचना द्वारा निर्धारित किया गया है, यह है कि यू.जी.सी. विनियम एम.एड. स्तर पर शिक्षण के तीन साल के न्यूनतम अनुभव को निर्धारित करते हैं, जबकि राज्य सरकार की अधिसूचना दिनांक 03.12.2013 द्वारा पेश

(20) हमने पहले ही देखा है कि एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के विनियम 6.2 बी (iv) में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि उम्मीदवारों के पास यू.जी.सी. या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अनुभव होना चाहिए। इसका सीधा सा अर्थ यह होगा कि यदि किसी उम्मीदवार के पास यू.जी.सी. विनियम, 2010 में उपलब्ध नुस्खे के अनुसार अपेक्षित अनुभव है, तो वह एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का पात्र होगा और एक उम्मीदवार जिसके पास राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अपेक्षित अनुभव है, वह भी पात्र होगा। इस समय यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विश्वविद्यालय की पहली संविधियों में संशोधन के माध्यम से जो पहली संविधियां डाली गई थीं, वे अधिनियम की धारा 50(6) के तहत राज्य सरकार को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा जारी दिनांक 03.12.2013 की अधिसूचना के अनुसार बनाई गई थीं। इस प्रकार दिनांक 03.12.2013 की सरकारी अधिसूचना के माध्यम से सम्मिलित प्रथम संविधियां राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंड हैं। तदनुसार, यदि हम एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के विनियम 6.2 बी(iv) में निहित प्रावधानों को स्पष्ट रूप से समझते हैं, तो हम पाते हैं कि यदि कोई उम्मीदवार विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति की मांग करने का इच्छुक है, तो अगर वह अपेक्षित अनुभव को पूरा करता

है जैसा कि राज्य सरकार द्वारा अधिसूचना दिनांक 03.12.2013 के माध्यम से प्रख्यापित प्रथम कानून द्वारा निर्धारित किया गया है, तो वह एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए भी पात्र होगा।

(21) जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, पक्षकारों के बीच कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 03.12.2013 की सरकारी अधिसूचना के माध्यम से सम्मिलित परिनियमों के कानून 11.03.01 के अनुसार, आठ साल से अधिक समय तक शिक्षक के रूप में काम करने के अपेक्षित अनुभव को पूरा किया। इस प्रकार, याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा किया, जो हमारी सुविचारित राय में, एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के विनियमन 6.2 बी(iv) की आवश्यकता को पूरा करता है।

(22) हम इस बात को दोहरा सकते हैं कि एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के खंड 62-ख में यू.जी.सी. और राज्य सरकार शब्दों के बीच या शब्द का होना यह पूरी तरह स्पष्ट करता है कि यू.जी.सी. के नुस्खे के अनुसार और राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार अपेक्षित शिक्षण अनुभव पूरा करने वाले उम्मीदवार को एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए पात्र माना जाएगा।

(23) हमने पहले ही एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि संविधि 11.03.01 जो विश्वविद्यालय की संविधियों में अंतास्थापित की गई थी, राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानदंड है क्योंकि

उक्त संविधि को राज्य सरकार की अधिसूचना दिनांक 03.12.2013 के माध्यम से अंतास्थापित किया गया था जिसके लिए राज्य सरकार के अधिनियम 1973 की धारा 50(6) के तहत सांविधिक रूप से सशक्त किया गया है।

(24) पूर्वोक्त के मददेनजर, हमारे मन में कोई अस्पष्टता नहीं है कि याचिकाकर्ता ने विश्वविद्यालय में शिक्षा संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्त होने के लिए अपेक्षित योग्यता को पूरा किया था और इस प्रकार उसे प्रश्नगत पद पर नियुक्त किया गया था।

(25) माननीय कुलपति द्वारा पारित दिनांक 03.03.2021 के आक्षेपित आदेश पर आते हुए, हम देख सकते हैं कि माननीय कुलपति द्वारा यह मानने का एकमात्र कारण इंगित किया गया है कि याचिकाकर्ता ने एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए अपेक्षित योग्यता को पूरा नहीं किया है, हालांकि उसके पास आठ साल का शिक्षण अनुभव था, परंतु उन्हें एम.एड. स्तर पर पढ़ाने का तीन साल का अनुभव नहीं था। हालांकि, राज्य सरकार की अधिसूचना दिनांक 03.12.2013 के माध्यम से सम्मिलित प्रथम कानून-11.03.01 ने हमारे समक्ष आक्षेपित आदेश दिनांक 03.03.2021 को पारित करते समय माननीय कुलपति की नज़रों से अनदेखा/चूक गया है।

(26) इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि संगत प्रथम संविधि और विज्ञापन में यह

उपबंध किया गया है कि न्यूनतम अर्हता राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के परामर्श से बनाए गए विनियमों के अनुसार अवधारित की जाएगी। यह भी विवाद में नहीं है कि एन.सी.टी.ई. विनियम 2014 इस कारण से लागू हैं कि इस मामले में विज्ञापन वर्ष 2017 में जारी किया गया था। एन.सी.टी.ई. विनियम, 2014 के प्रासंगिक विनियम, अर्थात् विनियम 6.2 बी (iv) पर पहले ही ऊपर चर्चा की जा चुकी है, जिसमें 'या' शब्द का उपयोग किया गया है और इस प्रकार, यू.जी.सी. या राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अपेक्षित योग्यता को पूरा करने वाले किसी भी उम्मीदवार को, हमारी राय में, विश्वविद्यालय में शिक्षा संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के लिए न्यूनतम पात्रता होगी।

(27) उपरोक्त कारणों से, हम आश्वस्त हैं कि माननीय कुलपति द्वारा पारित दिनांक 03.03.2021 का आदेश टिकाऊ/पुख्ता नहीं है।

(28) तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। माननीय कुलपति द्वारा पारित दिनांक 03.03.2021 का आदेश, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-1 में निहित है, एतद्वारा अपास्त किया जाता है।

(29) विश्वविद्यालय की कार्यकारी परिषद का दिनांक 15.03.2021 का परिणामी संकल्प भी, जहां तक यह याचिकाकर्ता से संबंधित है, एतद्वारा रद्द किया जाता है। हम विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार द्वारा पारित दिनांक 16.03.2021 के राहत आदेश को भी

रद्द करते हैं जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक-3 में निहित है।

(30) इस प्रकार याचिकाकर्ता को चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ में शिक्षा संकाय में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में अपने कर्तव्यों में शामिल होने की अनुमति दी जाएगी।

(31) हालांकि, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 4 ILRA 1198

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष दिनांक: लखनऊ 07.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

रिट-ए संख्या 14890 वर्ष 2021

रमाकांत मिहिर

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: आलोक मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी., शरद द्विवेदी

ए. भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियम, धारा 67(एच) - अनुशासनात्मक कार्यवाही-अनिवार्य सेवानिवृत्ति - दोहरा खतरा - किसी कर्मचारी द्वारा बार-बार किया गया कदाचार अपने आप में कदाचार माना जा सकता है। यह प्रदर्शित करने के लिए कि दोषी कर्मचारी आदतन अपराधी है, किसी पूर्व अनुशासनात्मक जांच में साबित हुए आरोप का संदर्भ दोहरे खतरे के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करता है। याचिकाकर्ता पर पहले लगाया गया जुर्माना बाद की अनुशासनात्मक कार्यवाही में सजा पर विचार करते समय प्रासंगिक है। (पैरा 14)

बी. भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियम, धारा 67(एच)- अनुशासनात्मक कार्यवाही - अनिवार्य सेवानिवृत्ति - जब कोई व्यक्ति बैंकिंग व्यवसाय में कार्यरत होता है, तो उसका कर्तव्य होता है कि वह पूरी ईमानदारी और निष्ठा से काम करे। किसी भी उल्लंघन के कारण धन का दुरुपयोग गंभीर कदाचार माना जाता है क्योंकि यह बैंकिंग परिचालन की जड़ पर प्रहार करता है और ग्राहकों के विश्वास को खत्म करता है। इस वाद में, याचिकाकर्ता को दो अलग-अलग मौकों पर धन के दुरुपयोग का दोषी पाया गया, जिसमें उसने ग्राहकों के धन को बैंक के खातों में जमा नहीं किया और स्वेच्छा से धन वापस नहीं किया। कदाचार के दोनों कृत्यों में याचिकाकर्ता की संलिप्तता से इनकार नहीं किया गया। निर्णय: याचिकाकर्ता के बार-बार कदाचार को देखते हुए अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा न तो असंगत है और न ही अत्यधिक। (पैरा 20)

निरस्त (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल बनाम अबरार अली, (2017) 4 एससीसी 507
2. डिवीजनल कंट्रोलर, केएसआरटीसी बनाम ए.टी. माने, (2005) 3 एससीसी 254
3. अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक एवं अन्य बनाम पी.सी. कक्कड़, (2003) 4 एससीसी 364
4. स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर बनाम नेमी चंद नलवाया, (2011) 4 एससीसी 584

5. उप महाप्रबंधक (अपीलीय प्राधिकरण) व अन्य बनाम अजय कुमार श्रीवास्तव, (2021) 2 एससीसी 612

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता ने अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश दिनांक 05.05.2017 को चुनौती दी है, जिसे उसके खिलाफ शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही के अनुसार सजा के उपाय के रूप में लगाया गया है। उक्त आदेश के विरुद्ध दिनांक 28.06.2017 को दायर अपील को भी दिनांक 26.07.2017 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है। दोनों आदेशों अर्थात् 05.05.2017 और 26.07.2017 को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती दी गई है।

2. मामले के तथ्य और संक्षिप्त विवरण यह है कि याचिकाकर्ता ने भारतीय स्टेट बैंक, गिरिजापुरी शाखा (इसके बाद बैंक के रूप में संदर्भित) में कैश काउंटर पर काम करते हुए 16.03.2005 को एक आरोप पत्र दिया गया था, जहां उसके खिलाफ आरोप था कि उसने एक ग्राहक अर्थात् राज नारायण से 5000/- रुपये की राशि स्वीकार की थी, जिसे उसने अपने खाता संख्या-5104 में जमा करने के लिए एक ग्राहक अर्थात् राज नारायण से 5000/- रुपये की राशि स्वीकार की थी। याचिकाकर्ता ने कैशियर के कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए उक्त राशि स्वीकार कर ली, और ग्राहक की पासबुक में पृष्ठांकन किया, लेकिन उक्त जमा दर्ज नहीं किया,

और बैंक के आधिकारिक रिकॉर्ड में कोई प्रविष्टि नहीं की गई, और इसी तरह 500 की एक और राशि एक ग्राहक से ली थी, और बैंक की पुस्तकों में उसके द्वारा हिसाब नहीं दिया गया था। याचिकाकर्ता को 16-3-2005 को आरोप-पत्र जारी किया गया था और अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई थी और दिनांक 9-3-2006 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को सेवा से अधिवर्षता लाभों के साथ अनिवार्य सेवानिवृत्ति प्रदान की गई थी। याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील में दंड के आदेश को दिनांक 12-6-2006 के आदेश द्वारा संशोधित किया गया था ताकि संचयी प्रभाव से 4 वेतनवृद्धियों को 4 वर्षों के लिए रोक दिया जा सके। यह दर्ज किया गया है कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा एक उदार और दयालु दृष्टिकोण लिया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता की एक अविवाहित बेटी और 3 नाबालिग बच्चे हैं और आगे याचिकाकर्ता को अपने आचरण में सुधार दिखाने और खुद को सुधारने का अवसर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता को फिर से अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधीन किया गया और 28.07.2016 को 3 आरोपों के साथ एक आरोप पत्र दिया गया। पहला आरोप ग्राहक द्वारा प्राप्त राशि को ग्राहक के खाते में जमा नहीं करने से संबंधित था, और जब ग्राहक ने राशि के गैर-क्रेडिट के बारे में शिकायत की, तो उसे वापस कर दिया गया। दूसरा आरोप याचिकाकर्ता को उसके द्वारा किए गए कदाचार के लिए दी गई पूर्व की सजा से संबंधित था, जहां उसे संचयी प्रभाव से 4 साल के लिए 4 वेतन वृद्धि रोक दी गई थी और

यह कहा गया था कि उसे अपने कामकाज में सुधार दिखाने का अवसर दिया गया था, लेकिन उसने फिर से इसी तरह की अनियमितता की है।

4. अनुशासनात्मक कार्यवाही में, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 5.5.2017 को आक्षेपित दंड आदेश दिया गया, आरोप संख्या-1 के अनुसार बचत बैंक खाताधारक प्रदीप कुमार ने दिनांक 26.06.2015 को एक ग्राहक अर्थात् प्रदीप कुमार से काउंटर पर ₹ 34,000/- की नकद राशि जमा की। ग्राहक को पावती रसीद जारी की गई थी, लेकिन याचिकाकर्ता ने ग्राहक के बचत खाते को जमा किए बिना नकदी को अपने पास रख लिया। केवल तब जब ग्राहक ने याचिकाकर्ता के खिलाफ शिकायत की तो उसने 10/07/2015 को ग्राहक को पैसे वापस कर दिए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने माना कि आरोप संख्या-1 साबित हो गया था, और आरोप संख्या-2 के संबंध में उन्होंने एक निष्कर्ष प्रतिबिंबित किया कि अधिकारी को, जब पहले कदाचार के समान कार्य किए गए थे, सुधार दिखाने का अवसर दिया गया था, फिर भी उन्होंने कदाचार के समान कार्य किए हैं और याचिकाकर्ता पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति के भारतीय स्टेट बैंक अधिकारी सेवा नियमों के 67 (एच) के संदर्भ में जुर्माना लगाया गया। सजा के उक्त आदेश के खिलाफ अपील को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 26/07/2017 के आदेश के माध्यम से भी खारिज कर दिया गया था।

5. याचिकाकर्ता ने सजा के आदेश के साथ-साथ अपीलीय आदेश को इस आधार पर

चुनौती दी है कि पहले, याचिकाकर्ता को दिनांक 09/03/2006 के आदेश के माध्यम से दंडित किया गया था और फिर से उसी आरोप पर दंडित किया गया था और तदनुसार सजा का आदेश अवैध और मनमाना है क्योंकि यह दोहरे दंड से ग्रस्त है क्योंकि एक व्यक्ति को उसी आरोप के लिए फिर से दंडित नहीं किया जा सकता है जिस पर उसे पहले भी दंडित किया गया है और यह भी कि कहा गया कि दंड अत्यधिक है।

6. प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री शरद द्विवेदी ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन करते हुए प्रस्तुत किया है कि वर्ष 2005 में पिछले अवसर पर जब याचिकाकर्ता गिरिजापुरी शाखा में कैश काउंटर पर काम कर रहा था, तो आरोप लगाया गया था कि उसने एक ग्राहक से 5000 रुपये प्राप्त किए थे, और उन्हें बैंक के खातों की पुस्तकों में जमा नहीं किया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई अनुशासनात्मक जांच में सभी आरोप साबित पाए गए। याचिकाकर्ता को अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा सुनाई गई थी, अपीलीय प्राधिकारी ने मामले के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए, 4 साल के लिए 4 वेतनवृद्धियों को रोकने की सजा दी, इस शर्त के साथ कि "कृपया ध्यान दें कि अगर भविष्य में आपके बारे में अनुचित व्यवहार का एक भी संकेत देखा गया, तो आगे कोई दया नहीं दिखाई जाएगी। यह आपकी सर्विस रेकॉर्ड में भी दर्ज किया जाएगा। वह प्रस्तुत करता है कि आरोप-पत्र में केवल पिछली अनुशासनात्मक कार्यवाही की पुनरावृत्ति की गई है, और वर्तमान जांच में उसी आरोप

को साबित करने की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन केवल उसके पिछले आचरण का संदर्भ प्रदान किया गया था, क्योंकि यह सजा देने के प्रयोजनों के लिए सामग्री थी। सजा की मात्रा के संबंध में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को बैंक का कर्मचारी होने के नाते ग्राहकों के प्रति पूरी ईमानदारी, गंभीरता और निष्ठा दिखानी चाहिए थी, और ग्राहकों के धन का गबन एक बहुत ही गंभीर कदाचार है क्योंकि यह बैंक की विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा को प्रभावित करता है। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को यह कहते हुए आरोप पत्र दिया गया था कि उसने ग्राहकों से राशि प्राप्त की है, लेकिन बैंक रिकॉर्ड में आवश्यक प्रविष्टियां नहीं की हैं, न ही उसने बैंक के किसी उच्च अधिकारी को सूचित किया है, और पर्याप्त समय के बाद शिकायत किए जाने पर ही पैसा वापस किया है, और परिणामस्वरूप बार-बार कदाचार के लिए, अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा लगाई गई है जो अनुपातहीन नहीं है और परिणामस्वरूप रिट याचिका का विरोध किया गया है।

7. मैंने पक्षकारों की सलाह सुनी और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

8. अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आक्षेपित आदेश की आलोचना करने में याचिकाकर्ता द्वारा प्रचारित पहला आधार यह है कि उसे एक ही अपराध के लिए दो बार दंडित किया जा रहा है, और इसलिए आक्षेपित आदेश दोहरे खतरे के दोष से प्रभावित है। इससे पहले, याचिकाकर्ता को दिनांक 16/03/2005 के आदेश के माध्यम से आरोप-पत्र दिया गया था और आरोप संख्या-(i) और (ii) निम्नानुसार थे: -

1- श्री राज नारायण जो कि शाखा में बचत खाता धारक हैं, ने उनको रु० 5000/- अपने बचत खाता संख्या 5104 में जमा करने हेतु दिए थे किन्तु उन्होंने उक्त राशि उनके बचत खाता में जमा किए बिना उनकी पास बुक में अनुचित रूप से प्रविष्टि कर दी।

2- श्रीमती गोमती देवी ने अपना बचत खाता खोलने हेतु रु० 500/- उनको दिए। उन्होंने श्रीमती गोमती देवी का खाता शाखा में नहीं खोला तथा श्रीमती गोमती देवी को फर्जी बचत पास बुक सौंप दी।

9. याचिकाकर्ता के आचरण से प्रभावित ग्राहकों ने बैंक को शिकायत की थी कि उसके खिलाफ धन प्राप्त करने और उक्त राशि की रसीद जारी करने का आरोप लगाया गया था, लेकिन बैंक की लेखा पुस्तकों में इसे कभी दर्ज नहीं किया गया था। हालांकि बाद में शिकायत के बाद, राशि ग्राहकों को वापस कर दी गई थी, लेकिन जांच अधिकारी ने दोनों आरोपों को साबित पाया और यह स्थापित किया गया कि याचिकाकर्ता ने बैंक के ग्राहकों को धोखा देने के इरादे से दुर्भावनापूर्ण काम किया था, और उसके आचरण के लिए उसके द्वारा कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका और तदनुसार अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने सेवानिवृत्ति लाभों के साथ अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा दी थी। अपील का फैसला करते समय, अपीलीय प्राधिकारी ने इस तथ्य पर विचार करते हुए मामले में

नरमी बरती कि याचिकाकर्ता की 62 साल की बीमार मां, विवाह योग्य उम्र की एक बेटी और 3 नाबालिग बच्चे थे, और परिणामस्वरूप सजा को घटाकर 4 वेतन वृद्धि 4 साल के लिए रोक दिया गया, इस शर्त के साथ कि "कृपया ध्यान दें कि भविष्य में आपके बारे में अनुचित व्यवहार का एक भी उदाहरण देखा गया तो आगे कोई दया नहीं दिखाई जाएगी। यह आपकी सर्विस शीट में भी दर्ज किया जाएगा।"

10. इसके बाद, जब याचिकाकर्ता फतेहपुर, बाराबंकी शाखा में 19/07/2011 से 19/09/2015 तक ग्राहक सहायक के रूप में तैनात था, तो उसे 28/07/2016 को पहले आरोप के साथ आरोप पत्र दिया गया था कि उसने ग्राहकों के खाते में जमा होने के लिए प्राप्त राशि को जमा नहीं किया था। ग्राहक ने शिकायत की, और उसके बाद ही याचिकाकर्ता ने उसे राशि वापस की। आरोप संख्या-2 में कहा गया है कि पहले भी इसी तरह के आरोपों के लिए दंडित किया गया था और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा संचयी रूप से 4 साल के लिए 4 वेतन वृद्धि रोकने के साथ उन्हें बहुत सारी अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी गई थी, और उनके कामकाज और आचरण में सुधार दिखाने का अवसर दिए जाने के बावजूद, फिर इसी तरह की अनियमितताएं/गलती की।

11. याचिकाकर्ता को उचित जांच के बाद अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा दी गई, और सजा के आदेश के खिलाफ उसके द्वारा की गई अपील को भी खारिज कर दिया गया,

जिसके आदेशों को वर्तमान याचिका में लागू किया गया है।

12. तय किया जाने वाला मुद्दा यह है कि क्या पिछली अनुशासनात्मक कार्यवाही में याचिकाकर्ता पर लगाए गए दंड से संबंधित दिनांक 26/07/2016 की चार्जशीट में आरोप संख्या-2, याचिकाकर्ता को फिर से उसी आरोप के लिए दंडित करने के बराबर होगा?

13. इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए दोनों आरोपों में स्वयं जाना होगा। वर्ष 2005 में जब याचिकाकर्ता गिरिजापुरी शाखा में कैश काउंटर पर काम कर रहा था, तो उस पर ग्राहकों से 5000 और 500 प्राप्त करने का आरोप लगाया गया था और उन्हें बैंक की पुस्तकों में दर्ज नहीं किया गया था, जिसके लिए उसे दंडित किया गया था, और शर्त भी लगाई गई थी जो उनकी सेवा पत्र में दर्ज की गई थी "कि यदि भविष्य में आपके बारे में अनुचित व्यवहार का एक भी उदाहरण देखा जाता है, तो आगे कोई दया नहीं दिखाई जाएगी"। वर्ष 2015 में आरोप क्रमांक 2 में उनके विरुद्ध पुनः अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई, जो इस प्रकार है:-

"आपकी ओर से दुर्भावनापूर्ण को इंगित करने वाले समान आरोपों के लिए, 10/04/2002 के समझौता ज्ञापन के पैरा 6 (सी) के संदर्भ में अनिवार्य सेवानिवृत्ति का जुर्माना, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा दिनांक 09/03/2006 के आदेश के माध्यम से आप पर लगाया गया था, जो अपीलीय प्राधिकारी द्वारा संचयी

प्रभाव से 4 साल के लिए 4 वेतन वृद्धि को रोकने के लिए प्रतिबद्ध था। तथापि आपने फिर से नियमित गलती करने का अवसर दिया, जो आपकी ओर से दुर्भावना का संकेत देता है।

14. उपरोक्त आरोप के अवलोकन से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि याचिकाकर्ता ने पिछली अनुशासनात्मक कार्यवाही वर्ष 2005 में चेतावनी दिए जाने के बावजूद फिर से इसी तरह का कदाचार किया है, भविष्य में इस तरह के किसी भी कदाचार को न दोहराएं, जिसमें विफल रहने पर कोई दया नहीं दिखाई जाएगी। यह आरोप पिछली अनुशासनात्मक जांच में लगाए गए आरोप से स्पष्ट रूप से अलग है। वर्तमान आरोप में एक अलग कदाचार शामिल है जो याचिकाकर्ता के बाद इसी तरह के कदाचार में लिप्त होने के कारण उत्पन्न हुआ है। यह पहलू तब और स्पष्ट होगा जब हम देखेंगे कि पिछले कदाचार को बाद की अनुशासनात्मक कार्यवाही में साबित करने की आवश्यकता नहीं थी। यदि बाद की जांच में पिछला आरोप भी साबित हो जाता, तो दोहरे खतरे का सिद्धांत अपराधी कर्मचारी के बचाव में आ जाता, लेकिन एक कर्मचारी द्वारा कदाचार का बार-बार किया गया कार्य अपने आप में एक कदाचार हो सकता है, और पिछली अनुशासनात्मक जांच में आरोप साबित होने का उल्लेख हो सकता है, इस आरोप को कानून के दायरे में लाने के लिए कि अपराधी कर्मचारी आदतन अपराधी है, दोहरे खतरे के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करेगा। याचिकाकर्ता पर लगाए गए पिछले दंड का तथ्य बाद की अनुशासनात्मक कार्यवाही में

सजा देने के लिए प्रासंगिक होगा। यह सवाल कि क्या किसी कर्मचारी के पिछले कदाचार को बाद की अनुशासनात्मक कार्यवाही में ध्यान में रखा जा सकता है, अब फिर से एकीकृत नहीं है और सुप्रीम कोर्ट द्वारा केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल बनाम अबरार अली, (2017) 4 एस.सी.सी. 507 के मामले में निष्कर्ष निकाला गया है, जहां यह अवधारित किया गया है: -

"आरोप 3 यह था कि प्रतिपक्षी अनुशासनहीनता और अव्यवस्था करने का आदी हो गया था। पूर्व में वेतन कटौती के दो बड़े दंड और सात दिन के वेतन में कटौती की एक छोटी सजा का उल्लेख किया गया था। अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने पाया कि प्रतिपक्षी ने पहले दंडित होने के बावजूद सुधार नहीं किया। उच्च न्यायालय ने प्रतिपक्षी के तर्क से सहमति व्यक्त की और कहा कि एक कदाचार में एक नई जांच शुरू नहीं की जा सकती है जिसके लिए एक अपराधी को पहले ही दंड भुगतना पड़ा था। उच्च न्यायालय ने पाया कि आरोप 3 के तहत लगाया गया कोई भी जुर्माना दोहरा खतरा होगा। हम उच्च न्यायालय के निष्कर्ष से असहमत हैं क्योंकि हमारा विचार है कि प्रतिपक्षी पर पिछले कदाचार के लिए फिर से मुकदमा नहीं चलाया जा रहा था। चूंकि प्रतिपक्षी ने पहले दंडित होने के बावजूद सुधार नहीं किया और अनुशासनहीनता और अव्यवस्था में अभ्यस्त हो गया था, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आरोप 3 को सही साबित पाया। प्रतिपक्षी की निरंतरता की वांछनीयता को उसके पिछले आचरण

के आधार पर माना गया था जो दोहरे खतरे की राशि नहीं है। किसी भी घटना में, जुर्माना लगाते समय एक अपराधी कर्मचारी के पिछले आचरण को ध्यान में रखा जा सकता है। हम भारत संघ बनाम बिशम्बर दास डोगरा [भारत संघ बनाम बिशम्बर दास डोगरा, (2009) 13 एस.सी.सी. 102: (2010) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 212] में इस न्यायालय के एक फैसले द्वारा समर्थित हैं, जिसमें निम्नानुसार अवधारित किया गया है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 111, पैरा 30)

"30. ... लेकिन गंभीर प्रकृति के कदाचार या अनुशासनहीनता के मामले में, यहां तक कि वैधानिक नियमों की अनुपस्थिति में, प्राधिकरण कर्मचारी के निर्विवाद पिछले आचरण/सेवा रिकॉर्ड को ध्यान में रख सकता है ताकि सजा देने के निर्णय को वजन जोड़ा जा सके, यदि मामले के तथ्यों की आवश्यकता है।

15. अधिवक्ता के तर्क के संबंध में याचिकाकर्ता ने कहा कि 'आक्षेपित आदेश दोहरे खतरे से ग्रस्त है', को नहीं साबित किया गया है और तदनुसार खारिज कर दिया गया।

16. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आग्रह किया गया अगला आधार सजा की मात्रा के संबंध में है। जुर्माना लगाते समय यह ध्यान में रखा गया है कि कदाचार की प्रकृति याचिकाकर्ता द्वारा वित्तीय दुर्विनियोजन से संबंधित है जो बैंक का कर्मचारी था, जहां वित्तीय अनुशासन, ईमानदारी और निष्ठा

कर्मचारियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण गुण हैं। उपर्युक्त विशेषताओं का कोई भी उल्लंघन एक कदाचार होगा, बैंकिंग व्यवसाय में अधिक गंभीर होगा जहां ग्राहक बैंक को कड़ी मेहनत की कमाई सौंपते हैं, और नौकरी के लिए सभी कर्मचारियों को वित्तीय अनुशासन के उच्च मानकों को बनाए रखने की आवश्यकता होती है। मंडल नियंत्रक, केएसआरटीसी बनाम एटी माने, 2005 (3) एस.सी.सी. 254 के मामले में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"12. सजा की मात्रा के सवाल पर आते हुए, किसी को इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि यह दुर्विनियोजित धन की राशि नहीं है जो सजा देने के लिए एक प्राथमिक कारक बन जाती है, इसके विपरीत, यह विश्वास की कमी है जो प्राथमिक कारक है जिसे ध्यान में रखा जाना है। हमारी राय में, जब कोई व्यक्ति निगम के फंड के दुरुपयोग का दोषी पाया जाता है, तो निगम द्वारा ऐसे व्यक्ति पर विश्वास या भरोसा खोने और बर्खास्तगी की सजा देने में कुछ भी गलत नहीं है।

17. अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक और अन्य बनाम पीसी कक्कड़, 2003 (4) एस.सी.सी. 364 के मामले में माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

एक बैंक अधिकारी को ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के उच्च मानकों का पालन करने की आवश्यकता होती है। वह जमाकर्ताओं और ग्राहकों के धन का लेन-देन करता है। बैंक के प्रत्येक

अधिकारी/कर्मचारी से अपेक्षित है कि वह बैंक के हितों की रक्षा के लिए हर संभव कदम उठाए और अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा, ईमानदारी, गंभीरता और परिश्रम के साथ करे और ऐसा कुछ भी न करे जो बैंक अधिकारी को शोभा न दे। अच्छा आचरण और अनुशासन बैंक के प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी के कामकाज से अविभाज्य है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकरण-सह-क्षेत्रीय प्रबंधक बनाम निकुंज बिहारी पटनायक (1996 (9) एस.सी.सी. 69) में देखा गया था, यह कहने के लिए कोई बचाव उपलब्ध नहीं है कि जब अधिकारी/कर्मचारी ने बिना अधिकार के काम किया तो कोई नुकसान या लाभ नहीं हुआ। किसी संगठन, विशेष रूप से बैंक का अनुशासन ही उसके प्रत्येक अधिकारी और अधिकारी पर निर्भर करता है जो अपने आवंटित क्षेत्र में कार्य और संचालन करते हैं। किसी के अधिकार से परे कार्य करना अपने आप में अनुशासन का उल्लंघन है और एक कदाचार है। कर्मचारी के खिलाफ आरोप प्रकृति में आकस्मिक नहीं थे और गंभीर थे। ऐसा लगता है कि इन पहलुओं को उच्च न्यायालय द्वारा ध्यान में नहीं रखा गया है।

18. दूसरी ओर, उत्तरदाताओं ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता में विश्वास की कमी थी, और परिणामस्वरूप उसे दी गई सजा कठोर नहीं है। स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर बनाम नेमी चंद नलवाया, 2011 (4) एस.सी.सी. 584 के मामले में यह निम्नानुसार अवधारित किया गया है: -

"8. जब कोई अदालत इस बात पर विचार कर रही है कि क्या बैंक कर्मचारी पर लगायी गयी 'सेवा से समाप्ति' की सजा आश्चर्यजनक रूप से अत्यधिक है या साबित कदाचार की गंभीरता के लिए अनुपातहीन है, तो कर्मचारी में विश्वास की कमी एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक कारक होगा। जब कोई अनजान व्यक्ति बैंक में आता है और लंबे समय से निष्क्रिय खाते का खाताधारक होने का दावा करता है, और एक बैंक कर्मचारी, जो ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता है, अपने सहयोगी को किसी भी प्रकार के सत्यापन के बिना खाते को "निष्क्रिय" से "ऑपरेटिव" श्रेणी (निष्क्रिय खातों को विनियमित करने वाले निर्देशों के विपरीत) में स्थानांतरित करने का निर्देश देता है, और ऐसे व्यक्ति से धन निकासी फॉर्म स्वीकार करता है, एक टोकन प्राप्त करता है और ऐसे व्यक्ति की ओर से राशि एकत्र करता है ताकि उसे ऐसे व्यक्ति को सौंप दिया जा सके, वह प्रभावी रूप से ऐसे अज्ञात व्यक्ति को बैंकिंग प्रक्रियाओं के विपरीत राशि निकालने में सक्षम बनाता है; और अंततः, यदि यह पता चलता है कि खाताधारक होने का दावा करने वाला व्यक्ति धोखेबाज था, तो यदि वह कहता है कि उसने संबंधित कर्मचारी में विश्वास खो दिया है, तो बैंक को दोष नहीं दिया जा सकता है। एक बैंक का यह तर्क उचित है कि न केवल कर्मचारी जो बेईमान हैं, बल्कि जो घोर लापरवाही के दोषी हैं, वे इसकी सेवा में बने रहने के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

19. उप महाप्रबंधक (अपीलीय प्राधिकारी) और अन्य बनाम अजय कुमार श्रीवास्तव, 2021 (2) एस.सी.सी. 612 के मामले में माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"42. अपनी बात समाप्त करने से पहले, हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि बैंकिंग व्यवसाय में पूर्ण निष्ठा, सत्यनिष्ठा और ईमानदारी प्रत्येक बैंक कर्मचारी के लिए अनिवार्य शर्त है। इसके लिए कर्मचारी को अच्छे आचरण और अनुशासन बनाए रखने की आवश्यकता होती है और वह जमाकर्ताओं और ग्राहकों के धन का लेन-देन करता है और यदि इसका पालन नहीं किया जाता है, तो जनता/जमाकर्ताओं का विश्वास क्षीण हो जाएगा। इस अतिरिक्त कारण से, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने प्रतिपक्षी की बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करने में एक स्पष्ट त्रुटि की है, जिसकी पुष्टि विभागीय अपील में 15 नवंबर, 1999 के आदेश द्वारा की गई थी।

20. पूर्वोक्त निर्णयों के अवलोकन से संकेत मिलता है कि जब कोई व्यक्ति बैंकिंग व्यवसाय में नियोजित होता है, तो वह अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी ईमानदारी और निष्ठा के साथ करने के लिए बाध्य होता है और निधियों के दुरुपयोग के किसी भी उल्लंघन के कारण बहुत गंभीर कदाचार होगा क्योंकि इस तरह की कार्रवाई बैंकिंग व्यवसाय की जड़ पर

प्रहार कर सकती है और ग्राहकों का विश्वास क्षीण हो जाएगा। वर्तमान मामले में, निस्संदेह दो अलग-अलग अवसरों पर याचिकाकर्ता को धन के दुरुपयोग में लिप्त पाया गया था। वर्ष 2005 में, अनुशासनिक कार्यवाहियों की समाप्ति के बाद, उन्हें दोषी पाया गया और दंडित किया गया तथा स्पष्ट रूप से कहा गया कि वे वही कदाचार न दोहराएं। उपरोक्त सजा के बावजूद, याचिकाकर्ता ने 2015 में फिर से कदाचार और धन के दुरुपयोग के कार्य में लिप्त हो गया, जिसके कारण सजा का आदेश दिया गया। कदाचार के उपरोक्त दोनों कृत्यों में याचिकाकर्ता की भागीदारी से इनकार नहीं किया गया है।

21. याचिकाकर्ता द्वारा लिया गया एकमात्र बचाव यह है कि उसे कानून की जानकारी नहीं थी। हमने देखा है कि याचिकाकर्ता डेढ़ दशक से अधिक समय से बैंकिंग व्यवसाय में कार्यरत है, और इस तरह का बचाव कि वह कानूनी सिद्धांतों और कानून से अवगत नहीं था, विश्वसनीय नहीं है और न ही एक वैध बचाव है। वर्तमान मामले में, हमने देखा है कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर ग्राहकों से प्राप्त धन को बैंक के खाते की पुस्तकों में जमा नहीं किया और ग्राहकों द्वारा शिकायत किए जाने के बाद ही ऐसी राशि वापस की गई, जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि उसका इरादा वास्तविक नहीं था बल्कि ग्राहकों को धोखा देने का एक जानबूझकर किया गया प्रयास था। यह अवलोकन इस तथ्य पर आधारित है कि इस अवधि के दौरान न तो उसने स्वेच्छा से ग्राहकों को पैसा वापस किया था, न ही उसने बैंक के किसी उच्च अधिकारी को ऐसी घटना

के बारे में सूचित किया था, यदि यह तथ्य के किसी गलत विश्वास के तहत था। उपरोक्त परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता द्वारा बार-बार कदाचार को देखते हुए अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा स्पष्ट रूप से अनुपातहीन या अत्यधिक नहीं है।

22. उपरोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय का विचार है कि याचिकाकर्ता को दी गई सजा उसके द्वारा किए गए कदाचार के अनुरूप है और इसलिए, इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। याचिका योग्यता से रहित है और तदनुसार खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 1205

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय,

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ल

जनहित याचिका संख्या 210/2023

मोती लाल यादव

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: व्यक्तिगत रूप से

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., सी.एस.सी.

भारतीय संविधान, अनुच्छेद 27 - किसी विशेष धर्म के प्रचार के लिए करों के भुगतान के बारे में स्वतंत्रता - याचिकाकर्ता ने दिनांक 10.03.2023 के सरकारी आदेश/पत्र को रद्द करने की मांग की। उक्त सरकारी आदेश/पत्र द्वारा, राज्य सरकार ने 29 से 30 मार्च 2023

के बीच अष्टमी और श्री राम नवमी के अवसर मनाने के निर्देश जारी किए। आयोजित: आपेक्षित सरकारी आदेश/पत्र में किसी मंदिर में पुजारी या मंदिर की गतिविधियों से जुड़े किसी अन्य व्यक्ति को भुगतान के लिए कोई प्रावधान नहीं है। बल्कि, यह राशि उन कलाकारों/कलाकारों को दी जानी है जो ऐसे अवसरों पर प्रदर्शन कर रहे हों। सरकारी आदेश किसी भी धर्म या धार्मिक संप्रदाय के रखरखाव या प्रचार से संबंधित किसी भी राज्य गतिविधि का प्रावधान नहीं करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 27 के तहत, किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय को बढ़ावा देने या बनाए रखने के खर्चों के भुगतान के लिए कर आय का विशिष्ट विभाजन स्वीकार्य नहीं है। हालांकि, श्री राम नवमी के दौरान मंदिर स्थलों या मेलों में आयोजित कार्यक्रमों में कलाकारों/कलाकारों को राज्य द्वारा मानदेय का भुगतान किसी भी धर्म या धार्मिक संप्रदाय के प्रचार में राज्य की भागीदारी नहीं है। यह केवल राज्य की एक धर्मनिरपेक्ष गतिविधि है, जिसमें राज्य द्वारा किए गए विकास कार्यों का प्रचार-प्रसार भी सम्मिलित हो सकता है। (पैराग्राफ 22, 23)

निरस्त (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री शिरूर मठ के श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामी, एआईआर 1954 एससी 282
2. प्रफुल्ल गोरडिया बनाम भारत संघ, (2011) 2 एससीसी 568

3. गुजरात राज्य और अन्य बनाम इस्लामिक रिलीफ कमेटी, गुजरात एवं अन्य, (2018) 13 एससीसी 687

(माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय, और माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

1. यह जनहित याचिका इस न्यायालय के एक प्रैक्टिसिंग अधिवक्ता द्वारा पर्यटन विभाग में राज्य सरकार के प्रधान सचिव द्वारा जारी एक सरकारी आदेश/पत्र दिनांक 10.03.2023 को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर की गई है, जो उत्तर प्रदेश राज्य के सभी संभागीय आयुक्तों और जिला मजिस्ट्रेटों को संबोधित है।

2. आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र द्वारा, राज्य सरकार ने 29 से 30 मार्च, 2023 के बीच अष्टमी और श्री राम नवमी के अवसर को मनाने के लिए कुछ निर्देश जारी किए हैं। उक्त शासनादेश / पत्र में जारी किए गए निर्देश निम्नानुसार हैं: -

(i) विशेष अभियान चलाकर कार्यक्रमों में महिलाओं और बालिकाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाए और दुर्गा सप्तशती/देवी जागरण/देवी गायन के जप से संबंधित समारोह आयोजित किए जाएं।

(ii) आम जनता के बीच मानवीय, सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों का प्रचार करने के लिए अष्टमी और श्री राम नवमी के अवसर पर मुख्य शक्ति पीठों के मंदिरों में अखंड रामायण

पाठ आयोजित किया जाए और उक्त उद्देश्य के लिए प्रत्येक जिले में जिला, तहसील और विकास खंड स्तरों पर समितियों का गठन किया जाए।

(iii) प्रत्येक जिले में कलाकारों और कलाकारों का चयन और चयन राज्य के संस्कृति और जन सूचना विभागों के समन्वय से जिला मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता वाली समिति द्वारा किया जाएगा। मां दुर्गा की महिमा के अनुरूप कार्यक्रम आयोजित किए जाएं और ऐसे कार्यक्रमों में जनप्रतिनिधियों को आमंत्रित किया जाए, साथ ही साथ लोगों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

(iv) यह कार्यक्रम एक राज्य स्तरीय कार्यक्रम है और इसलिए इस अवसर पर सूचना विभाग के माध्यम से राज्य सरकार के पर्यटन विभाग द्वारा शक्ति पीठों और देवी मंदिरों में विकासात्मक कार्यों और बुनियादी सुविधाओं के विकास के बारे में प्रिंट मीडिया/सोशल मीडिया में प्रचार के साथ-साथ होर्डिंग लगाए जाएं।

(vi) कार्यक्रम के प्रत्येक स्थल पर जिला मजिस्ट्रेट समय पर स्वच्छता, पेयजल, सुरक्षा, रोशनी और दूरी बिछाना सुनिश्चित करेंगे और उपयुक्त स्तर पर प्राधिकारियों से अनापत्ति प्रमाणपत्र (एनओसी) प्राप्त करने के बाद ही कार्य/कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे।

(v) मंदिरों के पते, फोटोग्राफ, जीपीएस-लोकेशन और मंदिरों के प्रबंधन के संपर्क नंबर आदि सहित ऐसे सभी कार्यक्रमों की जानकारी संस्कृति विभाग को दी जाएगी।

(vi) ऐसे कार्यक्रमों में कलाकारों/कलाकारों को मानदेय देने के प्रयोजनों के लिए, संस्कृति विभाग प्रत्येक जिले की जिला पर्यटक और संस्कृति परिषद को 1,00,000/- रुपये (एक लाख रुपये मात्र) की राशि उपलब्ध कराएगा और शेष व्यवस्थाएं जिला प्रशासन द्वारा अपने स्तर पर की जाएंगी।

3. याचिकाकर्ता द्वारा व्यक्त की गई आशंका, जो इस जनहित याचिका में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होती है, आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र में निहित निर्देशों के संबंध में है, जिसके तहत वित्तीय सहायता प्रदान करने का आदेश दिया गया है।

4. याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत रूप से और श्री अमिताभ राय, राज्य प्रतिपक्षियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता को सुना।

5. याचिकाकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि राज्य सरकार ने आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र जारी करते हुए मंदिरों में श्री राम नवमी के उत्सव आयोजित करने और ब्लॉक, तहसील और जिला स्तर पर वित्तीय सहायता प्रदान करने के निर्देश जारी किए हैं। उनके अनुसार, उक्त सरकारी आदेश/पत्र में आगे मंदिरों के पुजारियों को समाज में नकारात्मक ऊर्जा को कम करने की आड़ में धार्मिक प्रथाओं को करने का निर्देश दिया गया है। आगे प्रस्तुत किया गया है कि एक तरफ, आक्षेपित आदेश/पत्र नवरात्रि के दौरान मंदिरों में धार्मिक गतिविधियों को करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है, हालांकि, दूसरी

तरफ, राज्य ने रमजान के पवित्र महीने के दौरान मुसलमानों के लिए कोई प्रावधान नहीं किया है, जो इस वर्ष, श्री राम नवमी की शुरुआत के साथ शुरू होता है और तदनुसार, याचिकाकर्ता के विचार में, राज्य की ओर से इस तरह की कार्रवाई भेदभावपूर्ण है। याचिकाकर्ता श्री मोती लाल यादव ने आगे तर्क दिया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 25, 26, 27 और 28 भारत के प्रत्येक नागरिक को किसी भी कर का भुगतान करने के लिए मजबूर होने से बचाते हैं और किसी भी धार्मिक प्राधिकरण की भागीदारी में राज्य को प्रतिबंधित करते हैं। यह भी तर्क दिया गया है कि भारत के संविधान के भाग - III और भाग - IV राज्य सरकार पर प्रत्येक नागरिक को सुरक्षा प्रदान करने का कर्तव्य डालते हैं, जबकि वह अपने धर्म का पालन / प्रचार करता है। हालाँकि, संविधान राज्य के लिए किसी विशेष धार्मिक गतिविधि का प्रचार करने का कोई प्रावधान नहीं करता है।

6. श्री यादव ने यह भी प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र भारत के संविधान की अनुसूची VII की सूची II और सूची III में निहित प्रावधानों के संदर्भ में राज्य के प्रशासनिक प्राधिकरण/कार्यों से परे है और राज्य 'अवशिष्ट शक्ति' खंड में आश्रय नहीं ले सकता क्योंकि यह केवल संसद के पास उपलब्ध है न कि राज्य विधायी के पास।

7. आगे यह तर्क दिया गया है कि संसद ने जानबूझकर भारत के संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को शामिल किया है और इस तरह, भारत के संविधान की योजना के

अनुसार, न तो राज्य सरकार और न ही केंद्र सरकार को किसी भी धार्मिक गतिविधि का प्रचार करने की अनुमति दी जा सकती है, हालाँकि, लोगों की धार्मिक गतिविधियों का संरक्षण राज्य का नैतिक और संवैधानिक दायित्व है। याचिकाकर्ता ने आगे जोर देकर कहा है कि सरकारी आदेश/पत्र ने स्पष्ट रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 का उल्लंघन किया है जो किसी विशेष धर्म को बढ़ावा देने के लिए करों के भुगतान के रूप में स्वतंत्रता का अधिकार देता है और राज्य को किसी भी व्यक्ति को किसी भी कर का भुगतान करने के लिए मजबूर करने से रोकता है, जिसकी आय विशेष रूप से किसी भी धर्म या धार्मिक संप्रदाय के प्रचार या रखरखाव के लिए खर्चों के भुगतान में उपयोग की जाती है।

8. याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए पूर्वोक्त प्रस्तुतियों और तर्कों के आधार पर, यह आग्रह किया गया है कि आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र संवैधानिक योजना, विशेष रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 का उल्लंघन है, जिसे रद्द किया जाना चाहिए।

9. दूसरी ओर, राज्य के प्रतिपक्षियों का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री अमिताभ राय ने प्रस्तुत किया है कि प्रस्तुत जनहित याचिका इस कारण से अत्यधिक गलत है कि आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र जारी करके, राज्य सरकार किसी भी धार्मिक गतिविधि का प्रचार करने की मांग नहीं कर रही है। उनका निवेदन यह है कि समाज के सांस्कृतिक लोकाचार की रक्षा करना राज्य की जिम्मेदारी है और त्योहारों के अवसर पर

विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों के कारण बड़ी संख्या में पर्यटक और श्रद्धालु इकट्ठा होते हैं और भाग लेते हैं जो अंततः राज्य-राजस्व में वृद्धि करता है। श्री राय द्वारा यह भी बताया गया है कि विभिन्न सांस्कृतिक विरासतों को संयुक्त राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन (यूएनईसीएसओ) द्वारा रखी गई सांस्कृतिक विरासत की सूची में शामिल किया गया है और यूनेस्को द्वारा रखी गई ऐसी सूची में योग, वैदिक मंत्रों का जप, दुर्गा पूजा, कुंभ मेला, रामलीला, संकीर्तन, गरबा, बौद्ध मंत्रोच्चार और कालबेलिया शामिल हैं। श्री राय ने आगे तर्क दिया है कि ऐसे स्थलों पर स्वच्छता, पेयजल, सुरक्षा, प्रकाश, ध्वनि और दरी बिछाने की व्यवस्था करना धर्म का प्रचार नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र के तहत प्रति जिला 1,00,000/- रुपये की राशि का भुगतान मंदिरों के पुजारियों को नहीं, बल्कि जिला पर्यटक और संस्कृति परिषद के माध्यम से कलाकारों को किया जाना है।

10. संक्षेप में, राज्य के अधिवक्ता का निवेदन यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा आक्षेपित सरकारी आदेश को गलत तरीके से पढ़ा गया है और गलत समझा गया है क्योंकि इसमें किसी भी धार्मिक गतिविधि को बढ़ावा देने या किसी भी धर्म का प्रचार करने के लिए कोई आदेश या निर्देश नहीं है। इस प्रकार, वह प्रस्तुत करता है कि प्रस्तुत जनहित याचिका अपनी शुरुआत पर ही खारिज होने योग्य है।

11. हमने संबंधित पक्षों द्वारा किए गए प्रस्तुतियों पर सोच-समझकर विचार किया है।

12. याचिकाकर्ता के तर्क का जोर भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 में निहित प्रावधानों पर आधारित है जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"27. किसी विशेष धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के भुगतान के बारे में स्वतंत्रता। किसी भी व्यक्ति को किसी भी कर का भुगतान करने के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा, जिसकी आय विशेष रूप से किसी विशेष धर्म या धर्म संप्रदाय के प्रचार या रखरखाव के लिए खर्चों के भुगतान में विनियोजित की जाती है।

13. याचिकाकर्ता द्वारा उठाया गया दूसरा तर्क यह है कि आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र जारी करके, राज्य एक विशेष धर्म के प्रचार में लिप्त है, जो संविधान की योजना और राज्य के धर्मनिरपेक्ष राज्य होने के मद्देनजर अनुमेय है।

14. भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी कर का भुगतान करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है जिसका उपयोग किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय के प्रचार या रखरखाव के लिए खर्चों के भुगतान के लिए किया जा सकता है।

15. भारत के संविधान का अनुच्छेद 27 'आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास बनाम श्री शिरूर मठ के श्री लक्ष्मिंद्र तीर्थ स्वामीर [ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 282]' के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचार का विषय रहा है। उपर्युक्त मामले में छह माननीय न्यायाधीशों वाली माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने निर्णय दिया है

कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 के अंतर्गत किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय के संवर्धन या अनुरक्षण के लिए व्यय के भुगतान में किसी कर के आगमों का विशिष्ट विभाजन अनुमेय नहीं है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे यह निर्णय दिया कि इस उपबंध में अंतर्निहित कारण स्पष्ट है और यह कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है और वहां व्यक्तियों और समूहों दोनों को संविधान द्वारा प्रदत्त धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी है, इसलिए किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय के संवर्धन या अनुरक्षण के लिए सार्वजनिक निधियों और धन का भुगतान करना संविधान की नीति के विरुद्ध है। आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास (उपरोक्त) के मामले में निर्णय का पैरा-50 प्रासंगिक है और यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"(50) इस बिंदु पर हमारे निर्णय को देखते हुए, दूसरे आधार पर शायद ही विचार करने की आवश्यकता है। हालांकि, हम उठाए गए दूसरे बिंदु पर बहुत संक्षेप में अपनी राय का संकेत देंगे। पहला विवाद, जिसे श्री नांबियार द्वारा संविधान के अनुच्छेद 27 के संदर्भ में उठाया गया है, यह है कि शब्द "कर", जैसा कि उसमें उपयोग किया गया है, उचित करों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उपकर, शुल्क आदि जैसे अन्य सभी अधिरोपण शामिल हैं। हम प्रस्तुत मामले में इस बिंदु को तय करना आवश्यक नहीं समझते हैं, क्योंकि प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर हमारी राय में, अधिरोपण, हालांकि यह एक कर है, लेख के बाद के भाग के दायरे में नहीं आता है।

लेख द्वारा निषिद्ध किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय के प्रचार या रखरखाव के लिए खर्चों के भुगतान में किसी भी कर की आय का विशिष्ट विनियोग है। इस प्रावधान में अंतर्निहित कारण स्पष्ट है। चूंकि हमारा राज्य धर्मनिरपेक्ष है और वहां व्यक्तियों और समूहों दोनों को संविधान द्वारा धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है, इसलिए किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय के प्रचार या रखरखाव के लिए सार्वजनिक धन से किसी भी धन का भुगतान करना संविधान की नीति के खिलाफ है। लेकिन मद्रास अधिनियम की धारा 76 के तहत योगदान का उद्देश्य हिंदू धर्म या इसके भीतर किसी भी संप्रदाय का पालन-पोषण या संरक्षण नहीं है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि धार्मिक न्यास और संस्थाएं, जहां कहीं भी मौजूद हों, उनका समुचित रूप से संचालन हो। धार्मिक संस्थाओं का धर्मनिरपेक्ष प्रशासन है जिसे विधायिका नियंत्रित करना चाहती है और अधिनियम में प्रतिपादित उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि धार्मिक संस्थाओं से जुड़ी निधि का उचित रूप से प्रशासन किया जाए और उनकी आय का विधिवत विनियोजन उन्हीं प्रयोजनों के लिए किया जाए जिनके लिए उनकी स्थापना की गई थी या वे अस्तित्व में हैं। ऐसे मामलों में किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय का पक्ष लेने का कोई सवाल ही नहीं है। हमारी राय में, संविधान का अनुच्छेद 27 प्रस्तुत मामले के तथ्यों से आकर्षित नहीं होता है।

16. मद्रास हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1951 (इसके बाद 'अधिनियम, 1951' के रूप में संदर्भित) की धारा 76 की

वैधता की जांच करते हुए, उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह देखा गया है कि अधिनियम, 1951 की धारा 76 हिंदू धर्म या किसी भी संप्रदाय का पालन-पोषण या संरक्षण नहीं था; बल्कि, अधिनियम, 1951 की धारा 76 को अधिनियमित करने का उद्देश्य यह देखना था कि धार्मिक न्यासों और संस्थाओं का उचित रूप से प्रशासन किया जाए और धार्मिक संस्थाओं का धर्मनिरपेक्ष प्रशासन ही विधानमंडल को नियंत्रित करना चाहता था और उक्त उपबंध का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि धर्मादा और धार्मिक संस्थाओं का समुचित रूप से प्रशासन किया जाए और उनकी आय का विधिवत विनियोजन उस प्रयोजन के लिए किया जाए जिसके लिए वे विद्यमान हैं।

(न्यायालय द्वारा महत्व दिया गया)

17. हम देख सकते हैं कि अधिनियम, 1951 की धारा 76 को अधिनियमित करके, तत्कालीन मद्रास राज्य के विधानमंडल ने सभी धार्मिक संस्थानों के लिए सरकार और उक्त अधिनियम के तहत कार्यरत उनके कार्यालयों द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के कारण सरकार को उनकी आय के पांच प्रतिशत से अधिक वार्षिक योगदान का भुगतान करना अनिवार्य कर दिया था। इस चुनौती पर सबसे पहले माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था जिसने यह निर्णय दिया था कि अधिनियम, 1951 की धारा 76 में उपलब्ध अनिवार्य अंशदान का प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 की गड़बड़ी के अंतर्गत आता है। हालांकि, माननीय मद्रास उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को उलटते हुए,

आयुक्त, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती, मद्रास (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने पाया कि अधिनियम, 1951 की धारा 76 के तहत सरकार को देय ऐसी राशि संयुक्त धर्म के संवर्धन के खर्चों को पूरा करने के लिए विनियोजित नहीं की जानी थी; बल्कि, इसका उपयोग धार्मिक संस्थानों के धर्मनिरपेक्ष प्रशासन के लिए किया गया था। इस प्रकार, हमारे संविधान की योजना के अंतर्गत, जिसमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 का प्रचालन भी शामिल है, जो निषिद्ध है वह यह है कि राज्य किसी भी धार्मिक कार्य में न तो भरण-पोषण के लिए और न ही धर्म के प्रचार के लिए संलिप्त होगा। तथापि, जहां तक किसी धर्म से संबंधित पंथनिरपेक्ष क्रियाकलाप का संबंध है, हमारी सुविचारित राय में, राज्य के लिए ऐसी धर्मनिरपेक्ष गतिविधि करने पर कोई रोक नहीं लगती जो किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय के अनुयायियों को अंतःकरण, व्यवहार की स्वतंत्रता के उनके अधिकार का एहसास कराने के लिए आवश्यक हो सकती है।

18. हमें किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय को बनाए रखने या प्रचार करने वाली "धार्मिक गतिविधि" और धार्मिक सभाओं में कुछ सुविधाएं प्रदान करने के लिए राज्य द्वारा की गई "धर्मनिरपेक्ष गतिविधि" के बीच स्पष्ट रूप से अंतर करने की आवश्यकता है।

19. जैसा कि ऊपर देखा गया है, राज्य के लिए जो निषिद्ध है वह धार्मिक गतिविधि या किसी भी धर्म या धार्मिक संप्रदाय के प्रचार के बराबर गतिविधियों में लिप्त होना है और

धर्मनिरपेक्ष गतिविधि नहीं है। जब हम संस्कृति विभाग में राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए दिनांक 10.03.2023 के आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र की जांच करते हैं, तो हम पाते हैं कि प्रति जिले 1,00,000/- रुपये खर्च करने का प्रावधान किसी धार्मिक गतिविधि के लिए या किसी धर्म या धार्मिक संप्रदाय को बढ़ावा देने के लिए नहीं किया गया है; बल्कि, उक्त राशि जिला पर्यटक और संस्कृति परिषद के माध्यम से कार्यक्रमों के दौरान प्रदर्शन करने वाले कलाकारों/कलाकारों को मानदेय का भुगतान करने के लिए प्रदान की गई है, जैसा कि आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र में उल्लेख किया गया है।

20. यह भी स्पष्ट रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए कि आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र जारी करके राज्य ने उक्त राशि धार्मिक गतिविधि से संबंधित किसी भी व्यक्ति को नहीं सौंपी है, जैसे कि मंदिर के पुजारी या मंदिर के प्रबंधन से संबंधित कोई व्यक्ति। 1,00,000/- रुपये की राशि जिला पर्यटक और संस्कृति परिषद को सौंपी गई है, वह भी किसी धार्मिक गतिविधि के लिए विनियोजित नहीं की जानी चाहिए, बल्कि कलाकारों/कलाकारों को मानदेय का भुगतान करना है।

21. हम यह भी देखते हैं कि जिन उद्देश्यों के लिए दिनांक 10.03.2023 का शासनादेश जारी किया गया है, उनमें से एक मंदिरों में पर्यटन विभाग और राज्य सरकार के अन्य विभागों द्वारा विभिन्न विकास कार्यों और बुनियादी सुविधाओं के विकास का प्रचार करना है। यह सर्वविदित है कि नवरात्रि पूजा/श्री राम नवमी

के अवसर पर मंदिरों में बड़ी संख्या में सभाएं होती हैं और यदि राज्य अपने विकास कार्यों के प्रचार के लिए प्रिंट मीडिया में होर्डिंग लगाने या अन्य प्रचार मोड अपनाने का प्रावधान कर रहा है, तो हमारी सुविचारित राय में, राज्य सरकार का ऐसा कार्य किसी धर्म या धार्मिक संप्रदाय का प्रचार नहीं करता है।

22. हमारा स्पष्ट मत है कि कार्यक्रमों में कलाकारों को मानदेय का भुगतान, हालांकि श्री राम नवमी के दौरान मंदिरों या मेलों के स्थल पर आयोजित किया जाता है, यह किसी भी धर्म या धार्मिक संप्रदाय के प्रचार में राज्य की भागीदारी नहीं है। यह राज्य की एक साधारण धर्मनिरपेक्ष गतिविधि है, जबकि यह राज्य द्वारा किए गए विकास कार्यों को प्रचारित करने में संलग्न है।

23. जैसा कि ऊपर देखा गया है, आक्षेपित सरकारी आदेश/पत्र किसी भी व्यक्ति को किसी भी राशि के भुगतान के लिए कोई प्रावधान नहीं करता है, चाहे वह मंदिर का पुजारी हो या मंदिर की गतिविधियों से जुड़ा कोई अन्य व्यक्ति; बल्कि, राशि का भुगतान उन कलाकारों को किया जाना है जो ऐसे अवसरों पर प्रदर्शन कर रहे हों। इस प्रकार, सरकारी आदेश हमारी राय में किसी भी धर्म या धार्मिक संप्रदाय के रखरखाव या प्रचार से संबंधित किसी भी राज्य गतिविधि के लिए प्रदान नहीं करता है।

24. इस समय, हमारे पास 'प्राफॉल गोराडिया बनाम भारत संघ [(2011) 2 एस.सी.सी. 568] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के

निर्णय का संदर्भ हो सकता है, जिसमें हज समिति अधिनियम, 1959 की संवैधानिक विधिमान्यता, जिसे हज समिति अधिनियम, 2002 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, को यह कहते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी गई थी कि नागरिकों द्वारा अदा किए जा रहे करों की आय का एक हिस्सा हज यात्रा के लिए सब्सिडी प्रदान करने के लिए उपयोग किया गया था जो मुसलमानों द्वारा किया जाता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 पर आधारित प्रस्तुतिकरण से सहमत नहीं था और न केवल रिट याचिका को खारिज कर दिया बल्कि यह भी कहा कि हमें ऐसे मामलों में बहुत कठोर नहीं होना चाहिए और राज्य मशीनरी के जोड़ों को कुछ स्वतंत्र हाथ देना चाहिए। माननीय उच्चतम न्यायालय ने आगे यह निर्णय दिया कि यदि एकत्र किए गए कर के एक छोटे से भाग का उपयोग किसी धार्मिक संप्रदाय को कुछ सुविधाएं अथवा सुविधाएं अथवा रियायतें प्रदान करने के लिए किया जाता है तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 का उल्लंघन नहीं होगा।

25. इस प्रकार, यदि राज्य नागरिकों से एकत्र किए गए करों/राजस्व में से कुछ धन खर्च करता है और किसी भी धार्मिक संप्रदाय को कुछ सुविधाएं प्रदान करने के लिए कुछ राशि का विनियोजन करता है तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 27 का उल्लंघन नहीं होगा। इसका अवलोकन करते समय, हमें हमेशा यह ध्यान में रखना होगा कि एक धर्मनिरपेक्ष गतिविधि और धार्मिक गतिविधि के बीच अंतर की एक स्पष्ट रेखा है जो राज्य

द्वारा की जा सकती है, जैसे कि सुविधाएं प्रदान करना और धर्म या धार्मिक संप्रदाय के रखरखाव और प्रचार में राज्य का समावेश।

26. हम गुजरात राज्य और एक अन्य बनाम इस्लामिक राहत समिति, गुजरात और अन्य [(2018)13 एस.सी.सी. 687] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक और फैसले का भी संदर्भ दे सकते हैं। सांप्रदायिक दंगों में धार्मिक स्थलों और संस्थानों को नुकसान, विनाश और अपवित्र करने की स्थिति से निपटने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य की ओर से उठाए गए प्रस्तुतियों को रद्द कर दिया कि राज्य को पूजा स्थलों की मरम्मत या पुनर्स्थापित करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है क्योंकि राज्य की ओर से इस तरह का कोई भी कार्य हमारे समाज के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने को नुकसान पहुंचाएगा। माननीय उच्चतम न्यायालय ने राज्य की ओर से किए गए निवेदनों को निरस्त कर दिया कि ऐसी स्थिति में संविधान के अनुच्छेद 27 के मद्देनजर किसी भी पूजा स्थल की मरम्मत और बहाली के लिए खर्च अस्वीकार्य है। तदनुसार, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इस प्रयोजन के लिए एक योजना अनुमोदित की गई थी जिसने राज्य को साम्प्रदायिक दंगों के दौरान क्षतिग्रस्त, विखंडित और अपवित्र किए गए पूजा स्थलों की मरम्मत और जीर्णोद्धार करने की अनुमति दी थी।

27. उपरोक्त कारणों से, हम पाते हैं कि इस मामले में याचिकाकर्ता ने दिनांक 10.03.2023 के सरकारी आदेश/पत्र के प्रावधानों को पूरी तरह से गलत पढ़ा है। इस प्रकार, हमें

पी.आई.एल में हस्तक्षेप करने के लिए कायल नहीं किया जा सका अतः इसे एतद्वारा खारिज किया जाता है।

28. हालांकि, लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 4 ILRA 1212

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट-ए संख्या 1768/2013

मुकेश कुमार यादव

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: एम.पी. राजू, ज्ञानेन्द्र सिंह, पं.सूर्य कुमार अवस्थी, संजीव कुमार पाण्डेय, विमल कुमार पाण्डेय

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी., अजय कुमार सिंह, नंदिता भारती, राज कुमार सिंह, राजीव सिंह चौहान

ए. सिविल कानून - परिवीक्षाधीन की सेवा समाप्ति - प्राकृतिक न्याय - भारतीय संविधान, अनुच्छेद 311 - केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियम, 1965, नियम 5(1) - अस्थायी सेवा की समाप्ति- एक अस्थायी सरकारी कर्मचारी की सेवाएं नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा सरकारी कर्मचारी को लिखित में दिए गए नोटिस द्वारा किसी भी समय समाप्त की जा सकती हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत संरक्षण परिवीक्षाधीन और अस्थायी कर्मचारियों को इस स्थिति में

उपलब्ध है कि समाप्ति आदेश दंड के रूप में है और प्रकृति में दंडात्मक या कलंकपूर्ण है। यह निर्धारित करने के लिए परीक्षण कि क्या, सार रूप में, समाप्ति का आदेश दंडात्मक है, यह देखना है कि क्या समाप्ति से पहले (ए) एक पूर्ण पैमाने पर औपचारिक जांच थी, (बी) नैतिक पतन या कदाचार से जुड़े आरोपों में, (सी) जो दोष की खोज के साथ समाप्त हुई थी। यदि तीनों कारक उपलब्ध हैं, तो समाप्ति आदेश के रूप के बावजूद समाप्ति को दंडात्मक माना जाता है। इसके विपरीत, यदि तीन कारकों में से कोई भी एक अनुपस्थित है, तो समाप्ति गैर-दंडात्मक है।

बी. इस वाद में, याचिकाकर्ता को अस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था। उनके नियुक्ति आदेश में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि याचिकाकर्ता की सेवा पूर्णतया अस्थायी थी और उसे एक महीने का नोटिस देकर, बिना कोई कारण बताए कभी भी समाप्त किया जा सकता था। याचिकाकर्ता, अपनी नियुक्ति के बाद, अपनी सेवा के प्रारंभिक तीन माह के भीतर 22 दिनों तक, बिना किसी सूचना या अनुमति के, अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा। उसने अपने वरिष्ठ अधिकारियों को कोई पूर्व सूचना दिए बिना पुलिस लाइन/कैंप छोड़ दिया। याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त करने के लिए 30.11.2011 के पत्र के जरिए एक महीने का नोटिस जारी किया गया था, और याचिकाकर्ता को एक महीने की नोटिस अवधि पूरी होने पर 31.12.2011 से सेवा से समाप्त कर दिया गया था। आयोजित, समाप्ति आदेश से प्रतीत होता है कि यह एक सरल समाप्ति थी। परिवीक्षा अवधि के भीतर किसी कर्मचारी

की सेवाओं से छूट देने के नियोक्ता के अधिकार के तहत याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त करना, अन्यथा अहानिकर निलंबन या सेवा समाप्ति का आदेश दंडात्मक प्रकृति का है। (पैरा 14)

निरस्त (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. पुरुषोत्तम लाल ढींगरा बनाम भारत संघ एआईआर 1958 एससी 36
2. चंद्र प्रकाश शाही बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2000 (5) एससीसी 152
3. वी.पी. आहूजा बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य 2000 एससीसी (3) 239
4. भारत संघ और अन्य बनाम महावीर सी. सिंघवी 2010 एससीसी (8) 220
5. पंजाब राज्य और अन्य व अन्य बनाम सुखविंदर सिंह (2005) 5 एससीसी 569
6. पवनेन्द्र नारायण वर्मा बनाम संजय गांधी पी.जी.आई. चिकित्सा विज्ञान एवं अन्य विभाग (2002) 1 एससीसी 520
7. भारत संघ और अन्य बनाम के. बालाकृष्णन कानि 1990 (सप्प) एससीसी 283
8. चंपकलाल चिमनलाल शाह बनाम भारत संघ 7 (1964) 5 एससीआर 190: एआईआर 1964 एससी 1854

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त)

1.याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव कुमार पांडे और साथ ही प्रतिवादियों

केविद्वान अधिवक्ता श्री राज कुमार सिंह की वादधारिका सुश्री अलीना मसूदी को सुना गया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस याचिका के माध्यम से,याचिकाकर्ता ने कमांडेंट, 91 वीं बटालियन, ग्रुप केंद्र, केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल, जिला लखनऊ(प्रतिवादी संख्या 4) द्वारा पारित सेवा समाप्ति आदेश दिनांक 30.12.2011 तथा पुलिसमहानिरीक्षक, केंद्रीय क्षेत्र, केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल, लखनऊ (प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा पारित अपीलीय आदेश दिनांक 14.11.2012 जो क्रमशः अनुलग्नक-1 और अनुलग्नक-2 के रूप में रिट याचिका में अंतर्विष्ट है, को चुनौती दी गयी है। याचिकाकर्ता एक परमादेश रिट की भीमांग कर रहा है जिसमें प्रतिवादियों को सेवा से समाप्ति के दिनांक अर्थात 3.11.2012 से सभीपरिणामी लाभों के साथ आरक्षी के पद पर उसे यथापूर्वकरण का निर्देश दिया जाए।

3.प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को आदेश दिनांक 20.8.2011 के माध्यम से आरक्षी के पद पर नियुक्त किया गया था। इस नियुक्ति आदेश में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि याचिकाकर्ता की सेवा पूरी तरह से अस्थायी प्रकृति की है और उसे एकमहीने का नोटिस देकर बिना कोई कारण बताए किसी भी समय समाप्त किया जा सकता है।याचिकाकर्ता को 16.8.2011 से अस्थायी आधार पर आरक्षी के रूप में भर्ती किया गया था।

दिनांक 4.11.2011 को, लगभग 20:45 बजे, याचिकाकर्ता अपने वरिष्ठों/सक्षम प्राधिकारी की

पूर्व सूचना, नोटिस और अनुमति के बिना पुलिस लाइन/शिविर छोड़ गया। याचिकाकर्ता दिनांक 4.11.2011 से 25.11.2011 तक 22 दिनों तक अनुपस्थित रहा और दिनांक 26.11.2011 को 09:00 बजे अपनी सुविधानुसार रिपोर्ट किया। याचिकाकर्ता ने दिनांक 26.11.2011 को 09:00 बजे वापस रिपोर्ट करते समय अपनी रिपोर्ट दिनांक "शून्य" के साथ कोई सहायक दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराया है, जिसमें उसने कहा था कि वह अपने बीमारपिता की देखभाल के लिए गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता की सेवाएं केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियमावली, 1965 के नियम 5(1) में निहित प्रावधानों का पालन करते हुए दिनांक 30.12.2011 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से समाप्त कर दी गई और इससे पहले डिप्टी कमांडेंट (प्रशासन), जीसी, सीआरपीएफ, बिजनौर, लखनऊ (उ०प्र०) के माध्यम से पत्र संख्या ..21/2011-- P VIII EC II दिनांक 30.11.2011 द्वारा उन्हें एक महीने का नोटिस जारी किया गया था।

उपरोक्त समाप्ति आदेश दिनांक 30.12.2011 से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष एक अपील दायर की, जिस पर विचार किया गया और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पत्र संख्या आर..33/2012-XIII सीएस-एडम-3 दिनांक 14.11.2012 के तहतकाल बाधित होने के कारण निरस्त कर दिया गया।

उपरोक्त समाप्ति आदेश दिनांक 30.12.2011 और अपीलीय आदेश दिनांक

14.11.2012 के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका दायर की है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त करने से पहले कोई कारण नहीं बताया गया है। उनके अनुसार पदच्युक्ति एक दीर्घ शास्ति है और यह सुनवाई का अवसर दिए बिना और जांच किए बिना पारित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, आक्षेपित सेवासमाप्ति आदेश दिनांक 30.12.2011, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 का भी उल्लंघन है। उनका कथन है कि यदि पदच्युक्ति आदेश निरस्त नहीं किया गया तो इससे कर्मचारी की आजीविका का अधिकार छीन जाएगा। आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया है और यह प्रासंगिक नियमों के अनुसार भी पारित नहीं किया गया है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि अपीलीय प्राधिकारी ने आक्षेपित अपीलीय आदेश दिनांक 14.11.2012 को पारित करते समय भी प्रकरण पर पूर्वोक्त प्रभाव पर विचार नहीं किया है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एआईआर 1958 एस सी 36 में अभिलेखित, **पुरुषोत्तम लाल ढींगरा बनाम भारतसंघ**; 2000 (5) एससीसी 152, **चंद्र प्रकाश शाही बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**; 2000 एससीसी (3) 239, **वी.पी. आहूजा बनाम पंजाब राज्य और अन्य और 2010 एससीसी(8) 220, भारत संघ और अन्य बनाम**

महावीर सी. सिंघवी में दिए गए निर्णयों पर विश्वासव्यक्त किया है।

6. इसके विपरीत, प्रतिवादी/भारत संघ की विद्वान अधिवक्ता सुश्री अलीना मसूदी का कहना है कि स्वीकृत स्थिति के अनुसार, याचिकाकर्ता एक अस्थायी कर्मचारी था और उसने आरक्षी के रूप में मुश्किल से 3 महीने की सेवा पूरी की थी। चूंकि किसी परिवीक्षाधीन या अस्थायी कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने का अधिकार अनुबंध या सेवा नियमों के तहत मौजूद है, नियोक्ता ने उक्त अधिकार का प्रयोग करते हुए एक कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त कर दिया। चूंकि याचिकाकर्ता को अस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था, जो उसके नियुक्ति पत्र दिनांक 20.08.2011 से स्पष्ट है, नियोक्ता या सक्षम प्राधिकारी को याचिकाकर्ता को एक महीने का नोटिस देकर उसकी सेवाएं समाप्त करने का अधिकार था। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को एक माह की नोटिस अवधि पूर्ण होने पर केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियम, 1965 के नियम 5(1) में निहित प्रावधानों के प्रयोग से दिनांक 31.12.2011 से समाप्त कर दिया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, नियोक्ता के दिमाग में चल रहा मकसद पूरी तरह से अप्रासंगिक है। अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिये प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

7. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि माना जाता है

कियाचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई आरोप तय नहीं किया गया था; याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई कलंकात्मक या दंडात्मक आदेश पारित नहीं किया गया; याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई प्रारंभिक या विभागीय जांच नहीं की गई; और समाप्ति के आदेश से कोई दाण्डिक या दण्डात्मक परिणाम नहीं निकला। समाप्ति का आदेश केवल यह सुनिश्चित करने के लिए समाप्ति आदेश था कि याचिकाकर्ता रोजगार के अन्य साधन पा सके और उसे भविष्य में रोजगार की किसी भी संभावना से वंचित न किया जाए। इस प्रकार, आक्षेपित समाप्ति आदेश प्रकृति में कलंकात्मक या दंडात्मक नहीं है।

8. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत संरक्षण, परिवीक्षाधीन और अस्थायी कर्मचारी को उस स्थिति में उपलब्ध है, जब सेवा समापन आदेश दंडात्मक और दाण्डिक और कलंकात्मक प्रकृति का था, जो कि वर्तमान प्रकरण ऐसी प्रकृति का नहीं है। नियमानुसार, वर्तमान प्रकरण में, सक्षम प्राधिकारी को याचिकाकर्ता की सेवाओं को उसे एक महीने की नोटिस अवधि देकर तब तक समाप्त करने का अधिकार था जब तक वह एक अस्थायी कर्मचारी था और 3 वर्ष की सेवापूर्ण नहीं की थी और वर्तमान मामले में इस प्रक्रिया का स्वीकार्य रूप से पालन किया गया था और उनकी सेवा समाप्ति केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियमावली, 1965 के नियम 5(1) के साथ-साथ उनके नियुक्ति आदेश दिनांक 20.08.2011 के अनुसार पारित की गई है।

9. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) द्वारा दी गई सुरक्षा सभी को प्रदान की जाती है, तो अस्थायी कर्मचारियों/परिवीक्षाकर्ताओं औरस्थायी कर्मचारियों के बीच का अंतर पूर्णतः समाप्त हो जाएगा। यह प्रस्तुत किया गया है किपरिवीक्षा और एक अस्थायी कर्मचारी होने का पूर्ण उद्देश्य यह है कि यह वरिष्ठ प्राधिकारी को एक अस्थायी कर्मचारी की उपयुक्तता का न्याय करने का मौका देता है कि क्या वह सेवा की सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करता है और उसे स्थायी किया जाना चाहिए या नहीं।

10. अपने तर्क के समर्थन में, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने (2005) 5 एससीसी569 में अभिलेखित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों - पंजाब राज्य और अन्य बनामसुखविंदर सिंह; (2002) 1 एससीसी 520, पवनेंद्र नारायण वर्मा बनाम संजय गांधीपी.जी.आई मेडिकल साइंसेज और अन्य; 1990 (एसयूपीपी) एससीसी 283, भारत संघ औरअन्य बनाम के. बालाकृष्णन कानी; और (1964) 5 एससीआर 190: एआईआर 1964 एससी1854, चंपकलाल चिमनलाल शाह बनाम भारत संघ, पर विश्वास व्यक्त किया है।

11. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई तर्कों पर विचार किया है।

12. याचिकाकर्ता के नियुक्ति आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता कोअस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था और उसकी सेवाएं एक महीने का नोटिस देकर किसी भी समय समाप्त की जा सकती थीं।

इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता, अपनी नियुक्ति के बाद, अपनी सेवा के शुरुआती तीन महीनों के भीतर 22 दिनों की अवधि के लिए दिनांक 4.11.2011 से 25.11.2011 तक बिना किसी सूचना या अनुमति के अनधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा। उन्होंने अपने वरिष्ठ अधिकारियों को बिना किसी पूर्व सूचना के पुलिसलाइन/शिविर छोड़ दिया और यहां तक कि जब उन्होंने दिनांक 26.11.2011 को वापस रिपोर्टकी, तो याचिकाकर्ता द्वारा उनके प्रत्यावेदन के साथ कोई सहायक दस्तावेज भी प्रस्तुत नहीं किया गया। केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियमावली, 1965 का नियम 5(1) अधोलिखित है:-

"5. अस्थायी सेवा की समाप्ति :-

(1) (क) किसी अस्थायी सरकारी सेवक की सेवाएं किसी भी समय सरकारी सेवक द्वारा नियुक्ति प्राधिकारी को अथवा नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा सरकारी सेवक को लिखित सूचना देकर समाप्त की जा सकेंगी;"

13. याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 26.11.2011 को अपनी अनाधिकृत अनुपस्थिति के बाद इयूटी पर रिपोर्ट करने के बाद, याचिकाकर्ता की सेवा समाप्त करने के लिए एक महीने कानोटिस दिनांक 30.11.2011 को पत्र के माध्यम से जारी किया गया था और याचिकाकर्ता की एक माह की नोटिस अवधि पूर्ण होने उपरांत दिनांक 31.12.2011 से सेवा समाप्त कर दिया गया था। सेवा समाप्ति आदेश दिनांक 31.12.2011 अधोलिखित है:-

(सेवा समाप्ति नोटिस)

केन्द्रीय सिविल सेवा (आई नियमार ली 1965) के नियम के उप नियम(1) के साथ पठितकेन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल नियमावली 1938 के नियम 16 एवं परिशिष्ट एक(10) के नीचेनोट-2 के अनुसरण में, मैं ज्ञानेन्द्र कुमार कनान्डेण्ट, ग्रुप केन्द्र, के०रि०पु०बल, लखनऊ (उत्त), इस ग्रुप केन्द्र के बल संख्या-115182734 रिकूट (जी०डी०) मुकेश कुमार यादव कोएतदद्वारा इस आशय का नोटिस देता है कि उसकी सेवाएं यह नोटिस जारी हो के तारीख सेएक माह समाप्त होने की तारीख से समाप्त कर दी जाएगी।

14.आक्षेपित सेवा समाप्ति आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि यह एक सरलीकृत सेवा समापन है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई आरोप तय नहीं किया गया। सेवासमाप्ति आदेशकलंकात्मक या दंडात्मक नहीं है। कोई प्रारंभिक या विभागीय जांच नहीं की गई और सेवा समाप्ति आदेश से कोई दंडात्मक या दाण्डिक परिणाम नहीं निकलता है।

15.माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पंजाब राज्य और अन्य बनाम सुखविंदर सिंह(उपरोक्त) के प्रकरण में प्रस्तर 19 और 20 में अभिनिर्धारित किया है कि विभागों के वरिष्ठ प्राधिकारी गण को एक कर्मचारी से काम लेना होगा और वे किसी कर्मचारी को सेवा में जारीरखा जाना चाहिए और उसके प्रदर्शन, आचरण एवं समग्र उपयुक्तता को ध्यान में रखकरस्थायी कर्मचारी बनाया जाना चाहिए या नहीं, इसके निर्णय के

लिए सबसे उपयुक्त लोग हैं।परिवीक्षाधीन व्यक्ति परीक्षण पर है और एक अस्थायी कर्मचारी को पद का कोई अधिकारनहीं है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 19 और 20 अधोलिखित हैं: -

19. "यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि किसी भी कर्मचारी, चाहे वह परिवीक्षाधीन हो या अस्थायी, को मनमाने ढंग से, बिना किसी कारण के सेवामुक्त या प्रत्यावर्तित नहीं किया जायेगा। जहां एक वरिष्ठ अधिकारी स्वयं को संतुष्ट करने के लिए कि संबंधित कर्मचारी को सेवा में जारी रखा जाना चाहिए या नहीं, इस उद्देश्य के लिए पूछताछ करता है, यह मानना गलत होगा कि जो जांच की गई थी, वह वास्तव में दंड देने के उद्देश्य से थी। यदि प्रत्येक मामले में जहां किसी प्रकार की तथ्यान्वेषी जांच की जाती है, जिसमें कर्मचारी को या तो स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाता है या पूछताछ उसके पीछे की जाती है, तो यह माना जाता है कि सेवा से समापन या समाप्ति का आदेश प्रकृति में दंडात्मक है, यहां तक कि वरिष्ठ अधिकारी द्वारा यह तय करने का एक प्रामाणिक प्रयास भी कि संबंधित कर्मचारी को सेवा में बनाए रखा जाना चाहिए या नहीं, दण्डादेश के रूप में करार दिए जाने का जोखिम होगा। किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति को परिवीक्षा अवधि के दौरान सेवा मुक्त करने का निर्णय याकिसी अस्थायी कर्मचारी की सेवा समाप्त करने का आदेश नियुक्ति प्राधिकारी या विभिन्न विभागों के प्रशासनिक प्रमुखों द्वारा लिया जाता है, जो न्यायिक रूप से प्रशिक्षित लोग नहीं होते हैं। विभागों के वरिष्ठ प्राधिकारी गण को एक कर्मचारी से काम लेना

होगा और वे किसी कर्मचारी को सेवा में जारी रखा जाना चाहिए और उसके प्रदर्शन, आचरण एवं समग्र उपयुक्तता को ध्यान में रखकर स्थायी कर्मचारी बनाया जाना चाहिए या नहीं, इसके निर्णय के लिए सबसे उपयुक्त लोग हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, एक परिवीक्षाधीन व्यक्ति परीक्षण पर है और एक अस्थायी कर्मचारी को पद का कोई अधिकार नहीं है। यदि किसी कर्मचारी को सेवा में जारी रखना है या उसे स्थायी करना है, तो उद्देश्यपूर्ण विचार पर निर्णय पर पहुंचने के लिए प्रासंगिक तथ्यों का पता लगाने के लिए केवल जांच करने को "दंड देने के उद्देश्य से" जांच के रूप में माना जाता है और इसके परिणामस्वरूप पदच्युक्तियां सेवा समाप्ति का आदेश "दंडात्मक प्रकृति की" होगी, एक परिवीक्षाधीन या अस्थायी कर्मचारी और एक स्थायी कर्मचारी के बीच मूलभूत अंतर पूरी तरह से समाप्त हो जाएगा, जो पूर्णतः गलत होगा।"

20. "वर्तमान मामले में न तो कोई औपचारिक विभागीय जांच हुई और न ही कोई प्रारंभिक तथ्यान्वेषी जांच हुई और सेवामुक्त करने का एक साधारण आदेश पारित कर दिया गया। उच्च न्यायालय ने लिखित बयान के आधार पर एक मत बनाया है कि प्रतिवादी अपनी सेवा की छोटी अवधि के दौरान आदतन अनुपस्थित था और इससे यह निष्कर्ष निकला कि यह कर्तव्य से उसकी अनुपस्थिति थी जो वरिष्ठ अधीक्षक के विवेक में पुलिस के कर्तव्य से अनुपस्थित रहने का कदाचार है। उच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि प्रतिवादी को सेवा से पदच्युक्त करने के आदेश और उसकी

इयूटी से अनुपस्थिति के बीच सीधा संबंध है और इसलिए, उसे सेवा से बर्खास्त करने का आदेश दंडात्मक प्रकृति का माना जाएगा जिसकी नियमावली के नियम 16.24 के तहत नियमित जांच की जानी चाहिए। हमारी राय है कि उच्च न्यायालय यह निष्कर्ष निकालने में पूर्णतः गलत हो गया है कि दिनांक 16.3.1990 का सेवामुक्त करने का आदेश, वास्तव में, कदाचार पर आधारित था और इसलिए, प्रकृति में दंडात्मक था, जिसे पहले एक नियमित विभागीय जांच द्वारा प्रवर्तित किया जाना चाहिए था। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि प्रतिवादी लगभग आठ महीने पहले नियुक्त होने के बाद परिवीक्षा पर था। जैसा कि अजीत सिंह और अन्य आदि बनाम पंजाब राज्य और अन्य (उपरोक्त) में देखा गया है, परिवीक्षा की अवधि नियोक्ता को कर्मचारी की कार्य क्षमता, दक्षता, ईमानदारी और योग्यता को देखने के लिए समय और अवसर देती है और यदि वह पद के लिए उपयुक्त नहीं पाया जाता है, स्वामी निर्धारित अवधि के दौरान या उसके अंत में, जिसे परिवीक्षा अवधि के रूप में जाना जाता है, बिना किसी और कारणके अपनी सेवा से मुक्त करने का अधिकार सुरक्षित रखता है। केवल प्रारंभिक जांच आयोजित करने से जहां किसी कर्मचारी से स्पष्टीकरण मांगा जाता है, सेवा से बर्खास्तगी या समाप्ति का कोई अन्यथा निरापद आदेश दंडात्मक नहीं होगा। इसलिए, उच्च न्यायालय यह मानने में स्पष्ट रूप से गलती कर रहा था कि प्रतिवादी की इयूटी से अनुपस्थिति आदेश का आधार थी, जिसके लिए नियमावली के नियम 16.24 (ix) के तहत परिकल्पित जांच की आवश्यकता थी।"

16. **भारत संघ और अन्य बनाम के. बालाकृष्णन कानि (उपरोक्त)** के मामले में, जहां एक अस्थायी पद पर सीमा शुल्क विभाग में चपरासी की सेवाएं केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायीसेवा) नियमावली, 1965 के नियम 5(1) के तहत कुछ महीनों की सेवा के बाद समाप्त कर दी गई थीं। यह माना गया कि चूंकि सेवासमाप्ति के आदेश में किसी भी कलंक का कोई संकेत नहीं है, इसलिए प्रभावी सेवा समाप्ति आदेश में नियम के उद्धरण को पर्याप्त कारण के रूप में लिया जाना चाहिए और इससे अधिक कुछ ध्यान में नहीं होना चाहिए था।

17. इसी तरह **पवनेंद्र नारायण वर्मा (उपरोक्त)** के प्रकरण में, माननीय सर्वोच्च न्यायालयने प्रस्तर 21 और 22 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया :-

21. "यह निर्धारित करने के लिए न्यायिक रूप से विकसित परीक्षणों में से एक यह है किसेवासमाप्ति का आदेश वास्तव में दंडात्मक है या नहीं, यह देखना है कि क्या समाप्ति से पहले (क) पूर्ण पैमाने पर औपचारिक जांच हुई थी (ख) नैतिक अधमता या कदाचार से जुड़े आरोपों में (ग) जिसकी परिणति अपराध की खोज में हुई। यदि सभी तीन कारक मौजूद हैं तो समाप्ति आदेश के स्वरूप की परवाह किए बिना सेवासमाप्ति को दंडात्मक माना गया है। इसके विपरीत यदि तीन कारकों में से कोई एक भी उपलब्ध नहीं है, तो सेवासमाप्ति को बरकरार रखा गया है।"

22. **शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (उपरोक्त)** में निम्नलिखित परिच्छेद में तीन कारक अलग-

अलग हैं जहां यह अभिनिर्धारित किया गया था: (एससीसी पृष्ठ 851, प्रस्तर 64)64. "किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति की स्थायीकरण से पूर्व संबंधित प्राधिकारी यह विचार करने के लिए बाध्य है कि क्या परिवीक्षाधीन व्यक्ति का काम संतोषजनक है या वह पद के लिए उपयुक्त है या नहीं। इस संबंध में परिवीक्षाधीन व्यक्ति को नियंत्रित करने वाले किसी भी नियम के अभाव में प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंच सकता है कि नौकरी के लिए अपर्याप्तता के कारण या किसी स्वभाव या अन्य वस्तु के कारण जिसमें नैतिक अधमता शामिल नहीं है, परिवीक्षाधीन व्यक्ति नौकरी के लिए अनुपयुक्त है और इसलिए उसे पदच्युक्त कर दिया जाना चाहिए। इसमें कोई सजा शामिल नहीं है। कुछ मामलों में प्राधिकारी का मानना हो सकता है कि परिवीक्षाधीन व्यक्ति के आचरण के परिणामस्वरूप जांच के बाद उसे पदच्युक्त किया जा सकता है या हटाया जा सकता है। लेकिन उन मामलों में प्राधिकारी कोई जांच नहीं कर सकता है और परिवीक्षा समाप्ति के समय उसे बिना किसी कलंक के जीवन के अन्य क्षेत्रों में अच्छा करने का मौका देने के उद्देश्य से परिवीक्षाधीन व्यक्ति को पदच्युक्त कर सकता है। दूसरी ओर, यदि परिवीक्षाधीन व्यक्ति को कदाचार या अक्षमता या भ्रष्टाचार के आरोपों पर जांच का सामना करना पड़ता है, और यदि उसकी सेवाएं अनुच्छेद 311(2) के प्रावधानों कापालन किए बिना समाप्त कर दी जाती हैं तो वह सुरक्षा का दावा कर सकता है।"

(बल दिया गया)

18. जहां तक पुरुषोत्तम लाल ढींगरा (उपरोक्त) के निर्णय का सवाल है, उस प्रकरण

में,गोपनीय रिपोर्ट में अपीलकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणियां की गईं और अपीलकर्ता कोसंसूचित किया गया और उसके बाद उसे उसके संबंध में की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के सम्बंध में कारण दिखाने का कोई अवसर दिए बिना रैंक में कटौती करके दंडित किया गया, तब, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि आदेश अमान्य थाया भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 के प्रावधानों का गैर-अनुपालन था। इस मामले के तथ्य वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों से पूरी तरह अलग हैं, क्योंकि सेवा समाप्ति के आदेशमें कोई टिप्पणी या कलंक नहीं लगाया गया है।

19.इसी तरह चंद्र प्रकाश शाही (उपरोक्त) के प्रकरण में, सेवा समाप्ति प्रारंभिक जांच से पहले हुई थी जिसमें अपीलकर्ता को झगड़े की घटना में शामिल पाया गया था, इसलिए यह माना गया कि सेवा समाप्ति कदाचार पर आधारित थी और इसलिए दंडात्मक थी। इस मामले के तथ्य भी वर्तमान मामले से भिन्न हैं।

20.वी.पी. आहूजा (उपरोक्त) के प्रकरण में, आक्षेपित आदेश प्रथम दृष्टया कलंकात्मक और दंडात्मक भी पाया गया। आदेश इस आधार पर पारित किया गया कि अपीलकर्ता प्रशासनिक और तकनीकी रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में विफल रहा। तब यह माना गया कि नियमित जांच के बिना सेवा समाप्ति आदेश पारित नहीं किया जा सकता था और समाप्ति कोदंडात्मक माना गया, जो कि वर्तमान मामले में नहीं है।

21.सुखविंदर सिंह (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों को कर्मचारी से काम लेना होगा और वे यह निर्णय करने के लिए सबसे उपयुक्त लोग हैं कि किसी कर्मचारी को सेवा में जारी रखा जाना चाहिए और स्थायी कर्मचारी बनाया जाना चाहिए या नहीं। परिवीक्षाधीन व्यक्ति परीक्षण के अधीन है और एक अस्थायी कर्मचारी को पद का कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

22.वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता परिवीक्षा पर था; उनकी नियुक्ति अभी तीन महीने पहले ही हुई थी; वह 22 दिनों की अवधि के लिए अनधिकृत रूप से ड्यूटी से अनुपस्थित था, इसलिए, सक्षम प्राधिकारी ने एक महीने का नोटिस देने के बाद एक सरल आदेश, जो न तो दंडात्मक है और न ही कलंकात्मक है, द्वारा केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा)नियमावली, 1965 के नियम 5 (1) के तहत याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त कर दिया है। परिवीक्षा की अवधि के भीतर ऐसे कर्मचारी को सेवाओं से मुक्त करने के नियोक्ता के अधिकार का प्रयोग करते हुए याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करना सेवामुक्ति या सेवासमाप्ति के अन्यथा निरापद आदेश को दंडात्मक प्रकृति का नहीं बनायेगा।

23.उपरोक्त के दृष्टिगत, सेवा समाप्ति के प्रश्नगत आदेश और प्रश्नगत अपीलीय आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

24.याचिका तथ्यहीन होने के कारण निरस्त की जाती है।

(2023) 4 ILRA 1219

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

द्वितीय अपील संख्या 2019/1978

गोकुल राम एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

शिव जोखन सिंह और अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री एस. एल. यादव, श्री पी. के. दुबे, श्री प्रभात कुमार, श्री सिद्धार्थ निरंजन, श्री डी. पी. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री अमीश कुमार श्रीवास्तव, श्री मनीष देव सिंह, श्री आर.एन. सिंह, श्री एस.एन. सिंह

ए. सिविल कानून - प्राकृतिक संरक्षक द्वारा विक्रय विलेख - शून्यकरणीय विक्रय विलेख - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950, धारा 331 - सिविल न्यायालय बनाम राजस्व न्यायालय क्षेत्राधिकार - प्राकृतिक संरक्षक द्वारा निष्पादित शून्यकरणीय विक्रय विलेख को निरस्त करने के लिए वाद का निर्णय करने का सिविल न्यायालय को विशेष क्षेत्राधिकार था - उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम, 1939, धारा 9(1) - हिंदू महिलाओं का संपत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937, धारा 3(1) संयुक्त प्रांत हिंदू महिलाओं का संपत्ति पर अधिकार (कृषि भूमि पर विस्तार) अधिनियम, 1942, धारा 2 - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम (यू.पी.जेड.ए. और एल.आर.), 1950, धारा 4 -उत्तर प्रदेश काश्तकारी

अधिनियम, 1939 की धारा 9(1) के अंतर्गत कृषि भूमि में पट्टेदार के अधिकार मृतक के निजी कानूनों के तहत आते थे। हिंदू महिला संपत्ति पर अधिकार अधिनियम, 1937 की धारा 3(1) के तहत हिंदू विधवा अपने पति की संपत्ति में सीमित (आजीवन) हिस्सेदार के तौर पर हिस्सा ले सकती है। 1942 के अधिनियम के तहत इस अधिकार को कृषि भूमि तक बढ़ा दिया गया। दिनांक 01.07.1952 को यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 4 के तहत संपत्ति के निहित होने के बाद, निहित होने की तिथि से पूर्व विधवा के रूप में आजीवन हिस्सा रखने वाली महिला के उत्तराधिकारियों का निर्धारण यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 171 के अनुसार किया जाता है। धारा 171 को अधिनियम संख्या XVI, 1953 द्वारा संशोधित किया गया, तथा उत्तराधिकारियों की सूची में बहन के पुत्र को भी शामिल किया गया।

बी. वर्तमान वाद में, दीप नारायण की दिनांक 18.08.1950 को निःसंतान मृत्यु हो गई। उनके बाद उनकी विधवा फूल कुमारी जीवित रहीं, जिन्हें विवादित भूमि में उनका हिस्सा विरासत में मिला। दिनांक 01.07.1952 को संपत्ति के निहित होने के बाद, फूल कुमारी मालिक (भूमिधर) बन गईं। फूल कुमारी से विरासत में मिली संपत्ति के लिए श्रीमती जय राजी (श्रीमती फूल कुमारी की बहन) ने अपने नाबालिग बेटों की अभिभावक के रूप में दिनांक 18.02.1963 को एक बिक्री विलेख निष्पादित किया था। वयस्क होने पर नाबालिग बेटों ने बिक्री विलेख को निरस्त करने के लिए वाद दायर किया। सिविल न्यायालय ने यह

कहते हुए वाद का निर्णय पारित किया कि बिक्री विलेख बिना किसी अधिकार के था क्योंकि विक्रेता, अर्थात् श्रीमती जय राजी को विवादित संपत्ति कभी विरासत में नहीं मिली। राजस्व न्यायालय द्वारा बिक्री विलेख को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता था। उक्त बिक्री विलेख को निरस्त करने के लिए वाद चलाने का एकमात्र अधिकार सिविल न्यायालय के पास था, और राजस्व न्यायालय तब तक इसके विरुद्ध घोषणा नहीं कर सकता था जब तक कि ऐसी चुनौती नहीं दी जाती। श्रीमती फूल कुमारी की मृत्यु के पश्चात केवल दीप नारायण की बहनों के बेटों को ही संपत्ति विरासत में मिलती, न कि उनकी बहनों को। (पैरा 14)

निरस्त (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. नरेंद्र कुमार मित्तल एवं अन्य बनाम मेसर्स नुपुर हाउसिंग डेवलपमेंट प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, 2019 (144) आरडी 785
2. श्री राम एवं अन्य बनाम प्रथम अपर जिला न्यायाधीश एवं अन्य; (2001) 3 एससीसी 24
3. राम अवलम बनाम जटा शंकर; एआईआर 1969 इलाहाबाद 526
4. राम पदारथ व अन्य बनाम द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर व अन्य; 1989 (1) ए.डब्ल्यू.सी. 290 (सभी)।
5. नंगली अम्मा भवानी अम्मा बनाम गोपालकृष्णन नायर; (2004) 8 एससीसी 785

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता को सुना।
2. वर्तमान द्वितीय अपील, सिविल अपील सं0 8/1978 में चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश, जौनपुर द्वारा पारित निर्णय तथा डिक्री दिनांकित 18.04.1978 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसमें मूल वाद सं0 222/1970 में पारित निर्णय तथा डिक्री दिनांकित 10.12.1973 की पुष्टि की गई है।
3. मामले के तथ्य, संक्षेप में, यह हैं कि श्री दीप नारायण एक कृषि भूमि के मुख्य धारक थे। दिनांक 18.08.1950 को उनकी निःसंतान मृत्यु हो गई तथा इसलिए, संपत्ति उनकी पत्नी श्रीमति फूल कुमारी को विरासत में मिली। हालाँकि श्रीमति फूल कुमारी की मृत्यु की तिथि को लेकर विवाद था, वादी-प्रत्यर्थागण ने दावा किया कि मृत्यु की तिथि 12.08.1954 है, जबकि विपक्षी-अपीलकर्ताओं ने दावा किया कि मृत्यु की तिथि 10.10.1954 के बाद की है, परन्तु दोनों न्यायालयों ने यह तथ्य दिया है कि उनकी मृत्यु दिनांक 12.08.1954 को हुई थी। उक्त निष्कर्ष श्रीमति फूल कुमारी की मृत्यु के पश्चात दायर एक प्रतिस्थापन आवेदन के आधार पर है, जो कि उच्च न्यायालय के समक्ष पूर्व की कार्यवाही में था तथा इसलिए, अपीलकर्ताओं द्वारा बहस के दौरान इस न्यायालय के समक्ष विवादित नहीं है।

4. श्री दीप नारायण तथा श्रीमति फूल कुमारी की निःसंतान मृत्यु हुई। श्रीमति फूल कुमारी के दिवंगत पति श्री दीप नारायण की तीन बहनें थीं, जिनका नाम श्रीमती जय राजी, श्रीमती सुभ राजी तथा श्रीमती हुब राजी था। श्रीमती जय राजी व उनके पति राज नारायण के शिव जोखन तथा फौजदार नामक दो पुत्र पैदा हुए। श्रीमति सुभ राजी के राम समुझ तथा सुमेर सिंह पैदा हुए तथा श्रीमति हुब राजी के हाकिम सिंह पैदा हुए। इन सभी का जन्म श्रीमति फूल कुमारी की मृत्यु से पहले हुआ था, अर्थात् दिनांक 12.08.1954 से पूर्व। विक्रय-पत्र दिनांकित 18.02.1963 द्वारा श्रीमती जय राजी ने अपने पति राज नारायण तथा श्रीमती सुभ राजी के साथ मिलकर उस विवादित संपत्ति को, अपनी ओर से तथा अपने नाबालिग बेटों के संरक्षक के रूप में बेच दिया, जो उस समय पैदा हुए थे, जो संपत्ति श्रीमति फूल कुमारी से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। नाबालिग पुत्रों शिव जोखन, फौजदार तथा राम समुझ ने बालिग होने पर मूल वाद सं0 222/1970 द्वारा उक्त विक्रय विलेख को रद्द करने के लिए दीवानी न्यायालय में मुकदमा दायर किया। दीवानी न्यायालय ने वाद का निर्णयन करते हुए कहा कि विक्रय विलेख बिना किसी अधिकार के था क्योंकि विक्रेताओं अर्थात् श्रीमति जय राजी, श्रीमति सुभ राजी एवं श्री राज नारायण में से किसी को भी विवादग्रस्त संपत्ति को विरासत में नहीं मिली थी। इसके पश्चात अपीलीय न्यायालय ने उक्त निष्कर्ष की पुष्टि की तथा अपील खारिज कर दी।

5. उक्त पृष्ठभूमि में प्रतिवादी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विधि के दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं:-

(i) क्या विचारण न्यायालय तथा अपीलीय न्यायालय ने उत्तराधिकार के कानून को गलत तरीके से लागू किया है; तथा

(ii) क्या यह वाद उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन व भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (एतदपश्चात यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 331 से बाधित है तथा केवल राजस्व न्यायालय को मामले की सुनवाई का अधिकार है

6. जहां तक उत्तराधिकार के मुद्दे का प्रश्न है, इसके दो भाग हैं (i) क्या फूल कुमारी कृषि भूमि में अपने पति के अधिकारों की उत्तराधिकारी बन सकती है तथा यदि प्रथम भाग का उत्तर सकारात्मक है तो (ii) फूल कुमारी की मृत्यु के पश्चात उनका उत्तराधिकारी कौन होगा। अब प्रथम भाग पर आते हैं, स्वर्गीय दीप नारायण की मृत्यु दिनांक 18.08.1950 को अर्थात् यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम के लागू होने से पूर्व हुई थी, जिसे दिनांक 24.01.1951 को राष्ट्रपति द्वारा सहमति दी गई थी। यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम के लागू होने से पूर्व, कृषि भूमि में सर-धारक के अधिकारों का उत्तराधिकार उत्तर प्रदेश किरायेदारी अधिनियम, 1939 की धारा 9(1) द्वारा शासित होता था। उक्त अधिनियम की धारा 9(1) में लिखा है, "धारा 9: सर अधिकार का उत्तराधिकार तथा हस्तांतरण-

(1) सर-धारक की मृत्यु पर सर का अधिकार उस व्यक्तिगत कानून के अनुसार हस्तांतरित नहीं होगा जिसके अधीन मृतक था।”

इस प्रकार कृषि भूमि में सर-धारक के अधिकार उस समय के प्रासंगिक व्यक्तिगत कानूनों के अनुसार हस्तांतरित होंगे। इसमें कोई विवाद नहीं है कि दीप नारायण निःसंतान मरे थे तथा उनकी विधवा फूल कुमारी जीवित रहीं। उस समय एक हिंदू विधवा, हिंदू महिला संपत्ति अधिकार अधिनियम, 1937 (एतदपश्चात् 1937 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 3(1) के अनुसार संपत्ति में अपने पति के अधिकारों की उत्तराधिकारी बन सकती थी। हालाँकि उपधारा 3(3) के अनुसार ऐसा हस्तांतरण केवल जीवन हित के लिए होगा। 1937 के अधिनियम की धारा 3(1) तथा 3(3) के अनुसार:

“3. संपत्ति का हस्तांतरण- (1) जब दयाभाग हिंदू कानून द्वारा शासित एक हिंदू किसी भी संपत्ति को छोड़कर बिना वसीयत के मर जाता है तथा जब हिंदू कानून के किसी अन्य स्कूल या प्रथागत कानून द्वारा शासित एक हिंदू अलग संपत्ति छोड़कर बिना वसीयत के मर जाता है, तो उसकी विधवा, या यदि एक से अधिक विधवा है, तो उसकी सभी विधवाएं, उप-धारा (3) के प्रावधानों के अधीन, उस संपत्ति के संबंध में बेटे के समान हकदार होंगी, जिसके संबंध में वह बिना वसीयत के मर जाता है:

बशर्ते कि यदि पूर्व मृत पुत्र का कोई पुत्र जीवित नहीं है तो उसकी विधवा को पुत्र के समान ही उत्तराधिकार प्राप्त होगा, तथा यदि ऐसे पूर्व मृत पुत्र का कोई पुत्र या पुत्र का

पुत्र जीवित है तो उसे भी पुत्र के पुत्र के समान ही उत्तराधिकार प्राप्त होगा:

बशर्ते इसके अलावा यही प्रावधान यथोचित परिवर्तनों के साथ पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र की विधवा पर भी लागू होगा।

(3) इस धारा के प्रावधानों के अंतर्गत एक हिंदू विधवा को हस्तान्तरित होने वाला कोई भी हित एक हिंदू महिला की संपत्ति के रूप में जाना जाने वाला सीमित हित होगा, बशर्ते कि उसे पुरुष स्वामी के रूप में विभाजन का दावा करने का समान अधिकार होगा।”

इस प्रकार एक हिंदू विधवा अपने मृत पति की संपत्ति के उत्तराधिकार में सफल हो सकती थी, किन्तु यह सीमित हित था अर्थात् मात्र जीवन हित। 1937 का अधिनियम एक संघीय कानून था तथा इसलिए कृषि भूमि इसके दायरे से बाहर थी क्योंकि भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत केवल प्रांतीय सरकार ही कृषि भूमि से संबंधित मामलों पर कानून बनाने में सक्षम थी। हालाँकि, 1942 में संयुक्त प्रांत की प्रांतीय सरकार ने संयुक्त प्रांत संपत्ति पर हिंदू महिला अधिकार (कृषि भूमि पर विस्तार) अधिनियम, 1942 (एतदपश्चात् 1942 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) को अधिनियमित किया, ताकि 1937 के अधिनियम की धारा 3(1) में “संपत्ति” शब्द के अर्थ में कृषि भूमि को भी शामिल किया जा सके। 1942 के अधिनियम की धारा 2 में लिखा है,

“2. 1937 के अधिनियम XVIII तथा 1938 के अधिनियम XI का कृषि भूमि तक विस्तार - हिंदू महिला संपत्ति अधिकार अधिनियम 1937 तथा हिंदू महिला संपत्ति अधिकार

(संशोधन) अधिनियम, 1938 में "संपत्ति" शब्द में कृषि भूमि शामिल होगी तथा हमेशा शामिल मानी जाएगी:

बशर्ते कि जहां कोई भी व्यक्ति, जो इस अधिनियम के बिना, किसी संपत्ति का हकदार होता, उसके कब्जे में है या उसने उसका हस्तांतरण किया है, उसका कब्जा इस अधिनियम के प्रारंभ होने तक उतनप ही वैध माना जाएगा तथा उसके द्वारा किया गया स्थानांतरण उतना ही मान्य होगा, जितना कि इस अधिनियम के पारित नहीं होने पर होता: तथा

बशर्ते कि इस अधिनियम में कुछ भी कृषि भूमि के भूमिधारी के अधिकारों के लिए निर्धारित उत्तराधिकार के किसी भी नियम को फिलहाल लागू किसी विशेष कानून द्वारा, प्रभावित नहीं करेगा।"

उपरोक्त प्रावधानों का एक संयुक्त पाठन विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों के निष्कर्ष की पुष्टि करता है कि फूल कुमारी ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात विवादित भूमि में उनके हित का उत्तराधिकार प्राप्त कर लिया।

7. अगला प्रश्न फूल कुमारी के उत्तराधिकारी का उठता है। यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 4 जो संपत्ति को निहित करती है, को दिनांक 01.07.1952 से लागू किया गया था। इस प्रकार, निहित होने के बाद, श्रीमति फूल कुमारी यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम के अंतर्गत विवादित संपत्ति की भूमिधर बन गई। यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 172(2)(ए)(आई) के अंतर्गत उत्तराधिकार अधिकार प्राप्त करने

की तिथि से पूर्व से ही विधवा के रूप में जीवन हित रखने वाली महिला के संबंध में, दिया गया है। उक्त धारा यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम के लागू होने के समय। निम्नानुसार थी:-

"172. विधवा, माता, पुत्री आदि के रूप में विरासत में मिले हित रखने वाली महिला के मामले में उत्तराधिकार-

.....

(2) जहां एक भूमिधर या सिरदार, जिसे निहित होने की तिथि से पूर्व विधवा, मां, सौतेली माँ, पिता की माँ, पुत्री, बहन या सौतेली बहन, के रूप में किसी भी संपत्ति में हित विरासत में मिला है-

(ए) की मृत्यु हो जाती है, तथा ऐसा भूमिधर या सिरदार उक्त तिथि से ठीक पहले की तिथि को जोत में शामिल भूमि की मध्यस्थ थी, या जोत का निश्चित दर भूमिधारी थी या अवध में एक पूर्व-स्वामी या अधिभोग भूमिधारी के रूप में, या अवध में विशेष शर्तों पर एक भूमिधारी के रूप में तथा

(i) वह केवल जीवन संपत्ति के लिए उसके लिए लागू व्यक्तिगत कानून के अनुसार हकदार थी, संपत्ति पूर्वोक्त अंतिम पुरुष घटक या भूमिधारी के निकटतम जीवित उत्तराधिकारी (धारा 171 के प्रावधानों के अनुसार ऐसे उत्तराधिकारी का पता लगाया जा रहा है) को हस्तांतरित की जाएगी; तथा यदि"

8. निहित होने की तिथि से पहले विधवा के रूप में जीवन हित रखने वाली महिला के उत्तराधिकारियों का निर्धारण यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 171 के

प्रावधानों के अनुसार किया जाएगा। मूल धारा 171 इस प्रकार है:-

“171. **उत्तराधिकार का सामान्य क्रम-** धारा 169 तथा 173 के प्रावधानों के अधीन, जब

एक भूमिधर, सिरदार या आसामी पुरुष की मृत्यु हो जाती है, तो उसकी हिस्सेदारी में उसका हित नीचे दिए गए उत्तराधिकार के क्रम के अनुसार हस्तांतरित होगा:-

- (a) पुरुष वंशज पुरुष वंशावली में: बशर्ते कि पूर्व-मृत पुत्र के पुत्र या पुत्रगण चाहे कितने ही निम्न क्यों न हों, उस हिस्से को प्राप्त करेंगे जो मृतक को प्राप्त होता यदि वह जीवित होता;
- (b) विधवा;
- (c) पिता;
- (d) माँ, विधवा होने के नाते;
- (e) पिता के पिता;
- (f) पिता की माँ, विधवा होने के नाते;
- (g) पुरुष वंश के किसी पुरुष वंशज की विधवा;
- (h) सौतेली माँ, विधवा होने के नाते;
- (i) अविवाहित बेटी;
- (j) बेटी का बेटा;
- (k) भाई, मृतक के समान पिता का पुत्र होने के नाते;
- (l) अविवाहित बहन;
- (m) भाई का बेटा, भाई मृतक के समान पिता का बेटा है;
- (n) पिता के पिता का पुत्र;
- (o) भाई के बेटे का बेटा;
- (p) पिता के पिता के बेटे का बेटा।”

इसे 1953 के यू.पी. अधिनियम सं0 XVI की धारा 39 द्वारा संशोधित किया गया

था तथा 1 जुलाई 1952 से पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया था। 1953 के यू.पी. अधिनियम सं0 XVI की धारा 39 द्वारा, खंड (j) को (k) बनाया गया था तथा इसके विपरीत किया गया था। खंड (m) के बाद खंड (mn) जोड़ा गया तथा “(mn) बहन का बेटा” के रूप में पेश किया गया।

1953 के अधिनियम सं0 XVI द्वारा विधिवत संशोधित किए जाने के पश्चात यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 171 का अवलोकन दर्शाता है कि इसने बहनों के बेटे को उत्तराधिकारियों की सूची में जोड़ा गया।

अधिनियम में 1954 के यू.पी. अधिनियम सं0 20 द्वारा और संशोधन किया गया, जो दिनांक 19.10.1954 से लागू हुआ। उक्त संशोधन ने बहनों को बहन के बेटों पर अधिमान्य उत्तराधिकारी बना दिया। हालाँकि, दोनों न्यायालयों ने एक समवर्ती निष्कर्ष दिया है कि श्रीमति फूल कुमारी की मृत्यु दिनांक 12.08.1954 को अर्थात् 1954 के यू.पी. अधिनियम सं0 20 के प्रभावी होने से पूर्व हो गई तथा इस न्यायालय के समक्ष बहस के दौरान यह विवादित नहीं है। इस प्रकार, धारा 172(2)(ए)(i) सपठित धारा 171(1)(mn) जैसा कि यह दिनांक 12.08.1954 को था, अर्थात् जिस दिन श्रीमति फूल कुमारी की मृत्यु हुई, वो दीप नारायण की बहनों के बेटे हैं जिन्हें संपत्ति विरासत में मिलेगी। इस प्रकार, दोनों न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष में कोई अवैधता नहीं है कि उक्त तिथि पर लागू कानून के अनुसार, केवल दीप नारायण की बहनों के बेटों को दिनांक 12.08.1954 को

हुई श्रीमति फूल कुमारी की मृत्यु पर संपत्ति विरासत में मिलेगी, न कि उसकी बहनों को।

9. जहां तक सारवान विधिक प्रश्न सं० दो, कि दीवानी न्यायालय का क्षेत्राधिकार यू.पी.जेड.ए. व एल.आर. अधिनियम की धारा 331 के अंतर्गत बाधित होगा तथा केवल राजस्व न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्राप्त है, का संबंध है, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने नरेंद्र कुमार मित्तल व अन्य बनाम मैसर्स नूपुर हाउसिंग डेवलपमेंट प्रा. लिमिटेड व अन्य; 2019 (144) आर.डी. 785 तथा श्री राम व अन्य बनाम प्रथम अपर जनपद न्यायाधीश व अन्य (2001) 3 एस.सी.सी. 24 के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों तथा राम अवलंब बनाम जटा शंकर; ए.आई.आर. 1969 इलाहाबाद 526 तथा राम पदारथ व अन्य बनाम द्वितीय अपर जनपद न्यायाधीश, सुल्तानपुर व अन्य; 1989 (1) ए.डब्ल्यू.सी. 290 (ए.एल.एल.) के मामलों में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है।

10. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़ता से कथन किया है कि उपरोक्त निर्णयों के दृष्टिगत, केवल राजस्व न्यायालय ही संपत्ति के स्वामित्व की उदघोषणा के संबंध में मामले की सुनवाई कर सकता है।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थांगण के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि चूंकि यह वाद नाबालिगों के प्राकृतिक अभिभावकों द्वारा दिनांक 18.02.1963 को निष्पादित विक्रय विलेख को रद्द करने के लिए दायर किया

गया है, केवल दीवानी न्यायालय ही विवाद का निस्तारण करेगा क्योंकि विक्रय विलेखों को रद्द करना आवश्यक था तथा इसे रद्द होने तक अनदेखा नहीं किया जा सकता था। उन्होंने आगे कहा कि मामले के किसी भी दृष्टिकोण से, संपत्ति को नाबालिगों के प्राकृतिक संरक्षक द्वारा विक्रय किया गया है तथा चूंकि, वयस्क होने पर, नाबालिग विक्रय विलेख को रद्द करने का इरादा रखते हैं, इसलिए, ऐसे परिदृश्य में केवल दीवानी न्यायालय के पास ऐसे मामले क्षेत्राधिकार है।

12. हिंदू विधि के अंतर्गत किसी नाबालिग के प्राकृतिक अभिभावक द्वारा निष्पादित विक्रय पत्र तथा उसके निरस्तीकरण के संबंध में कानून लंबे समय से तय है। प्राकृतिक अभिभावक को संपत्ति के विक्रय विलेख को निष्पादित करने का अधिकार है तथा यहां तक कि यह मानने का भी कि इसमें कोई दोष है तथा नाबालिगों को वयस्क होने पर इसे सुधारने का अधिकार है। अवयस्कों के पास उपलब्ध यह विकल्प विक्रय विलेख को अधिक से अधिक निरस्तीकरण योग्य दस्तावेज बना देता है। नंगाली अम्मा भवानी अम्मा बनाम गोपालकृष्णन नायर; (2004) 8 एस.सी.सी. 785 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना पर्याप्त होगा, उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैरा 8 में लिखा है, "8. प्रयोग की गई स्पष्ट भाषा को देखते हुए, यह स्पष्ट है कि उपधारा (2) के उल्लंघन में प्राकृतिक अभिभावक द्वारा किया गया लेनदेन शून्य नहीं था, अपितु नाबालिग के कथन पर केवल शून्यकरणीय था। यह मानना कि धारा 8(2) के उल्लंघन में लेनदेन शून्य है, न केवल

विधि के स्पष्ट शब्दों के विपरीत होगा, अपितु नाबालिग को वयस्क होने पर लेनदेन की पुष्टि या संपुष्टि करने के अधिकार से भी वंचित कर देगा। विश्वंभर बनाम लक्ष्मीनारायण (2001) 6 एस.सी.सी. 163, में इस न्यायालय ने यह भी माना है कि ऐसे लेनदेन शून्य नहीं हैं बल्कि केवल शून्यकरणीय हैं। यह भी माना गया कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अंतर्गत निर्धारित अवधि के भीतर लेनदेन से बचने के लिए एक नाबालिग द्वारा वाद दायर किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 8(2) के उल्लंघन के प्रभाव पर अपने निष्कर्ष के मद्देनजर परिसीमा के बिन्दु पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया। चूंकि मामले के इस पहलू पर उच्च न्यायालय का निष्कर्ष पोषणीय नहीं है, इसलिए आक्षेपित निर्णय को रद्द किया जाना चाहिए।”

13. उपरोक्तानुसार निर्धारित विधि के दृष्टिगत, दिनांक 18.02.1963 का विक्रय विलेख नाबालिगों के विकल्प पर एक निरस्तीकरण योग्य दस्तावेज है, क्योंकि नाबालिग इसे चुनौती दे भी सकते हैं तथा नहीं भी। राम पदारथ (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा तय किए गए कानून के अनुसार, दीवानी न्यायालय का क्षेत्राधिकार समाप्त हो गया है तथा राजस्व न्यायालय के पास कृषि संपत्ति पर किसी व्यक्ति का स्वामित्व तय करने का विशेष क्षेत्राधिकार केवल तभी होगा जब राजस्व न्यायालय विधिक प्रभाव रहित दस्तावेज को अनदेखा करे तथा राहत देने की कार्यवाही करते हैं। इसी सिद्धांत की बाद में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय ने श्री राम (उपरोक्त) तथा नरेंद्र कुमार मित्तल (उपरोक्त) के मामलों में पुष्टि की थी। राम पदारथ (उपरोक्त) में निर्णय के पैरा 7 में लिखा है:-

“7. जहां तक जबरदस्ती, धोखाधड़ी, मिथ्या निरूपण, अनुचित प्रभाव आदि करके प्राप्त किए गए अमान्य दस्तावेजों का प्रश्न है, तो इसे निरस्त किए बिना उनके विधिक प्रभाव को समाप्त नहीं किया जा सकता है। परन्तु एक शून्य दस्तावेज को निरस्त करना आवश्यक नहीं है। इसका विधिक प्रभाव यदि कोई है तो उसे निरस्त करने के बजाय शून्य घोषित करके तथा कोई अन्य राहत देकर समाप्त किया जा सकता है। एक बार जब इसे शून्य मान लिया जाता है तो इसे किसी भी न्यायालय या प्राधिकरण द्वारा बिना किसी विधिक प्रभाव या परिणाम के नजरअंदाज किया जा सकता है। स्वतंत्र सहमति के बिना निष्पादित दस्तावेज या जो बिना विचार-विमर्श के है या जिसका उद्देश्य गैरकानूनी है या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा निष्पादित किया गया है जो नाबालिग की तरह अनुबंध करने में सक्षम नहीं है या अधिकार से अधिक है, एक शून्य दस्तावेज होगा। यदि यह अधिकार से अधिक है तो यह केवल उसी सीमा तक शून्य होगा। किसी दस्तावेज के उचित पंजीकरण तथा उसमें उल्लिखित तथ्यों की सत्यता की धारणाएँ हैं, परन्तु उक्त धारणा निर्णायक नहीं है तथा उसे खारिज कर दिया जाएगा।”

14. वर्तमान मामले में, चूंकि दस्तावेज को राजस्व न्यायालय द्वारा नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है तथा इसके प्रभाव को निरस्त करने से पहले इसे चुनौती देने की आवश्यकता

है, इसलिए, अकेले दीवानी न्यायालय के पास वाद के निस्तारण का क्षेत्राधिकार था। विक्रय विलेख दिनांकित 18.02.1963, जब तक इसे नाबालिगों द्वारा चुनौती नहीं दी जाती, तब तक वैध है तथा उक्त परिस्थितियों में राजस्व न्यायालय इसके विरुद्ध कोई उदघोषणा नहीं कर सकता है। इस प्रकार, यह केवल दीवानी न्यायालय है जिसके पास विक्रय विलेख को निरस्त करने तथा वाद के निस्तारण का क्षेत्राधिकार है। दोनों न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री में कोई अवैधता नहीं है।

15. तदनुसार द्वितीय अपील खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 1225

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय,

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,

रिट-ए संख्या 48893 / 2017

रविशंकर मौर्य ... याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य ... प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सिद्धार्थ खरे, श्री

अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: ए.एस.जी.आई., श्री अजय

सिंह, श्री विवेक कुमार राय

सेवा वाद - रेलवे - भर्ती - समूह-डी (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी) चतुर्थ श्रेणी (समूह-डी) - पद के लिए परीक्षा के दौरान ओएमआर शीट भरने में मामूली गलतियों के कारण उम्मीदवार की

उम्मीदवारी को निरस्त करने में अति-तकनीकी दृष्टिकोण अनुचित है। याचिकाकर्ता ने लिखित और शारीरिक दोनों परीक्षाएं उत्तीर्ण की हैं, लेकिन उसे मेडिकल परीक्षा और दस्तावेज सत्यापन के लिए नहीं बुलाया गया क्योंकि याचिकाकर्ता ने पुस्तिका के पहले पृष्ठ पर की गई घोषणा को फिर से प्रस्तुत करने के बजाय ओएमआर शीट के कॉलम नंबर 10 की शर्तों को फिर से प्रस्तुत किया। न्यायालय ने माना कि अलग-अलग लिखावट या किसी अनुचित साधन के उपयोग का कोई आरोप नहीं था। रेलवे अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी को निरस्त करना मनमाना और अति-तकनीकी था। याचिका को अनुमति दी गई।

स्वीकृत (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. पित्त नवीन कुमार एवं अन्य बनाम राजा नरसैया जंगिटी और अन्य, (2006) 10 एससीसी 261
2. कर्नाटक लोक सेवा आयोग एवं अन्य बनाम बी.एम. विजय शंकर एवं अन्य, 1992 (2) एससीसी 206
3. अजय कुमार मिश्रा बनाम भारत संघ, डब्ल्यू.पी. (सी) 11642/2016, दिनांक 23.12.2016
4. भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य बनाम पलक मोदी एवं अन्य, (2013) 3 एससीसी 607
5. विवेक कुमार यादव बनाम भारत संघ एवं अन्य, ओ.ए. संख्या 330/00105/2017, दिनांक 10.4.2017

6. हनुमान दत्त शुक्ला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2018) 16 एससीसी 447

7. भारत संघ एवं अन्य बनाम सुनील कुमार, 2021 एससीसी ऑनलाइन डेल 4637

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे, जिनकी सहायता श्री सिद्धार्थ खरे ने की, रेलवे के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री अजय सिंह को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, मूल प्रार्थना पत्र संख्या 101/2016 में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद पीठ, इलाहाबाद (इसके बाद इसे 'सी.ए.टी.' के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित दिनांक 11.8.2017 के निर्णय को चुनौती दी है। जिससे उनकी अभ्यर्थिता रद्द करने के सापेक्ष याचिकाकर्ता का प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश बिल्कुल गलत और मनमाना है। इस मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स निम्नलिखित है: -

(i) रेलवे भर्ती प्रकोष्ठ, उत्तर-मध्य रेलवे, इलाहाबाद ने एक रोजगार सूचना संख्या 1/2013 जारी की, जिसके तहत चतुर्थ श्रेणी

पद की कई श्रेणियों को भरने के लिए रेलवे में प्रार्थना पत्र आमंत्रित किए गए थे।

(ii) याचिकाकर्ता ने भी इस रोजगार सूचना के अनुसरण में अपना प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया और उसे अनुक्रमांक 1210118369 भी आवंटित किया गया। याचिकाकर्ता को लिखित परीक्षा में उपस्थित होने के बाद सफल घोषित किया गया और उसके बाद उसने 10.3.2015 को आयोजित शारीरिक दक्षता परीक्षा भी उत्तीर्ण की। इसके बाद, याचिकाकर्ता को चिकित्सीय परीक्षा के लिए नहीं बुलाया गया और सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत उसके प्रार्थना पत्र के जवाब में भी याचिकाकर्ता को कोई कारण नहीं बताया गया, इसलिए, याचिकाकर्ता ने सी.ए.टी. के समक्ष मूल प्रार्थना पत्र संख्या 101/2016 दायर किया।

(iii) उपरोक्त मूल प्रार्थना पत्र के जवाब में, रेलवे ने एक संक्षिप्त उत्तर दाखिल किया था और उक्त संक्षिप्त उत्तर के पैराग्राफ संख्या 6 में, रेलवे द्वारा यह विवरणित किया गया था कि याचिकाकर्ता ने ओएमआर पत्रक में घोषणा स्तंभ को गलत तरीके से भरा था, जो परीक्षा में उसकी पहचान को छिपाने के समान था और यह निर्धारित निर्देशों का उल्लंघन है, अतः इसी कारण से, याचिकाकर्ता को चिकित्सीय परीक्षा के साथ-साथ उसके दस्तावेजों के सत्यापन के लिए नहीं बुलाया गया था। रेलवे ने अपने जवाब के साथ याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र की एक प्रति, साथ ही याचिकाकर्ता की ओएमआर पत्रक की छायाप्रति अभिलेख में लाया।

(iv) उपरोक्त अभिवचनों पर विचार करने के

बाद, सी.ए.टी. ने दिनांक 11.8.2017 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के मूल प्रार्थना पत्र को इस आधार पर खारिज कर दिया कि ओएमआर पत्रक में विशिष्ट निर्देश था जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"अपनी प्रश्न पुस्तिका के प्रथम पृष्ठ पर दिए गए घोषणा पत्र की प्रतिलिपि ओएमआर उत्तर पत्रक में दिए गए स्थान पर लगाएं। यदि आप घोषणा पत्र की प्रतिलिपि नहीं देते हैं तो आपकी अभ्यर्थिता रद्द कर दी जाएगी। आपको ओएमआर पत्रक पर मद संख्या 13 पर अपने हस्ताक्षर अवश्य करने होंगे।"

और याचिकाकर्ता उपरोक्त निर्देश का पालन करने में विफल रहा, इसलिए, उसकी अभ्यर्थिता को उचित रूप से खारिज कर दिया गया क्योंकि उपरोक्त शर्त निर्देशिका नहीं बल्कि अनिवार्य थी।

4. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यद्यपि ओएमआर पत्रक की स्तंभ संख्या 10 में, यह उल्लेख किया गया है कि *"आपकी स्वयं की लिखावट में प्रश्न पुस्तिका के पहले पृष्ठ पर दिए गए घोषणा पत्र को नीचे दिए गए स्थान पर पुनः हिंदी या अंग्रेजी में प्रस्तुत करें।"* उपरोक्त शर्त अपने आप में काफी भ्रामक है, इसलिए, याचिकाकर्ता ने गलती से प्रश्न पुस्तिका के पहले पृष्ठ पर उल्लिखित घोषणा को दोहराने के बजाय ओएमआर पत्रक की स्तंभ संख्या 10 में उल्लिखित उसी शर्त को दोबारा प्रस्तुत कर दिया। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि

ओएमआर पत्रक की स्तंभ संख्या 10 में शर्त का उद्देश्य धोखेबाज को अभ्यर्थी के स्थान पर परीक्षा में बैठने से रोकना है और उपरोक्त के अलावा, घोषणा का कोई अन्य उद्देश्य मौजूद नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता ने पहले ही अपने प्रार्थना पत्र में उपरोक्त घोषणा का उल्लेख किया है और याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई आरोप नहीं है कि ओएमआर पत्रक की स्तंभ संख्या 10 में इस्तेमाल की गई लिखावट प्रार्थना पत्र के पैरा-22 में की गई घोषणा की लिखावट से अलग है, इसलिए, याचिकाकर्ता की अभ्यर्थिता को खारिज करने का रेलवे प्राधिकरण का दृष्टिकोण अति-तकनीकी और मनमाना है।

5. दूसरी ओर, रेलवे के विद्वान अधिवक्ता, श्री अजय सिंह ने तर्क दिया कि रोजगार सूचना संख्या 1/2013 में विशिष्ट प्रावधान है कि गलत जानकारी के कारण अभ्यर्थिता/नियुक्ति रद्द कर दी जाएगी और इस संबंध में ओएमआर पत्रक में निर्देश था कि प्रश्न पुस्तिका के पहले पृष्ठ पर उल्लिखित घोषणा को अपनी हस्तलिपि में प्रस्तुत करना अनिवार्य है और इसका उल्लंघन करने पर तकनीकी रूप से याचिकाकर्ता की अभ्यर्थिता रद्द कर दी जाएगी। अपने तर्क के समर्थन में, रेलवे के विद्वान अधिवक्ता ने (2006) 10 एससीसी 261 में रिपोर्ट किए गए **पिता नवीन कुमार और अन्य बनाम राजा नरसैय्या जंगिटी और अन्य** के साथ ही शीर्ष न्यायालय के निर्णयों में से एक 1992 (2) एससीसी 206 में रिपोर्ट किए गए **कर्नाटक लोक सेवा आयोग और**

अन्य बनाम बीएम विजय शंकर और अन्य
शीर्षक वाले निर्णय पर भरोसा किया।

6. हमने पक्षकारों के परस्पर विरोधी तर्कों के साथ-साथ प्रत्यर्थी-रेलवे द्वारा दिए गए निर्णय पर भी विचार किया है।

7. रोजगार सूचना संख्या 1/2013 दिनांक 27.7.2013 के अनुदेश-9 से यह स्पष्ट है कि यदि अभ्यर्थी ने अपनी घोषणा में स्तंभ संख्या 22 में गलत जानकारी दी है तो उसकी अभ्यर्थिता/नियुक्ति रद्द की जा सकती है। उपरोक्त अधिसूचना में ओएमआर पत्रक भरने के संबंध में कोई निर्देश नहीं था। प्रार्थना पत्र (रिट याचिका के पृष्ठ-58 पर अनुलग्नक) के अवलोकन से, यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त प्रार्थना पत्र में स्तंभ संख्या 22 में घोषणा की थी और इसमें कोई विवाद नहीं है कि प्रार्थना पत्र के उपरोक्त घोषणा में कोई छिपाव या गलत जानकारी दी गई थी। ओएमआर पत्रक (रिट याचिका के पृष्ठ-60 पर अनुलग्नक) के अवलोकन से प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता ने ओएमआर पत्रक के स्तंभ-10 में निर्धारित शर्तों के अनुसरण में पुस्तिका के पहले पृष्ठ पर की गई घोषणा को दोहराने के बजाय, उनकी अपनी लिखावट में उपरोक्त शर्त को दोहराया और इसमें कोई विवाद नहीं है कि ओएमआर पत्रक की स्तंभ संख्या 10 में यह दोहराव याचिकाकर्ता के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की गई है।

8. जहां तक रेलवे द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा करने का सम्बन्ध है, वे वर्तमान मामले

में लागू नहीं होते हैं, क्योंकि इसमें अलग-अलग मुद्दे हैं। जैसा कि **पिता नवीन कुमार और अन्य (उपरोक्त)** के निर्णय में, आयु में छूट का मुद्दा था। हालाँकि इसके लिए कोई प्रावधान नहीं था, इसलिए, उपरोक्त मुद्दे के लिए माननीय शीर्ष न्यायालय ने टिप्पणी की कि नियमों का कड़ाई से पालन आवश्यक है जब नियम केवल संबंधित अभ्यर्थी के अहित के लिए लागू होते हैं, अन्यथा नहीं। मौजूदा मामले में मामला बिल्कुल अलग है यानी ओएमआर पत्रक की स्तंभ संख्या 10 में पुस्तिका के पहले पेज पर की गई घोषणा को दोबारा प्रस्तुत करना। जहां तक **कर्नाटक लोक सेवा आयोग और अन्य (उपरोक्त)** के निर्णय का संबंध है, यह मामला आयोग द्वारा जारी निर्देशों के उल्लंघन से संबंधित है, जिसमें अभ्यर्थी द्वारा न केवल उत्तर पुस्तिका के मुख्य पृष्ठ पर दिए गए स्थान पर बल्कि उत्तर पुस्तिका के अंदर सभी पृष्ठों पर अनुक्रमांक का उल्लेख किया गया है, जो स्पष्ट निर्देशों के विपरीत हैं। यह निर्णय इसलिए भी काफी अलग है क्योंकि यह वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में भी लागू नहीं होता है।

9. हमने रेलवे द्वारा भर्ती के लिए गुप-डी (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों) की भर्ती के संबंध में प्रक्रिया के पैरा-6 को भी देखा है (याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के पृष्ठ-49 में अनुलग्नक)। उपरोक्त प्रक्रिया के पैरा-6 में यह प्रावधान है कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता केवल किसी भी भाषा में पढ़ना और लिखना है, अर्थात्, उसे साक्षर होना चाहिए। इसलिए, चतुर्थ श्रेणी पद के लिए प्रार्थना पत्र करने वाले अभ्यर्थी की

ओर से बरती जाने वाली देखभाल और सावधानी के मानक की तुलना अन्य पदों के लिए प्रार्थना पत्र करने वाले अभ्यर्थी के मानक से नहीं की जा सकती, जिसके लिए शिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता होती है।

10. माननीय शीर्ष न्यायालय और उच्च न्यायालय ने अजय कुमार मिश्रा बनाम भारत संघ रिट याचिका (सी) 11642/2016 और सी.एम संख्या 45868/2016, जो 23.12.2016 को विनिश्चित किया गया, (2013) 3 एससीसी 607 में रिपोर्ट किए गए भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम पलक मोदी और अन्य के साथ भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम मिंशु सक्सेना और अन्य, और विवेक कुमार यादव बनाम भारत संघ और अन्य (मूल प्रार्थना पत्र संख्या 330/00105/2017), जो 10.4.2017 को विनिश्चित किया गया, शीर्षक वाले निर्णयों में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि किसी चयनित अभ्यर्थी की अभ्यर्थिता को अस्वीकार करने के लिए अति-तकनीकी दृष्टिकोण नहीं लिया जाना चाहिए। इसी प्रकार (2018) 16 एससीसी 447 में रिपोर्ट किए गए हनुमान दत्त शुक्ला और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ -7 में माननीय शीर्ष न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: -

"यह श्री पीपी राव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और अन्य विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त संदर्भित पदों पर योग्य अभ्यर्थियों की नियुक्ति के लिए राज्य सरकार द्वारा तैयार किए गए भर्ती नियमों के अनुसार, ऐसे

अभ्यर्थी को उत्तर पुस्तिका के मूल्यांकन से वंचित करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है, जिसने ओएमआर पत्रक (उत्तर पुस्तिका) में संबंधित खंडों में व्हाइटनर या ब्लेड का उपयोग किया हो। चयन बोर्ड द्वारा दिए गए उक्त परामर्श टिप्पण को ऐसे अभ्यर्थियों को, जिन्होंने ओएमआर/उत्तर पत्रक के संबंधित खंडों में व्हाइटनर या ब्लेड का प्रयोग किया है, उन्हें उत्तर पत्रक के मूल्यांकन हेतु अयोग्य घोषित करने के नियम के रूप में नहीं माना जा सकता है। यह कथन भर्ती नियमों के अनुरूप है और यह उत्तर प्रदेश राज्य-प्रत्यर्थी का तिनिधित्व करने वाले विद्वान महाधिवक्ता द्वारा लिखित सुझावों के आधार पर प्रस्तुत किए गए तर्क का समर्थन करता है।"

11. (2021) एससीसी ऑनलाइन डेल 4637 में रिपोर्ट किए गए भारत संघ और अन्य बनाम सुनील कुमार शीर्षक वाले निर्णय के पैराग्राफ 14 और 15 को यहां नीचे उक्तथित किया गया है: -

"14. हम विद्वान सी.ए.टी. से सहमत हैं क्योंकि अगर हम प्रत्यर्थी के हिंदी हस्ताक्षर देखते हैं, वे प्रार्थना पत्र पत्र के साथ-साथ ओएमआर पत्रक पर भी बिल्कुल समान हैं। उचित रूप से याचिकाकर्ताओं ने प्रार्थना पत्र पत्र और ओएमआर पत्रक पर प्रत्यर्थी के अंगूठे के निशान पर विवाद नहीं किया है। यह प्रतिरूपण का मामला नहीं है। याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया एकमात्र विवाद, जो प्रत्यर्थी की अभ्यर्थिता को अस्वीकार करने का आधार है, वह यह है कि प्रार्थना पत्र पत्र पर अंग्रेजी में उनके हस्ताक्षर ओएमआर पत्रक पर

अंग्रेजी में उनके हस्ताक्षर से मेल नहीं खाते हैं।

15. यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि ओएमआर पत्रक पर अंग्रेजी में हस्ताक्षर के लिए दिए गए बॉक्स में स्पष्ट रूप से लिखा है कि "बड़े अक्षरों में नहीं"। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि प्रत्यर्थी खल्लासी के "ग्रुप डी" पद के लिए परीक्षा दे रहा था और उसके अंग्रेजी के ज्ञान को एक विद्वान व्यक्ति

जितना कुशल नहीं माना जा सकता है। ओएमआर पत्रक पर बॉक्स संख्या 7 में, जहां अभ्यर्थी को हस्ताक्षर करना है, दिए गए अनुदेश को पढ़ने के बाद जो पहली धारणा बनती है, वह यह है कि अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते समय बड़े अक्षरों का प्रयोग नहीं करना है। प्रत्यर्थी ने अपने हस्ताक्षर में बड़े अक्षरों के प्रयोग से स्पष्ट रूप से विरत होकर उक्त अनुदेश का पालन करने का प्रयास किया, जैसा कि उसने पहले प्रार्थना पत्र पत्र पर हस्ताक्षर करते समय किया था।"

12. उपरोक्त उल्लिखित मामलों में, माननीय शीर्ष न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की परीक्षा में ओएमआर पत्रक भरने में मामूली गलती अभ्यर्थिता को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकती है, लेकिन वर्तमान मामले में, हालांकि रेलवे द्वारा कोई आरोप नहीं लगाया गया था कि याचिकाकर्ता किसी अनुचित साधन या किसी भी प्रकार के प्रक्षेप का उपयोग करने में शामिल था, लेकिन केवल इस आधार पर कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त शर्त के अनुपालन में पुस्तिका के पहले पृष्ठ पर की गई घोषणा को पुनः प्रस्तुत करने के बजाय ओएमआर पत्रक की स्तंभ संख्या 10 की शर्त को दोहराया,

याचिकाकर्ता की अभ्यर्थिता को अति-तकनीकी दृष्टिकोण के आधार पर अस्वीकार करना बिल्कुल मनमाना और गलत है। याचिकाकर्ता का यह भी मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता किसी भी तरह से चतुर्थ श्रेणी पद के लिए अयोग्य है और यह तथ्य भी विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता ने लिखित परीक्षा के साथ-साथ शारीरिक परीक्षा भी उत्तीर्ण किया है जो कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के चयन के लिए आवश्यक आवश्यकता है।

13. इसलिए, हमारी दृष्टि में, सी.ए.टी. ने उपरोक्त पहलू को नजरअंदाज कर दिया और ओएमआर पत्रक की स्तंभ संख्या 10 में पुस्तिका के पहले पृष्ठ पर की गई घोषणा को पुनरुत्पादित न करने के संबंध में अति-तकनीकी दृष्टिकोण अपनाते हुए याचिकाकर्ता के मूल प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया।

14. इसलिए, मूल प्रार्थना पत्र संख्या 101/2016 में सी.ए.टी. द्वारा दिनांक 11.8.2017 को पारित निर्णय रद्द किया जाता है और प्रत्यर्थियों को याचिकाकर्ता की चिकित्सीय परीक्षा करने और उसके दस्तावेजों को सत्यापित करने और यदि याचिकाकर्ता योग्य है तो नियुक्ति पत्र जारी करने का निर्देश दिया जाता है। यह भी निर्देश दिया जाता है कि यदि मुकदमा लंबित होने के बावजूद सभी पद भरे गए हैं, तो रेलवे याचिकाकर्ता के लिए अधिसंख्य पद सृजित करेगा।

15. तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

16. उपरोक्त कार्य रेलवे द्वारा इस आदेश की

प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से 3 महीने की अवधि के भीतर किया जाना है।

(2023) 4 ILRA 1230

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

आदेश से प्रथम अपील संख्या 16/1995

यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

... अपीलकर्ता

बनाम

राजेश कुमार त्रिपाठी

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री के.एस. अमिस्ट

अधिवक्ता विपक्षीगण: श्री टी.पी. श्रीवास्तव,
श्री अजय मिश्रा, श्री दुर्गा शंकर शुक्ला, श्री
महेश द्विवेदी, श्री एस.के. वर्मा, श्रीराम सिंह

दुर्घटना - विद्युत-आघात -मोटर वाहन अधिनियम, 1988, धारा 165 - मोटर वाहन के उपयोग से होने वाली मृत्यु से संबंधित मुआवजे का दावा - मोटर वाहन अधिनियम के तहत दुर्घटना शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है - घटना तब घटित हुई जब एक ट्रक, जो ओवरलोड था और अत्यधिक गति से चलाया जा रहा था, एक बिजली के तार के संपर्क में आया, जिसके परिणामस्वरूप गांव में उच्च वोल्टेज का प्रवाह हुआ, जिससे दावेदार की पत्नी को बिजली का झटका लगा - वाहन ओवरलोड होने के बावजूद, चालक रुकने में विफल रहा - निर्णय: न्यायालय ने क्षति की दूरी के संबंध में अपीलकर्ता (बीमा कंपनी) के तर्क

को निरस्त कर दिया और निष्कर्ष निकाला कि दुर्घटना वाहन के लापरवाहीपूर्ण उपयोग के कारण हुई थी - बीमा कंपनी को दावेदार को क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए उत्तरदायी माना गया, लेकिन मालिक द्वारा चालक के वैध लाइसेंस का साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहने के कारण उसे वाहन मालिक से राशि वसूलने का अधिकार दिया गया। (पैरा 9, 10)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत हुई। (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. पप्पू और अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा और अन्य एआईआर 2018 एससी 592
2. शिवाजी दयानु पाटिल बनाम वास्चला उत्तम मोरे, 1991 0 सुप्रीम एससी 322
3. कलीम खान एवं अन्य बनाम फिमिडाबी और अन्य, 2018 वाद (एससी) 571
4. कौशनुमा बेगम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2001 मुकदमा (एससी) 6
5. यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम राजेंद्र कुमार गुप्ता एवं अन्य, आदेश से प्रथम अपील संख्या 2520/2020, निर्णय दिनांक 25.5.2020
6. रेनू देवी एवं अन्य बनाम गुरफान अहमद और अन्य, 2022 वाद (ऑल) 2019
7. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती कृष्णवेन एवं अन्य, सी.एम.ए. संख्या 2217/2015, निर्णय दिनांक 5.10.2015

8. जम्मू और कश्मीर राज्य व अन्य बनाम मीर फातिमा व अन्य, एमएसी आवेदन संख्या 52 / 2021, निर्णय दिनांक 22.9.2022

9. बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह एवं अन्य, आदेश से प्रथम अपील संख्या 1818/2012, निर्णय दिनांक 19.7.2016

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री के.एस. अमिस्ट को और प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री दुर्गा शंकर शुक्ला को सुना।

2. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के इशारे पर यह अपील दावा याचिका संख्या 175 वर्ष 1991 में XVI अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, इलाहाबाद द्वारा पारित निर्णय और अवार्ड दिनांक 15.9.1994 को चुनौती देती है, जिसके तहत विद्वान ट्रिब्यूनल ने अपीलकर्ता को उपरोक्त भुगतान करने के निर्देश के साथ वर्ष 15% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में 1,72,000/- रुपये का आदेश दिया है।

3. रिकॉर्ड से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि हादसे वासे दिन जब घटना हुई, अपीलकर्ता के द्वारा बीमित ट्रक ओवरलोड था और उसके चालक द्वारा अत्यधिक गति से चलाया जा रहा था। ट्रक वहां मौजूद बिजली के तार से टकरा गया और ओवरलोडिंग के कारण तार

टूट गया और चिंगारी वहां थी जो हाई वोल्टेज को छूकर गांव में फैल गई जिससे प्रतिवादी-दावेदार की पत्नी ने करंट लगने के कारण मृत हो गयी। ओवरलोड होने के बावजूद चालक ने गाड़ी नहीं रोकी। मृतक कुशल मजदूर था और 2200 रुपये प्रतिमाह कमाता था और उसकी उम्र 20 वर्ष थी। दावेदार ने दावा याचिका दायर की। बीमा कंपनी ने अपना जवाब दायर किया लेकिन चालक और मालिक ने कोई जवाब दाखिल नहीं किया। बीमा कंपनी का उत्तर इनकार में से एक था। अधिकरण ने मुद्दे विरचित किए और मुद्दा संख्या 1 पर कार्रवाई करते हुए अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि 4-3-1991 को जब ट्रक ओवरलोड था और अपने चालक द्वारा लापरवाही से सड़क पर चल रहा था, तो वह कम वोल्टेज वाले बिजली के तार के संपर्क में आ गया। कम वोल्टेज तार टूट गया और उच्च वोल्टेज तार के संपर्क में आया जिसके परिणामस्वरूप कम वोल्टेज तार में उच्च वोल्टेज का संचलन हुआ। हाई वोल्टेज कम वोल्टेज तार के माध्यम से मृतक के घर में परिचालित हुआ और मृतक उसी के संपर्क में आया। अंसा०-1 राजेश कुमार त्रिपाठी ने ट्रक को ओवरलोड होते देखा था और यह लो वोल्टेज बिजली के तारों के संपर्क में आ गया था। वह घटनास्थल पर मौजूद था। गांव में काफी लोग जमा हो गए और ट्रक चालक भाग गया। अंसा०-2 ने भी इसी तरह से गवाही दी। बंसा०-1 उत्तम साहब यादव ने बताया कि उक्त तिथि पर उनके वाहन के साथ कोई दुर्घटना नहीं हुई और गांव के लोगों ने उन्हें रोका और तार के बारे में अनभिज्ञता का बहाना किया। उसे यह भी याद नहीं है कि पुलिस ने उसकी गाड़ी का चालान

किया है या नहीं और उसे पुलिस ने क्यों गिरफ्तार किया है। इन सभी तथ्यों पर न्यायालय द्वारा संचयी रूप से विचार किया गया ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 के तहत परिभाषित वाहन के उपयोग के कारण दुर्घटना हुई।

4. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 592 में रिपोर्ट किए गए पप्पू और अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा और अन्य में निर्णय पर भरोसा किया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि बीमा कंपनी मालिक को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी है क्योंकि चालक जो वाहन चला रहा था, उसके पास वैध ड्राइविंग लाइसेंस नहीं था और वाहन को पॉलिसी शर्तों के खिलाफ चलाया जा रहा था।

5. प्रतिवादी-दावेदारों के अधिवक्ता ने बीमा कंपनी द्वारा उठाए गए आधारों का खंडन करने के लिए शिवाजी दयानु पाटिल बनाम वास्चला उत्तम मोर, 1991 0 सुप्रीम एससी 322, कलीम खान और अन्य बनाम फिमिदाबी और अन्य, 2018 लॉसूट (एससी) 571, कौशनुमा बेगम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2001 लासवुडट (एससी) 6, आदेश संख्या 2520 वर्ष 2020 (यूपी राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम राजेंद्र कुमार गुप्ता और अन्य), रेणु देवी और 5 अन्य बनाम गुरफान अहमद और 2 अन्य, 2022 लॉसूट (इला०) 2019, सीएमए संख्या 2217 वर्ष 2015 (यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती कृष्णवेन और अन्य) में मद्रास उच्च न्यायालय का निर्णय 5.10.2015

को तय किया गया, और मैक ऐप नंबर 52 वर्ष 2021 (जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य बनाम मीर फातिमा और अन्य) में श्रीनगर में जम्मू और कश्मीर और लद्दाख के उच्च न्यायालय का निर्णय 22.9.2022 को तय किया गया, में निर्णयों पर भरोसा किया है।

6. प्रतिवादी-दावेदार के लिए अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय लापरवाही के लिए और नुकसान की दूरस्थता के लिए प्रतिपादित सिद्धांत के प्रकाश में पढ़ा जाना होगा।

7. लापरवाही शब्द का अर्थ है दूसरों के प्रति देखभाल करने में विफलता जो एक उचित और विवेकपूर्ण व्यक्ति किसी परिस्थिति में करेगा या कार्यवाई करेगा जो ऐसा समझदार व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही जानबूझकर या आकस्मिक दोनों हो सकती है, हालांकि यह सामान्य रूप से आकस्मिक है। अधिक विशेष रूप से, यह लापरवाह ड्राइविंग को दर्शाता है और घायलों को हमेशा यह साबित करना होगा कि दोनों पक्ष लापरवाह हैं। यदि चोट बल्कि मृत्यु लापरवाह पक्ष के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी चीज के कारण होती है, तो वह सीधे उत्तरदायी है, अन्यथा "रेस इप्सा लोक्विटुर" का सिद्धांत जिसका अर्थ है कि "चीजें खुद के लिए बोलती हैं" लागू होंगी।

8. इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने 19.7.2016 को निर्णय दिए गए आदेश संख्या 1818 वर्ष 2012 (बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह और अन्य) की प्रथम अपील में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"16. लापरवाही का अर्थ है एक विवेकपूर्ण चालक से अपेक्षित देखभाल और सावधानी की आवश्यक डिग्री का प्रयोग करने में विफलता। लापरवाही कुछ ऐसा करने की चूक है जो एक उचित व्यक्ति, विचारों पर लागू होता है, जो आमतौर पर मानव मामलों के संचालन को नियंत्रित करता है, करेगा, या कुछ ऐसा करेगा जो एक विवेकपूर्ण और उचित व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही हमेशा प्रत्यक्ष प्रमाण का सवाल नहीं है। यह सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला निष्कर्ष है। लापरवाही एक पूर्ण शब्द नहीं है, लेकिन एक सापेक्ष है। बल्कि यह एक तुलनात्मक शब्द है। एक मामले में जो लापरवाही हो सकती है, वह दूसरे में नहीं हो सकती है। जहां सावधानी बरतने का कोई कर्तव्य नहीं है, लोकप्रिय अर्थों में लापरवाही का कोई कानूनी परिणाम नहीं है। जहां देखभाल करने का कर्तव्य है, वहां ऐसे कृत्यों या चूक से बचने के लिए उचित देखभाल की जानी चाहिए जो व्यक्ति को शारीरिक चोट पहुंचाने की संभावना का उचित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है। आवश्यक देखभाल की डिग्री, निश्चित रूप से, प्रत्येक मामले में तथ्यों पर निर्भर करती है। इन व्यापक सिद्धांतों के आधार पर चालकों की लापरवाही का आकलन किए जाने की आवश्यकता है।

17. यह देखा जाएगा कि मृतक की ओर से अंशदायी लापरवाही के लिए सबूत के बोझ का निर्वहन विरोधियों द्वारा किया जाना है। दुर्घटना की व्याख्या करना उल्लंघन करने वाले वाहन के चालक का कर्तव्य है। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक-दूसरे को पार करती हैं, यह एक

तेज गति वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह धीमा हो जाए और यदि चालक चौराहे पर धीमा नहीं करता है, लेकिन यह ध्यान दिए बिना तेज गति से आगे बढ़ता रहा कि कोई अन्य वाहन पार कर रहा है, तो चालक का आचरण आवश्यक रूप से निष्कर्ष निकालता है कि वाहन उसके द्वारा लापरवाही से और असावधानी से चलाया जा रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम में संलग्न 10वीं अनुसूची में मोटर वाहनों के ड्राइविंग के लिए वैधानिक विनियम शामिल हैं जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का भी हिस्सा हैं। ऐसे विनियम के खण्ड-6 में स्पष्ट रूप से निदेश दिया गया है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को प्रत्येक चौराहे या सड़कों के जंक्शन पर या सड़क के मोड़ पर वाहन की गति धीमी करनी होगी। यह भी प्रावधान किया गया है कि वाहन के चालक को सड़कों के चौराहे या जंक्शन में प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित नहीं करता कि वह किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा। केवल इसलिए कि ट्रक का चालक सड़क के बाईं ओर वाहन चला रहा था, उसे सड़क के चौराहे पर पहुंचने पर वाहन को धीमा करने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया जाएगा, खासकर जब वह आसानी से देख सकता था कि जिस कार पर मृतक सवार था, वह चौराहे पर आ रही थी।

19. यातायात की तेज और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए, सड़कों पर मोटर वाहनों को कुछ हद तक राइलैंड्स बनाम भारत संघ में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के भीतर आने

के रूप में माना जा सकता है। फ्लेचर, (1868) 3 एचएल (एलआर) 330। पैदल चलने वालों की दृष्टि से इस देश की सड़कों को मोटर वाहनों के उपयोग से अत्यधिक खतरनाक बना दिया गया है। 'हिट एंड रन' मामले जहां मोटर वाहनों के चालक जिनके कारण दुर्घटनाएं हुई हैं, अज्ञात हैं। वास्तव में ऐसे मामलों की संख्या बढ़ रही है। जहां कोई पैदल यात्री अपनी ओर से लापरवाही के बिना किसी मोटर चालक द्वारा घायल या मारा जाता है, चाहे लापरवाही से या नहीं, वह या उसके कानूनी प्रतिनिधि, जैसा भी मामला हो, नुकसान की वसूली का हकदार होना चाहिए, यदि सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई अर्थ होना चाहिए।

20. ये प्रावधान (मोटर अधिनियम, 1988 की धारा 110A और धारा 110B) केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पार्टियों के अधिकारों को प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 द्वारा बनाई गई कार्रवाई का अधिकार 'अपनी प्रजातियों में नया, इसकी गुणवत्ता में नया, इसके सिद्धांतों में नया था। हर तरह से यह नया था। मोटर वाहन दुर्घटना के कारण मृत्यु के लिए मुआवजे के लिए आवेदन दायर करने के लिए अधिनियम, 1988 के तहत कानूनी प्रतिनिधियों को दिया गया अधिकार एक बड़ा अधिकार है। इस अधिकार को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के तहत कार्रवाई की सीमाओं से बचाया नहीं जा सकता है। नई परिस्थितियों और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपायों की आवश्यकता होती है।

21. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही अदालतें व्याख्या द्वारा कानून

के सिद्धांतों को विस्थापित न करें, जिन्हें अच्छी तरह से तय माना जाता है और इसलिए, अदालत मोटर वाहन दुर्घटनाओं के सभी मामलों में लापरवाही के सबूत को पूरी तरह से दूर नहीं कर सकती है, लेकिन निम्नलिखित तर्ज पर कानून को आगे विकसित करना संभव है; जब एक मोटर वाहन को उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा है, तो यह आमतौर पर दुर्घटना घटित नहीं होगी और इसलिए, साक्ष्य के नियम के रूप में रेसिप्सा लोक्विटर का नियम मोटर दुर्घटना के मामलों में सामान्य सिविल वादों की तुलना में अधिक आवृत्ति के साथ लागू किया जा सकता है (जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, 2005 0 एसीजे (एससी) 1840 में तीन न्यायाधीश बेंच के अनुसार)

22. उपरोक्त प्रक्रिया द्वारा, सबूत का बोझ आमतौर पर मोटर दुर्घटना दावा याचिका में प्रतिवादियों पर डाला जा सकता है ताकि यह साबित किया जा सके कि मोटर वाहन उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा था या दूसरी तरफ की ओर से समान लापरवाही है।

9. दुर्घटना वाहन के उपयोग के कारण हुई जो शिवाजी दयानुआ पाटिल (उपरोक्त) और रेणु देवी (उपरोक्त) के मामलों के समान है। मोटर वाहन अधिनियम, 1955 की धारा 165 का प्रावधान दुर्घटना शब्द को परिभाषित नहीं करता है और इसलिए, सेवा में लगाए गए रेणु देवी (उपरोक्त) में निर्णय न्यायालय के लिए सहायक होगा। रेस-इप्सा लोकेटर के सिद्धांत को भी लागू करने की आवश्यकता है और अपीलकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति कि क्षति

4.इला प्रवीण कुमार सिंह @ प्रवीण कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1647

की दूरस्थता है, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

की गई है, दावेदारों को उपार्जित ब्याज के साथ संवितरित की जाए।

10. यह इस न्यायालय को ड्राइवर के ड्राइविंग लाइसेंस के वैध नहीं होने और बिजली कंपनी को पक्षकार नहीं बनाए जाने के मुद्दे पर ले जाता है। यहां पप्पू और अन्य (उपरोक्त) में निर्णय अपीलकर्ता की सहायता के लिए आएगा क्योंकि यह मालिक और चालक को यह साबित करना था कि वैध ड्राइविंग लाइसेंस रखने वाले चालक द्वारा वाहन चलाया जा रहा था और ड्राइविंग लाइसेंस दाखिल करने के बाद ही, बीमा कंपनी अन्यथा साबित करने के लिए बाध्य होगी।

11. जहां तक मुआवजे का संबंध है, यह नहीं कहा जा सकता है कि दिया गया मुआवजा अधिक है। बल्कि ट्रिब्यूनल ने आय के भविष्य के नुकसान के शीर्ष के तहत कोई राशि देने पर विचार नहीं किया है।

12. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वामी के रूप में अनुमत है। बीमा कंपनी वाहन के मालिक से जमा की गई राशि की वसूली करने के लिए स्वतंत्र होगी क्योंकि मालिक कोई दस्तावेजी साक्ष्य पेश करने में विफल रहा है ताकि यह दिखाया जा सके कि चालक के पास उक्त वाहन चलाने का लाइसेंस था।

13. अभिलेख और कार्यवाही तुरंत अधिकरण को वापस भेज दी जाए। सावधि जमा में रखी गई राशि, यदि वह अभी तक संवितरित नहीं

(2023) 4 ILRA 1234

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-
प्रथम,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 आवेदन संख्या
2941/2023

प्रवीण कुमार सिंह @ प्रवीण कुमार एवं अन्य
...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री अजीत कुमार यादव,
श्री आशीष कुमार गुप्ता
अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - धारा 482 के तहत आवेदन - धारा 376, 363, 366, 504, 506 आईपीसी और धारा 3/4 पोक्सो अधिनियम के तहत कार्यवाही को रद्द करना - आवेदक और पीड़िता ने एक दूसरे से विवाह किया और खुशी से रह रहे हैं - संबंधित अपराध एक निजी विवाद नहीं है - समाज के विरुद्ध सामूहिक गलत -आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने की शक्ति का संयम से प्रयोग किया जाना चाहिए - पक्षों के मध्य किए गए समझौते के आधार पर धारा 376 आईपीसी के साथ धारा 3/4 पोक्सो अधिनियम के तहत वाद को निरस्त करना - कानूनी रूप से, अनुमेय नहीं - आवेदन निरस्त।

आयोजित:

इसमें कोई संदेह नहीं है कि आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने की शक्ति का प्रयोग बहुत ही संयम और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम वाद में और न्यायालय के लिए एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच करना उचित नहीं था और अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी मर्जी और कल्पना के अनुसार कार्य करने के लिए कोई मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं।

वर्तमान में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य के नाम से दायर आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 8514/2023 में यह भी माना है कि आरोपी और पीड़ित के बीच हुए समझौते के आधार पर आईपीसी की धारा 376 और पोक्सो अधिनियम के तहत आपराधिक कार्यवाही को निरस्त नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार, उपर्युक्त स्थापित कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान आरोपी/आवेदक संख्या 1 और विपक्षी पक्ष संख्या 2, पीड़िता के बीच हुए समझौते के आधार पर धारा 376 आईपीसी के साथ धारा 3/4 पोक्सो अधिनियम के तहत मामले को निरस्त करना कानूनी रूप से स्वीकार्य नहीं है। इसलिए, वर्तमान आवेदन में योग्यता का अभाव है और इसे निरस्त किया जाना चाहिए।

आवेदन निरस्त (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप (1) एससीसी 335
2. रतीश बाबू उन्नीकृष्णन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 513
3. सतीश कुमार जाटव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 लाइव लॉ (SC) 488
4. रामवीर उपाध्याय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2022 एससी 2044
5. नरिंदर सिंह व अन्य बनाम पंजाब राज्य व अन्य (2014) 6 एससीसी 466
6. मध्य प्रदेश राज्य बनाम मदनलाल (2015) 7 एससीसी 681
7. शिम्भू बनाम हरियाणा राज्य (2014) 13 एससीसी 318
8. दक्साबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 936
9. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 8514/2023 ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-
प्रथम, द्वारा प्रदत्त)

श्री सुभाष चंद्र यादव, अधिवक्ता आज न्यायालय में अपना अभिभाष पत्र प्रस्तुत कर, जिसे अभिलेख में लिया गया है, विरोधी पक्ष संख्या 2 की ओर से उपस्थित हुए।

प्रार्थीगण हेतु श्री अजीत कुमार यादव, विद्वान अधिवक्ता, राज्य की ओर से श्री अनुराग वर्मा, विद्वान सहायकशासकीय अधिवक्ता एवं श्री सुभाष चंद्र यादव, विद्वान

4.इला प्रवीण कुमार सिंह @ प्रवीण कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 1649

अधिवक्ता को विरोधी पक्ष संख्या 2 के रूप में सुना तथासम्पूर्ण अभिलेखों का अध्ययन किया।

अभियुक्त / प्रार्थीगण द्वारा धारा 482 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत वर्तमान प्रार्थना-पत्र धारा376,363,366,504,506 भा०दं०सं० एवं 3/4 पॉक्सो अधिनियम के अन्तर्गत वाद अपराध संख्या 345/2013 से उत्पन्न होने वाले सत्र परीक्षण संख्या 20 / 2014 "राज्य बनाम प्रवीण कुमार सिंह तथा अन्य" पुलिसस्टेशन आशियाना, जिला लखनऊ से संबंधित पूरी कार्यवाही, जो कि विद्वान विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो अधिनियम, लखनऊ के न्यायालय में लंबित है, साथ ही साथ प्रार्थी संख्या 1 के विरुद्ध अन्तर्गत धारा376,363,366,504,506 भा०दं०सं० एवं 3/4 पॉक्सो अधिनियम तथा धारा 504,506 भा०दं०सं० के अन्तर्गत प्रार्थी संख्या 2 एवं 3 के विरुद्ध अनुवेषण अधिकारी द्वारा उपरोक्त वाद अपराध पक्षों के मध्य समझौते केआलोक में प्रस्तुत प्रश्नगत आरोप पत्र संख्या 35 / 2014, दिनांक 15.02.2014 को रद्द करने हेतु प्रस्तुत किया गया है।

प्रार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियुक्तों/ प्रार्थीगण के विरुद्ध एक झूठी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्जकी गई है, वे निर्दोष हैं तथा उन्हें इस वाद में गलत रीति से फंसाया गया है। उनकी आगे की प्रस्तुति यह है किवास्तव में, प्रथम सूचना रिपोर्ट मात्र इस तथ्य के कारण विरोधी पक्ष संख्या 2 के कहने पर दर्ज की गई थी किवर्तमान प्रार्थी संख्या-1, विरोधी पक्ष संख्या-2 पीड़िता से परिचित था।

उनका अगला अभिकथन प्रस्तुत किया किपीड़िता ने धारा 161 एवं 164 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत दर्ज अपने बयान में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थनकिया है। अतः उपरोक्त आपराधिक मामले के लंबित होने के दौरान, प्रार्थीगण तथा विरोधी पक्ष संख्या-2 ने अपनेविवाद को सौहार्दपूर्ण रीति से सुलझा लिया है।

उनका अगला अभिकथन यह है कि, वास्तव में, आरोपी/प्रार्थी संख्या-1 एवं विरोधी पक्ष संख्या-2, पीड़िता ने विवाह कर लिया है और पति तथा पत्नी के रूप में खुशी से रह रहे हैं। अतः, प्रश्नगत आपराधिक कार्यवाही को रद्दकिये जाने योग्य है।

इस तथ्य के दृष्टिगत उनका अगला अभिकथन यह है कि अभियुक्त/प्रार्थी संख्या 1 एवं विरोधी पक्ष संख्या 2,पीड़िता पति और पत्नी के रूप में एक साथ रह रहे हैं, अभियुक्त/प्रार्थीगण के विरुद्ध प्रश्नगत आपराधिक कार्यवाहीको लंबित रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। उपरोक्त तथ्य के आलोक में, दोषसिद्धि प्राप्त करने कीसंभावना दूरस्थ एवं धूमिल है।

श्री सुभाष चंद्र वर्मा, विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि विरोधी पक्षसंख्या 2, पीड़िता ने प्रार्थी संख्या 1 के साथ विवाह किया है तथा वे पति और पत्नी के रूप में खुशी से रह रहे हैं। इसके विपरीत, राज्य की ओर से श्री अनुराग वर्मा, सहायक शासकीय अधिवक्ता ने यह कहते हुए प्रार्थना काबलपूर्वक विरोध किया है कि यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण

अधिनियम, 2012 को उक्त अधिनियम में परिभाषित बच्चों की रोकथाम तथा संरक्षण हेतु विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किया गया है। उनका आगे अभिकथन यह है कि धारा 376,363,366,504,506 भा०दं०सं एवं 3/4 पाँक्सो अधिनियम के अन्तर्गत वर्तमान प्रार्थीसंख्या 1 तथा धारा 504 और 506 भा०दं०सं के अन्तर्गत प्रार्थी संख्या 2 एवं 3 के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है।

राज्य की ओर से श्री अनुराग वर्मा, सहायक शासकीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया है कि पीड़िता घटना की तिथि को एक बालिका थी। अतः, ऐसी पीड़िता तथा अभियुक्त/प्रार्थीगण के मध्य कोई समझौता विधिक रूप से स्वीकार्य नहीं है। अतः वर्तमान प्रार्थना पत्र गलत है, जिसे खारिज किया जाना चाहिए।

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 उपबंध (1) एस. सी. सी. 335 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तरसं. 102 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: -

102. अध्याय 14 के अधीन संहिता के विभिन्न सुसंगत उपबंधों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में अथवा संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहितशक्तियों, जिन्हें हमने उपरोक्त में प्रस्तुत किया है, हम निम्नलिखित श्रेणियों के मामले उदाहरण के रूप में देते हैं, जिसमें ऐसी

शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु अथवा अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने हेतु किया जा सकता है, यद्यपि किसी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित किए गए एवं कठोर दिशा निर्देशों अथवा कठोर सूत्रों को निर्धारितकरना तथा असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट अथवा शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके प्रत्यक्षमूल्य पर लिया जाये तथा उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं अथवा आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्रियों में आरोप, यदि कोई हो, प्राथमिकी के साथ एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के अतिरिक्त संहिता की धारा 156 (1) के अन्तर्गत पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण को उचित ठहराते हैं।

(3) जहां प्राथमिकी अथवा शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप तथा उसके समर्थन में एकत्रकिए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं तथा आरोपी के विरुद्ध मामला बनाते हैं।

(4) जहां, प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप एक संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, किंतु मात्र एकगैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, वहां संहिता की धारा 155 (2) के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना एक पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी अन्वेषण की अनुमति नहीं दी जाती है।

(5) जहां प्राथमिकी अथवा शिकायत में लगाए गए आरोप इतने असंगत तथा स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही हेतु पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संबंधित संहिता अथवा अधिनियम (जिसके अन्तर्गत आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई है) के किसी भी प्रावधान में एक स्पष्ट कानूनी बाधा है तथा जहां कार्यवाही जारी है एवं/अथवा जहां संहिता अथवा संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़िता पक्ष की शिकायत हेतुप्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही को स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण रीति से प्रस्तुत किया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रीति से अभियुक्त से बदला लेने हेतु तथा निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान के उद्देश्य से शुरू की जाती है।

"माननीय उच्चतम न्यायालय ने रतीश बाबू उन्नीकृष्णन बनाम राज्य (एन. सी. टी.

दिल्ली) 2022 एस. सी. सी.ऑनलाइन एस. सी. 513 के मामले में प्रस्तर संख्या 16,17 और 18 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: -

"16. ऊपर दिए गए विधि के प्रस्ताव से यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यायालय को विचारण-पूर्व स्तरपर शिकायत को निरस्त करने की राहत देने में विलंब करना चाहिए, जब तथ्यात्मक विवादसंभावना के दायरे में है, विशेष रूप से वैध प्रकल्पना के कारण, जैसा कि इस मामले में है। ध्यान देने वाली बात यह भी है कि कोई भी साक्ष्य को प्रस्तुत किए बिना तथ्यात्मक बचाव एक निर्विवादगुणवत्ता का होना चाहिए, ताकि शिकायत में लगाए गए आरोपों को पूर्णतया गलत साबित किया जा सके।

17. पूर्व-विचारण स्तर पर आपराधिक प्रक्रिया को विफल करने के परिणाम गंभीर और अपूरणीय हो सकते हैं। प्रारंभिक चरणों में कार्यवाही को रद्द करने के परिणामस्वरूप पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिले बिना विनिश्चयन हो जायेगा जिसका परिणाम यह होगा कि उचित मंच अर्थात् विचारण न्यायालय महत्वपूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने से वंचित रह जायेगा। यदि इसकी अनुमति दी जाती है, तो अभियुक्त को आपराधिक प्रक्रिया में बिना शर्त लाभ दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वैध प्रकल्पना के कारण, जब अपीलार्थी द्वारा चेक और हस्ताक्षर विवादित नहीं होते हैं, तो इस

स्तर पर सुविधा का संतुलन शिकायतकर्ता/ अभियोजन पक्ष के पक्ष में होता है, क्योंकि अभियुक्त को मुकदमे के दौरान बचाव पक्ष के साक्ष्य को प्रस्तुत करने का उचित अवसर मिलेगा, ताकि प्रकल्पना का खंडन किया जा सके।

18. अतः समन आदेश के स्तर पर शिकायतकर्ता पर मुकदमा न करना, जब तथ्यात्मक विवाद का अभी तक प्रचार नहीं किया गया है और विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया जाना है, हमारी में न्यायसंगत नहीं होगा। प्रथम दृष्टया प्रभाव के आधार पर, विचारण न्यायालय द्वारा निर्धारण के अधीन आपराधिकता के एक तत्व को यहां पूर्ण रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है। अतः जब कार्यवाही एक प्रारंभिक चरण में होती है, तो आपराधिक प्रक्रिया को बाधित करना उचित नहीं है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि आपराधिक कार्यवाहियों को निरस्त करने की शक्ति का प्रयोग बहुत ही संयम और सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभ मामलों में से दुर्लभतम मामलों में तथा न्यायालय हेतु प्राथमिकी अथवा शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के रूप में अन्वेषण आरंभ करना उचित नहीं था और यह कि अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी सनक और कल्पनाओं के अनुसार कार्य करनेके लिए कोई मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं।

सतीश कुमार जाटव बनाम उ०प्र० राज्य, 2022 लाइव लॉ (SC) 488 के मामले में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि यह आधार कि "मामले की कार्यवाही को लंबा करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा" आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु एक अच्छा आधार और/या बिल्कुल भी आधार नहीं हो सकता है जब कथित अपराध के लिए एक स्पष्ट मामला बनाया गया था। इसी प्रकार रामवीर उपाध्याय बनाम U.P. राज्य, AIR2022 SC 2044 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि धारा 482 द०प्र०सं० के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार पूछने हेतु प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। द०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय शिकायत/प्र०सू०रि० में आरोपों की शुद्धता की अन्वेषण नहीं करता है। असाधारण रूप से दुर्लभ मामलों को छोड़कर जहां यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ हैं या किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। धारा 482 द०प्र०सं० के अन्तर्गत याचिका प्रस्तुत करना अंतर्वर्ती स्तर पर ही अंततः न्याय की विफलता हो सकती है।

जहां तक वाद अपराध संख्या 345/2013 अन्तर्गत धारा 376,363,366,504,506 भा०द०सं तथा 3/4 पाँक्सो अधिनियम से उत्पन्न होने वाले सत्र परीक्षण संख्या 20/2014 "राज्य बनाम प्रवीण कुमार सिंह एवं अन्य" की आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का प्रश्न है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नरिंदर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य [(2014) 6 एससीसी 466]** में विशेष रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि मामला धारा 376 भा०द०संके अन्तर्गत है। यह भी एक ऐसा अपराध है, जो यद्यपि किसी विशेष पीड़िता के संबंध में किया गया है, किंतु

इसे पक्षों के मध्य निजी विवाद नहीं कहा जा सकता है। इसका गंभीर प्रतिकूल सामाजिक प्रभाव पड़ता है। अतः पीड़िता के साथ अभियुक्त के कथित समझौते के आधार पर किसी भी कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है। मध्य प्रदेश राज्य बनाम मदनलाल [(2015) 7 एस. सी. सी. 681] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय नेधारा 376 सहपठित 511 भा०दं०सं में समझौते के आधार पर बरी करने से संबंधित मामले को निरस्त करते हुए, तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्धारित **शिम्भू बनाम हरियाणा राज्य [(2014) 13 एससीसी 318]** में निर्धारित सिद्धांतों पर विश्वास जताया है।

विधि के इस सिद्धांत को हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 936** में रिपोर्ट किए गए **दक्साबेन बनाम गुजरात राज्य और अन्य** में दोहराया गया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय नेप्रस्तर संख्या 34,38,47 और 49 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

“34. इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, (2007) 12 एस. सी. सी. 1 में, इस न्यायालयने कहा:-

“46. न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आपराधिक अभियोजन का उपयोग उत्पीड़न के साधन के रूप में या निजी प्रतिशोध की मांग के लिए या आरोपी पर दबाव बनाने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ नहीं किया जाता है। उपर्युक्त मामलों के विश्लेषण पर, हमारा मत है कि अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित

करने वाले एक अनम्य नियम को निर्धारित करना न तो संभव है औरन ही वांछनीय है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग हालांकि व्यापक रूप से संयम, ध्यानपूर्वक एवंसतर्कता के साथ किया जाना चाहिए और मात्र तभी जब यह विधि में विशेष रूप सेनिर्धारित परीक्षणों द्वारा और उपरोक्त मामलों में उचित हो। निर्धारित विधिक स्थितिके दृष्टिगत, प्रश्नगत निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है।

38. यद्यपि द०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व प्र०सू०रि० आपराधिकशिकायत और/या आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु, उच्च न्यायालय को, जैसा कि ऊपर कहा गया है किचौकस रहना होगा एवं अपराध की प्रकृति एवं गंभीरता को ध्यान में रखना होगा। जघन्य अथवा गंभीर अपराध, जोप्रकृति में निजी नहीं हैं तथा समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं, उन्हें अपराधी और शिकायतकर्ता और/अथवापीड़िता के मध्य समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है। हत्या, बलात्कार, चोरी, डकैती तथा यहां तककि आत्महत्या हेतु उकसाने जैसे अपराध न तो निजी हैं और न ही सिविल प्रकृति के हैं। इस प्रकार के अपराधसमाज के विरुद्ध हैं। किसी भी परिस्थिति में समझौता करने पर अभियोजन को रद्द नहीं किया जा सकता है, जबअपराध

गंभीर और संगीन हो और समाज के विरुद्ध अपराध के दायरे में आता हो।

47. मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण, (2019) 5 एस. सी. सी. 688 में, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने इसन्यायालय के पहले के निर्णयों पर चर्चा की एवं निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए:-"15. इस मुद्दे पर विधि एवं इस न्यायालय के अन्य निर्णयों के दृष्टिगत, जिसे यहां उपरोक्त में संदर्भित किया गया है, यह निम्नानुसार देखा एवं अभिनिर्धारित किया जाता है:

15.1.संहिता की धारा 320 के अधीन गैर-शमनीय अपराधों हेतु दंडात्मक कार्यवाहियों को निरस्त करने के लिए संहिता की धारा 482 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग अत्यधिक और मुख्य रूप से सिविल चरित्र के साथ किया जा सकता है, विशेष रूप से वे जो वाणिज्यिक लेन-देन से उत्पन्न होते हैं अथवा वैवाहिक संबंध या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न होते हैं और जब पक्षकारों ने आपस में संपूर्ण विवाद का समाधान कर लिया हो;

15.2.ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोजनों में नहीं किया जाना चाहिए जिनमें मानसिक भ्रष्टता के जघन्य एवं गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराध शामिल हैं।

15.3.ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं हैं एवं समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। अतः ऐसी शक्ति का प्रयोग भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे

विशेष विधि के अन्तर्गत अपराधों हेतु अथवा लोक सेवकों द्वारा उस क्षमता में कार्य करते हुए किए गए अपराधों हेतु केवल पीड़िता एवं अपराधी के मध्य समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जाना है;

15.4.भारतीय दंड संहिता की धारा 307 एवं शस्त्र अधिनियम आदि के अन्तर्गत अपराध। यह जघन्य एवं गंभीर अपराधों की श्रेणी में आता है और इसलिए इसे समाज के विरुद्ध अपराध के रूप में माना जाना चाहिए और न कि केवल व्यक्ति के विरुद्ध, और इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 307 और/या शस्त्र अधिनियम, आदि के अन्तर्गत अपराध के लिए आपराधिक कार्यवाही। जिनका समाज पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, उन्हें संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता है कि पक्षों ने आपस में अपने पूरे विवाद का समाधान कर लिया है।

15.5.गैर-शमनीय अपराधों के संबंध में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु संहिता की धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, जो प्रकृति में निजी हैं तथा समाज पर गंभीर प्रभाव नहीं डालते हैं, इस आधार पर कि पीड़िता एवं अपराधी के मध्य समझौता है, उच्च न्यायालय को आरोपी के पूर्ववृत्त पर विचार करने की आवश्यकता है; आरोपी का आचरण, अर्थात् क्या आरोपी फरार था और वह क्यों फरार

था, कैसे उसने शिकायतकर्ता के साथ समझौता करने में कामयाबी हासिल की थी ,आदि।"(बल दिया गया)"

49. द०प्र०सं० की धारा 482 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय असाधारण रूप से दुर्लभ मामलों को छोड़कर शिकायत में आरोप की शुद्धता की अन्वेषण नहीं करती है, जहां यह स्पष्टतः स्पष्ट है कि आरोप तुच्छ हैं अथवा किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं।

हाल ही में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने प्रार्थनापत्र अन्तर्गत धारा 482 संख्या 8514 / 2023 - ओमप्रकाश बनाम उ०प्र० राज्य और एक अन्य में यह भी माना है कि धारा 376 भारतीय दंड संहिता एवं पॉक्सो अधिनियम के अन्तर्गत आपराधिक कार्यवाही को अभियुक्त एवं पीड़िता के मध्य हुए समझौते के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है।

यह न्यायालय इस तथ्य का संज्ञान लेने में भी सक्षम है कि यौन अपराधों से बालकों के संरक्षण अधिनियम, 2012 के अन्तर्गत मामले को प्रार्थीगण एवं विरोधी पक्ष संख्या- 2 के मध्य समझौता किया जा सकता है, पीड़िता भी रिट याचिका (ऑ) (आपराधिक) संख्या (ऑ) 253 / 2022 "रामजी लाल बैरवा एवं एक अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य" में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित कर रही है। अतः उपरोक्त स्थापित विधिक स्थिति के दृष्टिगत, धारा 376 भा०दं०सं० सहपठित धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम के अन्तर्गत वर्तमान आरोपी/प्रार्थी संख्या-1 एवं विरोधी पक्ष संख्या-2 पीड़िता के मध्य किए गए समझौते के आधार पर मामले

को रद्द करना विधिक रूप से अनुमत नहीं है। अतः, वर्तमान प्रार्थनापत्र में योग्यता का अभाव है तथा यह खारिज किए जाने योग्य है। उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, धारा 482 दं०प्र०सं० के अन्तर्गत वर्तमान प्रार्थनापत्र खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1241

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-
आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 3119/2023
अंकित सक्सेना एवं अन्य ...आवेदक
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण
अधिवक्ता आवेदक: श्री मनीष बाजपेयी. श्री
प्रदीप कुमार मौर्य
अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून - धारा 482 सीआरपीसी-
वैवाहिक विवाद से उत्पन्न विवाद की प्रकृति
निजी होने पर पक्षों के बीच आपराधिक
कार्यवाही को रद्द करना- आपराधिक कार्यवाही
को रद्द करने के लिए निर्धारित दिशा-निर्देश
निजी विवाद के तत्व को प्रबल करते हैं- कोई
जघन्य अपराध सम्मिलित नहीं है- ऐसी
आपराधिक कार्यवाही को निरस्त किया जा
सकता है- आवेदन स्वीकार किया जाता है।

आयोजित:

इस वाद के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह
विवादित नहीं है कि वर्तमान प्रथम सूचना

रिपोर्ट पक्षकारों अर्थात विपक्षी पक्ष संख्या 2 और आवेदकों के मध्य वैवाहिक विवाद का परिणाम थी, जो एक निजी विवाद का एक प्रमुख तत्व है। इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रंगप्पा जावूर बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य 2023 लाइव लॉ (एससी) 74 और जसमैर सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2022) 9 एससीसी 73 में पक्षों के मध्य किए गए समझौते के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के संबंध में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए और वर्तमान वाद के उपरोक्त समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्तुतियाँ और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान आवेदन के लंबित रहने के दौरान, पक्षों ने पहले ही स्वेच्छा से और सौहार्दपूर्ण तरीके से अपने विवाद को सुलझा लिया है। पक्षों द्वारा किए गए समझौते को नीचे के विद्वान न्यायालय द्वारा सत्यापित किया गया है। इस तथ्य को विपक्षी पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। अब तक, पक्षों के मध्य कोई मतभेद नहीं है। परिणामस्वरूप, यह न्यायालय इस विचारित राय पर है कि उपर्युक्त वाद की कार्यवाही को लम्बा खींचने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। पक्षों द्वारा किए गए समझौते के अनुसार, आरोपी आवेदकों की दोषसिद्धि की संभावना भी बहुत कम है। परिणामस्वरूप, कार्यवाही को जारी रखना, अपने आप में, पक्षों के साथ अन्याय होगा। वर्तमान सुनवाई केवल एक व्यर्थ प्रयास में कीमती न्यायिक समय की बर्बादी होगी।

उपर्युक्त के अनुसार, तत्काल आवेदन सफल है और इसे स्वीकार किया जाना चाहिए।

आवेदन स्वीकृत। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. परबतभाई आहिर @ परबतभाई भीमसिंहभाई करमुर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2017) 9 एससीसी 641
2. आपराधिक अपील संख्या 1489/2012 (रामगोपाल एवं अन्य बनाम एम.पी. राज्य), 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 834
3. रामावतार बनाम एम.पी. राज्य 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 966
4. रंगप्पा जावूर बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य 2023 लाइव लॉ (एससी) 74
5. जसमैर सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य (2022) 9 एससीसी 73

(माननीय न्यायमूर्ति अजय कुमार श्रीवास्तव-
प्रथम, द्वारा प्रदत्त)

श्री अनुराग सिंह, एडवोकेट ने आज अदालत में अपना वकालतनामा प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से पेश किया है, जिसे रिकॉर्ड में लिया गया। श्री संतोष श्रीवास्तव, अधिवक्ता श्री मनीष बाजपेयी, आवेदकों के अधिवक्ता, श्री राजेश वर्मा, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री अनुराग सिंह, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत आवेदकों द्वारा दिनांक 15.01.2019 के आक्षेपित

आरोप पत्र के साथ-साथ अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोर्ट संख्या-28, लखनऊ द्वारा केस संख्या-95003 वर्ष 2019 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 31.10.2019 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आरोपी/आवेदक को फंसाने के लिए झूठे तथ्यों के आधार पर आरोपी/आवेदक के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

उनका आगे कहना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में सभी अभियुक्तों/आवेदकों के खिलाफ अस्पष्ट और सामान्य आरोप हैं, जो किसी भी अपराध का गठन नहीं करते हैं जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोप लगाया गया है।

उनका अगला निवेदन यह है कि जांच के दौरान, वर्तमान अभियुक्तों/आवेदकों के खिलाफ कोई विश्वसनीय अपराध एकत्र नहीं किया जा सकता है। इस तथ्य के बावजूद, प्रस्तुत आरोपियों/आवेदकों के खिलाफ आरोप पत्र रखा गया।

उनका आगे कहना है कि विचारण न्यायालय ने 31.10.2019 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से यांत्रिक रूप से मामले का संज्ञान लिया और आवेदकों को उपस्थित होने और मुकदमे का सामना करने के लिए प्रक्रिया जारी की।

उनका अगला निवेदन यह है कि इस तरह की कार्यवाही जारी रखना और कुछ नहीं बल्कि इस न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग और दुर्भावनापूर्ण अभियोजन भी है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि चूंकि विवाद पक्षों के बीच वैवाहिक कलह से संबंधित है, इसलिए पक्षों ने अपने विवाद का निपटारा किया और एक समझौता दायर किया, जिसे इस

न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा सत्यापन के लिए भेजा गया है, जिसे अंकित सक्सेना और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य शीर्षक से धारा 482 संख्या-2108 वर्ष 2023 के तहत आवेदन में पारित दिनांक 01.03.2023 के आदेश के माध्यम से सत्यापन के लिए भेजा गया है।

उनका आगे कहना है कि दिनांक 01.03.2023 के पूर्वोक्त आदेश के अनुसरण में, विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 18.03.2023 के आदेश के माध्यम से समझौते को सत्यापित किया है। इसकी एक प्रति प्रस्तुत आवेदन के अनुलग्नक संख्या-6 के रूप में संलग्न है।

इसलिए आवेदकों के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि इस तथ्य के संबंध में कि पक्षों के बीच विवाद अनिवार्य रूप से प्रकृति में वैवाहिक था, पक्षों ने अपने विवाद का निपटारा किया। इसलिए, आक्षेपित आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया जाना चाहिए क्योंकि प्रश्नगत विवाद प्रकृति में निजी है जिसका कोई प्रतिकूल सामाजिक प्रभाव नहीं है।

इसके विपरीत, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रार्थना का जोरदार विरोध किया है। हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने इस तथ्य को बहुत ही निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया है कि पक्षों ने अपने विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है और एक समझौता दायर किया है, जिसे विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 18.03.2023 के आदेश के माध्यम से सत्यापित किया है।

परबतभाई अहीर @ परबतभाई भीम सिंह भाई करमुर और अन्य बनाम गुजरात राज्य

और (2017)9 एस.सी.सी. 641 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के पैरा-16 से 16.10 में आपराधिक कार्यवाही में समझौता करने के संबंध में निम्नलिखित दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं, जो नीचे उद्धृत हैं:

"16. इस विषय पर पूर्वोदाहरणों से उभरने वाले व्यापक सिद्धांतों को निम्नलिखित प्रस्तावों में संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

16.1. धारा 482 किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सुरक्षित रखती है। यह प्रावधान नई शक्तियां प्रदान नहीं करता है। यह केवल उन शक्तियों को मान्यता देता है और संरक्षित करता है जो उच्च न्यायालय में निहित हैं;

16.2. प्रथम सूचना रिपोर्ट या आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का आह्वान कि अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता हो गया है, अपराध को शमन करने के उद्देश्य से क्षेत्राधिकार के आह्वान के समान नहीं है। अपराध का शमन करते समय, न्यायालय की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 320 के प्रावधानों द्वारा शासित होती है। धारा 482 के तहत रद्द करने की शक्ति लागू होती है, भले ही अपराध गैर-शमनीय हो।

16.3. एक राय बनाने में कि क्या धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में एक आपराधिक कार्यवाही या शिकायत को रद्द कर दिया जाना चाहिए, उच्च न्यायालय को

मूल्यांकन करना चाहिए कि क्या न्याय के अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को सही ठहराएंगे;

16.4. जबकि उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का दायरा व्यापक और प्रचुर है, इसका प्रयोग किया जाना चाहिए: (i) न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए या (ii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए;

16.5. इस बात का निर्णय कि क्या शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को इस आधार पर रद्द कर दिया जाना चाहिए कि अपराधी और पीड़ित ने विवाद का निपटारा कर लिया है, अंततः प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है और इस प्रकार के सिद्धांतों का कोई विस्तृत विवरण तैयार नहीं किया जा सकता है;

16.6. धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग में और विवाद का निपटारा हो गया है कि एक दलील से निपटने के दौरान, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का उचित सम्मान करना चाहिए। मानसिक क्षुब्धता या हत्या, बलात्कार और डकैती जैसे अपराधों से जुड़े गहन और गंभीर अपराधों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है, चाहे पीड़ित या पीड़ित के परिवार ने विवाद को सुलझा लिया हो। इस तरह के अपराध, वास्तव में प्रकृति में निजी नहीं हैं, लेकिन समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। ऐसे मामलों में मुकदमे को जारी रखने का निर्णय गंभीर अपराधों के लिए व्यक्तियों को दंडित करने में सार्वजनिक हित के अधिभावी तत्व पर आधारित है;

16.7. जैसा कि गंभीर अपराधों से अलग है, ऐसे आपराधिक मामले हो सकते हैं जिनमें

नागरिक विवाद का भारी या प्रमुख तत्व होता है। जहां तक रद्द करने की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग का संबंध है, वे एक अलग पायदान पर हैं।

16.8. अपराधों से जुड़े आपराधिक मामले जो वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, साझेदारी या अनिवार्य रूप से नागरिक स्वाद के साथ इसी तरह के लेन-देन से उत्पन्न होते हैं, उपयुक्त स्थितियों में रद्द करने के लिए गिर सकते हैं जहां पक्षों ने विवाद का निपटारा किया है;

16.9. ऐसे मामले में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि विवादों के बीच समझौते के मद्देनजर, दोषसिद्धि की संभावना दूरस्थ है और आपराधिक कार्यवाही की निरंतरता उत्पीड़न और पूर्वाग्रह का कारण बनेगी; और

16.10. ऊपर प्रस्ताव 16.8 और 16.9 में निर्धारित सिद्धांत का अभी तक एक अपवाद है। राज्य की वित्तीय और आर्थिक भलाई से जुड़े आर्थिक अपराधों के निहितार्थ हैं जो निजी विवादों के बीच केवल विवाद के क्षेत्र से परे हैं। उच्च न्यायालय को यह रद्द करने से इनकार करना उचित होगा कि अपराधी वित्तीय या आर्थिक धोखाधड़ी या दुष्कर्म जैसी गतिविधि में शामिल है। वित्तीय या आर्थिक प्रणाली पर शिकायत किए गए अधिनियम के परिणाम संतुलन में तौलेंगे।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने क्रिमिनल अपील संख्या-1489 वर्ष 2012 (रामगोपाल और अन्य बनाम द स्टेट ऑफ एम.पी), 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 834 में समझौते के मद्देनजर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के संबंध में दिशा-निर्देशों को

दोहराया है। पैरा-18-19 में निम्नलिखित तरह देखा गया है: -

"18. अब यह एक अच्छी तरह से स्पष्ट सिद्धांत है कि अनुच्छेद 142 के तहत पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए इस न्यायालय के पूर्ण अधिकार क्षेत्र को सामान्य वैधानिक प्रावधानों द्वारा सीमित या प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। यह भी उल्लेखनीय है कि आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने और रद्द करने के लिए सुप्रीम कोर्ट को शक्तियां प्रदान करने वाली धारा 482 द०प्र०स० के समान एक स्पष्ट प्रावधान के अभाव में भी, संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत प्रयोग करने योग्य क्षेत्राधिकार इस न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए भी भारी शक्तियों के साथ गले लगाता है, ताकि पूर्ण न्याय सुरक्षित किया जा सके। ऐसा करने में, आपराधिक न्याय प्रणाली में सजा देने के व्यापक उद्देश्य पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए, जो सामूहिक शांति बनाए रखने के उप-दर्शन पर आधारित है और यह कि किसी व्यक्ति को सलाखों के पीछे रखने का औचित्य उसके सुधार के उद्देश्य से है।

19. इस प्रकार हम संक्षेप में कहते हैं कि धारा 320 द०प्र०स० के विपरीत, जहां न्यायालय वैधानिक ढांचे के भीतर शमनीय अपराधों के संबंध में पक्षों के बीच समझौते द्वारा निर्देशित होता है, धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय को दी गई असाधारण शक्ति या संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत इस न्यायालय में निहित है। धारा 320 द०प्र०स० की सीमा से परे लागू किया जा सकता है। फिर भी, हम दोहराते हैं कि व्यापक आयाम की ऐसी शक्तियों को आपराधिक

कार्यवाही को रद्द करने के संदर्भ में सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिए, यह ध्यान में रखते हुए कि: (i) समाज के चेतन पर अपराध की प्रकृति और प्रभाव; (ii) चोट की गंभीरता, यदि कोई हो; (iii) अभियुक्त और पीड़ित के बीच समझौते की स्वैच्छिक प्रकृति; & (iv) कथित अपराध की घटना से पहले और बाद में आरोपी व्यक्तियों का आचरण और/या अन्य प्रासंगिक विचार। (महत्त्व सन्निविष्ट)

रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 966 में रिपोर्ट किए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रामगोपाल के मामले (उपरोक्त) में दिए गए अपने फैसले को विज्ञापन देते हुए, पैरा-11 में निम्नानुसार अवधारित किया है: -

"11. रामगोपाल (उपरोक्त) में न्यायालय ने आगे कहा कि गैर-जघन्य अपराधों या ऐसे अपराधों जो मुख्य रूप से निजी प्रकृति के हैं, से जुड़ी आपराधिक कार्यवाही को कार्यवाही के किसी भी चरण में रद्द किया जा सकता है, जिसमें अपीलीय स्तर भी शामिल है। न्यायालय, हालांकि, इस तथ्य के प्रति सचेत होने के नाते कि बेईमान अपराधी क्रूर बल, धमकियों, रिश्वत, या ऐसे अन्य अनैतिक और अवैध साधनों के माध्यम से समझौता करके अपनी आपराधिक देनदारियों से बचने का प्रयास कर सकते हैं, चेतावनी दी कि ऐसे मामलों में जहां दोषसिद्धि के बाद समझौता किया जाता है, न्यायालयों को अन्य बातों के साथ-साथ, उस तरीके की, जिसमें समझौता किया गया है, साथ ही, विचाराधीन घटना से पहले और बाद में आरोपी का आचरण की भी सावधानीपूर्वक जांच करनी चाहिए। फिर निष्कर्ष निकालते हुए, न्यायालय ने कुछ

दिशानिर्देश भी तैयार किए और अवधारित किया:

"19... फिर भी, हम दोहराते हैं कि व्यापक आयाम की ऐसी शक्तियों का उपयोग आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के संदर्भ में, यह ध्यान में रखते हुए: (i) समाज के चेतन पर अपराध की प्रकृति और प्रभाव; (ii) चोट की गंभीरता, यदि कोई हो; (iii) अभियुक्त और पीड़ित के बीच समझौते की स्वैच्छिक प्रकृति; एवं (iv) कथित अपराध की घटना से पहले और बाद में आरोपी व्यक्तियों का आचरण और/या अन्य प्रासंगिक विचार, सावधानी से किया जाना चाहिए।

इस मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह विवादित नहीं है कि वर्तमान प्रथम सूचना रिपोर्ट पक्षों यानी प्रतिपक्षी संख्या-2 और आवेदकों के बीच वैवाहिक विवाद का परिणाम थी, जो निजी विवाद का एक भारी तत्व है। इसलिए, रंगप्पा जावूर बनाम कर्नाटक राज्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और 2023 लाइव लॉ (एस.सी.) 74 और जसमेर सिंह और एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य (2022) 9 एस.सी.सी. 73 में पक्षों के बीच हुए समझौते के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने और प्रस्तुत मामले के उपरोक्त समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के संबंध में निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियाँ और रिकॉर्ड पर सामग्री के अवलोकन पर, ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तुत आवेदन के लंबित रहने के दौरान, पक्षों ने पहले ही स्वेच्छा से और सौहार्दपूर्ण तरीके से अपने विवाद का निपटारा कर लिया है।

पक्षकारों द्वारा इस प्रकार किए गए समझौते को निचली अदालत द्वारा सत्यापित किया गया है। इस तथ्य से विरोधी पक्षों के अधिवक्ता ने इनकार नहीं किया है। अब तक, पक्षों के बीच कोई मतभेद नहीं है। नतीजतन, इस न्यायालय का विचार है कि उपर्युक्त मामले की कार्यवाही को लंबा खींचने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। पक्षकारों द्वारा किए गए समझौते के मद्देनजर, आरोपी आवेदकों की दोषसिद्धि की संभावना भी बहुत कम और धूमिल है। परिणामस्वरूप, कार्यवाही जारी रखने से पक्षकारों के साथ अन्याय होगा। वर्तमान सुनवाई केवल एक निरर्थक खोज में कीमती न्यायिक समय की हानि होगी।

उपरोक्त को देखते हुए, प्रस्तुत आवेदन सफल होता है और अनुमति दी जा सकती है।

तदनुसार, धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आवेदन की अनुमति दी जाती है। फलतः एफ0आई0आर0केस अपराध संख्या-104 वर्ष 2018 से उत्पन्न प्रकरण संख्या-95003 वर्ष 2019 की समस्त कार्यवाही धारा 498-ए, 504, 506 भाददंड एवं धारा 3/4 डी0पी0 एक्ट, थाना-महानगर, जिला लखनऊ के अन्तर्गत निरस्त/रद्द की जाती है।

अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, का उन्मोचन किया जाता है।

कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आवश्यक अनुपालन के लिए तुरंत ईमेल/फैक्स के माध्यम से इस आदेश की एक प्रति संबंधित न्यायालय को भेजे।

(2023) 4 ILRA 1246

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान,
आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 3934/2023
कुसुम देवी एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...विपक्षीगण
अधिवक्ता आवेदक: श्री सचिन मिश्र, श्री
आकाश दीप श्रीवास्तव, श्री आयुष मिश्रा, श्री
बालानाथ मिश्र, श्री प्रभा शंकर मिश्र, श्री राम
विशाक मिश्र
अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री वेद प्रकाश
शुक्ला

ए. आपराधिक कानून-सीआरपीसी की धारा
482 के तहत आवेदन- समन आदेश और
संपूर्ण कार्यवाही- आईपीसी की धारा 306 से
उत्पन्न-चुनौती दी गई।

बी. धारा 306 आईपीसी - आत्महत्या के लिए
उकसाना - धारा 107 आईपीसी - किसी चीज
के लिए उकसाना - जिस व्यक्ति पर उकसाने
का आरोप है - उसने मृतक को सीधे तौर पर
उकसाने का काम किया होगा - इस वाद में
आत्महत्या पत्र - यह स्थापित करता है -
आवेदकों के कृत्यों से - उनके आचरण के
निरंतर क्रम ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी -
मृतक को आत्महत्या करने के अलावा कोई
अन्य विकल्प नहीं दिखाई दिया। (पैरा 15 से
18)

आयोजित:

उपरोक्त सुसाइड पत्र और अभिलेख पर
उपलब्ध साक्ष्यों के अवलोकन के बाद, इस

न्यायालय को विपक्षी पक्ष संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता और विद्वान ए.जी.ए. द्वारा उठाए गए तर्क में बल प्रतीत होते हैं कि कथित अपराध के लिए प्रथम दृष्टया वाद आवेदकों के विरुद्ध स्थापित होता है। यह एक स्पष्ट वाद है जिसमें आवेदकों ने अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से ऐसी स्थिति पैदा की है जो मृतक के पास आत्महत्या के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं था। इस प्रकार, यह अपराध धारा 306 आईपीसी के अंतर्गत आता है। आवेदक ने मृतक को नौकरी छोड़ने के लिए मजबूर करने में सक्रिय भूमिका निभाई थी और वह अपने पिता के लाइसेंस के तहत काम करता था, लेकिन उसे अपनी पत्नी और बच्चे के भरण-पोषण के लिए केवल न्यूनतम खर्च दिया जाता था और अंततः, उससे संपत्ति भी हड़प ली गई थी, इसलिए आवेदक द्वारा इन परिस्थितियों में मृतक के पास आत्महत्या करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं था। (पैरा 15)

ऐसे वाद में अभियुक्त की ओर से मनःस्थिति के प्रश्न की जांच अभियुक्त के वास्तविक कृत्यों और कार्यों के संदर्भ में की जाएगी और यदि कृत्य और कार्य केवल ऐसी प्रकृति के हैं जहां अभियुक्त का आशय उत्पीड़न या क्रोध के अचानक प्रदर्शन से अधिक कुछ नहीं था, तो एक विशेष वाद आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध से कम हो सकता है। हालांकि, अगर अभियुक्त मृतक को शब्दों या कार्यों से तब तक परेशान या परेशान करता रहा जब तक कि मृतक ने प्रतिक्रिया नहीं की या उसे उकसाया नहीं गया, तो एक विशेष वाद आत्महत्या के लिए उकसाने का हो सकता है।

सुसाइड नोट के विवरण से, जिसे उसके पति ने अपने ससुर के मोबाइल फोन के माध्यम से सूचक के मोबाइल फोन पर भेजा था, मजबूर करने वाली परिस्थितियों और मृतक को परेशान करने के निरंतर कार्य को सिद्ध करें, जिसे आत्महत्या करने के लिए उकसाने/उकसाने के रूप में अनुमानित किया जा सकता है। (पैरा 17)

उदे सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2019) 17 एससीसी 301 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में यह माना गया है कि यदि अभियुक्त अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से ऐसी स्थिति पैदा करता है जिससे मृतक को आत्महत्या करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं दिखता है, तो वाद धारा 306 आईपीसी के दायरे में आ सकता है। (पैरा 18)

सी. गैर-जमानती वारंट सरसरी तौर पर जारी न किए जाएं- न्यायालय को वारंट जारी करने से पहले व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित के बीच उचित संतुलन बनाना चाहिए- उचित प्रक्रिया का पालन करना चाहिए। (पैरा 20)

आयोजित:

दिनांक 20.12.2022 को आरोपी आवेदकों पर समन की तामील के बाद गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, इसलिए इंद्र मोहन गोस्वामी (सुप्रा) के मामले में दिशानिर्देशों के बाद यह 11 जमानती वारंट के साथ-साथ गैर-जमानती वारंट भी जारी किए गए, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि न्यायालय को वारंट

जारी करने से पहले व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित दोनों को उचित रूप से संतुलित करना चाहिए। वारंट जारी करने के लिए कोई सीधा-सादा फॉर्मूला नहीं हो सकता है, लेकिन एक सामान्य नियम के रूप में, जब तक कि किसी अभियुक्त पर जघन्य अपराध करने का आरोप न हो और यह आशंका न हो कि वह सबूतों से छेड़छाड़ या उन्हें नष्ट कर सकता है या कानून की प्रक्रिया से बच सकता है, गैर-जमानती वारंट जारी करने से बचना चाहिए। (पैरा 20)

डी. क्या धारा 482 सीआरपीसी के तहत आरोप पत्र को रद्द करना उचित है- चरण- मजिस्ट्रेट ने आवेदकों के खिलाफ केवल प्रक्रिया जारी की है- अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में प्रस्तुत साक्ष्य को इस चरण में नहीं देखा जा सकता है, सिवाय बहुत ही असाधारण परिस्थितियों में- आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरणों में- प्रथम दृष्टया मामला अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध के तत्वों का खुलासा करने से बनता है, न्यायालय खारिज किए गए आपराधिक कार्यवाही को निरस्त नहीं कर सकता -आवेदन निरस्त। (पैरा 23)

आयोजित:

यह न्यायालय इस मुद्दे पर विचार कर रहा है कि क्या उच्चतम न्यायालय होने के नाते इस न्यायालय के लिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके आरोप-पत्र और कार्यवाही को उस स्तर पर निरस्त करना उचित है, जब मजिस्ट्रेट ने आवेदकों के विरुद्ध केवल प्रक्रिया जारी की है

और सुनवाई अभी बाकी है, केवल आवेदकों की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए इस निवेदन पर कि विरोधी पक्ष संख्या 2 द्वारा प्रारंभ किया गया वर्तमान आपराधिक वाद न केवल दुर्भावनापूर्ण है, बल्कि कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है। यह अब और अधिक एकीकृत नहीं है कि आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने के लिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी होता है जब एफआईआर या आरोप पत्र में लगाए गए आरोप कथित अपराध के तत्वों का गठन करते हैं। धारा 482 सीआरपीसी के तहत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किसी भी कानून या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए है। यह स्थापित कानून है कि अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को न्यायालय द्वारा आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में, बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, नहीं देखा जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि यदि प्रथम दृष्टया वाद अभियुक्त के विरुद्ध आपेक्षित अपराध के तत्वों का खुलासा करने वाला पाया जाता है, तो न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को निरस्त नहीं कर सकता। (पैरा 23)

आवेदन निरस्त (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. पुरुषोत्तम चौधरी बनाम सी.बी.आई. निर्णय दिनांक 27.02.2023

2. इंदर मोहन गोस्वामी एवं अन्य बनाम उत्तराखण्ड राज्य एवं अन्य (2007) 12 एससीसी 1

3. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एससी 866

4. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 एससीसी (आपराधिक) 426

5. इंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मो. सराफुल हक एवं अन्य, (पैरा 10) 205 एससीसी (आपराधिक) 283

6. मोहम्मद अलाउद्दीन बनाम बिहार राज्य, एआईआर 2019 एससी 1910

7. सकीर व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आपराधिक विविध आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 13727/2006 निर्णय दिनांक 06.03.2020

8. उदे सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2019) 17 एससीसी 301

9. नीहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य (2021) एससीसी ऑनलाइन 315

10. शफिया खान @ शकुंतला प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2022) 4 एससीसी 549

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान, द्वारा प्रदत्त)

1. अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आज न्यायालय में पारित किए गए निर्देशों को रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

2. आवेदकों के अधिवक्ता श्री प्रभा शंकर मिश्रा, श्री आकाश दीप श्रीवास्तव, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री वेद प्रकाश शुक्ला,

राज्य के लिए श्री पंकज श्रीवास्तव, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

3. प्रस्तुत आवेदन धारा 482 अंतर्गत दिनांक 02.09.2022 और (सम्मन) 18.01.2023 (एनबीडब्ल्यू/82/83 दंप्रंस०) के आक्षेपित आदेशों के साथ-साथ आपराधिक मामला संख्या-75 वर्ष 2022 (राज्य बनाम कुसुम देवी और अन्य) की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जो धारा 306 भ०द०वि०, आरोप पत्र संख्या-216 वर्ष 2022 के तहत केस अपराध संख्या-75 वर्ष 2022 से उद्भूत हुआ है जो थाना नैनी, जिला-प्रयागराज (इलाहाबाद) के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद के न्यायालय में लंबित है।

4. आवेदन में बताए गए संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं: -

i) मृतक की पत्नी, अर्थात् सुनीता मिश्रा द्वारा 19.02.2022 को लगभग 13:48 बजे 5 नामजद आरोपियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई है, जिसे धारा 306 भ०द०वि०, थाना-नैनी, जिला-प्रयागराज के तहत केस अपराध संख्या-75 वर्ष 2022 के रूप में दर्ज किया गया था, जिसमें कहा गया था कि प्रतिपक्षी संख्या-2- सुनीता मिश्रा पत्नी सुंदर मिश्रा हाउस संख्या-115, जवाहर नगर, नैनी, प्रयागराज की निवासी हैं। प्रतिपक्षी संख्या-2 का पति मर्चेट नेवी में कार्यरत था, हालांकि, जब उसे अपने पिता की बीमारी के बारे में पता चला, तो वह वर्ष 2019 में अपने पिता के साथ रहने के लिए वापस आ गया और

लाइसेंस पर नगर निगम में अनुबंध का काम करना शुरू कर दिया, जो उसके पिता के पक्ष में था। सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षीकार संख्या-2 की पांच साल की बेटी है, इसलिए मृतक के पिता ने केवल उनकी आजीविका के लिए खर्च प्रदान किया। सूचनाकर्ता का जेठ अर्थात् दिनेश मिश्रा और जेठानी अर्थात् रानी देवी और दूसरा जेठ अर्थात् मनोहर मिश्रा और सूचनाकर्ता की सास अर्थात् कुसुम देवी पुत्र न होने के कारण सूचनादाता को परेशान करती थी और टिप्पणी करती थी कि जब उसका कोई पुत्र नहीं है तो वह उस धन का क्या करेगी। जब सूचनाकर्ता ने अपने बच्चे की शिक्षा के लिए धन का अनुरोध किया, तो उपरोक्त व्यक्तियों ने बताया कि उसकी बेटी को शिक्षित करने का उद्देश्य क्या था। चूंकि मृतक अपनी बेटी के साथ-साथ अपनी पत्नी (सूचनाकर्ता) से भी बहुत प्यार करता था, इसलिए उसने अपने बच्चे को शिक्षित करने के उद्देश्य से अपनी पत्नी और बेटी को अहमदाबाद भेजा था। सूचनाकर्ता और उसकी बेटी 26.12.2021 को उपरोक्त उद्देश्य के लिए अहमदाबाद गए थे, जिसके बाद उसे उसके पति द्वारा टेलीफोन के माध्यम से सूचित किया गया कि उसके परिवार के सदस्य उस पर दूसरी शादी करने के लिए दबाव डाल रहे हैं और अगर वह ऐसा करने के लिए सहमत नहीं होता है, तो वे उसे पूरी संपत्ति से वंचित कर देंगे। उसे उसके पति ने यह भी बताया कि उसका जेठ और जेठानी उसके ससुर को उसके पति को त्यागने और अपने पक्ष में वसीयत करने के लिए मना रहे थे। पिछले एक वर्ष से कैंसर से पीड़ित और बिस्तर पर कैद सूचनाकर्ता के ससुर की बीमारी का फायदा उठाकर मृतक के भाइयों ने

सूचनाकर्ता के ससुर को राजी किया और उसे पूरी संपत्ति उनके नाम देने के लिए प्रभावित किया। उसने यह भी आरोप लगाया है कि उसे उसके पति (अब मृतक) ने सूचित किया था कि 05.01.2022 को उसके ससुर की बीमारी का फायदा उठाकर पूरी संपत्ति मृतक के भाइयों ने ले ली थी। उसी के बारे में पता चलने पर, उसके पति ने व्यक्त किया कि वह अब और नहीं जीना चाहता है। उसी दिन, 05.01.2022 को रात लगभग 10:30 बजे, सूचनाकर्ता को उसके मोबाइल संख्या-9723224428 पर 9415613440 से व्हाट्सएप संदेश प्राप्त हुए, जो उसके पति का सुसाइड नोट था। इससे हैरान-परेशान होकर, उसने परिवार के सदस्यों से संपर्क करने की कोशिश की लेकिन उन्होंने फोन नहीं उठाया। तनाव में आकर सूचनाकर्ता सुबह 06:00 बजे अहमदाबाद से रवाना हुई और 07.01.2022 को आवेदकों के निवास पर प्रयागराज पहुंची और पाया कि 06.01.2022 को मृतक (पति) के शव का पोस्टमार्टम किया जा चुका था और अंतिम संस्कार 07.01.2022 को हुआ था, लेकिन सूचनाकर्ता को कोई जानकारी नहीं दी गई, न ही कोई घटना के बारे में कुछ भी बताने को तैयार था। पति के अंतिम संस्कार (तेरहवी) के बाद आवेदकों सहित परिजनों का व्यवहार ठीक नहीं था, इसलिए किसी अप्रिय घटना की आशंका और भय के कारण सूचना देने वाला अहमदाबाद चली गई। उसने आगे आरोप लगाया है कि आवेदकों ने उसके पति को ऐसी परिस्थितियों में आत्महत्या करने के लिए उकसाया/भड़काया है, जहां वे उसे संपत्ति से बेदखल करने के ताने और टिप्पणी करके परेशान कर रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में उसे आत्महत्या करने के लिए

मजबूर किया गया था। उसे यह भी संदेह था कि उसके पति की हत्या कर दी गई है और उसे आत्महत्या का रूप दे दिया गया है, इसलिए, क्या यह परिवार के सदस्यों द्वारा आत्महत्या की गई है या उसकी हत्या करने के बाद, घटना को आत्महत्या का रंग दिया गया है, उचित विवेचना के बाद अच्छी तरह से मूल्यांकन किया जा सकता है, इसलिए, उन्होंने अनुरोध किया कि विवेचना की जाए। उसने आगे आरोप लगाया कि जब वह अहमदाबाद से वापस आई, तो उसे अपने घर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी गई, इसलिए, प्रस्तुत मामला दर्ज किया गया है।

ii) विवेचना के बाद, 27.07.2022 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और आवेदकों को दिनांक 02.09.2022 के आदेश के तहत तलब किया गया है, जिसके बाद 07.12.2022 को जमानती वारंट जारी किए गए हैं और समन की तामील को पर्याप्त पाते हुए, 20.12.2022 को गैर-जमानती वारंट जारी किए गए, जिसके बाद आवेदकों के उपस्थित न होने पर, आवेदकों के खिलाफ धारा 82 और 83 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही के साथ गैर-जमानती वारंट शुरू किए गए हैं। इसलिए प्रस्तुत मामला दर्ज किया गया है।

5. आवेदकों के लिए अधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत करता है: -

आवेदक निर्दोष हैं और उन्हें वर्तमान तुच्छ मामले में झूठा फंसाया गया है, जिसे किसी भी सबूत द्वारा समर्थित नहीं किया जा सकता है।

ii) वर्तमान प्राथमिकी लगभग एक महीने और 14 दिनों की देरी के बाद बिना किसी तर्कसंगत स्पष्टीकरण के दर्ज की गई है।

iii) वर्तमान प्राथमिकी उस संपत्ति को प्राप्त करने के इरादे से झूठे और तुच्छ आरोप के साथ दर्ज की गई है, जिसके लिए मृतक के पिता द्वारा 09.03.2023 को सूचनाकर्ता की सास के पक्ष में एक पंजीकृत वसीयत निष्पादित की गई है, जिसमें उल्लेख किया गया है कि बलराम मिश्रा की मृत्यु के बाद, कुसुम मिश्रा का नाम राजस्व रिकॉर्ड में बदल दिया जाएगा। इसके बाद, तहसीलदार ने दिनांक 15.10.2022 का आदेश पारित किया और राजस्व रिकॉर्ड में कुसुम मिश्रा (सूचनाकर्ता की सास) का नाम बदल दिया।

iv) सुसाइड नोट पर विवाद करते हुए, आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मृतक के कमरे से कोई सुसाइड नोट बरामद नहीं किया गया था।

(v) भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत आवेदकों के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि रिकार्ड में यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि आवेदकों की ओर से दुष्प्रेरणा अथवा उकसाया गया था जिसके कारण मृतक ने आत्महत्या की थी।

vi) पुरुषोत्तम चौधरी बनाम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करना। अधीक्षक ने 27.02.2023 को धारा 482 संख्या-1974 वर्ष 2023 के तहत आवेदन में निर्णय लिया, आवेदकों के

अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि गैर-जमानती वारंट सरसरी तौर पर जारी नहीं किए जाने चाहिए और धारा 82 और 83 द०प्र०स० के तहत उद्घोषणा के संबंध में आदेश केवल हलफनामे द्वारा समर्थित उद्घोषणा के आवेदन पर जारी किया जाना चाहिए।

vii) वह आगे प्रस्तुत करता है कि गैर-जमानती वारंट जारी करने से बचा जाना चाहिए जब तक कि अभियुक्त पर जघन्य अपराध का आरोप न लगाया जाए या सबूत नष्ट करने की संभावना न हो। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने इंद्र मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य के मामले में (2007) 12 एस.सी.सी. 1 में रिपोर्ट किए गए सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अदालत को गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले बेहद सावधान रहना चाहिए क्योंकि वारंट जारी करने में व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप शामिल है।

6. आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक के खिलाफ शुरू की गई प्रस्तुत आपराधिक कार्यवाही न केवल दुर्भावनापूर्ण है, बल्कि कानून की अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है। उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उपर्युक्त आपराधिक मामले की कार्यवाही इस न्यायालय द्वारा रद्द की जा सकती है।

7. दूसरी ओर, श्री पंकज श्रीवास्तव, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ

श्री वेद प्रकाश शुक्ला, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए सबमिशन का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि देरी को अच्छी तरह से समझाया गया है क्योंकि सूचनाकर्ता (मृतक की पत्नी) को अपने पति के अंतिम संस्कार समारोह में भाग लेने और मजबूर परिस्थितियों में भाग लेने के बाद आवेदकों के इरादे के बारे में पता चला, जो आवेदकों द्वारा किए गए थे। उसके पास प्राथमिकी दर्ज करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था। प्राथमिकी में ही देरी का स्पष्टीकरण दिया गया है। अन्यथा भी, यह काफी स्वाभाविक है कि महिला, जिसने अपने पति को खो दिया है, स्थिति को समझने और उसके अनुसार कार्य करने में समय लेगी। आवेदकों का यह स्वीकार किया गया मामला है कि संपत्ति विवाद के कारण प्राथमिकी दर्ज की गई है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिन परिस्थितियों में मृतक ने आत्महत्या की, वे संपत्ति के विवाद के अलावा और कुछ नहीं थे, जिसे मृतक के भाइयों ने हड़प लिया था और आवेदकों ने मृतक को नौकरी छोड़ने के लिए मजबूर किया था। इस प्रकार कुछ भी नहीं बचा था, और उसे ऐसी परिस्थितियों में रखा गया था जिसके तहत उसने आत्महत्या कर ली थी।

8. राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि धारा 190(1)(बी) में निहित प्रावधानों के अनुसार मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने के चरण में, संबंधित मजिस्ट्रेट को यह देखना होगा कि क्या आवेदकों के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनाया जा रहा है।

प्रस्तुत मामले में, संबंधित मजिस्ट्रेट ने 02.09.2022 को आगे की विवेचना और गवाहों के बयानों सहित विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किए गए अन्य दस्तावेजों के आधार पर संज्ञान लिया है। अपने तर्क के समर्थन में, अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है

- i. आर. पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866;
- ii. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 एस.सी.सी. (आपराधिक) 426;
- iii. इंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लि बनाम मो. (पैरा-10) 205 एस.सी.सी. (आपराधिक) 283;
- iv. मो. अलाउद्दीन बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 2019 एस.सी. 1910;
- v. सकीर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आपराधिक विविध आवेदन धारा 482 संख्या-13727 वर्ष 2006 में पारित किया गया जिसका निर्णय 06.03.2020 को किया गया।

9. अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि प्राथमिकी के साथ-साथ गवाहों के बयानों के अवलोकन से पता चलता है कि, कथित अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला आवेदक के खिलाफ बनता है। अंत में, अपर शासकीय अधिवक्ता में कहा गया है कि यह उच्च न्यायालय प्री-विचारण चरण में धारा 482 द०प्र०स० के तहत पूरी आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकता है, जिसके लिए उसने मोहम्मद अली खान के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य और

अन्य 2019 0 उच्चतम (एस.सी.) 454 में रिपोर्ट किया गया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि उच्च न्यायालय के पास धारा 482 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही के साक्ष्य की मूल्यांकन करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि गवाहों के बयानों में विरोधाभास या / और विसंगतियां हैं या नहीं, यह साक्ष्य की मूल्यांकन से संबंधित एक आवश्यक मुद्दा है और न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा इस पर विचार किया जा सकता है जब विचारण में जब पक्षकारों द्वारा संपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है। हालांकि, प्रस्तुत मामले में उक्त चरण आना बाकी है।

10. उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता में कहा गया है कि यह न्यायालय प्रस्तुत मामले में धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है, और इसलिए प्रस्तुत आवेदन खारिज होने योग्य है।

11. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और प्रस्तुत आवेदन के रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

12. धारा 306 भ०द०वि० का उल्लेख करना उचित होगा, जो निम्नानुसार है: -

306. आत्महत्या का दुष्प्रेरण--यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है तो जो कोई ऐसी आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी,

दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डित किया जाएगा।

को करने में सहायता करने वाला कहा जाता है।

13. इस संदर्भ में, धारा 107 भ०द०वि० का उल्लेख करना भी प्रासंगिक है, जो निम्नानुसार है: -

107. किसी बात का दुष्प्रेरण –जो व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए दुष्प्रेरित करता है, जो-

(प्रथम) - किसी भी व्यक्ति को वह काम करने के लिए उकसाता है; नहीं तो

(दूसरा) - यदि उस षडयंत्र के अनुसरण में और उस कार्य को करने के क्रम में कोई कार्य या अवैध लोप होता है, तो उस कार्य को करने के लिए किसी षडयंत्र में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ संलग्न करता है; नहीं तो

(तीसरा) - जानबूझकर किसी भी कार्य या अवैध चूक से, उस काम को करने में सहायता करता है।

स्पष्टीकरण 1. - कोई व्यक्ति, जो जानबूझकर मिथ्या निरूपण द्वारा, या जानबूझकर किसी तात्त्विक तथ्य को, जिसे वह प्रकट करने के लिए बाध्य है, स्वेच्छा से कारित करता है या प्रातप करता है, या किसी कार्य को कारित करने या प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, उस कार्य को करने के लिए उकसाने वाला कहा जाता है।

स्पष्टीकरण 2. जो कोई, किसी कार्य के किए जाने से पहले या उसके समय में, उस कार्य के किए जाने को सुकर बनाने के लिए कुछ करता है और उसके द्वारा उसके कारित किए जाने को सुकर बनाता है, वह उस कार्य

14. धारा 107 भ०द०वि० को जब ध्यान से पढ़ा जाता है, तो यह आवश्यक है कि जिस व्यक्ति पर किसी चीज के दुष्प्रेरण का आरोप लगाया गया है, उसने मृतक को सीधे दुष्प्रेरण का कार्य किया होगा। मृतक के पिता के मोबाइल नंबर से सूचनाकर्ता के मोबाइल में भेजे गए सुसाइड नोट का संदर्भ देना उपयोगी है, जो यहां दिया गया है:

मैं सुंदर मिश्रा S/O बलराम प्रसाद मिश्रा अपनी जिंदगी से तंग अपने परिवार वालों से मेरे आत्महत्या में जिम्मेदार मेरे घरवाले हैं। मैंने अपनी जिंदगी उनके नाम कर दी और मुझे इन लोगों ने धोखा दिया। इसके जिम्मेदार घर के सभी लोग हैं। मेरी पत्नी और बेटी इन लोगों की वजह से अलग है। अतः मेरी कानून से प्रार्थना है कि मेरा इंसफ किया जाए और इन लोगों को उनके कर्मों की सजा दी जाए क्योंकि इन लोगों ने मेरी जिंदगी को तबाह कर दिया और जॉब कर रहा था वह इन लोगों ने छुड़वा दिया और अपने फायदे के लिए उसे कर लिया। अतः आप लोगों से निवेदन है कि मेरे साथ इंसफ हो। मेरी पत्नी और बेटी का न्याय हो बाकी सारी साक्ष्य और रिकॉर्डिंग मेरी पत्नी देगी।

आपका

सुंदर मिश्रा

15. उपरोक्त सुसाइड नोट के साथ-साथ रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों के अवलोकन के बाद, इस न्यायालय ने प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए विवाद के साथ-साथ अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्क में

तत्व पाया कि कथित अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला आवेदकों के खिलाफ बनता है। यह एक स्पष्ट मामला है जिसमें आवेदकों ने अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी थी जिसके कारण मृतक को आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं लगा। इस प्रकार, अपराध धारा 306 भ०द०वि० के दायरे के भीतर आता है। आवेदकों ने मृतक को अपनी नौकरी छोड़ने के लिए मजबूर करने में सक्रिय भूमिका निभाई थी और उसने अपने पिता के लाइसेंस की ओर से काम किया था, लेकिन उसकी पत्नी और बच्चे को बनाए रखने के लिए केवल न्यूनतम खर्च उसे दिए गए थे और अंततः संपत्ति भी उससे हड़प ली गई थी, इसलिए, आवेदक द्वारा इन परिस्थितियों में रखा गया था। मृतक के पास आत्महत्या करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था।

16. प्रस्तुत मामले में, आवेदकों ने अपने कृत्यों या चूक से या आचरण के निरंतर क्रम से ऐसी परिस्थितियां पैदा की थीं कि मृतक के पास आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था जिसमें मामले में उकसाया जा सकता है।

17. ऐसे मामलों में अभियुक्त की ओर से मंस रिया (आशय) के प्रश्न की विवेचना अभियुक्त के वास्तविक कृत्यों और कर्मों के संदर्भ में की जाएगी और यदि कृत्य और कर्म केवल ऐसी प्रकृति के हैं जहां अभियुक्त का इरादा उत्पीड़न या क्रोध के आकस्मिक प्रदर्शन से ज्यादा कुछ नहीं है, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध से कम हो सकता है।

हालांकि, अगर आरोपी मृतक को शब्दों या कर्मों से तब तक परेशान या उत्तेजित करता रहा जब तक कि मृतक ने प्रतिक्रिया नहीं दी या उसे उकसाया नहीं गया, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने का हो सकता है। उसके पति द्वारा उसके ससुर के मोबाइल फोन के माध्यम से सूचना देने वाली के मोबाइल फोन पर भेजे गए सुसाइड नोट के विवरण से यह बाध्यकारी परिस्थितियों और मृतक को परेशान करने के निरंतर कार्य को साबित करता है, जिसे आत्महत्या करने के लिए उकसाने/भड़कावे के रूप में माना जा सकता है।

18. (2019) 17 एस.सी.सी. 301 में रिपोर्ट किए गए उड़े सिंह बनाम हरियाणा राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले में, यह माना गया है कि यदि अभियुक्त अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से ऐसी स्थिति पैदा करता है जो मृतक को आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं मानता है, तो ये मामला धारा 306 भ०द०वि० के दायरे में आ सकता है।

19. आवेदकों के अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरण के संबंध में कि गैर-जमानती वारंट सरसरी तौर पर जारी किए गए हैं, अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि शुरू में 19.02.2022 को एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी और आवेदकों को आदेश 23.06.2022 के तहत अदालत द्वारा अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया गया था जो आरोप पत्र दाखिल होने तक था। 27.07.2022 को आरोप पत्र प्रस्तुत

किया गया और 02.09.2022 को संज्ञान लिया गया और उसके बाद आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति के लिए दो तिथियां यानी 04.10.2022 और 04.11.2022 तय की गईं। इसके बाद 07.12.2022 को उपस्थित होने के लिए दिनांक 20.12.2022 निर्धारित आवेदकों के विरुद्ध जमानती वारंट जारी किए गए हैं। 20.12.2022 को भी, जब आवेदक संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए, तो उनके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, यह देखते हुए कि आरोपी व्यक्तियों को समन की तामील पर्याप्त थी। इसके बाद, 18.01.2023 को गैर-जमानती वारंट के साथ-साथ धारा 82 और 83 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही भी शुरू की गई है। आरोप पत्र के बारे में पता चलने के बाद, आवेदकों ने संबंधित अदालत के समक्ष 22.11.2022 को अग्रिम जमानत आवेदन दायर किया है, इसलिए, वे संज्ञान आदेश के साथ-साथ उन आदेशों से भी अच्छी तरह वाकिफ थे, जिनके तहत आरोपी की उपस्थिति के लिए 07.12.2022 की तारीख तय की गई थी। उपरोक्त अग्रिम जमानत याचिका 06.02.2023 को खारिज कर दी गई थी और उसके बाद 13.02.2023 को इस न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत याचिका दायर की गई थी, जो अभी भी लंबित है।

20. यह 20.12.2022 को है कि आरोपी आवेदकों को सम्मन की तामील के बाद गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, इसलिए, जमानती वारंट के साथ-साथ गैर-जमानती वारंट इंद्र मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) के

मामले में दिशानिर्देशों का पालन करते हुए जारी किए गए हैं जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अदालत को वारंट जारी करने से पहले व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित दोनों को ठीक से संतुलित करना चाहिए। वारंट जारी करने के लिए कोई सीधा सटीक फार्मूला नहीं हो सकता है, लेकिन एक सामान्य नियम के रूप में, जब तक कि किसी अभियुक्त पर जघन्य अपराध के कमीशन का आरोप नहीं लगाया जाता है और यह आशंका नहीं होती है कि उसके द्वारा सबूतों से छेड़छाड़ या नष्ट करने की संभावना है या कानून की प्रक्रिया से बचने की संभावना है, तब तक गैर-जमानती वारंट जारी करने से बचा जाना चाहिए।

21. प्रस्तुत मामले में, 22.11.2022 को संज्ञान आदेश की जानकारी होने के बावजूद, अग्रिम जमानत आवेदन निचली अदालत के समक्ष स्थानांतरित कर दिया गया था और जब आवेदक उपस्थित नहीं हुए, तो 07.12.2022 को जमानती वारंट जारी किए गए और यह देखते हुए कि आवेदकों पर सेवा पर्याप्त थी, गैर-जमानती वारंट जारी किए गए और बाद में, यह देखते हुए कि आवेदक अदालत के समक्ष उपस्थित होने से बच रहे हैं, धारा 82 और 83 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही संबंधित न्यायालय द्वारा शुरू की गई थी। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी आवेदक बाहर से अदालत की कार्यवाही देख रहे थे और अपनी उपस्थिति से बच रहे थे ताकि मुकदमा आगे न बढ़ सके। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 एवं 83 के अंतर्गत कार्यवाही शुरू करने के लिए

कोई आवेदन प्रस्तुत करने की कोई सूचना नहीं है।

22. अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा न्यायालय को दिए गए निर्देशों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि पुलिस अधिकारियों के साथ मिलीभगत से, सुसाइड नोट के बारे में सबूतों को छेड़छाड़ और गलत तरीके से पेश किया गया था, इसलिए वरिष्ठ अधिकारियों के समक्ष सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता द्वारा दायर आवेदन पर, दोषी अधिकारियों के खिलाफ उचित कार्रवाई की गई है, जिन्होंने आवेदकों के साथ मिलीभगत करके, जब संबंधित पुलिस अधिकारी घटनास्थल पर पहुंच गए, सुसाइड नोट जो मृतक की जेब में पाया गया था, को गलत तरीके से रखकर सबूतों को छेड़छाड़ करने की कोशिश की है,

23. यह न्यायालय इस मुद्दे पर आता है कि क्या इस न्यायालय के लिए उच्चतम न्यायालय होने के नाते यह उचित है कि वह आरोप पत्र को रद्द करने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करे और उस स्तर पर कार्यवाही जब मजिस्ट्रेट ने केवल आवेदकों के खिलाफ प्रक्रिया जारी की और विचारण अभी तक केवल आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर नहीं है कि प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा शुरू किया गया प्रस्तुत आपराधिक मामला नहीं है यह केवल दुर्भावनापूर्ण है बल्कि कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी है। धारा 482 द०प्र०स० के तहत किसी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जाता है जब प्राथमिकी या आरोप पत्र में लगाए गए आरोप कथित अपराध के

तत्व होते हैं। धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किसी भी कानून या न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए है। यह स्थापित कानून है कि अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए सबूतों को आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में, बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, अदालत द्वारा नहीं देखा जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि यदि अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध के अवयवों का खुलासा करते हुए प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो अदालत आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकती है।

24. 1992 ए.आई.आर. 604 में रिपोर्ट किए गए हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल के मामले में, पैरा-102 में सर्वोच्च न्यायालय ने उन मामलों की 7 श्रेणियां गिनाई हैं जहां धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग इस न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, जो नीचे उद्धृत हैं:

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में या संहिता की धारा 482 के तहत निहित शक्तियां जिन्हें हमने ऊपर निकाला और पुनः प्रस्तुत किया है। हम उदाहरण के माध्यम से मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी

शक्ति का प्रयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और प्राथमिकी के साथ अन्य सामग्री, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा विवेचना को उचित ठहराया जाता है।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए अकाट्य आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी भी अपराध के कमीशन का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं बनते बल्कि केवल

एक असंज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, वहां किसी पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी विवेचना की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के तहत विचार किया गया है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से अनुचित हैं जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था को एक स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और कार्यवाही जारी है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावोत्पादक निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही में दुर्भावनापूर्ण रूप से भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध बरपाने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे अपमानित करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।

25. पूर्वोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का लगातार पालन किया गया है, (2021) एस.सी.सी. ऑनलाइन 315 में रिपोर्ट की गई निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले

में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ के हालिया फैसले में लगातार पालन किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि धारा 482 द०प्र०स० के तहत शक्ति बहुत व्यापक है लेकिन जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्णयों के कैटेना (संपूर्णता) में देखा गया है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, व्यापक शक्ति प्रदान करने के लिए न्यायालय को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता होती है और यह न्यायालय पर एक कठिन और दुष्कर कर्तव्य डालता है। इसलिए, असाधारण मामलों में, जब उच्च न्यायालय इसे उचित समझता है, तो कानून द्वारा लगाए गए निरस्त करने के मापदंडों और आत्म-संयम के संबंध में, उचित अंतरिम आदेश पारित कर सकता है, जैसा कि कानून में उचित माना जाता है, हालांकि, उच्च न्यायालय को संक्षिप्त कारण बताना होगा जो प्रासंगिक तथ्यों के लिए अदालत द्वारा दिमाग के प्रयोग को प्रतिबिंबित करेगा।

26. (2022) 4 एस.सी.सी. 549 में रिपोर्ट किए गए शफिया खान @ शकुंतला प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हालिया प्रासंगिक निर्णय में, यह निम्नानुसार देखा गया था:-

"16. इसमें कोई संदेह नहीं है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत संयम से और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में और न्यायालय के लिए प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के रूप में विवेचना

शुरू करना न्यायसंगत नहीं होता है, और यह कि अंतर्निहित शक्तियां अदालत को अपनी सनक और कल्पना के अनुसार कार्य करने की शक्तियां नहीं देती हैं।

27. पूर्वोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय ने पाया कि आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियाँ तथ्य के शुद्ध प्रश्नों पर निर्णय के लिए कहती हैं, जिन पर केवल विचारण न्यायालय द्वारा पर्याप्त रूप से निर्णय लिया जा सकता है और ऐसा करते समय कानून के बिंदुओं पर की गई प्रस्तुतियाँ भी इस मामले में विचारण न्यायालय द्वारा अधिक उचित रूप से देखी जा सकती हैं। यह न्यायालय इसे उचित नहीं मानता है, और इसलिए वास्तविक परीक्षण शुरू होने से पहले पूर्व-परीक्षण के लिए राजी नहीं किया जा सकता है। पूरी कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार किया जाता है क्योंकि मुझे अदालत की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग नहीं दिख रहा है।

28. ऐसी स्थिति में जहां आवेदकों ने उकसाया है और ऐसी परिस्थितियां पैदा की हैं कि मृतक के पास आत्महत्या करने और प्राथमिकी में किए गए बयानों के साथ-साथ विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज गवाहों के बयान और एक जघन्य अपराध में आवेदकों के आचरण के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था, जहां एक व्यक्ति ने अपनी जान गंवा दी थी और एक विशेष मामला जहां सबूतों के साथ छेड़छाड़ की जा रही है जो कार्रवाई पहले ही गलती करने वाले अधिकारी के खिलाफ की जा चुकी है, इस न्यायालय की राय है कि आवेदकों द्वारा प्रार्थना की गई राहत नहीं दी जा सकती है।

29. यह न्यायालय, हालांकि, स्पष्ट कर सकता है कि इस निर्णय में जो कुछ भी कहा गया है वह विशुद्ध रूप से अस्थायी है और कार्यवाही के साथ-साथ आक्षेपित आदेशों को रद्द करने के लिए प्रार्थना के मूल्य को पहचानने के उद्देश्य तक सीमित है। इसे विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य के बारे में किसी भी प्रकार की टिप्पणी या मूल्यांकन के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, जो अभी तक परीक्षण के दौरान सतह पर नहीं आया है। अभियोजन पक्ष के मामले की सच्चाई को कानून के अनुसार मुकदमे में संदेह से परे स्थापित किया जाना चाहिए। हालांकि, इस न्यायालय की राय है कि यह ऐसा मामला नहीं है, जहां अभियोजन पक्ष को संहिता की धारा 482 के तहत शक्तियों के प्रयोग में दहलीज पर रोक जाना चाहिए।

30. तदनुसार, उपरोक्त टिप्पणियों के साथ धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आवेदन खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1256

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शिवशंकर प्रसाद,

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 5947/2023

शैलेंद्र सिंह

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीय

अधिवक्ता आवेदक: श्री रामानंद गुप्ता, श्री हर्षित गुप्ता

अधिवक्ता विपक्षीय: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - धारा 482 सीआरपीसी के तहत आपराधिक कानून आवेदन-विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित समन आदेश की पुष्टि करने वाला पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश- चुनौती के अधीन- धारा 420, 504 और 506 आईपीसी के तहत परिवाद से कार्यवाही उत्पन्न होती है- परिवाद दर्ज करने में देरी का विवाद- कंपनी के एक कर्मचारी की हैसियत से किया गया लेनदेन- कोई व्यक्तिगत देयता नहीं।

बी. विलम्ब का परिवाद में ही स्पष्ट उल्लेख किया गया है- विलम्ब के आधार पर अभियोजन पक्ष की सम्पूर्ण कहानी पर अविश्वास नहीं किया जा सकता- वाद सिविल प्रकृति का नहीं है- घटना में आपराधिकता सम्मिलित है- आवेदक ने परिवादी को भूमि उपलब्ध कराने के लिए अपनी कंपनी के नाम पर 4 लाख रुपए प्राप्त किए- न तो भूमि आवंटित की गई और न ही पैसा वापस किया गया। (पैरा 13 और 14)

आयोजित:

वैसे भी, भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम ज्ञान चंद (2001) 6 एससीसी 71 में यह राय व्यक्त की है कि देरी के आधार पर अभियोजन पक्ष की पूरी कहानी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। (पैरा 13)

आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस तर्क पर कि पूरा विवाद सिविल प्रकृति का है, यह न्यायालय यह दर्ज कर सकता है कि यह वाद सिविल नहीं बल्कि

आपराधिक है, जिसमें आवेदक ने परिवादी को भूमि उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अपनी कंपनी के नाम पर चार लाख रुपए प्राप्त किए। हालांकि, परिवादी को न तो उसके पक्ष में भूमि आवंटित की गई और न ही उसके पैसे वापस किए गए, जिसके कारण परिवादी के 4 लाख रुपए लूटे जाने का आरोप है। जब परिवादी ने आवेदक से दो बार अपने पैसे मांगे, तो उसने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और धमकी दी। उपरोक्त के अतिरिक्त, आवेदक और परिवादी के मध्य कोई सिविल वाद लंबित नहीं है क्योंकि सिविल वाद का चरण अभी तक नहीं पहुंचा है। यह विश्वासघात का वाद है। (पैरा 14)

सी. धारा 420 आईपीसी- आवश्यक तत्वों की व्याख्या- न तो भूमि आवंटित की गई और न ही धन वापस किया गया- अनुबंध के उल्लंघन और धोखाधड़ी के अपराध के बीच सूक्ष्म अंतर-लेन-देन की प्रारंभ से ही धोखाधड़ी करने का इरादा आवश्यक है- यदि आवश्यक हो, तो कॉर्पोरेट पर्दा भी हटाया जा सकता है- उत्तरदायित्व का पता लगाने के लिए। (पैरा 19 से 39)

निर्णय: धारा 420 आई.पी.सी. लागू करने के लिए आवश्यक तत्व हैं: (i) धोखाधड़ी; (ii) संपत्ति देने या किसी मूल्यवान प्रतिभूति या किसी ऐसी चीज को बनाने या नष्ट करने के लिए बेईमानी से प्रलोभन देना जो सीलबंद या हस्ताक्षरित हो या जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सकता हो; और, (iii) प्रलोभन देने के समय अभियुक्त की

मानसिकता और वह कार्य जो चूक का था। (पैरा 19)

यह अब अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि कुछ स्थितियों में कॉर्पोरेट पर्दा हटाया जा सकता है। सिद्धांत के पीछे का सिद्धांत एक बदलती अवधारणा है और यह अपने क्षितिज का विस्तार कर रहा है जैसा कि यू.पी. राज्य बनाम रेनूसागर पावर कंपनी में माना गया था। उक्त निर्णय का अनुपात स्पष्ट रूप से सुझाव देता है कि जब भी किसी कॉर्पोरेट इकाई का किसी अन्यायपूर्ण और असमान उद्देश्य के लिए दुरुपयोग किया जाता है, तो न्यायालय पर्दा उठाने और मामले की वास्तविकताओं की जांच करने में संकोच नहीं करेगा ताकि उन व्यक्तियों की पहचान की जा सके जो इसके लिए दोषी और उत्तरदायी हैं। (पैरा 39)

डी. धारा 482 सीआरपीसी- इस चरण पर कार्यवाही को रद्द करने के लिए उपयुक्त-मजिस्ट्रेट ने केवल आवेदकों के खिलाफ प्रक्रिया जारी की है- अभी विचरण प्रारंभ होना है- तथ्यों के शुद्ध प्रश्नों पर निर्णय- विचारणीय न्यायालय द्वारा सबसे अच्छा किया जाता है- विचरण से पहले कोई पूर्व-विचरण नहीं- आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया वाद स्थापित है- उसके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त सामग्री- आपेक्षित आदेश की पुष्टि- आवेदन निरस्त। (पैरा 51)

**आवेदन निरस्त (ई-14)
उद्धृत वाद सूची:**

1. सईद यासीर इब्राहिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2020 0 सुप्रीम (एससी) 1280
2. आर नागेंद्र यादव बनाम तेलंगाना राज्य एवं अन्य 2022 0 सुप्रीम (एससी) 1250
3. रणधीर सिंह बनाम यूपी राज्य व अन्य 2021 0 सुप्रीम (एससी) 664
4. राघवेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 2300/2016, निर्णय दिनांक 11 अगस्त, 2022
5. एच.पी. राज्य बनाम ज्ञान चंद (2001) 6 एससीसी 71
6. महादेव प्रसाद बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, एआईआर 1954 एससी 724
7. जसवन्तराय मणिलाल अखाने बनाम बॉम्बे राज्य, एआईआर 1956 एससी 575
8. जी.वी. राव बनाम एल.एच.वी. प्रसाद एवं अन्य, 2000(3) एस.सी.सी. 693
9. हृदय रंजन प्रसाद वर्मा एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2000(4) एससीसी 168
10. एस.डब्ल्यू. पलनीटकर एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2002(1) एससीसी 241
11. हीरा लाल हीरा लाल बनाम सीबीआई, नई दिल्ली 2003 (5) एससीसी 257
12. देवेंद्र कुमार सिंगला बनाम बलदेव कृष्ण सिंह 2004 (2) जेटी 539 (एससी)
13. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड, 2006(6) एससीसी 736
14. राजेश बजाज बनाम दिल्ली राज्य एनसीटी, 1999(3) एससीसी 259
15. वीर प्रकाश शर्मा बनाम अनिल कुमार अग्रवाल और अन्य 2007(7) एससीसी 373
16. श्री सुनील गलगोटिया व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2016 (92) एससीसी 40
17. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बी. राजेंद्र सिंह एवं अन्य, जे.टी. 2000(3)एस.सी.151
18. उपाध्यक्ष, केन्द्रीय विद्यालय संगठन और अन्य बनाम गिरधारी लाल यादव 2004 (6) एससीसी 325
19. राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी एवं अन्य, 2003(8) एससीसी 319
20. एस.पी. चेंगलवरया नायडू (मृत) एल.आर. बनाम जगन्नाथ (मृत) एल.आर. एवं अन्य, एआईआर 1994 एससी 853
21. महाराष्ट्र राज्य बनाम मेयर हंस जॉर्ज एआईआर 1965 एससी 722 (वी 52 सी 123)
22. करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1994) 3 एससीसी 569
23. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एससी 866
24. हरियाणा राज्य बनाम चौधरी भजन लाल एंड ऑर्स; 1992 सप (1) एससीसी 335
25. बिहार राज्य एवं अन्य बनाम पी.पी. शर्मा एवं अन्य; 1992 सप (1) एससीसी 222
26. इंडू फार्मास्यूटिकल्स वर्क्स लिमिटेड और अन्य॥ बनाम मोहम्मद शरीफुल हक एवं अन्य; 2005 (1) एससीसी 122
27. एम. एन. ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव; 2009 (9) एससीसी 682
28. मोहम्मद अलाउद्दीन खान बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2019 0 सुप्रीम (एससी) 454

29. नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य 2020 0 सुप्रीम (एससी) 45
30. राजीव कौरव बनाम बालासाहब और अन्य 2020 0 सुप्रीम (एससी) 143
31. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अखिल शारदा एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 820

(माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद, द्वारा प्रदत्त)

1. अनुलग्नक-7 के रूप में संलग्न पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की प्रमाणित प्रति से लेकर वर्तमान आवेदन के साथ दिए गए हलफनामे के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उक्त आदेश 16 जनवरी, 2023 को पारित किया गया है, लेकिन अनजाने में, इस आवेदन के प्रार्थना खंड में इसे गलत तरीके से 16 जनवरी, 2023 के स्थान पर, "16 जनवरी 2022" के रूप में लिखा गया है।
2. आवेदक के वकील, और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन किया।
3. द० प्र० स० की धारा 482 के तहत यह आवेदन ललितपुर के अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश -1 द्वारा पारित 16.01.2023 के फैसले और आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जिसके तहत संशोधनकर्ता द्वारा दायर आपराधिक संशोधन संख्या 90 वर्ष 2022 (शैलेन्द्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य) को अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, ललितपुर द्वारा पारित 14.02.2020 के समन आदेश

2018 के परिवाद प्रकरण क्रमांक 3983 (संदीप अवस्थी बनाम शैलेन्द्र सिंह बुंदेला) में धारा 420, 504, 506 आई.पी.सी. थाना तालबेहट, जिला ललितपुर के तहत दर्ज मुकदमा को बरकरार रखते हुए खारिज कर दिया गया है। आवेदक ने उपरोक्त शिकायत मामले की पूरी कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए प्रार्थना की है।

4. शिकायत में लगाए गए आरोपों का सार यह है कि विरोधी पक्ष संख्या 2 ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, ललितपुर के समक्ष द० प्र० स० की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दिया था, जिसमें कहा गया था कि शिकायतकर्ता के आवेदक के साथ बहुत अच्छे संबंध थे और उसने उसे बताया कि वह "शुभालय ग्रीन्स 303 आर.के. तोवर भोपाल, एमपी" के नाम और शैली में कंपनी में काम करता है जो बहुत कम कीमतों पर प्लॉट प्रदान करता है। इसके अलावा उन्होंने उन्हें भौरीकल, मध्य प्रदेश में 5,25,000 रुपये में 20 x 70 गज का एक भूखंड देने की पेशकश की। आवेदक द्वारा दिए गए प्रस्ताव पर भरोसा करते हुए शिकायतकर्ता ने दिनांक 01.05.2015 को चेक संख्या 001669 सेंट्रल बैंक, तालबेहट, ललितपुर के माध्यम से 50,000/- रुपये का अपना पहला भुगतान शुभले माइन्स एंड डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड, सेंट्रल बैंक जेल रोड, भोपाल (म.प्र.) के पक्ष में किया। (इसके बाद 'विपरीत पक्ष संख्या 2 की कंपनी' के रूप में संदर्भित)। भूमि की खरीद के लिए आवेदक ने कंपनी की ओर से शिकायतकर्ता को दिनांक 01.05.2015 को सीरियल नंबर 901 वाली रसीद दी। आगे यह आरोप लगाया गया है कि कुछ समय बाद

आवेदक ने फिर से शेष राशि में से 3,50,000/- रुपये की मांग की और शिकायतकर्ता ने कंपनी के पक्ष में 3,50,000/- राशि का एक और चेक नंबर 891084 दिनांक 12.05.2015 जारी किया। इसी प्रकार, शिकायतकर्ता ने उक्त परियोजना में 4,00,000/- रुपये का निवेश किया। एक वर्ष तक कई बार शिकायतकर्ता ने विक्रय-विलेख के निष्पादन के लिए आवेदक से फोन पर संपर्क किया और आवेदक द्वारा उसे आश्वासन दिया गया कि कार्य प्रगति पर है और भूमि की रजिस्ट्री जल्द से जल्द की जाएगी। आपका प्लॉट बुक हो चुका है। बाद में शिकायतकर्ता को पता चला कि आवेदक/विरोधी पक्ष ने धोखाधड़ी करके और उन्हें प्लॉट देने का वादा करके कई व्यक्तियों से पैसे लिए थे, जिसके बाद शिकायतकर्ता द्वारा कई कॉल किए गए लेकिन आवेदक / विरोधी पक्ष ने जवाब नहीं दिया। रसीद एवं अन्य दस्तावेज संलग्न करते हुए आवेदक ने भोपाल स्थित रेरा भवन के अध्यक्ष के समक्ष आवेदन किया और अध्यक्ष ने कहा कि आवेदक शैलेन्द्र सिंह द्वारा कोई लेन-देन नहीं किया गया है। आपराधिक षड्यंत्र के तहत विपरीत पक्ष ने कई व्यक्तियों को लालच देकर धन लिया है और किसी को भी पैसा नहीं लौटाया है और उस कंपनी की आड़ में आवेदक/विपरीत पक्ष द्वारा एक नई फर्म श्रीमंत विनायक इंफ्रास्ट्रक्चर का गठन किया गया है, आवेदक/विरोधी पक्ष इसी तरह का काम कर रहा है। 01.06.2018 को, शिकायतकर्ता विपरीत पक्ष के निवास पर गया और बहुत परेशान होने के बाद अपने प्लॉट के बारे में बात की और जब उसने अपने पैसे वापस मांगे, तो आवेदक ने अभद्र व्यवहार

किया, उसके साथ दुर्व्यवहार किया, पैसे हड़पने की बात की और उसे जान से मारने की धमकी दी। उसके बाद, शिकायतकर्ता ने एक वकील के माध्यम से आवेदक / विपरीत पक्ष को कानूनी नोटिस भी भेजा। न तो आवेदक ने नोटिस का जवाब दिया और न ही पैसे वापस किए और आवेदक के साथ कोई संपर्क नहीं था और न ही यह ज्ञात था। (sic)

5. आगे आरोप है कि 13.08.2018 को सुबह लगभग 10.00 बजे शिकायतकर्ता को सूचना मिली कि आवेदक अपने घर पर है, तब शिकायतकर्ता सतीश लिटौरिया संजय श्रीवास्तव के साथ आवेदक के निवास पर गया और उसके पैसे की मांग की और प्लॉट के बारे में बात की, तो उसने अपने सहयोगियों के साथ उसके साथ दुर्व्यवहार किया और पैसे देने से इनकार कर दिया और कहा कि आपके पैसे हड़प लिए गए हैं। उसने उन्हें धमकी भी दी कि अगर वे अपने पैसे मांगते हैं या पुलिस स्टेशन में कोई रिपोर्ट दर्ज करते हैं, तो वह उन्हें जान से मार देगा। इसके ठीक बाद, शिकायतकर्ता ने उपरोक्त घटना की जानकारी संबंधित पुलिस स्टेशन को भेज दी और उसने पुलिस अधीक्षक, ललितपुर को रजिस्ट्री के माध्यम से अपनी रिपोर्ट भी भेज दी है, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई, जिसके कारण शिकायतकर्ता ने आवेदक के खिलाफ धारा 156 (3) द० प्र० स० के तहत वर्तमान शिकायत दर्ज की है।

6. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद विद्वान अतिरिक्त मुख्य न्यायिक, मजिस्ट्रेट, ललितपुर ने

आवेदक को धारा 420, 504, 506 भ० द० वि० के तहत दिनांक 14.02.2020 के आदेश के द्वारा तलब किया। दिनांक 14.02.2020 के उपरोक्त समन आदेश से व्यथित होकर आवेदक ने जिला न्यायाधीश, ललितपुर के समक्ष देरी के साथ आपराधिक पुनरीक्षण आवेदन दायर किया, जिसमें उन्होंने शिकायतकर्ता के साथ धन के दुरुपयोग के बारे में अपने विवाद को संक्षेप में समझाया और कहा कि आवेदक के खिलाफ अपराध बनता है। उक्त संशोधन को स्वीकार कर लिया गया था और 30.09.2022 को अदालत द्वारा देरी के आवेदन को अनुमति दी गई थी और संबंधित अदालत ने विवाद को हल करने के लिए शिकायतकर्ता को नोटिस भी जारी किया था। हालांकि, 16.01.2023 के फैसले और आदेश के तहत आवेदक के संशोधन को जिला न्यायाधीश, ललितपुर द्वारा खारिज कर दिया गया है। उक्त पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान सिविल जज जूनियर डिवीजन (एफ.टी.सी.), ललितपुर ने 18.07.2022 को आवेदक के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया और इस बीच उक्त अदालत ने 02.09.2022 को द० प्र० स० की धारा 82 की कार्यवाही को आगे बढ़ाया।

7. आवेदक का मामला यह है कि आवेदक कंपनी का कर्मचारी था और संबंधित चेक शिकायतकर्ता द्वारा कंपनी के पक्ष में जारी किए गए थे और एक एजेंट होने के नाते आवेदक ने केवल शिकायतकर्ता को कंपनी के प्रस्तावों के बारे में सूचित किया और इससे अधिक कुछ नहीं। आवेदक ने कभी भी शिकायतकर्ता को उक्त कंपनी / परियोजना में

अपना पैसा निवेश करने के लिए मजबूर नहीं किया था। यह आगे कहा गया है कि आवेदक के खिलाफ कोई जालसाजी नहीं की गई है, जैसा कि आरोप लगाया गया है, क्योंकि आवेदक कंपनी द्वारा किए गए कथित जालसाजी से पूरी तरह से अनजान था। यह केवल कर्मचारी होने के कारण था कि द० प्र० स० की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन के माध्यम से देर से चरण में उसके खिलाफ मामला दर्ज किया गया है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि पूरी विवादित राशि कंपनी द्वारा विधिवत प्राप्त की गई है और कंपनी को वर्तमान शिकायत मामले में पक्षकार के रूप में शामिल नहीं किया गया है। सिर्फ उत्पीड़न के कारण शिकायतकर्ता ने बिना किसी ठोस सबूत के वर्तमान मामले में आवेदक को झूठा फंसाया। वर्तमान मामले की पूरी कार्यवाही कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा कुछ भी नहीं है जिसे इस न्यायालय द्वारा रद्द किया जाना चाहिए।

8. आवेदक के वकील की प्रस्तुति:

(i) द० प्र० स० की धारा 156 (3) के तहत शिकायतकर्ता (यहां पक्ष संख्या 2 के विपरीत) का आवेदन कंपनी को अपना पहला भुगतान करने के 3 साल के विलंब के बाद 29.08.2018 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, ललितपुर की अदालत में दायर किया गया था, जिसके लिए कोई प्रशंसनीय स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

(ii) नीचे दिए गए न्यायालय ने उपर्युक्त आवेदन को शिकायत के मामले के रूप में माना है और द० प्र० स० की धारा 200 और

202 के तहत शिकायतकर्ता और उसके गवाहों के बयान दर्ज किए हैं। द० प्र० स० की धारा 200 के तहत दर्ज बयान में, शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष नंबर 2 ने उसी बयान को दोहराया है जो द० प्र० स० की धारा 156 (3) के तहत उसके आवेदन में सामने आया है।

(iii) इसके बाद शिकायत मामले में उल्लिखित गवाहों के अलावा अनिल नामक एक अन्य व्यक्ति सामने आया और द० प्र० स० की धारा 202 के तहत संबंधित अदालत के समक्ष उसका बयान आ० सा०-1 के रूप में दर्ज किया गया है, जिसमें उसने अभियोजन की कहानी का समर्थन किया है। उनके बयान के अनुसार, वह कई वर्षों से शिकायतकर्ता की दुकान पर काम करते हैं।

(iv) अजीत कुमार, जो अज्ञात व्यक्ति था, का बयान द० प्र० स० की धारा 202 के अंतर्गत आ० सा०-2 के रूप में दर्ज किया गया है, जिसमें उन्होंने शिकायत मामले में सामने आए बयान को दोहराया है। आ० सा० 2 की गवाही पूरी तरह से अविश्वसनीय और अस्थिर है क्योंकि उसने विशेष रूप से आवेदक के खिलाफ आरोप लगाया है और अदालत के समक्ष उसका बयान शिकायतकर्ता से प्रभावित प्रतीत होता है। इसके अलावा, शिकायतकर्ता ने सतीश लिटोरिया और संजय श्रीवास्तव को शामिल नहीं किया है, जो कथित तौर पर शिकायत के गवाह हैं और उनके स्थान पर, शिकायतकर्ता ने अपने मामले को मजबूत करने के लिए अन्य दो नए गवाह यानी अनिल और अजीत कुमार को पेश किया है।

(v) पूरा मामला सिविल प्रकृति का है जिसमें संबंधित कंपनी शिकायतकर्ता के धन का दुर्विनियोजन करती है और विवादित राशि की वसूली के लिए शिकायतकर्ता को कंपनी से 4 लाख रुपये की वसूली के लिए एक सिविल मुकदमा दायर करना चाहिए लेकिन शिकायतकर्ता ने आवेदक को परेशान करने के लिए आपराधिक तरीका चुना, भले ही आवेदक की इस मामले में कोई भूमिका न हो। इस दलील के समर्थन में आवेदक के वकील ने कंपनी का खाता विवरण और कंपनी के पंजीकरण प्रमाण पत्र की प्रति रिकॉर्ड पर रखी है, जिसे कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत शामिल किया गया है, जिसका पंजीकृत कार्यालय मध्य प्रदेश में है।

(vi) उपरोक्त शिकायत केवल आवेदक के उत्पीड़न के उद्देश्य से विपरीत पक्ष संख्या 2 द्वारा दायर की गई है, जिसका अर्थ है कि पूरी अभियोजन कहानी झूठी और मनगढ़ंत लगती है और केवल आवेदक को परेशान करने के लिए शुरू की गई है। आवेदक को शिकायतकर्ता से एक भी पैसा नहीं मिला है और उसने केवल चार महीने की सेवा के बाद 2015 में उक्त कंपनी के लिए इस्तीफा दे दिया।

(vii) शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 ने शिकायत मामले में कंपनी को न तो विपरीत पक्षों में से एक के रूप में शामिल किया है और न ही अपनी अग्रिम राशि की वसूली के लिए कोई सिविल मुकदमा दायर किया है और इसलिए, आवेदक के खिलाफ धारा 420, 504, 506 भ० द० वि० के तहत कोई अपराध नहीं

कहा जा सकता है।

अपने मामले के समर्थन में, आवेदक के वकील ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(क) *सईद यासीर इब्राहिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2020 में एक अन्य रिपोर्ट सुप्रीम (एससी) 1280;*

(ख) *आर नागेन्द्र यादव बनाम तेलंगाना राज्य और अन्य ने 2022 में सुप्रीम (एससी) 1250 की सूचना दी;*

(ग) *रणधीर सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य ने 2021 में सुप्रीम (एससी) 664 की सूचना दी; और*

(घ) *राघवेंद्र सिंह और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2016 के आवेदन यू/एस 482 संख्या 2300 में 11 अगस्त, 2022 को निर्णय लिया गया।*

उपरोक्त की संचयी ताकत पर, आवेदक के वकील ने प्रस्तुत किया कि आवेदक एक निर्दोष व्यक्ति है, जिसे उपरोक्त मामले में झूठा फंसाया गया है और वर्तमान के अलावा उसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, ललितपुर ने नियमित तरीके से आवेदक को धारा 420, 504, 506 भ० द० वि० के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए दिनांक 14.02.2020 के आदेश के तहत तलब किया है, जिसके खिलाफ, आवेदक ने 2022 के आपराधिक संशोधन संख्या 90 (शैलेंद्र सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य) को प्राथमिकता दी, जिसे भी 16.01.2022 के कानूनी पहलुओं पर विचार किए बिना कानूनी रूप से खारिज कर दिया गया है। आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा

रद्द किए जाने योग्य हैं। उपरोक्त के अलावा, वह यह भी प्रार्थना करता है कि चूंकि आवेदक के खिलाफ धारा 420, 504, 506 भ० द० वि० के तहत कोई मामला नहीं बनता है क्योंकि धोखाधड़ी के आवश्यक तत्व गायब हैं, इसलिए शिकायत मामले की पूरी कार्यवाही रद्द कर दी जाए।

9. इसके विपरीत, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आक्षेपित समन आदेश रिकॉर्ड के सामने उपलब्ध सबूतों का मूल्यांकन करने के बाद पारित किया गया है, जो आदेश विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सही ठहराया गया है, इसलिए लागू किए गए आदेश पूरी तरह से, कानूनी रूप से न्यायसंगत और उचित हैं जो द० प्र० स० की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की मांग नहीं करते हैं। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि रिकॉर्ड पर सामग्री के अवलोकन से और इस स्तर पर मामले के तथ्यों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि इस स्तर पर आवेदकों के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है। की गई सभी प्रस्तुतियां तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं, जिन पर इस न्यायालय द्वारा द० प्र० स० की धारा 482 के तहत निर्णय नहीं लिया जा सकता है। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि यह स्थापित कानून है कि अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए सबूतों को आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, अदालत द्वारा नहीं देखा जा सकता है। यह कानून है कि उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए

द० प्र० स० की धारा 482 के तहत दायर याचिका पर विचार करते समय सबूतों की सराहना नहीं कर सकता है। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि यदि अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध के अवयवों का खुलासा करने वाला प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकता है। उपरोक्त की संचयी शक्ति पर, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता आग्रह करते हैं कि आवेदकों के खिलाफ धारा 420, 504 और 506 भ० द० वि० के तहत अपराध बनता है। द० प्र० स० की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन मेरिट से रहित है और इसे इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया जाना चाहिए।

10. मैंने पक्षकारों के वकीलों द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है और द० प्र० स० की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड का अध्ययन किया है।

11. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवेदक को गैर-जमानती वारंट जारी करने का 18 जुलाई, 2022 का आदेश जारी किया गया है और साथ ही 2 सितंबर, 2022 को नीचे की अदालत द्वारा उसके खिलाफ द० प्र० स० की धारा 82 के तहत कार्यवाही शुरू की गई है और कुछ दस्तावेज कि क्या आवेदक केवल कंपनी का कर्मचारी था या उसका मालिक या उसका एक भागीदार था, रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है। लगाए गए आदेशों के गुण-दोष पर आगे बढ़ने से पहले, यह न्यायालय शिकायतकर्ता/विपरीत पक्ष संख्या 2 को नोटिस जारी कर रहा था, जिसमें उसे राज्य के जवाबी

हलफनामे के साथ अपना जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए कहा गया था, लेकिन आवेदक के वकील ने अदालत से उस दिन ही इस आवेदन पर फैसला करने के लिए जोर दिया। इसलिए, इस न्यायालय के पास रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर निर्णय लेने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है।

12. जहां तक आवेदक के वकील द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि शिकायतकर्ता द्वारा द० प्र० स० की धारा 156 (3) के तहत आवेदन करने में तीन साल की देरी हुई है, जिसके लिए कोई तर्कसंगत स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, यह न्यायालय रिकॉर्ड कर सकता है कि वर्तमान शिकायत मामले का अवलोकन ही इस तरह के विलंब को स्पष्ट करता है। शिकायत में आवेदक द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक द्वारा प्रस्तावित भूखंड खरीदने के लिए आवेदक को 3,50,000 रुपये का दूसरा चेक देने के बाद, शिकायतकर्ता ने आवेदक से बार-बार संपर्क किया, और हर अवसर पर, आवेदक ने उसे टाल दिया। जब शिकायतकर्ता आवेदक से मिला, तो उसने शिकायतकर्ता से हर बार यह सुनिश्चित करने के लिए समय लिया है कि जल्द ही प्लॉट की बिक्री-विलेख उसके पक्ष में निष्पादित किया जाएगा। शिकायतकर्ता को पता चला है कि शिकायतकर्ता की तरह, आवेदक ने भी प्लॉट देने के लिए विभिन्न व्यक्तियों से पैसे लिए हैं और उसने भी उनसे परहेज किया है और प्लॉट को उनके पक्ष में नहीं किया है और उसने उससे आग्रह किया कि या तो वह अपने पैसे वापस कर दे या अपने पक्ष में बिक्री-विलेख निष्पादित करे। हालांकि, उसे गाली दी गई

और धमकी दी गई। उसके बाद शिकायतकर्ता ने रेरा के समक्ष एक आवेदन दिया जहां उसे कोई फलदायी आदेश प्राप्त नहीं हुआ है। इसके बाद, उन्होंने संबंधित पुलिस स्टेशन और पुलिस विभाग के अधिकारी के समक्ष विभिन्न आवेदन दिए, इस बार फिर से उस संबंध में प्राथमिकी दर्ज करने के उनके अनुरोध को अनसुना कर दिया गया है। इसलिए उन्होंने द० प्र० स० की धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन दायर करके नीचे दी गई अदालत का दरवाजा खटखटाया है। उपरोक्त के कारण, तीन साल बीत चुके हैं और वर्तमान मामले में देरी हुई है जो शिकायतकर्ता की ओर से नहीं है।

13. अन्यथा, भारत के माननीय उच्चतम न्यायालय ने हिमाचल प्रदेश बनाम जान चंद्र के मामले में (2001) 6 एससीसी 71 में कहा है कि देरी के आधार पर अभियोजन की पूरी कहानी पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ 12 इस प्रकार है:

अदालत ने कहा, 'प्राथमिकी दर्ज करने में देरी को अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी के आधार पर इसे खारिज करने के लिए एक रस्मी फार्मूले के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। देरी का प्रभाव यह है कि अदालत को यह पता लगाने के लिए रखा जाता है कि क्या देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण दिया गया है, और यदि पेशकश की गई है, तो क्या यह संतोषजनक है या नहीं। यदि अभियोजन पक्ष देरी को संतोषजनक ढंग से

समझाने में विफल रहता है और इस तरह के विलंब के कारण अभियोजन पक्ष में अलंकरण की संभावना है, तो देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक होगी। हालांकि, अगर देरी को अदालत की संतुष्टि के लिए समझाया जाता है, तो देरी अपने आप में पूरे अभियोजन मामले पर अविश्वास करने और उसे खारिज करने का आधार नहीं हो सकती है। वर्तमान मामले में, आ० सा० 1, अभियोक्ता की मां एक विधवा है। आरोपी आ० सा० 1 के दिवंगत पति के भाई का करीबी रिश्तेदार है। आ० सा० 1 को स्पष्ट रूप से उसके परिवार के सदस्यों की आवश्यकता थी, जिसमें उसके ससुराल वाले शामिल थे या कम से कम पुलिस स्टेशन में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में उसकी मदद करें। यह घटना एक गांव में हुई थी, इसलिए आ० सा० 1 के ससुराल वालों ने पहले आरोपी के पिता को फोन किया और उससे शिकायत की कि उसके बेटे ने क्या किया है। यह घटना के अगले दिन एक अप्रिय पारिवारिक मामला बना रहा, जिसे परिवार की दीवारों के भीतर सुलझाने की कोशिश की गई थी। वह विफल रहा। इसके बाद शिकायतकर्ता विधवा महिला ने खुद ही सब कुछ छोड़ दिया और परिवार का कोई पुरुष सदस्य उसके साथ जाने को तैयार नहीं था, वह अकेले पुलिस स्टेशन चली गई। उसे गांव के पंच रत्नद्वारा राम द्वारा नैतिक समर्थन दिया गया था, जिसके बाद घटना की रिपोर्ट दर्ज की गई थी। अपराध के तुरंत बाद की घटनाओं का क्रम और जैसा कि अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा वर्णित है, काफी स्वाभाविक लगता है और देरी के लिए एक संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रदान करता है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा ऐसा पाया

गया। उच्च न्यायालय ने दिए गए स्पष्टीकरण पर गौर नहीं किया है और बहुत सतही तौर पर देरी का निष्कर्ष दर्ज किया है जो अस्पष्ट है और इसलिए अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक है। यह सामान्य जानकारी है और न्यायिक रूप से भी ध्यान दिया गया तथ्य है कि बलात्कार जैसी घटनाएं, विशेष रूप से जब अपराध का अपराधी परिवार का सदस्य होता है या उससे संबंधित होता है, परिवार के सम्मान को शामिल करता है और इसलिए पीड़ित के परिवार की ओर से मामले को पुलिस को रिपोर्ट करने और इसे अदालत में ले जाने में अनिच्छा होती है। प्राथमिकी दर्ज करने से पहले एक शांत विचार हो सकता है। पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य (1996) 2 एससीसी 384 और हरपाल सिंह (1981) एससीसी सीआरएल 208 के मामले में भी इस न्यायालय द्वारा ऐसी टिप्पणियां की गई हैं। हम संतुष्ट हैं कि प्राथमिकी दर्ज करने में देरी को संतोषजनक ढंग से समझाया गया है और इसलिए अभियोजन पक्ष के मामले में कोई सेंध नहीं लगती है।

14. आवेदक के वकील द्वारा की गई इस दलील के लिए कि पूरा मामला सिविल प्रकृति का है, यह न्यायालय यह दर्ज कर सकता है कि यह मामला सिविल नहीं बल्कि आपराधिक है, जिसमें आवेदक ने शिकायतकर्ता को भूमि प्रदान करने के उद्देश्य से उसकी कंपनी के नाम पर चार लाख रुपये प्राप्त किए। हालांकि, शिकायतकर्ता को न तो उसके पक्ष में जमीन आवंटित की गई थी और न ही उसका पैसा

वापस किया गया था, जिसके कारण शिकायतकर्ता के 4 लाख रुपये लूटे जाने का आरोप है। जब शिकायतकर्ता ने आवेदक से दो बार अपने पैसे मांगे, तो उसने उसे गाली दी और धमकी दी। उपर्युक्त के अलावा, आवेदक और शिकायतकर्ता के बीच कोई सिविल मुकदमा लंबित नहीं है क्योंकि सिविल मुकदमेबाजी के चरण तक नहीं पहुंचा गया है। यह विश्वासघात का मामला है। आवेदक के वकील द्वारा अपनी उपरोक्त दलील के समर्थन में जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होते हैं, सईद यासीर इब्राहिम (सुप्रा) के मामले में, शीर्ष अदालत ने धारा 420 भ० द० वि० का कोई घटक नहीं पाया है। आर. नागेंद्र यादव (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने इस आधार पर कार्यवाही को रद्द कर दिया है कि एक ही विवाद के लिए दोनों पक्षों के बीच दीवानी मुकदमा लंबित है। रणधीर सिंह (सुप्रा) के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्राथमिकी के संस्करण और प्रस्तुत आरोप-पत्र से आरोपी के खिलाफ धारा 420, 467, 468 और 471 भ० द० वि० के तहत कोई मामला नहीं पाया है। राघवेंद्र सिंह (सुप्रा) मामले में, इस न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश ने कहा है कि पक्षों के बीच विवाद एक जाली वसीयत के कारण उत्पन्न हुआ और ऐसा मामला आपराधिकता से संबंधित नहीं है।

15. आवेदक के वकील द्वारा दी गई उपरोक्त दो प्रस्तुतियों के अलावा, अन्य प्रस्तुतियां तथ्य के विवादित प्रश्न को उठाती हैं और इसकी शुद्धता या अन्यथा की जांच

या निर्णय इस पूर्व-परीक्षण चरण में नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय को अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा राज्य के लिए दी गई प्रस्तुतियों में पूरी तरह से सच्चाई मिलती है।

16. अब यह न्यायालय आवेदक द्वारा भूमि की खरीद की आड़ में 4 लाख रुपये लेकर शिकायतकर्ता को धोखा देने में की जा रही किसी भी धोखाधड़ी, धोखे, बेईमानी के मुद्दे पर आता है।

17. धोखाधड़ी, बेईमानी करने के आवेदक के मुद्दे पर प्रस्तुतियों और उत्तरों के गुण-दोष पर आने से पहले, धारा 420 भ० द० वि० को पुनः पेश करना सार्थक होगा, जो धोखाधड़ी है और धारा 415 भ० द० वि० में परिभाषित है और इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

415. धोखा- जो कोई भी, किसी व्यक्ति को धोखा देकर, धोखे से या बेईमानी से उस व्यक्ति को किसी भी संपत्ति को किसी व्यक्ति को देने के लिए प्रेरित करता है, या इस बात की सहमति देता है कि कोई व्यक्ति किसी भी संपत्ति को बनाए रखेगा, या जानबूझकर उस व्यक्ति को ऐसा कुछ करने या छोड़ने के लिए प्रेरित करता है जो वह नहीं करेगा या छोड़ देता है यदि उसे धोखा नहीं दिया गया था, और जो कार्य या चूक शरीर, मन, प्रतिष्ठा या संपत्ति में उस व्यक्ति को नुकसान या नुकसान पहुंचाने की संभावना का कारण बनती है या होने की संभावना है, उसे "धोखा" कहा जाता है। स्पष्टीकरण- तथ्यों को बेईमानी से छिपाना इस धारा के अर्थ के भीतर एक धोखा है।

420. धोखाधड़ी और बेईमानी से संपत्ति की डिलीवरी को प्रेरित करना- जो कोई भी धोखा देता है और इस तरह बेईमानी से उस व्यक्ति को किसी भी संपत्ति को किसी व्यक्ति को देने के लिए प्रेरित करता है, या किसी मूल्यवान सुरक्षा के पूरे या किसी भी हिस्से को बनाने, बदलने या नष्ट करने के लिए, या कुछ भी जो हस्ताक्षरित या सील किया गया है, और जो एक मूल्यवान सुरक्षा में परिवर्तित होने में सक्षम है, सात साल तक की अवधि के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा, और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

18. "धोखाधड़ी" के आरोपों को आकर्षित करने के लिए, निम्नलिखित चीजें मौजूद होनी चाहिए:

(i) किसी व्यक्ति का धोखा;

(क) उस व्यक्ति का कपटपूर्ण या बेईमान प्रलोभन,

(ए) किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति देना; नहीं तो

(बी) इस बात की सहमति देना कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को अपने पास रखेगा,

(बी) जानबूझकर उस व्यक्ति को कुछ भी करने या छोड़ने के लिए प्रेरित करना,

(ए) जिसे वह नहीं करेगा या छोड़ देगा यदि उसे इतना धोखा नहीं दिया गया था, और

(बी) ऐसा कार्य या चूक शरीर, मन, प्रतिष्ठा या संपत्ति में उस व्यक्ति को नुकसान या नुकसान पहुंचाने की संभावना है। (बल डाला गया)

19. फिर धारा 420 आई.पी.सी. को आकर्षित करने के लिए, आवश्यक सामग्री हैं:

- (i) धोखा;
 (ii) संपत्ति देने के लिए बेईमान प्रलोभन देना या किसी भी मूल्यवान सुरक्षा या किसी भी चीज़ को बनाने या नष्ट करने के लिए जो सील या हस्ताक्षरित है या मूल्यवान सुरक्षा में परिवर्तित होने में सक्षम है; और
 (iii) प्रलोभन देते समय अभियुक्त की हत्या और किस प्रकार की चूक।

20. महादेव प्रसाद बनाम पश्चिम बंगाल राज्य के मामले में, एआईआर 1954 एससी 724 में यह पाया गया था कि धोखाधड़ी का अपराध बनाने के लिए, धोखा देने का इरादा उस समय मौजूद होना चाहिए जब प्रलोभन दिया गया था।

21. एआईआर 1956 एससी 575 में रिपोर्ट किए गए जसवंतराय मणिलाल अखाने बनाम बॉम्बे राज्य मामले में अदालत ने कहा कि दोषी इरादा धोखाधड़ी के अपराध का एक अनिवार्य घटक है। धोखाधड़ी के अपराध के लिए, उस व्यक्ति की ओर से "मेंस री" स्थापित किया जाना चाहिए।

22. 2000 (3) एससीसी 693 में रिपोर्ट किए गए जीवी राव बनाम एलएचवी प्रसाद और अन्य मामले में अदालत ने कहा कि धारा 415 के दो भाग हैं। जबकि पहले भाग में, व्यक्ति को शिकायतकर्ता को किसी भी संपत्ति को वितरित करने के लिए "बेईमानी" या "धोखाधड़ी" से प्रेरित करना चाहिए और दूसरे भाग में व्यक्ति को जानबूझकर शिकायतकर्ता को कुछ करने या छोड़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, पहले भाग में, प्रलोभन

बेईमान या कपटपूर्ण होना चाहिए, जबकि दूसरे भाग में, प्रलोभन जानबूझकर होना चाहिए।

23. हृदय रंजन प्रसाद वर्मा और अन्य बनाम बिहार राज्य और 2000 (4) एससीसी 168 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य मामले में, अदालत ने कहा कि 'धोखाधड़ी' की परिभाषा में, कृत्यों के दो अलग-अलग वर्ग निर्धारित किए गए हैं जिन्हें धोखा देने वाले व्यक्ति को करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। सबसे पहले उसे किसी भी व्यक्ति को किसी भी संपत्ति को वितरित करने के लिए धोखाधड़ी या बेईमानी से प्रेरित किया जा सकता है। इस धारा में निर्धारित कृत्यों का दूसरा वर्ग कुछ भी करने या छोड़ने का है जो धोखा देने वाला व्यक्ति नहीं करेगा या करने से चूक जाएगा यदि उसे इतना धोखा नहीं दिया गया था। मामलों के पहले वर्ग में, प्रलोभन धोखाधड़ी या बेईमान होना चाहिए। कृत्यों के दूसरे वर्ग में, प्रलोभन जानबूझकर होना चाहिए लेकिन धोखाधड़ी या बेईमान नहीं होना चाहिए। यह बताया गया कि केवल अनुबंध के उल्लंघन और धोखाधड़ी के अपराध के बीच एक अच्छा अंतर है। यह प्रलोभन देने के समय आरोपी के इरादे पर निर्भर करता है जिसे उसके बाद के आचरण से आंका जा सकता है लेकिन इसके लिए, बाद का आचरण एकमात्र परीक्षण नहीं है। केवल अनुबंध का उल्लंघन धोखाधड़ी के लिए आपराधिक अभियोजन को जन्म नहीं दे सकता है जब तक कि लेनदेन की शुरुआत में धोखाधड़ी या बेईमान इरादे को सही नहीं दिखाया जाता है, यही वह समय होता है जब अपराध किया गया कहा जाता है। इसलिए यह इरादा है जो अपराध का सार है। किसी व्यक्ति

को धोखाधड़ी का दोषी ठहराने के लिए यह दिखाना अनिवार्य होगा कि वादा करते समय उसका कपटपूर्ण या बेईमान इरादा था। बाद में वादे को पूरा करने में विफलता के बाद, शुरुआत में ही इस तरह के एक दोषी इरादे को नहीं माना जा सकता है, यानी, जब उसने वादा किया था।

24. एस.डब्ल्यू. पलानितकर और अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य, जो 2002 (1) एससीसी 241 में रिपोर्ट किया गया था, धारा 415 भ० द० वि० की सामग्री की जांच करते समय, उपरोक्त अधिकारियों का पालन किया गया था।

25. हीरा लाल हरि लाल भगवती बनाम सीबीआई, नई दिल्ली में, 2003 (5) एससीसी 257 में रिपोर्ट किया गया, अदालत ने कहा कि धारा 415 भ० द० वि० के तहत धोखाधड़ी के दोषी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि संपत्ति को बनाए रखने के इरादे से वादा करते समय उसका कपटपूर्ण या बेईमान इरादा है। अदालत ने आगे कहा:

"भारतीय दंड संहिता की धारा 415 जो धोखाधड़ी को परिभाषित करती है, किसी भी व्यक्ति के धोखे की आवश्यकता होती है।"

(ए) उस व्यक्ति को प्रेरित करना: (i) किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति देना, या

(ii) इस बात की सहमति देना कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को अपने पास रखेगा या

(बी) जानबूझकर उस व्यक्ति को ऐसा कुछ करने या छोड़ने के लिए प्रेरित करना जो वह नहीं

करेगा या छोड़ देगा यदि उसे धोखा नहीं दिया गया था और जो कार्य या चूक उस व्यक्ति, किसी के मन, प्रतिष्ठा या संपत्ति को नुकसान या नुकसान पहुंचाने की संभावना है। उपरोक्त प्रावधानों के मद्देनजर, अपीलकर्ताओं का कहना है कि व्यक्ति को किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति देने के लिए धोखाधड़ी या बेईमानी से प्रेरित किया जा सकता है। धारा में निर्धारित कृत्यों का दूसरा वर्ग कुछ भी करना या छोड़ना है जो धोखा देने वाला व्यक्ति नहीं करेगा या करने के लिए छोड़ देगा यदि उसे इतना धोखा नहीं दिया गया था। मामलों के पहले वर्ग में, उत्प्रेरण धोखाधड़ी या बेईमान होना चाहिए। कृत्यों के दूसरे वर्ग में, उत्प्रेरण जानबूझकर होना चाहिए लेकिन धोखाधड़ी या बेईमान नहीं होना चाहिए (बल डाला गया)

26. देवेंद्र कुमार सिंगला बनाम बलदेव कृष्ण सिंह मामले में 2004 (2) जेटी 539 (एससी) में यह माना गया था कि गलत प्रतिनिधित्व करना धोखाधड़ी के अपराध के अवयवों में से एक है।

27. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड में, 2006 (6) एससीसी 736 में रिपोर्ट की गई थी कि इसी तरह की परिस्थितियों में ऋण की प्रगति के खिलाफ ऋण की प्रगति के मामले में, शिकायतकर्ता ने धारा 415 के चित्र (एफ) और (जी) पर भरोसा किया, जो निम्नानुसार है:

"(च) A जानबूझकर Z को इस विश्वास में धोखा देता है कि A का अर्थ किसी भी धन को चुकाना है जो Z उसे उधार दे सकता है और इस प्रकार बेईमानी से Z को उसे पैसे उधार देने के लिए

प्रेरित करता है, A इसे चुकाने का इरादा नहीं रखता है। एक धोखा।

(छ) A जानबूझकर Z को इस विश्वास में धोखा देता है कि A का अर्थ Z को एक निश्चित मात्रा में नील का पौधा देना है जिसे वह वितरित करने का इरादा नहीं रखता है, और इस प्रकार बेईमानी से Z को इस तरह के वितरण के विश्वास पर धन अग्रिम करने के लिए प्रेरित करता है। एक धोखा; लेकिन अगर ए, धन प्राप्त करने के समय, इंडिगो प्लांट को वितरित करने का इरादा रखता है, और बाद में अपना संपर्क तोड़ता है और इसे वितरित नहीं करता है, तो वह धोखा नहीं देता है, लेकिन अनुबंध के उल्लंघन के लिए केवल नागरिक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी है।

28. न्यायालय ने कहा कि अभिधारणा का सार उस व्यक्ति का इरादा है जो पीड़ित को उसके प्रतिनिधित्व के लिए प्रेरित करता है, न कि लेनदेन की प्रकृति जो यह समझने में निर्णायक हो जाएगी कि अपराध हुआ था या नहीं। अदालत ने राजेश बजाज बनाम दिल्ली राज्य एनसीटी मामले में 1999 (3) एससीसी 259 में रिपोर्ट किए गए अपने पहले के फैसलों का भी उल्लेख किया और कहा कि यह आवश्यक नहीं है कि अपनी शिकायत के मुख्य भाग में, एक शिकायतकर्ता को अपराध के उन सभी अवयवों को शब्दशः पुनः पेश करना चाहिए जो वह आरोप लगा रहा है, न ही यह आवश्यक है कि शिकायतकर्ता इतने शब्दों में बताए कि आरोपी का इरादा बेईमान या धोखाधड़ी था।

29. वीर प्रकाश शर्मा बनाम अनिल कुमार अग्रवाल और अन्य मामले में, 2007 (7) एससीसी 373 में यह माना गया था कि यदि अभियुक्त की ओर से प्रलोभन का कोई कार्य नहीं किया जाता है और शिकायत में कोई आरोप नहीं लगाया जाता है कि शुरुआत से ही धोखा देने का कोई इरादा था, तो धारा 415 और धारा 420 भ० द० वि० की आवश्यकता को पूरा नहीं किया जाएगा। अदालत ने हृदय रंजन प्रसाद वर्मा (सुप्रा) और इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड (सुप्रा) के पिछले फैसलों पर भरोसा किया।

30. उपरोक्त प्राधिकारियों को इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा श्री सुनील गलगोटिया और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में 2016 (92) एससीसी 40 में रिपोर्ट की गई धारा 420 भ० द० वि० के तहत अपराध के संदर्भ में संदर्भित किया गया है और उन पर भरोसा किया गया है।

31. उपर्युक्त के अलावा, इस न्यायालय ने उपरोक्त कानूनों को दोहराते हुए सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णयों पर भी ध्यान दिया है।

32. यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड वी. बी. राजेंद्र सिंह और अन्य के मामले में, जेटी 2000 (3) एससी.151 में रिपोर्ट की गई है, धोखाधड़ी के तथ्य पर विचार करते हुए, शीर्ष अदालत ने पैराग्राफ 3 में निम्नानुसार कहा:

"धोखाधड़ी और न्याय कभी एक साथ नहीं रहते हैं। (फ्रेंस एट जुस नूनक्कम सहवास) एक प्राचीन मैक्सिम है जिसने इन शताब्दियों में कभी भी अपना आपा नहीं खोया है। लॉर्ड डेनिंग ने बिना किसी समानता के भाषा में कहा कि "किसी अदालत के किसी भी निर्णय, किसी मंत्री के किसी भी आदेश को टिकने की अनुमति नहीं दी जा सकती है यदि इसे धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया है, क्योंकि धोखाधड़ी सब कुछ उजागर करती है" (लाजर एस्टेट लिमिटेड वी बीसले 1956 (1) क्यूबी 702)।

33. केन्द्रीय विद्यालय संगठन के उपाध्यक्ष और 2004 (6) एससीसी 325 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य बनाम गिरधारी लाल यादव के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने धोखाधड़ी से जुड़े मामलों में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता पर विचार किया और पैराग्राफ 12 और 13 में निम्नानुसार निर्णय लिया:

"12. इसके अलावा, प्रतिवादी को धोखाधड़ी के कार्य का दोषी पाया गया है। राय में, उसे सुनवाई का कोई और अवसर देने की आवश्यकता नहीं है। इस मामले में आगे और ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है जैसा कि हाल ही में रामचंद्र सिंह बनाम राम चंद्र सिंह के मामले में हुआ था। सावित्री देवी इस न्यायालय ने देखा है:

"15. अदालत में धोखाधड़ी करना और भौतिक तथ्यों को छिपाना इन मामलों में शामिल मुख्य मुद्दे हैं। जैसा कि सर्वविदित है, धोखाधड़ी हर गंभीर कार्य को दूषित करती है।

धोखाधड़ी और न्याय कभी एक साथ नहीं रहते हैं।

16. धोखाधड़ी या तो अक्षर या शब्दों द्वारा एक आचरण है, जो दूसरे व्यक्ति या प्राधिकरण को शब्द या पत्र द्वारा पूर्व के आचरण की प्रतिक्रिया के रूप में एक निश्चित निवारक रुख लेने के लिए प्रेरित करता है। यह भी अच्छी तरह से तय है कि गलत बयानी अपने आप में धोखाधड़ी के बराबर है। दरअसल, निर्दोष गलत बयानी भी धोखाधड़ी के खिलाफ राहत का दावा करने का कारण दे सकती है।

18. एक कपटपूर्ण गलत बयानी को छल कहा जाता है और इसमें जानबूझकर या लापरवाही से एक आदमी को नुकसान पहुंचाना शामिल है जिससे उसे झूठ पर विश्वास करने और कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह कानून में धोखाधड़ी है यदि कोई पक्ष ऐसे अभ्यावेदन करता है जिसे वह जानता है कि वह झूठा है, और इससे नुकसान होता है, हालांकि जिस उद्देश्य से अभ्यावेदन आगे बढ़ा, वह बुरा नहीं हो सकता है।

34. राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी और अन्य के मामले में, 2003 (8) एससीसी 319 में रिपोर्ट किया गया, शीर्ष अदालत ने पैराग्राफ 15, 16, 17, 18, 25 और 37 में निम्नानुसार कहा:

"15. अदालत में धोखाधड़ी करना और भौतिक तथ्यों को छिपाना इन मामलों में शामिल मुख्य मुद्दे हैं। जैसा कि सर्वविदित है,

धोखाधड़ी हर गंभीर कार्य को दूषित करती है। धोखाधड़ी और न्याय कभी एक साथ नहीं रहते हैं।

16. धोखाधड़ी या तो अक्षर या शब्दों द्वारा एक आचरण है, जो दूसरे व्यक्ति या प्राधिकरण को शब्द या पत्र द्वारा पूर्व के आचरण की प्रतिक्रिया के रूप में एक निश्चित निवारक रख लेने के लिए प्रेरित करता है।

17. यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि गलत बयानी अपने आप में धोखाधड़ी के बराबर है। दरअसल, निर्दोष गलत बयानी भी धोखाधड़ी के खिलाफ राहत का दावा करने का कारण दे सकती है।

18. एक कपटपूर्ण गलत बयानी को छल कहा जाता है और इसमें जानबूझकर या लापरवाही से एक आदमी को नुकसान पहुंचाना शामिल है जिससे उसे झूठ पर विश्वास करने और कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है। यह कानून में एक धोखाधड़ी है यदि कोई पक्ष ऐसे अभ्यावेदन करता है जिसे वह जानता है कि वह गलत है, और इससे नुकसान होता है, हालांकि जिस उद्देश्य से अभ्यावेदन आगे बढ़े हैं वह बुरा नहीं हो सकता है।

25. यद्यपि किसी दिए गए मामले में धोखा धोखाधड़ी नहीं हो सकता है, धोखाधड़ी सभी न्यायसंगत सिद्धांतों के लिए अभिशाप है और धोखाधड़ी से दागदार किसी भी मामले को किसी भी न्यायसंगत सिद्धांत के आवेदन द्वारा कायम या बचाया नहीं जा सकता है।

37. यह कहना दोहराया जाएगा कि अदालत में धोखाधड़ी करके प्राप्त कोई भी आदेश भी कानून की नजर में गैर-योग्य है।

35. एआईआर 1994 एससी 853 में रिपोर्ट किए गए L.Rs बनाम जगन्नाथ (मृत) द्वारा एसपी चेंगलवरैया नायडू (मृत L.Rs) बनाम जगन्नाथ (मृत) के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने पैरा 7 में निम्नानुसार कहा:

"7. हमारे विचार में उच्च न्यायालय पेटेंट त्रुटि में गिर गया। उच्च न्यायालय के समक्ष संक्षिप्त प्रश्न यह था कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जगन्नाथ ने अदालत पर धोखाधड़ी का खेल खेलकर प्रारंभिक डिक्री प्राप्त की। हालांकि, उच्च न्यायालय ने इस पर अड़ंगा लगा दिया और ऐसी टिप्पणियां कीं जो पूरी तरह से विकृत हैं। हम उच्च न्यायालय से सहमत नहीं हैं कि "वादी पर कोई कानूनी कर्तव्य नहीं है कि वह एक सच्चे मामले के साथ अदालत में आए और इसे सच्चे सबूतों से साबित करे"। "मुकदमेबाजी को अंतिम रूप देने" के सिद्धांत को इस हद तक नहीं दबाया जा सकता है कि यह बेईमान वादियों के हाथों में धोखाधड़ी का इंजन बन जाए। कानून की अदालतें पार्टियों के बीच न्याय प्रदान करने के लिए होती हैं। जो अदालत में आता है, उसे साफ हाथों से आना चाहिए। हम यह कहने के लिए विवश हैं कि अक्सर अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है। संपत्ति हड़पने वाले, कर चोरी करने वाले, बैंक-ऋण-चकमा देने वाले और जीवन के सभी क्षेत्रों के अन्य बेईमान व्यक्तियों को अदालत-प्रक्रिया अवैध लाभ को अनिश्चित काल

तक बनाए रखने के लिए एक सुविधाजनक साधन लगती है। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि एक व्यक्ति, जिसका मामला झूठ पर आधारित है, उसे अदालत का दरवाजा खटखटाने का कोई अधिकार नहीं है। मुकदमे के किसी भी चरण में उन्हें सरसरी तौर पर बाहर किया जा सकता है।

36. महाराष्ट्र राज्य बनाम मेयर हंस जॉर्ज ने एआईआर 1965 एससी 722 (वी 52 सी 123) में रिपोर्ट की है, शीर्ष अदालत ने विशेष रूप से पैराग्राफ -10 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"10. रसेल ऑन क्राइम में, 11 वां संस्करण। खंड 1, यह पृष्ठ 64 में कहा गया है: एक धारणा है कि किसी भी वैधानिक अपराध में सामान्य कानून मानसिक तत्व, मेंस री, एक आवश्यक घटक है। इस धारणा का खंडन करने के सवाल पर, विद्वान लेखक बताते हैं कि अदालतों की नीति अप्रत्याशित है। मैं कुछ निर्णयों पर ध्यान दूंगा जो लेखक के दृष्टिकोण को प्रमाणित करते प्रतीत होते हैं। हैल्सबरी के इंग्लैंड के नियमों में, तीसरा संस्करण। खंड 10, पैरा. 508 में, पृष्ठ 273 पर, निम्नलिखित अंश प्रकट होता है:

"एक वैधानिक अपराध में मन की आवश्यक स्थिति की एक स्पष्ट परिभाषा हो सकती है या नहीं भी हो सकती है। एक कानून को एक विशिष्ट इरादे, द्वेष, ज्ञान, जानबूझकर की आवश्यकता हो सकती है। या लापरवाही। दूसरी ओर, यह मेंस री की किसी भी आवश्यकता के बारे में चुप हो सकता है, और ऐसे मामले में यह निर्धारित करने के लिए कि क्या मेंस

री अपराध का एक अनिवार्य तत्व है या नहीं, कानून के उद्देश्यों और शर्तों को देखना आवश्यक है। यह अंश यह भी इंगित करता है कि किसी कानून में अपराध के घटक के रूप में मन की स्थिति के किसी विशिष्ट उल्लेख की अनुपस्थिति इस सवाल का निर्णायक नहीं है कि क्या अपराध का एक घटक है या नहीं: यह उद्देश्य और कानून की शर्तों पर निर्भर करता है। इसलिए भी, आर्कबोल्ड ने "आपराधिक निवेदन, साक्ष्य और अभ्यास" पर अपनी पुस्तक, 35 वें संस्करण में, पृष्ठ 48 में इसी प्रभाव के लिए बहुत कुछ कहा है:

"यह हमेशा आम कानून का एक सिद्धांत रहा है कि सामान्य कानून के खिलाफ किसी भी आपराधिक अपराध को अंजाम देने में मेंस री एक आवश्यक तत्व है, वैधानिक अपराधों के मामले में यह कानून के प्रभाव पर निर्भर करता है ... एक धारणा है कि एक वैधानिक अपराध में पुरुषों का युग एक आवश्यक घटक है, लेकिन यह धारणा या तो अपराध बनाने वाले कानून के कार्यों से या उस विषय वस्तु से विस्थापित होने योग्य है जिसके साथ यह संबंधित है।

इस विषय पर अग्रणी मामला शेरस बनाम डी रुटज़ेन (1) है। लाइसेंसिंग अधिनियम, 1872 की धारा 16 (2) के तहत लाइसेंस अधिकारी को ड्यूटी के दौरान पुलिस कांस्टेबल को शराब की आपूर्ति करने से प्रतिबंधित किया गया है। यह माना गया कि यह धारा वहां लागू नहीं होती है जहां एक लाइसेंस प्राप्त अधिकारी का मानना था कि पुलिस अधिकारी ड्यूटी से बाहर था, राइट जे ने कहा, "एक धारणा है कि मेंस

री, एक बुरा इरादा, या कृत्य की गलतता का ज्ञान, हर अपराध में एक आवश्यक घटक है; लेकिन यह धारणा या तो अपराध पैदा करने वाले कानून के शब्दों से या उस विषय-वस्तु से विस्थापित होने योग्य है जिसके साथ यह संबंधित है, और दोनों पर विचार किया जाना चाहिए।

37. करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य (1994) 3 एससीसी 569 में रिपोर्ट किए गए मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने विशेष रूप से पैराग्राफ संख्या 115 से 119 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"115. एक आपराधिक कार्रवाई में, दंडात्मक देनदारियों की सामान्य शर्तों को पुराने मैक्सिम में इंगित किया गया है "एक्टस नॉन फेसिट रेम, निसी मेंस सिट री" यानी अकेले कार्य अपराध की श्रेणी में नहीं आता है, इसके साथ एक दोषी दिमाग होना चाहिए। लेकिन इस नियम के अपवाद हैं और इसके कारण यह है कि विधायिका, कुछ स्थितियों और परिस्थितियों में, अपने विवेक में, किसी विशेष कार्य को करने से रोकने के लिए, किसी अपराध के घटक भाग के रूप में या इरादे या वास्तविक ज्ञान के पर्याप्त प्रमाण के रूप में मेंस री के तत्व को मना या खारिज करने के लिए इसे इतना महत्वपूर्ण मान सकती है। हालांकि, जब तक कोई कानून इस तरह के मामलों में स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा 'मेंस री' को खारिज नहीं करता है, तब तक 'मेंस री' के तत्व को कानून के प्रावधानों में पढ़ा जाना चाहिए। सवाल यह नहीं है कि इस शब्द का अर्थ क्या है, बल्कि यह है कि क्या इस बात के पर्याप्त आधार हैं

कि संसद का इरादा इस सामान्य नियम को बाहर करने का है कि किसी भी व्यक्ति को 'एबेट' की परिभाषा के तहत लाने के लिए मेंस री एक आवश्यक तत्व है।

116. इस आशय के न्यायिक निर्णय हैं कि अधिनियमन के शब्दों के पीछे जाना और अन्य कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है कि क्या परिभाषा में 'मेंस री' या वास्तविक ज्ञान के तत्व को आयात किया जाना चाहिए। देखें (1) ब्रांड v. लकड़ी (2) शेरस बनाम डी रुटज़ेन, (3) निकोल्स वी। हॉल, और (4) इंदर सैन वी। पंजाब राज्य।

117. महाराष्ट्र राज्य बनाम एमएच जॉर्ज मामले में इस न्यायालय ने विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1947 की धारा 23 (1) (ए) के साथ पढ़ी गई धारा 8 (1) के तहत अपराध का एक अनिवार्य घटक है, जब यह दिखाया गया था कि उस मामले में प्रतिवादी (अभियुक्त) ने रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना स्वेच्छा से भारत में सोना लाया था, बहुमत से माना जाता है कि विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम विदेशी मुद्रा की सुरक्षा और संरक्षण के लिए डिज़ाइन किया गया है जो एक विकासशील देश के आर्थिक जीवन के लिए आवश्यक है और इसलिए प्रावधानों को तस्करी को समाप्त करने के उद्देश्य से सख्त होना चाहिए। इसलिए, कानून के उद्देश्य और उद्देश्य की पृष्ठभूमि में, यदि आवश्यक निहितार्थ द्वारा मेंस रिया के तत्व को लागू नहीं किया जाता है, तो तस्करी को रोकने के लिए एक साधन के रूप में इसकी प्रभावशीलता पूरी तरह से निराश हो जाएगी।

118. लेकिन सुब्बा राव, जे. ने असहमति व्यक्त की और इस प्रकार कहा: (एससीआर पृष्ठ 139)

"... केवल यह तथ्य कि एक कानून का उद्देश्य कल्याणकारी गतिविधियों को बढ़ावा देना या गंभीर सामाजिक बुराइयों को मिटाना है, अपने आप में इस सवाल का निर्णायक नहीं है कि दोषी दिमाग के तत्व को अपराध के अवयवों से बाहर रखा गया है या नहीं। यह भी जांच करना आवश्यक है कि क्या किसी व्यक्ति को सख्त दायित्व के तहत रखकर एक कानून उसे कानून के प्रवर्तन में राज्य की सहायता करने में मदद करता है: क्या वह कानून के पालन को बढ़ावा देने के लिए कुछ भी कर सकता है? आवश्यक निहितार्थ द्वारा मेन्स रीया को केवल एक कानून से बाहर रखा जा सकता है जहां यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि किसी कानून के उद्देश्य का कार्यान्वयन अन्यथा पराजित हो जाएगा और इसका बहिष्करण उन लोगों को कानून के प्रचार में सहायता करने के लिए अपने कार्य या चूक द्वारा सख्त दायित्व के तहत सक्षम बनाता है। अपराध पैदा करने वाले कानून में निहित अपराध की प्रकृति अधिनियम के उद्देश्य और उसके प्रावधानों पर निर्भर करती है।

119. इसके बाद, नाथूलाल बनाम नाथूलाल में भी इसी तरह का प्रश्न उठा। बहिष्करण के किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में मेन्स री के तत्व के बहिष्करण के संबंध में मध्य प्रदेश की स्थिति। सुब्बा राव, जे. ने एम.एच. जॉर्ज के अपने पहले के रुख को दोहराया और कहा: (एआईआर पृष्ठ 45) "मेन्स री एक आपराधिक

अपराध का एक अनिवार्य घटक है। निस्संदेह एक कानून मेन्स री के तत्व को बाहर कर सकता है, लेकिन यह इंग्लैंड में अपनाया गया निर्माण का एक अच्छा नियम है और भारत में भी स्वीकार किया जाता है कि एक वैधानिक प्रावधान का निर्माण सामान्य कानून के अनुरूप अपराध पैदा करता है, न कि इसके खिलाफ, जब तक कि कानून स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा पुरुषों को बाहर न करे। केवल यह तथ्य कि कानून का उद्देश्य कल्याणकारी गतिविधियों को बढ़ावा देना या एक गंभीर सामाजिक बुराई को मिटाना है, अपने आप में इस सवाल का निर्णायक नहीं है कि क्या दोषी दिमाग के तत्व को अपराध के अवयवों से बाहर रखा गया है। आवश्यक निहितार्थ द्वारा इसे केवल एक कानून से बाहर रखा जा सकता है जहां यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि कानून के उद्देश्य का कार्यान्वयन अन्यथा पराजित हो जाएगा।

38. वर्तमान आवेदन के रिकॉर्ड से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यद्यपि आवेदक को संबंधित कंपनी का पूर्व-कर्मचारी बताया गया है, लेकिन यह विवादित नहीं है कि यह आवेदक था जिसके आग्रह या अनुनय पर, शिकायतकर्ता ने प्लॉट खरीदने के लिए उक्त कंपनी के पक्ष में 4,00,000/- रुपये (केवल चार लाख रुपये) दिए हैं और शिकायतकर्ता के मामले के अनुसार न तो कोई बिक्री-विलेख किया गया है। उसके पक्ष में निष्पादित न ही उक्त राशि उसे वापस की गई है और जब वह अपने पैसे मांगता था, तो आवेदक द्वारा उसे दो बार गाली दी गई और धमकी दी गई। न तो शिकायतकर्ता उक्त कंपनी को जानता था

और न ही उसने आवेदक को सीधे उक्त कंपनी के पक्ष में दो चेक के माध्यम से 4 लाख रुपये दिए हैं। इस न्यायालय की राय में आवेदक के इस तरह के कृत्य प्रथम दृष्टया धोखाधड़ी, धोखे और मासिक धर्म के बराबर हैं।

39. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि कुछ स्थितियों में कॉर्पोरेट घूँघट को छोड़ा या उठाया जा सकता है। सिद्धांत के पीछे का सिद्धांत एक बदलती अवधारणा है और यह अपने क्षितिज का विस्तार कर रहा है जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य बनाम रेणुसागर पावर कंपनी में आयोजित किया गया था। उक्त निर्णय का अनुपात स्पष्ट रूप से बताता है कि जब भी किसी कॉर्पोरेट इकाई को अन्यायपूर्ण और असमान उद्देश्य के लिए दुरुपयोग किया जाता है, तो अदालत पर्दा उठाने और वास्तविकताओं को देखने में संकोच नहीं करेगी ताकि उन व्यक्तियों की पहचान की जा सके जो दोषी और उत्तरदायी हैं।

40. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रस्तुतियों में सार पाता है कि धारा 420, 504, 506 भ० द० वि० के तहत अपराधों के लिए प्रथम दृष्टया आवेदक के खिलाफ मामला बनता है और धारा 420, 504, 506 भ० द० वि० की सामग्री प्रथम दृष्टया आवेदक की ओर आकर्षित होती है।

41. अब, यह न्यायालय इस मुद्दे पर आता है कि क्या इस न्यायालय के लिए द० प्र० सं० की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का

प्रयोग करना उचित है, उस चरण में कार्यवाही को रद्द करना जब मजिस्ट्रेट ने केवल आवेदकों के खिलाफ प्रक्रिया जारी की है और मुकदमा शुरू होना बाकी है, केवल आवेदकों के वकील द्वारा की गई प्रस्तुति पर कि विरोधी पक्ष नंबर 2 द्वारा शुरू किया गया आपराधिक मामला न केवल दुर्भावनापूर्ण है। लेकिन कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग भी। उपर्युक्त मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नलिखित निर्णयों में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है:

(i) आर पी कपूर बनाम पंजाब राज्य; एआईआर 1960 एससी 866,

(ii) हरियाणा राज्य और अन्य। बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य; 1992 सुप्य (1) एससीसी 335,

(iii) बिहार राज्य और बिहार बनाम पी.पी. शर्मा और अन्य; 1992 सुप्य (1) एससीसी 222,

(iv) झंडू फार्मास्युटिकल्स वर्क्स लिमिटेड और अन्य। बनाम मोहम्मद शरीफुल हक और अनर.; 2005 (1) एससीसी 122, और

(v) एमएन ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव; 2009 (9) एससीसी 682।

42. आर.पी. कपूर (सुप्रा) के मामले में, अनुच्छेद 6 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:

"अपील के गुण-दोष से निपटने से पहले संहिता की धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति की प्रकृति और दायरे पर विचार करना आवश्यक है। उक्त धारा उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अंतर्निहित शक्ति को बचाती है जो इस

संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी बनाने या किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस अंतर्निहित शक्ति का उपयोग विशेष रूप से संहिता के अन्य प्रावधानों द्वारा कवर किए गए मामलों के संबंध में नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामले में जिस मजिस्ट्रेट के समक्ष संहिता की धारा 173 के तहत पुलिस रिपोर्ट दायर की गई है, उसने अभी तक उक्त रिपोर्ट के गुण-दोष पर अपना दिमाग नहीं लगाया है और अपीलकर्ता के पक्ष में यह माना जा सकता है कि कार्यवाही को रद्द करने का उसका अनुरोध वर्तमान चरण में संहिता के किसी भी विशिष्ट प्रावधान के अंतर्गत नहीं आता है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग किसी उचित मामले में कार्यवाही को रद्द करने के लिए किया जा सकता है या तो किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए। आमतौर पर एक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ स्थापित आपराधिक कार्यवाही पर संहिता के प्रावधानों के तहत मुकदमा चलाया जाना चाहिए, और उच्च न्यायालय वार्ताकारी चरण में उक्त कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक होगा। इस अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले किसी भी अनम्य नियम को निर्धारित करना संभव, वांछनीय या समीचीन नहीं है। हालांकि, हम मामलों की कुछ श्रेणियों को इंगित कर सकते हैं जहां कार्यवाही को रद्द करने के लिए अंतर्निहित

अधिकार क्षेत्र का उपयोग किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां उच्च न्यायालय के लिए यह विचार करना संभव हो सकता है कि किसी आरोपी व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही की संस्था या जारी रखना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है या यह कि आक्षेपित कार्यवाही को रद्द करने से न्याय का अंत सुरक्षित होगा। यदि विचाराधीन आपराधिक कार्यवाही किसी अभियुक्त व्यक्ति द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध के संबंध में है और यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि संस्था के खिलाफ एक कानूनी रोक है या उक्त कार्यवाही को जारी रखना उच्च न्यायालय के लिए उस आधार पर कार्यवाही को रद्द करना उचित होगा। उदाहरण के लिए, अपेक्षित मंजूरी के अभाव में इस श्रेणी के तहत मामले प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ऐसे मामले भी सामने आ सकते हैं जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, कथित अपराध का गठन नहीं करते हैं; ऐसे मामलों में साक्ष्य की सराहना करने का कोई प्रश्न नहीं उठता है; यह केवल शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को देखने का मामला है ताकि यह तय किया जा सके कि कथित अपराध का खुलासा किया गया है या नहीं। ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय के लिए यह कहना वैध होगा कि आरोपी व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक अदालत की प्रक्रिया जारी करने की अनुमति देना स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण होगा। मामलों की एक तीसरी श्रेणी जिसमें उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र को सफलतापूर्वक

लागू किया जा सकता है, भी उत्पन्न हो सकता है। इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले मामलों में, आरोपी व्यक्ति के खिलाफ लगाए गए आरोप कथित अपराध का गठन करते हैं, लेकिन मामले के समर्थन में या तो कोई कानूनी सबूत नहीं जोड़ा जाता है या स्पष्ट रूप से या स्पष्ट रूप से आरोप साबित करने में विफल रहता है। मामलों के इस वर्ग से निपटने में एक ऐसे मामले के बीच अंतर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है जहां कोई कानूनी सबूत नहीं है या जहां सबूत हैं जो स्पष्ट रूप से और स्पष्ट रूप से लगाए गए आरोपों के साथ असंगत हैं और ऐसे मामले जहां कानूनी सबूत हैं जो इसकी सराहना पर आरोप का समर्थन कर सकते हैं या नहीं कर सकते हैं। धारा 561-ए के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय इस बात की जांच शुरू नहीं करेगा कि विचाराधीन साक्ष्य विश्वसनीय हैं या नहीं। यह मुकदमे की सुनवाई का कार्य है, और आमतौर पर यह किसी भी पक्ष के लिए खुला नहीं होगा कि वह उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग करे और यह तर्क दे कि सबूतों की उचित सराहना पर आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप कायम नहीं रहेंगे। मोटे तौर पर कहा गया है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के मामले में धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र की प्रकृति और दायरा है, और यह बिंदु पर न्यायिक निर्णयों का प्रभाव है (देखें: श्रीपाद जी चंदावरकर एआईआर 1928 बोम 184, जगत ओहंद्रा मोजुमदार बनाम रानी महारानी आईएलआर 26 कैल 786), डॉ. शंकर सिंह पंजाब राज्य 56 पुन एलआर 54: (एआईआर

1954 पुंज 193), नृपेंद्र भूषण रे बनाम गोविंद बंधु मजूमदार, एआईआर 1924 कैल 1018 और रामनाथन चेट्टियार वी. के. शिवराम सुब्रह्मण्य अय्यर आईएलआर 47 मैड 722: (एआईआर 1925 मैड 39)।

43. हरियाणा राज्य (सुप्रा) के मामले में, शीर्ष न्यायालय द्वारा पैराग्राफ 105 में निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:

"105. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति के प्रयोग या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, जिन्हें हमने ऊपर निकाला और पुनः प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के माध्यम से मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं जिनमें ऐसी शक्ति का उपयोग या तो किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से प्रसारित और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिसमें ऐसी शक्ति का उपयोग किया जाना चाहिए।

1. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता

में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

2. जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, तो संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हैं, सिवाय संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत।

3. जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए अकाट्य आरोप और उसी के समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी भी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

4. जहां एफ.आई.आर. में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध हैं, वहां संहिता की धारा 155 (2) के तहत विचार किए गए मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है।

5. जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

6. जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की

जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था को कानूनी रोक लगाई गई है और कार्यवाही को जारी रखना और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

7. जहां आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण तरीके से की जाती है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध के लिए कहर बरपाने के इरादे से शुरू की जाती है और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे दंडित करने की दृष्टि से की जाती है।

44. बिहार राज्य (सुप्रा) के मामले में, अनुच्छेद 22 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणी की गई है। :-

पीठ ने कहा, "सत्ता के दुर्भावनापूर्ण इस्तेमाल का सवाल तभी महत्वपूर्ण है जब आपराधिक अभियोजन बाहरी कारणों से और अनधिकृत उद्देश्य के लिए शुरू किया गया हो। इस मामले में ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे पता चले कि जिस तारीख को आरके सिंह द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गई थी, उस तारीख को वह पूर्वाग्रह से सक्रिय थे या उनके पास दुर्भावनापूर्ण तरीके से काम करने का कोई कारण था. प्रतिवादियों के खिलाफ मामला दर्ज करने का प्रमुख उद्देश्य प्राथमिकी में निहित आरोपों की जांच करना था और अदालत के समक्ष आरोप पत्र पेश करने के लिए आरोपों के समर्थन में पर्याप्त सामग्री होने की स्थिति में। यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि मामला दर्ज करने का प्रमुख उद्देश्य

प्रतिवादियों का चरित्र हनन करना या उन्हें परेशान करना और अपमानित करना था। बिहार राज्य बनाम जेएसी सल्थाना और अन्य, [1980] 2 एससीआर 16 में इस न्यायालय ने कहा है कि जब पुलिस स्टेशन में सूचना दर्ज की जाती है और अपराध दर्ज किया जाता है, तो शिकायतकर्ता की दुर्भावना गौण महत्व की होगी। यह जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री है जो आरोपी व्यक्ति के भाग्य का फैसला करती है। हरियाणा राज्य और अन्य में यह न्यायालय 1990 (4) एससी 650 ने राज्य सरकार को चौधरी भजन लाल के खिलाफ नए सिरे से जांच करने की अनुमति दी, इस तथ्य के बावजूद कि अभियोजन धर्म पाल के इशारे पर दर्ज किया गया था, जो भजन लाल के विरोधी थे।

45. इंडू फार्मास्युटिकल्स वर्क्स लिमिटेड (सुप्रा) के मामले में, शीर्ष न्यायालय द्वारा पैराग्राफ संख्या 8 से 12 में निम्नलिखित देखा गया है:

"8. इस प्रकृति के मामले में संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग अपवाद है, न कि नियम। यह धारा उच्च न्यायालय को कोई नई शक्तियां प्रदान नहीं करती है। यह केवल उस अंतर्निहित शक्ति को बचाता है जो संहिता के अधिनियमन से पहले न्यायालय के पास थी। इसमें तीन परिस्थितियों की परिकल्पना की गई है जिनके तहत अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जा सकता है, अर्थात्, (i) संहिता के तहत एक आदेश को प्रभावी बनाने के लिए, (ii) अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, और (iii) अन्यथा न्याय के

अंत को सुरक्षित करने के लिए। ऐसा कोई लचीला नियम बनाना न तो संभव है और न ही वांछनीय है जो अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करेगा। प्रक्रिया से संबंधित कोई भी विधायी अधिनियमन उन सभी मामलों के लिए प्रावधान नहीं कर सकता है जो संभवतः उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए, न्यायालयों के पास कानून के व्यक्त प्रावधानों के अलावा अंतर्निहित शक्तियां हैं जो कानून द्वारा उन पर लगाए गए कार्यों और कर्तव्यों के उचित निर्वहन के लिए आवश्यक हैं। यही वह सिद्धांत है जो उस धारा में अभिव्यक्ति पाता है जो केवल उच्च न्यायालयों की अंतर्निहित शक्तियों को पहचानता है और संरक्षित करता है। सभी न्यायालय, चाहे वे सिविल हों या फौजदारी, किसी स्पष्ट प्रावधान के अभाव में, जैसा कि उनके संविधान में अंतर्निहित है, न्याय प्रशासन के दौरान किसी गलती को सही करने और सुधारने के लिए आवश्यक सभी ऐसी शक्तियां इस सिद्धांत पर धारण करती हैं कि "क्वांडो लेक्स एलिक्विड एलिकुई स्वीकार करें और किसी व्यक्ति को कुछ भी दें, जिसके बिना वह अस्तित्व में नहीं रह सकता)। धारा के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, अदालत अपील या संशोधन की अदालत के रूप में कार्य नहीं करती है। धारा के अंतर्गत अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग संयम पूर्वक, सावधानीपूर्वक और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और केवल तभी किया जाना चाहिए जब इस तरह के अभ्यास को अनुभाग में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया जाए। जिस प्रशासन में केवल न्यायालय मौजूद हैं, उसके लिए वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए

इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। न्यायालय का अधिकार न्याय की उन्नति के लिए मौजूद है और यदि अन्याय पैदा करने के लिए उस अधिकार का दुरुपयोग करने का कोई प्रयास किया जाता है, तो अदालत के पास दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है। यह अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा कि किसी भी कार्रवाई की अनुमति दी जाए जिसके परिणामस्वरूप अन्याय हो और न्याय को बढ़ावा देने से रोका जा सके। शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायालय किसी भी कार्यवाही को रद्द करना उचित होगा यदि उसे लगता है कि इसे शुरू करना/जारी रखना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या इन कार्यवाहियों को रद्द करना अन्यथा न्याय के उद्देश्य को पूरा करेगा। जब शिकायत द्वारा किसी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो अदालत तथ्य के सवाल की जांच कर सकती है। जब किसी शिकायत को रद्द करने की मांग की जाती है, तो यह आकलन करने के लिए सामग्री को देखने की अनुमति है कि शिकायतकर्ता ने क्या आरोप लगाया है और क्या आरोपों को पूरी तरह से स्वीकार किए जाने के बावजूद कोई अपराध बनता है।

9. आर. पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1960 एससी 866) इस न्यायालय ने मामलों की कुछ श्रेणियों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जहां कार्यवाही को रद्द करने के लिए अंतर्निहित शक्ति का उपयोग किया जा सकता है और किया जाना चाहिए।

(i) जहां यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि संस्था के खिलाफ एक कानूनी रोक है या जारी है जैसे कि मंजूरी की कमी;

(ii) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप या शिकायत को उसके अंकित मूल्य पर लिया गया है और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया है, कथित अपराध नहीं है;

(iii) जहां आरोप एक अपराध का गठन करते हैं, लेकिन कोई कानूनी सबूत नहीं जोड़ा गया है या स्पष्ट रूप से प्रस्तुत सबूत आरोप को साबित करने में विफल रहते हैं।

10. अंतिम मामले से निपटने में, एक ऐसे मामले के बीच अंतर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है जहां कोई कानूनी सबूत नहीं है या जहां सबूत हैं जो स्पष्ट रूप से लगाए गए आरोपों के साथ असंगत हैं, और एक ऐसा मामला जहां कानूनी सबूत हैं, जो सराहना पर, आरोपों का समर्थन कर सकते हैं या नहीं भी कर सकते हैं। संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का उपयोग करते समय, उच्च न्यायालय आमतौर पर यह जांच नहीं करेगा कि विचाराधीन साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं या क्या इसकी उचित सराहना पर आरोप कायम नहीं होगा। यह ट्रायल जज का कार्य है। न्यायिक प्रक्रिया दमन या अनावश्यक उत्पीड़न का साधन नहीं होनी चाहिए। अदालत को विवेकाधिकार का प्रयोग करने में सतर्क और विवेकपूर्ण होना चाहिए और प्रक्रिया जारी करने से पहले सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए, ऐसा न हो कि यह किसी भी व्यक्ति को अनावश्यक रूप से परेशान करने के लिए प्रतिशोध का इस्तेमाल करने के लिए एक निजी शिकायतकर्ता के हाथों में एक साधन होगा। साथ ही यह धारा किसी आरोपी

को अभियोजन को शॉर्ट-सर्किट करने और उसकी अचानक मौत के लिए सौंपा गया साधन नहीं है।

11. संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग के दायरे और उन मामलों की श्रेणियां जहां उच्च न्यायालय किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए संज्ञेय अपराधों से संबंधित अपनी शक्ति का उपयोग कर सकता है, इस न्यायालय द्वारा हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल (1992, सप्प (1) 335) में कुछ विस्तार से निर्धारित किया गया था। हालांकि, सावधानी बरतने की बात कही गई थी कि शक्ति का प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में। इस न्यायालय द्वारा इंगित चित्रात्मक श्रेणियां इस प्रकार हैं:

"(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जाता है।

(3) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए अकाट्य आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी भी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां प्राथमिकी में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, वहां संहिता की धारा 155 (2) के तहत विचार किए गए मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संस्था को संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में निहित कोई स्पष्ट कानूनी रोक है और कार्यवाही को जारी रखना और/या जहां संबंधित संहिता या अधिनियम में एक विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण तरीके से की जाती है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अभियुक्त पर प्रतिशोध के लिए कहर बरपाने के इरादे से शुरू

की जाती है और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे दंडित करने की दृष्टि से की जाती है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पास जो शक्तियां हैं, वे बहुत व्यापक हैं और शक्ति के बहुत ही लचीलेपन के लिए इसके प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। न्यायालय को यह सुनिश्चित करने के लिए सावधान रहना चाहिए कि इस शक्ति का प्रयोग करने में उसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित है। एक वैध अभियोजन को दबाने के लिए अंतर्निहित शक्ति का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। किसी राज्य का सर्वोच्च न्यायालय होने के नाते उच्च न्यायालय को आम तौर पर ऐसे मामले में प्रथम दृष्टया निर्णय देने से बचना चाहिए जहां पूरे तथ्य अधूरे और धुंधले हैं, खासकर जब सबूत एकत्र नहीं किए गए हैं और अदालत के समक्ष पेश नहीं किए गए हैं और इसमें शामिल मुद्दे, चाहे तथ्यात्मक या कानूनी, परिमाण के हैं और पर्याप्त सामग्री के बिना उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखे जा सकते हैं। बेशक, उन मामलों के संबंध में कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है जिनमें उच्च न्यायालय किसी भी स्तर पर कार्यवाही को रद्द करने के अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का उपयोग करेगा। चौधरी (1992 (4) एससीसी 305), और रघुबीर सरन (डॉ.) बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1964 एससी 1)। उच्च न्यायालय के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह सभी संभावनाओं के आलोक में शिकायतकर्ता के मामले का विश्लेषण करे ताकि यह निर्धारित किया जा

सके कि क्या दोषसिद्धि टिकाऊ होगी और ऐसे परिसर में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कार्यवाही रद्द की जानी है। इसके समक्ष सामग्री का आकलन करना और यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि शिकायत पर कार्यवाही नहीं की जा सकती है। शिकायत पर शुरू की गई कार्यवाही में, कार्यवाही को रद्द करने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग केवल उस मामले में किया जाता है जहां शिकायत किसी भी अपराध का खुलासा नहीं करती है या तुच्छ, कष्टप्रद या दमनकारी है। यदि शिकायत में लगाए गए आरोप उस अपराध का गठन नहीं करते हैं जिसका मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया है, तो उच्च न्यायालय के लिए संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए इसे रद्द करना खुला है। हालांकि, यह आवश्यक नहीं है कि मुकदमे से पहले मामले का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि मामला दोषसिद्धि या बरी होने में समाप्त होगा या नहीं। शिकायत को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि शिकायतकर्ता की शपथ पर दिए गए बयान के आलोक में आरोपों पर विचार करने पर कि अपराध या अपराध के अवयवों का खुलासा किया गया है और यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि शिकायत दुर्भावनापूर्ण, तुच्छ या खेदजनक है, तो उस स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का कोई औचित्य नहीं होगा। जब पुलिस स्टेशन में कोई सूचना दर्ज की जाती है और अपराध दर्ज किया जाता है, तो शिकायतकर्ता की दुर्भावना गौण महत्व की होगी। यह जांच के दौरान एकत्र की गई

सामग्री और अदालत में पेश किए गए सबूत हैं जो आरोपी व्यक्ति के भाग्य का फैसला करते हैं। सूचना देने वाले के खिलाफ दुर्भावना के आरोपों का कोई मतलब नहीं है और यह अपने आप में कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। (देखें: धनलक्ष्मी बनाम आर प्रसन्ना कुमार (1990 सुप्य एससीसी 686), बिहार राज्य बनाम पी पी शर्मा (एआईआर 1996 एससी 309), रूपन देओल बजाज बनाम कंवर पाल सिंह गिल (1995 (6) एससीसी 194), केरल राज्य बनाम ओ सी कुट्टन (एआईआर 1999 एससी 1044), उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ओ पी शर्मा (1996 सतविंदर कौर बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार) (एआईआर 1996 एससी 2983) और राजेश बजाज बनाम राज्य राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली (1999 (3) एससीसी 259।

12. उपरोक्त स्थिति को हाल ही में कर्नाटक राज्य बनाम एम देवेंद्रप्पा और अन्य (2002 (3) एससीसी 89) में उजागर किया गया था। (जोर दिया गया)

46. इसके बाद, 2009 (9) में रिपोर्ट किए गए एमएन ओझा बनाम आलोक कुमार श्रीवास्तव के मामले में एससीसी 682 ने अनुच्छेद 25, 27, 28, 29 और 30 में द० प्र० स० की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग के साथ-साथ ऐसे अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के बारे में टिप्पणियां की हैं: -

"25. यदि विद्वान एसडीजेएम ने तथ्यों, परिस्थितियों और घटनाओं के अनुक्रम के

साथ-साथ शिकायतकर्ता द्वारा शिकायत के साथ दायर दस्तावेजों पर अपना दिमाग लगाया होता, तो निश्चित रूप से उन्होंने शिकायत को खारिज कर दिया होता। उन्हें एहसास हुआ होगा कि शिकायत उसी लेनदेन के संबंध में शिकायतकर्ता और अन्य के खिलाफ बैंक द्वारा दर्ज की गई प्राथमिकी का केवल एक काउंटर ब्लास्ट था।

26. पेप्सी फूड्स, लिमिटेड और एनएनआर में यह अदालत बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य। [(1998)5 एससीसी 749 आयोजित:

28. आपराधिक मामले में आरोपी को तलब करना एक गंभीर मामला है। आपराधिक कानून को निश्चित रूप से गति में स्थापित नहीं किया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि शिकायतकर्ता को आपराधिक कानून लागू करने के लिए शिकायत में अपने आरोपों का समर्थन करने के लिए केवल दो गवाह लाने होंगे। अभियुक्त को तलब करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश को प्रतिबिंबित करना चाहिए कि उसने मामले के तथ्यों और उस पर लागू कानून पर अपना दिमाग लगाया है। उन्हें शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति और उनके समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी दोनों सबूतों की जांच करनी होगी और क्या यह शिकायतकर्ता के लिए आरोपी को आरोप घर लाने में सफल होने के लिए पर्याप्त होगा। ऐसा नहीं है कि आरोपी को तलब करने से पहले प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करते समय मजिस्ट्रेट मूक दर्शक बना रहता है। मजिस्ट्रेट को रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच करनी

होगी और यहां तक कि आरोपों की सत्यता का पता लगाने के लिए जवाब प्राप्त करने के लिए शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से खुद सवाल पूछ सकते हैं और फिर जांच कर सकते हैं कि क्या सभी या किसी भी आरोपी द्वारा प्रथम दृष्टया कोई अपराध किया गया है।

27. यह मामला विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा दिमाग का उपयोग न करने का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध भौतिक दस्तावेजों को छोड़ दें, शिकायत की सामग्री की भी जांच नहीं की। अपीलकर्ताओं को तलब करने से पहले प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करने के समय विद्वान मजिस्ट्रेट वास्तव में मूक दर्शक बने रहे।

28. उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर याचिका का निपटारा करने में स्पष्ट त्रुटि की, यहां तक कि उन बुनियादी तथ्यों पर भी ध्यान दिए बिना जो उसके विचार के लिए उसके समक्ष रखे गए थे।

29. यह सच है कि अदालत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए आरोपों की सच्चाई या अन्यथा में नहीं जा सकती है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतकी सराहना नहीं कर सकती है। सामान्यतया, उच्च न्यायालय प्रारंभिक चरण में जब जांच/विवेचना लंबित हो, आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

30. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में उच्च

न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप केवल तभी हो सकता है जब इस तरह के हस्तक्षेप के लिए एक स्पष्ट मामला बनाया गया हो। उच्च न्यायालय द्वारा प्रारंभिक चरण में भी बार-बार और अवांछित हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप आपराधिक मामले में जांच की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो सकती है जो सार्वजनिक हित में नहीं हो सकता है। लेकिन साथ ही उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने से इनकार नहीं कर सकता है यदि न्याय के हित की आवश्यकता है, जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिसके आधार पर कोई भी निष्पक्ष और सूचित पर्यवेक्षक कभी भी कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार के अस्तित्व के बारे में उचित और उचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है। ऐसे मामलों में, अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने से इनकार करने से समान रूप से अन्याय हो सकता है, विशेष रूप से उन मामलों में जहां शिकायतकर्ता दबाव डालने और शिकायत में आरोपी के रूप में शामिल व्यक्तियों को परेशान करने के उद्देश्य से आपराधिक कानून को गति देता है। (बल डाला गया)

47. मोहम्मद के मामले में अलाउद्दीन खान बनाम सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि उच्च न्यायालय के पास द० प्र० स० की धारा 482 के तहत कार्यवाही में साक्ष्य की सराहना करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 15 से 17 नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"15. उच्च न्यायालय को यह देखना चाहिए था कि जब अपीलकर्ता की शिकायत में एक

विशिष्ट शिकायत यह थी कि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने धारा 323, 379 के साथ धारा 34 भ० द० वि० के तहत दंडनीय अपराध किए हैं, तो जांच किए जाने वाले प्रश्न यह है कि क्या शिकायत में इन दो अपराधों के होने के आरोप हैं या नहीं। दूसरे शब्दों में, यह देखने के लिए कि क्या आरोपी के खिलाफ संज्ञेय होने के लिए कोई प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं, अदालत को केवल शिकायत में लगाए गए आरोपों को देखने की आवश्यकता है। इस भौतिक प्रश्न पर उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष के अभाव में, लागू आदेश कानूनी रूप से अस्थिर है।

16. दूसरी त्रुटि यह है कि उच्च न्यायालय ने पैरा 6 में कहा कि घटना के बिंदु पर गवाहों के बयानों में विरोधाभास हैं।

17. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय के पास दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 (संक्षेप में "द० प्र० स०") के तहत कार्यवाही के साक्ष्य की सराहना करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था क्योंकि क्या गवाहों के बयानों में विरोधाभास या / और विसंगतियां हैं, यह अनिवार्य रूप से साक्ष्य की सराहना से संबंधित मुद्दा है और न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा परीक्षण के दौरान इसकी जांच की जा सकती है जब सभी साक्ष्य पक्षों द्वारा जोड़े जाते हैं। इस मामले में वह चरण आना अभी बाकी है। (बल डाला गया)

48. शीर्ष अदालत ने नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी बनाम केरल के मामले में अपने एक अन्य

फैसले में आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य। 2020 में रिपोर्ट की गई सुप्रीम (एससी) 45, भ० द० वि० की धारा 406 और 420 के तहत एक मामले से निपटने के लिए कहा गया है कि अदालत को आरोप के संबंध में साक्ष्य के प्रामाणिक मूल्य में गहराई से जाने की आवश्यकता नहीं है। उसे केवल यह देखना है कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। बयान/सामग्री की सत्यता परीक्षण का विषय है और आरोप तय करते समय इसकी जांच किए जाने की आवश्यकता नहीं है। शीर्ष अदालत ने आगे कहा कि गवाहों द्वारा दिए गए बयानों की सत्यता मुकदमे का सवाल है और आरोप तय करते समय इसे निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। गुण-दोष के आधार पर साक्ष्य की सराहना न्यायालय द्वारा तभी की जानी चाहिए जब आरोप तय कर दिए गए हों और विचारण शुरू हो गया हो। हालांकि, आरोप तय करने के उद्देश्य से अदालत को प्रथम दृष्टया यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि मुकदमे की शुरुआत के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद है। शीर्ष अदालत ने पैराग्राफ संख्या 21, 22 और 24 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"अपीलकर्ता ने आँकार नाथ मिश्रा बनाम द स्टेट, (2008) 2 एससीसी 561 में इस न्यायालय के दो-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले पर भरोसा किया है ताकि इस बिंदु को साबित किया जा सके कि भ० द० वि० की धारा 406 और 420 के तत्व स्थापित नहीं हुए हैं। आरोप तय करने के चरण में एक अदालत द्वारा मूल्यांकन की प्रकृति से निपटते हुए इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

"यह उचित है कि आरोप तय करने के चरण में अदालत को रिकॉर्ड पर सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे सामने आने वाले तथ्यों ने कथित अपराध का गठन करने वाले सभी अवयवों के अस्तित्व का खुलासा किया है। उस स्तर पर, अदालत से रिकॉर्ड पर सामग्री के प्रामाणिक मूल्य में गहराई से जाने की उम्मीद नहीं की जाती है। जिस बात पर विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है और आरोपी को दोषी ठहराने का आधार नहीं बनाया गया है। उस स्तर पर, यहां तक कि उस सामग्री पर मजबूत संदेह भी स्थापित होता है जो अदालत को कथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यात्मक तत्वों के अस्तित्व के बारे में एक अनुमानित राय बनाने के लिए प्रेरित करता है, उस अपराध के संबंध में आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने को सही ठहराएगा। (बल डाला गया)

वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने अतिरिक्त आरोप तय करने का निर्देश देते हुए जांच के बाद रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री और सबूतों का मूल्यांकन किया है और कहा है:

अदालत ने कहा, 'एलडब्ल्यू1 शिकायतकर्ता के पिता हैं, जिन्होंने कहा है कि उनके दामाद यानी पहले आरोपी ने वादा किया था कि वह ब्रिटेन में उनकी बेटी की देखभाल करेगा और ब्रिटेन में डॉक्टर की नौकरी देने का वादा किया और उक्त उद्देश्य के लिए 5 लाख रुपये का दावा किया और उसे प्राप्त हुआ और वह अपनी बेटी को ब्रिटेन ले गया। उन्होंने कहा कि उनके दामाद ने उन्हें विश्वास दिलाया

और बड़ों की उपस्थिति में 5 लाख रुपये प्राप्त किए। वह कहता है कि वह अपने दामाद द्वारा की गई धोखाधड़ी के बारे में उल्लेख नहीं कर सका, जब उसकी पहले जांच की गई थी। एलडब्ल्यू 13, जो एक स्वतंत्र गवाह है, भी एलडब्ल्यू 1 के संस्करण का समर्थन करता है और कहता है कि ए 1 को 5 लाख रुपये इस वादे के साथ प्राप्त हुए थे कि वह शिकायतकर्ता की बेटी को डॉक्टर की नौकरी दिलाएगा। उन्होंने कहा कि ए 1 ने एलडब्ल्यू 1 को धोखा दिया, यह कहते हुए कि वह नौकरी प्रदान करेगा और 5 लाख रुपये प्राप्त किए। LW14, भी एक स्वतंत्र गवाह है और उसने LW13 के संस्करण का समर्थन किया। उन्होंने आगे कहा कि ए 1 ने अपनी पत्नी और बच्चे को भारत में छोड़ दिया और 5 लाख रुपये प्राप्त करने के बाद चले गए।

इसलिए, एलडब्ल्यू 13 और 14 द्वारा बताए गए उपरोक्त तथ्यों से, प्रथम दृष्टया, एलडब्ल्यू 1 का संस्करण कि उसने ए 1 को इस वादे पर 5 लाख रुपये दिए कि वह अपनी बेटी को नौकरी प्रदान करेगा और ए 1 ने उसे कोई नौकरी नहीं दी और उसे धोखा दिया, एलडब्ल्यू 13 और 14 से समर्थन प्राप्त करता है। जब राशि A1 को नौकरी प्रदान करने के वादे के साथ सौंपी जाती है और जब वह नौकरी प्रदान करने में विफल रहता है और राशि वापस नहीं करता है, तो यह पता लगाया जा सकता है कि A1 का अपनी पत्नी को नौकरी प्रदान करने का कोई इरादा नहीं था और उसने उस उद्देश्य के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए राशि का उपयोग किया जिसके लिए उसने LW1 से राशि एकत्र की थी। जो भ० द० वि० की धारा 406 और 420

के तहत अपराधों को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त होगा। क्या एलडब्ल्यू.1 के उन्नत संस्करण में सच्चाई है और अपने पिछले बयान में इसका उल्लेख नहीं करने में उनकी चूक के क्या कारण रहे हैं, इस पर सुनवाई के समय निर्णय लिया जा सकता है।

रिकॉर्ड से यह भी सबूत है कि जांच अधिकारी द्वारा दायर अतिरिक्त आरोप पत्र ने निचली अदालत का ध्यान आकर्षित नहीं किया, जिसके कारण अतिरिक्त आरोप तय नहीं किए जा सके। (बल डाला गया)

24 गवाहों द्वारा दिए गए बयानों की सत्यता मुकदमे का प्रश्न है और आरोप तय करते समय इसे निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं है। गुण-दोष के आधार पर साक्ष्य की सराहना न्यायालय द्वारा तभी की जानी चाहिए जब आरोप तय कर दिए गए हों और विचारण शुरू हो गया हो। हालांकि, आरोप तय करने के उद्देश्य से अदालत को प्रथम दृष्टया यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि मुकदमे की शुरुआत के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद है। उच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों पर भरोसा किया है और निष्कर्ष निकाला है कि भ० द० वि० की धारा 406 और 420 के तहत अपराधों के तत्व आकर्षित होते हैं। उच्च न्यायालय ने उन कारणों को बताया है जिनके कारण आरोप जोड़ना आवश्यक हो गया है और इसलिए, आक्षेपित आदेश में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (बल डाला गया)

49. राजीव कौरव बनाम बालासाहब और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने 2020 में रिपोर्ट

की गई थी सुप्रीम (एससी) 143 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि द० प्र० स० की धारा 161 के तहत दर्ज बयानों के अपने आकलन के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का उच्च न्यायालय का निष्कर्ष स्वीकार्य नहीं है क्योंकि आरोपी के साक्ष्य को मुकदमे के चरण से पहले नहीं देखा जा सकता है। इसके संबंधित भाग निम्नानुसार पढ़े जाते हैं:

"यह अब स्पष्ट नहीं है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए द० प्र० स० की धारा 482 के तहत शक्ति का उपयोग केवल तभी होता है जब प्राथमिकी या चार्जशीट में लगाए गए आरोप कथित अपराध / अपराधों के तत्वों का गठन करते हैं। द० प्र० स० की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए है या अन्यथा न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए है। यह स्थापित कानून है कि अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में पेश किए गए सबूतों को आपराधिक कार्यवाही के प्रारंभिक चरण में बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, अदालत द्वारा नहीं देखा जा सकता है। यह कानून है कि उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए द० प्र० स० की धारा 482 के तहत दायर याचिका पर विचार करते समय सबूतों की सराहना नहीं कर सकता है। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से यह स्पष्ट है कि यदि अभियुक्त के खिलाफ कथित अपराध के अवयवों का खुलासा करने वाला प्रथम दृष्टया मामला बनता है, तो न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द नहीं कर सकता है।

7. प्रतिवादी संख्या 1 से 3 की ओर से पेश हुए वकील श्री शोएब आलम ने इस न्यायालय के कई निर्णयों पर भरोसा करते हुए कहा कि आरोप केवल मृतक के उत्पीड़न के मामले का खुलासा करते हैं। भ० द० वि० की धारा 306 और 107 की सामग्री नहीं बनाई गई है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है कि उत्तरदाताओं ने मृतक द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि धारा 107 भ० द० वि० के तहत परिभाषित उकसाना उकसाना है जो अपीलकर्ता द्वारा की गई शिकायत में गायब है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि यदि प्रतिवादी नंबर 1 से 3 के खिलाफ आरोप प्रथम दृष्टया नहीं बनते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि उन्हें आपराधिक मुकदमे का सामना करना चाहिए।

8. हम प्रतिवादी संख्या 1 से 3 की ओर से की गई प्रस्तुतियों से सहमत नहीं हैं। आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का उच्च न्यायालय का निष्कर्ष धारा 161 द० प्र० स० के तहत दर्ज बयानों के मूल्यांकन के आधार पर है। धारा 161 द० प्र० स० के तहत दर्ज गवाहों के बयान साक्ष्य में पूरी तरह से अस्वीकार्य होने के कारण अदालत द्वारा धारा 482 द० प्र० स० 1 के तहत दायर याचिका पर निर्णय लेते समय ध्यान में नहीं रखा जा सकता है।

9. इसके अलावा, उच्च न्यायालय को पता था कि गवाहों में से एक ने उल्लेख किया था कि मृतक ने उसे प्रतिवादी नंबर 1 से 3 द्वारा किए गए उत्पीड़न के बारे में सूचित किया था, जिसे वह सहन करने में सक्षम नहीं थी और

इसलिए आत्महत्या करना चाहती थी। उच्च न्यायालय ने द० प्र० स० की धारा 161 के तहत बयानों का आकलन करके आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में त्रुटि की।

10. हमने मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त नहीं की है। उच्च न्यायालय को इस स्तर पर कार्यवाही को रद्द नहीं करना चाहिए था, जिससे पूर्ण सुनवाई बाधित हो जाए, जिसमें प्रतिवादी नंबर 1 से 3 को अपनी बेगुनाही साबित करने का उचित अवसर मिलेगा। (बल डाला गया)

50. 2022 में रिपोर्ट किए गए यूपी राज्य बनाम अखिल शारदा और अन्य के मामले में माननीय सुप्रीम कोर्ट के नवीनतम फैसले में, एससीसी ऑनलाइन एससी 820 ने कहा है कि धारा 482 द० प्र० स० के तहत आवेदन पर फैसला करते समय, उच्च न्यायालय ने मिनी ट्रायल आयोजित किया है जो उस स्तर पर स्वीकार्य नहीं है। संबंधित भाग निम्नानुसार पढ़ता है:

"28. उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को देखने के बाद, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने द० प्र० स० की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने वस्तुतः एक मिनी ट्रायल आयोजित किया है, जो इस स्तर पर और द० प्र० स० की धारा 482 के तहत आवेदन पर फैसला करते समय स्वीकार्य नहीं है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रेणी में कहा गया है कि द० प्र० स० की धारा

482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा कोई मिनी ट्रायल नहीं किया जा सकता है और धारा 482 द० प्र० स० के तहत आवेदन पर निर्णय लेने के चरण में, उच्च न्यायालय विचार किए जा रहे विशेष मामले के साक्ष्य की सराहना नहीं कर सकता है। (देखें प्रतिमा (सुप्रा); थॉम (सुप्रा); राजीव (सुप्रा) और निहारिका (सुप्रा)।

29. उपरोक्त निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को मामले के तथ्यों पर लागू करना और जिस तरह से उच्च न्यायालय ने द० प्र० स० की धारा 482 के तहत याचिका की अनुमति दी है, हमारी राय है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश अस्थिर है। उच्च न्यायालय ने द० प्र० स० की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है।

30. यह भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि यहां तक कि उच्च न्यायालय ने भी राय दी है कि आरोप बहुत गंभीर हैं और इसमें आगे की जांच की आवश्यकता है और यही कारण है कि उच्च न्यायालय ने 2019 की प्राथमिकी संख्या 227 के संबंध में सीबीसीआईडी द्वारा जांच करने का निर्देश दिया है। हालांकि, सीबीसीआईडी को आगे की जांच करने का निर्देश देते हुए हाईकोर्ट ने जांच का दायरा सीमित कर दिया है। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य की सराहना और विचार नहीं किया है कि दोनों प्राथमिकियां अर्थात् 2018 की प्राथमिकी संख्या 260 और 2019 की 227 को आपस में

जुड़ा हुआ कहा जा सकता है और एक बड़ी साजिश के आरोपों की जांच करने की आवश्यकता है। यह आरोप लगाया गया है कि कुल मिलाकर आरोप बीयर/प्रतिबंधित वस्तुओं का परिवहन करने वाले ट्रकों के गायब होने के हैं जो आबकारी विभाग और आबकारी कानून के नियमों और विनियमों के अधीन हैं।

31- उच्च न्यायालय ने यह देखते हुए आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया है कि आबकारी विभाग को कोई नुकसान नहीं हुआ था। हालांकि, उच्च न्यायालय ने बड़ी साजिश के आरोपों की बिल्कुल सराहना नहीं की है। प्राथमिकी को विश्वकोश होने की आवश्यकता नहीं है (देखें सतपाल बनाम हरियाणा, (2018) 6 एससीसी 110 पैरा 7)

अन्यथा, यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि दो ट्रकों के गायब होने का आरोप जांच की शुरुआत थी और जब जांच के दौरान यह आरोप लगाया गया था कि पहले भी कई ट्रक प्रतिबंधित वस्तुओं का परिवहन नहीं कर रहे थे, तो प्राथमिकी को केवल दो ट्रकों के गायब होने और उसके बाद माल की वापसी तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए था। उच्च न्यायालय ने बड़ी साजिश के आरोपों की बिल्कुल भी सराहना नहीं की है और/या इस पर विचार नहीं किया है और यह कि दोनों प्राथमिकी/आपराधिक मामले आपस में जुड़े हुए हैं और मुख्य साजिश का हिस्सा हैं जो सच पाए जाने पर बहुत गंभीर है। हालांकि, हम कार्यवाही के इस चरण में कोई और टिप्पणी करने से बचते हैं क्योंकि हम केवल द० प्र० स० की धारा 482 के तहत आवेदन पर फैसला

करने के चरण में हैं और क्योंकि दोनों मामलों की सुनवाई अभी तक नहीं हुई है। इसलिए, हम आगे कोई टिप्पणी करने से बचते हैं जो किसी भी पक्ष के मामले को प्रभावित कर सकता है। यह कहना और उल्लेख करना पर्याप्त है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उच्च न्यायालय ने 2019 के आपराधिक मामले संख्या 5694 और 2018 पीएस के केस क्राइम नंबर 260 से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही जो पीएस - हुसैनगंज, जिला - लखनऊ में दर्ज है, को रद्द करने में एक गंभीर त्रुटि की है! (बल डाला गया)

51. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि आवेदक के वकील द्वारा दी गई प्रस्तुतियां तथ्य के शुद्ध प्रश्नों पर निर्णय लेने की मांग करती हैं, जिन पर केवल विचरण न्यायालय द्वारा पर्याप्त रूप से निर्णय लिया जा सकता है और ऐसा करते समय इस मामले में विचरण न्यायालय द्वारा कानून के बिंदुओं पर की गई प्रस्तुतियों पर भी अधिक उचित रूप से विचार किया जा सकता है। यह न्यायालय इसे उचित नहीं मानता है, और इसलिए वास्तविक परीक्षण शुरू होने से पहले प्रीट्रायल करने के लिए राजी नहीं किया जा सकता है। विभिन्न तथ्यों और परिस्थितियों की गहन चर्चा, जैसा कि वे अभियुक्त के खिलाफ लगाए गए आरोपों से निकलते हैं, अदालत द्वारा जानबूझकर इस कारण से टाला जा रहा है, ऐसा न हो कि इससे मुकदमे के दौरान किसी भी पक्ष के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा हो सकता है। लेकिन यह देखना पर्याप्त होगा कि शिकायत के मामले और नीचे दी गई अदालत के समक्ष दी गई

सामग्री के अवलोकन से इस स्तर पर अभियुक्त /आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है और आरोपी/आवेदक के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार प्रतीत होता है। मुझे आवेदक के खिलाफ पारित आदेशों को रद्द करने का कोई औचित्य नहीं दिखता है क्योंकि यह मामला सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी श्रेणी में नहीं आता है जो उन्हें रद्द करने को सही ठहरा सकता है। ऊपर उल्लिखित आवेदकों के वकील द्वारा भरोसा किए गए सभी निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों में स्पष्ट रूप से अलग-अलग हैं। दोनों आक्षेपित आदेशों की जांच करने पर, यह न्यायालय पाता है कि आक्षेपित आदेशों को पारित करते समय नीचे दी गई दोनों अदालतों ने इस तथ्य का स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि आवेदक के खिलाफ कथित धाराओं के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है।

52. अन्यथा भी, आवेदक ने समन, जमानती वारंट, गैर-जमानती वारंट की प्रक्रिया से बचकर निचली अदालत के आदेशों का मजाक उड़ाया है और धारा 82 द० प्र० स० के तहत कार्यवाही किसी भी तरह से उदारता, दया और न्याय पाने की हकदार नहीं है और वह भी उस अदालत से जो धारा 482 द० प्र० स० के तहत निहित शक्ति का उपयोग करती है।

53. ऊपर किए गए विचार-विमर्श और चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि शिकायत में लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध होने का खुलासा करते हैं और उन आरोपों को धारा 200 और 202 द० प्र० स०

के तहत दर्ज बयानों में समर्थन मिला है, जिसके आधार पर आवेदक के खिलाफ समन आदेश पारित किया गया है, जिसे विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा सही ठहराया गया है और इस प्रकार आक्षेपित आदेशों में द० प्र० स० की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

54. द० प्र० स० की धारा 482 के तहत वर्तमान आवेदन तदनुसार खारिज किया जाता है। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

55. आवेदकों के वकील द्वारा दायर लिखित निवेदन को रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

आदेश की तिथि: - 14.03.2023

(2023) 4 ILRA 1285

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

36921/2019

विनोद बिहारी लाल

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री राजीव लोचन शुक्ला,
श्री कुमार विक्रान्त, श्री मनीष तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - सीआरपीसी की धारा 482 के तहत आवेदन- उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स

और असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के तहत सत्र परीक्षण की संपूर्ण कार्यवाही- चुनौती दी गई- धोखाधड़ी और छल के माध्यम से आर्थिक अपराध करने वाले दो पुरुषों वाले गिरोह के खिलाफ आधार वाद- आईपीसी के अध्याय XVI, XVII और XXIII।

बी. गिरोह की परिभाषा- 1986 के अधिनियम की धारा 2(बी)- हिंसा या सार्वजनिक व्यवस्था में व्यवधान अकेले- अधिनियम के तहत परिभाषित गिरोह की अनिवार्य शर्त नहीं- परिभाषा में शब्द की अन्यथा व्याख्या- जुड़वां उद्देश्य- सार्वजनिक व्यवस्था में व्यवधान डालना- कोई भी अनुचित लौकिक, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करना- हिंसा के अभ्यास के माध्यम से या अन्यथा प्राप्त शब्द हो सकता है - अन्यथा ejusdem generis नहीं पढ़ा जाना चाहिए। (पैराग्राफ 17, 19 से 23)

आयोजित:

उपर्युक्त प्रावधान के अवलोकन से प्रतीत होता है कि हिंसा या सार्वजनिक व्यवस्था में व्यवधान अकेले ही गिरोह की अनिवार्य शर्त नहीं है, जैसा कि 1986 के अधिनियम के तहत परिभाषित किया गया है। यह व्यक्तियों के एक समूह की परिकल्पना करता है, जो अकेले या सामूहिक रूप से हिंसा, या हिंसा की धमकी या प्रदर्शन, या धमकी, या जबरदस्ती, या अन्यथा का प्रयोग करते हैं, जिसका उद्देश्य (i) सार्वजनिक व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न करना है; (ii) या अपने या किसी अन्य

व्यक्ति के लिए कोई अनुचित लौकिक, आर्थिक, भौतिक; या अन्य लाभ प्राप्त करना है, जो 1986 के अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (बी) के खंड (i) से (xxii) में उल्लिखित असामाजिक गतिविधियों में लिप्त हैं। (पैरा 17)

सी. मूल वाद में कार्यवाही में अंतरिम आदेश-प्रभाव- कार्यवाही पर रोक लगाने का निर्देश देने वाला स्थगन आदेश- अपराध में बलपूर्वक कदम या जमानत आदेश- यह अपराध को मिटा नहीं देता- 1986 के अधिनियम के तहत अभियोजन जारी रह सकता है। (पैराग्राफ 29)

आयोजित:

यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कार्यवाही पर रोक लगाने या बलपूर्वक कदम उठाने या अपराध में जमानत आदेश का प्रभाव अपराध को मिटाने के लिए नहीं है। यह केवल कुछ कार्यवाही को अधर में लटका देता है जो अपराध के आधार पर वाद में की जानी है या गिरफ्तारी जैसे कुछ परिणाम, जो अन्यथा होने वाले हैं। जमानत आदेश अभियुक्त के लिए वाद के लंबित रहने या न्यायालय के अन्य आदेशों के अधीन एक अस्थायी स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है, लेकिन अभियुक्त, जो जमानत पर है, वह दोष या मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहे मामले की छाया से मुक्त व्यक्ति नहीं है। कई बार, जमानत पर एक अभियुक्त को जमानतदारों के माध्यम से न्यायालय की रचनात्मक हिरासत में एक व्यक्ति के रूप में माना जाता है। (पैरा 29)

डी. अधिनियम 1986 की धारा 21 के नियम 5(2), 5(3), 16 एवं 17 के प्रावधानों का

अनिवार्य अनुपालन - नियम 16 में कहा गया है - गैंग चार्ट को मंजूरी देने वाले अधिकारी भी स्वतंत्र विचार से निष्कर्ष पर पहुंचें - आरोपी के विरुद्ध वाद दर्ज किया जाए - इस मामले में गैंग चार्ट को मंजूरी देने के तरीके में कोई त्रुटि नहीं पाई गई - आवेदन निरस्त। (पैरा 32 एवं 33)

आयोजित:

नियम 5(2) और 5(3) के अवलोकन से पता चलता है कि ये गैंग-चार्ट, इसकी तैयारी और अनुमोदन से संबंधित हैं। यहां गैंग-चार्ट में ऐसा कुछ भी नहीं दिखाया गया है, जो नियम 5(2) या 5(3) का उल्लंघन दर्शाता हो। नियम 16 के अनुसार केवल इतना ही आवश्यक है कि 1986 के अधिनियम के तहत वाद दर्ज करने की सिफारिश करने वाले अधिकारियों को स्वतंत्र विचार के साथ इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि 1986 के अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया जाना चाहिए। इसी तरह, गैंगचार्ट को अनुमति देने वाले अधिकारियों को भी स्वतंत्र विचार के साथ इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि गिराह की गतिविधियों के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध 1986 के अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया जाना चाहिए। उचित विचार के सूचकांक के रूप में काम करने के लिए विशेष शब्दों के प्रयोग का कोई नुस्खा नहीं है। (पैरा 32)

यह अवश्य देखा जाना चाहिए कि प्रस्तुत सामग्री के आधार पर गैंग-चार्ट को अनुमति प्रदान करने के चरण में, सक्षम प्राधिकारी को स्वयं को संतुष्ट करना चाहिए कि 1986 के

अधिनियम के तहत अभियोजन के लिए मामला बनता है। अभियोजन के लिए आगे की सामग्री का संग्रह बाद के चरण में होता है जब वाद पंजीकृत होने के बाद जांच प्रारंभ होती है। गैंग-चार्ट के अनुमोदन के चरण में, अनुमोदन करने वाले प्राधिकारी को आश्वस्त होना चाहिए कि 1986 के अधिनियम के तहत जांच के लिए वाद बनता है। (पैरा 33)

आवेदन निरस्त (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. भारतीय पशु कल्याण बोर्ड बनाम ए. नागराजा एवं अन्य, (2014) 7 एससीसी 47
2. यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम पीयूष कांति नंदी एवं अन्य, (2009) 8 एससीसी 605
3. अम्बुज पराग दुबे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2022 (4) एसीआर 3878
4. सुनील फूलचंद शाह बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2000) 3 एससीसी 409

(माननीय न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत इस आवेदन को विनोद बिहारी लाल, निदेशक (प्रशासन), सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, थाना-नैनी, जिला प्रयागराज द्वारा दायर किया गया है, जिसमें विशेष सत्र परीक्षण संख्या-54 वर्ष 2019, राज्य बनाम विनोद बी लाल और अन्य (अपराध संख्या-0850 वर्ष 2018 से उद्भूत)

की कार्यवाही, जो उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 के तहत, थाना-नैनी, जिला इलाहाबाद, विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर अधिनियम), इलाहाबाद की अदालत में लंबित है, को रद्द करने की मांग की गई है।

2. अपराध को जन्म देने वाली प्रथम सूचना रिपोर्ट जो जांच के बाद, आरोप-पत्र में परिणत हुई है, 28.07.2018 को थाना-नैनी, तत्कालीन जिला इलाहाबाद, अब प्रयागराज में प्रदीप कुमार मिश्रा, थानाध्यक्ष, थाना-नैनी, जिला प्रयागराज द्वारा दर्ज की गई थी। आक्षेपित आरोप-पत्र के आधार पर, विशेष सत्र परीक्षण संख्या-54 वर्ष 2019 को विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर अधिनियम), इलाहाबाद की फाइल पर दर्ज किया गया था। प्राथमिकी में कहा गया है कि थानाध्यक्ष अपने साथी कॉन्स्टेबलों और ड्राइवर के साथ इलाके में कानून व्यवस्था का ध्यान रखने और जांच करने के बाद थाना लौट आए। जिस दौरान वह क्षेत्र की देखभाल कर रहा था, उसे पता चला कि विनोद बी. लाल पुत्र बिहारी लाल निवासी कृषि परिसर, नैनी, प्रयागराज और डेविड दत्ता पुत्र एबी दत्ता निवासी 86, म्योराबाद, थाना-कैंट, प्रयागराज एक संगठित गिरोह है, जिसका मुखिया विनोद बी. लाल है। यह गिरोह, जिसमें दो व्यक्ति शामिल हैं, धोखाधड़ी और छल के माध्यम से आर्थिक अपराधों को अंजाम देने में कुशल है, और ये भारतीय दंड संहिता, 1860 के अध्याय XVI, XVII और XXII में वर्णित प्रकार के अपराध होने के कारण और ऐसे अपराधों के अपराध करके, गिरोह के सदस्य अपने लिए

व्यक्तिगत, भौतिक और आर्थिक लाभ प्राप्त करते हैं। ऐसा वे दस्तावेजों से छेड़छाड़ और फर्जीवाड़ा करके करते हैं। इस तरह के अपराधों के कमीशन से, वे धन जमा करते हैं और जनता के सदस्यों के बीच उनके डर और आतंक के कारण, कोई भी उनके खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करने या अदालत में गवाही देने का साहस नहीं जुटाता है।

3. प्राथमिकी में आगे कहा गया है कि विकास क्षेत्र की अनुमति के बिना काटजू रोड, शाहगंज में एक क्रिश्चियन पब्लिक स्कूल चलाने में दो आरोपियों के कृत्य के लिए, दिवाकर नाथ त्रिपाठी, उपाध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी, काशी क्षेत्र, इलाहाबाद द्वारा 21.07.2017 को एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उक्त प्राथमिकी के आधार पर अपराध संख्या-170 वर्ष 2017 के तहत धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471, 120-बी भ०द०वि०, थाना-शाहगंज के तहत दर्ज किया गया था। इसकी जांच की गई और सामग्री एकत्र करने के बाद जो सामने आया, 21.01.2018 को अदालत में आरोप पत्र दायर किया गया।

4. दिनांक 09.08.2017 को दिवाकर नाथ त्रिपाठी ने अपराध संख्या-476 वर्ष 2017 को धारा 406, 419, 420, 467, 468, 471, 120-बी भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें जांच और सामग्री एकत्र करने के बाद, आरोपों को साबित करते हुए, 04.10.2017 को अदालत में आरोप पत्र दायर किया गया।

5. 25 अगस्त, 2017 को बी. शहीम सिद्दीकी पुत्र स्वर्गीय नसीमुद्दीन सिद्दीकी निवासी 7-

डी, महेवा, नैनी ने थाना-नैनी में अपराध संख्या-726 वर्ष 2017 को राम किशन एवं अन्य के विरुद्ध धारा 147, 148, 323, 504, 506, 307 भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज कराई, जिसमें एकत्रित सामग्री के आधार पर जांच के बाद दिनांक 01.03.2018 को विनोद बी. लाल के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया।

6. पुनः दिनांक 17.12.2017 को दिवाकर नाथ त्रिपाठी द्वारा थाना-सिविल लाइंस, अपराध संख्या-761 वर्ष 2017 में पी.सी. सिंह एवं अन्य के विरुद्ध धारा 419, 420, 406, 467, 468, 471, 120-बी भ०द०वि० के अन्तर्गत प्राथमिकी उपरोक्त मामले में, जांच के बाद, एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, विनोद बी. लाल और अन्य के खिलाफ 09.04.2018 को आरोप पत्र दायर किया गया था।

7. दिनांक 17 दिसम्बर, 2017 को रुद्र नारायण पाठक पुत्र चंद्रशेखर पाठक निवासी रामपुर, थाना-रामनगर, जिला वाराणसी ने थाना-मुट्ठीगंज को लिखित सूचना दी, जिसके आधार पर अरुण पाल व अन्य के विरुद्ध धारा 147, 419, 420, 467, 468, 471, 504, 506 के अंतर्गत अपराध क्रमांक 244 वर्ष 2017 के तहत पंजीयन किया गया। जांच शुरू हुई और एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, 01.04.2018 को आर.के. गबन और विनोद बी. लाल के खिलाफ धारा 419, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप पत्र दायर किया गया।

8. इन सभी सामग्रियों के आधार पर, सूचनाकर्ता ने बताया कि विनोद बी. लाल और

डेविड दत्ता ने अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2/3 के तहत दंडनीय अपराध किया है। उक्त आरोपी से संबंधित गैंग-चार्ट को जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अनुमोदित किया गया है। इतनी सारी जानकारी के साथ, प्रस्तुत अपराध की रिपोर्ट की गई और अधिनियम वर्ष 1986 के तहत दर्ज किया गया।

9. आवेदक के नेतृत्व वाले गिरोह से संबंधित गैंग-चार्ट, जिसमें से दवित दत्ता को एकमात्र सदस्य के रूप में दिखाया गया था, को जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद द्वारा 28.07.2018 को अनुमोदित किया गया था। गैंग-चार्ट में वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, इलाहाबाद की दिनांक 27.07.2018 की स्वीकृति और पुलिस अधीक्षक, ट्रांस यमुना और सर्कल ऑफिसर, करछना की संस्तुति है।

10. पुलिस ने विवेचना के बाद आरोप पत्र दाखिल की है, जिसके आधार पर स्पेशल जज (गैंगस्टर एक्ट), इलाहाबाद ने दिनांक 09.08.2019 को संज्ञान लिया है। विवेचना के दौरान, पुलिस ने पांच आधार मामलों के तीन पहले शिकायतकर्ताओं के बयान दर्ज किए हैं, जिनके आधार पर अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2/3 के तहत प्रस्तुत अपराध दर्ज किया गया था, जिसके कारण कार्यवाही की गई थी।

11. आवेदक के अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री कुमार विक्रान्त द्वारा सहायता प्राप्त और श्री शशि

शेखर तिवारी, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

12. आवेदक की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष तिवारी द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि भले ही आक्षेपित आरोप-पत्र में सभी आरोपों को सही माना जाए, आवेदक के खिलाफ अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2/3 के तहत कोई मामला नहीं बनता है। उपरोक्त सबमिशन का समर्थन करने के लिए, श्री मनीष तिवारी ने अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2(बी) में एक गिरोह की परिभाषा का उल्लेख किया है। वह प्रस्तुत करता है कि एक गिरोह का गठन करने के लिए दो आवश्यक तत्व हैं। श्री मनीष तिवारी के अनुसार, दो आवश्यक तत्व हिंसा या लोक व्यवस्था में व्यवधान हैं जो व्यक्तियों के एक समूह द्वारा अकेले या सामूहिक रूप से आथक लाभ आदि के उद्देश्य से कार्य करते हैं।

13. यह वरिष्ठ अधिवक्ता का निवेदन है कि आवेदक के खिलाफ लगाए गए अपराधों में से कोई भी हिंसा या सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी में शामिल नहीं है। इसलिए, भले ही आर्थिक लाभ के बारे में आरोप हों, अधिनियम वर्ष 1986 के तहत परिणाम संलग्न नहीं होंगे। वह आगे प्रस्तुत करता है कि आवेदक के खिलाफ पांच आधार मामले दर्ज हैं, जिसके आधार पर प्रस्तुत अभियोजन अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2/3 के तहत शुरू किया गया है। लेकिन, उन अपराधों में से प्रत्येक में, आवेदक को इस न्यायालय या उच्चतम

न्यायालय द्वारा किसी न किसी प्रकार की न्यायिक राहत दी गई है। इसलिए, वरिष्ठ अधिवक्ता की प्रस्तुति में, अधिनियम वर्ष 1986 के तहत प्रस्तुत मामले को आगे बढ़ाने के लिए अभियोजन पक्ष को आधार प्रदान करने के लिए आधार मामले उपलब्ध नहीं हैं। वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अंतिम में उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) नियम, 2021 के नियम 5 (2), 5 (3), 16 और 17 का उल्लंघन है, जो गैंग-चार्ट को दूषित करता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि इन नियमों का पालन न करने से अपराध के पंजीकरण और पुलिस रिपोर्ट और अभियोजन के आधार को दूषित किया गया है। उन्होंने न्यायालय का ध्यान पूर्वोक्त नियमों की ओर आकर्षित किया है।

14. श्री शशि शेखर तिवारी, अपर शासकीय अधिवक्ता ने इस आवेदन को सुनवाई के लिए स्वीकार करने के प्रस्ताव का विरोध किया है। श्री तिवारी ने प्रस्तुत किया है कि अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2(बी) के तहत व्यक्तियों के एक समूह को एक गिरोह में गठित करने के लिए अकेले हिंसा और सार्वजनिक सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी आवश्यक नहीं है। परिभाषा बहुत व्यापक है और स्वयं या समूह के किसी अन्य सदस्य के लिए किसी भी अस्थायी, आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के लिए निर्देशित अन्य प्रकार के कार्य, अकेले या एक साथ कार्य करते हुए, अधिनियम वर्ष 1986 के अर्थ के भीतर, समूह को एक गिरोह में गठित कर सकते हैं।

15. यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदक के खिलाफ जो अपराध दर्ज किए गए हैं, जिनमें आरोप-पत्र दायर किए गए हैं, अन्य बातों के अलावा, अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2/3 के तहत दंडनीय अपराध के कमीशन के लिए आवेदक के खिलाफ आगे बढ़ने का आधार बनाते हैं। केवल तथ्य यह है कि उक्त आधार मामलों में अंतरिम आदेश या अंतरिम राहत आवेदक को दी गई है, इसका मतलब यह नहीं है कि अधिनियम वर्ष 1986 के तहत कार्रवाई करने का आधार हटा दिया गया है। श्री तिवारी आगे प्रस्तुत करते हैं कि जहां तक नियम वर्ष 2021 के अनुपालन का संबंध है, गैंग-चार्ट तैयार करने के संबंध में, आवश्यकताओं का पर्याप्त अनुपालन है।

16. पक्षों के अधिवक्ता की सुनवाई पर, इस न्यायालय की राय है कि श्री मनीष तिवारी के पहले सबमिशन पर विचार करने के लिए, अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2(बी) के प्रावधानों का उल्लेख करना अनिवार्य है, जो इस प्रकार है:

"2. परिभाषाएं--इस अधिनियम में,--

(क) X x x

(ख) "गिरोह" से ऐसे व्यक्तियों का समूह अभिप्रेत है जो अकेले या सामूहिक रूप से हिंसा, या धमकी या हिंसा का प्रदर्शन, या धमकी, या जबरदस्ती या अन्यथा लोक व्यवस्था को भंग करने के उद्देश्य से या अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक प्राप्त करने के उद्देश्य से कार्य करता है, असामाजिक

गतिविधियों में लिप्त है (अधिनियम संख्या-2 वर्ष 1974), अर्थात्-

(i) भारतीय दंड संहिता के अध्याय XVI, या अध्याय XVII, या अध्याय XXII (अधिनियम संख्या-45 वर्ष 1860) के तहत दंडनीय अपराध, या

(ii) उत्तर प्रदेश उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1910 (उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या-4 वर्ष 1910) या स्वापक औषधि और मनप्रभावी पदार्थ अधिनियम के किसी उपबंध का उल्लंघन करते हुए आसवन या विनिर्माण या भंडारण या परिवहन या आयात या निर्यात या विक्रय या विक्रय या किसी पादप की खेती करना, 1985 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य कानून के लिए, या

(iii) कानून के अनुसार अन्यथा अचल संपत्ति के कब्जे पर कब्जा करना या बात करना, या अचल संपत्ति के स्वामित्व या कब्जे के लिए झूठे दावे स्थापित करना, चाहे वह स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति में हो, या (अधिनियम संख्या-61 वर्ष 1985)

(iv) किसी लोक सेवक या किसी साक्षी को उसके विधिपूर्ण कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकना या निवारित करना, या

(v) महिलाओं और लड़कियों के अनैतिक व्यापार का दमन अधिनियम, 1956 के अधीन दंडनीय अपराध, या

(vi) सार्वजनिक जुआ अधिनियम, 1867 (अधिनियम संख्या-104 वर्ष 1956) की धारा 3 के तहत दंडनीय अपराध, या

(vii) किसी व्यक्ति को किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या सार्वजनिक या निजी उपक्रम द्वारा या उसकी ओर से

विधिपूर्वक आमंत्रित नीलामी में बोली लगाने से किसी भी व्यक्ति को किसी पट्टे या अधिकार या माल या कार्य की आपूर्ति के लिए विधिपूर्वक आमंत्रित करने से रोकना, या (viii) किसी व्यक्ति द्वारा अपने विधिपूर्ण व्यवसाय व्यवसाय, व्यापार या नियोजन या उससे संबंधित किसी अन्य विधिपूर्ण गतिविधि के सुचारू संचालन को रोकना या उसमें बाधा डालना, या

(ix) भारतीय दंड संहिता की धारा 171-ड के अधीन दंडनीय अपराध या मतदाता को उसके निर्वाचन अधिकारों का प्रयोग करने से भौतिक रूप से रोककर विधिपूर्वक कराए जा रहे किसी लोक निर्वाचन को रोकने या उसमें बाधा डालने में या

(x) साम्प्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने के लिए दूसरों को हिंसा का सहारा लेने के लिए उकसाना, या

(xi) सार्वजनिक रूप से आतंक, भय या खौफ पैदा करना, या

(xii) सार्वजनिक या निजी उपक्रमों या कारखानों के कर्मचारियों या स्वामियों या अधिभोगियों को आतंकित करना या उन पर हमला करना और उनकी संपत्तियों के संबंध में शरारत कारित करना, या

(xiii) किसी व्यक्ति को मिथ्या अभ्यावेदन पर विदेश जाने के लिए प्रलोभन देना या प्रलोभन देना कि ऐसे विदेशी देश में उसे कोई रोजगार, व्यापार या पेशा प्रदान किया जाएगा, या

(xiv) फिरौती वसूलने के इरादे से किसी व्यक्ति का अपहरण या व्यपहरण, या

(xv) किसी विमान या सार्वजनिक परिवहन यान को उसके निर्धारित मार्ग का अनुसरण

करने से विपथित करना या अन्यथा
निवारना;

(xvi) साहूकारी अधिनियम, 1976 के
विनियमन के अंतर्गत दंडनीय अपराध;

(xvii) गोपशुओं का अवैध रूप से परिवहन
करना और/या तस्करी करना और गोवध
निवारण अधिनियम, 1955 और पशु क्रूरता
निवारण अधिनियम, 1960 के उपबंधों के
उल्लंघन में संलिप्त होना;

(xviii) वाणिज्यिक शोषण, बंधुआ मजदूरी,
बाल श्रम, यौन शोषण, अंग निकालने और
अवैध व्यापार, भिक्षावृत्ति और इसी प्रकार के
कार्यकलापों के प्रयोजनों के लिए मानव
तस्करी;

(xix) विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण)
अधिनियम, 1966 के अधीन दंडनीय अपराध;

(xx) जाली भारतीय करेंसी नोटों का मुद्रण,
परिवहन और परिचालन;

(xxi) नकली औषधों के उत्पादन, बिक्री और
वितरण में शामिल होना;

(xxii) आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 5,
7 और 12 के उल्लंघन में हथियारों और
गोलाबारूद के निर्माण, बिक्री और परिवहन में
शामिल होना;

(xxiii) आथक लाभ के लिए कटाई या हत्या,
भारतीय वन अधिनियम, 1927 और वन्यजीव
संरक्षण अधिनियम, 1972 का उल्लंघन करते
हुए उत्पादों की तस्करी;

(xxiv) मनोरंजन और सट्टेबाजी कर
अधिनियम, 1979 के तहत दंडनीय अपराध;

(xxv) ऐसे अपराधों में लिप्त होना जो राज्य
की सुरक्षा, लोक व्यवस्था और यहां तक कि
जीवन की गति को भी प्रभावित करते हैं।

(ग) ग ग

(d) x x x x x

(e) x x x x x

(च) x x x x x

17. पूर्वोक्त प्रावधान के अवलोकन से पता
चलता है कि अकेले हिंसा या सार्वजनिक
व्यवस्था की गड़बड़ी अधिनियम वर्ष 1986 के
तहत परिभाषित गिरोह की अनिवार्य शर्त नहीं
है। यह व्यक्तियों के एक समूह को दर्शाता है,
जो या तो अकेले या सामूहिक रूप से कार्य
करते हैं, हिंसा को नियोजित करते हैं, या
धमकी देते हैं या हिंसा का प्रदर्शन करते हैं, या
धमकी, या जबरदस्ती, 'या अन्यथा' के उद्देश्य
से (i) सार्वजनिक व्यवस्था को परेशान करते
हैं; (ii) या किसी अनुचित अस्थायी, आर्थिक
सामग्री को प्राप्त करना; या स्वयं या किसी
अन्य व्यक्ति के लिए अन्य लाभ, असामाजिक
गतिविधियों में लिप्त, अधिनियम वर्ष 1986
की धारा 2 की उपधारा (बी) के खंड (i) से
(xxii) में प्रगणित है।

18. यह वैधानिक व्याख्या की एक अच्छी तरह
से स्थापित उसूल है कि एक कानून को उसके
सादे व्याकरणिक अर्थ के अनुसार पढ़ा और
समझा जाना चाहिए, जब तक कि वह निर्माण
एक बेतुका परिणाम न दे, या लक्ष्य और उसके
उद्देश्य को हरा न दे।

19. अधिनियम वर्ष 1986 की धारा-2 की
उपधारा (ख) के पठन से यह संकेत मिलता है
कि लोक व्यवस्था को भंग करने या स्वयं या
किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित
अस्थायी, आर्थिक या अन्य लाभ प्राप्त करने
के उद्देश्य से, अकेले या सामूहिक रूप से कार्य
करने वाले व्यक्तियों का एक समूह हिंसा या

धमकी या हिंसा के प्रदर्शन द्वारा कार्य कर सकता है, या धमकी, या जबरदस्ती या अन्यथा। इस प्रकार, 'जबरदस्ती' शब्द के बाद 'अन्यथा' शब्दों का उपयोग इंगित करता है कि सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या किसी भी अनुचित अस्थायी, आर्थिक लाभ आदि को प्राप्त करने का दोहरा उद्देश्य एक समूह की पहचान है, जो एक सदस्य के माध्यम से कार्य करता है, अकेले या सामूहिक रूप से, एक गिरोह के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिए। सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या किसी भी अनुचित अस्थायी, आर्थिक लाभ प्राप्त करने आदि का दोहरा उद्देश्य हिंसा, धमकी या हिंसा के प्रदर्शन, या धमकी आदि या अन्यथा के अभ्यास के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। 'जबरदस्ती' के बाद 'अन्यथा' शब्द का उपयोग पूर्ववर्ती शब्द जैसे जबरदस्ती, धमकी, हिंसा आदि के साथ नहीं पढ़ा जाना चाहिए। बल्कि, 'अन्यथा' शब्द के उपयोग से पता चलता है कि समूह सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ने या किसी भी अनुचित अस्थायी, आर्थिक लाभ आदि प्राप्त करने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किसी भी तरह से कार्य कर सकता है, जहां हिंसा या जबरदस्ती या धमकी बिल्कुल भी शामिल नहीं हो सकती है। बेशक, समूह द्वारा जो कुछ भी किया जाता है, एक साथ या एक सदस्य को अकेले कार्य करते हुए, अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2 की उप-धारा (बी) के विभिन्न खंडों में उल्लिखित एक या अन्य असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होना चाहिए। 'या अन्यथा' शब्दों पर रखा गया निर्माण, जो एजुस्टेड जेनेरिस के नियम को बाहर करने के लिए विशिष्ट शब्दों के बाद सामान्य आयात के

शब्द हैं, इसके बारे में भारतीय पशु कल्याण बोर्ड बनाम ए. नागराजा और अन्य में आधिकारिक व्याख्या पाते हैं। जब 'या अन्यथा' शब्दों का अर्थ यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम पीयूष कांति नंदी और अन्य में लगाया गया है, तो व्याख्याएं हुई हैं। लेकिन, वे मामले उस संदर्भ पर निर्भर करते हैं जिसमें कानून में शब्द आते हैं। भारतीय पशु कल्याण बोर्ड (उपरोक्त) में, यह पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 की धारा 11 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए इस प्रकार अवधारित किया गया था:

"39. धारा 11 (1)(ए) अभिव्यक्ति "या अन्यथा", "अनावश्यक दर्द या पीड़ा", आदि का उपयोग करता है। घटना के साथ पिटाई, लात मारना आदि भी यातना देते हैं, अगर एडब्ल्यूबीआई द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट स्वीकार कर ली जाती है। अन्यथा भी, एडब्ल्यूबीआई के अनुसार, अभिव्यक्ति "या अन्यथा" जल्लीकट्टू, बैलगाड़ी दौड़, आदि में होती है, लेकिन, तमिलनाडु राज्य के अनुसार, उस अभिव्यक्ति को एजुस्टेड जेनेरिस के सिद्धांत को लागू करते हुए समझा जाना चाहिए। हमारे विचार में, अभिव्यक्ति "या अन्यथा" का उपयोग सीमा के शब्दों के रूप में नहीं किया जाता है और विधायिका ने उन सभी स्थितियों को आच्छादित करने का इरादा किया है, जहां जानवरों को अनावश्यक दर्द या पीड़ा के अधीन किया जाता है। जल्लीकट्टू, बैलगाड़ी दौड़ और इस तरह की घटनाएं, धारा 11 (1)(ए) के तहत उस अभिव्यक्ति में आती हैं। "या अन्यथा" अभिव्यक्ति का अर्थ लीलावती बाई बनाम बॉम्बे राज्य [ए.आई.आर. 1957 एस.सी.

521: 1957 एस.सी.आर. 721] में विचार के लिए आया था और न्यायालय ने माना कि शब्द "या अन्यथा" जब उपयोग किया जाता है, तो स्पष्ट रूप से अन्य मामलों को आच्छादित करने का इरादा होता है जो पूर्ववर्ती खंड के अर्थ के भीतर नहीं आ सकते हैं। हमारे विचार में, उक्त सिद्धांतों को धारा 11 (1)(ए) की व्याख्या करते समय सुरक्षित रूप से लागू किया जा सकता है।

20. पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 की धारा 11 (1)(ए) के प्रावधानों को उद्धृत करना भी उचित होगा, जिसके संदर्भ में 'या अन्यथा' शब्द पूर्ववर्ती शब्दों द्वारा सीमित नहीं थे। उपरोक्त धारा-11 में लिखा है:

"11. पशुओं के साथ क्रूरता से व्यवहार करना-
(1) यदि कोई व्यक्ति-

(ए) किसी भी जानवर को मारता है, लात मारता है, ओवर-राइड करता है, ओवर-ड्राइव, ओवर-ड्राइव, ओवरलोड, यातना देता है या अन्यथा व्यवहार करता है ताकि वह अनावश्यक दर्द या पीड़ा या कारणों के अधीन हो या मालिक होने के नाते, किसी भी जानवर का इलाज करने की अनुमति देता है; नहीं तो

(b) $x \times x \times x$

(ग) $x \times x \times x$ "

21. यह अंततः संदर्भ जहां शब्द 'या अन्यथा' नियोजित किया गया है और विशेष प्रावधान का उद्देश्य, क्या कहा शब्दों 'एजूसडेम जेनेरिस' या मुक्त अर्थ किया जा रहे हैं से अनुमान लगाया जा रहा है। यहाँ, शब्द एक ही शैली के पूर्ववर्ती सार्थक शब्दों का अर्थहीन या

अस्पष्ट अंत नहीं हैं। बल्कि, शब्द 'या अन्यथा' किसी भी चीज का वर्णन करने के लिए व्यापक महत्व के शब्द हैं, जिसका उद्देश्य सार्वजनिक व्यवस्था को बिगाड़ना या समूह के किसी सदस्य या इसमें शामिल किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक, सामग्री या अन्य लाभ प्राप्त करना है, जो कि असामाजिक गतिविधियों में लिप्त है। अहिंसक प्रकार की असामाजिक गतिविधियों के माध्यम से भी अस्थायी और आर्थिक लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं, इसलिए जब तक व्यक्तियों का एक समूह इसे व्यक्तिगत रूप से या एकजुट होकर करने के लिए दृढ़ संकल्पित है। इसलिए, इस न्यायालय की राय में, अधिनियम वर्ष 1982 की धारा 2 की उपधारा (बी) में होने वाले 'या अन्यथा' शब्दों को पढ़ने का कोई कारण नहीं है।

22. यह प्रश्न हाल ही में अंबुज पराग दुबे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष विचार के लिए गिर गया, जहां यह अवधारित किया गया है:

"22. गिरोह की परिभाषा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति 'या अन्यथा' को संयुक्त रूप से या असंगत रूप से पढ़ा जा सकता है। यदि संयुक्त रूप से पढ़ा जाए, तो कानून में 'या अन्यथा' शब्द, जब एक सामान्य वाक्यांश में उपयोग किया जाता है, तो विवरणों की गणना के बाद, आमतौर पर एक प्रतिबंधित अर्थ में व्याख्या की जाती है, जैसे कि ऐसे अन्य मामलों का उल्लेख किया जाता है जो पहले उल्लिखित वर्गों के लिए संबंधित हैं। शब्द "या" में "या

अन्यथा" एक विघटनकारी है जो एक विकल्प को चिह्नित करता है जो आम तौर पर "या तो" शब्दों से मेल खाता है। सामान्य शब्दों "या अन्यथा" का एक इंटरऑपरेशन उन्हें पिछले शब्दों (हिंसा, धमकी, जबरदस्ती) के समान मामलों और चीजों तक सीमित कर देगा, सामान्य शब्दों को "या अन्यथा" पूर्ववर्ती विशिष्ट शब्दों के बाद, निरर्थक बना देगा। ये शब्द "या अन्यथा" सीमा के शब्द नहीं हैं, बल्कि विस्तार के हैं ताकि सभी संभावित अपराधों को आच्छादित किया जा सके। अतः अन्यथा शब्द को उपधारा के पहले भाग में उल्लिखित हिंसा के अन्य उदाहरणों के साथ एजुसडेम जेनेरिस नहीं पढ़ा जाना चाहिए।

23. इसके अलावा, गिरोह की परिभाषा में शामिल किए गए अपराधों के अवलोकन पर भारतीय दंड संहिता के अध्याय-XVII के तहत अपराध शामिल हैं जिनमें धारा 378 के तहत चोरी का अपराध, धारा 403 के तहत अपराध और संपत्ति के आपराधिक दुरुपयोग से संबंधित धाराएं, धारा 405 और संबद्ध धाराएं आपराधिक विश्वासघात के अपराध से संबंधित हैं। संपत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोजन धारा 410 और संबंधित धाराएं चोरी की संपत्ति से संबंधित हैं। धारा 420 और संबंधित धाराएं धोखाधड़ी के अपराधों से निपटती हैं जिनमें केवल किसी व्यक्ति या उसकी संपत्ति को धोखाधड़ी या बेईमानी से शामिल किया गया है। यह गिरोह की परिभाषा के भीतर शामिल प्रावधानों से स्पष्ट है कि बल या हिंसा के अस्तित्व की आवश्यकता नहीं है। इसी तरह, यू.पी. सार्वजनिक जुआ अधिनियम की धारा 3 के तहत अपराधों में बल का उपयोग शामिल

नहीं हो सकता है। इस प्रकार, 'अन्यथा' शब्द को गिरोह की परिभाषा में अलग-अलग रूप से नियोजित किया गया है और इसे "एजुसडेम जेनेरिस" के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है, इस उप-धारा के पहले भाग में उल्लिखित हिंसा की अन्य घटनाओं के साथ (द्वारा: वर्नीत कुमार (उपरोक्त))

23. ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, इस न्यायालय को श्री मनीष तिवारी के प्रस्तुतिकरण में कोई योग्यता नहीं मिलती है कि किसी न किसी रूप में हिंसा व्यक्तियों के समूह के लिए अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2(बी) के तहत एक गिरोह के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

24. भले ही यह थोड़ी देर के लिए स्वीकार कर लिया जाए कि धारा 2(बी) के तहत परिभाषित गिरोह के शरारत के भीतर व्यक्तिगत रूप से या एक साथ कार्य करने वाले व्यक्तियों के समूह को लाने के लिए हिंसा या हिंसा की धमकी आवश्यक है, इस न्यायालय को आधार मामलों से संबंधित प्राथमिकी की सामग्री का न्यायिक नोटिस लेना चाहिए, जिसके आधार पर आक्षेपित अभियोजन शुरू किया गया है। आधार मामलों की प्राथमिकी को आवेदक द्वारा पूरी निष्पक्षता से संलग्न किया जाना चाहिए था। ऐसा नहीं किया गया है। फिर भी, चूंकि वे प्राथमिकी यू.पी. पुलिस (यू.पी.सीओपी) की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं, इसलिए इस अदालत ने उनमें से कुछ की सामग्री पर गौर किया है। प्रकरण अपराध क्रमांक 244 वर्ष 2017 में धारा 147, 419, 420, 467, 468, 471, 504, 506 भ०द०वि०, थाना-मुट्ठीगंज,

जनपद प्रयागराज के अन्तर्गत प्रथम सूचनादाता ने निम्न आरोप लगाया है-

प्रार्थी की उक्त आरजियात हड़पने की नियत से लखनऊ डायसेशन ट्रस्ट एसोसिएशन के कथित सचिव अरुण पल व उनके सहयोगी काल्विन थायडोर, विनोद बी लाल, यस बी लाल, रेडियल सुभान, आर के गबन, उषा हेमिल्टन, कमल मशीह, प्रफुल मेसी रिंकी स्वरूप, शशि प्रकाश जो एक अपराधी एवं भूमाफिआ किस्म के व्यक्ति हैं जिनका एक संगठित गिरोह है जो शहर की खाली पड़ी जमीनों को अवैध कब्जा करने की नियत से कूट रचित दस्तावेज तैयार कर जमीन हड़प लेते हैं और इसी तरह प्रार्थी की आरजियात स्थित मौज मैकू उस्मानपुर उर्फ कटघर थाना मुट्ठीगंज को अवैध तरीके से हड़पने की नियत से एक फर्जी कूट रचित दस्तावेज वाद सं० १७०/सन १९७४ लखनऊ डायसेशन ट्रस्ट एसोसिएशन बनाम कमीशन इक्यूमिनिकल मिशन दाखिला दिनांक ०४/०४/१९७४ व आदेश दिनांक १०/०४/१९७४ मुंसिफ बेस्ट इलाहाबाद पीठासीन अधिकारी के नाम के स्थान पर यस० पी० पाल अंकित है और दिनांक २४-०४-१९७४ को हस्ताक्षर सी० पी० लाल का है एवं न्यायालय की कूटरचित फर्जी मुद्रा से तैयार कर हड़पने की साजिश किये है उक्त कूट रचित दस्तावेज की सत्यता के सम्बन्ध में प्रार्थी के अधिवक्ता के द्वारा मा० उच्च न्यायालय इलाहाबाद में जान सूचना अधिकार के तहत एक प्रार्थना पत्र इस

आशय का दिया गया कि ०१/०४/१९७४ से ३०/०४/१९७४ के बीच मुंसिफ बेस्ट इलाहाबाद के पद पर पीठासीन कौन थे। मा० उच्च न्यायालय द्वारा अवगत कराया गया कि ०१/०४/१९७४ से ३०/०४/१९७४ बीच मुंसिफ बेस्ट इलाहाबाद के पद पर पीठासीन अधिकारी श्री चक्रवर्ती प्रभाकर मिश्र नियुक्त थे। कूट रचित जजमेंट/डिक्री की छाया प्रति एवं मा० उच्च न्यायालय द्वारा प्राप्त सूचना की छाया प्रति प्रार्थना पत्र के साथ संलग्न की जा रही है। मुंसिफ बेस्ट इलाहाबाद के कार्यालय एंवरिकॉर्ड रूम में इस मुकदमे के सम्बन्ध में कोई रिकॉर्ड नहीं है। दिनांक २०/०८/२०१७ को समय लगभग १२.३० बजे दिन प्रार्थी अपने सहयोगी उदय प्रताप सिंह व शिव बहादुर सिंह के साथ आराजी संख्या १४३ जिसमें बरसात का पानी भर गया था, को कुछ मजदूरों को ले कर साफ करवा रहे थे कि मौके पर अरुण पल, आर के गबन उषा हेमिल्टन कमल मशीह, प्रफुल मेसी, रिंकी स्वरूप आ गए और प्रार्थी को गली देते हुए सफाई करने से मना करने लगे। प्रार्थी के मना करने पर उपरोक्त लोग उपरोक्त कूटरचित फर्जी जजमेंट/डिक्री का हवाला देते हुये धमकी दिए कि दोबारा इस जमीं पर आओगे तो बोटी बोटी काट कर इस जमीन में गाड़ दूंगा उपरोक्त लोग अपराधी एवं भू माफिया किशम के व्यक्ति हैं। कूटरचित फर्जी दस्तावेज तैयार कर शहर की खाली जमीन पर कब्जा करने का संगठित गिरोह है प्रार्थी को भय व्याप्त है कि उपरोक्त लोग प्रार्थी की जमीन के लालच में प्रार्थी

को जान से न मार दे प्रार्थी ने उपरोक्त घटना की सूचना मुट्ठीगंज थानाध्यक्ष को दिया परन्तु आज तक कोई कार्यवाही नहीं हुई।"

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

25. फिर से जांच के दौरान, शाहिम सिद्दीकी, जो केस अपराध संख्या-726 वर्ष 2017 के पहले सूचनाकर्ता हैं, धारा 147, 148, 323, 504, 506, 307 भ०द०वि० के तहत, आधार मामलों में से एक, ने संहिता की धारा 161 के तहत अपने बयान में कहा है, जिसकी एक प्रति प्रस्तुत आवेदन के समर्थन में हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-7 के रूप में संलग्न है:

"श्री सहीम सिद्दीकी पुत्र स्व० श्री नमीमुद्दीन सिद्दीकी निवासी ७ डी महेवा थाना नैनी इलाहाबाद ने पूछने पर बयान किये कि दिनांक २५-८-१७ को समय करीब ५.३० बजे करीब अपने कालेज सुआर में अपने शैक्षिक कार्य के लिए गया था काम पूरा होने के बाद कैन्टीन के बाहर खड़ा होकर अपने दोस्तों का इंतजार कर रहा था तभी अचानक कॉलेज के स्टाफ राम किसन राकेश दुबे चार पांच अन्य लोग असलहे से लैश होकर मुझे मारते पीटते हुए कमरे में उठा ले गए तथा मुझे जान से मारने की नियत से विनोद की बात के ललकारने पर मेरे ऊपर रिवाल्वर से फायर किया परन्तु गोली मिस हो गयी जिसमे मेरी जान बच गयी। तथा मुझे गाली गुप्ता दिये व जान से। अपना जान बचाकर भागा।"

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

26. इन परिस्थितियों में, यह ऐसा मामला नहीं कहा जा सकता है जहां आवेदक यह आग्रह कर सकता है कि उसके द्वारा या उसके कहने पर समूह के एक या दूसरे सदस्य द्वारा हिंसा या हिंसा की धमकी के बारे में कोई आरोप नहीं है। इसके विपरीत, व्यक्तियों के समूह के बारे में प्रचुर मात्रा में सामग्री है, जिनमें से आवेदक नेता है, हिंसा की धमकी दे रहा है और जोर-जबरदस्ती में लिप्त है।

27. जहां तक लोक व्यवस्था के विघटन का संबंध है, जैसा कि पहले ही ऊपर देखा गया है, व्यक्तियों के एक समूह के पास अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2(बी) के तहत एक गिरोह के रूप में अर्हता प्राप्त करने के लिए दो वैकल्पिक वस्तुएं हो सकती हैं: उनके उद्देश्य के लिए सार्वजनिक व्यवस्था की गड़बड़ी या कोई अनुचित अस्थायी, आर्थिक प्राप्त करना, समूह के किसी सदस्य या किसी अन्य व्यक्ति के लिए सामग्री या अन्य लाभ। आवश्यक यह है कि दोनों उद्देश्यों में से किसी एक को प्राप्त करने के लिए, व्यक्तियों का समूह, अकेले या एकजुट होकर कार्य करते हुए, अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2 की उपधारा (बी) के विभिन्न खंडों के तहत परिकल्पित असामाजिक गतिविधियों में से एक में शामिल होना चाहिए। इसलिए, श्री मनीष तिवारी का यह कहना कि जब तक व्यक्तियों के एक समूह द्वारा सार्वजनिक व्यवस्था में गड़बड़ी नहीं की जाती है, तब तक वे अधिनियम वर्ष 1986 की धारा 2(बी) के अर्थ के भीतर एक गिरोह के रूप में अर्हता प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

28. आवेदक के अधिवक्ता का अगला प्रस्तुतिकरण यह है कि पांच मामले, जिनके आधार पर अधिनियम वर्ष 1986 के तहत मामला दर्ज किया गया है, आक्षेपित अभियोजन में परिणत होता है, अधिनियम वर्ष 1986 के तहत कार्रवाई करने के लिए बिल्कुल भी आधार नहीं बना सकता है, क्योंकि आधार मामलों के संबंध में विभिन्न अंतरिम आदेश या राहत इस न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई है। पांच मामले जो गैंग-चार्ट के अधीन हैं, जिनके आधार पर आक्षेपित अभियोजन शुरू किया गया है, और जहां, आवेदक के अनुसार, इस न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश पारित किए गए हैं, उन्हें सारणीबद्ध रूप में नीचे दिया गया है:

क्र सं	अपराध सं	थाना	धारा	स्थिति
1	476 वर्ष 2017	सिविल लाइन, इलाहाबाद	406, 419, 420, 467, 468, 471, 120-B IPC	सुप्रीम कोर्ट द्वारा एसएलपी (सीआरएल) संख्या 3337 ऑफ 2023 में पारित आदेश दिनांक 20.03.2023 के तहत कोई दंडात्मक कार्रवाई नहीं
2	170 वर्ष 2017	शाहगंज, इलाहाबाद	406, 419, 420, 467, 468, 471, 120-B IPC	2018 की धारा 482 संख्या 34944 के तहत आवेदन में पारित दिनांक 04.10.2018 के आदेश के माध्यम से इस न्यायालय द्वारा आगे की कार्यवाही पर रोक लगा दी

क्र सं	अपराध सं	थाना	धारा	स्थिति
3	726 वर्ष 2017	नैनी, इलाहाबाद	147, 148, 323, 504, 506, 307 IPC	2018 की धारा 482 संख्या 40320 के तहत आवेदन में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 3.11.2018 के तहत कोई कठोर कार्रवाई नहीं की गई।
4	244 वर्ष 2017	मुटठीगंज इलाहाबाद	147, 419, 420, 467, 468, 471, 504, 506 IPC	2019 की धारा 482 संख्या 13820 के तहत आवेदन में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 09.05.2019 के माध्यम से नोटिस जारी करें।
5	761 वर्ष 2017	सिविल लाइन, इलाहाबाद	419, 420, 406, 467, 468, 471, 120-B IPC	आगे की कार्यवाही पर इस न्यायालय द्वारा 2018 की धारा 482 संख्या 44250 के तहत आवेदन में पारित आदेश दिनांक 07.12.2018 द्वारा रोक लगा दी गई।

29. यह अच्छी तरह से तय है कि कार्यवाही के स्थगन या जबरदस्ती कदमों या अपराध में जमानत आदेश के स्थगन आदेश का प्रभाव अपराध को समाप्त नहीं करता है। यह केवल कुछ कार्यवाही को अधर में डाल देता है जो अपराध या गिरफ्तारी जैसे कुछ परिणामों के

आधार पर मामले में की जानी हैं, जो अन्यथा पालन करेंगे। जमानत आदेश मुकदमे के लंबित रहने या अदालत के अन्य आदेशों के अधीन आरोपी के लिए एक अस्थायी स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है, लेकिन अभियुक्त, जो जमानत पर है, वह दोष से मुक्त व्यक्ति नहीं है या मुकदमे की प्रतीक्षा में मामले की छाया नहीं है। कभी-कभी, जमानत पर एक अभियुक्त को जमानत के माध्यम से अदालत की रचनात्मक हिरासत में एक व्यक्ति के रूप में माना जाता है। इस संबंध में, सुनील फुलचंद शाह बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में संविधान पीठ की निम्नलिखित टिप्पणियों का संदर्भ दिया जा सकता है।

"24. जमानत देने का प्रभाव अभियुक्त को नजरबंदी से रिहा करना है, हालांकि अदालत अभी भी जमानतदारों के माध्यम से उस पर रचनात्मक नियंत्रण बनाए रखेगी। यदि अभियुक्त को उसके स्वयं के बांड पर रिहा किया जाता है, तो इस तरह के रचनात्मक नियंत्रण का प्रयोग अभी भी उससे प्राप्त बांड की शर्तों के माध्यम से किया जा सकता है। "जमानत" शब्द का शाब्दिक अर्थ जमानत है। इंग्लैंड के हाल्सबरी के कानून [इंग्लैंड के हाल्सबरी के कानून, 4 वें संस्करण, वॉल्यूम 11, पैरा 166] में, निम्नलिखित अवलोकन संक्षेप में जमानत के प्रभाव को सामने लाता है: जमानत देने का प्रभाव प्रतिवादी (अभियुक्त) को स्वतंत्रता पर स्थापित करने के लिए नहीं है, बल्कि उसे कानून की हिरासत से रिहा करने और उसे अपने जमानतदारों की हिरासत में सौंपने के

लिए है जो उसे एक निर्दिष्ट समय और स्थान पर अपने मुकदमे में पेश करने के लिए बाध्य हैं। जमानतदार किसी भी समय अपने प्रिंसिपल को जब्त कर सकते हैं और उसे कानून की हिरासत में सौंपकर खुद को बरी कर सकते हैं और फिर उसे कैद कर लिया जाएगा।

30. इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह कहने के लिए कि इस न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक या अन्य पांच मामलों में दिए गए अंतरिम आदेशों के भोग के कारण, जो प्रस्तुत अभियोजन में गिरोह-चार्ट का हिस्सा हैं, वे मामले अब अभियोजन पक्ष के लिए उपलब्ध नहीं हैं अधिनियम वर्ष 1986 के प्रावधानों के तहत आगे बढ़ने के लिए, एक सबमिशन है जिसको अस्वीकार किया जाना तय है।

31. श्री मनीष तिवारी द्वारा दी गई अंतिम प्रस्तुति अधिनियम वर्ष 1986 के तहत बनाए गए नियम वर्ष 2021 के नियम 5(2), 5(3), 16 और 17 के प्रावधानों के अनिवार्य अनुपालन के बारे में है। ये नियम राज्य सरकार द्वारा अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए धारा 23 अधिनियम वर्ष 1986 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं। नियम 5(2), 5(3), 16 और 17 नीचे दिए गए हैं:

"5. सामान्य नियम

(2) उक्त गिरोह के सभी व्यक्तियों के संबंध में विस्तृत गतिविधियों का उल्लेख करते हुए

अपर पुलिस अधीक्षक की स्पष्ट अनुशंसा के बाद जिलाध्यक्ष को गैंग-चार्ट प्रस्तुत किया जाएगा।

(3) गैंग-चार्ट के संबंध में निम्नलिखित प्रावधानों का अनुपालन किया जाएगा-

क) गैंग-चार्ट को सरसरी तौर पर मंजूरी नहीं दी जाएगी, लेकिन पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक की संयुक्त बैठक में उचित चर्चा के बाद।

ख) एक व्यक्ति का कोई गिरोह नहीं हो सकता है लेकिन जात और अन्य अज्ञात व्यक्तियों का एक गिरोह हो सकता है और उस रूप में इन नियमों के अनुसार गैंग-चार्ट को अनुमोदित किया जा सकता है।

ग) गैंग-चार्ट में उन मामलों का उल्लेख नहीं होगा जिनमें विशेष न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया है या जिनमें जांच के बाद अंतिम रिपोर्ट दायर की गई है। हालांकि, आधार मामले की जांच पूरी होने के बिना गैंग-चार्ट को मंजूरी नहीं दी जाएगी।

घ) गैंग-चार्ट में उन मामलों का उल्लेख नहीं किया जाएगा, जिनके आधार पर इस अधिनियम के तहत एक बार पहले ही कार्रवाई की जा चुकी है।

ण) आपराधिक इतिहास की एक अलग सूची, जैसा कि फॉर्म संख्या-4 में दिया गया है, गैंगचार्ट के साथ संलग्न किया जाएगा जिसमें

उस गिरोह की सभी आपराधिक गतिविधियों का विवरण दिया जाएगा और सभी आपराधिक मामलों का उल्लेख किया जाएगा, भले ही उन मामलों में बरी कर दिया गया हो या यहां तक कि जहां अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई हो साक्ष्य के अभाव में।

उपरोक्त के साथ-साथ, थाना में रखे गए गैंग रजिस्टर की प्रमाणित प्रति भी गैंग-चार्ट के साथ संलग्न की जाएगी। उपरोक्त के अलावा, गैंग-चार्ट में उल्लिखित अपराध और गिरोह के सदस्यों की जानकारी को इंटरऑपरेबल क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम (आईसीजेएस) पोर्टल और अपराध एंड क्रिमिनल ट्रैकिंग नेटवर्क सिस्टम (सीसीटीएनएस) पर भी अपडेट किया जाएगा।

16. गैंग-चार्ट का अग्रोषण

गैंग-चार्ट के अग्रोषण में निम्नलिखित तरीके का पालन किया जाएगा:

(1) अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक द्वारा गैंग-चार्ट को अग्रोषित करना: अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक न केवल मामले में त्वरित अग्रोषण कार्रवाई करेगा, बल्कि वह गैंग-चार्ट और सभी संलग्न प्रपत्रों का विधिवत अवलोकन करेगा; और जब यह संतुष्ट हो जाता है कि मामले को आगे बढ़ाने के लिए एक उचित और संतोषजनक आधार है, तभी वह गैंग-चार्ट पर नीचे दी गई सिफारिश के साथ पत्र को पुलिस अधीक्षक/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को अग्रोषित करेगा। 'गैंग-चार्ट का गहन अध्ययन करना और साक्ष्य संलग्न करके; उत्तर प्रदेश गैंगस्टर

और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत कार्रवाई का आधार मौजूद है। तदनुसार, सिफारिश के साथ अग्रेषित किया गया।

(2) जिला पुलिस प्रभारी द्वारा गैंग-चार्ट का अग्रेषण: जब अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक की स्पष्ट सिफारिश के साथ वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक द्वारा सभी प्रपत्रों के साथ गैंग-चार्ट प्राप्त किया जाता है, तो वह सभी तथ्यों का पूरी तरह से विश्लेषण भी करेगा और जब यह पुष्टि हो जाएगी कि अधिनियम की सभी औपचारिकताएं पूरी हो चुकी हैं और मामले में कार्रवाई करने का कानूनी आधार है तो फिर उसे गैंग-चार्ट को पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट को यह कहते हुए अग्रेषित करना चाहिए कि: "मैंने गैंग-चार्ट और संलग्न प्रपत्रों का विधिवत अवलोकन किया है और मैं पूरी तरह से संतुष्ट हूँ कि मामले में उल्लिखित सभी विवरण सही हैं और उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम 1986 के तहत कार्रवाई करने का संतोषजनक आधार है। तदनुसार, अनुमोदित।

(3) पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट का संकल्प: जब गैंग-चार्ट सभी प्रपत्रों के साथ पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट को भेजा जाता है, तो पुलिस आयुक्त/जिला मजिस्ट्रेट द्वारा सभी तथ्यों का भी अच्छी तरह से अवलोकन किया जाएगा और जब वह संतुष्ट हो जाता है कि मामले में कार्रवाई का आधार मौजूद है, तो वह गैंग-चार्ट को यह कहते हुए अनुमोदित करेगा कि: गैंग-चार्ट और संलग्न फॉर्मों का

विधिवत अवलोकन करने पर गैंग-चार्ट के साथ संलग्न सबूतों के आलोक में उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत कार्रवाई करने के लिए संतोषजनक आधार मौजूद है। गैंग-चार्ट को तदनुसार अनुमोदित किया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि ऊपर लिखे गए शब्द केवल दृष्टांत हैं। एक ही शब्दशः लिखने की बाध्यता नहीं है लेकिन यह आवश्यक है कि अनुमोदन का अर्थ वही होना चाहिए जो ऊपर लिखी गई सिफारिशों के समान हो, और यह चिह्नित अनुमोदन के नोट से भी स्पष्ट होना चाहिए।

17. स्वतंत्र मन का प्रयोग-

(1) सक्षम प्राधिकारी गैंग-चार्ट को अग्रेषित करते समय अपने स्वयं के स्वतंत्र दिमाग का प्रयोग करने के लिए बाध्य होगा।

(2) पूर्व-मुद्रित रबर सील गैंग-चार्ट पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए जाने चाहिए; अन्यथा यह इस तथ्य के समान होगा कि सक्षम प्राधिकारी ने अपने स्वतंत्र दिमाग का प्रयोग नहीं किया है।

32. नियम 5(2) और 5(3) के अवलोकन से पता चलता है कि ये गैंग-चार्ट, इसकी तैयारी और अनुमोदन से संबंधित हैं। यहां गैंग-चार्ट में ऐसा कुछ भी नहीं दिखाया गया है, जो नियम 5(2) या 5(3) का उल्लंघन दिखा सकता है। नियम 16 के तहत केवल इतना ही अपेक्षित है कि अधिनियम वर्ष 1986 के तहत मामला

दर्ज करने की सिफारिश करने वाले प्राधिकारी स्वतंत्र दिमाग के साथ इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अधिनियम वर्ष 1986 के तहत मामला दर्ज किया जाना चाहिए। इसी तरह, गैंगचार्ट को मंजूरी देने वाले अधिकारियों को भी दिमाग के एक स्वतंत्र आवेदन पर निष्कर्ष निकालना चाहिए कि अधिनियम वर्ष 1986 के तहत गिरोह की गतिविधियों के आधार पर अभियुक्त के खिलाफ मामला दर्ज किया जाना चाहिए। दिमाग के उचित अनुप्रयोग के सूचकांक के रूप में सेवा करने के लिए विशेष शब्दों के प्रयोग के लिए कोई नुस्खा नहीं है।

33. यह देखा जाना चाहिए कि प्रस्तुत सामग्री के आधार पर गैंग-चार्ट को मंजूरी देने के चरण में, सक्षम प्राधिकारी को खुद को संतुष्ट करना चाहिए कि अधिनियम वर्ष 1986 के तहत अभियोजन के लिए एक मामला बनता है। मुकदमा चलाने के लिए आगे की सामग्री का संग्रह बाद जब मामला दर्ज होने के बाद जांच शुरू होती है, के चरण में होता है। गैंग-चार्ट के अनुमोदन के चरण में, अनुमोदन प्राधिकारी को आवश्यक होना होगा कि अधिनियम वर्ष 1986 के तहत जांच के लिए एक मामला बनता है।

34. इस न्यायालय की राय में, इसलिए, गिरोह-चार्ट के अनुमोदन के तरीके में जहां मामला जांच के समापन के बाद पहले से ही परीक्षण के लिए है, कोई भी भ्रम बहुत प्रासंगिक नहीं होगा। यह कहना नहीं है कि गिरोह-चार्ट नियमों के किसी भी उल्लंघन को धोखा देता है। रिकार्ड में उपलब्ध सामग्री और गैंग-चार्ट का अवलोकन करने पर सिफारिश करने वाले और अनुमोदन करने वाले

प्राधिकारियों दोनों द्वारा उचित और स्वतंत्र रूप से दिमाग का प्रयोग दर्शाया गया है। इस वर्णन पर आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क के संबंध में, अंबुज पराग दुबे (उपरोक्त) में डिवीजन बेंच का अवलोकन फिर से प्रासंगिक है, जहां यह देखा गया है:

"36. नियम 17 और 18 को एक साथ पढ़ना होगा। गैंग चार्ट निर्धारित फॉर्म संख्या-1 में भेजना होगा। प्रत्येक प्राधिकारी द्वारा किए जाने वाले पृष्ठांकन को भी नियम 16 में विनिर्दिष्ट किया गया है। नियम स्वयं एक मुद्रित फॉर्म निर्धारित और अनिवार्य करता है। नियम 17 में केवल यह कहा गया है कि गिरोह चार्ट को मंजूरी देते समय सक्षम प्राधिकारी को पुलिस अधिकारियों की सिफारिश से यांत्रिक रूप से प्रभावित नहीं होना चाहिए, बल्कि स्वतंत्र रूप से खुद को संतुष्ट करना चाहिए कि अभियोजन के लिए आधार बनाया गया है। उस स्तर पर संतुष्टि व्यक्तिपरक है और किसी भी सबूत पर निर्भर नहीं करती है। सक्षम प्राधिकारी को यह संतुष्टि करना होगा कि गिरोह चार्ट के साथ रखी गई सामग्री अभियोजन के लिए कहती है। इसके बाद साक्ष्य एकत्र करने का चरण चलता है। न्यायिक समीक्षा का दायरा बहुत कम है, आरोपी गैंग चार्ट को चुनौती दिए बिना प्राथमिकी को चुनौती नहीं दे सकता है। यह सवाल कि क्या प्रस्तावित आरोपी की असामाजिक गतिविधियां गिरोह या गैंगस्टर की हैं, यह जांच का विषय है।"

35. ऊपर जो कहा गया है, उसके मद्देनजर, इस न्यायालय को आक्षेपित कार्यवाही को रद्द

करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

36. यह आवेदन विफल होता है और खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1299

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

37035/2022

महबूब पांडे

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री मुमताज अली, श्री शाद खान

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून- धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन - धारा 311 सीआरपीसी के तहत गवाहों को वापस बुलाने के आवेदन को अस्वीकार करने का आदेश - उचित और निष्पक्ष न्यायनिर्णयन के लिए जिरह के लिए गवाहों को वापस बुलाने का निर्देश ट्रायल कोर्ट को दिया गया - धारा 147, 148, 149, 302 और 120-बी आईपीसी के तहत वाद - गवाहों को वापस बुलाने के आवेदन को स्वीकार करने वाले विचारणीय न्यायाधीश के पहले के आदेश की अनदेखी की गई।

बी. गवाहों की जांच की योजना- भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 137 का

अध्याय 10- अभियुक्त को जिरह का अवसर नहीं दिया गया- प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन- धारा 311 सीआरपीसी- ऐसी स्थिति से बचने के लिए सम्मिलित किया गया- वाद का न्यायोचित निर्णय प्राप्त करने के लिए प्रावधान में निहित शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए- विचारणीय न्यायालय ने पहले के आदेश पर विचार न करके स्पष्ट त्रुटि की। आपेक्षित आदेश को निरस्त किया गया- आवेदन स्वीकार किया गया। (पैरा 6 से 8, 20)

आपेक्षित आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि विद्वान विचारणीय न्यायालय ने आदेश पत्र का अवलोकन नहीं किया है, जहां तक कि पीडब्लू-1 से पीडब्लू-3 की जिरह का सवाल है, आवेदक के आवेदन पर पहले ही 9.10.2012 को तत्कालीन विद्वान विचारणीय न्यायालय द्वारा धारा 231 (2) सीआरपीसी के अनुसार विचार किया जा चुका है। इस बात पर भी विचार नहीं किया गया है कि इतने लंबे समय से जेल में बंद आरोपी के लिए स्वयं का बचाव करना बहुत कठी है अगर उसके परिवार के सदस्य और वकील उसका सहयोग नहीं करते हैं। गवाहों की परीक्षा की योजना भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अध्याय X में बताई गई है और अधिनियम की धारा 137 के अनुसार, गवाह को उसकी मुख्य परीक्षा, जिरह और दोबारा परीक्षा के लिए बुलाया जाएगा यदि उसे बुलाने वाला पक्ष उसकी दोबारा परीक्षा चाहता है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि अगर किसी विशेष तिथि को गवाह से विपरीत पक्ष द्वारा जिरह नहीं की जा सकती है, तो उसे दोबारा जिरह के

लिए नहीं बुलाया जाएगा। हालांकि, यदि न्यायालय द्वारा पर्याप्त अवसर दिए जाने के बावजूद गवाह से जिरह नहीं की जा सकती है, तो जिरह बंद की जा सकती है या यदि अभियुक्त गवाह से जिरह करने से इनकार करता है, तो जिरह बंद की जा सकती है। निश्चित रूप से, यदि किसी अपरिहार्य परिस्थिति के कारण अभियुक्त की ओर से गवाह से जिरह नहीं की जा सकती है, तो जिरह का क्लोजर खोला जा सकता है। विद्वान विचारणीय न्यायालय के मस्तिष्क में यह तथ्य होना चाहिए कि यदि अभियुक्त को जिरह का अवसर नहीं दिया जाता है, तो यह प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन होगा। प्राकृतिक न्याय का यह मूल सिद्धांत है कि अभियुक्त को जिरह और सुनवाई के लिए अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। यदि गवाह से जिरह नहीं की गई है, तो मुख्य परीक्षा के साक्ष्य को अभियुक्त के विरुद्ध पूरी तरह से माना जाएगा और इसका खंडन नहीं किया जाएगा और यह स्थिति केवल तकनीकी बातों के कारण न्याय का उपहास होगा। (पैरा 6)

उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि इस धारा के दो भाग हैं। धारा के पहले भाग के अनुसार, न्यायालय निम्न शक्तियों का प्रयोग कर सकता है: (1) किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाना, या (2) उपस्थित किसी भी व्यक्ति की जांच करना, भले ही उसे गवाह के रूप में न बुलाया गया हो, या, (3) पहले से जांचे जा चुके किसी व्यक्ति को वापस बुलाना और फिर से जांच करना। दूसरा भाग, जो अनिवार्य है और न्यायालय पर दायित्व डालता है: (1) बुलाना और जांच करना, या (2) किसी ऐसे व्यक्ति को वापस बुलाना और फिर से जांच करना, यदि

उनका साक्ष्य मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। (पैरा 8)

आवेदन स्वीकृत. (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य. ए.आई.आर. 2013 एससी 3081
2. आर.बी. मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1971, सुप्रीम कोर्ट 1630
3. शैलेन्द्र कुमार बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 2002 (सुप्रीम कोर्ट) 270
4. रामासामी बनाम श्रीनिवासन 1987 (3) अपराध 89 मद्रास
5. रामा पासवान बनाम झारखंड राज्य, 2007 सीआरएल। एल.जे. 2750
6. पोपट लाल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2002, सीआरएल.एल.जे. 794
7. वी.एन पाटिल बनाम निरंजन कुमार एवं अन्य, (2021) 3 एससीसी 661
8. भगवान सिंह बनाम एम.पी. राज्य, 2002 (44) एससीसी 1112 (एससी)
9. राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य 2003 (47) एससीसी 1068 (एससी)
10. चित्तरलाल बनाम राजस्थान राज्य, (2003) 6 एससीसी 397
11. श्री भगवान बनाम राजस्थान राज्य, (2001) 6 एससीसी 296
12. सतनाम सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2000) 1 एससीसी 662 अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चारिद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री मुमताज अली के लिए पक्ष रखते हुए श्री शाद खान को, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री पंकज कुमार त्रिपाठी को सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

2. यह आवेदन अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 2 बुलंदशहर द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.10.2022 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जिसके तहत उन्होंने गवाहों पीडब्लू-2, पीडब्लू-3, पीडब्लू-6 और पीडब्लू-8 को वापस बुलाने के लिए सीआर.पी.सी. की धारा 311 के तहत आवेदन को खारिज कर दिया था तथा पुलिस स्टेशन सिकंदराबाद जिला- बुलन्दशहर के अन्तर्गत धारा 147, 148, 149, 302 और 120-बी आई.पी.सी. के तहत अपराध क्रमांक 203/2009 से जनित एस.टी. क्रमांक 1401/2010 के उचित और निष्पक्ष निर्णय के लिए जिरह के लिए उपरोक्त गवाहों को वापस बुलाने के लिए विद्वान विचारण न्यायालय को निर्देशित किया था।

3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि मुकदमे के दौरान आवेदक 20.12.2010 से जेल में है। सात सत्र परीक्षण मामलों को एक साथ समेकित किया गया है और प्रमुख मामला एस.टी. क्रमांक 853 दिनांक 2009 है, आवेदक अत्यंत गरीब व्यक्ति है। फीस का भुगतान न करने के कारण, स्थानीय अधिवक्ता ने पीडब्लू-2 रिजवान अंसारी, पीडब्लू-3 एस.आई हरि सिंह, पीडब्लू-6 मोहसिन और पीडब्लू-8 आईओ वीरेंद्र सिंह से जिरह नहीं की। आवेदक ने हाल ही में श्री

कृष्ण कुमार सक्सेना अधिवक्ता को अपने अधिवक्ता के रूप में नियुक्त किया, जिन्होंने 19.10.2022 को सीआर.पी.सी. की धारा 311 के तहत एक आवेदन दायर किया और विचारण न्यायालय से आवेदक की ओर से जिरह के लिए उपरोक्त गवाहों को वापस बुलाने का अनुरोध किया।

4. उससे पहले एक आवेदन क्रमांक 98 ए1 को आवेदक की ओर से गवाहों पीडब्लू-1 से पीडब्लू-3 को जिरह के लिए वापस बुलाने के लिए दायर किया गया था और तत्कालीन विद्वान परीक्षण न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 9.10.2012 के तहत आवेदन को अनुमति दे दी थी इस निर्देश के साथ कि सीआर.पी.सी. की धारा 231 (2) के तहत आवेदन स्थगित रहेगा। इस तरह के निर्देश के बावजूद, विचारण न्यायालय द्वारा उक्त गवाहों को उनकी जिरह के लिए कभी नहीं बुलाया गया। उचित और निष्पक्ष निर्णय के लिए उपरोक्त गवाहों से जिरह बहुत महत्वपूर्ण है। विद्वान विचारण न्यायालय ने न्यायिक मस्तिष्क का उपयोग किए बिना और पिछले आदेश का अवलोकन किए बिना, सामान्य तरीके से रिकॉल आवेदन को खारिज कर दिया। इसलिए, न्याय की दृष्टि से इस न्यायालय द्वारा सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करना समीचीन है।

5. याचिका में संदर्भित सभी कागजात शपथ पत्र के साथ संलग्न हैं।

6. आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विद्वान विचारण

न्यायालय ने ऑर्डर शीट का अवलोकन नहीं किया कि जहां तक पीडब्लू-1 से पीडब्लू-3 की जिरह का सवाल है, तत्कालीन विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा 9.10.2012 को धारा 231 (2) सीआर.पी.सी. के परिप्रेक्ष्य में आवेदकों के आवेदन पर पहले ही विचार किया जा चुका है। इस बात पर भी विचार नहीं किया गया कि जो आरोपी इतने लंबे समय से जेल में है, अगर उसके परिवार के सदस्य और अधिवक्ता उसका सहयोग नहीं कर रहे हैं तो उसके लिए अपना बचाव करना बहुत मुश्किल है। गवाहों की परीक्षा की योजना भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अध्याय- X में बताई गई है और अधिनियम की धारा 137 के अनुसार, गवाह को उसकी मुख्य परीक्षा, जिरह और पुनः परीक्षा के लिए बुलाया जाएगा यदि बुलाने वाला पक्ष उसकी दोबारा परीक्षा चाहता है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि यदि किसी विशेष तिथि पर, गवाह से विपरीत पक्ष द्वारा जिरह नहीं की जा सकी, तो उसे दोबारा जिरह के लिए नहीं बुलाया जाएगा। हालाँकि, यदि न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए पर्याप्त अवसर के बावजूद गवाह से जिरह नहीं की जा सकी, तो जिरह बंद की जा सकती है या यदि आरोपी गवाह से जिरह करने से इनकार करता है, तो जिरह बंद हो सकती है। निश्चित रूप से, यदि किसी अपरिहार्य परिस्थिति के कारण अभियुक्त की ओर से गवाह से जिरह नहीं की जा सकी तो जिरह का समापन खोला जा सकता है। विद्वान विचारण न्यायाधीश के मन में यह तथ्य होना चाहिए कि यदि अभियुक्त को जिरह का अवसर नहीं दिया गया तो यह नैसर्गिक न्याय का उल्लंघन होगा। यह

प्राकृतिक न्याय का मूल सिद्धांत है कि अभियुक्त को जिरह और सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए। यदि गवाह की परीक्षा नहीं की गई तो मुख्य परीक्षा के साक्ष्य को आरोपी के खिलाफ माना जाएगा और इसका खंडन नहीं किया जाएगा और यह स्थिति केवल प्राविधिकता के कारण न्याय का उपहास होगी।

7. ऐसी परिस्थितियों से बचने के लिए सीआर.पी.सी. की धारा 311 को आपराधिक प्रक्रिया संहिता में शामिल किया गया है जो इस प्रकार है:

“कोई भी न्यायालय, इस संहिता के तहत किसी भी जांच, मुकदमे या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में, उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति को बुला सकता है, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो, या पहले से ही जांच किए गए किसी भी व्यक्ति को वापस बुला सकता है और दोबारा जांच कर सकता है; और न्यायालय ऐसे किसी भी व्यक्ति को बुलाएगा और उसकी जांच करेगा या वापस बुलाएगा और फिर से जांच करेगा यदि उसका साक्ष्य मामले के उचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।”

8. उपरोक्त से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस धारा के दो भाग हैं। धारा के पहले भाग के अनुसार, न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है:- (1) किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने के लिए, या। (2) उपस्थित

किसी भी व्यक्ति की परीक्षा करना, भले ही उसे गवाह के रूप में नहीं बुलाया गया हो, या, (3) पहले से ही परीक्षित किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाना और दोबारा परीक्षण करना। दूसरा भाग, जो अनिवार्य है और न्यायालय पर एक दायित्व डालता है:- (1) सम्मन करना और परीक्षण करना, या (2) ऐसे किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाना और पुनः परीक्षण करना, यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायपूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

9. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य ए.आई.आर. 2013 (एससी) 3081, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इसलिए यह अनिवार्य है कि किसी विशेष मामले में धारा 311 सीआर.पी.सी. के आह्वान और उसके आवेदन का आदेश, केवल उक्त प्रावधानों के उद्देश्य और तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए, अर्थात्, मामले के न्यायसंगत निर्णय को प्राप्त करने के लिए न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है। उक्त प्रावधानों के तहत निहित शक्ति किसी भी न्यायालय को किसी भी स्तर पर किसी भी जांच या मुकदमे या संहिता के तहत शुरू की गई अन्य कार्यवाही में किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने या उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति से पूछताछ करने अथवा गवाह के रूप में तलब नहीं किया गया हो या उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति को फिर से बुलाने या फिर से पूछताछ करने के लिए के उद्देश्य से उपलब्ध कराई जाती है, जहां तक पहले से जांचे गए किसी व्यक्ति को वापस बुलाने और उससे पुनः पूछताछ करने की बात है, न्यायालय को अनिवार्य रूप से इस बात पर

विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी व्यक्ति की ऐसी पुनः पूछताछ और पुनः जांच, न्यायालय के 8 में से 3 के दृष्टिकोण में मामले के न्यायपूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होती है।

10. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य ए.आई.आर. 2013 (एससी) 3081, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इसलिए यह अनिवार्य है कि किसी विशेष मामले में धारा 311 सीआर.पी.सी. के आह्वान और उसके आवेदन का आदेश, केवल उक्त प्रावधानों के उद्देश्य और तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए, अर्थात्, मामले के न्यायसंगत निर्णय को प्राप्त करने के लिए न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है। उक्त प्रावधानों के तहत निहित शक्ति किसी भी न्यायालय को किसी भी स्तर पर किसी भी जांच या मुकदमे या संहिता के तहत शुरू की गई अन्य कार्यवाही में किसी भी व्यक्ति को गवाह के रूप में बुलाने या उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति से पूछताछ करने अथवा गवाह के रूप में तलब नहीं किया गया हो या उपस्थिति में किसी भी व्यक्ति को फिर से बुलाने या फिर से पूछताछ करने के लिए के उद्देश्य से उपलब्ध कराई जाती है, जहां तक पहले से जांचे गए किसी व्यक्ति को वापस बुलाने और उससे पुनः पूछताछ करने की बात है, न्यायालय को अनिवार्य रूप से इस बात पर विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी व्यक्ति की ऐसी पुनः पूछताछ और पुनः जांच, न्यायालय के दृष्टिकोण में मामले के न्यायपूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होती है।

11. आर.बी. मिठानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1971, उच्चतम न्यायालय 1630, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि तलब किए गए अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक होने चाहिए, इसलिए नहीं कि निर्णय सुनाना असंभव होगा, बल्कि इसलिए भी कि इसके बिना न्याय विफल हो जाएगा। हालाँकि शक्ति का प्रयोग संयमित ढंग से और केवल उपयुक्त मामले में ही किया जाना चाहिए, लेकिन एक बार ऐसी न्याय संगत कार्रवाई हो जाने पर, प्राप्त किए जाने वाले साक्ष्य के प्रकार पर कोई प्रतिबंध नहीं है। यह औपचारिक या सारगर्भित प्रकृति का हो सकता है।

12. हरियाणा राज्य बनाम राम प्रसाद 2006 सीआर.एल.जे. 1001 में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहां मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए गवाह की परीक्षा और पुनः परीक्षा आवश्यक है, वहां न्यायालय के लिए ऐसे गवाह को बुलाना अनिवार्य है।

13. शैलेन्द्र कुमार बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर 2002 (उच्चतम न्यायालय) 270 में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि भौतिक साक्षी का परीक्षण न करके कोई लापरवाही, चूक या गलती है, तो न्यायालय किसी भी स्तर पर ऐसे साक्षी का परीक्षण करके न्यायसंगत निर्णय देने के लिए कार्य करता है, इसमें किसी भी तरह से कोई बाधा नहीं है।

14. रामासामी बनाम श्रीनिवासन 1987 (3) अपराध 89 मद्रास, में यह अभिनिर्धारित किया

गया है कि आपराधिक न्यायालय केवल पक्षकारों द्वारा उसके समक्ष लाई गई सामग्री से निपटने के लिए अंपायर नहीं है। न्यायालय को आपराधिक न्यायशास्त्र के प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभानी होती है। हालाँकि, साक्ष्य एकत्र करना न्यायालय का सामान्य कर्तव्य नहीं है, ऐसे मामलों में जहाँ न्याय की आवश्यकता होती है, न्यायालय के पास सच्चाई का पता लगाने के लिए मामले में आगे की जाँच करने की शक्ति है।

15. रामा पासवान बनाम झारखंड राज्य, 2007 सीआरएल.एल.जे. 2750 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा के अधीन साक्षी को समन करने की न्यायालय की शक्ति का प्रयोग केवल इसलिए अनुचित नहीं होगा क्योंकि साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करता है न कि अभियुक्त के मामले का। यह धारा एक सामान्य धारा है, जो न्यायालय के तहत सभी कार्यवाही, पूछताछ और परीक्षणों पर लागू होती है और मजिस्ट्रेट को ऐसी कार्यवाही, परीक्षण या जांच के किसी भी चरण में किसी भी गवाह को समन जारी करने का अधिकार देती है।

16. आवेदक-अभियुक्त का विचार है कि सीआर.पी.सी. की धारा 311 के तहत आवेदन की अनुमति देकर और गवाहों को बुलाकर और दस्तावेजी साक्ष्य को रिकॉर्ड पर रखकर, आरोपी-आवेदक के साथ पक्षपात किया गया है। इस संबंध में पोपट लाल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2002, सीआरएल.एल.जे. 794, बंबई उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 311 सीआर.पी.सी. केवल

अभियुक्तों के लाभ के लिए प्रदान नहीं किया गया है और यह न्यायालय की शक्ति का अनुचित प्रयोग नहीं होगा, यदि न्यायालय किसी गवाह को केवल इसलिए बुलाता है क्योंकि साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करेगा न कि बचाव पक्ष के मामले का।

17. वी.एन.पाटिल बनाम निरंजन कुमार और अन्य, (2021) 3 एससीसी 661, अनु. 14 से 17 का अनुमान प्रासंगिक है, इसलिए उन्हें निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"14. सीआरपीसी की धारा 311 का अंतर्निहित उद्देश्य यह है कि मूल्यवान साक्ष्य को रिकॉर्ड पर लाने में किसी भी पक्ष की गलती या दोनों ओर से जांचे गए गवाहों के बयानों में अस्पष्टता छोड़ने के कारण न्याय में विफलता नहीं हो सकती है। निर्धारक कारक यह है कि क्या यह मामले के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक है। महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति जो होती है वह "इस संहिता के तहत किसी भी जांच या मुकदमे या अन्य कार्यवाही के किसी भी स्तर पर" होती है। हालाँकि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सीआरपीसी की धारा 311 के तहत प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए, क्योंकि यह हमेशा कहा जाता है कि "जितनी अधिक शक्ति होगी, विवेकपूर्ण विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय सावधानी की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी।"

15. धारा 311 सीआरपीसी के तहत शक्ति के प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा विजय कुमार बनाम यूपी राज्य, (2011) 8 एससीसी 136: (2011) 3 एससीसी (सीआरआई) 371: (2012) 1 एससीसी (एल एंड एस) 240: (एससीसी पृष्ठ 141, अनु. 17) में सुस्थापित किया गया है।

"17. हालाँकि धारा 311 न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान करती है और इसे यथासंभव व्यापक शब्दों में व्यक्त किया जाता है, उक्त धारा के तहत विवेकाधीन शक्ति का उपयोग केवल न्याय के उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग संहिता के प्रावधानों और आपराधिक कानून के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना चाहिए। धारा 311 के तहत प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा बताए गए कारणों के अनुसार न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए, न कि मनमाने ढंग से या स्वेच्छा से। विद्वान विशेष न्यायाधीश को अदालत की गवाह के रूप में श्रीमती रुचि सक्सेना से पूछताछ करने का निर्देश देने से पहले उच्च न्यायालय ने विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों की जांच नहीं की कि अदालत के गवाह के रूप में उनकी जांच करना क्यों आवश्यक नहीं था और बिना कोई कारण बताए आक्षेपित निर्देश दिया।"

16. इस सिद्धांत को मन्नान शेख बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2014) 13 एससीसी 59: (2014) 5 एससीसी (सीआरआई) 547 और उसके बाद रतनलाल बनाम प्रहलाद जाट, (2017) 9 एससीसी 340: (2017) 3 एससीसी (सीआरआई) 729 और स्वपन कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (सीआरआई) 839 में दोहराया गया है। स्वपन कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (सीआरआई) 839 के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं: स्वपन कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, (2019) 14 एससीसी 328: (2019) 4 एससीसी (क्रि) 839, एससीसी पी. 331, अनु. 10-11)।

"10. इस धारा का पहला भाग जो अनुज्ञेय है, आपराधिक न्यायालय को विशुद्ध रूप से विवेकाधीन अधिकार देता है और संहिता के अधीन जांच, विचारण या अन्य कार्यवाहियों के किसी भी स्तर पर उसे तीन तरीकों में से किसी एक में कार्य करने के लिए सक्षम बनाता है, अर्थात्, (i) किसी व्यक्ति को गवाह के रूप में समन करना; या (ii) उपस्थित किसी व्यक्ति से पूछताछ करना, हालांकि गवाह के रूप में समन नहीं किया गया है; या (iii) पहले से ही जांच किए गए किसी व्यक्ति को वापस बुलाना और फिर से जांच करना। दूसरा भाग, जो अनिवार्य है,

न्यायालय पर एक दायित्व अधिरोपित करता है (i) समन करने और परीक्षण करने के लिए, या (ii) ऐसे किसी व्यक्ति को वापस बुलाने और फिर से जांच करने के लिए यदि उसका साक्ष्य मामले के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

11. यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि धारा 311 के तहत प्रदत्त शक्ति का उपयोग अदालत द्वारा केवल न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए। शक्ति का प्रयोग केवल मजबूत और वैध कारणों के लिए किया जाना है और इसका प्रयोग बहुत सावधानी और एहतियात के साथ किया जाना चाहिए। न्यायालय के पास इस धारा के तहत न्याय के हित में आवश्यक पुनःपरीक्षा या आगे की जांच के लिए गवाहों को वापस बुलाने की शक्ति है, लेकिन प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। इस प्रावधान के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा यदि अदालत का विचार है कि आवेदन कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के रूप में दायर किया गया है।"

17. प्रत्येक न्यायालय का उद्देश्य सत्य की खोज करना है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 ऐसे कई प्रावधानों में से एक है जो कानून

द्वारा स्वीकृत प्रक्रिया द्वारा सच्चाई का पता लगाने के प्रयास में अदालत के अंगों को मजबूत करती है। साथ ही, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के तहत निहित विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग मजबूत और वैध कारणों से और न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सावधानी और एहतियात के साथ किया जाना चाहिए।

18. उपरोक्त मामले में, अपील को शीर्ष अदालत ने स्वीकार कर लिया था और उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया था और गवाहों को बुलाने और दस्तावेज पेश करने के संबंध में विचारण न्यायालय के आदेश को बहाल कर दिया गया था।

19. एफआईआर में या सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दिए गए बयानों में सभी गवाहों के नाम का उल्लेख करना कानून की आवश्यकता नहीं है। अदालत की अनुमति से अभियोजन पक्ष द्वारा भी ऐसे गवाहों से पूछताछ की जा सकती है। एफआईआर में किसी भी गवाह के नाम का उल्लेख न करने से चश्मदीद गवाह के साक्ष्य को अस्वीकार करना उचित नहीं होगा। **भगवान सिंह बनाम स्टेट ऑफ एमपी, 2002 (44) एसीसी 1112 (एससी)** के अनु. 13 में यह माना गया कि एफआईआर में सभी गवाहों के नाम का उल्लेख करने के लिए कानून की कोई आवश्यकता नहीं है, जिसका उद्देश्य केवल आपराधिक कानून को लागू करना है। उद्धृत मामले में किरण (पीडब्लू 7) स्वयं घायल हो

गई थी और और हरि राम (मृतक) की भतीजी होने के नाते कारित अपराध में निर्दोष व्यक्तियों को शामिल करने का कोई कारण नहीं था। उपरोक्त उद्धरण के अतिरिक्त राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य, 2003 (47) एसीसी 1068 (एससी), चित्तरलाल बनाम राजस्थान राज्य, (2003) 6 एससीसी 397, श्री भगवान बनाम राजस्थान राज्य, (2001) 6 एससीसी 296, सतनाम सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2000) 1 एससीसी 662, सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के समान सिद्धांतों को रखा है।

20. उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि विचारण न्यायालय ने दिनांक 9.10.2012 के पिछले आदेश पर विचार न करके स्पष्ट त्रुटि की है और यह रिकॉल आवेदन पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार करने में भी विफल रहा है, इसलिए यह आवेदन अनुमति दिये जाने योग्य है।

आदेश

इस आवेदन को अनुमति दी जाती है और दिनांक 19.10.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाता है और सीआर.पी.सी. की धारा 311 के तहत आवेदन की अनुमति दी जाती है। विद्वत निचली अदालत को निर्देश दिया जाता है कि वह गवाह पीडब्लू-2, पीडब्लू-3, पीडब्लू-6 और पीडब्लू-8 को आवेदक महबूब पांडे द्वारा और उनकी ओर से जिरह के लिए तलब करे। यह भी निर्देशित किया जाता है कि विद्वत विचारण न्यायालय आवेदक को उपरोक्त गवाहों के प्रतिपरीक्षा के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करेगा।

(2023) 4 ILRA 1305

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

रिट-ए संख्या 4821/2023

मनीषा कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सुश्री शालिनी मिश्रा,

श्री संजय कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री रवि

प्रकाश पाण्डेय

ए. सेवा कानून - याचिकाकर्ता के मृत पति की ग्रेच्युटी और पेंशन के भुगतान का दावा खारिज - पति स्वीकृत पद के विरुद्ध काम नहीं कर रहा - जीवन भर विभाग में काम करने के बावजूद सेवा कभी नियमित नहीं की गई - याचिकाकर्ता उत्तर प्रदेश विकास प्राधिकरण केन्द्रीयकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 के तहत पेंशन पाने का हकदार है।

बी. राज्य सरकार शोषणकारी श्रम व्यवहार में संलिप्त नहीं हो सकती-व्यक्ति को लंबे समय तक अस्थायी आधार पर नहीं रखा जा सकता-नियमित कर्मचारियों के लाभों से इनकार करना-याचिकाकर्ता के पति की सेवाओं को नियमित सेवा माना जाएगा-उत्तर प्रदेश पेंशन और सत्यापन अर्हक सेवा अधिनियम, 2021-केवल राज्य सरकार के कर्मचारियों पर लागू-अन्यथा भी, 2021 के अधिनियम को पढ़ा गया है-याचिकाकर्ता नियमित पेंशन और अन्य

सेवानिवृत्ति लाभों का हकदार है-याचिका स्वीकार की गई।

आयोजित:

सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार माना है कि राज्य सरकार शोषणकारी श्रम व्यवहार में सम्मिलित नहीं हो सकती। यह नियमित कर्मचारियों के लाभ देने से इनकार करते हुए लंबे समय तक अस्थायी आधार पर लोगों को नियुक्त नहीं कर सकता। प्रेम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2019) 10 एससीसी 516 में दिए गए निर्णय का संदर्भ लेना ही पर्याप्त होगा।

इसलिए, प्रेम सिंह (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और याचिकाकर्ता के पति द्वारा बिताई गई अवधि तथा इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उन्हें नियमित कर्मचारियों के समान सभी सेवा लाभ भी मिल रहे थे, याचिकाकर्ता के पति की सेवाओं को नियमित सेवा के रूप में माना जाना चाहिए।

2011 के वर्तमान नियम राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं, जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन मानते हुए निरस्त कर दिया है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं। वर्तमान वाद में भी, एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, जैसा कि माना जाता है, क्योंकि तदर्थ नियुक्तियाँ करने वाले कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान ही कार्य करते हैं और उन्हें हमेशा नियमित कर्मचारी के रूप में ही

माना जाता है। इस प्रकार, यह वाद प्रेम सिंह (सुप्रा) में तय कानून के अंतर्गत आता है।

याचिका स्वीकृत (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

- 1.प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य व अन्य, (2019) 10 एससीसी 516
- 2.रिट-ए संख्या 8968/2022 (डॉ. श्याम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 22.11.2022 और 17.1.2023 के आदेशों को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत उत्तरदाताओं ने याचिकाकर्ता के दिवंगत पति की ग्रेच्युटी और पेंशन के भुगतान के याचिकाकर्ता के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता का पति अनुमोदित पद के विरुद्ध कार्य नहीं कर रहा था।

याचिकाकर्ता के पति को 18.06.1988 को परिवीक्षा के आधार पर सहायक लागत लेखाकार के पद पर नियुक्त किया गया था और वह नियमित रूप से काम करते रहे। याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु 11.06.2019 को हो गई। याचिकाकर्ता के पति नियमित रूप से काम कर रहे थे और संशोधित वेतनमान और भत्ते सहित नियमित सेवा लाभ और

एसीपी का लाभ समय-समय पर उत्तरदाताओं द्वारा दिया जाता था।

यह जानकर दुख हुआ कि विभाग की सेवाओं के साथ पूरा कामकाजी जीवन बिताने के बावजूद याचिकाकर्ता के पति को कभी भी नियमित नहीं किया गया। अपनी सेवा अवधि के दौरान याचिकाकर्ता को नियमित कर्मचारियों की तरह सभी सेवा लाभ भी प्रदान किये गये। इस प्रकार, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, याचिकाकर्ता को नियमित कर्मचारी माना गया।

सुप्रीम कोर्ट ने बार-बार माना है कि राज्य सरकार शोषणकारी श्रम अभ्यास में शामिल नहीं हो सकती है। यह नियमित कर्मचारियों के लाभ देने से इनकार करते हुए व्यक्तियों को लंबी अवधि के लिए अस्थायी आधार पर नियुक्त नहीं कर सकता है। **प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य** (2019) 10 एससीसी 516 के मामले में फैसले का उल्लेख करना पर्याप्त होगा। सुप्रीम कोर्ट ने उक्त फैसले में कहा :-

"31. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, राज्य सरकार और उसके अधिकारियों की ओर से कर्मचारियों से कार्य-प्रभारित आधार पर काम लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्ति का सहारा लेना चाहिए था। लंबे समय तक कार्यभार के आधार पर काम लेना शोषणकारी युक्ति अपना देने के समान है। बाद में, हालांकि उनकी सेवाओं को नियमित कर दिया गया है। तथापि, उनके द्वारा कार्य में व्यतीत की गई अवधि आरोपित प्रतिष्ठान ने अर्हकारी सेवा में नहीं गिना। इस प्रकार, उन्हें न केवल कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर सेवा के दौरान उनके उचित परिलब्धियों से वंचित किया गया है, बल्कि

पेंशन लाभ के लिए अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है मानो उनके द्वारा कोई सेवा प्रदान नहीं की गई। अपने जीवन के सुनहरे दिनों में कार्यभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से राज्य को लाभ हुआ है।

.....

36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएँ देने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूँकि उन्होंने कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में काम किया है, न किसी विशेष परियोजना के विरुद्ध, उनकी सेवाओं को सरकारी निर्देशों के तहत और यहां तक कि कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3), (2006) 4 एससीसी 1: 2006 एससीसी (एल एंड एस) 753] मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश की आड़ में दस साल से अधिक समय तक सेवाएं प्रदान की गई हैं, एकमुश्त उपाय के रूप में, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाना चाहिए। मामले के तथ्यों में, जिन कर्मचारियों ने दस साल या उससे अधिक समय तक काम किया है, उन्हें नियमित किया जाना चाहिए था। उन्हें नियमित करने के विचार के लिए विनियमित करना उचित नहीं होगा जैसा कि अन्य ने किया है। नियमित किए जाने के बाद, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए, हालांकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि वे सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने से पहले

नियमित रूप से सेवा में बने रहे तो वे वेतन में अंतर के किसी भी बकाया का दावा करने के हकदार नहीं होंगे। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हों और कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश के दिन से ही उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के उद्देश्य के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

इसलिए, प्रेम सिंह (पूर्व) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा तय किए गए कानून और याचिकाकर्ता के पति द्वारा बिताई गई अवधि और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उन्हें नियमित के बराबर सभी सेवा लाभ भी मिल रहे थे, कर्मचारियों, याचिकाकर्ता के पति की सेवाओं को नियमित सेवा के रूप में माना जाने योग्य है।

याचिकाकर्ता के वकील ने आगे कहा कि वह यूपी विकास प्राधिकरण केंद्रीकृत सेवा सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 2011 (2011 के नियम) के तहत पेंशन का हकदार है जिसमें नियम 2 (झा)का संदर्भ दिया गया है, जो इस प्रकार है:-

"(झ) "अर्हकारी सेवा" का तात्पर्य सेवा के किसी सदस्य की ऐसी सेवा से है जो निम्नलिखित शर्तों को पूरा करता हो:-

- (एक) सेवा किसी प्राधिकरण के अधीन अवश्य हो,
- (दो) नियोजन मौलिक/नियमित/स्थायी अवश्य हो,
- (तीन) सेवा का भुगतान किसी प्राधिकरण द्वारा अवश्य किया जाता हो,

(चार) किसी प्राधिकरण के अधीन गैर पेशनयोग्य अधिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा को छोड़कर सेवा की अवधि,

(पांच) किसी कार्य प्रभारित अधिष्ठान में सेवा की अवधि और,

(छह) आकस्मिक व्यय से भुगतान किये जाने वाले पद में सेवा की अवधि :-

परन्तु यह कि सेवा के किसी सदस्य की सेवा क्षति पूर्ति उपदान के सिवाय पेंशन और उपदान के लिए तब तक अर्ह नहीं होगी जब तक कि उसने बीस वर्ष की सेवा पूरी न कर ली हो:-

परन्तु, यह और कि किसी सुधारन्यास, प्राधिकरण, पालिका, बोर्ड, निगम, केन्द्र या राज्यसरकार के अधीन निरन्तर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि की गणना अर्हकारी सेवा के रूप में की जायेगी यदि उसी या किसी अन्य पद पर सेवा के किमी व्यवधान के बिना बाद में उसे स्थायी कर दिया जाय।

टिप्पणी :- यदि किसी पेंशन रहित अधिष्ठान, कार्य प्रभारित अधिष्ठान में या आकस्मिकता व्यय में भुगतान किये जाने वाले किसी पद पर की गयी सेवा किसी पेशनयुक्त अधिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधि के बीच में या किसी पेंशनयुक्त अधिष्ठान में अस्थायी सेवा और स्थायी सेवा की अवधि के बीच में पड़ती हो तो यह सेवा का व्यवधान नहीं होगी।"

आगे प्रस्तुतीकरण यह है कि राज्य सरकार के कर्मचारियों के संबंध में भी इसी तरह के नियम प्रचलित हैं जो कार्य प्रभार के आधार पर की गई सेवाओं की गैर- गणना

प्रदान करते हैं। प्रेम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य (2019) 10 एससीसी 516 के मामले में सुप्रीम कोर्ट की तीन जजों की बेंच ने पेंशन के लिए उनकी पात्रता पर विचार किया व संदर्भ दिया। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ पढ़ते हैं:-

"8. हम सबसे पहले उत्तर प्रदेश सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 1961 (संक्षेप में 1961 नियमावली) में निहित प्रावधानों पर विचार करते हैं। 1961 नियमावली के नियम 3(8) जिसमें अर्हक सेवा के संबंध में प्रावधान शामिल हैं, यहां दिए गए हैं :-

3. इन नियमों में, जब तक कि विषय या सन्दर्भ में कोई बात प्रतिकूल न हो

(1)- (7)***

(8) अर्हक सेवा का अर्थ वह सेवा है जो सिविल सेवा विनियम के अनुच्छेद 368 के प्रावधानों के अनुसार पेंशन के लिए योग्य है :-

बशर्ते कि उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा को उसी या किसी अन्य अतीत में पुष्टिकरण द्वारा बिना किसी रुकावट के जारी रखा जाए।

(i) गैर- पेंशनभोगी प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि;

(ii) कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि, और

(iii) आकस्मिक व्यय से भुगतान किए गए पद पर सेवा की अवधि को भी अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

टिप्पणी - यदि गैर- पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान में या आकस्मिक व्यय से भुगतान किए गए पद पर प्रदान की गई सेवा पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच या अस्थायी सेवा

की अवधि और पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में स्थायी सेवा के बीच आती है, तो इसे सेवा में रुकावट नहीं माना जाएगा।

9 - उत्तर प्रदेश सिविल सेवा विनियमावली के विनियम 361, 368 एवं 370 भी प्रासंगिक हैं। उन्हें यहां से निकाला गया है

361 - किसी अधिकारी की सेवा तब तक पेंशन के लिए योग्य नहीं होती जब तक वह निम्नलिखित तीन शर्तों के अनुरूप न हो :-

सबसे पहले सेवा सरकार के अधीन होनी चाहिए।

दूसरा। रोजगार ठोस और स्थायी होना चाहिए।

इन तीन शर्तों को निम्नलिखित विनियमों में पूरी तरह से समझाया गया है।

368 - सेवा तब तक योग्य नहीं होती जब तक कि अधिकारी किसी स्थायी प्रतिष्ठान में वास्तविक पद पर न हो

370 - उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन निरंतर अस्थायी या स्थानापन्न सेवा के बाद उसी या किसी अन्य पद पर पुष्टिकरण बिना किसी रुकावट के अर्हता प्राप्त करेगा, सिवाय इसके कि :-

(i) गैर- पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या स्थानापन्न सेवा की अवधि,

(ii) कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान में सेवा की अवधि, और

(iii) किसी पद पर आकस्मिक व्यय से भुगतान की गई सेवा की अवधि।

10 - अर्हक सेवा वह है जो विनियम 368 के प्रावधानों के अनुसार है अर्थात् स्थायी प्रतिष्ठान पर एक मूल पद धारण करना। विनियम 3(8) का प्रावधान स्पष्ट करता है कि

समान या किसी अन्य पद पर स्थायीकरण के बाद बिना किसी रुकावट के निरंतर, अस्थायी या स्थानापन्न सेवा को भी अर्हक सेवा में शामिल किया जाता है, सिवाय किसी गैर-अस्थायी और स्थानापन्न सेवा की अवधि के। पेंशन योग्य प्रतिष्ठान. कार्यभारित प्रतिष्ठान में सेवा और आकस्मिक व्यय से भुगतान किये गये पद पर सेवा की अवधि को भी अर्हक सेवा के रूप में नहीं गिना जाएगा।

11 - नियम 3(8) से जुड़े नोट में यह प्रावधान है कि यदि सेवा गैर- पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान या आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद पर प्रदान की जाती है या पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा की दो अवधियों के बीच आती है या किसी पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी सेवा और स्थायी सेवा की अवधि के बीच आती है तो यह सेवा में रुकावट नहीं माना जाएगा। इस प्रकार नियंत्रक नोट में स्पष्ट प्रावधान है :-

कार्य- प्रभारित, आकस्मिक स्थिति और गैर-पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में प्रदान की गई अर्हता सेवा को उसमें प्रदान की गई अत्यावश्यकताओं में पेंशन योग्य सेवा में गिना जाएगा।

12 - सिविल सेवा विनियम के विनियम 370 में निहित प्रावधानों में गैर- पेंशन योग्य प्रतिष्ठान, कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान और आकस्मिकताओं से भुगतान किए गए पद पर सेवा को अर्हक सेवा के दायरे से बाहर रखा गया है। सिविल सेवा विनियम के विनियम 361 के तहत, सेवाएँ सरकार के अधीन होनी चाहिए और रोजगार वास्तविक और स्थायी आधार पर होना चाहिए।

..... 30. हम उपरोक्त प्रस्तुतियों से प्रभावित नहीं हैं। प्रश्नाधीन कार्यप्रभारित कर्मचारी की नियुक्ति मासिक वेतन पर की गई थी तथा उन्हें दक्षता सीमा भी पार करनी थी। उनकी सेवाएँ नियमित कर्मचारियों से गुणात्मक रूप से किस प्रकार भिन्न हैं? नीरस बयान देने के अलावा गुणात्मक अंतर दर्शाने वाली कोई भी सामग्री इंगित नहीं की गई है। नियुक्ति किसी विशेष परियोजना के लिए नहीं की गई थी जो कि कार्य- प्रभारित कर्मचारियों की मूल अवधारणा है, बल्कि, कार्य- प्रभारित रोजगार की अवधारणा का दुरुपयोग उस कार्य के लिए शोषणकारी शर्तों पर रोजगार की पेशकश करके किया गया है जो प्रकृति में नियमित और बारहमासी है। कार्य- प्रभारित कर्मचारियों को नियमित कर्मचारियों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया गया था, जैसा कि रिकॉर्ड पर रखे गए दस्तावेजों से स्पष्ट है। नारायण दत्त शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [सीए संख्या..... 2019 एसएलपी (सी) संख्या 5775/2018 से उत्पन्न] में अपीलकर्ताओं को कार्य- प्रभारित सेवाओं की अवधि के दौरान भी, "8" वर्षों की निरंतर सेवा के बाद, दक्षता अवरोध को पार करने की अनुमति दी गई थी। नारायण दत्त शर्मा, अपीलकर्ता को 15-9-1978 से कार्य- प्रभारित कर्मचारी के रूप में गेज मापक के रूप में नियुक्त किया गया था। भुगतान मासिक किया जाता था लेकिन नियुक्ति 200-320 रुपये के वेतनमान में की गई थी। प्रारंभ में, उन्हें वर्ष 1978 में 205 रुपये प्रति माह के निश्चित मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था , उन्हें दक्षता सीमा पार करने की भी अनुमति दी गई थी क्योंकि वेतनमान का लाभ

उन्हें उस अवधि के दौरान दिया गया था जब उन्होंने कार्य- प्रभारित कर्मचारियों के रूप में तीन से चार दशकों तक सेवा की थी और बाद में भी। विभिन्न आदेशों द्वारा समय- समय पर सेवाओं को नियमित किया गया है। हालाँकि, कुछ याचिकाओं/ अपील में कुछ अपीलकर्ताओं की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है, जबकि उन्होंने कई दशकों तक सेवा की थी और अंततः सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंच गए थे।

31 उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों में राज्य सरकार एवं उसके अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों से कार्य प्रभार के आधार पर कार्य लेना अनुचित था। उन्हें नियमित आधार पर नियुक्ति का सहारा लेना चाहिए था। कार्य- प्रभारित बस्तों से लंबे समय तक कार्य लेना शोषणकारी युक्ति अपनाने के बराबर है। बाद में, हालाँकि उनकी सेवाओं को नियमित कर दिया गया है, तथापि, कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान में उनके द्वारा बिताई गई अवधि को योग्यता सेवा में नहीं गिना गया है। इस प्रकार कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर सेवा की अवधि के दौरान उन्हें न केवल उनके उचित परिलब्धियों से वंचित किया गया है, बल्कि पेंशन लाभ के लिए अवधि की गणना से भी वंचित किया गया है जैसे कि उनके द्वारा कोई सेवा प्रदान नहीं की गई। अपने जीवन के सुनहरे दिनों में कार्यभारित प्रतिष्ठान में कम वेतन पर उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से राज्य को लाभ हुआ है।

32. 1961 के नियमों के नियम 3(8) से जुड़े नोट के मद्देनजर, कार्य- प्रभारित,

आकस्मिकताओं या गैर- पेंशन योग्य सेवा पर खर्च की गई सेवा की गणना करने का प्रावधान है, यदि किसी व्यक्ति ने ऐसी सेवा प्रदान की है पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में दो अस्थायी नियुक्तियों की अवधि के बीच दिया गया हो या अस्थायी और स्थायी रोजगार की दो अवधियों के अंतराल में ऐसी सेवा प्रदान की हो। उपरोक्त अत्यावश्यक परिस्थितियों में कार्य- प्रभारित सेवा को पेंशन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जा सकता है।

33. प्रश्न उठता है कि क्या यह शर्त लगाना कि ऐसी सेवा को गिना जाना है, अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवा के दो चरणों के बीच प्रदान की जानी चाहिए, कानूनी और उचित है। हम पाते हैं कि एक बार रिक्त पदों पर नियमितीकरण किया गया था, हालांकि नियुक्ति की प्रकृति को देखते हुए, कर्मचारी ने इससे पहले अस्थायी आधार पर सेवा नहीं की थी, हालांकि यह नियमित नियुक्ति नहीं थी, इसे मासिक वेतन पर और उसके बाद वेतनमान में किया गया था। कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान की दक्षता पट्टी को पार करने की अनुमति दी गई थी। 1961 के नियमों के नियम 3(8) के नोट में निहित शर्त के कारण यह अत्यधिक भेदभावपूर्ण और अतार्किक होगा, विशेष रूप से ऐसी सेवा की गणना नहीं करना, जब इसे गिना जा सकता है, यदि ऐसी सेवा दो अस्थायी या अस्थायी और स्थायी सेवाओं के बीच सैंडविच हो। यदि कार्यभारित अवधि की सेवा नियमितीकरण से पहले प्रदान की गई है तो उसकी गणना न करने का कोई तुक या कारण नहीं है। हमारी राय में नियम 3(8) के तहत एक अनुचित

वर्गीकरण किया गया है। ऐसे कर्मचारियों को अर्हक सेवा के लाभ से वंचित करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण, अनुचित और अतार्किक होगा। कार्यभारित अवधि की सेवा सभी कर्मचारियों के लिए समान रहती है, एक बार इसे एक वर्ग के लिए गिना जाना है तो भेदभाव को रोकने के लिए इसे सभी के लिए गिना जाना चाहिए। वर्गीकरण तर्कहीन आधार पर नहीं किया जा सकता है और जब उत्तरदाता स्वयं ऐसी सेवा में बिताई गई अवधि की गणना कर रहे हैं, तो कमजोर वर्गीकरण के आधार पर सेवा की गणना न करना अत्यधिक भेदभावपूर्ण होगा। उस कार्य- प्रभारित सेवा पर जो राइडर लगाया गया है वह अस्थायी क्षमता से पहले होना चाहिए, भेदभावपूर्ण और तर्कहीन है और एक अनुचित वर्गीकरण बनाता है।

34. चूंकि नियम 3(8) को वैध और गैर-भेदभावपूर्ण बनाने के लिए उपरोक्त वर्गीकरण करना अन्यायपूर्ण, अवैध और अनुचित होगा, हमें नियम 3(8) के प्रावधानों को पढ़ना होगा और यह मानना होगा कि नियमितीकरण से पहले भी प्रदान की गई सेवाएं कार्य- प्रभारित कर्मचारियों की क्षमता में, आकस्मिक भुगतान निधि कर्मचारी या गैर- पेंशन योग्य प्रतिष्ठान को भी अर्हक सेवा के प्रति गिना जाएगा। भले ही ऐसी सेवा किसी पेंशन योग्य प्रतिष्ठान में अस्थायी या नियमित नियुक्ति से पहले न हुई हो।

35. नियम 3(8) से जुड़े नोट के मद्देनजर, जिसे हमने पढ़ा है, सिविल सेवा विनियमों के विनियमन 370 में शामिल प्रावधान को रद्द किया जाना चाहिए और साथ

ही वित्तीय हैंडबुक के पैरा 669 में निहित निर्देशों को भी हटाया जाना चाहिए।

36. कुछ कर्मचारी ऐसे हैं जिन्हें 30-40 या उससे अधिक वर्षों तक सेवाएँ देने के बावजूद नियमित नहीं किया गया है जबकि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। चूँकि उन्होंने कार्य-प्रभारित प्रतिष्ठान में काम किया है, किसी विशेष परियोजना के विरुद्ध नहीं, उनकी सेवाओं को सरकारी निर्देशों के तहत और यहां तक कि कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3) [कर्नाटक राज्य बनाम उमादेवी (3), (2006) 4 एससीसी 1, 2006 एससीसी (एल एंड एस) 753] के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए था। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में यह निर्धारित किया है कि यदि न्यायालय के आदेश की आड़ में दस वर्षों से अधिक समय तक सेवाएं प्रदान की गई हैं, तो एकमुश्त उपाय के रूप में, ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाएगा। मामले के तथ्यों के अनुसार जिन कर्मचारियों ने दस साल या उससे अधिक समय तक काम किया है, उन्हें नियमित किया जाना चाहिए था। नियमितीकरण पर विचार के लिए उन्हें विनियमित करना उचित नहीं होगा क्योंकि अन्य लोगों को नियमित कर दिया गया है, हम निर्देश देते हैं कि उनकी सेवाओं को नियमित माना जाए। हालाँकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि वे सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने से पहले नियमित रूप से सेवा में बने रहे तो वे वेतन में किसी भी अंतर का दावा करने के हकदार नहीं होंगे। वे पेंशन प्राप्त करने के हकदार होंगे जैसे कि वे नियमित प्रतिष्ठान से सेवानिवृत्त हुए हों और

कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रवेश के दिन से ही उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन के प्रयोजन के लिए अर्हक सेवा के रूप में गिना जाएगा।

37. उ.प्र. सेवानिवृत्ति लाभ नियम, 1961 के नियम 3(8) को पढ़कर हम देखते हैं कि कार्य- प्रभारित प्रतिष्ठान में प्रदान की गई सेवाओं को पेंशन अनुदान के लिए उपरोक्त नियम के तहत अर्हक सेवा के रूप में माना जाएगा। पेंशन की बकाया राशि आदेश की तारीख से पहले केवल तीन साल तक ही सीमित रहेगी। तीन माह के अंदर तदनुसार अनुमन्य लाभ का भुगतान किया जाये। परिणामस्वरूप, कर्मचारियों द्वारा दायर की गई अपीलों को स्वीकार कर लिया जाता है और राज्य द्वारा दायर की गई अपीलों को खारिज कर दिया जाता है।"

उन्होंने आगे कहा कि चूँकि पेंशन लाभ के लिए समान नियम प्रतिवादी प्राधिकारी में मौजूद हैं, इसलिए, मामला पूरी तरह से उक्त निर्णय द्वारा कवर किया गया है और याचिकाकर्ता को प्रेम सिंह (पूर्व) के मामले में तय किए गए कानून का लाभ भी दिया जाना चाहिए।

प्रतिवादी के विद्वान वकील ने प्रेम सिंह (पूर्व) के मामले में फैसले की प्रयोज्यता का इस आधार पर विरोध किया कि उपरोक्त निर्णय का प्रभाव उत्तर प्रदेश पेंशन और मान्यता के लिए अर्हकारी सेवा अधिनियम, 2021 के अधिनियमन के कारण रद्द हो गया है।

जहां तक 2021 के अधिनियम का सवाल है, यह केवल राज्य सरकार के

कर्मचारियों पर लागू होता है। ऐसा कोई अधिनियम नहीं है जो विकास प्राधिकरण की केंद्रीकृत सेवाओं के कर्मचारियों के संबंध में लागू हो। अन्यथा भी 2021 के अधिनियम को इस न्यायालय द्वारा रिट- ए संख्या 8968/2022 (डॉ. श्याम कुमार बनाम यूपी राज्य और अन्य) में पारित निर्णय दिनांक 17.02.2023 द्वारा पहले ही पढ़ा जा चुका है। इसके प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार हैं :-

"19. प्रारंभिक नियुक्ति पत्रों से पता चलता है कि याचिकाकर्ताओं को तदर्थ आधार पर मूल पदों के विरुद्ध नियुक्त किया गया था क्योंकि उनकी नियुक्ति एक मूल पद के विरुद्ध है, इसलिए, वे 2021 के अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत भी आते हैं। इसके अलावा, 2021 के अधिनियम की धारा 2 के अनुसार ऊपर दी गई व्याख्या के अनुसार यह माना जाता है कि अस्थायी या स्थायी प्रकृति में की गई सेवाओं को पेंशन उद्देश्यों के लिए गिना जाना चाहिए, अन्यथा यह फिर से सुप्रीम कोर्ट के फैसले से प्रभावित होगा। प्रेम सिंह (पूर्व) के मामले में इस प्रकार इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता है कि सभी याचिकाकर्ता पेंशन प्रयोजनों के लिए तदर्थ कर्मचारियों के रूप में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की गणना के हकदार हैं।

उपरोक्त के मद्देनजर, सभी विवादित आदेशों को खारिज किया जाता है।"

2011 के वर्तमान नियम राज्य सरकार के नियमों के समानांतर हैं जिन्हें सुप्रीम कोर्ट ने पढ़ा है, इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन माना जाता है, क्योंकि वे समान स्थिति वाले कर्मचारियों का एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाते हैं। वर्तमान मामले

में भी एक कृत्रिम वर्गीकरण बनाया गया है, क्योंकि तदर्थ नियुक्तियों पर कर्मचारी नियमित कर्मचारियों के समान कर्तव्य निभाते हैं और उन्हें नियमित कर्मचारी के रूप में माना जाता है। इस प्रकार, मामला पूरी तरह से प्रेम सिंह (पूर्व) के मामले में तय किए गए कानून के अंतर्गत आता है।

चूंकि वर्तमान याचिका में याचिकाकर्ता की शिकायत उसी के समान है जिस पर इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त मामले में पहले ही फैसला सुनाया जा चुका है, उपरोक्त निर्णय और आदेश दिनांक 17.2.2023 का लाभ वर्तमान याचिकाकर्ता को भी उन्हीं शर्तों पर उपलब्ध कराया जाएगा।

तदनुसार, रिट याचिका स्वीकृत की जाती है और दिनांक 22.11.2022 और 17.1.2023 के आक्षेपित आदेशों को रद्द कर दिया जाता है। प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता को नियमित पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है। हालांकि, याचिकाकर्ता केवल पिछले तीन वर्षों के लिए पिछले पेंशन लाभों का हकदार होगा

(2023) 4 ILRA 1313

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट-ए संख्या 5545/2022

रेनु चौरसिया

...याचिकाकर्ता

बनाम

पंजाब एवं सिंध बैंक एवं अन्य ...प्रतिवादी
अधिवक्ता याचिकाकर्ता: प्रवीण कुमार सिंह,
अविनाश चंद्र, मनीष वैश, प्रशांत कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: तरनजीत सिंह मक्कड़,
शरद कुमार शुक्ला

सेवा कानून- याचिकाकर्ता को बड़ी सजा देने वाला आदेश-साथ ही अपीलीय आदेश-चुनौती दी गई- उसके खाते से वेतन से कहीं अधिक धनराशि का लेनदेन- कदाचार विनियम 3(1), 3(3) और विनियम 20(4) सपठित पंजाब और सिंध बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1981 के विनियम 24- याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप विशिष्ट और अस्पष्ट प्रकृति का नहीं है- विनियम 20(4) का कोई उल्लंघन नहीं- अपीलीय आदेश याचिकाकर्ता के प्रस्तुतीकरण से संबंधित नहीं है- आदेश लापरवाही से पारित किया गया- विवादित आदेश को पोषणीय नहीं माना गया- याचिका स्वीकृत की गई। (पैरा 20 से 23)

आयोजित:

याचिकाकर्ता के प्रारंभ और समाप्त हुई कार्यवाही के विश्लेषण पर, जिसके परिणामस्वरूप सजा के आपेक्षित आदेश पारित किए गए, वे किसी भी तरह से विनियमन 20(4) या उस वाद के लिए विनियमन 3(1) और विनियमन 3(3) या कर्मचारी विनियमन के विनियमन 24 का उल्लंघन नहीं प्रदर्शित करने हैं। कार्यवाही कानून की दृष्टि से और भी खराब है क्योंकि याचिकाकर्ता ने कभी भी अपराध स्वीकार नहीं किया और, इस प्रकार, यह अनिवार्य था कि वह दोषी पाए जाने पर ही दोषी पाए जाने पर अनुशासन प्राधिकारी को अनुशासन और अपील विनियमन 1981 के विनियमन 8 सपठित 1981 के विनियमन 4

के अनुसार प्रत्येक ऐसे आरोप पर अपने निष्कर्ष दर्ज करने के लिए कहा गया है। ऊपर दर्ज सभी कारणों से, याचिकाकर्ता को बड़ी सजा देने वाले आपेक्षित आदेश स्पष्ट रूप से अस्थिर हैं और निरस्त किए जाने योग्य हैं। दिनांक 11.2.2022 और 8.8.2022 के आपेक्षित आदेश निरस्त किए जाते हैं। मैं वाद को वापस नहीं ले रहा हूँ क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप बहुत अस्पष्ट हैं और याचिकाकर्ता को ऐसे अस्पष्ट आरोपों का जवाब देने के लिए बाध्य करना याचिकाकर्ता को और शर्मिंदा करेगा। (पैरा 22)

याचिका स्वीकृत (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. रमेश मोहन शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य 2015(7) एडीजे 722 (डीबी)
2. महेश नारायण गुप्ता बनाम यूपी राज्य व अन्य 2011 (5) एडीजे 177
3. उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2 एससीसी 772
4. सिविल अपील संख्या 8071/2014 के संबंध में: कर्नाटक राज्य बनाम एम गंगाराज
5. बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ

(माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया, द्वारा
प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।
2. वर्तमान याचिका, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 11.2.2022 के आदेश को चुनौती देते

हुए दायर की गई है, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता को दीर्घ दंड दिया गया था, साथ ही दिनांक 8.8.2022 के अपीलीय आदेश को भी चुनौती दी गई है, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता द्वारा दायर विभागीय अपील को खारिज कर दिया गया था।

3. जो संक्षिप्त तथ्य सामने आए हैं, वे हैं कि याचिकाकर्ता प्रतिवादी-बैंक में अधिकारी के रूप में कार्यरत थी। 14.11.2019 को याचिकाकर्ता को 2015 से 2019 की अवधि के लिए याचिकाकर्ता के खाते के लेनदेन के संबंध में स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 3.12.2019 के पत्र के माध्यम से उक्त स्पष्टीकरण का उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता के पिता को लकवा का दौरा पड़ा था और वे 2009 से बिस्तर पर थे और चिकित्सा और पारिवारिक आवश्यकताओं के कारण परिवार के सदस्यों से कुछ राशि उधार ली गई थी।

4. यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा जवाब प्रस्तुत किए जाने के बाद, याचिकाकर्ता को 10.2.2021 को कारण बताओ नोटिस दिया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप लगाया गया था कि याचिकाकर्ता ने 11.8.2015 से 23.1.2019 की अवधि में एक अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए अपने खाते से नियमित रूप से बड़ी मात्रा में धन का लेनदेन किया था, जो उसके वेतन से बहुत अधिक है, जो पंजाब और सिंध बैंक अधिकारी कर्मचारी (आचरण) विनियम 1981 (जिसे आगे '1981 विनियम' कहा गया है) के विनियम 24 के साथ पठित विनियम 3 (1),

विनियम 3 (3) और विनियम 20 (4) के संदर्भ में कदाचार का गठन करेगा। उक्त आरोप पत्र के साथ, याचिकाकर्ता के खाते का विवरण, जिसमें लेनदेन शामिल है, आरोपों को प्रमाणित करने के लिए प्रस्तावित दस्तावेज के रूप में संलग्न किया गया था। याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाया गया एकमात्र आरोप इस प्रकार है:-

"सुश्री रेणु चौरसिया (पीएफ कोड: आर16432), अधिकारी पर पंजाब और सिंध बैंक अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) विनियम, 1981 (समय-समय पर संशोधित) के विनियम 6 के अंतर्गत दीर्घ दंड की कार्यवाही के लिए आरोप लगाया गया है, क्योंकि उन्होंने 11.8.2015 से 20.09.2015 तक राजाजीपुरम लखनऊ (एल0779) शाखा में, 21.09.2015 से 22.01.2019 तक इंद्रा नगर लखनऊ (एल0802) और 23.01.2019 से गोमती नगर लखनऊ (एल0917) में अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए अपने वेतन आय से बहुत अधिक धनराशि का नियमित रूप से अपने खातों से भारी मात्रा में लेनदेन किया है, जो आरोपों के विवरण (अनुलग्नक-II) पर आधारित आरोपों के लेखों (अनुलग्नक-I) के अनुसार है। दस्तावेजों की एक सूची, जो आरोपों की पुष्टि हेतु प्रस्तावित है, अनुलग्नक III के रूप में संलग्न है।"

5. याचिकाकर्ता ने 8.3.2021 को एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि आरोपपत्र अस्पष्ट है और उसमें स्पष्टता का अभाव है और आरोपपत्र के साथ दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची नहीं है और प्रार्थना की कि जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया

है उन्हें उपलब्ध कराया जाए ताकि याचिकाकर्ता उचित जवाब दे सके।

6. उक्त पत्र के जवाब में, प्रतिवादी-बैंक ने 31.3.2021 को एक उत्तर दिया जिसमें कहा गया कि दस्तावेजों की सूची (अनुलग्नक संख्या 4) में उल्लिखित दस्तावेजों का पूरा सेट (गलत तरीके से अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में संदर्भित और अनुलग्नक संख्या 3 प्रतीत होता है) दिनांक 10.2.2021 के आरोपपत्र में है। इस बात से इनकार किया गया कि उस स्तर पर गवाहों की कोई सूची संलग्न नहीं की गई थी और इस प्रकार, उठाई गई दलील निराधार पाई गई।

7. याचिकाकर्ता ने एक बार फिर एक पत्र लिखा जिसमें कहा गया कि आरोप अस्पष्ट हैं और याचिकाकर्ता आरोपों को समझने में असमर्थ है। चूंकि याचिकाकर्ता ने कोई जवाब प्रस्तुत नहीं किया, वास्तव में, इस आधार पर कि याचिकाकर्ता को उसकी कोई गलती न होने के बावजूद प्रताड़ित किया जा रहा है, आरोपों की जांच के लिए एक जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था।

8. जांच अधिकारी ने 3.1.2022 को अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए, जिसमें दर्ज किया गया कि प्रबंधन प्रदर्श-1 से प्रबंधन प्रदर्श 10311 के रूप में चिह्नित दस्तावेजों के आधार पर, खाते के विवरण में साक्ष्य के रूप में वित्तीय लेनदेन के संबंध में आरोप सत्य थे। प्रत्येक लेनदेन के संबंध में, जांच अधिकारी ने दर्ज किया कि राशि उसके खाते में जमा की गई थी और आरोपित अधिकारी के रूप में, याचिकाकर्ता ने

कोई औचित्य/कारण या उसके खाते में जमा की गई नकदी का स्रोत नहीं दिया, उन्होंने रिकॉर्ड किया कि आरोपित अधिकारी द्वारा लेनदेन को स्पष्ट नहीं किया गया। याचिकाकर्ता के खाते के विवरण में दिखाई देने वाले प्रत्येक वित्तीय लेनदेन के संबंध में एक समान निष्कर्ष दर्ज किया गया। इसे दर्ज करने के बाद, जांच अधिकारी ने दर्ज किया कि प्रबंधन के साक्ष्यों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के विभिन्न खातों में लेनदेन याचिकाकर्ता की वेतन आय प्राप्त से बहुत अधिक है। आगे दर्ज है कि इसी अवधि के लिए सी.एस.ओ. के परिसंपत्तियों और देयता विवरण से कोई अन्य स्रोत नहीं दिखता है, जो उसके खाते में अनुचित रूप से उच्च लेनदेन को उचित ठहरा सके। आगे दर्ज है कि सी.एस.ओ. ने संबंधित कागजात के अपने परिसंपत्तियों और देयता विवरणों में उक्त लेनदेन से संबंधित किसी भी विवरण का उल्लेख नहीं किया है और इसे दर्ज करने के बाद, यह माना जाता है कि आरोप संख्या 1 पूरी तरह से साबित होता है।

9. उक्त जांच रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी को भेज दी गई, उक्त रिपोर्ट प्राप्त होने पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 19.1.2022 को कारण बताओ नोटिस जारी कर याचिकाकर्ता को जांच प्राधिकारी के निष्कर्षों पर लिखित टिप्पणी प्रस्तुत करने को कहा। इसके जवाब में याचिकाकर्ता ने 27.1.2022 को एक जवाब भेजा जिसमें यह आधार लिया गया कि याचिकाकर्ता अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप को समझने में असमर्थ है, उसने यह भी आधार लिया कि

जिस दस्तावेज पर भरोसा किया गया और गवाहों की सूची, दोनों याचिकाकर्ता को कभी भी उपलब्ध नहीं कराई गई, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता आरोपों को समझ नहीं पाई और इस प्रकार याचिकाकर्ता जवाब देने में असमर्थ थी। याचिकाकर्ता ने यह भी आधार लिया कि संदर्भित लेनदेन याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के बीच हुए लेनदेन थे, उक्त उत्तर दाखिल होने के बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने 11.2.2022 को एक आदेश पारित किया, जिसमें जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार किया गया। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रत्येक लेनदेन के संबंध में जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर विचार किया और दर्ज किया कि याचिकाकर्ता विभिन्न खातों के माध्यम से बड़ी मात्रा में धन का लेनदेन करती रही है और स्पष्टीकरण देने के अवसर दिए जाने के बावजूद, याचिकाकर्ता अनिच्छुक थी और उसने इस संबंध में कोई औचित्य/कारण प्रस्तुत नहीं किया है। इसने आगे दर्ज किया कि याचिकाकर्ता द्वारा बैंक से प्राप्त वेतन आय, संबंधित अवधि में शामिल राशि के अनुरूप नहीं है और यह दर्ज किया कि याचिकाकर्ता 1981 के विनियमों, विशेष रूप से विनियमन 3 (1), विनियमन 3 (3) और विनियमन 20 (4) के साथ विनियमन 24 के अनुसार कदाचार का दोषी थी और याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने के बाद 2 वर्ष की अवधि के लिए समयमान वेतनमान के निचले स्तर पर चार वेतन वृद्धि की कटौती का दीर्घ दंड दिया। आगे आदेश दिया कि वह ऐसी कटौती की अवधि के दौरान वेतन वृद्धि अर्जित नहीं करेगी और इस अवधि की समाप्ति पर कटौती

का प्रभाव उसके वेतन में भविष्य की वृद्धि को स्थगित करने का होगा, उक्त दंड यथा संशोधित अनुशासन और अपील विनियम 1981 के विनियम 4 (एफ) के अंतर्गत पारित किया गया था।

10. याचिकाकर्ता को दिए गए दंड के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष एक व्यापक अपील दायर की। उक्त अपील में, याचिकाकर्ता ने आरोप से इनकार किया और दलील दी कि याचिकाकर्ता को कदाचार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यह प्रस्तुत किया गया कि संदर्भित सभी लेन-देन याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के बीच थे और प्रत्येक जमा के संबंध में विवरण, अपील के पैराग्राफ 14 में विशेष रूप से उल्लिखित किया गया था। याचिकाकर्ता ने याचिकाकर्ता द्वारा पेश की गई अपील में अन्य आधार भी लिए।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत कुमार सिंह ने तर्क दिया कि जिन नियमों के अंतर्गत याचिकाकर्ता काम कर रही थी, उसके अनुसार याचिकाकर्ता निर्धारित प्रपत्र में संलग्न प्रारूप के अनुसार परिसंपत्तियों और देनदारियों का खुलासा करने के लिए बाध्य थी, और ऐसा ही एक प्रारूप रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 13 में संलग्न है। उक्त के आलोक में, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता पर अपने कैरी होम वेतन का खुलासा करने का दायित्व था और इसके अलावा, याचिकाकर्ता को किराया, रसीद, ब्याज/लाभांश, अन्य प्राप्तियां जैसे चल/अचल संपत्तियों का निपटान, उपहार, एनएसई,

एनएसएस/पीपीएफ/एफडीआर/एलआईसी, म्यूचुअल फंड इत्यादि का नकदीकरण जैसे विवरणों का खुलासा करने का दायित्व था और उक्त फॉर्म भरते समय याचिकाकर्ता ने 'शून्य' का खुलासा किया था। याचिकाकर्ता अचल संपत्तियों का विवरण बताने के लिए भी बाध्य था और एक बार फिर याचिकाकर्ता ने इसे शून्य के रूप में प्रकट किया।

12. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने मेरा ध्यान जांच अधिकारी के समक्ष हुई कार्यवाही की ओर आकर्षित किया है जिसमें याचिकाकर्ता ने स्पष्ट बयान दिया था कि 1981 के विनियमन 20(4) के अनुसार याचिकाकर्ता का यह दायित्व है कि वह याचिकाकर्ता के स्वामित्व वाली या उसके पास मौजूद 'चल संपत्ति से संबंधित' प्रत्येक लेनदेन का खुलासा करे, अगर ऐसी संपत्तियों का मूल्य 25,000/- रुपये से अधिक है और वित्तीय वर्ष 2016 और 2020 के बीच याचिकाकर्ता के पास कभी भी 25,000/- रुपये से अधिक की कोई चल संपत्ति नहीं थी। उन्होंने मेरा ध्यान विनियमन 3(1), 3(3) और 20(4) सपठित विनियमन 24 की ओर आकर्षित किया, जो नीचे उद्धृत हैं:-

"विनियम 3(1):

प्रत्येक अधिकारी कर्मचारी को बैंक के हितों को सुनिश्चित करने और उनकी रक्षा करने के लिए हर समय हर संभव कदम उठाने चाहिए और अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा, ईमानदारी, समर्पण और लगन के साथ करना चाहिए और ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए जो एक अधिकारी कर्मचारी के लिए अनुचित हो।

विनियम 3(3):

कोई भी अधिकारी कर्मचारी अपने आधिकारिक कर्तव्यों के पालन में या उसे प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में अपने सर्वोत्तम विवेक के अलावा अन्य कार्य नहीं करेगा, सिवाय इसके कि वह अपने आधिकारिक वरिष्ठ के निर्देश के अंतर्गत कार्य कर रहा हो।

बशर्ते कि जहां ऐसे निर्देश मौखिक प्रकृति के हों, वहां उनके वरिष्ठ अधिकारी द्वारा लिखित रूप में उनकी पुष्टि की जाएगी।

विनियम 20(4):

प्रत्येक अधिकारी कर्मचारी अपने या अपने परिवार सदस्य के नाम पर उसके स्वामित्व वाली या उसके पास रखी गई चल संपत्ति से संबंधित प्रत्येक लेनदेन की रिपोर्ट सक्षम प्राधिकारी को देगा, यदि ऐसी संपत्ति का मूल्य 25,000/- रुपये से अधिक है। प्रावधानित किया जाता कि यदि ऐसा कोई लेन-देन-(क) अधिकारी कर्मचारी के साथ आधिकारिक लेन-देन करने वाले व्यक्ति के साथ या (ख) किसी नियमित या प्रतिष्ठित डीलर के माध्यम से न हो, तो सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति प्राप्त की जाएगी।

विनियम 24:

इन विनियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन, पंजाब और सिंध बैंक अधिकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) विनियम, 1981 के अंतर्गत दंडनीय कदाचार माना जाएगा।"

13. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि विनियमन 20(4) के अधिदेश के अनुसार, कर्मचारी अपने स्वामित्व वाली या अपने द्वारा

अपने नाम पर या अपने परिवार के किसी सदस्य के नाम पर रखी गई चल संपत्ति से संबंधित प्रत्येक लेनदेन की रिपोर्ट करने के लिए उत्तरदायी है, यदि संपत्ति का मूल्य 25,000/- रुपये से अधिक है। उन्होंने तर्क दिया कि पूरे आरोपपत्र में याचिकाकर्ता द्वारा उसके या उसके परिवार के सदस्य से संबंधित चल संपत्ति के संबंध में खुलासा करने में विफल रहने का कोई आरोप नहीं है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि जिस फॉर्म को भरने की आवश्यकता थी, उसमें यह विशेष रूप से कहा गया था कि विवरण में अधिकारी कर्मचारी के पति या पत्नी या परिवार के किसी अन्य सदस्य द्वारा अपने स्वयं के धन से किए गए लेनदेन को शामिल करने की आवश्यकता नहीं है, जिसमें स्त्रीधन, उपहार, विरासत आदि शामिल हैं, जो अधिकारी कर्मचारी के फंड से अलग हैं। उन्होंने तर्क दिया कि फॉर्म में संलग्न नोट जिन्हें भरना आवश्यक है, ने ही यह अनिवार्य कर दिया है कि खरीद और बिक्री दोनों के सभी लेनदेन 5,000/- या इससे अधिक के निवेश की रिपोर्ट करना अपेक्षित है तथा वस्तुतः 25,000/- रुपये से अधिक के निवेश की रिपोर्ट अनुलग्नक संख्या 1 के अनुसार करना अपेक्षित है। संबंधित अधिकारी द्वारा भरे जाने वाले प्रपत्र में संलग्न नोट को नीचे प्रस्तुत किया जा रहे हैं:-

"अधिकारियों को वर्ष के दौरान केवल उन परिवर्तनों की सूचना देनी होती है, जहां किसी विशेष सेट की रिपोर्ट पहले से ही पिछले वर्षों में से किसी में की गई हो। सभी कॉलम भरे जाने आवश्यक हैं और जहां आवश्यक हो, विवरण अलग अनुलग्नक के माध्यम से दिया जा सकता है। संबंधित लेनदेन के लिए सक्षम

प्राधिकारी से प्राप्त प्रतिबंधों का संदर्भ दिया जाएगा।

'5000/- या उससे अधिक के सभी लेनदेन, खरीद और बिक्री दोनों की रिपोर्ट करना आवश्यक है। जहां तक शेयरों, प्रतिभूतियों, डिबेंचर, म्यूचुअल फंड योजनाओं आदि में निवेश का संबंध है, यहां तक कि '5000/- से कम मूल्य के लेनदेन की भी रिपोर्ट करना आवश्यक है। हालांकि, यदि वित्तीय वर्ष के दौरान ऐसे निवेशों में कुल लेनदेन 25000/- से अधिक है, तो अनुलग्नक-1 के अनुसार सूचना देना आवश्यक है।

विवरण में ऐसे लेनदेन शामिल नहीं होने चाहिए जो अधिकारी कर्मचारी के पति या पत्नी या परिवार के किसी अन्य सदस्य द्वारा किए गए हों।

मैं यह घोषणा करता/करती हूँ कि मैंने पीएसबी अधिकारी कर्मचारी आचरण विनियम-1981 के विनियम 14 से 20 को पढ़ लिया है और समझ लिया है तथा ऊपर दिए गए विवरण में दिए गए विवरण उक्त विनियमों के अनुरूप हैं तथा आज की तिथि तक तथा मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार पूर्ण और सही हैं।"

14. उक्त प्रस्तुतिकरण के आलोक में, उन्होंने तर्क दिया कि आरोप-पत्र में कभी यह आरोप नहीं लगाया गया कि याचिकाकर्ता ने सही खुलासा नहीं किया, जैसा कि किया जाना आवश्यक है और विनियमन 20 (4) के अनुसार, उक्त विनियमन में संदर्भित लेनदेन के अलावा अन्य लेनदेन का खुलासा किया जाना आवश्यक नहीं है और इस तरह याचिकाकर्ता को इस आधार पर दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उन्होंने आगे तर्क दिया कि

किसी भी स्थिति में, याचिकाकर्ता ने कभी भी अपराध स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार, अनुशासन और अपील विनियमन के अनुसार बैंक पर दस्तावेजी या मौखिक साक्ष्य के आधार पर लगाए गए आरोपों को स्थापित करने का दायित्व था। वर्तमान मामले में, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप केवल खाते के विवरण के आधार पर और विनियमन 20 (4) के उल्लंघन को स्थापित करने के लिए कोई अन्य सबूत न होने के बावजूद साबित हुआ है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपील में, याचिकाकर्ता के खाते के विवरण में सभी लेन-देन को विधिवत समझाया गया था और अपीलीय प्राधिकारी का यह कर्तव्य था कि वह अपील में लिए गए आधारों के संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करता, जबकि अपीलीय आदेश याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज किए बिना कार्यवाही समाप्त कर देता है।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अंत में मेरा ध्यान अनुशासन और अपील नियमों की ओर आकर्षित किया, जो उस तरीके के बारे में प्रावधान करते हैं, जिससे एक दीर्घ दंड दिये जाने की स्थिति में, कार्यवाही समाप्त की जानी है, जो विनियम 6 में निहित है। वह मेरा ध्यान विनियम 6 की ओर आकर्षित करते हैं, जो निर्धारित करता है कि यदि अधिकारी दोष स्वीकार नहीं करता है, तो यह जांच अधिकारी के लिए आवश्यक है कि वह साक्ष्य के आधार पर प्रत्येक आरोप के संबंध में दोष का निष्कर्ष दर्ज करे। उन्होंने मेरा ध्यान कर्मचारी आचरण

विनियमों, विशेष रूप से विनियम 3 (1), 3 (3), 20 (4) और विनियम 24 की ओर भी आकर्षित किया, जिन्हें ऊपर उद्धृत किया गया है, यह तर्क देने के लिए कि, भले ही तर्क के लिए, लगाए गए सभी आरोपों को सही माना जाए, यह स्थापित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि विनियम 20 (4) का उल्लंघन हुआ था, क्योंकि प्रकटीकरण/रिपोर्टिंग केवल 'चल संपत्ति के लेनदेन' के संबंध में थी, जो 25,000/- रुपये से अधिक थी।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **रमेश मोहन शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2015(7) एडीजे 722 (डीबी)** के मामले में इस न्यायालय के पुनरीक्षण और निर्णय पर भरोसा किया है, विशेष रूप से उक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 पर, जिसमें कहा गया है कि बचाव चाहे जो भी हो, आरोप साबित करने का भार जांच अधिकारी पर है। उन्होंने आगे **महेश नारायण गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2011 (5) एडीजे 177** के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें भी यही कहा गया है कि आरोप साबित करने का भार नियोक्ता पर है। इसके बाद उन्होंने **भारत संघ बनाम जान चंद चतर, (2009) 12 एससीसी 78** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें उन्होंने प्रस्तर 35 पर भरोसा करते हुए तर्क दिया कि वैधानिक नियमों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए और आरोप विशिष्ट होने चाहिए और अस्पष्ट आरोपों पर कोई जांच नहीं चल सकती है और अपराधी की ओर से हर कार्य

या चूक कदाचार नहीं बन सकती है, प्रस्तर 35 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"उपर्युक्त के दृष्टिगत, कानून का सारांश यह हो सकता है कि किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध वैधानिक प्रावधानों और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का सख्ती से पालन करते हुए जांच की जानी चाहिए। आरोप विशिष्ट, निश्चित होने चाहिए और उस घटना का विवरण देना चाहिए जो आरोपों का आधार बनी। अस्पष्ट आरोपों पर कोई जांच नहीं चल सकती। जांच निष्पक्ष, वस्तुनिष्ठ रूप से की जानी चाहिए न कि व्यक्तिपरक रूप से। निष्कर्ष विकृत या अनुचित नहीं होना चाहिए, न ही यह अनुमानों और संभावनाओं पर आधारित होना चाहिए। सबूत और संदेह में अंतर है। अपराधी की ओर से हर कार्य या चूक कदाचार नहीं हो सकती है। प्राधिकारी को कदाचार को परिभाषित करने वाले कानून के संदर्भ में तथ्य के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कारणों को दर्ज करना चाहिए।"

17. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2 एससीसी 772 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जांच के संचालन के तरीके पर जोर दिया गया था, पैराग्राफ 27 से 30 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"उपर्युक्त उप-नियम का अवलोकन मात्र यह दर्शाता है कि जब प्रतिवादी आरोप-पत्र में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा था, तो जांच अधिकारी पर यह दायित्व था कि वह जांच में उसकी उपस्थिति के लिए एक तारीख

तय करे। यह केवल उस मामले में है जब सरकारी कर्मचारी निर्धारित तिथि की सूचना के बावजूद उपस्थित होने में विफल रहा है कि जांच अधिकारी एकतरफा जांच के साथ आगे बढ़ सकता है। ऐसी परिस्थितियों में भी जांच अधिकारी पर यह दायित्व है कि वह आरोप-पत्र में उल्लिखित गवाहों के बयान दर्ज करे। चूंकि सरकारी कर्मचारी अनुपस्थित है, इसलिए वह स्पष्ट रूप से गवाहों से जिरह का लाभ खो देगा। लेकिन फिर भी आरोपों को स्थापित करने के लिए विभाग को जांच अधिकारी के समक्ष आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत करने होंगे। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि यह आरोप न लगे कि जांच अधिकारी ने अभियोजक के साथ-साथ न्यायाधीश की भूमिका भी निभाई है।

अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत जांच अधिकारी स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखना है कि आरोपों को साबित करने के लिए अखंडित साक्ष्य पर्याप्त हैं या नहीं। वर्तमान मामले में उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज साबित नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रतिवादियों के विरुद्ध आरोप साबित हो गए हैं।

उपर्युक्त के अलावा, भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के आधार पर विभागीय जांच प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार की

जानी थी। यह प्राकृतिक न्याय के नियमों की एक बुनियादी आवश्यकता है कि किसी कर्मचारी को किसी भी कार्यवाही में सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए, जो कर्मचारी पर दंड लगाए जाने पर समाप्त हो सकती है।

जब सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय जांच की जाती है तो इसे आकस्मिक अभ्यास नहीं माना जा सकता है। जांच कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती। जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए कि न्याय किया जाए बल्कि यह भी सुनिश्चित किया जाए कि न्याय किया जा रहा है। प्राकृतिक न्याय के नियमों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सरकारी कर्मचारी के साथ कार्यवाही में निष्पक्ष व्यवहार किया जाए, जिसके परिणामस्वरूप उसे सेवा से बर्खास्त/हटाने सहित सजा दी जा सकती है।"

18. दूसरी ओर, प्रतिवादी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देकर आदेश का बचाव किया कि याचिकाकर्ता ने आरोपपत्र पर कभी कोई आपत्ति दर्ज नहीं की, याचिकाकर्ता ने कभी भी ऐसे बड़े वित्तीय लेनदेन के संबंध में कोई बयान नहीं दिया, जो खाते के विवरण में परिलक्षित होता है और इस प्रकार, याचिकाकर्ता उस समय आपत्तियां उठाने में विफल रहा, जब उन्हें उठाने की आवश्यकता थी। यह तर्क दिया गया है कि एक अधिकारी जो 4 लाख रुपये का वेतन ले रहा है और उसके खाते में 70 लाख से अधिक का आवक लेनदेन और 40 लाख रुपये का जावक लेनदेन

है, यह अपने आप में दर्शाता है कि याचिकाकर्ता बैंक को आवश्यक खुलासे किए बिना इतनी बड़ी रकम प्राप्त कर रहा था जो प्रतिवादी-बैंक के अधिवक्ता के अनुसार 1981 के विनियमन का स्पष्ट उल्लंघन है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि सभी अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले खुलासे के संदर्भ में, विवरण बताए जाने की आवश्यकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता का यह जोर कि उपहार आदि से संबंधित फॉर्म में निर्दिष्ट विवरण का खुलासा किया जाना है, अस्वीकार करने योग्य है क्योंकि उक्त शीर्षक केवल उदाहरण हैं और इसमें संपूर्ण खुलासे नहीं हैं जिन्हें किया जाना आवश्यक है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को पर्याप्त अवसर देने के बाद याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप के संबंध में दोष के निष्कर्षों को दर्ज किया और अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय अपीलीय प्राधिकारी के रूप में उक्त आदेश पर विचार नहीं कर सकता। वह **सिविल अपील संख्या 8071/2014 के मामले में कर्नाटक राज्य बनाम एम गंगाराज** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हैं, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाही में हस्तक्षेप के इस कृत्य पर विचार करने का अवसर मिला था और **बीसी चतुर्वेदी बनाम भारत संघ** के निर्णयों सहित विभिन्न निर्णयों पर भरोसा करने के बाद, उसी का पालन किया और दर्ज किया कि न्यायिक समीक्षा निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित है। उन्होंने अंत में तर्क दिया कि अपीलीय प्राधिकारी ने अपने निष्कर्षों

में दर्ज किया था कि याचिकाकर्ता बड़े लेनदेन के अपने खुलासे के कारण दोषी था और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा खाते के विवरण में प्रत्येक लेनदेन के संबंध में प्रत्येक प्रस्तुतिकरण पर विचार करना आवश्यक नहीं था जैसा कि याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया है। उक्त प्रस्तुतिकरण के आलोक में, यह तर्क दिया जाता है कि याचिका में योग्यता का अभाव है और इसे खारिज किया जाना चाहिए। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विनियम 20 (4) के संदर्भ में, अधिकारी पर यह दायित्व था कि वह खाते के विवरण में दर्शाए गए सभी वित्तीय लेनदेन का खुलासा करे, जो याचिकाकर्ता ने नहीं किया और किसी भी मामले में, आरोप पत्र का जवाब दाखिल करते समय प्रत्येक लेनदेन के संबंध में बेदाग सामने आना चाहिए था, जो याचिकाकर्ता करने में विफल रहा है और उसने जांच के दौरान भी इसका खुलासा नहीं किया है। 19. प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आरोप पत्र जारी करने से पहले याचिकाकर्ता को नोटिस दिया गया था और याचिकाकर्ता ने उक्त नोटिस के जवाब में याचिकाकर्ता के खाते के विवरण में लेनदेन के संबंध में विशेष रूप से विवरण दिया था।

20. ऊपर दर्ज किए गए तर्कों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय को इस बात पर विचार करना है कि क्या याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाया गया आरोप कर्मचारी आचरण विनियमन 1981 के विनियमन 3(1), विनियमन 3(3), विनियमन 20(4) और विनियमन 24 के अधिदेश के विपरीत है। याचिकाकर्ता के विरुद्ध एकमात्र आरोप एक

अधिकारी के रूप में काम करते समय अपने खातों से नियमित रूप से अपने वेतन आय से कहीं अधिक धनराशि का लेनदेन करने का था। विनियमन 20(4) के अनुसार, प्रत्येक अधिकारी कर्मचारी अपने स्वामित्व वाली या अपने द्वारा रखी गई चल संपत्ति से संबंधित प्रत्येक लेनदेन के लिए सक्षम प्राधिकारी को रिपोर्ट करने के लिए बाध्य है, चाहे वह संपत्ति उसके अपने नाम से हो या उसके परिवार के सदस्यों के नाम पर हो, यदि संपत्ति का मूल्य 25,000/- रुपये से अधिक है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विनियमन 20(4) उसके स्वामित्व वाली या उसके द्वारा रखी गई चल संपत्ति से संबंधित लेनदेन के खुलासे तक ही सीमित है। 25,000/- से अधिक के मामले में, विनियमन संबंधित अधिकारी के खाते में होने वाले सभी वित्तीय लेन-देन के प्रकटीकरण के लिए निर्धारित नहीं करता है। प्रत्येक संबंधित अधिकारी द्वारा भरने के लिए निर्धारित प्रपत्रों द्वारा भी इसकी पुष्टि की जाती है, प्रकटीकरण की आवश्यकता वाले ऐसे ही एक प्रपत्र को रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 13 के रूप में संलग्न किया गया है, इसे उन नोटों द्वारा समर्थ बनाया गया है, जो अधिकारी कर्मचारी द्वारा अपने स्वयं के धन से अपने पति या पत्नी या परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा किए गए लेन-देन के प्रकटीकरण के लिए प्रावधान नहीं करते हैं। इस प्रकार विनियमन 20(4) के उल्लंघन के आरोप को लागू करने के लिए, याचिकाकर्ता पर यह आरोप लगाना और प्रमाणित करना आवश्यक नहीं था कि 25,000/- रुपये से अधिक मूल्य के लेन-देन किए गए और लेखा विवरण में दर्शाए गए और वे ऐसे लेन-देन के संबंध में

नहीं थे जो अधिकारी कर्मचारी के पति या पत्नी या परिवार के अन्य सदस्य के नाम पर अपने स्वयं के धन से किए गए थे। याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप में केवल यह आरोप लगाया गया था कि बैंक खातों में भारी मात्रा में लेन-देन किए गए थे जो वेतन से बहुत अधिक थे। साधारण रूप से पढ़ने पर, उक्त आरोप विनियमन 20(4) के किसी उल्लंघन को आकर्षित नहीं करता है। इस आशय के किसी आरोप के अभाव में कि खाते के विवरण में दर्शाए गए लेन-देन 25,000/- रुपये से अधिक मूल्य की चल संपत्ति के संबंध में थे और उन लेन-देनों के अलावा जो प्रकट किए जाने के लिए बाध्य नहीं हैं, याचिकाकर्ता के लिए उक्त आरोप का कोई उत्तर देने का कोई अवसर नहीं था क्योंकि प्रथम दृष्टया, आरोप विनियमन 20(4) के किसी उल्लंघन को प्रतिबिंबित नहीं करता है। इस प्रकार, उस सीमा तक, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क कि आरोप विशिष्ट होना चाहिए और अस्पष्ट नहीं होना चाहिए, स्वीकार किए जाने योग्य है।

21. जांच रिपोर्ट में, जांच अधिकारी ने सभी लेन-देनों की जांच की है और ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है कि वे 25,000/- रुपये से अधिक मूल्य के 'चल संपत्ति से संबंधित' लेन-देन के संबंध में थे या कि उक्त लेन-देन संबंधित अधिकारी द्वारा दायर वार्षिक रिटर्न में प्रकट किए जाने की अपेक्षा के अलावा अन्य थे। अनुशासनात्मक अधिकारी इस बात का कोई निष्कर्ष दर्ज करने में भी विफल रहा है कि खाते के विवरण में दर्शाए गए लेन-देन किस तरह विनियमन 20(4) का

उल्लंघन करते हैं। अपीलीय आदेश स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता द्वारा किए गए किसी भी सबमिशन से निपटता नहीं है, जिसमें पहली बार याचिकाकर्ता ने बैंक खाते में हुए प्रत्येक वित्तीय लेन-देन को विशेष रूप से समझाया है ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि यह याचिकाकर्ता द्वारा रखी गई 25,000/- रुपये से अधिक मूल्य की चल संपत्ति से संबंधित नहीं है। अपीलीय प्राधिकरण ने उक्त कथनों पर विचार किए बिना ही लापरवाही से आदेश पारित कर दिया है और इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से बने रहने योग्य नहीं है।

22. याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई और समाप्त हुई कार्यवाही के विश्लेषण पर, जिसके कारण सजा के आदेश पारित किए गए, वे किसी भी तरह से विनियमन 20(4) का उल्लंघन या उस मामले के लिए कर्मचारी विनियमन के विनियमन 3(1) और विनियमन 3(3) या विनियमन 24 का उल्लंघन प्रदर्शित नहीं करते हैं। कार्यवाही कानून की दृष्टि से और भी खराब है क्योंकि याचिकाकर्ता ने कभी भी अपराध स्वीकार नहीं किया और इस प्रकार, अनुशासन प्राधिकारी के लिए अनुशासन और अपील विनियमन 1981 के विनियमन 4 के साथ 1981 के विनियमन 8 के अनुसार प्रत्येक ऐसे आरोप पर अपने निष्कर्ष दर्ज करना अपरिहार्य था। ऊपर दर्ज सभी कारणों से, याचिकाकर्ता को दीर्घ दंड से दंडित करने वाले आदेश स्पष्ट रूप से बने रहने योग्य नहीं हैं अपितु निरस्त किए जाने योग्य हैं। आक्षेपित आदेश दिनांक 11.2.2022 व 8.8.2022 निरस्त किए जाते हैं। मैं मामले को प्रतिप्रेषित नहीं कर रहा हूँ क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध

लगाए गए आरोप बहुत अस्पष्ट हैं और याचिकाकर्ता को ऐसे अस्पष्ट आरोपों का जवाब देने के लिए बाध्य करना याचिकाकर्ता को और शर्मिंदा करेगा।

23. रिट याचिका स्वीकार की जाती है। व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं। याचिकाकर्ता को परिणामी लाभ प्रदान किए जाएंगे।

आदेश दिनांक: 19.4.2023

(2023) 4 ILRA 1322

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सलिल कुमार राय,

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

रिट-ए संख्या 7701 वर्ष 2021

भारत संघ एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

नाथन सिंह

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री मनोज कुमार सिंह,

वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि प्रकाश सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री आशीष कुमार

श्रीवास्तव, श्री सुनील

ए. सेवा कानून-केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण का आदेश-याचिकाकर्ता को 20.08.1961 के स्थान पर दिनांक 31.03.2019 को सेवानिवृत्त करने के आदेश को निरस्त करना-चुनौती दी गई।

बी. जन्मतिथि में परिवर्तन के बारे में प्रतिवादी को कभी सूचित नहीं किया गया- उससे पूर्व उसे सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया-

याचिकाकर्ता ने कैट के समक्ष मूल आवेदन में दायर प्रति शपथपत्र में दोनों तर्कों को स्वीकार कर लिया- प्रतिवादी की जन्मतिथि को बिना सूचना दिए एकतरफा रूप से सही कर दिया गया- स्पष्टीकरण नोट मौलिक नियम, 1956-सरकारी कर्मचारी की जन्मतिथि को सेवा में आने के पांच वर्ष के भीतर संशोधित किया जा सकता है- या सद्भाविक गलती-इस मामले में याचिकाकर्ता के पास दोनों बचाव उपलब्ध नहीं हैं- प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया- आपेक्षित आदेश को पुष्टि की जाए -याचिका निरस्त (पैरा 5 से 11)

आयोजित:

उपरोक्त तथ्यों पर विचार करते हुए, यह याचिकाकर्ता ही हैं जिन्होंने प्रतिवादी की सेवा में प्रवेश के समय उसके सेवा अभिलेख में उसकी जन्मतिथि 20.08.1961 दर्ज की और उन्होंने प्रतिवादी को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना या 2018 तक उसे कोई सूचना दिए बिना प्रतिवादी की जन्मतिथि दिनांक 12.03.1959 बताकर एकतरफा उसमें संशोधित कर दिया। इसलिए, प्रतिवादी द्वारा केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद के समक्ष दायर मूल आवेदन समय के भीतर और विधिवत रूप से अनुरक्षणीय था और प्रतिवादी की जन्मतिथि में संशोधित करने से पहले सुनवाई का अवसर न देने या सूचना न देने के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का स्पष्ट उल्लंघन हुआ है, इसलिए केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर आपेक्षित आदेश को निरस्त करने

का विचार संशोधित जन्मतिथि के आधार पर 31.03.2019 को जारी अधिसूचना को विकृत या त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। (पैरा 5)

वैसे भी, मौलिक नियम, 1956 के व्याख्यात्मक नोट के अनुसार स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि सरकारी कर्मचारी की जन्मतिथि सेवा में प्रवेश करने के पांच वर्ष के भीतर ही बदली जा सकती है या यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि वास्तविक सदभावनापूर्ण गलती हुई है और वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी की जन्मतिथि में सेवा में प्रवेश करने के 11 वर्ष बाद संशोधित किया गया था और इसे भी वास्तविक सदभावनापूर्ण गलती का संशोधित नहीं कहा जा सकता है। (पैरा 6)

उपरोक्त निर्णयों से यह स्थापित स्थिति बनती है कि सिविल परिणामों वाले प्रशासनिक निकाय की निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुप्रयोग को बरकरार रखा गया है। इसलिए, प्राकृतिक न्याय के नियम न्याय आधारभूत एवं मौलिक अवधारणाएँ हैं। (पैरा 10)

वर्तमान वाद में प्रतिवादी की जन्मतिथि में एकतरफा बदलाव से प्रतिवादी पर दीवानी परिणाम हो रहे हैं क्योंकि इससे प्रतिवादी की सेवानिवृत्ति की तिथि प्रभावित हुई है, इसलिए सेवा अभिलेख में प्रतिवादी की जन्मतिथि में ऐसा संशोधित करने से पहले सुनवाई का अवसर न दिए जाने से प्रतिवादी के प्रति पूर्वाग्रह पैदा हो रहा है। इसलिए, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण का दिनांक 18.11.2020 का आदेश सुविचारित और

बिल्कुल सही है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 11)

याचिका निरस्त (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुधीर कुमार सिंह एवं अन्य एआईआर 2020 एससी 5215
2. मेसर्स ए.एस. मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ 2013 एआईआर एससीडब्लू 3830
3. उमा नाथ पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 एआईआर एससीडब्लू 3200

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1- याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार सिंह को सुना गया और प्रत्यर्थी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. वर्तमान रिट याचिका केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद पीठ, इलाहाबाद द्वारा 2019 के मूल आवेदन संख्या 330/00278 में पारित आदेश दिनांक 18.11.2020 के खिलाफ भारत संघ की ओर से दायर की गई है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी के आवेदन को अनुमति दी गई है। केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने दिनांक 24.12.2018 के आदेश को निरस्त करते हुए उनकी जन्मतिथि 20.08.1961 के बजाय

12.03.1959 मानने के आधार पर
27.01.1995 को सुधार करते हुए
31.03.2019 को सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया।

3. याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि सेवा अभिलेखों में प्रत्यर्थी की जन्मतिथि गलती से 20.08.1961 अंकित हो गई थी, जबकि मुख्य चिकित्सा अधिकारी, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 12.03.1984 को जारी किए गए चिकित्सा प्रमाण पत्र के अनुसार, वर्ष 1984 में गैरीसन इंजीनियर, बमरौली के अधीन मजदूर के रूप में सेवा में प्रवेश के समय प्रत्यर्थी की आयु लगभग 25 वर्ष थी। इसलिए, इसे 1995 में प्रत्यर्थी के सेवा अभिलेख में सही किया गया था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया था कि प्रत्यर्थी ने केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद के समक्ष कालवर्जित मूल आवेदन दायर किया है, क्योंकि केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 21 के अनुसार केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष मूल आवेदन दायर करने की सीमा एक वर्ष है, लेकिन वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी ने 2019 में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद के समक्ष मूल आवेदन दायर किया है। हालांकि उनकी जन्मतिथि में सुधार 1995 में किया गया था। आगे यह उल्लेख किया गया कि सेवा अभिलेखों में प्रत्यर्थी की जन्मतिथि के संबंध में सुधार प्रत्यर्थी की जानकारी में था और उसने कभी भी सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इसके खिलाफ कोई आपत्ति या अभ्यावेदन नहीं दिया। याचिकाकर्ताओं की ओर से आगे दलील दी गई कि सेवा नियम के तहत हर साल

सरकारी कर्मचारी को सेवा पुस्तिका दिखानी होती है और उस पर उसके हस्ताक्षर लेने होते हैं। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि यह संबंधित सरकारी कर्मचारी की जिम्मेदारी है कि उसकी सेवा को सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत सत्यापित किया जाना चाहिए। याचिकाकर्ताओं द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि 30.10.2018 को मुख्यालय सीडब्ल्यूई इलाहाबाद द्वारा मेसन एचएस-11 की एक वरिष्ठता सूची प्रसारित की गई थी जिसमें वर्ष 1995 में किए गए सुधार के आधार पर प्रत्यर्थी की जन्मतिथि 12.03.1959 का उल्लेख किया गया था और इसके बाद ही, प्रत्यर्थी ने अपनी जन्मतिथि में सुधार के खिलाफ मुख्यालय सीडब्ल्यूई इलाहाबाद को अभ्यावेदन दिया, जिस पर विधिवत विचार किया गया और पत्र दिनांक 14.12.2018 द्वारा उत्तर दिया गया, जिसमें कहा गया कि प्रत्यर्थी की सही जन्मतिथि 12.03.1959 है, लेकिन प्रत्यर्थी ने एचक्यूसीडब्ल्यूई, इलाहाबाद के पत्र दिनांक 14.12.2018 के खिलाफ कोई आपत्ति दाखिल नहीं की और न ही किसी सक्षम प्राधिकारी के समक्ष इसे चुनौती दी है, लेकिन सेवानिवृत्ति के समय पर यानी 02.03.2019 को, प्रत्यर्थी ने 31.03.2019 से सेवानिवृत्ति पर रोक लगाने के लिए एक अभ्यावेदन दिया है और सेवा अभिलेख में उल्लिखित उनकी जन्मतिथि में आवश्यक सुधार के लिए भी अनुरोध किया गया, लेकिन सक्षम प्राधिकारी द्वारा पत्र दिनांक 06.04.2019 के माध्यम से इसका विधिवत उत्तर दिया गया। इसके बाद, उनकी सेवानिवृत्ति से पहले, जब जीई (एफ खंड) गोरखपुर के

कार्यालय द्वारा दिनांक 24.12.2018 को आदेश जारी किया गया था, तो प्रत्यर्थी ने केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद के समक्ष मूल आवेदन दायर करके इसे चुनौती दी थी।

4. अभिलेख का अवलोकन करने पर, यह पाया गया कि मूल आवेदन के पैराग्राफ संख्या 4.18 और 4.20 में, प्रत्यर्थी द्वारा यह तर्क दिया गया है कि 1995 में प्रत्यर्थी की जन्मतिथि में परिवर्तन के संबंध में कोई जानकारी नहीं थी। न ही उसे उसके नियोक्ता द्वारा सूचित किया गया था और ना ही उसकी जन्मतिथि में कोई सुधार करने से पहले उसे सुनवाई का कोई अवसर दिया गया था और प्रत्यर्थी को पत्र दिनांक 14.12.2018 द्वारा सूचित किया गया था। प्रत्यर्थी के मूल आवेदन में उल्लिखित वर्ष 1995 में जन्मतिथि में सुधार की सूचना न देने और अवसर न देने के सत्य पर विवाद नहीं किया गया था, लेकिन केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष याचिकाकर्ताओं के जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 16 में इसे स्वीकार कर लिया गया था। याचिकाकर्ताओं द्वारा जवाबी हलफनामे में यह भी स्वीकार किया गया कि प्रत्यर्थी के सेवा अभिलेख में जन्मतिथि में सुधार के बारे में उन्हें दिनांक 24.12.2018 को पत्र द्वारा सूचित किया गया था।

5. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह याचिकाकर्ता ही है जिन्होंने सेवा में प्रवेश के समय अपने सेवा अभिलेख में प्रत्यर्थी की जन्मतिथि 20.8.1961 दर्ज की थी और

उन्होंने 2018 तक प्रत्यर्थी को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना या उसे कोई सूचना दिए बिना प्रत्यर्थी की जन्मतिथि 12.03.1959 का उल्लेख करके एकतरफा रूप से इसे सही कर दिया इसलिए, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा दायर मूल आवेदन समय के भीतर और उचित रूप से रखरखाव योग्य था और प्रत्यर्थी की जन्मतिथि में सुधार से पहले सूचना न देना या सुनवाई का अवसर न देना भारतीय संविधान के अनुच्छेदों 14 और 16 का स्पष्ट उल्लंघन है। केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद ने अपनाये गए दृष्टिकोण द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया, क्योंकि प्रत्यर्थी को उसकी जन्मतिथि में सुधार करने से पहले सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था और संशोधित जन्मतिथि के आधार पर उसे 31.03.2019 को सेवानिवृत्त कर दिया गया। जिसे विकृत या गलत नहीं कहा जा सकता।

6. वैसे भी, मौलिक नियम, 1956 के स्पष्टीकारक टिप्पण के अनुसार स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि सरकारी कर्मचारी की जन्मतिथि सेवा में प्रवेश करने के पांच साल के भीतर ही बदली जा सकती है या यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो कि वास्तविक गलती हुई है और वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ताओं द्वारा सेवा में प्रवेश करने के 11 साल बाद प्रत्यर्थी की जन्मतिथि में सुधार किया गया था और इसे वास्तविक गलती का सुधार भी नहीं कहा जा सकता है।

7. शीर्ष अदालत ने यूपी राज्य बनाम सुधीर कुमार सिंह और अन्य शीर्षक नामक एक आदेश में, जो एआईआर 2020 एससी 5215 में प्रकाशित है, उसके पैराग्राफ संख्या 39 में अभिनिर्धारित किया है जो इस प्रकार पढ़ा जाए:

"39. इस प्रकार पूर्वोक्त निर्णय का विश्लेषण निम्नलिखित को प्रकट करता है:

(1) प्राकृतिक न्याय न्यायपालिका के हाथों में एक लचीला उपकरण है जो अन्याय को दूर करने के लिए युक्तियुक्त मामलों तक पहुंच सकता है। सुने जाने के अधिकार के नियम के उल्लंघन से स्वतः यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि तद्द्वारा पूर्वाग्रह कारित हुआ है।

(2) जहां विधि के प्रक्रियात्मक और/या मौलिक प्रावधान प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को समाविष्ट करते हैं वहां उनके उल्लंघन से पारित किए गए आदेश अपने आप अमान्य नहीं हो जाते हैं। यहां पुनः वादी को पूर्वाग्रह कारित होना चाहिए सिवाय उन मामलों के जो विधि के आज्ञापक प्रावधान हैं जिनकी कल्पना व्यक्तिगत हित में ही नहीं बल्कि लोकहित में भी किया गया है।

(3) प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन की शिकायत करने वाले व्यक्ति को कोई पूर्वाग्रह नहीं होता है, जहां ऐसा व्यक्ति अपने अथवा इसके विरुद्ध मामले का प्रतिवाद नहीं करता है। ऐसा विबंध, अधिग्रहण, अधित्यजन और चुनौती न देना या तथ्यों की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के माध्यम से उन मामलों में हो सकता है जहां न्यायालय तथ्यों के आधार पर पता है

कि उस व्यक्ति को कोई वास्तविक पूर्वाग्रह कारित हुआ नहीं कहा जा सकता है जिस व्यक्ति ने प्राकृतिक न्याय के भंग की शिकायत किया है।

(4) ऐसे मामलों में जहां तथ्यों को स्वीकृत या निर्विवाद कहा जा सकता है, और केवल एकमात्र निष्कर्ष संभव है, तब न्यायालय अपास्त और प्रतिप्रेषण का निरर्थक आदेश पारित नहीं करता है, जब वास्तव में, कोई पूर्वाग्रह कारित नहीं होता है। यह निष्कर्ष न्यायालय द्वारा किसी मामले का तथ्यों के मूल्यांकन कर निकाला जाना चाहिए, न कि उस प्राधिकारी द्वारा जो किसी व्यक्ति के प्रति प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन करता है।

(5) "पूर्वाग्रह"के अपवाद को मात्र आशंका या किसी वादी के युक्तियुक्त संदेह से अधिक होना चाहिए। इस मामले के तथ्य पर या प्राकृतिक न्याय के अपालन कारित पूर्वाग्रह की संभावना पर आधारित होना चाहिए।"

8. मेसर्स ए.एस. मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ शीर्षक वाला निर्णय, जो 2013 एआईआर एससीडब्ल्यू 3830 में प्रकाशित है, उसके पैराग्राफ संख्या 8 को यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"8. अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि पक्षकारों के बीच अनुबंध की समाप्ति कानूनी रूप से खराब थी, न केवल इसलिए कि अपीलकर्ता के लिए निष्पक्ष सुनवाई की आवश्यकता वाले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन नहीं किया गया था, इसलिए भी

प्रत्यर्थी-प्राधिकारी के लिए कोई वास्तविक आधार नहीं था बल्कि यह मानना होगा कि अपीलकर्ता ने अनुबंध के नियमों और शर्तों का कोई उल्लंघन किया है जिससे इसकी समाप्ति की आवश्यकता है। हम किसी भी विवाद में कोई योग्यता नहीं पाते हैं। कारण दूर-दूर तक नजर नहीं आते। प्राकृतिक न्याय के नियम, यह अब तक काफी अच्छी तरह से स्थापित हो चुके हैं, ये कठोर, अपरिवर्तनीय या सन्निहित नियम नहीं हैं जिन्हें वर्जित किया जा सके और न ही इन्हें इतना विकसित किया गया है कि सभी प्रकार के घरेलू न्यायाधिकरणों और जांचों पर सार्वभौमिक रूप से लागू किया जा सके। प्रत्येक मामले में जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का आरोप लगाया जाता है, अदालतें संक्षेप में यह देखती हैं कि क्या प्रभावित पक्ष को अपना मामला पेश करने के लिए उचित अवसर दिया गया था और क्या प्रशासनिक प्राधिकारी ने निष्पक्ष, निष्पक्ष और उचित रूप से कार्य किया था। इस प्रकार दूसरे पक्ष को सुने जाने के सिद्धांत का उद्देश्य मनमानी और निष्पक्ष खेल की चाहत पर प्रहार करना है। इसलिए, इस विषय पर न्यायिक घोषणाओं ने माना है कि प्राकृतिक न्याय की मांगें अलग-अलग स्थितियों में भिन्न हो सकती हैं, जो न केवल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं, बल्कि न्यायाधिकरण की शक्तियों और संरचना और नियमों और विनियमों पर भी निर्भर करती हैं। यह कार्य करता है। प्राकृतिक न्याय के नियमों के उल्लंघन के आधार पर शिकायत की जांच करने वाली अदालत यह देखने की हकदार है कि क्या पीड़ित पक्ष को वास्तव में इस तरह के उल्लंघन के कारण कोई पूर्वाग्रह झेलना पड़ा

है। उस हद तक पहले की सोच में बदलाव आया है कि नियमों का तकनीकी उल्लंघन भी कार्रवाई को खराब करने के लिए पर्याप्त है। इस विषय पर न्यायिक घोषणाएँ एक विरासत हैं। हम इस विषय पर केवल कुछ निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं जो हमारी राय में पर्याप्त होना चाहिए।"

9. उमा नाथ पांडेय बनाम यूपी राज्य शीर्षक वाला निर्णय, जो 2009 एआईआर एससीडब्ल्यू 3200 में प्रकाशित है उसके पैराग्राफ संख्या 15 को यहां उद्धृत किया गया है:

"15. प्राकृतिक न्याय की अवधारणा में हाल के वर्षों में काफी बदलाव आया है। प्राकृतिक न्याय के नियम ऐसे नियम नहीं हैं जो किसी कानून या उसके तहत बनाए गए नियमों में हमेशा स्पष्ट रूप से सन्निहित होते हैं। उन्हें किसी कानून के तहत निष्पादित किए जाने वाले कर्तव्य की प्रकृति से निहित किया जा सकता है। प्राकृतिक न्याय का कौन सा विशेष नियम निहित होना चाहिए और किसी दिए गए मामले में इसका संदर्भ क्या होना चाहिए, कानून का ढांचा काफी हद तक उस मामले के तथ्य और परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए, जिसके तहत जांच आयोजित की जाती है। न्यायिक अधिनियम और प्रशासनिक अधिनियम के बीच पुराना अंतर समाप्त हो गया है। यहां तक कि एक प्रशासनिक आदेश जिसमें नागरिक परिणाम शामिल हैं, प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप होना चाहिए। अभिव्यक्ति 'नागरिक परिणाम' में न केवल संपत्ति या व्यक्तिगत अधिकारों का उल्लंघन शामिल है, बल्कि नागरिक स्वतंत्रता, भौतिक अभाव और गैर-आर्थिक क्षति भी शामिल हैं।

इसकी विस्तृत छत्रछाया में वह सब कुछ आता है जो एक नागरिक को उसके नागरिक जीवन में प्रभावित करता है।"

10. उपरोक्त निर्णयों से यह स्थापित स्थिति है कि नागरिक परिणामों वाले प्रशासनिक निकाय की निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुप्रयोग को बरकरार रखा गया है। इसलिए, प्राकृतिक न्याय के नियम मूलभूत और मौलिक अवधारणाएँ हैं।

11. वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी की जन्मतिथि में एकतरफा बदलाव से प्रत्यर्थी पर नागरिक परिणाम हुए हैं क्योंकि इससे प्रत्यर्थी की सेवानिवृत्ति की तारीख भी प्रभावित हुई है, जिससे सेवा अभिलेख में प्रत्यर्थी की जन्मतिथि में ऐसा सुधार करने से पहले सुनवाई का अवसर न मिलने से प्रत्यर्थी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसलिए केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण का दिनांक 18.11.2020 का आदेश सुविचारित और बिल्कुल सही है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस अदालत द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

12. अतः वर्तमान याचिका विफल है और खारिज किये जाने योग्य है।

(2023) 4 ILRA 1327

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

रिट-ए नंबर 10247/2018

जगत नारायण

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य.

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री नंद किशोर मिश्र, श्री विजय गौतम, श्री अखिलेश कुमार, श्री एल.पी.मिश्रा, श्री अशोक कुमार राय, सुश्री शिल्पा आहूजा

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी, स्थायी वकील

ए. सेवा कानून - चुनौती के तहत सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश - उत्तर प्रदेश नियम 56 (सी) के तहत वित्तीय पुस्तिका, खंड II (भाग II-IV)- मनमानी- पर्याप्त सामग्री के अभाव में।

बी. स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा विचार की प्रक्रिया का पालन न करना - विधिवत अपनाई गई प्रक्रिया - राय बनाने के लिए सामग्री का अभाव - आयोजित, गलत माना जाना - पर्याप्त सामग्री उपलब्ध - ऑडी अल्टरम पार्टम का सिद्धांत अनिवार्य सेवानिवृत्ति के वाद में लागू नहीं - का दायरा न्यायिक समीक्षा सीमित है - विवादित आदेश कानूनी रूप से टिकाऊ है - आपेक्षित आदेश में कोई मनमानी नहीं है - व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए संपूर्ण सेवा अभिलेख देखा जा सकता है - दुर्भावना की तर्क उपलब्ध नहीं है - संबंधित अधिकारियों को पक्षकार नामांकित नहीं किया गया है - याचिका में योग्यता का अभाव है - आपेक्षित आदेश की पुष्टि की गई -याचिका निरस्त। (पैरा 17, 20 से 23, 25, 27, 29, 33, 35 और 42)

आयोजित:

पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने और न केवल संलग्न अभिलेख, प्रति-शपथ-पत्र के साथ-साथ न्यायालय के समक्ष मूल रूप में प्रस्तुत याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तिका का अवलोकन करने पर यह न्यायालय पाता है कि यह कहना गलत है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई सामग्री नहीं है, जिसके आधार पर स्क्रीनिंग समिति या नियुक्ति प्राधिकारी मौलिक नियम 56(सी) के अंतर्गत अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि नहीं बना सके। (पैरा 20)

उपलब्ध सामग्री के आधार पर सामग्री की पर्याप्तता और स्क्रीनिंग कमेटी या नियुक्ति प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि में न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, यदि अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्री उपलब्ध है। मौलिक नियम 56(सी) के तहत शक्ति प्राप्त स्क्रीनिंग कमेटी और नियुक्ति प्राधिकारी को अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर इसका प्रयोग करना है। स्वीकृत रूप से, इसमें तब भी हस्तक्षेप किया जा सकता है, जब यह सिद्ध हो जाए कि यह दुर्भावना या मनमानी का परिणाम है। (पैरा 21)

यहाँ पर जो आधार दिया गया है वह याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल सामग्री का पूर्ण अभाव है, क्योंकि यह एक ऐसा आधार है जिस पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। लेकिन, यहाँ अभिलेख से प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल और बहुत ठोस सामग्री अभिलेख पर उपलब्ध है। इसलिए,

इस आधार पर याचिकाकर्ता की तर्क में कोई बल नहीं है। (पैरा 27)

इसलिए, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि आपेक्षित आदेश दोषपूर्ण है, क्योंकि आपेक्षित आदेश पारित होने से पहले याचिकाकर्ता को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था या उसे अपना जवाब प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया गया था, गलत है और तदनुसार, इसे अस्वीकार कर दिया जाता है। (पैरा 30)

पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात, इस न्यायालय की राय है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति की शक्ति के प्रयोग के संदर्भ में इसका जो भी अर्थ होगा, वह मनमानापन है। यदि स्क्रीनिंग कमेटी या नियुक्ति प्राधिकारी या सरकार, मौलिक नियम 56(सी) के तहत किसी कर्मचारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करते हैं, जिसे कोई भी उचित व्यक्ति उस सामग्री के आधार पर स्वीकार नहीं करेगा, तो आदेश मनमाना होगा। बैकुंठ नाथ दास में उल्लिखित 'मनमाना' शब्द का यही अर्थ है। राजेश गुप्ता बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य, (2013) 3 एससीसी 514 में इन सिद्धांतों का समर्थन किया गया था। (पैरा 33) यहां यह ध्यान देने योग्य है कि याचिकाकर्ता के आचरण को देखते हुए, जहां उसने कई मौकों पर नशे में रहते हुए ड्यूटी पर अनुशासनहीनता और दुर्व्यवहार का प्रदर्शन किया है, यह एक गंभीर वाद है। याचिकाकर्ता

एक अनुशासित बल का सदस्य है, जहां अनुशासन और ईमानदारी न केवल ऐसे बल के सदस्य की पहचान है, बल्कि उनके कार्यों के कुशल निर्वहन के लिए एक अनिवार्य शर्त है। उक्त कारण से, विशेष रूप से, स्क्रीनिंग कमेटी की राय, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री को देखते हुए, मनमाना या दुर्भावनापूर्ण या किसी भी तरह से शक्ति के रंगे हुए प्रयोग का उदाहरण नहीं माना जा सकता है। (पैरा 42)

याचिका निरस्त। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. बैकुंठ नाथ दास और अन्य बनाम मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी, बारीपदा एवं अन्य, (1992) 2 एससीसी 299
2. गुजरात राज्य बनाम उम्मेदभाई एम. पटेल, (2001) 3 एससीसी 314
3. एम.एस. बिंद्रा बनाम भारत संघ एवं अन्य, (1998) 7 एससीसी 310
4. प्रीतम सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2005) 9 एससीसी 748
5. डाक एवं तार बोर्ड एवं अन्य बनाम सी.एस.एन. मूर्ति, (1992) 2 एससीसी 317
6. केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल बनाम एचसी (जीडी) ओम प्रकाश, (2022) 5 एससीसी 100
7. राजेश गुप्ता बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य, (2013) 3 एससीसी 514

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर, द्वारा प्रदत्त)

यह रिट याचिका याचिकाकर्ता, एक पुलिस कांस्टेबल के विरुद्ध पुलिस अधीक्षक,

महोबा द्वारा उत्तर प्रदेश फाइनेंशियल हैंडबुक, वॉल्यूम 1 के नियम 56 (सी) (भाग I-IV) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है। आपेक्षित आदेश में कथित है कि पुलिस अधीक्षक याचिकाकर्ता द्वारा धारण किए गए पद के लिए नियुक्ति प्राधिकारी है और जनहित में, वह निर्देशित करता है कि याचिकाकर्ता पूर्वाह्न में आक्षेपित आदेश की तिथि से सेवा से सेवानिवृत्त हो जाए। आक्षेपित आदेश में आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता अपने वेतन के तीन माह के बराबर राशि प्राप्त करने का हकदार होगा, जिसमें सभी देय भते होंगे, जिसकी गणना उसकी परिलब्धियों के आधार पर की जाएगी जो उसे सेवानिवृत्ति की तिथि से पूर्व प्राप्त हो रही थी। याचिकाकर्ता ने दिनांक 28 मार्च, 2018 के अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उपरोक्त आदेश को चुनौती दी है, जिसे इसके पश्चात 'आक्षेपित आदेश' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

2. यह याचिकाकर्ता का वाद है कि उसकी जन्मतिथि 01.05.1963 है और उसकी आयु 55 वर्ष है। वह अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए शारीरिक और चिकित्सकीय रूप से उपयुक्त है। याचिकाकर्ता असाधारण समर्पण और निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा है। उनका सेवा अभिलेख बेदाग और अनुकरणीय है। याचिकाकर्ता एक ईमानदार और मेहनती पुलिसकर्मी है। उसने सदैव अपने कर्तव्यों का निर्वहन अत्यंत जिम्मेदारी के साथ किया और अपने वरिष्ठों की पूर्ण संतुष्टि के लिए काम किया। याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश पुलिस में दिनांक 20.02.1984 को एक

कांस्टेबल के रूप में नियुक्त किया गया था, और अपना प्रशिक्षण पूर्ण करने के पश्चात, आक्षेपित आदेश की तिथि तक नियमित रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा है।

3. अनुमति लंबित होने तक, पक्षों ने इस न्यायालय के आदेश दिनांक 19.04.2018 के अनुपालन में शपथपत्र का आदान-प्रदान किया है - प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 की ओर से प्रति शपथपत्र और इसके लिए एक प्रत्युत्तर है। सहायक वाद पर पुलिस अधीक्षक, महोबा का व्यक्तिगत शपथपत्र दायर करना आवश्यक था। वह शपथ-पत्र दायर किया गया था और वाद विचारित किया गया था। दिनांक 10.06.2022 के आदेश द्वारा, याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया गया, जो उस दिन अग्रसित हुई।

4. दिनांक 16.07.2022 को, जब वाद प्रस्तुत हुआ, तो इस न्यायालय ने उस तिथि के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तिका और अन्य सभी अभिलेख को भी तलब किया, जिनके आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तिका दिनांक 21.07.2022 को विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत की गई थी। न्यायालय द्वारा सेवा पुस्तिका और उसमें की गई प्रविष्टियों का अवलोकन किया गया। इसके बाद, अभिलेख को रजिस्ट्रार जनरल के पास एक सीलबंद कवर में रखने का निर्देश दिया गया था।

5. वाद दिनांक 04.08.2022 को दिनांक 01.09.2022 तक बिना सुनवाई के स्थगित

कर दिया गया। रजिस्ट्रार जनरल द्वारा सीलबंद लिफाफे में न्यायालय को भेजी गई सेवा-पुस्तिका को उक्त कारण से नहीं खोला गया था, जिस तारीख को वाद की सुनवाई नहीं हुई थी। दिनांक 12.09.2022 को, याचिकाकर्ता की ओर से प्रतिवादी संख्या 5 के प्रति शपथपत्र दिनांक 3 अगस्त, 2022 के लिए एक प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किया गया था। रजिस्ट्रार जनरल से सीलबंद लिफाफे में प्राप्त सेवा-पुस्तिका को अवलोकनार्थ और विधिवत अवलोकन के उद्देश्य से खोला गया था। याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया और निर्णय सुरक्षित रखा गया।

6. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री नंद किशोर मिश्रा और राज्य की ओर विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी को सुना गया।

7. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री नंद किशोर मिश्रा द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 26.10.1985, 06.07.2017 और 08.09.2017 के सरकारी आदेशों के अनुसार कोई स्क्रीनिंग कमेटी का गठन नहीं किया गया था, और स्क्रीनिंग कमेटी के मूल्यांकन के बिना नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया था। यह आगे तर्क दिया गया है कि पुलिस अधीक्षक द्वारा मौलिक नियम 56 (सी) के तहत शक्तियों के प्रयोग में याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश देते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि

प्रतिवादियों ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय एक सोच विचार करके चयन किया है और मौलिक नियम 56 (सी) के तहत अपनी शक्तियों को लागू करने में मनमाने ढंग से काम किया है।

8. यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादियों द्वारा कानून के तहत अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते हुए और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया है। यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश दुर्भावनापूर्ण रूप से पारित किया गया है और निर्णय मनमानेपन और विकृति से दूषित है। यह याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतिकरण है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश, यदि दुर्भावना, मनमानेपन और विकृति के तीन आधारों में से किसी पर भी बुरा है और **बैकुंठ नाथ दास और एक अन्य बनाम मुख्य जिला चिकित्सा अधिकारी, बारीपदा और अन्य, (1992) 2 एससीसी 299** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय अनुसार न्यायिक समीक्षा के लिए स्वतंत्र है। यह भी तर्क दिया गया है कि इस वाद में, याचिकाकर्ता को सजा के रूप में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया है, जो स्वीकृत नहीं है। इस तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वकील ने **गुजरात राज्य बनाम उमेदभाई एम. पटेल, (2001) 3 एससीसी 314** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की।

9. आगे यह तर्क दिया गया कि आक्षेपित आदेश बिना किसी साक्ष्य पर आधारित है

क्योंकि प्रतिवादियों के पास यह राय प्रदर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि याचिकाकर्ता को मौलिक नियम 56 (सी) के तहत अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया जाना चाहिए। नियम के तहत आगे बढ़ने के लिए किसी भी सामग्री की अनुपस्थिति आदेश को दूषित करती है। इस संबंध में, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वकील द्वारा **एमएस बिंद्रा बनाम भारत संघ और अन्य, (1998) 7 एससीसी 310** में उच्चतम न्यायालय के मार्गदर्शन पर निर्भरता व्यक्त किया गया है। **प्रीतम सिंह बनाम भारत संघ और अन्य, (2005) 9 एससीसी 748** में भी निर्भरता व्यक्त की है।

10. प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 की ओर से संयुक्त रूप से प्रस्तुत प्रति शपथपत्र दिनांक 13.08.2018 के प्रस्तर संख्या 8 में यह कहा गया है कि दिनांक 26.10.1985., 06.02.1989, 21.05.1998, 23.09.2000, 25.01.2007 और 28.03.2018 के सरकारी आदेशों के संदर्भ में एक स्क्रीनिंग कमेटी का गठन किया गया था। यह स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा जांच किए बिना प्रतिवादी संख्या 5, नियुक्ति प्राधिकारी का बिना सोचे-समझे लिया गया निर्णय नहीं है। यह तर्क दी गई है कि इस मामले में स्क्रीनिंग कमेटी में नियुक्ति प्राधिकारी, पुलिस अधीक्षक, महोबा को इसके अध्यक्ष, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, महोबा और सर्कल अधिकारी, सदर, महोबा को सदस्य के रूप में रखा गया था। इसके अतिरिक्त, रिजर्व निरीक्षक भी जांच समिति के समक्ष की गई कार्यवाहियों से संबद्ध था। यह तर्क दी गई है कि याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तिका में

सामग्री के आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, जो उसे एक शराबी दिखाता है, जो ड्यूटी के दौरान एक से अधिक अवसरों पर नशे में पाया गया था। याचिकाकर्ता ने 50 वर्ष की आयु पूर्ण कर ली है और स्क्रीनिंग कमेटी ने पुलिस बल में अनुशासन बनाए रखने और सार्वजनिक सुरक्षा के हित में, याचिकाकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के उद्देश्य से उनके अधिकार के भीतर काम किया। यह कहना गलत है कि ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर जांच समिति और नियुक्ति प्राधिकारी ने एक राय बनाई है और आक्षेपित आदेश पारित किया है।

11. प्रत्युत्तर शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 11 का अवलोकन याचिकाकर्ता द्वारा एक उलट फेर प्रदर्शित करता है, जहां उसने यह तर्क त्याग दिया है कि कोई स्क्रीनिंग कमेटी का गठन नहीं किया गया था, एक याचिका रिट याचिका के प्रस्तर संख्या 13 और 27 से 31 में बहुत जोरदार ढंग से प्रस्तुत की गई थी। याचिकाकर्ता ने प्रत्युत्तर शपथपत्र में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि एक स्क्रीनिंग कमेटी थी, लेकिन उसका कथन है कि याचिकाकर्ता को सेवा में बनाए रखने के लिए अयोग्य खोजने के लिए उनके सामने कोई सामग्री नहीं थी। प्रत्युत्तर शपथपत्र में, एक और बिंदु जो उठाया गया है, वह यह है कि याचिकाकर्ता को कोई अवसर नहीं दिया गया था या आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले कारण बताओ नोटिस नहीं दिया गया था। एक तथ्य के रूप में अवसर से इनकार करने का तर्क मौलिक नियम 56 (सी) के तहत अधिकार

क्षेत्र के प्रयोग को दूषित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

12. दिनांक 4 अगस्त, 2022 को एक और प्रति शपथपत्र, जो न्यायालय की अनुमति से पांचवें प्रतिवादी की ओर से दायर किया गया था, उसमें उन सामग्री का उल्लेख किया गया है जिसे नियुक्ति प्राधिकारी की अध्यक्षता वाली स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा ध्यान में रखा गया था। प्रस्तर संख्या 9 में विशेष रूप से यह तर्क दी गई है कि रिजर्व इंस्पेक्टर को दिनांक 28.03.2018 को स्क्रीनिंग कमेटी के समक्ष याचिकाकर्ता को पेश करने का निर्देश दिया गया था। आम तौर पर इस आशय का एक संदर्भ है कि याचिकाकर्ता के नशे में ड्यूटी के लिए आने और इस बात पर जोर देने के लगातार उदाहरण हैं कि वह एक आदतन शराबी था। याचिकाकर्ता के विरुद्ध दर्ज की गई एक प्राथमिकी अपराध संख्या 286/2017 अंतर्गत धारा 354-ए, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला महोबा का संदर्भ है जहां उसने एक महिला के साथ दुर्व्यवहार किया था, जो पुलिस स्टेशन आई थी। इसके अलावा, पुलिस अधिनियम की धारा 34, थाना कोतवाली, जिला झांसी के तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक मामले का भी संदर्भ है, जिसमें याचिकाकर्ता ने तकनीकी दोषमुक्त प्राप्त किया, क्योंकि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 6 जनवरी, 2017 को उत्तर प्रदेश आपराधिक कानून (अपराधों की संरचना और ट्रायल का उन्मूलन) (संशोधन) अधिनियम 1979 (संक्षेप में, '1979 का अधिनियम') के तहत जारी अधिसूचना के परिणामस्वरूप अभियोजन

समाप्त कर दिया गया था। पुलिस अधिनियम की धारा 34 के तहत वाद दर्ज करने के लिए कहा गया था क्योंकि याचिकाकर्ता नशे में सार्वजनिक स्थान पर लोगों के साथ दंगा करने में लिप्त था। याचिकाकर्ता की वार्षिक गोपनीय नामावली का भी संदर्भ के तहत प्रति शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 14 में उल्लेख किया गया है, जहां यह उल्लेख किया गया है कि उसे दिनांक 28.01.2011 के आदेश के तहत निंदा प्रविष्टि के साथ दंडित किया गया था।

13. इसके बाद याचिकाकर्ता के विरुद्ध पारित निलंबन आदेश दिनांक 04.09.2013 का संदर्भ है, जहां उसने चौकी न्यू बस्ती, थाना कोतवाली, जिला झांसी में नशे में दूसरों पर फर्नीचर फेंकते हुए दुर्व्यवहार किया था, इसके चलते पुलिस अधिनियम की धारा 34 के तहत मामला दर्ज किया गया था, जिसे बाद में समाप्त कर दिया गया था। याचिकाकर्ता को कड़ी निंदा प्रविष्टि प्रदान करने वाले एक आदेश दिनांक 25.01.2014 का भी संदर्भ दिया गया है। अभी भी दिनांक 31.07.2017 के एक आदेश का संदर्भ है, जहां याचिकाकर्ता को फिर से निंदा दी गई थी। अंतिम दिनांक 27.04.2018 के एक आदेश का संदर्भ है, जहां याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश पुलिस अधिकारी अधीनस्थ रैंक (सजा और अपील) नियम, 1991 के नियम 14 (2) के तहत 30 दिनों के बराबर वेतन काटने के दंड से दंडित किया गया था। इन प्रविष्टियों के सभी आदेश

प्रतिशपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या 6 के रूप में संलग्न किया गया है। याचिकाकर्ता को दी गई चार छोटी सजाओं का भी संदर्भ है।

14. प्रतिवादियों का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता के सेवा अभिलेख की समग्र रूप से जांच की गई थी और उसे पुलिस जैसे अनुशासित बल में बनाए रखने के लिए अयोग्य पाया गया था। याचिकाकर्ता की आयु 50 वर्ष हो गई है। वह आयु क्षेत्र में आ गए थे जहां उन्हें अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए विचार किया जा सकता था और स्क्रीनिंग समिति ने बहुत ठोस सामग्री के आधार पर उन्हें जनहित में सेवानिवृत्त करने का निर्णय लिया।

15. प्रत्युत्तर शपथपत्र में, अंतिम उल्लेखित प्रति शपथपत्र के जवाब में यह कहा गया है कि झांसी में पुलिस के पास दर्ज मामले में, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, झांसी ने दिनांक 19.03.2018 के आदेश के तहत कार्यवाही को समाप्त करने का आदेश दिया है। जहां तक आईपीसी की धारा 354-ए के तहत अपराध संख्या 286/2017, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला झांसी का संबंध है, प्रस्तर संख्या 5 में यह दावा किया गया है कि जांच के बाद, पुलिस को अभियोजन पक्ष का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री नहीं मिली। अंतिम रिपोर्ट दिनांक 18.09.2017 को प्रस्तुत की गई है। मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांक 19.03.2018 और पुलिस द्वारा दिनांक 18.09.2017 की अंतिम रिपोर्ट की

प्रति क्रमशः अनुलग्नक संख्या आरए-1 और आरए-2 के रूप में संलग्न की गई है। प्रत्युत्तर शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 13 में ट्रक दी गई है कि याचिकाकर्ता के चरित्र रोल में 2007 से 2016 तक लगातार उत्कृष्ट प्रविष्टियां हैं। यह सिर्फ इतना है कि याचिकाकर्ता के अन्यथा अच्छे रिकॉर्ड को धूमिल करने के लिए एक जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण बिल्डअप में, उसे कुछ प्रतिकूल प्रविष्टियों से सम्मानित किया गया है। यह प्रतिवादियों द्वारा दुर्भावनापूर्ण रूप से किया गया है ताकि आक्षेपित आदेश को बनाया किया जा सके। इसलिए, प्रतिवादियों की कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण है जैसा कि रिट याचिका में कहा गया है। चूंकि दुर्भावनापूर्ण न्यायिक समीक्षा के लिए एक आधार है, इसलिए यह तर्क किया जाता है कि आक्षेपित आदेश दूषित है।

16. निश्चित प्रमुखों के तहत आक्षेपित आदेश को चुनौती देने में याचिकाकर्ता की ओर से आग्रह किए गए विभिन्न तर्कों का निस्तारण करना उचित है, जैसा कि इसके पश्चात दर्शाया गया है:

(i) जांच समिति द्वारा विचार की प्रक्रिया का अनुपालन न करना

17. यद्यपि याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने वाद के उद्घाटन में आक्षेपित आदेश को चुनौती देने के प्रमुख आधारों में से एक के रूप में आग्रह किया गया था, सुनवाई में कुछ समय पश्चात, याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य को बिल्कुल भी साबित नहीं कर

सके कि इस वाद में दिनांक 26.10.1985 और 06.07.2017 के सरकारी आदेशों के संदर्भ में आवश्यक कोई स्क्रीनिंग समिति का गठन नहीं किया गया था। यहां, स्वीकृत रूप से, एक स्क्रीनिंग कमेटी का गठन किया गया था, जिसमें पुलिस अधीक्षक, महोबा, अध्यक्ष के रूप में, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, महोबा और सर्कल अधिकारी, सदर, महोबा इसके सदस्य थे, जिन्होंने संदर्भ के तहत सरकारी आदेशों के अनुसार अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए याचिकाकर्ता के वाद की जांच की है। यह स्क्रीनिंग कमेटी के संकल्प के अनुसार है कि नियुक्ति प्राधिकारी ने विचार किया है और आक्षेपित आदेश पारित किया है। प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 की ओर से दायर प्रति शपथपत्र दिनांक 9 अगस्त, 2018 के प्रस्तर संख्या 13 में इस आशय का तर्क किया गया है, जिसे पूर्व में ही देखा जा चुका है, जिसे प्रत्युत्तर शपथपत्र में अस्वीकार नहीं किया गया है। बल्कि, एक स्क्रीनिंग कमेटी का गठन करने की स्थिति को याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्युत्तर के प्रस्तर संख्या 11 में स्वीकार किया गया है, इस तथ्य जो पहले भी देखा गया था। इसलिए, याचिकाकर्ता का यह तर्क कि आक्षेपित आदेश की उत्पत्ति त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा जांच की अनिवार्य प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, निराधार है।

(ii) मौलिक नियम 56 के अंतर्गत स्क्रीनिंग कमेटी के समक्ष याचिकाकर्ता के विरुद्ध विचार करने के लिए सामग्री का अभाव

18. इस गणना पर याचिकाकर्ता की ओर से तर्क किए गए विवाद का सार यह है कि

अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर नियुक्ति प्राधिकरण, या उस मामले के लिए स्क्रीनिंग कमेटी, व्यक्तिपरक संतुष्टि बना सके कि याचिकाकर्ता सेवा में बनाए रखने के लिए अयोग्य है।

19. राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जो उनके अनुसार स्क्रीनिंग कमेटी के लिए याचिकाकर्ता के बारे में अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि बनाने के लिए पर्याप्त है ताकि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए विचार किया जा सके।

20. पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने और न केवल प्रति शपथपत्र के साथ संलग्न अभिलेख, बल्कि याचिकाकर्ता की सेवा-पुस्तिका को भी देखते हुए, अदालत ने पाया कि यह कहना गलत है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई सामग्री नहीं है, जिसके आधार पर स्क्रीनिंग कमेटी, या उस मामले के लिए नियुक्ति प्राधिकरण, मौलिक नियम 56 (सी) के तहत अपनी व्यक्तिपरक संतुष्टि नहीं बना सका। मौलिक सिद्धांत, जिनके आधार पर सरकार द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित किया जा सकता है और सीमित आधार जिन पर न्यायिक रूप से इसकी समीक्षा की जा सकती है, उच्चतम न्यायालय द्वारा **बैकुंठ नाथ दास (सुप्रा)** में निर्धारित किए गए हैं, जहां यह आयोजित किया गया है:

"34. उपरोक्त चर्चा से निम्नलिखित सिद्धांत निकलते हैं:

(i) अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दंड नहीं है। इसका अर्थ है कोई कलंक नहीं है और न ही दुर्व्यवहार का कोई सुझाव है।

(ii) सरकार द्वारा यह आदेश इस राय के आधार पर पारित किया जाना है कि किसी सरकारी कर्मचारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना जनहित में है। आदेश सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पारित किया गया है।

(iii) अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के संदर्भ में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का कोई स्थान नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायिक परीक्षण को पूरी तरह से बाहर रखा गया है। उच्च न्यायालय या यह न्यायालय अपीलीय अदालत के रूप में मामले की जांच नहीं करेगा, वे हस्तक्षेप कर सकते हैं यदि वे संतुष्ट हैं कि आदेश पारित किया गया है (ए) दुर्भावनापूर्ण या (बी) कि यह बिना किसी सबूत के आधारित है या (सी) यह इस अर्थ में मनमाना है कि कोई भी उचित व्यक्ति दी गई सामग्री पर अपेक्षित राय नहीं बनाएगा; संक्षेप में, यदि यह आदेश विकृत क्रम पाया जाता है।

(iv) सरकार (या समीक्षा समिति, जैसा भी मामला हो) को बाद के वर्षों के दौरान अभिलेख और

प्रदर्शन को अधिक महत्व देने के मामले में निर्णय लेने से पहले सेवा के पूरे अभिलेख पर विचार करना होगा। इस प्रकार विचार किए जाने वाले अभिलेख में स्वाभाविक रूप से गोपनीय रिकॉर्ड/चरित्र रोल में दोनों अनुकूल और प्रतिकूल प्रविष्टियां शामिल होंगी। यदि किसी सरकारी कर्मचारी को प्रतिकूल टिप्पणियों के बावजूद उच्च पद पर पदोन्नत किया जाता है, तो ऐसी टिप्पणियां अपना अस्तित्व खो देती हैं, खासकर अगर पदोन्नति योग्यता (चयन) पर आधारित होती है न कि वरिष्ठता पर।

(v) अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को न्यायालय द्वारा केवल यह प्रदर्शित करने पर निरस्त नहीं किया जा सकता कि इसे पारित करते समय असंसूचित प्रतिकूल टिप्पणियों को भी ध्यान में रखा गया था। वह परिस्थिति अपने स्वयं में हस्तक्षेप का आधार नहीं हो सकता।

हस्तक्षेप केवल उपर्युक्त (iii) में उल्लिखित आधारों पर अनुमत है इस पहलू पर ऊपर पैरा 30 से 32 में चर्चा की गई है।

21. सामग्री की पर्याप्तता और मौजूदा सामग्री के आधार पर स्क्रीनिंग कमेटी या नियुक्ति प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि,

न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है, यदि अभिलेख पर प्रासंगिक सामग्री है। यह जांच समिति और नियुक्ति प्राधिकारी के लिए है, जिसे मौलिक नियम 56 (सी) के तहत उनकी संतुष्टि के आधार पर इसका प्रयोग करने की शक्ति प्रदान की गई है। निश्चित रूप से, अभी भी इसमें हस्तक्षेप किया जा सकता है, अगर यह दुर्भावना या मनमानेपन का परिणाम प्रदर्शित करता है।

22. मौलिक नियम 56 (सी) के तहत शक्तियों के प्रयोग में स्क्रीनिंग कमेटी या नियुक्ति प्राधिकारी या सरकार के निर्णय के साथ हस्तक्षेप, बल्कि इसके अनुरूप प्रावधान, उच्चतम न्यायालय के विचारण में **डाक और टेलीग्राफ बोर्ड और अन्य बनाम सीएसएन मूर्ति, (1992) 2 एससीसी 317** में आया जिसमें प्रदत्त किया गया:

"5. ऊपर उल्लिखित उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि यद्धपि प्रतिवादी का आचरण मार्च 1970 तक काफी संतोषजनक था, समीक्षाधीन पिछले दो वर्षों में उसके काम के मानक में गिरावट आई थी। इन दोनों वर्षों में, यह पाया गया कि वह अपने कार्य में पर्याप्त रुचि नहीं ले रहा था और विभिन्न प्रकार की देरी के लिए जिम्मेदार था। जैसा कि पूर्व में ही उल्लेख किया जा चुका है, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दंड का आदेश नहीं है। एफ.आर. 56 (3) सरकार को अपने कर्मचारियों के कामकाज की समीक्षा

करने के लिए अधिकृत करता है, उनकी सेवा की अवधि के अंत में, और नौकर को सेवा से सेवानिवृत्त होने के लिए कहता है, यदि उसकी राय में सार्वजनिक हित इस तरह के आदेश की मांग करता है। क्या कर्मचारी का आचरण इस तरह के निष्कर्ष को सही ठहराने के लिए है, यह मुख्य रूप से विभागीय अधिकारियों को तय करना है। विनियोग की प्रकृति और क्या यह इस हद तक है कि कर्मचारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की आवश्यकता है, इस पर मुख्य रूप से सरकार को निर्णय लेना है। न्यायालय इस शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, यदि सदाशयता पर और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर पहुंचे। वर्तमान मामले में किसी दुर्भावना का आग्रह नहीं किया गया है। उच्च न्यायालय का एकमात्र सुझाव यह है कि अभिलेख में ऐसी किसी सामग्री का खुलासा नहीं किया गया है जो प्रतिवादी के विरुद्ध की गई कार्रवाई को सही ठहरा सके। हम सहमत नहीं हो पा रहे हैं। हमारी राय में, ऐसी सामग्री थी जो प्रदर्शित करती है कि समीक्षाधीन अवधि के पिछले दो वर्षों में याचिकाकर्ता की दक्षता सुस्त थी और इसलिए, हमारे लिए विभाग के निष्कर्ष को दुर्भावनापूर्ण, विकृत, मनमाना या अनुचित मानना संभव नहीं है। ऐसा लगता है कि

खंडपीठ ने सोचा है कि, चूंकि 29 अप्रैल, 1971 के पहले पत्र में उल्लिखित प्रतिकूल टिप्पणियों को बाद के पत्र में दोहराया नहीं गया था, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि उन्हें बाद में छोड़ दिया गया था या बाद के वर्ष में प्रतिवादी में सुधार हुआ था। हमें नहीं लगता कि यह एक वैध अनुमान है, क्योंकि 1971-72 की रिपोर्ट केवल यह दर्शाती है कि प्रतिवादी की मामलों में देरी की प्रवृत्ति पिछले वर्ष की चेतावनी के बावजूद बनी रही। लेकिन, भले ही कोई यह मान ले कि उच्च न्यायालय इस पर सही था, 1971-72 की अवधि के संबंध में प्रतिवादी के विरुद्ध की गई प्रतिकूल टिप्पणी, अपने आप में स्थिर है, विभाग के लिए मामले में निष्कर्ष पर आने के लिए पर्याप्त सामग्री का गठन कर सकती है। यह सच है कि प्रतिवादी का पूर्व का रिकॉर्ड अच्छा था, लेकिन अगर रिकॉर्ड से पता चलता है कि प्रतिवादी के काम के मानक में गिरावट आई थी और संतोषजनक नहीं था, तो यह निश्चित रूप से एफ.आर. 56 (जे) के तहत एक निष्कर्ष पर आने के लिए विभाग को सक्षम करने वाली सामग्री थी। हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को इस आधार पर निरस्त करने में गलती की कि प्रतिवादी के विरुद्ध

कार्रवाई को सही ठहराने के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं थी।

न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया: (एससीसी पीपी 184-85, पैरा 18)

23. **केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल बनाम एचसी (जीडी) ओम प्रकाश, (2022) 5 एससीसी 100** में उच्चतम न्यायालय के वर्तमान निर्णय में पाया जाने वाला इस संबंध में मूल्यवान मार्गदर्शन भी है। उस मामले में कांस्टेबल को दी गई प्रतिकूल प्रविष्टियों के प्रभाव के बारे में कुछ व्यापक वाद सम्मिलित थे, जिन्होंने बाद में हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नति अर्जित की थी, इस आपत्ति के साथ कि पदोन्नति से पूर्व पुरानी प्रविष्टियां धुल गई थीं। लेकिन, एक मूलभूत मुद्दा जिस पर विचार किया गया था वह अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने में सरकार की शक्ति के दायरे के बारे में था। यह **एचसी (जीडी) ओम प्रकाश (सुप्रा)** में देखा गया था:

"7. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने भारत संघ बनाम दुलाल दत्त [भारत संघ बनाम दुलाल दत्त, (1993) 2 एससीसी 179: 1993 एससीसी (एल एंड एस) 406] में भारतीय रेलवे में स्टोर नियंत्रक की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की जांच की। यह माना गया कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश सजा का आदेश नहीं है। यह सरकार का एक विशेषाधिकार है लेकिन यह सामग्री पर आधारित होना चाहिए और सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पारित किया जाना चाहिए और यह कि इसे सकारण आदेश होने की आवश्यकता नहीं है। इस

"18. यह देखा जाएगा कि न्यायाधिकरण ने यह मानने में पूरी तरह से गलती की, मामले की परिस्थितियों में, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए सकारण आदेश होना चाहिए था। यह न्यायालय बार-बार आरएल बुटेल बनाम भारत संघ [आरएल बुटेल बनाम भारत संघ, (1970) 2 एससीसी 876] और भारत संघ बनाम जेएन सिन्हा [भारत संघ बनाम जेएन सिन्हा, (1970) 2 एससीसी 458] के अधिकार पर जोर दे रहा है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दंड का आदेश नहीं है। यह वास्तव में सरकार का विशेषाधिकार है लेकिन यह सामग्री पर आधारित होना चाहिए और इसे सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पारित किया जाना चाहिए। प्रायः न्यायालय द्वारा जांच किए जाने पर सरकार सामग्री का प्रस्तुतिकरण कर सकती है लेकिन यह इस कहावत से बहुत भिन्न है कि अध्यादेश एक सकारण आदेश होना चाहिए। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के किसी आदेश को सकारण आदेश होने की आवश्यकता नहीं है। न्यायाधिकरण के बहुत आदेश से यह स्पष्ट है कि सरकार के पास

समीक्षा समिति की रिपोर्ट थी, फिर भी उसने प्रतिवादी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना उचित समझा। आदेश को न तो दुर्भावनापूर्ण कहा जा सकता है और न ही कानून में मनमाना।

24. यहां, इस न्यायालय ने पाया कि हालांकि याचिकाकर्ता द्वारा वर्ष 1986, 1987, 1988, 1989, 1990, 1991, 1992, 1993, 1994, 1995-96, 1997, 1999, 2001, 2002/2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2010, 2011, 2013, 2014, 2015, 2016 के लिए अच्छी प्रविष्टियां अर्जित की गई हैं, और याचिकाकर्ता द्वारा अर्जित पुरस्कारों के अलावा 1985, 1986, 1988, 1989, 1990, 1995 और 1999 में अच्छी सेवा का रिकॉर्ड भी है, फिर भी याचिकाकर्ता को 28.01.2011, 25.01.2014 और 31.07.2017 को निश्चित प्रतिकूल प्रविष्टियां दी गई हैं, जो सभी निंदा प्रविष्टियां हैं। दिनांक 25.01.2014 की प्रविष्टि एक कड़ी निंदा है। इसके बाद 27.04.2018 को मामूली जुर्माना का आदेश दिया गया जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध 30 दिनों के वेतन के बराबर राशि की कटौती का आदेश पारित किया गया। वर्ष 1985, 1986, 2000 और 2003 में चार छोटे-मोटे दंड भी दिए गए हैं।

25. याचिकाकर्ता के विरुद्ध 04.09.2013 को निलंबन आदेश पारित किया गया है, जो पुलिस अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध के संबंध में सेवा-पुस्तिका में दर्ज किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा किए गए

धारा 354-ए के तहत अपराध के संबंध में अदालत के संज्ञान में एक प्राथमिकी भी लाई गई है। इसके बारे में याचिकाकर्ता ने तर्क दिया है कि पुलिस द्वारा कोई तथ्य नहीं मिलने पर अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। चूंकि ऐसा कोई मामला नहीं है कि अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया गया था, इसलिए यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि अंतिम रिपोर्ट को नियत समय में स्वीकार कर लिया गया होगा। इसलिए, एफआईआर दर्ज करना प्रतिकूल सामग्री के रूप में नहीं गिना जाएगा। लेकिन, जहां तक थाने में जनता के साथ दंगा करने और पुलिस अधिनियम की धारा 34 के तहत वाद पंजीकृत करने का मामला आमंत्रित करने का संबंध है, याचिकाकर्ता को 1979 के अधिनियम के तहत कुछ मामलों में मुकदमों को कम करने के लिए एक विशेष कानून के तहत दोषमुक्ति दी गई थी। यह ऐसी सामग्री नहीं रह जाती जिसका संज्ञान जांच समिति द्वारा नहीं लिया जा सकता।

26. इसके अतिरिक्त, तीन प्रतिकूल प्रविष्टियां हैं और एक लघु दंड आदेश क्रमशः दिनांक 28.01.2011, 25.01.2014, 31.07.2017 और 25.01.2014 है। यह न्यायालय पाता है कि स्क्रीनिंग कमेटी के समक्ष मौजूद सामग्री की प्रकृति को समझने के लिए इन्हें निर्धारित किया जाना चाहिए। ये हैं: "मुझे 2010 "वर्ष 2005 में जब यह आरक्षी थाना कोतवाली जनपद झांसी में आरक्षी के पद पर नियुक्त था, तो पुलिस महानिरीक्षक इला० जोन इलाहाबाद के माध्यम से प्राप्त शुभ चिंतक विभागीय कर्मचारी (गुमनाम) शिकायती प्रार्थना पत्र में अंकित थाना कोतवाली के

कर्मियों द्वारा जनता को लूट कर अवैध तरीको से धन कमाने की जांच आदेश संख्या SSP-23 (IG) 05 दिनांक 14.06.05 द्वारा कराये जाने पर झांसी नगर में इस आरक्षी द्वारा अपना मकान बनवाया। इस मकान से सम्बंधित भूखण्ड वर्ष 1993-94 में इसकी पत्नी श्रीमती मीरा देवी के नाम से मोहल्ला पठौरिया थाना कोतवाली झांसी में लिया गया था, जिसके विषय में अग्रिम सूचना विभाग को नहीं दिया और भवन निर्माण की अनुमति प्राप्त नहीं हुआ पाया गया जो उ०प्र० सरकारी कर्म ० आचरण नियमावली के प्रावधानों का उल्लंघन है, जिसके लिए इसको दो (फटा) जो इसका इसका अपने कर्तव्य के प्रति घोर लापरवाही, अनुशासनहीनता, आदेशों की अवहेलना, अकर्मण्यता एवं प्रमाद को प्रदर्शित करता है। इसके इसके इस कृत्य की परिनिन्दा की जाती है।

पत्रांक द-663/10

(अमित चन्द्रा)

Jans, 10

SSP

HOB-74

JSI

दिनांक 28.1.11"

"2013

जब कान्स 0 वर्ष-2013 में जी0 आर0 पी0 अनुभाग, झांसी के कंट्रोल रूम में नियुक्त थे, तो दिनांक 2.9.2013 को शराब के नशे में चौकी नईबस्ती थाना कोतवाली जनपद झांसी में जाकर कर्मचारी / अधिकारीगण से अभद्रता की तथा चौकी की कुरसिया फेंक दी एवं अभद्र भाषा का प्रयोग किया। कांस्ट ० के

विरुद्ध मु० अ० सं० निल/2013 धारा 34 पुलिस अधिनियम के तहत रपट नं0 50 समय 21:15 पीएम पर थाना कोत ० जनपद झांसी में पंजीकृत किया गया। डॉक्टरी परीक्षण कराए जाने पर अलकोहल का सेवन किए जाने की पुष्टि हुई। इस प्रकरण में प्रारंभिक जाँच पुलिस उपाधीक्षक, रेलवे, झांसी श्री सुरेंद्र सिंह तेवतिया कराये जाने पर जाँच से कांस्टे० द्वारा किए गए उक्त की पुष्टि हुई है। कांस्टे० का कृत्य लापरवाही, अकर्मण्यता एवं अनुशासनहीनता का द्योतक है जिसकी घोर परिनिन्दा की जाती है।

पत्र सं0-26/2013

(Sd.)

दिनांक-25.1.2014

पुलिस अधीक्षक, रेलवे झांसी

HOBn-157

12.2.14

प्रमाणित

ह० अ०

पुलिस अधीक्षक

बांदा"

"परिनिन्दा प्रविष्टि

वर्ष-2017-प्रभारी निरीक्षक कोतवाली महोबा की आख्या दिनांकित 16.5.17 के अनुक्रम में दिनांक 16.5.17 को जरिए सीयूजी मोबाइल क्षेत्राधिकारी नगर द्वारा सूचना प्राप्त हुई कि लाकप ड्यूटी में कां० जगत नारायण आरक्षी शराब के नशे में ड्यूटी में आया है जो ड्यूटी पर आने के बाद से काफी समय से अनुपस्थित है इस सूचना पर मैं प्रभारी निरीक्षक कोतवाली मय हमराही फोर्स के न्यायालय परिसर महोबा आया एवं उक्त आरक्षी पुलिस की तलाश करवाई, जो काफी देर

बाद नशे के हालत में सड़क किनारे दुकान पर बैठा मिला जिससे वार्ता की गयी तो उसके मुंह से शराब की दुर्गंध आ रही थी तथा आंखें लाल थी जिसका डॉक्टरी परीक्षण जिला अस्पताल महोबा में कराया गया जिसमें एल्कोहल लेने की पुष्टि की गयी इनका यह कृत्य कर्तव्य के प्रति घोर अनुशासनहीनता, स्वेच्छाचारिता, उदासीनता को प्रदर्शित करता है, जिसकी परिनिन्दा की जाती है।

प० सं० द-27/2017

प्रमाणित

SP

दिनांक-31.7.2017

ह० अ०

MBA"

SP

MBA

अर्थदण्ड

वर्ष 2017

जब आप वर्ष 2018 में पुलिस लाइन जनपद महोबा में नियुक्त थे, तब दिनांक 26.3.18 को पुलिस लाइन महोबा से आपकी इयूटी मेडिकल झांसी बन्दी सुरक्षा हर प्रसाद पुत्र खरजुवा के सुरक्षा गार्ड में शस्त्र इन्सास नं 0 18630887 मय 02 मैगजीन व 40 अदद कारतूस बजाय आरक्षी शिवम कुमार के लगायी गयी थी, किंतु आप द्वारा इयूटी हेतु मेडिकल कॉलेज झांसी के लिए रवाना किए जाने के उपरांत सुरक्षागार्ड इयूटी पर न जाकर तथा अपने कर्तव्यों के प्रति सचेत न रहकर नशे की हालत में असलहा इन्सास आदि से बेपरवाह राठ रोड तिराहे की पुलिया के पास नाले में पड़े हुए पाए गए, जिससे आम जन मानस में पुलिस की छवि धूमिल हुई। आपका यह कृत्य अपने पदीय कर्तव्य के प्रति घोर लापरवाही, अकर्मण्यता, अनुशासनहीनता, स्वेच्छाचारिता का द्योतक है।

अतः पुलिस अधिकारियों की (दण्ड एवं अपील) नियमावली 1991 के नियम 14 (2) के अन्तर्गत प्रस्तावित 01 माह (30 दिवस) के वेतन के बराबर अर्थदण्ड से दण्डित किए जाने का आदेश पारित किया जाता है।

प० सं० द-19/2018

प्रमाणित

SP

दिनांक-27.4.2018

ह० अ०

MBA"

SP

MBA

27. **बैकुंठ नाथ दास** और उसके बाद के निर्णय के सिद्धांत सरकार द्वारा जनहित में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त होने के निर्णय के उद्देश्य से पूरे सेवा रिकॉर्ड को प्रासंगिक बनाते हैं। पूर्ण अभिलेख पर विचार करते हुए, **बैकुंठ नाथ दास** के सिद्धांतों के अनुसार, बाद के वर्षों के दौरान कर्मचारी के प्रदर्शन को अधिक महत्व देना होगा। यहां एक मामला है, जहां याचिकाकर्ता ने अपनी सेवा की पिछली अवधि के दौरान लगातार अच्छी प्रविष्टियां और पुरस्कार अर्जित किए होंगे, लेकिन 2010 से 2017 से उसके रिकॉर्ड को प्रतिकूल प्रविष्टियों, मामूली दंड और पुलिस अधिनियम की धारा 34 के तहत अपराध के कारित से प्रभावित किया गया है। वर्ष 2010-17 के बीच याचिकाकर्ता के विरुद्ध अच्छी प्रविष्टियों या अर्जित पुरस्कारों और प्रतिकूल सामग्री का पुराना रिकॉर्ड, इस निष्कर्ष को जन्म नहीं दे सकता है कि यह एक ऐसा मामला है जहां मौलिक नियम 56 (सी) के तहत कार्रवाई करने के लिए स्क्रीनिंग कमेटी या नियुक्ति प्राधिकारी के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं है। सामग्री की पर्याप्तता न्यायालय के विचार का विषय नहीं है। यहां इस आधार पर तर्क

दिया गया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल सामग्री की पूर्ण अनुपस्थिति थी, क्योंकि यह एक आधार है जिस पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है। लेकिन, यहां रिकॉर्ड से प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के प्रतिकूल सामग्री और रिकॉर्ड पर बहुत ठोस उपलब्ध है। इसलिए, इस आधार पर याचिकाकर्ता के तर्क में कोई बल नहीं है।

(iii) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन

28. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है, जो कि रिट याचिका में भी तर्क दी गई है कि आक्षेपित आदेश दूषित है, क्योंकि याचिकाकर्ता को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था या जवाब प्रस्तुत करने का अवसर नहीं प्रदान किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश वह आदेश है जो प्रतिकूल नागरिक परिणामों के साथ याचिकाकर्ता को प्रभावित करता है, जो बिना अवसर प्रदान किए नहीं पारित किया जा सकता था।

29. राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी ने उक्त तर्क का खंडन किया और कहा कि मौलिक नियम 56 (सी) के तहत अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले में प्रकृति न्याय के सिद्धांतों का कोई अनुप्रयोग नहीं है। **बैकुंठ नाथ दास** में दिए गए सिद्धांत, जो ऊपर दिए गए हैं, यह स्पष्ट करते हैं कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के संदर्भ में प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता का पालन करने का कोई स्थान नहीं है। अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश न तो कलंक है और न

ही सजा। **बैकुंठ नाथ दास** में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को बाहर रखने के बारे में अधिकांश टिप्पणियां, पूर्व निर्णय पर विचार करते हुए, असंप्रेषित प्रतिकूल प्रविष्टियों के संदर्भ में आई हैं, जिन्हें बाद में स्क्रिनिंग कमेटी या सरकार द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने के लिए ध्यान में रखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त प्राधिकरण में यह सुझाव नहीं दिया गया है, जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान मामले में किया गया है, कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने से पूर्व, अवसर को कारण बताओ के रूप में दिया जाना चाहिए। **बैकुंठ नाथ दास** में, कुछ प्रासंगिक टिप्पणियां हैं, जो ऊपर उद्धृत रिपोर्ट के प्रस्तर संख्या 34 में दिए गए सिद्धांतों का आधार बनती हैं। **बैकुंठ नाथ दास** में उपरोक्त टिप्पणियां पढ़ी गईं:

"30. उपरोक्त तर्क में, यह हमारी सम्मानजनक राय में इस प्रकार है कि जेएन सिन्हा [(1970) 2 एससीसी 458: (1971) 1 एससीआर 791] में लिया गया दृष्टिकोण सही है अर्थात्, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत एफआर 56 (जे) या इसके अनुरूप नियम के तहत अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले में लागू नहीं होते हैं। इस संदर्भ में, हम ब्रिज मोहन सिंह चोपड़ा [बृज मोहन सिंह चोपड़ा बनाम स्टेट ऑफ पुंज अब, (1987) 2 एससीसी 188: (1987) 3 एटीसी 496] में प्रतिपादित दो नियमों के एक साथ संचालन से उत्पन्न एक व्यावहारिक कठिनाई को इंगित कर सकते हैं। एक ओर यह कहा गया है कि यदि विगत 10

वर्षों की प्रविष्टियों का विचारण किया जाना चाहिए और दूसरी ओर यदि कोई प्रतिकूल टिप्पणी है, तो उन्हें न केवल संप्रेषित किया जाना चाहिए, बल्कि उनके विरुद्ध किए गए अभ्यावेदनों पर विचार किया जाना चाहिए और उन्हें विचार करने से पहले निपटाया जाना चाहिए। अभ्यावेदन के निस्तारण के मामले में हम कहां रेखा खींचते हैं? क्या इसका अभिप्राय केवल समुचित प्राधिकारी द्वारा निपटान करना है अथवा इसमें अपील भी शामिल है? यहां तक कि अगर अपील खारिज कर दी जाती है, तो सरकारी कर्मचारी एक संशोधन दायर कर सकता है या अभी भी उच्च अधिकारी को प्रतिनिधित्व कर सकता है। वह उन टिप्पणियों को हटाने के लिए अदालत या न्यायाधिकरण से भी संपर्क कर सकता है। क्या सरकार को इन सभी चरणों के खत्म होने तक इंतजार करना चाहिए? स्वाभाविक रूप से इन सभी रिपोर्टों को *purana* होने में बहुत समय लगेगा। एक सरकारी कर्मचारी इस मामले को जीवित रखने के लिए एक या दूसरे कार्यवाही को अपना सकता है। यह एमई रेड्डी [भारत संघ बनाम एमई रेड्डी, (1980) 2 एससीसी 15: 1980 एससीसी (एल एंड एस) 179: (1980) 1 एससीआर 736] बृज मोहन सिंह चोपड़ा [बृज मोहन सिंह चोपड़ा बनाम पंजाब राज्य, (1987) 2 एससीसी 188 (1987) 3 एटीसी 496] और बैद्यनाथ महापात्रा [बैद्यनाथ महापात्रा बनाम उड़ीसा राज्य, (1989) 4 एससीसी 664: 1990 एससीसी (एल एंड

एस) 38: (1989) 11 एटीसी 886] के सिद्धांत को असंप्रेषित प्रतिकूल टिप्पणियों को विचार में रखने के प्रश्न पर मानने का अतिरिक्त कारण है।

35. वाद से विरक्त होने से पूर्व, हमें श्री आरके गर्ग द्वारा किए गए तर्क का उल्लेख करना चाहिए। उन्होंने मेनका गांधी [मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 1 एससीसी 248] में अनुच्छेद 14 की नई अवधारणा पर जोर दिया और उस आधार पर प्रस्तुत किया कि कोई भी और हर मनमानी कार्रवाई न्यायिक जांच के लिए स्वतंत्र है। उक्त निर्णय में विकसित सामान्य सिद्धांत यहां मुद्दा नहीं है। हम मुख्य रूप से इस प्रश्न से चिंतित हैं कि क्या अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का एक पहलू आकर्षित होता है। दूसरे शब्दों में, प्रश्न यह है कि क्या अज्ञात पर कार्रवाई सामग्री अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को रद्द करने का एक आधार है। चूंकि हमने माना है कि कार्य की प्रकृति प्राकृतिक रूप से अर्ध-न्यायिक नहीं है और क्योंकि कार्रवाई सरकार की अधीनस्थ संतुष्टि पर की जानी है, ऐसे मामले में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत पहलू को आयात करने का कोई स्थान नहीं है, विशेष रूप से जब अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश सजा नहीं है और न ही इसमें कोई कलंक शामिल है।

(न्यायालय द्वारा जोर)

30. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतिकरण, इसलिए, कि आक्षेपित आदेश दूषित है, क्योंकि याचिकाकर्ता को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था या आक्षेपित आदेश पारित होने से पूर्व अपना जवाब प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था, गलत है और तदनुसार, निरस्त कर दिया गया है।

(iv) आक्षेपित आदेश मनमानेपन के लिए बुरा है

31. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश मनमाना है, क्योंकि यह प्रदर्शित के लिए अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि याचिकाकर्ता संदिग्ध अखंडता का व्यक्ति था या सेवा में बनाए रखने के लिए फिट था। यह मनमाना भी है क्योंकि पिक एंड चूज की नीति का पालन दंडात्मक अवधि पर किया गया है, जहां याचिकाकर्ता को सार्वजनिक हित के बजाय सेवा से तत्काल हटाने के जनहित उद्देश्य के लिए आदेश पारित किया गया है।

32. विद्वान स्थायी वकील ने उपरोक्त तर्क का खंडन किया है और कहा है कि याचिकाकर्ता के सेवा रिकॉर्ड की गहन जांच के पश्चात, जहां अलग-अलग अच्छी प्रविष्टियां और प्रतिकूल अलग-अलग अधिकारियों द्वारा लिखी गई हैं, तीन अधिकारियों की एक स्क्रीनिंग कमेटी ठोस सामग्री के आधार पर एक निश्चित राय पर आई है कि याचिकाकर्ता

अनिवार्य सेवानिवृत्त होने का हकदार है। निर्णय के बारे में कुछ भी मनमाना नहीं है।

33. पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर, यह न्यायालय कथित कर सकता है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति की शक्ति के प्रयोग के संदर्भ में सभी के लिए मनमाना राय की विकृति है। यदि स्क्रीनिंग कमेटी या नियुक्ति प्राधिकारी या सरकार, मौलिक नियम 56 (सी) के तहत किसी कर्मचारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में, रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन करते हैं, जिसे कोई भी उचित व्यक्ति उस सामग्री के आधार पर स्वीकार नहीं करेगा, तो आदेश मनमाना होगा। बैकुंठ नाथ दास में प्रतिपादित 'मनमाना' शब्द का ठीक यही अर्थ था। **राजेश गुप्ता बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य, (2013) 3 एससीसी 514** में सिद्धांतों का समर्थन किया गया था।

34. यहां प्रश्न यह है कि क्या स्क्रीनिंग कमेटी या नियुक्ति प्राधिकारी के निर्णय को मनमाना माना जा सकता है। याचिकाकर्ता के सेवा रिकॉर्ड पर सावधानीपूर्वक अवलोकन से प्रतीत होता है कि उसे वर्ष 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015 और 2016 के लिए प्रत्येक वर्ष के लिए सामान्य आचरण और पुलिस कार्य से संबंधित भाग में उनकी सेवा-पुस्तिका में दर्ज अच्छी प्रविष्टियां दी गई हैं, जिन्हें ज्यादातर संबंधित पुलिस उपाधीक्षकों द्वारा सम्मानित किया गया है। लेकिन, यह भी उतना ही सच है कि कदाचार और दंड के विवरण शीर्षक वाले भाग से संबंधित सेवा-बी0ओके में, याचिकाकर्ता को आदेश दिनांक

28.01.2011 निंदा प्रविष्टि, कड़ी निंदा प्रविष्टि दिनांक 25.01.2014 को, और फिर भी, दिनांक 31.07.2017 के आदेश के तहत एक निंदा प्रविष्टि दी गई है। दिनांक 27.04.2018 के बाद के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता को उसके वेतन के 30 दिनों के बराबर कटौती की मामूली सजा दी गई है। निंदा प्रविष्टियों और मामूली जुर्माना देने वाले ये सभी आदेश तर्कसंगत आदेश हैं, जिन्हें पूर्व में ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। वर्ष 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015, 2016 के लिए अच्छी प्रविष्टियां उन अधिकारियों की तुलना में अलग-अलग अधिकारियों द्वारा प्रदान की गई हैं, जिन्होंने निंदा प्रविष्टियां की हैं या कुछ कदाचार के आधार पर मामूली सजा के आदेश दिए हैं।

35. स्पष्ट रूप से वर्ष 2011-2016 की अवधि के लिए प्रत्येक वर्ष सामान्य आचरण और पुलिस कार्य से संबंधित भाग में विभिन्न अधिकारियों द्वारा नियमित अच्छी प्रविष्टियां 28.01.2011, 25.01.2014, 31.07.2017 और 24.07.2018 के आदेशों के सामने नहीं होनी चाहिए थीं, लेकिन प्रविष्टियों के दो सेटों के बीच यह कलह स्क्रीनिंग कमेटी की राय को मनमाना मानने का कोई आधार नहीं है। स्क्रीनिंग कमेटी ने याचिकाकर्ता के पूरे सेवा रिकॉर्ड को देखा है और सभी सामग्रियों के आधार पर एक व्यक्तिपरक संतुष्टि का गठन किया है कि याचिकाकर्ता 'डेडवुड' की श्रेणी में आता है, जिसे अपने 50 वें जन्मदिन को पार करने के बाद सेवा में बनाए नहीं रखा जाना चाहिए। छोटी सजा सहित प्रदान की गई

निंदा प्रविष्टियों के अवलोकन पर, आक्षेपित आदेश की शुद्धता का न्याय करने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि यह निर्धारित करने के सीमित उद्देश्य के लिए कि क्या यह मनमाना है, हमारी राय में, मनमाना नहीं कहा जा सकता है। जांच समिति, नियुक्ति प्राधिकारी या सरकार द्वारा व्यक्तिपरक संतुष्टि के लिए पूरे सेवा रिकॉर्ड की जांच की जानी होती है। यदि सभी सामग्रियों पर विचार नहीं किया गया है, तो निर्णय दूषित हो सकता है।

36. यहां, ऐसा कोई मामला नहीं है कि संपूर्ण सामग्री का अवलोकन नहीं किया गया। प्रतिवादियों का तर्क यह है कि उन्होंने पूरे सेवा रिकॉर्ड की जांच की है। इस दावे पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। तीन निंदा प्रविष्टियों और मामूली सजा देने वाले आदेश से प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता एक शराबी रहा है और एक से अधिक अवसरों पर नशे की हालत में ड्यूटी पर खुद को गलत तरीके से पेश किया है। उनकी ईमानदारी को दर्शाते हुए एक प्रविष्टि है। उन्होंने अनुशासन और अवज्ञा की कमी का प्रदर्शन किया है। यह वह सामग्री है जिसे स्क्रीनिंग कमेटी ने अन्य सेवा रिकॉर्ड के अलावा ध्यान में रखा है, जिसमें अच्छी प्रविष्टियां हैं। रिकॉर्ड में उपलब्ध इस प्रकार की सामग्री को देखते हुए यह कहना संभव नहीं है कि जांच समिति का निर्णय अथवा अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आक्षेपित आदेश में इसकी अभिव्यक्ति मनमाने ढंग से निर्णय लेने का परिणाम है। रिकॉर्ड पर सामग्री को समग्र रूप से पढ़ा जाता है, इस न्यायालय को इस निष्कर्ष पर

नहीं ले जा सकता है कि स्क्रीनिंग कमेटी या नियुक्ति प्राधिकारी का निष्कर्ष एक ऐसा है जिस तक कोई भी उचित व्यक्ति कभी नहीं पहुंच सकता था।

37. परिस्थितियों में, यह माना जाता है कि मनमानेपन के कारण आक्षेपित आदेश दूषित नहीं है।

(v) दुर्भावना की तर्क

38. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश दुर्भावनापूर्ण है और याचिकाकर्ता को दंडित करने के लिए शक्तियों के प्रयोग में पारित किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के पास वर्ष 2016 तक सभी अच्छी प्रविष्टियां हैं, लेकिन आक्षेपित कार्रवाई की रचना के लिए प्रतिकूल सामग्री का अचानक प्रदर्शन होता है। याचिकाकर्ता का तर्क है कि यह आक्षेपित आदेश पारित करने वाले अधिकारियों की दुर्भावना का प्रदर्शन है। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले में दुर्भावना के काम करने के तरीके के संदर्भ में **बैकुंठ नाथ दास** में अवलोकन किया गया, जो इस प्रकार है:

"31. ध्यान में रखा जाने वाला एक और कारक यह है: सबसे अधिक बार, जिस प्राधिकरण ने प्रतिकूल टिप्पणी की और उसे अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के लिए सक्षम प्राधिकारी समान नहीं होते हैं। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि उसे सेवानिवृत्त करने के लिए सक्षम प्राधिकारी प्रमाणिक कार्य नहीं करेगा या

पूरे रिकॉर्ड पर निष्पक्ष रूप से विचार नहीं करेगा। जैसा कि तय किए गए वादों से प्रतीत होता है कि बहुत बार मामलों की जांच करने और सरकार को अपनी सिफारिश करने के लिए एक से अधिक जिम्मेदार अधिकारियों से मिलकर समीक्षा समिति का गठन किया जाता है। समीक्षा समिति, सरकार के अनुसार, स्वाभाविक रूप से एक या दो टिप्पणियों, अनुकूल या प्रतिकूल से प्रभावित नहीं होगी। वे पूरे रिकॉर्ड पर विचार करने की समग्रता पर एक राय बनाएंगे - जिसमें उपरोक्त के खिलाफ सरकारी कर्मचारी द्वारा किए गए अभ्यावेदन, यदि कोई टिप्पणी शामिल हैं जो निश्चित रूप से उनकी सेवा के बाद की अवधि को अधिक महत्व है। एक और परिस्थिति जो ध्यान में रखनी चाहिए, वह यह है कि किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध निराधार टिप्पणी करने वाले अधिकारियों के उत्तराधिकार की संभावना नहीं है।'

39. इस मामले में याचिकाकर्ता का तर्क है कि आक्षेपित आदेश पारित करने वाले अधिकारियों की ओर से तथ्य, जिसके संबंध में याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 5 की ओर से प्रति शपथपत्र के जवाब में दायर अपने प्रत्युत्तर शपथपत्र के प्रस्तर संख्या 13 में तर्क दी है। प्रत्युत्तर शपथपत्र के प्रस्तर नंबर 13 में लिखा है:

13. यह कि प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 13, 14 और 15 की सामग्री को गलत माना जाता है, इसलिए इनकार

किया जाता है और यह प्रस्तुत किया जाता है कि चूंकि याचिकाकर्ता को 2007 से 2016 तक लगातार उत्कृष्ट चरित्र रोल से सम्मानित किया गया है, इसलिए कुछ पुलिस अधिकारियों द्वारा दुर्भावना से याचिकाकर्ता के विरुद्ध अन्य कार्यवाही गलत तरीके से विकसित की गई है अन्यथा याचिकाकर्ता ने कभी भी अपने वरिष्ठ अधिकारियों की आज्ञा की अवहेलना नहीं की और कभी नहीं किसी भी तरह से कदाचार किया।

40. अब, यदि याचिकाकर्ता की इस तर्क की जांच की जानी थी, तो यह तुरंत समझ में आता है कि याचिकाकर्ता का वाद 2007-2016 से उत्कृष्ट चरित्र रोल एक तथ्य के लिए गलत है। यह सच है कि इस अवधि के दौरान नियमित प्रविष्टियां अच्छी थीं, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि कदाचार के विशिष्ट कृत्यों के लिए याचिकाकर्ता को दिनांक 28.01.2011, 25.01.2014 और 31.07.2017 के आदेश के तहत निंदा प्रविष्टियां मिलीं। उन्हें 30 दिन के वेतन के बराबर वेतन काटने के जरिए मामूली सजा भी सुनाई गई। याचिकाकर्ता के विरुद्ध पारित किए गए ये सभी आदेश 2010 से 2018 तक 8 वर्षों की अवधि में पारित किए गए थे और उच्च रैंक के विभिन्न अधिकारियों द्वारा किए गए हैं; किसी भी मामले में पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे का मामला सामने नहीं आया है। इनमें से दो आदेश, अर्थात् दिनांक 28.01.2011 और 25.01.2014 झांसी में पारित किए गए थे, जबकि बाद के आदेश महोबा में पारित किए गए थे। इसलिए, याचिकाकर्ता के तर्क को

स्वीकार करना मुश्किल है कि ये सभी अलग-अलग अधिकारी याचिकाकर्ता के विरुद्ध द्वेष से एक रिकॉर्ड बनाने के लिए एक साथ काम कर रहे थे, जो बाद की कार्रवाई के लिए आधार प्रदान करेगा। इसके अलावा, आक्षेपित आदेश तीन सदस्यों की एक स्क्रीनिंग कमेटी की राय पर स्थापित किया गया है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि समिति के सभी सदस्य याचिकाकर्ता के विरुद्ध दुर्भावनापूर्ण कार्रवाई करने में साथ होंगे। इन सबके अलावा, वास्तव में दुर्भावना की तर्क की जांच किसी नामित अधिकारी या अधिकारियों के लिए दुर्भावना का विवरण दिए बिना नहीं की जा सकती है। फिर इसमें सम्मिलित अधिकारियों को दुर्भावना के लिए जिम्मेदार ठहराए जाने के बाद उन्हें दोषी ठहराया जाना चाहिए। इस मामले में याचिकाकर्ता ने न तो किसी नामित अधिकारी या अधिकारियों के संदर्भ में दुर्भावना का विवरण दिया है और न ही संबंधित अधिकारी/अधिकारियों को दोषी ठहराया है। याचिकाकर्ता द्वारा यह सब नहीं किए जाने के कारण, याचिकाकर्ता की ओर से दुर्भावनापूर्ण तर्क की जांच करना मुश्किल है।

41. तथ्यों के उपरोक्त अवलोकन में, इस न्यायालय की राय है कि आक्षेपित आदेश को दूषित करने का कोई वाद नहीं बनता है।

42. यहां यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि याचिकाकर्ता के आचरण को देखते हुए, जहां उसने कई मौकों पर नशे में ड्यूटी पर अनुशासनहीनता और दुर्व्यवहार का प्रदर्शन किया है, वह एक गंभीर मामला है। याचिकाकर्ता एक अनुशासित बल का सदस्य

है, जहां अनुशासन और ईमानदारी न केवल ऐसे बल के सदस्य की पहचान है, बल्कि उनके कार्यों के कुशल निर्वहन के लिए एक अनिवार्य शर्त है। उक्त कारण से, विशेष रूप से, स्क्रीनिंग कमेटी की राय, रिकॉर्ड पर सामग्री को देखते हुए, मनमानी या दुर्भावनापूर्ण या किसी भी तरीके से शक्ति के रंगीन प्रयोग के उदाहरण से दूषित नहीं माना जा सकता है।

43. परिणाम में, याचिका विफल हो जाती है और निरस्त की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

44. याचिकाकर्ता की सर्विस बुक को विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री गिरिजेश कुमार त्रिपाठी के माध्यम से प्रतिवादियों को वापस किया जाए।

(2023) 4 ILRA 1342

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी,

रिट-ए संख्या 15004 / 2022

पुष्पा देवी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री यशपाल यादव, श्री सुनील कुमार यादव

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री कार्तिकेय सरन, श्री विनायक रंजन

सेवा कानून-चुनौती के तहत सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के बाद वसूली का आदेश-याचिकाकर्ता

के पति को आरोप पत्र दिया गया-आरोप पत्र का उत्तर प्रस्तुत करने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई-अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त कर दी गई-सेवांत लाभों में कटौती करने वाला वसूली आदेश-कानून में दूषित-कर्मचारी की मृत्यु के बाद कोई सजा नहीं दी जा सकती-आक्षेपित वसूली निरस्त-याचिका स्वीकार की गई।

आयोजित:

न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि किसी मृत व्यक्ति के विरुद्ध न तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती है और न ही कोई दंडात्मक आदेश पारित किया जा सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय का दृढ़ मत है कि किसी मृत व्यक्ति के विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू या जारी नहीं रखी जा सकती।

कानून में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि जांच पूरी नहीं हुई है और जांच के दौरान दोषी कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है, तो उसे जारी नहीं रखा जाना चाहिए और पूर्ण माना जाना चाहिए। यह बहुत ही आश्चर्यजनक है कि प्रतिवादी इस तथ्य से अच्छी तरह अवगत हैं कि आरोप पत्र का उत्तर प्रस्तुत करने से पहले याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु हो गई और उन्होंने जांच पूरी करने के लिए आगे नहीं बढ़े। रिट ए संख्या 16683/2021 में पारित इस न्यायालय के दिनांक 07.12.2021 के आदेश के अनुपालन में याचिकाकर्ता का दिनांक 21.12.2021 का अभ्यावेदन प्राप्त करने के बाद ही प्रतिवादी ने दिनांक 27.05.2022 का

विवादित आदेश पारित किया है, जो विभागीय कार्यवाही को पुनः प्रारंभ करने के समान है।

याचिका स्वीकृत (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. श्रीमती राजेश्वरी देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. 2011(2) एडीजे 643
2. गुलाम गौसुल आजम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2014 (5) एडीजे 558
3. दुर्गावती दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 08.10.2018 को निर्णीत, रिट ए संख्या 47122/2016
4. राजकिशोरी देवी विधवा (मृतक) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
5. हीराभाई भीकनराव देशमुख बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (1985) आईएलजे 469 बॉम
6. जयंती देवी बनाम बिहार राज्य और अन्य. 2001(49) बीएलजेआर 2179
7. ए.के.एस. राठौर (मृत) द्वारा वारिसान बनाम भारत संघ एवं अन्य; सिविल अपील संख्या 7028/2022

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, प्रत्यर्थी सं0 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं0 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री कार्तिकेय सरन के संक्षिप्त विवरण को धारण किये विद्वान अधिवक्ता श्री विनायक रंजन को सुना।

मामले की सुनवाई 17.11.2022 को हुई और न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश

पारित किया है:

" प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री कार्तिकेय सरन ने प्रार्थना की है और उन्हें प्रति शपथपत्र दाखिल करने के लिए चार सप्ताह और कोई समय नहीं दिया गया है।

इस मामले को 15.12.2022 को सूचीबद्ध करें।

अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, सूचीबद्ध की अगली तारीख तक बढ़ाया जाता है।"

दिनांकित 17.11.2022 के आदेश के बावजूद, प्रत्यर्थी सं0 2 की ओर से कोई प्रति शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया है, जिसने दिनांकित 27.05.2022 को आक्षेपित आदेश पारित किया है।

मामले को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर मामले का निर्णीत करने की कार्यवाही की है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता के पति अवर अभियंता के पद पर कार्यरत थे। शामली में उनकी तैनाती के दौरान, उन्हें दिनांकित 23.02.2021 को एक आरोप पत्र दिया गया था, लेकिन आरोप पत्र का उत्तर प्रस्तुत करने से पहले, 02.05.2021 को हृदय गति रुकने से उनकी मृत्यु हो गई (याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु की तारीख इस न्यायालय के दिनांकित 21.09.2022 के आदेश में गलत 02.05.2022 को प्रतिलेखित किया गया है)।

अंततः, जांच समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि चूंकि याचिकाकर्ता के पति की जांच कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो

गई, इसलिए, प्रत्यर्थी अधिकारियों की ओर से उसके खिलाफ लंबित अनुशासनात्मक कार्यवाही को रद्द करना आवश्यक है। उसी का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे उद्धृत किया जा रहा है-

“जांच समिति का मत है की आरोपी सेवक सव० गुरदयाल सिंह, तत्कालीन अवर अभियंता, अंतर्गत विद्युत वितरण खंड-तृतीय, शामली संप्रति अवर अभियनता अंतर्गत विद्युत वितरण खण्ड-तृतीय, शामली (दिवंगत) के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के लंबित रहते हुए दिनांकित 02.05.2021 को स्वर्गवास हो जाने के फलस्वरूप शासकीय पत्र सं01301/बी-2/2003-24 दिनांक 26.05.03 के आलोक में आरोपित सेवक को उक्त प्रकरण में किसी भी प्रकार दण्ड देना समभव न होने के दृष्टिगत अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त करना विधिक दृष्टि से उचित होगा।”

याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु के बाद, उसे कोई सेवान्त बकाया का भुगतान नहीं किया गया था, इसलिए, उसने रिट याचिका सं0 ए 16683 सन् 2021 दाखिल की, जिसे 07.12.2021 को प्रत्यर्थी को याचिकाकर्ता के दिनांकित 21.12.2021 के प्रत्यावेदन पर निर्णय लेने के निर्देश के साथ निस्तारित किया गया था। उसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर निर्णय लिया गया और आक्षेपित आदेश दिनांकित 27.05.2022 द्वारा याचिकाकर्ता के दिवंगत पति के सेवानिवृत्ति देय से 10,14,594/- रुपये की कटौती की गई।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने

कहा कि दिया गया आदेश पूर्णतः खराब है। उन्होंने आगे कहा कि यह निर्विवाद है कि आरोप पत्र दिनांकित 23.02.2021 का उत्तर प्रस्तुत किए बिना, याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु हो गई और इस तथ्य पर विचार करते हुए, जांच समिति ने भी राय दी कि याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही बंद कर दी जानी चाहिए थी, लेकिन जांच समिति की सिफारिश को नजरअंदाज कर दिया गया और सजा के तौर पर याचिकाकर्ता के पति के सेवान्त बकाए से 10,14,594/- रुपये की कटौती की गई है। उन्होंने दृढ़ता से कहा कि कानून के स्थापित प्रावधान के आलोक में, किसी मृत व्यक्ति के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती है और तदनुसार, किसी भी रकम की कटौती के माध्यम से कोई सजा नहीं दी जा सकती है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया **श्रीमती राजेश्वरी देवी बनाम 30 प्र० राज्य एवं अन्य 2011(2) एडीजे 643** 07.01.2011 को निर्णीत किया गया, **गुलाम गौसुल आजम एवं अन्य बनाम 30 प्र० राज्य एवं अन्य 2014 (5) एडीजे 558** 12.05.2014 को निर्णीत किया गया, **आँकार सिंह वर्मा बनाम 30 प्र० राज्य एवं 2 अन्य 2018 (3) एडीजे 272**, 09.01.2018 को निर्णीत किया गया, रिट ए सं0 40057 सन् 2013 **दुर्गावती दुबे बनाम 30 प्र० राज्य एवं 3 अन्य**, 08.10.2018 को निर्णीत किया गया, रिट ए सं0 47122 सन् 2016: **राजकिशोरी देवी विधवा (मृतक) बनाम 30 प्र० राज्य एवं**

4 अन्य, 30.07.2019 को निर्णीत किया गया, बॉम्बे उच्च न्यायालय ने **हीराभाई भीकनराव देशमुख बनाम. महाराष्ट्र राज्य और दूसरा (1985) आईएलएलजे 469 बॉम्** के मामले में फैसला 10.10.1984 को सुनाया गया, झारखंड उच्च न्यायालय ने **जयंती देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य 2001(49) बीएलजेआर 2179** 01.05.2001 को निर्णीत किया गया और सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय **ए.के.एस. राठौड़ (मृत) लार्स. के माध्यम से बनाम भारत संघ एवं अन्य**, 28.09.2022 को निर्णीत किया गया।

जिस फैसले पर भरोसा किया गया, उसको ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कहा कि इन फैसलों में, न्यायालयों ने इस विवादक पर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि किसी मृत व्यक्ति के खिलाफ न तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती है, न ही कोई दंडात्मक आदेश पारित किया जा सकता है।

श्री विनायक रंजन, अधिवक्ता, श्री कार्तिकेय सरन का संक्षिप्त विवरण रखते हुए, प्रत्यर्थी सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए तथ्यात्मक और कानूनी प्रस्तुतीकरण पर विवाद नहीं कर सके।

मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतीकरण पर विचार किया है और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए अभिलेख और निर्णयों का परिशीलन किया है।

यह निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता के पति

की मृत्यु आरोप पत्र दिनांकित 23.02.2021 का उत्तर प्रस्तुत करने से पहले 02.05.2021 को हो गई थी। यह भी निर्विवाद है कि याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन दिनांकित 21.12.2021 पर याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु के बाद आक्षेपित वसूली आदेश दिनांकित 27.05.2022 को पारित किया गया है।

मामले के तथ्य विवादित नहीं हैं, इसलिए तथ्यों पर इस न्यायालय के किसी निष्कर्ष की आवश्यकता नहीं है।

जहां तक कानूनी प्रावधानों का संबंध है, यह विवादक इस न्यायालय के समक्ष **श्रीमती राजेश्वरी देवी बनाम 30 प्र० राज्य एवं अन्य 2011(2) एडीजे 643** में आया था 07.01.2011 को निर्णीत किया गया, न्यायालय ने अवधारित किया है कि जैसे ही कोई व्यक्ति मर जाता है, वह सांसारिक मामलों से अपना सारा संबंध तोड़ लेता है, इसलिए उसके खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 6 और 7 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

“6. विभागीय जांच आयोजित करना और सजा देना एक पूर्व-आवश्यक शर्त पर विचार करता है कि संबंधित कर्मचारी, जिसके खिलाफ कार्यवाही की जानी है और दंडित किया जाना है, एक कर्मचारी बना हुआ है, जिसका अर्थ है कि वह जीवित है। जैसे ही इंसान मरता है उसका सांसारिक मामलों से नाता टूट जाता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि रोजगार की श्रृंखला अभी भी नियोक्ता को मृत कर्मचारी के खिलाफ दंडात्मक प्रकृति का

आदेश पारित करने में सक्षम बनाती रहेगी।

7. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के परिणामस्वरूप नियमों के तहत निर्धारित नहीं की गई सजा, यहां तक कि कर्मचारी को भी नहीं दी जा सकती है, दूसरों के बारे में क्या कहा जाए। न्यायालय को नगर निगम, बरेली के अधिकारियों पर दया आ गई कि उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति के खिलाफ विभागीय जांच जारी रखी जिसकी पहले ही मृत्यु हो चुकी थी और मृत्यु की सूचना जांच अधिकारी के साथ-साथ अनुशासनात्मक प्राधिकारी को भी अच्छी तरह से बता दी गई थी। उन्होंने जांच आगे बढ़ाई और एक मृत व्यक्ति के खिलाफ आक्षेपित आदेश पारित किए। यह वास्तव में सेवा कानूनों के सिद्धांतों की अज्ञानता की पराकाष्ठा है और अनुशासनात्मक मामलों के संबंध में नगर निगम के अधिकारियों की पूर्ण अज्ञानता को दर्शाता है। यह न्यायालय मामलों की ऐसी स्थिति और प्रत्यर्थागण की ओर से जो इस स्तर की स्थापित मामलों में अनभिज्ञता पर जिम्मेदार है अपनी नाराजगी व्यक्त करता है। ऐसे प्रशासनिक मामलों की जानकारी के पूर्ण अभाव के लिए उनकी कड़े शब्दों में निंदा की जानी चाहिए, जिसके कारण गरीब मृत कर्मचारी के कानूनी उत्तराधिकारियों को नुकसान उठाना पड़ा है।"

पुनः यह विवादक इस न्यायालय के

समक्ष **गुलाम गौसुल आजम एवं अन्य बनाम 30 प्र० राज्य एवं अन्य 2014 (5) एडीजे 558** के मामले में आया, 12.05.2014 को दिए गए निर्णय में, न्यायालय ने अवधारित किया है कि इससे पहले कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जांच रिपोर्ट पर कोई आदेश पारित कर सके, याचिकाकर्ता की मृत्यु हो गई, जिससे मालिक और नौकर का संबंध समाप्त हो गया, इसलिए, कोई दंडात्मक आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ सं० 10 से 13 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

"10. मामले का एक और पहलू भी है। वर्तमान मामले में अब्दुल करीम की मृत्यु 15.7.2011 को हो गई, अर्थात् इससे पहले कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी 3.7.2011 की जांच रिपोर्ट पर कोई आदेश पारित कर सके। इसलिए, इन परिस्थितियों में, स्वर्गीय अब्दुल करीम और प्रत्यर्थागण के बीच मालिक और नौकर का संबंध भी उनकी मृत्यु के साथ समाप्त हो गया और इसलिए, दिनांकित 21.11.2011 का आक्षेपित आदेश अब्दुल करीम की मृत्यु के बाद पारित नहीं किया जा सकता है।

11. इसलिए मेरी राय में अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वर्गीय अब्दुल करीम के सेवानिवृत्ति बकाया और अन्य लाभों को रोकने का आदेश दिनांकित 21.11.2011 पारित नहीं कर सकता था। जब 15.7.2011 को अब्दुल करीम की मृत्यु हो गई तो उसके बाद यह नहीं कहा जा सकता था कि वह सरकारी कर्मचारी है और इसलिए 21.11.2011 का आदेश

पहली नजर में पूरी तरह से अवैध और मनमाना आदेश है और इसका कानून में कोई आधार नहीं है और यह जीवित नहीं रह सकता है।

12. जहां तक याचिकाकर्ता सं० 1 की अनुकंपा नियुक्ति का संबंध है, कुछ कारणों से, चूंकि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने स्वर्गीय अब्दुल करीम की मृत्यु से पहले उनके खिलाफ दोषसिद्धि के निष्कर्ष के संबंध में कोई निर्णय नहीं लिया है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के रूप में स्वर्गीय अब्दुल करीम के खिलाफ आरोप स्थापित किया गया था। केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश पारित होने के साथ ही निष्कर्ष निकाला जाता है, न कि तब जब जांच अधिकारी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

13. इस मामले को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका को स्वीकार किया जाता है और दोनों आक्षेपित आदेश दिनांकित 21.11.2011 और 1.3.2012 को रद्द किया जाता है। प्रत्यर्थागण को स्वर्गीय अब्दुल करीम के कानूनी उत्तराधिकारियों को सभी सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान के लिए कदम उठाने का निर्देश दिया जाता है। जहां तक अनुकंपा नियुक्ति के लिए याचिकाकर्ता सं० 1 के दावे को अस्वीकार करने के संबंध में दिनांकित 1.3.2012 के आदेश का संबंध है, जिला मजिस्ट्रेट, देवरिया- प्रत्यर्था सं० 3 को एक निर्देश जारी किया जाता है

कि इस आदेश की प्रमाणित प्रति उनके कार्यालय में प्राप्त होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर रिक्ति की उपलब्धता और याचिकाकर्ता सं० 1 की शैक्षणिक योग्यता को ध्यान में रखते हुए इस संबंध में नए सिरे से निर्णय लें।"

ऑंकार सिंह वर्मा बनाम उ० प्र० राज्य एवं 2 अन्य 2018 (3) एडीजे 272, के मामले में 09.01.2018 को निर्णय लिया गया, न्यायालय ने इस विवादक पर फिर से विचार किया है और निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किया गया है: -

"अंततः, इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान 14.03.2017 को याचिकाकर्ता की मृत्यु हो गई और इसलिए, भले ही, सेवानिवृत्ति के बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच करने के लिए प्रत्यर्था सं० 2 में निहित नियमों में कोई शक्ति थी, अब यह उसके लिए कोई भी जांच करना संभव नहीं होगा। इसलिए, प्रत्यर्था सं० 2, सचिव/महाप्रबंधक, जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, एटा द्वारा पारित आदेश दिनांकित 21.09.2016, जिसके तहत, याचिकाकर्ता के खिलाफ उसकी ग्रेच्युटी से कुछ रकम की वसूली का निर्देश दिया गया है, सेवा से उसकी सेवानिवृत्ति के बाद एतद्वारा रद्द की जाती है। प्रत्यर्था सं० 2 को याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी की राशि 30.06.2013 को उसकी सेवानिवृत्ति की तारीख से भुगतान करने में अत्यधिक देरी के लिए 7% साधारण ब्याज के साथ नया वेतनमान लागू करके जारी करने का

निर्देश दिया जाता है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है। खर्च के रूप में कोई आदेश नहीं।"

उपरोक्त मामले में, याचिकाकर्ता की रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान 14.03.2017 को मृत्यु हो गई थी, इसलिए, न्यायालय ने अवधारित किया है कि सेवानिवृत्ति के बाद जांच करने के लिए प्रत्यर्था सं० 2 को निहित नियमों में कोई शक्ति भी थी, अब यह है उनके लिए जांच करना संभव नहीं होगा और ग्रेच्युटी की राशि जारी करने के निर्देश के साथ लागू आदेश को रद्द कर दिया।

इसी तरह का मामला बॉम्बे हाई कोर्ट के समक्ष **हिराभाई भिकानराओ देशमुख बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (1985) आईएलएलजे 469 बॉम्** में भी विचाराधीन था 10.10.1984 को दिए गए फैसले में, न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अवधारित किया है कि सिविल सेवक की बर्खास्तगी, निष्कासन और निलंबन के संबंध में प्रावधान ऐसे सिविल सेवक की मृत्यु के बाद उसके आचरण की कोई और जांच करने की अनुमति नहीं देता है। निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 6 नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

"6. सिविल सेवक की बर्खास्तगी, निष्कासन और निलंबन के संबंध में प्रावधान ऐसे सिविल सेवक की मृत्यु के बाद उसके आचरण की कोई और जांच करने की अनुमति नहीं देते हैं। ऐसी कार्यवाहियों का उद्देश्य विभागीय जुर्माना लगाना है और यह सिविल सेवक की मृत्यु के कारण समाप्त हो जाएगा।

कार्यवाही का उद्देश्य सिविल सेवक के खिलाफ कदाचार स्थापित होने पर जुर्माना लगाना है। यह तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सिविल सेवक सेवा में बना रहे। व्यापक दृष्टिकोण से देखें तो कार्यवाही इस अर्थ में अर्ध-आपराधिक है कि इसके परिणामस्वरूप गलती ढूंढी जा सकती है और आगे जुर्माना लगाया जा सकता है। इस प्रयोजन के लिए ऐसी कार्यवाहियों के चरित्र को अर्धन्यायिक माना जाना चाहिए। कार्यवाही की प्रकृति और दंड की प्रकृति जैसे बर्खास्तगी या निष्कासन, या कोई अन्य दंड, छोटा या बड़ा, के प्रकाश में, इसका सेवा के अनुबंध से संबंध है। इसलिए, यदि वह व्यक्ति जिसने वह अनुबंध किया है उपलब्ध नहीं है, तो इसका मतलब यह होना चाहिए कि कोई कार्यवाही जारी नहीं रह सकती है। इस प्रकार जब सेवा के ऐसे अनुबंध के संबंध में कार्यवाही पूरी तरह से व्यक्तिगत हो, तो उसे अपचारी की मृत्यु पर समाप्त कर दिया जाना चाहिए। मृत्यु के कारण, ऐसी कार्यवाही समाप्त और उपशमित हो जाएगी। हमारा मानना है कि बॉम्बे सिविल सेवा नियमों के नियम 152-बी के प्रावधानों से भी ऐसे परिणाम का अनुमान लगाया जा सकता है।"

इसी तरह का विवाद **जयंती देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य 2001(49) बीएलजेआर 2179** के मामले में झारखंड हाई कोर्ट के सामने भी आ चुका है 01.05.2001 को निर्णीत किया गया, बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले का पालन करने के बाद न्यायालय ने

वही दृष्टिकोण अपनाया और प्रत्यर्थांगण को विधवा को सेवानिवृत्ति के बाद के सभी लाभ देने का निर्देश दिया। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ सं0 9 और 10 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं: -

"9. वर्तमान मामले में माना गया कि अपचारी-कर्मचारी की 24.3.1999 को मृत्यु हो गई और जांच अधिकारी ने 30.8.1999 को अपना रिपोर्ट प्रस्तुत किया। जांच रिपोर्ट (उपाबंध एफ) में जांच अधिकारी ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि अपचारी-कर्मचारी की मृत्यु 24.3.1999 को हो गई थी। जांच अधिकारी ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि अपचारी-कर्मचारी ने प्रत्यर्थांगण से उसके समक्ष लंबित मामले के निस्तारण तक विभागीय कार्यवाही को स्थगित रखने का अनुरोध किया था। हालाँकि, अपचारी-कर्मचारी की मृत्यु के बाद जांच अधिकारी ने प्रत्यर्थांगण को बुलाया और उनके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों के आधार पर जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की और उस रिपोर्ट के आधार पर बर्खास्तगी का औपचारिक आदेश पारित किया गया। इसलिए मेरी राय में जिस तरह से प्रत्यर्थांगण ने अपचारी कर्मचारी के खिलाफ विभागीय कार्यवाही आगे बढ़ाई, जांच रिपोर्ट के साथ-साथ बर्खास्तगी का आदेश भी कानूनन उल्लंघनकारी है और अमान्य है। मेरा यह भी मानना है कि आदेश के 6 साल बाद शुरू की गई विभागीय कार्यवाही के आधार पर मृत कर्मचारी की विधवा को कर्मचारी की बर्खास्तगी के आधार पर मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभ के उसके वैध

दावे से वंचित नहीं किया जा सकता है। निलंबन और वह मृत कर्मचारी के खिलाफ एक पक्षीय कार्यवाही के बाद जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के आधार पर, जिसकी मृत्यु उस तारीख से बहुत पहले हो गई थी जब जांच अधिकारी ने मामले को आगे बढ़ाया और अपनी रिपोर्ट सौंपी।

10. उपरोक्त कारणों से, इस रिट याचिका को स्वीकार की जाती है और प्रत्यर्थांगण को याचिकाकर्ता, जो मृतक कर्मचारी की विधवा है, के पक्ष में सभी मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति देय राशि यथाशीघ्र और अधिमानतः इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/ प्रस्तुत करने की तारीख से 30 दिन की अवधि के भीतर जारी करने का निर्देश दिया जाता है।"

दुर्गावती दुबे (ऊपर) के मामले में 08.10.2018 को निर्णय दिया गया, उसी विवादक पर विचार किया गया, और न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय लिया:

"मामले के निर्णयों और तथ्यों को देखने के बाद, इस न्यायालय का मानना

है कि किसी मृत व्यक्ति के खिलाफ न तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती है और न ही कोई दंडात्मक आदेश पारित किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, तथ्य विवादित नहीं हैं कि याचिकाकर्ता के पति के खिलाफ उनकी मृत्यु के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, जो कि विवेक का उपयोग न करने के साथ-साथ इस

न्यायालय के साथ-साथ अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा स्थापित कानून के विपरीत है, इसलिए, दिनांकित 10.06.2013 का आक्षेपित आदेश टिकाऊ नहीं है और इसे रद्द किया जाता है।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। खर्च के रूप में कोई आदेश नहीं।“

न्यायालय का स्पष्ट मत है कि किसी मृत व्यक्ति के विरुद्ध न तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती है, न ही कोई दंडात्मक आदेश पारित किया जा सकता है।

इस न्यायालय ने रिट ए सं0 47122 सन् 2016 **राजकिशोरी देवी विधवा (मृतक) बनाम 30 प्र0 राज्य एवं 4 अन्य** में दिनांकित 30.07.2019 के फैसले और आदेश के तहत फिर से उसी विवादक पर निर्णय लिया है और इसे निम्नानुसार रखा है:

“यह इस प्रकार है कि अनुशासनात्मक नियमों के अधीन प्रदान की गई सजा सरकारी कर्मचारी पर लगाई जा सकती है, न कि सरकारी कर्मचारी के परिवार के सदस्य पर। जैसे ही कोई पदाधिकारी मृत्यु के बाद सरकारी सेवक नहीं रह जाता, नियमों के अधीन उस पर कोई जुर्माना नहीं लगाया जा सकता था। ऐसा होने पर, ऐसा आदेश पारित करने का सवाल ही नहीं उठता, जिसका असर मृत कर्मचारी के कानूनी उत्तराधिकारियों को दंडित करने पर हो सकता है। वर्तमान मामले के तथ्यों में, कर्मचारी के खिलाफ

उसकी सेवानिवृत्ति से ठीक पहले अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी और अनुशासनात्मक जांच समाप्त होने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद, सिविल सेवा विनियमों की धारा 351ए के अधीन अनुशासनात्मक जांच आगे नहीं बढ़ाई जा सकती थी, तदनुसार, सक्षम प्राधिकारी ने जांच छोड़ दी। आक्षेपित आदेश के द्वारा, दोषी कर्मचारी के दुर्यवहार और कदाचार के लिए कानूनी उत्तराधिकारी से सेवानिवृत्ति के बाद के बकाए की वसूली की मांग की गई थी, जो कि मौलिक नियमों के नियम 54-बी को देखते हुए स्वीकार्य नहीं था।

खंडन में, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि कर्मचारी की मृत्यु हो जाने के कारण जांच बंद कर दी गई थी और कर्मचारी की मृत्यु से पहले जांच समाप्त नहीं की जा सकी थी। इन परिस्थितियों में, मृतक/कर्मचारी के खिलाफ नियमों के अधीन यह निष्कर्ष दर्ज किए बिना कि वह सरकार को नुकसान पहुंचाने के लिए जिम्मेदार था, सेवानिवृत्ति के बाद के बकाए से कोई वसूली नहीं की जा सकती थी।

द्वितीय प्रत्यर्थी-वित्त नियंत्रक एवं मुख्य लेखा अधिकारी, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांकित 17 जून 2016, स्थिर योग्य नहीं है, तदनुसार अपास्त एवं खारिज किया जाता है।

सेवानिवृत्ति के बाद बकाया राशि की वसूली गई राशि याचिकाकर्ता को द्वितीय प्रत्यर्थी- वित्त नियंत्रक और मुख्य लेखा अधिकारी, खाद्य और नागरिक आपूर्ति, लखनऊ, द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल करने की तारीख से दो महीने के भीतर वसूली की तारीख से राशि पर 7% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित जारी की जाएगी।

रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

खर्च के सम्बन्ध में कुछ नहीं।"

हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांकित 28.09.2022 द्वारा सिविल अपील सं0 7028 सन् 2022 ए0 के0 एस0 राठौड़ (मृत) लार्स. के माध्यम से बनाम भारत संघ एवं अन्य में इस विवादक पर विचार किया है और निम्नानुसार निर्णय लिया है:

"8. आज भले ही हम उपरोक्त अपील को खारिज कर दें, लेकिन किसी मृत व्यक्ति के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही वास्तव में समाप्त हो गई है। दूसरे शब्दों में उपरोक्त अपील को खारिज करने का वही परिणाम होगा जो अपील स्वीकार किए जाने का होगा।

9. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए,

उपरोक्त अपील का निस्तारण यह मानते हुए किया जाता है कि मूल अपीलकर्ता के खिलाफ शुरु की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त हो गई है। परिणामस्वरूप, मूल अपीलकर्ता के कानूनी प्रतिनिधि नियमों के अनुसार उन सभी लाभों के हकदार होंगे जिनका मूल अपीलकर्ता हकदार होता। प्रत्यर्थी मूल अपीलकर्ता को कानूनी रूप से स्वीकार्य लाभों के बारे में नियमों के अनुसार 12 सप्ताह की अवधि के भीतर आदेश पारित कर सकते हैं और उसे वितरित कर सकते हैं। खर्च के रूप में कोई आदेश नहीं।"

शीर्ष अदालत का दृढ़ मत है कि किसी मृत व्यक्ति के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरु नहीं की जा सकती या जारी नहीं रखी जा सकती।

जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, जांच कार्यवाही शुरु की गई, आरोप पत्र जारी किया गया, लेकिन आरोप पत्र का जवाब प्रस्तुत करने से पहले, याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु हो गई। जांच अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि, चूंकि याचिकाकर्ता के पति (कर्मचारी) की जांच कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई, इसलिए, अनुशासनात्मक कार्यवाही को समाप्त करना अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से आवश्यक है। इसके बाद, जांच कार्यवाही पर कोई और आदेश पारित नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका दाखिल करने के बाद ही याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन दिनांकित 21.12.2021 को निर्णय लेने का आदेश पारित

4.इला श्री नौनिहार हैदर बनाम सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, बदायूं व अन्य 1795

किया गया, जिस पर आदेश दिया गया की रु0 10,14,594/- की वसूली हेतु दिनांकित 27.05.2022 को वसूली आदेश पारित किया गया है। दरअसल, यह और कुछ नहीं बल्कि पहले की जांच को दोबारा शुरू करना है, जो जांच समिति की अनुशंसा के आलोक में पूरी नहीं हो सकी है।

कानून बहुत अच्छी तरह से स्थापित है कि, यदि जांच पूरी नहीं हुई है और अपचारी कर्मचारी की जांच लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो जाती है, तो उसे जारी नहीं रखा जाएगा और पूरा नहीं किया जाएगा। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि, यहां, प्रत्यर्थागण को इस तथ्य से अच्छी तरह से पता है कि आरोप पत्र का उत्तर प्रस्तुत करने से पहले, याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु हो गई और वे जांच पूरी करने के लिए आगे नहीं बढ़े हैं। रिट ए सं0 16683 सन् 2021 में पारित इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 07.12.2021 के अनुपालन में याचिकाकर्ता के दिनांकित 21.12.2021 के प्रत्यावेदन प्राप्त होने के बाद ही, प्रत्यर्था ने दिनांकित 27.05.2022 को आक्षेपित आदेश पारित किया है, जो विभागीय कार्यवाही पुनः आरंभ करने के समान है।

ऐसी परिस्थितियों में, आक्षेपित आदेश पारित करना दर्शाता है कि प्रत्यर्था सेवा कानून से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। इसलिए, यह न्यायालय प्रत्यर्थागण के कृत्य की भर्त्सना और निंदा करता है और उन्हें भविष्य में ऐसे मामलों से निपटने के दौरान सचेत रहने की चेतावनी भी जारी की जाती है।

मामले के ऐसे तथ्यों के अंतर्गत,

दिनांकित 27.05.2022 का आक्षेपित आदेश विधिक रूप से स्थापित प्रावधानों के विपरीत है, इसलिए रिट याचिका स्वीकार की जाती है और आक्षेपित आदेश दिनांकित 27.05.2022 को यहां रद्द किया जाता है।

प्रत्यर्था सं0 2 को इस आदेश की प्रमाणित प्रति जमा करने की तारीख से दो महीने के भीतर याचिकाकर्ता को कटौती की गई रुपये की राशि 10,14,594/- वास्तविक भुगतान की तारीख तक 6% ब्याज के साथ तत्काल भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1349

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 16860/1991

श्री नौनिहाल हैदर

...याचिकाकर्ता

बनाम

सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, बदायूं व अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री हरि भवन पांडे, श्री हरीश चंद्र, श्री माता प्रसाद, श्री आर.पी.एस. चौहान, कु. सूफिया सबा, श्री वाई.के. सिंह, श्री एम.ए. कदीर

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री एन.बी. तिवारी, एस.सी.

सेवा कानून - याचिकाकर्ता को स्थानापन्न के रूप में लेखपाल (चकबंदी) के रूप में नियुक्त किया गया- अस्थायी व्यवस्था के रूप में सेवाएं जारी रहीं-प्रक्रिया के अनुसार कोई अधिकृत या

नियमित नियुक्ति नहीं - न्यायालय के अंतरिम आदेशों के आधार पर सेवाएं जारी रहीं- नियुक्ति अवैध है क्योंकि नियमितीकरण का पालन नहीं किया गया- याचिका निरस्त।

आयोजित:

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, जहां तक किसी भी प्रतिष्ठान की सेवाओं का संबंध है, "स्थायी" शब्द का नियमितीकरण की प्रक्रिया के साथ पालन किया जाना चाहिए, जिसे किसी भी पदधारी की सेवाओं के नियमितीकरण के लिए औपचारिक आदेशों के रूप में परिणत किया जाना चाहिए, जो पहले से ही किसी भी तरीके से सेवाओं में सम्मिलित हो चुका है, चाहे वह अस्थायी / दैनिक वेतन भोगी / कार्यभार / संविदा / या जैसा भी वाद हो।

आवेदन स्वीकृत। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. डॉ. चंचल गोयल (श्रीमती) बनाम राजस्थान राज्य (2003) 3 एससीसी 485
2. सचिव, कर्नाटक राज्य एवं अन्य बनाम उमादेवी एवं अन्य (2006) 4 एससीसी 1

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री माता प्रसाद तथा राज्य प्रतिवादीगण के विद्वान स्थाई अधिवक्ता को सुना।

याचिकाकर्ता का मामला यह है कि वह लेखपाल (चकबंदी) के पद के लिए बहुत पहले 08.12.1987 को एक विकल्प के रूप में नियुक्त किये गये थे और कार्य और अनुभव के आधार पर उनकी सेवाओं को फिर से याचिकाकर्ता के प्रशिक्षण पर विचार करने के लिए अल्पकालिक रिक्ति के तहत दिनांक 20.03.1989 के आदेश द्वारा स्वीकार किया गया था और उसी पर बाद के चरण में विचार किया गया है।

लेखपाल (चकबंदी) के पद के लिए एक वर्ष से अधिक समय तक अपनी सेवाएं प्रदान करने वाले समान स्थिति वाले उम्मीदवारों के कुछ मामलों पर आयुक्त (चकबंदी) द्वारा दिनांक 25.03.1989 को जारी पत्र के अनुसरण में विचार किया गया है, उसी के बदले में याचिकाकर्ता की सेवाओं पर आदेश दिनांक 20.05.1989 द्वारा स्टॉप गैप व्यवस्था के तहत फिर से विचार किया गया है।

दिनांक 29.04.1991 के आदेश के अनुसरण में, दिनांक 01.05.1991 के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त हो गईं, जिसने वर्तमान याचिका को आक्षेपित किया।

प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आश्रय लिए गए आधारों, जैसे कि दिनांक 01.05.1991 के आदेश को पारित करने वाले प्राधिकारी की सक्षमता के संबंध में याचिका में वर्णित है, यह आरोप लगाया गया है कि वही दिनांक 16.09.1988 के सरकारी आदेश के विपरीत है जो प्रतिवादी

4.इला श्री नौनिहार हैदर बनाम सहायक बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, बदायूं व अन्य 1797

संख्या 2 द्वारा प्रसारित किया गया था, याचिकाकर्ता की नियुक्ति मूल रिक्ति के खिलाफ थी और इसे स्टॉप गैप व्यवस्था के रूप में माना गया है और समय बीतने के बाद इसको स्थाई भी किया गया है।

इसके विपरीत, वर्तमान याचिका में लिए गए रुख को प्रतिवादीगण द्वारा विस्तृत जवाबी हलफनामा दायर करके कमजोर कर दिया गया है, जिसमें याचिका में की गई प्रार्थना का इस आधार पर विरोध किया गया है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को कभी भी नियमित नहीं किया गया है, और याचिकाकर्ता द्वारा प्रदान की गई सभी सेवाएं केवल स्टॉप गैप व्यवस्था के आधार पर और प्रतिस्थापन व्यवस्था की क्षमता के तहत हैं। इसके अतिरिक्त, दिनांक 01.05.1991 के आदेश के पश्चात् याचिकाकर्ता द्वारा उल्लिखित उसी पद पर निरंतरता न्यायालय के अंतरिम आदेशों के बल पर थी।

जहां तक दिनांक 25.03.1989 के सरकारी आदेश का संबंध है, प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि इसे सरकारी आदेश के रूप में गलत समझा गया है। संलग्नक संख्या 5 के अवलोकन मात्र से जिसे चकबंदी आयुक्त द्वारा जारी किया गया है, सरकारी आदेश कहा गया है। उत्तर प्रदेश राज्य से संबंधित व्यापार नियमों के तहत प्राधिकारी, एक सरकारी आदेश प्रमुख सचिव/अपर मुख्य सचिव के हस्ताक्षर/निर्देशों के तहत जारी किया गया एक विशिष्ट आदेश है और उस समय जब आदेश, वर्ष 1989 में पारित किया गया था, यह प्रधान सचिव हैं जो मुख्य सचिव द्वारा अनुमत प्रत्यायोजित शक्ति

के तहत कोई भी सरकारी आदेश पारित करने में सक्षम थे।

याचिका में याचिकाकर्ता के पक्ष में लंबे समय तक एक ही पद पर बने रहने के लिए उपार्जित किसी भी विधिक अधिकारों का खुलासा नहीं करता है और इस प्रकार, दिनांक 01.05.1991 को आदेश जारी करते समय सक्षम प्राधिकारी द्वारा किए गए अनुग्रह का प्रतिवाद प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस आधार पर बचाव किया गया है कि वह उचित था क्योंकि संबंधित पद पर भर्ती के लिए उचित प्रक्रिया के अनुसार शामिल नहीं किए गए व्यक्तियों के पक्ष में मूल रिक्ति पर निरंतरता बनाए रखना, उन लोगों के लिए जटिलताएं पैदा कर सकता है जो पहले से ही कानून की उचित प्रक्रिया के बाद उसी पद पर सेवाओं में शामिल हो चुके हैं।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के सेवा प्रदान करते समय पारित आदेशों का आश्रय लिया, जिन्हें पहले ही पूरक हलफनामे के साथ संलग्न कर लिया गया है, जो पेज संख्या 50 पर संलग्नक संख्या 2 के रूप में उपलब्ध है। दिनांक 20.03.1999 का आदेश जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता की सेवाओं को रिट याचिका के लंबित होने के परिणाम के अधीन स्थायी घोषित किया गया और उसके बाद उपरोक्त आदेश दिनांक 20.03.1999 को बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी जिला-बदायूं द्वारा इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 03.06.1991के आदेश के अनुसरण में पारित किया गया था, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता के पक्ष में अंतरिम संरक्षण प्रदान किया गया है, केवल दिनांक 29.07.1991 तक

सेवाओं के जारी रहने के संबंध में और इसे समय-समय पर बढ़ा दिया गया है।

वर्तमान याचिका के लंबित रहने के दौरान, याचिका को खारिज करने के रूप में कुछ घटनाएँ हुईं और उसके बाद याचिकाकर्ता द्वारा विशेष अपील दायर की गई है जिसके माध्यम से मामले को बहाल कर दिया गया है और इसे इस न्यायालय के समक्ष गुण-दोष के आधार पर निर्णय के लिए लाया गया है।

दिनांक 20.03.1991 के आदेश पर निर्भरता केवल याचिकाकर्ता के पक्ष में इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम संरक्षण के बल पर लेखपाल के पद पर सेवाओं के प्रदान करने के लिए है, जबकि लेखपाल (चकबंदी) की सेवाओं में निहित वैधानिक प्रावधानों के तहत परिभाषित किया गया स्थाईकरण, नियमितीकरण या अनिवार्य प्रशिक्षण के संबंध में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के समक्ष किए गए सटीक प्रश्न पर, वे पत्रावली में गायब हैं, जिसका अर्थ है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को कभी भी प्रतिवादी विभाग के किसी भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित औपचारिक आदेश द्वारा नियमित नहीं किया गया है।

मूल रिक्ति के खिलाफ संबंधित पद पर स्थाईकरण से संबंधित सेवा कानून के मूल सिद्धांत का नियमितीकरण के आदेश के साथ पालन किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता को दिनांक 08.12.1987 को स्थानापन्न की क्षमता के तहत सेवाओं में शामिल किया गया था और बाद में स्टॉप गैप

व्यवस्था में दिनांक 01.05.1991 के आक्षेपित आदेश तक जारी रखा गया था, याचिकाकर्ता की सेवाओं को कभी भी नियमित नहीं किया गया था और इस तरह, सेवा कानून द्वारा परिभाषित स्थाईकरण नहीं होता है।

वर्तमान मामले में, पत्रावली से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को विधि की उचित प्रक्रिया को अपनाने के पश्चात् किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा कभी भी नियमित नहीं किया गया है और इस प्रकार, "स्थाई" (स्थाईकरण) को पद पर स्थाईकरण के रूप में नहीं माना जा सकता है, जबकि यह केवल अंतरिम संरक्षण के बल पर है जैसा कि वर्ष 1991 में वर्तमान रिट याचिका के प्रारम्भ के समय दिया गया था और प्राधिकरण इसके बारे में सचेत था और इस प्रकार, इस स्थाईकरण का समर्थन रिट याचिका के परिणाम के अधीन था, जिसका दिनांक 20.03.1999 के आदेश में विधिवत उल्लेख किया गया है, जिसे याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संबंधित पद पर स्थाईकरण के आदेश के रूप में कहा गया है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी दलीलों को सुनने के बाद, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को लेखपाल (चकबंदी) के पद पर वर्ष 1989 में प्रचलित भर्ती की उचित प्रक्रिया को अपनाए बिना शुरू और स्वीकार किया गया है और कुछ अंतरालों के बाद उसे केवल याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित पद सामान प्रकृति के कार्य और सेवा प्रदान करने से प्राप्त अनुभव के आधार पर समायोजित किया गया था।

लेखपाल (चकबंदी) के पद के लिए याचिकाकर्ता के पक्ष में जारी विभिन्न आदेशों के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि याचिकाकर्ता की सेवाएं केवल स्टॉप गैप व्यवस्था या वैकल्पिक व्यवस्था के तहत ली गई थीं।

जहां तक 'स्थायी' का संबंध है, यह केवल याचिकाकर्ता के पक्ष में दिए गए अंतरिम संरक्षण के बल पर है।

जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, जहां तक किसी भी प्रतिष्ठान की सेवाओं से संबंधित "स्थायी" शब्दों का सम्बन्ध है, इसका पालन नियमितीकरण की प्रक्रिया के साथ किया जाना चाहिए, जिसे किसी भी पदधारी की सेवाओं के नियमितीकरण के लिए औपचारिक आदेशों के रूप में परिणत होना चाहिए, जिसे पहले ही किसी भी माध्यम से या तो अस्थायी/दैनिक मजदूरी/कार्य शुल्क/संविदात्मक/या जैसा भी मामला हो, सेवाओं में शामिल किया जा चुका है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह सूचित किया गया है कि इस न्यायालय द्वारा प्रवेश स्तर पर पारित अंतरिम आदेश के बल पर याचिकाकर्ता ने अधिकारियों की उच्चतम संतुष्टि तक अपनी सेवाएं प्रदान की और 30.01.2014 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त की और उसके बाद वह सेवाओं में नहीं है और इस तरह, किसी भी सेवानिवृत्ति लाभ की मांग के लिए शायद ही कोई आधार उपलब्ध है क्योंकि याचिकाकर्ता की सेवाओं को नियमित नहीं किया गया है और दिनांक 29.04.1991

का आदेश उचित है। प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों का आश्रय लिया है:-

1. डॉ. चंचल गोयल (श्रीमती) बनाम राजस्थान राज्य (2003) 3 एससीसी 485.
2. सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमादेवी और अन्य (2006) 4 एससीसी 1.

यह स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता की सेवाओं को सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किसी विशिष्ट औपचारिक आदेश द्वारा कभी भी नियमित नहीं किया गया है। वर्तमान याचिका में इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और तदनुसार खारिज की जाती है।

(2023) 4 ILRA 1353

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

माननीय राजेंद्र कुमार-IV, जे.

रिट-ए संख्या 19079/2018

कुमारी पूनम निझावन

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सिद्धार्थ नंदन

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री विवेक कुमार राय, श्री गोपाल वर्मा

सेवा कानून - केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के आदेश के तहत याचिकाकर्ता को उसकी मांग पर आश्रित नहीं माना गया- चुनौती के तहत-

निर्भरता का निर्धारण न्यूनतम पारिवारिक पेंशन के आधार पर किया जाना है- याचिकाकर्ता का वेतन देय पारिवारिक पेंशन से कम था- याचिकाकर्ता को पारिवारिक पेंशन का अधिकारी माना गया-आपेक्षित आदेश को निरस्त किया गया - याचिका लागत के साथ स्वीकार किया गया।

आयोजित:

प्रस्तुत तथ्यों में यह स्वीकार किया गया है कि रेलवे के अनुसार गणना की गई न्यूनतम पारिवारिक पेंशन पेंशनभोगी की मृत्यु की तिथि पर लागू महंगाई भत्ते सहित 11776/- रुपये थी तथा उक्त तिथि को याचिकाकर्ता का मासिक वेतन 10912/- रुपये था। (पैरा 16)

इन परिस्थितियों में, हमारा मत है कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी-रेलवे अधिकारियों द्वारा अनावश्यक रूप से परेशान किया गया है। तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (पैरा 17)

याचिका स्वीकृत। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता/मूल आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ नंदन और प्रतिवादी/रेलवे की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल वर्मा को सुना गया।
2. याचिकाकर्ता/मूल आवेदक मूल प्रार्थना-पत्र संख्या 1330/01512 ऑफ 2015 में

केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद पीठ इलाहाबाद (संक्षेप में 'न्यायाधिकरण') द्वारा पारित 9 मई 2018 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करने की मांग कर रहा है, जिसके तहत, मूल प्रार्थना-पत्र (संक्षेप में 'ओए') खारिज कर दिया गया।

3. याचिकाकर्ता के पिता प्रतिवादी-रेलवे के कर्मचारी थे और 30 अप्रैल 1985 को सेवानिवृत्त हुए। कर्मचारी की पेंशन की विधिवत गणना की गई और कर्मचारी को 13 दिसंबर 2007 को उसकी मृत्यु तक पेंशन प्राप्त हुई। इसके बाद कर्मचारी की पत्नी और याचिकाकर्ता की मां को 23 अक्टूबर 2013 तक उनकी मृत्यु तक पारिवारिक पेंशन मिलती रही। याचिकाकर्ता, मृत कर्मचारी की अविवाहित बेटी है जो अपने माता-पिता के साथ रह रही थी, उसने पेंशनभोगी पर निर्भर होने के कारण पारिवारिक पेंशन के लिए आवेदन किया था।
4. प्रतिवादी ने 22 मई 2015 के आक्षेपित आदेश द्वारा पारिवारिक पेंशन के लिए आवेदक के दावे को खारिज कर दिया, जो ट्रिब्यूनल के समक्ष चुनौती का विषय था। याचिकाकर्ता का दावा कल्याण निरीक्षक द्वारा प्रस्तुत एक रिपोर्ट पर खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता निर्मला कॉन्वेंट स्कूल, झाँसी में 10,912/- रुपये प्रति माह के समेकित वेतन पर एक शिक्षक के रूप में कार्यरत थी। 11 सितंबर 2013 के रेलवे बोर्ड के निर्देशों के अनुसार प्रतिवादी-रेलवे के अनुसार, चूंकि

कर्मचारी के आश्रित/विधवा को न्यूनतम पेंशन 3500/- रुपये प्रति माह मिल रही थी इसलिए, याचिकाकर्ता पेंशन की हकदार नहीं थी क्योंकि उसका मासिक वेतन उसकी मां की मृत्यु की तारीख पर न्यूनतम पेंशन से अधिक था। तदनुसार, रेलवे बोर्ड के पत्र दिनांक 11 सितंबर 2013 के अनुसार, प्रतिवादी-रेलवे ने याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया चूंकि उनका वेतन 10,912/- रुपये, उनकी मां की मृत्यु की तारीख यानी 23 अक्टूबर 2013 को उनकी पेंशन से अधिक था, तदनुसार, याचिकाकर्ता पेंशन का हकदार नहीं थी। दूसरे शब्दों में, यह माना गया कि याचिकाकर्ता रेलवे बोर्ड के परिपत्रों के अनुसार अपनी मां पर निर्भर नहीं थी।

5. 11 सितंबर 2013 के कार्यालय जापन में पारिवारिक पेंशन के अनुदान के लिए विधवा/तलाकशुदा बेटियों की पात्रता का प्रावधान है। कार्यालय जापन के पैरा-4 में यह स्पष्ट किया गया है कि पारिवारिक पेंशन मृत कर्मचारी के बच्चों को देय है क्योंकि उन्हें सरकारी कर्मचारी/पेंशनभोगी या उसके पति या पत्नी पर निर्भर माना जाता है। पात्रता मानदंड यह है कि एक बच्चा, जो न्यूनतम पारिवारिक पेंशन और उस पर महंगाई राहत की राशि के बराबर या उससे अधिक नहीं कमा रहा है, उसे अपने माता-पिता पर निर्भर माना जाता है। इसी प्रकार,

विधवा/तलाकशुदा पुत्री को पारिवारिक पेंशन देय है, बशर्ते कि वह अपने माता-पिता की मृत्यु/अपात्रता के समय सभी पात्रता शर्तों को पूरा करती हो और पारिवारिक पेंशन प्राप्त करने की बारी आने की तिथि पर हो। पैरा-4 इस प्रकार है:

“यह स्पष्ट किया जाता है कि पारिवारिक पेंशन बच्चों को देय है क्योंकि उन्हें सरकारी कर्मचारी/पेंशनभोगी या उसके पति या पत्नी पर निर्भर माना जाता है। एक बच्चा जो न्यूनतम पारिवारिक पेंशन और उस पर महंगाई राहत की राशि के बराबर या उससे अधिक नहीं कमा रहा है, उसे अपने माता-पिता पर निर्भर माना जाता है। इसलिए, केवल वे बच्चे जो सरकारी कर्मचारी या उसके पति या पत्नी की मृत्यु के समय, जो भी बाद में हो, आश्रित हैं और पारिवारिक पेंशन के लिए पात्रता की अन्य शर्तों को पूरा करते हैं, पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र हैं। यदि उस समय दो या दो से अधिक बच्चे पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र हैं, तो बच्चे को उसकी बारी आने पर पारिवारिक पेंशन देय होगी, बशर्ते कि नंबर आने पर भी वह पारिवारिक पेंशन के लिए पात्र हो। इसी प्रकार विधवा/तलाकशुदा पुत्री को पारिवारिक पेंशन देय है बशर्ते कि वह अपने माता-पिता की

मृत्यु/अयोग्यता के समय और पारिवारिक पेंशन प्राप्त करने की बारी आने पर सभी पात्रता शर्तों को पूरा करती हो।"

6. प्रतिवादियों द्वारा ट्रिब्यूनल या इस न्यायालय के समक्ष इस बात पर कोई विवाद नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता मृत कर्मचारी की अविवाहित बेटी है और वह पेंशन की हकदार है लेकिन याचिकाकर्ता का दावा केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि वह पात्रता मानदंडों को पूरा नहीं करती थी यानी कि वह कर्मचारी की विधवा की मृत्यु यानी 23 अक्टूबर 2013 को न्यूनतम पारिवारिक पेंशन और उस पर महंगाई राहत से अधिक वेतन अर्जित कर रही थी।
7. उत्तरदाताओं द्वारा एक स्पष्ट रुख अपनाया गया है कि मृत्यु की तारीख पर कर्मचारी की विधवा की न्यूनतम पेंशन 3500/- रुपये और पेंशन पर स्वीकार्य महंगाई राहत है।
8. ट्रिब्यूनल के समक्ष दायर रेलवे के रिकॉर्ड के अनुसार, 1 जनवरी 2006 को मृत कर्मचारी की विधवा की पारिवारिक पेंशन की गणना 5165/- रुपये है। यह पेंशन भुगतान आदेश (पीपीओ) दिनांक 20 दिसंबर 2010 (आर.ए.-1) के अनुसार परिलक्षित होता है, 1033/- रुपये की गणना 20 मार्च 2013 यानी मृत्यु की तारीख को 20% अतिरिक्त पेंशन के रूप में बढ़ी हुई पेंशन के रूप में की गई थी।

पेंशनभोगी को 80 वर्ष की आयु पर अतिरिक्त पेंशन देय है, तदनुसार, 20 मार्च 2013 को, याचिकाकर्ता की मां को स्वीकार्य न्यूनतम पारिवारिक पेंशन 6198/- रुपये (5165 रुपये + 1033 रुपये) थी और स्वीकार्य महंगाई राहत 90% पर 5598/- थी, तदनुसार, याचिकाकर्ता की मां को उनकी मृत्यु की तारीख यानी 20 मार्च 2013 को स्वीकार्य कुल पेंशन 11776/- रुपये बनती है। यह गणना रेलवे अधिकारियों की 9 मार्च 2015 की रिपोर्ट के अनुसार है, जिसे रेलवे ने स्वीकार किया है। उक्त रिपोर्ट पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा समर्थन किया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता मृत्यु की तिथि पर पेंशनभोगी की न्यूनतम पेंशन से कम कमा रही थी, इसलिए वह अविवाहित बेटी होने के कारण पेंशन की हकदार है। प्राधिकरण के समर्थन का प्रासंगिक भाग निकाला गया है:

"पेज-288 पर पैरा-8.5 और पेज 274 पी274 पर आरबीई 99/2013 के पैरा-4 के अनुसार बेटी की कमाई पेंशन + डीए से कम है, इसलिए बेटी को पेंशन देने पर सहमति है।"

9. प्रतिवादी-रेलवे की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने ऊपर उल्लिखित पेंशन की गणना को स्वीकार करते हुए इस न्यायालय के निर्देश पर पूरक हलफनामा दायर किया है। हालाँकि, ऐसा प्रतीत होता है कि ट्रिब्यूनल के समक्ष, साथ ही, इस

न्यायालय के समक्ष उनके प्रतिवाद/प्रतिशपथपत्र और अनुपूरक हलफनामे में जानबूझकर उनके स्वयं के रिकॉर्ड के विरुद्ध एक गलत रुख अपनाया गया था। रेलवे प्राधिकरण द्वारा भारतीय स्टेट बैंक को सूचित 20 दिसंबर 2010 के पेंशन भुगतान आदेश (पीपीओ) में स्पष्ट रूप से 1 जनवरी 2006 से न्यूनतम पारिवारिक पेंशन 5165 रुपये दर्ज की गई है, जो याचिकाकर्ता की मां के लिए स्वीकार्य है।

10. प्रतिवादी-रेलवे द्वारा बोर्ड के दिनांक 15 सितंबर 2008 के संचार पर भरोसा किया गया है जो छठे केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन के लिए सरकार के निर्णयों - पेंशन/पारिवारिक पेंशन आदि को विनियमित करने वाले प्रावधानों में संशोधन - के बारे में सूचित करता है। संशोधित प्रावधानों की प्रभावी तिथि 1 जनवरी 2006 और उसके बाद है। पारिवारिक पेंशन से संबंधित पैरा 8.1 पर भरोसा रखा गया है, जो इस प्रकार है:

8.1 पारिवारिक पेंशन की गणना सभी मामलों में मूल वेतन के 30% की एक समान दर पर की जाएगी और यह न्यूनतम 3500 रुपये प्रति माह और सरकार में उच्चतम वेतन के अधिकतम 30% के अधीन होगी। (1.1.2006 से सरकार में उच्चतम वेतन 90,000 रुपये है)। पेंशन नियमों के तहत

पारिवारिक पेंशन, 1964 से संबंधित नियम 75(2) इस सीमा तक संशोधित माने जाएंगे।

11. पैरा 8.3 में आगे प्रावधान है कि वृद्ध पारिवारिक पेंशनभोगियों को उपलब्ध पारिवारिक पेंशन की मात्रा निम्नानुसार बढ़ाई जाएगी:

वृद्ध पारिवारिक पेंशनभोगियों को मिलने वाली पारिवारिक पेंशन की मात्रा निम्नानुसार बढ़ाई जाएगी:

पारिवारिक पेंशनभोगियों की आयु	पारिवारिक पेंशन की अतिरिक्त राशि
80 वर्ष से लेकर 85 वर्ष से कम	मूल पारिवारिक पेंशन का 20%

12. पारिवारिक पेंशन अनुदान के प्रयोजनों के लिए पैरा 8.4, परिवार को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जाएगा:

8.4 पारिवारिक पेंशन अनुदान के प्रयोजन के लिए, 'परिवार' को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जाएगा:

श्रेणी-1

(ए)

(बी) बेटा/बेटी (विधवा बेटी सहित), उसके विवाह/पुनर्विवाह की तारीख तक या उसके कमाने की तारीख तक या 25 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो।

13. पैरा 5 पारिवारिक पेंशन के प्रयोजन के लिए निर्भरता मानदंड प्रदान करता है, जो महंगाई भत्ते के साथ न्यूनतम पारिवारिक पेंशन होगी। पैरा 5 इस प्रकार पढ़ता है:

पारिवारिक पेंशन के उद्देश्य का निर्भरता मानदंड न्यूनतम पारिवारिक पेंशन के साथ-साथ उस पर महंगाई राहत भी होगी।

14. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, उत्तरदाताओं ने 1 जनवरी 2006 से मृत कर्मचारी की पेंशन और पारिवारिक पेंशन की गणना की थी। पारिवारिक पेंशन अनुदान की पात्रता से संबंधित कार्यालय जापन दिनांक 11 सितंबर 2013 के मद्देनजर, एक बच्चा/बेटी, जो न्यूनतम पारिवारिक पेंशन और उस पर महंगाई राहत की राशि के बराबर या उससे अधिक नहीं कमा रहा है, उसे अपने माता-पिता पर निर्भर माना जाता है। बेटी की पात्रता पर पेंशनभोगी की मृत्यु की तिथि पर विचार किया जाना है। प्रतिवादी-रेलवे द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि पेंशनभोगी की मृत्यु की तिथि पर, याचिकाकर्ता को पारिवारिक पेंशन और उस पर मिलने वाले महंगाई भत्ते की तुलना में कम परिलब्धियाँ प्राप्त हो रही थीं।

15. प्रतिवादी-रेलवे का रुख है कि एक पेंशनभोगी को स्वीकार्य न्यूनतम पारिवारिक पेंशन 3500/- रुपये प्रति

माह और अधिकतम सरकार के उच्चतम वेतन का 30% है, इसलिए, याचिकाकर्ता पात्र नहीं होगी क्योंकि माना जाता है कि उसका मासिक वेतन 3500/- रुपये प्रति माह से अधिक था। प्रस्तुतीकरण 15 सितंबर 2008 के नियम/रेलवे बोर्ड के आदेश की गलत व्याख्या पर है। जापन के पैरा 8.1 में केवल यह कहा गया है कि कोई भी पेंशनभोगी 3500/- रुपये प्रति माह से कम पारिवारिक पेंशन का हकदार नहीं होगा। दूसरे शब्दों में, पारिवारिक पेंशन की गणना करने पर, यदि पेंशन 3500/- से कम बनती है, तो इसे बढ़ाकर 3500/- रुपये कर दिया जाएगा। गणना के आधार पर अन्य पेंशनभोगियों के संबंध में जिनकी पेंशन 3500/- रुपये से अधिक है, पारिवारिक पेंशन के लिए उनके दावे के लिए बेटे/बेटी की पात्रता/निर्भरता निर्धारित करने के उद्देश्य से यह न्यूनतम पारिवारिक पेंशन होगी। आश्रित बच्चे/बेटी की पात्रता की गणना न्यूनतम पारिवारिक पेंशन पर की जाएगी जो पेंशनभोगी को उसकी मृत्यु के समय मिल रही थी।

16. दिए गए तथ्यों में, यह स्वीकार किया गया है कि रेलवे के अनुसार न्यूनतम पारिवारिक पेंशन की गणना पेंशनभोगी की मृत्यु की तारीख पर लागू महंगाई भत्ते सहित 11776/- रुपये थी और उक्त तिथि पर

17. याचिकाकर्ता का मासिक वेतन 10912/- रुपये था।

18. इन परिस्थितियों में, हमारी राय है कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी-रेलवे अधिकारियों द्वारा अनावश्यक उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा है। तदनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

19. उत्तरदाता 23 अक्टूबर 2013 से याचिकाकर्ता को स्वीकार्य पेंशन की गणना करेंगे और उसका भुगतान महीने दर महीने किया जाएगा। पेंशन का बकाया नियत तारीख से देय राशि पर 8% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ एक महीने के भीतर जारी किया जाएगा।

20. मुकदमे की लागत का आकलन 25,000/- रुपये दूसरे प्रतिवादी-महाप्रबंधक, उत्तर मध्य रेलवे, इलाहाबाद द्वारा याचिकाकर्ता को उसी अवधि के भीतर किया जाना है।

(2023) 4 ILRA 1357

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव,

रिट-ए संख्या 29075/2009

राम मीना दिवस

...याचिकाकर्ता

बनाम

महाप्रबंधक एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सतीश मंध्यान, श्री कुलदीप कुमार, श्री कुमार अनीश, श्री पंकज मिश्रा, श्री राम चंद्र त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: श्री गोविंद सरन, श्री गोविंद श्रीवास्तव, श्री रजनीश कुमार राय, श्री सुधीर भारती, श्री पी. एन. राय

सेवा कानून - निलंबन आदेश को चुनौती दी - आरक्षण के बल पर गलत तरीके से प्राप्त नियुक्ति-भारत के संविधान का अनुच्छेद 342-राष्ट्रपति ने राज्य की जनजातियों को अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित किया-जाति प्रमाण पत्र केवल इसलिए अमान्य नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता गांव में नहीं रहता है-केंद्र सरकार की सेवा है-पूरे राज्य में आरक्षण का लाभ उपलब्ध है-जाति प्रमाण पत्र का सत्यापन जिला स्तरीय और राज्य स्तरीय स्क्रिनिंग समिति द्वारा किया जाना है-इस वाद में ऐसा कोई निर्धारण नहीं किया गया-आलोचना आदेश अवैध माना गया-निरस्त-याचिका स्वीकार की गई।

आयोजित:

पक्षों की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रतिद्वंद्वी तर्कों को सुनने के बाद, वर्तमान याचिका में उठाए गए विवाद को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कुमारी माधुरी पाटिल बनाम अतिरिक्त आयुक्त एआईआर 1995 सुप्रीम कोर्ट 94 में प्रतिपादित कानून के प्रस्ताव के आधार पर प्रमाणित किया जाना है, जिसमें यह विशेष रूप से माना गया है कि जाति प्रमाण पत्र की वास्तविकता

के संबंध में सत्यापन के वाद में जिला स्तरीय और राज्य स्तरीय स्क्रीनिंग समिति, जैसा कि भारत सरकार द्वारा पहले ही गठित किया जा चुका है, यदि किसी प्रतिष्ठान को एससी/एसटी से संबंधित जाति प्रमाण पत्र के संबंध में संदेह है तो उसे जिला स्तरीय स्क्रीनिंग समिति को भेजा जा सकता है, जो एससी/एसटी के जाति प्रमाण पत्र पर टिप्पणी करने के लिए एकमात्र सक्षम प्राधिकारी है।

याचिकाकर्ता के जाति प्रमाण पत्र के विवाद पर जिला स्तरीय स्क्रीनिंग समिति द्वारा की गई किसी जांच रिपोर्ट या निर्धारण का शायद ही कोई संदर्भ है, इस प्रकार दिनांक 31.10.2007 के आदेश से पूरी कार्यवाही अनुशासनात्मक कार्यवाही के रूप में प्रारंभ की गई है जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता की सेवाएं निलंबित कर दी गईं और दिनांक 20.2.2009 के आदेश द्वारा अपील के स्तर पर इसे पुष्टि की गई।

याचिका स्वीकृत (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. भारत संघ बनाम दूध नाथ प्रसाद एआईआर 2000 एससी 525
2. संजय कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2000) 1 यूपीएलबीईसी 729
3. कुमारी माधुरी पाटिल बनाम अपर आयुक्त एआईआर 1995 सुप्रीम कोर्ट 94

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता कुलदीप कुमार और प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.एन. राय को सुना।

यह रिट याचिका मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ दायर की गई है:-

1. अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् प्रत्यर्था सं० 2 द्वारा पारित आदेश दिनांकित 20.02.2009 तथा प्रत्यर्था संख्या 3 द्वारा याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त किए जाने का आदेश दिनांकित 31.10.2007 को अपास्त करते हुए सर्टिओरीरी की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करने हेतु।
2. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसमें प्रत्यर्था को आदेश दिनांक 20.02.2009 और 31.10.2007 को प्रभावी न करने का निर्देश दिया जाए।

याचिकाकर्ता का मामला यह है कि भर्ती वर्ष 1993 के दौरान, उसने रेलवे सुरक्षा बल में कांस्टेबल के पद के लिए आरक्षित श्रेणी के अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवार के रूप में आवेदन किया था। वैधानिक प्रावधानों और भर्ती नियमों के अंतर्गत परिभाषित उचित प्रक्रिया के उपरांत, याचिकाकर्ता को आदेश दिनांकित 20.08.1994 द्वारा कांस्टेबल के रूप में नियुक्त किया गया था। संतोषजनक सेवाओं को देखते हुए उसे हेड कांस्टेबल के पद पर पदोन्नत किया गया।

याचिकाकर्ता राजस्थान राज्य के गांव सीकर से संबंधित अनुसूचित जनजाति का उम्मीदवार है, जिसके पास दिनांक 12.03.1991 को जारी वैध अनुसूचित जनजाति प्रमाण पत्र है, चूंकि याचिकाकर्ता के पूर्वज आजीविका के लिए लंबे समय से उक्त गांव में रह रहे थे, याचिकाकर्ता के पिता जिला बुलन्दशहर में आजीविका हेतु बस गए थे परन्तु स्थायी रूप से ग्राम गंगवास, नीम का खाना, जिला सीकर, राजस्थान राज्य के निवासी है। याचिकाकर्ता की जाति का उल्लेख संविधान (एस.टी.) आदेश 1950 की अनुसूची के भाग -13 में किया गया है एवं उक्त अनुसूची के भाग-13 के मद क्रमांक 9 में मीना समुदाय को एस.टी. में दर्शाया गया है।

याचिकाकर्ता को जारी किए गए जाति प्रमाण पत्र के अनुसरण में आरक्षण की मांग के समर्थन में भारत संघ बनाम दूध नाथ प्रसाद ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 525 तथा संजय कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2000) 1 यू.पी.एल.बी.ई.सी. 729 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया गया है, जिसमें यह माना गया है कि यदि कोई व्यक्ति अन्य राज्य की अनुसूचित जनजाति से है, तो भी वह एस.सी./एस.टी. कोटा के अंतर्गत आरक्षण का दावा कर सकता है, यदि उस संबंध में कोई निषेध नहीं है तो।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार राष्ट्रपति ने राज्य की जनजातियों को एस.टी. के रूप में अधिसूचित किया, यह बहुत संभव है कि उस राज्य में उस जाति या समूह को होने वाले लाभ और सामाजिक कठिनाई के कारण मुकदमा चलाए जाने के

कारण, ये घोषणा करने के हकदार हैं कि वे एस.सी./एस.टी. से संबंधित हैं, परन्तु किसी अन्य राज्य में ऐसी कठिनाई या सामाजिक लाभ मौजूद नहीं हो सकता है और ऐसे में राज्य ऐसी जाति या जनजाति को एस.सी./एस.टी. के रूप में नहीं मान सकता है, यह भी हो सकता है कि ऐसी जाति/जनजाति अन्य प्रदेश में न रहती हो, यदि अन्य राज्य के एस.टी. व्यक्ति को अन्य राज्य में जारी विज्ञापन के आधार पर नियुक्ति नहीं दी जाती है तो और ऐसा विज्ञापन किसी अन्य राज्य के एस.सी./एस.टी. व्यक्ति को बिल्कुल भी नहीं रोकता है, तो ऐसी कोई रोक नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को विज्ञापित पद पर चयन के लिए परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जा सकती है, अर्थात् विज्ञापन और उसकी शर्तें महत्वपूर्ण हैं।

वर्तमान मामले में जब रेलवे सुरक्षा बल एक अखिल भारतीय संगठन है, इसलिए, जहां भी पद विज्ञापित किया जाता है, उसके लिए अखिल भारतीय अधिसूचना होनी चाहिए और यह भारत के सभी नागरिकों पर लागू होगी और ऐसी परिस्थितियों में एक राज्य के एस.टी. होने की बाधा के कारण दूसरे राज्य में रोजगार का अधिकार नहीं होना, कोई बाधा नहीं होगी।

किसी विशेष राज्य के किसी विशेष एस.टी. से संबंधित याचिकाकर्ता के विरुद्ध ऐसी कोई भी कार्रवाई करने के कानूनी प्रतिबंध के अलावा, उस एस.टी. प्रमाणपत्र के अंतर्गत दूसरे राज्य में रोजगार प्राप्त करने का हकदार नहीं होने के बावजूद, अखिल भारतीय सेवा के मामले में स्थिति समान नहीं होगी अन्यथा, एस.टी. उम्मीदवारों के लिए कोई कोटा लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि सभी एस.टी.

एक विशेष राज्य के हैं जहां उन्हें असाधारण कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, इसलिए, संविधान का परोपकारी रूप इस ओर है कि जब एक बार एक विशेष समूह को मुख्य रूप से एसटी माना जाता है। विशेष राज्य, लेकिन वह अखिल भारतीय सेवा में आरक्षित श्रेणी के लिए वही रहेगा, खासकर जब विज्ञापन में विशेष रूप से ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं दिया गया हो।

याचिकाकर्ता के विरुद्ध उसके एस.टी. होने के प्रति सत्यापन के संबंध में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा तय एक मुकदमे में जारी किए गए कुछ सामान्य निर्देशों के आधार पर कार्रवाई शुरू की गई, जिसमें रिपोर्ट के आधार पर कहा गया कि याचिकाकर्ता अपने राजस्थान स्थित मूल गांव में निवास नहीं कर रहा है, याचिकाकर्ता के जाति प्रमाण पत्र को संदिग्ध नहीं बनाता है।

इसके बावजूद विभाग ने याचिकाकर्ता को विधिवत तामील आरोप पत्र दिनांकित 30.03.2007 जारी किया, जिसमें एकमात्र आरोप सी.बी.आई. की रिपोर्ट है, जिसने रेलवे सुरक्षा बल विनियम 1987 की धारा 153(2)(ए) के अंतर्गत वृहद दंड के लिए, नीम का थाना के तहसीलदार के प्रमाण पत्र को अस्वीकार नहीं किया। याचिकाकर्ता ने दिनांक 22.10.2007 को उक्त आरोप पत्र का उत्तर दिया जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि प्रमाण पत्र दिनांकित 12.03.1991 को तहसीलदार द्वारा कानूनी प्रक्रिया के अनुसार सत्यापित करने के बाद जारी किया गया था और जिसे मौजूदा तहसीलदार ने अपनी रिपोर्ट दिनांकित 10.09.2007 के माध्यम से प्रमाणित भी किया था, साथ ही यह भी कहा

गया था कि तहसीलदार ने स्वयं भी पहले दिनांक 26.10.2006 को एक रिपोर्ट दी थी, जिसमें स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया है कि दिनांक 12.03.1991 को जारी किया गया प्रमाण पत्र रजिस्टर में दर्ज किया गया है, इसे किसी भी कोण से त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है, इसके अलावा तहसीलदार ने बाद में दिनांक 21.12.2006 को प्रमाण पत्र दिनांकित 12.03.1991 की एक डुप्लिकेट प्रति जारी की है, जो यह साबित करता है कि प्रमाणपत्र जारी किया गया था और यह किसी झूठे दस्तावेज के विरुद्ध नहीं था।

पूरे प्रकरण में एक अजीब मोड़ आ गया है क्योंकि प्रमाण पत्र दिनांकित 12.03.1991 सही पाए जाने के बावजूद, रजिस्टर में प्रविष्टि भी दर्ज है, फिर भी एस.टी. श्रेणी को केवल इस आधार पर अस्वीकार करने की मांग की जा रही है कि वह उस स्थान का निवासी नहीं है, जबकि यह पूर्णतः मिथ्या नाम है और इस प्रकार एस.टी. प्रमाण पत्र उन व्यक्तियों को जारी किया जा सकता है जिनके पूर्वज किसी विशेष गांव में रहते हैं, जहां से विशेष जनजाति के व्यक्ति को एस.टी. घोषित किया गया था, इसलिए, कल्पना के किसी भी स्तर पर जाकर याचिकाकर्ता के पक्ष में जारी प्रमाण पत्र वैध पाया गया है तथा वैध रूप से जारी किए गए लाभ से केवल इस आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता है कि वह वर्तमान में उस गांव का निवासी नहीं है और यह बिल्कुल तर्कहीन सुझाव है जिसने बिना किसी गलती के याचिकाकर्ता की आजीविका के स्रोत को छीनने के आदेश को जन्म दिया है।

याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधारों पर विचार किए बिना, जिला प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को बिल्कुल गलत तथ्यों और अभिलेखों पर लाए गए तथ्यों की अवैध मूल्यांकन पर साबित माना, हालांकि, अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने दिनांक 28.09.2007 को कारण बताओ नोटिस दिया जो याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 29.09.2007 को जांच रिपोर्ट के साथ प्राप्त हुआ तथा याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 22.10.2007 को इसका उत्तर दिया गया है।

मामले पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार किए बिना, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 31.10.2007 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध सेवा से बर्खास्तगी का आदेश पारित कर दिया।

बर्खास्तगी के आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी सं० 2 के समक्ष उचित माध्यम से अपील की, जो एक समग्र अपील थी जिसमें बिंदुवार विवरण दिया गया था, यहां तक कि सेवा से बर्खास्तगी का आदेश प्राप्त करने की प्रार्थना के साथ, की गई जांच पर भी चोट की गई।

अपीलीय प्राधिकारी ने मस्तिष्क का प्रयोग किए बिना, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्ष को दोहराते हुए, वैध आधारों पर अपील पर विचार किए बिना, उसे आदेश दिनांकित 20.2.2009 द्वारा खारिज कर दिया।

इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेशों को अपास्त किए जाने के लिए उठाए गए आधारों सहित प्रार्थना का पुरजोर विरोध किया और विस्तृत जवाबी शपथपत्र में उठाए गए रुख पर विश्वास

व्यक्त किया, जिसे वर्तमान याचिका में उठाए गए विवादों के खंडन में दाखिल किया गया है।

रिट याचिका की पोषणीयता को वैकल्पिक उपायों के आधार पर प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भी चुनौती दी गई, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने रेलवे सुरक्षा बल नियम 1987 के नियम 219 के अंतर्गत प्रावधानों का वर्णन करते हुए अपने तर्क दिए, जिसमें अपीलीय आदेश के विरुद्ध वैधानिक प्रावधान का उपाय उपलब्ध है।

न्यायालय का ध्यान प्रमाण पत्र जारी करने वाले प्राधिकारी द्वारा दिनांक 26.10.2006 को जारी सत्यापन रिपोर्ट पर आकर्षित किया गया, जिसे अनुलग्नक -2 के रूप में जोड़ा गया है, जो प्रति शपथ पत्र के पृष्ठ -22 पर उपलब्ध है, जिससे परिलक्षित होता है कि न तो याचिकाकर्ता के नाम का उल्लेख किसी भी रजिस्टर में किया गया है और न ही वह जाति प्रमाण पत्र में उल्लिखित गांव का स्थायी निवासी है, जिससे यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 21.12.2006 को प्रस्तुत किया गया जाति प्रमाण पत्र वास्तविक प्रमाण पत्र नहीं है।

उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रतिद्वंद्वी तर्कों को सुनने के उपरांत, वर्तमान याचिका में उठाए गए विवाद को **कुमारी माधुरी पाटिल बनाम अतिरिक्त आयुक्त ए.आई.आर. 1995 सर्वोच्च न्यायालय 94** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के प्रस्ताव के आधार पर प्रमाणित किया जाना है, जिसमें यह विशेष रूप से माना गया है कि जाति प्रमाण पत्र की वास्तविकता के संबंध में सत्यापन के मामले में, भारत सरकार द्वारा पहले से ही गठित

जिला स्तरीय और राज्य स्तरीय स्क्रीनिंग समिति, यदि किसी प्रतिष्ठान को अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति से संबंधित जाति प्रमाण पत्र के संबंध में संदेह है तो उसे जिला स्तरीय स्क्रीनिंग समिति को भेजा जा सकता है जो अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के जाति प्रमाण पत्र पर टिप्पणी करने के लिए एकमात्र सक्षम प्राधिकारी है।

याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही की उत्पत्ति के संबंध में प्रत्यर्थागण की ओर से उपस्थित श्री पी.एन.राय के समक्ष की गई सटीक पूछताछ पर, उत्तर में प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने जवाबी शपथपत्र में दिए गए कथन पर विश्वास जताया, जिसमें न्यायालय को अवगत कराया गया है कि उक्त जाति प्रमाण पत्र की वास्तविकता केवल जिला स्तरीय स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा निर्धारित की जाएगी, परन्तु प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा दिए गए जवाबी शपथपत्र में जाति प्रमाण पत्र के मुद्दे पर जिला स्तरीय स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा निर्धारित किसी भी रिपोर्ट का अभाव है जिसे संबंधित पद पर नियुक्ति की मांग करते समय याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया था तथा इस प्रकार श्री पी.एन. राय, विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा विधि के साथ-साथ तथ्य का मूल्यांकन भी ठीक से नहीं की जा सकी।

याचिकाकर्ता के जाति प्रमाण पत्र के मुद्दे पर जिला स्तरीय स्क्रीनिंग कमेटी द्वारा की गई किसी भी जांच रिपोर्ट या निर्णय का शायद ही कोई संदर्भ है, जैसे कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के रूप में शुरू की गई पूरी कार्यवाही जो दिनांक 31.10.2007 के आदेश से समाप्त हुई, जिसके माध्यम से

याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया तथा आदेश दिनांकित 20.02.2009 के माध्यम से अपील के स्तर पर भी इसे सही ठहराया गया है।

उपरोक्त के दृष्टिगत, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। दोनों आदेश अर्थात् अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् प्रत्यर्थी सं0 2 द्वारा पारित आदेश दिनांकित 20.02.2009 एवं प्रत्यर्थी सं0 3 द्वारा पारित आदेश दिनांकित 31.10.2007 को अपास्त किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1361

मूल न्यायाधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 11.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या

283/2023

शिवराज सिंह एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री कपिल मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन - धारा 120 बी, 121, 121 ए, 420, 467, 468 आईपीसी के तहत सत्र परीक्षण की संपूर्ण कार्यवाही - धारा 13, 18, 20, 21, 23 (2), 38, 39 और 40 गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967 - चुनौती दी गई - 1967 के अधिनियम की धारा 45 (2) के बाद अभियोजन के लिए अनुमति की वैधता को चुनौती दी गई -

लगभग 12 वर्षों के अंतराल के बाद पूरक केस डायरी प्रस्तुत की गई - अनुमति प्रदान की गई।

बी. अभियोजन के लिए अवैध अनुमति और अभियोजन की अनुपस्थिति के बीच अंतर-अभियोजन के लिए अनुमति वर्ष 2010 में ही दे दी गई थी- अनुमति प्रदान करना-प्रशासनिक अनुमति- अनुमति देने वाले प्राधिकारी को यह सुनिश्चित करना आवश्यक है - प्रथम दृष्टया कृत्य और तथ्य- अपराध का गठन करते हैं- अनुमति की वैधता का प्रश्न विचारणीय न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है- आवेदन निरस्त किया जाता है। (पैराग्राफ 23 से 26)

आयोजित:

जब इस न्यायालय ने तथ्यों और कानून के आधार पर इस वाद की जांच की, तो यह स्पष्ट है कि जांच एजेंसी के पास निस्संदेह आगे की जांच करने का अधिकार है और कानून के तहत ऐसी जांच के लिए पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। स्वीकृत रूप से, बार-बार, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय का भी दृष्टिकोण रहा है, इसलिए, आदेश दिनांक 3.3.2022 को संलग्न करते हुए पूरक केस डायरी, जांच अधिकारी द्वारा विचारणीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है। (पैरा 23)

जहां तक समीक्षा प्राधिकरण द्वारा पारित दिनांक 3.3.2022 के आदेश का प्रश्न है, वाद वर्ष 2010 से संबंधित है और लगभग 12 वर्ष

बीत चुके हैं। इसके अतिरिक्त, यह तय है कि मंजूरी देना केवल एक प्रशासनिक कार्य है और मंजूरी देने वाले प्राधिकरण को इस बात की संतुष्टि होनी चाहिए कि प्रथम दृष्टया में कृत्य और तथ्य अपराध का गठन करेंगे और अब, 12 वर्ष बीत जाने के बाद, आवेदकों और दूसरे पक्ष को मुकदमेबाजी की एक और पारी के लिए बाध्य करने और वाद को अनिश्चित काल तक लंबित रखने के लिए मंजूरी देने की कार्यवाही प्रारंभ करना उचित और उचित नहीं होगा। (पैरा 24)

यह स्पष्ट किया गया है कि 'अनुमति की अनुपस्थिति' और 'अनुमति की अवैधता' के बीच अंतर है। मंजूरी की अनुपस्थिति को प्रारंभ में ही उठाया और उठाया जा सकता है, लेकिन अनुमति की अवैधता या अवैधता को सुनवाई के दौरान उठाया जाना चाहिए। (पैरा 25)

स्वीकृत रूप से, दिनांक 3.8.2010 को अनुमति प्रदान की गई थी और इस प्रकार, प्रथम दृष्टया यह अनुमति के अभाव का वाद नहीं है, लेकिन आवेदकों-आरोपी व्यक्तियों ने अभियोजन के लिए स्वीकृति प्रदान करने में कुछ अवैधता और अमान्यता को उठाया है और वे तीन गुना हैं। सर्वप्रथम, अनुमति प्रदान करते समय समीक्षा प्राधिकरण अस्तित्व में नहीं था; दूसरे, अनुमति देने वाले प्राधिकरण के पास कोई सामग्री नहीं थी; और तीसरे, धारा 173 (8) कमियों को भरने के लिए नहीं है। सभी तर्क अमान्यता के संबंध में हैं जो सभी याचिकाएं अनुमति के आक्षेपित आदेश की अमान्यता के संबंध में हैं। जैसा कि पिछले पैराग्राफ में चर्चा की गई है, तत्काल वाद

अनुमति की अनुपस्थिति का वाद नहीं है और यदि अनुमति के आदेश में कोई कथित अवैधता विद्यमान है, तो उसे विचारणीय न्यायालय के समक्ष उठाया/आलोचना की जा सकती है। (पैरा 26)

बनाम बच्चा प्रसाद सिंह एवं अन्य) के मामले में विशेष एन.आई.ए./ए.टी.एस. न्यायालय, लखनऊ के न्यायालय में मामला लंबित है और मामले की आगे की कार्यवाही भी लंबित है, के आदेश और कार्यवाही को चुनौती दी है।

आवेदन निरस्त (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. शेख जावेद इकबाल उर्फ अशफाक अंसारी उर्फ जावेद अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 वाद (ऑल) 1115
2. मनसुखलाल विठ्ठलदास चौहान बनाम गुजरात राज्य (1997) 7 एससीसी 622
3. सी.बी.आई. और अन्य. बनाम धीरेंद्र कुमार अग्रवाल एवं अन्य, (2020) 17 एससीसी 664

(माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, द्वारा प्रदत्त)

1. कपिल मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त आवेदकों के अधिवक्ता श्री ज्योतिंद्र मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता-1 श्री शिव नाथ तिलहारी को सुना और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया।

2. प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदकों ने दिनांक 3.8.2010 और 2.2.2022 के स्वीकृति आदेशों और धारा 120B, 121, 121A, 420, 467, 468 भ०द०वि० और 13, 18, 20, 21, 23(2), 38, 39, थाना-नौहस्ता, जिला कानपुर नगर से संबंधित रिट याचिका सं 40 (राज्य

3. मामले का तथ्यात्मक मैट्रिक्स यह है कि 8.2.2010 को, तीन व्यक्तियों, शिवराज सिंह, राजेंद्र कुमार @ अरविंद कुमार और कृपा शंकर को उत्तर प्रदेश राज्य टास्क फोर्स टीम द्वारा गिरफ्तार किया गया था, जिसकी अध्यक्षता सब इंस्पेक्टर राजीव द्विवेदी ने शाम 4.50 बजे की थी। सब इंस्पेक्टर राजीव द्विवेदी की शिकायत पर थाना-किदवई नगर में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। तत्पश्चात्, विवेचनाधिकारी द्वारा अभियोजन की मंजूरी प्रदान करने के लिए दिनांक 7-7-2010 को डी.आई.जी. (ए.टी.एस.) को एक पत्र भेजा गया था और डी.आई.जी. (ए.टी.एस.) ने दिनांक 12-7-2010 को सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार को एक पत्र भेजा जिसमें अभियोजन की मंजूरी प्रदान करने का अनुरोध किया गया था।

4. उपर्युक्त अनुरोध पर विचार करने के बाद, राज्य सरकार द्वारा दिनांक 3.8.2010 के पत्र द्वारा अभियोजन की मंजूरी दी गई थी। विवेचनाधिकारी द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया था और 4.8.2011 को सत्र परीक्षण संख्या-1245 वर्ष 2010 में आरोपी शिवराज सिंह और कृपा शंकर के खिलाफ और सत्र परीक्षण संख्या-13 वर्ष 2013 में सह-आरोपी राजेंद्र कुमार @ अरविंद के खिलाफ 8.3.2023 को आरोप तय किए गए थे। अभियोजन पक्ष के गवाहों अर्थात् अ०सा०-1 से अ०सा०-13 की

जांच की गई और गवाहों से जिरह करते हुए उन्होंने स्वीकार किया कि न तो आरोपी व्यक्तियों के हस्तलिपि में कोई साहित्य था और न ही कानपुर नगर में उनसे पैसे वसूलने का कोई सबूत था और आगे यह भी स्वीकार किया कि तकनीकी रूप से किसी ने आरोपी व्यक्तियों के अलावा इन सामग्रियों को छापा या प्रकाशित किया है।

5. दिनांक 8.06.2016 को आवेदकों ने मामले के निपटारे के लिए निचली अदालत के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया। 10.2.2021 को, उन्होंने धारा 313 द०प्र०स० के तहत प्रश्न तैयार करने के लिए एक आवेदन भी दायर किया और आरोपी का बयान 15.2.2021 को दर्ज किया गया। 8.1.2022 को सत्र परीक्षण संख्या-1245 वर्ष 2010, 13 वर्ष 2013, 1265 वर्ष 2010, 1265A वर्ष 2010 की सभी फाइलें अतिरिक्त सत्र न्यायधीश-3/विशेष एन.आई.ए./ए.टी.एस. कोर्ट, लखनऊ में स्थानांतरित कर दी गई। 4.8.2022 को, आरोपी व्यक्तियों को पता चला कि दिनांक 22.3.2022 के आवेदन के माध्यम से, पूरक केस डायरी और अभियोजन के लिए मंजूरी का संशोधित आदेश दिनांक 3.3.2022 अदालत के समक्ष प्रस्तुत किया गया है और उसके बाद, 29.9.2022 को, सह-अभियुक्त द्वारा इस अनुरोध के साथ आपत्ति दर्ज की गई थी कि विचारण न्यायालय पूरक केस डायरी और मंजूरी आदेश को रद्द कर सकता है। दिनांक 29.9.2022 की आपत्ति का उत्तर भी जांच एजेंसी द्वारा 24.11.2022 को दायर किया गया था और उसके बाद 24.11.2022 को ही विचारण न्यायालय ने धारा 311 द०प्र०स० के तहत आवेदन पर अभियोजन पक्ष

को अनुमति दे दी और इस प्रकार, आवेदक सत्र परीक्षण संख्या-1245 वर्ष 2010 और 13 वर्ष 2013 में शुरू की गई पूरी कार्यवाही सहित दिनांक 3.8.2010 और 3.3.2022 के मंजूरी आदेशों से व्यथित हो गया, प्रस्तुत आवेदन दाखिल किया है।

6. आवेदकों की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क है कि बहुत प्रारंभिक चरण में, अभियोजन पक्ष का इरादा संदिग्ध है, क्योंकि अपुष्ट जानकारी के आधार पर, आवेदकों को ठोस सबूत के बिना गिरफ्तार किया गया था; चूंकि आवेदकों के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और आरोप पत्र भी दायर कर दिया गया है। इसके बाद, आवेदकों को पूर्व सूचना दिए बिना, मामले को कानपुर से लखनऊ स्थानांतरित कर दिया गया और जटिल कार्रवाई करते हुए पूरक केस डायरी और मंजूरी का संशोधित आदेश दिनांक 3.3.2022 विचारण न्यायालय के समक्ष दायर किया गया। हालांकि जैसे ही आवेदकों को यह तथ्य पता चला, उन्होंने 29.9.2022 को आपत्तियां दर्ज कीं, लेकिन विचारण न्यायालय ने अपने न्यायिक दिमाग को लागू किए बिना, पूरक केस डायरी को स्वीकार कर लिया है और 3.3.2022 को अभियोजन के लिए मंजूरी का आदेश जारी किया है जो पहली मंजूरी दिए जाने के लगभग 12 साल बाद था।

7. अपने तर्कों को जोड़ते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि विचारण न्यायालय के समक्ष तय की गई कई तारीखों और उसके बाद पारित आदेश से, यह स्पष्ट है कि विचारण न्यायालय ने बहुत ही अविवेकपूर्ण और लापरवाह तरीके से

काम किया है। उन्होंने कहा कि सबसे पहले, जब मामले को कानपुर से लखनऊ स्थानांतरित किया गया था, तो आवेदकों को इसकी सूचना नहीं दी गई थी और उसके बाद, जब आवेदकों द्वारा 29.9.2022 को पूरक केस डायरी और मंजूरी के आदेश को गैरकानूनी मंजूरी के आधार पर रद्द करने के लिए आपत्ति दर्ज की गई थी, तो विचारण न्यायालय ने जांच एजेंसी को आपत्ति दर्ज करने का समय दिया, जो 24.11.2022 को दायर किया गया था, और उसके बाद, 2.12.2022 को, आरोपी की ओर से बीमारी के आधार पर हाजिरी माफी के लिए एक आवेदन दायर किया गया था, लेकिन उसी दिन, विचारण न्यायालय ने गवाह प्रशांत का बयान दर्ज किया, जो उत्तर प्रदेश की गृह सरकार के विशेष सचिव थे और जिरह के अवसर से इनकार कर दिया। वह प्रस्तुत करते हैं कि यह 15.12.2022 को है, जब यह पता चला कि 24.12.2022 को, अभियोजन पक्ष को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उसके आवेदन पर विचारण न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई है और वह भी अभियुक्त को सूचित किए बिना और दिनांक 29.9.2022 की आपत्ति के निपटान के बिना।

8. अपने तर्कों को जारी रखते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967 (इसके बाद 'अधिनियम 1967' के रूप में संदर्भित) की धारा 45(2) के प्रावधान स्पष्ट रूप से प्रदान करते हैं कि 'अभियोजन की मंजूरी केवल केंद्र सरकार या राज्य सरकार, जैसा भी मामला हो, द्वारा नियुक्त ऐसे प्राधिकरण की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद दी जाएगी या, जो साक्ष्य की

स्वतंत्र समीक्षा करेगा। वह प्रस्तुत करते हैं कि पूर्वोक्त प्रावधान से, यह बहुत स्पष्ट है कि प्राधिकरण की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही अभियोजन की मंजूरी दी जा सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि संस्वीकृति प्राधिकारी ने केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार, जैसा भी मामला हो, द्वारा नियुक्त प्राधिकारी की रिपोर्ट का अध्ययन किया होगा लेकिन इस मामले में वर्ष 2010 में पहली मंजूरी दी गई थी और उस समय कोई पुनरावलोकन प्राधिकरण नहीं था और अचानक, 2.2.2022 को धारा 173(8) द०प्र०स० के प्रावधानों की आड़ में, अभियोजन के लिए मंजूरी दी गई और अभियोजन के लिए मंजूरी के आदेश के साथ विचारण न्यायालय के समक्ष पूरक केस डायरी प्रस्तुत की गई, जो पूरी तरह से गैरकानूनी है और अधिनियम 1967 की धारा 45 की उपधारा (2) के जनादेश के खिलाफ है। उन्होंने कहा कि 3.8.2010 की पहली मंजूरी अवैध है क्योंकि सरकार द्वारा अभियोग के दौरान एकत्र किए गए सबूतों की स्वतंत्र समीक्षा के लिए प्राधिकरण नियुक्त नहीं किया गया था और इसके अलावा मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष अधिनियम 1967 की धारा 45 की उपधारा (2) के जनादेश के अनुसार विचार करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी।

9. आगे तर्क दिया कि विवेचनाधिकारी ने आवेदकों के खिलाफ यांत्रिक तरीके से आरोप पत्र दायर किया और यह बिना किसी सबूत को इकट्ठा किए और धारा 120 बी, 121, 121-ए, 420, 467, 468 भ०द०वि० और 13, 18, 20, 21, 23(2), 38, 39, 40 यू.ए.पी.ए के

तहत धाराओं के तहत कोई अपराध का गठन नहीं है। इसलिए, आवेदकों के खिलाफ शुरू की गई पूरी आपराधिक कार्यवाही रद्द किए जाने योग्य है।

10. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने 2021 लॉ सूट (सभी) 1115, शेख जावेद इकबाल @ अशफाक अंसारी @ जावेद अंसारी बनाम यूपी राज्य और अन्य में रिपोर्ट किए गए एक निर्णय पर भरोसा किया है और पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-35, 36 और 37 का उल्लेख किया है। पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-35, 36 और 37 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"35. केंद्र सरकार या राज्य सरकार, जैसा भी मामला हो, द्वारा नियुक्त प्राधिकरण द्वारा स्वतंत्र समीक्षा की शर्त लागू करने का मुख्य उद्देश्य, कानून लागू करने वाली एजेंसियों द्वारा यू.ए.पी.ए. के कड़े प्रावधानों के दुरुपयोग को रोकना था। इसके अलावा, जब विधायिका ने अपने विवेक से मंजूरी देने के लिए एक विशिष्ट अनिवार्य प्रक्रिया निर्धारित की है, तो मंजूरी प्राधिकारी का कर्तव्य था कि वह उस वैधानिक प्रक्रिया का पालन करे। लेकिन दुर्भाग्य से, रिकॉर्ड पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो प्रथम दृष्टया भी यह दर्शाती हो कि जांच प्राधिकरण द्वारा एकत्र किए गए सबूतों की स्वतंत्र रूप से समीक्षा करने वाले किसी भी प्राधिकारी की सिफारिश कभी भी यू.ए.पी.ए. की धारा 45 की उप-धारा (1) के तहत मंजूरी प्राप्त करते समय सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी। दूसरे शब्दों में, मंजूरी देते समय सक्षम प्राधिकारी, प्रस्तुत मामले में, प्रासंगिक सामग्री से वंचित था यानी स्वतंत्र प्राधिकारी

की सिफारिश जो इस बात पर विचार करने के लिए अनिवार्य थी कि मंजूरी दी जानी चाहिए या नहीं।

36. अब इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या अनिवार्य प्रक्रिया के इस अंतर्निहित उल्लंघन के विचारण में विचारण न्यायालय द्वारा ध्यान रखा जाना है, क्योंकि इस मामले में मुकदमा आगे बढ़ गया है और अभियोजन पक्ष द्वारा कई अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच की गई है, या इस मामले में दी गई मंजूरी में दोष ऐसी प्रकृति का है, जिसे मुकदमे के समापन तक इंतजार नहीं करना चाहिए। इस बिंदु की मूल्यांकन करने के लिए मंजूरी के संबंध में कानून पर एक नज़र डालना वांछनीय है।

37. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया केस सी.बी.आई., बनाम अशोक कुमार अग्रवाल, मनु/एस.सी./1220/2013 माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार मंजूरी की वैधता पर विचार-विमर्श किया: -

"7. अभियोजन पक्ष को अदालत को संतुष्ट करना होगा कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी के लिए मामले को भेजने के समय, इस तरह के अनुदान के लिए पर्याप्त सामग्री उक्त प्राधिकारी को उपलब्ध कराई गई थी। यह मंजूरी आदेश से भी स्पष्ट हो सकता है, यदि यह अत्यंत व्यापक है, क्योंकि मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को मंजूरी आदेश में बताया जा सकता है। हालांकि, प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में, अदालत को यह पता लगाना होगा कि क्या संबंधित मंजूरी प्राधिकारी

की ओर से उसके समक्ष रखी गई सामग्री पर दिमाग लगाया गया है। यह इस कारण से आवश्यक है कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी पर यह दायित्व है कि वह मामले के महत्वपूर्ण तथ्यों की पूरी जानकारी होने के बाद ही मंजूरी देने या रोकने के अपने कर्तव्य का निर्वहन करे। मंजूरी देना केवल औपचारिकता नहीं है। इसलिए, जनहित और जिस अभियुक्त के खिलाफ मंजूरी मांगी गई है, उसे उपलब्ध संरक्षण को ध्यान में रखते हुए मंजूरी के संबंध में प्रावधानों का पूरी सख्ती के साथ पालन किया जाना चाहिए।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मंजूरी अभियोजन के लिए जिम्मेदारी उठाती है। इसलिए, यह एक कटु प्रक्रिया नहीं है, बल्कि एक गंभीर और पवित्र कार्य है जो सरकारी कर्मचारी को तुच्छ अभियोजन के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करता है। इसके अलावा, यह कष्टप्रद अभियोजन को हतोत्साहित करने का एक हथियार है और निर्दोष के लिए एक सुरक्षा है, हालांकि ये दोषियों के लिए ढाल भी नहीं है।

सामग्री पर विचार करने का अर्थ है दिमाग का प्रयोग। इसलिए, मंजूरी के आदेश में प्रथम दृष्टया यह खुलासा होना चाहिए कि मंजूरी देने वाले प्राधिकारी ने उसके समक्ष रखे गए साक्ष्य और अन्य सामग्री पर विचार किया था। प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में, अभियोजन पक्ष को प्रमुख साक्ष्य द्वारा अदालत को स्थापित और संतुष्ट करना होता है कि उन तथ्यों को मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था और प्राधिकरण ने उस पर अपना दिमाग लगाया था। यदि स्वीकृति आदेश से यह संकेत मिलता है कि सभी प्रासंगिक

सामग्री अर्थात् प्राथमिकी, प्रकटीकरण बयान, फ़र्द बरामदगी, आरोप पत्र और रिकॉर्ड पर अन्य सामग्री मंजूरी प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थी और यदि मंजूरी आदेश के पाठ से यह स्पष्ट है कि मंजूरी प्राधिकारी ने सभी सामग्री का अवलोकन किया है, तो ये निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मंजूरी कानून के अनुसार दी गई थी। यह उस स्थिति में आवश्यक हो जाता है जब न्यायालय को अन्य बातों के साथ-साथ मंजूरी के आदेश की वैधता की जांच इस आधार पर करनी है कि आदेश दिमाग के गैर-उपयोग के दोष से ग्रस्त है।

8. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, कानूनी प्रस्तावों को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

(क) अभियोजन पक्ष को प्रथम सूचना रिपोर्ट, प्रकटीकरण विवरण, गवाहों के बयान, फ़र्द बरामदगी, प्रारूप आरोप पत्र और अन्य सभी संगत सामग्री सहित संस्वीकृत प्राधिकारी को संपूर्ण संगत रिकार्ड भेजना चाहिए। इस प्रकार भेजे गए रिकार्ड में वह सामग्री/दस्तावेज, यदि कोई हो, भी शामिल होना चाहिए जो शेष प्रकरण को अभियुक्त के पक्ष में झुका सकता है और जिसके आधार पर सक्षम प्राधिकारी मंजूरी देने से मना कर सकता है।

(ख) प्राधिकरण को मंजूरी देने या रोकने के अपने कर्तव्य का निर्वहन करते समय अभियोजन पक्ष द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किए गए संपूर्ण रिकार्ड की पूर्ण और सजगता से संवीक्षा करनी होती है और मंजूरी प्रदान करने से पूर्व सभी संगत तथ्यों पर विचार करते हुए

स्वतंत्र रूप से अपना दिमाग लगाना होता है और सभी संगत तथ्यों पर विचार करना होता है।

(ग) मंजूरी प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग कड़ाई से जनहित और उस अभियुक्त, जिसके विरुद्ध स्वीकृति मांगी गई है, को उपलब्ध संरक्षण को ध्यान में रखते हुए किया जाना होता है।

(घ) स्वीकृति के आदेश से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्राधिकरण को सभी संगत तथ्यों/सामग्रियों की जानकारी थी और उसने सभी संगत सामग्री पर अपना दिमाग लगाया था।

(ङ) प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में, अभियोजन पक्ष को प्रमुख साक्ष्य द्वारा न्यायालय को यह स्थापित और संतुष्ट करना होता है कि संस्वीकृति प्राधिकारी के समक्ष संपूर्ण संगत तथ्यों को रखा गया था और प्राधिकारी ने उस पर अपना दिमाग लगाया था और यह कि मंजूरी कानून के अनुसार दी गई थी।

11. पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त एक प्राधिकरण द्वारा स्वतंत्र समीक्षा के संबंध में प्रावधान का उद्देश्य, अधिनियम 1967 के कड़े प्रावधानों के दुरुपयोग को रोकना है। इस प्रकार, 1967 की धारा 45 की उपधारा (1) और (2) के स्वर अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं।

12. मनसुखलाल विठ्ठलदास चौहान बनाम गुजरात राज्य (1997) 7 एस.सी.सी. 622 के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा करते हुए, उन्होंने पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-38 और 39 का उल्लेख किया है। पूर्वोक्त निर्णय के पैरा-38 और 39 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"38. सचिवालय फ़ाइल की नोटिंग से, प्रदर्श-70 में निहित, साथ ही सचिव और अवर सचिव द्वारा किए गए परस्पर विरोधी बयान से, यह वास्तव में मंजूरी दी जो के रूप में धारण करने के लिए संभव नहीं है। गुजरात उच्च न्यायालय ने माना है कि उप सचिव, श्री लाडे (अ०सा०-8) द्वारा मंजूरी दी गई थी, इस तथ्य की अनदेखी करते हुए कि फाइल सचिव के समक्ष भी रखी गई थी और उन्होंने उस पर अपने हस्ताक्षर भी किए थे। स्वीकार की गई फाइल को मुख्यमंत्री के कार्यालय में भेज दिया गया था जहां से इसे 30 जनवरी, 1985 को वापस प्राप्त किया गया था और इसलिए यह समझ में नहीं आता कि 23 जनवरी, 1985 को मंजूरी कैसे दी जा सकती है। यह भ्रम भी उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का परिणाम प्रतीत होता है कि मंजूरी एक महीने के भीतर दी जानी चाहिए। विभाग के प्रमुख होने के नाते सचिव ने शपथ पर कहा कि उन्होंने मंजूरी दे दी थी, विशेष रूप से इसलिए कि परमादेश उन्हें निर्देशित किया गया था और उन्हें उस निर्देश का पालन करना था, उप सचिव, जिन्होंने वास्तव में मंजूरी का आदेश जारी किया था, ने इस पर हस्ताक्षर किए थे और इसलिए, उन्होंने मंजूरी को कुबूल किया और कहा कि उन्होंने अभियोजन को

मंजूरी दे दी है। दोनों ने यह प्रदर्शित करने की कोशिश की कि उन्होंने उच्च न्यायालय द्वारा जारी परमादेश का ईमानदारी से पालन किया था और अपनी जान बचाने का प्रयास किया था। इस प्रक्रिया में, मंजूरी की वैधता और तर्क-संगतता को नष्ट कर दिया, जिसके फलस्वरूप अपीलकर्ता के अभियोजन का आधार बना, जिसके परिणामस्वरूप पूरी कार्यवाही शुरू से ही शून्य हो गई।

39. सामान्यतः जब स्वीकृति आदेश को असत्य माना जाता है, तो मामले को मामले पर पुनः विचार करने और विधि के अनुसार मंजूरी का एक नया आदेश पारित करने के लिए प्राधिकारी को वापस भेज दिया जाता है। लेकिन प्रस्तुत मामले में, घटना वर्ष 1983 की है और इसलिए, चौदह साल बीत जाने के बाद, हमारी राय में, यह निर्देश देना उचित नहीं होगा कि कार्यवाही फिर से मंजूरी के चरण से शुरू की जाए ताकि अपीलकर्ता को मुकदमेबाजी की एक और पारी में उजागर किया जा सके और उसे संविधान के अनुच्छेद 21 के जनादेश के विपरीत अनिश्चित काल के लिए लंबे समय तक मुकदमा चलाया जा सके, जो, जीवन के अधिकार के एक हिस्से के रूप में, एक त्वरित परीक्षण के माध्यम से प्रारंभिक और आपराधिक कार्यवाही के तौर पर देखता है।

13. पूर्वोक्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने कहा कि यह पुराना स्थापित कानून है कि एक बार जब यह पाया जाता है कि मंजूरी कानून के अनुसार नहीं है, तो मामले को मामले पर पुनर्विचार करने और नया आदेश पारित करने के लिए प्राधिकरण को वापस भेजा जाना

चाहिए, लेकिन प्रस्तुत मामले में, कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव के विपरीत, लगभग 11 से 12 साल बीतने के बाद भी, दिनांक 03-08-2010 के आदेश को आगे जांच-पड़ताल के माध्यम से वैधकृत किया गया है और इस प्रकार अनुपूरक आरोप पत्र और पुनरीक्षा आदेश दायर किया गया है।

14. अपने तर्क का समापन करते हुए, उन्होंने तर्क दिया कि अधिनियम 1967 की धारा 25 की उपधारा (2) में परिकल्पित अभियोजन के लिए मंजूरी भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (इसके बाद 'अधिनियम 1947' के रूप में संदर्भित) की धारा 19 के तहत प्रदान किए गए अभियोजन के लिए मंजूरी के प्रावधान से महत्वपूर्ण रूप से अलग है। उन्होंने आगे कहा कि कड़े कानून को देखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि विधायिका का इरादा विशेष रूप से प्रावधानों को रखने के लिए बहुत स्पष्ट था कि 'इस तरह के प्राधिकरण की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही', अधिकारी अभियोजन के लिए मंजूरी के संबंध में निर्णय लेंगे और यह प्रावधान 'अधिनियम, 1947' में नहीं दिया गया है। इस प्रकार, दोनों प्रावधान समान नहीं हैं और अधिनियम 1947 के प्रावधानों पर विचार करते हुए निर्णय का कोई भी अनुपात प्रस्तुत मामले में लागू नहीं होगा। इसलिए, उपरोक्त सत्र परीक्षण की पूरी कार्यवाही सहित दिनांक 3.8.2010 और 2.2.2022 के आदेश कानून की नजर में खराब हो जाते हैं और इस प्रकार, इसे रद्द किया जाना चाहिए।

15. इसके विपरीत, राज्य की ओर से पेश अधिवक्ता श्री शिव नाथ तिलाहारी ने पूर्वोक्त

का पूरी दृढ़ता के साथ विरोध किया है और कहा कि आवेदकों के अधिवक्ता ने वास्तविक तथ्य और कानून को तोड़ने-मरोड़ने की कोशिश की है और अपने तरीके से इसकी व्याख्या की है। वह प्रस्तुत करते हैं कि अधिनियम 1967 की धारा 45 का प्रावधान अपने अर्थ में बहुत स्पष्ट है और यह अनिवार्य है कि धारा 45 की उपधारा (1) के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी ऐसे समय के भीतर दी जाएगी जो केंद्र या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों की रिपोर्ट पर विचार करते हुए निर्धारित की जा सकती है, जिन्होंने जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों की स्वतंत्र रूप से समीक्षा की होगी और फिर यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार को सिफारिश की जानी है।

16. वह आगे प्रस्तुत करते हैं कि जांच एजेंसी के पास आगे की जांच द्वारा सबूत इकट्ठा करने की शक्ति है और यहां तक कि विचारण न्यायालय द्वारा पूर्व अनुमति की भी आवश्यकता नहीं है। जांच एजेंसी ने दिनांक 2.2.2022 के पत्र सहित पूरक केस डायरी दायर की और उस पर विचारण न्यायालय द्वारा विचार किया गया क्योंकि कानून के तहत इसकी अनुमति है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि मुकदमे के दौरान अभियोजन के लिए मंजूरी की अस्वीकृति पर विचार किया जा सकता है और यह भी प्रस्तुत किया कि 'अवैध मंजूरी' और 'मंजूरी की अनुपस्थिति' के बीच महत्वपूर्ण अंतर है। वह प्रस्तुत करते हैं कि यह स्थापित कानून है कि मंजूरी की अनुपस्थिति को प्रारंभ में ही देखा जा सकता है, लेकिन जहां तक मंजूरी की वैधता का संबंध

है, यह मुकदमे की विषय वस्तु है और जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, यह स्वीकार्य रूप से, यह मंजूरी की अनुपस्थिति का मामला नहीं है जैसा कि स्पष्ट रूप से अभियोजन की मंजूरी दी गई है और, इसलिए, यह ऐसा चरण नहीं है जहां कथित रूप से अवैध मंजूरी को चुनौती दी जा सकती है। 17. अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, उन्होंने (2020) 17 एस.सी.सी. 664, केंद्रीय जांच ब्यूरो और एक अन्य बनाम धीरेंद्र कुमार अग्रवाल और अन्य में रिपोर्ट किए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है और उपरोक्त निर्णय के पैरा-11 पर संदर्भित किया है। उपर्युक्त निर्णय के पैरा-11 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है: -

"11. इसके अलावा, अभियोजन के लिए मंजूरी की वैधता से संबंधित मुद्दे पर केवल मुकदमे के दौरान विचार किया जा सकता था क्योंकि अनिवार्य रूप से उच्च न्यायालय द्वारा निष्कर्ष दोषपूर्ण मंजूरी के संबंध में है, क्योंकि उच्च न्यायालय के अनुसार, स्पष्टीकरण के लिए अवसर प्रदान करने की प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप मंजूरी दोषपूर्ण होगी। उस संबंध में, दिनेश कुमार बनाम अध्यक्ष, भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण, (2012)1 एस.सी.सी. 532 के मामले में निर्णय जिस पर अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा भरोसा किया गया था, प्रासंगिक होगा क्योंकि इसमें यह माना गया है कि मंजूरी की अनुपस्थिति और दिमाग के गैर-आवेदन के कारण कथित अमान्यता के बीच अंतर है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मंजूरी की अनुपस्थिति को प्रारंभ में ही

आक्षेपित किया जा सकता है, लेकिन मंजूरी की अमान्यता को मुकदमे के दौरान उठाया जाना है। तात्कालिक तथ्यों में, स्वीकार्य रूप से एक मंजूरी है, हालांकि अभियुक्त मंजूरी दिए जाने के तरीके में कमियां निकालना चाहते हैं और दावा करते हैं कि यह दोषपूर्ण है जो मुकदमे में विचार किया जाने वाला मामला है।

18. पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, उन्होंने कहा कि पूर्वोक्त निर्णय का अनुपात बहुत स्पष्ट है कि मुकदमे के दौरान अभियोजन के लिए मंजूरी की वैधता पर विचार किया जा सकता है और 'मंजूरी की अनुपस्थिति' और 'मंजूरी की अमान्यता' के बीच अंतर भी किया गया है, जिसमें दिमाग का आवेदन न करना भी शामिल है। उन्होंने आगे कहा कि यह एक ऐसा मामला है जहां आवेदकों पर भारत सरकार के खिलाफ युद्ध छेड़ने का आरोप लगाया गया है और इस प्रकार, यह गंभीर चिंता का विषय है और इसलिए, जहां तक अधिनियम, 1967 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का संबंध है, कोई उदार व्याख्या नहीं की जा सकती है।

19. वह अंत में प्रस्तुत करते हैं कि इस बिंदु पर कानून बहुत स्पष्ट है और यह मामला 'मंजूरी की अनुपस्थिति' का नहीं है और यदि 'अभियोजन के लिए मंजूरी' में कोई अमान्यता या दोष है, तो आवेदकों के पास विचारण न्यायालय के समक्ष इसे उठाने का अवसर है विचारण के समय, इसलिए, प्रस्तुत करना यह है कि प्रस्तुत आवेदन खारिज करने योग्य है।

20. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के

बाद, प्रश्न यह है कि क्या 3.8.2010 को दी गई पहली मंजूरी और बाद में, दिनांक 2.2.2022 के समीक्षा आदेश के माध्यम से पूरक, अभियोजन की वैध मंजूरी है या नहीं। प्रारंभ में, जब अभियोजन के लिए स्वीकृति मांगी गई थी, राज्य सरकार ने दिनांक 3-8-2010 के आदेश द्वारा आवेदकों के संबंध में अभियोजन चलाने की मंजूरी प्रदान कर दी थी। मामला आगे बढ़ा और उसके बाद, विवेचनाधिकारी ने आगे की जांच शुरू की और विचारण न्यायालय के समक्ष एक पूरक केस डायरी प्रस्तुत की गई, जिसमें समीक्षा प्राधिकरण के दिनांक 2.2.2022 के आदेश की प्रति संलग्न की गई और इस प्रकार, आगे सवाल यह है कि धारा 173(8) द०प्र०स० के तहत शक्तियां प्राप्त करने के माध्यम से, क्या जांच के अंतराल/कमियों को भरने के लिए आगे की जांच की जा सकती है।

21. आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों से यह स्पष्ट होता है कि 3.8.2010 को राज्य द्वारा अभियोजन की पहली मंजूरी दी गई थी। जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, अभियोजन की मंजूरी के संबंध में प्रावधान अधिनियम 1967 की धारा 45(1) और 45(2) में निहित हैं, जिसमें प्रावधान का अधिदेश यह है कि अभियोजन की मंजूरी के समय, ऐसी मंजूरी देने वाला प्राधिकरण, केंद्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकरण की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ही कार्यवाही करेगा। आवेदकों के अधिवक्ता का तर्क यह है कि दिनांक 03-08-2010 को स्वीकृति प्राधिकारी के समक्ष केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्राधिकारी की कोई

रिपोर्ट नहीं थी क्योंकि समीक्षा प्राधिकारी की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा दिनांक 3-8-2010 को दी गई पहली मंजूरी के बाद की गई थी और आगे यह निवेदन है कि अधिनियम, धारा 45(2) 1967 का उपबंध राज्य अधिनियम, धारा 19 अधिनियम 1947 के उपबंधों के समान नहीं है।

22. राज्य के तर्क का सार यह है कि अभियोजन की मंजूरी दी गई है और वह भी अधिनियम 1967 के प्रावधान के अनुरूप है। इसके अलावा, चूंकि मामले पर आरोप तय करने के बाद कार्यवाही की गई थी और यह स्वीकार्य है कि अभियोजन के लिए मंजूरी का आदेश है, इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि मंजूरी का अभाव है और यदि कोई अमान्यता है, जिसे इस स्तर पर उठाया जा रहा है, तो विचारण न्यायालय द्वारा इसकी जांच की जा सकती है।

23. जब इस न्यायालय ने तथ्यों और कानून के आधार पर इस मामले की जांच की, तो यह समझने योग्य है कि जांच एजेंसी के पास निस्संदेह आगे की जांच को आगे बढ़ाने की शक्ति है और कानून के तहत इस तरह की जांच को आगे बढ़ाने के लिए पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। बेशक, यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय का भी बार-बार विचार रहा है, इसलिए, आदेश 2.2.2022 को संलग्न करने वाली पूरक केस डायरी को विवेचनाधिकारी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष सही तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

24 जहां तक समीक्षा प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश दिनांक 2.2.2022 का संबंध है, यह

मामला वर्ष 2010 से संबंधित है और लगभग 12 वर्ष बीत चुके हैं। इसके अलावा, यह तय है कि मंजूरी देना केवल एक प्रशासनिक कार्य है और मंजूरी देने वाले प्राधिकारी को पहले इस बात से संतुष्ट होना आवश्यक है कि अधिनियम और तथ्य अपराध का गठन करेंगे, और अब 12 वर्ष बीत जाने के बाद, आवेदकों और दूसरे पक्ष को मुकदमों की एक और पारी के लिए रखने और मुकदमे को अनिश्चित काल तक लंबित रखने के लिए मंजूरी प्रदान करने की कार्यवाही शुरू करना न्यायसंगत और उचित नहीं होगा।

25. यह प्रतिपादित किया गया है कि 'मंजूरी की अनुपस्थिति' और 'मंजूरी की अमान्यता' के बीच अंतर है। मंजूरी के अभाव को शुरुआत में ही उठाया जा सकता है और आक्षेपित किया जा सकता है लेकिन मंजूरी की अमान्यता या अवैधता को परीक्षण के दौरान उठाया जाना है।

26. बेशक, मंजूरी 3.8.2010 को दी गई थी और इस प्रकार, प्रथम दृष्टया यह मंजूरी की अनुपस्थिति का मामला नहीं है, लेकिन आवेदकों-आरोपी व्यक्तियों ने अभियोजन के लिए मंजूरी देने में कुछ अवैधता और अमान्यता उठाई है और वे तीन हैं। सबसे पहले, मंजूरी देने के समय समीक्षा प्राधिकरण अस्तित्व में नहीं था; दूसरे, मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष कोई सामग्री नहीं थी; और तीसरा, धारा 173(8) कमियों को दूर करने के लिए लक्षित नहीं है। सभी याचिकाएं मंजूरी के आक्षेपित आदेश में आने वाली अमान्यता के संबंध में हैं। जैसा कि पिछले पैरा में चर्चा की गई है, प्रस्तुत मामला मंजूरी के अभाव का

मामला नहीं है और यदि मंजूरी के आदेश में कोई कथित अमान्यता व्याप्त है, तो उसे विचारण न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है/चुनौती दी जा सकती है।

27. उपरोक्त प्रस्तुतियों और चर्चाओं के मद्देनजर, इस न्यायालय को इस आवेदन में कोई योग्यता नहीं मिलती है।

28. नतीजतन, आवेदन एतद्वारा खारिज कर दिया गया है।

29. हालांकि, आवेदक-आरोपी व्यक्ति संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष मंजूरी की अमान्यता, यदि कोई हो, के संबंध में अपनी शिकायत उठाने के लिए स्वतंत्र हैं।

(2023) 4 ILRA 1370

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

सिविल विविध समीक्षा आवेदन दोषपूर्ण संख्या

5 / 2022

जय सिंह

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: राज विक्रम सिंह,
व्यक्तिगत रूप से

अधिवक्ता विपक्षीगण:

सिविल कानून- समीक्षा आवेदन-याचिका पर
तर्क करने वाले वकील के अतिरिक्त किसी

अन्य अधिवक्ता द्वारा दायर किया गया-
अभ्यास की अवहेलना की गई-समीक्षा आवेदन
को निरस्त करने का वैध आधार-अन्यथा भी
आवेदन में योग्यता का अभाव है-अभिलेख को
देखने पर कोई त्रुटि स्पष्ट नहीं है-संशोधित
उप-विधियों की प्रयोज्यता की तर्क, जो रिट
न्यायालय के समक्ष कभी नहीं प्रस्तुत की गई-
समीक्षा आवेदन में पहली बार कोई सुने जाने
का तर्क-पोषणीय नहीं-समीक्षा आवेदन का
दायरा बहुत सीमित है-समीक्षा आवेदन निरस्त
की गई। (पैरा 23, 24 और 27)

निर्णय: टी.एन. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड (उपरोक्त) में
माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तथा उत्तर
प्रदेश राज्य एगो इंडस्ट्रियल कॉरपोरेशन
लिमिटेड बनाम अनिल कुमार मिश्रा और
विनीता भटनागर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया
(उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित
कानून के अनुसार, विपक्षी संख्या 4 तेज
नारायण सोनी द्वारा श्री राज विक्रम सिंह,
अधिवक्ता के माध्यम से दायर समीक्षा
आवेदन, जिन्होंने रिट कार्यवाही में दलीलें
दायर नहीं की थीं और जिन्होंने किसी भी स्तर
पर विपक्षी संख्या 4 तेज नारायण सोनी की
ओर से तर्क नहीं दी थीं तथा जिन्होंने रिट
याचिका में अपना वकालतनामा तब दायर
किया था जब रिट न्यायालय के समक्ष कुछ
भी लंबित नहीं था, पर विचार नहीं किया जा
सकता है तथा इसे केवल इसी आधार पर
निरस्त किया जा सकता है। (पैरा 23)

आवेदन निरस्त (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

- 1.टी.एन. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम एन. राजू रेड्डीर, (1997) 9 एससीसी 736
2. समीक्षा याचिका दोषपूर्ण संख्या 281/2008 जिसका शीर्षक यू.पी. स्टेट एग्री इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम अनिल कुमार मिश्रा है, निर्णय दिनांक 30.03.2012
3. विनीता भटनागर बनाम भारत संघ 2018 एससीसी ऑनलाइन सभी 6411

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

सी.एम आवेदन संख्या-1 वर्ष 2022 पर आदेश:

1. यह समीक्षा आवेदन दाखिल करने में देरी की माफी के लिए एक आवेदन है। आवेदन एक हलफनामे द्वारा समर्थित है, जिसमें देरी के कारणों को पर्याप्त रूप से समझाया गया है।
2. तदनुसार, आवेदन की अनुमति दी जाती है। समीक्षा आवेदन को स्थानांतरित करने में देरी, यदि कोई हो, एतद्वारा माफ की जाती है। समीक्षा आवेदन के जापन पर आदेश:
3. प्रस्तुत आवेदन रिट-सी संख्या-13864 वर्ष 2019 में माननीय न्यायमूर्ति श्री न्यायमूर्ति पंकज कुमार जायसवाल और माननीय न्यायमूर्ति जसप्रीत सिंह से मिलकर इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 29.08.2019 की समीक्षा के लिए दायर किया गया है, जिसमें पक्षों की सारणी के निम्नलिखित विवरण हैं: -

"जय सिंह पुत्र के. एस. आर्य, निवासी हाउस नंबर-बी-216, राजाजीपुरम, लखनऊ..... प्रार्थी

बनाम

1. उत्तर प्रदेश राज्य अपने प्रमुख सचिव आवास एवं नगरीय नियोजन के माध्यम से उ०प्र० सचिवालय (सरकार), तृतीय तल, बापू भवन, लखनऊ।
2. आवास आयुक्त, उ०प्र० आवास विकास परिषद 104 महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ
3. अधिशासी अभियंता, निर्माण खंड -12, द्वितीय तल, वृंदावन योजना तेलीबाग, लखनऊ
4. तेज नारायण सोनी पुत्र अज्ञात निवासी हाउस संख्या-बी 218, राजाजीपुरम लखनऊ..... प्रतिपक्षी
4. समीक्षा आवेदन के साथ कोई वकालतनामा दायर नहीं किया गया है और सारणी में, यह उल्लेख किया गया है कि "वकालतनामा पहले से ही रिकॉर्ड पर है"। श्री राज विक्रम सिंह एडवोकेट ने प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी की ओर से 03.01.2022 को I.A. No. 22 वर्ष 2022 के साथ रिट-सी संख्या-13864 वर्ष 2019 में अपना वकालतनामा दायर किया था, जिसे एक हलफनामे द्वारा समर्थित किया गया था जिसमें कहा गया था कि पहले उन्होंने सुश्री पुष्पिला बिष्ट, एडवोकेट के माध्यम से एक पुनरीक्षण आवेदन दायर किया था और इस मामले में श्री जयदीप नारायण माथुर, वरिष्ठ अधिवक्ता ने बहस की थी कि प्रतिपक्षी संख्या-4 ने उन दोनों को शुल्क का भुगतान किया था और अब वह एक समीक्षा आवेदन दायर करना चाहता था, जिसके लिए उसने श्री राज विक्रम सिंह, एडवोकेट को

लगाया है। श्री राज विक्रम सिंह एडवोकेट के पक्ष में वकालतनामा तब दायर किया गया था जब रिट याचिका के साथ-साथ जय सिंह द्वारा बाद में दायर समीक्षा आवेदन और प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी द्वारा दायर आदेश दिनांक 31.08.2021 के संशोधन/वापस लेने के लिए एक आवेदन पहले ही तय हो चुका था और इस न्यायालय के समक्ष कुछ भी लंबित नहीं था।

5. श्री. जय सिंह, जिन्हें समीक्षा याचिका में गलत तरीके से याचिकाकर्ता के रूप में वर्णित किया गया है, ने इस न्यायालय के समक्ष प्रारंभिक आपत्ति उठाई कि उन्होंने समीक्षा आवेदन दायर नहीं किया है और उन्हें गलत तरीके से समीक्षा आवेदक के रूप में वर्णित किया गया है।

6. 07.04.2022 को श्री. प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी के अधिवक्ता राज विक्रम सिंह ने पक्षकारों की सारणी को सही करने के लिए एक आवेदन दायर करने के लिए समय मांगा था। उन्होंने पक्षकारों के ज्ञापन में सुधार के लिए आवेदन दायर कर पुनरीक्षण आवेदन में तेज नारायण सोनी का नाम आवेदक के रूप में उल्लेख करने की अनुमति मांगी। उपरोक्त आवेदन को दिनांक 25.07.2022 के एक आदेश के माध्यम से अनुमति दी गई थी और दस दिनों के भीतर आवश्यक सुधार करने का निर्देश जारी किया गया था। हालांकि, प्रतिपक्षी संख्या-4 के अधिवक्ता तेज नारायण सोनी ने समीक्षा आवेदन के ज्ञापन में सुधार को शामिल नहीं किया और समीक्षा याचिका में उल्लिखित याचिकाकर्ता का विवरण अभी भी 'जय सिंह'

है। समीक्षा आवेदन की सुनवाई के दौरान भी, जब श्री द्वारा इस आशय की आपत्ति उठाई गई थी। प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी के अधिवक्ता जय सिंह ने पक्षकारों की सारणी में आवश्यक सुधार करने के लिए उन्हें दिए गए समय के विस्तार के लिए कोई अनुरोध नहीं किया। इसलिए, जैसा कि तैयार किया गया है, समीक्षा आवेदन, दिनांक 25.07.2022 के आदेश का पालन न करके गैर-अभियोजन के लिए खारिज किए जाने योग्य है।

7. हालांकि, हम न्याय के हित में इसकी योग्यता के आधार पर समीक्षा की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

8. उपरोक्त रिट याचिका याचिकाकर्ता जय सिंह द्वारा दायर की गई थी, जिसमें उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद को प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी के घर में उठाए गए अवैध निर्माणों को ध्वस्त करने के लिए निर्देश देने की मांग की गई थी।

9. आवास एवं विकास परिषद ने रिट याचिका में एक जवाबी हलफनामा दायर किया था जिसमें कहा गया था कि निर्माण के कुछ हिस्सों को अधिकारियों द्वारा शमनीय के रूप में चिह्नित किया गया था और कुछ अन्य हिस्सों को शमन मैप में गैर-शमनीय के रूप में चिह्नित किया गया था। समीक्षा आवेदक ने एक शमन मैप प्रस्तुत किया था और परिषद ने पहले ही संरचना के शमनीय और गैर-शमनीय भागों के बारे में संकेत दिया था। यदि प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी गैर-शमनीय संरचना को ध्वस्त करने और शमन

शुल्क का भुगतान करने में विफल रहता है, तो परिषद उसके खिलाफ उचित कार्रवाई करेगी।

10. रिट याचिका में प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी ने श्री के पक्ष में निष्पादित वकालतनामा दायर करके उपस्थित हुए थे। सुरेश कुमार सिंह और श्री. उमेश सिंह एडवोकेट। इसके बाद उन्होंने श्री बल्केश्वर श्रीवास्तव और श्री. पंकज कुमार श्रीवास्तव एडवोकेट की सेवाओं को सम्बद्ध किया। उन्होंने श्री बालकेश्वर श्रीवास्तव, एडवोकेट के माध्यम से जवाबी हलफनामा दायर किया था।

11. उपरोक्त दलीलों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने 29.08.2019 के एक आदेश के माध्यम से रिट याचिका का निपटारा किया था, जिसमें कहा गया था कि यह मामला परिषद द्वारा लिया जा रहा था और इस स्तर पर, न्यायालय उस हिस्से को ध्वस्त करने के लिए कोई आदेश या निर्देश पारित करने के लिए इच्छुक नहीं था जो गैर-शमनीय है और इस न्यायालय ने अपनी उम्मीद को रिकॉर्ड किया था कि परिषद कानून के अनुसार उचित निर्णय लेगी।

12. उपरोक्त आदेश को श्री जय सिंह - याचिकाकर्ता ने रिट सी संख्या-13864 वर्ष 2019 में समीक्षा आवेदन संख्या-153668 वर्ष 2019 दाखिल करके चुनौती दी थी। समीक्षा आवेदन देरी के साथ दायर किया गया था और प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी ने श्री के माध्यम से समीक्षा आवेदन को खारिज करने के लिए समीक्षा आवेदन दायर करने में देरी के लिए आवेदन को अस्वीकार करने के लिए एक

आवेदन दायर किया था। पंकज कुमार श्रीवास्तव, अधिवक्ता और उपरोक्त अधिवक्ता के माध्यम से एक पूरक प्रति-शपथ पत्र भी दायर किया गया था।

13. उपरोक्त समीक्षा याचिका को दिनांक 31.08.2021 के एक आदेश के माध्यम से यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था कि दिनांक 29.08.2019 के आदेश में रिकॉर्ड पर स्पष्ट कोई त्रुटि नहीं थी। हालांकि, समीक्षा आवेदन को खारिज करते हुए इस न्यायालय ने कहा कि एक बार प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी द्वारा एक वचन दिया गया था कि वह अवैध रूप से निर्मित भवन के गैर-शमनीय हिस्से को हटा देगा, तो उस उपक्रम को उसके द्वारा माना जाएगा और वह तुरंत अवैध निर्माण को हटा देगा। इस न्यायालय ने आगे कहा कि चूंकि प्रतिपक्षी संख्या-4 ने उक्त निर्माण को नहीं हटाया है, इसलिए आवास विकास परिषद अवैध निर्माण को तुरंत हटा देगी जो गैर-शमनीय है और प्रतिपक्षी संख्या-4 को निर्माण को हटाने का कोई और अवसर नहीं दिया जाएगा।

यद्यपि, पूर्वोक्त आदेश द्वारा समीक्षा याचिका को खारिज कर दिया गया था, न्यायालय ने निर्देश दिया कि न्यायालय के समक्ष की गई कार्रवाई रिपोर्ट प्रस्तुत की जाए।

14. 16.09.2021 को प्रतिपक्षी संख्या-4 श्री. तेज नारायण सोनी ने सी.एम.एन.न. दायर की। 120260 वर्ष 2021 श्री के माध्यम से। पंकज कुमार श्रीवास्तव, रिट याचिका में पारित दिनांक 31.08.2021 के आदेश के संशोधन/वापस लेने के लिए अधिवक्ता, इस हद तक कि यह आवास विकास परिषद को

अवैध निर्माण को तुरंत हटाने का निर्देश देता है जो गैर-शमनीय है।

15. इसके बाद प्रतिपक्षी संख्या-4 ने सुश्री पुष्पिला बिष्ट एडवोकेट को नियुक्त किया, जिन्होंने श्री जे.एन. माथुर वरिष्ठ अधिवक्ता की सहायता की। दिनांक 31.08.2021 के आदेश के संशोधन/वापस लेने के लिए उपरोक्त आवेदन की सुनवाई के समय, प्रतिपक्ष संख्या-4 तेज नारायण सोनी की ओर से यह प्रस्तुत किया गया था कि दिनांक 31.08.2021 के आदेश में यह प्रावधान किया गया था कि अनधिकृत निर्माण जिसे हटाया जा सकता है, उसे हटाया जाना है, इसलिए, उसने निर्माण को हटा दिया है जिसे हटाया जा सकता है और अनधिकृत निर्माण का वह हिस्सा जिसे हटाया नहीं जा सकता है, नहीं हटाया गया अन्यथा पूरी इमारत ढह जाएगी।

16. दिनांक 31.08.2021 के आदेश के संशोधन/वापस लेने के लिए उपरोक्त आवेदन को दिनांक 29.09.2021 के एक आदेश के माध्यम से यह कहते हुए खारिज कर दिया गया था कि "एक बार अनधिकृत निर्माण को हटाने के लिए एक वचन दिया गया था और अनधिकृत निर्माण को नहीं हटाया गया था, आवास एवं विकास परिषद जो समग्र नियंत्रण प्राधिकरण है, को अवैध निर्माण को हटाने का निर्देश दिया गया है। हमने 31.08.2021 के आदेश को संशोधित करने का कोई कारण दर्ज नहीं किया है क्योंकि हम किसी भी अनधिकृत निर्माण को जारी रखने की अनुमति नहीं दे सकते हैं।

17. प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी ने विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या-13769 वर्ष 2021 दायर करके उपरोक्त आदेश दिनांक 31.08.2021 को चुनौती दी। उपरोक्त एस.एल.पी. के लिए सुनवाई के समय, उनका प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय के समक्ष दिए गए वचन के संदर्भ में जो कुछ भी ध्वस्त किया जा सकता है, उसे पहले ही ध्वस्त कर दिया गया है और संशोधन के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष एक उपयुक्त आवेदन दायर किया जाएगा। इसके बाद, उपरोक्त एस.एल.पी. को बिना किसी अन्य उपाय का लाभ उठाने के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई स्वतंत्रता दिए बिना 08.02.2022 को वापस ले लिया गया मानकर खारिज कर दिया गया है।

18. उपरोक्त एस.एल.पी. के लंबित रहने के दौरान, प्रस्तुत आवेदन 10.01.2022 को प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी द्वारा श्री राज विक्रम सिंह, एडवोकेट के माध्यम से दायर किया गया था, जिसमें दिनांक 29.08.2019 के आदेश की समीक्षा की मांग की गई थी।

19. टी.एन विद्युत बोर्ड बनाम एन राजू रेड्डीर, (1997) 9 एस.सी.सी. 736 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामले के निर्णय के बाद लगातार आवेदन दायर करने की प्रथा, और वह भी अलग-अलग अधिवक्ताओं को नियुक्त करके, को खारिज कर दिया। उपरोक्त निर्णय को नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

"1. यह एक दुखद तमाशा है कि एक नई प्रथा अशोभनीय है और पेशे के योग्य या अनुकूल नहीं है। एडवोकेट-ऑन-रिकॉर्ड श्री मरियापुथम ने, जब विशेष अनुमति याचिका दायर की गई थी, याचिकाकर्ता-प्रतिपक्षी के लिए वकालतनामा दायर किया था। मामले के निपटारे के बाद, श्री वी बालचंद्रन, अधिवक्ता ने समीक्षा के लिए याचिका दायर की थी। उसे भी इस न्यायालय ने 24-4-1996 को खारिज कर दिया था। एक अन्य अधिवक्ता श्री एस.यू.के. सागर को अब "स्पष्टीकरण के लिए आवेदन" के रूप में वर्तमान आवेदन दायर करने के लिए लगाया गया है, इस दलील पर कि आदेश साफ और स्पष्ट नहीं है। जब एक अपील/विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी जाती है, दुर्लभ मामलों को छोड़कर जहां कानून या तथ्य की त्रुटि रिकॉर्ड पर स्पष्ट है, कोई समीक्षा दायर नहीं की जा सकती है; वह भी एडवोकेट-ऑन-रिकॉर्ड द्वारा, जो न तो मुख्य मामले में उपस्थित हुए और न ही पक्षकार थे। यह ध्यान देने योग्य है कि अदालत किसी मामले का फैसला करने में बहुमूल्य समय व्यतीत करती है। पुनर्विचार याचिका गुण-दोष के आधार पर मामले की फिर से सुनवाई का प्रयास नहीं है और न ही होना चाहिए। दुर्भाग्य से, यह हाल के दिनों में, इस तरह की समीक्षा याचिकाओं को एक दिनचर्या के रूप में दायर करने का एक अभ्यास बन गया है; वह भी अधिवक्ता बदलने के साथ, पहले चरण में एडवोकेट-ऑन-रिकॉर्ड की सहमति प्राप्त किए बिना। यह 'बार' के स्वस्थ अभ्यास के लिए अनुकूल नहीं है, जिस पर पेशे की हितकारी प्रथा को बनाए रखने की जिम्मेदारी है। सी.ए. संख्या-1867 वर्ष 1992 में समीक्षा याचिका संख्या-2670 वर्ष 1996

में, तीन न्यायाधीशों की एक पीठ, जिसमें हम में से एक, के रामास्वामी न्यायमूर्ति सदस्य थे, ने निम्नानुसार अवधारित किया था:

"अपील के रिकॉर्ड से संकेत मिलता है कि श्री सुदर्शन मेनन एडवोकेट-ऑन-रिकॉर्ड थे जब अपील पर सुनवाई की गई और गुण-दोष के आधार पर फैसला किया गया। समीक्षा याचिका श्री प्रबीर चौधरी द्वारा दायर की गई है जो अपील की सुनवाई के समय न तो बहस करने वाले अधिवक्ता थे और न ही बहस के समय उपस्थित थे। यह अज्ञात है कि उन्होंने किस आधार पर पुनर्विचार याचिका में आधार लिखा है जैसे कि यह हमारे आदेश के खिलाफ अपील की फिर से सुनवाई है। उन्होंने समीक्षा के दायरे तक ही सीमित नहीं रखा। इस तरह के अभ्यास की अनुमति देना पेशे के हित में नहीं होगा। इसके अलावा, उन्होंने अपील में एडवोकेट-रिकॉर्ड से 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्राप्त नहीं किया है, इस तथ्य के बावजूद कि रजिस्ट्री ने उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता के बारे में सूचित किया था। 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' दाखिल करना उनके रिकॉर्ड में आने का आधार होगा। अन्यथा, एडवोकेट-ऑन-रिकॉर्ड न्यायालय के प्रति जवाबदेह है। पूर्ववर्ती अधिवक्ता से 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्राप्त करने में विफलता ने उन्हें समीक्षा याचिका दायर करने के लिए अयोग्य बना दिया है। अन्यथा भी, समीक्षा याचिका में कोई योग्यता नहीं है। यह गुण-दोष के आधार पर मामले पर फिर से बहस करने का प्रयास है।

इन आधारों पर हम पुनर्विचार याचिका खारिज करते हैं।

2. एक बार समीक्षा के लिए याचिका खारिज हो जाने के बाद, स्पष्टीकरण के लिए कोई

आवेदन दायर नहीं किया जाना चाहिए, एडवोकेट-ऑन-रिकॉर्ड के परिवर्तन के साथ तो बिल्कुल भी नहीं। अधिवक्ताओं को बदलने और बार-बार याचिकाएं दायर करने की इस प्रथा की कानून प्रशासन की शुद्धता और हितकारी और स्वस्थ अभ्यास के लिए सख्ती से निंदा की जानी चाहिए।

3. आवेदन को 20,000 रुपये के अनुकरणीय जुर्माने के साथ खारिज किया जाता है क्योंकि यह स्वस्थ अभ्यास के अपमान में अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। यह राशि आज से चार महीने के भीतर सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सहायता सेवा समिति को दी जानी चाहिए। यदि राशि का भुगतान नहीं किया जाता है, तो इसे सर्वोच्च न्यायालय कानूनी सेवा समिति द्वारा न्यायालय की डिक्री के रूप में मानते हुए वसूला जाना चाहिए। रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की सूचना सर्वोच्च न्यायालय की कानूनी सेवा समिति को दे।

20. पुनरीक्षण याचिका में दोषपूर्ण सं.- 281 वर्ष 2008 शीर्षक से उत्तर प्रदेश राज्य कृषि औद्योगिक निगम लिमिटेड बनाम अनिल कुमार मिश्रा 30.03.2012 को फैसला सुनाया, इस न्यायालय ने बाद में लगे अधिवक्ता द्वारा दायर एक समीक्षा याचिका को खारिज कर दिया। पूर्वोक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"वरिष्ठ अधिवक्ता श्री उमेश चंद्रा ने प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि तमिलनाडु बिजली बोर्ड और अन्य बनाम एन राजू रेड्डियार और अन्य

(1997)9 सर्वोच्च न्यायालय केस 736 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर, समीक्षा याचिका सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि श्री मनोज सिंह, अधिवक्ता जिन्होंने समीक्षा याचिका दायर की है, न तो समीक्षा याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता के रूप में पेश हुए और न ही रिट याचिका में उनकी ओर से बहस की इसलिए, समीक्षा याचिका सुनवाई योग्य नहीं है, अतः ये उक्त आधार पर खारिज की जा सकती है। प्रस्तुत मामले में कानून के उपरोक्त स्थापित प्रस्ताव को लागू करते हुए, मुझे रिट याचिका संख्या-1827 (एस.एस) वर्ष 1997 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 3.12.2004 की समीक्षा के लिए प्रश्न में मामले में समीक्षा याचिकाकर्ता द्वारा लिया गया कोई अच्छा आधार और कारण नहीं मिलता है, और तमिलनाडु विद्युत बोर्ड और अन्य बनाम एन राजू रेड्डियार और अन्य उच्चतम न्यायालय के मामले 736, खारिज किए जाने योग्य हैं।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय के बाद विनीता भटनागर बनाम भारत संघ 2018 एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 6411 में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने निर्णय दिया कि: - "यह अच्छी तरह से तय है कि एक समीक्षा याचिका एक अधिवक्ता द्वारा दायर नहीं की जानी चाहिए थी, जिसने मामले में बहस नहीं की है, लेकिन उसी अधिवक्ता द्वारा दायर किया जाना चाहिए था जिसने पहले मामले में बहस की है। टीएन इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड बनाम एन राजू रेड्डियार (1997) 9 एस.सी.सी. 736 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अधिवक्ता द्वारा मामले पर

बहस करने और दूसरे अधिवक्ता द्वारा समीक्षा करने की प्रथा की निंदा की है और कहा है कि समीक्षा आवेदन उसी अधिवक्ता द्वारा दायर किया जाना चाहिए था जिसने मामले में बहस की है।

22. प्रस्तुत मामले में भी, पहले समीक्षा याचिकाकर्ता ने शुरू में श्री सुरेश कुमार सिंह और श्री. उमेश सिंह एडवोकेट को नियुक्त किया था। इसके बाद उन्होंने श्री बल्केश्वर श्रीवास्तव और श्री. पंकज कुमार श्रीवास्तव एडवोकेट को नियुक्त कर लिया था। उन्होंने श्री बालकेश्वर श्रीवास्तव के माध्यम से जवाबी हलफनामा दायर किया था। श्री जय सिंह - रिट सी संख्या-13864 वर्ष 2019 में याचिकाकर्ता ने समीक्षा आवेदन संख्या-153668 वर्ष 2019 दायर किया था और प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी ने समीक्षा याचिका दायर करने में देरी की माफी के लिए आवेदन की अस्वीकृति के लिए एक आवेदन दायर किया था, समीक्षा आवेदन को खारिज करने के लिए एक आवेदन और श्री पंकज कुमार श्रीवास्तव, एडवोकेट के माध्यम से एक पूरक जवाबी हलफनामा दायर किया था। 16.09.2021 को, प्रतिपक्षी संख्या-4 श्री तेज नारायण सोनी ने सी.एम.एन.न. दाखिल किया था। 120260 वर्ष 2021 श्री पंकज कुमार श्रीवास्तव, के माध्यम से रिट याचिका में पारित आदेश दिनांक 31.08.2021 के संशोधन/वापस लेने के लिए दाखिल किया। इसके बाद प्रतिपक्षी संख्या-4 ने सुश्री पुष्पिला बिष्ट एडवोकेट को नियुक्त किया, जिन्होंने श्री एन. माथुर वरिष्ठ अधिवक्ता की सहायता की। दिनांक 31.08.2021 के आदेश के

संशोधन/वापस लेने के आवेदन को दिनांक 29.09.2021 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था। प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी ने विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या-13769 वर्ष 2021 दायर करके उपरोक्त आदेश दिनांक 31.08.2021 को चुनौती दी, लेकिन उपरोक्त एस.एल.पी. के लंबित रहने के दौरान, 10.01.2022 को प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी ने श्री राज विक्रम सिंह, अधिवक्ता के माध्यम से प्रस्तुत आवेदन दायर किया, जिसमें आदेश दिनांक 29.08.2019 की समीक्षा की मांग की गई।

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा टी.एन विद्युत बोर्ड (उपरोक्त) में और इस न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य कृषि औद्योगिक निगम लिमिटेड बनाम अनिल कुमार मिश्रा और विनीता भटनागर बनाम भारत संघ (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के मद्देनजर, श्री राज विक्रम सिंह के माध्यम से प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी अधिवक्ता द्वारा दायर समीक्षा आवेदन, जिसने रिट कार्यवाही में दलीलें दायर नहीं की थीं और जिन्होंने किसी भी स्तर पर प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी की ओर से प्रस्तुतियाँ नहीं दी थीं और जिन्होंने रिट याचिका में अपना वकालतनामा दायर किया था जब रिट न्यायालय के समक्ष कुछ भी लंबित नहीं था, पर विचार नहीं किया जा सकता है और इसे अकेले इस आधार पर खारिज किया जा सकता है।

24. इसके अलावा, इससे पहले प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी ने रिट याचिका

में पारित आदेश दिनांक 31.08.2021 के संशोधन/वापस लेने के लिए एक आवेदन दायर किया था, जिसे दिनांक 29.09.2021 के एक आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था। प्रतिपक्षी संख्या-4 तेज नारायण सोनी ने विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या-13769 वर्ष 2021 दायर करके उपरोक्त आदेश दिनांक 31.08.2021 को चुनौती दी और उपरोक्त एस.एल.पी. को 08.02.2022 को वापस ले लिया गया मानकर, बिना किसी अन्य उपाय का लाभ उठाने के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कोई स्वतंत्रता दिए बिना, खारिज कर दिया गया। सार रूप में, समीक्षा याचिका में की गई प्रार्थना वही है जो आदेश के संशोधन/वापस लेने के लिए आवेदन में की गई थी। इस कारण से भी, टीएन विद्युत बोर्ड (उपरोक्त) में निर्धारित कानून के मद्देनजर समीक्षा याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए कि "एक बार समीक्षा के लिए याचिका खारिज हो जाने के बाद, स्पष्टीकरण के लिए कोई आवेदन दायर नहीं किया जाना चाहिए, एडवोकेट-ऑन-रिकॉर्ड के परिवर्तन के साथ तो बिल्कुल भी नहीं। अधिवक्ताओं को बदलने और बार-बार याचिकाएं दायर करने की इस प्रथा को कानून के प्रशासन की शुद्धता और हितकारी और स्वस्थ अभ्यास के लिए सख्ती से खारिज किया जाना चाहिए।

25. हालांकि, हम यह पता लगाने के लिए समीक्षा याचिका की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि क्या समीक्षा याचिका

खारिज होने से न्याय की कोई हानि/विफलता होगी।

26. समीक्षा याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा दबाया गया पहला आधार यह है कि रिट याचिका के याचिकाकर्ता को कोई स्थान नहीं मिला है क्योंकि वह मकान संख्या-216 का पंजीकृत मालिक नहीं है। यह याचिका पहली बार समीक्षा याचिका में उठाए जाने के लिए खुली नहीं है क्योंकि एक समीक्षा भेस में एक पुनर्सुनवाई नहीं है।

27. समीक्षा क्षेत्राधिकार का दायरा अब पुनः एकीकृत नहीं है और यह निर्णयों की एक श्रृंखला के माध्यम से अच्छी तरह से तय किया गया है और इसे निम्नलिखित तरीके से विनीता भटनागर बनाम भारत संघ (उपरोक्त) संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है: -

"3. समीक्षा के लिए एक आवेदन को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से मामले पर बहस करने का अवसर नहीं माना जा सकता है। समीक्षा आवेदन की आड़ में मामले के गुण-दोष के आधार पर फिर से बहस की अनुमति नहीं दी जा सकती।

4. तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 1372 में न्यायालय ने कहा:

"एक समीक्षा किसी भी तरह से भेस में अपील नहीं है जिससे एक गलत निर्णय को फिर से सुना और सही किया जाता है,

लेकिन केवल पेटेंट त्रुटि के लिए झूठ बोलता है।

5. अरिबम तुलेश्वर शर्मा बनाम अरिबम पिशाक शर्मा, (1979) 4 एस.सी.सी. 389 में न्यायालय ने कहा:

"... संविधान के अनुच्छेद 226 में ऐसा कुछ नहीं है जो किसी उच्च न्यायालय को पुनवलोकन की शक्ति का प्रयोग करने से रोकता हो, जो न्याय के गर्भपात को रोकने या उसके द्वारा की गई गंभीर और स्पष्ट त्रुटियों को ठीक करने के लिए पूर्ण क्षेत्राधिकार वाले प्रत्येक न्यायालय में निहित है। लेकिन, समीक्षा की शक्ति के प्रयोग की निश्चित सीमाएं हैं। समीक्षा की शक्ति का प्रयोग नए और महत्वपूर्ण मामले या साक्ष्य की खोज पर किया जा सकता है, जो उचित परिश्रम के अभ्यास के बाद समीक्षा की मांग करने वाले व्यक्ति के ज्ञान में नहीं था या उस समय उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था जब आदेश दिया गया था; इसका प्रयोग किया जा सकता है जहां रिकॉर्ड पर कुछ स्पष्ट गलती या स्पष्ट त्रुटि पाई जाती है; इसका प्रयोग किसी भी समान आधार पर भी किया जा सकता है। लेकिन, इसका प्रयोग इस आधार पर नहीं किया जा सकता है कि निर्णय गुण-दोष के आधार पर गलत था। यह अपील की अदालत का प्रांत होगा। पुनरीक्षण की शक्ति को अपीलीय शक्तियों के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए जो अपीलीय न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई सभी प्रकार की त्रुटियों को ठीक करने में सक्षम बना सकती हैं।

6. फिर से, मीरा भांजा बनाम निर्मला कुमारी चौधरी (1995) 1 एस.सी.सी. 170 में अभिराम तालेश्वर शर्मा बनाम अभिराम पिशाक शर्तन (उपरोक्त) से उपरोक्त मार्ग को अनुमोदन के साथ उद्धृत करते हुए, न्यायालय ने एक बार फिर कहा कि नवीनीकरण कार्यवाही अपील के माध्यम से नहीं है और इसे आदेश XLVII के दायरे और दायरे तक सख्ती से सीमित किया जाना चाहिए, नियम 1, सी.पी.सी.

7. पारशन देवी बनाम सुमित्री देवी, (1997) 8 एस.सी.सी. 715 में यह माना गया था कि एक त्रुटि, जो स्वयं स्पष्ट नहीं है और तर्क की प्रक्रिया द्वारा पता लगाया जाना है, शायद ही रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि कहा जा सकता है जो न्यायालय को समीक्षा क्षेत्राधिकार के प्रयोग में समीक्षा की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए उचित ठहराता है।

8. राजेंद्र कुमार बनाम रामबाई, (2002) 48 ए.एल.आर. 331 (एस.सी.) में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय की समीक्षा के समय न्यायिक हस्तक्षेप के सीमित दायरे के बारे में देखा है और कहा है:

"समीक्षा की शक्ति के प्रयोग पर सीमाएं अच्छी तरह से तय हैं। एक समीक्षा याचिका पर विचार करने की पहली और सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता यह है कि आदेश, जिसकी समीक्षा की मांग की गई है, आदेश स्पष्ट रूप से किसी भी त्रुटि से ग्रस्त है और आदेश को खड़े रहने की अनुमति देने से न्याय की विफलता होगी। ऐसी किसी भी त्रुटि के अभाव में, निर्णय/आदेश से जुड़ी अंतिमता को बाधित नहीं किया जा सकता है।

9. इस प्रकार, समीक्षा भेस में अपील नहीं है। समीक्षा की आइ में मामले की फिर से सुनवाई की अनुमति नहीं है। यह सामान्य नियम का अपवाद है कि एक बार निर्णय पर हस्ताक्षर या उच्चारण करने के बाद, इसे बदला नहीं जाना चाहिए। लिली थॉमस बनाम भारत संघ (2000) 6 एस.सी.सी. 224: ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 1650 में, न्यायालय ने कहा कि समीक्षा की शक्ति का प्रयोग गलती के सुधार के लिए किया जा सकता है न कि एक नए को प्रतिस्थापित करने के लिए। ऐसी शक्तियों का प्रयोग शक्ति के प्रयोग से संबंधित कानून की सीमाओं के भीतर किया जा सकता है। पूर्वोक्त दृष्टिकोण को इंद्रचंद्र जैन बनाम मोतीलाल (2009) 76 ए.एल.आर. 782 (एस.सी.) में दोहराया गया है। कमलेश वर्मा बनाम मायावती, (2013) 8 एस.सी.सी. 320 में न्यायालय ने कहा:

"19. समीक्षा कार्यवाही अपील के माध्यम से नहीं है और इसे सीपीसी के नियम-1 के आदेश XLVII के दायरे तक सख्ती से सीमित होना चाहिए। समीक्षा क्षेत्राधिकार में, निर्णय के दृष्टिकोण से केवल असहमति उसी को लागू करने का आधार नहीं हो सकती है। जब तक बिंदु पहले से ही निपटा दिया जाता है और उत्तर दिया जाता है, तब तक पक्ष इस आक्षेपित निर्णय को चुनौती देने के हकदार नहीं हैं कि समीक्षा क्षेत्राधिकार के तहत एक वैकल्पिक दृष्टिकोण संभव है।

सिद्धांतों का सारांश:

20. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, समीक्षा के निम्नलिखित आधार, कानून द्वारा निर्धारित बनाए रखने योग्य हैं:

20.1. समीक्षा कब बनाए रखी जाएगी:

(i) नए और महत्वपूर्ण मामले या साक्ष्य की खोज, जो उचित परिश्रम के प्रयोग के बाद, याचिकाकर्ता के ज्ञान में नहीं था या उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था;

(ii) रिकॉर्ड पर स्पष्ट गलती या त्रुटि;

(iii) कोई अन्य पर्याप्त कारण।

छज्जू राम बनाम नेकी, ए.आई.आर. 1922 पी.सी. 112 में "कोई अन्य पर्याप्त कारण" शब्द की व्याख्या की गई है और मोरन मार बेसेलियोस कैथोलिकोस बनाम मोस्ट रेव मार पौलोज अथानासियस, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 526 में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है, जिसका अर्थ है "नियम में निर्दिष्ट लोगों के अनुरूप कम से कम आधार पर पर्याप्त कारण"। इन्हीं सिद्धांतों को यूनियन ऑफ इंडिया बनाम संदूर मैंगनीज एंड आयरन ऑरेस लिमिटेड (2013) 8 एस.सी.सी. 337 में दोहराया गया है

22.2. समीक्षा कब बनाए रखने योग्य नहीं होगी:

(i) पुराने और खारिज किए गए तर्क की पुनरावृत्ति निष्कर्ष वाले अधिनिर्णयों को फिर से खोलने के लिए पर्याप्त नहीं है।

(ii) असंगत आयात की छोटी-मोटी चूकें।

(iii) पुनरीक्षण कार्यवाहियों को मामले की मूल सुनवाई के बराबर नहीं माना जा सकता।

(iv) समीक्षा तब तक अनुरक्षणीय नहीं है जब तक कि आदेश में प्रकट होने वाली वास्तविक त्रुटि इसकी तार्किकता को कम न कर दे, या इसके परिणामस्वरूप न्याय की हानि/विफलता न हो जाए।

(v) एक समीक्षा किसी भी तरह से भेस में अपील नहीं है जिसके तहत एक गलत निर्णय को फिर से सुना जाता है और सही किया जाता है लेकिन केवल पेटेंट त्रुटि के लिए निहित होता है।

(vi) इस विषय पर केवल दो मतों की संभावना समीक्षा का आधार नहीं हो सकती।

(vii) अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि ऐसी त्रुटि नहीं होनी चाहिए जिसे ढूंढकर खोजना पड़े।

(viii) अभिलेख में साक्ष्य का मूल्यांकन पूर्णतः अपीलीय न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आता है, इसे पुनर्विचार याचिका में प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

(ix) समीक्षा बनाए रखने योग्य नहीं है जब मुख्य मामले पर बहस के समय मांगी गई उसी राहत को अस्वीकार कर दिया गया था।

28. समीक्षा के दायरे के संबंध में कानून के आलोक में प्रस्तुत मामले के तथ्यों की जांच करते हुए, हम पाते हैं कि रिट याचिका के याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या-13864 (एमबी) वर्ष 2019 दायर करके इस न्यायालय के समक्ष कुछ तथ्य लाए और जवाबी हलफनामा आमंत्रित करने के बाद, यह न्यायालय संतुष्ट था कि वर्तमान समीक्षा याचिकाकर्ता द्वारा कुछ अवैध निर्माण किए

गए हैं - जिनमें से कुछ शमनीय हैं और कुछ गैर-शमनीय हैं और रिट याचिका को बिना कोई निर्देश जारी किए निपटाया गया, केवल यह उम्मीद व्यक्त करते हुए कि परिषद कानून के अनुसार निर्णय लेगी। पूर्वोक्त रिट याचिका का याचिकाकर्ता मकान संख्या-216 का मालिक है या नहीं, इससे समीक्षा याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए ढांचे की वैधता या अन्यथा पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा और हमें कोई त्रुटि नहीं मिलती है। एक ऐसी त्रुटि के बारे में क्या कहना है जो रिकॉर्ड पर स्पष्ट है। दिनांक 29.08.2019 के आदेश में रिट याचिका का निपटारा करते हुए परिसर को ध्वस्त करने के लिए कोई निर्देश जारी किए बिना जो गैर-शमनीय है और केवल एक उम्मीद दर्ज कर रहा है कि परिषद कानून के अनुसार उचित निर्णय लेगी।

29. समीक्षा आवेदक के अधिवक्ता द्वारा बल दिया गया दूसरा आधार यह है कि पहले शमन उप-नियम 2010 लागू थे, जिसके लिए एक बड़े क्षेत्र को सेट-बैक के रूप में छोड़ने की आवश्यकता थी, जिसमें साइड सेट-बैक और बैक सेट-बैक शामिल थे। वर्ष 2020 में, एक नई शमन योजना तैयार की गई है, जिसके तहत साइड सेट-बैक और रियर सेट-बैक की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचाराधीन निर्माण संशोधित योजना के तहत शमनीय हैं और इसे ध्वस्त नहीं किया जा सकता है।

30. उपरोक्त प्रस्तुतियों का उत्तर देते हुए, उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद के अधिवक्ता

श्री रत्नेश चंद्र ने प्रस्तुत किया है कि संशोधित नियमों के संचालन पर रिट-सी संख्या-15757 वर्ष 2020 में इलाहाबाद में बैठे इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 07.10.2020 के आदेश के माध्यम से रोक लगा दी गई है। श्री चंद्र ने बहुत ही निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया है कि संशोधित योजना के तहत, समीक्षा आवेदन कुछ लाभों के हकदार होंगे क्योंकि संशोधित नियमों के तहत शमनीय क्षेत्र गैर-संशोधित नियमों के तहत तुलना में बड़ा होगा।

31. जैसा भी हो, याचिकाकर्ता ने पहले ही रिट सी संख्या-1362 वर्ष 2022 दायर कर दिया है और 05.03.2022 को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने उस रिट याचिका में निम्नलिखित आदेश पारित किया है: -

पीठ ने कहा, "तदनुसार, हमारी राय में याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनर्विचार याचिका पर जल्द से जल्द सुनवाई की जरूरत है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता को ध्यान में रखते हुए, हम यह प्रदान करना उचित समझते हैं कि लिस्टिंग की अगली तारीख तक, दिनांक 02.03.2022 के आक्षेपित नोटिस के अनुसार, मकान संख्या-बी-218, सेक्टर 17, राजाजीपुरम, लखनऊ के संबंध में कोई विध्वंस/बेदखली नहीं होगी।

32. इस प्रकार, दिनांक 02.03.2022 के विध्वंस नोटिस की वैधता रिट सी संख्या-1362 वर्ष 2022 में इस न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है और याचिकाकर्ता को पहले ही उपरोक्त रिट याचिका में अंतरिम संरक्षण प्रदान किया जा चुका है और इन

आधारों को रिट सी संख्या-13684 वर्ष 2019 में पारित दिनांक 29.08.2019 के आदेश के लिए समीक्षा के आधार के रूप में नहीं उठाया जा सकता है, जिसमें समीक्षा याचिकाकर्ता ने एक जवाबी हलफनामा दायर किया था और संबंधित नियमों में संशोधन की दलील नहीं उठाई गई थी और इसलिए, इस न्यायालय ने उस याचिका पर फैसला नहीं किया है। इस न्यायालय की एक याचिका पर फैसला करने में विफलता, जिसे उठाया नहीं गया है, को रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि नहीं कहा जा सकता है।

33. जैसे, पक्षों की ओर से की गई प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद, हम खुद को समीक्षा याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों से सहमत होने में असमर्थ पाते हैं और हमें रिट सी संख्या-13864 वर्ष 2019 में पारित आदेश दिनांक 29.08.2019 में रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि तो दूर, सिर से कोई त्रुटि नहीं मिलती है।

34. पुनरीक्षण याचिका/आवेदन में योग्यता का अभाव है और इसे तदनुसार खारिज किया जाता है।

(2023) 4 ILRA 1380

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 1292/2021

रवि शंकर सैनी एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता आवेदक: श्री मुक्तेश्वर मिश्र, श्री अभय नाथ मिश्र

अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए., श्री ओंकार सिंह

आपराधिक कानून-धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन- कार्यवाही को निरस्त करना-धारा 498 ए, 323, 504, 506 आईपीसी और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत-पक्षकारों के मध्य समझौता विलेख निष्पादित-उनके बीच सभी वाद की वापसी-हिंदू विवाह अधिनियम, 1956 की धारा 13 बी के तहत आपसी तलाक के लिए याचिका पारिवारिक न्यायालय के समक्ष लंबित है-पक्षकारों के बीच समझौते के अनुसार छह माह की कूलिंग ऑफ अवधि माफ-चुनौती के तहत आपराधिक कार्यवाही निरस्त-आवेदन को अनुमति दी गई।

आयोजित:

उपर्युक्त तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए, आवेदकों की ओर से विद्वान अधिवक्ता, विपरीत पक्ष संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान एजीए ने तर्क दिया कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है यदि यह न्यायालय प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फैजाबाद को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 138 के तहत दायर याचिका को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर: एआईआर 2017 एससी 4417 और प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या 392/2019 में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित आगे का आदेश: शालिनी मैसी बनाम नीरज सैमुअल दास, निर्णय दिनांक 07.01.2020 के अनुसार छह महीने की कूलिंग ऑफ अवधि को क्षमा करते हुए अल्प अवधि के भीतर शीघ्रता

से तय करने का निर्देश दे। उन्होंने आगे तर्क दिया कि कूलिंग ऑफ अवधि का प्रावधान अनिवार्य नहीं है, बल्कि एक निर्देशिका प्रावधान है और पारिवारिक न्यायालय जहां हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत याचिका लंबित है, छह महीने की अवधि को माफ कर सकता है क्योंकि पक्षों ने न्यायिक अलगाव का निर्णय किया है।

आवेदन स्वीकृत. (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर: एआईआर 2017 एससी 4417
2. प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या 392/2019: शालिनी मैसी बनाम नीरज सैमुअल दास, निर्णय दिनांक 07.01.2020

(माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद, द्वारा प्रदत्त)

आवेदकों के अधिवक्ता श्री मुक्तेश्वर मिश्रा, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री ओंकार सिंह और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

धारा 482 द०प्र०स० के तहत यह आवेदन सिविल जज (जूनियर डिवीजन) चौथा, फैजाबाद द्वारा आपराधिक मामला संख्या-04 वर्ष 2021 में पारित आक्षेपित सम्मन आदेश दिनांक 05.01.2021, जो केस अपराध संख्या-103 वर्ष 2020, धारा 498ए, 323, 504, 506 भ०द०वि० और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत, थाना-राम जन्म भूमि,

जिला अयोध्या से उद्धभूत है और आक्षेपित आरोप पत्र के साथ-साथ सिविल जज (जूनियर डिवीजन) फैजाबाद की अदालत में लंबित उपरोक्त आपराधिक मामला संख्या-04 वर्ष 2021 की कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

इस न्यायालय के आदेश दिनांक 14-03-2023 के अनुपालन में आवेदक संख्या-1 रविशंकर सैनी और प्रतिपक्षी संख्या-2 श्रीमती ममता सुमन अपनी नाबालिग बेटी दीप्ति सैनी के साथ इस अदालत के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हैं। उनकी पहचान उनके संबंधित अधिवक्ताओं द्वारा की जाती है।

आवेदक संख्या-1 रविशंकर सैनी ने पंजाब नेशनल बैंक के 7,00,000/- रुपये के मूल दस्तावेज की प्रति दिनांक 10-03-2023 को 140963 और स्टेट बैंक, शाखा उर्दू बाजार, गोरखपुर के 3,00,000/- रुपये के सावधि जमा (एफ.डी.) के मूल प्रमाण पत्र की प्रति भी दीप्ति सैनी के नाम से उनकी मां श्रीमती ममता सुमन की संरक्षकता के तहत सौंप दी है। प्रतिपक्षीकार संख्या-2 श्रीमती ममता सुमन को उनके अधिवक्ता श्री ओंकार सिंह के माध्यम से आज न्यायालय में निपटान के लिए एक बार अंतिम गुजारा भत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया। उपरोक्त ड्राफ्ट और सावधि जमा प्रमाण पत्र की प्राप्तियों को रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

आवेदक संख्या-1 रविशंकर सैनी ने इस अदालत के समक्ष कहा कि वह गैड आई-10 कार को वापस करने के लिए तैयार है, जो उसे

प्रतिपक्षी संख्या-2 श्रीमती ममता सुमन से अच्छी स्थिति में उपहार के रूप में मिली थी। आवेदक संख्या-1 रविशंकर सैनी और प्रतिपक्षी संख्या-2 ममता सुमन ने भी इस अदालत के समक्ष कहा है कि वे एक-दूसरे या उनके परिवार के सदस्यों के खिलाफ दायर अपने दीवानी या फौजदारी मामलों को वापस ले लेंगे।

आवेदकों के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि इस न्यायालय के दिनांक 14.03.2023 के आदेश के अनुपालन में, दोनों पक्ष समझौता विलेख के सत्यापन के लिए 27.03.2023 को वरिष्ठ रजिस्ट्रार, उच्च न्यायालय, लखनऊ बेंच, लखनऊ के समक्ष उपस्थित हुए। वरिष्ठ रजिस्ट्रार, उच्च न्यायालय, लखनऊ बेंच, लखनऊ ने 27.3.2023 को समझौता विलेख को सत्यापित किया और दिनांक 27.3.2023 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"माननीय न्यायालय के आदेश दिनांक 14-03-2023 के अनुसार, दोनों पक्षों को समझौता विलेख के सत्यापन के लिए आज अधोहस्ताक्षरी के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था। उक्त समझौता विलेख अनुबंध सं 3ए-1 से सीएम आवेदन संख्या-आईए 9 वर्ष 2023 के रूप में संलग्न है।

आज, याचिकाकर्ताओं, अर्थात् (1) रविशंकर सैनी पुत्र राजेंद्र प्रसाद सैनी, (2) राजेंद्र सैनी पुत्र स्वर्गीय गुलाब चंद्र सैनी, (3) श्रीमती लक्ष्मी सैनी पत्नी राजेंद्र सैनी और (4) श्रीमती रोमा सैनी पत्नी प्रवीण सैनी अपने अधिवक्ता श्री मुक्तेश्वर मिश्रा, अधिवक्ता और प्रतिपक्षी

संख्या-2 श्रीमती ममता सुमन पत्नी रविशंकर सैनी पुत्र नंद लाल सुमन अपने अधिवक्ता श्री ओंकार सिंह अधिवक्ता के साथ मेरे समक्ष उपस्थित हैं। दोनों अधिवक्ताओं का वकालतनामा रिकॉर्ड में है। पहचान का प्रमाण यानी आधार कार्ड सत्यापन के समय दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

उक्त समझौता विलेख की सामग्री को पढ़ा गया है और दोनों पक्षों को समझौता विलेख के बारे में समझाया गया है और उन्होंने कहा है कि उन्होंने अपनी स्वतंत्र इच्छा के अनुसार इसे निष्पादित किया है और इसके प्रतीक के रूप में उन्होंने अपनी तस्वीरें चिपका दी हैं, दायें हाथ का निशानी अंगूठा और हस्ताक्षर लगाए हैं, जो उनके संबंधित अधिवक्ताओं द्वारा विधिवत सत्यापित हैं।

उक्त तथ्यों के मददेनजर, याचिकाकर्ताओं अर्थात् (1) रविशंकर सैनी पुत्र राजेंद्र प्रसाद सैनी, (2) राजेंद्र सैनी पुत्र स्वर्गीय गुलाब चंद्र सैनी, (3) श्रीमती लक्ष्मी सैनी पत्नी राजेंद्र सैनी और (4) श्रीमती रोमा सैनी पत्नी प्रवीण सैनी और प्रतिपक्षी संख्या-2 श्रीमती ममता सुमन पत्नी रविशंकर सैनी पत्नी नंद लाल सुमन के बीच हुए समझौते का सत्यापन मेरे द्वारा आज यानी 27 मार्च 2023 को किया जा रहा है।

रिपोर्ट आदेशों के लिए माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

आवेदकों के अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करते हैं कि इस न्यायालय के आदेश दिनांक 14.3.2023 के अनुपालन में पक्षों ने 21.3.2023 को प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फैजाबाद की अदालत में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत

एक याचिका दायर की है, इसकी प्रमाणित प्रति इस न्यायालय को दी गई है, जिसे रिकॉर्ड में लिया गया है।

इस प्रकार, पक्षकारों ने पहले ही समझौता कर लिया है और समझौते की शर्तों को वरिष्ठ रजिस्ट्रार, उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ, लखनऊ द्वारा 27-03-2023 को सत्यापित किया जा चुका है और पक्षकारों ने पहले ही 21-03-2023 को प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फैजाबाद की अदालत में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13बी के तहत एक याचिका दायर कर दी है।

उपर्युक्त तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए, आवेदकों के अधिवक्ता, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें कोई आपत्ति नहीं है यदि यह न्यायालय प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फैजाबाद को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 बी के तहत दायर याचिका पर शीघ्र ही निर्णय लेने का निर्देश दे सकता है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के मददेनजर छह महीने की कूलिंग ऑफ अवधि को माफ कर दिया जाए। अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर: ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 4417 का मामला और प्रथम अपील दोषपूर्ण संख्या-392 वर्ष 2019: शालिनी मैसी बनाम नीरज सैमुअल दास में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित अगला आदेश, 07.01.2020 को तय किया गया। वे आगे प्रस्तुत करते हैं कि कूलिंग ऑफ पीरियड का प्रावधान अनिवार्य नहीं है, लेकिन एक निर्देशिका प्रावधान है और फैमिली न्यायालय जहां हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत याचिका लंबित है,

छह महीने की अवधि को माफ कर सकता है क्योंकि पक्षों ने न्यायिक अलगाव का फैसला किया है।

चूंकि पक्षकारों के बीच विवाद लगभग सुलझ गया है और उनके अलगाव के लिए केवल कानूनी बाधा डाली जा रही है, इस प्रकार प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फैजाबाद की अदालत में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत दायर याचिका की कार्यवाही में देरी करने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

राज्य के लिए प्रतिपक्षी संख्या-2 और अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि पक्षों के बीच विवाद पहले ही समझौते के माध्यम से सुलझाया जा चुका है और समझौता विलेख को वरिष्ठ रजिस्ट्रार, उच्च न्यायालय, लखनऊ बेंच, लखनऊ द्वारा सत्यापित किया गया है, इसलिए उन्हें कोई आपत्ति नहीं है यदि निचली अदालत के समक्ष लंबित पूर्वोक्त मामले की कार्यवाही को रद्द कर दिया जाता है।

तदनुसार, पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों के साथ-साथ पक्षकारों के बयानों और ऊपर उल्लिखित निर्णय के मददेनजर, प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, फैजाबाद को एतद्वारा निर्देश दिया जाता है कि वह हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत दोनों पक्षों द्वारा दायर याचिका में कानून के अनुसार शीघ्र निर्णय लें और आदेश पारित करें। अमरदीप सिंह (उपरोक्त) में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और शालिनी मैसी (उपरोक्त) में पारित इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले को देखते हुए, किसी

भी पक्ष को कोई अनावश्यक स्थगन दिए बिना, जब तक कि कुछ कानूनी बाधा न हो या जब तक कि उच्च न्यायालय द्वारा मामले की कार्यवाही पर रोक लगाने का कोई आदेश पारित न हो।

आवेदक संख्या-1 रविशंकर सैनी को निर्देश दिया जाता है कि वह शादी के समय प्राप्त गैंग आई-10 कार को उपहार के रूप में प्रतिपक्षी संख्या-2 श्रीमती को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-ख के अधीन डिक्री पारित करने के 15 दिनों के भीतर अच्छी स्थिति में वापस करे।

यह भी निर्देश दिया जाता है कि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत डिक्री पारित होने के 15 दिनों के भीतर दोनों पक्षों द्वारा एक-दूसरे या उनके परिवार के सदस्यों के खिलाफ दायर किसी भी दीवानी या फौजदारी मामले को वापस ले लिया जाएगा।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-ख के अंतर्गत डिक्री पारित होने के बाद पक्षकार अपना स्वतंत्र जीवन जीने के लिए मुक्त हैं। आवेदक संख्या-1 रविशंकर सैनी प्रत्येक माह के चौथे रविवार को सुबह 10.00 बजे से दोपहर 1.00 बजे के बीच अपनी नाबालिग बेटी दीप्ति सैनी से मिलने के लिए स्वतंत्र है। ममता सुमन उनकी मुलाकात में कोई बाधा नहीं डालेंगी।

उपरोक्त के मददेनजर, धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत आवेदन की अनुमति दी जाती है और सिविल जज (जूनियर डिवीजन) चौथा, फैजाबाद द्वारा आपराधिक मामला संख्या-04 वर्ष 2021 में आपराधिक अपराध संख्या-04 वर्ष 2021 में पारित

आक्षेपित सम्मन आदेश दिनांक 05.01.2021, धारा 498A, 323, 504, 506 भ०द०वि० और 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के तहत, थाना-राम जन्म भूमि, जिला अयोध्या और आक्षेपित आरोप पत्र के साथ-साथ सिविल जज (जूनियर डिवीजन) 4, फैजाबाद की अदालत में लंबित उपरोक्त आपराधिक मामला संख्या-04 वर्ष 2021 की कार्यवाही को, जहां तक यह आवेदकों से संबंधित है, रद्द किया जाता है।

पक्षकार उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की आधिकारिक वेबसाइट से डाउनलोड किए गए ऐसे आदेश की कंप्यूटर जनित प्रति या उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की रजिस्ट्री से जारी प्रमाणित प्रति दाखिल करेंगे।

संबंधित न्यायालय/प्राधिकरण/अधिकारी उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की आधिकारिक वेबसाइट से आदेश की ऐसी कम्प्यूटरीकृत प्रति की प्रामाणिकता को सत्यापित करेगा और लिखित रूप में इस तरह के सत्यापन की घोषणा करेगा।

(2023) 4 ILRA 1384

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आपराधिक अपील संख्या 1092/2005

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 1884/2005

श्याम बिहारी मिश्रा एवं अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री जगदीश सिंह सेंगर,
श्री अनुज श्रीवास्तव, श्री मो. रागिब अली एसी,
श्री सगीर अहमद (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री वी.के. बरवल,
श्री विवेक कुमार शुक्ला

आपराधिक कानून-अपील-धारा 302 और 307 के साथ धारा 34 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि-पक्षों के बीच जमीन को लेकर पुरानी दुश्मनी-अपराध के पीछे आशय- बचाव पक्ष एफआईआर के पूर्व दिनांकित और समय से पहले दर्ज होने के बारे में कोई संदेह पैदा नहीं कर सका-एफआईआर दर्ज होने के तुरंत बाद विवेचना शुरू हुई-पंचायतनामा सबूत का एक ठोस टुकड़ा नहीं है-पहले दर्ज एफआईआर की जरूरत नहीं-एफआईआर, विवेचना और मौखिक साक्ष्य की सामग्री-एक दूसरे के अनुरूप-नेत्र और चिकित्सा साक्ष्य के बीच कोई विरोधाभास नहीं-रिश्तेदारों और परिवार के सदस्यों की गवाही पर भरोसा किया जा सकता है-सबूतों की उचित जांच और सावधानीपूर्वक मूल्यांकन आवश्यक-सीआरपीसी की धारा 293 के तहत एफएसएल की रिपोर्ट साक्ष्य में स्वीकार्य-कुछ गवाहों के बयान दर्ज न करने से ही संदेह पैदा नहीं होता-मात्र दोषपूर्ण जांच-गवाह के बयान दर्ज करने में देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं-दोषपूर्ण आरोप तय करने का कोई परिणाम नहीं-जब तक कि इससे न्याय में विफलता न हो-अन्यत्र रहने की तर्क निरस्त-सभी बचाव पक्ष के गवाह आरोपी के सहकर्मी हैं-पूर्व की मनःस्थिति उपस्थित-धारा 34 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि सही-विचारणीय न्यायालय के निर्णय में कोई कमी

नहीं-दोषसिद्धि बरकरार-अपील निरस्त किया गया। (पैरा 28, 29, 30, 33, 34, 44, 49,60,63 और 67)

आयोजित:

इस वाच में बचाव पक्ष इस बात पर कोई संदेह नहीं कर सका कि एफ.आई.आर. पहले से ही दर्ज है और समय से पहले भी दर्ज की गई है। एफ.आई.आर. दर्ज होने के तुरंत बाद ही विवेचना प्रारंभ हो गई थी। कुछ घंटों के बाद मृतक को मृत घोषित कर दिया गया था और जांच और पोस्टमार्टम की कार्यवाही प्रारंभ हो गई थी। विवेचक ने घटनास्थल का दौरा किया था और नक्शा तैयार किया था और वादी का बयान भी दर्ज किया था, इसलिए, केवल धारा 157 सीआरपीसी के तहत मजिस्ट्रेट को एफ.आई.आर. की रिपोर्ट/प्रति भेजने में देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है और किसी भी तरह से वाद की योग्यता को प्रभावित नहीं करती है। (पैरा 28)

इस न्यायालय का मत है कि विवेचना के लिए पहले से दर्ज एफ.आई.आर. की आवश्यकता नहीं है। मान लीजिए कि कोई अज्ञात शव मिलता है और कोई एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की जा रही है, तो उस स्थिति में पुलिस उस स्थान पर जाएगी और शव को अपने कब्जे में लेगी तथा जांच और पोस्टमार्टम करेगी और मीडिया तथा समाचार पत्रों में समाचार प्रकाशित करेगी, यदि कुछ दिनों के बाद कोई व्यक्ति आकर शव का दावा करता है और एफ.आई.आर.

दर्ज करने के लिए लिखित शिकायत करता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि पंचायतनामा करने का कोई अवसर नहीं था। इस वाद में एफ.आई.आर. पहले ही दर्ज हो चुकी थी, हालांकि जांच करते समय महिला एफ.आई.आर. की प्रति कोतवाली पुलिस के पास नहीं थी। इसलिए, इस न्यायालय के अनुसार इस बिंदु पर बहस की कोई गुंजाइश नहीं है। (पैरा 29)

दिनांक 11.4.2000 को दोपहर 2:00 बजे पी.डब्लू.5 डॉ. के.एन. जोशी द्वारा शव परीक्षण किया गया, जिसमें उन्होंने छाती के दाहिने हिस्से में दाहिने निम्पल के 4 सेमी नीचे 3 सेमी x 1 सेमी आकार के फायर आर्म के घाव, किनारे उलटे, जलने, कालापन और टैटू के निशान, वक्ष गुहा से एक पुड़िया सहित 63 छोटे छर्रे पाए। डॉक्टर के अनुसार, मृत्यु का कारण मृत्यु-पूर्व चोट के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था। इस प्रकार एफ.आई.आर., विवेचना और मौखिक साक्ष्य और पोस्टमार्टम रिपोर्ट और डॉक्टर के साक्ष्य की सामग्री एक दूसरे के अनुरूप हैं। यह भी स्थापित है कि मृतक को बहुत करीब से गोली मारी गई थी। (पैरा 30)

इस वाद में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि गवाहों ने अपराध को पीछे से देखा और आरोपी और मृतक के बीच थोड़ी दूरी होने के कारण उन्हें लगा कि मृतक को संपर्क रेंज से गोली मारी गई है, लेकिन वास्तव में यह आरोपी द्वारा नजदीक से मारी गई गोली थी। इसलिए, प्रवेश के घाव पर जलने, कालापन और टैटू के निशान पाए गए। (पैरा 33)

समग्र चर्चा के आधार पर यह न्यायालय इस विचार पर है कि विद्वान विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और सजा के आदेश में कोई कमी नहीं है। अभियोजन पक्ष ने सभी उचित संदेहों से परे अपना वाद सिद्ध कर दिया है। सजा का आदेश भी उचित है। यह न तो कठोर है और न ही दंडात्मक है और न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने वाली न्यूनतम सजा दी गई है। अपील में योग्यता का अभाव है और इसे निरस्त किया जाना चाहिए। (पैरा 67)

अपील निरस्त (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. लेखराज @ हरि सिंह बनाम गुजरात राज्य 1998 एससीसी (सीआरआई) 704
2. हरफूल और रामजीवन बनाम राजस्थान राज्य., 2002 एससीसी ऑनलाइन, राज 988
3. सददीक लालो गुलाम हुसैन शेख और अन्य बनाम गुजरात राज्य, (2016) 10 एससीसी 663
4. राजकिशोरी देवी विधवा (मृतक) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
5. राज गोपाल बनाम मुथुपंडी थक्कलाई और अन्य, (2017) 11 एससीसी 120
6. गिरीश यादव व अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1996) 8 एससीसी 186
7. प्रेम नाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 (2) एसीआर 1065 (एल.बी.)
8. महाराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1994) 5 एससीसी 188
9. राम सजीवन सिंह व अन्य बनाम बिहार राज्य (1996) 8 एससीसी 552

10. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गोकर्न एवं अन्य, एआईआर 1985 एससी 131
11. पाला सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1972 एससी 2679
12. अनिल राय बनाम बिहार राज्य, 2001 7 एससीसी 318
13. पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह (2005) 7 एससीसी 408
14. कर्नाटक राज्य बनाम मोइन पटेल, (1996) 8 एससीसी 167
15. बेताल सिंह बनाम एम.पी. राज्य, एआईआर 1996 एससी 2770
16. राधा मोहन सिंह उर्फ लाल साहब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 (54) एसीसी 86
17. पोद्दा नारायण बनाम ए.पी. राज्य, एआईआर 1975 एससी 1252
18. बुध सिंह बनाम एमपी राज्य, एआईआर 2007 एससी (सप्लि) 267
19. स्वर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2000 एससी 2017
20. भारत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1999 एससी 717
21. सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दरोगा सिंह, एआईआर 2008 एससी 320
22. राम स्वरूप बनाम यूपी राज्य 2000, (40) एसीसी 432 (एससी)
23. रामजी राय बनाम बिहार राज्य, 2007, (57) एसीसी 385 (एससी)
24. भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537
25. श्याम बाबू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2012 एससी 3311
26. सोनेलाल बनाम एम.पी. राज्य एआईआर

- 2009 एससी 760
- 27.सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एससीसी 270
- 28.धर्मवीर बनाम यूपी राज्य, एआईआर, 2010, एससी 1378
29. दिलावर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 1 एससीसी 737
- 30.रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 5 एससीसी 777
31. शाहजा @ शाहजन इस्माइल मोहम्मद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 569
- 32.मकबूल बनाम ए.पी. राज्य एआईआर 2011 एससी 184
33. शिव शंकर सिंह बनाम झारखंड राज्य, 2011, सीआरएलजे 2139 (एससी)
34. धनज सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2004) 3 एससीसी 654
35. केशव लाल बनाम एम.पी. राज्य (2002) 3 एससीसी 254
- 36.एम.के.उपाध्याय बनाम ए.पी. राज्य (2012) 3 एससीसी (क्रि.) 42
37. लीला राम बनाम राज्य, (1999) 9 एससीसी 525,
38. आनंद मोहन बनाम बिहार राज्य, (2012) 3 एससीसी (क्रि.) 328
39. मोहम्मद मियां बनाम यूपी राज्य, (2011) 2 एससीसी (क्रि.) 694
40. कृष्ण पाल बनाम उत्तर प्रदेश एआईआर 1996 एससी 733
- 41.रामदेव एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, 2003 सीएचएलजे (1680)
- 42.सुरधनी दरबार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2004 (3) अपराध 196 कलकत्ता उच्च न्यायालय डीबी
43. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) बनाम नवजोत संधू, एआईआर 2005 एससी 3820
- 44.आयकर आयुक्त बनाम कमला टाउन ट्रस्ट, (1196) 7 एससीसी 349
45. बिनय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1997 एससी 322
46. संदीप बनाम यूपी राज्य, (2012) 6 एससीसी 107
- 47.शेख सत्तार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 8 एससीसी 430
- 48.ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, (2012) 5 एससीसी 201
49. अदालत पंडित बनाम बिहार राज्य (2010) 6 एससीसी 469
50. सैदु खान बनाम राज्य, एआईआर 1951 ऑल. 21 (एफबी)
- 51.प्यारे लाल बनाम यूपी राज्य, 1987 एससी 852
52. नंद किशोर बनाम एम.पी. राज्य (2011) 4 क्रि एलजे 4243 (एससी)
53. लल्लन राय बनाम बिहार राज्य, (2003) 1 एससीसी 268
54. बरेन्द्र कुमार घोष बनाम किंग एम्परर, एआईआर 1925 पीसी 1
- 55.प्यारेलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1987 एससी 852
56. जगदीश मुराव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2006 मुकदमा (एससी) 686

57. मारुति रामा नाइक बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2003 0 सुप्रीम (एससी)
58. संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक कृष्णगिरी, एआईआर 2011 एससी 1249
59. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम परशुराम यादव, 2005 0 सुप्रीम (ऑल.) 1309 डीबी
60. दाउद खान बनाम राजस्थान राज्य, 2015 0 सुप्रीम (एससी) 1041
61. समसुल हक बनाम असम राज्य एआईआर 2019 एससी 4163
62. गणेश भवन पटेल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1978 0 सुप्रीम (एससी) 323
63. सुख देव बनाम यू.पी. राज्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन सभी 2992

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. इन दोनों अपीलों को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 5, इलाहाबाद द्वारा 8007 वर्ष 2000 राज्य बनाम श्याम बिहारी मिश्रा और अन्य, थाना- सराय इनायत, जिला- इलाहाबाद के मामले में 2.3.2005 को पारित निर्णय और आदेश के खिलाफ धारा 302 के साथ धारा 34 भ० द० वि० और धारा 307 के साथ धारा 34 भ० द० वि० के तहत दायर किया गया है। अपीलकर्ताओं को भ० द० वि० की धारा 302 के साथ धारा 34 के तहत आजीवन कारावास और धारा 307 के साथ धारा 34 भ० द० वि० के तहत दोषी ठहराते हुए 3 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई। दोनों सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि शिकायतकर्ता शिव प्रकाश तिवारी निवासी कोटवा,

थाना- सराय इनायत, इलाहाबाद ने 10.4.2000 को सुबह 9:30 बजे एक तहरीर प्रदर्श क-1 प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया था कि आज सुबह लगभग 8:30 बजे, उनके भाई जय प्रकाश तिवारी स्कूटर पर भतीजे (भांजा) कुलदीप मिश्रा के साथ देवी मां इंद्रि देवी मंदिर में पूजा करके लौट रहे थे। उन्होंने नाली के कारण अपना स्कूटर धीमा कर दिया, श्याम बिहारी मिश्रा ने उन्हें जान से मारने के लिए उकसाया, उनके बेटे बिमल कुमार मिश्रा ने सामने से अपना स्कूटर रोका और कमल मिश्रा ने अपने भाई जय प्रकाश की छाती पर देसी फायर-आर्म रखकर गोली चला दी। फायर की आवाज सुनकर वह, पवन तिवारी और जय हिंद मौके पर पहुंचे और घटना को देखा और आरोपियों का पीछा किया। इसी बीच विमल कुमार मिश्रा ने जान से मारने की नीयत से उस पर गोली भी चला दी (हाथापाई)। वह नई ईंटों के ढेर के पीछे छिप गया। इसलिए गोली उसे नहीं लगी। शिकायतकर्ता के अनुसार दोनों पक्षों के बीच पुरानी जमीनी रंजिश थी। उनके भाई जय प्रकाश की हालत गंभीर है, उन्होंने प्राथमिकी दर्ज कराने का अनुरोध किया।

3. तहरीर प्रदर्श क-1 के आधार पर प्राथमिकी दर्ज की और अ०सा०6 थाना अध्यक्ष कृपा शंकर दीक्षित ने जांच शुरू की। उन्होंने मौके पर पहुंचकर खून से सने और सादे मिट्टी का नमूना लिया और फर्द बरामदगी प्रदर्श क-4 और स्पॉट मैप प्रदर्श क-4 तैयार किया। उन्होंने आरोपी व्यक्तियों के घर की तलाशी ली और फर्द बरामदगी प्रदर्श क-5 तैयार किया। घायल जय प्रकाश तिवारी को सबसे पहले थाना- ले जाया गया, जहां से उन्हें स्वरूप रानी नेहरू अस्पताल, इलाहाबाद भेजा गया, जहां उन्हें मृत घोषित कर दिया गया।

वहां चौकी प्रभारी कोतवाली संत कुमार चतुर्वेदी ने जांच रिपोर्ट तैयार की और शव को 11.4.2000 को दोपहर 2:00 बजे शव विच्छेदन के लिए मोर्चरी भेजा गया, जहां डॉ. के.एन. जोशी ने शव परीक्षण किया। 20-4-2000 को आरोपी व्यक्तियों के घर में तहखाने के बारे में सूचना प्राप्त करने के बाद, विवेचनाधिकारी ने आरोपी व्यक्तियों के घर का दौरा किया और तलाशी ली लेकिन कुछ भी आपत्तिजनक बरामद नहीं हुआ।

4. दिनांक 28-04-2000 को आरोपी व्यक्तियों की निशानदेही पर उनके घर से अपराध को अंजाम देने में प्रयुक्त कथित हथियार बरामद किया गया जिसमें 303 बोर का एक देशी फायर आर्म, 303 बोर के दो जिंदा कारतूस और 12 बम थे।

जांच के बाद भ० द० वि० की धारा 302, 307 और 504/34 के तहत चार्जशीट दाखिल की गई। मामला सत्र न्यायालय को सौंपा गया और उसके बाद इसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 6, इलाहाबाद की अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया, जिन्होंने धारा 302/34 और 307/34 भ० द० वि० के तहत आरोप तय किए। आरोपियों ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

6. अभियोजन पक्ष ने आरोपों को साबित करने के लिए निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की

अ०सा०-1	शिव प्रकाश तिवारी, शिकायतकर्ता
अ०सा०-2	सत्य प्रकाश तिवारी, पत्रकार, स्वतंत्र गवाह
अ०सा०-3	जय हिंद सिंह, स्वतंत्र गवाह
अ०सा०-4	मृतक का बेटा पवन तिवारी।
अ०सा०-5	डॉ. के.एन. जोशी, जिन्होंने शव परीक्षण किया
अ०सा०-6	इस मामले के तत्कालीन थाना अध्यक्ष और विवेचनाधिकारी कृपा शंकर दीक्षित,
अ०सा०-7	बद्री प्रसाद मिश्रा, कांस्टेबल मोहर्रिर
अ०सा०-8	इन्क्वायरिंग तैयार करने वाले संत कुमार चतुर्वेदी

अ०सा० 1 शिव प्रकाश तिवारी, शिकायतकर्ता अ०सा० 2 सत्य प्रकाश तिवारी, पत्रकार, स्वतंत्र गवाह अ०सा० 3 जय हिंद सिंह, स्वतंत्र गवाह अ०सा०-4 पवन तिवारी, मृतक का बेटा। अ०सा०5 डॉ. के.एन.जोशी, जिन्होंने शव परीक्षण किया। मामले के तत्कालीन थाना अध्यक्ष और विवेचनाधिकारी कृपा शंकर दीक्षित, अ०सा० 7 बद्री प्रसाद मिश्रा, कांस्टेबल मोहर्रिर, अ०सा० 8 संत कुमार चतुर्वेदी, जिन्होंने जांच की।

दस्तावेजी सबूत:

प्रदर्श क-1	लिखित शिकायत
प्रदर्श क-2	शव विच्छेदन रिपोर्ट
प्रदर्श क-3 और 6	नक्शा नज़री
प्रदर्श क-4	खून से सनी मिट्टी
प्रदर्श क-5	खोज ज़ापन
प्रदर्श क-7	आरोप पत्र
प्रदर्श क-8	चिक प्राथमिकी
प्रदर्श क-9 और 10	जीडी और वापसी जीडी
प्रदर्श क-11	जांच रिपोर्ट
एक्स्ट का - 12 से 18	आर.आई. को पत्र, सी.एम.ओ. को पत्र, चालान लाश, फोटो लाश

7. पेपर नंबर 10, एफ.एस.एल. रिपोर्ट जो प्रदर्शित नहीं की गई है, लेकिन द० प्र० स० की धारा 293 के तहत साक्ष्य में स्वीकार्य है।

8. बचाव पक्ष के गवाह:

ब० सा०-1	सुरेंद्र प्रसाद मिश्र
ब० सा०-2	राधे श्याम शर्मा
ब० सा०-3	महेश चंद्र मिश्रा
ब० सा०-4	शीतला प्रसाद

9. दस्तावेजी साक्ष्य:

प्रदर्श ख-1	आदेश कर अधिकारी
प्रदर्श ख-2	रिपोर्ट दिनांक 10.4.2000
प्रदर्श ख-3	570 रुपये की रसीद दिनांक 10.4.2000
प्रदर्श ख-4	उपस्थिति रजिस्टर की फोटो कॉपी

10. 2005 की आपराधिक अपील संख्या 1092 में आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा और विमल कुमार मिश्रा और 2005 की आपराधिक अपील संख्या 1884 में आरोपी कमल मिश्रा ने यह आधार लिया है कि अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि रिकॉर्ड पर सबूतों के वजन के खिलाफ है और कानून की नजर में खराब है, सजा बहुत गंभीर है, इसलिए, अपील को स्वीकार किया जाए और दिनांक 2-3-2005 के निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाए।

11. अ०सा०1, शिव प्रकाश तिवारी ने गवाही दी कि 10.4.2000 को सुबह 8:30 बजे, उनके बड़े भाई जय प्रकाश तिवारी भतीजे (भांजा), कुलदीप मिश्रा के साथ देवी मां संद्री देवी मंदिर में पूजा करके लौट रहे थे। जब वह मीनू मालवीय की दुकान के पास पहुंचा और नाले के कारण अपना स्कूटर धीमा कर दिया, तो श्याम बिहारी मिश्रा, जो अपने दो बेटों कमल मिश्रा और बिमल मिश्रा के साथ पास की गली में खड़े थे, ने अपने बेटों बिमल मिश्रा और कमल मिश्रा को जय प्रकाश तिवारी को मारने के लिए उकसाया। इसी दौरान सामने से बिमल मिश्रा ने स्कूटर पकड़ लिया और कमल मिश्रा ने देसी फायर आर्म से गोली मार दी, जो जय प्रकाश मिश्रा के सीने पर लगी। इसके बाद, अ०सा० 1 जय हिंद सिंह और पवन तिवारी के साथ घटना स्थल की ओर भागा; वह सामने था इसलिए बिमल मिश्रा ने भी उसे मारने की कोशिश की और उस पर गोली चलाई लेकिन उसने खुद को नई ईंटों के ढेर के पीछे छिपा लिया। आरोपी व्यक्ति मार्शल जीप नंबर 1 में अपने घर की ओर भागे। यूपी 70 के 9145 को कमल मिश्रा चला कर फरार हो गए। इसके

बाद, वे जय प्रकाश सिंह को घर ले आए और अ०सा० 1, सत्य प्रकाश तिवारी द्वारा लिखी गई एक तहरीर (एक्स का -1) मिली। इस गवाह ने तहरीर, उसकी सामग्री, उस पर अपने हस्ताक्षर को पहचाना और इसे साबित किया। वह रिपोर्ट और घायलों के साथ थाना- सराय इनायत गए, इसे कांस्टेबल क्लर्क को प्रस्तुत किया और प्राथमिकी दर्ज की। इसके बाद कांस्टेबल 1740 जीत बहादुर सिंह को घायलों के साथ स्वरूप रानी अस्पताल भेजा गया, लेकिन रास्ते में ही उनके भाई ने दम तोड़ दिया। सुदर्शन पुत्र सुंदर से जमीन अराजी नंबर 1005 खरीदने को लेकर पुरानी रंजिश चल रही थी, जिसके लिए आरोपियों ने उसके भाई की गोली मारकर हत्या कर दी। विवेचनाधिकारी ने उसके घर पर बयान दर्ज कराया था।

12. इस गवाह ने आगे कहा कि वह आर.टी.ओ. इलाहाबाद में ड्राइवर हैं। कोई ड्यूटी निर्धारित नहीं थी, वह कॉल पर ड्यूटी पर जाते थे। वह इलाहाबाद में किराए के मकान में रहता है। घटना के समय वह प्रतापगढ़ में तैनात थे और घटना की तारीख को वह अपने घर पर मौजूद थे। 9.4.2009 को वह प्रतापगढ़ से देवी विंध्याचल के दर्शन के लिए दो दिन का आकस्मिक अवकाश लेकर आए थे क्योंकि नवरात्रि चल रही थी। उन्होंने अपने भाई की हत्या के कारण छुट्टी बढ़ाने के लिए अपने कार्यालय को सूचित किया था। वह स्वीकार करते हैं कि उनके गांव में सरकारी अस्पताल था। अ०सा० 1 ने आगे कहा कि अस्पताल और सरकारी सड़क के बीच, सुदर्शन की 18 बिस्वा भूमि स्थित है, जिसे वरिष्ठ वाजपेयी पुत्र कालिका वाजपेयी सहित तीन व्यक्तियों

द्वारा पंजीकृत समझौते के माध्यम से खरीदा गया था। उन्होंने सुदर्शन से बिक्री विलेख प्राप्त किया, शेष दो व्यक्तियों ने भी बिक्री विलेख के माध्यम से 3 बिस्वा भूमि खरीदी थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्हें अपनी बहन के नाम पर शेष 5 बिस्वा जमीन मिली थी, लेकिन उन्होंने और विनय वाजपेयी ने अपने हिस्से से बिक्री विलेख किया था। उन्होंने अनभिज्ञता व्यक्त की कि सुदर्शन ने पुरुषोत्तम दुबे के पक्ष में लगभग 4 बिस्वा भूमि के लिए बिक्री विलेख भी निष्पादित किया था और वैडी का नाम बदल दिया गया था। उन्होंने इस बात से भी अनभिज्ञता जताई कि 31.01.2000 को पुरुषोत्तम दुबे ने आरोपी कमल मिश्रा के पक्ष में पावर ऑफ अटॉर्नी का निष्पादन किया था। वह स्वीकार करता है कि उसकी बहन के बेटे कुलदीप मिश्रा (जांच नहीं की गई) ने उपरोक्त भूखंड की 5 बिस्वा जमीन खरीदी है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह कुलदीप मिश्रा के साथ मिलकर अवैध रूप से जमीन हड़पना चाहते थे, जिसे पुरुषोत्तम दुबे ने रोका था।

13. श्याम बिहारी मिश्रा, नगर महापालिका, इलाहाबाद में सेवा करते हैं, उन्हें नहीं पता कि वह वहां इंस्पेक्टर के रूप में काम कर रहे थे या नहीं। इस गवाह ने आगे कहा कि घटना के समय वह मौके पर मौजूद था। मां इंद्री देवी मंदिर दक्षिण की ओर 2-1/2 किमी दूर है। उनके भाई जय प्रकाश तिवारी सुबह करीब 7:45 बजे पूजा के लिए गए थे। जय प्रकाश नियमित रूप से डोलची और अन्य पूजा सामग्री के साथ वहां जाता था जो स्कूटर पर लटकी हुई थी और नीचे नहीं गिरी थी।

14. जिरह में इस गवाह ने गवाही दी कि सुबह लगभग 11:30 बजे अपने भाई की मृत्यु के बाद, वह सीधे अपने घर लौट आया और थाना- नहीं गया। उसने अपने भाई की मौत की सूचना थाना सराय इनायत पुलिस को नहीं दी थी। उनके साथ अस्पताल जाने वाला कांस्टेबल उनके साथ नहीं आया था। उसे नहीं पता कि कांस्टेबल कब थाने पहुंचा। उन्होंने अपने घर पर एक दिन और रात बिताई। विवेचनाधिकारी भी वहां थे जिन्होंने अगले दिन अपना बयान दर्ज कराया था। वह अगले दिन शव विच्छेदन हाउस आया था। वह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने अपनी तहरीर में उल्लेख किया था कि आरोपी मीनू मालवीय की दुकान से सटी गली में खड़े थे। उन्हें याद नहीं था कि क्या यह तथ्य उन्होंने विवेचनाधिकारी को बताया था क्योंकि वह अपने भाई की हत्या के कारण परेशान थे। उन्होंने कहा कि उन्होंने इस तथ्य का उल्लेख किया था कि बिमल ने स्कूटर पकड़ा था, अगर यह तथ्य तहरीर में नहीं लिखा है, तो वह कोई कारण नहीं बता सकते। उन्होंने आगे कहा कि बिमल ने स्कूटर रोका था, लेकिन स्कूटर पकड़े जाने के बारे में नहीं बताया था। यह पूछे जाने पर कि बिमल ने स्कूटर पकड़ा था या नहीं, उन्होंने जवाब दिया कि बिमल ने स्कूटर के सामने खड़े होकर उसे रोका था। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने इस तथ्य का उल्लेख किया था कि घटना के समय, वह अपने दरवाजे पर खड़े थे और उन्होंने घटना देखी थी, अगर यह तहरीर में या उनके बयान में नहीं लिखा गया था, तो वह कारण नहीं बता सकते। उन्होंने स्वीकार किया है कि कमल मिश्रा वाहन चलाकर भागे थे, अगर यह तथ्य विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज

नहीं किया गया था, तो वह कारण नहीं बता सकते। उन्होंने कहा कि आरोपियों का घर घटना स्थल से उत्तर-पूर्व की ओर 150 मीटर की दूरी पर है। उन्होंने आगे कहा कि घटना स्थल से आरोपी व्यक्तियों का घर किस दिशा में है और कितने गज की दूरी पर है, यह लेखपाल द्वारा बताया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि तहरीर लिखने में 15-20 मिनट का समय लगा होगा। जय प्रकाश तिवारी चारपाई पर दरवाजे पर लेटे हुए थे। दरवाजे पर खून नहीं था। चारपाई पर खून लगा होगा जिसे विवेचनाधिकारी ने देखा था। तहरीर लिखने के बाद घायल को चंद्र देव त्रिपाठी की कमांडर जीप में ले जाया गया। उसके कपड़ों पर खून नहीं था क्योंकि शव ऊपर रखा हुआ था। वे सुबह 9:00 बजे थाना- पहुंचे और वहां से लगभग 9:30 बजे उन्हें उसी कमांडर जीप में अस्पताल भेजा गया। वहीं उसके भाई की हालत भी गंभीर हो गई थी। उन्होंने सोचा कि थाना- में जानकारी भाई को अस्पताल ले जाने से ज्यादा महत्वपूर्ण है। उन्होंने बार-बार कहा कि उनके भाई की हालत गंभीर है लेकिन प्राथमिकी लिखने के बाद ही उन्हें अस्पताल जाने दिया गया, अस्पताल पहुंचने में लगभग एक घंटे का समय लगता। वे सुबह लगभग 10:30 बजे अस्पताल पहुंचे, और वे भीड़ भरे शास्त्री ब्रिज को पार करके आए थे। वे केवल पांच मिनट के लिए अस्पताल में रहे और अपने दोस्त अगन सिंह की सूझो कार से घर लौट आए। उसने कहा कि वह अपने भाई को अपने गांव में स्थित स्वास्थ्य केंद्र नहीं ले गया था क्योंकि वहां कोई कर्मचारी नहीं था। जब मृतक को गोली मारी गई, वह मीनू मालवीय की दुकान से लगभग 40-45 कदम

दूर अपने घर पर खड़ा था। ईट का ढेर पंचम कांत का था और घटना की तारीख से 4-5 महीने पहले 7 फीट चौड़ी गली पर रखा गया था।

इस गवाह ने आगे बताया कि जब वह पहुंचा, तो विवेचनाधिकारी ने लगभग 11 बजे उससे मुलाकात की; सुबह 30 बजे। उसने मिट्टी खोदी। इसके बाद विवेचनाधिकारी ने उनका बयान दर्ज किया। घटना की जगह पर ईट और मिट्टी दोनों थी। स्कूटी मौके पर ही छूट गई। जब वह घर पहुंचा, तो विवेचनाधिकारी स्कूटर को घर ले आया। विवेचनाधिकारी दोपहर 2-2:30 बजे तक गांव में रहे। वरिष्ठ अधिकारियों ने भी घटनास्थल का दौरा किया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने घटना नहीं देखी है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि रिपोर्ट परामर्श के बाद दर्ज की गई है और यह समय से पहले की गई थी।

15. अ०सा०2, सत्य प्रकाश तिवारी ने गवाही दी कि 10.4.2022 को, शिव प्रकाश तिवारी के आदेश पर, उन्होंने तहरीर (एक्स का-1) लिखी थी। लिखने के बाद उसे पढ़कर सुनाया गया। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्होंने एसआई के इशारे पर थाना- में तहरीर लिखी थी।

16. अ०सा० 3, जय हिंद सिंह, स्वतंत्र चश्मदीद गवाह हैं, जिन्होंने गवाही दी है कि वह आरोपी व्यक्तियों और शिकायतकर्ता को जानते हैं। यह घटना 10.4.2000 को सुबह 8:30 बजे हुई, उन्होंने शाम को शिकायतकर्ता शिव प्रकाश तिवारी से विंध्याचल जाने के लिए

एक साथ बात की थी। घटना की तारीख पर यह गवाह सुबह करीब 8:30 बजे शिकायतकर्ता के घर आया था। शिकायतकर्ता ने उसे बताया कि उसका भाई भी उनके साथ जाएगा और फिलहाल वह मां एंड्री देवी मंदिर में पूजा के लिए गया था। सुबह करीब 8:30 बजे जय प्रकाश तिवारी वापस लौटे और मीनू मालवीय की दुकान के सामने पहुंचे, वहां नाली थी इसलिए जय प्रकाश तिवारी ने गाड़ी धीमी कर दी। उसी समय श्याम बिहारी ने जय प्रकाश तिवारी को जान से मारने के लिए उकसाया, बिमल ने सामने से स्कूटर का हैंडल पकड़ लिया और फिर कमल मिश्रा ने जय प्रकाश के सीने पर देसी फायर आर्म डालकर फायर कर दिया। जब लोग दौड़े तो शिव प्रकाश तिवारी उनसे आगे थे। उसे बिमल ने कट्टा द्वारा भी गोली मार दी थी, लेकिन यह अतिरिक्त ईंटों की दीवार के कारण उसे नहीं लगी। उनके अलावा पवन कुमार तिवारी, शिव प्रकाश तिवारी और अन्य घटना स्थल पर पहुंचे और घटना को देखा।

जिरह में इस गवाह ने कहा कि घटना के एक महीने बाद विवेचनाधिकारी ने अपना बयान दर्ज कराया था। इस अवधि के दौरान वह अपने घर पर ही रहे। घटना के बाद सबसे पहले वह घायलों को लेकर थाने आए और उसके बाद अस्पताल चले गए थे। वह सुबह लगभग 9:00 बजे थाना- पहुंचे थे और 2-3 मिनट के लिए वहां रहे और उसके बाद अस्पताल चले गए। जब सुबह करीब 9:15 बजे वह अस्पताल पहुंचे जहां डॉक्टर ने बताया कि घायल की मौत हो गई है। इसके बाद शिव प्रकाश तिवारी सूचना देने थाने गए। शव अस्पताल में ही पड़ा रहा। फिर विवेचनाधिकारी

और शिव प्रकाश तिवारी सुबह लगभग 10:30 बजे अस्पताल पहुंचे, विवेचनाधिकारी ने लगभग 11-12 बजे शव को सील कर दिया था। वह सही समय नहीं बता सकते। उसके बाद विवेचनाधिकारी थाना- लौट आए, वह और अन्य व्यक्ति दोस्ती के कारण पूरी रात अस्पताल में रहे। किसी को कोई पैसा नहीं मिला। शव को 3:00-3:30 बजे सौंप दिया गया था। फायरिंग के बारे में सबसे पहले उन्होंने विवेचनाधिकारी को सूचित किया था और कोर्ट में किसी और को नहीं। गांव में चर्चा जारी रही। उन्होंने विवेचनाधिकारी को बताया था कि शाम को उन्होंने शिकायतकर्ता से विंध्याचल एक साथ जाने के लिए बात की थी। इसलिए, वह सुबह 8:00 बजे शिकायतकर्ता के घर आया था। मृतक मां इंद्री देवी मंदिर में पूजा करने गया था। शिकायतकर्ता ने उसे बताया कि उसका भाई/मृतक भी उनके साथ विंध्याचल जाएगा। इस गवाह ने आगे गवाही दी कि अगर उसके बयान में उपरोक्त तथ्य नहीं लिखा गया है, तो वह कारण नहीं बता सकता है। विवेचनाधिकारी ने उनके घर पर उनका बयान दर्ज किया था। उसे समय याद नहीं था। बाद में उन्होंने कहा कि विवेचनाधिकारी ने दोपहर लगभग 12:00 से 1:00 बजे अपना बयान दर्ज कराया था। वह साक्षर नहीं है, उसने विवेचनाधिकारी को दिए गए बयान पर हस्ताक्षर किए थे, विवेचनाधिकारी ने कहा था कि अदालत में भी यही बयान दिया जाएगा। उन्होंने आगे कहा कि जहां गोली चलाई गई, वह चंद्र कांत शुक्ला का घर है। चंद्र कांत शुक्ला के घर के सामने खड़जा/ईंट रोड है। सड़क के पूर्व में मीनू मालवीय की किराने की

दुकान है, जो घटना के समय खुली हुई थी। उन्होंने चंद्र कांत शुक्ला के घर के उत्तरी कोने से घटना देखी थी, दो कदम पश्चिम में खड़े कमल ने जय प्रकाश तिवारी पर गोली चलाई थी। जब गोली जय प्रकाश को लगी तो जय प्रकाश गिर चुका था। जय प्रकाश को केवल एक गोली मारी गई थी। घटना का स्थान उसके घर से दिखाई नहीं देता है। उसने इस बात से इनकार किया कि उसने इस घटना को नहीं देखा था और दोस्ती के कारण वह झूठी गवाही दे रहा था।

17. अ०सा०-4, पवन तिवारी, मृतक का बेटा है, जिसने बयान दिया कि उसके पिता की लगभग दो साल पहले हत्या कर दी गई थी। सुबह करीब 8:30 बजे हुई उनकी हत्या के समय वह मौके पर मौजूद थे। उनके पिता मां इंद्री देवी देवी मंदिर से लौट रहे थे। मालवीय की दुकान के सामने नाली होने के कारण उनके पिता ने अपना स्कूटर धीमा कर दिया। उसी दुकान के बगल में एक गली है जिसमें आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा, कमल मिश्रा और बिमल मिश्रा खड़े थे। श्याम बिहारी मिश्रा ने उसके पिता को जान से मारने के लिए उकसाया, जिस पर बिमल मिश्रा ने स्कूटर को जबरदस्ती रोका और कमल मिश्रा ने उसके पिता के सीने पर अग्नेयास्त्र से गोली मार दी! वह अन्य लोगों के साथ अपने घर के दरवाजे पर खड़ा था। उनके चाचा शिव प्रकाश तिवारी उनसे आगे थे। बिमल मिश्रा ने शिव प्रकाश तिवारी पर गोली चला दी। एक ईंट की दीवार थी जहां उसके चाचा ने खुद को छिपा लिया और गोली से घायल नहीं हुए। इसके बाद, वे उस गली से भागे जिसमें आरोपी खड़े थे। वे

उसके पिता को उठाकर उस घर में ले गए जहां उसके चाचा ने तहरीर लिखी थी। इसके बाद, वे घायलों को एक कमांडर जीप में थाना- ले गए, जहां 15-20 मिनट के बाद एक कांस्टेबल प्रदान किया गया, जिसके साथ वे स्वरूप रानी अस्पताल गए, जहां डॉक्टर ने बताया कि घायल की मौत हो गई है।

इस गवाह ने आगे कहा कि उनके और आरोपी व्यक्तियों के बीच जमीन को लेकर कुछ दुश्मनी थी, जिसके कारण उन्होंने उसके पिता की हत्या कर दी थी। विवेचनाधिकारी ने उनके घर पर उनका बयान दर्ज किया था। कुलदीप मिश्रा भी अपने पिता के स्कूटर पर बैठे थे।

जिरह में इस गवाह ने गवाही दी कि डेढ़ महीने बाद विवेचनाधिकारी ने उसका बयान दर्ज किया था, इस अवधि के दौरान वह अपने गांव में ही रहा। बयान दर्ज करने से पहले उन्होंने विवेचनाधिकारी से मुलाकात नहीं की थी। उन्होंने विवेचनाधिकारी को सूचना दी थी कि मीनू मालवीय की दुकान के आरोपियों की गली के पास ही आरोपी खड़े हैं। यदि यह तथ्य विवेचनाधिकारी द्वारा नहीं लिखा गया है, तो वह कारण नहीं बता सकता है। उन्होंने विवेचनाधिकारी को दिए अपने बयान में बताया था कि वे दरवाजे पर खड़े थे और जब वे घटना स्थल की ओर भागे, तो उनका नेतृत्व चाचा शिव प्रकाश तिवारी कर रहे थे। अगर यह तथ्य उनके बयान में नहीं लिखा गया है, तो वह कारण नहीं बता सकते। उन्होंने विवेचनाधिकारी को यह भी बताया था कि उनके चाचा ने ईंट के ढेर के पीछे खुद को बचाया था। यदि यह तथ्य विवेचनाधिकारी द्वारा नहीं लिखा गया है, तो वह कारण नहीं

बता सकता है। उन्होंने विवेचनाधिकारी को बताया था कि जिस गली में आरोपी छिपे थे, वे उसी गली से अपने घर की ओर भागे। यदि यह तथ्य विवेचनाधिकारी द्वारा नहीं लिखा गया है, तो वह कारण नहीं बता सकता है। उसने विवेचनाधिकारी को बताया था कि उसके चाचा ने घर पर बैठकर तहरीर दी थी। यदि यह तथ्य विवेचनाधिकारी द्वारा नहीं लिखा गया है, तो वह कारण नहीं बता सकता है। उन्होंने विवेचनाधिकारी को यह भी कहा था कि थाना- में उन्हें अस्पताल जाने के लिए 15-20 मिनट के बाद कांस्टेबल प्रदान किया गया था, अगर यह तथ्य विवेचनाधिकारी द्वारा अपने बयान में नहीं लिखा गया है, तो वह कारण नहीं बता सकते हैं। इस न्यायालय के अनुसार ऐसे प्रश्न मुद्दे में तथ्यों से निकटता से संबंधित नहीं हैं। यदि इस तरह का सूक्ष्म विवरण न तो विवेचनाधिकारी द्वारा पूछा जाता है और न ही द० प्र० स० की धारा 161 के तहत इस गवाह द्वारा कहा जाता है, तो इससे गवाह की विश्वसनीयता संदिग्ध नहीं होगी! इसके अलावा, इस गवाह ने गवाही दी कि कुछ दूरी पर चंद्र कांत शुक्ला का घर है। शूटिंग के समय शूटर चंद्र कांत शुक्ला के घर के उत्तर पश्चिम कोने की ओर 10 कदम की दूरी पर था, जिसने अपने पिता को टक्कर मार दी। घर के सामने पश्चिम की ओर खड़जा रोड और पश्चिम की ओर एक दुकान है। इस सड़क के पश्चिम में चंद्र कांत शुक्ला का घर है। जब गोली उनके पिता को लगी, तब उनके पिता खड़जा रोड पर चंद्र कांत शुक्ला के घर के उत्तर में थे। यह स्थान उमाकांत, पंचम कांत और चंद्र कांत शुक्ल के घर के पूर्व में है। जब पहली फायरिंग हुई तो वह, शिव प्रकाश तिवारी

और जय हिंद एक साथ थे। जब गोली उनके पिता को लगी, तब उनके पिता स्कूटर पर थे और स्कूटर के साथ खड़जा रोड पर गिर गए। इसके बाद, उसे दरवाजे पर ले जाया गया, उसके शरीर से खून निकल रहा था। उसे घटना स्थल से चारपाई पर घर ले जाया गया। वह घायल अवस्था में 15 से 20 मिनट तक दरवाजे पर पड़ा रहा। इसके बाद जीप दरवाजे पर आई, उसने अपने चाचा के साथ गांव के कई अन्य लोगों की मदद से अपने पिता को जीप में रखा था। उसे थाना- ले जाया गया। जीप पर खून गिरता है या नहीं, वह नहीं कह सकते। उसके पिता सीधे लेटे हुए थे। घायल को जीप पर बिठाने और ले जाने के दौरान उसके कपड़ों पर खून नहीं लगा था और उसके चाचा के कपड़ों पर कोई खून लगा था या नहीं, वह नहीं कह सकते। पूछने पर इस गवाह ने गवाही दी कि रास्ते में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र था लेकिन डॉक्टर नहीं होने के कारण वे वहां नहीं रुके और पिता की हालत बिगड़ने पर वे सीधे थाने पहुंच गए। लगभग 10:00-10:30 बजे वे अस्पताल पहुंचे और पूरे समय अस्पताल में रहे। उन्हें याद नहीं था कि उनके चाचा शिव प्रकाश या विवेचनाधिकारी अस्पताल में थे या नहीं। दूसरे दिन अंतिम संस्कार करने के बाद रात में ही वे अपने गांव पहुंचे तो उन्हें याद नहीं रहा कि स्कूटर मौके पर पड़ा है या घर में। घटना के 2-4 दिन बाद घर पर स्कूटर खड़ा देखा गया। उसे इस बात की परवाह नहीं थी कि स्कूटर पर और चारपाई पर खून लगा है या नहीं। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान नहीं दिया कि दरवाजे पर खून गिरा है या नहीं। घटना के समय घटनास्थल पर भीड़ लगी हुई थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि

उनके पिता किसी अन्य स्थान पर घायल हो गए थे और उन्होंने इस घटना को नहीं देखा था।

18. अ०सा०5, डॉ. के.एन.जोशी, टीबी विभाग, सप्रू अस्पताल, इलाहाबाद ने गवाही दी कि उन्होंने 11.4.2000 को मृतक के शव का शव विच्छेदन किया था। उन्हें निम्नलिखित चोटें मिलीं:

बाहरी चोटें:

एक) छाती के दाईं ओर, दाएं निप्पल से 4 सेमी नीचे, आकार 3 सेमी x 1 सेमी, मार्जिन उलटा, जलना, काला होना और टैटू मौजूद है।

आंतरिक चोटें:

ए) फुफ्फुस का घाव

ब) दोनों फेफड़े फटे हुए हैं।

ग) दिल में घाव

घ) रक्त वाहिकाओं में सूजन

ई) रक्त से भरी वक्ष गुहा

च) पेट की गुहा तरल पदार्थ से भरी हुई है।

छ) लीवर की सूजन

मौत का कारण- चोट के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव।

इस गवाह की राय में, चोट 10-4-2000 को सुबह 8:00 बजे हो सकती थी। इस गवाह ने शव विच्छेदन रिपोर्ट (प्रदर्शक -2) को साबित कर दिया है।

जिरह में इस गवाह ने कहा कि यह बताना संभव नहीं है कि चोट कब लगी। यह मृत्यु के दर्ज समय से 8-9 घंटे पहले हुआ हो सकता है।

19. अ०सा०6, कृपा शंकर दीक्षित, विवेचनाधिकारी, ने गवाही दी कि 10.4.2000 को उन्हें थाना अध्यक्ष सराय इनायत के रूप में तैनात किया गया था; जब शिकायतकर्ता शिव प्रकाश तिवारी ने एक लिखित शिकायत दर्ज की, तो धारा 307/504 भ० द० वि० के तहत 2000 की संख्या 158 वाला एक प्राथमिकी दर्ज किया गया। घायल जय प्रकाश तिवारी को सरकारी अस्पताल इलाहाबाद भेजा गया है। चिक और रिपोर्ट की प्रति प्राप्त करने के बाद, उन्होंने जांच शुरू की, चिक प्राथमिकी लेखक के बयान दर्ज किए और इसे सीडी में कॉपी किया, हनुमानगंज के चौकी प्रभारी श्री राम मूर्ति पांडे के साथ घटना स्थल पर पहुंचे, जहां उन्हें पता चला कि अपराध करने के बाद आरोपी अपने मार्शल जीप नंबर यूपी 70 आर 9145 से जमुनीपुर की ओर गए हैं। चौकी प्रभारी को मौके पर छोड़कर वह आरोपियों की तलाश में निकले लेकिन उनका पता नहीं चला। प्रेम नारायण अवस्थी, एचसीपी ने घायल की मौत के बारे में सूचित किया, जिसे उन्होंने सीडी में कॉपी किया और शिकायतकर्ता शिव प्रकाश तिवारी और गवाह कुलदीप मिश्रा के बयान को दोहराया। उन्होंने शिकायतकर्ता के कहने पर घटना के स्थान का निरीक्षण किया और अपनी लिखावट और हस्ताक्षर में नक्शा नज़री (प्रदर्श क -3) तैयार किया जिसे उन्होंने साबित भी किया।

इसके बाद, उन्होंने घटना स्थल से खून से सना और सादा मिट्टी ली और एसआई राम मूर्ति पांडे की लिखावट में फर्द बरामदगी (एक्स का -4) तैयार किया और उस पर हस्ताक्षर किए। उन्होंने मौके पर मौजूद गवाहों के बयान भी दर्ज किए। इसके बाद, उन्होंने

आरोपी व्यक्तियों के घर का दौरा किया और उसकी तलाशी ली और 303 बोर की एक देसी बंदूक और 7 कारतूस बरामद किए। इसके अलावा 32 बोर के 5 जिंदा कारतूस और 303 बोर के 5 खाली कारतूस, 12 बम भी बरामद किए गए। फर्द बरामदगी (प्रदर्श क-5) तैयार किया गया था। कार्यवाही सीडी पेपर नंबर 1 में भी दर्ज की गई थी। दिनांक 15.4.2000 को, यह जानते हुए कि आरोपी व्यक्ति अपनी वस्तुओं का निपटान कर रहे हैं, द० प्र० स० की धारा 82/83 के तहत प्रक्रिया जारी करने के लिए एक आवेदन दायर किया, जिसे 18.4.2000 को जारी किया गया था, जिसमें आरोपी व्यक्तियों के दरवाजे पर द० प्र० स० की धारा 82 के तहत प्रक्रिया की प्रति चिपकाई गई थी। 20-4-2000 को उन्हें टेलीफोन पर आरोपी व्यक्तियों की जीप के अंदर आग्नेयास्त्रों के बारे में सूचना प्राप्त हुई। इसके बाद, मार्शल जीप को थाना के परिसर में ले जाया गया, जहां उसकी तलाशी ली गई और ड्राइविंग सीट के रबर के नीचे 7 एके -47 कारतूस बरामद किए गए, जिसके बारे में फर्द बरामदगी तैयार किया गया था और धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी। दिनांक 21-4-2000 को जब आरोपी व्यक्तियों ने आत्मसमर्पण किया तो इसे परचा सं 2008 में दर्ज किया गया था।

8. उन्होंने सीडी के साथ जांच और शव विच्छेदन रिपोर्ट संलग्न की और सीजेएम इलाहाबाद की अनुमति लेने के बाद, नैनी जेल का दौरा किया और आरोपी व्यक्तियों के बयान दर्ज किए। उन्होंने अपराध होने से इनकार किया, लेकिन आरोपी कमल मिश्रा और बिमल

मिश्रा अपराध में इस्तेमाल किया गया हथियार बरामद करने के लिए सहमत हो गए। उसके बाद उनके घर की तलाशी ली गई, लेकिन अपराध में इस्तेमाल किया गया कोई हथियार बरामद नहीं हुआ। दिनांक 27-4-2000 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद ने दिनांक 28-4-2000 को अपराहन 3.00 बजे तक पुलिस रिमांड की अनुमति दी। आरोपी कमल मिश्रा की निशानदेही पर छावैया रोड स्थित राजकीय नलकूप के पास कछार क्षेत्र से 315 बोर का देसी फायर आर्म और 315 बोर के खाली कारतूस बरामद किए गए। फर्द बरामदगी तैयार किया गया था और नक्शा नज़री (प्रदर्शक -6) तैयार किया गया था। थाने में आने के बाद केस प्रॉपर्टी मालखाने में जमा कराई गई और धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत मामला भी दर्ज किया गया। उसके बाद आरोपियों को नैनी जेल भेज दिया गया। अलग-अलग तारीखों पर इस गवाह ने कई गवाहों के बयान दर्ज कराए हैं। 25.5.2000 को उन्होंने परचा नंबर 16 तैयार किया जिसमें दो मामलों के आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा, पांच मामलों के आरोपी कमल मिश्रा और 3 मामलों के आरोपी बिमल मिश्रा के आपराधिक इतिहास का उल्लेख किया गया है। इस बात से संतुष्ट होने पर कि आरोपी व्यक्तियों ने अपराध किया है, उन्होंने धारा 302, 307, 504 और 34 भ० द० वि० के तहत आरोप पत्र (प्रदर्शक -7) प्रस्तुत किया।

जिरह में इस गवाह ने गवाही दी कि 12.4.2000 को उसने थाना- खीरी की क्षेत्रीय सीमा के तहत एक गांव से मार्शल जीप को बरामद किया और थाना- में कानून के अनुसार इसे स्वीकार किया था। जीप से कोई सामान

बरामद नहीं हुआ है। यह 20-4-2000 तक थाना- में था। उन्हें नहीं पता कि जब वह पुलिस थाने के परिसर में रहे तो क्या हुआ। वह यह नहीं बता सके कि पुलिस ने चिक रिपोर्ट प्रदर्शक क-8 कब तैयार की थी। उन्होंने आगे कहा कि घटनास्थल से खाली कारतूस का कोई टिकुली बरामद नहीं किया गया था। उन्होंने स्वीकार किया कि आरोपी व्यक्तियों का घर घटना स्थल से 150 मीटर की दूरी पर है। उन्होंने बताया कि शिकायतकर्ता शिव प्रकाश तिवारी आरटीओ में कार्यरत था। उन्होंने 10-4-2000 के उस समय का पता लगाने का प्रयास नहीं किया, जब सूचनादाता शिव प्रकाश तिवारी कार्यालय से चले गए थे। उन्होंने जवाब दिया कि मौके पर न तो खून से सनी मिट्टी मिली और न ही खून से सनी चारपाई थी। वह स्वीकार करता है कि 10.4.2000 और 15.5.2000 को, यह जीडी में दर्ज नहीं किया गया है कि उसके द्वारा किन गवाहों के बयान दर्ज किए गए थे। उन्हें याद नहीं था कि 15.5.2000 से पहले पवन तिवारी और जय हिंद सिंह उनसे मिले थे या नहीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि प्राथमिकी दर्ज कराने के बाद 10.4.2000 को उन्होंने एसआरएन अस्पताल का दौरा किया था। इस गवाह ने आगे कहा कि शिव प्रकाश तिवारी ने अपने बयान में यह नहीं कहा था कि आरोपी मीनू मालवीय की दुकान के बगल वाली गली में खड़े थे, बल्कि यह बताया गया था कि वे दुकान के बगल में खड़े थे। उसी गवाह ने अपने बयान में दरवाजे पर खड़े होने की बात नहीं बताई थी बल्कि मौके पर मौजूद रहते हुए घटना को देखने की बात कही थी। उन्होंने घटना के समय आगे बढ़ने के बारे में भी नहीं

बताया था। इस गवाह ने बताया है कि आरोपी कमल मिश्रा ने मार्शल जीप चलाई थी।

गवाह जय हिंद सिंह ने अपने बयान में यह नहीं बताया कि उसने शिकायतकर्ता से विंध्याचल एक साथ जाने के बारे में बात की थी, लेकिन कहा है कि जब वह सुबह लगभग 8:00 बजे शिकायतकर्ता शिव प्रकाश तिवारी के घर आया, तो शिकायतकर्ता ने उसे बताया कि उसका बड़ा भाई भी उनके साथ जाएगा, वह इंद्रि देवी की पूजा करने गया है।

गवाह पवन तिवारी ने यह नहीं बताया कि आरोपी दुकान के बगल वाली गली में खड़े थे, लेकिन उन्होंने बताया था कि आरोपी वहां खड़े थे। यह भी नहीं बताया गया कि वे अपने दरवाजे पर खड़े थे। गवाह ने जवाब दिया है कि वह दीवार के पीछे बैठा था। उसके द्वारा यह नहीं बताया गया था कि वह ईंट के ढेर के पीछे छिप गया था। उसने भागने और अपने घर की ओर भागने के बारे में गवाही दी थी और जवाब नहीं दिया था कि वह उसी गली से घर की ओर भागा था जिसमें वह खुद छिपा हुआ था।

इस गवाह ने आगे कहा कि प्राथमिकी उसकी उपस्थिति में दर्ज की गई थी। वह बता सकता था कि पवन तिवारी शिकायतकर्ता के साथ आया था या नहीं। पवन तिवारी की मौजूदगी को लेकर जीडी एंटी नहीं हुई है। घटना की तारीख पर वह पवन तिवारी से नहीं मिले थे और न ही उन पर खून देखा था। इस गवाह ने मीनू मालवीय का बयान दर्ज नहीं किया था। चन्द्रकांत शुक्ल का घर घटना स्थल के पास ही उनके घर के उत्तर में पदम का घर है। यदि कोई व्यक्ति चंद्र कांत शुक्ल और पदम कांत शुक्ल के घरों के उत्तर-पश्चिम कोने

या पश्चिम की ओर 10 कदम खड़ा है, तो वह घटना का स्थान नहीं देख पाएगा। दोनों व्यक्तियों के घर पक्के हैं। जांच के दौरान उन्हें पता चला कि श्याम बिहारी मिश्रा नगर पालिका में सेवा करते हैं। उन्हें नहीं पता था कि श्याम बिहारी मिश्रा किस पद पर तैनात हैं और न ही वह उनकी उपस्थिति के बारे में पूछताछ करने के लिए वहां जाते हैं। इस गवाह के अनुसार घटना के संबंध में आरटी सेट के माध्यम से उच्च अधिकारियों को सूचना दी गई। इस गवाह ने बचाव पक्ष के वकील द्वारा दिए गए सुझावों से इनकार किया। यह गवाह सीडी के कई कागजों पर हस्ताक्षर को पहचान नहीं पाया। उन्होंने कहा कि उन्हें याद नहीं है कि सर्कल अधिकारी कौन था।

20. अ०सा०-7, हेड कांस्टेबल बंदी प्रसाद मिश्रा ने बयान दिया कि 10.4.2000 को उन्हें थाना- सराय इनायत में कांस्टेबल मोहर्रिर के रूप में पेश किया गया था, जहां शिकायतकर्ता शिव प्रकाश तिवारी घायल जय प्रकाश तिवारी, कुलदीप मिश्रा, जय हिंद और समोद सिंह के साथ एक कमांडर जीप नंबर यूपी 70 एम 1317 पर आए थे। चंद्र देव तिवारी द्वारा एक लिखित शिकायत प्रस्तुत की जिसके आधार पर आरोपी व्यक्तियों श्याम बिहारी मिश्रा, बिमल मिश्रा और कमल मिश्रा के खिलाफ धारा 307 और 504 भ० द० वि० के तहत प्राथमिकी नंबर 127/2000 केस क्राइम नंबर 158/2000 दर्ज किया गया। उन्होंने जय प्रकाश तिवारी पर लगी चोटों का अवलोकन किया और चिट्ठी मजरूबी/चोट पत्र तैयार कर कांस्टेबल जीत बहादुर सिंह को उपलब्ध कराया और घायलों के साथ उसे उपचार के लिए स्वरूप रानी

अस्पताल भेजा। इस गवाह ने चिक प्राथमिकी (प्रदर्श क-8) को अपनी लिखावट और हस्ताक्षर में साबित कर दिया है। उन्होंने जीडी (प्रदर्श क-9) की कार्बन कॉपी भी साबित की। चिक प्राथमिकी और लिखित शिकायत की प्रति विवेचनाधिकारी कृपा शंकर दीक्षित को दी गई, जो जांच के लिए रवाना हो गए। कांस्टेबल जीत बहादुर ने अस्पताल से लौटकर जानकारी दी कि घायल जय प्रकाश तिवारी की मौत हो गई है और उसका शव मोर्चरी में है। यह जानकारी रिकॉर्ड की गई और लगभग 11:00 बजे भ० द० वि० की धारा 302 जोड़ी गई और इसकी प्रति विवेचनाधिकारी को भेजी गई, सूचना डीसीआर (प्रदर्श क-10) के माध्यम से वरिष्ठ अधिकारी को भी भेजी गई। इस गवाह ने भ० द० वि० की धारा 302 जोड़ने के संबंध में जीडी को भी साबित किया है।

जिरह में इस गवाह ने गवाही दी है कि चिक को 13.4.2000 को अदालत में भेजने के लिए सीओ का आदेश और हस्ताक्षर थे। चोट पत्र रिकॉर्ड में नहीं है क्योंकि इसे कांस्टेबल जीत बहादुर सिंह द्वारा वापस नहीं किया गया था। इस गवाह ने इन सुझावों से इनकार किया कि नियमों के अनुसार जीडी को अगली तारीख तक सीओ कार्यालय को भेजा जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि दिनांक 10.4.2000 के जी.डी. पर दिनांक 13.4.2000 के हस्ताक्षर किए गए हैं।

21. अ०सा०-8, संत कुमार चतुर्वेदी, एच.सी.पी. ने गवाही दी कि 10.4.2000 को उन्हें थाना-कोतवाली, इलाहाबाद में तैनात किया गया था। उस दिन उन्हें जांच रिपोर्ट तैयार करने के लिए जय प्रकाश तिवारी की मृत्यु के बाद तहरीर के

मेमो और एसआरएन अस्पताल के मेमो की प्रति मिली। उन्होंने जांच रिपोर्ट, चालान लाश और फोटो लाश, सी.एम.ओ., आर.आई. को पत्र और नमूना सील तैयार की और इसे प्रदर्श क.12 से प्रदर्श क-18 के रूप में साबित किया। जिरह में उसने स्वीकार किया है कि जांच के समय उसे प्राथमिकी दर्ज किए जाने के बारे में पता नहीं था।

22. मौखिक साक्ष्य के पूरा होने के बाद, आरोपी व्यक्तियों के बयान द० प्र० स० की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए हैं।

आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा ने सभी सवालों से इनकार किया और कहा कि गवाहों ने दुश्मनी के कारण गवाही दी है और मामला दुश्मनी के कारण दर्ज किया गया है। वह नगर पालिका में काम करता है और घटना की तारीख पर, वह गांव से 28 किमी दूर अधिकारियों के साथ नैनी, इलाहाबाद में ड्यूटी पर था।

(ii) आरोपी कमल मिश्रा ने भी सभी सवालों से इनकार किया और इसके अलावा, कहा है कि मृतक एक अपराधी था, उसके कई अन्य दुश्मन थे, उसे एक अलग स्थान और समय पर मार दिया गया है।

(iii) अभियुक्त बिमल मिश्रा ने भी सवालों और आरोपों से इनकार किया और कहा है कि मृतक एक अपराधी था, जिसके कई अन्य दुश्मन थे। वह किसी अन्य स्थान और समय पर मारा गया था। जाली कागजात बहुत बाद में तैयार किए गए थे। जय प्रकाश की मौत के बाद परामर्श के बाद झूठी रिपोर्ट दर्ज की गई।

23. बचाव पक्ष में चार गवाहों से पूछताछ की गई है। इन गवाहों के साक्ष्य का वर्णन किया जाएगा और उचित स्थान पर बाद में चर्चा की जाएगी।

24. अपील पर निम्नानुसार निर्णय लिया जा रहा है।

25. अपीलकर्ताओं के वकील ने तर्क प्रस्तुत किया है कि अभियोजन पक्ष आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ कोई मकसद स्थापित करने में विफल रहा है।

26. मकसद:

प्राथमिकी में यह उल्लेख किया गया है कि अपराध होने से पहले पक्षों के बीच भूमि के संबंध में पुरानी दुश्मनी थी जो मृतक की हत्या के पीछे का कारण था।

अंसा०-1, शिव प्रकाश तिवारी ने अपनी जांच में कहा है कि सुदर्शन पुत्र सुंदर से खसरा नंबर 1005 की जमीन खरीदने के कारण आरोपियों से पुरानी रंजिश थी। जिरह के दौरान उन्होंने जवाब दिया कि सरकारी अस्पताल और सड़क के बीच 18 बिस्वा जमीन है। तीन भागीदारों ने 1998 में पंजीकृत समझौते को निष्पादित किया। उन्होंने, वाजपेयी और एक अन्य ने तीन-तीन बिस्वा जमीन खरीदी थी। उन्होंने और विनय वाजपेयी ने अपने हिस्से की जमीन अपनी बहन को बेच दी। उन्होंने सुदर्शन दुबे की 4 बिस्वा जमीन पुरुषोत्तम दुबे को बेचे जाने के तथ्य से अनभिज्ञता व्यक्त की कि क्या नामांतरण पुरुषोत्तम दुबे के नाम पर किया गया है। उन्होंने इस बात से भी अनभिज्ञता जताई कि पुरुषोत्तम दुबे ने

31.1.2000 को आरोपी कमल मिश्रा के पक्ष में किसी पावर ऑफ अटॉर्नी का निष्पादन किया है या नहीं। यह गवाह स्वीकार करता है कि कुलदीप मिश्रा उसकी बहन का बेटा है जिसने उपरोक्त भूखंड से 5 बिस्वा जमीन खरीदी है। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया कि वह और कुलदीप मिश्रा अवैध रूप से जमीन पर कब्जा करना चाहते थे और अतीत में उन्हें पुरुषोत्तम दुबे ने रोका था। इस तरह के सवाल पूछने से पार्टियों के बीच पिछली भूमि दुश्मनी भी स्थापित होती है।

इस प्रकार, उपरोक्त क्रॉस-एग्जामिनेशन से यह भी स्थापित होता है कि अपराध करने के उद्देश्य से पार्टियों के बीच मौजूदा भूमि दुश्मनी थी।

मृतक के पुत्र पवन तिवारी ने भी परीक्षा-इन-चीफ में बयान दिया है कि भूमि रंजिश के कारण आरोपियों ने उसके पिता की हत्या की है। इस गवाह से इस संबंध में कोई जिरह नहीं की गई है। इसलिए, पिछली भूमि दुश्मनी और मृतक की हत्या के कारण के बारे में सबूत बरकरार हैं।

यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का मामला है जिसमें मकसद का कोई महत्व नहीं है और इसके अलावा, अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए मकसद को अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा साबित किया गया है और जिरह के माध्यम से बचाव पक्ष ने यह भी स्वीकार किया है कि पक्षों के बीच पुरानी दुश्मनी थी और सुदर्शन दुबे ने कुलदीप मिश्रा के पक्ष में अपनी जमीन के संबंध में बिक्री-विलेख किया था और उसकी जमीन का कुछ हिस्सा पीड़ित परिवार और उनके रिश्तेदार द्वारा खरीदा गया था।

इसलिए, पक्षों के बीच विवाद का वरदान था जिसके कारण यह अपराध किया गया था।

लेखराज @ हरि सिंह बनाम गुजरात राज्य 1998 एससीसी (सीआरआई) 704 मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि-

किसी आरोपी को मकसद के सबूत के अभाव में भी दोषी ठहराया जा सकता है।

हरफूल और रामजीवन बनाम राजस्थान राज्य, 2002 एससीसी ऑनलाइन, राज 988 मामले में, राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने कहा है कि- "प्रत्यक्ष साक्ष्य के मामले में, उद्देश्य की अनुपस्थिति घातक नहीं है। सद्दीक @ लालो गुलाम हुसैन शेख और अन्य बनाम गुजरात राज्य, (2016) 10 एससीसी 663 के मामले में, शीर्ष अदालत ने पैराग्राफ 21 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि भले ही उद्देश्य की अनुपस्थिति, जैसा कि आरोप लगाया गया है, स्वीकार किया जाता है, इसका कोई परिणाम नहीं है और जब प्रत्यक्ष सबूत अपराध को स्थापित करते हैं तो महत्वहीन हो जाते हैं। इसलिए, यदि किसी अपराध के बारे में गवाहों के प्रत्यक्ष भरोसेमंद सबूत हैं, तो मकसद हिस्सा इसके महत्व को खो देता है। इसलिए, यदि घटना के मकसद की उत्पत्ति साबित नहीं होती है, तो घटना के बारे में गवाहों की ओकूलर गवाही को केवल मकसद की अनुपस्थिति के आधार पर नहीं छोड़ा जा सकता है, अगर अन्यथा सबूत निर्भरता के योग्य है।

फिर भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राज गोपाल बनाम मुथुपंडी @ थक्कलाई और अन्य के मामले में, (2017) 11 एससीसी

120, पैराग्राफ 14 में निम्नानुसार टिप्पणी की है:

14. समान रूप से, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि मकसद को स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है जहां प्रत्यक्ष सबूत हैं। अपराधियों द्वारा अंसा 1 पर किए गए क्रूर हमले को देखते हुए, यह तथ्य कि गवाह अपने बयान से मुकर गए हैं, दोनों तरीकों को काट सकता है, जैसा कि आपराधिक न्यायशास्त्र में अच्छी तरह से जाना जाता है।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर अपीलकर्ताओं के मकसद के बारे में तर्क खारिज किया जाता है।

27. प्राथमिकी - प्राथमिकी के बारे में, यह तर्क दिया गया है कि यह समय पूर्व दर्ज किया गया था और यह पुलिस के आदेश पर लिखा गया था। अभियोजन पक्ष के अनुसार इस मामले में यह घटना दिनांक 10-4-2000 को सुबह लगभग 8:30 बजे हुई। घटना स्थल से थाना की दूरी 12 किमी है और प्राथमिकी उसी दिन सुबह 9:30 बजे दर्ज किया गया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि आरोपी व्यक्तियों के नाम, हमले के तरीके और गवाहों के नाम, मकसद, आरोपी व्यक्तियों के पूर्व और बाद के आचरण और व्यवहार का भी प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है जो कि तहरीर के साथ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त था। यह भी स्थापित कानून है कि प्राथमिकी सबूत का एक ठोस टुकड़ा नहीं है, यह मामले की जांच के लिए पुलिस मशीनरी में तेजी लाने का एक साधन है। तथापि, प्राथमिकी में पर्याप्त तथ्यों का उल्लेख किया गया है।

इस मामले में घटना के एक घंटे पांच मिनट बाद प्राथमिकी दर्ज की गई और कुछ देर बाद मृतक को एसआरएन अस्पताल में इलाज के लिए भेज दिया गया। विवेचनाधिकारी ने उसी दिन घटनास्थल का दौरा किया और नक्शा तैयार किया, उसी दिन जांच तैयार की गई और शव को भी उसी दिन मुर्दाघर ले जाया गया। मृतक की मृत्यु के बाद मामले को उसी दिन 10.4.2000 को सुबह 11:00 बजे रिपोर्ट संख्या 19 के तहत धारा 307 से 302 भ० द० वि० में परिवर्तित कर दिया गया था और जीडी, प्रदर्शक -10 भी तैयार किया गया था। जांच और शव विच्छेदन के संबंध में सभी कागजात उसी दिन अ०सा० 8 एसके चतुर्वेदी द्वारा फॉर्म नंबर 13 को छोड़कर तैयार किए गए थे। तहरीर और चिक प्राथमिकी को उसी दिन केस-डायरी में ट्रांसक्रिप्ट किया गया था। सूचना देने वाले शिव प्रकाश तिवारी के बयान भी उसी दिन दर्ज किए गए थे और उसी दिन घटनास्थल से खून से सनी और साधारण मिट्टी भी ले ली गई थी। दिनांक 10-4-2000 को आरोपी व्यक्तियों के घर पर भी छापा मारा गया था और 303 बोर की एक देसी पिस्तौल, 7 कारतूस और 12 बम बरामद किए गए थे और इसका फर्द बरामदगी तैयार किया गया था।

गिरीश यादव और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1996) 8 एससीसी 186 मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि -

"महाराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1994 एससीसी (सीआरआई) 139 को छोड़कर कुछ अन्य बाहरी जांच भी हैं ताकि यह पता लगाया जा सके कि प्राथमिकी पूर्व-निर्धारित था या पूर्व-निर्धारित था। यह सूची विस्तृत है

क्योंकि उद्धृत मामले में साइट प्लान पहले शिकायतकर्ता की उपस्थिति में तैयार किया गया था, जिसमें केस क्राइम नंबर दिया गया था और थाना- में बनाए गए सनहा एंटी दी गई थी, जिसमें प्राथमिकी की सभी प्रासंगिक सामग्री को बाहरी जांच भी शामिल किया गया था।

प्रेम नाथ यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 (2) एससीआर 1065 (एलबी) में यह माना गया है कि:

उन्होंने कहा, 'जब यह घटना सुबह सात बजे हुई तो प्राथमिकी सुबह आठ बजकर 10 मिनट पर दर्ज की गई। जांच रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के बयान के समर्थन में थी। इस न्यायालय की खंडपीठ ने कहा कि इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राथमिकी

महाराज सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1994) 5 एससीसी 188, राम सजीवन सिंह और अन्य बनाम बिहार राज्य (1996) 8 एससीसी 552 के पैराग्राफ 12 प्रासंगिक हैं जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "प्राथमिकी को पूर्व-समय साबित करने के लिए, इसे संदेह से परे और केवल पूछने पर साबित किया जाना चाहिए। इसे पूर्व-निर्धारित नहीं माना जा सकता है, खासकर जब घटनाओं की श्रृंखला / अनुक्रम स्वयं लिंक होता है ताकि यह सुझाव दिया जा सके कि प्राथमिकी के पूर्वनिर्धारित होने की कोई संभावना नहीं है।

"इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राथमिकी पूर्व-दिनांकित या पूर्व-समय पर है या इसे पुलिस कर्मियों के इशारे पर लिखित रूप में कम किया गया था।

28. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि द० प्र० स० की धारा 157 के तहत संबंधित मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी दर्ज करने के तुरंत बाद नहीं भेजी गई चिक प्राथमिकी की प्रति अभियोजन पक्ष के लिए घातक है। इस आधार पर यह तर्क दिया जाता है कि चिक प्राथमिकी में उल्लिखित समय पर प्राथमिकी दर्ज नहीं किया गया था, इसलिए चिक, प्राथमिकी को तुरंत संबंधित मजिस्ट्रेट के पास नहीं भेजा गया था। इस संबंध में तथ्यों, सबूतों और प्रासंगिक कानून पर नीचे चर्चा की जा रही है। चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-8 रिकॉर्ड पर है जिसमें यह लिखा है कि इसे डाक के माध्यम से भेजा गया है लेकिन संबंधित मजिस्ट्रेट के कोई हस्ताक्षर नहीं हैं। द० प्र० स० की धारा 157 के अनुसार, इसे तुरंत भेजा जाना चाहिए लेकिन आम तौर पर इसे संबंधित मजिस्ट्रेट को तुरंत नहीं भेजा जाता है। पुलिस रिपोर्ट पर ऐसे अपराध का संज्ञान लेने के लिए इसे संबंधित मजिस्ट्रेट के पास भेजने का प्रावधान है। हालांकि यह साबित हो गया है कि प्राथमिकी दर्ज करने के तुरंत बाद, विवेचनाधिकारी ने जांच शुरू की और घटना स्थल का दौरा किया। इस प्रावधान का उद्देश्य स्पष्ट है और इसमें कानून का केवल तकनीकी अनुपालन शामिल है।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गोकरण और अन्य, एआईआर 1985 एससी 131 और पाला सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1972 एससी 2679 मामले में यह कहा गया है कि-

"ऐसा नहीं है कि द० प्र० स० की धारा 157 के तहत जिला मजिस्ट्रेट को इस तरह की विशेष

रिपोर्ट भेजने में हर देरी से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राथमिकी उस समय दर्ज नहीं की गई है या पूर्व-निर्धारित की गई है या जांच निष्पक्ष और स्पष्ट नहीं है।

अनिल राय बनाम बिहार राज्य, 2001 7 एससीसी 318 और राज्य बनाम हाकम सिंह (2005) 7 एससीसी 408 मामले में यह कहा गया है कि-

"एरिया मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी की प्रति भेजने में देरी ऐसी सामग्री नहीं है जहां प्राथमिकी को तुरंत दर्ज किया गया हो और उस आधार पर जांच शुरू हुई थी। जब अभियोजन पक्ष ने उचित स्पष्टीकरण दिया है तो देरी सामग्री नहीं है।

कर्णाटक राज्य बनाम मोइन पटेल (1996) 8 एससीसी 167 और बेताल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1996 एससी 2770 मामले में यह माना जाता है कि -

"जब प्राथमिकी को बिना किसी देरी के दर्ज किया गया था और उसके आधार पर जांच शुरू की गई थी, तो प्राथमिकी को भेजने में केवल देरी हुई। मजिस्ट्रेट के लिए अभियोजन पक्ष के मामले को संदिग्ध नहीं बनाया जाएगा।

इस मामले में बचाव पक्ष प्राथमिकी के पूर्व-दिनांकित और पूर्व-निर्धारित होने के बारे में कोई संदेह पैदा नहीं कर सका। प्राथमिकी दर्ज होने के तुरंत बाद जांच शुरू हुई। कुछ घंटों के बाद मृतक को मृत घोषित कर दिया गया और जांच और शव विच्छेदन की कार्यवाही शुरू कर दी गई। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल का दौरा किया था और नक्शा तैयार किया था और

शिकायतकर्ता का बयान भी दर्ज किया था, इसलिए, द० प्र० स० की धारा 157 के तहत मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी की रिपोर्ट/प्रति भेजने में देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है और किसी भी तरह से मामले की योग्यता को प्रभावित नहीं करती है।

29. **जांच-** अपीलकर्ता के वकील ने तर्क दिया कि न तो अपराध संख्या, धारा और न ही चिक प्राथमिकी की प्रति जांच के साथ अनुक्रमित की गई थी। इस संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि यह मामला थाना सराय इनायत से संबंधित है और प्राथमिकी दर्ज करने के बाद घायल को इलाज के लिए एसआरएन अस्पताल भेजा गया और अस्पताल पहुंचने से पहले ही मृतक ने रास्ते में ही दम तोड़ दिया। इसलिए, अस्पताल में डॉक्टरों ने उन्हें मृत पाया। इसलिए, उन्होंने चोट पत्र (मजरूबी चिट्ठी) पर ध्यान नहीं दिया और इसे संबंधित कांस्टेबल को वापस कर दिया गया। इसे विवेचनाधिकारी द्वारा लिया और विचार भी नहीं किया गया था। कोतवाली इलाहाबाद के एचसीपी एसके चतुर्वेदी द्वारा एसआरएन अस्पताल से सूचना के बाद जांच की गई, जो थाना- सराय इनायत में तैनात नहीं थे, इसलिए, चिक प्राथमिकी की प्रति का अभाव और अपराध संख्या और धाराओं का उल्लेख न करना सामग्री नहीं है। इसके अलावा, जांच सबूत का एक ठोस टुकड़ा नहीं है। यह केवल प्रथम दृष्टया मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए एक प्रक्रिया है कि मृत्यु प्राकृतिक थी या अप्राकृतिक। जांच के दौरान, यह पाया गया कि मृतक के दाहिने सीने पर बंदूक की गोली लगी थी। राधा मोहन

सिंह उर्फ लाल साहेब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 (54) एसीसी 862 में यह माना गया है कि-

"जांच रिपोर्ट में चूक, विसंगतियों, ओवरराइटिंग, विरोधाभास के बारे में दिए गए तर्कों पर तब तक विचार नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि लेखक का ध्यान सहायता तथ्य की ओर आकर्षित न किया जाए और गवाह के रूप में पूछताछ किए जाने पर उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर न दिया जाए। द० प्र० स० की धारा 174 के तहत तैयार की गई जांच रिपोर्ट की आवश्यक सामग्री और उस उद्देश्य के लिए जांच का दायरा सीमित है और यह मृत्यु के स्पष्ट कारण का पता लगाने तक ही सीमित है। यह यह पता लगाने से संबंधित है कि क्या किसी दिए गए मामले में मौत आकस्मिक, आत्मघाती या हत्या थी या जानवर के कारण हुई थी, और किस तरीके से या किस हथियार या उपकरण से शरीर पर चोटें आई थीं। जांच रिपोर्ट में कृत्यों का विवरण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। मृतक पर कैसे हमला किया गया या किसने उस पर हमला किया या किन परिस्थितियों में उस पर हमला किया गया या हमले के गवाह कौन थे, इस बारे में विवरण के बारे में प्रश्न द० प्र० स० की धारा 174 के तहत कार्यवाही के दायरे के लिए विदेशी है। कानून में प्राथमिकी के विवरण, आरोपियों के नाम या प्रत्यक्षदर्शियों के नाम या जांच रिपोर्ट में उनके बयानों के सार का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है, न ही उक्त रिपोर्ट को किसी भी प्रत्यक्षदर्शी द्वारा हस्ताक्षरित करने की आवश्यकता है।"

पोड्डा नारायण बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1975 एससी 1252 मामले में यह कहा गया है कि-

पीठ ने कहा, 'जांच रिपोर्ट का उद्देश्य केवल यह पता लगाना है कि क्या किसी व्यक्ति की मौत संदिग्ध परिस्थितियों में हुई या उसकी अप्राकृतिक मौत हुई और यदि हां, तो इसका स्पष्ट कारण क्या था. शीर्ष अदालत के अनुसार, मृतक पर कैसे हमला किया गया या किसने उस पर हमला किया या किन परिस्थितियों में उस पर हमला किया गया, इस बारे में सवाल इस तरह की कार्यवाही के दायरे से परे हैं।

इस न्यायालय की राय है कि जांच के लिए पहले से दर्ज प्राथमिकी की कोई आवश्यकता नहीं है, मान लीजिए कि एक अज्ञात शव पाया जाता है और कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की जा रही है, तो उस स्थिति में, पुलिस उस स्थान का दौरा करेगी और शव को अपने कब्जे में लेगी और जांच और शव विच्छेदन करेगी और मीडिया और समाचार पत्रों में समाचार प्रकाशित करेगी, यदि कुछ दिनों के बाद कोई व्यक्ति आता है और शव का दावा करता है और प्राथमिकी दर्ज करने के लिए लिखित शिकायत करता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि जांच कार्यवाही करने का कोई अवसर नहीं था। इस मामले में प्राथमिकी पहले ही दर्ज किया जा चुका था, हालांकि जांच करते समय चिक प्राथमिकी की प्रति कोतवाली पुलिस के पास नहीं थी। इसलिए, इस अदालत के अनुसार इस बिंदु पर बहस की कोई गुंजाइश नहीं है।

यह भी तर्क दिया जाता है कि फॉर्म 13 तैयार नहीं किया गया था। फोटो लाश, चालान

लाश, आर.आई. और सी.एम.ओ. को पत्र और फॉर्म 13 की तैयारी जैसे कागजात तैयार करना प्रकृति में औपचारिक हैं। उनमें से किसी की भी चूक मामले के गुण-दोष पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है। इसलिए, फॉर्म 13 की तैयारी न करने के संबंध में तर्क को खारिज कर दिया जाता है।

इस प्रकार, जांच रिपोर्ट के संचालन और तैयारी में कोई अनियमितता या अवैधता नहीं है।

30. ऑटोप्सी :- यह भी तर्क दिया जाता है कि ऑटोप्सी रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के संस्करण के समर्थन में नहीं है और यह अत्यधिक और अस्पष्ट देरी के बाद आयोजित की गई है।

इस मामले में अपराध 10-4-2000 की सुबह हुआ और दोपहर में घायल को मृत घोषित कर दिया गया। जांच की कार्यवाही शाम 4:25 बजे समाप्त हुई और उसके बाद शव को आरआई के माध्यम से शवगृह भेजा गया, तब तक लगभग रात हो चुकी थी, इसलिए, जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना, शव का शव विच्छेदन संभव नहीं था। कोई अन्य कारण हो सकता है जैसे डॉक्टर की अनुपलब्धता आदि। इस अदालत का विचार है कि ऐसा नहीं लगता कि शव परीक्षण में कोई असाधारण देरी हुई है, लेकिन यदि ऐसा है, तो यह अभियोजन पक्ष के लिए किसी भी तरह से प्रासंगिक और घातक नहीं है। 11.4.2000 को दोपहर 2:00 बजे अ०सा०5 डॉ. के.एन. जोशी द्वारा शव परीक्षण किया गया जिसमें उन्होंने छाती के दाईं ओर अग्नेयास्त्र के घुसने के घाव को दाएं निप्पल आकार से 4 सेमी नीचे 3

सेमी x 1 सेमी पाया, मार्जिन उल्टा, जलना, काला होना और टैटू मौजूद था, वक्ष गुहा से एक छड़ी के साथ 63 छोटे छरों को बरामद किया गया था। डॉक्टर के अनुसार, मौत का कारण एंटी मॉर्टम चोट के परिणामस्वरूप सदमे और हथौड़ा था। इस प्रकार प्राथमिकी की सामग्री, जांच और मौखिक साक्ष्य और पोस्ट-मॉर्टम रिपोर्ट और डॉक्टर के साक्ष्य एक दूसरे के अनुरूप हैं। यह भी स्थापित किया गया है कि मृतक को बहुत करीब से गोली मारी गई थी।

बुध सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2007 एससी (सपल) 267 और स्वर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 2000 एससी 2017 मामले में यह कहा गया है कि:

"जहां घाव बंदूक की गोलीबारी से हुआ था, वहां कालापन केवल तभी पाया जा सकता है जब गोली लगभग 3 से 4 फीट की दूरी से चलाई गई थी, न कि उससे आगे।

भरत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1999 एससी 717 मामले में यह कहा गया है कि-

उन्होंने कहा, 'चिलचिलाती, कालिख पोतने और टैटू गुदवाने की अनुपस्थिति से डॉक्टर की सकारात्मक राय और गोलीबारी की दूरी पर गवाही के अभाव में चश्मदीद गवाहों के बयान को बदनाम नहीं किया जा सकता.'

इस मामले में गवाहों द्वारा गवाही दी जाती है कि आरोपी कमल मिश्रा ने मृतक को नजदीक से गोली मारी। अगर कोई व्यक्ति किसी घटना को पीछे से या दूर से देखता है

तो उसे नजदीक से गोली मारी गई प्रतीत होती है जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। इस मामले में बंदूक की गोली की चोट के अंदर और ऊपर कालापन और टैटू मौजूद थे और मृतक के शरीर में छरों भी प्रवेश कर गए थे। इसलिए, ओकुलर और चिकित्सा साक्ष्य के बीच कोई विरोधाभास नहीं है।

सर्वेश नारायण शुक्ला बनाम दारोगा सिंह, एआईआर 2008 एससी 320 मामले में यह माना गया है कि-

"जहां गवाहों ने 1 से 2 फीट की दूरी से आधुनिक फायर आर्म्स के वर्गीकरण के उपयोग की गवाही दी थी और बचाव पक्ष ने तर्क दिया था कि केवल शॉट गन का उपयोग किया गया था और चिकित्सा साक्ष्य इस आशय का था कि सभी प्रवेश घावों में जलने और टैटू के लक्षण दिखाई देते हैं और अलग-अलग आयाम थे, यह माना गया है कि चिकित्सा साक्ष्य अलग-अलग फायर आर्म्स के संबंध में ओकुलर साक्ष्य के साथ असंगत नहीं थे।

राम स्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2000, (40) एसीसी 432 (एससी) मामले में यह माना गया है कि -

उन्होंने कहा, 'यह अच्छी तरह से तय है कि डॉक्टर कभी भी चोटों की अवधि के बारे में पूरी तरह से निश्चित नहीं हो सकते हैं।

रामजी राय बनाम बिहार राज्य, 2007, (57) एसीसी 385 (एससी) मामले में यह कहा गया है कि-

"चिकित्सा विज्ञान ने ऐसी पूर्णता हासिल नहीं की है ताकि एक चिकित्सक को मृत्यु के सही समय के संबंध में स्पष्ट रूप से बताने में सक्षम बनाया जा सके।

सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि डॉक्टर कभी भी मृत्यु के समय के बारे में पूरी तरह से निश्चित नहीं हो सकता है।

इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि ऑटोप्सी रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के संस्करण के पूर्ण समर्थन में है।

31. गवाहों के बारे में:-

(i) अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि गवाह परिवार के सदस्य हैं और वे सच्चाई नहीं बता रहे हैं।

यह सच है कि सभी गवाह परिवार के सदस्य हैं या आसपास के हैं। अ०सा०-1 सगा भाई है और अ०सा०4 मृतक का बेटा है। अ०सा० -2, पत्रकार, पड़ोसी है और अ०सा० 3 जय हिंद सिंह भी उसी गांव का निवासी है। सभी गवाह स्वाभाविक गवाह हैं। वे संयोग के गवाह नहीं हैं। अ०सा० 3 जय हिंद सिंह मृतक के साथ दर्शन के लिए विंध्याचल जाने वाले थे। अक्सर देखा जाता है कि आस-पड़ोस के कुछ लोग और रिश्तेदार एक साथ दर्शन/पूजन के लिए जाते हैं, अगर वाहन में जगह उपलब्ध हो। स्वतंत्र गवाह अ०सा० 3 जय हिंद सिंह और आरोपी व्यक्तियों के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। बचाव पक्ष की ओर से ऐसा कोई सुझाव या सबूत नहीं है कि वे वहां नहीं थे। ऐसा कोई कानून नहीं है जो यह बताता है कि संबंधित और परिवार के सदस्यों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। केवल उनके सबूतों की उचित जांच और सावधानीपूर्वक सराहना आवश्यक है।

भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537, श्याम बाबू

बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2012 एससी 3311, सोनेलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2009 एससी 760, सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 एससीसी 270 मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि-

"एक आपराधिक मुकदमे में एक गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि गवाह अपराध के पीड़ित का रिश्तेदार या परिवार का सदस्य है। ऐसे मामले में, अदालत को ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करने में सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है तो ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर आरोपी को दोषी ठहराया जा सकता है।

धर्मवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर, 2010, एससी 1378, दिलावर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 1 एससीसी 737, रमेश हरिजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 5 एससीसी 777 मामले में यह माना गया है कि -

अदालत ने कहा, 'आरोपियों के साथ गवाहों की दुश्मनी उनकी गवाही को खारिज करने का आधार नहीं है और अगर उचित जांच के बाद ऐसे गवाहों की गवाही विश्वसनीय पाई जाती है तो आरोपी को दोषी ठहराया जा सकता है। हालांकि, अपराध में कुछ व्यक्तियों को गलत तरीके से शामिल करने या ऐसे गवाहों द्वारा आरोपी की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने की संभावना को ध्यान में रखा जाना चाहिए और प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर पता लगाया जाना चाहिए।

इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि गवाह अ०सा० 1 और अ०सा० 4 मृतक के परिवार के सदस्य हैं, इसलिए, वे अभियोजन पक्ष के समर्थन में खुद को गलत तरीके से गवाही दे रहे हैं।

अभियोजन पक्ष ने शाहजा @ शाहजान इस्माइल मोहम्मद पर भरोसा किया है। शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2022 0 सुप्रीम (एससी) 569, पैरा 22 और 23 में, यह माना जाता है कि -

22. नैन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1991) 2 एससीसी 432: (1991) एससीसी (सीआरआई) 421, जिसमें उपर्युक्त सभी निर्णयों पर विचार किया गया था और संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत शक्ति के प्रयोग के प्रश्न पर उपर्युक्त निर्णयों पर विचार करने के बाद और उपर्युक्त निर्णयों में व्यक्त किए गए विचारों से सहमत होने के बाद, न्यायालय ने अंततः यह सिद्धांत निर्धारित किया कि उस निर्णय में अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए साक्ष्य कम हो गए। विश्वसनीयता और स्वीकार्यता का परीक्षण और इसलिए, इस पर कार्यवाई करना अत्यधिक असुरक्षित था। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बाबुल नाथ, (1994) 6 एससीसी 29: 1994 एससीसी (सीआरआई) 1585 मामले में, इस न्यायालय ने अनुच्छेद 136 के दायरे पर विचार करते हुए कि यह न्यायालय कब तथ्य के निष्कर्षों को परेशान करने का हकदार है, निम्नानुसार टिप्पणी की: (एससीसी पी 33, पैरा 5)

"5. प्रारंभ में ही हम उल्लेख कर सकते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील में यह न्यायालय सामान्य रूप से स्वयं साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करता है और गवाहों की विश्वसनीयता के सवाल पर विचार नहीं करता है और उच्च न्यायालय द्वारा साक्ष्य के मूल्यांकन को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अंतिम के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है जब तक कि, बेशक, साक्ष्य और निष्कर्षों की सराहना प्रक्रिया के कानून की किसी भी त्रुटि से दूषित होती है या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों, रिकॉर्ड की त्रुटियों और सबूतों के गलत पठन के विपरीत पाई जाती है, या जहां उच्च न्यायालय के निष्कर्ष रिकॉर्ड पर साक्ष्य से स्पष्ट रूप से विकृत और असमर्थित हैं।

23. संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय की शक्ति के प्रयोग पर इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों से निम्नलिखित सिद्धांत निकलते हैं-

(i) संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय की शक्तियां बहुत व्यापक हैं लेकिन आपराधिक अपीलों में यह न्यायालय असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर तथ्यों के संगत निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करता है।

(ii) यदि उच्च न्यायालय ने विकृत या अन्यथा अनुचित रूप से कार्य किया है तो यह इस न्यायालय के लिए खुला है कि वह उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करे।

(iii) यह इस न्यायालय के लिए खुला है कि वह अनुच्छेद 136 के अधीन शक्ति का प्रयोग केवल असाधारण परिस्थितियों में ही कर सकता है जब कभी सामान्य सार्वजनिक महत्व के कानून का प्रश्न उठता है या कोई निर्णय न्यायालय के विवेक को झकझोर देता है।

(iv) जब अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य विश्वसनीयता और स्वीकार्यता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं और इस प्रकार उस पर कार्रवाई करना अत्यधिक असुरक्षित होता है।

(v) जहां साक्ष्य और निष्कर्षों की सराहना प्रक्रिया के कानून की किसी त्रुटि से प्रभावित होती है या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत पाई जाती है, रिकॉर्ड की गड़बड़ी और सबूतों की गलत व्याख्या की जाती है, या जहां उच्च न्यायालय के निष्कर्ष स्पष्ट रूप से विकृत हैं और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्य से असमर्थित हैं।

पैरा 27 और 28 इस प्रकार हैं: "

27. नेत्र संबंधी साक्ष्य की सराहना एक कठिन कार्य है। ओकुलर साक्ष्य की सराहना के लिए कोई निश्चित या सीधे सूत्र नहीं है। एक आपराधिक मामले में नेत्र संबंधी साक्ष्य की सराहना के लिए न्यायिक रूप से विकसित सिद्धांतों को निम्नानुसार गिना जा सकता है:

1. एक गवाह के साक्ष्य की सराहना करते समय, दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि क्या गवाह के साक्ष्य को समय रूप से पढ़ा जाना सत्य प्रतीत होता है। एक बार यह धारणा बन

जाने के बाद, न्यायालय के लिए निस्संदेह यह आवश्यक है कि वह साक्ष्य की अधिक जांच करे, विशेष रूप से साक्ष्य में बताई गई कमियों और दुर्बलताओं को ध्यान में रखते हुए और यह पता लगाने के लिए उनका मूल्यांकन करे कि क्या यह गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के खिलाफ है और क्या साक्ष्य का पूर्व मूल्यांकन हिल गया है ताकि इसे विश्वास के योग्य न बनाया जा सके।

II. यदि जिस न्यायालय के समक्ष गवाह साक्ष्य देता है, उसे गवाह द्वारा दिए गए साक्ष्य की सामान्य अवधि के बारे में राय बनाने का अवसर मिला है, तो अपीलीय अदालत, जिसे यह लाभ नहीं था, को ट्रायल कोर्ट द्वारा साक्ष्य की सराहना को उचित महत्व देना होगा और जब तक कि कोई कारण वजनदार और दुर्जेय न हो, मामूली भिन्नताओं या दुर्बलताओं के आधार पर साक्ष्य को अस्वीकार करना उचित नहीं होगा। तुच्छ विवरणों के मामले में।

III. जब चश्मदीद गवाह से विस्तार से पूछताछ की जाती है, तो उसके लिए कुछ विसंगतियां करना काफी संभव है। लेकिन अदालतों को यह ध्यान रखना चाहिए कि यह केवल तभी होता है जब किसी गवाह के साक्ष्य में विसंगतियां उसके बयान की विश्वसनीयता के साथ इतनी असंगत होती हैं कि अदालत उसके सबूतों को खारिज करने में उचित होती है।

4. मामूली मामलों पर मामूली विसंगतियां, जो मामले के मूल को नहीं छूती हैं, सबूतों से यहां या वहां संदर्भ से बाहर फाड़े गए वाक्यों को लेकर अति तकनीकी दृष्टिकोण, जांच

अधिकारी द्वारा की गई कुछ तकनीकी त्रुटि को महत्व देना जो मामले की जड़ तक नहीं जाता है, आमतौर पर साक्ष्य को पूरी तरह से अस्वीकार करने की अनुमति नहीं देगा।

(v) किसी घटना के कथन में पड़ने वाली भिन्नताओं (या तो दो गवाहों के साक्ष्य के बीच या एक ही गवाह के दो बयानों के बीच) पर बहुत गंभीर दृष्टिकोण अपनाया जाना न्यायिक जांच के लिए एक अवास्तविक दृष्टिकोण है।

6. मोटे तौर पर एक गवाह से फोटोग्राफिक मेमोरी रखने और किसी घटना के विवरण को याद करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। ऐसा नहीं है कि मानसिक स्क्रीन पर एक वीडियो टेप को फिर से चलाया जाता है।

VII. आम तौर पर ऐसा होता है कि एक गवाह घटनाओं से आगे निकल जाता है। गवाह इस घटना का अनुमान नहीं लगा सकता था, जिसमें अक्सर आश्चर्य का तत्व होता है। इसलिए मानसिक संकायों को विवरणों को अवशोषित करने के लिए तैयार होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

अवलोकन की शक्तियां एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होती हैं। जो एक नोटिस कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता है। एक वस्तु या आंदोलन एक व्यक्ति के दिमाग पर अपनी छवि बना सकता है जबकि यह दूसरे के हिस्से पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है।

बड़े पैमाने पर लोग बातचीत को सही ढंग से याद नहीं कर सकते हैं और उनके द्वारा

उपयोग किए गए या उनके द्वारा सुने गए शब्दों को पुनः पेश नहीं कर सकते हैं। वे केवल बातचीत के मुख्य उद्देश्य को याद कर सकते हैं। एक गवाह से मानव टेप रिकॉर्डर होने की उम्मीद करना अवास्तविक है।

किसी घटना के सटीक समय या घटना की समय अवधि के संबंध में, आमतौर पर, लोग पूछताछ के समय पल के आधार पर अनुमान लगाकर अपने अनुमान लगाते हैं। और कोई भी ऐसे मामलों में लोगों से बहुत सटीक या विश्वसनीय अनुमान लगाने की उम्मीद नहीं कर सकता है। फिर, यह व्यक्तियों की समय-भावना पर निर्भर करता है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होता है।

11. आम तौर पर एक गवाह से यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि वह उन घटनाओं के अनुक्रम को सटीक रूप से याद करे जो तेजी से या कम समय में होती हैं। एक गवाह क्षमिit होने के लिए उत्तरदायी है, या बाद में पूछताछ किए जाने पर मिश्रित हो सकता है।

12. एक गवाह, हालांकि पूरी तरह से सच्चा है, अदालत के माहौल और वकील द्वारा भेदी जिरह से अभिभूत होने के लिए उत्तरदायी है और घबराहट के कारण तथ्यों को मिलाता है, घटनाओं के अनुक्रम के बारे में क्षमिit हो जाता है, या पल के उत्साह में कल्पना से विवरण भर देता है। गवाह का अवचेतन मन कभी-कभी मूर्ख दिखने या अविश्वास किए जाने के डर से संचालित होता है, हालांकि गवाह उसके द्वारा देखी गई घटना का सच्चा और ईमानदार विवरण दे रहा है।

XIII. एक पूर्व बयान, हालांकि साक्ष्य के साथ असंगत प्रतीत होता है, जरूरी नहीं कि विरोधाभास के लिए पर्याप्त हो। जब तक पहले वाले कथन में बाद के कथन को बदनाम करने की क्षमता नहीं है, भले ही बाद का कथन कुछ हद तक पूर्व कथन से भिन्न हो, उस गवाह का खंडन करना सहायक नहीं होगा। [देखें भुरवाडा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य, 1983 सीआरआई एलजे 1096: एआईआर 1983 एससी 753, लीला राम बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 1999 एससी 3717, और तहसीलदार सिंह बनाम यूपी राज्य, एआईआर 1959 एससी 1012]

28. सीधे शब्दों में कहें तो, चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य के मूल्य का आकलन करते समय, दो प्रमुख विचार हैं कि क्या मामले की परिस्थितियों में, घटना स्थल पर या ऐसी स्थितियों में उनकी उपस्थिति पर विश्वास करना संभव है जो उनके द्वारा दिए गए तथ्यों को देखना संभव बनाता है और दूसरा, क्या उनके साक्ष्य में कुछ भी स्वाभाविक रूप से असंभव या अविश्वसनीय है। इन दोनों विचारों के संबंध में, उन गवाहों से प्राप्त की गई परिस्थितियां या तो स्वयं उन गवाहों से प्राप्त की गई हैं या अन्य सबूतों द्वारा स्थापित की गई हैं, जो उनकी उपस्थिति को प्रमाणित करने या उनके बयानों की सत्यता को बदनाम करने के इरादे से स्थापित की गई हैं, उनका उस मूल्य पर असर पड़ेगा जो एक अदालत उनके साक्ष्य से जोड़ेगी। यद्यपि ऐसे मामलों में जहां अभियुक्त की दलील केवल इनकार है, फिर भी अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य की जांच अपने गुण-दोष के आधार पर की जानी चाहिए,

जहां आरोपी एक निश्चित दलील देता है या एक सकारात्मक मामला सामने रखता है जो अभियोजन पक्ष के साथ असंगत है, मूल्य का आकलन करते समय ऐसी याचिका या मामले की प्रकृति और इसके संबंध में संभावनाओं को भी ध्यान में रखना होगा। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य।

पीठ ने कहा, "यह भी माना जाता है कि यहां या वहां चूक के रूप में कुछ विरोधाभास किसी प्रत्यक्षदर्शी के पूरे साक्ष्य को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। रिकॉर्ड पर मौजूद मेडिकल साक्ष्य प्रत्यक्षदर्शियों के ओकुलर संस्करण की पुष्टि करते हैं। इसलिए, यह माना गया कि नीचे की अदालतों ने दोनों चश्मदीदगवाहों पर सही विश्वास किया। यहां परिस्थितियां समान हैं और उपरोक्त उदाहरणों में निर्धारित सिद्धांत वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक हैं।

(ii) निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ न करना :- अपीलकर्ताओं के वकील ने तर्क दिया कि कांस्टेबल 1740 जीत बहादुर सिंह, रघुदत्त मिश्रा, मृत्यु शिकायतकर्ता और कांस्टेबल 1670 भरत लाल का परीक्षण न करना अभियोजन पक्ष के लिए घातक है। इस न्यायालय के अनुसार यह कभी नहीं कहा गया है कि प्रत्येक मामले में कांस्टेबल जो किसी घायल को अस्पताल ले जाता है या मृतक को मुर्दाघर ले जाता है, उसकी जांच की जाती है। कांस्टेबल जीत बहादुर ने घायल की मौत के बारे में थाना- को पहले ही सूचित कर दिया था। यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला नहीं है जहां सभी कड़ियों को साबित करने के लिए सभी संबंधितों से पूछताछ जरूरी है।

इसलिए, इस तर्क में कोई बल नहीं है और तदनुसार खारिज कर दिया जाता है।

32. खून से सने और सादे मिट्टी या खून से सने कपड़ों के संबंध में एफ.एस.एल. रिपोर्ट प्रस्तुत न करना:

(i) अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि अभियोजन की कहानी के समर्थन में एफएसएल रिपोर्ट पेश नहीं की गई है, इसलिए अभियोजन पक्ष के मामले को उचित संदेह से परे साबित नहीं कहा जा सकता है।

(ii) इस मामले में यद्यपि सादे और खून से सनी मिट्टी ली गई थी लेकिन उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई है। विवेचनाधिकारी ने मृतक या गवाहों के खून से सने कपड़े भी नहीं लिए हैं और उन्हें एफएसएल रिपोर्ट के लिए नहीं भेजा है। गवाहों के साक्ष्य से यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि घटना का स्थान वही स्थान है जैसा कि मामले की शुरुआत से शिकायतकर्ता और अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया है। इसके विपरीत, हालांकि सुझाव दिए गए हैं कि मृतक को अलग-अलग स्थान पर मारा गया था, लेकिन घटना के स्थान के बारे में कोई संदेह पैदा नहीं किया जा सकता है। मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से लिखित शिकायत में कथित घटना का स्थान पूरी तरह से स्थापित हो गया है।

(iii) मकबूल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 2011 एससी 184, शिव शंकर सिंह बनाम झारखंड राज्य, 2011, सीआरएलजे 2139 (एससी) और धनज सिंह बनाम पंजाब

राज्य, (2004) 3 एससीसी 654 के मामले में यह कहा गया है कि -

"मृतक या घायल के खून से सनी जमीन और कपड़े रासायनिक परीक्षण के लिए रासायनिक परीक्षक को नहीं भेजना अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक नहीं है यदि नेत्र संबंधी गवाही विश्वसनीय और ठोस पाई जाती है।

(iv) केशव लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य(2002) 3 एससीसी 254 के मामले में यह माना गया है कि-

"यदि चश्मदीदों के साक्ष्य अन्यथा विश्वसनीय हैं, तो अनुपलब्धता या रक्त समूह/रक्त के निशान / रक्त के धब्बे का पता नहीं लगाने के लिए रिपोर्ट को उन गवाहों को खारिज करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है जो अन्यथा अदालत के विश्वास को प्रेरित करते हैं और उस पर विश्वास करते हैं।

(v) इस प्रकार, रक्तरंजित मिट्टी और कपड़े तथा सादी मिट्टी के संबंध में रिपोर्ट का अभाव अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है और इस संबंध में बचाव पक्ष का तर्क तर्कसंगत नहीं है।

33. यह तर्क दिया जाता है कि फायर-आर्म और कारतूस के बारे में एफएसएल रिपोर्ट अभियोजन की कहानी के समर्थन में नहीं है।

एफ.एस.एल. दिनांक 9.11.2000 की रिपोर्ट अभिलेख में है। प्रयोगशाला को दो बंडल 'ए और बी' और 'सी' का आवरण मिला।

बंडल ए में 12 बोर की एक देसी पिस्तौल

और उसी बोर का कारतूस मिला है। देसी पिस्तौल को 1/2000 के रूप में चिह्नित किया गया था और कारतूस को ईसी -1 के रूप में चिह्नित किया गया था जिसकी टोपी फटी हुई थी।

बंडल बी में, 2000 के अपराध संख्या 202 की केस प्रॉपर्टी रखी गई थी, जिसमें .315 बोर की एक देसी पिस्तौल 2/2000 के रूप में चिह्नित थी और ईसी -2 के रूप में चिह्नित एक कारतूस रखा गया था।

परीक्षण के बाद यह पाया गया कि टीसी -1 से टीसी 3 के रूप में चिह्नित 12 बोर के तीन कारतूस 1/2000 के रूप में चिह्नित देशी पिस्तौल से निष्पादित किए गए थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि ई.सी.-1 (12 बोर) चिह्नित विवादित कारतूस की टोपी फटी हुई थी, केंद्र का निशान मौजूद था और निकालने वाले का कमजोर निशान भी मौजूद था। यह पहले ही कहा जा चुका है कि जांच के लिए टी.सी.1 से टी.सी.-3 तक 1/2000 के रूप में चिह्नित 12 बोर की देशी पिस्तौल से निष्पादित किया गया था और यह देखा गया था कि टी.सी.-1 से टी.सी.-3 तक की टोपियां इसी तरह से फटी हुई थीं। यद्यपि उस पर मौजूद केंद्र चिह्न की तुलना टी.सी.-1 से टी.सी.-3 के रूप में चिह्नित परीक्षण कारतूसों पर मौजूद निशानों से करने के लिए व्यक्तिगत विशेषता की कमी है और यह निष्कर्ष निकाला कि ईसी -1 चिह्नित विवादास्पद कारतूस की तुलना 1/2000 चिह्नित देशी पिस्तौल से करने पर पर्याप्त निशान नहीं पाए गए। .315 बोर की देसी पिस्तौल को 2/2000 के रूप में चिह्नित किया गया था और इस्तेमाल किए गए कारतूस को

तुलना के लिए ईसी -2 के रूप में चिह्नित किया गया था। परीक्षा के दौरान टी.सी.-4 और टी.सी.-5 के रूप में चिह्नित दो कारतूसों को निष्पादित किया गया। ई.सी.-2 (.315 बोर) में टोपी पर दो फायरिंग पिन के निशान और मध्य शेल पर एक चेंबर कैप थे। टी.सी.-4 और टी.सी.-5 पर फायरिंग पिन के निशान मौजूद थे और उन पर केंद्र का निशान और कमजोर निशान भी थे। यह राय दी गई कि ई.सी.-2 चिह्नित विवादित कारतूसों पर मौजूद पिन के दो फायरिंग चिह्नों में से, एक निशान और उस पर मौजूद मध्य चिह्न फायरिंग पिन के समान थे और परीक्षण कारतूस टीसी -4 और टीसी -5 पर मौजूद मध्य चिह्न थे, हालांकि दूसरे डेंट में व्यक्तिगत विशेषता का अभाव था।

प्रयोगशाला ने निष्कर्ष निकाला कि- (i) ईसी -1 चिह्नित विवादित कारतूस की तुलना 1/2000 चिह्नित देशी पिस्तौल के साथ करने के लिए पर्याप्त निशान नहीं पाए गए; (ii) ईसी-2 चिह्नित विवादित कारतूस 2/2000 अंकित देशी पिस्तौल से दागा गया था; (iii) छर्ी के 63 टुकड़े प्राप्त हुए हैं और हो सकता है कि 1/2000 अंकित देशी पिस्तौलों से दागे गए हों, लेकिन इस मामले में कोई निश्चित राय देना संभव नहीं है।

एम.के. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2012) 3 एससीसी (सीआरआई) 42 में, यह माना गया है कि-

उन्होंने कहा, "अपराध स्थल से एक गोली बरामद की गई है। बाद में आरोपी की निशानदेही पर एक पिस्तौल बरामद की गई। बैलिस्टिक विशेषज्ञ की राय से पता चला है कि अपराध स्थल से बरामद गोली आरोपी की

निशानदेही पर बरामद पिस्तौल से चलाई गई थी। बैलिस्टिक विशेषज्ञ की राय/साक्ष्य आरोपी के खिलाफ एक मजबूत अभियोगात्मक परिस्थिति है।

लीला राम बनाम राज्य, (1999) 9 एससीसी 525 में, यह माना गया है कि-

पीठ ने कहा, 'क्या बैलिस्टिक विशेषज्ञ ने राय दी थी कि घटनास्थल से बरामद खाली कारतूस चोट से मेल खाते हैं या नहीं. यह माना गया है कि यह सबूत का एक टुकड़ा था और इसे दरकिनार नहीं किया जा सकता था।

आनंद मोहन बनाम बिहार राज्य, (2012) 3 एससीसी (सीआरआई) 328 मामले में, बचाव पक्ष की दलील यह थी कि गवाहों ने गवाही दी थी कि मृतक को बी द्वारा गोली मार दी गई थी जब वह जमीन पर घायल पड़ा था, लेकिन चिकित्सा साक्ष्य ने स्थापित किया कि गोलियां तब चलाई गईं जब मृतक खड़ी स्थिति में था और फिर गवाहों के सबूतों को खारिज कर दिया जाना चाहिए। डॉ. एएस अ०सा० -16 ने कहा था कि मृतक को खड़े होने या सोने की स्थिति में भी आग की चोट हो सकती है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि मौखिक और चिकित्सा साक्ष्य के बीच कोई विरोधाभास था। इसलिए बचाव पक्ष की दलील खारिज कर दी गई।

मो. मियां बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) 2 एससीसी (सीआरआई) 694, में सुप्रीम कोर्ट ने मोदी मेडिकल न्यायशास्त्र और विष विज्ञान के 23 वें संस्करण के पृष्ठ 724-725 का उल्लेख करते हुए कहा कि-

"अगर देसी पिस्तौल का इस्तेमाल किया गया होता, तो इन हथियारों का प्रदर्शन अप्रत्याशित और अनिश्चित होता कि अकेले

गोली का प्रक्षेपवक्र पूरे सबूतों का आकलन करने के लिए एक सुरक्षित मार्गदर्शक नहीं होगा, खासकर क्योंकि प्रक्षेप्य को रास्ते में आने वाली हड्डियों या ऊतकों द्वारा उनके वास्तविक मार्ग से हटा दिया जा सकता था।

इस मामले में अपराध करने में देशी आग्नेयास्त्रों का उपयोग किया गया है, इसलिए, बचाव पक्ष यह उम्मीद नहीं कर सकता है कि एफएसएल रिपोर्ट कारखाने के बने आग्नेयास्त्रों के लिए निर्धारित मानक के अनुसार होनी चाहिए। मोदी के मेडिकल न्यायशास्त्र और विष विज्ञान के 23 वें संस्करण पृष्ठ 716 में, इसका उल्लेख किया गया है।

"जब पाउडर विस्फोट की सीमा में एक करीबी शॉट होता है और लौ 1-3 इंच के भीतर होती है, तो छोटे हथियारों के लिए प्रवेश के गोलाकार घाव के चारों ओर कालिख और तेल (यदि गोली पर मौजूद हो) का कॉलर होता है। यदि शरीर कपड़ों से ढका नहीं है तो सूजे हुए बाल देखे जा सकते हैं। पाउडर के आंशिक रूप से जले हुए और बिना जले हुए दाने त्वचा में विस्फोट हो जाते हैं जिससे टैटू बन जाता है जिसे आसानी से मिटाया नहीं जा सकता है। घाव में वेडिंग, कपड़ों के टुकड़े या अन्य मलबे पाए जा सकते हैं। त्वचा के बहुत पास या संपर्क में दागे गए रिवाल्वर का प्रवेश घाव आम तौर पर गोलाकार होने के बजाय आकार में स्टेलेट या क्रूस होता है। जब इसे 12 इंच की दूरी से आगे निकाला जाता है, तो घाव के चारों ओर कालिख या गर्मी के प्रभाव के पाउडर के निशान नहीं होते हैं। यदि रिवाल्वर को त्वचा के करीब दागा जाता है, लेकिन एक कोण पर रखा जाता है, तो स्मलिंग और

टैटूइंग केवल गोली के छेद के एक तरफ तक सीमित होती है।

उपरोक्त पुस्तक के पृष्ठ 721 पर मोदी ने उल्लेख किया है कि

"यदि एक फायर आर्म को शरीर के बहुत करीब या वास्तविक संपर्क में छुट्टी दे दी जाती है, तो प्रवेश या फीता के घाव के आसपास दो या तीन इंच के क्षेत्र में चमड़े के नीचे के ऊतक और आसपास की त्वचा आमतौर पर धुएं से झुलस जाती है और काली हो जाती है और गन पाउडर या धुआं रहित प्रणोदक पाउडर के बिना जले हुए दानों के साथ टैटू किया जाता है। बगल के बाल झुलस जाते हैं और हिस्से को कवर करने वाले कपड़े आग से जल जाते हैं। यदि पाउडर धुआं रहित है, तो घाव के आसपास की त्वचा पर एक भूरा या सफेद जमा हो सकता है। ---- कालापन पाया जाता है, अगर शॉटगन जैसी बन्दूक को तीन फीट से अधिक की दूरी से छुट्टी नहीं दी जाती है और लगभग दो फीट के भीतर एक रिवाल्वर या पिस्तौल का निर्वहन किया जाता है। पाउडर अवशेषों की अनुपस्थिति में, जहां तक दूरी का संबंध है, एक दूर के शॉट और दूसरे के बीच कोई अंतर नहीं किया जा सकता है। बाद वाली बन्दूक के मामले में झुलसना कुछ इंच के भीतर देखा जाता है, जबकि शॉटगन के मामले में झुलसने के कुछ सबूत एक से तीन फीट पर भी पाए जा सकते हैं। इसके अलावा, ये संकेत अनुपस्थित हो सकते हैं जब हथियार को शरीर की त्वचा के खिलाफ कसकर दबाया जाता है क्योंकि विस्फोट की गैसों और लौ का धुआं और गन पाउडर के कण सभी शरीर में गोली के ट्रैक का पालन करेंगे। बारिश से त्वचा या कपड़ों का गीला होना

चिलचिलाती सीमा को कम करता है। गोली सतह से कालापन प्रभावित नहीं होता है, हालांकि इसे गीले कपड़े से आसानी से हटाया जा सकता है। उच्च शक्ति राइफल के साथ कालापन लगभग एक फीट तक हो सकता है। आमतौर पर, यदि बिना जले हुए पाउडर के दाने होते हैं, तो संकेत यह होता है कि गोली रिवाल्वर या पिस्तौल से चलाई गई थी और इस्तेमाल किए गए हथियार की बैरल जितनी कम होगी, थोड़े से जले हुए पाउडर के दानों की उपस्थिति की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।

इस प्रकार, यह साबित होता है कि यह आरोपी द्वारा बहुत करीबी रेंज में शूट किया गया था, न कि कॉन्टेक्ट रेंज शॉट और तथ्य और परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता है कि गवाहों ने घटना को नहीं देखा है और उनके सबूत भरोसेमंद नहीं हैं।

पारिख की मेडिकल न्यायशास्त्र, फोरेंसिक चिकित्सा और विष विज्ञान की पाठ्यपुस्तक, 7 वें संस्करण पृष्ठ 246 में, यह उल्लेख किया गया है कि एक करीबी निर्वहन यानी वास्तविक संपर्क और लगभग 6 इंच के बीच, निम्नलिखित विशेषताओं को दिखाने की संभावना है;

ए- जहां कपड़े मौजूद हैं, यह अधिकांश कालिख और पाउडर बारूद के दाने को फंसा देगा, और लौ प्रभाव को कम कर सकता है।

बी- त्वचा का झुलसना, बालों का झुलसना, और त्वचा का काला होना और टैटू (धुआं रहित पाउडर के साथ बहुत कम) आमतौर पर देखा जाता है।

सी- फायरिंग के कोण के आधार पर, घाव गोलाकार या अंडाकार होता है, और छर्रों के आकार के आधार पर उम्र चिकनी या सिकुड़ी हो सकती है। कोई अलग छर्रों के छेद नहीं हैं।

इस मामले में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि गवाहों ने पीछे से अपराध को देखा और आरोपी और मृतक के बीच थोड़ी दूरी के कारण उन्हें लगा कि मृतक को एक संपर्क रेंज से गोली मार दी गई थी, लेकिन वस्तुतः यह आरोपी द्वारा गोली मार दी गई थी। इसलिए, प्रवेश के घाव पर जलना, काला होना और टैटू होना पाया गया था।

इस मामले में 12 बोर के खाली कारतूस और 12 बोर और .315 बोर की देसी पिस्तौल घटना स्थल से बरामद नहीं की गई थी, लेकिन आरोपी व्यक्तियों की निशानदेही पर बरामद की गई थी। शव परीक्षण के दौरान मृतक के शरीर से 12 बोर, 63 की संख्या में इस्तेमाल किए गए छर्रों को भी बरामद किया गया था, इस प्रकार, एफएसएल रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करती है और अभियोजन पक्ष के पक्ष में साक्ष्य में स्वीकार्य है। इस मामले में, ओकुलर साक्ष्य, शव विच्छेदन रिपोर्ट या एफएसएल रिपोर्ट के बीच कोई भिन्नता या विसंगति नहीं है।

34. इस बिंदु पर द० प्र० स० की धारा 313 के तहत कोई प्रश्न नहीं रखा गया है। इस संबंध में अभियोजन पक्ष के तर्क को स्वीकार किया जाता है कि एफएसएल की रिपोर्ट द० प्र० स० की धारा 293 के तहत साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य है और आरोपी व्यक्तियों द्वारा रिपोर्ट तैयार करने वाले वैज्ञानिक को तलब करने के लिए कोई आवेदन नहीं दिया गया है। इसलिए,

आरोपी व्यक्तियों को द० प्र० स० की धारा 313 के तहत प्रश्न न पूछना अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है और यहां तक कि इसके अभाव में भी एफएसएल रिपोर्ट पढ़ी जाएगी और साक्ष्य में स्वीकार्य होगी।

35. **घटना का स्थान:** अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि अभियोजन घटना की जगह को साबित करने में सक्षम नहीं है।

36. प्राथमिकी, साइट प्लान और गवाहों के साक्ष्य के अनुसार, घटना का स्थान मानचित्र (प्रदर्शक -3) में दिखाया गया स्थान 'सी' है जो पदमकांत मालवीय और मिठाई प्रजापति के घर के सामने है। साक्ष्यों से यह स्थापित होता है कि अपराध को अंजाम देने से पहले मृतक अपने भतीजे कुलदीप के साथ पूजा के लिए गया था और वापसी की यात्रा में, जब उसने नाले के कारण स्कूटर धीमा कर दिया, तो आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा ने स्थान 'बी' से उकसाया जो कृष्ण कांत मालवीय के घर और मीनू मालवीय की दुकान के बीच की गली है। उनके दो बेटे कमल मिश्रा और विमल मिश्रा आगे बढ़े और जब मृतक आगे बढ़ा तो आरोपी विमल मिश्रा ने उसे 'जे' स्थान पर सामने से रोक लिया और तीसरे आरोपी कमल मिश्रा ने उसे 12 बोर की देसी पिस्तौल से गोली मार दी। जगह 'J' से ठीक पहले। विवेचनाधिकारी को वहां खून मिला था, जहां से खून से सना और सादा मिट्टी ले जाया गया था। सबूतों और नक्शे के अनुसार, गवाह 'ई' स्थान पर थे, जहां से उन्होंने घटना देखी और आरोपी का पीछा करना शुरू कर दिया। नक्शे में दो तीरों

के निशान से गवाहों का रास्ता दिखाया गया है और जब गवाहों ने पीछा करना शुरू किया, तो आरोपी विमल मिश्रा ने उसे मारने के इरादे से शिकायतकर्ता पर गोली चला दी। खुद को बचाने के लिए, शिकायतकर्ता जगदेव प्रजापति के घर के सामने 'एच' स्थान पर ईंटों की प्लेटों के पीछे छिप गया, इसलिए, वह भाग गया। गवाह कुलदीप मिश्रा पदम कांत मालवीय के घर के दक्षिण पूर्व कोने में 'जी' स्थान पर छिपा हुआ था। आरोपी व्यक्तियों के भागने का रास्ता एक तीर द्वारा दिखाया गया है जो उनके घर की ओर है। विवेचनाधिकारी ने मानचित्र के सूचकांक में संबंधित स्थानों के बीच चरणों में दूरी का भी उल्लेख किया है।

37. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि स्कूटर पर हमला करने और रोकने का तरीका साबित नहीं होता है, लेकिन बारीकी से जांच से पता चलता है और स्थापित होता है कि गवाहों के साक्ष्य में कोई भौतिक अंतर नहीं है। यदि लिखित शिकायत में अपराध से संबंधित कुछ तथ्य नहीं बताए गए हैं, तो यह अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है। आरोपी व्यक्तियों और गवाहों द्वारा किए गए हर सेकंड के कृत्य को प्राथमिकी में नहीं बताया जा सकता है।

38. बचाव पक्ष के वकील ने विभिन्न कोणों से गवाहों से जिरह की है कि क्या घटना का स्थान इस स्थान से देखा जा सकता है या वह स्थान या कोण भौतिक नहीं है क्योंकि घटना के स्थान पर उनकी उपस्थिति पूरी तरह से स्थापित है और वे पूरी घटना को देखने की स्थिति में थे जो खुले रास्ते पर हुई थी।

स्कूटर को सामने की तरफ से रोका गया था या बाईं या दाईं ओर से, यह भौतिक नहीं है और यदि इस संबंध में कुछ विरोधाभास होते हैं, तो यह चश्मदीद गवाहों की गवाही को त्यागने का आधार नहीं हो सकता है। इस संबंध में यदि विवेचनाधिकारी द्वारा कुछ बयान दर्ज नहीं किए गए हैं, तो यह सामग्री नहीं है। इसलिए, घटना के स्थान के बारे में तर्क को खारिज कर दिया जाता है।

39. विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि चोट पत्र (चिट्ठी मजरूबी), रिकॉर्ड पर नहीं है। चूंकि घायल की एसआरएन अस्पताल पहुंचने से पहले ही मौत हो चुकी थी और उसके इलाज का कोई मौका नहीं आया। इसलिए, इसे डॉक्टर द्वारा नहीं लिया गया था और इसे विवेचनाधिकारी को भी वापस नहीं किया गया था (चोट पत्र प्रस्तुत न करना अभियोजन पक्ष के लिए न तो सामग्री है और न ही घातक है)। अ०सा०7, बट्टी प्रसाद मिश्रा ने साबित कर दिया है कि चोट पत्र तैयार करने के बाद, यह कांस्टेबल जीत बहादुर सिंह को दिया गया था, जिसके साथ घायल को एसआरएन अस्पताल में इलाज के लिए भेजा गया था।

40. अपीलकर्ता के वकील ने तर्क दिया कि कुलदीप मिश्रा की कथित पीछे की सवारी की जांच न करना अभियोजन पक्ष के लिए घातक है। रिकॉर्ड के अवलोकन से, यह पता चलता है कि कुलदीप मिश्रा का बयान विवेचनाधिकारी द्वारा उसी दिन यानी 10.4.2000 को दर्ज किया गया था, लेकिन उनकी मानसिक बीमारी के कारण अदालत में उनसे पूछताछ नहीं की जा सकी। सुनवाई के दौरान एक आवेदन 59

बी पेश किया गया जिसमें कहा गया कि कुलदीप मिश्रा की मानसिक स्थिति ठीक नहीं है और वह गवाही देने की स्थिति में नहीं है। ट्रायल कोर्ट ने अनुरोध स्वीकार कर लिया और उन्हें आरोपमुक्त कर दिया। इस प्रकार, तर्क में कोई बल नहीं है और तदनुसार खारिज कर दिया जाता है।

41. इसके अलावा, यह तर्क दिया जाता है कि यदि कथित घटना हुई थी और मृतक का जीवन खतरे में था, तो मृतक को पहले अस्पताल क्यों नहीं ले जाया गया और घर पर शिकायत लिखने में समय क्यों बर्बाद किया गया। सूचनादाता अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में कहा है कि उसने अ०सा०3 को लिखित शिकायत दी थी और संतुष्ट होने के बाद उसने उस पर हस्ताक्षर कर दिए थे। इसमें केवल 15-20 मिनट लगते (बीच में जीप की भी व्यवस्था की गई थी)। इसके बाद, वह अपने भाई को कमांडर जीप में लोड किया और लगभग 9:00 बजे थाना-पहुंचा, जहां से घायल को सुबह 9:30 बजे कांस्टेबल के माध्यम से अस्पताल भेजा गया। थाना- में लगभग आधा घंटा लग गया होगा। जब वह थाना- में था, तो उसके भाई की हालत गंभीर हो गई थी। उसने सोचा कि अपने भाई को तुरंत अस्पताल ले जाने की तुलना में थाना- में जानकारी आवश्यक थी। थाना में वह बताता रहा कि उसके भाई की हालत गंभीर है और उसे अस्पताल ले जाने दिया लेकिन उन्होंने तहरीर लिखने के बाद ही उसे जाने दिया। थाने से अस्पताल पहुंचने में करीब एक घंटे का समय लगा होगा। वह शास्त्री ब्रिज से होते हुए सुबह

लगभग 10:30 बजे अस्पताल पहुंचे, इसमें लगभग 10-15 मिनट लगे होंगे।

मृतक के बेटे पवन तिवारी ने यह भी कहा है कि घटना के बाद वे अपने पिता को घर ले आए, उनके चाचा ने तहरीर लिखवाया और उन्हें दूसरी जीप से थाना- ले आए, जहां 15-20 मिनट के बाद वे कांस्टेबल के साथ एसआरएन अस्पताल गए, जहां डॉक्टर ने बताया कि मृतक की मौत हो गई है। पत्रकार सत्य प्रकाश तिवारी ने कहा है कि 10-4-2000 को उन्होंने तहरीर लिखी थी और इसे एक्स-का-1 साबित किया है। इस अदालत के अनुसार, यह लोगों के दृष्टिकोण या सलाह पर निर्भर करता है कि क्या उन्हें लगता है कि पहले शिकायत लिखना उचित है या घायलों को चिकित्सा सहायता प्रदान करने का प्रयास करना उचित है। इस बात के सबूत मिले हैं कि गांव का सरकारी अस्पताल ठीक से काम नहीं कर रहा था और ऐसे घायलों के इलाज के लिए कोई उचित सुविधा नहीं थी। उपयुक्त अस्पताल बहुत दूर था और थाना-एसआरएन अस्पताल के रास्ते पर था। यह संभव हो सकता है कि शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों ने सोचा होगा कि जीवित रहने की बहुत कम उम्मीद थी, इसलिए सबसे पहले प्राथमिकी दर्ज किया जाना चाहिए। इस प्रकार, इस न्यायालय का मानना है कि घटना के बाद यदि मौके पर लिखित शिकायत तैयार की गई थी और पहले प्राथमिकी दर्ज की गई थी, तो यह मामले की योग्यता को अन्यथा प्रभावित नहीं करेगा।

42. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने यह भी तर्क दिया कि इस मामले में विवेचनाधिकारी ने समय पर गवाहों के बयान दर्ज नहीं किए हैं, लेकिन अनुचित देरी के बाद बयान दर्ज किया है जो अभियोजन पक्ष के लिए घातक है और यह उनकी उपस्थिति के बारे में संदेह पैदा करता है।

43. अ०सा०6, एस.एच.ओ., कृपा शंकर मिश्रा, विवेचनाधिकारी ने उसी दिन 10.4.2000 को जांच शुरू की, उन्होंने चिक प्राथमिकी, जी.डी., शिकायतकर्ता का बयान दर्ज किया, मौके पर पहुंचे, आरोपी व्यक्तियों की तलाशी ली और घायल की मौत की सूचना प्राप्त करने के बाद, इसे केस डायरी में दर्ज किया और धारा बदल दी, शिकायतकर्ता शिव प्रकाश तिवारी और गवाह कुलदीप मिश्रा के बयान दर्ज किए, घटना स्थल का निरीक्षण किया और नक्शा तैयार किया, खून से सना और सादा मिट्टी लेकर दो गवाहों के बयान दर्ज किए, आरोपी व्यक्तियों के घर की तलाशी ली और बम, देसी पिस्तौल और कारतूस बरामद किए और इसे कब्जे में ले लिया और उसी दिन फर्द बरामदगी तैयार किया।

44. इस प्रकार, सूचनादाता और तीन गवाहों के बयान दर्ज करने में कोई देरी नहीं होती है। दिनांक 13-04-2000 को विवेचनाधिकारी ने वीरेन्द्र बहादुर सिंह और बब्बू सिंह का बयान दर्ज किया और आरोपी व्यक्तियों की मार्शल जीप को हिरासत में ले लिया। यह जानने के बाद कि आरोपी व्यक्तियों ने अदालत में आत्मसमर्पण कर दिया है और उन्हें नैनी जेल भेज दिया गया है, अनुमति प्राप्त करने के

बाद उनका बयान दर्ज किया गया और पुलिस हिरासत रिमांड के लिए आवेदन किया गया। यह सच है कि विवेचनाधिकारी द्वारा जांच प्राप्त करने के तुरंत बाद गवाह पवन तिवारी और जय हिंद सिंह के बयान दर्ज नहीं किए गए थे। लेकिन यह उल्लेख करना उचित है कि उन्हें प्राथमिकी में चश्मदीद गवाह के रूप में नामित किया गया था और विवेचनाधिकारी संबंधित थाना- के एसएचओ भी थे, जिनके पास कई अन्य बोज़ और काम थे। यह भी साबित होता है कि इन दोनों गवाहों ने थाना- और एसआरएन अस्पताल का दौरा किया था और मृतक के अंतिम संस्कार में भी भाग लिया था, इसलिए, केवल उनके बयान तुरंत दर्ज न करने से यह संदेह पैदा नहीं होता है कि वे मौके पर मौजूद नहीं थे और उन्होंने अपराध करते नहीं देखा था। यह विवेचनाधिकारी की गलती है, इन गवाहों की नहीं। इस तरह की चूक या अनियमितता दोषपूर्ण जांच की श्रेणी में आती है जो उनकी गवाही को खारिज करने का आधार नहीं हो सकती है।

कृष्ण पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 1996 एससी 733 और रामदेव और अन्य बनाम राजस्थान राज्य 2003 सीआरएलजे (1680) में यह माना जाता है कि-

द० प्र० स० की धारा 161 के तहत प्रत्यक्षदर्शियों के बयान दर्ज करने में देरी हमेशा हत्या के मामले में घातक नहीं होती है।

सुराधानी दरबार बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2004 (3) अपराध 196 कोलकाता उच्च न्यायालय डीबी में, यह माना जाता है कि -

"जहां द० प्र० स० की धारा 161 के तहत गवाहों के बयान दर्ज करने में देरी

विवेचनाधिकारी के लापरवाह दृष्टिकोण के कारण होती है, यह गवाहों के बयान के मूल्य को प्रभावित नहीं करेगा।

इस प्रकार इस न्यायालय की राय है कि इन तथ्यों और परिस्थितियों में, गवाहों पवन तिवारी और जय हिंद सिंह के बयान दर्ज करने में देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है।

45. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि यदि मृतक घटना के स्थान पर मारा गया था, तो मौके पर कोई खाली कारतूस, वाड या गोलियां या छर्चे क्यों नहीं पाए गए।

इस संबंध में, प्रतिवादी के वकील द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि मौके पर खाली कारतूस, गोलियां, छर्चे या छड़ी मिलने के बारे में कोई अवसर नहीं था क्योंकि दोनों आरोपी व्यक्तियों ने केवल एक बार आग्नेयास्त्रों का इस्तेमाल किया था, उन्होंने अंधाधुंध गोलीबारी नहीं की थी। उल्लेखनीय है कि आरोपियों द्वारा काफी नजदीक से फायरिंग की गई थी और मृतक के शरीर के अंदर वाड के साथ 63 छर्चे मिले थे। इसलिए, मौके पर कथित वस्तुओं का न मिलना काफी स्वाभाविक है।

46. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि स्कूटर को पुलिस ने कब्जे में नहीं लिया था।

इस संदर्भ में, यह उल्लेखनीय है कि स्कूटर को न तो कोई नुकसान हुआ था और न ही आरोपी व्यक्तियों द्वारा इसे तोड़ा गया था। इसलिए, इसकी तकनीकी जांच के लिए स्कूटर को कब्जे में लेने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अंसा० 1 के अनुसार, उन्होंने स्कूटर

को मौके पर छोड़ दिया। जब वह वापस लौटा, तो विवेचनाधिकारी अंसा० 3 द्वारा दरवाजे पर पार्क किया गया था, उसने बयान दिया है कि जब मृतक को गोली मारी गई थी, तो वह स्कूटर से उतर गया था। अंसा०-4 ने बयान दिया है कि जब उनके पिता को गोली मारी गई, तो वह (मृतक) कुलदीप मिश्रा के साथ स्कूटर पर बैठे थे, स्कूटर ईट की सड़क पर गिर गया था। इस गवाह ने जिरह में गवाही दी है कि उसने स्कूटर पर ध्यान नहीं दिया, घटना से 2-4 दिन बाद स्कूटर घर पर खड़ा देखा गया। इस प्रकार, इस न्यायालय का निष्कर्ष है कि स्कूटर के बारे में कोई भी तर्क, परीक्षण या अपील के निर्णय के लिए न तो सामग्री है और न ही प्रासंगिक है।

47. जहां तक हथियार की बरामदगी और धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत इसके ट्रायल का सवाल है, इसके लिए अलग से कोशिश की गई है, इसलिए, इस अपील में आर्म्स एक्ट की वसूली के बारे में निष्कर्ष देना उचित नहीं होगा।

48. यह तर्क दिया जाता है कि 8.8.2001 को लगाए गए आरोप अभियोजन पक्ष के संस्करण और द० प्र० स० के अध्याय XVII के अनुसार नहीं हैं।

49. अपीलकर्ताओं के वकील ने नक्शे (प्रदर्शक -3) से आरोप की तुलना की और तर्क दिया कि आरोप सही तरीके से तय नहीं किए गए हैं। अभियोजन पक्ष का मामला है कि मां एंद्री देवी के मंदिर से वापसी यात्रा में जब मृतक मीनू मालवीय की दुकान के सामने पहुंची और

नाले के कारण अपना स्कूटर धीमा कर दिया, तो आरोपी श्याम बिहारी ने बाकी आरोपियों को उकसाया, जिस पर जब स्कूटर बिंदु 'सी' पर पहुंचा तो मृतक को आरोपी विमल मिश्रा ने रोक लिया और उसके बाद आरोपी कमल मिश्रा ने उसके सीने पर गोली मार दी। धारा 302 के तहत तय किए गए आरोप भ० द० वि० की धारा 34 के साथ इस प्रकार हैं:

" वर्ष 10.4.2000 में सुबह लगभग 8:30 बजे आपने शिकायतकर्ता के सगे भाई जय प्रकाश तिवारी की ग्राम कोटवा सराय इनायत में स्थित मीनू मालवीय की दुकान के सामने देसी पिस्तौल से हत्या कर दी। इस प्रकार, इस तरह से आपने धारा 302 के साथ धारा 34 भ० द० वि० के तहत दंडनीय अपराध किया है जो मेरे संज्ञान में है।

दूसरा आरोप निम्नानुसार है-

"उपरोक्त तिथि, समय और स्थान पर आप लोगों ने अपने सामान्य इरादे को पूरा करने के लिए शिकायतकर्ता को मारने के इरादे से गोली चलाई, इस प्रकार इस तरह से आपने धारा 307 और धारा 34 भ० द० वि० के तहत दंडनीय अपराध किया है जो मेरे संज्ञान में है।

अदालत ने कहा, 'आरोपियों ने आरोपों को पढ़ा और समझा जिन्होंने आरोपों से इनकार किया और मुकदमे की मांग की।

निश्चित रूप से घटना का वास्तविक स्थान मीनू मालवीय की दुकान के ठीक सामने नहीं है लेकिन वह वहां से ज्यादा दूर नहीं है और घटना वहीं से शुरू हुई। यह दुकान से सिर्फ 20 कदम की दूरी पर है। यह कहीं भी नहीं कहा गया है कि आरोपी व्यक्तियों की

ओर से कोई आपत्ति उठाई गई थी कि उन्हें आरोपों को समझने के लिए नहीं बनाया गया था। उन्होंने इस बात पर कोई आपत्ति नहीं जताई थी कि वे आरोप को समझ नहीं पा रहे हैं। न्यायालय के पास संहिता की धारा 216 के तहत निर्णय की घोषणा से पहले किसी भी समय आरोप को बदलने की शक्ति है। मामले से संबंधित सभी कागजात आरोपी व्यक्तियों को प्रदान किए गए थे, इसलिए, वे जानते थे कि अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार, सटीक स्थान दुकान के ठीक सामने नहीं है, लेकिन किसी तरह दुकान के उत्तर में है। इस प्रकार जिस तरीके से कथित अपराध किया गया था, उसका उल्लेख किया गया है और आरोप को समझने के लिए पर्याप्त है और उनसे जुड़े अर्थों में उचित शब्दों का उपयोग किया गया है। द० प्र० स० की धारा 212 की आवश्यकता के अनुसार, अपराध से जुड़े समय, स्थान और व्यक्तियों के बारे में भी उल्लेख किया गया है और आरोप की लगभग सामग्री मामले को समझने के लिए पर्याप्त है।

द० प्र० स० के अध्याय XVII का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है:

211. प्रभार की सामग्री।

(1) इस संहिता के अधीन प्रत्येक आरोप उस अपराध का उल्लेख करेगा जिसके लिए अभियुक्त पर आरोप लगाया गया है।

(2) यदि अपराध को सृजित करने वाली विधि उसे कोई विशिष्ट नाम देती है, तो अपराध का वर्णन आरोप में केवल उसी नाम से किया जा सकेगा।

(3) यदि अपराध बनाने वाला कानून इसे कोई विशिष्ट नाम नहीं देता है, तो अपराध की परिभाषा का इतना हिस्सा बताया जाना चाहिए कि अभियुक्त को उस मामले की सूचना दी जाए जिसके साथ उस पर आरोप लगाया गया है।

(4) उस कानून की धारा जिसका उल्लेख किया गया है कि अपराध किया गया है, का उल्लेख आरोप में किया जाएगा।

(5) यह तथ्य कि आरोप लगाया गया है, एक बयान के बराबर है कि आरोप लगाए गए अपराध का गठन करने के लिए कानून द्वारा आवश्यक प्रत्येक कानूनी शर्त विशेष मामले में पूरी की गई थी।

(6) आरोप न्यायालय की भाषा में लिखा जाएगा।

(7) यदि अभियुक्त, जिसे पहले किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था, ऐसी पिछली दोषसिद्धि के कारण, बाद के अपराध के लिए बढी हुई सजा या किसी अन्य प्रकार की सजा के लिए उत्तरदायी है, और इसका उद्देश्य उस सजा को प्रभावित करने के उद्देश्य से ऐसी पिछली दोषसिद्धि को साबित करना है जिसे न्यायालय बाद के अपराध के लिए देना उचित समझे, आरोप में पिछली दोषसिद्धि के तथ्य, तारीख और स्थान का उल्लेख किया जाएगा; और यदि इस तरह के बयान को छोड़ दिया गया है, तो अदालत सजा पारित होने से पहले किसी भी समय इसे जोड़ सकती है। चित्र

(a) A पर B की हत्या का आरोप है। यह एक कथन के बराबर है कि ए का कार्य भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 299 और 300 में दी गई हत्या की परिभाषा के भीतर आता है; कि यह उक्त संहिता के किसी भी

सामान्य अपवाद के अंतर्गत नहीं आता है; और यह कि यह धारा 300 के पांच अपवादों में से किसी के भीतर नहीं आता है, या यह कि, यदि यह अपवाद 1 के भीतर आता है, तो उस अपवाद के तीन परंतुकों में से एक या अन्य उस पर लागू होता है।

(ख) क पर भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 326 के अंतर्गत आरोप लगाया गया है कि उसने गोली मारने के लिए उपकरण के माध्यम से बी को स्वेच्छा से गंभीर चोट पहुंचाई है। यह एक बयान के बराबर है कि उक्त संहिता की धारा 335 द्वारा मामले का प्रावधान नहीं किया गया था- और यह कि सामान्य अपवाद इस पर लागू नहीं होते थे।

(ग) क पर हत्या, धोखाधड़ी, चोरी, जबरन वसूली, व्यभिचार या आपराधिक धमकी, या झूठी संपत्ति के उपयोग करने का आरोप है। आरोप में कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति ने हत्या, या धोखाधड़ी, या चोरी, या जबरन वसूली, व्यभिचार, या आपराधिक धमकी की, या उसने भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में निहित उन अपराधों की परिभाषाओं के संदर्भ के बिना झूठी संपत्ति का इस्तेमाल किया; लेकिन जिन धाराओं के तहत अपराध दंडनीय है, प्रत्येक उदाहरण में, आरोप में संदर्भित किया जाना चाहिए।

(घ) भारतीय दंड संहिता की धारा 184 (1860 का 45) के अंतर्गत लोक सेवक के विधिसम्मत प्राधिकारी द्वारा बिक्री के लिए प्रस्तावित संपत्ति की बिक्री में जानबूझकर बाधा डालने का आरोप लगाया गया है। आरोप उन शब्दों में होना चाहिए।

212. समय, स्थान और व्यक्ति के बारे में विवरण।

(1) आरोप में कथित अपराध के समय और स्थान के बारे में ऐसे विवरण शामिल होंगे, और वह व्यक्ति (यदि कोई हो) जिसके खिलाफ या जिस चीज (यदि कोई हो) के संबंध में यह किया गया था, जो अभियुक्त को उस मामले की सूचना देने के लिए यथोचित रूप से पर्याप्त है जिसके साथ उस पर आरोप लगाया गया है।

(2) जब अभियुक्त पर विश्वास के आपराधिक उल्लंघन या धन या अन्य चल संपत्ति के बेईमानी से दुरुपयोग का आरोप लगाया जाता है, तो सकल राशि को निर्दिष्ट करना या, जैसा भी मामला हो, उस चल संपत्ति का वर्णन करना पर्याप्त होगा जिसके संबंध में अपराध कथित रूप से किया गया है, और जिन तारीखों के बीच अपराध किया गया है, विशेष वस्तुओं या सटीक तिथियों को निर्दिष्ट किए बिना, और इस तरह से तय किए गए आरोप को धारा 219 के अर्थ के भीतर एक अपराध का आरोप माना जाएगा; बशर्ते कि ऐसी तारीखों में से पहली और आखिरी तारीख के बीच शामिल समय एक वर्ष से अधिक नहीं होगा। (दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 213)

213. जब अपराध करने का तरीका बताया जाना चाहिए। जब मामले की प्रकृति ऐसी है कि धारा 211 और 212 में उल्लिखित विवरण अभियुक्त को उस मामले की पर्याप्त सूचना नहीं देते हैं जिसके साथ उस पर आरोप लगाया गया है, तो आरोप में कथित अपराध करने के तरीके के ऐसे विवरण भी शामिल होंगे जो उस उद्देश्य के लिए पर्याप्त होंगे।

व्याख्या

(ए) ए पर एक निश्चित समय और स्थान पर एक निश्चित वस्तु की चोरी का आरोप लगाया जाता है। आरोप में यह बताने की जरूरत नहीं है कि चोरी किस तरीके से की गई।

(b) A पर एक निश्चित समय और स्थान पर B को धोखा देने का आरोप है। आरोप को उस तरीके को निर्धारित करना होगा जिसमें ए ने बी को धोखा दिया था।

(c) A पर एक निश्चित समय और स्थान पर झूठे सबूत देने का आरोप है। आरोप में ए द्वारा दिए गए साक्ष्य के उस हिस्से को निर्धारित किया जाना चाहिए जो कथित रूप से गलत है।

(घ) क पर एक लोक सेवक बी को एक निश्चित समय और स्थान पर अपने सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में बाधा डालने का आरोप है। आरोप को उस तरीके को निर्धारित करना चाहिए जिसमें ए ने बी को अपने कार्यों के निर्वहन में बाधा डाली।

(e) A पर एक निश्चित समय और स्थान पर B की हत्या का आरोप है। आरोप में यह बताने की जरूरत नहीं है कि ए ने किस तरह से बी की हत्या की।

(च) A पर B को दंड से बचाने के इरादे से कानून के एक निर्देश की अवज्ञा करने का आरोप है। आरोप में अवज्ञा और कानून के उल्लंघन को निर्धारित किया जाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में धारा 214 ऐसे शब्द जो कानून के अर्थ में लिए गए हों जिनके अन्तर्गत अपराध दण्डनीय हो। प्रत्येक आरोप में किसी अपराध का वर्णन करने में प्रयुक्त

शब्दों को उस कानून द्वारा क्रमशः उनसे जुड़े अर्थ में उपयोग किया गया माना जाएगा जिसके तहत ऐसा अपराध दंडनीय है। (दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 216 में धारा 216 में अदालत आरोप बदल सकती है।)

(1) कोई न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय किसी आरोप को बदल या जोड़ सकता है।

(2) ऐसे प्रत्येक परिवर्तन या परिवर्धन को आरोपी को पढ़ा और समझाया जाएगा।

(3) यदि किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में, मुकदमे के साथ तुरंत कार्यवाही करने से मामले के संचालन में अपने बचाव में अभियुक्त या अभियोजक को पूर्वाग्रह नहीं होता है, तो न्यायालय अपने विवेक से, इस तरह के परिवर्तन या परिवर्द्धि के बाद, कर सकता है, मुकदमे के साथ आगे बढ़ें जैसे कि बदला हुआ या जोड़ा गया आरोप मूल आरोप था।

(4) यदि परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय की राय में, मुकदमे के साथ तुरंत कार्यवाही करने से अभियुक्त या अभियोजक को पूर्वोक्त के रूप में पूर्वाग्रह होने की संभावना है, तो न्यायालय या तो एक नए परीक्षण का निर्देश दे सकता है या ऐसी अवधि के लिए परीक्षण स्थगित कर सकता है जो आवश्यक हो सकता है।

(5) यदि परिवर्तित या जोड़े गए आरोप में वर्णित अपराध अभियोजन के लिए एक है जिसके लिए पूर्व स्वीकृति आवश्यक है, तो मामले को तब तक आगे नहीं बढ़ाया जाएगा जब तक कि ऐसी मंजूरी प्राप्त नहीं हो जाती है, जब तक कि उन तथ्यों पर अभियोजन के लिए मंजूरी पहले ही प्राप्त नहीं की गई हो, जिन पर परिवर्तित या जोड़ा गया आरोप स्थापित किया गया है।

इस मामले में द० प्र० स० की धारा 215 महत्वपूर्ण है और नीचे उद्धृत की गई है।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 215

215. त्रुटियों का प्रभाव। आरोप में बताए जाने वाले अपराध या विवरण को बताने में कोई त्रुटि नहीं है, और अपराध या उन विवरणों को बताने में कोई चूक नहीं है, मामले के किसी भी चरण में सामग्री के रूप में नहीं माना जाएगा, जब तक कि अभियुक्त वास्तव में ऐसी त्रुटि या चूक से गुमराह न हो, और यह न्याय की विफलता का अवसर हो।

व्याख्या

(क) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 242 के तहत आरोप लगाया गया है कि उसके पास जाली सिक्का था, जब उसे यह पता था कि यह सिक्का नकली है, तो आरोप में धोखे से शब्द को हटा दिया गया है। जब तक यह प्रतीत नहीं होता कि वास्तव में इस चूक से गुमराह किया गया था, त्रुटि को सामग्री के रूप में नहीं माना जाएगा।

(बी) ए पर बी को धोखा देने का आरोप लगाया गया है, और जिस तरह से उसने बी को धोखा दिया है, वह आरोप में निर्धारित नहीं है, या गलत तरीके से निर्धारित किया गया है। ए खुद का बचाव करता है, गवाहों को बुलाता है और लेनदेन का अपना हिसाब देता है। न्यायालय इससे यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि धोखाधड़ी के तरीके को निर्धारित करने में चूक सामग्री नहीं है।

(c) A पर B को धोखा देने का आरोप लगाया गया है, और जिस तरह से उसने B को धोखा दिया है, वह आरोप में निर्धारित नहीं है। ए और बी के बीच कई लेनदेन थे, और ए के पास यह जानने का कोई साधन नहीं था कि उनमें से आरोप किसको संदर्भित करता है, और कोई बचाव नहीं किया। न्यायालय ऐसे तथ्यों से यह कह सकता है कि धोखाधड़ी के तरीके को निर्धारित करने में चूक, मामले में, एक भौतिक त्रुटि थी।

(घ) ए पर 21 जनवरी, 1882 को खोजा बख्श की हत्या का आरोप है। वास्तव में, मारे गए व्यक्ति का नाम हैदर बक्श था और हत्या की तारीख 20 जनवरी, 1882 थी। ए पर कभी भी किसी हत्या का आरोप नहीं लगाया गया था, लेकिन एक था, और मजिस्ट्रेट के समक्ष जांच सुनी थी, जिसने विशेष रूप से हैदर बख्श के मामले का उल्लेख किया था: अदालत इन तथ्यों से यह अनुमान लगा सकती है कि ए को गुमराह नहीं किया गया था, और आरोप में त्रुटि सारहीन थी।

(ङ) ए पर 20 जनवरी, 1882 को हैदर बख्श और 21 जनवरी, 1882 को खोजा बख्श

(जिसने उन्हें उस हत्या के लिए गिरफ्तार करने का प्रयास किया था) की हत्या का आरोप लगाया गया था। जब हैदर बख्श की हत्या का आरोप लगाया गया, तो उस पर खोजा बख्श की हत्या का मुकदमा चलाया गया। उनके बचाव में मौजूद गवाह हैदर बख्श के मामले में गवाह थे। न्यायालय इससे यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि ए को गुमराह किया गया था, और यह त्रुटि भौतिक थी। द० प्र० स० की धारा 215 के अनुसार, आरोप लगाने में त्रुटिपूर्ण निर्धारण का तब तक कोई परिणाम नहीं होगा जब तक कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता न हो जैसा कि राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम नवजोत संधू, एआईआर 2005 एससी 3820 में कहा गया है।

"यह असामान्य नहीं है कि कथित अपराध एक से अधिक प्रावधानों के तहत आ सकता है और कभी-कभी उस धारा के बारे में एक निश्चित राय बनाना आसान नहीं हो सकता है जिसमें अपराध उचित रूप से आता है। इसलिए, आरोप अक्सर प्रचुर सावधानी के माध्यम से तय किए जाते हैं। यह मानते हुए कि एक अप्रभावी प्रावधान का उल्लेख किया गया है, आरोपों को रद्द करने और परीक्षण को अमान्य करने का कोई आधार नहीं है।

50. इस मामले में अपराध तब शुरू किया गया जब मृतक मीनू मालवीय की दुकान के सामने पहुंचा और करीब 20 कदम आगे पहुंचने के ठीक बाद उसकी हत्या कर दी गई। मृतक की हत्या का स्थान मीनू मालवीय की दुकान से ज्यादा दूर नहीं है, इसलिए यह नहीं

कहा जा सकता है कि आरोपी व्यक्ति घटना की जगह को नहीं समझ सके।

51. उपर्युक्त धारा 215 को ध्यान में रखते हुए और न्यायिक दृष्टांत के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि न्याय की कोई विफलता नहीं है। इसलिए, न तो तय किए गए आरोपों को रद्द किया जा सकता है और न ही मुकदमे को दूषित कहा जाएगा।

52. वैकल्पिक आरोपी श्याम बिहारी ने दलील दी है कि कथित घटना के समय वह मौके पर मौजूद नहीं था और उसने बाकी आरोपियों को कथित अपराध करने के लिए उकसाया नहीं है। उनके अनुसार, कथित घटना की तारीख और समय पर, वह गांव से लगभग 28 किलोमीटर दूर नैनी, इलाहाबाद में झूटी पर थे। एलिबी की दलील को साबित करने के लिए, इस आरोपी ने बचाव पक्ष के चार गवाहों से जिरह की है, जिनकी गवाही नीचे चर्चा की गई है।

53. ब०सा०-1, सुरेंद्र प्रसाद मिश्रा इलाहाबाद के नैनी जोन में निरीक्षण के समय आरोपी व्यक्ति के साथ मौजूद नहीं थे, लेकिन उन्होंने गवाही दी थी कि उन्होंने श्याम बिहारी मिश्रा और सहायक कर कार्यालय राजस्व ग्रेड द्वितीय को आवास संख्या 92 ई/8 चक लाल मोहम्मद का निरीक्षण करने का निर्देश दिया था। आरोपी और अन्य निरीक्षकों शीतला प्रसाद सरोज और राधे शायम द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट उनके सामने पेश की गई और उस दिन आरोपी द्वारा 500 रुपये हाउस टैक्स भी जमा किया गया था। जिरह में इस गवाह ने स्वीकार किया है कि जब कर्मचारी आते हैं तो

वे उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करते हैं। वह यह नहीं बता सका कि आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा कितने बजे अपने इलाके में गया था और किस समय वापस आया था। वह चकडोडी से अपने घर की दूरी नहीं बता सका। वह स्वीकार करते हैं कि जब श्याम बिहारी कार्यालय आते थे, तो उपस्थिति रजिस्टर पर आते समय हस्ताक्षर नहीं करते थे; आने और जाने के समय का उल्लेख करने की कोई परंपरा नहीं थी। वह आगे स्वीकार करता है कि रिपोर्ट प्रदर्श क-2 को उक्त तीनों कर्मचारियों ने किसी रजिस्टर में रखकर उसके सामने नहीं दिया था बल्कि सीधे उसके सामने पेश किया था। उन्होंने रिपोर्ट पेश करने के लिए समय भी नहीं दिया था। रिपोर्ट दर्ज करने के लिए कोई रजिस्टर नहीं है। यह गवाह आगे स्वीकार करता है कि प्रदर्श ख-3 में, राजस्व निरीक्षक के पास चालान जमा करते समय कोई समय दर्ज नहीं किया जाता है क्योंकि इसके लिए कोई रजिस्टर नहीं है। इस प्रकार बचाव पक्ष के इस गवाह के साक्ष्य से, यह साबित नहीं होता है कि आरोपी ने वास्तव में घटना के समय चक लाल मोहम्मद का निरीक्षण किया था और घटना के स्थान पर मौजूद नहीं था।

55. ब०सा०-2, राधेश्याम शर्मा, सहायक कर अधीक्षक ने गवाही दी है कि 10.4.2000 को वह एसपी सरोज और आरोपी श्याम बिहारी के साथ कानूनी निरीक्षण के लिए चक लाल मोहम्मद और चक डोडी के पास गए थे। उनके अनुसार उन्होंने सुबह 8 बजे से 10 बजे तक स्थानीय निरीक्षण किया था और उन्होंने श्याम बिहारी को हाउस टैक्स वसूलने का निर्देश भी दिया था, जिसके बाद वह कार्यालय, इलाहाबाद

लौट आए। इस गवाह के मुताबिक आरोपी श्याम बिहारी सुबह 8 बजे से 10 बजे तक उसके साथ था और उसने वसूली गई टैक्स की रकम भी ऑफिस में जमा करा दी थी। यह गवाह स्वीकार करता है कि निरीक्षकों के लिए कोई उपस्थिति रजिस्टर नहीं था, जबकि ब०सा०- 1 के अनुसार उपस्थिति रजिस्टर है जिस पर आरोपी श्याम बिहारी अपनी उपस्थिति साबित करने के लिए हस्ताक्षर करता था। यह गवाह स्वीकार करता है कि इस उद्देश्य के लिए ऐसा कोई उपस्थिति रजिस्टर उसके कार्यालय में नहीं रखा जाता है ताकि यह पता चल सके कि कोई कर्मचारी किस समय कार्यालय में आया और किस समय कार्यालय छोड़ दिया। उपरोक्त गवाही के विपरीत निरीक्षकों के लिए एक उपस्थिति रजिस्टर है। इस गवाह ने आगे कहा है कि श्याम बिहारी की उपस्थिति कार्यालय के रजिस्टर में है। जिरह में इस गवाह ने स्वीकार किया है कि ऐसा कोई उपस्थिति रजिस्टर उसके सामने नहीं है, उसे देखकर वह बता सके कि आरोपी श्याम बिहारी 10.4.2000 को किस समय कार्यालय आया था और किस समय वह कार्यालय से निकला था। यह गवाह फोटोकॉपी देखकर गवाही दे रहा था, जो सबूत में स्वीकार्य नहीं हैं। यह गवाह स्वीकार करता है कि वसूली गई कर राशि जमा करने के लिए कोई निर्दिष्ट समय नहीं है।

56. इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि इस गवाह के साक्ष्य से, आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा की नैनी जोन में सुबह 8:00 बजे उपस्थिति उचित संदेह से परे स्थापित नहीं होती है। घटना के तुरंत बाद आरोपी व्यक्तियों

ने गांव छोड़ दिया, आरोपी को सहयोगियों के साथ शामिल होने और यह दिखाने के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध था कि वह मौके पर मौजूद नहीं था, लेकिन घटना के समय और तारीख पर अपनी झूठी में व्यस्त था। यह भी आश्चर्य की बात है कि सबसे पहले जब कोई कर्मचारी कार्यालय आता है, तो वह उपस्थिति रजिस्टर पर हस्ताक्षर करता है और उसके बाद फील्ड वर्क/निरीक्षण के लिए आगे बढ़ता है। आम तौर पर कोई भी नगर निगम अधिकारी सुबह 8:00 बजे से आधिकारिक काम शुरू नहीं करेगा। इस अभियुक्त द्वारा कोई अन्य उदाहरण नहीं दिखाया जा सका (घटना की तारीख को छोड़कर) कि उसने भी घटना से पहले या बाद में उसी तरह से आधिकारिक कर्तव्य किया था।

57. डी.डब्ल्यू.-3, नगर निगम इलाहाबाद के क्लर्क महेश चंद्र मिश्रा मूल रिकॉर्ड के साथ अदालत में आए और उपस्थिति रजिस्टर प्रस्तुत किया और गवाही दी कि 10.4.2000 को आरोपी श्याम बिहारी ने अपनी उपस्थिति के बारे में हस्ताक्षर किए थे। इस गवाह ने स्वीकार किया है कि फाइल नंबर 42 में कागजात न तो क्रमिक रूप से व्यवस्थित किए गए हैं और न ही क्रमबद्ध रूप से क्रमांकित हैं। फाइल कवर भी बदल दिया गया था। इस गवाह के अनुसार दूसरा बदला हुआ फाइल कवर लगाया गया है। इस गवाह ने स्वीकार किया है कि 10.4.2000 को पृष्ठ संख्या 1 पर फाइल नंबर 77 में श्याम बिहारी मिश्रा के कोई हस्ताक्षर या उल्लेख नहीं था। श्याम बिहारी मिश्रा के हस्ताक्षर पृष्ठ 2 पर हैं लेकिन तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है। यह गवाह आगे स्वीकार करता है कि रसीद पुस्तिका संख्या

81, 83, 17 और 18 को देखने से यह पता नहीं चलता है कि श्याम बिहारी ने राशि कब जमा की। रसीद पुस्तिका में समय का उल्लेख नहीं किया गया है। इस प्रकार केवल इस आधार पर कि कर की राशि आरोपी श्याम बिहारी के नाम पर जमा की गई थी, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह उसके द्वारा कथित समय और तारीख पर जमा की गई थी। उपस्थिति रजिस्टर के मुख्य पृष्ठ पर वर्ष में कुछ कटौती भी होती है। उपस्थिति रजिस्टर को देखकर इस गवाह ने गवाही दी कि 11.4.2000 से आरोपी श्याम बिहारी अनुपस्थित था और उसके नाम से पहले 'एक्स' क्रॉस किया गया है। इस गवाह के साक्ष्य पर विचार करते हुए, यह न्यायालय निष्कर्ष निकालता है कि यह गवाह घटना के समय आरोपी श्याम बिहारी के साथ मौजूद नहीं था, उसने कार्यालय में उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर ही अदालत के समक्ष गवाही दी है। यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि घटना के समय आरोपी श्याम बिहारी मौके पर मौजूद नहीं था क्योंकि वह ड्यूटी पर था।

58. ब०सा०-4, शीतला प्रसाद ने गवाही दी है कि 10.4.2000 को उन्होंने चक लाल मोहम्मद में घर का निरीक्षण किया था; उस दिन उन्होंने चक रघुनाथ और चक डोडी में जीत लाल विस्ट के घर और दो अन्य घरों का निरीक्षण किया था। उनके अनुसार उन्होंने राधेश्याम शर्मा और श्याम बिहारी मिश्रा के साथ सुबह 8:00 बजे निरीक्षण शुरू किया; वे सुबह 10:00 बजे तक उसके साथ रहे। जिरह में इस गवाह ने जवाब दिया कि श्याम बिहारी साइकिल से आया था। उनके मुताबिक इस निरीक्षण से

पहले वह आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा के साथ निरीक्षण के लिए भी जाया करते थे।

यह गवाह स्वीकार करता है कि हालांकि उपस्थिति रजिस्टर है, लेकिन चूंकि वे फील्ड स्टाफ थे, इसलिए कार्यालय आने और छोड़ने के समय का उल्लेख किए बिना उनकी उपस्थिति शाम 4:00 बजे तक ली गई थी। यह गवाह भी आरोपी का सहयोगी है। आम तौर पर, सुबह 10:00 बजे से पहले कोई निरीक्षण नहीं किया जाता है। आरोपी द्वारा ऐसा कोई पिछला उदाहरण नहीं दिखाया जा सका कि दुर्भाग्यपूर्ण दिन को छोड़कर किसी अन्य दिन भी उसने इस तरह का निरीक्षण किया था और हाउस टैक्स एकत्र किया था। इस प्रकार, इस न्यायालय की राय है कि बचाव पक्ष की ओर से सभी चार गवाह यह साबित करने में सक्षम नहीं हैं कि अभियुक्त 10.4.2000 को सुबह 8:00 बजे से चक लाल मोहम्मद या चक डोडी में था।

59. इस संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 11 प्रासंगिक है जो इस प्रकार है:

धारा 11. जब तथ्य जो अन्यथा प्रासंगिक नहीं होते हैं, प्रासंगिक हो जाते हैं- तथ्य जो अन्यथा प्रासंगिक नहीं होते हैं, वे प्रासंगिक होते हैं।

1. यदि वे मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में किसी भी तथ्य के साथ असंगत हैं;

2. यदि स्वयं या अन्य तथ्यों के संबंध में वे किसी भी तथ्य के अस्तित्व या गैर-अस्तित्व

को मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में अत्यधिक संभावित या असंभव बनाते हैं।

व्याख्या

(क) प्रश्न यह है कि क्या ए ने एक निश्चित दिन कलकत्ता में अपराध किया था। तथ्य यह है कि, उस दिन, ए लाहौर में था, प्रासंगिक है। तथ्य यह है कि, जिस समय अपराध किया गया था, उस समय के पास, ए उस स्थान से कुछ दूरी पर था जहां इसे अंजाम दिया गया था, जो इसे अत्यधिक असंभव बना देगा, हालांकि असंभव नहीं है, कि उसने इसे अंजाम दिया, प्रासंगिक है।

(ख) प्रश्न यह है कि क्या क ने कोई अपराध किया है। परिस्थितियां ऐसी हैं कि अपराध ए, बी, सी या डी द्वारा किया गया होगा, हर तथ्य जो दिखाता है कि अपराध किसी और द्वारा नहीं किया जा सकता था और यह बी, सी या डी द्वारा नहीं किया गया था, प्रासंगिक है।

एक। आयकर आयुक्त बनाम कमला टाउन ट्रस्ट, (1196) 7 एससीसी 349 मामले में यह माना गया है कि

"धारा 11 उन तथ्यों से संबंधित है जिनका आमतौर पर किसी मामले के तथ्यों से कोई लेना-देना नहीं होता है और वे अपने आप में प्रासंगिक नहीं होते हैं, लेकिन वे केवल इस तथ्य के आधार पर प्रासंगिक हो जाते हैं कि वे या तो मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में किसी तथ्य के साथ असंगत हैं या वे मुद्दे में किसी तथ्य या प्रासंगिक तथ्य के अस्तित्व को अत्यधिक संभावित या असंभव बनाते हैं।

साक्ष्य उन तथ्यों के बारे में दिए जा सकते हैं जिनका किसी मामले के मुख्य तथ्यों के साथ कोई अन्य संबंध नहीं है, सिवाय इसके कि वे मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में एक तथ्य के साथ असंगत हैं। मामले के मुख्य तथ्यों के साथ उनकी असंगति उनकी प्रासंगिकता को वारंट करने के लिए पर्याप्त है। यह धारा किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति को वह याचिका लेने में सक्षम बनाती है जिसे आमतौर पर अलीबी की दलील कहा जाता है, जिसका अर्थ है अपराध के समय कहीं और उसकी उपस्थिति। कहीं और उसकी उपस्थिति इस तथ्य के साथ असंगत है कि उसे अपराध के स्थान पर मौजूद होना चाहिए।

बिनय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1997 एससी 322 के पैरा 22 और 23 में निम्नानुसार टिप्पणी की गई है:

"हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य कानून में परिकल्पित अलीबी एक अपवाद (विशेष या सामान्य) नहीं है। यह केवल साक्ष्य अधिनियम की धारा 11 में मान्यता प्राप्त साक्ष्य का एक नियम है कि ऐसे तथ्य जो मुद्दे में तथ्य के साथ असंगत हैं, प्रासंगिक हैं। प्रावधान के तहत दिया गया चित्रण (ए) इस संदर्भ में पुनः प्रस्तुत करने योग्य है:

"सवाल यह है कि क्या ए ने एक निश्चित तारीख पर कलकत्ता में अपराध किया था: यह तथ्य कि उस तारीख को, ए लाहौर में था, प्रासंगिक है।

23. लैटिन शब्द एलीबी का अर्थ है "कहीं और" और उस शब्द का उपयोग सुविधा के लिए

किया जाता है जब एक अभियुक्त एक बचाव पंक्ति का सहारा लेता है कि जब घटना हुई तो वह घटना के स्थान से इतना दूर था कि यह बेहद असंभव है कि उसने अपराध में भाग लिया होगा। यह बुनियादी कानून है कि एक आपराधिक मामले में, जिसमें आरोपी पर किसी अन्य व्यक्ति को शारीरिक चोट पहुंचाने का आरोप है, यह साबित करने का बोझ अभियोजन पक्ष पर है कि आरोपी घटनास्थल पर मौजूद था और उसने अपराध में भाग लिया था। बोझ केवल इस तथ्य से कम नहीं होगा कि आरोपी ने बचाव का तरीका अपनाया है। ऐसे मामलों में अभियुक्तों की याचिका पर तभी विचार किए जाने की आवश्यकता है जब अभियोजन पक्ष द्वारा बोझ का संतोषजनक निर्वहन किया गया हो। लेकिन एक बार जब अभियोजन बोझ का निर्वहन करने में सफल हो जाता है, तो यह अभियुक्त पर निर्भर करता है, जो अलीबी की दलील को स्वीकार करता है, इसे पूर्ण निश्चितता के साथ साबित करे ताकि घटना के स्थान पर उसकी उपस्थिति की संभावना को बाहर किया जा सके। जब घटना स्थल पर अभियुक्त की उपस्थिति विश्वसनीय सबूतों के माध्यम से अभियोजन पक्ष द्वारा संतोषजनक ढंग से स्थापित की गई है, तो आम तौर पर अदालत इस आशय के किसी भी जवाबी सबूत पर विश्वास करने में धीमी होगी कि घटना के समय वह कहीं और था। लेकिन अगर अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य इस गुणवत्ता और इस मानक के हैं कि अदालत घटना के समय घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति के बारे में कुछ उचित संदेह पर विचार कर सकती है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि अभियुक्त उस उचित संदेह के लाभ का

हकदार होगा। इस उद्देश्य के लिए, यह निर्धारित किया जाना एक अच्छा प्रस्ताव होगा कि, ऐसी परिस्थितियों में, आरोपी पर बोझ बहुत अधिक है। इसलिए, यह इस प्रकार है कि अलीबी की दलील को स्थापित करने के लिए सख्त सबूत की आवश्यकता है।

ग. यह अच्छी तरह से तय है कि एलिबी की दलील को साबित करने और इसे यथोचित रूप से संभव बनाने का भार उस व्यक्ति पर है जो इसे स्थापित करता है (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुधर सिंह एआईआर 1978 एससी 191)। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है: "एलिबी की याचिका में आरोपी की किसी अन्य स्थान पर उपस्थिति के कारण अपराध स्थल पर उसकी उपस्थिति की भौतिक असंभवता को माना गया है। इसलिए याचिका केवल तभी सफल हो सकती है जब यह दिखाया जाए कि आरोपी संबंधित समय में इतना दूर था कि वह उस स्थान पर मौजूद नहीं हो सकता था जहां अपराध किया गया था। इसे मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए अदालत ने कहा कि एलिबी की याचिका स्थापित नहीं की गई थी क्योंकि उस कारखाने के बीच का अंतर जहां आरोपी काम करता था और जहां वह सुबह 8.30 बजे मौजूद था और हत्या की जगह जो सुबह 9 बजे हुई थी, इतनी कम थी कि आरोपी आसानी से वहां पहुंच सकता था (दूध नाथ पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1981) 2 एससीसी 166)।

संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 एससीसी 107 झूठ की दलील को साबित करने का भार आरोपी पर है। यदि अभियुक्त ने उस बोझ का पर्याप्त रूप से निर्वहन नहीं किया है,

तो अभियोजन पक्ष के बयान पर विश्वास किया जाना चाहिए, जो अन्यथा प्रशंसनीय था।

हत्या की याचिका को सही तरीके से खारिज कर दिया गया था।

ई। शेख सतार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 8 एससीसी 430 मामले में, यह माना गया है कि आरोपी द्वारा सकारात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करके अभियोग की याचिका स्थापित की जानी चाहिए। उक्त याचिका की विफलता से अभियोजन मामले की सफलता आवश्यक रूप से नहीं होगी, जिसे उचित संदेह से परे अभियोजन पक्ष द्वारा स्वतंत्र रूप से साबित किया जाना है। साक्ष्य की याचिका को पूर्ण निश्चितता के साथ साबित किया जाना चाहिए ताकि संबंधित समय पर घटना के स्थान पर अभियुक्त की संभावित उपस्थिति को पूरी तरह से बाहर किया जा सके।

ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2012) 5 एससीसी 201 में यह माना गया है कि साक्ष्य की दलील को पहली बार में उठाया जाना चाहिए और सबूतों के सख्त सबूत के अधीन किया जाना चाहिए और सबूतों की कमी के बावजूद हल्के ढंग से अनुमति नहीं दी जा सकती है, केवल अभिवादन प्रिंसिपल की सहायता से कि एक निर्दोष व्यक्ति को उसकी दलील के बावजूद दोषसिद्धि दर्ज करके अन्याय का सामना नहीं करना पड़ सकता है।

अदालत पंडित बनाम बिहार राज्य, (2010) 6 एससीसी 469 में यह माना गया है कि जहां हत्या के मुकदमे में, गवाही देने की जगह दूर नहीं है, गवाह सहयोगी हैं और अपराध के समय कथित लेवी कार्य के बारे में कोई उचित दस्तावेजी सबूत नहीं है, यह माना गया है कि

60. इस मामले में बचाव पक्ष के सभी गवाह आरोपी के सहयोगी हैं। यदि वास्तव में आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा ने चक डोडी और चक मोहम्मद स्थित घर का निरीक्षण किया होता, तो 10.4.2000 को सुबह 8:00 बजे के बाद से आरोपी की उपस्थिति साबित करने के लिए कुछ मकान मालिकों की जांच की जा सकती थी, तो यह विचार करने का आधार बन जाता कि आरोपी मौके पर मौजूद नहीं था और अपने निरीक्षण के उद्देश्य से नैनी जोन में था। इस प्रकार, अलीबी की याचिका खारिज कर दी जाती है।

61. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने यह भी तर्क दिया कि शिकायतकर्ता, अ०सा० 1, मृतक के भाई शिव प्रकाश तिवारी, जय प्रकाश तिवारी की मृत्यु के बाद अस्पताल से घर लौट आए और जांच कार्यवाही में भाग नहीं लिया और शव विच्छेदन के समय नहीं पहुंचे जो बहुत ही असामान्य और अप्राकृतिक व्यवहार है और इस संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा सच्चाई नहीं रखी गई है। इस न्यायालय के अनुसार यदि यह तथ्य सही भी है, तब भी यह मामले की योग्यता को प्रभावित नहीं करता है। साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि मृत्यु के बाद जय प्रकाश तिवारी, उनका पुत्र अ०सा०4- पवन तिवारी, अ०सा०3- जय हिंद सिंह और अन्य व्यक्ति शव विच्छेदन समाप्त होने तक शव के साथ मौजूद रहे। घर में कोई भी व्यक्ति मौजूद नहीं था और विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल का दौरा किया था और जांच शुरू

की थी और शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के बयान भी दर्ज किए थे। इसलिए, यदि सूचनादाता, अ०सा० -1, अस्पताल या शवगृह में नहीं लौटा, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उसका व्यवहार असामान्य या अप्राकृतिक था और अभियोजन पक्ष के संस्करण के विपरीत था या किसी भी तरह से यह अभियोजन पक्ष के मामले की योग्यता को प्रभावित करता है।

62. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने यह भी तर्क दिया है कि इस मामले में दलीलों के लिए, अभियोजन पक्ष के संस्करण को स्वीकार किया जाता है, तब भी आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा की भूमिका अन्य सह-आरोपी व्यक्तियों की भूमिका से अलग है। उनके अनुसार, अभियोजन पक्ष के बयान के अनुसार, श्याम बिहारी ने केवल बाकी आरोपियों को उकसाया था। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि वह अपराध में शामिल था और उसे धारा 34 भ० द० वि० की मदद से हत्या के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

यहां धारा 302 और 307 भ० द० वि० के तहत आरोप लगाए गए हैं, धारा 34 भ० द० वि० की मदद से केवल एक गलत शब्द यानी 'सामान्य उद्देश्य' का उपयोग किया गया है, जो मामले की योग्यता या निष्कर्ष को प्रभावित नहीं करता है। मुख्य अपराध बाकी दो आरोपियों ने आरोपी श्याम बिहारी के प्रोत्साहन पर ही किया है। तीनों आरोपी मार्शल जीप से एक साथ गांव से निकले थे। श्याम बिहारी को पता था कि बाकी आरोपी आग्नेयास्त्रों से लैस हैं। इसलिए, सभी आरोपी व्यक्तियों के मृतक

को मारने के लिए मन की एक पूर्व बैठक और सामान्य इरादा स्थापित किया जाता है।

न्यायालय को सभी आरोपी व्यक्तियों को कवर करने में सक्षम बनाने के लिए दो सहायक धाराएं हैं। यदि अपराध एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किया गया है, लेकिन चार से अधिक व्यक्तियों द्वारा नहीं किया गया है, तो भ० द० वि० की धारा 34 लागू होती है। इस मामले में तीन आरोपी व्यक्ति हैं, इसलिए भ० द० वि० की धारा 302 के साथ धारा 34 और भ० द० वि० की धारा 307 के साथ 34 के तहत आरोप तय किए गए हैं। यदि भ० द० वि० की धारा 34 के तहत आरोप तय किए जाते हैं तो 'सामान्य इरादा' या 'सामान्य आशय' शब्द का उपयोग किया जाता है। यदि पांच आरोपी व्यक्ति हैं तो धारा 141 भ० द० वि० के तहत एक गैरकानूनी सभा स्वचालित रूप से बनाई जाती है और यदि ऐसी सभा का कोई सदस्य अपराध करता है तो यह कहा जाता है कि ऐसे सदस्य ने सामान्य उद्देश्य या 'सामान्य उद्देश्य' के अनुसरण में अपराध किया है, तो धारा 149 भ० द० वि० की मदद से आरोप तय किए जाते हैं। इस मामले में आरोप तय करते समय 'सामान्य आशय' शब्द के बजाय 'सामान्य उद्देश्य' शब्द का इस्तेमाल किया गया है। लेकिन यह मामले की योग्यता को प्रभावित नहीं करता है, यह केवल एक टाइपोग्राफिक त्रुटि है। अभियोजन पक्ष और आरोपी दोनों पक्ष समझ रहे थे कि यह एक समान इरादे का मामला था जिसमें उक्त अपराध के लिए केवल तीन व्यक्तियों पर आरोप लगाया गया था।

यह आरोप तय करने में निपटा गया है कि सभी आरोपी व्यक्तियों की संख्या तीन है,

इसलिए उनके खिलाफ धारा 302 के साथ धारा 34 भ० द० वि० और धारा 307 के साथ धारा 34 भ० द० वि० के तहत आरोप तय किए गए हैं। भ० द० वि० की धारा 34 सामान्य इरादे से संबंधित है। यह निम्नानुसार है:

"**धारा 34:** समान इरादे से कई व्यक्तियों द्वारा किए गए कार्य। जब सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कई व्यक्तियों द्वारा आपराधिक कार्य किया जाता है, तो ऐसे व्यक्तियों में से प्रत्येक उस कार्य के लिए उसी तरह उत्तरदायी होता है जैसे कि यह अकेले उसके द्वारा किया गया था। धारा 34 के मुख्य तत्व अर्थात् 'सामान्य आशय' इस प्रकार हैं:- एक आपराधिक कृत्य में कई व्यक्ति शामिल होने चाहिए, 2. आपराधिक कृत्य सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए होना चाहिए; और 3. साझा इरादे को आगे बढ़ाने में सभी व्यक्तियों की भागीदारी होनी चाहिए। धारा 34, आई.पी.सी. में प्रयुक्त 'सामान्य आशय' शब्द को निम्नानुसार विभिन्न अर्थ दिए गए हैं: -

- (i) इसका तात्पर्य एक पूर्व-व्यवस्थित योजना, मन की पूर्व बैठक, एक समूह का गठन करने वाले सभी व्यक्तियों के बीच पूर्व परामर्श से है।
- (ii) सामान्य आशय का अर्थ है परिणामों के किसी भी चिंतन के बिना आपराधिक अपराध करने की इच्छा।
- (iii) इसका तात्पर्य यह है कि जो अपराध किया गया है उसका गठन करना आवश्यक है।
- (iv) इसका अर्थ किसी आपराधिक कृत्य को प्रभावित करने का बुरा इरादा भी है, लेकिन जरूरी नहीं कि वही अपराध किया गया हो।

"सैदू खान बनाम राज्य, एआईआर 1951 21 (एफबी), और प्यारे लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1987 एससी 852, में यह माना गया है कि-
"शारीरिक हिंसा से जुड़े अपराध के संबंध में भी यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक आरोपी ने पीड़ित पर हमले में सक्रिय भाग लिया हो।

63. इस मामले में घटना एक सरकारी कर्मचारी आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा के प्रोत्साहन पर शुरू हुई, उसके बाद बाकी दो आरोपियों ने अपराध को अंजाम दिया। यह स्थापित हो गया है कि आरोपी व्यक्ति एक साथ थे और मृतक के लौटने का इंतजार कर रहे थे और जब वह मीनू मालवीय की दुकान पर पहुंचा और जल निकासी के कारण अपना स्कूटर धीमा कर दिया, तो आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा ने अपने बेटों को उकसाया कि 'उसे नहीं भागना चाहिए' इसके बाद आरोपी विमल मिश्रा ने आगे खड़े होकर स्कूटर रोका और आरोपी कमल मिश्रा ने मृतक के सीने में गोली मार दी और जब गवाह उस जगह की ओर भागे। घटना होने पर, विमल मिश्रा ने शिकायतकर्ता पर गोली भी चलाई। इस प्रकार, यह घटना केवल आरोपी श्याम बिहारी के प्रोत्साहन पर हुई। इस तरह की घटना आरोपी व्यक्तियों के बीच पूर्व बैठक और परामर्श के बिना संभव नहीं थी। इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा का कृत्य भ० द० वि० की धारा 34 के तहत आता है और उसकी भूमिका को बाकी अभियुक्तों की तुलना में कम नहीं कहा जा सकता है। इसलिए, ट्रायल कोर्ट ने धारा 34 भ० द० वि० की मदद से आरोपी श्याम बिहारी को दोषी ठहराया और सजा सुनाई।

नंद किशोर बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 4 सीआरआई एलजे 4243 (एससी) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि

"धारा 34 रचनात्मक आपराधिक दायित्व से संबंधित है। जहां एक आपराधिक कृत्य सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कई व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, तो ऐसे व्यक्तियों में से प्रत्येक उस कार्य के लिए उसी तरह उत्तरदायी होगा जैसे कि यह अकेले उसके द्वारा किया गया था। यदि सामान्य इरादा आपराधिक अपराध की ओर जाता है, तो सामान्य इरादे को साझा करने वाले व्यक्तियों में से प्रत्येक उनमें से एक द्वारा किए गए आपराधिक कृत्य के लिए रचनात्मक रूप से उत्तरदायी है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के तहत सामान्य इरादे का सार एक विशेष वांछित परिणाम लाने के लिए आपराधिक कृत्य में भाग लेने वाले व्यक्तियों के दिमाग का एक साथ मिलना है। (लल्लन राय बनाम बिहार राज्य, (2003) 1 एससीसी 268) यह आवश्यक नहीं है कि भाग लेने वाले व्यक्तियों का कार्य समान या समान होना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि Z को मारने के एक सामान्य इरादे को आगे बढ़ाते हुए, A एक चौकीदार के रूप में दरवाजे के बाहर खड़ा है, B, Z पर हावी हो जाता है और C, Z पर खंजर प्रहार करता है, तो तीनों (यानी, A, B और C) को Z की हत्या करने के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाएगा, हालांकि उनके कार्य अलग-अलग थे। यहां, 'ए' इस दलील पर संयुक्त आपराधिक

दायित्व से बच नहीं सकता है कि वह केवल दरवाजे पर खड़ा था और जेड को मारने के वास्तविक कार्य में भाग नहीं लिया था। इसका उल्लेख लॉर्ड समर ने किया है, जिन्होंने बरेंद्र कुमार घोष बनाम किंग सम्राट, एआईआर 1925 पीसी 1 में मिल्टन के शब्दों को उद्धृत करते हुए कहा था, "वे भी सेवा करते हैं जो केवल खड़े होकर प्रतीक्षा करते हैं।"

धारा 34 के दायरे के बारे में विस्तार से बताते हुए, इस मामले में प्रिवी काउंसिल ने कहा कि कमरे के बाहर केवल गार्ड के रूप में खड़ा व्यक्ति भी अपराध करने वाले अपराधियों के साथ संयुक्त रूप से उत्तरदायी होगा और उसके लिए यह कहना कोई बचाव नहीं होगा कि उसका हत्या करने वाले व्यक्ति को मारने का कोई इरादा नहीं था और उसे अन्य आरोपियों द्वारा गार्ड के रूप में बाहर खड़े होने और बदलने के लिए मजबूर किया गया था। उन्हें किसी भी संभावित खतरे का सामना करना पड़ता है। इस मामले में प्रिवी काउंसिल ने कहा,

"आपराधिक कृत्य का अर्थ है आपराधिक व्यवहार की एकता जिसके परिणामस्वरूप कुछ ऐसा होता है जिसके लिए एक व्यक्ति उत्तरदायी होगा, अगर यह सब अकेले किया गया था, अर्थात्, एक आपराधिक अपराध में।

यहां तक कि शारीरिक हिंसा से जुड़े अपराध के संबंध में यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक आरोपी ने पीड़ित पर हमले में सक्रिय भाग लिया हो। (प्यारेलाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1987 एससी 852)

64. हमले के तरीके के बारे में, बचाव पक्ष के वकील द्वारा कई सवाल पूछे गए हैं लेकिन इसमें कोई दम नहीं है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि स्कूटर साइड से रुका था या सामने से या फिर मृतक की छाती पर बैल लगाकर या कुछ दूरी से। यह पहले से ही चर्चा की गई है कि यदि कोई भी व्यक्ति पीछे से या कुछ दूर से घटना को देखता है, तो वह सोचता है कि मृतक को बहुत करीब से गोली मारी जा रही है।

65. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(क) जगदीश मुरव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2006 विधि वाद (अनुसूचित जाति) 686 यह भ० द० वि० की धारा 307 के तहत मामला था। जिसमें साइट प्लान को रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया। मूल जीडी पेश नहीं किया गया था, अभियोजन पक्ष के गवाहों के सबूत विरोधाभास से भरे पाए गए थे। तथ्यों में भिन्नता के कारण, इस मामले में निर्धारित सिद्धांत हाथ में लिए गए मामले पर लागू नहीं होते हैं।

(ख) मारुति रामा नायक बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2003 0 उच्चतम (अनुसूचित जाति) 863 इस मामले में घायल अ०सा०-3 ने पुलिस को दिए अपने बयान में अपीलकर्ताओं को हमलावरों के रूप में नामित नहीं किया था, जबकि एक दिन की देरी के बाद उनके बयान दर्ज किए गए थे। यह माना गया था कि पुष्टि के बिना इस गवाह के साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता था। अ०सा०-4 मृतक का

करीबी दोस्त था, लेकिन उसने पुलिस या किसी और को सूचित नहीं किया और वह अपने कार्यस्थल पर चला गया। उनका बयान दर्ज करने में अस्पष्ट देरी हुई। इस मामले में अ०सा०-1 शिकायतकर्ता है और आरोपी कमल मिश्रा ने उसे गोली मारी थी। उसी दिन कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ उनका बयान दर्ज किया गया था। मामले की सूचना तुरंत संबंधित थाना- को दी गई, लिखित शिकायत में प्रत्यक्षदर्शियों का उल्लेख किया गया था और आरोपी व्यक्ति फरार हो गए थे। इसलिए यह न्यायिक मिसाल अपीलकर्ताओं के पक्ष में लागू नहीं होती है।

(ग) संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक कृष्णागिरी, एआईआर 2011 एससी 1249। यह परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित मामला है। इस निर्णय में परिस्थितिजन्य साक्ष्य से संबंधित मामलों के संबंध में सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं। दोनों मामलों के तथ्यों में बड़ा अंतर है। इसलिए, यह लागू नहीं होता है।

(घ) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम परशुराम यादव, 2005 0 सर्वोच्च (सभी) 1309 डीबी। यह भ० द० वि० की धारा 307 के तहत लाठी प्रहार का मामला था। उक्त घटना का क्रॉस केस भी था। घटनास्थल पर कोई खून नहीं मिला है। यह भी देखा गया कि मई के पहले पखवाड़े में, आम की फसल किसी काम की नहीं है, यहां तक कि अचार तैयार करने के लिए भी तैयार नहीं है। इसलिए, अभियोजन पक्ष के बयान को विश्वसनीयता के योग्य नहीं पाया गया। दोनों मामलों के तथ्य काफी अलग हैं, इसलिए, इस

उद्धरण को अपीलकर्ताओं के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता है।

(ड) **दाउद खान बनाम राजस्थान राज्य, 2015 0 उच्चतम (अनुसूचित जाति) 1041।** इस मामले में निर्धारित सिद्धांत अभियोजन पक्ष के पक्ष में हैं, अपीलकर्ताओं के पक्ष में नहीं। इस मामले में शीर्ष अदालत ने यह स्वीकार नहीं किया कि प्राथमिकी पर ओवरराइटिंग करके इसे पूर्व-निर्धारित कर दिया गया था। अपराध रात 9:30 बजे हुआ था और प्राथमिकी लगभग 10:30 बजे दर्ज किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि एफ आई आर दर्ज करने में शायद ही कोई देरी हुई है। इसी तरह इस मामले में घटना सुबह 8:30 बजे हुई और प्राथमिकी 9:35 बजे पीएस सराय इनायत, इलाहाबाद में दर्ज की गई जो घटना स्थल से 12 किमी दूर है। द० प्र० स० की धारा 157 के बारे में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि जब प्राथमिकी दर्ज करने में कोई देरी नहीं होती है, तो मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट देने में किसी भी देरी का वास्तव में कोई परिणाम नहीं होगा, क्योंकि प्राथमिकी के हेरफेर से इनकार कर दिया जाएगा। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी माना कि द० प्र० स० की धारा 157 की व्याख्या अब असंगत नहीं है और उसने प्रशस्ति पत्र ब्रह्म स्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2011) 6 एससीसी 288; शिव शंकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2013) 12 एससीसी 539, जिसमें यह माना गया था कि इस तरह के विवाद को स्वीकार करने से पहले, अभियुक्त को मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी के देरी से भेजने के कारण पूर्वाग्रह दिखाना होगा। इसके पैरा 34 में यह भी कहा गया है कि

चिकित्सा और ओकुलर साक्ष्य दोनों से कोई संदेह नहीं है कि दाउद खान ने बंदूक से गोली चलाई थी। फॉरेंसिक सबूतों से पता चलता है कि नंद सिंह के शरीर से निकाली गई गोली सक्षम थी, बरामद बंदूक से फायर किया जा रहा था। नंद सिंह को बरामद बंदूक या किसी अन्य बंदूक के उपयोग से गोली मारी गई थी या नहीं, इस पर सवाल नहीं उठाया गया था और किसी भी गवाह से दाउद खान की निशानदेही पर जावेद से बरामद बंदूक के बारे में कोई ठोस सवाल नहीं पूछा गया था या क्या यह वही बंदूक (या एक अलग) थी जिसका इस्तेमाल दाउद खान ने किया था। इसी प्रकार इसमें एफएसएल रिपोर्ट से यह स्थापित हो चुका है कि आरोपी कमल मिश्रा की निशानदेही पर बरामद देसी पिस्तौल से 12 बोर के कारतूस को अंजाम दिया जा सकता है।

(च) **समसुल हक बनाम असम राज्य एआईआर 2019 एससी 4163।** इस मामले में होटल के मालिक या अ०सा० 1 को छोड़कर घटना के स्थान पर मौजूद किसी अन्य स्वतंत्र गवाह से पूछताछ नहीं की गई थी। उद्धृत मामले के प्राथमिकी में दिए गए बयान की तरह ही प्राथमिकी में मामले का कोई अस्पष्ट बयान नहीं है। इच्छुक और शत्रुतापूर्ण गवाहों के संबंध में, पहले एक विस्तृत चर्चा की गई है। जब यह घटना मृतक और शिकायतकर्ता के घर के पास होती है, तो परिवार के सदस्य और पड़ोस के व्यक्ति स्वाभाविक गवाह होते हैं। इस मामले में आरोपी नंबर 9 के लिए तर्क पर भी चर्चा की गई है और जवाब दिया गया है। वर्तमान मामले में द० प्र० स० की धारा 313 में एफएसएल रिपोर्ट के बारे में पूछने के बारे

में चूक के अलावा कुछ भी नहीं छोड़ा गया है। इस संदर्भ में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि द० प्र० स० की धारा 293 के तहत ऐसी रिपोर्ट स्वचालित रूप से साक्ष्य में स्वीकार्य हैं और आरोपी व्यक्तियों को उस पर कोई आपत्ति नहीं थी, इसलिए, उन्होंने संबंधित वैज्ञानिक से जांच की मांग नहीं की। वर्तमान मामले में सभी तीन आरोपियों को दोषी ठहराया गया था और सजा सुनाई गई थी। इसलिए, उद्धृत मामले के आरोपी नंबर 9 को बरी करने के बारे में निर्धारित किसी भी चर्चा और सिद्धांत की कोई प्रासंगिकता नहीं है। उद्धृत मामले में धारा 34 और 107 भ० द० वि० पर भी चर्चा की गई है। इस संबंध में एक विस्तृत निष्कर्ष पहले दिया जा चुका है। इस मामले में भ० द० वि० की धारा 109 की कोई दलील नहीं ली गई है और चर्चा से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि आरोपी श्याम बिहारी मिश्रा सहित सभी आरोपी व्यक्तियों की भूमिका कॉमन इंटेन्ट के चैंप्टर के तहत आती है। इस प्रकार, इस मामले में निर्धारित सिद्धांत अपीलकर्ताओं के पक्ष में लागू नहीं होते हैं। **गणेश भवन पटेल और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1978 0 सुप्रीम (एससी) 323।** उपर्युक्त मामले में कथित प्रत्यक्षदर्शियों के बयानों में कई खामियां थीं और कथित प्रत्यक्षदर्शियों के बयान विवेचनाधिकारी द्वारा अनुचित देरी के साथ दर्ज किए गए थे। इस मामले में बिना किसी देरी के प्राथमिकी दर्ज किया गया है और शिकायतकर्ता अ०सा०-1 का बयान उसी दिन कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ दर्ज किया गया था। उद्धृत मामले में, ट्रायल जज ने कम उम्र की लड़की प्रमिला के आचरण को अप्राकृतिक और उसके प्रत्यक्षदर्शी होने के साथ असंगत

पाया। सुप्रीम कोर्ट ने ट्रायल कोर्ट के इस निष्कर्ष को स्वीकार कर लिया कि प्रमिला बेहद इच्छुक गवाह थी और इतनी कम उम्र की लड़की को ट्यूशन देने की क्षमता से इनकार नहीं किया जा सकता है। इस मामले में तथ्य और सबूत ऐसे नहीं हैं। इसलिए, उद्धृत मामले में निर्धारित सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता है।

वर्तमान मामले में ट्रायल कोर्ट ने धारा 307 भ० द० वि० या 302 भ० द० वि० धारा 307 के तहत जुर्माना नहीं लगाया है।

307. हत्या का प्रयास—जो कोई भी ऐसे इरादे या ज्ञान से कोई कार्य करता है, और ऐसी परिस्थितियों में कि, यदि वह उस कार्य के द्वारा मृत्यु का कारण बनता है, तो वह हत्या का दोषी होगा, उसे दस वर्ष तक की अवधि के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा, और जुर्माना भी लगाया जाएगा; और यदि ऐसे कार्य से किसी व्यक्ति को चोट पहुँचाई जाती है, अपराधी या तो 1 [आजीवन कारावास] के लिए उत्तरदायी होगा, या ऐसी सजा के लिए उत्तरदायी होगा जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। आजीवन कारावास की सजा पाने वालों द्वारा किए गए प्रयास-2 [जब इस धारा के अधीन अपराध करने वाला कोई व्यक्ति 1 [आजीवन कारावास] की सजा के अधीन है, तो यदि चोट पहुँची है, तो उसे मौत की सजा दी जा सकती है।

धारा 302) हत्या के लिए सजा। जो कोई भी हत्या करता है, उसे मौत या 1 [आजीवन कारावास] से दंडित किया जाएगा, और जुर्माना भी लगाया जाएगा।

इस पहलू पर इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा सुख देव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2992 में चर्चा की गई है, जिसमें इस न्यायालय, अन्य उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर चर्चा करते हुए, पैरा 27 में पूर्ण पीठ ने निम्नानुसार आयोजित किया है:

"27. अदालतें कारावास के अलावा जुर्माना लगाने की शक्ति से लैस हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अदालत को एक नियम के रूप में हर मामले पर जुर्माना लगाना चाहिए, हालांकि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जुर्माना लगाना और द० प्र० स० की धारा 357 या इसी तरह की अन्य धाराओं के अनुसार पीड़ित को मुआवजा देने के लिए निर्देश जारी करने पर विचार करना वांछनीय हो सकता है। किसी विशेष अपराध के लिए जुर्माने के संबंध में कोई ऊपरी सीमा तय न करें और न्यायालय को कोई भी राशि तय करने की स्वतंत्रता है। भ० द० वि० की धारा 63 कहती है कि जहां कोई राशि व्यक्त नहीं की जाती है, वहां जुर्माने की राशि, जिसके लिए अपराधी भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, असीमित होगी, लेकिन अत्यधिक या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होगी। आरोपी की वित्तीय क्षमता, अपराध की गंभीरता, अपराध के शिकार को हुई क्षति की सीमा भी राशि तय करने में प्रासंगिक विचार हैं। इन और प्रत्येक मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जुर्माना लगाया जाए या नहीं, और जुर्माना लगाने या न लगाने की यांत्रिक प्रक्रिया नहीं होनी चाहिए। यह

अदालत को तय करना है कि आपराधिक अपराध में शामिल कोई व्यक्ति (पीड़ित) मुआवजे के भुगतान का हकदार है या नहीं। ऐसे सभी मामलों में, कारावास की सजा के साथ जुर्माने की सजा आवश्यक और उचित होगी। इस प्रकार, हम हमारे द्वारा तैयार किए गए प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में देते हैं। दूसरे शब्दों में, हम मानते हैं कि भ० द० वि० की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध के लिए कारावास की मूल सजा के अलावा जुर्माना लगाना अनिवार्य नहीं है, हालांकि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और द० प्र० स० 291 की धारा 357 के तहत प्रदत्त शक्ति को ध्यान में रखते हुए जुर्माना लगाना वांछनीय है। रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह इस फैसले के साथ तत्काल आपराधिक अपील को उचित पीठ के समक्ष रखे।

"इसलिए, भ० द० वि० की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध के लिए कारावास की मूल सजा के अलावा जुर्माना लगाया जाए, हालांकि जुर्माना लगाना वांछनीय है लेकिन प्रकृति में अनिवार्य नहीं है। ट्रायल कोर्ट ने न तो जुर्माना लगाया है और न ही पीड़ित व्यक्तियों को मुआवजे के रूप में कोई राशि देने का आदेश दिया है।

67. समग्र चर्चा के आधार पर इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश में कोई खामी नहीं है। अभियोजन पक्ष ने सभी उचित संदेहों से परे अपने मामले को साबित कर दिया है। सजा का आदेश भी उचित है। यह न तो कठोर है और न ही दंडात्मक है और इसे न्यूनतम सजा दी गई है जो न्याय के अंत

को पूरा करती है। अपीलों में दम नहीं है और इन्हें खारिज किया जा सकता है।

आदेश

तदनुसार दोनों अपीलों को खारिज किया जाता है। रजिस्ट्री को इस फैसले की प्रति के साथ निचली अदालत के रिकॉर्ड को वापस करना होगा। इसकी एक प्रति सीजेएम इलाहाबाद को भेजी जाए ताकि इसका अनुपालन सुनिश्चित किया जा सके। यदि दोषी हिरासत में नहीं हैं, तो उन्हें तुरंत हिरासत में लिया जाएगा और उनकी शेष सजा काटने के लिए जेल भेजा जाएगा।

जहां तक 2005 की आपराधिक अपील संख्या 1884 में अपीलकर्ता कमल मिश्रा का संबंध है, न्यायालय को सूचित किया गया है कि उन्हें राज्य सरकार द्वारा छूट दी गई है और उन्हें रिहा कर दिया गया है। सजा में छूट देने के आदेश को 2022 की रिट याचिका संख्या 17743 (सत्य प्रकाश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 7 अन्य) में चुनौती दी गई है, जिसे एक समन्वय पीठ द्वारा सुना गया है और निर्णय सुरक्षित रखा गया है। इसलिए, सीजेएम, इलाहाबाद द्वारा इस फैसले का अनुपालन, जैसा कि ऊपर निर्देशित किया गया है, 2022 की रिट याचिका संख्या 17743 के फैसले और परिणाम के अनुसार होगा।
आदेश की तारीख: 24.03.2023 एस.

(2023) 4 ILRA 1430

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 05.04.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

कैपिटल वाद संख्या 05 / 2020

संलग्न

सन्दर्भ संख्या 4 / 2020

और

कैपिटल वाद संख्या 6 /2020

राकेश पाण्डेय

...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राजर्षि गुप्ता, श्री दिलीप कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री रिजवान अहमद, सुश्री शाम्भवी शुक्ला, श्री गौरव यादव, श्री सुनील सिंह, श्री अंकुश यादव, श्री राजेश बाबू
अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अशोक कुमार द्विवेदी, श्री गणेश दत्त मिश्रा, श्री कमल कृष्ण (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री ए.के. द्विवेदी, श्री शैलेंद्र शर्मा

आपराधिक कानून - आपराधिक अपील- कैपिटल वाद और मृत्युदंड का संदर्भ- सत्र परीक्षण से उत्पन्न- धारा 147, 148, 201 और 302/34/149 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि- दोषी अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आरोप कि उन्होंने जघन्य अपराध कारित किया- मृतक का सिर और अंगूठा काट दिया- पक्षों के मध्य अत्यधिक महत्व का संबंध- मुख्य गवाह पीडब्लू-1-हितधारक गवाह- मृतक द्वारा अपने पक्ष में वसीयत और उपहार विलेख निष्पादित किया गया- उसकी गवाही में विरोधाभास- गवाही पुख्ता प्रकृति का नहीं है - मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य में असंतुलन - उसका बयान अप्राकृतिक पाया गया - सिरविहीन शव की पहचान स्थापित नहीं हुई - अभियोजन पक्ष के

बयान में कई कड़ियाँ लुप्त हैं - पीडब्लू-1 पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह नहीं है - अनाज से भूसा अलग करना आवश्यक है, उपलब्ध साक्ष्य से आगे की पुष्टि आवश्यक है - विचरण ने मेडिकल साक्ष्य की तुलना में पीडब्लू-1 की गवाही में निहित विरोधाभासों को नजरअंदाज कर दिया - अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अभियुक्त के अपराध को स्थापित करने में विफल रहा है, अपीलकर्ता बरी - अपील स्वीकार की गई।

आयोजित:

वर्तमान अपीलों में निर्धारण के लिए उठने वाले मुद्दों को समझने के लिए हमने पृष्ठभूमि तथ्यों पर गौर किया है। यह घटना का आपराधिक हिस्सा है जिस पर हमें निर्णय लेने की आवश्यकता है। हमें यह निर्धारित करना है कि क्या घटना, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया है, अभियोजन पक्ष द्वारा सुझाए गए तरीके से हुई है और; दूसरा, क्या अभियोजन पक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को संदेह से परे सिद्ध करने में सफल रहा है। अचल संपत्ति पर पक्षों के अधिकारों से संबंधित विवाद या वसीयत और उपहार विलेख की वैधता और वैधता से संबंधित विवादास्पद विवाद हमारे समक्ष सूची का हिस्सा नहीं हैं, और इसलिए हम पक्षों द्वारा उठाए गए ऐसे विवादों के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी करने से स्वयं को रोकते हैं। हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि पक्षों के संबंधित रुख को देखते हुए हमारे द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी पृष्ठभूमि तथ्यों की उचित समझ के सीमित

उद्देश्य के लिए है और किसी भी पक्ष के दावे के गुण-दोष पर हमारी राय की अभिव्यक्ति नहीं है। (पैरा 59)

इस वाद में अभियोजन पक्ष का मुख्य गवाह वादी अखिलेश कुमार पांडे है, जिसे पीडब्लू-1 के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस गवाह ने घटना को देखने का दावा किया है, जिसमें आरोपी व्यक्तियों ने घात लगाकर मृतक को नीचे गिराया और उसका सिर और अंगूठे काट दिए। पीडब्लू-1 के अनुसार मृतक ने अपने भाई और स्वयं के पक्ष में एक पंजीकृत वसीयत और उपहार विलेख निष्पादित किया था। पीडब्लू-1 द्वारा दिनांक 24.4.1995 के एक बाद के उपहार विलेख पर भी भरोसा किया गया था। पीडब्लू-1 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक दुबारी पांडे वह अपने परिवार के साथ रह रहा था और उसे कोई संतान नहीं थी। (पैरा 66)

पीडब्लू-1 न केवल संबंधित गवाह है बल्कि इस वाद में अत्यधिक रुचि रखने वाला गवाह भी है। हमने पहले ही पृष्ठभूमि के तथ्यों पर ध्यान दिया है जिसके अनुसार मृतक ने आरोपी व्यक्तियों से मिलकर बनी दूसरी शाखा को नुकसान पहुँचाते हुए वाद अखिलेश कुमार पांडे और उसके भाई के पक्ष में वसीयत और उपहार विलेख निष्पादित किया था। इस प्रकार, उपरोक्त कारण से आरोपी और सूचनाकर्ता के बीच संबंध अत्यधिक शत्रुतापूर्ण थे। (पैरा 68)

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के प्रकाश में, पी.डब्लू.-1 की गवाही की विश्वसनीयता

और विश्वसनीयता निर्धारित करने के लिए सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। (पैरा 70)

हम यह भी पाते हैं कि पीडब्लू-1 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक दुबारी पांडे कभी विवाहित नहीं थे। पीडब्लू-1 की गवाही में यह तथ्य उसके अपने दस्तावेज़ अर्थात् दिनांक 30.3.1995 और 24.4.1995 की वसीयत और उपहार विलेख से विरोधाभासी है, जिसमें दर्ज है कि मृतक की पत्नी की पहले ही मृत्यु हो चुकी है। यह स्वीकार करना कठिन है कि मृतक का पोता होने और उसकी पूरी संपत्ति का वारिस होने के नाते, पीडब्लू-1 मृतक की वैवाहिक स्थिति से अनभिज्ञ होगा। इसलिए उसका बयान अप्राकृतिक है। (पैरा 74)

अभियोजन पक्ष के वाद में हमें कुछ अन्य कड़ियाँ भी गायब मिलती हैं। थाना दुल्लहपुर को सिर बरामद होने की सूचना रात्रि 9.45 बजे प्राप्त हुई थी। थाना दुल्लहपुर में तैनात पीडब्लू-8 राजेन्द्र प्रसाद सिंह के कथन से पता चलता है कि इस गवाह को कांस्टेबल राज कुमार के साथ उपनिरीक्षक उमा नाथ शुक्ला द्वारा विवेचना के लिए भेजा गया था। उनका दावा है कि अंधेरा होने के कारण रात में जांच नहीं हो सकी तथा अगली सुबह जांच की गई। उन्होंने कहा है कि थाने पर ऐसी सूचना मिलने के बाद वे रात्रि में लगभग 11 बजे तालाब पर पहुंचे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि पुलिसकर्मियों ने सिर रात में नहीं देखा था तथा सुबह लगभग 7.00 बजे देखा था। इस गवाह ने यह भी कहा है कि पड़ोसी

जनपद मऊ से वायरलेस सेट पर किसी मृतक के सिर गायब होने की कोई सूचना नहीं मिली थी। यद्यपि इस गवाह ने अभियोजन पक्ष के वाद का समर्थन किया है, जिसके अनुसार, पंचायतनामा सुबह लगभग 7.00-8.00 बजे की गई थी, लेकिन बाद में उन्होंने कहा कि पंचायतनामा सुबह 8.00-9.00 बजे समाप्त हो गई थी। (पैरा 91)

उपरोक्त के अतिरिक्त अभियोजन पक्ष की कहानी में कुछ अन्य झंझट भी हैं। सिर कटे शव के पोस्टमार्टम से पता चलता है कि मृत्यु-पूर्व पहली चोट एक साफ घाव थी। 14x13 सेमी x हड्डी में गहरा घाव (ए.पी. व्यास), सुप्रा स्टर्नल नॉच से 3 सेमी ऊपर और ग्रीवा सात कशेरुका के नीचे की हड्डी के आधार से 1 सेमी ऊपर। सिर का कटा हुआ भाग ग्रीवा छह कशेरुका के स्तर पर है जबकि सिर की पोस्टमार्टम रिपोर्ट सी2 के स्तर पर साफ कट दिखाती है। शरीर और सिर में कट की स्थिति पूरी तरह से मेल नहीं खाती क्योंकि वे अलग-अलग स्तरों पर हैं। इससे अभियोजन पक्ष में ही संदेह पैदा होता है कि बरामद सिर मृतक दुबारी पांडे के शरीर का हिस्सा था। (पैरा 94)

पीडब्लू-1 की गवाही पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह की श्रेणी में नहीं आती है क्योंकि पीडब्लू-1 एक बहुत ही इच्छुक गवाह है। इस परिस्थिति में न्यायालय को सावधान रहना चाहिए और अनाज से भ्रूसा अलग करना चाहिए तथा विश्वसनीय साक्ष्य, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य से आगे की पुष्टि प्राप्त करनी चाहिए। (पैरा 98)

यद्यपि विचारणीय न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है, लेकिन हम विचारणीय न्यायालय के निर्णय से पाते हैं कि पीडब्लू-1 की गवाही और मेडिकल साक्ष्य में अंतर्निहित विरोधाभासों को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया गया है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के आधार पर शव की पहचान के संबंध में अन्य परिस्थिति की भी सावधानीपूर्वक जांच नहीं की गई है। विचारणीय न्यायालय ने इस बात पर विचार करना पूरी तरह से छोड़ दिया है कि समेकन अदालत का एक आदेश उपलब्ध था जिसके अनुसार मृतक की संपत्ति वादी और उसके भाई के साथ-साथ आरोपी व्यक्तियों की अन्य शाखा को समान अनुपात में हस्तांतरित होनी थी। हम यह भी पाते हैं कि पीडब्लू-1 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक दुबारी पांडे कभी विवाहित नहीं थे। पीडब्लू-1 की गवाही में यह तथ्य उसके अपने दस्तावेज़ अर्थात् वसीयत और उपहार विलेख दिनांक 30.3.1995 और 24.4.1995 से विरोधाभासी है, जिसमें दर्ज है कि मृतक की पत्नी की पहले ही मृत्यु हो चुकी है। यह विश्वास करना कठिन है कि एक पोता होने के नाते और पूरी संपत्ति का उत्तराधिकारी होना मृतक की वैवाहिक स्थिति के बारे में पीडब्लू-1 को जानकारी नहीं होगी। इस पहलू को भी विचारणीय न्यायालय ने स्पष्ट रूप से नजरअंदाज किया है। (पैरा 100)

अपील स्वीकृत हुई। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. मोहम्मद जब्बार अली व अन्य बनाम असम राज्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1440
2. नंद लाल व अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 262
3. वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य, 1957 एससीआर 981

(माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्र,
द्वारा प्रदत्त)

1. दो अपीलकर्ताओं, राकेश पांडे और यशवंत चौबे ने, उन्हें दिए गए मृत्युदंड से व्यथित होकर, केस अपराध संख्या-83 वर्ष 1996, धारा 147, 148, 201 और 302/34/149 भ०द०वि० के तहत, थाना-सराय लखंसी, जिला: मऊ से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या-75 वर्ष 1996 (राज्य बनाम इंद्रासन पांडे और अन्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या-1, मऊ द्वारा पारित दिनांक 10.2.2020/11.02.2020 के फैसले और सजा के आदेश को चुनौती देते हुए प्रस्तुत अपील दायर की है, जिसके तहत उन्हें भ०द०वि० की धारा 147 के तहत दोषी ठहराया गया है और 2 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और 2000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर दो महीने का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा; भ०द०वि० की धारा 148 के तहत 2 वर्ष के कठोर कारावास और 3000 रुपये के जुर्माने की सजा और जुर्माना अदा न करने पर तीन माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतने का प्रावधान है। भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अन्तर्गत 5 वर्ष के कठोर कारावास एवं

5000/- रुपये के जुर्माने की सजा तथा जुर्माने की अदायगी में चूक पर पांच माह का अतिरिक्त कठोर कारावास तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34/149 के अन्तर्गत मृत्युदंड तथा 1,00,000/- रुपये का जुर्माना तथा जुर्माना अदा न करने पर उसे भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूला जाएगा। सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. दो अपीलकर्ताओं के अलावा, तीन अन्य व्यक्तियों को भी उपरोक्त केस अपराध संख्या-83 वर्ष 1996 में फंसाया गया था। इन तीन आरोपियों में से दो इंद्रासन और घनश्याम की मुकदमे के दौरान मौत हो चुकी है। तीसरे आरोपी मिथिलेश को दिनांक 7.12.2019 के आदेश द्वारा किशोर घोषित किया गया था और उसके मुकदमे को अलग करके किशोर न्याय बोर्ड में स्थानांतरित कर दिया गया था।

3. चूंकि दो आरोपी अपीलकर्ताओं को मौत की सजा दी गई थी, इसलिए मृत्युदंड की पुष्टि के लिए सत्र न्यायालय द्वारा धारा 366 द०प्र०स० के तहत इस न्यायालय को संदर्भ संख्या-4 वर्ष 2020 का संदर्भ भी दिया गया है।

घटना

4. 12 मार्च, 1996 को दोपहर लगभग 12.00 बजे किसी जियुतबंधन सिंह के खेत के पास मृतक दुबारी पांडे पुत्र धनराज पांडे को आरोपी राकेश पांडे द्वारा कथित तौर पर एक दाव (लकड़ी काटने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला भारी तेज धार वाला हथियार) द्वारा गर्दन से सर काटकर मार डाला गया था।

आरोपी ने मृतक के दोनों अंगूठे भी काट दिए। अन्य आरोपियों इंद्रासन पांडे, यशवंत चौबे, मिथिलेश और घनश्याम पांडे ने दुबरी पांडे को जमीन पर गिरा दिया था और मारपीट के दौरान उसे पकड़ लिया था। मृतक के सर और अंगूठे काटने की विशिष्ट भूमिका आरोपी राकेश पांडे को सौंपी गई है। आरोपी राकेश पांडेय मृतक का सर और उसके दोनों अंगूठे लेकर चला गया।

5. घटना के संबंध में एक लिखित रिपोर्ट सूचनाकर्ता अखिलेश कुमार पांडे द्वारा दी गई थी, जो प्रदर्श क-1 है। उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर थाना-सराय लखंसी, जिला मऊ में मामला अपराध संख्या-83 वर्ष 1996 के तहत धारा 147, 148, 201 और 302/34/149 भ०द०वि० के तहत दोपहर 3.10 बजे अर्थात् घटना की तारीख यानी 12.3.1996 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई।

तहकीकात

6. उपरोक्त रिपोर्ट के अनुसरण में मामले में जांच आगे बढ़ी और शव (बिना सर के) का पंचायतनामा 12.3.1996 को शाम 17.40 बजे की गई। जांच रिपोर्ट रिकॉर्ड पर है और इसे प्रदर्श क-2 के रूप में चिह्नित किया गया है। पंचायतनामा रिपोर्ट के अनुसार, सूचनाकर्ता अखिलेश कुमार पांडे द्वारा पुलिस को घटना के संबंध में जानकारी दी गई थी। पंचान के गवाह सीताराम, लालजी पांडेय, इस्लाम, चंद्रदेव और विशुन राम (अ०सा०-2) थे। पंचायतनामा रिपोर्ट में यह भी दर्ज किया गया है कि दुबरी पांडे का शव (बिना सर और अंगूठे के) जियुतबंधन सिंह के गेहूं के खेत में पड़ा है।

मृतक ने सफेद रंग की पुरानी 'धोती' और सफेद बनियान यानी 'बांदी' पहन रखी थी। उनके शरीर पर एक गमछा भी था। पंचान के गवाहों ने मौत के सही कारणों का पता लगाने के लिए शव परीक्षण कराने का सुझाव दिया। विस्तृत पुलिस स्कॉल तैयार किया गया और उसके बाद शव को सील कर दिया गया और शव परीक्षण कराने के लिए कांस्टेबल राजपति पटेल को सौंप दिया गया।

7. बिना सर वाले शव का शव परीक्षण 13.3.1996 को दोपहर 2.15 बजे किया गया था। शव परीक्षण सर्जन ने मृतक की उम्र लगभग 70 वर्ष बताई है और मृत्यु का अपेक्षित समय लगभग एक दिन बताया गया है। शव परीक्षण में शव की बाहरी जांच इस प्रकार है: -

"बिना सर वाला शरीर, निचले छोर में मौजूद कठोर मोर्टिस, पेट फैला हुआ फेकल पदार्थ बाहर आ रहा है, भाग में दाएं और बाएं अंगूठे गायब हैं।

गर्दन, छाती और गर्दन के पिछले हिस्से पर खून के थक्के जम गए।

8. शव परीक्षण सर्जन ने मृत्यु का कारण निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटों के कारण सदमे और रक्तस्राव के रूप में निर्धारित किया: -

"1. छिद्रित घाव 14x13 सेमी x हड्डी गहरी पूरा (एपी व्यास), उपरोक्त स्टर्नल पायदान से 3 सेमी ऊपर और ग्रीवा सात कशेरुका के आधार से 1 सेमी ऊपर हड्डी, मांसपेशियों, वाहिकाओं और नरम ऊतक और ग्रीवा छह

कशेरुका के माध्यम से काटा जाता है और गर्भाशय ग्रीवा छह के माध्यम से ट्रंक मार्जिन स्पष्ट कट के साथ जुड़ा हुआ है।

नोट: चीरे हुए घाव का व्यास 14 सेमी और अनुप्रस्थ व्यास 13 सेमी है।

2. आरटी कंधे के जोड़ के पीछे 7 x 3 सेमी x मांसपेशियों को गहरा घाव देना।

3. कंधे के जोड़ के ऊपर 3 x 2 सेमी x मांसपेशियों को गहरा घाव देना।

4. दाहिने कंधे के जोड़ के पार्श्व पक्ष पर 4 x 2 सेमी x त्वचा गहरी घाव।

9. उपरोक्त के अलावा, शव परीक्षण सर्जन ने मृतक पर निम्नलिखित शव परीक्षण चोटों का पता लगाया है: -

"(1) घाव 2 सेमी x 11/2 सेमी x थू और दाहिने अंगूठे के समीपस्थ फालिंक्स पर हड्डी के अंतर्निहित भागों को गायब कर दिया।

(2) दाहिनी तर्जनी के मध्य फालिंक्स पर तिरछा रखा हुआ घाव 4 सेमी x 3 सेमी x हड्डी गहरा।

(3) चीरा हुआ घाव 2 सेमी x 11/2 सेमी x हड्डी गहरी थू और बाएं अंगूठे के मध्य फालिंक्स पर थू।

10. शव परीक्षण सर्जन ने मृतक के मलाशय को भरा हुआ पाया और मल पदार्थ बाहर आ रहा था।

11. रिकॉर्ड से पता चलता है कि 13.3.1996 को एक अलग रिपोर्ट थाना-दुल्लाहपुर, जिला-गाजीपुर (मऊ का एक निकटवर्ती जिला, जहां घटना हुई थी) के थानाध्यक्ष के पास एक अलग रिपोर्ट दर्ज की गई थी, जिसमें कहा गया था कि एक तालाब के पास गांव के पूर्व में एक ट्यूब-वेल स्थित है। वर्ष 13-3-1996 की सायंकाल में एक प्लास्टिक पॉलीथिन जिसमें एक नर का सर था, जब वह तालाब से बाहर आई तो उसके खुर (दरार) में फंसी हुई पाई गई। यह पॉलीथिन मऊ जिले के सहादतपुरा में यूनियन बैंक ऑफ इंडिया के नीचे स्थित स्कूल यूनिफॉर्म और लेडीज बैग आदि बेचने वाली दुकान की थी। बरामद मानव सर की दोनों आंखें गायब थीं और मृतक के गाल और चेहरे पर कट के निशान थे।

12. धनपति यादव द्वारा दी गई ऐसी सूचना के आधार पर थाना-दुल्लाहपुर से पुलिस कर्मी देर शाम गांव सुल्तानपुर पहुंचे और जांच शुरू की। बरामद सर की जांच अगली सुबह थाना-दुल्लाहपुर, जिला-गाजीपुर के उप निरीक्षक उमानाथ शुक्ला द्वारा पेपर सं 1/2009-2009 के तहत की गई थी। का.-15, जिसके अनुसार सर की बरामदगी के संबंध में सूचना संबंधित थाना में 13.3.1996 को 21.45 बजे प्राप्त हुई है और इसे जनरल डायरी में प्रविष्टि संख्या-37 के रूप में दर्ज किया गया है। जांच 14.03.1996 को सुबह 6.00 बजे शुरू हुई और 7.15 बजे समाप्त हुई। बरामद मानव सर की पहचान नहीं हो पाई है और उसका पता नहीं चल पाया है। गवाह धनपति यादव, रामलाल, गीता यादव, जगरूप यादव और अंबिका यादव थे। पंचान के गवाहों को चेहरे पर कई चोटें

मिलीं और दोनों आंखें गायब मिलीं। बरामद सर को सीलबंद कर शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया है। गौर करने वाली बात यह है कि जांच पूरी होने तक मृतक की पहचान नहीं हो पाई थी। 14-3-1996 को सायं 400 बजे तालाब से बरामद मानव सर के संबंध में शव परीक्षण किया गया है, जो प्रदर्श का-14 है। हालांकि डॉ. भूपेंद्र नाथ श्रीवास्तव द्वारा कराए गए शव परीक्षण में मृतक दुबरी पांडेय के रूप में शव की पहचान की गई है। शव शल्य चिकित्सक की राय में मृतक की आयु लगभग 60 वर्ष थी और मृत्यु का कारण निम्नलिखित शव-पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव बताया गया है -

"C-2 मार्जिन के स्तर पर एक चीरा हुआ घाव का आकार 10 सेमी x 10 सेमी स्पष्ट कट है।

दाहिनी भों से 15 सेमी ऊपर खोपड़ी के दाईं ओर 4.0 सेमी x 1.0 सेमी x हड्डी का आकार होगा। दाहिनी ललाट की हड्डी तेजी से कट जाती है।

13. विवेचनाधिकारी ने अपराध के संबंध में साक्ष्य एकत्र करने के लिए कार्यवाही की। गवाहों के बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए। दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय XII के अनुसार वैधानिक जांच पूरी होने पर, विवेचनाधिकारी ने 15.6.1996 को पेपर संख्या-4K/1 (प्रदर्श क-12) के तहत पांच अभियुक्तों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया। संबंधित मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायालय में भेज दिया, जहां इसे सत्र परीक्षण संख्या-75 वर्ष 1996(राज्य

बनाम इंद्रासन पांडे और अन्य) के रूप में पंजीकृत किया गया।

विवेचना

14. अभियुक्तों के खिलाफ अलग से आरोप तय करने के आदेश पारित किए गए। दिनांक 20.5.1999 के आदेश के तहत, आरोपी राकेश पांडे पर धारा 148 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया था; जबकि उसी तारीख के एक अलग आदेश द्वारा आरोपी राकेश पांडेय, मिथिलेश, घनश्याम पांडे और यशवंत चौबे पर भ०द०वि० की धारा 302 आर/डब्ल्यू 149 के साथ-साथ धारा 201 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया था। उसी तारीख के एक अन्य आदेश से, आरोपी मिथिलेश उर्फ टीपू, घनश्याम पांडे, यशवंत चौबे पर धारा 147 भ०द०वि० के तहत अपराध का आरोप लगाया गया। आरोपियों को आरोप पढ़कर सुनाए गए, जिन्होंने इससे इनकार किया और मुकदमे की मांग की। परिणामस्वरूप परीक्षण प्रक्रिया शुरू हुई।

अभियोजन साक्ष्य

15. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए: -

- "1. प्राथमिकी दिनांक 12.03.1996 के रूप में प्रदर्श क-22
2. लिखित रिपोर्ट दिनांक 12.03.1996 प्रदर्श क-1 के रूप में
3. आवेदन दिनांक 18.03.1996 पूर्व के रूप में। 3

4. शव परीक्षण रिपोर्ट दिनांक 13.03.1996 प्रदर्श क-13

5. शव परीक्षण रिपोर्ट (शीर्ष) दिनांक 14.03.1996 प्रदर्श क-14 के रूप में

6. सीताराम द्वारा शपथ पत्र दिनांक 09.04.1999"

16. उपरोक्त दस्तावेजी साक्ष्य के अलावा, अभियोजन पक्ष ने अखिलेश कुमार पांडे (अ०सा०-1); विष्णु राम (अ०सा०-2); धनपति यादव (अ०सा०-3); कुसुम पांडे (अ०सा०-4); वंश बहादुर यादव (अ०सा०-5); अनिल कुमार आर्य (अ०सा०-6); भूपेंद्र नाथ श्रीवास्तव (अ०सा०-7); राजेंद्र प्रसाद सिंह (अ०सा०-8); और जामवंत जायसवाल (अ०सा०-9)।

17. हालांकि विवेचनाधिकारी द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र में 28 अभियोजन पक्ष के गवाहों को नामित किया गया था, लेकिन मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष ने केवल 9 गवाहों को शामिल किया, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है।

18. यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि प्राथमिकी के अनुसार इस घटना को कथित तौर पर सूचनाकर्ता के अलावा सीताराम और चंद्रदेव नामक गांव के निवासियों द्वारा देखा गया है। तथापि, सीताराम ने विचारण के दौरान दिनांक 9-4-1999 को एक शपथ-पत्र दायर किया है जिसमें कहा गया है कि उन्होंने घटना नहीं देखी है और वह किसी अत्यावश्यक व्यक्तिगत कार्य के कारण गांव से बाहर गए थे। दूसरे चश्मदीद गवाह चंद्रदेव को शासकीय अधिवक्ता के माध्यम से सूचनाकर्ता अखिलेश

कुमार पांडे द्वारा दायर एक आवेदन के माध्यम से बरी कर दिया गया था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि जिन गवाहों ने घटना देखी है, उनमें से केवल अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के दौरान पहले सूचनाकर्ता को पेश किया गया है।

19. अ०सा०-1 (अखिलेश कुमार पांडेय) ने अपनी गवाही में अपने पिता का नाम राम सिंहासन पांडेय बताया है, जो अमरदेव उर्फ खेदन पांडे का पुत्र था। अमरदेव के पिता धनराज पांडेय थे। धनराज पांडेय के दो बेटे अमरदेव उर्फ खेदन पांडेय और दुबरी पांडेय हैं। अ०सा०-1 के बयान के अनुसार, मृतक दुबरी पांडे अविवाहित था और परिणामस्वरूप निःसंतान था। मृतक दुबरी पांडे के बड़े भाई अमरदेव के दो बेटे राम सिंहासन पांडे और इंद्रासन पांडे थे। राम सिंहासन के दो बेटे कमलेश पांडे और अखिलेश कुमार पांडे (प्रथम सूचनाकर्ता) हैं। आरोपी इंद्रासन पांडेय के चार बेटे राकेश पांडेय (आरोपी), मिथिलेश पांडेय उर्फ टीपू (आरोपी), अमित उर्फ भोज और कवि उर्फ मांधाता हैं। इंद्रासन की दो बेटियां कनकलता उर्फ उर्मिला और रुचि हैं। इंद्रासन पांडेय के अलावा इस मामले में यशवंत चौबे के अलावा उनके दो बेटे राकेश पांडे और मिथिलेश पांडे आरोपी हैं। मुकदमे के दौरान इंद्रासन पांडेय और घनश्याम पांडेय की मौत हो गई है। आरोपी मिथिलेश पांडे पुत्र इंद्रासन पांडेय को किशोर घोषित किया गया है और इसलिए उसके मुकदमे को अलग कर सक्षम मंच यानी किशोर न्याय बोर्ड को भेजा गया था।

20. अ०सा०-1 ने आगे कहा है कि उनके दादा का छोटा भाई अर्थात् दुबरी पांडे अपने परिवार

के साथ रह रहा था और उसकी कोई संतान नहीं थी। वह गवाह द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से संतुष्ट था और परिणामस्वरूप दुबरी पांडे ने अपनी चल और अचल संपत्ति अ०सा०-1 अखिलेश कुमार पांडे और उनके भाई कमलेश पांडे को एक पंजीकृत वसीयत और उपहार विलेख दिनांक 30.3.1995 के माध्यम से वसीयत कर दी थी। इंद्रासन पांडे और उनके उत्तराधिकारियों को मृतक दुबरी पांडे की संपत्ति में कोई हिस्सा नहीं दिया गया था। इस तरह आरोपी इंद्रासन पांडेय और उसके परिजन नाराज हो गए। यहां तक कि दुबरी पांडे के जीवनकाल में भी आरोपी इंद्रासन पांडे ने अपनी बेटी कनकलता को दुबरी पांडे की बेटी उर्मिला के रूप में गलत तरीके से पेश किया था और उसके पक्ष में एक फर्जी अपंजीकृत वसीयत तैयार की थी, जिसमें उसे परिवार रजिस्टर में दुबरी पांडे की बेटी दिखाया गया था। हालांकि, इस प्रविष्टि के बारे में परिवार रजिस्टर में कोई तारीख का उल्लेख नहीं किया गया था। इस मामले में दीवानी मुकदमा पहले ही शुरू हो चुका था। ऐसे कारणों से आरोपी दुबरी पांडे को खत्म करना चाहते थे। दिनांक 12-3-1996 को दोपहर लगभग 1200 बजे अ०सा०-1 गेहूं की फसल का निरीक्षण करने के बाद मृतक दुबरी पांडे के साथ लौट रहा था। दुबरी पांडे अ०सा०-1 से थोड़ा आगे थे। जब वे जियुतबंदन सिंह के खेत में पहुंचे तो आरोपी इंद्रासन पांडे, राकेश पांडेय, मिथिलेश, घनश्याम पांडे और यशवंत चौबे ने घात लगाकर मृतक को जमीन पर गिरा दिया। इंद्रासन, मिथिलेश, घनश्याम और यशवंत ने मृतक को पकड़ रखा था, जबकि आरोपी राकेश पांडे ने दाव (लकड़ी काटने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक

भारी धारदार हथियार) से उसका सर काट दिया और उसके दोनों अंगूठे भी काट दिए। इसके बाद आरोपी राकेश पांडे ने धमकी दी कि कोई भी खड़ा नहीं होगा और चक रोड पर दक्षिण की ओर बढ़ गया। आरोपियों ने अ०सा०-1 के साथ भी गाली-गलौज की और उसका पीछा किया। अ०सा०-1 द्वारा शोर मचाने पर सीताराम सिंह और चंद्रदेव अन्य ग्रामीणों के साथ मौके पर आए और गांव में दहशत का माहौल व्याप्त हो गया ताकि कोई भी घटना के बारे में गवाही न दे सके।

21. अ०सा०-1 का आरोपी द्वारा जिरह की गई जिसमें उसने मृतक दुबरी पांडे की बहन के बारे में अनभिज्ञता का बहाना किया। उन्होंने कहा कि श्रीमती अंजोरा अमरदेव की पत्नी थीं और वह दुबरी पांडे की पत्नी का नाम नहीं जानते हैं। उसने उसे नहीं देखा था और उसे पता नहीं था कि दुबरी पांडे की पत्नी की मृत्यु कब हुई थी। वह दुबरी पांडे की पत्नी के बारे में कुछ नहीं जानने का दावा करता है। अ०सा०-1 ने आगे कहा है कि मृतक दुबरी पांडे ने 30-03-1995 को उसके पक्ष में एक वसीयत और उपहार निष्पादित किया था। हालांकि, मूल उपहार और वसीयत उपलब्ध नहीं थी क्योंकि यह कथित तौर पर तहसील में म्यूटेशन कार्यवाही में दायर की गई थी, जहां से कार्यवाही अतिरिक्त मजिस्ट्रेट के पास आई थी। इसके बाद उन्होंने कहा कि अखिलेश बनाम गुलाबी के मामले में उच्च न्यायालय के समक्ष मूल वसीयत प्रस्तुत की गई है। इसके बाद उन्होंने कहा कि तहसील की अदालत से वसीयत ली गई थी और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। आरोपी द्वारा

अ०सा०-1 के खिलाफ धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई है जहां वसीयत प्रस्तुत की जाती है। उक्त मामले में दिनांक 24.04.1995 का मूल उपहार भी दायर किया गया है। हालांकि, गवाह को केस संख्या-याद नहीं था। उन्होंने दावा किया कि वह मूल वसीयत और उपहार विलेख पेश करने के निचली अदालत के निर्देश से अनभिज्ञ हैं। उनका दावा है कि मूल वसीयत और उपहार विलेख रिकॉर्ड पर है। गवाह ने आगे कहा है कि 24.04.1995 को उसके पक्ष में और उसके भाई के पक्ष में भी एक पंजीकृत उपहार विलेख निष्पादित किया गया था लेकिन इसकी फोटोकॉपी पेश नहीं की गई है। अ०सा०-1 के अनुसार उच्च न्यायालय में अधिवक्ता को मूल विलेख दिया गया है। गवाह ने दावा किया कि 30.03.1995 की वसीयत और साथ ही 30.3.1995 और 24.04.1995 के दो उपहार विलेख दोनों पंजीकृत दस्तावेज हैं।

अ०सा०-1 ने आगे बताया है कि मृतक दुबरी पांडे वर्ष 11-03-1996 की रात में उसके साथ था। दिनांक 12-3-1996 को वे प्रातः लगभग 0930-1000 बजे कृषि क्षेत्र के लिए निकले। तब तक, उन्होंने खुद को आराम दिया था (प्रकृति की पुकार में भाग लिया) लेकिन स्नान नहीं किया था या कुछ भी नहीं खाया था। मृतक के साथ वह जिस खेत को देखने गया था, वह करीब 300 मीटर की दूरी पर था। कृषि भूखंड का विभाजन पहले ही किया जा चुका था जिसमें दुबरी पांडे का हिस्सा आधा था जबकि 1/4 - 1/4 हिस्सा राम सिंहासन और इंद्रासन का था। मृतक और अ०सा०-1 द्वारा कृषि क्षेत्र में खेती संयुक्त रूप

से की गई थी। जिस समय वह गेहूं की फसल का निरीक्षण करने गए थे, उस समय लगभग कटाई का समय हो चुका था। उनके घर और खेत के बीच अन्य ग्रामीणों के खेत थे। अन्य पट्टेदार धारकों के नाम जिनके कृषि क्षेत्र बीच में स्थित हैं, निर्दिष्ट किए गए हैं। उन्होंने समझाया है कि जियुतबंधन सिंह के खेत के पूर्व की ओर एक कुबेर और खिचड़ी का खेत है और पास में ही मार्कण्डेय पांडे के खेत हैं। घटना के समय ये लोग अपने खेतों में नहीं थे। खिचड़ी, कुबेर, झूलां, विनोद पांडे, जमुना घटना के काफी बाद पहुंचे थे। गांव आबादी पूर्वी तरफ लगभग 300 मीटर की दूरी पर है। खेतों के रास्ते में अ०सा०-1 का दावा है कि उसकी मुलाकात ईट-भट्ठे में काम करने वाले गंगा यादव और अन्य लोगों से हुई थी। ईट-भट्ठा राकेश पाल का है और घटनास्थल से 110-115 गज की दूरी पर है। उन्होंने कहा है कि अपने खेत के रास्ते में उन्होंने लगभग 20-25 लोगों के खेतों को पार किया था। गवाह ने बताया है कि वह पौने 11 बजे अपने खेत में पहुंचा और लगभग आधे घंटे तक वहां रहा। उन्होंने शंकर यादव से भी बात की, जिनका खेत पश्चिम की ओर लगभग 100 गज की दूरी पर था। जब तक वे अपने कृषि क्षेत्र में रहे, आस-पास का कोई भी किरायेदार उपलब्ध नहीं था। उन्होंने कहा है कि अपने खेत से लौटते समय आरोपियों ने जियुतबंधन सिंह के खेतों में मृतक पर घात लगाकर हमला किया। आरोपी ने खुद को जिस स्थान पर छिपाया था, वह चक रोड से दिखाई नहीं दे रहा था और इस प्रकार वह इसे निर्दिष्ट नहीं कर सकता है। आरोपी ने मृतक पर पीछे से घात लगाकर हमला किया और उसे नीचे खींच

लिया। जब आरोपी उनके पास आए तभी गवाह उन्हें देख सका। उसने 5-7 कदम की दूरी से आरोपी को आते देखा। राकेश पांडे के हाथ में 'दाव' था जबकि अन्य आरोपियों के हाथ में लाठी थी। चक रोड पर उनसे कुछ दूरी पर अ०सा०-1 रुका। आरोपियों ने गालियां देते हुए कहा कि वह वहां से चले जाए वरना उसे भी मौत के घाट उतार दिया जाएगा। आरोपी द्वारा गवाह का पीछा नहीं किया गया। मृतक खुद को बचा नहीं सका। मृतक पीठ के बल गिर गया। अ०सा०-1 का दावा है कि जब घटना हुई तो वह घटनास्थल से 70-80 पेस की दूरी पर था।

अ०सा०-1 की जिरह जारी रही और 22.07.2003 को उन्होंने कहा कि मृतक यशवंत, मिथिलेश और घनश्याम द्वारा अवधारित किया गया था। राकेश और इंद्रासन ने पीछा किया। अ०सा०-1 का दावा है कि जब इंद्रासन ने उसे गाली देना शुरू किया तो वह वहां से चला गया। इंद्रासन पांडे ने कुछ कदमों तक उनका पीछा किया, जिसके बाद इंद्रासन वापस लौट आए। हालांकि, अ०सा०-1 ने 70-80 पेस चलाए और उसके बाद रुक गए। उसने वहां से शोर मचाया। अ०सा०-1 द्वारा शोर मचाने पर ईट-भट्ठे में लगे मजदूर घटनास्थल की ओर दौड़ पड़े। इसके बाद कई अन्य ग्रामीण भी आ गए। ईट-भट्ठे से ऐसे व्यक्तियों के आने पर आरोपी मृतक के सर और अंगूठे के साथ चले गए। करीब 20-25 लोग ईट-भट्ठे से आए थे। ईट-भट्ठा से आए 20-25 लोगों ने आरोपियों का पीछा नहीं किया और न ही उनका पीछा किया। अ०सा०-1 ने दावा किया है कि मृतक को नीचे खींचने और सर कलम करने के बीच लगभग 10 से 15

मिनट का समय लगा था। उन्हें उन 20-25 व्यक्तियों के नाम तो याद नहीं थे लेकिन सीताराम सिंह, चंद्र देव राम, श्रीराम सिंह, गंगा यादव, लाल मोहम्मद, लालजी पांडेय, शंकर यादव आदि के नाम याद हैं।

दिनांक 23.07.2003 को अपनी आगे की जिरह में अंसा०-1 ने कहा है कि जिस स्थान पर अभियुक्तों ने खुद को छिपाया था वह चक रोड से वर्ष 20-30 की दूरी पर था। उसने आरोपी को एक दिन पहले ही गांव में देखा था। उन्होंने आगे कहा कि विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल को देखा था जब वह पहली बार पहुंचे थे। उसने वह जगह भी देखी थी जहां आरोपी छिपे हुए थे। विवेचनाधिकारी द्वारा घटनास्थल का निरीक्षण किया गया और उसका बयान दर्ज किया गया। उन्होंने यह भी कहा कि मृतक द्वारा उसके और उसके भाई के पक्ष में दो उपहार विलेखों के साथ एक एकान्त वसीयत निष्पादित की गई थी। मृतक द्वारा किए गए कारनामों के गवाह जितेंद्र पांडे और गिरीश चंद्र थे। जितेंद्र पांडे उनकी बहन के ससुर हैं जबकि गिरीश चंद्र उनके मामा हैं। उन्होंने कहा कि मृतक की उम्र लगभग 70-80 वर्ष थी जब उन्होंने वसीयत को निष्पादित किया था।

अंसा०-1 (पेपर संख्या-108) को एक फोटोग्राफ दिखाया गया, जिसके बारे में उन्होंने कहा कि तस्वीर में दिखाए गए शव के पास खड़ा व्यक्ति इंद्रासन पांडे है। तस्वीर में अंसा०-1 इंद्रासन के पीछे खड़ा था। फोटोग्राफ में घनश्याम पांडेय, जय प्रकाश सिंह @ जया सिंह और आरोपी राकेश पांडे नाम के अन्य व्यक्ति शामिल थे। राकेश पांडे के बगल में राधेश्याम चौबे हैं जो आरोपी यशवंत चौबे के

पिता हैं। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि तस्वीर (पेपर संख्या-108) दुबरी पांडे के दाह संस्कार की थी और कहा कि वास्तव में दुबरी पांडे तब जीवित थे। उनके अनुसार यह तस्वीर अमर देव @ खेदन की पत्नी अंजोरा के अंतिम संस्कार के दौरान ली गई थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि पहली चकबंदी कार्यवाही के दौरान दुबरी पांडे, इंद्रासन पांडे और अंसा०-1 राम सिंहासन पांडे के पिता के बीच समझौता हुआ था, जिसके तहत दुबरी पांडे को अपनी कृषि भूमि हस्तांतरित करने से रोका गया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि दुबरी पांडे शादीशुदा थी या उनकी पत्नी का नाम शारदा था। उन्होंने शारदा देवी से मृतक दुबरी पांडे से बेटी के पैदा होने की बात से भी इनकार किया है। उन्होंने यह भी कहा कि सिविल जज (जूनियर डिवीजन) की अदालत में दायर मूल मुकदमा संख्या-456/95 (इंद्रासन बनाम दुबरी पांडे) को डिफॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि उसने इंद्रासन पांडे होने का दावा करने वाले एक धोखेबाज के माध्यम से मुकदमा दायर किया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि किसी धोखेबाज ने इस तरह के मुकदमे के वकालतनामा पर हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि गांव से आबादी की दूरी लगभग 1 किलोमीटर है या ईट-भट्ठा 400 मीटर की दूरी पर है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उनके पक्ष में निष्पादित उपहार विलेख दुबरी पांडे द्वारा नहीं बल्कि किसी धोखेबाज द्वारा किया गया था। उन्होंने स्वीकार किया है कि विवेचनाधिकारी को दिए गए अपने बयान

में उन्होंने कहा था कि घटना के समय आस-पास के खेतों में काम करने वाले विभिन्न व्यक्ति घटनास्थल पर आए और इसे देखा। धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में उन्होंने यह भी खुलासा नहीं किया था कि अन्य आरोपी अपने हाथों में लाठी लिए हुए थे।

22. अभियोजन पक्ष ने तब अ०सा०-2, विशुन राम को पेश किया, जो दुबरी पांडे के कथित सर कटे शव की जांच का गवाह है। उन्होंने सर कटे शव की पहचान दुबरी पांडे के रूप में की है। शव को उसकी उपस्थिति में सील कर दिया गया था और गवाह ने पूछताछ पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की है। अपनी जिरह में इस गवाह ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसने अ०सा०-1 के कहने पर बिना सर वाले शव की पहचान दुबरी पांडे के रूप में नहीं की थी। उन्होंने मृतक की पीठ पर लगे फोड़े से मृतक दुबरी पांडे के शव की शिनाख्त की थी। उन्होंने मृतक की पीठ पर पहले भी फोड़ा देखा था। इस संबंध में अ०सा०-2 की गवाही इसके बाद ली गई है: -

"मैंने खुद लाश को पहचाना वह दुबरी पाण्डे की थी। यह कहना गलत होगा कि अखिलेश के बताने पर मैं माना कि लाश दुबरी की थी। दुबरी पाण्डे के धड़ व पीठ के फोड़े को देखकर मैंने पहचाना कि वह दुबरी पाण्डे की लाश है। मैं लाश का फोड़ा देखा था पहले से भी मैंने फोड़ा देखा था। पंचनामा के समय मैंने दुबरी पाण्डे की पीठ पर फोड़ा देखा था मैं मौके पर करीब रात्रि तीन बजे पहुँचा था। मैं पहुँचा तो लाश पीठ के बल पड़ी थी।"

23. अ०सा०-3 धनपति यादव, जिन्होंने अपने नलकूप के पास तालाब से बरामद अज्ञात

मानव सर के संबंध में थाना-दुल्लाहपुर के प्रभारी को दी गई लिखित रिपोर्ट को साबित किया है। उन्होंने कहा है कि उनकी सूचना पर सब इंस्पेक्टर मौके पर आए और रात में दो कांस्टेबलों को तैनात किया। सुबह फिर से सब-इंस्पेक्टर आए और पूछताछ की। इसी दौरान अन्य थानों की पुलिस मृतक के परिजनों के साथ मौके पर पहुंची और बरामद मानव सर की पहचान की। मानव सर की कोई आंख नहीं थी और गाल और चेहरे पर कट के निशान थे। परिजनों ने मानव सर की पहचान मृतक दुबरी पांडे के रूप में की थी। इस गवाह ने पूछताछ पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की। जिरह में अ०सा०-3 ने बताया है कि तालाब से मानव सर किस तरह सामने आया और उसने पुलिस को इसकी सूचना दी थी। उन्होंने कहा है कि वह विवेचनाधिकारी के साथ घटनास्थल पर आए थे और तब तक अंधेरा हो चुका था। वह सुबह फिर से उस स्थान पर आया जहां मानव सर बरामद किया गया था और उसकी उपस्थिति में विवेचनाधिकारी द्वारा विभिन्न कागजी औपचारिकताएं की गई थीं। उसने इस बात से इनकार किया कि वह डकैती के एक मामले में आरोपी है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने राकेश पांडे के मुवक्किल राम लाल के समझाने पर झूठी गवाही दी है।

24. अ०सा०-4 कुसुम पांडे, जो अ०सा०-1 की पत्नी हैं और उन्होंने कहा है कि वह 14.03.1996 को सुल्तानपुर गांव में बरामद मानव सर की पहचान करने के लिए सीताराम सिंह, चंद्र देव राम और सब इंस्पेक्टर के साथ सुबह-सुबह निकली थीं। जब वह पहुंची तो

विभिन्न व्यक्ति पहले से ही मौजूद थे और मानव सर को एक पॉलिथिन में रखा गया था। मानव सर को बाहर निकाला गया और उसे देखने पर उसने मृतक के रूप में पहचान की। इस तरह की पहचान के बाद ही विवेचनाधिकारी ने सर को सील कर दिया और वह वापस लौट आई। अ०सा०-4 ने अपनी जिरह में कहा है कि विवेचनाधिकारी अन्य पुलिस कर्मियों के साथ सुबह लगभग 0500 बजे उसके घर आया था और कोई भी उसके साथ शामिल नहीं हुआ था। विवेचनाधिकारी ने उसे सूचित किया कि मानव सर पाया गया है जिसे उसके द्वारा पहचाना जाना था और इसलिए वह तुरंत विवेचनाधिकारी के पास चली गई। जब वह तालाब के पास पहुंची तो दिन का समय हो चुका था। उसने बताया है कि उसके घर से तालाब तक पहुंचने में करीब डेढ़ घंटा लग गया। जब वह वहां पहुंची तो पॉलीथिन खोला गया लेकिन उसे पॉलिथिन का रंग याद नहीं है। विवेचनाधिकारी द्वारा उनकी उपस्थिति में कोई कार्यवाही नहीं की गई। पॉलीथिन पहले से वहां रखी हुई थी और पुलिस ने मानव सर निकालकर उसे दिखाया। जब मानव सर को पॉलिथिन से निकाला गया था तो उसमें कोई खून के निशान नहीं थे और चेहरा विकृत हो गया था। हालाँकि, वह इसे पहचान सकती थी। वह पुलिस कर्मियों के साथ लौट आई। उसने इस बात से इनकार किया कि उसने तालाब का दौरा नहीं किया था और उसकी उपस्थिति में पहचान की कार्यवाही कभी नहीं की गई थी।

25. अ०सा०-5 के सब इंस्पेक्टर वन बहादुर यादव, जो थाना-सराय लखांसी के थानाध्यक्ष के पद पर तैनात थे। उन्होंने अ०सा०-1 द्वारा लिखित रिपोर्ट की प्राप्ति और उसके बाद प्राथमिकी दर्ज करने का सत्यापन किया। उन्होंने जांच के दौरान उठाए गए कदमों के बारे में भी बताया है और बताया है कि मृतक के अंगूठे का पता नहीं लगाया जा सका है। खेत में खून तो मिला लेकिन काफी प्रयासों के बावजूद मृतक का सर और उसके दो अंगूठे का पता नहीं लगाया जा सका। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें 14.03.1996 को सूचनाकर्ता से सूचना मिली जब वह गांव में ही इस मामले की जांच कर रहे थे कि थाना-दुल्लाहपुर, गाजीपुर के भीतर एक तालाब से बूढ़े आदमी का एक मानव सर बरामद किया गया था। ऐसी सूचना मिलने पर वह अ०सा०-4 व अन्य के साथ रवाना हुए और पाया कि उपनिरीक्षक उमानाथ शुक्ला अपने साथी के साथ उपस्थित थे और जांच रिपोर्ट के विभिन्न कॉलम पहले ही भर चुके थे। इससे पहले कि बरामद सर को सील किया जा सके, वह पूछताछ के स्थान पर पहुंच गया था और विवेचनाधिकारी ने बरामद सर को परिवार के सदस्यों को दिखाया था, जिसे परिवार के सदस्यों ने पहचान लिया था, जो रोने लगे। इसके बाद मानव सर को सील कर शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया। उन्होंने नक्शा नज़री और अन्य पुलिस कागजात भी साबित किए हैं। उन्होंने कहा है कि आरोपी राकेश पांडे की हिरासत के लिए संबंधित सी.जे.एम. के समक्ष उनके द्वारा एक आवेदन दायर

किया गया था, जिसे अदालत ने अस्वीकार कर दिया था और इसीलिए अपराध में इस्तेमाल किए गए हथियार को बरामद नहीं किया जा सका।

26. जिरह में अ०सा०-5 ने स्वीकार किया है कि उसने 20.03.1996 को चंद्र देव राम का बयान दर्ज किया था। उन्होंने जुल्लन पांडे, विनोद पांडे और जियुतबंधन सिंह से घटना के बारे में पूछताछ की थी, लेकिन उनके बयान दर्ज नहीं किए गए थे। सूचनाकर्ता ने उसे उन व्यक्तियों के बारे में नहीं बताया था जिनकी भूमि घटनास्थल के पास स्थित है। उन्होंने यह भी कहा कि ईट-भट्ठा मालिक राकेश पाल का बयान उनके द्वारा दर्ज नहीं किया गया था। ईट-भट्ठे पर लगे मजदूरों के बयान भी दर्ज नहीं किए गए। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि शंकर का घर घटनास्थल से लगभग 200 गज की दूरी पर था, लेकिन उन्होंने शंकर का बयान दर्ज नहीं किया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि आसपास के ग्रामीणों के खेतों को जानबूझकर नकशा नज़री में नहीं दिखाया गया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि राकेश पाल और ईट भट्ठा के श्रमिकों के बयान दर्ज नहीं किए गए क्योंकि वे अभियोजन के मामले का समर्थन नहीं कर रहे थे। सूचनाकर्ता ने अन्य आरोपियों के हाथों में लाठी होने का भी खुलासा नहीं किया था। उन्होंने यह भी खुलासा नहीं किया कि इंद्रासन पांडे ने उनका पीछा किया था। उन्होंने यह भी खुलासा नहीं किया कि आरोपी ने दुबरी पांडे को पीछे से पकड़ लिया और नीचे खींच लिया। मानव सर की पहचान के संबंध में अ०सा०-5 ने निम्नानुसार कहा है:

"सिर के बरामदगी के सम्बन्ध में दुल्हपुर थाना से सूचना मिली थी। यह सूचना १४-३-९६ को मिली थी। समय याद नहीं है। केस डायरी के परचा नं०-३ में अंकित किया है। स्वयं कहा कि मुझे मुखबिर से ऐकवारे डीह में सूचना मिली थी।

मैंने मृतक के सिर की बरामदगी नहीं की थी। केवल बरामदगी स्थल का निरीक्षण किया था।

दुबहा ताल पर वादी मुकदमा की औरत कुसुम थी। तथा विपिन कुमार दुबे, चन्द्रदेव राय, सीताराम सिंह को भी लेकर पहुंचा था। मैंने उक्त व्यक्तियों का सिर बरामदगी के संबंध में बयान नहीं लिखा था। वे बरामदगी के गवाह नहीं थे। शिनाख्त के गवाह थे।

यह कहना गलत है कि सिर को पोस्टमार्टम होते समय मैं गाजीपुर पहुंचा था।"

27. उपरोक्त से यह पता चलता है कि मानव सर की बरामदगी के बारे में जानकारी अ०सा०-5 को 14.03.1996 को प्राप्त हुई थी। हालांकि, उन्हें यह याद नहीं है कि उन्हें कब इस तरह की सूचना मिली थी। उन्होंने कहा कि रायकवार डीह में सूचनाकर्ता से ऐसी सूचना मिली थी, जहां घटना हुई थी, हालांकि, सूचनाकर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। उन्होंने मानव सर बरामद नहीं किया था, लेकिन केवल इसका निरीक्षण किया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने घटनास्थल पर गवाहों के बयान दर्ज नहीं किए थे। तालाब में अ०सा०-4 के साथ विपिन कुमार दुबे, चंद्र देव राम, सीताराम सिंह आदि अ०सा०-5 ने स्वीकार किया कि उन्होंने मानव सर की बरामदगी के संबंध में उपरोक्त व्यक्तियों का

बयान दर्ज नहीं किया है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह केवल गाजीपुर स्थित शव परीक्षण हाउस में पहुंचे थे। दुल्लाहपुर में पुलिस ने मानव सर को शव परीक्षण के लिए भेज दिया। उन्होंने यह भी कहा है कि पहचान पर उन्होंने अज्ञात के स्थान पर दुबरी पांडे के नाम का उल्लेख किया था। उन्होंने शव परीक्षण में मृतक का नाम शामिल करने के लिए एक आवेदन भी दिया और इस तथ्य का उल्लेख केस डायरी के पर्चा संख्या-3 में किया गया था। उन्होंने 19.03.1996 को धनपति यादव का बयान दर्ज किया। अ०सा०-5 ने यह भी कहा है कि जब वह उस स्थान पर पहुंचे जहां मानव सर की जांच की जा रही थी और उसके बाद सर को लगभग आधे घंटे के लिए सील कर दिया गया था। उनके आने के बाद 15 मिनट तक पंचान की कार्यवाही जारी रही। उन्होंने कहा है कि सूचनाकर्ता ने यह खुलासा नहीं किया था कि मृतक का सर और अंगूठे आरोपी राकेश पांडे ने पॉलीथिन में लिए थे। सूचनाकर्ता ने यह भी नहीं बताया था कि दुबरी पांडे अविवाहित था या उसके कोई बच्चे नहीं थे। सूचनाकर्ता ने यह भी नहीं बताया था कि मृतक की हत्या भूमि विवाद के कारण की गई है। अपराध में प्रयुक्त हथियार उसके द्वारा बरामद नहीं किया जा सका। अ०सा०-5 ने इस बात से भी इनकार किया है कि जियुतबंधन सिंह के खेत में शव मिलने की जानकारी सूचनाकर्ता ने नहीं बल्कि किसी और ने दी थी। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि ऐसी जानकारी जय प्रकाश ने दी थी।

28. अ०सा०-6 डॉ. अनिल कुमार आर्य, जिन्होंने सर विहीन शव का शव परीक्षण

किया। उनके अनुसार, मृतक की आयु लगभग 70 वर्ष थी और मृत्यु की अवधि एक दिन के रूप में निर्दिष्ट की गई है। उन्होंने पाया कि मलाशय भरा हुआ था और शरीर से मल निकल रहा था। जिरह में शव परीक्षण सर्जन ने कहा है कि पेट खाली था लेकिन बड़ी और छोटी आंतों में गैस और फेकल मैटर था। मलाशय भरा था। शव के चारों ओर धोती लपेटी हुई थी। कांस्टेबल द्वारा शव सौंपे जाने के समय मृतक ने गमछा और जनेऊ के साथ बनियान भी पहन रखी थी। उन्होंने कहा है कि मृतक की मृत्यु 12-3-1996 को सुबह 5.00 बजे के बाद हो सकती थी। उसने पुलिस के कागजातों के आधार पर मृतक की उम्र लिखी थी। उन्होंने आगे कहा है कि शव-पूर्व और शव-परीक्षण की चोटों के बीच एक स्पष्ट अंतर है। प्री-मॉर्टम इंजरी से ब्लीडिंग और क्लॉटिंग और गैपिंग के लक्षण दिखाई देते हैं, जो शव परीक्षण चोटों में नहीं होता है। शव परीक्षण में मवाद आदि नहीं पाया जाता है। मृतकों के अंगूठे के कटने से संबंधित चोटें शव परीक्षण की चोटें थीं। उन्होंने कहा है कि चोट संख्या-1 एक मृत्यु पूर्व चोट है। उनके अनुसार, भोजन के 7-8 घंटे बाद पेट खाली हो जाता है और वह मल 2-3 दिनों तक छोटी आंत में रहता है। मलाशय भार शौच से पहले की स्थिति है।

29. अ०सा०-7 मानव सर का शव परीक्षण करने वाले डॉ. भूपेंद्र नाथ श्रीवास्तव ने अपनी जिरह में इस गवाह ने कहा है कि पुलिस के कागजात में मृतक का नाम अज्ञात दिखाया गया था और वह निश्चित जवाब नहीं दे सकता कि उसने शव परीक्षण रिपोर्ट में दुबरी पांडे के नाम का उल्लेख किस आधार पर

किया है। उन्होंने मृतक के बाल और दांत के आधार पर मृतक की उम्र 60 साल बताई है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि पुलिसकर्मियों के कहने पर उन्होंने मृतक का नाम दुबरी पांडे बताया है।

30. अ०सा०-8 कांस्टेबल राजेंद्र प्रसाद शर्मा, जिन्होंने मानव सर की जांच को साबित किया है। उसने मानव सर भी देखा था और कांस्टेबल राजकुमार यादव के साथ उसे शवगृह ले गया था। प्रतिपरीक्षा में उन्होंने कहा है कि 13.3.1996 की शाम को उन्हें थाना में एक धनपति से मानव सर की बरामदगी के बारे में सूचना मिली थी। वह रात करीब 10.00 बजे के बाद ही थाने आया था। उन्होंने कहा है कि पुलिस कर्मियों ने रात में मानव सर नहीं देखा था और इसे वर्ष 14-3-1996 को सूर्योदय के बाद लगभग 7.00 बजे सुबह देखा था। अपनी जिरह में अ०सा०-8 ने कहा है कि जांच लगभग 7.00-8.00 बजे समाप्त हुई। बाद में उन्होंने कहा कि यह सुबह 8.00-9.00 बजे तक समाप्त हो गया था। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उनकी मौजूदगी में पंचायतनामा रिपोर्ट तैयार नहीं की गई थी।

31. अ०सा०-9 सब इन्स्पेक्टर जामवंत जायसवाल, जो थाना-सराय लखांसी में हेड मोहरीर के पद पर तैनात थे। उन्होंने केस अपराध संख्या-83 वर्ष 1996 की चेक प्राथमिकी साबित की है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि प्राथमिकी समय से पहले की गई थी या शव परीक्षण रिपोर्ट मिलने के बाद थानाध्यक्ष के दबाव में प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

32. ऐसा प्रतीत होता है कि मुकदमे के दौरान अभियुक्त मिथिलेश के किशोर होने के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया था। इस संबंध में तथ्यों का पता लगाने के लिए निचली अदालत ने राजनाथ सिंह, जो बालिका इंटर कॉलेज रामवन कुटी काड़ा, मऊ के प्राचार्य थे, को सीडब्ल्यू-1 के रूप में तलब किया। अदालत ने आरोपी मिथिलेश पांडे के नाबालिग होने से संबंधित सवाल पर सीडब्ल्यू-2 राम लखन पांडे, सीडब्ल्यू-3 राकेश कुमार पांडे और सीडब्ल्यू-4 राज नारायण मिश्रा को भी तलब किया है। उनकी गवाही के आधार पर निचली अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची कि मिथिलेश पांडे घटना के दिन नाबालिग था। तदनुसार, उनके मुकदमे को सक्षम फोरम को भेजा गया था।

33. मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा पेश की गई दोषकारी सामग्री का सामना तब आरोपियों को धारा 313 द०प्र०स० के तहत उनके बयान दर्ज करने के लिए किया गया था। आरोपियों ने कहा है कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है और कनकलता को उर्मिला नहीं कहा जाता है। आरोपी यशवंत चौबे ने कहा है कि उसके दादा स्वर्गीय दुखरी चौबे के भाई की शादी दुबरी पांडे की बहन से हुई थी और उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

बचाव साक्ष्य

34. बचाव पक्ष ने 60 वर्षीय जय प्रकाश सिंह को ब०सा०-1 के रूप में पेश किया है, जिसने कहा है कि दुबरी पांडे की उर्मिला नाम की एक बेटि थी, जो दुबरी पांडे की पूर्व-मृतक थी। उसकी शादी मध्य प्रदेश में हुई थी। उन्होंने

कहा है कि दुबारी पांडे की मृत्यु 1995 में हुई थी और उन्होंने गाजीपुर में आयोजित अंतिम संस्कार में भाग लिया था। इस गवाह का सामना पेपर संख्या-108 खा से कराया गया। उन्होंने कहा है कि इंद्रासन पांडे ने मृतक दुबारी पांडे का अंतिम संस्कार किया था। उन्होंने यह भी कहा है कि सूचनाकर्ता के पिता राम सिंहासन पांडेय मध्य प्रदेश में कार्यरत थे और उन्हें लगभग 30 साल पहले एक नौकर मिला था। यह नौकर 11-3-1996 के बाद नहीं देखा गया। उसने जियुतबंधन सिंह के खेतों में बिना सर का शव देखा था। उसने यह भी कहा है कि सुबह लगभग 6.00-7.00 बजे वह अपने मवेशियों को चराने के लिए खेत में गया था, जहां उसे सर कटा शव मिला और उसने पुलिस को इसकी सूचना दी थी। इसके बाद पुलिस सुबह करीब 10.00-11.00 बजे पहुंची। उन्होंने कहा है कि चकबंदी की कार्यवाही में दुबारी पांडे ने अपनी आधी जमीन इंद्रासन पांडे और राम सिंहासन पांडे की औलादों को दी थी और वे इस तरह की जमीन पर अपने संबंधित हिस्से के कब्जे में थे। अभियोजन पक्ष द्वारा इस गवाह से जिरह की गई है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि बिना सर वाला शव दुबारी पांडे का था। उन्होंने आगे कहा है कि दुबारी पांडे की एक साल पहले मृत्यु हो गई थी और उन्हें दुबारी पांडे द्वारा उनके खिलाफ किसी भी मामले के बारे में कोई जानकारी नहीं है। उन्होंने आगे कहा है कि आरोपी के प्रभाव में वह गलत बयान दे रहे हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि इंद्रासन पांडे और सिंहासन पांडे की औलादों के बीच

दुबारी पांडे की जमीन के संबंध में कोई विवाद नहीं था।

35. ब०सा०-2 संतोष कुमार सिंह हैं, जिन्होंने बचाव पक्ष के इस कथन का भी समर्थन किया है कि दुबारी पांडे की एक बेटे थी, जिसकी शादी मध्य प्रदेश में सूचनाकर्ता राम सिंहासन पांडे के पिता ने की थी। उन्होंने यह भी कहा है कि इंद्रासन और राम सिंहासन पांडे की मां की मृत्यु दुबारी पांडे की मृत्यु के छह महीने बाद हुई थी। इस गवाह ने यह भी कहा है कि सुबह लगभग 9.00-10.00 बजे बिना सर का शव देखा गया था और यह दुबारी पांडे का नहीं था, क्योंकि वर्ष 1995 में उनकी पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। उन्होंने यह भी कहा है कि यह सूचना जय प्रकाश सिंह द्वारा पुलिस को दी गई थी। उन्होंने यह भी कहा है कि ऐसी अफवाहें थीं कि बिना सर का शव किसी अज्ञात व्यक्ति का है। उन्होंने यह भी कहा है कि दुबारी पांडे की मृत्यु के बाद एक भोज का आयोजन किया गया था जिसमें अखिलेश और सिंहासन पांडे ने भी भाग लिया था। दुबारी पांडे के अंतिम अधिकार इंद्रासन द्वारा किए गए थे। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि उसके और सूचनाकर्ता के बीच मार्ग के विवाद के कारण वह झूठी गवाही दे रहा है।

36. ब०सा०-3 55 वर्षीय केदार हैं, जो गाजीपुर में शमशान घाट चला रहा था/उसका प्रबंधन कर रहा था। उन्होंने मृत्यु प्रमाण पत्र को सिद्ध कर दिया है, जिसके अनुसार दुबारी पांडे की मृत्यु 11-3-1995 को हुई थी। उन्होंने कहा है कि उनके मुनीम

मुख्तार खान द्वारा मृत्यु प्रमाण पत्र जारी किया गया है।

37. ब०सा०-4 जगदीश पांडे है, जो दुबरी पांडे का बहनोई होने का दावा करता है और दावा करता है कि उसकी बहन शारदा देवी की शादी मृतक से हुई थी और उनके विवाह से उर्मिला नाम की एक बेटी का जन्म हुआ था। उन्होंने कहा है कि 11-3-1995 को दुबारी पांडे की मृत्यु हो गई। उनके चचेरे भाई अजोरिया की शादी अमरदेव पांडे से हुई थी और उन्होंने दुबरी पांडे के अंतिम संस्कार में भाग लिया था। उनकी उम्र करीब 60 साल थी। उनकी दो बहनें शारदा @ सरस्वती और राजपति थीं। शारदा का विवाह दुबरी पांडे से हुआ था, जबकि राजपति का विवाह रामचंद्र पांडे से हुआ था। यह गवाह भारतीय सेना में क्लर्क था। उन्होंने यह भी कहा है कि मृतक की इंद्रासन पांडेय से कोई दुश्मनी नहीं थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उन्हें सेना से छुट्टी दे दी गई है या उन्हें पेंशन नहीं मिल रही है। उन्होंने इस बात से इंकार किया है कि 12-3-1996 को दुबारी पांडे की हत्या कर दी गई है।

38. ब०सा०-5 प्रेमचंद्र दुबे है, जिसने कथित तौर पर इंद्रासन पांडे की ओर से धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर किया था। इस गवाह ने कहा है कि जिस व्यक्ति के निर्देश पर धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर किया गया था, उसे सूचनाकर्ता अखिलेश कुमार पांडे लाया था। उसने न तो आवेदक इंद्रासन पांडे को पहचाना और न ही उसे जान सका।

दोषसिद्धि और सजा का फैसला

39. रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों के मूल्यांकन पर निचली अदालत और इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को साबित करने में सफल रहा है। इस तरह के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित सामग्री पर भरोसा किया है: -

(i) इस मामले में तुरंत प्राथमिकी दर्ज की गई थी अर्थात घटना दोपहर 12.00 बजे हुई जबकि प्राथमिकी 15.10 बजे दर्ज की गई थी। चूंकि घटनास्थल थाना से 18 किलोमीटर दूर था, इसलिए प्राथमिकी दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई।

(ii) अभियुक्त के लिए अपराध करने का एक निश्चित मकसद था क्योंकि मृतक ने अभियुक्त के नुकसान के लिए सूचनादाता के पक्ष में एक वसीयत और उपहार विलेख निष्पादित किया था।

(iii) मृतक के परिवार के सदस्यों अर्थात अ०सा०-2 और अ०सा०-4 द्वारा मृतक दुबारी पांडे के रूप में शव और मानव सर की पहचान की गई।

(iv) दुबरी पांडे की संपत्ति को प्राप्त करने के लिए दो गुटों अर्थात सूचनाकर्ता और अभियुक्त के बीच गहन विवाद चल रहा था और दीवानी न्यायालय और राजस्व अधिकारियों के समक्ष कार्यवाही लंबित थी।

(v) अ०सा०-1 की गवाही विश्वसनीय है क्योंकि उसने घटना देखी है और उसकी चक्षुक संबंधी गवाही पंचायतनामा और शव परीक्षण से मेल खाती है।

(vi) बचाव पक्ष यह स्थापित नहीं कर पाया है कि दुबारी पांडे की मृत्यु 11-03-1995 को पहले ही हो चुकी थी।

(vii) आरोपी पक्ष ने एक अपंजीकृत वसीयत तैयार की थी और दुबारी पांडे को मृत दिखाते हुए, उर्मिला का नाम बदलकर उसे दुबारी पांडे की बेटी बताकर उत्परिवर्तित करवा दिया था, हालांकि वह वास्तव में इंद्रासन पांडे की बेटी है। दुबारी पांडे को इसकी जानकारी मिलने पर आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया।

(viii) यदि बचाव पक्ष के मामले को मंशा की कमी के बारे में स्वीकार कर भी लिया जाए, तो भी इसका अधिक महत्व नहीं होगा क्योंकि अ०सा०-1 का प्रत्यक्ष साक्ष्य सच्चा और विश्वसनीय है।

(ix) अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में मामूली विरोधाभास महत्वपूर्ण नहीं होंगे क्योंकि बयानों को दर्ज करने में बहुत अधिक समय अंतराल था और कुछ भिन्नता उत्पन्न होने के लिए बाध्य है।

(x) अभियोजन पक्ष ने इस प्रकार साबित कर दिया है कि घटना अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा बताए गए तरीके से हुई है और यह मामला दुर्लभतम मामलों की श्रेणी में आने वाला है, इसलिए दोनों अभियुक्तों को मृत्युदंड दिया जाना चाहिए।

अपीलकर्ताओं की दलीलें

40. दोषसिद्धि और सजा के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, यहां दो अपीलकर्ताओं ने अन्य आधारों के साथ-साथ

निम्नलिखित पर उपरोक्त अपीलों को प्राथमिकता दी है: -

(क) अभियुक्त अपीलकर्ताओं को सूचनादाता द्वारा मृतक, जो एक सामान्य पूर्वज था, से विरासत में मिली संपत्ति से वंचित करने के लिए उन्हें झूठा फंसाया गया है।

(ख) दुबारी पांडे की मृत्यु 11-03-1995 को हुई थी और बचाव पक्ष द्वारा इस तथ्य को अग्रणी ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा स्पष्ट रूप से स्थापित किया गया है जिसे निचली अदालत द्वारा गलती से खारिज कर दिया गया है।

(ग) कथित रूप से दुबारी पांडे का सर रहित शव वास्तव में सूचनादाता के पिता के नौकर का था जो मध्य प्रदेश से आया था और 11-03-1996 के बाद नहीं देखा गया था।

(घ) कथित शव दुबारी पांडे का था और अभियोजन पक्ष सर कटे हुए शव की पहचान दुबारी पांडे के रूप में साबित करने में विफल रहा है।

(ङ) सूचनादाता और उसके भाई के पक्ष में कथित पंजीकृत वसीयत और उपहार विलेख कुछ धोखेबाजों के माध्यम से निष्पादित मनगढ़ंत दस्तावेज हैं और सूचनादाता ने स्वयं शव के अंगूठे काट लिए थे ताकि मृतक की पहचान स्थापित न हो सके।

(च) अ०सा०-1 की गवाही रिकार्ड में उपलब्ध चिकित्सीय साक्ष्य के विपरीत है क्योंकि गवाह (अ०सा०-1) ने आरोप लगाया है कि अभियुक्त अपीलकर्ता राकेश पांडे ने एक ही बार में मृतक का सर और अंगूठा काट दिया था, जबकि शव परीक्षण से पता चलता है कि सर काटना एक शव-पूर्व चोट थी, अंगूठे का

काटना शव परीक्षण की चोट थी, जो दोनों एक साथ, एक घटना में नहीं हो सकते थे, और अ०सा०-1 की गवाही में झूठ को उजागर करते हैं, जो अन्यथा एक अत्यधिक हितबद्ध गवाह है। इस तरह वह न तो विश्वसनीय गवाह है और न ही भरोसेमंद गवाह है। इसलिए, उसकी गवाही निर्भरता के योग्य नहीं है।

(छ) मानव सर की पहचान भी दुबरी पांडे के रूप में स्थापित नहीं की गई है।

(ज) विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष के गवाहों की गवाही को गलत तरीके से नजरअंदाज कर दिया है जिसके अनुसार दुबरी पांडे पहले ही एक बेटी को पीछे छोड़ते हुए मर चुके थे और अ०सा०-1 की गवाही कि मृतक अविवाहित था या उसे कोई औलाद नहीं थी, रिकॉर्ड पर साक्ष्य के वजन के विपरीत है, लेकिन निचली अदालत की विपरीत राय अस्थिर है।

अभियोजन पक्ष की दलीलें

41. इसके विपरीत, सूचनाकर्ता और राज्य के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि दोषसिद्धि और सजा का निर्णय कानून और तथ्य की उचित मूल्यांकन पर आधारित है। यह आग्रह किया जाता है कि अपराध के लिए मकसद स्थापित किया गया है। मृतक दुबरी पांडे एक सामान्य पूर्वज था और उसने आरोपी के नुकसान के लिए सूचनाकर्ता और उसके भाई के पक्ष में एक पंजीकृत वसीयत के साथ-साथ पंजीकृत उपहार विलेख निष्पादित किया था। मृतक की इस हरकत से आरोपी नाराज हो गए थे, जिन्होंने मृतक का सर काटकर रंजिश का बदला लिया था। घटना को सूचनाकर्ता ने देखा

है और उसकी गवाही विश्वसनीय और भरोसेमंद है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जिस तरह से मृतक का सर कलम किया गया था और उसके सर को आरोपी राकेश पांडे द्वारा ले जाया गया था, उससे गांव में आतंक का माहौल पैदा हो गया। यह आग्रह किया जाता है कि अभियुक्त की ओर से अपराध दुर्लभतम मामले की श्रेणी में आएगा, और इसलिए निचली अदालत द्वारा दी गई मौत की सजा उचित है। सबमिशन यह है कि अपील में योग्यता का अभाव है और खारिज किए जाने योग्य है।

42. हमने अपीलकर्ताओं के लिए श्री राजर्षि गुप्ता और श्री रिजवान अहमद द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता कुमारी मीणा और श्री गणेश दत्त मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कमल कृष्ण को सुना है और कैपिटल अपील के रिकॉर्ड और संदर्भ के साथ-साथ निचली अदालत के मूल रिकॉर्ड को ध्यान से देखा है।

पक्षों और उत्पत्ति के बीच संबंध

43. घटना का विवरण करने या पक्षों की संबंधित दलीलों की जांच करने से पहले, हम पक्षों के बीच संबंधों को संदर्भित करना उचित समझते हैं, साथ ही मामले की पृष्ठभूमि और घटना की उत्पत्ति को समझने के लिए मृतक द्वारा छोड़ी गई संपत्ति की विरासत के मुद्दों को भी देखते हैं।

44. एक धनराज पांडे सामान्य पूर्वज थे, जिनके दो पुत्र अमरदेव उर्फ खेदन पांडे और

दुबारी पांडे (मृतक) थे। अमरदेव उर्फ खेदन पांडेय के दो पुत्र राम सिंहासन पांडेय और इंद्रासन पांडेय थे। राम सिंहासन पांडेय के दो पुत्र कमलेश पाण्डेय और अखिलेश कुमार पाण्डेय (प्रथम सूचनाकर्ता) थे। इंद्रासन पांडे के चार बेटे राकेश पांडे, मिथिलेश पांडे @ टीपू, अमित उर्फ भोज और कविस उर्फ मांधाता हैं। इंद्रासन की दो बेटियां भी थीं, जिनका नाम कनकलता उर्फ उर्मिला और रुचि है। कनकलता की शादी आरोपी यशवंत चौबे से हुई है।

45. धनराज पांडे की कृषि जोत उनके दो बेटों अमरदेव @ खेदन पांडे और दुबारी पांडे को समान अनुपात में हस्तांतरित की गई। तदनुसार आधी संपत्ति दुबारी पांडे को हस्तांतरित हो गई और शेष आधी अमरदेव @ खेदान पांडे के हिस्से में आ गई। अमरदेव @ खेदन पांडे की मृत्यु के बाद उनका हिस्सा उनके दो पुत्रों राम सिंहासन पांडे और इंद्रासन पांडे को सौंप दिया गया। इस मामले में आरोपी पक्ष इंद्रासन पांडे और उनका परिवार है, जिन्हें कृषि संपत्ति का 1/4 हिस्सा सामान्य पूर्वज से विरासत में मिला और राम सिंहासन पांडे का 1/4 हिस्सा उनके दो बेटों कमलेश पांडे और अखिलेश कुमार पांडे (प्रथम सूचनाकर्ता) को हस्तांतरित किया गया।

46. उत्तराधिकार कानून (उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 171) के अनुसार, दुबारी पांडे के स्वामित्व वाली कृषि भूमि उनके दो भतीजों राम सिंहासन पांडे और इंद्रासन पांडे को हस्तांतरित हो गई होगी। यदि दुबारी पांडे की निर्वसीयत मृत्यु हो गई या उनका कोई

उत्तराधिकारी नहीं था (जैसा कि अभियोजन पक्ष का मामला है), तो सामान्य परिस्थिति में दुबारी पांडे की संपत्ति को राम सिंहासन पांडे और इंद्रासन पांडे की दो शाखाओं के बीच समान रूप से विभाजित किया जाना था, ताकि मूल संपत्ति में उनका हिस्सा 1/2 प्रत्येक (1/4 + 1/4) होगा।

47. बचाव पक्ष ने ग्राम रैकवार डीह, परगना मोहम्मदाबाद, तहसील सदर, जिला मऊ के आकार पत्र 23 (1) में निगमित उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम, 1953 की धारा 9 (ए)(2) के तहत कार्यवाही में चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित एक आदेश प्रस्तुत किया है, जिसमें दुबारी पांडेय, राम सिंहासन पांडे और सिंहासन पांडे के बीच निम्नलिखित प्रभाव से समझौता किया गया है: -

"श्रीमान चकबन्दी अधिकारी मुकदमा ४४२/२५.८.१९६६ धारा ९क(२) जोथ, चकबन्दी अ० सिंहासन बनाम दुबारी आदेश हुआ कि खाता सं० में दुबारी पुत्र धनराज का नाम सिंहासन व इंद्रासन पुत्रगण अमर देव के साथ खातिरन दर्ज रहेगा उक्त आराजियात को दुबारी पुत्र धनराज को किसी को विक्रय करने व हिबानामा व आराजियात की नवाईयत को तबदील करने का कोई अधिकार आज से नहीं है और न कभी भविष्य में रहेगा। दुबारी पाण्डे की नबालिग लड़की उर्मिला का देख रेख शादी विवाह सिंहासन व इंद्रासन करेंगे, यदि इस आदेश के खिलाफ सिंहासन व सिंहासन किसी प्रकार का कागजात पेश करेंगे तो वह गलत व नाजायज़ माना जायेगा। हम दुबारी पुत्र धनराज के मृत्यु के बाद १/२ सिंहासन व १/२ इंद्रासन पुत्रगण अमरदेव रहेंगे।

हस्ताक्षर

(अस्पष्ट)

१२.०९.६६

च० अ०

48. पूर्वोक्त समझौते का प्रभाव यह है कि राम सिंहासन पांडे और इंद्रासन पांडे की दो शाखाओं के बीच का हिस्सा मृतक दुबरी पांडे की मृत्यु पर बराबर रहेगा। उपरोक्त आदेश में इस आशय की सामग्री भी शामिल है कि दुबरी पांडे की नाबालिग बेटी उर्मिला की देखभाल की जाएगी और उसका विवाह आदि दो भाइयों राम सिंहासन पांडे और इंद्रासन पांडे द्वारा किया जाएगा और उपरोक्त व्यवस्था के साथ भिन्नता पर, कोई भी बिक्री विलेख या उपहार विलेख अवैध माना जाएगा। बचाव पक्ष का आरोप है कि 11.3.1995 को दुबरी पांडे की स्वाभाविक मौत हो गई। इसके बाद उनकी बेटी उर्मिला का नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया। दुबरी पांडे की मृत्यु के बाद उनका हिस्सा इस प्रकार राम सिंहासन पांडे और इंद्रासन पांडे को समझौते के आधार पर प्रत्येक वर्ष 1/2 के अनुपात में हस्तांतरित होगा।

49. हमारा ध्यान चकबंदी अधिकारी के आदेश को दी गई किसी भी चुनौती की ओर आकर्षित नहीं किया गया है और न ही न्यायालय को यह दिखाया गया है कि इस आदेश को किसी उच्च मंच पर उलट दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद की समेकन कार्यवाही में हस्तक्षेप किया गया है और इसलिए पक्षों के दावे पर हमारे द्वारा कोई राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है, विशेष रूप से यह इन

कार्यवाहियों में हमारे द्वारा निर्णय नहीं लिया जाना है।

50. ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्व अभिलेखों में दुबरी पांडे के स्थान पर उर्मिला का नाम एक अदिनांकित आदेश द्वारा दर्ज किया गया था। इसके बाद दिनांक 18.7.1996 को उ0प्र0 भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 34 के अन्तर्गत कार्यवाही में दिनांक 30.3.1995 की वसीयत के आधार पर दुबरी पाण्डेय की पुत्री उर्मिला पुत्री का नाम हटाकर अखिलेश कुमार पाण्डेय एवं कमलेश पाण्डेय का नाम भूमिधर के रूप में सम्मिलित कर दिया गया। उर्मिला द्वारा दिनांक 18-7-1996 के आदेश को वापस लेने के लिए दिनांक 31-8-1996 को बहाली हेतु एक आवेदन दायर किया गया था। इस बहाली आवेदन की अनुमति दे दी गई है और कार्यवाही को इसकी मूल संख्या में बहाल कर दिया गया है। नामांतरण की कार्यवाही को अंतिम रूप नहीं दिया गया है, क्योंकि गांव में दूसरी चकबंदी की कार्यवाही में हस्तक्षेप किया गया है। इस प्रकार पक्षकारों के पारस्परिक अधिकारों के निर्धारण की कार्यवाहियां उपयुक्त मंच के समक्ष न्यायाधीन हैं और इस प्रकार हम इस मामले में कोई राय व्यक्त करने से स्वयं को दूर करते हैं।

51. उपरोक्त स्थिति के विपरीत, सूचनाकर्ता अखिलेश कुमार पांडे का मामला यह है कि दुबरी पांडे अविवाहित थे और निःसंतान मर गए। उर्मिला पांडे दरअसल इंद्रासन पांडे की बेटी कनकलता हैं, जिन्होंने खुद को दुबरी पांडे की बेटी के रूप में गलत तरीके से पेश किया

है। सूचना के अनुसार दुबरी पांडे द्वारा 30.3.1995 को एक पंजीकृत वसीयत और उपहार विलेख निष्पादित किया गया है, जिसके तहत उनकी अचल संपत्ति अखिलेश कुमार पांडे और उनके भाई कमलेश पांडे के पक्ष में इंद्रासन पांडे की शाखा को छोड़कर वसीयत की गई है।

52. सूचनादाता ने दुबरी पांडे के 24.4.1995 के बाद के उपहार विलेख को भी रिकॉर्ड में लाया है, जिसमें दर्ज है कि दुबरी पांडे की पत्नी की मृत्यु पहले हो चुकी है।

53. सूचनादाता ने आगे आरोप लगाया कि इंद्रासन पांडे बनाम दुबरी पांडे (पहला सेट) और कमलेश पांडे (दूसरा सेट) द्वारा प्रतिपक्षी के खिलाफ निषेधाज्ञा से राहत की मांग करते हुए एक मूल मुकदमा संख्या-456 वर्ष 1995 दायर किया गया था। उक्त वाद में दुबरी पाण्डेय (आवेदन संख्या-17शासकीय अधिवक्ता-2) द्वारा 85 वर्ष की वृद्धावस्था के कारण प्रतिपक्षी के रूप में अपना बयान दर्ज करने के लिए आवेदन किया गया था। इस वाद में विचारण न्यायालय ने देखा कि वादी उपस्थित नहीं हो रहे थे और परिणामस्वरूप वादी इंद्रासन और उसके अधिवक्ता को 14.3.1996 को न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए नोटिस जारी किए। हालांकि पक्षकारों की पेशी के लिए तय तारीख से दो दिन पहले मृतक दुबरी पांडेय की बेरहमी से हत्या कर दी गई।

54. सूचनाकर्ता द्वारा स्थापित उपरोक्त मामले के विपरीत, बचाव का मामला यह है कि

उन्होंने कभी भी मुकदमा संख्या-456 वर्ष 1995 दायर नहीं किया और यह मुकदमा सूचनाकर्ता अखिलेश पांडे द्वारा एक धोखेबाज के माध्यम से स्थापित किया गया था, जो पेशे से अधिवक्ता हैं। बचाव पक्ष के अनुसार, उन्हें मुकदमा दायर करने के बारे में बहुत बाद में पता चला और उन्होंने वाद और वकालतनामा पर इंद्रासन पांडे के हस्ताक्षर की तुलना इस मामले में आरोप तय किए जाने के समय दर्ज किए गए उनके स्वीकृत हस्ताक्षरों से करने के लिए आवेदन दायर किया।

55. शिकायतकर्ता/प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा दिनांक 26.06.2006 को कागजातों/दस्तावेजों को दाखिल करने के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर, दिनांक 05.10.2015 (पेपर नं. 448-ख) और 24.12.2015 (पेपर नं. 459/460-ख) को दो आवेदन दायर किए गए, जिसमें अखिलेश पांडे के कपटपूर्ण कृत्य को उजागर किया गया और एक विशिष्ट प्रार्थना की गई कि हस्ताक्षर/अंगूठे का निशान विभिन्न दस्तावेजों में दुबरी पांडे का होना चाहिए; और पंजीकृत वसीयत, उपहार विलेख दिनांक 30.03.1995 और उपहार विलेख दिनांक 24.04.1995 और हस्तलिपि विशेषज्ञ के माध्यम से दुबरी पांडे के हस्ताक्षर/अंगूठे के निशान वाले अन्य दस्तावेजों की तुलना की जा सकती है। वाद संख्या-456/1995 पर उपस्थित इंद्रासन पांडे के हस्ताक्षर की तुलना सत्र न्यायालय को मामले के प्रतिबद्ध होने के समय मजिस्ट्रेट की अदालत के आदेश पत्र पर रखे गए उनके स्वीकार किए गए हस्ताक्षर से भी की जा सकती है। उक्त प्रार्थना को विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 17.12.2019 के

आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया था। उक्त आदेश दिनांक 17.12.2019 को 482 द०प्र०स० याचिका संख्या-2623 वर्ष 2020 के माध्यम से चुनौती दी गई थी। 20.01.2020 को 11.02.2020 तय कर जवाबी हलफनामा बुलाया गया। हालांकि, उक्त 482 द०प्र०स० याचिका के निपटारे से पहले, प्रस्तुत आक्षेपित निर्णय और आदेश 11.02.2020 को पारित किया गया था।

56. बचाव पक्ष ने यह दिखाने के लिए विभिन्न दस्तावेजों पर भी भरोसा किया है कि दुबरी पांडे की मृत्यु 11.3.1995 को हो चुकी थी। उनकी पुत्री उर्मिला ने सिविल जज (जूनियर डिवीजन) की अदालत के समक्ष मूल वाद संख्या-1221 वर्ष 1995 दायर किया, जिसमें दिनांक 7.9.1995 के आदेश की प्रति संलग्न की गई, जिसके तहत राजस्व अधिकारियों ने दुबरी पांडे के स्थान पर उर्मिला का नाम बदल दिया। उक्त वाद में परिवार रजिस्टर को सीलबंद लिफाफे में रखने का निर्देश दिया गया था। उक्त वाद के साथ परिवार रजिस्टर की प्रति भी संलग्न की गई थी, जिससे पता चलता है कि उर्मिला का नाम उसकी शादी के कारण हटा दिया गया था। एक तस्वीर (पेपर संख्या-108 ख) भी दायर की गई है जिससे पता चलता है कि 11.3.1995 को दुबरी पांडे की मृत्यु हो गई थी। दाह संस्कार की तस्वीर में सूचनाकर्ता अखिलेश पांडे, आरोपी राकेश पांडे और सह-आरोपी यशवंत चौबे के पिता राधेश्याम चौबे की उपस्थिति दिखाई दे रही है। बचाव पक्ष द्वारा एक स्कूल छोड़ने का प्रमाण पत्र (पेपर संख्या-220खा) भी दायर किया गया है, जिसमें कनकलता को

उर्मिला की तरह किसी भी उपनाम के बिना इंद्रासन की बेटी दिखाया गया है।

साक्ष्य का विश्लेषण

57. यह उपरोक्त पृष्ठभूमि में है और सूचनाकर्ता द्वारा स्थापित मामले पर भरोसा करते हुए अभियोजन पक्ष का आरोप है कि दुबरी पांडे जीवित था और 12.3.1996 को हुई घटना में आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया गया था। इसके विपरीत, बचाव पक्ष का कथन यह है कि दुबरी पांडे की मृत्यु 11.3.1995 को हो चुकी थी और 30.3.1995 और 24.4.1995 की कथित वसीयत और उपहार विलेख फर्जी दस्तावेज हैं और एक धोखेबाज के माध्यम से तैयार किए गए हैं। बचाव पक्ष का यह भी कहना है कि सूचनाकर्ता के पिता राम सिंहासन पांडेय मध्य प्रदेश में कार्यरत थे और करीब 30 साल पहले अपने साथ नौकर लेकर आए थे। यह नौकर 11-3-1996 के बाद नहीं देखा गया। इसलिए, बचाव पक्ष का आरोप है कि सूचनाकर्ता ने वास्तव में अपने ही नौकर का सर काट दिया है, ताकि आरोपी को दुबरी पांडे की हत्या के लिए झूठा फंसाया जा सके और उसकी पहचान को दबाने/छिपाने के लिए मृतक के दोनों अंगूठे भी काट दिए गए हैं।

58. यह उपरोक्त पृष्ठभूमि में है कि इस न्यायालय को यह जांचना है कि क्या अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में सफल रहा है कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने 12.3.1996 को मृतक का सर काट दिया है और सूचनाकर्ता द्वारा कथित घटना में उसके दो अंगूठे काट दिए हैं। इस न्यायालय को यह

निर्धारित करने की भी आवश्यकता है कि क्या अभियोजन पक्ष आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को संदेह से परे स्थापित करने में सफल रहा है।

59. प्रस्तुत अपीलों में निर्धारण के लिए उत्पन्न होने वाले मुद्दों की मूल्यांकन करने के लिए हमारे द्वारा पृष्ठभूमि तथ्यों पर ध्यान दिया गया है। यह घटना का आपराधिक हिस्सा है जिसके लिए अकेले हमारे द्वारा अधिनिर्णय की आवश्यकता है। हमें यह निर्धारित करना होगा कि क्या घटना, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया है, अभियोजन पक्ष द्वारा सुझाए गए तरीके से हुई है और; दूसरा, क्या अभियोजन पक्ष मौखिक और दस्तावेजी सबूतों के आधार पर आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को संदेह से परे स्थापित करने में सफल रहा है। अचल संपत्ति पर पक्षों के अधिकारों से संबंधित विवाद या वसीयत की विधिसम्मतता और वैधता से संबंधित विवादास्पद मुद्दे और उपहार विलेख हमारे सामने झूठ का हिस्सा नहीं हैं, और इसलिए हम पक्षों द्वारा उठाए गए ऐसे विवादों के गुणों पर कोई टिप्पणी करने से खुद को रोकते हैं। हम यह भी स्पष्ट करने की जल्दबाजी करते हैं कि पक्षों के संबंधित रुख को ध्यान में रखते हुए हमारे द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी पृष्ठभूमि के तथ्यों की उचित समझ के सीमित उद्देश्य के लिए है और किसी भी पक्ष के दावे के गुणों पर हमारी राय की अभिव्यक्ति नहीं है।

60. अभियोजन पक्ष के अनुसार यह घटना 12.3.1996 को दोपहर लगभग 12.00 बजे

जियुतबंधन सिंह के कृषि खेत के पास हुई है, जिसमें मृतक दुबरी पांडे को एक दाव द्वारा गर्दन से सर काटकर मौत के घाट उतार दिया गया था। आरोपी ने मृतक के दोनों अंगूठे भी काट दिए। आरोप है कि आरोपी राकेश पांडेय मृतक का सर और अंगूठा ले गया। मृतक का सर पास के जिले के एक तालाब से बरामद किया गया है। हालांकि अंगूठा बरामद नहीं हो पाया है। मारपीट का हथियार भी बरामद नहीं हुआ है।

61. जहां तक रिकॉर्ड पर चिकित्सा साक्ष्य का संबंध है, मृतक के सर कटे हुए शरीर को 13.3.1996 को दोपहर 2.15 बजे शव परीक्षण किया गया है। शव की बाहरी जांच से पता चलता है कि शव परीक्षण सर्जन के समक्ष एक 70 वर्षीय व्यक्ति का सर कटा हुआ शव पेश किया गया था, जिसके निचले हिस्से में कठोर मोर्टिस मौजूद था, पेट फूला हुआ था और मल पदार्थ बाहर आ रहा था। भागों में दाएं और बाएं अंगूठे गायब थे। गर्दन, छाती और गर्दन के पिछले हिस्से पर खून के थक्के जम गए थे। मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के कारण सदमे और रक्तस्राव के रूप में निर्धारित किया गया है। चार घाव हैं। पहली चोट एक चीरा हुआ घाव है 14x13सेमी x हड्डी गहरी पूरा, उपरोक्त स्टर्नल पायदान से 3 सेमी ऊपर और ग्रीवा सात कशेरुका के आधार से 1 सेमी ऊपर हड्डी, मांसपेशियों, वाहिकाओं और नरम ऊतकों और ग्रीवा छह कशेरुका के माध्यम से काटा जाता है और थू के माध्यम से, ग्रीवा छह का भाग ट्रंक मार्जिन स्पष्ट कट के साथ जुड़ा हुआ है। शव परीक्षण सर्जन ने यह भी पाया कि मृतक के मलाशय भरा हुआ है।

62. शरीर पर उपरोक्त चार मृत्यु पूर्व चोटों के अलावा, शव परीक्षण रिपोर्ट में तीन शव परीक्षण चोटें भी दिखाई देती हैं, जो निम्नानुसार हैं: -

- (1) घाव 2 सेमी x 11/2 सेमी x थू और दाहिने अंगूठे के समीपस्थ फालिंक्स पर हड्डी के अंतर्निहित भागों को गायब कर दिया।
- (2) दाहिनी तर्जनी के मध्य फालिंक्स पर तिरछा रखा हुआ घाव 4 सेमी x 3 सेमी x हड्डी गहरा।
- (3) चीरा हुआ घाव 2 सेमी x 11/2 सेमी x हड्डी गहरी थू और बाएं अंगूठे के मध्य फालिंक्स पर।

63. दूसरी शव परीक्षण रिपोर्ट बरामद सर के संबंध में है। यह शव परीक्षण दिनांक 14.3.1996 को सायं 4.00 बजे किया गया था। मृतक की आयु 60 वर्ष बताई गई है और मृत्यु का कारण शव-पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के रूप में दर्शाया गया है। C2 के स्तर पर 10 सेमी x 10 सेमी आकार का एक चीरा हुआ घाव किनारों के स्पष्ट कट के साथ मौजूद होता है। दाहिनी भों से 15 सेमी ऊपर खोपड़ी के दाईं ओर 4.0 सेमी x 1.0 सेमी x हड्डी गहरे आकार का एक चीरा हुआ घाव भी मौजूद है। दाएं ललाट की हड्डी में तेज कट है।

64. अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में चिकित्सा साक्ष्य की जांच यह निर्धारित करने के इरादे से की जानी चाहिए कि क्या बरामद सर और बिना सर का शरीर एक ही व्यक्ति का है। हमें यह भी निर्धारित करना है कि क्या अभियोजन

पक्ष ने यह स्थापित किया है कि बरामद शव मृतक दुबरी पांडे का है।

65. बचाव पक्ष ने मृतक की पहचान के बारे में अभियोजन पक्ष के मामले का गंभीरता से खंडन किया है और यह भी कि क्या बरामद सर और बिना सर का शरीर एक व्यक्ति का है। जहां तक बिना सर के शव की दुबरी पांडे की पहचान का सवाल है, हम रिकॉर्ड से पाते हैं कि अ०सा०-2 विशुन राम द्वारा सर कटे शव की पहचान की गई है और जब हम गवाहों की गवाही की जांच करेंगे तो उनके बयान को इस फैसले के बाद के हिस्से में विश्लेषित किया जाएगा। अ०सा०-4 द्वारा सर की पहचान के संबंध में भी एक मुद्दा है और जब हम गवाहों की गवाही से निपटेंगे तो उसकी गवाही की जांच की जाएगी।

66. इस मामले में अभियोजन पक्ष का मुख्य गवाह सूचनाकर्ता अखिलेश कुमार पांडेय है जिसे अ०सा०-1 के रूप में पेश किया गया है। इस गवाह ने उस घटना को देखने का दावा किया है, जिसमें आरोपी व्यक्तियों ने घात लगाकर मृतक को नीचे उतारा और उसका सर और अंगूठा काट दिया। अ०सा०-1 के अनुसार, मृतक ने अपने भाई और खुद के पक्ष में एक पंजीकृत वसीयत और उपहार विलेख निष्पादित किया था। अ०सा०-1 द्वारा बाद के उपहार विलेख वर्ष 24.4.1995 पर भी भरोसा किया गया था। अ०सा०-1 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक दुबरी पांडे अपने परिवार के साथ रहे थे और उनके पास कोई मुद्दा नहीं था।

67. अ०सा०-1 के अनुसार घटना को सीताराम सिंह और चंद्रदेव राम के साथ-साथ गांव के

कई अन्य व्यक्तियों ने देखा जो घटनास्थल पर पहुंचे। प्राथमिकी में सीताराम सिंह और चंद्रदेव राम भी घटना के चश्मदीद गवाह हैं। हालांकि, अभियोजन पक्ष द्वारा इन दोनों व्यक्तियों को साक्ष्य के रूप में पेश नहीं किया गया है। सीताराम सिंह द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष एक हलफनामा दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि उसने आरोपी को मृतक दुबरी पांडे के साथ मारपीट करते नहीं देखा है और उसका बयान किसी भी पुलिस कर्मी द्वारा दर्ज नहीं किया गया है। उन्होंने आगे कहा है कि अपने निजी काम के कारण वह बाहर गए थे और घटना के समय गांव में मौजूद भी नहीं थे। इसी तरह चंद्रदेव राम का बयान दर्ज करने के लिए निर्धारित तिथि पर सूचनाकर्ता अखिलेश कुमार पांडेय द्वारा शासकीय अधिवक्ता के माध्यम से आवेदन देकर कहा गया कि गवाह चंद्रदेव राम हालांकि अदालत में पेश हो चुके हैं लेकिन उन्होंने आरोपियों से मिलीभगत की है और सही तथ्य बताने को तैयार नहीं हैं। तदनुसार गवाह चंद्रदेव राम को विमुक्त करने के लिए प्रार्थना की गई। इस आवेदन (पेपर संख्या-109ख) को अदालत ने 12.9.2003 को अनुमति दी थी और परिणामस्वरूप चंद्रदेव राम की गवाही भी मुकदमे के दौरान दर्ज नहीं की गई थी। इस प्रकार घटना का एकमात्र चश्मदीद गवाह सूचनाकर्ता अखिलेश कुमार पांडे (अ०सा०-1) है।

68. अ०सा०-1 न केवल एक हितबद्ध गवाह है, बल्कि इस मामले में अत्यधिक रुचि रखने वाला गवाह है। हमने पहले ही पृष्ठभूमि के तथ्यों पर ध्यान दिया है, जिसके अनुसार

मृतक ने सूचनाकर्ता अखिलेश कुमार पांडे और उसके भाई के पक्ष में एक वसीयत और उपहार विलेख निष्पादित किया था, जिससे आरोपी व्यक्तियों की दूसरी शाखा को नुकसान पहुंचा था। इस प्रकार अभियुक्त और सूचनाकर्ता के बीच संबंध पूर्वोक्त कारण से अत्यधिक शत्रुतापूर्ण थे।

69. हितबद्ध गवाहों की गवाही के संबंध में कानून अब अच्छी तरह से तय हो गया है। मोहम्मद जब्बार अली और अन्य बनाम असम राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1440 में रिपोर्ट किए गए, न्यायालय ने रिपोर्ट के पैरा 55 से 58 में निम्नानुसार अवलोकन किया है:-

"55. यह ध्यान दिया जाता है कि इस मामले में गवाहों की गवाही के लिए बहुत वजन जोड़ा गया है। पूर्वोक्त तथ्य के संबंध में कि इस न्यायालय ने कानून की अदालत में दिए गए किसी भी दागी सबूत को खारिज करने के लिए गवाहों की विश्वसनीयता की जांच की है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह दलील दी गई कि अभियोजन पक्ष प्रस्तुत मामले में किसी भी स्वतंत्र गवाह की जांच करने में विफल रहा है और गवाह एक दूसरे के रिश्तेदार हैं। इस न्यायालय को कई मामलों में हितबद्ध/रुचिकर/पक्षपातपूर्ण गवाहों के उक्त पहलू और ऐसे गवाहों की विश्वसनीयता पर विचार करने का अवसर मिला है। यह न्यायालय इस स्थापित सिद्धांत के प्रति सचेत है कि सिर्फ इसलिए कि गवाह हितबद्ध/रुचिकर/पक्षपातपूर्ण गवाह हैं, उनकी गवाही की अवहेलना नहीं की जा सकती है, हालांकि, यह भी सच है कि जब गवाह

हितबद्ध/इच्छुक होते हैं, तो उनकी गवाही की अधिक सावधानी और सतर्कता से जांच की जानी चाहिए। गंगाधर बेहरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य (2002) 8 एस.सी.सी. 381 के मामले में, इस न्यायालय ने कहा कि ऐसे हितबद्ध गवाहों की गवाही का विश्लेषण इसकी विश्वसनीयता के लिए सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

56. राजू उर्फ बालचंद्रन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य (2012) 12 एस.सी.सी. 701 में, इस न्यायालय ने कहा:

"29. सार यह है कि संबंधित या हितबद्ध गवाह के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक और सतर्कतापूर्वक जांच की जानी चाहिए। ऐसे मामले में जहां संबंधित और हितबद्ध गवाह की हमलावर के साथ कुछ दुश्मनी हो सकती है, बार को बढ़ाने की आवश्यकता होगी और समझदार जांच के मानक को लागू करके गवाह के साक्ष्य की जांच करनी होगी। हालाँकि, यह केवल विवेक का नियम है और कानून का नहीं है, जैसा कि दलीप सिंह [ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 364] में माना गया है और सारवन सिंह [(1976) 4 एस.सी.सी. 369] में निम्नलिखित शब्दों में दोहराया गया है: (सारवन सिंह मामला [(1976) 4 एस.सी.सी. 369, पृष्ठ 376, पैरा 10)

"10. ... हितबद्ध गवाह के साक्ष्य में कोई दुर्बलता नहीं होती है, लेकिन न्यायालयों को विवेक के नियम के रूप में आवश्यकता होती है, न कि कानून के नियम के रूप में, कि ऐसे गवाहों के साक्ष्य की थोड़ी सावधानी से जांच

की जानी चाहिए। एक बार जब यह दृष्टिकोण बन जाता है और अदालत संतुष्ट हो जाती है कि हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य में सच्चाई की रमक है, तो ऐसे सबूतों पर बिना पुष्टि के भी भरोसा किया जा सकता है।

57. इसी मुद्दे पर आगे बढ़ते हुए, यह ध्यान दिया जाता है कि गणपति और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य (2018) 5 एस.सी.सी. 549 के मामले में, इस न्यायालय ने माना कि कई मामलों में जब घटना के समय केवल परिवार के सदस्य मौजूद होते हैं और अभियोजन पक्ष का मामला केवल उनके साक्ष्य पर आधारित होता है, न्यायालयों को सतर्क रहना होगा और मुकदमे की प्रक्रिया में सबूतों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना होगा।

58. इस प्रकार यह तय किया गया है कि हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य को विवेकपूर्ण जांच लागू करके विचार किया जाना है।"

70. सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के प्रकाश में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, अ०सा०-1 की गवाही की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी ताकि इसका भरोसा और विश्वसनीयता निर्धारित की जा सके।

71. अ०सा०-1 ने कहा है कि जब आरोपी व्यक्तियों ने मृतक को पकड़ लिया था और उसके हाथ-पैर पकड़ लिए थे, तो गवाह ने शोर मचाया और विभिन्न व्यक्ति पास के ईट-भट्ठे से घटनास्थल पर आए। अ०सा०-1 के अनुसार, जब तक ईट-भट्ठे से लोग घटनास्थल पर पहुंचे, तब तक आरोपी पहले ही मृतक का सर

काट चुका था और मृतक के सर के साथ जा रहा था। अ०सा०-1 की गवाही का प्रासंगिक हिस्सा यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"मेरे शोर पर भट्ठे पर से दौड़ कर लोग आये। गांव से लोग घटना के बाद आये। भट्ठे से जो लोग आये वे घटना स्थल पर जब पहुँचे जब मुल्जिमान दुबरी पाण्डे को मार कर सर लेकर चलने लगे थे। भट्ठे से लगभग २०-२५ लोग आये थे। जब भट्ठे से लोग घटना स्थल पर पहुँचे थे मुल्जिमान भट्ठे से सौ डेढ़ सौ गज दूर जा चुके थे। तथा मन्सड़ी जाने वाली सड़क के करीब पहुँच चुके थे। सड़क से ४०-५० कदम उत्तर थे। मुल्जिमान जो अपने हाथ में हथियार लिए हुए थे व सर लेकर भाग रहे थे। जो लोग २०-२५ की संख्या में भट्ठे से आये थे वे मुल्जिमान का पीछा नहीं किये। मुल्जिमान को दुबरी पाण्डे को पटकने तथा सर काटने में १०-१५ मिनट का समय लगा होगा। २०-२५ लोगों में सबका नाम याद नहीं है कुछ का नाम बता सकता हूँ। उनमें सीताराम सिंह, चन्द्रदेव राम, श्रीराम सिंह, गंगा यादव लाल मोहम्मद, लालजी पाण्डे, शंकर यादव आदि थे। कुछ भट्ठे पर काम करने वाले थे सब भट्ठे पर करने वाले थे सब भट्ठे पर काम करने वाले नहीं थे। उस समय ईंट की पथाई, पकाई, धुलाई चल रही थी। सब लोग करीब भट्ठे से ही आये कुछ लोग भट्ठे के करीब घांस कर रहे थे।"

72. हालांकि, ईंट-भट्ठे या अन्य लोगों में से कोई भी जिनके नाम अ०सा०-1 द्वारा निर्दिष्ट किए गए हैं, साक्ष्य में पेश नहीं किए गए हैं, न ही उनके बयान धारा 161 द०प्र०स० के

तहत विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए हैं। अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि इन व्यक्तियों से धारा 161 द०प्र०स० के तहत पूछताछ क्यों नहीं की गई। विवेचनाधिकारी से अ०सा०-5 के रूप में भी पूछताछ की गई है, जिन्होंने कहा है कि हालांकि उन्होंने जियुतबंधन सिंह के साथ-साथ अन्य निकटवर्ती कार्यकाल धारकों झूलन और विनोद पांडे की भी जांच की थी, लेकिन उनके बयान दर्ज नहीं किए गए थे। हालांकि, इन लोगों ने विवेचनाधिकारी को घटना के बारे में कुछ भी नहीं बताया है। पास के ईंट-भट्ठे में लगे श्रमिकों की गवाही के संबंध में, विवेचनाधिकारी ने निम्नानुसार कहा है:

"वादी ने मुझे यह बयान नहीं दिया था कि घटना स्थल के पश्चिम तरफ स्थित शंकर यादव का मकान व ट्यूवेल स्थित है, पर वादी व मृतक दुबरी पाण्डेय शंकर यादव से बातचीत किए थे। भट्ठा राकेश लाल का था। उनका कोई बयान मैंने नहीं लिया था वादी ने मुझे अपने बयान में यह नहीं बताया था कि राकेश लाल के उक्त भट्ठे पर काम करने वाले मजदूर भी घटना स्थल पर पहुँचे थे मैंने भट्ठा के मजदूरों से बयान नहीं लिया था।"

73. विवेचनाधिकारी के उपरोक्त कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि अ०सा०-1 ने उसे सूचित नहीं किया था कि ईंट-भट्ठा राकेश लाल का था या ईंट-भट्ठा या अन्य लोगों के श्रमिक घटना के समय के आसपास घटनास्थल पर आए थे। विवेचनाधिकारी ने भी उनके बयान दर्ज नहीं किए। इनमें से किसी को भी साक्ष्य के रूप में पेश नहीं किया गया है। यह एक

महत्वपूर्ण चूक है क्योंकि अ०सा०-1 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ईंट-भट्ठे और आस-पास के कई श्रमिक घटनास्थल पर पहुंचे थे और आरोपियों को मृतक का सर ले जाते हुए देखा था, लेकिन विवेचनाधिकारी द्वारा उनमें से किसी से भी पूछताछ नहीं की गई है। उनके बयान भी दर्ज नहीं किए गए। विवेचनाधिकारी के अनुसार, अ०सा०-1 ने वास्तव में उन्हें ईंट-भट्ठे के श्रमिकों के घटनास्थल पर आने के बारे में बिल्कुल भी सूचित नहीं किया था। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में यह विसंगति महत्वपूर्ण है और अस्पष्ट बनी हुई है।

74. हम यह भी पाते हैं कि अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक दुबरी पांडे की कभी शादी नहीं हुई थी। अ०सा०-1 की गवाही में यह तथ्य उनके अपने दस्तावेज यानी वसीयत और उपहार विलेख दिनांक 30.3.1995 और 24.4.1995 से विरोधाभासी है, जो रिकॉर्ड करता है कि मृतक की पत्नी की पहले ही मृत्यु हो चुकी है। यह विश्वास करना मुश्किल है कि एक पोता होने और मृतक की पूरी संपत्ति विरासत में मिलने के कारण, अ०सा०-1 मृतक की वैवाहिक स्थिति से अनजान होगा। इसलिए उनका बयान अप्राकृतिक है।

75. इसके अलावा, अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में कहा है कि वह सुबह लगभग 9.30-10.00 बजे गेहूं के खेत का निरीक्षण करने के लिए मृतक के साथ निकला था। वे (अ०सा०-1 और मृतक) शौच करने गए थे, लेकिन उनमें से किसी ने भी स्नान नहीं

किया था या कुछ भी नहीं खाया था। विशिष्ट शब्दों में, अ०सा०-1 ने कहा है कि उन्होंने चाय या नाश्ता नहीं लिया था। अ०सा०-1 के इस बयान की शव परीक्षण रिपोर्ट से पुष्टि नहीं होती है जिसमें शव परीक्षण सर्जन ने मृतक के मलाशय को भरा पाया था। फेकल मैटर भी बाहर आ रहा था। मृतक ने स्टूल पास नहीं किया था या शव परीक्षण सर्जन की राय के अनुसार आराम नहीं किया था। इस प्रकार औसत दर्जे का साक्ष्य चक्षुक संस्करण का समर्थन नहीं करता है।

76. इस प्रकार अपीलकर्ताओं की ओर से इस बात पर जोर दिया गया है कि मृतक के बारे में अ०सा०-1 के बयान ने क्षेत्र में जाने से पहले खुद को आसान बना लिया है, रिकॉर्ड पर चिकित्सा साक्ष्य से पुष्टि नहीं मिलती है। यदि अ०सा०-1 की गवाही मृतक के शौच जाने के बारे में सही थी, तो उस घटना में उसका मलाशय भरा नहीं पाया जाएगा या वह मल मृतक के मलाशय से बाहर आ रहा होगा। मामले के इस पहलू से सामना होने पर शव परीक्षण सर्जन ने निम्नानुसार कहा है

"जिस समय मृतक की मृत्यु हुई उस समय आमाशय खाली था। छोटी आंत में गैस व मल भरा था। आदमी के खाना खाने के ७-८ घण्टे बाद आमाशय खाली हो जाता है। यदि व्यक्ति रात में ९-१० बजे खाना खाकर सो जाय तो सुबह ४-५ बजे उसका आमाशय खाली रहेगा। छोटी आंत में २-३ दिन तक मल पदार्थ रह सकता है। Rectum Loaded

शौच के पहले की स्थिति होती है। शौच के बाद अगर कोई व्यक्ति खाना न खाये तो उसके ३-४ घण्टे बाद रेक्टम लोडेड नहीं होगा।"

उपरोक्त पहलू अ०सा०-1 की गवाही की विश्वसनीयता पर भी संदेह पैदा करता है।

77. अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में कहा है कि आरोपी राकेश पांडे ने मृतक का सर और उसके अंगूठे भी काट दिए। अ०सा०-1 के इस बयान की हमने शव परीक्षण रिपोर्ट और डॉक्टर की गवाही के संदर्भ में जांच की है। शव परीक्षण रिपोर्ट में मृतक के शरीर पर शव परीक्षण चोट के साथ-साथ शव परीक्षण चोट की मौजूदगी को दर्शाया गया है। मृत्यु पूर्व चोट में चोट लगने वाली चोट सहित घाव शामिल थे जिसमें मृतक का सर काट दिया गया था। मृतक के शरीर पर तीन शव परीक्षण चोटों के निशान उसके अंगूठे पर घाव थे। मामले के इस पहलू पर शव परीक्षण सर्जन से जिरह की गई। शव परीक्षण सर्जन ने कहा है कि मृतक को मौत से पहले शव परीक्षण चोटें आई थीं, जबकि मृतक की मौत के बाद शव परीक्षण चोटें आई थीं। मृत्यु पूर्व और शव परीक्षण चोटों के बीच अंतर को अ०सा०-6 द्वारा विस्तृत किया गया है, जिसके अनुसार, रक्तस्राव और थक्के मृत्यु पूर्व चोट में होते हैं जबकि ऐसी विशेषताएं शव परीक्षण चोट में नहीं होती हैं। शव परीक्षण में मवाद आदि नहीं पाया जाता है।

78. अ०सा०-1 ने अपने बयान में यह दावा नहीं किया है कि सर और अंगूठे के काटने

में कोई अंतर था। इस गवाह के अनुसार दोनों चोटें एक ही लेनदेन/घटना में हुई थीं। तथापि, शव परीक्षण सर्जन के अनुसार सर का काटना शव-पूर्व चोट थी जबकि अंगूठा काटना शव परीक्षण चोट थी। हालांकि, डॉक्टर की राय में, कोई विशिष्ट समय अंतराल निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है, लेकिन हमारी राय में, चीजों की प्रकृति से कुछ समय अंतराल दो प्रकार की चोटों यानी मृत्यु पूर्व चोट और शव परीक्षण चोट के बीच हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य है। अ०सा०-1 का बयान कि दोनों चोटें यानी मृत्यु पूर्व और शव परीक्षण एक ही लेनदेन/घटना में आरोपी राकेश पांडे द्वारा किए गए थे, इसलिए, रिकॉर्ड पर चिकित्सा साक्ष्य से पुष्टि नहीं मिलती है। शव परीक्षण रिपोर्ट अ०सा०-1 के दावे का समर्थन नहीं करती है कि दोनों चोटें एक ही घटना में एक साथ हुई थीं। इससे अ०सा०-1 की विश्वसनीयता पर भी संदेह पैदा होता है।

79. बचाव पक्ष की ओर से यह जोरदार आग्रह किया गया है कि बिना सर वाले शरीर की पहचान स्थापित नहीं की गई है और अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं कर पाया है कि बिना सर वाला शरीर दुबरी पांडे का था।

80. अपीलकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता ने हमारा ध्यान 30.3.1995 की वसीयत और उपहार विलेख की ओर आकर्षित किया है, जिसे कथित तौर पर अ०सा०-1 और उसके भाई के पक्ष में निष्पादित किया गया है, जिसमें निम्नलिखित पाठ शामिल हैं:

"हम मुकिर की आयु लगभग 85 वर्ष हो चुकी है।"

81. हालांकि शव परीक्षण रिपोर्ट में मृतक की उम्र करीब 70 साल बताई गई है। सर (प्रदर्श का-14) की शव परीक्षण रिपोर्ट में मृतक की आयु 60 वर्ष दर्शाई गई है। इस प्रकार विभिन्न स्थानों पर निर्दिष्ट मृतक की आयु में स्पष्ट अंतर है। वसीयत में मृतक की उम्र 85 साल बताई गई है, जबकि सर कटे शव की शव परीक्षण रिपोर्ट में उम्र 70 साल बताई गई है। यह पहलू भी अभियोजन पक्ष द्वारा अस्पष्ट रहता है।

82. हमने रिकॉर्ड पर लाए गए अभियोजन साक्ष्य के प्रकाश में शव की पहचान से संबंधित मुद्दों की जांच की है। जांच रिपोर्ट से पता चलता है कि सर कटे शव की पंचान के गवाह सीताराम, लालजी पांडे, इस्लाम, चंद्रदेव राम और विशुन राम थे। पंचान के इन पांच गवाहों में से केवल विशुन राम को अभियोजन पक्ष द्वारा अ०सा०-2 के रूप में साक्ष्य में पेश किया गया है। अ०सा०-2 ने अपनी गवाही में जांच को साबित कर दिया है जिसे पेपर नं 2 के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उन्होंने शव की शिनाख्त मृतक दुबरी पांडे के रूप में की है। इस गवाह से जिरह की गई जिसमें उसने इस बात से इनकार किया कि उसने अ०सा०-1 के कहने पर शव की पहचान दुबरी पांडे के रूप में की थी। उसका दावा है कि उसकी पीठ पर फोड़े से शव की पहचान हुई है। अ०सा०-2 के बयान का निम्नलिखित हिस्सा प्रासंगिक है और इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"मैंने खुद लाश को पहचाना वह दुबरी पाण्डे की थी। यह कहना गलत होगा कि अखिलेश के बताने पर मैं माना कि लाश दुबरी की थी। दुबरी पाण्डे के धड़ व पीठ के फोड़े को देखकर मैंने पहचाना कि वह दुबरी पाण्डे की लाश है। मैं लाश का फोड़ा देखा था पहले से भी मैंने फोड़ा देखा था। पंचनामे के समय मैंने दुबरी पाण्डे की पीठ पर फोड़ा देखा था मैं मौके पर करीब रात्रि तीन बजे पहुँचा था। मैं पहुँचा तो लाश पीठ के बल पड़ी थी। लाश को वहाँ से पुलिस ने पंचनामा होने के बाद उठाया।"

83. अ०सा०-2 ने इस बात से इनकार किया है कि उसने अ०सा०-1 के साथ अपनी दोस्ती के कारण गलत बयान दिया था।

84. अपीलकर्ताओं की ओर से हमारा ध्यान उस जांच की ओर आकर्षित किया गया है जिसमें शरीर की स्थिति के साथ-साथ उपस्थिति को निम्नानुसार निर्दिष्ट किया गया है:

दशा शव- मृतक दुबरी पाण्डेय उपरोक्त के शव को समझ वयान उपरोक्त निरीक्षण किया के श्री जिउत बन्धन सिंह के गेहू खेत के पच्छिम उत्तरी छोर पर सर जानिब दक्षिण दोनों पैर जानिब उत्तर चित्त हालत में गर्दन कटा शव पड़ा है। सर नहीं है। दोनों हाथ का अंगूठा कटा है।

हुलिया शव - सावला रंग औसत कद इकहरी मजबूत जिस्म। उम्र करीब ७० वर्ष।"

85. मृतक द्वारा पहने गए कपड़ों को भी जांच रिपोर्ट में निम्नानुसार निर्दिष्ट किया गया है:

- "पहनावा-(१) सफेद रंग की पुरानी धोती पहना है।

(२) सफेद रंग की वन्डी पहना है।

(३) चेकदार गमछा धड़ पर है।"

86. उपरोक्त सामग्री के आधार पर अपीलकर्ताओं की ओर से यह आग्रह किया जाता है कि अ०सा०-2 मृतक की पीठ पर फोड़े के आधार पर मृतक की पहचान नहीं कर सकता था जब मृतक स्वयं जियुतबंधन सिंह के खेत में अपनी पीठ के बल लेटा हुआ था। मृतक ने सफेद रंग की बांदी पहन रखी थी और शव साफ ढका हुआ था। ऐसी स्थिति में, मृतक की पीठ पर किसी भी फोड़े को नोटिस करना किसी के लिए भी मुश्किल होगा, खासकर जब शरीर खुद कपड़ों से ढका हुआ हो और उसकी पीठ पर हो। अपीलकर्ता के इस तर्क में दम प्रतीत होता है और मृतक के शरीर की पहचान के संबंध में संदेह पैदा होता है। प्रस्तुत अपीलों की सुनवाई के दौरान अभियोजन पक्ष द्वारा मामले के इस पहलू को स्पष्ट नहीं किया गया है।

87. मृतक दुबरी पांडे के सर की पहचान के संबंध में अपीलकर्ताओं द्वारा भी संदेह उठाया गया है। रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह पता चलता है कि अ०सा०-3 ने थाना-दुल्लाहपुर, गाजीपुर के थानाध्यक्ष को अपने ट्यूबवेल के पास एक तालाब से सर की बरामदगी के बारे में सूचना दी। सर को एक पॉलीथिन में रखा गया था जो भैंस के खुर (क्रैकिंग) में फंस गया और मवेशियों के साथ बाहर आ गया। सर की ऐसी बरामदगी के बारे में सूचना प्रदर्श का-3

द्वारा वर्ष 13-3-1996 को देर शाम प्राप्त हुई। बरामद सर प्रदर्श क-15 की जांच से पता चलता है कि पंचान की कार्यवाही 14.3.1996 को सुबह 7.15 बजे समाप्त हुई।

88. जांच से पता चलता है कि 13.3.1996 को 21.45 बजे प्रविष्टि संख्या-37 द्वारा एक अज्ञात मौत की सूचना दी गई थी। पूछताछ के समय सर की पहचान नहीं हो पाई थी। अभियोजन पक्ष का आरोप है कि विवेचनाधिकारी को गांव रैकवार डीह में जांच के दौरान एक बुजुर्ग व्यक्ति का सर बरामद होने की सूचना मिली। ऐसी सूचना विवेचनाधिकारी को 14-3-1996 को प्राप्त हुई थी। विवेचनाधिकारी को अ०सा०-5 के रूप में पेश किया गया है और सूचना देने वाले से सर की बरामदगी के बारे में सूचना प्राप्त करने के संबंध में निम्नानुसार कहा गया है:

"सिर के बरामदगी के सम्बन्ध में दुल्हपुर से सूचना मिली थी। यह सूचना १४-३-९६ को मिली थी। समय याद नहीं है। केस डायरी के पर्चा नं०-३ में अंकित किया है। स्वयं कहा कि मुझे मुखबिर से ऐकवारे डीह में सूचना मिली थी।

मैंने मृतक के सिर की बरामदगी नहीं की थी। केवल बरामदगी स्थल का निरीक्षण किया था।

दुबहा ताल पर वादी मुकदमा की औरत कुसुम थी। तथा विपिन कुमार दुबे, चन्द्रदेव राय, सीताराम सिंह को भी लेकर पहुँचा था। मैंने उक्त व्यक्तियों का सिर बरामदगी के संबंध में

बयान नहीं लिखा था। वे बरामदगी के गवाह नहीं थे। शिनाख्त के गवाह थे।

यह कहना गलत है कि सिर को पोस्टमार्टम होते समय मैं गाजीपुर पहुंचा था।"

89. अभियोजन पक्ष के अनुसार बरामद सर की पहचान अ०सा०-4 कुसुम पांडे द्वारा की गई है, जो सूचनाकर्ता अ०सा०-1 की पत्नी है। इस गवाह ने अपनी जिरह में कहा है कि विवेचनाधिकारी सुबह करीब 5.00 बजे उसके घर पहुंचे और वह अपनी जीप में उसके साथ चली गई। अ०सा०-4 ने कहा है कि विवेचनाधिकारी ने उसे सूचित किया कि दुबरी पांडे का लापता सर बरामद कर लिया गया है और वह उसकी पहचान करने के लिए उसके साथ आ सकती है। वह बताती हैं कि जिस स्थान पर मृतक का सर मिला था, वहां पहुंचने में करीब डेढ़ घंटे का समय लगा। सीताराम सिंह, विपिन दुबे और गांव के कुछ अन्य निवासियों के अलावा वह अपने घर से अकेली थी। उनका दावा है कि बरामद सर को पॉलीथीन में रखा गया था और तब तक सील नहीं किया गया था। उनका दावा है कि उनकी मौजूदगी में पुलिस कर्मियों द्वारा कोई कानूनी औपचारिकता नहीं की गई थी। अ०सा०-4 का बयान प्रासंगिक है और इसके बाद पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"दिनांक १४.३.९६ को दरोगा जी मेरे घर गए थे, दरोगा जी मेरे लगभग पांच बजे भोर में गये थे। उनके साथ पुलिस थे, पुलिस के अलावा उनके साथ और कोई नहीं था। मेरे घर दरोगा जी पुलिस के जीप से गए थे, दरोगा जी घर गये तो बताये कि सर मिल

गया है चल कर पहचान कर लो तो तुरंत मैं दरोगा जी के साथ चल दी। जब मैं पहुंची पोखरे तो दिन निकल गया था। मैं घड़ी नहीं पहनी थी इसलिए मैं ठीक समय नहीं बता सकती कि क्या बजा था। घर से पोखरे तक थाने में लगभग एक डेढ़ घण्टा लगा होगा। वहां पहुंचने पर लग ४-७ बज रहा था। मैं अपने घर की अकेली थी, और सीताराम सिंह, विपिन दुबे तथा गांव के एक दो लोग और थे बाकी पुलिस थी। मुझे इस समय याद नहीं है कि उस पोखरी के आस पास घर थे या नहीं। उस पोखरी के अगल बगल कुछ पेड़ वगैरह थे। मैं वहां पहुंची तो पुलिस दरोगा लोग थे और जनता के दो चार लोग थे। वह सिर पोखरी के दाहिनी व पूर्वी कोने पर थी, फिर कही कि सिर दाहिनी पश्चिम कोने पर थी। मैं पोखरी पर सिर बरामदगी वाले जगह पर लगभग आधे घण्टे रही। जब मैं गयी तो पॉलीथीन में रखा हुआ सर रस्सी से बंधा हुआ नहीं था, पॉलीथीन खुला था, पॉलीथीन का रंग इस समय याद नहीं है, पोखरी पर हमारे सामने दरोगाजी सराय लखंसी के कोई लिखा पट्टी नहीं किया। पॉलीथीन से जो पहले से वहां पुलिस थी वही सिर निकल कर मुझे दिखायी। पॉलीथीन की लम्बाई चौड़ाई मुझे याद नहीं है मैं अन्दाज से भी लम्बाई चौड़ाई नहीं बता सकती। दुबरी पाण्डेय की मृत्यु के समय उम्र लगभग ७० वर्ष थी। उनका सर निकला गया तो उनका चेहरा खून से लतपथ नहीं था। चेहरा विकृत हुआ था। पहचान में आ रहा था। चेहरे पर भी चोट थी, चेहरे पर कटे की घाव थी, सूजन नहीं थी। जबड़ा कटा हुआ था, गाल पर चोट नहीं थी, माथे पर चोट नहीं थी, दाहिनी आँख के ऊपर चोट थी।

दरोगा जी ने मेरी बयान लिया था। दरोगा जी ने जहाँ मैं सिर को पहचानी थी वहीं पर मुझसे पूछे थी किसिर को पहचान रही हो मैं कहा कि हाँ मैं घड़ी नहीं पहनी थी, फिर वहाँ से मैं पुलिस वाली जीप से ही घर आयी, याद नहीं है कि मैं कितने बजे घर पहुँची। यह कहना गलत है कि न मैं मौके पर गयी और न मेरे सामने सर की बरामदगी हुई।"

90. रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य से यह पता चलता है कि अ०सा०-3 की सूचना पर बरामद अज्ञात सर पंचान कार्यवाही के अधीन था जो 14.3.1996 को सुबह 7.15 बजे समाप्त हुआ। पंचान की कार्यवाही के अनुसार, बरामद सर एक अज्ञात व्यक्ति का था। पंचायतनामा में यह भी दर्ज है कि बरामद सर को सील कर शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया था। यदि अ०सा०-4 जांच के स्थान पर पहुँच गया था और उसने सर की पहचान दुबरी पांडे के रूप में की थी, तो जांच रिपोर्ट में ऐसी पहचान का उल्लेख किया जाना चाहिए था, लेकिन यहां ऐसा नहीं है।

91. हम अन्यथा अभियोजन पक्ष के मामले में कुछ लापता लिंक पाते हैं .. दुल्लाहपुर थाना को रात 9.45 बजे सर बरामद होने की सूचना मिली थी। थाना-दुल्लाहपुर में तैनात अ०सा०-8 राजेंद्र प्रसाद सिंह के बयान में पता चलता है कि इस गवाह को कांस्टेबल राज कुमार के साथ जांच और उपनिरीक्षक उमा नाथ शुक्ला द्वारा पंचान की तैयारी के लिए भेजा गया था। उनका दावा है कि अंधेरा होने के कारण रात में पंचायतनामा नहीं की जा सकी और अगली सुबह पंचान कि कार्यवाही की गई। उन्होंने कहा

है कि थाने में ऐसी सूचना मिलने के बाद वह रात करीब 11.00 बजे तालाब पर पहुँचे। उन्होंने विशेष रूप से कहा है कि पुलिस कर्मियों ने रात में सर नहीं देखा था और सुबह लगभग 7.00 बजे ही देखा था। इस गवाह ने यह भी कहा है कि वायरलेस सेट पर समीपवर्ती जिला मऊ से किसी मृत व्यक्ति का सर गायब होने की कोई सूचना नहीं मिली थी। हालांकि इस गवाह ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है, जिसके अनुसार, पूछताछ लगभग 7.00-8.00 बजे अवधारित की गई थी, लेकिन बाद में उन्होंने कहा कि पूछताछ सुबह 8.00-9.00 बजे तक समाप्त हो गई।

92. अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि सर की बरामदगी के संबंध में सूचना काफी देर शाम प्राप्त हुई थी और पुलिस कर्मी लगभग 11.00 बजे तालाब में पहुँचे जहां से अज्ञात सर बरामद किया गया था। अ०सा०-8 स्वीकार करता है कि उसने रात में बरामद सर को नहीं देखा था। यदि ऐसा है तो यह कल्पना करना कठिन होगा कि विवेचनाधिकारी को कैसे पता चला कि बरामद सर किसी वृद्ध पुरुष का है और मृतक का हो सकता है। रिकॉर्ड पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह पता चले कि सर की बरामदगी के संबंध में सूचना सराय लखनसी, जिला मऊ के पुलिस कर्मियों को परिचालित की गई थी। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर भी कुछ भी नहीं है कि विवेचनाधिकारी को एक बुजुर्ग व्यक्ति के सर की बरामदगी के बारे में कब और कैसे पता चला। अज्ञात सर उस स्थान से काफी दूरी से बरामद किया गया था जहां सर कटी हुई लाश

बरामद की गई थी और अ०सा०-4 ने खुद स्वीकार किया है कि उसे तालाब तक पहुंचने में लगभग डेढ़ घंटे का समय लगा। अभियोजन का यह मामला कि विवेचनाधिकारी (अ०सा०-5) को 14.3.1996 को एक सूचनाकर्ता से सर की बरामदगी के बारे में सूचना प्राप्त हुई, ऐसी सूचना प्राप्त होने का समय या तरीका या व्यक्ति जिससे ऐसी जानकारी प्राप्त हुई थी, निर्दिष्ट किए बिना अभियोजन पक्ष के मामले में संदेह पैदा करता है।

93. अ०सा०-5 का यह कथन कि वह गांव रायकवार डीह में था और अ०सा०-4 के घर सुबह 5.00 बजे आया और सर की पहचान के लिए उसके साथ चला गया, भी कुछ संदेह पैदा करता है। विवेचनाधिकारी द्वारा केस डायरी में न तो सूचना प्राप्त करने के समय का उल्लेख किया गया है, न ही अभियोजन पक्ष ने संतोषजनक ढंग से बताया है कि कैसे बरामद अज्ञात सर की पहचान मृतक दुबरी पांडे के रूप में की गई थी। बरामद सर की शिनाख्त के लिए प्रथम सूचना देने वाले की पत्नी के अलावा कोई अन्य व्यक्ति आगे नहीं आया है।

94. उपरोक्त के अलावा, अभियोजन कहानी में कुछ अन्य खामियां हैं। सर कटे शव के शव परीक्षण से पता चलता है कि पहली बार मौत से पहले की चोट क्लीन कट थी। छिद्रित घाव 14x13सेमी x हड्डी गहरी पूरा (एपी व्यास), उपरोक्त स्टर्नल पायदान से 3 सेमी ऊपर और गर्भाशय ग्रीवा सात कशेरुका अंतर्निहित हड्डी के आधार से 1 सेमी ऊपर। सर का काटना ग्रीवा छह कशेरुका के स्तर पर होता है जबकि सर की शव परीक्षण रिपोर्ट सी 2 के स्तर पर

साफ कटौती दिखाती है। शरीर और सर में कटौती की स्थिति पूरी तरह से मेल नहीं खाती क्योंकि वे एक अलग स्तर पर हैं। इससे अभियोजन पक्ष में ही संदेह पैदा होता है कि बरामद सर मृतक दुबरी पांडे के शरीर का हिस्सा था।

95. हमने अन्यथा सत्र परीक्षण के मूल रिकॉर्ड की सावधानीपूर्वक जांच की है और हम एस.एस.पी. मऊ (पेपर संख्या-392 / 10) दिनांक 13.3.1996 के समक्ष प्रस्तुत अभियुक्त के एक हलफनामे का अस्तित्व पाते हैं जिसमें आरोपी राकेश कुमार पांडे ने विवेचनाधिकारी (अ०सा०-5) के खिलाफ गंभीर आरोप लगाए हैं और किसी अन्य राजपत्रित पुलिस अधिकारी द्वारा जांच किए जाने की प्रार्थना की है। आरोपी राकेश कुमार पांडेय ने बताया है कि संसाधनों के अभाव में उसका परिवार मुश्किल दौर से गुजर रहा था। बड़ा बेटा होने के नाते, वह अपनी पढ़ाई के लिए अखबार बेच रहा था। अखबार की सप्लाई भी काफी समय से उसके द्वारा थाने में थी। हालांकि, 1 मई, 1995 से 31 जनवरी 1996 तक अखबारों के बिलों का भुगतान नहीं किया गया था, जिनकी राशि 1458/- रुपये थी। राशि नगण्य नहीं है। आरोपी ने कहा है कि उसने विवेचनाधिकारी वीबी सिंह यादव के खिलाफ 15.2.1996 और 21.2.1996 को एस.पी. मऊ को शिकायत की थी, जिसके कारण वह उससे बेहद नाखुश था। इसलिए, यह आरोप लगाया गया है कि ऐसे कारणों से और अन्य बाहरी कारणों से भी विवेचनाधिकारी उसे फंसाने के लिए पहले सूचनादाता के साथ मिलीभगत से काम कर रहा था। बचाव पक्ष ने कहा कि सर

कलम किया गया शव सुबह देखा गया था और जय प्रकाश सिंह और राम बदाई सिंह नामक व्यक्ति ने पुलिस को एक अज्ञात शव की बरामदगी के बारे में सूचना दी थी। यह मामला विशेष रूप से ब०सा०-2 द्वारा स्थापित किया गया है।

96. प्राथमिकी के अनुसार घटना के दो अन्य गवाह सीताराम सिंह और चंद्रदेव राम अदालत के समक्ष अपने बयान देने के लिए आगे नहीं आए हैं। हालांकि बगल के ईट-भट्ठे के कई अन्य श्रमिकों ने कथित तौर पर अ०सा०-1 के अनुसार घटना को देखा है, लेकिन न तो उन्हें सबूत में पेश किया गया है, न ही विवेचनाधिकारी द्वारा उनकी जांच की गई है। उनके बयान भी धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज नहीं किए गए हैं। अ०सा०-1 की गवाही अन्यथा निम्नलिखित कारणों से रिकॉर्ड पर अन्य सबूतों के साथ असंगत पाई जाती है: -

(i) अ०सा०-1 ने हालांकि कहा है कि ईट-भट्ठे के कामगारों ने घटना देखी है लेकिन यह वक्तव्य दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत विवेचनाधिकारी को दिए गए उनके पहले के बयान से स्पष्ट सुधार है। अन्यथा कर्मकारों के बयान दर्ज नहीं किए गए हैं। ये कामगार स्वतंत्र और विश्वसनीय गवाह हो सकते हैं और साक्ष्य के रूप में उनका अस्पष्ट रूप से पेश न होना अभियोजन पक्ष के मामले में संदेह पैदा करता है।

(ii) यद्यपि अ०सा०-1 में आरोप लगाया गया है कि अभियुक्त ने लगभग एक ही घटना में मृतक का सर काट दिया और उसके अंगूठे भी काट दिए, लेकिन शव परीक्षण रिपोर्ट से पता

चलता है कि सर काटने की घटना एक मृत्यु-पूर्व चोट थी जबकि अंगूठे को काटना एक शव-परीक्षण चोट थी। अतः सर काटने और अंगूठा काटने की क्रिया एक साथ अथवा एक ही घटना में प्रतीत नहीं होती है। यह अ०सा०-1 की गवाही के संबंध में भी गंभीर संदेह पैदा करता है।

(iii) अ०सा०-1 का दावा है कि मृतक ने शौच किया था और जबकि शव परीक्षण रिपोर्ट मृतक के मलाशय के भरे होने और मृतक के मलाशय से मल पदार्थ बाहर आने को दर्शाती है।

(iv) मृतक दुबारी पांडे के शव की पहचान नहीं की गई है।

(v) हम यह भी पाते हैं कि अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक दुबारी पांडे का कभी विवाह नहीं हुआ था। अ०सा०-1 की गवाही में यह तथ्य उनके अपने दस्तावेज यानी वसीयत और उपहार विलेख दिनांक 30.3.1995 और 24.4.1995 से विरोधाभासी है, जो रिकॉर्ड करता है कि मृतक की पत्नी की पहले ही मृत्यु हो चुकी है। यह विश्वास करना मुश्किल है कि एक पोता होने और मृतक की पूरी संपत्ति विरासत में मिलने के कारण, अ०सा०-1 अपने ही दादा-दादी की वैवाहिक स्थिति से अनजान होगा।

निष्कर्ष

97. प्रस्तुत मामले के रिकॉर्ड की सावधानीपूर्वक जांच करने के बाद, हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष का मामला मुख्य रूप से अ०सा०-1 की मौखिक गवाही पर आधारित है जो अत्यधिक हितबद्ध गवाह है। उनकी गवाही स्टर्लिंग प्रकृति की नहीं पाई गई है। नंद लाल

और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2023) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 262 में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले में, न्यायालय ने वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य, 1957 एस.सी.आर 981 पर भरोसा करते हुए गवाहों की श्रेणी को निम्नानुसार वर्गीकृत किया है: -

"33. निर्विवाद रूप से, प्रस्तुत मामला हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य पर टिकी हुई है। इसमें कोई शक नहीं कि उनमें से दो घायल गवाह हैं। इस न्यायालय ने, वडिवेलु थेवर बनाम मद्रास राज्य 7 के मामले में, इस प्रकार देखा है:

"11. इसलिए, हमारी राय में, यह कानून का एक ठोस और अच्छी तरह से स्थापित नियम है कि अदालत गुणवत्ता से संबंधित है, न कि किसी तथ्य को साबित करने या अस्वीकार करने के लिए आवश्यक साक्ष्य की मात्रा के साथ। सामान्यतया, इस संदर्भ में मौखिक गवाही को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात्:

- (1) पूरी तरह से विश्वसनीय।
- (2) पूरी तरह से अविश्वसनीय।

(3) न तो पूरी तरह से विश्वसनीय और न ही पूरी तरह से अविश्वसनीय। सबूत की पहली श्रेणी में, अदालत को किसी भी तरह से अपने निष्कर्ष पर आने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए - यह दोषी ठहरा सकता है या एक गवाह की गवाही पर बरी हो सकता है, अगर यह तिरस्कार या रुचि, अक्षमता या अधीनता के संदेह से परे पाया जाता है। दूसरी श्रेणी में,

अदालत को समान रूप से अपने निष्कर्ष पर आने में कोई कठिनाई नहीं है। यह मामलों की तीसरी श्रेणी में है, कि अदालत को चौकस रहना होगा और विश्वसनीय गवाही, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य द्वारा महत्वपूर्ण विवरणों में पुष्टि की तलाश करनी होगी..... [1957] एस.सी.आर 981

34. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि "पूरी तरह से विश्वसनीय" गवाह की श्रेणी में, अभियोजन पक्ष के लिए इस तरह के गवाह की गवाही के आधार पर दोषसिद्धि के लिए दबाव डालने में कोई कठिनाई नहीं है। "पूरी तरह से अविश्वसनीय" गवाह के मामले में, फिर से, कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि "पूरी तरह से अविश्वसनीय" गवाह द्वारा प्रदान की गई मौखिक गवाही के आधार पर कोई सजा नहीं दी जा सकती है। वास्तविक कठिनाई साक्ष्य की तीसरी श्रेणी के मामले में आती है जो आंशिक रूप से विश्वसनीय और आंशिक रूप से अविश्वसनीय है। ऐसे मामलों में, अदालत को चौकस रहने और अनाज से भूसी को अलग करने की आवश्यकता होती है, और विश्वसनीय गवाही, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य से आगे की पुष्टि की आवश्यकता होती है।

98. अ०सा०-1 की गवाही पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह की श्रेणी में नहीं आती है क्योंकि अ०सा०-1 एक अत्यधिक हितबद्ध गवाह है। इस परिस्थिति में न्यायालय को चौकस रहने और अनाज से भूसी को अलग करने और विश्वसनीय साक्ष्य, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य से आगे की पुष्टि करने की आवश्यकता है।

99. जब उपरोक्त के आलोक में अ०सा०-1 की गवाही की जांच की जाती है, तो यह न्यायालय पाता है कि मृतक द्वारा अ०सा०-1 के पक्ष में निष्पादित कथित वसीयत और उपहार विलेख की वास्तविकता के संबंध में मुद्दे हैं और इसलिए, अपीलकर्ताओं के मकसद पर संशय का एक बादल है। उपहार और वसीयत, प्रथम दृष्टया स्वामित्व कार्यवाही में पारित वर्ष 1966 के चकबंदी न्यायालय के आदेश के साथ असंगत प्रतीत होता है। अ०सा०-1 इन दस्तावेजों का स्पष्ट लाभार्थी है और अन्यथा अत्यधिक हितबद्ध गवाह है जिसकी गवाही विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती है। तथ्य यह है कि वह अपने दादा की वैवाहिक स्थिति को नहीं जानता है, जिसने कथित तौर पर अन्य औलादों के बहिष्कार के लिए अपने पक्ष में वसीयत और उपहार निष्पादित किया है, संदिग्ध है। उन्होंने इस तथ्य को भी छिपाया है कि अन्य व्यक्तियों ने विवेचनाधिकारी से इस घटना को देखा था। हमने अन्यथा देखा है कि अ०सा०-1 की गवाही रिकॉर्ड पर मौजूद चिकित्सा साक्ष्य के साथ असंगत है। उसकी गवाही में सुधार हैं जिन्हें समझाया नहीं गया है। रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के सावधानीपूर्वक मूल्यांकन के बाद, हम अ०सा०-1 को भरोसेमंद मानने के इच्छुक नहीं हैं और इसलिए, उनकी गवाही न तो भरोसेमंद है और न ही विश्वसनीय। शव की पहचान के संबंध में अन्य गंभीर मुद्दे हैं जिनके लिए विस्तृत कारण ऊपर दिए गए हैं। यहां तक कि अगर हम बचाव पक्ष के संस्करण को पूरी तरह से नजरअंदाज कर देते हैं कि मृतक की मृत्यु पहले हो गई थी, फिर भी इस मामले के रिकॉर्ड से सुरक्षित रूप से क्या अनुमान लगाया

जा सकता है कि अभियोजन पक्ष का मामला संदेह के लिए खुला है और एक बार जब हमें मुख्य अभियोजन गवाह की विश्वसनीयता पर संदेह होता है, तो हमारे लिए अभियोजन पक्ष के मामले पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा ताकि दो आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया जा सके।

100. हालांकि विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है, लेकिन हम निचली अदालत के फैसले से पाते हैं कि अ०सा०-1 की गवाही में अंतर्निहित विरोधाभासों की तुलना में चिकित्सा साक्ष्य, जैसा कि ऊपर देखा गया है, पूरी तरह से अनदेखी की गई है। अभियोजन साक्ष्य के आधार पर शव की पहचान के संबंध में अन्य परिस्थितियों की भी सावधानीपूर्वक जांच नहीं की गई है। विचारण न्यायालय ने यह विचार करने के लिए पूरी तरह से छोड़ दिया है कि चकबंदी अदालत का एक आदेश मौजूद था जिसके अनुसार मृतक की संपत्ति को सूचनाकर्ता और उसके भाई के साथ-साथ आरोपी व्यक्तियों की अन्य शाखा पर समान अनुपात में हस्तांतरित करना था। हम यह भी पाते हैं कि अ०सा०-1 ने अपनी गवाही में स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक दुबरी पांडे की कभी शादी नहीं हुई थी। अ०सा०-1 की गवाही में यह तथ्य उनके अपने दस्तावेज यानी वसीयत और उपहार विलेख दिनांक 30.3.1995 और 24.4.1995 से विरोधाभासी है, जो रिकॉर्ड करता है कि मृतक की पत्नी की पहले ही मृत्यु हो चुकी है। यह विश्वास करना मुश्किल है कि एक पोता होने और मृतक की पूरी संपत्ति विरासत में मिलने के कारण, अ०सा०-1 मृतक की वैवाहिक

स्थिति से अनजान होगा। इस पहलू को भी निचली अदालत ने स्पष्ट रूप से अनदेखा किया है।

101. ऊपर की गई चर्चाओं और विचार-विमर्श के मददेनजर, हम अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर अपरिहार्य निष्कर्ष पर आते हैं कि यह संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने में विफल रहा है। नतीजतन, इन दो अपीलों की अनुमति दी जाती है और आरोपी अपीलकर्ताओं राकेश पांडे और यशवंत चौबे को निर्णय और आदेश दिनांक 10.2.2020/11.02.2020, जो सत्र परीक्षण संख्या-75 वर्ष 1996 में सत्र परीक्षण संख्या-75 वर्ष 1996 में, धारा 147, 148, 201 और 302/34/149 भ०द०वि०, थाना-सराय लखंसी, जिला: मऊ, में पारित किया गया था को उलट दिया जाता है। मृत्यु संदर्भ संख्या-4 वर्ष 2020 का तदनुसार उत्तर दिया जाता है।

102. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को, यदि वे धारा 437 ए द०प्र०स० के अनुपालन के अधीन, किसी अन्य मामले में वांछित न हों, तुरंत रिहा किया जाए।

(2023) 4 ILRA 1461

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा,

आपराधिक अपील संख्या 1335/2009

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 1209/2009 और
1334/2009

ताहिर एवं अन्य ...अपीलकर्ता (जेल में)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...विपक्षीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री पी.सी. श्रीवास्तव, श्री ए.एम. जैदी, श्री अभय कुमार श्रीवास्तव, श्री अजय कुमार सिंह, श्री अश्वनी कुमार पांडे, श्री बृज राज सिंह, डा० अरुण श्रीवास्तव, श्री हाजी कमाल खान, श्री मो. यासीन, श्री नजरूल इस्लाम जाफरी, श्री राजेश कुमार मिश्रा, श्री शाहिद अली सिद्दीकी, श्री सुशील कुमार पाल, श्री मोहम्मद समीउज्जमां खान
अधिवक्ता विपक्षीगण: जी.ए.

आपराधिक कानून- आपराधिक अपील- धारा 302 सपठित धारा 147, 148 और 149 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि- प्रत्यक्षदर्शी- मामूली देरी अत्यधिक देरी नहीं है- अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है- क्षेत्रीय मजिस्ट्रेट को एफआईआर भेजने में देरी महत्वपूर्ण नहीं है- तीन प्रत्यक्षदर्शी- आशय सिद्ध करने की जरूरत नहीं- सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में प्रत्यक्ष कार्य- उस सभा का प्रत्येक सदस्य रचनात्मक रूप से उत्तरदायी होगा- विभिन्न भूमिकाएं मायने नहीं रखती- धारा 149 एक अलग और विशिष्ट अपराध स्थापित करती है- सभी अपीलकर्ता कथित गैरकानूनी सभा के सदस्य साबित हुए- मामूली भिन्नताओं से वाद की योग्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता- मामूली विसंगतियों के आधार पर गवाह की गवाही पर अविश्वास नहीं किया जा सकता- अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपने

मामले को साबित करने में सफल रहा- अपील निरस्त। (पैरा 58, 60, 62, 76, 77, 78, 84, 124)

आयोजित:

अनिल राय बनाम बिहार राज्य, (2001) 7 एससीसी 318 और पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह, (2005) 7 एससीसी 408 में यह माना गया है कि एफ.आई.आर. की प्रति क्षेत्रीय मजिस्ट्रेट को भेजने में देरी महत्वपूर्ण नहीं है, जहां यह प्रदर्शित किया गया है कि एफ.आई.आर. तुरंत दर्ज की गई थी और उसी आधार पर जांच शुरू की गई थी। देरी उस स्थिति में महत्वपूर्ण नहीं है जब अभियोजन पक्ष ने इसके लिए ठोस और उचित स्पष्टीकरण दिया हो। (पैरा 62)

किसी गैरकानूनी जमावड़े के किसी सदस्य के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में किए गए किसी प्रत्यक्ष कार्य के लिए, उस जमावड़े का प्रत्येक सदस्य ऐसे कार्यों के लिए भी रचनात्मक रूप से उत्तरदायी होगा, जहां ऐसे कृत्य अपराध की श्रेणी में आते हैं। आरोपी हसन द्वारा मृतक को डंडे से मारना या आरोपी नाजुक और नाज़िम द्वारा उस्तरा और चाकू से वार करना तथा ताहिर, भाईयन और पप्पू कमीना द्वारा आग्नेयास्त्र का उपयोग करना यह स्थापित करता है कि सभी आरोपियों का उद्देश्य एक ही था। उपरोक्त साक्ष्यों से, प्रत्येक आरोपी की गैरकानूनी सभा के सदस्य के रूप में उपस्थिति और भागीदारी स्पष्ट रूप से स्थापित होती है। (पैरा 76)

इस वाद में, सभी अपीलकर्ता कथित गैरकानूनी भीड़ के सदस्य सिद्ध हुए जिनके पास घातक हथियार थे, सिवाय आरोपी हसन के जिसके हाथ में लाठी थी। मृतक को नीचे गिराने के लिए लाठी का इस्तेमाल किया गया था और लाठी से हमला किया गया था। लाठी से किए गए हमले के कारण कोई घातक चोट नहीं आई हो सकती है, लेकिन मृतक की हत्या करने के समान उद्देश्य वाली गैरकानूनी भीड़ का सदस्य होने के नाते, आरोपी हसन को धारा 149 की सहायता से धारा 302 आईपीसी के तहत हत्या के अपराध के लिए भी दोषी ठहराया जा सकता है। (पैरा 84)

अभियोजन पक्ष ने सभी आरोपियों के विरुद्ध धारा 147, 148, 302 सपठित धारा 149 आईपीसी के तहत उचित संदेह से परे वाद सिद्ध करने में सफलता प्राप्त की है। अपीलकर्ता कोई संदेह पैदा नहीं कर सके और कोई ऐसा आधार स्थापित नहीं कर सके जिसके आधार पर उपरोक्त आरोपों के तहत दर्ज दोषसिद्धि को निरस्त किया जा सके। हालांकि यह क्रूर हत्या का वाद है, फिर भी विचारणीय न्यायालय ने केवल न्यूनतम सजा सुनाई है जिसे निरस्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि दोषसिद्धि और सजा के संबंध में अपील में कोई बल नहीं है और इसे निरस्त किया जाना चाहिए। (पैरा 124)

अपील निरस्त (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. राजस्थान राज्य बनाम दाउद खान, 2015 0 सुप्रीम (एससी) 1041
2. अनिल राय बनाम बिहार राज्य, (2001) 7 एससीसी 318
3. पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह, (2005) 7 एससीसी 408
4. नागराज बनाम राज्य, (2015) 4 एससीसी 739
5. वक्कर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 (2) एएलजे 452 (एससी)
6. नथुनी यादव बनाम सेंट ऑफ बिह, (1998) 9 एससीसी 238
7. लालजी बनाम राज्य, एआईआर 1989 एससी 754
8. भूदेव मंडल बनाम राज्य, एआईआर 1981 एससी 1219
9. फते बनाम राज्य, एआईआर 1979 एससी 1504
10. विशंबर भगत बनाम राज्य, एआईआर 1971 एससी 2381
11. मसलाती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1965 एससी 202
12. राज्य बनाम कृष्ण चंद, एआईआर 2004 एससी 4671
13. भगवान जगन्नाथ मारकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537
14. रमेश बनाम यूपी राज्य, (2009) 15 एससीसी 513
15. मकसूदन बनाम यूपी राज्य, (1983) 1 एससीसी 218
16. नानकौनू बनाम यूपी राज्य, (2016) 3 एससीसी 317
17. रमेश हरजन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 5 एससीसी 777
18. लीला राम बनाम हरियाणा राज्य (1999) 9 एससीसी 525
19. मुकेश बनाम राज्य (एनसीटी) डेल एवं अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161
20. खेम राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 1 एससीसी 202
21. दशरथ सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 एससीसी 408
22. पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह, (2005) 7 एससीसी 408
23. राहुल मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश एआईआर 2015 एससी 3043
24. वी.के. मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 9 एससीसी 588
25. मकबूल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 2011 एससी 184
26. शिव शंकर सिंह बनाम झारखंड राज्य, 2011 सी.आर.एल.जे. 2139 (एस.सी.)
27. धनज सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2004) 3 एससीसी 654
28. जगदीश मुराव बनाम यूपी राज्य, 2006 0 सुप्रीम (एससी) 775
29. मारुति राम नाइक बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2003 0 सुप्रीम (एससी) 863
30. संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक, कृष्णागिरी, 2012 0 सुप्रीम (एससी) 214
31. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम परसुराम यादव, 2005 0 सुप्रीम (सभी) 1309
32. राजस्थान राज्य बनाम दाउद खान, 2015 0 सुप्रीम (एससी) 1041
33. खिमा विकमशी बनाम गुजरात राज्य, 2003 0 सुप्रीम (एससी) 363
34. गणेश भवन पटेल एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य, 1978 0 सुप्रीम (एससी) 323

35. महावीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 6 एससीसी 716
36. हरेंद्र बनाम असम राज्य, एआईआर 2008 एससी 2467
37. हिमांचल शासन बनाम ओम प्रकाश, एआईआर 1972 एससी 975

(माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा, द्वारा प्रदत्त)

1. इन आपराधिक अपीलों को अपीलकर्ताओं द्वारा विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), बरेली की अदालत द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा के सामान्य निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर किया गया है, जिसे सत्र परीक्षण संख्या 249/2002 अन्तर्गत धारा 302 सहपठित धारा 147, 148, 302, 149 आईपीसी, अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (जिसे निर्णय के आगे के भागों में एससी/एसटी एक्ट के रूप में संबोधित किया जाएगा) की धारा 3 (2) (5) और शस्त्र अधिनियम, 1989 की धारा 25 और 4/25 थाना किला, जिला बरेली दिनांक 19.02.2009 के तहत पारित किया गया था जिसमें ट्रायल कोर्ट ने आरोपी व्यक्तियों को केवल धारा 147, 148, 302 और 149 आईपीसी के तहत दोषी ठहराया और धारा 4/25, धारा 3/25 आर्म्स एक्ट और धारा 3 (2) (5) एससी/एसटी एक्ट के तहत आरोपों से बरी कर दिया, इसलिए उन्हें एक साथ तय किया जा रहा है।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि 29.09.2001 को शिकायतकर्ता/सूचनादाता, रमेश

चंद्र भारती, अंसा०-1 ने 24.09.2001 को रात 08:25 बजे एक लिखित शिकायत दर्ज कराई कि 24.09.2001 को शाम 07:00 बजे वह (शिकायतकर्ता) अपनी दुकान से अपने भाई सुरेश चंद्र भारती के साथ अपने घर लौट रहे थे और जब वे डॉ. आर. के. शर्मा की दुकान के सामने पहुंचे, उनके मोहल्ले के ओम प्रकाश, हवलदार और गंगा राम उनसे मिले तो वह रुक गए और बात करने लगे। इसी बीच उसका भाई करीब 5-6 कदम आगे बढ़ा जहां ताहिर, भइयां, पप्पू हाथों में पिस्तौल लिए, नाजुक और नाजिम चाकू लिए और हसन ने डंडे के साथ उसे रोक लिया। ताहिर और हसन ने सुरेश को पकड़ लिया और उसे मारने के इरादे से नीचे फेंक दिया, ताहिर, भइयां और पप्पू @ कमीना ने हाथ में पकड़े पिस्तौल से गोलियां चलाई, नाजुक और नाजिम ने चाकुओं से हमला किया और हसन ने उसे डंडे से पीटा। उसका भाई मौके पर गिर गया, अफरा-तफरी मच गई, आरोपियों द्वारा की गई फायरिंग से सड़क पर चल रहे लोग बचे, लोगों ने अपनी दुकानें और अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियां बंद कर लीं। डर के मारे जब उन्होंने चुनौती दी तो आरोपी नई बस्ती की ओर भाग गए। उन्होंने अपराध करके भागने वाले आरोपी व्यक्तियों को बिजली के बल्बों की रोशनी में अच्छी तरह से पहचान लिया। लोगों की मदद से उसे जिला अस्पताल ले जाया गया जहां डॉक्टर ने उसे मृत घोषित कर दिया, इसके बाद वह शव को मोर्चरी में रखवाकर संबंधित थाने गया। उन्होंने आरोपियों के खिलाफ कार्रवाई करने का अनुरोध किया।

3. प्राथमिकी दर्ज होने के बाद, जांच अधिकारी (जिसे बाद में 'विवेचनाधिकारी' के रूप में

बुलाया जाएगा) ने जांच शुरू की। विवेचनाधिकारी ने घटना स्थल से खून से सनी मिट्टी, 315 बोर के खाली कारतूस अपने कब्जे में लेकर 26.09.2001 को आरोपी पप्पू @ कमीना को गिरफ्तार कर 315 बोर की देसी पिस्तौल और उसी बोर के जिंदा कारतूस बरामद किए। जांच रिपोर्ट प्रदर्शक -19 उसी दिन 21:30 बजे से 23:00 बजे तक तैयार की गई थी। पोस्टमार्टम डॉ जीडी कटियार द्वारा 25.09.2001 को सुबह 03:15 बजे किया गया था। उन्होंने बंदूक के घाव, कटे हुए घाव और खरोंच पाए। उनके अनुसार, मृतक की मौत मृत्यु से पहले की चोटों के कारण सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी। विवेचनाधिकारी, सीओ सिटी दिनेश सिंह ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट एकत्र की, मौके का नक्शा तैयार किया, शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान दर्ज किए, आरोपी व्यक्तियों को गिरफ्तार किया, उनके कब्जे से देसी पिस्तौल और चाकू बरामद किए, हथियारों की बरामदगी के संबंध में नक्शा नज़री तैयार किया, पांच 25 आर्म्स एक्ट के तहत आरोपी व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने की अनुमति ली और पांच आरोपियों के खिलाफ धारा 25 और 4/25 आर्म्स एक्ट के तहत प्रदर्शक क-12, प्रदर्शक क-29, प्रदर्शक क-30, प्रदर्शक क-31 और प्रदर्शक क-32 के रूप में आरोप पत्र दायर किए और सभी छह आरोपियों के खिलाफ आईपीसी और एससी/एसटी एक्ट की उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप पत्र प्रदर्शक क-18 दायर किया है।

4. अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की है:-

(i) अ०सा० -1, रमेश चंद्र भारती, शिकायतकर्ता / सूचनादाता; (ii) अ०सा०-2, ओम प्रकाश; (iii) अ०सा०-3, गंगा राम; (iv) अ०सा०-4, सेवक राम; (v) अ०सा०-5, धर्मपाल; (vi) अ०सा०-6, डा जीडी कटियार; (vii) अ०सा०-7, हेड कांस्टेबल राम सिंह; (viii) अ०सा० 8, विवेचनाधिकारी नवाब सिंह; (ix) अ०सा०-9, एसआई गुरुनाम सिंह, 25 आर्म्स एक्ट के तहत विवेचनाधिकारी; (x) अ०सा०-10, दिनेश सिंह, सी.ओ.-II, बरेली, जिन्होंने मुख्य विवेचनाधिकारी के रूप में मामले का संचालन किया; (xi) अ०सा०-11, संजय कुमार सिंह, एसओ, जिन्होंने पंचनामा किया; (xii) अ०सा०-12, एसआई नेक राम सिंह, जिन्होंने धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत मामले की जांच की; और (xiii) अ०सा०-13, एसआई अनवर अफाक जिन्होंने देसी पिस्तौल का फर्द बरामदगी तैयार किया।

5. अभियोजन पक्ष ने अभियोजन मामले के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज प्रस्तुत किए हैं और साबित किए हैं: -

(i) शिकायतकर्ता अ०सा० -1 द्वारा लिखित शिकायत, प्रदर्शक क-1; (ii) रेजर का फर्द बरामदगी प्रदर्शक क-2; (iii) प्रदर्शक क-3, चाकू की फर्द बरामदगी; (iv) प्रदर्शक क-4, चिक एफआईआर और पोस्टमार्टम रिपोर्ट की प्रति; (v) प्रदर्शक क-5 और प्रदर्शक क-6, जीडी; (vi) शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत चिक एफआईआर, प्रदर्शक क-7; (vii) प्रदर्शक क-8, जीडी; (ix) प्रदर्शक क-9 जीडी कार्बन कॉपी और प्रदर्शक क-10, फर्द बरामदगी; (xi) प्रदर्शक क-11, नक्शा नज़री; (xii) शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत आरोप-पत्र, प्रदर्शक क-12;

(xiii) प्रदर्श क-13, अभियोजन स्वीकृति; (xiv) प्रदर्श क-14, खून से सनी और सादी मिट्टी का फर्द बरामदगी; (xv) प्रदर्श क-15, देशी पिस्तौल और खाली कारतूस की फर्द बरामदगी; (xvi) प्रदर्श क-16, नक्शा नज़री; (xvii) प्रदर्श क-17, नक्शा नज़री; (xviii) धारा 147, 148, 302, 149 भारतीय दंड संहिता और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(5) के तहत आरोप-पत्र प्रदर्श क-18; (xix) प्रदर्श क-19, पंचायतनामा; (xx) प्रदर्श क-20 से प्रदर्श क-23, पंचायतनामा के साथ संलग्न कागजात (xxi) प्रदर्श क-24, नमूना मुहर; (xxv) प्रदर्श क-25, नक्शा नज़री; (xxvi) प्रदर्श क-26 से प्रदर्श क-28 तक, अभियोजन स्वीकृति; (xxix) प्रदर्श क-29 से प्रदर्श क-32, आरोप-पत्र; (xxxiii) प्रदर्श क-33, चिक एफ़ आई आर; (xxxiv) प्रदर्श क-34, कार्बन कॉपी जीडी।

6. अपीलकर्ता ने आधार लिया है कि ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर विचार नहीं किया है और उन्हें अवैध रूप से दोषी ठहराया और सजा सुनाई। सजा रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों के भार के खिलाफ है। यह ठोस निष्कर्ष पर आधारित नहीं है और आक्षेपित आदेश अवैध और कानून की दृष्टि से गलत है। आईपीसी की धारा 302, 149, 139 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है और कथित अपराध के लिए अपीलकर्ताओं को दोषी साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। इसलिए, विवादित फैसले और आदेश को रद्द किया जाए और अपीलकर्ताओं को बरी किया जाए।

7. 2009 की आपराधिक अपील संख्या 1209 में, अपीलकर्ता हसन और 2009 की आपराधिक अपील संख्या 1334 में, अपीलकर्ताओं नाजुक और नाजिम ने समान आधार लिया है, इसलिए इसे फिर से दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

8. संक्षेप में, गवाहों के साक्ष्य नीचे प्रस्तुत किए गए हैं: -

9. अ०सा०-1 मृतक सुरेश चंद्र भारती के छोटे भाई रमेश चंद्र भारती ने गवाही दी है कि वह जाति से धोबी है। 24.09.2001 को शाम लगभग 07:00 बजे वह और उनके भाई सुरेश चंद्र भारती अपनी टेंट की दुकान बंद करके अपने घर जा रहे थे। जब वे सड़क के क्रॉसिंग पर पहुंचे, तो ओम प्रकाश, गंगा राम, नरेंद्र @ हवलदार उनसे मिले। उसने उनसे बात करना शुरू कर दिया। इसी बीच उसका भाई 5 से 6 कदम आगे बढ़ गया। जब वह मुड़ा तो देखा कि ताहिर और हसन ने उसके भाई को जमीन पर गिरा दिया। ताहिर, भड़यां, पप्पू @ कमीना ने उसके भाई पर गोली चलाई और नाजुक और नाजिम ने चाकुओं से हमला कर दिया। आरोपी हसन ने डंडे से हमला कर दिया। इन छह लोगों के अलावा कोई नहीं था। भय्यन और ताहिर का मृतक से झगड़ा हुआ था और उन्होंने उसे देख लेने की धमकी दी थी। उनके भाई ने यह बात उन्हें और उनके परिवार को बताया थी, लेकिन उन्होंने इस घटना पर कोई ध्यान नहीं दिया। उनके अलावा ओम प्रकाश, नरेंद्र और गंगा राम ने भी इस घटना को देखा था। घायल को अस्पताल ले जाया गया, जहां

डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। गवाह ने अपने हस्ताक्षर की पहचान की और लिखित शिकायत को साबित कर दिया और यह भी कहा कि आरोपी उसके इलाके के निवासी हैं। वह उन्हें अच्छी तरह से जानता था। जिरह में इस गवाह ने बयान दिया था कि गवाहों ने उसके साथ हुई घटना को देखा था। दुकानें खुली थीं, दुकानदारों को यह घटना नहीं दिखी क्योंकि वे अपने काम में व्यस्त थे। कुल 3-4 दुकानें थीं, जिनमें से एक डॉ. आर. के. शर्मा की थी, एक नाथू की थी। वहां कल्लू की दुकान थी। वहां सिलाई की दुकान थी। यह घटना कल्लू की दुकान से दक्षिण की ओर करीब 50 कदम की दूरी पर हुई। नाथू की दुकान से घटना स्थल करीब 60 कदम पश्चिम की ओर था। उसके कपड़े भी खून से सने हुए थे। वह घायल को ई-रिक्शा से अपनी दुकान पर लेकर आया और पुलिस जीप में जिला अस्पताल ले गया। उन्होंने खुद कहा कि सबसे पहले उन्होंने पुलिस स्टेशन को सूचित किया जहां एसएसआई तेजेंद्र कुमार चौधरी ने कहा कि पहले आप अपने भाई को जिला अस्पताल ले जाएं, थाना - किला पहुंचने में लगभग दस मिनट लग गए। वह अंदर गया जहां रिपोर्ट लिखी गई थी। उन्होंने हेड मुहर्रिर से बात नहीं की, लेकिन एस.एस.आई., जिनके साथ वह परिचित नहीं थे, से कहा; उन्होंने किला चौकी को कोई जानकारी नहीं दी थी।

10. उसने अपने कपड़ों पर लगे खून को विवेचनाधिकारी को नहीं दिखाया। दहशत में आकर बाद में भी उसने उन कपड़ों को पुलिस को नहीं दिया। उसने एक रिक्शा लिया और उसमें अपने घायल भाई को लेकर बैठा था।

जीप तिराहे पर मिली, वहां से वह रिक्शा से उतरकर जीप से चला गया। यह तिराहा उनकी दुकान से 100-125 कदम उत्तर की ओर है। उसका घायल भाई बेहोश हो गया था। उसके इलाके के तीन-चार लोगों ने उसके भाई को रिक्शा पर बिठाया था, वह घबरा गया था इसलिए वह उनका नाम नहीं बता सका।

11. डॉक्टर के पूछने पर उसने अपना नाम बताया था। शिकायत को निरीक्षक द्वारा पढ़ा गया। वह पुलिस स्टेशन से घर आया और देखा कि कई लोग मौके पर मौजूद थे। पुलिस ने उससे पूछताछ की। वह यह नहीं बता सका कि उन्होंने उस समय खून से सनी मिट्टी पर कब्जा किया था या नहीं। उनका घर घटना स्थल से पश्चिम दिशा की ओर लगभग 100-150 कदम दूर होगा। पुलिस घटना स्थल से उसके सामने खून से सनी मिट्टी लेकर गई थी, जब वह पहुंचा तो रात के सवा नौ बज चुके थे। घर में मौजूद लोग/व्यक्ति रो रहे थे। पुलिस उसे बुलाने आई और पुलिस के साथ वह घटना स्थल पर रुके बिना ही जिला अस्पताल चला गया। उन्होंने खुद कहा कि वह अपने वाहन से अस्पताल गए थे, कई पुलिसकर्मी विशेष रूप से पुलिस अधिकारी उनके घर आए थे। उन्होंने पुलिस स्टेशन में बैठकर शिकायत लिखी थी। वह अकेले घर से अस्पताल पहुंचे, वहां ओम प्रकाश, राजेंद्र, ओम पाल, गंगा राम मौजूद थे। वे पंचायतनामा के समय भी मौजूद थे। उन्होंने पंचायतनामा पर हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने पंचों की राय की पुष्टि की कि मृतक की मौत चाकू और फायर आर्म्स से लगी चोट के कारण हुई थी। उन्होंने इसे लिखा और हस्ताक्षर किए थे। चोट भी डंडे

से लगी थी। वह यह नहीं जान सका कि उसने पुलिस अधिकारियों को सूचित किया था कि किन हथियारों से गोलियां चलाई गईं। चोट डंडे से लगी थी, जो पूछताछ में नहीं लिखा है। वह रात 10:00-11:00 बजे तक अस्पताल में रहे। वह और मृतक दोनों टेंट हाउस पर बैठते थे और कोई अन्य काम नहीं करते थे। यह सुबह 09:00 बजे खुलता था और शाम 06:30 - 07:00 बजे बंद हो जाता था। घटना के दिन शाम को उनकी दुकान पर कोई काम नहीं था, इसलिए मजदूर और ठेकेदार वहां मौजूद नहीं थे।

12. ज्यादातर समय वह और मृतक दुकान बंद करके साथ जाते थे। कभी-कभी भाई जल्दी घर चला जाता था। घटना से चार दिन पहले भी उसका भाई सुरेश अकेला घर गया था। मृतक का घटना से चार दिन पहले कुछ आरोपियों से झगड़ा हुआ था। इसके अलावा, वह और कभी हुई लड़ाई के बारे में नहीं जानता था।

13. आरोपी व्यक्तियों के घर उसके घर से 05 से 200 कदम की दूरी पर हैं।

14. उन्हें उसी दिन आरोपी और मृतक के बीच बहस के बारे में जानकारी मिली। शिकायत सुनने के बाद उन्होंने कहा कि पहले की लड़ाई के संबंध में जानकारी का उल्लेख नहीं किया गया है। उन्होंने इस तथ्य की सूचना विवेचनाधिकारी को भी नहीं दी है। घटना के समय जब उसने पहली बार पीछे मुड़कर देखा तो आरोपी उससे पश्चिम दिशा में थे और वे उसके भाई की हत्या कर रहे थे। घटना स्थल के पास ही जाकिर, मुंतयाज

पुत्रगण मुख्तियार, ताहिर, तुफैल और सज्जाद का घर था। नन्हे, मुन्नी और असगर के घर भी थे जहां लोग घरों में रहते थे। दहशत की स्थिति में उसने घटना के समय और जगह पर इन घरों में किसी को नहीं देखा।

15. घटना स्थल के पास नाले के ऊपर दो फीट चौड़ा स्लैब था। उस समय वह और उसका मृत भाई स्लैब पर मौजूद थे, लेकिन इसे पार नहीं किया था। इस स्लैब पर खून नहीं था। रात होने की वजह से वह यह नहीं देख पा रहा था कि उस पर खून गिरा है या नहीं।

16. विवेचनाधिकारी ने उनसे पहले नक्शा तैयार किया था। यह स्लैब दक्षिण उत्तर सड़क से पश्चिम की ओर मुड़ने पर पड़ता है। यह इस उत्तर दक्षिण सड़क से 15 कदम की दूरी पर हो सकता है।

17. जब उसने पहली बार सुरेश चंद्र को देखा तो वह जमीन पर पड़ा हुआ था और आरोपी उसे मार रहे थे। उसे डंडे से पीटने के बाद जमीन पर फेंक दिया गया, वह लाठी से हमलों की संख्या, डंडे की लंबाई और मोटाई या आकार नहीं बता सकता। पूरी घटना 2-2½ मिनट में हुई, उसने घटना के समय अपने भाई के शरीर पर चोटों को नहीं देखा था लेकिन अस्पताल में उस पर कई चोटें देखी थीं। वह गिनती नहीं कर सका कि मौके पर कितनी गोलियां चलाई गईं। गोलियां 1, 1½ - 2 कदम की दूरी से दागी गईं। सुरेश चंद्र के शरीर पर गोली जमीन पर गिरने के बाद लगी थी। लाठियों को छोड़कर बाकी सभी चोटें उसे

जमीन पर गिरने के बाद ही लगी थी। दो आरोपियों ने चाकू से 7-7, 8-8 बार हमला किया था। वे बार-बार चाकू घोंपकर हत्या कर रहे थे। सुरेश चंद्र को फायर से मारने के बाद नाजुक और नाजिम ने सुरेश चंद्र को पकड़ लिया और चाकू से गोदकर उसकी हत्या कर दी। उन्होंने चाकू और गोली लगने के बाद मृतक को जमीन पर नहीं गिराया था। बाद में डंडे से कोई हमला नहीं किया गया। घटना को अंजाम देने के बाद आरोपी उत्तर दिशा में नई बस्ती की ओर भाग गया। उन्होंने आरोपियों को पकड़ने की कोशिश नहीं की, क्योंकि उनके पास रिवाल्वर थी, उन्होंने घटना के बाद आरोपी व्यक्तियों को चाकू लहराते नहीं देखा था। उन्होंने आस-पड़ोस के लोगों को देखा था, जो अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियां बंद कर रहे थे, घटना के समय लोग सड़क पर आ रहे थे। घटना से पहले नासिर और साकिर उसके पड़ोस में ही रहते थे। उन्हें नहीं पता था कि उन्होंने अपना घर बेचा है या नहीं। उसे नहीं पता था कि मृतक और दोनों के बीच आए दिन विवाद और झगड़ा होता रहता था। यह सही हो सकता है लेकिन यह कहना गलत था कि मृतक के आतंक के कारण उन्होंने अपने घरों को छोड़ दिया था। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि मृतक वीसीआर और शराब के अवैध व्यापार में शामिल था और उसने आरोपी पप्पू से कुछ किस्तों में 5,000 रुपये भी लिए होंगे और पैसे नहीं चुका सके। यह गवाह स्वीकार करता है कि कल्लू की बेटी की शादी में घटना से पहले, जो आरोपी नाजुक का पिता है, उसके टेंट हाउस से सामान भेजे गए थे। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि कल्लू ने उन वस्तुओं के लिए पूरी राशि

का भुगतान नहीं किया था, जिसके कारण मृतक का कल्लू के साथ झगड़ा हुआ था। उन्होंने पप्पू के खिलाफ पुलिस मामले के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की। वह स्वीकार करता है कि गवाह उसके समुदाय से हैं, लेकिन उनके साथ किसी भी रिश्तेदारी से इनकार किया। इस गवाह ने आरोपी पक्ष द्वारा दिए गए सुझावों से इनकार किया था।

18. आरोपी हसन के लिए इस गवाह से स्वतंत्र रूप से जिरह की गई जिसमें उसने गवाही दी कि पंचायतनामा में मृत्यु डंडे से कारित किये जाने का उल्लेख नहीं किया गया है।

19. अ०सा०-2, ओम प्रकाश एक स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी ने बयान दिया है कि वह शिकायतकर्ता, उसके भाई और आरोपी व्यक्तियों को बहुत अच्छी तरह से जानता था। आरोपी नाजिम, नाजुक, ताहिर, भइयां, पप्पू और हसन किला कैंट के रहने वाले थे। यह घटना दिनांक 24-09-2001 की है, यह लगभग 07:00 बजे की है। तिराहे पर डॉ. आरके शर्मा की दुकान के पास उनकी मुलाकात रमेश चंद्र से हुई। उन्होंने बातचीत शुरू की, पूछने पर उसने बताया कि वह दुकान बंद करके जा रहा है। उन्होंने सुरेश चंद्र के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि वह आगे बढ़ गए हैं। इसके बाद जब उसने देखा तो उसे बंदूक चलने की आवाज सुनाई दी, सुरेश चंद्र पर नाजिम और नाजुक द्वारा चाकू से वार किया जा रहा था। पप्पू, ताहिर और भय्यन पिस्तौल से सुरेश चंद्र पर गोलियां चला रहे थे और हसन डंडे से मार रहा था। उनके अलावा रमेश, गंगा राम और नरेंद्र भी वहां मौजूद थे और

जब उन्होंने शोर मचाने की कोशिश की तो अफरा-तफरी मच गई। शटर गिरने लगे, दुकानदारों ने अपनी दुकानें बंद करनी शुरू कर दीं और लोगों ने अपने घरों के दरवाजे और खिड़कियां बंद करना शुरू कर दिया। इसके बाद आरोपी नई बस्ती के उत्तर की ओर भाग गए। उन्होंने देखा कि सुरेश चंद्र डॉ. आर. के. शर्मा की दुकान की पटरी पर पड़े हुए थे और मछली की तरह तड़प रहे थे। उन्होंने रमेश चंद्र की सलाह पर सुरेश चंद्र को रिक्शा में लाद दिया। वह रिक्शा लेकर नहीं गया लेकिन रमेश रिक्शा लेकर जिला अस्पताल चला गया। बाद में जब वह जिला अस्पताल पहुंचे, तो सुरेश चंद्र की मौत हो चुकी थी और उनका पंचनामा भरा जा चुका था।

20. जिरह में गवाह ने शिकायतकर्ता और मृतक के साथ किसी भी रिश्तेदारी से इनकार किया, और स्वीकार किया कि उसके और रमेश चंद्र के घर के बीच 5-6 घर हैं। उन्होंने कहा कि इस मामले के संबंध में विवेचनाधिकारी ने उनका बयान लिया था। उन्होंने सीओ को यह नहीं बताया कि वह रमेश चंद्र से मिले और उनसे बातचीत की। द० प्र० स० की धारा 161 के तहत उनके बयान में इन तथ्यों का भी उल्लेख नहीं किया गया था। उसने स्वीकार किया कि वह और रमेश एक ही समुदाय के हैं। आरोपी के घर और उसके घर के बीच 40 कदम की दूरी थी। घटना के बाद उन्होंने आरोपियों को पकड़ने की कोशिश की, लेकिन वे घटना स्थल से फरार हो गए। उन्होंने तुरंत पुलिस को फोन किया जो लगभग 07:00-07:15 बजे वहां पहुंची थी, प्रत्यक्षदर्शी गंगा राम और नरेंद्र उनके परिचितों के बीच मौजूद

थे। ये वे लोग थे जिन्होंने इस घटना को देखा था। गंगा राम और नरेंद्र उसके साथ रिक्शा से जिला अस्पताल गए।

21. उसने गवाही दी कि वह घटना के दिनों में दुकानदार था, नरेंद्र ड्राइवर था। गंगा राम एक कियोस्क (लकड़ी से बनी दुकान) में धोबी का काम करता है जो घटना के समय बंद था। नरेंद्र रेलवे जंक्शन से सीबीगंज, फतेहगंज तक अपना टैंपो चला रहा था। वह लगभग शाम 05:00-06:30 बजे टेम्पो के साथ वापस आता था और सुबह लगभग 07:00 बजे घर से निकल जाता था। उनकी खुद की किराने की दुकान घटना स्थल से पश्चिम दिशा की ओर करीब 100 कदम की दूरी पर है। यह लगभग साढ़े 10 - 11 बजे बंद हो जाता था। रात में वह रमेश से मौके पर मिला और उसके बाद वे लगभग 09:30 बजे अस्पताल में मिले। इस गवाह के अनुसार, उसने घटनास्थल से घायलों को नहीं उठाया था, हालांकि द० प्र० स० की धारा 161 के तहत उसके बयान में इसका उल्लेख किया गया था, जिससे उसने इनकार कर दिया।

22. उसने गोली चलने की आवाज सुनी और पीछे मुड़कर देखा, लेकिन धारा 161 द० प्र० स० के तहत बयान में ऐसा नहीं लिखा था। पूछने पर उन्होंने कहा कि वह कारण नहीं बता सकते। गवाह ने आगे जवाब दिया कि वह सभी आरोपियों को उनके नाम और चेहरे से पहचानता है। घटना के समय सूरज डूब चुका था। यह घटना सूरज डूबने के करीब आधे घंटे बाद हुई। उसके पहुंचने से पहले शव को आपातकालीन वार्ड से शवगृह में स्थानांतरित कर दिया गया। उस समय मुर्दाघर वार्ड खोला

गया था और यह लगभग रात में 09:00-9:30 बजे का समय था। उन्होंने उस समय भरी जा रही पंचनामा पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा और उन्होंने उस पर हस्ताक्षर किए।

23. घटना के समय सुरेश पेंट-शर्ट पहने हुए था और पंचनामा के समय भी। घटना स्थल पर मृतक की चप्पलें छोड़ दी गई थीं। पंचनामा के समय शव नंगे पैर था। उसे घटना का दिन याद नहीं था, लेकिन तारीख पता थी।

24. घटना से पहले जब रमेश उससे मिला तो वह अकेला था और एक मिनट के भीतर, गंगा राम और नरेंद्र भी वहां आ जाते हैं। गंगा राम और नरेंद्र वहां आए और चुपचाप खड़े रहे, जबकि वह रमेश से बात कर रहा था। जिस स्थान पर वह खड़ा था, वह पश्चिम दिशा में उस स्थान से 5-6 कदम दूर होगा। वहां से उन्होंने, रमेश, गंगा राम और नरेंद्र ने घटना को देखा। घटना स्थल के पास एक तिराहा था, जहां सड़क उत्तर-दक्षिण और पश्चिम दिशा में जाती थी, जहां सड़क पश्चिम दिशा में मुड़ती थी, वहां उत्तर-दक्षिण दिशा में स्लैब वाला नाला था।

25. हमले के तरीके के बारे में पूछताछ करने पर, इस गवाह ने गवाही दी कि आरोपी, जिन्होंने रमेश पर पिस्तौल से गोली चलाई थी, सुरेश के पश्चिम में लगभग 2- 2 ½ कदम खड़े थे। सुरेश को पहले गोली मारी गई, उसके बाद उसे चाकू मार दिया गया। वह गोलीबारी की संख्या नहीं बता सका, और मृतक को चोटें आईं। यह घटना 1-1 ½ या 2 मिनट के भीतर हुई। गवाह ने मृतक के साथ रिश्तेदारी

से इनकार किया। उन्होंने बचाव पक्ष के अधिवक्ता द्वारा दिए गए सुझावों से भी इनकार किया था।

26. इस गवाह ने इस बात से इनकार किया था कि हसन को इस मामले में गलत तरीके से फंसाया गया था।

27. अ०सा०-3, गंगा राम ने गवाही दी कि 24.09.2001 को शाम लगभग 07:00-07:15 बजे, रमेश अपने भाई सुरेश के साथ अपनी दुकान बंद करके अपने घर की ओर जा रहा था। वह क्रॉसिंग पुल पर उनसे मिले। ओम प्रकाश और नरेंद्र भी वहां थे। उस समय सुरेश उनसे लगभग छह कदम आगे चला गया, उसने रमेश से बात करना शुरू कर दिया। उसके पहले से परिचित सभी आरोपी वहां आए, हसन और ताहिर ने सुरेश को डॉ. आरके शर्मा की दुकान के सामने गिरा दिया और घेरकर उसे मारना शुरू कर दिया। भय्यन, ताहिर और पप्पू @ कमीना के पास पिस्तौल, नाजुक और नाजिम के पास चाकू और हसन के पास डंडा था। सुरेश को गोली, चाकू और डंडे से चोटें आई थीं। गोलियां चलने पर अफरा-तफरी मच गई। दुकानदारों ने अपनी दुकानें बंद करनी शुरू कर दीं। उसने सुरेश को उठाया और रिक्शा पर लाद दिया। इसके बाद वह घटना की जानकारी देने सुरेश के घर गया। उसने स्ट्रीट लाइट में आरोपी को देखा और पहचान लिया। मृत शरीर का पंचायतनामा उसके सामने तैयार किया गया था और उसने उस पर अपने हस्ताक्षर को पहचान लिया।

28. जिरह करने पर गवाह ने आरोपियों की गिरफ्तारी के समय उनके पास से हथियारों की

बरामदगी के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की, लेकिन जवाब दिया कि उन्हें घटना से 5-6 दिनों के बाद गिरफ्तार किया गया था। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया कि घटना के समय वह गोल्ड सोप फैक्ट्री, नैनीताल रोड, बरेली में काम कर रहा था। उन्होंने आगे बताया कि उस समय वह नानखटाई (बिस्कुट) बेचते थे, इससे पहले वह कपड़े इस्त्री करते थे। इस गवाह ने आगे कहा कि वह सुरेश को जिला अस्पताल नहीं ले गया था, बल्कि उसे रिक्शा पर लादने के बाद, वह घटना के बारे में सूचित करने के लिए उसके घर गया था। इस गवाह को याद नहीं कि उसने विवेचनाधिकारी को कोई बयान दिया था या नहीं, लेकिन गवाही दी कि कई पुलिसकर्मियों ने उससे इस घटना के बारे में बात की। घटना के दूसरे दिन भी पुलिस ने उससे पूछताछ की। इस गवाह ने द० प्र० स० की धारा 161 के तहत अपने बयान में इनकार कर दिया कि सुरेश को घटनास्थल से जिला अस्पताल ले जाया गया जहां डॉक्टरों ने उसे मृत घोषित कर दिया। इस गवाह के मुताबिक, घटना वाली रात कोई भी पुलिसकर्मी उससे नहीं मिला, लेकिन उसने सुरेश के घर पर घटना की जानकारी देने की पुष्टि की। सूचना देने के बाद वह अपने घर गया जहां वह करीब 1-1 ½ घंटे रुका और उसके बाद वह अकेले रिक्शा से जिला अस्पताल गया और रात करीब 09:00 से 09:15 बजे वहां पहुंचा। रमेश के अनुरोध पर, उन्होंने लगभग 11:00 बजे पंचायतनामा पर हस्ताक्षर किए थे, यह 10:00 बजे हो सकता था, उनके पास घड़ी नहीं थी, किसी ने उनके सामने पंचनामा नहीं पढ़ा था। वह रात में लगभग 11:00 बजे अस्पताल में रहे।

29. अगले दिन, विवेचनाधिकारी ने लगभग 11:00-12:00 बजे घटनास्थल का दौरा किया। विवेचनाधिकारी ने उसके सामने कोई नक्शा तैयार नहीं किया, घटना स्थल के पास एक चाय की दुकान, एक डॉक्टर की दुकान, दर्जी और एक किराने की दुकान थी। घटना के समय वे सभी दुकानें खुली हुई थीं। घटना के समय कोई दुकानदार मौके पर नहीं आया था। घटना स्थल से नत्थू खान की किराने की दुकान करीब 08-10 कदम की दूरी पर थी। गोलीबारी के समय वे सभी दुकानें बंद थीं। पूरब की ओर, लगभग छह कदम की दूरी पर, स्लैब के ऊपर खड़े होकर वह रमेश को देख रहा था।

30. अस्पताल में, प्रत्यक्षदर्शी, ओम प्रकाश और रमेश के अलावा, कोई और मौजूद नहीं था। वह वहां मौजूद सब-इंस्पेक्टर का नाम नहीं जानता था। उन्होंने विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए बयान से इनकार किया कि पंचायतनामा निरीक्षक राजेंद्र सिंह चौधरी ने उनके और ऑंकार गंगवार, राजेंद्र शर्मा और रमेश चंद्र भारती के सामने तैयार की थी। पंचनामा तैयार करने वाले इंस्पेक्टर ने उनसे यह नहीं पूछा था कि कोई चश्मदीद मौजूद था या नहीं। मृतक की मौत चाकू और बंदूक से लगी चोटों के कारण हुई है। उससे पहले पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट नहीं लिखी गई थी। उन्हें केवल जांच रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया था। निरीक्षक द्वारा पंच की ड्यूटी के बारे में उन्हें सूचित नहीं किया गया था। घटना के दिन, उन्होंने शाम 06.30 बजे तक इस्त्री का काम पूरा कर लिया था। घर के सामने ठेला खड़ा करने के बाद वह खरीदारी के

लिए पुल की ओर चल पड़ा। जब वह वहां पहुंचे तो रमेश और ओम प्रकाश आपस में बात कर रहे थे। उसे यह बात याद नहीं थी कि वह तिराहे पर कब पहुंचा था। ओम प्रकाश, हवलदार और रमेश वहां मिले और बातचीत शुरू कर दी। यह गलत था कि जब रमेश उससे मिला तो सुरेश भी वहीं खड़ा था, लेकिन वह उस समय 5-6 कदम आगे बढ़ चुका था। रमेश से बात करते समय वह सुरेश की ओर नहीं देख रहा था।

31. उसने रमेश से लगभग आधे मिनट तक मुश्किल से बात की थी जब उसने फ़ायर की आवाज़ें सुनीं। बात करते समय वे नाले पर पड़े स्लैब पर खड़े थे। यह घटना वहां नहीं हुई। यह डॉ. आर. के. शर्मा की दुकान के सामने हुआ। घटनास्थल पर खून बिखरा हुआ था। जब सुरेश को उठाकर रिक्शा पर चढ़ाया गया तो खून भी गिर गया। उसने खून देखा जहां सुरेश मारा गया था। पश्चिम की ओर लगभग 6 कदम की दूरी पर डॉ. आर. के. शर्मा की दुकान थी। घटना की तरफ की सड़क उत्तर, दक्षिण और पश्चिम की ओर चल रही थी। जिस सड़क पर यह घटना हुई, वह पश्चिम की ओर जाती थी। यह घटना डॉ. शर्मा की दुकान के दरवाजे से 1-2 कदम की दूरी पर हुई। फायरिंग करने वाले आरोपी करीब डेढ़ से दो कदम की दूरी पर डॉ. शर्मा की दुकान के सामने थे। हमलावरों ने सुरेश को चारों तरफ से घेर लिया था। जब सुरेश पर गोली चलाई गई, तो उसने झुकने की कोशिश की, लेकिन हसन और ताहिर ने उसे पकड़ लिया और जमीन पर धकेल दिया। उसे याद नहीं था कि उसने विवेचनाधिकारी को वह तथ्य बताया था

या नहीं। शुरू में मृतक पर केवल एक गोली चलाई गई थी, इससे पहले कि उसने भागने की कोशिश की। वह यह नहीं बता सका कि उस गोली ने मृतक को मारा था या नहीं। जमीन पर गिरने पर उसे बन्दूक की बाकी चोटें आईं। वह फ़ायर मृतक को लगी लेकिन शरीर के किस हिस्से पर लगी, वह कह नहीं सका। घटना को 2-2.5 मिनट के भीतर पूरा कर लिया गया। जब सुरेश खड़ा था तो उसने किसी व्यक्ति को चाकू से हमला करते हुए नहीं देखा, लेकिन जब सुरेश पीछे की तरफ जमीन पर गिर गया तो उसने चाकू से घायल होते उसे देखा। मृतक को उठाकर उसी हालत में रिक्शा में डाल दिया गया। वह स्वयं रिक्शा के साथ नहीं गया। रमेश सुरेश के साथ रिक्शा पर बैठा था और कोई नहीं था। घटना के बाद उसकी नरेंद्र और ओम प्रकाश से कोई बातचीत नहीं हुई। वह तुरंत मौके से चले गए। यह दावा किया गया कि वह वहां एक घंटे या डेढ़ घंटे तक रहे। घटना स्थल पर पुलिस उसके सामने नहीं आई। उन्होंने मौके पर दुकान पर लाइट बंद होने के बारे में विवेचनाधिकारी को बताया, हालांकि यह धारा 161 द० प्र० स० के तहत उनके बयान में लिखा नहीं पाया गया। आगे उन्होंने जवाब दिया कि वह यह नहीं बता सकते कि घटना से कितने समय पहले सूरज अस्त हुआ था। लेकिन रात नहीं हुई थी और लाइट अभी भी जल रही थी, डॉ. शर्मा की दुकान और अन्य दुकानों की लाइट जल रही थी। यह कहना गलत होगा कि घटना के समय लाइट नहीं जल रही थी। सुरेश अपनी बिरादरी से संबंधित थे, लेकिन उनके परिवार के नहीं। यह कहना गलत था कि सुरेश अवैध रूप से वीसीआर चलाता था, अवैध रूप से शराब

बेचता था और उसके खिलाफ पुलिस द्वारा कई मामले दर्ज किए गए थे। अ०सा०-3 ने बचाव पक्ष के सुझावों को खारिज कर दिया।

32. अ०सा०-4, सेवक राम राठौर आरोपी नाजिम और नाजुक के पास से रेजर और चाकू की बरामदगी का गवाह है, हालांकि उसने दोनों आरोपियों की निशानदेही पर बरामदगी की पुष्टि की थी, लेकिन इस बात से इनकार किया था कि फर्द बरामदगी मौके पर तैयार किए गए थे। उन्होंने कहा कि पुलिस स्टेशन में फर्द बरामदगी तैयार किए गए थे। इसलिए, गवाह को अपने बयान से मुकर जाने का दोषी घोषित कर दिया गया था और अभियोजन पक्ष ने उससे जिरह की थी।

33. अ०सा०-5, धर्मपाल ने नाजुक और नाजिम से चाकुओं की बरामदगी के संबंध में फर्द बरामदगी प्रदर्श ए-2 और प्रदर्श ए-3 को साबित किया था। चूंकि अपीलकर्ताओं को धारा 25 शस्त्र अधिनियम के आरोपों के तहत बरी कर दिया गया है और राज्य ने बरी करने के फैसले और आदेश के खिलाफ कोई भी अपील दायर नहीं की है और यह गवाह केवल बरामदगी का गवाह है, इसलिए उसकी गवाही हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक नहीं है।

34. अ०सा०-6, डॉ. जीडी कटियार, जिन्होंने मृतक का शव परीक्षण किया, ने मृतक के शरीर पर 22 घाव पाए, जिनमें से चोट संख्या 16 और 18 बन्दूक की चोट थी। चोट संख्या 17 और 21 खरोंच थे। बाकी 17 चोटें

मृतक के महत्वपूर्ण और गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर चोट के घाव थे जो मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त थे।

35. आंतरिक जांच में, इस गवाह ने पाया कि मस्तिष्क संकुचित था और छाती गुहा में 200 मिलीलीटर रक्त था। फेफड़ों की झिल्लियां दोनों तरफ से कट गई थीं। अमाशय में 100 मिलीलीटर काले रंग का पदार्थ था। बड़ी आंत बाईं ओर कई स्थानों पर छिद्रित थी। लीवर का बायां हिस्सा कट गया था। इंगुलिन क्षेत्र में एक धातु की गोली पाई गई। पेट के दाईं ओर, पसली के पिंजरे के नीचे छाती पर एक धातु की गोली भी पाई गई।

36. गवाह ने राय दी कि मृतक के शरीर पर चोटें 21.09.2001 को शाम 7 बजे हो सकती हैं। चोट नंबर 1 से 6, 8 से 15, 19 और 20 चाकू और रेजर जैसे धारदार हथियार से आई हुई हो सकती हैं। चोट संख्या 10 और 18 किसी भी बन्दूक से संभव थी। चोट संख्या 7, 17, 21 और 22 उबड़-खाबड़ और कठोर सतह पर रगड़ने से आ सकते हैं। जिरह के दौरान गवाह ने कहा कि सितंबर के महीने में मृत्यु के बाद रिगर मोर्टिस (अकड़न) शरीर के ऊपरी हिस्से से शुरू हो सकती है और 24 से 48 घंटे में गुजर सकती है। रिगर मोर्टिस आम तौर पर पहले ऊपरी हिस्से और फिर निचले हिस्से से गुजरता है। वह यह नहीं बता पाए कि मृतक के अमाशय में पाया गया गहरे रंग का तरल शराब हो सकता है या नहीं। उन्होंने घावों के किनारे का उल्लेख नहीं किया था। उन्होंने

किसी भी कटे हुए घाव के बारे में किनारे की स्थिति का उल्लेख नहीं किया। यदि घाव चाकू या रेजर से मारने के कारण हुए थे, तो चोटों में किनारे होते हैं। जो भाले आदि शरीर में डाले गए और बाहर निकाले गए, उनमें टेलिंग नहीं थी। गवाह ने स्वीकार किया कि उसने चोट संख्या 16 और 18 के बारे में 'बन्दूक' शब्द का उल्लेख नहीं किया था, लेकिन 'प्रवेश का घाव' शब्द का उल्लेख किया था। उन्होंने घावों या चाकू के घावों की दिशा नहीं बताई। गवाही के समय गोलियां गवाह के सामने नहीं थीं। उन्होंने आगे कहा कि अस्पताल की कोई मौत की रिपोर्ट उनके सामने पेश नहीं की गई थी। मौत की अवधि में 4-6 घंटे का अंतर होने की संभावना थी। कृत्रिम रोशनी में पोस्टमार्टम किया गया।

37. अ०सा०-7, एचसीएम ने कहा कि 24.09.2001 को उन्होंने मुकदमा अपराध संख्या 1209/2001 अन्तर्गत धारा 147, 148, 149, 302 आईपीसी और धारा 3 (2) (वी) एससी/एसटी अधिनियम की एफआईआर दर्ज की थी और उसी दिन रात 20:25 बजे मूल जीडी में रिपोर्ट नंबर 3 में खुलासा किया था। गवाह मूल जीडी लेकर आया था। इसे तैयार करने की प्रक्रिया में एक कार्बन कॉपी भी तैयार की गई थी जो फाइल पर उपलब्ध थी। यह उनके हाथ से लिखे और हस्ताक्षर में था। चिक प्राथमिकी पेपर नंबर 3/1 और जीडी की कार्बन कॉपी क्रमशः प्रदर्श क-4 और प्रदर्श क-5 के रूप में प्रदर्शित की गई है। उन्होंने आगे कहा कि 26.09.2001 को आरोपी पप्पू @ कमीना को एक ट्रस और नमूना सील के साथ एसएचओ नवाब सिंह द्वारा पेश किया गया था, इसे जीडी में दर्ज किया गया था। इसकी कार्बन कॉपी उसी प्रक्रिया में तैयार की गई जो मूल के अनुसार सही थी।

गवाह ने इसे साबित कर दिया। इसे प्रदर्श क-6 के रूप में प्रदर्शित किया गया था।

38. 26.09.2001 को एसआई एन.के.शर्मा ने तीन ट्रस में तीन चीजों को पेश किया, जिन्हें 21:18 बजे रपट नंबर 46 में दर्ज किया गया था और जिसके बारे में 2001 के अपराध संख्या 1209 में धारा 147, 148, 149, 302 और धारा 3 (2) (वी) एससी /एसटी अधिनियम के तहत मामला दर्ज किया गया था। दो नमूना मुहरों को भी तैयार किया गया था। उनके हस्तलेख और हस्ताक्षर में मूल जीडी के साथ एक कार्बन कॉपी तैयार की गई थी जिसे उन्होंने साबित किया और प्रदर्श क - 8 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। दिनांक 01.10.2001 को रात 08.00 बजे रपट नं 12 में आरोपी हसन को मुकदमा अपराध संख्या 1209/2001 में थाना प्रभारी नवाब सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसके बारे में उसी क्रम में मूल जीडी और कार्बन कॉपी तैयार की गई। गवाह ने कार्बन कॉपी जीडी को प्रदर्श क-9 साबित कर दिया।

39. जिरह में गवाह ने स्वीकार किया कि उसके सामने कोई जब्ती या गिरफ्तारी ज्ञापन नहीं बनाया गया था। दिनांक 24-09-2001 को रात्रि 09:25 बजे के बाद पुलिस थाना किला में कोई संज्ञेय अपराध दर्ज नहीं किया गया। केवल एमवी अधिनियम के तहत एक मामला दर्ज किया गया था। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि उसने प्रविष्टियों को पूर्व समय पर बनाया था।

40. अ०सा०-8, मामले के विवेचनाधिकारी नवाब सिंह ने गवाही दी कि 24.09.2001 को वह एसएचओ, पुलिस स्टेशन किला, जिला

बरेली के रूप में तैनात थे और उन्होंने आरोपी पप्पू @ कमीना, ताहिर और भय्यान से 315 बोर की देशी पिस्तौल और उसी बोर का एक कारतूस, नाजुक और नाजिम से क्रमशः चाकू और रेजर की बरामदगी साबित कर दी थी और फर्द बरामदगी की तैयारी, जो कि प्रदर्श क-9, क-2 और क-3 हैं और बरामद वस्तुओं के वस्तु प्रदर्श 1, 2, 3, 4, 5 और 6 के रूप में साबित किया था।

41. पी.डब्ल्यू.-9, एस.आई., गुरुदयाल सिंह, वर्ष 2001 के मुकदमा अपराध संख्या 1215 में शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत विवेचनाधिकारी, ने आरोपी पप्पू @ कमीना के खिलाफ आरोप-पत्र प्रदर्श क-12, नक्शा प्रदर्श ए-11 और अभियोजन स्वीकृति प्रदर्श क-13 को साबित किया गया था।

42. अ०सा०-10, दिनेश सिंह सीओ पुलिस ने गवाही दी कि 24.09.2001 को वह सीओ सिटी-2, बरेली के रूप में तैनात थे, जब 2001 के केस क्राइम नंबर 1209 में आईपीसी की धारा 147, 148, 149, 302 और धारा 3 (2) (वी) एससी/एसटी एक्ट के तहत एफआईआर दर्ज की गई और उनके द्वारा प्राथमिकी और जीडी की कॉपी केस डायरी में की गई थी। उन्होंने एचएम राम सिंह के बयान दर्ज किए, मौके पर पहुंचे और एसएसआई राजेंद्र सिंह चौधरी को पंचनामा करने का निर्देश दिया। सड़क पर खून और खाली कारतूस पड़े थे। रात होने और प्रकाश की अपर्याप्त व्यवस्था होने के कारण, प्रत्यक्षदर्शियों की उपस्थिति में घटना स्थल का निरीक्षण नहीं किया जा सकता था। उन्होंने घटना स्थल से खून से सनी और

साधारण मिट्टी ली, इसे सील कर दिया, फर्द बरामदगी तैयार किया और रिकवरी प्रदर्श क - 14 पर अपने हस्ताक्षर को मान्यता दी। बरामद खाली कारतूसों के संबंध में फर्द बरामदगी भी तैयार किया गया। उन्होंने संबंधित फर्द बरामदगी प्रदर्श क-15 पर अपने हस्ताक्षर को पहचाना। उन्होंने सीडी में फर्द बरामदगी की नकल की, फर्द बरामदगी के गवाहों सोनू और सूरज पाल के बयान दर्ज किए, घटना स्थल की सुरक्षा हेड कांस्टेबल चंद्र भान शर्मा को सौंपी, गवाह हवलदार नरेश का बयान दर्ज किया। 25-09-2001 को उन्होंने आरोपी को गिरफ्तार करने का प्रयास किया, शिकायतकर्ता रमेश चंद्र भारती, गवाह गंगा राम भारती और ओम प्रकाश के बयान दर्ज किए, शिकायतकर्ता की निशानदेही पर नक्शा दृश्य तैयार किया, मानचित्र दृश्य पर उसके हस्ताक्षर को मान्यता दी। उन्हें दिनांक 27.09.2001 को आरोपी पप्पू @ कमीना की गिरफ्तारी की सूचना मिली कि उसके पास से एक देशी पिस्तौल और कारतूस भी बरामद किया गया है, जिसके बारे में 2011 के केस क्राइम नंबर 1215 में धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत मामला दर्ज किया गया था, इसकी जीडी सीडी में कॉपी की गई थी, आरोपी पप्पू @ कमीना का बयान दर्ज किया गया था, जिसमें उसने अपराध स्वीकार कर लिया था। पंचनामा और पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्राप्त की और सीडी में इसकी प्रतिलिपि बनाई और कांस्टेबल रूप सिंह और कांस्टेबल राम पाल के बयान भी दर्ज किए, जिनके द्वारा शव को मोर्चरी में ले जाया गया था। दिनांक 28.09.2001 को अभियुक्तों की गिरफ्तारी एवं वर्ष 2001 के अपराध क्रमांक 1216, वर्ष 2001 के अपराध

क्रमांक 1217, वर्ष 2001 के 1218, वर्ष 2001 के 1219 में ताहिर, नाजुक, नाजिम तथा भय्यन से बरामदगी के आधार पर धारा 25 शस्त्र अधिनियम एवं धारा 4/25 शस्त्र अधिनियम के तहत मामले दर्ज किए गए थे, सीडी में इसके फर्द बरामदगी और और जीडी की प्रतिलिपि की गई और उनके बयान दर्ज किए गए जिसमें उन्होंने अपराध स्वीकार किया। जब आरोपी नाजिम और नाजुक ने रेजर और चाकू बरामद होने की जानकारी दी तो एसएचओ नवाब सिंह को इसकी बरामदगी के लिए भेजा गया। उनकी निशानदेही पर इसे बरामद कर लिया गया। दोनों बरामदगी जापनों की प्रतिलिपि सीडी में की गई थी और दिनांक 01-10-2001 को आरोपी हसन का बयान दर्ज किया गया था। 02.10.2001 को उन्होंने एसएचओ नवाब सिंह, एसएसआई राजेंद्र सिंह, एसएसआई अनवर आफाक, एसआई एनके शर्मा, कांस्टेबल ओम सिंह, कांस्टेबल दिनेश पाल सिंह, कांस्टेबल रणविजय सिंह और कांस्टेबल चंद्र भान शर्मा के बयान दर्ज किए। उन्होंने एसएचओ पीएस किला को बरामद केस संपत्तियों को जांच के लिए एफएसएल आगरा भेजने के निर्देश दिए। दिनांक 10-10-2001 को उन्होंने फर्द के गवाहों के साक्ष्य दर्ज किए। उन्होंने एच.सी.पी. अनवर अफाक के साथ चाकू और उस्तरा की बरामदगी के स्थान का दौरा किया और नक्शा तैयार किया, नक्शे प्रदर्श क-7 पर उनके हस्ताक्षर को पहचान लिया। वापस आने के बाद, पुलिस स्टेशन किला में कांस्टेबल अय्यूब खान का बयान दर्ज किया और आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ पर्याप्त सबूत पाते हुए उन्होंने धारा 147, 148, 149, 302 आईपीसी और धारा 3 (2) (वी) एससी /एसटी

अधिनियम के तहत आरोप-पत्र संख्या 130/2001 प्रदर्श क-18, प्रस्तुत की। केस प्रॉपर्टी के बयान की रसीद प्राप्त करने के बाद उन्होंने 09-11-2001 को रसीद रख ली। इस गवाह के सामने एक सीलबंद बंडल खोला गया जिसमें से देसी पिस्तौल, कारतूस मिले। 315 बोर के खाली कारतूस को वस्तु प्रदर्श 1 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। खून से सने और सादे मिट्टी के बंडल को वस्तु प्रदर्श 22 और 23 के रूप में प्रदर्शित किया गया था।

43. जिरह में, आरोपी हसन की ओर से उसने जवाब दिया कि उसने न तो आरोपी हसन को गिरफ्तार किया और न ही हत्या में इस्तेमाल किए गए उसके कब्जे से कोई हथियार बरामद किया था। उसके कब्जे से कोई लाठी बरामद नहीं हुई है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उन्हें कोई सबूत नहीं मिला और उनके खिलाफ झूठा आरोप पत्र दायर किया।

44. बाकी पांच आरोपियों की ओर से, इस गवाह से एक साथ जिरह की गई, जिसमें उसने जवाब दिया कि उसे याद नहीं है कि किस आरोपी के पास से कौन सी बन्दूक बरामद की गई थी। वह फर्द बरामदगी देखकर ही जवाब दे सकता है। सीडी उनके हस्त लेखन में नहीं थी! इसे पेशकार शैलेंद्र मिश्रा ने हुकम पर लिखा था। वह अभी भी सेवा में था। सीडी में यह उल्लेख नहीं किया गया था कि उसमें प्रविष्टि शैलेंद्र मिश्रा द्वारा लिखी गई थी। उन्होंने स्वीकार किया कि आरोप-पत्र पर केवल हस्ताक्षर थे, सीडी को पाठक ने उनके आदेश पर लिखा था। उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि उन्होंने अपना दिमाग नहीं लगाया।

उन्होंने इस बात से इनकार किया कि सीडी का कोई भी हिस्सा नवाब सिंह या किसी अन्य एसआई द्वारा लिखा गया था, हालांकि सीडी में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि कौन सा कार्य कब किया गया था। उसने केवल सादे और खून से सनी मिट्टी, खोखा और 315 बोर के खाली कारतूसों को कब्जे में लिया था। न तो किसी आरोपी को गिरफ्तार किया गया और न ही उसके सामने कोई अन्य सामग्री बरामद की गई। जांच के समय वह मौजूद नहीं थे। केस प्रॉपर्टी कब मालखाने में रखी गई उसे पता ही नहीं चला। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि उसने फर्जी और झूठे तथ्यों पर आरोप पत्र दाखिल किया।

45. अ०सा०-11, एसआई संजय कुमार सिंह ने गवाही दी कि 24.09.2001 को वह थाना किला, बरेली में सब-इंस्पेक्टर के पद पर तैनात थे। उन्होंने गवाहों के सामने मोर्टुरी में जांच रिपोर्ट एक्स.के.ए-19 तैयार की थी जो उनके हाथ से लिखी और हस्ताक्षर में थी। गवाह ने सी०एम०ओ० को पत्र, आर.आई. को पत्र, चालान नाश, फोटो नाश को भी साबित किया, जिसे प्रदर्श क-22 और प्रदर्श क-23 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। शव को सील करने के बाद उन्होंने कांस्टेबल रूप सिंह और कांस्टेबल राम पाल के माध्यम से पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया। उन्होंने अपने लेखन और हस्ताक्षर में नमूना मुहर प्रदर्श क-24 तैयार की थी।

46. जिरह के दौरान गवाह ने जवाब दिया कि पंचनामा तैयार करने से पहले उसने प्राथमिकी पढ़ा था और घटना के चश्मदीदगवाहों के बारे

में जानता था। उन्हें याद नहीं है कि किसी चश्मदीद को जांच का गवाह बनाया गया है या नहीं। उन्होंने आगे कहा कि ओम पाल और गंगा राम के प्रत्यक्षदर्शी भी जांच के गवाह थे। पंच गवाहों की राय भी लिखी जा चुकी थी। पंचायतनामा पर हस्ताक्षर करने से पहले उनके द्वारा पंचों की ड्यूटी नहीं बताई गई। यह कहना गलत था कि जांच की कार्यवाही के दौरान कुछ पंच गवाह मौजूद नहीं थे और उनके हस्ताक्षर बाद में प्राप्त किए गए थे। पूछताछ पर अपराध संख्या लिखी हुई थी। हालांकि आरोपी का नाम नहीं लिखा गया है। गवाह ने आरोपों से इनकार किया।

47. अ०सा०-12, एसआई नेक राम सिंह पाल ने बताया कि वर्ष 2001 में वह थाना किला, बरेली में एसआई के पद पर तैनात थे। उन्होंने शस्त्र अधिनियम के तहत मामलों की जांच की थी जिसमें आरोपी व्यक्तियों को बरी कर दिया गया था।

48. अ०सा०-13, एसआई अनवर आफाक ने गवाही दी कि 26.09.2001 को वह पुलिस स्टेशन किला में ए.एस.आई. के रूप में तैनात थे। उस दिन वह रात करीब 10:00 बजे शिकायतकर्ता की सूचना पर एसएचओ नवाब सिंह, एसआई राजेंद्र सिंह, कांस्टेबल ओम सिंह, कांस्टेबल चंद्र भान शर्मा के साथ सरकारी जीप से आरोपी व्यक्तियों की तलाश में व्यस्त थे। आरोपी पप्पू @ कमीना को सुरखा फाटक से विनोद सोप फैक्ट्री तक चलने वाली सड़क पर एक देसी पिस्तौल और कारतूस के साथ गिरफ्तार किया गया, जिसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और कहा कि घटना में

हथियार का इस्तेमाल किया गया था और साथियों के नामों का भी खुलासा किया। गवाह ने आगे कहा कि उसने एस.एच.ओ. के कहने पर फर्द बरामदगी प्रदर्श क-9 लिखा था। उसने अपने हस्ताक्षर पहचान लिए। 27-09-2001 को शेष अभियुक्तव्यक्तियों की तलाश में उन्होंने एसएचओ और अन्य पुलिस कर्मियों के साथ आरोपी व्यक्तियों ताहिर, भइयान @ शरीफ मोहम्मद को आरोपी नाजुक और नाजिम के साथ गिरफ्तार कर लिया। ताहिर के कब्जे से 315 बोर की एक देसी पिस्टल और एक कारतूस भैयां @ शरीफ मोहम्मद के पास से चाकू, नाजिम के पास से दो कारतूस के साथ 12 बोर की देसी पिस्टल और नाजुक के पास से 315 बोर की एक देसी पिस्टल और एक कारतूस बरामद किया गया। उन्होंने एस.एच.ओ. के आदेश पर फर्द बरामदगी प्रदर्श क -10 लिखा था। गवाह ने उस पर अपने हस्ताक्षर को पहचान लिया है।

49. 28.09.2001 को आरोपी नाजुक और नाजिम की निशानदेही पर मृतक सुरेश की हत्या में प्रयुक्त रेजर और चाकू बरामद किया गया। इसका फर्द बरामदगी एस.एच.ओ. नवाब सिंह ने तैयार किया था। गवाह ने उसके हस्ताक्षर को भी पहचान लिया, जिसे पहले ही प्रदर्श क-2 और 3 के रूप में प्रदर्शित किया जा चुका है। गवाह ने गवाही दी कि मामले की संपत्ति अदालत में उसके सामने थी, जिसे पहले से ही वस्तु प्रदर्श 1 से 21 के रूप में प्रदर्शित किया गया था।

50. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य समाप्त होने के बाद, द० प्र० स० की धारा 313 के तहत गवाहों के बयान दर्ज किए गए, आरोपी ताहिर ने सभी आरोपों और अभियोजन पक्ष के सबूतों से इनकार किया और कहा कि गवाह रिश्तेदार और दोस्त थे, इसलिए, वे गलत गवाही दे रहे हैं। पुलिस और डॉक्टर गवाहों ने गलत काम किया। गवाह दुश्मनी और पार्टी प्रतिद्वंद्विता के कारण उसके खिलाफ गवाही दे रहे थे। जब उसने पुलिस से आरोपी पप्पू को बिना वजह न फंसाने की बात कही तो उसे भी बहस करने के लिए झूठा फंसा दिया गया। मृतक सुरेश वी.सी.आर. के कारोबार और अवैध शराब के कारोबार में शामिल था।

51. आरोपी नाजिम ने भी आरोपों और सबूतों से इनकार किया। उन्होंने आगे आरोप लगाया कि मृतक सुरेश ने दहशत फैलाकर नजीर और शाकिर के घरों को बेच दिया, इसलिए, उनकी उससे दुश्मनी थी।

52. आरोपी पप्पू @ कमीना ने यह भी बताया कि पुलिस झूठी गवाही देने के लिए उस पर दबाव डालती थी लेकिन उसने इनकार कर दिया। उसने रमेश से किस्त पर पैसे लिए थे जिसे वह चुका नहीं सकता था, इसलिए, शिकायतकर्ता रमेश की उससे दुश्मनी थी।

53. आरोपी नाजुक ने आरोपों और अभियोजन पक्ष के सबूतों से भी इनकार किया और कहा कि शिकायतकर्ता और गवाह एक ही पार्टी के हैं और पुलिस के

साथ संबंध थे। उसकी बहन की शादी में रमेश के टेंट हाउस से कुछ सामग्री की आपूर्ति की गई थी और कुछ पैसे उसी पर बकाया थे, इसलिए रमेश की दुश्मनी थी। उसके पिता कल्लू और शिकायतकर्ता रमेश के बीच झगड़ा भी हुआ था।

54. आरोपी भय्यन @ शरीफ ने आरोपों और अभियोजन पक्ष के सबूतों से इनकार किया और कहा कि आरोपी कल्लू के रिश्तेदार होने के नाते, उन्हें गलत तरीके से फंसाया गया था।

55. आरोपी हसन ने अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए आरोपों और सबूतों से भी इनकार किया और कहा कि उसे पार्टी प्रतिद्वंद्विता के कारण झूठा फंसाया गया था।

56. बचाव पक्ष की ओर से ब.सा. -1 जाकिर हुसैन से पूछताछ की गई थी, जिन्होंने गवाही दी कि घटना के समय वह अपने घर पर थे। गोली चलने की आवाजें सुनकर वह वहां पहुंचे तो देखा कि दो बदमाशों के हाथ में उस्तरा था और एक रिवाल्वर लेकर सुरेश की हत्या कर फरार हो रहा था। उन्होंने घटना को 7 से 8 कदम की दूरी से देखा। चूंकि कोई प्रकाश नहीं था, इसलिए, यह दूर से नहीं दिख रहा था। बल्ब नहीं जल रहा था। उसके अलावा तैयब, मुंतियाज और तुफैल आदि भी वहां पहुंच गए। वह रमेश की दुकान पर गया और उसे घटना की जानकारी दी। सुरेश को शिकायतकर्ता रिक्शा में बैठाकर ले गया। मृतक वी.सी.आर. व्यापार में शामिल था और अन्य अवैध व्यापार भी करता था।

57. जिरह में बचाव पक्ष के इस गवाह ने जवाब दिया कि वह हत्यारों को नहीं पहचानता। उन्हें कोई समन नहीं मिला। उन्हें सुरेश के खिलाफ किसी रिपोर्ट के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। वह किसी भी पक्ष के पक्ष में गवाही देने नहीं आया था। वह दुकान से आया था और डायल भी देखा था, इसलिए समय उसे याद था। केवल गोली चलने की आवाज आ रही थी। वह पहले पहुंच गया था और बाकी लोग 5-7 मिनट बाद आए। रमेश की दुकान उनके घर से करीब 250-300 कदम की दूरी पर थी। सुरेश की कोई दुकान नहीं थी। वह घर से काम करता था। उनका घर उनके घर से 70 कदम की दूरी पर होगा। सुरेश के साथ उनका केवल औपचारिक संबंध था। यह कहना गलत था कि वह झूठा बयान दे रहा था और उसे घटना की कोई जानकारी नहीं थी।

58. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने बहस के दौरान निम्नलिखित आधार उठाए:

(i) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157(1) और विशेष रिपोर्ट उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के पैरा 101 की अनिवार्य आवश्यकता का अनुपालन नहीं किया गया है।

(ii) 3-4 दिन पहले हुए विवाद के संबंध में पुलिस/मजिस्ट्रेट के पास कोई पूर्व एफआईआर दर्ज नहीं की गई थी।

(iii) इस बात का कोई साक्ष्य नहीं था कि कथित अपराध समान उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए किया गया था।

(iv) कुंद वस्तु से कोई चोट नहीं आई थी।

(v) घटना स्थल के बारे में भिन्नता थी। घायल सुरेश को अस्पताल कैसे लाया गया,

इस पर संदेह था।

(vi) अभियोजन पक्ष ने जिला अस्पताल, बरेली के चिकित्सा दस्तावेजों को रोक दिया था।

(vii) शव को मुर्दाघर ले जाने वाले कांस्टेबलों की जांच नहीं की गई थी।

(viii) एफआईआर पूर्व निर्धारित की गई थी।

(ix) शव परीक्षण अत्यधिक विलंब से किया गया था।

(x) चश्मदीद गवाहों के बयान दर्ज करने में अत्यधिक विलंब हुआ।

(xi) तथ्यों के गवाहों में पुष्टि और विरोधाभास में भौतिक असंगति थी और अ०सा०-1, 2 और 3 का आचरण अप्राकृतिक था।

(xii) चिकित्सा रिपोर्ट और साक्ष्य नेत्र संबंधी साक्ष्य के साथ असंगत हैं।

(xiii) सूचनादेने वाले रमेश अ०सा०-1 के व्यक्ति या कपड़ों पर कोई खून नहीं पाया गया।

(xiv) अभियोजन पक्ष का मामला उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ।

59. पक्षकारों के वकीलों को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, हम यह नोट कर सकते हैं कि:-

60. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार अपराध 24.09.2001 को लगभग 07:00 बजे किया गया था, जिसके लिए प्राथमिकी उसी दिन 08:25 बजे थाना - किला में दर्ज किया गया था, जो घटना के स्थान से केवल 3 फरलांग दूर था। अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, मृतक को घटना स्थल से बरेली के जिला अस्पताल ले जाया गया और उसे मृत घोषित करने के बाद, मृत शरीर को मोर्चरी

भेज दिया गया। शिकायतकर्ता ने घटना के एक घंटे और 25 मिनट बाद एफआईआर दर्ज कराई, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि एफआईआर दर्ज करने में कोई देरी हुई थी। चिक प्राथमिकी डाक के माध्यम से भेजा गया था और इसे 26.09.2001 को सीजेएम, बरेली द्वारा देखा गया था। हालांकि, एफआईआर दर्ज करने के 24 घंटे के भीतर इसे पेश किया जाना चाहिए था, लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए रात होने के कारण चिक एफआईआर भेजने में कोई असाधारण देरी नहीं हुई, कार्यवाही काफी हद तक 25.09.2001 को शुरू हो सकी और सूचना 26.09.2001 को सीजेएम तक पहुंच गई। इसलिए, इस तरह की मामूली देरी को अभियोजन के लिए अत्यधिक देरी और घातक नहीं कहा जा सकता है।

61. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने **राजस्थान राज्य बनाम दाउद खान, 2015 0 सुप्रीम (एससी) 1041** पर भरोसा किया। कॉपी मिलने में करीब 36-37 घंटे की देरी हुई। पैराग्राफ 26-29 में, मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट और एफआईआर की प्रति भेजने के संबंध में प्रश्न पर चर्चा की गई है जो निम्नानुसार हैं:

"26. द० प्र० स० की धारा 157 की व्याख्या अब असंगत नहीं है। इस विषय पर विस्तृत चर्चा ब्रह्म स्वरूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2011) 6 एससीसी 288 में पाई जा सकती है जिसमें इस विषय पर बड़ी संख्या में मामलों पर विचार किया गया। मजिस्ट्रेट को एफआईआर की एक प्रति के "तत्काल" संचार का उद्देश्य इसके हेरफेर की संभावना

की जांच करना है। इसलिए, मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट प्रेषित करने में देरी एफआईआर दर्ज करने से जुड़ी है। यदि एफआईआर दर्ज करने में कोई देरी नहीं होती है, तो मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट देने में किसी भी देरी का वास्तव में कोई परिणाम नहीं होगा, क्योंकि एफआईआर में हेरफेर से इनकार कर दिया जाएगा। फिर भी, अभियोजन पक्ष को मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट प्रेषित करने में देरी का स्पष्टीकरण देना चाहिए। हालांकि, अगर देरी के संबंध में जांच अधिकारी से कोई सवाल नहीं किया जाता है, तो अभियोजन पक्ष स्पष्टीकरण देने के लिए बाध्य नहीं है। ऐसा कोई सार्वभौमिक नियम नहीं है कि जब भी मजिस्ट्रेट को एफआईआर भेजने में कुछ देरी होती है, तो अभियोजन पक्ष अविश्वसनीय हो जाता है। दूसरे शब्दों में, इस संबंध में निर्णय के लिए किसी मामले के तथ्य और परिस्थितियां महत्वपूर्ण हैं।

27. विशेष रिपोर्ट भेजने में देरी भी हाल ही में शिव शंकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2013) 12 एससीसी 539 के एक फैसले में चर्चा का विषय रही जिसमें यह माना गया था कि इस तरह के विवाद को स्वीकार करने से पहले, अभियुक्त को मजिस्ट्रेट को एफआईआर भेजने में देरी के कारण पूर्वाग्रह दिखाना होगा। यह कई पहले के निर्णयों पर निर्भर करते हुए आयोजित किया गया था:

"30. अपीलकर्ताओं की ओर से एक अन्य दलील यह थी कि क्षेत्राधिकार मजिस्ट्रेट को एफआईआर की प्रति अग्रेषित करने के किसी भी सबूत के अभाव में, द० प्र० स० की

धारा 157 का उल्लंघन हुआ है और इस तरह, एफआईआर का पंजीकरण संदिग्ध हो जाता है। उक्त निवेदन को अस्वीकार करना होगा, क्योंकि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत एफआईआर से पता चलता है कि इसकी सूचना 13-6-1979 को शाम 4.00 बजे दी गई थी और अगले ही दिन अर्थात् 14-6-1979 को अग्रेषित की गई थी। इसके अलावा, उच्च न्यायालय के साथ-साथ ट्रायल कोर्ट के आक्षेपित निर्णयों के अवलोकन से पता चलता है कि द० प्र० स० की धारा 157 के कथित उल्लंघन के आधार पर अपीलकर्ताओं की ओर से किसी भी पूर्वाग्रह का कोई मामला नहीं दिखाया गया था और न ही उठाया गया था। मजिस्ट्रेट को एफआईआर भेजने में देरी करने से अभियोजन पक्ष के मामले पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए, अपीलकर्ताओं की ओर से की गई उक्त दलील को कायम नहीं रखा जा सकता है।

31. इस संदर्भ में, हम संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2012) 6 एससीसी 107 में इस न्यायालय के हाल ही के एक निर्णय का उल्लेख करना चाहेंगे, जिसमें उक्त स्थिति को पैरा 62-63 में निम्नानुसार समझाया गया है: (एससीसी पी. 132)

"62. अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी तर्क दिया गया था कि एक्सप्रेस रिपोर्ट को द० प्र० स० की धारा 157 के तहत निर्धारित मजिस्ट्रेट को तुरंत नहीं भेजा गया था। अधिवक्ता के अनुसार, एफआईआर जो शुरू में 17-11-2004 को दर्ज की गई थी, उसे 19-11-2004 को 2004 की एफआईआर नंबर

116 के रूप में एक नंबर दिया गया था और इसे 20-11-2004 को बदल दिया गया था और केवल 25-11-2004 को मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया गया था। जहां तक उक्त विवाद का संबंध है, हम केवल पाला सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1972) 2 एससीसी 640 में इस न्यायालय के प्रतिवेदित निर्णय का उल्लेख करना चाहते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि (एससीसी पी 645, पैरा 8) जहां एफआईआर वास्तव में बिना किसी देरी के दर्ज की गई थी और जांच उस एफआईआर के आधार पर शुरू हुई थी और अदालत के संज्ञान में कोई अन्य खामी नहीं लाई गई थी, चाहे संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा रिपोर्ट प्राप्त करने में देरी कितनी भी अनुचित या आपत्तिजनक क्यों न हो, अभियुक्त के प्रति किसी पूर्वाग्रह के अभाव में, यह अपने आप में इस निष्कर्ष को सही नहीं ठहरा सकता है कि जांच दूषित थी और अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया जा सकता था।

63. पाला सिंह में उपरोक्त अनुपात को मामले में लागू करते हुए, मजिस्ट्रेट को एफआईआर अग्रेषित करने में देरी की ओर इशारा करते हुए, उक्त देरी के कारण अपीलकर्ताओं के प्रति कोई पूर्वाग्रह होना नहीं कहा गया था। जहां तक जांच शुरू करने का सवाल है, हमारी पहले की विस्तृत चर्चा से पता चलता है कि उस पहलू में कोई कमी नहीं थी। ऐसी परिस्थितियों में हमें उस स्कोर पर अभियोजन पक्ष के मामले में कोई खामी नहीं मिलती है। वास्तव में उपरोक्त निर्णय का बाद में सरवन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1976) 4 एससीसी 369, अनिल राय बनाम बिहार राज्य

(2001) 7 एससीसी 318 और अकील अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2008) 16 एससीसी 372 में पालन किया गया था।

28. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एफआईआर के पूर्व-तिथि या पूर्व-समय होने के खिलाफ बाहरी जांचों में से एक मजिस्ट्रेट को भेजे जाने का समय या मजिस्ट्रेट द्वारा इसकी प्राप्ति का समय है। एफआईआर की एक प्रति "तुरंत" भेजने से यह सुनिश्चित होता है कि एफआईआर में कोई हेरफेर या प्रक्षेप नहीं है। यदि अभियोजन पक्ष को एफआईआर की प्रति भेजने में देरी के लिए स्पष्टीकरण देने के लिए कहा जाता है, तो उसे ऐसा करना चाहिए। हालांकि, अगर अदालत अभियोजन पक्ष के बयान की सच्चाई और गवाहों की विश्वसनीयता से आश्वस्त है, तो स्पष्टीकरण की अनुपस्थिति को अभियोजन पक्ष के मामले के लिए हानिकारक नहीं माना जा सकता है। यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

29. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, एफआईआर दर्ज करने में कोई देरी नहीं हुई। इसलिए इसमें हेरफेर का सवाल ही नहीं उठता। इसके अतिरिक्त, पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी, अ०सा० -21 सुरेंद्र सिंह से मजिस्ट्रेट को विशेष रिपोर्ट भेजने में देरी के बारे में कोई सवाल नहीं पूछा गया। हालांकि, जांच अधिकारी अ०सा० -25 राजेंद्र पारिक से स्पष्टीकरण मांगा गया था, जिन्होंने यह कहते हुए जवाब दिया कि अदालत (या मजिस्ट्रेट) को विशेष रिपोर्ट भेजना उनका कर्तव्य नहीं था। उत्तर दे सकने वाले अधिकारी, अर्थात् थाने

के प्रभारी अधिकारी से कोई प्रश्न न पूछे जाने की स्थिति में, इस संबंध में अभियोजन पक्ष के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है और न ही यह माना जा सकता है कि मजिस्ट्रेट द्वारा विशेष रिपोर्ट प्राप्त करने में विलंब अभियोजन पक्ष के मामले के लिए घातक है। यह चश्मदीद गवाहों के लगातार सबूतों के अलावा है, जिसे हम थोड़ी देर बाद बताएंगे।

62. अनिल राय बनाम बिहार राज्य, (2001) 7 एससीसी 318 और पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह, (2005) 7 एससीसी 408 में यह माना गया है कि क्षेत्र मजिस्ट्रेट को एफआईआर की प्रति भेजने में देरी वहां महत्वपूर्ण नहीं है जहां एफआईआर को तुरंत दर्ज करना दिखाया गया हो और उस आधार पर जांच शुरू की गई हो। देरी उस स्थिति में महत्वपूर्ण नहीं है जब अभियोजन पक्ष ने इसके लिए ठोस और उचित स्पष्टीकरण दिया है।

63. उपरोक्त चर्चा के आधार पर द० प्र० स० की धारा 157 (1) के अनुपालन में देरी के बारे में बचाव पक्ष के तर्क में कोई बल नहीं है और तदनुसार, इसे खारिज कर दिया जाता है।

64. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ताओं ने तर्क दिया है कि यदि इस घटना से पहले मृतक और आरोपी ताहिर, भय्यन और हसन के बीच कोई विवाद हुआ था, तो कोई प्राथमिकी या शिकायत नहीं की गई थी, जिससे पता चलता है कि आरोपी के पास हत्या का कोई मकसद नहीं था।

65. प्राथमिकी में शिकायतकर्ता अ०सा०-1 ने कहा कि साइकिल की टक्कर के कारण मृतक और आरोपी व्यक्तियों ताहिर, भय्यन और हसन

के बीच हाथापाई हुई थी और उन्होंने मृतक को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी लेकिन उन्होंने उस मामले पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

66. यह मामला प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित है जिसके लिए मकसद आवश्यक नहीं है, हालांकि द० प्र० स० की धारा 313 के तहत बयानों में आरोपी व्यक्ति स्वयं मृतक के साथ दुश्मनी और मकसद को स्वीकार करते हैं। यह तीन चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य पर आधारित मामला है, इसलिए मकसद साबित करने की जरूरत नहीं है।

67. तीसरा तर्क यह है कि आरोपी व्यक्तियों का सामान्य उद्देश्य, घटना से पहले गैरकानूनी सभा का गठन और मृतक की हत्या के संबंध में इस तरह की गैरकानूनी सभा का एक सामान्य उद्देश्य स्थापित नहीं किया गया था। इसलिए, आरोपी के व्यक्तिगत कार्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

68. प्राथमिकी में, शिकायतकर्ता ने अपराध करने के पीछे के मकसद के रूप में पिछली दुश्मनी को स्थापित किया। अभियोजन पक्ष के अनुसार, यह मामला प्रत्यक्षदर्शी अ०सा० -1, 2 और 3, मृतक के भाई और करीबी क्षेत्र के सदस्य के प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित था। प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित मामलों में, मकसद का ज्यादा महत्व नहीं होता है, लेकिन परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों में मकसद महत्वपूर्ण और बहुत परिणाम वाला हो जाता है। कानूनी प्रस्ताव **नागराज बनाम राज्य, (2015) 4 एससीसी 739, वक्कर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 (2) एएलजे 452 (एससी),**

नथुनी यादव बनाम बिहार राज्य, (1998) 9 एससीसी 238 आदि में कहा गया था।

69. इस संबंध में भारतीय दंड संहिता की धारा 141 से 149 का उल्लेख करना उचित है जो निम्नानुसार हैं:-

"141. विधिविरुद्ध सभा - पांच या उससे अधिक व्यक्तियों की सभा को "विधिविरुद्ध सभा" के रूप में नामित किया जाता है, यदि उस सभा की रचना करने वाले व्यक्तियों का सामान्य उद्देश्य है-

पहला- केन्द्र या किसी राज्य सरकार या संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल के विरुद्ध आपराधिक बल प्रयोग करके, या किसी लोक सेवक की विधिसम्मत शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी लोक सेवक को भयभीत करना; या

दूसरा- किसी भी कानून, या किसी भी कानूनी प्रक्रिया के निष्पादन का विरोध करना; या

तीसरा- कोई शरारत या आपराधिक अतिचार, या अन्य अपराध करना; या

चौथा- किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति पर अधिकार लेने या प्राप्त करने के लिए आपराधिक बल के माध्यम से, या किसी व्यक्ति को रास्ते के अधिकार के आनंद से वंचित करने के लिए, या पानी या अन्य निराकार अधिकार के उपयोग से, जिसका वह कब्जा या आनंद में है, या किसी अधिकार या कथित अधिकार को लागू करने के लिए; या

पाँचवाँ- आपराधिक बल प्रयोग करके, या आपराधिक बल के प्रदर्शन के माध्यम से, किसी व्यक्ति को वह करने के लिए मजबूर करना जो करने के लिए वह कानूनी रूप से बाध्य नहीं है, या वह करने के लिए छोड़ देता है जो वह कानूनी रूप से करने का हकदार है।

स्पष्टीकरण- एक सभा जो इकट्ठा होने पर गैरकानूनी नहीं थी, बाद में एक गैरकानूनी सभा बन सकती है।

142. विधिविरुद्ध सभा का सदस्य होना- जो कोई भी ऐसे तथ्यों से अवगत होता है जो किसी सभा को गैरकानूनी सभा बनाते हैं, जानबूझकर उस सभा में शामिल होते हैं, या उसमें बने रहते हैं, उन्हें गैरकानूनी सभा का सदस्य कहा जाता है।

143. दण्ड- जो कोई भी विधिविरुद्ध सभा का सदस्य है, उसे किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा जो छह महीने तक बढ़ सकती है, या जुर्माना, या दोनों के साथ।

144. घातक हथियारों से लैस गैरकानूनी सभा में शामिल होना- जो कोई भी, किसी घातक हथियार से लैस है, या ऐसी किसी भी चीज़ से जो अपराध के हथियार के रूप में इस्तेमाल की जाती है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, वह गैरकानूनी सभा का सदस्य है, उसे दो साल तक की अवधि के लिए कारावास या जुर्माने से या दोनों के साथ दंडित किया जाएगा।

145. गैरकानूनी सभा में शामिल होना या उसमें बने रहना, यह जानते हुए भी कि उसे तितर-बितर करने का आदेश दिया गया है- जो कोई भी यह जानते हुए भी कि ऐसी गैरकानूनी सभा को तितर-बितर करने के लिए कानून द्वारा निर्धारित तरीके से आदेश दिया गया है, उसे दो साल तक की कैद या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जाएगा।

146. दंगा करना- जब भी किसी गैरकानूनी सभा द्वारा या उसके किसी सदस्य द्वारा ऐसी सभा के सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में बल या हिंसा का उपयोग किया जाता है, तो ऐसी सभा का प्रत्येक सदस्य दंगा करने के अपराध का दोषी होता है।

147. दंगा करने के लिए सजा- जो कोई भी दंगा करने का दोषी है, उसे दो वर्ष तक के कारावास या जुर्माना, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

148. घातक हथियारों से लैस होकर दंगा करना- जो कोई भी दंगा करने, घातक हथियार से लैस होने या किसी ऐसी चीज से पीड़ित होने का दोषी है, जिसका उपयोग अपराध के हथियार के रूप में किया जाता है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, उसे तीन साल तक की कैद या जुर्माना, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

149. विधिविरुद्ध सभा का प्रत्येक सदस्य सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किए गए अपराध का दोषी है- यदि किसी विधिविरुद्ध सभा के किसी सदस्य द्वारा उस

सभा के सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में कोई अपराध किया जाता है, या ऐसे सभा के सदस्य जानते हैं कि उस उद्देश्य के अभियोजन में किए जाने की संभावना है, प्रत्येक व्यक्ति, जो उस अपराध को करने के समय, उसी सभा का सदस्य है, उस अपराध का दोषी है।

70. उपरोक्त धाराओं के मददेनजर, अभियोजन पक्ष और साक्ष्य पर चर्चा की गई। शुरु से अंत तक, एफ.आई.आर के अनुसार, छह आरोपी व्यक्ति एक साथ थे, जिनमें से आरोपी ताहिर, भय्यन और पप्पू @ कमीना देसी पिस्तौल से लैस थे, जबकि आरोपी नाजुक और नाजिम चाकुओं से लैस थे और आरोपी हसन डंडे से लैस था। अ०सा० -1, 2 और 3 के साक्ष्य से यह स्थापित होता है कि सभी आरोपी व्यक्तियों ने एक साथ अपराध को अंजाम देने में सक्रिय भूमिका निभाई।

71. भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के अनुसार, यदि पांच या अधिक व्यक्तियों वाली सभा के सामान्य उद्देश्य की आवश्यकता होती है, तो उसे "गैरकानूनी सभा" के रूप में नामित किया जाता है।

72. इस धारा के स्पष्टीकरण के अनुसार, यदि प्रारंभ में कोई सभा अपने संयोजन के समय गैरकानूनी नहीं है, तो यह बाद में एक गैरकानूनी सभा बन सकती है।

73. इस मामले में, प्राथमिकी संस्करण और साक्ष्य के अनुसार, मृतक अपने भाई, शिकायतकर्ता अ०सा० -1 के साथ आ रहा था

और जब दो अन्य व्यक्ति उससे मिले, तो शिकायतकर्ता रुक गया, लेकिन मृतक कुछ कदम आगे चला गया जहां कथित अपराध किया गया था। सभी आरोपियों ने एक साथ उन हथियारों से हमला किया जो उनके हाथों में थे।

74. आईपीसी की धारा 142 के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति इस तथ्य को जानता है कि सभा गैरकानूनी है, तो कोई भी व्यक्ति जानबूझकर इसमें शामिल होता है या इसमें बना रहता है, तो उसे ऐसी गैरकानूनी सभा का सदस्य कहा जाता है। आरोपी हसन के हाथ में केवल छड़ी थी, इसलिए, उसके लिए एक तर्क दिया गया है कि उसे गैरकानूनी सभा का सदस्य नहीं कहा जा सकता है और उसके हाथ में हथियार को देखते हुए उसकी भूमिका का आकलन किया जाना चाहिए। प्राथमिकी में और चश्मदीदगवाहों के साक्ष्य में यह कहा गया है कि आरोपी ताहिर और हसन ने मृतक को जमीन पर गिरा दिया। अ०सा०-1 ने जिरह में बयान दिया है कि मृतक को गोली और चाकू के अलावा डंडे से भी मारा गया था। अ०सा०-2 ओम प्रकाश ने मुख्य परीक्षा में बयान दिया कि हसन मृतक को डंडे से मार रहा था। इस संबंध में जिरह में कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है। इसलिए, अ०सा०-2 के निर्विवाद होने के सबूत आरोपी हसन की भूमिका के बारे में निर्णायक हो जाते हैं।

75. अ०सा०-3, गंगा राम ने जिरह में गवाही दी कि हसन और ताहिर ने मृतक को जमीन पर गिराया। हसन के पास एक छड़ी थी। सुरेश पर गोली चलाई गई तो उसने संघर्ष करते हुए भागने की कोशिश की तो हसन और ताहिर ने उसे पकड़कर गिरा दिया। इस गवाह से भी कोई

सवाल नहीं पूछा गया है और आरोपी हसन द्वारा डंडे से मारने या न मारने के संबंध में कोई सुझाव नहीं दिया गया है। तथ्य अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के सभी गवाहों ने प्राथमिकी के संस्करण का समर्थन किया है। सर्वसम्मति से और बिना किसी विरोधाभास के गवाही दी है कि जब मृतक 5-6 कदम आगे गया और जब वे मुड़े, तो उन्होंने देखा कि ताहिर और हसन ने मृतक को जमीन पर गिरा दिया और ताहिर, भय्यन और पप्पू @ कमीना ने मृतक पर अंधाधुंध गोलीबारी शुरू कर दी। नाजुक और नाजिम ने उस पर चाकू से हमला किया और हसन ने डंडे से हमला किया।

76. किसी विधिविरुद्ध सभा के किसी सदस्य के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में किए गए किसी कृत्य के लिए, उस सभा का प्रत्येक सदस्य ऐसे कृत्यों के लिए भी रचनात्मक रूप से उत्तरदायी होगा जहां ऐसे कृत्य अपराध कारित करते हैं। आरोपी हसन द्वारा मृतक को डंडे से मारना या आरोपी नाजुक और नाजिम द्वारा रेजर और चाकू से वार करना और ताहिर, भाईजान और पप्पू @ कमीना द्वारा बन्दूक का उपयोग करना यह स्थापित करता है कि सभी आरोपी व्यक्तियों का एक ही सामान्य उद्देश्य था। उपरोक्त सबूतों से, गैरकानूनी सभा के सदस्य के रूप में प्रत्येक आरोपी की उपस्थिति और भागीदारी स्पष्ट रूप से स्थापित होती है।

77. भारतीय दंड संहिता की धारा 149 अलग-अलग अपराध नहीं बनाती है, बल्कि सभा के सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए किए गए कृत्यों के लिए गैरकानूनी सभा के लिए सभी सदस्यों के परोक्ष दायित्व की घोषणा

करती है। आरोपी हसन के हमले से कोई घातक चोट नहीं हो सकती है, लेकिन चूंकि वह जानता था कि बाकी व्यक्तियों के पास घातक हथियार थे जिनका उपयोग मृतक की हत्या में किया जाएगा और उनके हमले के कारण मृतक की मृत्यु हो गई थी, हसन भी हत्या के लिए गैरकानूनी सभा का सदस्य होने के लिए प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उत्तरदायी होगा। हालांकि गैरकानूनी सभा में केवल उपस्थिति व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं बना सकती है जब तक कि सामान्य उद्देश्य न हो और अपीलकर्ता ने इसे अन्य अभियुक्तों के साथ साझा किया हो, लेकिन इस मामले में आरोपी हसन ने सक्रिय भूमिका निभाई है। सबसे पहले, उसने मृतक को सह-आरोपी ताहिर के साथ छोड़ दिया और उसे डंडे से भी मारा, यह जानते हुए कि तीन अन्य आरोपियों के पास आग्नेयास्त्र थे और बाकी दो अन्य आरोपियों के पास रेजर और चाकू जैसे घातक हथियार थे जिनका उपयोग मृतक की हत्या में किया जाना प्रस्तावित था। इसलिए, यह बहुत अच्छी तरह से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आरोपी हसन भी धारा 302 आईपीसी के साथ धारा 147, 148, 149 आईपीसी के तहत हत्या के लिए उत्तरदायी होगा। जहां तक शेष पांच अभियुक्त व्यक्तियों का संबंध है, यह उचित संदेह से परे साबित हो गया है कि उन सभी ने सुरेश की हत्या के लिए बनाई गई गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मृतक को घातक चोटें पहुंचाई हैं।

78. लालजी बनाम राज्य, एआईआर 1989 एससी 754, भूदेव मंडल बनाम राज्य, एआईआर 1981 एससी 1219 में यह माना

गया है कि धारा 149 एक विशिष्ट और पृथक अपराध बनाती है। गैरकानूनी सभा के सदस्य का परोक्ष दायित्व (i) गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में किए गए कृत्यों और (ii) यदि गैरकानूनी सभा के सदस्यों के रूप में ऐसे अपराध जिनके उस उद्देश्य के अभियोजन में किए जाने की संभावना थी, तक विस्तारित होगा। एक अभियुक्त व्यक्ति जिसका चेहरा इस धारा की शर्तों के भीतर झूठा है, वह बचाव में यह नहीं रख सकता है कि उसने अपने हाथों से गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य या सभा के सदस्यों के अभियोजन में किए गए अपराध को अंजाम नहीं दिया।

79. फते बनाम राज्य, एआईआर 1979 एससी 1504 में यह माना जाता है कि हर किसी को उन कृत्यों के संयोजन के संभावित और प्राकृतिक परिणामों का इरादा होना चाहिए जिसमें वह शामिल हुआ था। सभी मामलों में यह आवश्यक नहीं है कि गैरकानूनी सभा बनाने वाले सभी व्यक्तियों को कुछ न कुछ अनुचित कार्य करना चाहिए।

80. विशम्बर भगत बनाम राज्य, एआईआर 1971 एससी 2381 में यह माना गया है कि जहां आरोपी लाठियों से लैस होकर एक साथ इकट्ठा हुए थे और शिकायतकर्ता पर हमले के पक्षकार थे, अभियोजन पक्ष यह साबित करने के लिए बाध्य नहीं है कि किस आरोपी द्वारा कौन सा विशिष्ट कार्य किया गया था।

81. गजानंद बनाम राज्य, एआईआर 1954 एससी 695 में दायित्व के आधार पर चर्चा की

गई है। इस मामले में यह माना गया है कि धारा 149 के तहत, घटना की निरंतरता के दौरान किए गए अपराध के लिए अन्य सदस्यों का दायित्व इस तथ्य पर निर्भर करता है कि क्या अन्य सदस्यों को पहले से पता था कि वास्तव में किए गए अपराध को सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किए जाने की संभावना थी। इस तरह के ज्ञान को उचित रूप से सभा की प्रकृति, हथियारों या व्यवहार, कार्रवाई के दृश्य में या उससे पहले एकत्र किया जा सकता है।

82. मसलाती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1965 एससी 202 मामले में सुप्रीम कोर्ट की संवैधानिक पीठ ने कहा:

"जिस व्यक्ति पर गैरकानूनी हिंसा का सदस्य होने का आरोप है, उसे साबित करने की आवश्यकता है कि वह विधानसभा का गठन करने वाले व्यक्तियों में से एक था और उसने विधानसभा के अन्य सदस्यों के साथ धारा 141 आईपीसी द्वारा परिभाषित सामान्य उद्देश्य पर विचार किया। ऐसे मामले में यह निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या सभा पांच या अधिक व्यक्तियों से बनी है और क्या उक्त व्यक्ति धारा 141 द्वारा निर्दिष्ट एक या अधिक सामान्य उद्देश्यों को स्वीकार करते हैं।"

83. राज्य बनाम कृष्ण चंद, एआईआर 2004 एससी 4671 में यह माना गया है कि यह कानून का एक अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है कि जब धारा 149 की सहायता से दोषसिद्धि दर्ज की जाती है, तो अदालत द्वारा

जांच किए जाने वाले प्रासंगिक प्रश्न यह है कि क्या आरोपी एक गैरकानूनी सभा का सदस्य था और यह नहीं कि उसने वास्तव में अपराध में सक्रिय भाग लिया था या नहीं।

84. इस मामले में, सभी अपीलकर्ता घातक हथियारों के साथ कथित गैरकानूनी सभा के सदस्य साबित हुए, सिवाय आरोपी हसन के जिसके हाथ में लाठी थी। मृतक को नीचे गिराने में लाठी का इस्तेमाल किया गया और लाठी से हमले किए गए। लाठी से हमले के कारण कोई घातक चोट नहीं हो सकती है, लेकिन मृतक को मारने के सामान्य उद्देश्य वाले गैरकानूनी जमावड़े का सदस्य होने के नाते, आरोपी हसन को धारा 149 की सहायता से धारा 302 आईपीसी के तहत हत्या के अपराध के लिए भी दोषी ठहराया जा सकता है।

85. अपीलकर्ता हसन के लिए यह भी तर्क दिया जाता है कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में लाठी की कोई चोट नहीं पाई गई है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अवलोकन से यह पता चलता है कि मृतक को 22 चोटें आई थीं! यह काफी संभव है कि छड़ी के कारण लगी चोट चोटों की ऐसी श्रृंखला के तहत छिपी हुई होगी। इसलिए, इस तर्क का कोई बल नहीं है और तदनुसार, अस्वीकार कर दिया जाता है।

86. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अ०सा० -1 और 2 के अनुसार, घटना स्लैब पर हुई जबकि अ०सा० -3 और साइट प्लान के अनुसार स्लैब से कुछ दूरी पर घटना का स्थान था।

87. इस संबंध में, इस न्यायालय ने प्राथमिकी के प्रासंगिक भाग और साक्ष्य की जांच की है। प्राथमिकी के अनुसार जब शिकायतकर्ता और मृतक शाम 07 बजे डॉ. शर्मा की दुकान के पास चौराहे पर पहुंचे, तो उनके इलाके के शिकायतकर्ता, ओम प्रकाश, हवलदार और गंगा राम उनसे मिले, जिनसे उन्होंने बात करना शुरू किया, उनका भाई 5 से 6 कदम दूर चला गया तो उन्हें डॉ. शर्मा की दुकान के सामने रोक दिया गया और ताहिर और हसन ने सुरेश को पकड़ लिया और उसे जमीन पर गिरा दिया, आरोपी ताहिर, भइयां और पप्पू @ कमीना ने उस पर अंधाधुंध फायरिंग शुरू कर दी। नाजुक और नाजिम ने चाकुओं से हमला किया और हसन ने उसे डंडे से मारा। मृतक मौके पर ही गिर गया और मदद के लिए चिल्लाया।

88. शिकायतकर्ता की निशानदेही पर विवेचनाधिकारी द्वारा प्रदर्श क-16 का नक्शा तैयार किया गया जिसमें घटना के स्थान को 'एक्स' अक्षर द्वारा दर्शाया गया है जो नाले से कुछ कदम की दूरी पर है और डॉ. शर्मा की दुकान के सामने और उत्तर में है जहां से खून से सना और साधारण मिट्टी ली गई थी। स्थान 'बी' से खाली कारतूस बरामद किया गया। शिकायतकर्ता और बाकी गवाहों को 'ए' स्थान पर स्लैब पर पूर्व की ओर खड़े दिखाया गया है। 'A' से 'X' के बीच की दूरी 8 कदम पाई गई और पुल से घटना का स्थान लगभग 6 कदम था। इस प्रकार शिकायतकर्ता और गवाह घटना के स्थान से केवल 8 कदम दूर थे। प्राथमिकी के अनुसार, जब उसका भाई उससे 5 से 6 कदम आगे बढ़ा, तो आरोपी

व्यक्तियों ने कथित घटना को अंजाम देना शुरू कर दिया।

89. अ०सा०-1 ने अपनी मुख्य परीक्षा में भी यही तथ्य प्रस्तुत किए हैं। जिरह के दौरान अ०सा०-1 ने भी इसी तरह के साक्ष्य पेश किए हैं। इस गवाह ने गवाही दी कि जब उसने पहली बार देखा, तो उसने पाया कि आरोपी व्यक्ति उससे पश्चिम की ओर खड़े थे और वे मृतक को मार रहे थे। उन्होंने आगे कहा कि नाले के ऊपर 2 फीट चौड़ा स्लैब था। घटना के समय वह और उसका भाई उस पर मौजूद थे, उन्होंने इसे पार नहीं किया था। उस स्लैब पर, कोई रक्त नहीं गिरा था। रात होने के कारण वह यह नहीं देख सका कि स्लैब पर खून गिरा है या नहीं।

90. अ०सा०-2 ने बयान दिया है कि उसने देखा कि आरोपी कथित अपराध कर रहे थे और देखा कि मृतक आरके शर्मा की पटरी पर पड़ा था और मछली की तरह तड़प रहा था। जिरह में इस गवाह ने गवाही दी है कि घटना स्थल के पास एक तिराहा था, जहां सड़क उत्तर-दक्षिण और पश्चिम दिशा में चलती थी, जहां सड़क पश्चिम दिशा में मुड़ती थी। वहां नाले पर एक नाला और एक स्लैब पड़ा हुआ था। नाला उत्तर-दक्षिण में था। यह स्लैब ट्रैक दुकान के पास था और सड़क सरकारी स्वामित्व वाली थी। उन्होंने आरके शर्मा की दुकान के सामने पड़े स्लैब को पटरी बताया।

91. अ०सा० -3, गंगा राम ने बयान दिया है कि हसन और ताहिर ने मृतक को आरके शर्मा की दुकान के सामने छोड़ दिया, आरोपी

व्यक्तियों ने उसे घेर लिया और उसे मारना शुरू कर दिया। जहां यह घटना हुई वहां से करीब 6 कदम की दूरी पर वह पूर्व दिशा में खड़ा था। घटना स्थल के पास करीब 1 ½ से 2 फीट चौड़ा नाला था। स्लैब नाले पर पड़ा था, वह उस पर खड़ा था। उसने रमेश से लगभग आधे मिनट तक मुश्किल से बात की थी कि बात करते समय उसे फायर की आवाज सुनाई दी। वे नाले पर पड़े स्लैब पर खड़े थे, स्लैब पर घटना नहीं हुई। यह डॉ. शर्मा की दुकान के सामने हुआ। घटना स्थल पर सुरेश के शरीर से खून बह रहा था। जिस स्थान पर यह घटना हुई, वह एक सड़क थी जो पश्चिम की ओर जाती है। वहां से पश्चिम की ओर चलने पर डॉ. शर्मा की दुकान दक्षिण दिशा में पड़ती थी। यह घटना डॉ. आर०के शर्मा की दुकान की दहलीज से 1-2 कदम की दूरी पर हुई। बदमाश डॉ. शर्म की दुकान के सामने दाईं ओर थे। वे 1 ½ से 2 कदम की दूरी पर थे।

92. जब हम अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य की तुलना मानचित्र और प्राथमिकी से करते हैं, तो हमें घटना के स्थान के बारे में कोई भिन्नता या विरोधाभास नहीं मिलता है। जिस व्यक्ति पर हमला किया जा रहा है, वह अपनी जान बचाने की पूरी कोशिश करता है। मृतक और आरोपी व्यक्ति कम से कम 5 से 8 फीट के क्षेत्र में मौजूद प्रतीत होते हैं। ऐसा नहीं है कि मृतक की हत्या तय जगह पर सोने के दौरान की गई हो। घटना के स्थान से बचाव पक्ष द्वारा इनकार नहीं किया गया है और यह बचाव पक्ष का मामला नहीं है कि घटना का स्थान वही नहीं है जैसा कि शिकायतकर्ता और गवाहों द्वारा आरोप लगाया

गया है। यहां तक कि ब.सा.-1 ने भी घटना के एक ही स्थान को स्वीकार किया है। प्रदर्श क-14 के अनुसार, घटना स्थल से खून से सना और सादा मिट्टी एकत्र किया गया था। प्रदर्श क-15 के अनुसार, घटना स्थल पर 315 बोर का एक खाली कारतूस भी पाया गया। विवेचनाधिकारी को भी घटना का वही स्थान मिला है जहां मृतक की हत्या की गई थी। इसलिए, केवल उपर्युक्त सुझाव या तर्क के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि घटना का स्थान बदल दिया गया है।

93. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि घायल को अस्पताल कैसे लाया गया, यह संदिग्ध है।

94. इस न्यायालय के अनुसार, यह मुद्दा नहीं है कि मृतक को घटना के स्थान से अस्पताल कैसे लाया गया था। यहां तक कि अगर मृतक को घटनास्थल से अस्पताल लाने के तरीके में कोई भिन्नता स्थापित की जाती है, तो यह मामले की योग्यता को प्रभावित नहीं करेगा।

95. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जिला अस्पताल, बरेली के चिकित्सा साक्ष्य को रोक दिया गया है और विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र नहीं किया गया था।

96. निश्चित रूप से जिला अस्पताल, बरेली में मृतक के इलाज के संबंध में कोई चिकित्सा दस्तावेज पेश नहीं किया गया था, लेकिन इस अदालत के अनुसार मामले के निपटान के लिए

ऐसे दस्तावेजों की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह पूरी तरह से साबित हो गया है कि जब मृतक को जिला अस्पताल लाया गया था, तो डॉक्टर ने उसे मृत घोषित कर दिया था। शव को पोस्टमार्टम के लिए मोर्चरी में भेज दिया गया है। चूंकि जिला अस्पताल में कोई इलाज नहीं किया गया था, इसलिए यदि जिला अस्पताल के किसी भी चिकित्सा दस्तावेज को एकत्र नहीं किया गया है और केस डायरी के साथ संलग्न नहीं किया गया है, तो यह अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है।

97. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि शव को मुर्दाघर ले जाने वाले कांस्टेबलों की जांच नहीं की गई थी।

98. इस न्यायालय के अनुसार, आम तौर पर यह तथ्य कि शव को पोस्टमार्टम के लिए पंचनामा के बाद परिवहन के लिए किस कांस्टेबल को सौंपा गया था, कभी भी मुद्दा नहीं है। चूंकि इस तथ्य का आपराधिक न्याय के लिए कोई महत्व नहीं है, इसलिए ऐसे गवाहों की जांच करना आवश्यक नहीं है।

99. जहां तक प्राथमिकी के पूर्व-समय के बारे में तर्क का संबंध है, इस निर्णय के पूर्वगामी पैराग्राफ में इस पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

100. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि शव परीक्षण अत्यधिक देरी से किया गया था।

101. इस मामले में अ०सा०-6 में डॉ. जीडी कटियार ने अगले दिन यानी 25.09.2001

को तड़के 03:15 बजे शव परीक्षण किया है। यह घटना दिनांक 24-09-2001 को लगभग 07:00 बजे हुई। रात में जांच रिपोर्ट तैयार होने के बाद शव को मोर्चरी भेजा गया और 24/25-09-2001 की रात को शव का पोस्टमार्टम डॉ जीडी कटियार द्वारा किया गया। पोस्टमार्टम में कोई देरी नहीं है, बहुत कम देरी है।

102. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि तथ्य के गवाहों के साक्ष्य में भौतिक असंगति और विरोधाभास हैं और अ०सा० 1, 2 और 3 का आचरण अप्राकृतिक था।

103. इससे पहले तथ्य के गवाहों के बयान पर चर्चा की गई थी। अभियोजन पक्ष के बयान के समर्थन में सभी गवाहों ने गवाही दी और गवाहों के साक्ष्य में कोई कमजोरी, असंगति या भौतिक विरोधाभास नहीं पाया गया। इसके विपरीत, अ०सा० -1, 2 और 3 के साक्ष्य एक-दूसरे के साथ पुष्टि में हैं। न तो घटना के स्थान, हमले के तरीके, आरोपी व्यक्तियों की पहचान, आरोपी व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग इस्तेमाल किए गए हथियारों, मृतक को रिकशा पर लोड करने के संबंध में कोई विरोधाभास है और न ही प्रकाश या अपराध के साथ जुड़े किसी अन्य तथ्य के बारे में कोई विरोधाभास है। तथ्य के सभी गवाह स्थानीय व्यक्ति हैं, मौके पर उनकी उपस्थिति काफी स्वाभाविक थी। चूंकि आरोपी व्यक्ति घातक हथियारों से लैस थे और उन्होंने दो मिनट के भीतर अपराध को अंजाम दिया और मौके से भाग गए, इसलिए, गवाहों को मृतक की जान बचाने या कुछ

आरोपी व्यक्तियों को पकड़ने का कोई मौका नहीं आया।

आरोपी व्यक्तियों की दिशा और आगमन या प्रस्थान के बारे में कोई भिन्नता नहीं है।

104. भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 एससीसी 537, रमेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2009) 15 एससीसी 513 में, यह माना गया है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में मामूली विरोधाभास पाए जाते हैं और वास्तव में वे गवाहों की सच्चाई का समर्थन करने के लिए जाते हैं। मकसूदन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1983) 1 एससीसी 218 (तीन-न्यायाधीशों की पीठ) में, यह माना गया है कि यदि गवाहों और प्राथमिकी के बयानों में मामूली विसंगतियां हैं, जो कि किए गए हमलों की संख्या और यह बताने में विफलता के संबंध में हैं कि किसने घायल किया है, तो गवाहों की गवाही अपने आप में अविश्वसनीय नहीं होगी। इसके विपरीत, यह दर्शाता है कि गवाहों को सिखाया नहीं गया था और स्टीरियोटाइप सबूत की तरह कोई तोता नहीं दिया गया था।

105. इस मामले में सभी तीन गवाहों ने प्रत्येक अभियुक्त द्वारा अलग-अलग निभाई गई भूमिका के बारे में लगातार सबूत दिए हैं और यह भी बताया है कि किस आरोपी के हाथ में कौन सा हथियार था और किस तरीके से उन्होंने मृतक पर हमला किया। आरोपी व्यक्तियों के लिए पिछली दुश्मनी पहले से ही स्वीकार की गई है। कोई बहाना नहीं लिया गया है। आरोपी व्यक्तियों की तारीख, समय, स्थान और संख्या के बारे में गवाहों के साक्ष्य में कोई असंगति या कोई भिन्नता नहीं है।

106. ननकुनू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2016) 3 एससीसी 317 (तीन-न्यायाधीश-पीठ) में, यह माना गया था कि जहां गवाह घटना का सुसंगत संस्करण देते हैं, गवाहों की लगातार गवाही को विश्वसनीय माना जाना चाहिए।

107. भगवान जगन्नाथ मरकड (सुप्रा), रमेश हरजन बनाम यूपी राज्य, (2012) 5 एससीसी 777, लीला राम बनाम हरियाणा राज्य, (1999) 9 एससीसी 525, मुकेश बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी) और अन्य, एआईआर 2017 एससी 2161 (तीन-न्यायाधीश-पीठ) में यह माना गया है कि यदि किसी गवाह की गवाही में कोई भौतिक विसंगतियां या विरोधाभास नहीं हैं, उनके साक्ष्य पर केवल कुछ सामान्य, प्राकृतिक या मामूली प्रतिबंधों, विसंगतियों, अतिशयोक्तियों, अलंकरणों आदि के आधार पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है। भौतिक विसंगतियों और सामान्य विसंगतियों के बीच अंतर यह है कि मामूली विसंगतियां किसी पार्टी के मामले की विश्वसनीयता को कम नहीं करती हैं, लेकिन भौतिक विसंगतियां ऐसा करती हैं।

108. उपर्युक्त चर्चा के आधार पर चूंकि अ०सा० -1, 2 और 3 के साक्ष्य में कोई भौतिक असंगति, अपुष्टता या विरोधाभास नहीं पाया गया है, इसलिए यह तर्क तर्कसंगत नहीं है और तदनुसार, खारिज कर दिया जाता है।

109. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि मेडिकल रिपोर्ट/साक्ष्य और चक्षुदर्शी साक्ष्य के बीच असंगति है।

110. अ०सा० -1, 2 और 3 तथ्यों के सभी गवाहों ने गवाही दी कि आरोपी ताहिर, भय्यन और पप्पू @ कमीना ने मृतक पर अंधाधुंध गोलियां चलाईं और नाजुक और नाजिम ने उस्तरे और चाकू से हमला किया था। हसन ने डंडे से हमला किया था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अवलोकन से संकेत मिलता है कि मृतक के व्यक्ति पर घाव के घाव, बन्दूक के घाव, घाव और खरोंच के निशान पाए गए हैं जो तब होगा जब किसी व्यक्ति पर कथित तरीके से कथित हथियारों से हमला किया जाता है।

111. यदि किसी व्यक्ति पर उस्तरे और चाकू से हमला किया जाता है, तो घाव हो जाएगा। यदि किसी व्यक्ति को जबरदस्ती सड़क / जमीन पर गिरा दिया जाता है, तो घर्षण हो सकता है। यदि किसी व्यक्ति को लाठी से मारा जाता है, तो घर्षण या घाव हो सकते हैं। यदि किसी व्यक्ति को बन्दूक से गोली मार दी जाती है, तो प्रवेश या निकास घाव हो सकता है। यहां तक कि शव परीक्षण के दौरान मृतक के शरीर से धातु की गोलियां भी बरामद की गईं। इस प्रकार, मेडिकल रिपोर्ट और साक्ष्य और व्यावसायिक साक्ष्य के बीच कोई विसंगति या असंगति नहीं है। इस तरह की चोटें तब हो सकती हैं जब कोई हमला उन हथियारों द्वारा किया जाता है जो आरोपी व्यक्तियों के हाथों में थे। इसलिए, इस तर्क में भी कोई बल नहीं है और तदनुसार, खारिज कर दिया जाता है।

112. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि शिकायतकर्ता रमेश के शरीर और कपड़ों पर कोई खून नहीं मिला।

113. अ०सा०-1, सूचनादाता, मृतक के भाई रमेश चंद्र भारती ने साबित कर दिया कि घटना के बाद वह मृतक को वहां बैठाकर रिक्शा द्वारा जिला अस्पताल ले गया। निश्चित रूप से, सूचना देने वाले के शरीर और कपड़ों पर कुछ खून गिरा होगा। इस संबंध में, जिरह की गई है जिसमें गवाह ने गवाही दी कि वह घबराहट में विवेचनाधिकारी को अपने कपड़ों पर खून नहीं दिखा सका, यहां तक कि उसने उन कपड़ों को पुलिस को भी नहीं दिया। इस संबंध में आई.ओ., अ०सा०-10 से कोई प्रश्न नहीं पूछा गया था। आम तौर पर जब उचित सबूत पहले से ही उपलब्ध होते हैं, तो विवेचनाधिकारी गवाहों के कपड़ों की कस्टडी नहीं लेता है। चूंकि शिकायतकर्ता, अ०सा० -1 और बाकी गवाहों की उपस्थिति संदिग्ध नहीं है, इसलिए, यदि विवेचनाधिकारी ने शिकायतकर्ता के खून से सने कपड़े नहीं लिए थे और उन्हें परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था, तो अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है। इसे चूक या दोषपूर्ण जांच का कार्य कहा जा सकता है। दोषपूर्ण जांच अपने आप में एकमात्र ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसे अदालत द्वारा खोजा जा सके।

114. **खेम राम बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 1 एससीसी 202; कर्नाटक राज्य बनाम सुवर्णम्मा (सुप्रा); लीला राम (सुप्रा); दशरथ सिंह बनाम यूपी राज्य, (2004) 7 एससीसी 408; पंजाब राज्य बनाम हाकम सिंह, (2005) 7**

एससीसी 408, में यह माना गया है कि विवेचनाधिकारी द्वारा जांच में किसी भी अनियमितता या कमी से अभियोजन पक्ष के मामले को अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है जब यह अन्यथा साबित हो जाता है। एकमात्र आवश्यकता साक्ष्य के मूल्यांकन में अतिरिक्त सावधानी का उपयोग है। एक दोषपूर्ण जांच अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं हो सकती है जहां साक्ष्य विश्वसनीय और ठोस पाया जाता है।

115. **राहुल मिश्रा बनाम उत्तराखंड राज्य, एआईआर 2015 एससी 3043 (तीन-न्यायाधीश-पीठ) और वीके मिश्रा बनाम उत्तराखंड राज्य, (2015) 9 एससीसी 588 (पैरा-38)** में यह माना गया है कि विवेचनाधिकारी सभी संभावित बचावों का अनुमान लगाने और उस नजरिये से जांच करने के लिए बाध्य नहीं है। किसी भी घटना में, विवेचनाधिकारी की ओर से कोई भी चूक अभियोजन पक्ष के खिलाफ नहीं जा सकती है। न्याय के हित की मांग है कि विवेचनाधिकारी के ऐसे कृत्यों या चूक को आरोपी के पक्ष में नहीं लिया जाना चाहिए अन्यथा यह ऐसी चूक पर प्रीमियम लगाने के समान होगा।

116. **मकबूल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य मामले में, एआईआर 2011 एससी 184; शिव शंकर सिंह बनाम झारखंड राज्य, 2011 सीआरएलजे 2139 (एससी); और धनज सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2004) 3 एससीसी 654** में यह माना गया है कि मृतक या घायल के खून से सनी मिट्टी और कपड़ों को रासायनिक परीक्षण के लिए न भेजना अभियोजन के मामले के लिए

घातक नहीं है यदि गवाही विश्वसनीय और ठोस पाई जाती है।

117. इस मामले में ये मिसालें पूरी तरह से अभियोजन पक्ष के पक्ष में लागू होती हैं।

118. उपर्युक्त चर्चा के आधार पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि यदि विवेचनाधिकारी द्वारा सूचनादाता के कपड़े नहीं लिए गए थे और उसे जांच के लिए नहीं भेजा गया था या विवेचनाधिकारी द्वारा उसके व्यक्ति पर रक्त के बारे में तथ्य नोट नहीं किया गया था, तो यह अभियोजन पक्ष के लिए न तो महत्वपूर्ण है और न ही घातक है। इसलिए, इस तर्क को भी खारिज किया जाता है।

119. अंत में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे मामले को साबित नहीं कर सका।

120. यह चक्षुदर्शी साक्ष्य पर आधारित एक मामला है। गवाहों ने साबित कर दिया कि मृतक को आरोपी व्यक्तियों द्वारा कथित तारीख, समय और घटना के स्थान पर मारा गया था। उन्होंने यह भी साबित किया कि किस आरोपी के पास कौन सा हथियार था और उन हथियारों का इस्तेमाल अपराध को अंजाम देने में किया गया था। उनकी निशानदेही पर कुछ हथियार बरामद किए गए हैं। शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर ने पाया कि हमले से उन चोटों का पता चला जो आरोपी व्यक्तियों के हाथों में थे। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से

परे मामले को साबित करने में विफल रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि बचाव पक्ष द्वारा कोई उचित संदेह पैदा नहीं किया जा सकता है। उचित संदेह एक जड़ वस्तु नहीं है।

121. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए निम्नलिखित निर्णय तत्काल मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होते हैं:

(i) जगदीश मुराओ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2006 0 उच्चतम (एससी) 775

(II) मारुति रामा नायक बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2003 0 उच्चतम (एससी) 863

(III) संपत कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक, कृष्णागिरी, 2012 0 सर्वोच्च (एससी) 214

(iv) उत्तर प्रदेश राज्य बनाम परशुराम यादव, 2005 0 सर्वोच्च (सभी) 1309।

(v) राजस्थान राज्य बनाम दाउद खान, 2015 0 सर्वोच्च (एससी) 1041

(VI) खीमा विकामशी बनाम गुजरात राज्य, 2003 0 उच्चतम (एससी) 363

(vii) गणेश भवन पटेल और दूसरा बनाम गुजरात राज्य, 1978 0 उच्चतम (एससी) 323

122. महावीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 6 एससीसी 716 (पैरा 16) में अपीलकर्ताओं की ओर से संदर्भित उपरोक्त उद्धरणों के विपरीत, सुप्रीम कोर्ट ने कानूनी प्रस्ताव का निपटारा किया है कि यदि किसी विशेष मुद्दे के संबंध में गवाह से जिरह नहीं की जाती है, तो उस मुद्दे की शुद्धता या

वैधता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। निस्संदेह, यह अभियोजन पक्ष का कर्तव्य है कि वह कहानी के अपने पक्ष को साबित करे। तथापि, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के आलोक में उच्चतम न्यायालय ने **हरेंद्र बनाम असम राज्य, एआईआर 2008 एससी 2467 और हिमांचल प्रशासन बनाम ओम प्रकाश, एआईआर 1972 एससी 975** मामले में कहा है कि संदेह का लाभ तार्किक, तर्कसंगत और ईमानदार निष्कर्ष के आधार पर ही दिया जाना चाहिए।

123. उपर्युक्त चर्चा से, यह स्थापित किया गया है कि इस मामले में नामित अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध उनकी विशिष्ट भूमिका का वर्णन करते हुए एक त्वरित एफआईआर दर्ज की गई है, जिन्होंने इस तरह की सभा के सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए गैरकानूनी सभा बनाने के बाद मृतक की हत्या कर दी थी, जिसे स्वतंत्र चश्मदीदगवाहों द्वारा उचित संदेह से परे साबित किया गया है। गवाहों को वास्तविक गवाह साबित किया जाता है। यद्यपि ट्रायल कोर्ट ने आरोपी व्यक्तियों को शस्त्र अधिनियम के आरोप के तहत बरी कर दिया है, जिसके खिलाफ राज्य या शिकायतकर्ता द्वारा कोई अपील नहीं की गई है। लेकिन शस्त्र अधिनियम के तहत एक आरोप मुख्य अपराध कारित करने के बारे में भारतीय दंड संहिता के तहत आरोपों से अलग है। इस संदर्भ में **ननकुनू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2016) 3 एससीसी 317 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)** का फैसला महत्वपूर्ण है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि जहां चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि किए गए पर्याप्त

अकाट्य चक्षुदर्शी साक्ष्य उपलब्ध हैं, आरोपी के पास से हथियार की बरामदगी से हत्या से संबंधित अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित नहीं करता है।

124. अभियोजन पक्ष आईपीसी की धारा 147, 148, 302 के साथ धारा 149 के तहत उचित संदेह से परे सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मामले को साबित करने में सफल रहा है। अपीलकर्ता कोई संदेह पैदा नहीं कर सके और कोई आधार स्थापित नहीं कर सके जिस पर उपरोक्त आरोपों के तहत दर्ज दोषसिद्धि को उलट दिया जा सके। हालांकि यह क्रूर हत्या का मामला है, फिर भी ट्रायल कोर्ट ने केवल न्यूनतम सजा सुनाई है जिसे बदला नहीं जा सकता है। इस प्रकार यह न्यायालय निष्कर्ष निकालता है कि दोषसिद्धि और सजा के संबंध में अपील योग्यता से रहित हैं और खारिज किए जाने योग्य हैं।

आदेश

125. अपीलों को खारिज किया जाता है।

126. मूल पत्रावली को इस फैसले की एक प्रति के साथ रखे जाने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

(2023) 4 ILRA 1489

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा,

रिट-ए संख्या 3451/2022

संलग्न

अन्य रिट-ए वाद

कलामुद्दीन एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री सिद्धार्थ खरे, श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: सी.एस.सी., श्री सुजीत कुमार राय, श्री ओ.पी. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री नवीन सिन्हा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. सेवा कानून - परिपत्र दिनांक 17.09.2021- आयुक्त एवं रजिस्ट्रार, सहकारिता उ.प्र., लखनऊ द्वारा जारी- याचिकाकर्ताओं द्वारा संविदात्मक कार्यों की आउटसोर्सिंग की जा रही है- तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी-पिछले 10 से 20 वर्षों से संविदा के आधार पर कार्यरत हैं- उ.प्र. सहकारी समिति अधिनियम, 1965- उ.प्र. सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975- उ.प्र. राज्य निर्माण सहकारी संघ- राज्य स्तरीय शीर्ष समाज।

बी. क्या संघ के विरुद्ध रिट याचिका स्वीकार्य है- स्वीकार्यता का प्रश्न मुख्य विवाद से भटकाने के लिए उठाया गया- रिट याचिका स्वीकार्य मानी गई- प्रतिवादी संख्या 2 के परिपत्र को चुनौती और उसके बाद की गई परिणामी कार्रवाई। (पैराग्राफ 53 और 68)

यदि ऐसा है, तो दिनांक 17.09.2021 के ऐसे परिपत्र जारी करने के बाद प्रतिवादी संख्या 3 से 6 का आचरण उनके विद्वान अधिवक्ता की तर्कों को झुठलाता है। यदि प्रतिवादी संख्या 2 का प्रतिवादी संख्या 3 से 6 पर कोई नियंत्रण नहीं था, तो यह बिल्कुल असंभव है कि उन्होंने

सेवा प्रदाताओं से बोलियाँ आमंत्रित करते हुए GeM पोर्टल पर निविदा नोटिस जारी किया होगा। इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि पोषणीयता का प्रश्न केवल मुख्य विवाद से भटकाने के लिए उठाया गया है कि क्या प्रतिवादी संख्या 2 दिनांक 17.09.2021 को ऐसा परिपत्र जारी कर सकता था। यह भी स्पष्ट है कि यदि प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा ऐसे परिपत्र को प्रभावी किया जाता है, तो याचिकाकर्ता वास्तव में प्रभावित होने वाले हैं। इसलिए, इस न्यायालय का मत है कि रिट याचिकाएँ पोषणीय हैं क्योंकि वे प्रतिवादी संख्या 2 के परिपत्र और उसके बाद प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा की गई परिणामी कार्रवाइयों को चुनौती देती हैं। (पैरा 68)

सी. क्या संविदात्मक अधिकारों को लागू करने के लिए परमादेश रिट जारी की जा सकती है- संविदात्मक रोजगार बनाने की शक्ति- नियमित स्थायी नियुक्ति करने की शक्ति में निहित- वैधानिक स्वाद के बिना व्यक्तिगत सेवाओं का अनुबंध- सेवाओं की समाप्ति जैसे वाद में- कोई रिट नहीं पारित की जा सकती- यद्यपि, वर्तमान वाद भिन्न है- याचिकाकर्ताओं की संविदात्मक नियुक्ति- कार्यकारी आदेशों, परिपत्रों और प्रतिवादियों के नीति वक्तव्यों द्वारा नियंत्रित- प्राधिकरण द्वारा नीति की अभिव्यक्ति जो राज्य है- न्यायालय यदि ऐसे निर्णय मनमाने और तर्कहीन पाए जाते हैं तो निश्चित रूप से हस्तक्षेप कर सकती है-राज्य द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया गया कि कर्मचारियों को सीधे अनुबंध के आधार पर नहीं रखा जा सकता है- इसलिए, आपेक्षित आदेश मनमाने हैं और निरस्त किए जाने

योग्य हैं- याचिकाकर्ताओं को पिछले अभ्यास के अनुसार नए सिरे से नियुक्त किए जाने का अधिकार पुनर्जीवित हो गया है- परिपत्र दिनांक 17.09.2021 द्वारा डाला गया ग्रहण हटा दिया गया है- याचिका का निस्तारण किया गया। (पैराग्राफ 69, 82, 85, 90,92, 93, 94, 95 और 96)

आयोजित:

अब ग्रिड कंपनी (सुप्रा) के वाद पर आते हैं, वाद के तथ्यों पर विचार करते हुए न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि संविदात्मक रोजगार देने की शक्ति नियमित स्थायी नियुक्ति करने की शक्ति में निहित है, जब तक कि वह कानून जिसके तहत यह अधिकार प्रयोग किया जाता है, ऐसी नियुक्ति करने से मना नहीं करता। नियुक्ति आदेश में विशेष रूप से नियुक्ति को एक कार्यकाल नियुक्ति के रूप में वर्णित किया गया था जो प्रदर्शन के आधार पर नवीनीकरण के अधीन तीन वर्ष की अवधि तक सीमित थी। अपीलकर्ता निगम ने यह सुझाव देते हुए कार्यकाल भी बढ़ाया था कि नियुक्ति एक कार्यकाल नियुक्ति थी, जिसे निदेशक मंडल के विवेक पर बढ़ाया जा सकता है। न्यायालय ने माना कि संविदा रोजगार का नवीनीकरण प्रतिवादी की उपयोगिता और उसके द्वारा धारित पद पर किसी पदधारी की आवश्यकता के बारे में प्रबंधन की धारणा पर निर्भर करता है। यह विवेक पूरी तरह से निदेशक मंडल के पास था, अपीलकर्ता और प्रतिवादी संख्या 1 के बीच किसी भी अनुचित व्यवहार या असमान सौदेबाजी शक्ति का कोई तत्व नहीं था, जिसके लिए उत्तरार्द्ध के प्रति अत्यधिक सहानुभूति या

सुरक्षात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता हो। संविदात्मक नियुक्तियाँ तभी काम करती हैं जब वे दोनों अनुबंध करने वाले पक्षों के लिए पारस्परिक रूप से लाभकारी लगती हैं, अन्यथा नहीं। निगम द्वारा की गई कार्रवाई में कोई भी अनुचितता, अन्याय, विकृति या अताकिंकता प्रदर्शित करने वाला कोई भी तथ्य उपस्थित नहीं था। (पैरा 82)

यह सत्य है कि ऊपर उद्धृत कानून, जिसके अनुसार व्यक्तिगत सेवा का ऐसा अनुबंध, जिसमें कोई वैधानिक तत्व नहीं है, लागू नहीं किया जा सकता तथा सेवा समाप्ति के मामले में जिस रिट की मांग की गई है, उसे मंजूर नहीं किया जा सकता, लगातार लागू रहा है। (पैरा 85)

यद्यपि, याचिकाकर्ताओं की संविदात्मक नियुक्ति कार्यकारी आदेशों द्वारा नियंत्रित होती है, प्रतिवादियों द्वारा समय-समय पर परिपत्रों और नीति वक्तव्यों जारी किए हैं। दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र जैसे ये आदेश प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा एक प्राधिकरण द्वारा नीति की अभिव्यक्ति के रूप में जारी किए गए हैं, जो राज्य है, और संघ की परिणामी कार्रवाई जो एक सार्वजनिक कार्य और सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन करने वाला निकाय है, ऐसे प्रतिवादियों को कानून में लागू होने वाली आचार संहिता के रूप में भी बाध्य करेगी। याचिकाकर्ताओं को इस तथ्य के बावजूद कि उनकी नियुक्ति संविदात्मक है, प्रतिवादियों की कार्रवाई पर हमला करने और सवाल उठाने का अधिकार प्राप्त होगा। दूसरे

शब्दों में, यह न्यायालय निश्चित रूप से हस्तक्षेप कर सकता है यदि नीतिगत निर्णय जिसके अनुसरण में GeM पोर्टल पर बोली के लिए आमंत्रण लिया गया है, मनमाना और तर्कहीन है। (पैरा 90)

राज्य सरकार या प्रतिवादी सहकारी समिति में किसी भी स्तर पर ऐसा कोई सचेत निर्णय नहीं है कि संविदा कर्मचारियों को सीधे तौर पर नहीं लगाया जाना चाहिए या केवल आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से लगाया जाना चाहिए। ऐसे किसी निर्णय के अभाव में, आरोपित आदेश स्पष्ट रूप से मनमाने हैं और निरस्त करने योग्य हैं। दिनांक 25.08.2022 के सरकारी आदेश के पैराग्राफ-4 में यह स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया है कि वर्तमान में कार्यरत आउटसोर्स कर्मचारियों को आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से कर्मचारी के रूप में रखा जाना चाहिए। वर्तमान में कार्यरत 622 संविदा कर्मचारियों को बदलने के लिए 622 कर्मचारियों की आपूर्ति के लिए एक आउटसोर्सिंग एजेंसी की पहचान करना, साथ ही यह शर्त रखना कि मौजूदा श्रमिकों को अब GeM पोर्टल के माध्यम से चयनित आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से लगाया जाना चाहिए, पूरी तरह से मनमाना निर्णय प्रतीत होता है जिसका कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। (पैरा 92)

प्रतिवादी संघ की ओर से दाखिल किसी भी शपथपत्र में सरकार द्वारा लिए गए ऐसे किसी निर्णय का उल्लेख नहीं है। आयुक्त एवं रजिस्ट्रार ने केवल सरकारी आदेशों की व्याख्या की तथा संघ ने सीधे अनुबंध पर काम करने

वाले कर्मचारियों की संख्या के बारे में जानकारी मांगी तथा 622 ऐसे कर्मचारियों की जानकारी के आधार पर 622 कर्मचारियों को उपलब्ध कराने तथा उनकी नियुक्ति के लिए आउटसोर्सिंग एजेंसी के चयन के लिए GeM पोर्टल पर निविदा सूचना जारी की गई। GeM पोर्टल पर निविदा सूचना जारी करने तथा याचिकाकर्ताओं के अनुबंध का नवीनीकरण न करने का निर्णय परिपत्र तथा समय-समय पर जारी सरकारी आदेश का न्यायालय की गलत समझ के आधार पर लिया गया यांत्रिक निर्णय है। (पैरा 93)

यद्यपि, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालय द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 से 6 को इस संबंध में कोई रिट जारी नहीं की जा सकती है, लेकिन इस न्यायालय ने पहले ही माना है कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र की व्याख्या प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा दी गई व्याख्या के अनुसार तर्कहीन और गलत है, इसलिए याचिकाकर्ताओं का पिछले अभ्यास के अनुसार नए सिरे से नियुक्त होने का अधिकार पुनर्जीवित हो गया है। दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र द्वारा डाला गया ग्रहण हटा दिया गया है। (पैरा ए 95)

याचिका निस्तारित (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. रिट याचिका संख्या 31208 (एमबी) 2019, [मेसर्स आरएमएस टेक्नो सॉल्यूशन बनाम अपर मुख्य सचिव राजस्व व अन्य।

2. कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी 2006 (4) एससीसी 1
3. विजय बिहारी श्रीवास्तव बनाम यू.पी. पोस्टल प्राइमरी कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड एवं अन्य (2003) 1 यूपीएलबीईसी 1
4. अनिल कुमार पांडे एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2016 (7) एडीजे 495 (पूर्ण पीठ)
5. एस एस राणा बनाम रजिस्ट्रार, सर्किल ऑफिसर सहकारी समिति एवं अन्य (2006) 11 एससीसी 634
6. राधा चरण शर्मा बनाम यू.पी. कोऑपरेटिव फेडरेशन, 1982 यूपीएलबीईसी 89 (एफबी)
7. यू.पी. राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक बनाम चन्द्र भान दुबे 1999 (1) एस.सी.सी. 741
8. थलप्लम सर्विस कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम केरल राज्य एवं अन्य 2013 (16) एससीसी 82
9. यू.पी. राज्य व अन्य बनाम प्रिंसिपल अभय नंदन इंटर कॉलेज व अन्य सिविल अपील 865/2021, निर्णय दिनांक 27.09.2021
10. दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय अनुबंध कर्मचारी संघ और अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 256
11. कर्नाटक राज्य व अन्य बनाम एम.एल.केसरी व अन्य, 2010 (9) एससीसी 247
12. गुजरात राज्य व अन्य बनाम पी.डब्ल्यू.डी. कर्मचारी संघ व अन्य 2013 (12) एस.सी.सी. 417
13. निहाल सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य 2013 (14) एससीसी 65

14. शिव नारायण नागर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2018 (13) एससीसी 432
15. नरेन्द्र कुमार तिवारी व अन्य बनाम झारखंड राज्य व अन्य 2018 (8) एससीसी 238
16. ऑफिशियल लिक्विडेटर बनाम दयानंद एवं अन्य 2008 (10) एससीसी पेज 1
17. नेशनल एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड बनाम दीपक कुमार पांडा 2002 (6) एससीसी 223
18. ग्रिड कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम सदानंद डोलोई और अन्य 2011 (15) एससीसी 16
19. श्रीलेखा विद्यार्थी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1991 (1) एससीसी 212
20. सतीश चंद्र आनंद बनाम भारत संघ, एआईआर 1953 सुप्रीम कोर्ट 250
21. रिट-ए नंबर 4845/2021: सुनीता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य।
22. शीला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2010 एससीसी ऑनलाइन सभी 1142
23. एम.के.गांधी बनाम शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) उ.प्र., लखनऊ, 2005 एस.सी.सी. ऑनलाइन सभी 728
24. रॉयचन अब्राहम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2019 एससीसी ऑनलाइन सभी 3935 (एफबी)
25. रामकृष्ण मिशन बनाम कागो कुन्या, 2019 (5) स्केल 559

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे, और प्रतिवादी संख्या 1

और 2 के लिए श्री सुधांशु श्रीवास्तव द्वारा सहायता प्राप्त अपर महाधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह, प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के लिए श्री सुजीत कुमार राय द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ओपी सिंह तथा प्रतिवादी संख्या 3 और 4 के लिए पुनः श्री सुजीत कुमार राय द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा को सुना।

2. उपरोक्त सभी याचिकाएं आपस में जुड़ी हुई हैं और समान मुद्दों से संबंधित होने के कारण एक साथ सुनी जा रही हैं। इस न्यायालय के समक्ष कुल 378 याचिकाकर्ता हैं। इन सभी ने आयुक्त एवं निबंधक सहकारिता उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा जारी दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र और उत्तर प्रदेश राज्य निर्माण सहकारी संघ लिमिटेड लखनऊ (जिसे आगे "संघ" कहा जाएगा) के उप महाप्रबंधक (प्रशासन) के पत्र और अधीक्षण अभियंता द्वारा जारी दिनांक 22.02.2022 के नोटिस को चुनौती दी है और प्रतिवादियों को एक परमादेश जारी करने का अनुरोध किया है कि वे याचिकाकर्ताओं के सहयोगी/लिपिक/कनिष्ठ अभियंता/सहायक अभियंता के रूप में काम करने में हस्तक्षेप न करें और उन्हें उनके नियमित मासिक वेतन का भुगतान करें और याचिकाकर्ताओं की सेवा की निरंतरता में कोई व्यवधान न डालें और काम की आवश्यकता बनी रहने तक याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को जारी रखें। प्रतिवादियों को याचिकाकर्ताओं के स्थान पर सेवा प्रदाताओं के माध्यम से नियुक्त संविदा कर्मचारियों को रखने से रोकने के लिए एक और प्रार्थना की गई है।

3. हम कमाल उद्दीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के प्रमुख मामले के

तथ्यों को लेंगे, क्योंकि वे लगभग सभी आधारों को कवर करते हैं और अन्य रिट याचिकाएं भी समान प्रकृति की हैं। रिट याचिका में यह प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश राज्य निर्माण सहकारी संघ/उत्तर प्रदेश राज्य निर्माण सहकारी संघ लिमिटेड लखनऊ, उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1965 के प्रावधानों के तहत पंजीकृत एक शीर्ष स्तरीय सहकारी समिति है। इसके कर्मचारियों की सेवा शर्तें उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड द्वारा शासित होती हैं, जिसने उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 के रूप में ज्ञात विनियमों का एक समूह तैयार किया है।

4. रिट याचिका के पैराग्राफ 6 में यह दावा किया गया है कि संघ राज्य का एक साधन है और उसके पूरे प्रशासनिक और वित्तीय नियंत्रण में है। संघ के अधिकांश वित्त पोषण का खर्च राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाता है। कर्मचारियों की भर्ती और सेवा की अन्य शर्तें 1965 अधिनियम की धारा 122 के तहत बनाए गए वैधानिक विनियमों द्वारा शासित होती हैं। (संघ के जवाबी हलफनामे में इसका विशेष रूप से खंडन किया गया है)।

5. यह भी कहा गया है कि सभी रिट याचिकाकर्ता या तो सहयोगी/चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी या क्लर्क या जूनियर इंजीनियर या सहायक इंजीनियर के रूप में लंबे समय से सालाना हस्ताक्षरित अनुबंधों के आधार पर काम कर रहे हैं। कुछ याचिकाकर्ता 1999 से काम कर रहे हैं जबकि अन्य 2010 में लगे हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश पिछले 10 से 20 वर्षों से ऐसे संविदात्मक व्यवस्था के आधार

पर काम कर रहे हैं, जहां हर साल अप्रैल के महीने में अलग-अलग तारीखों पर अनुबंध किए जाते हैं और अगले साल 31 मार्च तक बढ़ाए जाते हैं। ऐसे याचिकाकर्ताओं की प्रत्येक श्रेणी द्वारा शुरू में किए गए अनुबंधों की कुछ प्रतियां उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत की गई हैं। यह भी कहा गया है कि शुरू में एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी को वर्ष 2002 में 2000/- रुपये के समेकित भुगतान पर रखा गया था, जो समय-समय पर बढ़ता रहा और अब 11,500/- रुपये है। इसी तरह एक क्लर्क को शुरू में 3,000/- रुपये के समेकित शुल्क पर नियुक्त किया गया था और अब उसका मासिक वेतन बढ़कर 13,000/- रुपये हो गया है। एक जूनियर इंजीनियर को 2010 में 9,375/- रुपये के मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था जो अब बढ़कर 15,063/- रुपये हो गया है। एक सहायक इंजीनियर को वर्ष 2009 में 10,000/- रुपये के मासिक वेतन पर नियुक्त किया गया था जो अब बढ़कर 23,500/- रुपये हो गया है। कथित रूप से लगातार काम कर रहे सभी याचिकाकर्ताओं का विवरण, उनकी प्रारंभिक नियुक्ति के समय से, हालांकि हर बार हस्ताक्षरित वार्षिक अनुबंधों के आधार पर, रिट याचिका के संलग्नक संख्या 12ए, 12बी, 12सी और 12डी के रूप में दायर सारणीबद्ध चार्ट में निर्दिष्ट किया गया है।

6. दिनांक 17.09.2021 (संलग्नक-13) को आयुक्त एवं निबंधक सहकारिता उ.प्र. अर्थात् प्रतिवादी संख्या 2 ने सभी शीर्ष स्तरीय समितियों एवं जिला सहकारी समितियों के प्रबंध निदेशक को संबोधित एक परिपत्र जारी किया, जिसमें जीईएम पोर्टल के माध्यम से

आउटसोर्स कर्मचारी प्राप्त करने के लिए शासनादेशों का उल्लेख किया गया। इसमें दिनांक 18.12.2019, 25.08.2020 एवं 18.06.2020 के शासनादेशों का उल्लेख किया गया। कहा गया है कि भारत सरकार द्वारा तैयार जीईएम पोर्टल को अपनाने के संबंध में जारी मुख्य शासनादेश दिनांक 25.08.2020 का शासनादेश (संलग्नक-14) है। उक्त परिपत्र के अनुसरण में संघ के पदाधिकारियों द्वारा पत्राचार किया गया, तथा इस प्रकार एकत्रित जानकारी से पता चला कि संघ के विभिन्न प्रभागों में कुल 622 कर्मचारी संविदा के आधार पर कार्य कर रहे थे। इस तरह के पत्राचार के अनुसरण में, अधीक्षण अभियंता ने 622 संविदा कर्मचारियों की आपूर्ति के लिए सेवा प्रदाताओं से बोलियां आमंत्रित करते हुए एक जीईएम बोली आमंत्रण सूचना जारी की। वास्तविक बोली दस्तावेज दिनांक 24.02.2022 को जीईएम पोर्टल पर जारी किया गया था जिसमें दिनांक 08.03.2022 तक बोलियां आमंत्रित की गई थीं। बोली दस्तावेजों में विभाग का नाम सहकारिता विभाग यूपी के रूप में उल्लेख किया गया था, और आउटसोर्सिंग के माध्यम से आवश्यक जनशक्ति को, याचिकाकर्ता जो संविदा के आधार पर लगे हुए हैं और संघ के साथ लंबे समय से काम कर रहे हैं जैसे कर्मचारियों की संख्या और श्रेणी से मेल खाते हुए निर्दिष्ट किया गया है। इससे स्पष्ट रूप से, दिनांक 31.03.2022 के बाद याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को समाप्त करने और उन्हें आउटसोर्सिंग एजेंसी/सेवा प्रदाता जिसका निर्णय जीईएम पोर्टल पर अपलोड की गई बोलियों का मूल्यांकन करके किया जाना है, के माध्यम से

लगे व्यक्तियों द्वारा प्रति स्थापित करने की प्रतिवादियों की मंशा का पता चलता है। याचिकाकर्ताओं को सामूहिक रूप से आउटसोर्सिंग द्वारा सेवा प्रदाता के माध्यम से पुनः संविदा पर नियुक्त कर्मचारियों द्वारा प्रति स्थापित करने की मांग की जा रही है।

7. रिट याचिका के पैरा-34 में, यह प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित कार्यवाही याचिकाकर्ताओं को उनकी पर्याप्त सेवा अवधि के आधार पर मिलने वाले किसी भी लाभ से वंचित करने के इरादे से है, इस तथ्य के बावजूद कि राज्य सरकार ने समय-समय पर ऐसे कर्मचारियों के नियमितीकरण के संबंध में आदेश जारी किए हैं। कुछ ऐसे नियमितीकरण/आमेलन नियमों का विवरण उप-पैराग्राफों में उल्लिखित किया गया है जैसे उत्तर प्रदेश तदर्थ नियुक्तियों का नियमितीकरण (उप सहकारी संस्थागत सेवा मंडल के दायरे में पदों पर) विनियम, 1985; उत्तर प्रदेश दैनिक वेतन पर या कार्य प्रभार पर या अनुबंध के आधार पर काम करने वाले व्यक्तियों की सेवा का नियमितीकरण (सहकारी समितियों में उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा मंडल के दायरे में पदों पर) विनियम, 2017; और सरकारी विभागों/स्वायत्त निकायों/सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों/स्थानीय निकायों/विकास प्राधिकरणों और जिला पंचायतों में दैनिक वेतन भोगी कर्मचारियों/कार्यप्रभार वाले कर्मचारियों/अनुबंध पर कर्मचारियों के नियमितीकरण की अनुमति देने वाला दिनांक 24.02.2016 का शासनादेश; और यूपी. सरकारी विभागों और समूह "ग" और समूह "घ" के पदों (उप लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर) में दैनिक वेतन भोगी या

कार्यप्रभार पर या अनुबंध पर काम करने वाले व्यक्तियों का नियमितीकरण नियमावली 2016।

8. आगे कहा गया है, कि कई याचिकाकर्ता पैराग्राफ 34 में उल्लिखित नियमितीकरण नियमों के अंतर्गत आते हैं, लेकिन आज तक उनके नियमितीकरण के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया है। शेष याचिकाकर्ता हालांकि विशेष रूप से उपरोक्त नियमितीकरण नियमों के अंतर्गत नहीं आते हैं, फिर भी संविदा कर्मचारियों के रूप में सीधे तौर पर लगातार काम करने के कारण उन्हें भविष्य में अंततः नियमित किए जाने की वैध उम्मीद है। याचिकाकर्ताओं को आक्षेपित आदेश, संलग्नक 13, के अनुसरण में उनके स्थान पर सेवा प्रदाता के माध्यम से लगे संविदा कर्मचारियों को रखकर उनकी जायज उम्मीद को खत्म करने की कोशिश की गई है। प्रत्येक याचिकाकर्ता के पास उनके द्वारा किए गए कार्य के लिए अपेक्षित योग्यता है, और संविदा कर्मचारियों के एक समूह को संविदा कर्मचारियों के दूसरे समूह से प्रतिस्थापित नहीं किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में प्रतिवादी सीधे नियोजित संविदा कर्मचारियों को जी ई एम पोर्टल के माध्यम से चयनित सेवा प्रदाता के माध्यम से नियोजित संविदा कर्मचारियों द्वारा प्रतिस्थापित करना चाहते हैं। आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से संविदा कर्मचारियों को प्राप्त करने की व्यवस्था सेवा प्रदाता को देय कमीशन के रूप में तथा साथ ही सेवा प्रदाता के साथ किए गए ऐसे अनुबंध पर जीएसटी के भुगतान के रूप में संघ पर अतिरिक्त वित्तीय बोझ डालती है। इस तरह के

उपाय का सहारा लेने से संघ को कोई वित्तीय लाभ नहीं होता है।

9. याचिका के पैराग्राफ-41, 42 और 43 में यह भी कहा गया है कि जीईएम पोर्टल का उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब सेवा प्रदाता के माध्यम से संविदा कर्मचारियों की आवश्यकता हो। जब प्रतिवादी शीर्ष स्तरीय सहकारी समिति द्वारा सीधे संविदा कर्मचारियों को रखा गया है, तो जीईएम पोर्टल का उपयोग करने का कोई अवसर नहीं था। संघ ने प्रतिवादी संख्या 2 से कोई स्पष्टीकरण मांगे बिना कि क्या यह सीधे अनुबंध के माध्यम से नियुक्त कर्मचारियों को जारी रखने की अनुमति देता है, दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र पर यंत्रवत् रूप से कार्य किया है। पिछले कई वर्षों से काम कर रहे सीधे नियुक्त संविदा कर्मचारियों को, सेवा प्रदाता के माध्यम से फिर से अनुबंध पर नियुक्त कर्मचारियों से प्रति स्थापित करने का कोई तर्कसंगत कारण मौजूद नहीं है।

10. प्रारंभ में, जब रिट याचिका दायर की गई थी, तो इस न्यायालय ने एक अंतरिम आदेश दिनांक 25.03.22 दिया था, जिसमें कहा गया था कि सभी याचिकाकर्ता यूपी राज्य निर्माण सहकारी संघ के कर्मचारी थे और पिछले कई वर्षों से अनुबंध के आधार पर लगे हुए थे और प्रतिवादीगण अब आउटसोर्सिंग के माध्यम से अन्य व्यक्तियों को नियुक्त करने जा रहे थे। प्रतिवादियों ने कहा था कि वे दिनांक 25.08.2020 के सरकारी आदेश का पालन कर रहे थे और उक्त सरकारी आदेश के तहत परिकल्पित जी ई एम पोर्टल के माध्यम से

सेवा प्रदाताओं को कार्यरत करने के उद्देश्य से निविदाएं आमंत्रित की थीं। याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया तर्क यह था कि यदि सरकारी आदेश का अनुपालन किया जाना है, तो प्रतिवादियों द्वारा सीधे तौर पर इसका इस्तेमाल पहले से ही अनुबंध के आधार पर लगे याचिकाकर्ताओं जैसे कर्मचारियों को प्रतिस्थापित करने के लिए एक उपकरण के रूप में नहीं किया जा सकता है। न्यायालय की प्रथम दृष्टया राय थी कि याचिकाकर्ता पिछले एक दशक से अधिक समय से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं और उन्हें आउटसोर्सिंग कर्मचारियों के द्वारा प्रतिस्थापित करना या यहाँ तक कि जीईएम पोर्टल के माध्यम से आवेदन करने का निर्देश देना भी, अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण होगा। इसलिए, न्यायालय ने निर्देश दिया कि अगले आदेश तक "प्रतिष्ठान के साथ याचिकाकर्ताओं के रोजगार की स्थिति की प्रकृति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखी जाएगी और भविष्य में अनुबंध के नवीनीकरण को जी ई एम पोर्टल के माध्यम से कार्यबल प्रदान करने के लिए आउटसोर्स एजेंसियों को आमंत्रित करके किसी भी तरह से प्रभावित नहीं किया जाएगा"। यह भी स्पष्ट किया गया कि याचिकाकर्ताओं को आउटसोर्स एजेंसियों के श्रमिकों के माध्यम से प्रतिस्थापित नहीं किया जाएगा। इसके बाद दिनांक 08.04.22 और दिनांक 13.04.2022 और दिनांक 26.04.2022 और दिनांक 24.05.2022 को सभी रिट याचिकाओं में इसी तरह के अंतरिम आदेश दिए गए, जिसमें आगे यह स्पष्ट किया गया कि भले ही अनुबंध का नवीनीकरण न हो, अगर याचिकाकर्ता प्रतिवादियों के प्रतिष्ठान में साल-दर-साल अनुबंध पर एक दशक से

काम करना जारी रखे हुए हैं, तो उन्हें आउटसोर्स कर्मचारियों द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जाना चाहिए, न ही उन्हें जीईएम पोर्टल के माध्यम से आवेदन करने के लिए मजबूर किया जाना चाहिए। न्यायालय ने देखा कि प्रतिवादी उनसे काम लेने या न लेने के लिए स्वतंत्र थे, लेकिन उन्हें आउटसोर्स कर्मचारियों द्वारा प्रतिस्थापित करने के लिए निश्चित रूप से स्वतंत्र नहीं थे। यह भी स्पष्ट किया गया कि प्रतिवादियों को काम लेने के लिए आउटसोर्स एजेंसी के माध्यम से किसी भी कर्मचारी को नियुक्त नहीं करना चाहिए। यदि प्रतिवादियों के पास काम उपलब्ध है और यदि वे कर्मचारियों को नियुक्त करना चाहते हैं, तो याचिकाकर्ताओं को फिर से अनुबंध में प्रवेश करने की अनुमति दी जाएगी। हालांकि, यदि याचिकाकर्ताओं और इसी तरह के अन्य कर्मचारियों के अलावा अतिरिक्त कार्यबल की आवश्यकता होती है, तो प्रतिवादियों के लिए आउटसोर्स एजेंसियों के माध्यम से रोजगार लेने का विकल्प खुला होगा।

11. प्रतिवादियों ने ऐसे अंतरिम आदेशों के विरुद्ध दो विशेष अपीलें दायर की थीं, जहाँ विशेष अपील दायर करने में देरी को क्षमा करते हुए न्यायालय ने पाया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अंतरिम आदेश पारित किया था कि याचिकाकर्ता अनुबंध के आधार पर नियुक्त किए गए थे और पिछले 10 वर्षों से अधिक समय से काम कर रहे थे, इसलिए उन्हें काम जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए और यदि अतिरिक्त कार्यबल की आवश्यकता होती है, तो अधिकारियों को आउटसोर्सिंग एजेंसी के

माध्यम से व्यक्तियों को नियुक्त करने का विकल्प खुला छोड़ दिया गया था। इसने पाया कि रिट न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि यह अपीलकर्ता द्वारा स्वीकार किया गया था कि जो व्यक्ति पहले से काम कर रहे थे, उन्हें आउटसोर्सिंग एजेंसी के लिए नियुक्त अन्य कार्यबल से प्रतिस्थापित नहीं किया जा रहा था। अपीलीय न्यायालय ने विशेष अपीलों का निपटारा करते हुए निर्देश दिया कि रिट याचिकाओं की सुनवाई और निर्णय शीघ्रता से किया जाना चाहिए।

12. प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से एक जवाबी हलफनामा दाखिल किया गया है जिसमें केवल यह कहा गया है कि आयुक्त और रजिस्ट्रार सहकारिता द्वारा जारी परिपत्र दिनांक 17.09.2021, कार्मिक विभाग द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 18.12.2019 और सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग विभाग उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 25.08.2020 और श्रम विभाग द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 18.08.2020 के अनुरूप था। याचिकाकर्ताओं द्वारा उक्त शासनादेशों को चुनौती नहीं दी गई थी और केवल परिणामी आदेशों को चुनौती दी गई थी।

13. उसी के जवाब में, याचिकाकर्ताओं द्वारा एक प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल किया गया है जिसमें उन्होंने कहा है कि उन्होंने प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की कार्रवाई को चुनौती दी है जो सरकारी आदेशों की वैधता से स्वतंत्र है। परिपत्र और शासनादेश केवल यह निर्णय देते हैं कि सामग्री की आवश्यकता होने पर या

जनशक्ति की आउटसोर्सिंग के मामले में जी ई एम पोर्टल का उपयोग किया जाना है। किसी भी शासनादेश में संघ द्वारा संविदा कर्मचारियों की नियुक्ति या यह कि संघ द्वारा उन्हें सीधे नियुक्त नहीं किया जा सकता है, के बारे में कोई निर्णय नहीं है। इन शासनादेशों में प्रावधान है कि यदि आउटसोर्सिंग के माध्यम से जनशक्ति की नियुक्ति की जानी है, तो जीईएम पोर्टल का उपयोग किया जाना चाहिए। यह इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि ऐसे शासनादेशों के प्रसारित होने के बावजूद, राज्य सरकार के नियंत्रण में कई निगम मौजूद हैं जो सीधे संविदा कर्मचारियों की नियुक्ति कर रहे हैं, उदाहरण के लिए, राज्य भंडारण निगम, यूपी निर्माण श्रमिक विकास संघ आदि।

14. प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा दाखिल जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि भारत सरकार ने जीईएम पोर्टल से जनशक्ति और अन्य संसाधन लेने के लिए दिनांक 17.12.2017 को एक आदेश जारी किया था जिसे राज्य सरकार के आदेश दिनांक 23.08.2018 द्वारा अपनाया गया था। इसके बाद भी राज्य सरकार ने कम से कम तीन सरकारी आदेश जारी किए थे। उक्त सरकारी आदेशों को रिट याचिकाओं में चुनौती नहीं दी गई थी और केवल परिणामी परिपत्र को चुनौती दी गई थी। याचिकाकर्ताओं को केवल दिनांक 31.03.2022 तक संविदा कर्मचारी के रूप में काम करने की अनुमति दी गई थी जब उनके अनुबंध समाप्त हो गए थे, फिर भी उन्होंने जीईएम पोर्टल के माध्यम से नई नियुक्ति पाने के लिए आवेदन नहीं किया था। रिट याचिका के पैराग्राफ-6 को विशेष रूप से

अस्वीकार कर दिया गया है। यह कहा गया है कि यूपी राज्य निर्माण सहकारी संघ एक पंजीकृत शीर्ष स्तरीय सहकारी समिति और स्वायत्त अस्तित्व वाला एक कॉर्पोरेट निकाय है, जिस पर राज्य सरकार का कोई नियंत्रण नहीं है। यह भी कहा गया है, कि याचिकाकर्ता अल्प अवधि के लिए कार्य कर रहे हैं, उदाहरणतः 6 माह से 1 वर्ष की अवधि हेतु। कार्यकाल या अनुबंध को बढ़ाया नहीं गया था। नए अनुबंध पर हस्ताक्षर किए जाने की आवश्यकता थी। दिनांक 31.03.2022 के बाद कोई नया अनुबंध हस्ताक्षरित नहीं किया गया था। कई रिट याचिकाकर्ताओं के संबंध में, यह बताया गया है कि वे लगातार काम नहीं कर रहे थे जैसा कि आरोप लगाया गया है, उनमें से कुछ ने केवल एक या दो साल तक काम किया था। ऐसे कर्मचारियों के विवरण सहित नाम का भी उल्लेख किया गया है। याचिकाकर्ताओं को कभी भी "नियुक्त" नहीं किया गया था, बल्कि उन्हें मासिक समेकित वेतन के साथ एक निश्चित अवधि के लिए अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया गया था और उन्हें अनुबंध की अवधि से आगे कार्य जारी रखने का कोई अधिकार नहीं है।

15. प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ 19 एवं 20 में कहा गया है कि यह कहना बिल्कुल गलत है कि उत्तरदाता प्रतिवादीगण याचिकाकर्ताओं को हटाकर तथा आउटसोर्सिंग के माध्यम से अन्य व्यक्तियों को नियुक्त करके अनुबंध समाप्त करने जा रहे हैं। प्रतिवादी याचिकाकर्ताओं को हटाने नहीं जा रहे हैं, क्योंकि सरकारी आदेश के अनुसार, जो संविदा कर्मचारी पहले विभिन्न पदों पर काम कर रहे

थे, उन्हें सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार जीईएम पोर्टल के माध्यम से नए संविदा कर्मचारियों के रूप में नियुक्त किया जाएगा। हालांकि, यदि उनका कार्य और आचरण संतोषजनक नहीं है, तो उन्हें नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए, तथा इसकी सूचना एजेंसी को भी दी जाएगी, जो उनकी नई नियुक्ति के बारे में निर्णय लेगी। संविदा कर्मचारियों के नियोजन में पारदर्शिता को बढ़ावा देने के लिए ही भारत सरकार ने नीतिगत निर्णय लिया था कि जीईएम पोर्टल से जनशक्ति खरीदी जानी चाहिए तथा एक बार जब केंद्र सरकार द्वारा नीति निर्धारित कर दी गई है, जिसे राज्य स्तर पर अपना लिया गया है, तो इसका पालन किया जाना चाहिए, क्योंकि नीतिगत निर्णय को याचिकाकर्ताओं द्वारा अभी तक चुनौती नहीं दी गई है। याचिकाकर्ता कथित रूप से बर्खास्त नहीं होने जा रहे हैं क्योंकि अनुबंध दिनांक 31.03.2022 को ही समाप्त हो गया था, फिर कोई नया अनुबंध नहीं हुआ। संविदा कर्मचारियों के साथ नया अनुबंध न करने का मतलब उनके रोजगार की समाप्ति नहीं है, इसका मतलब केवल दिनांक 31.03.2022 को समाप्त होने वाली नियुक्ति की वर्तमान अवधि में उनके काम की समाप्ति है। याचिका केवल आशंका के आधार पर दायर की गई है क्योंकि अभी तक कार्रवाई का कोई कारण नहीं बना है। यह तर्क कि संविदा कर्मचारियों के स्थान पर संविदा कर्मचारियों को रखना मनमाना होगा, यहां लागू नहीं होगा क्योंकि सभी याचिकाकर्ताओं का अनुबंध दिनांक 31.03.2022 को समाप्त हो गया था और अब भारत सरकार ने ऐसी नियुक्ति में पारदर्शिता

बनाए रखने के लिए केवल जीईएम पोर्टल के माध्यम से नियुक्ति करने का नीतिगत निर्णय लिया है, जिसे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।

16. प्रतिवादियों द्वारा स्टे वेकेशन आवेदन के साथ दायर पूरक जवाबी हलफनामे में यह उल्लेख किया गया है कि दिनांक 31.03.2022 को याचिकाकर्ताओं का अनुबंध समाप्त होने के बाद उनसे कोई काम नहीं लिया गया है और कोई भुगतान नहीं किया गया है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि कई रिट याचिकाकर्ताओं ने अनुबंध के आधार पर केवल एक या दो साल तक काम किया था और रिट याचिका में जो यह दावा किया गया है, कि वे एक दशक से अधिक समय तक काम करते रहे, गलत है।

17. याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पूरक प्रत्युत्तर हलफनामे में उन्होंने दिनांक 25.03.2022 और दिनांक 08.04.2022 को दिए गए अंतरिम आदेशों का हवाला दिया है, जिसमें प्रतिवादियों को याचिकाकर्ताओं के रोजगार की स्थिति बनाए रखने और आउटसोर्सिंग के माध्यम से संविदा कर्मचारियों को नियुक्त नहीं करने का निर्देश दिया गया था, जिसके खिलाफ दो विशेष अपील दायर की गई थीं और दिनांक 04.07.2022 को खारिज कर दी गई थीं। यह भी कहा गया है कि ऐसे याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति की अवधि के बारे में पूरी जानकारी रिट याचिका के साथ संलग्न सारणीबद्ध चार्ट में उल्लिखित की गई है और प्रतिवादी एक अनुबंध के अंत और दूसरे नए अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के बीच कृत्रिम विराम का

सहारा ले रहे थे। कनिष्ठ अभियंता के रूप में काम करने वाले याचिकाकर्ताओं ने 50,000/- रुपये के डिमांड ड्राफ्ट के रूप में सुरक्षा राशि जमा की थी और सहायक अभियंता के रूप में काम करने वालों ने 1,00,000/- रुपये का डिमांड ड्राफ्ट जमा किया था। ऐसी सुरक्षा राशि संविदा की अवधि के अंत में कभी भी वापस नहीं की गई और निरंतर प्रतिवादियों के अधिकार में बनी रही। एक अनुबंध समाप्त हो गया और दूसरे पर हस्ताक्षर किए गए, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विराम प्रकृति में कृत्रिम थे। यदि ऐसे विराम वास्तविक होते तो प्रत्येक संविदात्मक अवधि के अंत में, सुरक्षा राशि वापस कर दी जाती और नए अनुबंध पर हस्ताक्षर करने पर नई सुरक्षा राशि स्वीकार की जाती।

18. प्रतिवादी संख्या 3 से 6 की ओर से दायर दूसरे पूरक जवाबी हलफनामे में दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र का संदर्भ दिया गया है, जिसमें विभिन्न सरकारी आदेशों का उल्लेख किया गया था, जो जीईएम पोर्टल के रास्ते आउटसोर्सिंग के माध्यम से जनशक्ति की नियुक्ति के लिए अनिवार्य रूप से प्रावधान करते थे। इस न्यायालय ने अंतरिम आदेशों के माध्यम से प्रतिवादियों को याचिकाकर्ताओं के रोजगार की स्थिति को बनाए रखने का निर्देश दिया, भविष्य में उनके अनुबंध का नवीनीकरण जीईएम पोर्टल के माध्यम से कार्यबल प्रदान करने के लिए आउटसोर्सिंग एजेंसियों द्वारा बोलियां आमंत्रित करने से प्रभावित नहीं होगा। क्योंकि अवमानना याचिकायें दायर कर दी गई थी, इसलिए निदेशक समूह जीईएम पोर्टल के माध्यम से आउटसोर्सिंग की संपूर्ण प्रक्रिया या

एजेंसी के चुनाव को रद्द करने के निर्णय पर पहुंचा और चुनी गई एजेंसी के साथ किए गए अनुबंध को भी समाप्त कर दिया गया।

19. प्रतिवादियों के दूसरे पूरक जवाबी हलफनामे के जवाब में दायर दूसरे पूरक प्रत्युत्तर हलफनामे में याचिकाकर्ताओं ने कहा है कि दिनांक 17.09.2021 का परिपत्र केवल एक सामान्य शब्दों वाला संचार है जिसमें कर्मचारियों की आउटसोर्सिंग के संबंध में विभिन्न सहकारी समितियों द्वारा मांगे गए कुछ दिशा-निर्देशों का उल्लेख किया गया है। संघ द्वारा यह समझ कर उक्त परिपत्र की गलत व्याख्या की गई है कि संविदा कर्मचारियों को केवल जीईएम पोर्टल के माध्यम से चयनित आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से नियोजित किया जाने का निर्देश जारी किया गया है। कई सीधे तौर पर नियुक्त संविदा कर्मचारी अन्य शीर्ष स्तरीय सहकारी समितियों और संस्थानों में लगे हुए हैं। याचिकाकर्ताओं ने अवसर मल्टी सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड के सुधांशु पटेल के बीच दिनांक 14.03.2022 को किए गए अनुबंध जो 14.01.2023 तक लागू रहेगा, को रिकॉर्ड पर रखा है। द्वितीय पूरक प्रत्युत्तर शपथपत्र के पैरा-7 में अवसर मल्टी सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड नामक चयनित सेवा प्रदाता के संबंध में गूगल से डाउनलोड की गई सूचना का उल्लेख किया गया है, जिसका पंजीकृत पता 505ए/5/1649, आदिल नगर, कुर्सी रोड, लखनऊ है, जो कि श्रीमती रेखा वर्मा, पत्नी श्री जेपी वर्मा, जो मार्च 2022 तक सत्ता में रहे सहकारिता मंत्री श्री मुकुट बिहारी वर्मा के निजी सचिव हैं, का आवासीय पता है। यह आरोप

लगाया गया है कि आउटसोर्सिंग एजेंसी पूरी तरह से फर्जी थी और अवसर मल्टी सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड के निदेशकों में रोशन वर्मा और क्षितिज कुमार वर्मा शामिल थे, जो तत्कालीन सहकारिता मंत्री मुकुट बिहारी वर्मा के करीबी रक्त संबंधी थे। रेखा वर्मा के आवासीय परिसर के संबंध में लखनऊ नगर निगम से प्राप्त गृह कर बिल की एक प्रति उक्त शपथपत्र के संलग्नक के रूप में दाखिल की गई है।

20. इस न्यायालय ने द्वितीय पूरक प्रत्युत्तर शपथपत्र तथा तृतीय पूरक प्रत्युत्तर शपथपत्र तथा गूगल से डाउनलोड की गई जानकारी, जिसे द्वितीय पूरक प्रत्युत्तर शपथपत्र के संलग्नक के रूप में दाखिल किया गया है, का अवलोकन किया है। इससे यह पता चला है कि अवसर मल्टी सॉल्यूशंस प्राइवेट लिमिटेड एक निजी कंपनी है, जिसे दिनांक 16.08.2021 को 1,00,000/- रुपये की अधिकृत शेयर पूंजी तथा मात्र 10,000 रुपये की चुकता पूंजी के साथ निगमित किया गया है। कंपनी के दो निदेशक रोशन वर्मा तथा क्षितिज कुमार वर्मा हैं।

21. प्रतिवादी संख्या 3 से 6 की ओर से दायर तृतीय पूरक प्रति शपथपत्र में कहा गया है कि इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश में केवल याचिकाकर्ताओं के रोजगार की प्रकृति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया है। इसने उनकी सेवा के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश नहीं दिया था। रोजगार की प्रकृति अभी भी संविदात्मक बनी हुई है। यह भी दोहराया गया है कि एक बार जब आउटसोर्सिंग की पूरी प्रक्रिया दिनांक

10.08.2022 के आदेश द्वारा रद्द कर दी गई है तो निर्णय के लिए कुछ भी नहीं बचा है। यदि और जब अतिरिक्त जनशक्ति की आवश्यकता होगी तो संघ कार्य की आवश्यकता के अनुसार नए अनुबंध पर विचार कर सकता है। साथ ही अवसर मल्टी सॉल्यूशंस के साथ अनुबंध रद्द कर दिया गया है और जीईएम पोर्टल के माध्यम से सेवा प्रदाता के चयन की पूरी प्रक्रिया को भी छोड़ दिया गया है। हालांकि, अवसर मल्टी सॉल्यूशंस के निदेशकों के तत्कालीन सहकारिता मंत्री के निजी सचिव या स्वयं मंत्री के साथ संबंध के बारे में लगाए गए आरोपों पर प्रतिवादियों द्वारा कोई विशेष उत्तर नहीं दिया गया है।

22. जैसा कि श्री सिद्धार्थ खरे की सहायता से श्री अशोक खरे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ताओं का मामला यह है कि यूपी राज्य निर्माण सहकारी संघ लिमिटेड लखनऊ (जिसे आगे "संघ" कहा जाएगा) एक शीर्ष स्तरीय सहकारी समिति है जो यूपी सहकारी समिति अधिनियम 1965 के प्रावधानों द्वारा शासित है, और यूपी संस्थागत सेवा बोर्ड और यूपी सहकारी कर्मचारी सेवा विनियम 1975 के प्रावधानों के दायरे में है। राज्य सरकार इस पर व्यापक नियंत्रण रखती है और इसलिए संघ संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत राज्य की परिभाषा के अंतर्गत आता है। संघ ने सहयोगी (चतुर्थ श्रेणी); क्लर्क, जूनियर इंजीनियर और सहायक अभियंता के काम के लिए 622 कर्मचारियों को अनुबंध के आधार पर रखा था और वे काफी समय से काम कर रहे थे। जब भी उनका अनुबंध समाप्त हुआ, उन्हें नए अनुबंधों के माध्यम से

फिर से काम पर रखा गया। इसके अलावा, डिवीजन बेंच द्वारा अंतरिम आदेश में कोई हस्तक्षेप न किए जाने के बावजूद, इसका अनुपालन नहीं किया गया और किसी भी याचिकाकर्ता को दिनांक 01.04.2022 से काम करने की अनुमति नहीं दी गई और उन्हें कोई भुगतान नहीं किया गया। इस तरह की जानबूझकर अवज्ञा के कारण, एक अवमानना याचिका दायर की गई जो विचाराधीन है।

23. यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति की प्रकृति संविदात्मक है, लेकिन इस तरह की संविदात्मक नियुक्ति प्रतिवादी शीर्ष स्तरीय सहकारी समिति द्वारा सीधे याचिकाकर्ताओं के साथ की गई है और सेवा प्रदाता के रूप में बीच में कोई मध्यस्थ नहीं है। संविदा के आधार पर जूनियर इंजीनियरों और सहायक इंजीनियरों की नियुक्ति के समय, उनमें से प्रत्येक से 50,000 से 1,00,000 रुपये की सुरक्षा राशि प्राप्त की गई थी। प्रारंभिक नियुक्ति के समय जमा की गई उक्त सुरक्षा राशि उसके बाद प्रतिवादियों के पास ही रही और इसे वापस नहीं किया गया या याचिकाकर्ताओं की पुनः नियुक्ति पर इसे पुनः जमा करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। साथ ही, 622 संविदा कर्मचारियों में से केवल आठ मामलों में, यह कहा गया है कि सेवाएं निरंतर नहीं थीं, बल्कि उनकी निरंतरता में विराम थे। उक्त आठ कर्मचारियों के अलावा, प्रतिवादी शेष कर्मचारियों की प्रारंभिक नियुक्ति और उसके बाद निरंतरता के बीच किसी भी विराम को इंगित नहीं कर पाए। ऐसे कर्मचारी जिन्होंने लगातार काम नहीं किया था, फिर भी कुछ मामलों में, अपनी नियुक्ति के बाद

लगभग 20 वर्षों की पर्याप्त समयावधि के लिए काम कर रहे थे।

सरकार द्वारा विकसित जीईएम पोर्टल का उपयोग करने की आवश्यकता थी।

24. यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता हालांकि अनुबंध के आधार पर ही, फिर भी दो दशकों से अधिक समय से काम कर रहे हैं। प्रत्येक वर्ष के अंत में प्रतिवादी ने एक नया अनुबंध किया है। इसलिए, प्रतिवादियों के अनुसार इसे एक नई संविदा नियुक्ति के रूप में माना जाना चाहिए, लेकिन याचिकाकर्ताओं के अनुसार, यह याचिकाकर्ताओं की फिर से नियुक्ति है और यह इस तथ्य से समर्थित है कि जूनियर इंजीनियर और सहायक इंजीनियर द्वारा जमा की गई क्रमशः 50,000/- रुपये और 1,00,000/- रुपये की सुरक्षा राशि वापस नहीं की गई है या फिर से जमा नहीं की गई है। यह तथ्य याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति की वास्तविक प्रकृति को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है।

25. रिट याचिका दायर करने का तत्काल कारण दिनांक 17.09.2021 को आयुक्त एवं निबंधक सहकारिता, यूपी लखनऊ द्वारा सभी शीर्ष स्तरीय सहकारी समितियों के प्रबंध निदेशकों और सभी जिला सहकारी बैंकों के मुख्य कार्यकारी अधिकारियों और सभी जिला सहकारी संघों के सचिवों को संबोधित एक परिपत्र जारी किया जाना था, जिसमें उल्लेख किया गया था कि कुछ सहकारी समितियों ने दिनांक 25.08.2020 को जारी एक सरकारी आदेश के अनुसरण में दिशानिर्देश मांगे थे, जिसमें सामग्री/मानवशक्ति की खरीद के उद्देश्य से केंद्र

26. इसके बाद उप महाप्रबंधक (प्रशासन) द्वारा दिनांक 19.01.2022 को प्रतिवादी संघ के सभी मंडल प्रभारियों को संबोधित करते हुए संचार पत्र जारी किया गया, जिसमें मौजूदा संविदा कर्मचारियों को जीईएम पोर्टल के माध्यम से आउटसोर्सिंग करने के उद्देश्य से उनके संबंध में जानकारी मांगी गई थी, जिसकी एक प्रति रिट याचिका संख्या 3451 वर्ष 2022 में संलग्नक-15 के रूप में दायर की गई है।

27. इस संचार पत्र के अनुसरण में, प्रतिवादी-संघ द्वारा दिनांक 11.02.2022 को जीईएम पोर्टल के संयोजक को एक पत्र लिखा गया था जिसमें सूचित किया गया था कि पूर्वोक्त चार श्रेणियों में अनुबंध के आधार पर काम करने वाले कुल 622 कर्मचारी मौजूद हैं, और ऐसे कर्मचारियों को दिनांक 25.08.2020 के सरकारी आदेश के पैराग्राफ 2 (4) के अनुसार जीईएम पोर्टल के माध्यम से नियोजित करने की आवश्यकता है।

28. इसके बाद कार्यकारी अभियंता (संयोजक) द्वारा दिनांक 22.02.2022 को जीईएम पोर्टल आमंत्रण प्रस्ताव जारी किया गया, जिसमें 108 सहायक अभियंताओं, 102 कनिष्ठ अभियंताओं, 241 क्लर्कों और 171 सहयोगियों की नियुक्ति के लिए बोलियां आमंत्रित की गईं, जो की समेकित रूप में कुल 622 थीं।

29. इसके बाद याचिकाकर्ताओं ने कार्यमुक्ति के डर से इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 3451 वर्ष 2022 दायर की और इस न्यायालय द्वारा प्रारंभ में दिनांक 25.03.2022 को एक अंतरिम आदेश दिया गया, जिसे बाद में दायर की गई सभी चार रिट याचिकाओं में पूर्वोक्त रूप से दोहराया और स्पष्ट किया गया है।

30. इसके अलावा, यह तर्क दिया गया है कि जनशक्ति और संसाधनों की खरीद के लिए जीईएम पोर्टल के उपयोग के संबंध में राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र और साथ ही दिनांक 18.12.2019, दिनांक 18.08.2020 और दिनांक 25.08.2020 के सरकारी आदेशों में किसी भी सोसायटी को संविदा कर्मचारियों को सीधे नियुक्त करने से नहीं रोका गया, और न ही इसमें आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से संविदा कर्मचारियों की नियुक्ति की आवश्यकता थी।

हालांकि, प्रतिवादी संघ ने याचिकाकर्ताओं के नुकसान के लिए आयुक्त और रजिस्ट्रार सहकारिता द्वारा जारी उक्त सरकारी आदेशों और परिपत्र को गलत तरीके से समझा है।

31. इस न्यायालय ने दिनांक 12.09.2022 को सुनवाई के दौरान एक आदेश पारित किया था कि याचिकाकर्ताओं की आशंका यह है कि प्रतिवादी संख्या 3 से 6 के साथ सीधे तौर पर लगे हुए संविदा कर्मचारी होने के कारण उन्हें हटा दिया जाएगा और संविदा कर्मचारियों को, जीईएम पोर्टल के माध्यम से चयनित सेवा प्रदाताओं, के माध्यम से नियुक्त किया जाएगा

जबकि प्रतिवादी संख्या 1 और 2 द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में जिन सरकारी आदेशों का उल्लेख किया गया है उनमें दिनांक 18.12.2019, दिनांक 18.08.2020 और दिनांक 25.08.2020 के सरकारी आदेशों का उल्लेख है, जहां सभी यह प्रावधान करते हैं कि सेवा प्रदाताओं के माध्यम से लगे हुए संविदा कर्मचारियों/आउटसोर्स कर्मचारियों को काम करना जारी रखने की अनुमति दी जाएगी, हालांकि सेवा प्रदाताओं को समय-समय पर बदला जा सकता है और ऐसे सेवा प्रदाताओं का चयन जीईएम पोर्टल के माध्यम से किया जा सकता है। इस न्यायालय ने सरकारी आदेशों में ऐसा कुछ नहीं पाया कि सीधे नियोजित संविदा कर्मचारियों को हटाया जाना चाहिए तथा ऐसे कर्मचारियों द्वारा किए जा रहे कार्य को आउटसोर्स किया जाएगा तथा आउटसोर्सिंग को जीईएम पोर्टल के माध्यम से चयनित सेवा प्रदाताओं को सौंप दिया जाएगा। साथ ही, इस न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं के इस कथन पर भी गौर किया कि विपक्षी पक्ष संख्या 3 से 6 द्वारा सीधे नियोजित संविदा कर्मचारियों को सक्षम प्राधिकारी द्वारा ऐसी नियुक्ति के लिए प्रासंगिक मंजूरी दिए जाने के बाद ही नियुक्त किया गया था। उनकी नियुक्ति को प्रथम दृष्टया अवैध या अनियमित नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्हें इस संबंध में पहले की सरकारी मंजूरी पर नियुक्त किया गया था। विद्वान अपर महाधिवक्ता ने कहा था कि सरकारी आदेशों का उद्देश्य केवल सेवा प्रदाताओं के माध्यम से नियुक्त किए जाने वाले आउटसोर्स कर्मचारियों तक ही सीमित था। इन सरकारी आदेशों का याचिकाकर्ताओं जैसे संविदा कर्मचारियों से कोई

लेना-देना नहीं था तथा भारत सरकार द्वारा शुरू किए गए और उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा अपनाए गए शासनादेश/जीईएम पोर्टल योजना में भी आउटसोर्स कर्मचारियों की निरंतरता बनाए रखने की बात कही गई है। याचिकाकर्ताओं की तरह के संविदा कर्मचारियों का उक्त सरकारी आदेशों में बिल्कुल भी उल्लेख नहीं किया गया है।

32. इस न्यायालय ने देखा था कि चूंकि सरकारी आदेश कार्मिक विभाग द्वारा जारी किए गए थे, इसलिए कार्मिक विभाग के कम से कम विशेष सचिव के पदस्तर के अधिकारी द्वारा शासनादेश दिनांक 18.12.2019, 18.08.2020 और 25.08.2020 की मंशा स्पष्ट करने के लिए एक हलफनामा दायर किया जाना चाहिए, जिसमें स्पष्ट रूप से बताया जाए कि सरकार का "आउटसोर्स कर्मचारी" शब्द से क्या मतलब है क्योंकि आम बोलचाल में, आउटसोर्स कर्मचारी सिर्फ संविदा कर्मचारी होते हैं, जिन्हें दूसरे नाम से संदर्भित किया जाता है।

33. तत्पश्चात विशेष सचिव कार्मिक विभाग द्वारा दाखिल हलफनामे में तीनों शासनादेश दिनांक 18.12.2019, दिनांक 18.08.2020 एवं दिनांक 25.08.2020 को संलग्नक के रूप में दाखिल किया गया है तथा कहा गया है कि तीनों शासनादेशों में आउटसोर्सिंग के माध्यम से जनशक्ति क्रय किए जाने का उल्लेख है, यद्यपि इन शासनादेशों में आउटसोर्सिंग शब्द को परिभाषित या स्पष्ट नहीं किया गया है। तथापि इन शासनादेशों के अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रशासनिक विभाग अथवा अधीनस्थ

संस्थाओं द्वारा जनशक्ति के सेवा प्रदाता के मध्य एक समझौता किया जाएगा। यह समझौता/अनुबंध सीधे संबंधित विभाग एवं सेवा प्रदाता एजेंसी द्वारा उपलब्ध कराए गए कर्मचारियों के मध्य नहीं किया जाएगा। इन आउटसोर्स कार्मिकों के पारिश्रमिक का भुगतान सेवा प्रदाता एजेंसी को किया जाएगा। सेवा प्रदाता एजेंसी संबंधित बैंक खाते में प्रतिमाह पारिश्रमिक के भुगतान के साथ-साथ ईपीएफ/ईएसआई आदि की कटौती के लिए उत्तरदायी होगी। आउटसोर्सिंग के माध्यम से नियोजित ऐसे कार्मिकों को सेवा प्रदाता अपनी इच्छानुसार नहीं बदल सकेगा। आउटसोर्सिंग के माध्यम से रखे गए कर्मचारियों को अनुशासनहीनता और आपराधिक गतिविधियों में संलिप्तता आदि की स्थिति में संबंधित विभाग की अनुमति के बाद ही हटाया जा सकेगा।

34. विशेष सचिव द्वारा दाखिल उक्त हलफनामे के पैरा-11 में कहा गया है कि आउटसोर्सिंग से संबंधित लखनऊ में इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 31208 (एमबी) वर्ष 2019 [मेसर्स आरएमएस टेक्नो सॉल्यूशन बनाम अपर मुख्य सचिव राजस्व एवं अन्य] के रूप में पंजीकृत रिट याचिका दाखिल की गई है। इस न्यायालय ने दिनांक 20.11.2019 के अपने आदेश में कहा था कि आक्षेपित शासनादेशों में बनाई गई योजना के अवलोकन से पता चलता है कि नियमों के अनुसार भरे जाने वाले स्वीकृत पदों के विरुद्ध भी, सेवा प्रदाताओं के माध्यम से संविदा कर्मचारी उपलब्ध कराए जाते हैं। 2006 (4) एससीसी 1 में प्रकाशित कर्नाटक राज्य

बनाम उमा देवी के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को निर्देश दिया था कि वह तदर्थवाद में लिप्त न हो, बल्कि इसे छह महीने की अवधि के भीतर रोक दिया जाए। अनेक वर्ष बीत जाने के बाद भी सरकार अभी भी सेवा प्रदाता के माध्यम से अनुबंध के आधार पर व्यक्तियों की नियुक्ति कर रही थी। इसने यह भी देखा कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस तरह की नियुक्ति पर टिप्पणी की थी कि सरकार को अनुबंध कर्मचारियों के माध्यम से काम नहीं चलाना चाहिए। खंडपीठ ने उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा की गई व्यवस्था का संज्ञान लिया कि नियमित आधार पर पदों को भरने के बजाय, यह सेवा प्रदाता द्वारा भेजे गए व्यक्तियों की संविदा सेवा के माध्यम से काम करता है। राज्य सरकार को यह बताने का निर्देश दिया गया कि क्या उमा देवी (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद यह अनुमेय है; और स्वीकृत पदों को नियमित आधार पर क्यों नहीं भरा जा रहा है। खंडपीठ ने कहा कि जब तक उचित शब्दों में ऐसा स्पष्टीकरण नहीं दिया जाता है, तब तक राज्य सरकार सेवा प्रदाताओं को अनुबंध कर्मचारी प्रदान करने के लिए नियुक्त नहीं करेगी, यदि यह नियमित स्वीकृत पदों के विरुद्ध है।

35. हलफनामे में कहा गया है कि आरएमएस टेको सॉल्यूशंस (सुप्रा) में अंतरिम आदेश दिनांक 20.11.2019 के अनुपालन में सरकारी विभागों या उनके अधीनस्थ संस्थानों में नियमित/स्वीकृत पदों पर आउटसोर्सिंग के माध्यम से नियुक्ति नहीं की जा रही है।

इस हलफनामे के पैराग्राफ-12 में कहा गया है कि कार्मिक विभाग द्वारा संविदा के आधार पर भर्ती के संबंध में कोई नीति नहीं

बनाई गई है। परियोजनाओं में काम के लिए विभिन्न विभागों और अधीनस्थ संस्थानों द्वारा नियोजित संविदा कर्मचारी अनुबंध/समझौते में उल्लिखित सेवा शर्तों द्वारा शासित होंगे जैसे कि उनकी नियुक्ति की शर्तें, वेतन का भुगतान आदि संबंधित विभाग द्वारा किया जा रहा है। उक्त हलफनामे के पैरा-13 में कहा गया है, "यह स्पष्ट है कि जनशक्ति की आउटसोर्सिंग और अनुबंध के आधार पर नियुक्ति एक दूसरे से भिन्न हैं, और दिनांक 18.12.2019, 18.08.2020 और 25.08.2020 के शासनादेश केवल कर्मियों की आउटसोर्सिंग के लिए लागू हैं। ये शासनादेश अनुबंध के आधार पर कर्मियों और कर्मचारियों की नियुक्ति पर लागू नहीं हैं।"

36. कमोबेश, जवाबी हलफनामे और विशेष सचिव, कार्मिक विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दायर हलफनामे में उल्लिखित दृष्टिकोण को अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सुधांशु श्रीवास्तव द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान अपर महाधिवक्ता, अजीत कुमार सिंह के तर्कों में दोहराया गया है। यह तर्क दिया गया है कि विभिन्न विभागों द्वारा शासनादेश दिनांक 08.12.2019, 18.08.2020 और 25.08.2020 केवल सरकारी विभागों और उनके अधीनस्थ संस्थानों के लिए जारी किए गए थे, सहकारी समितियों के लिए नहीं। क्योंकि सहकारी समितियों/महासंघों ने स्वयं आयुक्त एवं रजिस्ट्रार सहकारी समितियों से दिशानिर्देश मांगे थे कि क्या उन्हें सेवा प्रदाताओं के माध्यम से कर्मचारियों को नियुक्त करना चाहिए, इसलिए आयुक्त एवं रजिस्ट्रार ने एक परिपत्र दिनांक 17.09.2021 जारी किया था,

जिसमें कहा गया था कि यदि आवश्यक हो तो सहकारी समितियां/महासंघ सेवा प्रदाताओं के माध्यम से कर्मचारियों को नियुक्त करने के लिए उक्त सरकारी आदेशों का संदर्भ ले सकते हैं। आगे यह तर्क दिया गया है कि राज्य-प्रतिवादियों ने दिनांक 18.12.2019, दिनांक 18.08.2020 और दिनांक 25.08.2020 के सरकारी आदेशों को सहकारी समितियों पर बाध्यकारी नहीं बनाया है क्योंकि सहकारी समितियां स्वायत्त निकाय हैं और अपने स्वयं के धन से चलती हैं, हालांकि कुछ सहकारी समितियों के पास अपने फंड में कुछ मात्रा में सरकारी हिस्सा भी होता है, लेकिन उनके पास नीतिगत निर्णय लेने के लिए अपनी स्वयं की प्रबंधन समितियां और निदेशक मंडल होते हैं।

37. बहस के दौरान, प्रतिवादी संख्या 3 से 6 के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ओपी सिंह और श्री नवीन सिन्हा, ने श्री सुजीत कुमार राय की सहायता से, तर्क दिया कि संघ के निदेशक मंडल ने अब यह निर्णय लिया है कि किसी भी सेवा प्रदाता के साथ किए गए सभी अनुबंध, उदाहरण के लिए, दिनांक 24.11.2021 को 15 अतिरिक्त कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए किया गया अनुबंध, समाप्त कर दिये जाएंगे। इसलिए, जब दिनांक 24.02.2022 की जीईएम पोर्टल बोली के अनुसरण में चयन प्रक्रिया पूरी हो गई थी, तब भी संघ और चयनित सेवा प्रदाता के बीच कोई अनुबंध नहीं हुआ है। पहले के सेवा प्रदाता अवसर मल्टी सॉल्यूशंस का अनुबंध भी रद्द कर दिया गया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा दिनांक 25.03.2022 को दिए गए प्रारंभिक अंतरिम आदेश का

हवाला दिया है, जिसे बाद में दिनांक 08.04.2022 के अंतरिम आदेश द्वारा संशोधित किया गया था, जिसमें प्रतिष्ठान में याचिकाकर्ताओं के रोजगार की प्रकृति और भविष्य में अनुबंध के नवीनीकरण के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने के निर्देश जारी किए गए थे और न्यायालय ने निर्देश दिया था कि प्रतिवादी काम लेने के लिए आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से किसी भी कर्मचारी को नियुक्त नहीं करेंगे और यदि प्रतिवादियों के पास काम उपलब्ध है और यदि वे नए कर्मचारियों को नियुक्त करना चाहते हैं, तो याचिकाकर्ताओं को अनुबंध में शामिल होने की अनुमति होगी। हालांकि, यदि याचिकाकर्ताओं के अलावा अतिरिक्त कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, तो इसकी पूर्ति आउटसोर्स कर्मचारियों से करने के लिए प्रतिवादियों के पास मार्ग खुला होगा। यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय द्वारा अपने आदेशों में जारी किए गए ऐसे संशोधन और स्पष्टीकरण के बावजूद, संघ के निदेशक मंडल ने दिनांक 10.08.2022 को आउटसोर्सिंग या सेवा प्रदाताओं को शामिल करके कर्मचारियों को नियुक्त करने की पद्धति को पूरी तरह से खत्म करने का निर्णय लिया था।

38. श्री ओपी सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, ने श्री सुजीत कुमार राय की सहायता से, तर्क दिया है कि इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ताओं ने छह मुख्य राहतों के लिए प्रार्थना की है। पहली राहत आयुक्त एवं निबंधक सहकारिता, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा जारी दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र और निर्माण संघ के उप महाप्रबंधक (प्रशासन) के

संचार, रिट याचिका के संलग्नक 13 और 15, को रद्द करने से संबंधित है। परिणामी राहत संघ के अधीक्षण अभियंता द्वारा जीईएम पोर्टल पर बोलियाँ आमंत्रित करने के लिए जारी दिनांक 22.02.2022 के नोटिस को रद्द करने से संबंधित है। तीसरी राहत प्रतिवादियों को ऐसे आक्षेपित आदेशों/पत्रों/नोटिस के आधार पर कोई भी कार्रवाई करने से रोकने से संबंधित है।

प्रथम राहत, जैसा कि मांग की गई है, के संबंध में, राज्य प्रतिवादियों द्वारा दायर हलफनामों से यह सामने आया है कि आयुक्त और रजिस्ट्रार ने विभिन्न सहकारी समितियों को केवल दिशानिर्देश जारी किए थे कि यदि वे जनशक्ति की आउटसोर्सिंग का सहारा लेते हैं, तो उन्हें समय-समय पर जारी सरकारी आदेशों का पालन करना होगा और सेवा प्रदाता का चयन केवल जीईएम पोर्टल के माध्यम से किया जाना चाहिए और अनुबंध के माध्यम से लगे कर्मचारियों का चयन सेवायोजन पोर्टल से किया जाना चाहिए। सरकारी आदेश केवल सरकारी विभागों पर लागू होते हैं और संघ जैसी सहकारी समितियों पर कोई बाध्यकारी प्रभाव नहीं डालते हैं जो स्वतंत्र और स्वायत्त निकाय हैं। उप प्रबंधक के संचार (रिट याचिका के संलग्नक 15) और दिनांक 22.02.2022 के नोटिस (रिट के संलग्नक 17) को भी चुनौती दी गई है, लेकिन अब निदेशक मंडल ने एक सुविचारित निर्णय लिया है और आउटसोर्सिंग की प्रक्रिया को रद्द कर दिया है। आउटसोर्सिंग की प्रक्रिया को रद्द करने के बाद, दावाकृत राहतों का अस्तित्व समाप्त हो गया है और निर्णय के लिए कुछ नहीं बचता। प्रतिवादियों

को याचिकाकर्ताओं के काम में हस्तक्षेप करने या उनकी निरंतरता को तोड़ने से रोकने और उन्हें वेतन और अन्य लाभ देने की प्रकृति में याचिकाकर्ताओं द्वारा मांगी गई अन्य राहतें नहीं दी जा सकतीं, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 3 से 6 और याचिकाकर्ताओं के बीच हुआ अनुबंध दिनांक 31.03.2022 को समाप्त हो गया है और उसके बाद कोई नया अनुबंध नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता न तो नियमित कर्मचारी हैं, न ही अस्थायी कर्मचारी हैं और न ही तदर्थ कर्मचारी हैं। वे केवल संविदा कर्मचारी हैं और अनुबंध की शर्तों से बंधे हैं। चूंकि पक्षों के बीच कोई अनुबंध नहीं है, इसलिए उन्हें काम करना जारी रखने और वेतन का दावा करने का कोई वैध अधिकार नहीं है। साथ ही, याचिकाकर्ताओं ने प्रार्थना की है कि उन्हें सेवा प्रदाता के माध्यम से लगे अन्य संविदा कर्मचारियों द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जाना चाहिए। ऐसी राहत दिए जाने की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि आउटसोर्सिंग और सेवा प्रदाता के चयन की प्रक्रिया पहले ही दिनांक 10.08.2022 के आदेश द्वारा रद्द कर दी गई है, इसलिए याचिकाकर्ताओं को सेवा प्रदाता के माध्यम से लगे कर्मचारियों द्वारा प्रतिस्थापित करने का कोई सवाल ही नहीं उठता।

39. यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता के अनुबंध एक निश्चित अवधि के लिए थे। उन्हें कभी नवीनीकृत नहीं किया गया। कार्यकाल समाप्त होने पर, काम और धन की उपलब्धता के सवाल पर विचार किया गया और एक निश्चित अवधि के लिए फिर से नए अनुबंधों पर हस्ताक्षर किए गए। साथ ही यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने

मनमाने ढंग से अनुबंध की समाप्ति से संबंधित निर्णयों का आश्रय लिया है, हालांकि ऐसे निर्णय याचिकाकर्ताओं के मामले में लागू नहीं होते हैं क्योंकि याचिकाकर्ताओं के अनुबंध समाप्त नहीं किए गए हैं। याचिकाकर्ताओं के अनुबंध एक निश्चित अवधि के लिए थे और वे दिनांक 31.03.2022 को समाप्त हो गए और याचिकाकर्ताओं का रोजगार स्वतः ही समाप्त हो गया।

40. प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ताओं ने कहा है कि आउटसोर्सिंग प्रक्रिया को रद्द करते समय भविष्य की कार्रवाई के बारे में कुछ भी नहीं बताया गया है। इस संबंध में, यह तर्क दिया गया है कि जब अनुबंध समाप्त हो गया, तो संघ याचिकाकर्ताओं में से किसी के साथ कोई नया अनुबंध करने के लिए बाध्य नहीं था। संघ काम की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए अनुबंध के माध्यम से नए कर्मचारियों को रख सकता है या नहीं भी रख सकता है। यदि संघ के नियमित कर्मचारी काम को सुचारु रूप से कर सकते हैं तो किसी भी नए कर्मचारी को रखने की आवश्यकता नहीं हो सकती है।

41. इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों की जानबूझकर अवज्ञा के संबंध में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क के जवाब में, यह प्रस्तुत किया गया है कि माननीय न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं को अंतरिम राहत देते समय सावधानी बरती थी और केवल रोजगार की प्रकृति और स्थिति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया था, न कि उनकी

सेवा के संबंध में। यह स्पष्ट किया गया था कि जीईएम पोर्टल के माध्यम से आउटसोर्सिंग एजेंसियों को आमंत्रित करने से अनुबंध के भविष्य के नवीनीकरण पर किसी भी तरह से प्रभाव नहीं पड़ेगा। संघ ने आउटसोर्सिंग का सहारा नहीं लेने का निर्णय लिया है। अंतरिम आदेशों में आगे कहा गया है कि यदि अतिरिक्त कर्मचारियों की आवश्यकता हो तो संघ आउटसोर्सिंग के माध्यम से ऐसे अतिरिक्त कर्मचारियों को नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र है। ऐसे 15 अतिरिक्त कर्मचारियों को सेवा प्रदाता के माध्यम से नियुक्त किया गया था, लेकिन इस न्यायालय की लखनऊ स्थित खंडपीठ द्वारा रिट याचिका *आरएमएस टेक्नो सॉल्यूशंस बनाम अतिरिक्त मुख्य सचिव राजस्व एवं अन्य* में दिए गए अंतरिम आदेश दिनांक 20.09.2019 के मद्देनजर सेवा प्रदाता के साथ अनुबंध रद्द कर दिया गया है। अब संघ अपने नियमित कर्मचारियों के साथ काम करना जारी रखेगा और यदि परियोजनाओं को पूरा करने के लिए किसी अतिरिक्त कर्मचारी की आवश्यकता होती है तो वह नए अनुबंध के माध्यम से लोगों को नियुक्त करने पर विचार करेगा।

42. प्रबंध निदेशक द्वारा दिनांक 10.08.2022 को आदेश जारी किए जाने पर रिट याचिका के निष्फल हो जाने के संबंध में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ओपी सिंह द्वारा उठाए गए तर्क के उत्तर में, श्री अशोक खरे द्वारा तर्क दिया गया है कि प्रबंध निदेशक के आदेश में केवल उसको पारित करने के कारण दर्ज हैं। इसमें उल्लिखित एकमात्र कारण उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेशों को

पारित किया जाना और खंड पीठ द्वारा विशेष अपीलों को खारिज किया जाना है। प्रबंध निदेशक के आदेश में कर्मचारियों को आउटसोर्स न करने और आउटसोर्स संविदा कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए जीईएम पोर्टल का उपयोग न करने का कोई निर्णय नहीं है। प्रबंध निदेशक के दिनांक 10.08.2022 के आदेश की अनुपस्थिति में भी, इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम आदेशों के कारण निविदा बोलियों पर कार्रवाई नहीं की जा सकती थी। प्रतिवादियों द्वारा रिकॉर्ड में ऐसा कुछ भी नहीं रखा गया है कि वे अंतरिम आदेशों के निरस्त होते ही उसी उद्देश्य के लिए जीईएम पोर्टल पर नई निविदा बोली जारी नहीं करेंगे। प्रतिवादियों की मंशा इस तथ्य से स्पष्ट है कि दिनांक 10.08.2022 का आदेश जारी होने के बावजूद, याचिकाकर्ताओं को न तो अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने की अनुमति दी गई है और न ही उन्हें कोई वेतन दिया गया है। इस न्यायालय ने अपने आदेशों में स्पष्ट किया था कि यह प्रतिवादियों पर निर्भर है कि वे या तो याचिकाकर्ताओं से काम लें या न लें, लेकिन वे याचिकाकर्ताओं द्वारा किए जा रहे काम के लिए जीईएम पोर्टल के माध्यम से नए कर्मचारियों को नहीं रख सकते। भले ही काम की अनुपलब्धता नहीं है क्योंकि प्रतिवादियों ने स्वयं 622 अनुबंध कर्मचारियों की आवश्यकता की पहचान की है जो मौजूदा कर्मचारियों की संख्या के बराबर है, जिन्हें अब आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से नियोजित किया जाना है, फिर भी उन्हें प्रतिवादी संघ के इस समझ के कारण याचिकाकर्ताओं की सेवाओं का नवीनीकरण नहीं किया गया और फिर से नियुक्त नहीं किया

गया, कि संविदा नियुक्तियां केवल आउटसोर्सिंग के माध्यम से की जानी हैं, और आउटसोर्सिंग एजेंसियों की पहचान जीईएम पोर्टल के माध्यम से की जानी है। दिनांक 10.08.2022 के आदेश जारी होने के कारण, जीईएम पोर्टल के माध्यम से सेवा प्रदाता की पहचान के लिए शुरू की गई कार्यवाही रद्द कर दी गई है और इस तरह से एकमात्र मौजूदा कारण, भले ही गलत हो, भी समाप्त हो गया है। इसके बावजूद, याचिकाकर्ताओं को न तो झूटी फिर से शुरू करने की अनुमति दी गई है और न ही वेतन का भुगतान शुरू हुआ है। काम की आवश्यकता बनी हुई है और याचिकाकर्ताओं के खिलाफ असंतोषजनक कामकाज का कोई आरोप मौजूद नहीं है। इस प्रकार दिनांक 17.09.2021 का आदेश पूरी तरह से तर्कहीन प्रतीत होता है। मुकदमे की शुरुआत में, इस न्यायालय ने आयुक्त और रजिस्ट्रार, सहकारिता, यूपी द्वारा जारी परिपत्र की गलत व्याख्या के संबंध में गलत कारण पर रोक लगा दी थी, हालांकि, प्रबंध निदेशक के दिनांक 10.08.2022 के आदेश जारी होने के कारण रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान यह गलत कारण भी समाप्त हो गया है।

43. यह भी तर्क दिया गया है कि स्थिति का बेतुकापन जवाबी हलफनामे में प्रतिवादियों द्वारा लिए गए रुख से और भी स्पष्ट हो जाता है, कि जीईएम पोर्टल पर सेवा प्रदाता के चयन के लिए बोलियाँ आमंत्रित करने के बावजूद याचिकाकर्ताओं की सेवाएँ समाप्त नहीं की जानी थीं। प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा दायर जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 19,

20 और 23 में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यदि ऐसा है, तो यह स्पष्ट है कि केवल कुछ अतार्किक मकसद के कारण प्रतिवादी याचिकाकर्ताओं को काम करने की अनुमति नहीं दे रहे हैं। इस तरह के व्यवहार का शायद एकमात्र कारण यह है कि याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और उन्हें उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश दिए गए हैं।

44. यह तर्क दिया गया है कि प्रबंध निदेशक द्वारा दिनांक 10.08.2022 को पारित आदेश के आधार पर प्रतिवादियों द्वारा बार-बार उठाया गया तर्क कि रिट याचिका निष्फल हो गई है, स्पष्ट रूप से भ्रामक और शरारती है और उच्च न्यायालय की जांच को रोकने का एक प्रयास है, जिसमें भविष्य की कार्यप्रणाली के बारे में कोई प्रतिबद्धता नहीं है।

45. दिनांक 10.08.2022 को ऐसा आदेश पारित करने के बावजूद, प्रबंध निदेशक ने याचिकाकर्ताओं को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने की अनुमति नहीं दी है। उन्हें उनका वेतन भी जारी नहीं किया गया है। इसलिए, प्रबंध निदेशक द्वारा दिनांक 10.08.2022 को पारित आदेश के आधार पर प्रतिवादियों का बार-बार दावा कि रिट याचिकाएं निष्फल हो गई हैं, भ्रामक हैं और उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेशों की जांच को रोकने का एक प्रयास है जिसमें भविष्य की कार्यप्रणाली के बारे में कोई प्रतिबद्धता नहीं है।

46. यह भी तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश अन्यथा भी मनमाने हैं क्योंकि याचिकाकर्ता पिछले कई वर्षों से अनुबंध पर काम कर रहे हैं और अब उन्हें अन्य संविदा कर्मचारियों द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है। अनुबंध कर्मचारियों के एक समूह को अनुबंध कर्मचारियों के दूसरे समूह द्वारा प्रतिस्थापित करना अत्यधिक संदिग्ध और अनुचित है।

47. प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से दायर लिखित प्रस्तुतियों में, रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में इस आधार पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि संघ के पास संविधान के अनुच्छेद 226 के अर्थ में "प्राधिकरण" के तत्व नहीं हैं और इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा विजय बिहारी श्रीवास्तव बनाम यूपी पोस्टल प्राइमरी कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड और अन्य (2003) 1 यूपीएलबीईसी 1; और अनिल कुमार पांडे और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य 2016 (7) एडीजे 495 (पूर्ण पीठ) और एस एस राणा बनाम रजिस्ट्रार, सर्किल ऑफिसर सहकारी समिति और अन्य (2006) 11 एससीसी 63 के मामलों में दिए गए निर्णयों का आश्रय लिया गया है।

48. लिखित दलीलों में यह भी कहा गया है कि याचिकाकर्ता जो साल-दर-साल अनुबंध पर लगे हुए थे, वे संविधान पीठ द्वारा कर्नाटक राज्य सचिव बनाम उमा देवी, 2006 (4) एससीसी 1 में तय कानून

के मद्देनजर निरंतरता और नियमितीकरण के लिए परमादेश की प्रकृति में रिट की मांग नहीं कर सकते हैं।

49. खंड 3 (4) में दिनांक 18.12.2019 के सरकारी आदेश और खंड 2(4) में दिनांक 25.08.2020 के सरकारी आदेश और खंड 2(5) में दिनांक 18.08.2020 के सरकारी आदेश में केवल पहले से आउटसोर्सिंग के आधार पर काम कर रहे कर्मियों की निरंतरता का प्रावधान है। सरकारी आदेश में जीईएम पोर्टल के माध्यम से सेवा प्रदाता का चयन और जीईएम पोर्टल के माध्यम से चयनित सेवा प्रदाता के माध्यम से पहले से ही काम कर रहे आउटसोर्स कर्मचारियों की नियुक्ति का प्रावधान है। उपरोक्त शासनादेश सेवा प्रदाता के माध्यम से नियुक्त कर्मियों के सेवायोजन पोर्टल पर पंजीकरण का अधिदेश करते हैं।

50. इसके अतिरिक्त, यह प्रस्तुत किया गया है कि ये सरकारी आदेश सहकारी समितियों पर लागू नहीं हैं और ये तभी लागू होते हैं जब इन्हें निदेशक मंडल द्वारा अपनाया जाता है। आयुक्त एवं निबंधक सहकारिता, यूपी द्वारा जारी दिनांक 17.09.2021 का परिपत्र केवल यूपी की सभी शीर्ष स्तरीय और केंद्रीय सहकारी समितियों को सेवा प्रदाता के चयन और सेवा प्रदाता के माध्यम से आउटसोर्स कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए यूपी सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा जारी दिनांक 18.12.2019, दिनांक 18.08.2020 और दिनांक 25.08.2020 के सरकारी आदेशों के अनिवार्य प्रावधानों का पालन करने के लिए एक मार्गदर्शन के रूप में जारी किया गया था।

उक्त परिपत्र में उल्लेख किया गया है कि यूपी सरकार के विभिन्न विभागों और उनके अधीनस्थ संस्थानों में ऐसी प्रक्रिया का अनिवार्य रूप से पालन किया जाना है। हालाँकि, यह परिपत्र सभी सहकारी समितियों को केवल जीईएम पोर्टल के माध्यम से सेवा प्रदाता द्वारा जनशक्ति को नियुक्त करने को आवश्यक नहीं करता है।

51. कार्मिक विभाग के विशेष सचिव द्वारा दायर हलफनामे में स्पष्ट किया गया है कि जनशक्ति की आउटसोर्सिंग और संविदा के आधार पर कर्मचारियों की सीधी नियुक्ति एक दूसरे से दो अलग चीजें हैं और पूर्वोक्त सरकारी आदेश केवल यूपी राज्य के विभिन्न विभागों और उनके अधीनस्थ संस्थानों में कर्मियों की आउटसोर्सिंग के लिए लागू हैं।

52. इसके अतिरिक्त, यह कहा गया है कि जीईएम पोर्टल के माध्यम से सेवा प्रदाता के चयन की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के संघ के निदेशक मंडल के निर्णय और साथ-साथ दिनांक 10.11.2022 के अपने प्रस्ताव द्वारा चयनित सेवा प्रदाता के अनुबंध को रद्द करने के मद्देनजर रिट याचिकाएं निष्फल हो गई हैं।

53. दलीलों और तर्कों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय के लिए विचारणीय तीन प्रश्न उठते हैं। वे हैं:-

(i) क्या संघ एक शीर्ष स्तरीय सोसायटी के खिलाफ अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका पोषणीय है?

(ii) क्या संविदात्मक अधिकारों को लागू कराने के लिए परमादेश की रिट जारी की जा सकती है?

(iii) क्या याचिकाकर्ता किसी राहत के हकदार हैं और यदि हां, तो इस न्यायालय द्वारा उन्हें क्या राहत दी जा सकती है?

54. शीर्ष स्तर की सहकारी समिति के खिलाफ रिट याचिका की पोषणीयता का सवाल पहली बार लिखित प्रस्तुतियों में उठाया गया है। प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित किसी भी अधिवक्ता द्वारा बहस के दौरान इसका कोई संदर्भ नहीं दिया गया। हालाँकि, चूंकि यह उठाया गया है और क्षेत्राधिकार का सवाल ऐसा है जिसे न्यायालय को स्वयं देखना है, भले ही इसे किसी भी पक्ष द्वारा नहीं उठाया गया हो, इसलिए यह न्यायालय अब इस संबंध में उद्धृत निर्णयों पर विचार करेगा।

55. **विजय बिहारी श्रीवास्तव (सुप्रा)** में, न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रहा था, जहां याचिकाकर्ता को प्रबंधन समिति द्वारा पारित प्रस्ताव के अनुसरण में यूपी पोस्टल प्राइमरी कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड में सचिव नियुक्त किया गया था, जिसे वार्षिक आम सभा द्वारा अनुमोदित किया गया था और उसके बाद याचिकाकर्ता की सचिव के पद पर पुष्टि की गई थी। बाद में उसे सचिव का पद एक अन्य व्यक्ति को सौंपने का निर्देश दिया गया और लेखाकार के पद पर वापस भेज दिया गया। उक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने एक रिट याचिका में इस न्यायालय का रुख किया कि विपक्षीगण को परमादेश जारी किया जाए कि वे याचिकाकर्ता

को बैंक में सचिव के पद पर कार्य करने दें और याचिकाकर्ता को उस पद से वापस न करें जिस पर उसे यूपी सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियमावली 1975 के विनियम 84 और 85 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना मौलिक रूप से नियुक्त किया गया था, और साथ ही याचिकाकर्ता से सचिव के पद का प्रभार लेने और लेखाकार के पद का प्रभार याचिकाकर्ता को सौंपने के प्रबंध समिति के फैसले को रद्द किया जाए। जब मामला एक खंड पीठ के समक्ष आया, तो उसने सवाल उठाया कि क्या **राधा चरण शर्मा बनाम यूपी कोऑपरेटिव फेडरेशन, 1982 यूपीएलबीईसी 89 (एफबी)** में पूर्ण पीठ के फैसले को **यूपी राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक बनाम चंद्र भान दुबे 1999 (1) एससीसी 741** में सुप्रीम कोर्ट के उत्तरवर्ती निर्णय के मद्देनजर खंड पीठ द्वारा नजरअंदाज किया जा सकता है; और क्या उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट सहकारी समिति के खिलाफ होगी और क्या यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 में आने वाले "अन्य प्राधिकरण" शब्दों के अर्थ में आती है। यह बाद के प्रश्नों पर विचार करते समय पूर्ण पीठ द्वारा की गई टिप्पणियां हैं जो इस याचिका में शामिल विवाद के लिए प्रासंगिक हैं।

56. पूर्ण पीठ ने सोसायटी पंजीकरण अधिनियम और सहकारी सोसायटी अधिनियम से संबंधित इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों का संदर्भ दिया। इसने यूपी राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक लिमिटेड बनाम चंद्रभान दुबे 1999 (1) एससीसी 741 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया; जहां यह देखा गया था कि

सहकारी समिति जैसी न्यायिक संस्था जो अधिनियम के तहत पंजीकृत है, लेकिन अन्यथा सरकारी नियंत्रण से मुक्त है, अनुच्छेद 12 के अर्थ में "प्राधिकरण" नहीं होगी, लेकिन यह माना कि मामले के तथ्यों पर, ऐसी सहकारी समिति द्वारा तैयार सेवा नियमों में, प्रबंध निदेशक और मुख्य महाप्रबंधक राज्य सरकार के अधिकारी थे, जिन्हें अपीलकर्ता के पास प्रतिनियुक्ति पर भेजा गया था, और पाया कि ऐसी स्थिति की कल्पना करना कठिन होगा, जहां सरकार अपने किसी कर्मचारी को उस निकाय या संस्था का प्रमुख बनाने के लिए प्रतिनियुक्ति पर भेजती है, जो उस सरकार द्वारा नियंत्रित नहीं है भले ही कर्मचारी को उस निकाय या संस्था के कोष से भुगतान किया जा सकता हो, जब तक कि सरकार को ऐसा करने का अधिकार देने वाला कानून का कोई विशिष्ट प्रावधान न हो। इसके अलावा, इसके कर्मचारियों की सेवा शर्तें, विशेष रूप से उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में, प्रकृति में वैधानिक थीं, और बर्खास्तगी की शक्ति का प्रयोग वैधानिक निकाय की स्वीकृति के साथ वैधानिक विनियमों के अनुसार होना था, इसलिए न्यायालय ने माना था कि राज्य सरकार का सोसायटी पर व्यापक नियंत्रण था, और इसके कर्मचारियों को वैधानिक संरक्षण प्राप्त था और इसलिए, अपीलकर्ता राज्य का एक अधिकारी होने के नाते संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन होगा। **विजय बिहारी श्रीवास्तव** (सुप्रा) में पूर्ण पीठ ने पैराग्राफ 35 में इस प्रकार टिप्पणी की: -

"पूर्वगामी चर्चाओं के आलोक में, हम इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि क्या उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट याचिका सहकारी सोसायटी के खिलाफ होगी, या यह इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 226 में आने वाले "अन्य प्राधिकरण" शब्दों के अर्थ में आती है:

उत्प्रेषण-पत्र की प्रकृति की रिट याचिका सहकारी समिति के विरुद्ध तभी स्वीकार्य होगी जब ऐसी समिति में संविधान के अनुच्छेद 226 के अर्थ में "प्राधिकरण" के तत्व हों, अन्यथा नहीं। ऊपर संदर्भित सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों से निम्नलिखित दिशानिर्देश लिए गए हैं: (1) प्रबंध निकाय/समिति का संविधान सरकार के पदाधिकारियों का गठन करता है। (2) सहकारी समिति के प्रबंधन और नीतियों पर सरकार का गहरा और व्यापक नियंत्रण होता है। (3) सहकारी समिति का कार्य सार्वजनिक महत्व का होता है और सरकारी कार्यों से निकटता से जुड़ा होता है। (4) वित्तीय नियंत्रण सरकार द्वारा होता है या वह उसके मामलों को नियंत्रित करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है। (5) अपने कर्मचारियों के सेवा मामलों के संबंध में समिति पर लागू वैधानिक नियमों का उल्लंघन, और (6) अधिनियम के तहत किसी प्राधिकरण द्वारा वैधानिक उल्लंघन या उसका अनुपालन न करना।"

57. पैराग्राफ 37 में आगे निम्नलिखित टिप्पणी की गई: -

"37. यह भी आवश्यक नहीं है कि ऊपर सूचीबद्ध सभी कारक यह निर्धारित करने के लिए प्रयोग कर लिए जाएं कि सोसायटी संविधान के अनुच्छेद 226 के अर्थ में एक प्राधिकरण है। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि रजिस्ट्रार या अन्य प्राधिकरण द्वारा सहकारी सोसायटी में मात्र नियामक प्रावधान, प्रबंध निकाय/समिति को प्राधिकरण नहीं बना देगा जैसा कि प्रदीप कुमार विश्वास (सुप्रा) में रिपोर्ट के पैराग्राफ 40 में कहा गया है। हालांकि, अगर न्यायालय पाती है कि याचिकाकर्ता के पास अपनी शिकायतों को व्यक्त करने के लिए वैकल्पिक उपाय हैं तो वह रिट याचिका पर विचार करने से इनकार कर सकती है।"

58. एसएस राणा बनाम रजिस्ट्रार, सहकारी समितियां अन्य 2006 (11) एससीसी 634 के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"12. यह सुस्थापित है कि कंपनी अधिनियम या सहकारी समिति अधिनियम जैसे किसी अधिनियम के तहत सामान्य विनियमन, किसी कंपनी या सोसायटी की गतिविधियों को राज्य के नियंत्रण के अधीन नहीं बनाते हैं। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार इस तरह के नियंत्रण का उद्देश्य सोसायटी के समुचित

कामकाज को सुनिश्चित करना है और राज्य या वैधानिक प्राधिकरणों का उसके दैनिक कामकाज से कोई लेना-देना नहीं होगा।

13. प्रदीप कुमार विश्वास (सुप्रा) में इस न्यायालय की सात न्यायाधीशों की पीठ का निर्णय, जिसका मजबूत आधार लिया गया है, वर्तमान मामले में लागू नहीं होता। उस मामले में, पीठ इस प्रश्न पर निर्णय कर रही थी कि क्या इस न्यायालय के बाद के निर्णयों के मद्देनजर सभाजीत तिवारी बनाम भारत संघ और अन्य (1975) 1 एससीसी 485 में कानून सही ढंग से निर्धारित किया गया था, और यह नहीं कि क्या वह खारिज करने योग्य है।- -"

59. अनिल कुमार पांडे और 17 अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य, 2016 (7) एडीजे 495 में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने निम्नलिखित प्रश्नों पर निर्णय दिया: -

"1. क्या किसी सहकारी गन्ना विकास समिति के विरुद्ध उसके कर्मचारी के कहने पर, उसकी सेवा शर्तों से संबंधित उत्तर प्रदेश गन्ना सहकारी सेवा विनियमावली 1975 के उपबंधों के कथित उल्लंघन के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका पोषणीय होगी?

3. क्या उत्तर प्रदेश गन्ना सहकारी सेवा विनियमावली 1975, उत्तर प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम 1965 की

धारा 122 के अंतर्गत जारी होने के कारण वैधानिक प्रकृति की है या केवल प्रशासनिक निर्देश की प्रकृति की है?

60. न्यायालय ने अनिल कुमार पांडेय (सुप्रा) में इस प्रकार टिप्पणी की -

"अधिनियम की धारा 122 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जो विनियम बनाए गए हैं, वे वैधानिक शक्ति के स्रोत से जुड़े हैं। ये विनियमावली गन्ना आयुक्त द्वारा एक "प्राधिकरण" के रूप में बनाई गई है, जिसे ऐसा करने का कार्य राज्य सरकार द्वारा धारा 122 के अंतर्गत सौंपा गया है। इसलिए, विनियम को केवल प्रशासनिक निर्देश की तरह नहीं माना जा सकता है। ये विनियम धारा 122 द्वारा प्रदत्त वैधानिक शक्ति के अनुसरण में बनाए गए हैं।

प्रश्न (1) का उत्तर तब निम्नलिखित शब्दों में दिया गया था:-

"--जहां तक प्रश्न एक का संबंध है, इस मुद्दे को विजय बिहारी श्रीवास्तव के मामले में इस न्यायालय के पांच न्यायाधीशों के फैसले में निर्धारित परीक्षणों को ध्यान में रखते हुए हल किया जाना चाहिए। इसके अलावा, पोषणीयता का मुद्दा इस बात से अलग है कि किसी दिए गए मामले में अनुच्छेद 226 के तहत विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं।

भले ही कोई याचिका पोषणीय है, फिर भी न्यायालय किसी विशेष मामले के तथ्यों में, अनुच्छेद 226 के तहत इसे स्वीकार करने से इनकार कर सकता है, उदाहरण के लिए, जहां तथ्य के विवादित प्रश्न उठते हैं या एक प्रभावी वैकल्पिक उपाय उपलब्ध है।"

61. थलप्लम सर्विस कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड बनाम केरल राज्य और अन्य 2013 (16) एससीसी 82 में, सहकारी समितियों के प्रश्न पर विचार करते समय और क्या वे रिट क्षेत्राधिकार के लिए "अन्य प्राधिकरण" के रूप में अनुकूल हैं, उच्चतम न्यायालय ने यूपी स्टेट कोऑपरेटिव लैंड डेवलपमेंट बैंक लिमिटेड बनाम चंद्रभान दुबे (सुप्रा) में पारित निर्णय का संदर्भ देते हुए कहा कि-

"किसी संस्था के वैधानिक निकाय बनने से पहले, उसे कानून द्वारा या उसके तहत बनाया जाना चाहिए और उसका अस्तित्व कानून का आभारी होना चाहिए। यह प्राथमिक बात होनी चाहिए जिसे स्थापित किया जाना चाहिए। यहां एक ऐसी संस्था के बीच अंतर किया जाना चाहिए जो कानून द्वारा या उसके तहत नहीं बनाई गई है, लेकिन संस्था के उचित रखरखाव और प्रशासन के लिए कुछ वैधानिक प्रावधानों द्वारा शासित है। ऐसी कई संस्थाएँ हैं जो किसी कानून द्वारा या उसके तहत नहीं बनाई गई हैं, उन्होंने कुछ वैधानिक प्रावधानों को अपनाया

है, लेकिन हमारी राय में, यह अपने आप में संस्था को वैधानिक चरित्र प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है -
-1"

"15. इसलिए, हम एक ऐसे निकाय जो एक कानून द्वारा बनाया गया है और एक निकाय जो अस्तित्व में आने के बाद कानून के प्रावधानों के अनुसार शासित होता है, के बीच स्पष्ट अंतर कर सकते हैं। जिन समितियों से संबंधित बात हम कर रहे हैं, वे बाद की श्रेणी में आती हैं जो कि सोसायटी अधिनियम द्वारा शासित होती हैं और वे वैधानिक निकाय नहीं हैं, बल्कि केरल सहकारी समिति अधिनियम की धारा 9 के अर्थ में केवल निगमित निकाय हैं, जिनके पास शाश्वत उत्तराधिकार और एक सामान्य मुहर है और इसलिए उनके पास संपत्ति रखने, अनुबंध करने, मुकदमों को शुरू करने और बचाव करने और अन्य कानूनी कार्यवाही करने और उस उद्देश्य के लिए आवश्यक सभी चीजें करने की शक्ति है, जिसके लिए इसका गठन किया गया था। सोसायटी अधिनियम की धारा 27 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि किसी सोसायटी का अंतिम अधिकार उसके सदस्यों की सामान्य निकाय में निहित है और प्रत्येक सोसायटी का प्रबंधन सोसायटी अधिनियम की धारा 28 के तहत दिए गए उपनियमों के अनुसार गठित

प्रबंध समिति द्वारा किया जाता है। जहां तक इस प्रकार की समितियों का संबंध है, जैसा कि कानून कहता है, अंतिम प्राधिकारी सामान्य निकाय है न कि सहकारी समितियों का रजिस्ट्रार या राज्य सरकार।"

"17. समितियां....निःसंदेह, रजिस्ट्रार, संयुक्त रजिस्ट्रार, सरकार आदि जैसे वैधानिक प्राधिकारियों के नियंत्रण के अधीन हैं, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य समिति के मामलों पर, जो गहरे और सर्वव्यापी हैं, कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष नियंत्रण रखता है। सहकारी समिति, जो एक निगमित निकाय है, पर कानून के तहत पर्यवेक्षी या सामान्य विनियमन, इस तरह से विनियमित निकाय की गतिविधियों को राज्य के ऐसे नियंत्रण के अधीन नहीं बनाता है, जिससे इसे "राज्य" के अर्थ में या राज्य के अधिकार में लाया जा सके।"

62. उपर्युक्त निर्णय ने एसएस राणा बनाम रजिस्ट्रार सहकारी समितियां एवं अन्य 2006 (11) एससीसी 634 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों की पुष्टि की। एसएस राणा का जिक्र करते हुए, इसने देखा कि-

"उस मामले में यह न्यायालय कांगड़ा सेंट्रल कोऑपरेटिव सोसाइटी बैंक लिमिटेड, जो हिमाचल प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम 1968 के प्रावधानों के तहत पंजीकृत एक सोसायटी है, के

खिलाफ रिट याचिका की पोषणीयता पर विचार कर रहा था। हिमाचल प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों की जांच करने के बाद, इस न्यायालय ने निम्नानुसार माना:

"9. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि सोसायटी का गठन किसी अधिनियम के तहत नहीं किया गया है। यह किसी भी अन्य सहकारी सोसायटी की तरह काम करती है... और सोसायटी के उपनियमों में दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार विनियमित होती है। सोसायटी के कार्यों में राज्य का कोई दखल नहीं है। सदस्यता, शेयरों का अधिग्रहण और अन्य सभी मामले अधिनियम के तहत बनाए गए उपनियमों द्वारा शासित होते हैं। सहकारी सोसायटी के किसी अधिकारी की सेवा की शर्तें और नियम, निर्विवाद रूप से, नियम 456, जिसका संदर्भ श्री विजय कुमार ने दिया है, द्वारा शासित हैं जिनमें सोसायटी के किसी अधिकारी को दिए गए किसी कानूनी अधिकार के संदर्भ में कोई प्रावधान नहीं है।

10. हमारे सामने यह नहीं दिखाया गया है कि राज्य सोसायटी के मामलों पर कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष नियंत्रण रखता है, या गहरा और व्यापक नियंत्रण रखता है। इसके अलावा राज्य बहुसंख्य

शेयरधारक भी नहीं है। राज्य के पास केवल एक निदेशक को नामित करने का अधिकार है। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि राज्य सोसायटी के मामलों पर इस अर्थ में कोई कार्यात्मक नियंत्रण रखता है, कि बहुसंख्यक निदेशक राज्य द्वारा नामित किए जाते हैं। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि राज्य का सोसायटी पर गहरा और व्यापक नियंत्रण है, कई अन्य प्रासंगिक प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है, अर्थात्, (1) सोसायटी कैसे बनाई गई थी? (2) क्या इसका कोई एकाधिकार चरित्र है? (3) क्या सोसायटी के कार्य वैधानिक कार्यों या सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते हैं? और (4) क्या इसे सार्वजनिक प्राधिकरण के रूप में चिह्नित किया जा सकता है?

12. यह भली प्रकार से स्थापित है कि कंपनी अधिनियम या सहकारी समिति अधिनियम जैसे किसी अधिनियम के तहत सामान्य विनियमन, किसी कंपनी या सोसायटी की गतिविधियों को राज्य के नियंत्रण के अधीन नहीं बनाते हैं। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार इस तरह के नियंत्रण का उद्देश्य सोसायटी का समुचित कामकाज सुनिश्चित करना है और राज्य या वैधानिक प्राधिकारियों का

उसके दैनिक कार्यों से कोई लेना-देना नहीं होगा।"

63. राज्य प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 14.02.2019 को निर्णित रिट-ए संख्या 2329 वर्ष 2019: कृष्ण मोहन बनाम यूपी राज्य और 3 अन्य में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्णय का आश्रय लिया है, जहां पूर्वोक्त कानून पर विचार करने के बाद यह देखा गया था कि केवल नियामक नियंत्रण को सर्वव्यापी नियंत्रण नहीं कहा जा सकता है और प्राथमिक स्तर की सहकारी समितियों को संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत "प्राधिकरण" की परिभाषा में नहीं कहा जा सकता है और उनके कर्मचारियों के कहने पर उनके खिलाफ रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

64. इस न्यायालय ने राज्य प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत उपरोक्त निर्णयों पर विचार किया है, लेकिन उसका सुविचारित मत है कि उक्त निर्णयों में से किसी में भी ऐसे मामले पर विचार नहीं किया गया है, जिसमें राज्य प्रतिवादी, इस मामले में, आयुक्त एवं निबंधक, सहकारिता, उत्तर प्रदेश द्वारा जारी परिपत्र को चुनौती दी गई हो। यह स्थापित कानून है कि कोई भी निर्णय ऐसे मुद्दे के लिए बाध्यकारी मिसाल नहीं हो सकता, जिस पर उसने बिल्कुल विचार ही न किया हो। एक अतिरिक्त तथ्य, मिसाल की बाध्यकारी प्रकृति को बदल सकता है। न्यायालय को इस बात पर चर्चा किए बिना कि तथ्यात्मक स्थिति उस निर्णय की

तथ्यात्मक स्थिति से कैसे मेल खाती है जिसका आधार लिया गया है, किसी निर्णय का आधार नहीं लेना चाहिए। न्यायालयों की टिप्पणियों को न तो यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, न ही कानून के प्रावधानों के रूप में और उन्हें संदर्भ से बाहर नहीं पढ़ा जा सकता है।

65. इस न्यायालय ने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा आधार लिए गए निर्णयों पर विचार करने के बाद पाया कि यद्यपि रिट याचिका में यह कथन किया गया है कि संघ राज्य सरकार के पूर्ण नियंत्रण में है और सरकार द्वारा पर्याप्त वित्तपोषण किया जाता है, लेकिन जवाबी हलफनामे में इस तरह के कथन का खंडन किया गया है।

66. दोनों पक्षों में से किसी ने भी अपने प्रतिद्वंद्वी दावों को प्रमाणित करने के लिए कोई दस्तावेजी साक्ष्य दाखिल नहीं किया है। संघ के खिलाफ रिट याचिका की पोषणीयता का प्रश्न बहस के स्तर पर भी नहीं उठाया गया है। केवल राज्य प्रतिवादियों के लिखित प्रस्तुतीकरण में पोषणीयता का मुद्दा उठाया गया है। इस न्यायालय ने पाया है कि प्रतिवादी संख्या 2 के परिपत्र को चुनौती दी गई है क्योंकि इसमें सहकारी समितियों को विभिन्न स्तरों पर दिशा-निर्देश जारी करने का प्रस्ताव था कि वे केवल सरकार द्वारा तैयार किए गए GeM पोर्टल से और केवल समय-समय पर जारी किए गए विभिन्न सरकारी आदेशों के अनुसार ही जनशक्ति खरीदें। कर्मचारियों को केवल रोजगार कार्यालय के सेवायोजन पोर्टल से ही रखा जाना था।

67. प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ताओं ने बहस के दौरान स्पष्ट किया कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा जारी किया गया परिपत्र बाध्यकारी नहीं था और जिन सरकारी आदेशों का उसमें आधार लिया गया था, वे सरकारी विभागों और उनके अधीनस्थ संस्थाओं के लिए थे, सहकारी समितियों के लिए नहीं।

68. यदि ऐसा है, तो दिनांक 17.09.2021 को जारी किए गए ऐसे परिपत्र के बाद प्रतिवादी संख्या 3 से 6 का आचरण उनके विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों को झुठलाता है। यदि प्रतिवादी संख्या 2 का प्रतिवादी संख्या 3 से 6 पर कोई नियंत्रण नहीं था, तो यह बिल्कुल असंभव है कि उन्होंने सेवा प्रदाताओं से बोलियाँ आमंत्रित करते हुए जीईएम पोर्टल पर निविदा नोटिस जारी किया होगा। इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि पोषणीयता का प्रश्न केवल मुख्य मुद्दे से भटकाने के लिए उठाया गया है कि क्या प्रतिवादी संख्या 2 दिनांक 17.09.2021 को ऐसा परिपत्र जारी कर सकता था। यह भी स्पष्ट है कि यदि प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा इस परिपत्र को प्रभावी किया जाता है तो याचिकाकर्ता वास्तव में प्रभावित होंगे। इसलिए, यह न्यायालय मानता है कि रिट याचिकाएँ विचारणीय हैं क्योंकि वे प्रतिवादी संख्या 2 के परिपत्र और उसके बाद प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा की गई परिणामी कार्रवाइयों को चुनौती देती हैं।

69. प्रश्न (ii) और (iii) पर मैं एक साथ विचार करूँगी। राज्य प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने संविदा कर्मचारियों के निरंतरता और नियमितीकरण के अधिकार के बारे में सर्वोच्च

न्यायालय के दो निर्णयों का भी आधार लिया है। इस तरह का पहला मामला जिसका आधार लिया गया है वह सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमा देवी और अन्य, 2006 (4) एससीसी 1 का और उसके पैराग्राफ 43 से 47 का है।

सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:

"43. - - - - इसलिए, सार्वजनिक रोजगार की योजना के अनुरूप, इस न्यायालय को कानून बनाकर यह आवश्यक रूप से मानना होगा कि जब तक नियुक्ति प्रासंगिक नियमों के अनुसार और योग्य व्यक्तियों के बीच उचित प्रतिस्पर्धा के बाद नहीं होती है, तब तक नियुक्त व्यक्ति को कोई अधिकार नहीं दिया जाएगा। यदि यह संविदात्मक नियुक्ति है, तो नियुक्ति अनुबंध के अंत में समाप्त हो जाती है, यदि यह दैनिक वेतन या अनौपचारिक आधार पर नियुक्ति थी, तो यह रुक जाने पर समाप्त हो जाएगी। -----
- न्यायालय अस्थायी कर्मचारियों जिनकी रोजगार अवधि समाप्त हो गई है या तदर्थ कर्मचारियों जो अपनी नियुक्ति की प्रकृति के कारण कोई अधिकार प्राप्त नहीं करते हैं, के कहने पर, नियमित भर्ती को नहीं रोक सकता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत आसीन उच्च न्यायालय को आमतौर पर तब तक आमेलन, नियमितीकरण, स्थायी निरंतरता के लिए निर्देश जारी नहीं करना चाहिए, जब तक कि भर्ती स्वयं नियमित रूप से और संवैधानिक योजना के अनुसार नहीं की गई हो।-----"

सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-45 में आगे टिप्पणी की:-

"45. अस्थायी या अनौपचारिक नियुक्तियों को नियमित या स्थायी करने का निर्देश देते समय न्यायालय इस तथ्य से प्रभावित होते हैं कि संबंधित व्यक्ति ने कुछ समय तक और कुछ मामलों में काफी लंबे समय तक काम किया है। ऐसा नहीं है कि जो व्यक्ति अस्थायी या अनौपचारिक प्रकृति की नियुक्ति स्वीकार करता है, उसे अपने रोजगार की प्रकृति के बारे में पता नहीं होता है। खुली आँखों से रोजगार स्वीकार करते समय, यह सच हो सकता है कि वह सौदेबाजी करने की स्थिति में दूर दूर तक नहीं है क्योंकि वह अपनी आजीविका चलाने के लिए किसी रोजगार की तलाश कर रहा होगा और जो भी मिलता है, उसे ले लेता है। लेकिन केवल इसी आधार पर नियुक्ति की संवैधानिक योजना को त्यागना और यह विचार करना उचित नहीं होगा कि जो व्यक्ति अस्थायी या अनौपचारिक रूप से नियोजित हुआ है, उसे स्थायी रूप से सेवा जारी रखने का निर्देश दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से, यह सार्वजनिक नियुक्ति का एक और तरीका तैयार करेगा जो अनुमेय नहीं है। -- -।"

अनुच्छेद 46 और 47 में इस प्रकार टिप्पणी की गई:-

"46. -----इसके अलावा, वैध अपेक्षा के सिद्धांत का आह्वान, कर्मचारियों को यह दावा करने में सक्षम नहीं कर सकता कि उन्हें स्थायी किया जाना चाहिए या उन्हें सेवा में नियमित किया जाना चाहिए, जबकि उन्हें नियुक्ति के नियमों के अनुसार नहीं चुना गया था। यह तथ्य कि

कुछ मामलों में न्यायालय ने उन मामलों से संबंधित कर्मचारियों के नियमितीकरण का निर्देश दिया था, वैध अपेक्षा के आधार पर दावा करने के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है - -।"

47. जब कोई व्यक्ति अस्थायी रोजगार में प्रवेश करता है या संविदात्मक या अनौपचारिक कर्मचारी के रूप में नियुक्ति प्राप्त करता है और नियुक्ति प्रक्रिया के प्रासंगिक नियमों द्वारा मान्यता प्राप्त उचित चयन पर आधारित नहीं होती है, तो वह नियुक्ति के अस्थायी, अनौपचारिक या संविदात्मक प्रकृति के होने के परिणामों से अवगत होता है। ऐसा व्यक्ति पद पर स्थायी होने के लिए वैध अपेक्षाओं के सिद्धांत का आह्वान नहीं कर सकता है, जब पद पर नियुक्ति केवल चयन के लिए उचित प्रक्रिया का पालन करके और कुछ मामलों में लोक सेवा आयोग के परामर्श से की जा सकती है। इसलिए, वैध अपेक्षा के सिद्धांत को अस्थायी, संविदात्मक या अनौपचारिक कर्मचारियों द्वारा सफलतापूर्वक आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। यह भी नहीं माना जा सकता कि राज्य ने इन व्यक्तियों को नियुक्त करते समय उनसे कोई वादा किया था कि वे जहां हैं, वहीं बने रहेंगे या उन्हें स्थायी कर दिया जाएगा। - यह भी स्पष्ट है कि इस

सिद्धांत का सहारा लेकर पद पर स्थायी किए जाने का सकारात्मक लाभ नहीं लिया जा सकता।"

(जोर दिया गया)

70. प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने, सुप्रीम कोर्ट द्वारा 27.09.2021 को निर्णित **यूपी राज्य और अन्य बनाम प्रिंसिपल अभय नंदन इंटर कॉलेज और अन्य** सिविल अपील 865 वर्ष 2021 में दिए गए फैसले का भी आधार लिया है। सुप्रीम कोर्ट इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंड पीठ के फैसले को दी गई चुनौती पर विचार कर रहा था, जिसमें इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 1921 के तहत संशोधित विनियमन 101 को असंवैधानिक ठहराया गया था। न्यायालय ने इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम 1921 और समय-समय पर संशोधित उसके तहत बनाए गए विनियमों और वेतन भुगतान अधिनियम 1971 के प्रावधानों पर विचार किया। न्यायालय ने गौर किया कि जनवरी 2008 में, कर्मचारियों के खर्च को विनियमित और कम करने के उद्देश्य से, यूपी राज्य द्वारा चतुर्थ श्रेणी में कोई नया पद नहीं सृजित करने और जहाँ भी जरूरत हो, कार्य आउटसोर्सिंग के माध्यम से किये जाने का नीतिगत निर्णय लिया गया था। तत्पश्चात्, मार्च 2008 में छठे केन्द्रीय वेतन आयोग द्वारा यह सिफारिश की गई कि सभी सरकारी विभागों में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की कोई नई भर्ती करने के स्थान पर आउटसोर्सिंग करना उचित होगा। तदनुसार, 2009 में विनियम 101 में संशोधन किया गया तथा दिनांक 08.09.2010 और दिनांक 06.01.2011 को सरकारी आदेश भी जारी किए गए, जिसके

अंतर्गत सभी सरकारी विभागों और सहायता प्राप्त विद्यालयों में आउटसोर्सिंग लागू कर दी गई, और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की नई भर्ती न करने का निर्णय लिया गया तथा आगे निर्देश दिया गया कि रिक्त किए जाने वाले पद से संबंधित कोई भी व्यवस्था केवल आउटसोर्सिंग के माध्यम से की जा सकती है। दिनांक 24.04.2014 को अधिसूचित दिनांक 04.09.2013 के सरकारी आदेश द्वारा विनियम 101 में एक बार फिर संशोधन किया गया। उक्त संशोधन का प्रभाव यह था कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों का पद, जिसे अब तक संस्थाओं द्वारा भरा जाना था, ऐसी भर्ती के लिए अनुपलब्ध हो गया तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से केवल आउटसोर्सिंग के माध्यम से ही कार्य लिया जाना था। तदनुसार, स्थायी पदों को समाप्त कर दिया गया और आउटसोर्सिंग के माध्यम से नियुक्ति की पद्धति द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। केवल उन कर्मचारियों के आश्रितों के लिए अपवाद रखा गया था जिनकी सेवा के दौरान मृत्यु हो गई थी।

71. सातवें केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट में, छठे केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को इसके कार्यान्वयन में सावधानी के साथ दोहराया गया। लेकिन, वित्तीय बाधाओं और दक्षता को ध्यान में रखते हुए आउटसोर्सिंग की आवश्यकता को एक बार फिर दोहराया गया। रिपोर्ट के पैराग्राफ 3.72 और पैराग्राफ 3.83 में ठेकेदारों की पहचान और निविदा प्रक्रिया पर नियमों में दिए जाने वाले व्यापक मार्गदर्शन का संदर्भ दिया गया। इसमें 3 प्रकार की संविदा नियुक्तियों का उल्लेख

किया गया। पहला, घर की देखभाल, रखरखाव से संबंधित गतिविधियाँ, डेटा प्रविष्टि, ड्राइविंग आदि नियमित प्रकृति के कार्यों से संबंधित था, जिन्हें आम तौर पर एक साथ करके एजेंसियों को सौंप दिया जाता है। ये एजेंसियाँ फिर कार्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक व्यक्तियों को नियुक्त करती हैं। आयोग ने यह भी माना कि "...सरकार की ओर से, उन नौकरियों के बारे में जिन्हें ठेके पर दिया जा सकता है और दिया जाना चाहिए, स्पष्ट मार्गदर्शन दिया जाना उचित होगा। ऐसा करते समय गोपनीयता और जवाबदेही की चिंताओं को ध्यान में रखा जा सकता है। इसके अलावा, निरंतरता लाने और संविदात्मक जनशक्ति के शोषण के बारे में चिंताओं को दूर करने के लिए, सरकार द्वारा समान दिशानिर्देश/आदर्श अनुबंध समझौते तैयार किए जा सकते हैं --।"

72. सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के पद पर भर्ती को समाप्त करने और उसे आउटसोर्सिंग के माध्यम से सेवा के उपयोग की प्रक्रिया से प्रतिस्थापित करने के लिए प्राथमिक चिंता वितीय कठिनाई थी और उसके बाद दक्षता। न्यायालय ने यह भी देखा कि यह सभी प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करने और वित्त और प्रशासन के क्षेत्र में विशेषज्ञों की राय और हितधारकों के साथ व्यापक परामर्श के बाद सावधानीपूर्वक पेश किया गया नीतिगत निर्णय था। यह छोटे केंद्रीय वेतन आयोग और सातवें केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों पर आधारित होने के कारण संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का हवाला देकर चुनौती देने

योग्य नहीं था। न्यायालय ने अनुच्छेद 37 में निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"नीतिगत निर्णय को जनहित में माना जाता है, तथा ऐसा निर्णय एक बार लिए जाने के बाद चुनौती योग्य नहीं होता, जब तक कि स्पष्ट या अत्यधिक मनमानी न हो, संवैधानिक न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह इसमें हस्तक्षेप न करे।"

न्यायालय ने अनुच्छेद 39 में आगे टिप्पणी की कि-

"एक बार जब कोई नियम नीतिगत निर्णय द्वारा पेश किया जाता है, तो उसे रद्द करने से पहले स्पष्ट, अत्यधिक और चरम मनमानी के अस्तित्व पर प्रदर्शन की आवश्यकता होती है। विधानमंडल के अधिनियम की वैधता के परीक्षण के लिए आवश्यक मापदंडों का न्यायालय द्वारा पालन किया जाना अपेक्षित है। न्यायालय एक सिद्धांतवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाएगा। लोगों के प्रतिनिधियों से लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर काम करने की अपेक्षा की जाती है। यह अनुमान है कि वे हर तथ्य के प्रति सचेत हैं, जो कानून की संवैधानिकता को बनाए रखने के लिए होगा। कानून शून्य में काम नहीं कर सकता। वास्तविक दुनिया में, जब कानून को व्यावहारिक कार्य में लाया जाता है, तो इसके प्रयोग से उत्पन्न होने वाली अड़चनों का सबसे अच्छा शोध कानून निर्माताओं द्वारा किया जाता है। अनुभव

के माध्यम से प्रकट की गई जटिल समस्याओं के समाधान के लिए वास्तव में कानून में स्वीकार्य मानक तक पहुँचने के लिए बहुत सारे प्रयोगों की आवश्यकता होगी। न्यायालय के कार्य का यह हिस्सा नहीं है कि वह इस बात की जांच करे कि वह किसी समस्या से निपटने के लिए किसे अधिक उचित या बेहतर तरीका मानता है...."।

73. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि आउटसोर्सिंग वास्तव में पद को पूरी तरह से समाप्त करना है। कोई भी न्यायालय पद के सृजन का निर्देश नहीं दे सकता। आउटसोर्सिंग शब्द की व्याख्या करने में खंडपीठ द्वारा किया गया विचार-विमर्श न्यायिक समीक्षा के दायरे से बाहर था और इससे बचा जाना चाहिए था। सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 43 में इस प्रकार टिप्पणी की:-

"...नीति के रूप में आउटसोर्सिंग को पूरे राज्य में लागू किया गया है। यह कहना एक बात है कि इसे सातवें केंद्रीय वेतन आयोग की सिफारिश के अनुसार सावधानी से लागू किया जाना चाहिए, और इसे असंवैधानिक करार कर देना दूसरी बात है। आउटसोर्सिंग को कानून में प्रतिबंधित नहीं किया गया है। यह स्पष्ट है कि आउटसोर्सिंग के माध्यम से भर्ती में अपनी कमियाँ और नुकसान हो सकते हैं, हालाँकि, आउटसोर्सिंग लेने के निर्णय को केवल अनुमान और धारणा के आधार पर संविधान के विरुद्ध घोषित नहीं किया जा सकता है। जाहिर है, हम

योजना की प्रकृति और इससे जुड़े सुरक्षा उपायों को नहीं जानते हैं...।"

74. इसने पैराग्राफ 45 में यह भी कहा:-

"...हम भी योजना से दो-चार नहीं हैं, और इसलिए, सेवा की शर्तों के बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है....कोई यह सामान्यतया नहीं मान सकता कि भर्ती की एक पद्धति के रूप में आउटसोर्सिंग अनिवार्य रूप से ठेका श्रम को अपनाता होगा और इसमें अनुचित व्यापार व्यवहार का तत्व मौजूद है, जैसा कि प्रतिवादियों द्वारा तर्क दिया जा रहा है।

75. प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने दिल्ली विश्वविद्यालय बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय अनुबंध कर्मचारी संघ और अन्य 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 256 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए फैसले और उसके पैराग्राफ 7 का आधार लिया है और तर्क दिया है कि उमा देवी में दिए गए फैसले और उसके बाद खंड पीठ द्वारा कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम एमएल केसरी और अन्य 2010 (9) एससीसी 247; गुजरात राज्य और अन्य बनाम पीडब्ल्यूडी कर्मचारी संघ और अन्य 2013 (12) एससीसी 417; निहाल सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य 2013 (14) एससीसी 65; शिव नारायण नागर और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य 2018 (13) एससीसी 432; और नरेंद्र कुमार तिवारी और अन्य बनाम झारखंड राज्य और अन्य 2018 (8) एससीसी 238 में दिए गए फैसलों पर विचार करते हुए; सर्वोच्च न्यायालय ने उमा

देवी और उसके पैराग्राफ 47, 49 और 53 में निर्धारित कानून को दोहराया और *आधिकारिक परिसमापक बनाम दयानंद और अन्य* 2008 (10) एससीसी पृष्ठ 1 के मामले में दिए गए फैसले के आधार पर, *एमएल केसरी* में खंड पीठ द्वारा की गई टिप्पणियों को समझाया। न्यायालय ने देखा कि अगर किसी प्रकार के चयन के लिए संविदा कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए विज्ञापन जारी भी किया गया था, तो अधिक योग्य और मेधावी व्यक्ति आवेदन नहीं करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि रोजगार एक निश्चित अवधि के लिए एक निश्चित वेतन के साथ होगा और उनकी नियुक्ति परियोजना के समापन के साथ समाप्त हो जाएगी। नतीजतन, केवल औसत दर्जे के लोग ही ऐसे विज्ञापनों पर प्रतिक्रिया देते हैं और ऐसे संविदा पदों पर कार्यरत होते हैं। इसने देखा कि कर्मचारी संघ द्वारा आधार लिए गए सभी फैसले उन कर्मचारियों से संबंधित थे जिन्होंने 10 साल से अधिक की सेवा की थी और *उमा देवी* में निर्णय के पैराग्राफ 53 के आधार पर लाभ का दावा कर सकते थे। एम एल केसरी में एक बार में नियमितीकरण का उपाय विस्तार से समझाया गया। प्रत्येक विभाग और प्रत्येक संस्था को एक बार की प्रक्रिया करनी थी और उन सभी अनौपचारिक, दैनिक वेतनभोगी या तदर्थ कर्मचारियों की सूची तैयार करनी थी जो न्यायालयों और न्यायाधिकरणों के हस्तक्षेप के बिना 10 वर्षों से अधिक समय से काम कर रहे थे, और उन्हें सत्यापन की प्रक्रिया के अधीन यह बताना था कि क्या वे रिक्त पदों पर काम कर रहे थे और क्या उनके पास पद के लिए अपेक्षित योग्यता है और यदि है, तो उनकी सेवाओं को नियमित करें।

उमादेवी में निर्णय के बाद, कई विभागों और संस्थाओं ने एक बार की नियमितीकरण प्रक्रिया शुरू नहीं की थी। दूसरी ओर कुछ विभागों ने एक बार की प्रक्रिया शुरू की थी जिसमें कई कर्मचारियों को या तो इस आधार पर विचार से बाहर रखा गया था कि उनके मामले न्यायालयों में लंबित थे या सरासर लापरवाही के कारण। ऐसी परिस्थितियों में, वे कर्मचारी जो उमा देवी में निर्णय के पैराग्राफ 53 के अनुसार विचार किए जाने के हकदार हैं, वे नियमितीकरण के लिए विचार किए जाने के अपने अधिकार को केवल इसलिए नहीं खो देंगे कि एक बार की प्रक्रिया उनके मामले पर विचार किए बिना पूरी हो गई थी, या क्योंकि उमा देवी के पैराग्राफ 53 में उल्लिखित छह महीने की अवधि समाप्त हो गई थी। यदि किसी नियोक्ता ने उमा देवी के अनुसार एकमुश्त प्रक्रिया आयोजित की थी, लेकिन कुछ कर्मचारियों के मामलों पर विचार नहीं किया, जो लाभ के हकदार थे, लेकिन जिन्होंने 10.04.2006 तक 10 साल की लगातार सेवा नहीं की थी, तो नियोक्ता को एकमुश्त प्रक्रिया की निरंतरता के रूप में उनके मामलों पर भी विचार करना चाहिए। एकमुश्त प्रक्रिया तभी समाप्त होगी जब उमा देवी के पैराग्राफ 53 के अनुसार विचार किए जाने के हकदार कर्मचारियों पर इस तरह विचार किया जाएगा। उमा देवी के पैराग्राफ 53 में इस निर्देश के पीछे दोहरा उद्देश्य था। पहला यह सुनिश्चित करना है कि जिन लोगों ने उमा देवी में फैसले की तारीख से पहले कोर्ट या ट्रिब्यूनल के किसी अंतरिम आदेश के संरक्षण के बिना 10 साल से अधिक की लगातार सेवा की है, उनकी लंबी सेवा को देखते हुए नियमितीकरण के लिए

विचार किया जाए। दूसरा यह सुनिश्चित करना है कि विभाग/संस्थाएं लंबे समय तक दैनिक वेतन/तदर्थ/अनौपचारिक आधार पर व्यक्तियों को नियुक्त करने की प्रथा को जारी रखते हुए फिर समय-समय पर उन्हें इस आधार पर नियमित न करें कि उन्होंने 10 वर्षों से अधिक समय तक सेवा की है, जिससे भर्ती और नियुक्ति से संबंधित संवैधानिक या वैधानिक प्रावधानों पराजित हो जाए।

76. सुप्रीम कोर्ट ने *दिल्ली विश्वविद्यालय* (सुप्रा) में दिए गए फैसले के पैराग्राफ 12 में कहा कि *उमा देवी* मामले में दिए गए फैसले के समय अधिकांश अनुबंध कर्मचारियों ने केवल 3 से 4 साल की सेवा की थी। लेकिन अब तक, उनमें से अधिकांश ने अनुबंध के आधार पर 10 साल से अधिक की सेवा पूरी कर ली है। हालांकि नियमितीकरण का लाभ नहीं दिया जा सकता है, लेकिन सार्वजनिक विज्ञापन के माध्यम से उपलब्ध प्रतिभाओं के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए उन्हें अवसर दिया जाना चाहिए। केवल अनुबंध कर्मचारियों के लिए एक अलग और विशेष परीक्षा इसका उत्तर नहीं होगी क्योंकि इससे अनुबंध कर्मचारियों तक ही विचार का दायरा सीमित हो जाएगा। ऐसे मामले में, विश्वविद्यालय द्वारा खुली भर्ती और चयन के लिए विज्ञापन दिया जाना चाहिए जिसमें उमा देवी मामले में फैसले से पहले नियुक्त किए गए कर्मचारियों को आयु में छूट का लाभ दिया जाए और आगामी चयन प्रक्रिया में उन्हें 10 अंकों का लाभ दिया

जाए और उनके द्वारा कार्य करने के प्रत्येक अतिरिक्त वर्ष के लिए, उन्हें आठ अतिरिक्त अंकों की सीमा के अधीन एक अतिरिक्त अंक दिया जा सकता है।

77. दूसरी ओर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने *नेशनल एल्युमिनियम कंपनी लिमिटेड बनाम दीपक कुमार पांडा 2002 (6) एससीसी 223* पैराग्राफ 2 और 4 का आधार लिया है; जहां न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रहा था जिसमें प्रतिवादी को 1985 में कंपनी द्वारा एक वर्ष के लिए समेकित वेतन पर साक्षात्कार के बाद अनुबंध के आधार पर फ्रेंच दुभाषिया के रूप में नियुक्त किया गया था, जिसे बाद में लगभग पांच वर्षों के लिए वार्षिक आधार पर बढ़ाया गया था। उसे सेवा से हटाए जाने के समय बताया गए कारण यह थे कि वह फ्रेंच में स्नातक की उच्च योग्यता का मूल प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने में विफल रहा था और इस संबंध में कई अवसर दिए जाने के बावजूद वह इसे प्रस्तुत करने में विफल रहा था। कंपनी ने छुट्टी की मंजूरी का इंतजार किए बिना इयूटी से दूर रहने के अन्य कदाचार का खुलासा किया। इसने यह भी तर्क दिया कि अनुबंध की नियुक्ति समाप्त हो जाने के बाद, प्रतिवादी के पास सेवा में बने रहने का कोई कानूनी रूप से प्रवर्तनीय अधिकार नहीं था। न्यायालय ने अपेक्षित योग्यता होने का विश्वसनीय प्रमाण प्रस्तुत करने में विफलता के उक्त आधार पर विस्तार से विचार किया और पाया कि ऐसा नहीं था कि प्रतिवादी की सेवाओं को कीन्ही अन्य

प्रशासनिक कारणों से नहीं बढ़ाया गया था। वास्तव में, यह एक निर्विवाद तथ्य था कि प्रतिवादी से कनिष्ठ कर्मचारी जो समान शर्तों पर नियुक्त किए गए थे, उनकी सेवायें जारी रखी गयीं और उसके बाद नियमित आधार पर सेवा में शामिल किए गए। न्यायालय ने माना कि कंपनी द्वारा प्रतिवादी को अयोग्य मानना उचित नहीं था क्योंकि उन्होंने उससे पांच साल तक काम लिया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि इस न्यायालय को प्रतिवादियों द्वारा अनुबंध के आधार पर कार्यरत याचिकाकर्ताओं की सेवायें रोकने तथा अन्य कर्मचारियों को फिर से अनुबंध के आधार पर किंतु एक सेवा प्रदाता के माध्यम से, रखने के लिए, अपनाए गए आधार का परीक्षण करना था।

78. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ग्रिड कंपनी लिमिटेड और अन्य बनाम सदानंद डोलोई और अन्य 2011 (15) एससीसी 16 और उसके पैराग्राफ 1, 22 से 39 का भी आधार लिया है। अपीलकर्ता निगम ने अनुबंध में निर्धारित तीन महीने का नोटिस और वेतन देकर प्रतिवादी की सेवाएं समाप्त कर दीं। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिवादी की नियुक्ति की वास्तविक प्रकृति पर विचार किया और यह भी कि क्या यह एक नियमित नियुक्ति थी या केवल संविदात्मक प्रकृति की थी और यह भी कि यदि नियुक्ति संविदात्मक थी तो क्या इसकी समाप्ति किसी कानूनी दुर्बलता से प्रभावित थी जिसमें संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। दूसरे

प्रश्न पर विचार करते हुए न्यायालय ने पैराग्राफ 25 में निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"25. यह सच है कि अनुबंधों के दायरे में आने वाले मामलों की न्यायिक समीक्षा उच्च न्यायालयों के समक्ष भी उपलब्ध है, लेकिन ऐसी किसी भी समीक्षा का दायरा सर्वव्यापी नहीं है। इसमें न्यायालय द्वारा निर्णय लेने वाले प्राधिकारी द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के स्थान पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने तक विस्तार नहीं है। न्यायिक समीक्षा और परिणामी हस्तक्षेप तब स्वीकार्य है जब प्राधिकारियों की कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण, मनमानी, तर्कहीन, असंगत या अनुचित हो, लेकिन यदि याचिकाकर्ता की चुनौती केवल इस आधार पर आधारित है कि प्राधिकारी द्वारा लिया गया दृष्टिकोण संभावित विकल्प से कम तर्कसंगत हो सकता है, तो यह अस्वीकार्य है। यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि न्यायिक समीक्षा अंतिम निर्णय की शुद्धता से उतनी चिंतित नहीं है जितनी कि निर्णय लेने की प्रक्रिया से है, जब तक कि निर्णय स्वयं इतना विकृत या तर्कहीन या तर्क की इतनी घोर अवहेलना करने वाला न हो कि निर्णय लेने वाले व्यक्ति के बारे में कहा जा सके कि उसने अपना विवेक खो दिया है।"

79. श्रीलेखा विद्यार्थी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1991 (1) एससीसी 212 में दिए गए फैसले का हवाला देते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने ग्रिड कंपनी (सुप्रा) में राज्य की सार्वजनिक और निजी कानूनी गतिविधियों के बीच अंतर देखा। कोर्ट

ने तर्क दिया था कि निजी व्यक्तियों के विपरीत, राज्य अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए और अपने कार्यों का निर्वहन करते हुए, सार्वजनिक भलाई और सार्वजनिक हित में कार्य करता है। नतीजतन, राज्य की हर कार्रवाई का सार्वजनिक हित पर प्रभाव पड़ता है जो बदले में ऐसे कार्यों के निर्वहन में सार्वजनिक कानून के अनुप्रयोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं को ले आएगा। कोर्ट ने घोषणा की कि जहां राज्य की कार्रवाई को चुनौती मनमाना, अनुचित और अतार्किक होने के आधार पर दी गई है, इसलिए संविधान के अनुच्छेद 14 के लिए अपमानजनक है, न्यायिक समीक्षा स्वीकार्य है। न्यायालय ने घोषित किया कि यह तथ्य कि विवाद संविदात्मक दायित्वों के क्षेत्र में आता है, राज्य को अनुच्छेद 14 की बुनियादी आवश्यकताओं का पालन करने के अपने दायित्व से मुक्त नहीं करता है। इस तर्क से प्रभावित न होते हुए कि अनुबंध में ही कहा गया है कि यह प्रसादपर्यंत सिद्धांत पर आधारित था, कोर्ट ने टिप्पणी की थी कि:-

"...अतिरिक्त संविदात्मक दायित्व, राज्य के किसी भी कार्य में उसके द्वारा मनमानी न करने की अनुच्छेद 14 के तहत गारंटी से, दावेदार को वंचित नहीं कर सकता।"

80. *ग्रिड कंपनी (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय ने हालांकि सतीश चंद्र आनंद बनाम भारत संघ, एआईआर 1953 सर्वोच्च न्यायालय 250 में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया, जहां याचिकाकर्ता, पुनर्वास और रोजगार महानिदेशालय का एक कर्मचारी, को सेवा*

समाप्ति का नोटिस दिए जाने के बाद संविदात्मक रोजगार से हटा दिया गया था। उस मामले में सेवा का अनुबंध शुरू में पांच साल की अवधि के लिए था जिसे बाद में बढ़ा दिया गया था। मामले की सुनवाई कर रही पांच न्यायाधीशों की पीठ ने याचिका को खारिज कर दिया, जिसमें मुख्य रूप से इस आधार पर समाप्ति को चुनौती दी गई थी कि याचिकाकर्ता मौलिक अधिकार का उल्लंघन साबित नहीं कर सका क्योंकि उसे कोई अधिकार नहीं मिला था, क्योंकि पूरा मामला अनुबंध में निहित था और अनुबंध की समाप्ति बर्खास्तगी या सेवा से हटाने के बराबर नहीं थी और न ही यह रैंक में कमी थी। न्यायालय ने पाया कि यह एक सामान्य मामला था जिसमें अनुबंध को उसके एक खंड के तहत नोटिस द्वारा समाप्त किया गया था। इसने *सतीश चंद्र आनंद (सुप्रा)* में दिए गए फैसले के पैराग्राफ 10 और 11 को इस प्रकार उद्धृत किया: -

"10. याचिकाकर्ता पर अनुबंध में प्रवेश करने के लिए कोई बाध्यता नहीं थी, वह कानून के तहत किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह ही स्वतंत्र था कि वह उस प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार कर सके जो उसे दिया गया था। स्वीकार करने के बाद, उसके पास अभी भी समान स्थिति के अन्य व्यक्तियों को उपलब्ध सभी अधिकार और उपचार मौजूद हैं, ताकि वह अपने अनुबंध के तहत किसी भी अधिकार को जो उसे इनकार दिया गया है, यदि कोई है, पुष्ट कर सके और देश के सामान्य न्यायालयों में, उल्लंघन

के लिए ऐसे उपचारों को आगे बढ़ा सके जो उसके लिए उसी सीमा तक खुले हैं, जिस सीमा तक समान स्थिति के अन्य व्यक्तियों के लिए हैं। उसके साथ भेदभाव नहीं किया गया है और उसे किसी भी कानून के संरक्षण, जिसका दावा समान स्थिति वाले अन्य लोग कर सकते हैं, से वंचित नहीं किया गया है....,

11. ... याचिकाकर्ता को रोजगार या नियुक्ति के किसी भी अवसर से वंचित नहीं किया गया है। उसके साथ किसी भी अन्य व्यक्ति, जिसे इन शर्तों के तहत अस्थायी रोजगार का प्रस्ताव दिया गया था, की तरह ही व्यवहार किया गया है। विश्लेषण करने पर, उसकी शिकायत व्यक्तिगत भेदभाव की नहीं है, बल्कि यह स्थायी रोजगार की जगह विशेष शर्तों पर अस्थायी रोजगार के प्रस्ताव के खिलाफ है। लेकिन बेशक राज्य अस्थायी रोजगार के अनुबंध में प्रवेश कर सकता है और प्रत्येक मामले में विशेष शर्तें लागू कर सकता है, बशर्ते कि वे संविधान के साथ असंगत न हों, और जो लोग उन शर्तों को स्वीकार करना और अनुबंध में प्रवेश करना चुनते हैं, वे उनसे वैसे ही बाध्य हैं, जैसे कि राज्य बाध्य है।"

81. न्यायालय ने सतीश चंद्र आनंद से श्रीलेखा विद्यार्थी के समय तक कानून के विकास को देखा और ग्रिड कंपनी (सुप्रा) पैराग्राफ 38 में निम्नलिखित टिप्पणी की: -

"38. इस न्यायालय के निर्णयों और पिछले कुछ दशकों में कानून के

विकास का सारांश यह दर्शाता है कि पहले के निर्णयों में तय की गई कानूनी स्थिति से एक उल्लेखनीय बदलाव आया है, कि अनुबंध की शर्तों के अनुसार एक संविदात्मक रोजगार की समाप्ति अनुमेय थी और कर्मचारी ऐसी समाप्ति के खिलाफ कोई सुरक्षा का दावा नहीं कर सकता था, भले ही अनुबंध करने वाले पक्षों में से एक राज्य हो। संविदात्मक शर्त के उल्लंघन के लिए उपाय भी क्षति/मुआवजे के लिए सिविल कार्रवाई के माध्यम से था। प्रशासनिक कार्यों की न्यायिक समीक्षा से संबंधित कानून के विकास के साथ, एक रिट न्यायालय अब एक सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा पारित सेवा समाप्ति के आदेशों की वैधता की जांच कर सकता है। अब आदेश पारित करने वाले प्राधिकरण के लिए यह तर्क देना संभव नहीं है कि अनुबंध के दायरे में होने के कारण उसकी कार्रवाई न्यायिक समीक्षा के लिए उपलब्ध नहीं है।"

82. अब ग्रिड कंपनी (सुप्रा) के मामले पर आते हैं, जहां मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए न्यायालय ने देखा था कि संविदात्मक रोजगार देने की शक्ति एक नियमित स्थायी नियुक्ति करने की शक्ति में निहित है जब तक कि वह कानून जिसके तहत इस अधिकार का प्रयोग किया जाता है, ऐसी नियुक्ति करने से मना नहीं करता। नियुक्ति आदेश में स्पष्ट रूप से नियुक्ति को एक कार्यकाल नियुक्ति

बताया गया था जो तीन वर्ष की अवधि तक सीमित थी तथा प्रदर्शन के आधार पर नवीनीकरण की शर्त पर थी। अपीलकर्ता निगम ने यह सुझाते हुए कार्यकाल भी बढ़ाया था कि यह नियुक्ति एक कार्यकाल नियुक्ति थी, जिसे निदेशक मंडल के विवेक पर बढ़ाया जा सकता था। न्यायालय ने माना कि संविदा रोजगार का नवीनीकरण प्रतिवादी की उपयोगिता तथा उसके द्वारा धारित पद पर किसी पदाधिकारी की आवश्यकता के बारे में प्रबंधन की धारणा पर निर्भर करता है। यह विवेकाधिकार पूरी तरह से निदेशक मंडल के पास है, अपीलकर्ता तथा प्रतिवादी क्रमांक 1 के बीच किसी अनुचित व्यवहार अथवा असमान सौदेबाजी शक्ति का कोई तत्व नहीं था, जिसके कारण प्रतिवादी के प्रति अति सहानुभूतिपूर्ण अथवा सुरक्षात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता हो। संविदात्मक नियुक्तियां तभी काम करती हैं, जब वे दोनों संविदाकारी पक्षों के लिए पारस्परिक रूप से लाभकारी प्रतीत होती हैं, अन्यथा नहीं। निगम द्वारा की गई कार्रवाई में कोई अनुचितता, अन्याय, विकृति अथवा अताकिंकता दर्शाने वाली कोई सामग्री नहीं थी।

83. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट-ए संख्या 4845 वर्ष 2021 **सुनीता सिंह बनाम यूपी राज्य एवं अन्य** में दिनांक 12.08.2021 को समन्वय पीठ द्वारा दिए गए निर्णय का भी आधार लिया है, जिसमें न्यायालय कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय में संविदा के आधार पर नियुक्त शिक्षकों द्वारा दायर रिट याचिका की पोषणीयता पर विचार कर रहा था। समन्वय पीठ ने इस

न्यायालय द्वारा **शीला देवी बनाम यूपी राज्य एवं अन्य** 2010 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1142, जो आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं द्वारा रिट याचिकाओं की पोषणीयता से संबंधित है, और **एमके गांधी बनाम शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) यूपी, लखनऊ, 2005** एससीसी ऑनलाइन ऑल 728; और **रॉयचन अब्राहम बनाम यूपी राज्य एवं अन्य, 2019** एससीसी ऑनलाइन ऑल 3935 (एफबी), में दिए गए तीन पूर्ण पीठ निर्णयों पर विचार किया, जहाँ पूर्ण पीठ ने विचार किया कि क्या निजी गैर-सहायता प्राप्त विद्यालयों द्वारा की गई कार्रवाई के खिलाफ रिट याचिका पोषणीय होगी।

84. **शीला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** में पूर्ण पीठ ने, आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं द्वारा रिट याचिका की पोषणीयता पर विचार करते हुए इस प्रकार टिप्पणी की -

"26. सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि अनुच्छेद 226 की सीमा और दायरे को न्यायालयों द्वारा उदार बनाया गया है, व्याख्या की गई है और विस्तारित किया गया है। यदि याचिकाकर्ता कानून के अनुसार राहत चाहता है और उसकी वास्तविक शिकायत किसी वैधानिक प्राधिकरण या सार्वजनिक कार्यों के निष्पादन के लिए निहित प्राधिकरण द्वारा की गई कार्रवाई या पारित आदेश के विरुद्ध है, तो याचिका पोषणीय है। संक्षेप में, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन में

किसी भी व्यक्ति द्वारा या सार्वजनिक प्राधिकरण यानी सरकार के किसी अधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध रिट याचिका सदैव पोषणीय होगी।"

रॉयचन अब्राहम में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ को एमके गांधी बनाम शिक्षा निदेशक में न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा दिए गए एक अन्य निर्णय की शुद्धता पर विचार करने के लिए कहा गया था। एमके गांधी में, पूर्ण पीठ ने माना था कि एक शैक्षणिक संस्थान के कर्मचारी जिनकी सेवाएँ केवल गैर-वैधानिक उपनियमों द्वारा शासित होती हैं, वे रिट याचिका का पोषण नहीं कर सकते। एमके गांधी मामले में पूर्ण पीठ ने माना कि निजी शिक्षण संस्थान राज्य नहीं है। एमके गांधी मामले में लिया गया निर्णय, जब सर्वोच्च न्यायालय में अपील में लाया गया, तो उपरोक्त सीमा तक बरकरार रखा गया। सीबीएसई को संबंधित संस्थान के खिलाफ आगे की कार्रवाई करने के लिए जो निर्देश जारी किए गए थे, उन्हें रद्द कर दिया गया। रॉयचन अब्राहम मामले में पूर्ण पीठ ने सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा सार्वजनिक कार्य करने वाले या सार्वजनिक कर्तव्य निभाने वाले निकायों के संबंध में दिए गए विभिन्न निर्णयों पर विस्तार से गौर किया। इस विषय पर विकसित हुए उदाहरणों को देखते हुए पूर्ण पीठ ने कहा कि:-

"...किसी व्यक्ति का कानूनी अधिकार किसी अनुबंध या कानून या विधि की शक्ति वाले किसी साधन पर आधारित हो सकता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के

अंतर्गत लागू किए जाने योग्य सार्वजनिक विधि उपचार के लिए, प्राधिकरण के कार्यों को सार्वजनिक विधि के दायरे में आना चाहिए - चाहे वह राज्य का विधायी अधिनियम हो, या राज्य का कार्यकारी अधिनियम हो या सार्वजनिक विधि तत्व से युक्त कोई साधन या व्यक्ति या प्राधिकरण हो। प्रत्येक मामले में राज्य में निहित अधिकार की प्रकृति और सीमा को ध्यान में रखते हुए प्रश्न का निर्धारण किया जाना आवश्यक है। - - - भले ही यह मान लिया जाए कि कोई शैक्षणिक संस्थान सार्वजनिक कर्तव्य निभा रहा है, लेकिन उस कार्य का सार्वजनिक कर्तव्य के निर्वहन के साथ सीधा संबंध होना चाहिए। यह निर्विवाद रूप से एक सार्वजनिक विधि कार्रवाई है जो पीड़ित को विशेषाधिकार रिट के लिए अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान करने का अधिकार प्रदान करती है। व्यक्तिगत गलतियाँ या आपसी अनुबंधों का उल्लंघन, जिसका अभिन्न अंग कोई सार्वजनिक तत्व न हो, अनुच्छेद 226 के अंतर्गत याचिका के माध्यम से ठीक नहीं किया जा सकता..."

85. यह सच है कि ऊपर उद्धृत कानून कि व्यक्तिगत सेवा का अनुबंध जो कि किसी भी वैधानिक निहितार्थ से ओतप्रोत नहीं है, लागू नहीं किया जा सकता है और बर्खास्तगी के मामलों में जिस रिट की प्रार्थना की गई है, उसे मंजूर नहीं किया जा सकता है, ने लगातार इस क्षेत्र को स्थापित रखा है।

पूर्ण पीठ ने फिर यह देखा कि जबकि यह

सच था कि शिक्षा प्रदान करने वाला एक निजी संस्थान भी, इस तथ्य के आधार पर कि वह एक सार्वजनिक कार्य करता है, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा के लिए जवाबदेह है, एमके गांधी के फैसले को मामले के तथ्यों तक ही सीमित समझा जाना चाहिए। यह ध्यान दिया गया कि एमके गांधी अनिवार्य रूप से इस सवाल का उत्तर देता है कि क्या एक रिट याचिका गैर-वैधानिक उपनियमों के उल्लंघन और एक निजी अनुबंध को लागू करने के लिए पोषणीय होगी। न्यायालय ने यह भी देखा कि एमके गांधी को इस सिद्धांत को प्रतिपादित करने के रूप में नहीं समझा जा सकता है कि निजी शिक्षण संस्थान सार्वजनिक कार्य नहीं करते हैं। अंततः यह माना गया कि एमके गांधी के फैसले की समीक्षा करने लायक नहीं थी।

86. **रामकृष्ण मिशन बनाम कागो कुन्या, 2019 (5) स्केल 559** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि:-

"43. - - - यदि कोई व्यक्ति या प्राधिकरण संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ में राज्य है, तो निश्चित रूप से अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका ऐसे व्यक्ति या निकाय के खिलाफ होगी। हालांकि, इस चेतावनी के साथ कि ऐसे मामलों में भी रिट निजी कानून के अधिकारों को लागू करने के लिए नहीं होगी। इस पहलू पर कई तरह के निर्णय हैं और उन निर्णयों का संदर्भ देना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रशासनिक कानून के तहत किसी कार्रवाई की

न्यायिक समीक्षा का यही मूल सिद्धांत है। कारण स्पष्ट है। निजी कानून कानूनी प्रणाली का वह हिस्सा है जो सामान्य कानून का हिस्सा है जिसमें व्यक्तियों के बीच संबंध शामिल होते हैं, जैसे अनुबंध या अपकार का कानून। इसलिए, भले ही कोई प्राधिकरण, जो संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत राज्य है, के खिलाफ याचिका पोषणीय हो, फिर भी कोई रिट, विशेष रूप से परमादेश की रिट जारी करने से पहले, न्यायालय को यह संतुष्ट होना होगा कि ऐसे प्राधिकरण की कार्रवाई जिसे चुनौती दी गई है, निजी कानून से अलग सार्वजनिक कानून के क्षेत्र में है।" - - -, भले ही निकाय व्यापक अर्थ में सार्वजनिक कार्य का निर्वहन करता हो, लेकिन निजी सेवा अनुबंध के प्रवर्तन में कोई सार्वजनिक कानूनी तत्व शामिल नहीं होता है....."

87. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा: -

"इस प्रकार, विशुद्ध रूप से निजी प्रकृति के अनुबंध केवल इस तथ्य के कारण रिट क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं होंगे कि वे वैधानिक प्रावधानों द्वारा संरचित हैं। इस सिद्धांत का एकमात्र अपवाद उस स्थिति में उत्पन्न होता है, जहां सेवा अनुबंध किसी वैधानिक प्रावधान द्वारा शासित या विनियमित होता है। इसलिए जब कोई कर्मचारी औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 द्वारा शासित कामगार होता है, तो यह सामान्य सिद्धांत का अपवाद बन जाता है कि व्यक्तिगत सेवा अनुबंध को

विशेष रूप से लागू या निष्पादित नहीं किया जा सकता है। - -"

88. सुनीता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने कहा कि:-

"सेवा अनुबंध के तीन सुप्रसिद्ध और बार-बार व्यक्त अपवाद जो विशेष रूप से प्रवर्तनीय नहीं हैं, वे हैं (ए) जहां एक सिविल सेवक को संविधान के अनुच्छेद 311 या अनुच्छेद 309 के तहत बनाए गए किसी कानून का उल्लंघन में सेवा से हटाया जाता है, (बी) जहां एक कर्मचारी को औद्योगिक कानून द्वारा दी गई सुरक्षा के उल्लंघन में हटाया जाता है, और, (सी) जहां एक निकाय के कर्मचारी को किसी कानून या वैधानिक नियम के उल्लंघन में बर्खास्त किया जाता है। ...एक अविचलित धागे का अनुसरण करने वाले उदाहरण ऊपर देखे गए तीन अपवादों से चिपके हुए हैं:....याचिकाकर्ताओं की संविदात्मक नियुक्ति केवल उपरोक्त सिद्धांतों पर परीक्षण के लिए उत्तरदायी होती, यदि यह तथ्य अस्तित्व में ना होता कि उनकी नियुक्ति प्रतिवादियों द्वारा समय-समय पर जारी किए गए कार्यकारी आदेशों, परिपत्रों और नीति वक्तव्यों द्वारा भी नियंत्रित और शासित होती है। ये आदेश राज्य की कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में या किसी प्राधिकरण, जो राज्य है, द्वारा नीति की अभिव्यक्ति के रूप में दिये गए थे और एक निकाय, जो किसी

सार्वजनिक कार्य का निर्वहन करती है या एक सार्वजनिक कर्तव्य निभाती है, के कार्य हैं, वे प्राधिकरणों को कानून में प्रवर्तनीय किसी वैधानिक नियम, विनियमन या आचार संहिता की भांति ही बाध्य करेंगे। - - - यही वह विशिष्ट विशेषता है जो याचिकाकर्ताओं को प्रतिवादियों के कार्यों पर आक्रमण करने और सवाल उठाने का अधिकार देती है, भले ही उनकी नियुक्ति अनुबंधात्मक हो। प्रतिवादियों द्वारा जारी निर्देश और आदेश और परिपत्र केजीबीवी से संबंधित गतिविधियों के पूरे दायरे को नियंत्रित और संचालित करते हैं, जिसमें शिक्षकों और कर्मचारियों का चयन और नियुक्ति, नियुक्ति की शर्तें, पाठ्यक्रम और निर्देशों का स्वरूप शामिल है। दूसरे शब्दों में कहें तो, बर्खास्तगी के आदेशों या नियुक्ति की शर्तों में बदलाव को चुनौती, स्थापित करनी होगी और प्रतिवादियों द्वारा जारी उन कार्यकारी आदेशों और परिपत्रों में निहित प्रावधान या शर्त का उल्लंघन पाया जाना होगा ताकि रिट जारी की जा सके, भले ही उनका रोजगार अन्यथा और मुख्य रूप से व्यक्तिगत अनुबंधों की शर्तों द्वारा शासित हो - -।"

89. प्रश्न संख्या (ii) और (iii) के उत्तर में, इस न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का अध्ययन किया है, जैसे उमा देवी, दिल्ली विश्वविद्यालय, सतीश चंद्र आनंद, श्रीलेखा विद्यार्थी, नेशनल एल्युमीनियम कंपनी लिमिटेड, ग्रिड कंपनी लिमिटेड, रोशन लाल

टंडन, रामकृष्ण मिशन, शीला देवी, एमके गांधी, रॉयचन अब्राहम और सुनीता सिंह (सुप्रा), और इस न्यायालय की विचारित राय है कि निजी सेवा के अनुबंध के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए, कानून स्थापित है कि केवल तीन अपवाद हैं, जो निम्नलिखित हैं:

(क) जहां किसी सिविल सेवक को अनुच्छेद 311 और अनुच्छेद 309 के अंतर्गत बनाए गए नियमों के उल्लंघन में हटाया जाता है;

(ख) जहां किसी कर्मकार को औद्योगिक कानून द्वारा प्रदत्त संरक्षण का उल्लंघन में हटाया जाता है;

(ग) जहां राज्य या उसके निकाय के किसी कर्मचारी को वैधानिक नियम या विनियमन के उल्लंघन में बर्खास्त किया जाता है।

90. हालांकि, याचिकाकर्ताओं की संविदात्मक नियुक्ति प्रतिवादियों के समय-समय पर जारी किए गए कार्यकारी आदेशों, परिपत्रों और नीति वक्तव्यों द्वारा नियंत्रित होती है। ये आदेश, जैसे कि दिनांक 17.09.2021 का परिपत्र, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा, एक प्राधिकरण जो कि राज्य है, द्वारा नीति की अभिव्यक्ति के रूप में जारी किए गए हैं और संघ, जो एक सार्वजनिक कार्य और सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वहन करने वाला निकाय है, की परिणामी कार्रवाई, ऐसे प्रतिवादियों को कानून में प्रवर्तनीय आचार संहिता के रूप में भी बाध्य करेगी। याचिकाकर्ताओं को इस तथ्य के बावजूद कि उनकी नियुक्ति संविदात्मक है, प्रतिवादियों की कार्रवाई पर आक्रमण करने

और सवाल उठाने का अधिकार प्राप्त होगा। दूसरे शब्दों में, यह न्यायालय निश्चित रूप से हस्तक्षेप कर सकता है यदि नीतिगत निर्णय जिसके अनुसरण में जीईएम पोर्टल पर बोली के लिए आक्षेपित आमंत्रण दिया गया है, मनमाना और तर्कहीन है।

91. कार्मिक विभाग के विशेष सचिव द्वारा, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.09.2022 के अनुपालन में दाखिल, शपथ-पत्र में कहा गया है कि संविदा कर्मचारियों की सीधी नियुक्ति के संबंध में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। विशेष सचिव के शपथ-पत्र के पैराग्राफ-12 एवं 13 में कहा गया है कि संविदा कर्मचारियों की नियुक्ति के संबंध में कार्मिक विभाग की कोई नीति अस्तित्व में नहीं है तथा विभाग/अधीनस्थ संस्थाओं द्वारा कार्य हेतु इस प्रकार की संविदा नियुक्ति सम्बन्धित विभाग द्वारा किये गये अनुबंध/सामझौते में उल्लिखित सेवा शर्तों/नियमों द्वारा शासित होगी। यह भी कहा गया है कि शासनादेश दिनांक 18.12.2019, दिनांक 18.08.2020 एवं दिनांक 25.08.2020 केवल कार्मिकों की आउटसोर्सिंग के लिए लागू हैं तथा उक्त शासनादेश संविदा आधार पर कार्मिकों की नियुक्ति पर लागू नहीं हैं। संविदा कर्मचारियों की सीधी नियुक्ति के लिए ऐसा कोई निषेध नहीं है और यह तथ्य इस परिस्थिति से पुष्ट होता है कि अन्य सभी शीर्ष स्तरीय सहकारी समितियों/ सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में, संविदा कर्मचारियों को वित्तीय वर्ष 2022-23 के लिए फिर से नियुक्त किया गया है। इसलिए, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि प्रतिवादी सहकारी संघ की ओर से यह

गलतफहमी है कि संविदा कर्मचारियों की सीधी नियुक्ति पर कोई निषेध है और यह कि ऐसा आदेश है कि सभी संविदा कर्मचारियों को केवल आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से ही नियुक्त किया जाना है, जिसका चयन केवल जीईएम पोर्टल के माध्यम से किया जाएगा। इस तर्क ने आक्षेपित आदेशों और प्रतिवादियों द्वारा वर्ष 2022-23 के लिए याचिकाकर्ताओं को फिर से नियुक्त न करने की कार्रवाई का आधार बनाया।

92. राज्य सरकार या प्रतिवादी सहकारी समिति में किसी भी स्तर पर ऐसा कोई सचेत निर्णय नहीं है कि संविदा कर्मचारियों को सीधे नहीं नियुक्त किया जाना चाहिए या केवल आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से नियुक्त किया जाना चाहिए। ऐसे किसी निर्णय के अभाव में, आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से मनमाने हैं और रद्द करने योग्य हैं। दिनांक 25.08.2022 के सरकारी आदेश के पैराग्राफ-4 में यह स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया है कि वर्तमान में कार्यरत आउटसोर्स कर्मचारियों को आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से कर्मचारी के रूप में रखा जाना चाहिए। वर्तमान में कार्यरत 622 संविदा कर्मचारियों को प्रतिस्थापित करके 622 कर्मचारियों की आपूर्ति के लिए एक आउटसोर्सिंग एजेंसी की पहचान करना, साथ ही यह शर्त रखना कि मौजूदा श्रमिकों को अब जीईएम पोर्टल के माध्यम से चयनित आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से नियुक्त किया जाना चाहिए, पूरी तरह से मनमाना निर्णय प्रतीत होता है जिसका कोई तर्कसंगत आधार नहीं है।

93. प्रतिवादी संघ की ओर से दायर कोई भी हलफनामा सरकार द्वारा लिए गए ऐसे किसी भी

निर्णय की ओर संकेत नहीं करता है। आयुक्त एवं निबंधक ने केवल सरकारी आदेशों की व्याख्या की और संघ ने सीधे तौर पर अनुबंध पर काम कर रहे कर्मचारियों की संख्या के बारे में जानकारी मांगी और इस जानकारी कि ऐसे 622 कर्मचारी हैं, के आधार पर 622 कर्मचारियों को उपलब्ध कराने और उनकी नियुक्ति के लिए आउटसोर्सिंग एजेंसी के चयन के लिए जीईएम पोर्टल पर निविदा सूचना जारी की गई। जीईएम पोर्टल पर निविदा सूचना जारी करने और याचिकाकर्ताओं के अनुबंध को नवीनीकृत नहीं करने का निर्णय परिपत्र और समय-समय पर जारी सरकारी आदेशों की गलत समझ के आधार पर लिया गया एक यांत्रिक निर्णय है।

94. इस न्यायालय ने प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार करने पर पाया है कि हालांकि याचिकाकर्ताओं को श्रम विभाग और सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग विभाग द्वारा जारी सरकारी आदेशों को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है और उन्होंने उन्हें चुनौती दी भी नहीं है, फिर भी जहां तक जीईएम पोर्टल के माध्यम से चयनित सेवा प्रदाता से जनशक्ति की खरीद का सभी सरकारी विभागों और अधीनस्थ संस्थानों पर लागू होने की बात है, वह प्रश्न जो वे उठा सकते हैं और उठाया गया भी है, वह प्रतिवादी संख्या 2 के परिपत्र की प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा व्याख्या के संबंध में है। परिपत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आयुक्त एवं निबंधक सहकारिता उत्तर प्रदेश द्वारा दिशा-निर्देश दिए गए हैं कि यदि आउटसोर्सिंग के लिए जनशक्ति खरीदी जानी है, तो इसे सेवा प्रदाताओं से बोलियाँ आमंत्रित करके जीईएम पोर्टल के माध्यम से किया जाना चाहिए। प्रतिवादियों द्वारा दायर

हलफनामों से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र में कहीं भी यह प्रावधान नहीं था कि किसी भी सीधे नियोजित संविदा कर्मचारी को, भले ही वह संतोषजनक सेवा प्रदान कर रहा हो, के साथ अनुबंध की वर्तमान अवधि की समाप्ति पर, एक नया अनुबंध करके, सेवा में फिर से रखा जा सकता है।

95. दिनांक 17.09.2021 के परिपत्र में सहकारी समितियों द्वारा सीधे संविदा कर्मचारियों की नियुक्ति पर कोई रोक नहीं है। प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा उपरोक्त परिपत्र की, की गई व्याख्या गलत और तर्कहीन है, जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट है कि कई शीर्ष स्तरीय सहकारी समितियां अभी भी व्यक्तिगत अनुबंधों के माध्यम से कर्मचारियों की सीधे नियुक्ति जारी रखे हुए हैं, जिसे याचिकाकर्ताओं द्वारा रिकॉर्ड में लाया गया है और जिसका प्रतिवादियों द्वारा विशेष रूप से खंडन नहीं किया गया है। प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा की गई परिणामी कार्रवाई, जो कि रिट याचिका का संलग्नक 15 और 17 है, पूरी तरह से अनुचित है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। हालांकि, यह न्यायालय पाता है कि प्रतिवादी संख्या 3 से 6 ने अपने निदेशक मंडल के माध्यम से आउटसोर्सिंग के लिए की गई कार्यवाही को रद्द करने का निर्णय पहले ही ले लिया है। प्रबंध निदेशक ने इस संबंध में परिणामी आदेश भी जारी किया है। प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा, रिट याचिकाकर्ताओं के पिछले प्रदर्शन और संतोषजनक आचरण के आधार पर, उन्हें फिर से अनुबंध के तहत नियुक्त किया जा सकता है या नहीं भी किया

जा सकता है। हालांकि, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालय द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 से 6 को इस संबंध में कोई परमादेश की रिट जारी नहीं की जा सकती है, लेकिन इस न्यायालय ने पहले ही माना है कि प्रतिवादी संख्या 2 के परिपत्र दिनांक 17.09.2021 की प्रतिवादी संख्या 3 से 6 द्वारा की गई व्याख्या तर्कहीन और गलत है, इसलिए पूर्व प्रचलन के अनुसार, याचिकाकर्ताओं का नए सिरे से नियुक्त होने का अधिकार पुनर्जीवित हो गया है। परिपत्र दिनांक 17.09.2021 द्वारा डाला गया ग्रहण हटा दिया गया है।

96. तदनुसार, रिट याचिकाओं का निस्तारण किया जाता है।
